

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

❁❁❁❁❁

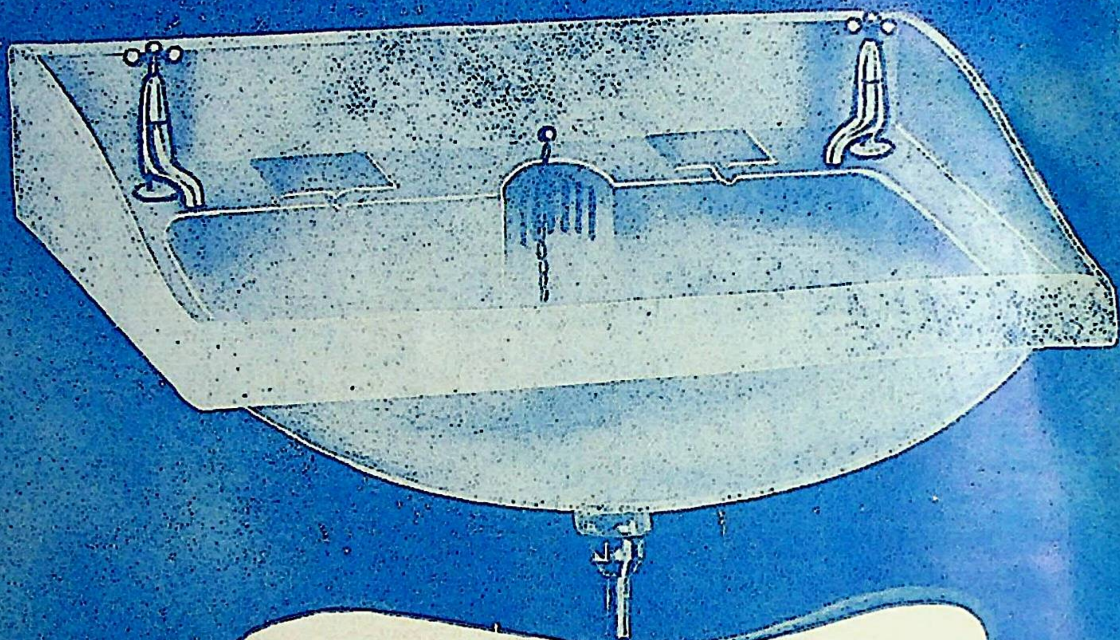
Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

APPROVED FOR USE IN SCHOOLS, COLLEGES & LIBRARIES IN U. P., C. P., C. I., PUNJAB & MEWAR

माधुरी



Octo...



हर तरह से उत्तम

बर्न के ऊँचे दर्जे के सफ़ेद चमकीले प्रक्षालन-पात्र (Wash Basin) भारत में रानीगंज में तैयार होते हैं। ये किसी भी विदेशी-पात्र का गुणों में मुक़ाबला कर सकते हैं। दाम में भी ये सस्ते हैं तथा चिटकते या फटते नहीं हैं, साथ ही ये जीवन भर काम दे सकते हैं।

इन सफ़ेद चमकदार उच्च श्रेणी के प्रक्षालन-पात्रों की सुन्दर विवरण पुस्तिका नीचे लिखे पते पर पत्र भेजने से मिल सकती है:—

हिन्दुस्थान के तमाम मशहूर सैनिटरी इंजिनियर इसका व्यापार करते हैं

दि पौटरीज़
रानीगंज

मैनेजिंग एजेण्ट्स

बर्न एण्ड को० लिमिटेड
१२ मिशन रोड, कलकत्ता

चित्र-सूची



ऊषा

October, 1936.



सम्पादक

रूपनारायण पांडेय

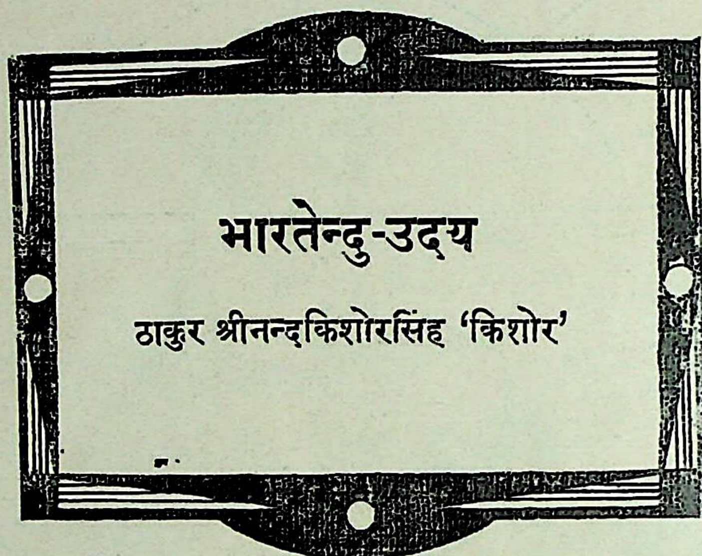
प्रतिनिधि-सम्पादक (सी० पी०)—मातादीन शुक्ल

वर्ष १५, खंड १, अंक ३, पूर्णांक १७१ | आश्विन | ३१३ तुलसी संवत्, १९९३ वि०

गीत

श्री "निराला"

खुलती मेरी शेफाली ;
हँसती री डाली - डाली !
किसकी यह शोभा छीनी
जो वृन्तों पर रङ्गीनी ?
हलके दल, भीनी भीनी
आई सुगन्ध मतवाली !
मूँदीं जब जग ने आँखें,
खोलीं री इसने पाँखें ;
उड़ने को नभ को ताके
उपवन की परियाँ, आली !



भारतेन्दु-उदय

ठाकुर श्रीनन्दकिशोरसिंह 'किशोर'

(१)

भारतेन्दु जौं इतै न आवत !
को करतो नागरि नभ निर्मल,
चाँदनि चारु नवल बिखरावत।
कवित कुमोदिनि काया पलटत,
सुचि रुचि नव दुति को सरसावत ?

(२)

साहित कैरव कोष भरत को,
हिंन्दी प्रेम सुधा बरसावत।
तृषित चकोर रसिक गन तोषत
को हिय सुमन-कलिन बिकसावत ?

(३)

ब्रजभाषा की लाली राखत,
प्रचलित गद्यहिं को चमकावत।
बोल-चाल रचना की भाषा,
सरल सरस को एक बनावत ?

(४)

धरम, समाज कुरीति नटिन को,
रंगमंच पै लाइ नचावत।
कौन मातृभाषा, स्वदेश - रति,
मूरति मनहर हिये बिठावत ?

(५)

को कविअन पथ अगम सुधारत,
हस्यकाव्य नव कला बढ़ावत।
राजनीति, इतिहास, समयगत,
हिन्दी मँह को राग कढ़ावत ?

(६)

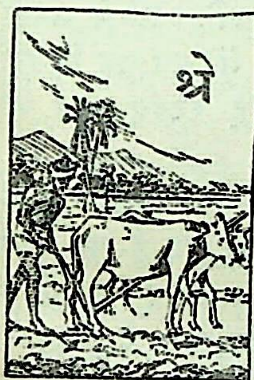
चन्द्रकान्त चित चतुर जनन सों,
को हिन्दी रस चाव चुचावत।
हिन्दी सरधा सिथिल सिंधु मँह,
को नित जीवन ज्वार जगावत ?

धन्य सु भादौं मास वह, सुक्ल सप्तमी धन्य।
भारतेन्दु हरिचन्द की, उदया-तिथि जग धन्य ॥ ७ ॥
भारतेन्दु की चन्द्रिका, भई पूज्य करवाल।
हिन्दी, हिन्दू, हिन्द की, काटि कालिमा-जाल ॥ ८ ॥



कवि 'प्रसाद' का गीति-काव्य

श्रीरामनाथ 'सुमन' संपादक 'नवराजस्थान'



श्रेष्ठ काव्य में संगीत का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः काव्य स्वतः संगीत है। काव्य और संगीत दोनों सृष्टि के मूल में और सम्पूर्ण सृष्टि-शरीर में जो सामञ्जस्य प्रति पग पर है, किन्तु जिसे न पाकर, न देखकर ही मनुष्य दुखी और वंचित-सा है, उसे व्यक्त करते हैं। इस सामंजस्य के कारण मानव-हृदय सृष्टि से तारतम्य का अनुभव करता है और यदि काव्य की साधना विशुद्ध और निर्लिप्त भाव से चलती रहे तो सम्पूर्ण जगत् संगीत के प्रवाह से पूर्ण एवं आनंद तथा शक्ति का निकेतन-सा अनुभव होने लगता है। जब कवि को ईश्वर कहकर उसकी वंदना की गई थी, तब वह एक प्रशंसा का अतिरेक न था; उसमें एक गंभीर आध्यात्मिक सत्य को प्रकट किया गया था। जब कवि के काव्य में संगीत का सामंजस्य प्रकट होता है, तब वह जगत् के चिरंतन लय से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और जीवन्मुक्त पुरुष की नाईं उसका जीवन आनंद एवं शांति के सतत चेतन-प्रवाह में बदल जाता है।

चिरकाल से जिस आत्मा एवं आनंद की शोध में मानव के प्राण प्यासे-से छटपटा रहे हैं, संगीत में वह हमारे बहुत निकट होता है। उसमें हम अपने साथ बिलकुल 'ऐट होम' होते हैं। उसमें हमें अपना आभास मिलता है। हम अपने को अपने में पाते हैं—अपने में अपने को देख सकते हैं; अनुभव भी कर सकते हैं। इसी लिए अनादि काल से संगीत हमारे जीवन की कुंजी की भाँति, हमारे अन्दर-बाहर, ऊपर-नीचे, चतुर्दिक् व्याप्त होकर, हमारे साथ ही चल रहा है और इसी लिए हम देखते हैं कि गीतिकाव्य में मनुष्य को जो आन्तरिक और इसी लिए सच्चा आह्लाद होता है, वह अन्य किसी काव्य-विधि में नहीं। यह हमारी कल्पना की उड़ान को ही नहीं प्रकट करता, हमारे अत्यन्त कोमल अन्तःस्तर को भी स्पर्श करता है। यहाँ केवल भावना नहीं, एक अनुभूति भी है। मानो मानव के चिरपिपासित अबोले प्राण इसमें बोलते-बोलते कुछ बोल ही जाते हैं—उच्छ्वसित हो उठते हैं। अनन्त काल से जो चीज़ मनुष्य के अत्यन्त निकट है, जो सत्य उसके मन में अत्यन्त गोपनीय रहस्य-सा बना समा रहा है और जिसमें उसकी युग-युग की साधना, उत्कण्ठा, सफलता-असफलता की कहानी छिपी है—जहाँ सब मनुष्य एक स्तर पर हैं, उसकी स्मृति की ज़रा-सी चिनगारी, जुगनू की भाँति अँधेरे पार्श्वक्षेत्र के विपरीत चमक जाती है।



जब काव्य में मानव-हृदय का यह सत्य, यह चैतन्य आता है, तभी वह भीतर से आनंद में ओत-प्रोत होकर प्राकृतिक झरने की तरह फूट पड़ता है और इस अनुभूति के कारण साहित्य-प्रकाश के पिंड के समान जगमगा उठता है। आधुनिक हिंदी-काव्य इस विषय में अत्यन्त निर्धन है। यह दुःख की ही बात है कि 'प्रसाद' और 'निराला' के नेतृत्व को हिंदी ने ग्रहण नहीं किया। पंत और महादेवी ने संगीत का जो सामंजस्य अपने काव्य में किया है, उससे उनके काव्य में जो मंजुलता, जो सुकुमारता आई है, उससे हिंदी समृद्ध हुई है, परन्तु हिंदी के विशाल क्षेत्र में गीति-काव्य के प्रति सामान्यतः दुर्लक्ष्य बना ही हुआ है और न केवल रचना में, वरन् समीक्षा में भी हम बहुत निर्धन-से हो रहे हैं।

कवि 'प्रसाद' ने अपनी प्रतिभा से हिंदी के प्रत्येक क्षेत्र को समृद्ध किया है। जिसने नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध सभी कुछ सफलता-पूर्वक लिखे हैं, उसके लिए गीति-काव्य को छोड़ देना संभव न था। इस कवि में जो मस्ती है, भावना एवं अनुभूति की जो मृदुता है और मानव-जीवन के उत्कर्ष का जो गौरव है, उसे देखते हुए उसकी प्रतिभा गीति-काव्य की रचना के अत्यंत उपयुक्त है। उसने अपने जीवन के आरंभ में जो गीति-नाट्य लिखे हैं, उनसे स्पष्ट प्रकट होता है कि इस क्षेत्र में उसकी रुचि बालपन से रही है। इस कवि के काव्य-विस्तार एवं कविता की आत्मा को देखकर सहज ही कहा जा सकता है कि कवि ने संसार में जो कुछ मृदुल और रसमय है, उसे अच्छी तरह देखा और पाया है। वह कैशोर की आशा से प्रकाशित, यौवन के रस से स्निग्ध और वियोग के आँसू से धुला है। उसने सौन्दर्य को देखा है और देखा है। हमारे संयोग-वियोग, सुख-दुःख और प्रकाश-अंधकार से भरे हुए जीवन के बीच जो सौन्दर्य है, उसको देखने की उसमें शक्ति है। गीति-काव्य के लिए कवि में जो सूक्ष्म सौन्दर्य-वृत्ति (Aesthetic sense) होनी चाहिए, वह कवि प्रसाद के जीवन में ओत-प्रोत है। इस प्रकार के काव्य के लिए स्वानुभूति दूसरा अनिवार्य गुण है, जिसकी मात्रा 'प्रसाद' में कुछ कम नहीं है। मतलब यह कि कवि में गीति-काव्य के सम्पूर्ण उपादान वर्तमान हैं और यह क्षेत्र उसकी प्रतिभा के बहुत अनुकूल है।

इतनी बातों पर विचार कर लेने के बाद जब हम देखते हैं कि कवि ने गीति-काव्य के क्षेत्र में बहुत थोड़ी रचना की है, तब हमें कवि को धन्यवाद देने की इच्छा नहीं होती। स्वतंत्र गीति-काव्य के रूप में एक 'आँसू' ही हमें उपलब्ध है। शेष जो कुछ है, उनकी स्फुट कविताओं के संग्रहों या नाटकों में गीत के रूप में यत्र-तत्र बिखरा हुआ है। इन गीतों का कोई स्वतंत्र संग्रह भी नहीं है।

पर जहाँ तोल में कमी है, वहाँ मोल में कमी नहीं है। मात्रा थोड़ी है, पर जो कुछ है, वह ऐसा है कि हम उसे पाकर धन्य हैं। 'आँसू' आधुनिक हिंदी-साहित्य में सर्वश्रेष्ठ गीति-काव्य है। इसका हिन्दी ने न केवल खुले हृदय से स्वागत किया है, वरन् इसने हिन्दी की नवयुवक पीढ़ी पर अपनी गहरी छाप डाली है। वह प्रिय हुआ है और उसका अनुकरण करने की चेष्टा की गई है। इस विरह-प्रधान गीति-काव्य में कवि अपने जीवन की मृदुल रस-गंधमयी स्मृतियों को याद करके रोया है। उसका जो कुछ छिन गया है, उसके प्रति उसमें तीव्र वेदना और आग्रह है। सम्पूर्ण काव्य में कवि का जीवित स्पर्श हम पाते हैं। कहीं वह अपने को धोखा नहीं दे सका है। उसके हृदय में जो रस चिरकाल से, अत्यन्त गुप्त और निजी बनकर संचित था, वह इसमें मानों हृदय के आवरण को तोड़कर, विधि-निषेधों के ऊपर हो, प्रवाहित हो उठा है। इसमें आग्रह है और दुःख है, परन्तु इसमें उस दुःख को सहन करने और उसे विजय कर ऊपर उठने की आकांक्षा भी है

इसमें सम्पूर्ण मानव-जीवन का एक छोटा चित्र हम देखते हैं। एक दिन कवि विलास, वैभव और प्रेम से पुलकित है। दिन कब बीतते हैं और रात कब समाप्त हो जाती है, इसका मानों पता नहीं। यह भोग की अवधि एक दिन बीत जाती है। कवि बीते दिनों की याद में रोता और सिर धुनता है। फिर समझता है और अपने मन को समझाता है। दुःख पर यह जीवन की स्वाभाविक विजय है। अनन्त काल से मनुष्य आनन्द के पथ में चल रहा है। उसकी आनन्द की खोज सदा जारी है। 'आँसू' के रोदन में भी मानव की वह पिपासा कहीं नष्ट नहीं हुई है। चैतन्य की शोध इस दुःख में भी चलती रही है। इस प्रकार 'आँसू' न केवल एक भावना-अनुभूति-प्रधान गीति-काव्य बन गया है, बरन् उसका विकास इस ढंग से हुआ है कि जीवन के सत्य की हत्या नहीं हुई है, जैसा प्रायः विरह-काव्यों में हम देखते हैं। उलटे इस आँसू में धुलकर जीवन का पथ निखर गया है और निसर्ग-प्रेरित यात्रा की पगडंडी फिर चलने लगी है।

हाँ, तो गीतिकाव्य के सभी प्रधान उपकरण 'आँसू' में हमें मिल जाते हैं। काव्य नायक के सौन्दर्य-बोध से भरा है और भावना एवं अनुभूति की तो उसमें कहीं भी कमी नहीं होने पाई है। कल्पना में जहाँ कोमलता है, वहाँ जीवन भी है; भावना में जहाँ प्यास है, वहाँ गहराई भी है; अनुभूति में जहाँ मनोनिवेश है, वहाँ आत्म-संवेदन भी है, और सम्पूर्ण काव्य आरम्भ से अंत तक संगीतात्मक (Musical) है। कवि प्रसाद की कविता में इतना प्रसाद-गुण अन्यत्र बहुत कम मिलता है। विशेषता तो यह है कि इसमें सर्वत्र कल्पना, भावना एवं अनुभूति का अद्भुत समन्वय है। इसी लिए एक दार्शनिक, एक आध्यात्मिक संकेत भी है। मानव-जीवन से प्रति पग पर प्रकृति का सामञ्जस्य है। यहाँ प्रकृति मानव की अनुचरी है।

बस गई एक बस्ती है
स्मृतियों की इसी हृदय में;
नक्षत्र-लोक फैला है
जैसे इस नील निलय में।

* *

ये सब स्फुलिंग हैं मेरी
उस ज्वालामयी जलन के;

(किंचित् आध्यात्मिक स्पर्श)
कुछ शेष चिह्न हैं केवल
मेरे उस महामिलन के।

(अलंकृत प्रकृति-सापेक्षता)

शीतल ज्वाला जलती है
ईंधन होता दृग-जल का;
यह व्यर्थ साँस चल-चलकर
करती है काम अनिल का।

* *

बाड़व ज्वाला सोती थी
इस प्रेम-सिंधु के तल में;
प्यासी मछली-सी आँखें
थीं विकल रूप के जल में।

* *

बुलबुले सिंधु के फूटे
नक्षत्र-मालिका टूटी;
नभ-मुक्त-कुंतला धरणी
दिखलाई देती लूटी।

* *

(किंचित् आध्या० स्पर्श)

इस विकल वेदना को ले
किसने सुख को ललकारा;
वह एक अबोध अकिंचन
बेसुध चैतन्य हमारा।

* *

शब्दों की मृदुलता तो कहीं-कहीं अपूर्व है। विभिन्न शब्दों के एकत्र संयोग से न केवल पदों की अभिव्यंजकता बढ़ जाती है, बरन् उनमें एक ध्वनि, एक मीड़-सी पैदा हो जाती है। देखिए—



छिल-छिलकर छाले फोड़े मल-मलकर मृदुल चरण से ;
घुल-घुलकर बह बह जाते, आँसू करुणा के कण से।

* *

निशि, सो जावें जब उर में ये हृदय व्यथा आभारी ;
उनका उन्माद सुनहला सहला देना सुखकारी।

सारा काव्य सुन्दर उपमाओं, अलंकारों से अलंकृत है। देखिए—

विष-प्याली जो पी ली थी, वह मदिरा बनी नयन में ,
सौन्दर्य पलक प्याले का अब प्रेम बना जीवन में।

* *

कामना-सिन्धु लहराता छवि पूरनिमा थी छाई ;
रत्नाकर बनी चमकती मेरे शशि की परछाईं।

* *

मादकता से आये वे, संज्ञा से चले गये थे।

* *

बाँधा है विधु को किसने इन काली जंजारों से ;
मणिवाले फणियों का मुख क्यों भरा आज हीरों से ?

स्थानाभाव-वश यहाँ बहुत थोड़े उदाहरण दिये जा सकते हैं। सम्पूर्ण काव्य अपनी मृदुलता और माधुर्य में ओत-प्रोत है। यह न केवल एक श्रेष्ठ गीति-काव्य है, बरन् जीवन का एक तत्त्व-ज्ञान भी इसमें है। यहाँ कवि निराशा के बीच हमारी आशा को पुष्ट करता है; दुःख के बीच सुख का संदेश देता है। यहाँ प्रेम आग्रही होकर भी जीवन के प्रति अपने कर्तव्य को नहीं भूलता। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया है, अंधकार में प्रकाश का उदय होता गया है। वासनाएँ मूर्च्छित होती गई हैं और आत्मार्पण का, कर्तव्य का भाव जाग्रत् होता गया है। इसी लिए यहाँ विरह सच्चा विरह बन गया है। उसमें विष नहीं है; अमृत है। वह आत्मा को शिथिल, अचेत और प्रमादी नहीं बनाता, उसे बल देता और जाग्रत् करता है। इसमें दुःख भी उत्कर्ष का एक उपादान है और विरह भी मिलन की एक स्मृति है; जो कहती है कि फिर मिलन होगा, फिर विच्छेद होगा। यह जीवन का नृत्य है और इसी रूप में इसकी महत्ता है।

'आँसू' के अतिरिक्त कवि का दूसरा कोई स्वतंत्र गीतिकाव्य हमें उपलब्ध नहीं है, पर अपने ग्रंथों में जहाँ भी उसने गायन या गीत लिखे हैं, वहाँ हमें जान पड़ता है कि यह कवि इस क्षेत्र में सहज ही सफलता प्राप्त कर सकता है। यदि गीतों का संग्रह किया जाय तो उनमें कुछ तो ऐसे अवश्य होंगे, जिनकी गणना हमारे साहित्य में प्रथम श्रेणी के काव्य के अन्तर्गत की जा सके। इनमें संगीत है; इनमें रस है; इनमें ध्वनि है; इनमें अलंकार है। शब्द चुने हुए हैं एवं उनसे मिठास और रस टपका पड़ता है। यहाँ कुछ उदाहरण देने की आवश्यकता है—

सघन वन-वल्लरियों के नीचे ;
उषा और संध्या किरनों ने तार बीन के खींचे।
हरे हुए वे गान जिन्हें मैंने आँसू से सींचे ;
स्फुट हो उठी मूक कविता फिर कितनों ने दृग मींचे।
स्मृति-सागर में पलक-चुलुक से बनता नहीं उलीचे ;
मानस-तरी भरी करुना-जल होती ऊपर नीचे।

[कामना का गान। कामना, पेज १२]

इसमें संगीत का अंश परिपूर्ण है और बाँसुरी के साथ इसका गायन अत्यंत मनोमोहक एवं श्रवण-सुखद होगा। अंतिम दोनों पंक्तियों में भावना, रस और अलंकार का समन्वय भी सुन्दर है। हृदय की नाव करुणा के जल से भरती जा रही है, ऊपर-नीचे होने लगी है। भला पलक के चुल्लुओं से स्मृति के सागर में कितना जल उलीचा जा सकेगा। यह तो बनता नहीं है।

न छेड़ना उस अतीत स्मृति से खिंचे हुए बीन-तार कोकिल ;
करुण रागिनी तड़प उठेगी सुना न ऐसी पुकार कोकिल !

* *

हृदय धूल में मिला दिया है उसे चरण-चिह्न-सा किया है ;
खिले फूल सब गिरा दिया है न अब बसंती बहार कोकिल !

(स्कंदगुप्त)



उपर्युक्त गीत में संगीत की प्रचुर मात्रा है। इसे यदि विहाग में गाया जाय तो इसकी अन्तर्हित मधुरता श्रोता को मुग्ध कर लेगी।

सब जीवन बीता जाता है।
धूप-छाँह के खेल सदृश,
सब जीवन बीता जाता है।
समय भागता है प्रति क्षण में
नव-अतीत के तुषार-कण में
हमें लगाकर भविष्य-रण में
आप कहाँ छिप जाता है?
सब जीवन बीता जाता है।

* *

वंशी को बस बज जाने दो
मीठी मीड़ों को आने दो
आँख बंद करके गाने दो
जो कुछ हमको आता है।
यह जीवन बीता जाता है।

(स्कंदगुप्त में देवसेना)

स्कन्दगुप्त में और भी कई अच्छे गाने हैं। परन्तु इनमें देवसेना का निम्नलिखित गाना विशेष महत्त्वपूर्ण है—

आह! वेदना मिली बिदाई;
मैंने भ्रम-वश जीवन-संचित
मधुकरियों की भीख लुटाई।
छल-छल थे संध्या के श्रमकण
आँसू से गिरते थे प्रति क्षण
मेरी यात्रा पर लेती थी—
नीरवता अनंत अँगड़ाई।
श्रमित स्वप्न की मधुमाया में
गहन-विपिन की तरु-छाया में
पथिक उनींदी श्रुति में किसने
यह विहाग की तान उठाई?
लगी सतृष्ण दीठ थी सबकी
रही बचाये फिरती कबकी
मेरी आशा आह! बावली!
तूने खो दी सकल कमाई।
चढ़कर मेरे जीवन-रथ में,
प्रलय चल रहा अपने पथ में,
मैंने निज दुर्बल पद-बल पर—
उससे हारी होड़ लगाई।

यह एक टूटे हुए, पर प्रेम-प्लावित, स्त्री-हृदय की निराशाजनक बिदाई है। वह आशा लेकर आई थी, किन्तु जो कुछ युग-युग से बचाती और संचय करती आ रही थी, वह सब कमाई भी, आशा की इस वंचना में खो गई। जीवन भर मधुकरियों की जो भीख एकत्र की थी, वह भ्रमवश, लुटा दी। अब क्या है? इस बिदाई के समय वेदना भेंट में मिली है। अब सुख की सामग्री जुटाते-जुटाते थके हुए स्वप्नों की मधुर माया के बीच गहन विपिन के शीतल निकुंज में बैठा हुआ यह कौन पथिक विहाग की तान उड़ा रहा है? मेरे जीवन-रथ पर चढ़कर प्रलय अपने मार्ग में चल रहा है। मैंने अपने दुर्बल पैरों के भरोसे उससे होड़ लगाई, पर उसमें तो हारना ही था।

एक निराश हृदय की जीवन-पथ पर यह कैसी करुणा से भरी हुई यात्रा है? जीवन की सारी भीख चुक गई है और जहाँ से उसे मिलने की आशा थी, वहाँ वेदना बिदाई में मिली है। जिसका आज सब कुछ खो गया है; सब कुछ समर्पित है; जिसने अपने निकट, अपने अन्तर्यामी के निकट कुछ छिपाकर, कुछ दबाकर नहीं रक्खा; जिसने दिया ही दिया है और अपने लिए कुछ रक्खा नहीं है, उसके हृदय के संघर्ष का यह एक छोटा, आंशिक चित्र है। ऐसा नहीं कि चित्र सम्पूर्ण है,—नहीं, वह अपूर्ण तो काफ़ी है। उसमें काव्य के दूषण भी एकाध हैं। पर इन दूषणों की चर्चा हम आगे के लिए स्थगित करके यहाँ इसकी संगीतमयता,



इसकी गीतिकाव्यात्मकता की ओर ही ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं । इस गीतिकविता—इस 'लीरिक' में कवि की अभिव्यक्ति है ; भावना की प्रचुरता है; प्रेममय जीवन का एक चित्र है और इन सबके बीच संगीत है ।

(खम्माच—तीन ताल)

तुम कनक-किरन के अन्तराल में
लुक-छिपकर चलते हो क्यों ?
नत मस्तक गर्व वहन करते
यौवन के घन, रसकन ढरते
हे लाजभरे सौन्दर्य ! बता दो
मौन बने रहते हो क्यों ?
अधरों के मधुर कगारों में
कल-कल ध्वनि की गुंजारों में
मधु सरिता-सी यह हँसी तरल,
अपनी पीते रहते हो क्यों ?

[चंद्रगुप्त में सुवासिनी]

प्रसादजी ने आज तक जितने मुक्तक गीत लिखे हैं, मेरी समझ से, उन सबमें यह सर्वोत्तम है । काव्य की दृष्टि से देखिए, संगीत की दृष्टि से देखिए, भाव-गरिमा की दृष्टि से देखिए, कल्पना और शब्द-सौष्ठव की दृष्टि से देखिए—चाहे जिस दृष्टि से देखिए, यह अपने में एक अत्यंत सजीव और पूर्ण गीत है । और इसका कारण भी है । यह रूप का चित्र है और जहाँ रूप का प्रश्न हो, 'प्रसाद' से अच्छा चित्रकार आधुनिक हिंदी-साहित्य में दूसरा नहीं है । लज्जा से भरे सौन्दर्य का, जो सब कुछ बोलते हुए भी चुप है और जिसके ओठों में हँसी की एक हलकी रेखा है; आँखों में कौतुक है, कितना सजीव चित्र है । इसमें सौन्दर्यानुभूति के साथ कवि का ऐसा सामञ्जस्य हो गया है कि गाते-गाते एक नवोढ़ा लज्जाभारावनता किशोरी आँखों में बस जाती है । इस चित्र में जीवन का स्पन्दन है । धमनियों में रक्त दौड़ रहा है, हृदय धड़क रहा है । आँखें ज़मीन की ओर झुकी हैं । कभी-कभी कनखियों से देखती हैं और उस देखने में जैसे कुछ कहना चाहती हैं—जैसे कुछ संदेश देती हैं ।

(कजली—धुन कहरवा)

आज इस यौवन के माधवी कुंज में कोकिल बोल रहा ।
मधु पीकर पागल हुआ करता प्रेम-प्रलाप
शिथिल हुआ जाता हृदय जैसे अपने आप
लाज के बंधन खोल रहा । आज० ॥
बिछल रही है चाँदनी छवि-मतवाली रात
कहती कंपित अधर से बहकाने की बात ।
कौन मधु-मदिरा घोल रहा । आज० ॥

यौवन में कामनाएँ अंकुरित हो रही हैं । हृदय खिलना चाहता है । आज वह अपने को पार—ट्रांसेंड—कर जाना चाहता है । आज वह अपने में सीमित होकर रहने को तैयार नहीं है । उसे चाहिए, वह जिसके सामने अपने को उँडेलकर, अपने को पूर्णतः रिक्त करके भी परिपूर्ण हो उठे । आज कैशोर की कली यौवन के पुष्प में परिणत हो गई है और उसकी उनींदी आँखों में एक स्वप्न भर रहा है । आज यौवन के माधवीकुञ्ज में कोकिल बोल रहा है । कुञ्ज में कम्पन है; वह मुखरित है । आज यौवन में, कण-कण में समाकर बोलनेवाला कोकिल मानो मधुपान करके पागल हो रहा है और प्रेम के प्रलाप के बीच हृदय, अपने-आप, शिथिल हुआ जा रहा है । उसकी खिंचावट दूर होती जा रही है—वह निर्वन्ध, अनावृत हुआ जा रहा है । लाज के बंधनों की गाँठ खुलती जा रही है । रात छवि से मतवाली हो रही है और चाँदनी बिछली पड़ती है । काँपते अधर से बहकाने की बात कह रही है ।

यौवन में कामना के अंकुरित होने का यह एक चित्र है । इसमें बाँध टूटना ही चाहता है और वासना का उठता हुआ स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ता है ।



चंद्रगुप्त में कल्याणी गाती है—

(कजली—धुन बनारसी कहरवा)

सुधा सीकर से नहला दो ।
लहरें डूब रही हों रस में
रह न जायँ वे अपने बस में
रूप-राशि इस व्यथित हृदय-सागर को बहला दो ।
सुधा-सीकर से नहला दो ॥
अंधकार उजला हो जाये
हँसी हंस माला मँडराये
मधु-राका आगमन कलरवों के मिस कहला दो ।
सुधा-सीकर से नहला दो ।
करुणा के अंचल पर निखरे
घायल आँसू हैं जो बिखरे
ये मोती बन जायँ, मृदुल कर से लो, सहला दो ।
सुधा-सीकर से नहला दो ।

इस गीत में शब्दों की योजना सुन्दर है । बहला दो और सहला दो शब्दों का उपयोग बहुत अच्छा हुआ है । चन्द्रमुख ! अपने सुधा-सीकर से मुझे नहला दो । रूपराशि ! आज हृदय-सागर बहुत व्यथित और कम्पित है, ज़रा इसे बहला दो । यह शांत हो जाय । लहरें रस में डूब जायँ और अवश हो जायँ । यह जो अँधेरा छा रहा है, वह उज्ज्वल, प्रकाशित हो उठे । हँसी की हंसमाला तीर पर मँडलाने लगे । कलरवों (मृदु वाणी) के बहाने पूर्णिमा के आगमन की बात प्रकट कर दो । लो, तुम ज़रा अपनी मृदुल हथेलियों से सहला दो तो करुणा के निखरे अंचल पर जो घायल आँसू बिखर रहे हैं, वे (तुम्हारे मृदु स्पर्श से) मोती बन जायँ ।

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे !
जब सावन-घन-सघन बरसते
इन आँखों की छाया - भर थे !
वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे !
सुरधनु-रंजित नव-जलधर से
भरे क्षितिजव्यापी अम्बर से
मिले चूमते जब सरिता के
हरित कूल युग मधुर अधर थे !
वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे !
प्राण-पपीहा के स्वरवाली,
बरस रही थी जब हरियाली,
रस जलकन मालती-मुकुल से
जो मदमाते गंध-विधुर थे ।
वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे !

इस गीत की शब्द-योजना देखिए । उसमें कैसी झनकार है ; कैसा नाद है । स्मृतियाँ सजीव होकर बोलती हैं । कवि ने अतीत को जैसे बिल्कुल सामने ला दिया हो !

मेरी आँखों की पुतली में,
तू बनकर प्रान समा जा रे ।
जिसके कन-कन में स्पन्दन हो
मन में मलयानिल चंदन हो
करुना का नव-अभिनन्दन हो
वह जीवन-गीत सुना जा रे ।
मेरी आँखों की पुतली में,
तू बनकर प्रान समा जा रे ॥
खिंच जाय अधर पर वह रेखा
जिसमें अंकित हो मधुलेखा
जिसको यह विश्व करे देखा
वह स्मित का चित्र बना जा रे ।
मेरी आँखों की पुतली में,
तू बनकर प्रान समा जा रे ॥

* *

और भी—

अरे ! कहीं देखा है तुमने, मुझे प्यार करनेवाले को ?

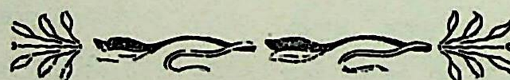
तथा—

अरे, आ गई है भूली-सी यह मधु ऋतु दो दिन को ।
छोटी-सी कुटिया में रच दूँ नई व्यथा साथिन को ।



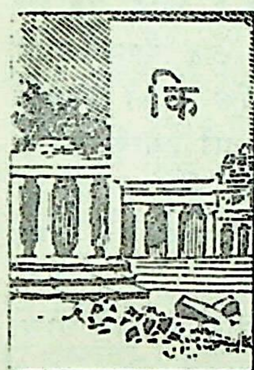
इत्यादि पदों के साथ आरंभ होनेवाले एवं अन्य गीत, जिनकी आलोचना 'लहर' पर विचार करते समय की जा चुकी है, गीति-कविता के गुणों से भरे हुए हैं। ये केवल गेय पद ही नहीं हैं, वरन् आधुनिक हिंदी-कविता में जो कुछ सुन्दर और संचय करने योग्य है, उसका भी अच्छा उदाहरण हमें इनमें मिलता है। कवि संगीत में अधिक सफल अभिव्यक्ति कर सका है। और, जब हम उस वातावरण पर दृष्टि डालते हैं, जिसके बीच होकर कवि का स्फुरण और विकास हुआ है, तब हमें इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं मालूम पड़ती। यह सारा वातावरण गदराई हुई वाटिका की भाँति है। इसमें जूही की सुगन्ध है; आम्र-मंजरियों का यौवनोन्माद है। इसमें काँटे भी हैं, पर वे फूलों के भार से ढके हुए हैं। इसमें कोकिल बोलता है और श्यामा गाती है। ऐसे वातावरण में संगीत की अभिरुचि न हो, यह असंभव है। संगीत कला का वैभव है और जहाँ वैभव है और काव्य है, वहाँ संगीत का पुट प्रायः होता है।

ऐसा नहीं कि कवि के गीति-काव्य पूर्ण संगीत की कसौटी पर कसने पर निर्दोष ही ठहरेंगे। यह कहना मिथ्या दंभ होगा। कवि के गीति-काव्य को देखकर यह स्पष्ट है कि यद्यपि वह संगीत के वातावरण में उठा है, पर संगीतमय नहीं हो सका है। संगीत को वह प्रकृततया (Instinctively) अनुभव करता है; उसे समझता है, पर उसकी बारीकियों को, नाद के भीतर जो एक जीवित शक्ति है, उसको, उसने ग्रहण नहीं किया। भूमि उर्वरा है, किन्तु उस पर जिस परिश्रम से आश्चर्य-जनक सफलता मिल सकती है, वह नहीं किया गया है। इतना है कि जो कुछ लिखा गया है, उसमें बहुत सफलता मिली है और यदि कवि इधर ध्यान दे, तो वह गीति-काव्य के क्षेत्र में असाधारण क्षमता प्राप्त कर सकता है। जिस दिन ऐसा होगा, हिन्दी धन्य होगी।



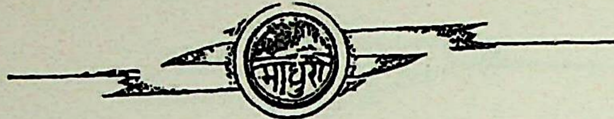
मित्र और मित्रता

कुँअर राजेन्द्रसिंह



सी भी शब्द के सर्वमाननीय अर्थ न हैं और न हो सकते हैं। "जाकी रही भावना जैसी, प्रभुमूरति देखी तिन तैसी", जैसी जिसकी भावना या इच्छा होगी, वैसे ही वह किसी शब्द के अर्थ लगावेगा, और इसी वजह से तो भाषा द्वारा सबकी सेवा होती है। अस्तु। यही हाल "मित्र" और "मित्रता" शब्दों का भी है। इनके भी अर्थ बहुत कुछ व्यक्तिगत भावों पर निर्भर हैं, यद्यपि ये दोनों वे शब्द हैं, जिन पर प्रत्येक साक्षर मनुष्य ने कुछ न कुछ लिखा है, अपने रंग में रँगा है। समय के परिवर्तन से विचारों और भावों में भी परिवर्तन होता रहता है और यह सम्भव नहीं कि उसकी झलक भाषा में न आ जाय। भाषा से अधिक और कोई चीज़ कालानुवर्ती नहीं है। यह कहना कदापि उचित नहीं कि जो पहले लिखा जा चुका है, वह ठीक नहीं है और जो कुछ अब लिखा जा रहा है, वही ठीक है। जैसे पहले का लिखा हुआ अब ठीक नहीं मालूम होता, वैसे ही अब का लिखा हुआ थोड़े दिनों बाद ठीक नहीं मालूम होगा; दोष न तब के लिखनेवालों का था और न अब के लिखनेवालों का है। समय बदलता रहता है और स्वभावतः समय के साथ विचार और भाव बदलते रहते हैं। पुराने शब्द नये अर्थों में भी प्रयुक्त होने लगते हैं, आवश्यकतानुसार शब्दों के अर्थों की व्यापकता विस्तीर्ण होती जाती है।

मित्र और मित्रता शब्दों का प्रयोग उस समय से होता होगा, जब संसार की जनसंख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती होगी, और अब भी ये दोनों प्रयोग में हैं, जब जनसंख्या बहुत बढ़ गई है और यह ख़याल किया जाने लगा है कि यदि यही वृद्धि रही तो लोगों को न तो रहने की जगह मिलेगी और न खाना मिलेगा। ख़ैर। क्या यह विचार करना अस्वाभाविक नहीं कि जिन अर्थों में ये दो शब्द तब प्रयुक्त होते थे, उन्हीं अर्थों में आज भी इनका प्रयोग होता है। पुराने ज़माने के लेखकों ने मित्र और मित्रता की प्रशंसा में वह गीत अलापे हैं, जो अब केवल साहित्यिक अत्युक्ति मालूम होते हैं। प्रत्येक लेखक अपने समय को चित्रित करता है। आश्चर्य कुछ नहीं है। सम्भव है, तब दुनिया का वही रंग हो। पर यह ख़याल करना बिलकुल अस्वाभाविक है कि दुनिया का वही रंग आज भी है, जो हज़ारों बरस पहले था, और यदि दुनिया बदली तो क्या विचार, भाव और भाषा नहीं बदली? अँगरेज़ी में एक कहावत है कि "वह न कहो, जो कहा चाहते हो; परन्तु वह कहो, जो लोग सुनना चाहते हों।" यदि इस सिद्धान्त से काम लिया जाय तो सिवा इसके कि वही पुराने प्रशंसा के गीत दूसरे शब्दों में दोहरा दिये जायँ, कहने को क्या रह जाता है? ऐसे अवसरों पर परम्परा का बड़ा प्रभाव पड़ता है। लोग वही सुनना पसन्द



करते हैं, जो सुन आये हैं, और यदि उसके विरुद्ध कहने का कुछ भी कोई साहस करे तो आक्षेपों का केन्द्र बना दिया जाता है, चाहे आक्षेप करनेवाले स्वयं अप्रकट में वही राय रखते हों।

तुलसीदासजी ने मित्र की प्रशंसा में लिखा है—"आपन दुख गिरि रज सम जाना, मित्र क दुख रज मेरु समाना" कितनी मनोहारी कल्पना है! ऐसे मित्रों की इनी-गिनी दो-एक पौराणिक उपमाएँ चाहे मिल जायँ, परन्तु व्यावहारिक जीवन में जो देखने में आता है, वह कुछ और है। उस तरह के मित्र चाहे तब होते हों, लेकिन वर्तमान समय में तो "गूलर का फूल" हो गये हैं। आजकल तो उन मित्रों से साबिक़ा पड़ता है, जिनसे रेल के सफ़र में, घोड़दौड़ में, शराब-ख़ाने में या और ऐसी ही किसी जगह में जान-पहचान होते ही वे "फ़्रेन्ड" कहलाने लगते हैं। न यह मालूम हो पाता है कि उनके जीवन का उद्देश्य क्या है; उनके धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक विचार क्या हैं। और सब तो दूर रहा, यह तक जानने के पहले कि वे कौन हैं और कहाँ के हैं, हम उन्हें मित्रों की सूची में स्थान दे देते हैं। कवि टेनीसन ने कहा है—"उस मित्रता का विनाश करो, जिसका आधार मदिरा है।" यह बात भी कुछ पुरानी मालूम होती है। आजकल उसी मित्रता में कुछ स्थिरता है, जो किसी पारस्परिक बुरी आदत पर अवलम्बित ो। इस सिद्धान्त में भी पुरानापन आ गया है कि "एकोमित्र: भूपतिर्वा यतिर्वा"। आधुनिक विचार तो यह है कि मित्रों की बड़ी संख्या में अधिक आनन्द है, यद्यपि हम स्वयं अपने मित्रों की उपमा बरसाती कीड़ों से देते हैं। सूरदास के आँखें न होने पर भी उनको दूर की सूझी और आपने लिखा—"असमय मीत का को कौन"। नानक का भी यही कहना है—"जगत में झूठी देखी प्रीत। अपने ही सुख के सब साथी, क्या दारा क्या मीत।" अच्छे समय के सब साथी होते हैं, यही दुनिया का सिद्धान्त है; क्योंकि दुनिया मित्रता पर नहीं, बरन् स्वार्थ पर निर्भर है। स्वार्थ स्थायी और मित्रता अस्थायी होती है। शेक्सपियर ने कहा है—"बहुत-सी मित्रताएँ सकपट होती हैं, और बहुत-से प्रेम मूर्खता। बेकन कहते हैं—"बहुत थोड़ी मित्रता दुनिया में है।" प्राय: स्पष्ट शब्द अप्रिय मालूम होते हैं; पर ऐसे भी अवसर आते हैं, जब स्पष्ट शब्दों का प्रयोग न करना अपने को धोखा देना है। प्रत्येक मनुष्य के मित्र होते हैं और वह भी बहुतों का मित्र होता है, और वह स्वयं अपने भावों से पता लगा सकता है कि उनकी मित्रता का आधार क्या है। क्या कोई भी ईमानदारी से कह सकता है कि जिससे हमारी मित्रता है या जिससे हम प्रेम करते हैं, वह निस्स्वार्थ है? यह ख़याल करना कि हम प्रेम के लिए प्रेम करते हैं, अपने को धोखा देना है। संसार के बड़े धोखों की सूची में शायद प्रेम का सबसे ऊँचा स्थान है। फ़ीलडिंग ने कहा है कि यह मित्रता के धार्मिक कपट हैं। यदि आँखें खोलकर देखा जाय तो पता चलता है कि न हमसे कोई प्रेम करता है और न वास्तव में हम किसी से प्रेम करते हैं।

मित्रता के सम्बन्ध में एक अँगरेज़ी कवि ने लिखा है—"मित्रता क्या है सिवा एक नाम के; एक तावीज़, जो नींद बुला देता है, एक छाया, जो दौलत और कीर्ति के पीछे दौड़ती है और भाग्यहीन को रोने के लिए छोड़ जाती है।" कितना स्पष्ट भाव है और कितने स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया गया है। छाया के सम्बन्ध में बेन जानसन ने कहा है—"छाया के पीछे दौड़ो, वह तुमसे दूर भागेगी, तुम उससे दूर भागो, वह तुम्हारे पीछे दौड़ेगी; वैसे ही किसी स्त्री को मनाओ, वह तुम्हें अस्वीकार करेगी, उसकी परवा न करो, वह तुम्हें मनायेगी।" ऐसे ही भावों को सार्वभौम भाव कहते हैं।

जब मित्रता स्वार्थ का दूसरा नाम है, तब निष्कपटता का क्या सवाल। अब निष्कपटता



मूर्खता की सहचरी समझी जाने लगी है। व्यावहारिक भाषा में लोग दया प्रकट करते हुए कहते हैं कि वह बेचारे बहुत साफ़ आदमी हैं। आजकल उस मित्रता को क़दर नहीं है, जिसमें गहराई हो, जिसमें सत्यता हो, जिसमें निष्कपटता हो। इसके प्रतिकूल उस मित्रता की माँग है जो सार-रहित हो, भ्रमरहित हो और उसमें उन सब गुणों में से किसी एक का भी पता न हो, जो वास्तविक प्रेम के लिए आवश्यक हैं। आजकल मित्रता प्रकट करने के लिए आडम्बर की, लम्बी-चौड़ी बातों की, बेकार आहें भरने की, दिखावे के आँसू बहाने की सिर्फ़ ज़रूरत है। एक उर्दू की शेर का भावार्थ यह है—एक ने अपनी प्रेमिका से कहा कि हम तुम पर मरते हैं। उत्तर मिला कि फिर सर क्यों नहीं जाते? ठीक है, जैसी मोहब्बत वैसी ही हमदर्दी। जैसे संसार के नियम के यह विरुद्ध है कि "तुम हमें मानो न मानो हम तुम्हें माना करें," वैसे ही यह भी तो नहीं हो सकता कि हम किसी को मानें या न मानें और सब हमको माना करें। 'दिल से दिल को राह होती है'; परस्परता के सिद्धान्त पर संसार स्थापित है। किसी ने किसी से पूछा था कि तुम हमको कितना चाहते हो? उत्तर मिला कि अपने दिल से पूछ लो। इससे अच्छा जवाब हो ही नहीं सकता था। प्रेम का परमोच्च शिखर विश्वास है, और संसार की यही एक शक्ति है, जो सब कुछ कर सकती है—"प्रह्लाद की ऐसी प्रतीति जो होय तो क्यों न कढ़ैं प्रभु पाहन तैं।"

यह भी एक मानुषी प्रकृति है कि हम हमेशा यह सोचा करते हैं कि जितना हम किसी को चाहते हैं, उतना हमको वह नहीं चाहता और यही अनुमान हर भाषा की कविता का आधार है। ठाकुर कवि ने कहा है—

हारि पर्‌यो करि ज्यों बलहीन ह्वै
ग्राह ते लै चट तू जितयो रे;
फेरि सुनी प्रहलाद के साँकरे
आवन में न खितौ बितयो रे।
ठाकुर हौं अजामील ते आगरो
पापी उजागरो यों हितयो रे,
रावरे ओर चितौत चितौत किते
दिन बीते न तू चितयो रे।

कविता बेशक बढ़िया है, परन्तु कवि को वह आवश्यकता नहीं थी, जो गज और प्रह्लाद को थी; क्योंकि इन दोनों को उस समय कविता करने की फ़ुर्सत नहीं थी। गज के सम्बन्ध में एक दूसरे ने कहा है—"खैंचें मोहिं ज्ञेत प्रभु साँस हूँ न लेन देत विनय कहाँ की नाम लेत हू बनै नहीं।" असहायता स्वयं एक विनय है, जिसे केवल नेत्र प्रकट कर सकते हैं। जिन भावों को क़लम और ज़बान नहीं प्रकट कर पाती, उन्हीं को आँखें अपनी मूक परन्तु अत्यन्त मधुर भाषा में प्रकट कर लेती हैं। क्या जब ठाकुर कवि ने इस छन्द की रचना की थी, तब उनमें वही दीनता, वही असहायता और वही आवश्यकता होगी, जो गज और प्रह्लाद को थी? और अगर नहीं थी तो ईश्वर को क्या ज़रूरत थी कि दौड़ते चले आते।

जज़्बये इश्क़ अगर सच है तो इंशा अल्लाह;
कच्चे धागे में बँधे आयेंगे सरकार चले।

बेशक, लेकिन कच्चे धागे में बँधकर चले आने के लिए सच्चे इश्क़ के जज़्बे की भी तो ज़रूरत है। द्रौपदी को नग्न होने से बचाने के लिए कितनी जल्दी श्रीकृष्णजी आ गये थे, लेकिन आजकल जब वस्त्र-विहीनता सभ्यता का अमिट चिह्न समझी जाती है, तब यदि कोई उनके आने के लिए झूठी पुकार सुनावे तो शायद चिल्लाते-चिल्लाते गला पड़ जाय, पर न कोई आयेगा न जायगा। आवश्यकता में आकर्षणशक्ति होती है—यह अपना इन्तिज़ाम कर लेती है। दासजी और भी आगे



बढ़ गये, और कह डाला—"बिन काज के दास पै दाया करो, तब जानिये दानी कहायबे को" ऐसी दया शायद ही किसी पर हुई हो। अब बीसवीं सदी की दुनिया में दया के योग्य होने पर भी जब कोई दया करनेवाला नहीं है तो बेकार कौन दया करेगा। दया तो दूर रही, कोई सहानुभूति भी प्रकट करनेवाला नहीं है, जिसमें टके भी तो नहीं ख़र्च होते।

मित्रों की लम्बी सूची कुछ भाग्यसूचक समझी जाती है। यह प्रायः प्रशंसा में लोग कहते हैं कि उनके बहुत-से मित्र हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या यह कोई भाग्य की बात है? शायद नहीं। जब मित्रता का आधार सत्यता पर नहीं है, निष्कपटता पर नहीं है, तब यह संक्रामक रोग जितना कम फैले, उतना ही अच्छा। कौन-सा ऐसा ऐतिहासिक दृष्टान्त है कि किसी को कोई लाभ अधिक मित्रों की वजह से हुआ हो। कहा जाता है—

"आपति-काल परखिये चारी,
धीरज धर्म मित्र अरु नारी"

वाह, ख़ूब कहा! इस ज़माने के मित्र ऐसे मूर्ख नहीं होते। किसकी परीक्षा? बुरे दिनों के आते ही वे चलते बनते हैं। एक ने दुःख की वन्दना करते हुए लिखा है—

"सुन ले दुःख सत्य मैं कहता,
तुझसे कुछ नहिं डरता हूँ;
मृत्युलोक में तू ही शिक्षक इससे स्तुति करता हूँ।
झूठे मीत आपके सम्मुख शीघ्र दूर हो जाते हैं;
सच्चे और सत्य बन जाते नाते बहु अधिकाते हैं।
ख़ून पसीने पर ढुलकाने का नित दम जो भरते थे,
बड़े मूर्ख हो जो सच जाना हम तो यों ही कहते थे।
उत्तर मिलता सभी ठौर ये आँखें तब कुछ खुलती हैं,
मृगतृष्णा माया से तब फिर आशा तजकर मुड़ती हैं।
जिनको अपने-अपने कहते लगती तिन की थाह तभी
जब विलोक कर ऐसा मुड़ते जैसे देखा नहीं कभी।"

ऐसे मित्रों की संख्या अधिक होने पर क्या कोई अपने को भाग्यशाली समझ सकता है?

यह भी प्रायः तारीफ़ में कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति का कोई दुश्मन नहीं है। यह एक झूठी प्रशंसा (प्रशंसा बहुधा झूठी ही होती है) मालूम होती है। पहले तो यह सम्भव ही नहीं है, और यदि है तो इसका अर्थ यही हो सकता है कि वह किसी का मित्र नहीं है। या यह कहा जाय कि वह एक ढुलकता हुआ पत्थर है। ऐसे मनुष्यों के लिए कहा जाता है कि वे बहुत सरल हैं। वास्तव में यह सरलता नहीं है। मुस्कराहट से हृदय का पता नहीं चलता। बहुतों की बाहरी रुक्षता के पीछे हृदय की वह मनोहारी कोमलता होती है कि दिल ख़ुश हो जाता है, और कुछ की मनोहारी मुस्कराहट के पीछे हृदय की वह कठोरता होती है कि पत्थर भी भूल जाता है। अस्तु। यदि किसी मनुष्य के विचारों में दृढ़ता है, उसे अपने कर्तव्य का ज्ञान है और अपने सिद्धान्तों पर वह निछावर होने के लिए तैयार है तो यह सम्भव नहीं कि सब उसके मित्र हों और एक भी दुश्मन न हो। प्रह्लाद का उदाहरण लीजिए। संसार की सब कठिनाइयों का मुक़ाबला किया, परन्तु अपने निर्धारित पथ से नहीं हटे। शायद ही किसी को इतने बड़े विरोध का सामना करना पड़ा हो। औरों का तो क्या कहना, पालक घातक बन गया। बाप ने वध करवा डालने का कोई तरीक़ा उठा नहीं रक्खा। यह अनुमान की भी शक्ति के बाहर है कि उस समय प्रह्लाद के सब प्रशंसक होंगे। जब महाराज भरतजी को महारानी कौशल्या और गुरु वशिष्ठ यही उपदेश और आदेश दे रहे थे कि राजतिलक स्वीकार कीजिए, तब उन्होंने कहा था—

"मोहिं राज हठि देइहहु जबहीं,



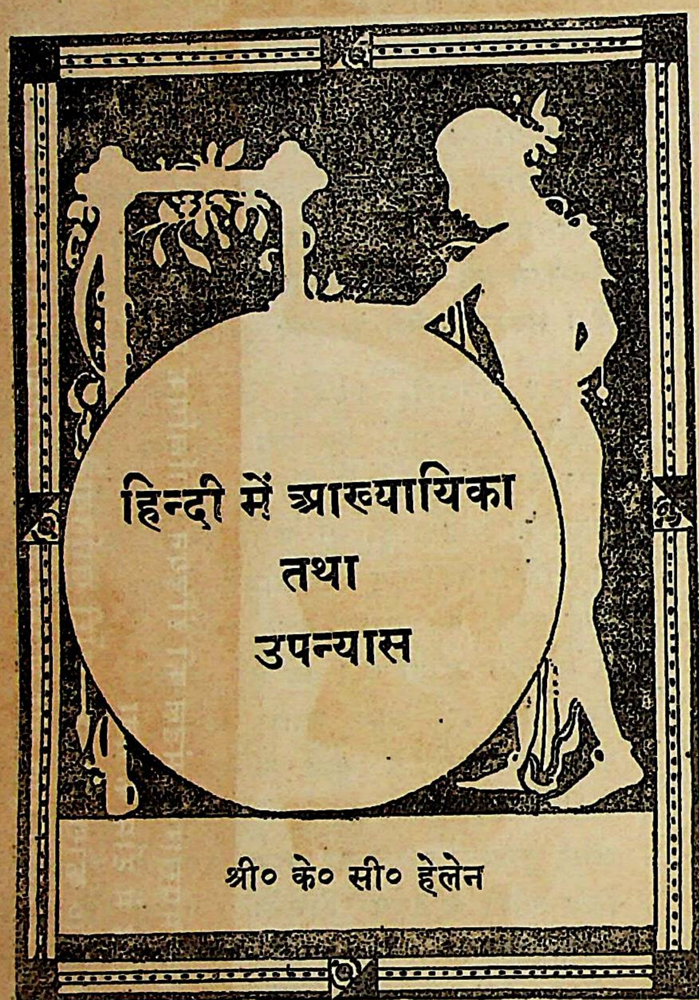
रसा रसातल जाइहि तबहीं।
मोहिं समान को पाप निवासू,
जेहि लगि सियाराम वनवासू।
राय राम कहँ कानन दीन्हा,
बिछुरत गमन अमरपुर कीन्हा।
मैं सठ सब अनरथ कर हेतू,
बैठि बात सब सुनहुँ सचेतू।
उतर देउँ केहि विधि केहि केहीं,
कहहु सुखेन यथारुचि जेही।"

अन्तिम चौपाई का अन्तिम पद सूचित कर रहा है कि महाराज का यह विचार करना स्वाभाविक था कि उनकी अस्वीकृति के सम्बंध में बहुमत होंगे और जहाँ बहुमत हैं, वहाँ सब प्रशंसक नहीं हो सकते। चाहे महान् स्वार्थ-त्यागी महाराना प्रतापसिंह हों या कर्तव्यपरायण राठौर दुर्गादास, चाहे निन्दनीय स्वार्थसेवी मीर-जाफ़र हों या जयचन्द—ऐसा कोई नहीं है, जिसका कोई दुश्मन न हो। यदि ऐसे आदमी की ईश्वर रचना करे भी तो वह उनसे कैसे बच पावेगा, 'जो विन काज दाहने बायें'। वे लोग भी तो अपनी तबियत से मजबूर हैं। अगर किसी की बुराई न करें, किसी से अकारण दुश्मनी न करें तो शायद खाना न हज़म हो। ऐसों की उपमा फ़ारसी में बिच्छू के डंक से दी जाती है, जो चला ही करता है। एक अँगरेज़ लेखक ने लिखा है—"कभी-कभी किसी के लिए, मेरी राय से प्रशंसा के तौर पर कहा जाता है कि उसके दुश्मन नहीं है। मेरा दिल टूट जाय, यदि कोई मेरे लिए यह कहे; क्योंकि कितना रंगरहित उस आदमी का जीवन होगा या कितना पिशाच धोखेबाज़ वह होगा, जो अपने प्रति किसी में भी क्रोध न उत्पन्न कर सके। अच्छे आदमियों की प्रायः ख़ुशामद नहीं की जाती। वे पहले गालियाँ पाते हैं, लोग उनके पीछे पड़ जाते हैं और यहाँ तक कि जान देनी पड़ती है। हमें उनसे बचना चाहिए, जिनका कोई दुश्मन नहीं है। सम्भवतः ऐसे आदमी दुरात्मा होते हैं।"

२४ फ़रवरी, १९३६ के "लीडर" पत्र में किसी ने "मित्रता" पर एक निबन्ध लिखा है, और उसमें लिखा है कि उनको मैं कुछ बातें बतलाना चाहता हूँ, जो अभी मित्रों के बाहुल्य से पीड़ित नहीं हुए हैं। आपने लिखा है कि जो कोई दूसरों की परवा नहीं करता, उसे मित्रता में सफलता होती है। यह भी आपका कहना है कि आज्ञा दो, लोग आज्ञा मानेंगे। लोगों को अस्वीकार करो, वे तुम्हें स्वीकार करेंगे। किसी का तिरस्कार करो, वह तुम्हें हृदय से लगायेगा। अगर तुम्हारा पत्थर-सा सख़्त हृदय है, तो तुम्हारे लिए औरों के हृदय पिघलेंगे। परन्तु यदि तुममें निष्कपटता है तो समझ लो कि तुम मित्रता के योग्य नहीं हो। बात तो यह अवश्य है कि बीसवीं सदी की मित्रता के लिए निष्कपटता नितान्त अनावश्यक है। या यों कहिए कि यह मित्रता की घातक है। किसी से अपना निष्कपट प्रेम प्रकट करो तो उसके होठों पर उपहासकर मुस्कराहट दौड़ जायगी और उसका भाव यही होगा कि अच्छा बेवक़ूफ़ बना रहे हो।

मेरी राय में चाहे मित्र हों या न हों, परन्तु मित्रता के लिए निष्कपटता और सत्य को तिलाञ्जलि नहीं देनी चाहिए।



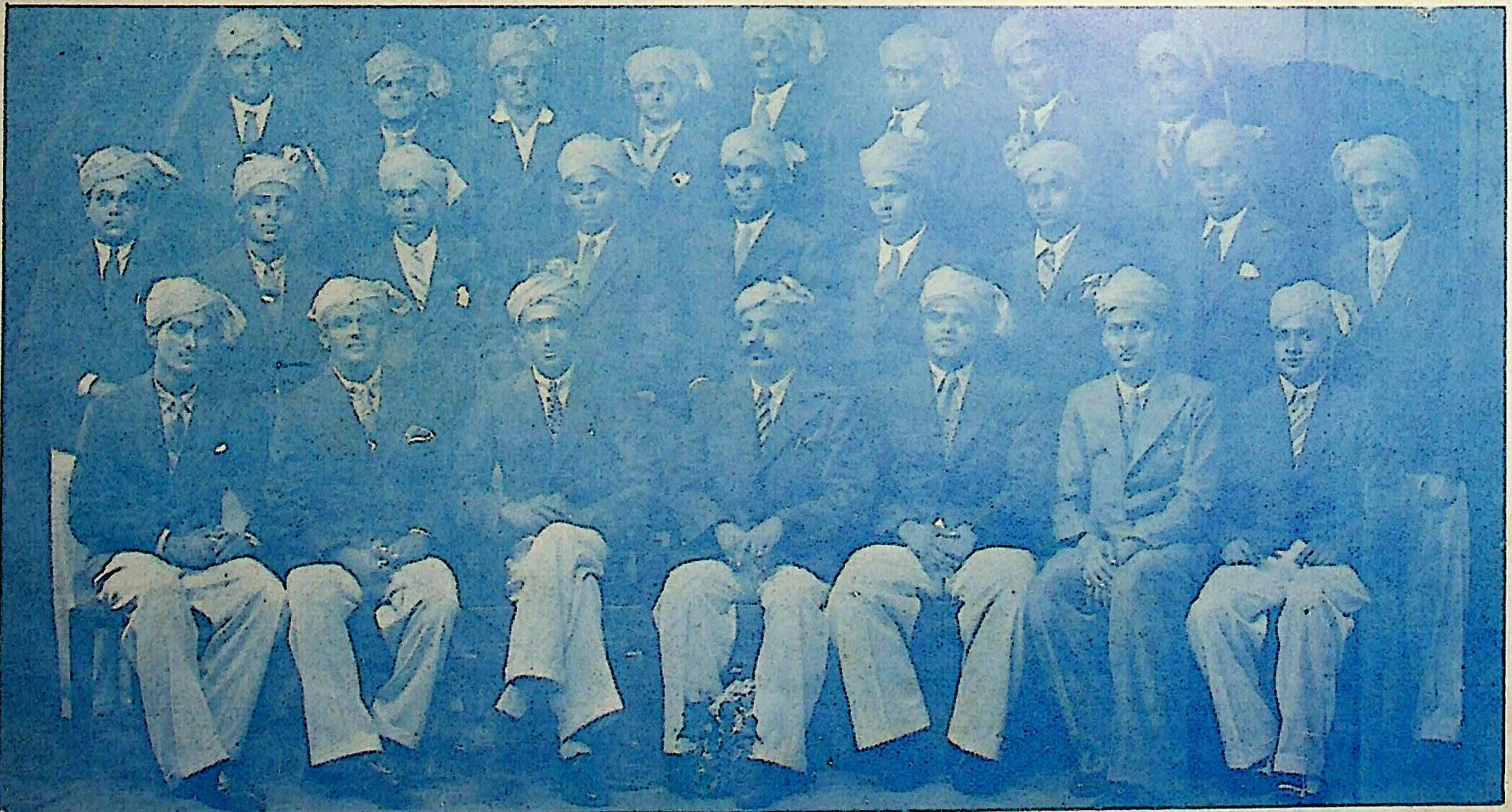


साहित्य के विद्वानों का कथन है कि साहित्य ही देश की वास्तविक निधि है। वह उस दर्पण के सदृश है, जिसमें हम किसी देश की आन्तरिक परस्थितियों का वास्तविक प्रतिविम्ब देख सकते हैं। प्राचीन काल से ही साहित्य गद्य और पद्य दो भागों में विभाजित होता आया है। प्रत्येक साहित्य की भाषा की रचना पद्य से आरम्भ हुई, तदुपरान्त जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया, वैसे-वैसे लेखकों की प्रवृत्ति गद्य की ओर आकृष्ट होने लगी। हिन्दी-साहित्य की भी ठीक यही दशा है।

संवत् १९२५ से हिन्दी-गद्य-साहित्य का वर्तमानकाल माना जाता है। इसके जन्मदाता होने का श्रेय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी को प्राप्त है। आपने अनेकों उत्तमोत्तम ग्रन्थ रचकर हिन्दी-साहित्य को अलंकृत किया और सबसे प्रथम आपने ही हिन्दी-साहित्य में वर्तमान रचना-शैली की नींव डाली। इस समय से ही हम आख्यायिका को यदि दो विभागों में परिणत कर दें तो अनुचित न होगा। इनमें से प्रथम भाग कहानी तथा आख्यायिका के नाम से और द्वितीय भाग उपन्यास के नाम से समस्त संसार में प्रसिद्ध हैं। दोनों ही बराबर उन्नति करते जा रहे हैं।

यद्यपि इन दोनों में मनुष्य के जीवन की घटनाओं के सुख-दुःख का विवेचन रहता है, तथापि इनमें महान् अन्तर है। आख्यायिका में जीवन के केवल एक पक्ष का प्रतिबिम्ब उपस्थित किया जाता है और उसमें केवल एक ही भाव प्रधान रहता है। उपन्यास में यह बात नहीं होती। उसमें मानव-जीवन की प्रत्येक घटना का भली प्रकार विशद वर्णन किया जाता है। उसमें उचित प्रकार की, चाहे अच्छी हो या बुरी, भूरि-भूरि समालोचना की जाती है और आख्यायिका की तरह यह बात नहीं कि उसमें एक ही भाव प्रधान रहे, वरन् कभी-कभी भावों को उच्च सीमा तक और कभी-कभी निम्न सीमा तक पहुँचा दिया जाता है। जिस प्रकार कविता और महाकाव्य में भेद है, ठीक उसी प्रकार कहानी और उपन्यास में भी अन्तर होता है। अब हम दोनों की पृथक्-पृथक् विवेचना करेंगे।

बहुतों की यह धारणा है कि कहानियों का आरम्भ नवीन है; परन्तु हमारे विचार से उनकी यह धारणा केवल भ्रान्तिमात्र है। बच्चा जब शिशु



अमरावती की श्रीहनुमानव्यायामप्रसारक मंडल की इंडियन ओलिंपिक टीम
बीच में टीम के नेता
श्रीअसनारे वकील, डॉ० कोण और धनुर्धारी खानिवाले

[इस टीम ने जर्मनी के दंगल में अपनी व्यायामक्रीड़ा से सबको मुग्ध और आश्चर्य-चकित कर दिया था । इस टीम की दर्शकों ने बड़ी प्रशंसा की । हरहिटलर ने इसे पुरस्कृत किया है । इसके कुछ खेलों के चित्र अगली संख्या में दिये जायँगे ।]



अवस्था ही में होता है, उस समय वह घसीटा, नत्थू और रहमतुल्ला अथवा ताई, चाची, नानी और दादी आदि वृद्धाओं से कहानी कहने को कहता है और वे भी बड़े प्रेम से उसे 'सात चोर', 'तोता-मैना', 'राजा-रानी' आदि की अथवा प्राचीन वीरों के वीरत्व की कहानियाँ सुनाते हैं और वह भी बड़े चाव से उन कथा-कहानियों को सुनता है। यही नहीं, वरन् गाँवों में किसान अपने खेतों से जब अपना कार्य समाप्त करके, पूर्ण क्षीण हो, अपने-अपने घरों को लौटते हैं, उस समय भोजनोपरान्त अथवा श्रम दूर करने के लिए एक सघन वृक्ष की शीतल छाया के नीचे बैठे, हुक्का पीते हुए, कहानी-क़िस्से अथवा कोई अपनी दास्ताँ कहना आरम्भ कर देते हैं और उनका श्रवण करने में जो अपार हर्ष प्राप्त होता है, वह शायद ही अन्य किसी स्थान में प्राप्त हो सके। अब यह स्वयं ही विचारा जा सकता है कि कहानियाँ हमारे यहाँ कितने प्राचीन काल से जनसमुदाय में प्रचलित हैं।

कहानियों का मानव-जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इस विषय की पुष्टि के लिए ऐतिहासिक ग्रन्थों के पृष्ठों पर पृष्ठ भरे पड़े हैं। उदाहरणार्थ शिवाजी को ही लीजिए। जब वे शिशु थे, उस समय उनकी माता रामायण, महाभारत तथा अन्य ऐतिहासिक वीरों की कथाएँ उनको सुनाया करती थीं। इसका यह प्रभाव हुआ कि आगे चलकर वे हिन्दुओं का उद्धार करने तथा गोरक्षा के लिए तन, मन, धन से तत्पर हो गये। इतना ही नहीं, वरन् वह महाप्रतापी तथा ऐश्वर्यशाली आलमगीर (औरंगज़ेब)-जैसे मुग़ल-सम्राट् की शक्ति को क्षीण करके एक शक्तिशाली हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना करने में पूर्णतया सफल रहे।

जब कहानियों में इतनी शक्ति है कि वे मनुष्य को कठिन से कठिन कार्य के करने में प्रेरित कर डालती हैं और वे ही कार्य, जोकि पहले असम्भव प्रतीत होते थे, अब इन्हीं कथाओं के द्वारा सुगम हो जाते हैं। जब इन कहानियों में इतनी अनुपम शक्ति है, तो कहानी-लेखकों को चाहिए कि वे अस्वाभाविक, शृङ्गारमय तथा अश्लील कहानियाँ अधिक न रचें; क्योंकि वे स्त्री-पुरुष को घोर अन्धकार की ओर ले जायँगी। जब अच्छी कहानियों से मनुष्य अच्छा बन सकता है, तब ये अस्वाभाविक, शृङ्गारमयी तथा अश्लील एवं भद्दी कहानियाँ यदि उन्हें घोर अन्धकार तथा पतन की ओर ले जायँ तो आश्चर्य ही क्या है। ऐसी ही कहानियों से प्रभावित होकर वे नीच से नीच कार्य करने में भी न लजायेंगे; सो ये अस्वाभाविक, शृङ्गारमयी तथा अनिष्टकारक कहानियाँ जितनी कम रची जायँ, उतना ही अच्छा है। कहानी-लेखकों को ऐसी कहानियाँ लिखनी चाहिए, जिनसे व्यक्तिगत समाज को लाभ पहुँचे। बहुत कम कहानी-लेखक ऐसे हैं, जो इन बातों का ध्यान रखते हैं।

आजकल अनुवादित कहानियों की हिन्दी-साहित्य में भरमार-सी हो रही है। दो-चार ही ऐसी कहानियाँ होंगी, जो मौलिक हों, अन्यथा जिस पुस्तक को भी देखो अधिकतर यही लिखा पाओगे 'बंगाल की प्रसिद्ध कहानियों का अनुवाद' या 'अँगरेज़ी की प्रसिद्ध कहानियों का अनुवाद।' अनुवाद करना अनुचित नहीं, पर अनुवाद सोच-विचार के करना चाहिए। अधिकतर मौलिक कहानियाँ ही रची जानी चाहिए। आजकल कहानी-लेखक विना कुछ सोचे-विचारे आँख मीचकर अनुवाद कर डालते हैं और वे इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं करते कि यह अनुवाद की हुई आख्यायिका समाज के



लिए लाभदायक सिद्ध होगी या नहीं ; क्योंकि उन्हें तो केवल नाम पाने तथा रुपया पैदा करने की धुन सवार रहती है। सो इस प्रकार की कहानियाँ व्यक्तिगत, समाज तथा जनसमुदाय के लिए लाभ की अपेक्षा अधिक हानिकारक सिद्ध होंगी।

कहानी जितनी भी संक्षेप में होगी, उतनी ही अधिक उत्तम होगी। कौतूहलपूर्ण कहानियाँ न होनी चाहिए और उनमें कोई भी बात ऐसी आश्चर्यजनक तथा अस्वाभाविक न होनी चाहिए, जिससे बुद्धि हैरान हो जाय और उनको समझने के लिए पर्याप्त समय तक रुकना पड़े, वरन् उनमें प्रत्येक बात स्पष्ट तथा स्वाभाविक होनी चाहिए, नहीं तो लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक संभावना है।

कहानियों में कोई भी अनावश्यक बात न होनी चाहिए और यदि कोई ऐसी आवश्यक बात हो तो इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि उसका सम्बन्ध प्रधान घटना से न छूटे। जो चतुर कहानी-लेखक होगा, वह अपनी कहानियों में अनावश्यक बात को लायेगा ही नहीं, यदि लायेगा भी तो इस चतुरता से उसमें रक्खेगा कि उसका सम्बन्ध प्रधान घटना से न टूटे।

आजकल के प्रसिद्ध कहानी-लेखकों में से प्रेमचन्दजी, कौशिकजी, सुदर्शनजी, ज्वालादत्तजी शर्मा, जयशंकर प्रसादजी, राजेश्वरप्रसादजी, इलाचन्द्रजी जोशी और विनोदशंकरजी व्यास आदि ही अधिक प्रसिद्ध कहानी-लेखक हैं। इन सबमें सबसे प्रथम स्थान प्रेमचन्दजी का है। इन्हीं को कहानी-लेखन में सफलता मिली है। जो-जो बातें एक अच्छी कहानी में होनी चाहिए, वे सब बातें इनकी कहानियों में पाई जाती हैं। इनका स्थान शरद् बाबू या रवीन्द्र बाबू से किसी भी दशा में कम नहीं है और यदि इन्हें उपन्यास-लेखकों का सम्राट् कहकर उच्चारण करें तो हमारे विचार से कदापि अनुचित न होगा। शेष कहानी-लेखकों का स्थान इनके बाद ही होगा और इनमें से बहुतों ने तो अभी कुछ समय व्यतीत हुए, कहानी लिखना आरम्भ किया है। उन्होंने अभी किया ही क्या है। उन्हें इस महा विस्तृत कहानी-क्षेत्र के अन्दर अभी बहुत कुछ कार्य करना है। उनमें से अनेकों ने तो इन्हीं (प्रेमचन्दजी) का अनुसरण किया है। राजेश्वर-प्रसादजी, इलाचन्द्रजी जोशी, नारायणसिंहजी और विनोदशंकरजी व्यास ही ऐसे कहानी-लेखकों में से हैं। प्रेमचन्दजी से द्वितीय स्थान सुदर्शनजी का है। इनकी कहानियों का अध्ययन करने से पता चलता है कि इनकी कहानियों की प्रधान घटनाएँ आख्यायिका तथा कल्पित-सी हैं और इनमें भावों की प्रधानता तनिक भी नहीं आने पाई है। इनकी कहानियों की भाषा यद्यपि प्रेमचन्दजी की कहानियों की भाषा से सरल है परन्तु वह मिठास, वैसी ही सरसता और वही मनमोहनी मनोहर लचक उनकी भाषा में कहाँ, जोकि प्रेमचन्दजी की कहानियों की भाषा में पाई जाती है। सत्य तो यह है कि प्रेमचन्दजी काशी के रहनेवाले हैं, जहाँ की भाषा स्वाभाविक ही मीठी तथा हृदयाकर्षक होती है और ये (सुदर्शनजी) पंजाब के निवासी हैं, जहाँ की भाषा स्वभावतः कठोर एवं लठमार-सी होती है सो यदि इन (सुदर्शनजी) की कहानियों की भाषा में सरसता, मनोहरता तथा मधुरता न आने पाई तो आश्चर्य ही क्या है। इसके पश्चात् तृतीय स्थान कौशिकजी का है। इनके विषय में अधिक नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इनकी कहानियों की अभी अधिक पुस्तकें नहीं निकली हैं, जो दो-चार पुस्तकें निकली भी हैं, उनमें



अधिकतर समाज की छाप रहती है और उन कहानियों में "ताई" सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसके उपरान्त चतुर्थ स्थान जयशंकरप्रसादजी का है। इनकी कहानियों में अस्वाभाविकता अधिक पाई जाती है। इनके पात्रों के रहन-सहन रीति-नीति अथवा समस्त बातों में विलक्षणता होती है। इनके रहने के स्थान मानसरोवर से किसी भी दशा में कम नहीं होते। वे राजकुमार तथा राजकुमारियों की तरह रहते हैं और परियों के सदृश जीवन व्यतीत करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इनकी कहानियों में स्वाभाविकता की न्यूनता दृष्टिगोचर होती है। इनको कहानी-लेखन में अधिक सफलता नहीं प्राप्त हुई है, पर नाट्यरचना में ये पूर्ण सफल हुए हैं। तत्पश्चात् पंचम स्थान ज्वालादत्तजी शर्मा का है। ये अधिकतर समाज-सुधारक, विधवा-विवाह और अँगरेज़ी शिक्षा का नवयुवकों पर प्रभाव आदि विषयों को ही अपनी कहानियों के लिए चुनते हैं। यह बहुत ही अच्छी बात है; क्योंकि ऐसे विषयों से ही मनुष्य एवं समाज तथा जातियों की कुरीतियों को सुधारने तथा त्रुटियों को पूर्ण करने में अधिक सहायक होते हैं। ये विषय व्यक्तिगत समाज को बड़े लाभदायक सिद्ध होते हैं। इतना सब कुछ होते हुए भी इनकी भाषा में तनिक जटिलता-सी आ गई है और उनमें भावों की कुछ न्यूनता-सी भी रहती है। आजकल की प्रसिद्ध कहानियों में से "सुदर्शन-सुधा, माता का प्यार, ताई और प्रेमद्वादशी" आदि ही अधिक प्रसिद्ध हैं।

हम कहानियों के विषय में पर्याप्त वाद-विवाद कर चुके हैं, अब हमें उपन्यासों की ओर भी एक दृष्टि डालनी चाहिए। आजकल हिन्दी-संसार में उपन्यासों की बड़ी धूम मच रही है। इनको हम चार श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—पहला चमत्कारिक, दूसरा सामाजिक, तीसरा जासूसी और चौथा ऐतिहासिक।

मनुष्य की वृत्ति पहले-पहल अद्भुत तथा अनोखी एवं कल्पित विषयों के सुनने में अधिक झुकी रहती है। इसके उपरान्त जब वह कुछ बड़ा हो जाता है, तो उसे बड़े-बड़े भयानक तथा गहन विषयों पर प्रेम हो जाता है। अन्त में वह संसार में प्रवेश करता है। इस समय तक उसकी समस्त मानसिक शक्तियों का पूर्ण रूप से विकास हो जाता है। अब वह सच्चे समाज के भीतर घुसकर अच्छे-बुरे का ज्ञान प्राप्त कर 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' का प्रत्यक्ष प्रमाण देखना चाहता है। ठीक यही दशा हिन्दी-उपन्यासों की भी है। पहले-पहल उपन्यास चमत्कारिक विषयों पर लिखने आरम्भ हुए, उसके कुछ समय पश्चात् जासूसी उपन्यास रचे गये और अन्त में सामाजिक उपन्यास लिखे जाने लगे।

प्रारंभ में तिलस्मी, ऐय्यारी तथा जादू आदि के विषयों पर अधिक संख्या में उपन्यास लिखने आरम्भ हुए। उनका जन-समाज में इतना अधिक सत्कार हुआ कि ये दिन दूनी रात चौगनी उन्नति करते गये। इन उपन्यासों के जन्मदाता बाबू देवकीनंदनजी खत्री माने जाते हैं। ये उपन्यास अधिकतर एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं, जिनमें बड़ी-बड़ी अस्वाभाविक तथा आश्चर्य-जनक घटनाएँ होती हैं। ये प्रायः नायक और नायिका के प्रेम को लेकर रचे जाते हैं। इन्होंने ही समाज के अनेकों विद्याहीन मनुष्यों को विद्या-मन्दिर की ओर आकर्षित किया है। इससे कौन सहमत नहीं होगा कि केवल बाबू देवकी-नन्दन खत्री की "चन्द्रकान्ता-सन्तति" को अध्ययन करने की लिप्सा से लाखों विद्याहीन मनुष्यों ने भाषा का ज्ञान प्राप्त कर लिया। इतना



सब कुछ होते हुए भी ऐसे उपन्यासों का अध्ययन करना हमारे विचार से लाभ की अपेक्षा महान् अनिष्टकारक एवं हानिकारक सिद्ध होगा; क्योंकि इनका अध्ययन करते समय कभी-कभी तो ऐसी अनोखी अस्वाभाविक तथा कौतूहलपूर्ण बातें आती हैं, जिनको पढ़कर बुद्धि भी आश्चर्य-चकित हो जाती है। "चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्ता-सन्तति, कुसुमलता, नर-पिशाच और पुतलीमहल" आदि-आदि ही अधिक विख्यात हैं।

उत्तम श्रेणी के उपन्यास सामाजिक उपन्यास होते हैं। इनमें समाज के अच्छे-बुरे का प्रतिबिंब दर्पण की तरह पूर्णतया दृष्टिगोचर होता है। इनमें मनुष्यों के अच्छे-बुरे चित्रों का चित्रण एवं जीवन की भूरि-भूरि समालोचना की जाती है। इनमें अस्वाभाविकता नाममात्र को भी न होनी चाहिए। हिन्दी-साहित्य के दुर्भाग्य से अभी मौलिक सामाजिक उपन्यासों की संख्या अनुवादित उपन्यासों से बहुत ही कम है। प्रसिद्ध मौलिक लेखक बाबू रामकृष्णजी वर्मा, मेहता लज्जारामजी, गोस्वामी किशोरीलालजी, प्रेम-चन्दजी और बाबू जयशंकरप्रसादजी आदि-आदि हैं। इन सबमें जो सफलता प्रेमचन्दजी को प्राप्त हुई है, वह औरों को नहीं। इनका स्थान हिन्दी-संसार में सबसे उच्च है और यदि इन्हें उपन्यास सम्राट् की पदवी देकर उनका सम्मान करें तो तनिक भी अनुचित न होगा। आदर्श बहू, शांता, आँख की किरकिरी, स्वर्णलता, सेवा-सदन, रंग-भूमि और कर्मभूमि आदि-आदि ही अधिक प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास हैं।

जासूसी उपन्यासों का प्रचार भी चमत्कारिक उपन्यासों की तरह से है। इसके उत्पादक गहमर निवासी बाबू गोपालरामजी हैं। इनके "जासूस"-नामक मासिक पत्र ने आज तक सैकड़ों उपन्यास इस विषय पर प्रकाशित किये हैं। कलकत्ते के प्रसिद्ध "दारगादफ़्तर"-नामक मासिक पत्र ने इस विषय में कुछ कम कार्य नहीं किया है। इन उपन्यासों के नायक अधिकतर गुप्तचर (जासूस) होते हैं। समाज में जो बड़े-बड़े डाके पड़ते हैं, रक्तपात होता है और जो बड़ी-बड़ी चोरियाँ होती हैं, उन सबकी खोज में ये जासूस निकलते हैं और प्रत्येक छोटी-मोटी एवं बड़ी-बड़ी हृदय-विदारक कठिनाइयों से बचते हुए इन डाकुओं, हत्यारों एवं चोरों का पता लगाने में सफल होते हैं। सो इन उपन्यासों में इनकी चतुराई एवं विकट प्रसंगों का वर्णन रहता है। ये उपन्यास अधिकतर कल्पित विषयों पर लिखे जाते हैं। ऐसे उपन्यास सरकार के गुप्तचर-विभाग को बड़े लाभदायक सिद्ध होते हैं। वे मनुष्यों में चुस्ती एवं चतुरता को बढ़ाते हैं। इन उपन्यासों का लिखना सरकारी गुप्तचर अथवा स्काउट ले लेवें तो बहुत ही अच्छा हो। वे साहित्य की वृद्धि तो करेंगे ही, पर साथ ही साथ अपने विभाग तथा जनसमुदाय का महान् उपकार करेंगे। इन उपन्यासों का अधिक अध्ययन करने से लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक संभावना है; क्योंकि इनमें प्रायः ऐसी अस्वाभाविक तथा आश्चर्यजनक घटनाएँ आती हैं, जिनका समझना साधारण मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर है। इन उपन्यासों के लेखकों में प्रसिद्ध लेखक गहमर निवासी बाबू गोपाल रामजी, एवं बाबू राम-कृष्णजी वर्मा आदि-आदि ही अधिक प्रसिद्ध लेखक हैं। "मनोरमा, मायाविनी, प्रमिला और नौ लाख की चोरी" आदि-आदि ही अधिक प्रसिद्ध जासूसी उपन्यास हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास सामाजिक उपन्यास का ही एक भाग हैं। अन्तर केवल इतना ही कि इन उपन्यासों के विषय ऐतिहासिक होते हैं। इन उपन्यासों की घटनाएँ प्रायः सत्य होती हैं



एक प्रसिद्ध प्रोफ़ेसर मिस्टर मेलकन साहब लिखते हैं—

"Historical novels give us brilliant pictures of history, which from their vividness make a far deeper impressions than the duller pages of historical text book."

"ऐतिहासिक उपन्यास हमारे सम्मुख ऐसे सुचारु तथा मनोहर दृश्यों का चित्रण करते हैं, जो अपने सौन्दर्य एवं मनोमोहकता के कारण हमारे हृदय-पटल पर उन इतिहास के नीरस एवं सारहीन पृष्ठों से कहीं अधिक चिरकालीन प्रभाव डालते हैं।"

पर यह बड़े शोक तथा दुर्भाग्य का विषय है कि जितनी संख्या इन ऐतिहासिक उपन्यासों की होनी चाहिए, उतनी नहीं है। सो इसकी पूर्ति करने के लिए उपन्यास-लेखकों को चाहिए कि वे इस विषय की ओर अधिक ध्यान दें, क्योंकि प्राचीन समय के वीरों का वीरत्व, देशाभिमानियों का देशाभिमान, देश-प्रेमियों का अनन्त देश-प्रेम, देशभक्तों की प्रगाढ़ देश-भक्ति, जन्मभूमि पर बलिदान होनेवाले सच्चे साहसिक तथा उत्साही वीरों का बलिदान तथा धर्म एवं आन पर मर मिटनेवाले सच्चे उत्साही वीरों का विवरण, अत्याचारी राजाओं का असहनीय हृदयविदारक तथा भयोत्पादक परिणाम अनेक बातों का इन ऐतिहासिक उपन्यासों द्वारा दिग्दर्शन कराया जा सकता है, जिनसे प्रभावित होकर मनुष्य देश, धर्म, जाति और समाज के प्रति अपना कर्तव्य-पालन कर सकें। प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकारों में से बाबू गंगाप्रसादजी, गोस्वामी किशोरीलालजी और बाबू बलदेवप्रसादजी आदि ही अधिक प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। "वीर जयमल, अमृतपुलिन, दीपनिर्वाण और जीवन-संध्या आदि-आदि इस विषय पर विख्यात पुस्तकें हैं।

हिन्दी में अधिकतर उपन्यास अनुवादित ही हैं। चाहे आप चमत्कारिक उपन्यासों पर दृष्टि डालें, चाहे ऐतिहासिक उपन्यासों पर; चाहे जासूसी उपन्यासों को उठाकर देखें, चाहे सामाजिक उपन्यासों को, आप अधिकतर अनुवादित ही पावेंगे। अनुवाद करना अनुचित नहीं है, उसे अवश्य करना चाहिए; परन्तु विना सोचे-समझे केवल नाम पाने तथा रुपया पैदा करने की लालसा से नेत्र बन्द कर अनुवाद कर डालना, और इस बात की तनिक भी चिन्ता न करना कि यह अनुवाद मनुष्य तथा समाज के लिए लाभदायक सिद्ध होगा या नहीं, उचित नहीं है। हमारे विचार से ऐसे उपन्यास अधिक नहीं लिखे जाने चाहिए; क्योंकि वे मनुष्य तथा समाज को लाभ की अपेक्षा अधिक हानिकारक सिद्ध होंगे और इनसे समाज अवनति के गहरे गड्ढे में गिर जायगा।

अनेकों मनुष्यों का कहना है कि हिन्दी में उपन्यास अधिक हो चुके हैं; अब वे या तो बन्द कर दिये जायँ या बहुत ही कम संख्या में लिखे जायँ। यह तो उन मनुष्यों की केवल भ्रान्ति-मात्र है। यह तो उपन्यासों का प्रारम्भिक युग है, इस कारण ऐसा कदापि न करना चाहिए। हाँ, अब अनुवाद पर्याप्त हो चुके हैं, सो कुछ लेखकों पर अनुवाद करने का भार छोड़कर अन्य लेखकों का ध्यान मौलिक उपन्यासों की ओर होना चाहिए। योरप में विक्टर ह्यूगो, डिकेन्स, टाल्सटाय और टुर्गनिफ़, जीवितों में वेल्स और बर्नार्ड शा आदि प्रसिद्ध लेखकों ने कुछ न कुछ ध्येय को लेकर ही अपने लेखों की रचनाएँ की हैं; परन्तु यह कौन कह सकता है कि ये नीरस हैं। पर भारत ही एक ऐसा अभागा

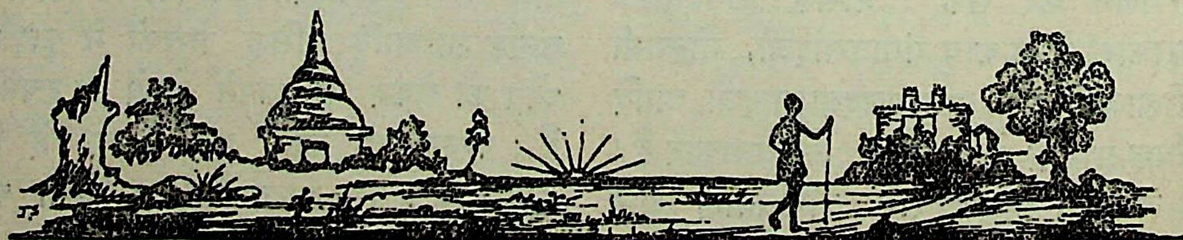


देश है, जहाँ इनकी टक्कर का उपन्यास एक भी नहीं है।

उपन्यास तथा कहानी समयानुकूल लिखी जानी चाहिए। वे देश, जाति और समाज सुधारक होनी चाहिए; क्योंकि वे उनको उन्नतिशाली तथा सभ्य बनाने में योग देती हैं। इन्हीं ने समस्त संसार में हलचल मचा दी है। इन्हीं की असीम सहायता से अवनति तथा घोर अंधकार में पड़े हुए जापान, इटली, अमेरिका और आयरलैंड-जैसे देश महा उन्नति-शाली तथा सभ्यता के अनन्य पुजारी बने हैं। इन्हीं उपन्यासों तथा कहानियों की अद्‌भुत शक्ति तथा असीम सहायता द्वारा मनुष्य फ्रांस, रूस आदि देशों में, जहाँ के स्वेच्छाचारी तथा महा पराक्रमी बलशाली राजाओं के महाभयंकर अकथनीय तथा हृदयविदारक अत्याचारों से वहाँ की प्रजा के नाक में दम आ गया था और जिनकी कठोरता तथा विलासिता का आतंक समस्त संसार में फैला हुआ था, उनको सदैव के लिए नष्ट-भ्रष्ट कर तथा उनकी सत्ता को सदैव के लिए मिटाकर राज्यसत्ता का नामोनिशान मिटाकर, प्रजासत्ता की स्थापना कर वहाँ प्रजातंत्र राज्य स्थापित करने में सफल हुए हैं। परन्तु भारत के लेखकों की दशा ही निराली है। वे तो योग और वियोग के विषयों में लवलीन हैं। कैसी अनोखी तथा आश्चर्यजनक बात है कि एक ओर तो देश पर घनघोर घटाएँ छा रही हैं, वह अन्धकार तथा परतंत्रता की बेड़ियों में सदैव के लिए जकड़ा जा रहा है, उसका भाग्य-नक्षत्र सर्वदा को अस्त हुआ जाता है और दूसरी ओर वहाँ के कवि तथा लेखक शृंगारिक तथा प्रेममयी कविताएँ करें तथा लेख लिखें। ऐसे उदाहरण भारत के अतिरिक्त शायद ही अन्य देशों में मिलते हों। ऐसे विषय तो उसी समय अच्छे लगते हैं, जब कि देश उन्नति के शिखर पर हो, धनधान्य से पूर्ण हो और वहाँ पर किसी विशेष बातों की चिन्ताएँ न घेरे हुए हों; परन्तु भारत-जैसे अधोगति तथा अन्धकार एवं अवनति के गहरे कूप में पड़े हुए परतंत्र देश के लिए नहीं, जहाँ कि लाखों मनुष्यों को रोटियों के टुकड़ों के लिए दूसरों की ओर मुँह ताकना पड़ता है। अनेकों को तो भोजन नसीब भी नहीं होता है और वे क्षुधा से तड़पते हुए अपने प्राण विसर्जन कर देते हैं। अब समय नहीं कि योग और वियोग पर टिप्पणियाँ लिखें। इनके लिए तो फिर कभी समय आवेगा। अब तो समय है कि ऐसी कहानियाँ तथा उपन्यास लिखें, जो कि देश के एक छोर से दूसरे छोर तक सभ्यता तथा स्वतंत्रता की ज्वालाओं को उद्दीप्त कर दें, जिससे नवयुवकों के हृदय में उन्नति तथा देश-प्रेम की लहरें हिलोरें मारने लगें और वे देश, जाति, धर्म और समाज के प्रति अपना कर्तव्य-पालन करने में योग देवें।*

* इस लेख के अनेक स्थलों पर मतभेद होते हुए भी हम इसे इसलिए प्रकाशित करते हैं कि इस विषय पर अधिक चर्चा हो।

—सम्पादक-माधुरी



एक कहानी

श्रीमोहनलाल महतो

(१)

वर्षा की सजल संध्या गोधूलि के समय विधवा के सौन्दर्य का तरह उदास लगती है। आकाश घटाओं से भरा हुआ था—बदली बरसकर खुल चुकी थी। गाँव की पगडंडी कीचड़ से भरी हुई थी। फूस के छप्परों से धुआँ निकल रहा था, पर हवा बन्द रहने के कारण वह दबा हुआ-सा गोधूलि के धुँधलेपन को बढ़ा रहा था।

हाँ, आकाश घटाओं से भरा हुआ था और बदली बरसकर अभी-अभी खुल चुकी थी। मैं टहलता हुआ खेतों के उस पार—आम की घनी बारी के पीछे—चला गया। मेरे साथ एक डाक्टर मित्र थे, जो बीच-बीच में मच्छरों के काट खाने से होनेवाले "मलेरिया" का वर्णन करते जा रहे थे। हमारे हृदय में वायुमंडल की उदासी के कारण स्थिरता थी, शान्ति थी, सन्नाटा था, आलस्य था। धीरे-धीरे संध्या और अधिक धूमिल हो गई—भीगे पंखोंवाले कौए ऊँची-ऊँची डालों पर बैठकर थके हुए स्वर में बोल रहे थे। इधर-उधर से झींगुरों (झिल्ली) और मेंढकों की आवाज़ गूँज रही थी। आकाश से पृथिवी तक भाप की तरह सजल धुँधली छाया भरी हुई थी। चलते-चलते हम एक खँड़हर के पास पहुँचे। दो कच्ची दीवारें खड़ी थीं और बरसाती झाड़-झंखाड़ों से उस नन्हे-से खँड़हर का आँगन भरा हुआ था। एक बड़ा-सा वटवृक्ष उस भग्नावशेष पर अपनी गम्भीर छाया डाल रहा था—मानो परिस्थिति के इस निष्ठुर अत्याचार-चिह्न को वह संसार की आँखों से छिपा डालना चाहता था। उस खँड़हर के आसपास का वायुमंडल कुछ ऐसा उदास और भारी था कि मेरा मन अकारण शिथिल-सा हो गया। डाक्टर ने एक लम्बी साँस लेकर उधर से मुँह फेर लिया। हम लौट चले।

मैंने निस्तब्धता से ऊबकर—मन बहलाने की ग़रज़ से—डाक्टर से कहा—क्यों भाई, वह स्थान कितना एकान्त और उदास है? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि वहाँ कोई न कोई दुर्घटना अवश्य ही हुई है। गाँव से एक मील पर वह नन्हा-सा खँड़हर है और निश्चय ही उसके इस भग्न रूप



में अतीत का रोदनमिश्रित इतिहास छिपा हुआ है।

डाक्टर अचानक चौंक पड़ा। झुटपुटे प्रकाश में मैंने देखा कि उसके चेहरे का रंग जल्दी-जल्दी बदल रहा है। अपने मनोभावों को छिपाने के लिए वह सिगरेट निकालने का बहाना करने लगा। मैं बोला—"भाई, तुम चुप क्यों हो रहे ? सचमुच मैंने उस स्थान को देखकर वही सोचा, जो तुमसे कह चुका हूँ। मैं उस खँड़हर की स्मृति से अपनी रक्षा करना चाहता हूँ।" डाक्टर अपनी लम्बी साँस को छाती में दबाते हुए बोला—"हूँ, सचमुच वह खँड़हर... मैं भी सोच रहा हूँ... बेचारा कितना अभागा था।"

कौन बेचारा था वह, जो डाक्टर की आँखों में अभागा प्रमाणित हुआ ? मैंने साग्रह पूछा—"वह कौन था डाक्टर ?"

डाक्टर बोला—"वह एक अज्ञात-कुलशील नवयुवक था। तीस साल की जवानी थी और विना चिकित्सा के तड़प-तड़पकर मर गया। वह वीर था, वीर की तरह ही मरा। मैं उसकी कहानी सुनाता हूँ—

× × ×

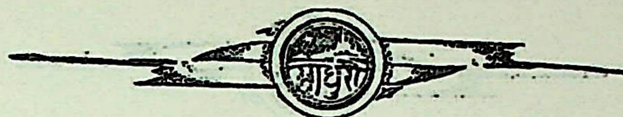
(२)

"एक रात की बात है"—डाक्टर ने कहना शुरू किया—"उस दिन अधिक रात को मैं एक रोगी के यहाँ से लौटा। रोगी की अवस्था संगीन थी। यद्यपि मैंने अपनी आँखों के सामने सैकड़ों अभागों को दम तोड़ते देखा है, पर उस दिन जिस रोगी को मृत्यु-शय्या पर छोड़ आया था, वह कुछ विशेष करुणोत्पादक था। वह एक नवयुवक था, जिसकी पत्नी उसी सप्ताह मर गई थी। रोगी प्रलाप बकता हुआ अपनी मृत पत्नी से झगड़ रहा था और इसलिए कि वह उसे छोड़कर नदी के उस पार क्यों चली गई। मैं चाहता तो दवा देकर उसे होश में ले आता, पर मुझे विश्वास था कि उसकी बेहोशी ही उसके लिए सबसे बड़ी सुखद दवा है। होश में आकर वह अपने-आपको अकेला और लुटा हुआ समझकर तड़प-तड़पकर जान दे देता।

ख़ैर, मैं खिन्न हृदय से घर लौटा तो यहाँ एक देहाती को प्रतीक्षाकुल अवस्था में देखा। मेरा मन बेकहा हो रहा था। मैं चाहता था विश्राम करना और अपने उस अभागे रोगी की स्मृति को ठेल-ढकेलकर मन से निकाल बाहर करना, पर मेरे मन के अनुसार संसार का कारोबार थोड़े ही चलता है। उस देहाती ने कहा—"सरकार, एक रोगी है। वह दया का पात्र है। उसे एक नज़र देख लीजिए। यदि वह जी गया तो सरकार को बड़ा यश मिलेगा।"

उसने कुछ इस तरीक़े से अपनी बातें कहीं कि मैं 'ना' नहीं कर सका। मोटर तैयार थी—चल पड़ा। देखते-देखते शहर के बाहर हो गया। कई पेचीली सड़कों से घूमकर मैं उसी खँड़हर में पहुँचाया गया। उस समय यह एक छोटा-सा कच्चा घर था। मैं उसके छोटे-से द्वार के भीतर सिर झुकाकर घुसा। जाड़ों की रात थी। दिशाएँ सर्दी से मानो काँप रही थीं। हवा में गजब की ठंढ थी। कहने का तात्पर्य यह कि गहरी सर्दी पड़ रही थी। मानो आकाश में हिमालय उड़ रहा हो।

झोंपड़े के भीतर एक फूटे हुए शीशेवाली छोटी-सी लालटेन लगातार धुआँ उगलती हुई मटमैला प्रकाश फैला रही थी और एक कोने में पयाल के ढेर पर एक अस्थिचर्मावशिष्ट रोगी पड़ा हुआ मृत्यु की घड़ियाँ गिन-गिनकर बेज़ार हो रहा था। मैं जिसके साथ आया था, वह न-जाने किधर ग़ायब हो गया। परीक्षा करने के लिए रोगी के सामने मैं झुक गया। उसने शुद्ध और साफ़ अँगरेज़ी में कहा—



The great fact is, that life is a service. The only question is, "whom will we serve ?"

रोगी का गम्भीर स्वर गूँज उठा उस छोटी-सी कुटिया की निर्जनता में। रोगी ने इन शब्दों को प्रलापावस्था में कहा या होश में, मैं नहीं कह सकता। मैंने देखा, उस कंकाल के शरीर पर फटा हुआ एक चिथड़ा लिपटा हुआ था और उसकी आँखें भीतर घुस गई थीं, पर दो अंगारों की तरह चमक रही थीं। मैं विस्मयविमूढ़-सा हो गया। नाना प्रकार की भावनाएँ तूफ़ान की तरह दिमाग़ में हाहाकार करती हुई, क्षणभर में घूम गईं। मैं अकचकाया-सा पयाल पर बैठ गया। उस विचित्र रोगी ने कराहकर करवट बदली और अपनी पतली, पर लोहे की छड़-जैसी उँगलियों से मेरे हाथ को कसकर पकड़ लिया—उसका शरीर भट्ठी की तरह तप रहा था, उसकी तेज़ साँसों से लू निकलती थी। उसने कहना आरम्भ किया—"तुम डाक्टर हो? अच्छा, मैं जी सकता हूँ—तुम जिला सकोगे? मेरे पास कुछ नहीं है—जन्म भर बेकारी, दुर्भाग्य, ख़तरों से खेलता रहा। अब मर रहा हूँ। मैं मरना नहीं चाहता—मृत्यु मेरे साथ छल कर गई। कई बार मृत्यु की घड़ियाँ आईं, मरण का अट्टहास निकट से सुना, महाकाल का तांडव देखा, पर मैं साफ़ बच निकला, मरा नहीं। आज मर रहा हूँ, इस निर्जन झोंपड़े में। मैं मैदान का खेलाड़ी इस सँकरी घाटी में पटक दिया गया हूँ—यहीं मरना पड़ेगा। अब उपाय नहीं है। हाँ, तुम डाक्टर हो तो मुझे बचा लो। मैं मृत्यु से डरता नहीं, पर खुले मैदान में मरना चाहता हूँ, मुक्त गगन के नीचे दम तोड़ना चाहता हूँ। इस तरह मरना—कर्म-कोलाहल से दूर, एक निर्जन स्थान में कराह-कराहकर मरना मुझे स्वीकार नहीं है—मुझे बचा लो, मुझे बचा लो!"

रोगी इतना बोलकर हाँफने लगा। मैं चित्र की तरह चुपचाप बैठा सुनता रहा। उसने ज़रा ठहरकर फिर कहना शुरू किया—"डाक्टर! मैं सचमुच मर रहा हूँ। सुनो, मेरे हृदय में—एक युग से—एक हाहाकार भरा हुआ है। चाहता हूँ—अपने हृदय की इस अकथनीय पीड़ा को किसी तरह दूर कर डालूँ। जब जीवित था—अब मैं मुरदा हूँ—तब डरता था अपनी बात कहने में। डर था, कहीं मेरी ही बातें मेरे विनाश की खाईं न बन जायँ, पर अब निर्भय हूँ। समाज और क़ानून से मेरा बाल भी बाँका नहीं हो सकता। तुम्हें इसी लिए बुलाया है। तुम्हारा नाम मैंने सुना है—तुम आ गये, अब मेरी कथा सुन लो। मेरे हृदय का भार उतारकर चले जाना, मैं भी आराम से आँखें बन्द कर लूँगा। रोग से भी, मृत्यु से भी अधिक कष्ट है मुझे मेरे हृदय के भार से।"

मैं चुपचाप बैठा था। रात सायँ-सायँ कर रही थी। पूस की रात थी और कुटिया निर्जन। उसने कहना आरम्भ किया--

"सुनो, इच्छा न रहते हुए भी सुनो! मैं एम्० ए० हूँ। तुम्हें आश्चर्य होगा मैं एम्० ए० हूँ। एम्० ए० पास किया मैंने अपनी समस्त पैतृक सम्पत्ति को स्वाहा करके। मेरे लिए अँगरेज़ी के ये दोनों अक्षर—एम्० ए०—बहुत ही महँगे पड़े। मेरे पिताजी, जो एक साधु पुरुष और छोटे-से काश्तकार थे, घुल-घुलकर मरे, मा, पिताजी की मृत्यु के बाद, उपवास करके, भूखों मर-मरके, स्वर्ग सिधारी। मैं एम्० ए० की खोखली डिग्री लिये महानाश के निर्जन आँगन में खड़ा रह गया। मेरे चारों ओर निराशा की चिता जल रही थी—नवागता दुलहिन का स्वागत मैंने अपने घोर निराश जीवन के द्वार पर किया। उस बेचारी ने घूँघट उठाते ही घासफूस से भरे हुए



निर्जन और दरिद्रता के केन्द्र-जैसे घर को देखा। जिस घर की वह रानी बनी, वहाँ न तो एक मुट्ठी खाने को अन्न था और न सोने के लिए फटी हुई एक कथरी थी। मेरे उस छोटे-से कच्चे घर की प्रत्येक कोठरी ख़ाली थी और अपनी दरिद्रता अपने ख़ालीपन से प्रकट कर रही थी। मैं अपनी स्त्री की आशा का प्रकाश था और मेरी आशा का केन्द्र था मेरा "एम्० ए०" का डिप्लोमा। दोनों दोनों को धोखा दे रहे थे।

अधिक समय नहीं लगा, जब मेरी और मेरे 'डिप्लोमा' की अन्तिम परीक्षा हो गई। इसी समय हम पर वज्रपात हुआ एक नवजात पर अभागे शिशु के रूप में। मेरी स्त्री ने अपने नवजात शिशु को देखकर—एक दिन रोते हुए कहा था—"किसी रानी की गोद में तू आता, किसी राजा के सिंहासन का गौरव बनता। इस दरिद्र की झोंपड़ी में अपने पापों का फल भोगने क्यों आया रे अभागे!"

बात चुभती हुई थी। मेरा हृदय पके हुए घाव की तरह दुख उठा। मैं कराहकर रह गया। सोचा—घर बैठकर भूखों मरना अच्छा नहीं। पर साथ ही यह भी सोचा कि आख़िर जाऊँ तो कहाँ? इसी उधेड़-बुन में मैं रहा और उधर ज़मींदार ने अपनी डिक्री इजराय कराई। परिणाम यह हुआ कि बची-खुची ज़मीन भी एक, दो, तीन हो गई। मेरे सहपाठियों में से कई वकील भी हुए थे, पर उन्होंने कोई सहायता नहीं दी। ज़मींदार ने भी मेरी दयनीय दशा पर तरस नहीं खाया। मैं चुपचाप खड़ा-खड़ा अपना विनाश देखता रह गया। स्त्री ने - जो अभी प्रसूति-गृह से निकली ही थी—आँखों में आँसू भरकर कहा—"अब उपाय?" मैंने क्या उत्तर दिया, यह तो याद नहीं है, पर आज मैं सोचता हूँ कि उस ग़रीबनी के प्रश्न का कोई समुचित उत्तर हो ही नहीं सकता था। अब हमारी सम्पत्ति में केवल वह टूटी-सी झोंपड़ी बच रही थी, जिसकी शरण में हमारा छोटा-सा परिवार आँसू पीकर और ग़म खाकर किसी-किसी तरह जी रहा था। निराश या अवलंबहीन जीवन कितना वेदनामय होता है, यह बतलाना कठिन है। भुक्तभोगी ही इसका अनुभव कर सकता है।"

इतना कहकर वह हठात् चुप हो गया। उसने फिर बोलने का प्रयत्न किया। कंठ सूख गया था—आवाज़ नहीं निकल सकी। कोने में मिट्टी का एक घड़ा पड़ा था और एक पुरवा। मैंने एक पुरवा जल में थोड़ी-सी दवा मिलाकर उस अद्भुत रोगी को पिलाया। कुछ देर में उसने खाँसकर गला साफ़ किया। मैं हक्का-बक्का-सा बैठा रहा। सच कहता हूँ, वह दृश्य आज भी ज्यों का त्यों मेरी आँखों के आगे नाच उठता है। ख़ैर, उसने फिर कहना शुरू किया—

"मैं थक गया हूँ डाक्टर! अब शरीर में रक्त नहीं बचा। उपचार के अभाव में मैं तड़प-तड़पकर मर रहा हूँ। मैं न तो खुली हवा में जा सकता हूँ और न किसी से बातें कर सकता हूँ—स्वतन्त्र हूँ, पर क़ैदी से भी बुरी स्थिति में। समाज मेरे हाथों में—उन हाथों में, जिनमें किसी निर्दोष का ख़ून लगा चुका हूँ—भीख देने को प्रस्तुत नहीं है। मेरा दामन भी पाक नहीं है। मैं ख़ूनी हूँ—डाक्टर! तुम्हें डरना नहीं चाहिए।"

उस भयंकर रोगी ने इन शब्दों को इतने ज़ोर से कहा कि मेरे रोंगटे खड़े हो गये। मैं सिर से पैर तक थरथरा उठा पीपल के पत्ते की तरह। मुझे परेशान-सा देखकर उस मरणासन्न नवयुवक ने मेरा हाथ अपनी ओर खींचकर कहा—"डर गये? इतने ही से डर गये! सुनो—मैं पापी हूँ, पूरा पापी हूँ। भावावेश में मैं नहीं बोल रहा हूँ। मैं अब क़ानून और हुकूमत



की तुच्छ सीमाओं के उस पार जा रहा हूँ—मुझे किसी का भय नहीं है। डाक्टर! मैंने बेकारी से तंग आकर शहर में एक नौकरी कर ली। एक बड़े धनी के यहाँ मुझ एम्० ए० पास को नौकरी मिली १५) की। काम था दो बच्चों को पढ़ाना। उफ़्! आज भी उन दुष्ट बच्चों की स्मृति से ख़ून खौल उठता है, जिनके कारण मेरे नन्हे-से परिवार का शोकमय अन्त हो गया।

डाक्टर! क्या तुम जानते हो कि ये अमीरज़ादे कितने नालायक़ होते हैं? ग़रीबों के बच्चों में फ़ी सदी पंचानबे तुम्हें शान्त, सभ्य, शिष्ट मिलेंगे, पर अमीरज़ादों के लिए ऐसी बात नहीं है। हाँ, तो मैंने मास्टरी में मन लगाया, पर पढ़ाता किसे? एक तो दिन भर मोटर दौड़ाता चलता था और दूसरा नौकरों को इकट्ठा करके जुआ खेलता था। किसी तरह पाँच-छः महीने तक मैं रह सका। एक दिन छोटे लड़के का—जिसकी उम्र १५-१६ साल की थी—सोने का हार अचानक गुम हो गया। सुना कि हार एक हज़ार रुपयों का था। मैं नहीं समझता था कि यह आफ़त मेरे सिर पर आवेगी। सभों ने—सभी नौकरों ने—एक स्वर से मेरा नाम लिया। मैं पुलिस की कालकोठरी में ढकेलकर बन्द कर दिया गया। तुम सोच सकते हो डाक्टर! मेरे मन पर उस समय क्या बीत रही होगी। शहर में मैं एक चोर के नाम से क्षणभर में विख्यात हो गया। मेरे घर की तलाशी ली गई और मेरी स्त्री को भी गालियाँ दी गईं। मैंने जब हवालात में यह समाचार सुना तो मानसिक क्षोभ से व्याकुल हो उठा। अन्त में एक मास तक हवालात की दुर्गन्धमय हवा खाकर मैं छूटा। हार सेठजी के एक ख़िदमतगार के घर से बरामद हुआ। उसने बयान में कहा कि "यह हार छोटे बबुआ ने जुए में हारकर मुझे दिया है।" बात सच्ची थी और सज़ा होनी चाहिए थी उस कमीने छोटे बबुआ को, पर चार साल के लिए वह ग़रीब ख़िदमतगार जेल में ठूँस दिया गया और मैं बेदाग़ खुली हवा में पहुँच गया। खुली हवा में तो पहुँच गया, पर मुझे अनुभव हुआ कि मेरे ललाट में बड़े-बड़े अक्षरों से मानो किसी ने लिख दिया है—"चोर!" मैं मुँह छिपाने की जगह खोजने लगा, पर मैंने देखा कि संसार के कोने-कोने से करोड़ों उँगलियाँ मेरी ओर उठी हुई हैं और करोड़ों जोड़ी आँखें मुझे घूर रही हैं। एकान्त में भी मैंने अपने को घृणापूर्ण, धिक्कारपूर्ण, तिरस्कारमय वातावरण में पाया--सच तो यह है कि अपनी स्त्री को मुँह दिखलाने का साहस भी मेरे कातर हृदय में न था। आख़िर वह बेचारी अपने-आपको "एक चोर की पत्नी" समझकर कितना मर्माहत होती होगी।

जेल से बाहर आकर मैं कुछ क्षण तो रुका, फिर सीधे शहर के बाहर चला गया। एकान्त मैदान के उस छोर पर एक छोटा-सा गाँव दिखलाई पड़ता था। मैं गाँव की दूसरी ओर चला। जनसमूह में जाने की हिम्मत अब मेरे मन में नहीं रह गई थी। खेतों से होकर मैं पहाड़ी के नीचे-नीचे चलने लगा। धीरे-धीरे दिन समाप्त हो गया और अँधेरी रात की छाया में संसार छिप गया। आज का अन्धकार मुझे बहुत ही प्रिय लगा। अन्धकार प्रकृति का कितना करुण अंश है! जो दिन के उज्ज्वल प्रकाश से छिपना चाहता है, जिसका चरित्र प्रकाश में स्पष्ट होने के योग्य नहीं है, उसके लिए अन्धकार का बुर्क़ा बहुत ही उपादेय है। मैं अन्धकार में छिपता चलता था।

डाक्टर! सुना तुमने—मैं चोर हो गया। क्यों—? इसी लिए कि मैं ग़रीब था, निर्धन था, कायर था और संसार को अच्छी तरह पहचान नहीं सका था। चोरी?—चोरी क्या बुरी बात



है ? लाचार होकर जो कुछ करना पड़े, उसे शंका-रहित होकर करना ही सच्ची मनुष्यता है मेरे-जैसे ग़रीबों के लिए। मैंने अपनी निर्बलता के कारण अपने को चोर समझ लिया—इतना ही नहीं, कोरा सिद्धान्तवादी होने के कारण तो—आत्मग्लानि के मारे–आत्महत्या करने पर भी उतारू हो गया। पर मुझे तो संसार की छाती को लगातार १० वर्ष तक अपने पैरों से रौंदना था। मैं आत्म-हत्या-जैसा कायर-कर्म करता तो क्यों! मेरे नेक साथी! धीरे-धीरे मेरे सिर पर से आदर्शवाद का भूत उतर गया और मैं शंकारहित होकर जन-समूह के बीच में खड़ा हो गया। किसी ने मुझे देखा या नहीं, पर मैं अपने ही मन से यह सोच-कर सन्तुष्ट हो गया कि संसार न्यायी है। मुझ एम्० ए० पास साहित्य के विद्वान् को चोर कौन कह सकता है। मैंने अपने-आपको फुसला लिया।

मैं फिर नौकरी की खोज में चला। अख़बारों में सूचनाएँ पढ़-पढ़कर कई स्थानों पर गया, दर्जनों आवेदन-पत्र भेजे, पर कहीं से भी आशाजनक उत्तर नहीं मिला। दो-दो दिन तक लगातार उपवास करके भी मैंने अपना एम्० ए० पन नहीं छोड़ा। न तो कुली-मज़दूर का काम स्वीकार किया और न किसी निन्द्य वृत्ति की ओर ध्यान दिया। सत्य, धर्म आदि की परीक्षा एक प्रकार से जब ले चुका, तब मैं हताश-सा हो गया। इधर घर पर ख़र्च भी नहीं भेजा था। मेरी सद्यःप्रसूता पत्नी और नन्हा-सा बच्चा!

मित्र! मैं किस स्थिति में था—ज़रा गौर तो करो! जीवन दूभर हो रहा था। केवल पैसे के अभाव से मेरी सारी शिक्षा, सारी योग्यता व्यर्थ हो गई थी। चौदह साल लगातार माता सरस्वती के सिंहद्वार पर यथासर्वस्व न्योछावर करके मैंने जो शिक्षा के रूप में वरदान पाया था, उसका उपयोग? यदि चौदह साल तक मैं 'पाकटमारी' का अभ्यास करता तो इसमें सन्देह नहीं, मैं आज भूखों न मरता और न स्त्री-सन्तान को घुला-घुला-कर वेदम कर डालता। तो क्या मैंने व्यर्थ अपना जीवन गँवाया! ख़ैर, मेरे साथी! जब घर की सुध आई तो मानो मेरे पैरों के नीचे से धरती खिसक गई। मैं एक अपराधी की तरह घर जाने से झिझकता था—चोर कहलाने की लज्जा मिट गई थी। मैं यह सोचकर दहल जाता था कि इतने दिनों तक मेरी स्त्री-सन्तान किस अवस्था में होगी। मैं अपनी आँखों से उनके दुर्दशाग्रस्त रूप को देखने से डरता था—यह मेरी कमज़ोरी थी।

(३)

मैं मानो एक अतिथि की तरह—अनजान परदेसी की तरह घर की ओर चला। मेरे पास पूरे छः आने पैसे थे और रेल का भाड़ा था तेरह आने। मैंने पैदल जाना ही तै किया। तै क्या किया, उपाय भी दूसरा नहीं था। मैं जंगल और देहातों के बीच से होता हुआ चल पड़ा।

मैं भूल नहीं सकता—! कितनी भीषण स्मृति है। मैं रास्ता भूल न जाऊँ—इसका भय सदा बना रहता था। सो डाक्टर! मैं कभी-कभी 'लाइन' के किनारे-किनारे भी चल पड़ता था। एक रात को जब मैं रेलवे-लाइन के पास एक वृक्ष के नीचे बैठा था तो मुझे ऐसा जान पड़ा कि मेरे चारों ओर जूते की चरमराहट गूँज रही है। मैं निर्धन था—मुझे चोर या डकैतों से कैसा भय। थोड़ी ही देर में मैंने चौंककर देखा कि "राइफ़ल" धारी कोई बीस-पच्चीस पुलिस के जवान मुझे घेरकर खड़े हैं। मेरी ओर तमंचे का रुख़ करके एक अफ़सर मुझे आत्मसमर्पण कर देने का "फ़ौजी-आर्डर" दे रहा है। काटो तो मेरे शरीर में लहू नहीं।

बात यह थी कि किसी शरारती ने इसी लाइन पर कहीं पत्थर की चट्टान या कोई विस्फोटक



चीज़ धर दी थी। पुलिस उस अपराधी को खोज रही थी। मैं चश्माधारी मूछ मुड़ाये नवयुवक रात को जंगलों में घूमता हुआ पाया गया—बस, संदेह पक्का हो गया और मेरी गिरफ़्तारी आवश्यक हो गई! मैं मोटर पर बिठाकर—बड़े समारोह के साथ—जेल की ठोस दीवारों के भीतर पहुँचा दिया गया। मैं अपने भाग्य की रंगीनियों पर कभी हँसता और कभी रोता। मैंने गला फाड़-फाड़कर अधिकारियों को बहुतेरा समझाया कि मैं एक अभागा एम्० ए० पास मनुष्य हूँ, पर उधर से यही उत्तर मिला कि "साथियों के नाम बतला दो तो तुम्हें अच्छी नौकरी दिलवा दी जायगी।" मैं तो परेशान था कि किस साथी का नाम लिखाऊँ। मेरे साथियों में दुर्भाग्य, कष्ट, विनाश के अतिरिक्त और है कौन, जिसका नाम पुलिस की 'डायरी' में नोट करवा दूँ। लाचार, कम्बल से मुँह ढाँककर सो रहा।

जेल में मेरी ही तरह तीन-चार अभागे और आये—हम एक दूसरे से पूरे अपरिचित थे, पर अधिकारी यह मानने को प्रस्तुत न थे।

× × ×

एक रात को जब मैं अपने भाग्य को पड़ा-पड़ा कोस रहा था, मेरे निकट खिसकता हुआ 'रमेश' आया। यह रमेश बी० एस्-सी० का विद्यार्थी था और मेरी ही तरह यहाँ पहुँच गया था। इसके पहले भी उसने बड़े घर की हवा खाई थी और वह कालेज से खदेड़ दिया गया था। बेकारी समस्त बुराइयों की जड़ है और ख़ाली दिमाग़ शैतान का घर होता है। मेरी ही तरह 'रमेश' बेकार भी था और कोई निश्चित कार्यक्रम न रहने के कारण उसका दिमाग़ भी शैतान का घर बन चुका था। उसने आते ही मुझसे कहा—यहाँ पड़े-पड़े घुलना तो अच्छा नहीं लगता। मैंने सहमकर उसकी ओर देखा। उसने अपनी बातों का चौंका देनेवाला सिलसिला जारी रक्खा—"मेरा साथ एक पुराने दाग़ी असामी से हुआ है। वह आज रात को भाग खड़ा होगा। सब व्यवस्था ठीक है। चलना चाहो तो तुम्हें भी मदद दूँ—चलोगे?" मैं चुप रह गया।

इतना कहकर मेरे डाक्टर-मित्र ज़रा-सा रुक गये। रात हो गई थी। हवा तेज़ी से बह रही थी। हम खेतों को पार करके पक्की सड़क पर आ गये थे। डाक्टर खिसककर मेरे पास आ गया। मैं सिर से पैर तक थरथरा-सा उठा। डाक्टर ने फिर अपनी कहानी शुरू की—"भाई, मेरे विचित्र रोगी का गला इतना बोलकर रुँध गया। उसे मैंने फिर एक पुरवा जल और थोड़ी-सी दवा दी। ज़रा-सा रुककर वह फिर बोला—"डाक्टर! सुन रहे हो न? तुम ऊब उठे होगे। इस कहानी में रस कहाँ से आया। यह तो उजड़े हुए परिवार की एक कसक-कहानी है। मैं ही नहीं, मुझसे भी गये-बीते कितने ऐसे अभागे हैं, जो परिस्थिति की चक्की में पड़कर पिस चुके हैं, जिनकी हड्डी का प्रत्येक छोटा कण अणु-परमाणु में मिलकर आज भी शून्य में घूम रहा है। संसार का जो भावी रूप बनेगा, उसमें इन अस्थिकणों की बहुलता होगी। डाक्टर! तुम जानते हो, तुम्हारे पैरों के नीचे कितने भुखमरों की, अकाल-काल-कवलित अभागों की लाशें दफ़नाई हुई हैं? नहीं—कौन इस व्यर्थ के लेन-देन का हिसाब रखता है। संसार निश्चिन्त है।

हाँ, तो मैं भी जेल से निकल भागने की बात सोचने लगा, पर हृदय इस तरह की प्रवंचना में भाग लेने से मुझे रोकना चाहता था। मैंने रमेश से साफ़ शब्दों में कह दिया कि—'मैं इस नीच कर्म में तुम्हारा साथ नहीं दूँगा। सिद्धान्त की दृष्टि से मैं इस कर्म को नैतिक पतन के रूप में देखता हूँ। मैं निरपराध हूँ और अन्त तक निर-



पराध ही रहूँगा।' मेरी ऊँचे दर्जे की बातों ने रमेश को स्तब्ध कर दिया। वह बोला—'बड़े दूध से धुले हुए हैं। तुम जानते हो—संसार तुम्हें सीधे रास्ते पर कभी सुखपूर्वक चलने नहीं देगा। यह दुनिया हम-जैसों की है। तुम्हारी तरह कोरा विद्वान् यहाँ भीख माँग-माँगकर मरता है।' मैं चुप रह गया। सवेरे उठने के पहले 'पगली घंटी' की आवाज़ से मैं चौंक उठा। देखा कि मेरी कोठरी के दो छड़ कटे हुए हैं और सुना कि जेल की दीवार पर एक रस्सी झूल रही है। रमेश तथा दो पुराने क़ैदी ग़ायब हो गये। मैं सन्नाटे में आ गया; पर अब उपाय।

× × ×

अब मेरा साथ एक डकैत से हुआ। उसने कई डाके डाले थे और कई ख़ून भी कर डाले थे। इसकी बातों ने—डाक्टर! यदि तुम भी मेरे उस डकैत साथी की बातें सुनते तो प्रभावित हो जाते और इस 'बैग' और 'स्टेथिस्कोप' को चूल्हे में डालकर लाठी, तलवार उठाना ही उचित समझते। उसने अपने गले में से न-जाने किस ढब से १० गिन्नियाँ निकालीं और मुझे दिखलाईं। मैं तो पाई-पाई के लिए तरस रहा था। गिन्नियों को देखते ही मानो उछल पड़ा। उसके भाग्य और व्यवसाय की मन ही मन सराहना की। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि संसार में धन से अधिक सुन्दर और उपादेय वस्तु दूसरी है ही नहीं। एक दरिद्र व्यक्ति इससे अधिक कल्पना भी नहीं कर सकता। पैसे की आवश्यकता मनुष्य के हाथों से न-जाने क्या-क्या करवा डालती है।

(४)

"मेरे भयानक रोगी ने कहना शुरू किया" डाक्टर बोला—"मैं आख़िर प्रमाणाभाव से जेल से निकाल दिया गया। मेरे जेल के डकैत साथी ने अपने दो-चार नेताओं के नाम-पते बतलाये थे। मैं नहीं चाहता था कि एक भयानक गरोह के सरग़नों से मिलूँ, पर मेरे हृदय से सुसंस्कारों का प्रकाश क्षीण हो चला था और मैं अपनी कुल-मर्यादा और शिक्षा की महत्ता को भूल-सा गया था। सोचता था, चाहे जिस उपाय से हो, धन कमाना ही चाहिए। जेल से निकला तो सीधे घर की ओर भागा। अब सीधी सड़क से चलकर घर की ओर जाने का निश्चय किया। न-जाने क्यों मेरे मन में घर जाने की ऐसी प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हो गई कि मैं अपने-आपको नहीं रोक सका। ४५-५० मील न-जाने किस झोंक में मैं चला गया। दो दिनों के बाद अपने गाँव की सीमा पर पहुँच गया। दूर से मेरा घर नज़र आता था। मुझे विश्वास था कि मेरा घर उजाड़ हो गया होगा और स्त्री-संतान या तो कहीं अनाथालय में होंगी या भीख माँग-माँगकर इन्होंने अपना अन्त कर लिया होगा। मैं छः मास पर घर लौट रहा था—पूरे छः मास पर। दो बार मिलाकर दो मास तो जेल की हवालात में रहा और चार मास बेकार घूमता रहा या नौकरी बजाता रहा—वही १५) प्रतिमास पर अपने सेठ मालिक के यहाँ।

घर की शान्ति तभी बर्क़रार रहती है, जब भर पेट खाने को रहता है। मैंने अपनी स्त्री को देखा पगली की सूरत में—बाल बिखरे हुए थे और आँखें लाल-लाल और चढ़ी हुई थीं। मैं उसकी दशा देखकर सहम गया—अकचका गया। मेरी आँखें बच्चे को खोज रही थीं, पर वहाँ कोई न था। मैंने अपनी स्त्री से जब बच्चे के विषय में पूछा तो उसने गुर्राकर उत्तर दिया—"उस पीपल के पेड़ के नीचे! राजा इन्द्र के अखाड़े में खोजो। लालपरी का बाप मर गया था...तुम कौन हो...? लालपरी तुम्हारा ही नाम है?"

अब तुम्हीं बतलाओ डाक्टर! मेरी मानसिक

दशा कैसी रही होगी उस समय। मैंने गाँव में यह भी सुना कि मेरी स्त्री ज़मींदार के यहाँ बरतन माँजने का काम करती थी। एक दिन अचानक वह अपने बच्चे को लेकर उसके कोठे से फाँद पड़ी। बच्चा तो तत्काल वहीं का वहीं ठंडा हो गया, और इसके मेरी पत्नी के—सिर में ऐसी चोट आई कि दिमाग़ ख़राब हो गया।

तरह-तरह के प्रश्न मेरे दिमाग़ में घूमने लगे। सम्भवतः पागलपन की हालत में ही—पागलपन के अचानक दौरा हो जाने के कारण ही—वह कोठे से, बच्चे को गोद में लेकर, फाँद पड़ी। कुछ भी हो, मैंने अनुभव किया कि मेरा सारा जीवन यों तो बहुत पहले ही नष्ट हो चुका था, पर उसका बचा-खुचा हिस्सा आज स्वाहा हो गया!

डाक्टर! डाक्टर!! मैं मर रहा हूँ। मुझे मरने दो—मैं मरकर ही जीऊँगा। जब तक साँस ले रहा हूँ, प्रतिक्षण मृत्युवेदना का अनुभव कर रहा हूँ।

इसके बाद—? इसके बाद मत पूछो। मैं अब कहीं का भी न रहा। पगली पत्नी की सेवा में मैं कुछ दिनों तक लगा रहा, पर अन्त में उसने भी मेरा दामन छोड़ दिया। प्रलापावस्था में उसने ऐसी-ऐसी बातें सुनाईं कि यदि मैं कहने लगूँ तो मुझे विश्वास है कि डाक्टर होते हुए भी तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो जाय। स्त्री की मृत्यु को मैंने हँसते हुए देखा—घर में छप्पर, फूस, चौखट वग़ैरह लकड़ी की जितनी चीज़ें थीं, सबको इकट्ठा किया और अपने आँगन में चिता रचाकर अपनी प्यारी पत्नी के कोमल शरीर को उसकी आग में भून डाला, पका डाला, भस्म कर दिया और सदा के लिए गाँव को प्रणाम करके चल पड़ा। यों तो अपनी जीवन-सहचरी की चिता को मैं बुझता हुआ छोड़कर चला था, पर उसकी समस्त ज्वाला, सारी लपटें मेरे हृदय में हाहाकार कर रही थीं—मैं मानो जीवित प्रेत की तरह बाधा-बन्धनहीन होकर हवा में उड़ता जा रहा था। मैं दाँत पीसता हुआ, मन ही मन गुर्राता हुआ अनिश्चित दिशा की ओर चला। मेरा बच्चा! मेरी पत्नी!! मेरी इज्ज़त!!! ख़ैर, मैं ऊब उठा था अपने जीवन से, पर यों गले में रस्सी डालकर मरना मुझे मंज़ूर न था। संसार ने मुझे एक चोर के रूप में देखा, फिर डकैत के रूप में। मैं अपने उपेक्षित, तिरस्कृत जीवन से ढीठ हो गया—अपने कलंकों को मैं प्यार करने लगा। सोचा, १४-१५ वर्ष तक अध्ययन करने का यदि मेरे लिए यही फल हो सकता है तो मैं इस कलंक-कालिमा को सरस्वती के वरदान के रूप में ग्रहण करूँगा, समाज की देन के रूप में स्वीकार करूँगा। मेरी आत्मा का पतन हो चुका था, मेरी सामाजिक मौत हो चुकी थी। डाक्टर! मैंने संसार के आँगन में खुलकर खेला। एक बार जो राक्षसता के पथ पर चला तो आज तक उसी पर आरूढ़ हूँ। चोरी—? चोरी की क्या हस्ती है डाक्टर! मैंने डाके डाले हैं, ख़ून किये हैं और जितना धन पाया, सब तीन स्थानों में बिखेर दिया। मैंने वेश्याओं को मुँहमाँगा धन दिया, शराबख़ाने के गल्ले भरे, जुआख़ाने में रुपये और नोटों की वर्षा कर दी। मैं एक प्रकार से 'धन' पर झल्ला-सा उठा हूँ। मैं चाहता हूँ कि जहाँ भी धन मिले, उसे किसी भी उपाय से लेकर नष्ट-भ्रष्ट कर देना चाहिए—संसार में धन नाम की कोई वस्तु न रह जाय, यही मैं पागलों की तरह सोचता रहा हूँ। मैंने अपने लिए कुछ नहीं जोड़ा।

डाक्टर! मेरे पतित जीवन की इतनी झलक ही काफ़ी है। अब मैं मर रहा हूँ—बोलना चाहता हूँ, पर मुँह से आवाज़ नहीं निकलती। तुम देखो, पिछले सप्ताह मेरे मर्मस्थल में गोली लगी है। मैं दवा कराना नहीं चाहता—मरना चाहता



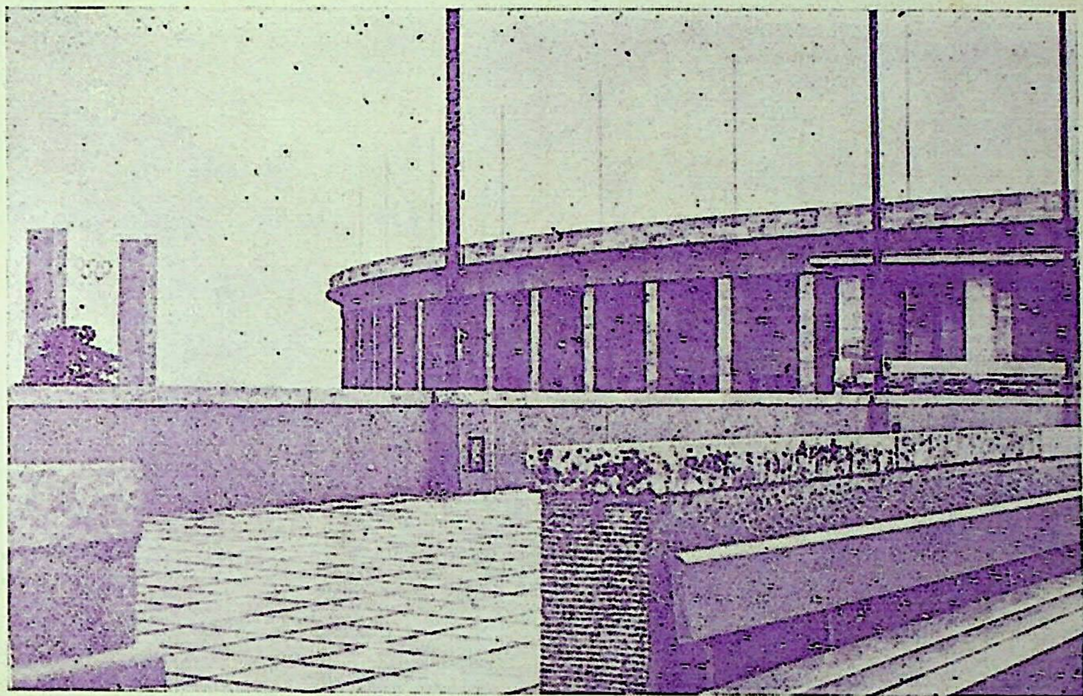
हूँ। मैं पापी नहीं हूँ—मुझे विश्वास है कि निर्बल मनुष्य पापी गिना जाता है। पहले जब मैं कोरा एम्० ए० पास गऊ की तरह सीधा-सादा एक मनुष्य था, तब पापों की पलटन मुझे घेरे रहती थी। जब से मैंने सभ्यता का ढोंग छोड़ दिया और भगवान् भूतनाथ की तरह तांडवनृत्य में लिप्त हो गया, तब से पाप और पुण्य दोनों के बन्धन से मुक्त हो गया—डाक्टर ! पाप--पाप निर्बलों को निगल जाता है।

अब, मरना चाहता हूँ; क्योंकि मैं न केवल अपने जीवन से ही ऊब उठा हूँ, बल्कि समस्त मानव-समाज से ऊब उठा हूँ। इसमें संदेह नहीं कि विकासवाद के अनुसार मनुष्य-जाति का मस्तिष्क तो बेतरह बढ़ गया है, पर हृदय सिकुड़ गया है - यही कारण है कि सहृदयताहीन मानव-समाज का विनाश उसका ही ज्ञान कर देगा !"

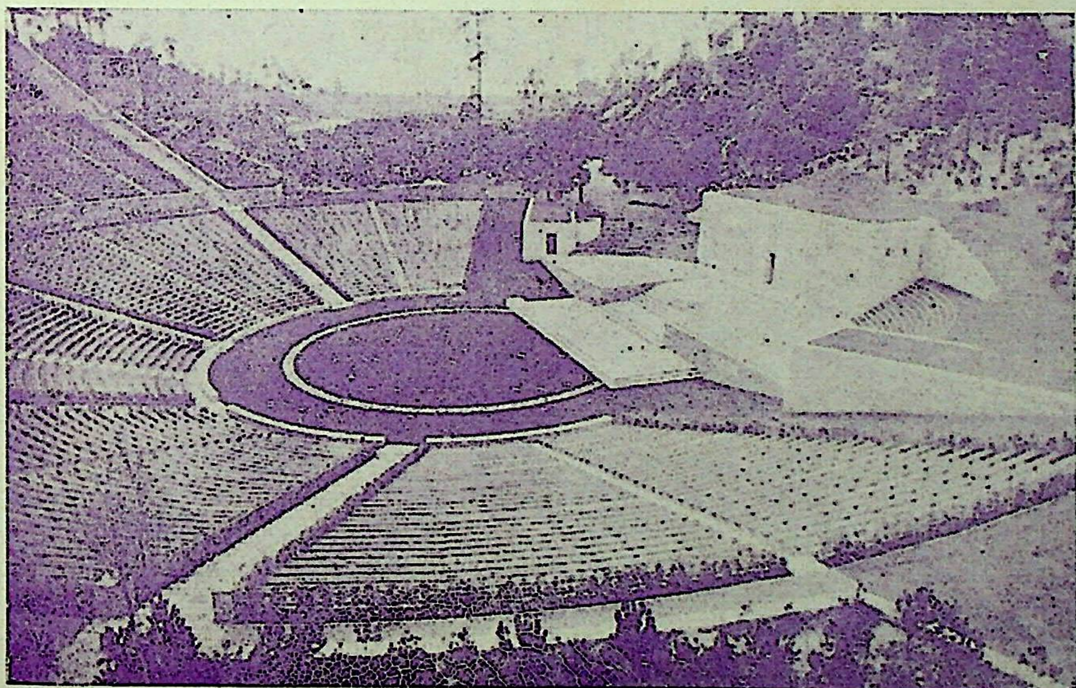
मेरे डाक्टर मित्र इतना कहकर चुप हो रहे। मैं यह सोचता हुआ अपने घर पहुँचा कि क्या उस सौभाग्यशाली अभागे का यह कहना ठीक है कि मनुष्यजाति का दिमाग़ बहुत ही पुष्ट हो गया है--बड़ा हो गया है, पर उसका हृदय सिकुड़ता जा रहा है ? क्या यह बात सही है कि मनुष्य अपने ही ज्ञान का शिकार होगा ? क्या संसार में केवल बुद्धिवाद शेष रह गया है - सहृदयता, पर-दुःखकातरता, वसुधैव कुटुम्बकम् का अन्त हो गया है ? क्या मानव-समाज विनाश की ओर जा रहा है।

× × ×

मैं सारी रात खाट पर पड़ा-पड़ा यही सोचता रहा। पूस की रात थी और सर्वत्र गम्भीर निस्तब्धता फैली हुई थी—मैं एकान्त कमरे में पड़ा-पड़ा छटपटा रहा था और दिमाग़ के चरखे पर विचारों का सूत निकाल रहा था।



ओलिंपिया गेम्स स्टेडियम (जर्मनी)—बाहर से

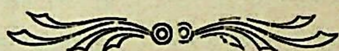


ोलिंपिया गेम्स स्टेडियम के एक भाग का विहंगम दृश्य

गीत

श्रीदयानन्द गुप्त बी० ए०

सजनि ! कुछ गान गाओ !
आलुलायित सघन कुन्तल-घन- वलोड़ित व्योम,
छन रहा कैसा मधुर जल-सीकरों में सोम।
बन्द दृग जपती धरा तन-पल्लवित सुख-रोम,
उठ रहा, देखो, क्षितिज से कामना-तम-तोम।
प्रिये, नवराग लाओ ! सजनि०
शिला-आसन बैठ सुन्दरि ! खिल रहीं इस काल,
पर्णवसना, कन्द-अशना वन्य सुषमा-बाल;
किन्नरी-सी द्रुत पलायित हरित विद्युन्माल,
पला प्रिय पाताल-मुख पर सुभग तिल-सा ताल।
कहाँ मन थाम पाओ ? सजनि०
जड़ जगें, चेतन बनें जड़, गर्वनत हो हार,
क्षीर-सागर-कमल काँपे, चराचर बलिहार;
लखें तारे समुत्सुक-से खोल नीलम-द्वार
प्रतीक्षा-सा बने जग का गीत ही आधार।
सुमुखि ! यह सुख दिखाओ। सजनि०



मैं पूर्ण-पुरुष, मैं पूर्ण-पुरुष !

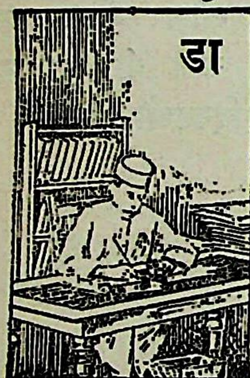
श्रीहरशरण शर्मा 'शिव'

प्राणों का मेरे मधु-गुंजन,
है बना निलय का नाद ओ३म्।
मेरे उर के आलोक-पुंज
से निर्मित रवि-नक्षत्र-सोम ॥ १ ॥
है बना प्रकृति का अरुणोदय,
मेरे मन का अनुराग-नवल।
मेरे यौवन का मधुर-प्रणय,
बन गया चाँदनी-शरद-धवल ॥ २ ॥
मेरे सुरभित उच्छ्वासों से,
बह चला विश्व में मलय-पवन।
मेरे पुलकित उल्लासों से,
पल्लवित हुआ जग का मधुवन ॥ ३ ॥
मेरे मन की कल्पना नई,
करती अग-जग की सृष्टि-प्रलय।
मैं ही तो सत्य, चिरन्तन हूँ
है मुझमें ही सब जग का लय ॥ ४ ॥
मेरी मंजुल-मुसकानों की,
छाया है घन पर इन्द्र-धनुष।
कहता है सब जग जिसे प्रकृति,
वह माया है, मैं पूर्ण-पुरुष ॥ ५ ॥



सन्तति-निग्रह-आन्दोलन
की
प्रवर्तिका डाक्टर मेरी स्टोप्स

श्रीश्यामनारायण कपूर बी० एस्-सी०



डाक्टर मेरी स्टोप्स इँगलैण्ड की सबसे अधिक मशहूर महिलाओं में हैं। संसार भर की अत्यन्त प्रभावशालिनी महिलाओं में आपकी गणना की जाती है। आपका उपाधियों-सहित पूरा नाम डाक्टर मेरी कारमाइकेल स्टोप्स डी० एस्-सी०, पी० एच्-डी०, एफ़्० एल्० एस्० है। अँगरेज़ी-साहित्य में आप 'एरिका फ़्रे' के नाम से भी प्रख्यात हैं। संसार के करोड़ों व्यक्ति आपके नाम से परिचित हैं। संतति-निग्रह आन्दोलन से परिचित भारतीय भी आपके नाम से बख़ूबी वाक़िफ़ हैं।

लेखिका मेरी स्टोप्स

पाठक-पाठिकाओं को यह जानकर सम्भवतः आश्चर्य होगा कि डाक्टर मेरी स्टोप्स केवल सुविख्यात सन्तति-निग्रह-आन्दोलन की प्रवर्तिका ही नहीं हैं, वे सुप्रसिद्ध लेखिका, नाट्यकार, कवयित्री और वैज्ञानिक भी हैं। आपकी पुस्तकें संसार की बीसियों भाषाओं में अनुवादित की जा चुकी हैं। अनुमान किया जाता है कि आपकी प्रत्येक पुस्तक की प्रत्येक प्रति कम से कम २० व्यक्तियों द्वारा अवश्य पढ़ी जाती है। इससे आपकी पुस्तकों [की] लोकप्रियता का अन्दाज़ा बख़ूबी लगाया [जा] सकता है।

आपकी समस्त पुस्तकों में 'मैरिड-ल[व]' (Married love) अथवा विवाहित प्रेम बहु[त] अधिक लोकप्रिय है। पाश्चात्य संसार में नवयु[वक] और नवयुवतियों द्वारा इस पुस्तक का गीता [और] रामायण के समान पाठ किया जाता है। आप[की] प्रसिद्धि का बहुत कुछ श्रेय इसी पुस्तक को [प्राप्त] है। विगत १७-१८ वर्षों में केवल इसी पुस्त[क] की १० लाख प्रतियाँ खप चुकी हैं। इस पुस्त[क] से आपको ख़ासी आमदनी भी हुई है। पर[न्तु] इस आमदनी से भी कहीं अधिक रक़म आप[ने] उस उद्देश्य की पूर्ति में ख़र्च कर दी है, जिसे ले[कर] इस पुस्तक की रचना की गई थी। आपको अप[नी] प्रत्येक पुस्तक पर अच्छी रायल्टी मिलती है[।] विदेशों में आपकी जिन पुस्तकों का अनुवाद कि[या] जाता है, उन अनुवादित संस्करणों पर भी आप[को] समुचित रायल्टी दी जाती है। फिर भी चोरी[-छिपे] अनेकों ऐसे अनुवादित संस्करण प्रकाशित हो[ते] रहते हैं, जिनके लिए न तो आपकी स्वीकृति [ही] ली जाती है और न आपको रायल्टी ही दी जा[ती] है। एशिया-खण्ड ही में लगभग आधा दर[जन]



भाषाओं में इसी प्रकार के संस्करण बिक रहे हैं।

पुस्तकें आपने सभी श्रेणियों की लिखी हैं। आपने बच्चों से लेकर युवकों और युवतियों तक सभी के योग्य साहित्य का निर्माण किया है। जिस समय आपने पहलेपहल लिखना आरम्भ किया था, आपको आशा ही नहीं, पूरा विश्वास था कि आपका तीव्र विरोध किया जायगा और गालियों की ख़ूब बौछार होगी। हुआ भी ऐसा ही। परन्तु आप विरोध की तो तनिक भी परवा नहीं करतीं। आपका जितना ही अधिक विरोध किया गया, उतनी ही अधिक आप दृढ़ होती गईं। इसी दृढ़ता के फलस्वरूप आज आप संसार की एक अत्यन्त प्रभावशालिनी और महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारिणी महिला समझी जाती हैं।

क्रान्तिकारिणी स्टोप्स

यह सच है कि आपके क्रान्तिकारी विचारों से आज तक किसी छोटे-मोटे राज्य का भी तख़्ता नहीं उलटा और न कहीं पर ख़ून की एक बूँद ही गिरी, परन्तु आपकी क्रान्ति राजनीतिक क्रान्तियों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण समझी जाती है। वास्तव में सन्तति-निग्रह-आन्दोलन से पाश्चात्य संसार की काया ही पलट गई है। आपके आन्दोलन का जन-समाज पर क्या प्रभाव पड़ा है, इसका अन्दाज़ा केवल इस बात से लगाया जा सकता है कि आप के पास कृतज्ञता प्रकट करने के लिए प्रत्येक डाक से संसार के कोने-कोने से अनेकों भाषाओं में हज़ारों पत्र आते रहते हैं। प्रस्तुत लेख में इन्हीं सुप्रसिद्ध डाक्टर मेरी स्टोप्स का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

जन्म और शिक्षा

श्रीमती मेरी स्टोप्स जन्म से स्काट और लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा आदि के लिहाज़ से अँगरेज़ हैं। आपका जन्म स्काटलैंड के एडिनबरा नगर में और शिक्षा आदि लन्दन में हुई। जन्म से स्काट होते हुए भी आपका स्वभाव और व्यवहार आदि सभी अँगरेज़ों के समान है।

आपके पिता प्रसिद्ध मूर्तिकार और विज्ञान-प्रेमी थे। आपकी माता साहित्य-प्रेमी और उच्च स्त्री-शिक्षा का समर्थन करनेवाली थीं, अतएव आपको बाल्यकाल ही से विज्ञान और साहित्य दोनों ही में समान रूप से दिलचस्पी लेने के अवसर मिलते रहे। वास्तव में अपने विज्ञान-प्रेमी पिता की पुत्री होने के नाते आपमें विज्ञान के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई। आगे चलकर बाल्यकाल की इसी पैतृक अभिरुचि ने आपको सुप्रसिद्ध विज्ञान-विशारदा बनाने में सफलता प्राप्त की। माता के साहित्य-प्रेम ने आप-में बाल्यकाल ही से साहित्य-सेवा की भावना को अंकुरित किया और आपको कवयित्री, परियों की कल्पनामय कहानियों की लेखिका, मौलिक नाटकों की रचयित्री—संक्षेप में अँगरेज़ी-साहित्य की 'एरिका फ्रे' और वैज्ञानिक मेरी के नीरस, शुष्क एवं 'टेकनिकल' जीवन में कवित्वमय भावनाओं का संचार करके आधुनिक समय की एक सर्वश्रेष्ठ प्रभावशालिनी महिला की सृष्टि की।

१९१४ में प्रकाशित होनेवाले एक ग्रंथ में आपने अपने कार्यक्रम के बारे में लिखा था—"अनेकों वर्ष पूर्व मैंने अपने भावी जीवन के लिए एक कार्यक्रम तैयार किया था। वह मेरे जीवन के आदर्शों के सर्वथा अनुकूल था। मैंने २० वर्ष वैज्ञानिक अन्वेषण में, २० वर्ष दर्शनशास्त्र के अध्ययन में तथा २० वर्ष मानव-समाज की सेवा में लगाने का विचार किया था। इसी बीच में एक काव्य-ग्रन्थ की रचना का भी विचार था। इस ग्रन्थ में मैं अपने सांसारिक अनुभवों का समावेश करना चाहती थी। इस काव्य-ग्रन्थ की रचना के बाद मेरे सांसारिक कार्य समाप्त हो जायँगे और मैं शान्तिपूर्वक विश्राम कर सकूँगी।"

इस प्रकार के कार्यक्रमों की पूर्ति में सर्वदा ही नाना प्रकार की कठिनाइयाँ पड़ा करती हैं। अनेकों व्यक्ति अपने जीवन के आरम्भ में अपने आदर्शों के अनुकूल कुछ-न-कुछ योजना तैयार



करते हैं। कुछ की योजनाएँ कार्यरूप में परिणत हो पाती हैं और कुछ की केवल स्वप्नलोक की बातों के समान विचार करते-करते ही विलीन हो जाती हैं। परन्तु मेरी स्टोप्स ने अपनी योजना को पूरा करने में कुछ कोर-कसर नहीं उठा रक्खी। वे संसार के अधिकांश दार्शनिकों की भाँति केवल विचार करने ही में तल्लीन नहीं रहीं। उन्हें कार्य-रूप में परिणत करने के लिए भी समुचित प्रयत्न किये। यह ठीक है कि आपके कार्यक्रम का दार्शनिक अंश पूरा नहीं किया जा सकता, फिर भी वैज्ञानिक और मानव-सेवा-सम्बन्धी कार्यक्रम क़रीब-क़रीब पूरा हो चुका है। वैज्ञानिक अन्वेषण में आप अच्छी सफलता प्राप्त कर चुकी हैं। कोयले के बारे में आपने जो छान-बीन और अन्वेषण किये हैं, वे विज्ञान-संसार में सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं और आप अपने विषय-विशेष की विशेषज्ञा समझी जाती हैं। मानव-समाज की सेवा के लिए आपने जो कार्य किया है, वह जगत्-विख्यात है। आपका काव्य-ग्रन्थ अभी तक पूरा नहीं हो सका है। परन्तु आपकी फुटकर कविताएँ बराबर प्रकाशित होती रहती हैं। इन कविताओं से आपके जीवन की अनेकों समस्याओं पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

वैज्ञानिक मेरी स्टोप्स

विज्ञान में मेरी स्टोप्स की अभिरुचि स्कूल-जीवन ही से बढ़ी-चढ़ी मालूम होती है। इन्होंने अपने बाल्यकाल ही से डायरी लिखना शुरू कर दिया था। १२ वर्ष की आयु में अपनी डायरी में एक स्थल पर इन्होंने लिखा था—"शुक्रवार ७वीं तारीख़—स्कूल गई, बहुत ही अच्छा मालूम हुआ। कोयले और कोयले की खानों पर पाठ पढ़ाया गया था। मुझे तो वह पाठ बड़ा दिलचस्प मालूम हुआ।" उस समय शायद आपके शिक्षकों को यह अनुमान भी न होगा कि उनकी १२ वर्षीया छात्रा मेरी आगे चलकर कोयले एवं तत्सम्बन्धी विज्ञान की विशेषज्ञा मानी जायगी।

कहा जाता है, जब आप पूरी १३ वर्ष भी नहीं थीं, तभी आपने स्कूल की बालिकाओं व अध्यापिकाओं के सामने बहुत सुंदर वैज्ञानिक भाषण दिया था। आपके पिता ने स्कूल के संग्रहालय (म्यूज़ियम) को प्रस्तर-मूर्तियाँ तैयार करने के फ़्लिन्ट के औज़ार भेंट किये थे। आपने अपने पिता के उसी संग्रह पर भाषण दिया था। इसके ब १६ वर्ष की आयु ही में स्वेच्छा से उत्तरी लन्दन कालिजिएट स्कूल में ६ सप्ताह तक रसायन-शास्त्र शिक्षा भी दी थी।

विज्ञान के साथ ही आपने कविताएँ लिख भी बाल्यकाल ही से शुरू कर दिया था। आप हाल ही में प्रकाशित होनेवाली Revelatio नामक कविता-पुस्तक की कतिपय कविताएँ वर्ष की आयु ही की लिखी हुई हैं। *

लन्दन-विश्वविद्यालय में प्रवेश करने पर आपने विज्ञान की शिक्षा जारी रक्खी, विश्व विद्यालय की आनर्स-परीक्षा प्रथम श्रेणी में पा की एवं विश्वविद्यालय भर में सर्वोच्च स्थान प्रा किया। भूगर्भ और वनस्पति-विज्ञान में आप विशेष योग्यता प्रदर्शित की। इन विषयों में ब अच्छे अंक प्राप्त करने के उपलक्ष्य में आप विश्वविद्यालय की ओर से जर्मनी में अध्ययन करने जाने के लिए एक छात्रवृत्ति भी प्रदा की गई।

कालेज-जीवन में अध्ययन में अभिरुचि र और परीक्षाओं आदि में प्रथम स्थान प्राप्त करने

---

* If you would understand and live arigh
Do in the world your duty to the worl
As men prescribe.........
I do not ask men's prayers, if they but li
Their lives aright according to their laws
But do not warp thy earthly life my child
For joyous life alone is perfected.



साथ ही साथ आप कालेज के खेल-कूद और वाद-विवाद-प्रतियोगिता तथा अन्य सामाजिक कार्यों में ख़ूब दिलचस्पी लेती थीं। विश्वविद्यालय की महिला-वादविवाद-सोसाइटी की तो आप अध्यक्षा ही थीं। आप हाकी भी ख़ूब अच्छी खेलती और हाकीटीम की लोकप्रिय सदस्या थीं।

अस्तु, छात्रवृत्ति पाकर आप अध्ययन करने के लिए म्यूनिक गईं और वहाँ की सुप्रसिद्ध बोटेनिकल इंस्टीट्यूट (Botanical Institute) में वनस्पति-विज्ञान का अन्वेषण आरम्भ किया। इस इंस्टीट्यूट में आपने जो कार्य किये, उनके उपलक्ष्य में आपको 'डाक्टर आफ़ फ़िलासफ़ी' की उपाधि प्रदान की गई। डाक्टर की उपाधि से विभूषित हो चुकने के बाद आप इँगलैंड लौट आईं और मैंचेस्टर-विश्वविद्यालय में विज्ञान की अध्यापिका नियुक्त की गईं। यह पहला मौक़ा था, जब मैंचेस्टर-विश्वविद्यालय में किसी महिला को विज्ञान की शिक्षा का भार सौंपा गया हो। १९०४ में आप विज्ञान-विषय में डाक्टर की उपाधि पानेवाली समस्त महिलाओं में सबसे कम उमर की थीं। अपने विषय-विशेष का भली भाँति अध्ययन करने के लिए आपने संसार के बहुत-से देशों की यात्राएँ की हैं। अत्यन्त प्राचीन काल के वृक्षों एवं वनस्पतियों की जड़ों और अन्य अवशेषों के भूगर्भस्थित भागों (Fossils) के अध्ययन में आप विशेष रुचि रखती हैं। इन्हीं 'फ़ाज़िल्स' के अध्ययन के लिए आप जापान और स्वीडन की यात्राएँ कर चुकी हैं। अमेरिकन एसोसिएशन आफ़ साइंस की ओर से आप अमेरिका भी आमंत्रित की जा चुकी हैं। Anœcological Expedition में शामिल होकर आप शीत-कटिबन्ध की भी यात्रा कर चुकी हैं।

कनाडा प्रदेश की यात्रा करते हुए आपने अपना प्रथम विवाह किया। इस विवाह का प्रस्ताव आप घटनावश, जर्मन-भाषा का अपूर्ण ज्ञान होने के कारण, जर्मनी में अपने विद्यार्थी जीवन ही में स्वीकार कर चुकी थीं। महायुद्ध आरम्भ होने पर आप सरकार की ओर से 'कोयले और ईंधन' की विशेषज्ञा नियुक्त की गईं। आप अपनी वैज्ञानिक खोजों के बारे में लगभग ४० मौलिक लेख और पत्र प्रकाशित करा चुकी हैं।

वैज्ञानिक और साहित्य-कार्यों में लगे रहने पर भी आप सामयिक महिला-आन्दोलनों में भी बराबर दिलचस्पी लेती रहती हैं। महिलाओं को मताधिकार प्रदान कराने के लिए इँगलैंड में जो आन्दोलन चलाया गया था, उसमें आपने प्रमुख भाग लिया था। परन्तु आकस्मिक घटनाओं ने मेरी के जीवन में एक नवीन उथल-पुथल और एक नवीन क्रान्ति उत्पन्न कर दी। पति के दुर्व्यवहार से आपकी कोमल प्रवृत्तियों और भावनाओं को कड़ी ठेस लगी और आपको अपने दाम्पत्य जीवन की कटुता को दूर करने के लिए अपना विवाह-सम्बन्ध-विच्छेद करना पड़ा। पति के कामुक, वासनामय और असंयमित जीवन से आप ऊब उठीं। उन्हीं दिनों लिखी गई आपकी 'The wine that turned to vinegar'-शीर्षक कविता से आपकी तत्कालीन मानसिक स्थिति का अनुमान बख़ूबी लगाया जा सकता है। *

पति के असंयम की प्रतिक्रियाओं ने आपको दाम्पत्य जीवन को सुन्दर, मधुर और आनन्ददायक बनाने के लिए आंदोलन करने को प्रेरित किया। आपकी

---

* To have loved, to have kissed,
And—Oh god !—to have missed
The completion of love !
To have turned unto one
As the only sun
In one's sky above
And to find that his beams
Had merely in dreams
Their radiant light !



'विवाहित प्रेम'-नामक लोक-प्रिय पुस्तक इसी प्रेरणा का शुभ परिणाम है। यह ग्रंथ स्त्री-पुरुष के सुख, सौभाग्य, स्वास्थ्य, प्रेम, रूप और यौवन की रक्षा करनेवाला एक अमूल्य तंत्र सिद्ध हुआ। जिस साहित्य के अभाव से एक बड़ा ही आवश्यक विषय अज्ञान के अन्धकारमय कूप में छिपा हुआ पड़ा था, जिसके बिना सुखपूर्ण दाम्पत्य जीवन दुःख का आगार और अशान्ति का निकेतन हो रहा था—उसी महत्त्वपूर्ण विषय के साहित्य का सूत्रपात आपने अपनी विवाहित प्रेम-नामक पुस्तक के प्रकाशन द्वारा किया।

उन्हीं दिनों मैंचेस्टर ही में सुप्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्री श्रीमती मारगेरेट एशटन से भेंट हो गई। श्रीमती एशटन माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य आदि में विशेष अभिरुचि लेती थीं और अपना अधिकांश समय इसी सेवा-कार्य में लगाती थीं। उन दिनों वे मैंचेस्टर में एक सन्तति-निग्रह-शाला (Birth Control Clinic) की स्थापना के लिए भी प्रयत्न कर रही थीं। डा० मेरी स्टोप्स भी इनके कार्यों में सहयोग देने लगीं। प्रथम विवाह-विच्छेद होते ही और महायुद्ध की समाप्ति के पूर्व आपने अपना दूसरा विवाह 'हम्फ्रीवर्डन रो' के साथ कर लिया। मि० रो उद्योगी और व्यवसायी पुरुष थे। उन्हीं ने 'एवरो'-नामक एक दुपंखी हवाई जहाज़ का निर्माण किया था और सरकारी वायुयान-विभाग में उच्च पदाधिकारी थे। इसके साथ ही वे बड़े ही दयालु स्वभाव के थे और अपना अवकाश का समय लोकसेवा में लगाते थे। वे भी श्रीमती मारगेरेट के सहकारियों में थे और सन्तति-निग्रह-शाला की स्थापना में विशेष सहायता दे रहे थे। श्रीमती मारगेरेट के साथ ही डा० मेरी स्टोप्स की मि० 'रो' से भी भेंट हुई। शीघ्र ही दोनों प्रेम-सूत्र में आबद्ध हो गये और विवाह कर लिया। यह सम्बन्ध अभी तक क़ायम है और प्रथम विवाह के सर्वथा प्रतिकूल दोनों का दाम्पत्य जीवन अत्यन्त आनन्दपूर्वक व्यतीत हो रहा है। परिस्थितियों भी मेरी की सन्तति-निग्रह की भावनाओं और अधिक प्रोत्साहित किया। १९२०-२१ सरकारी बर्थ-रेट-कमीशन (Birth Ra Commission) की सदस्या की हैसियत से का करते हुए इन्हें जो अनुभव हुए, उनसे इनकी भावनाएँ और भी अधिक दृढ़ हो गईं। इस अतिरिक्त मैंचेस्टर में रहते हुए यह वहाँ की म दूर स्त्रियों से अक्सर मिला करती थीं। इनमें बाज़-बाज़ तो आठ-आठ नौ-नौ बच्चों की माता होती थीं! इनकी करुण कथाएँ सुनकर आपका हृ पसीज गया। नारी की मातृत्व-शक्ति का प्रकार कलुषित किया जाना मेरी स्टोप्स असह्य हो गया और अत्यन्त अनावश्यक, हानि कारक एवं घृणित प्रतीत हुआ। पुरुषों के सं के अभाव से स्त्रियों का स्वास्थ्य, यौवन सौन्दर्य का सदा के लिए खो देना उन्हें बहुत कष्टकर मालूम हुआ। स्त्रीत्व और मातृत्व के भीषण दुरुपयोग को देखकर वे तड़प उठीं इसके लिए पुरुष-समाज से कैफ़ियत तलब की मौक़ा मिलने पर अपने विचारों को कार्यरूप परिणत करने में भी कोई कोर-कसर उठा न रक्खी। बर्थ-रेट-कमीशन में लार्ड और लेडी विलो डिब्रोक और डा० सेलीबी के साथ ही एक स्वतं अल्पमत रिपोर्ट देकर आपने भी स्पष्ट शब्दों सन्तति-निग्रह के लिए वैज्ञानिक उपायों अवलम्बन करने और जनसाधारण को उन उचित शिक्षा देने की सिफ़ारिश की।

१९२१ में आपने अपने पति के सहयोग इँगलैंड में प्रथम सन्तति-निग्रह-शाला की स्थाप की। इस संस्था का उद्देश्य बतलाते हुए जो विज्ञ प्रकाशित की गई थी, उससे आपके सन्तति-नि आन्दोलन का बहुत कुछ रहस्य स्पष्ट हो जा है। संस्था के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए गया था कि "इस शाला में माताओं को के बच्चे पैदा करने की मशीनें न समझा जाय



वरन् उनसे स्वस्थ और सुन्दर बच्चे पैदा कराने का प्रबन्ध किया जायगा। देश एवं जाति के कल्याण और विकास के लिए यह आवश्यक है कि माताओं की मातृत्व-शक्ति उन्हीं के द्वारा नियंत्रित हो।"

सन्तति-निग्रह-आन्दोलन की प्रवर्तिका होने के नाते आपके विचारों के सम्बन्ध में बहुत-से लोगों में एक ज़बरदस्त ग़लतफ़हमी पैदा हो गई है। कुछ लोग तो यहाँ तक ख़याल करने लगे हैं कि आपकी संस्था का उद्देश्य जनसंख्या की वृद्धि को रोकना है और कुछ का ख़याल है कि आप प्रकृति के विरुद्ध स्त्रियों की मातृत्व-शक्ति ही को नष्ट कर देने का आयोजन कर रही हैं। परन्तु वास्तविक सत्य इसके सर्वथा प्रतिकूल है। वास्तव में आपकी संस्था जनसंख्या की वृद्धि को रोकने की ओर तो कम, परन्तु स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट बच्चों के जन्म और उनके विधिवत् लालन-पालन पर अधिक ध्यान देती है। सच तो यह है कि घटनाचक्र और व्यक्तिगत परिस्थितियों ने आपको इस आन्दोलन में दिलचस्पी लेने के लिए मजबूर कर दिया। आपके जीवन-परिचय लिखने-वाले कतिपय विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि परिस्थितियों ने आपको इस आन्दोलन की प्रवर्तिका होने का उत्तरदायित्व लेने के लिए मजबूर कर दिया, ऐसा न होने पर आप खनिज विभाग के वैज्ञानिक और औद्योगिक उपविभागों की विशेषज्ञा और सलाहकार बनी रहतीं; या लन्दन - विश्वविद्यालय में वनस्पति - विज्ञान के कुछ विशेष अंगों की शिक्षा में अपना समय व्यतीत करती होतीं। वैज्ञानिक कार्यों में लगे रहने के साथ ही साहित्यिक क्षेत्र में भी कहीं अधिक सम्मान प्राप्त किया होता और बहुत सम्भव था कि अँगरेज़ी-साहित्य की उच्च कोटि की कवयित्रियों में आपकी भी गणना की जाने लगती।

सन्तति-निग्रह-आन्दोलन की जन्मदात्री के नाते बहुधा लोग ख़याल करते हैं कि आप बच्चों से प्रेम करना तो बहुत दूर, उनसे घृणा करती हैं। परन्तु वास्तविक बात इससे सर्वथा भिन्न है। आप स्वयं बच्चों को बहुत प्यार करती हैं और इसीलिए इस बात पर बहुत ज़ोर देती हैं कि बच्चों को अधिक से अधिक स्वस्थ बनाया जाय। स्वस्थ बच्चे ही संसार में अपने जीवन को सार्थक बना सकते हैं। आप स्वयं भी एक अच्छे हृष्ट-पुष्ट, स्वस्थ एवं कुशाग्र बुद्धिवाले बच्चे की माता हैं। आपकी यह हार्दिक अभिलाषा है कि संसार की समस्त माताओं की कोख आप ही के समान हृष्ट-पुष्ट एवं स्वस्थ बालकों से भरी रहे।

डा० मेरी स्टोप्स के अतिरिक्त और भी बहुत-से व्यक्तियों ने मातृत्व के नियंत्रण और सन्तति-निग्रह के लिए आन्दोलन किया है, सन्तति-निग्रह-शालाएँ स्थापित की हैं। श्रीमती एनी बिसेन्ट, श्रीमती मारगेरेट एशटन, मारगेरेट सेगर और श्रीमती मार्टिन प्रभृति अनेकों महिलाओं ने स्त्रियों की मातृत्वशक्ति के नियंत्रण के लिए डा० मेरी स्टोप्स से कुछ कम प्रयत्न नहीं किये हैं; परन्तु फिर भी वे सब इस आन्दोलन के प्रचार में डा० मेरी स्टोप्स के समान सफलता नहीं प्राप्त कर सकी हैं और न मेरी स्टोप्स के समान आदर-सम्मान ही पा सकी हैं। आज दिन मेरी स्टोप्स का नाम केवल इँगलैंड और योरप में ही नहीं, बरन् संसार के समस्त सभ्य देशों में प्रख्यात है। आपके नाम और यश का कुछ लोग बेजा फ़ायदा भी उठाते हैं और अपने व्यापार को बढ़ाने के उद्देश्य से बिना आपकी आज्ञा प्राप्त किये हुए ही आपके नाम को नाना प्रकार की सन्तति-निग्रह-सम्बन्धी अवरोधक सामग्री से सम्बद्ध कर देते हैं। आपकी पुस्तकें लाखों की संख्या में बिक रही हैं। 'मैरिड लव' के तो १९ संस्करण हो चुके हैं। १९२३ तक उसकी लगभग २ लाख प्रतियाँ बिक चुकी थीं। अफ़्रीकन, अर्बी, चीनी, हिन्दी, फ्रेंच, जर्मन, डेनिश, स्वेडिश, डच, पोलिश, हंगेरियन, रूमानियन, ज़ेक प्रभृति भाषाओं में इस पुस्तक



के अनुवाद हो चुके हैं। 'मैरिड लव' के अतिरिक्त दाम्पत्य विज्ञान पर आपने Radiant motherhood और Eduring Passion - नामक पुस्तकें और भी लिखी हैं। ये पुस्तकें भी बहुत लोकप्रिय हैं। ये लाखों की संख्या में बिक चुकी हैं और अब भी बराबर बिक रही हैं। आपकी कुछ पुस्तकें तो कोर्स में भी स्वीकृत हो चुकी हैं। आपकी सन्तति - निग्रह - सम्बन्धी संस्था (Society for Constructive Birth Control and Racial Progress) कलकत्ते से पीरू तक अपना कार्य सुचारु रूप से कर रही है।

दाम्पत्य - विज्ञान - सम्बन्धी पुस्तकों के लिखने के अतिरिक्त आपने कई एक नाटक, उपन्यास और बालोपयोगी पुस्तकों की भी रचना की है। आप बच्चों के लिए परी-देश की कहानियाँ लिखने में भी ख़ूब सिद्धहस्त हैं। आपका Love's creation-नामक उपन्यास और Our Ostriches-नामक नाटक बहुत लोकप्रिय है। यह नाटक प्रथम बार लगातार तीन मास तक खेला जाता रहा था। उसके बाद भी अनेकों बार सफलतापूर्वक खेला जा चुका है। इसके प्रथम अभिनय के अवसर पर ग़ज़ब की भीड़ हुई थी। कहा जाता है, इस नाटक की रचना आपने केवल ६ घंटे में की थी। वास्तव में इसकी रचना का इतिहास है भी रोचक। जिन परिस्थितियों में आपने इस नाटक की रचना की थी, उससे आपके साहस, कर्मनिष्ठा, योग्यता और प्रतिभा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

१९२६ की बात है। आपने अपने नाटक Vectia के प्रथम सार्वजनिक अभिनय का आयोजन किया था। अभिनय के लिए अभिनेता और अभिनेत्रियों की व्यवस्था की जा चुकी थी, नाटक के रिहर्सल हो चुके थे, सीन - सीनरियाँ आदि तैयार कराई जा चुकी थीं और प्रथम अभिनय का ज़बरदस्त विज्ञापन किया जा चुका था, इसी समय लार्ड चेम्बरलेन ने एकाएक उस नाटक के अभिनय की मनादी कर दी। इस निषेधाज्ञा का हाल सुनकर डा० मेरी स्टोप्स बोलीं—"इस नाटक के ऊपर किये जानेवाले प्रहार से मुझे उतना ही कष्ट हुआ है, जितना कि स्वयं मेरे बच्चे पर किये जानेवाले प्रहार से हो सकता था।"

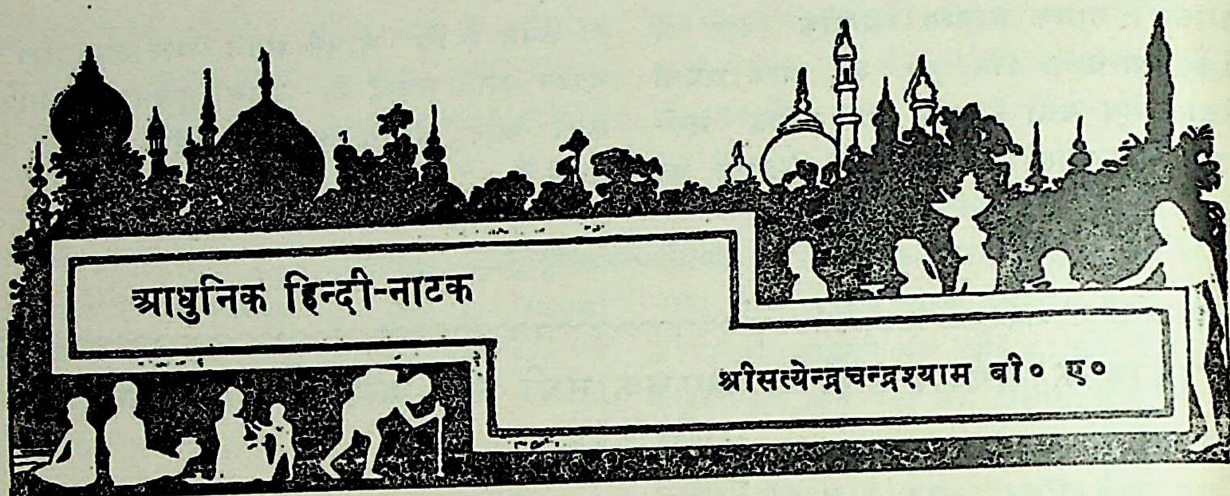
यह आपके प्रथम नाटक के प्रथम अभिनय की बात है। परन्तु आप निराश और हतोत्साह होना तो जानती ही नहीं। इस निषेधाज्ञा के जारी किये जाने पर भी आपने ज़ोर दिया कि Vectia न सही, निश्चित तिथि को मेरा ही लिखा हुआ कोई दूसरा नाटक खेला जाय और अवश्य खेला जाय। आप घर गईं और फ़ौरन ही सेन्ट्रल क्रिमिनल कोर्ट से एक बहुत ही चतुर और कुशल शार्टहैंड टाइपिस्ट को बुलवाया और Our Ostriches - नामक एक सर्वथा मौलिक एवं नवीन नाटक लिखाना शुरू कर दिया। ६ घंटे के अन्दर आपने पूरा नाटक लिखवा दिया। उसी समय उसकी कई प्रतियाँ टाइप कराई गईं, नाटक का रिहर्सल कराया गया और निश्चित तिथि को नाटक का अभिनय भी उसी ज़ोर-शोर से कराया, मानों कोई ख़ास बात हुई ही न हो।

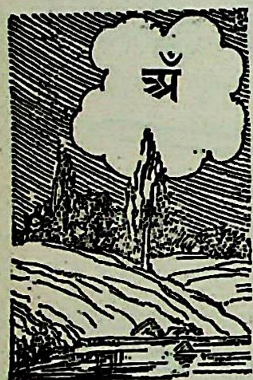
आपकी स्मरण - शक्ति बहुत तेज़ है। आपकी भाषा बहुत ओजपूर्ण और प्रभावशालिनी होती है। लेखनशक्ति के साथ ही साथ आपकी वक्तृत्व-शक्ति भी ग़ज़ब की है। आपकी भाषा बहुत सरल बामुहावरे और स्वाभाविक होती है। बनावट से तो आप कोसों दूर हैं। प्रौढ़ होते हुए भी आप अभी तक अपने को २६ वर्ष की युवती ही बतलाती हैं। आपके सुन्दर, सुडौल, हृष्ट - पुष्ट एवं स्वस्थ शरीर और आपके अनवरत परिश्रम और उत्साह को देखकर आपके कथन में किसी प्रकार का सन्देह करने की भी गुंजाइश नहीं रह जाती। इधर कुछ दिनों से आप कुछ अस्वस्थ रहने लगी हैं और आजकल अपने लन्दन के निवासस्थान को छोड़कर लन्दन के



निकट 'सरे' - नामक अत्यन्त रमणीक स्थान में रहती हैं। अस्वस्थ होते हुए भी आप अपना बहुत-सा समय पत्रों के उत्तर और सलाह - मशविरा देने में लगाती हैं। कतिपय विद्वानों का तो कथन है कि आपने अपने आंदोलन द्वारा जो नवीन क्रांति मचाई है, उसकी तुलना में मार्क्स, रूसो और लेनिन तक की क्रांति फीकी पड़ जाती है।







गरेजी के महान् कवि शेली ने कहा है कि "नाटक ही साहित्य का एक ऐसा अंग है, जिसमें काव्य और समाज के परस्पर सम्बन्ध का विशेष रूप से स्पष्टीकरण होता है।" वास्तव में बात भी ऐसी ही है। साहित्य और समाज का जो निकट एवं अनिवार्य सम्बन्ध है, उसका जो विशद दर्शन हमें नाटक में प्राप्त होता है, वह कहानी अथवा उपन्यासों में भी प्राप्त नहीं होता। यही कारण है कि नाटक को साहित्य में अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त है। नाटक मनुष्य की सहानुभूति को उत्पन्न कराने में, उसके अन्तर्भावों एवं विचारों में आन्दोलन उपस्थित करने में, उसके अन्दर एक मौलिक परिवर्तन का सूत्रपात करने में उपन्यास आदि से अधिक शीघ्र सफल हो जाता है। उपन्यास 'श्रव्य काव्य' है और नाटक 'दृश्य-काव्य'। स्पष्ट ही है कि जो बात देखी जाती है, उसका सुनी हुई बात से अधिक प्रभाव पड़ता है। यही नियम उपन्यासों तथा नाटकों के सम्बन्ध में भी लागू हो सकता है। उपन्यासों या अन्य प्रकार के काव्य-ग्रन्थों को समझने के लिए अधिक परिष्कृत मस्तिष्क तथा परिमार्जित बुद्धि की आवश्यकता होती है। परन्तु नाटक तो हमारे दैनिक जीवन की घटनाओं का असली चित्र है। उसके पात्र हमारे साथ ही जीवन-यापन करनेवाले मनुष्य हैं और उनके कार्य प्रतिदिन देखी जानेवाली बातों का प्रतिबिम्बमात्र। जहाँ उपन्यास में लेखक एक सत्य घटना को लेकर अपनी बुद्धि तथा कल्पना - शक्ति के द्वारा उसमें यथोचित परिवर्त्तन कर एक कला-प्रधान वस्तु बनाकर हमारे सम्मुख उपस्थित करता है, वहाँ नाटककार विना किसी परिवर्त्तन के घटना को असली रूप में रख देता है और किसी बात को ज्यों का त्यों ही उपस्थित कर देना-मात्र ही उसकी कला है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि नाटक लिखना अधिक सरल है। वस्तुतः यदि देखा जाय तो नाटककार का कार्य सबसे कठिन है। वास्तव में उसे एक सफल औपन्यासिक, एक सफल कवि, एक सफल दार्शनिक और सफल सुधारक सब कुछ ही होना आवश्यक है; क्योंकि उसका कार्य न केवल घटना को ज्यों का त्यों उपस्थित करना ही है, बरन् अपनी कवित्वशक्ति द्वारा उसमें माधुर्य लाना, अपनी दार्शनिकता द्वारा उससे



एक विशेष तथ्य को सार्थक कराना तथा अन्त में उसे देश और काल के अनुसार ऐसे रूप में ढालना भी है, जिससे उसके नाटक में प्रदर्शित किये गये चित्र और देश के वातावरण में साम्य दिखाई दे और उस समय-विशेष के मनुष्य उससे उचित लाभ उठा सकें। फिर जैसा कि ऊपर कहा गया है, नाटक दृश्य काव्य है। उसका निर्माण रंग-मंच पर नाट्य करने के लिए ही होता है, अतएव एक नाटककार का रंग-मंच के वातावरण, उसकी आवश्यकताओं और असुविधाओं से अभिज्ञ होना अत्यावश्यक है। अन्त में नाट्यकार का कार्य इस कारण और भी कठिन हो जाता है कि जहाँ एक उपन्यासकार अपनी कथावस्तु का विस्तार करने में पूर्णतया स्वतंत्र है, एक नाटककार के लिए यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि उसका नाटक इस भाँति का हो, जो अधिक से अधिक पाँच-छः घंटों में अभिनीत हो सके। इस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से नाटकों को साहित्य में एक विशेष स्थान प्राप्त है और अपनी सरलता, सजीवता और सौंदर्य द्वारा जितना व्यापक प्रभाव मनुष्य के हृदय पर नाटक द्वारा डाला जा सकता है, उतना साहित्य की अन्य वस्तुओं द्वारा नहीं।

इस स्थान पर नाटकों का विशद इतिहास देना सम्भव नहीं है; क्योंकि न तो हमारे पास इतना समय ही है और न सुविधाएँ ही, परन्तु यह कहना अनुचित न होगा कि जिस प्रकार अन्य अनेक कलाओं का जन्मस्थान होने का गौरव हमारे देश भारत को प्राप्त है, उसी प्रकार नाट्य-कला का जन्म भी यहीं हुआ है। संस्कृत-साहित्य श्रेष्ठ और कलापूर्ण नाटकों से भरा पड़ा है और आज अनेक शताब्दी-पर्यंत भी उसके नाट्य-साहित्य की तुलना संसार की किसी भी भाषा के नाट्य-साहित्य से नहीं की जा सकती।

हिन्दी नाटक का कोई विशेष इतिहास नहीं है। उपन्यास तथा कहानी की भाँति उसका प्रारम्भ भी अनुवादों से ही हुआ। सबसे प्रथम विद्यापति ठाकुर ने संस्कृत के दो-तीन नाटकों का अनुवाद किया। फिर सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में भी कुछ अनुवादित तथा मौलिक नाटक दृष्टिगोचर होते हैं; परन्तु उन्हें कोई विशेष महत्त्व नहीं प्राप्त है। वास्तव में तो वर्त्तमान हिन्दी-नाटक का युग भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी के साथ ही प्रारम्भ होता है। वे न केवल आधुनिक हिन्दी-गद्य के जन्मदाता हैं, वरन् आधुनिक हिन्दी-नाटक के भी। उन्होंने न केवल बँगला तथा संस्कृत के नाटकों का अनुवाद ही किया, वरन्, अनेक मौलिक नाटकों की रचना भी की। जैसा कि पहले कहा जा चुका है नाटकों की रचना केवल पढ़े जाने के ही लिए नहीं होती, वरन् उसका उद्देश्य अभिनीत किया जाना और उसके द्वारा सर्वसाधारण को किसी तथ्यविशेष की ओर ले जाना होता है। बाबू हरिश्चन्द्र-जैसे सर्वतोमुखी प्रतिभावाले मनुष्य इस बात से भली भाँति परिचित थे। यही कारण है कि उन्होंने समाज के प्रत्येक अङ्ग से सम्पर्क रखनेवाले नाटकों की रचना का ही नहीं, वरन् उनका अभिनय कराने का स्वयं प्रयास किया। उनके "भारत-दुर्दशा," "नील देवी", "प्रेम योगिनी" तथा "अंधेर नगरी" नाटकों ने तो एक बार हिन्दी-नाट्य-क्षेत्र में धूम ही मचा दी। और, जो यह नाटक-निर्माण करने की धारा एक बार चली तो फिर इसे निरन्तर वेग ही प्राप्त होता गया। उस समय पं० प्रतापनारायण, पं० बालकृष्ण भट्ट, बा० रामकृष्ण वर्मा आदि ने कई नाटक लिखे। इन सब नाटकों का उद्देश्य एकमात्र देशोन्नति तथा समाज-सुधार था। साथ ही साथ संस्कृत और अँगरेजी नाटकों के अनुवाद भी होते रहे और इस प्रसंग में श्रीसत्य-



नारायण तथा सीतारामजी ने विशेष ख्याति पाई। परन्तु नाट्य-रचना का आन्दोलन दूध का उबाल ही प्रमाणित हुआ। थोड़े ही काल में लेखकों का समस्त उत्साह शान्त हो गया। कदाचित् इसका कारण पाठकों की तथा सर्वसाधारण की उदासीनता और नाटक-मंडलियों की न्यूनता रही हो। इसके बाद बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कुछ दिन बँगला नाटकों के अनुवादों की भी धूम रही। बँगला के प्रसिद्ध नाट्यकार प्रातःस्मरणीय बा० द्विजेन्द्रलाल राय का ऐसा कोई नाटक शायद ही हो, जो हिन्दी में न अनुवादित हो चुका हो। उनके नाटकों में कला है, सजीवता है, स्वाभाविकता है। उनके आदर्श तथा सिद्धान्तों का हिन्दी-लेखकों पर गहरा असर पड़ा है और तभी से हिन्दी का वास्तविक नाटककाल प्रारम्भ होता है।

वर्णन-सुविधा के लिए हम हिन्दी के वर्त्तमान नाट्य-साहित्य को चार भागों में विभक्त किये लेते हैं। पहले भाग में हिन्दी के नाट्य-साम्राज्य के एकछत्र अधिपति जयशङ्कर 'प्रसाद' जी के नाटक, दूसरे भाग में सर्व श्रीराधेश्याम कथावाचक, नारायणप्रसाद 'बेताब' तथा हरिकृष्ण 'जौहर' आदि के निर्मित नाटक, तीसरे भाग में अन्य लेखकों के फुटकर नाटक तथा अन्त में हास्य-रस के नाटक अथवा प्रहसन रक्खे लेते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि अपने नाटकों की सर्वाधिक संख्या तथा अपनी भाषा, भाव एवं शैली की विशेषता के कारण बाबू जयशंकर 'प्रसाद' जी को हिन्दी-नाट्यक्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया है। उन्होंने 'चन्द्रगुप्त मौर्य्य,' 'अजात शत्रु,' 'स्कंदगुप्त' आदि अनेक उच्च कोटि के नाटकों की रचना की है। इनमें से अनेक नाटक अभिनीत भी हो चुके हैं। 'प्रसाद'-जी की भाषा क्लिष्ट तथा वर्णन-शैली सरस है। उन्हें प्राचीन हिन्दी-साहित्य तथा संस्कृत का अच्छा ज्ञान है। बौद्ध-साहित्य का अध्ययन भी उन्होंने भली भाँति किया है। हिन्दी में उन्हें छायावादी कवि कहा जाता है। वे भावुक हैं और अध्यात्मवाद से उन्हें विशेष प्रेम है। यही कारण है कि उनके समस्त नाटक एक विशेष आदर्श को लेकर उपस्थित किये गये हैं और दार्शनिकता से ओत-प्रोत हैं। उनके सभी पात्र भाषा के दिग्गज विद्वान् तथा सुधारक प्रतीत होते हैं। सभी पात्र धर्म की गूढ़ समस्याओं पर विचार करते और जीवन तथा मृत्यु के विषय में ऐसे गम्भीर विचार रखते हैं, जो सर्वसाधारण के लिए असम्भव हैं। ऐसे स्थलों पर अत्यधिक अस्वाभाविकता आ जाती है। उनके नाटकों में यत्र-तत्र लम्बे-लम्बे भाषण तथा बड़े-बड़े गीत दृष्टिगोचर होते हैं, जिन्हें सुनते-सुनते दर्शक ऊब जाते हैं तथा पाठक व्याकुलता का अनुभव करने लगते हैं। यही कारण है कि एक तो उनके नाटक अभिनीत ही कम हुए हैं और जो हुए भी हैं तो एक बार से अधिक नहीं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भावों का जो घात-प्रतिघात, मनुष्य की प्रकृति का जो सजीव दृश्य तथा हृदयगत आंदोलन और पात्रों का चरित्र-चित्रण जैसा सुन्दर 'प्रसाद'जी के नाटकों में हुआ है, वह अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। और, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि प्रसादजी हिन्दी-नाट्याकाश के सूर्य हैं।

प्रसादजी के नाटकों के बाद वे नाटक आते हैं, जिनके लिखे जाने का एकमात्र उद्देश्य पारसी नाटक-कम्पनियों द्वारा अभिनीत किया जाना है। ऐसे नाटकों की संख्या बहुत अधिक है और इनके प्रणेताओं में सर्व श्रीराधेश्याम कथावाचक, नारायणप्रसाद 'बेताब' तथा हरिकृष्ण "जौहर" हैं। यदि सत्य ही कहा जाय तो इसमें कोई



सन्देह नहीं कि जिस प्रकार के नाटकों का निर्माण इन महानुभावों ने किया है, उनसे हिन्दी-साहित्य को कुछ भी लाभ नहीं। क्या भाषा, क्या शैली, क्या कथावस्तु और क्या वर्णन-वैचित्र्य सबमें कला की दृष्टि से दोष ही दोष भरे पड़े हैं। इन नाटककारों का एकमात्र उद्देश्य ऐसे नाटकों का लिखना था, जो पारसी कम्पनियाँ अभिनीत कर सकें। इसी कारण उन्होंने अपनी दृष्टि केवल रंगमंच की आवश्यकताओं तथा जनता की रुचि की ओर रक्खी। फल यह हुआ कि साहित्यिक दृष्टि से तो वे दोष के भागी हुए ही, नैतिक दृष्टि से भी उनका कम अपराध नहीं है। उन्होंने अपने नाटकों में किसी आदर्श का प्रतिपादन न कर केवल मनोरंजन को ही प्रधानता दी है और इसके कारण पाठकों तथा श्रोताओं की रुचि परिमार्जित होने के स्थान में और भी अधिक बिगड़ गई।

तीसरी श्रेणी के नाटकों में कतिपय लेखकों के फुटकर नाटकों का वर्णन करने की ही आवश्यकता है। इनके अन्तर्गत उग्रजी का 'महात्मा ईसा', सुदर्शनजी की 'अंजना', प्रेमचन्दजी की 'कर्बला', पं० गोविंदबल्लभ पंत की 'वरमाला', बद्रीनाथ भट्टजी की 'दुर्गावती' आदि नाटक आ जाते हैं। कला की दृष्टि से इनमें बहुत कम दोष हैं; परन्तु इसमें संशय है कि वे सफलतापूर्वक अभिनीत भी हो सकते हैं अथवा नहीं। इधर हिन्दी में एकांकी नाटकों की भी बाढ़-सी आ रही है। कुछ दिन से हिन्दी के उदीयमान कवि प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा बड़े उत्साह से इस प्रकार के नाटकों की रचना कर रहे हैं।

अन्त में उन हास्यरस के नाटकों तथा प्रहसनों का स्थान आता है, जिनकी रचना का मुख्य श्रेय श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव को है। श्रीवास्तवजी ने जहाँ अनेक अँगरेजी तथा फ्रेंच नाटकों का अनुवाद किया है, वहाँ अनगिनत मौलिक प्रहसन भी रचे हैं। श्रीवास्तवजी के प्रहसन हास्यरस-प्रधान होने के कारण काफ़ी प्रचार पा चुके हैं और सर्वसाधारण ने उन्हें विशेष रूप से अपनाया है, परन्तु कला की दृष्टि से वे भी बहुत नीचे रह जाते हैं। इधर प्रो० बद्रीनाथ भट्ट ने भी "मिस अमेरिकन"-जैसे हास्यरस के अनेक नाटक लिखे हैं, परन्तु उनके उल्लेख की विशेष आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

इस प्रकार हिन्दी के नाट्य-साहित्य का सिंहावलोकन करने से हमें उसमें अनेक त्रुटियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, जिनका इस स्थल पर उल्लेख किया जाना अनुचित न होगा। सबसे प्रथम और सबसे महान् त्रुटि जो हमें प्रतीत हुई, वह हिन्दी-नाटकों का अभिनय योग्य न होना ही है। पारसी कम्पनियों के लिए लिखे गये नाटकों की बात तो जाने दीजिए; क्योंकि साहित्यिक दृष्टि से उनका कुछ भी मूल्य नहीं है। परन्तु अन्य नाटकों को ले लीजिए, आपको कदाचित् एक भी नाटक ऐसा न मिलेगा, जिसका अभिनय सफलतापूर्वक किया जा सके। यदि कोई पौराणिक नाटक हुआ तो ऐसी अनेक काल्पनिक बातों का समावेश उसमें कर दिया जाता है, जिनका रंग-मंच पर दिखाया जाना असम्भव होता है तथा अभिनय-चातुर्य्य की दृष्टि से कुछ भी मूल्य नहीं रखता। ऐसे चमत्कारिक दृश्यों द्वारा यद्यपि क्षणिक काल के लिए दर्शकों को मुग्ध किया जा सकता है, परंतु उसका दर्शकों पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता।

हिन्दी-नाटक अनावश्यक तौर पर बड़े भी बहुत होते हैं। प्रसादजी के ही नाटकों को लीजिए। उनका कोई भी नाटक ऐसा नहीं है, जो चार-पाँच घण्टों में सरलतापूर्वक अभिनीत किया जा सके। ऐसे लम्बे-लम्बे नाटकों से दर्शक शीघ्र ही ऊब जाते हैं। प्रत्येक वस्तु अधिक मात्रा



में दुःखदायी हो जाती है। अतएव हिन्दी-नाट्य-कारों का इस ओर ध्यान देना आवश्यक है। साथ ही उन्हें दृश्य भी अधिक लम्बे न रखने चाहिए और यदि कोई दृश्य अधिक लम्बे हो भी जायँ तो ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि ऐसे कई लम्बे दृश्य एक ही स्थान पर एक दूसरे के बाद न आने पावें। बहुत-से छोटे दृश्यों के बीच यदि एक-आध लम्बा दृश्य आ भी जाय तो अधिक दोष नहीं। इसके साथ ही दृश्यों को इस प्रकार रखना तथा उन्हें इस प्रकार समाप्त कराना आवश्यक है कि एक दृश्य की समाप्ति पर दर्शक का कौतूहल स्वयं ही जाग्रत् हो जाय और वह अगला दृश्य देखने के लिए अथवा पढ़ने के लिए उत्सुक हो उठे। अँगरेज़ी में इसे Tempo कहते हैं और एक सफल नाटक में इसका निरन्तर उठते जाना, जब तक कि नाटक समाप्त न हो जाय, अत्यावश्यक है।

इसके अनन्तर हिन्दी-नाट्यकारों की अपने नाटकों में आदर्शवाद के कठोरतापूर्वक प्रतिपादन कराने की प्रवृत्ति के निराकरण की भी आवश्यकता है। क्रमशः आदर्शवाद के पुजारी कम होते जा रहे हैं और जनता का हृदय स्वाभाविकता की ओर बढ़ता जा रहा है। ज़बर्दस्ती आदर्शवाद का पालन कराने का नतीजा यही होता है कि पात्र का चरित्र-चित्रण नैसर्गिक रूप से नहीं हो पाता। वह प्राकृतिकता तथा स्वाभाविकता से दूर चला जाता है और लेखक के हाथ की कठ-पुतली बन जाता है। ऐसे पात्र दर्शकों के हृदय पर तनिक भी प्रभाव नहीं डाल पाते। अतएव लेखकों को किसी न किसी प्रकार आदर्श का पालन कराने की अपेक्षा पात्र के स्वाभाविक विकास की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। अनेक अंशों में प्रसादजी अपने इस प्रयत्न में सफल हुए हैं, परन्तु यह कहना सन्देहपूर्ण है कि उनके-जैसे नवयुवक तथा उन्नत विचारयुक्त लेखक के हृदय से आदर्शवाद का भूत उतर गया है।

हिन्दी-नाटकों की एक बड़ी कमी—उनके निर्माताओं द्वारा रक्खे गये लम्बे-लम्बे भाषणों तथा लम्बे-लम्बे गायनों का होना है। ऐसे लम्बे-लम्बे भाषणों से दर्शक और श्रोता जल्दी ही ऊब जाते हैं और उस समय तो यह और भी अरुचि-कर हो जाता है, जब कोई पात्र बिना किसी कार्य का प्रतिपादन किये केवल तोते की तरह रटे हुए सबक़ की भाँति सुनाने लगता है। यदि निष्पक्ष रूप से देखा जाय तो हिन्दी-नाटक इस बात में पाश्चात्य भाषा के आधुनिक नाटकों से बहुत पीछे हैं। पाश्चात्य देशों के नाटक जिस बात से हमें मुग्ध कर लेते हैं, वह उनके अन्दर Action का अधिक और Speech का कम होना है। इसी प्रकार गायनों का, और वह भी विशेषकर प्रसादजी के नाटकों में ठूँसे गये लम्बे-लम्बे गायनों का होना अत्यन्त अस्वाभाविक प्रतीत होता है। अजातशत्रु में श्यामा का सोते-सोते उठकर एकदम "विष भी हो जायगा अमृत, पिला दो हाथ से अपने।" तथा स्कन्दगुप्त में भयानक युद्ध के प्रारम्भ में देवसेना द्वारा "भरा है नैनों में, मन में रूप" जैसे गानों का होना अप्रासंगिक तथा हास्यकर प्रतीत होता है। गाने हों ज़रूर, परन्तु छोटे और समयानुकूल हों। ऐसा न होना चाहिए कि नायक तो भाट बन जाय और नायिका भाटिन।

हिन्दी के अनेक लेखकों तथा विशेषकर नाट्यकारों की रुचि हास्य के प्रतिकूल दिखाई देती है। प्रसादजी के नाटकों में यद्यपि कहीं-कहीं विदूषक द्वारा कुछ कहलाकर प्राचीन परिपाटी की रक्षा करने का प्रयत्न किया गया है, परन्तु यह प्रयास शतप्रतिशत असफल हुआ है। इस प्रकार या तो हमें निर्दोष हास्यरस के दर्शन ही



नहीं होते और यदि होते भी हैं तो अत्यन्त अश्लील हास्यरस के। इस दृष्टि से बद्रीनाथ भट्ट अथवा जी० पी० श्रीवास्तव के हास्यपूर्ण नाटक निर्दोष नहीं कहे जा सकते। आवश्यकता है इस बात की कि श्रीअन्नपूर्णानन्द-जैसे संयत हास्यरस के लेखक इस ओर प्रयत्न करें।

अन्त में हमें हिन्दी-नाटकों की भाषा के विषय में भी बहुत कुछ कहना है। प्रसादजी के नाटकों की बात तो जाने दीजिए। उनके नाटकों की भाषा समझने के लिए तो श्रीबनारसीदास चतुर्वेदी-जैसे विद्वान् को भी कोष की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु अन्य नाटककारों की भाषा भी सर्व-साधारण समझने में असमर्थ रहते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। हिन्दी-नाटककारों को सभी पात्रों के मुख से एक ही प्रकार की संस्कृत-गर्भित भाषा बुलवाने की धुन-सी रहती है। यह सर्वथा अनुचित है। साथ ही स्वगत सम्वादों की अधिकता तथा उनका विशेष बड़ा होना नाटक के अभिनीत होने में अनावश्यक बाधा डालता है।

अतएव आवश्यकता है कि हिन्दी-नाटकों की भाषा सरल बनाई जाय, उन्हें लम्बे भाषणों तथा बड़े गायनों से रिक्त किया जाय, स्वगत सम्वादों को हटाया जाय, आदर्शवाद का व्यर्थ पालन कराने की चेष्टा न की जाय, उन्हें अभिनययोग्य बनाने के लिए उनके अन्दर से असम्भव दृश्यों को दूर किया जाय, उनके अन्दर व्यापार अथवा Action की बहुलता पर अधिक ध्यान दिया जाय। हिन्दी का नाट्यक्षेत्र बहुत विस्तृत है। आवश्यकता है अनुभवी तथा प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तियों के इस ओर दृष्टिपात करने की तथा ऐसी नाटक-कम्पनियों के खुलने की, जो पारसी कम्पनियों की भाँति केवल आर्थिक लाभ की ओर ही ध्यान न दें, बरन् साहित्य, समाज तथा देशोन्नति को भी दृष्टि के अन्तर्गत रक्खें। बहुत-से विद्वानों का मत है कि सिनेमा के प्रचार के कारण नाटककार का क्षेत्र अत्यंत संकुचित हो गया है। पर हमारी समझ में तो यह नाटककारों के लिए अधिक उत्साह का विषय है। उन्हें साहसपूर्वक इस क्षेत्र में पदार्पण करना चाहिए और फ़िल्मों के योग्य नाटकों की रचना करनी चाहिए। जहाँ तक हमें मालूम है अब तक हिन्दी में केवल दो या तीन नाटक ऐसे लिखे गये हैं, जिनकी फ़िल्म बनी है और वे हैं श्रीयुत सुदर्शनजी का "रामायण," श्रीधनीरामजी प्रेम का "प्राणेश्वरी" तथा श्री जी० पी० श्रीवास्तव का "चोर के घर छिछोर"। अन्तिम नाटक की फ़िल्म तो अभी बन ही रही है। इधर हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत गुलाब ने भी "इन्साफ़ की तोप"-नामक नाटक की रचना की है, जिसकी फ़िल्म बन रही है। परन्तु इनमें से दो को छोड़कर अन्य पुस्तक-रूप में प्रकाशित नहीं हुए हैं। इसलिए नहीं कहा जा सकता कि ये कैसे हैं। हमें इस बात की भी अत्यन्त प्रसन्नता है कि हिन्दी के कुछ सुप्रसिद्ध कवियों तथा लेखकों का ध्यान इस ओर आकर्षित भी हुआ है। इस प्रकार हमें पूर्ण आशा है कि यदि यही सिलसिला रहा तो राष्ट्र-भाषा के इस विशेष अंग की पूर्ति होते भी देर न लगेगी।

इस समय हमारा समाज तथा देश एक विचित्र अवस्था में है। वह एक प्रकार के परिवर्तन की अवस्था से गुज़र रहा है। हिन्दी हमारे देश की राष्ट्रभाषा है। अतएव आवश्यकता है कि वह अपने साहित्य द्वारा अपने देश की सच्ची प्रति-निधि कहला सके। आवश्यकता है कि उसके साहित्य में देश का सच्चा प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर हो। अतएव हिन्दी के नाटककारों के लिए जहाँ ऊपर कही गई अनेक बातों को ध्यान में रखने

की आवश्यकता है; जिससे वे सफल नाटककार कहला सकें, वहीं इस बात की भी आवश्यकता है कि वे तथा उनकी रचनाएँ केवल साहित्य की ही स्थायी सम्पत्ति न हों, वरन् अपने समाज तथा देश और काल-विशेष के लिए भी लाभप्रद हों। हमें इस समय ऐसे नाटककार की आवश्यकता नहीं, जो केवल विशुद्ध मनोरंजन ही कर सके। हमें ऐसे नाटककार की भी आवश्यकता नहीं, जो हमें शृंगार के दृश्यों और प्रेम-संलापों से मुग्ध कर सके। हमें ऐसे नाटककार की भी आवश्यकता नहीं, जो धर्म, दर्शन तथा अध्यात्मवाद के रूखे, सारहीन तथा अनावश्यक उपदेशों द्वारा हमारा समय व्यर्थ व्यतीत करावें। वरन् हमें आवश्यकता है ऐसे नाटककार की, जो अपने गुंजन से हमारे अन्दर कंपन कर दे। अपने गान से वह हमें समझा दे कि गुलामी और स्वतंत्रता में क्या भेद है। वह सुनावे कि गुलामी के पकवान में क्या कड़वाहट है और स्वतंत्रता की सूखी रोटी में क्या सुख है, क्या मिठास है। हमारे लिए वायरन या शेक्सपियर की आवश्यकता नहीं, कालिदास की जरूरत नहीं, राधेश्याम या बेताब, प्रसाद या श्रीवास्तव को भी हम नहीं ढूँढते। हमें आवश्यकता है किसी प्रचंड की, जो मुर्दों को जिला दे, उनमें आग लगा दे, प्राण-संचालन कर दे। हमें आवश्यकता है किसी दंडी की, किसी भूषण की, जिसके स्वर में स्वर मिलाकर हम भी एक बार हुंकार भर उठें, हम भी एक बार गर्जना करने लगें—

कमर बाँधकर अमर समर में नाम करेंगे।
सैनिक हैं हम विजय स्वत्व संग्राम करेंगे॥



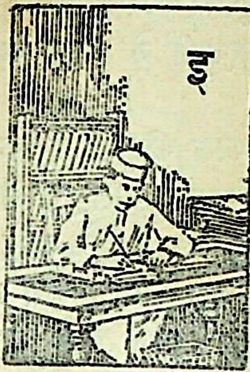


प्रेम-पथ

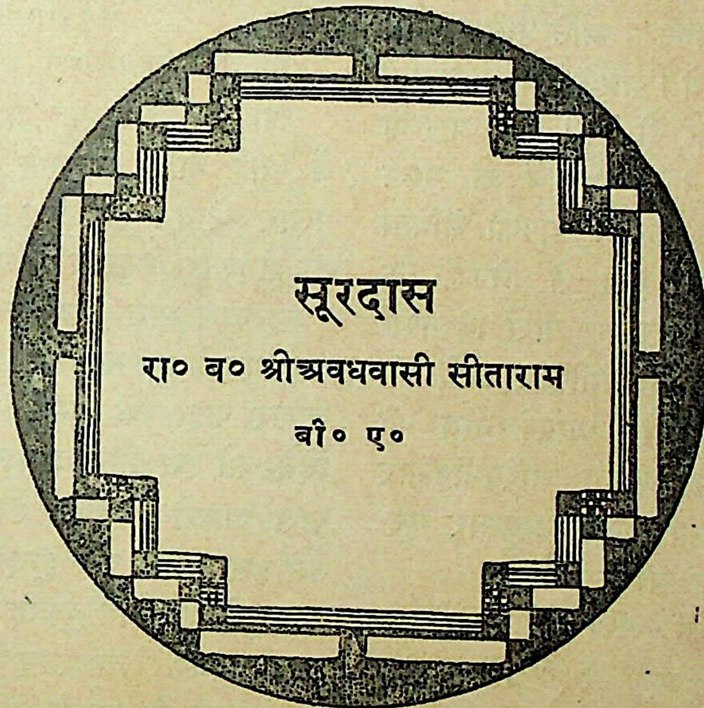
चित्रकार—भगवतीशरण सक्सेना

इस पथ का उद्देश्य नहीं है, शांति-भवन में टिक रहना;





इस प्रबन्ध के पूर्वार्ध* में हमने दृष्टिकूट की टीका से एक उद्धरण दिया है, जिसमें कहा जाता है कि महाकवि सूरदास ने अपना परिचय दिया है। इस उद्धरण का सारांश हम फिर लिखते हैं। विशेषकर इस कारण से कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी ने अपने प्रसिद्ध महात्माओं के जीवन-चरित्र में सूरदास का जीवन-चरित्र इसी के आधार पर लिखा है—



सूरदास

रा० ब० श्रीअवधवासी सीताराम बी० ए०

प्रथम जगात† आर्थज गोत्र (?) वंश में इनके मूल पुरुष ब्रह्मराव हुए, जो बड़े सिद्ध और देव-प्रसाद-लब्ध थे। इनके वंश में जयचन्द हुआ, पृथ्वीराज ने जिसे ज्वाला देश दिया था। उसके चार पुत्र हुए, जिनमें पहला राजा था। दूसरा गुणचन्द्र, उसका पुत्र शीलचन्द्र और उसका पुत्र वीरचन्द्र। यह वीरचन्द्र रत्नभ्रमर (रणथम्भौर) के प्रसिद्ध राजा हम्मीर के साथ खेलता था। इनके वंश में हरिश्चन्द्र हुआ। इसके पुत्र के ७ पुत्र हुए, जिनमें सबसे छोटा (कवि लिखता है) मैं सूरजचन्द्रं। मेरे छः भाई मुसलमानों के युद्ध में मारे गये। मैं अन्धा कुबुद्धि था। एक दिन कुएँ में गिर पड़ा, तो सात दिन तक उस (अन्ध) कूप में पड़ा रहा, किसी ने न निकाला। सातवें दिन भगवान् ने निकाला और अपने स्वरूप का (नेत्र देकर) दर्शन कराया और मुझसे बोले कि वर माँग। मैंने वर माँगा कि आपका रूप देखकर अब और रूप न देखूँ और मुझे दृढ़ भक्ति मिले और मेरे शत्रुओं का नाश हो। भगवान् ने कहा 'ऐसा ही होगा, तू सब विद्याओं में निपुण होगा, प्रबल दक्षिण के ब्राह्मण शत्रु का नाश होगा।' यों मेरा नाम सूरदास, सूर, सूरश्याम इत्यादि रखकर भगवान् अन्तर्हित हो गये। मैं व्रज में बस गया। फिर गोसाईंजी ने मेरी अष्टछाप में स्थापना की। इत्यादि।

अब हम इसके प्रतिकूल नाभाजी के भक्तमाल का सूरदास-विषयक छप्पै अवध के प्रसिद्ध महात्मा श्रीसीतारामशरण भगवान्प्रसादजी के वार्तिक समेत लिखते हैं—

(श्री) मदनमोहन सूरदास की,
नामशृंखला जुरी अटल ॥
गान काव्य गुन रासि, सुहृद, सहचर अवतारी।
राधाकृष्ण उपास्य रहसि, सुख के अधिकारी ॥

---

* इस लेख का पहला अंश मेकडानल युनिवर्सिटी बोर्डिंग हाउस में पढ़ा गया था। हमने सुना है कि विशाल-भारत में वह छपा है।

† जगात को इस प्रान्त में जागा कहते हैं।



नवरस मुख्य सिंगार विविध भाँतिन करि गायो।
वदन उच्चरित बेर सहस पायनि है धायो॥
अंगीकार की अवधि यह
ज्यों आख्या भ्राता जमल।
(श्री) मदनमोहन सूरदास की,
नाम श्रृंखला जुरी अटल॥

वार्तिक-प्रकाश

श्रीमदनमोहन और सूरदास के नाम की श्रृंखला अचल जुट गई, अर्थात् आप थे तो नेत्र-युक्त, परन्तु नाम सूरदास था। सो जहाँ पर सूरदास नाम है, वहाँ मदनमोहन नाम के साथ ही है। आप गानविद्या और काव्य में अति प्रवीण और शुभ गुणों की राशि ही थे। सबके साथ सुहृदता रखते, सखी के अवतार ही थे। श्रीराधाकृष्ण आपके उपास्य देव थे। नवरसों में जो मुख्य श्रृंगाररस है, उसका गान किया। आपकी कविता ऐसी फैलती थी कि जहाँ मुख से निकली कि मानो सहस्र चरणों को धारणकर चारों दिशाओं में दौड़ गई। सो यह प्रभु के अंगीकार करने की सीमा है। ऐसी प्रभु की और आपके नाम की आख्या हुई कि जैसे जमल भ्राता अश्विनीकुमार सदा इकट्ठे रहते हैं। प्रियादास के अनुसार सूरदास और मदनमोहन का सम्बन्ध यों है—

सूरदास दिल्लीपति की ओर से संडीले के अमीन हुए। आपकी प्रभु में प्रीति नवीन थी। यहाँ (संडीले) का गुड़ बहुत अच्छा देखकर विचार किया कि इस गुड़ का मालपुआ श्रीमदनगुपाललालजी को प्रिय लगेगा। इस प्रेम के कौतुक में पड़े। यद्यपि संडीले से वृन्दावन तक के भाड़े का दाम बीस गुना पड़ा, तब भी गाड़ी में लादकर भेज ही दिया। वह गुड़ वृन्दावन में आया, रात बहुत बीत गई थी, प्रभु का शयन हो गया था; परन्तु श्यामसुन्दर की आज्ञा स्वप्न में हुई कि इसका मालपुआ अभी भोग लगाओ। सबों ने आज्ञानुसार उसी समय मालपुआ बनाया। श्रीप्रेमग्राहकजी ने जाग के भोजन किया।

दूसरी घटना उनके जीवनकाल की यह है कि सूरध्वज (सूरदासजी) ने बादशाही मालगुजारी के तेरह लाख रुपये साधुओं को खिला दिये और मन में तनिक भी संकोच या भय नहीं किया। जब बादशाह के भेजे लोग रुपये लेने आये तो भक्तजी ने संदूक में पत्थर भरके ताले लगा दिये। प्रत्येक संदूक में यह पद लिखकर रक्खा हुआ था—

तेरह लाख सँडीले उपजे,
सब साधुन ने मिलि गटके।
सूरदास मदनमोहन आधीरात को सटके॥

आप आधीरात को भागे। जब 'संदूकें' दिल्ली में आईं और बादशाह ने खुलवाके देखा तो पत्थर भरे थे। वह रुक्का भी निकला। पढ़ा गया तो बादशाह अनुराग से प्रसन्न हुए।

सूरदास भाग के श्रीवृन्दावन में आये। अकबर बादशाह ने आपको लेने के लिए मनुष्य भेजा कि जाकर कहो कि तुमने रुपये संतों को खिला दिये, सो हम बहुत प्रसन्न हुए। अब तुम हमारे पास आओ। आपने उत्तर लिखकर भेजा कि मैंने इस शरीर को वृन्दावन में डाल दिया है। अब मुझे वहाँ मत बुलाइए।

यह सुनकर बादशाह के दीवान 'टोडरमल' ने यह कहकर कि 'इसने धन को नष्ट किया' लोगों को भेजा कि जाकर पकड़ लाओ। उस दुष्ट ने बादशाह की मति फेर दी। लोग आकर उनको पकड़ ले गये। बादशाह ने कहा "मेरे पास मत लाओ।" तब दुष्ट टोडर ने 'दसतम'-नामक कारागाराध्यक्ष (जेलखाने के अधिपति) को सौंप दिया। उस दुष्ट ने आपको बहुत कष्ट दिया। तब यह दोहा लिखकर आपने अकबर के पास भेजा—



"यकतम अँधियारो करै, शून्य दई पुनि ताहि,
'दसतम' से रक्षा करौ दिनमनि अकबर साहि ।"

दोहा देखकर दूरदर्शी अकबर ने बहुत प्रसन्नता-पूर्वक आज्ञा दी कि "तुम पर हमने तेरह लाख द्रव्य निछावर कर दिया । तुम सुखपूर्वक वृन्दावन चले जाओ ।"

बादशाह अकबर की आज्ञा पाकर श्रीवृन्दावन में आकर श्रीयुगलमाधुरी में आपने मन को भिगा दिया ! सूर द्विज ब्राह्मण थे ।

सूरदास के अमीन होने का एक प्रमाण उनका एक प्रसिद्ध पद है, जिसे हम व्याख्या-सहित नीचे लिखते हैं—

साँचो सो लिखवार कहावै ।
काया ग्राम मसाहत करिकै जमा बाँधि ठहरावै ।
मनमथ करै कैद अपने में ज्ञान जहतिया * लावै ।
माँड़ि-माँड़ि खरिहान क्रोध को पोता भजन भरावै ।
बट्टा काटि कसूर भर्म को फरद तले लै डारै ।
निश्चय एक असल पै राखै, टरै न कबहूँ टारै ।
करि अवारजा प्रेम-प्रीति को असल तहाँ खतियावै ।
दूजी करै दूरि करि दाई, नैक नता में आवै ।
मुजमिल जोरै ध्यान कुल्ल का हरि सों तहँ लै राखै ।
निर्भय रूपै लोभ छाँड़ि कै सोई वारिज राखै ।
जमाखर्च नीके करि राखै लेखा समुझि बतावै ।
सूर आप गुजरा न मुसाहिब; लै जवाब पहुँचावै ॥ १६ ॥

हमारे पास बहुत पुरानी हस्तलिखित पुस्तक कमलाजनकृत गुर-प्रकाशिका है । इसमें राज के सारे "दस्तूरों" के गणित करने की सरल रीति दी हुई है । उनमें से एक "दफ़्तर दस्तूर" है, जिसमें सूरदास के पद की पूरी व्याख्या दी हुई है । हम गुरप्रकाशिका के उस अंश को माधुरी के पाठकों के लिए उद्धृत करते हैं—

प्रथम रोजनामा लिखै ताते स्याहा होइ ।
ताते कहै अवारजा जमाखर्च फिरि सोइ ॥ ४६ ॥

चौपाई

प्रथम वधन की बही बनावै ।
सिरै मास तिथि बार जनावै ॥
संवतसर सो लिखै सुजान ।
सदा लिखै याको परवान ॥ ४८ ॥
बित्ती भर बाकी लिखि लेइ ।
ताही सम सौ हाल करेइ ॥
जुमला जमा सिरै लिखि जानी ।
लिखौ मारफ़त ठाँउ बखानी ॥ ४९ ॥
फेरि खर्च कर लेखा लेइ ।
मित्ती जोरि अंक धरि देइ ॥
यहि प्रकार कह्यौ लिखि सोई ।
याही ते स्याहा फिरि होई ॥ ५० ॥
अब पुनि स्याहा कहौं बखान ।
लिखो सु ताको यह परवान ॥
लिखौ सिरौ स्याहा को नाम ।
मास बार तिथि सँवत मुकाम ॥ ५१ ॥
होइ जासु जेहि को लिखि लेइ ।
नाम धनी को सो लिखि देइ ॥
जुमला जमा सिरै लिखि ताकी ।
बित्ती भर लिखिए तहँ बाकी ॥ ५२ ॥
ताही सम सौ हाल लिखावै ।
देइ जोरिकै कुल्ल मिलावै ॥
हाल तरै दो-कलमी करै ।
तातर जमा मुफस्सल धरै ॥ ५३ ॥
ताके नीचे खरच लिखि पद्धति सहित प्रदान ।
गोसवारेन समेत सो महल एक सम आन ॥ ५४ ॥
जौ नर कानो आद लिखि तासु अंत तफ़सील ।
जोर सबन के अंक को जमा सिरे धर लीन ॥ ५५ ॥
जमाखर्च मुजरा दये बाकी सो लिखि देउ ।
सो वहि बाकी आदि के स्याहा आदि करेउ ॥ ५६ ॥
अब पुनि कहत अवारजा कहत खतौनी नाम ।
ताकी अब पद्धति कहत सुने होत बिसराम ॥ ५७ ॥

चौपाई

फ़र्द सिरै लिखिए हरिनाम ।
ता पाछे संबतसर काम ॥

* जहतिया=दण्डनायक ।



तासु आदि दाखिललिखि सोइ ।
कै पुनि जमाख़र्च उहि होइ ॥
तासु अन्त लिखिए गुसवारो ।
तातर महल दुकलमी धारो ॥
तातर सब महिमा लिखि लीजै ।
तातर दिन तफ़सील करीजै ॥
इस्म-इस्म के लिखि यहि भाँति ।
....
जाही भाँति कहौं परवान ।
यह पद्धति सो लिखत सुजान ॥
कच्चो स्याहा खतउनी कही यथा परवान ।
अब पुनि जमा सुखर्च की पद्धति चहौं बखान ॥
इत्यादि ।

कहनेवाले कह सकते हैं कि विनयपत्रिका का एक पद कहारों की बोली में है, इससे गोस्वामी तुलसीदासजी कहार थे। हमने चार वर्ष तक बनारस-कालेज की मास्टरी में पालकी की सवारी की है और हम कहारों की बोली से परिचित हैं। ऐसे ही गोस्वामीजी ने कहारों की बोली सीख ली होगी। जिन लोगों ने विनयपत्रिका नहीं पढ़ी, उनकी जानकारी के लिए हम उस पद के कुछ अंश नीचे लिखते हैं—

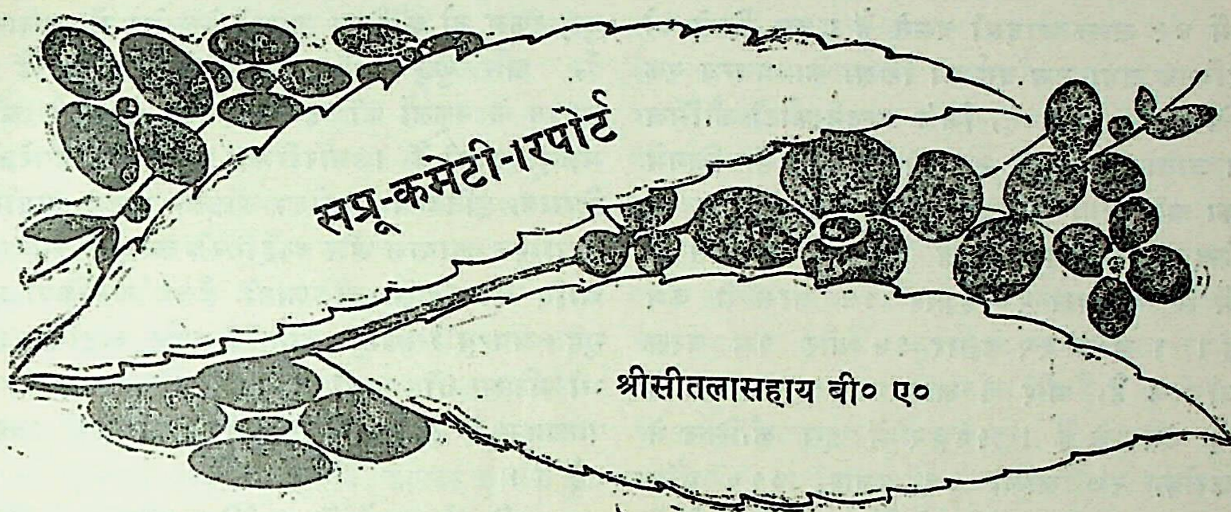
राम कहत चलु राम कहत चलु
राम कहत चलु भाई रे ।
नाहीं तो भव बेगार में परिहौ
छूटत अति कठिनाई रे ।
....
विषम कहार मार मदमाते
चलहिं न पाँव बटोरा रे ।
मंद विलंद अभेरा दलकन
पाइय दुख झकझोरा रे ।

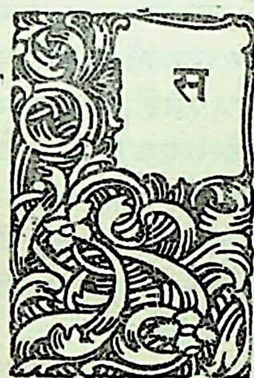
ऐसे ही कवितावली में एक घनाक्षरी का चौथा चरण उसी की समझ में आ सकता है, जिसने पोद्दारी की हो।

और भूप परखि सुलखि तौल ताइ लेत
लसम के खसम तुही पै दसरथ के।

परन्तु सूरदास का ज्ञान और ही ढंग का था। अमीन को अँगरेज़ी में Revenue Officer (माल का हाकिम) कहते हैं। पद में जिस विस्तार के साथ दफ़्तर-दस्तूर दिया हुआ है, वह अमीन ही समझ सकता है।






सप्रू-कमेटी-रिपोर्ट पर हमने "माधुरी" के पाठकों के सामने मई के अंक में कुछ विचार प्रस्तुत किये थे। किन्तु उस लेख में विशेष ध्यान शिक्षा-प्रणाली पर दिया गया था। कहने की आवश्यकता नहीं कि सप्रू-कमेटी-रिपोर्ट बेकारी के प्रश्न पर एक शास्त्रीय और व्यापक ग्रन्थ है। इस रिपोर्ट में इस विषय के क़रीब-क़रीब हर एक पहलू पर विचार किया गया है। मुझे चाहिए तो यह था कि विषय का श्रीगणेश करने के बाद दो-एक अंकों में उसे इतिश्री तक पहुँचा देता, जिससे "माधुरी" के पाठकों के सामने सम्पूर्ण विषय आ जाता, लेकिन अनेक कारणों से आज के पहले यह सम्भव नहीं हो सका। यह लेख पाठकों के प्रति अपने उस कर्तव्यपालन का प्रयत्न है।

सप्रू-कमेटी, पाठक जानते हैं, युक्त-प्रान्त में शिक्षित वर्ग में बेकारी के कारण और उसके मिटाने के उपाय खोज निकालने के लिए गवर्नमेण्ट द्वारा बनाई गई थी। इस कमेटी ने यही नहीं कि अपने इस कर्तव्य का सफलता से पालन कर लिया हो, उसने अनेक महत्त्वपूर्ण और दुष्प्राप्य सूचनाएँ, आँकड़े और विचार हमारे सामने रक्खे हैं, जिनका उल्लेख विषय को अच्छी तरह समझ सकने के लिए ज़रूरी है।

पिछले लेख में हम देख चुके हैं कि भारत में शिक्षा का प्रबन्ध कैसा है, उसके गुण और दोष क्या हैं, और सप्रू-कमेटी की राय में उसका सुधार कैसे किया जा सकता है। इस लेख में अगर उसी के मुक़ाबले हम लंदन की शिक्षा-प्रणाली का संक्षेप हाल जान लें तो मुनासिब हो है। डाक्टर सर तेजबहादुर सप्रू ने लन्दन की शिक्षा-प्रणाली के सम्बन्ध में एक स्वतंत्र नोट ही रिपोर्ट के साथ प्रकाशित किया है।

कमेटी ने बेकारी मिटाने के लिए अनेक साधन बताये हैं। कमेटी के विद्वान् सभासदों ने इस रोग के निदान और उपचार के विषय में स्वतंत्र नोट भी लिखे हैं। इनका संक्षेप अवलोकन हमें कर लेना चाहिए। रिपोर्ट के अन्त में डाक्टर गिरिवरसहाय द्वारा संकलित कुछ आँकड़े और उन पर डाक्टर महोदय की स्वयं अपनी टिप्पणी बहुत दिलचस्प है। पाठकों के सामने उसे उपस्थित किये विना विषय की पूर्ण विवेचना नहीं हो सकती।

लन्दन-कौंटी की शिक्षा-प्रणाली

लंदन का ज़िला ११७ वर्गमील का है और



इसमें ४५ लाख आदमी बसते हैं। इस ज़िले की प्रारम्भिक तथा उच्च वर्ग की शिक्षा का प्रबन्ध एक कौंसिल द्वारा होता है, जिसे लन्दन-कौंटी-कौंसिल कहा जाता है। उसमें ५० मेम्बर होते हैं, जिनमें ५ का स्त्री होना अनिवार्य है। इस कौंसिल की देखरेख में ६ लाख छात्र शिक्षा प्राप्त करते हैं, इनमें से ६ लाख २० हज़ार १४ बरस से कम के हैं। १ लाख ३२ हज़ार १४ और १८ बरस के बीच के हैं, और १ लाख ४६ हज़ार १८ से ज़्यादा उमर के हैं। १९३२ में इस कौंसिल ने १ करोड़, २७ लाख, ७६ हज़ार, ७१० पौंड शिक्षा पर ख़र्च किया था, जो हिन्दुस्तानी सिक्के में १७ करोड़ ८० लाख रुपये के क़रीब होता है। इस ख़र्च का ३५% गवर्नमेंट देती है, बाक़ी का बहुत ज़्यादा हिस्सा स्थानीय टैक्स से आता है। विद्यार्थियों से फ़ीस के तौर पर वसूल की हुई रक़म बहुत कम होती है।

इस स्थल पर यह नामुनासिब न होगा, अगर हम इसके मुक़ाबले में भारत-गवर्नमेंट का शिक्षा-सम्बन्धी ख़र्च जान लें। १९३२-३३ में सम्पूर्ण ब्रिटिश-भारत में गवर्नमेंट ने शिक्षा के लिए १५ करोड़ ४० लाख ख़र्च किया था। कुल ख़र्च २५ करोड़ ७८ लाख था; अर्थात् ४४% गवर्नमेंट ने दिया था। १५·८ प्रतिशत म्युनिसिपल-बोर्ड और डिस्ट्रिक्टबोर्ड ने, और २४·४ फ़ीस से वसूल हुआ है। बाक़ी १५·८ प्रतिशत अन्य ज़रियों से संगृहीत हुआ है। प्रति छात्र का ख़र्च इस हिसाब से २१—२—५ पड़ता है; ६ रुपया ५ आना गवर्नमेंट देती है, ३—५—५ म्युनिसिपल और ज़िला-बोर्ड, ५—२—८ फ़ीस से वसूल होता है और ३—५—४ अन्य स्रोतों से। लन्दन ज़िला-कौंसिल का ख़र्च १९८) प्रति छात्र है, जिसमें गवर्नमेंट की सहायता ८०) की है।

लन्दन में ५ बरस से १४ बरस तक के बालकों और बालिकाओं के लिए शिक्षा अनिवार्य है। प्रारम्भिक शिक्षा के वास्ते इसलिए बहुत स्कूल हैं। कुछ स्कूल तो कौंसिल अपनी देख-रेख में चलाती है, और कुछ को पादरी लोग चलाते हैं। लन्दन के स्कूलों की इमारतें साफ़-सुथरी और मज़बूत होती हैं। प्रारम्भिक स्कूलों में अँगरेज़ी, हिसाब, इतिहास, भूगोल, साइंस, ड्राइंग, संगीत, शारीरिक व्यायाम और बढ़ईगिरी, लोहारी, सोनारी आदि की शिक्षा दी जाती है। लड़कियों को गृह-प्रबन्ध सिखाया जाता है और बाइबिल की भी शिक्षा दी जाती है। प्रारम्भिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में कोई भी विदेशी भाषा नहीं रक्खी गई है।

प्रारम्भिक स्कूलों में शारीरिक व्यायाम के लिए ख़ास वर्ग खोले गये हैं, जिनमें छात्रों के स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए विशेष कसरतें बताई व कराई जाती हैं। खेल और पढ़ाई साथ-साथ चलाने का प्रयत्न किया जाता है। गुंजान बस्तियों से लड़कों को खुले स्थानों में बाहर ले जाते हैं, जहाँ वे दिन भर या आधे दिन खेल-कूद में बिताते हैं। लन्दन की शिक्षा में ख़ास बात यह है कि वहाँ खेल संगठित हुआ करते हैं।

संगठित और असंगठित खेल में भेद होता है। हमारे देसी खेल, जो आजकल प्रचलित हैं, ज़्यादातर अकेले किये जाते हैं। जैसे कुश्ती, डंड, बैठक, दौड़, तैरना इत्यादि। इनका पण्डित अपनी व्यक्तिगत प्रवीणता का ही परिचय देता है। संगठित खेल संगठन-शक्ति की उन्नति करते हैं और इनका पण्डित अपनी संगठन-कुशलता का परिचय देता है। लंदन की शिक्षाप्रणाली में ख़ास बात यह है कि वहाँ के खेल संगठन-शक्ति को उत्तेजित करते हैं। प्रसिद्ध अँगरेज़ सेनापति ने सच कहा था—"मैंने वाटरलू-युद्ध की विजय का पाठ खेल के मैदान में सीखा था।"

लन्दन के प्रारम्भिक स्कूलों में स्कूल के लड़के-लड़कियों के स्वास्थ्य का बहुत काफ़ी ध्यान रक्खा जाता है। लन्दन में और अन्य शहरों में भी अनेक ऐसे बच्चे हैं, जो दरिद्रता या



घर की कुव्यवस्था के शिकार होते हैं। कौंसिल इन बच्चों को दरिद्रता और दुर्व्यवस्था के दुष्परिणामों से हर प्रकार बचाती है। जो लड़के भोजन के अभाव के कारण शिक्षा से फ़ायदा उठा नहीं पाते, उन बच्चों के लिए कौंसिल भोजन-वस्त्र का इन्तज़ाम करती है।

क़ानून ने कौंसिल के ऊपर यह ज़िम्मेदारी डाल रक्खी है कि वह प्रारम्भिक स्कूलों में पढ़नेवाले लड़कों की तन्दुरुस्ती का मुनासिब इन्तज़ाम करे। इसलिए कौंसिल की ओर से पूरे वक़्त और आधे वक़्त के डाक्टर, नर्स या दाँत के डाक्टर छात्रों की स्वास्थरक्षा के लिए नौकर रक्खे जाते हैं। अगर किसी विद्यार्थी को कोई ख़ास बीमारी है तो विशेषज्ञ बुलाया जाता है। जिन लड़कों की आँखें ख़राब हो गई हैं, नज़र कमज़ोर हो गई है, कव्वा बढ़ आया है, अडीनायड है, दाँत खोखले पड़ गये हैं, दाद हो गई है या इसी प्रकार की छोटी-छोटी बीमारियाँ हैं, वे स्कूल के चिकित्साकेन्द्र की ओर से मुफ़्त दवा पाते हैं।

लन्दन में क़रीब ६० इस प्रकार के डाक्टरी केन्द्र खुले हैं। प्रतिवर्ष इन केन्द्रों द्वारा २ लाख ६० हज़ार बच्चों का इलाज होता है।

दरिद्र और पंगु छात्रों की शिक्षा

ऐसे लड़कों के लिए, जो किसी शारीरिक या मानसिक दोष के कारण साधारण प्रारम्भिक शिक्षालयों से लाभ नहीं उठा सकते, ख़ास स्कूल खोले गये हैं। अंधे लड़कों के लिए स्कूल अलग हैं, पंगुओं के लिए अलग, और मानसिक निर्बलों के लिए अलग। जिन लड़कों के हृदयरोग है, या रक्त की कमी है, जो बहरे या क्षयरोगी हैं, उनके लिए भी जुदा-जुदा स्कूल खुले हुए हैं। जो लड़के अंगविकार या अंगहीनता के कारण स्कूल को आ-जा नहीं सकते, उनके लिए कौंसिल की तरफ़ से मोटरलारी का इन्तज़ाम है। स्वस्थ लड़कों को "गाइड" लोग घर से स्कूल बुला लाते और स्कूल से घर पहुँचा आते हैं। कौंसिल ही इन लड़कों के ट्राम या बस का किराया भी देती है। जो स्कूल विकृतांग बालकों या बालिकाओं के लिए हैं, उनमें एक नर्स भी रहती है। रक्तहीन या क्षयरोग से पीड़ित लड़कों के लिए खुली हवा में शिक्षा दी जाती है।

खुली हवा के स्कूलों में बच्चों को दिन में तीन दफ़ा भोजन दिया जाता है। दोपहर के खाने के बाद आराम देते हैं। छात्रों के माता-पिता अपनी आमदनी के अनुसार ही फ़ीस देते हैं। खुली हवा के अनेक छात्रालय भी खुले हुए हैं। इनमें छात्रों को महीने या डेढ़ महीने तक के लिए रखते हैं। स्कूल का डाक्टर जिस छात्र का स्वास्थ्य ख़राब होते हुए देखता है, उसे इन खुली हवा के छात्रालयों में भेज देता है। कौंसिल इनका आमदरफ़्त का ख़र्च देती है। डाक्टरों की राय के अनुसार छात्रों को भोजन मिलता है और इलाज होता है। छात्र के संरक्षक अपनी आमदनी के अनुसार जो सहायता मुनासिब होती है, देते हैं।

कौंसिल की ओर से ग़रीबों के लिए अलग स्कूल खुले हैं, जिनकी संख्या २१ है। ज़्यादातर ये स्कूल लन्दन-नगर से बाहर हैं। इन स्कूलों में छात्रों के पढ़ने - लिखने, खाने-पीने अर्थात् सारी चीज़ों का इन्तज़ाम कौंसिल की तरफ़ से होता है।

शिशु-गृह

लन्दन की कौंसिल ने शिशुओं के लिए भी १५ स्कूल खोले हैं। तीन का इन्तज़ाम तो कौंसिल ख़ुद करती है और १२ स्कूलों को आर्थिक सहायता देती है। इन स्कूलों में २ बरस के बच्चे भर्ती किये जाते हैं और पाँच बरस तक रक्खे जाते हैं। इन स्कूलों का उद्देश्य यह है कि बच्चों में अच्छी आदतें पैदा कराई जायँ, उनमें सफ़ाई का ख़याल उत्पन्न हो, उन्हें खाने-पीने के समय की स्वच्छता और शिष्टाचार का ज्ञान हो जाय, उनकी भाषा में स्पष्टता और विनय आ जाय और छात्र दूसरों के भावों के प्रति आदर दिखाना सीख लें। ये स्कूल ज़्यादातर ग़रीब मुहल्लों के



पास खोले गये हैं। इन स्कूलों में भोजन स्कूल की ओर से दिया जाता है। बहुत-से स्कूलों में नाश्ता और चाय भी दी जाती है। इन स्कूलों के शिशुओं को डाक्टर बराबर देख-रेख करता है। माता-पिता अपनी आमदनी के अनुसार ही फ़ीस देते हैं।

छात्र-सेवा-कमेटी

लन्दन में Care Committee नाम की १२ कमेटियाँ क़ायम हैं। इनके सभासद और कार्यकर्ता सेवाभाव से काम करते हैं और अपने परिश्रम के लिए पैसे नहीं लेते। ये कमेटियाँ कौंटी-कौंसिल की देख-रेख और मातहती में ही काम करती हैं। कौंसिल दरिद्र बच्चों के भोजन और समस्त छात्रों के स्वास्थ्य का प्रबन्ध इन्हीं कमेटियों के ज़रिये से कराती है। कमेटी अपना यह कर्तव्य समझती है।

इस कमेटी का काम यह है कि लन्दन भर के स्कूलों में से ऐसे बच्चों को चुनती रहे, जिन्हें घर पर काफ़ी खाना नहीं मिलता। कमेटी इसके बाद प्रत्येक ऐसे छात्र के भोजन का इन्तज़ाम कर देती है और जब तक उस छात्र के माता-पिता की आर्थिक दशा ऐसी नहीं हो जाती कि बच्चे के खाने-पीने का भार उठा सके, कमेटी ही खाने-पीने का इन्तज़ाम करती रहती है। जब लड़के शिक्षा समाप्त करके जीवन में पदार्पण करना चाहते हैं, यह कमेटी अपनी अनुभवसिद्ध सलाह और प्रभाव से उन्हें रोज़ी-रोज़गार से लगाने में सहायता देती है।

माध्यमिक और उच्च शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा की ज़िम्मेदारी भी लन्दन कौंटी-कौंसिल पर ही है। यह कौंसिल इस कार्य के लिए या तो स्वयं स्कूल खोले हुए है, या पब्लिक के खोले हुए स्कूलों को आर्थिक सहायता देती है। इन स्कूलों में अनेक लड़कों को वजीफ़ा दिया जाता है। कुछ फ़ीस भी देते हैं। पाठ्यक्रम में अँगरेज़ी तो है ही, धर्मशिक्षा, फ़्रेंच भाषा, गणित, विज्ञान, इतिहास व भूगोल, कला, संगीत, शारीरिक शिक्षा, गृहविज्ञान आदि विषय पढ़ाये जाते हैं। अनेक स्कूलों में जर्मन भाषा पढ़ाई जाती है, कुछ में ग्रीक, और कुछ में स्पेनिश। कुछ स्कूलों में व्यापारिक शिक्षा का भी प्रबन्ध है।

उच्च शिक्षा अर्थात् यूनीवर्सिटी की शिक्षा कौंसिल की मातहती में नहीं होती। यूनीवर्सिटियों को कौंसिल की ओर से केवल आर्थिक सहायता दे दी जाती है।

व्यापारिक शिक्षा

किन्तु व्यवसाय और व्यापार के प्रत्येक अंग की शिक्षा ही लन्दन की शिक्षा-प्रणाली का मुख्यांग है। लन्दन में या ग्रेटब्रिटेन में जो व्यवसाय ख़ास तौर से चलते हैं, उनके सम्बन्ध में शिक्षा का प्रबन्ध विशेष रूप से किया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कपड़े, लोहे आदि का काम तो सिखाया ही जाता है, लन्दन में छपाई और छापेख़ाने का काम सिखलाने के लिए भी स्कूल खुले हैं और थवई का काम और इमारत के बनाने की कला सिखाने के लिए भी स्कूल हैं। यहाँ तक कि खाना बनाने और ख़िदमतगारी सिखाने के लिए भी स्कूल मौजूद हैं। लड़कों के स्कूल अलग और लड़कियों के अलग होते हैं। लड़कों को इंजीनियरी, जहाज़ चलाना, गाड़ी बनाना, बढ़ईगिरी, किताब छापना, फ़ोटोग्राफ़ी, सोनारी, बावर्चीगिरी, बाल सँवारना, बाजे बनाना, दरज़ीगिरी, मोची का काम इत्यादि इत्यादि सिखाया जाता है।

१३ या १४ बरस के लड़के इन स्कूलों में लिये जाते हैं। तीन बरस के अन्दर काम सिखाकर उन्हें पास कर देते हैं।

लड़कियों को कपड़े बनाना, क़सीदे का काम, फ़ोटोग्राफ़री, बावर्चीगिरी और गृहस्थी में सेवा का काम सिखाया जाता है। इनका पाठ्यक्रम दो बरस में ख़तम हो जाता है।

इनके अलावा अनेक साहित्य-संस्थाएँ हैं, जिनमें प्रौढ़ मनुष्य जाते हैं। इनमें साहित्य, इतिहास



कला और प्राकृतिक विज्ञान की शिक्षा दी जाती है। ऐसी भी संस्थाएँ हैं, जिनमें बेहुनर लोगों को हुनर सिखाये जाते हैं। १८ बरस के ज़्यादा उमरवाले लोगों के लिए संस्थाएँ अलग हैं और कमवालों के लिए अलग। इन संस्थाओं में खेल-कूद, व्यायाम और क्लब के जीवन के लिए भी इन्तज़ाम रहता है, ताकि लोग खेल-कूद और सामाजिक जीवन की लालच से प्रेरित होकर आवें। स्त्रियों और लड़कियों के लिए जो संस्थाएँ हैं, उनमें गृहस्थी चलाने की शिक्षा दी जाती है। साहित्य और इतिहास के पढ़ाने का भी इन्तज़ाम रहता है। (मि० M. L. Brooks के नोट के आधार पर सप्रू-कमेटी-रिपोर्ट ३०७-३२२ पृष्ठ)

लेख बढ़ता जा रहा है और मुझे यह संभव नहीं मालूम होता कि मैं इसी लेख में डाक्टर सप्रू की कमेटी की सारी बातों का समावेश कर सकूँगा, इसलिए डाक्टर गिरिवरसहाय द्वारा संगृहीत आँकड़ों का नक़शा देकर तथा उन आँकड़ों के विषय में उनकी राय प्रस्तुत करके यह लेख समाप्त करूँगा। कमेटी की सिफ़ारिशें और उनकी समालोचना अगले लेख में पाठकों के सामने पेश करूँगा।

सनसनीदार आँकड़े

साथ का चित्र सप्रू-कमेटी-रिपोर्ट के ३९५ पृष्ठ से उद्धृत किया हुआ है। तीसरे और चौथे स्तंभों के निरीक्षण से पता चलता है कि कितने कार्यकर्ता कृषि से और कितने व्यवसाय से रोज़ी कमाते हैं। तीसरे से दसवें स्तम्भ तक के आँकड़े देखने से विदित होता है कि हिन्दुस्तान की व्यावसायिक उन्नति काफ़ी नहीं हुई है। हिन्दुस्तान व्यावसायिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ देश है और "अति-कृषक" देश बन गया है।

"अगर हिन्दुस्तान में व्यावसायिक उन्नति हो जाय तो इससे केवल यही नहीं कि बेकारी की समस्या हल हो जायगी, बल्कि राष्ट्रीय आमदनी बढ़ेगी और राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था दृढ़ और संतुल्य (Well-balanced) आधार पर स्थिर हो सकेगी। भारत में कार्यकर्ताओं में से १९·८ प्रतिशत इस समय व्यवसाय में लगे हैं। यह मात्रा आसानी से बढ़ाकर ३० प्रतिशत की जा सकती है; क्योंकि इस देश में कच्चा माल काफ़ी मात्रा में पाया जाता है और स्वदेशी बाज़ार भी बहुत विस्तृत है। अगर देश में सुचारु रूप से व्यावसायिक संगठन हो तो एक करोड़ आदमी और रोज़गार से लगाये जा सकते हैं और इस प्रकार ज़मीन पर जो बोझ है, वह कम हो सकता है।" (पृष्ठ ३९७) स्तम्भ ६ और ७ के देखने से मालूम होगा कि भिन्न-भिन्न देशों की व्यावसायिक उपज कितनी है। इन स्तम्भों से यह भी ज़ाहिर हो जाता है कि हिन्दुस्तान की व्यावसायिक उपज कितनी कम है। आवश्यकता इस बात की है कि छोटे, बड़े और मध्यवर्ग के समस्त राष्ट्रीय व्यवसाय अधिक तेज़ी के साथ और सुचारु रूप से उन्नत किये जायँ और हिन्दुस्तानी कार्य-कर्ताओं को बेहतर शिक्षा और ट्रेनिंग देकर उन्हें अधिक कुशल और योग्य बनाया जाय। इस तरीक़े से ही हमारी व्यावसायिक उपज ज़्यादा हो सकती है। आठवें स्तम्भ से प्रति मनुष्य हमारी अत्यन्त निम्न राष्ट्रीय आमदनी प्रकट होती है, जिसे बढ़ाना बहुत आवश्यक है। यह तभी हो सकता है, जब इस देश की विशाल सम्पत्ति का, जो देश के मनुष्यों और देश की प्राकृतिक सामग्रियों में छिपी हुई है, बेहतर आर्थिक संगठन हो। नवें और दसवें स्तम्भ में, बने हुए माल का इस देश में आयात और कच्चे माल का इस देश से निर्यात दिया गया है। इन अंकों से भी ज़ाहिर होता है कि इस देश में बाक़ायदा व्यावसायिक उन्नति के लिए स्वदेश के अन्दर ही अपने यहाँ के कच्चे माल को तैयार माल बना देने की कितनी सख़्त ज़रूरत है। ११ से १६ तक के स्तम्भ इस बात को ज़ाहिर करते हैं कि हिन्दुस्तान सड़क और रेल के सम्बन्ध में, स्वास्थ्य में और शिक्षा में कितना पीछे पड़ा हुआ है। अगर हम इस देश में,

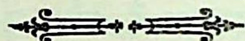


जिसमें ७ लाख गाँव हैं, मनुष्य-जीवन को रहने के योग्य बनाना चाहते हैं तो हमें उपर्युक्त बातों के सम्बन्ध में और साथ ही साथ ग्राम्यसुधार, को-आपरेटिव और कृषि के बारे में अधिक उदार नीति का तुरन्त और तेज़ी के साथ पालन करना होगा। (सप्रू-कमेटी-रिपोर्ट पृष्ठ ३९७)

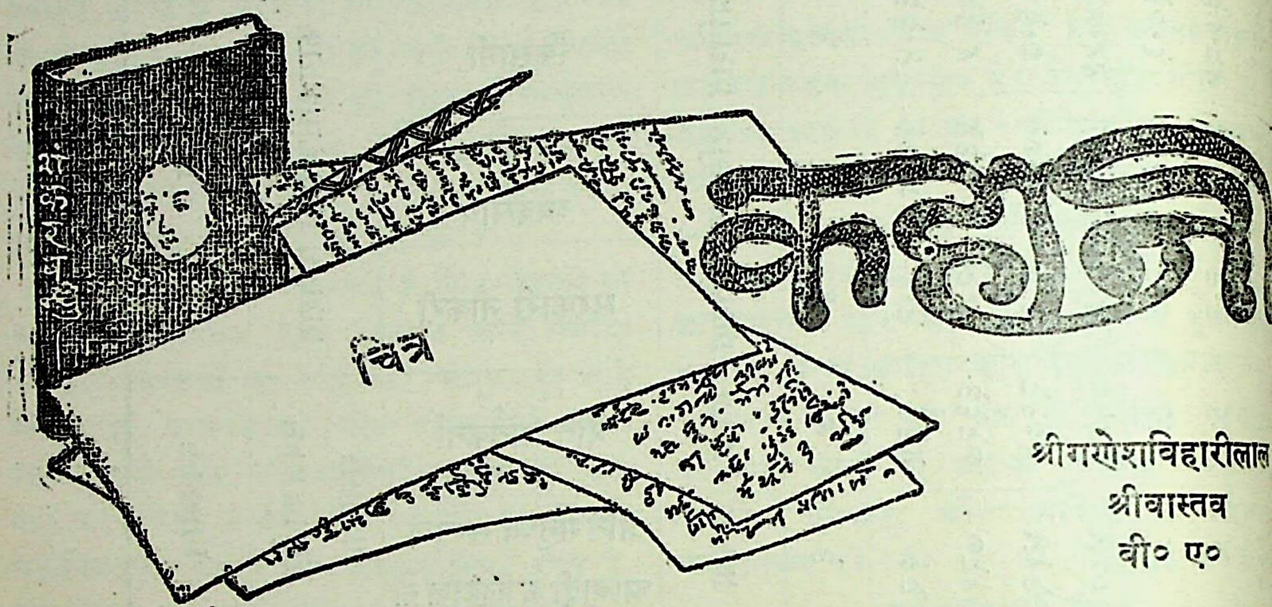
डा० गिरिवरसहाय लिखते हैं कि "बेकारी की समस्या निस्सन्देह बहुत विशाल और पेचीदा है और व्यक्तियों का कोई भी समूह, वह चाहे कितना ही प्रभावशाली और योग्य क्यों न हो, इस बहुमुखी और क्षोभकारिणी समस्या को हल नहीं कर सकता। अर्वाचीन गवर्नमेंट ही, जिसके अख़्तियारात, प्रभाव और ज़िम्मेदारियाँ प्रचुर हैं, इस समस्या का मुनासिब निबटारा कर सकती है।

"बेकारी का बीमा तथा बेकारों की भलाई की अनेक योजनाएँ यद्यपि आवश्यक और लाभ-दायक हैं, लेकिन सबकी-सब एकांगी हैं और जो विकट सवाल हमारे सामने हैं, उनको हल करने के नाक़ाबिल हैं। बीमारी की तरह बेकारी के भी मिटाने का तरीक़ा यही है कि इसके मौलिक कारणों को नष्ट किया जाय। स्थिति को ज्यों की त्यों छोड़ देना राजनीतिक और आर्थिक गुणों के बीज बोना है। जान स्टुअर्ट मिल के शब्दों में 'गवर्नमेंट अपराधियों को, जब कि वे जेल में होते हैं, खाना देने पर विवश होती है। अगर वह ग़रीबों को खाना नहीं देती, जिन्होंने कोई जुर्म नहीं किये तो वास्तव में वह अपराध को प्रोत्साहन देती है।' गवर्नमेंट, जो अपनी प्रजा के शरीर और माल पर अधिकार का दावा करती है, प्रजा को भोजन और काम देने के लिए भी ज़िम्मेदार है।" अन्त में डाक्टर गिरिवरसहाय का मत है कि "बेकारी का असली कारण यह हुआ करता है कि देश की आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्गत कार्यकर्त्ताओं और पेशों का सहयोग और तारतम्य नष्ट हो जाता है। बेकारी वास्तव में आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में दूषित व्यवस्था का केवल दूसरा नाम है। जैसा सर आर्थर स्लाटर ने कहा है, 'बि[ना] आर्थिक कुव्यवस्था के मौजूद हुए कार्यकर्त्ताओं [का] फ़ाज़िल पड़ना असम्भव है। जैसी मुद्रानीति हो[गी,] वैदेशिक व्यापार की कर-नीति होगी, व्यापारि[क] नीति होगी, बेकारी भी उसी के अनुरूप रहेगी।'

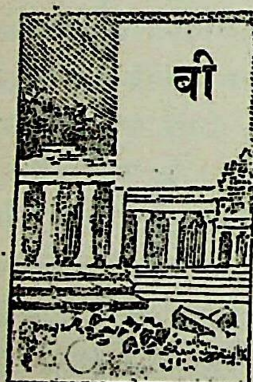
"सच बात तो यह है कि अगर किसी देश [में] आर्थिक सुव्यवस्था क़ायम रखना है तो उस [देश] का आर्थिक और सामाजिक जीवन इस प्रक[ार] संगठित करना चाहिए और ऐसा इन्तज़ाम रख[ना] चाहिए, जिससे उस देश के समस्त रहनेवा[लों] को काम करने का बराबर अवसर मिले [और] सम्पत्ति, अवकाश और परिश्रम का विभा[जन] न्यायानुकूल हो।" (पृष्ठ ३९६)



नाम देश	पेशा			व्यवसाय		प्रति मनुष्य राष्ट्रीय आय	प्रतिशत		शिक्षा	सार्वजनिक स्वास्थ्य			१० हज़ार आबादी पर	
	कार्यकर्ताओं का प्रतिशत			उपज का नेट मुनाफ़ा						सम्पूर्ण आबादी का (हज़ार आदमियों में)				
	किसानी	व्यापार व व्यवसाय	सरकारी नौकरी	प्रति कार्यकर्ता	प्रति मनुष्य सम्पूर्ण आबादी के लिहाज़ से		बना हुआ माल सम्पूर्ण आयात का कौन अंश है	कच्चा माल सम्पूर्ण निर्यात का कौन-सा अंश है		मृत्यु	जन्म	जीवनावधि वर्षों में	रेलवे मील	सड़क मील
	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	रुपया	रुपया	रुपया	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रति हज़ार	प्रति हज़ार	वर्ष	मील	मील
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
हिन्दुस्तान	६६·४	१६·८	१·२	२६५	१२	८२	७१	४१·७	८·५	२४·५	३२·९	२६·७	१·२	७
अमेरिका	२१·५	५६·२	२·२	६३२७	७२१	२०५३	२७	४१	७४·५	११·३	१८·९	५६·४	२१·२	२४५
ग्रेटब्रिटेन	६·७	६७·९	५·९	२५००	४१२	१०९२	२२	१६·२	७६·१	१२·५	१६·३	५७·६	४·६	४१
कनाडा	२७·५५	४२·६	२·९	७६४७	४७०	१२६८	५९	२५·६	७१·६	१०·७	२३·९	×	×	×
जर्मनी	३०·३	५७·७	२·०	×	×	×	१६	१७·९	८०·५	११·१	१७·५	४९·०४	×	×
फ़्रांस	३७·८५	५०·३	२·२	×	×	६३६	१९	२३·३	८०·१	१६·३	१७·४	५०·५	×	×
जापान	४८·३	३९·७	७·०	१७६१	१५८	२७१	१४	४३·७	७१·७	१८·१७	३२·३५	४५·५	×	×



श्रीगणेशविहारीलाल
श्रीवास्तव
बी० ए०



सवीं शताब्दी के चमत्कारों में से एक चमत्कार है विना कूची और रंग के स्वतः ही, पलमात्र में, चित्र का उतर आना। कुर्सी पर विश्राम के साथ बैठे, कलाकार ने बंदर की भाँति आँखें नचाकर, एक काले-से संदूक़ के भीतर से—जो तीन टाँग की कुर्सी पर रख दिया गया था, निहारा। चमकते हुए शीशे चित्र उतरवानेवाले की ओर किये गये। सिर पर काला कपड़ा डालकर कलाकार ने न-जाने क्या-क्या किया, फिर सावधान रहने की चेतावनी, तब खटाक-जैसा स्वर—और बस, चित्र उतर गया।

हाँ, वास्तव में चित्र उतर गया।

× × ×

"पाठशाला से आज इतनी शीघ्र कैसे आ गये ?"

"पिताजी ! नगर की प्रदर्शनी के उपलक्ष में आज समय से पूर्व ही छुट्टी हो गई। आप भी तो चलिएगा न ?"

इसी समय सहसा खटाके के साथ द्वार खुला और वायुवेग के साथ आवाज़ आई—

"चल रहे हो, क्यों ?"

"हाँ ! बस पिताजी की आज्ञा लेनी है।"

आज्ञा मिल गई और तभी लपकते हुए अदम्य उत्साह से प्रदर्शनी पहुँचे। मार्ग में क्या कौतुक हुए, उसका निराकरण करने की फ़ुरसत ही नहीं। अवस्था बहुत थोड़ी है। हो पाठशाला के एक ही कक्षा के विद्यार्थी बात भी बहुत ही पुरानी हो चली है।

प्रदर्शनी की बहार—अपार भीड़—

"हाथ पकड़ लेना चाहिए, ऐसा न हो से कोई खो जाय।"

चारों ओर कोलाहल बेढब शब्द ! अपने-अपने विज्ञापन में लगे हैं। समीप ही रेलगाड़ी का शब्द भी आ रहा है, मानों वह अपना प्रदर्शन करा रही है। असंख्य दूकानों एक-एक नज़र देखते हुए हठात्—

कंधे को झकझोरते हुए कहा—"देखा तु वहाँ क्या हो रहा है चलो हम भी वहीं चलें

—और तब उसी उत्साह से दोनों वहाँ प जहाँ एक पुरुष अद्भुत ढंग से अल्पकाल चित्र उतारकर दे रहा था। साइनबोर्ड से चला कि वह दिल्ली से आया था। उसके



अनेक चित्र थे, जो उसने इधर-उधर लटका रक्खे थे।—यह सम्राट् का चित्र है, यह वाइसराय का। इधर मिस जानकी बाई और गौहरजान के चित्र थे तो उधर अन्य शौक़ीनों के—चारों ओर चित्र! चित्र!! चित्र!!!

"आओ हम भी चित्र उतरवा लें, ।।।) में बुरे तो नहीं हैं। पिताजी को दिखावेंगे।"

"मगर मुझे तो डर लगता है।"

"हैं! डर की क्या बात है, सभी तो खिंचवा रहे हैं।"

भला ऐसे वातावरण का प्रभाव पड़े बिना किस प्रकार रह सकता था और अंत में सभी ने देखा कि दोनों प्रसन्नता से घर की ओर उड़े चले जा रहे हैं, मानों स्वर्ग से गिर पड़े हों—हाथ में था दोनों का एक ही साथ उतरवाया हुआ चित्र।

इस समय तक जीवन, मरण, दुख, सुख इत्यादि सांसारिक गहन भावानुभावों से ये बच्चे परे थे—अत्यंत परे!!

× × ×

काल के वज्र एवं कठोर हाथों ने न-जाने कितने वर्षों के कलेंडरों को इस बीच नोच-नाचकर अलग कर दिया। अनेक! अनेक!! अनेक वर्षोपरांत!!!

दीपावली का शुभ त्योहार, घर की सफ़ाई में सभी तो रत हैं। एक ओर श्रीमतीजी झुँझला रही हैं—जैसे जीवन भर की सारी झुँझलाहट आज ही समाप्त कर देंगी। चेहरा तमतमाया हुआ है, प्रस्वेद की बूँदें झलक रही हैं। दोनों हाथ कार्य में व्यस्त हैं। कभी-कभी कुछ अस्फुट स्वर भी मुँह से निकल जाते हैं। कमरे के बाईं ओर जो टाँड है, उसी पर बाँस की सीढ़ी के सहारे चढ़कर बैठ गई हैं और न-जाने कितने पुराने दलिद्दर को निकालने के लिए जैसे कमर कस ली है और जैसी स्वयं हैं, वैसा ही सतीश को बनाने का भी प्रयत्न किया है—दोनों माता-पुत्र एक ही राह के राही हैं। एक बहुत ही पुराने कपड़े में बँधे हुए गट्टर को ऊपर से नीचे फेंकने में सारी शक्ति लगा दी है और वह एक मर्मांतक स्वर करता हुआ जैसे ही नीचे गिरा, ठीक वैसे ही एक मंद मुसकान के साथ विजयपूर्ण स्वर भी ऊपर से सुनाई दिया—निकल दलिद्दर लच्छमी आईं।

—और गट्टर नीचे आकर खुल गया, उसकी समस्त वस्तुएँ छिन्न-भिन्न होकर फैल गईं।

सतीश को जैसे मुँहमाँगी मुराद मिली। छोटा-सा बालक। अवस्था पाँच वर्ष से अधिक नहीं, बड़े चाव से जल्दी-जल्दी रद्दी बटोरने में लग गया—माता की आज्ञा थी। शाम को बिक्री करने के पश्चात् पैसे जो घर में आ जावेंगे। तभी तो उसके लिए तीन पहियों की साइकिल आवेगी। माता के इसी वचन पर तो वह इतनी मुस्तैदी से काम कर रहा है। तब सारे महल्ले भर में लड़कों के बीच से वह इस प्रकार अकड़कर चलेगा। तभी उसके हाथ में एक पुरानी-सी मोटी किताब पड़ी। अक्षर-ज्ञान किंचिन्मात्र भी न होते हुए वह बड़ी गंभीरता से उसे खोलकर इधर-उधर देखता रहा। पुस्तक के सीधी उलटी होने की उसे चिंता नहीं। सहसा पुस्तक के एक स्थान पर स्वतः ही खुलने से जैसे वह चौंक उठा—

"अम्मा!! यह पुस्तक....... अरे और इसमें यह तस्वीर!!!"

माता ने सोचा—अब पुस्तक के देखने के झमेले में कौन पड़े। और वही कौन बहुत पढ़क्कड़ है, जो पुस्तक को समझ जायगी। जब तक उसे देखेगी, दस तरह के काम उस बीच में कर सकती है। बला-सी टाली—

"अपने पिताजी को दिखा ले, काम की न हो।"

राजकुमार कुछ दूर पर बैठे पुरानी चिट्ठियों को छाँट रहे थे। स्वर सुनकर कुछ चौंके—"क्या है रे! देखूँ!!"

छोटे-से सुन्दर बालक ने दौड़कर पुस्तक दे दी और शीघ्र आदेश प्राप्त करने के लिए जैसे मचल-सा पड़ा। अभी उसे बहुत-बहुत काम करना है। रद्दी छाँटकर अभी उसे खिलौने लगाने हैं—कुछ



बाज़ार से भी लाने हैं। बबुआ की टाँग कल टूट गई थी—उसे जोड़ना है—यह करना है, वह करना है और यह तो कुछ जवाब ही नहीं देते—तो अब वह भी खड़ा नहीं रह सकता।

राजकुमार के हाथ में पुस्तक क्या आई, मानो अंतरिक्ष ने सहसा अतीत स्मृतियों का द्वार अलक्षित करों से खोल दिया। कुछ काल तक तो एकटक वह चित्र की ओर देखते रहे, फिर बालक को आश्चर्यान्वित छोड़ पुस्तक और चित्र लिये झपटकर बैठक में चले गये। हृदय में जो अभूतपूर्व संग्राम मच गया था, उसे छिपाना ही उनके लिए श्रेयस्कर था।

बालक चल दिया था। चमकता हुआ प्रफुल्लित-सा चन्द्र, ग्रहण की परिधि में आ चुका था।

× × ×

बैठक में पहुँचकर अन्यमनस्क-से एक कुर्सी पर बैठ गये। चित्र से संबंधित एक बहुत ही पुरानी घटना उन्हें स्मरण हो आई।

राख के अत्यंत नीचे दबी हुई छोटी-सी चिनगारी, गहन प्रभंजन के कारण सुलग चुकी थी—

"आओ हम भी चित्र उतरवा लें, ॥।) में बुरे तो नहीं हैं।"

"मगर मेरा तो दिल डरता है।"

"ऊँह! डर की क्या बात है—सभी तो चित्र खिंचवा रहे हैं" और इसके अगले साल ही....

कितनी कड़ी बीमारी मुझको हुई थी? पिताजी डाक्टर से कह रहे थे—"डाक्टर साहब मेरा इकलौता बचा है। इसे किसी प्रकार बचाओ।" और डाक्टर, जैसे क्रूरता की प्रतिमूर्ति,—सुनेंगे ही नहीं। चश्मे के दोनों शीशों की सफ़ाई—जैसे मिची-मिची आँखों से देखते हुए करना ही, पिताजी के प्रश्न और रोगी के रोग के निदान से अधिक आवश्यक था।

और, अब जो इन नसों में जीवित रुधिर प्रवाहित हो रहा है, यह उसी के शरीर से तो निकाला गया था—मुझे प्राणदान देने के हेतु। ओह मेरे जीवनदायक! सहायक!! ओह ओफ़!! मेरी अवस्था अब ३५-४० के लग है—और एक हट्टा-कट्टा नवयुवक हूँ। औ बच्चा है। परन्तु मुझको यह अवस्था प्रदान का श्रेय........अब राजकुमार अपने-आपको सँभाल सके। मेज़ का सहारा लेकर वैसे ही रहे। इतना कठोर हृदय होने पर भी कुछ कण उन्हें पोंछने ही पड़े। प्रभंजन के पश्चात् होना स्वाभाविक है।

× × ×

भावनाएँ जब जाग्रत् हो जाती हैं और अ होकर गहन हो जाती हैं—जब मनुष्य अतीत स्वर्णिम घटनाओं को वेग से स्मरण करने ल है, उस समय वह वास्तविक जड़मय संसा दूर—बहुत दूर चला जाता है। चेतना-जग फिर उसका संबंध कुछ काल के लिए विलु हो जाता है। घटना-प्रवाह में डूबता-उतराता तो एक ऐसी सृष्टि के समीप पहुँचता है, जिसे अचेतन जगत् कह सकते हैं। जहाँ पर उसे ऐसे दृश्य दिखाई देते हैं, जिन्हें देखकर कभी दारुण दुःख से जल-वर्षा करनी पड़ती है और हास्ययुक्त पुष्पवर्षा—और इन सबका अंतिम णाम होता है—आत्मिक शांति। और बस...

राजकुमार इसी आत्मिक शांति का आनन्द रहे थे। उनको नहीं मालूम कब तक वह संसार में भ्रमण करते रहे। सायंकाल का हुआ। सूर्य देव जैसे रात्रिदेवी के करुण प्र को सुनकर आर्द्र हो उठे और उसको भी भू पर कुछ काल राज्य करने का समय दे दि प्रसन्नता से रात्रि झूम उठी। जगमग-ज आभरणों से शनैः-शनैः उसका प्रवेश होने ल ठीक इसी समय—

सतीश के ऊपर झल्लाती हुई उमा ने बैठ प्रवेश किया और जो दृश्य उसने देखा, उस उसको सहसा विश्वास नहीं हुआ। किवा सहारे ही खड़े होकर उसने फिर ध्यान से दे



फिर देखा—आँखें फाड़कर देखा, मगर वही दृश्य उसके सम्मुख जैसे के तैसे रूप में रहा—राजकुमार मेज़ का सहारा लिये एक विचित्र ढंग से लेटे हैं, नेत्र एकटक दीवार की ओर लगे हैं—और हाथ में है एक चित्र !!! उसकी छाती धक-धक धड़क रही है।

मानव-हृदय बड़ा शंकित होता है। उमाकुमारी ने सोचा, यह चित्र किसका हो सकता है। अब उसका हृदय दैहिक सीमा के भीतर नहीं रहना चाहता। दीर्घ श्वास-प्रश्वास के मारे वह परेशान हो रही है। उसका आनन धीरे-धीरे रक्तवर्ण होता जा रहा है। आँखों में जलन-सी होने लगी है। चाहती है झपटकर चित्र के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। आज दिवाली का शुभ त्योहार। यह तो हुआ नहीं कि घर की सफ़ाई में हाथ बटाते। बाज़ार से सौदा लाने के सिवा और तो कुछ काम जैसे इन्हें करने को था ही नहीं—और वह भी तो कल ही लाकर पटक दिया था। आज दिनभर इन्होंने क्या किया। इनकी बला से काम करते-करते मैं चाहे जियूँ या....। मैं तो भगवान् से मनाया करूँ, सगनौतियाँ उठाया करूँ कि भगवान् इन्हें कब दफ़्तर से छुट्टी मिले। कब साथ-साथ बैठकर हँस-हँसकर बातें करें—इतनी कि फिर पता ही न रहे कि हमारी वास्तविकता क्या है। प्रतिदिन उँगलियों पर गिन-गिनकर तो मैंने दिवाली बुलाई—देवी मैया ने दया दिखाई। और इनका कुछ ठिकाना ही नहीं। जान पड़ता है, मुझसे चित्त ऊब उठा, तभी तो कितने ध्यान से चित्र देख रहे हैं—मुझसे अधिक सुन्दरी है क्या !! तब तो कुछ दिनों बाद—

तभी उसने देखा, जैसे उन्होंने धोती से नेत्र पोंछे।

"इतना प्यार !!! हें।"

उमा की सहनशक्ति अब सीमा के पार हो चुकी थी। धैर्य-प्रवाह ने बाँध तोड़ दिया था। बाघिन की भाँति झपटकर उसने तुरन्त ही चित्र छीन लिया, और आग्नेय नेत्रों से उन्हें देखते-देखते एक क्षण में ही चित्र के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। राजकुमार उस समय तक अपने को सँभाल भी न पाये थे।

शंका उतावलेपन की सहोदरा है। शंकित हृदय में ज्ञान, अज्ञान, कर्तव्य-अकर्तव्य का ध्यान नहीं रहता—और उतावलापन इसका साथ पग-पग पर देता है। इधर शंका हुई, क्रोध हुआ, उधर उतावलेपन ने भी प्रवेश किया, जिसके वशीभूत हो रही-सही ज्ञानसंज्ञा भी लुप्त हो जाती है। और, यह बात बहुधा देखी जाती है कि दुर्बल व्यक्तियों पर ही इनका आक्रमण अधिक तेज़ी के साथ होता है।

× × ×

रात्रि की जगमगाहट में—

सतीश ने माता से दीपक जलाने और रात-भर जागने का कारण पूछा। माता का क्रोध तो सातवें आसमान पर है। उसे इन सब बातों के बताने की फ़ुरसत नहीं है—और वास्तविक बात तो यह है कि वह जानती भी नहीं है। झटककर अलग कर दिया और बोली—हमेशा से ही ऐसा होता आया है।

बालक मुँह फुलाये राजकुमार के पास आ गया। बालक के पास आते ही उन्होंने उमा को पुकारा। राजकुमार को स्त्री की मूर्खता और उतावलेपन पर गुस्सा भी आ रहा था और साथ-साथ दया भी उत्पन्न हो रही थी। उन्होंने फिर पुकारा—उमा ! अब वह उमा नहीं है, जो आज्ञा पाते ही दौड़ आवे। आज उसके हृदय पर गहरी ठेस जो लगी है। एक स्त्री के रहते उन्हें दूसरों के चित्र घूरने से मतलब ! फिर उस पर रोना !! राम....राम !!! उसने सुनकर अनसुना कर दिया। उसको तो आज दीपक जलाना भी दूभर हो रहा था। सोचती थी, कम्बख़्त सबके सब एक साथ ही क्यों नहीं जल जाते।

पूजा का समय हो रहा था। राजकुमार अब



स्वयं उमा के पास आये। उमा के हाथ की जलती हुई दियासलाई उनके आते ही छूट गई। अध-जला दीपक दियासलाई के छूटते ही बुझ गया। श्वास फिर वेग से चलने लगी। सिर का पल्ला जैसे खिसककर नीचे गिर ही जायगा। चेहरा लाल होने लगा है।

आर्द्र कंठ से राजकुमार ने पुकारा 'उमा'। फिर पुकारा—"उमा! जानती हो, वह चित्र किसका था, और तुमने क्या कर डाला!"

उमा अब इन बहानों को नहीं सुन सकती—यही कहेंगे कि वह....वह....तुम्हारे बचपन का था और मैं रो नहीं रहा था। वह तो आँख में कुछ.... नहीं....नहीं....वह कुछ नहीं सुनेगी........"

राजकुमार ने फिर कहा—"देखो, तुमने उतावलेपन से चित्र फाड़कर कितना बुरा काम किया और तब से अब तक मेरी एक बात भी नहीं सुनी—जैसे मुझसे छिपना ही तुम्हारे लिए आज सब कुछ है—वह चित्र था....चित्र था....तुम्हारे भाई....कौशल का"—राजकुमार का कंठ भारी हो चला था।

हैं! भैया का!! भैया का! भैया का!!!

उमा जैसे अब पागल हो जायगी। उसके रोंगटे खड़े होने लगे थे—आँखें फट-सी गई थीं। उसने उसी आश्चर्य-मिश्रित स्वर में फिर पूछा—भैया का!! और तब—

उसको एक बहुत ही पुरानी घटना विद्युत् की चमक की भाँति स्मरण हो आई। तब वह बालिका थी। भैया रोग पर पड़े थे। मृत्यु का सन्नाटा था। डाक्टरों तक ने हताश होकर निराशासूचक उत्तर दे दिया था। मुझ-जैसी मातृ-पितृहीन बालिका का कौन सहायक होगा—यही तो उनके मन में चिंता रह गई थी। तभी तो अंत में उन्होंने इन्हें बुलाया था और........

अश्रु-प्रवाह वेग से जारी हो चुका था। समीप ही बैठे राजकुमार भी रो रहे थे। और बालक वह इन दोनों की दशा को समझने का प्रयत्न करता हुआ टुकुर-टुकुर निहार रहा था।

पूजा का समय और भी निकट आ रहा था।

विस्मृत स्मृति

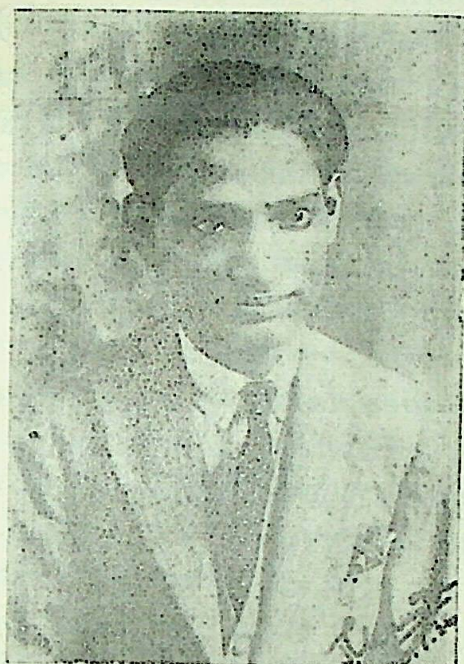
श्रीभगवतीप्रसाद सकलानी

क्षणिक प्रणय में हुआ देवि ! हा
चिर स्वतंत्रता का बलिदान
जाने क्यों उलझे हैं तब से
प्रिय ! मेरे ये आकुल प्राण ? १
यौवन के वे मादक क्षण औ'
यमुना-तट का वेणु-विलास
कैसे अब मैं भूलूँ बोलो—
वे पावन क्षण, वे मधुमास ! २
एक-एक कर सजग हो रहे
मेरी हृद्वीणा के तार
आज भावना सजग हुई फिर
फूट दृगों से विस्मृत प्यार ! ३
आज वेदना फिर से लौटी
बन करके कविता साकार
आज चित्र मैं लगा बनाने
लेकर 'उस' सुध का आधार ४
स्नेह-तूलिका से उस छवि को
चित्रित करके आठो याम
अश्रु-नीर का रंग बनाकर
खींच हृदय-पट पर अभिराम ५
कैसे कर अब चित्रित कर दें
वह पावनतम छवि अनुपम
ढुलका जाते नयन-कलश जब
स्नेह-सलिल का स्रोत परम ६
अरे सुप्ति की आज कल्पना—
उड़ भाषा के पंखों पर
प्रेम-व्योम में विचरण करती—
ज्यों गिरि में उज्ज्वल निर्झर ! ७
प्रिये ! आज तव विरह-ज्वाल में
झुलस रहा जीवन-मधुवन
प्रथम प्रणय की सरस बल्लरी
रह-रह झुलस गई पावन ! ८
प्रथम मिलन का परिचय आली
वह नयनों का सम्भाषण
दो हृदयों के पूर्ण मिलन का
कैसे भूलूँ मैं वह क्षण ? ९
लतिका का जब तरु से प्रेयसि !
हुआ प्रथम था परिरम्भण
पलक-पलक से, पुलक-पुलक से
मिले अधर थे, तन से तन। १०
पर सखि ! आज हुआ वह सपना
पर क्या इक विस्मृत इतिहास ?
जिसके पावन-सुध-अंचल में
ग्रंथित हैं मेरे उच्छ्वास ! ११
कैसे अब मैं विस्मृत कर दूँ
अपने जीवन का आख्यान
देवि ! देख जिनको नयनों में
पढ़ती थीं तुम गीले-गान ! १२
पावस के जलधर द्वारा मैं
भेज चुका सन्देश महान
किस अलका में बैठी विरहिणि,
यक्षबधू-सी सुघर सुजान ! १३
कितने ही कविता-दूतों को
भेज चुका मैं हंस-समान
प्रिय, अपने इस व्याकुल नल का
कब होगा आदान-प्रदान ! १४
हर शत-शत सन्देश मिट गये
आँसू-से सिकता-कण में
मधु के अब तक कई दिवस हा
बीत चुके उर के व्रण में ! १५



दीप-शिखा पर अहो शलभ क्यों ?
उड़-उड़कर जलते चंचल ?
क्यों सखि, पवन सुरभि को लेकर
उड़ती रहती है प्रतिपल ! १६
सरिता सागर के प्राणों में
तार रहे निज उर का भार
झर-झर कर निर्झर आते हैं
करने को सरिता से प्यार ! १७
दिनपति के स्वागत हित आती
प्रकृति लिये फूलों का हार
प्रथम रश्मि के स्वर्ण-पाणि क्यों
लुटा चले हैं स्वर्ण अपार ! १८
करते सब ही इस जग में हैं
निज-निज भावों का विनिमय
अपने सुख-दुख उच्छ्वासों का
हार पिरोते हैं निश्चय ! १९
ओस-बिन्दु से रवि की किरणें
मुक्ताओं से मंजु-मराल
त्यों कलियों से भ्रमरावलियाँ
बिछा रही हैं क्रीड़ाजाल ! २०
चन्द्रोदय के होते ही क्यों
सहसा जाता चहक चकोर ?
पहुँचाकर मेरे अन्तर में
एक वेदना, एक हिलोर ! २१
आज धरा ने फिर से पहना
अपना वासन्ती परिधान
सखि, मेरे उर के नभ में फिर
कब लौटेगा स्वर्ण-विहान। २२
मिलन-अरुण की तरुणाई से
अधर क्षितिज की वह मुसकान
कब लौटेगा उर-वीणा पर
भूला-सा वह मादक-गान ! २३
आमों के इस सघन कुंज में
गाती कोयल मंजुल-गान !
नीरव वन में चरवाहा भी
भरता निज वंशी में गान २४
राकापति की स्वर्ण-किरण क्यों
करती जल से मोद-विहार ?
किस इच्छा से सलिल इन्दु की
देता है तसवीर उतार ? २५
सुमुखि, दौड़ते फिर क्यों जलधर
लिपटाये चपला - चंचल
उसके प्राणों की ज्वाला को
लेकर निज उर के अंचल ! २६
मेरे यौवन-वन के तरु पर
खिले कई भावों के फूल
विरह-वेदना के उसमें क्यों
निकले शत-शत निष्ठुर शूल ? २७
कब सखि मेरी राधा मोहिनि
आवेगी प्राणों के तीर ?
कब नाचेगा वंशी - ध्वनि से
मेरी उर - यमुना का नीर ! २८
हा सखि ! कब मम ग्रीवा पर तुम
झूलोगी बन करके माल ?
कब तव प्राणों का वह स्पन्दन
जानूँगा कस बाहु - मृणाल ! २९
कौन रजनि में तरणि सुकेशिनि,
चन्द्रहास छिटकाओगी ?
अलकों की छाया के नीचे
मलय सुरभि पहुँचाओगी ! ३०

क्षणिक प्रणय में हुआ सुमुखि हा,
चिर स्वतंत्रता का बलिदान
इन दो बिछड़े प्राणों का अब,
कब होगा आदान - प्रदान ? ३१



भारतवर्ष में साबुन का निर्माण

बा० जगदीशचंद्र माथुर



किसी जाति की सभ्यता का अनुमान उसके साबुन के व्यवहार से किया जाता है। अर्वाचीन काल में भी यह ऐसा ही सत्य है, जैसा गत वर्षों में था। २५ पौंड प्रति पुरुषवाला अधिकतम व्यवहार अमेरिका के संयुक्त राज्य तथा हॉलैंड में है। तदनन्तर इँगलैंड २१ पौंड, फ्रांस १५ पौंड तथा जर्मनी इत्यादि अपना-अपना स्थान रखते हैं। यहाँ यह बात स्पष्ट कर देनी है कि भारतवर्ष इस संख्या-सूची में ४ औंस प्रतिपुरुष प्रति वर्षवाला स्थान सबसे नीचे रखता है।

साबुन शब्द का इतिहास

साबुन शब्द का प्रथम उल्लेख बाइबिल में आया है, जिसके विषय में ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसका संकेत साबुन पर न था, जैसा अब हम इसको समझते हैं; किन्तु वनस्पति की राख से था, जिसमें "क्षार" सम्मिलित होते हैं। साबुन के निर्माण का प्रथम उल्लेख एक मिश्रित पदार्थ का है, जिसको 'गाल' लोगों ने चर्बी और लकड़ी की राख से बनाया। लैटिन शब्द "सेपो" (Sapo) से, जो कि लैटिन शब्द "सैबम" (Sebem=चर्बी) का सजातीय है, साबुन शब्द का विकास हुआ। गाल लोगों ने, सम्भवतः जिन्होंने फ़ौनिशियनों से यह कला उपलब्ध की थी, रोमन लोगों को साबुन बनाना सिखाया। इसके निर्माण का प्रथम पूर्ण कार्यालय, जो कि १७०० वर्ष प्राचीन उस समय विश्वास किया जाता था, पंपियाई की खुदाई में खोजा गया था।

व्यवसाय की उन्नति

१८वीं शताब्दी के लगभग तक इस व्यवसाय पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया। कारण, प्रथम यह कि जनता साबुन के मिश्रण से अनभिज्ञ थी, जो कि केवल "चर्बी" और "क्षार" (Alkali) का भौतिक मिश्रण समझा जाता था; दूसरे, साबुन के निर्माण के लिए क्षार के सस्ते बनाने के समुचित प्रबन्ध का अभाव था। इनमें की पहली कठिनता गत शताब्दी के आरम्भ की 'चौबीरोल'

चर्बी की बनावट पर प्राचीन खोजों से दूर की गई, जिससे यह दर्शाया गया कि चर्बी और क्षार (Alkali) से साबुन की बनावट अवश्यमेव रासायनिक प्रतिकार्य था; जिसमें क्षार चर्बी के तेज़ाब के भाग से निकलता था और ग्लैसरीन उप-वस्तु की भाँति प्राप्त हो जाता था।

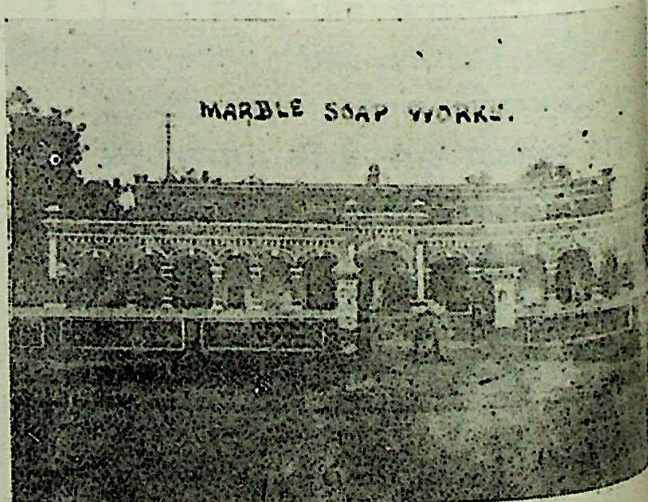
सस्ते क्षार के निर्माण की दूसरी कठिनता साधारण नमक से सोडियम कारबोनेट बनाने के लिवलैंक के उपाय से, १७६० के आविष्कार द्वारा, दूर हुई। इन आविष्कारों के परिणाम ने, जिससे यह व्यवसाय अब वैज्ञानिक सिद्धान्त पर स्थापित है, शीघ्र ही अधिकाधिक उन्नति की। ईस्ट इंडिया कम्पनी के स्थापित होने के पूर्व भारत साबुन से अनभिज्ञ था।

साबुन की परिभाषा

साबुन का अर्थ विस्तीर्ण क्षेत्र में किसी एक या कई चर्बीवाले तेज़ाब और बेस के मिश्रण से है। इसमें केवल सोडे के चर्बीवाले तेज़ाब के मिश्रण (Caustic Soda) ही सम्मिलित नहीं हैं, जो कड़ा (Hard) साबुन बनाते हैं। पोटाश के चर्बीवाले मिश्रण (Caustic Potash) कोमल साबुन (Soft Soap) बनाते हैं और अमोनिया के चर्बीवाले तेज़ाब के मिश्रण (Amun. Hydrate) शुष्क सफ़ाई के काम में लाभदायक होते हैं। साथ ही साथ अल्यूमीनियम, लोहे और क्रोमियम के मिश्रण का विशेष व्यवसायों में उपयोग किया जाता है। सीसा, चाँदी और जस्ता औषधालय के काम में आते हैं। सोडा, पोटाश और अमोनिया के मिश्रण ही केवल पानी में घुल जाते हैं और शेषांश की भाँति लाभदायक हैं। अतः वाणिज्य में साबुन शब्द के अर्थ क्षार के चर्बीवाले मिश्रण तक ही सीमित रखना परम्परा है। जैसे—सोडा, पोटाश तथा अमोनिया।

कच्चे उपादान (Raw Material)

साबुन बनाने में कच्चे उपादानों की [illegible] संख्या का उपयोग किया जाता है, जो [illegible] अभिप्राय पर (जिसके लिए साबुन का [illegible] कता है) और बाज़ार में साबुन के अमुक [illegible] प्राप्त करने पर निर्भर रहती है। इसमें [illegible] वस्तुएँ होती हैं—चर्बी या चर्बीवाले तेल। [illegible] (अ) चर्बीवाले तेल या नियत तेल (Fatty [illegible] (ब) आवश्यक तेल और (स) हाइड्रोकार्बन [illegible] लित होते हैं। खनिज तेल, कास्टिक सोडा [illegible] पोटाश, सोडा ऐशवाले क्षारों से व्यापारी [illegible] बनाने के भी प्रयत्न किये गये हैं। चर्बीवाले [illegible] बसा, राल, सुअर की चर्बी, नारियल का तेल [illegible] गोसा (नीम) का तेल, ज़ैतून का तेल, [illegible] तेल, अरण्डी का तेल, अलसी का तेल, [illegible] का तेल, खजूर का तेल और खजूर की [illegible] तेल इत्यादि व्यवहार में आते हैं। जैसा [illegible] लिख चुका हूँ, साबुन के गुण तथा उसके [illegible] मूल्य प्राप्त करने पर निर्भर रहता है। [illegible] यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि [illegible] सस्ते तेल मिलने की अधिक सम्भावना है [illegible] हमारे देश में तेलवाले बीज के दाने बहुत [illegible] पैदा होते हैं। बड़ी कठिनता यह है कि [illegible]



एक देसी कारख़ाने का बाहरी दृश्य।



दानों से तेल निकालने में न्यून योग्यतावाले (Crude Methods) भद्दे उपाय अब भी काम में लाते हैं। लगभग २० प्रतिशत तेल खली में रह जाता है। इस प्रकार प्राप्त हुआ तेल साबुन के लिए अशुद्ध भी होता है। यदि हम शुद्ध तेल पावें तो निम्न कोटि के दानों से साबुन का गुण तक सुधार सकते हैं। दूसरी समस्या हाइड्रोजन देने की है। वास्तव में हमारे देश में ऐसी कोई मशीन (Plant) नहीं है। साधारण अशुद्ध तेलों की अपेक्षा हाइड्रोजन दिये हुए तेल, हाडसोप अर्थात् साबुन, जो हम प्रतिदिन मुँह धोने के काम में लाते हैं, बनाने के लिए कहीं अधिक लाभदायक होते हैं। अब संक्षेप में साबुन बनाने के बहुत-से विधान वर्णन किये जायँगे।



व्यायलररूम का एक दृश्य।
चित्र में दाहनी ओर एक कुली ताज़े साबुन से भरा हुआ फ्रेम खींचकर ठंडी कोठरी में ले जा रहा है।

साबुन का बनाना

समष्टि रूप से तीन मुख्य विधान हैं—(१) पूर्ण (Full boiled) औटाने का विधान, (२) अर्ध (Semi) औटाने का विधान, (३) ठंडा विधान (Cold Process)। इनको क्रमशः लेकर अनेक विधान संक्षेप में लिखे जाते हैं—

पूर्ण औटाने के विधान में तीन मुख्य कार्य हैं, पेस्टिङ्ग (Pasting), ग्रेनिङ्ग (Graining) और फ़िटिङ्ग (Fitting)। तेल खुले हुए ऐसे कढ़ावों में, जिनमें ९ से १२ टन तक समाता है, रक्खा जाता है। वहाँ वह ८० से १२० पौंड दबाववाली भाप द्वारा औटाया जाता है। भाप का दबाव (Pressure) आवश्यक साबुन के गुण पर निर्भर रहता है। धीरे-धीरे तब तक इसमें क्षार डाला जाता है, जब तक कि इसमें क्षार का हलका स्वाद न आ जाय। कढ़ावों में तेल इत्यादि की मात्रा के अनुसार ८ से १२ घंटे तक औटाना जारी रहता है। अब साबुन बनने लगता है। उबलते साबुन का तापक्रम आप अच्छी तरह जान सकते हैं। यह चिपक (Pasting) कहलाता है।

दाना पड़ना (Graining)

साबुन का दूसरा कार्य इसका अत्यधिक क्षार से भिन्न होना है, जो इसमें पहले मिलाया गया था और अशुद्ध वस्तु का निकलना है, जो "स्पैन्ट लाई" (Spent lye) कहलाती है। यह कार्य थोड़ा नमक डालने से सिद्ध हो सकता है। तब भाप देना बन्द कर दिया जाता है और कढ़ाव रात भर विना हिलाये छोड़ दिया जाता है। "स्पैन्ट लाई" तली में नीचे बैठ जाता है, जो एक ढिबरी खोल देने से बाहर निकल जाता है। क्षार अधिकाधिक डाला जाता है और साबुन दुबारा पानी और खुली भाप के साथ औटाया जाता है। क्षार डालना तब तक जारी रक्खा जाता है, जब तक यह क्षार का स्वाद देता है और



दानेदार बन जाता है। तब यह रात भर फिर जमने के लिए छोड़ दिया जाता है। बहुत उच्च कोटि के साबुन के लिए यह विधान तीसरे, चौथे और पाँचवें दिन तक दुहराया जाता है। किन्तु साधारण साबुन के लिए दो-तीन दिन का औटाना काफ़ी है। अधिकांश साबुन बनानेवाले इतने समय तक भी नहीं औटाते। किन्तु मुँह धोने में ऐसे साबुन के इस्तैमाल की सलाह कोई रासायनिक नहीं दे सकता।

फ़िट करना (Fitting)

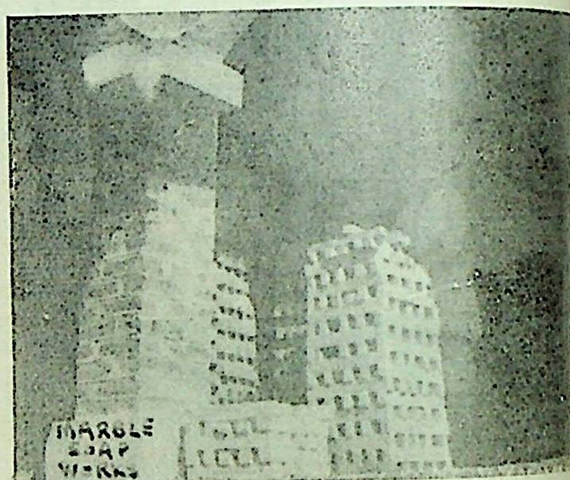
कढ़ाव से स्पैन्ट लाई दूर करने पर इसमें कुछ पानी और आवश्यकता के अनुसार नमक का घोल मिलाया जाता है। फिर यह औटाया जाता है, जिससे इसका दाना मिट जाय। कुछ समय औटाने के बाद कढ़ाव ऐसी दशा में छोड़ दिया जाता है कि यह तीन स्पष्ट तहों में घनत्व के अनुसार स्थिर हो जाता है। सर्वोच्च तह में स्वच्छ साबुन होता है, जो कुल मात्रा का दो-तिहाई होता है। तब बीच की तह आती है। इसमें स्वच्छ साबुन और "नाइगर" का मिश्रण होता है, जो धुलाई के काम में आता है। अन्तिम या नीचे की तह अधिकांश में "नाइगर" होती है, और निकाल दी जाती है।

अधऔटाये साबुन

यह सम्भवतः पूर्ण औटाये साबुन की चिपकवाली विधि है। तेल तब तक क्षार के साथ औटाये जाते हैं, जब तक इसमें क्षार का स्वाद न आने लगे। अधिक पानी नहीं दिया जाता। जो साबुन इस प्रकार बनते हैं, वे उतने श्रेष्ठ और चालू नहीं होते, जितने पूर्ण औटाये साबुन। इसका प्रत्यक्ष कारण यह है कि उनका मूल्य कम होता है।

ठंडे विधान के साबुन

ठंडे साबुन में कुछ तेल, जैसे नारियल का तेल, वसा, अंडी का तेल इत्यादि के गुण से लाभ उठाया जाता है। अतः जब क्षार इन तेलों मिलाया जाता है, तब वे समगुण लसदार प बन जाते हैं। वह रखने पर स्थिर होकर सा बन जाता है। इस साबुन की निरर्थकता कठिनता से ज़ोर दिया जा सकता है। यह है कि इस साबुन में अधिकांश में स्वतन्त्र रूप क्षार है, अतः यह धोने के काम के लिए उपयोगी नहीं होता।

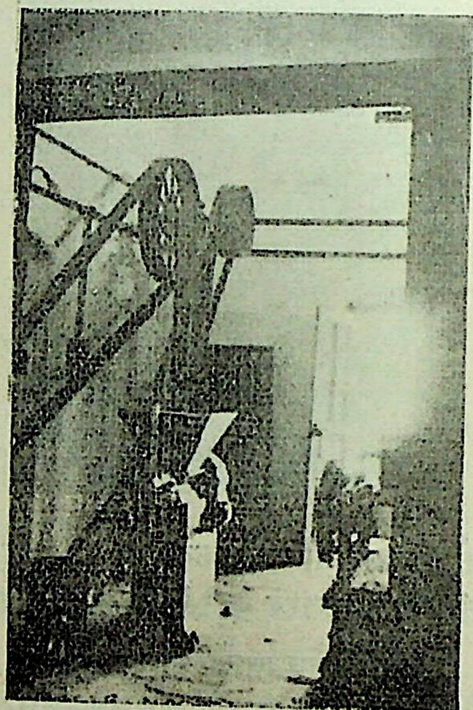


साबुन काटकर सुखाया जा रहा है।

थोड़े समय से भारत के जनसमुदाय में गुण टिकाऊपन पर विचार किये बिना सस्ता म व्यवहार करने की मूर्खता दिखलाई देने लगी आप भली भाँति विचार कर सकते हैं कि वे प्रकार के साबुन ही प्राप्त कर सकते हैं। क ऐसे साबुन मैदे को सम या अधिकांश मा मिलाकर सस्ते बनाये जा सकते हैं। मैदा को जल्दी-जल्दी जमा देता है। परन्तु इस को रोकना आवश्यक है; क्योंकि यह प्रत्य जाति की हानि है। केवल प्लेटफ़ार्म पर व्या देने से कोई लाभ नहीं हो सकता। साबुन ब वाले तथा साबुन के व्यापारी देश को इस हा बचा सकते हैं। यह बड़ी ही हानिकारक प्रथा

अब मुख्य विषय "फ़्रेमिंग" पर आते साबुन बनाने के बाद दूसरी अवस्था ढाँचा

(Framing) की है, जो घूमनेवाले आयताकार लोहे के सन्दूक़ों में किया जाता है। इनको "फ्रेम" कहते हैं। साबुन कुछ समय स्थिर होने के पश्चात् नलों के द्वारा कड़ावों से इन "फ्रेमों" में आता है। यहाँ नाप, तापक्रम तथा गुण के अनुसार कुछ ही घंटों से लेकर लगभग एक सप्ताह तक उसके जमने में लगता है। तब साबुन काटे जाने के लिए प्रस्तुत होता है। साबुन जमाने के लिए हम ठंडे कमरे काम में लाते हैं। जहाँ निरन्तर कम तापक्रम रहता है।



दाहनी ओर—साबुन में ख़ुशबू मिलाकर पीसा जा रहा है।
बाईं ओर—इस मशीन से पिसा हुआ साबुन दबाकर डंडों की शकल में लाया जाता है।

काटना

केवल धोने और गृहस्थी के काम के लिए साबुन काटने और किसी आकार में लाने लायक़ बन गया। बग़ल की रक़ाबी हटाने से साँचे खोले जाते हैं और लोहे के तारों से साबुन की चट्टानें सिलों के आकार में काटी जाती हैं। ये सिलें काटने की मशीनों में डाली जाती हैं। काटने की मशीनें दो प्रकार की होती हैं। एक, जो बिजली से चलाई जाती हैं, और दूसरी, जो हाथ से चलाई जाती हैं। केवल बहुत बड़े कार्यालयों में ही बिजली की मशीनें काम में आती हैं। ऐसी मशीनें दो टन साबुन की सिलों को १५ इंच × १०५ इंच की छड़ों में काट सकती हैं। कारख़ानेवाले इच्छानुसार विविध प्रकार के कामों के लिए अपने ही नमूने की मशीन काम में लाते हैं।

छाप लगाना

जब साबुन को इच्छानुसार किसी विशेष नाम, आकार और तोल का काट लिया गया और काटने की तह पर एक झिल्ली पड़ गई, तब यह छापा लगाने की मशीन में भेजा जाता है। वहाँ आवश्यकतानुसार धातु के साँचे से इसका एक विशेष आकार बन जाता है। तब साबुन व्यवहार के लिए प्रस्तुत होता है और लपेटने के विभाग में भेजा जाता है।

लपेटना

साबुन लपेटने पर जितना भी ज़ोर दिया जाय, काफ़ी नहीं है। छाप लगा हुआ और बिक्री को प्रस्तुत साबुन भिन्न-भिन्न प्रकार के सुहावने डिब्बों में रक्खा जाता है, जो इसी उद्देश से बनाये जाते हैं। चाहे वस्तु निम्न कोटि की ही क्यों न हो, परन्तु जनता के लिए सुन्दर और सुहावना आकार एक बड़ा आकर्षण है। दूसरे दृष्टिकोण से भी लपेटना आवश्यक है। यह साबुन को तापक्रम तथा नमी के परिवर्तन के हानिकारक प्रभाव से बचाता है। संक्षेप में यह प्रत्येक प्रकार की हानि से बचाता है। अतः केवल काग़ज़ का आकर्षण ही नहीं, किन्तु गुण भी वास्तविक है। जो विषय मैंने चुना है, इस पर कोई भी लेख तब तक पूर्ण न होगा, जब तक वह आपको

साबुन के गुण और उसके बनाने के विधान को नहीं बतलाता।

साबुन के प्रकार

साबुन अनेक प्रकार के होते हैं; उदाहरणार्थ मुँह धोने का (Toilet), गृहस्थी का (Household), औषध का (Medicated), धोने का (Washing), सूत धोने (Textile) का और नैपथाल (Naphthol) साबुन इत्यादि। संक्षेप में क्रमशः प्रत्येक का वर्णन किया जायगा—

मुँह धोने का

मुँह धोने का साबुन बनाने में साधारण साबुन के अतिरिक्त, जो प्रथम श्रेणी का बनाया जाता है, रंग और विशेष तेल डाले जाते हैं। यह कार्य पीसने की विधि में किया जाता है। यह संक्षेप में इस प्रकार है—काटने की मशीन से कटी हुई छड़ें मशीन से छोटी पत्तियों में काटी और सुखाई जाती हैं। सूखी पत्तियाँ पीसनेवाली मशीन में डाली जाती हैं, जहाँ रंग और सुगन्ध उचित अनुपात में मिलाये जाते हैं। जब साबुन बार-बार पीसने से समान रूप होकर मिल जाता है, तब यह "प्लाडर्स" में भेजा जाता है, जो साबुन के रंग और सुगन्धित चूर्ण को दबाकर कठोर समतल छड़ों में बनाने की मशीनें हैं। ये छड़ें उचित नाप की काटी जाती हैं, उन पर छाप लगाई जाती है और काग़ज़ लपेटा जाता है।

गृहस्थी के साबुन

गृहस्थी के साबुन साधारणतया अच्छे प्रकार के धोने के साबुन होते हैं, अतिरिक्त इसके कि साँचे में जाने से पहले उनमें सुगन्ध की अल्प मात्रा मिलाई जाती है। असली मिलावट एक बर्तन (क्रचर) में की जाती है।

धोने के साबुन

ये सीधे कढ़ाव से प्राप्त किये जाते हैं और अच्छे धोने के साबुन में कोई मिलावट नहीं की जाती। यदि निम्न कोटि के साबुन की आवश्यकता है तो स्वच्छ साबुन कढ़ाव से क्रचर में डाला जाता है। उसमें कुछ रासायनिक, जैसे सोडा सिलीकेट, सोडा ऐश, पत्थर साबुन अल्प मात्रा में मिलाते हैं। किन्तु यह कुप्रथा है और इसकी सम्मति कदापि नहीं दी जा सकती।



डंडों को इच्छानुसार काटकर उन पर छाप लगाई जाती है। इस तरह बट्टी तैयार हो जाती है।

औषधवाले साबुन

औषधवाले साबुन भी लगभग उसी प्रकार बनाये जाते हैं, जैसे उच्च कोटि के मुँह धोने के साबुन। केवल अन्तर इतना ही है कि इसमें पीसने से पूर्व कुछ ओषधियाँ मिलाई जाती हैं।

टेकनिकल (Technical) साबुन वे साबुन जो विशेष सूत बुनने के काम में आते हैं और विशेष प्रकार से बनाये जाते हैं। वे आवश्यकतानुसार ठोस, आधे ठोस अथवा द्रव के आकार में होते हैं।

मुलायम साबुन (Soft Soap)

मुलायम साबुन की बनावट वेसलीन की भाँ

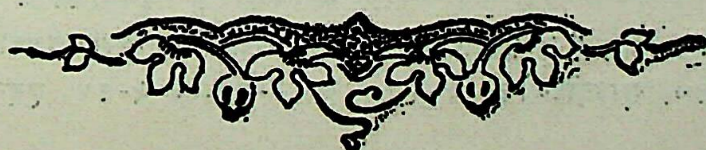


होती है, और वह मुलायम तेल (जैसे ज़ैतून का तेल, अलसी का तेल इत्यादि) और "कास्टिक पोटाश" से बनाया जाता है। यह साबुन अर्ध-औटाये विधान से बनाया जाता है। यह विशेषकर चिकना करने और रँगने के काम में आता है।

गत वर्षों में इस व्यवसाय ने विशेष उन्नति की है; क्योंकि साबुन का उपयोग अब दुर्व्यसन नहीं समझा जाता। अब यह दैनिक आवश्यकता की वस्तु हो गई है। गत महायुद्ध ने भी इस व्यवसाय को बहुत बढ़ा दिया है; क्योंकि "ग्लैसरीन", जिसकी गोला-बारूद बनाने के लिए बड़ी माँग थी, साबुन-निर्माण में उपवस्तु की भाँति निकलता है। भारत में भी यदि कोई व्यवसाय ऐसा है, जिसने उन्नति की है तो यह साबुन का व्यवसाय है और इसके लिए कुछ अंश में "हारकोर्टबटलर टेकनालोजिकल इन्सटीट्यूट" प्रशंसापात्र है। गत दस वर्षों में साबुन बनानेवालों की संख्या, जो पूर्ण औटाकर साबुन बनाते हैं, लगभग सातगुनी बढ़ गई है। ठंडे प्रकार से थोड़ा साबुन बनाने की कोई संख्या-सूची नहीं है। अब भी इस व्यवसाय में विस्तीर्ण स्थान है। दुर्भाग्यवश अब भी हमको बड़ी मात्रा में जर्मनी से "कास्टिक सोडा," जो इस व्यवसाय की माता है, मँगाना पड़ता है। कई बार "कास्टिक सोडा" बनाने की मशीन चलाने का प्रयत्न किया गया; किन्तु दुर्भाग्यवश प्रत्येक प्रयत्न असफल रहा। कुछ तो प्रचार और सहकारिता के अभाव के कारण और कुछ विदेशों की प्रतिस्पर्द्धा के कारण। भारत की पूँजी बड़े-बड़े महाजनों के हाथ में है, जो इन व्यवसायों में लगाने की अपेक्षा जमा रखना पसन्द करते हैं। कुछ वर्ष पूर्व एक बार एक सोडा बनाने का कार्यालय चलाया गया था। और वह "श्यून" के जर्मन कार्यालय से, जोकि वर्त्तमान समय की सबसे बड़ी प्रतिस्पर्द्धा करनेवाली है, समझौता होने के कारण बन्द कर दिया गया। साबुन के व्यवसाय में दूसरी आवश्यकता सुगन्ध की है। निःसन्देह भारत सुगन्ध के लिए प्रख्यात रहा है। पर आजकल इस व्यवसाय की भी वह दुर्दशा है कि हम एक बानगी की चीज़ें नहीं बना सकते और लाखों रुपये की सुगन्ध प्रति वर्ष बाहर से आती है।

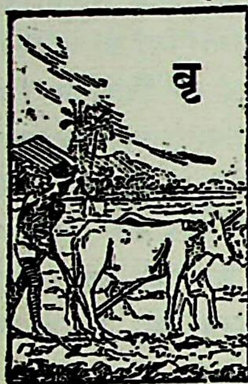
अन्त में हम यह बतला देना चाहते हैं कि भारतवर्ष में साबुन के इतने कम प्रयोग का कारण कंगाली के अतिरिक्त एक यह भी है कि यहाँ पर साबुन केवल कपड़ा धोने के काम में ही आता है। अमेरिका के संयुक्त राज्य, इँगलैंड, फ्रांस जर्मनी इत्यादि देशों में यह और भी कामों में आता है, जिनमें से निम्नलिखित कुछ हैं—इमारतों की दीवार व फ़र्श धोने में, लोहे के कारख़ानों में, तेल, चर्बी के साथ मिलाकर पुरज़ों में देने में, छापेख़ानों की स्याही बनाने में, बूट-पालिश, फ़र्श पालिश, क्रीम-मञ्जन (पेस्ट) इत्यादि बनाने में, काग़ज़, रुई, शीशे के कारख़ानों में, शीशे चीनी के बरतन, हीरे-जवाहरात व सोने-चाँदी के ज़ेवर धोने में, गुड़ियाँ और नक़ली फूल, फल बनाने में।

यह स्पष्ट है कि इस देश में साबुन की उन्नति का दरवाज़ा बन्द नहीं हुआ है। पर इसका भार देश की सरकार की राजनीतिक दृष्टि पर निर्भर है। सरकार विदेशी साबुनों पर व साबुन बनाने की उपयोगी चीज़ों पर कर लगाकर देसी कारख़ानों की उन्नति कर सकती है। रुई, जूट, काग़ज़, मशीन इत्यादि के कारख़ानों के खुलने से भी साबुन के व्यवसाय को लाभ पहुँचेगा।



ब्रह्मविद्योपदेशक

पांडेय रामावतार शर्मा
एम्० ए०, बी० एल्०,
साहित्य-शिरोमणि,
रिसर्च स्कॉलर



हदारण्यकोपनिषद् के द्वितीय अध्याय में गर्गवंशी ब्राह्मण बलाका के पुत्र बालाकि और काशी के राजा अजातशत्रु का उपाख्यान है। बालाकि पूर्ण ब्रह्मज्ञान के अभाव में घमंड से भरा था, उसने हठ कर अजातशत्रु को ब्रह्मस्वरूप का उपदेश करना आरंभ किया; अन्त में राजा के ब्रह्मज्ञान से पराजित हो उसने स्वीकार किया कि उसे उतना ही ब्रह्म-ज्ञान था। जिस पर अजातशत्रु ने कहा-"नैतावता विदितं भवतीति—इतने से ब्रह्म का ज्ञान नहीं हो सकता, अभी तुम्हें अधिक जानना शेष रह गया है।"[1] गार्ग्य बालाकि ने तब अधिक ज्ञान के लिए क्षत्रिय राजा की शरण ली। इसी तरह का दूसरा उपाख्यान श्वेतकेतु आरुणेय और राजा प्रवाहण जैनलि का है, जो बृहदारण्यक के सिवा छान्दोग्य व कौषीतकि में वर्णित है।[2] छान्दोग्य में क्षत्रिय प्रवाहण ने ब्राह्मण-पुत्र को शिष्य बनाते हुए कहा है—"यह विद्या पहले कभी ब्राह्मण को नहीं दी गई, यह क्षत्रियों के पास रही है; इसकी शिक्षा पानेवाले तुम प्र ब्राह्मण-पुत्र हो।"[3] यह प्रकट करता है कि ब्र विद्या के उपदेशक क्षत्रिय थे और उनके प ब्राह्मण शिष्य-समान जाया करते थे। इसके प्रका उद्दालक आरुणि, राजा कैकय, पंच सहोग्नि बुडिल व जनक के भी उपाख्यान हैं।[4] सबों पर विचार करते हुए ड्युसन, ग आदि पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि औ निषदिक ज्ञान के उपदेशक क्षत्रिय थे, ब्राह्म नहीं। ब्राह्मणों ने ब्र विद्या की शिक्षा क्षत्रि से ग्रहण की। अ कथन के समर्थन उनका यह भी क है कि ब्राह्मणों का वि यज्ञ था, ब्रह्म-वि उसका विरोध करती इस कारण ब्रह्म - वि ब्राह्मणों की विद्या न हो सकती। वास्तव उपाख्यानों के पढ़ने ऐसा ही प्रतीत हो है। किन्तु औपनिषदि विवरण का अन्त इ से नहीं है। उपनिषदों में अन्यान्य उपाख्यान विवरण भी हैं; ऐसे वर्णन भी हैं, जिनमें ब्रह्मवि के उपदेशकों की परम्परा कथित है। अतः क्षत्रि

---

१ बृहदारण्यकोप० २-१-१४। २ बृहदारण्यकोप० ६-२, कौषीतकि उ०, छान्दोग्योप० ५-३।

३ छान्दोग्यो० ५-३-७, बृहदा० ६-२-८ भी कहा है "इयं विद्येतः पूर्वं न कस्मिंश्चन ब्रा उवास तां त्वहं तुभ्यं वक्ष्यामि।" ४ छान्दोग्यो ६, ५-११, ४-५-१४, बृहदारण्य० ५-१४-८।



को ब्रह्मविद्या का उपदेशक मान लेने के पहले उनके साथ उपर्युक्त आख्यानों की तुलना करके ही किसी निष्कर्ष को पहुँचना युक्तिसंगत है।

औपनिषदिक ज्ञान का नाम ब्रह्मविद्या है और उपनिषदों में कहीं भी ब्रह्मविद्या के पिता या उत्पादक क्षत्रिय नहीं कहे गये, क्षत्रियों द्वारा उपदेश दिये जाने के उल्लेख अवश्य हैं। इसके अतिरिक्त ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति सदा दैवी शक्तियों से स्वीकृत की गई है, इसके अपौरुषेय होने के अनेक स्पष्ट वचन भी उपनिषदों में संरक्षित मिलते हैं। बृहदारण्यक के अनुसार प्राजापत्य देवता - मनुष्य - असुरों ने प्रजापतिरूप पिता से ब्रह्मचर्य पालन करते हुए अक्षरज्ञान प्राप्त किया। छान्दोग्य का कहना है कि ब्रह्मविद्या ब्रह्मा ने प्रजापति को, प्रजापति ने मनु को और मनु ने मनुष्यों को सिखलाई; कठक में यम से ब्रह्मविद्या का ज्ञान नचिकेता को प्राप्त हुआ है; मुण्डक के मत में ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्व को और अथर्व ने औरों को ब्रह्मविद्या बतलाई। तैत्तिरीय के भृगु ने अपने पिता वरुण से ब्रह्मविद्या प्राप्त की और श्वेताश्वतर में कहा है कि तपश्चर्या और देवानुकम्पा से ऋषि ने ब्रह्म का ज्ञान सीखा।[५] पुनः ऐसे उपदेशकों द्वारा ब्रह्मविद्या के प्रचार के भी अनेक स्थल उपनिषदों में हैं, जो क्षत्रिय नहीं जान पड़ते। याज्ञवल्क्य ने अत्रि और जनक के प्रश्नों का उत्तर दिया है, जाबालि उपनिषद् में पैप्पलादि से सदानन द्वारा ब्रह्मज्ञान पाना स्वीकार किया है; बृहद्जाबाल और रुद्राक्षजाबाल उपनिषदों में उपदेशक कालाग्नि-रुद्र हैं और याज्ञवल्क्य व जनक जिज्ञासु मिलते हैं। मुण्डक में उपदेशक अंगिरस और जिज्ञासु शौनक हैं, वहाँ गुरुपरम्परा में ब्रह्मा—अथर्व—अंगिरस—भरद्वाज के नाम हैं; प्रश्न में उपदेशक का नाम पिप्पलाद है और बृहदारण्यक के तीसरे अध्याय में ब्रह्मविद्या पर तर्क करनेवाले सभी ब्राह्मण ही हैं, जनक सभापति-रूप में दिखाई देते हैं।[६] पुनः बृहदारण्यक के द्वितीय व चतुर्थ अध्यायों में कथित वंश के आचार्य-नाम ब्राह्मणों के ही जान पड़ते हैं। ब्राह्मण व क्षत्रिय उपदेशकों के सम्बोधन में भी एक भेद उपनिषदों में दिखाई पड़ता है। ब्राह्मण उपदेशक का सम्बोधन केवल 'भगवः' कहकर और क्षत्रिय उपदेशकों का 'राजन्' तथा 'भगवः राजन्' कहकर दिया गया है।[७] प्राचीन काल में इसके लिए भी नियम था, जिसका उल्लेख मनु ने २-१२२ में किया है। उसी प्रकार शिष्य द्वारा शिष्टाचार में भी अन्तर विद्यमान मिलता है। ब्राह्मणपुत्र को शिष्य बनाते हुए भी क्षत्रिय ब्रह्मज्ञानोपदेशक उसका ब्राह्मणत्व और उसके कुल का उच्चमान भूल नहीं जाते, उसकी सम्मान-योग्यता स्वीकार करते हैं, जिसे दिखाने को 'अर्हाणि करयाञ्चकम्' 'अर्घ्यं चकार' 'अर्हां चकार' आदि पद व्यवहृत किये गये हैं।[८] अजातशत्रु ने तो साफ़ कहा है कि ब्राह्मण का क्षत्रिय की शरण में जाकर ब्रह्मज्ञान का उपदेश चाहना उलटी बात है—'प्रतिलोमं चैतद्यद् ब्राह्मणः क्षत्रियमुपेयाद् ब्रह्म मे वक्ष्यतीति।' प्रवाहण का शिष्य होते हुए श्वेतकेतु आरुणेय ने राजा का पैर न छू केवल कहा है—'उपैम्यहं भवन्तमिति।' यह भी एक अन्तर प्रदर्शित करता है।[९] इससे प्रकट है कि परम्परानुकूल गुरु या

५ बृहदारण्य० ५-२-१; छान्दोग्य० ८-१५-१; मुण्डकोप० १-१; तैत्तिरीयोप० ३-१; श्वेताश्वतरोप० ६-२१।

६ मुण्डकोप० १-३; बृहदारण्यकोप० ३-१-२।
७ बृहदारण्यकोप० २-१; ६-२; छान्दोग्योप० ५-८; ५-६; ५-११। ८ छान्दोग्योप० ५-११-५; ६-२-४; ५-३। ९ बृहदारण्यकोप० २-१-१५; ६-२-७।



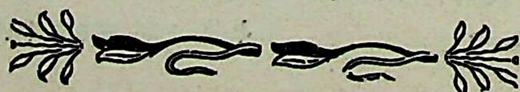
उपदेशक ब्राह्मण ही होते थे, पर याज्ञिक कर्मों में रत ब्राह्मण ब्रह्मज्ञान से रहित होते थे। किंतु तत्त्वमसि के युग में उन्हें अपने ब्रह्माभिमान का ज्ञान कर क्षत्रियों के पास ब्रह्मविद्या का उपदेश लेने जाना पड़ा। जिस प्रकार यज्ञों का प्रचार क्षत्रियों के साहाय्य से हुआ था, उसी प्रकार ब्रह्मविद्या-प्रचार में भी क्षत्रिय सहायता को अग्रसर थे और उनके यहाँ ब्रह्मवेत्ताओं का समागम हुआ करता था। इस हेतु मानना पड़ता है कि ब्रह्मविद्या का उपदेश क्षत्रियों के साहाय्य व सहयोग से हुआ, क्षत्रिय स्वयं भी विद्याविशिष्ट थे और समय-समय पर सभापति के सदृश सभा-कार्य-सम्पादन में कीर्ति प्राप्त किया करते थे। उपनिषद् स्वयं इस व्याख्या का खंडन करते हैं कि ब्रह्मविद्या क्षत्रियों की ही विद्या थी और क्षत्रिय ही उसके उत्पादक व उपदेशक थे।

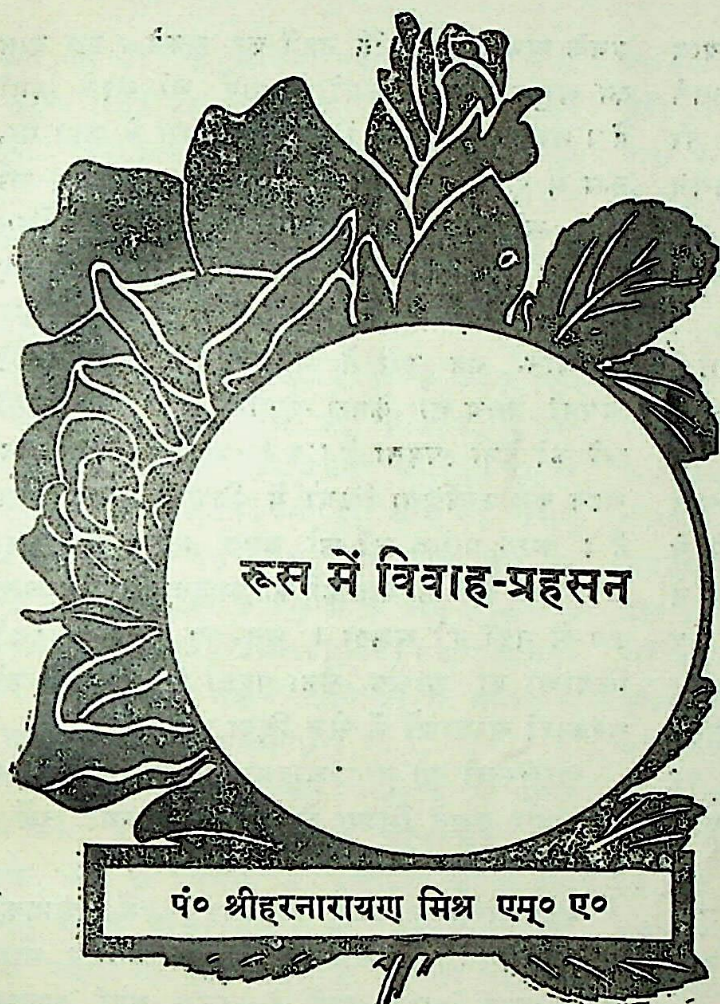
क्षत्रियों द्वारा ब्रह्मविद्योपदेश का प्रचार औपनिषदिक काल की ही विशेषता नहीं थी, क्षत्रियों पर धर्मपालन का उत्तरदायित्व प्राचीनतम काल से आर्यों में आ रहा था और क्षत्रिय ब्राह्मणों के समान ही वेदाध्ययन व यज्ञसम्पादन के अधिकारी थे। यदि ब्राह्मणों के विरोध में उनके द्वारा ब्रह्मविद्या का उपदेश किया जाता तो ब्रह्मविद्या के अधिकारी शूद्र भी अवश्य बनाये जाते, जैसा बौद्धमत-प्रचारक गौतम ने अपने समय में किया। किन्तु ब्रह्मविद्या-विशारद क्षत्रियों का वैसा उद्देश्य नहीं था। वे शासनाधिकार रखने के कारण विद्या-प्रचार के उत्तरदायित्व को निभाते हुए अपने यहाँ ब्राह्मणों की सभा-समितियाँ रखते और उनमें स्वयं सभापति बन निर्णय सुनते व दिया करते थे। ऐसी सभाओं में ब्रह्मज्ञानी राजा जनक की विशेष ख्याति थी, जिसकी ओर संकेत करते हुए काशी-नरेश अजातशत्रु ने बालाकि से कहा था—"जनको जनक इति वै जना धावन्तीति।"[10] "कुरुपञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसंमवेताः बभूवुस्तस्य ह जनकस्य वैदेहस्य विजिज्ञासा बभूव कः स्विदेषां ब्राह्मणानामनूचानतम इति" का बृहदारण्यक-कथन जनक के यहाँ ब्रह्मवेत्ता-समागम का पक्का प्रमाण है[11] और यह सिद्ध करता है कि इसी तरह अन्य विख्यात विद्यानुरागी क्षत्रिय भी ब्रह्मज्ञान-युग में ब्रह्मविद्या के प्रचारक व संरक्षक थे। यज्ञ काल में भी ब्रह्मविद्या पर वादविवाद हुआ करते थे और राजा वहाँ उपस्थित रह श्रवण करता तथा उन पर अपनी राय दिया करता था। ब्रह्मविद्या का विकास भी इसी प्रकार वैदिक यज्ञों के अवसर के तर्क-वितर्क से हुआ और समय पाकर ब्रह्मवेत्ताओं का समुदाय स्थापित हुआ,[12] उस समय भी 'होता अश्वल' तथा प्रमादी 'बुडिल' के समान याज्ञिक विप्र विद्यमान थे; उनसे ब्रह्मविद्या की रक्षा करने में समर्थ राजा ही थे। वे संरक्षक राजा अपने यथोचित साहाय्य द्वारा विख्यात ब्रह्मोपदेशक थे, पर शिक्षा-कार्य इसी कारण ब्राह्मणों के हाथ से निकलकर उनके हाथों कदापि नहीं आ गया था। सनातन प्रथा के अनुकूल आचाय व उपदेशक ब्राह्मण ही थे, जिस पर मनु स्मृति में कहा है—

> अधीयीरन् त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः।
> प्रब्रूयाद् ब्राह्मणस्तेषां नेतराविति निश्चयः ॥ १०-१॥

---

१० बृहदारण्यकोप० २-१-७। ११ बृहदारण्यकोप० ३-१-२। १२ कौषीतकिउप० १-१; बृहदारण्यकोप० १-१; ४-१४-८।





है और मनुष्य वहाँ कार्यवश ही जमा हुए हैं। कोई तो अपने प्रियजन की मृत्यु का दुःखद समाचार लाया है और अत्यन्त दीन-दुःखी दिखाई देता है, कोई अपने नवजात शिशु की शुभ सूचना लेकर उपस्थित हुआ है और प्रसन्न-वदन मालूम होता है, कोई अपनी प्रेमिका को लेकर आया है और अपने ब्याह की रजिस्ट्री चाहता है, और कोई तलाक़ के लिए हाज़िर हुआ है।

दफ़्तर एक छोटे-से कमरे में है, जिसमें चार मेज़ें पड़ी हैं और प्रत्येक मेज़ पर एक-एक क्लार्क बैठा हुआ अपना कार्य संपादित कर रहा है। एक पचीस वर्ष का नवयुवक जन्मोल्लेख के कार्य में रत है, दूसरा अट्ठाइस-वर्षीय मनुष्य लोगों के विवाह करा रहा है, कुछ आवश्यक प्रश्न करता है और तत्पश्चात् विवाह का सार्टीफ़िकेट बनाकर दे देता है। बस, विवाह-संस्कार पूर्ण हो जाता है। उसमें कुछ ही समय लगता है। भारतवर्ष की भाँति उसमें चार रोज़ नहीं लगते। चार दिन में तो वहाँ ब्याह करके लोग तलाक़ भी दे देते हैं। एक वयोवृद्ध स्त्री को मरणोल्लेख का कार्य सौंपा गया है और एक बीस वर्ष का युवक अपनी मेज़ पर बैठा हुआ तलाक़ मंज़ूर कर रहा है।

लेनिनग्रेड में एक दफ़्तर के सामने भीड़ लगी हुई है। एक बड़ी संख्या में स्त्री तथा पुरुष, युवक तथा युवतियाँ वहाँ पर एकत्रित हैं। एक अनोखा ही दृश्य है। कोई तो प्रसन्न-चित्त इधर-उधर घूम रहा है और कोई मोहर्रमी चेहरा बनाये बैठा हुआ है। एक ओर प्रेमालाप, प्रेमालिंगन तथा प्रेमाभिनय हो रहे हैं और दूसरी ओर किसी स्त्री के मुख से परुष वचनों की धारा प्रवाहित हो रही है। जीवन का पूर्ण नाटक ही अभिनीत होता हुआ प्रतीत हो रहा है। स्वभावतः रूस को जाने-वाले यात्रियों के हृदय में इन सब बातों के विषय में जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। दफ़्तर में जाकर पूछने पर विदित होता है कि वह जन्म एवं मरण, विवाह एवं विच्छेद का दफ़्तर

इसी दफ़्तर में मिख्या और आलगा अपने विवाह की रजिस्ट्री कराने आये। मिख्या सोवियट रूस का एक सैनिक है। एक वर्ष के ही अल्प काल में उसने पाँच ब्याह करके अपनी पाँचो स्त्रियों को तलाक़ दे दिया। सैनिक होने के कारण उसे तलाक़ में कुछ व्यय भी न करना पड़ा। आलगा उसकी नवीन प्रेमिका और एक अत्यन्त रूपवती स्त्री है। हँसते हुए मिख्या ने विवाह-विभाग के बाबू से कहा—"क्यों आपको याद है न, इस देश की प्राचीन कहावत है 'स्त्रियाँ मनुष्य नहीं होतीं'। कितनी मूर्खतापूर्ण, कितनी



असंगत बात है। पुरुषों से अधिक उनमें मनुष्यत्व होता है और पुरुषों से अधिक वे मनुष्य कहलाने की अधिकारिणी हैं। और मेरी आलगा। वह तो देवी है। मेरे हृदय की रानी है (प्रेमालिंगन करता है) क्यों मेरी आलगा, है न यही बात? इस बार हमारे ऐक्य में स्थायित्व होगा। हम कभी एक दूसरे से पृथक् न होंगे।

पृथक्—असम्भव, अचिन्तनीय, यह आलगा ने प्रेमपूर्ण शब्दों में कहा और मिव्या के लिपट गई।

अभिनय तो अच्छा था। प्रेम-प्रतिज्ञाएँ भी ख़ूब थीं। बाबू ने कुछ पूछ-ताछ करने के पश्चात उन्हें सार्टीफ़िकेट दे दिया और उस समय से वे विवाहित स्त्री-पुरुष हो गये। अन्त में बाबू ने मिव्या से कहा—"मिव्या, तुम मुझे बहुत कष्ट देते आये हो। इस वर्ष के रजिस्टर में अब तुम्हारा नाम छठीं बार दर्ज किया जा रहा है। देखो अब यही बस हो। मुझ पर और तलाक़-बाबू पर अब कृपा करो। कुछ काम जन्मोल्लेख करनेवाले बाबू को भी तो दो।"

"हाँ, जब तक तुम मेरे पास न आओगे, मैं तुम्हें आदमी न समझूँगा।" जन्मोल्लेखवाले बाबू ने कहा।

"क्या करूँ, मैं स्वयं चिन्तित हूँ। तीन बार गर्भपात के लिए पैसे ख़र्च कर चुका हूँ। मुसीबत तो यह है कि आजकल स्त्रियाँ Baby Factories को पसन्द ही नहीं करतीं!" मिव्या ने कहा।

"सम्भवतः वे Alimony में और को हिस्सा देना नहीं चाहतीं। और चाहें भी कैसे, वह उनके ही वास्ते पर्याप्त नहीं होती।" ब्याह-विभाग के बाबू ने कहा।

बेबी-फ़ैक्टरीज़, जिनका हवाला मिव्या ने दिया था, वर्तमान रूस की Nurseries हैं, जो वैज्ञानिक ढंग से सर्वांगसुन्दर होने पर भी माता तथा गृह का स्थान कभी नहीं ले सकतीं। बच्चों के लालन-पालन के लिए माता तथा गृह नितान्त आवश्यक हैं और संसार के सर्वोत्कृष्ट शिशु-पालन-गृह भी उनके अभाव की पूर्ति नहीं कर सकते। इस बात का अनुभव अब रूसी माताएँ भी करने लगी हैं। गर्भपात, जिसके विषय में मिव्या ने कहा था, रूस में पूर्णतया प्रचलित हैं और नियमानुकूल भी हैं। सोवियट सरकार की ओर से इसके लिए संस्थाएँ खुली हैं, जहाँ कुछ ही व्यय करने पर गर्भपात सुगमता से हो सकता है। रही Alimony की बात, वह रूस में बहुत कम है। पति को अपनी आय का केवल तृतीय भाग ही अपनी स्त्री को देना पड़ता है। कभी-कभी यही तृतीय भाग कई उपेक्षिता स्त्रियों में विभाजित हो जाता है। अतः प्रत्येक स्त्री को बहुत कम ही मिलता है। ऐसी दशा में बालकों का पालन-पोषण सुचारु ढंग से नहीं हो सकता। अतः या तो गर्भपातकी क्रियाओं का आश्रय लेना पड़ता है या बच्चों को सरकारी संस्थाओं में भेज दिया जाता है।

अलीमनी की बात आलगा को असंगत प्रतीत हुई और उसने मिव्या से कहा—"आओ चलें। अब अन्य मनुष्यों को भी अवसर दो।"

जन्मोल्लेखवाले बाबू ने कहा—"मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगा। आशा है, आप लोग ९ मास के अनन्तर अपने बच्चे के साथ यहाँ अवश्य आइएगा।"

कुछ ही समय के उपरान्त मिव्या इस दफ़्तर में पुनः उपस्थित हुआ और अपराधी की भाँति नतमस्तक खड़ा हो गया।

"फिर वही बात?" तलाक़वाले बाबू ने कहा। "असमानता?" रूस में ९९ प्रतिशत यही 'असमानता' विवाह-विच्छेद का कारण होती है। और मिव्या ने भी प्रत्येक बार एक यही कारण बतलाया था, यद्यपि इस बार कोई दूसरी ही बात थी।

"यदि आलगा मुझे तलाक़ देने के लिए आवे तो उसे ऐसा करने से अवश्य रोकिएगा। तलाक़ मंज़ूर न कीजिएगा। क्या वह यहाँ आ तो नहीं चुकी है?" मिव्या ने लड़खड़ाते हुए शब्दों में तलाक़वाले बाबू से पूछा।



बात यह थी कि आलगा एक दूसरे पुरुष से प्रेम करने लगी थी, जो मिख्या की अपेक्षा कहीं अधिक धनवान् एवं बलवान् था और जो सर्वत्र आदर की दृष्टि से देखा जाता था। उसने मिख्या से कह दिया था कि सैनिक की शूरवीरता का आदर रणक्षेत्र में ही हो सकता है, गृह पर नहीं।

"ज़रा सोचिए तो सही, मैंने उससे केवल यही कहा था कि मेरी पाँचवीं स्त्री ने ठीक से मेरे गुणों को पहचाना था और उनका समुचित आदर करती थी। बस इतनी-सी ही बात पर उसने मेरे ऊपर पानी का घड़ा फेंक दिया और मुझ पर रुष्ट हो गई।" मिख्या ने तलाक़ के बाबू से कहा।

त० बा०—"आप घबराइए नहीं। आलगा यहाँ अभी नहीं आई। उसके आने पर मैं यथाशक्ति उसे समझाने का प्रयत्न करूँगा।"

वास्तव में स्त्री कभी-कभी तलाक़ के लिए अकेले आती है। प्रायः पुरुष ही आया करते हैं। सोवियट रूस के नियमों के अनुसार केवल एक ही मनुष्य का आकर तलाक़ के लिए प्रार्थनापत्र दे देना पर्याप्त समझा जाता है। यही कारण था कि मिख्या इतना घबराया हुआ था।

ठीक ऐसे ही समय पर, जब मिख्या अपनी राम-कहानी सुना रहा था, आलगा बाहर के बरामदे में आ गई और चट कमरे में घुस आई। तलाक़ के बाबू ने उसे समझाने की बहुत चेष्टा की, किन्तु उस "देवी" ने, मिख्या के "हृदय की रानी" ने एक न सुना और अपने पति से लड़ने लगी। सारी प्रेम-प्रतिज्ञाएँ विस्मृत हो गईं और मिख्या को तलाक़ दे दिया गया।

रूस में तलाक़ एक साधारण घटना है, दैनिक अनुभव की बात है। प्रेम—शुद्ध निर्मल पवित्र प्रेम का न तो वहाँ अस्तित्व ही है और न महत्त्व ही। वहाँ प्रेम मानवता की अतुल संपत्ति नहीं, हृदय की अनुपम विभूति नहीं, वह एक सामान्य वस्तु है, धनोपार्जन का साधन है, जीवन को भौतिक दृष्टि से सुखी बनाने का सुगम उपाय है। लेनिनग्रेड की उस ललना का हाल, जिसके एक बच्चा था और जिसने तीन वर्ष में सत्ताईस मनुष्यों से प्रेम करके उनको बारी-बारी से अपना पति बनाया था, इस बात का स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण है कि वर्तमान रूस में प्रेम का कोई आध्यात्मिक मूल्य नहीं। वह तो केवल क्रय-विक्रय की वस्तु है। उस स्त्री ने ऐसा क्यों किया? धन प्राप्ति के लिए, लिप्सा-पूर्ति के लिए, अनुभव-वृद्धि के लिए। और उसे बहुत सफलता भी मिली। प्रत्येक पति के साथ कुछ समय तक रहकर अंत में वह उसे तलाक़ दे देती थी, तत्पश्चात् न्यायालय में जाकर उस पर पितृत्व आरोपित करके उससे पर्याप्त धन भी वसूल करती थी। सत्ताईस मनुष्यों के साथ उसने ऐसा ही किया, किन्तु अट्ठाईसवें पुरुष को वह अपना पति न बना सकी। उसका सारा रहस्य खुल गया। न्यायाधीश भी उसकी चाल समझ गये। विवाह द्वारा और अधिक धन प्राप्त करने में वह असफल रही। हाँ, अनुभव-वृद्धि अवश्य हुई होगी। लिप्सापूर्ति में भी उसे साफल्य मिला होगा। वह कोई कठिन बात नहीं। अविवाहित रहकर भी लोग विवाहित मनुष्यों की भाँति सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हैं। वहाँ इसकी पूर्ण स्वतंत्रता है और वहाँ की जनता भी इसे निन्दनीय नहीं समझती। काम-शास्त्र की शिक्षा तो स्कूलों में भी दी जाती है। यही नहीं, युवकों तथा युवतियों के कुत्सित संबन्ध को भी स्कूल और कालेजों के अध्यापक अनुचित नहीं समझते, जब तक कि वह पठन-पाठन में बाधक न सिद्ध हो। उनका विश्वास है कि कामोद्दीपन होने पर कामनापूर्ति ही विद्यार्थियों के लिए श्रेयस्कर है। अपूर्ण कामनाएँ ही हानिप्रद एवं घातक हो सकती हैं।

लेनिनग्रेड की ललना का उदाहरण कोई असामान्य उदाहरण नहीं है। ऐसी घटनाएँ तो वहाँ प्रायः रोज़ ही घटित होती रहती हैं। एक

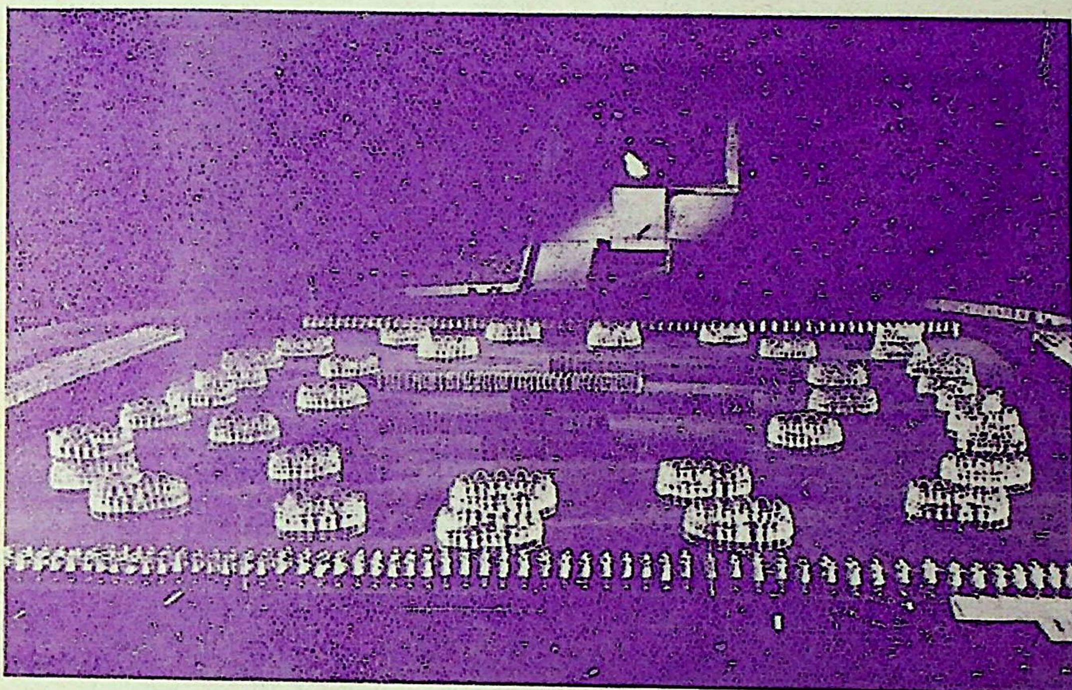


स्वाभिमानी एवं गौरवान्वित व्यक्ति एक पार्क को नियमित रूप से जाया करता था और वहाँ एक बेंच पर बैठकर समाचार-पत्र पढ़ता था। एक स्त्री ने उसे देखा और उसके पास गई। स्त्री की गोद में एक बालक भी था। मनुष्य के समीप पहुँच कर उसने उससे कहा—"क्या आप कृपा करके इस बच्चे को क्षणभर के लिए ले सकते हैं कि मैं अपना मोज़ा ठीक कर लूँ।" मनुष्य ने प्रसन्नतापूर्वक बच्चे को ले लिया और उसे प्यार करने लगा। बालक अत्यन्त सुन्दर था। लगभग दस मिनट तक उस स्त्री से वह मनुष्य बातचीत करता रहा, तदनन्तर वह स्त्री धन्यवाद देकर चली गई और यह मनुष्य उसे भूल गया। किन्तु वह स्त्री उसकी कृपा को भूल न सकी। तीन मास हुए थे कि उस मनुष्य को एक दिन एक सम्मन मिला और उसे न्यायालय में उपस्थित होना पड़ा। वहाँ पहुँचकर वह आश्चर्यस्तम्भित रह गया। वही स्त्री व बालक उसके समक्ष खड़े थे। स्त्री रोती थी और कहती थी कि यह मनुष्य इस बालक का पिता है। इसने मुझे त्याग दिया है और अब 'Alimony' नहीं देता। आदमी यह सुनकर अवाक् रह गया। पहले तो उसने कहा कि वह उस स्त्री को जानता ही नहीं है, अपने जीवन में कभी देखा ही नहीं है। वे दोनों उस पार्क में केवल कुछ क्षणों के लिए अपने जीवन में एक बार मिले थे। अतः इस मनुष्य ने इस क्षीण परिचय को गोप्य रखना ही उचित समझा। कहा मैं इसे नहीं जानता। स्त्री ने सिसकियाँ भरते हुए कहा—मेरा इसके साथ नियमानुकूल विवाह तो अवश्य नहीं हुआ, किन्तु यह अमिट सत्य है कि इस बच्चे का पिता यही मनुष्य है। मैं अपने कथन को सत्य सिद्ध करने के लिए फ़ोटो भी पेश कर सकती हूँ। यह कहते हुए उसने चट से जेब से फ़ोटो निकालकर न्यायाधीश के समक्ष रख दिया। एक फ़ोटो में वह मनुष्य इस बच्चे को अपने गोद में लिये हुए उसे प्यार कर रहा था और वह स्त्री उसी मनुष्य की बेंच पर पैर र[illegible] हुए अपने मोज़े ठीक कर रही थी। दूसरी तसवी[illegible] में उस पुरुष के हाथ स्त्री के गले में थे। यह [illegible] समय की तसवीर थी, जब वह मनुष्य उस बा[illegible] को वापस दे रहा था।

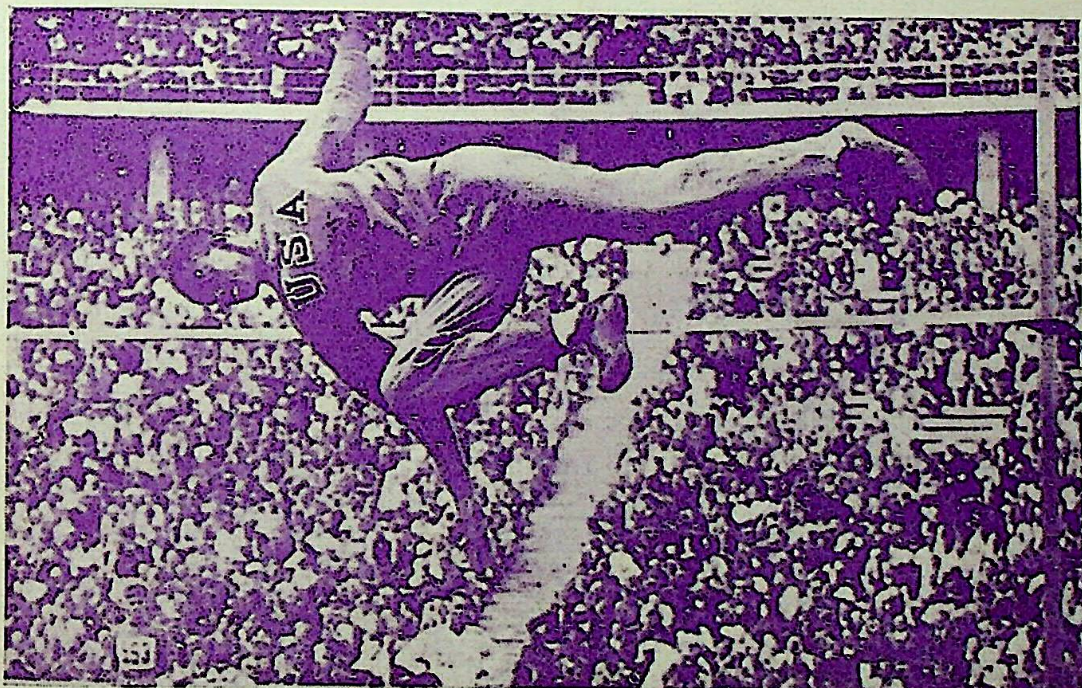
"मैं समझता हूँ, तुमने कहा था कि तुमने [illegible] स्त्री को कभी नहीं देखा" न्यायाधीश ने कहा-"तुम अवश्य ही दोषी हो। तुमने इस स्त्री के [illegible] अन्याय किया है और तुम्हें अपनी आय का [illegible] तृतीय भाग इस स्त्री को देना होगा।"

उपर्युक्त घटनाओं से यह स्पष्ट प्रकट होत[illegible] कि धनोपार्जन के लिए, व्यक्तिगत लाभ के [illegible] वहाँ के लोग किस प्रकार विवाह का आश्रय [illegible] करते हैं। विवाह रूस में पवित्र संस्कार नहीं, [illegible] बन्धन नहीं, एक प्रहसन है, लड़कों का खेल [illegible] रूस में प्रचलित विवाह-प्रणाली को दे[illegible] अनायास ही गुड़िया-गुड्डों के विवाह का स्म[illegible] हो आता है। रूस में ब्याह लड़कों का खेल [illegible] यह अक्षरशः सत्य है। कुछ दिनों की बात है, [illegible] सड़क पर कुछ विद्यार्थी घूम रहे थे। उनमें से कि[illegible] की भी आयु बीस वर्ष से अधिक न थी। पर[illegible] हास-परिहास भी ख़ूब हो रहा था। गपशप [illegible] रही थी कि उनमें से एक ने अपने अन्य साथि[illegible] से कहा—मैं तुमसे इस बात पर शर्त लगा स[illegible] हूँ कि मैं किसी भी स्त्री के साथ ब्याह [illegible] सकता हूँ, चाहे वह विवाहित हो अथवा अ[illegible] वाहित, वृद्धा हो अथवा नवयौवना, कोई [illegible] स्त्री, जिसे आप कहें। क्यों मंज़ूर है शर्त?"

इतना तो उसके साथी भी जानते थे कि [illegible] परिचित स्त्री के साथ ब्याह कर लेना इत[illegible] कोई कठिन बात नहीं, किन्तु एक सर्वथा अपरि[illegible] स्त्री को प्रेम-पाश में बाँधना अवश्य ही प्रशंस[illegible] है। सब मित्रों ने शर्त स्वीकार कर ली। निश्चय हुआ कि यदि वह उनकी बतलाई हुई [illegible] से ब्याह कर लेने में सफल होगा तो वे उसको [illegible] रूबल देंगे।



ओलिंपिया गेम्स स्टेडियम में ओपेनिंग सेरिमनी के समय नृत्य हो रहा है



हाई जंप

N. K. Press, Lucknow.



"बस केवल दिखला दो" उस साहसी नवयुवक ने कहा। पाँचो मित्र चलते ही गये। मार्ग में जो स्त्रियाँ उन्हें दृष्टिगोचर हुईं, वे उनके लिए नितान्त अनुपयुक्त थीं। यदि एक दरिद्र की पूर्ण प्रतिमा थी तो दूसरी चापल्य एवं चंचलता की साक्षात् मूर्ति। यदि कोई धनवती थी तो वह रूपवती न थी, और यदि रूप था तो वांछनीय धन एवं सरलहृदयता का अभाव था। अन्त में उन्हें एक ऐसी बालिका मिली, जो अनुदार विचारों की थी और स्त्री-सुलभ लज्जा के कारण अपने नेत्र नीचे किये हुए चली जा रही थी। बस क्या था, ऐसी ही स्त्री की तो वे खोज में थे। देखते ही उसकी ओर संकेत कर दिया। वह युवक भी उसके पीछे चल दिया। दूसरे ही दिन उस बालिका से सफल परिचय का समाचार लाकर वह अपने मित्रों के समक्ष उपस्थित हुआ।

"वह एक प्रोफ़ेसर की विधवा की कन्या है। अत्यन्त सुन्दर है, किन्तु शान्त एवं गम्भीर भी है। ख़ैर, कोई बात नहीं। मेरा अभीष्ट अवश्य सिद्ध हो जायगा। मैं जानता हूँ कि क्या करना चाहिए।" उस युवक ने कहा। वास्तव में बात भी यही थी। महाशय थे तो केवल १८ ही वर्ष के, किन्तु पूर्ण महात्मा थे। दो सप्ताह में उस बालिका को उस दफ़्तर को ले जाने में सफल हो गये, जहाँ विवाह-प्रहसन हुआ करते हैं। दफ़्तर में जाकर मेज़ पर तीन रुबल रख दिये और विवाह का सार्टीफ़िकेट ले लिया। दोनों पति-पत्नी अत्यन्त प्रसन्न थे। दोनों के हृदय में विजयोल्लास था। पति अपने चातुर्य पर गर्व करता था तथा पत्नी अपनी प्रेम-प्रगाढ़ता पर। पत्नी का हृदय हर्ष की तरल तरंगों से आन्दोलित हो रहा था। वह एक नवीन जीवन का अनुभव कर रही थी। संसार उसे सुनहला एवं सुखपूर्ण प्रतीत होता था। किन्तु भविष्य का किसे ज्ञान है, भवितव्यता का किसे पता है, कल को जानने की किसमें क्षमता एवं सामर्थ्य है। वह सरलहृदय, अनुभवहीन बालिका क्या समझती थी कि इस हर्ष का अन्त विषाद होगा, उसका सुख क्षणिक एवं अल्पायु होगा। उसे क्या पता था कि उसका नवयुवक पति स्वार्थी है, प्रेमी नहीं। बेचारी उसकी चालों से सर्वथा अनभिज्ञ थी। वह यह न जानती थी कि तलाक़ देने के लिए ही उसके साथ विवाह किया गया है। अन्त में दो सप्ताह के पश्चात् वह नवयुवक ज़रा-सी बात पर अपनी पत्नी से रुष्ट हो गया और तलाक़ देने के लिए तलाक़ के दफ़्तर में जा पहुँचा। तलाक़वाले बाबू ने उससे पूछा कि वह तलाक़ क्यों देना चाहता है। इस युवक ने उत्तर दिया "मुझमें और मेरी पत्नी में असमानता है। वह मेरे लिए अत्यन्त गम्भीर है, और फिर वह ईश्वर में विश्वास करती है।" यह कहकर उसने ६ रुबल मेज़ पर रख दिये और उसका तलाक़ मंज़ूर हो गया। इस मनुष्य ने इस प्रकार तीन रुबल अपने ब्याह में व्यय किये, ६ तलाक़ में, १५ दावत में तथा ३६ दो सप्ताह तक सुखमय जीवन व्यतीत करने में। ४० रुबल का उसे लाभ हुआ।

रूस में यह असन्तोषजनक दशा अपनी चरम



सीमा को पहुँच चुकी है। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही इसके कारण व्यथित दिखाई देते हैं और एक ऐसे जीवन की कामना करते हैं, जिसमें सुख एवं शान्ति हो। वैवाहिक जीवन में वे स्थायित्व की इच्छा करते हैं। शनैः-शनैः वर्तमान सामाजिक जीवन के विरुद्ध प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो गई है। रूसी सरकार का ध्यान भी अब इस ओर आकर्षित हुआ है। कौटुम्बिक जीवन के महत्त्व को अब वह समझने लगी है। तलाक़ को कम करने के भी प्रयत्न हो रहे हैं। प्रेम का आदर शुरू हो गया है। वहाँ की जनता अब यह समझ गई है कि प्रेम ही उन्नति का एकमात्र उपाय है। प्रेम-विहीन जाति का अस्तित्व अधिक समय तक सम्भव नहीं। वह उत्तरोत्तर अवनति करती हुई एक दिन अवश्य ही पृथ्वी-तल से लुप्त हो जायगी। इसी विश्वास के आधार पर उन्होंने प्रेम के अमोघ साधन का आश्रय लिया है। हमारा भी विश्वास है कि प्रेम के महामंत्र द्वारा ही संसार वास्तविक उन्नति कर सकता है।





प्रतिमा-विसर्जन

श्रीचतुर्वेदी विद्याधर बी० ए०, विद्यालंकार

(१)

"विमला—ज़रा वह चरख़ी तो उठा लाओ। बादल घिर रहे हैं, इस समय पतंग उड़ाने में बड़ा आनन्द आयगा।" दिनेश ने कहा।

"हाँ उड़ाओ तो पतंग, मैं अभी जाकर विमला की मा और बाबूजी से कहता हूँ समझे? तुम भी कान खोलकर सुन लो बिमला!" विपक्षी बालक रमेशचन्द्र ने भ्रुकुटी चढ़ाकर कहा।

बालिका ने सहमी हुई और भयभीत दृष्टि से दिनेश की ओर देखा।

बालक ने उसके हाथ से डोर की चरख़ी लेकर कहा—"तुम जाओ बिमला, कहीं पिटाई न हो जाय। यह रमेश बड़ा पाजी और चुग़लख़ोर लड़का है। वह देखो, तुम्हारे ही घर की ओर गया है।"

बालिका अपनी ओढ़नी बग़ल में दबाये बड़ी तेज़ी से अपने घर भाग गई, जल्दी में अपनी गुड़िया भी ले जाना भूल गई। दिनेश कुछ देर तक शून्य दृष्टि से जिधर बिमला गई थी, उसी ओर देखता रहा, फिर चरख़ी और बिमला की गुड़िया उठाकर अपने घर में चारपाई पर जा पड़ा। पतंग को फाड़कर फेंक दिया।

दिनेश को पड़े-पड़े शाम हो गई, दिये जल गये। मा ने आकर कहा—"अरे दिनेश, आज तू यहाँ कैसा पड़ा है? उठ, कुछ खा-पी ले, मैं तो समझ रही थी कि तू कहीं घमने गया है। क्या किसी से लड़ाई हो गई है? बिमला से लड़ पड़ा है क्या? वह तो बड़ी अच्छी लड़की है, कभी किसी से नहीं लड़ती, पर आज क्या हो गया? अरे तू उसकी गुड़िया छीन लाया है?"

"मैंने नहीं छीनी, वह अपने-आप ही छोड़ गई है।" यह कहकर दिनेश आँखें मलता हुआ उठ बैठा। उसकी आँखें न-जाने क्यों लाल हो रही थीं।



(२)

दिनेश दुबला-पतला, सुन्दर और साधारण स्थिति का पितृहीन अनाथ बालक था। बड़ा सहृदय और मिलनसार। नवीं कक्षा में स्थानीय स्कूल में पढ़ता था। अवस्था लगभग चौदह वर्ष की होगी। घर में केवल माता, एक बहन और एक दासी थी। बहन का विवाह हो चुका था। इसलिए वह ससुराल चली गई थी। कुछ थोड़ी-सी जायदाद थी, जिसकी आय से इस छोटे-से परिवार का भरण-पोषण होता था। लगभग १००) रु० मासिक आता था, जिससे किसी बात की कमी न रहती। किन्तु भविष्य की चिन्ता रात-दिन चैन न लेने देती थी। कारण यह था कि किसी व्यापार में घाटा आ जाने के कारण दिनेश के पिता ने अपनी ज़ायदाद का कुछ हिस्सा और रहने का मकान बिमला के पिता के पास बन्धक रख दिया था। दिनेश के पिता यदि जीवित होते तो यह रुपया कभी का बेबाक हो गया होता, परन्तु विधाता मालूम होता है, इस परिवार से अत्यन्त रुष्ट थे। तभी तो दिनेश के पिता भी कर्ज़ लेने के थोड़े ही दिन बाद इस संसार से चल बसे।

दिनेश के पिता की मृत्यु के बाद बिमला के पिता ने बड़ी कृपा करके सूद की दर ३) सैकड़े से २) रु० कर दी थी। उधर लोगों में यह भी अफ़वाह थी कि सूद कम करना तो दुनिया के दिखाने भर को है। वास्तव में बिमला के पिता सूद और असल सभी कुछ माफ़ कर देंगे और अपनी कन्या बिमला का दिनेश से विवाह कर उसे ही अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बना जायँगे। दिनेश से वे जितना प्रेम करते थे, उसको देखकर राह चलता भी यह अनुमान कर सकता था। परन्तु विधाता जब रूठता है, तो शायद कभी फिर प्रसन्न ही नहीं होता। बिमला के पिता की सहसा मृत्यु हो जाने से यह बात जहाँ की तहाँ दबी रह गई।

बिमला अपने माता-पिता की एकमात्र क[न्या] थी। पिता की मृत्यु के पश्चात् उनके बहुत [से] सम्बन्धियों ने उनकी जायदाद का प्रबन्ध [और] मा-बेटी की सेवा करने की इच्छा प्रकट की। बिमला के मामा के साले के सिवा अपने मनो[रथ में] कोई सफल नहीं हुआ। वह सपरिवार [उनके] ज्योंती में ही रहने लगा। इसी के पुत्र का [नाम] रमेशचन्द्र था। ख़ूब हृष्ट-पुष्ट, साँवला रंग, [छोटी-]छोटी आँखें और अवस्था क़रीब १८ व[र्ष की] होगी। छठी कक्षा में पढ़ता था। रमेश दि[नेश को] फूटी आँख से भी न देखना चाहता था। [वह] बिमला की मा से हमेशा उसकी शिकायत [किया] रहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि [दिनेश] के साथ बिमला की बोल-चाल भी बन्द हो [गई।] बिमला एक प्रकार से नज़रबन्द होकर रहने [लगी।]

बिमला साक्षात् लक्ष्मीस्वरूप थी। रंग [गोरा,] बड़ी-बड़ी आँखें, पतले और लाल चुन्नी-जैसे [होंठ,] रेशम से मुलायम और घुँघरवाले बाल तथा [सुन्दर] और आकर्षक आकृति थी। दिनेश का घर [बिमला] के घर के ठीक सामने पड़ता था, जिसका [फल] दोनों बाल-प्रेमियों को केवल इतना ही [मिलता] था कि वे कभी-कभी अपनी छत पर चढ़[कर एक-] दूसरे को देख लिया करते थे। इसी से दोनों [सुखी] हो जाते थे। पवित्र प्रेम में जलन नहीं, श[ान्ति] होती है। वह वासना का नहीं, तृप्ति का प[ोषक] होता है।

(३)

"विमला!"

"क्यों अम्मा?"

"बेटी, अब तुम छत पर न जाया करो, [बड़ी] हो चली हो। दूसरे छत पर वह बदमाश [दिनेश] भी पतङ्ग उड़ाया करता है।"

"नहीं मा, दिनेश भैया अब पतङ्ग नहीं [उड़ाते।] पर तुम उन्हें गाली क्यों देती हो? रमेश [दिन भर] सिगरेट पीता और दिन भर ताश खेलता [है,] तो तुम गाली नहीं देतीं?"



"हट मुँहफट लड़की, उसके साथ तो मैं अपनी रानी बिटिया का व्याह करूँगी। उसी को मैं अपने घर का राजा बनाऊँगी।"

"नहीं मा, मैं उसे अपनी एक भी चीज़ न दूँगी।"

"तो किसे देगी ?"

बालिका ने क्षणभर सोचकर डरते हुए कहा—"दिनेश भैया को।"

"हिश् पगली कहीं की। अच्छा ला तेरे बाल तो गूँथ दूँ।"

फिर दासी से बोली—"कृष्णा की मा, ज़रा तेल और कंघी तो ले आ, बिटिया का सिर बाँध दूँ।"

इसी प्रकार धीरे-धीरे पाँच वर्ष व्यतीत हो गये। अब बिमला कली नहीं थी, खिलकर फूल हो चुकी थी। उसे चौदहवाँ वर्ष चल रहा था। बाल-सुलभ चंचलता, गंभीरता की नदी में अपना अस्तित्व खो बैठी थी। यौवन के साथ-साथ लज्जा ने भी उसके ऊपर गहरे रंग का परदा डाल दिया था। उसकी सगाई रमेशचन्द्र के साथ हुए बहुत दिन बीत चुके थे और अब वह एक दिन बड़ी धूम-धाम के साथ उसे अपने घर भी ले गया। उसकी बिदाई का दृश्य दिनेश अपनी छत पर बैठा देख रहा था। जब बिमला की पालकी आँखों से ओझल हो गई तो वह नीचे उतर आया। उसे ऐसा जान पड़ने लगा, मानों उसका हृदय ही किसी ने खींचकर निकाल लिया हो। उसकी आँखों से आँसू तो एक भी न निकला, पर तबीयत बहुत घबराने लगी। वह आँगन में पड़ी हुई चारपाई पर सिर थामकर बैठ गया। बिमला की मा रोते-रोते बेहोश हो गई थी। इसलिए दिनेश की मा उसके पास चली गई थी। दिनेश मकान में अकेला था, इसी से उसकी शोकपूर्ण अवस्था कोई न देख सका।

बिमला की बिदा के दिन से ठीक एक सप्ताह बाद दिनेश अपनी मा को लेकर कानपुर चला गया। वहाँ उसके मामा का घर था। उनके प्रयत्न से किसी आफ़िस में दिनेश को ६०) रुपये मासिक की जगह मिल गई। गाँव जाने की उसकी अब इच्छा ही न होती थी। विरक्ति के गर्भ में वेदना छिपी रहती है और अनुरक्ति के साथ हृदय का उल्लास क्रीड़ा किया करता है।

(४)

समय जाते क्या देर लगती है ? ऊपर्युक्त घटना को दस वर्ष बीत चुके हैं। इस बीच में बालक युवा, युवक प्रौढ़, प्रौढ़ वृद्ध और वृद्ध लोग पर-लोक पहुँच चुके हैं या दिन-रात मृत्यु के स्वागत का आयोजन कर रहे हैं। जो इस संसार से चले गये हैं, वे हमसे छुट चुके हैं और जो मौजूद हैं उनसे निरन्तर द्वंद्व चलता रहता है।

इस बीच में रमेशचन्द्र ने अपने गाँव ज्योंती (मैनपुरी) को छोड़कर कानपुर में अपना कारो-बार जमाया था। वहाँ उसकी एक भारी कोठी थी, जहाँ जवाहरात से लेकर नमक-तेल तक की आढ़त होती थी। रमेश को तो वेश्या और मदिरा से ही अवकाश न मिलता था। परन्तु उसकी चतुर गृहिणी बिमला इन सब कामों की देख-भाल करती थी। संतान में केवल पाँच वर्ष की एक कन्या थी। उसके बाद भगवान् ने कोई कृपा न की थी।

नवरात्र का अन्तिम दिन था। गंगास्नान के लिए झुण्ड के झुण्ड लोग चले जा रहे थे। बंगाली सज्जन "प्रतिमा-विसर्जन" का जुलूस गंगाजी की ओर लिये जा रहे थे। अनेक प्रकार के बाजों की आवाज़ से कान के परदे फटे जा रहे थे। बिमला भी अपनी पुत्री और एक दासी को साथ लेकर स्नान करने के लिए चली। जब उसकी कार सरसैया घाट के पास पहुँची, तो भीड़ के मारे उसे रुक जाना पड़ा। यह देखकर बिमला ने ड्राइवर से सतीचौरा घाट चलने के लिए कहा। वह घाट उसके बँगले के पास ही पड़ता था। परन्तु वहाँ भी भीड़ का वही हाल था। वह मोटर



से उतरकर पैदल ही घाट की ओर चली। कुछ दूर जाते ही उसने देखा कि एक सूरदास खँजरी बजाता हुआ गा रहा है—

"ये नैना रिझवार नहीं री।" और बहुत लोग आनन्द से ताली बजा-बजाकर उसको उत्साहित कर रहे हैं। बालिका ने बिमला का हाथ झकझोरकर कहा—"अम्मा, गाना सुनेंगे।"

बिमला ने चपरासी की ओर देखा। वह तुरन्त सूरदास को बुला लाया। बिमला घाट की ओर स्नान करने चली गई और बालिका सूरदास का गाना सुनकर झूमने लगी। जब सूरदास कई गाने समाप्त कर चुका, तो बोला—"बस, अब नहीं गाया जाता बाबू।"

बालिका ने सूरदास की खँजरी से खेलते हुए कहा—"बाबू नहीं बिटिया।"

"अच्छा बिटिया, अब तो तुम ख़ुश हो गईं न?"

"हाँ"

चपरासी ने जेब से इकन्नी निकालकर सूरदास को देते हुए कहा—"लो"

"क्या बाबा?"

"इकन्नी, और क्या लाख-दो लाख लोगे?"

"नहीं बाबा, मैं तो किसी से कुछ नहीं लेता।"

चपरासी ने इकन्नी जेब में रखते हुए कहा—"हाँ, बड़े धन्नासेठ न हो, जो किसी से कुछ नहीं लेते।"

इस समय तक बिमला भी स्नान करके आ गई थी। उसने कहा—"क्या है?"

चपरासी ने कहा—"कुछ नहीं सरकार"

"अरे यह क्या?—इसके हाथ पर तो दिनेश लिखा हुआ है?"

बिमला सहसा चौंक उठी। दासी ने घबराहट के साथ पूछा—"मालकिन, क्या बात है?"

दासी की समझ में यह पहेली न आई।

बिमला ने कहा—"कुछ नहीं। तुम जाकर देखो ड्राइवर फारिग हो चुका या नहीं?" फिर चपरासी से कहा—"देखो, हम लोगों के पास भीड़ इकट्ठी न होने पावे।"

अब बिमला ने सूरदास से कहा—"तुम इधर तो आओ।"

भीड़ के लड़के शोर मचाने लगे—"हो! अब सूरदास निहाल हो गया, अब सेठा... काफ़ी इनाम देंगी।"

दूसरे लड़के ने कहा—"मित्र, यह गाता ख़ूब"

बिमला उसका हाथ पकड़कर घाट की... ले गई। पीछे-पीछे बालिका भी हो ली। ... स्थान पर बैठकर बिमला ने बड़ी कातर... पुकारा—"दिनेश!"

"कौन है?"

"बिमला।"

बिमला? सूरदास का सर्वाङ्ग काँप उठा।

"तुम्हारी यह दशा किसने की है दिनेश... बार और घर के सब लोग क्या हुए?"

"क्या मेरा उपहास कर रही हो बिमला! ... घर-बार और कैसे परिवार के लोग? एक... सो देवलोक सिधार गई। घर-बार पहले ही... ज़िमीदारी में मिल चुका था। और किसको... हो बिमला?"

यह सुनकर रमणी को चक्कर-सा आ... वह माथा पकड़कर कुछ देर चुपचाप बैठी... उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह... पास ही खड़ी हुई बालिका ने अपनी मा... पर हाथ रखकर कहा—"रोओ नहीं... अच्छा-सा गाना सुनोगी? ये बड़ा अच्छा गाते..."

बालिका की बात को अनसुनी करके... ने दिनेश से कहा—"इसका तो मुझे र... भी पता नहीं कि तुम्हारी सारी ज़िमीदा... कर दी गई है। लेकिन सुना था, बाबूजी... तुम्हारा सब कर्ज़ माफ़ कर दिया था। दिनेश... मुझे उस समय पता चलता, यदि मुझमें उस... अब का-सा साहस होता........उफ़! कैसी... है? हाय! वे दिन अब लौट नहीं सकते।"

कहकर बिमला अत्यन्त कातर हो उठी... दास ने कहा—"जाने दो बिमला: अब उन...



हुई बातों को याद कर चित्त को दुखाने में क्या रक्खा है ? तुम तो सुख से हो न ? तुम्हारी माता की मृत्यु का समाचार तो मैं सुन चुका था। लेकिन, लेकिन........ख़ैर रमेश तो अच्छे हैं न ?"

बिमला ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। बालिका फिर बोली—"अम्मा, घर चलो, और इन्हें भी ले चलो। ये सुन्दर-सुन्दर गीत गाकर सुनाया करेंगे।"

"मैं तुम्हें अच्छा-सा गीत सुनाऊँगा बिटिया, परन्तु यह गाना तो तुम्हारी अम्मा ने ही सिखाया है।" फिर बिमला की ओर मुँह करके कहा—"यह तुम्हारी ही कन्या है न बिमला ? बिलकुल तुम-जैसी ही होगी ? कितनी बड़ी है ? अच्छा अपना नाम तो बताओ बिटिया ?"

"मेरा नाम, मेरा नाम सावित्री है।" बालिका ने तुरन्त कहा। सहसा नेत्रहीन युवक का सारा शरीर काँप उठा। बोला—"तुम भी जान पड़ता है, मुझ अभागे को भूली नहीं हो बिमला ?"

"किन्तु तुम्हारे नेत्र कब से चल बसे और कैसे चले गये दिनेश ?" बिमला ने दिनेश के प्रश्न का उत्तर दिये बिना ही पूछा।

सूरदास ने कहा—"एक दिन आँधी के समय आँखों में कुछ पड़ गया था। इसके बाद ही दुखने लगीं। बहुत ही कुछ इलाज किया, पर अच्छी न हुईं और सदा के लिए चली गईं।" इसी समय दासी ने आकर कहा—"बहुत देर हो गई बहूरानी, अब चलना चाहिए।"

बिमला चौंककर बोली—"चलो दिनेश, घर चलो।"

"रमेश के घर ?"

"नहीं अपने।"

"मेरा तो अब कोई ख़ास घर नहीं है। जहाँ बैठ गया, वही घर हो जाता है।" सूरदास ने उमड़ते हुए आँसुओं को पीकर कहा। फिर कुछ सम्हलकर बोला—"मैं तुम्हारे पैरों की धूल तो ले सकता हूँ रानी ?" रमणी ने दुःखित होकर अपना हाथ उस निर्धन अन्धे और असहाय भिखारी की ओर बढ़ा दिया। भिखारी का शरीर एक बार फिर काँप उठा। उसने धीरे-धीरे बिमला का हाथ अपने माथे से लगाकर छोड़ दिया और एकदम खड़ा होकर बोला—"आज मैं निहाल हो गया मेरी रानी। समझ गया कि संसार भर चाहे मुझसे घृणा करता हो, मेरे मुँह पर थूकता हो, पर तुम मुझसे घृणा नहीं करतीं। अब मैं सन्तोष के साथ मर सकूँगा।" यह कहते ही सूरदास एक ओर को चल दिया। सूरदास कुछ दूर निकल गया, तो उसने ज़रा चिल्लाकर पूछा "कल तुम यहीं मिलोगे न?"

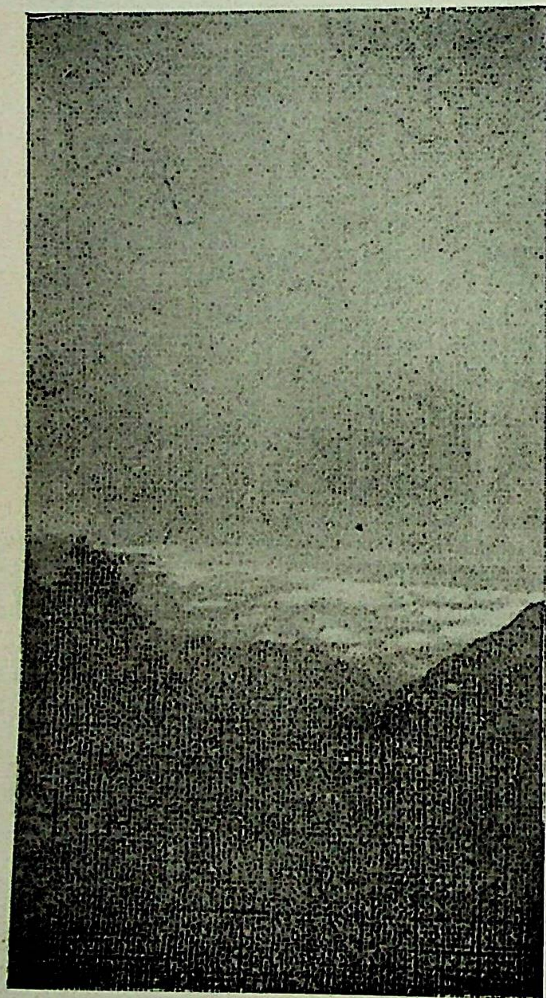
"नहीं, अब मुझसे मिलने की चेष्टा न करना।"

दास-दासी आश्चर्य से अपनी मालकिन को देख रहे थे। पर उसे इसका कुछ ज्ञान न था। अगले दिन बिमला का जी न माना, तो वह उसी घाट पर पहुँची। वहाँ लोगों से मालूम हुआ कि कल संध्या के समय सूरदास एक हाथ में खँजरी और दूसरे हाथ में एक गुड़िया लिये हुए गाता हुआ गंगा में उतर गया था। लोगों ने जब पूछा कि इधर कहाँ जा रहे हो तो बोला—"अपनी प्रतिमा विसर्जन करने जा रहा हूँ भैया।" लोगों ने बहुतेरा समझाया, पर उसने किसी की न सुनी। देखते ही देखते अनन्त धार में विलीन हो गया।

बिमला ने हृदय पर पत्थर रखकर यह सब सुना। वह खड़े-खड़े ही स्वप्न-सा देखने लगी। वही बचपन के खेल-कूद के दिन थे। दिनेश और वह गंगा के किनारे बैठे खेल रहे थे कि दिनेश उसकी गुड़िया लेकर जल में घुस गया। बिमला भी उसके पीछे-पीछे भागी। बिमला सचमुच ही बेहोशी की-सी अवस्था में दिनेश को किनारे पर छोड़ जल में घुस गई और आगे बढ़ने लगी। इसी समय सावित्री ने आवाज दी अम्मा! यह करुण कोमल और घबराई हुई आवाज़ सुनते ही बिमला मानो होश में आ गई। वह पानी से निकल आई और सावित्री को गोद में लेकर बोली—"मेरी बिटिया।"



शयोक्ति न होगी—उज्जैन - निवासी श्रीमान् पं० सूर्यनारायणजी व्यास, ज्योतिषाचार्य थे। आप बड़े ही मधुरभाषी और सहृदय हैं। जो व्यक्ति एक बार भी आपसे मिलता और आपकी सुधाभरी वाणी सुनता है, वह सदा के लिए आपका भक्त हो जाता है। ज्योतिष पर तो आप बहुत अच्छा

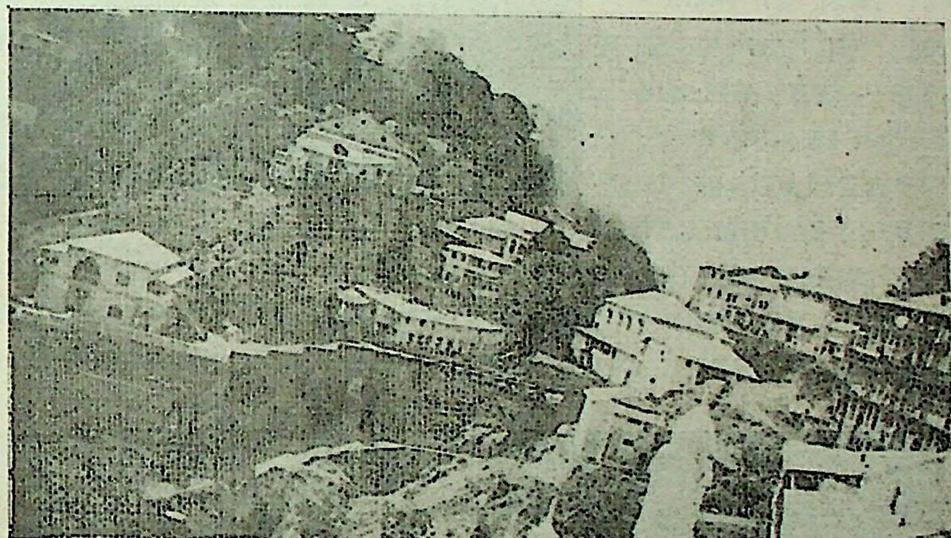


बादल उतरकर भूशायी हो रहे हैं

अधिकार रखते हैं, लोगों के कठिन से कठिन प्रश्नों का आनन-फ़ानन उत्तर देते हैं। सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि आप प्रायः सभी देशों की भाषाओं का अच्छा ज्ञान रखते हैं। संस्कृत, मराठी, गुजराती, मेवाड़ी, मारवाड़ी, मालवी आदि भाषाओं पर तो मातृभाषा के समान आपका अधिकार है। मुझ पर तो आप बड़ी ही कृपा [illegible] हैं। और अधिक मैं आपके विषय में यहाँ पर [illegible] लिखूँ। बस, इतना लिखना ही काफ़ी होगा कि [illegible] के हिन्दीभाषी लोग आपसे उतने ही परिचि[illegible] जितने समाचारपत्रों से। अस्तु, देहरादून [illegible] आया। पंडितजी ने कहा कि अब साथ ही [illegible] चलेंगे और साथ ही रहेंगे। एक साथ रहने [illegible] यह कैसा अच्छा सुयोग ईश्वर ने दिया है [illegible] भला पंडितजी की आज्ञा कब टाल सकता था। [illegible] कहा—"जैसी श्रीमान् की आज्ञा।" दोनों [illegible] से उतर पड़े। एक सुन्दर 'कार' किराये पर [illegible] कार चल दी। अब मार्ग की शोभा देखते [illegible] बनती थी। हम दोनों आपस में ख़ूब बातें [illegible] चले जाते थे। पंडितजी तो सहृदय कवि हैं, [illegible] सीनरी देख-देखकर ख़ूब ख़ुश होते थे। वे [illegible] सब बतलाते थे—समझाते थे। ऊपर-नीचे प[illegible] की नागिन की भाँति टेढ़ी-मेढ़ी सड़कें बड़ी सुन्दर मालूम [illegible] रही थीं। क्षण भर में [illegible] पहुँचती थीं तो क्षण भर में नीचे। दौड़ती [illegible] कार और टैक्सी बड़ी भली मालूम हो रही [illegible] कुछ देर बाद फाटक आ गया। वह हमारे [illegible] मिनट लेट पहुँचने से बंद हो गया था। पूछने [illegible] पता चला कि अब १०½ बजे खुलेगा। इससे [illegible] पर सभी कार और टैक्सी रुकीं। उसी जगह [illegible] छोटा-सा चाय-पान आदि का होटल था। पं[illegible] जी ने चाय बनाने का आर्डर दिलवा[illegible] पंडितजी के साथ एक नानूराम-नामक व्यक्ति [illegible] था। मैं तो अकेला ही था। चाय तैयार [illegible] फिर हम लोगों ने पी। बाद में पान बना[illegible] खाया। पंडितजी पान खाने के बड़े शौक़ीन [illegible] और मैं पान बनाने में बड़ा निपुण हूँ, अतएव [illegible] ड्यूटी अब मैंने ले ली थी। कुछ देर में फाटक खुल[illegible] फाटक से वहाँ मसूरी-गेट पर टेलीफ़ोन द्वारा [illegible] पहुँचाई जाती है कि अमुक नम्बर की कार [illegible] अमुक-अमुक टैक्सी अमुक बजकर अमुक मि[illegible] पर यहाँ से छूट रही है। अच्छा हाँ, फिर



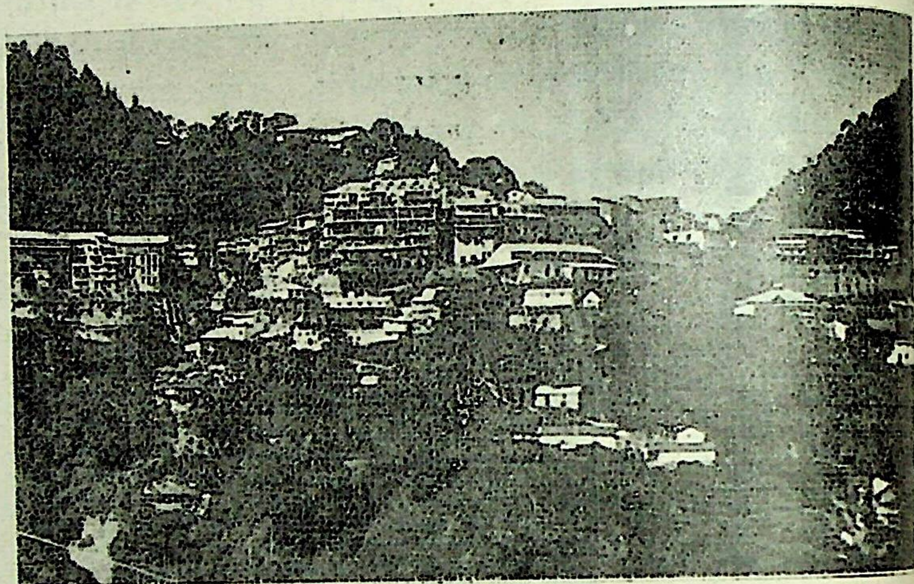
चली। हम लोग वार्तालाप और सीन-सीनरी देखने में मस्त थे। कुछ देरी से 'सनीव्यू' पर (जहाँ सब मोटर-कारें रुक जाती हैं) मोटर खड़ी हो गई। गाड़ियों को ऊपर चढ़ाने का ऑर्डर नहीं है। कार से उतरकर हम लोगों ने कुलियों के सिर पर सामान रखवाया। सवारी तो वहाँ रिक्शा और डंडी ही मिलती थी। मनुष्यों के कंधे पर जीवित सवारी करके जाना हम लोगों ने ठीक न समझा; अतः पैदल ही चलना ठीक हुआ। लाइब्रेरी-बाज़ार के पास पहुँचे तो देखा पंडितजी के एक मित्र श्रीयुत किशनरावजी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने पंडितजी के रहने के लिए पहले ही स्थान रिज़र्व करा रक्खा था। अतः हम लोग निश्चित स्थान पर पहुँचे। साथ में श्रीकिशनरावजी भी आये। कमरे सुन्दर थे। हम लोगों ने अपने-अपने कमरे में सामान रक्खा। फिर बैठे-बैठे बात-चीत होती रही। स्नानादि का प्रबन्ध हुआ। स्नान किया, फिर अपने साथ का ही थोड़ा जल-पान किया। तब कुछ देर विश्राम किया। बाद में भोजन तैयार हुआ, भोजन किया और घूमने गये। साथ में श्रीयुत किशनरावजी भी थे। उसी दिन स्वामी भोलानाथजी के भी दर्शन हुए। यहाँ इनके भाषण होते रहते हैं। ये बड़े सुलझे हुए व्यक्ति हैं। संध्या तो हो ही रही थी। चारो तरफ़ ऊँचे-नीचे पहाड़ों पर बिजली की बत्तियाँ इस तरह शोभायमान हो रही थीं, मानों स्वर्ग में दीवाली हो। यह स्थल मुझे तो बिलकुल स्वर्ग मालूम होता था। सहस्रों फ़ीट पृथ्वी से ऊपर यह रम्य स्थल है। सुकुमारता, नाज़ुकपन और कृत्रिमता का यहाँ अच्छा दिग्दर्शन है। यहाँ अधिकांश निवास अँगरेज़ों का है। इनके अतिरिक्त पंजाबी, यूपियन ख़ासी तादाद में हैं। और प्रायः इस सीज़न में तो सभी देशवासी यहाँ हवा खाने के लिए आते हैं। यहाँ तो अमीर लोग ही आ सकते हैं और रह सकते हैं। ग़रीबों का यहाँ काम नहीं। सभी चीज़ें प्रायः महँगी मिलती हैं। चौगुने दामों में। हाँ, ऊनी कपड़े अवश्य कुछ सस्ते हैं। हम लोग प्रति दिन प्रातः-सायं घूमने जाया करते थे। पंडितजी बड़े विनोदी हैं, ख़ूब यहाँ के स्त्री-पुरुषों की नक़ल किया करते थे, और तरह-तरह के नाम रक्खा करते थे। यहाँ स्त्रियों में फ़ैशन बहुत अधिक है। अरे! पाश्चात्य महिलाओं की तो बात जाने दीजिए, यहाँ आनेवाली भारतीय देवियाँ भी उसी रंग में रँग जाती हैं। मुँह पर सेरों पाउडर, गालों पर रोज़ेनलिपस्टिक आदि का प्रयोग करके वास्तविक भारतीय सौन्दर्य खो बैठती हैं। हम लोगों को भारतीय देवियों के इस अंधअनुकरण पर बड़ा ही खेद होता था। साथ ही मन में इनके प्रति घृणा भी होती थी।



तिलक-लाइब्रेरी से लंढोरा का दृश्य

एक दिन हम लोग एक नई सड़क पर घूमने गये। मार्ग लता-पल्लवों से युक्त था। प्रकृति की

रम्य छटा देख-देखकर हम लोग मन ही मन मुग्ध हो रहे थे। एक बँगले से रेडियो के गाने की आवाज़ आ रही थी। मिस हीराबाई का गायन था। पण्डितजी संगीत के बड़े प्रेमी हैं, अतः एक शिला पर बैठकर हम दोनों गाना सुनने लगे। गायन ख़त्म हुआ तब हम लोग आगे बढ़े। जाकर एक शैल-शिखर पर बैठ गये। यहाँ से मंसूरी की शोभा ऐसी मनोहर दिखती थी कि वर्णन नहीं किया जा सकता। यहाँ से देहरादून के मकान इतने छोटे-छोटे दिखते थे कि मानों सफ़ेद-सफ़ेद कबूतर पृथिवी पर बैठे हों। ५ मिनट वहाँ बैठकर पान खाया, फिर हम दोनों एक अज्ञात और अनिश्चित मार्ग पर चल दिये। पंडितजी ने मुझसे पूछा—"कहो, है आगे बढ़ने की हिम्मत?" मैंने कहा—"हाँ, मैं वीर हूँ, कहीं हिम्मत हार सकता हूँ।" पंडितजी ने हँसकर कहा अच्छा तो फिर चलो। फिर हम चल दिये। बातें करते हुए आगे बढ़ते ही गये। कहाँ जाना है, यह हम दोनों को पता न था।



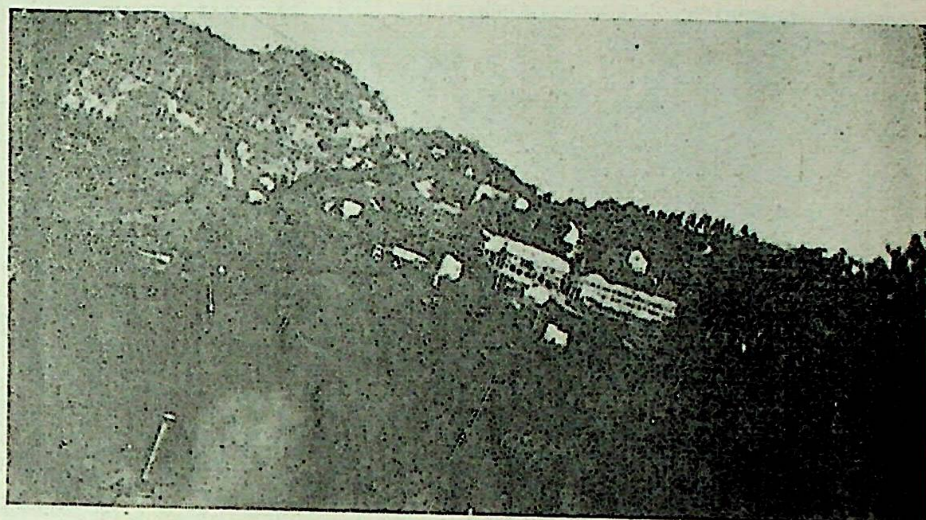
लंढोर-बाजार

हम तो समझते थे कि कहीं रास्ता मिल ही जायगा। रास्ता बड़ा रम्य था। दो झरने भी दिखलाई पड़े। रास्ते में एक मज़दूर मिला, उसकी पीठ पर कोयले का बोझ था। यह बेचारा बुरी तरह से हाँफ रहा था और पसीने से तर था। पंडितजी को उस पर दया आ गई। उन्होंने उसे कुछ पैसे दिये। इस वक़्त ११ बज गये थे, हम लोग सुबह चाय पीकर ही आठ बजे निकले थे। अतः थक भी काफ़ी चुके थे, और भूख भी लग रही



किताब-घर के बैंड-स्टैंड पर बैंड बज रहा है

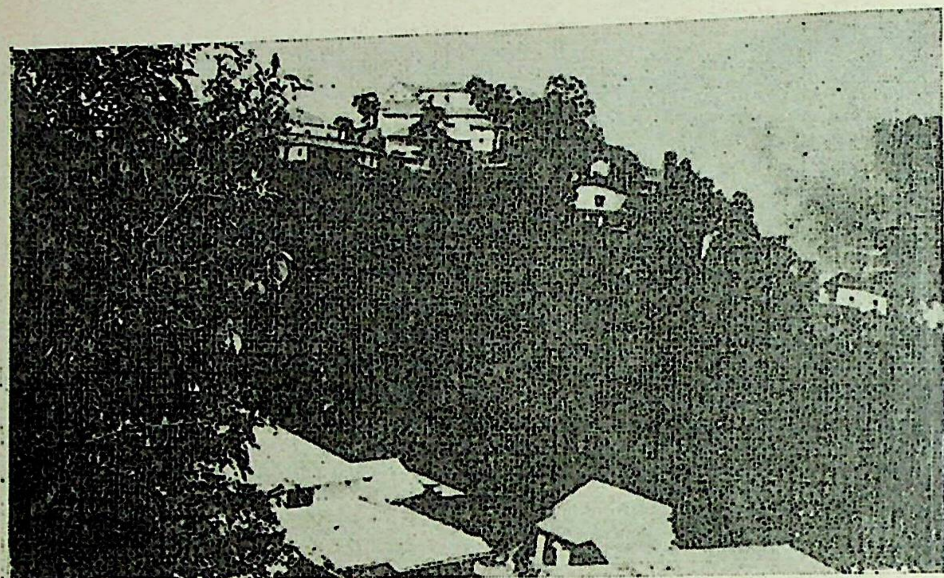
थी। एक आदमी भैंसें लिये हुए जा रहा था। उससे मैंने पूछा—भाई किताब-घर यहाँ से कितनी दूर है? उसने कहा—इधर आप कैसे आ गये? यहाँ तो टोल के पास आ गये हैं। अब आप फिर पीछे जाकर वह मज़दूरों के घर दिख रहे हैं, वहाँ पूछिए, तब पता चलेगा। हम लोग पुनः लौटे, मज़दूरों की झोपड़ियों के पास एक स्त्री



किताबबाजार के क़रीब से चंडाल-गढ़ी

खड़ी थी। उससे हमने पूछा तो उसने दूर से मार्ग की तरफ़ उँगली उठाते हुए कहा कि इधर जाइए, मिस साहब का बँगला पहले आपको मिलेगा। फिर वहाँ से रास्ता मिल जायगा। कुछ ही दूर हम लोग चले थे कि सामने से एक नाटे डील की बुढ़िया आती दिखाई दी। दूर से मालूम होता था कि कोई लड़का आ रहा है; क्योंकि बुढ़िया काला लहँगा पहनकर उसकी लाँग चढ़ाये हुए थी, और ऊपर से एक पुराना काला कोट पहने थी। सिर पर मैली टोपी पहने थी। पान खाये हुए थी। पास आते ही उसने बड़े अच्छे ढंग से हँसकर हम लोगों से पूछा—आप यहाँ कैसे आ गये? मालूम होता है आप लोग रास्ता भूल गये हैं। हमने कहा हाँ, अम्माजी, हम लोग नये आदमी हैं। रास्ता भूल गये हैं। हमें किताब-घर जाना है। बुढ़िया ने कहा—अच्छा चलिए, मैं आपको थोड़ी दूर चलकर रास्ता दिखा दूँ। ऐसा कहकर उसने अपना डंडा वहीं पर पटक दिया और आगे-आगे चल दी। कुछ दूर चलकर बतलाया, अब आप इसी मार्ग से चले जाइए, आगे चलकर आपको मेम साहब का बँगला मिलेगा। फिर वहाँ से आपको रास्ता मिल जायगा। पंडितजी ने उसे भी कुछ पैसे इनाम दिये। फिर हम लोग आगे बढ़े। रास्ता चढ़ाई का था। जिधर से हम आये थे, उतरते वक़्त तो कुछ भी कष्ट नहीं मालूम हुआ था, किन्तु अब चढ़ते वक़्त बड़ा कष्ट मालूम हो रहा था। ज़रा दूर चलकर हम लोग बैठ जाते थे, चढ़ाई के कारण बैल की तरह हाँफने लग जाते थे। पसीने से बदन तर हो रहा था। मैं ज़रा-सा पिछड़ जाता तो पंडितजी रुक जाते, मैं समीप आता तो पूछते—कहो, तुम्हारी वीरता कहाँ गई? मैं हँसकर उत्तर देता, पसीना बनकर बही जा रही है। बड़ी मुश्किल से मि० सा० के बँगले के पास पहुँचे। एक आदमी दिखाई पड़ा, उसने पूछा, कहाँ जायँगे आप? हमने कहा, भाई, हमें किताब-घर जाना है। उसने कहा, चलिए, हम भी वहीं जा रहे हैं। अब हम लोगों के जी में जी आया। अब सीधा रास्ता मिला। १२½ बजे घर आये। आकर पलँग पर पड़ गये। ५ मिनट बाद बोलने की शक्ति आई। फिर कपड़े बदलकर भोजन किया। बाद में सो गये। आज शाम को पुनः घूमने जाने की हिम्मत न हुई। एक दिन कंपनीबाग़ देखने गये। इस तरह और भी प्रायः प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थान





केमिलबैंक रोड से सेवाय-होटल-साइड—अमावा-पैलस

रावजी बड़े ही मिल सार, सहृदय तथा परो कारी व्यक्ति हैं। लोगों पर तो आप ब ही स्नेह रखते हैं। लोगों को ट्रेन में बि कर श्रीकिशनरावजी गये। इधर ट्रेन भी दी। भाई किशनरा से बिछड़ते हुए हमें कष्ट हुआ। छः बजे द्वार पहुँचे। स्टेशन ताँगा करके शहर हर की पैंड़ी पर गये।

देखे। सीज़न ख़त्म हुई। प्रतिदिन वर्षा पड़ने लगी। तब वहाँ जी न लगा। फिर १-१½ मास हो भी गया। घर से आने के लिए चिट्ठियों पर चिट्ठियाँ आने लगीं। इससे अब घर जाने का निश्चय किया। यहाँ हमें अनेक राजा-महाराजाओं को देखने का अवसर मिला। हमने श्रीमंत महाराजा होल्कर और श्रीमती सौ० महारानी सा० को इन सभी में निराले प्रकार में देखा। इनकी प्रशंसा मंसूरी भर में है। इनका व्यक्तित्व बड़ा ऊँचा है। हमें भी दर्शन का सौभाग्य मिला है। वास्तव में ये अपूर्व महाराजा हैं। श्रद्धेय पं० मदनमोहन मालवीय के भी कई बार दर्शन का अवसर मिला।

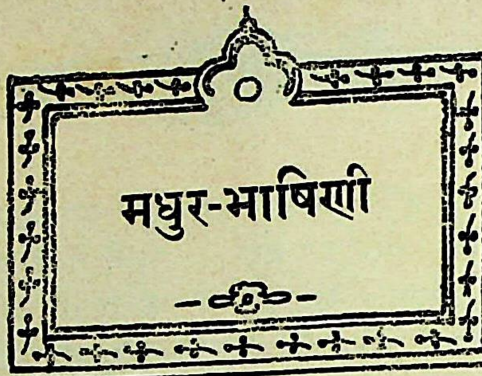
५ जुलाई को १२ की गाड़ी से हम लोग उस पुण्यभूमि मसूरी से बिदा हुए। साथ में बन्धुवर श्रीकिशनरावजी पहुँचाने आये। टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों को पार करती हुई हमारी कार देहरादून पहुँची। गाड़ी आने में अभी देर थी। इसलिए हमने कार से ही सारा देहरादून देखा। वर्षा पड़ रही थी, इसलिए देहरादून ठहरने की इच्छा न हुई। गाड़ी आने के समय पर स्टेशन आये। भाई किशनरावजी देहरादून तक साथ ही आये थे। भाई किशन-

भक्तिपूर्वक दर्शन किया। बाज़ार घूमते हुए तां पुनः स्टेशन आकर एक सराय में कमरा लेकर घंटे विश्राम किया। रात को १०½ की ट्रेन से सवार हुए। प्रातः देहली पहुँचे। स्टेशन से कर पण्डितजी के एक मित्र रहते हैं, उन्हीं के की तरफ़ चले। सौभाग्य की बात कि वे महोदय गली के नाके पर ही मिल गये। मकान पर जाकर सामान रक्खा, बातचीत रही। फिर चाय-पान हुआ। आज सारे शहर ताँगेवालों की हड़ताल थी। जगह- जगह जुलूस निकाले जा रहे थे। मज़दूरों के करुण गाने सुन-सुनकर सचमुच हृदय भर आता था। भर हम लोग कहीं नहीं गये। हम लोगों का वि तो उसी दिन वहाँ से चल देने का था, किन्तु मित्र महोदय के विशेष आग्रह से एक दिन ठहर गये। दूसरे दिन हम लोग कुछ घूमे भी और खद्दर-भंडार से कुछ चीज़ें भी ख़री दिन भर देहली रहकर रात्रि की ट्रेन से हम बिदा हुए। रास्ते में हम दोनों जुदा हुए। पण्डित से बिछड़ते हुए मुझे बहुत अधिक कष्ट हुआ। घंटे पहले ही मेरा गला रुँध गया था। मैं बोलने का प्रयत्न करता था, किन्तु शब्द कंठ



आकर ही रुक जाते थे। मेरा दिल बुरी तरह इस वियोग-व्यथा से पीड़ित हो रहा था, यह तो कोई भुक्तभोगी ही मनुष्य समझ सकेगा। मेरा तो धैर्य छूट रहा था। आँखें सामने नहीं होती थीं। मुँह छिपाये हुए था। पण्डितजी मुझे समझाते—"अजी! यह क्या पागलपन कर रहे हो! इतनी नाराज़ी? अभी से मुँह मोड़ रहे हो?" उनका यह कहना होता कि मेरा हृदय और भी भर आता था। सच कहूँ तो उस वक़्त मुझे तो पण्डितजी का यह कहना भी बुरा मालूम होता था; क्योंकि वे मुझसे बहुत अधिक स्नेह रखते हैं, और इस वक़्त निष्ठुर बनकर छोड़ रहे हैं।

रास्ते में वे अपने सामान सहित उतर पड़े। मैं भी बिदाई देने के लिए ट्रेन से उतरा तो सही, किन्तु मुझसे एक शब्द भी न बोला गया। मैं अपने गुनाहों की माफ़ी भी न माँग सका। रोते हृदय से अपने घर आया हूँ। तब से पुनः गृहचक्र में पिस रहा हूँ। इतने दिन बड़ी शान्तिपूर्वक बिताये थे। अब फिर वही "चक्रं भ्रमति मस्तके।" किसी कवि ने ठीक कहा है कि "सुख के दिन तो एक स्वप्न थे।"

मधुर-भाषिणी



श्रीराजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा'

(१)

मधुर-भाषिणी ! निज मृदु मुख से,
जब तुमने मधुरस बरसाया।
प्रबल पिपासा बढ़ी हृदय में,
प्यासे प्राणों को तरसाया।

(२)

स्वाति-सुधा की सुध-बुध भूला,
चातक पीने को ललचाया।
आया है मधुकरी माँगने,
ऐसा मधुकर के मनभाया।

(३)

हरा-भरा कर दिया किसी को,
और किसी को क्यों झुलसाया ?
कहीं सुधा-रस-सार बना क्यों ?
कहीं हलाहल बन तड़पाया।

(४)

अमृत समान पिया अमरों ने,
सरस सोम-रस-सा अपनाया।
मादक मद बन गया कहीं पर,
कहीं इक्षु-रस बन सरसाया।

(५)

भरकर अधरासव का सागर,
वह देखो, उमड़ा-उफनाया।
मचल गया चञ्चल बालक-सा,
चन्द्रानन छूने को धाया।

(६)

दिया प्रेमिकों को नव-जीवन,
रसिकों ने नव-रस-सा पाया।
षट्-रस भरे रसों पर उसने,
मन-मयूर को खूब नचाया।

(७)

नीरस जीवन किया किसी का,
और किसी का सरस बनाया।
फीके-से हैं किये मधुर फल,
फीकों में माधुर्य बढ़ाया।

(८)

अगणित मूढ़-मृगों को उसने,
मृगतृष्णा बनकर भटकाया।
सञ्जीवन-रस बनकर उसने,
जाते प्राणों को अटकाया।

(९)

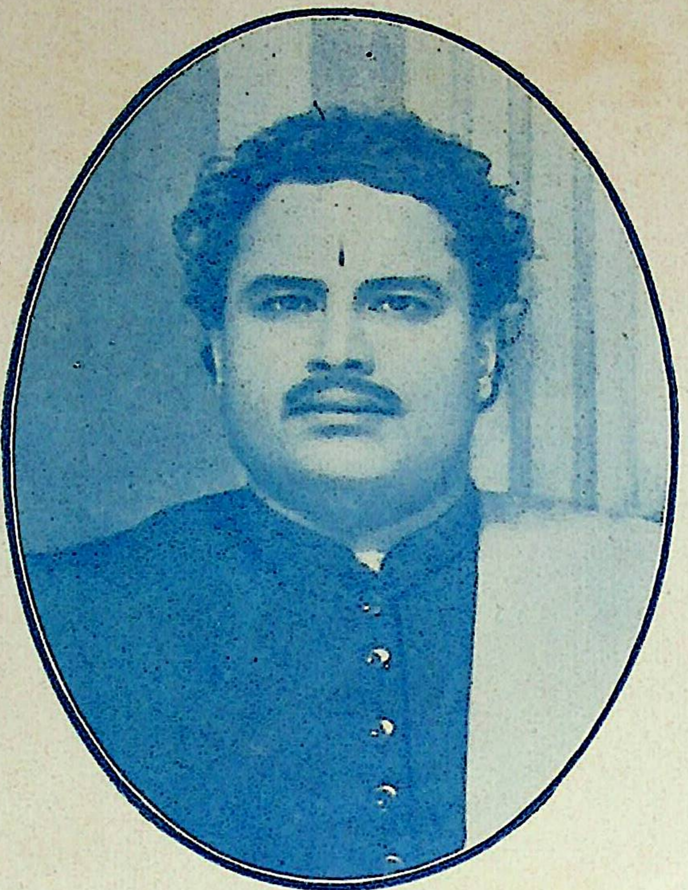
शब्दावलियाँ छुटी फुहीं-सी,
सद्भावों का स्रोत बहाया।
विकल कोकिला हुई श्रवण कर,
वीणा के स्वर को शर्माया।

(१०)

श्रवणामृत भर गया लबालब,
मानस में न प्रमोद समाया।
बढ़ी-चढ़ी रस की सुर-सरिता,
डुबो दिया या पार लगाया।





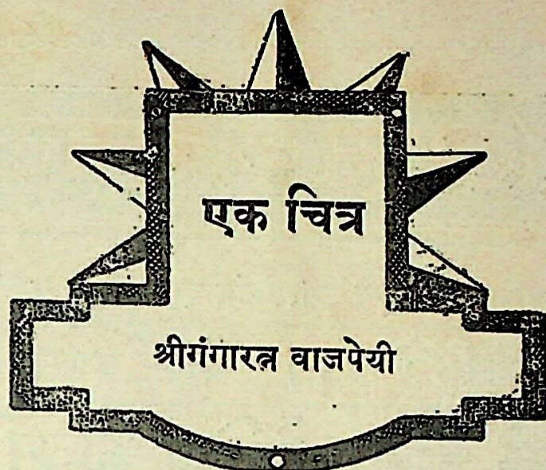




कविवर गांगेय नरोत्तम शास्त्री

[आप कलकत्ते में रहते हैं। लक्ष्मी और सरस्वती, दोनों के कृपापात्र हैं। कविता संस्कृत और हिंदी में बड़ी सुन्दर करते हैं। हिंदी से विशेष प्रेम रखते हैं। कई काव्य-पुस्तकें लिख चुके हैं। माधुरी पर आपकी विशेष कृपा रहती है। आपकी रचना आगामी किसी संख्या में दी जायगी।]

N. K. Press, Lucknow.



सजनि ! मधुर-तम स्नेह पगी-सी !
अमल सकल सुख लहन हेतु नित !
नवल नवल आभा से विकसित—
ललित अचञ्चल लगन लगी-सी !
युगल कमल पर दिपत प्रीति नव !

हृदय-हृदय हर अस्फुट कलरव !
अलि, चिरविस्मृत सुरति जगी-सी !
निरखत तन-मन वारि, वारिवर !
मन-वच रहित निरीह मृदुलतर !
विमल ज्योति हिय में उमगी-सी ।



निर्झर का स्वर

श्रीरामेश्वरप्रसाद

झर् झर् झर् झर् निर्झर का स्वर !

उस अतीत के स्वप्नलोक की
सुध-जुगनू की स्वर्गिक टिमटिम,
विस्मृत-तम के प्रस्तर-उर में
वह प्रकाश का अक्षय निर्झर !
झर् झर् झर् झर् निर्झर का स्वर !

प्राणों के सिकतामय तट पर
धर सुहास का फेनिल चुम्बन,
जग-ऊसर के शून्य हृदय में
फूलों का स्वर्णिम पुलकन भर !
झर् झर् झर् झर् निर्झर का स्वर !

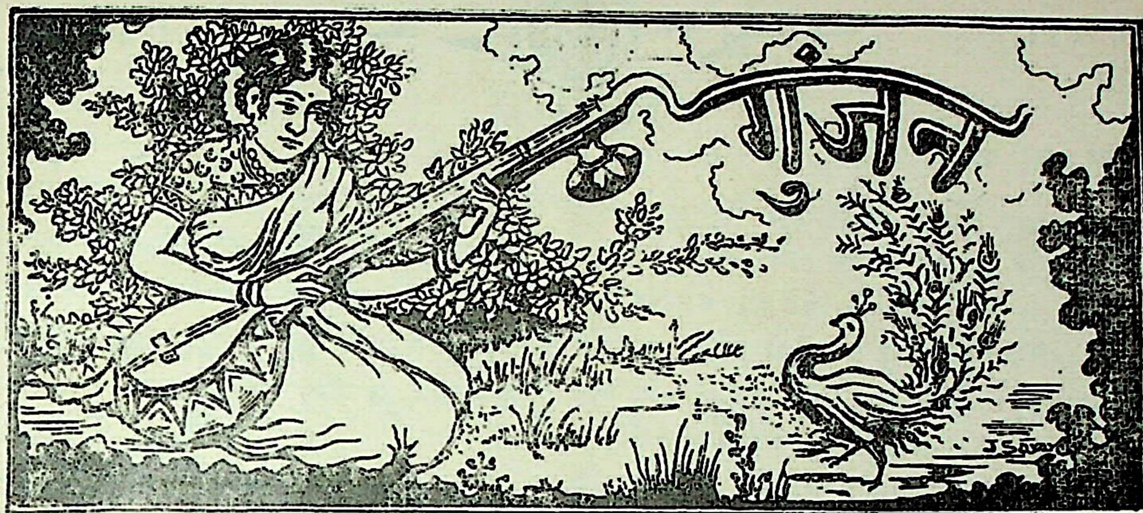
रजत-रश्मियों के तारों पर
उडु-बालाएँ गाती गायन,
जम जाता स्वर शुचि मुक्ता बन,
सुप्त मुकुल के सस्मित मुख पर,
झर झर् झर् झर् निर्झर का स्वर !

जल के उर में इन्द्रधनुष बन,
वन मृदु परिमल रज के उर में,
पंकज-उर में गूँज रहा है—
अलि-वीणा के स्वर में भर स्वर !
झर् झर् झर् झर् निर्झर का स्वर !

पवन कान में कह जाता है
दूर देश की मधुर कहानी,
रंजित मार्ग बना जाता है
रोहित का जलधर पर दिनकर !
झर् झर् झर् झर् निर्झर का स्वर !

मद-मृग-सा जग भूल रहा है
माया के इस स्वप्निल वन में,
जान न पाया अरे अभी तक
कण-कण गुंजित मधुमय झर् झर् !
झर् झर् झर् झर् निर्झर का स्वर !!





भक्त माधव
नाटक का एक गान

स्वरकार
प्रो० आनन्दस्वरूप तिवारी "अनंद"

राग बागेश्री

गोकुलेश गोपाल मुरारी,
असुरारी जन के भगवान।
इस माधव के हो तुम रक्षक,
त्रिपुरारी प्यारे घनश्याम।
बल दो तन में, मन में विद्या,
हो जावें जग में गुनवान॥

आरोही—अवरोही

नी सा ग म धा नि सां   सां नी धा म ग रे सा

स्थायी—(ताल त्रिताल)

म	ग	रे	सा	सा	सा	धा	नि	सा	सा	सा	सा	रे	रे	सा	सा
गो	ऽ	कु	ले	ऽ	श	गो	ऽ	पा	ऽ	ल	मु	रा	ऽ	री	ऽ
०				३				×				२			
सा	नीसा	म	म	म	म	ग	म	धा	नी	सां	सां	म	ग	रे	सा
अ	सुऽ	रा	ऽ	री	ऽ	ज	न	के	ऽ	भ	ग	वा	ऽ	ऽ	न
०				३				×				२			

अन्तरा

ग	म	धा	नी	सां	सां	सां	सां	नी	सां	रें	सां	नी	सां	नी	धा
इ	स	मा	ऽ	ध	व	के	ऽ	हो	ऽ	तु	म	र	ऽ	च्छ	क
०				३				×				२			

धा	धा	धा	पाधा	धा	धा	पा	धा	पाधा	नी	धा	म	म	ग	रे
त्रि	पु	रा	ऽऽ	री	ऽ	प्या	ऽ	रेऽ	ऽ	घ	न	श्या	ऽ	ऽ
०				३				×				२		
धा	नी	सां	गं	रें	रें	सां	सां	नी	सां	रें	सां	नी	सां	नी
ब	ल	दो	ऽ	त	न	में	ऽ	म	न	में	ऽ	वि	ऽ	धा
०				३				×				२		
धा	धा	धा	धा	धा	धा	पा	धा	पाधा	नि	धा	म	म	ग	रे
हो	ऽ	जा	ऽ	वें	ऽ	ज	ग	मेंऽ	ऽ	गु	न	बा	ऽ	ऽ
०				३				×				२		

राग बागेश्री में ग, नी उतरे लगते हैं, तथा इसका वादी स्वर मध्यम व सम्वादी पञ्चम गायन का समय रात्रि का दूसरा पहर है।



समीक्षा

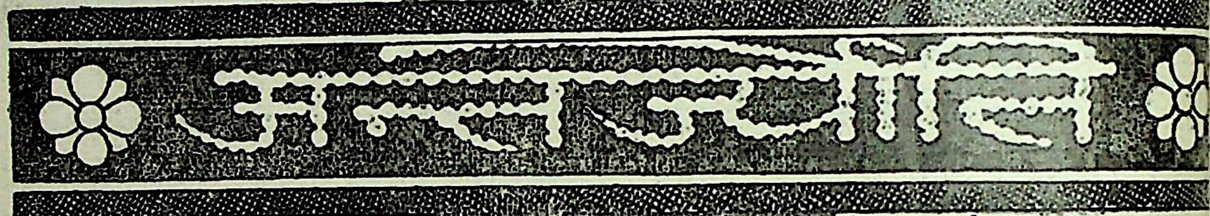
सान्ध्य-गीत—रचयित्री, श्रीमती महादेवी वर्मा एम्० ए०; प्रकाशक, टेंपुल आफ़ मिस्टिसिज़्म, इलाहाबाद; मूल्य ५); बढ़िया आर्टपेपर पर छपे हुए लम्बे-चौड़े आकार के १०० पृष्ठ; ५ तिरंगे चित्र और १ ग्रन्थकर्त्री का पेंसिल स्केच। जिल्द बढ़िया चमड़े की मज़बूत और सुनहली छपाई से युक्त।

कविता वह वस्तु है, जो हृदय से निकलती है और हृदय पर पूरा प्रभाव डालती है। उसमें पांडित्यपूर्ण शब्दयोजना या जटिलता के लिए स्थान नहीं। भाव कितना ही गूढ़ हो, पर शब्द उसके सरल और सरस होंगे। श्रीमती महादेवी जी की रचनाओं में अधिकांश में हमें यह विशेषता देख पड़ती है। सान्ध्य-गीत की सभी रचनाएँ सुन्दर और आकर्षक हैं। स्थानाभाव से केवल कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं। पाठक देखें, भाव कितने सूक्ष्म और शब्द कितने सरस और सरल हैं—

विरह की घड़ियाँ हुईं अलि मधुर मधु की यामिनी-सी !
दूर के नक्षत्र लगते पुतलियों से पास प्रियतर;
शून्य नभ की मूकता में गूँजता आह्वान का स्वर;
आज है निःसीमता लघु प्राण की अनुगामिनी-सी !
एक स्पन्दन कह रहा है अकथ युग-युग की कहानी;
हो गया स्मित से मधुर इन लोचनों का चार पानी;
मूक प्रति निःश्वास है नव स्वप्न की अनुरागिनी-सी !
सजनि अन्तर्हित हुआ है 'आज' में धुँधला विफल 'कल';
हो गया है मिलन एकाकार मेरे विरह में मिल;
राह मेरी देखती स्मृति अब निराश पुजारिनी-सी !
फैलते हैं सान्ध्य नभ में भाव ही मेरे रँगीले;
तिमिर की दीपावली में रोम मेरे पुलक-गीले;
बन्दिनी बनकर हुई मैं बन्धनों की स्वामिनी-सी !

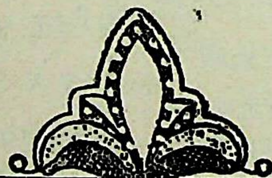
इसी तरह की ४५ रचनाएँ इस संग्रह में हैं। हिन्दी-संसार को यह जानकर परम प्रसन्नता होगी कि महादेवीजी केवल उच्च कोटि की कविता ही नहीं लिखतीं, बढ़िया चित्र भी बना लेती हैं। इस संग्रह के सब चित्र आपने ही बनाये हैं और वे बहुत अच्छे हैं। हम श्रद्धा और आदर के साथ महादेवीजी का अभिनन्दन करते हैं। आशा है, सान्ध्य-गीत का यथेष्ट समादर और प्रचार होगा।





वर्तमान स्त्री-समाज की प्रगति

श्रीरामरतन भटनागर बी० एस्-सी०



बहुत प्राचीन काल से संसार के लगभग सभी भागों में स्त्री का कार्यक्षेत्र उनका घर रहा है। घर के बाहर से उनका सम्बन्ध बहुत कम रहा है अथवा नहीं रहा है। परन्तु इधर जब से नवीन युग का प्रारम्भ हुआ है, संसार के स्त्री-समाज में स्वतंत्रता और स्वाधीनता की एक लहर भर गई है। उसका कार्यक्षेत्र घर के भीतर ही नहीं रह गया है, दिन पर दिन विस्तीर्ण होता जा रहा है।

विकास जीवन का नियम है। जब मनुष्य का अथवा जाति का विकास रुक जाता है, उसमें मृत्यु की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। विकास के लिए चाहिए उपयुक्त वायु और उपयुक्त पृथ्वी। ये दोनों संकुचित सीमा में मिल नहीं सकते। एक ही पृथ्वी के टुकड़े पर आप हर साल यदि पौदे उगाना होते हैं तो कुछ दिनों के लिए पृथ्वी संग्रह के लिए 'बेजोत' देना होता है। उसकी और वायु बदल देना होता वर्षों की घर की चहारदीवारी संकुचित सीमा ने स्त्री को पंगु बना दिया था। विकास रुक गया था। भीतर जो काम होता था उनके लिए यथेष्ट था।

स्त्री-स्वाधीनता की आवाज़ योरप से उठी। समय महायुद्ध का हुआ। इस युद्ध में स्त्रियों ने मार्के के काम दिखाये। पुरुषों ने उनके पर आश्चर्य प्रकट किया भविष्य के गर्भ में छिपी महान् शक्ति का अनुभव किया। पुरुष क्षेत्र में थे। स्त्रियों को उनकी अनुपस्थिति



और बाहर के कार्य, उद्योग, व्यवसाय अपने हाथ में लेने पड़े। उन्होंने कारख़ानों में गोला-बारूद तैयार किया और युद्धस्थल के बाहर घायलों की सेवा-सुश्रूषा की। इन स्त्रियों ने अपनी सेवाओं से लाखों पुरुषों के स्थानों की पूर्ति की थी। स्वयम् उन्होंने अपनी शक्ति को जाना। महायुद्ध की समाप्ति पर वह फिर घर में बंद न रह सकीं। उन्होंने सार्वजनिक और राष्ट्रीय जीवन में प्रवेश किया और सामाजिक और राजनीतिक रंगमंचों पर अपना स्थान बनाया।

उन्होंने प्रकट कर दिया था कि यदि वे पुरुषों की भाँति सुविधाएँ पावें, तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों की ही तत्परता और योग्यता से काम कर सकती हैं। यह नहीं कि पुरुष चुप बैठे हों। अधिकार की भावना प्राकृतिक है और वे भी अपने अधिकार खोना नहीं चाहते थे। आलोचनाएँ और निंदाएँ हुईं, परन्तु धीरे-धीरे स्त्रियों ने अपना स्थान बना ही लिया। आज स्त्रियाँ किसी भी विषय में पुरुष-समाज से पीछे रहना नहीं चाहतीं।

नवीन स्त्री-आन्दोलन में रूस, अमेरिका, जर्मनी, इँगलैंड तथा फ्रांस आदि देशों की स्त्रियों का विशेष रूप से हाथ था। यह आन्दोलन अधिकार प्राप्त कर रुक जाता, ऐसी बात नहीं थी। कुछ ही दिनों पश्चात् वह होड़ शुरू हो गई, जिसने स्त्री-वकील, स्त्री-डॉक्टर, स्त्री-वायुयान-संचालक आदि-आदि उत्पन्न किये। अधिकारों और कुछ व्यवसायों की यह दौड़ चाहे वाञ्छनीय नहीं भी हो, पर जीवन का चिह्न अवश्य है। डॉर्विन के सिद्धान्त के अनुसार जीवन संघर्ष है। संघर्ष जीवन है, गति है और विकास है। आज हम स्त्री-समाज में वही संघर्ष देखते हैं।

आज स्वाधीन देशों में जाइए, वहाँ 'अबला' कहलानेवाली, छाया से भयभीत, स्त्रियाँ नहीं मिलेंगी। वे स्वास्थ्य के लिए व्यायाम करती हैं। पानी में तैरती हैं। दौड़ने का अभ्यास करती हैं। यही नहीं, स्त्रियाँ पहलवानी भी करती मिलेंगी। वे युद्ध-समितियों में राष्ट्र के जीवन-मरण के प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करती हैं और गार्हस्थ्य-जीवन में अपनी कमाई संपत्ति से पुरुष को मदद करती हैं।

अमेरिका में स्वाधीन स्त्री-समाज ने वहाँ के दाम्पत्य जीवन को बदल ही दिया है। विवाह फिर भी बन्धन ही है। उनका कहना है कि यदि हमें शिक्षित और कुशल होकर भाँति-भाँति के उच्च कोटि के कार्यों का संपादन करना है तो हमें विवाह के जाल में न पड़ना चाहिए। विवाह-विरोधिनी संस्थाएँ स्थापित हैं और वे उत्तरोत्तर बढ़ रही हैं। विवाहित जीवन को अवहेलना की दृष्टि से देखा जाता है। पुरुष-समाज भी विवाह की उपयोगिता को उतना नहीं मानता। वैवाहिक जीवन का ख़र्च बढ़ गया है और साधारणतः पुरुष उसे अपनी आय से पूरा नहीं कर सकता। फलतः अविवाहित स्त्री-पुरुषों की संख्या अमेरिका में बराबर बढ़ती जाती है। विवाह-सम्पादन में युवक-युवती को पूरी स्वाधीनता है। विवाह के पूर्व युवती और युवक में 'कोर्टशिप' की प्रथा है। वे कुछ दिनों साथ रहकर एक दूसरे की योग्यता - अयोग्यता का परिचय प्राप्त कर लेते हैं। तत्पश्चात् रजिस्ट्रार से आज्ञा - पत्र लेकर किसी सिविल सर्वेन्ट की उपस्थिति में, अथवा गिरजे में पादरी के सामने विवाह-संस्कार पूरा करते हैं। यह विवाह-संस्कार बहुत सरल है और उसमें बहुत थोड़ा-सा समय लगता है। विवाह के पश्चात् युवक माता-पिता से अलग होकर अपने गार्हस्थ्य-संसार का निर्माण करता है।

रूस में बोल्शेविक क्रान्ति (१९१९) के पूर्व स्त्रियों की दशा भारतीय स्त्रियों की आज की दशा की भाँति ही दयनीय थी। रूस के याकुटस्क-नामक प्रान्त में तो स्त्रियाँ बेची भी जाती थीं और उनका मूल्य बहुत ही कम होता था। वैवाहिक जीवन भी दासत्व से अच्छा न था। पत्नी पति



का खिलौना मात्र थी। विवाह-संबंध-विच्छेद का अधिकार पुरुष-मात्र ही उपयोग में ला सकते थे और तब स्त्री को अपने बच्चे भी उन्हें सौंपना पड़ते थे। इस अवस्था में स्त्री को सदा प्रयत्न करना पड़ता था कि पति कभी उससे अप्रसन्न न हो सके। समाज में व्यभिचार की वृद्धि थी।

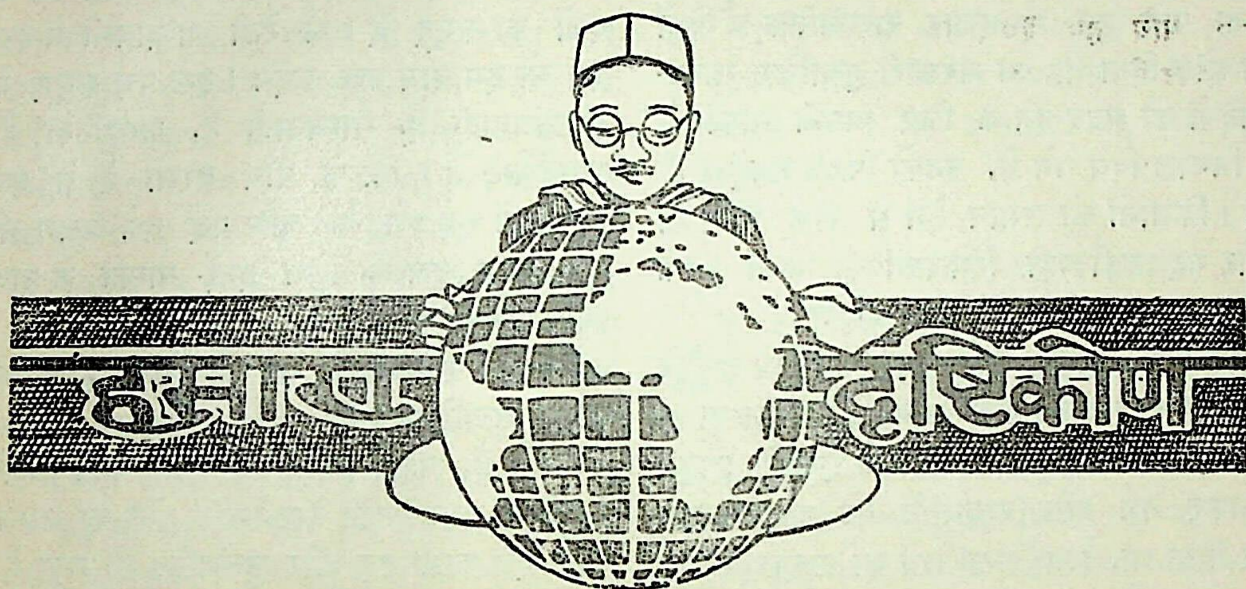
क्रान्ति के पश्चात् जब सोवियट-सरकार की स्थापना हुई, तब स्त्री-पुरुषों के समानाधिकारों की घोषणा हुई। स्त्री-पत्र-पत्रिकाओं और संस्थाओं का जन्म हुआ। स्त्री-क्लब, स्त्री-पुस्तकालय और स्त्री-व्यायामशालाएँ स्थापित हुईं और देहातों तक पहुँच गईं। कारख़ानों में काम करनेवाली स्त्रियों और लड़कियों की उन्नति के लिए भी वहाँ अनेक प्रकार भी सुव्यवस्थाएँ की गईं। शिशु-पालन का भार सोवियट-सरकार ने ले लिया। वहाँ पर बड़ी योग्यता के साथ बच्चे पाले जाते हैं। रूस में स्त्री-पुरुषों में परस्पर प्रतिद्वन्द्विता नहीं है, वरन् दोनों ही मिलकर जीवन की पूर्ण उन्नति में लगे हैं।

सदियों से पीछे पड़े टर्की ने भी आज मुस्तफ़ा कमालपाशा की अध्यक्षता में स्त्रियों की पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा कर दी है। वहाँ भी स्त्रियाँ जीवन-क्षेत्र में आगे बढ़कर संसार की उन्नत स्त्रियों का सामना कर रही हैं। उन्होंने मुल्लाओं और पोपों के फ़तवों और क़ुरान की दुर्बल आयतों को ठुकरा दिया है।

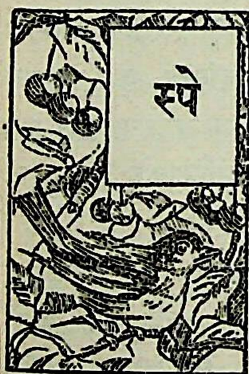
महायुद्ध के बाद से जर्मनी की स्त्रियों का जीवन ही बदल गया है। वहाँ की युवतियाँ युवकों की भाँति ही शारीरिक और मानसिक उन्नति में अग्रशील हो रही हैं। शारीरिक संगठन और शक्ति-संचय वे युवकों की भाँति ही करती हैं। वहाँ की व्यवस्थापिका सभाओं में स्त्री-प्रतिनिधि ली जाती हैं। अदालत, चिकित्सालय, साहित्यक्षेत्र और धार्मिक क्षेत्र कुछ भी स्त्रियों से अछूता नहीं रह गया है। जर्मनी के बड़े-छोटे सभी नगरों में स्त्री-पुलिस है।

प्रायः संसार के सभी समुन्नत देशों में स्त्रियाँ अपने जीवन में आगे बढ़ रही हैं। बड़े देशों की बात छोड़ देने पर भी जापान, फ़्रांस, दक्षिण अफ़्रीक इँगलैंड, इटली, ब्रेज़िल, चीन और न्यूज़ीलैंड आ प्रदेशों के आन्दोलनों से वर्तमान स्त्री-समाज प्रगति स्पष्ट हो जाती है। संसार की राजनी में इन देशों का एक-सा स्थान नहीं है, परन्तु सभी देशों में स्त्रियों ने अपने अधिकारों को स लिया है। वे जाग्रत् हैं और बढ़ रही हैं। स हमारे देश में भी सूक्ष्म रूप से यह आन्दो चल रहा है। वर्तमान शिक्षा के साथ देश वातावरण बदल रहा है। भारत-जैसे महान् में उन्नति की प्रगति तेज़ न जान पड़े तो आश्च नहीं है। परन्तु पगों के बढ़ने से समझ में जाता है कि हमारी स्त्रियाँ भी बराबर उपयुक्त स्थान ग्रहण कर रही हैं। उन्होंने पुरु अनधिकृत प्रदेशों में प्रवेश किया है। १९३० के सत्याग्रह-आन्दोलन में स्त्री-समाज में बड़ी जागृति हुई। गृहक्षेत्र से निकलकर पहली बार भा तीय नारी ने युद्ध में पुरुष का सामीप्य ग्रहण कि

स्त्रियों की अधिकार की बात कहाँ तक वा नीय है, यह तर्क का विषय नहीं रह गया यह स्थूल सत्य है कि हमारे पिछड़े समाज स्त्रियों ने भी राष्ट्रीय और सामाजिक क्रान्ति प्रवेश किया है और अब वे अपना उपयुक्त स्थ बनाने में लगी हैं। यह भय का विषय है नहीं। जीवन को जितनी भी अधिक स्वाधीन प्राप्त होगी, वह विकसित होगा, पूर्ण होगा ध्यान रखने का विषय यह होगा कि अधि के क्षेत्र में सफल होने पर स्त्रियाँ पुरुष की प्रति द्वंद्विता को ही सब कुछ समझकर जीवन संघर्षमय और विषाक्त न बना लें। जैसा रूस एक महान् लेखक ने कहा है—जीवन संघर्ष है, वह सहयोग का दूसरा नाम है। यदि हम स्त्री-समाज स्त्री-पुरुष के अधिकारों और वैमनस्य बीच सामंजस्य स्थापित कर सका तो वह सं की स्त्रियों का निकट-भविष्य में ठीक-ठीक कर सकेगा।



१—स्पेन की क्रांति



स्पेन से जो ख़बरें आती हैं, अनिश्चित होती हैं। दोनों पक्ष विजय की घोषणा करते हैं, किंतु पिछले मास में जो ख़बरें आई हैं, उनसे यह स्पष्ट हो रहा है कि स्पेन की साम्यवादी सरकार हार रही है और विद्रोही लोग, जिनमें पादरी, ज़मींदार, उच्च-श्रेणी और पूँजीपति शामिल हैं, जीत रहे हैं। अभी तक इस गृह-युद्ध में क़रीब २० हज़ार स्पेन-निवासी काम आ चुके हैं और इतने ही ज़ख़्मी भी हुए होंगे। हताहतों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। इस युद्ध में दोनों तरफ़ से ज़हरीली गैस भी इस्तेमाल की जा रही है। स्पेन में साधारण समय में तो नाना दल और नाना नेता थे, लेकिन जब से विद्रोह उठ खड़ा हुआ है, अनेक दल और अनेक पार्टियाँ सम्मिलित होकर केवल दो दलों में बट गई हैं। स्पेन की वर्तमान गवर्नमेंट के साथ गरम दल की समस्त पार्टियाँ हैं—जैसे साम्यवादी, कम्यूनिस्ट, अनार्किस्ट, गरम विचार के प्रजातंत्रवादी, अनीश्वरवादी, किसान और मज़दूर। विद्रोहियों के साथ कैथलिक ईसाई, पादरी, महाजन, बैंकर ज़मींदार और उच्च वर्ग के लोग हैं। जिस समय विद्रोह आरम्भ हुआ, सीनियर मैन्युअल अज़ाना स्पेनिश गवर्नमेंट के प्रमुख थे।

मैन्युअल अज़ाना (Manuel Azana) को स्पेन का करेन्सकी कहा गया है। यह मध्यमार्ग के राजनीतिज्ञ माने जाते हैं, लेकिन इनका विशेष झुकाव साम्यवाद की ओर है। यह वाम पक्ष और दक्षिण पक्ष, दोनों पक्षों को नियंत्रण में रखने का प्रयत्न करते थे। दक्षिण पक्ष के नेता समझते थे कि इनकी सहायता से लाल झंडे को नीचा रक्खा जा सकेगा, और वाम पक्ष के लोग समझते थे कि अज़ाना की मदद से साम्यवादी प्रोग्राम देश में आसानी से चलाया जा सकेगा।

अज़ाना ने १० मई, १९३६ को प्रेसीडेण्ट चुने



जाने के बाद ही १६३४ के साम्यवादी विद्रोह में सज़ा पाये हुए ३० हज़ार राजनीतिक क़ैदियों को छोड़ दिया था; जो सरकारी मुलाज़िम साम्य-वादियों को मदद देने के लिए अपनी नौकरियों से निकाल दिये गये थे, उनको फिर जगहें दे दी थीं। किसानों को लगान देने से रोक दिया था और यह बड़ी-बड़ी रियासतों को ज़ब्त करके उनका बटवारा किसानों में कर रहे थे।

अज़ाना कैथलिक धर्म के विरुद्ध हैं। इन्होंने पार्लियामेंट में अपने एक भाषण में कहा था—"स्पेन अब कैथलिक नहीं रहा"। इन्होंने क़ानून बनाकर धर्म और राजनीति को अलग-अलग कर दिया था, ईसाई मठाधीशों का सम्प्रदाय तोड़ दिया था और उनकी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली थी। इनका कहना था कि "चर्च अर्थात् पादरी-समुदाय अपना काम छोड़कर राजनीति में क्यों हस्तक्षेप करता है? पादरी-समुदाय ग़रीब और अमीर की लड़ाई में अमीर का क्यों साथ देता है? दक्षिण पक्ष को वोट देने और दिलाने की क्यों प्रेरणा करता है? चर्च स्पेन में एक राजनीतिक दल क्यों बनता है और ज़मींदारों, बैंकरों, महाजनों, तथा सूदख़ोरों का क्यों साथ देता है?"

अज़ाना ने पहले तो अपने शासनकाल के आरम्भ में सारी ज़मींदारियों को ज़ब्त करके छोटे-छोटे किसानों में बाँट देना चाहा। किन्तु असन्तोष की प्रबल मात्रा देखकर उन्होंने यह सुधार केवल तीन प्रान्तों में ही शुरू किया। "We are not thinking of dividing property unless the measure is justified." अर्थात् "हम लोग सम्पत्ति का बटवारा उस समय तक नहीं करेंगे, जब तक हमें इसका औचित्य न मालूम हो जाय" ये वाक्य अज़ाना ने प्रमुख की हैसियत से अपने एक भाषण में कहे थे। यहाँ यह बतला देना ज़रूरी है कि स्पेनिश राजनीति का गरम दल अनेक उग्र दलों का समूह है। अँगरेज़ी शब्दावली में दल को हम वाम पक्ष कहेंगे। इस पक्ष-समूह प्रजातंत्रवादी हैं, साम्यवादी हैं, कम्यूनिस्ट अनार्किस्ट हैं। पिछले पाँच बरसों में ये आपस में कई दफ़े मिले और कई दफ़े अलग हुए। नरम दल के लोग इन्हें मास्को की कठपुतली बताते हैं।

स्पेन के साम्यवादी दल के नेता फ्रांसिस्को लारगो कवालिरो (Fransisco Largo Caballero) हैं, पहले यह थवई का काम करते थे, किन्तु अब इनकी देख-रेख में स्पेन का साम्यवादी दल काफ़ी दृढ़ और सुसंगठित हो गया। १३ महीने तक यह मैड्रिड जेल में रहे हैं। श्रमजीवियों पर इनका बहुत बड़ा प्रभाव है। इस दल ने स्पेन भर में श्रम-जीवियों और किसानों की सभाएँ क़ायम की हैं। फ्रांसिस्को लारगो कवालिरो इस सार्वदेशिक संस्था के जनरल सेक्रेटरी हैं और इसी संस्था के कारण इनकी और इनकी मज़बूती है। फ्रांसिस्को स्पेन के लेनिन कहलाते हैं।

स्पेन के साम्यवादी ज़मींदारी को तोड़कर उसे राष्ट्र की सम्पत्ति कर देना चाहते थे, और बड़े-बड़े व्यवसायों को भी छीनकर की मिलकियत बना देना चाहते थे, देश में श्रमजीवियों की डिक्टेटरशिप क़ायम करना चाहते थे।

"शान्ति और समझौते की बात व्यर्थ है, क्रान्ति या प्रतिक्रान्ति। इनके बीच में कोई मध्य नहीं। जो इन दोनों मार्गों के बीच के रास्ते चलना चाहता है, वह न घर का होगा न घाट का।"

"अगर हमारी चेतावनी के होते हुए भी पार्लियामेंट दक्षिणपक्ष की ओर झुकेगी तो साम्यवादी दल विरोध में उठ खड़ा होगा और स्पेन में दूसरी क्रान्ति मच जायगी।"



—ये वाक्य लारगो कबालिरो के हैं और उनके दल की मंशा ज़ाहिर करते हैं। स्पेन का नरम दल, जिसे हम अँगरेज़ी शब्दावली में दक्षिण पक्ष कहेंगे, कैथलिक पादरियों, महाजनों, बैंकरों, ज़मींदारों और उच्च वर्ग के लोगों की पार्टी है। यह साम्यवाद का विरोधी है। यह साम्यवाद का दुश्मन है। इसका कहना है कि हम शान्ति और क़ानून की मर्यादा में रहकर उन्नति करना चाहते हैं। यह पार्टी कैथलिक और ईसाई धर्म की रक्षक भी है। यह सम्पत्ति और भूमि को ज़ब्त नहीं करना चाहती। इसका सिद्धान्त है कि हम कुटुम्ब, सम्पत्ति और धर्म के रक्षक हैं, राष्ट्रीय एकता के पक्षपाती हैं। इस पार्टी के नेता हैं, गिल राबल्स (Gil Robles), कालवो सोटिलो और नाईसिटो अलकाला ज़मोरा, जो दिसम्बर १९३३ से दिसम्बर १९३५ तक प्रजातंत्र के प्रमुख रहे हैं। ज़मोरा कैथलिक धर्म के भक्त और दक्षिण पक्ष अर्थात् नरम दल के प्रमुख नेता हैं। अपनी प्रेसीडेंटी के ज़माने में पोप से संसर्ग क़ायम करने का इन्होंने प्रयत्न किया था। कालवो सोटिलो (Calvo Sotelo) एक राजतंत्रवादी हैं और बादशाह अलफ़ांसो को फिर सिंहासन पर लाना चाहते हैं। इनका मत है कि स्पेन में जब तक कोई राजसिंहासन पर नहीं बिठाया जाता, देश में शान्ति क़ायम नहीं हो सकती। गिल राबल्स (Gil Robles) ने "Confedrecion Espanola Dereches Autonomous (C. E. D.A.) नाम की एक संस्था क़ायम की थी, जिसका उद्देश्य यह था कि राजनीतिक आदर्शों की प्राप्ति के लिए उद्दण्डता न होने दी जाय। उन्नति शांतिपूर्वक और क़ानून की मर्यादा के अन्दर हो। मज़दूरों की रक्षा हो और सम्पत्ति में उन्हें हिस्सा मिले। लेकिन समाज के प्रत्येक वर्ग के साथ न्याय होना चाहिए।

यही दल आजकल विद्रोही बन गया है और इसी की विजय की ख़बरें आ रही हैं।

वर्तमान परिस्थिति को समझाने के लिए स्पेन का पिछले ५ वर्ष का इतिहास भी जान लेना आवश्यक है।

× × ×

२—स्पेन का संक्षिप्त इतिहास

स्पेन का पिछले पाँच वर्ष का संक्षिप्त इतिहास यह है कि त्रयोदश नरेश अलफ़ांसो १४ अप्रैल, १९३१ को साम्यवादी दल द्वारा संगठित एक रक्तहीन क्रान्ति के बाद सिंहासन-च्युत कर दिये गये। स्पेन में प्रजातंत्र की घोषणा की गई। वाम पक्ष अर्थात् गरम दल ने शासन आरम्भ किया। मैन्युअल अज़ाना प्रजातंत्र के प्रमुख चुने गये, जिन्होंने साम्यवाद के सिद्धान्तों के अनुसार अपना शासन आरम्भ किया।

दिसम्बर, १९३३ में अज़ाना की शासक-मण्डली नरम दल के लोगों से हार गई। दक्षिण पक्ष का राज्य शुरू हुआ। नाईसिटो अलकाला ज़मोरा प्रमुख चुने गये। Aljandro Lerroux और Gil Robles देश के नेता हुए। मैन्युअल अज़ाना ने साम्यवाद के सिद्धान्तों के अनुसार ज़मींदारी पर, सम्पत्ति पर या पादरीसमुदाय पर जो-जो आघात किये थे, वे ज़मोरा के शासन-काल में नष्ट किये जाने लगे। अक्तूबर, १९३४ में साम्यवादियों ने इनके शासन से असन्तुष्ट होकर स्पेन के अनेक नगरों में क्रान्ति और विद्रोह की अग्नि भड़का दी। ज़मोरा ने सख़्ती से दमन किया, हज़ारों आदमी मारे गये, ३० हज़ार से ज़्यादा आदमी जेल भेज दिये गये। लेकिन ज़मोरा का शासनकाल दिसम्बर, १९३५ से आगे न बढ़ सका। इन्हें ७ जनवरी, १९३६ को अपनी पार्लियामेंट बरख़ास्त करनी पड़ी। १६ फ़रवरी और १ मार्च चुनाव की तारीख़ें मुक़र्रर हुईं।



यह भी निश्चय किया गया कि नई पार्लियामेंट १६ मार्च, १९३६ को एकत्र हो। इस समय तक जमोरा ही इस पार्लियामेंट के प्रमुख रहे।

चुनाव में गरम दल की विजय रही। पार्लियामेंट की ४७३ जगहों में २५३ गरमदल ने प्राप्त कीं, १७० नरम दल ने और ५० मध्य पक्षवालों ने। गरम दल के विजय की ख़बर सुनते ही स्पेन के अनेक प्रान्तों में दंगा-फ़साद और बलवे शुरू हो गये। राजनीतिक क़ैदियों के तुरन्त छोड़ने की माँग सब जगहों से होने लगी। गिरजाघरों पर आक्रमण और उनकी लूट का समाचार हर तरफ़ से सुनाई देने लगा। प्रेसीडेंट जमोरा ने मजबूर होकर अज़ाना से प्रार्थना की कि वह स्पेन का शासन फिर अपने हाथ में लें।

१० मई, १९३६ को अज़ाना प्रमुख चुने गये और अभी तक यही प्रमुख हैं।

योरप का दक्षिण-पश्चिमीय प्रायद्वीप स्पेन क़रीब २ लाख वर्गमील का प्रदेश है, और इसकी आबादी २ करोड़ है। राजधानी मेड्रिड और शासन-प्रणाली रिपब्लिक अर्थात् लोकतंत्र है। स्पेनिश प्रजातंत्र के पिछले पाँच वर्ष के जीवन-काल में यहाँ २७ शासक-मंडलियाँ संगठित हुईं और टूटीं और ८२ प्रधान सचिव बने और बिगड़े। इस पार्लियामेंट में कभी कोई बजट शान्ति-पूर्वक स्वीकृत नहीं हुआ।

× × ×

३—स्पेन के गृहयुद्ध में विदेशियों का हाथ

वर्तमान विद्रोह के पीछे विदेशी शक्तियाँ भी काम कर रही हैं। इसमें ज़रा भी संदेह नहीं कि इटली और जर्मनी की सहानुभूति विद्रोहियों के साथ है। रूस और फ़्रांस की सहानुभूति स्पेनिश गवर्नमेंट के साथ है। लेकिन इस भय से कि कहीं स्पेन के झगड़े के कारण सारे योरप में आग न लग जाय, तटस्थ रहने की प्रतिज्ञा समस्त राष्ट्रों से ली जा रही है। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों में दो दल हैं। एक तो इस पक्ष में है कि स्पेन के मामले में हस्तक्षेप किया जाय। दूसरा इस पक्ष में है कि तटस्थ रहा जाय। ब्रिटिश गवर्नमेंट तटस्थ है।

स्पेन की दुःखजनक अवस्था से हम दो पाठ पढ़ सकते हैं। पहला पाठ यह कि पार्लियामेंटरी गवर्नमेंट उस समय तक स्थायी रूप से क़ायम नहीं रह सकती, जब तक निर्वाचित सभासद [illegible] मार्ग पर चलना न सीखे हों। अगर जोश में आ[illegible] निर्वाचित बहुमत अपनी शक्ति का दुरुपयोग क[illegible] और अपने विरोधी दल की भावनाओं को [illegible] पहुँचाता है तो घरेलू युद्ध का होना अनिवार्य [illegible]

दूसरा सबक़ हम यह सीखते हैं कि एक [illegible] का किसी दूसरे देश के आन्तरिक शासन [illegible] दख़ल देना बड़े ख़तरे की बात है। इस स[illegible] दुनिया में एक ऐसी गवर्नमेंट मौजूद है, जि[illegible] मुख्य उद्देश्य है ऐसी शक्तियों का संगठन [illegible] उससे राजनीतिक आदर्शों में सहमत हैं। [illegible] का गृहयुद्ध सोवियट की नीति का परिणाम [illegible]

लन्दनटाइम्स का विचार है—

"स्पेन के भाग्य का निर्माण धीरे-धीरे [illegible] भयंकर बीभत्सता के साथ हो रहा है। अधि[illegible] लोग इस गृहयुद्ध को साम्यवादी कम्यूनि[illegible] और फ़ासिस्टों का झगड़ा बताते हैं। कहा [illegible] है कि यह झगड़ा राष्ट्रीय दल और लाल [illegible] के लोगों में है। किन्तु इस गृहयुद्ध का वर्णन [illegible] सरल शब्दों में नहीं किया जा सकता। वि[illegible] का आरम्भ वास्तव में सेना से हुआ था। वि[illegible] लोगों को इस बात का भरोसा था कि द[illegible] पक्ष या कैथलिक लोग उनकी सहायता कर[illegible] अब भी विद्रोहियों की ओर से समय-समय [illegible] जो वक्तव्य प्रकाशित होते रहते हैं, उनमें पर[illegible] विरुद्ध बातें होती हैं। कुछ लोग कहते हैं कि [illegible]



में राजसिंहासन फिर क़ायम होगा, कुछ लोग कहते हैं कि प्रजातंत्र क़ायम रहेगा; लेकिन व्यावसायिक पंचायतें भी होंगी। किन्तु यह स्पष्ट है कि विद्रोही लोग डिक्टेटरशिप क़ायम करना चाहते हैं—सैनिक डिक्टेटरशिप। वर्तमान स्पेन की गवर्नमेंट के साथ कम्यूनिस्ट हैं, लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है। जो साम्यवादी हैं, वे सबके सब गरम दल के हैं। ये लोग ऐसी गवर्नमेंट क़ायम करना चाहते हैं, जिसमें स्थानीय संस्थाओं के हाथों में अधिक अधिकार रहे।

गृहयुद्ध की यातना के बाद, जिसमें दोनों पक्ष एक दूसरे के सर्वनाश का इरादा कर चुके हैं, एक परिणाम यह ज़रूर होनेवाला है कि प्रजासत्तात्मक राज्य नष्ट हो जायगा—चाहे जो जीते।"

× × ×

४—मिसर से समझौता

प्रसन्नता की बात है कि ब्रिटिश और मिसर की गवर्नमेंटों का पारस्परिक समझौता हो गया। इन दो देशों के पारस्परिक झगड़े बहुत दिनों से चले आ रहे हैं। ब्रिटिश गवर्नमेंट ने, मालूम होता है, वफ़्द (राष्ट्रीय) पार्टी की वे सभी माँगें मंजूर कर ली हैं, जिन्हें कुछ दिन पहले ब्रिटिश राजनीतिज्ञ मानने को तैयार नहीं थे। जाहिर है कि यह तब्दीली इटली द्वारा हब्श देश के पराजित होने के बाद पैदा हुई है। वर्तमान आन्दोलन, जिसका परिणाम यह समझौता है, नवम्बर, सन् ३५ में आरम्भ हुआ था। उस समय सर सैम्युएल होर ब्रिटिश कैबिनेट के वैदेशिक मंत्री थे। ६ नवम्बर, ३५ को गिल्डहाल में, लन्दन में, उन्होंने भाषण दिया, जिसमें निम्नलिखित वाक्य कहे—"जब हमसे (ब्रिटिश पार्लियामेंट से) सलाह पूछी गई है, हमने अपनी राय इस बात के ख़िलाफ़ दी है कि १६२३ या १६३० का विधान फिर से चलाया जाय; क्योंकि इनमें पहला तो चल ही नहीं सका और दूसरा सर्वत्र अप्रिय साबित हुआ।"

इन वाक्यों ने मिसर में असन्तोष पैदा कर दिया। मिसर का राष्ट्रीय दल १६२३ के विधान को अपनी स्वतंत्रता का प्रतिरूप मानता है। इस दल का यही ध्येय रहा है। सर सैम्युएल होर के इन वाक्यों ने राष्ट्रीय मिसर के हृदय को सख़्त चोट पहुँचाई थी।

१६२३ के विधान से बहुमत को पार्लियामेंट में अपरिमित शक्ति प्राप्त हो जाती है और मिसर में बहुमत बराबर राष्ट्रीय दल अर्थात् "वफ़्द पार्टी" के हाथ में रहता था। १६२३ का विधान इसलिए मिसरी वफ़्द पार्टी के अनुकूल रहता है। इस विधान को प्राप्त करके वफ़्द पार्टी १६२२ में ब्रिटिश के सुरक्षित विभागों पर भी हस्तक्षेप कर सकती है। सूडान का मामला, वैदेशिक हितों और अल्प-संख्यकों की रक्षा, मिसर की रक्षा, स्वेज़ नहर की रक्षा इत्यादि विषय जो "रिज़र्व्ड" रक्खे गये हैं, उनमें १६२३ के विधान के अनुसार मिसर की पार्लियामेंटरी बहुमत पार्टी हस्तक्षेप कर सकती है।

सर सैम्युएल होर के भाषण का मिसर में पहला प्रभाव यह पड़ा कि १२ नवम्बर को वफ़्द दल ने प्रधान सचिव नसीमपाशा को पार्लियामेंट में सहायता देना बन्द कर दिया। १३ नवम्बर को मिसर में राष्ट्रीय स्वतंत्रता-दिवस मनाया जानेवाला था। ताता और काहरा नगर में बड़े-बड़े जुलूस निकले, जिनमें ब्रिटेन के ख़िलाफ़ ज़ोरदार प्रदर्शन हुआ। विद्यार्थियों और पुलिस में मुठभेड़ हो गई। पुलिस ने विद्यार्थियों पर गोली चलाई, सैकड़ों जख़्मी हुए, कई मारे गये। अँगरेज़ी कौंसल जनरल पर काहरा में पत्थर बरसाये गये। सारे देश में दंगे बढ़ने लगे।



सरकारी रिपोर्ट यह है कि आठ मारे गये, ३०० जख़्मी हुए।

१४ नवम्बर को राष्ट्रीय पत्र बन्द कर दिये गये। १७ नवम्बर को नहसपाशा ने निम्नलिखित व्याख्यान दिया था—

"यह केवल विद्यार्थियों का दंगा नहीं। यद्यपि हमारी पार्टी विद्यार्थियों के दंगे को नापसन्द करती है, लेकिन सम्पूर्ण वफ़्द दल—जब-जब आज़ादी से चुनाव हुआ है, हमने ६५ प्रतिशत वोट पाये हैं—की माँग है कि ब्रिटेन मिसर को स्वतंत्रता का वादा पूरा करे। समय भी अनुकूल है। हम ब्रिटेन के मित्र होकर रहना चाहते हैं, नौकर नहीं। वफ़्द अर्थात् मिसर की बहुसंख्या इटली के पक्ष में बिलकुल नहीं, और न हम वर्तमान परिस्थिति से बेजा फ़ायदा उठाना चाहते हैं। लेकिन हम जैसे इटली के साम्राज्यवाद के विरोधी हैं, वैसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के भी विरोधी हैं। सर सैम्युएल होर के गिल्डहाल के भाषण ने मिसर में चिनगारी की तरह आग लगा दी और मिसर के निवासियों को इस बात का विश्वास दिला दिया कि ब्रिटेन अपना वादा पूरा नहीं करना चाहता। हमें इस बात पर सख्त एतराज़ है कि ब्रिटिश जलसेना सिकन्दरिया में बिना हम लोगों की इजाज़त के ठहरे; मानो हम लोग ब्रिटिश के उपनिवेश हैं। हम इस बात के लिए राज़ी और तैयार हैं कि ब्रिटिश युद्ध के ज़माने में हमारे बंदरगाहों को इस्तेमाल करे, लेकिन यह तभी हो सकता है, जब मिसर एक स्वतंत्र और मित्र देश माना जाय।"

इटली का ज़ोर आफ़्रिका में बढ़ रहा था। ब्रिटिश गवर्नमेंट ने मिसर में असन्तोष का बढ़ाना मुनासिब नहीं समझा, और मिसर के सामने यह तजवीज़ रक्खी कि ब्रिटिश गवर्नमेंट मिसर से सुलह करने को तैयार है, बशर्ते कि सब दलों के प्रतिनिधि—केवल वफ़्द के ही नहीं—बातचीत में शामिल हों। वफ़्दियों ने इसे स्वीकार कर लिया।

बातचीत शुरू हुई। २० जनवरी को ब्रिटिश गवर्नमेंट की ओर से मिसर के हाई कमिश्नर माइल्स लैम्सन ने मिसर के बादशाह के प्रधान सचिव नसीमपाशा और वफ़्द-दल के नहसपाशा को यह सूचना दी कि पहले दो विषयों पर प्रारम्भिक बातें हो जायँ, समझौते की कोई सूरत निकल सके तो सन्धि का मामला आगे बढ़ाया जाय। वे दो विषय ये थे—(१) सूडान का शासन कैसे हो, (२) अँगरेज़ी फ़ौज की क्या हैसियत हो। वफ़्द की ओर से ६ प्रतिनिधि और अन्य दलों से ५ चुने गये, जो ब्रिटिश गवर्नमेंट से सन्धि की बातचीत करने लगे।

समझौते का यही प्रयत्न अब सफल हुआ। लन्दन में मिसर के प्रतिनिधियों ने सन्धि मंज़ूर कर लिया है, जिसकी तफ़सील शर्तें अब तक प्रकाशित नहीं हुई हैं।

× × ×

५—पैलस्टाइन का उपद्रव

एक ओर ब्रिटिश गवर्नमेंट ने एक महत्त्व-पूर्ण इस्लामी देश से इस प्रकार समझौता किया, लेकिन दूसरे महत्त्व-पूर्ण इस्लामी देश से झगड़ा अभी तक चल रहा है। पैलस्टाइन का उपद्रव अभी तक शान्त नहीं हुआ।

ब्रिटिश गवर्नमेंट ने अब यह निश्चय किया है कि साधारण ढंग से पैलस्टाइन में अमन-शान्ति क़ायम नहीं की जा सकती, इसलिए इस प्रदेश को सैनिक शासक के हाथों में देना चाहिए। अप्रैल मास से पैलस्टाइन में उपद्रव बराबर जारी है। गवर्नमेंट ने अरबों की



यतों पर विचार करने के लिए एक कमीशन बिठाने का निश्चय किया है; लेकिन शर्त यह है कि जब तक पैलस्टाइन में दंगा-फ़साद जारी है, यह कमीशन अपना काम शुरू न करेगा। अरबों को यह विश्वास नहीं आता कि इस कमीशन से उनका कोई हित होगा। १९२० से आज तक इस प्रकार के ६ कमीशन बैठे, और हरएक कमीशन ने अपनी-अपनी रिपोर्ट पार्लियामेंट को दी। १९३० में तो यहाँ तक हुआ था कि कैबिनेट ने अरबों के पक्ष में अनेक निश्चय भी किये थे, लेकिन यह निश्चय और तजवीज़ें कार्यरूप में परिणत नहीं हुईं। यही कारण अविश्वास का है।

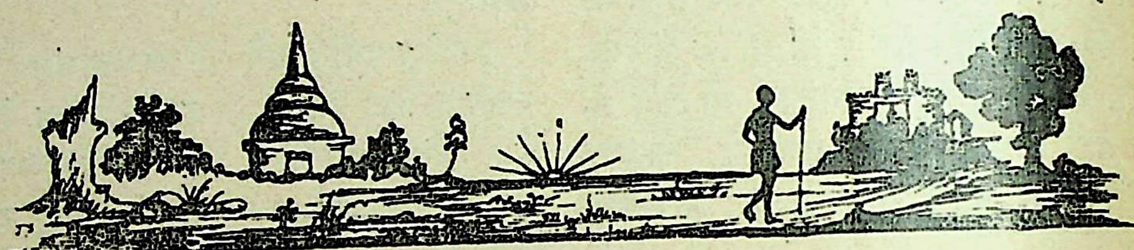
जब से फ़्रांस ने सीरिया और लेबनेन को स्वतंत्रता दे दी है, और फ़्रांस की साम्यवादी गवर्नमेंट इन अरब प्रदेशों को स्वतंत्र प्रजातंत्र बनाने की घोषणा कर चुकी है, पैलस्टाइन के अरब लोग और भी उत्तेजित हो गये हैं।

ब्रिटिश गवर्नमेंट की एक नई कठिनाई का ज़िक्र करके अपने इस नोट को हम समाप्त करते हैं। भारतीय समुद्र और पूर्वीय देशों तक पहुँचने के लिए स्वेज़ नहर और लाल समुद्र का जलमार्ग ब्रिटिश साम्राज्य के लिए हमेशा से प्राणवायु के समान महत्त्व की चीज रहा है। जब से मुसोलिनी ने हब्श पर क़ब्ज़ा किया, यह रास्ता ख़तरे में पड़ गया। आज मिसर और सूडान, दोनों प्रदेश इटली की सेना के बीच में ऐसे दबे हुए हैं, जैसे कोई चक्की के पाटों में दबा हो। जब से फ़्रांस ने इटली को Doumeirah Island दे दिया, जो लालसमुद्र के दहाने पर है, जलमार्ग की स्वतंत्रता ब्रिटिश दृष्टिकोण से और भी कम हो गई। पैलस्टाइन का उपद्रव इटली-वाले उभार रहे हैं, और जब से नई फ़्रांसीसी गवर्नमेंट ने सीरिया पर से अपना अधिकार हटा लिया है, पैलस्टाइन के अरबों को विशेष मज़बूती मिल गई है। यही नहीं कि पैलस्टाइन इराक़ से आनेवाले पेट्रोल का मार्ग हो, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य के हवाई जहाज़ों के रास्ते का प्रमुख स्थान है। सबसे बुरी बात तो यह हुई है कि एयर लैन के आविष्कार के कारण ब्रिटिश जल-सेना का प्रभुत्व भूमध्य-सागर से ख़तम हो गया है।

इसलिए पूर्वीय देशों से अपना संसर्ग क़ायम रखने के लिए इँगलैंड ने दूसरा रास्ता निकाला है। दक्षिण आफ़्रिका अर्थात् 'केप आफ़ गुड होप' से होकर। जलसेना का केन्द्र इसलिए कैपटाउन में बनना निश्चय किया गया, और दक्षिण आफ़्रिका से इस बात की इजाज़त माँगी गई। दक्षिण आफ़्रिका की औपनिवेशिक गवर्नमेंट ने ब्रिटिश गवर्नमेंट ने जो उत्तर दिया, वह बहुत दिलचस्प है। दक्षिण आफ़्रिका की गवर्नमेंट ने केपटाउन में जलसेना-केन्द्र बनाने की इजाज़त देते हुए इस बात को स्पष्ट कर दिया कि दक्षिण आफ़्रिका ब्रिटेन का युद्ध में साथ न देगा, इँगलैंड को केन्द्र-निर्माण का सारा ख़र्च बरदाश्त करना होगा। बेचुआनालैंड, स्वाज़ीलैंड और बंसातूलैंड, जो अभी तक ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा शासित होते हैं, दक्षिण आफ़्रिका की गवर्नमेंट को दे दिये जायँ।

ब्रिटिश गवर्नमेंट चाहती है कि उपनिवेशों से यह बात निश्चय कर ली जाय कि युद्ध छिड़ने पर अगर ब्रिटिश पार्लियामेंट ने किसी भी समय किसी के ख़िलाफ़ युद्ध की घोषणा की, या लड़ाई छिड़ी तो उपनिवेश ब्रिटेन की सहायता करेंगे। इस उद्देश्य से Imperial Defence Committee का अधिवेशन हुआ था और ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का विचार था कि इस सम्बन्ध में उपनिवेशों से अहदनामा हो जाय। लेकिन निश्चय यह हुआ

कि उपनिवेश इस बात का वादा नहीं कर सकते कि युद्ध छिड़ने पर वे ग्रेटब्रिटेन का साथ देंगे ही। दक्षिण आफ्रिका के प्रधान सचिव ने कहा है कि जो यह समझता है कि ब्रिटेन के युद्ध उपनिवेश भी ज़रूर ही शामिल होंगे, उसे रा नीतिक शिशुगृह में निवास करना चाहिए।



लेख-सूची



पृष्ठ

चित्र-सूची

(रंगीन)



दि

November, 1936.



सम्पादक
रूपनारायण पांडेय
प्रतिनिधि-सम्पादक (सी० पी०)—मातादीन शुक्ल

वर्ष १५, खंड १, अंक ४, पूर्णांक १७२	कार्तिक	३१३ तुलसी संवत्, १९९३ वि०

शारदीया

श्रीआरसीप्रसादसिंह

(१)

शरत् का यह निर्मल आकाश ;
शुभ्र, शुचि, नीलोज्ज्वल आकाश !
तिर रहा राजहंस अभिराम ;
कौन वह श्वेत, सरल, निष्काम ?
गगन के मानस का विस्तार,
विभा-चंचल दिगन्त-प्रावार ;
पार कर अयुत वारि-कान्तार,
अचिर, अस्थिर, अशब्द, अविकार ;
तिर रहा निराधार, निर्भार ;
हमारा राजहंस सुकुमार !

(२)

शरत् का यह ऊर्म्मिल आकाश ;
श्वेत, मृदु, चिरफेनिल आकाश !
डोलती रजत-तरी यह कौन ?
मौन-मृदु, मन्द मन्द, मृदु मौन !
नील पुष्कर का पारावार,
तरंगों का चल-विपुलाकार ;
फिसल-सी जाती वारम्वार,
बुद्बुदों पर मरकत-पतवार !
मचलती ज्योति-ज्वार में स्फार
हमारी रजत-तरी सुकुमार ;



(३)

विश्व - सरसी में विमल, नवीन ;
आज, चंचल मानव - मन - मीन !
शरत्-सरसिज-सा विकसित, स्फीत ;
मिलिन्दों का उन्मन संगीत !
आज रे उन्मद मद से प्राण ;
लगे रवि - किरणों के सोपान !
भेद युग - तमसा का पाषाण,
फूट निकला मेरा दिनमान !
हृदय, गाओ चिर-सुख के गान ;
आज, उन्मद रे मद से प्राण !

(४)

आज रे अम्बर का उल्लास ;
दिशाओं का विद्रुम मधु हास !
खिला तृण - तृण में अंकुर मौन
प्रतीची से आया वह कौन ?
तैरता जिस पर ऋजु वातास,
मंजु - मुखरित, हिल्लोल - हुलास ;
आज, वन - वन में छाया वास ;
वापियों का उच्छल उच्छ्वास !
आज रे लाया कनक - प्रकाश
नील - नव अम्बर का उल्लास ;

(५)

कौन यह, किसका नृत्य - अधीर
बज रहा मधुर - मधुर मंजीर ?
स्पर्श से जिसके अलस सम[ीर]
पुलक - कम्पित उर, रोम, श[रीर]
आज, यह जलदों का अभियान,
शरत् - जलदों का निरवधि यान ;
मकर-पथ में उन्मुक्त, निदान
उड़ा नवऋतु का सुमन-विमान !
प्राण, गाओ चिर-सुख के ग[ान]
आज नवऋतु के गौरव-ग[ान]

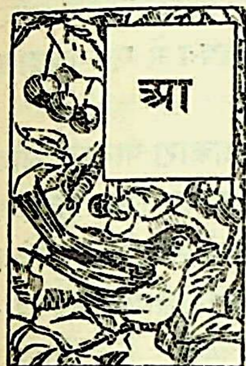
(६)

खोल दो लोचन-उर के द्वार ;
मुक्त जीवन - वेदन - सम्भार !
शिथिल कर दो चिर कवरी-[पाश]
आज, रे अमित-अमित उल्ल[ास]
स्वर्ण - सुखमा के ये दिन - रात,
चिरन्तन आभामय, अवदात ;
व्योम से झड़ते सुख के फूल ;
यहाँ रे आज कहाँ दुख - शूल !
आज, रस से छल-छल आ[...]
शरत् का यह उज्ज्वल आ[...]

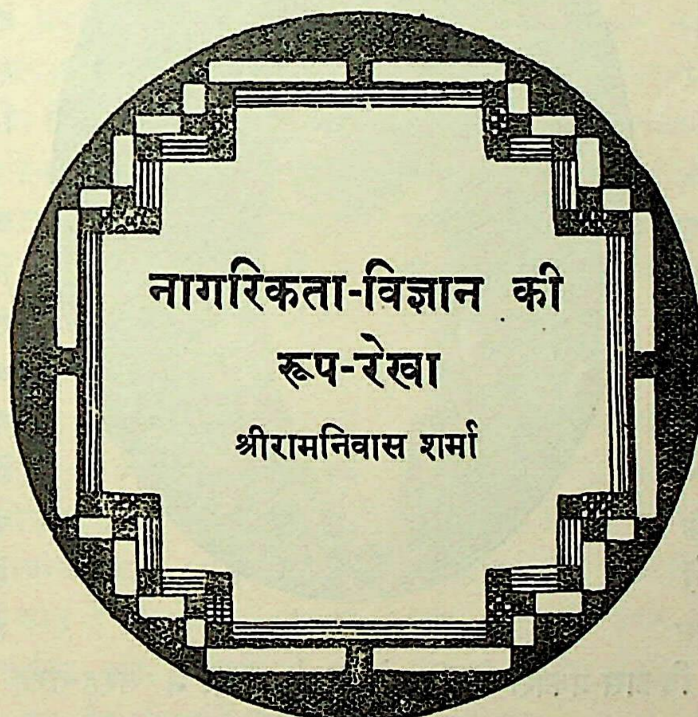


The noblest motive is the public good. Civil authority is a divine institution.

नागरिकता-विज्ञान का महत्त्व



आजकल नागरिक विज्ञान एक महत्त्व-पूर्ण विषय माना जाता है और यही व्यक्ति, कुटुम्ब, वर्ग, जाति, समाज, महल्ला, ग्राम, नगर, उपनगर, प्रान्त, देश और विश्व की सुख-शान्ति की मूल-भित्ति समझा जाता है। अनेक विद्वानों के मत में समाज और विश्व की रक्षा-दीक्षा का यही एक अन्यतम विज्ञान है और इसका कारण यह बतलाया जाता है कि इसमें प्रायः मानव-समाज के समस्त अक्रियात्मक और क्रियात्मक सिद्धांतों का समावेश है; व्यष्टि और समष्टि की आपस की इतिकर्तव्यता का भी इसके साथ गहरा संबंध है। फिर वर्तमानकालीन समाज-संस्थापक तत्त्वों में तो यही एक अनिवार्य आवश्यक तत्त्व है। इसी से सर्वाधिक सामाजिक सुख-समृद्धि की आशा की जाती है। आर्थिक और राजनीतिक विश्वव्यापिनी कलह की सदौषध तो यही है। साथ ही सृष्टि के ज्ञात इतिहास में सामाजिक मानव-जन्तु का यदि किसी ने पूरी तरह साथ दिया है, तो वह भी यही है और इस समय तो मानव-प्राणी इसकी शिक्षा-दीक्षा में प्राण-पण से लगा हुआ है। यही कारण है कि आत्म-सम्पृक्त और पर सम्पृक्त अनेक घातक विघ्न-बाधाओं के रहते हुए भी मानव-समाज विकासोन्मुख है। फिर राजनीति-वाद, समाजवाद और साम्यवाद-जैसे सामयिक तत्त्व भी इसी के रथी-महारथी समझे जाते हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-जैसे शास्त्रीय तत्त्वों का भी इसके साथ अविच्छेद्य सम्बन्ध है। इस लेख में हम इसी मनुष्य और मनुष्य-समाज के महतोमहीयान् विज्ञान पर कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं।



नागरिकता-विज्ञान की रूप-रेखा

श्रीरामनिवास शर्मा

नागरिकता-विज्ञान की व्युत्पत्ति और परिभाषा

नागरिकता-विज्ञान शब्द यौगिक है, इसका अर्थ है—नगर-संबंधी उन बातों और तत्त्वों का विज्ञान, जिनसे मनुष्य आपस में मिल-जुलकर सुख-पूर्वक रह सकें। यह अँगरेज़ी शब्द Civics का पर्याय-वाची शब्द है, जो कि लैटिन Civitus (नगर-राज्य) या Civis (नागरिक) से बना है। इसका साधारण अर्थ है एक नागरिक के स्थानीय और म्यूनिसिपल कर्तव्यों और अधिकारों पर प्रकाश डालनेवाला शास्त्र। परन्तु इसकी व्यापक परिभाषा यह है—

नागरिकता-विज्ञान मानवीय ज्ञान-विज्ञान की एक ऐसी उपयोगी शाखा है, जो प्रत्येक सामाजिक

बौद्धिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक बात का सम्बन्ध एक नागरिक के साथ स्थापित करती है।

नागरिकता-विज्ञान की परिभाषा पर कुछ विभिन्न मत इस प्रकार हैं—

१. नगर-संचालक संस्थाओं के कार्य-कलाप का प्रतिपादन

२. शासन और प्रजा के आपस के कार्य-भारों का निर्णय

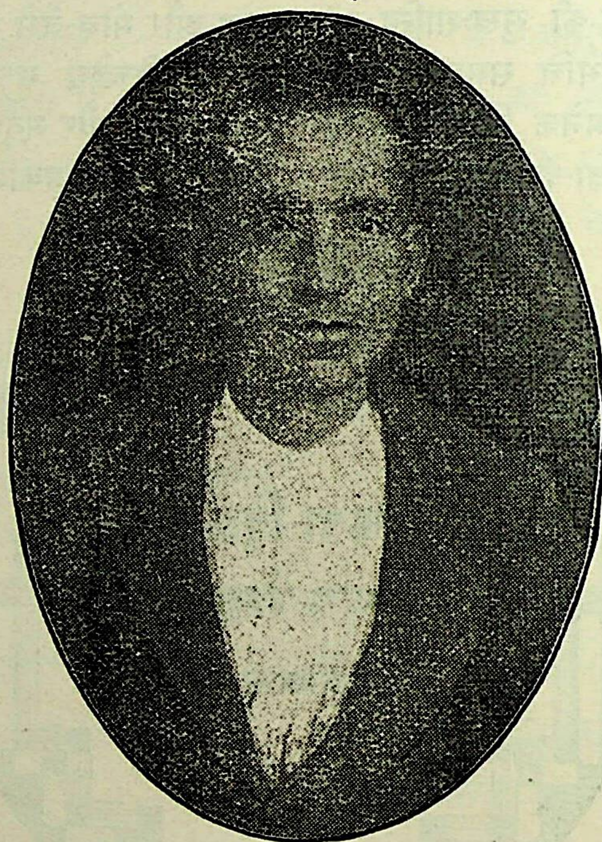
३. मानव, मानव-समाज और विश्व-समाज के आपस के कर्तव्य कर्मों का निर्देश

४. मनुष्य के राजनीतिक कर्तव्यों और अधिकारों का वर्णन

५. राज्य-संस्था के नियमोपनियमों का संग्रह

६. मानव-समाज के स्वास्थ्य, धर्म और व्यवहार के विविध प्रश्नों और आन्दोलनों का ग्रन्थन

७. नागरिकता के कर्तव्यों और अधिकारों के ज्ञान-विज्ञान का व्यञ्जन



इस लेख के लेखक

८. मानव-समाज के विकास-प्रकाश के नियमों का संकलन

म० एच्० एस्० की सम्मति में इस विज्ञान का लक्षण यह है—

मानव-समाज में आपस की सहायता की अनिवार्य आवश्यकता है। यह सहायता भी मानवीय विविध क्षेत्रों, विषयों और आवश्यकताओं में देनी पड़ती है। इसके लिए विविध कर्तव्यों और अधिकारों की आवश्यकता होती [illegible] साथ ही शासन-सम्बन्धी विविध संस्थाओं* [illegible] शालाओं के कामों में योग देने की भी। नागरि[illegible] विज्ञान इन्हीं सब बातों के उत्तरदायित्व [illegible] छान-बीन का शास्त्र है। इस विषय में एक वि[illegible] इस तरह लिखता है—

घर, बाहर, ग्राम, नगर, आकाश-पाताल [illegible] मृत्युलोक में, कहीं भी आपस में मिल-जु[illegible] रहने और उन्नति करने के लिए जिन [illegible] तत्त्वों, शिक्षाओं, [illegible] अधिकारों, [illegible] शास्त्रों और [illegible] कलापों की आव[illegible] है, उन सबको बतां[illegible] शास्त्र का नाम ही [illegible]रिकता-विज्ञान है।

नागरिकता-विज्ञा[illegible] अभिप्राय न केवल [illegible]जिक संस्थाओं [illegible] उनकी प्रगति, [illegible] आदि का ही ज्ञा[illegible] करना है अपितु [illegible] में कर्तव्य-विषयक [illegible] का माद्दा भी उत्पन्न [illegible] है। इस तरह हम [illegible] हैं कि नागरिकता-[illegible] को लोगों ने तरह-तरह से समझाने की [illegible] की है।

कला, विज्ञान और नागरिकता-तत्त्व

नागरिकता-तत्त्व कला है या विज्ञान, [illegible] एक नहीं, अनेक मत हैं। कुछ विद्वानों [illegible] दृष्टि में यह कला है और कुछ के [illegible]

* इन संस्थाओं का उल्लेख आगे किया [illegible]



विज्ञान। इस विभिन्नता का कारण यही है कि कुछ लोग इसे कला-पूर्ण क्रियात्मक आदर्श होने से 'कला' कहते हैं और कुछ कार्य-कारणमय सुशृंखला-बद्ध ज्ञान का प्रतिपादक होने से विज्ञान बताते हैं। परन्तु ऐसे भी लोग हैं जो इसे कला और विज्ञान दोनों समझते हैं। उनके मत से इसका सैद्धान्तिक भाग "विज्ञान" है और क्रियात्मक "कला"।

नागरिकता-विज्ञान और अन्यान्य शास्त्र

नागरिकता-विज्ञान का अनेक शास्त्रों के साथ सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध का प्रधान कारण यह है कि प्रायः समस्त शास्त्र मनुष्योपयोगी सिद्धान्तों के आविष्कारक हैं और यह नागरिकता-विज्ञान उनका ही क्रियात्मक उपयोग है। उदाहरणार्थ "अर्थ-शास्त्र" अर्थ के उत्पादन, विनिमय, वितरण और उपभोग के शास्त्रीय नियमों को हमारे सामने रखता है, और नागरिकता-विज्ञान देश, काल और परिस्थिति के अनुसार इस बात के नियमों को निर्धारित करता है कि अर्थ-शास्त्रीय बातों में हमारा आपस का व्यवहार कैसा होना चाहिए। राजनीति का तो यह प्रधान अंग ही है; क्योंकि राजनीति मनुष्य के बाह्य जीवन को ठीक करती है और यह भी मानव-जीवन के वास्तविक नियमों का सुधारक, विकासक और प्रकाशक है। साथ ही राजनीति के आवश्यक अंग राज्य और राष्ट्र की भी यह आवश्यक वस्तु है; क्योंकि यह राज्य और राष्ट्र की सुख-शान्ति और नागरिकों की रक्षा-दीक्षा के प्रबन्ध का निर्णायक है। ऐसे ही समाज-शास्त्र के साथ भी इसका सम्बन्ध है; क्योंकि नागरिकता और सामाजिकता दोनों अभिन्न वस्तुएँ हैं और दोनों ही का तात्पर्य नागरिक जनता की हिताकांक्षा की साधना है। इतिहास और नागरिकता-विज्ञान का तो आपस में कार्य-कारण सम्बन्ध है, और यह इसलिए कि नागरिकता-विज्ञान ऐतिहासिक परंपरा का सामाजिक परिणाम है और इतिहास नागरिकता का क्रमविकास। इस तरह हम देखते हैं कि नागरिकता-विज्ञान और दूसरे शास्त्रों का पारस्परिक गहरा सम्बन्ध है।

नागरिकता-विज्ञान और अनुशीलन-पद्धति

अन्य शास्त्रों की तरह नागरिकता-विज्ञान की भी अपनी अनुशीलन-पद्धति है। यद्यपि इस अनुशीलन-पद्धति के अनेक प्रकार-भेद बतलाये जाते हैं, फिर भी इसकी उत्कृष्ट पद्धतियाँ दो ही हैं। एक तत्त्व-प्रधान और दूसरी व्यवहार-प्रधान। इनमें पहली में कारण, साधारणीकरण और विशेष धर्म-साध्य निर्णय का आधिक्य है और दूसरी में संग्रह, प्रमाण और अन्वेषण-साध्य तत्परता की विशेषता है। साथ ही इन दोनों का आपस में अन्योन्य-भाव भी है, इनमें एक के बिना दूसरी अधूरी और पंगु है; क्योंकि पहली पद्धति के अभाव में हम महत्त्व-पूर्ण और अमहत्त्व-पूर्ण तथ्यों में विभेदक रेखा नहीं खींच सकते और न व्यवच्छेदक विशेष धर्मों को ही समझ सकते हैं। ऐसे ही दूसरी के अभाव में प्रमाणों की मौलिकता पर हम कुछ भी विचार नहीं कर सकते।

इन पद्धतियों में हमें समय, देश और परिस्थिति का ध्यान भी रखना पड़ता है, और नगर-निवासियों की वास्तविक प्रकृति-विकृति पर भी विचार करना होता है। साथ ही नागरिकता-विज्ञान की इन मौलिक बातों पर भी मनन करना पड़ता है—

१. नागरिकता और भौगोलिक परिस्थिति (Environment)

२. नागरिकता और सामाजिक-राजनीतिक परिस्थिति

३. नागरिकता और आर्थिक परिस्थिति

४. नागरिकता की भूतकालीन दशा



५. नागरिकता की वर्तमानकालीन और भविष्य-कालीन प्रवृत्ति

६. नागरिकता और ईश्वरीय प्रेरणाएँ

नागरिकता-विज्ञान और प्राचीन काल

नागरिकता-विज्ञान कोई नवीन विज्ञान नहीं है। यह प्राचीन वस्तु है। जब से मनुष्यों ने आपस में मिल-जुलकर रहना सीखा, तभी से इसका अस्तित्व है। कुटुम्ब और ग्राम इसके उद्गमस्थान हैं। इन्हीं से इसकी उत्पत्ति हुई है। परन्तु इसके जीवन-रस (Protoplasm) का मुख्य कारण तो आत्म-स्नेह और दाम्पत्य-सम्बन्ध ही हैं; क्योंकि यही दोनों क्रमशः मानवीय भाव-भावना और समाज-संगठन के कारण हैं, और इन्हीं से सम्पूर्ण समाज-मूलक और राज-नीति-व्यञ्जक वस्तुएँ विकासोन्मुख हुई हैं। इसी लिए श्रुति में कहा है—

"आत्मा ही सब कुछ है। समस्त संसार आत्मा का ही विस्तार है। पुत्र, धन और जन आदि संसार की सब वस्तुएँ आत्मा के कारण ही हमें प्रिय मालूम होती हैं।"

हमारे यहाँ इस विद्या के विकास के द्योतक निम्नलिखित विषय हैं—

क. तत्त्वात्मक	ख. उपादानात्मक
१. आचार	१. नगर-निर्माण-विद्या
२. व्यवहार	२. दण्ड-नीति
३. प्रायश्चित्त	३. चतुर्वर्ग
४. आध्यात्मिकता	४. वर्णाश्रम-धर्म

नागरिकता-विज्ञान और आधुनिक खोज

आज से बहुत पहले नागरिकता का अर्थ प्रजासत्तात्मक राज्य के क़ानून-क़ायदों का पालन करना ही था। इसके बाद एक समय पृथ्वी पर और विशेषतः ग्रीस में ऐसा भी आया, जब नागरिकता की स्वतन्त्र स्थिति कुछ भी नहीं रही। अपितु उस समय राज्य या शासकों के बनाये नियमोपनियम ही नागरिकता के व्यञ्जक समझे जाते रहे। इसके बाद रोम में वैयक्तिक नागरिकता के व्यावहारिक रूप का निर्णय हुआ। फिर मध्यकाल में राज्य और शासकों की विश्व-शक्ति के ह्रास के साथ-साथ नागरिकता के अधिकारों का महत्त्व पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गया और प्रजा को नागरिकता और मानवीय उच्च आदर्शों का पाठ पढ़ाया जाने लगा। इस तरह यह प्रवाह शनैः-शनैः बढ़ता ही गया और अन्त में इस आदर्श की स्थापना हो गई कि राज्य और शासन व्यक्तियों के लिए है न कि व्यक्ति राज्य के लिए*। इस समय तो समस्त संसार में नागरिकता - विज्ञान की धूम है, और भारत में भी अब इसका प्रचार-प्रसार होने लगा है। लोग दिनोंदिन इसकी महत्ता और आवश्यकता समझने लगे हैं।

नागरिकता-विज्ञान और मनुष्य के वैयक्तिक अधिकार

प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन की रक्षा, सुधार, उद्धार और विकास के लिए कुछ अधिकारों की आवश्यकता होती है, और यदि ये अधिकार उसे प्राप्त न हों तो वह अपने और दूसरों के लिए भार-स्वरूप हो जाता है। वह न अपना भला कर सकता है और न दूसरों की सेवा। इन अधिकारों की संक्षिप्त सारिणी यह है†—

---

* साथ ही यह भी माना जाने लगा कि "राज्य मानवीय बुद्धि-कौशल का एक सर्व-श्रेष्ठ समझौता है, जो कि मानवीय आवश्यकताओं का पूरक है।"

† कुछ विद्वानों की दृष्टि में शक्ति, शक्ति का सेवात्मक सदुपयोग और शक्ति की स्वीकृति ही मौलिक अधिकार हैं।



क. तात्त्विक	ख. वैयक्तिक
१. प्राकृतिक	१. जीवन
२. नैतिक	२. नगर-जीवन
३. राजनीतिक	३. क्रियाशीलता
४. सामाजिक	४. उत्पादन
५. आदर्श	५. पेन्शन

कुछ व्यावहारिक अधिकार निम्नलिखित भी हैं* –

क.	ख.
१. कौटुम्बिक स्वतन्त्रता	१. उदर-पोषण
२. शरीर-स्वतन्त्रता	२. उत्तराधिकारिता
३. विचार-स्वतन्त्रता	३. मेल-जोल
४. भाषण-स्वतन्त्रता	४. ठेकेदारी
५. लिपि-स्वतंत्रता	५. जायदाद की रक्षा
६. लेखन-स्वतंत्रता	६. शिक्षा
७. धार्मिक स्वतंत्रता	७. मताधिकार
८. आर्थिक स्वतन्त्रता	८. न्याय

इन सब अधिकारों के सिवा वे सब छोटे-बड़े वैयक्तिक अधिकार भी आवश्यक हैं, जोकि मनुष्यता के नाते एक मनुष्य को मिलना चाहिए। साथ ही इन सब अधिकारों के विषय में निम्नलिखित संरक्षण (Safe-Guards) भी विचारणीय हैं—

१. ये अधिकार नगर-निवासियों के जीवन के विकास-प्रकाश और उन्नति के साधक सिद्ध हों।

२. प्रत्येक नगर-निवासी उनका समानतः उपभोग कर सके।

३. अधिकारों के उपभोग में बाधा उपस्थित होने पर राज्य उनका अनुमोदक और समर्थक हो, साथ ही इस विषय में नागरिकों के साथ न्यायोचित बर्ताव भी करे।

नागरिकता-विज्ञान और कर्तव्य

एक नागरिक के कर्तव्य गणनातीत हैं; क्योंकि उसका प्रत्येक श्वासोच्छ्वास और पल-विपल विविध-कर्तव्य-कर्मों से आवृत रहता है। परन्तु फिर भी नागरिकता की बातों से सम्बन्ध रखनेवाले मनुष्य के कुछ व्यापक और अनिवार्य कर्तव्य भी हैं। वे ये हैं—

क. नवीन

क. आत्म-सम्पृक्त	ख. पर-सम्पृक्त
१. आत्म-नियन्त्रण	१. सन्तान-सम्बन्धी
२. आत्म-पोषण	२. पड़ोस-सम्बन्धी
३. आत्म-रक्षण	३. नगर-सम्बन्धी
४. आत्मोन्नति	४. प्रान्त-सम्बन्धी
५. सत्संग	५. राज्य-सम्बन्धी

ख. प्राचीन

१. दान	१. अहिंसा
२. यज्ञ	२. सहानुभूति
३. तप	३. सेवा
४. ज्ञानार्जन	४. प्रेम
५. आस्तिकता	५. बलिदान

एक विद्वान् के मत से नागरिकता के कर्तव्य न केवल म्यूनिसिपल कर्तव्यों तक ही सीमित हैं, प्रत्युत नागरिकता का सम्बन्ध इन बातों से भी है—

१. सौन्दर्यात्मक	५. ज्ञानात्मक
२. उपयोगात्मक	६. विज्ञानात्मक
३. शीलात्मक	७. विकासात्मक
४. कलात्मक	८. शान्ति-मूलक

अधिकार और कर्तव्य का महत्त्व

अधिकारों के अनेक लाभ हैं। इनके विना कोई भी मनुष्य और जाति नहीं पनप सकती।

* अनेक विद्वानों ने अधिकारों का नामोल्लेख इस तरह भी किया है—

यात्रा, विवाह, आन्दोलन, सम्मति-प्रदान, अनिवार्य शिक्षा, गार्हस्थ्य-पवित्रता, विश्वास-स्वतंत्रता, शिल्प-व्यापार-स्वतंत्रता और राजकीय संस्थाओं का समान उपयोग।



अधिकार असल में वैयक्तिक और सामाजिक उन्नति के सोपान हैं, कर्तव्य-पालन की मूल-भित्ति हैं, प्रथम आश्रम हैं। अधिकार सुधार, उद्धार और विकास के अवसर-प्रदान के क्षेत्र हैं। यदि अधिकार नहीं है, तो असल में कुछ नहीं है। म० वी० एस्० के मत से अधिकारियों को उचित अधिकार प्रदान करना उनके लिए उन्नति का द्वार खोलना है।

अधिकारों की तरह ही कर्तव्य-कर्म भी व्यक्ति और जाति का जीवन हैं। इनके विना कोई भी व्यक्ति क्षण भर के लिए भी जीवित नहीं रह सकता। अनेक विद्वानों के मत से अधिकारों और कर्तव्य-कर्मों का आपस में अन्योन्य भाव है। कहते हैं, जीवनरूपी पक्षी के ये दो पक्ष हैं। एक के विना दूसरा निर्बल है। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के विना दूसरा ख़राब है। अधिकार कर्तव्यों के जनक हैं और कर्तव्य अधिकारों की प्राप्ति के उपाय। सारांश यह कि इन दोनों का आपस में कार्य - कारण सम्बन्ध है।

नागरिक कर्तव्यों और अधिकारों की नैतिकता

नागरिक कर्तव्याकर्तव्य मनुष्यमात्र की नैतिकता के प्रमाण हैं; क्योंकि मनुष्य Mutual Aid (आपस की सहायता) से ही जीवित है। जीवन का वास्तविक अर्थ ही आपस की सहायता है*। आपस की सहायता से ही अंगी समाज का व्यक्तित्व तैयार हुआ है और इसी से उसके अनन्त अंगों का व्यक्तित्व पनप भी सका है। इस दृष्टि-कोण से एक नागरिक का अस्तित्व समाज पर निर्भर है, समाज में ही केन्द्रित है। वैसे ही प्रत्येक सामाजिक वस्तु में समाज का व्यक्तित्व भी मौजूद है। ऐसी दशा में सामाजिकता और नागरिकता के कर्तव्यों का नि[illegible] मनुष्य-मात्र का अनिवार्य धर्म हो जाता है।

कर्तव्य-कर्म की तरह ही अपने अधिकारों [illegible] प्राप्त करना और दूसरों को उनके उचित अ[illegible] कारों का प्रदान करना भी मानव-प्राणी [illegible] सर्व-श्रेष्ठ कार्य है। जो व्यक्ति दूसरों को [illegible] वास्तविक अधिकारों के देने में या दिलाने [illegible] हिचकिचाता है, वह न केवल मानव-समाज [illegible] परम शत्रु है, अपितु मानव-संस्कृति का भी ना[illegible] है; क्योंकि अधिकार-प्रदान के द्वारा ही सं[illegible] और कर्तव्य-कर्म की परंपरा मानव-समाज [illegible] विकासोन्मुख रहती है। एक विद्वान् की सम्[illegible] में तो अधिकारों में विघ्न-स्वरूप होना सृष्टि [illegible] की नैतिकता और सात्विकता को दूषित क[illegible] और मानवीयता के शान्तिमय वातावरण [illegible] नष्ट-भ्रष्ट करना है।

नागरिक अधिकारों की प्राप्ति, निर्वाह और [illegible]

नागरिकता के अधिकारों की प्राप्ति, निर्वाह [illegible] नाश के भी नियमोपनियम हैं। इनके स्पष्टीकरण [illegible] लिए एक स्वतन्त्र लेख की आवश्यकता है, [illegible] यहाँ इतना बता देना ही पर्याप्त होगा कि प्रत्येक [illegible] और जाति में नागरिकता प्राप्त करने के वि[illegible] नियम हैं, वैसे ही प्राप्त अधिकारों के छीने [illegible] के भी विभिन्न कारण हैं। साथ ही नागरिक[illegible] अधिकारों के निर्वाह की योग्यता के प्र[illegible] कारण भी सर्वत्र एक - से नहीं होते। असल [illegible] इन सब बातों का स्थानीय परिस्थिति से स[illegible] है। फिर भी इन सबमें कर्तव्यात्मक, अधिकार[illegible] त्मक और सुधारात्मक मौलिक समानता है। [illegible] समानता के सहारे हम अन्तरराष्ट्रीय और [illegible] नागरिकता के अधिकार-सम्बन्धी प्रत्येक [illegible] पर विचार कर सकते हैं। फिर भी अधिकारों [illegible] प्राप्ति, निर्वाह और उनके नाश के कारणों के [illegible] निम्नलिखित साधारण साधन भी हैं—

* जीवो जीवस्य रक्षणम्। धर्मशास्त्र।



क. अधिकारों की प्राप्ति के साधन	ख. अधिकारों के निर्वाह के साधन
१. अधिकारों में हस्तक्षेप	१. विचार-शक्ति
२. चुनाव में सफलता	२. सहयोग
३. अधिकारों का सदुपयोग	३. आत्म-त्याग

ग. अधिकारों के नाश के साधन

१. नैतिक अपराध
२. अयोग्यता
३. चिरकालीन प्रवास आदि*

इन बातों के सिवा नागरिकता के निर्वाह के कुछ अनिवार्य साधारण कर्तव्य भी हैं, जो अधिकार-रक्षक उपायों के साधक हैं। वे ये हैं—

१. स्वस्थ शरीर
२. स्वस्थ मस्तिष्क
३. क़ानून के लिए आदर-भाव

नागरिकता-विज्ञान और देशीयकरण

नागरिकता-विज्ञान का देशीयकरण एक आवश्यक तत्त्व है। यह किसी राज्य में रहते हुए नागरिक अधिकारों को प्राप्त करने की शर्त है। इसके मुख्य अंगावयव ये हैं—

१. एक निर्धारित समय तक नगर में निवास करना
२. राज-भक्ति या राज्य-भक्ति की परवा करना
३. सदाचार का पालन करना
४. राज्य की शासन-पद्धति में विश्वास रखना
५. जायदाद आदि ख़रीदने की शक्ति का होना
६. राजकीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना
७. आयु-वृद्धि आदि अन्यान्य बातों का भी न भुलाया जाना*

उल्लिखित बातें प्रत्येक व्यक्ति को नागरिक होने के अधिकार दिलाती हैं, परन्तु इनकी सीमा और संख्या भी देश-काल के अनुसार बदलती रहती है।

नागरिकता के आत्म-तत्त्व

नागरिकता की संगठनात्मक और प्रवाहात्मक धाराएँ अनेक हैं। उनमें परंपरागत और विकासात्मक निम्नलिखित हैं—

क. स्थितिशील (Static)	ख. बल-संक्रान्त (Dynamic)
१. रीति-रिवाज (Customs)	१. संशोधन
२. परंपराएँ (Traditions)	२. परिष्कार
३. संस्थाएँ (Institutions)	३. उत्क्रान्ति
४. न्याय-नियम (Laws)	४. परिवर्तन
५. शासन-क्रम	५. परिवर्द्धन
६. धर्म-तत्त्व	६. संस्करण
७. शिष्टाचार	७. संप्रकाशन

उक्त दोनों प्रकार के तत्त्वों की विचार-धाराएँ भी प्रायः सदा से ही विश्व में सर्वत्र पाई जाती हैं। पहली धारा के समर्थक सामाजिकता और नागरिकता की सनातन धारा पर ही ज़ोर देते हैं, वे उसमें परिवर्तन नहीं चाहते; परन्तु दूसरी धारा के समर्थक उसे पूर्णतः बदलना चाहते हैं। वे भूतकालीन प्रत्येक बात के सर्वनाश में ही समाज का भला मानते हैं। परन्तु ये दोनों पक्ष

* बिना स्वीकृति के अधिक समय तक दूसरे राज्य में रहना, दूसरे राज्य की नागरिकता को स्वीकार करना, एक राज्य की स्त्री का दूसरे राज्य के पुरुष से विवाह हो जाना इत्यादि बातें भी नागरिक अधिकारों को नष्ट करनेवाली हैं।

* ये अधिकार भी दो प्रकार के हैं, एक वे हैं जो जन्म और वंश के कारण प्राप्त होते हैं और दूसरे सनद के कारण। पहले मुख्यतः नागरिकों के लिए हैं और दूसरे अनागरिकों के लिए। इसके सिवा कुछ अधिकार विदेशियों के लिए भी सुरक्षित होते हैं।

ही शुद्ध सुधार-तत्त्व से काम लेना नहीं चाहते। पहला वर्ग विकास की परवा नहीं करता। वैसे ही दूसरा भूत के सदनुभव से लाभ उठाना नहीं चाहता। एक नये रोगों की नई दवा पसंद नहीं करता तो दूसरा पुराने वैज्ञानिक साधनों से भी लाभ उठाना नहीं चाहता। फिर अपरिवर्तन-वादी एक स्थान या बात पर जड़वत् रहना चाहते हैं तो परिवर्तन-वादी स्वतंत्रता का अर्थ प्रायः उच्छृङ्खलता ही समझते हैं। पहले में अपरिवर्तन का आग्रह है और दूसरे में परिवर्तनात्मक मूल वस्तु-तत्त्व का ही अभाव। इस तरह दोनों पक्ष ही ग़लती पर हैं, दोनों ही वस्तु-स्थिति की परवा नहीं करते। भला, इस युग में यह धांधली कैसे चल सकती है ? क्या उपादानों के अभाव में केवल कलात्मक मौखिक बातों से ही किसी वस्तु की सृष्टि हो सकती है ? और वैसे ही विना समय-सम्मत कला के कोई सामयिक वस्तु तैयार भी कैसे की जा सकती है ?

नागरिकता के वैयक्तिक आदर्श

प्रत्येक प्रकार के शासन-चक्र से सम्बन्ध होने के कारण नागरिकता के विभिन्न और अनंत आदर्श होते हैं। फिर भी कुछ नीचे लिखे आत्म-सम्पृक्त विशेष भी आदर्श हैं—

१. वैयक्तिक कर्तव्य का पालन
२. अधिकारों की रक्षा
३. नागरिकता-विज्ञान का प्रचार-प्रसार
४. प्रत्येक प्रकार की नागरिकता का निर्वाह

परन्तु इन सब बातों के साथ-साथ नागरिकता के वैयक्तिक आदर्शों का मुख्य तात्पर्य आदर्श सामाजिकता का निर्वाह करना है। इसलिए प्रत्येक नागरिक में घर, देश और विश्व के लिए पूर्व-कथनानुसार कुर्बानी का माद्दा पूर्णतः होना चाहिए। साथ ही इसमें सफल होने के लिए उसे नीचे लिखी बातों में भी योग्य बनने का प्रयत्न करना चाहिए, तभी वह समाज की सेवा तरह कर सकता है—

१. कार्य-कुशलता
२. सेवात्मक उत्साह
३. सत्साहस
४. पक्षपात, अन्ध-विश्वास और समाज-घातक परंपरागत बातों का त्याग
५. आर्थिक और राजनीतिक बातों में ... का साहस

इन बातों के साथ ही निम्नलिखित ... योग्य होना भी एक नागरिक के लिए आवश्यक है—

क.
१. बौद्धिक प्रक्रिया
२. आत्म संयम-पूर्ण व्यवहार
३. नीतिज्ञतामय प्रवृत्ति

ख.
१. मत दान
२. कार्य...
३. सैनिक...

ग.
१. राज्य का सभासद होना
२. चुनाव-साधक गुणों में योग्य होना
३. आत्म-कल्याण और दूसरों के ... की सदिच्छा
४ समय, परिस्थिति और नागरिकता ...

यहाँ हम कुछ देशों के विभिन्न ... आदर्शों की सारिणियाँ देते हैं, जिनसे यह ... हो जायगा कि देश, काल और परिस्थिति ... रिकता के नियमों के साथ कहाँ तक सम्बन्ध ...

क. एथेनियन नागरिक आदर्शों में ... पूर्णता के साथ-साथ मस्तिष्क की विचार ... और Tastes का भी समावेश है। यही ... कि उनमें साहित्य, संगीत आदि कलाओं ... नागरिक अधिकारों और कर्तव्यों में समा...

ख. रोमन आदर्शों में विचार-शीलता ... प्रत्येक प्रकार का सुयोग सम्मिलित है।

ग. अँगरेज़ी आदर्शों में आत्म-संयम, ...



क़ानून-प्रेम, न्याय-प्रियता, क्रीड़ा-शीलता और चरित्र-निर्माण आदि बातें सम्मिलित हैं। हिन्दू-आदर्शों में परोपकारमय अत्युच्च शान्त गार्हस्थ्य-जीवन की विशेषता है।

नागरिकता-विज्ञान और राज्य

नागरिकता-विज्ञान का सम्बन्ध नागरिक (Citizen) और नागरिक राज्य से है; क्योंकि राज्य के विना नागरिक शब्द के वाच्यार्थ का निर्वाह ही असम्भव है। परंतु राज्य का अभिप्राय यहाँ व्यावहारिक राजनीति का है। नागरिकता-विज्ञान के मत से नागरिकता, राजनीति और राज्य, ये तीनों ही तत्त्व सामाजिक जीवन के विशेष अंग हैं। ऐसी दशा में इनके समन्वय से ही नागरिकता का पूर्ण विकास हो सकता है।

"राज-नीति" राज्य का अपरिहार्य अंग है। यह राज्य की प्रकृति, उत्पादक तत्त्व, प्रकार, अंगावयव, इतिहास और परंपरा के वर्णन का विज्ञान है। राज-नीति-शास्त्र में राज्य का लक्षण इस प्रकार किया गया है—

A state is a people organized for law within a definite territory. It is a community of persons more or less mumerous permanatly accupying a definite portion of territory independent of external control and possessing an organized Government to which the great body of inhabitants render habitual obedience.

"राज्य" शब्द स्थल-विशेष में वैध रीति से सुव्यवस्थित जनसमुदाय का वाचक है, जिसकी संख्या चाहे कितनी ही हो, परन्तु जो स्थायी रूप से वहाँ रहनेवाला हो और बाहरी विघ्न-बाधाओं से बरी हो। साथ ही जिसका अपना शासन हो और जो स्वभावतः उसकी आज्ञा का पालन करनेवाला भी हो।

राज्य के मुख्य अंगावयव ये हैं—

१. आबादी
२. स्थल-विशेष
३. रक्षा
४. शासन
५. सार्वभौम सत्ता (Sovereignty)

१. "आबादी" का अभिप्राय नागरिक प्रजा और आगन्तुक दोनों तरह के लोगों से है। इसमें नागरिक प्रजा का अभिप्राय अधिकार-भोगी जनता और आगन्तुक का अभिप्राय अधिकार-वंचित प्रजा है।

२. "स्थल-विशेष" (Territory) चाहे आकार-प्रकार में छोटा हो या बड़ा परन्तु वह राज्य के सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त होना चाहिए, तभी वह राज्य हो सकता है। उसकी भौगोलिक स्थिति, व्यापार, कला-कौशल, जातीय चरित्र, क़ानून, साधना, शासन, कार्य-कलाप, शिक्षा और संस्थाएँ आदि राज्य के स्वरूप की प्रदर्शक हों। ये सब बातें किसी राज्य में हों, तभी वह सच्चा 'राज्य' कहा जा सकता है।

३. "रक्षा" का अभिप्राय आन्तरिक और बाह्य विघ्न-बाधाओं और आक्रमणों से प्रजा और नागरिकता के नियमों की रक्षा करना है।

४. "शासन" में किसी भी प्रकार के संगठन (Organization) की आवश्यकता है। इसमें Mutual agreement (पारस्परिक एकता) और Mutual Aid (आपस की सहायता) भी अत्यधिक अभिप्रेत है।

५. "सार्वभौम सत्ता" का अभिप्राय है—प्रजा को प्रत्येक आवश्यकता से पूर्ण करना, उसे नियन्त्रण में रखना, उसमें नागरिक और सामाजिक भाव-भावना उत्पन्न करना। साथ ही



उस पर अपना पूर्ण आधिपत्य भी क़ायम रखना *।

राज्य और उसके प्रकार-भेद

तात्त्विक दृष्टि से राज्य के मुख्य प्रकार ये हैं—

क. प्राकृतिक (Natural)
ख. तात्त्विक (Essential)
ग. ऐच्छिक (Optional)

इन तीनों की रंग-स्थली है—

१. कुटुम्ब-राज्य
२. नगर-राज्य
३. प्रान्तीय राज्य
४. देश-राज्य
५. विश्व-राज्य
६. जातीय राज्य

इन सबकी नागरिकता के प्रकार हैं—

कौटुम्बिक नागरिकता, नगर-नागरिकता, प्रान्तीय नागरिकता, दैशिक नागरिकता, विश्व-नागरिकता और जातीय नागरिकता।

इन सब नागरिकताओं के वैयक्तिक (Individual) भेद-प्रभेद भी अनेक हैं, परन्तु वे प्रधानतः दो भागों में विभक्त हैं। इनमें एक व्यक्तिगत (Personal) है और दूसरा संस्थात्मक। पहले का सम्बन्ध केवल व्यष्टि से है और दूसरे का समष्टि से। पहले का केन्द्र मुख्यतः व्यक्ति है और दूसरे का व्यक्ति-समुदाय या वे संस्थाएँ, जिनके द्वारा व्यक्ति काम करते हैं। वे संस्थाएँ भी राज्य के प्रकारानुसार प्रायः विभिन्न हैं।

नागरिकता-विज्ञान और राज्य के विशेष कर्तव्य

नागरिकता की दृष्टि से राज्य के निम्नलिखित कर्तव्य हैं और इन्हीं के सहारे एक नागरिक राज्य का अंग होकर नागरिक कर्तव्यों को आसानी से कर सकता है*—

क. १. जीवन-रक्षा के प्रयत्न
२. धन और जायदाद की रक्षा के उपाय
३. स्वतन्त्रता की रक्षा के साधन
४. घातक घटनाओं से बचाव के नियम
५. न्याय-प्रदान का सुनिश्चित मार्ग

ख. १. शिक्षा-प्रचार के नियमोपनियम
२. स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धान्त
३. धर्म-रक्षा के तत्त्व
४. आदर्श-परंपरा की रक्षा के क़ानून-
५. बालक, दीन, अनाथ और पतितों की के साधन

नागरिकता-विज्ञान और शासन-संस्थाएँ

नागरिकता के कर्तव्य और अधिकारों का विशेष सम्बन्ध शासनात्मक संस्थाओं से है, क्योंकि इन्हीं के द्वारा मनुष्यों के कर्तव्यों और अधिकारों का निर्णय होता है और इन कर्तव्यों और अधिकारों पर व्यावहारिक मोहर-छाप भी लगाई जाती है। इन संस्थाओं में सबसे पहली संस्था वैयक्तिक वातावरण की कौटुम्बिक संस्था और अन्तिम साम्राज्य है। राष्ट्रीय महासभा का इन सबमें उच्च है। परन्तु संसार का विशेष कार्य प्रायः राज्य संस्थाओं से ही चलता है। फिर भी अन्य सं के साथ हमारा प्रत्यक्षपरोक्ष सम्बन्ध है। कौटुम्बिक संस्था और म्यूनिसिपैलिटी विना तो मनुष्य का श्वासोच्छ्वास तक सकता है। इन सब संस्थाओं के कार्य जीवन, स्वास्थ्य, निर्वाह, न्याय, सहयोग,

---

* प्राचीनों के मत से राज्य के मुख्य अंग आठ हैं। यथा—स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, बल और प्रकृति।

* व्यवस्था, शासन और न्याय—ये तीनों सम्पूर्ण-राज्य-सम्बन्धी बातों के मूल हैं और से राज्य और नागरिकता की रक्षा होती है



अधिकार, पारिश्रमिक, व्यापार, नैतिक सुधार और अन्यान्य सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्रिया-कलापों में सहायता देना है।

नागरिकता-विज्ञान और भारत

भारत में वर्णाश्रम-मूलक आदर्श कुटुम्ब-संस्था नागरिकता विज्ञान की उत्पादिका है, और यही भारतीय दृष्टिकोण से विश्व-नागरिकता की भी जननी है। या यों कहना चाहिए कि इसी का परिवर्तित विशाल रूप भारत की प्राचीन सार्वभौम नागरिकता है। परन्तु आज यह बड़ी जीर्ण-शीर्ण दशा में है और वैसे ही भारत की प्राचीन पंचायतें, जो किसी समय इसी का विकासोन्मुख रूप थीं, वे भी मृतप्राय हैं। विशेषतः भारत की वर्तमान-कालीन नागरिकता-सम्बन्धी संस्थाओं की दशा तो आजकल अत्यधिक घृणित है। उन संस्थाओं के प्रकार और दोष ये हैं—

क. प्रकार

१. ग्राम-संस्थाएँ
२. नगर-संस्थाएँ
३. प्रादेशिक संस्थाएँ
४. प्रान्तीय संस्थाएँ
५. देशी राज्यों की संस्थाएँ
६. सुप्रीम गवर्नमेंट
७. आबादी-सम्बन्धी संस्थाएँ
८. व्यापार-सम्बन्धी संस्थाएँ
९. शान्ति-सम्बन्धी संस्थाएँ
१०. स्वास्थ्य-स्थापन-सम्बन्धी संस्थाएँ
११. कर-सम्बन्धी संस्थाएँ
१२. शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाएँ

ख. दोष

१. इनमें उद्देश्याभासों का भी पालन ठीक तरह नहीं होता
२. इनका कोई उच्च उद्देश्य नहीं
३. इनके कार्य-कर्ता कर्तव्य-तत्परता की परवा नहीं करते
४. इनको अपने अधिकारों के बरतने में पूर्ण स्वतन्त्रता भी नहीं दी जाती
५. योग्य व्यक्ति अधिकारी चुने भी नहीं जाते इत्यादि-इत्यादि।

कहा जाता है वर्तमान भारत परंपरागत संस्कारों और वर्तमान शासन से प्राप्त आदर्शों के द्वारा जातीयता और देशानुराग के स्वप्न देख रहा है; परन्तु वास्तविक बात तो यह है कि अभी इन दोनों में ही सुधार-उद्धार की विशेष आवश्यकता है; क्योंकि अभी पहला विषय तो अत्यन्त ही विकृत और घृणित-सा हो रहा है और दूसरा भी ठीक तरह पनपने नहीं पाया। जो कुछ पनप सका है, वह भी यथेष्ट नहीं है*। ऐसी दशा में इस बात की आवश्यकता है कि कम से कम जातीयता और देशानुराग का माद्दा उत्पन्न करने के लिए तो भारत स्वयं ही प्रयत्नशील हो। तभी कुछ हो सकता है; क्योंकि जातीयता और देशानुराग स्वयं प्राप्त करने की वस्तुएँ हैं न कि लेने और देने की। इनका आदान-प्रदान तो असल में हो ही नहीं सकता। ये तो स्वयं उत्पन्न करने की वस्तुएँ हैं। अधिकार और विश्व-नागरिकता का इतिहास हमें यही बताता है।

नागरिकता-विज्ञान और भारतीय माँगें

वर्तमान भारतीय शिक्षित समुदाय की अपने नागरिक अधिकारों के विषय में जो कुछ माँगें हैं, उनका आवश्यक संक्षिप्त दिग्दर्शन इस प्रकार है—

१. सम्मति-प्रकाशन, मेल-मिलाप, सहयोग और सभा-समितियों की स्वतंत्रता

२. विचार, धर्म, नीति और शासन में प्रजा के अधिकार

* विश्व-नागरिकता तो अभी दूर की बात है।



३. क़ानून की दृष्टि में सब भारतवासी समान हों किसी के साथ किसी प्रकार का भेद-भाव न हो

४. कुओं, सड़कों, पाठशालाओं आदि में सबका समान अधिकार और कर्तव्य

५. शस्त्र रखने के अधिकार

६. शासन का धर्म-रक्षक होना

७. स्वतन्त्र और अनिवार्य शिक्षा

८. भारत में भ्रमण-स्वतन्त्रता और व्यापार स्वतंत्रता

९. पत्र-व्यवहार की स्वतन्त्रता

१०. दुःख-प्रकाशन और प्रार्थना के अधिकार

११. प्राण-दण्ड की सज़ा का अभाव इत्यादि-इत्यादि

उल्लिखित बातें हमारी नागरिकता की प्राथमिक बातें हैं, जिन्हें पूरी तरह प्राप्त कर सकना आज भी कठिन हो रहा है। ईश्वर हमें बल दें।

नागरिकता-विज्ञान और धार्मिकता

नागरिकता-विज्ञान का भी धार्मिक पक्ष है। उसकी भी रूप-रेखा है। उसका भी संसार के विविध धर्मों और सिद्धांतों के साथ प्रत्यक्ष-परोक्ष सम्बन्ध है। साथ ही उसकी सुनिश्चित परंपरा भी है। इस शास्त्र के निर्माताओं की दृष्टि में वह भी अन्यान्य सात्त्विक धर्म या सम्प्रदायों के सिद्धान्तों की तरह ही महत्त्व-पूर्ण भी है। पाश्चात्य पंडितों के मत से वह परंपरा निम्न-लिखित भागों में विभक्त है—

१. न्याय*

२. उदारता

३. समानता

४. भ्रातृ-भाव

५. अधिकार

६. आपस की सहायता

७. अधिक लोगों का अधिक सुख

अब देखना यह है कि क्या हमारी वर्तमान नागरिकता उपर्युक्त आदर्श धर्मतत्त्वों को व्यावहारिक रूप दे रही है? यदि नहीं तो हमारी सब बातें विडम्बना और वितण्डा-वाद ही हैं।

नागरिकता-तत्त्व का विश्लेषण

नागरिकता और नागरिकता-विज्ञान एक न[illegible] के वातावरण में विविध प्रकारों से अपना [illegible] करते रहते हैं; परन्तु जिन तत्त्वों से इन्हें जी[illegible] मिलता है और जिनसे ये सुसंस्कृत होते हैं [illegible] तत्त्व ये हैं—

१. देश	७. धर्म
२. काल	८. संस्कृति
३. परिस्थिति	९. वातावरण
४. परंपरा	१०. सार्वभौम सत्ता
५. जाति	११. विचार-प्रवाह
६. शासन	

इन सब बातों का प्रभाव प्रत्येक नागरि[illegible] संस्कृति पर पड़ता रहता है। साथ ही ये सब त[illegible] आपस में भी एक दूसरे पर अपना प्रभाव डा[illegible] रहते हैं। इस तरह इनके सम्मिलित प्रभाव [illegible] प्रभाव से ही किसी नगर की नागरिकता [illegible] सिद्धान्त उत्पन्न होते हैं। अब यदि इनमें सात्त्वि[illegible] Combination रहा तो नागरिकता भी सात्त्वि[illegible] होगी और राजस-तामस रहा तो नागरिक[illegible] भी वैसी ही रहेगी। इसलिए हमें प्रत्येक बात [illegible] आदर्श नियमों को सामने रखकर अपना क[illegible] करना चाहिए। इसके लिए नीचे लिखे शब्द हम[illegible] विशेष मार्ग-प्रदर्शक होंगे—

"नागरिकता मानव-समाज की बहुमूल्य व[illegible] है। यह समाज का जीवन है, ईश्वर का सर्वो[illegible]

* तत्त्व, व्यवहार, व्यक्ति, समाज और राज्य आदि की दृष्टि से न्याय आदि तत्त्वों की विभिन्न व्याख्या है।



आशीर्वाद है, इसलिए इसके विषय में सदैव कला, धर्म, सामयिकता, सामाजिकता और आध्यात्मिकता से काम लेना चाहिए, अन्यथा जीवन-संग्राम की कठोरता, क्रूरता और विभिन्नता समाज को सदैव विचलित, पीड़ित और लयोन्मुख बनाती रहेगी।"

इन बातों के सिवा नागरिक अध्यात्मवाद के इन शब्दों को भी हमें न भुलाना चाहिए—

संसार किसी सात्त्विक लक्ष्य-विन्दु पर क़ायम है, इसमें एक आध्यात्मिक प्राण-शक्ति काम कर रही है। असल में वही इसकी रक्षा कर रही है, इसे संगठन उच्चता और पवित्रता की ओर ले जा रही है। इसलिए उसे समझना, उसका मनन करना, उसके अनुसार अपना जीवन बनाना एक नागरिक का परम कर्तव्य है, परम धर्म है। नागरिक शास्त्र के मत से ऐसे जीवन का लक्ष्य-विन्दु अहिंसा और उत्पादक सेवा-भाव ही है। बस, यही सच्ची नागरिकता है, यही नागरिक आध्यात्मिकता है और यही सच्चा जीवन है। इसी अहिंसात्मक उत्पादक सेवा पर विश्व-ब्रह्माण्ड की स्थिति भी है। अनेकों के मत से यह ईश्वरीय सृष्टि की सत्प्रक्रिया है, प्राकृतिक सत्य है, प्रकृति के अणु-परमाणु में काम करने-वाला नियम है और इसी से संसार की उत्पत्ति, पालन और पोषण भी होता है। इसलिए इसकी रक्षा के लिए हमें निम्नलिखित बातों की ओर विशेष रूप से आकर्षित होना चाहिए—

१. समाज - संस्थापक आदर्शों के पालन में परंपरागत भलाइयों और बुराइयों का विचार
२. विकास - प्रकाश का ध्यान
३. सत्परंपरा की रक्षा
४. जगत् की वास्तविकता का तात्त्विक विश्लेषण
५. कर्तव्य का पालन

नागरिकता-विज्ञान और प्रौढ़ स्त्री-पुरुषों के कर्तव्य

प्रौढ़ स्त्री-पुरुषों के कर्तव्य असंख्य हैं। फिर भी नागरिकता - शास्त्र की दृष्टि से मताधिकार, क़ानून-निर्माण, न्याय आदि में राज्य की नियमानुसार सहायता करना उनके मुख्य कर्तव्य हैं। मादक पदार्थों की रोक-थाम, धर्म-स्वातन्त्र्य और आर्थिक स्वातन्त्र्य की रक्षा की ओर ध्यान देना भी उनका कर्तव्य है। मितव्ययिता, सादगी आदि का प्रचार-प्रसार भी उनकी कर्तव्य-सीमा में है। शासन-सुधार और स्वराज्य-प्राप्ति आदि जन्म-सिद्ध अधिकारों की रक्षा भी उनकी कर्तव्य-सीमा से बाहर नहीं है। अवसर की समानता, क़ानून की समानता, सार्वजनिक संस्थाओं का सार्वजनिक समान सदुपयोग, पद और नौकरियों के समान अधिकारों का दुरुपयोग न होने देना भी प्रौढ़ स्त्री-पुरुषों के कर्तव्यों में है। धार्मिक सुधार और सहनशीलता भी उनके मनुष्योचित और नागरिकोचित कर्तव्य हैं। साम्प्रदायिकता और राष्ट्र-धर्म में सामंजस्य स्थापित करना भी उनका एक प्रधान कर्तव्य है। संसार के महापुरुषों का आदर-सम्मान करना और उनकी सद्विचार-धारा को अपनाना भी उनके आवश्यक गुण हैं।

नागरिकता-विज्ञान और शिक्षा

नागरिकता-विज्ञान शिक्षा का एक आवश्यक और प्रधान अंग है। इसके बिना समाज की सुख-शान्ति हमेशा ख़तरे में रहती है। नगर-निवासी होने के लिए जिन बातों, नियमों और व्यवहारों की आवश्यकता है, उनका शिक्षा में स्थान न होना एक आश्चर्य-जनक बात है। नागरिक शास्त्र जीवन-संस्थापक समाज-शास्त्र का विकासोन्मुख एक अनिवार्य अंग है। इसकी शिक्षा के बिना आपस के सहयोग की आशा करना आकाश-कुसुम की आशा करना है। फिर इसकी शिक्षा के बिना समाज, राज्य और नगर



का प्रबन्ध भी ठीक तरह कैसे हो सकता है ? और, शासन-व्यवस्था भी क्योंकर स्थिर रह सकती है ? ऐसी दशा में फिर क्या उच्छृङ्खलता और विनाश का वातावरण तैयार न होगा ? क्या समाज की शान्ति भी सदैव स्थिर रहेगी ? म० एस्० वी० का तो कथन है कि आजकल समाज की अशान्ति के अनेक कारणों में नागरिक शिक्षा का व्यावहारिक अभाव भी एक प्रधान कारण है। इसके विना हमारे तमाम धर्म, शास्त्र और विद्याएँ निरर्थक सिद्ध हो रही हैं। इसी के विना आपस की व्यवहार-शुद्धि एक हास्य की वस्तु बनी हुई है।

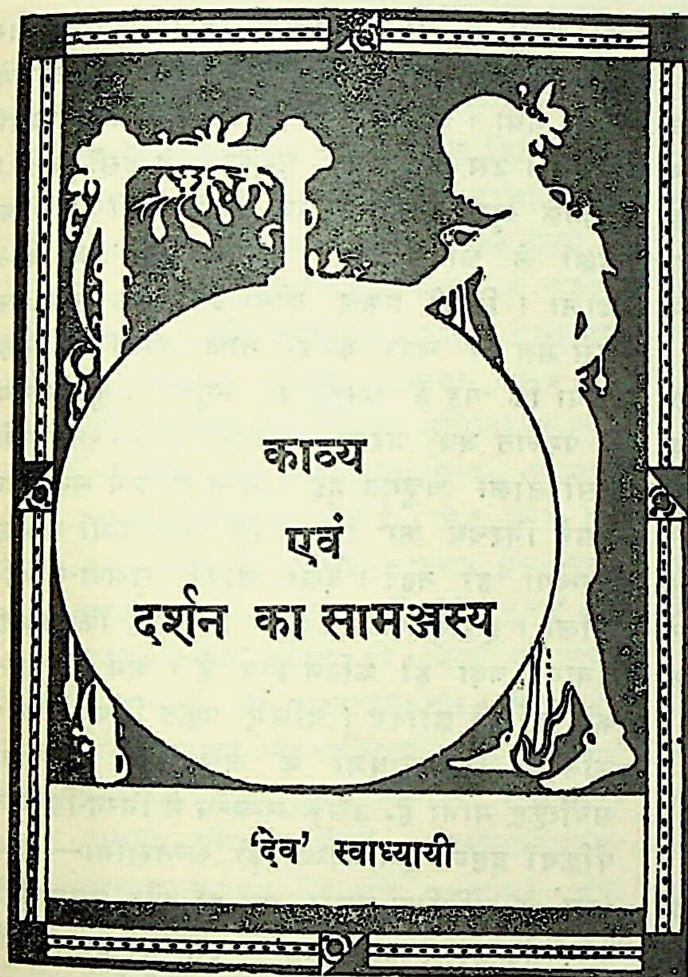
इसके विरुद्ध संसार के दूसरे देशों में आजकल नागरिकता की शिक्षा पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है। वहाँ प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति नागरिकता-विज्ञान की बातों की परवा करता हुआ देखा जाता है। वह सदैव नीचे लिखी बातों को अपने जीवन में क्रियात्मक बनाने की कोशिश करता रहता है—

१. उत्तर-दायित्व
२. सहयोग (Mutual Aid)
३. बहुमत का आदर
४. क़ानून की रक्षा
५. नैतिक आदर्श
६. वैयक्तिक, सार्वजनिक और राष्ट्रीय सम्पत्ति की रक्षा
७. आदर्श नेताओं की आज्ञा का पालन
८. स्वावलंबन और बुद्धि-वाद
९. कृपा दयालुता और सद्व्यवहार-परंपरा
१०. स्वच्छता और पवित्रता
११. मनुष्योचित मनोरंजन
१२. सामाजिक कृतज्ञता
१३. न्याय और त्याग के भाव
१४. विश्व-नागरिकता
१५. सार्वजनिक बन्धुत्व

योरप और विशेषतः अमेरिका में अनेक शिक्षा-संस्थाएँ अपने छात्रों के दैनिक जीवन में दूसरों का आदर करना, विश्वास-पात्र बनना, प्रत्येक कार्य दृढ़ता-पूर्वक करना, नवीन विचार और परिस्थिति को पूर्णतः समझना आदि बातों को उत्पन्न करने का समधिक प्रयत्न करती हैं और इन विषयों के साप्ताहिक, मासिक और वार्षिक परीक्षा-फल प्रकाशित करती रहती हैं। सर्वसाधारण को व्याख्यान, सिनेमा, रेडियो आदि से नागरिकता की शिक्षा देने का उन देशों में उचित प्रबन्ध है।

अन्त में यहाँ यह कह देना समुचित मालूम होता है कि धर्म-कर्म, आचार-विचार, नीतिवाद, समाजवाद और साम्यवाद आदि सबका सच्चा और व्यावहारिक रूप नागरिकता ही है। इसलिए यदि हम सच्चे हृदय से व्यष्टि और समष्टि का भला चाहते हैं तो हमें नागरिकता के नियमों की परवा करनी चाहिए, इसका प्रचार करना चाहिए, अवसर पड़ने पर इस पर हमें अपना सर्वस्व स्वाहा करने में भी न हिचकिचाना चाहिए और समझना चाहिए कि सच्ची एकता और विश्व-शान्ति की यही एक सदौषध है। इसी के आधार पर हम मनुष्योचित मार्ग पर चलकर अपना और दूसरों का भला कर सकते हैं। साथ ही Robert P. Downes के इन शब्दों को सदा के लिए अपने हृदय पर अंकित कर लेना चाहिए—

पार्लियामेंट, नगर-कौन्सिल, जज, मजिस्ट्रेट आदि सबका नागरिकता के विषय में अपना-अपना स्थान और कर्त्तव्य है। इसलिए उन्हें ईश्वरीय आज्ञा को कभी न भुलाना चाहिए। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति नागरिकता के उत्तरदायित्व से बाध्य है। कोई भी इसके ऋण से मुक्त नहीं है।



विषयारम्भ

समस्या बड़ी जटिल है। लोगों के मन में काव्य एवं दर्शन के व्यतिरेक[1] ने चिरकाल से घर बना लिया है। प्रायः सुनने में आता है कि काव्य, मानव-जीवन को क्षणिक चित्तरंजन—क्षणिक मानसाह्लाद के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं पहुँचा सकता। किन्तु दर्शन, मानव-जीवन के एकांत लक्ष्य—शाश्वत शान्ति (Eternal peace) की उपलब्धि का शक्तिशाली साधन, बड़ी सुगमता एवं स्वाभाविकता से बन सकता है। इस सम्बन्ध में और भी कितनी ही आशंकाएँ, कितने ही शिक्षा-समलंकृत मनुष्यों द्वारा कही-सुनी जाती हैं।

आजकल प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता तर्क से प्रतिष्ठित हुए विना किसी प्रकार मानी नहीं जा रही है। कुछ वातावरण ही ऐसा हो गया है। "Logic is the right thinking"—तर्क ही सत्य विवेचन है की धूम-सी मच गई है। 'यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेत्ति नेतरः'—जो तर्क द्वारा ही तत्त्व-निर्णय करता है, वही तत्त्व-ज्ञाता है, दूसरा नहीं। यह 'मनु' का श्लोक बड़ी श्रद्धा से बार-बार पढ़ा जाता है। ऐसी दशा में यह विवेचन करना परमावश्यक है कि काव्य केवल मन-बहलाव का एक खेल ही है, या मानव-जीवन को उसके एकान्त लक्ष्य—शाश्वत-शान्ति के प्राप्त कराने का एक सत्य-प्रतिष्ठित सुन्दर साधन भी? साथ ही यह भी देखना है कि काव्य एवं दर्शन परस्परतः असामंजस्य रखते हैं, या सामंजस्य?

काव्य एवं दर्शन के लक्षण

उपर्युक्त विषय को स्पष्ट समझने के लिए पहले काव्य एवं दर्शन के लक्षणों को हृदयंगत कर लेना आवश्यक है। अतः आइए, व्युत्पन्न विद्वानों के निर्धारित लक्षणों पर एक दृष्टि डाल ली जाय।

पण्डितराज जगन्नाथ अपने 'रस-गंगाधर'-नामक परम विख्यात ग्रन्थ में, काव्य का तत्त्व-गर्भित लक्षण इस प्रकार करते हैं—"रमणीयार्थ-प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"—रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाले 'शब्द' को काव्य कहते हैं। यहाँ शब्द से न केवल एक ही शब्द का अर्थ अभिप्रेत है, अपितु शब्द-समुदाय का। श्रीमम्मटाचार्य अपने 'काव्य-प्रकाश' में "तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि"—अलंकार-युक्त एवं वियुक्त, निर्दोष-सदोष शब्दार्थ ही को काव्य बतलाते हैं। सुकवि-शिरोमणि कविराज विश्वनाथजी, 'साहित्य-दर्पण' में "रसात्मकं वाक्यं काव्यम्"—

१—अन्तर।



रसात्मक—रसपूर्ण वाक्य ही को काव्य मानते हैं। इसी प्रकार 'प्रताप[1]-रुद्र-ग्रन्थ', 'सरस्वती[2]-कंठाभरण', 'चन्द्रालोक[3]', 'काव्यादर्श[4]', 'वाग्भट्टालंकार[5]' प्रभृति ग्रन्थों में, काव्य के अनेक लक्षण दिये गये हैं। किन्तु हमारी समझ में, सब लक्षणों की अपेक्षा 'साहित्य-दर्पणकार' ही का लक्षण विशेष मान्य एवं उपादेय है। काव्य-मर्मज्ञों का मत भी ऐसा ही है*।

वैसे तो आज तक किसी भी वस्तु का अनवद्य-लक्षण बना ही नहीं। कारण, एक तो मानव-ज्ञान ही परिच्छिन्न (Limited) एवं दोष-पूर्ण है, दूसरे लक्षण-विन्यास है भी बड़ा ही कठिन कार्य। एक बार की बात है। धुरन्धर दार्शनिक अरस्तू (Aristotle) ने मनुष्य का लक्षण इस प्रकार लिखा था—मनुष्य वह प्राणी है, जो बिना दो पंखों के दो टाँगोंवाला हो। अपने हुए लक्षण को वह मेज़ पर छोड़कर कहीं चला गया। थोड़ी देर के बाद उसका शिष्य आया। उस लक्षण को पढ़कर, उसे हँसी मज़ाक़ सूझा। फल-स्वरूप उसने कहीं से पक्षी ले आकर उसके दोनों पंखों को डाला। किसी प्रकार दोनों टाँगों के बल उसे मेज़ पर खड़ा करके, नीचे उसने लिख दिया कि 'यह है अरस्तू का मनुष्य'। कुछ के पश्चात् जब अरस्तू टहलकर आया, तो ऐसी लीला चक्षुगत हुई। अन्त में अर्थ उसने निश्चय कर लिया कि अब कभी लिखूँगा ही नहीं। देखी आपने लक्षण लीला। इसीलिए हमने ऊपर लिखा है कि बनाना बड़ा ही कठिन कार्य है। अब इस को यहाँ ही छोड़िए। चलिए प्रकृत विषय कविराज विश्वनाथजी के लक्षण को सर्वोत्कृष्ट माना है, उसके सम्बन्ध में निम्न-लि पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं। काव्य की अन्तरात्मा—'रस' के अतिरिक्त दूसरा बन ही कौन सक और लक्षणों में काव्यात्मा—'रस' का इतना कथन नहीं दिखलाई पड़ता। इसके अतिरिक्त पण्डित भी तो इन्हीं महोदय के लक्षण से विशेष सामंजस्य रखते हैं। देखिए, मिल्टन कहते हैं—"काव्य वह कला है अन्तर्गत काल्पनिक शक्ति, विवेक की सह बनकर 'सत्य' एवं आनन्द का परस्पर सं करवाती है।" प्राञ्जल-प्रतिभ रस्किन हैं—"काव्य कल्पना-शक्ति द्वारा उन्नत अन्त के श्रेष्ठ आलम्बनों की अभिव्यंजना है।" डण्टन इस प्रकार व्याख्या करते हैं—"काव्य मयी एवं संगीतमयी भाषा में मानव-हृदय और कला-पूर्ण प्रकाशन है।"

उपर्युक्त लक्षणों पर सूक्ष्म बुद्धि से विवेचन के पश्चात् सूत्र-रूप में हमें यही ज्ञात होता अन्तर्वृत्तियों का चित्ताकर्षक चित्रण ही काव्य

१—गुणालङ्कारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ।
—विद्यानाथ।

२—निर्दोषं गुणवत् काव्यमलङ्कारैरलङ्कृतम्।
रसात्मकं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति॥
—महाराज भोज।

३—निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषिता।
सालङ्काररसानेकवृत्तिवाक् काव्यनामभाक्॥
—जयदेवजी।

४—इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।
—दण्डी।

५—साधुशब्दार्थसन्दर्भं, गुणालङ्कारभूषितम्।
स्फुटरीतिरसोपेतं, काव्यं कुर्वीत कीर्तये॥
—वाग्भट्ट।

* श्रीजगन्नाथप्रसाद 'भानु' काव्य-प्रभाकर की इँगलिश-भूमिका में यों कहते हैं—

The definition of Vishwanath as "a sentence carrying a charming idea" appears to us to the most condensed, most comprehensive and the most appropriate.



यदि आप श्रीविश्वनाथजी के 'रसात्मक वाक्य' पर ध्यान देंगे तो स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि वे भी अंतर्वृत्तियों के चित्ताकर्षक रूप ही को, रसात्मक वाक्य ही को काव्य मानते हैं। उपरि-कथित विद्वानों के काव्यविषयक लक्षणों के जान लेने के पश्चात् अब बड़ी स्वच्छता से यह बात मस्तिष्क में बैठ जाती है कि काव्य का अन्तर्वृत्ति-समष्टि—हृदय से अतीव घनिष्ठ सम्बन्ध है और हृदय का सम्बन्ध 'आत्मा' से है ही। 'आत्मा' नित्य—शाश्वत पदार्थ है। श्रीभगवद्गीता कहती है—'नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः''—यह आत्मा नित्य, व्यापक, स्थाणु, अचल और सनातन है। अब प्रश्न यह है कि हृदय क्या है? इच्छा, प्रयत्न, द्वेष, सुख-दुःख इत्यादि की अमूर्त्त समष्टि ही हृदय है। आत्मा हृदय-विशिष्ट होकर ही किसी भी सूक्ष्म किंवा स्थूल कार्य का सम्पादन कर सकती है। यही क्यों, आत्मा के अस्तित्व-बोधक चिह्न—लिंग भी इच्छा, द्वेष, प्रयत्न इत्यादि (हृदय) ही हैं। महर्षि गौतम कहते हैं—"इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगानि"—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान आत्मा के अस्तित्व के लिंग—परिचायक हैं। उपर्युक्त सूत्र का स्पष्ट भाव इस प्रकार समझिए—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न इत्यादि वृत्तियों के द्वारा ही लापता आत्मा की सत्ता (Existence) का अनुमान होता है। आख़िर उक्त वृत्तियों को स्फूर्त्ति देनेवाला कोई न कोई होना ही चाहिए। विना संचालक के संचालन हो नहीं सकता। ये वृत्तियाँ प्रकाश्य होने के कारण स्वयं तो जड़ीभूत हैं। अतः इनका स्वतंत्र-कर्तृत्व तो किसी प्रकार सम्भव ही नहीं है। ऐसी दशा में, उपर्युक्त वृत्तियों से भिन्न एक चेतन—स्फूर्त्ति-प्रदायिनी शक्ति की सत्ता स्वीकार करनी ही पड़ती है। इतना समझ लेने के पश्चात् अब यह देखना है कि इच्छा, प्रयत्न आदि का निवास-स्थान—आधार भी वही आत्मा ही है या कोई दूसरा? सोचने पर स्पष्ट उत्तर मिलता है कि इन वृत्तियों का जैसा घनिष्ठ सम्बन्ध आत्मा से है, वैसा किसी दूसरे से नहीं। आत्मा को छोड़कर दूसरा कोई ऐसा पदार्थ दिखलाई ही नहीं पड़ता, जो आधार बनने की योग्यता रखता हो, अतः आधार भी आत्मा ही है। यद्यपि इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है, तथापि लेख बढ़ जाने के भय से यह मीमांसा यहीं छोड़ देनी पड़ती है। यह दार्शनिक विषय है, इसे जैसे-जैसे बढ़ाइए, बढ़ता ही जायगा। अस्तु।

उपर्युक्त वाक्यों के द्वारा अब यह स्पष्ट ो गया कि इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आदि की अमूर्त्त समष्टि—'हृदय' का आधार आत्मा है। किन्तु अब यहाँ यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि उसका आत्मा से नित्य सम्बन्ध है या अनित्य?

इस प्रश्न के समाधान में दार्शनिकों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ दार्शनिक कहते हैं कि अनित्य-सम्बन्ध है; क्योंकि मानव-जीवन की पूर्णावस्था—मोक्षावस्था में तो उक्त वृत्तियों (इच्छा इत्यादि) का नाश हो ही जाता है। जिस वस्तु का सम्बन्ध कभी-न-कभी छूट जाता है, उसका सम्बन्ध तो अवश्य ही अनित्य है। इस मत के प्रतिकूल कुछ दार्शनिकों की उद्घोषणा (Declaration) है कि आत्मा से 'इच्छा' आदि का नित्य सम्बन्ध है। वे कहते हैं कि आत्मा, मोक्षावस्था में भी 'परमानंद' का अनुभव तो करती ही है। अतः वह उस समय भी हृदय-विशिष्ट ही रहती है। विना हृदय के 'परमानन्द' का उपभोग किसी प्रकार सम्भव ही नहीं है। अवश्य ही उस समय हृदय सत्त्व-प्रधान रहता है। हमें भी विवेचन करने पर यही मत समीचीन एवं न्याय-संगत प्रतीत होता है। श्री-भगवान् भी तो गीता में यही कहते हैं कि विश्व का कोई भी पदार्थ किसी भी अवस्था में, क्षण भर भी निष्क्रिय नहीं रह सकता—"न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्"। सचमुच, प्रत्येक अवस्था में, एक-न-एक शारीरिक किंवा मानसिक क्रिया तो होती ही रहती है। अतः



आत्मा कभी निष्क्रिय तो रह नहीं सकती। यदि सक्रिय रहेगी, तो हृदय-विशिष्ट रहेगी ही। उपर्युक्त वाक्यों के अनुसार अब यह सिद्ध हो गया कि आत्मा से हृदय का नित्य सम्बन्ध है।

यहाँ पर विचारशील पाठकों के मन में स्वभावतः यह जिज्ञासा होगी कि ऊपर जो हृदय की नित्यता का निरूपण किया गया है, वह किस लिए? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि पहले पाश्चात्य विद्वानों के काव्य-विषयक उपर्युक्त लक्षणों के साथ श्रीविश्वनाथजी के 'रसात्मकं वाक्यं काव्यम्' का सामंजस्य दिखलाकर, जो प्राशस्त्य प्रदर्शित किया गया है, वह स्पष्ट हो जाय। अन्तर्वृत्तियों के चित्ताकर्षक चित्रण—'रसात्मक वाक्य' में हार्दिक अनुभूतियों की तथ्यात्मक अभिव्यंजना है। अतः इस लक्षण के अनुसार काव्य, 'नित्य-हृदय'-निःसृत होने के कारण सत्य-प्रतिष्ठित सिद्ध है। अब स्वयं सोचिए, अन्य प्राच्य—भारतीय पण्डितों के लक्षणों में इतनी तत्त्वगर्भिता कहाँ! इतनी भाव-सूक्ष्मता कहाँ!!

लेख-विस्तार के भय से काव्य-लक्षण-विषयक इस समीक्षा को यहीं पर छोड़कर, एक बार और हम अपने पाठकों का ध्यान, काव्य-लक्षण-सम्बन्धी 'सार-सूत्र' की ओर आकृष्ट करना आवश्यक समझते हैं। ऐसा करने का कारण यह है कि पाठकों को उपर्युक्त प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वानों का समन्वयात्मक लक्षण एक ही स्थान पर अवगत हो जाय। अच्छा सुनिए—'सत्य' 'शिव' 'सुन्दर' की अभिलापिका कला ही काव्य है। इस सूत्र की वृत्ति इस प्रकार समझिए—सत्य के आधार पर अवलम्बित, सुन्दर कला-पूर्ण, आनन्ददायिनी कला ही काव्य है। हमारे विचारानुसार उपर्युक्त सूत्र इतना भावपूर्ण है कि उसमें अनायास ही सम्पूर्ण लक्षणों का अन्तर्भाव हो जाता है। वैसे तो "भिन्न-प्रकृतिर्लोकः" के अनुसार जिसे जो लक्षण जँचे, वह उसे जाने-माने। हमें यह ज्ञात है कि कुछ लोग इस लक्षण से बेतरह नाक-भौं सिकोड़ते हैं। अस्तु। पाठक, अवश्य काव्य-लक्षण-वर्णन विस्तृत हो गया। किन्तु रखिए, इस प्रकरण के अच्छी तरह हृदयङ्गम लेने पर इस निबन्ध का भाव सुगमतापूर्वक में बैठता चला जायगा।

यहाँ तक तो हुई काव्य-लक्षण एवं तत्संबंधी समीक्षा की मीमांसा। अब रही दर्शन-लक्षण बात। आइए, उस पर भी एक सरसरी दृष्टि ली जाय। उपर्युक्त काव्य-लक्षण की तरह लक्षण के विषय में हमें अधिक बातें नहीं हैं। सौभाग्य से लोगों के मन में दर्शन-सम्बन्धी धारणाएँ स्पष्ट हैं। अतः प्राच्य एवं पा[श्चात्य] पण्डितों के एतद्विषयक तात्त्विक एवं लक्षणों को ही हम पाठकों के समक्ष चाहते हैं। प्राच्य पण्डितों का मत है—" अस्योद्गमादि सूक्ष्मातिसूक्ष्मं तत्त्वञ्च येन त[द्दर्शनम्]" जिस शास्त्र के द्वारा इस निसर्ग (सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति, लय तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञात होता है, वह दर्शन है। एक श्लोक में के लक्षण-स्वरूप पर इस प्रकार प्रकाश डाला है—"प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणां आश्रयः सर्वधर्माणां विद्योद्देश्यः प्रकीर्तितः" अर्थात् सब विद्याओं का प्रदीप—प्रकाशक, कर्मों की जटिल समस्याओं को सुलझानेवाला मार्ग-प्रदर्शक, धर्मों का मूलाधार, यही सम्पूर्ण विद्याओं का परम लक्ष्य, दर्शन क[हलाता] है। पाश्चात्य पण्डित भी यथार्थ ज्ञान प्राप्त [करने] वाले—सत्यता-बोधक-शास्त्र ही को दर्शन कहते "Phylosophy is the science of science दर्शन, विज्ञान (सत्य) का भी विज्ञान (है। अब यदि हम उपर्युक्त लक्षणों का निष्कर्ष रूप में कहना चाहें, तो इस प्रकार कह सकते तर्कमयी भाषा में सत्य एवं शिव (कल्याण) का अभिलापक शास्त्र दर्शन कहलाता है। वाक्यों का भाव यह है कि प्रज्ञ पुरुषों के कालीन चिन्तन के फल-स्वरूप ही दर्शन



उत्पत्ति हुई है । अतः उसमें बुद्धि-तत्त्व की चरम अभिव्यक्ति (Highest expression) पाई जाती है । यही कारण है कि लोग उसके द्वारा सत्य एवं शिव की उपलब्धि को विशेष स्वाभाविक समझते हैं । बात भी ठीक ही है । दीर्घ-कालीन निदिध्यासन के परिणाम-स्वरूप जिस सिद्धान्त का आविर्भाव होगा, उसके सत्य एवं कल्याणकर होने में लोक-स्वीकृति मिलेगी ही । बात यह है कि मानव-प्राणी बुद्धि-प्रधान है । अतः वह प्रत्येक पदार्थ को बुद्धि की कसौटी पर कसकर ही उसकी प्रामाणिकता स्वीकार करता है । पञ्च-ज्ञानेन्द्रिय द्वारा परिदृश्यमान जगत् एवं उसके अन्तस्तल में रहनेवाली अक्षय सत्ता को भी वह ऊहापोहात्मक शैली से विवेचन करके ही आप्यायित होता है ।

काव्य एवं दर्शन के मूलाधार तत्त्व

काव्य एवं दर्शन के लक्षणों की विवेचना हो चुकी । अब हमें समझना है इनके मूलाधार तत्त्वों का रहस्य । ऊपर लिखा ही जा चुका है कि काव्य 'सत्य' (नित्य-तत्त्व) के आधार पर अवलम्बित रहता है । अतः उसके मूलाधार तत्त्व कभी मिथ्या—असत् नहीं हो सकते । सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर काव्य में तीन ही प्रकार के मूलाधार तत्त्व प्रतीत होते हैं । प्रथम ईश्वर, द्वितीय अन्तर्वृत्ति-समष्टि, तृतीय बाह्य प्रकृति । ईश्वर की नित्यता के सम्बन्ध में कुछ कहना ही नहीं है । अन्तर्वृत्ति-समष्टि—'हृदय' के नित्य स्वरूप का विवेचन पहले ही हो चुका है । रही बाह्य प्रकृति की नित्यता की बात । सौभाग्य से उसकी नित्यता का विवेचन तो श्रुतियों एवं दर्शनों में भरा पड़ा है । फिर भी हम दो-एक प्रमाण वहीं से उद्धृत कर देना आवश्यक समझते हैं । "सदैव सौम्येदमग्र आसीत्"—सौम्य, यह नाम-रूपात्मक जगत्—बाह्य प्रकृति पहले भी थी । "ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं"—'अदः' अर्थात् परोक्ष ब्रह्म भी पूर्ण है, और 'इदम्' अर्थात् यह बाह्य प्रकृति—जगत् भी । 'सत्कार्यवाद' तो उच्च स्वर से कहता है कि यदि यह नाम-रूपात्मक जगत्—बाह्य प्रकृति, अपनी उत्पत्ति से पहले थी नहीं, तो आई कहाँ से ? "नासतो विद्यते भावः"—असत् का भाव (Existence) तो किसी प्रकार सम्भव ही नहीं है । जो अपनी उत्पत्ति के पूर्व रहेगा, वह मरण के पश्चात् रहेगा ही । यहाँ पर एक प्रश्न उठता है । वह यह कि उत्पत्ति के पूर्व पदार्थों की अवस्था क्या रहती है ? कारण में—मूल-उत्पादक में सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहना ही । घट अपनी उत्पत्ति के पहले भी मिट्टी के रूप में रहता है और अणु-परमाणु के रूप में टूट-फूट जाने पर भी । रहता तो है दोनों ही अवस्थाओं में—उत्पत्ति के पहले भी और बाद भी । उपर्युक्त-विवेचन के अनुसार अब यह निष्पन्न हो गया कि काव्य के तीनों ही मूलाधार तत्त्व—ईश्वर, अन्तर्वृत्ति-समष्टि और बाह्य प्रकृति नित्य हैं । सूक्ष्म विवेचन करने पर दर्शन के मूलाधार तत्त्व भी ये तीन ही—परमात्मा, आत्मा और प्रकृति प्रतीत होते हैं । उसमें जहाँ देखिए, इन्हीं तीनों या इनमें से किसी एक या दो की मीमांसा दिखलाई पड़ती है । यहाँ पाठकों को यह जान लेना चाहिए कि दर्शन से हमारा अभिप्राय 'आस्तिक-दर्शन' से है । विना 'आस्तिक-दर्शन' के कहाँ शाश्वत शान्ति और कहाँ मानव-जीवन का एकान्त लक्ष्य !! इस प्रकार हमने देख लिया कि जैसे काव्य के मूलाधार तत्त्व—ईश्वर, हृदय (आत्म-विशिष्ट) और प्रकृति हैं, वैसे ही दर्शन के भी नामों के थोड़े हेर-फेर के साथ ये ही तीन हैं । कहना न होगा कि दर्शन के ये तीनों ही मूलाधार तत्त्व भी नित्य हैं ।

काव्य एवं दर्शन का पारस्परिक सम्बन्ध और उनकी शैली

अब हमें इन दोनों विषयों का आपस में एक दूसरे से सम्बन्ध और इनकी शैली क्या है, इसका विवेचन करना है । पहले ही लिखा जा चुका है



कि काव्य, 'सत्य' 'शिव' 'सुन्दर' का अभिलापक है; और दर्शन, 'सत्य' 'शिव' का। किन्तु स्मरण रहे, दोनों के मूलाधार तत्वों में साम्य है, वैषम्य नहीं। बात यह है कि मानव-बुद्धि सर्वदा से ही सौगम्य की ओर प्रवृत्त रही है। और, सौंदर्य-प्रियता तो उसका जन्मजात गुण है ही। नितान्त अबोध शिशु भी फूल, खिलौने इत्यादि को देखकर मग्न हो जाता है। सौगम्य एवं सौंदर्य-प्रियता ने ही 'सत्य' एवं 'शिव' में 'सुन्दर' का समावेश करवा दिया है। मानव-बुद्धि की बड़ी ही सुकुमार एवं सुन्दर कल्पना के द्वारा काव्य का आविर्भाव हुआ है। इस बात को और भी स्पष्ट इस प्रकार समझिए—दर्शन के दुर्लभ, शुष्क, कर्कश, सत्य, शिव को ही काव्य ने सौंदर्य-समलङ्कृत करके सुलभ, सरस तथा स्निग्ध बना दिया है। आख़िर दर्शन में रहता ही क्या है? तर्कमयी भाषा में परमात्मा, प्रकृति एवं आत्मा का ऊहापोहात्मक वर्णन ही न। काव्य भी तो इन्हीं बातों को लेकर चलता है, किन्तु अपने सरस ढङ्ग से—चित्ताकर्षक चाल से। यदि हम आध्यात्मिक वाङ्मय (Spiritual literature) से शब्द लेकर, इस बात को दूसरे ढङ्ग से कहना चाहें तो यों कह सकते हैं—यदि एक ज्ञान-मार्ग है तो दूसरा भक्ति-मार्ग। किन्तु स्मरण रहे, ये दोनों ही एक ही अध्यात्म-तत्व के दो उपभेद हैं। इनमें जो शैली-भेद है, वह अधिकारि-भेद से—पात्र-भेद से, कुछ मौलिक—तात्त्विक भेद से नहीं। ठीक यही बात काव्य एवं दर्शन के सम्बन्ध और शैली के विषय में भी समझिए।

काव्य एवं दर्शन के उद्देश्य

इन दोनों ही विषयों पर अनेक दृष्टियों से ऊपर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अब हमें उद्देश्य-दृष्टि से भी यह समझना है कि इन दोनों की इस सम्बन्ध में क्या व्यवस्था है? मानव-समाज आदिम काल से ही दुःखमय की जिहासा (नाशेच्छा) और सुख-शान्ति के साधनों की जिज्ञासा करता चला आया है। यही क्यों, समय पर उसने इसके लिए अनेक प्रकार के साधनों का अन्वेषण और आविष्कार भी किया है। इन साधनों में काव्य एवं दर्शन के भी नाम लिये जाते हैं। जिस विश्व में मानव-प्राणी निवास करता है, अनेक प्रकार का सम्बन्ध रखता है, उसमें वह अपना उन्नयन चाहता ही है। स्त्री-पुत्र, धन-धरा, सुहृद्-सम्बन्धी, समिति-समाज के 'योग-क्षेम' की कामना उसके लिए स्वाभाविक है ही। इसी कामना के कारण वह अपना उद्देश्य रखता है 'अभ्युदय'—ऐहिक-उन्नति। इसके अतिरिक्त जिसकी सत्ता-स्फूर्ति से सम्पूर्ण विश्व का सञ्चालन-संरक्षण होता है, उस 'विश्वात्मा' का साक्षात्कार करके वह अपनी अविद्या-श्रृंखला में जकड़ी हुई आत्मा को विनिर्मुक्त करने के लिए लालायित—समुत्सुक रहता है। फल-स्वरूप उसका उद्देश्य होता है 'निःश्रेयस्'—आत्मोद्धार। इन शब्दों में हम इसी बात को आधिभौतिक और आध्यात्मिक उद्देश्य (Material and spiritual aim) कह सकते हैं। जिन लोगों को उक्त दोनों उद्देश्यों की सफलता एक ही साथ असम्भव प्रतीत होती हो, उन्हें गीता के 'कर्मयोगवाद' का मनन करना चाहिए। मानव-प्राणी की लालसाओं* के पूर्ण करनेवाले साधन होने के कारण, काव्य एवं दर्शन भी 'अभ्युदय' तथा 'निःश्रेयस्' को उद्देश्य बनाकर अपना-अपना काम अपने-अपने ढङ्ग से सम्पन्न करते हैं।

काव्याभास की नहीं, सच्चे काव्य की पर्यालोचना करके देखिए, उसमें जीवन की सब अपेक्षाओं की समस्याओं का सुलभ समाधान रूप से मिलता है या नहीं। महापुरुषों ने मानव-प्राणी के 'प्रेय' और 'श्रेय' दोनों ही की प्राप्ति के लिए ऋजु-से-ऋजु मार्गों का पता लगाकर सफलता के साधन सुगम कर दिये हैं। काव्य उन्हीं सु

* आधिभौतिक और आध्यात्मिक।



साधनों में से एक साधन है। जिन लोगों का यह विचार है कि काव्य मनोरञ्जन का केवल एक उपकरण है, उन्हें रामायण, महाभारत प्रभृति प्रकृत काव्य-ग्रन्थों की गम्भीर गवेषणा करके अपने मन का भ्रम (Delussion) मिटा लेना चाहिए। जीवन का कौन-सा ऐसा प्रश्न है, जिसका हल उनमें नहीं है। स्पष्ट बात तो यह है कि 'चतुर्वर्ग' अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति का उनमें पूरा-पूरा ब्योरा है। अतः काव्य के अभ्युदय और निःश्रेयस्—'प्रेय' और 'श्रेय' नाम के दो उद्देश्य स्वीकरणीय हैं। कुछ लोग समझते हैं कि दर्शन का उद्देश्य केवल एक ही—निःश्रेयस् है। किन्तु उन लोगों का ऐसा समझना भारी भ्रम है। क्या सारी अवनतियों—सारी दुर्दशाओं का मौलिक कारण (Fundemental Cause) 'अज्ञान' ही नहीं है? यदि है तो आप ही सोचिए कि सत्-असत्—झूठ-सच का यथार्थ-परिज्ञान करानेवाला शास्त्र, ऐहिक उन्नति की क्योंकर अवहेलना कर सकता है? क्या भारत के दर्शन-प्रधान युग में—गौतम, कणाद, पतञ्जलि, व्यास प्रभृति के समय में लोक का अभ्युदय-नामक उद्देश्य उपेक्षित हो गया था? कलेजे पर हाथ रखकर कहिए, उस समय जैसा भारत ऐश्वर्य-सम्पन्न था, क्या अब भी वैसा है? स्मरण रखिए, पूर्ण समृद्धि-शाली देशों में ही काव्य एवं दर्शन का उद्भव तथा विकास (Developement) होता है। इस बात को पूर्ण हृदयङ्गम कर लीजिए कि ये दोनों ही उपर्युक्त दोनों प्रकार के उद्देश्यों को अपने-अपने अन्तस्तल में रखते हुए, अपने-अपने मार्ग पर अग्रसर होते हैं।

उपसंहार

इस निबंध को समाप्त करने के पूर्व हमें एक बात और कहनी है। कुछ लोग काव्य एवं दर्शन को हृदय (Heart) और मस्तिष्क (Mind) कहकर उनके व्यतिरेक (Differcnce) को सिद्ध करने में पूर्ण परिश्रम करते हैं। उन लोगों से हमारा यह विनम्र निवेदन है—

कोई भी कार्य केवल हृदय या केवल मस्तिष्क के योग से नहीं हो सकता। प्रमाण-स्वरूप आप पत्रिका-पठन ही को लीजिए। पहले आपके अन्तःकरण में उसके पढ़ने की इच्छा होती है, तत्पश्चात आप अपने मस्तिष्क को उधर ही लगाकर पढ़ना प्रारम्भ करते हैं। पढ़ते समय बराबर ही हृदय और मस्तिष्क का योग रहता है। जहाँ इन दोनों में से कोई एक भी हटा कि पढ़ना रुका। इसी प्रकार आप अन्य कार्यों के विषय में भी समझ लीजिए। हमारे यहाँ के प्राचीन मनोवैज्ञानिकों (Ancient psychologists) ने इसी कारण से अन्तःकरण को चित्त, मन, बुद्धि, अहङ्कार के नाम से चार भागों में विभक्त किया था। यदि हम इन चारों का संक्षिप्तीकरण (Abbreviation) करें तो वह केवल मन, बुद्धि दो ही भागों में विभक्त किया जा सकता है। कुछ प्राचीन मनोवैज्ञानिकों ने ऐसा किया भी है। मन (हृदय) और बुद्धि (मस्तिष्क) के इस अतीव घनिष्ठ सम्बन्ध की बात विचारकर ही उक्त मनोवैज्ञानिकों ने उपरिलिखित विभागीकरण ही को समीचीन समझा था। एक बात अवश्य है, जिसे हमीं क्यों, सभी विचारवान् मानने को प्रस्तुत हैं। बहुत कामों में हृदय का प्राधान्य रहता है, और बहुत कामों में मस्तिष्क का। किन्तु स्मरण रहे, रहता है प्रत्येक काम में प्रधान-अप्रधानरूप से दोनों ही का योग। अतएव काव्य (हृदय) एवं दर्शन (मस्तिष्क) में वे लोग (ऊपर कहे हुए) जैसा अन्तर सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, वैसा प्रतीत नहीं होता।

उपर्युक्त विषयद्वय (काव्य-दर्शन) के लक्षण, मूलाधार तत्त्व, पारस्परिक सम्बन्ध और शैली तथा उद्देश्य आदि उपशीर्षकों के अन्तर्गत प्रकट किये गये विचारों, और उनमें दी हुई उपपत्तियों के अनुसार हमारी समझ में काव्य एवं दर्शन का सामञ्जस्य सम्यक् सिद्ध है। साथ ही काव्य, मानव-जीवन को अन्य लाभ पहुँचाते हुए, उसके



एकांत लक्ष्य—शाश्वत शान्ति की उपलब्धि कराने की पूर्ण क्षमता रखता है।

एक बात और। मानव-बुद्धि की विभिन्नता देखते हुए, यह आशा नैसर्गिक है ही कि अनेक सज्जन एतद्विषयक हमारे विचार से सहमत न हों। किन्तु उन लोगों से हमारी यही विनय है कि वे लोग कृपया ठंडे दिल से एक बार फिर इस विषय पर विचार करें। हम यह कहने की धृष्टता कदापि नहीं कर सकते कि हमने ऊपर जो कुछ [illegible] वह सर्वथा निर्दोष ही होगा; क्योंकि T[illegible] is van. अन्त में हमारा यही निवेदन है कि [illegible] इस निबन्ध में अपनी धारणा-मात्र के [illegible] शित करने का प्रयत्न किया है। कुछ किसी [illegible] विशेष को दृष्टि में रखकर उसके मत-खण्ड[illegible] नहीं। आशा है, मननशील विद्वान् इस पर [illegible] करने की कृपा करेंगे।



श्रीसूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

श्रीभुवनेश्वरप्रसाद

[निराला हिन्दी के इस युग की एक Controversy है। समालोचना को प्रशंसा का समअर्थी समझने की भूल उसने भी की और समालोचकों के अभाव में स्वयं अपनी प्रशंसा शुरू कर दी; पर वह अपने बेरों की स्वयं तारीफ़ नहीं कर सकता। हिन्दी और निराला दोनों इसके अनुपयुक्त हैं। ले०]

"आपने मेरा परिमल पढ़ा?"

"जी हाँ।"

"और अप्सरा भी?"

"जी हाँ।"

"कोई कविता आपको पसंद है?"

जी हाँ "तुम और मैं"। मुझे उस समय केवल यही याद था।

"जी वह तो मैंने वैसे ही लिख दी, उसमें क्या है?"

"अच्छा, आपने तो अँगरेज़ी कविता देखी सुनी है, मुझे आप किस अँगरेज़ी कवि से अधिक निकट समझते हैं?"

"'बर्नस' से"। मैंने केवल यह समझकर यह नाम ले दिया कि शायद निराला के लिए यह नया हो।

"बर्नस क्या मेरा मुक़ाबला करेगा, हाँ ब्राउनिंग आप कहें तो ठीक है। वह भी आज ब्राउनिंग मेरे सामने टिकता है, भविष्य अनिश्चित है। पर ब्राउनिंग को तो भारतवर्ष में केवल दो आदमी समझते हैं, टैगोर या दयामय मित्र। मुझे समझनेवाला तो अभी पैदा ही नहीं हुआ।"

(मेरी निराला से पहली दो मुलाक़ातें)

कविता को 'समझना' यह एक बड़ी दुरूह विडंबना है। 'अपने काल से आगे' 'अनंत की संतान' फ़्रेन्च क्रान्ति और उसके परवर्ती साहित्य क्रान्ति में फ़ैशन में आ गये थे। पर यदि शेली और कीट्स का मान उनके जीवनकाल में न हो सका तो जनता के बौड़मपन के अतिरिक्त भी इसका कारण खोजा जा सकता है। कविता आइन्सटीन का सिद्धांत नहीं है, चाहे वह निराला की हो या टी० एस० इलियट की।

पर निराला को शिकायत है कि हिन्दी-जनता उनको उनका उचित मान नहीं देती; क्योंकि—

(१) वह पंत के फ़रेब में है,

(२) वह उनकी कविता समझने में असमर्थ है।

निराला ने इसमें से पहले पर ही अधिक जोर दिया है।

यह है उस लम्बे प्रशस्त रोमन ढाँचे के कवि का एक असर, जो हिन्दी के अधिकांश पाठकों पर है। उसका आर्द्र कोमल मन, उसका मस्तानापन, उसकी दोस्ती, उसकी कविता में कहीं नहीं जाहिर होती। जाहिर होता है एक कलाकार, जो क़लम हाथ



में लेकर सोचता है और चमत्कार के लिए भाषा का सहारा खोजता है, ज़ाहिर होती है उसकी कटुता, जो उसके व्यक्तित्व से अलग होते ही विफलता प्रतीत होती है।

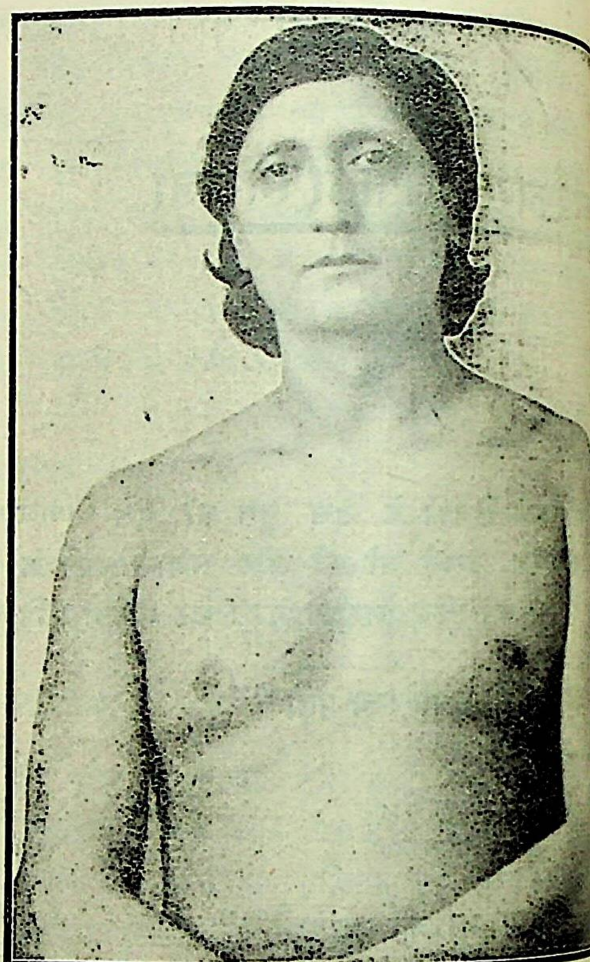
पन्द्रह वर्ष से यह अद्भुत सहनशील मनुष्य कविता, उपन्यास, कहानी, जीवन-चरित्र, समालोचना, विचारपूर्ण निबंध, सब कुछ लिख रहा है, पर प्रथम श्रेणी तक वह कवि, कथाकार, विचारक या समालोचक किसी भी हैसियत से नहीं पहुँचता।

निराला बंगाली संस्कृति का कवि है। वह संस्कृति, जो टैगोर की द्रुत Mannerism से पैदा हुई है, जिसके अति विश्लेषण में कबीर, ब्लेक सभी आते हैं। पंत को उसने बार-बार टैगोर का Protege बताया है, पर सत्य यह है कि निराला भी टैगोर को पचा न सका। वह Mannerism का कवि है, वह उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का कवि है, वह अपने सर्वोत्तम रूप में भी एक चतुर शिल्पी है। शायद महान् भी, पर महान् कवि नहीं।

और, फिर वह टैगोर के समान वह शक्ति नहीं रखता, जिससे वह सारी विभिन्नता को एक गुप्त सजग तत्त्व पर Reduce कर देता है, जब वह स्थूल चित्रण करते-करते हमें फुसलाकर उस बारीकी तक ले जाता है, जिससे हम ऊब चुके हैं।

निराला का 'तू और मैं', निराला की 'जूही की कली' सभी वह अर्थ-स्थूलता रखती है, वह चीज़, जिसे टैगोर के हक़ में Mannerism कहकर उसे बदनाम किया जाता है।

पर निराला का कहना यह है कि उसकी कविता का वह तो अनर्थ है, जो तुम समझते हो, अर्थ तो वह है, जो तुम नहीं समझते। निराला की कविता को समझने के लिए तुम्हें निराला होना पड़ेगा। साहित्य का जो रूप इस हमारी नवीन



श्रीसूर्यकांत त्रिपाठी "निराला"

संस्कृति ने हमारे सामने पेश किया है इसकी पटरी नहीं बैठती। इकनामिक्स युग में केवल अपने आपको बेवक़ूफ़ साबित के लिए बर्नड शा के अतिरिक्त कोई कला पढ़ा जायगा।

× × ×

निराला मुख्यतः कवि है, पंत का कहना केवल उद्वेगवान् समालोचक, और लोगों कहना चाहे जो कुछ हो, निराला वास्तव में साहित्यिक है, वह मेहनती है, आत्माभि है, विशाल हृदय है, किसी ओछेपन का उसके निकट नहीं है।

उसकी कविता में साधना है, अध्य है, कारीगरी है, कोमलता है, पौरुष है; पर

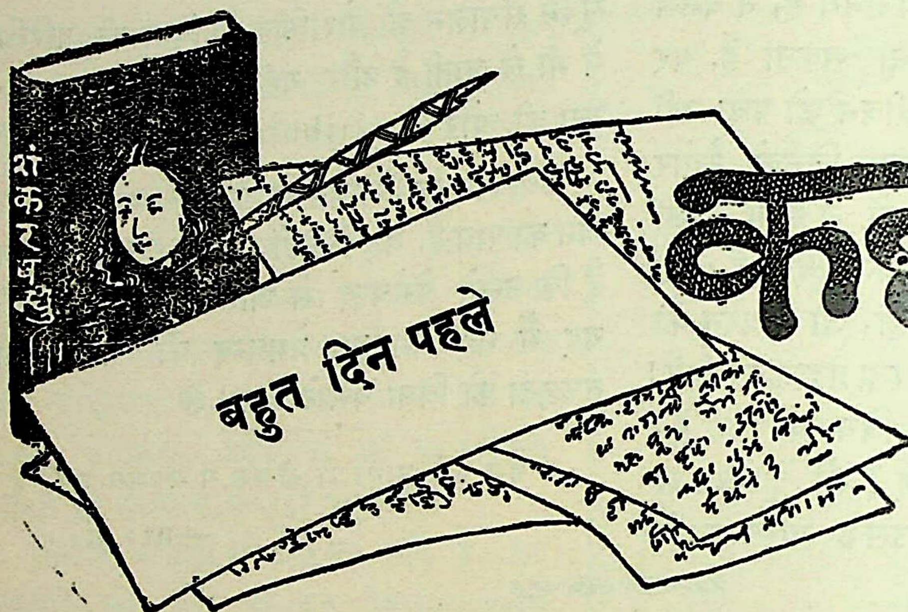
नहीं है, जिसके बग़ैर वह न ब्राउनिंग है, न बर्नस केवल 'निराला' है। वह बना सकता है, पर निर्माण नहीं कर सकता। वह जीवन को पचा नहीं सकता। वह वह स्वर नहीं सुनता, जिनको टैगोर के अतिरिक्त और महान् कवियों ने सुना है, जो एक कमपाउंडर को कीट्स बना देते हैं। वह सम्पूर्ण इहलौकिकता उसमें नहीं, जो बायरन की द्वितीय श्रेणी की कविता को अमरता प्रदान करती है।

पर वह हिन्दी का अकेला विचारक कवि है। उसकी कविता में एक दृढ़ता है (जो दुर्भाग्य से उसके गद्य में नहीं है) जो उसके मस्तिष्क के सूक्ष्म संचालन को पौराणिक कविता की परिधि में भी ले जाती है और यही उसका इस काव्य-युग की ओर Contribution है।

कथाकार की हैसियत से निराला गंभीर विवेचन का पात्र है, यह मैं नहीं मानता। उसका दावा है कि उसने प्रेमचन्द से आगे क़दम रक्खा है, यह मैं नहीं मानता, प्रेमचन्द की महत्ता या तुच्छता को बिना घसीटे हुए। *

* हम कई बातों में लेखक से सहमत नहीं हैं।

—मा० सं०



श्रीमोहनलाल

(१)



हुत दिन पहले की बात है। आज की तरह उन दिनों भी दिन होता था, रात होती थी। आज की तरह ही उन दिनों एक-एक करके सरदी-गरमी और बरसात का राज होता और मिट जाता था। पर सन्-संवत् के जानकारों का कहना है कि १९१० और १९३६ के बीच में २५ या २६ साल का लम्बा मैदान फैला हुआ है, जिस मैदान को असंख्य जीवधारी बिना पार किये ही अनन्त में लीन हो गये—इस बालू के मैदान में बिना अपना एक पदचिह्न छोड़े ही न-जाने किस ओर चले गये। यह कैसी विचित्र बात है।

हाँ, बहुत दिन पहले की बात है।

मैं ३० साल से लगातार डाकिये का काम कर रहा हूँ। मेरे छोटे-से डाकघर में न-जाने कितने डाकमुंशी आये और चले गये। जिस टूटी-सी कुर्सी पर आज बाबू बनवारीलाल बैठकर हम तीन डाकमुंशियों पर शासन कर रहे हैं, उस पर बिना जाति-भेद के अनेक हिन्दू-मुसलमान चलते बने, पर मेरे काम का अन्त नहीं है। कितने हज़ार के कार्ड-लिफ़ाफ़े अपने हाथों से कर चुका हूँ और सुख-दुःख की धूपछाँ सुना-सुनाकर न-जाने कितनों को हँसा चुका हूँ। मैं सदा निर्लिप्त रहता हूँ। न के सुख से आज तक सुखी हुआ और न आठ-आठ आँसू रोते देखकर रोया। हाय एकरस जीवन!

नदी के उस पार, ठीक सामने, पहाड़ी की छाया में दरिद्र की छिन्न-भिन्न की तरह बसा हुआ है, वहाँ तक मैं डाक आज २५ साल से जा रहा हूँ। न-जाने गाँव में जाने के लिए आज भी मेरा मन रहा है! जिस सप्ताह इस गाँव की डाक नहीं उस सप्ताह मेरा मन उदास-सा रहता और अपने पेशे के प्रति असंतोष जान पड़ने मेरे मन की यही अवस्था आज भी है। समय ने पूरी तरह अपने रूप को बदल मन समय का गुलाम नहीं होता। यह तो पूर्ण बन्धनहीन वस्तु है और इसे सदा मुक्त रहने सुख मिलता है, शांति मिलती है, विश्राम मिल



हाँ, तो बहुत दिनों की बात है। एक दिन नित्य की तरह मैं वहाँ अपनी डाक का थैला कन्धे से लटकाये पहुँचा। उस दिन मेरे पास देवीदीन के नाम का एक पत्र था। यह बतलाना अनावश्यक न होगा कि देवीदीन इस गाँव का एक काश्तकार था और उच्च जाति में जन्म लेने का अपराध उसने अनजाने कर लिया था। ख़त लेकर मैं देवीदीन के घर के सामने पहुँचा।

आज जिस जगह पर बाबू रामदयालुसिंह का विशाल शिवालय है और जहाँ दोनों जून शंख-घंटा के साथ महादेवजी की आरती होती है, वहीं पर उसका एक घर था। घर खपरैल का था और दरवाज़े पर दो-चार भैंस-गायें बँधी जुगाली किया करती थीं। चार-छः बैल भी एक ओर बँधे बिचाली खाते नज़र आते थे।

मैं एक बात कहना तो भूल ही गया। मैं गाँव में पत्र-लेखक और पत्र-पाठक का काम भी प्रायः करता था। इस काम में मुझे अन्न मिल जाता था, जो मेरे छोटे-से परिवार के लिए काफ़ी होता था। अपना छोटा-सा वेतन, जो महज़ आठ रुपयों से कभी अधिक नहीं बढ़ा, इस उपाय से साफ़ बच जाता था।

हाँ, तो मैं देवीदीन के दरवाज़े पर पहुँचा। पूछने से पता चला कि 'देवीदीन सदर कचहरी तीन सप्ताह से गये हैं।' उसकी स्त्री और एक तीन साल की कन्या घर पर मौजूद हैं। पत्र दे देने के बाद पढ़कर सुनाने की बारी आई। किवाड़ की ओट में देवीदीन की स्त्री बैठी और दरवाज़े के चौखट पर उसकी नन्हीं-सी लड़की जमुना। मैंने ख़त पढ़ना आरम्भ किया। यद्यपि इस घटना को व्यतीत हुए क़रीब-क़रीब २० या २५ साल हो गये, पर ख़त का मज़मून मुझे आज भी याद है। देवीदीन ने लिखा था कि "मुकदमे में और रुपया चाहिए। सो गहने गिरवी रखकर १००) रु० जल्द भुलई चमार की मारफत भेज दो।" बस।

मैंने किवाड़ के उस पार से एक दबी हुई आह को स्पष्टतः सुना और सुना फिर चूड़ियों की हल्की-सी झंकार, इसके बाद बच्ची की एक तुतली-सी आवाज़। बच्ची जमुना कह रही थी—"बाबा कब तक आवेंगे और उसके लिए गुड़िया लावेंगे या नहीं।" किसी अस्पष्ट स्त्री-कंठ से उत्तर मिला—"भगवान् जब उन्हें लावेंगे तब न।" मुझे तत्काल आधसेर अन्न मिला और मैं बिना विलम्ब किये आगे बढ़ गया। एक दूसरे आदमी का मनीआर्डर था और एक तीसरे का पत्र, जो कलकत्ते से आया था। पत्र-लेखक ने लिखा था—"हम बैशाख के अन्त तक आवेंगे और साठ रुपये मनीआर्डर से भेज रहे हैं।"



इस कहानी के लेखक

(२)

गाँव के ज़मींदार थे बाबू रामदयालुसिंह, जिनका एकलौता पटना कालेज में शिक्षा पा रहा था। पटने से प्रायः प्रत्येक सप्ताह पत्र आया करता था और मैं नहीं जानता कि वहाँ से क्या लिखकर



भेजा जाता था। रामदयालु बाबू ने एक दिन अपने पुत्र का पत्र पाकर मुझे आधसेर मिठाई दिलवा देने का हुक्म अपने प्यादे को दिया, जिसने डेढ़-पाव मिठाई दूकान से दिलवाकर बहुत ही इतमीनान के साथ समझा दिया था कि आधपाव उसने अपनी दलाली में ले ली है। साथ ही उसने यह भी कह दिया कि छोटे बबुआ ने तीन साल फ़ेल करने के बाद इस साल बी० ए० पास किया है। इतना ही नहीं, उसने यह भी कहा कि अब 'वे डिपुटी हो जायँगे तथा इस गाँव के सभी बदमाश रैयतों को एकदम कालेपानी की सज़ा बोल देंगे'। मुझे इन बातों से क्या मतलब, पर उस प्यादे की मधुर कल्पना पर दया ज़रूर आई। देखते-देखते दो साल व्यतीत हो गये, पर न तो उस प्यादे के छोटे बाबू डिपुटी हुए और न गाँव के शैतान-रैयतों को कालेपानी की हवा ही खानी पड़ी। परमात्मा को अनेक धन्यवाद।

एक दिन फिर देवीदीन के नाम से एक पत्र आया, मैं उसके घर की ओर चल पड़ा, आवाज़ लगाते ही उसकी बच्ची जमुना उछलती हुई बाहर आई। उसके बाल बिखरे हुए थे और उसका चेहरा उदास-सा दिखलाई पड़ता था। घर के विषादमय वातावरण का प्रभाव उस कांडज्ञानरहित भोली-भाली बालिका पर भी पूर्ण रूप से पड़ा था। उसकी माता की अन्यमनस्कता का प्रमाण मिलता था उसके मैले कपड़े और बिखरे हुए तैलहीन बालों से। बच्ची को निकट से मैंने देखा और यह देखा कि आज न तो उसके गले में चाँदी का मोटा-सा हार है और न हाथों में सोने की पतली-पतली कँगनी। जिन-जिन अंगों पर पहले गहने थे, वहाँ-वहाँ मैल का अंश अब भी गहनों के भूतपूर्व अस्तित्व की करुण साक्षी दे रहा था। मेरा कठोर मन न-जाने किस पीड़ा से भर गया। मैंने जान-बूझकर उस सुन्दर हँसती हुई बच्ची पर से अपनी नज़र हटा ली। यह पहली बार किसी अज्ञात परिवार के प्रति मेरे हृदय में करुणा का ज्वार आया।

फिर दरवाज़े के उस पार बैठे हुए श्रोता को पढ़कर पत्र सुनाना पड़ा। पत्र वाला वही देवीदीन था। इस बार उसने था कि "मुक़दमे का रुख़ अच्छा नहीं है। आशा नहीं दिलाते कि न्याय हमारे होगा। ख़र्च के लिए और रुपये चाहिए, मँगरू साव तेली से लेकर १२०) रु० जल्द दो। ख़त के साथ हैंडनोट भी जाता है।"

इस बार मेरी हिम्मत ही नहीं हुई अपने पारिश्रमिक के लिए क्षण भर भी ख़त सुनाकर जाने की तैयारी करने लगा। की ओट से बच्ची को लक्ष्य करके मुझे ठहरने कहा गया, पर मैं अपना जन्म भर का संचित खो चुका था। "फिर देखा जायगा"—कहता मैं चलता बना। मुझे आज भी याद है कि में पहुँचकर मैं एक वृक्ष के नीचे हताश गया था और बहुत देर तक न-जाने क्या सोचता-विचारता रहा। मैं देखता क्या हूँ कि चमार एक छोटी-सी पोटली लिये मेरी ओर आ है। मैंने कारण जान लिया और जिसमें देवी के परिवार को कष्ट न हो, इस लिहाज़ से पारिश्रमिक को स्वीकार कर लेने के योग्य स्थिति बनाने का प्रयत्न करने लगा।

मेरे जीवन में इसी तरह की अनेक घटित होती रही हैं। किसी परिवार को संवाद सुनाया है तो किसी को ब्याह की ख़बरी सुनाई है। देहाती पोस्टमैनों के लिए विषाद का कोई कारण ही नहीं। देवीदीन मेरा होता था, जो मैं उसके लिए रोता। पर मैं कह सकता कि मेरे कठोर मन पर उसके पत्रों ने क्यों इस तरह अधिकार कर लिया। मैं सोच रहा था कि बेचारा कितना सुखी था आज मुक़दमे की प्रज्वलित अग्नि में आहुति स्वाहा हो रहा है। उसकी नन्हीं बच्ची जमुना प्रति मेरे हृदय में मोह पैदा हो गया सोलहो आने अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता



आख़िर पोस्टमैन भी तो मनुष्यों-जैसा ही हृदय रखते हैं।

मेरे मन में यह उत्सुकता कभी नहीं हुई कि मैं देवीदीन के मुक़दमे के विषय में कुछ जानने की चेष्टा करूँ। मुझे इन झमेलों से क्या वास्ता, मैं तो एक साधारण डाक-कर्मचारी मात्र ठहरा। सैकड़ों तरह के पत्र आते-जाते रहते हैं। डाक-विभाग-वाले यदि उनको लेकर सुख-दुःख मनाया करें तो फिर प्याले में तूफ़ान बरपा होते देर नहीं।

बीच में मैं तीन मास की छुट्टी लेकर घर चला गया। मेरे दिमाग़ से देवीदीन की बात काफ़ूर हो गई। मैंने अपनी छुट्टी के दिन बच्चों से हँस-खेलकर बिताये। जब काम पर लौटा तो मेरे हाथ में फिर देवीदीन के नाम की डाक पड़ी। एक बार बीती हुई कहानी नये सिरे से तरोताज़ा हो गई। मैं सीधे देवीदीन के गाँव की ओर चला। मन में नाना प्रकार के विचार लगातार हुरदंग मचा रहे थे। सोचते-विचारते आगे बढ़ रहा था, जी चाहता था कि रास्ते में ही उसके पत्र को पढ़ लूँ, कहीं ऐसा न हो कि उसकी साध्वी पत्नी को फिर कोई अशुभ समाचार पढ़कर सुनाना पड़े। यह मेरे हृदय की कमज़ोरी ही थी, जो मुझे पग-पग पर इस तरह रोक रही थी, कर्तव्य से विचलित कर रही थी।

इसके पहले कि मैं देवीदीन के यहाँ पत्र लेकर जाऊँ, रास्ते में एक ज़मींदार की कोठी में भी पत्र पहुँचाना था। ज़मींदार साहब की भारी कोठी पर पहुँचा। आधी मूछ कटाये एक अकालवृद्ध नवयुवक के सामने मुझे हाज़िर किया गया। उस नवयुवक ने लिफ़ाफ़े पर की मुहर देखकर पूछा—"एक दिन देर से पत्र क्यों मुझे दिया गया, मैं डाकख़ाने में रिपोर्ट करूँगा।"

मैं इस बेहूदे प्रश्न का क्या उत्तर देता। मैंने निवेदन किया—"इसका जवाब हमारे डाक-मुंशी दे सकते हैं। मेरे हाथ में आज ही पत्र आया और आज ही मैंने आपकी सेवा में इसे उपस्थित भी किया।"

उसने ग़ुर्राकर मेरी ओर शरारतभरी आँखों से ताका और जाने का हुक्म दिया।

मैं तुलना करता हूँ देवीदीन के निराश्रित ग़रीब परिवार से इस अमीर परिवार की। आज भी उस ज़मींदार का ग़ुर्राना मुझे भूला नहीं है और न मैं देवीदीन के परिवार का अपनापन भूला हूँ। इन दोनों स्मृतियों में कितना घोर प्रभेद है, यह मेरे समझने की बात है या किसी भुक्तभोगी के। ख़ैर, खिन्न मन से मैं देवीदीन के घर की ओर चला। थोड़ी देर बाद खपरैल का उदास-सा घर मेरी आँखों के सामने आ गया। बहुत दिनों से जिस घर की मरम्मत क्या, जिस पर सफ़ेदी भी नहीं फेरी गई हो और जिसकी टेढ़ी-मेढ़ी दीवारों से मिट्टी के ढोके छूट-छूटकर गिर रहे हों, उसकी कल्पना करके आप सहज ही अभागे देवीदीन के घर की तस्वीर अपने मानसपट पर खींच सकते हैं। मैंने देखा कि आज न तो उस ग़रीब के दरवाज़े पर गाय-भैंसें जुगाली कर रही हैं और न सात-आठ जोड़े बैल ही आनन्द से आँखें मीच-मीचकर बिचाली खा रहे हैं। दरवाज़े के बाहर धूल उड़ रही है और चौतरे पर सूखे हुए पत्तों का ढेर लग रहा है। सर्वत्र एक मर्मवेधक उदासी छाई हुई है, वातावरण गम्भीर है और अजीब सन्नाटा छाया हुआ है। मैं सहमकर दो मिनट खड़ा रहा, पुकारने की हिम्मत ही नहीं हुई। मैं चाहता तो यह था कि कोई आवे तो उससे भीतर पत्र भिजवाकर चुपके से चला जाऊँ। कुछ देर के बाद जमुना आई। आज न तो उसके होठों पर मुस्कराहट खेल रही थी और न उसकी आँखों में खिलखिलाहट थी। वह कुछ लम्बी और दुबली हो गई थी। मेरी सूरत देखते ही भागी हुई घर के भीतर चली गई।

इस बार फिर मुझे पत्र पढ़ने का कठोर काम करना पड़ा। यह पत्र जेल से आया था और देवीदीन ने ही लिखा था। अधखुले दरवाज़े के भीतर से रोने की अस्पष्ट आवाज़ आती थी।



बच्ची अपनी मा से अपने बाबूजी के आने के विषय में पूछ रही थी। पत्र में लिखा था—"तीन मास समाप्त हो गये। नौ मास और किसी तरह काटते हैं।" इसके अतिरिक्त पारिवारिक हिदायतें और संतोषदायक बातें देवीदीन लिख रहा था।

मेरी उत्सुकता बढ़ी और मैंने जमुना से देवीदीन के जेल जाने की बात पूछी। मुझे बतलाया गया कि ज़मींदार ने खलिहान में आग लगाने का झूठा मुक़दमा चलवाकर देवीदीन को जेल की नृशंस चक्की चलाने को बाध्य किया। जिस मुक़दमे के लिए वह रुपये मँगवाया करता था, वह मुक़दमा अन्त में देवीदीन का सर्वस्वान्त करके समाप्त हुआ दुःखान्त रूप में। देवीदीन को एक साल की सख़्त सज़ा हुई और बेचारा विना विरोध के जेल चला गया एक साल के लिए। विधि का विधान ऐसा ही था। दुर्भाग्य-रोग की दवा चिता की अग्नि के अतिरिक्त दूसरी नहीं है। अभागे मनुष्य का जीवित रहना मर जाने से भी अधिक करुणाजनक होता है। अभागा मरने के बाद हँसता है।

(३)

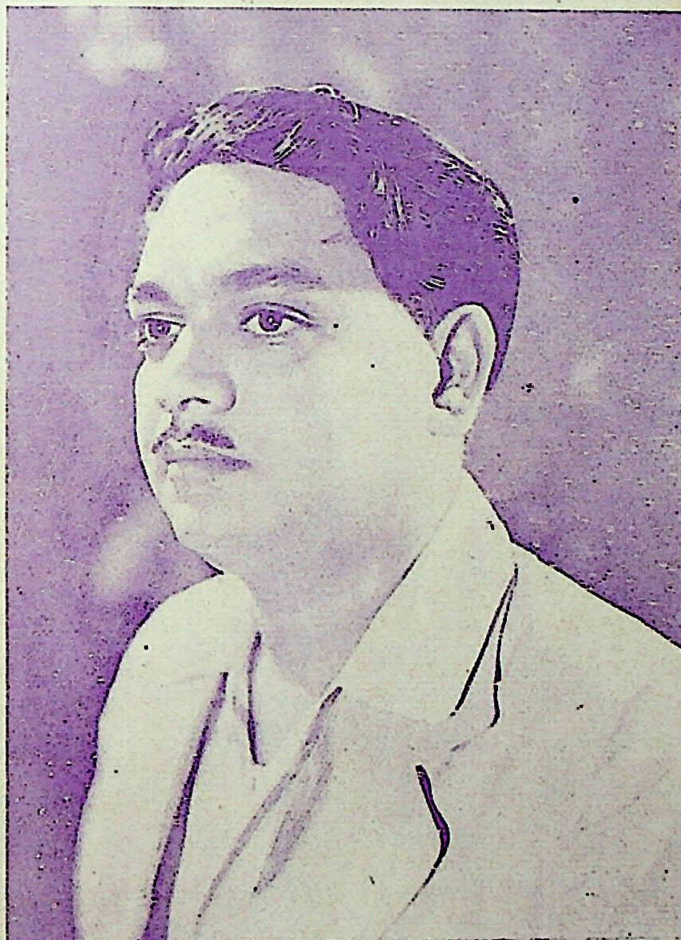
इस घटना को व्यतीत हुए एक-एक करके बारह साल व्यतीत हो गये। देवीदीन जेल से आया और फिर कर्मक्षेत्र में प्रवृत्त हो गया। जब-जब मैं उसके गाँव में जाता तो एक बार देवीदीन के घर की ओर ज़रूर जाता। ज़मींदार के बबुआ भी बी० ए० पास करके गाँव के दुर्भाग्यरूप में आ गये और उनके पत्रों और अख़बारों का भार नित्य ही लादकर मुझे जाना पड़ने लगा। सच तो यह है कि भार इसलिए मुझे सुखद जान पड़ता था कि इस बहाने देवीदीन के घर की ओर जाने का नित्य ही मुझे अवसर मिलता जाता। जिस दिन उस ज़मींदार की डाक न होती, उस दिन मेरा मन उदास-सा हो रहता। वह दिन ही फीका जान पड़ता था।

समय ने करवट बदली और इस तरीक़े से कि किसी ने भी उसकी ओर ध्यान नहीं दि[या]। घर का थोड़ा-थोड़ा कूड़ा-कचरा एक स्था[न पर] जमा होते-होते धीरे-धीरे एक नन्हा-सा [टीला] बन जाता है। इस टीले को बनते या उसका विकास होते कोई नहीं देखता। एक दि[न] देखते हैं कि अमुक स्थान पर एक टीला है, पर सहजन और आक के बहुत-से पौदे [उग आये] हैं। यही हाल समय के परिवर्तन का है। धीरे बदलते-बदलते समय का रूप जब [पूरा] बदल जाता है तो लोग चौंककर उसकी [ओर] देखते हैं। तालाब का जल अचानक तो [सूखता] ही नहीं और न लोग यह देख ही सकते [हैं कि] ८ फ़ीट गहरा पानी किस प्रकार सूर्य की कि[रणों] में उड़ता जा रहा है। यह सब काम [बड़ी] बारीकी से होते हैं। समय का परिवर्त[न] ढोल बजाकर नहीं होता और न इसके लि[ए] करके प्रस्ताव ही पास किये जाते हैं।

एक दिन देवीदीन ने भी अपने को [इसी] दरिद्रावस्था में डूबते-उतराते ही पाया। [इस] तरह मँगरू साव के रुपये सूद दर-सूद की [सीमा] को पार करते-करते देवीदीन के खेतों की [ओर] जाने के लिए आगे बढ़ रहे हैं, यह देवीदीन समझ सका था। एक दिन अचानक नीलाम [का] इश्तहार रजिस्टर्ड डाक से आया। बेचारा दरवाज़े पर बैठा हुक्का पी रहा था और [...] दूर पर खड़ी थी। मेरी सूरत देखते ही वह [...] जो किसी दिन इतनी-सी बच्ची थी, उ[...] लज्जा से सिकुड़कर घर के भीतर भाग [गई।] मैंने देवीदीन को लम्बा-सा पीला लिफ़ाफ़ा [दिया] जिस पर नाना प्रकार के दस्तख़त और रंग-[बिरंगी] अदालती मुहरें चमक रही थीं। मैंने [...] हुए देवीदीन को समझा दिया कि यह [...] नोटिस है। दस्तख़त करके इसे लेना होगा। बेचारा सन्नाटे में आ गया। यह अनभ्र-वज्रपा[त था।]

मैं नहीं जानता कि इसके बाद क्या [हुआ।] मेरी बदली या तबादला दूसरी ओर हो [गया।]

कलकत्ते की प्रसिद्ध ईस्ट इंडिया फ़िल्म
कम्पनी के स्वामी



श्री के० एल्० खेमका

N. K. Press, Lucknow.



में कोई तीन साल तक देवीदीन के गाँव की ओर नहीं गया। कई बार मन में तो आया कि ज़रा चलकर देवीदीन का समाचार प्राप्त करूँ, पर समय का अभाव और हृदय की निर्बलता पर अपना कोई वश नहीं चला। मैं एक बार पूरी तरह देवीदीन की बात भूल गया, पर अचानक मेरा तबादला फिर पुरानी जगह पर हो गया। मेरा मन एक बार फिर उत्सुकता से भर-सा गया। डाक मिलते ही मैं चल पड़ा देवीदीन के घर की ओर। वहाँ पहुँचने पर जो समाचार मिला, वह अत्यन्त करुणाजनक था। मँगरू साव को काँते से चोट पहुँचाने के अपराध में देवीदीन १० साल के लिए जेल चला गया था और उसका घर एक प्रकार से वीरान हो चुका था। आँगन में लम्बे-लम्बे जंगली पौदे उग आये थे। दो कमरे गिरने से बाक़ी थे, जिनमें देवीदीन की स्त्री, पति के रहते ही, भयानक वैधव्य-यन्त्रणा भोग रही थी। जमुना के विषय में यह सुना कि उसके पति का भी अन्त हो चुका है। झरिया के कोयले की खान में काम करते समय उस पर एक बड़ा-सा कोयले का ढोका गिर पड़ा था, जिससे बेचारे की मौत उठती जवानी में ही हो गई।

मेरा हृदय बैठ-सा गया। मैं बहुत देर तक हक्का-बक्का-सा बना खड़ा रहा। जी में तो आया कि देवीदीन के दरवाज़े पर एक बार जाऊँ, पर न-जाने क्यों साहस ही नहीं हुआ। ज़मींदार बाबू की डाक देकर सीधे डाकघर की ओर चल पड़ा। यह क्रम कोई चार-पाँच मास तक रहा।

अब जी नहीं चाहता कि अपनी पीड़ा की कहानी और सुनाऊँ, पर मन नहीं मानता। इस समय मेरा हृदय भरा हुआ है और चाहता हूँ कि अपने मन के समस्त भार को काग़ज़ के इस छोटे-से टुकड़े पर धरकर आराम की साँस लूँ। जिस भार को मेरा हृदय नहीं उठा सका, उसे यह ज़रा-सा काग़ज़ का टुकड़ा उठा सकेगा, इसमें संदेह नहीं है।

आप यह न भूलें कि मैं एक साधारण पोस्ट-मैन हूँ और मेरा काम केवल मूक संदेशों को ढोकर इधर से उधर पहुँचाना भर है। मैं एकरस रहकर अपना काम एक युग से करता आ रहा हूँ और इसी में मेरा कल्याण भी निहित है। आज भी मेरे कन्धे में ८ साल का पुराना बेग झूल रहा है और आज भी मैं पत्र और अख़बारों का बंडल लिये गाँव के कच्चे पथ पर लगातार आगे बढ़ रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि आज मेरे दिये हुए पत्रों को पढ़कर कितने हँसेंगे और कितने रो देंगे। कितने प्रतीक्षाकुल प्राणियों को आज मेरे दर्शनों से तृप्ति मिलेगी और कितने के पल्ले हताशता पड़ेगी, यह मैं नहीं जानता।

आज भी मुझे याद है। सम्भवतः जेठ की संध्या होगी। मैं अपनी डाक का थैला लटकाये देवीदीन के गाँव में पहुँचा। ज़मींदार की डाक उस दिन संध्या समय सदर से आई थी। डाकमुंशी के आदेशानुसार उसी समय मुझे जाना पड़ा। खेतों में धूल उड़ रही थी। वृक्षों के पत्ते दिन भर की लू और धूल से मलिन दिखलाई पड़ते थे। गरम हवा के हलके-हलके झोंके रह-रहकर आ रहे थे। दिशाएँ मलिन और संध्या उदास थी। दिन अस्त हो चुका था, पर सर्वत्र काफ़ी प्रकाश था। डालों पर हाँफती हुई चिड़ियों का झुंड चोंच खोले दिखलाई पड़ता था। पृथिवी विधवा के सिंदूर-हीन ललाट की तरह श्रीहीन जान पड़ती थी। मैं अनमना-सा देवीदीन के गाँव की सीमा पर पहुँचा। दूर से लाल पगड़ी बाँधे कुछ पुलिस-मैन नज़र आये और नज़र आईं और दो-तीन मोटर-गाड़ियाँ, जिन पर ख़ाकी वरदी डाटे कुछ पुलिस-आफ़िसर शान से बैठे थे। अकारण मेरे मन में उत्सुकता पैदा हो गई। मैं जल्दी-जल्दी गाँव में घुसा। देखता हूँ कि ज़मींदार का बँगला पुलिस-मैनों से भरा हुआ है और देवीदीन का दरवाज़ा भी ख़ाली नहीं है। चिन्ताग्रस्त और भयाकुल देहाती-भाई इधर-उधर खड़े दिखलाई पड़े, जिनमें घबराये-से बच्चे भी थे। स्थान-

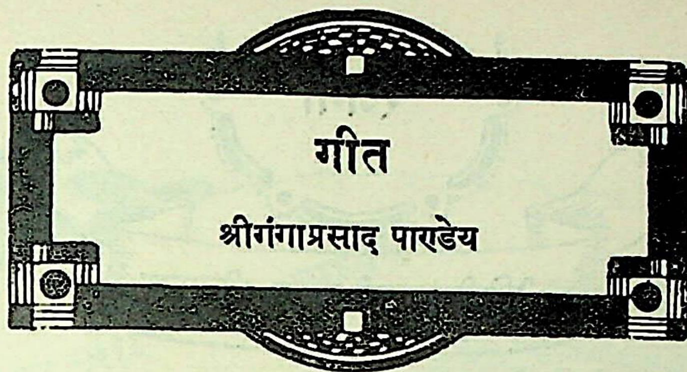


स्थान पर दो-दो, चार-चार मनुष्य कानाफूसी करते भी दिखलाई पड़े। अचानक कोई बात समझ में नहीं आई। मैं भी एक प्रकार से घबरा उठा और किसी से इस अप्रिय मजमे का कारण पूछा। मुझे जो बतलाया गया, वह अत्यन्त हृदयविदारक समाचार था। बात यह थी कि देवीदीन के घर में दोपहर को अचानक कई गुंडे बलपूर्वक घुसकर जमुना को उठाकर चलते बने। विरोध करने के फलस्वरूप देवीदीन की पत्नी को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। एक लोहबन्द लाठी उसकी खोपड़ी को चूर करके उस अभागी के कष्टमय जीवन को समाप्त करने का कारण बनी। साथ ही यह भी पता चला कि जमुना ज़मींदार बाबू के बाग़ की कोठी में पाई गई।

'हा भगवान्,' कहकर मैंने डाकघर का रास्ता लिया। संसार में क्या उचित और क्या अनुचित होता है, इसका लेखा-जोखा रखना भले ही किसी का काम हो, पर हम पोस्टमैनों का तो जीव[न] निराला होता है।

आज भी मैं पोस्टमैन हूँ और आज भी [...] गाँवों में पत्र पहुँचाया करता हूँ। पेंशन लेने [के] दिन आ गये हैं। किसी दिन अपने शान्त [...] को अधिक सरस बनाने के लिए घर का [...] लूँगा और अपने शेष दिन, यदि संभव हुआ [...] चुपचाप व्यतीत कर डालूँगा। देवीदीन [...] जमुना की कहानी मेरे लिए मनोरंजन का [...] नहीं है। संसार में संख्यातीत देवीदीन हैं [...] असंख्य जमुना! ज़मींदार बाबुओं की भी [...] नहीं है तथा मेरी तरह कंधे में बेग लट[काए] गली दर गली अलख जगानेवाले पोस्टमैनों [का] टोटा भी इस बीसवीं सदी में नहीं है।

संसार में नित्य उत्थान-पतन के खेल हो[ते] रहते हैं और संसार के काम भी उसी तरह [चलते] ही रहते हैं, जिस तरह अनन्त काल से चल [...]



गीत

श्रीगंगाप्रसाद पाण्डेय

बह रही अविरल दृगों से मौन यह जलधार कैसी ?
प्राण में नव पुलक भरकर
साज सब शृंगार सुन्दर
आज तो दिन प्रिय-मिलन का, जीत में यह हार कैसी ?
सुप्त मन के भाव मृदुतर
जग, बने चंचल मनोहर
प्रिय - प्रणय के विकल पल में वेदना की मार कैसी ?
छोड़ जग का मोह दुख छल
फिर बना ले हृदय निर्मल
सुखद गायन के समय यह दीन करुण पुकार कैसी ?
प्राण अपनापन समर्पण
कर तुम्हें देना इसी क्षण
त्याग सीमा के शिखर पर भावना सविकार कैसी ?

पराजय-गीत

श्रीहृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश'

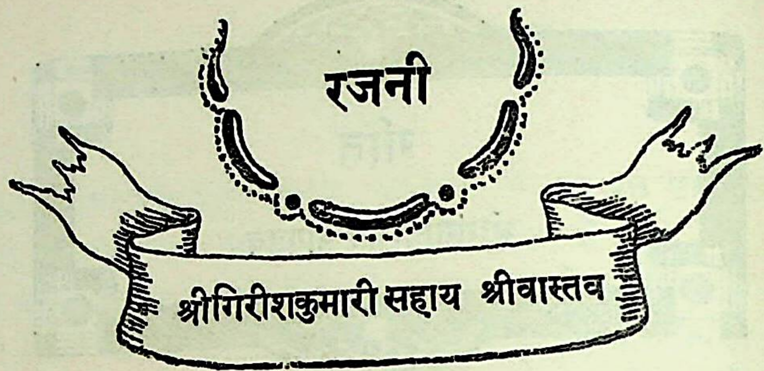
मान ली मैंने पराजय, आज प्रियतम !
अब तुम्हारी उपेक्षा के वार क्या होंगे न कुछ कम ?
आज प्रियतम !

[१]

प्राण के मृदु-पुलक-कम्पन,
श्वास के द्रुत-शत स्पन्दन ;
सिहर सुख-घन के पटल से—
हो रहा मधु मंजु वर्षण ;
प्राण को छूकर शपथ ले—
नयन-गंगा के किनारे
हृदय का विनिमय हुआ था—
हृदय के धन से हमारे ;
आज उनके द्वार का पथ भी,
हुआ है मुझे दुर्गम !!
आज प्रियतम !

[२]

नवल स्वप्नों का सुनिर्मित—
एक नव संसार सुन्दर,
मंद-स्मित प्रिय पूर्ण शशि सा—
चिरप्रकाशित शुभ्र मनहर ;
स्मृति-मलय-शीतल-सुवासित—
अश्रु-पुलकित तरल - हिमकन,
हृदय में पतझड़ बसाये—
दृगों का जलपूर्ण सावन !
विरह - वायु जला गई
मधुमास में उद्यान अनुपम !
आज प्रियतम !



तुम कौन कहाँ से आईं
यह विमल अलस छवि लाईं

है छिपा व्योम बिच नीला
संध्या का मुखड़ा पीला
शकुनावलि चुप हो बैठी
यह देख अनोखी लीला
तब मधुर हँसी बर्साती
तुम कौन कहाँ से आईं
मदिरा की नदी बहाती
तन्द्रा का रस बर्साती
यह मदमय राग अनोखे
जड़ चेतन बीच सुनाती
तारों के हार पहनकर
तुम कौन कहाँ से आईं
रजनीगंधा महकाती
नभ से मोती बर्साती
नव विधु का दीपक लेकर
फूलों की सभा सजाती

किरणों के हार पहनक
तुम कौन कहाँ से आ
निःश्वास समीर डुलाती
शुचि शान्त सितार बजाती
आलस का भार सहनकर
विश्राम सँदेश सुनाती
कब क्षितिज-यान पर चढ़
तुम कौन कहाँ से आ
यह मधुर अमृत रसधारा-
सम पिक-स्वर प्यारा-प्यारा
विमलाम्बर धारण करके
अनुपम शृंगार तुम्हारा
यह अद्भुत वैभव ले
तुम कौन कहाँ से आ

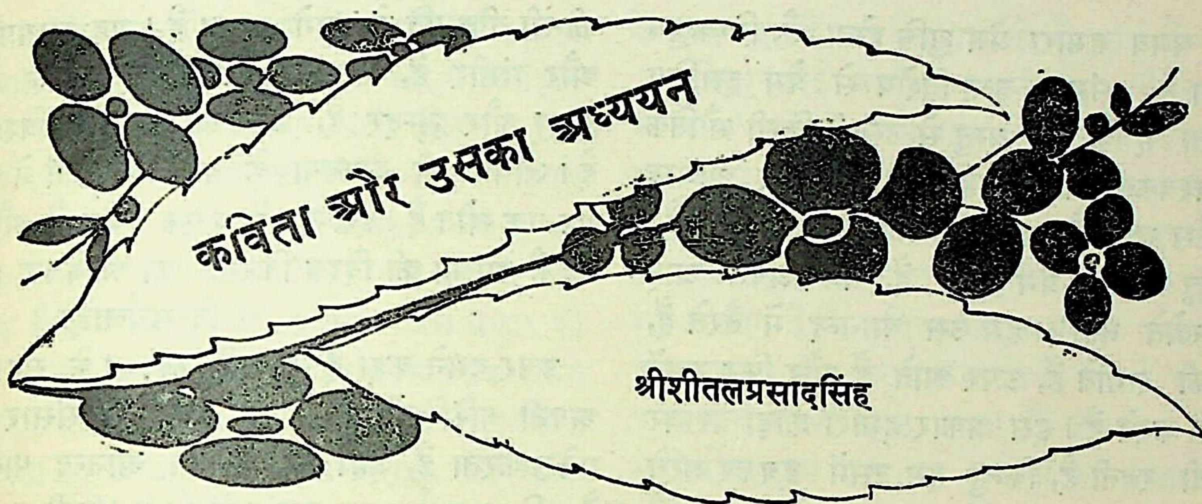


गीत

श्रीराजकिशोर 'राज'

घोर निशि, पारावार अपार;
कहाँ हो प्रियतम ! प्राणाधार !!
उमड़-घुमड़ दृग से झर-झर धारा झरती है,
डगमग-डगमग अधर-नाव जल से भरती है;
आज गई मैं हार !
प्रियतम ! प्राणाधार !!

आओ आज सटाकर अधरों की ति
बाँध एक में लें कसकर श्वासों से
बह जावें उस पार !
प्रियतम ! प्राणाधार !!
घोर निशि, पारावार अपार !
कहाँ हो प्रियतम ! प्राणाधार !!





संसार में हमारा प्रादुर्भाव नहीं हुआ कि हम दुःख की सीमा के भीतर चले आये। जिन्हें हम सुखी कहते हैं, शायद वे भी उसी तरह दुखी हैं, जिस तरह हम हैं। यह जरूर है कि वे नाना प्रकार की बातें करते हैं, आकाश के तारे तोड़ते हैं, किन्तु हम आँसू की माला बनाकर बिन्दु के दानों पर करुणा के गान गाते हैं। ऐसा करना स्वाभाविक है। दुःख में आनन्द है। लोग हँसेंगे—दुःख में आनन्द कैसा। आनन्द-शब्द को हम जरा विशद रूप में ले रहे हैं। दुःख में हमें जो आनन्द मिलता है, वह उस आनन्द से अधिक गंभीर और स्थायी होता है, जिसे हम सांसारिक या शारीरिक सुखों की सामग्रियों में पाते हैं। विपत्ति पड़ने पर हम रोते हैं किसलिए? इसलिए कि संसार भी हमारी वेदना के गान में अपना स्वर मिलाकर रोदन करे। इससे हम दया और सहानुभूति करना सीखते हैं। इससे हमारा जीवन शुचि और पवित्र होता है। इससे हमारा यह कदापि मतलब नहीं कि लोग ऐश्वर्यशाली बनने की कोशिश ही न करें। किन्तु इतना कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि सांसारिक ऐश्वर्यों से हम पूरे नहीं होते, हमारी वासनाएँ तृप्त हो जायँ तो हो जायँ (यद्यपि ये भी पूरी नहीं होतीं); किन्तु हममें जो पवित्र मनुष्य है, उस की आकांक्षाएँ इन वस्तुओं से कदापि पूरी नहीं होतीं। अस्तु। कविता का उपादान आनन्द है। यह आनन्द स्वच्छ और निर्मल होता है। संसार के साधारण पुरुषों के कलुषित प्रेम की तरह कवि का प्रेम कलुषित नहीं होता। कवि का आनंद एक निर्मल नदी की तरह प्रवाहित होता है। संसार के दुःखों में भी वह एक प्रकार का आनन्द पाता है।

जब हम पर दुःख पड़ता है, तब हम शरीर से तो यहीं रहते हैं, किन्तु कल्पना और भावना के सहारे परिस्थितियों से दूर, बहुत दूर चले जाते हैं, जहाँ संसार की कठिनाइयाँ, यातनाएँ हम पर अपना प्रभाव नहीं डालतीं। उस समय हम आदर्श संसार में भ्रमण करते हैं, तब हमारा अपना संसार होता है। फूल की अधखिली कली, सरिता का कलगान, भ्रमरों का मृदु गुञ्जन, वन का असीम सौन्दर्य, सभी अपने होते हैं।



उस समय हमारा प्रेम शुचि होता है, निष्कलुष होता है। संसार वस्तु-विशेष से प्रेम इसलिए करता है कि उस वस्तु से उसकी किसी भौतिक आवश्यकता की पूर्ति होती है। वह उस आनन्द में फँस जाता है, अपने आपको उसमें खो देता है; किन्तु जब हम प्रेम करते हैं, तब अपने आप को खोते नहीं। हम उस आनन्द में तैरते हैं, डुबकी लगाते हैं, ऊपर आते हैं और फिर उसमें प्रवेश करते हैं। इस प्रकार हमारी क्रीड़ा बराबर चलती रहती है, किन्तु हम उसमें डूबकर मरते नहीं। हम इस क्रीड़ा में अत्यन्त आनन्द पाते हैं और इसी आनन्दोद्रेक में कविता निसृत होती है। उस समय हमारा नाम कवि होता है।

कवि का जीवन सामान्य पुरुषों के जीवन से बिलकुल भिन्न होता है। वह कभी अकेला नहीं रहता। संसार के जीवन में उसका जीवन होता है। संसार के दुःख-सुख में वह अपने दुःख-सुख की छाया पाता है। संसार के वृक्ष का वह एक सुकुमार पुष्प है और संसार के जीवन से अलग उसका कोई अस्तित्व नहीं होता। यदि उसे संसार से अलग कर दिया जाय तो शायद वह जीवित नहीं रह सकता। कवि भिन्न-भिन्न जगहों में भिन्न-भिन्न प्रकार के आनन्द का अनुभव करता है। कवि जब अपनी जागृति के द्वारा इनको एक धारा में कर देता है, तब कविता अजस्र गति से प्रवाहित होने लगती है। कविता कल-कल-प्रवाहिनी सरिता है, निर्मल जल का सोता है, जो पत्थर के दिल को चीरकर स्वच्छन्द गति से बहता है। कविता की उत्पत्ति के विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों की अलग-अलग रायें हैं। कविता की परिभाषा करते हुए कोई कहता है—

"कविता विद्या का राज्य और प्राप्ति का साधन है। जहाँ विज्ञान हार जाता है, वहाँ कविता अग्रसर होती है। कविता वह जीवन है, जो नक्षत्र की-सी तीव्रगति से आगे बढ़ता है। यह ... और गंभीर है, ऊटपटाँग और विवेक... कुरूप और सुन्दर है, और खोटा और ... है। जीवन की व्याख्या के कतिपय स्रोतों ... यह एक स्रोत है। इसका उद्देश्य एक होता है, वह है आत्मा की दिव्य किरणों का अने..."
(दि सर्चलाइट)

ऊपर हमने कहा है कि कवि कल्पना के ... अपनी परिस्थितियों से दूर एक ऐसे सं... प्रवेश करता है, जहाँ वह शाश्वत आनन्द ... है। किन्तु सर्वदा यह बात नहीं होती। कभी ... ऐसा होता है कि संसार के दुःखों से ऊबकर ... दूर जाने के बजाय हम उन्हीं के बीच ... उनका निराकरण—सुधार किया चाहते हैं ... समय हम सांसारिक समस्याओं को सु... चाहते हैं। यह हमारे जीवन का ऐसा समय ... है, जब हम यथार्थवादी कवियों को आद... कवियों से ज़्यादा चाहते हैं। उस समय ... कीट्स से ज़्यादा प्यारा होता है। इससे ... यह कदापि मतलब नहीं कि सांसारिक ... स्थितियाँ उस पर अधिकार कर लेती ... उस समय वह संसार के दुःख से स्वयं ... हो जाता है। उसका हृदय सहानुभूति ... जाता है। वह तब उसका दुःख दूर ... प्रयत्न करता है। पहला इस संसार से अलग ... संसार बसाता है, दूसरा उसी संसार ... ष्करण करता है। इतना तो हुआ कविता ... में। अब ज़रा उसके अध्ययन की ओर ...

किसी भी कविता का अध्ययन करते ... दो बातों पर ध्यान देना होगा। यों तो ... के कई रूप—आसपेक्ट—हो सकते हैं ... साधारणतः उनको दो समझिए। ... उसका बाह्य रूप, जिसमें छन्द, अलंकार ... शामिल हैं और दूसरा है उसका आन्तरिक ...



कविता के आन्तरिक रूप में ध्वनि और रस इत्यादि शामिल हैं। वर्त्तमान कविता में अलंकार और ध्वनि पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। अब हम ध्वनि को छोड़कर संकेत पर चले आये हैं। इस समय कवि किसी बात का संकेत कर देता है बस, और हम कविता समझने के लिए छोड़ दिये जाते हैं। जो कविता जिस प्रकार की है, उसका अध्ययन उसी प्रकार से किया जाना चाहिए। यदि हम ऐसा नहीं करते तो फिर किसी कविता को अच्छा-बुरा कहने का हमें कोई अधिकार नहीं है।

प्राचीन हिन्दी - कविताएँ संस्कृत-विद्वानों के निर्दिष्ट मार्ग पर चलती थीं। उनको समझने के लिए रस - गंगाधर, साहित्यदर्पण इत्यादि का अध्ययन किया जाना चाहिए। अलंकार और रस इत्यादि पर हम यहाँ विचार करना नहीं चाहते। इनके लिए अलग ही छन्दःशास्त्र, अलंकारशास्त्र इत्यादि के ग्रंथ हैं। फिर भी उदाहरण-स्वरूप एक-दो कविताओं को लेकर हम समझने की कोशिश करेंगे।

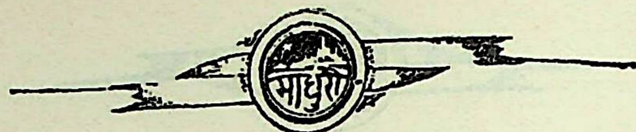
एक ही कविता सबको एक - सी नहीं लगती। सबकी बात तो जाने दीजिए, एक ही आदमी को क्या भिन्न-भिन्न समय में एक ही कविता भिन्न-भिन्न प्रकार की नहीं मालूम पड़ती ? अस्तु, यह अनिवार्य है कि एक ही कविता भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्यों के सामने समय-समय पर अलग-अलग रूप में आवे। ऐसी अवस्था में एक कविता एक को अच्छी लगेगी तो दूसरी दूसरे को। कविता को समझने में ये कठिनाइयाँ हैं। अगर हमारा दिमाग़ भक्ति की ओर आकर्षित है तो विहारी की कविता हमें हर्गिज़ पसन्द नहीं आवेगी। पसन्द नहीं क्या आवेगी, पूर्णरूपेण समझ में भी नहीं आवेगी। किसी भी तुलसी को आप किसी भी विहारी से नहीं मिला सकते। दोनों के संसार दो हैं, परिस्थितियाँ दो हैं, राहें दो हैं।

कविता कोई ग्रामीण कहानी या 'तैमूरलंग की कथा' नहीं है, जिसे शुरू किया और एक ही बार में अन्त कर पूरा-पूरा समझ भी लिया। छोटी से छोटी कविता में भी एक रहस्य रहता है, जिसका उद्घाटन सतत अनुशीलन से ही किया जा सकता है। कविता का समझना हम उस अवस्था को प्राप्त करना समझते हैं, जिसमें रहकर कोई कवि उसकी सृष्टि करता है, जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक हम कविता का सच्चा अर्थ नहीं पाते। ऐसी अवस्था प्राप्त करने के लिए बराबर धीरज के साथ प्रयत्न करना पड़ता है। उस कविता को सहानुभूति, मनोयोग और प्रेम के साथ पढ़ना पड़ता है। कविता को समझने के लिए प्रारंभिक अवस्था में यह ज़रूरी है कि हम किसी कविता को कण्ठाग्र कर लें और मौक़े ब मौक़े एकान्त में गाया करें और तब देखें कि वही उपेक्षित कविता किस जादू के साथ हृदय पर अपना अधिकार कर लेती है। कविता का अर्थ समझ में आया कि कवि सामने आकर खड़ा हुआ।

इस जगह पर एक बात हम कह देना ज़रूरी समझते हैं कि जो कवि जिस प्रकार का है, हम उसी प्रकार की आत्मा ढूँढने की कोशिश करें। अन्यथा हम व्यर्थ ही परेशान होंगे और हाथ भी कुछ नहीं आवेगा। यदि हम किसी शेली में किसी कीट्स की आत्मा की खोज करें तो यह हमारा सरासर दोष होगा। अब हम उदाहरण देकर इस लेख को समाप्त करना चाहते हैं।

खेलन में को काको गोसैयाँ ?
हरि हारे जीते श्रीदामा बरबस ही कत करत रिसैयाँ।
जाति पाँति हमते कछु नाहिन बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातें अधिक तुम्हारे हैं कछु गैयाँ।

(सूरदास)



इस कविता को पढ़िए और कई बार पढ़िए। पहले यह कविता आपको उतनी अच्छी नहीं मालूम पड़ेगी, जितनी दूसरी बार। कल्पना के सहारे कुछ बच्चों की सृष्टि कर लीजिए और नील गगन के नीचे स्वच्छ हरा मैदान उनको खेलने के लिए दे दीजिए। अब देखिए, इन बच्चों का खेल आपको कितना आनन्द देता है। आप यदि अपने गाँव की गलियों में घूमते हैं तो बच्चों को भाँति-भाँति के खेल, घरकुड़वा, कबड्डी, गुल्लीडंडा इत्यादि खेलते देखते हैं। बच्चे उस समय बहुत स्वतंत्र रहते हैं, उनका दिमाग़ उस समय बिलकुल निर्मल रहता है। बच्चे मकान उठाते हैं और फिर तुरत मिटा देते हैं। इस क्षण वे एक नियम बनाते हैं, किन्तु दूसरे क्षण उसको तोड़ देते हैं। कभी-कभी वे आपस में लड़ाई भी कर बैठते हैं। जब तक ये बातें हमारे मस्तिष्क के सामने उपस्थित नहीं हो जातीं, तब तक हम उस पद्य को नहीं समझते।

इस कविता के शब्द-शब्द में जीवन है, उल्लास है। बच्चे आपस में लड़ाइयाँ लड़कर भी भ्रातृत्व के अटूट बन्धन में बँधे हैं। ये सजीवता से भी अधिक सजीव हैं। ये शायद अनादि काल तक जीवित रहेंगे। इतिहास के पात्र जन्म लेते हैं, कुछ दिन संसार में रहते हैं और फिर चले जाते हैं, किन्तु ये बच्चे जब से जन्मे हैं, तभी से हैं और रहेंगे, उनमें न किसी प्रकार का परिवर्तन हुआ है और न होगा ही। इसी बात को लक्ष्य करके अरिस्टाटल ने कहा था—

"It often happens that there is more truth in Poetry than in History."

अब वर्त्तमान कविता की ओर आइए! अब भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो इस प्रकार की कविता का उपहास करते हैं, मज़ाक़ उड़ाते हैं और इसे घृणास्पद और गर्हित समझते हैं। किन्तु यदि हमें स्वतंत्रता दी जाय तो हम कहे बिना नहीं रह सकते कि इस कवि[ता का] प्रवाह दुर्दमनीय है, यह हमारे चिल्ला[ने से] रुकने को नहीं। हिन्दी-कविता का यह प[रिवर्तन] काल—Transition Period है। अब किसी वस्तु को उसके असल रूप [में देखने] के बदले उसमें दिव्य पुरुष की आ[त्मा का] अस्तित्व देखती है। वह अब इस शान[्त प्रकृति] को अनन्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहनेवा[ले] पुरुष से मिलाना चाहती है। पहले व[ह] को यमुना, एक नदी के रूप में देखती थी [अब] वह उसे एक दिव्य नारी के रूप में दे[खती है]। वह अनादि काल में पैदा हुई थी और [तब से] संसार को देखती आई है। उसने श्रीकृ[ष्ण को] पैदा होते देखा है। उन्हें गायें चराते, वंशी [बजाते], गोपियों को विरह में जलाते देखा है। [उसने] वह भारत की दयनीय दशा को देख [रही है]। मतलब यह कि संसार का एक करुण [क्रन्दन] यमुना के कण-कण में व्याप्त है। पहले [यमुना के] बारे में कवि कहता था—

तरनितनूजा - तट तमाल तरुवर बहु [छाये।]
झुके कूल सों जल परसन हित मनहुँ सु[हाये॥]
(श्रीहरि[श्चन्द्र])

किन्तु 'निराला' जी उसी यमुना से पू[छते हैं]—

बता कहाँ अब वंशीवट,
कहाँ गये नटनागर श्याम।
चल चरणों का व्याकुल पनघट,
कहाँ आज वह वृन्दा धाम॥
कभी यहाँ देखे थे जिनके
श्याम विरह से तप्त शरीर।
किस विनोद की तृषित गोद में
आज पोंछतीं वे दृगनीर।

यह है पुरानी और नई कविता का [भेद।] अधिक स्पष्ट होने के लिए हम इस जगह [...]



और नई कविता का अन्तर बतला देना चाहते हैं। पुरानी कविताएँ बौद्धिक और न्यायप्रधान होती थीं। आजकल की कविताएँ भाव और न्याय एवं कल्पना-प्रधान होती हैं। पहली किसी वस्तु की बाह्याकृति से सम्बन्ध रखती है, किन्तु दूसरी उसके भीतर प्रवेश कर जाती है। यह उसकी पार्थिवकता को पार कर जाती और उसमें आध्यात्मिक सत्ता को खोजती है, ग्रहण करती है।

अब वर्त्तमान हिन्दी-कविता के दो उदाहरण देकर इस लेख की समाप्ति करेंगे। देखिए, निम्नोधृत कविता की ख़ूबियाँ—

किरणों को देख चुराते, चित्रित पंखों की माया
पलकें आकुल होती थीं, तितली पर करने छाया।
जब अपने निश्वासों से, तारे पिघलाती रातें,
गिन-गिन धरता था यह मन, उनके आँसू की पाँतें।

× × ×

गर्जन के द्रुत तालों पर, चपला का बेसुध नर्तन
मेरे मन बालशिखी में, संगीत मधुर आता बन
किस भाँति कहूँ कैसे थे, जग से परिचय के वे दिन
मिसरी-सा घुल जाता था मन छूते ही आँसू-कन
अपनेपन की छाया तब, देखी न मुकुरमानस ने
उसमें प्रतिबिम्बित सबके, सुख-दुख लगते थे अपने
तब सीमाहीनों से था, मेरी लघुता का परिचय
होता रहता था प्रतिपल, स्मित का आँसू का विनिमय
मेरा अपार वैभव ही मुझसे है आज अपरिचित
हो गया उदधि का जीवन, सिकता-कण में निर्वासित
अपनी कण-कण में बिखरी निधियाँ न कभी पहिचानी
मेरा लघु अपनापन है, लघुता की अकथ कहानी

(श्रीमती महादेवी वर्मा)

इस कविता को समझने के लिए एक बालक की कल्पना कीजिए। मान लीजिए, वह अभी ५-६ वर्षों का है। संसार भर उसका अपना है। तितलियाँ उसकी हैं। वे जहाँ उड़कर जाती हैं, वह वहीं दौड़कर जाता है। वह समझता है कि सूर्य की किरणों की गर्मी से इनकी रंगीन पंखों की सुन्दरता विनष्ट हो जायगी। वह उनको पकड़कर अपनी छाया में रखना चाहता है। तारों को वह रोते देखता है, ओस को वह उनके अश्रुबिन्दु जानता है। बादलों के रोदन में वह अपना रुदन समझता है। वारिद गरज-गरजकर ताल देते हैं। बिजली कौंध-कौंधकर नाच जाती है, वह अपार ख़ुशी से नाच उठता है। यह तो है उसके जीवन का उज्ज्वल पृष्ठ; पर पीछे वह ज्यों-ज्यों बढ़ता है त्यों-त्यों उसके विचार संकुचित होते जाते हैं। तब वह समझता था यह मेरा वन है, यह मेरी हवा है, ये तारे मेरे हैं, किन्तु आज वह समझता है, यह मेरा भाई है, यह मेरी संतान है, यह मेरी पत्नी है। कितना बड़ा अन्तर है। होते-होते उसके जीवन में एक ऐसा समय आता है, जब वह परिवार की भी चिन्ता नहीं करता। तब उसमें आत्मचिन्ता ही रह जाती है। अब दूसरा उदाहरण लीजिए—

विजया का पूजन करते जिनको जय का सामान नहीं
गरज रहा आकाश-पराजय का पतितों को ध्यान नहीं
क्या होगा भगवान! हाल मिट्टी में पड़ी जवानी का?
इस किशोर खिलती ज्वाला का? इस चढ़ते-से पानी का
इस गोरा बादल की मा का? इस जौहर की रानी का?
इन हल्दीघाटीवालों का? इस कर्बला-गुमानी का?
क़ब्र खोद फिर से फूँकेगी क्या मुर्दों में जान नहीं?
दुर्गे! बोल उठेगा रेतों से क्या राजस्थान नहीं?
किसी भाँति छुटती न छुड़ाये, सदियाँ विगत अनेक हुईं
लगी पुरानी जंग हाय, तलवार म्यान मिल एक हुईं।
जला करे साकेत, दशानन की लंका आबाद रहे।
विजय दूर जा बसे, हमें लेकिन विजया की याद रहे।

(श्री 'दिनकर')

विषाद और सहानुभूति इस कविता की आत्मा—स्पिरिट—है। लोग विजयादशमी का उत्सव मनाकर उस विजय की याद करते हैं, जिसे



आर्यों ने अनार्यों पर पाया था। किन्तु आज हम असहाय हैं। हमारी जवानी मिट्टी में मिल रही है, जीवन-ज्वाला असमय ही बुझ रही है—हम जीवित रहकर भी निर्जीव हैं, आदमी रहकर भी मुर्दे हैं। मुर्दे बेजान होकर कुछ न करें तो एक बात भी है, परन्तु हम हाथ-पाँव और जिह्वा रखकर भी कुछ करें नहीं, स्वतंत्र गति से चलें नहीं, अन्याय देखकर खीझें नहीं, यह निश्चय ही अक्षम्य बात है। इस पर भी हम विजया की पूजा करते हैं। यह पूजन है या मज़ाक, आराधना या अन्त्येष्टि-क्रिया! कवि हमारी साहाय्य-हीनता पर सहानुभूति प्रकट करता है। इससे उसे संतोष नहीं होता। वह विक्षुब्ध हो पड़ता है। इस हालत में उसके हृदय में नाना भाँति के प्रश्न उठते हैं। उन्हीं प्रश्नों को यहाँ व्यक्त किया है। इस कविता के प्रत्येक प्रश्न में ज्वाला है, सहानुभूति है, दया है। इसे समझना ही इस कविता का समझना है।



दृष्टिकोण

श्रीनरोत्तमप्रसाद नागर

> 'दृष्टिकोण' का कोई भी तर्क या उद्धरण सिद्ध सत्य बनकर नहीं उतरा है—वह निरा दृष्टिकोण ही है, एक 'मत' है। यह बात दूसरी है कि वह रुचिकर या अरुचिकर है, अनुकूल या प्रतिकूल है। मि० चैनिंग, फ्राग, लेखक और 'माडर्नरिव्यू' सम्पादक—सभी विभिन्न दृष्टिकोणों को पेश करते हैं। उन्हें सिद्ध सत्य समझकर, इस स्टेज पर, किसी को उलझने या अपमानित अथवा संलग्नता विशेष महसूस करने की ज़रूरत नहीं। न ही यह ठीक होगा। निर्णय इनमें नहीं, वरन् व्यक्ति के हाथ में ही है। यहाँ तो दृष्टिकोण और उसकी विभिन्न विभिन्नताओं को रख-भर दिया गया है।—लेखक

व्यक्ति-परिचय

मिस्टर चैनिंग बचपन में कवि बनना चाहते थे। एक झोपड़ी हो, बाहर हरियाली ो और 'अप-टू-डेट' पुस्तकालय हो—और वह ं। लेकिन बोअर-युद्ध ने उन्हें सैनिक वेष में खा और फिर रॉयल कमीशन ले भारत आये।

'रहस्यमय' भारत के विषय में उन्होंने बहुत कुछ ढ़ा-सुना था और वह हाँ आना चाहते —कौतुकवश। फिर ारत के सोने चाँदी े पेड़ों और दूध-शहद ी नदियों में भी कोई म औपन्यासिकता हीं; इसके साथ ही उसमें आकर्षण भी काफ़ी है।

पर घरवालों ने, पेताजी ने, विरोध किया। उन्हें वापस बुलाने का अन्तिम प्रयत्न करते हुए उन्होंने अपने पत्र में लिखा था—

"भारत में अब कुछ सार नहीं है। वह दम तोड़ रहा है और वसीयत में तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं छोड़ जायगा।"

लेकिन फिर भी आप यहाँ आये; यानी आपके यहाँ आने का कारण अन्तिम श्वासें गिनते भारत की वसीयत पाना नहीं था; और अगर था भी, तो वह मुख्य नहीं था।

एक कारण, और सम्भवतः मुख्य ही, और था। आपकी प्रेमिका भारत में रह चुकी थी और भारत को उसने 'मा' के रूप में अपना लिया था। उसने ही मि० चैनिंग को इधर झुकाया और 'मा' की सेवा करने की प्रेरणा उत्पन्न की।

इस कारण में औपन्यासिकता भी है और एक रूहानी रिश्ता भी स्थापित हो जाता है। और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि रूहानियत का नाम सुनते ही भारत नत-मस्तक हो खड़ा हो जाता है।

तो वह यहाँ आये और......

मि० फ्रॉग—मि० चैनिंग के मित्र। ख़ुशदिल और ख़ुश-मिज़ाज और शिकार के अजहद प्रेमी। फ़ौजी कर्तव्यों से अवकाश मिला, तो शिकार को चल दिये; मि० चैनिंग साथ में हुए तो शिकार आदि के ज़िक्र के साथ भारत, भारत की धार्मिकता, उसके अध्यात्मवाद और राजनीतिक तथा साम्प्र-दायिक सामर्थ्य-असामर्थ्य को भी ले लिया गया।



प्रसंगवश शेख़ अहमद, बालमुकुन्द तथा एक-दो पंडित-मौलवियों का भी ज़िक्र आता है। इन लोगों से मि० चैनिंग अध्यात्मवाद और दर्शनशास्त्र आदि के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त करते रहे हैं।

स्थान—बरेली के पास का जंगल, समय संध्या। कैम्प फ़ायर के पास मि० चैनिंग और फ़्रॉग बैठे हैं। आत्मा अमर है और 'विकास' की व्याख्या उस पर लागू नहीं होती, यहाँ तक दोनों पहुँच गये हैं।

चैनिंग—"शेख़ अहमद ने मुझे बताया था कि आत्मा की मुक्ति के प्रयत्न उस व्यक्ति के समान हैं, जो बन्दीगृह से स्वतंत्र होने के लिए मार्ग के दरवाज़ों को, एक - एक करके, तोड़ता चला जाता है और अन्त में मुक्ति प्राप्त करता है।"

फ़्रॉग—"बात कुछ समझ में नहीं आई। बंद दरवाज़ों को खोलने का क्या मतलब है?—और वह खोलता कैसे है?"

चैनिंग—"द्वारों का मतलब है—अंधकार; और उन्हें खोलने की कुञ्जी है—प्रेम; सबको अपना मित्र समझो और......"

मि० फ़्रॉग के हिसाबी मस्तिष्क में बात कुछ धँसी नहीं। बोले—"और अगर वह व्यक्ति विशेष बेवक़ूफ़ हो तो?"

चैनिंग—"ठीक कहते हो। बात मेरी समझ में भी नहीं आई थी और उसी दिन, रात को, मैंने अपनी डायरी में लिखा—'अहमदबख़्श को अब विवाह कर लेना चाहिए,' क्योंकि, ज़ाहिर है कि वस्तुतः प्रेम स्त्री और पुरुष में ही हो सकता है।"

फ़्रॉग—"तुम भी क्या आदमी हो। अपनी बात को ख़ुद ही काट डालते हो! अपनी कविताओं में स्त्रियों का गुण-गान करते कभी नहीं थकते, उनके सौंदर्य, मधुरिमा और लावण्य के अति-रञ्जित वर्णन से ख़र्रे-पर-ख़र्रे रँग डाले [illegible] फिर भी दामन छिटकाकर उन्हें [illegible] देते हो—उनसे अलग रहते हो। [illegible] 'मित्रता'-शीर्षक कविता में पुरुष को [illegible] गुणों से भरा हुआ कहा था, और [illegible] के पक्ष में बोल रहे हो—शायद तुक [illegible] वज़न पूरा करने के लिए ही दूसरी [illegible] 'नारी' के स्थान पर 'नर' आ गया था [illegible] जाने दो। हाजी अब्दुल्ला से, जो [illegible] और क़ायदे का आदमी है, तुम बचते [illegible] बालमुकुन्द से, जो कि बिल्कुल पोंगा [illegible] घुलते-मिलते हो।"

बालमुकुन्द को चैनिंग ने छोड़ [illegible] हाजी अब्दुल्ला को पकड़ा। कहा—"वह [illegible] चाहता कि उससे कोई बातें करे।"

"नहीं" फ़्रॉग ने कहा—"बल्कि वह [illegible] कि आप उससे भलमनसाहत से पेश [illegible] फ़ौजी आदमी नहीं हूँ, लेकिन फिर [illegible] विश्वास है कि मैं तुम फ़ौजियों से इन [illegible] के बारे में अधिक जानता हूँ। तुम लोग [illegible] आदत से वाक़िफ़ हो और न इनकी [illegible] पढ़ते हो।"

"'इनकी किताबों' से तुम्हारा मतलब [illegible] क़ुरान आदि से हो, तो मैं उन्हें पढ़ [illegible] सकता हूँ, जब कि मैं अरबी-संस्कृत नहीं [illegible]

"लेकिन इन सबका अँगरेज़ी में अ[illegible] चुका है। आर्नल्ड के 'लाइट ऑफ़ [illegible] को देखी है? रो को पढ़ा है? मुलर का [illegible] किया है?"

और फ़्रॉग ने यहाँ विदेशी लेखकों तथा [illegible] यात्रियों के नामों को गिना दिया।

फ़्रॉग के प्रत्यक्षतः अक्खड़ आद[illegible]

---

* आज कल किसी भी राष्ट्र की शा[illegible]



मि० चैनिंग ने अपनी रक्षा की, ज़ोरदार टकसाली तर्कों को लेकर—

"इतनी पुरानी पुस्तकें पढ़ने से क्या लाभ ? पढ़ने-न-पढ़ने की बात को छोड़कर भी भारत आज जो कुछ है, वह 'वह' कभी नहीं होता, अगर हम यहाँ नहीं आते......"

पूरा करने के लिए कहना ही चाहिए कि हमने भारतीय कला का गला घोट डाला है, उसके सिद्धान्तों को उड़ा दिया है......। कहते हो, बाबा आदम के ज़माने की पुस्तकें ! लेकिन उस ज़माने के व्यक्ति अब भी भारत में मौजूद हैं—भारत में 'पुराना' नाम की चीज़ नहीं है। उसके बादशाहों के सम्बन्ध में—जिन्हें हम 'प्रिंसेज़' कहते हैं—कहना चाहिए कि उनकी शक्ति-सामर्थ्य लुप्त हो गई है। लेकिन अगर हमें भारत को छोड़ना पड़े, तो आँख झपकते मुग़ल-राज्य का नज़्ज़ारा उपस्थित हो जाय। इस्लाम सैनिक का धर्म है और भारत में इसके ५७० लाख अनुयायी हैं और पिछले द्वार पर अफ़ग़ानिस्तान विराजमान है।"

"लेकिन ३००० लाख हिन्दू जो मौजूद हैं !" —चैनिंग ने कहा।

फ़ॉग रुका नहीं, न ही उसने इधर कुछ महत्त्व दिया। वह कहता गया—"हिन्दुओं में लड़ाकू क़ौम (क्षत्रिय) अल्प संख्यक है। फिर हमने हिन्दुओं को अस्त्र-शस्त्र से दूर ही रक्खा है। हिन्दू-धर्म औरतों का धर्म है—कोमल, विनम्र और भक्तिपूर्ण। किसान जो हैं, उनके लिए तो 'कोउ नृप होय हमें का हानी'—जब तक कि उनकी खेतीबारी और उनके धर्म में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाय। देश-भक्ति उसके लिए अपरिचित चीज़ है। इसके मुक़ाबले में मुसलमान का धर्म पुरुषोचित है ! शक्तिशील, आगे बढ़नेवाला और जन्म से ही मौक़ा-पकड़ प्रवृत्ति-युक्त अकबर को छोड़कर भारत के शान्तिप्रिय सम्राट् हिंदू ही रहे हैं। मुग़लों का राज्य तलवार पर स्थित था। इधर किया और इधर पार। इसके सामने भारत के इतिहास में एक भी घटना ऐसी नहीं मिलेगी, जिसमें किसी दूसरे मज़हबी-स्थान को किसी हिंदू सम्राट्-द्वारा चोट पहुँचाई गई हो, और सिर्फ़ एक अपवाद को छोड़कर कोई भी ऐसा राजा नहीं हुआ, जिसने क़त्ले-आम के ख़ातिर ही क़त्ले-आम कराया हो........। यह अजब बात है कि भारतीय फ़ौज के आदमी भारतीय इतिहास का अध्ययन नहीं करते।"*

× × ×

फ़ौज और अस्त्रों-शस्त्रों की उसकी पूर्णता समझी जाती है। शक्ति-सामर्थ्य के माप की इस कसौटी ने, सहज-स्वाभाविक रूप में, फ़ौजियों को इस धारणा में रँग दिया है कि वे ही राष्ट्र के निर्माता और रक्षक हैं और इस दृष्टि से कोई, यानी अन्य विभाग, उनकी बराबरी नहीं कर सकते। फ़ौजियों के हृदय में सिविल सर्विस-विभाग के प्रति जो एक प्रकार की हेय और उपेक्षा की भावना जाग्रत् रहती है तथा दोनों के बीच जो खाईं बन गई है, उसका विश्लेषण-विवेचन करते हुए मि० चैनिंग ने भी ऐसा ही मत प्रकट किया है।

फ़ौजियों के इस महत्त्व को, अध्ययन के अभाव के साथ मि० फ़ॉग ने तुलना में रक्खा है। लेकिन वस्तुतः देखा जाय, तो आज के फ़ौजी को आर्नल्ड के 'लाइट ऑफ़् एशिया' के पढ़ने की आवश्यकता ही क्या है ? धार्मिक प्रवृत्ति की फ़ौजी व्याख्या अकर्मण्यता है। धर्मभीरु जातियों को फ़ौज में नहीं लिये जाने का यही कारण है। हाँ, 'गुलिस्ताँ', 'बोस्ताँ' और 'बाग़ बहार' उन्हें पढ़ाया ही जाता है। बहरों तथा भारतीय नौकरों आदि से 'हिंदुस्तानी' का अभ्यास भी हो जाता है। और चाहिए भी क्या ?—लेखक।

* हिंदू के धर्म के सम्बन्ध में मि० चैनिंग की डायरी का एक उद्धरण इस प्रकार है—

उसी रात को -

मि० चैनिंग ने फ़्रॉग से 'लाइट ऑफ़ एशिया' की प्रति माँगा और रात बीतते-न-बीतते उसे ख़त्म कर डाला और उन्होंने महसूस किया कि उनके सामने का 'अंधकार' उज्ज्वल प्रकाश-पुंज में परिणत हो गया। एक दैवी आभा से वह जगमगा उठा है।

× × ×

कई मास बीतने पर—काश्मीर में।

सुहावना वातावरण और मुग्धकारी मौसम। आख़िर क्या शग़ल रहे ? माँझी ने बहुत-से साहबों को देखा है और वह जानता है कि साहब को किस चीज़ की जरूरत होनी चाहिए। वह एक 'लड़की' ले आता है। चैनिंग उसे देखकर चौंकते हैं। पूछने पर मालूम होता है कि उसके पिता क़र्ज़दार हैं और क़र्ज़े को उतारने के लिए ही, मजबूरन, यह सब अपनाना पड़ रहा है। चैनिंग उसके पिता को और महाजन को बुलवाते हैं, क़र्ज़ा अदा कर देते हैं और वचन लेते हैं कि लड़की का विवाह कर दिया जायगा।

"हिन्दू का धर्म ही उसकी वास्तविकता है। जिस दिन वह उसमें विश्वास खोवेगा, उस दिन भारत हमारे हाथों से छूट जायगा और उसकी इस धर्म-विमुखता के आसार दिखाई पड़ने लगे हैं।"

'शक्ति' और 'बल' के इस तरह के खेल के साथ चैनिंग की डायरी का निम्न-उद्धरण, विभिन्नता पेश करने के लिए, रक्खा जा सकता है—

"We shot our way into India, we shot through India and in the end we may be shot out of India.

और ऐसे प्रसंगों की तो भरमार है, जिनसे ज़ाहिर होता है कि और किसी के लिए 'वास्तविकता' और 'सत्य' कुछ भी हो, लेकिन हिन्दू के लिए उसका धर्म, अध्यात्म और मायावाद ही सत्य है। वह उसी में मस्त रहे।—लेखक

और बाद में, चैनिंग को यह जानकर सन्तो[ष] होता है कि लड़की का विवाह हो गया है।

और भी—

संस्मरणों के इस अंश का प्रारम्भ मनु[के] नैतिक विधान की एक पंक्ति—'स्त्रियों के प्र[ति] अनासक्त रहो' कोई आदर्श-वाक्य-स्वरूप रक्[खा] हुआ है।

एक जगह किसी से कहा या कहलाया गया [है] कि ब्रिटिश राज्य की न्यामत है कि घर की ब[हू]-बेटियों की प्रतिष्ठा पर हस्तक्षेप नहीं करता।*

काश्मीर के एक बाग़ में—काश्मीर के राजगु[रु] अपने शिष्यों के साथ बैठे हैं।

मि० चैनिंग वहाँ पहुँचते हैं। राजगुरु [के] व्यक्तित्व से प्रभावित होते हैं। एकटक देखते [रह] जाते हैं। लगता है कि वह अनन्त की ओर खु[ली] हुई खिड़की में से देख रहे हैं।

आगे बढ़ना चाहते हैं, पर बढ़ नहीं पा[ते]। महसूस होता है कि वह अति तुच्छ हैं। [इस] साकार 'महत्ता' के पास जाने की हि[म्मत] नहीं होती।

लेकिन पहुँचते हैं। मुस्कराहट से उनका अभि[वादन] होता है—ऐसी मुस्कराहट, जो उन्हें [आज] तक याद है।

× × ×

* इस प्रसंग में दो विभिन्नताएँ हैं। एक है ब्रिटिश राज्य और अँगरेज़ों के जाने से पूर्व के रा[ज्य] की। दूसरी है, मि० चैनिंग तथा और अन्य 'सा[धु]' नामधारी व्यक्तियों की। दोनों विभिन्नताओं [का] अन्तर, उनका तुलनात्मक परिणाम, भारत के [हित] के अनुकूल है—'सतीत्व' को भारत बड़ी [ऊँची] निगाह से देखता है। सतीत्व की रक्षा करने [वाले] को आदमी से बढ़कर देवता समझता है। [मि०] चैनिंग और ब्रिटिश राज्य कुछ इसी रूप में [आते] हैं।—लेखक



गुरु के साथ संसर्ग बढ़ता है। अध्यात्मवाद पर बातें चलती हैं। योग का ज़िक्र आता है। प्रारम्भिक क्रियाएँ बताई जाती हैं और Fast breathing and stupid thinking, यानी प्राणायाम, चलता है।

फिर घर से, योरप से, दुःखद समाचार मिलता है। गुरु के उपदेशामृत से शान्ति प्राप्त होती है और योरप के लिए रवाना हो जाते हैं। बस।

× × ×

हाल ही में प्रकाशित मि० चैनिंग के संस्मरणों का यह संक्षिप्त परिचय-मात्र है। पुस्तक की जिल्द और कवर का रंग जोगिया रक्खा गया है—इसलिए कि जोगिया रंग भारत का पवित्र रंग है। टाइटल-पृष्ठ पर 'ॐ' का 'ट्रेडमार्क' भी है। भारतीय अध्यात्मवाद पर अधिकारपूर्वक लिखने के लिए फ़ौजी व्यक्ति उपयुक्त नहीं है, इस आपत्ति की सम्भावना का उत्तर महाभारत के युद्धक्षेत्र में भगवान् कृष्ण के उपदेश—गीता को लेकर दिया गया है। वहाँ भी तो सैनिक वेश और सैनिक वातावरण था!

और उपसंहार में, यह स्वीकार करते हुए भी कि पुस्तक का विषय-क्षेत्र राजनीतिक नहीं है, भारत की राजनीतिक स्थिति पर भी 'प्रकाश' डाला गया है। उपसंहार के 'प्रकाश' में कोई नई चीज़ नहीं है, भारत के सम्बन्ध में लिखी गई अधिकांश पुस्तकों में जिन साम्राज्यवादी तर्कों का प्रसार होता है, वही यहाँ भी है। यही कि भारत में राज्य सँभालने योग्य सामर्थ्य नहीं है; अभी उसे छोड़ देने का मतलब उसे 'अंधकार' में डाल देना होगा; भारत राष्ट्रीयता-जैसी संकुचित चीज़ से ऊपर की चीज़ है—आदि-आदि।

भूमिका में मिस्टर चैनिंग, साररूप में, लिखते हैं—

"भारत में बीते अपने फ़ौजी जीवन के बीस वर्षों पर जब दृष्टि डालता हूँ, तो लगता है कि वह सब एक स्वप्न और अवास्तविकता से भरा हुआ था—राजारानी युग का एक साहसपूर्ण अफ़साना था। हिन्दू का यह कथन शायद ठीक है कि जीवन एक माया है। लेकिन फ़ौजी जीवन का रोमाञ्च, बिगुलों की ध्वनि, तेज़ अस्त्रों का चिकना स्पर्श, अंधकार में से आया आहत तेंदुए का चीत्कार—एक बड़ा वास्तविक मालूम देता है।"

इसके बाद, भूमिका की अन्तिम पंक्ति है—"क्या सचमुच भारत कोई चीज़ है?"

नहीं, यह माया है और भारत को माया में लिप्त नहीं होना चाहिए। इसी में उसकी सार्थकता है और इसी में मुक्ति।

इस पुस्तक का मूल मंत्र यही है—श्रीराम भजो सुख में, दुःख में; क्योंकि हिन्दू का, भारत का, धर्म, उसकी आध्यात्मिकता और मायावाद, उसकी समाधिस्थ मुद्रा ही उसका 'सत्य' और वास्तविकता है। 'जिस दिन वह इसमें विश्वास खो देगा, भारत हमारे (अँगरेज़ों के) हाथ से निकल जायगा' और भारत का अँगरेज़ों के हाथ से निकल जाना भारत के लिए हितकर नहीं होगा, इसलिए कि भारत अपने पाँव पर खड़े होने योग्य नहीं है।

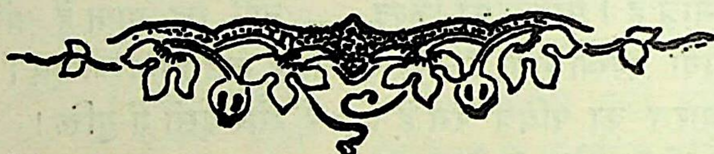
पद्मासन या अर्धासन लगा, आँखें मूँद और नासिका का एक छिद्र रोक, Fast breathing and stupid thinking, यानी 'योग', में समाधिस्थ कर आख़िर भारत को कहाँ भेजना है? उत्कृष्टता और सार्थकता की चरम सीमा पर, या अकर्मण्यता की गोद में?*

---

* सितम्बर के 'मॉडर्न रिव्यू' के सम्पादकीय स्तम्भों में मि० चैनिंग के संस्मरणों का ज़िक्र आया है। भारत को उसके अध्यात्मवाद की प्रशंसा में गुम करके ब्रिटिश-साम्राज्यवाद के प्रचार

की सम्भाव्य आशंका का उल्लेख करते हुए एक उदाहरण दिया गया है। वह यह कि एक दिन लंदन में पंडित शिवनाथ शास्त्री और मि० स्टेड में बातें हो रही थीं। मि० स्टेड ने शास्त्रीजी से ब्रह्म-समाज की पूजा-पद्धति के सम्बन्ध में जानना चाहा। शास्त्रीजी ने उसकी व्याख्या करनी शुरू की और जब समाधि या ध्यान-मग्न होने का ज़िक्र आया, तो मि० स्टेड एकाएक हँस पड़े। इस बेमौक़े हँसी का कारण पूछने पर मि० स्टेड ने कहा—"यह समझने का प्रयत्न करते हुए कि [आँखें] बंद करके तुम किसका ध्यान करते हो, मुझे ख़याल आया। वह यह कि जब भारत [आँखें] बंद किये ध्यानस्थ था, दीन-दुनिया का उसे [कुछ] पता नहीं था, हम अँगरेज़ों ने आँखें बचाकर [उस] पर क़ब्ज़ा जमा लिया।"

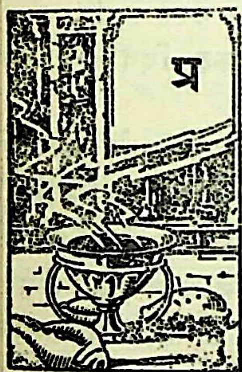
इस उदाहरण के बाद संस्मरणों के 'उपसं[हार]' के तर्कों को साम्राज्यवादी प्रचार की शंका[स्पद] ज़मीन के रूप में पेश किया गया है।—लेखक



कला की रूपरेखा

श्री "निराला"

(सत्य घटना)



प्रयाग में था, लूकरगंज में, पं० वाचस्पति पाठक के यहाँ। 'लीडर-प्रेस' में 'निरुपमा' बेचने गया था। जाड़े के दिन। १६३६ का प्रारम्भ। चाय पीने की लत है। चाय के साथ हिन्दू मिठाई, फल, टोस्ट वग़ैरह खाते हैं, मैं अंडे खाता हूँ—बायल्ड, हाफ़-बायल्ड या पोच, समय रहा तो आमलेट; अंडे बत्तख़ के नहीं, मुर्ग़ी के। पाठक की मा मुर्ग़ी का पर देख लें तो मकान छोड़ दें, लिहाज़ा सुबह उठकर स्टेशन जाता था, एक मुसलमान की दूकान में, पाठक देखते थे, मैं खाता-पीता था।

जाते-आते रास्ते में बातचीत होती थी, तरह-तरह की। पाठक मुझसे ग्यारह-बारह साल छोटे हैं। इस समय, अट्ठाईस और चालीस की पटरी बैठ सकती है, उस समय, जब पाठक पाँच के और मैं सत्रह का था, अवश्य कोई साम्य न रहा होगा। आज इँगलैंड की निगाह में भारत जितना समझदार और शक्तिशाली है, मेरी निगाह में पाठक उतने भी न रहे होंगे; मैं 'जुही की कली' का कवि था और पाठक पहली किताब के पाठक। लेकिन पहलेपहल जब मेरी पाठक से मुलाकात हुई, काशी में,—मैं तीस का और पाठक अट्ठारह के, वह मेरे घनिष्ठ, कवि-प्रिय मित्र होकर मिले। मेरी विशेषता मेरे काशी जाने से पहले पहुँच चुकी थी, इसलिए अपने एक मित्र के यहाँ, जिन्होंने एक वेश्या को पत्नी-रूप से रखकर सामाजिक श्रेय प्राप्त किया है—बड़े भगवद्भक्त हैं, मुझे मछली पकवाकर खिलाई।

एक रोज़, जब लूकरगंज से हम लोग स्टेशन की तरफ़ चले, उन्होंने मुझसे पूछा—"कला क्या है?"

मैंने कहा—"कुछ नहीं।"

पाठक उड़ी निगाह से मुझे देखने लगे। मालूम नहीं, क्या सोचा। मुमकिन, जैसा सब सोचते हैं, उन्होंने भी सोचा हो।

मैंने फिर कहा—"जो अनन्त है, वह गिनी नहीं जा सकती। इसलिए 'कुछ नहीं' कहा। इसका बड़ा अच्छा उदाहरण है। कला उसी तरह की सृष्टि है, जैसे आप सामने देखते हैं, बल्कि यही सृष्टि लिखने की कला की ज़मीन है। अनादिकाल से अब तक सृष्टि को गिनने की कोशिश जारी है, पर अभी तक यह गिनी नहीं जा सकी, अधिकांश में बाक़ी है। यह एक-एक सृष्टि एक-एक कला है। फलतः कला क्या है, यह



बतलाना कठिन है । अद्वैतवाद में, सृष्टि के गिनने की असमर्थता के कारण, सृष्टि का अस्तित्व ही उड़ा दिया गया है । इसलिए कहा, कला कुछ नहीं है । कला के दो-चार, दो-चार सौ, दो-चार हज़ार, दो-चार लाख, दो-चार करोड़ रूप ही बतलाये जा सकते हैं । पर इससे कला पूरी-पूरी न बतलाई गई । पर एक बोध है, उसका स्पष्टीकरण किया जा सकता है, जैसे ब्रह्म के अलग-अलग रूपों की बात नहीं कही गई, केवल 'सच्चिदानन्द' कह दिया गया है । इसी को साहित्यिकों ने 'सत्य, शिव और सुन्दर' कहकर अपनाया है । बोध वह है, जैसी कला हो, उसके विकास-क्रम का वैसा ज्ञान । इसके लिए प्राचीन और नवीन परम्परा भी सहायक है और स्वजातीय और विजातीय ज्ञान के साथ मौलिक अनुभूति और प्रतिभा भी ।"

फिर हिन्दी के भिन्न-भिन्न अङ्गों की बात-चीत होती रही । हिन्दी-भाषियों का मस्तिष्क दुर्बल है, रूढ़िग्रस्त होने के कारण वहाँ नवीन विचार-धारा जल्द नहीं प्रवेश पाती । यद्यपि भारतीय समस्त साहित्य का इतिहास समस्त प्रकार की मौलिकता लिये हुए है, हिन्दी का समाज-संस्कार अनुरूप न होने के कारण उपन्यास उच्चता तक नहीं पहुँच रहे—बहुत जगह भविष्य-समाज की कल्पना कर लिखा जाता है । काव्य, कहानी, प्रबन्ध, नाटक, इन सबका लेखक जो मनुष्य है, वह अनेक रूपों में अभी विकसित नहीं हुआ । बड़ी कमज़ोरियाँ हैं । फलतः साहित्य अभी साहित्य नहीं हो सका । मैं कहता गया, ये सब नाई हैं अपनी बारात में ठाकुर बने हुए । कुछ नाम भी गिनाये, कलकत्ते से लाहौर तक । तब तक स्टेशन आ गया । मेरा मुसलमान दूकानदार आदर की दृष्टि से मुझे देखकर अंडे फोड़ने चला । अंडे उबाले हुए रक्खे थे; मैं बैठ गया, पाठक वहीं दो-चार क़दम इधर-उधर टहलते रहे । कुछ और भी चाय-पीनेवाले मुसलमान सज्जन थे ।

एक दुबले-पतले प्रायः पचास साल के मुसलमान सज्जन ग़ौर से मुझे देखते रहे । उनके के आश्चर्य का मैं चुपचाप आनन्द ले अन्त तक उनसे न रहा गया, पूछा—

"जनाब पंजाबी हैं ?"

मैंने सोचा, जितनी कम मिहनत हो, है; कहा—"जी"

उन्होंने पूछा—"कारोबार करते हैं ?"

मैंने कहा—"जी"

उन्होंने पूछा—"यहीं ?"

मैंने कहा—"नहीं, लखनऊ में ।" मैं प्लेट उठाकर काँटे से खाने लगा । प्रश्नकर्ता अभी पूरी-पूरी दिलजमई न हुई थी ।

पूछा—"काहे का कारोबार करते हैं ?"

मैंने विना विचार किये कह दिया— का ।"

ज्यों मुसलमान सज्जन का आश्चर्य ब ही मैंने भी सोचा, "यार, पंजाब में पैदावार कहाँ होती है, कारख़ाने कहाँ हैं, नहीं मालूम; उधर से पशमीने आते हैं, हूँ; पेशावर, कश्मीर वग़ैरह के पशमीने हैं ।" बदलकर बोला—"लेकिन मैं स्वि से रेशम मँगाता हूँ ।" सोचा—"स्वीज़रलैंड सुन्दर देश है, वहाँ रेशम ज़रूर बनता और न भी बनता हो तो क्या ?—मियाँ खाल से मालूम देते हैं, उन्होंने स्वीज़रलैंड नाम पहले-पहल सुना है ।" कहकर मैं भाव से अंडे खाने लगा ।

"जनाब का इस्मशरीफ़ ?"

एक बार इस 'इस्मशरीफ़' शब्द धोखा खाया था; सोचा था, यह 'दौलत का पर्यायवाची है, लेकिन जैसा धोखा मैंने जवाब सुनकर वैसा ही पूछनेवाले ने । मैं संस्कृत में दिये स्थान-परिचय को उन्होंने परिचय समझा । तब मैं मेदिनीपुर में रहता जानता था, 'पुर' कहूँगा तो मेरी संशय में न रहेंगे । कहा—'मेदिनीदत्त'



'जुम्मारमल' की तरह का एक नाम यह भी होगा, सोच लिया।

इस बार जल्दी-जल्दी मुसलमानी नाम याद करने लगा तो एक भी नाम न आया। पेट में, 'महम्मद-महम्मद' हो रहा था, लेकिन कहने की हिम्मत नहीं पड़ती थी; बङ्किमचन्द्र की याद आई, उन्होंने अपने एक हिन्दू-पात्र से 'महम्मद' के नाम एक प्रेम-पत्रिका शाही कैम्प में भिजवाई है, इस निश्चय से कि इस नाम का कोई सैनिक अवश्य होगा। वहाँ कई महम्मद निकले, एक दूसरे से लड़ने लगे। नाम बताने में ज़रा भी देर शङ्का पैदा करती है। मुझे नाम तो न याद आया, पर समझ ने साथ न छोड़ा।—मुँह का अंडा निगला जा चुका था, पर मैं मुसलमान सज्जन की ओर मुँह किये विराट् रूप से मुँह चलाये जा रहा था, सिर हिलाता हुआ उन्हें आश्वासन दे रहा था कि ज़रा देर ठहर जाइए। फिर भी नाम न आया। अन्त में बड़ी मुश्किल से एक शब्द याद आया। पर वैसा नाम मैंने स्वयम् कभी नहीं सुना। उधर मियाँ का धैर्य छुट रहा था—मेरी पागुर बन्द नहीं हो रही थी।

मैंने कहा—"जनाब, मुझे वकूफ़हुसेन कहते हैं।" मियाँ उसे और मुलायम करके बोले—"वकूफ़हुसेन ?"

मैंने कहा—"जी"

मियाँ बढ़े। मैंने चाय पीना शुरू किया। पाठक पीछे थे। शायद सामने से ज़्यादा हँसी आती थी।

जब चाय पीकर दाम देकर चला, तब, रास्ते में, पाठक ने मुझसे कहा—"आपने 'वकूफ़' शब्द में एक अक्षर छोड़ क्यों दिया ?"

मैंने बैसवाड़ी में कहा—"तुम थे, इसलिए।"

अभी हम लोगों ने स्टेशन का अहाता पार नहीं किया था। अहाते में मदरासियों का एक दल बैठा हुआ देख पड़ा। मैंने सोचा, शायद ये लोग कुम्भ नहाने आये थे। इतने ही में कि उनमें से एक आदमी, उम्र पैंतालीस के लगभग, भौंरे का रंग, खासा मोटा-तगड़ा, एक लँगोटी से किसी तरह लाज बचाये हुए, उतने जाड़े में नंगा बदन, दौड़ा हुआ मेरे पास आया और एक साँस में इतना कह गया कि मैं कुछ भी न समझा। मैंने फिर पूछा। टूटी-फूटी हिन्दी में पूरे उच्छ्वास से वह फिर कहने लगा। इस बार मतलब मेरी समझ में आया। वह यात्री है, मदरास का रहनेवाला, कुम्भ नहाने आया था, यहाँ चोर उसके कपड़े-लत्ते, माल-असबाब उठा ले गये, गठरियों में ही रुपये पैसे थे, अब वह (अपने आदमियों के साथ) हर तरह लाचार है, दिन तो किसी तरह धूप खाकर भीख माँगकर पार कर देता है, पर रात नहीं काटे कटती। जाड़ा लगता है। वह एक दृष्टि से मेरा मोटा खद्दर का चादरा देख रहा था। मैं विचार न कर सका, उतारकर दे दिया। वह मारे आनन्द के दौड़ा हुआ अपने साथियों के पास गया और इस महादान की तारीफ़ करने लगा मेरी तरफ़ उँगली उठाकर बतलाता हुआ।

पाठक संसार के चक्रान्त की बातें सोच रहे थे—देश दुर्दशाग्रस्त है, इसलिए कितने चक्कर रोज़ देशवासियों को खाने पड़ते हैं—कितने लोग उन्हें छलते रहते हैं—कितने प्रकार प्रचलित हैं। मुझसे बोले—"आख़िर आपने अपना बतलाया नाम यहाँ सार्थक कर दिया न ?—यह अभी दोपहर को, गुदड़ीबाज़ार में, चार आने में, यह चादरा बेचेगा।"

मैंने कहा—"धोखा भी हो सकता है और इसकी बात भी सच हो सकती है। यह मदरास से यह सोचकर तो चला नहीं होगा कि गुदड़ी-बाज़ार में कपड़ा बेचेगा!"

पाठक अप्रसन्न होकर बोले—"मैं आपके देने का विरोध नहीं करता, लेकिन—"

मेरे पास कपड़े कम रहते हैं, कम थे, लेकिन के बाद वह इसी भाव की पूर्ति करना चाहते थे, पर रुक गये।



हम लोग लूकरगंज आये। धीरे-धीरे दो महीने बीते। लखनऊ कांग्रेस के समय सत्ताइस मार्च को वह मेरे साथ लखनऊ आये और मेरे मकान में ठहरे। धीरे-धीरे कांग्रेस का समय आया। उनके दो मित्र, जो मेरे भी मित्र हैं, आकर ठहरे। जहाँ तक विना टिकट के देखा जा सकता था, मैंने घूम-फिरकर कई रोज़ देखा। दो-तीन रुपये प्रदर्शिनी देखने और महात्माजी के व्याख्यान सुनने में ख़र्च किये। प्रदर्शिनी के कवि-सम्मेलन में नहीं जाता, यहाँ भी नहीं गया। जो कुछ हुआ, सम्वाद मालूम कर लिया। सब्जेक्ट-कमेटी की बैठकें देखने की इच्छा थी, पर वह दृश्य अप्सराओं के नृत्य देखने से भी महँगा था। पाठक बोले—"मेरा पास लेकर देख आइए।" मैंने कहा—"वहाँ बहुत-से लोग होंगे, जो मुझे पहचानते होंगे। फिर प्रेस-रिपोर्टरों की जगह मुझे कोई अपने पास से भी कुछ देकर बैठने के लिए कहे तो मैं न बैठूँ।"

पाठक लड़ने लगे, बोले—"वह सबसे बढ़िया जगह होती है।"

मैंने कहा—"होगी। मैं न जाऊँगा।"

कांग्रेस शुरू हुई। पहले दिन मैं न गया। आगे भी जाने का विचार न था। कारण, प्रेस-रिपोर्टर की हैसियत से जाना मुझे पसन्द न था, और तीन दिन तक दाम ख़र्च कर जाने में अड़चन थी। प्रयाग से ढाई सौ रुपये ले आया था। प्रायः सब ख़र्च हो चुका था, कई महीने के बाक़ी मकान-किराये और भोजन के ख़र्च में।

दूसरे दिन जब कांग्रेस की बैठक शुरू होने को हुई, मेरे मकान से लोग चलने को हुए तो मैं सोने का सुबीता करने लगा।

जो मारवाड़ी सज्जन आये हुए थे, उन्होंने कहा—"निरालाजी, मैं कई दिनों से देख रहा हूँ, आप सोते बहुत हैं।"

मैंने कहा—"हाँ, यह तो है, पर जब जगता हूँ, तब पन्द्रह-पन्द्रह रात लगातार नहीं सोता।"

मारवाड़ी सज्जन हँसे। बोले—"चलिए।"

मैं बड़े संकट में पड़ा, कैसे कहूँ मेरे पा[illegible] की कमी है। कहा—"कांग्रेस में बड़ी गरम[illegible]

"हाँ, पर हवा अच्छी चलती है।" मा[illegible] सज्जन बड़े मज़ेदार आदमी मालूम दिये। [illegible] उत्तर पर मुसकिरा रहा था, तब तक एक [illegible] रुपये का टिकट निकालकर उन्होंने कहा—[illegible] टिकट आपके लिए है।"

मैं चला। मैं और मारवाड़ी सज्जन [illegible] जगह पर थे। वह जगह कुछ ऊँची थी। [illegible] पर बड़े-बड़े नेता और नेत्रियाँ। देखा, [illegible] छोटी मेज़ के पीछे प्रेस-रिपोर्टर बैठे [illegible] दुलारेलाल भार्गव, ठाकुर श्रीनाथसिंह आदि [illegible] परिचित-अपरिचित। श्रीमती कमलाचट्टो[illegible] को मैं ग़ौर से देख रहा था। उन्हें पहले ही [illegible] देखा था। कभी-कभी श्रीमती सरोजिनी [illegible] से बातें करती थीं, उठकर उनके पास [illegible] रह-रहकर उस समर्पण की याद आ रही [illegible] मिस्टर चट्टोपाध्याय ने अपने एक अँगरेज़ी [illegible] संग्रह का किया है, इस तरह का—To [illegible] first sunshine of my life (मेरे जीवन की [illegible] सूर्य-किरण "क" को)। फिर इस राज[illegible] जीवन के घोर परिवर्तन पर सोच रहा था [illegible] दोनों एक दूसरे के काव्य के विषय [illegible] जीवन के अन्तरंग नहीं, स्पर्द्धा के [illegible] गये हैं।

शाम को बाहर निकला। एकाएक [illegible] आवाज़ आई। देखा, एक स्वयंसेवक [illegible] रहा है, स्वयंसेवक की वर्दी पहने हुए। मुझे [illegible] दोनों हाथ उठाकर फिर उसने हर्षध्वनि की [illegible] ऐसा मालूम देने लगा जैसे उसे स्वप्न में [illegible] हो। मुझे पहचानता हुआ न जानकर [illegible] आनन्दपूर्ण लड़खड़ाती हिन्दी में कहा—[illegible] हूँ, जिसे आपने चादरा दिया था।"

मुझे कला का जीवित रूप जैसे मिला। [illegible] आँखों से देखता हुआ मैं तत्काल कुछ [illegible] सका। संयत होकर बोला—"आप कांग्रेस [illegible]

गये, अच्छा हुआ।" उसने कहा—"फिर मैं वहाँ स्वयंसेवकों में भरती हो गया।"

प्रसन्न-चित्त बाहर निकलकर मन में मैंने कहा—"पाठक मिलें तो बताऊँ, कैसे गुदड़ी बाज़ार में इसने चादरा बेचा।"

कई दिन हो गये। कांग्रेस ख़त्म हो गई। पाठक वग़ैरह चले गये। मैं शाम को कैसरबाग़ में टहल रहा था कि वह मनुष्य मेरी ओर तेज़क़दम आता देख पड़ा। मैं खड़ा हो गया। मेरे पास आकर उसने कहा—"अब गरमी बहुत पड़ने लगी है। देश जाना चाहता हूँ। रेल का किराया कहाँ मिलेगा? पैदल जाना चाहता हूँ।"

मैंने बीच में बात काटकर कहा—"क्या कांग्रेस के लोग आपकी इतनी-सी मदद नहीं कर दे सकते?"

उसने कहा—"नहीं, कांग्रेस का यह नियम नहीं है। मैं मिला था। मुझे यह उत्तर मिला है। ख़ैर, मैं भीख माँगता-खाता पैदल चला जाऊँगा। पर"—(अपने) पैरों की ओर देखकर कहा—"गरमी बहुत पड़ती है, पैर जल जाते हैं, अगर एक जोड़ी चप्पल आप ले दें।"

मुझ पर जैसे वज्रपात हुआ। मैं लज्जा से वहीं गड़ गया। मेरे पास तब केवल छः पैसे थे। इससे चप्पल नहीं लिये जा सकते। अपने चप्पल देखे, जीर्ण हो गये थे। लज्जित होकर कहा—"आप मुझे क्षमा करें, इस समय मेरे पास पैसे नहीं हैं।"

उसने वीर की तरह मुझे देखा। फिर बड़े भाई की तरह आशीर्वाद दिया और मुस्किराकर अमीनाबाद की ओर चला। मैं खड़ा-खड़ा उसे देखता रहा, जब तक वह दृष्टि से ओझल नहीं हो गया।





पाजी मोरिन

[प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक गाई द मोपासाँ की एक गल्प का अनुवाद]

अनुवादक—श्रीयुत कृष्णमोहन वर्मा, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

(१)



मैंने लावार्व से कहा, "तुमने फिर वही दो शब्द कहे 'पाजी मोरिन'। क्या बात है कि एक बार भी मोरिन का नाम बिना इस उपाधि के नहीं सुन पड़ता ?"

लावार्व ने, जो कौंसिल का मेम्बर है, मेरी ओर अपनी उल्लू की-सी आँखों से घूरकर कहा, "इसका तो यह मतलब है कि तुमने लॉरोशेल में रहते हुए भी मोरिन की कथा नहीं सुनी।"

मुझे कहना पड़ा कि मैंने मोरिन की कथा नहीं सुनी। इस पर लावार्व ने कहना प्रारम्भ किया—

"तुम मोरिन को तो जानते होगे ? तुम्हें याद होगा कि लॉरोशेल के बाड़े में उसकी [illegible] बड़ी-सी दूकान थी।"

"हाँ, अच्छी तरह।"

"अच्छा तो कुछ वर्ष हुए, मोरिन १५ [illegible] लिए जी बहलाने या यों कहिए कि मज़े [illegible] के लिए पेरिस गया; किन्तु बहाना यह [illegible] कि नया सामान लेने जा रहा है। जानते [illegible] कि एक देहाती दूकानदार पर पंद्रह दिन [illegible] में रहने का क्या प्रभाव पड़ता है ? होता [illegible] कि उसका रक्त अत्युष्ण हो जाता है, प्रति[illegible] संध्या समय में नाटक देखना, जहाँ [illegible] वस्त्रों की रगड़ लगती है और निरन्तर [illegible] गुदगुदी उठती रहती है, आदमी पागल-[illegible] जाता है। वहाँ दिखाई देती हैं केवल शरी[illegible] चिपके हुए वस्त्र पहने नर्तकियाँ, अर्ध-नग्न [illegible] सुडौल पिण्डलियाँ, खुले हुए कंधे। ऐसा [illegible] होता है कि यह सब दर्शक की पहुँच के [illegible]



हैं; परन्तु वास्तव में वह छू भी नहीं सकता ; न छूने का साहस ही कर सकता है। जब मनुष्य पेरिस से बिदा होता है तो उसके हृदय में खलबली मची रहती है और उसका मस्तिष्क उसकी अपूर्व इच्छाओं का शिकार बना होता है।

"जब रात के नौ बजे की गाड़ी से मोरिन ने लॉरोशेल का टिकट लिया तो उसकी ऐसी ही अवस्था थी। वह मुसाफ़िरख़ाने के सामने इधर-उधर घूम रहा था कि सहसा एक सुन्दरी युवती से उसका सामना हो गया, जो एक वृद्धा से बिदा ले रही थी। उसका बुर्क़ा उठा हुआ था और मोरिन उसे देखकर प्रसन्नता से गुनगुनाया "कैसी सुन्दरी स्त्री है ?"

"वृद्धा से बिदा लेकर जब वह मुसाफ़िरख़ाने में गई तो मोरिन भी उसके पीछे गया। जब वह प्लेट - फ़ार्म पर गई तो वह भी प्लेट - फ़ार्म पर गया ; वह एक ख़ाली गाड़ी में जा बैठी और मोरिन भी उसी गाड़ी में घुस गया। डाकगाड़ी थी, अतः थोड़े - से ही यात्री थे। एंजिन ने सीटी दी और गाड़ी चल दी। डब्बे में वे दोनों अकेले थे। मोरिन की टकटकी उसी पर लगी थी। उसकी आयु १९, २० वर्ष की जँचती थी, और रंग गोरा, शरीर छरहरा तथा दृष्टि प्रौढ़ थी। उसने कम्बल ओढ़ा और सोने के लिए बेंच पर लेट गई।

"मोरिन ने मन में सोचा, 'यह कौन है ?' सैकड़ों विचार हज़ारों, मनसूबे उसके मस्तिष्क में घूमने लगे। उसने मन में कहा, 'लोग कहते हैं कि रेल में सैकड़ों मौक़े हाथ लगते रहते हैं। कदाचित् मेरे हाथ भी आज कोई मौक़ा लगनेवाला हो ! कौन जाने ? इस प्रकार के सौभाग्य अकस्मात् ही प्राप्त होते हैं और सम्भव है कि मुझे केवल तनिक साहसिक होना पड़े। दान्ते ही का तो कथन है 'दुस्साहस, अधिक दुस्साहस, और सदैव दुस्साहस।' दान्ते का न सही, मिरावो का होगा, पर इससे क्या ? परन्तु मुझमें दुस्साहस नहीं है, यही तो कठिनाई है। हाय ! यदि आदमी केवल दूसरों के मन की बात जान और समझ सकता ! मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि प्रतिदिन मनुष्य अनजाने में न-जाने कितनी अनुकूल संधियों के पास से निकलता रहता है। ज़रा से संकेतमात्र से मुझे मालम हो सकता है कि इसके मन में क्या है ?

"फिर उसने ऐसे उपाय सोचना प्रारम्भ किये, जिनसे उसे सफलता प्राप्त हो सकती थी। उसके हृत्पट पर किसी साहसिक और वीरता-पूर्ण कार्य करने की, अथवा किसी तुच्छ सेवा की इच्छा अंकित हुई और किसी ऐसे मनचले हृदय को लुभानेवाली बातचीत की, जिसके द्वारा वह अपना प्रेम प्रदर्शित कर सके।

"परन्तु उसे बातचीत आरम्भ करने का कोई बहाना न मिला और वह उसके लिए किसी सुयोग की प्रतीक्षा करने लगा। उसका हृदय धड़क रहा था और मन में उथल-पुथल मची हुई थी। रात्रि व्यतीत हो गई तो भी वह सुन्दरी सो रही थी और मोरिन का हृदय अपनी वासना का शिकार बन रहा था। दिन निकला और सूर्य की प्रथम किरण आकाश में दिखलाई दी। जब युवती के मुख पर सूर्य का प्रकाश पड़ा तो वह जाग गई ; उठकर चारो ओर दृष्टि डाली और फिर मोरिन की ओर देखकर मुसकिराई। निश्चय ही यह मुसकिराहट उसी के प्रति थी, शब्द-हीन बुलावा था। यह वही संकेत था, जिसकी मोरिन को प्रतीक्षा थी। जैसे मुसकिराहट कह रही थी "कैसे पाजी गधे हो, जो रात भर मिट्टी के ढेर की भाँति बैठे रहे। मुझे देखो, क्या मैं सुन्दरी नहीं हूँ ? और तुम एक सुन्दरी के साथ अकेले होने पर भी रात भर ऐसे बैठे रहे ! तुमसे अधिक भोंदू और कौन होगा ?

"सुन्दरी अब भी उसकी ओर देखकर मुसकिरा रही थी। अब वह हँसने भी लगी थी और मोरिन उससे कुछ-न-कुछ बातचीत करने का विषय



ढूँढने के प्रयत्न में बौखला गया। परन्तु उसके दिमाग़ में कोई बात नहीं आई। तब कायरों के आवेश में उसने अपने मन में कहा, 'न सही, अब मैं अपने सर्वस्व की बाज़ी लगाये देता हूँ' और अकस्मात् बिना लेशमात्र चेतावनी के वह दोनों हाथ फैलाये, होठ निकाले सुन्दरी की ओर बढ़ा। उसे अपने बाहु-पाश में जकड़कर चुम्बन लेने का प्रयत्न किया।

"वह एकदम चौंककर उछल पड़ी और 'कोई दौड़ना! कोई दौड़ना' कहकर चिल्लाने लगी। मारे भय के उसकी घिग्घी बँध गई। वह गाड़ी का द्वार खोलकर हाथ हिलाने लगी। उसने भयातुर होकर कूदने का प्रयत्न किया। मोरिन का धैर्य छूट गया। उसने उसका साया पकड़ लिया और लड़खड़ाती हुई आवाज़ में 'अजी श्रीमतीजी, अजी श्रीमतीजी' चिल्लाने लगा।

"गाड़ी धीमी पड़ी और रुक गई। दो गार्ड युवती के नैराश्यपूर्ण संकेतों से आकृष्ट होकर उस ओर झपटे। वह कूदकर उनसे लिपट गई और घबराई हुई आवाज़ में बोली, 'यह आदमी मुझे....मुझे....' और मूर्च्छित हो गई।

"गाड़ी मॉझे स्टेशन पर थी और पहरे के सिपाही ने मोरिन को गिरफ़्तार कर लिया। जब युवती होश में आई, उसने मोरिन के विरुद्ध अपना बयान दिया और मोरिन का चालान हो गया। बेचारा बज़ाज़ कहीं रात को घर पहुँचा। परन्तु उसके सिर पर 'सार्वजनिक स्थान में सदाचार के विरुद्ध आचरण करने' का अभियोग झूल रहा था।

(२)

"उस समय मैं एक प्रसिद्ध पत्रिका का संपादक था और प्रतिदिन बाज़ार के भोजनालय में मेरी और उसकी भेंट होती थी। इस घटना के दूसरे दिन वह किंकर्तव्य-विमूढ़-सा मेरे पास आया। मैंने, उसके विषय में मेरी जो धारणा थी, उसको उससे नहीं छिपाया, वरन् उससे साफ़ कह दिया कि 'तुम नितान्त बुद्धि-हीन हो, कोई सम[illegible] ऐसा आचरण नहीं करता।'

"वह रोने लगा। उसकी स्त्री ने उसे [illegible] था। उसे यही दीखता था कि उसका [illegible] चौपट हो जायगा, उसका नाम मिट्टी में [illegible] जायगा, बहुत अपमान होगा और उसके [illegible] तक उसके नाम पर थूकेंगे। मुझे उस पर [illegible] आ गया। मैंने अपने सहकारी, श्रीरि[illegible] बुलाया, जो बड़ा हँसमुख, परन्तु बड़ा बुद्धि[illegible] था, और उसकी सम्मति माँगी।

"उसने मुझे सरकारी वकील से मिलने [illegible] सलाह दी। वकील मेरा मित्र था, अतः मैं[illegible] को उसके घर भेजकर सरकारी वकील से मि[illegible] उससे मालूम हुआ कि जिस युवती को छेड़ा [illegible] था, उसका नाम श्रीमती हेनरियेट बोन्ने[illegible] वह अभी पेरिस से अध्यापिका का सार्टि[illegible] लेकर अपने फूफा-फूफी के पास, जो मा[illegible] माननीय व्यापारी थे, छुट्टियाँ व्यतीत [illegible] लिए आई थी। मोरिन का अभियोग [illegible] और भी जटिल हो गया था कि युवती [illegible] ने भी इस्तग़ासा दायर कर दिया था। [illegible] वकील इस बात पर सहमत हो गया कि [illegible] यह इस्तग़ासा वापिस ले लिया जाय तो [illegible] दबा दिया जायगा। इसलिए अब हमें प्र[illegible] करना था कि इस्तग़ासा वापिस कराया जाये।

"मैं मोरिन के घर लौटकर गया। वह [illegible] था; क्योंकि दुःख और बेचैनी ने उसे रोगी [illegible] दिया था। उसकी स्त्री, एक ऊँची पूरी कुरूपा [illegible] उसे बार-बार गालियाँ दे रही थी। मैं [illegible] तो वह मुझे मोरिन के कमरे तक पहुँ[illegible] बोली, 'आप इस पाजी मोरिन से मिलने [illegible] हैं; लीजिए यह पड़ा है।' वह दोनों हाथ [illegible] पर रखकर बिछौने के पास खड़ी हो गई। [illegible] मोरिन को मामले का हाल बताया। उसने [illegible] लड़की के फूफा-फूफी से जाकर मिलने की [illegible] की। मामला नाज़ुक था; परन्तु मैंने जाना [illegible]



कर लिया। उस बेचारे ने इस बात को बार-बार दोहराया "मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने उसका चुम्बन तक नहीं लिया; एक भी नहीं, मैं सौगंद खाता हूँ।

"मैंने उत्तर दिया, 'एक ही बात है, तुम बड़े पाजी हो।' और मैं एक हज़ार फ़्रैंक उससे लेकर चल दिया, जो उसने मुझे मेरी इच्छानुसार व्यय करने के लिए दिये थे। परन्तु मेरा साहस युवती के फूफा के पास अकेले जाने का न पड़ता था, अतः मैंने रिवे से साथ चलने की प्रार्थना की, जो उसने इस शर्त पर स्वीकार की कि वहाँ उसी समय चला जाय; क्योंकि उसे शाम को लॉरोशेल में कुछ आवश्यक काम था।। दो घंटे बाद हमने उस सुन्दर देहाती घर का द्वार जा खटखटाया। एक मोहिनी युवती ने आकर द्वार खोला। निःसंदेह यह वही युवती थी, जिसका कि मामला था। मैंने धीरे से रिवे से कहा, 'यदि मोरिन ने इसके साथ ऐसा व्यवहार किया तो कुछ आश्चर्य नहीं है।'

"लड़की का फूफा, मोशिये तान्नोले, मेरे पत्र का ग्राहक और हमारा पक्का राजनीतिक सहधर्मी था। उसने बड़ी आवभगत से हमारा स्वागत किया; हमें बधाई दी और हमारी शुभचिन्तना की। अपने घर पर दो-दो सम्पादकों का स्वागत कर सकने का सौभाग्य प्राप्त करके वह बड़ा प्रसन्न हुआ। रिवे ने मेरे कान में कहा, 'मालूम होता है कि पाजी मोरिन का मामला सुलझाने में हम सफल होंगे।'

"भतीजी कमरे के बाहर चली गई थी, अतः मैंने उस नाज़ुक मामले की बात उठाई। मामला चलने पर उसकी कितनी बदनामी होगी, इसका मैंने बड़ा भयानक चित्र उसके सामने खींच दिया। मैंने ख़ूब बढ़ाकर बतलाया कि इससे युवती का घोर अपमान होगा; क्योंकि कोई भी इस बात पर विश्वास नहीं करेगा कि बात केवल एक चुम्बन पर ही समाप्त हो गई होगी। मेरी इन बातों से वह भद्र पुरुष प्रभावित हुआ-सा प्रतीत हुआ। परन्तु बिना अपनी स्त्री की सम्मति लिये इस मामले में कोई अंतिम निश्चय नहीं करना चाहता था, जो कहीं बाहर गई हुई थी और रात्रि को लौटनेवाली थी। सहसा उसने कहा 'मैंने एक बड़ी अच्छी बात सोची है। आप लोग यहीं भोजन और शयन कीजिए और जब मेरी पत्नी लौट आवेगी तो मुझे आशा है कि हम इस मामले का संतोषजनक निपटारा कर सकेंगे।'

"रिवे ने पहले तो आना-कानी की; परन्तु मोरिन का संकट दूर करने की इच्छा ने उस पर विजय पाई और हमने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। फूफा को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपनी भतीजी को बुलाया और बाग़ में टहलने का प्रस्ताव करते हुए कहा 'गंभीर विषयों पर विचार हमें सुबह तक स्थगित रखना चाहिए।' रिवे और वह राजनीतिक विषयों पर बातें करने लगे और मैं युवती के साथ पीछे रह गया। वह वास्तव में सुन्दरी थी। मैंने बड़ी सतर्कता से उस घटना पर उससे बातचीत प्रारम्भ की; क्योंकि उसे मैं अपने पक्ष में करना चाहता था। इससे उसे तनिक भी हिचकिचाहट नहीं मालूम हुई और वह मेरी बातों को बड़े चाव से सुनने लगी।

"मैंने उससे कहा, 'श्रीमतीजी, सोचिए तो इससे आपको कितना दुःख होगा. आपको अदालत में जाना पड़ेगा, द्वेषियों की दृष्टि का सामना करना पड़ेगा और सबके सामने उस रेलवाली लज्जाजनक दुर्घटना का ब्योरेवार वर्णन करना पड़ेगा। अच्छा सच बताइए, क्या यह अच्छा नहीं होता कि आप उस बदमाश को बिना सहायता के लिए पुकारे ही उसकी जगह पर ढकेल देतीं?'

"वह हँसने लगी और बोली, 'आपका कहना ठीक है; परन्तु मैं करती क्या? मैं डर गई थी और जब मनुष्य डर जाता है तो उसकी विवेचना-शक्ति लुप्त हो जाती है। जैसे ही मैंने घटना पर विचार किया तो मुझे बड़ा खेद हुआ कि मैंने क्यों सहा-



यता के लिए पुकारा, किन्तु फिर हो ही क्या सकता था। आपको यह भी सोचना चाहिए कि वह मूर्ख विना एक शब्द भी बोले मेरे ऊपर पागल की भाँति झपट पड़ा और देखने में भी मुझे पागल-सा प्रतीत हुआ। मैं तो यह भी न समझ सकी कि आख़िर वह मुझसे चाहता क्या था?

"वह विना किसी झिझक के मुझसे आँख मिला रही थी। मैंने अपने मन में कहा, 'यह विचित्र लड़की है।' अब मेरी समझ में ख़ूब आ गया कि मोरिन वह भूल कैसे कर बैठा? मैंने उससे मज़ाक़ के ढंग से कहा, 'देखिए श्रीमतीजी, यह तो आपको स्वीकार करना पड़ेगा कि उसका आचरण क्षम्य है; क्योंकि यह तो सम्भव ही नहीं कि कोई पुरुष आप-जैसी मोहिनी युवती के सम्मुख बैठा रहे और उसमें चुम्बन लेने की प्राकृतिक इच्छा उत्पन्न न हो?'

"अबकी वह बड़े ज़ोर से, दाँत निकालकर, हँसी और कहा—'श्रीमान्! इच्छा और कार्य इन दोनों के बीच में मर्यादा का भी तो स्थान है।' बड़ी गुत्थीदार बात थी, यद्यपि यकायक समझ में नहीं आती थी। अकस्मात् मैंने उससे पूछा, 'अच्छा अब मान लीजिए कि मैं आपका चुम्बन ले लूँ तो आप क्या करेंगी?' वह खड़ी हो गई, मुझे सिर से पैर तक ध्यान से देखा और बड़ी गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया, 'आप? वह बात ही दूसरी है।'

"मैं अच्छी तरह जानता था कि बात वास्तव में दूसरी है; क्योंकि आस-पास के लोग मुझे 'सुन्दर सावार्व' कहा करते थे। मेरी आयु उस समय ३० वर्ष की थी। तथापि मैंने उससे पूछा, 'वह बात दूसरी क्यों है?' उसने अपने कंधे विचकाकर उत्तर दिया, 'इसलिए कि आप उसके समान मूर्ख नहीं हैं।' और फिर कनखियों से मेरी ओर देखकर कहा, 'और न आप उतने कुरूप हैं।' और इससे पूर्व कि मुझसे बचने के लिए हट सके, मैंने उसके कपोलों पर एक गाढ़ चुम्बन अंकित कर दिया। वह एक ओर को ... गई; परन्तु अब बचना निरर्थक था। उसने ... 'और न आप उतने शर्मीले ही हैं; पर ... फिर ऐसा न कीजिएगा।'

"मैंने अपने मुख पर बड़ा दीन भाव ... धीमे स्वर से कहा, 'श्रीमतीजी, मेरी तो ... बलवती इच्छा यह है कि मुझे भी उसी ... में अदालत के सम्मुख उपस्थित होना पड़े, ... कि मोरिन फँसा है।'

"क्यों?" उसने पूछा। मैंने उसके ... आँखें गड़ाकर उत्तर दिया, 'क्योंकि आप ... की असाधारण सुन्दरियों में से हैं और मैं ... साथ बरजोरी करना चाहता था। इस ... से मेरी प्रतिष्ठा और ख्याति बढ़ेगी; क्यों ... आपको देखेगा वह यही कहेगा कि 'सा ... जो दण्ड मिला है वह ठीक ही है। परन्तु ... साथ ही वह भाग्यशाली भी बड़ा है।'

"वह पुनः ज़ोर से हँसी और बोली ... बड़े मज़े के आदमी हैं।' वह 'मज़े' के ... समाप्त भी न कर पाई थी कि उसके ... मैंने उसे अपने बाहुपाश में जकड़ लिया ... गाढ़ालिङ्गन करके, बड़ी उत्तेजना के सा ... उसके मस्तक पर, आँखों पर, कभी-कभी ... पर, केशों पर, कपोलों पर, जहाँ कहीं भी ... मिला, सहस्रों चुम्बन अंकित कर दिये। ... एक अङ्ग को छिपाने के प्रयत्न में दूसरा ... अरक्षित रह ही जाता था; परन्तु अंत में ... अपने आपको छुड़ा ही लिया। उसने ... क्रोध से कहा, 'श्रीमान्, आप बड़े ... हैं; मुझे दुःख है कि मैंने आपकी ... ध्यान दिया।'

"मैंने हकबकाकर उसका हाथ पकड़ा ... और घबराकर कहा, 'मैं आपसे क्षमा ... श्रीमतीजी, मुझे क्षमा कीजिए, मैंने आपके ... कर दिया, मैंने आपसे दुष्टतापूर्वक व्यवहार ... है। मैंने जो कुछ भी किया है, उसके लि...



मुझसे रुष्ट न हों, श्रीमतीजी यदि आपको ज्ञात होता कि'........मैं कोई बहाना ढूँढ़ने का प्रयत्न करने लगा; और कुछ ही क्षण बाद वह बोली, 'श्रीमान्, मुझे कुछ जानने की इच्छा नहीं है।' परन्तु इसी बीच में मुझे कुछ कहने को मिल गया और मैंने कहा, 'मैं आपसे प्रेम करता हूँ।'

"मेरी इस बात से सचमुच उसे आश्चर्य हुआ और उसने अपनी दृष्टि, मेरी ओर देखने के लिए, ऊपर उठाई; परन्तु मैं कहता ही गया—'हाँ श्रीमतीजी, कृपा कर आप मेरी बात सुनें। मैं मोरिन को नहीं जानता और न मुझे उसकी परवा है। न मुझे इसकी परवा है कि उस पर मुक़दमा चलता है या वह हवालात में पड़ा है। मैंने गत वर्ष आपको यहाँ देखा था और मेरा हृदय आपकी ओर ऐसा आकर्षित हुआ कि तब से मैं आपको एक क्षण के लिए भी नहीं भूल सका। और मुझे यह भी चिन्ता नहीं है कि आप मेरी बातों पर विश्वास करती हैं या नहीं। मेरे हृदय पर आपका इतना प्रभाव पड़ा और आपकी स्मृति ने मुझे ऐसा पाशबद्ध कर लिया कि तब से मैं आपके पुनः दर्शन के लिए लालायित था और इसीलिए मैंने मोरिन के मामले का बहाना निकालकर यह अवसर प्राप्त किया है और मैं आपके सामने उपस्थित हूँ। घटनाओं के तारतम्य ने मुझे मर्यादा की सीमा उल्लंघन करने के लिए विवश कर दिया और अब मैं आपसे केवल क्षमा का प्रार्थी हूँ।'

"उसने यह जानने के लिए कि मेरा कथन सत्य है या नहीं, मेरी ओर देखा और मुस्कराई। फिर वह बोली, 'वृथा, कहिए मत।' परन्तु मैंने अपना हाथ उठाकर सत्यतापूर्ण आवाज़ में कहा (और मैं सचमुच विश्वास करता हूँ कि मैं सत्य कह रहा था) 'मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैंने केवल सत्य ही कहा है।' उसने बिलकुल सिधाई से उत्तर दिया, 'निरर्थक बातें न बनाइए।'

"हम अकेले थे, बिलकुल अकेले थे; क्योंकि रिवे और उसका फूफा दोनों किसी रास्ते से मुड़कर ओझल हो गये थे। तब मैंने उसको अपना प्रणय-निश्चय कह सुनाया। मैं वारम्वार उसके हाथों को दबा और चूम रहा था और वह मेरी बातों को ऐसे ध्यान से सुन रही थी, मानों कोई नवीन और सुखद वार्ता हो; परन्तु वह नहीं जान सकती थी कि मेरी प्रमादवार्ता का कितना अंश विश्वसनीय था। मैं बहुत ही उत्तेजित होता जा रहा था और अन्त में मुझे स्वतः भी अपनी बातें विश्वसनीय जान पड़ने लगीं। मेरा चेहरा पीला पड़ गया था। मुख पर उत्सुकता के भाव थे और शरीर लड़खड़ा रहा था। मैंने प्रेम से उसकी कमर में हाथ डाला और उसके कान के पास मुख ले जाकर बड़ी नम्रता से बातें करने लगा। वह विचार में ऐसी मग्न थी कि उसे अपनी देह का भी भान न था।

"उसने मेरे हाथ को अपने हाथ में लिया और दबाया। मैंने भी धीरे-धीरे और काँपते हुए उसकी कमर को दबाया और शनैः-शनैः मैं अपने बंधन को दृढ़ करता गया। इससे वह तनिक भी विचलित नहीं हुई और मैंने अपने होंठ उसके कपोलों पर जमा दिये और अनजाने ही मेरे होंठ उसके होठों से जा मिले। हमारा यह प्रेमाभिनय बहुत अधिक समय तक जारी रहा। वह और भी अधिक समय तक होता रहता, यदि मुझे अपने पीछे किसी के आने की आहट न मालूम होती, जिसे सुनकर युवती झाड़ियों में होकर निकल गई और मैंने लौटकर रिवे को अपनी ओर आते देखा। उसने बीच रास्ते में खड़े होकर विना मुस्कराये ही कहा, 'अच्छा आप इस तरह उस पाजी मोरिन का मामला निबट रहे हैं।' मैंने अभिप्राय से उत्तर दिया, 'दोस्त, सब अपनी-सी करते हैं; किन्तु फूफा मियाँ का क्या हाल है? तुम्हें उसे ठीक करने में कहाँ तक सफलता मिली? भतीजी का ज़िम्मा मेरा है।' 'मुझे उतनी सफलता नहीं मिली, जितनी तुम्हें' रिवे ने उत्तर दिया।



"मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और हम दोनों भीतर गये।

(३)

"भोजन के समय तो मैं बिलकुल पागल हो गया। मैं उसके बग़ल में बैठा। मेज़ के नीचे मैंने कई बार उसका हाथ पकड़ा, पैर से पैर दबाया और आँखों-आँखों में बातें करते रहे।

"भोजन के बाद हम चाँदनी में घूमने निकले और मैं वह तमाम रसीली बातें उसे सुनाता रहा जो मेरे ध्यान में आईं। मैंने उसे अपने शरीर से सटाकर रक्खा और प्रतिक्षण उसका चुम्बन लेता रहा। उसका फूफा और रिवे हमारे आगे-आगे बातें करते जा रहे थे। वे भीतर चले गये और थोड़ी ही देर बाद उसकी फूफी का तार प्राप्त हुआ कि वह सुबह सात बजे की गाड़ी से पहले घर न पहुँच सकेगी।

"उसके फूफा ने उससे कहा, 'अच्छा, हेनरियेट देखो, दोनों साहबों को उनके सोने के कमरे बता दो।' उसने पहले रिवे को उसका कमरा बतलाया। रिवे ने मेरे कान में कहा, 'यदि वह तुम्हारा कमरा पहले बतला देती तो भी उसकी कोई हानि नहीं थी।' फिर वह मुझे मेरे कमरे में ले गई और जैसे ही मुझे एकान्त मिला, उसकी भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए मैंने उसे हृदय से लगा लिया; परन्तु जब उसे कुछ अनिष्ट की आशंका मालूम हुई तो वह कमरे से भाग गई; और मैं लेट गया। मैं बहुत परेशान और उत्तेजित हो गया था और मुझे अपना आचरण मूर्खतापूर्ण प्रतीत होता था। मैं जानता था कि मुझे नींद तो आयेगी नहीं और मुझे आश्चर्य हो रहा था कि मैं ऐसी भूल कैसे कर बैठा कि इतने में कमरे के द्वार को किसी ने खटखटाया और मेरे यह पूछने पर कि बाहर कौन है एक हलकी-सी आवाज़ आई—'मैं'।

"मैंने जल्दी से कपड़े पहनकर द्वार खोला। वह अन्दर आई और बोली, 'मैं आपसे यह पूछना भूल गई कि सुबह को आप क्या पियेंगे, कहवा?' मैंने अधीर होकर फिर उसे बाहु-पाश में जकड़ लिया और चुम्बनों ने उसे भरते-भरते कहा, 'मैं सुबह को...... को........'

किन्तु उसने अपने-आपको मेरे बाहु मुक्त कर लिया। मेरी बत्ती बुझा दी अँधेरे में अकेला छोड़कर भाग गई। मुझे झुँझलाहट हुई, जब मैंने दियासलाई ढूँढी नहीं मिली। अंत को दियासलाई मि और मैं अपनी मोमबत्ती जलाकर पागल बरामदे में निकल आया।

"मैं क्या करने जा रहा था? मैंने इस पर नहीं किया। मैं केवल उससे मिलना चाह पहले तो मैं कुछ पग विना विचारे चला फिर मैंने सोचा, 'मान लो, यदि मैं उसके कमरे में जा पहुँचा तो क्या कहूँगा?' हो गया। मस्तिष्क में विचारशक्ति नहीं दिल धड़क रहा था। किन्तु थोड़ी ही देर इसका उत्तर सोच लिया 'कह दूँगा कि मैं कमरा ढूँढ़ रहा था; क्योंकि एक महत्वपूर्ण में उससे बात-चीत करना है। फिर मैंने कमरा ढूँढने के लिए एक ओर से सब देखना प्रारम्भ किये और एक में धक्का दे घुसा। हेनरियेट अपने बिछौने पर बैठी थी मेरी ओर देखा। उसकी आँखें सजल थीं दरवाज़े की कुन्डी अन्दर से बन्द कर दबे पैरों उसके पास पहुँचा। मैंने कहा मैं तुमसे कुछ पढ़ने के लिए माँगना भूल गया

(४)

"अँधेरे में मैं छिपकर उसके कमरे से रहा था कि एक सुदृढ़ हाथ ने मुझे पकड़ और एक आवाज़ ने—जो रिवे की थी—मैं में कहा—'तो आप अभी उस पाजी का मामला तय नहीं कर पाये हैं?'



"सुबह सात बजे हेनरियेट स्वयं मेरे लिए चाय लाई। मैंने उससे अच्छी चाय आज तक नहीं पी थी। मैं बड़ी कठिनाई से अपने होठ प्याले से हटा सका। युवती मेरे कमरे से जा रही थी कि रिवे आ गया। वह उस मनुष्य की भाँति, जो रात को सोया न हो, क्षुब्ध प्रतीत होता था। उसने रोषपूर्ण शब्दों में मुझसे कहा, 'यदि आपका यही हाल रहा तो मोरिन का मामला मट्टी हो जायगा।'

"आठ बजे फूफी भी आ गईं। हमारा वार्त्तालाप बहुत संक्षिप्त था। उन लोगों ने अपना इस्तगासा वापिस ले लिया और मैंने ५०० फ़्रैंक उस क़स्बे के मुहताजों की सहायता के लिए उनके पास छोड़ दिये। वे हमें उस दिन और ठहराना चाहते थे और उन्होंने हमें कुछ दृश्य दिखलाने का प्रबन्ध किया था। हेनरियेट ने ठहर जाने के लिए मुझे छिपे-छिपे इशारा किया, अतः मैंने स्वीकार कर लिया। परन्तु रिवे उसी समय लौटने का निश्चय कर चुका था और यद्यपि मैंने उसे अलग ले जाकर विनती और प्रार्थना की कि वह कम से कम मेरी ख़ातिर ठहर जावे, उसने ठहरना स्वीकार न किया और क्रुद्ध होकर बोला, 'मैं पाजी मोरिन के मामले से तंग आ गया हूँ, आया आपके ख़्याल शरीफ़ में ?'

"आख़िरकार मुझे भी मजबूरन जाना पड़ा और वह मेरे जीवन का एक बहुत ही दुःखद क्षण था। मैं तो इस मामले को तय करने में अपना सारा जीवन व्यतीत कर सकता था। मैं जब उस युवती से एकान्त में हाथ मिलाकर, रेल में चढ़ा तो मैंने रिवे से कहा, 'तुम बड़े निर्दयी हो।' उसने उत्तर दिया, 'मेरे प्यारे मित्र, तुम्हारे आचरण से मैं रुष्ट हो चला था।'

"जब हम अपने पत्र के दफ़्तर में पहुँचे तो हमें एक भीड़ की भीड़ प्रतीक्षा करती मिली। जैसे ही हमें देखा, सब एक साथ चिल्लाये, 'क्यों साहब, क्या आप उस पाजी मोरिन का मामला निपटा आये ?' सारे लॉरोशेल में इस मुक़दमे ने सनसनी फैला रक्खी थी, अतः रिवे ने, जिसका मिज़ाज अब शान्त हो गया था, बड़ी कठिनता से अपनी हँसी रोककर कहा, 'सावार्व को धन्यवाद है कि जिनके कारण यह मामला निबट गया।' वहाँ से हम मोरिन के घर गये।'

"वह आरामकुर्सी पर बैठा था। टाँगों पर अलसी की पुलटिस और सिर पर ठंडे पानी की पट्टी बँधी थी और दुःख से अधमरा हो रहा था। उसे मृत्यु के मुख में पड़े मनुष्य की भाँति हल्की खाँसी आ रही थी; किन्तु कोई न जानता था कि उसे खाँसी कैसे हो गई। उसकी स्त्री उसकी ओर भूखी सिंहिनी की नाईं ताक रही थी। जैसे ही उसने हमें देखा, वह इतने ज़ोर से काँपा कि उसके घुटने और कोहनियाँ हिलने लगीं, अतः मैंने उससे झटपट कह दिया, 'सब मामला निबट गया; परन्तु अब फिर ऐसा काम न करना।'

"वह निःश्वास-सा होकर उठा और मेरे हाथों को इस तरह चूमा, जैसे मैं कोई तिलकधारी राजा होऊँ। रिवे से गले मिला और अपनी स्त्री को भी प्यार किया; किन्तु उसने उसे एक ऐसा धक्का दिया कि वह लड़खड़ाकर अपनी कुर्सी पर जा गिरा। इस दुर्घटना से उसके हृदय पर ऐसी चोट लगी कि वह फिर न चेता। इसके अतिरिक्त आस-पास के समस्त प्रदेश में उसका नाम ही 'पाजी मोरिन' प्रसिद्ध हो गया। जब वह इस नाम से अपने-आपको पुकारे जाते हुए सुनता था तो उसके कलेजे में बर्छी-सी चुभती थी। जब सड़क पर कोई लड़का उसकी तरफ़ को पुकारकर कहता 'पाजी' तो वह आप ही उधर देखने लगता। उसके मित्र भी इस घटना को लेकर उससे घृणित हँसी करने लगे। दो वर्ष बाद वह मर गया।

"बारह वर्ष बाद जब मैं कौंसिल की मेम्बरी के लिए उम्मीदवार हुआ, मैं तुसरे के एक वकील श्रीमान् वैलादिल से वोट माँगने गया। वहाँ एक लम्बी, सुन्दर, स्वस्थ, रमणी ने मेरा स्वागत किया। उसने कहा, 'आपने मुझे नहीं पहचाना ?'

और मैंने उत्तर दिया, 'नहीं श्रीमतीजी' 'मेरा नाम हेनरियेट वोनेल है' यह सुनते ही मेरा चेहरा पीला पड़ गया, परन्तु उस पर इसका कोई असर नहीं पड़ा और मेरी ओर देखकर मुस्कराती रही।

"उसके जाने पर जब मैं उसके पति के साथ अकेला रह गया, उसके पति ने मुझसे बड़े तपाक से हाथ मिलाया और बोला, 'श्रीमान् मैंने कई बार इरादा किया कि मैं आपसे जाकर मिलूँ; क्योंकि मेरी स्त्री ने कई बार आपकी प्रशंसा की है। मैं जानता हूँ कि उससे आपका साक्षात् कैसी विकट परिस्थिति में हुआ था और मैं यह भी जानता हूँ कि आपने कितनी तत्परता, बुद्धिमानी, लगन और सुन्दरता से उस……' वह थोड़ा रुका और फिर धीरे से मानो कोई कठोर बात कह रहा हो, बोला "पाजी मोरिन के मामले को निबटाया।"

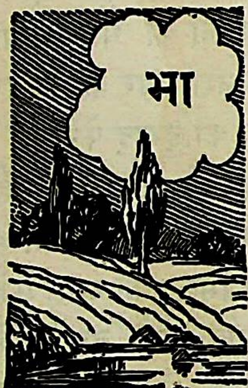
बुझता हुआ दीपक

श्रीरामाधार त्रिपाठी 'जीवन'

यह दिनों का दुखद फेरा !
कुछ क्षणों की बात है मुद मान मुसकाता रहा मैं
वर विभा के विभव पर आता रहा जाता रहा मैं
भूल से आँखें दिखाते देख जब पाता रहा मैं
इस प्रपंची विश्व को बस राह दिखलाता रहा मैं
आज अपने ही दृगों के सामने छाया अँधेरा
यह दिनों का दुखद फेरा !
पास मेरे प्रेम से प्रेमी महान् पतंग आया
गर्व से मैंने उसे तव रूप ज्वाला में जलाया
देख ले दुनिया दुखों का दृश्य दुष्कृति ने दिखाया
शीश पर कुत्सित कलंकित कालिमा की छाप-छाया
वह मरा मुझ पर मगर मैंने न उसकी ओर हेरा
यह दिनों का दुखद फेरा !
वह बने सोना हमारे प्रेम में जल राख होकर
सिद्ध होकर के रहे प्रिय प्रेमियों की साख होकर
आँख में जग की समाये क्यों न जग की आँख होकर
शीघ्र आये सामने फिर एक से वह लाख होकर
यह हमारी आज की संध्या बने उसका सबेरा
यह दिनों का दुखद फेरा !
देख मुझको आह तारकवृन्द आकुल हो रहे क्यों
वेदना के बीज मेरे हृदय-स्थल में बो रहे क्यों
म्लान होकर शोक-संकुल मुँह छिपाते रो रहे क्यों
आँसुओं से धूलिमय अंचल धरा का धो रहे क्यों
है झलकता झिलमिलाते तारकों में मौन मेरा
यह दिनों का दुखद फेरा !
देखते ही देखते सर का सुनहला ताज जाये
ज्योति, जागृति ओज आभा पुंज अपना राज जाये
साथ प्रेमी को लिये वह प्रेम का सुख साज जाये
इस तरह यक एक करके आह सब कुछ आज जाये
और मैं जीवित रहूँ दुर्दैव ! कैसा चक्र तेरा ?
यह दिनों का दुखद फेरा !
रह सका कोई कहाँ जब जो वहाँ से जीव आया
कौन है ऐसा सुखी जिसको नहीं दुख ने दबाया
पतन में उत्थान सीमित रुदन में है हास्य-छाया
प्रेम को भी तो फँसाये है घृणा की घोर माया
यह जगत् इस प्राण-पक्षी के निशा भर का बसेरा
यह दिनों का दुखद फेरा !
मान मेरा मोदमय इस विश्व के उपहास में है
जिन्दगी का रूप सीमित एक टूटी साँस में है
चिर विरह का शेष पल प्रिय के मिलन की आश में है
लीन मेरा आज सब कुछ आह ! मेरे नाश में है
वह प्रबल उत्थान यह पूरे पतन का घोर घेरा
यह दिनों का दुखद फेरा !
मृत्तिका के देह से क्या लाभ स्नेहविहीन होकर
व्यर्थ जीवन भार जग का क्यों बनाऊँ दीन होकर
दिन गये सुख के सभी वे आज तेरह तीन होकर
सो रहा हूँ मृत्यु के अब अंक में आसीन होकर
सुप्त जग को जब जगाने आ रहा सुन्दर सबेरा
यह दिनों का दुखद फेरा !
चेतना से शून्य सबके प्राण ये निस्पंद होते
तो कहीं क्योंकर किसी से कर्म कुत्सित मंद होते
दृष्टिगत दो प्रेमियों के बीच क्यों छलछंद होते
जो सभी के साथ मेरे दृग इसी बिधि बंद होते
देख सकता मैं न जग को देखता जग मुँह न मेरा
यह दिनों का दुखद फेरा !

साम्यवाद और वर्ण-भेद

श्री० सन्तराम बी० ए०



रत का साम्यवादी दल वर्ण-भेद को मिटाकर सामाजिक सभ्यता लाने के बजाय सारा बल आर्थिक समता पर ही दे रहा है । वह सामाजिक अवस्था से उत्पन्न होनेवाली समस्याओं की उपेक्षा करना चाहता है । पर क्या ऐसा करना उसके लिए संभव है ? भारत के साम्यवादी, योरप के साम्यवादियों के अनुकरण में, इतिहास का आर्थिक अर्थ भारत की अवस्थाओं पर लागू करने का यत्न कर रहे हैं । वे कहते हैं कि मनुष्य एक आर्थिक प्राणी है, उसकी चेष्टाएँ और आकांक्षाएँ आर्थिक तथ्यों से बँधी हुई हैं । उनके मत से सम्पत्ति ही एकमात्र शक्ति है । इसलिए वे प्रचार करते हैं कि राजनीतिक और सामाजिक सुधार भारी भ्रममात्र हैं, और किसी भी दूसरे सुधार के पूर्व साम्पत्तिक समता द्वारा आर्थिक सुधार का होना परमावश्यक है । जिन बातों का आधार लेकर साम्यवादी लोग कहते हैं कि किसी भी प्रकार के दूसरे सुधार के पूर्व आर्थिक सुधार होना आवश्यक है, उनमें से प्रत्येक का खण्डन किया जा सकता है । क्या एकमात्र आर्थिक उद्देश्य से ही मनुष्य सब काम करता है ? साम्पत्तिक शक्ति ही एकमात्र श[illegible] इस बात को मानव-समाज का अध्ययन कर[illegible] कोई भी मनुष्य मानने को तैयार नहीं ।[illegible] महात्माओं का सर्वसाधारण पर जो शासन [illegible] है, वह इस बात को स्पष्ट कर देता है कि [illegible] की सामाजिक स्थिति भी बहुधा शक्ति [illegible] अधिकार का कारण बन जाती है । भा[illegible] करोड़ों लोग कङ्गाल साधुओं और फ़क़ीरों [illegible] आज्ञा क्यों मानते हैं ? भारत के करोड़ों [illegible] अपना अँगूठी-छल्ला बेचकर भी काशी औ[illegible] क्यों जाते हैं ? भारत का इतिहास दिखला[illegible] कि मज़हब एक बड़ी शक्ति है । भारत में [illegible] साधारण पर पुरोहित का शासन मजिस्ट्रेट [illegible] बढ़कर होता है । यहाँ प्रत्येक बात को, यह[illegible] कि हड़तालों और कौंसिलों के चुनाव को भी [illegible] आसानी से मज़हबी रंगत मिल जाती है । [illegible] हब का मनुष्य पर कितना प्रभुत्व रहता है, [illegible] एक उदाहरण रोम के प्लीबियन हैं । उनके [illegible] हरण से इस विषय पर बड़ा भारी प्रकाश [illegible] है । रोमन प्रजातंत्र के अधीन उच्च शासना[illegible] में भाग प्राप्त करने के लिए प्लब लोगों ने [illegible] किया था, जिससे उनको एक प्लीबियन प्रति[illegible] भेजने का अधिकार मिल गया था । [illegible] प्रतिनिधि को प्लीबियनों की कोमिटिया [illegible]



नृत्य



रियटा नाम की एक समिति चुनती थी। वे अपना कौंसल (प्रतिनिधि) इसलिए चाहते थे; क्योंकि वे अनुभव करते थे कि पेटरिशियन कौंसल शासन-कार्य में प्लीबियनों के साथ द्वैतभाव रखते थे। बाहर से देखने पर उन्होंने बड़ा लाभ प्राप्त कर लिया था, क्योंकि रोम की प्रजातंत्री शासन-पद्धति में एक कौंसल को दूसरे कौंसल के कार्य को रद कर देने का अधिकार था। परन्तु क्या वास्तव में भी उनको कुछ लाभ था? इसका उत्तर नकार में है। प्लीबियन लोगों को कभी कोई ऐसा प्लीबियन प्रतिनिधि न मिल सका, जिसे बलवान् मनुष्य कहा जा सकता और जो पेटरिशियन प्रतिनिधि से स्वतंत्र रहकर कार्य कर सकता। साधारण रीति से प्लीबियनों को एक बलवान् प्लीबियन प्रतिनिधि मिलना चाहिए था; क्योंकि उसका चुनाव प्लीबियन लोग ख़ुद अपने में से करते थे। प्रश्न यह है कि उनको कभी कोई बलवान् प्लीबियन क्यों न मिल सका, जो उनका प्रतिनिधित्व करता? इस प्रश्न का उत्तर प्रकट करता है कि धर्म का मनुष्यों के मन पर कितना शासन है। समूची रोमन जनता का यह सर्वसम्मत विश्वास था कि कोई भी अफ़सर तब तक किसी पद को ग्रहण नहीं कर सकता, जब तक कि डेल्फ़ी की देववाणी इस बात की घोषणा न कर दे कि देवी उसको स्वीकार करती है। डेल्फ़ी की देवी के पुरोहित सब पेटरिशियन थे। इसलिए जब कभी प्लीबियन ऐसे मनुष्य को प्रतिनिधि बनाते थे, जिसके विषय में पता हो कि वह पेटरिशियन के विरुद्ध कट्टर पार्टीमैन, या भारत में प्रचलित परिभाषा में "कम्यूनल" (साम्प्रदायिक) है, तो देववाणी सदा विघोषित कर देती थी कि देवी उसे स्वीकार नहीं करती। इस प्रकार धोखे से प्लीबियनों के अधिकार छीन लिये जाते थे। परन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्लीबियन लोग अपने साथ यह ठगी इसलिए होने देते थे कि पेटरिशियनों की तरह उनका अपना भी दृढ़ विश्वास था कि किसी अफ़सर के अपने पद का कार्य सँभालने के पहले देवी की स्वीकृति आवश्यक है, लोगों का उसको चुनना ही पर्याप्त नहीं। यदि प्लीबियन इस बात पर लड़ते कि चुनाव ही पर्याप्त है, देवी की स्वीकृति की कोई आवश्यकता नहीं, तो वे अपने प्राप्त किये हुए राजनीतिक अधिकारों से पूरा-पूरा लाभ उठा लेते। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे दूसरा प्रतिनिधि चुनने पर सहमत हो जाते थे, जो उनके अपने मतलब के लिए तो कम, परन्तु देवी के लिए अधिक योग्य होता था, अर्थात् जो वास्तव में पेटरिशियनों का अधिक आज्ञाकारी होता था। मज़हब को छोड़ने के बजाय प्लीबियन ने उस लौकिक लाभ को छोड़ दिया, जिसके लिए उन्होंने इतना घोर संग्राम किया था। क्या उससे यह सिद्ध नहीं होता कि मज़हब में यदि सम्पत्ति से अधिक नहीं तो उसके बराबर तो शक्ति अवश्य है? साम्यवादियों की भूल इस बात में है कि वे मान लेते हैं कि चूँकि योरपीय समाज की वर्तमान अवस्था में धन एक प्रधान शक्ति है, इसलिए भारत में भी वह प्रधान शक्ति है या अतीत काल में योरप में भी वह प्रधान शक्ति थी। मज़हब, सामाजिक स्थिति और सम्पत्ति, ये सब शक्ति और प्रभुता के स्रोत हैं। इनसे एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की स्वतंत्रता का निग्रह करता है। एक का एक अवस्था में प्राधान्य होता है, दूसरी का दूसरी अवस्था में। बस, इतना ही अन्तर है। यदि स्वाधीनता आदर्श है, और यदि स्वाधीनता का अर्थ उस प्रभुता का नाश है, जो एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर रखता है, तब यह स्पष्ट है कि इस बात पर आग्रह नहीं किया जा सकता कि आर्थिक सुधार ही एकमात्र ऐसा सुधार है, जो करने के योग्य है। यदि किसी विशेष समय में या किसी विशेष समाज में शक्ति और प्रभुता सामाजिक और धार्मिक हो तो सामाजिक सुधार तथा धार्मिक सुधार को आवश्यक सुधार मानना पड़ेगा।



इस प्रकार भारत के साम्यवादियों ने जो इतिहास का आर्थिक अर्थ ग्रहण किया है, उसका खंडन हो सकता है। परन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि साम्यवादियों के इस विवाद की दृढ़ता के लिए कि सम्पत्ति का समीकरण ही एकमात्र वास्तविक सुधार है और यही सबसे पहले होना चाहिए, इतिहास का आर्थिक अर्थ आवश्यक नहीं। परन्तु मैं साम्यवादियों से जो बात पूछना चाहता हूँ, वह यह है—क्या पहले सामाजिक व्यवस्था का सुधार किये बिना आप आर्थिक सुधार कर सकते हैं? ऐसा जान पड़ता है कि भारत के साम्यवादियों ने इस प्रश्न पर विचार नहीं किया। मैं उनके साथ अन्याय नहीं करना चाहता। मैं यहाँ आगे एक चिट्ठी से उद्धरण देता हूँ जो एक प्रमुख साम्यवादी ने, कुछ मास हुए, डाक्टर अम्बेदकर के एक मित्र को लिखी थी। उसमें उन्होंने लिखा था—"मेरा विश्वास नहीं कि हम भारत में तब तक किसी स्वतंत्र समाज का निर्माण कर सकते हैं, जब तक कि एक श्रेणी दूसरी श्रेणी के प्रति इस प्रकार का दुर्व्यवहार करती और उसे दबाती है। साम्यवादी आदर्श में मेरा विश्वास है, इसलिए विभिन्न श्रेणियों और समूहों के व्यवहार में पूर्ण समता में मेरा विश्वास होना अवश्यम्भावी है। मेरी समझ में साम्यवाद ही इस और दूसरी समस्याओं का सच्चा उपाय पेश करता है।"

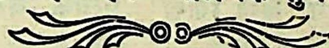
अब मैं पूछना चाहता हूँ—"क्या साम्यवादी के लिए इतना कह देना ही पर्याप्त है—"मैं विभिन्न श्रेणियों के व्यवहार में पूर्ण समता में विश्वास करता हूँ?" यह कहना कि ऐसा विश्वास ही पर्याप्त है, साम्यवाद के आशय से अपनी पूर्ण अज्ञता प्रकट करना है। यदि साम्यवाद एक व्यावहारिक कार्यक्रम है, और एक दूर का आदर्श मात्र नहीं, तो साम्यवादी के लिए यह प्रश्न नहीं रहता कि वह समता में विश्वास करता है या नहीं। उसके लिए प्रश्न यह है कि क्या वह एक व्यवस्था के तौर पर, एक सिद्धान्त के रूप में, एक श्रेणी के दूसरी श्रेणी के साथ दुर्व्यवहार और उसे दबाने की परवा करता है, प्रकार अत्याचार और उत्पात को एक दूसरी श्रेणी से अलग करते रहने की आ है? अपनी बात को पूरी तरह खोलक के लिए मैं उन बातों का विश्लेषण करता हूँ, जिनका साम्यवाद की अनुभूति से सम्बन्ध है।

यह बात स्पष्ट है कि जो आर्थिक क्रान्ति वादी लोग लाना चाहते हैं, वह तब तक सकती, जब तक कि किसी क्रांति के द्वारा में न ले ली जाय। उस शक्ति को हथि ज़रूरी तौर पर सर्वहारा मनुष्य (Prolet होगा। तब पहला प्रश्न यह होता है भारत का सर्वहारा ऐसी क्रान्ति लाने इकट्ठा हो जायगा? इस कार्य के लिए उसको प्रेरणा करेगी? मुझे ऐसा जान कि दूसरी बातें बराबर मानकर, एकमात्र जो मनुष्य को ऐसा काम करने की प्रे सकती है, वह यह भाव है कि जिन दूस के साथ मिलकर वह काम कर रहा है, बन्धुता और सबसे बढ़कर न्याय के भाव होकर काम कर रहे हैं। सम्पत्ति के समी लिए लोग किसी क्रान्ति में तब तक नहीं होंगे, जब तक उन्हें यह मालूम कि क्रान्ति हो चुकने के बाद उनके सा का व्यवहार होगा और जात-पाँत और का कोई भेद नहीं रक्खा जायगा। क्रान्ति बननेवाले साम्यवादी का यह विश्वास कि मैं जाति-भेद को नहीं मानता, पर्या होगा। इस आश्वासन का आधार बहुत गहरा होना चाहिए, अर्थात् इसका परिव गत समता और बन्धुता की दृष्टि से के प्रति देश-बन्धुओं के मानसिक भाव चाहिए। क्या कोई कह सकता है कि सर्वसाधारण जनता, निर्धन होते हुए



और निर्धन के भेद के सिवा और किसी भेद को नहीं मानती ? क्या कोई कह सकता है कि भारत की निर्धन जनता जात-पाँत का, ब्राह्मण और शूद्र का, ऊँच और नीच का भेद नहीं मानती ? यदि सचाई यह है कि वह मानती है, तो ऐसी जनता से धनवानों का विरोध करने के लिए इकट्ठे हो जाने की क्या आशा की जा सकती है ? यदि सर्वहारा (Proletariat) इकट्ठे होकर विरोध नहीं कर सकता तो ऐसी क्रान्ति कैसे संभव हो सकती है ? युक्ति के लिए मान लीजिए कि भाग्य की चपलता से ऐसी क्रान्ति हो जाती है और साम्यवादियों के हाथ में शक्ति आ जाती है, तो क्या उन्हें भारत में प्रचलित विशेष सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न होनेवाली समस्याओं से निपटना नहीं पड़ेगा ? मैं नहीं समझता, भारत में साम्यवादी शासन जनता में ऊँच - नीच और स्पृश्य-अस्पृश्य का भेद-भाव उत्पन्न करनेवाले पक्षपातों से पैदा हुई समस्याओं के साथ युद्ध किये बिना एक क्षण के लिए भी कैसे चल सकता है ।

यदि साम्यवादियों को केवल ललित वाक्यावली का उच्चारण करने पर ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना है, यदि साम्यवादी साम्यवाद को एक निश्चित वस्तु बनाना चाहते हैं, तब उन्हें यह ज़रूर मानना पड़ेगा कि सामाजिक सुधार की समस्या सबका मूल है और वे उस पर आँखें बंद नहीं कर सकते । भारत में प्रचलित सामाजिक व्यवस्था एक ऐसी बात है, जिसके साथ साम्यवादी को अवश्य निपटना पड़ेगा ; जब तक वह इसके साथ नहीं निपटेगा, वह क्रान्ति उत्पन्न नहीं कर सकता; और यदि सौभाग्य से उसे क्रान्ति उत्पन्न करने में सफलता भी प्राप्त हो जाय तो भी, यदि वह अपने आदर्श को सिद्ध करना चाहता है, उसे इसके साथ लड़ना पड़ेगा । यदि वह क्रान्ति के पहले ऊँच - नीच - मूलक वर्ण - व्यवस्था पर विचार करने को तैयार नहीं तो क्रान्ति के बाद उसे इस पर विचार करना पड़ेगा । दूसरे शब्दों में यही बात हम यों कह सकते हैं कि आप किसी भी ओर मुँह कीजिए, वर्ण-भेद एक ऐसा राक्षस है, जो सब ओर आपका मार्ग रोके पड़ा है । जब तक आप इस राक्षस का वध नहीं करते, आप न राजनीतिक सुधार कर सकते हैं और न आर्थिक सुधार ।



पूछिए और अनुभव कीजिए

श्रीविश्वनाथ कुलश्रेष्ठ, सहकारी सम्पादक 'लेखक'

जब मैंने अपने एक मित्र से कुछ लिखने के लिए कहा तो उसका जवाब था, "भाई मुझे तो समझ में नहीं आता कि मैं किस चीज़ पर लिखूँ।" और मेरा अनुमान है कि यही प्रश्न लेखन-कला सीखनेवालों के दिमाग़ में उठा करता होगा। अपने मित्र के उस प्रश्न का उत्तर, आज मैं देखता हूँ, विश्व के समस्त पदार्थों के मुखों से निकल रहा है—"हम पर लिखो, हम पर लिखो।"

जब मैं यह लेख लिख रहा हूँ, उस समय मेरे सामनेवाला घर पुत रहा है। देखता हूँ कि इस घर की पुताई पर ही न-जाने कितने लेख लिखे जा सकते हैं—"साल में किस समय घर पुतवाना चाहिए ?"; "पुतवाने में कौन-सा रंग सबसे अधिक खिलेगा, और क्यों ?"; "क्या पुताई आधुनिक ढंग पर हो रही है ?"; "मकान को पुतवाना ही क्यों चाहिए ?" आदि-आदि।

आँखें घुमाता हूँ तो चारों ओर अपना कमरा नज़र आता है। देखता हूँ कि यही किताबों से भरा हुआ कमरा न-जाने कितने लेखों की सामग्री दे रहा है—"मेरी मेज़ और उसकी सुव्यवस्था"; "पुस्तकें कहाँ और कैसे रखनी चाहिए ?"; "तस्वीरें कौन, कैसी और कहाँ टाँगी जानी चाहिए ?" इत्यादि। लेकिन ऐसा मालूम पड़ता है, मानो दूसरे ही क्षण कोई आकर मेरे बायें कान में धीरे से शिकायत कर जाता है, "परन्तु यह सब तो मनोरंजक नहीं !" यह सब मनोरंजक नहीं ? अच्छा तो मैं बताता हूँ। आपके सिनेमा तो मनोरंजक मालूम होता है उन पर ही लिखिए। परन्तु लिखिए अ

आप सोचते होंगे कि आपको सिनेमा तो मालूम होता है, और वह मनोरंजक परन्तु आपकी समझ में नहीं आ रहा है लिखें क्या।

आपके इस प्रश्न का उत्तर है, "पूछिए अनुभव कीजिए ; आपको लेख की साम जायगी।" आपके "पूछने और अनुभव क शक्तियाँ ज्यों-ज्यों बढ़ती जायँगी, त्यों-त्यों देखेंगे कि आपके लेख की सामग्री भी ब ठोस होती चली जा रही है और एक स आवेगा, जब आपको मालूम होगा कि प्रत्येक वस्तु में लेखों की ही नहीं, ब की सृष्टि छिपी हुई है। एक-एक कण लेख लिख सकते हैं। लेखों की कमी न है लिखनेवालों की।

नवसिखुए लेखकों को चाहिए कि वे अपना अधिक समय ख़र्च न करके उसे निरीक्षण में लगाया करें। आप लि दर्जनों पुस्तकें पढ़ लीजिए, लेकिन बहुत है, उतने पर भी प्रकाशित होने के योग्य लेख न लिख सकें। परन्तु एक सिर्फ के मुख से निकले हुए दर्जन भर शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना तैयार करा और बहुत-सी पुस्तकें पढ़ने के बाद लि लेख भी, यदि उसमें किसी अनुभवी कुछ शब्द ही हैं तो, उससे दुगना मनोरंज जा सकता है।



सामुद्रिक यात्रा पर लिखा हुआ लेख मनोरंजक होगा ज़रूर, परन्तु यदि एक ऐसा पुरुष, जिसने अपना जीवन समुद्र पर ही बिताया है, अपने सामुद्रिक अनुभव वर्णन करने लगे, तो वह न-जाने कितने गुना मनोरंजक बन सकता है। एक वृद्ध पुरुष बच्चों को कहानियाँ जितने मनोहर रूप में सुनाता है, उतना एक बालक नहीं। वृद्ध अनुभवी है; वह बालकीय प्रकृति, कहानियाँ सुनाने के ढंग आदि को पहले ही से परखे बैठा है।

अभी हाल में मैंने एक पत्रिका के लिए 'प्रेस-ज्ञान' पर एक लेख लिखने का विचार किया। मैंने पहले इस विषय की दो-चार किताबें पढ़ीं, और फिर स्वयं अनुभव करने की सोची। दूसरे ही दिन मैं जान-पहचान के एक प्रेस में जा पहुँचा। बहुत देर तक मैनेजर साहब से बातचीत की और फिर कम्पोज़ीटरों व प्रूफ़रीडरों और प्रिंटरों आदि से यहाँ-वहाँ की गपशप लड़ाता रहा। लेकिन 'गपशप' का आरम्भ इस तरह से किया गया था कि उसमें मुझे अपने अभीष्ट विषय की बहुत-सी सामग्री मिल गई—बहुत-सी नई बातों का पता लगा। कुछ बातें तो ऐसी थीं कि यदि मैं उन लोगों से बातचीत न करता तो वे मालूम ही न हो सकती थीं।

इसलिए किसी वस्तु के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्वयं पूछना और अनुभव करना चाहिए।

लेकिन एक बात ध्यान में रखिए। जब आप किसी से कुछ पूछने लगें तो ज़रा तमीज़ से पूछिएगा। ऐसा प्रश्न कदापि मत कीजिए कि सुननेवाला लज्जावश उत्तर देने में अपनी असमर्थता प्रकट करने लगे। बल्कि सब बातों को इतना गुप्त रखिए कि वह आपके आने का मतलब भी न समझ सके। जाते ही उससे यह मत कह बैठिए, "भाई, मुझे प्रेस पर एक लेख लिखना है, कुछ बातें बताओ।" यह सुनते ही उसकी बातचीत सीमाबद्ध-सी हो जायगी, और वह खुलकर बात भी न कर सकेगा। उसके कानों में तो इसकी भनक भी न पड़नी चाहिए कि आप लेख के लिए सामग्री एकत्रित करने आये हैं। जब वह आपके आने का कारण पूछे तो टालमटोल कर दीजिए, या कोई दूसरा कारण बता दीजिए।

एक बात और है। बातचीत के बीच में जब आप प्रश्न करने लग जायँ तो ऐसा सवाल कीजिए, जिसका जवाब सीमित हो। असीमित उत्तर देने में उत्तरदाता अपने अनुभवों को खोल नहीं सकता। उस समय वह उत्तर में केवल मोटी-मोटी बातें गिना जायगा। इस गिनती से आपको कोई लाभ नहीं। मान लीजिए कि आप रेगिस्तान के विषय में अपने मित्र से प्रश्न कर रहे हैं। उस समय इस प्रकार का सवाल मत पूछिए, "रेगिस्तान में क्या-क्या विचित्रताएँ होती हैं?" बल्कि पहले पूछिए, "यार, रेगिस्तान के विषय में तो मैंने बड़ी-बड़ी अजीब बातें सुनी हैं। क्या यह बात ठीक है?" यह सुनते ही वह उन विचित्रताओं का वर्णन करने लगेगा। बीच में उससे ऐसे सवाल करते जाइए, जिससे उसका वार्तालाप बन्द न होने पाये। साथ ही उसकी तारीफ़ और उसके अनुभव की सराहना भी करते चलिए। आपको पर्याप्त मैटर मिल जायगा।

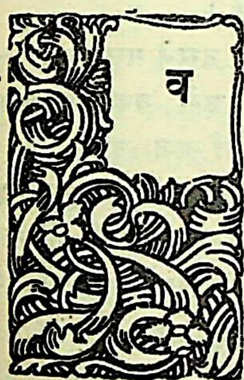
लेकिन कुछ ऐसे अवसर भी हैं, जब किसी आदमी से सवाल करना व्यर्थ होगा। जब एक चित्रकार अपने चित्र को रँगने में लगा हुआ है, उस समय यदि आप उससे कोई सवाल कर बैठेंगे तो वह आपके सवाल का उत्तर नहीं देगा। इसी प्रकार जब एक दूकानदार अपने ग्राहकों को चीज़ें दिखाने और उन्हें सौदा ख़रीदने पर बाध्य करने में तल्लीन है, उस समय यदि आप उससे प्रश्न पूछ बैठे तो उत्तर देने के बजाय वह और उल्टा झल्ला उठेगा। सवाल उस समय पूछिए, जब कि उत्तरदाता का मस्तिष्क चिन्ता से बिलकुल रहित है और उसे उत्तर देने के लिए ख़ूब फ़ुरसत है।

इसलिए यदि आप लेखक या पत्रकार बनना चाहते हैं तो स्वयं जाइए, लोगों से उस वस्तु के विषय में पूछिए, और स्वयं अनुभव कीजि यही सबसे अच्छा मार्ग है ।



वृक्ष और लता

श्रीरामरतन भटनागर "हसरत" बी० एस्-सी०



ह बड़ा अभिमानी वृक्ष था। जब वह युवा हुआ, उसने अनुभव किया, उसमें युग की नवीन आत्मा ने प्रवेश किया है। उत्साह से उसने अपनी भुजाएँ दूर तक इधर-उधर फैला दीं। उसने देखा—वह जहाँ खड़ा है, पृथ्वी माता की गोद का श्यामल अंचल है और उसके सिर पर नीला आकाश है, जिसमें ठीक उसके सिर पर रात को दूर से चलता हुआ एक चमकीला, नीला कन्दील आकर ठहर जाता है।

उसे अपने रूप का गर्व था। परन्तु जब उसके साथियों ने लता-बेलों से प्रेम कर लिया और वे लता-बेलें उनकी प्रशंसाओं में पड़कर उन्हें प्रेम दे बैठीं और विवाह के बंधन में बँध गईं, उसने एक बार अपने विशाल हरे छत्र की ओर देखा—

उसने कहा—मुझे एकान्त प्रिय है। मेरा स्वभाव औरों से भिन्न है।

उस दिन से उसे एकान्त प्रिय होने लगा। लताएँ दूर अपने प्रेमियों से सिर हिलाकर कहतीं—वह कैसा नीरस है, कैसा कुरूप है।

उनके प्रेमी कहते—वह बड़ा गर्वीला है और वह हठयोग साधन करता है।

लताएँ कहतीं—कोई उससे प्रेम नहीं करेगा।

प्रेमी कहते—हमें दुख है।

परन्तु उसे दुख न था। उसे एकान्त प्रिय था। वह कहा करता—प्रेम समय बहलाने का साधन है। वृक्ष घास-फूस नहीं, वह विशेष उद्भिज है। उसे चिन्तन करना है और पृथ्वी से ऊपर उठना है। विचार में प्रेम बाधा देगा। उसे विश्वास था, वह जब चाहेगा लता-युवतियाँ उसकी ओर झुककर अभिवादन करेंगी। वह विचारशील है। वह एक विशेष प्राणी है। उसका समय अमूल्य है और वह उसे प्रेम-चिन्तन में नष्ट न करेगा।

वह फ़िलास्फ़र वृक्ष था।

उसका कोई मित्र न था।

एक दिन गिलहरी बादाम-जैसा कुछ मुँह में दबाये आई। उसने कहा—तुम इसे मेरी तरह मुँह में दबाकर भाग नहीं सकते।

वृक्ष ने अवहेला से कहा—क्षुद्र गिलहरी और चुहिया!

गिलहरी ने कहा—तुम अवश्य महान् हो। मुझे अपनी गोद में खेलने दोगे?

वृक्ष ने कहा—मैं एक गंभीर विचार में पड़ा हूँ।



मुझे तुम लोगों की तरह प्रेम करने और खेलने का बेकार समय नहीं है।

धीरे-धीरे उसकी आयु बढ़ गई। वह प्रौढ़ हो गया। अब वह अनंत ज्ञान का स्वामी था। वह तो ऐसा ही समझता था।

विचार प्रकट करने की आवश्यकता होती है। प्रकट न किया विचार मन की बीमारी हो जाता है—उसने सोचा। परन्तु उसका कोई मित्र न था, प्रेमिका न थी।

उसने देखा—उसके साथी लताओं और बेलों को आलिंगन में बाँधकर आठ पहर फुस-फुस करते हैं। लताएँ अपना सुन्दर मुँह उनके विशाल वक्ष से रगड़कर प्रेम दिखाती हैं।

पहली बार उसने प्रेम की वेदना जानी।

एकान्त अब उसे खलने लगा।

वह अब उदास रहता। स्त्री-पुरुष उसके नीचे आकर ठहरते और वे यों बातें करते—यह कैसा वृक्ष है?

स्त्री कहती—मुझे यहाँ न जाने कैसा मालूम हो रहा है! मेरा प्रेम शिथिल पड़ा जाता है।

पुरुष—मेरा मन उदास हो रहा है। बड़ी रोनी जगह है।

स्त्री—मनहूस वृक्ष जान पड़ता है। आओ, और छाया देखें।

वृक्ष सोचता—यह एक और प्राणी है जो मेरी तरह विचार करता है, परन्तु यह चलता-फिरता वृक्ष है।

एक दिन एक लेखक ने उसके नीचे अपना आसन बिछाया। साँझ तक काग़ज़ पर क़लम और स्याही से वह कुछ बनाता गया।

वृक्ष ने सोचा, नगर से आनेवाली एक अबाबील को उसकी बात बताई—

अबाबील ने कहा—वह विचारक है। तुम्हारी तरह वह भी सदा अकेला रहा है। उसका बड़ा मान है।

वृक्ष ने पूछा—वह झुका हुआ क्या करता था?

अबाबील ने बताया—उसने विचा[र] करने का एक साधन निकाला है। वह ऐ[सा] न करे तो पागल हो जाय।

वृक्ष ने शोक से हाथ मलकर कहा—[मैं] उसकी तरह विचार प्रकट कर सकता। [मैं] लेखनी छीन लेता।

उसे जान पड़ता था, वह विचारों [से] गया है।

वह बूढ़ा हो गया।

एक दिन उसने देखा—उसकी छाया [में] फूस से भिन्न कुछ है!

उसकी दृष्टि क्षीण हो गई थी। उसने [ध्यान] से उसे देखा। प्रति दिन वह उसे देख[ता]। वह वस्तु पृथ्वी से ऊपर उठती।

कई दिन देख और सोचकर उसने तय [किया], यह एक लता का अंकुर है। उसे बड़ी [प्रसन्नता] हुई और उसने हवा में तालियाँ बजा दीं।

लता धीरे-धीरे बढ़ने लगी। स्नेह से [वह] उस पर छाया किये रहता। उसे उसकी [चिन्ता] थी—एकमात्र उसकी। उसे बकरियाँ [न चर] जायँ और गायों के बिगड़े बछड़े उसे रौं[द न डालें]। उसने उसे बढ़कर छाती से लगा लिया।

कितने वर्षों बाद उसे स्नेह की, प्यार [की] चीज़ मिली थी।

वह जब बढ़ गई, वृक्ष कहता—लता!

लता उसके गंभीर कंठ पर आ[सक्त हो] कहती—बाबा!

बूढ़ा वृक्ष स्नेह से उसे चिपटाये रहता। [सारा] दिन वह यों ही काट देता।

वह कभी-कभी लता को उलाहना [दिया] करता। वह कभी उसे कुछ करने को कहता, [कभी] उससे कुछ करने को मना करता। चंचल [लता] यह करती, वह न करती; परन्तु वह [कभी रुष्ट] न होता।

लता बढ़कर युवती हुई।

बूढ़े वृक्ष को चिन्ता हुई उसके विवा[ह की]।



परन्तु उसे उससे मोह हो गया था और वह उसे छोड़ना न चाहता था।

उसने कहा—वह जायगी कहाँ? उसकी वय का कोई कहाँ है यहाँ?—उसने गहरी साँस लेकर कहा—हाय, मेरी भाँति यह मेरी लता भी हृदय में प्रेम की प्यास लेकर मरेगी।

एक दिन माली ने एक बड़े फूलों के पेड़ का थाला उसकी छाया में लगा दिया। वृक्ष को पता न था। परन्तु अब एक नगर ने उसे घेर लिया था और वह एक पार्क के बीच में खड़ा था!

भय से वह काँप गया। उसने लता को उस दिन कलेजे से लगाकर कहा—लता रानी!

वह विह्वल हो रहा था।

लता ने विस्मय से उसकी ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि की। वृक्ष ने कहा—लता, मुझे भय लगता है, तू मुझे छोड़ जायगी।

छिः कैसी बात, बाबा—लता ने कहा। वृक्ष उस दिन बड़ी शान्ति में सोया।

परन्तु एक और दिन लता ने उसके आलिंगन से एक भुजा निकालनी चाही।

उसने कहा—मुझे जाड़ा लगता है। मुझे प्रकाश और धूप चाहिए।

वृक्ष ने दुख से देखा—वह उसे रोक नहीं सकता। उसने अपनी बाँहें फैलाकर उस पर छाया करने की चेष्टा की। उसकी बाँहें थक गई थीं, उनकी मांसपेशियाँ कठिन पड़ गई थीं, वह उन्हें लता पर झुका न सका।

हो गया, सब समाप्त हो गया—उसने सिर हिलाकर दुहराया।

एक सबेरे उसने देखा—लता बड़े फूलों के उस पौदे से मिल रही है। वह बड़ी प्रसन्न है। उसने अपनी भुजाएँ उसके गले में डाल दी हैं।

क्षण भर वह खिल उठा, फिर अन्यमनस्क हो गया। तो उसकी लता ने उसे छोड़ दिया था।

उसने फिर एकान्त की प्रार्थना की।

वह फिर विचार में लग गया।

उसने यह सोचकर सान्त्वना पाने की चेष्टा की—प्रेम और स्नेह भूल हैं! विचार की भूमि पर वे ठहर नहीं सकते।

एक दिन आँधी चली।

उसने दुख से देखा—हवा बड़े फूलों के उस पौदे को झकझोर रही है। लता भीत होकर उससे चिमटी है।

लता ने चिल्लाकर कहा—बाबा, बाबा, मुझे बचा लो। मुझे अपना हाथ दो।

बूढ़े वृक्ष ने शोक से देखा, वह वैसा नहीं कर पायेगा।

पौदा और लता टूटकर गिर पड़े।

वृक्ष ने झंझावात से भरे आकाश की ओर एक ऊर्ध्वश्वास छोड़ी।

"लता"—वह चिल्ला उठा।

उसका हृदय फट गया। उसमें एक गहरी दरार पड़ गई।

क्या शिवाजी महाराज पढ़े-लिखे थे ?

श्री० गोपालदामोदर तामस्कर एम्० ए०



ग्रांट डफ़ ने जो "मराठों का इतिहास" लिखा है उसी में संभवतः पहलेपहल यह प्रतिपादित हुआ कि शिवाजी महाराज पढ़े-लिखे न थे। उसने लिखा है—

"Marathas can seldom read or write; they consider all such learning the business of a karkoon and, if not degrading; at least undignified. Shivaji could never write his name.

(Duff's "History of the Marathas."

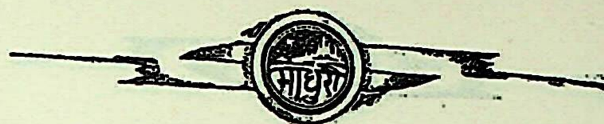
"मराठे बहुधा पढ़े-लिखे नहीं रहते। वे इसे 'कारकून' की (मुंशी की) विद्या समझते हैं। वे इसे अपमानकारक नहीं तो अपनी शान के ख़िलाफ़ अवश्य समझते हैं। शिवाजी को अपना हस्ताक्षर भी करना न आता था।"

डफ़ साहब के उपर्युक्त मत को सारे पाश्चात्य और कुछ पौर्वात्य विद्वानों ने बिलकुल ठीक मान लिया। इसमें उन्हें मीन-मेख के लिए गुञ्जाइश न देख पड़ी। यहाँ तक कि इसे उन्होंने पाठ्य-पुस्तकों में भी लिख डाला। बालकों को सदैव इस बात का आश्चर्य मालूम होता रहा कि आदिलशाही, कुतुबशाही और मुग़लशाही—इन तीन भारी मुस्लिम राज्यों का तीव्र विरोध होने पर भी जो पुरुष सदियों बाद फिर से भारत में छोटा-मोटा स्वतंत्र हिन्दू-राज्य स्थापित कर सका, वह अपने हस्ताक्षर कर सकने लायक़ भी पढ़ा-लिखा न हो। और, सर यदुनाथ सरकार का मत पढ़कर तो उनके आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रह जाती। आपने डफ़ साहब के एक सौ वर्ष बाद यह फ़र्माया है—

"The weight of evidence is in favour of the view that Sivaji was unlettered like three other heroes of mediæval India, Akbar, Haidar Ali and Ranjit Singh. The many Europeans who visited him never saw him write anything; when they presented any petition to him, the Raja always passed it on to his ministers to be read to him. No piece of writing in his own hand is known to exist."

("Shivaji and his Times", 2nd edition, pp. 25-26)

"सब प्रमाणों से यही निश्चित होता है कि शिवाजी को पढ़ना-लिखना न आता था। इस बात में वे भारत-इतिहास के मध्यकाल के अकबर



हैदरअली और रणजीतसिंह—इन तीन वीर पुरुषों-जैसे ही थे। जिन अनेक योरपीय लोगों ने उनसे भेंट की, उन्होंने शिवाजी महाराज को कभी लिखते नहीं देखा। जब कभी उन्होंने महाराज के पास अर्ज़ियाँ पेश कीं, तब वे उनको पढ़ने के लिए अपने मंत्रियों के हाथ में दे देते थे। उनका लिखा हुआ एक भी काग़ज़ अब तक नहीं मिला है।"

इससे तो यही देख पड़ेगा कि उपर्युक्त मत निःसंदेह निश्चित हो चुका है और अब उसके पुनर्विचार की आवश्यकता नहीं है। अथवा अब उसका फिर से विचार करना पिष्टपेषण करना ही है। इस पर हमारा यह कहना है कि शिवाजी महाराज के इतिहास की सामग्री अभी-अभी ही विशेष प्राप्त हुई है और जो कुछ सामग्री प्राप्त हुई है, उसकी छान-बीन भरपूर नहीं हुई है। आजकल मराठों के इतिहास के लेखकों के दो पन्थ बन गये हैं। एक पन्थ तो अपने मत मनोविकार के आधार पर रचता है और अपने विरोधियों की कुछ भी परवा नहीं करता। दूसरा पन्थ अपने मत दुराग्रहों के अथवा दूषित तथ्यों के आधार पर रचता है और मराठी भाषा की सामग्री को दूर से भी देखना पाप समझता है—कम से कम बाहरी तौर से वह ऐसा दिखलाता है अवश्य, फिर भले ही वह चुपचाप धीरे-धीरे उस साधन-सामग्री में से कुछ का उपयोग नहीं-नहीं करते हुए भी करने लग जाय। सर यदुनाथ सरकार इस दूसरे पन्थ के अनुगामी हैं। परन्तु पक्षपातरहित इतिहास-लेखक को यह बात शोभा नहीं देती। इसलिए शिवाजी महाराज के अपढ़ होने के मत का पुनर्विचार होना आवश्यक है।

उपर्युक्त प्रश्न पर ग्राण्ट डफ़ को उत्तर देने का पहला प्रयत्न प्रसिद्ध इतिहास-संशोधक विश्वनाथ काशिनाथ राजवाडे ने किया। आपने अपना मत भूतपूर्व "सरस्वती-मंदिर" नाम की पत्रिका में प्रकाशित किया था। उसमें पहले यह दिखलाया है कि शिवाजी महाराज के समय से ग्राण्ट डफ़ के काल तक सब प्रसिद्ध मराठे पढ़ना-लिखना जानते थे। इन बातों को हम यहाँ नहीं दुहराना चाहते। हाँ, शिवाजी की साक्षरता के सम्बन्ध में आपने जो प्रमाण पेश किये हैं, उनमें से कुछ मुख्य-मुख्य हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

(१) यह कहावत प्रसिद्ध है कि शिवाजी ने औरंगज़ेब से फ़ारसी में बातचीत की थी।

(२) कहते हैं, शिवाजी ने कुछ आरतियाँ और पद्य रचे थे।

(३) शिवाजी महाराज भूषण की कविता को भली भाँति समझ सके थे।

(४) शिवाजी महाराज रामदास स्वामी लिखित "दासबोध" नित्य पढ़ा करते थे।

(५) शिवाजी महाराज ने "राजव्यवहार-कोष" और कई अन्य ग्रन्थ बनवाये।

प्रथम दो कथनों के प्रमाण अभी नहीं मिले हैं। तीसरा निःसन्देह सत्य है। चौथी बात भी अभी भली भाँति निश्चित नहीं हुई है। मल्हार-रामराव चिटनीस ने अपने शिवाजी महाराज के चरित्र में उसका उल्लेख किया है। परन्तु पाँचवीं बात भी निःसन्देह सत्य है।

इसी प्रकार का दूसरा प्रयत्न श्री० आबा-चान्दोरकर ने किया था। आपने अपना लेख "भारत-इतिहास-संशोधक मंडल" के त्रैमासिक के दूसरे वर्ष के संयुक्त अङ्क में प्रकाशित किया था। आपने जो नये प्रमाण सामने रक्खे, उनमें से मुख्य ये हैं—

(१) शिवाजी महाराज के वंश के बहुतेरे लोग पढ़ना-लिखना जानते थे।

(२) छत्रपति किसी काग़ज़ पर केवल अन्तिम परिपूरक वाक्य लिखा करते थे।

(३) जब दिव्य-प्रथा का अवलम्बन किया जाता था, तब उसके लिए छत्रपति की अनुमति की आवश्यकता होती थी। इस बात के लिए आपने एक मौलिक साधन का उल्लेख भी किया

है । गुञ्जन-मावल तरफ़ के मोहरी बुद्रुक गाँव के मुखियाओं के नाम जो एक पत्र उपलब्ध हुआ है, उसमें के शिवाजी महाराज के पत्र के उल्लेख की ओर आपने ध्यान दिलाया है । उक्त गाँव के मुखियाओं के नाम के उक्त पत्र में शिवाजी महाराज के पत्र के एक वाक्य का उद्धरण है। इस वाक्य में ३६ शब्द हैं। उपर्युक्त पत्र भारत-इतिहास-संशोधक-मंडल के त्रैमासिक के दूसरे वर्ष के संयुक्त अङ्क में छपा है। उसमें से हम आवश्यक भाग यहाँ उद्धृत करते हैं—

"राउल गाँव की कुलकर्णीगिरी (पटवारी-गिरी) के बारे में अग्रवादी गोविन्द विश्वनाथ पानशी और पश्चिमवादी रामजी कृष्णगाव (राव ?) खण्डेराऊ के बीच झगड़ा था । इसलिए ये दोनों जन राजश्री राजा साहब के पास राजगढ़ को अपना झगड़ा लेकर गये । तब राजा साहब उस बात का विचार कर अपने मन के अनुसार उस झगड़े का तसफ़िया करने को तैयार हुए । उस समय वे दोनों दिव्य करने को कबूल हुए । तब राजा साहब ने आबाजी मोरदेव को साथ देकर अपना हाथरेखा भेजा कि "गोविन्द विश्वनाथ पानशी और रामजीकृष्ण गाव (राव ?) खण्डेराऊ इन दोनों के बीच मौजा सोनारी की कुलकर्णीगिरी का झगड़ा है। इसलिए यह निश्चय हुआ कि दिव्य किया जाय और वे दोनों दिव्य करने को राजी हुए । इसलिए दोनों से अलग-अलग दिव्य करवाना ।" इस आशय का रुक्का राजश्री आबाजी मोरदेऊ के साथ भेजा ।

यह पत्र शक १५६० यानी १६६८ ई० का है।

खाफ़ीख़ाँ के इतिहास के निम्नलिखित कथन में शिवाजी की साक्षरता का उल्लेख है—

"परन्तु बहुत छोटी उम्र का संभा नाम का उसका लड़का उसके साथ था । दौड़-धूप से उसे इतनी तकलीफ़ होने लगी कि शिवाजी ने उसे इलाहाबाद के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण के यहाँ छोड़ दिया । इस ब्राह्मण के रिश्तेदारों का शाहजी से सम्बन्ध रहा था । शिवाजी ने ब्राह्मण को धन दिया और लड़के को उसके हाथ सौंप दिया। यह तय हुआ कि शिवाजी के निजी हाथ की चिट्ठी जब तक न आवे, तब तक लड़के को वह रवाना न करे । और यदि शिवाजी की मृत्यु की ख़बर मिले तो उसे उस समय जैसा ठीक दिखे वैसा वह करे ।" (Elliot and Dowson, Vol. VII p. 281) । इससे यह सिद्ध होता है कि खाफ़ीख़ाँ यह जानता था कि शिवाजी को लिखना-पढ़ना आता था ।

इसके बाद शिवाजी की साक्षरता सिद्ध करने का तीसरा प्रयत्न कोल्हापुर के राजाराम कालेज के प्रिंसिपल डाक्टर बालकृष्ण ने "पुरुषार्थ" नामक मासिक पत्र के "शिवाजी-अङ्क" में किया। यह अङ्क मार्च १९३३ ई० में छपा था। आपने जो नये प्रमाण उद्धृत किये, उनमें से मुख्य ये हैं—

(१) "शिवभारत"-नामक काव्य में शिवाजी के पठन-पाठन का सविस्तर वर्णन है। (नवाँ और दशवाँ अध्याय देखो ।)

(२) "चिटनीस-बखर" और "शिवदिग्विजय-बखर" में शिवाजी के पढ़ने-लिखने का वर्णन है।

(३) शिवाजी के पिता शाहजी और पुत्र संभाजी पढ़े-लिखे तो थे ही, किन्तु संस्कृत भी जानते थे और उसमें पद्य-रचना भी करते थे। "बुधभूषण" नामक संस्कृत रचना संभाजी की मानी जाती है।

(४) शिवाजी ने अपने क़िलों के नाम बदलकर संस्कृत कर डाले ।

(५) फ़ारसी भाषा के राजकीय शब्दों के स्थान में संस्कृत शब्दों का उपयोग शुरू किया और इस काम को सफल करने के लिए शिवाजी ने "राजव्यवहार-कोष" की रचना करवाई।

(६) शिवाजी महाराज ने भूषण, नागा... आदि कवियों और पण्डितों को ख़ूब पारितोषिक दिया । उनके दरबार में अनेक कवि और पण्डित रहा करते थे ।



(७) रामदास स्वामी ने शिवाजी को 'सर्वज्ञ' कहा है।

(८) "भारतवर्ष"-नामक पत्रिका के प्रथम-खण्ड के ८० पृष्ठ पर रावजी पण्डित का जो पत्र छपा है, उसमें शिवाजी के निजी पत्र का उल्लेख है—

"रावजी पंडित वापस आया है। आते ही उसने मुझे बुलाकर तुम्हें यह लिखने को बताया है कि संधि की शर्तें निश्चित करने के लिए किसी पुरुष को तुरन्त भेज दो। कल स्वयं राजा का लिखा पत्र रावजी को मिला।"

(९) अँगरेज़ व्यापारी अपने मुनीमों को इस बात की ताक़ीद देते देख पड़ते हैं कि चिट्ठियाँ ख़ुद शिवाजी के हाथ में दी जायँ। यदि शिवाजी पढ़े-लिखे न थे तो ख़ुद उनके हाथ में चिट्ठियाँ देने की ताक़ीद का कोई मतलब न रहता। ओर्म महाशय के संग्रहों के १५५वें भाग के १ से २१ पृष्ठों में जो पत्र दिया है, उसमें यह वाक्य है—

"वकील पत्र को ख़ुद शिवाजी के हाथ में दे। ये ब्राह्मण लोग उन पत्रों से चाहे जो मज़मून कहवा लेते हैं।"

इस वाक्य से यह स्पष्ट है कि शिवाजी पढ़ा-लिखा था अन्यथा यह वाक्य निरर्थक हो जाता।

(१०) अँगरेज़ों और शिवाजी के बीच जब सन्धि हुई, तब एक बार यह उल्लेख किया गया कि उस पर शिवाजी के हस्ताक्षर होकर वह मुस्तकिल नहीं हुई।

(११) नारायण शेणवी ने अँगरेज़ों को शिवाजी के हस्ताक्षर के कई पत्र भेजे थे।

(१२) मि० चाइल्ड को शिवाजी के हस्ताक्षर का पत्र दिया था।

(१३) शिवाजी की सूरत की लूट की जो ख़बर डच लोगों ने लिखी, उसमें स्वयं शिवाजी के लिखे पत्र का उल्लेख है।

(१४) सर विलियम लांगहार्न को शिवाजी ने जो पत्र भेजे, वे अभी क़ायम हैं।

(१५) हेण्ड्री-केण्ड्री के सम्बन्ध में जो झगड़ा पैदा हुआ, उसके सम्बन्ध में अँगरेज़ और शिवाजी के बीच बहुत चिट्ठी-पत्री हुई। इस पत्र-व्यवहार में स्वयं शिवाजी के लिखे और उसके मंत्रियों के लिखे पत्रों में भेदाभेद किया है और स्वयं शिवाजी के दो-दो पत्रों का उल्लेख है।

(१६) गोवा के दो गवर्नरों के साथ शिवाजी ने भी कुछ काग़ज़-पत्रों पर हस्ताक्षर किये थे।

(१७) रायरी-बखर में इस बात का उल्लेख है कि शिवाजी ने पिता का आया हुआ पत्र खोला और अपने अभिभावक दादाजी कोण्डदेव को पढ़ सुनाया। (F. M. S. I, P. 9)

उपर्युक्त कथनों में कुछ के लिए प्रमाण की आवश्यकता है, परन्तु कुछ तो ऐसे अवश्य हैं कि जिनके लिए अब प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। इसलिए इन पर ध्यान देना आवश्यक है। राजवाड़े के कथनों में से संख्या ३ और ५ के कथन, आवा चान्दोरकर के कथनों में से संख्या १. २ और ३ के कथन, और डा० बालकृष्ण के कथनों में से संख्या १ से ७, १०, १३, १४, १५, १६ और १७ के कथन इसी प्रकार के हैं। या तो उन्हें विरुद्ध प्रमाण देकर असिद्ध करना चाहिए या चुप-चाप मान लेना चाहिए। जिन काग़ज़पत्रों में शिवाजी के हस्ताक्षर के पत्रों का उल्लेख है, उन्हें तो या तो मानना ही चाहिए अथवा उनके प्रतिकूल प्रमाण पेश करना चाहिए।

हमने फ़िलहाल शिवाजी की जन्मतिथि के विकट प्रश्न को सुलझाने के लिए जिस साधन-सामग्री का अध्ययन किया, उसमें शिवाजी की साक्षरता के कई प्रमाण देख पड़े। अब हम इन्हीं की ओर पाठकों का ध्यान दिलाते हैं।

पहले हम बखरों से अन्य प्रमाण पेश करेंगे।

(क) हमारा ऐसा मत है कि सब बखरों में "९१ क़लमी बखर" सबसे पुरानी है। (१) उसके बीसवें कलम में यह लिखा है कि शाहजी ने जब शिवाजी को दादाजी कोण्डदेव के हाथ सौंपा, तब उसे शिक्षा देने का भार भी दादाजी



के ऊपर शाहजी ने रक्खा। शिक्षा में पढ़ना-लिखना भी शामिल होता है। (२) ६३वें कलम में लिखा है कि शिवाजी ने औरंगज़ेब को लिख भेजा कि "तुमचा भामा शास्तीखान यासी शास्ती केली, तुमची सुरत होती ते बेसुरत केली, पादशाही पुरातन हिन्दूची आहे, " (तुम्हारे भामा शाइस्ताख़ाँ को शाइस्ता किया, तुम्हारी जो सूरत थी, उसे बेसूरत कर डाला, बादशाही पुरातन हिन्दुओं की है)। जो पढ़ा-लिखा नहीं है वह 'शाइस्ता' और 'सूरत' शब्दों का श्लेषात्मक उपयोग नहीं कर सकता। विशेषकर 'शाइस्ता' का उपयोग तो संस्कृत न पढ़े के लिए बहुत कठिन है। आजकल संस्कृत पढ़े मामूली लोग भी इस शब्द का मतलब नहीं समझ सकेंगे। उन्हें भी उसका अर्थ जानने के लिए कोष उठाना पड़ेगा। फिर, जो पुरुष अपढ़ है वह यह किस आधार पर कह सकता है कि बादशाही पुरातन से हिन्दुओं की है। इसके लिए भी प्राचीन ग्रन्थों का, विशेषकर रामायण और महाभारत का, अध्ययन आवश्यक है। (३) ७७वें कलम में यह लिखा है कि शिवाजी महाराज कहा करते थे कि—

'यस्याश्वा तस्य राज्यं यस्याश्वा तस्य मेदिनी।
यस्याश्वा तस्य सौख्यं यस्याश्वा तस्य साम्राज्यं॥'

इससे कम से कम यह अवश्य सिद्ध होता है कि बखर-लेखक को यह अवश्य मालूम था कि शिवाजी महाराज संस्कृत जानते थे। अन्यथा, उसने यह न लिखा होता कि उपर्युक्त वाक्य वे हमेशा कहा करते थे। यह वाक्य अनुष्टुप्वृत्त में रचा देख पड़ता है, परन्तु वृत्त में दोष हैं। इसलिए लेखक का कथन ठीक जान पड़ता है। वह रचना बखर-लेखक की होने की सम्भावना नहीं देख पड़ती। वह मंत्री था और अच्छा पढ़ा-लिखा भी। यह अशुद्ध वाक्य-रचना शिवाजी महाराज की ही होने की संभावना विशेष देख पड़ती है। उन्हें पढ़ने-लिखने के लिए समय छः-सात वर्ष की अवस्था से १५-१६ वर्ष की अवस्था तक ही मिला। तदनन्तर वे शीघ्र ही स्वरा स्थापना का कार्य धीरे-धीरे करने लग गये इसके साथ यह भी ख़याल रखना चाहिए शिवाजी महाराज घुड़सवार फ़ौज को बहुत महत्त्वपूर्ण मानते थे। इसलिए भी उ रचना उन्हीं की होने की सम्भावना विशेष (४) २४वें कलम में यह लिखा है कि दाद कोण्डदेव की मृत्यु के बाद शाहजी ने पूना जागीर की सनद शिवाजी के नाम लिख भे साथ ही, सान्त्वनापर पत्र भी भेजा था। शिवाजी महाराज पढ़े-लिखे न रहते तो सां पर पत्र का कोई विशेष अर्थ न था। मौखिक से काम चल सकता था।

(५) मृत्यु के कुछ ही पहले शिवाजी ने अपना काग़ज़ मोरोपन्त पिंगले, अन्नाजी दत्तो सु और बालकृष्ण प्रभु चिटनीस के हाथ में लि उक्त बखर के फ़ारेस्ट साहब के संस्करण यह साफ़-साफ़ लिखा है कि काग़ज़ स्वयं शिव ने लिखा था। यह बात सब बातों का वि करने से ठीक ही जान पड़ती है। दिलेरख़ पास से जब संभाजी वापस आया, तब उसे शि जी ने पन्हाला के किले में कड़ी निगरानी रक्खा। शिवाजी की मृत्यु के बाद उपर्युक्त म ने दूसरे पुत्र राजाराम को गद्दी पर बिठला इससे यह सिद्ध होता है कि उपर्युक्त क में शिवाजी ने अपनी मृत्यु के बाद की यो अपने मन्त्रियों के लिए लिख रक्खी थी। शि के चरित्र से यह बात भली भाँति देख पड़ कि वे मृत्यु के लिए सदैव तैयार रहते थे; उनका सारा जन्म रण में बीता था। इसलि भविष्य की योजना प्रत्येक कठिन अवसर प रखते थे। संभाजी के आचरण से शिवाजी बहुत अधिक निराशा हुई थी। इसलिए संभा दिलेरख़ाँ के पास से वापस आने पर अपनी बाद के लिए कोई योजना कर रखना उन्हें आवश्यक जान पड़ा होगा। या उन्होंने

हाथ से अपनी आख़िरी बीमारी के पहले लिखी होगी। यदि वे पढ़ना-लिखना न जानते तो उन्हें अपना मृत्युपत्र अपने मंत्रियों के हाथ से लिखवाना पड़ता। ऐसी स्थिति में उसको मंत्रियों के हाथ में देने का कोई महत्त्व न था। तब तो मौखिक आज्ञा ही यथेष्ट होती। इसलिए यह अनुमान निकालना ही पड़ता है कि शिवाजी महाराज पढ़े-लिखे थे और उन्होंने स्वयं अपनी मृत्यु के कुछ काल पहले अपना मृत्युपत्र लिख रक्खा था।

(ख) सभासद की बखर में निम्न-लिखित बातें हैं—

(१) अफ़ज़लख़ाँ की चढ़ाई के समय शिवाजी के लोग संधि करने के पक्ष में थे। परन्तु इस अवसर पर शिवाजी महाराज ने यह कहा समझा जाता है कि—

जितेन लभते लक्ष्मीः मृत्युनापि सुराङ्गना।
क्षणविध्वंसिनी काया का चिन्ता मरणे रणे॥

इस अवसर पर शिवाजी ने उपर्युक्त श्लोक कहा या नहीं, यह बात महत्त्व की नहीं है। महत्त्व की बात यह है कि सभासद यह भली भाँति जानता था कि शिवाजी महाराज संस्कृत श्लोक कह सकते थे।

(२) शिवाजी महाराज ने रायगढ़ में महल आदि बनवाये। उस समय 'जगदीश्वर' नाम का एक मन्दिर भी बनवाया। उसके मुख्य द्वार के बाईं ओर निम्न-लिखित पद्य पत्थर में लिखे हैं—

प्रासादो जगदीश्वरस्य जगतामानन्ददोऽनुज्ञया,
श्रीमच्छत्रपतेः शिवस्य नृपतेः सिंहासने तिष्ठतः।
शाके षण्णव-बाण-भूमिगणनादानन्दसंवत्सरे,
ज्योतीराजमुहूर्तकीर्तिमहिते शुक्लेससार्पे तिथौ॥
वापी-कूप-तडाग-राजिरुचिरं रम्यं वनं वीतिके,
स्तम्भैः कुम्भिगृहे नरेन्द्रसदनैरभ्रंलिहैर्मीहिते।
श्रीमद्रायगिरौ गिरामविषये हीराजिनानिर्मितो,
यावच्चन्द्रदिवाकरौ विलसतस्तावत्समुज्जृम्भते॥

इसमें महत्त्व की बात यह है कि शिवाजी महाराज ने अपने राज्याभिषेक का शक संस्कृत में लिखवाना चाहा। जो संस्कृत नहीं जानता उसको इस रचना से क्या आनन्द मिल सकता है? क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि शिवाजी महाराज संस्कृत जानते थे? (३) सभासद ने लिखा है कि दिलेरख़ाँ के पास से जब संभाजी वापस आया, तब शिवाजी ने उसकी अनेक प्रकार से सान्त्वना करने का प्रयत्न किया। फिर, पिता-पुत्र ने राज्य के हिसाब-किताब देखे। यदि शिवाजी महाराज पढ़े-लिखे न थे तो वे स्वयं हिसाब-किताब कैसे देख सकते थे? यदि वे पढ़े-लिखे न होते तो समकालीन और उन्हीं के एक कर्मचारी ने ऐसी बात न लिखी होती।

(ग) चिटनीस बखर में शिवाजी की साक्षरता के कई स्पष्ट उल्लेख हैं। चिटनीस ने ये बातें अपने मन से ही रखी होंगी, ऐसा कहने के लिए कोई कारण नहीं है। (१) इस बखर के ५४ वें पृष्ठ पर यह साफ़-साफ़ लिखा है कि शिवाजी को पढ़ना-लिखना तो सिखाया गया ही, पर शास्त्र भी पढ़ाये गये। हमने अब तक कई ऐसे उल्लेख बताये हैं, जिनसे शिवाजी के संस्कृत जानने की बात सिद्ध होती है। शास्त्रों का अभ्यास संस्कृत के बिना हो ही नहीं सकता। कई बातों से यह अनुमान होता है कि शिवाजी महाराज कुछ शास्त्र अवश्य जानते थे। उन्हें महाभारत का ज्ञान अवश्य था। "पुरुषार्थ" (मार्च, १९३३) के शिवाजी-अङ्क में श्रीयुत चिन्तामणि विनायक वैद्य ने इस बात के कई प्रमाण दिखाये हैं। हमें भी इसी प्रकार के कुछ प्रमाण देख पड़े। उनका उल्लेख हम आगे चलकर यथास्थान करेंगे। अभी शिवाजी के शास्त्रज्ञान के विषय में यह कहना है कि उन्होंने गागाभट्ट, रघुनाथनारायण हनुमन्ते आदि अनेक विद्वानों को कई संस्कृत ग्रन्थ लिखने के लिए उत्साहित किया। (२) चिटनीस बखर के ७०-७१ पृष्ठ पर यह लिखा है कि बालाजी



आवजी प्रभु को उसके सुन्दर अक्षर देखकर अपनी नौकरी में रख लिया। एक अपढ़ मनुष्य अक्षर की सुन्दरता को क्या जान सकता है। शिवाजी के बालाजी आवजी के अक्षर की सुन्दरता के ज्ञान का इतना स्पष्ट वर्णन है कि शिवाजी के पढ़े-लिखे होने के सम्बन्ध में कोई शक नहीं रह जाता। चिटनीस बखर का लेखक मल्हार रामराव चिटनीस उपर्युक्त बालाजी आवजी का ही वंशज था। इसीलिए उपर्युक्त कथन के विषय में संदेह करने का कोई कारण नहीं है। चिटनीस-बखर का यह कथन बिलकुल ठीक जान पड़ता है कि बालाजी आवजी के सुन्दर अक्षर देखकर ही शिवाजी ने उसे अपनी नौकरी में रक्खा था। (४) ६२ वें पृष्ठ पर यह लिखा है कि रामदास स्वामी ने क्षत्रिय-धर्म और राजनीति पर एक-एक ग्रन्थ शिवाजी को भेजा था। अपढ़ को स्वामी ने ऐसा ग्रन्थ क्यों भेजा होता? (५) संभवतः सन् १६४८ में आदिलशाह ने जब शिवाजी के राजद्रोहात्मक कार्यों की ओर शाहजी का ध्यान दिलाया तो शाहजी ने पुत्र को ऐसा न करने के लिए लिखा। पिता के इस पत्र के पाने पर शिवाजी ने अपनी पत्नी सईबाई से परामर्श किया। इस पर सईबाई ने उत्तर दिया कि "मैं तो स्त्री हूँ और कहावत है कि स्त्रीबुद्धिः प्रलयंकरी।" यह कथन भले ही ठीक न हो, पर इससे यह बात देख पड़ती है कि चिटनीस समझता था कि सईबाई भी संस्कृत जानती थी। पत्नी संस्कृत जानती हो और नवीन राज्य की संस्थापना करनेवाला पति अपढ़ हो? ऐसी स्थिति में वह पत्नी की बात को समझ ही कैसे सकता है? (६) पृष्ठ ८७ पर लिखा है कि तुकाराम ने शिवाजी के आमंत्रण-पत्र का उत्तर अभंग छन्द में लिख भेजा। यदि शिवाजी महाराज पढ़े-लिखे न होते तो उक्त पत्र से शिवाजी को क्या आनन्द मिल सकता था। फिर, उक्त पत्र के लिखने का कोई मतलब ही न था। इससे यह सिद्ध होता है कि मल्हार रामराव चिटनीस यह जानता था कि शिवा[जी] महाराज पढ़े-लिखे थे और छन्दोमय पत्र [पढ़] सकते थे। (७) पृष्ठ १७६ पर राज्य-व्यव[स्था] का जो वर्णन दिया है, उसके सिलसिले में [यह] लिखा है कि गुप्तचर-विभाग के द्वारा जो [जो] ख़बर मिलती थी, उसका सारांश चिटनीस शि[वा]जी के लिए तैयार किया करता था। यदि शिवा[जी] पढ़े-लिखे न होते तो इस प्रकार का सारांश [अना]वश्यक होता। फिर तो चिटनीस को रोज़ [का] सारांश मौखिक ही बताना पड़ता। (८) [पृष्ठ] ७८८ पृष्ठ पर शिवाजी की दिनचर्या का [वर्णन] है। इस सिलसिले में चिटनीस ने लिखा है [कि] शिवाजी महाराज अपने अष्ट प्रधानों की [सभा] में आये हुए और भेजे जानेवाले पत्र पढ़ा [करते] थे। इससे भी यह सिद्ध होता है कि चिट[नीस] यह पक्की तौर से जानता था कि शिवाजी मह[ाराज] पढ़े-लिखे थे, संस्कृत जानते थे और कुछ [...] का भी अभ्यास उन्होंने किया था। अन्य [...] के उल्लेखों की अब आवश्यकता नहीं है। अब [हम] शिवाजी के काम के आधार पर शिवाजी [की] साक्षरता को सिद्ध करेंगे।

शिवाजी के पत्र का प्रमाण—कर्नाटक [में] शिवाजी ने जो सेना रख दी थी, उस पर [उनके] भाई एकोजी ने हमला किया। इस बात की [ख़बर] जब शिवाजी को मिली, तब उन्होंने अपने [उस] भाई को एक चिट्ठी लिखी। इस चिट्ठी में कौ[रव-] पाण्डवों के युद्ध का उल्लेख है। शिवाजी ने [इस] पत्र में स्पष्ट लिखा है कि घरू झगड़ों के [कारण] कौरव-पाण्डवों का विनाश हुआ। तुम भी दुर्[योधन] के समान चल रहे हो और व्यर्थ ही अनेक [...] की मृत्यु करवा चुके हो। इस पत्र से यह [सिद्ध] होता है कि शिवाजी महाराज महाभारत को [...] जानते थे।

श्री० पुरुषोत्तम विश्रामभावजी और रा० [...] द० ब० पारसनीस ने सन् १६१२ में "सनदा[...]" नामक जो संग्रह प्रकाशित किया है, उसके [...]



लेख में शिवाजी का "वेदमूर्त्ति गोपालभट विन श्रीधर भट वास्तव्य महाबलेश्वर" के नाम शिवाजी का भेजा हुआ एक पत्र छपा है। इस पत्र में शिवाजी अपने को 'विद्यार्थी' कहता है। यदि वह कुछ भी विद्या न पढ़ा होता तो अपने को विद्यार्थी कहने का साहस क्यों करता ?

'इंगिलश फ़ैक्टरीज़ इन इंडिया'-नामक संग्रहों के ११वें भाग के २३०-२३२ पृष्ठों पर जो पत्र छपा है, उसमें यह वाक्य है—"इस मज़मून का ख़ुद शिवाजी का मोहर लगा हुआ और उसके हाथ का चंदनी छाप का पत्र उसने हमें दिखाया।"

यहाँ स्वयं शिवाजी के लिखे पत्र का स्पष्ट उल्लेख है।

परिस्थित्यात्मक प्रमाण—शिवाजी की साक्षरता के कुछ परिस्थित्यात्मक प्रमाण देख पड़ते हैं। उनका भी विचार करना आवश्यक है। इस विषय में तो कोई संदेह नहीं कि शिवाजी महाराज सुसभ्य पुरुष थे। हम यह बता ही चुके हैं कि शिवाजी के दरबार में अनेक विद्वान् और कवि थे और इन्हें महाराज ख़ूब दान-दक्षिणा दिया करते थे। इस विषय में भी कोई संदेह नहीं कि शिवाजी महाराज बड़े ही धार्मिक पुरुष थे। हिंदुस्तान में प्रतिष्ठित घराने के धार्मिक पुरुष का अपढ़ बना रहना सम्भव नहीं है; क्योंकि यहाँ धार्मिक ग्रन्थों का पाठन धर्म का एक अङ्ग है। (२) यह भी हम बता चुके हैं कि शिवाजी महाराज ने कई ग्रन्थ बनवाये। साथ ही क़िलों के नाम तथा कर्मचारियों के पदों के नाम संस्कृत में बदल दिये। राज्य-व्यवहार के फ़ारसी शब्दों के लिए संस्कृत शब्दों का उपयोग करने के हेतु से "राजव्यवहार-कोष" की रचना करवाई। इस देश में मुसलिम राज्य के स्थापित होने पर इस प्रकार का प्रयत्न अन्य किसी राजा ने न किया। संस्कृत का इतना प्रेम इस भाषा के ज्ञान के बिना नहीं हो सकता। "पूर्व मीमांसा" के एक भाग पर "शिवार्कोदय"-नामक टीका गागाभट्ट से लिखवाई। "करण-कौस्तुभ"-नामक ग्रन्थ श्रीकृष्ण-नामक ज्योतिषी से लिखवाया। शिवाजी के कहने पर "समर्थानुनय"-नामक ग्रन्थ भी गागा-भट्ट ने संभाजी के पढ़ने के लिए तैयार किया था। इसकी एक हस्तलिखित प्रति फ़्लोरेन्स शहर के पाण्डुलिपिसंग्रह में रखी है। चिटनीस ने अपनी बखर में लिखा है—

"वेदशास्त्र बिलकुल उच्छिन्न हो गये थे। इस-लिए एक ग्रन्थ का अध्ययन करनेवाले को एक-एक मन अनाज, पाँच ग्रन्थ और दस ग्रन्थ अध्य-यन करनेवाले को पाँच मन और दस मन अनाज परीक्षा लेकर दिया जाय। उसी प्रकार जो जैसा विद्वान् हो, उसकी योग्यता देखकर स्वदेश का (यानी महाराष्ट्र का) हो तो अनाज और द्रव्य की और परदेशी (अन्य भाग का) हो तो केवल द्रव्य की वार्षिक वृत्ति ही श्रावण मास में परीक्षा लेकर पण्डित राव (प्रधान) नियत करे। जैसी अधिक विद्या हो, वैसी उसकी वृत्ति अधिक रहे। बड़े-बड़े पण्डित, वैदिक, प्रतिष्ठित लोग आवें, उनकी सभा करके उनका सत्कार करके सौ-पचास अधिक ही (रुपये) योग्यतानुसार दिये जायँ, ऐसी व्यवस्था (शिवाजी महाराज ने) कर दी। इस कारण दिनों दिन विद्यावृद्धि होने लगी। अग्नि-होत्र करनेवालों को उसके लिए द्रव्य की व्यवस्था कर दी। उनकी वृत्ति बढ़वा दी। उसी प्रकार यज्ञ करनेवालों को वृत्ति की व्यवस्था करवा दी। इस प्रकार देव ब्राह्मण की स्थापना करके नित्यदान और नैमित्तिक कार्य की व्यवस्था कर दी। उसी प्रकार स्थान-स्थान अन्नछत्र और नित्य ब्राह्मण-भोजन, ब्राह्मणों को इच्छा-भोजन (मिलने का) प्रबन्ध कर दिया। ऐसी व्यवस्था कर दी कि अपने राज्य का ब्राह्मण दूसरे राज्य में न जावे।" (चिट-नीस बखर, पृष्ठ १८४)। इस पर कोई यह कहे कि यह सब चिटनीस का काल्पनिक वर्णन होगा। इसका उत्तर यह है कि राज्याभिषेक के समय अष्ट प्रधानों के कर्तव्यों और अधिकारों का जो

"क़ानून ज़ाब्ता" तैयार करवाया, उसमें पण्डित-राव-नामक धर्म-मन्त्री के निम्नलिखित कर्तव्य बताये हैं—"पण्डितराव को सब धर्माधिकार हैं। धर्म-अधर्म देखकर वह दण्ड दे। शिष्टों का सत्कार करे। आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्तपत्र हो उन पर सम्मतिसूचक चिह्न करे। दान, शान्ति, अनुष्ठान तत्काल करे।" इससे यह स्पष्ट है कि सत्कारार्ह लोगों का सत्कार करने का तथा राज्य की ओर से दानादि देने का कर्तव्य पण्डित-राव-नामक मन्त्री का था। जिस पुरुष ने विद्यावृद्धि की ओर इतना अधिक ध्यान दिया हो, वह स्वयं निरक्षर रहे, यह भारी आश्चर्य की बात होगी। (३) शिवाजी के पिता शाहजी केवल पढ़े-लिखे ही न थे, किन्तु संस्कृत जानते थे, कवियों के संरक्षक थे और समस्यापूर्ति के लिए समस्याएँ दे सकते थे। संभाजी तो संस्कृत का इतना ज्ञान रखता था कि वह "बुधभूषण"-नामक संग्रह की रचना भी कर सका। यदि अन्तिम कथन की सत्यता पर संदेह भी किया जाय तो भी इसमें तो संदेह नहीं कि वह संस्कृत अवश्य जानता था। शिवाजी का सौतेला भाई संस्कृत जानता था और उसके दरबार में भी अनेक कवि थे। जिजाबाई पढ़ी-लिखी थी और "रामायण" और "महाभारत" पढ़-समझ सकती थी। ऐसी स्थिति में शिवाजी का अपढ़ रहना कैसे संभव हो सकता है? पिता, भाई, माता, पुत्र आदि सब पढ़े-लिखे और संस्कृतज्ञ हों और केवल शिवाजी पूर्ण निरक्षर हो, यह आश्चर्य की बात होगी। (४) हम यह बता ही चुके हैं कि शिवाजी महाराज "महाभारत" जानते थे और इस ग्रन्थ का उनके व्यक्तिगत और राजकीय जीवन पर यथेष्ट परिणाम हुआ है। अष्टप्रधान-सभा तथा प्रधानों के कर्तव्यों का विचार करने पर यह कहना ही पड़ता है कि प्राचीन काल की राजनीति के "महाभारत", "शुक्रनीति" आदि ग्रन्थों का शिवाजी ने यथेष्ट उपयोग किया है, और यह कुछ हमारा आज का मत नहीं है। शिवाजी का सप्तप्रकरण चरित्र लिखनेवाले मल्हार रामराव चिटनीस अपनी बखर में राज्याभिषेक-वर्णन के सम्बन्ध में ३३६ पृष्ठ पर लिखा है—"धर्म स्थापना राज्यकरण्याचेधर्म यवनक्रान्त पृथ्वी होऊन ते पुनः जीर्णोद्धार करूँन स्थापिले।......... अष्टप्रधान याचे व्यापार पूर्वीचीशास्त्र पद्धती चाली पाहून केले" (राज्य करने के जो धर्म पृथ्वी यवनाक्रान्त होने से जाते रहे थे, फिर से जीर्णोद्धार धर्म-स्थापना करके ....अष्ट प्रधानों के कार्य पहले की पद्धति देखकर रीतिनीति का विचार कर किये।) शंका की तो कोई सीमा नहीं है। यह स्पष्ट है कि हमने जिस मत का प्रति[पादन] किया है, उसका उल्लेख सवा सौ बरस पहले लेखक ने किया था। आज के पक्षविपक्ष का तो कुछ ख़याल न था। उसने जो कुछ समझा, वही लिखा है। इसलिए कुशंका करना दुराग्रह का परिचय देना है।

अब हम शिवाजी महाराज के नाम से लिखे पत्रों की ओर ख़याल दिलाना चाहते हैं। उनको हम कालक्रम से अपने सामने रखकर भाषा का विचार करें तो यह देख पड़े[गा कि] उनकी भाषा धीरे-धीरे अधिकाधिक संस्कृतमय [होती] गई है। यह भी हम माने लेते हैं कि शिवाजी महाराज के नाम लिखे हुए अनेक पत्रों में से [कई] पत्र उनके कर्मचारियों ने लिखे होंगे, परन्तु यह मानने में कोई आपत्ति नहीं कि महत्त्वपूर्ण [पत्रों] का मज़मून शिवाजी महाराज ने मौखिक [बताया] होगा। उदाहरण के लिए निम्नलिखित [पत्रों पर] विचार करना आवश्यक है (१) सन् [१६४६] का दादाजी नरस प्रभु को भेजा हुआ [पत्र], (२) १६५६ का बीरवाड़ी के पाटिलों को भेजा हुआ पत्र, (३) सन् १६५३ का [...] के पुत्र सिद्धेश्वरभट को भेजा हुआ पत्र, [(४)] सन् १६६२ का सर्जाराव जेधे को भेजा हुआ



(५) सन् १६६२ का प्रभावली के सूबेदार पिलाजी नीलकण्ठराव को भेजा हुआ पत्र, (६) सन् १६६४ (?) का अपने पिता शाहजी को भेजा हुआ पत्र, (७) सन् १६७४ का समस्त सैनिक कर्मचारियों के नाम भेजा हुआ पत्र, (८) सन् १६७४ के जून में राज्याभिषेक के समय तैयार किया हुआ अष्टप्रधानों के कर्तव्यों का "क़ानून-ज़ाब्ता", (९) सन् १६७७ का प्रभावली के सूबेदार शिवाजी विनायक के नाम भेजा हुआ पत्र, (१०) सन् १६७८ के अक्टूबर में चाफल के मन्दिर को दी हुई सनद, (११) मार्च १६७७ ईस्वी का मालोजी के नाम भेजा हुआ पत्र, (१२) सन् १६७६ में सौतेले भाई एकोजी को भेजा हुआ पत्र, (१३) १६६९ में एकोजी को उपदेशपर भेजा हुआ पत्र। जो कोई इन पत्रों की छानबीन बारीकी से करेगा, उसे यह अवश्य देख पड़ेगा कि इनमें से कुछ पत्र यद्यपि कर्मचारियों ने महाराज के नाम लिखे हैं, परन्तु मज़मून स्वयं शिवाजी ने सारांश में बताया है। ऐसे पत्र बहुधा आज्ञारूप हैं, उनमें राज-विभाग की छाया विशेष है और शब्द फ़ारसी और उर्दू के यथेष्ट हैं। परन्तु इनमें कुछ पत्र ऐसे भी हैं जिनका सारा मज़मून स्वयं शिवाजी का बनाया है, जो स्वयं शिवाजी महाराज के लिखे जान पड़ते हैं। उपर्युक्त पत्रों में संख्या २, ४, ५ या ६ के पत्र पहले व° के हैं, और संख्या १, ३, ६, ७, ८, १०, ११, १२ या १३ के पत्र दूसरे प्रकार के हैं। किसी को भी यह मानना होगा कि कोई भी अपने महत्त्वपूर्ण पत्र या आप्तसम्बन्धियों को लिखे पत्र स्वयं लिखता है या कम-से-कम उनका सब मज़मून स्वयं बनाता है, और गुप्त पत्र को चिटनीस के ज़िम्मे कोई राजा भी नहीं कर सकता। पत्र-संख्या ५ और ६ गुप्त प्रकार के हैं। पत्र-संख्या ११, १२ और १३ आप्तसम्बन्धियों को लिखे महत्त्वपूर्ण पत्र हैं। इनका लिखना किसी दूसरे के ज़िम्मे नहीं किया जा सकता। यह भी यदि मान लिया कि शिवाजी महाराज बोलते गये और कोई चिटनीस लिखता गया तो भी यह स्पष्ट है कि शिवाजी महाराज मराठी तो अच्छी तरह जानते ही थे, किन्तु कुछ संस्कृत भी जानते थे। उन पत्रों में अच्छी भाषा और ऊँचे विचार तो हैं ही, परन्तु उनमें अच्छे खासे कठिन संस्कृत शब्द हैं। जिस किसी को कुछ शंका हो, वह इन मूल-पत्रों को पढ़कर देखे। हम कुछ ही शब्दों को चुनकर दे रहे हैं—अनुष्ठानवलें, पुत्रपौत्रादिवंशपरम्परेनें, यावत्कालपर्यंत, स्वर्गदेवता, जपतपहवनास, स्वधर्मसाधणता, निर्वाणीचा, स्वधर्मराज्यवृद्धि, सनाथ, व्रत संपादून, राज्यपरंपरा, आसमन्तात्, गिरिगव्हरीं, उपाधि, यथावकाश, राजकारण, निष्कपट, निःसंदेह, आराध्य, राजकारण-प्रसंगें, कपट-बुद्धि, गृहकलह, निर्मल-पणें, निर्गमून, स्वकीय कुशल-लेखन, उदासवृत्ति, कालक्रमणा, का°-प्रयोजन, उपतिष्ठोन, कृतकृत्यता, उत्कर्ष, विषण्णता, शरीर संरक्षण, अर्जणें, उत्तरवयीं, पुरुषार्थी। इनमें से कुछ संस्कृत सामासिक शब्द हैं। विना संस्कृत जाने उनका उपयोग कोई कर नहीं सकता। 'निर्गमून', 'उपतिष्ठोन', और 'अर्जणें' संस्कृत शब्दों के मराठी रूप हैं। संस्कृत न जाननेवाला उनका ऐसा उपयोग नहीं कर सकता। शाहजी, एकोजी, सैनिक कर्मचारीगण, भावोजी रेरपड़े और जिवाजी विनायक के नाम भेजे पत्र अच्छे वक्तृत्वपूर्ण हैं। इनका प्रत्येक शब्द या तो शिवाजी महाराज का बताया है या वे पत्र स्वयं शिवाजी महाराज के लिखे हैं। उनका यदि कोई बारीकी से अध्ययन करे तो उसे यह देख पड़ेगा कि उनमें शब्द, शब्दों के रूप, वाक्यरचना आदि अनेक बातें समान हैं। इसी लिए यह किसी को भी मानना होगा कि मज़मून लिखानेवाला संस्कृत भाषा जानता था। फिर, यह भी स्मरण रखना चाहिए कि मन्त्रियों के कर्तव्यों का क़ानून-ज़ाब्ता तैयार करने का काम किसी मंत्री को ही न सौंपा होगा। या तो उसका

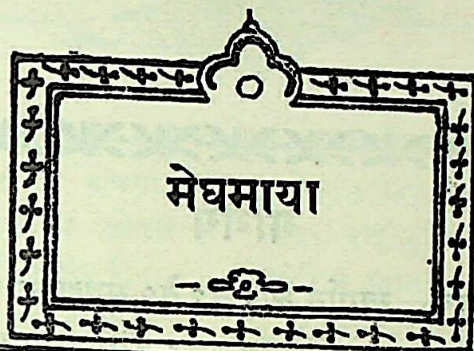


मज़मून शिवाजी ने ज़बानी बताया होगा या उसे स्वयं लिखा होगा और यह हम बता ही चुके हैं कि शिवाजी की राज्य-शासन-व्यवस्था की कई कल्पनायें 'महाभारत', 'शुक्रनीति' आदि प्राचीन ग्रंथों से ली गई हैं। यदि इन बातों का एकत्र विचार करें तो हमें यह मानना ही पड़ेगा कि शिवाजी पढ़े-लिखे तो थे ही, किन्तु संस्कृत भी जानते थे। अन्त में हमें उनकी संस्कृत-मुद्रा का विचार करना है। यदि शिवाजी को संस्कृत का ज्ञान न था तो संस्कृत में मुद्रा रखने का कोई मतलब ही न था। इसलिए हमें यह अनुमान निकालना पड़ता है कि शिवाजी पहले जब पूने को आये तभी से संस्कृत पढ़ने लगे थे। आजकल भी बखर के शब्दों से यही अनुमान निकलता है।

सारांश, शिवाजी की साक्षरता के प्रमाण ... हैं। यदि मराठी इतिहास की साधन-सामग्री ... भरपूर छान-बीन की जाय तो ढेरों प्रमाण ... सकते हैं। स्वयं शिवाजी महाराज के लिखे ... अब तक उपलब्ध न हो सके, इसलिए निर... का दोष उनके मत्थे मढ़ना अनुचित है। ... के तथा कई अन्य स्थानों के दफ़्तर और ... के हमले के बाद नष्ट हो गये। शिवाजी ... के बहुत कम काग़ज़पत्र मिल सके हैं। ... अधिकाधिक मिलने की संभावना है और ... है कि किसी दिन कहीं स्वयं शिवाजी म... के पत्र मिल जायँ और उनकी साक्षरता के ... में संदेह न रह जाय।









मेघमाया

पु० श्रीप्रतापनारायण

क्यों मचाता भीमतम उत्पात तू
डाल मञ्जुल मेदिनी को अभय में।
नीरधर ! तू किस तरह है शीतकर
वज्रानल को छिपा कर हृदय में १

मेघ ! मघवा-अर्चना तू कर रहा
ग्रीष्म को या दे रहा है भर्त्सना।
शान्ति का संदेश है यह, या कि यह
उच्चता के गर्व की है गर्जना २

भूमिमाता पर पटककर वज्र को
क्यों उसे तू दुःख ऐसा दे रहा।
अमृत से अपने अमृत में भी डुबा
प्राणियों के प्राण क्यों तू ले रहा ३

तापहर कैसे हुआ तब तू यहाँ
विरह का जब ताप तुझसे बढ़ गया।
पद्मिनी कुलकामिनी को आप ही
देख तुझको काम का ज्वर चढ़ गया ४

जन्तुओं का नाश करने के लिए
फैलती क्यों भूमि पर तेरी तरी।
क्यों उन्हें कर डालता है नष्ट तू
खेतियाँ जो हो रहीं तुझसे हरी ५

कालिमा तेरी टपाटप शब्द कर
हो गई क्यों पीतपट-पटपीतिमा[1]।
देख तेरी लालिमा पर दिन छिपे
लग गई क्यों नीलगल[2]-गलनीलिमा ६

विष्णुपद[3] का तू अलौकिक पुष्प बन
सरस है, पर गन्ध तुझमें है नहीं।
तू न तरु, पर जन रहा घनपुष्प[4] को
कर मही को सघनघन घन ! सब कहीं ७

भूभुवन में सृष्टि करके भुवन की
भुवनधर ! भुवनेश का तू रूप है।
पालना से विष्णु त्रिभुवननाथ है
नाश से भूतेश शम्भु अनूप है ८

वायुवारिधि की अनोखी नाव बन
किस तरह तू रह रहा गम्भीर है।
मञ्जु मोरों के निराले नाच को
देखने तू क्यों महान् अधीर है ९

भूल मत मत फूल, मन में गर्व कर
एक से किसके रहे हैं दिन सदा।
है न जीवन का भरोसा, इसलिए
याचकों को दे स्वजीवन-सम्पदा १०

देख मत हमको निरादर-दृष्टि से
और नीचा भी हमें मत मान तू।
तू हमारे नीरनिधि का नीर है
देह का रूपान्तर ही जान तू ११

पालना कर भव्य भारतवर्ष की
दीन का विध्वंस अच्छा है नहीं।
मेघ ! माया छोड़, जिससे देख ले
मञ्जुमायानाथ को तू हर कहीं १२

१ श्रीकृष्ण । २ मोर । ३ आकाश । ४ जल ।



गांगेय

मूल-लेखक—स्वर्गीय श्री० व० वे० सुब्रह्मण्य अय्यर

अनुवादक—श्री० के० एस्० श्रीनिवासाचार्य

स्वर्गीय श्री० व० वे० सुब्रह्मण्य अय्यर का शुमार तमिलनाडु के उत्तम देशभक्तों में है। इनका जन्म तिरुच्चि के पास वरगनेरी में हुआ। ये तिरुच्चि और रंगून में वकील रहे और बैरिस्टरी की शिक्षा इँगलैंड गये। वहाँ विनायक दामोदर सावरकर से इनकी भेंट हुई और तब से वकील सुब्रह्मण्य देशभक्त सुब्रह्मण्य हो गये। तिरुनेल्वेली ज़िले में शेरमादेवी के पास ताम्रपर्णी नदी के किनारे इन्होंने एक गुरुकुल की स्थापना की। इनकी मृत्यु एक वीर-मृत्यु थी। नदी के उद्गमस्थान की खोज में बेटी के साथ निकले। नदी में गिरी कन्या को बचाने के लिए आप भी नदी में कूद पड़े। नदी दोनों को हड़प कर शान्त हुई।

सुब्रह्मण्य अय्यर दुनिया की प्रायः सभी भाषाओं के साहित्य के अच्छे जानकार थे। तिरुक्कुरल के अँगरेज़ी अनुवादों में इनका अनुवाद एक ख़ास उच्च स्थान रखता है। इनके और भी अनुवाद और कहानियाँ हैं। प्राकृतिक वर्णन में इनकी योग्यता विशेष पाई जाती है। इनके वर्णित दृश्य कल्पित नहीं, यथार्थ होते हैं। इनकी लेखनशैली गांभीर्य, लावण्य और प्रासाद से पूर्ण है और उसमें संस्कृत शब्दों का प्रयोग अधिक है। "कहानियाँ कवितापूर्ण और रसभावोपेत होनी चाहिए" यह इनका सिद्धान्त है। निम्नलिखित कहानी इन्होंने, गयेलिक महाकवि ओसियन के ढंग की शैली में, लिखी है।]

(पूर्वकथा—गंगदेश के राजा और राजा नन्नन के बीच लड़ाई छिड़ती है और लड़ाई में गंगदेश का राजा और उसके साथी मर जाते हैं। गंगदेश को अपने क़ाबू में कर, और वहाँ के राजा का छोटे लड़के गांगेय को साथ लेकर राजा नन्नन अपनी राजधानी शेंगएमा पहुँचकर राज्य करता है। वह गांगेय को राजप्रासाद में ठहराकर अपने बेटे की तरह उसकी देखरेख करता है और समुचित शिक्षा प्राप्त कराने का प्रबन्ध करता है। नन्नन का उसको अपने यहाँ रखने का उद्देश्य यह था कि उसके यहाँ रहने से गंगदेश की प्रजा बग़ावत न करेगी। नन्नन की इकलौती बेटी मार्गदा गांगेय से प्रेम करती है।)

(गां)

"प्रेम! यह क्या है? दिल तड़प रहा है। शरीर द्रवीभूत हो रहा है?

"दक्षिण समीर वदन को जला रहा है। कमल का फूल हाथ को तपा रहा है। खेलने में जी नहीं लगता। सखियों का सम्मेलन कड़ुआ लग रहा है। दिल सुनसाम जगह चाहता है। लेकिन एकान्त में मन ही मन को खा रहा है।

"नींद आँखों से हट गई है। कभी-कभी अपने-आपको भूलकर आँखें मूँदते स्वप्न में प्रेमी का दिव्य रूप दीखकर सताता है।

"सुना है कि पिताजी ने गांगेय के साथ मेरा ब्याह कराने के लिए कहा है। क्या यह

सच हो सकती है ? गांगेय के बलिष्ठ बाहु से मिलने का सौभाग्य क्या मुझे प्राप्त हो सकता है ? उसकी बहादुरी को, उसकी शकल को सोचते ही मेरे दिल का प्रेम झंझावात-सा हो उठता है।

"लेकिन, क्या गांगेय मुझे चाहता है ?

"अगर न चाहता तो नीलमाला के द्वारा यह सुन्दर माला मेरे पास क्यों भेजता ? पुरुषसिंह गांगेय के हाथों में, थोड़ी देर के लिए सही, रहने के भाग्यवाले हे फूलो ! तुम्हारी तक़दीर क्या ही अच्छी है। तुम्हें अपनी छाती में रखूँगी।

"लेकिन बिना गांगेय के प्रेम के स्वरूप को जाने, क्या इन फूलों को रखना ठीक है ? नहीं, अभी इन्हें न रक्खूँगी। अरी माला ! तुम्हें इस पुष्प-लता में टाँग दूँगी। जब मुझे गांगेय अपने प्राणों से भी अधिक चाहेगा, तब तुम्हें अपने गले में पहनूँगी। न हो तो इस जन्म में इन फूलों का स्पर्श न करूँगी। यह सत्य है, यह सत्य है।

"गांगेय का आशय कैसे समझा जा सकता है ? हाँ; आज वह शिकार खेलने जायगा। वहाँ जाकर अपना मक़सद पूरा करूँगी। अरे मन ! तब तक सब्र कर। मुझे मत सता।"

इस प्रकार सोचती हुई माधवी जंगल की ओर जा रही थी।

× × ×

(गे)

गांगेय और उसके साथी वन में शिकार खेल रहे हैं। तीर चलाने में, फाँस फेंकने में, भाला भोंकने में कौन गांगेय की समता रखता है ? हरिण और जंगली भैंसे तीर लगने से जहाँ-तहाँ मरे पड़े हैं। जंगल का एकछत्र बादशाह सुअर भी गांगेय के भाले से घायल होकर पड़ा है।

लेकिन गांगेय के मन में ख़ुशी नहीं है। उसे अपने देश का ख़याल हो आता है।

"कितने दिन मैं परदेश में रहूँगा ! मेरी चिंता से मा रोती होगी। क्षीरनदी के किनारे हम लोग नन्नन के हाथ क्यों हार खाये ? उस दिन हमारे वीरों की ताक़त कहाँ चली गई थी ? मैं क्यों उस दिन बचा था ? पिता की तरह, भाई की तरह, रण-भूमि में मर जाता तो ऐसे दुःख की बारी न आती।

"हाय ! पहले-पहल उसने मुझे देश-निकाले का दण्ड दिया ! क्या उसका जन्म स्त्री-पुरुषों के बीच इस संसार में नहीं हुआ ? रेगिस्तान की तरह सूखे हुए उसके दिल में रहम बिल्कुल न रहा।

"यह देखो ! ये काले बादल गंगदेश की ओर जा रहे हैं ! सबेरे जो हंस क़तार बाँधकर उड़ते जा रहे थे, वे मेरी रत्नपूर्ण जन्मभूमि की झीलों में नहाकर खेलते होंगे। सिर्फ़ मैं ही यहाँ आहभरे साँस छोड़ रहा हूँ।

"नन्नन मुझसे प्रेम करता है—अपने पुत्र की तरह मेरी ख़ातिर करता है। लेकिन मैं क़ैदी ही तो हूँ ? इसकी सीमा का तो मैं उल्लंघन नहीं कर सकता ? अपनी जन्मभूमि का ख़याल मेरे दिल को सता रहा है।

"गंगदेश ! तेरे टीलों को, झरनों को, गुफाओं को, जंगलों को फिर मैं कब देखूँगा ? देवदारु, अगरु, चन्दन, कटहल और बाँस से खचाखच भरे हुए तेरे जंगलों में चीतों और रीछों का शिकार कब करूँगा ? हाथी के बच्चों को खेलते-कूदते और हस्तिराज को हज़ारों हथिनियों के बीच वन के सरोवरों में जल-क्रीड़ा करते फिर कब देखकर मज़ा लूटूँगा ! गंग ! क्या ही अच्छा है तुम्हारा सौन्दर्य ! क्यों मैं तुमसे बिछुड़ा हूँ ?"

इस प्रकार गांगेय के मन में अपने देश के ख़यालात पैदा होकर उसे सता रहे हैं।

× × ×

(य)

तब एक नौजवान वीर गांगेय के पास आकर बोला—"गांगेय, वहाँ उस बाग़ में शेरदेश का राजकुमार माधवी का मनन कर रहा है। चलो, सुनें।"

गांगेय का मुँह क्रोध से तमतमा उठा। आँखों

से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं । तलवार को तीक्ष्ण करके उसने कहा—"अपनी माधवी का चिंतन करनेवाले चोर के अभी दो टुकड़े कर देता हूँ । बताओ, वह कहाँ है ?"

गांगेय की बातें सुनकर, युवक वीर ने मुस्कुराकर अपनी पगड़ी को सिर से निकाल दिया । उसी समय बाल बिखर पड़े, मानों पूर्ण चन्द्र को काले बादलों ने घेर लिया हो । जैसे बादल को चीरकर सौदामिनी-लता चमकती है, वैसे ही वीर-वेष को त्यागकर गांगेय के सामने माधवी खड़ी हुई ।

वह कहने लगी—"तुम्हारे प्रेम की मैंने जो खोज की, उसके लिए मुझे माफ़ करो ।"

गांगेय की आँखों में आँसू भर आये ।

"अरी मेरी प्रेम-पात्र सुन्दरी ! क्या तुम्हें माफ़ करना है । भयंकर ज्वर जैसे सूखे हुए मेरे हृदय में तुम्हारी एक स्मृति ही झरने से पैदा हुई सुन्दर फुलवारी-सी है । नन्नन का सर्वस्व ! मेरे मनरूपी क्षीरसागर में उदित अमृत-कलश ! चमकती हुई सफ़ेद चाँदनी ! मेरा ही भाग्य सराहनीय है जो तुम्हारा प्रेम मिला ।

"लेकिन, मेरी माधवी, मैं यह भूल गया कि इस राजगृह का मैं एक बन्दी हूँ । क्या तुम्हारा पिता मेरे साथ तुम्हारा ब्याह कर देगा ?"

इस प्रकार गांगेय का वक्तव्य समाप्त न हु[आ] कि इतने में, "उसका पिता उसे तुम ही को [दे]ना चाहता है"—यह कहता हुआ, नन्नन उसके [पास] आकर खड़ा हो गया ।

गांगेय भौंचक हो गया ।

लेकिन माधवी धीरे-धीरे नन्नन के पास जा[कर] खड़ी रही ।

नन्नन ने गांगेय से कहा—"गांगेय, तु[म्हारे] वीर्य और शौर्य को सराहकर मैंने जब तुम्हें [अपना] दामाद बनाना चाहा, तब ही तुम दोनों के म[न की] एकता को देखकर सन्तुष्ट हुआ हूँ । जब मैं [शिकार] खेलते इस रास्ते जा रहा था, तब तुम्हारी [बातें] मेरे कानों में पड़ीं और यह जानने के लि[ए कि] यह कौन है, मैं यहीं खड़ा रहा । तुम्हारा दे[श-प्रेम] देखकर मेरा मन पिघल गया । बन्दी बनाने [की] प्रथा बहुत बुरी है । मैंने तुम्हें बन्दी बनाकर सताया, उसके बदले में अपनी इकलौती [बेटी] माधवी को और अपने देश को तुम्हें सौंप देता [हूँ ।] शेंकएमा में छः महीने और गंगदेश में छः म[हीने] रहकर, तुम दोनों राज्यों का पालन करते र[हो ।"]

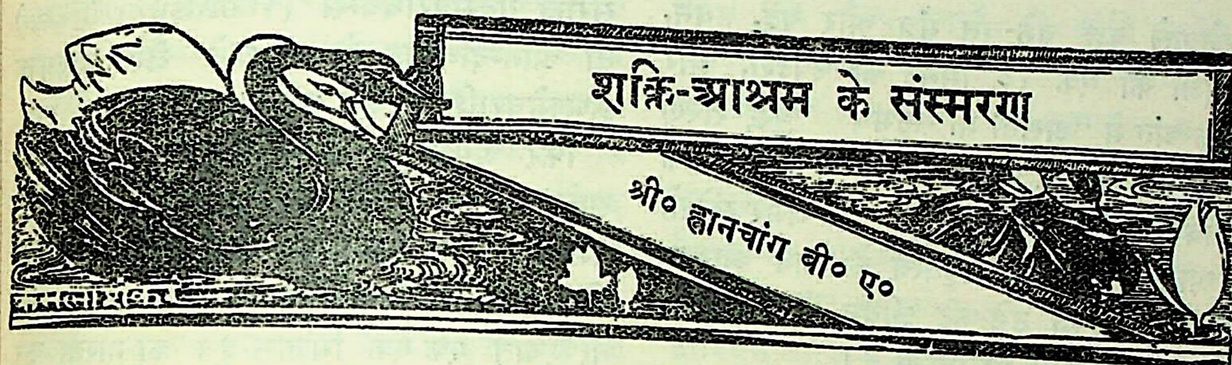
यह कहकर नन्नन दोनों को घर ले गया ।

गांगेय माधवी से विवाह कर, दोनों [राज्यों] को पाकर, सुख से रहने लगा ।

आवश्यक सूचना

श्रीबैजनाथ त्रिवेदी नाम के एक महाशय 'माधुरी' के ग्राहक बना[ने] की कोशिश करते हैं । हमने उनको इसके लिए मना कर दिया था, प[रंतु] उन्होंने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया । अब लोगों को चाहिए [कि] 'माधुरी' के नाम पर उनको कुछ भी रुपया अग्रिम न दें । यदि देंगे तो हम इसके उत्तरदायी नहीं होंगे । उक्त महाशय हमारे एजेन्ट नहीं हैं ।

मैनेजर 'माधुरी'



पूर्वार्द्ध



र्मनी युवक-आंदोलन वान्डर-वोगल तथा भारतीय महर्षियों की आश्रम-संस्कृति का रचनात्मक एकीकरण कर भारतीय युवकों के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए युवक नवोत्थान का जीवनपर्यन्त मिशन लेनेवाले स्व० डाक्टर केशवदेव शास्त्री तथा साधु टी० एल० वास्वानी ने बतौर प्रयोग के सन् १९२७ में भारत-युवक-संघ के जिस केन्द्रीय शक्ति-आश्रम की नींव राजपुर (देहरादून) में डाली थी, उसी के १९२९ के 'समर-सेशन' के संस्मरण हमें यहाँ लिखने हैं—

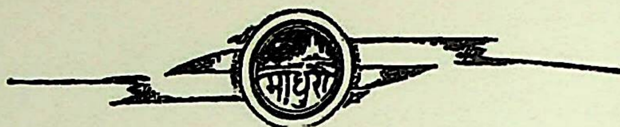
घूमती चिड़ियाँ—

आधुनिक शिक्षा से क्षुब्ध, सामाजिक कुरीतियों के शिकार, अपने अस्त-व्यस्त जीवन में युगभर की वेदना समेट, बंधुत्व, प्रेम और जिज्ञासा के क्षेत्र में कुछ 'भारतीय वान्डरवोगल' महाकाव्यकालीन सामंत ऋषि द्रोणाचार्य की उस परम प्रिय मनोहर घाटी में सन् १९२९ के ग्रीष्म में आ एकत्रित हुए।

पिछले वर्ष की नाईं व्यायाम-शिक्षा देने के लिए प्रो० राममूर्ति तथा के० वी० अय्यर नहीं आये थे। इससे सब बन्धुओं को बड़ी निराशा हुई। इनके स्थान पर मेरठ कालिज के प्रो० सूद तथा धनुर्विद्या-विशारद गुरुकुल के एक प्रसिद्ध अनुभवी प्रोफ़ेसर महोदय से ही संतोष करना पड़ा। हिन्दू-विश्वविद्यालय के प्रो० सिवाही मैलानी भी सकुटुम्ब पधारे थे। एक बड़े स्थूलकाय संन्यासी, जो रिटायर्ड डाक्टर थे और आश्रम भर में सबसे स्वस्थ बलशाली एवं तेजस्वी प्रतीत होते थे, आश्रम के जिन्दादिल सेक्रेटरी स्वामी आनन्द ने उन्हें युवकों की डाक्टरी देख-भाल करने तथा उपदेश देने के लिए आश्रम में ठहरा लिया था। मई के अन्त में तीन सप्ताह की सतृष्ण प्रतीक्षा के बाद आश्रम के मध्यविन्दु साधु टी० एल० वास्वानी भी सिन्ध के मरुस्थल को छोड़ उत्तराखण्ड की उस मनोहर उपत्यका में पधारे।

कार्यक्रम—

प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में घंटे की ध्वनि सुन बन्धुगण (जिनमें से ६० प्रतिशत कालिजों के युवक छात्र थे) ग्रीष्म की प्रातःकालीन निद्रा से स्नेह तोड़ने की इच्छा न रखते हुए भी ५ बजे तक अपने को प्रार्थना के लिए तैयार कर लेते थे। प्रार्थना में प्रतिदिन गीता के 'स्थितप्रज्ञ' का पाठ होता था। कुछ भजन, संतवाणी, वेद, उपनिषद्, बाइबिल, क़ुरान में से विश्वबंधुत्व की भावना



भरनेवाले कुछ चुने-चुने मंत्र और पद, हवन, साधुजी का एक १० मिनट का उपदेश, और सबके अंत में "असतो मा सद्गमय" "बुद्धं शरणं गच्छामि" प्रतिदिन एक अद्भुत, दिव्य आध्यात्मिक वातावरण उपस्थित कर देते थे। इन अमर संदेशों ने आनन्दं, अभयं, अमृतत्वं के भाव आश्रम-वासियों ने अपने टूटे-फूटे जीवन में भरे होंगे, इसमें किसको संदेह हो सकता है।

६ बजे फिर सब छात्रों को स्वामी आनन्द और दिग्गज स्वामी वत्सलानन्द प्राणायाम, आसन, मुद्रा आदि सिखाते। आध घंटे के पश्चात् नीचे घाटी में एक मील की दूरी पर एक पनचक्की के हौज़ में तैरने चले जाते थे। प्रातः-कालीन मई के सूर्य की किरणों में निकटस्थ झिल-मिल पर्वतीय सोते में प्रो० सूद बैठ जाते और ठंडे पानी को 'टानिक' बता बारबार अपनी रीढ़ को वज्र बनाने के लिए तेज़ छींटे लगवाते। बेचारा दुर्बल 'बैन' भी अन्य मित्रों के साथ वैसे ही लम्बरूप बैठ प्रसन्नचित्त हो उनका अनुकरण करने लगता, और उधर आश्रम का 'बफ़ून' पुशालकर (जिसका वीरता का पहला आदर्श आश्रम का पहाड़ी युवक रसोइया भजनदत्त था!) मैले-कुचैले पर वन-चमेली-से हास्यप्रिय पहाड़ी छोकरों से बंधुत्व स्थापित करता और दो-एक पैसे दे किसी की टोपी ख़रीद उसे अपने सिर पर रख किलकारी मार हँसता। कुछ भाई उस हौज़ में तैरना सीखते, यद्यपि पानी इतना ठंडा होता था कि आध घंटा बराबर नहाते रहना तीव्र कम्पन पैदा कर देता था। ऐसे स्वच्छन्द और स्वास्थ्यप्रद स्नान का अवसर इस भारग्रस्त जीवन में बार-बार नहीं आता। स्नान की वह घाटी हमें प्रति-दिन नवीन जान पड़ती और हमारे कोमल, भावुक, रेडियो सरीखे हृदयों पर 'युगधर्म' का कोई न कोई शक्तिप्रद विचार अंकित कर देती थी। 'बैन' सरीखे 'वर्डसवरथियन्स' (Wordsworthi[ans]) तो आनन्दविभोर हो उठते थे—जैसे ज[ल] कृष्णमेघराशि को देख मयूर।

फिर आश्रम के मैदान में साढ़े सात [से] साढ़े आठ तक शारीरिक व्यायाम होता। [सूर्य] नमस्कार तथा प्रो० अय्यर की व्यायाम-[पद्धति] को इस समय विशेष महत्त्व दिया जाता। तत्पश्चात् एक-एक गिलास दूध का नाश्ता। ११ बजे तक सब वीर मन्दिर में व्याख्यान [सु]-[नते]। ११ से १२ तक आश्रम-मेस में सब बन्धु एक[त्र] हो खाना खाते। खाना सादा, विटैमिनयुक्त [और] 'बैलैंस्ड' होता। जो २०) प्रतिमास नहीं दे [सकते] थे, उनको स्वयंपाकी बनने की आज्ञा थी।

ढाई बजे से फिर व्याख्यान प्रारम्भ हो[ता]। कभी स्वामी वत्सलानन्द गीता और खान-[पान] (Dietetics) पर व्याख्यान देते, कभी [आनन्द] स्वामी। बाद में जब वास्वानीजी आ गये [तो] प्रश्नोत्तर-क्लास भी इसी समय होने लगा! [सायं]-[काल] को ५ बजे से ६ तक बीस के लगभग मुख्य [मुख्य] आसन सिखाये जाते थे। फिर कुछ भाई [तो] उसी हौज़ में तैरने चले जाते और कुछ [मो]-[टर] रोड पर पर्वतारोहण करने लगते। भोजना[दि से] निवृत्त होने पर ८ से ९ बजे तक व्याख्यान हो[ता]। इस समय वास्वानीजी बहुधा गीता पर बो[लते]। रात्रि की प्रार्थना करने के बाद ठीक साढ़े [नौ] 'लाइट-इन-चार्ज' रोशनी बुझा देते और बन्धु [गण] तारों भरे नीलाकाश और टिमटिमाती [मशाल के] नीचे मधुर निद्रा में मग्न हो जाते।

आश्रम का संयम (Discipline) [आत्म]-स्फुरित (Self-imposed) था। अल[बत्ता कुछ] मौजी जीव कालिज की फ़ाक़ेमस्ती को क्यों [इतनी] जल्दी छोड़नेवाले थे। पुशालकर—बुलीबौटम—[रात] के बारह बजे तक रुक-रुककर गप्पें मारता र[हता], कभी वीरता के अपने प्रथम आदर्श र[सोइये]



भजनदत्त की बलिष्ठ मांसपेशियों (Muscles) की तारीफ़ होती, या कभी किसी अधिक गंभीर या 'सीधे' भाई का चरित्र-चित्रण किया जाता। सिन्धी भाई माक़ाजाणी के घर से प्रायः बादाम के हलुए का पार्सल आया करता था। साम्यवाद के नाम पर पुशालकर उसके लिए अपना हक़ भी पेश करता। इसी प्रकार से 'दास पलटू', 'घंटघोर', नाज़ुक-बदन 'बर्मनब्रादर्स', 'कर्नलकिडनी', दिग्गज वत्सलानंद बनाम 'पेड़ा स्वामी' को लेकर बातों का ताँता चुपके-चुपके चलता रहता। हमारे व्यायाम-शिक्षक प्रो० सूद पहले ज़रा बड़े छात्रप्रकोपी ज्ञात हुए। उधर बिच्छू अधिक निकलते हैं, अतः पुशालकर रात को उनके बिस्तरे पर बिच्छू छोड़ने की उच्छृंखल योजना पेश करता और सब मानों किसी कालिज की शनिवार की रात्रि दबे हास्य में मनाने लगते। जहाँ ज़रा आनन्द स्वामी निरीक्षण के लिए आते नज़र पड़े कि सब चुप। और पुशालकर मानों स्वप्न में गीता का 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी' बड़बड़ाने लगता। स्वामी 'अच्छा !' कह हँसते चले जाते। तो भी धीरे-धीरे आश्रम के नियम-पालन का प्रयास सब कर ही रहे थे।

आश्रम में प्रवेश करने के दूसरे ही दिन सबकी डाक्टरी परीक्षा की गई। सबने अपना-अपना ब्योरा अपनी डायरी पर लिख लिया। स्वामी वत्सलानंद के सामने जाते ही पुशालकर न-जाने क्यों दोनों बार घबरा गया। स्वामी आनन्द ने बताया कि लगभग ६० प्रतिशत छात्र किसी न किसी 'क्रानिक' मर्ज़ के शिकार बने हुए थे— इनमें से मुख्य थे बदहज़्मी, क़ब्ज़ और स्नायु रोग। केवल प्राकृतिक आहार और उचित व्यायाम ही एकमात्र उपचार बताये गये। कृष्णा-स्वामी ने कुछ को साधारण ओषधियाँ भी दीं। एक भाई को किडनी-सम्बन्धी बहुत पुरानी व्याधि थी। कुछ अन्य युवकों की भाँति उन्होंने भी आश्रम को केवल एक सेनिटोरियम समझ रक्खा था, पर जब तीन मील, नीचे सहस्रधारा के गंधक के सोते से गंधक का पानी मँगा-मँगा पीने पर भी कुछ लाभ न हुआ तो इन 'कर्नलकिडनी' ने निराश हो आश्रम से एक सप्ताह बाद ही बिदा ली। डाक्टर केशवदेव का काँचघरवाला सेनीटोरियम तो अब केवल विशुद्ध सांस्कृतिक 'सेनिटोरियम' बन गया था। ऐसे रोगी या केवल मनोविनोद में ही ग्रीष्मावकाश मनानेवाले छात्रों को वह जगह पूर्णतया संतुष्ट न कर सकती थी।

आश्रम का प्रबन्ध प्रजातन्त्र-प्रणाली पर होता था। एम्० ए० क्लास के एक महाराष्ट्रीय युवक—श्रीयुत बापट—सेक्रेटरी चुने गये, भाई चन्दनसिंह, जो राजपूती आतिथ्य सत्कार और कर्म तत्परता के मानों प्रतीक थे, अतिथिशाला के इन्चार्ज बने। साधुजी के खान-पान की व्यवस्था भी इन्हीं मिस्टर 'हौस्पिटैलिटी' को करनी पड़ती थी। पुशालकर पुस्तकाध्यक्ष चुना गया और 'बैन' शक्ति-मैगज़ीन का सम्पादक, 'वियोगी' जी आश्रम के 'पोयट लारियेट' भी थे और (बी० काम्० होने से) टाइपिस्ट भी। प्रायः 'रबड़छंद' या 'केंचुआ छंद' में कविता करते थे और साधुजी के व्याख्यानों को टाइप करते रहना इनका काम था।

और भाई गुरुप्रसाद टंडन को तो आश्रमवासी भूल ही कब सकते हैं। 'ज्यों बड़री अँखिया निरखि, आँखिन को सुख होय' के अनुसार इन दीर्घनेत्र और दीर्घबाहु सहृदय भाई के संसर्ग में आने से सभी को सुख होता था। जिस तरह से व्यायामशिक्षक प्रो० सूद ने पुशालकर को 'सीमन-आसन' के लिए प्रसिद्ध कर दिया था, वैसे ही टंडनजी को भी पतंगा (शलभ) नं० २ के लिए। रीढ़ को धनुषाकार कर पैरों को किसी अति लचकीली नटी की भाँति सिर पर ला रखना



इनका मानों नित्य का साधारण कौतुक था। कुछ व्यक्ति तो देहरा-मसूरी के बीच स्थित राजपुर शक्ति-आश्रम को 'मिड-वे-हाउस' समझ एक दो दिन आश्रम में आतिथ्य-लाभ कर चलते बनते।

प्रति सप्ताह सब लोग भ्रमण करने निकलते। कभी फ़ारेस्ट इन्सटीच्यूट (देहरादून), कभी मसूरी, कभी सहस्रधारा और प्रायः ग्राम-निरीक्षण करते थे। मार्ग में काफ़ी मनोविनोद होता। दो-एक जगह शीतल जल में स्नान भी किया जाता, खेल भी खेले जाते और गन्तव्य स्थान पर पहुँच अनुभव-लाभ करते। जिस बार किसी ग्राम का अवलोकन करने जाते, बन्धुगण कई टोलियों में बँट जाते। प्रो० मैलानी मि० ब्रियेन की 'Socrates in an Indian Village' - नामक पुस्तक के अनुसार ग्राम का सुकरात बन सफ़ाई, मवेशी, ऋण, रस्म-रिवाज, शिक्षा आदि पर सप्रेम प्रश्न कर उनको बड़ी सहृदयता से समझाते। वीर-पूजा तो आश्रम के प्रमुख ध्येयों में थी। प्रताप-जयन्ती के दिन, जो कि जून में पड़ती है, सब भाई प्रताप के एक बड़े शीशा लगे चित्र के नीचे चार लाठियाँ लगा विमान सरीखा बना वीरगान गाते तमाम नगर में उसे घुमाते। दोपहर को वीर-पूजा के उपलक्ष्य में व्याख्यान होते। उस अवसर पर देहरादून से भी अन्य सुसंस्कृत प्रेमी सज्जन आ उपस्थित होते थे।

सिस्टर्स—

स्व० डाक्टर केशवदेव की अमेरिकन पत्नी श्रीमती सुवीरादेवी तथा इनकी बहन श्रीमती सुमित्रादेवी का व्यवहार आश्रमवासियों के प्रति अति सहानुभूति-पूर्ण था। वह एक आदर्श 'लैन्ड-लेडी' होने के साथ ही साथ भारतीय आदर्शों की सच्ची भक्त थीं। कभी-कभी पुशालकर और छोटी सिस्टर—सुमित्रा—हौज़ के पास एक झूले में बैठ जाते और संध्या के समय सुदूर पर्वतश्रेणियों पर चमकती जंगली आग तथा भारतीय [illegible] की समस्याओं पर बातचीत करते रहते। [illegible] कभी किसी गायक भाई को अपने ड्राइंगरू[illegible] बुला कोई भजन सीखतीं। और प्रायः [illegible] समय में "विश्नुपटी के ध्यान में, जीशने [illegible] हो ओ लगन" हारमोनियम के साथ गा[illegible]

१६३० में महात्माजी द्वारा शास्त्रीजी की [illegible] स्मृति में लगाया हुआ बोधि वृक्ष आज भी [illegible] किसी भी अतिथि को बड़ी भावुक और [illegible] विह्वला हो दिखाती हैं। और 'बैन' ने [illegible] बन प्रायः प्रत्येक ग्रीष्मावकाश में पीतवस्त्र [illegible] इस 'भिक्षुणी' का दर्शन किया है। टमाटो [illegible] जैली और एक पाइन्ट दूध किसी भी अतिथि [illegible] नाश्ते के लिए आज भी हाज़िर है।

शक्ति-आश्रम को अपने निवास-स्थान के [illegible] खुला रखने के लिए सिस्टर को अनेकों [illegible] उठानी पड़ी हैं। सी० आई० डी० तो प्रायः उनके [illegible] रहे हैं। गवर्नमेंट भी आश्रम को केवल एक [illegible] नीतिक अड्डा समझे हुए थी। पर सिस्टर्स ने [illegible] पूज्य पति के मिशन के प्रति सदैव श्रद्धा [illegible] है। आज भी वह किसी भी जर्जर, क्षीण, [illegible] युवक के हृदय में 'Brother, why not [illegible] your own life and be happy!' [illegible] आदेश द्वारा अतुल साहस भरती ही रहती [illegible] 'इम्प्रेशनबुक' सहस्रों भारत-प्रसिद्ध व्यक्ति[illegible] की सच्ची श्रद्धांजलियों से परिपूर्ण है। 'बैन' [illegible] सिस्टर ने बताया था कि कोमल परिस्थिति[illegible] 'सबके लिए खुली हुई' इसी पुस्तक ने [illegible] वकालत की है।

देवी के मन्दिर पर—

इन 'वान्डरवोगल' का एक दूसरा अड्डा [illegible] महन्तजी का राजपुर का देवी का मन्दिर, जो [illegible] सबसे ऊँचे स्थान पर स्थित है। यात्रियों के ठह[illegible] को ४ कोठरियाँ बनी हुई हैं, पर पानी का [illegible]



होने से विशेष सुविधा नहीं है। उस समय यह मन्दिर, आश्रम के निकट बिल्कुल सामने होने पर आश्रम से ही संबद्ध था। निर्धन विद्यार्थियों को आनन्दस्वामी एक कोठरी दे दिया करते थे। स्वामी वत्सलानन्द ने तो उत्तर काशी से लौटने पर वहीं एक कोठरी पर अपना क़ब्ज़ा जमा लिया था। पर रात्रि में नीचे की घाटी का भयावना दृश्य शायद स्वामी के वहाँ अकेले में खटिया पर ध्यानावस्थित होने में बाधा डालता था। पर पीछे जब प्रो० सूद के छात्र-प्रकोप (Militarism) से असहयोग कर आश्रम-प्रवेश से एक सप्ताह पश्चात् ही देवी के मन्दिर पर (आश्रम की हद के बाहर!) 'बैन' ने रहने की ठहराई, तब तो स्वामी भी वहीं रात्रि को शयन करने लगे। उस उच्च स्थान की स्वच्छन्द शीतल वायु 'बैन' के दग्ध हृदय में नित्य ही प्रौमीथ्यूस (Prometheus) की नाईं एक नवीन हृदय की सृष्टि करती।

'बैन' को मैं उस महान् हलचलवाले, तरुण राष्ट्रीय युग का एक 'टूटा पात्र' कहूँगा। उसका हृदय त्याग, बलिदान, सेवा और पुनर्निर्माण की शुभ भावनाओं से परिप्लावित था। वह बी० ए० में पढ़ता था—गाँव के चंदे से। अपने ग्राम-वासियों के प्रति वह कितना कृतज्ञ था। उन्हीं के कारण वह आश्रम में प्रवेश कर सका था, वरन् रेल का किराया भी जुटाना उसे कठिन था। कौटुम्बिक भार, रोग, दारिद्र्य, विपरीत परि-स्थितियों ने उसे बार-बार कुचला था। पर ऐसे सूक्ष्म व्यक्ति कम से कम अर्द्धमृत्युंजय तो निकलते ही हैं। और शक्ति-आश्रम में हमने इसका पर्याप्त आभास पाया। उस संघर्षमय, वेदनामय युग की ऐसी करुण प्रतिनिधि 'पौध' के विषय में कुछ कहना राष्ट्र के एक सम्पूर्ण दुःखमय अङ्ग को स्पर्श करना है! अस्तु।

इसी देवी के मन्दिर पर, हमने प्रतिदिन 'बैन' को पानी की बाल्टी सिर पर रख हँसते-हँसते चढ़ते देखा है, स्वामी वत्सलानंद से रोटी बनाने का सबक़ लेते देखा है, मसूरी-रोड के किनारे बैठ श्रीमानों और श्रीमतियों की डांडियों और उनको तथा बोझे को ढोनेवाले पशु—मनुष्यों पहाड़ी क़ुलियों को एकटक निहारते देखा है। क़ुलियों के अड्डे पर भी 'बैन' को हमने उनके जीवन को निकट से 'स्टडी' करते पाया है। संन्यासी बाबा ने एक दिन तो दोपहर का खाना राजपुर के सद्गृहस्थों से माँगकर 'बैन' को भी खिलाया और यही प्रयोग बड़ी सरलता से भविष्य में भी किया जाने को था। पर स्वामी अब भी पेन्शन पाते थे और पोस्टआफ़िस में उनके तब क़रीब ५००) जमा थे। अतः 'बैन' के ऐसा स्मरण कराने पर भिक्षावृत्ति का प्रयोग छोड़ देना पड़ा। रोटी के लिए पास की पहाड़ी पर से कंडे चुनते हुए 'बैन' जब टैगोर का 'एकला चल रे एकला चल रे' करुण स्वर से गाता तो उसके नेत्रों में भारतीय छात्रों का वेदना-नद उमड़ पड़ता!! बाद में स्वामी वत्सलानंद भी आश्रम का खाना अस्वीकार कर बैन के साथ ही खाने में शामिल हो गये। अपना सब कार्य अपने हाथ से करते हुए भी, आश्रम के कार्यक्रम में बैन पूरा-पूरा भाग लेने का प्रयास करता। नाश्ते के समय खाना अँगीठी पर चढ़ा जाता। स्वामी एक चबूतरे पर बैठे अर्द्धमीलित नेत्रों से अपनी पुत्रवधू द्वारा एक मखमली कपड़े पर कढ़े गायत्री मंत्र को निहारते-निहारते योगिक नाद करते जाते थे। पर 'बैन' को देखते ही कहने लगते—"अरे मिस्टर! आज खीर नहीं बनेगी क्या? देर क्यों कर रहे हो। आज खीर में शक्कर ज़रा ज़्यादा डालना।" और फिर ध्यानावस्थित हो जाते। फिर पुकारकर कहते "और देखो, पपीते में घी काफ़ी डाला करो। और ज़रा जल्दी लौट कर आना।" सन्ध्या के समय बहुधा 'बैन' से



स्वामी पेड़ा मँगवाया करते थे, इसी से आश्रम में बाद को स्वामी वत्सलानंद 'पेड़ा स्वामी' करके प्रसिद्ध हो गये । योगाभ्यास तो स्वामी क़रीब घंटे प्रतिदिन करते थे । प्रो० सूद भी वहाँ पर उनसे कभी-कभी प्राणायाम सीखने आते । बज्रोली क्रिया भी स्वामी ने सिद्ध कर ली थी—अपनी युवावस्था में ही ! एक दिन संध्या को 'बैन' ज्यों ही रोटी सेककर बर्तन साफ़ कर रहा था कि मरुस्थल के गेज़िल्र की भाँति कुलाँच मारते हुए भाई चन्दनसिंह आ पहुँचे । बोले—बड़ी कड़कती भूख लगी है, कुछ खिलाओ । रूखी-सूखी नज़र की गई और इस मित्र ने अपना एक बड़ा ही हृदय-स्पर्शी ताज़ा अनुभव सुनाते हुए रोटी खाई—बात यह थी कि पिछली साप्ताहिक गोष्ठी में सब भाई दूर नीचे घाटी में एक अति सुन्दर प्राकृतिक दृश्य देखने गये थे । किसी कारण से यह भाई सबसे अलग हो गये और एक स्वतंत्र-पथ पर जा निकले । पहाड़ी पगडंडियों का उन्हें कभी अनुभव न था । चलते ही गये । संध्या हो गई । जंगल में से गुज़रना पड़ा । धीरे - धीरे रात्रि ने पर्वतमालाओं से उतर उन्हें चारों ओर से घेर लिया । पर तमाम रात्रि चलते रहने की ही जब मन में ठान ली, तभी एक निचली घाटी में एक टिमटिमाता प्रकाश दीखा । क़रीब ६ बजे वह एक सद्गृहस्थ के यहाँ जा पहुँचे । वातचीत करने पर ज्ञात हुआ कि भाग्य से इस वणिक् की स्त्री कानपुर की रहनेवाली थी । इन भाई को कानपुर में पढ़ता सुन उसे ऐसी ही प्रसन्नता हुई मानों उसे अपना सगा भाई ही मिल गया हो । उस सहृदया ने इनके आतिथ्य-सत्कार में कुछ उठा न रक्खा । खूब पेट भर के पूरी, दूध-मिठाई खाकर निश्चिंतता की नींद सोये । हमारा विचार है कि यह भाई परमात्मा की इस अनुकम्पा के पात्र थे ।

स्वामी वत्सलानंद के साथ सम्मिलित खाने [illegible] योजना अधिक दिन तक न चली । जिस प[illegible] छोकरे को स्वामी ने अपनी खटिया बि[illegible] पानी लाने आदि के लिए रक्खा था, उसका अ[illegible] कुछ भी नहीं था । 'बैन' तो (माँगे का) [illegible] कंबल बिछा और एक ओढ़कर सो जा[illegible] स्वामी से अपने 'वत्सल' उपनाम से दा[illegible] पलटू के बनाये-से भजन गाते-गाते मौज से [illegible] खटिया पर तकिया लगा सोते । पर दुःख-दा[illegible] और अज्ञान में पला और दुर्भाग्य द्वारा [illegible] निर्धन, अशक्त माता-पिता के संरक्षण से [illegible] गया वह दुबला-पतला अर्द्धक्षयी-सा द्वादश[illegible] प्राणी अपनी आधी मैली-कुचैली लुंगी में [illegible] को लपेट भाँय-भाँय करती तीव्र पर्वतीय [illegible] की अवहेलना करता बारहदरे मन्दिर के [illegible] कोने में जा पड़ता । उसके प्रायः खाँसने [illegible] स्वामी की योग-निद्रा (!) भंग हो जाती [illegible] रात्रि में कई बार उसे उनकी झिड़की [illegible] पड़तीं । उसे अपना-सा अनाथ जान [illegible] अपनी एक धोती और एक कमीज़ दे दी [illegible] सदैव बड़ी मिठास से उससे बहुत ही आवश्[illegible] पड़ने पर काम लेता । काम करने के पन्द्रह [illegible] पश्चात् ही इस छोकरे ने स्वामी को सूच[illegible] कि उसका भाई उसे लिवाने आया है । [illegible] काशी के पास के किसी ग्राम में उसका घर [illegible] घर से रुष्ट होकर यह लड़का यहाँ चला [illegible] था—कुछ स्वतंत्र रीति से कमा पेट भर [illegible] जुटाने के लिए । उसके पन्द्रह दिन का एक [illegible] मात्र वेतन माँगने तथा घर जाने की सहसा [illegible] पाने पर स्वामी बहुत लाल-पीले हुए—" [illegible] धोका देता फिरता है । चोर कहीं का, अभी पु[illegible] के हवाले करता हूँ । पहले महीना पूरा कर[illegible] कहीं तनख़्वाह की बात करना ।" बेचारे [illegible] हीन छोकरे का दिल ही कितना था, सकपका[illegible]



एक रोज़ बराबर सोचता रहा। पर प्रकृति के अंक में क्रीड़ा करता उसका वह शीतल ग्राम उसे अपनी ओर चुम्बक की नाईं आकर्षित कर रहा था। अंत में तीसरे दिन, जब कि 'बैन' आश्रम गया हुआ था, एक बार फिर उस लड़के ने स्वामी से तनख़्वाह का एक रुपया चुकाने की अश्रुपूर्ण विनती की। पर अब की स्वामी ने उल्टे उसके कपड़े, जो 'बैन' ने उसे दिये थे, उतरवाकर उसे सक्रोध धता बताया। 'बैन' के आश्रम से लौटने पर सगर्व क्रूर व्यावहारिकता और हृदयहीनता से 'विश्वकल्याण' की दीक्षा लिये हुए इन संन्यासी बाबा ने वह उतारे के कपड़े जब 'बैन' को दिखाये तो उन चिथड़ों को देख उसके नेत्रों से करुणा, क्षोभ और पश्चात्ताप के अश्रु प्रवाहित होने लगे। इस घटना में उसने देखा कि मनुष्य कितना नीच, स्वार्थी, निर्दय एवं पाखंडी हो सकता है।

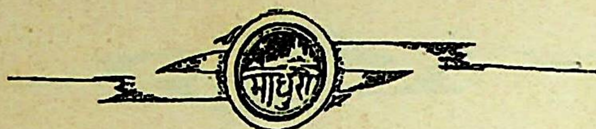
इस प्रकार एक मास बैन ने उस पुनीत देवी के मन्दिर पर व्यतीत किया। बाद को प्रो० हुक्कू, प्रो० हज़ारी और अन्य आश्रमवासी, यहाँ तक कि स्वामी आनन्द भी मई की गर्म रात्रियाँ मन्दिर पर ही सोकर व्यतीत करने लगे, यद्यपि आनन्द स्वामी को आश्रम से बाहर सोना पसन्द नहीं था।

व्याख्यान—

आनन्द स्वामी ने प्रारम्भ में प्राणायाम और आसनों की थ्योरी पर व्याख्यान दिये। फिर उनके कुछ व्याख्यान शरीर-विज्ञान, खान-पान (Dietetics), तथा भारतीय संस्कृति पर हुए। स्वामी वत्सलानंद ने भी प्रायः खान-पान और गीता पर भाषण किये, जो सर्वथा सुन्दर थे। कालिजों और स्कूलों में उचित पौष्टिक खान-पान का छात्रों को ज्ञान कराना तो शिक्षाक्रम के बाहर ही रहता है। अतः इस विषय पर दिये गये व्याख्यानों को सबने बड़ी उत्सुकता के साथ सुना।

प्रारम्भ में एक मार्के का व्याख्यान लाहौर के प्रसिद्ध विद्वान् दीवानचन्द्र शर्मा का हुआ। हिन्दुओं की आधुनिक शोचनीय अवस्था का कारुणिक चित्र उन्होंने हमारे मानसिक नेत्रों के सम्मुख रक्खा। डाक्टर मल्लिक को उद्धृत कर उन्होंने बताया कि गौतम, कणाद, शंकर, दयानन्द, शिवाजी, नानक, गोविंद की यह संतान अब मर रही है, (It is a dying race)--और उसके अधःपतनों के कारणों में उन्होंने हिन्दुओं का नान-मिशनरी (Non missionary) होना, ढाई करोड़ विधवाओं और अछूतों पर अत्याचार, शारीरिक दुर्बलता (मुसलमान कमाता कम है, खाता अधिक, हिन्दू इसके विरुद्ध करता है!) अधिक बच्चों का जायाँ होना, १००० के पीछे ८५८ लड़कियों का होना, उनके दक़ियानूसी रीति-रिवाज, जो आधुनिक आर्थिक साँचे में ठीक नहीं उतरते, ६ पैसे रोज़ की औसतन आय, हिन्दू-धनिकों और मठाधीशों का मृतक-धन (Dead Money), और सबसे बड़ा कारण परतन्त्रता तथा गवर्नमेंट की उपेक्षा आदि अनेक कारण गिनाये।

तत्पश्चात् प्रो० मैलानी ने क़रीब एक सप्ताह तक अर्थशास्त्र-सम्बन्धी समस्याओं पर सुलझे हुए भाषण किये। उत्पत्ति, वितरण, पूँजीवाद, मजदूरी, मुद्रा, रेशो (Ratio), रुई का व्यवसाय, खद्दर, को-आपरेटिव सोसाइटी, प्रजातंत्र, समाजवाद, जनसंख्या, सन्तान-निग्रह आदि विषयों पर उन्होंने अति आधुनिक और हृदयग्राही रोचक ढंग से प्रकाश डाला। प्रो० सूद ने भी 'कान्ट' की फ़िलासफ़ी पर एक सारगर्भित व्याख्यान दिया। दो-एक दिन को मसूरी-यात्रा करते हुए प्रेम-महाविद्यालय के अधिष्ठाता श्रीयुगलकिशोरजी



नें भी उस 'मिड-वे-हाउस' शक्ति आश्रम में ठहर युवकों को उपदेश देकर कृतार्थ किया। स्वामी युक्तानंद ने भी एक दिन आश्रम में पधार कर नवयुवकों को उपदेश किया और अपने अमेरिका-जीवन के अनुभव सुनाये।

पंजाब के एक बड़े प्रसिद्ध बूढ़े डॉक्टर भी दो दिवस तक आश्रम में ठहरे। 'प्रकृति की ओर लौटो' (Back-to-Nature) पर उनके दो व्याख्यान हुए। वह बड़े ही हँसोड़ व्यक्ति थे— बात-बात में आधुनिक की खिल्ली उड़ाते जाते थे—

A gentleman cf to-day,
Remains from head to foot in Budho,

कह उन्होंने अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया। उनकी अँगरेज़ी कविता के एक अनुप्रास की भी बहार देखिए—

The slaves of spectacles, suits, soaps, socks
And such other superfluity shall not succeed
swaraj ;
Nor shall the seekers of servants to serve ;
Self-Reliance, self-Respect, based on self-
knowledge
Is the surest and the safest way to attain
the same.

फ़ैशन के पुतले आधुनिक भारतीय युवक पर कितनी चुभती चुटकी है, कैसी सच्ची चेतावनी है।

इस प्रकार से लगभग तीन सप्ताह तक आश्रम-वासी अपने ज्ञान-भंडार को बढ़ाते रहे सही, पर उन सबकी अन्तरात्मा तो आश्रम की 'आत्मा' साधु टी० एल० वास्वानी की प्रतीक्षा कर रही थी। अन्त में वह शुभ दिन आ ही पहुँचा और मई के अन्त में साधुजी ने एक गोधूलि के समय बड़ी शान्त और गम्भीर मुद्रा से आश्रम में प्रवेश किया।

साधु टी० एल० वास्वानी—

साधुजी कोलाहल, कृत्रिमता आत्म-वि[illegible] और व्यर्थ के स्वागत-आडम्बर के बहुत [illegible] हैं। जब उनको देहरा स्टेशन पर जा बड़ी [illegible] भगत से आश्रम में लाने की बात चली तो [illegible] स्वामी बोले—"यदि आप लोग ऐसा करें [illegible] वह पीछे ही को लौट जायँगे।" और जब [illegible] दिन प्रातःकाल वीर-मन्दिर में भारत-[illegible] नेताओं तथा प्राचीन महापुरुषों के साथ एक [illegible] में जड़े अपने प्रेस-चित्र को साधुजी ने तत्का[illegible] निकलवा दिया, तो हमें स्वामी आनन्द के [illegible] की सत्यता ज्ञात हुई।

साधुजी की स्फूर्तिप्रद पुस्तकें पढ़ने मात्र ही ज्ञात होता है कि इनका लेखक शारी[illegible] मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्ति का एक [illegible] मेधावी और सबल व्यक्ति होगा। दर्शन कर [illegible] पुशालकर बोला – "धन्य है! क्या शेर [illegible] गर्दन है, क्या तेज है! ब्रह्मचर्य का प्रता[illegible] त्याग, सेवा, सदाचार की महिमा है!"

प्रथम रात्रि का ही दृश्य अद्भुत था। [illegible] महापुरुषों की भाँति साधुजी को भी सुन्दर [illegible] और कोमल गान से अति प्रेम है। त्याग, [illegible] बलिदान के किसी भी गीत को सरस वा[illegible] सुन भावातिरेक से उनके नेत्र सजल हो [illegible] हैं। उस दिन सबके अन्त में उन्होंने अपनी [illegible] कोमल, मधुर वाणी में प्रार्थना की—

"हे प्रभु, मेरे प्रभु!
यह दुःखी निर्धनी आश्रमवासी
तपस्वी, कर्मठ, सैनिक बनें
इस अभागे देश के सैनिक बनें।"

अब लगभग व्याख्यान का सब समय सा[illegible] के व्याख्यानों के लिए नियुक्त हो गया और [illegible] इन्हीं नवीन और अर्वाचीन का हृदय[illegible] सामंजस्य करानेवाले, बालब्रह्मचारी,



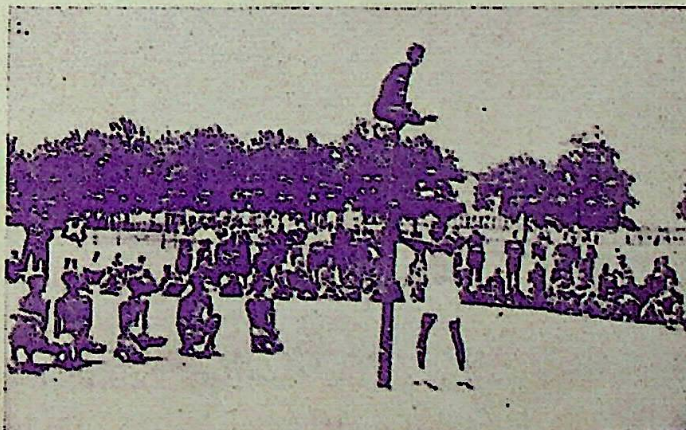
स्वीडेन के डाक्टर चौल्डेन के साथ डाक्टर कर्वे की बातचीत



लटकते हुए खम्भे पर एक आश्चर्यजनक प्रदर्शन



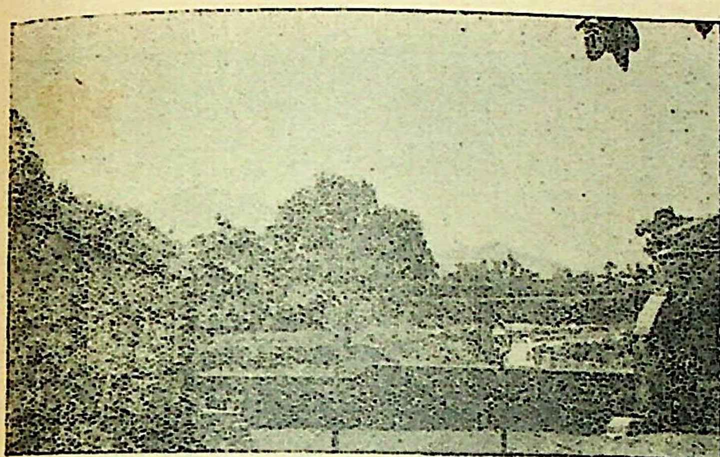
ओलिम्पिक अधिकारियों, बैरन कबरटीन और डाक्टर लेवंड को झंडे की सलामी



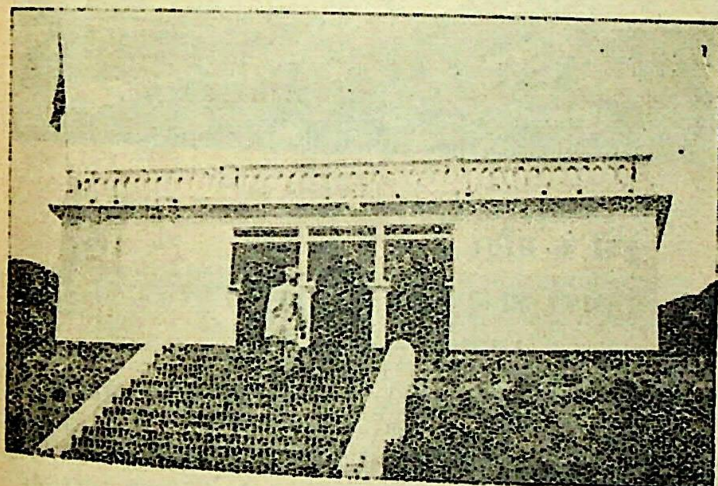
श्रीभारतराव देश पांडे का खम्भे पर बैलेंस का पराक्रम



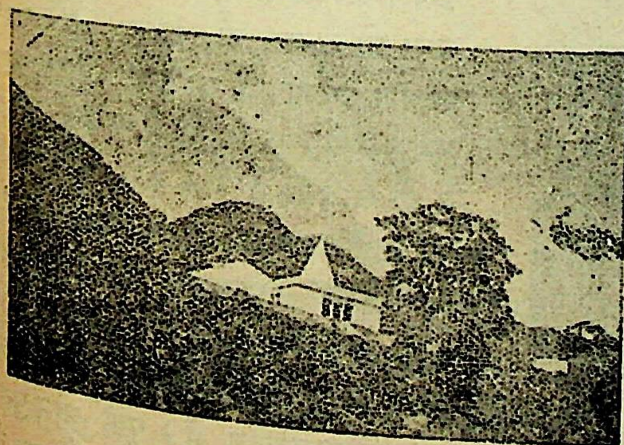




आश्रम का एक दृश्य



देवी का मंदिर



आश्रम से देवी के मंदिर का दृश्य

विनम्रता की साक्षात् मूर्ति, प्रगाढ़ विद्वान्, तत्त्ववेत्ता, इतिहास, दर्शन, साहित्य - मर्मज्ञ भिक्षु, कवि और सन्त—शक्तिआश्रम के आध्यात्मिक गुरु और स्फूर्तिदाता--के व्याख्यान होने लगे । उस युग का उत्पीड़न उनके एक - एक शब्द में भरा था । युग - निर्माता और भविष्यद्रष्टा के संदेशों से हमारे आन्तरिक चक्षु खुलने लगे ।

प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में राम, कृष्ण, बुद्ध, कन्फ्यूशस, अर्जुन, अशोक, शंकराचार्य, राजा राममोहन राय, कांट, नैपोलियन, मैज़िनी, गेटे, तुलसीदास, प्रताप आदि महान् आत्माओं पर भावुक और विनीत श्रद्धांजलि अर्पण कर साधुजी हम सबको तन्मय बना उन महान् विभूतियों के चरणों के निकट तक उठा देते थे और दिन निकलते ही प्रतिदिन का एक आदर्श विचार (Thought for the day) उनकी प्रभाव - शालिनी लेखनी से निकल हम सबके सम्मुख आ जाता । आश्रम के छात्रों की महाजिज्ञासा देख साधुजी ने शंका - समाधान के लिए प्रतिदिन एक घंटे का समय नियत किया । प्रत्येक जिज्ञासु भाई विभिन्न-विभिन्न समस्याओं पर उठनेवाले अपने - अपने प्रश्नों को लिखकर एक छोटे - से संदूक में डाल देता था । दूसरे दिन संध्या को साधुजी एक-एक प्रश्न को पढ़कर उसकी व्याख्या करते । कभी एक ही प्रश्न कई दिन तक चलता । प्रो० धर्मेंद्र शास्त्री, प्रो० सूद और प्रो० मैलानी प्रायः समालोचनात्मक सूक्ष्म - सूक्ष्म शंकाएँ उठाते । पर अपने सुसंस्कृत सुलझे हुए मस्तिष्क, तर्क और वाक्चातुरी, प्रतिभा एवं असाधारण पांडित्य

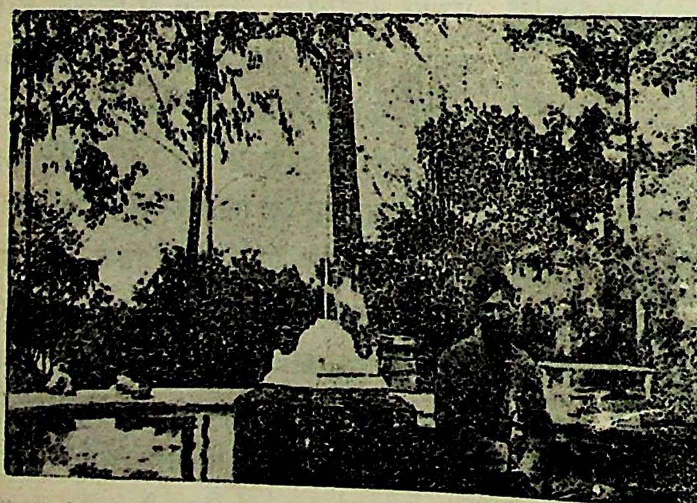


से वास्वानीजी ने सदैव सभी को संतुष्ट किया। उनका विश्वकोषीय (Encyclopaedic) ज्ञान - भंडार हम सबको आश्चर्यान्वित कर देता था। योरपीय युवक - संघों के जिन-जिन नेताओं ने शक्ति-आश्रम के उपासना - मन्दिर में बैठ वास्वानीजी के ओजस्वी व्याख्यानों को सुना है, उन्होंने साधुजी की गणना भारत के प्रमुख-प्रमुख छः जीवित महापुरुषों में की है।

जो प्रश्न साधुजी से पूछे गये, उनमें से कुछ ये थे—

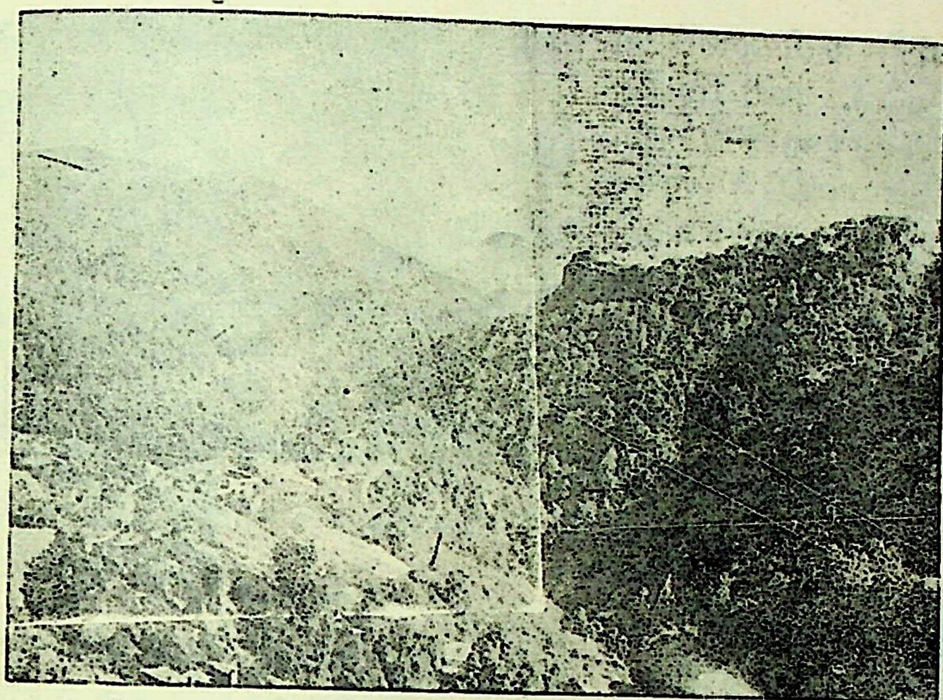
देवी के मंदिर के नीचे का दृश्य

× चिह्नित स्थान पनचक्की का हौज़ है, जहाँ पर आश्रमवासी प्रति स्नान करते थे।



आश्रम का हौज़, जिसके सामने विद्यार्थी व्यायाम करते थे।

(१) "ग्राम पुनर्निर्माण के लिए सबसे अच्छा उपाय कौन - सा है ?" साधुजी ने बतलाया कि हमारा आधुनिक राष्ट्रीय आ तली (Bottom , से प्रारंभ न चोटी (Top) से प्रारम्भ हो र इससे यह शहरों में ही केन्द्रीभूत ग्राम जो भारत की आत्मा है, भीषण उपेक्षा की जा रही है। मुझे इसकी सफलता में संदेह है। में ही साधुजी ने एक कुशल भवि की नाईं यह अटल सत्य कहा 'डेमोक्रेसी' (प्रजातंत्र शासन-प्र वहीं पर सफल हो सकती है, जहाँ राज्य का यूनिट ग्राम हो, जैसे और स्विटज़रलैंड में। पूर्ण ग्राम द्धार विना राष्ट्रीय शासन के असम्भव है। भी पंचायतों, शक्ति - आश्रमों, प्रचार,



शक्ति-आश्रम से मसूरी का दृश्य



डाक्टर केशवदेव शास्त्री की पुण्य-स्मृति में गांधीजी द्वारा लगाया हुआ बोधिवृक्ष

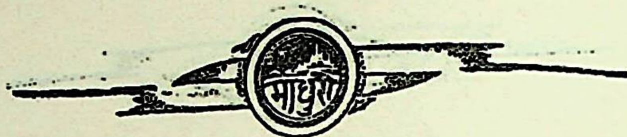
फ़िल्म-प्रदर्शन, उचित शिक्षा, घरेलू उद्योग - धंधों, सहकारी समितियों द्वारा इस ओर थोड़ा बहुत किया जा सकता है।

(२) "हिंदू-धर्म की कट्टरपन किस बात पर निर्भर है ?" "पुरातन वाद पर। हिन्दुओं का सामाजिक जीवन बताता है कि यदि कोई वस्तु नई है तो ठहरो, ठहरो, ठहरो ! और उसे अपने में तभी मिलाओ, हज़्म (Assimilate) करो, जब तुम देख लो कि 'नवीन' केवल नवीन ही नहीं, वरन् 'सत्य' भी है। प्राचीनकाल में हिन्दू-धर्म-सभाएँ 'नवीनता' के 'सत्य' का ही निर्णय करने के लिए हुआ करती थीं और सामूहिक परीक्षा करके सामयिक परिवर्तन किया करती थीं, जिससे सत्य सिद्धान्तों के सिवा और कुछ हिन्दू-धर्म में प्रवेश न कर पाता था।"

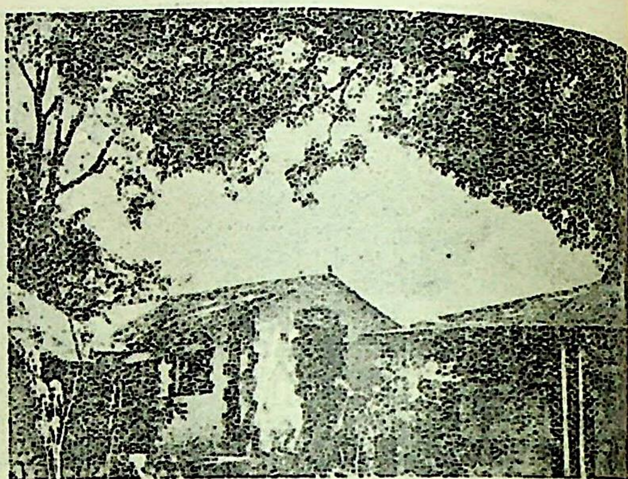
(परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तन-वादियों को कैसी उत्तम युक्ति एवं चेतावनी है !)

(३) "मिसर, यूनान और रोम तो कभी के नष्ट हो गये हैं, पर उनका साथी वृद्ध भारत ही क्यों अब तक जीवित रह सका है ?"

साधुजी ने उत्तर दिया—सभ्यता के विकास



की दो श्रेणियाँ हैं—पहली जनसाधारण (Mass stage), दूसरी सामूहिक (Group stage)। भारत का महा-सौभाग्य था कि प्रारम्भ में बड़े-बड़े महान् मेधावी, त्यागी, तपस्वी ब्राह्मण जन-साधारण के, जिसमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सम्मिलित थे, पथ-प्रदर्शक बने। इस धार्मिक और सामाजिक एकी-करण से ही राष्ट्र का आन्तरिक जीवन जगमगा उठा, जिसकी आभा अब भी उसकी सन्तति में विद्यमान है। प्राचीन



आश्रम में वास्वानीजी का निवास-स्थान



सिस्टर्स

ग्रीस भी एक विशेष आन्तरिक धारणा के लिए ज़िन्दा था—'सुन्दरम्' की तीव्र भावुक उपासना के लिए! सुन्दरता का वह दिव्य दृश्य लुप्त हो गया है और उसकी जगह आराम-तलबी ही शेष रह गई है। तब रोमन आये और यूनान बर्बाद हो गया। आजकल के यूनानी अपने उन दिव्य पूर्वजों की



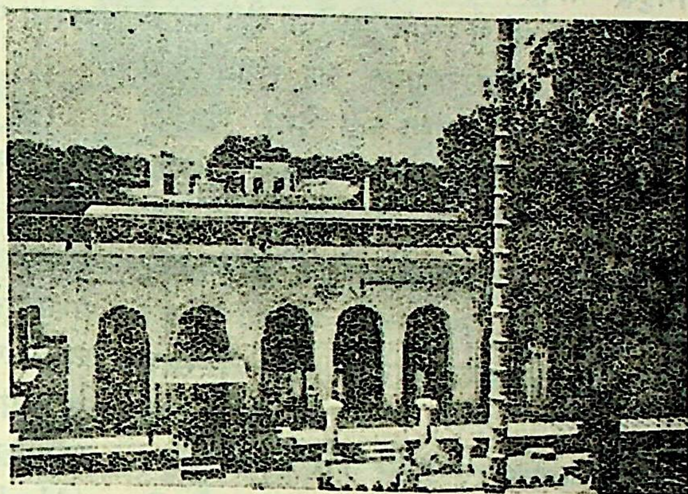
मसूरी-रोड के किनारे बैठ 'बैन' पशु-मनुष्यों (पहाड़ी कुलियों) को एकटक निहारता।

पतित (Degenerated) सन्तान हैं। प्राचीन ज्वलंत जीवन की एक भी झलक





घोड़े पर गुरु गोविंदसिंह

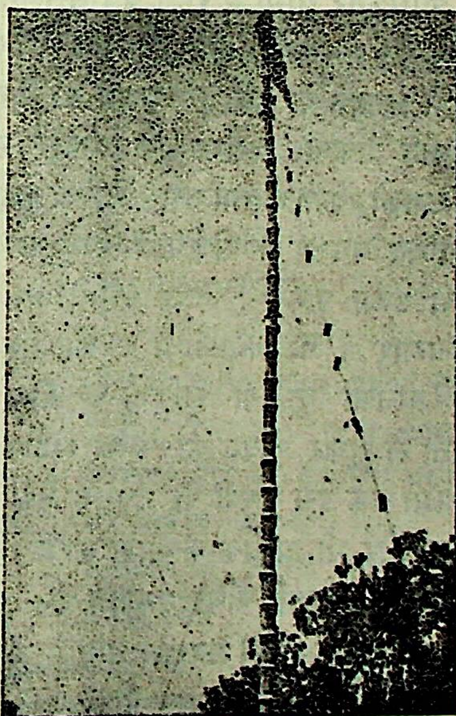


हर-मंदिर के आगे ध्वजा का आधा भाग

शेष नहीं है। वह तो अब केवल एक भौगोलिक सत्य (Geographical Expression) है। अतः हम कह सकते हैं कि ग्रीस संसार से मिट गया।

इसी प्रकार रोम भी आमोद-प्रमोद से स्थूल शरीर की ही पर्वा करने के कारण मिट चुका है। शक्ति के पुत्र 'गौल्स' (Gauls) से वे विजित हुए, नष्ट हुए।

और भारत! वह अभी तक जीवित है। प्राचीन आर्य ऋषियों का वह आन्तरिक भाव (Inner Idea)—आत्मन् और सूक्ष्म शरीर का संदेश और उसकी अनुभूति अभी तक संसार में वैसे ही जीवित है, और अमिट है, अटल है। नगरों में ऐसा न भी हो, पर भारत के ग्राम-ग्राम में रामायण और महाभारत की आध्यात्मिकता का प्रचार है। स्वराज्य यदि इस दृष्टिकोण से उन तक नहीं पहुँचाया जाता है तो वह उन्हें कदापि अपनी ओर आकर्षित नहीं करेगा। माया और ब्रह्म के व्याख्यान अँगरेज़ों की सभाओं को इतना आकर्षित एवं प्रभावित न करेंगे, जितना कि भारतीय ग्रामीणों को। और भारत की स्त्रियाँ मनुष्यों से कहीं अधिक आध्यात्मिक हैं—वे अभी तक हमारे प्राचीन आदर्शों की सरपरस्त बनी हुई हैं।



ध्वजा का अग्रभाग



ज्ञानवृद्ध भारत जीवित है; क्योंकि उसे अभी तक 'आत्मन्' का संदेश संसार को देना है। आज-कल का संसार अंतरराष्ट्रीयता का संघर्ष है। वैज्ञानिक संसार को भारत वही देगा, जिसकी उसमें कमी है। इसके लिए हमें पश्चिम से घृणा नहीं, प्रेम करना पड़ेगा। इँगलैंड जीवन की लूट पर निर्वाह कर रहा है। उसमें हद दर्जे की आराम-तलबी बढ़ रही है। खादी और स्वदेशी का व्रत ले हम अपना कल्याण करने के साथ ही साथ उसका भी कल्याण करेंगे। चीन को भी जीवित कह सकते हैं; पर भारत इससे अधिक ज़िन्दा है। चीन के नवयुवक अपने सबसे प्रमुख ऋषि कन्फ़्यूशस के सिद्धान्तों को नापसन्द करने लगे हैं।

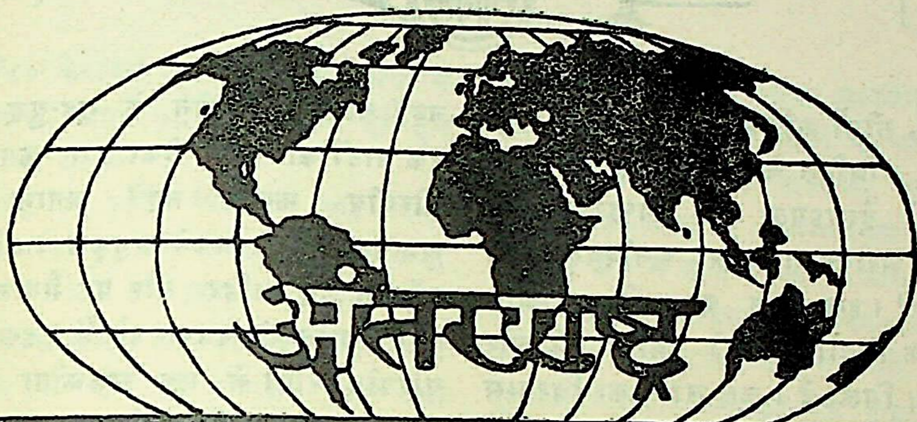
यदि शङ्कराचार्य बौद्ध सिद्धान्तों का हिन्दू-धर्म में समावेश न करते तो उनकी विजय कभी न होती। बौद्धमठ अधिकतर नगरों में ही थे और हिन्दू अधिकतर ग्रामों में रहते थे। मुसलमानों ने बौद्धधर्म की अन्त्येष्टि-क्रिया की। चैतन्य, कबीर, नानक ने इस्लाम के कुछ सिद्धांतों का हिन्दू-धर्म में स्वागत किया, और इस प्रकार समया-नुसार उसको विशाल बना उसे सर्वप्रिय बनाया—उसे जीवित रक्खा। संक्षेप में हिन्दू-धर्म वर्ण-व्यवस्था हज़्म करने (Assimilation) की और प्रसार (Expansion) की प्रवृत्ति के कारण अनेकों तूफ़ानी सदियों के बीच सही-सलामती से गुज़र जीवन का अमर संदेश देने के लिए अभी तक इस पृथ्वी पर क़ायम है। प्राणी-मात्र का और भी अधिक कल्याण करने के लिए हिन्दू-धर्म को ईसाई तथा इस्लाम-धर्म से कंधा भिड़ाकर चलना पड़ेगा। मदरास प्रांत में अभी तक अछूत-समस्या बड़ी ही विकट बनी हुई है। इस प्रांत को इस्लाम के 'समता सिद्धान्त' को हज़्म करने का कभी अवसर प्राप्त नहीं हुआ।

भविष्य के भारत को दो नियमों का [illegible] करना पड़ेगा—

(१) पुरातन से वफ़ा।

(२) एशिया और पश्चिम से सांस्कृति[illegible] वैज्ञानिक एकता।

इसी प्रकार सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थि[illegible] समस्याओं को स्पर्श करते हुए समालोच[illegible] प्रश्न पूछे जाते थे और वास्वानीजी सदैव [illegible] अपने पांडित्यपूर्ण तर्क से संतुष्ट कर दे[illegible] साधुजी के सबसे ओजमय, भावपूर्ण, मर्मस्पर्शी स्फूर्तिमय आकर्षक व्याख्यान अर्वाचीन और [illegible] (Modern and Anti-Modern), नैपो[illegible] प्रताप, योरपीय युवकसंघ और गीता पर हु[illegible]



१—स्पेन

श्री सीतलासहाय बी० ए०

स्पेन के गृहयुद्ध की ओर संसार चिन्तापूर्ण दृष्टि से देख रहा है। साम्यवादी गवर्नमेंट की पराजय निश्चय है। फ्रांस और रूस की अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष सहायता होते हुए भी वह सिर्फ़ चन्द दिनों की मेहमान मालूम होती है। पिछले पन्द्रह दिन की ख़बरें इस बात को स्पष्ट कर रही हैं कि साम्यवादी गवर्नमेंट केवल अपनी रक्षा में लगी है, धीरे-धीरे एक क़िले के बाद दूसरा क़िला छोड़ती जाती है और पीछे हटती जा रही है। विद्रोही लोग, इसके विपरीत धावा बोल रहे हैं, एक के बाद दूसरे क़िले और नाके पर क़ब्ज़ा करते जाते हैं और गवर्नमेंट की राजधानी मैड्रिड की ओर तेज़ी के साथ बढ़ रहे हैं। आशंका है "माधुरी" में इस लेख के प्रकाशित होने के पूर्व ही, मैड्रिड पर विद्रोहियों का क़ब्ज़ा हो जायगा और साम्यवादी गवर्नमेंट पलट जायगी।

अगर विद्रोहियों की विजय हुई और स्पेन में फ़ॉसिस्ट गवर्नमेंट क़ायम हो गई तो योरप की अन्तरराष्ट्रीय स्थिति में ज़ोरदार तब्दीली आएगी। इस बात का अन्देशा है कि फ़्रांस की भी वर्तमान सरकार उलट जाय और फ़्रांस में साम्यवादी सरकार के स्थान पर फ़ॉसिस्ट राज्य क़ायम हो जाय। योरप में राजनीतिक परिवर्तन ज़्यादातर रक्तरंजित होते हैं। साम्यवादी राज्य को नष्ट करने के लिए फ़ॉसिस्ट या साम्यवादी सरकार को अपना अस्तित्व क़ायम रखने के लिए साम्यवादी जो पैशाचिक अत्याचार एक दूसरे के ख़िलाफ़ करेंगे, वे स्पेन के अत्याचारों से किसी भी हालत में कम न होंगे। अगर अन्तरराष्ट्रीय पेचीदगी पैदा हो गई तो मामला और भी बिगड़ जायगा। सम्भव है, इसी अवसर पर योरप का ज्वालामुखी धधक उठे।

विद्रोहियों के सफल सेनापति जनरल फ़्रैंको ने अपनी घोषणा में कहा है कि जर्मनी, इटली



और ग्रेट ब्रिटेन- तीनों शक्तियाँ विद्रोह से सहानुभूति रखती हैं। ब्रिटिश के कंज़रवेटिव समाचार-पत्र विद्रोह को ईसाइयत और राष्ट्रीयता का रक्षक और अराजकता और अनीश्वरवाद के विरुद्ध बताते हैं। इस बात का भी कुछ लोग शक करते हैं कि विद्रोहियों को ब्रिटिश की ओर से कुछ सहायता मिली है। कुछ लोगों का विश्वास है कि ब्रिटिश अधिकारियों ने स्पेनिश गवर्नमेंट के मुक़ाबले जिबरालटर में विद्रोहियों के साथ ज़्यादा रियायत की है।

इटली के बारे में तो यहाँ तक कहा गया है कि वह अपनी सेना के सैनिक, सैकड़ों की संख्या में, विद्रोहियों की मदद के लिए, विद्रोहियों की वरदी पहनाकर भेज रहा है, और इस बात में तो रूस को ज़रा भी शक नहीं कि जर्मनी लाखों पौंड की युद्ध-सामग्री विद्रोहियों को मराको के ज़रिये से भेजता रहता है।

फ़्रांस और रूस स्पेन की साम्यवादी गवर्नमेंट की सहायता कर रहे हैं। इटली और जर्मनी विद्रोहियों की। साम्यवाद और फ़ैसिज़्म का अर्थात् राष्ट्रीयता और अन्तरराष्ट्रीयता का यह संघर्ष बहुत दिनों से इस संसार में चल रहा है। लक्षण कुछ ऐसे जान पड़ते हैं कि साम्यवाद का प्रभाव धीरे-धीरे घटेगा। योरप में ही देखिए। पहले आस्ट्रिया और जर्मनी में कितने ज़ोर से साम्यवाद स्थापित हुआ था। लेकिन आज उसका वहाँ नाम-निशान तक नहीं। इँगलैंड में लेबर-पार्टी शक्ति में आई थी, लेकिन फिर ठंडी पड़ गई। रूस का स्वयं अपना साम्यवाद भी आज कितना मुलायम पड़ गया है। स्पेन का साम्यवाद तो ख़तम ही हो रहा है, एशिया में भी चीन का साम्यवाद कमज़ोर ही पड़ता जाता है। इसलिए लक्षण ऐसे देख पड़ते हैं कि साम्यवाद टिकाऊ चीज़ नहीं। जोश में इसके सिद्धांत एक दफ़ा तो ज़ोरों के साथ लोकप्रिय हो जाते हैं, लेकिन स्थायी नहीं रहते।

योरप के चतुर राष्ट्र इस संघर्ष में आज पड़ना नहीं चाहते। वे स्पेन के गृह-युद्ध में खुल्लम्- एक पार्टी का साथ देकर इस झगड़े को योरपीय झगड़ा नहीं बनाना चाहते। अप्रत्यक्ष रूप से अपने अनुकूल पार्टी को सहायता पहुँचाते हुए ज़ाहिरा तौर पर मैदान में न आना बेहतर पालिसी समझ रहे हैं। इसलिए हाल में योरपीय राष्ट्रों में एक समझौता हुआ था कि स्पेन के गृह-युद्ध में कोई दूसरा राष्ट्र भाग न ले, स्पेनवाले अपना झगड़ा स्वयं तै कर लें। फ़्रांस, रूस, जर्मनी, इटली, ग्रेट ब्रिटेन और पुर्तगाल आदि देश शामिल थे। यह समझौता भी क़रीब-क़रीब टूट चुका है। योरपीय अन्तरराष्ट्रीय स्थिति का यह बहुत नाज़ुक पहलू है।

स्पेन में जब पहलेपहल गृह-युद्ध शुरू हुआ, स्पेन की गवर्नमेंट की ओर से अनेक अफ़सर उड़कर पहुँचे और वहाँ से एक करोड़ पौंड की सामग्री ख़रीद लाये। हवाई जहाज़, बम, राइफ़ल, मशीनगन इत्यादि फ़्रांस से स्पेन आने लगे। फ़्रांस से बहुत-से वालंटियर भी स्पेनिश गवर्नमेंट की मदद के लिए आये।

फ़्रांस और स्पेन में मित्रता का मुख्य कारण यह है कि फ़्रांस में उसी प्रकार का साम्यवादी शासन है जैसा स्पेन में। रूस को इन दोनों का नेता समझना चाहिए। ये लोग स्पेनिश गवर्नमेंट की हर तरह से सहायता कर रहे हैं।

योरप में दो क़ौमें ऐसी हैं, जो साम्यवाद की जानी दुश्मन हैं, जर्मनी और इटली। इन दोनों ने जब देखा कि फ़्रांस और रूस खुले साम्यवादी गवर्नमेंट की मदद कर रहे हैं तो इन्होंने भी विद्रोहियों की मदद शुरू कर दी। स्पेन इस प्रकार साम्यवाद और राष्ट्रवाद के भीषण संघर्ष का क्षेत्र बन गया। नतीजा चाहे जो हो, चाहे साम्यवादी जीतें या राष्ट्रवादी, स्पेन का देश और स्पेनी राष्ट्र अनेकानेक वर्षों के लिए पंगु और पस्त हो गया। इस भयंकर आघात के कुप्रभाव से मुक्त हो सकने में न-जाने उसे कितने दिन लग जायँगे।



सिनियर डि० कैस्टलो ने, जो स्पेन की तरफ़ से फ्रांस में राजदूत थे, अपने पद से इस्तीफ़ा देते हुए यह कारण बताया था—

I am leaving my post because my conscience will not allow me to help in sending arms destined to kill my poor countrymen.

"मैं अपने पद से अलग हो रहा हूँ; क्योंकि मेरा अन्तःकरण मुझे इस बात की इजाज़त नहीं देता कि मैं इस देश से अपने देश को उन अस्त्र-शस्त्रों के भेजने में कोई भी सहायता करूँ, जो मेरे ग़रीब देश-वासियों के क़त्ल में काम में आवें।"

किन्तु "न्यू स्टेट्स मैन" का मत है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट को स्पेन की साम्यवादी गवर्नमेंट की सहायता करनी चाहिए। वह लिखता है—

"ऐसा मालूम होता है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट ने अबीसीनिया के अपमान से कुछ नहीं सीखा। स्पेन में अगर साम्यवादी नहीं, बल्कि कम्यूनिस्ट गवर्नमेंट भी क़ायम हो जाय तो वह भी ब्रिटेन और फ्रांस के साथ समझौता करने पर मजबूर होगी, समझौता रक्खेगी। लेकिन अगर स्पेन में फ़ॉसिस्ट गवर्नमेंट क़ायम हो गई तो वह निस्सन्देह इटली और जर्मनी से समझौता करेगी। यह ख़बर ग़लत नहीं मालूम होती कि जनरल फ्रैंको ने सहायता के बदले में इटली को बलैरिक द्वीप, और हिटलर को मोराको में कुछ भाग देने का वादा किया है। अगर जनरल फ्रैंको सफल हुए तो क्या इसमें ज़रा भी सन्देह है कि इटली, जर्मनी और स्पेन की आपस में भूमध्यसागर में गुटबन्दी होगी और ब्रिटेन का जिब्राल्टर पर से अख़्त्यार जाता रहेगा जैसा उसका आज स्वेज़ पर से जाता रहा है। ऐसी हालत में माल्टा, पैलस्टाइन या मिस्र पर ब्रिटेन कब तक अपना अधिकार क़ायम रख सकता है।"

कहा जाता है कि स्पेन के विद्रोहियों ने इटली और जर्मनी से यह वादा कर लिया है कि वे सफलता होने पर इनको अफ़रीका महाद्वीप के आसपास द्वीप देंगे। इधर मारकाट स्पेन के सारे देश में भयंकरता और तेज़ी के साथ बढ़ रही है। गाँवों से जो समाचार आते हैं, यही ज़ाहिर करते हैं कि दोनों तरफ़ से निर्दयतापूर्ण कार्रवाइयाँ की जा रही हैं। न कोई किसी के साथ रियायत करता है, न रियायत चाहता है। एक-एक शहर में कई-कई स्थानों पर फाँसी-घर बन गये हैं। कोई दिन ऐसा नहीं जाता, जब हर एक शहर में १००-५० आदमी गोली से न मार दिये जायँ। जहाँ साम्यवादियों का अधिकार है, राष्ट्रवादी क़त्ल कर दिये जाते हैं। जहाँ राष्ट्रवादियों का अधिकार है, वहाँ साम्यवादी मार डाले जाते हैं। मैड्रिड में रिवोल्यूशनरी ट्रिब्यूनल (Revolutionary tribunal) बैठा है, जो दिन में सैकड़ों को फाँसी की सज़ा देता रहता है। इधर डकैती और चोरी, क़त्ल और अग्निकांड स्पेन भर में बढ़ते जा रहे हैं। फ़ौज और पुलिस दूसरे ही काम में लगी हैं।

स्पेन के साम्यवादियों ने एक विचित्र बात की है। स्त्रियों को भी बन्दूक़ें देकर समरक्षेत्र में लड़ने के लिए भेजते हैं। यह प्रथा अनेक दृष्टि से दूषित है। भारतवर्ष में स्त्रियों को अस्त्र-शस्त्र नहीं छूने देते और अगर छू जाय तो प्रायश्चित्त करना पड़ता है। इस देश में राजपूत, मरहठे, सिक्ख अनेक सैनिक क़ौमें हुई हैं और इस देश में महाभारत जैसा महायुद्ध भी हो चुका है, लेकिन स्त्रियों की पलटन बनाकर लड़ने का विचार कभी सामने नहीं आया। इसका कारण भी स्पष्ट है। अगर मनुष्य-समाज, स्त्रियों को सैनिक बनाने की प्रथा चला दे तो एक समय ऐसा पैदा हो सकता है, जब किसी भयंकर महासमर में इनको भी काफ़ी तादाद में काम आना पड़े। यह भी हो सकता है इनकी काफ़ी संख्या समूल नष्ट हो जाय। ऐसी अवस्था में मनुष्य-मात्र ही का अस्तित्व ख़तरे में पड़ सकता है। स्त्रियों को सैनिक बनाना इसलिए दूषित है।

पिछली मर्तबा स्पेन में साम्यवादी गवर्नमेंट



केवल ४ महीने सशक्त रही। इस दरमियान में १६० गिरजाघर सम्पूर्णतया नष्ट कर दिये गये। २५१ तोड़ दिये गये। २६६ पादरी मार डाले गये और १२८७ ज़ख़्मी हुए। इतना ही नहीं, १६६ इमारतें, जिनमें नरम दल की राजनीतिक संस्थाएँ थीं, जला दी गईं। १० छापेख़ाने अग्नि से नष्ट कर दिये गये। ३३ में आग लगा दी गईं। ११३ हड़तालें सफल रहीं, २२८ अपूर्ण हड़तालें हुईं, और १४६ बम फेंके गये।

जनरल फ़्रैंको ने, जो विद्रोहियों की ओर से सफलता पाते हुए मेड्रिड की ओर बढ़ते जा रहे हैं, यह घोषणा की है कि स्पेन में अब पुर्तगाल के समान शासन-पद्धति क़ायम होगी। हरएक नागरिक को काम मिलेगा और श्रम पर पूँजीवाद का अधिकार न होगा। मज़दूरी की मात्रा निश्चित हो जायगी, जो सबको मिलेगी ही। रोमन कैथलिक चर्च के साथ समझौता किया जायगा। स्पेन की नई सरकार दुनिया की सब क़ौमों से घनिष्ठ मित्रता रक्खेगी, सिवा एक क़ौम रूस से, जिसे स्पेन अपना दुश्मन समझेगा।

२—पैलस्टाइन

पैलस्टाइन में अरबों का अँगरेज़ी शासन से झगड़ा ६ महीने के निरन्तर संघर्ष के बाद १२ अक्टूबर को समाप्त हुआ। पैलस्टाइन की अरब जनता हड़ताल बन्द करके अपने-अपने काम पर वापस आई। समाचार-पत्रों में इस घटना के बारे में परस्पर विरुद्ध मत प्रकट किये गये हैं। अरबी समाचार-पत्रों की राय है कि हड़ताल का उठा लेना अरब जाति के लिए मुफ़ीद न होगा और ब्रिटिश गवर्नमेंट का नया वादा स्थिति में कोई बेहतरी नहीं पैदा करता। यहूदी अख़बारों का ख़याल है कि हड़ताल का बन्द होना आन्दोलन की असफलता और अरबों की पराजय का सूचक है। इनका कथन है कि आन्दोलन-काल में भी यहूदियों की आर्थिक स्थिति बेहतर हुई है और जिस बात को रोकने के लिए अरब लड़ [illegible] उसी बात में तरक़्क़ी हुई है। अरब लोग यहूदियों का पैलस्टाइन में आगमन रोकना चाहते [illegible] केवल आन्दोलन-काल में ही १८ हज़ार नये [illegible] आकर पैलस्टाइन में बस गये हैं।

पैलस्टाइन की ब्रिटिश गवर्नमेंट को इस [illegible] के शान्त करने में काफ़ी धन व्यय करना पड़ा [illegible] लेकिन इतना नहीं कि उसे क़र्ज़ लेना पड़े [illegible] बचत पहले से रक्खी है, उसे ख़र्च करना [illegible] नुक़सान ख़ास तौर से अरबों का हुआ है, [illegible] ग़रीबी बहुत काफ़ी बढ़ गई है। सरकारी [illegible] है कि विद्रोह में २६४३ अरब और ३११ [illegible] गिरफ़्तार हुए। इनमें १६४६ अरबों और [illegible] यहूदियों को जेल दी गई। इसी [illegible] अनुसार इस आन्दोलन में ३०० अरबों [illegible] भी हुई है और क़रीब एक हज़ार [illegible] हुए हैं। अरबों का अन्दाज़ा इससे कहीं [illegible] हिन्दुस्तान की मुसलिम जनता को [illegible] के समाप्त होने पर निस्संदेह शान्ति होगी [illegible] लिनलिथगो के पास मुसलिम डेप्युटेशन [illegible] स्वा क़रीब-क़रीब सिद्ध हो गया। लार्ड लिन[illegible] ने मुसलिम डेप्युटेशन के सामने उत्तर में [illegible] कहा था, वह गम्भीर शब्दों में गवर्न[illegible] दृष्टिकोण प्रकट करता है—उसका कुछ [illegible] नीचे देते हैं।

लार्ड लिनलिथगो ने कहा था—

"यह बात सही नहीं है कि पैलस्[illegible] अरब किसानों और ज़मींदारों को ज़मीन [illegible] कर देने के लिए कार्रवाई की गई है [illegible] रही है। इसके विपरीत अभी हाल ही में [illegible] क़ानून बनाया गया है, जिससे किसान [illegible] ज़मीन से बेदख़ल नहीं किया जा सकता [illegible] बात दूसरी है कि अरब लोग ज़ाती [illegible] रुपये के लालच में या आर्थिक कठिनाइयों [illegible] अपनी ज़मीन बेच डालें। यह बात तो [illegible] किसी भी मुल्क में रोकी नहीं जा सकती [illegible]



"कहा जाता है कि मुसलमानों के पवित्र स्थानों का अपमान हुआ है। इससे बढ़कर बेबुनियाद बात और कोई नहीं हो सकती। पवित्र स्थानों की पवित्रता बिलकुल भंग नहीं की गई है और न इस बात के कहने का भी कोई आधार है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट ने इन स्थानों के सम्बन्ध में जो वचन दिया था, उसका पूरा-पूरा पालन नहीं हुआ।

"पैलस्टाइन में जो संघर्ष हो रहा है, वह मौलिक रूप से जातिगत और राजनीतिक है। इसमें धार्मिकता का कोई भी अंश नहीं है। इस बात को ख़ास तौर से ध्यान में रखना चाहिए।

"मैं इस बात को भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि लोगों का यह कहना कि जब से पैलस्टाइन ब्रिटिश गवर्नमेंट के अधीन हुआ, अरब जनता की आर्थिक स्थिति ख़राब हो गई, ग़लत है। यह सम्भव है कि चन्द अरबों ने अपनी जायदादें बेच डाली हों और मैं यह भी मानता हूँ कि पैलस्टाइन-निवासी अरबों में इस बात की स्वाभाविक चिन्ता है कि उस देश में उनकी आर्थिक हैसियत मज़बूत रहे, लेकिन जो आँकड़े सामने हैं, उनसे यह प्रकट होता है कि ब्रिटिश राज्य में अरबी जनता की आर्थिक स्थिति प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से बेहतर हुई है। पहली बात तो यह है कि १९२२ से आज तक अरब की जनता ५०% बढ़ गई है और यह वृद्धि उन क्षेत्रों में ख़ास तौर से ज़्यादा है, जहाँ यहूदी लोग बसते हैं। १९३१ में अरबों के पास ५९ हज़ार "दुनम" (नारंगी और नींबू के बाग़) थे। १९३५ में १ लाख ३५ हज़ार दुनम बाग़ हो गये थे। यहूदियों के पास १९३१ में ६६ हज़ार दुनम बाग़ थे। १९३५ में १ लाख ६० हज़ार दुनम थे। इससे ज़ाहिर है कि अरब जनता की आर्थिक स्थिति में बहुत तरक़्क़ी हुई है। अब रहा बेकारी का प्रश्न। आप लोग जानते हैं कि १९१९ में आर्थिक स्थिति के असन्तोषजनक होने के कारण अरब लोग पैलस्टाइन छोड़-छोड़कर बाहर जा रहे थे। अब वैसी हालत नहीं है। बल्कि स्थिति बिलकुल बदल गई है। यहूदी लोग, जो पैलस्टाइन में बसना चाहते हैं, उनका स्वतंत्र और सम्पन्न होना ज़रूरी है। जिनके पास १ हज़ार पौंड से कम पूँजी होती है, उनको बसने की इजाज़त नहीं मिलती। ऐसी हालत में जब नई पूँजी पैलस्टाइन में ज़ोरों के साथ आ रही है, इस देश की आर्थिक सम्पन्नता का विकास होना आवश्यक हो जाता है और जब देश की आर्थिक सम्पन्नता बढ़ेगी तो अरबों और यहूदियों, दोनों को फ़ायदा होगा। यह तो है आर्थिक पहलू। मैं अब चाहता हूँ कि इस शक को मिटा दूँ, जो अकसर लोग ज़ाहिर किया करते हैं कि ब्रिटिश गवर्नमेंट जो कुछ पैलस्टाइन में कर रही है, मुसलमानों की भावनाओं का निरादर करती है। गवर्नमेंट के दिल में मुसलिम संसार के प्रति विद्वेष है और अरब-निवासियों के जायज़ हौसलों को वह पस्त कर देना चाहती है। ये सब शक और शुबहे इतने ग़लत हैं कि जिससे ज़्यादा ग़लत कोई दूसरी चीज़ हो ही नहीं सकती। मुसलमानों की भावनाओं के प्रति ब्रिटिश गवर्नमेंट का तर्ज़ अमल आप सिर्फ़ इस बात से जान सकते हैं कि सम्राट् चन्द ही हफ़्ते हुए टर्की गये थे। मिस्र की गवर्नमेंट और ब्रिटिश गवर्नमेंट के दरमियान अभी जो कुछ समझौता हुआ है और जिस समझौते को मिस्री लोगों ने सन्तोषजनक और ब्रिटिश गवर्नमेंट की सद्भावनाओं का प्रमाण माना है, मुसलिम संसार के प्रति ब्रिटिश गवर्नमेंट का ख़्याल ज़ाहिर करता है।"

हाल ही में बम्बई में डॉक्टर इमानुएल आलसवैंजर यहूदियों की ओर से उनका दृष्टिकोण पेश करने के लिए आये थे। उनका कथन है—

"पैलस्टाइन में यहूदियों के बसने का आन्दोलन क़रीब ५० बरस हुए शुरू हुआ था और रूस और रुमानियर से यहूदी लोग आकर बसे थे। १८९७ में जब "ज़ायनिस्ट" संगठन हुआ, यहूदियों का



बसना बढ़ने लगा। १९१८ से यह तेज़ी और नियम के साथ बढ़ा है।

"जिन शक्तियों ने यहूदियों को पैलस्टाइन में बसने के लिए मजबूर किया, अनेक थीं। धर्म-परायण यहूदी लोग अपने पवित्र स्थान में रहना चाहते हैं। लाखों यहूदियों में यह राष्ट्रीय आकांक्षा पाई जाती है कि वह अपना राष्ट्रीय देश फिर से निर्माण करें। पैलस्टाइन में यहूदियों का सबसे विचित्र क़स्बा टेल आविव है, जो भूमध्यसागर के किनारे बसा है। टेल आविव, पहले जाफ़ा के निकट एक साधारण सा क़स्बा था और वहाँ २ हज़ार से ज़्यादा की आबादी नहीं थी। आज वहाँ ७० हज़ार आदमी रह रहे हैं। इस क़स्बे के चारो ओर नारंगी और फलों के मनोहर बग़ीचे लगे हुए हैं, जिनसे सैकड़ों यहूदी और अरब अपनी रोज़ी कमा रहे हैं।

"पैलस्टाइन में खेती दो तरीक़ों से की जाती है। कुछ गाँव ऐसे हैं, जहाँ के हरएक कुटुम्ब को कुछ ज़मीन दी हुई है और उस ज़मीन से जो कुछ मुनाफ़ा होता है, कुटुम्ब को मिलता है। लेकिन इन गाँवों का क़ायदा यह है कि कोई भी बाहर के आदमी को अपने खेत के काम के लिए नौकरी या मज़दूरी नहीं देता। कुटुम्ब के आदमी को ही काम करना पड़ता है।

"दूसरे गाँव इस क़िस्म के हैं, जहाँ साम्यवाद के सिद्धान्त पर काम चलता है। सारा गाँव का गाँव एक कुटुम्ब समझा जाता है और व्यक्तियों की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति समाज की ओर से होती है। बच्चों की देख-रेख उच्च कोटि के विशेषज्ञ करते हैं। मज़दूरों को मज़दूरी अलग-अलग नहीं दी जाती। सबकी मज़दूरी एकत्रित करके सार्वजनिक कोष में जमा होती है, जो सारे आदमियों के काम में आती है। यहूदियों के खेत ज़्यादातर ऐसे क्षेत्र में हैं, जो सैकड़ों बरसों से बे जोते-बोये रहा करते थे और जहाँ जूड़ी-बुख़ार का प्रबल प्रकोप रहा करता था। जो ज़मीन आज यहूदियों के पास है, १५ बरस पहले बिलकुल बेकार [illegible] जाती थी।"

ख़ैर ! विद्रोह शान्त हो गया है। [illegible] रायल कमीशन बैठेगा, जो अरबों की [illegible] के कारण पर विचार करेगा और तजवीज़ करेगा।

याद रखने की बात यह है कि पैलस्टा[illegible] लिए यह पहला कमीशन नहीं है।

३—फ़्रांस

कहने की आवश्यकता नहीं कि फ़्रां[illegible] साम्यवादी सरकार मोशिये ब्लम की अध्यक्ष[illegible] अपने प्रोग्राम पर यथाशक्ति चल रही है। [illegible] पक्ष के अर्थात् नरमदल और सम्राट्[illegible] वालंटियरों के जत्थे ग़ैरक़ानूनी घोषित [illegible] गये हैं। व्यवसायों को पंचायती बनाया जा[illegible] है। अस्त्र-शस्त्र के व्यवसाय को पंचायती[illegible] इस प्रोग्राम का श्रीगणेश हुआ है। मज़दूरों[illegible] माँगें पूरी कर दी गई हैं। श्रम की मिया[illegible] कमी, छुट्टियों की तनख़्वाहें, मज़दूरी को[illegible] आदि सुधार कार्यरूप में आ गये हैं। [illegible] और व्यापारियों के लिए नये क़र्ज़ के क़ानू[illegible] हैं। सड़कें बन रही हैं, अस्पताल तथा अन्य [illegible] जनिक हित की संस्थाएँ काफ़ी तादाद में [illegible] जा रही हैं। किन्तु वैदेशिक व्यापार [illegible] फ़्रांस के सामने बहुत चिन्ताजनक था और [illegible] इन सुधारों के कारण और अन्य कारणों [illegible] फ़्रांसीसी व्यावसायिक माल की लागत बढ़[illegible] है और वह विदेशी बाज़ार में महँगा पड़[illegible] है। इसलिए बिकता कम है। अतः फ़्रांस विदेशों [illegible] में ख़रीद ज़्यादा रहा था और बेच कम रहा [illegible] पिछले सात महीने में उसकी ख़रीद बिक्री [illegible] अरब मार्क ज़्यादा हुई थी। वैदेशिक ख़री[illegible] अदायगी के लिए उसे प्रतिदिन पाँच लाख [illegible] का सोना बाहर भेजना पड़ता था, जैसा [illegible] कल हिन्दुस्तान का हाल है।



सोने के इस प्रवाह को रोकने के लिए फ़्रांस ने अपने सिक्के की क़ीमत ३०% घटा दी है। अर्थात् अब फ़्रांस की चीज़ विदेशी बाज़ार में पहले की अपेक्षा ३०% कम दाम पर मिल सकेगी। निस्सन्देह यह काम फ़्रांस ने अपना वैदेशिक व्यापार बढ़ाने के उद्देश्य से किया है। इस योजना में अमेरिका और इँगलैंड भी शामिल हैं; और स्विट्ज़रलैंड ने भी इसमें शामिल होने का विचार प्रकट किया है।

स्पेन के गृहयुद्ध के परिणाम का असर फ़्रांस पर भी पड़ सकता है। अगर स्पेन में फ़ॉसिस्ट जीते, जिसकी पूरी-पूरी आशंका या आशा है, तो फ़्रांस के फ़ॉसिस्ट प्रबलतर हो जायँगे।

ब्लम की गवर्नमेंट का भविष्य सारे योरप के लिए महत्त्वपूर्ण है। अगर यह गवर्नमेंट टूटी, फ़्रांस में फ़ॉसिज़्म का ज़ोर प्रबल हो जायगा और यह बात ध्यान रखने की है कि पिछले तीन वर्ष में इस दल ने फ़्रांस में बहुत काफ़ी तरक़्क़ी कर ली है। इसकी शक्ति इतनी प्रबल मानी जाती है कि पिछले निर्वाचन में गरमदल की सभी पार्टियों ने—साम्यवादी, कम्यूनिस्ट, रेडिकल, जो एक दूसरे से बराबर लड़ते रहते थे—अपना मतभेद भुला कर फ़ैसिज़्म के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए गुटबन्दी करना आवश्यक समझा।

४—जर्मनी

जर्मनी की राजनीति में पिछले मास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना नूरमबर्ग की नाज़ी महासभा है। इस सभा में हर हिटलर ने बोलशेविक रूस के प्रति ख़ूब अपने दिल के फफोले फोड़े हैं और उपनिवेशों की ज़ोरदार माँग पेश की है, जो ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को स्वभावतः कटु लगी। यहूदियों से घृणा तो नाज़ीदल का मुख्य प्रोग्राम ही है। इसका भी इस सभा में ख़ूब ज़ोर था। हर हिटलर ने उपनिवेशों के सम्बन्ध में निम्न-लिखित शब्द कहे थे—

"When a British statesman declares that Germany does not require colonies, because she is able to purchase her raw materials from abroad, this suggestion is as brilliant as that of Bourbon the Prince who told the mob who howled for bread to eat cakes......The retort that colonies would not be of much use to us is futile."—Germany cannot relinquish her colonial demands, the German Nation's right to live is as great as that of any other country. (*Times, Sept. 7, '36*)

"जिस समय कोई ब्रिटिश राजनीतिज्ञ यह कहता है कि जर्मनी को उपनिवेश की ज़रूरत नहीं, क्योंकि वह कच्चा माल विदेशों से ख़रीद सकता है, उसका यह कथन उतना ही चमत्कारक है, जैसा फ़्रांस के राजकुमार का था। जनता ने भूख के कारण जब 'रोटी-रोटी' की पुकार उसके सामने की तो उसने जवाब दिया—अगर तुम्हारे पास रोटी नहीं है तो तुम केक अर्थात् पूड़ी क्यों नहीं खाते।....हमारे सामने किसी का यह कहना बेकार है कि उपनिवेश हमारे लिए मुफ़ीद न होंगे।....जर्मनी उपनिवेशों की अपनी माँग कदापि छोड़ नहीं सकता। जर्मनी जाति का जीवित रहने का अधिकार उतना ही महत्त्व-पूर्ण है, जितना किसी भी राष्ट्र का हो सकता है।"

इस अवसर पर सोविएट के ऊपर आक्षेप करते हुए हर हिलटर ने कहा है—

"हम जानते हैं कि बोलशेविकों का उद्देश्य राष्ट्रीय गवर्नमेंट के स्थान पर विदेशी यहूदी शासन क़ायम करना है। इस कारण से यह समस्या अन्तरराष्ट्रीय रूप धारण कर लेती है। रूस में सोविएट और किसान रिपब्लिक के प्रमुख १०० में ९८ यहूदी हैं जो अपनी ज़िन्दगी भर में कभी न तो किसान रहे हैं, न मज़दूर। स्पेन में



भी वही हो रहा है। मार्क्सवाद (साम्यवाद) ने पिछले चन्द हफ़्तों में स्पेन के राष्ट्र को यहूदियों के नेतृत्व में क़त्ल और ख़ून के ज़रिये से सत्यानाश कर दिया है।

हर हिटलर के मतानुसार "बोलशेविकवाद के सिद्धान्त पाशविक और पागलपन के हैं।" डाक्टर गोविल्स कहते हैं—"यहूदी बोलशेविकवाद के जन्मदाता हैं और Jews are a perilous parasitic race यहूदी ख़तरनाक ख़ून चूसनेवाली क़ौम है। बोलशेविकवाद ("Monster of iniquity) अन्याय का पिशाच है।"

रूस और यहूदियों के प्रति घृणा की यह चरम सीमा है। हर हिटलर ने अपने भाषण में यह भी ज़ाहिर किया था कि वह चार बरस के अन्दर जर्मनी को कच्चे माल के लिए सारे संसार से निराश्रित कर देंगे। जर्मनी के वैज्ञानिक, व्यवसायी, और खानें सहयोग के साथ देश की सारी आवश्यकताओं की चीज़ें जर्मन-भूमि पर ही पैदा कर लेंगी।

जर्मनी की सैनिक तैयारी निम्न-लिखित आँकड़ों से ज़ाहिर होती है—

जर्मनी की हवाई सेना पर ख़र्च,			सम्पूर्णसेना पर बजट का
१९३२ में	४४० लाख मार्क	१९२९-३०	८·९%
१९३३ ,,	७८० ,,	,,	
१९३४ ,,	२१०० ,,	,, ----	२१·४%
१९३५ ,,	१२००० ,,	,,	७३·%

जर्मनी की स्थल-सेना आज उसकी १९१३ की सेना से बड़ी है। जर्मनी की जल-सेना आज ब्रिटिश Hiemewehr जल-सेना के बराबर और उससे अधिक आधुनिक है।

जर्मनी में अनिवार्य सैनिक शिक्षा और नौकरी की मियाद पहले से दुगनी कर दी गई है।

इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि इस समय जर्मनी में साम्राज्य के विस्तृत करने के लिए प्रबल भावना पाई जाती है और इस भावना की मज़बूती जर्मनी गवर्नमेंट अपूर्व और दृढ़ सैनिक संगठन करके कर रही है। जर्मनी का युद्धपरा[यण] होने का एक प्रमाण यह भी है कि वहाँ आ[ज]कल अनेक वाक्य ऐसे लोकप्रिय हो रहे हैं [जो] सिवा युद्धपरायण राष्ट्र के कहीं दूसरी जगह [हो] ही नहीं सकते। जैसे हर गोविल्स का मक़ूला है—

"राष्ट्रसंघ अच्छी चीज़ है, लेकिन मशीन[गन] और हवाई जहाज़ बेहतर हैं।"

"सम्भव है, हमारे पास मक्खन न हो, लेकिन हमारे पास बन्दूक़ें तो हैं।"

नूरमबर्ग के भाषण का प्रभाव सारे योरप [पर] पड़ा है। फ़्रांसवाले रूस से अलग होने के [बजाय] उनसे अपनी मित्रता प्रगाढ़तर करने की आवश्य[]कता का अनुभव करने लगे।

अख़बारों में यह प्रकाशित हुआ कि गोवा [जो] आजकल पुर्तगाल का है, सम्भव है, [जर्मनी का] उपनिवेश बन जाय।

५—अफ़रीका में नाज़ी

साउथ अफ़रीका में युद्ध के पूर्व जर्मनी [का] एक उपनिवेश था, जिसे जर्मन दक्षिण-प[श्चिम] अफ़रीका कहा जाता था। युद्ध के बाद इस [प्रदेश] पर अँगरेज़ों को Mandate अधिकार मिल [गया] और यह साउथ अफ़रीका की ब्रिटिश यू[नियन] गवर्नमेंट को सिपुर्द कर दिया गया। इस प्रदे[श में] जर्मन लोगों की तादाद बहुत ज़्यादा है। हा[ल के] समाचार यह है कि यद्यपि इस पर क़ब्ज़ा ब्रि[टेन] का है, लेकिन शासन नाज़ी लोगों का है। [इन्हीं] की प्रेरणा पर इस प्रदेश में नाज़ी लोगों की [] संख्या जर्मन-निवासियों में असन्तोष पैदा [करती] रहती है। नाज़ी लोगों ने यहाँ ब्रिटिश-शास[न के] मुक़ाबले में अपना शासन अलाहदा बना लिया [है]। "संडे एक्सप्रेस" में प्रकाशित हुआ है कि [] जर्मनी से पादरी, मिशनरी और स्कूल मास्[टरों के] रूप में आंदोलन-कर्ता भेजे जाते हैं और [] और करोड़ों की तादाद में पैम्फ़लेट आ र[हे हैं] साउथ अफ़रीका की ब्रिटिश गवर्नमेंट ने []



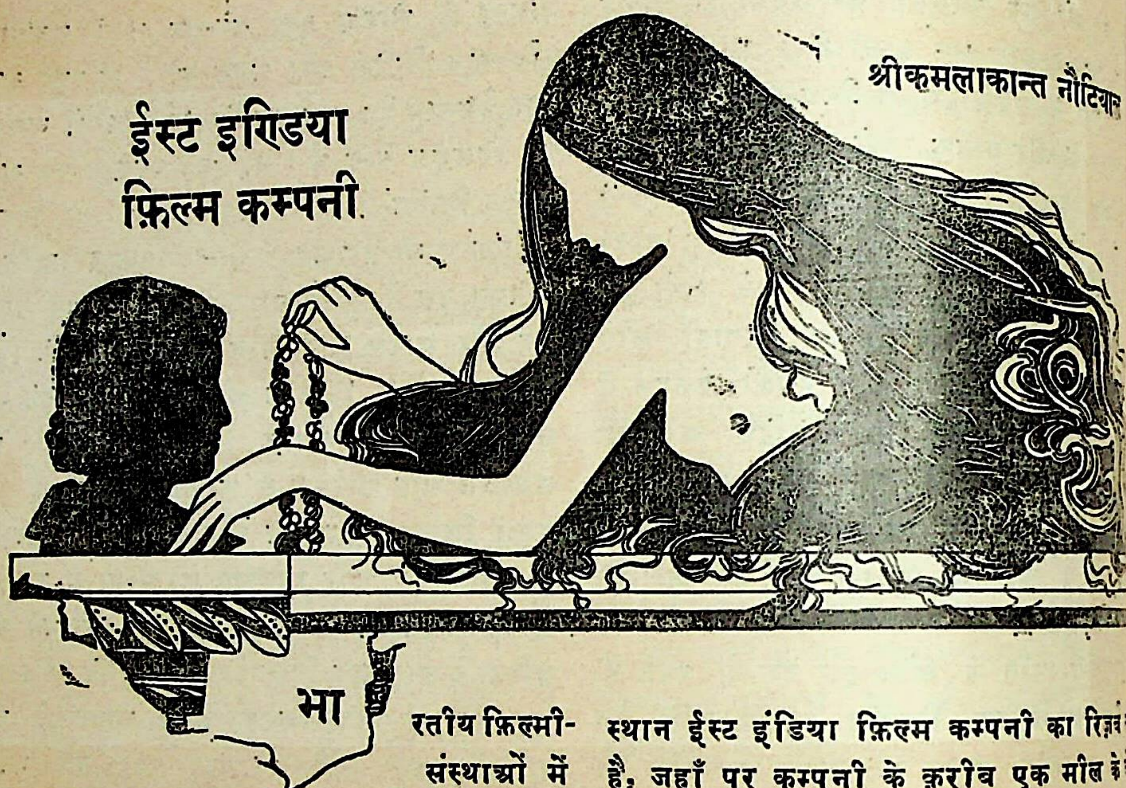
आन्दोलन को ग़ैर क़ानूनी कर दिया है, लेकिन उस पर अमल करते हुए डरती है। सारे देश को नाज़ी लोगों ने अपने ढंग से भिन्न-भिन्न ज़िलों में बाँट रक्खा है और प्रत्येक ज़िले पर अपना एक नेता मुक़र्रर कर दिया है, जिसे वह फ़ूरर (Feuherer) कहते हैं। यह लोग जब मीटिंग करते हैं, थोड़ी दूर के फ़ासले पर इनके सिपाही खड़े रहते हैं। अगर पुलिस दिखाई दी तो यह सिपाही लोग इत्तिला दे देते हैं और पुलिस इनको पकड़ने में असफल रहती है। यह लोग ब्रिटिश अदालतों का बहिष्कार किये हुए हैं और जर्मन-भाषा-भाषी जनता के सारे मुक़द्दमे नाज़ी लोगों की अदालत में तै होते हैं। अन्तिम अपील के लिए मुक़द्दमा बर्लिन जाता है।

जो जर्मन जाति के लोग इस देश में रहते हैं, वे स्वभावतः ब्रिटिश रियाया समझे जाते हैं। लेकिन यह लोग अपने को जर्मन गवर्नमेंट की रियाया समझते हैं। सेना में भरती होने के लिए बर्लिन से हुक्म आने पर यह लोग जर्मन-सेना में दाख़िल होते हैं। ब्रिटिश गवर्नमेंट यह बात जानती है, लेकिन कुछ कर-धर नहीं सकती। यूनियन के ब्रिटिश और जर्मन लोगों में यहाँ बहुत बड़ा वैमनस्य है। यहाँ तक कि इन दोनों में व्यापार तक बिलकुल बन्द है। वहाँ की व्यवस्थापक सभा के एक ब्रिटिश मेम्बर ने अपने भाव इस स्थिति पर प्रकट करते हुए कहा था—"पिछले ६ महीने में यूनियन पक्ष ने यूनियन गवर्नमेंट की सलाह मानते हुए और आपस के वैमनस्य को कम करने के लिए नाज़ी लोगों के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की, लेकिन जर्मन (कौंसल) राजदूत हमारे इस समझौते और शराफ़त से फ़ायदा उठा रहे हैं और हमारे ख़िलाफ़ असन्तोष और बदअमनी फैला रहे हैं। बात, सब्र और बरदाश्त की सीमा से बढ़ गई है। ज़रूरत इस समय यह है कि निर्भीकता और वीरता के साथ यह दिखा दिया जाय कि असल में इस देश में राज्य किसका है। चापलूसी और ख़ुशामद तथा मीठे-मीठे शब्द व्यर्थ की धोखे-बाज़ी है और इससे शासन में नुक़सान पहुँचता है।" ये शब्द जर्मनों के दक्षिण अफ़रीका में प्रबल प्रभाव को ही प्रमाणित करते हैं।



ईस्ट इण्डिया फ़िल्म कम्पनी

श्रीकमलाकान्त नौटियाल



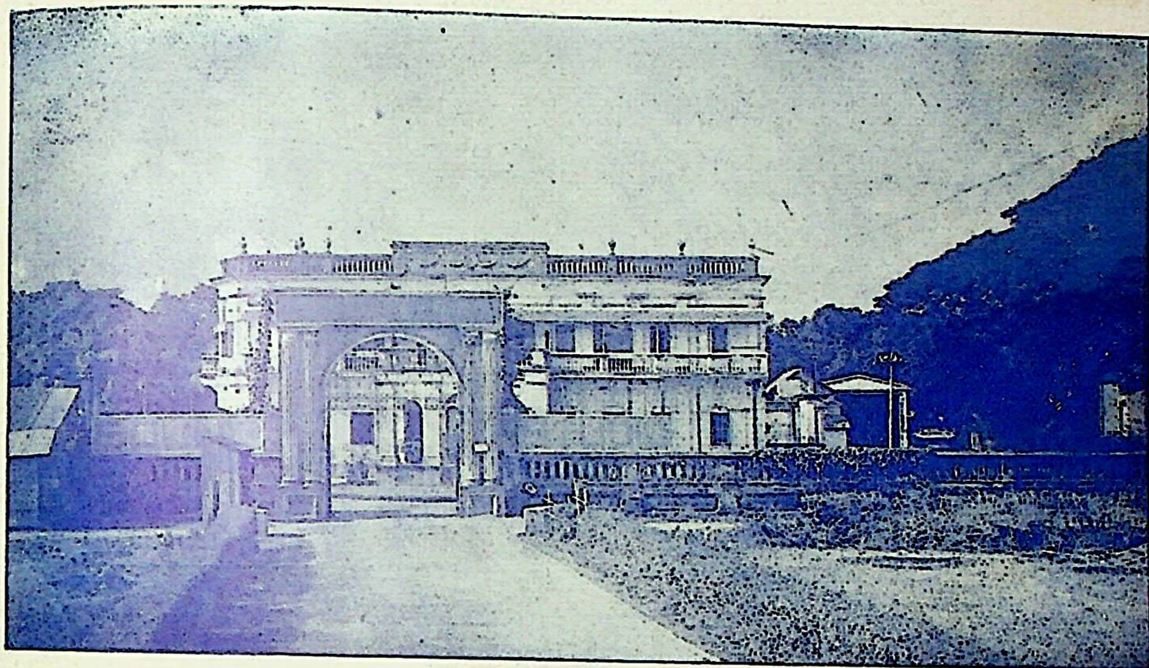
भारतीय फ़िल्मी-संस्थाओं में ईस्ट इंडिया फ़िल्म कम्पनी उन्हीं प्रमुख कम्पनियों में से है, जिन्होंने कला के लिहाज़ से जनता पर अपना सम्माननीय प्रभाव डाल दिया है और जनता जिनकी फ़िल्मों को बड़े गौरव की दृष्टि से देखती है। शायद ही कोई ऐसा फ़िल्म-प्रेमी व्यक्ति होगा, जिसने ईस्ट इंडिया फ़िल्म कम्पनी के 'सीता'-नामक चित्र को नहीं देखा होगा। एक समय 'सीता' फ़िल्म ने भारत ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी प्रदर्शित होकर अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। यही नहीं, 'सीता' ही एक ऐसी फ़िल्म है, जिसे विदेश में, भूमंडल की फ़िल्म-प्रदर्शिनी में भारतीय श्रेष्ठ फ़िल्म के लिए सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

यह अत्यन्त ही हर्ष का विषय है कि आज मुझे इसी गौरवमयी नामी संस्था का परिचय 'माधुरी' के पाठकों तक पहुँचाना है। आशा है, पाठकों को इस हर्षोत्पादक परिचय द्वारा कुछ-न-कुछ मनोरंजन के साथ लाभ भी होगा।

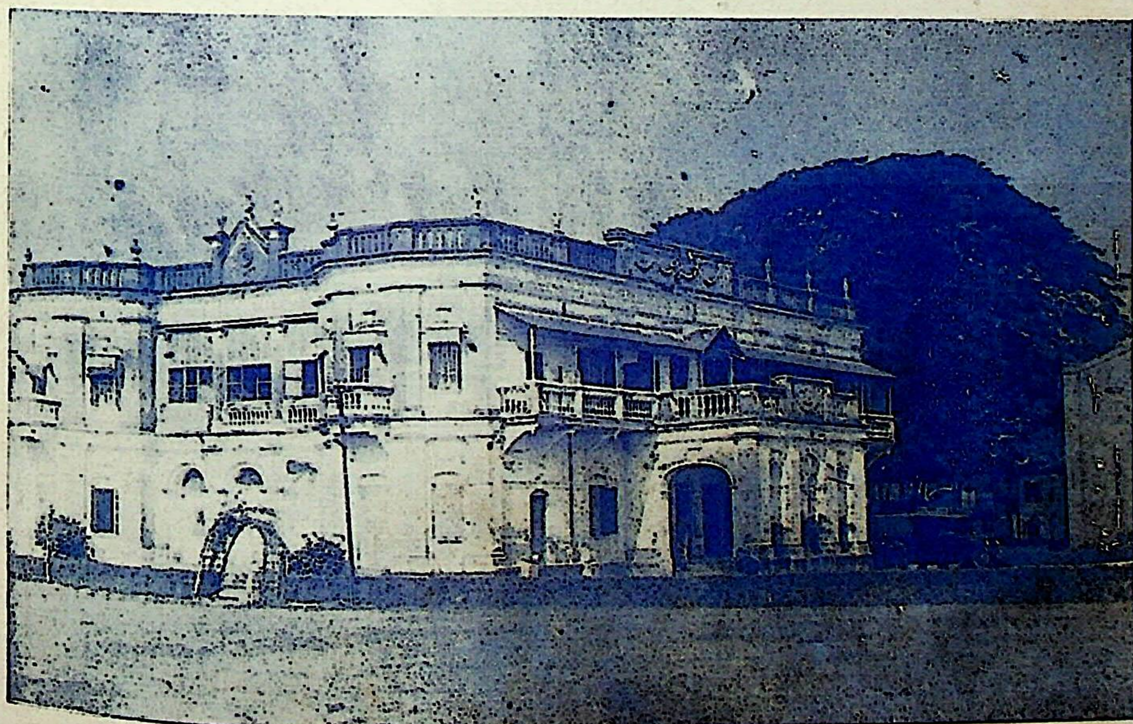
कलकत्ते के एक तरफ़ रीजेन्ट पार्क का रमणीक स्थान ईस्ट इंडिया फ़िल्म कम्पनी का रिज़र्व है, जहाँ पर कम्पनी के क़रीब एक मील के अन्दर दो विशाल स्टुडियो और अन्य आव ऑफ़िस हैं।

कम्पनी के सोल प्रोप्राइटर (Sole Propr कलकत्ते के प्रसिद्ध धनी परिवार के युवा धिकारी श्रीबाबू बजरंगलालजी खेमका हैं फ़िल्मी दुनिया मि० बी० एल्० खेमका के जानती है। सम्भवतः भारत क्या, विदेशों श्रीखेमकाजी की उम्रवाला व्यक्ति इतने बड़े को सँभालनेवाला नहीं—अभी इसी छोटी उम्र में आपने जितने काम सँभाले हुए हैं देखकर सचमुच दाँतों-तले उँगली दबानी है और कहना पड़ता है यह साहस इसी युवक खेमकाजी ही का है, अन्य का सकता। आपके समस्त कार्यों का ब्योरा ठीक-ठीक आँकड़ों में बताया जाय तो शायद खासी मोटी पुस्तक हो जाय। मगर यहाँ हम में ही देते हैं।

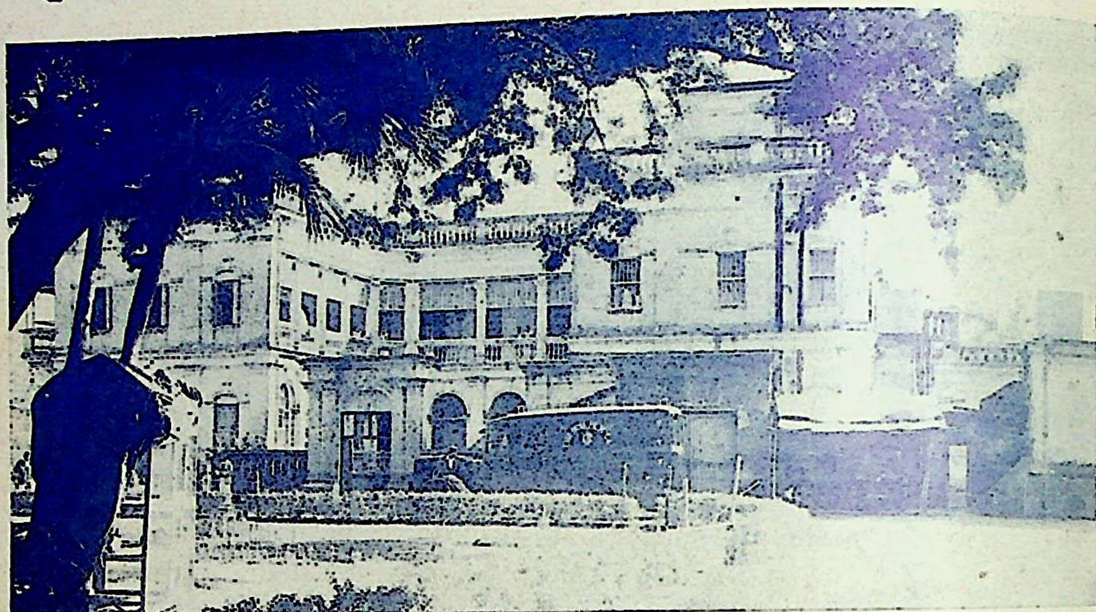
कम्पनी के दो महान् साउंड स्टुडियो हैं, प्रत्येक सामान एकदम नया और अप-टु-डेट



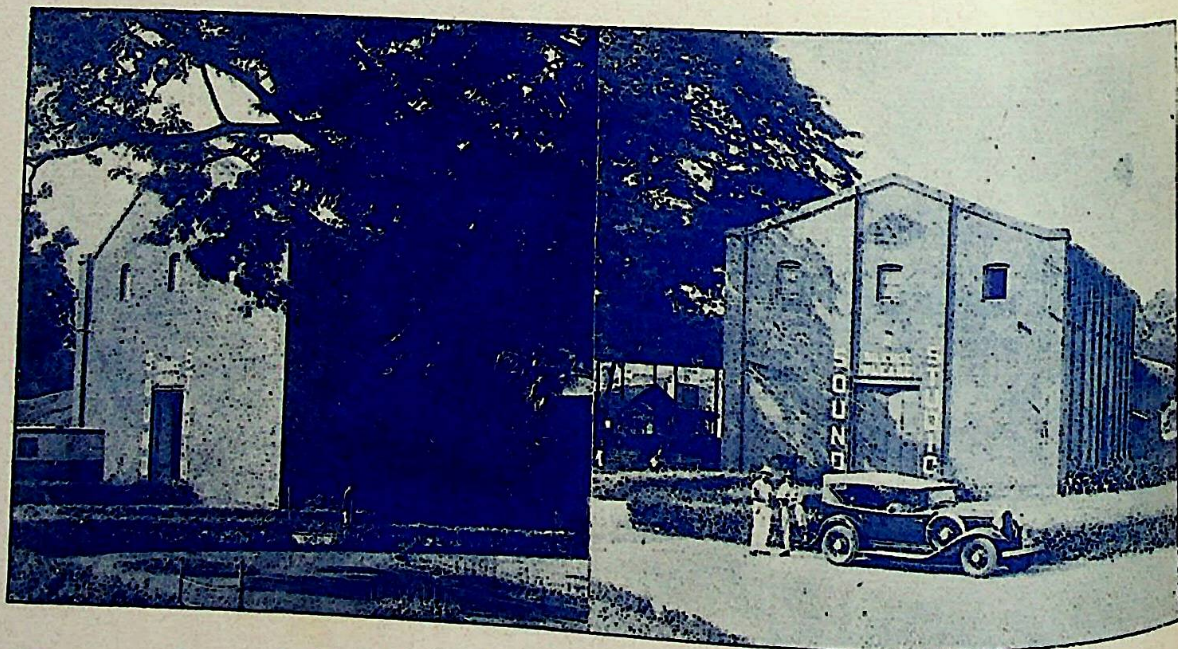
कलकत्ते की ईस्ट इंडिया फ़िल्म कम्पनी का भाव-भवन
(सामने का दृश्य)



इसी भवन का दूसरा दृश्य



कम्पनी के आफ़िस, लेबोरेटरी, रिहर्सलरूम इत्यादि



कम्पनी के साउन्ड स्टूडियो के दो दृश्य



किया गया है। दोनों के अलग-अलग साउंडट्रक, अलग कैमरा, अलग Laboratory room हैं। प्रत्येक स्टुडियो के अलग-अलग कर्मचारी हैं।

उसी स्टुडियो कम्पाउंड के भीतर एक बहुत बड़ा ऑफ़िस है, जिसमें स्टुडियो-सम्बन्धी कार्यवाही होती है। उसी कम्पाउंड में अभिनेता और अभिनेत्रियों के लिए अलग-अलग वेटिंगरूम, रिहर्सलरूम, मेकअपरूम आदि बने हुए हैं। वेटिंगरूम में अभिनेतागण बैठते हैं, यदि किसी से मिलना हो तो मिलते हैं। रिहर्सलरूम में फ़िल्म में किये जानेवाले काम का पूर्वाभ्यास करते हैं। यहाँ कभी-कभी स्वयं ही अभ्यास करते हैं, कभी-कभी डाइरेक्टर के सामने करते हैं। इसमें उस काम से सम्बन्ध रखनेवालों के सिवा अन्य किसी का जाना निषिद्ध है। मेकअपरूम में अभिनेतागण फ़िल्म में प्रविष्ट होने से पहले सुसज्जित होते हैं। जिस-जिस वेष में जिसको होना होता है, वह मेकअप-मास्टर द्वारा उसी प्रकार का बना लिया जाता है। प्रत्येक मेकअपरूम के अलग-अलग मेकअप-मास्टर हैं। यह ख़ास बात कहने की है कि ईस्ट इण्डिया मेकअपमैन अपने काम में बहुत ही चतुर गिने जाते हैं।

इसी स्टुडियो कम्पाउंड में एक किनारे पर एक बड़ा-सा लेबोरेटरी भवन स्थित है, जिसमें फ़िल्मों के नेगेटिव पाजेटिव की शकल में प्रिंट होते हैं, उनकी अच्छी तरह देखभाल की जाती है, और उसके बाद फ़िल्में प्रदर्शित की जाती हैं।

इसके अलावा बड़े-बड़े साउंड ट्रकों के लिए, अभिनेता-अभिनेत्रियों की निजी मोटरों के लिए और अन्य छोटे-मोटे कामों के लिए भी कई छोटे-छोटे घर बने हुए हैं।

ईस्ट इण्डिया फ़िल्म कम्पनी की ख़ासियत यह है कि उसके स्टुडियो के चारों तरफ़ ऐसे सुन्दर बाग़ बने हैं, जो रमणीयता के लिहाज़ से सर्वोत्तम कहे जाने के क़ाबिल हैं। कम्पनी की फ़िल्मों में जब बाहरी दृश्य आते हैं तो उन्हें कहीं इधर-उधर नहीं भटकना पड़ता, बल्कि इन्हीं रमणीक दृश्यावलियोंवाले बाग़ों में ही ले लिये जाते हैं। चाहे वे दृश्य भयानक जंगल के हों, ज़ोर धारवाली नदी के हों, ऊँचे पर्वतों के हों, सभी यहीं ले लिये जाते हैं और उनके दृश्य भी इतने रमणीक निकलते हैं कि लोग ईस्ट इण्डिया की फ़िल्मों में वाह-वाह कर बैठते हैं। इसी के साथ-साथ कई स्थानों पर नये फ़ैशन तथा पुराने ज़माने के तालाब भी बने हुए हैं, जो समय-समय पर फ़िल्मों के काम आते हैं।

इनके स्टुडियो में हर समय ५-६ फ़िल्मों का शूटिंग चालू रहता है, और कभी-कभी १०-१० पर भी नौबत पहुँचती है। बाहर से आई हुई—अर्थात् मद्रास, लाहौर और दिल्ली से आई हुई पार्टियाँ सबसे पहले इन्हीं के स्टुडियो में पहुँचती हैं। अगर उन्हें वहाँ स्थान न मिला तो इधर-उधर दौड़ना भटकना पड़ता है; क्योंकि ईस्ट इण्डिया से बढ़कर सुविधाजनक स्टुडियो उन्हें कलकत्ते-बम्बई में कहीं भी नहीं मिलता। रेट एकदम मनोनुकूल, नवीन अप-टु-डेट मशीनरी, अच्छे शिक्षित भद्र कलाकार उन लोगों को दिये जाते हैं, जो स्टुडियो में आकर किराये पर अपना फ़िल्म बनाते हैं। कम्पनी की तरफ़ से प्रत्येक व्यक्ति का सुविधाजनक सहयोग हर समय मिलता रहता है। यहाँ तक देखा गया है कि जो कम्पनी यहाँ से एक बार फ़िल्म बनाकर ले गई है, वह फिर सदा के लिए यहाँ की बन गई।

कम्पनी में प्रत्येक का शिष्ट और सभ्यतापूर्ण व्यवहार प्रत्येक आगत व्यक्ति के लिए सन्तोषजनक होता है। स्वयं श्रीखेमकाजी प्रत्येक व्यक्ति से इतने अच्छे ढंग से मिलते हैं कि लोगों का यह आक्षेप बिलकुल असत्य मालूम होता है कि प्रोड्यूसर सीधे मुँह बात भी नहीं करते। हो सकता है कि अन्य Studios के प्रोड्यूसर ऐसा व्यवहार करते हों, मगर मैंने जो यहाँ देखा, वह अत्यन्त सन्तोषजनक था।



मि० खेमका स्वयं अच्छे शिक्षित और ख़ासे कलाकार हैं। आप कलाकार की हृदय से क़दर करते हैं। आप जब भी कभी इधर-उधर दौरे पर जाते हैं, अपनी नज़र में जो भी नामी कलाकार दीखता है, उसे आप तुरन्त अपने साथ ले लेते हैं। कला के नाम पर आप चाहे कितना भी ख़र्च क्यों न हो, करने को तैयार रहते हैं। इसका उदाहरण यही है कि भारत के विख्यात डाइरेक्टर श्रीदेवकी बोस इस समय आपके ही पास हैं, और काफ़ी ख़र्च कराके आपकी एक अमर फ़िल्म (हिन्दी-बँगला) बना रहे हैं, फ़िल्म का नाम है 'सुनहरा संसार।' यही नहीं, आपकी कलाप्रियता का एक नमूना और है। आपने हाल ही में संसार-विख्यात जंगल फ़िल्म-निर्माता डाइरेक्टर मि० फ़्रेंकलिन को भारत में भयानक सीरियल फ़िल्म बनाने के लिए बुलाया है, और वे आकर उस काम में लग भी गये हैं। अब वे जो चीज़ तैयार करेंगे, सचमुच वह एक निराली और भारत के लिए गौरव की चीज़ होगी। इस काम में रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा है, मगर मि० खेमका इसकी कोई पर्वा न करके, एकमात्र अपनी कलाप्रियता का परिचय दे रहे हैं। यह साहस सम्भवतः किसी भारतीय प्रोड्यूसर का नहीं हुआ।

मि० खेमका के कार्यक्षेत्र में अनेक [illegible] आपका एक सिनेमा-हाउस कलकत्ते के [illegible] और प्रसिद्ध स्थान चौरंगी स्कायर पर [illegible] जो आधुनिकता के लिहाज़ से सर्वश्रेष्ठ माना [illegible] है। इसके साथ ही आपके कलकत्ते में कई [illegible] और फ़र्में हैं।

आपके फ़िल्म-सम्बन्धी ऑफ़िस [illegible] U. S. A. (अमेरिका) और इँगलैण्ड [illegible] अन्य कारबारों के ऑफ़िस तो प्रायः सभी [illegible]

ईस्ट इण्डिया फ़िल्म द्वारा जो अभी तक [illegible] फ़िल्में निकलीं, वे इस प्रकार हैं—सीता, [illegible] सलीमा, नाइट बर्ड, विद्रोही (हिन्दी-[illegible] नूरेवहदत, सुल्ताना, बाग़ी सिपाही, सुनहरा [illegible] (हिन्दी-बँगला), लैलामजनू (ईरानी) [illegible] इनके अलावा बँगला, तेलगू, तामिल आदि [illegible] बहुत-सी हैं।

विवरण विस्तृत होने के भय से थोड़ा [illegible] दिया है, इसके बाद, मि० खेमका से की गई [illegible] क़ात का विवरण फिर कभी दिया जायगा।



'द्वापर'

"संचित किये रक्खे हुए
शुकवृन्द के चक्खे हुए
कुछ फल कि जो थे दीन शवरी के दिए
खाकर जिन्होंने प्रीति से
शुभ मुक्ति दी भव-भीति से
वे राम रक्षक हों धनुर्धारण किये।"

बाबू मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी-साहित्य के वह रत्न हैं, जिनकी आभा से आज सारा हिन्दी-जगत् प्रकाशित हो रहा है। प्रत्येक हिन्दी-भाषी साहित्य-रूपी अंधकार को दूर करने के हेतु गुप्तजी के काव्यों के दीपकों का सहारा लेता है। कोई भी हिन्दी का पाठक ऐसा न ोगा, जिसने गुप्तजी की कृतियों का रसास्वादन न किया हो। अभी कुछ ही समय की बात है कि गुप्तजी ने 'द्वापर'-नामक काव्य की रचना की है। इसी वर्ष आपकी ५० वीं वर्षगाँठ मनाई गई है और अपनी इस जन्म-तिथि को अमर करने के लिए 'द्वापर' नाम का काव्य भी इसी दिन प्रकाशित किया गया है। समस्त हिन्दी-जगत् ने इसके उपलक्ष में उत्सव मनाये और कवि के दीर्घायु होने के लिए भगवान् से प्रार्थना की है।

कविता और जीवन दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं। इनके मूल में एक ही अवयव है। उसी के कविता और जीवन दो रूप हैं, जिनका परस्पर घनिष्ठ संबंध है। एक के अभाव में दूसरे का होना कठिन-सा प्रतीत होता है। जीवन के अभाव में कविता हो ही नहीं सकती, यदि होगी तो उसमें सजीवता का पूर्ण अभाव होगा। उसमें कविता के प्रधान गुण ओज, सरलता, स्पष्टता और प्रभावोत्पादकता का पता न होगा। इसी से किसी ने सत्य लिखा है कि कविता जीवन की व्याख्या है तथा कविता जीवन से जीवन को और जीवन के लिए होती है। मनुष्य के जीवन का प्रभाव तथा उसकी छाप उसके काव्यों पर अवश्य पड़ती है। बाबू मैथिलीशरण गुप्तजी का यह जीवन अत्यन्त ही शोकाकुल हो गया है, जिसकी छाप आपके काव्य 'द्वापर' पर पूर्ण रूप से पड़ गई है। कुछ ही समय के बीच आपके दो लाल संसार-सागर में विलीन हो गये हैं। इससे आपके हृदय को बड़ी ठेस लगी है। संतान मानव-जीवन की शोभा



है। इसके अभाव में मानव-जाति के लिए संसार फीका है। उसके लिए संसार में सुख तथा स्थान नहीं; वह निःसहाय है। दो लालों को खोकर आज गुप्तजी ने 'द्वापर'-रूपी लाल की सृष्टि करके अपनी प्रेयसी के अंक को भरा है।

> कर्म-विपाक कंस की मारी
> दीन देवकी-सी चिरकाल,
> लो, अबोध अन्तःपुरि मेरी
> अमर यही माई का लाल।

धन्य हो, मैथिलीशरण। धैर्य और संतोष हो तो ऐसा, जिसने अपने सजीव क्षणभंगुर लालों को त्यागकर निर्जीव पर अमर लाल अपनी प्रेयसी को भेंट किया है।

गुप्तजी सीताराम के सच्चे और अनन्य भक्त हैं। तुलसी के बाद यदि हम राम-भक्तों की तालिका बनायें तो कदाचित् आप ही का नाम सर्वप्रथम होगा। आपकी यह भक्ति-भावना आपकी कवित्व-शक्ति को मीलों पीछे छोड़ देती है। आपकी आस्था इतनी तीव्र, इतनी प्रबल और इतनी पूर्ण है कि आप निष्ठापूर्वक कह सकते हैं—

> राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है,
> कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है।

हिन्दी-जगत् में तुलसी के लिए यह प्रसिद्ध है कि तुलसीदासजी ने लगभग २० ग्रंथों की रचना की, परन्तु उनके उपास्य देव हर समय, हर रचना में 'राम' ही हैं। और देवता क्या, कृष्ण पर भी आपकी आस्था नहीं थी। कृष्ण की मूर्ति के सम्मुख भी वे नतमस्तक नहीं हुए। आपने कृष्ण-गीतावली लिखी, परन्तु उसमें आप पूर्ण रूप से असफल रहे। इसका मूल कारण यही है कि तुलसी को कृष्ण के जीवन से प्रेरणा नहीं मिली तथा कृष्ण से आपको प्रेम नहीं था। यही बात हम गुप्तजी के लिए भी कह सकते हैं। गुप्तजी राम के अनन्य भक्त हैं। आपकी भक्ति में स्वार्थ और आकांक्षाओं के लिए स्थान नहीं। वे अपने राम से इसलिए प्रेम नहीं करते कि भगवान् लोक के कल्याणकर्ता हैं, परन्तु [इस]लिए राम से उनको स्वाभाविक प्रेम है। [राम के] जीवन के अंगों से अपने जीवन को आ[लोकित] पाया और प्रेम के आधिक्य में वे गुनगुना [उठे।] उस राम-भक्त ने राम का चरित्र-गान [करके] (साकेत की सृष्टि करके) महाकवि की [उपाधि] पाई, राष्ट्र-कवि के श्लाघनीय आसन को [ग्रहण] किया, वही आज 'द्वापर' में कृष्ण के जी[वन से] संबंधित घटनाओं की व्याख्या करते हुए [असफल] रह जाते हैं। इस असफलता का कारण भी [कवि ने] स्वयं ही लिख दिया है कि भगवान् आ[हे] मुरली बजायें अथवा धनुषबाण लें, परन्तु मैथि[ली]शरण पर किसी समय अथवा वातावरण में [राम] के अतिरिक्त किसी दूसरे का रंग नहीं चढ़ सकता।

> धनुष-बाण या वेणु लो श्याम रूप के सं[ग]
> मुझ पर चढ़ने से रहा राम, दूसरा रं[ग]

जब कृष्ण रूप से ही कवि का सामञ्जस्य [नहीं] तो किस प्रकार से उस विषय का प्रति[पादन] सफलतापूर्वक हो सकता है। कवि के इन वचनों [से] यह प्रतीत होता है कि आप अपने इस प्रया[स में] पूर्ण रूप से सफल नहीं हुए और हों भी तो [कैसे] जब 'श्रीगणेश' ही द्वापरमय है।

'द्वापर' की कथा इतनी संदिग्ध और [...] है कि उसमें कहीं धारा-प्रवाह दिखाई नहीं दे[ता;] पुस्तक केवल संग्रहमात्र-सी प्रतीत होती है, [पर] उसमें भी कुछ विशेषताएँ हैं। उसमें कृष्ण[के] मथुरा जाने पर और उसके पूर्व माता यशो[दा,] देवकी और गोपियों तथा प्यारी गायों की [जो] दशा हुई है, उसी का शाब्दिक चित्र क्या [...] ही हैं। पूर्ण पुस्तक में केवल एक ही रस का [प्रति]पादन है और वह भी करुणा, जो देश और [...] के कारण सर्वथा अनुपयुक्त है। समय की [...] रस पर आस्था नहीं है। इसी कारण से [पुस्तक] नितांत में नीरस और भार-सा प्रतीत होता [है।] पाठकों की उत्सुकता पुस्तक के प्रारम्भ ही [...]



रहती है, किन्तु जैसे-जैसे पुस्तक के पृष्ठ पलटते जाते हैं वैसे-वैसे ही उसका माधुर्य, उसके अध्ययन की लालसा कम होती जाती है। यहाँ तक कि कुछ स्थान ऐसे भी हैं जहाँ पर धैर्य साथ नहीं देता, निराशा प्राप्त होती और बरबस पुस्तक रखनी पड़ती है। कभी यह विचार होने लगता है कि कवि ने 'साकेत' की रचना करके क्यों इस 'द्वापर' जैसे द्वापर काव्य को जन्म दिया।

कवि अपने समय का प्रतिनिधि होता है। उसकी रचनाओं में देश और काल तथा समकालीन भावनाओं की पूर्ण रूप से छाप रहती है। वह कवि कवि कहलाने का अधिकारी नहीं जिसकी रचनाओं में उसके समय की समकालीन भावनाओं का संकेत और चित्रण न हो। आधुनिक युग में मैथिलीशरणजी गुप्त ही ऐसे कवि हैं, जिनकी रचनाओं में हमें यह प्रतिनिधित्व सहज ही में प्राप्त हो जाता है। इस युग में पतित पतित नहीं परन्तु भाई हैं। देश भर में पतितों के प्रति सहानुभूति की भावना जाग्रत् हो गई है। पतितों को भी मान की रक्षा करना आता है। इस भावना की कविवर अपने काव्य 'द्वापर' में किसी प्रकार से भी अवहेलना नहीं कर सके हैं।

मुट्ठी भर भी जो न दे सके,
दासी थी मैं आहा!
यज्ञ-भंग हो गया तुम्हारा,
मेरा सब कुछ स्वाहा।

गुप्तजी राष्ट्र-कवि हैं। आपका युग राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत है। जिसे देखो वही भारतीय और देश के रंग में रँगा हुआ है। देश-प्रेम के कारण ही आज संसार-भर में उपद्रव और अशांति का राज्य है। प्रत्येक देश-सेवी देश-प्रेम की आहें भर रहा है। यह लोक का नियम है कि जिस स्थान पर मनुष्य जन्म लेता है और जिस युग में वह इस संसार में आता है, वही उसके लिए सब कुछ है। उसके सम्मुख वह स्वर्ग की भी कामना नहीं करता। उसके लिए वही स्वर्ग है और वही युग सब सुख प्रदान करनेवाला है—

अपने युग को हीन समझना,
आत्म-हीनता होगा;
सजग रहो, इससे दुर्बलता
और दीनता होगी।
जिस युग में हम हुए, वही तो,
अपने लिए बड़ा है;
अहा हमारे आगे कितना
कर्म-क्षेत्र पड़ा है।

और—

हीन हो गया काल कौन-सा?
क्या घन मन्द्र नहीं अब?
सायं-प्रात, रात-दिन ऋतुएँ
या रवि-चन्द्र नहीं अब?
सावधान! युग के अधर्म की
हा युगधर्म न समझें;
कर्म नहीं हम पतित आप यदि
उनका मर्म न समझें।

और—

वह अतीत पुरखों का युग था,
उसका क्या कहना है?
सुनो, किन्तु अपने ही युग में
हम सबको रहना है।
जन्मे हैं हम उसी भूमि पर
उसी वायु-मंडल में,
पर आगे की ओर हमारी
वृद्धि-सिद्धि पल-पल में।

हमारे युग में क्या नहीं है, यदि विचार किया जाय तो प्राचीन युगों से यह हमारा युग सर्वगुणसंपन्न है—

विगत हुआ तो विगतों का युग
अपना तो प्रस्तुत है;

कितना नव्य भव्य तुम देखो
यह अद्भुतता-युत है ।
नये-नये अध्याय खुले हैं
नये पाठ हैं कितने ;
कैसे काट-छाँट के कौशल
और ठाठ हैं कितने ।

वर्त्तमान युग के कर्णधार गांधीजी असहयोग-आंदोलन के पूर्ण प्रयासी हैं, आपके विचार थे कि इस रीति से विना रक्तपात किये हम स्वतंत्रता कर लेंगे और दृढ़ साम्राज्य स्थापित कर लेंगे। परन्तु आपकी यह मनोकामना पूर्ण न हुई और आन्दोलन असफल हो गया। भारतीय जनता स्वतंत्रता के संग्राम में और भी पीछे हो गई अथवा आगे बढ़ी, यह संदेहात्मक प्रश्न है। इसकी ओर से जनता कुछ निराश-सी हो गई है। भारत के प्राण नेहरूजी की यह भावना है कि देश में रक्तपात द्वारा ही स्वतंत्रता और शांति की स्थापना होती है, उसके विना दृढ़ साम्राज्य नहीं बनते। लोक की इस भावना ने कविवर को प्रेषित किया है और ऐसे सुन्दर रूप में आपने उसकी व्यंजना की है।

बनता नहीं ईंट-गारे से
वह साम्राज्य विशाल
सुनो चुने जाते हैं उसमें
रुधिराप्लुत कंकाल ।
लिखो भले उसकी भीतों पर
दया-धर्म के चित्र ;
सदा भुलाते रहें जनों को
जिनके चटुल चरित्र ।

गुप्तजी राष्ट्रनिर्माता कवि हैं। देश के राष्ट्रीय जीवन में आपका बड़ा हाथ है। अब हम कह सकते हैं कि आपकी रचना आपके आत्मानुभूत और आत्मस्वरूप का प्रतिबिंब है जो आपकी तपस्या से उज्ज्वल और निष्ठा से पवित्र हो गई है। वे धन्य हैं और आपकी कविता धन्य है।

कवि की भावुकता का पता उसी समय हो[ता] है, जब यह पता लगायें कि लेखक मानव[-जीवन] के मर्मस्पर्शी स्थलों को पूर्ण रूप से पहचान[ता] है या नहीं ; अपने को मानव-जीवन की [प्रत्येक] अवस्था में डालकर उसने उसी के अनुरूप [चित्रण] किया है कि नहीं। 'द्वापर' की रचना में [गोपियों] का विरह, देवकी और माता यशोदा और नंद का विलाप और गायों का व्याकुल होना [आदि] अधिक मार्मिक स्थल हैं, जिनको कविवर ने [किसी] प्रकार पहचानने का प्रयत्न किया है; परन्तु [सफ]लतापूर्वक पहचान नहीं पाये हैं। मा[ता की] ममता बड़ी बुरी बला है, इसके कारण [मानव]जाति निराश होकर भी आशा के बंधन [में बँधी] रहती है, किन्तु गुप्तजी इस ममता के रह[स्य को] पूर्णरूप से नहीं समझ पाये हैं। गोपियों [की] कलह, उनका विरह-ताप वास्तव में सत्य [और सुन्दर] है। कृष्ण के लिए गोपियों का तड़पना [सच]ही हृदय के मार्मिक तन्तुओं को आन्दोलि[त कर] देनेवाले हैं, परंतु गुप्तजी इसे भी समझने में [अ]प्रमाणित हुए हैं। 'द्वापर' में पहले तो [वात्सल्य] का कहीं पता ही नहीं, यदि कहीं मिल [भी जाय] तो वह नन्द और देवकी के प्रसंग में, सो [भी अल्प] मात्रा में। हाँ। परन्तु स्थान-स्थान पर [अन्य] भावों का गुप्तजी बड़े रोचक और पूर्णरूप से [चित्रण] कर सके हैं। क्रोध की कैसी सुन्दर व्यंजना है !

लोहित नेत्र, फड़कते नथने
विकृत बदन खर-वाणी
नारायण ! मेरे नर में है
कौन नया यह प्राणी
रौद्र नहीं, बीभत्स अशुचि यह,
जाओ अरे नहाओ
यह शरीर अब कहाँ जायगा
शुद्ध शांति तुम पाओ।

और भी साधारण भावों का चित्रण [सफलतापूर्वक] हुआ है।

चित्र उपस्थित करने में गुप्तजी बड़े निपुण प्रतीत होते हैं । अपने पात्रों के चित्र आप ऐसी सुन्दरता से अंकित करते हैं कि वह शाब्दिक चित्र शीघ्र ही पाठकों के हृदय-पटल पर खिंच जाते हैं और उचित रीति से यह अनुमान हो जाता है कि आपके चित्र कैसे हैं और वे किस भाव की व्यंजना कर रहे हैं । यह बात आपके 'द्वापर' ही में नहीं, परंतु अन्य कृतियों में भी विद्यमान है । पंचवटी में शूर्पणखा का कैसा हृदयग्राही चित्र है—

कटि के नीचे चिकुर-जाल में
उलझ रहा था बायाँ हाथ,
खेल रहा हो ज्यों लहरों से
लोल कमल भौंरों के साथ ।
दायाँ हाथ लिये था सुरभित—
चित्र-विचित्र, सुमन - माला
टाँगा धनुष कि कल्पलता पर
मनसिज ने झूला डाला ।

'द्वापर' में बलराम का चित्र और भेष देखिए । बलराम कुञ्ज में हैं और चिंतायुक्त हैं । इसका कविवर ने कैसा प्रभावशाली चित्र अंकित किया है ।

उलटा लेट कुहनियों के बल
धरे वेणु पर ठोड़ी ;
कन्तु (?) कुञ्ज में आज अकेला
चिंता में (?) है थोड़ी ।

श्रीकृष्ण के भेष और वातावरण को अंकित करते हुए कविवर लिखते हैं—

क्या जाने, क्या देख यहाँ पर
यह औत्सुक्य उमड़ता—
मानों अभी किसी झुरमुट से
वह है निकला पड़ता
सखा साथ में वेणु हाथ में
ग्रीवा में वन - माला ;
केकि - किरीट, पीत-पट - भूषित,
रज - रूषित लटवाला ।

वास्तव में 'द्वापर' में कविवर ने अपने दार्शनिक भावनाओं की ही व्याख्या की है । इन सिद्धान्तों का विवेचन ऐसे सुन्दर ढंग से किया है, जो सहज ही में ग्राह्य है । उसके हृदयंगम करने में लेशमात्र भी समय नहीं लगता । कवि कर्मों में विश्वास करता है । आपके मतानुसार कर्मों के अनुसार ही फल की प्राप्ति होती है और उसी के अनुसार अधिकार प्राप्त होते हैं—

कर्मों की खेती है जगती
जैसी जिसने बोई ;
देवों का भी कर्म-नियंता
एक और ही कोई ।
ताप न हो तो अग्निदेव की
फिर क्या रही महत्ता
वे न होत्रियों के हितार्थ भी
छोड़ेंगे निज सत्ता ।

आत्मा और परमात्मा कोई दो वस्तुएँ नहीं हैं, परन्तु एक ही वस्तु के दो पहलू हैं, अथवा मूल में वे एक ही हैं । संसार ने इसमें भेद किया है । कविवर ने कृष्ण को परमात्मा और राधा को आत्मा माना है । ये दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति नहीं, परन्तु एक ही हैं ।

वृन्दावन में नवमधु आया,
मधु में मन्मथ आया
उसमें तन तन में मन मन में
एक मनोरथ आया ।
उसमें आकर्षण, हाँ राधा
आकर्षण में आई ;
राधा में माधव माधव में
राधा मूर्ति समाई ।

और—

रहती है निश्चिन्त कभी तू
उसे निकटतर पाकर ;



किन्तु रहेगी लीन उसी में
अब ध्रुव ध्यान लगाकर।
हुए निकटतम ही तुम मन से
रहो कहीं भी तन से;
तेरा परमात्मीय तुझी में
देख आत्म-दर्शन से।

गुप्तजी सगुणोपासना के पूर्ण प्रयासी हैं। आपने गोपियों द्वारा निर्गुण ब्रह्म की खूब खिल्ली उड़वाई है। गोपियों के उत्तर सजीव और तीव्र हैं—

होगा निर्गुण निराकार वह
छली तुम्हारे लेखे;
हमसे पूछो तुम उसके गुन-
रूप हमारे देखे।
अन्तर्दृष्टि मिले तो हम भी
शून्य देख लें अब के;
पर जब तक हैं कहो क्या करें
चर्म-चक्षु हम सबके।

गोपियाँ कहती हैं—हे उद्धव, तुम ज्ञानी हो और ज्ञानमार्ग के प्रयासी हो। किन्तु ज्ञान प्राप्त करना तो प्रारब्ध की बात है, यह सबके बाँटे में थोड़े आ सकता है—

ज्ञानी हो तुम, किन्तु भाग्य तो,
अपना-अपना होता;
वक्ता भी क्या करे, न पावे
यदि अधिकारी श्रोता?
हम अपने को जान न पाईं
उसको क्या जानेंगी,
मन की बात मानती आईं
मन की ही मानेंगी।

और—

ज्ञानयोग लेकर सुषुप्ति ही,
तुम न सिखाने आये?
जाग्रत् को समाधि-निद्रा का
स्वप्न दिखाने आये!

नाममात्र का ब्रह्म तुम्हारा,
रहे तुम्हें फलदायक;
उद्धव नहीं निरीह हमारा
नटवर-नागर-नायक।

भगवान् सर्वव्यापक हैं। उनकी सत्ता ... के प्रत्येक अवयव में व्याप रही है। मनुष्य ... वह सहज सुलभ हैं। प्रत्येक जन यदि प्रयत्न ... तो भगवान् की अपूर्व झाँकी पा सकता है—

फिर भी यही कहे जाती हूँ
मानो या मत मानो;
नीरस छान्दस, उस कविधन को
जान सको तो जानो।

गोपियाँ दुखी होकर उद्धव से स्पष्ट क... हैं कि भाई हमें तुम्हारा यह नीरस ज्ञा... नहीं चाहिए। हम तो इस विरह के दु... सहने और प्रतीक्षा करने ही में सुखी ... संतुष्ट हैं—

डूबी-सी वह बीच-बीच में
पलक खोलकर आये;
चिल्ला उठती है विलोल-सी
बाल-राधिके राधे!
ज्ञान-योग से हमें हमारा
प्रेम-वियोग भला है;
जिसमें आकृति, प्रकृति रूप गुण,
नाट्य, कवित्व, कला है।

स्त्री-भावना को कवि ने पूर्णरूप से पह... है। भारतीय ललनाएँ कितनी भोली और ... होती हैं, यह देखते ही बनता है। यही ... विशेषता है—

हा! कैसे विश्वास करें हम,
उसकी इन घातों का;
अविश्वास किस भाँति करें
हा! उद्धव की बातों का!



माधव भी सच्चे हैं
सखियाँ उद्धव भी सच्चे हैं;
हाय हमारे आँख-कान ही
झूठे हैं, कच्चे हैं।

गुप्तजी की भाषा के विषय में कुछ भी कहना बड़े साहस का काम है। कहने के लिए कोई स्थान भी तो नहीं। आपके समस्त काव्यों की भाषा प्रचलित खड़ीबोली है; उस खड़ीबोली में ओज, प्रसाद और माधुर्य ठूँस-ठूँसकर भरा है। सरलता और भावव्यंजना-शक्ति आपकी भाषा का जन्मसिद्ध अधिकार है। कहीं भी व्याकरण संबंधी भूलों का अस्तित्व नहीं है। आपकी भाषा शुद्ध, प्रांजल, प्रौढ़ और प्रभावमयी होती है। शिथिलता के लिए स्थान नहीं। इसकी भाषा इतनी परिमार्जित, ललित और भावपूर्ण है कि पढ़ते ही बनता है। जिस समय सांसारिक संकटों से आपका मन ऊब जाय, सारा संसार नीरस दिखाई पड़े, आप पढ़िए और देखिए नई स्फूर्ति आ जायगी, मुरझाया हुआ मुख खिल उठेगा।

किसी लेखक ने लिखा है—"गुप्तजी की कविता की निर्बलता और गुण यह है कि वे अत्यंत आधुनिक समय के कवि नहीं हैं। वे प्राचीनता के उपासक, समर्थक और प्रेमी हैं। इसका प्रमाण अतीत के गान से भरी हुई 'भारत-भारती' है।" आपके हाल ही के प्रकाशित काव्यों में भी यही भावना पुष्ट होती हुई दिखाई देती है। प्राचीनता की प्रियता का सुन्दर प्रमाण देखना हो तो एक और बस एक बार 'द्वापर' और सिद्धराज का अध्ययन कीजिए। मर्यादा की रक्षा का प्रयत्न देखिए—

गुप्तजी बड़े विनयशील, संकोची और सहृदय हैं। आपकी विनयशीलता और संकोच को तो देखिए। आपने अपनी यह कृति 'द्वापर' अपनी पत्नी को ही भेंट की है, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से कहीं भी अपनी लेखनी से यह नहीं लिखा है। केवल संकेत वह भी बड़े लोगों का संकेतमात्र कर दिया है—

लो अबोध अंतःपुरि मेरी,
अमर यही माई का लाल।

आपकी इस विनय में आपकी महत्ता का रहस्य छिपा हुआ है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के आप जीवित प्रतीक हैं। आप पूर्ण आदर्शवादी हैं। अपनी रचनाओं में भी आप अपने इस आदर्शवाद को जीवित रखने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं।

हिन्दी-साहित्य में परम्परा से भक्त कवि स्त्री-निन्दा करते चले आये हैं। महाकवि तुलसी ने कौशल्या और सीता-जैसी साध्वी स्त्री-रत्नों को उत्पन्न करके अंत में नारी-निन्दा दोषी ही ठहरे और जितने भी भक्त कवि हुए लगभग सभी ने नारी-निन्दा की। अतः हम कह सकते हैं कि स्त्री-निन्दा भक्त कवियों के लिए अनिवार्य हो गई थी। परम्परा और प्राचीनता के पुजारी गुप्तजी इस नियम के किस प्रकार से अपवाद हो सकते थे। 'साकेत' में उर्मिला का चित्रण करके आज आपने महाकवि-जैसी श्लाघनीय उपाधि को पाया, यशोधरा का चरित्र-चित्रण करके ख्याति प्राप्त की, वही गुप्तजी 'द्वापर' में स्त्री जाति को पाप की पिटारी बताकर नारी-निन्दा के दोषी ठहरे।

अविश्वास हा! अविश्वास ही,
नारी के प्रति नर का
नर के तो सौ दोष क्षमा हैं,
स्वामी है वह घर का।
उपजा किन्तु अविश्वासी नर
हाय तुझी से नारी
जाया होकर जननी भी है,
तू ही पाप-पिटारी।

कुछ विद्वानों का कथन है कि "'द्वापर' में गुप्तजी महाकवि न होकर केवल कवि ही रह गये हैं। आपका यह काव्य नीरस और संग्रहमात्र ही रह गया है। भाषा भी उत्तम नहीं है।" यह मैं नहीं कह सकता कि इन विद्वानों के यह वाक्य



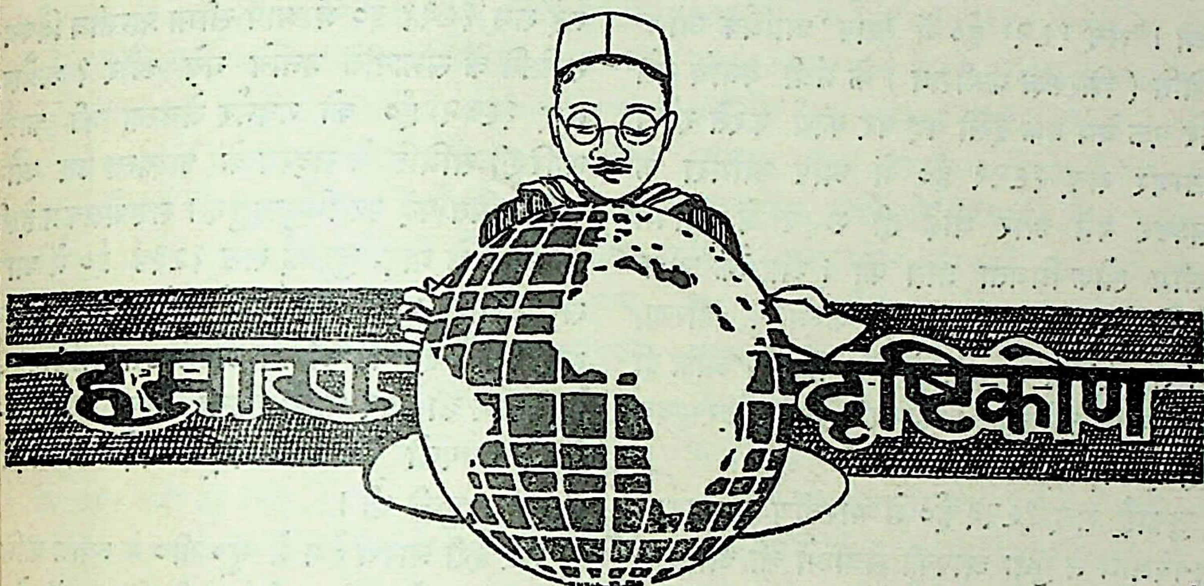
कहाँ तक उचित हैं, किन्तु इतना कह सकता हूँ कि आपकी रचनाओं की आलोचनाओं के लिए अधिक अवकाश की आवश्यकता है। शीघ्रता करने में भय है कि कहीं कवि के जीवन में विषवृक्ष न लग जाय। उन्नति और अवनति जीवन के साथ हैं, परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि कवि कविता करने में असमर्थ हैं। वे अवनति और उन्नति का एक साथ रसास्वादन कर रहे हैं।

उन्नति-अवनति बस यह जीवन के दो अंग।
एक संग गुप्तजी ले रहे दोनों का रस-रंग॥

गुप्तजी हिन्दी-साहित्य के माननीय और प्रतिष्ठित कवि हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं से हिन्दी-भण्डार को भरा है। हिन्दी ... किसी भी भाषा के साहित्य से स्पर्धा ... योग्य हो गई है। 'साकेत' और 'यशोधरा' ... ख्याति दी है, 'द्वापर' ने उसको बढ़ाया ... किसी भी रूप से कम नहीं किया है। ... आशा है कि गुप्तजी कुछ समय के उपरान्त ऐसे रत्नों की सृष्टि करेंगे, जो उन्हें 'साकेत' ... अधिक गौरवान्वित करेंगे।

महाराजनाराय...





"हमारे गवर्नर"

हिज़ एक्सेलेंसी सर हैरी ग्राहम हेग, एम्० ए०, के० सी० एस्० आई०, सी० आई० ई०



संयुक्तप्रान्त के गवर्नर हिज़ एक्सेलेन्सी सर हैरी ग्राहम हेग का जन्म सन् १८८१ ई० की तेरहवीं अप्रैल को हुआ था। आपने अपनी शिक्षा विन्चेस्टर और ऑक्सफ़र्ड के न्यू कॉलेज में पाई। स्कूल और विश्वविद्यालय के प्रतिभाशाली जीवन के बाद आप आई० सी० एस्० की परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए। अक्तूबर सन् १९०५ में आप इंडियन सिविल सरविस में आये और कुछ समय तक मथुरा के असिस्टेन्ट मैजिस्ट्रेट तथा कलक्टर के पद पर रहने के बाद नैनीताल के असिस्टेन्ट कमिश्नर नियुक्त हुए। लगभग तीन वर्षों तक—सन् १९०७ से मार्च सन् १९१० ई० तक—आप आगरा के ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट और कलक्टर रहे। इसके पश्चात् आपकी सेवाएँ भारतीय सरकार के अर्थ-विभाग को दी गईं, जहाँ से लौटने पर जून सन् १९१० ई० में आप संयुक्त-प्रान्त के उप-मन्त्री (अन्डर सेक्रेटरी) बनाये गये और अप्रैल सन् १९१२ ई० तक इसी पद पर रहे। फिर आप ६ महीनों के लिए छुट्टी पर चले गये।

जब आप छुट्टी से लौटे तो भारतीय सरकार ने आपको मध्य भारत के गवर्नर जेनरल के एजेंट के अधीन इंदौर राज्य में कमिश्नर आफ़ म्यूनिसिपेलिटीज़ के पद पर नियुक्त किया। वहाँ आप दो वर्षों से अधिक—दिसम्बर सन् १९१२ ई० से मई सन् १९१५ ई० तक—रहे। सन् १९१५ ई० में महायुद्ध के अन्त तक आपने भारतीय सेना में कार्य किया तथा सीमा प्रान्त की उत्साहपूर्ण सेवाओं में भाग लिया।

अप्रैल सन् १९१९ ई० में सर हैरी हेग संयुक्त प्रान्त में लौटे और बनारस के कलक्टर बने। वहाँ आप १७ दिसम्बर सन् १९१९ ई० तक रहे, जब कि भारतीय सरकार ने आपको फिर बुलाया और अर्थ-विभाग के उप-मन्त्री के पद पर नियुक्त

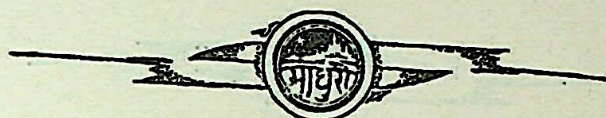


किया। सन् १६२१ ई० में आप आर्थिक जाँच-समिति (फ़िस्कल कमीशन) के मंत्री बनाये गये और एक वर्ष तक इसी पद पर कार्य करते रहे। सितम्बर सन् १६२२ ई० में आप आगरा के कलक्टर बने और थोड़े ही समय में आपने असीम लोक-प्रियता प्राप्त की। आर्थिक जाँच-समिति में प्रशंसाजनक कार्य करने के कारण, जून सन् १६२३ में आपको "कम्पेनियन आफ़ दी आर्डर आफ़ इंडियन एम्पायर" का आदरसूचक चिह्न मिला।

जुलाई सन् १६२३ ई० में भारतीय सरकार के गृह-विभाग ने पुनः आपकी सेवाओं की आवश्यकता समझी। पहले आप गृह-विभाग के विशेष अधिकारी, और बाद में—अक्तूबर सन् १६२४ ई० में—रॉयल अर्थात् ली कमीशन के समझौता-अधिकारी (Liaison officer) बनाये गये। जनवरी सन् १६२५ ई० में आप हिज़ एक्सेलेन्सी गवर्नर जेनरल के निजी मंत्री (Private Secretary) का स्थानापन्न कार्य करने के लिए रक्खे गये और इस विशेष आदर के पद पर आठ महीने तक रहे। लगभग पाँच महीनों के लिए आप पुनः छुट्टी पर गये और लौटने पर, सन् १६२६ ई० में भारतीय सरकार के गृह-विभाग में सचिव के उच्च एवम् उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर नियुक्त हुए। आप कौंसिल आफ़ स्टेट के सरकारी सदस्य थे और अपने नये पद पर सन् १६३० ई० तक रहने के पश्चात् कुछ दिनों के लिए छुट्टी पर चले गये।

सन् १६३० ई० में सर हैरी हेग ने चार महीनों के लिए गवर्नर जेनरल की कार्यकारिणी समिति में गृह-सचिव के स्थान पर कार्य किया और फिर कुछ महीनों के लिए सुधार-विभाग के विशेष अधिकारी बनाये गये। पहली और दूसरी गोल-मेज-सभा में आप प्रतिनिधि के रूप में भेजे गये। मई सन् १६३१ ई० में आप सीमा प्रान्तीय समिति के सभापति बनाये गये और सन् १६३२ ई० को गवर्नर जेनरल की कारिणी समिति के सदस्य के अत्यन्त अभिलषित पद पर नियुक्त हुए। सर मैल्कम के जाने के बाद, जुलाई सन् १६३४ ई० संयुक्त प्रान्त के गवर्नर बनाये गये। सन् १६३४ ई० को आपने अपने उत्तर अधिकार का भार ग्रहण किया। सन् में ही आपको के० सी० एस्० आई० भी मिल चुकी थी।

सर हैरी ग्राहम हेग ने यू० पी० के श्नर मिस्टर जे० डीज़ की सुपुत्री मिस मेडीज़ से विवाह किया। इस समय पुत्र हैं—ज्योफ़री अलेक्जैन्डर हेग, जो ई० में यू० पी० की इंडियन-सिविल आये और अब प्रबन्ध-विभाग (सेट जाने से पहले एटा के कलक्टर के स्थान कर रहे हैं; जॉन हेग, जो सुडान (डिपलोमेटिक सरविस) में हैं; और जो अभी इँगलैंड में स्कूल की शिक्षा लेडी हेग भारतीय महिलाओं एवम् सामाजिक शुभाकांक्षा में बड़ी रुचि उनकी उत्तरोत्तर उन्नति में सहायता आप स्वयं अपने हृदय में महान् उत्साह हैं तथा भारतीय एवम् योरपियन हृदयों में भी उत्साह का प्रसार करती हैं। नैनीताल में "मधुमक्खियों का छत्ता" नाम की एक उन्नतिशील दूकान की है, जहाँ संयुक्त-प्रान्त और भारतवर्ष के व्यवसायों की सामग्रियाँ प्रदर्शन तथा लिए संकलित की गई हैं। सिलाई और को प्रोत्साहन देने के लिए आपने एक संघ (Needlework Guild) की स्था



है, जिसकी शाखाएँ समस्त प्रान्त में फैली हुई हैं और जिसकी दो अर्धवार्षिक प्रदर्शिनियाँ लखनऊ तथा नैनीताल में होती हैं। आप स्वयंसेविकाओं (गर्लगाइड्स) की प्रान्तीय कमिश्नर हैं और इस प्रणाली को संयुक्त प्रान्त में प्रोत्साहन देने के लिए आपने अनेक सेवाएँ की हैं। अतिथि-सत्कार का कार्य तो आप बड़ी ही सुन्दरतापूर्वक करती हैं। भारतवर्ष के प्रत्येक समाज में आपका आदर है—विशेषतः भारतीय महिला-समाज में, जिनके हितार्थ आपके हृदय में प्रगाढ़ सहानुभूति है, आप बड़ी ही प्रिय हैं।

हिज़ एक्सेलेन्सी सर हैरी हेग की भिन्न-भिन्न व्यक्तियों एवं क्षेत्रों के कार्यों की अपार अनुभूति ने आपको इसके पूर्णतः योग्य बनाया है कि आप इस प्रान्त के पाँच करोड़ जीवों के भाग्य-निर्माण का उत्तरदायित्व अपने हाथों में ले सकें। आपका कार्यालय कोई आनन्द-भवन नहीं है; वहाँ कठोर परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है। हिज़ एक्सेलेन्सी सर हैरी हेग की दिनचर्या को देखकर यह बड़ी ही सरलतापूर्वक अनुमान किया जा सकता है कि आप वस्तुतः कितने व्यस्त रहते हैं। प्रातःकाल जलपान से पूर्व आप एक-दो घन्टे अपने कार्यालय की मेज़ पर व्यतीत करते हैं। दस बजे से आप आगन्तुकों से मिलना प्रारम्भ करते हैं। उसके पश्चात् सरकारी सदस्यों, मन्त्रियों एवम् सचिवों जैसे मुख्य अधिकारियों की पेशी होती है। यह क्रम भोजन के समय तक चलता रहता है। जब हिज़ एक्सेलेन्सी और लेडी हेग उन व्यक्तियों का सत्कार करते हैं, जो भोजन के लिए विशेषरूप से निमंत्रित किये गये होते हैं। २३ बजे हिज़ एक्सेलेन्सी पुनः अपने कार्य पर आ जुटते हैं और उन काग़ज़ों पर ध्यान देते हैं, जो आपकी आज्ञा अथवा सूचना के लिए रक्खे रहते हैं। चार या साढ़े चार बजे आप चाय पीने जाते हैं और फिर रात्रि के भोजन के समय तक कार्य करते रहते हैं, जब आमंत्रित अतिथि पुनः आपका साथ देते हैं। भोजन के पश्चात् आप अध्ययन करते हैं या बचे हुए आवश्यक कार्यों को निबटाते हैं। इसके अतिरिक्त, अनेकानेक सरकारी सभाओं, सम्मेलनों तथा सार्वजनिक उत्सवों को भी इसी दैनिक कार्यक्रम में स्थान देना होता है। इसी व्यस्त दिनचर्या में दिन और रातें व्यतीत हो जाती हैं।

हिज़ एक्सेलेन्सी सर हैरी हेग सभी केन्द्रों में लोक-प्रिय हैं। भारतनिवासी आप पर विशेष अनुरक्ति रखते हैं। आपके व्यक्तित्व में एक अद्भुत आकर्षण है; नम्रता एवम् दयालुता तो मानो आपकी शोभाएँ हैं। आपके व्यवहारों की सज्जनता, विचारों की संस्कृति, भावों की आत्मीयता तथा वार्तालाप की मिठास उन सभी व्यक्तियों के हृदय को मोह लेती है, जिन्हें आपके सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त होता है। आप आगन्तुकों के हृदय में एक अद्भुत सारल्य की भावना उत्पन्न कर देते हैं एवम् बड़े ही धैर्य तथा सहानुभूति से उनकी बातें सुनते हैं। अधीनस्थ कर्मचारियों पर आपकी विशेष कृपा-दृष्टि रहती है और सभी को आप अपनी बातों द्वारा उत्साह प्रदान करने के लिए उद्यत रहते हैं। लोगों की गुण-ग्राहकता में आप बड़े ही पटु हैं। आप अपने जीवन के क्षण-प्रतिक्षण में इतनी सतर्कता का उपयोग करते हैं कि छोटी से छोटी घटनाएँ भी आपके निरीक्षण से बच नहीं पातीं। एक सुदृढ़ शासक होते हुए भी आप अपने सहकारियों को सहायता तथा उपदेश देने में कभी नहीं हिचकचाते। किसी व्यक्ति अथवा घटना के प्रति अपनी सम्मति निश्चित करने में आप कभी शीघ्रता नहीं करते; पर एक बार अपनी सम्मति



बना लेने के उपरान्त अपने निश्चय पर सदैव दृढ़ रहते हैं।

निर्धनों और कृषकों के तो मानो हिज़ एक्सेलेन्सी एक प्रगाढ़ मित्र हैं। न मालूम कितने विचारों और वाद-विवादों के पश्चात् आपने ग्राम-सुधार की व्यवस्था प्रारम्भ की। यह कोई मौन-आज्ञा नहीं है, इस व्यवस्था से हिज़ एक्सेलेन्सी को अपार प्रीति है। नगरों से कोसों दूर, भूले-भटके स्थानों में स्थित ग्राम-सुधार केन्द्रों में जा-जाकर आप स्वयं निर्धन ग्रामीणों से हिन्दुस्तानी में वार्तालाप करते हैं और उन्हें प्रत्येक रूप से प्रोत्साहन देते हैं। गाँववालों में सुखद स्पर्धा की भावना उत्पन्न करने के लिए आपने सर हैरी हेग शील्डों की स्थापना में निजी दान द्वारा अपार स्फूर्ति का संचार किया है। भ्रमण करते समय आप कभी निजी सुखों की चिन्ता नहीं करते। आपने बाढ़ से घिरे हुए क्षेत्रों का निरीक्षण किया, रक्षा के अनेकानेक केन्द्रों को प्रोत्साहन दिया, निर्धन दुखियों को अपनी सहानुभूतिपूर्ण बातों से हँसाया, उनकी रक्षा के सम्भव साधनों का प्रबन्ध किया, उनके लिए दानियों से दान लेने की व्यवस्था की, सरकारी कोष से सहायताएँ दीं, तथा स्वयं अपनी निधियाँ खुली रक्खीं।

भूमि के स्वामियों पर हिज़ एक्सेलेन्सी की विशेष अनुरक्ति है। आप उन्हें सदैव यही उपदेश देते रहते हैं कि वे कृषकों की दयनीय दशा को सुधारने एवम् स्वयं अपनी परिस्थिति को दृढ़ बनाने में अपने अधिकारों का सदुपयोग करें।

हिज़ एक्सेलेन्सी सर हैरी हेग एक प्रगतिशील शासक हैं,—प्रान्तीय अधिकारों के कट्टर पक्षपाती, कृषकों एवम् निर्धनों के सच्चे रक्षक तथा भूमि के स्वामियों के सुदृढ़ हितैषी। इन सबसे अधिक, आप एक सच्चे सज्जन हैं जिनके हृदय... भारतवासियों के कल्याण और उत्साह-वर्धन ... भावनाएँ छिपी हुई हैं। ईश्वर करे, आपका छत्र... छत्र अमर रहे। तथास्तु!

× × ×

प्रेमचन्दजी का स्वर्गवास

८ अक्तूबर, ३६ को प्रेमचन्द की मौत ... गई। ८ अक्तूबर, ३६ को प्रेमचन्द बहस-मुबाहसे ... स्नेह और कटु आलोचना से परे हो गये। ... यह हिन्दी के सबसे महान् साहित्यिक का ... है कि तुच्छ और ख़ुदग़रज़ मुबाहसे से परे ... के लिए ६० साल की उम्र में उसे मरना प... जिस उम्र में साहित्यिक, कलमनवीसी से ... उठता है, महात्मा और प्रेरक समझा जाता ... और गोर्की के नाम पर शहर और वायुयान ... हैं। प्रेमचन्द को हिन्दी से साधारण समादर ... न मिल सका। वह अपनी प्रशंसक जनता ... इतना निकट रहे कि उनका व्यक्तित्व सदैव ... बना रहा। पत्रिकाओं में कहानियाँ छपवा... सिनेमा से धन पैदा करते, पुस्तकों की बिक्री ... लिए साधारण प्रयत्न करते ८ अक्तूबर, ३६ ... प्रेमचन्द की मौत हो गई।

यदि प्रेमचन्द का एक तुच्छ प्रशंसक आज ... लिखता है कि ८ अक्तूबर, ३६ को हिन्दी-साहि... की एक शताब्दी पर काल की मुहर लग गई ... वह एक 'अति प्रेमी' के लाञ्छन से कैसे बचेगा ...

प्रेमचन्द हिन्दी की एक शताब्दी थे। भवि... का साहित्य-इतिहास इस युग से प्रेमचन्द ... लेकर बाक़ी इतमीनान से छोड़ देगा।

इसके अनेक कारण हैं।

यह नहीं कि उन्होंने ५० ऐसी कहानियाँ ... कीं, जो विश्व-साहित्य में अपना स्थान ... सकती हैं।

उन्होंने हिन्दी-साहित्य में एक नये जीवन का आह्वान किया। नहीं। उन्होंने साहित्य का असली रूप हिन्दी को दिया, उन्होंने मौलिकता सृजन की, उन्होंने मौलिकता को एक द्रुत सजग वेश दिया, उन्होंने जैनेन्द्र पैदा किया।

प्रेमचन्द की प्रतिभा और जीनियस ख़ुद पैदा-करदाँ थी। वह शेली नहीं था, टैगोर नहीं था। शुरुआत में वह एक लिखने का शौक़ीन था, बीच में एक कठिन संग्राम करता हुआ कलाकार और बाद में एक कैरेक्टर।

वह कैरेक्टर कैसा था ?

ऐसा नहीं, जैसा गांधी या टालस्टाय, जो संसार की सहस्र फन विषमता को एक बिंदु पर आकर मिटा देता है, जो मुख्यतः और वस्तुतः कवि हो जाता है। उसका कैरेक्टर उसकी अनेकता थी।

ऐसी अनेकता, ऐसी Variety की मिसाल विश्व-साहित्य में भी नहीं है। वह मोपासाँ की morbidity से भी ऊँचा उठ गया।

उसके जीवन में एक स्वर सुनाई देता था कि वह समय के पीछे छुट गया, उसके साथी तो Victorian कलाकार थे और मरने के बाद तो वह विक्टोरियन हो ही गया। पर ऐसा विक्टोरियन, जो पूर्ण सहानुभूति में विश्वास रखता था जो हनन करना भी जानता था, जो प्रकार और आकार में भेद कर सकता था, जो अपनी कला



के लिए कच्चा माल लेने बार-बार सीधा जीवन तक जाता था, जो समझता था जो केवल विश्लेषक नहीं था।

हाँ, वह फ्रूड के बाद का साहित्यिक था और सदैव फ्रूड से दूर रहा। Sex एक बड़ी शक्ति है, पर साहित्य से उसका संबंध स्थापित करना कलाकार की इच्छा पर है। अगर उसने अपनी स्वतन्त्र से हम D. H. Lawrence और Mauri de Couron पढ़नेवालों को निराश किया तो व क़सूरवार नहीं है और न हम।

(वी० पी०)

क्षमा-याचना

इस मास में पूजनीया माताजी प्रायः रोगशय्या पर पड़ी रहीं। अन्त को २८ ता को मध्याह्नोपरान्त उनका वैकुण्ठवास हो गया। अतएव इस संख्या में अनेक त्रुटि का होना संभव है। उनके लिए मैं प्रिय पाठकों से क्षमाप्रार्थी हूँ।

—रूपनारायण पाण्डेय



लेख-सूची

पृष्ठ

चित्र-सूची

(रंगीन)



झूलेवाला पुल

[चित्रकार—श्रीयुत बी० एम० मिश्रा]



सम्पादक
रूपनारायण पांडेय
प्रतिनिधि-सम्पादक (सी० पी०)—मातादीन शुक्ल

वर्ष १५, खंड १; संख्या ५, पूर्ण संख्या १७३	मार्गशीर्ष	३१३ तुलसी संवत्, १९९३ वि०

चन्द्र और तारे

पं० शिवदुलारे

(१)

विशद विकाश विकसाता वसुधा में भव्य,
मधुर पियूष सारी सृष्टि को पिलाता है;
गंगा की तरंगों में है करता कलोल मंजु,
कुमुद गणों में नव जीवन जगाता है।
करता प्रमोदित अबोध शिशुओं के हृदै,
घोर श्रमियों का दुख दारुण मिटाता है;
सुखमा अपार सरसाता है सँयोगियों को,
ज्यों-ज्यों तू मयंक व्योम-मंडल में आता है।

(२)

सोहत अमल जल कैधौं हैं कमल मंजु,
कैधौं मानसर में मरालन की माला हैं;
गंगा की तरंगन में बुंद छहरात हैं कि,
पान हेतु चन्द के धरे ये मधु - प्याला हैं।
टूटि बिखर्‌यो है हार प्यारी रजनी को भव्य,
कैधौं ये प्रफुल्लित कदम्बपुष्प आला हैं;
छाये हैं महान सक्ति विद्युत के चूर कैधौं
मोदभरी करतीं विहार सुरबाला हैं।

आधी रात

श्रीकेदारनाथ मिश्र "प्रभात" बी० ए०, विद्यालंकार

(१)

आज मेरी वीन मौन उदास !
टाँग दी तरु-डाल पर, निस्पन्द हैं सब तार,
चुप खड़ी कविता - परी श्रृंगार - साज उतार।
पल्लवों के बीच भर अव्यक्त, मौन पुकार,
घूमता भूले - पथिक - सा श्रान्त - पवन उदार।
बन रहा उच्छ्वास अविरल चाँदनी का हास।
आज मेरी वीन मौन उदास !

(२)

सिन्धु - लहरों में सुलाकर स्वप्न के उन्माद,
बाँध श्यामल - मेघ - अलकों में अनन्त विषाद।
जा रहा विधु किधर ?—है कुछ भी न मेरी याद !
प्रिय ! व्यथा अभिशाप है या अमर आशीर्वाद ?
आँकते नक्षत्र जीवन का मलिन इतिहास।
आज मेरी वीन मौन उदास !

(३)

कुंज - वन में फैल कुमुदों की मदिर - मुसकान,
चूमती लिपटे व्यथा में मृत्तिका के प्राण !
किरण - कुन्तल में गुँथे हैं स्तब्ध उडु के गान,
स्तब्ध कण-कण, स्तब्ध क्षण-क्षण स्तब्ध प्रकृति महान !
वेदना के चित्र-सा अंकित अखिल आकाश।
आज मेरी वीन मौन उदास !

(४)

कौन - सा प्रिय - गीत गाऊँ, कौन - सा प्रिय-राग ?
बन गया जब स्वयं जीवन ही निशीथ-विहाग !
सजल - नयनों में प्रलय प्रतिपल रहा रे जाग,
पूजता एकान्त में मैं यह सुलगती आग !
थक गये आह्वान कर सावन - शिशिर - मधुमास !
आज मेरी वीन मौन उदास !

———

अँगरेज़ी काव्य-साहित्य में भारतवर्ष का स्थान

पांडेय नर्मदेश्वरसहाय
बी० ए०, लॉ फ़ाइनल

संसार के जिस भाषा-साहित्य में शेक्सपियर, वर्ड्स्वर्थ, टेनीसन, शेली, कीट्स और आरनाल्ड - जैसे महाकवि हो चुके हों, किसी भी दृष्टि से देखने पर जो आदर्श एवं सुसम्पन्न समझा जाता हो, वही भाषा - साहित्य भारत-वर्ष - जैसे समृद्धिशाली, सौन्दर्यशाली, गुणवान् एवम् भाग्यशाली स्वर्गतुल्य देश पर मौन रहे, यह क्या कम आश्चर्य की बात है ? महाकवि शेक्सपियर और मिल्टन की स्वर्ण-लेखनी रामायण और महाभारत-जैसे, संसार के सर्वश्रेष्ठ गुणकीर्तन से विमुख रहे, वर्ड्स्वर्थ और शेली-जैसे तेजस्वी कवि रत्नगर्भा भारत वसुन्धरा के स्वर्ग-मनोहर दृश्यों से प्रभावित न हों, एवम् टेनीसन और आर-नाल्ड-जैसे मार्मिक कवि प्राचीन भारत की आदर्श प्रेम-कथाओं को, रोमांचकारी वीरगाथाओं को एवम् प्रभावोत्पादक नारी-चरित्रों को अपने जादू-भरे शब्दों में न अंकित करें, यह भी एक महान् शोचनीय विषय है।

पाश्चात्य साहित्यिकों को भारतीय काव्य, कला-कौशल, इतिहास, दर्शन, वेष-भूषा, रहन-सहन, बोल-चाल आदि के विषय में जो स्वल्प ज्ञान प्राप्त है, उसका श्रेय सर डबल्यू० जोन्स को है, जिन्होंने रामायण और महाभारत की चर्चा कर पाश्चात्य विद्वानों के हृदय में एक अनुराग जगाया, जिससे वे भारतवर्ष के विषय में थोड़ा ज्ञान प्राप्त कर सके हैं।

स्थान-स्थान पर प्रासंगिक उल्लेख के अतिरिक्त अँगरेज़ी कवियों ने भारतवर्ष को एक प्रकार से विस्मृत ही कर दिया है। उनकी इस उदासीनता का मूल-कारण अज्ञेय है। भारत में प्रकृति के दृश्यों की कमी नहीं। काश्मीर, हिमालय की तराई आदि स्थान अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए विश्वप्रसिद्ध हैं। वीर-गाथाओं का अभाव नहीं। आज भी राज-पूताने का कण-कण अतीत के अमर गौरव नाद से झंकृत हो रहा है। इसके अतिरिक्त धार्मिक, दार्शनिक एवम् सभ्यता के दृष्टिकोण से तो भारत अखिल विश्व का पूज्य गुरु है। यद्यपि शेली के 'The Light of Asia' की सफलता श्लाघ्य है, फिर भी अधिकांश अँगरेज़ी के कवि यही समझते हैं कि किसी भारतीय विषय पर क़लम उठाने से वे कीर्तिशाली नहीं हो सकते। पर यह उनका भ्रममात्र है।

ऐसे भारतीय कवि भी कम निकले हैं, जो अँगरेज़ी में भारतवर्ष की श्रेष्ठता, गौरवगाथा, अनुपम प्राकृतिक सुन्दरता आदि का वर्णन कर अँगरेज़ी कवियों के उपर्युक्त भ्रम को दूर करें। यदि आज कविश्रेष्ठ तरुदत्त जीवित रहतीं तो यह अपवाद बहुत अंशों में दूर हो जाता। फिर भी महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, श्रीमती सरोजिनी नायडू (भारत-कोकिला), हरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय आदि विश्रुत विद्वान् जो इस ओर प्रयत्न कर रहे हैं, वह स्तुत्य है।



अब हम अँगरेज़ी के कुछ प्रसिद्ध कवियों की मनोहर कृतियों से उदाहरण लेकर देखेंगे कि समय-समय पर उन लोगों ने भारतवर्ष के विषय में कैसे-कैसे भाव प्रकट किये हैं, या करते आ रहे हैं।

शेक्सपियर—यह केवल भारतवर्ष के लिए ही नहीं, बल्कि समग्र संसार का अभाग्य है कि शेक्सपियर-जैसा महाकवि—सरस्वती का वरपुत्र अपनी अमर लेखनी से भारतवर्ष का गुणानुवाद न करे। शेक्सपियर की लेखनी में कैसी शक्ति थी, उसकी वाणी में कितना ओज था, उसके शब्दों में कितना जादू था एवम् उसकी शैली में कितना आकर्षण था, यह किसी भी अँगरेज़ी भाषा के पाठक से छिपी नहीं है। यदि उसे मालूम हो जाता कि भारतवर्ष की विविध वस्तुमयी रत्नगर्भा वसुन्धरा स्वर्ग से समता करती है तो उसकी कल्पना के अपेक्षाकृत अत्यधिक विकास के लिए एक नवीन सृष्टि मिल जाती। उसके नाटक विश्व-प्रसिद्ध हैं। परन्तु इन नाटकों में केवल दो-चार स्थानों पर उसने Indians की चर्चा की है। सम्भव है उसने यह शब्द America के Red Indians के विषय में लिखा हो। परन्तु जो कुछ हो, निम्नलिखित पंक्तियाँ तो अवश्य ही भारतवर्ष से सम्बन्ध रखती हैं—

Thus Indian like,
Religious in my error, I adore
The sun that looks upon his worshiper
But knows of him no more."

भारतीयों में सूर्यदेव की बड़ी भारी प्रतिष्ठा होती है और इन पंक्तियों में शेक्सपियर एक ऐसे भारतीय के विषय में कल्पना करता है, जो अपने विश्वास में अटल-अचल है। एवम् श्रद्धा-सहित भगवान् भास्कर के चरणों में प्रेमाञ्जलि समर्पित करता है।

मिल्टन—Paradise Lost-जैसे अम[र] के प्रतिभाशाली लेखक एक धर्मोपदेशक म[हा]... भारतवर्ष के विषय में उदासीन ही रहा। उसका हृदय परम पवित्र था, इसलिए भा[र]तीयों को अपने देवताओं की क्रीड़ा-[कौतुक] का वर्णन करते देख मौन नहीं रह सका।

सोभित कर नवनीत लिये !
घुटुरुन चलत रेनु तनु मंडित मुख दधि[...]
चारु कपोल लोल, लोचन गोरोचन तिलक[...]
लट लटकनि मनु, मत्त-मधुप-गन मादक म[...]
कठुला कंठ वज्र केहरि - नख राजत रुचि[...]
धन्य 'सूर' एकौ पल या सुख का सत कल्प[...]

—कह उठा—

They loudest sing
The vices of their duties and their [...]
In fable hymn and song, so person[...]
Their Gods ridiculous, themselves p[...]

भारतीय फ़िग् ट्री ('Fig tree') के [...] मिल्टन का कितना गठा भाव है, यह भी [...]

"........Soon they chose ;
The fig tree, not the kind for fruit [...]
But such as to this day to Indians [...]
In Malabar or Deccan spreads her a[...]
Branching so broad and long that [...]

The bended twigs take root, and d[...]

About the mother tree, a prillard sh[...]
High or arched and echoing walks be[...]

मिल्टन ने अपनी निम्नलिखित पंक्ति[यों में] आगरा और लाहौर की चर्चा कर उन[...] को अमर बना दिया है—

Samarcand by Oxus, Teemur's throne
To Agra and Lahore of Great Moghul

कोमस की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी आक[...]



"Ere the belabbing easter scout
The nice moon on the Indian steep
From her confined loophole peep."

ड्राइडेन—डाइडेन ने अपनी फुटकर रचनाओं में भारतवर्ष की चर्चा नहीं के बराबर की है। उसने एक भारतीय विषय पर—औरंगज़ेब पर एक समूचा ड्रामा ही लिख डाला है। औरंगज़ेब के जीवन का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

"Oh! had he still that character maintained,
Of valour, which in blooming youth he gained,
He promised in his East a glorious race;
Now, sunk from his meridian, sets apace
But as the sun, when he from noon declines
And with abated heat less fiercely shines,
Seems to grow milder as he grows away,
Pleasing himself with the remains of day.
So he who in his youth for glory strove,
Would recompense his age with ease and love."

शाहजहाँ की मृत्यु के बाद राज्य-प्राप्ति के लिए जो भयानक एवं रक्ताक्त संग्राम छिड़ा, ड्राइडेन ने उसका वर्णन इस प्रकार किया है—

"As at a signal the sons straight prepare;
For open for.e and rushed to sudden war;
Meeting like wind broke loose upon the main,
To prove by arms whose fate it was to reign.

अर्थात् युद्ध का संकेत होते ही वायुवेग के सदृश वे अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर युद्ध की रणस्थली में आकर किसका भाग्य प्रबल है, इसका निर्णय करने लगे।

पोप—महात्मा युधिष्ठिर ने स्वर्ग जाने से इन्कार किया, जब तक कि उनके साथ के कुत्ते को भी वहाँ जाने की आज्ञा न मिले। पोप की लाइनें बिलकुल मिलती हैं—

"Things admitted so that equal sky
His faithful dog shall bear him company."

काउपर—काउपर कोई साधारण कवि नहीं था। उसकी प्रतिभा दिव्य थी। उसका स्वाधीनता-प्रेम निराला था। अपनी स्वाभाविक एवं अबाध्य उत्सुकता के वश में होकर वह पूछ रहा है कि इँगलैंड के हाथ अपनी क़िस्मत को बेचकर भारत प्रसन्न है या उदास। देखिए कैसी मार्मिक पंक्तियाँ हैं—

"Is India free? and does she wear her plumed and jewelled turban with peace, or do we grind her still?"

काउपर की तमाम रचनाओं में एक व्यापक सहानुभूति और धार्मिक उमंग की गंध मिलती है। इस सहानुभूति का कुछ भाग भारतवर्ष को भी मिला है। कितने सहानुभूति के शब्दों में पूछता है "क्या भारत स्वतन्त्र है? या हम लोग अब भी उसे पीस ही रहे हैं?" काउपर अपने 'Sofa' में भारतीय वाणिज्य-व्यापार की चर्चा करता है। Charity और Expostulation में भारत पर कम्पनी के अधिकार के प्रति विचार किया है।

वह पाप के त्याग के लिए एवं Jews के प्रति अत्याचार कम करने के लिए इँगलैंड से कहते हुए इँगलैंड को ही भारतीय कुशासन के लिए दोषी ठहराता है।

"Hast thou, though sucked at fair freedom's breast
Exported slavery to the conquered East"

"स्वतन्त्रता का स्तन-पान करनेवाले, तुम्हीं ने पूर्व को दासता की बेड़ी पहनाई है।"

मूर (Moore)—भारत के अपूर्व सौंदर्य, दिव्य प्राकृतिक छटा का प्रभाव किसी अँगरेज़ी कवि पर नहीं पड़ा, यह बड़े आश्चर्य की बात है। जो हो, भारतीय सौंदर्य के जादू से 'मूर'

मुक्त नहीं हो सका। उसने भारत की पवित्र धूलि पर पैर तक नहीं रक्खा, परन्तु फिर भी देखिए, काश्मीर का कैसा सुन्दर वर्णन करता है—

Who has not heard of the vale of Cashmere,
With its roses the brightest, that earth ever gave
Its temples and grottos and fountains as clear
As the love-lighted eyes, that hang over the wave!

कैसा सजीव वर्णन है। जान पड़ता है कोई भारतीय ही कह रहा हो। मालूम पड़ता है, इन अमर पंक्तियों का लेखक मूर काश्मीर की फुलवारी में बैठकर कविता कर रहा है।

बाइरन (Lord Byron)—बाइरन को दक्षिण-भारत से बड़ा प्रेम था और उसने इसके विषय में काफ़ी लिखा है। परन्तु दुःख है कि बम्बई के सिन्धु तट पर पैर रखनेवाले को भारत के सौंदर्य - मुकुट हिमालय के पवित्र दर्शन का संयोग न मिले। फिर भी उसने भारत के प्रति भविष्यवाणी कर ही डाली!

"Look to the East, where Ganges' swar thy race,
Shall shake yon tyrant empire to the base,
Lo! there rebellion rears her ghastly head,
And glares the nemesis of native dead,
Till Indus rolls a deep purpureal flood,
And claims his long arrear of Mother's blood."

सन् १८५७ के ग़दर में इस उक्ति की ज्वलन्त सत्यता ने अपना रक्ताक्त ताण्डव शुरू ही किया था कि बीच ही में रुक गई। आज समय ने पलटा खाया है। ब्रिटिश सरकार आज बहुत समृद्धिशाली एवं सम्पन्न है; क्योंकि आज उसे सहस्रों भारतीय राजभक्तों की सहायता प्राप्त है।

कैम्पबेल (Campbell)—The Measures of Hope कैम्पबेल की अत्यन्त प्रसिद्ध शैशव रचना है। वह जब २१ साल का था, तभी रचना की गई थी। इस सुन्दर कविता के [illegible] उसका नाम आज भी अमर है। इस [illegible] में उसने तैमूरलंग की चढ़ाई से लेकर [illegible] के आगमन-काल तक का भारतवर्ष का [illegible] सरल शब्दों में लिखा है—

"How long yon tribes have trembled [illegible]
How long was Teemur's sceptre [illegible]

उसने हिन्दू विश्वास का अच्छा [illegible] किया है।

"Brahma's children perished for his [illegible]
The martyr smiled beneath avenging [illegible]
And braved the tyrant in his torturing [illegible]

तब योरप आया, जिसने सिखलाया—

Taught her proud talks the winding [illegible] to [illegible]
And braved the stormy spirit of the [illegible]
Children of Brahma, thus was mercy [illegible]
To wash the stain of blood's eternal [illegible]
Did peace descend to triumph or to [illegible]
When free-born Britons crossed the Indian [illegible]

लेकिन वह कहता है, नहीं—

"Rich in the gems of India gnady [illegible]
And plunder piled from kingdom's [illegible] their [illegible]
Degenerate trade! they minions [illegible] desp[illegible]
And barter with them gold eternal [illegible]

परन्तु यह योरप था, इँगलैंड नहीं, [illegible] में व्यापार करने आया था और यदि वह [illegible] था तो Campbell का इँगलैंड। [illegible] तक ब्रिटिश सरकार भारतीयों की रक्षा कर रही है।

अब Campbell (कैम्पबेल) की [illegible]

वाणी सुनिए। यह भविष्यवाणी हिन्दू दन्त-कथाओं पर आश्रित है। Campbell का विश्वास था—जैसा कि कविता में प्रकट है कि ब्रह्मा नव बार पृथ्वीमण्डल पर अवतरित हो चुके हैं, विविध रूपों में और दसवीं बार वे पुनः प्रकट होंगे एक योद्धा के रूप में—

"To pour redress on India's infused realm,
The oppressor to dethrone, the proud to' whelm,
To chase destruction from her plundered sphere,
With art and arms that triumphed once before."

और उस समय Heaven की आज्ञा से—

"Shall Saraswati wave her hallowed wand,
And 'Kamdeo's bright and Ganesha' sublime,
Shall bless with joy their own propitious clime."

और तब होगी—

"Love, mercy, wisdom, rule for ever more."

प्राचीन भारत में प्रचलित सती-दाह की कुप्रथा की ओर बहुत-से प्राचीन अँगरेजी कवियों का ध्यान गया है। निम्नलिखित पंक्तियों में Campbell ने इस कुप्रथा के विषय में चर्चा की है—

"The widowed Indian, when lord expires
Mounts the dead pile and braves the funeral pyres."

कीट्स (Keats)—Keats की Endymion में फिग वृक्ष (Fig Tree) का वर्णन आया है—

"O there to whom,
Broad leaved fig trees even now......
Their ripened......
The fig tree was India's own."

कीटस ने एक जगह पर अलेकजेंडर (Alexander) के आक्रमण के विषय में उल्लेख किया है—

"What care through striding Alexander past,
The Indus with his Macedonian members ?"

Endymion अपने विस्मृत प्रेम के लिए विलाप कर रहा है और कहता है कि संसार में जो मित्रहीन हो गया, उसको गंगा और गंगातट-आसीन हरीतिमा - मण्डित विस्तृत क्षेत्र आदि क्या सान्त्वना दे सकते हैं; परन्तु शीघ्र ही उसे शान्ति मिलती है—

"Beneath icy palm trees by the river side
I sat aweeping."

× × ×

"The kings of India their jewels sceptres vail
And from their treasures scatter pearl hail."

ऐसा वैभवशाली एक समय भारत था; परन्तु आज अवनति के गर्त में उसे पतित देखकर

"Great Brahma from his mystic heaven groans,
And all his priesthood moans."

मिस लैटिशिया (Miss Letitia G. Loudon) एक तरुणी सुकुमार कवयित्री थी। इसकी मृत्यु सन् १८३८ में हो गई। इसकी काव्य-कला के प्रतिभा से सारा योरप क्षुब्ध हो गया था। उसके विचार अत्यन्त उदार थे एवम् उसका भावुक हृदय अन्यन्त पवित्र था। उसने हरद्वार में लगनेवाले प्रसिद्ध ऐतिहासिक कुम्भ मेले का, यमुना के उद्गम का एवम् जगन्नाथपुरी का विशद वर्णन किया है।

जगन्नाथपुरी में होनेवाली रथयात्रा का वर्णन, २००० या ३००० यात्रियों का आगमन, भीमाकार चक्रों के नीचे यात्रियों के कुचल जाने की उन्मत्त आकांक्षा आदि—

"Vast is the gathering—while the priests declare,
The seven-headed God is passing there,
On roll his chariot wheel, while every roll,
From prostrate bodies crushes forth a soul,
Rejoicing such last agony to bear,
Such are thy creed, O man! when thou art given
To thy own fearful nature false and stern!"

हरद्वार के मेले का वर्णन—

"Whoever wish see aright,
A medley of all strange delight
A chaos of all living shapes
Men, camels, elephants and apes
Men of all climates and all creeds.

× × ×

Thousands and thousands there are met
The throng is wild, the din is loud

× × ×

Rush to stream with speechless glee.
It is the mart from where gather merchants of all places.

× × ×

Idols of ivory and gold
And bales of shawls worth untold."

अपनी राजकुमारी 'The Raja's Daughter' नाम की कविता में उसने खूब सफलता पाई है। उसकी नायिका (Heroine) अपने देश के गौरव का स्वप्न देखती है, उस समय, जब इँगलैंड-जैसे देश केवल जंगल थे।

"While England yet was forest,
Sat on their ivory thrones,
Their golden sceptres wielding
Over myriad-peopled zones."

टेनीसन का लखनऊ का Heroic defence of Lucknow for 87 days वर्ली कविता है। स्थानाभाव के कारण कुछ नहीं लिख रहा हूँ। अवसर मिलने पर इ के लिखने की चेष्टा करूँगा कि २०वीं योरपीय कवियों का भारत के प्रति क्या है और यहाँ के साहित्य और समाज से कविता कितनी ओतप्रोत है।

अवकाश मिलने पर आधुनिक अँगरेजी में भी भारतवर्ष का स्थान ढूँढ निकाल प्रयत्न करूँगा।



मनोरंजन और हमारा जीवन

श्रीबरसिंहराम शुक्ल

मनोरंजन शब्द दो शब्दों के संयोग से बना है। प्रथम मन दूसरा रंजन। मन का जिससे रंजन हो—वही मनोरंजन है। मनोरंजन हमारे शारीरिक और मानसिक दोनों विकासों के लिए आवश्यक है। जहाँ स्वाध्याय, चिन्तन एवम् मनन आदि कार्यों से मानसिक शक्तियों का विकास होता है तथा व्यायाम एवं खेल आदि से शारीरिक वृद्धि में सहायता मिलती है, वहीं मनोरंजन से दोनों को समान रूप से लाभ पहुँचता है। मनोरंजन से ही हमारी मानसिक थकन दूर हो सकती है और शरीर में एक नई स्फूर्ति आ सकती है।

मनोरंजन से जहाँ व्यक्ति - विशेष का मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है, वहीं सामूहिक रूप से समूचे समाज की स्वास्थ्य - वृद्धि में भी इससे आश्चर्यजनक सहायता मिलती है। नागरिक जीवन में मनोरंजन का विशेष महत्त्व है—मनोरंजन से समाज में एकता की नींव सुदृढ़ होती है—राष्ट्र कल्याण मार्ग की ओर अग्रसर होता है—केवल राष्ट्र-विशेष में ही नहीं, वरन् निखिल मानव-समाज में भी यदि किसी दिन एकता का व्यापक प्रचार हुआ तो यह निश्चय समझिए कि उसका आधार 'मनोरंजन' ही होगा। राजनीति, धर्मनीति या समाजनीति नहीं—इसका उदाहरण आपके समक्ष वर्तमान है—खेल के मैदान में गोरी और श्वेत जातियाँ समान रूप से मिलती हैं, शासक और शासित जाति के सदस्य समानता के पद से प्रतियोगिता करते हुए पाये जाते हैं—जो काली जातियाँ श्वेत जातिवालों के होटलों, स्नानागारों तथा निवास-गृहों के फाटक के भीतर नहीं घुसने पातीं, वे ही मनोरंजन के क्षेत्र में उनसे आगे बढ़कर स्थान ग्रहण करती हुई देखी जाती हैं—बड़े-बड़े राजनीतिक नेता, अधिकारी तथा धनीमानी व्यक्ति उनका स्वागत करने में अपना सौभाग्य समझते हैं—आप निश्चय समझिए कि मानव-समाज में परस्पर प्रेम के प्रसार में मनोरंजन का बहुत बड़ा स्थान है।

'मनुष्य' 'मनोरंजन' और 'मन' शब्दों में परस्पर पर्याप्त समानता है—एक दूसरे से अटूट सम्बन्ध है—मनोरंजनहीन मनुष्य की तुलना न तो 'पशु' से दी जा सकती है और न 'जड़' से। कारण; 'पशु' और 'जड़' भी मनोरंजनहीन नहीं होते।

मनोरंजन के बारे में पशु हमसे किसी-किसी बात में बहुत आगे हैं। पाठकों ने दो कुत्तों को आपस में 'कटौअल' का खेल करते हुए देखा होगा—एक दूसरे की छाती पर चढ़ बैठता है; एक दूसरे का पीछा करता हुआ—पर्याप्त दूरी तक अपने साथी को रगेद ले जाता है—एक दूसरे को काटने का अभिनय करता है—एक दूसरे पर गुर्राता है—उनके इस खेल को देखकर सचमुच बड़ा आनन्द होता है। छोटे-छोटे बछड़े मकलाते हुए कितने मोहक प्रतीत होते हैं—इसे वे ही समझ सकते हैं, जिनके यहाँ गउएँ हैं। पशुओं में सबसे मूर्ख बैल समझा जाता है। परन्तु जब कभी अपने मालिक की असावधानता से उसे रस्सी से छुड़ा-



कर निकल भागने का संयोग मिल जाता है, उस समय यह पता लगता है कि मनोरंजन के लिए उसके हृदय में कितना दर्द होता था। वह अपने स्थूल शरीर में भी कितनी ऊँची कुलाँचें भरता है, कितना उछलता-कूदता है—कितनी दौड़ करता है—किस तरह सींगों से मिट्टी उछालता है—इसे देखते ही बनता है। क्या यह उसका मनोरंजन नहीं है?

सर्प एक हानिकर एवं भयंकर पशु माना गया है; परन्तु सर्प तो और भी मनोरंजनप्रिय होता है। सर्प को 'काल' भी कहा जाता है। अतः काल से खेलने का किसे साहस हो सकता है। लोग उसे देखते ही भाग खड़े होते हैं अथवा नहीं तो उसे देखते ही उसकी अन्त्येष्टि के लिए तत्पर हो जाते हैं। परन्तु वे नन्हें शिशु, जिन्हें 'काल' और 'अकाल' का ज्ञान नहीं, जिन्हें संसार के माया-मोह ने अपना शिकार नहीं बनाया, जो सुख-दुःख और शोक से अनभिज्ञ हैं, वे सर्प को क्या समझते हैं! खिलौने की वस्तु और वह कालरूपी सर्प भी उनके लिए मिट्टी के खिलौने से बढ़कर हो जाता है—वह उनसे खेलने लगता है—घंटों उनसे खेलता रहता है। सर्प और बच्चों का खेल देखकर बड़े-बड़े हट्टे-कट्टे व्यक्तियों का दिल दहल जाता है—परन्तु वे दोनों खिलाड़ी एक दूसरे को हानि नहीं पहुँचाते—तमाशबीन और दर्शक अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं और सोचते हैं कि किस तरह बच्चे की प्राण-रक्षा की जाय। परन्तु वह 'काल' स्वयम् ही बच्चे का रक्षक हो जाता है—और जब खेलते-खेलते उनका मन भर जाता है—वह धीरे से खिसककर अपना रास्ता ले लेता है।

एक कहावत है कि एक जंगल में दो शेर नहीं रह सकते। पर जंगल की बात कौन चलावे, एक पींजड़े में, एक कटघरे में केवल दो ही नहीं, वरन् कभी-कभी उनसे भी अधिक शेर एक साथ रहते हुए पाये गये हैं। वहाँ रहते हुए वे कभी आपस में नहीं लड़ते। मनुष्य के मनोरंजन-प्रेम की भावना ने उन ख़ूँख़्वार और हिंसक पशुओं को एक साथ रहने एवं सहयोग के साथ जीवन व्यतीत करने की कला सिखा दी है।

पशु ही नहीं, वरन् 'जड़' भी मनोरंजन-प्रेमी होते हैं। यदि आप किसी पठार का पर्यटन करें तो देखेंगे कि बड़े-बड़े भूधर शिलाओं के रूप में अपनी प्रसन्नता को छिपाये हुए निश्चल, अविचल एवं अविराम गति से मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे हैं। परन्तु उनकी हँसी की मुद्रा छिछले व्यक्तियों का ठहाका अथवा कर्णकुहरों को फाड़ देनेवाला स्वरूप नहीं धारण करती। वे तो समय की गति पर मन्द गति से हँसने के आदी हैं। जैसे-जैसे समय की गति में चढ़ाव वा उतार होता है, वैसे-वैसे उनकी मुद्रा में भी परिवर्तन होता रहता है।

वनस्पतियों एवं वृक्षों के मनोरंजन का क्या पूछना। वहाँ तो और भी मनोरंजन का साम्राज्य रहता है—उनकी चुरचुराहट उनकी मुस्कुराहट क्या है—उनके किसलयों की सुरसुराहट क्या है? उनकी हँसी ही तो है। जब मन्द पवन उनकी कोमल पत्तियों में गति भरता है और उनसे अलौकिक सुरीला राग उत्पन्न करता है, तो उस समय सारी वनस्थली संगीतमय हो उठती है। उस संगीत में कितनी मादकता होती है—कितना मस्तानापन होता है—इसे वे ही समझ सकते हैं जो कभी जंगलों में घूम चुके हैं। नगरों और जनपदों के अशान्तिमय वातावरण से जिनका मस्तिष्क विकारमय हो गया हो, उन्हें इन प्राकृतिक पदार्थों द्वारा उत्पन्न हुए मनोरंजन से अमित शान्ति एवं एक अपूर्व आनन्द मिल सकता है।

आप किसी पर्वतमाला के मध्य में खड़े होकर कोई शब्द करें—शीघ्र ही आपके चारों ओर में प्रतिध्वनि गूँज उठेगी। यह प्रतिध्वनि क्या है? पर्वतों की हँसी। यही उनका स्वाभाविक मनोरंजन है।

रात्रि की निस्तब्धता में तारकावलियाँ



लुका-छिपी का खेल तो आपने अवश्य ही देखा होगा। तारागणों का वह कितना मनोहर मनोरंजन है। शैशव-काल में शिशुओं द्वारा खेले गये लुकाछिपी के खेल से इन तारकावलियों के खेल की तुलना तो कीजिए—कितनी समता है। ये नक्षत्र एक के बाद प्रकटते और छिपते हुए—भोले-भाले शिशुओं-जैसे दीख पड़ते हैं। हमारा 'भाग्य' भी आकाश के ही समान है। इन्हीं नक्षत्रों के प्रकट होने और छिपने की गति के आधार पर ज्योतिषीगण हमारे भाग्यरूपी आकाश का भी मानचित्र तैयार करते हैं। हमारे भाग्यरूपी आकाश में भी दो प्रमुख नक्षत्र हैं—इनका नाम है सुख और दुःख। ये भी बड़े मनोरंजनार्थी होते हैं। कभी-कभी ये आपस में द्वन्द्व युद्ध करते हैं, कभी साथ-साथ दौड़ते हैं, कभी आगे-पीछे हो जाते हैं और कभी एक दूसरे को बहुत पीछे छोड़ देते हैं।

सच समझिए—यदि हम सुख और दुःखरूपी नक्षत्रों की लुकाछिपी को भी मनोरंजन समझें तो हमारे जीवन में एक अपूर्व परिवर्तन हो जाय। जिस दिन हम इनकी गति को मनोरंजन की दृष्टि से देखने लगेंगे, उसी दिन हमारा सारा जीवन हमें मनोरंजनमय दीखने लगेगा। दुःख भी मनोरंजन हो जायगा और सुख भी।

निर्मल रात्रि में क्या कभी आपने आकाश-गंगा अथवा 'दूधिया मार्ग' देखा है—वह शून्य आकाश का मनोरंजन है—वह शून्य आकाश का हास-विलास का रूपक है—आकाश के उस मनोरंजन का क्या कोई ओर-छोर है! वह अटूट है, अपरिमित है और है अव्यक्त।

जिस प्रकार कुछ व्यक्ति सोते हुए भी मार्ग चल सकते हैं, ठीक उसी प्रकार मनोरंजनरहित व्यक्तियों का जीवन समझना चाहिए। जितनी अवधि तक आप मनोरंजनमय रहते हैं—उतनी ही अवधि तक यदि सच पूछा जाय तो आप जागते रहते हैं, अन्यथा आपका जीवन ठीक उसी व्यक्ति के समान है, जो ऊँघते-ऊँघते चलते रहने का प्रयास करता है। मनोरंजनरहित व्यक्तियों का जीवन साररहित होता है।

गंभीरता, ध्यान की एकाग्रता, सत्साहस, परिश्रमशीलता आदि गुणों के साथ यदि मनोरंजन का सहयोग न हो तो मनुष्य उनसे कभी रचनात्मक लाभ नहीं उठा सकता। आप ही बताइए, यदि आप दिन-रात गंभीर बने बैठे रहें तो आपको अपना जीवन कैसा लगेगा—क्या आपको अपना जीवन भार न हो जायगा! चित्त की एकाग्रता मनोरंजन ही द्वारा हो सकती है। मृदंग एवम् सारंगी के बजानेवाले, गुड्डी उड़ानेवाले, चित्त को एकाग्र करने में अधिक सफल रहते हैं, बनिस्बत उन पुजारियों के, जो बिना किसी मनोरंजनमय आधार के ही ध्यानावस्थित होने का स्वाँग करते हैं। इसी लिए हमारे धर्मशास्त्रों में बड़े-बड़े सुन्दर तथा संगीत-गुण-प्रधान छन्दों के गायन के साथ भगवान् के ध्यान करने की विधि बताई गई है, घड़ी-घंटों की ध्वनि के बीच भगवान् की पूजा का प्रकार बताया है। कोई भी वस्तु यदि नीरस हो तो ठीक नहीं जँचती, ठीक यही दशा इस जीवन की भी है, और मनोरंजन ही उसका रस है।

कुछ व्यक्तियों का विश्वास है कि स्वास्थ्य का मूल्य किसी भी वस्तु से बढ़कर है। परन्तु यदि सुस्वस्थ होना ही सर्वोपरि गुण है तो हमसे अच्छा तो एक वृषभ है। परन्तु नहीं, वह तो मनोरंजनहीन है। वह भी उसी समय अच्छा जँचता है, जब कि स्वतन्त्र होकर वह उछल-कूद मचाता है। उस समय उसके शरीर में एक अपूर्व सौन्दर्य चमक उठता है।

क्रोधी कौन होता है? जो मनोरंजनरहित है। बलिष्ठ से बलिष्ठ मनुष्य भी यदि क्रोधी स्वभाव का हो तो उसका मुख सौन्दर्यहीन एवं काला दीख पड़ता है, इसकी परीक्षा पाठक चाहे जब कर सकते हैं। जब किसी का स्वास्थ्य गिर जाता है और



अन्य सभी ओषधियाँ व्यर्थ प्रमाणित हो जाती हैं, तब उसके मनोरंजन के लिए वायु - परिवर्तन का ही नुसख़ा लागू किया जाता है।

यह तो स्वास्थ्य की बात हुई। अब स्वास्थ्य के उपरान्त धन की बात कही जाती है। क्या उन व्यक्तियों का जीवन, जो मनोरंजन से शून्य हैं, कभी सुख से कटता है ? वे दिन-रात मरे-से दीख पड़ते हैं। सेठजी अलग कछुए की भाँति पड़े रहते हैं और सेठानीजी अलग भैंस की तरह पागुर किया करती हैं। उनका जीवन बड़ा ही दुःखपूर्ण कटता है। वे आनन्दमय जीवन के लिए सदा छटपटाते रहते हैं।

मनुष्य विपत्तियों से बहुत घबराता है, परन्तु इन विपत्तियों के भीतर यदि हम, जैसा कि ऊपर कह आये हैं, सुख-दुःखरूपी नक्षत्रों का आपस में मनोरंजन करना समझ लें तो अपने जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन कर सकते हैं। यदि हम अपनी विपत्तियों के साथ खेलना आरम्भ कर दें तो एक न एक दिन उन्हें अवश्य पराजित करने के योग्य हो जायँगे।

जीवन का सबसे बड़ा प्रश्न 'प्रेम' है। प्रेम हमारे जीवनरूपी यन्त्र की वाष्पशक्ति है। इसी शक्ति से हमारी जीवन-तन्त्री प्रतिचालित होती रहती है। परन्तु यदि यह प्रेम भी मनोरंजनमय नहीं हुआ, तो वह अमृतमय न होकर विषमय ो जाता है। यही कारण है कि सहस्रों विवाहितों का जीवन दुःखमय बीतता है। उनके जीवन का दुःखमय होने का एकमात्र कारण उनमें मनोरंजन का अभाव है।

दम्पति अपने सम्बन्ध को बहुत गंभीर रूप दे देते हैं। एक शास्त्रों के बताये हुए मार्ग पर चलकर सीता के समान पतिव्रता बनने में लग जाती है तो दूसरा स्मृतियों द्वारा बताये हुए नियमों के अनुसार अपने को उस अभागिनी का मालिक समझ लेता है, फलतः प्रेम का स्थान भय ग्रहण कर लेता है। एक दूसरे को प्रेम से न चाहकर भय से चाहने लगते हैं। यदि दम्पति एक-दू... से मनोरंजनमय व्यवहार रक्खें, तो हर गृह... का घर स्वर्ग बन जाय। सैकड़ों पुरुष, जो पर... गामी हो जाते हैं, पाप के गर्त में न गिरें; सैकड़ों स्त्रियाँ जो स्वपति-सुख से वंचित हो... नरक की यातना भोगती रहती हैं, सुख से ... बिताने लग जायँ।

पुरुष वेश्यागामी क्यों हो जाता है, ... कि उसे वेश्या के यहाँ 'स्त्री-सुख' के साथ-... मनोरंजन भी मिल जाता है, जो कि अपने घ... उसे सुलभ नहीं। पुरुष के इस मनोरंजन-... हमारे समाज की सहस्रों अबलाओं का ... भार बना दिया है, फिर भी हमारा दुर्भाग्य ... देखिए कि हम मनोरंजन को घृणा की दृ... देखते चले जा रहे हैं।

मनोरंजन में जो अपूर्व शक्ति होती है, ... तुलना में अन्य शक्तियाँ बहुत पीछे रह जाती... वह शक्ति अन्धी नहीं होती—उस शक्ति को ... बैलगाड़ी खींचने में नहीं लगा सकते, उस... से तो चुम्बक पत्थर की तरह लोहे को ... जा सकता है। मनोरंजन के आकर्षण के ... अन्य सारी शक्तियाँ झख मारती हैं। कृष्ण की मु... की ही यह शक्ति थी कि ग्वालबालों ने गो... धारण कर लिया। अहेरी के बीन बाजे की ... को तो देखिए, मृग को मृत्यु की ओर खींच ... है; बड़े-बड़े विषधर सर्प मदमस्त हो शिथिल ... जाते हैं। क्या किसी पशुबल के आधार प... मृग और विषधर फँसाये जा सकते हैं।

आप कोई भी कार्य करें, परन्तु यदि उ... भीतर मनोरंजन का समावेश नहीं है, तो ... कदापि पूर्ण रूप से आपके लिए ... नहीं हो सकता—हाँ, यदि आप उसे थोड़ा ... मनोरंजनमय बना लें तो उसमें एक स्वाभावि... सुन्दरता आ जायगी और आप उसे ... एवम् स्वल्प परिश्रम से ही पूरा कर लेंगे।

मनोरंजन कई प्रकार के होते हैं। जिस ...

वा समाज की जैसी सत् या असत् भावना हुई, वैसा ही उनका मनोरंजन भी होता है। असभ्य जातियाँ पर्वों पर देवी-देवताओं का पूजन करते समय नरबलि देती हैं। जिस समय बलि होनेवाला अभागा मनुष्य मृत्यु के गाल में जाता हुआ शस्त्र-प्रहार की पीड़ा से चीखता-चिल्लाता है, उस समय नरबलि देनेवाले मदोन्मत्त होकर नृत्य करने लगते हैं। प्राचीन समय में ग्रीक और रोमन जातियाँ। भूखे सिंहों तथा हिंसक पशुओं के सामने मनुष्य गुलामों को छोड़ देते थे, और जिस समय अभागा प्राणी, उस खूँख्वार पशु द्वारा टुकड़े-टुकड़े किया जाता था, उस समय वे प्रसन्नता के मारे नाच उठते थे। हमारे देश में भी पशुओं को आपस में लड़वाया जाता है। जिस समय दो बैल, दो साँड़, दो मुर्गे, दो कुत्ते, दो बकरे, दो भैंसे, दो गायें आपस में लड़ने लगती हैं, उस समय उस मार्ग से आनेवालों की भीड़-सी लग जाती है। परन्तु ये और इस प्रकार के अन्य मनोरंजन वर्वर श्रेणी के मनोरंजन हैं। आज की सभ्यता के युग में भी वर्वर श्रेणी के मनोरंजनों की कमी नहीं है, गुब्बारों द्वारा ऊँचे आकाश में उड़कर फिर नीचे कूदना क्या वर्वर श्रेणी का मनोरंजन नहीं है! अब तक इस प्रकार की कुदान में सैकड़ों व्यक्ति प्राण दे चुके हैं। इनके अतिरिक्त 'आखेट' को भी वर्वर श्रेणी का ही मनोरंजन समझना चाहिए। कम से कम उस आखेट को तो अवश्य ही वर्वर श्रेणी के मनोरंजन की संज्ञा देनी चाहिए, जिसमें हत्यारा शिकारी निरपराध हरिणों, नीलगायों, पक्षियों तथा अन्य भीरु वन-पशुओं को छिपकर टट्टी की ओट से मारता है। इससे बढ़कर वर्वरपन और क्या हो सकता है कि एक हरिणी अपने नन्हें-से शिशु को साथ लेकर हरी-हरी दूब चर रही है और बच्चा अपनी मा के साथ खेल रहा है, उस समय स्वार्थी मनुष्य उनका 'शिकार' करता है। परन्तु मनुष्य का स्वभाव भी एक अजीब वस्तु है। जब मनुष्य किसी वस्तु के प्रेम में (यहाँ मनोरंजन के प्रेम से अर्थ है) फँस जाता है तो उस वस्तु की प्राप्ति के लिए वह बड़े से बड़े अनर्थ करने में भी नहीं हिचकता। सुप्रसिद्ध अत्याचारी सम्राट् नीरो को रोम को जलते हुए देखने की अभिलाषा थी। सुनते हैं, उसने अपने मनोविनोद के लिए ही सारे रोम-नगर में आग लगा दी थी। यह तो हुई वर्वरता-पूर्ण मनोरंजन की गाथा। सच पूछिए तो हमें वर्वरता-पूर्ण मनोरंजनों का बहिष्कार ही करना चाहिए; क्योंकि मनुष्यतापूर्ण मनोरंजनों का संसार में अभाव नहीं है।

संगीत, नाटक, नृत्य, पर्यटन, वाद्य, व्यायाम, खेल, संभाषण, शास्त्रार्थ, तर्कवितर्क, आखेट, दौड़ आदि शतशः प्रकार के मनोरंजन हैं, जिनसे हम अपना एवम् समाज का जी बहला सकते हैं। ऐसे मनोरंजनों की भी दो श्रेणी हैं—एक श्लील एवम् दूसरे अश्लील। कुरुचि उत्पन्न करनेवाले नृत्य, चल एवम् वाक्चित्र, सुरापान, वेश्यागमन, जलविहार (नंगा होकर स्नान करना) आदि मनोरंजन बड़ी निम्न श्रेणी के मनोरंजन हैं। इनसे समाज का अधःपतन हो जाता है। जब किसी देश या किसी जाति के बुरे दिन आने के होते हैं तब उस जाति में इस प्रकार की लतें पड़ जाती हैं। इसके विपरीत जब देश की दशा अच्छी होने को होती है तो उसके मनोरंजन भी मनुष्यता-पूर्ण एवम् श्लील श्रेणी के होने लगते हैं। जिस प्रकार साहित्य किसी देश या जाति की सभ्यता को परखने के लिए कसौटी का काम देता है, उसी प्रकार आप मनोरंजन को भी समझिए। लखनऊ की नवाबी के अंतिम दिनों में शतरंज का खेल बहुत बड़ा सहायक हुआ था। 'प्रकृति' और 'पुरुष' की मनोरंजन-भावना ने ही इस 'सृष्टि' को उसका वर्तमान रूप दिया है। "पुरुष" एक अद्भुत खिलाड़ी है—यह सारी सृष्टि आकाश से लेकर पाताल तक—चौदहों लोक उसकी मनोरंजन भावना के प्रत्यक्षीकरण हैं—अथवा अधिक स्पष्ट करने के लिए यह



भी कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण विश्व उसका "मनोरंजनमय" स्वरूप है—वह अपनी सृष्टि के साथ हर क्षण खेलता रहता है, वह नन्हें-नन्हें शिशुओं-सा इस "मिट्टी के घरौंदे" को तैयार करता है और ठोकर मारकर उसे फिर धूल में मिला देता है—इस खेल में वह 'प्रकृति' को साथ रखता है। प्रकृति और पुरुष दोनों इस विराट् सृष्टि-मंच के दो मनस्वी अभिनेता हैं—नाना रूप धारण कर नाना अभिनय करते हैं—वे क्षणभर में अगणित उद्भिज, स्वेदज, अण्डज एवम् पिण्डज की सृष्टि कर डालते हैं, अनन्त जलराशियों से परिपूर्ण विशाल महासागर बना डालते हैं—और दूसरे ही क्षण उन्हें फिर इधर का उधर करके उनमें आश्चर्यजनक परिवर्तन कर देते हैं। सच समझिए तो यह विशाल ब्रह्माण्ड प्रकृति और पुरुष का एक खेल है। उस खेल को समझना 'खेल' नहीं है।

खेल में कभी-कभी खिलाड़ी आपस में झगड़ बैठते हैं। ठीक इसी तरह कभी हमारी 'प्रकृति' भी 'पुरुष' से कभी-कभी रूठ जाती है। वह तलमला उठती है—उसमें कँपकँपी उत्पन्न हो जाती है। ज्वालामुखियों का विस्फोट, भयंकर भूकम्प, एवम् प्रचण्ड आँधियाँ प्रकृति के उस तुनुकपन के प्रतिरूप हैं। जिस समय 'प्रकृति' मनोरंजनहीन हो जाती है, उस समय 'पुरुष' की सारी सृष्टि को वह उलट-पुलट कर देती है—परन्तु जिस समय वह आनन्दपूर्वक 'पुरुष' के साथ मनोरंजन करती रहती है, उस समय समय से जल बरसता है, समय पर गर्मी एवम् समय पर जाड़ा पड़ता है।

ठीक इसी प्रकार जब संसारी मनुष्यों की 'प्रकृति' अपना उग्र रूप धारण करती है, तब उनके घर गृहस्थीरूपी सृष्टि में बड़े-बड़े भयङ्कर अनर्थ हो जाते हैं, क्रोध की ज्वालामुखी फूट उठती है, वैमनस्य का भूकम्प आ जाता है और द्वेष की प्रचण्ड आँधी बहने लग जाती है। यदि मनुष्य मनोरंजनमय रहने लगें तो संसार की अनर्थकारी घटनाओं में बहुत कुछ कमी आ जाय।

जीवन की बहुत-सी समस्याएँ मनोरंजन के बहाने सुलझाई जा सकती हैं। प्राचीन समय में भारत में धनुषयज्ञ, मत्स्यवेध, लक्ष्यवेध आदि के आयोजन बहुत बृहत्‌रूप में हुआ करते थे। ऐसे अवसरों पर राजघरानों की कन्याएँ अपने अनुकूल वर चुनती थीं—एक शक्ति दूसरी शक्ति को परखने का संयोग पाती थी। पाश्चात्य देशों में ओलम्पिक खेलों के अवसर पर एक देश दूसरे देश की सभ्यता एवम् संस्कृति से बहुत कुछ सीखने का अवसर पाते थे। इसी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, जो केवल मनोरंजनार्थ ही आयोजित किये जाते थे, इस देश में भी होते थे। रथ-दौड़—घोड़ों की दौड़—लक्ष्यवेध, मल्लयुद्ध आदि के आयोजन इस देश में कभी खूब हुआ करते थे। जरासंध मल्लयुद्ध के ही बहाने मारा गया। द्रौपदी लक्ष्यवेध के ही अनन्तर ब्याही गई।

जौहरव्रत का नाम तो पाठकों ने अवश्य सुना होगा। इसका आविष्कार कब हुआ और किस परिस्थिति में हुआ, बताना कठिन है, परन्तु राजपूत युग के इतिहास में इसकी बहुत कुछ चर्चा देखने में आती है। यह व्रत भी एक महान् मनोरंजन था, जिसके बहाने हमारे लक्षों भारतीय ललनाएँ हँसते-हँसते तलवारों के घाट उतरे और सदा के लिए इस धरातल पर सो गये। सच पूछिए तो यह व्रत वास्तव में एक अपूर्व मनोरंजन था—नहीं तो भला हँसते-हँसते भी कोई प्राण दे सकता है? सजधज कर केसरिया बाना धारणकर अपनी अर्द्धांगिनियों द्वारा प्रोत्साहित एवम् पूजित होकर समराङ्गण में कूद पड़ना भी एक दिन भारतीय वीर मनोरंजन समझते थे। हाँ, अन्तर केवल इतना ही था कि यह मनोरंजन उनके जीवन का अन्तिम मनोरंजन होता था—धन्य है भारतवर्ष! इस प्रकार के मनोरंजन की भावना केवल इसी देश-वासियों में पाया जाता है। काल! मृत्यु!! नाममात्र से बड़े-बड़े योद्धाओं की घिग्घी

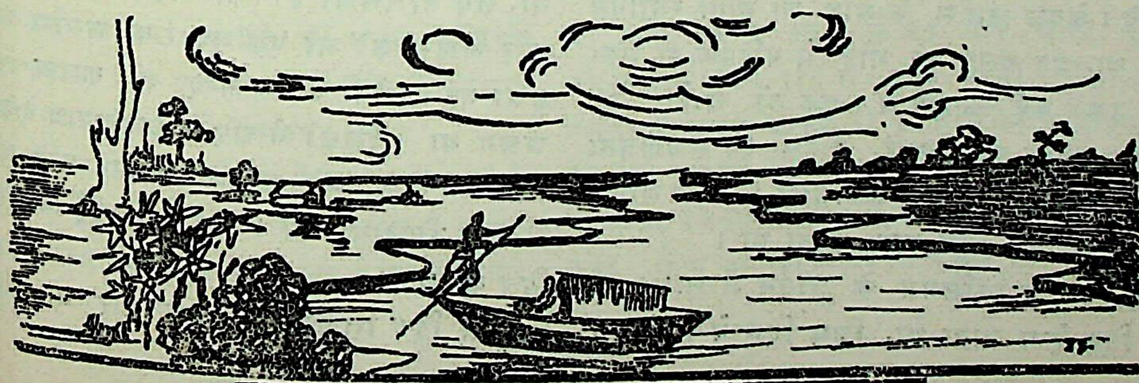


हिल जाती है उसी काल और मृत्यु का हँसते-हँसते स्वागत करना ! कैसा अपूर्व मनोरंजन है !! खेद है कि आज भारतवासियों में मृत्यु के साथ इस प्रकार के मनोरंजन करनेवालों का सर्वथा अभाव हो गया है । अब हमारे देश के नौनिहाल वारविलासिनियों के साथ खेलते हैं, सुरा की बोतलों का आलिङ्गन करते हैं, चल एवम् वाक् चित्रों में अभिनय करनेवाली युवतियों के हाव-भाव को देखने में मस्त रहते हैं ।

आधुनिक काल में भारतीयों का जीवन पूर्ण-रूपेण नीरस हो गया है । केवल कुछेक नगरों को छोड़कर कहीं भी मनोरंजन की व्यवस्था नहीं दीख पड़ती । आजकल के मनोरंजनों में अँगरेज़ी खेल, सिनेमा एवम् बायस्कोप आदि की ही बहुतायत है; परन्तु इनका प्रचार केवल कुछ नगरों में ही अधिकांश में पाया जाता है, देहातों में इनका सर्वथा अभाव है । पर्व एवं त्योहारों पर भी अब पर्याप्त मनोरंजन नहीं मनाया जाता । लोगों में घोर उदासीनता छाई रहती है, चेहरे मुरझाये रहते हैं, उन पर प्रसन्नता नाम की, उल्लास नाम की कोई वस्तु दीख नहीं पड़ती । सहस्राब्दियों की गुलामी की छाप उनकी मुखाकृति को म्लान एवम् करुण बनाने में ख़ूब सफल हुई है ।

यदि वे खेतिहर हैं तो १४ घंटा खेत में काम करते हैं और दो घंटा घर पर, और यदि नागरिक हैं तो दफ़्तरों या दूकानों पर काम करते हैं । यहाँ भी १०-१२ घंटे उन्हें फँसा रहना पड़ता है । बचे हुए समय को गृहस्थी के कलह को दे देना पड़ता है । यही कारण है कि आज दिन सुस्वस्थ भारतीयों का दिन-ब-दिन अभाव होता जा रहा है ।

जब हम विचार करते हैं कि हमारा जीवन कितना मनोरंजनमय होता था तो हमें अपनी पूर्व स्थिति पर गौरव एवम् वर्तमान पर बड़ी घृणा-सी होती है । यहाँ तक कि जिन देवी और देवताओं को हम पूजते हैं, वे भी मनोरंजनमय स्वरूप धारण किये हुए दर्शाये गये हैं । शिवजी बैल पर चढ़े हैं—गणेशजी चूहे को हैरान कर रहे हैं—सरस्वती वीणा बजाती हुई मयूर पर विराज रही हैं—कृष्ण मुरली बजा रहे हैं—महाकाली खप्पर लिये नाच रही हैं—लक्ष्मी उल्लू से प्रेम कर रही हैं—देवता आकाश में हवाई जहाज़ दौड़ा रहे हैं—नारद भगवान् का गुण-गान कर रहे हैं । अइउण् आदि चौदह सूत्र, जो विद्या के आदि कहे जाते हैं—भगवान् शंकर के डमरू के शब्द हैं । कितना गंभीर एवम् रहस्यपूर्ण मनोरंजन है, क्या यह समझ में नहीं आता ? क्या यह देश एक बार फिर मनोरंजनमय नहीं हो सकता ? क्या इस देश में मनोरंजन की लहर एक बार फिर नहीं आ सकती ? क्या भगवान् की मुरली की मधुर ध्वनि को सुनकर यहाँ के चिरदुखी नर-नारी एक बार अपना दुःख भूलकर नृत्यमय नहीं हो सकते ? क्या वेदों का संगीत अब यहाँ नहीं गूँज सकता, जिसने कि एक बार सम्पूर्ण मानव-समाज को मनोरंजनमय कर दिया था !





भी कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण विश्व उसका "मनोरंजनमय" स्वरूप है—वह अपनी सृष्टि के साथ हर क्षण खेलता रहता है, वह नन्हें-नन्हें शिशुओं-सा इस "मिट्टी के घरौंदे" को तैयार करता है और ठोकर मारकर उसे फिर धूल में मिला देता है—इस खेल में वह 'प्रकृति' को साथ रखता है। प्रकृति और पुरुष दोनों इस विराट् सृष्टि-मंच के दो मनस्वी अभिनेता हैं—नाना रूप धारण कर नाना अभिनय करते हैं—वे क्षणभर में अगणित उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज एवम् पिण्डज की सृष्टि कर डालते हैं, अनन्त जलराशियों से परिपूर्ण विशाल महासागर बना डालते हैं—और दूसरे ही क्षण उन्हें फिर इधर का उधर करके उनमें आश्चर्यजनक परिवर्तन कर देते हैं। सच समझिए तो यह विशाल ब्रह्माण्ड प्रकृति और पुरुष का एक खेल है। उस खेल को समझना 'खेल' नहीं है।

खेल में कभी-कभी खिलाड़ी आपस में झगड़ बैठते हैं। ठीक इसी तरह कभी हमारी 'प्रकृति' भी 'पुरुष' से कभी-कभी रूठ जाती है। वह तलमला उठती है—उसमें कँपकँपी उत्पन्न हो जाती है। ज्वालामुखियों का विस्फोट, भयंकर भूकम्प, एवम् प्रचण्ड आँधियाँ प्रकृति के उस तुनुकपन के प्रतिरूप हैं। जिस समय 'प्रकृति' मनोरंजनहीन हो जाती है, उस समय 'पुरुष' की सारी सृष्टि को वह उलट-पुलट कर देती है—परन्तु जिस समय वह आनन्दपूर्वक 'पुरुष' के साथ मनोरंजन करती रहती है, उस समय समय से जल बरसता है, समय पर गर्मी एवम् समय पर जाड़ा पड़ता है।

ठीक इसी प्रकार जब संसारी मनुष्यों की 'प्रकृति' अपना उग्र रूप धारण करती है, तब उनके घर गृहस्थीरूपी सृष्टि में बड़े-बड़े भयङ्कर अनर्थ हो जाते हैं, क्रोध की ज्वालामुखी फूट उठती है, वैमनस्य का भूकम्प आ जाता है और द्वेष की प्रचण्ड आँधी बहने लग जाती है। यदि मनुष्य मनोरंजनमय रहने लगे तो संसार की अनर्थकारी घटनाओं में बहुत कुछ कमी आ जाय।

जीवन की बहुत-सी समस्याएँ मनोरंज[न के] बहाने सुलझाई जा सकती हैं। प्राचीन स[मय] भारत में धनुषयज्ञ, मत्स्यवेध, लक्ष्यवेध आ[दि के] आयोजन बहुत बृहत्‌रूप में हुआ करते थे। [इन] अवसरों पर राजघरानों की कन्याएँ अपने[अ]नुकूल वर चुनती थीं—एक शक्ति दूसरी श[क्ति को] परखने का संयोग पाती थी। पाश्चात्य दे[शों में] ओलम्पिक खेलों के अवसर पर एक देश दूस[रे देश] की सभ्यता एवम् संस्कृति से बहुत कुछ [परिचय प्राप्त करने] का अवसर पाते थे। इसी प्रकार के अन्तर[राष्ट्रीय] सम्मेलन, जो केवल मनोरंजनार्थ ही आ[योजित] किये जाते थे, इस देश में भी होते थे। [...] दौड़—घोड़ों की दौड़—लक्ष्यवेध, मल्लयुद्ध [आदि] के आयोजन इस देश में कभी खूब हुआ [करते] थे। जरासंध मल्लयुद्ध के ही बहाने मारा [गया,] द्रौपदी लक्ष्यवेध के ही अनन्तर ब्याही गई।

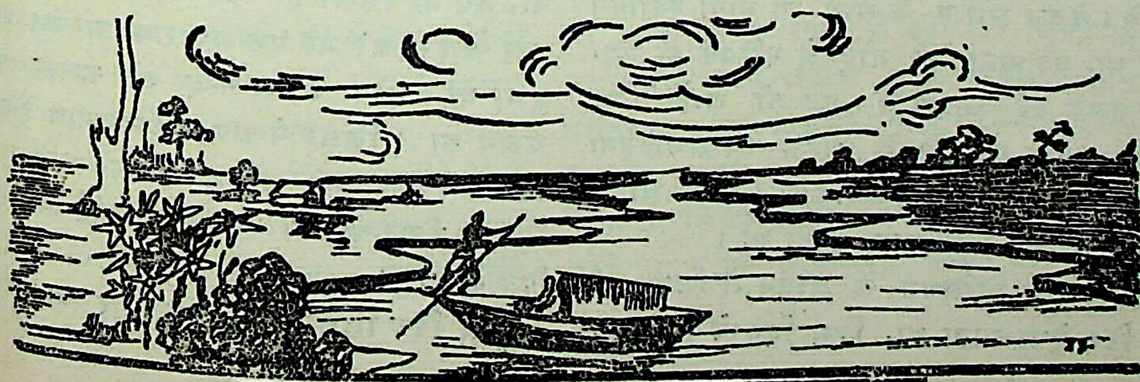
जौहरव्रत का नाम तो पाठकों ने अव[श्य] सुना होगा। इसका आविष्कार कब हुआ [और किस] परिस्थिति में हुआ, बताना कठिन है, पर[न्तु राजपूत] युग के इतिहास में इसकी बहुत कुछ चर्चा में आती है। यह व्रत भी एक महान् म[नोरंजन] था, जिसके बहाने हमारे लक्षों भारतां[गनाएँ] हँसते-हँसते तलवारों के घाट उतरे और [सदा के] लिए इस धरातल पर सो गये। सच म[ानिए तो] यह व्रत वास्तव में एक अपूर्व मनोरंजन था[, नहीं] तो भला हँसते-हँसते भी कोई प्राण दे स[कता है?] सजधज कर केसरिया बाना धारणकर अपन[ी अर्द्धां]गिनियों द्वारा प्रोत्साहित एवम् पूजित होक[र समर]राङ्गण में कूद पड़ना भी एक दिन भा[रतवासी] मनोरंजन समझते थे। हाँ, अन्तर केवल [इतना] ही था कि यह मनोरंजन उनके जीवन का [अन्तिम] मनोरंजन होता था—धन्य है भारतवर्ष! [इस] प्रकार के मनोरंजन की भावना केवल इ[सी देश के] वासियों में पाया जाता है। काल! मृत्यु! नाममात्र से बड़े-बड़े योद्धाओं की पिं[डलियाँ]

हिल जाती है उसी काल और मृत्यु का हँसते-हँसते स्वागत करना ! कैसा अपूर्व मनोरंजन है !! खेद है कि आज भारतवासियों में मृत्यु के साथ इस प्रकार के मनोरंजन करनेवालों का सर्वथा अभाव हो गया है । अब हमारे देश के नौनिहाल वारविलासिनियों के साथ खेलते हैं, सुरा की बोतलों का आलिङ्गन करते हैं, चल एवम् वाक् चित्रों में अभिनय करनेवाली युवतियों के हाव-भाव को देखने में मस्त रहते हैं ।

आधुनिक काल में भारतीयों का जीवन पूर्णरूपेण नीरस हो गया है । केवल कुछेक नगरों को छोड़कर कहीं भी मनोरंजन की व्यवस्था नहीं दीख पड़ती । आजकल के मनोरंजनों में अँगरेज़ी खेल, सिनेमा एवम् बायस्कोप आदि की ही बहुतायत है; परन्तु इनका प्रचार केवल कुछ नगरों में ही अधिकांश में पाया जाता है, देहातों में इनका सर्वथा अभाव है । पर्व एवं त्योहारों पर भी अब पर्याप्त मनोरंजन नहीं मनाया जाता । लोगों में घोर उदासीनता छाई रहती है, चेहरे मुरझाये रहते हैं, उन पर प्रसन्नता नाम की, उल्लास नाम की कोई वस्तु दीख नहीं पड़ती । सहस्राब्दियों की गुलामी की छाप उनकी मुखाकृति को म्लान एवम् करुण बनाने में ख़ूब सफल हुई है ।

यदि वे खेतिहर हैं तो १४ घंटा खेत में काम करते हैं और दो घंटा घर पर, और यदि नागरिक हैं तो दफ़्तरों या दूकानों पर काम करते हैं । यहाँ भी १०-१२ घंटे उन्हें फँसा रहना पड़ता है । बचे हुए समय को गृहस्थी के कलह को दे देना पड़ता है । यही कारण है कि आज दिन सुस्वस्थ भारतीयों का दिन-ब-दिन अभाव होता जा रहा है ।

जब हम विचार करते हैं कि हमारा जीवन कितना मनोरंजनमय होता था तो हमें अपनी पूर्व स्थिति पर गौरव एवम् वर्तमान पर बड़ी घृणा-सी होती है । यहाँ तक कि जिन देवी और देवताओं को हम पूजते हैं, वे भी मनोरंजनमय स्वरूप धारण किये हुए दर्शाये गये हैं । शिवजी बैल पर चढ़े हैं—गणेशजी चूहे को हैरान कर रहे हैं—सरस्वती वीणा बजाती हुई मयूर पर विराज रही हैं—कृष्ण मुरली बजा रहे हैं—महाकाली खप्पर लिये नाच रही हैं—लक्ष्मी उल्लू से प्रेम कर रही हैं—देवता आकाश में हवाई जहाज़ दौड़ा रहे हैं—नारद भगवान् का गुण-गान कर रहे हैं । अइउण् आदि चौदह सूत्र, जो विद्या के आदि कहे जाते हैं—भगवान् शंकर के डमरू के शब्द हैं । कितना गंभीर एवम् रहस्यपूर्ण मनोरंजन है, क्या यह समझ में नहीं आता ? क्या यह देश एक बार फिर मनोरंजनमय नहीं हो सकता ? क्या इस देश में मनोरंजन की लहर एक बार फिर नहीं आ सकती ? क्या भगवान् की मुरली की मधुर ध्वनि को सुनकर यहाँ के चिरदुखी नर-नारी एक बार अपना दुःख भूलकर नृत्यमय नहीं हो सकते ? क्या वेदों का संगीत अब यहाँ नहीं गूँज सकता, जिसने कि एक बार सम्पूर्ण मानव-समाज को मनोरंजनमय कर दिया था !





चुंबन

बाबू श्यामनारायण बैजल एम्० ए०

यद्यपि लिली का विवाह प्रेम के बीज पर नहीं विकसित हुआ था, तथापि उसके विवाह के अंतर्गत वे सब अरमान मौजूद थे, जो स्नेह के साथ रंगरेलियाँ करने के पश्चात् अपने स्वरूप को निर्धारित करते हैं। विवाहवाले दिन से ही लिली की अभिलाषाएँ एक अकथनीय उल्लास और हर्ष का आवरण ओढ़ अपने पति के हृदय में सुख और विजय का साम्राज्य स्थापित करने के लिए केन्द्रित हो गई थीं। इधर उसके पति की कामनाएँ भी लिली के सौन्दर्यपूर्ण विशाल वैभव के सम्मुख फूल उठी थीं। वे दोनों सुखी थे। विवाह के पश्चात् जितना भी एक जोड़े को सुख उपलब्ध हो सकता है, वह नैसर्गिक रूप में ही उन दोनों को प्राप्त हो गया।

लिली के पति का नाम विलियम था। विलियम स्वभाव से ही गंभीर, दयालु और दार्शनिक था। विलियम ने अपने स्कूल और कालेज-जीवन में न-जाने कितने मित्रों के साथ नाता जोड़ा था, पर समय के साथ-साथ वे सब नाते जर्जरित हो गये थे। केवल लारेंस के साथ जो नाता स्थापित हुआ था, वह समय की गोद में परिपक्व हो गया था। इसके कई कारण थे। एक तो लारेंस घर के पास रहता था। दूसरे लारेंस की सच्चरित्रता पर विलियम जी-जान से क़ुर्बान था। तीसरे लारेंस के लेखों को वह बहुत पसंद करता था।

लिली और विलियम के जीवन में शायद ही कोई दिन ऐसा जाता था, जिस दिन वे विलियम के लेखों की प्रशंसा न किया करते हों। ... विलियम के लेख स्त्री-पुरुष की समस्याओं सुलझाने के लिए ही हुआ करते थे। वे दार्श... रंग लिये होते थे। विलियम स्त्रियों को स्वतं... देने के पक्ष में था। लिली का भी ऐसा विच... था। इन्हीं विचारों को वे दोनों लारेंस के ले... में देखकर एक प्रकार की श्रद्धा का अनुभव कि... करते थे। लारेंस ने बहुत-से लेख कॉरेपन... में भी लिखे थे।

जब से लिली ब्याहकर आई थी, त... लारेंस कार्यवश बाहर चला गया था। इस ... लिली ने लारेंस को न देखा था। पर अपने... द्वारा उसकी प्रशंसा सुनकर और उसके लेखों... पढ़कर वह जिस श्रद्धा का अनुभव करने... थी, उसने परिचय से भी कहीं अधिक विश्वास... संबंध उसके काल्पनिक संसार में सृजित... दिया था। और हाँ, जब लारेंस के आने पर... काल्पनिक संबंध ने अपने पर्दे को फेंक दिया... और जब वह वास्तविक रूप में अवतरित हो... था, तब तो लिली ही को नहीं, वरन् विलि... और लारेंस को भी एक प्रकार का असीम आ... हुआ था। तीनों के आनन्द का कारण ... अलग था। लिली ने अपना श्रद्धा-पात्र देखा... विलियम ने अपनी स्त्री को अपने प्रतिभा... मित्र से मिलाया था। लारेंस ने नई मैत्री... पित की थी।

उस दिन लिली से प्रथम बार बातची...



होने के बाद पियानो भी बजा था। विलियम ने भी गाया था और लिली ने भी अपनी लजीली आँखों का लारेंस की पियानो पर तैरनेवाली अँगुलियों से निर्निमेष संबंध स्थापित कर, बड़ा सुन्दर राग अलापा था। इसके पश्चात् लारेंस की आवाज़ ने कमरे की दीवार को स्थिर रूप प्रदान कर दिया था।

अब तक तो लिली उसके लेखों ही पर मोहित थी, पर अब वह उसके पियानो पर भी लट्टू हो गई थी। इतना ध्यान रहे कि इस मोह के अंतर्गत वैसी कोई भी भावना नहीं छिपी थी, जिसे हम अपवित्र कह सकें या जिस भावना में संसार न-जाने किन-किन अर्थों को पढ़ने लगता है।

विलियम पियानो का शौक़ीन था। यही नहीं, जब वह लिली के लिए एक नया पियानो लाया था, तब उसने भी कोई दो महीने तक उससे मगज़ मारा था। बाद में ज्यों-ज्यों पियानो की उम्र बढ़ती गई थी, त्यों-त्यों विलियम भी उससे दूर होते गये थे। सीखना वे चाहते थे, पर यह शौक़ इनके पास शौक़ ही के रूप में स्थिर हो गया था। जिस दिन वह पियानो लाये थे, उस दिन तो दुनिया ने इनके रंग-ढंग को देखकर यही समझा था कि यह अब उस्ताद हुए बिना नहीं मानेंगे, पर बाद में दुनिया की उम्मीदें अन्य उम्मीदों की भाँति ही कमज़ोर पड़ गई थीं। निस्संदेह विलियम पियानो नहीं सीख पाये थे, पर सुनने का शौक़ उन्हें काफ़ी था। लिली से तो प्रायः वे प्रतिदिन सुना करते थे। पर लिली अधिक नहीं जानती थी। उसके बजाने में अभी लचक और माधुर्य नहीं आ पाया था। उसकी उँगलियाँ भी धीमी चला करती थीं। ऐसी ही कुछ कमियाँ बाक़ी थीं। इन कमियों को आवश्यकता थी एक गुरु की और विलियम लारेंस को गुरु के रूप में देख रहा था।

लिली ने तो अपने हृदय में लारेंस को उसी दिन गुरु मान लिया था। पर उसने अपनी इच्छा को असली जामा नहीं पहनाया था। केवल अपने पति से इस अभिलाषा को प्रकट कर दिया था। विलियम ने उसकी इच्छा का स्वागत किया था और कुछ दिन बाद से ही लारेंस ने सायंकाल के समय पियानो सिखाना प्रारम्भ कर दिया था।

लारेंस ने विवाह नहीं किया था। इसलिए नहीं कि किसी लड़की से उसका स्नेह नहीं हुआ था, पर इसलिए कि वह अपने स्वतंत्र जीवन में किसी प्रकार का पचड़ा नहीं जोड़ना चाहता था। इन पचड़ों से वह दूर भागता था, क्योंकि उसका विश्वास था कि मानव-जीवन का उत्थान विवाह-बंधन में नहीं। विवाह पति-पत्नी को गेंद की भाँति उछालने में ही अपनी सफलता छिपाये रहता है। इसके अलावा उसका कुछ अस्तित्व नहीं और फिर विवाह कोई गुलाब की सेज नहीं। उसके काँटों से लारेंस परिचित था। वे काँटे गुलाब को दिखाकर कितना विडम्बनापूर्ण जीवन मानव-समाज में स्थापित करते चले आ रहे थे, यह वह अपने लेखों में लिख चुका था। फिर भला इन काँटों में वह स्वयं क्यों गिरकर पतन के विशाल रूप का स्वागत करता। इसी लिए वह अविवाहित था। पर उसके अविवाहित जीवन ने उसके विकसित यौवन को उच्छृङ्खल नहीं कर दिया था। निस्संदेह कमज़ोरियाँ रंगीन होकर उसके हृदय में उठा करती थीं, पर वह बेक़ाबू नहीं हो जाता था।

किन्तु लिली ऐसी न थी। इसका तात्पर्य यह नहीं कि लिली सच्चरित्र न थी। उसका चरित्र काफ़ी अच्छा था। लेकिन उसमें एक-दो ऐसी कमज़ोरियाँ थीं, जिन्हें स्त्रीजाति सदैव से ही अपनाती चली आ रही है। वह काफ़ी हसीन थी और शायद दिन में कई बार अपने हुस्न की प्रशंसा अपने पति से सुना करती थी। इस प्रशंसा ने उसके कानों की आदत बिगाड़ दी थी। वे सदैव प्रशंसा सुनने को तैयार रहते थे। यह आकांक्षा लिली के पति तक परिमित रहती तो कोई हर्ज न था, पर समय ने उसके पर लगा दिये

थे। वह औरों के मुँह से भी प्रशंसा सुनना चाहती थी। फिर भी वह एक कमज़ोरी थी; क्योंकि अपूर्ण आकांक्षा ही का दूसरा नाम कमज़ोरी है। वह ज़रा-ज़रा-सी बातों को घंटों सोचा करती थी। यह उसकी दूसरी कमज़ोरी थी। अपने मानसिक संसार में तिनके का पहाड़ बना देना तो उसका प्रतिदिन का कार्य था। वह इन पहाड़ों से दूर भागना चाहती थी, पर वह मजबूर थी; क्योंकि वे बिना बुलाये ही उसके मानसिक नेत्रों को कष्ट दे जाते थे।

लिली लारेंस से प्रतिदिन पियानो सीखा करती थी। इस समय वह अपनी पहली दुर्बलता के बोझ से कितनी दबी होती थी, इसे सिवा उसके कौन जानता था। उसके रिक्त कान रिक्तता की तीव्र मदिरा में मदहोश हो पियानो के स्वरों को सुना करते थे, और उसकी आँखें लारेंस की आँखों में न-जाने क्या-क्या पढ़ने की चेष्टा किया करती थीं। वे देखा करती थीं कि वे आँखें उसके रूप में डूबी हैं या नहीं। लिली जिस रूपप्रशंसा को लारेंस की जिह्वा से नहीं सुन पाई थी, वह उसे उसकी आँखों में पढ़ना चाहती थी। पर लारेंस की आँखें, यद्यपि रूप के आगे वे पराजित हो गई थीं, तथापि उनमें ताला पड़ा हुआ था। वे लिली के कानों की भाँति रिक्त थीं।

किन्तु लारेंस की जिह्वा पर निवास करनेवाली चुप्पी और उसकी आँखों की इस उपेक्षा का लिली के दिल पर कुछ और ही प्रभाव पड़ा। उसकी रूपप्रशंसा सुनने की उत्सुकता और बढ़ गई। वह विलियम के प्रेम में पूर्णतया विभोर होने पर भी लारेंस की आँखों को अपनी ओर आकर्षित करना ज़रूरी समझने लगी। रिक्तता ने चुलबुलाहट का रूप धारण कर लिया। सौजन्य ने शोख़ी का आवरण ओढ़ लिया और लिली पियानो के हरेक स्वर के साथ अपने हृदय में होनेवाले एक अद्भुत अभाव का अनुभव करने लगी। यही नहीं, लारेंस के सामने वह ज़रा सुन्दर रूप में भी आने लगी। कपड़ों में भी परिवर्तन आ गया, उनके [illegible] अंदाज भी बदल गया। पर लारेंस के रूप में डूबी होने पर भी चुप्पी साधे जिह्वा का ताला जैसा था, वैसा रहा।

× × ×

लारेंस कुर्सी बिछाये बरामदे में बैठे [illegible] उसके सामने स्थानीय पत्र के सहायक [illegible] बैठे थे। संपादकजी बड़े मसख़रे थे। बात-[illegible] हँसना ही शायद उनके ओष्ठों का मुख्य [illegible] वे इस समय लारेंस से कोई नया लेख [illegible] आये थे और साथ-साथ लारेंस से [illegible] कर रहे थे।

संपादकजी कह रहे थे—"मिस्टर लारेंस, आपका अरसे से कोई लेख नहीं मिला, [illegible] कारण है? आपने अब तक तो हमारे यहाँ [illegible] के पक्ष में लेख लिखे हैं, अब आप प्रेम [illegible] कुछ लेख दीजिए"—इसके बाद संपादक[illegible] हँसते हुए कहा—"हमारे कार्यालय [illegible] ख़बर है कि आप किसी औरत से प्रेम [illegible] इसलिए मेरी तो यही अनुमति है कि [illegible] प्रेम के ऊपर कोई लेख लिखिए।" लारेंस [illegible] कर कहा 'प्रेम'।

—"इसमें आश्चर्य की क्या बात है। [illegible] प्रेम करते हैं। प्रेमहीन जीवन ही क्या [illegible] और आलिंगनों के समूह ही का नाम तो [illegible] है। न-जाने आप क्यों क्वाँरेपन के पक्ष में [illegible] लिखकर अपने जीवन को भी वैसा ही [illegible] हुए हैं। लेख लिखना दूसरी बात है और [illegible] व्यतीत करना दूसरी बात। ख़ैर, मुझे [illegible] है कि अब आप प्रेम करने लगे हैं। [illegible] क्वाँरेपन की आदत छूट जायगी।"

—"नहीं मित्र, मैं किसी से प्रेम नहीं [illegible]

—"हो सकता है। मैंने तो सुना [illegible] लिली को बाजा सिखाने जाते हैं। उसी [illegible] प्रेम करने लगे हैं।"—इसके बाद उन्होंने [illegible] हुए कहा—"मैंने तो यहाँ तक सुना है कि [illegible]

वही आप पँर लट्टू हो गई थी । ख़ैर, छोड़ो ज़िक्र। भाई, जो चाहो सो तुम करो; मगर यार अपने इस रोमांस के कारण लेखों में कमी न आने दो। लेख बराबर लिखते रहो । इस वर्ष तुमने कुछ अधिक लेख तो लिखे नहीं।"

—"क्या आज तुमने ज़्यादा चढ़ा ली है या मज़ाक कर रहे हो ?"

—"ज़्यादा चढ़ा ली है। बात तो किसी तरह ख़त्म हो। तुम्हें कोई मैं प्रेम करने से थोड़े रोक रहा हूँ। और फिर तुम्हारी ग़लती क्या ? 'लिली' इतनी रूपवती ही है । उसे देखकर कौन नहीं फिसल सकता ? अच्छा जी, बताओ, कोई नया लेख या गल्प तैयार है । मैं अब चला; क्योंकि मुझे कल के लिए मैटर तैयार करना है । दिल्लगी की भाई क्षमा माँगता हूँ ।"

लारेंस ने कहा—"लेख एक-आधा तैयार है। कल मिल जायगा। पर बाक़ी बातें तुमने दिल्लगी में कही हैं तो कुछ हर्ज नहीं, वैसे बीसों बिस्वे ग़लत हैं।"

इस बात का कुछ उत्तर दिये बिना ही संपादकजी चले गये । पर वे लारेंस के मस्तिष्क को विचारों का पिटारा सौंप गये । लारेंस को जिस बात की आशा भी न थी, वही बात वह अपने कानों से अभी सुन चुका था । लिली की तरफ़ तो उसने अभी जी भरकर भी न देखा था, फिर दुनिया क्यों पुलाव पका रही थी । लिली ख़ूबसूरत है, ख़ूबसूरत सही, उसका चरित्र भी तो ख़ूबसूरत है । वह सोच रहा था कि न-जाने संसार कौन-सी ऐनक लगाकर हमारी प्रक्रियाओं को देखता है ।

इसी विचारधारा के साथ-साथ एक और विचारधारा भी उसके मस्तिष्क के साथ अठखेलियाँ कर रही थी । उसका नम्र यौवन, जो लिली को कई बार देख लेने के बाद कुछ ही कुछ रंग बदल पाया था, इस समय संपादक के मुँह से प्रेम-भरी बातें सुनकर सहसा उच्छृंखल रूप धारण करने के लिए उत्सुकता प्रकट कर रहा था । वह सोच रहा था, लिली वाक़ई रूपवती है ? उसकी निगाहें यह भी कहती हैं कि वह उससे प्रेम करती है । तो फिर यदि मैं उससे प्रेम करूँ तो क्या हर्ज है ? वह दूसरे की पत्नी है । इसलिए ऐसा करना पाप है। पर ये सामाजिक नियम हम पुरुषों ने ही तो बनाये हैं । हम उन्हें तोड़ भी सकते हैं ? मेरा और लिली का जोड़ा कितना अच्छा हो सकता है । ऊँह, मैं कितना पापी हूँ—इत्यादि विचार लहरों की भाँति उसके मानसिक समुद्र में उठ रहे थे । किंतु वह इन विचारों के द्वार पर एक बुलंद अंकुश लिये विराजमान था । वह उन्हें नहीं उठने दे रहा था । वह ख़ूब समझ रहा था कि यौवन की कमज़ोरी छेड़खानी के कारण उसके विचारालय में जाग उठी है, पर उसे विश्वास था कि कली खिलने से पहले ही इन विचारों को दबा देने में वह सफल हो जायगा । और, उस दिन तो उसने यथार्थ में इन विचारों पर ताले लगा दिये थे । एक अविवाहित स्त्री से प्रेम करना उसे न-जाने क्यों घोर पाप नज़र आ रहा था । फिर लिली तो उसके मित्र की पत्नी थी ।

दूसरे दिन वह सोकर उठा—उसका मस्तिष्क एक ही नींद में इन विचारों से दूर हो गया और वास्तव में दूसरे दिन जब उसने आँख खोली, तब उसने अपनी मानसिक कल को जल की नाईं सफ़ेद और दर्पण की नाईं स्वच्छ पाया । उठती हुई उमंग पर ताले कसकर जकड़ दिये गये थे । लारेंस को मन में ऐसा मालूम हो रहा था, जैसे कलवाले विचार कभी उसके दिल में उठे ही न हों।

ठीक उसी समय पर जब नीड़ दिन भर की थकी-माँदी चिड़ियों के स्वागत में मस्त थे, लारेंस लिली के घर की ओर रोज़ की भाँति चल दिया।

लिली अकेली बैठी पियानो बजा रही थी और साथ ही सुमधुर सुरीली-सी आवाज़ में एक प्रेम-गीत गा रही थी । उसकी आँखों पर एक अजीब मस्ती छाई हुई थी । उसके छिटके हुए बाल कपोलों का चुंबन ले रहे थे और वह



उस समय संगीत की रानी प्रतीत हो रही थी। लारेंस दूर से यह सब देख रहा था। न-जाने क्यों वह कमरे के बाहर ही ठहर गया था। आज से पहले तो कभी उससे ऐसी ग़लती न हुई थी। उसकी आँखें लिली के कपोलों और मस्तानी आँखों के सौन्दर्य को पीने में सहसा व्यस्त हो गई थीं। वह उन्हें रोकना चाह रहा था। पर उसे ऐसा मालूम हो रहा था, जैसे उसे कोई मजबूर कर रहा हो। जिन विचारों पर उसकी गंभीर नींद ने ताले लगा दिये थे, वे इस समय स्वयं ही खुल गये थे। उमंगें ताले लगाकर नहीं रुक सकतीं, इस बात का लारेंस उस समय अनुभव कर रहा था। लिली कितनी सुन्दर है, इस विचार के साथ ही उसके ओष्ठ गर्म हो उठे।—ओफ़! लारेंस काँप गया। उसने एक बार फिर सोचा। वह क्यों यौवन का पद-पद पर गुलाम होता जा रहा था। उसके जीवन में आये अब तक के अनुभवों में यह अनुभव विचित्र था। इस अनुभव के विरोध में उसने पेशबंदियाँ अपने दिल में पहले ही से कर ली थीं, पर आज उसे स्पष्ट रूप से प्रतीत हो रहा था कि यौवन की आग तर्कों से बुझ-बुझकर सुलग उठती है। तर्क उस अग्नि के बाह्य रूप को शांत करके उसके परिवेश को अंदर ही अंदर इतना बढ़ा देते हैं कि वह ऐन मौक़े पर आँधी का रूप धारण कर लेती है? आग आँधी के रूप में होकर कितनी भयंकर हो जाती है, कौन नहीं जानता?

वह अपने विचारों के बोझ से दबे हुए होठों को वहाँ ही लिये थोड़ी देर तक खड़ा रहा। न-जाने क्यों दिल में आकांक्षाओं की घटा छा गई। इच्छाएँ आँखों में बस गईं। आँखें लिली के कपोलों से जा लगीं। उसके अधरों ने काल्पनिक संसार रच डाला। इस काल्पनिक संसार में लारेंस की गोद लिली के बोझ से प्रफुल्लित हो उठी और उसके ओष्ठ विवश हो, मजबूरियों को ठुकराते हुए, लिली के गुलाबी गालों से जा लगे।

उसके मन में आया कि लौट जायँ और न आया करें : क्योंकि भविष्य में आनेवाले दल से वह परिचित था और कमज़ोरियों के बहे जाने पर वह कमज़ोरियों का व्यक्त रूप आँखों से देख रहा था। मोहब्बत की ज़ंजीरें पैरों को जकड़ दिया था। एक ओर कमज़ोरियाँ मोहब्बत का रूप धारण कर ज़ंजीर के रूप में गई थीं और दूसरी ओर कमज़ोरियाँ उसे खींच रही थीं।

वह नहीं लौटा। लिली की आँखें ऊपर को उसी भाँति, जिस प्रकार यौवन शरीर में है। उसकी आँखों ने लारेंस को देखा। आँखें न जाने क्या-क्या पढ़ा? आज की इस तबदीली देखकर वह भी चक्कर में आ गई। जो चट्टान रूप के झोंके से अब तक स्थायी रही थी, उस समय लिली को हिलती प्रतीत हो रही। चट्टान में भूकंप आ गया था। उसका ... बनकर उसकी तह में पहुँच गया था। ... धीमी मुस्कान लिली के गुलाबी गालों में खेलियाँ कर रही थीं। उसने कहा—"प्रिय ... कितनी देर से बाहर खड़े हो? आओ अंदर आओ।"

लारेंस के कानों ने लिली के मुँह से ... बार सुना था। पर आजवाला प्रिय ... सजीव मालूम हो रहा था। वह बैठ ... लारेंस के गुलाबी गालों पर लज्जा थी। ... जो उसके चरित्र का विशेष अंग थी, उस ... उसके गालों पर लज्जा बनकर नाच रही थी। ... लज्जा में कांति का अंश उतना न था, जितना ... ने अब तक उसके मुँह पर अनुभव किया था।

उसने हँसते हुए कहा "अभी-अभी तो ... था। आपका बाजा सुनने लगा था।"

पर लिली बड़ी चालाक थी। वह ... ख़ूब समझ रही थी। अपनी जिस ... को उसने उसकी जिह्वा से कभी नहीं सुना ... उसे वह लारेंस की आँखों में उस समय ...

थी। पर संदेह उसे बराबर बना हुआ था।

लिली ने कहा—"आज मुझे स्टेशन तक जाना है। आज बाजा न सीख सकूँगी। क्या आप साथ चलेंगे।" सायंकाल की उम्र काफ़ी बीत चुकी थी। लारेंस लिली को बाजा सिखाने के बाद, घर आकर लेख ही लिखा करता था। पर वह लेखों को भूला हुआ था। दिल स्टेशन जाने के लिए बार-बार कह रहा था। उसने कहा—"अवश्य चला चलूँगा।"

स्टेशन की सड़क एक अजगर साँप की भाँति खेतों में टेढ़ी-मेढ़ी होती हुई चली गई है। वे दोनों अकेले जा रहे थे। लारेंस के हृदय में जो उथल-पुथल हो रही थी, उसे लिली कुछ-कुछ समझ रही थी। फिर भी वह चुप थी। लारेंस भी चुप था।

वे आधे मील तक इधर-उधर की बातें करते हुए चले गये। लारेंस अपने भावों को बराबर दबाता रहा। यदि लारेंस के स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति होता तो सहज ही में प्राप्त इस परिस्थिति का कुछ न कुछ उपयोग करता। पर लारेंस अपनी प्रकृति से विवश था। लारेंस कोई उच्छृङ्खलता के लिए उच्छृङ्खलता नहीं करना चाहता था। उसका यौवन यौवन बनकर प्यास थोड़े बुझाना चाहता था। उसके पास तो पवित्र हृदय था। इस पवित्र हृदय में संसर्ग के कारण यौवन के बीज पर विकसित होनेवाली दुर्बलता पैदा हो गई थी। इस दुर्बलता को वासनामय प्रबल रूप धारण करने के लिए जितना समय और साहस चाहिए, उतना समय और साहस उसे उस समय तक उपलब्ध नहीं हुआ था।

अभी स्टेशन काफ़ी दूर था। आध मील चलना और बाक़ी था। इतने ही में बादलों के झुंड ने घबराहट का समा बाँध दिया। चार मिनट के अंदर ही पानी ज़ोर-शोर के साथ बरसने लगा। पहले तो वे लपककर चले, पर बाद में वर्षा ने उन्हें विवश कर दिया। सड़क से ज़रा दूर खेतों के पास एक खँडहर इमारत के बरामदे में दोनों को शरण लेनी पड़ी।

वर्षा ने लारेंस के हृदय को और दुर्बल बना दिया था। न-जाने कैसे कमज़ोर भाव उसके मन में आ रहे थे। सिवा प्रकृति के किसी की भी आँखें उन दोनों को न देख रही थीं। और, लारेंस की आँखें लिली के कपोलों पर लगी थीं। लारेंस इस अकेली इमारत में अपने-आपको मध्यकालीन नायकों की स्थिति में अनुभव कर रहा था। उसके गर्म-गर्म होठ गालों पर लग जाने को विकल हो रहे थे। वह सोच रहा था कि कितना अच्छा हो......."

इधर लिली की दशा भी और थी? लिली भी लारेंस की रूपरेखा को देख रही थी। विलियम को वह थोड़ी देर के लिए भूल-सा गई थी। प्रकृति और यौवन की अग्नि उसकी गंभीर ग्रंथियों को सुलझा रही थी। उसके गाल बारबार उसकी आँखों को निर्निमेष दृष्टि प्रदान कर किसी के होठों की प्रतीक्षा कर रहे थे।

लिली ने कहा—"अच्छा हुआ कि आप संग चले आये। नहीं तो मुझे कितनी तकलीफ़ होती।" लारेंस ने मुस्कराते हुए कहा—"मैं आपके इस समय साथ हूँ। यह मेरा भाग्य है।"

इस वाक्य के अंदर कितना मधुर राग भरा था, यह लिली से छिपा न रहा। पर उस इमारत की दीवारों ने चुम्बन के मीठे शब्द को न सुना। यद्यपि उन दीवारों की व्याकुलता उन दोनों से न छिपी रही।

कुछ देर बाद वर्षा रुकी। सामने खेतों में घुटनों से भी अधिक पानी भर गया था। उन दोनों ने चलने की तैयारी की, पर खेतों का पानी आड़ बनकर खड़ा हो गया। लारेंस तो पानी पारकर चलने के लिए तैयार था, पर लिली ने कहा—"मुझसे न चला जायगा। मैं फिसल जाऊँगी"।

इतना ध्यान रहे, लिली यह जान-बूझकर कह रही थी। खेत कोई दस गज़ चौड़ा था। लंबाई



का ठीक पता नहीं । वह इस खेत को लारेंस के दोनों हाथों पर अपना शरीर रखकर पार करना चाहती थी । यह अभिलाषा उसके प्रदीप्त यौवन ने सहसा ही उसके मस्तिष्क में प्रज्वलित कर दी थी । पर लज्जावश वह लारेंस से कुछ नहीं कह रही थी।

इतने ही में लारेंस ने कहा—"तुम डर क्यों रही हो ? यदि तुम्हें डर लग रहा हो तो तुम मेरे दोनों हाथों पर आ जाओ।"

लिली तैयार हो गई। लारेंस ने अपने दोनों हाथ फैलाकर लिली को उठा लिया । दोनों के शरीर में एकदम बिजली दौड़ गई । दोनों इस स्थिति में जन्म भर रहने की इच्छा करने लगे। लारेंस पानी में बढ़ा। वह हँस रहा था। उसकी आँखें लिली के मुख पर लगी थीं, और लिली भी बनावटी गुदगुदी-सी अनुभव करती हुई उसके हुस्न से आच्छादित चेहरे को देख रही थी । लिली ने कहा—"कितना अच्छा लग रहा है, तुम बड़े सुन्दर लग रहे हो।"

लारेंस ने आह भरते हुए कहा—"लिली, तुम क्या जानो कि तुम कितनी सुन्दरी लग रही हो।"

लिली ने मधुर वाणी में कहा—"लारेंस"

लारेंस ने कहा "लिली"

उसके बाद 'चुम्बन' का मधुर शब्द उस जंगल में प्रतिध्वनित हो गया। वे चुम्बन से आगे न बढ़े।

× × ×

लारेंस की दूसरे दिन अजीब दशा थी। इस समय वह अपने घर पर ही बैठा था । लिली उसके पास न थी। इसी लिए वह अपनी कल रातवाली दुर्बलताओं का अध्ययन कर रहा था। जो कमज़ोरियाँ बरबस ही कल उसके पास आकर बस गई थीं, वे इस समय उसे धिक्कार रही थीं। क्या उसे लिली का चुम्बन लेना चाहिए था ? नहीं, लिली उसके मित्र की पत्नी थी। क्या उसने ऐसा करके समाज और विलियम के साथ दग़ा नहीं की !

परन्तु इसमें उसका अपराध क्या था ! लिली ने भी तो पाप की ओर हाथ बढ़ा दिया। लिली उसे फिसलने से रोक सकती थी। लिली तो स्वयं ही फिसल गई थी। लारेंस रहा था कि इसमें उसका अपराध ही क्या ? पर यह विचार दिल को खुश करने को काफ़ी लारेंस खूब जानता था कि इस विचार से पाप रत्ती भर भी कम नहीं हो सकता था; दलदल में वह स्वयं फँसा था। लिली ने तो थोड़ी बिछाई थी। और फिर दलदल में तो वह स्वयं बढ़ा था, उसका दोष में ही था।

किन्तु अभी कुछ नहीं बिगड़ा था, क्योंकि चोरी के प्रेम ने अभी चुम्बन को ही देखा लारेंस अभी सँभल सकता था। वह अब के यहाँ नहीं जायगा । वह उससे दूर और अपने पाप को पश्चात्ताप की अग्नि में डालेगा। साथ ही वह अपने-आपसे रहा था। उसके शरीर का एक-एक अंग रहा था। उसे अपने प्रण पर विश्वास नहीं रहा था। फिर भी वह सामने बिछी हुई धीमे-धीमे घूसे लगाकर अपने सद्यः प्रण का बाना ओढ़ा रहा था। लेकिन हरेक घूसे के उसकी प्रसुप्त भावनाएँ एक ओर गंभीर होती रही थीं और दूसरी ओर उसकी ग्रंथियाँ उसे अशक्त होती प्रतीत हो रही थीं।

तो वह आज नहीं जायगा। आज ही नहीं कभी नहीं जायगा। इस प्रण को अपने हृदय मज़बूती के साथ उसने बाँध लिया था। होने पर भी वह वारंवार लिली के बारे में रहा था। यही नहीं, वह घड़ी को बार-बार रहा था। उसकी सुइयों की चाल न-जाने क्या उससे कह रही थीं। ज्यों-ज्यों घड़ी समय काटती जा रही थी, त्यों-त्यों वह अपने प्रण की मज़बूती के संबंध में कमज़ोर होता जा रहा और, सचमुच घड़ी ने ज्यों ही अपने



सांध्यकाल को निमंत्रण दिया, त्यों ही लारेंस बिलकुल कमज़ोर हो गया। उसने अपने को ड्रेस कर लिया। निस्संदेह ड्रेस करते समय उसके हृदय के अंतर्गत भावों का उत्थान और पतन हो रहा था। लेकिन वह विवश हो गया था। मोहब्बत बुरी बला है। और, जो मोहब्बत विजय का रूप-धारण करने जा रही हो, उसके संबंध में क्या कहा जाय। कमज़ोरी ने उसे बिलकुल दबोच लिया था। वह घर से चल दिया।

मार्ग में वह लौट आने की सोचता रहा, किन्तु वह लौटा नहीं। उसके हर क़दम के साथ निर्बलता की लड़ियाँ बढ़ती गईं और अंत में जब वह लिली के नेत्रों के बिलकुल सम्मुख पहुँच गया, तब तो यह लड़ियाँ असंख्य के रूप में हो गईं।

लिली अकेली थी, विलियम क हीं गया था। वह लारेंस का इन्तज़ार कर रही थी। उसको देखते ही उसकी इच्छा प्रफुल्लित हो गई। उसके मुख पर हास्य की सुनहरी रेखा दौड़ गई, होठों पर मुस्कराहट छा गई। उसने हँसते हुए कहा—"प्यारे।"

लारेंस लिली को देखते ही अपने प्रण को भूल गया। उसके हाथ लिली के कंधों पर आ गये और पलों में ही दोनों के गर्म-गर्म होठ एक दूसरे के होठों से लग गये। आलिंगन के बोझ से दोनों का शरीर दबने लगा। लिली मतवाली हो गई। वासना ने दोनों की आँखों को अंधा कर दिया। दोनों अंदर ही अंदर अपनी कमज़ोरी को महसूस करते रहे, पर चुम्बनों और आलिंगनों की भयंकर आग ने इस कमज़ोरी को भून डाला। इसका परिणाम क्या हुआ? वे चुम्बनों और आलिंगनों से आगे बढ़ने के लिए तैयार हो गये। वासना अपने इंगितों द्वारा उन्हें पाप के विशाल कुंड की ओर ले जाने लगी। पतन ने उनका आलिंगन करने के लिए अपनी बाँहें पसार दीं और उस कमरे की चारों दीवारों ने अदृश्य पक्ष द्वारों को खोल दिया।

लारेंस इस समय बिलकुल बह गया था। वह पाप से अमिट आलिंगन स्थापित करने के लिए तैयार भी हो गया था। किन्तु......इसी समय जब उसके चुम्बन और आलिंगनों के बीजों पर पाप के घृणित पौदे का अंकुर जमने जा रहा था, वह यकायक रुक गया।

विलियम अपनी बाइबिल को मेज़ पर खुला ही छोड़ गया था। लारेंस के नेत्र घोर पाप करने से पहले अनायास ही उस ओर चले गये। उसके हृदय में महात्मा ईसा जागे; क्योंकि बाइबिल का वह बचपन से पाठ किया करता था। जिन कमज़ोरियों के संबंध में वह लिली का चुम्बन और आलिंगन लेते समय बिलकुल भूल गया था, वह इस समय बाइबिल को देखते ही फिर जाग गई थीं। वह रुक गया। फिसला नहीं। मायूसी और संजीदगी उसके मुख पर दौड़ गई। वह लिली के अंग को छोड़ पासवाली कुर्सी पर जाकर बैठ गया। लिली उसकी इस दशा को कुछ समझ न पाई। वह बहुत शर्मा गई। उसने अपने अंग के नग्न भाग को कपड़े की आड़ में छिपाते हुए कहा—"क्या मुझसे घृणा करते हो?"

लारेंस ने कहा—"नहीं, मैं इस समय अपने ही से घृणा कर रहा हूँ। मेरा अंग-अंग मुझे कोस रहा है। लिली, बहुत अच्छा हुआ हम दोनों उस पाप के समुद्र में नहीं उतरे, जो अपनी बाँहें पसार-कर हमें-तुम्हें आजन्म के लिए डुबा देना चाह रहा था। यही क्यों, लिली मुझे तुम्हारा चुम्बन भी नहीं लेना चाहिए था? मैंने बड़ा भारी पाप किया है। समाज के साथ दग़ा की है। विलियम को धोका दिया है। क्या मुझे ऐसा करना चाहिए था? क्या परस्त्री का मुझे इस नियत के साथ चुम्बन लेना चाहिए। लिली, मैं इस पाप का प्रायश्चित्त करूँगा। मेज़ पर पड़ी बाइबिल मेरी आँखें खोल रही है। लिली, मुझे क्षमा करो और अपने इन कपोलों को पश्चात्ताप की अग्नि में धो डालो। मैं जा रहा हूँ। मैं यहाँ अधिक नहीं ठहरूँगा, नहीं तो पागल हो जाऊँगा।"



लारेंस इसके बाद चला गया। लिली वहीं बैठी न-जाने क्या-क्या सोचती रही।

× × ×

स्त्री और पुरुष में बहुत अंतर है। स्त्री पाप की ओर कम बढ़ती है, पर जब बढ़ती है, तब उसे रोकना असंभव-सा हो जाता है। रोके जाने पर तो वह पागल हो जाती है। उसका कमज़ोर मस्तिष्क न-जाने क्या-क्या सोचने लगता है, और इस रुकने से सहमत होने पर तो वह और भी उतावली हो जाती है, क्योंकि उसकी कमज़ोरी प्रकट हो जाती है। यह प्रकटीकरण उसे लजीला बना देता है। उसकी कमज़ोरी का नग्न नृत्य दिखाकर उसे घृणा के सुपुर्द कर देता है। वह स्वयं अपने ही से घृणा करने लगती है। उसका समस्त शरीर उसे कोसने लगता है। आत्मा अवयवों की चकोटी मारने लगती और स्त्री विकट से विकट प्रायश्चित्त के लिए तत्पर हो जाती है।

लिली की भी इस समय यही दशा थी। लारेंस को उसका कमरा छोड़े दो ही पल हुए थे, पर इतने ही समय में उसकी मानसिक पुस्तक ने न-जाने कितने पृष्ठ रँग डाले थे। लारेंस के व्याख्यान ने उसकी आँखें खोल दी थीं। उसकी दुर्बलता दग़ा में परिवर्तित हो गई थी और वह दग़ा उसे बार-बार धिक्कार रही थी।

ओफ़! विलियम उससे कितनी मोहब्बत करता है। वह उस पर जी-जान से क़ुर्बान है। शायद ही उसकी कोई ऐसी इच्छा हो, जिसे उसने पूरा न किया हो, फिर भी वह उससे दग़ा करने जा रही थी? नहीं, उसने तो उसे दग़ा दे ही दी थी? यदि लारेंस की आँखें न खुल गई होतीं तो दग़ा अपनी कहानी पूर्ण कर लेती? और फिर दूसरे को चुम्बन देने में क्या उसने विलियम को धोका नहीं दिया? क्या लारेंस को आलिंगन करते समय उसने विलियम के सच्चे प्रेम को चोट नहीं पहुँचाई? क्या उसे ऐसा चाहिए था? चुम्बन और आलिंगन से भी क्या? वह तो इससे भी आगे बढ़ गई थी। उसने तो पाप देखने के अपने अंगों को पसार दिया था? यथार्थ उसका पाप वहीं परिपूर्ण हो गया था। पति, समाज और धर्म के साथ उसने दग़ा की थी? क्या इसका उसे प्रायश्चित्त नहीं करना चाहिए? उसे लारेंस का प्रण याद आ रहा था। लारेंस कह गया था कि मैं प्रायश्चित्त करूँगा। वह भी प्रायश्चित्त करेगी और उसका प्रायश्चित्त लारेंस के प्रायश्चित्त से कहीं अधिक कठोर होगा, नहीं। वह अपने पति से पाप की क्षमा माँगेगी। उससे बाइबिल का एक-एक पृष्ठ यही कहता है। पर उसे पता न था कि विलियम से कह लेने के लिए कितने साहस की आवश्यकता है।

लिली इन्हीं विचारों को लिये कमरे में बैठी थी। दूर से वह पत्थर की मूर्ति मालूम हो रही थी। बिजली की रोशनी उसके गुलाबी गालों पर पड़ रही थी। अनायास ही में जगी पवित्रता ने उसे और सुन्दर बना दिया था। वह स्वर्ग की रानी लग रही थी। इसी समय विलियम ने उसके कमरे में प्रवेश किया। उसके रूप को देखकर विलियम के होंठ फड़क उठे और उसने उसका आलिंगन कर चुम्बन ले लिया।

पर लिली मन ही मन में रो पड़ी। वह अपना अपवित्र शरीर को विलियम के आगे नहीं रखना चाहती थी। इस चुम्बन के साथ उसके जी में आया कि वह अपने पापों की अपने पति से क्षमा माँग ले। वह काँप गई। तुम्र से तुम्र पाप में जितनी कँपकँपी बसी हुई है, उतनी शायद बड़े से बड़े भूकंप में भी नहीं होगी। उसके साहस के साथ बात जिह्वा तक आकर रुक गई। उसकी मुखाकृति से विलियम समझ गया कि वह कुछ कहना चाह रही है। उसने कहा—"क्या कह रही हो? सुस्त क्यों हो? क्या लारेंस नहीं आये?"

लारेंस का नाम सुनते ही पाप उस पर सवार हो गया। वह पाप के संबंध में कुछ न कह



बोली—"आज इतनी रात कहाँ लगा दी ?"

विलियम वैसे तो बहुत ही गंभीर था, पर लिली के साथ वह बहुत हँसी किया करता था। उसने हँसते हुए कहा—"मिस टर्नर के यहाँ गया था। न-जाने क्यों मैं उससे प्रेम करने लगा हूँ।" इसके बाद वह ठहाका मारकर हँसने लगा। यदि और कोई समय होता तो शायद लिली भी इस बात पर खूब ज़ोर से हँसती; किन्तु इस समय उसके होठों ने मुस्कराहट की क्षीण रेखा का ही स्वागत किया। और उसी क्षीण रेखा के आवेश में या यों कहूँ कि कुछ घंटे पहले किये हुए पाप के आवेश में वह कह उठी—"यदि मैं भी ऐसा करूँ तो आप क्या सज़ा दें ?"

यद्यपि बात सच थी, पर विलियम ने अपने मज़ाक़ का इसे जवाब समझा। उसने हँसते हुए कहा—"मैं तुम्हें एकदम शूट कर दूँ।"

न-जाने लिली की इस समय क्या दशा हो रही थी। पाप उसके सिर पर आकर कुछ कहना चाह रहा था। एक ओर वह अपनी जिह्वा को इस संबंध में बन्द ही रखना चाहती थी और दूसरी ओर पाप कुन्जी बनकर उसकी जिह्वा को खोलना चाह रहा था। यदि उसे इस संबंध में दो दिन का भी विश्राम मिल जाता तो वह अवश्य अपने पाप पर क़ाबू पा जाती, पर इस समय पाप उसे ग़ुलाम बना रहा था। पति के मुख से शूट का शब्द सुनते ही लिली अलमारी में से पिस्तौल निकाल लाई और उसको विलियम के हाथ में रखकर कहने लगी—"विलियम, तुम मुझे शूट कर दो।" इतना कह लेने के बाद वह रोने लगी। पलँग पर लेट गई। पाप मुँह से फूटने को तत्पर हो गया।

लिली की इस दशा को देखकर विलियम के होश-हवास उड़ गये। उसने उसका सिर जाँघों पर रख लिया। उसने कहा—"लिली, मैं तुमसे हँसी कर रहा था। सिवा तुम्हारे मैं किसी से प्रेम नहीं करता। तुम बुरा क्यों मान गईं !"

विलियम की इस बात ने लिली के पाप में और बोलने की शक्ति भर दी। उसने अपनी आँखों को विलियम के चेहरे पर गड़ाते हुए कहा—"नहीं प्यारे विलियम ! मैं सच कहती हूँ। मैंने ऐसा पाप किया है। मुझे तुम शूट कर दो। नहीं तो मैं अपने आप शूट कर लूँगी"

इसके बाद लिली न-जाने क्या-क्या बकती रही और धीरे-धीरे आधी बेहोशी की-सी हालत में उसने अपने पाप को कह डाला। उसके बाद वह विलियम के पैरों को पकड़कर रोने लगी।

विलियम सब सुनकर गुम-सुम-सा हो गया। यदि और कोई होता तो न-जाने क्या कर डालता, पर विलियम गंभीर प्रकृति का दार्शनिक था। गंभीर स्थितियों में तो उसका दार्शनिक जाग पड़ता था। अतः इस समय भी वह जाग गया था। वह न-जाने क्या-क्या सोच रहा था। लिली का अपराध उसे साफ़ नज़र आ रहा था। पर वह सोच रहा था अपने पुराने पापों के संबंध में, जो उसने लिली से छिपकर किये थे। लिली का पाप उन पापों से गंभीर न था। लिली तो केवल 'चुम्बन' ही पर पागल हो गई थी, पर उसने तो इस पाप से भी गंभीर पाप किये थे। फिर लिली ने तो अपना ज़रा-सा पाप उससे कह दिया था। वह सोच रहा था कि क्या लिली इस पाप को कह लेने से पवित्र नहीं हो गई ? क्या कमज़ोरी मनुष्य से नहीं होती और फिर लिली तो क्षमा माँग रही थी। अपने पाप को मंज़ूर कर रही थी। क्या यह मंज़ूरी नहीं बता रही है कि लिली बर्फ़ की नाईं पवित्र है।

थोड़ी देर तक वह चुप रहा था। उसके बाद उस कमरे की दीवारों ने सुना—"लिली, तुम पवित्र हो" और कुछ देर बाद वे दीवारें मधुर चुम्बनों से अठखेलियाँ करने लगीं।

इन चुम्बनों और दो घंटे पहलेवाले चुम्बनों में बड़ा अंतर था।

"लोचन मोरपंख-सम लेखा"

श्रीचंद्रबली पांडेय एम्० ए०

साहित्यबंधु पंडित रामनरेश त्रिपाठीजी ने मौलिक मुग्धता की उत्कट उत्कंठा से बुद्धि एवं विवेक को परास्त कर रामचरित-मानस को सटीक कर ही दिया। मानस की इस सटीकता में कुछ महानुभावों का भी आर्थिक सहयोग है। अतएव वे भी त्रिपाठीजी के साथ ही धन्यवाद के पात्र हैं। त्रिपाठीजी के हम इस-लिए आभारी हैं कि उन्होंने कृपा कर हमारे सामने एक ऐसी टीका रख दी, जो वस्तुतः उन्हीं के कथनानुसार "सरल हिंदी में अनुवाद है।" यदि वे इस ढंग की अनुवादनुमा टीका हमारे सामने न रखते तो हम किस प्रकार समझ पाते कि टीकाकारों तथा प्रकाशकों के हथकंडे क्या हैं और किस प्रकार भोली - भाली जनता अपनी मुट्ठी में कर ली जाती है। टीका के साथ ही त्रिपाठीजी ने तुलसीदास का जीवन-चरित भी जोड़ दिया है और कहा है "यह जीवन-चरित उनके अब तक के जीवन-चरितों से बिलकुल भिन्न है। मैंने इसके लिए काफ़ी दौड़-धूप की है और यथासंभव सच्ची बातें संग्रह करने का... किया है।...आशा है, विद्वज्जन इस पर... करेंगे।...जो विद्वज्जन उन्हें (अशुद्धियों... त्रुटियों को) पाकर मुझे सूचित करेंगे, मैं... बहुत ही उपकार मानूँगा।" यदि यह ठीक... त्रिपाठीजी से हमें निवेदन कर देना है कि... उपकृत होने से कहीं अच्छा यह होगा कि... उनकी बानगी देखकर उस भारी-भरकम... को शुद्ध कर दें, जो तुलसी-साहित्य का के... आपकी अमर कीर्ति का नाशक है। रही... दौड़-धूप' की बात। उसके विषय में त्रि... को समझ रखना चाहिए कि 'काफ़ी दौड़-... वोट मिल सकते हैं, पर किसी तथ्य का सा... कदापि नहीं हो सकता। उसके लिए श्रवण... और निदिध्यासन की भी आवश्यकता हो... 'सच्ची बातों के संग्रह' मात्र से जीवन-चरि... निर्माण नहीं हो जाता। उसके लिए बुद्धि... विवेक की आवश्यकता होती है, किसी... झपक या कूद-फाँद की नहीं। पाठकों को... न होगा कि त्रिपाठीजी की 'काफ़ी दौड़-धूप'... अर्थ है—

"अक्टोबर १९३५ के पहले सप्ताह में मैं... के लिए घर से निकल ही पड़ा। भिन्न... स्थानों में होता हुआ ता० २० अक्टोबर... सोरों पहुँचा।" त्रिपाठीजी-जैसे साहित्य...

१. त्रिपाठीजी का कथन है "उन्होंने (कुमार कोशलेन्द्रप्रताप साही ने) कुछ आर्थिक सहायता भी दी।....तदुपरान्त सरल टीका सहित मानस के प्रचार के लिए स्व० सेठ रामवल्लभजी नेवटिया (फ़तहपुर, जयपुर निवासी) ने भी मुझे आर्थिक सहायता दी।"



व्यक्ति के लिए यह 'काफ़ी दौड़-धूप' भले ही हो, पर सच्चे संशोधकों के लिए तो यह प्रस्थान भी नहीं है। त्रिपाठीजी का वृत्त-संग्रह न तो जीवन-चरित है और न जीवन-चरित के लिए व्यवस्थित सामग्री। हाँ, परस्पर-विरोधी बातों का जमघट अवश्य है। यदि विश्वास न हो तो पृष्ठ १७ पर दृष्टि डालिए और "राम के भक्त होकर वे (तुलसीदास) राम की राजधानी छोड़कर काशी क्यों आये, इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता।" तथा "काशी में शरीर छोड़ने ही की लालसा में वे आये थे।" पर विचार कीजिए और देखिए कि आपका कथन क्या है। भूल मत जाइए कि "जीवे की न लालसा दयालु महादेव मोहिं, मालुम है तोहिं मरिबोई को रहतु हैं।" स्वयं तुलसीदास का कथन है। 'वार्ता' को त्रिपाठीजी ने अमोघ अस्त्र माना है और गोकुलनाथजी को उसका लेखक प्रमाणित किया है। पर जानते इतना भी नहीं कि उनका निश्चित समय क्या है। आप कहते हैं "गोकुलनाथजी का जन्म सं० १६०८ में हुआ था। वे १६९८ तक जीवित रहे।" (पृष्ठ ३६) ये ही त्रिपाठीजी इन्हीं गोकुलनाथजी के विषय में इसी मुँह से फिर फ़रमाते हैं कि "गोकुलनाथजी का जन्म और मरण सं० १६०८ और १६६० में माना जाता है।" (पृष्ठ ६२) त्रिपाठीजी चमत्कार से चिढ़ते हैं, फिर भी इस चमत्कार के क़ायल हैं कि गोकुलनाथजी सं० १६६० में मर भी गये और १६९८ तक जीवित भी रहे। त्रिपाठीजी के तिगड़म को भी देख लीजिए। (१) "टोडरमल के वंशज प्रत्येक वर्ष श्रावण शुक्ला सप्तमी को तुलसीदास की पुण्यतिथि पर सीधा (आटा) दिया करते हैं।" (पृष्ठ ९७)(२) "गोस्वामीजी के अखाड़े में और टोडरमल के वंशज चौधरी लालबहादुरसिंह के यहाँ भी श्रावण शुक्ला तीज को तुलसीदास की निधन-तिथि मनाई जाती है।" (पृष्ठ ११३।) (३) "लोग 'सावन स्यामा तीज' के बदले उसे (सावन शुक्ला सप्तमी) कहने लगे।" (पृष्ठ ११३) इस प्रकार एक ही तिथि 'सावन शुक्ला सप्तमी', 'सावन शुक्ला तीज' तथा 'सावन स्यामा तीज'[1] के रूप में हमारे सामने आ गई। अब हम इस त्रयी अथवा त्रिपाठीजी के तिगड़म का अर्थ क्या समझें।

यह तो देख लिया कि 'बिलकुल भिन्न' का रहस्य क्या है और किस प्रकार त्रिपाठीजी की खोज ने सत्य का प्रकाशन कर जनता को भ्रम में डाल दिया। अब देखना यह चाहिए कि त्रिपाठीजी का 'प्रकाश' कैसा है और किस प्रकार उसका उपयोग किया गया है। त्रिपाठीजी का उल्लास है।

—"अब अतीत के अंधकार में हमें कोई प्रकाश की रेखा दिखाई पड़ती है, तो वह है, 'दो सौ बावन वैष्णवों[2] की वार्ता'। मुझे आश्चर्य है कि तुलसीदास के चरित-लेखकों ने अब तक 'वार्ता' की ऐसी उपेक्षा की। इसे हम उनकी विचार-परतन्त्रता के सिवा और क्या कहें।" (पृष्ठ ६५) 'क्या कहें' इसका उत्तर स्वयं आपको देना पड़ेगा। पहले आप डटकर अपने 'प्रकाश' की साधुता पर विचार तो कीजिए और फिर देखिए कि आप कितने परतन्त्र पानी में हैं। ज़रा 'लाड़बाई तथा धारबाई' की वार्ता पर दृष्टि तो डालिए। आपकी आँखों के सामने अत्याचारी औरंगज़ेब का रूप

---

१. 'सावन स्यामा तीज' ही वास्तव में वह तिथि है, जिस दिन सीधा दिया जाता है। त्रिपाठीजी त्रिपाठी हैं, ब्राह्मण हैं पर जानते इतना भी नहीं कि 'सीधा' का अर्थ 'आटा' नहीं होता। 'सीधा' का सीधा-सादा टकसाली मतलब है भोजन की पूरी सामग्री, जिसमें चावल, दाल, आटा आदि सभी कुछ शामिल है।

२. त्रिपाठीजी पुस्तक का शुद्ध नाम तक नहीं जानते और वैष्णवन को वैष्णवों लिख मारते हैं।

आ गया होगा। आपने देख लिया होगा—

"फेर साठ वर्ष पीछे औरंगज़ेब बादशाह की जुलमी के समय में म्लेच्छ लोक लूँटबे कुँ आये तब श्रीगोकुल में सुँ सब लोग भाग गये।" क्या आपको इस बात का पता है कि 'औरंगज़ेब की यह जुलमी' सं० १७२६ के लगभग हुई थी और आपके गोकुलनाथ, जिन्हें आप 'वार्ता' का लेखक मानते हैं, सं० १६६० में गोलोकवासी हो गये थे। यदि संतोष न हुआ हो तो "गंगाबाई क्षत्राणी" की वार्ता पर ध्यान दीजिए। आपको अवगत होगा कि "सोले सें अट्ठाईश में विनको जन्म हतो और सत्रें सें छत्तीश वर्ष सूधी वे भूतल पर रही हती। एक सौ आठ वर्ष सूधी रही हती और मेवाड़ में श्रीनाथजी के संग आई हती।"

माना कि कार्य की अधिकता तथा साहित्य-जीवी होने के कारण त्रिपाठीजी ने 'वार्ता' का अवलोकन नहीं किया और किसी प्रलोभन या प्रमाद में पड़कर चरितकारों को स्वभावतः ग़ुलाम भी कह दिया। अतएव इसमें उनका कोई दोष नहीं। ठीक है। ग़लती इंसान से ही होती है। पर कृपा कर यह तो बताइए कि त्रिपाठीजी ने किस बूते पर लिख दिया कि—

"वार्ता की रचना उस समय की है, जब तुलसी-दास जीवित थे, और उसमें नंददास से तुलसी-दास की भेंट का वर्णन एक प्रत्यक्षदर्शी की तरह किया गया है। उसे मिथ्या क्या इसलिए [माना] चाहिए कि तुलसीदास कान्यकुब्ज या सर[यूपारी] की मंडली से निकल जायँगे और सनाढ्[य] जायँगे?" (पृष्ठ ७५) जी नहीं, हरगिज़ [नहीं] बल्कि इसलिए मानना चाहिए कि वह मि[थ्या है] और आप ही के मत में "चौरासी और [दो सौ] बावन वैष्णवों की वार्ता में 'श्रीगुसाईंजी महा[राज] के दैवी चमत्कार बटोरे गये हैं" (पृष्ठ ४६) [ये] लोग "स्वयं चमत्कार रचकर...महिमा को [बढ़ाया] करते रहते हैं। उनको सत्य और मिथ्या [की] परवा नहीं होती।"

त्रिपाठीजी की सनक और भी आगे बढ़[ती] है और आप आँख मूँदकर कहने ल[गते हैं]— "यहाँ हमें 'वार्ता' की प्रामाणिकता पर [थोड़ा] और विचार कर लेना है। 'वार्ता' के [गोकुल]नाथजी द्वारा रचित होने के विरुद्ध [यह] दलील दी जाती है कि उसमें गोकुलनाथ[जी का] भी हाल लिखा गया है।...पर गोकुलनाथ[जी] तो एक गद्दीधर थे; एक प्रमुख वैष्णव [थे; दो] सौ बावन शिष्यों में थे; वार्ता में उनका [नाम] तो आना ही चाहिए था। क्या एक वैष्णव की हैसियत से अपना वर्णन वे स्वयं नहीं [कर] सकते थे?" (पृष्ठ ७५) आदि न-जाने क्या [क्या] कह गये हैं और अभी तक जान इतना [भी न] सके कि श्रीगोकुलनाथजी श्रीगुसाईंजी [के पुत्र] थे। उनकी गणना दो सौ बावन वैष्णवों [में नहीं] होती और फलतः 'दो सौ बावन वैष्णव[न की] वार्ता' में उनकी कोई निजी वार्ता भी [नहीं]। श्रीगुसाईंजी के पुत्र किस रूप में प्रति[ष्ठित] [थे,] इसको भी उसी नंददास की वार्ता में [देखिए] जिसका पूरा पता त्रिपाठीजी को नहीं [है और] जिसकी अवहेलना नंददास तथा तुलसी[दास की] साक्षी प्रसंग में असंभव है।

"जब तुलसीदासजी हूँ संग-संग आये तब

---

१. त्रिपाठीजी भी तुलसीदास का निधन सं० १६८० के लगभग मानते हैं। गोकुलनाथजी सं० १६६० (या १६६८?) तक जीवित रहे। 'वार्ता' को यदि उन्हीं की रचना मान लें तो भी त्रिपाठीजी का यह दावा ठीक नहीं उतरता। पर हम देख चुके हैं कि 'वार्ता' में सं० १७३६ का स्पष्ट उल्लेख है, जिससे सिद्ध होता है कि 'वार्ता' का निर्माण तुलसीदास के निधन के कम-से-कम (१७३६-१६८०)=५६ वर्ष बाद हुआ।



के नंददासजी नें श्रीगुसाईंजी के दर्शन करे। साष्टांग दंडवत करी और तुलसीदासजी नें दंडवत करी नहीं और नंददासजी कुँ तुलसीदासजी नें कही कें जैसें दर्शन तुमने वहाँ (श्रीगोवर्द्धनजी में) कराये वैसे ही यहाँ कराओ। जब नंददासजी ने श्रीगुसाईंजी सों वीनती करी ये मेरे भाई तुलसीदास हैं। श्रीरामचन्द्रजी विना और कुँ नहीं नमें हैं तव श्रीगुसाईंजी ने कही कें तुलसीदासजी बैठो। जव श्रीगुसाईंजी के पाँचमें पुत्र श्रीरघुनाथजी वहाँ ठाढ़े हुते। और विन दिनन में श्रीरघुनाथजी को विवाह भयो हतो। जव श्रीगुसाईंजी ने कही रघुनाथजी तुम्हारे सेवक आये हैं, इन कुँ दर्शन देवो। तव श्रीरघुनाथलालजी नें तथा जानकीवहूजी नें श्रीरामचन्द्रजी को तथा श्रीजानकीजी को स्वरूप धरके दर्शन दिये। साक्षात् दर्शन भये। तव तुलसीदासजी नें साष्टांग दंडवत करी।"

विचार कर लेने की बात है कि जिन गोकुलनाथजी के अनुज श्रीरामचन्द्रजी के स्वरूप हैं उन्हीं श्रीगोकुलनाथजी की गणना सामान्य शिष्यों में कैसे हो सकती थी। सच बात तो यह है कि पंडित रामनरेशजी त्रिपाठी को 'वार्ता' का कुछ भी पता नहीं है और वे किसी के अंधभक्त होकर "आँधर कुकुर बतासै भूँकै" को अक्षरशः चरितार्थ करते हैं और इतने पर भी तुर्रा यह कि चरितलेखकों ने ग्रियर्सन साहब की गुलामी के कारण 'वार्ता' की उपेक्षा की है। तभी तो आप गर्व के साथ झल्लाते हैं -

"यदि किसी को कभी 'वार्ता' की पीड़ा कुछ उठी, तो उसने यह कहकर टाल दिया कि वह सत्य नहीं है।"

भला हो त्रिपाठीजी का कि उनकी पीड़ा ने वार्ता का पक्ष ग्रहण कर तुलसीदास के 'बिलकुल भिन्न' चरित को जन्म दिया और त्रिपाठीजी को सफल साहित्यज्ञ बना दिया, नहीं तो लोग उनको साहित्यजीवी मात्र समझते।

त्रिपाठीजी 'वार्ता' का दर्शन तो स्वप्न में भी नहीं करते, परन्तु अपनी तर्कबंधुता के नाते तर्क ख़ूब कर बैठते हैं। जरा उनका तर्क तो देखिए—"एक प्रश्न यह भी उठाया जाता है कि 'वार्ता' में 'सनौडिया ब्राह्मण'वाला वाक्य नहीं है। पर अब किसी ख़ास संस्करण में न हो तो यह कैसे स्वीकार कर लिया जाय कि वह किसी भी संस्करण में न होगा। 'रासपंचाध्यायी' की भूमिका में स्व० बाबू राधाकृष्णदास ने नन्ददास का जो परिचय 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' से लेकर उसका हिंदी-अनुवाद करके दिया है, उसका पहला वाक्य यह है 'नन्ददास सनौडिया ब्राह्मण तुलसीदास के छोटे भाई पूर्व देश के रहनेवाले थे।' इससे यह तो निश्चित ही है कि 'वार्ता' की जो प्रति स्व० बाबू राधाकृष्णदासजी के सामने थी, उसमें यह वाक्य था।" (पृष्ठ ७५)

इससे इतना तो स्पष्ट है कि स्वतः त्रिपाठीजी को उक्त अंश किसी 'वार्ता' में नसीब न हुआ। इसी लिए उन्हें इस द्राविड-प्राणायाम की आवश्यकता पड़ी। त्रिपाठीजी को शायद यह आशंका हुई कि कहीं लोग ताड़ न जायँ कि त्रिपाठीजी 'वार्ता' से अनभिज्ञ हैं और यों ही दून की ले रहे हैं, अतएव आपने ठाट से लिख दिया—"अतएव 'वार्ता' की जो प्राचीन से प्राचीन हस्तलिखित

१. त्रिपाठीजी को भूलना न होगा कि 'मूल गोसाईंचरित' के लेखक ने कृष्ण-भक्तों को बुढ़ापे में केवल दौड़ाया है, परन्तु 'वार्ताकार' ने तो तुलसी के उपास्य रामचन्द्रजी को श्रीबिट्ठल स्वामी का बेटा बना दिया है। विचारने की बात है कि गप्प की दौड़ में कौन आगे बढ़ गया है। त्रिपाठीजी 'मूल' को मिथ्या और 'वार्ता' को अक्षरशः सत्य समझते हैं और तिस पर भी तुर्रा यह कि चमत्कार से चिढ़ते हैं।

प्रति श्रीनाथद्वारे में और श्रीगट्टूलाल के पुस्तकालय (बम्बई) में है, उसे ही प्रमाण मानना चाहिए।" (पृष्ठ ७६) कितने आश्चर्य की बात है कि ऐसे विवादग्रस्त और आवश्यक प्रश्न को त्रिपाठीजी हवाले से हल कर देना चाहते हैं। उसको न-जाने क्यों जनता के सामने नहीं रखते। झाँसा-पट्टी से दुनिया के बहुत-से काम चलते हैं तो साहित्य-समीक्षण का काम उससे क्यों न चलेगा। उचित तो यह था कि उसी प्रामाणिक प्राचीन प्रति से नन्ददास की वार्ता को प्रकट करते और हमारे धन्यवाद तथा सत्यनिष्ठा के पात्र बनते। पर आपने किसी कारण-विशेषवश ऐसा न कर न-ज़ाने किस प्रति का ऐसा अवतरण दिया, जो सन्दिग्ध है और जिसका प्रथम वाक्य वह नहीं है, जिसका उल्लेख स्व० राधाकृष्णदासजी करते हैं। व्यर्थ के प्रपंचों में न पड़ हमें यह स्पष्ट दिखा देना है कि 'वार्ता' के उक्त अवतरण त्रिपाठीजी के विपक्ष में साक्षी देते हैं और समीक्षकों की भरी मंडली में उनका परिहास करते हैं।

(१) "सो वे नन्ददास पूर्व रहते, सो वे दोय भाई हते। सो बड़े भाई तुलसीदास हते और छोटे भाई नन्ददास हते, सो वे नन्ददास पढ़े बहुत हते।

(२) नन्ददास तुलसीदास के छोटे भाई हते। सो विनकूँ नाचतमाशा देखबे को तथा गान सुनबे का शौंक बहुत हतो। सो वा देश में सूँ एक संग द्वारका जात हतो। जब विननें तुलसीदास सूँ पूछी, तब तुलसीदासजी श्रीरामचन्द्रजी के अनन्य भक्त हते। जासूँ विननें द्वारका जायबे की नाहीं कही। सो मथुरा सोधे गये। मथुरा में वा संग कूँ बहुत दिन लगे सो नन्ददास संग कूँ छोड़कर चल दीने। × × ×

(३) सो तब कितनेक दिन में वह संग [illegible] में आन पहुँच्यो, तब नन्ददास के बड़े तुलसीदास हते, सो तिनने सुनी, जो [illegible] श्रीमथुराजी को आयो है। तब तुलसीदास [illegible] संग में आयके पूछ्यो। जो वहाँ श्रीम[illegible] श्रीगोकुलजी में नन्ददास करिके एक ब्राह्मण [illegible] सों गयो है। सो पहले वहाँ सुन्यो हतो, सो [illegible] ने देख्यो होय तो कहौ। तब एक [illegible] तुलसीदास सों कही, जो एक सनौडिया [illegible] है, सो ताको नाम नन्ददास है, सो वह [illegible] बहुत है, सो वह नन्ददास तो श्रीगुसाईं[illegible] सेवक भयो है।

(४) सो नन्ददासजी के बड़े भाई तु[illegible] दासजी काशी में रहते हुते। सो विनने [illegible] नन्ददासजी श्रीगुसाईंजी के सेवक भये [illegible] तुलसीदास के मन में ये आई कि नन्ददास[illegible] पतिव्रता धर्म छोड़ दियो है आपने तो श्री[illegible] पती हुते। सो तुलसीदास ने ये विचार [illegible] दासजी कुँ पत्र लिख्यो।"

प्रसंगवश हम यहाँ इतना कह देना [illegible] नहीं समझते कि उक्त अवतरण के प्रथम [illegible] तृतीय अंश प्रक्षिप्त[2] प्रतीत होते हैं और [illegible] प्रतियों में मिलते भी नहीं। वार्ता में [illegible] अनुपयोगिता प्रत्यक्ष है। जो हो, देखना [illegible] है कि त्रिपाठीजी ने इससे जो निष्कर्ष नि[illegible] है, वह कहाँ तक साधु है।

सर्वप्रथम 'सो वे नन्ददास पूर्व रहते' [illegible] लीजिए। पूर्व का तात्पर्य त्रिपाठीजी ने [illegible] समझा है, यह नहीं कह सकते; पर इतना [illegible] है कि राधाकृष्णदासजी ने इसे 'पूर्वदेश' [illegible] है। 'वार्ता' के "सो तब कितनेक दिन में [illegible]

---

१. एक ही हस्तलिखित प्रति दोनों स्थानों में रक्खी गई है। यह भी एक चमत्कार है!

२. क्षेपक के संबंध में हम स्वतन्त्र [illegible] अन्यत्र विचार करेंगे और दिखा देंगे कि [illegible] में तुलसीदास को घसीट लाने का रहस्य [illegible]

काशी में आन पहुँच्यो...तब तुलसीदास ने वा संग में आयके पूछ्यो । जो वहाँ श्रीमथुराजी श्रीगोकुलजी में नन्ददास करिके एक ब्राह्मण यहाँ सों गयो है" आदि वाक्यों से अवगत होता है कि नन्ददास काशी से मथुरा गये थे । अब यदि नन्ददास पूर्व देश के निवासी थे तो उनका जन्म-स्थान सोरों किस प्रकार सिद्ध होगा । "सो वे दोय भाई हते" पर भी थोड़ा विचार कर लेना चाहिए । इसमें तो संदेह नहीं कि लेखक का तात्पर्य सगे अथवा सहोदर भाई से है, चचेरे या गुरुभाई से नहीं । 'दोय भाई' का प्रयोग ही इसका पुष्ट प्रमाण है । 'वार्ता' में आगे इसी का व्याख्यान है कि उनमें कौन बड़ा और कौन छोटा है । त्रिपाठीजी ने आगे चलकर यह भी लिखा है कि "तुलसीदास के दो भाई और थे, जिनके नाम दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में आये हैं ।" (पृष्ठ ६१) यदि यह ठीक है तो इससे और भी पुष्ट हो जाता है कि 'वार्ता' में सहोदर भाई का उल्लेख 'सो वे दोय भाई हते' में किया गया है और अन्य भाइयों का अन्यत्र । इतना ही नहीं, 'वार्ता' खंड ३ में इस बात का निर्देश है कि तुलसीदास नन्ददास की चिन्ता में उसी प्रकार मग्न थे, जिस प्रकार कोई अभिभावक अथवा सगा अपने अनुज के लिए होता है । त्रिपाठीजी ने जिस रूप में तुलसीदास के जीवन-चरित को हमारे सामने पेश किया है, वह 'वार्ता' के जीवन से सर्वथा भिन्न और भ्रमात्मक है । लगे हाथों हम इतना और कह देना चाहते हैं कि तृतीय खंड का विधान 'वार्ता' में इसलिए कर दिया गया है कि उससे नन्ददास अथवा तुलसीदास सनाढ्य सिद्ध हो जायँ । 'वार्ता' के इस खंड का द्वितीय खंड से विरोध पड़ता है । खंड २ में कहा गया है कि "मथुरा में वा संग कूँ बहुत दिन लगे सो नन्ददास संग कूँ छोड़कर चल दीने ।" पर खंड ३ से पता चलता है कि वही संग 'काशी में आन' पहुँचा है जो द्वारका जा रहा था और जिसको मथुरा में छोड़कर नन्ददास आगे बढ़ गये थे । बात यहीं तक नहीं रही । उस संग को मथुरा का संग कहा गया—"जो यह संग श्रीमथुरा-जी को आयो है ।" इस प्रकार भली भाँति विश्लेषण करने से खंड ३ का जाल स्पष्ट हो जाता है और किसी प्रपंच का पता भी चल जाता है । फिर कभी हम इसका परितः परिशीलन कर इसका भंडाफोड़ करेंगे और इसकी दुष्टता को प्रकट कर देंगे । यहाँ हम इतना कह संतोष करते हैं कि तुलसीदास के जीवन में वार्ता से जो मदद ली गई है, वह उसके महल को निर्मूल सिद्ध कर देती है और इस बात को स्पष्ट कर देती है कि त्रिपाठीजी वस्तुतः एक साहित्यजीवी मँगनी के खोजक हैं, खोज उनका व्यसन नहीं ।

समीक्षा के क्षेत्र में त्रिपाठीजी का कितना पतन हुआ है, इसे भी देख लें । वार्ता है "सो नन्द-दासजी द्वारका को रस्ता भूल गये सो कुरुक्षेत्र की आडी सीनंदगाम में जाय पहुँचे । सो वहाँ एक साहुकार क्षत्री रहतो हतो । तब नंददासजी वाके घर भिक्षा लेबे गये । वाकी स्त्री को रूप सुन्दर हतो सो नंददासजी देखकर मोहित होय गये ।" इसी के आधार पर त्रिपाठीजी ने कभी लिखा था "२५२ वैष्णवों की वार्ता में लिखा है कि शिष्य होने के पहले ये एक बार द्वारका जा रहे थे, पर राह भूलकर सीनन्द गाँव में पहुँचे । वहाँ एक खत्री की परम सुन्दरी स्त्री पर आसक्त हो गये ।" त्रिपाठीजी अब वह त्रिपाठीजी नहीं रह गये । अब तो वे 'काफ़ी दौड़-धूप' करने-

---

१. पूर्व अथवा पूर्वदेश शब्दों का प्रयोग दिशा-सूचक नहीं कहा जा सकता । वे अवश्य ही स्थानपरक हैं ।

वाले साहित्य के विधाता बन गये। अस्तु, आपको अध्ययन या अवलोकन की आवश्यकता न रही। इलहाम के आधार पर लिख दिया, "उन्होंने (नन्ददास ने) तुलसीदास से द्वारका चलने को कहा। तुलसीदास नहीं गये ; तब नंददास अकेले चले गये। पर फिर वे नहीं लौटे। मथुरा पहुँचकर वे एक क्षत्रिय की सुन्दरी बहू पर आसक्त हो गये।" (पृष्ठ ७६) त्रिपाठीजी अथवा उनके मंडल का कोई व्यक्ति यदि उनकी 'वार्ता' का प्रकाशन कर दे तो संसार का बड़ा उपकार हो। नहीं तो उसके लिए भी 'अलख लखी नहिं जाय' ही कहना पड़ेगा। 'वार्ता' से स्पष्ट है कि नन्ददास ने तुलसीदास से जाने की अनुमति माँगी थी, कुछ जाने का अनुरोध नहीं किया था और 'सीनंदगाम' में सुन्दरी पर आसक्त हुए थे, कुछ मथुरा में नहीं।

'वार्ता' की आड़ में त्रिपाठीजी ने किस प्रकार खुल खेला है, इसका कुछ आभास मिल गया। अब देखना यह चाहिए कि 'आईन अकबरी' का कभी दर्शन भी किया है या यों ही उसका जप करते रहे हैं। आपका दावा है—"बेनीमाधवदास के कथनानुसार यदि तुलसीदास की भेंट दिल्लीपति (अकबर) से हुई होती, तो उसका उल्लेख अवश्य 'आईन-अकबरी' में होता। पर आश्चर्य की बात है कि अबुलफ़ज़ल ने आईन-अकबरी में अकबर से तुलसीदास मिलने की कौन कहे, उस समय तुलसीदास विद्यमानता का भी कहीं उल्लेख नहीं किया अतएव यह प्रसंग भी बेनीमाधवदास की कल्पना जान पड़ता है।" (पृष्ठ ६४) ग़नीमत इसी झोंक में त्रिपाठीजी ने यह फ़तवा न दे कि उस समय तुलसीदास थे ही नहीं, और भी लुत्फ़ आता। त्रिपाठीजी ने तो मनसूबे के साथ बेचारे बेनीमाधवदास की उड़ा दीं, पर स्वतः इस बात का तनिक भी न रक्खा कि स्वयं उसी के शिकार होते हैं। आप फ़रमाते हैं "यदि अकबर के (तुलसीदास) शतरंज खेला करते थे, तो अकबर से उनकी निकटता स्वीकार करनी पर अबुलफ़ज़ल ने इनकी उपेक्षा क्यों इसका उत्तर अब कोई नहीं दे सकता।" (पृष्ठ जी नहीं. कोई भी व्यक्ति कह सकता है कि दिवांध हैं जो इतना भी नहीं जानते कि अ नामा का भी लेखक वही अबुलफ़ज़ल आईन-अकबरी का। आपने कभी लिखा "सुप्रसिद्ध लाला सीताराम के पास तुल का एक चित्र हमने देखा है, जिसे वे बादशाह का बनवाया हुआ बतलाते हैं। मालूम होता है कि अकबर को तुलसीदास परिचय था। संभव है, अबुलफ़ज़ल की के बाद यह परिचय हुआ हो, इसी से अकबरी में इसका कुछ ज़िक्र न आ सका यह उस समय का कथन है, जब त्रिपाठी दिमाग़ बहुत कुछ दुरुस्त था और 'पंडिताई' का ढोंग नहीं रचते थे। क्या न था कि उक्त चित्र को जीवनचरित, भिन्न' जीवन-चरित में स्थान दिया जाय इस प्रसंग की गवेषणा की जाय कि तुल की अकबर से भेंट थी अथवा नहीं। पर त्रि

१. हिंदी-साहित्य के अनेक लेखक इस भ्रम में पड़ गये हैं कि 'आईन-अकबरी' उस समय का विश्वकोष है। उनको इस बात का ध्यान नहीं है कि वह 'आईन' है, 'लुग़त' नहीं। उसमें प्रत्येक बात का होना आवश्यक नहीं है। भूलना न होगा कि 'आईन-अकबरी' में अकबर के शासन के ४० वर्ष का ही वर्णन है, समूचे राजत्वकाल का नहीं। हमारी समझ में 'आईन-अकबरी' में 'हिंदी'-कवियों का विवरण नहीं है।

करें क्या, जितनी 'भिन्नता' शतरंज खेलने के उल्लेख में है" उतनी इस सूखे अनुसन्धान में थोड़े ही।

'मूल गोसाईं - चरित' के ध्वंसन में त्रिपाठीजी ने जो प्रमाण पेश किये हैं, उनमें अधिकांश बूढ़े और बासी हैं। किसी-किसी में त्रिपाठीजी की मूढ़ता भी शामिल है। जिस 'बुलाहट' को लेकर त्रिपाठीजी बुरी तरह मचले हैं और जिस 'सत्यं सिवं सुन्दरं' के खोज निकालने का उन्हें नाज़ है, वे भी उन्हीं बड़थ्वालजी की जूठन हैं, जो विशेष रूप से आपके कटाक्ष के पात्र बने हैं। यह बात दूसरी है कि डाक्टर बड़थ्वालजी ने अपनी समझ में उन्हें रद कर दिया है। 'सत्यं सिवं सुन्दरं' के संबंध में त्रिपाठीजी का कहना है—

"इस 'सत्यं सिवं सुन्दरं' ने तो 'मूल चरित' के रचयिता को अँधेरे में से खींचकर उजाले में लाकर खड़ा कर दिया। 'सत्यं सिवं सुन्दरं' यद्यपि संस्कृत का प्राचीन वाक्य है, पर अभी थोड़े दिनों से हिंदीवालों में इसने प्रवेश पाया है। हिन्दी के किसी प्राचीन कवि ने इसका उपयोग नहीं किया था।" (पृष्ठ ५९) संस्कृत के किस प्राचीन कवि ने इसका उपयोग (प्रयोग नहीं) किया था, इसके कहने की आवश्यकता त्रिपाठीजी को नहीं पड़ी। पड़ती भी क्यों? क्या काशी-विश्वविद्यालय के अध्यापक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के[2] कथन में इतना सत्य रहता है कि त्रिपाठीजी - जैसे अजीब टीकाकार उस पर ध्यान दें? क्या त्रिपाठीजी ने डाक्टर बड़थ्वालजी के उस लेख का साक्षात्कार किया है, जिसमें 'सत्यं शिवं सुन्दरं' को प्राचीन प्रतिपादित करने के लिए दुस्तर श्रम किया गया है। यदि नहीं तो इस प्रकार के हौसले क्यों? यदि हाँ, तो इस बात के प्रमाण क्यों नहीं पेश किये गये कि 'सत्यं शिवं सुन्दरं' संस्कृत का प्राचीन वाक्य है? सच बात तो यह है कि इस 'सत्यं शिवं सुन्दरं' ने स्वयं त्रिपाठीजी को 'अँधेरे में से' घसीटकर ऐसे प्रकाश में 'खड़ा कर दिया' है कि हम उनकी हुलिया को भली भाँति देख सकते हैं और आसानी से कह सकते हैं कि हो यार पूरे चंट।

त्रिपाठीजी की वाचाल वाग्वीरता का वर्णन व्यर्थ होगा, अतएव अब थोड़ा उनके तथ्य-ग्रहण की पटुता पर विचार कीजिए। आपका निष्कर्ष है—

"दोहावली के कुछ दोहों में तीर्थस्थानों की तत्कालीन दशा का जो चित्र उन्होंने खींचा है, उससे इतना अनुमान किया जा सकता है कि उन दिनों अयोध्या में काशी की अपेक्षा अधिक अशान्ति थी और इसी से वे अयोध्या छोड़कर काशी आ गये।"

त्रिपाठीजी के इस कथन से टपकता यह है कि तीर्थस्थान की दृष्टि से काशी का कुछ अधिक महत्त्व नहीं। तुलसीदास 'अशान्ति' से भयभीत होकर काशी भाग गये थे। काशी में उनको कितनी शान्ति मिली, इसको त्रिपाठीजी के पाठक अच्छी तरह जानते हैं। त्रिपाठीजी के मत में तो यह आता है कि विष द्वारा उनका प्राणान्त किया गया। ख़ैर, उन दोहों को तो देख लीजिए, जिनके आधार पर त्रिपाठीजी उक्त निष्कर्ष निकालने का कष्ट करते हैं—

"सुर-सदननि तीरथपुरिन, निपट कुचालि कुसाज।
मनहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज॥"

यहाँ तक तो कुछ ग़नीमत है। बात प्रसंग के अनुकूल है। अब आगे देखिए—

---

१. त्रिपाठीजी को 'सिवं' (शिवं नहीं) संस्कृत दिखाई देता है।

२. 'काव्य में रहस्यवाद'-नामक निबंध में शुक्लजी ने 'सत्यं शिवं सुन्दरं' का पता बता दिया है और इन्दौर के भाषण में 'सुन्दरं' की गति भी बना दी है।

"गौड गँवार नृपाल महि यवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल॥
फोरहिं सिल लोढ़ा सदन, लागे अढुक पहार।
कायर कूर कुपूत कलि, घर-घर सहस डहार॥"

है कोई संसार में, जो किसी प्रकार भी सिद्ध कर दे कि उक्त दोनों दोहों से किसी तरह भी यह अर्थ निकलता है कि तुलसीदास ने इसलिए अयोध्या का परित्याग कर दिया कि वहाँ अशांति अधिक थी। क्या तुलसीदास ने स्पष्ट घोषणा नहीं कर दी थी—

"मुक्ति जन्म-महि जानि ग्यानि खानि अघ हानिकर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइय कस न[1]॥"

फिर यह तर्क-वितर्क या पाखंड कैसा?

त्रिपाठीजी की ज्ञानबंधुता की हद तो तब हो जाती है, जब वे तुलसीदास के ग्रन्थों से उनकी जीवनी संचित करते हैं। उनके सामने सहसा एक ऐसे दीन-मलिन बालक का चित्र[2] आ जाता है, जो "कहीं किसी के यहाँ विवाह के बाजे की आवाज़ सुनकर दौड़ जाता और बचा-खुचा आहार पाकर निहाल हो जाता था। किसी के यहाँ श्राद्ध का समाचार पाकर वहाँ जा बैठता और एक टुकड़े के लिए घंटों टकटकी लगाये रहता था। उसके शरीर पर वस्त्र नहीं थे; इधर-उधर से चिथड़े जमा करके सीकर या गाँठ देकर वह तन ढँक लेता। रात में कभी सड़क पर कभी किसी मन्दिर में और कभीं किसी मसजिद में सो...(भूमिका पृष्ठ १) निदान, उसका विवा... गाँव से एक फ़र्लांग की दूरी पर, जहाँ... कितनी बार उक्त रूप में गया था, हो गया... के टुकड़ों और मसजिद के सोने ने ... दिखाया। अच्छा होता यदि त्रिपाठीजी ... आधार पर यह घोषित कर दिया होता ... समय छूत-छात का भूत न था और मुस... यहाँ भोजन कर लेने से कोई मुसलमान... जाता था। फिर त्रिपाठीजी इस प्रकार ... कल्पना के फेर में न पड़ते कि काशीवा... इस बात का पता ही न था कि ब्राह्मणों ... भी कोई जाति होती है एवं "इससे ... नहीं निकलता कि उनका विवाह ही न... था और न उनकी कोई जाति-पाँति थी ... नहीं, मौलिक मूल त्रिपाठीजी ने "ब्रा... द्वार परौ जो हौं सो हौं राम को" तथा ... न आकरी न खेती न बनिज भीख जान... कछु किसब कवारु है" का अर्थ क्या स... क्योंकि उनका कथन है कि "धन के लिए ... दास ने खेती की, व्यापार किया और ... उपाय रचे।" जब तुलसीदास खेती... और भीख आदि कुछ जानते ही नहीं ... उन्होंने उसका सम्पादन किस प्रकार ... मतलब यह कि तुलसीदास के ग्रंथों ... पर त्रिपाठीजी ने जो कुछ बका है, उसे उन... का ख़लल समझना चाहिए और इ... आगाह हो जाना चाहिए कि इस प्रकार ... व्यापक न हो जाय। नहीं तो किसी ... लोकमंगल और हमारा कल्याण न होगा ...

इच्छा तो न थी, पर लोग कहेंगे कि ... प्रमाणों पर कुछ भी ध्यान न दिया ... कुछ इस पर भी विचार कर लेना चाहिए ... विषय में पहली बात तो यह है कि त्रिपा...

---

१. पाठ की अनेकता देखिए "मुक्ति जन्म महि जानि, ग्यान खानि अघ हानिकर। जहँ बस शम्भु भवानि, सो काशी सेइय कस न।" दोनों पाठ त्रिपाठीजी के निजी हैं।

२. त्रिपाठीजी ने इस चित्र के आधारभूत पदों का उल्लेख नहीं किया। हम इसे उनकी एक चाल समझते हैं। उल्लेख कर देने से उनकी शैली का महत्त्व नष्ट हो जाता और वे 'बिलकुल भिन्न' जीवन-चरित न लिख पाते।



भाषा का कुछ भी ज्ञान नहीं है। उनको इस बात का भी पता नहीं है कि व्रजभाषा उस समय की साहित्य-भाषा थी और सोरों उसी व्रजभाषा के मंडल में है। अतः उनके भाषा-संबंधी कथन को यदि अक्षरशः सत्य मान लिया जाय तो भी उससे तुलसीदास सोरों के निवासी सिद्ध नहीं हो सकते। रही उनके भाषा-सम्बन्धी प्रमाणों की बात। उन्हें भी देख क्यों नहीं लेते। उनका कथन है "माय जायो—तोसे माय जायो को।...यह शब्द व्रज और मारवाड़ में आम तौर से प्रचलित है। पर राजापुर में यह इसी रूप में नहीं बोला जाता।" हम उस गुरु को क्या कहें, जिसने त्रिपाठीजी को इस प्रकार की शिक्षा दी कि वे 'माय जायो' को एक शब्द समझ लें और इस बात को इस अवस्था में भी न जान सकें कि व्रजभाषा का रूप अवधी से भिन्न होता है। कहने की जरूरत नहीं कि राजापुर अवधी की सीमा में है, व्रज के शासन में नहीं। इसी प्रकार हिंदी तथा अपभ्रंश के अतिप्रचलित शब्द 'विय' अथवा वियो को त्रिपाठीजी 'गुजराती बीजा का अपभ्रंश' बताते हैं, संस्कृत 'द्वि' का नहीं। यह तो भाषा-विज्ञान की बात हुई। अब अत्यन्त टकसाली शब्द नायक तथा ढोल को लीजिए। त्रिपाठीजी समझते हैं अपने को संस्कृत का प्रकांड पंडित, परन्तु जानते इतना भी नहीं कि 'नायक' शुद्ध संस्कृत का शब्द है, अरबी या फ़ारसी का कदापि नहीं। ढोल, डोल ने तो त्रिपाठीजी की सारी पोल खोल दी। अरबी या फ़ारसी में ढ अक्षर होता ही नहीं, फिर ढोल शब्द किस मुँह से अरबी या फ़ारसी कहा जा सकता है? त्रिपाठीजी के मुँह की बात हम नहीं करते। उस विवर से तो कुछ भी सहज ही निकल सकता है। उस पर कहाँ तक ध्यान दिया जा सकता है।



आगामी साम्राज्य-परिषद्

श्रीप्रेमनारायण अग्रवाल एम्० ए०

(१)

योरप की वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति अत्यन्त गम्भीर और पेचीदा है। इधर जो नई-नई घटनाएँ हो रही हैं, वह इसको और भी अधिक जटिल रूप देती हुई प्रतीत होती हैं। इटली-अबीसीनिया के युद्ध से इनका प्रारम्भ स्पष्ट रूप से मालूम पड़ता है, वैसे तो महासमर के बाद से ही भविष्य अन्धकारमय बन गया था। महासमर के समय आशा की जाती थी कि यह लड़ाई (War to end war) लड़ाई को अंत करने के लिए हो रही है और निकट भविष्य में ऐसी कोई आशंका न उठेगी। परन्तु थोड़े समय के बाद ही पर बात स्वप्नवत् होती गई। वर्सेलस की संधि के समय, आँखोंवालों को भविष्य में शीघ्र ही लड़ाई के इससे भी अधिक भयानक लक्षण दिखाई देने लगे थे।

इधर इटली-अबीसीनिया का युद्ध; राष्ट्र-संघ की इस मामले को सुलझाने में असमर्थता; असंतुष्ट जर्मनी में हिटलरशाही का जन्म; मुसोलिनी की महत्वाकांक्षाएँ; रूस का पैर फड़फड़ाना; अन्य छोटे-छोटे राज्यों में असन्तोष आदि बातों से योरप का सारा वातावरण अशान्त हो रहा था। उधर अमेरिका की अपने मतलब में संलग्नता और उठते हुए राष्ट्र जापान की चीन को हड़प करने के अतिरिक्त योरप या अमेरिका की राजनीतिक क्षेत्र में बराबरी करना—इन कारणों ने योरप के तत्कालीन [illegible] अशान्तिमय वातावरण को भीषण [illegible] इस समय तो योरप की स्थिति [illegible] में सन् १९१४ ई० की परिस्थिति [illegible] भयानक रूप धारण किये हुए है। [illegible] नीतिज्ञों के भाषणों से यह ध्वनि [illegible] हाल ही में १६ जून के दैनिक [illegible] उसके लन्दनस्थित संवाददाता ने [illegible] भेजा था कि—

"During the course of a [illegible] to pacifist propaganda Mr. D[illegible] Secretary of State for War, said [illegible] cult to persuade people of the d[illegible] lay ahead. "The situation in E[illegible] worse than in 1914 and still we [illegible] ing and refusing to face facts, [illegible] think it is the duty of those [illegible] to frighten people out of their [illegible]

इससे साफ़ ज़ाहिर है कि [illegible] पहुँच चुकी है। केवल लड़ाई [illegible] है। इटली-अबीसीनिया की लड़ाई [illegible] अवसर आते-आते एकाएक हट [illegible] इन दोनों देशों के कोई तीसरा देश [illegible] न हुआ। वास्तव में इसका कारण [illegible] असाधारण रूप से इस ओर चौकन्ना [illegible] दूसरे राष्ट्रों की इस झगड़े में न पड़ने [illegible]



क्योंकि उनका हित इसमें बहुत ही कम था। सभी जानते हैं कि लड़ाई हो भी और वह संभवतः विगत महासमर से भी अधिक भीषण। किन्तु अब इस सम्बन्ध में अनेक प्रकार के अनुमान लगाये जा रहे हैं। लड़ाई के लिए सारा सामान तैयार है, केवल एक चिनगारी की आवश्यकता है, जो उसको सुलगा दे। यह चिनगारी किसी भी समय उड़ सकती है। २७ जून को लन्दन में रायल एम्पायर सोसाइटी (Royal Empire Society) की दावत में हमारे पूर्व-परिचित सर सैम्युयेल होर ने, जो Admiralty के प्रथम लार्ड हैं, एक महत्त्वपूर्ण भाषण दिया। उसको British Official Wireless द्वारा प्राप्त करके २९ जून के *Pioneer* ने इस प्रकार प्रकाशित किया कि—

"There was, however, so much inflammable material in Europe that, although, no country desires war, a spark might start a conflagration."

कहने के लिए यह भले ही सच है कि कोई देश लड़ाई नहीं चाहता, शायद वास्तविकता ऐसी ही हो, पर सभी देशों ने इसके लिए पूरी तैयारी की है। शायद हमारे पाठक जानते हैं कि किस प्रकार निःशस्त्रीकरण का तमाशा होने के बाद शस्त्रीकरण पहले की अपेक्षा कई गुना बढ़ गया और यह निःशस्त्रीकरण कान्फ्रेंसें लगातार असफल होती गईं। कुछ ही महीने पहले ब्रिटिश सरकार ने अपनी शस्त्रीकरण की योजनाओं को, जो आगामी वर्षों में पूरी की जायँगी, जनता को बताया था, जिससे साफ़ दिखलाई पड़ता है कि संसार के देशों ने विगत चन्द वर्षों में निःशस्त्रीकरण कान्फ्रेंसों की आड़ में अपने को युद्ध के लिए किस प्रकार सुसज्जित कर लिया है। इँगलैंड ने इस कार्य को पूर्ण करते हुए अन्य साधनों का भी ठीक करना उचित समझा। उनमें एक प्रमुख साधन है अपने साम्राज्यान्तर्गत देशों की सहायता। इँगलैंड के सभी राजनीतिक नेता इस बात से भली भाँति परिचित हैं कि विगत महासमर में साम्राज्य के अनेक देशों ने इँगलैंड की भारी सहायता की थी। इँगलैंड ने उनका सहयोग पाने के लिए एक War Cabinet निर्माण किया और इसमें दिया साम्राज्यान्तर्गत देशों के प्रतिनिधियों को स्थान। सर सैम्युयेल होर ने अपने इसी भाषण में, जिसका हम ऊपर ज़िक्र कर चुके हैं, इस बात की ओर भी निम्नलिखित शब्दों में इशारा किया है—

"British Empire......, must still depend upon its Imperial defences."

इससे स्पष्ट है कि बिना साम्राज्यान्तर्गत देशों की सहायता के इँगलैंड बहुत कमज़ोर हो जायगा। अन्तरराष्ट्रीय स्थिति के इस नाज़ुक समय में, जिसमें होकर संसार गुज़र रहा है, इँगलैंड को अपने इन देशों की याद आई, जिसके फलस्वरूप इँगलैंड के प्रसिद्ध पत्र 'टाइम्स' ने इस बात का अनुभव किया और थोड़े दिन बाद निम्नलिखित समाचार संसार के पत्रों में प्रकाशित हो गया—

London, May 27.

"*The Times*" foresees a miniature Imperial Conference in London in the next few weeks which it thinks would be particularly valuable at the present juncture when the international situation necessitates that Britain and her dominions should keep in line."

इस समाचार पर अनेक प्रकार की अनेक जगहों पर टीका-टिप्पणी होने लगीं, तब थोड़े दिनों बाद 'हाउस आफ़ कामन्स' में प्रधान मंत्री ने इस बात को ख़ुलासा रूप दे दिया। ब्रिटिश आफ़ीशल वायरलेस ने इस समाचार को इस प्रकार संसार के पत्रों में प्रकाशित कराया—



London, June 16.

"The Prime Minister announced at question time in the Commons that the Imperial Conference will be held in London next May, immediately after the Coronation."

अर्थात् "साम्राज्यान्तर्गत देशों की कान्फ्रेंस अगले साल मई मास में लन्दन में होगी, बादशाह के सिंहासनासीन होने के बाद ही।"

इससे यह ध्वनि निकलती है कि उस समय, जब कि 'टाइम्स' पत्र ने घोषणा की थी, यह कान्फ्रेंस न होगी। 'टाइम्स' लन्दन का एक अत्यन्त प्रभावशाली और ज़बरदस्त पत्र है। उसके समाचारों का ग़लत होना असाधारण बात है। उसको यह बात कैसे सूझी थी, वह भी उसने अपने इसी समाचार के द्वितीय पैराग्राफ़ में इस प्रकार स्पष्ट कर दी थी कि—

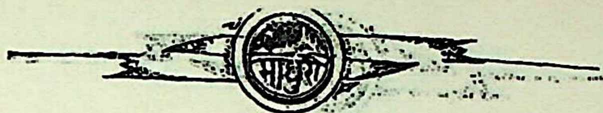
"Mr. Earle Page and Mr. Menezies from Australia are at present in London and Mr. Pirow is on his way from South Africa. Mr. Mackenzie King is coming from Canada next month and Mr. Nash is coming from New Zealand as soon as possible. All will come to deal mainly with commercial matters, except Mr. Pirow who will discuss problems effecting the communications and defence of South Africans, but the '*Times*' thinks the talks are certain to cover a range of subjects regarding foreign policy, defence, communications and international trade."

यह हो सकता है कि इस समय Miniature Imperial Conference न हुई हो, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि अनेक आवश्यक विषयों पर विचार-परिवर्तन नहीं हुआ, जिसमें वे बातें भी शामिल हैं, जो इम्पीरियल कान्फ्रेंस के समय इसके सम्मुख उपस्थित होतीं। जब सभी साम्राज्यान्तर्गत देशों के प्रतिनिधि वहाँ एकत्रित थे, प्रकार की बातों का होना भी स्वाभावि[क] यदि कोई आवश्यक बात न होती तो वहाँ आते ही क्यों। हमारा तो निश्च[य] है कि छोटे रूप में यह आवश्यक कान्फ्रेंस इसमें अनेक बातें तय हुई होंगी, जिन[का] जनता को आगामी मई में होनेवाली [का]... लगेगी। और, सभी के परामर्श से कान्फ्रेंस का होना, उसके समय, स्थान [का] निश्चय हुआ है। हम भले ही इसे छोटी [कान्फ्रेंस] न कहें, पर बातें इसमें अवश्य ही [हुईं], जिसमें 'टाइम्स' पत्र की सत्यता साबित [होती है।]

(२)

पिछली बार साम्राज्य-परिषद् का [अधिवेशन] सन् १९३० ई० में हुआ था। इस[में] आवश्यक विषयों पर विचार हुआ था [और] निश्चय भी अत्यन्त व्यापक और महत्त्व[पूर्ण] इन्हीं के फलस्वरूप प्रसिद्ध Statute [of West]minster का निर्माण हुआ था, जिस[से] के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ता [है।] Statute साम्राज्यान्तर्गत कुछ देशों के [इंग]लैण्ड से एक नये सम्बन्ध की नींव डाल[ता है।]

सबसे पहले इस प्रकार की कान्फ्रेंस [१८८७] में हुई थी। उस समय इसका [नाम था] Colonial Conference। तब से लगाता[र अब] तक अनेक कान्फ्रेंसें होती रहीं, जिन[में] प्रकार के अनेक विषयों पर विचार हो[ता रहा।] इन परिषदों में इँगलैण्ड और साम्रा[ज्यान्तर्गत] देशों में क्या, कैसा सम्बन्ध रहे एक मु[ख्य विषय] था। इन परिषदों के ज़रिये दोनों के [पारस्परिक] व्यवहार तथा सम्बन्ध में, दोनों की [ओर से] बहुत ही सुरुचिपूर्ण समझौते होते रहे हैं। साम्राज्य को दृढ़ और संगठित बनाये र[खने में इन] परिषदों का ज़बरदस्त हाथ रहा है। [ऐसे] मौक़े होते, जब प्रत्येक देश अपनी-अपनी [कठिनाइयों] को दूर करने के लिए बिना ख़ून-ख़राबी



से अपने अधिकार माँगते और बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त कर लेते। इसका फल यह होता कि दोनों में सद्भाव, प्रेम, कुरबानी और सहायता का भाव बना रहता। इँगलैण्ड इनके द्वारा सदैव अधिक लाभ में रहता।

एक कान्फ्रेंस के बाद जब नई-नई दिक़्क़तलब बातें पैदा हो जातीं और उनको आगे के लिए चलना असम्भव होता, तब इस प्रकार की एक कान्फ्रेंस करके मामले बहुत हद तक रफ़े-दफ़े हो जाता।

अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति ने, जिसके नाज़ुक हो जाने का ज़िक्र हम इस लेख के प्रथम भाग में कर आये हैं, इस परिषद् के होने के लिए थोड़ी जल्दी अवश्य कर दी है। इसका होना तो ऐसी परिस्थिति के न होते हुए भी ज़रूरी था। पिछली परिषद् सन् ३० ई० में हुई थी। इसके बाद साम्राज्यान्तर्गत देशों में इतनी तेज़ी से उन्नति हुई कि बहुत दिनों से इसे फिर करने के प्रश्न पर विचार हो रहा था। इसका थोड़ा-बहुत काम पिछली ओटावा-कान्फ्रेंस में भी किया जा चुका था। परन्तु इससे इसकी आवश्यकता में कमी न हुई थी। नई-नई समस्याओं के उत्पन्न हो जाने से डोमीनियन्स में आपस में मतभेद हो गया और प्रत्येक डोमीनियन के अपने-अपने अलग-अलग प्रश्न भी सामने आते जा रहे थे।

इन साम्राज्य-परिषदों में भारत का भाग बड़ा ही विचित्र रहा है। इसका कारण यह है कि भारत इँगलैंड का अभी डोमीनियन नहीं है, वरन् इससे गिरे दर्जे का साम्राज्य का एक सदस्य है। ब्रिटिश-सरकार की राय में डोमीनियन के बराबर होने का तो उसका अन्तिम लक्ष्य है, जिसे लोग प्रायः Dominion status के नाम से पुकारते हैं। कितनी ही परिषदों में भारत को भाग लेने का मौक़ा नहीं मिला। जिनमें मिला, उनमें अधिकांश में वह अन्य डोमीनियन्स, जैसे दक्षिण आफ़्रिका, न्यूज़ीलैंड, आस्ट्रेलिया, कनाडा आदि हैं, के बराबरी के बर्ताव का अधिकारी नहीं हुआ। कहने का तात्पर्य यह कि उसको इन परिषदों से कोई लाभ नहीं हुआ, सिवा इसके कि वह अन्य साम्राज्यान्तर्गत देशों की उद्देश-पूर्ति में सहायक हो सके और इसके लिए अक्सर अपना नुक़सान भी करे। कितनी ही परिषदों में नहीं, प्रायः सभी परिषदों में एक न एक डोमीनियन का रुख़ ब्रिटिश-सरकार की ओर बड़ा अनुदार और कटु रहा है; पर भारत को ऐसा करने का कभी साहस नहीं हुआ। होता भी कैसे, जब कि उसका स्थान ही साम्राज्य में बहुत नीचे दर्जे का है।

अनुदारता तथा कटुता के इस रुख़ को प्रत्येक डोमीनियन ने समयानुसार अख़्तियार किया है। इधर थोड़े दिनों से दक्षिण अफ़्रीका इस मामले में अधिक बढ़ा-चढ़ा रहा है। गत वर्ष जब यह प्रश्न उठा कि दक्षिण अफ़्रीका साम्राज्य के संरक्षण के लिए स्पष्ट रूप से ठीक-ठीक मामला तय करे, तब यूनियन सरकार के Defence Minister श्री० पिरो ने कहा था—

"A direct vote of secession from the British Empire would meet with an absolute negative response, yet, on the other hand, the Government is not prepared to participate in any general scheme of defence."

आगे चलकर आप कहते हैं—

"If a Government were to attempt rashly to commit us to participation in another overseas war, there would be large scale demonstrations, possibly even civil war."

यही नहीं, आपने यह भी स्पष्ट कर दिया कि दक्षिण अफ़्रीका के हितों की पहले परवा की जायगी, इँगलैंड या साम्राज्य की बाद को—

(There is just one condition, and that is that the interests of South Africa shall always be number one, and if those interests are served in the best way, then I shall turn



to others.) और जब दक्षिण अफ़्रीका के हित अच्छे से अच्छे तरीक़े से पूरे हो जायँगे, तभी वह अन्य बातों पर ग़ौर करेंगे।

पाठक देखेंगे कि डोमीनियन्स कितनी आगे बढ़ी हुई हैं और साम्राज्य का हित उनके लिए कुछ भी नहीं है। वे जब चाहे अपने को साम्राज्य से अलग कर सकती हैं। जिस दिन उनको यह अनुभव हो जायगा कि ब्रिटिश साम्राज्य का एक भाग रहने में उनका कोई लाभ नहीं, वे तुरन्त ही उससे अलग हो जायँगी। वास्तव में वे अपने मतलब के कारण ही इस विशाल ब्रिटिश-साम्राज्य का एक अंग बनी हुई हैं। दक्षिण अफ़्रीका में तो कई बार यह प्रश्न उठाया जा चुका है कि वह इँगलैंड से अलग क्यों न हो जाय। इधर आयरलैंड भी श्री० डी० वेलरा के अधीनस्थ में ब्रिटिश साम्राज्य से अलग होने के लिए बहुत दिनों से प्रयत्नशील दिखलाई पड़ता है।

डोमीनियन्स का ब्रिटिश-साम्राज्य में रहना उतना ब्रिटिश सरकार की इच्छा पर निर्भर नहीं है, जितना कि स्वयं डोमीनियन्स की। तिस पर भी वे धीरे-धीरे इस जाल से बाहर निकलती हुई प्रतीत होती हैं।

न केवल ब्रिटिश-सरकारवादी, वरन् डोमीनियन्स का भी भारत से स्वार्थ सिद्ध होता है। भारत के I. C. S. में साम्राज्य की प्रजा भरती हो सकती है, मगर इसी भारत के अधिवासी अनेक डोमीनियन्स में बस नहीं सकते, और जो बस गये हैं, उनके साथ ऐसा दुर्व्यवहार होता है, जो किसी भी सभ्य देश के लिए लज्जाजनक है। आस्ट्रेलिया में भारतीय बस नहीं सकते, दक्षिण अफ़्रीका में बसे हुए भारतीयों के साथ जो ज़्यादतियाँ और भेदभावपूर्ण व्यवहार होता है, उससे भारतीय जनता भली भाँति परिचित ही है।

यही नहीं, भारत ने साम्राज्य के लिए बहुत कुछ क़ुरबानी की है। लार्ड विंटरटन ने, जिनको हम भारत के प्रति सहानुभूति रखने का दोष नहीं दे सकते, अपने एक भाषण में कामन्स में कहा था कि भारत ने साम्राज्य की रक्षा में सारी डोमीनियन्स के मुक़ाबले में सबसे भाग लिया है और इस पर जो भार लादा गया है, वह वास्तव में अनुचित रूप से ज़्यादा है।

हमें देखना है कि आगामी साम्राज्य किस नये भार को बेचारे भारत पर लादती है। भारत को उसमें भाग लेने का अधिकार भी है कि नहीं।

(३)

साम्राज्य-परिषदें कब, कैसे और किस प्रारम्भ हुईं, इसका बड़ा मनोरंजक इतिहास एकदम वर्तमान रूप में नहीं, वरन् यह विचार इँगलैंड के राजनीतिज्ञों के आया कि किसी प्रकार साम्राज्य के देशों स्परिक सम्बन्ध बढ़े। इसके उपरान्त क्रम क्रियात्मक ढंग में आने लगा और आगे उसने वर्तमान रूप धारण कर लिया। इस विकास का इतिहास हम इस भाग में पा अर्पण करेंगे, ताकि वे आगामी परि वास्तविक स्वरूप समझ सकें। किसी वर्तमान रूप को समझने के लिए उसका इ जानना अत्यन्त आवश्यक है।

जिस समय इँगलैंड साम्राज्य-विस्तार में जुटा था, उसके राजनीतिज्ञों का एक जिसे Little Englanders कहते थे, इस विरुद्ध था। इस दल के अन्दर इँगलैंड के प्रमुख राजनीतिज्ञ थे। उनका कहना था कि व्यर्थ हैं और अन्त में वे स्वतन्त्र होकर हो इँगलैंड को साम्राज्यवादी बनाने के लिए समय, धन और शक्ति का व्यय हुआ था।

यह बात इँगलैंड में ही रही हो, नहीं। योरप के इस समय जितने भी वादी देश हैं, सभी को इस बात के में काफ़ी परेशानी उठानी पड़ी है। फ़्रांस इससे अलग नहीं रहे। कितने ही रा

साम्राज्यवाद के कट्टर शत्रु होते हुए भी साम्राज्य-वादी विचारों के बढ़ते हुए समुद्र के सामने टिक न पाते थे। लोकमत के प्रभाव से अनेक राज-नीतिज्ञों को अपने विश्वासों और नीति को अलग रखकर जनता के साथ चलने के लिए मजबूर होना पड़ा। ग्लैडस्टन, बिस्मार्क और साम्राज्य-वाद का सबसे ज़बरदस्त समर्थक डिसरेली पहले इसके ख़िलाफ़ थे। ऐसे अनेक अवसर आये हैं, जब इन्होंने साम्राज्य-विस्तार के मौक़ों को जान-बूझकर छोड़ दिया। बिस्मार्क ने तो एक बार अपने मित्र को लिखा था—

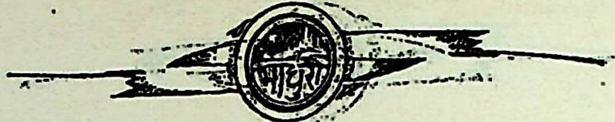
"All the advantages claimed for the mother country are for the most part illusions. England is abandoning her colonial policy ; she finds it too costly."

वर्तमान साम्राज्यवादी देश किस प्रकार इस नीति के शिकार बनाये गये, इसका वृत्तान्त अत्यन्त मनोरंजक है। इँगलैंड के हाथ से अमेरिका के निकल जाने के कारण लोगों के साम्राज्य के विरुद्ध भाव और भी अधिक पुष्ट हो चले थे। परन्तु अन्त में न केवल इँगलैंड को, वरन् समस्त योरप के शक्तिशाली राष्ट्रों को साम्राज्यवादी बनना पड़ा।

इँगलैंड, सौभाग्य से, अन्य राष्ट्रों से साम्राज्य-विस्तार के कार्य में लगभग सौ वर्ष आगे था। जब अन्य राष्ट्र उसकी आवश्यकता को महसूस करके इस ओर झुके, तब इँगलैंड संसार का बहुत कुछ सुन्दर-सुन्दर भाग अपने क़ब्ज़े में कर चुका था। जहाँ कहीं इसे अन्य राष्ट्रों से भिड़ना पड़ा, वह सफलतापूर्वक अपना काम बनाता रहा।

सन् १८८० ई० के लगभग Royal Colonial Institution ने साम्राज्य के संगठन के विचार को उन्नति देना प्रारम्भ किया और उस समय साम्राज्य सम्बन्ध को अधिक नज़दीक लाने के लिए कितनी ही योजनाएँ बनाई गईं—(१) कुछ लोगों का विचार था कि उपनिवेशों के प्रतिनिधियों को साम्राज्य की पार्लामेंट में जगह दी जाय या केवल लार्ड-सभा में (फ़्रान्स की पार्लामेंट में १० प्रतिनिधि उपनिवेशों के होते हैं); (२) दूसरे लोगों ने Federation को पसन्द किया और एक परामर्श देनेवाली छोटी कौंसिल; (३) तीसरे प्रकार की योजना में उप-निवेशों का स्वतंत्र अस्तित्व क़ायम करना था। उनके द्वारा पास किये हुए बिलों आदि पर साम्राज्य-सरकार की कम से कम दख़लअन्दाज़ी (minimum veto) और उनके प्रतिनिधियों का लन्दन में रहना, उसी हक़ पर, जिस पर कि विदेशों के रहते हैं। इसी प्रकार अनेक योजनाएँ सोची जा रही थीं।

सन् १८८४ ई० में Imperial Federation League की स्थापना हुई, जिसकी शाखाएँ इन उपनिवेशों में भी खोली गईं। सन् १८८६ ई० में होनेवाली औपनिवेशिक तथा भारतीय नुमा-इश के प्रबन्ध में इसने बहुत भाग लिया था। १८९१ ई० की एक कान्फ़्रेंस में, एक छोटी कौन्सिल बनाने की योजना बनाई गई। ग्लैडस्टन ने इस योजना को रद कर दिया; क्योंकि यह बहुत अस्पष्ट थी। इस प्रकार फ़ेडरेशन सम्बन्धी आन्दो-लन समाप्त हो गया। इसके समाप्त होते ही एक दूसरा आन्दोलन Imperial preference का प्रारम्भ हो गया, जिसको हम ओटावा में १८९४ ई० में पाते हैं। तब से बराबर प्रत्येक कान्फ़्रेंस में यह आन्दोलन ज़ोर पकड़ता गया। अन्त में विगत महासमर की विकट परिस्थिति में यह इँगलैंड की सरकार द्वारा मान लिया गया और १९१९ ई० से कार्यरूप में परिणत होने लगा। राजनीतिक दृष्टि से ग़ौर करने पर हमें मालूम पड़ता है कि समस्त कान्फ़्रेंसों में एक ओर ही इस आन्दोलन की प्रगति हो रही थी और वह थी पारस्परिक सहायता की ओर। सन् १९११ ई० में फ़ेडरेशन का विचार फिर उत्पन्न हुआ, पर इसका नतीजा कुछ न निकला; क्योंकि कोई भी डोमिनियन अपने इधर तक प्राप्त किये हुए अधिकारों को छोड़ने के लिए तैयार न थी। १९१७ की Imperial War



Conference की प्रथम बैठक में ही फ़ेडरेशन की भारी आशा जाती रही, और १९२६ ई० में आस्ट्रेलिया के प्रतिनिधि मि० ब्रूस ने इस विचार को बिलकुल ही समाप्त कर दिया, जिसका फल यह हुआ कि उसके बाद अभी तक इसे फिर किसी ने नहीं अपनाया।

इस आन्दोलन के फलस्वरूप सबसे पहली कान्फ्रेंस १८८७ ई० में हुई, जिसका नाम था औपनिवेशिक परिषद् (Colonial Conference) और जिसके बुलाने का श्रेय है सम्राट् की सरकार को। इसमें साम्राज्यान्तर्गत देशों के, क्राउन कोलोनीज़ के भी प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। इसमें अनेक समस्याओं पर विचार हुआ, जैसे इजिप्ट की रक्षा का प्रश्न, चिट्ठी-पत्री आवागमन (Communications) आदि के उपायों का सुधार करके आर्थिक सहयोग जोड़ना; और कितने ही विषय तय भी हुए थे, जैसे टेबिलवे की रक्षा का प्रश्न और साइमन टाउन की साम्राज्य के ख़र्चे से क़िलेबन्दी।

दूसरी Colonial Conference १८९४ ई० में कनाडा-सरकार के निमंत्रण पर उसी के प्रसिद्ध शहर ओटावा में हुई। इसे बुलाने का मुख्य उद्देश था कनाडा और आस्ट्रेलिया के बीच में Cables का बनाना। परन्तु इस कान्फ्रेंस का सबसे अधिक महत्त्व है Imperial Preference के पक्ष में एक प्रस्ताव पास करने का, जिसका प्रभाव आर्थिक समस्याओं पर अधिक है।

तृतीय Colonial Conference को सम्राट् की सरकार ने १८९७ ई० में बुलाया, जिसमें समस्त self-governing उपनिवेशों के समस्त प्रधान मंत्रियों ने भाग लिया था। इसमें अनेक बातों पर विचार हुआ। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात हमारे लिए यह थी कि इसमें प्रवास-सम्बन्धी मामलों पर विचार हुआ; क्योंकि आस्ट्रेलिया में एशियानिवासियों के ख़िलाफ़ आन्दोलन हो रहा था। इसमें यह आशा प्रकट की गई थी कि इस प्रकार का कोई तरीक़ा निकाला जायगा, जिससे यह उपनिवेश एशियावालों की बढ़ती हुई आबादी से रुक सके और रंग-भेद का प्रश्न न उठने पाये।

चतुर्थ Colonial Conference एडवर्ड सप्तम के शासनारूढ़ होने के समय सन् १९०२ में बुलाई गई थी और यहाँ पर वह सबसे पहले, [illegible] व्यवस्थित रूप में मानी गई। इसी समय यह भी तय किया गया था कि अब प्रति चौथे वर्ष इस प्रकार की कान्फ्रेंसें हुआ करें, जिसमें औपनिवेशिक सचिव के अतिरिक्त स्वायत्त-शासन-प्राप्त उपनिवेशों के प्रधान मंत्री भी सम्मिलित हुआ करें।

लगातार चार कान्फ्रेंसों के बाद यह अनुभव किया गया कि इसका क्षेत्र बढ़ाने की आवश्यकता है और इसको अब Imperial Council का रूप देना उचित होगा। ऐसा हो जाने से भारत भी इसमें शामिल हो सकेगा और इसकी ओर से इँगलैंड के भारत-मंत्री इसमें भाग लिया करेंगे। भारत इँगलैंड का कोई उपनिवेश तो था नहीं, जो इन औपनिवेशिक कान्फ्रेंसों में शामिल हो सकता। उसको शामिल करने के लिए इसका नाम बदलने की आवश्यकता थी। इस कार्य को [illegible] प्रकार करने के लिए एक स्थायी सभा के [illegible] की आवश्यकता थी, परन्तु एकमत न होने के कारण इस प्रश्न को अगली औपनिवेशिक कान्फ्रेंस में विचार होने के लिए छोड़ दिया गया।

५वीं औपनिवेशिक परिषद् में, जो सन् १९०७ ई० में हुई थी, यह तय हुआ कि इसका नाम बदलकर साम्राज्य-परिषद् (Imperial Conference) कर दिया जाय, जिसमें इँगलैंड तथा अन्य डोमीनियन्स के प्रधान मंत्री सम्मिलित हों (भारतवर्ष इसमें छोड़ दिया जाय)। औपनिवेशिक सचिव के कार्यालय में एक 'स्थायी मंत्री-मंडल' की नींव डाली जाय, जिसका कार्य हो [illegible] परिषदों के लिए कार्यवाही को ठीक रखना।



प्रस्तावों की देखभाल और पत्र-व्यवहार आदि चलाना। एक मुख्य शासन-सम्बन्धी बात पर विचार हुआ कि एक Imperial Court of Appeal क़ायम किया जाय और उसी में लार्ड सभा तथा इसकी Judicial Committee को मिला दिया जाय। पर सम्राट् की सरकार ने इसे मंज़ूर नहीं किया। एक दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव, जिसे सम्राट् की सरकार ने मंज़ूर कर लिया, यह था कि जब उपनिवेश संघ बना ले या मिल जावे और जब अपील के वास्ते एक ही अन्तिम कोर्ट रक्खे, तब प्रिवी कौन्सिल को कोई अपील न भेजे। केवल वही भेजे जो उनके कोर्ट के ज़रिये भेजा जाय। इस कान्फ़्रेंस का सबसे अधिक आवश्यक पहलू यह था कि इसके प्रस्तावों पर अमल किया गया।

सर्वप्रथम Imperial Conference सन् १९११ में हो सकी। इस कान्फ़्रेंस की ख़ास बात थी कि इसका एजेन्डा पहले से ही तैयार कर लिया गया था और डोमीनियन्स की पार्लामेंटों ने अपने-अपने विचार प्रकट करने के लिए इसे बुलाने को कहा था। आस्ट्रेलिया ने Imperial Court of Appeal का प्रस्ताव पेश किया। न्यूज़ीलैंड ने Imperial Council के प्रश्न को परिवर्तित रूप में Imperial Parliament के लिए पेश किया, जिसका कार्य हो साम्राज्य के लड़ाई-झगड़े, शान्ति, वैदेशिक नीति और सन्धियों (जिनका प्रभाव साम्राज्य पर पड़े) में दख़ल देना। यह भी पेश किया गया कि एक Imperial House of Representatives निर्माण किया जाय, जिसके २९७ सभासद हों और १२ सभासदों की एक Imperial Council of Defence भी हो। दोनों सभाएँ मिलकर एक तीसरी Executive Committee बनावें, जिसमें १५ सदस्य हों और वह उपर्युक्त मामलों में काम करे। पार्लामेंट को टैक्स उगाहने की कोई ताक़त न हो, बरन् डोमीनियन्स अपने-आप अपनी इच्छानुसार रुपया दें। सभी देशों के प्रतिनिधियों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया कि इससे उनकी स्वतंत्रता में गड़बड़ी पड़ने की सम्भावना है। अनेक प्रस्ताव असफल रहे; परन्तु यह सर्वसम्मति से तय रहा कि इँगलैंड तथा अन्य डोमीनियन्स के प्रधान मंत्रीगण एक-दूसरों के देशों में भ्रमण करने आया-जाया करें। और भी कई बातें तय हुईं, यथा साम्राज्य भर के प्रत्येक को अन्दर ५ साल रहने के बाद उसे उस देश के अधिकार मिल जावें। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि सम्राट् की सरकार के प्रतिनिधियों को, जो Peace Conference में भाग लेते हों, सारे Instructions डोमीनियन्स की सरकारों से पूछ-ताछ करके दिये जाया करें और समस्त अन्तरराष्ट्रीय मामलों में इसी प्रकार कार्य किया जाय। आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड भारतीयों को उन जहाज़ों के पास न फटकने देना चाहते थे, जो उनके बन्दरगाहों में होकर गुज़रते हैं। लार्ड क्रू डोमीनियन्स के इस अधिकार को मानते थे कि वे भारतीय मज़दूरों को न घुसने दें; क्योंकि इससे मज़दूरों में प्रतिस्पर्द्धा होती है; पर वे ऐसे जहाज़ों में न बैठने देने के लिए, जो उनके यहाँ होकर गुजरते हैं, बराबर ख़िलाफ़ रहे। साम्राज्य के लिए बेतार के तार के प्रश्न पर सब राज़ी हो गये। Imperial Preference का सवाल स्थगित कर दिया गया; क्योंकि इसके लिए एक रायल कमीशन अलग से नियुक्त कर दिया गया, जो साम्राज्य के अन्दर भ्रमण करके इसके Resources और व्यापार की तरक़्क़ी के लिए मौक़े की बात पर रिपोर्ट पेश करे।

इतने में महासमर का प्रारम्भ हो गया, जिस कारण सारी परिस्थिति में भारी परिवर्तन हो गया। लड़ाई के समय में अनेक असामयिक बातें हुई थीं। इँगलैंड ने, जिसे साम्राज्यान्तर्गत सभी देश सब प्रकार की सहायता दे रहे थे, १४ दिसंबर १९१६ ई० को डोमीनियन्स के प्रधान मन्त्रियों को एक विशेष War Cabinet में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया कि वे आकर लड़ाई जारी

रखने, सन्धि की शर्तें, और लड़ाई के बाद उत्पन्न हुई समस्याओं पर विचार-परिवर्तन करें। भारत को भी तीन प्रतिनिधियों को भेजने का मौक़ा मिला जो भारतमंत्री के सलाहकार के रूप में काम करें। इँगलैंड में इसकी मीटिंगें दो प्रकार से हुईं। War Cabinet की अन्तिम मीटिंग में यह तय हुआ कि इस प्रकार की मीटिंग प्रति वर्ष हुआ करे और सारे प्रधान मन्त्री इसके सदस्य हुआ करें। भारतीय जनता का भी एक spokesman हुआ करे, जिसे भारतीय सरकार चुनकर भेजे। इस कैबिनेट के सभासदों में बराबरी के प्रश्न पर ज़ोर डाला गया और तय हुआ कि इसका सभापति इँगलैंड का प्रधान मन्त्री हुआ करे। प्रत्येक देश अपनी स्वतन्त्रता, अपनी राष्ट्रीय सरकार और अपने मन्त्रियों के उत्तरदायित्व को जनता के प्रति ही मानता था। जून १९१८ में इस कैबिनेट की फिर मीटिंग हुई। भारत की ओर से भारत-मंत्री के अतिरिक्त लार्ड सिंह और पटियाला के महाराज ने इसमें भाग लिया। इसमें दो मार्के के प्रस्ताव पास हुए। (१) इँगलैंड के प्रधान मंत्री ने डोमीनियन्स के प्रधान मंत्रियों का यह अधिकार मान लिया कि वे उससे सीधा पत्र-व्यवहार कर सकें। इस बात को वही तय करेंगे कि किस मामले के लिए इन तरीक़ों को इस्तेमाल करने की आवश्यकता है। तार नियमानुसार औपनिवेशिक मंत्री के ज़रिये से आया-जाया करें, परन्तु इस सम्बन्ध में भी उन्हें यह अधिकार दे दिया गया। (२) Imperial War Cabinet की मीटिंग के समय परामर्श नियमित रूप से बराबर जारी रखने के लिए डोमीनियन्स के प्रधान मंत्रियों को यह अधिकार दिया गया कि वे अपनी ग़ैर-हाज़िरी में, किसी दूसरे व्यक्ति को Cabinet की मीटिंग में बैठने के लिए नियुक्त कर सकें। भारत के प्रतिनिधि भी उसमें सम्मिलित हो सकेंगे। न्यूज़ीलैंड के प्रतिनिधियों की राय में यह शासन-सम्बन्धी एक बड़ा उदार कार्य था कि डोमीनियन्स को विदेशी मामलों में स्वतंत्रता दे दी गई। कनाडा के प्रतिनिधियों के रूप में Imperial War Cabinet कई सरकारों का मंत्रिमंडल था, जिसमें प्रत्येक प्रधान मंत्री अपनी पार्लामेंट और अपने देश-वासियों के प्रति उत्तरदायी है। इन नतीजों को कार्यरूप में परिणत करने का कार्य डोमीनियन्स की पार्लामेन्ट पर निर्भर है और इस प्रकार प्रत्येक डोमीनियन्स अपनी स्वतंत्रता को क़ायम रखते हुए हैं।

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि War Cabinet साम्राज्य के लिए कोई कार्यकारिणी सभा न थी, वरन् लड़ाई के मामलों को ठीक-ठाक रखने के लिए एक असाधारण सभा थी। वैध रूप से इसलिए यह (War Cabinet) Imperial War Conference से बिलकुल अलग चीज़ थी। वास्तविक युद्ध-सम्बन्धी साम्राज्य-परिषद् १९१७-१८ में हुई थी। इसका अधिकांश कार्य गुप्त रक्खा गया था, क्योंकि बहुत-सा विचारार्थ मामला दुश्मनों के ख़िलाफ़ था। इसमें यह महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुआ कि भारत तथा डोमीनियन्स से ऐसे मामलों में, जो सबसे सम्बन्ध रखते हों, परामर्श किया जाय। इसमें १९०७ वाली Colonial Conference में पास हुए प्रस्ताव में थोड़ा संशोधन किया गया, जिसके द्वारा भारतीय डोमीनियन्स में प्रवेश नहीं कर सकते थे। इस नये संशोधन से भारत को यह अधिकार दिया गया कि वह डोमीनियन्स के ख़िलाफ़ प्रवास-गमन सम्बन्धी वैसे ही क़ानून बना सके, जैसे कि वहाँ भारत के निवासियों के विरुद्ध बनाये जायँ। इसमें यह भी निश्चित हुआ कि साम्राज्य को अन्य देशों की सहायता के हिसाब से बिलकुल स्वतंत्र बनाया जाय ताकि वह खाने-पीने की सामग्री, कच्चे माल और अन्य आवश्यक उद्योग-धन्धों में स्वतंत्र रह सके।

सन् १८ की परिषद् की कार्यवाही भी गुप्त रही। डोमीनियन्स के प्रधान मंत्रियों का इँगलैंड के प्रधान मंत्री से सीधा बातचीत करने का अधिकार मान लिया गया। प्रवासगमन के ऊपर तो



सम्बन्ध में भारत डोमीनियन्स के साथ उसी प्रकार का व्यवहार करे, जिस प्रकार का वे करें, इस प्रश्न को और भी अधिक विस्तार में स्वीकार कर लिया गया। भारतीय अपनी एक स्त्री और छोटे बच्चों के साथ प्रवेश कर सके, यदि वह क़ानूनन किसी डोमीनियन्स में रह चुका हो, इस पर ज़ोर दिया गया। आर्थिक क्षेत्र में एक प्रस्ताव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पास हुआ कि एक बोर्ड क़ायम किया जाय, जो व्यापारियों के जहाज़ों के सम्बन्ध में, समुद्री चिट्ठी-पत्री आदि बातों की खोज करे। सन् १९१९ का प्रस्ताव भी कम महत्त्वपूर्ण न था, जिसके अनुसार डोमीनियन्स के साथ Imperial preference की नीति के अनुसार तत्कालीन ड्यूटी में कमी कर दी गई। इसी अवसर पर प्रिंस आफ़ वेल्स ने, जो इस समय एडवर्ड अष्टम के नाम से हमारे सम्राट् हैं, सारी डोमीनियन्स में दौरा करने का निश्चय किया था।

सन् १७ ई० की लड़ाई साम्राज्य-परिषद् के शासन-सम्बन्धी मामलों को विचार करने के लिए एक विशेष परिषद् द्वारा तय करने का निश्चय किया था। कई अन्य कारणों ने, जिनमें राष्ट्रसंघ का निर्माण, अँगरेज़ी-जापानी समझौते की पुनरावृत्ति आदि भी थे, इसको सन् १९२१ ई० में बुलाना अनिवार्य कर दिया। इस परिषद् में भारत से कच्छ के महाराजा देशी राज्यों की ओर से और महामान्य श्रीनिवास शास्त्री जनता तथा भारत-मंत्री की ओर से सम्मिलित हुए थे। इस परिषद् के सम्बन्ध में आस्ट्रेलिया की राय थी कि डोमीनियन्स का महत्त्व बढ़ गया है; पर न्यूज़ीलैण्ड ठीक इसके विपरीत सोचता था कि Imperial War Cabinet के बाद से उनका दर्जा नीचे गिर गया है। इसमें अनेक बातें तय हुईं। कुछ इस प्रकार हैं—(१) बराबर बाधित रूप से परामर्श तभी जारी रह सकता है, जब साम्राज्यान्तर्गत देशों के बीच में चिट्ठी-पत्री आदि के सुबीते हों, (२) डोमीनियन्स तथा भारत के प्रधान मंत्री प्रतिवर्ष मिला करें, (३) डोमीनियन्स के प्रधान मंत्रियों का यह अधिकार है कि वे इँगलैण्ड के प्रधान मंत्री से सीधी बातचीत कर सकेंगे और परामर्श के मामलों में अपने बदले में किसी प्रतिनिधि को नियुक्त कर सकेंगे। भारतीयों के प्रवास-सम्बन्धी मामलों पर भी बड़ी बहस हुई।

इसके बाद १९२३ में फिर Imperial Conference हुई, जिसमें आयरलैण्ड ने सबसे पहले भाग लिया। भारत की ओर से महामान्य सर तेजबहादुर सप्रू और अलवर के महाराजा इस में सम्मिलित हुए। आर्थिक प्रश्न को अलग करके एक आर्थिक परिषद् के सिपुर्द कर दिया गया, और शासन-सम्बन्धी कोई मामला पेश नहीं हुआ। लोसून-सन्धि का स्वागत किया गया, परन्तु कनाडा ने इसे स्वीकार करने से इन्कार कर दिया; क्योंकि सन्धि-चर्चा में इसको भाग लेने का कोई अवसर न मिला था। वाशिंगटन-कान्फ़्रेंस पर सबने सन्तोष प्रकट किया। यह बात सबने मान ली कि प्रत्येक भाग पर पहले अपनी रक्षा का भार है और साम्राज्य की लड़ाई के मोर्चों आदि की रक्षा के लिए पर्याप्त साधनों की आवश्यकता है। Naval bases के द्वारा सामुद्रिक बेड़ों के आने-जाने की रक्षा ज़रूरी है और वाशिंगटन-परिषद् में तय सामुद्रिक शक्ति की अन्य विदेशी राष्ट्रों से बराबरी भी आवश्यक है। सिंगापुर में सामुद्रिक बेड़े के अड्डे बनाने का प्रयत्न आस्ट्रेलिया, भारत और न्यूज़ीलैण्ड ने बहुत पसन्द किया।

सन् २४ में मज़दूर-सरकार ने विना डोमीनियन्स की सरकारों से परामर्श किये रूस की सरकार को मान लिया (Recognised) और Reparations Conference के सम्बन्ध में भी इसने डोमीनियन्स के अधिकार को भुलाना चाहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि शासन-सम्बन्धी मामले के लिए फिर एक परिषद् बुलाने की आवश्यकता का अनुभव होने लगा, जिसे १९१७ की कान्फ़्रेंस ने तजवीज़

भी किया था, मगर १९२१ की परिषद् में टाल दिया गया था।

मार्च, सन् २५ में सम्राट् की सरकार ने इस परिषद् को बुलाने के लिए प्रयत्न किये, पर वह न हो सकी और आगे चलकर सन् २६ में की जा सकी। इसका अधिवेशन १९ अक्टूबर को शुरू और २३ नवम्बर को समाप्त हुआ। विशेषज्ञों की छोटी-छोटी कमेटियाँ सबसे पहले इसी मौक़े पर बनाई गईं, ताकि वे अधिक गहराई तक जाकर वास्तविकता की जाँच-परताल कर सकें। उनकी रिपोर्ट पास कर दी गई। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कमेटी थी Imperial relations की, जिसके सभापति थे लार्ड बालफ़ोर।

दक्षिण अफ़्रीका अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में सम्मान पाने के लिए लालायित था और इसी मतलब से इस परिषद् में उसने डोमीनियन्स के स्थान पर विचार करने के लिए ज़ोर दिया। न्यूफ़ाउण्डलैण्ड अपनी तत्कालीन परिस्थिति पर प्रसन्न था। बालफ़ोर-कमेटी की राय से यह बात स्पष्ट कर दी गई कि—

"They are autonomous countries in the British Empire, equal in status, in no way subordinate one to another, in any aspect of their domestic and external affairs, though limited by a common allegiance to the Crown, and freely associated, as members of the British Commonwealth of Nations"

इसी समय इँगलैण्ड का नाम, जो अभी तक United Kingdom of Great Britain and Ireland था, बदलकर Great Britain and Ireland हो गया।

प्रत्येक डोमीनियन में एक गवर्नर-जनरल रहा करे और उसके सम्बन्ध में तय हुआ कि—

"An essential consequence of the equality of status existing among the members of the British Commonwealth of Nations is that the Governor-General of a dominion is the representative of the Crown holding all essential aspects the same position relation to the administration of pu[blic] affairs in a dominion as is held by [His] Majesty the King in Great Britain and [that] he is not the representative or Agent of [His] Majesty's Government in Great Britain [or] of any department of that Government."

सारी कार्यवाही मन्त्रीगण ही करेंगे; ... गवर्नर-जनरल को भी इसकी ख़बर दिया करेंगे। इसके होने से डोमीनियन्स और ... की सरकार बराबरी के दर्जे पर रहेंगी।

प्रिवी कौन्सिल में अपील के प्रश्न पर विचार हुआ और आयरलैंड का इसे नेस्तना[बूद] करने का प्रस्ताव गिर गया। भारत का ... ठीक नहीं रहा; क्योंकि सारी विशेष कमेटियों से वह अलग रक्खा गया। बर्दवान के महाराजा ... दक्षिण-अफ़्रीका और भारत के बीच के प्रश्नों ... उठाया। Merchant shipping के सम्बन्ध में ... का अधिकार मान लिया गया। ऐसा म[ालूम] पड़ता था कि इस परिषद् की राय में स्वतंत्र[ता] (autonomy) ही मुख्य उद्देश है और पूर्ण स्वतंत्र[ता] (independence) नहीं। अन्तरराष्ट्रीय मा[मलों] में स्वतंत्रता देने की बात से बिलकुल ही इन[कार] कर दिया गया। आयरलैंड के प्रयत्नों का कुछ ... फल न हुआ कि वह अन्तरराष्ट्रीय स्थान ... कर सके, ताकि सम्राट् की सरकार भी संधियों ... भाग ले सके। इसमें यह तय हो गया कि कोई ... डोमीनियन किसी से भी, बिना सम्राट् ... सरकार की सलाह आदि के, कोई सन्धि ... कर सकती। (१) केवल सम्राट् साम्राज्य ... सरकार के अनुरोध पर विदेशों में कूटनीति[ज्ञ] रख सकता है। (२) बिना इस प्रकार ... परामर्श के कोई भी सन्धि नहीं की जा सकती ... (३) साम्राज्य की सरकार के पूरे तौर पर पर[ा]मर्श कर चुकने के बाद ही कोई सन्धि की ...

सकती है। (४) बिना इस प्रकार के परामर्श के कोई सन्धि स्वीकार (ratified) नहीं की जा सकती। परिषद् ने शस्त्रीकरण में कमी करके सीमित कर दी। इस सम्बन्ध में यदि कोई कार्य किया जाय तो उसमें समस्त साम्राज्य और उसके communications का ध्यान रखते हुए।

इसके बाद जो परिषद् सन् ३० में हुई, वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें जो बातें तय हुई थीं, वे ज़्यादातर सन् ३१ के प्रसिद्ध Statute of Westminster में सम्मिलित कर दी गई हैं।

अभी तक जितनी परिषदें हुईं, सबमें कितने ही महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार होता रहा, कितने ही समझौते हुए और इनसे डोमीनियन्स तथा सम्राट् की सरकार के बर्ताव-व्यवहार और status में पर्याप्त अन्तर आ गया। प्रत्येक परिषद् में डोमीनियन्स ने अपनी माँग पेश की और सम्राट् की सरकार ने उन पर विचार किया। किसी में उनकी शर्तें बिल्कुल मान ली गईं, किसी में कम और किसी में मानी हुई बातों को फिर से उठाकर राजनीतिक चालों के द्वारा ज्यों का त्यों करके सम्राट् की सरकार डोमीनियन्स को अपने शिकंजे से बाहर न निकलने देने के प्रयत्न बराबर ही करती रही। यदि पाठक इन परिषदों के विस्तृत इतिहास का अवलोकन करेंगे तो उन्हें मालूम पड़ेगा कि सम्राट् की सरकार तथा डोमीनियन्स की सरकारों में किस प्रकार ऐंचातानी होती रही है और ये सरकार किस प्रकार धीरे-धीरे उग्रतर रूप धारण करती रहीं। सम्राट् की सरकार भी किस सुन्दर पैंतरे से इनका जवाब देती गई। इस समय तक की परिषदों के होने से डोमीनियन्स को जो अधिकार प्राप्त हुए हैं, उन्हें संक्षिप्त में मोटे रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं। डोमीनियन्स की व्यवस्थापिका सभाओं की पोज़ीशन व्यवहारिक रूप में तथा क़ानूनन नीचे दरजे की (subordinate) थी। (१) वे केवल अपने देश की सीमाओं के अन्दर के लिए क़ानून बना सकती हैं। (२) extra-territorial क़ानून वे नहीं बना सकती हैं। (३) Colonial Laws Validity Act of 1865 के अनुसार वे इँगलैंड के Common law के ख़िलाफ़ क़ानून बना सकती हैं, पर ऐसे क़ानूनों के ख़िलाफ़ नहीं, जो इँगलैंड की पार्लामेन्ट ने बनाये हैं और डोमीनियन्स में प्रचलित हैं। (४) सम्राट् की पार्लामेन्ट डोमीनियन्स के लिए क़ानून बना सकती है। गवर्नर-जनरल डोमीनियन्स की व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा निर्माण किये हुए क़ानूनों को लागू न होने देने के लिए रोक सकता है अथवा उसे वह सम्राट् के विचारार्थ रोक सकता है। गवर्नर-जनरल की स्वीकृति मिल जाने तथा क़ानून के बन जाने पर भी सम्राट्, एक निश्चित समय के अन्दर, उसे अस्वीकार कर सकता है। (५) विदेशों के मामलों में सम्राट् की सरकार की इच्छानुसार ही कार्य होगा।

सन् ३० की परिषद् के अनुसार, जिस Statute of Westminster निर्माण हुआ है, वह डोमीनियन्स तथा सम्राट् की सरकार के सम्बन्ध में एक अत्यन्त ऐतिहासिक वस्तु है। इससे उनके रिश्ते में एक महान् परिवर्तन हो गया है। जितना अभी तक की कितनी ही परिषदों में नहीं हो सका, वह इस एक ही परिषद् में हो गया है। पाठक देखेंगे कि अब सारी परिस्थिति में ज़मीन-आसमान का-सा अन्तर है। इसकी मुख्य-मुख्य बातों को हम नीचे दे रहे हैं। इँगलैंड के सम्राट् के सिंहासनारूढ़ और राज्याभिषेक के क़ायदों आदि के सम्बन्ध में, यदि कभी कोई परिवर्तन किया जाय तो, इँगलैंड की पार्लामेन्ट के अतिरिक्त डोमीनियन्स की पार्लामेन्टों की भी राय लेना ज़रूरी होगा।

(१) कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, दक्षिण अफ़्रीका की यूनियन, आयरिश फ़्री स्टेट और न्यूफ़ाउन्डलैंड को डोमीनियन का पद मिल गया। भारत को बिल्कुल छोड़ दिया गया।

(२) १८६५ ई० का Colonial Laws Validity Act डोमीनियन द्वारा बनाये गये किसी क़ानून से अब सम्बन्ध नहीं रहेगा। (अ) डोमीनियन सरकार द्वारा बनाया हुआ कोई क़ानून अस्वीकार नहीं होगा। इँगलैंड के किसी तत्कालीन या भविष्य के पार्लामेन्ट द्वारा बनाये हुए क़ानून के ख़िलाफ़ होने के कारण। (ब) डोमीनियन्स की व्यवस्थापिका सभाओं को यह अधिकार होगा कि वे इँगलैंड की पार्लामेन्ट द्वारा बनाये हुए ऐसे क़ानूनों को, जो उन तक पहुँचते हैं, स्वीकार न करें अथवा संशोधन कर डालें। (स) इँगलैंड की पार्लामेन्ट डोमीनियन्स के लिए कोई भी क़ानून नहीं बना सकती, जब तक कि स्वयं डोमीनियन ऐसा करने के लिए इँगलैंड की सरकार से प्रार्थना न करे। (इ) Extra-territorial क़ानून बनाने का डोमीनियनों की पार्लामेन्ट को पूर्ण अधिकार होगा। (ई) Admiralty के Merchant shipping के लिए भी अधिकार दिये गये हैं।

इनको ध्यानपूर्वक पढ़ने से ज्ञात होता है कि यह बहुत महत्त्वपूर्ण अधिकार है और इँगलैण्ड की पार्लामेन्ट की ताक़त इस मामले में बुरी तरह कम हो गई है। (अ) यह कोई ऐसा क़ानून नहीं बना सकती, जो डोमीनियनों में लागू किया जा सके और यदि यह विना उनकी राय के ऐसा कोई क़ानून बनाती है तो डोमीनियनों के कोर्ट इनको अस्वीकार कर सकते हैं। (ब) ब्रिटिश-सरकार के क़ानूनों को डोमीनियनों की सरकार अस्वीकार या उनमें संशोधन कर सकती है। (स) अगर इस Statute के क़ायदों को क्रान्तिकारी दृष्टि से देखा जाय तो ब्रिटिश सरकार की आयरिश-फ़्री स्टेट के समान सन्धियों को और १७१७ ई० के Act of Succession को भी डोमीनियन सरकार अस्वीकार कर सकती है। अब केवल इनका ब्रिटिश-साम्राज्य से अलग होना ही बाक़ी रह गया। इसके लिए भी कई डोमीनियनें पैर फैलाती दृष्टिगोचर होती हैं। दक्षिण-अफ़्रीका की ... में एक ज़ोरदार दल इसके लिए प्रयत्नशील ... आयरलैण्ड में डी० वेलरा मनमानी कर रहे ...

सन् ३० की परिषद् में Westminster इन Statutes के अतिरिक्त Inter-Imperial ... bunal पर भी विचार हुआ था, परन्तु कोई ... न निकला। साम्राज्यान्तर्गत लड़ाई-झगड़ों ... करने के लिए हेग नगर में स्थापित Perm... Court of International Justice को ... प्रश्न पर भी कोई समझौता नहीं हुआ। ... झगड़े, जिन पर फ़ैसला दिया जा सकता है, ... अनुमति से एक Tribunal के सामने पेश कि... सकते हैं, जिसके ५ सभासद हों और इन ... सदों में से कोई भी विदेशी न हो।

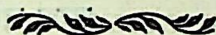
आस्ट्रेलिया ने गवर्नर जनरल की नियु... प्रश्न उठाया; क्योंकि उसने अपना गवर्नर ... स्वयं नियुक्त कर लिया था। प्रश्न यह ... गवर्नर जनरल के साथ एक मामूली अधिका... हैसियत से ऐसा बर्ताव किया जाय। उसकी ... सम्राट् के नाम पर तत्कालीन सरकार द्वारा ... है; तब उसकी छाँट डोमीनियन, ब्रिटिश ... और सम्राट् की सलाह से हो। तब यह ... कि सम्राट् नियुक्ति करते समय डोमीनियन ... की सलाह पर ही कार्य करें और सम्राट् ... डोमीनियनों की सरकारों में बातचीत ... तरीक़ा वही होगा, जो वे दोनों उचित ... विदेशी मामलों में यह तय हुआ कि (१) ... होने से पहले एक दूसरे से परामर्श करें (२) ... व्यवहार आदि के समय सभी सरकारों की ... में पर्याप्त स्पष्टता होनी चाहिए, (३) कोई ... कार दूसरी सरकार पर, विना उसकी राय ... Obligation नहीं लाद सकती।

कूटनीति के मामलों में बचत के ख़्या... डोमीनियन्स सम्राट् की सरकार के प्रति... को, जो विदेशों में रहते हैं, कुछ मामलों ... योग करने के लिए राज़ी हो गई, और ...

बातें, जिनमें किसी प्रकार का मतभेद नहीं हो सकता जैसे सन्देश, अथवा ग़ैरराजनैतिक परिषदों आदि के निमन्त्रण आदि, इनके ज़रिये से हो जाते।

सन् ३१ ई० के वेस्ट मिनिस्टर स्टेटूट में कई देशों को डोमीनियन का पद मिला है। यह साम्राज्य के अन्दर वही स्थान है, जो भारत के नरमदल के नेता भारत के लिए चाहते हैं। कांग्रेसवादी भारत को बिलकुल स्वतंत्र देखना चाहते हैं और वे ब्रिटिश सरकार से भारत का सम्बन्ध तोड़ने के लिए तैयार हैं, जब कि हमारा छोटा-मोटा लिबरल दल भारत का ब्रिटिश से सम्बन्ध आवश्यक समझता है। डोमीनियनों को यह पद एकदम नहीं मिल गया था, वरन् उनको अपने अधिकारों के लिए बराबर लड़ना पड़ा है, जिसका ज़िक्र हम सिलसिलेवार ऊपर की परिषदों के वर्णन में कर चुके हैं। यह उनके वर्षों के प्रयत्नों का फल है। यह नहीं कहा जा सकता कि इससे सब सन्तुष्ट हैं, वे इससे आगे बढ़ने के इच्छुक हैं। वर्तमान डोमीनियन-स्टेट्स का अर्थ है ग्रेट-ब्रिटेन के साथ इन देशों का बराबरी का दावा। इस दावे के होते हुए भी व्यावहारिक रूप से कितनी ही बातों में वे बराबर नहीं हैं। इसके लिए वे सन् ३० ई० के बाद अब तक प्रयत्नशील रही हैं। प्रत्येक देश का दृष्टिकोण भिन्न है और उसको प्राप्त करने के लिए सभी इच्छुक हैं।

हम यह तो नहीं कह सकते कि आगामी Imperial Conference में, जो ३७ ई० के मई मास में होगी, क्या बातें तय होंगी और उसका क्या परिणाम निकलेगा; पर हम यह अवश्य कह सकते हैं कि इसमें बड़ा मज़ा आवेगा, जब प्रत्येक देश अपनी-अपनी माँग को मज़बूती के साथ कमज़ोर ग्रेट-ब्रिटेन के सामने, जो उन्हें आगामी महासमर में साथ ले जाने के लिए जी-जान से इच्छुक है, रक्खेगा। इस पारस्परिक समझौते में डोमीनियन्स अपना अधिक से अधिक लाभ देखेंगी और ब्रिटेन यह कि उसका नुक़सान न होने पावे और वे सब सन्तुष्ट रहें। यह तभी हो सकता है, जब भारत को बीच में पीस डालें। अतएव हमें डर है कि इससे भारतीय हितों को कहीं भारी हानि न पहुँच जाय। भारतीयों को अपनी रक्षा के लिए अभी से तैयारी करने की आवश्यकता है।



रामचरितमानस में मनोविज्ञान

श्रीझुमुकलाल श्रीवास्तव

Psychology का पर्यायवाची शब्द मनोविज्ञान है तो, किन्तु मनोविज्ञान कहने से Psychology का पूर्ण भाव हृदयङ्गम नहीं होता। मन का विज्ञान, साइंस अथवा शास्त्र केवल यहीं तक उसका भाव परिमित न रहकर व्यवहार में वह एक दूसरे अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। जब हम कहते हैं कि अमुक व्यक्ति की कृति में अच्छी Psychology है या उसकी कृति Psychological है तब उसका मतलब हम यही समझते हैं कि अमुक कृति में स्वाभाविक चरित्र-चित्रण है। इसी दूसरे अर्थ को लक्ष्य में रखकर कुछ लिखना ही इस लेख का उद्देश्य है।

वर्णनात्मक काव्यों में स्वाभाविक चरित्र-चित्रण के विना सजीवता नहीं आ सकती। रस-परिपाक के लिए अनुभाव विभावादि मात्र के फेर में न पड़कर सच्चे कवि चरित्र चित्रण की ओर विशेष ध्यान दिया करते हैं। जिसकी कृति में इसकी कमी होती है, उसके पात्र निर्जीव कठपुतलियों की तरह प्रतीत होते हैं और काव्य अरुचिकर होता है। कलावंत ही क्या, साधारण मनुष्य भी ऐसे काव्यों की त्रुटियाँ बता सकता है। वही काव्य सुन्दर व आदर्श समझा जाता है, जिसकी प्रशंसा में विद्वान् से लेकर साधारण मनुष्य तक वाह-वाह कर उठे। जहाँ सच्ची कला होती है, वहाँ मूर्ख भी प्रभावित हो ही जाता है। नियम सब जगह होते ही हैं और उनका पालन उचित [illegible] होना भी चाहिए; परन्तु इसके पहले अपनी [illegible] व प्रतिभा से नियमों व उनके अवसरों [illegible] ठीक परख करना अत्यावश्यक है। इस वि[illegible] एक उदाहरण प्रचलित है कि राजा भोज ने [illegible] सभा से यश के लिए उपमान की याचना [illegible] नियम है कि यश की उपमा सफ़ेद चीज़ों से [illegible] चाहिए। बस, कवियों ने दही, कपास [illegible] उपमान पेश करने शुरू किये। अंत में कालि[illegible] की बारी आई। कविकुलगुरु कालिदास ने [illegible] "आपकी कीर्ति चन्द्रमा की स्वच्छ चाँदनी [illegible] तरह सर्वत्र फैल रही है।" गुणग्राहक, [illegible] राजा प्रसन्न हो गया।

स्वाभाविक चरित्र-चित्रण कैसे संभव [illegible] इसके लिए कवि के पास एक अनोखी शक्ति [illegible] है जिसे मानवी प्रकृति का सच्चा ज्ञान (T[illegible] insight into human nature) कहते [illegible] इसी शक्ति के बल से वह अपनी रचना [illegible] सजीव सरस और सुन्दर बना सकता है। जि[illegible] पास यह शक्ति होती है, उसे हम मनोवैज्ञा[illegible] अनुभवी (Psychologist) भी कह सकते [illegible] शेक्सपियर को मानवी प्रकृति का बहुत अनु[illegible] था। हमारे प्राचीन कवि भी ऐसे अनुभवों [illegible] से एक बढ़कर थे। महाकवि तुलसीदास [illegible] मानव-प्रकृति की सूक्ष्मदर्शिता कितनी आ[illegible]



व सुन्दर थी, यह निम्नलिखित कुछ दृष्टांतों द्वारा व्यक्त करने का प्रयत्न किया जाता है।

पहले एक छोटा-सा उदाहरण लीजिए। श्रीराम और लक्ष्मण जनकपुर की वस्तियों में भ्रमण करते हुए यज्ञ की वेदी के समीप पहुँचते हैं। उनकी शोभा और सुन्दरता की जगह जगह चर्चा हो रही है। नगर के बालक तो ऐसे लट्टू हुए हैं कि उनका पीछा ही नहीं छोड़ते। सौंदर्य में अद्‌भुत आकर्षण होता है। बड़े बूढ़े तो उसे देखकर ही तृप्त हो जाते हैं, परन्तु बालक का जी इतने से नहीं भरता। सुन्दर फूल बालक की दृष्टि के सामने आया नहीं कि उसने उसे हाथ बढ़ाकर पकड़ने की चेष्टा की। राम-लक्ष्मण वेदी देख रहे हैं और पुरबालक, वेदी की सजावट, आसपास राजा, मुनि, बड़े, छोटे, नर, नारी, नागरिक आदि के बैठने के स्थान दिखा रहे हैं। उनके मन में दिखाने का कैसा कुतूहल है कि —

> पुरबालक कहि-कहि मृदु वचना;
> सादर प्रभुहिं देखावहिं रचना।

इतना ही नहीं बल्कि—

> सब शिशु यहि (देखावहिं रचना)
> मिस प्रेमवश, परसि मनोहर गात।
> तन पुलकहिं अति हरष हिय,
> देखि-देखि दोउ भ्रात॥

कितना सुन्दर बहाना है! वर्णन सजीव हो गया है। जान पड़ता है मानो गोस्वामीजी ने वह लीला वस्तुतः अपनी आँखों से देखी थी। यदि नहीं, तो उनकी कल्पना की स्वाभाविकता का क़ौन क़ायल न होगा?

परशुराम अत्यंत क्रोधी थे। उनका नाम सुनते ही बड़े-बड़े धनुर्धारी और वीर थर-थर काँपने लगते थे। जब परशुराम विकराल रूप धारण किये, हाथ में कुठार लिये राजा जनक के यहाँ यज्ञमण्डप में पहुँचते हैं, उस समय समस्त सभा के लोग भय के मारे सूख जाते हैं; जिधर उनकी साधारण दृष्टि भी पड़ जाती है. उस ओर के उपस्थित भूप अपनी आयु की इतिश्री समझने लगते हैं। परन्तु उस दिन, उस क्रोधी मुनि के जीवन में अपूर्व, एक ऐसी घटना हुई, जिसने सबको आश्चर्य में डाल दिया। वह यह कि उस सभा में एक ऐसा वीर उपस्थित था, जो परशुराम के क्रोध एवं शौर्य का लोहा मानने को कदापि न तैयार हुआ। मुनि के जीवन में ऐसा कभी नहीं हुआ था। किसी की क्या मजाल कि कभी उनकी ओर अभिमानभरी दृष्टि से देख ले। 'कहु जड़ जनक धनुष केहि तोरा ?' इस कर्कश स्वर व कठोर प्रश्न के सभामध्य घोषित होते ही किसकी ताक़त थी कि जरा ओंठ भी हिला ले ? जहाँ बड़े-बड़े शूरवीरों के बीच उनके क्रोध का ऐसा दबदबा था, वहाँ एक दुधमुँहा बालक कमर कसकर चुनौती दे-देकर उनके क्रोध की खिल्ली उड़ावे, यह एक अनहोनी बात-सी जँची। जहाँ कोई चीं तक नहीं कर सकता था, वहाँ लक्ष्मणजी उनके क्रोध का मज़ाक करते हैं—

> बहु धनुहीं तोरेउँ लरिकाईं,
> कबहुँ न अस रिस कीन्ह गुसाईं।
>
> ....
>
> मुनि बिन काज करिय कत रोषू॥
> कोटि कुलिश सम बचन तुम्हारा,
> बृथा धरहु धनु बाण कुठारा।
> कहेउ लषण मुनि शील तुम्हारा,
> को नहिं जान बिदित संसारा।
> माता पितहिं उऋण भये नीके,
> गुरुऋण रहा शोच बड़ जीके।
> सो जनु हमरे माथे काढ़ा,
> दिन चलि गये ब्याज बहु बाढ़ा।
> अब आनिय व्यवहरिया बोली,
> तुरत देउँ मैं थैली खोली।

इतना ही नहीं, अंत में—

मिलें न कतहुँ सुभट रण गाढ़े,
द्विज देवता घरहिं के बाढ़े।

अंधेर हो गया! एक महाक्रोधी व महावीर की शान के ख़िलाफ़ इतनी गुस्ताख़ी! जिसके मुँह पर हवा बह जाय तो चेहरा क्रोध से तमतमा उठे, उसका भरी सभा में इतना अपमान! सभा के लोग हाहाकार कर उठे। किन्तु इतना होते हुए भी यह क्या विडम्बना थी कि परशुराम अपने क्रोध की प्यास बुझाने में असमर्थ ही रहते हैं। क्रोध की पराकाष्ठा होने पर भी उन्हें हठात् रुक जाना पड़ता है, और ये वृथा प्रलाप ही उनके मुख से निकलते हैं—

रे शठ सुनेसि स्वभाव न मोरा।
....
बालक जानि बधौं नहिं तोहीं,
केवल मुनि जड़ जानेसि मोहीं।
सहसबाहु-भुज छेदन हारा,
परशु विलोकि महीप कुमारा।
कौशिक सुनहु मन्द यह बालक—
....
काल कवर होइहि क्षण माहीं,
कहौं पुकारि खोरि मोहिं नाहीं।
तुम हटकहु जो चहहु उबारा,
कहि प्रताप बल रोष हमारा।
उतर देत छाड़ौं बिन मारे,
केवल कौशिक शील तुम्हारे। आदि।

न मुनि के क्रोध की प्यास ही बुझ सकती है न उसका निवारण ही हो पाता है। उनके मन में भयङ्कर उथल-पुथल मच गई है; क्रोध से तड़प रहे हैं, मगर कर कुछ नहीं सकते। ऐसी विकट परिस्थिति में वे अति भीषण मानसिक क्लेश से पीड़ित हो जाते हैं। कहते हैं—

इहि के कण्ठ कुठार न दीन्हा,
तो मैं कहा कोप करि कीन्हा।

क्रोध से उनकी छाती जली जाती है, किन्तु हाथ नहीं चलता। सोचते हैं, क्या मैं दयालु हूँ? मेरे हृदय में किसी के प्रति कभी दया हो सकती है? यदि,—भयउ बाम बिधि स्वभाऊ, तब क्या किया जाय। क्रोधी के मान क्लेश की सीमा नहीं रहती और इस पर उठते हैं—आज दैव दुख दुसह सहावा। उक्ति में कितना मनोवैज्ञानिक सौंदर्य है, वैज्ञानिक अनुभवी की, कवि की कितनी सूक्ष्मदर्शिता है! एक क्रोधी के दुःख स्वाभाविक वर्णन में कवि की कल्पनाशक्ति स्तुत्य है। जिसे प्रत्यक्षदर्शी भी बतलाने मर्थ होता, उसे कवि ने कल्पना द्वारा कर दिया।

जब श्रीराम और लक्ष्मण विश्वामित्र साथ अयोध्या से गये, तब से महाराजा नित्य चिंतित व विकल रहा करते थे। चित्त कहीं न लगता। रातदिन यही चिंता रहते कि मेरे प्राणों के बराबर पुत्र किन अथवा नगरों में भटकते होंगे; उनके मन में अभिलाषा उठा करती कि वे कुशलपूर्वक जल्द लौट आवें। उनके जाने के बाद अभी उनके विषय में कोई समाचार नहीं मिला इस कारण उनका जी और भी अधिक रहा था। ऐसे ही समय मिथिला-नामक नगर एक दूत पाती लेकर राजा दशरथ के समीप है। राजा स्वयं पाती हाथ में लेकर बाँचने हैं और बाँचते ही बाँचते—वारि विलोचन पाती, पुलक गात आई भरि छाती। प्रथम पुत्रों का कुशल-समाचार ही उनके हृदय में धारा प्रवाहित करने के लिए पर्याप्त था, हुआ क्या? राजा जनक के यहाँ धनुष-यज्ञ जिस धनुष को बड़े-बड़े योद्धा नरेश हिला तक नहीं सके, उस धनुष को खेल की तरह और तोड़कर श्रीराम, जानकी के स्वयंवर

विजयी हुए हैं, अतः पुत्र की बरात सजाकर जनकपुर जाना चाहिए, इस दूसरे प्रकार के समाचार से राजा आनन्द के मारे बेसुध-से हो गये, यहाँ तक कि—रहि गये कहत न खाटी मीठी। इस 'खाटी मीठी' में उस समय के सुखानुभव का कितना सुन्दर वर्णन है! इस 'खाटी मीठी' स्थिति में राजा ऐसे बेहाल हैं कि जब उनके सामने बैठे हुए राजसभा के लोग चिट्ठी में लिखित समाचार को जानने का आग्रह दिखाते हैं, तब राजा बता नहीं सकते, पत्र को पुनः बाँच नहीं सकते तो भी पत्र बाँचकर उन्हें सुनाना ही पड़ेगा इसलिए,—पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। गार्हस्थ्य जीवन में ऐसा 'खाटी मीठी' के अवसर अनुपमेय होते हैं।

अयोध्यापुरी से बरात प्रस्थान करती है। राजा के मन में पुत्रों से भेंट करने की जो तीव्र लालसा है, बहुत दिनों से बिछुड़े हुए पुत्रों को देखने की जो उत्कट अभिलाषा है, वह अब कुछ समय में फलीभूत हुआ चाहती है। बहुधा ऐसा होता है कि यदि रंक को राज्य मिल जाय, अथवा भूखे को खाने के लिए सुधा मिल जाय तो वे ख़ुशी के मारे पागल हो जाते हैं। इसी तरह ऐसा तो न हो कि राजा, जो पुत्रों के कुशल-समाचार ही से आनन्द में मुग्ध हो जाते हैं, पुत्र-मिलाप के आनन्द की असह्यता के प्रचण्ड प्रवाह में बह जायँ। अतः उस आनन्द को शनैः-शनैः सहनीय बनाना उचित है। गोस्वामीजी उसे सहनीय बनाने के लिए क्या उपाय करते हैं?—यह कि,—होइ शकुन सुन्दर शुभ दाता।—वह आनन्द असह्य तो है ही, पर शकुनों द्वारा उसे सह्य बनाया जाता है और उसे सह सकने का बल भी प्रदान किया जाता है। यह कैसे? इस तरह कि, सुख हो अथवा दुःख, यदि वह गुरुता के कारण असहनीय हो और अकस्मात् आ पड़े तो उसका ऐसे आ पड़ना किसी निहत्थे व असावधान व्यक्ति के ऊपर किये गये वार की तरह होता है। यदि सुख ही हुआ तो भी उसका बुरा असर पड़ता है। अगर वही अपने आगमन की सूचना दे-देकर अपना आना बता-बताकर आवे तो निश्चय ही उसकी अवाञ्छित गुरुता कम हो जाती है और मनुष्य के हृदय में उसका सामना कर सकने का बल भी आ जाता है। देखिए, राजा दशरथ का हृदय मार्ग ही में कैसे सबल बनाया जा रहा है—

(बनै न बरनत बनी बराता),
होइ शकुन सुन्दर शुभदाता।
चारा चाषु बाम दिशि लेई,
मनहुँ सकल मंगल कहि देई।
दाहिन काग सुखेत सुहावा,
नकुल दरश सब काहू पावा।
सानुकूल वह त्रिविध बयारी,
सघट सबाल आव वर नारी—
× × ×
मृगमाला दाहिन दिशि आई,
मंगलगण जनु दीन्ह दिखाई।

इसके पश्चात् जनकपुर पहुँच जाने पर भी कवि ने राजा की रामचन्द्र से पहले ही भेंट न कराकर (जिस भेंट के लिए राजा जैसे उत्सुक हैं, वैसे ही काव्य-पाठक भी हैं) कुछ विलम्ब के बाद कराई है। बरात का स्वागत होता है और वह जनवासे में पहुँचती है। बरातियों के लिए सामग्री भी पहुँच जाती है। इतना हो चुकने के बाद श्रीराम लक्ष्मण जनवासे में पिता के पास पहुँचते हैं। उनका स्वागत होने के पहले बरात में जा मिलना भी उचित और सकारण कहा जा सकता। किन्तु नहीं, इस विलंब में बहुत औचित्य है। चाहे इसमें ऐतिहासिक तथ्य हो, मगर कवि की कल्पना की ख़ूबी है ही। अंत में राजा को पुत्र-मिलाप से कैसा सुख प्राप्त होता है? इसका भी



गागर में सागर की तरह दो चार शब्दों में गोस्वामीजी ने अपने अनुरूप ही बड़ा चमत्कार-पूर्ण वर्णन किया है—सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे, मृतक शरीर प्राण जनु भेंटे। उन शकुनों में, उस विलंब में और इस मिलन-सुख-वर्णन में जो मनोवैज्ञानिक सौंदर्य है, वह साहित्य-संसार में अनूठा है।

मंथरा में मानव-प्रकृति का अच्छा ज्ञान दिखाई देता है। जब श्रीरामचन्द्र के राज्याभिषेक की तैयारी हो रही है, नगर में ऐसा एक भी प्राणी नहीं है जो उमंग में न हो, ऐसे समय कैकेयी भी श्रीराम का हित देखकर आनन्दित हो रही है। जिसके हृदय में राम के शील-स्वभाव आदि के संबंध में ऐसी पक्की धारणा जमी हुई है, उसे उखाड़ फेंकना सहज नहीं है। मंथरा इसके लिए अनेक चालों से काम लेती है। रात्रि के समय चेरी मंथरा कैकेयी रानी के पास जाती है। उस वक़्त वह बहुत उदास है। जब रानी उसकी इस उदासी का कारण पूछती है, तब वह—

उतर न देइ सो लेइ उसाँसू,
नारि चरित करि ढारति आँसू।

आख़िर बोलने के लिए उकसाने पर वह अपने मतलब की बात ज़रा परोक्ष ढंग से कहना शुरू करती है—

रामहिं छाँड़ि कुशल केहि आजू,
जाहि नरेश देत युवराजू।
भा कौशिल्यहिं विधि अति दाहिन,

राम के विरुद्ध ऐसी बातें सुनते ही कैकेयी के मुख पर क्रोध के चिन्ह प्रकट होने लगते हैं, जिन्हें देखते ही वह कपट की पुतली बात ज़रा बिगड़ते जानकर चुप हो रहती है। कैकेयी क्रोध करके कहती है—

पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी,
तौ धरि जीह कढ़ावहुँ तोरी।

मंथरा ने सोचा,—"नहीं, अब ज़रा सं-
लना चाहिए। यह काम उतना सहज न
जितना मैं उसे समझती हूँ।" प्रथम इस बा
आवश्यकता है कि कैकेयी उस पर विश्वास
इसी लिए कैकेयी के यह पूछने पर—

प्राण ते अधिक राम प्रिय मोरे,
तिनके तिलक छोभ कस तोरे!

मंथरा कैकेयी के इस प्रश्न का उत्तर नहीं
बल्कि कहती है—

एकहि बार आस सब पूजी,
अब कछु कहब जीह करि दूजी।

अब क्या कहूँगी? मैं तो अपनी स
भलाई ही की बात कह रही थी, वह भी
नहीं; क्योंकि—

कोउ नृप होउ हमहिं का हानी,
चेरि छाँड़ि नहिं होउब रानी।

हमें क्या फ़ायदा? तो भी बिना बोले
रहा न गया—

जारइ जोग स्वभाव हमारा,
अनभल देखि न जाइ तुम्हारा।
ताते कछुक बात अनुसारी,

इस वास्ते—

छमब देबि बड़ि चूक हमारी।

क्षमा करो रानी, अब हम कुछ न कहें
बस क्या था, इस चाल ने बहुत असर
रंग चढ़ने लगा। जब रानी ने देखा कि यह
नहीं, बल्कि मेरा ही कुछ फ़ायदा देख रही
उसे विश्वास होने लगा। वह पुनः अ
उसका आशय पूछने लगी। अब, जब मं
देखा कि शिकार क़ब्ज़े में आया चाहता है
इस डर से कि आया हुआ शिकार ग़ायब न
पावे, वह कहती है कि—

तुम पूछहु मैं कहत डराऊँ,
धरेउ मोर घरफोरी नाऊँ।

रानी, सच कहती हो कि सीता-राम तुम्हें प्यारे हैं और उनके लिए तुम भी वैसी हो, मगर—

रहे प्रथम अब ते दिन बीते,
समय फिरे रिपु होहिं पिरीते।

इसके बाद यह अंदाज़ करके कि अचूक निशाना कहाँ बैठेगा, मंथरा पैने बाण छोड़ती है—

जर तुम्हारि चह सवति उपारी,
रूँधहु करि उपाय वर बारी।

रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोध।
कहेसि कथा शत सवति की, जेहि विधि बाढ़ विरोध॥

रानी, राम को राज्य मिलते ही सौत भी तुम्हारे ऊपर राज्य करेगी; तब तुम्हें उसके साथ कैसे रहना पड़ेगा—

जो सुत सहित करहु सेवकाई,
तौ घर रहहु न आन उपाई।

निशाना अचूक था, शिकार विद्ध हो गया! कैकेयी के भविष्य का मंथरा ने जो चित्र खींचा, उसे समझकर वह एकबारगी काँप उठी—

केकय सुता सुनत कटु बानी,
कहि न सकै कछु सहमि सुखानी।

इस तरह रानी अपनी चेरी के कपट-जाल में फँस गई। अब उस कपटिन के लिए अपना मतलब साधना सहज हो गया। उसने खूब कुमंत्र पढ़ाया।

कवि ने जिस स्वाभाविकता के साथ मंथरा के कपटाचरण का वर्णन किया है, वर्णन में जिस मनोवैज्ञानिक ढंग से हित के स्थान में अनहित का बीज बोया गया है, उससे कैसा भी श्रोता क्यों न हो, प्रभावित हुए विना नहीं रहता।

राम, सीता और लक्ष्मण जब वन-वन चले जा रहे थे, तब वनवासी या वनस्थ गाँवों के ग्रामीण ऐसे किशोर, सुन्दर व कोमल—फूल के समान—बालकों को अखण्ड जंगलों में यात्रा करते देखकर आश्चर्य और विषाद में डूब जाते। उनकी नम्रता लोगों के हृदयों को आर्द्र कर देती, उनकी विनीतता से सबकी आँखों में आँसू डबडबा आते और उनके शील व संकोच को देखकर ग्रामीण गद्गद हो जाते थे। ऐसे होनहार व अनमोल बालकों को वन के बीच कठिन कष्ट सहते देखकर कोई भी दुःखित हुए विना न रहता। सब उनका परिचय जानने के लिए उत्सुक हो जाते हैं—

अति लालसा सबहिं मन माहीं,
नाम ग्राम पूछत सकुचाहीं।

तो भी—

जे तिन महँ वय वृद्ध सयाने,
तिन करि युक्ति राम पहिचाने।

और पहिचानने के बाद—

सकल कथा तिन सबहिं सुनाई,
बनहिं चले पितु आयसु पाई।

ऐसा वृत्तांत सुनते ही लोग दुःख और पश्चात्ताप करने लगते हैं। और स्त्रियाँ हठात् कह डालती हैं—

वे पितु मातु क है सखि कैसे,
जिन पठये बन बालक ऐसे।

ग्रामीणों की यह चिंता व सहानुभूति बहुत सुन्दर कल्पित हुई है।

चलते-चलते एक जगह कुछ ग्रामीण—

एक देखि बट छाँह भल, डासि मृदुल तृण पात।
कहहिं गँवाइय छिनक श्रम, गवनब अबहिं कि प्रात॥

श्रीरामचन्द्र उनके इस प्रेमपूर्ण अनुरोध को देखकर और सीताजी को थकी हुई जानकर उस वट की छाया में किञ्चित् विश्राम के निमित्त बैठ गये। आसपास ग्रामीण नर-नारियों का समूह हो गया। ये सब राम, लक्ष्मण व सीता की शोभा को देखते-देखते थकित हो जाते हैं, किन्तु



तृप्ति नहीं होती। गाँव की स्त्रियाँ सीताजी के समीप बैठ जाती हैं और बहुत स्नेह के साथ उनसे राम, लक्ष्मण के बारे में पूछती हैं—

> सुमुखि कहहु को अहहिं तुम्हारे ?

ग्रामीण स्त्रियों ने जितनी सरलता से यह प्रश्न पूछ दिया, उसका उत्तर देना शील और संकोच से युक्त सीताजी के लिए वैसा सरल नहीं था, तो भी, क्योंकि उत्तर देना ही पड़ेगा, इसलिए सीताजी मधुर वचन में प्रथम लक्ष्मणजी के बारे में कहती हैं—

> सहज स्वभाव सुभग तनु गोरे,
> नाम लषण लघु देवर मोरे।

अब रामजी का परिचय देने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। ग्रामीण स्त्रियाँ अनुमान से जान लेतीं तो ऐसी कठिनाई की जरूरत न पड़ती। मगर ग्रामीणों में यह नागरिक गुण कैसे संभव था? अतः सीताजी को चतुराई के साथ इस कठिनाई का सामना करना पड़ता है। मुँह से कुछ नहीं बोलतीं, किन्तु—

> बहुरि बदन विधु अंचल ढाँकी,
> पिय तन चितै भौंह करि बाँकी।
> खंजन मंजु तिरीछे नयननि,
> निज पति कहेउ तिनहिं सिय सयननि॥

केवल नेत्रों के द्वारा संकेत से उन्हें उनका परिचय दे दिया। सीता की कुलीनोचित लज्जा एवं नागरिक चतुराई को देखकर स्त्रियाँ मुग्ध हो गईं। उन्हें कदाचित् सभ्यता की कोई उत्कृष्ट शिक्षा-सी मिली या उसका प्रकाश मिला, जिसकी प्राप्ति में वे —

> भईं मुदित सब ग्रामबधूटी,
> रंकन रतन राशि जनु लूटी।

श्रीराम के वनवास और दशरथ की मृ[त्यु के] पश्चात् गुरु वशिष्ठ की आज्ञा पाकर भरत न[निहाल] से लौट रहे थे, उस समय उन्हें दोनों [बातें] ज्ञात नहीं थीं। किन्तु मार्ग में अपशकुन हुए और नगर में घुसते ही वह बहुत [उदास] प्रतीत हुआ। अतः भरत के मन में आ[शंकाएँ] उठ रही हैं। वे भय और दुःख से व्याकु[ल हो] रहे हैं। उधर नगर-निवासी हर्ष के समय ऐसी घोर विपत्ति के आ पड़ने से विक्षिप्त [हो] गये हैं। भरत से ऐसे अनेक पुरजन मिलते हैं, मगर किस तरह?—

> पुरजन मिलहिं, न कहहिं कछु,
> गवहिं जुहारहिं जाहिं।
> भरत कुशल पूछि न सकहिं,
> भय विषाद मन माहिं॥

पुरजन प्रणाम करने के सिवा कुछ नहीं [कहते] हैं, न भरत ही कुछ पूछ सकते हैं। दोनों का दुःख कैसा अभेद्य है! यह कवि की वैज्ञानिक कल्पना ही का चमत्कार है।

ये उदाहरण यहाँ-वहाँ से यों ही ले लिए हैं। ऐसे और इनसे भी सूक्ष्म व सुन्दर ग्रंथ में भरे पड़े हैं। इस अनुपम ग्रंथ को वैज्ञानिक, साहित्यिक, आलंकारिक, दार्श[निक], आध्यात्मिक, नैतिक, धार्मिक आदि जिस [दृष्टि] से भी देखा जाय, वह अथाह है। जि[सकी] जितनी ही पहुँच होती है, वह उतना ही प्राप्त करता है। वस्तुतः इसे पूर्ण तरह समझ[ना] और इसमें का सार जान लेना किसी [बड़े] भाग्यवान् ही का काम होगा।





जनाब असग़र गोंडवी

श्रीइक़बाल वर्मा "सेहर"

उर्दू के छायावाद-संबंधी काव्य-साहित्य में 'जिगर मुरादाबादी' का स्थान बहुत ऊँचा है। उन्होंने अपार भक्ति एवं श्रद्धा के आवेश में 'असग़र गोंडवी' के प्रति कुछ संबोधनात्मक पद कहे हैं, जिनसे उस महान् आचार्य के कवित्व का ऐसा परिचय मिल जाता है, जो संक्षिप्त होने पर भी सम्पूर्ण है। पद ये हैं—

हर क़ैद[1] से हर रस्म[2] से बेगाना[3] बना दे,
दीवाना बना दे मुझे दीवाना बना दे।
अल्लाह ने तुझको मैं[4] वो मैख़ाना[5] बनाया,
तू सारी फ़ज़ा[6] को मै वो मैख़ाना बना दे।
तू साक़िए-मैख़ाना है मैं रिन्दे-बलानोश,
मेरे लिए मैख़ाना को पैमाना बना दे।
या दीदा वो दिल में मेरे तू आप समा जा,
या फिर दिल वो दीदा ही को वीराना बना दे।
आलम तो है दीवाना 'जिगर' हुस्न की ख़ातिर,
तू अपने लिए हुस्न को दीवाना बना दे।

तीसरा पद—'जिगर' 'असग़र' को शराबख़ाने का साक़ी और अपने को बदमस्त पियक्कड़ बतलाते हुए अपनी तृप्ति के लिए समूचे शराबख़ाने को ही प्याला बना देने के प्रार्थी हैं। प्रकट है कि यहाँ शराब से अभिप्राय मामूली शराब नहीं; बल्कि वह आध्यात्मिक मदिरा है, जिसका संबंध 'रहस्यवाद' से है और जिसकी प्रशंसा में उर्दू-फ़ारसी के कितने ही महाकवियों ने अपने क़लम तोड़-तोड़ दिये हैं।

चौथा पद—कवि अपने नेत्र और हृदय का उजाड़ हो जाना पसंद करेगा, पर वहाँ किसी और को स्थान देना उसे मंज़ूर नहीं। कितनी अनन्य आस्था है!

पाँचवाँ पद—तारीफ़ की हद हो गई। संसार सौंदर्य पर मिटा हुआ है, पर 'असग़र' ने सौन्दर्य को पूर्णतः आत्मसात् कर उसे इतना विकसित कर दिया है कि वह स्वयं उन पर आसक्त हो रहा है! 'असग़र' उपनाम है मौलाना असग़रहुसैन का, और 'गोंडवी' ज़िला गोंडा के संबंध से है, जहाँ उनके पिता मुंशी तफ़ज़्ज़ुलहुसैन क़ानूनगो थे। असली वतन

१. बंधन; २. रुढ़ि; ३. अपरिचित; ४. शराब; ५. शराबखाना; ६. वातावरण।



गोरखपुर था, पर गोंडा में नौकर हुए, वहीं पेन्शन भी पाई और वहीं बस भी गये। असग़र साहब ने भी वहीं अपना चश्मे का कारख़ाना खोला, जो अर्से तक चलता रहा। पर स्वर्गीय अकबर के कथनानुसार—

हुजूमे-बुलबुल हुआ चमन में
किया जो गुल ने जमाल[1] पैदा,
कमी नहीं क़द्रदाँ की 'अकबर'
करे तो कोई कमाल पैदा।

उन्हें गोंडा का रहना सदा के लिए छोड़ देना पड़ा। उनकी फैलती हुई साहित्यिक ख्याति उन्हें लाहौर के 'उर्दू मरकज़' में खींच ले गई, जहाँ वह 'मरकज़' के 'इनचार्ज' रहकर दो वर्ष तक मर्सियों[2] के संपादन का काम करते रहे। यह संग्रह १३ जिल्दों में प्रकाशित हुआ है और स्वयं संपादक के कथनानुसार उस प्रकाशन पर ही उसकी "बहुत बड़ी नेकनामी और बदनामी का दारोमदार है।" शायद मौलाना का मतलब अच्छी-बुरी आलोचनाओं से था। पर आलोचना ही तो वह कसौटी है, जिस पर सोना चढ़कर चमकता है और तब चमक के साथ ही 'बदनामी' भी 'नेकनामी' में विलुप्त हो जाती है, बल्कि तुलनात्मक दृष्टि से वह बदनामी नेकनामी के बढ़ने में मदद देती है। वही हुआ भी। आप फिर प्रयाग के इंडियन-प्रेस में उर्दू-विभाग के 'इनचार्ज' बनाये गये, जहाँ लगभग ३ वर्ष तक रहे। वहीं रहते हुए आपके पिता का देहावसान भी हुआ, जिनका अदब दिल में इतना ज़्यादा था कि आपने आख़िर—आख़िर तक भी उनके सामने अपना कोई शेर पढ़ने का साहस न किया, यद्यपि उस समय आपकी अवस्था भी काफ़ी थी और कीर्ति भी ख़ूब फैल चुकी थी। उसी कीर्ति की बदौलत आपकी और भी क़द्रदानी हुई और इंडियन-प्रेस के बाद आपको संयुक्त-प्रांत की 'हिन्दुस्तानी एकाडेमी' (प्रयाग) के कार्यालय में जगह मिली, जहाँ आप ... वर्षों (सन् १९३१ ई०) से 'हिन्दुस्तानी' उर्दू मासिक पत्र का संपादन कर रहे हैं। ... अलावा आप 'एकाडेमी' के लिए अँगरेज़ी ... का उर्दू अनुवाद भी करते हैं।

'असग़र' की इस असाधारण योग्य... देखते हुए यदि हम उनकी स्कूली शि... विचार करें तो वह बहुत साधारण एवं ... दिखती है। वह १ मार्च सन् १८८४ ई० ... हुए। उनकी तालीम सामयिक प्रथा के ... मकतब से शुरू हुई। फिर स्कूल में ... तक अँगरेज़ी पढ़ने के बाद एन्ट्रेन्स-परी... तैयारी प्राइवेट तौर पर करने लगे, पर ... के कारण परीक्षा न दे सके। पढ़ना छू... पर जैसा कि प्रायः देखा जाता है, अस... ठोस तालीम स्कूली परीक्षाओं के झंझट... हुए नहीं, बल्कि उस झंझट से छुटकारा ... के बाद होती है। असग़र की दशा में ... बात हुई। आप विद्याव्यसनी थे, अविरल ... के द्वारा अँगरेज़ी ही क्या, उर्दू-फ़ारसी ... में भी अच्छी-ख़ासी लियाक़त पैदा ... काव्यप्रेम ने हृदय को कविता की ओर ... प्रेरित किया। उर्दू-फ़ारसी उस्तादों का ... भी पढ़ा और उनके भावों को अपने ... में सफल हुए। उर्दू-काव्य-जगत में ... एवं प्रतिष्ठा की दृष्टि से दो स्कूल प्रसि... देहली और लखनऊ। दूसरे के नाते ... 'ग़ज़ल' में ख़्वाजा आतिश, 'मर्सिये' में ... अनीस और 'मसनवी' में नसीम लखनवी[1] ... कलाम बहुत पसंद है, पर पहले के संबंध...

१. सौन्दर्य; २. मृत्यु-संबंधी शोकसूचक कविताएँ।

१. आपने 'नसीम' की मशहूर मसनवी '... नसीम' (क़िस्सा गुल बकावली) का संपादन ... योग्यता से किया है। एक विस्तृत भूमिका भी ... जो अत्यन्त रोचक होने के साथ ही कवि और ... कविता पर अच्छा प्रकाश डालती है।



आप ग़ालिब, मोमिन और डा० इक़बाल की रचनाओं पर अनुरक्त ही हैं। इसी स्कूल से आपका थोड़ा-बहुत निजी लगाव भी है। यद्यपि आपने कविता में किसी उस्ताद की मुस्तक़िल शागिर्दी अख़्तियार नहीं की, फिर भी पहले-पहल आप अपना कलाम मुंशी ख़लीलअहमद 'वज्द' बिलग्रामी को दिखाते रहे और बाद को कुछ ग़ज़लों में मुंशी अमीरुल्ला 'तसलीम' से भी इस-लाह ली। 'तसलीम' के उस्ताद मुंशी असग़र-अली ख़ाँ 'नसीम' देहलवी थे, जो स्वयं 'मोमिन' के शागिर्द थे। अस्तु। अब यदि आपकी वर्तमान कविताओं में किसी स्कूल की छाप दिखती है तो देहली के ही—हाँ, उस छाप में 'मोमिन' की अपेक्षा 'ग़ालिब' की छाया ही अधिक पाई जाती है। आपकी प्रारम्भिक रचनाओं की तो एक पूरी बयाज़ ही नष्ट हो गई, अतः हम नहीं कह सकते कि शुरू में आपके कलाम का रंग-ढंग क्या था। दुःख है कि आपने जिन थोड़े प्रश्नों के उत्तर भी दिये, वह बड़ी कठिनाई से और बार-बार आग्रह करने पर। रहस्यवादी कवियों की प्रकृति भी प्रायः रहस्यमयी होती है—कम से कम मेरा कुछ ऐसा ही अनुभव है।

आप पहले भी ग़ज़ल ही लिखते थे और अब भी लिखते हैं। पहले ये ग़ज़लें 'फ़ितना' नामी पत्रिका में निकलती थीं, जो गत शताब्दि के अंतिम भाग में हज़रत रियाज़ ख़ैराबादी के संपादकत्व में गोरखपुर से प्रकाशित होती थीं[1]। अब तो वे प्रायः हिन्दुस्तान के सभी उर्दू पत्र-पत्रिकाओं में क़द्र के साथ छापी जाती हैं। पहले की राम जाने, पर अब तो अपनी ग़ज़लों के बारे में आपका यही क़ौल है—

शेर में रंगीनिये - जोशे - तख़ैयुल[2] चाहिए,
मुझको 'असग़र' कम है आदत नाला वो फ़रियाद की।

यह ठीक है कि ग़ज़ल में वेदना होती है, पर यह तो ज़रूरी नहीं कि वेदना का व्यक्तीकरण हमेशा 'नाला वो फ़रियाद' के ही रूप में हो। वेदना स्थूल न होकर सूक्ष्म, लौकिक न होकर अलौकिक, भौतिक न होकर आध्यात्मिक भी हो सकती है। तब उसके व्यक्तीकरण में ऐसी दार्शनिकता आ जाती है, जो शुष्क न होकर सरस और निर्जीव न होकर सजीव हुआ करती है। इस सरसता और सजीवता के बढ़ाने में वह संगीतमयी ध्वनि भी सहायता देती है, जो ग़ज़ल की जान है। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी ग़ज़लों में कल्पना भी होती है और वास्तविकता भी। कल्पना वास्तविकता में इतना घुलमिल जाती है कि हमें कविता में प्रायः असलियत का ही रंग दिखाई देता है। असग़र के कलाम में भी यही बातें पाई जाती हैं, जिन्होंने उसे ख़ूब, रंगीन और दिलकश बना दिया है। वह प्रकट ही है कि ऐसी रचनाओं में उन दूषित भावों की क़तई गुंजाइश नहीं, जिनसे उर्दू के बड़े-बड़े उस्तादों की काव्यमयी कृतियाँ अछूती नहीं रह सकीं। असग़र की उड़ान उस वातावरण से बहुत ऊँची है, जहाँ वासनाओं की विद्यमानता है। वह एकदम ऐसे स्थान में जा पहुँचती है, जहाँ वासनाओं के उत्पादक 'मैं' और 'तू' का भेद ही मिट जाता है। देखिए—

फिर मैं नज़र आया न तमाशा नज़र आया,
जब तू नज़र आया मुझे तनहा नज़र आया।

'तमाशा' का प्रयोग कितना मौज़ूँ है। संसार की मनोहरता तथा अनित्यता—दोनों का चित्र एकदम हमारे सामने आ जाता है। इस सिल-सिले में हमें स्व० अकबर का एक पद याद आ गया, जो रचना एवं काव्य-कल्पना की दृष्टि से अनुपम है—

दुनिया की क्या हक़ीक़त और हमसे क्या तअल्लुक़,
वह क्या है, इक झलक है, हम क्या हैं, इक नज़र हैं!

१. आपके गद्य-लेख भी 'रियाज़ुल अख़बार' में छपते थे जो उसी समय उसी प्रकार निकलता था।—ले०
२. विचारों के वेग की रंगीनी (सरसता)।



अब और देखिए—

जो नक़्शा है हस्ती[1] का धोका नज़र आता है,
पर्दे व मुसव्विर ही तनहा नज़र आता है।
लौ शमये-हक़ीक़त की अपनी ही जगह पर है,
फ़ानूस की गर्दिश से क्या-क्या नज़र आता है।

कैसे सुन्दर पद हैं। पहले में संसार-पट पर के प्रत्येक चित्र को भ्रम कहकर अकेले चित्रकार को ही सब कुछ बताया गया है। 'पर्दे' और 'मुसव्विर' के उपयुक्त प्रयोग द्वारा सृष्टि में केवल स्रष्टा का ही दर्शन होना दिखाया गया है। पद में प्रथम चरण के ख़याल से स्वर्गीय 'रवाँ' का यह पद भी कितना दर्शनीय एवं प्रशंसनीय है—

सौ तरह के नक़्शे हैं सौ रंग की तस्वीरें—
लेकिन वरक़े-हस्ती[2] सादा नज़र आता है!

'असग़र' के दूसरे पद में भी बड़ी सूक्ष्मता एवं काव्यनिपुणता है। फ़र्माते हैं कि असलियत के चिराग़ की लौ तो बराबर एक ही स्थान पर स्थिर है और 'माया' के आवरणवाला घूमता हुआ फ़ानूस उससे प्रतिबिम्बित हो अपने चित्रों को लगातार हमारे सामने रखता जाता है।

और—

सरगर्मे - तजल्ली हो ऐ जल्वए - जानाना,
उड़ जाय धुआँ बनकर काबा हो कि बुतख़ाना!
यह दीन वह दुनिया है यह काबा वह बुतख़ाना,
इक और क़दम बढ़कर ऐ हिम्मते-मरदाना!

प्रथम पद में कवि अपने प्रेमपात्र (ईश्वर) के प्रकाश को ख़ूब प्रज्वलित दशा में देखना चाहता है, जिससे 'काबा' और मूर्त्ति-मंदिर दोनों ही जल-कर धुएँ की तरह उड़ जायँ। फिर दूसरे पद में दुनिया के साथ दीन को भी अपने अभीष्ट स्थल के मार्ग का कंटक समझता है और अपने पुरुषोचित साहस को नाम-रूप की सभी सीमाओं से एक पग आगे बढ़ जाने की ताकीद करता है। दोनों पदों से कवि के उद्देश की चरमता [illegible] होती है।

और—

तर्के मुद्दआ कर दे ऐन मुद्दआ हो[illegible]
शाने अब्द[1] पैदा कर मज़हरे[2] ख़ुदा[3] हो[illegible]
उसकी राह में मिटकर बेनयाज़े[illegible] ख़िल[illegible]
हुस्न पर फ़िदा होकर हुस्न की अदा हो[illegible]
तू है जब पयामे[4] उसका फिर पयाम क्या[illegible]
तू है जब सदा[5] उसकी आप बेसदा हो[illegible]
क़तरए - तुनुकमाया[6] बहरे - बेकराँ[7] है[illegible]
अपनी इब्तदा[8] होकर अपनी इन्तहा[9] हो[illegible]

प्रथम पद—उद्देश को छोड़, स्वयं उद्दे[illegible] की कोशिश कर और अपने में ख़ुदा [illegible] होने की वह शान ला कि ख़ुदा तुझी से ज़ाहि[illegible]

द्वितीय पद का द्वितीय चरण बहुत [illegible] पूर्ण है। प्रभु-सौंदर्य पर इतना मिट जा[illegible] उसी में लीन होकर उसी के हाव-भाव [illegible] ग्रहण कर लेना—'हुस्न की अदा' हो [illegible] कवि की बड़ी ही कोमल कल्पना है।

तृतीय पद में कवि कहता है कि जब [illegible] ही उसका संदेश और स्वयं ही उसकी [illegible] तो तुझे कोई अपना संदेश न देकर मौन [illegible] चाहिए; क्योंकि एक तो तू अपने [illegible] भी नहीं, दूसरे तेरी अपनी मौजूदगी के [illegible] अपना कुछ कहना बेकार ही है, क्योंकि [illegible] ही 'पयाम' और 'आवाज़' है। कितनी [illegible] तर्कपूर्ण शिक्षा है। अद्वैतवादी कवि के [illegible] से गड़बड़ तभी होता है, जब मनुष्य अपने [illegible] प्रभु की व्यापक सत्ता से पृथक् समझ[illegible] काम करता है।

चतुर्थ पद भी अद्वैतवाद की दृष्टि से [illegible]

---

१. दुनिया; २. संसार-पृष्ठ।

१. बंदगी की शान; २. ख़ुदा के ज़ाहिर [illegible] जगह; ३. सृष्टि से पृथक्; ४. संदेश; ५. [illegible] ६. तुच्छ बूँद; ७. अपार समुद्र (बहर-[illegible]) ८. आदि; ९. अन्त।



है। छोटी बूँद को बड़ा समुद्र बतलाकर उसे वैसा ही बन जाने को कहा गया है। पर कहना भी कवि का कहना है, जो द्वितीय दल द्वारा 'आदि' से 'अन्त' बन जाने में व्यक्त हुआ है।

कुछ इतने ही पदों की बात नहीं। समष्टि-रूपेण 'असग़र' के सारे के सारे कलाम का यही रंग है। साक्ष्य में उन दो छोटी-छोटी काव्य-संग्रह-वाली पुस्तकों को पेश किया जा सकता है, जो 'निशाते-रूह'[1] के नाम से सन् १९२५ ई० और 'सरूदे-ज़िंदगी'[2] के नाम से सन् १९३५ ई० में छप चुकी हैं। दोनों में कोई सौ-सौ ग़ज़लें होंगी, पर विषय की विस्तीर्णता एवं व्यापकता के विचार से मानो सागर को गागर में भर दिया गया है। यह ठीक है कि विषय और शैली भी प्रायः एक ही है, पर एक तो ग़ज़ल के बड़े-बड़े उस्तादों ने यही नीति बर्ती है, दूसरे हमारी राय में एक ही विषय पर एक ही शैली के साथ अनेक रीतियों पर दृष्टि डालना उससे कम महत्वपूर्ण नहीं है, जितना एक विषय या अनेक विषयों पर अनेक शैलियों द्वारा उसी प्रकार विचार करना। यह तो लेखकों एवं पाठकों की अपनी-अपनी रुचि है। देखिए, आजकल रहस्यवाद का दौर-दौरा है। हमें हिंदी और अँगरेज़ी के भी वैसे कई नामी-नामी कवियों की कविताएँ देखने का सुयोग मिला है। हमने यही देखा है कि कविताओं के शीर्षक भले ही भिन्न-भिन्न हों, पर जहाँ शैली एक ही-सी लगती है, वहाँ स्वयं कविताओं में भी प्रायः एक ही ख़याल काम करता हुआ दिखाई देता है। 'असग़र' भी रहस्यवादी कवि हैं। इतना ही नहीं, आप अपने विषय के आचार्य और अपनी शैली के आविष्कर्ता माने जाते हैं। ऐसी दशा में आपसे उस विषय एवं शैली के विरुद्ध किसी और बात की आशा करना अस्वाभाविक ही नहीं, असंगत भी है। हाँ, यह भले ही कह सकते हैं कि आपकी शैली क्लिष्ट है। इसका एक कारण तो विषय की क्लिष्टता है पर दूसरा—हमारी राय में प्रबलतर, कारण यह है कि आपको कुछ वैसा लिखने की आदत-सी पड़ गई है। ऐसा होते हुए कलाम में अस्पष्टता है भी, तो नहीं के बराबर। बहरहाल अँगरेज़ी की बात छोड़ते हुए वह हिन्दी की उन रहस्यवादी रचनाओं से कहीं ज़्यादा साफ़ और सहल है, जिनके सिर-पैर का भी बाज़ अवक़ात पता नहीं चलता। वर्तमान युग के प्रारम्भ के विचार से उर्दू में उतना होना भी बहुत ग़नीमत है। फिर भी हम इतना ज़रूर कहेंगे कि वह आम क्या, ख़ास लोगों के भी समझने की चीज़ न होकर, बहुत ही ख़ास लोगों के लिए है। आपका यह शेर—

'असरार' से मिले लेकिन 'असरार' को नहीं देखा,
अशआर[1] में सुनते हैं कुछ-कुछ वह नुमायाँ[2] है।

अद्वैतवाद की दृष्टि से बड़ा लाजवाब शेर है। उस दृष्टि से, जहाँ उस अनिर्वचनीय सत्ता का शब्दों द्वारा 'कुछ-कुछ' ही व्यक्त होना स्वाभाविक है, वहाँ जब हम आपके कलाम पर विचार करते हैं तो पद के दूसरे दल को कवि के दृष्टिकोण के सर्वथा विपरीत देखते हुए, उस (कलाम) के आशय का भी आम और ख़ास लोगों पर 'कुछ-कुछ' ही प्रकट होना नितान्त स्वाभाविक जान पड़ता है।

अब हम इस बात पर ग़ौर करेंगे कि 'असग़र' को वैसा करने की स्फूर्ति कहाँ से मिली। कुछ तो कवि की योग्यता की बात है, पर योग्यता में भी तो अध्ययन, मनन, चिंतन—सभी का काफ़ी समावेश होता है। हम बतला चुके हैं कि आपको ग़ालिब, मोमिन और इक़बाल का कलाम ख़ास तौर पर पसंद है। तीनों महाकवियों में क्लिष्टता तो है ही, साथ ही उनकी शाब्दिक योजना भी कुछ एक-सी ही है—यानी जहाँ तक कलाम का फ़ारसियत से संबंध है। पर रहस्यवाद का प्रश्न उठते ही मोमिन अलग हो जाता है। उर्दू रहस्य-

१. आत्मिक आनंद। २. जीवन-संगीत।

१. शेर (पद) का बहुवचन। २. प्रकट।

वाद के साहित्य-क्षेत्र में प्रमुखतः, हमें सबसे पहला पग रखता हुआ ग़ालिब नज़र आता है। शुरूआत के ख़याल से उसके कलाम में आदि से अंत तक कोरा रहस्यवाद न सही, पर जो कुछ है अपूर्व है—अनुपम है! ग़ालिब के बाद इक़बाल भी उसी क्षेत्र में चलते हुए दिखाई देते हैं। वह ग़ज़लें भी लिखते हैं और स्फुट कविताएँ भी। वह अपनी सभी रचनाओं में रहस्यवाद को ग़ालिब से अधिक अपनाते हैं। ग़ज़लों के अलावा उनकी अन्य कविताओं का अंत भी बहुधा रहस्यवाद ही की ओर संकेत करता हुआ पाया जाता है। फिर भी हम उनके कलाम को एकांत रहस्यवाद नहीं कह सकते। इसे तो अब तीसरे दौर में असग़र ने ही अपनाया है—इतना अपनाया है कि वह उनका अपना-सा कौशल बन गया है। इसके लिए ग़ज़ल से बेहतर शैली हो नहीं सकती थी, अतः उद्देश की सम्य पूर्ति के हेतु उन्हें उसी का ग्रहण करना अनिवा था। उसी को ग्रहण कर वह ग़ालिब और इक़बाल के रहस्यवाद में विकास ला सकते थे और उस प्रभाव को पूर्णतः प्रत्यक्ष कर सकते थे जो उन महाकवियों द्वारा उनके दिल पर पड़ा था। यों कहने को तो वह यही कहते हैं कि 'मुझे अपनी इस रहस्यवादी प्रवृत्ति के कारण का कुछ पता नहीं।' ठीक हो सकता है। पर तनिक खोजने पर पते का लग जाना भी कुछ कठिन नहीं। मनुष्य चाहे बाद में परिस्थितियों का निर्माता बन जाय, पर पहले तो वह स्वयं ही परिस्थिति ों द्वारा निर्मित होता है। अतः हम उपर्युक्त विवरण से 'असग़र' की तत्कालीन परिस्थित एवं प्रवृत्ति के विषय में सहज ही अनुमान कर सकते हैं। उन्हें फ़ारसी कवियों में 'हाफ़िज़' और 'नज़ीरी' भी बहुत पसंद हैं। इन महाकवियों के कलाम—विशेषतः 'हाफ़िज़' के अध्यात्मवाद ने उनकी उस प्रवृत्ति में कुछ बढ़ती ही कर दी होगी।

प्रसंगवश असग़र के कुछ पद ऊपर दिये जा चुके हैं। अब हम कुछ चुने हुए पद और [illegible] जिनसे कवि के कमाल का अच्छी तरह [illegible] हो जायगा। कुल पद उन्हीं दोनों पुस्तक[illegible] लिये गये हैं, जिनका ऊपर उल्लेख है—

> न खुले उक़दा हाय—नाज़ो नयाज़[illegible]
> हुस्न भी राज़ और इश्क़ भी राज़।
> राज़ की जुस्तजू में मरता हूँ
> और मैं ख़ुद हूँ एक पर्दए-राज़।

पहला पद—'नाज़' यानी बेलगाव होने [illegible] 'हुस्न' (सौंदर्य) में है और 'नयाज़' यानी [illegible] रखने की 'इश्क़' (प्रेम) में। फिर 'हुस्न' [illegible] दोनों मर्म हैं। अतः मर्म से संबद्ध होने [illegible] 'नाज़' और 'नयाज़' की गुत्थियाँ भी कैसे [illegible] सकती हैं? मर्म में निहित होकर वे भी [illegible] गये हैं।

वेदान्त की दृष्टि से कवि का कथन बहु[illegible] है। सब कहीं एक ही सत्ता का होना [illegible] 'हुस्न' और 'इश्क', 'नाज़' और 'नयाज़' [illegible] और क्यों हैं—यह बात समझ में नहीं [illegible]

दूसरे पद में कवि कहता है कि मनुष्य [illegible] भेद है, फिर उसके लिए किसी और भेद [illegible] कैसी? यदि पहले अपना ही भेद समझ [illegible] भेदों की खोज की जाय तो कुछ नतीजा [illegible] सकता है। पर अपना भेद समझ लेने [illegible] अद्वैतवाद के विचार से किसी और भेद के [illegible] की ज़रूरत ही न बाक़ी रहेगी।

दोनों पद बड़े सुन्दर हैं और कवि के [illegible] को बड़ी सुन्दरता से प्रकट करते हैं।

> हम एक बार जल्वए-जानाना [illegible]
> फिर काबा देखते न सनमख़ाना [illegible]
> इक शोला और शमा[2] से बढ़कर है [illegible]
> तुम फाड़कर तो सीनए-परवाना [illegible]

१. भेद। २. मोमीचिराग़; ३. नृत्य; ४. [illegible]

बिखरी हुई हो ज़ुल्फ़ भी उस चश्मे-मस्त पर,
हलका सा अब्र भी सरे मैख़ाना देखते।

पहला पद—ठीक है। एक बार प्रेम-पात्र (ईश्वर) की छटा देख लेने पर 'काबा' और मूर्तिमंदिर को देखते ही बनेगा या वे दिखते हुए भी न दिखेंगे। यह स्थान-संबंधी भ्रम तो तभी तक है, जब तक हम ईश्वरीय सत्ता का अनुभव न कर, "लकीर के फ़क़ीर" बने हुए हैं। वैसा अनुभव तो प्रभु को सर्वत्र दिखाते हुए रूढ़िवाद का अंत ही कर देगा!

दूसरा पद—'परवाना' 'शमा' का आशिक़ कहा जाता है। कवि कहता है कि शमा में जलन है सही, पर परवाने की जलन उससे कहीं बढ़कर है। वहाँ तो सिर्फ़ एक लौ है, पर यहाँ तो सीने में एक पूरी लपट उठ रही है! परवाने के व्याकुलतासूचक नृत्य में इसका पता भी मिलता है। पद का सारांश यही जान पड़ता है कि प्रेमिक में प्रेमिका की अपेक्षा कहीं अधिक प्रेम होता है, जिसे कवि ने काव्योपम रीति पर प्रगट किया है। 'परवाना' और 'शोला' की रियायत से 'रक्स' बहुत मौज़ूँ है। उर्दू-काव्य में 'रक्स' 'शोला' के लिए भी प्रयुक्त होता है।

तीसरे पद में शृंगार का हलका और सुहाना पुट है। कवि प्रेमिका की मदभरी आँखों पर उसकी ज़ुल्फ़ों के बिखरने का समा देखने का इच्छुक है और इस तरह वह शराबख़ाने पर हलके-हलके बादलों की बहार भी देखना चाहता है। मस्त आँखों की उपमा शराबख़ाने से और बिखरी हुई ज़ुल्फ़ों की हलके बादल से दी गई है। फिर यह ठीक ही है कि शराब पीने में तभी मज़ा आता है, जब कुछ-कुछ बादल भी छाया हुआ हो।

ये तीनों पद कवि के 'निशाते-रूह' नामी संग्रह की एक ग़ज़ल से लिये गये हैं, जो उसकी शुरू की शायरी का एक नमूना मालूम होती है। कारण, पदों में वह ऊँची उड़ान नहीं है, जो शायर की बादवाली ग़ज़लों में पाई जाती है।

तेरे जल्वों के आगे हिम्मते शरहो-बयाँ रख दी,
ज़बाने बेनिगह रख दी नगाहे बेज़बाँ रख दी।
नमाज़े-इश्क़ को समझा है क्या ऐ वाइज़े-नादाँ,
हज़ारों बन गये काबे जबीं मैंने जहाँ रख दी।
इलाही! क्या किया तूने कि आलम में तलातुम है,
ग़ज़ब की एक मुश्ते-ख़ाक ज़ेरे-आस्माँ रख दी।

पहला पद—फ़र्माते हैं कि ऐ ईश्वर! तेरी अवर्णनीय छटाओं के आगे मैंने अपने वर्णन-साहस को ही त्याग दिया। कारण, महाकवि तुलसीदास का वही "गिरा अनयन नयन बिनु बानी" वाला प्रसिद्ध चरण है। पद की रचना असग़र-जैसे नवीनताप्रिय कवि के अनुरूप ही हुई है। इसी को पुराने स्कूल का एक प्रसिद्ध कवि[1] अपने ढंग पर यों रखता है—

किसी ने ख़ूब कहा है, कहें तो क्या कहें;
ज़बाँ के आँख नहीं आँख के ज़बान नहीं!

दूसरा पद—'वाइज़' या उपदेशक को उर्दू-कवि ने हमेशा खरी-खोटी सुनाई है। कारण, वह बहुत करके बना हुआ होता है। यहाँ भी वही बात है। कवि कहता है कि वाइज़! यह तू 'काबा' की रट क्यों लगाये हुए है? अरे, मुझमें तो प्रेम की वह ज़बरदस्त लगन है कि जहाँ मैं उसी लगन की धुन में अपना माथा टेक देता हूँ, वहाँ एक नहीं, हज़ारों 'काबे' बन जाते हैं! कितनी सचाई है। ईश्वर-प्राप्ति के लिए प्रेम की ज़रूरत है, न कि स्थान-विशेष की, जो ईश-प्रेम के होने पर भी उसी तरह व्यर्थ है, जैसा उस प्रेम के न होने पर।

तीसरा पद—कवि कहता है कि ऐ ईश्वर! तूने आसमान के नीचे यह कैसी मुट्ठी-भर ख़ाक रख दी है, जिसने सारी दुनिया में हलचल मचा रक्खी है। यहाँ फिर एक तथ्य की बात बयान की गई है। कहने को तो मनुष्य एक मुट्ठी-भर ख़ाक से ज़्यादा हैसियत नहीं रखता, पर इसकी ज़ात से जो अशान्ति फैल रही है, वह ज़ाहिर ही है। यह भी ख़ुदा की क़ुदरत है!

---

१. स्वर्गीय रियाज़ ख़ैराबादी।

मरते-मरते न कभी आक़िलो[1] फ़र्ज़ाना बने,
होश रखता हो जो इन्सान तो दीवाना बने।
मौजे सहबा[2] से भी बढ़कर हों हवा के झोंके,
अब्र यों झूम के छा जाय कि मैख़ाना बने।
कारफ़र्मा[3] है फ़क़त हुस्न का नैरंगे-कमाल,
चाहे वह शमश्रा बने चाहे वह परवाना बने।

पहले पद में कवि ने मनुष्य को बुद्धिमान् होने से मना करते हुए दीवाना बनने की सलाह दी है और इसी को बुद्धिमानी का चिह्न बतलाया है। यह 'दीवानगी' प्रेमोन्माद का पर्याय है, जिसमें बुद्धि की अपेक्षा श्रद्धा ही अधिक होती है। फिर यह 'दीवानगी' भी बुद्धिमत्तासूचक है, मूर्खतासूचक नहीं। "होश रखता हो जो इन्सान तो दीवाना बने"—यही बतलाता है और अपनी शायराना बंदिश में ख़ूब है।

दूसरा पद भी असग़र साहब की शायराना सूझ का एक बढ़िया नमूना है। प्रेमोन्मत्त कवि हवा के बल खाते हुए झोंकों और झूम-झूमकर झुकती हुई घटाओं से भी क्रमशः शराब और शराबख़ाना तैयार करना चाहता है। उन झोंकों और घटाओं का शराब और शराब-ख़ाने से क्या संबंध है, इसे तो शराब पीनेवाले ही जानते हैं। काव्य-कल्पना इन तुच्छ पदार्थों की परवा नहीं करती। वह ऊपर उठती हुई अंतरिक्ष से लेकर आकाश तक की ख़बर लेती है और कवि की बेहद मस्ती के ख़याल से उसके लिए वैसा ही बिना हदवाला सामान भी मुहैया करना चाहती है। योजना एवं प्रवाह दर्शनीय है।

तीसरा पद—शमा और परवाना की बात हम अभी कह चुके हैं। कवि कहता है कि यह एक ही हुस्न के कमाल का जादू है, जो अपनी इच्छानुसार कभी शमा के रूप में प्रकट होता है, कभी परवाने के—कभी प्रेमिका बनता है, कभी प्रेमिक। अद्वैतवाद की दृष्टि से पद बड़ा ही सूक्ष्म एवं सुन्दर है।

उसकी मार्मिकता और वर्णन-शैली सराहनीय है।

हयातो मौत भी अदना-सी इक कड़ी
अज़ल[1] से लेके अबद[2] तक वह सिलसिला
न कामयाब हुआ मैं न रह गया
बड़ा ग़ज़ब है कि मंज़िल प खो गया
तेरा जमाल है तेरा ख़याल है
मुझे यह फ़ुर्सते काविश कहाँ कि क्या
समा गये मेरी नज़रों में छा गये
ख़याल करता हूँ उनको कि देखता

पहले पद में कवि कहता है कि मैं एक शृंखला हूँ, जिसका विस्तार आदि से अंत और जो जीवन-मरणरूपी कड़ियों द्वारा हुई है। जैसे शृंखला में कड़ियों का होना है, वैसे ही अस्तित्व के होते जीवन और होना भी अनिवार्य है, अतः उनका कोई महत्त्व नहीं।

दूसरे पद में अद्वैतवाद के नाते एवं असफलता का एक साथ होना गया है। तदनुसार आत्मा निर्दिष्ट पहुँचते ही अपने निजी अस्तित्व खो है, अतः इस ख़याल से उसे असफल हैं। परन्तु क्योंकि वह उद्देश-प्राप्ति में सफल है, अतः असफलता के साथ सफलता का समझ में आ सकता है।

तीसरे पद में कवि कहता है कि मुझे बारे में कुछ खोज करने—अपने व्यक्तित्व के की फ़ुरसत ही कहाँ है? तेरा सौंदर्य, तेरा मानो तुझी को मेरे सामने पेश किये हुए हैं मैं दर्शन की निमग्नता में अपने-आपको भूला हुआ हूँ।

चौथे पद से कवि की विचित्र निमग्नता प्रकटीकरण होता है। प्रभु का ध्यान दिलों पर इतना अधिकार किये हुए है कि

१. बुद्धिमान्; २. शराब की तरंग; ३. कार्यरत।

१. आदि; २. अन्त; ३. मस्त।

ख़याल करने' पर 'देखने' का भ्रम होता है और देखने' पर 'ख़याल करने' का !

मूदे हुस्न को हैरत में हम क्या-क्या समझते हैं,
कभी जल्वा समझते हैं कभी परदा समझते हैं।
यही थोड़ी-सी मै है और यही छोटा-सा पैमाना,
इसी से रिन्द[1] राज़े गुंबदे-मीना[2] समझते हैं।
कभी तो जुस्तजू जल्वे को भी परदा बताती है,
कभी हम शौक़ में परदे को भी जल्वा समझते हैं।
यह जौक़े-दीद की शोख़ी यह अक्से-रंगे-महजूबी,
न जल्वा है न परदा हम उसे तनहा समझते हैं।
वह नकहत से सिवा पिनहाँ वह गुल से भी सिवा उरियाँ[3]
यह हम हैं जो कभी परदा कभी जल्वा समझते हैं।
यह जल्वे की फ़िरावानी यह अरज़ानी यह उरियानी,
फिर इस शिद्दत की तावानी कि हम परदा समझते हैं।
ज़माना आ रहा है जब इसे समझेंगे सब 'असग़र',
अभी तो आप ख़ुद कहते हैं ख़ुद तनहा समझते हैं।

पहला पद—हम सौंदर्य की नुमाइश पर आश्चर्य-चकित हो रहे हैं, अतः कभी तो हम उसे वाक़ई नुमाइश समझ लेते हैं और कभी परदा। प्रकाश, प्रकाश तो है ही, पर उसी से कभी-कभी चकाचौंध भी हो जाती है और तब वही प्रकाश आवरण बन जाता है। फिर चकित दशा के होते एक पर दूसरे का भ्रम होना जितना संभव है, उतना ही ईश्वरीय छटा के प्रकटीकरण पर चकित होना भी। कवि ने "हैरत" को प्रयुक्त कर अपनी बात को ख़ूब निभा दिया है।

दूसरा पद—शराब भी थोड़ी और प्याला भी छोटा, पर उनसे पैदा होनेवाली मस्ती में वह बरकत है कि आसमानी भेद समझ में आ जाता है। वस्तुतः ईश-प्रेम की मदिरा कहीं सौभाग्य से ही थोड़ी बहुत मिल जाती है, पर उससे तनिक-मस्त होने-वालों में भी इस बला का होश होता है कि वे बड़े-बड़े आध्यात्मिक रहस्यों को भी आसानी से समझ लेते हैं।

१. मस्त ; २. नीला आसमान ; ३. नग्न ।

तीसरा पद—फ़रमाते हैं कि कभी तो तलाश की धुन में मानों प्रकाश भी आवरण बन जाता है, अन्यथा तलाश ही कैसी और क्यों ? फिर कभी शौक़ की इतनी ज़्यादती होती है कि हम उसके विपरीत समझने लगते हैं।

चौथे पद में फिर कुछ वही बात अन्य रीति पर कही गई है। कहते हैं कि प्रकाश अपनी ही दर्शनाभिलाषा की धृष्टता है और आवरण अपने ही दुराव का प्रतिबिम्ब । वस्तुतः वह तो प्रकाश और आवरण दोनों से न्यारा है । अतः असल में न कोई प्रकाश है, न आवरण—न जलवा, न परदा ।

पाँचवाँ पद—फ़रमाते हैं कि वह तो ख़ुशबू से भी ज़्यादा छिपा हुआ और फूल से भी ज़्यादा खुला हुआ है, यानी सम्मिलित रूप से न प्रकट है, न अप्रकट । ऐसी दशा में हमारी ही मायाविनी बुद्धि आवरण और पर्दे का निर्माण किया करती है ।

छठा पद—प्रभु के प्रकाश में प्रचुरता, सुलभता और नग्नता तो अवश्य है, पर इन्हीं की बदौलत ऐसी तेज़ चमक भी है, जो आप अपना ही परदा बन गई है । यहाँ हमें महाकवि बिहारी के उस महा श्रृंगारी दोहे की याद आ जाती है, जिसका द्वितीय दल यह है—

'रही लपटि छबि की छटनि नेकहु छुटी न लाज।'

अंतिम पद बहुत साफ़ है। कवि अपनी कठिन लेखन-शैली की ओर संकेत करता हुआ निकट भविष्य में ही उसके समझे जाने की आशा करता है, पर हमारी राय में 'सब' के ख़याल से निकट क्या, सुदूर भविष्य में भी वैसा होना मुमकिन नहीं। वह न 'सब' की चीज़ है, न हो सकती है।

सारी ग़ज़ल ख़ूब सजी हुई है और सारे पद एक से एक बढ़कर हैं। सूक्ष्मदर्शी कवि ने 'जल्वा' और 'परदा' को लेकर वह-वह बारीकियाँ दिखाई हैं कि अक़्ल दंग हो जाती है और कवि के कमाल पर मुह से बार-बार 'वाह' निकलती है। ऐसे ही

पदों ने असग़र को अपने रंग में बेजोड़ बना दिया है।

ग़र्क़ हैं सब इल्मो हिकमत दीनो ईमाँ देखिए,
किस तरह उट्ठा है इक सागर से तूफ़ाँ देखिए।
दीदए-बेख़्वाबे-अंजुम[1] सीनए-सद[2] चाके-गुल,
हुस्न भी है मुब्तिलाए-दर्दे-पिनहाँ[2] देखिए।
रस्मे-फ़र्सूदा नहीं शायाँने-अरबाबे-नज़र,
अब कोई मंज़र बलंद अज़[4] कुफ़्रो ईमाँ देखिए।
मैं न कहता था कि आफ़त है शराबे-शुअलारंग,
सोख़्त आख़िर हो गये सब कुफ़्रो ईमाँ देखिए।
'असग़रे'-रंगीं नवा[5] का यह तग़ज़्ज़ल अलअयाँ,
कुफ़्र फैलाता है यह मर्दे-मुसलमाँ देखिए।

पहला पद—शराब के एक ही प्याले ने कैसा तूफ़ान उठाया है—कैसी बाढ़ पैदा कर दी है कि इल्म, हिक़मत, दीन और ईमान सब डूबकर रह गये हैं। वाक़ई ईश-प्रेम की मदिरा ऐसी ही होती है कि उसे थोड़ा पीकर भी तन-बदन का होश नहीं रहता। मस्ती में अहंभाव का नाश होकर ही प्रेम-पराकाष्ठा की प्राप्ति हो सकती है—मदिरा की दृष्टि से मस्ती स्वयं ही ईश-प्रेम की मस्ती बन जाती है, जो पर्णता तक पहुँचे विना नहीं रहती।

दूसरा पद—सौन्दर्य की मूर्तियाँ होकर भी सितारे निद्राहीन नेत्र बन रहे हैं और फूल अपना सीना चाक किये हुए। अतः प्रमाणित हुआ कि सौन्दर्य में भी प्रेम की अप्रकट वेदना है—वह इतनी सर्वव्यापी है कि उससे न प्रेमिक की बचत हो सकती है, न प्रेमिका की। पद को आध्यात्मिक दृष्टि से देखने पर स्रष्टा और सृष्टि के बीच पारस्परिक आकर्षण होने का पता चलता है और अद्वैतवाद की दृष्टि से तो उस बात की और भी पुष्टि हो जाती है।

तीसरा पद—कवि कहता है कि नज़र या दो आँखें रखनेवालों के लिए पुरानी रस्म को पकड़े रहना

[1] तारों के निद्रारहित नेत्र; २ छिपे दर्द में मुब्तिला होना; ३ उचित; ४ से (कुफ़्र और ईमान से); ५ सुवाचक 'असग़र'।

ठीक नहीं। 'कुफ़्र' और 'ईमान'—काफ़िरी और दीनदारी—ये दोनों बातें बहुत पुरानी हो गईं। अतः अब किसी ऐसे दृश्य के देखने की इच्छा है, जो इनसे बलंदतर हो—जिसमें पहले चारवाली बातों का लेश न हो।

चौथा पद—मानों ऊपर ही के सिलसिले में है। ईश-प्रेम की लपट जैसी शराब को चाहे 'आफ़त'[1] कहो, चाहे 'राहत'[2], उसमें वह धधक ज़रूर होती है, जो काफ़िरी और दीनदारी दोनों को जलाकर ख़ाक कर देती है! जो लोग ख़ुदा की राह में निकले हैं, उन्हें ये सब बातें राह का रोड़ा ही जान पड़ती हैं।

पाँचवाँ पद—रंगी बयान 'असग़र' की ग़ज़ल से ख़ुदा की पनाह! जो मुसलमान होकर कुफ़्र फैलाता है। यदि साफ़ और सच्ची बातों का नाम कुफ़्र और दीनदारी है तो फिर ऐसी दीनदारी से ख़ुदा की पनाह! वेदान्त का प्रतिपादन प्रायः मुसलमान कवियों के लिए भी रुचिकर कार्य रहा है। उर्दू में तो 'ग़ालिब' भी इसी के लिए बदनाम था और अब 'असग़र' भी बदनाम है! 'ग़ालिब' का इसी ख़याल से उनका कहना था कि "यदि मैं हिन्दी जानता होता तो हिन्दी में ही कविता करता; क्योंकि वैसी दशा में हिन्दू लोग अपने धर्म-विषयक संस्कार रखते हुए मेरी कविता को स्वाभाविकतः अधिक समझते।" यहाँ पर इतना और कह देना ज़रूरी मालूम होता है कि 'इक़बाल' ने तो साम्प्रदायिकता को अपनाकर अपने-आपको उस बदनामी से बचा लिया है।

वह मौत है कि कहते हैं जिसको सुकून[3] सब,
वह ऐन[4] जिन्दगी है जो है इज़्तराब में।

कवि 'आराम' या 'शान्ति' को मौत समझता है और 'बेचैनी' या 'अशान्ति' में ही वास्तविक ज़िंदगी मानता है। उस्ताद 'असीर'-लखनवी का भी एक शेर है—

१ दुःख; २ सुख; ३ आराम; ४ असल; ...

ज़ीस्त[1] कहते हैं जिसे, है इज़्तराब,
मर्ग[2] कहते हैं जिसे, आराम है।

पद सरलता, प्रवाह और विचार की दृष्टि से बड़ा सुन्दर है, पर उसमें जहाँ कोरी परिभाषा दिखती है, वहाँ 'असग़र' की वर्णन-विधि परिभाषा की परवा न करती हुई पद को ओजपूर्ण एवं स्फूर्तिप्रद बना देती है।

हम यहाँ तक असग़र साहब के पद्य पर विचार कर चुके। अब हमें गद्य के विषय में भी कुछ कहना है। हम दिखा चुके हैं कि उनकी कविताओं में कितनी रहस्य-वादिता, कितनी दार्शनिकता और कितनी गहनता है। यही बातें उनके लेखों में भी दिखती हैं। संक्षिप्ततः गद्य में भी वही विद्वत्ता है जो पद्य में। हाँ, अन्तर इतना है कि गद्य में व्याख्या की कुछ अधिक गुंजाइश होने से उसकी साधारण क्लिष्टता में कुछ कमी आ गई है। पर इसमें सन्देह नहीं कि समझनेवाले के लिए गद्य में भी अन्य रीति पर कुछ वही आकर्षण है, जो पद्य में। विद्वत्ता में रोचकता तो होती ही है। फिर जब विद्वत्ता के साथ विषय की सार्वग्राहिकता भी हो तो रोचकता का क्या ठिकाना! हमने उनके कुछ लेख पढ़े भी हैं और एक लेख का अधिकांश ख़ुद उनकी ज़बानी सुना भी है। ऐसा जान पड़ता है कि प्रत्येक शब्द बहुत ही खोज-खोजकर अपने स्थान में रक्खा गया है और समूची योजना कुछ ऐसी बन पड़ी है कि पढ़ने-सुनने में सहज ही कुछ संगीत का-सा मज़ा आ जाता है। उनमें कवित्व नहीं, पर कवित्व की सूक्ष्मता, दूरदर्शिता, परिपक्वता और मौलिकता अवश्य है। क्या अच्छा होता कि रचयिता अपने नये संदेश को नये शब्दों में ही सुनाता और अपने विचारों को अधिक से अधिक सरल एवं सुबोध रूप में रखकर अधिक से अधिक सार्वजनिक सहानुभूति एवं श्रद्धा का भाजन बनता।

[1] जीवन; [2] मृत्यु।

राजकुमार

श्रीउपेन्द्रनाथ अश्क बी० ए०, एल्-एल्० बी०

(१)

घर-घर गाने चली भक्ति जब
गिरि की दृढ़ता का गुणगान;
उसी रात उर चीर प्रेम की
गंगा फूट पड़ी गतिमान।

(मलिन्द)

इस एक महीने में गुलाब को मालूम हो गया कि दरबार में यदि किसी पर उसके गाने का प्रभाव नहीं पड़ता तो वह राजकुमार ही है। उसने देखा कि जब सारा का सारा दरबार विवश होकर उसकी मधुर संगीतलहरी में बरबस डूब जाता है, चेतनाहीन हो जाता है, तब राजकुमार सचेत, मूक, अप्रभावित बैठा रहता है। उस पर उस मधुर, मादक संगीत का ज़रा भी प्रभाव नहीं पड़ता—उस संगीत का, जो अन्य श्रोताओं को, इस दुनिया से उड़ाकर दूसरी दुनिया में पहुँचा देता है, जो भूत-भविष्य को आँखों से ओझल कर, सुननेवालों को वर्तमान में—मादक विस्मृतिमय वर्तमान में लीन कर देता है। उसने देखा, एक बार न ीं, दो बार नहीं—कई बार देखा कि जब उसकी मधुर संगीत-ध्वनि के अतिरिक्त दरबार में एक तिनका तक भी नहीं हिलता, तब राजकुमार उठकर चल देता है, उसे गाते हुए छोड़कर चल देता है, मानो गुलाब के गीतों ने—मन में उथल-पुथल मचा देनेवाले गीतों ने—उसके हृदय के किसी तार को भी न छेड़ा हो; हलकी-सी हलचल पैदा की हो।

गुलाब ने कई बार राजकुमार की इ[illegible] मनस्कता का कारण ढूँढने का प्रयास कि[illegible] वह सफल-मनोरथ न हो सकी। अब व[illegible] तौर पर दरबारी गायिका थी और उसे गाने के लिए दरबार में आना पड़ता[illegible] हर बार नई आन-बान से, नई सज-धज [illegible] दरबार को पराजित करने के लिए नहीं [illegible] कब का जीत चुकी थी। वह आती थी [illegible] सारी शक्तियों से गाती थी, कुमार के [illegible] के लिए—उसे मुग्ध करने के लिए। [illegible] उसके संगीत को बीच ही में छोड़कर [illegible] चुपचाप उठकर चला जाता तो गुलाब की [illegible] थरथरा जाती, उसके नाचते हुए पाँव [illegible] चूक जाते।

राजसभा ही नहीं, वरन् समस्त [illegible] रियासतों में उसके संगीत और नृत्य की [illegible] हुई थी। जब भी वह किसी उत्सव पर [illegible] में गाने को आती तो सब रियासतों [illegible] कुमार ौर दूसरे पदाधिकारी उसे [illegible] देखने को, उसके कल कंठ से निकली हुई [illegible] ग्राही तान सुनने को चले आते। वे उस[illegible] एक तान पर मिट जाते, फिदा हो जा[illegible] कुमार जैसे पत्थर से बना हुआ था, [illegible] पहलू में दिल के बदले लोहे का टुकड़ा [illegible]



उस पर इन मर्मस्पर्शी गीतों का कुछ भी प्रभाव न पड़ता था। अमृत की गंगा पास बहती थी। लोग दूर-दूर से आकर अपनी प्यास बुझाते थे, पर गंगा के तट पर बसनेवाला उसमें से एक चुल्लू भर भी न ले पाता था। अपने इस अप-मान पर गुलाब का मुख लाल हो जाता। उसका गर्व हारकर, पराजित होकर सिर उठाता, पर फिर झुक जाता, जैसे चोट लगने पर साँप फन उठाता है, फुफकारता है, पर फिर दर्द से बेताब होकर गिर पड़ता है।

लोग उसके कंठ की प्रशंसा करते थे, उसकी मुसकराहट पर जान न्योछावर करने को तैयार रहते थे, पर गुलाब को यह प्रशंसा रोग से भी अधिक अरुचिकर, विष से भी अधिक कटु और सर्प-दंशन से भी अधिक दुःखप्रद प्रतीत होती थी। कलाकार उस आलोचक से प्रशंसा पाने को अधिक अधीर हो उठता है, जो हर किसी की रचना पर श्लाघा के पुल नहीं बाँधता; निपुण शिकारी उसी पक्षी को मारने का अधिक इच्छुक होता है, जिसका शिकार करना इतना सुगम न हो।

(२)

गुलाब सोचती, आख़िर क्यों राजकुमार उसमें, उसके गानों में, उसके नृत्य में कोई दिलचस्पी नहीं लेता; क्यों वह उस सुधा को, जिसे पान करने के लिए दूसरे इतने व्याकुल रहते हैं, पाकर भी निगाह फेर लेता है। क्यों गुलाब का चाँद-सा मुख, उसकी नरगिसी आँखें, गुलाब की पत्तियों के-से अधर, ऊषा के रंग में रँगे कपोल, लता-सी भुजाएँ, पतली कमर, मधुर कंठ, प्रलय-सी चाल उसके लिए कोई आकर्षण नहीं रखती। वह सोचती, राजकुमार नीरस, शुष्क प्रकृति का आदमी है, वह कला के सौन्दर्य को क्या जाने? पर नहीं, राजकुमार का चौड़ा मस्तक, अथाह सागर की भाँति उसकी गहरी आँखें, उसका विशाल वक्षः-स्थल, उसकी गम्भीर मुद्रा, उसकी सरल मुस-कराहट—उसके सुशिक्षित और उदार होने की द्योतक थी। फिर वह सोचती, कुछ बात नहीं, कुमार को केवल अपने ज्ञान, अपनी शिक्षा का अहंकार है, मिथ्या दम्भ है, और इस विचार के आते ही, उसके इस दम्भ को तोड़ने की प्रबल आकांक्षा उस सुन्दर गायिका के हृदय में पैदा हो जाती।

गुलाब जब भी दरबार में आती, नये शस्त्रों से सुसज्जित होकर आती। अपना सारा चातुर्य गले में भर लेती, अपनी सारी मादकता आँखों में खींच लाती और सारा स्पन्दन अपनी गोरी भुजाओं में ले आती, परन्तु राजकुमार पर उसका कोई प्रभाव न पड़ता। वह अपनी मदमाती आँखें उसकी गम्भीर आँखों में डाल देती, पर वहाँ मृत्यु की-सा गहराई होती। उसकी आँखें ठुकराये हुए मनुष्य की भाँति धरती पकड़ लेतीं। उस समय वह पराजित हो जाती। परन्तु आशा उसके कान में आकर कह देती—एक दिन आएगा कि कुमार हार मानकर तेरे चरणों में आ गिरेगा, उसका अहंकार चूर-चूर हो जायगा और वह तुझे अपनी भुजाओं में भरकर तेरे अधरों को अपने ओठों के पास लाकर कह देगा—"गुलाब, तुम्हारे गानों में जादू है, तुम्हारे नृत्य में जादू है, तुम्हारी हर बात में जादू है।"

पहली बार जब उसने राजकुमार को देखा था तो उसने अनुमान किया था कि दूसरे ही दिन कुमार उसके पाँव पर गिरकर प्रणय-याचना करेगा, परन्तु उसका यह अनुमान कितना मिथ्या था, कितना असत्य था। कुमार पानी का वह सरोवर था, जो बाहर से इतना गहरा प्रतीत न होता था, पर पैरनेवाला उसकी गहराई में गुम होकर रह जाता था। दर्शनशास्त्र का वह छात्र, फ़िलासफ़ी के मन्दिर का वह पुजारी, त्यागी, सरल, सीधा वह कुमार इस विलासी दुनिया से अलग-थलग अपने सादे भवन में, अपनी सरल, सुरम्य वाटिका में रहता था। अध्ययन ही उसका जीवन था, जीवन का सार ही अध्ययन था और इस निष्कंटक अध्ययन के फलस्वरूप उसने सीखा



था संयम, निग्रह और इंद्रियों का दमन। किसी को उसकी इस तपस्या में दख़ल देने की आज्ञा न थी। कोई वहाँ जाने का साहस न करता था, और इस कोलाहल से दूर अपने इस नये संसार में वह रहा करता था।

गुलाब की दुनिया विलास की दुनिया थी, ऐश्वर्य की दुनिया थी, वहाँ मानव-प्रकृति की ओछी आकांक्षाओं का राज्य था। वहाँ आत्मा की वह उड़ान कहाँ ? मनोविज्ञान की वह सामग्री कहाँ ?

यही कारण था कि कुमार का जीवन-रहस्य गुलाब पर न खुल पाता। वह उसे पराजित करना चाहती, उससे अपने और अपने संगीत के इस अपमान का बदला लेना चाहती। उसका गर्व उसे सदैव प्रतिशोध के लिए, प्रतिहिंसा के लिए, बदले के लिए उद्यत करता था। वह एक बार—केवल एक बार कुमार को हराना, उसे अपने से प्रेम की भीख माँगते देखना चाहती थी, परन्तु जब भी कुमार सामने आ जाता तो सहस्रों को मूर्ख बनानेवाली स्वयं मूर्ख बन जाती। वह भूल जाती कि उसे कौन-से हथियार से काम लेना है। उसका हृदय न-जाने क्यों धड़कने लग जाता, स्वर में न-जाने क्यों कम्पन पैदा हो जाता और हाथ-पाँव न-जाने क्यों थरथराने लग जाते।

(३)

गरमी का मौसम था, सन्ध्या का समय, दोपहर की अपेक्षा गरमी बहुत कम थी। संपन्नता बाग़ों की सैर को निकल आई थी और निर्धनता निराशा की भाँति अपने आर्द्र और अँधेरे कमरों में पड़ी थी।

गुलाब भी अपनी दासी के साथ सैर को आई थी। राजवाटिका के एक कोने में उसकी गाड़ी खड़ी थी और वह मन्द गति से रविशों पर टहल रही थी। बाग़ में किसी वृक्ष पर बुलबुल चहक उठी। गुलाब के हृदय की नीरव दुनिया जाग्रत् हो गई। पाँव धीरे-धीरे चल रहे थे, मस्तिष्क, स्थिर, अविचल भाव से सोच रहा था और हृदय में तूफ़ान मचा हुआ था। तीनों ही अपने अपने रंग में मस्त थे। न पाँवों को मस्तिष्क से कोई काम था, न मस्तिष्क को पाँवों से, और हृदय इन दोनों से बेख़बर अपनी ही कोलाहलमय दुनिया में मस्त था। वह जानती थी, वह कुमार को नीचा दिखाना चाहती है, उससे अपने अपमान का बदला लेना चाहती है, परन्तु कभी-कभी उसे ऐसा प्रतीत होता कि वह अपने पथ से विचलित हो रही है, भटक रही है और कुमार को नीचा दिखाने के बदले उससे प्रेम करने लगी है। पर यह अनुभूति क्षणिक होती। ऐसे ही, जैसे सोते में कोई चौंक उठे और फिर खर्राटे लेने लगे। वह इस कोमल भावना को बरबस दबा देती और अपने पथ पर अग्रसर होने का प्रयास करती—वह कुमार को नीचा दिखाकर दम लेगी, वह है एक वेश्या, उसे प्रेम से क्या काम, लेकिन यह सोचती हुई वह सिहर उठती और फिर आवेश में रो उठती थी।

दाईं ओर बेलों से घिरी हुई माली की सुन्दर झोपड़ी थी। बाहर आँगन में युवा मालिन बैठी हार गूँथ रही थी। माली ने आकर उसकी आँखें बन्द कर लीं। मालिन ने कृत्रिम क्रोध और स्वाभाविक चंचलता से उसका हाथ झटक दिया—"तुमसे पल भर भी चुप नहीं रहा जाता, देखने-सुनता क्या कहेगा"—माली हँस दिया। मालिन भी हँस दी और हँसते हुए उसने वह हार माली के गले में डाल दिया। उसी समय उसकी दृष्टि गुलाब पर पड़ी। लज्जा से सकुचाती हुई वह झोपड़ी में भाग गई। गुलाब निस्तब्ध खड़ी रही, परन्तु उसके दिल की गहराइयों से एक निश्वास बरबस निकल गया। एक क्षण के लिए कल्पना-लोक में गुलाब मालिन थी और कुमार माली। किन्तु दूसरे क्षण यह निस्तब्धता टूट गई। झोपड़ी उसे नीरस दिखाई पड़ने लगी और वृक्ष [illegible] उगलते हुए प्रतीत हुए।

दासी ने एक-दो बार उसे बुलाने का प्रयत्न



किया, किंतु गुलाब की उदासीनता के कारण वह चुप हो रही। उत्तर-पश्चिम से बादल का टुकड़ा उठा। ठंडी हवा चलने लगी। दोनो चलते-चलते बाग़ के परले सिरे पर पहुँच गये। इसके परे राजकुमार की वाटिका और अध्ययनशाला थी। वाटिका का दरवाज़ा सुन्दर पुष्पों से ढका हुआ था। गुलाब एक क्षण के लिए रुकी, फिर अन्दर चली गई, दासी को बाहर ही रहने का आदेश दे दिया गया।

(४)

मध्य में कुमार का सादा श्वेत भवन था और आसपास थी वाटिका, सुन्दर और सुरम्य। गुलाब को इस वाटिका की सैर में एक स्वर्गीय आनन्द का आभास हुआ। वाटिका के पत्ते-पत्ते में गुलाब को कुमार की सूरत दिखाई दी—वही सरल मुसकराहट, वही गम्भीर सौम्य मूर्ति। गुलाब को कुमार की गम्भीरता बुरी लगती थी, उसकी मुसकराहट से उसे प्रेम था और इसी में अपनी सफलता का चिह्न भी देख पाती थी वह।

बाईं ओर एक बड़ा-सा गुलाब का फूल उसकी निमग्नता पर हँस रहा था। गुलाब ने उसे देख लिया और तोड़ लेने को बढ़ी। वहाँ भी उसे कुमार बैठा दिखाई दिया। उसने कुमार से इस बेरुख़ी का कारण पूछा; उसके रूखे व्यवहार की शिकायत की। कुमार के ओठों पर मुसकराहट चमक उठी। उसने कहा—"ओह तुमसे यह किसने कहा, मैं तुम्हारा गाना पसन्द नहीं करता, तुम बहुत अच्छा गाती हो, मेरे दिल से पूछकर देखो, वह मेरी बात का समर्थन करेगा।"

गुलाब का चित्त प्रफुल्लित हो उठा, उसके गालों पर उल्लास की लाली छा गई। उसे प्रतीत हुआ, उसने कुमार पर विजय प्राप्त कर ली है। शरीर पुलकित हो उठा, सिर गर्व से ऊँचा उठ गया। उसी समय उसे सत्य का आभास हुआ। उसने देखा, वह गुलाब के पौदे के पास खड़ी थी और कुमार वहाँ नहीं है। उसके माथे पर पसीना आ गया, कल्पना-लोक में कितना माधुर्य है, कितना उल्लास और वास्तविक जगत् में कितनी कटुता, कितनी निर्ममता! कल्पना ही कल्पना में उसने कुमार को पराजित कर दिया था, परन्तु सत्य इससे कोसों दूर था। अपनी इस निमग्नता पर उसे स्वयं ही हँसी आ गई।

वह आगे बढ़ी, पर ठिठक गई। पाँव मानो धरती से चिपक गये। सामने वृक्षों की घनी छाया में एक आरामकुरसी पर कुमार बैठा था, पास ही एक बेंच थी। उस पर किताबें पड़ी थीं। एक बार उसके जी में आया, जाकर कुमार के पास बैठ जाय, उसके चरणों पर अपना सिर रख दे। फिर सोचा, भाग जाय, परन्तु भागने को भी पाँव न हिले। दिल ने कहा—इतनी कमज़ोरी, एक साधारण राजकुमार का सामना करने में इतनी झिझक, परन्तु न-जाने धरती में कौन-सी गोंद लग गई कि पाँव वहीं चिपक गये, न आगे बढ़ सकी, न पीछे हट सकी।

राजकुमार ने उसकी ओर देखा, उसकी झिझक को देखा, मुसकराया और उसके पास आकर खड़ा हो गया।

एक क्षण के लिए गुलाब की समझने और सोचने की शक्तियाँ जवाब दे गईं।

राजकुमार ने अपना हाथ उसके कंधे पर रक्खा। गुलाब के समस्त शरीर में सनसनी दौड़ गई।

"देवी" कुमार ने धीरे से पुकारा।

वेश्या और देवी—गुलाब का शरीर क्षण भर के लिए काँप उठा। उसकी सारी चंचलता उसे इस एक शब्द में डूबती हुई दिखाई दी। कुमार ने हाथ को तनिक दबाया। कदाचित् वह अपने निग्रह की परीक्षा कर रहा था।

प्रायः राजकुमार से भी सुन्दर कुमारों ने अपनी भुजाएँ उसके गले में डाली थीं। उसके पास घंटों बैठकर प्रेमालाप किया था। परन्तु उसका शरीर ऐसे न काँपा था, उसे ऐसी झिझक प्रतीत न हुई थी; उसे कभी इस भाँति रोमांच

न हो आया था। परन्तु आज कुमार के छूने मात्र ही से उसका शरीर पुलकित हो उठा। उसे रोमांच हो आया। उसने आँखें बंद कर लीं और इस नूतन स्वर्ग का आनन्द लेने लगी।

"देवी" कुमार ने फिर उसी प्रकार पुकारा।

गुलाब ने आँखें ऊपर उठाईं और धीरे से कहा, "राजकुमार"—पर दूसरे क्षण उसका हृदय बैठ गया। कुमार की आँखों में समुद्र की गहराई थी, काँसे के कटोरे में पड़े हुए स्वच्छ पानी की उज्ज्वलता। उसकी निगाहें झुक गईं।

"आओ, बैठो।"

और गुलाब चुप-चाप कुमार के पीछे चल दी। वह अपने पहले स्थान पर जा बैठा और गुलाब निस्पन्द खड़ी रही।

"बैठ जाओ देवी।"

मन्त्रमुग्ध-सी वह धरती पर बैठ गई।

कुमार ने कहा—"कुरसी ले लो।"

अत्यन्त दीनता और विनीत भाव से गुलाब बोली, "मैं यहाँ ही अच्छी हूँ"। एक क्षण के लिए दोनों की आँखें चार हुईं। गुलाब ने अपने ओठों के कोणों में मुसकराहट लाने का प्रयास किया। परन्तु कुमार की शुष्क आँखों ने गुलाब की मदभरी आँखों का उत्तर नहीं दिया।

"कैसे आई हो देवी?"

"अपने एक प्रश्न का उत्तर लेने।" आने के सम्बन्ध में और कोई बहाना गुलाब को सूझा नहीं, इसलिए उसने साफ़-साफ़ बात कह दी।

कुमार ने पूछा, "कौन-सा प्रश्न?"

"तुम मेरे गाने को तुच्छ समझते हो कुमार; मुझे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हो?"

"देवी" कुमार ने प्रभावित होते हुए कहा, "मैं संसार में किसी वस्तु को तुच्छ नहीं समझता। बाक़ी रहा गाने का प्रश्न, सो गुलाब, बात यह है कि मैं आत्मिक संसार में रहता हूँ। यह दुनिया मेरे लिए अधिक मनोरंजक नहीं। वर्षों के अध्ययन ने मुझे इस संसार और उसके सुख-दुख से ऊपर उठा दिया है।" कुमार ने अपने पुस्तकालय की ओर संकेत करते हुए कहा, "गुलाब, ये क[...] कमरे पुस्तकों से भरे पड़े हैं, इन पुस्तकों में [...] एक संगीत है, जो केवल दिल को ही संदेश न[हीं] देता, आत्मा को भी संदेश देता है। इन पुस्तकों ने मुझे इस संसार से बहुत ऊँचा उठा दिया है। तुम्हारे गीतों को सुनकर मनुष्य क्षण भर के लि[ए] आकाश पर जा उड़ता है, पर जब वह ता[न] वह उल्लासजनक, मनोमोहक तान समाप्त हो जाती है, तो मनुष्य अपने-आपको इसी संसा[र] में बैठा हुआ पाता है। यही कारण है कि ज[ब] तुम गाती हो तो भी तुम्हारे गीत मुझे उस संसा[र] से नहीं खींच सकते, जहाँ मुझे इस पुस्तक-संसार ने पहुँचा दिया है।"

गुलाब ने बेख़ुदी में कुमार के घुटने पर हा[थ] रक्खा।

"गुलाब"—देवी का शब्द कुमार को [...] चुका था।

गुलाब ने अपनी मुसकराती हुई आँखें ऊ[पर] उठाईं।

कुमार का दिल कुछ ज़ोर से धड़क उठा। [...] कुछ कहना चाहता था, पर बोल जैसे उसके [...] में आकर रुक गया।

गुलाब ने अत्यन्त सादगी से पूछा, "कुमार [...] मुझे भी उस दुनिया की सैर न करा सकोगे? [...] इस कुत्सित, पापमय जीवन से तंग आ गई हूँ।"

कुमार हँसा—मीठी, संगीतमय हँसी "तुम्हारे लिए कठिन है" उसने कहा, "तुम—जो आ[यु] भर विलासिता की गोद में पली हो, जिस[का] कोमल शरीर गदेलों और कोमल बिस्तरों [का] आश्रय तकता रहा है, धन ही जिसके वासना[मय] जीवन का चरम ध्येय है—वह तुम, इस लि[ए] और तपस्या के जीवन के लिए नहीं हो। [...] इसमें सुख न मिलेगा।"

"क्यों न मिलेगा," गुलाब ने आवेश से [...] "ये कपड़े, ये गहने, यह विलासिता, मैं इन [...]



गौरी और शंकर

[चित्रकार—श्रीयुत छविनाथ]

N. K. Press

ऊब गई हूँ । मैं ये कपड़े तार-तार कर दूँगी, ये गहने उतार फेंकूँगी," उसने गहने उतारकर अलग फेंक दिये, "सुख, विलास और ममता की सामग्री इकट्ठी करते-करते यह दिन आ गये । विलासियों की काम-वासनाओं का शिकार बनते, उनकी प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए नाज़-नखरे करते वर्षों बीत गये । अब तो मैं थक गई हूँ । सत्य कहती हूँ कुमार, अब मैं ऊब गई हूँ, तुम केवल पथ-प्रदर्शक बन जाओ, फिर देखो कि मैं इस जीवन की कसौटी पर पूरी उतरती हूँ या नहीं ।"

कुमार मंत्र-मुग्ध-सा उसके मुख की ओर देख रहा था । कितना सौन्दर्य था, कितना माधुर्य था । बोलते समय, आवेश के कारण गुलाब के कपोलों पर लाली दौड़ गई थी । कुमार ने पश्चिम की ओर देखा, सूर्य डूब रहा था और उसके मुख पर भी वैसी ही लाली थी । वायु में मंद भर गया था । वह सन्न बैठा रहा ।

"कुमार—राजकुमार" गुलाब ने फिर विनम्र स्वर में कहा, "मुझे दीक्षा दो, मैं अधम हूँ, अशिक्षित हूँ, लेकिन तुम तो महान् हो, तुम तो उदार हो, तुम चाहो तो मेरा बेड़ा पार कर सकते हो ।"

"अच्छा" कुमार बोला, "मैं तुम्हें यह मार्ग दिखा दूँगा, परन्तु पहले तुम अपने-आपको इस मार्ग की कठिनाइयों के लिए तैयार कर लो, जब समझो कि तुम इस त्याग के मार्ग पर चल सकोगी, यह निग्रह और संयम का जीवन व्यतीत कर सकोगी, तो आ जाना ।"

"मैं पर्याप्त साधना करूँगी, यथेष्ट चेष्टा करूगी। कुमार, तुम अपने उपदेशों के अमृत से मेरे इस जीवन के विष को दूर कर देना, मेरे हृदय की खेती को अमृतभरे वचनों से सींच देना, फिर देखना, यहीं लहलहाता हुआ बाग़ लग जाता है या नहीं ।"

गुलाब ने अपना सिर कुमार की जाँघ पर रख दिया । कुमार ने चाहा, परे हट जाय, पर न हट सका । चुप बैठा रहा, गुलाब गुनगुनाने लगी।

"डोल रही मझधार—नय्या"

धीरे-धीरे उसका स्वर ऊँचा होता गया । करुणा-भरा गीत और दर्दभरी आवाज़, कुमार की आँखें छलछला आईं, रोकने पर भी आँसू न रुके । जब गाना समाप्त हुआ तो कुमार चौंके, उन्होंने रूमाल से आँखों को पोंछा, गुलाब की ओर देखा तो वह भावावेश के कारण बेसुध हो गई थी, उसका मुख बर्फ़ ऐसा श्वेत था और मस्तक पर पसीना आ गया था ।

कुमार ने एक लम्बी साँस छोड़ी और उसे अपनी विशाल भुजाओं में लेकर बेंच पर लिटा दिया और किताब से पंखा करने लगा । कुछ क्षण बाद गुलाब ने आँखें खोल दीं, एक बार इधर-उधर देखा, लम्बी साँस ली, उठी और चलने को उद्यत हुई । अब जब उसने कुमार के हृदय में रूप की प्यास जगा दी थी, वह उसे इससे व्याकुल होकर तड़पते देखना चाहती थी, वह इस चिनगारी को आग बनने के लिए छोड़ देना चाहती थी ।

कुमार के हृदय के किसी कोने में एक हलकी-सी आकांक्षा पैदा हुई कि गुलाब कुछ देर और ठहरे, वह कुछ बातचीत आरम्भ करना चाहता था, पर यह इच्छा उसके होठों के आगे न जा सकी, ज़बान से कुछ न कह सका ।

गुलाब ने प्रणाम किया और दूसरे दिन आने के लिए कहकर चली गई । दरवाज़े के बाहर दासी ने देखा, गुलाब के मुख पर मुस्कराहट खेल रही है ।

(५)

राजकुमार फिर पढ़ने लगा, जैसे कुछ हुआ ही नहीं, जैसे बड़े से बड़ा पत्थर गिरने पर भी नदी नहीं रुकती, वरन् अपने बहाव पर चली जाती है । उसने किताब को जहाँ छोड़ा था, उसके आगे चार-पाँच पंक्तियाँ पढ़ डालीं, पर अर्थ कुछ भी समझ में न आया, फिर पढ़ा, फिर भी कुछ समझ



में न आया। एक क्षण के लिए किताब छोड़कर कुमार लेट गया। उसके कानों में गूँज उठा।

"डोल रही मझधार—नय्या"

दृष्टि बिखरे हुए आभूषणों पर पड़ी और आँखों के सामने गुलाब का चित्र फिर गया। हाँ, ? यह साधारण घटना न थी। नदी में पत्थर न गिरा था, चट्टान गिरी थी और उसका बहाव रुक गया था।

कुमार ने क्रोध से किताब को बेंच पर पटक दिया और उठकर पुस्तकालय में चला गया, एक के बाद कई धर्म-पुस्तकों को उठाया, पढ़ा, कुछ भी समझ में न आता था। उसने पुस्तकों को उठा उनके स्थान पर रख दिया और बरामदे में घूमने लगा। परन्तु किताबें छोड़ते ही फिर वही सुन्दर मुख आँखों के सामने आ गया, फिर वही मादक तान कानों में गूँज उठी। कुमार उद्विग्न हो उठा। उसने फिर कमरे में आकर किताब उठाई और तनिक एकाग्रता से पढ़ना आरम्भ किया, पर मन न लगा। भगवान् बुद्ध के उपदेशों की किताब थी। कभी इस किताब को पढ़कर उसके मन को शान्ति प्राप्त हो जाती थी, वह इस संसार को तुच्छ और मिथ्या समझने लग जाता था। पर आज दुनिया बदल गई थी। ज्यों-ज्यों वह पढ़ने का प्रयत्न करता, उसकी आकु[ल]ता वृद्धि होती जाती। वे उपदेश, जिनमें स्वर्गीय आनन्द मिलता था, अब नीरस फीके जान पड़े।

"मुझे क्या हो गया है" वह चीख उठा, "इसी लिए मैंने इतने वर्ष गँवाये हैं, क्या मेरी साधना, मेरी सब तपस्या व्यर्थ जायगी" क्रोध उत्तेजना से पागलों की भाँति उसने सब कि[ताबों] को बाहर निकालकर फेंक दिया और फि[र] ढेर को दियासलाई दिखा दी। बेशुमार पु[स्तकों] का यह ढेर बवंडर की तरह जलने लगा। उन्मत्तों की भाँति हँस उठा। पर इस हँसी [में] वेदना की गहरी छाप थी। उसने बढ़ती ज्वाला को उपेक्षाभरी दृष्टि से देखा और [...] की ओर चल दिया।

× × ×

दूसरे दिन प्रातः गुलाब सीधे-सादे व[स्त्रों में] आवृत पवित्रता की तस्वीर बनी कुमार को [...] शिखर से डिगाने, उसके उन्नत भाल को [...] के लिए, प्रसन्न मन के साथ वाटिका में [...] हुई। उसने देखा, पुस्तकालय धड़-धड़ जल [रहा है] और कुमार का पता नहीं।



सुप्त सौंदर्य

कुँअर हरिश्चन्द्रदेव वर्मा "चातक" कविरत्न

दुग्ध-फेनोज्ज्वल सदृश शय्या नहीं,
स्वच्छता जग की हुई साकार है।
सुन्दरी के मञ्जु मधुर स्पर्श का
लोभ ही ऐसा अनूप अपार है।

सुन्दरी यों तल्प पर छवि पा रही
प्रस्फुटित ज्यों मञ्जु सुमनों की लड़ी।
या सुभग सौंदर्य के साम्राज्य की
शोभनाकृति राजलक्ष्मी ही पड़ी।

सुन्दरी के कलित कुन्तल में छिपी
शीश-मणि थी निज प्रभा दिखला रही।
या कुहू-निशि में कला शशि की दिखा
'सृष्टि में सम्भव सभी सिखला रही'।

या सुधाकर सुन्दरी के सुमुख की
जब किसी विधि कर सका समता नहीं
तब वही मणि-व्याज से आया न हो
सुन्दरी की पुण्य-सेवा को कहीं?

कृष्ण-कुञ्चित-सी मनोहर दो लटें
आ पड़ी थीं चन्द्रमुख पर प्यार से।
सर्पशावक या सुधा पीकर अहा!
मुक्त होते थे विषाक्त विकार से।

या कि छवि की जाह्नवी में चन्द्रमा
कालिमा निज धो रहा था चाव से।
या कमल पर बैठ मधुकर-श्रेणियाँ
कर रहीं मधु-पान थीं सद्भाव से।

इन्द्र-धनु ने मेघ से ले कालिमा
सुन्दरी की भ्रू मनोहर थीं रचीं।
या सनेही दीप दृग द्वय ने वहाँ
कज्जलित युग बंक रेखाएँ खचीं।

सुन्दरी के नेत्र दोनों बन्द थे
कर रहे थे सिद्ध वे मानों यही।
यामिनी में पद्म हैं खुलते कहीं?
ठीक ही यह बात कवियों ने कही।

प्रभामय पिच्छिल अमोल कपोल में
श्याम मणि-सा एक तिल अभिराम था।
प्राण-पक्षी देखकर 'दाना' फँसे
काम ने ही या किया यह काम था।

प्राणधन के ध्यान में हो मग्न या
सो गई यह सुन्दरी सुकुमारिका।
तिल नहीं, यह तो उन्हीं को देखने
प्रेम-वश निकली विकल दृग-तारिका।

सुन्दरी के अरुण अधरों पर खिली
स्वप्नमय कुछ-कुछ मधुर मुसकान थी।
या प्रफुल्ल गुलाब की मृदु पंखड़ी
बाल किरणों से हुई छविमान थी।

सुन्दरी के शिथिल केशकलाप में
सित सुमनमाला मनोहर थी पड़ी।
शत्रु तम को सैन्य या आलोक की
घेर करके थी चतुर्दिक् से खड़ी।

सुन्दरी के प्रेममय हृद्देश में
मंजु हीरक-हार था छवि दे रहा।
या कि वह अपने अतुल सौभाग्य से
पूर्व संचित पुण्य का फल ले रहा।

रसिक मन गमनागमन के मा...
सुन्दरी के भुज युगल थे सो...
देखकर जिनकी निराली छवि-...
मनुज क्या अमरेश भी थे मो...

मंजु मुक्ता ग्रथित नीलांकुश अहा!
सुन्दरी पर था पड़ा छवि दे रहा।
नील नभ तारक निचय के साथ या
दृष्टि-सुख मुख-चन्द्र का था ले रहा।

सुन्दरी की सुप्त शोभा सौख्य...
भाव थी जाग्रत् अनेकों कर ...
फिर भला जाग्रत् दशा की छवि-...
मुग्ध कर लेगी न क्या सारी म...

मैं क्या हूँ ?



श्रीअमृतलाल नागर

नीरव रजनी के सौध-शिखर पर बैठकर जब मैं व्यथा की लड़ियाँ सुलझाया करता हूँ—वे मुझसे पूछते हैं—मैं क्या हूँ ?—उन्मीलित विश्व की आँखों में अपनी आँखें डालकर मैं उनसे कहता हूँ—"तुम्हें क्या बतलाऊँ कि मैं क्या हूँ ?"

तब वे मुझे पागल कह देते हैं।

मेरा जीवन-यान ऊर्ध्व-स्वर में उन्मादकारी राग गाता हुआ, जगत्-जल की उत्ताल-तरंगों पर बहता हुआ चला जा रहा है।—अनन्त-अतल की ओर आँखें बन्द किये हुए मैं जा रहा हूँ। भावनाएँ सम्बन्ध पाश में आबद्ध होकर, मेरे उत्तरीय-पट को खींचती हुईं, मुझसे इठलाकर कहती हैं—"बता दो न, तुम क्या हो ?"

मेरा मन उद्देश्य की प्रतिमा को जीवन-उद्यान से हटाकर, कवियों की भाँति स्वच्छन्द है—मेरे पोत को पतवार की आवश्यकता नहीं। समय और भावनाओं की झंझा उसे अपनी ओर बहा ले जाया करती है।

उन्माद की पगली ठोकर जब मुझे विश्व के गार्हस्थिक उपाख्यान का कठोर-चिन्तामय आघात देती है—मैं घबरा जाता हूँ। थका हुआ-सा मैं, मा की गोद में सिर रखकर उच्च उच्छ्वासों से विश्व के वातावरण को धूमिल करने लगता हूँ!—और मेरी मा—जननी—मा अपने वात्सल्य-मय-वरद हाथों से मेरे रूखे केश सहलाती हुई मुझे थपथपाती हैं।—स्वर्ग की विभूतियाँ, भगवान् विष्णु का आशीर्वाद-पूर्ण-हाथ भी मुझे उतना सुखी नहीं बना सकता।

तब मैं मा की गोद में लेटा हुआ एक अबोध शिशु हूँ।

× × ×

शराब की दो बोतलों को कुर्ते की दोनो जेबों में डालकर, रात्रि के दस बजे मैं रूप के हाट में जाता हूँ।

सुसज्जित प्रकोष्ठ में मसनद के सहारे, अधलेटी-सी वह, दोनो हाथों को सिर के पीछे बाँधकर कुछ गुनगुना रही थी—छत की कड़ियों को कदाचित् गिनती हुई।

"उँहूँ—आज सूरज किधर से निकला है ?" उसने उचित कटाक्षपात किया।

"पश्चिम से"—मैंने मुस्कराकर कहा।

"....अल्ला जानता है, आज तीन दिन से तुम्हें ख़्वाब में भी देखा करती हूँ।....तुम नहीं आते तो........"

मैं उसका पानदान अपने आगे खींचकर बैठ गया—मेरी ऐसी आदत थी। उसमें पान न थे।

"कैसी हो तुम ?—पानदान भी क़ायदे से नहीं रखतीं !"

"क्यों, क्या पान नहीं हैं ?"

मैंने केवल गर्दन हिला दी।

उसने पुकारा—"ऐ अम्मा, ज़री कलुआ को तो भेज दो—पान लिआवे जावे।"

कलुआ आया, मैं उसे पैसे देने लगा।

"बस-बस, रहने दीजिए अपनी सख़ावत, आज पान के लिए पैसे दे रहे हैं। कितने पैसे हैं, जेब में, आज ?"—उसने मुस्कराकर चवन्नी फेंक दी।

शराब के नशे में मैंने उससे कहा—"गाओ।"

शराब के नशे में मस्त होकर उसने गाया।

"लगत करेजवा में चोट!
बारे बलमा फुलगेंदवा न मारो......"

तब मैं शराबी हूँ—शराब के नशे में चूर।

तब मैं वेश्यागामी हूँ—वेश्या के अंकपाश में बैठा हुआ।

तब मैं युवक हूँ—यौवन के भीने वायुमंडल में सिसकियों, आहों, निश्वासों और उच्छ्वासों के सुनहरे डोरे 'जॉनी वाकर' के 'पेग' में डुबाकर उड़ाता हुआ।

× × ×

मीलों तक अदम्य जलराशि! हाहाकार! कल-कल!—सलिला जैसे यौवन के उस वेग को सँभालने में असमर्थ थी—पगली, उन्मादिनी नदी उन्मत्त-सी बहती-बढ़ती चली जा रही थी—शान्ति की खोज में।

लोग रोते थे, हाहाकार करते थे, चीत्कार करते थे—उनकी केवल एक ही याचना थी—'बचाओ.... कोई बचाओ!'

लुगाइयाँ रोती थीं, चीत्कार करती थीं, आवरण-विहीन—परन्तु उस समय उन्हें परिधान की आवश्यकता न थी, वे तो चाहती थीं—पगली नदी के उन्मत्त बाहुपाश से कोई उन्हें छुड़ा ले। वे केवल जीवन चाहती थीं—और कुछ भी नहीं।

सुकुमार-अबोध-फूल से छोटे-छोटे बच्चे—उन्हें कौन बचाता ?

लोग वहाँ जाते थे, बाढ़ की दशा देखने, हँसने, हाहाकार करने, पीड़ितों के प्रति क्षणिक-स्वाभाविक-समवेदना प्रकट करने। कितनों को ... तक लालसा रह गई—'हमने बाढ़ में ... आदमी बहते हुए न देखा!'

लुगाइयाँ जाती थीं—बाढ़ देखने, और ... कान पकड़कर, हाथ ऊपर उठा कहने—'हे राम... ऐसा दुख किसी को न देना!'

बच्चे जाते थे—बाप की उँगली पकड़कर, ... के साथ—बाढ़ देखने। फिर वे उनसे पूछते—'बाबूजी, देखिए वह लकड़ी तैरती हुई आ ... है, वह नाव है।....बाबूजी, यह पानी घर-घर-... घर बोलता क्यों है ?

पुल पर खड़े हुए बहुत-से इस दृश्य को ... रहे थे। बड़े-बड़े बाँस, मोटे-मोटे रस्सों में बाँध... जल के तल पर लटका दिये गये—डूबते ... मनुष्यों को तिनके के सहारे से।

एक आदमी बहता हुआ आया—लोगों ... देखा—वह बाँस पर रुक गया। लोगों के मुख ... हर्ष की एक चीत्कार निकल गई। बहुत-से लोगों ने रस्से को ऊपर खींचा। वैसे ही—

पानी से उछलकर एक विशालकाय मगर ... उसकी टाँग पकड़ ली—वह चीत्कार कर उठा।

लोगों ने रस्सा ऊपर खींचा—उसके कटे हुए पैर से रक्त की प्रचण्ड धारा निकलकर पानी ... मिल रही थी। दर्शक चीत्कार कर उठे।

पीड़ा से वह बेहोश हो गया था। उसके हाथ से बाँस छूट गया।

'आह!'—एक सम्मिलित घोर चीख़ थी।

ललचाये हुए मगर की भूख का सामान ... उसने झपटकर उसे उदरस्थ कर लिया।

दर्शकों ने ज़ोर से आँखें मीच लीं।

'हाय राम!....या अल्लाह, तेरी क़ुदरत!' बहु... से सचमुच रो रहे थे।

राम! अल्लाह!! ख़ुदा!!! रहीम!—यह ... क्या ?—कुछ नहीं।

मैंने पागल की भाँति चीख़कर कहा—'राम!... रहीम!!....ख़ुदा!!!....यह सब क्या है ?....ई...

कहीं भी नहीं! ख़ुदा कोई चीज़ नहीं!....गॉड कोई सत्ता नहीं।—यह सब पागल, ईश्वरभक्त, ख़ुदापरस्त मनुष्य के मस्तिष्क की उपज है।.... कुछ नहीं, राम-श्याम कुछ नहीं! कहीं भी नहीं!'

लोगों ने मुझे पागल समझा—परन्तु कोई हँसा नहीं।

तब मैं पागल था—नहीं, तब मैं घोर नास्तिक था, कट्टर ईश्वरद्रोही था।

× × ×

शीतला के प्रचण्ड कोप से पीड़ित मेरा एक वर्ष का छोटा-सा बच्चा—उसकी विकलता ने मुझे पागल बना दिया था।

वह विकल था—मैं उसकी बढ़ती हुई बेचैनी को न देख सकता था।

लोगों ने कहा—हज़ामत मत बनवाना—उसके स्वस्थ होने तक मैंने दाढ़ी बढ़ा रक्खी।

लोगों ने कहा—दूसरे वस्त्र न पहनना। मैं उसके स्वस्थ होने तक मैला-कुचैला ही बना रहा। लोगों ने कहा—एक माली झाड़-फूँक से आराम पहुँचाता है। मैं उसे भी जाकर बुला लाया।

........और फिर, एक रात्रि को, उसकी शय्या के निकट घुटनों के बल बैठकर दोनों हाथों को ऊपर उठाकर, रोकर अन्तरात्मा से अन्तर्नाद कर रहा था—'परमात्मा, मेरे बच्चे को अच्छा कर दो!'

तब मैं?—तब मैं ईश्वर की सत्ता पर विश्वास करनेवाला घोर आस्तिक था—मन्दिर में, मस्जिद में, गिरजा में—सब कहीं उसी का जलवा देखनेवाला परम ईश्वर-भक्त!

× × ×

लोग जानते हैं, जानना चाहते हैं—मैं क्या हूँ? मैं उन्हें क्या बतलाऊँ कि मैं क्या हूँ? मैं स्वयं नहीं जानता कि मैं क्या हूँ।

वीर-गीत

श्रीशिवप्रसाद डबराल बी० ए०

वीर-पूजा का जो भाव पुराण-काव्यों और वीरगाथाओं के मूल में है, वीरगीतों के मूल में भी वही भाव पाया जाता है। वीरगीत वे श्रद्धाञ्जलियाँ हैं, जिन्हें समाज ने वीरों के चरणों में उनके लोक-रंजक कृत्यों पर मुग्ध होकर अर्पित किया है। अत्यन्त प्राचीन कल्प में, जब किसी वीर ने लुब्ध भेड़ियों के पञ्जों से अपने साथी की एकमात्र संपत्ति—उसकी भेड़ों को बचाया; अथवा नर-भक्षक व्याघ्र के घात से किसी व्यक्ति का उद्धार किया, या सरिता में स्नान करते हुए किसी व्यक्ति की नाके के मुख से रक्षा की, किम्बा किसी शत्रु के आक्रमण के समय वीरता-पूर्वक उसका सामना किया और अपने साथियों के प्राण और संपत्ति बचाई, तो जनता ने उस वीर के प्रति अपनी कृतज्ञता का भाव उसके वीरत्व के गीत गाकर प्रकट किया। प्रति साल जब लौटकर वही तिथियाँ आती थीं तो जनता को उन संकट के अवसरों का स्मरण हो जाता था और वह अपनी मुक्ति के लिए हर्ष मनाने लगती थी। उन्हीं संकटमय तिथियों की स्मृति अब तक विभिन्न त्योहारों कें नाम से चली आ रही है। विजयादशमी का त्योहार उस अत्यन्त प्राचीन कल्प के महान् युद्ध का स्मारक है, जिसमें राक्षसत्व का नाश करके भगवान् रामचन्द्र नें मनुष्यत्व की स्थापना की थी। इन त्योहा[रों] अवसरों पर तो इन वीरगीतों को गा[कर] प्रकट किया जाता ही था, पर जब कभी संक[ट] अवसर आता था, उस समय भी उन [वीरों] का स्मरण किया जाता था और अपने उद्धा[र की] कामना से उन गीतों का मन्त्रों की भांति [पाठ] किया जाता था। आजकल भी जब कि[सी] व्यक्ति को रात्रि में अकेले खेतों की रक्षा [करनी] होती है, अथवा किसी भयंकर वन के मार्ग [से या] किसी निस्तब्ध श्मशान के पास से होकर [जाना] होता है, तो वह 'हनुमानचालीसा' की चौ[पाइयाँ] दोहराता जाता है। त्योहार के अवसर [पर जो] गीत आनन्द और उल्लास से भरकर नृत्य [कराने] लगते थे, वही संकट के अवसर पर ढाढ़स [और] धैर्य बँधाते थे और नवीन शक्ति भरते थे।

इस प्रकार के वीरगीत चिरकाल से अ[नेक जातियों के] कंठहार बने हुए हैं। संसार भर की सभी [सभ्य और] असभ्य जातियों में ऐसे गीत नाना रूपों में [पाए] जाते हैं। जावा की अर्द्ध-सभ्य जातियाँ पेड़ [काटते] समय, नाव चलाते समय अथवा नारियल [के पेड़ पर चढ़ते और] करते समय ऐसे ही वीरगीत गाया कर[ती हैं]। वर्मा और कम्बोज के कृषक धान बोते और [काटते] समय जो गीत गाते हैं: उनमें किसी प्राची[न वीर] के कृत्यों का वर्णन होता है। बाली द्वीप [...]

ही अवसरों पर उन गीतों को गाया जाता है, जो उस द्वीप में विश्रुत जनश्रुति के अनुसार भीम के अलौकिक कृत्यों से सम्बन्धित हैं । हिमालय के प्रान्तों में जब कोई कठिन कार्य आ पड़ता है, जिसको अकेला एक मनुष्य नहीं कर सकता और कई मनुष्यों के सहयोग की आवश्यकता होती है, तो उस समय सबमें उत्साह भरने के लिए कुछ ऐसे ओजस्वी गीतों को गाया जाता है, जो पांडवों के वीर कृत्यों का वर्णन करते हैं । आल्हा, जो हिन्दी के वीरगीतों में सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है, शताब्दियों से उत्तरापथ की जनता का प्राण रहा है। जनता का मनोरंजन ऐसे ही गीतों से होता है । सुख के अवसर पर वह उन्हें गाकर आनन्द मनाती है और दुःख के अवसर पर भी वह उनको अपना आलम्बन समझती है ।

वीरगीत साहित्य में सबसे प्राचीन वस्तु हैं । सब प्रकार के काव्यों से पूर्व वीरगीतों की रचना होने लगी थी । जिन जातियों का कुछ भी साहित्य नहीं है, उनके बीच भी सुन्दर वीरगीतों का प्रचार मिलता है । प्रागैतिहासिक काल से ही—जब से मनुष्य ने कहना-सुनना सीखा, और वह समाज में रहने लगा—वीरगीत मनुष्य की सबसे प्रिय वस्तु रहे हैं । ताड़पत्र-भोजपत्र पर लिपि-बद्ध न होने पर भी वे मनुष्य की जिह्वा पर सुरक्षित रहे, और अपनी नगण्य संपत्ति के साथ, मनुष्य इस अमूल्य संपत्ति को भी, अपने वंशजों को समर्पित करता रहा । सभ्य और शिक्षित जातियों के बीच इन्हीं वीरगीतों से विकसित होकर अनेक प्रकार के काव्यों की उत्पत्ति हुई है । कुछ विद्वानों का कथन है कि 'कुछ मुख्य और विशेष आकर्षणवाले वीरगीतों का ही परिष्कृत और सुसंपादित संस्करण पुराण - काव्यों के रूप में पाया जाता है' । इस कथन में बहुत कुछ सत्य है । अर्द्धसभ्य समाज में वीर-पूजा का भाव कल्पना को सदा प्रभावित करता रहा है । वीरपूजा के अन्तर्गत अपने मृत वीर-पूर्वजों की पूजा का भाव भी सम्मिलित है और अब तक हिन्दुओं में श्राद्ध के रूप में चला आता है । मनुष्य अपने को अपने वीर पूर्वजों के जीवन के साथ सम्बद्धित समझता है और उनके जीवन के साथ आश्चर्यजनक बातों का संयोग होना अपने लिए गौरव की वस्तु मानता है । इस प्रकार कालान्तर में पूर्वजों की कथाएँ आश्चर्य-जनक घटनाओं से इतनी लिपट जाती हैं कि फिर उनका ऐतिहासिक स्वरूप नहीं रहता और उन्हें पौराणिक रूप मिल जाता है, जिसमें मनुष्यत्व के साथ देवत्व का मिश्रण रहता है ।

कुछ विद्वानों की सम्मति में वर्तमान वीरगीत प्राचीन वीर-गाथाओं के अंश हैं । उनका तात्पर्य है कि जो वीरगीत इस समय उपलब्ध होते हैं, उनकी उत्पत्ति प्राचीन वीरगाथाओं से हुई है । वीरगाथाएँ तो इस समय नष्ट हो चुकी हैं, किन्तु उनके कुछ अंश अब तक इन गीतों के रूप में चले आ रहे हैं । इस कथन का आधार वह साम्य है, जो वीरगीतों और वीरगाथाओं की रचना-प्रणाली और वर्णन-शैली में पाया जाता है । संभव है, कोई वीरगीत किसी प्राचीन वीरगाथा का अंश हो; पर यह भी हो सकता है कि ऐसे वीर-गीतों की रचना प्राचीन वीर-गाथाओं का आदर्श सम्मुख रखकर हुई हो । बहुत-से वीरगीत वीर-गाथाओं से अधिक प्राचीन भी मिलते हैं, किन्तु उनमें भी वे विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो अन्य वीरगीतों और वीर-गाथाओं में मिलती हैं । संभव है, उनमें से कुछ की रचना वीरगाथा रचने के विचार से की गई हो, किन्तु किसी कारणवश उन्हें वीरगाथा का रूप न दिया जा सका हो और वे अपने पूर्वरूप में ही रह गये हों । किन्तु यह भी कहा जा सकता है कि वीरगीत और वीर-गाथाएँ एक ही वर्ग की कविताएँ हैं; उनके विषय और उद्देश्य में कोई विरोध नहीं है । अस्तु, उनमें साम्य पाया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं । वीरगीतों और वीरगाथाओं में पाई जानेवाली

समानता का दूसरा कारण अनुकरण या परंपरा-निर्वाह भी हो सकता है। कुछ कवि ऐसे भी हुए हैं, जिन्होंने वीरगाथाओं के साथ वीरगीतों की भी रचना की है। उनकी रचनाओं में साम्य आना स्वाभाविक ही था।

वीरगाथाओं और वीरगीतों में प्रधान अन्तर यह है कि वीरगाथाएँ नायक के सारे जीवन-वृत्त का क्रमबद्ध वर्णन करती हैं, किन्तु वीरगीत नायक के जीवन की किसी घटना-विशेष का ही वर्णन करके मौन हो जाते हैं। पर एक घटनामात्र का वर्णन करने पर भी वीरगीत स्वयं पूर्ण होते हैं, और किसी अन्य काव्य के अंग-से नहीं लगते। इसके विपरीत वीरगाथा एक प्रबन्ध-काव्य होती है। उसके प्रत्येक अंश पूर्वापर प्रसंग के लिए एक दूसरे से सम्बद्ध रहते हैं। उन्हें अलग करने पर वे कटे हुए अंग की तरह लगते हैं। 'आल्हाखंड' में खंड शब्द का आरोप होने के कारण कुछ लोग उसे भ्रान्ति-वश 'पृथ्वीराज-रासो' का खंड मानते हैं। पर इस भ्रान्ति का निवारण दोनों काव्यों के आन्तरिक घटना-विरोध से तो होता ही है, साथ ही यह देखने से भी हो जाता है कि 'आल्हा' के गीत स्वतः पूर्ण हैं, उनमें अन्योन्याश्रितता का भाव नहीं पाया जाता। 'आल्हा' ५२ युद्ध-विषयक वीरगीतों का संग्रह है। उन गीतों को एक दूसरे से जोड़नेवाली यदि कोई बात है तो यही कि उन सबके मुख्य नायक आल्हा-ऊदल हैं। इस दृष्टि से आल्हा को 'खण्डकाव्य' भी नहीं माना जा सकता; क्योंकि खंडकाव्य भी प्रबन्ध-काव्य है और उसमें भी नायक के चरित्र का क्रमबद्ध वर्णन होता है। यदि 'आल्हाखंड' में आये हुए 'खंड' शब्द के कारण ही उसे 'खंडकाव्य' मान लिया जाय, तब तो उसे किसी काव्य का खंड मानने का स्थान ही न रहेगा; क्योंकि 'खंड-काव्य' स्वतः पूर्ण होता है, किसी 'महाकाव्य' का खंड नहीं होता। तथ्य तो यह है कि यह अमर काव्य महाकवि जगनिक की कृति है और उसका 'पृथ्वीराज-रासो' से कोई सम्बन्ध नहीं है।

वीरगीतों के विषय में सबसे आश्चर्यजनक यह है कि यद्यपि वे प्रत्येक देश और प्रत्येक के बीच बहुत अधिक संख्या में प्रचलित हैं पर उनमें से दो-चार के भी रचयिता ज्ञात नहीं होता। वीरगीत जनता को इतने होते हैं कि वह उन्हें अपना ही धन समझ और उनके रचयिता का नाम जानने की भी इच्छा नहीं करती। सच पूछो तो वीरगीत की सच्ची सफलता इसी बात में है। जितना ही अधिक उसके गीत का प्रचार जनता जितना ही अधिक उसके गीत में होकर उसे अपनी सम्पत्ति समझेगी, और नाम और महत्त्व की चिन्ता न करेगी, अधिक वीरगीतकार कृतकृत्यता और प्राप्त करता जायगा। लोक-साहित्यकार चुनी हुई विद्वन्मंडली में ख्याति प्राप्त लालसा से काव्यरचना नहीं करता। उसे कहलाये जाने का लोभ नहीं होता, तो सबसे महान् कवि होता है। वह अमरता चाहता, पर सबसे अधिक अमर होता है। किसी से अपना नाम कहने नहीं जाता, अपने चित्र नहीं निकलवाता, पर सारी उससे परिचित होती है, सबके हृदयों पर छवि अंकित रहती है। लोक-साहित्यकार दृष्टि जन-साधारण पर होती है, उसी के का वह ध्यान रखता है। वह जन-साधारण गीत जन-साधारण के लिए गाता है। की आत्मा उसके गीत में बोलती है। स्मारक होती है, उसी के अस्तित्व पर अस्तित्व समझता है। गीत के प्रतिनि नाम की उसे चिन्ता नहीं होती।

पर यदि हम वीरगीतकारों का नाम नहीं जानते तो इसका यह अर्थ नहीं हो उनका कोई रचयिता ही नहीं था और उत्पत्ति ऐसे ही हो गई है। कुछ विद्वान्



विद्वानों की देखादेखी वीरगीतों की उत्पत्ति किसी कवि-विशेष से न मानकर सारी जाति से मानते हैं। उनका कथन है कि 'वीरगीत किसी एक कवि की रचना नहीं है; सारी जाति ने उन्हें सम्मिलित प्रयत्न से जन्म दिया है। किसी त्योहार या खेती पक जाने के अवसर पर प्राचीन काल के मनुष्य मिल-जुलकर नाचा-गाया करते थे। उसी अवसर पर सबके सम्मिलित प्रयत्न से इन वीरगीतों की रचना हुई है।' इस भ्रान्ति का कारण यह है कि अँगरेज़ी में वीरगीत के अर्थ में प्रयुक्त होनेवाला Ballad शब्द मूल में नृत्य से सम्बन्धित है। किन्तु जिन्हें भाषा-शास्त्र का थोड़ा-सा भी ज्ञान है, वे जानते हैं कि इस प्रकार जो अनेकों शब्द 'साहचर्य' से बनते हैं, उनके अर्थ में कुछ न कुछ विशिष्टता होती है। Ballad शब्द का सम्बन्ध नृत्य से है; क्योंकि पहले इन वीरगीतों को गाते समय नृत्य भी किया जाता था। पर इसका यह अर्थ नहीं कि इन गीतों की उत्पत्ति भी नृत्य से हुई है। नृत्य करते समय सबके सम्मिलित प्रयत्न से कुछ टेकों आदि की उत्पत्ति भले ही मान ली जाय, किन्तु यह कभी नहीं माना जा सकता कि इस प्रकार कोई ऐसी लम्बी कहानी भी कही जा सकती है, जैसी इन वीरगीतों में धारावाही और क्रमबद्ध रूप से पाई जाती है।

दूसरी बात यह है कि सभी वीरगीत पद्य-बद्ध हुआ करते हैं। नृत्य करते समय सबके सम्मिलित प्रयत्न से पद्यबद्ध गीतों की रचना कहाँ तक संभव मानी जा सकती है। यदि सबके सम्मिलित प्रयत्न से एक-दो सीधे-सादे पद्यों की रचना हो भी जाय तो उनमें वह पूर्वापर-प्रसंग का निर्वाह, अन्योन्याश्रित भाव और पूर्णता न आ सकेगी, जो वीरगीतों के पद्यों में पाई जाती है। इसके अतिरिक्त वीरगीतों में कहीं-कहीं जो सौन्दर्य दिखाई देता है, जो सहज प्रसाद पाया जाता है, और वीर-गाथाओं के छन्दों और शैली के साथ जो साम्य दिखाई देता है, वह सम्मिलित प्रयत्न से कभी साध्य नहीं हो सकता।

वीरगीतों में रचयिता-सूचक "मैं" शब्द का प्रयोग कहीं नहीं पाया जाता; इसी बात को लेकर कुछ लोग कहते हैं कि 'जिस काव्य की रचना किसी कवि-विशेष के द्वारा होती है, उसमें गीति-काव्य के समान, स्थान-स्थान पर उत्तमपुरुष एकवचनसूचक "मैं" शब्द का प्रयोग होता है; और इन वीरगीतों में सर्वत्र "मैं" शब्द के अभाव का कारण यह है कि इन गीतों की उत्पत्ति नाचती-गाती हुई किसी मंडली के सम्मिलित प्रयत्न से हुई है और इस कारण इनमें उस मंडली के किसी व्यक्ति-विशेष के द्योतक उत्तमपुरुष एकवचन "मैं" का प्रयोग नहीं हो सका है। किन्तु इस कथन में भी कोई तथ्य नहीं है। वीरगीतों में कोई कहानी धारावाही रूप से कही जाती है, उसमें कवि शुद्ध वर्णनात्मक शैली का आश्रय लेता है। वह निरपेक्ष दृष्टि से, अन्य पुरुष की भाँति, नायक के कृत्य को देखता है और अपने गीत में अपने व्यक्तित्व को प्रकट नहीं होने देता। इस प्रकार की सैकड़ों कविताएँ मिलती हैं, जिनके रचयिताओं का नाम हम जानते हैं; किन्तु जिनमें कवि ने शुद्ध वर्णनात्मक शैली का निरपेक्ष दृष्टि से प्रयोग किया है और कहीं अपना व्यक्तित्व प्रकट नहीं होने दिया।

प्रत्येक समाज में प्रत्येक समय कुछ किम्वदन्तियाँ प्रचलित रहती हैं, जिनसे जनता अपना मनोरंजन किया करती है। संयोग से जब किसी कवि की दृष्टि उनकी ओर जाती है तो वह उनका परिष्कार करता है, और साथ ही उन्हें पद्यबद्ध रूप दे देता है। पद्यबद्ध हो जाने पर उनका सौन्दर्य और आयु दोनों बढ़ जाते हैं, साथ ही उनके क्षेत्र में विस्तृतता आ जाती है। गद्य कहानी कहने-सुनने के लिए कम से कम दो व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। एक अकेला मनुष्य अपने-आप गद्य कहानी कह-सुन नहीं सकता, पर पद्यबद्ध कहानी के लिए यह प्रतिबन्ध नहीं; उसका आनन्द मनुष्य अपने

साथियों के साथ भी उठा सकता है, और अकेला भी। अकेले मनुष्य के लिए गीत की उपादेयता और भी बढ़ जाती है, गीत याद रहने पर उसे साथियों की अनुपस्थिति नहीं खटकती। लोग हल चलाते, गायें चराते अथवा मार्ग चलते समय आनन्द में गीत गाया करते हैं। जिन्हें कोई गीत भी नहीं आता, वे भी कुछ न कुछ गुनगुनाया करते हैं।

वीरगीत, जैसा कि इनके नाम से प्रकट है, गाने की वस्तु हैं। किन्तु इन्हें उन गीतों से भिन्न समझना चाहिए, जिनकी रचना राग-रागिनियों के अनुसार की जाती है, और जिनमें संगीत की मधुर धारा बहती है। ऐसे गीत सितार आदि यन्त्रों के साथ मधुर लय से गाने के लिए रचे जाते हैं। इनका उद्देश्य आमोद-प्रमोद और कभी-कभी विलासिता बढ़ाना होता है। इनमें कोमल-कान्त पदावली का विचार रक्खा जाता है, और मधुर-मधुर शब्दों को चुन-चुनकर रक्खा जाता है। वीरगीत वीररस की वस्तु होते हैं। उनका उद्देश्य उत्साह का भाव जागरित करना होता है। उनका सौन्दर्य तो तभी प्रकट हो सकता है, जब उन्हें उस चलती चाल से गाया जाय, जिस चाल से "अल्हैत" गाया करते हैं। वीरगीतों की रचना ही इस विचार से होती है। उनमें कवि को मधुर शब्दों को चुन-चुनकर रखने का न तो अवकाश रहता है और न आवश्यकता। कवि तो वीर के किसी वीर कृत्य पर मुग्ध होता है, आनन्द की भावना से उसका हृदय उमड़ आता है, और उसी को वह गीत के रूप में प्रकट करता है। प्रायः सभी वीरगीत कुछ ऐसे छन्दों में होते हैं। जिनके मौखिक आदान-प्रदान में सरलता होती है, और जो अपने विषय के अनुकूल होते हैं, अधिकांश वीरगीतों में चार पंक्तियोंवाले छन्दों का प्रयोग पाया जाता है। वीरगीतों के उपयुक्त जितना आल्हा छन्द सिद्ध हुआ है, उतना और कोई नहीं। उत्साह, क्रोध और भय आदि का भाव चलती चाल से जितनी सुन्दर रीति से इस छन्द में व्यक्त हो सकता है, उतना कवित्त, छप्पय में भी नहीं। 'आल्हाकाव्य' के इतने प्रिय होने का एक कारण यह भी है कि विषय के अनुकूल छन्द का चयन हुआ है, विषय और छन्द दोनों के संयोग से सुगन्ध आ गई है।

वीरगीत की रचना सीधी-सादी होती है। उसमें वर्णनात्मक शैली का शुद्ध रूप पाया जाता है, जिसमें किसी प्रकार का फेर नहीं होता। एक से अधिक घटना का वर्णन नहीं होता। कथावस्तु को घटना की ओर ले जाने में जिनका विशेष हाथ नहीं होता, उनके सांगोपांग वर्णन में समय व्यर्थ नष्ट नहीं किया जाता। कवि का लक्ष्य कोई सिद्धान्त निरूपित करना नहीं है, उसका लक्ष्य अपनी कहानी कहना होता है। आरंभ करते समय किसी प्रकार की भूमिका बाँधकर वह सीधे अपने वर्ण्य विषय पर आता है। 'आल्हा' में प्रत्येक युद्ध के आरंभ में भूमिका बाँधी गई है, राम, कृष्ण, हनुमान की स्तुति और कलकत्ते की काली, मइहर की शारदा, विन्ध्याचल की विन्ध्यवासिनी और देवी आदि का जो सुमिरन किया गया है, अवश्य अर्वाचीन है। उसमें नाना प्रकार से को सज्जित करने का प्रयत्न देखा जाता है, की लड़ी बाँधी गई है।

"मैया-भैया और बपैया,
सब दिसि देखा खूब निहार।
विना चरैया गैयावाला,
दैया कौन होय रखवार॥
पड़ी है नैया भवसागर में,
कोउ न मिलै खेवैया हाल।
मैया जसुमति केर कन्हैया,
भैया साँच कहैं सुरपाल॥
पार लगैया मोरि नैया के,
गैयापाल कृष्ण महराज।

और खेवैया ना नैया का,
जाकी शरण लेयँ हम आज ॥"

इस 'सुमिरन' की भाषा को देखकर स्पष्ट ही तो है कि यह ख़ाली बैठे रहने का काम है। वीर-गीतों की रचना ऐसी नहीं होती। उनमें सोच-सोचकर शब्द रखने और सौन्दर्य लाने का प्रयत्न नहीं होता। कवि की दृष्टि आनेवाले युद्ध या घटना पर होती है। वह यमक, अनुप्रास जैसे कठिन प्रयत्न से आनेवाले अलंकारों की खोज में नहीं रहता। तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी कविता अलंकारों से सर्वथा रहित होती है। अलंकार वर्णन करने की शैलियाँ हैं। जिस विषय पर कवि का हृदय रमेगा, उसमें भाव-प्रेरित वक्रता के कारण वाणी जिस सौन्दर्यपूर्ण मार्ग को ग्रहण करके प्रकट होगी, उसमें अलंकारों का पाया जाना साधारण-सी बात है। किन्तु उस स्थल पर भी अर्थालंकार ही मिलेंगे; क्योंकि वे बिना किसी प्रयत्न के किसी भी भावपूर्ण सुन्दर उक्ति में आ सकते हैं, कवि उनको ढूँढकर लाने में प्रयत्नशील न दिखाई देगा। जैसे—

"बड़ी लड़ाई भै कनउज माँ
कोउ रजपूत न रोकै पाँय।
भये सनाका कायर मन माँ
सूरन रहा मोद अति छाय ॥
रकत की नदियाँ तहँ बहि निकरीं,
जूझे बड़े बड़े सरदार।
हाथी गिरगे आस पास माँ,
सोहैं मानों नदी कगार ॥
छूरी मछुरी सम सोहत भइँ,
ढालैं कछुवा सम उतरायँ।
भुजा और जाँघैं रनसूरन की,
गोहैं सरिस बही तहाँ जायँ ॥
बहै सिवारा जस नदिया माँ,
तैसे तहाँ बार उतरायँ।
बहैं लहासैं जो सूरन की,
तिनमाँ बहै गिद्ध खग जायँ ॥

यहाँ कवि रण-स्थल में प्रवाहित रक्तधारा का वर्णन कर रहा है। इस रोमांचकारी दृश्य पर उसका हृदय पूर्ण रूप से रमा हुआ है, कवि यहाँ किसी शब्दालंकार के लाने के प्रयत्न में नहीं दिखाई देता। और, यद्यपि वह रक्त-सरिता का वर्णन 'सांगरूपक' का आश्रय लेकर कर रहा है तो भी प्रस्तुत के साथ अप्रस्तुत का योग किसी प्रकार नहीं खटकता, वस्तुतः उससे भाव और भी तीव्र होता है; क्योंकि रक्त की धारा को देखकर स्वयं ही सरिता की धारा का चित्र सम्मुख आता है। इसी से ऐसा वर्णन कविपरंपरा में इतना प्रसिद्ध हो गया है। यह चित्रकूट को धनुष और काशी को कामधेनु सिद्ध करने की सनक नहीं है।

वीरगीतों में कहीं-कहीं मनुष्येतर प्रकृति के क्षेत्र से अप्रस्तुत चित्रों को लाकर प्रस्तुत के सम्मुख रखकर प्रभाव का उत्कर्ष किया जाता है। ऐसे स्थल मनुष्य के आदिम जीवन का स्मरण कराते हैं, जब उसने प्रकृति की गोद में खेलकर इन दृश्यों को देखा था।

"जैसे डोंगिया माँ चढ़िकै नर,
खेलैं नदी नेवारा जायँ।
तैसे लहासैं रनसूरन की,
तिन्ह पर काग चील्ह उतरायँ ॥

* * *

जैसे भेड़िन भेड़हा पैठै,
जैसे सिंह बिडारै गाय।
तैसे मारै औ ललकारै,
यह रनबाघु बनाफर राय ॥"

प्रकृति से चुनकर कितने अच्छे उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। प्रत्येक उदाहरण को पढ़ते ही नेत्रों के सम्मुख एक चित्र-सा खिंच आता है। लम्बा-चौड़ा वर्णन करने पर भी जो बिंब ग्रहण नहीं हो सकता था, वह एक ही वाक्यखंड "जैसे भेड़िन भेड़हा पैठै" अथवा "जैसे सिंह बिडारै गाय" से कितनी

अच्छी तरह प्राप्त हो जाता है। साथ ही 'रनबाघु' कितना सुन्दर और सार्थक विशेषण है। श्लेष, यमक आदि झूठे अलंकारों से रहित ऐसे ही सुन्दर वर्णन भावुक हृदय को स्पर्श करते हैं। ऐसे ही सार्थक और सशक्त अप्रस्तुत चित्र यूनानी महाकवि होमर की रचना में यत्र-यत्र पाये जाते हैं, जो उन्हीं के नाम पर "होमर की उपमा" (Homeric Similar) के नाम से प्रसिद्ध हैं।

एक चित्र और लीजिए। कवि संध्याकाल का वर्णन करता है। किन्तु इस समय भी उसकी आँखों के सम्मुख युद्ध का चित्र घूम रहा है।

"खेत छूटिगा दिननायक सों
झंडा गड़ा निशा को आय ॥"

वीरगीतों में सर्वत्र इसी शैली का प्रयोग दिखाई देता है। विस्तृत वर्णन करने की अपेक्षा एक-दो साधारण-सी बातों से कुशलतापूर्वक बिंब-ग्रहण कराते हुए वे अग्रसर होते हैं।

वीरगीतों में कई स्थानों पर वीर-गाथाओं के समान ही ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग मिलता है, जो कभी-कभी इतनी अधिक मात्रा में होता है कि पढ़ते-पढ़ते मन ऊब जाता है। किन्तु जहाँ अनुपात का ध्यान (Sense of proportion) रक्खा जाता है, वहाँ अच्छा मनोरंजन होता है। जैसे—

'धम्-धम्-धम्-धम् बजै नगारा,
'मारा-मारा' परै सुनाय ॥"

वीरगीतों के विषय में इस बात का निर्णय करना कठिन है कि कितना अंश प्राचीन रूप में उपस्थित है और कितना नवीन है। पुस्तक के पृष्ठों की अपेक्षा जनसाधारण की जिह्वा पर नाचते रहने के कारण उनमें परिवर्तन होता रहा। यही कारण है कि उनमें प्राचीन और नवीन भावों, शैलियों और शब्दों का प्रयोग साथ-साथ मिलता है। उदाहरण के लिए 'आल्हा' जिस रूप में वर्तमान समय में मिलता है, उसकी भाषा इतनी अर्वाचीन है कि उसे प्राचीन कवि जगनिक-कृत मानने में संकोच होता है, पर ढूँढ़ने पर 'आल्हा' के अन्दर स्थान-स्थान पर बुन्देलखंडी के प्राचीन प्रयोग मिल जाते हैं, जो अवश्य जगनिक द्वारा प्रयुक्त हुए होंगे। जैसे 'सब' के अर्थ में 'सकिल' 'अकेले' के लिए 'इकले' आदि। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं कई पंक्तियों का पूर्वार्द्ध प्राचीन है और उत्तरार्द्ध अर्वाचीन।

यद्यपि लिपिबद्ध करते समय नवीन संपादकों ने वीरगीतों को परिष्कृत करने का प्रयत्न किया है, पर उनमें कई स्थानों पर ऐसे प्रयोग मिल जाते हैं, जो प्राचीन अशिक्षित गवैये या 'अल्हैत' के सतर्क न रहने के कारण घुस गये हैं। उदाहरण के लिए आल्हा में "त्यहि समया, तेहि अवसर मा" ऐसे वाक्यखंड एक साथ मिलते हैं। इन दोनों का एक ही अर्थ है, अस्तु एक ही का प्रयोग होना चाहिए। इसी प्रकार कितने ही वाक्यों की कई समय पुनरावृत्ति की गई है। आल्हा में—

"को गति बरनै त्यहि समया कै,
हमरे बूत कही ना जाय।"

और—

"मूड़न केरे मुड़चौरा भे,
औ रुंडन के लगे पहार ॥"

आदि पंक्तियों की अनेक बार पुनरावृत्ति की जाती है। इसी प्रकार युद्ध के वर्णन भी सभी लगभग एक ही प्रकार के हैं, उनमें एक दूसरे से कोई विशेषता नहीं दिखाई देती।

कहीं-कहीं हाथी-घोड़े और अस्त्र आदि के विभिन्न नामों को गिनाने की प्राचीन कवियों की भद्दी पद्धति भी दिखलाई देती है।

पर इन सब त्रुटियों के रहते हुए भी वीरगीतों के महत्त्व को स्वीकार किये बिना नहीं रहा जाता। उनकी महत्ता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि वे सबसे अधिक जनसंख्या का सबसे अधिक समय तक सबसे अधिक मनोरंजन करते हैं। इस ...

से रामचरित-मानस के पीछे हिन्दी-साहित्य में 'आल्हा' का ही स्थान आता है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, वीरगीतों में एक से अधिक घटना का वर्णन नहीं होता। अस्तु, वे आकार में छोटे होते हैं और उन्हें घंटे-आध घंटे में पढ़ा जा सकता है। आल्हा को एक वीर-गीत न मानकर ५२ वीरगीतों का संग्रह मानना चाहिए, और उनका जो वर्तमान बृहदाकार है, उसमें बहुत कुछ प्रक्षिप्त अंश छिपे हैं।

वीरगीतों का विषय किसी वीर के कृत्यों का वर्णन करना होता है। अधिकांश वीरगीतों का सम्बन्ध युद्ध और मल्लयुद्धों से होता है। वीरगाथा-काव्यों के समान वीरगीतों में भी वीरता के साथ ही प्रेम का सम्बन्ध भी लगा रहता है। किसी नायिका के प्रेम में पड़कर वीर उसे प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के वीर-कृत्य करता है, संकटों और विषम परिस्थितियों का सामना करता है, अपने प्रतिद्वन्द्वी नायक को हराकर अथवा अन्य किसी युक्ति से नायिका को प्राप्त करता हुआ दिखाया जाता है। 'आल्हाखंड' के युद्धों का कारण प्रेम ही था। अनेकों राजकन्याओं को प्राप्त करने के लिए आल्हा-ऊदल ने ये महान् युद्ध किये थे और कन्या-पक्षवालों को पराजित करके कन्याओं को प्राप्त किया था।

पर वीरगीतों के लिए यह आवश्यक नहीं कि उनके विषय युद्ध और प्रेम ही हों। वीरता अनेक रूपों में दिखाई देती है। विषम परिस्थितियों में भी हरिश्चन्द्र की भाँति सत्य न त्यागकर अपने प्रण का पालन करना भी एक प्रकार की वीरता है। ऐसा वीर सत्य-वीर कहा जाता है। गोविन्द-सिंह के वीर बालकों के समान हँसते-हँसते प्राणों का विसर्जन करनेवाला धर्मवीर कहा जायगा। दधीचि के समान दूसरों के लिए बड़ी प्रसन्नता से अपनी अस्थियाँ तक दे देना दान-वीरता है। पद्मावती के समान अग्नि में कूदकर प्राण दे देना पर अपने सतीत्व को न देना वह अमर वीरता है, जिसे पतिव्रत कहा जाता है। लैलामजनूँ या शीरींफ़रहाद के प्रेम के कारण प्राण त्यागने और पतिव्रत के लिए पद्मिनी के प्राण त्यागने में बहुत अन्तर है। पहला विरहव्यथा को न सह सकना है, दूसरा अपने महत्कर्म का पालन। पहले का व्यक्तिगत साधना से सम्बन्ध है, दूसरे का लोकरक्षक कर्म से। जिस किसी कार्य में उदात्त वृत्तियों का अत्यधिक सीमा तक प्रयोग पाया जाय, वह वीरगीत का विषय हो सकता है।

भारतीय संस्कृति सदा उच्च वृत्तियों के आदर्श की स्थापना करती है। अस्तु, यहाँ रोमांचकारी किन्तु नीच वृत्तियों का आश्रय लेकर कभी वीर-गीतों की रचना नहीं हुई। पर अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों के वीरगीतों के विषयों में किसी डाकू की वीरता और साहसपूर्ण कुकृत्य, किसी ठग का पथिकों का गला घोटना, किसी जासूसी नर-राक्षस की गुप्त हत्याएँ, हत्यारों और अभियुक्तों के विलाप, किसी निष्ठुर और विश्वास-घाती प्रेमी के लिए रोना, मृत्युशय्या पर गुप्त प्रेम प्रकट करना आदि वे सभी प्रकार के विषय आ सकते हैं, जिनसे रोंगटे खड़े हो जायँ और श्रोता भावावेश में आ जाय।

अब सभी देशों में वीरगीतों का प्रचार दिन पर दिन घट रहा है। जनता के मनोरंजन के लिए ग्रामोफ़ोन, रेडियो जैसे नवीन साधन निकल गये हैं, जिन्हें सुननेवाले "अल्हैत" के वीरगीत से प्रेम करना अन्धविश्वास, मूर्खता और गँवारपन समझते हैं। तो भी काठ के डिब्बे के भीतर बन्द, सुई चुभने से चिल्लानेवाला वाग्वीर सच्ची वीरता पर मुग्ध होनेवाले वीर कवि के वीरगीतों के महत्त्व को कहाँ पा सकता है।



चट्टानों और पर्वतों की आयु

श्रीबुद्धिसागर वर्मा विशारद बी० ए०, एल्० टी०

वैसे तो स० १९३३ ई० में श्रीमद्दयानन्द निर्वाण शताब्दी के अवसर पर अजमेर और पुष्कर में अरावली पर्वत के दर्शन किये थे, किन्तु गत मई मास में भूस्वर्ग काश्मीर जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। हिममय हिमालय के दर्शन कर हृदय मोहित हो गया। पीरपंचाल की चोटी, पहलगाम की उपत्यकाएँ, मटन की पहाड़ियाँ, हरिपर्वत का गढ़ और शंकराचार्य-शिखर का उन्नत मस्तक, जंगलों और झरनों के दृश्य देखकर कौन ऐसा प्रकृतिप्रिय व्यक्ति होगा, जिसे उल्लास न हो। किसी भी दर्शक के हृदय में अनायास यह प्रश्न उठ सकता है कि ये पर्वत कब और किस प्रकार बने होंगे? वैज्ञानिकों और भूतत्त्ववेत्ताओं ने इन विषयों पर काफ़ी प्रकाश डाला है। इस छोटे-से लेख में इसी विषय को लेकर कुछ मोटी-मोटी बातें पाठकों की ज्ञानवृद्धि और मनोरंजन के लिए लिखना अनुचित न होगा।

भूतत्त्व-विशारदों (Geologists) का कहना है कि पर्वतों और चट्टानों की आयु उनके मस्तक पर अंकित रहती है। प्रकृति उनकी वृद्धि के साथ-साथ उनकी आयु का रिकार्ड भी रखती जाती है। जिस प्रकार प्राचीन भवनों की निर्माण-कला को देखकर हम यह निश्चय कर लेते हैं कि इनका निर्माण अमुक जाति द्वारा अमुक समय में हुआ होगा; यथा बौद्ध-मन्दिरों की निर्माणशैली आर्यमंदिरों से भिन्न है, मुस्लिम राजाओं द्वारा निर्मित भवन हिन्दू-कालीन भवनों [से] भिन्न हैं, रोमन गृहों को अन्य गृहों की [अपेक्षा] सहज में पहचाना जा सकता है, इसी प्र[कार] चट्टानों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने से उन[की] आयु सहज ही में निर्धारित की जा सकती है।

इसे जानने के दो मुख्य तरीक़े हैं। (१) [किसी] पर्वत की स्थिति का दूसरे पर्वतों की स्थिति [से] मुक़ाबला करके। (२) पर्वतों को खो[दकर] उनके नीचे दबे हुए अस्थिपंजर और वृक्ष-व[न]स्पतियों के भागों को (जिन्हें अँगरेज़ी में Fo[ssils] कहते हैं) निकालकर और उनका निरीक्षण कर[के]। इन्हीं दो ढङ्गों के आधार पर विद्वानों ने [ऐति]हासिक विषयों का निर्णय किया है और इन[के] द्वारा हमारे ज्ञान की बहुत कुछ वृद्धि हुई है। [एक] उदाहरण द्वारा इसे भली भाँति समझा जा स[कता] है। कल्पना कीजिए, आप एक मकान बनवाने [के] लिए नींव खुदा रहे हैं। बहुधा आप देखेंगे [कि] भूमि भिन्न-भिन्न तहों में बनी हुई है। [इससे] प्रकट होता है कि उक्त भूमि पहले कभी [और] थी। यदि आपको उन तहों में भिन्न-भिन्न [वस्तुएँ] भी प्राप्त हों—यथा एक तह में पत्थर के [युग के] औज़ार मिलें और उससे नीचे की तह में [गुप्त या] अशोक-काल की ईंटें निकलें, तो आप [इति]हास से परिचित न होते हुए भी कह सकेंगे [कि] अशोक की ईंटें प्राचीन हैं; क्योंकि ये नि[चली] तह में विद्यमान थीं। निस्सन्देह निचली



पहले बनी होंगी और ऊपर की तहें क्रमशः उन्हीं पर बनती गई होंगी।

योरुशलम की खुदाई करते समय विद्वानों ने इसी प्रकार पता लगाया था कि वर्तमान नगर के पूर्व उसी स्थान पर १३ बार शहर आबाद हो चुका है। सबसे प्रथम जो शहर बसा होगा, उसकी वस्तुएँ और ईंटें सबसे निचली तह में मिली होंगी, और शेष तहें क्रमशः एक दूसरे पर स्थित होंगी। इसी प्रकार चट्टानों की तहों के विषय में भी सिद्धान्त स्थिर किये गये हैं, अर्थात् सबसे निचली तह सबसे प्राचीन होनी चाहिए। संभव है, किन्हीं विशेष कारणों द्वारा इनके क्रम में कहीं भिन्नता आ गई हो। कई पर्वतों में इस प्रकार की गड़बड़ी भी देखी गई है, किन्तु ऐसा प्रायः बहुत कम होता है।

बहुधा यह भी देखा गया है कि यह तहें स्पष्ट रूप से पृथक्-पृथक् नहीं देख पड़तीं। उस दशा में उपर्युक्त दूसरे तरीक़े का प्रयोग किया जाता है अर्थात् चट्टानों से प्राप्त किये हुए पदार्थों से उनकी आयु का पता लगाया जाता है।

कहा जाता है कि ज्यों-ज्यों समय-विशेष के फ़ैशन, रहन-सहन और कलाओं में परिवर्तन होते गये और संसार से उनका अस्तित्व मिटता गया, त्यों-त्यों कुछ विशेष प्रकार की मछलियों, पशुओं और वनस्पतियों का अस्तित्व भी नष्ट होता गया। किसी समय में एक विचित्र प्रकार की मछलियाँ पाई जाती थीं, किन्तु अब वे नहीं मिलतीं। किसी समय में एक विशेष प्रकार के रेंगनेवाले जन्तु अधिकता से पाये जाते थे, जिन्हें अब कोई नहीं जानता। यह संसार एक नाट्यशाला है। समय-समय पर भिन्न-भिन्न अभिनेताओं ने इस रंगमंच पर पदार्पण किया और अपना-अपना जीवन-अभिनय समाप्त कर दूसरे पात्रों के लिए स्थान छोड़कर चलते बने। अस्तु।

सबसे प्राचीन और निचली चट्टानों में जीवन के कोई चिह्न नहीं मिलते। इससे बाद की तहों में निम्नश्रेणी के पशु और जीवन के चिह्न प्राप्त होते हैं, यथा—घोंघों के घर, मूँगे की जड़ें और क्रेब (Crab) श्रेणी के पशु, जिनमें रीढ़ की हड्डी नहीं होती। इससे उच्च श्रेणी की चट्टानों में मछलियाँ मिलने लगती हैं। इसके पश्चात् जल और थल पर रहनेवाले पशु अर्थात् Omphibious Creatures प्रकट होते हैं। फिर एक समय ऐसा आता है, जिसका कोई रिकार्ड नहीं मिलता। पश्चात् रेंगनेवाले पशु और साधारण श्रेणी के पक्षियों का समय आता है। इसके बाद बहुत दूर तक फिर कोई चिह्न नहीं मिलते। फिर एक ऐसी तह मिलती है, जहाँ से चतुष्पदों और दूध पिलानेवाले पशुओं के अस्थिपंजर निकलते हैं।

इस प्रकार विद्वानों ने तीन काल निर्धारित किये हैं—

१. मछलियों का काल

२. रेंगनेवाले पशुओं का काल (Reptiles)

३. दूध पिलानेवाले (Mammalia) पशुओं का काल

अस्तु, ज्यों-ज्यों पृथ्वी की आयु बढ़ती गई, त्यों-त्यों नवीन और उन्नतिशील पशु-समुदाय प्रकट होते गये। इसी आधार पर अनुसन्धान द्वारा विद्वानों ने भिन्न-भिन्न फ़ासिल्स (Fossils) के लिए भिन्न-भिन्न काल निश्चित किये हैं। खुदाई करने पर जिस प्रकार के फ़ासिल्स निकलते हैं, उसका समय और आयु निश्चित की जा सकती है। इसी आधार पर सन् १८१५ में सर्वप्रथम 'विलियम स्मिथ' ने इँगलैंड में चट्टानों का वर्गीकरण किया था।

इस वर्गीकरण से हमें एक बड़ा लाभ यह हुआ है कि जिन चट्टानों और पर्वतों को हम नियमविरुद्ध यत्र-तत्र स्थित समझते थे, वे हमें एक पुस्तक के सुसंग्रहीत अध्यायों की भाँति नियमित समाचार देनेवाले प्रतीत होने लगे हैं। वास्तव में जिस प्रकार हमारे पास इतिहास की पुस्तकें विद्यमान हैं, उसी भाँति प्रकृति ने अपने

इतिहास के भिन्न-भिन्न पृष्ठ चट्टानों पर लिख रक्खे हैं। इन्हें प्रत्येक व्यक्ति नहीं पढ़ सकता।

आधुनिक काल में प्रकृति की इस पुस्तक से बहुत लाभ उठाया गया है। Fossils की भाँति निरीक्षण करके विद्वानों ने चट्टानों का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया है।

काल	चट्टानें	पशु
१. प्रारम्भिक काल	(अ) लाल रेत और उसके द्वारा निर्मित पत्थर	(अ) बिना रीढ़ की हड्डीवाले पशु—केंब (C...) और घोंघे आदि।
	(ब) Carboniferous अर्थात् स्याही-मायल चट्टानें, जिनकी तहें प्राचीन लाल पत्थर और नवीन लाल पत्थर के मध्य में पाई जाती हैं।	(ब) मछलियां।
२. मध्यकाल	(अ) Jurassic चट्टानें अर्थात् जूरा (Jura) पर्वत से संबंध रखनेवाली चट्टानें। यह पर्वत फ्रांस और स्विट्ज़रलैंड के मध्य में स्थित बताया जाता है। (ब) Cretaceous चट्टानें अर्थात् खरिया मिट्टी (Chalk) से संबंध रखनेवाली चट्टानें।	रेंगनेवाले पशु अर्थात् रेप्टाइल्ज़ (Reptiles)
३. अन्तिम काल	(अ) Miocene चट्टानें, अर्थात् तृतीय श्रेणी की चट्टानें, जो चाकवाली चट्टानों के ऊपर रहती हैं। (ब) Recent अर्थात् वर्तमान-कालीन चट्टानें।	दूध पिलानेवाले अर्थात् Mammalia

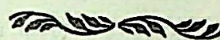
चट्टानों के नाम उनके रंग और मिट्टी आदि के दृष्टिकोण से रक्खे गये हैं। भूतत्ववेत्ता (Geologists) इन नामों को सुनकर ही चट्टानों के गुणों का ब्यौरा बतला सकते हैं। यदि किसी चट्टान को खोदते समय 'जुरासिक' प्रकार की चट्टानें निकलती हैं और उनके नीचे एक ऐसी चट्टान आ जाती है, जिसका हमें पता नहीं है, किन्तु फिर उसके नीचे 'मायोसीन' (Miocene) प्रकार की चट्टान आती है, तो उस अज्ञात चट्टान के विषय में यह कहा जा सकता है कि वह अवश्य 'क्रिटेशस' (Cretaceous) प्रकार की अथवा इसके इर्द-गिर्द के समय की रही होगी। इस प्रकार उस चट्टान-विशेष का समय सहज निर्धारित किया जा सकता है।

चट्टानों और पर्वतों के निरीक्षण द्वारा लगाया गया है कि किसी अज्ञात काल में किन्हीं अज्ञात कारणों द्वारा कुछ पर्वतों में बृहत् संचलन और गड़बड़ी उत्पन्न होकर कुछ स्पष्ट परिवर्तन हो गये हैं, किन्तु बहुत-सी चट्टानें और पर्वत ऐसे हैं, जो क्रमशः नियमित रूप में बने होंगे।

अनुसंधान से यह भी पता लगाया गया कि इटली के उत्तर में स्थित आल्प्स पर्वत, कास्पियन समुद्र और काला समुद्र का मध्य, कोह क़ाफ़; हिन्दूकुश पर्वत; पामीर पर्वत

पहाड़, हिमालय, चीन प्रदेश की पर्वतश्रेणियाँ, तथा बेहरिंग जल-डमरूमध्य तक फैले हुए पार्वतीय भाग एक ही प्रकार की चट्टानों से बने हैं।

भूगर्भ-विद्या-विशारदों के तत्त्वावधान में यत्र-तत्र जो खुदाई के काम हो रहे हैं, वे इसी ज्ञान के आधार पर ऐतिहासिक सिद्धान्तों के हल करने का प्रयत्न कर रहे हैं।



विनाश के पथ पर

श्रीश्यामनारायण कपूर बी० एस्-सी०

विश्वशान्ति की समस्या को हल करने का दावा रखनेवाले राष्ट्रसंघ का अस्तित्व हिल रहा है। लायड जार्ज के शब्दों में राष्ट्रसंघ बालू की भीत हो रहा है, जो ज़रा से स्पर्श से भहरा पड़े। राष्ट्रसंघ रद्दी के काग़ज़ के टुकड़ों में पड़ा है। यूरोप का बच्चा-बच्चा रणोन्मत्त हो रहा है। युद्ध के बादल मँडला रहे हैं। शान्ति स्थापित करने के प्रायः सभी प्रयत्न निष्फल हो चुके हैं। निःशस्त्रीकरण-परिषदों को करते हुए, संसार को यह दिखाने की कोशिश करके कि सैनिक शक्ति कम की जा रही है और सदा के लिए युद्ध का अन्त किया जा रहा है यूरोप के प्रत्येक देश ने अपनी सैनिक शक्ति को दुगुना और चौगुना बढ़ा लिया है। निःशस्त्रीकरण का ढोंग रचकर और शान्ति-स्थापन का ढकोसला दिखाकर आज विनाश का पथ प्रशस्त कर दिया गया है। आज एक बार फिर युद्ध का राक्षस यूरोप के ऊपर खड़ा होकर भीषण अट्टहास करता हुआ, चिनगारियाँ फेंकता हुआ दिखाई पड़ रहा है और एक साथ हमारे सभ्यता और हमारे मनुष्योचित गुणों को निगल जाने की धमकी दे रहा है।

आज संसार का कोई भी ऐसा देश नहीं है, जहाँ नवीनतम नरसंहारक और विध्वंसक यंत्रों के निर्माण एवं सुधार आदि के लिए एक स्वतंत्र रिसर्च-विभाग का प्रबन्ध न हो। इस कार्य के लिए विभिन्न राष्ट्रों में ज़बरदस्त होड़ लगी हुई है। प्रत्येक स्वतंत्र राष्ट्र के अनेकों सर्वश्रेष्ठ मस्तिष्क अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक घातक एवं वि[...] कारी उपायों का आविष्कार करने में [...] हैं। प्रत्येक देश में प्राण-हरण के अधिक से [...] व्यापक और प्रभावशाली उपाय खोजने [...] ज़बरदस्त प्रयत्न किये जा रहे हैं।

सर फ़िलिप गिब्स के शब्दों में—'आज [...] परिस्थितियों में बड़े दुरावेग से परिवर्तन [...] हैं। मानव-समाज नित्यप्रति नवीन, [...] घातक एवं भीषण अस्त्र-शस्त्रों तथा अन्य वि[...] सामग्रियों से सुसज्जित हो रहा है। वै[...] स्वयं आदिशक्ति के उद्गम की खोज में अ[...] से लगे हुए हैं। परन्तु मनुष्य, मनुष्य की मानव[...] कमज़ोरियाँ पूर्ववत् मौजूद हैं। विज्ञान के [...] स्वरूप उसे जो शक्ति प्राप्त हुई है, उसका सदु[...] करने के लिए, परिस्थितियों के अनुकूल [...] बुद्धि विकसित नहीं हो रही है। न उसकी [...] भावनाओं ही का विकास हो रहा है, जिस[...] इन शक्तियों के दुरुपयोग से पतित होने [...] सके।' आज दिन मानव-सभ्यता की [...] अबोध शिशु की-सी हो रही है, जिसके [...] भरी हुई बन्दूक, बारूद की गोलियाँ और [...] दियासलाइयाँ दे दी गई हैं।

किस प्रकार कम से कम ख़र्च में अ[...] अधिक मानव-प्राणियों का संहार किया जा[...] यही सर्व युद्धप्रिय विशेषज्ञ सोच रहे हैं। [...] इन ख़ूँख़्वार प्रयत्नों में विज्ञान के ऐसे [...]

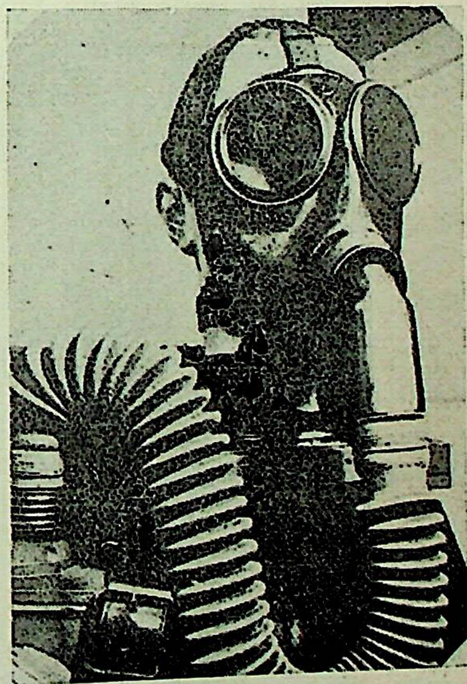


वियना की मजदूरिनें नकली हवाई हमले से बचने के लिए भाग रही हैं।

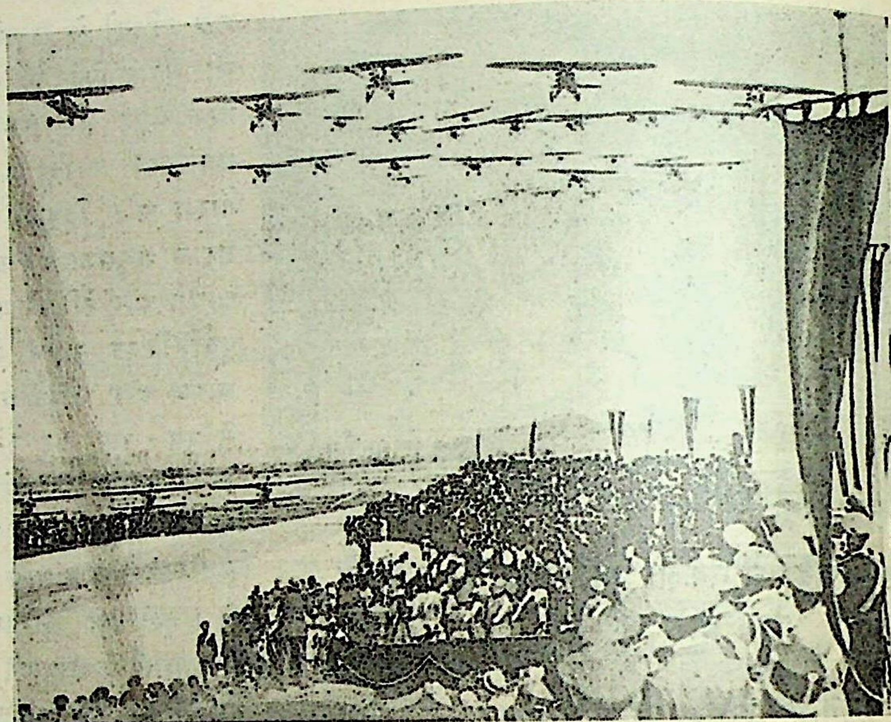
अब रेडियो से चलनेवाले वायुयान भी तैयार किये जा रहे हैं। इनकी चाल बहुत तेज़ होगी। इन पर सवारियाँ आदि न बैठेंगी, बरन् बारूद और विषाक्त गैसें भरकर ये जहाज़ शत्रुसेना की ओर उड़ा दिये जायँगे और रेडियो की सहायता से पूर्वनिश्चित स्थान में गिरा दिये जायँगे और शत्रुसेना को क्षणमात्र में नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। इस प्रकार से गोलाबारी करनेवाले रेडियो द्वारा चलनेवाले यान राकेट (Rocket) के नाम से पुकारे गये हैं। इन्हें हम अग्निबाण भी कह सकते हैं। इनके निर्माण से अनुमान किया जाता है कि तोप और तलवार का युद्ध बिलकुल ही बंद हो जायगा। सारा का सारा युद्ध आकाश में होगा। जिस राष्ट्र का हवाई बेड़ा जितना अधिक शक्ति-

आविष्कारों की भी सहायता लेने में नहीं हिचक रहे हैं, जिनका एकमात्र उद्देश्य मानव-जीवन को सुखी बनाने में सहायता देना बतलाया जाता है। इस समय पाश्चात्य राष्ट्रों से जो समाचार आ रहे हैं, उनको पढ़कर तो हृदय काँप उठता है। इन राष्ट्रों के युद्ध-विभाग और वैज्ञानिक विशेषज्ञ अपने-अपने स्वार्थों पर मानव-समाज और जीवन का बलिदान करने और उसे तहस-नहस करने पर तुले हुए हैं।

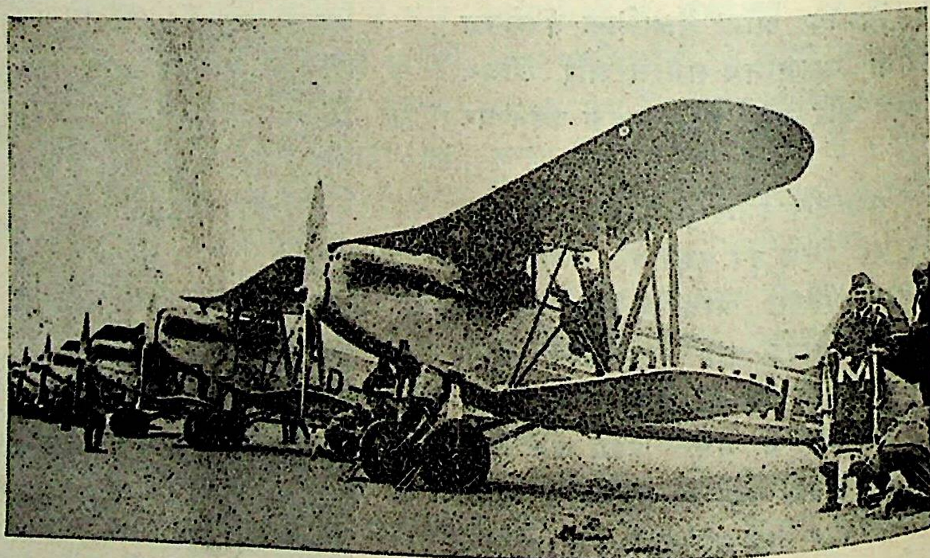
अब तक जो समाचार मिले हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वह दिन दूर नहीं है, जब दूर से बैठे-बैठे ही किसी निश्चित आबादी का अन्त कर दिया जायगा, सेनागारों की बड़ी-बड़ी आग उगलनेवाली तोपें बेकार कर दी जायँगी। हज़ारों मील की दूरी से नगर के नगर भस्म कर दिये जायँगे, पृथ्वी पर बैठे-बैठे, हवा में उड़नेवाले वायुयानों की मेशीनें बेकार कर दी जायँगी। अब तक जो वायुयान तैयार हुए हैं, उन्हें चलाने के लिए चालकों की ज़रूरत होती है। अब ऐसे जहाज़ तैयार किये जा रहे हैं जिनका संचालन पृथ्वी पर बैठे ही बैठे हो जाय। कुछ नावें तो ऐसी बनाई भी गई हैं, जो रेडियो की सहायता से चलती हैं।



गैस से बचने का टोप। साँस लेने के लिए आक्सीजन की नली लगी हुई है।



सिगनर मुसोलिनी इटालियन हवाई बेड़े का निरीक्षण कर रहे हैं। इस बेड़े के बनने में २ करोड़ पौंड खर्च हुए हैं।



जर्मन हवाई जहाज़ का एक नवीन हवाई बेड़ा, जिसका हरहिटलर ने हाल ही में निरीक्षण किया है।

शाली होगा, वह राष्ट्र उतना ही अधिक शक्तिमान् समझा जायगा।

भावी युद्ध की तैयारियाँ बड़े ज़ोरों से की जा रही हैं। कोई राष्ट्र तीव्र वेगवाले ऐसे हवाई ... को काम में लाने का आयोजन कर रहा है, ... अपने देश से सैकड़ों मील की दूरी पर स्थित ...

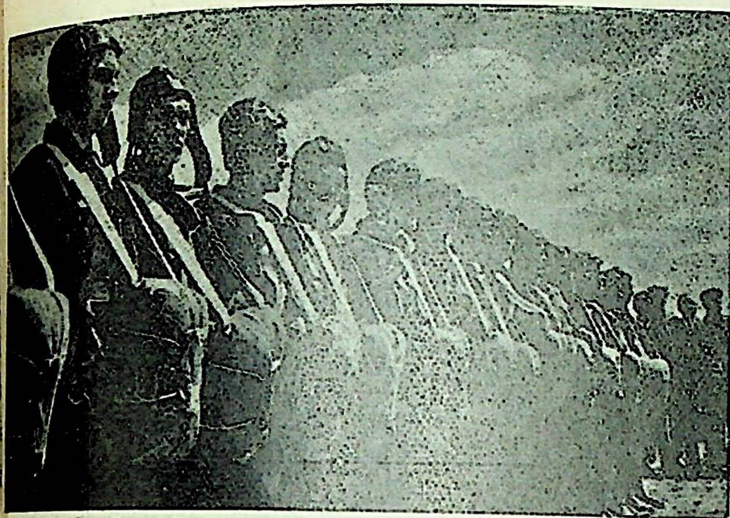


नकली लड़ाई में शत्रु-सेना पर बम-वर्षा

के नगरों को क्षणमात्र में तहस-नहस कर दे। कोई राष्ट्र अत्यन्त विषैली गैसों तथा कुछ भीषण तरल पदार्थों को व्यवहार में लाने का प्रबन्ध कर रहा है। विषैली गैसें गत महायुद्ध में भी काम में लाई गईं, परन्तु वे आजकल की गैसों के समान घातक सिद्ध न हुई थीं। अब तो बहुत ही भीषण गैसें तैयार हो गई हैं। इनमें से जो अत्यन्त साधारण-सी हैं, उनके स्पर्शमात्र से मनुष्य के शरीर भर में छाले पड़ जाते हैं और दम घुट जाता है। कुछ ऐसी हैं, जिनसे प्रकट रूप से तो शरीर पर कोई भी प्रभाव पड़ता दिखाई न देगा, परन्तु भीतर ही भीतर मनुष्य की नाड़ियों का रक्तसंचालन बिलकुल बन्द हो जायगा और शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जायगी। परन्तु इन सबसे भी अधिक भयंकर एक और गैस है। यह कारबन मानाक्साइड (Corbon Monoxide) के नाम से प्रख्यात है। पत्थर का कोयला जलाते समय अक्सर कोयले के ऊपर कुछ नीली लपटें देखने में आती हैं। यह लपटें उपरोक्त गैस ही की होती हैं। वैज्ञानिक लोग इस गैस से बहुत दिनों से परिचित थे, परन्तु उन्होंने इसे युद्ध में काम में लाने की बात कभी न सोची थी। अब ऐसे बम के गोले तैयार किये जायँगे, जिनमें यह गैस या इस गैस को उत्पन्न करनेवाले पदार्थ भर दिये जाया करेंगे। यह बम जब फूटेंगे, तो सम्भव है कुछ आवाज़ भी न हो। इस गैस के दो विशेष गुण हैं। एक तो यह दिखाई नहीं देती, दूसरे वज़न में यह हवा ही के समान भारी होती है। अतः हवा में इसकी उपस्थिति का जल्दी पता भी न लग सकेगा। जिस शहर में इस गैस के गोले फेंके जायँगे, वहाँ मिनटों ही में यमराज का राज्य हो जायगा। वैज्ञानिक लोग इसे अधिक स्थायी बनाने के भी प्रयत्न कर रहे हैं, जिससे इसका प्रभाव कई सप्ताहों तक बना रहे।

कुछ थरमाइट नाम के बमगोले भी तैयार किये गये हैं, जो मिनटों में बड़े-बड़े नगरों को जलाकर भस्म कर देंगे। इनका वज़न भी एक या दो सेर से अधिक न होगा। फूटने पर वे ... हज़ार से तीन हज़ार डिग्री तापक्रम तक ... कर सकेंगे [उबलते हुए पानी का तापक्रम ... १०० डिग्री है]। इस तरह के प्रयत्न ... और घातक पदार्थ बनाना गोले-बारूद ... विषाक्त गैसों ही तक सीमित नहीं है। वैज्ञानिक बराबर यह भी प्रयत्न कर रहे हैं कि वे जो कुछ बनावें, उसकी लागत बहुत कम हो। बनाने ... सभी-सामग्रियाँ उन्हीं के देश में प्राप्त हों ... वह सामग्रियाँ भी हवा, पानी और मिट्टी ... रूप में हों। उन्हें अपने प्रयत्नों में सफलता ... मिली है।

शोरे का तेज़ाब विस्फोटक पदार्थों के ... के लिए अत्यन्त आवश्यक है। महायुद्ध ... पाश्चात्य देशों को अपनी आवश्यकतापूर्ति ... शोरा दक्षिण अमेरिका से मँगाना पड़ता ... उन्हें यह बात बिलकुल ही असह्य थी कि वे ... युद्धसम्बन्धी आवश्यक सामग्री तक के लिए ... का मुँह ताकें। महायुद्ध के अवसर पर ... को इसमें बहुत कठिनाइयों का सामना करना ... था। फलस्वरूप अब वैज्ञानिकों ने ... संश्लेषण से शोरे का तेज़ाब बनाने की रीति ... आविष्कार कर लिया है। यूरोप में अब ... तेज़ाब आम तौर पर इसी रीति से बनाया ... है। शोरे के तेज़ाब ही की तरह जर्मनी में ... बहुत कम पैदा होती है। बारूद और गोली ... बनाने में शोरे के तेज़ाब ही की तरह रुई ... आवश्यकता होती है। शोरे के तेज़ाब, रुई ... गिलसरीन के संयोग से गन काटन तैयार की ... है। अब जर्मनी के विशेषज्ञों ने कृत्रिम रुई ... सफलता प्राप्त कर ली है। यह कृत्रिम पदार्थ ... से तैयार होता है और अत्यन्त सफलता ... विस्फोटक पदार्थों की तैयारी में व्यवहार में ... जा रहा है। कुछ ऐसे पदार्थ भी तैयार ... जा रहे हैं, जिन्हें साधारण औद्योगिकों की ... शालाओं में तैयार कराया जा सके। इस ...



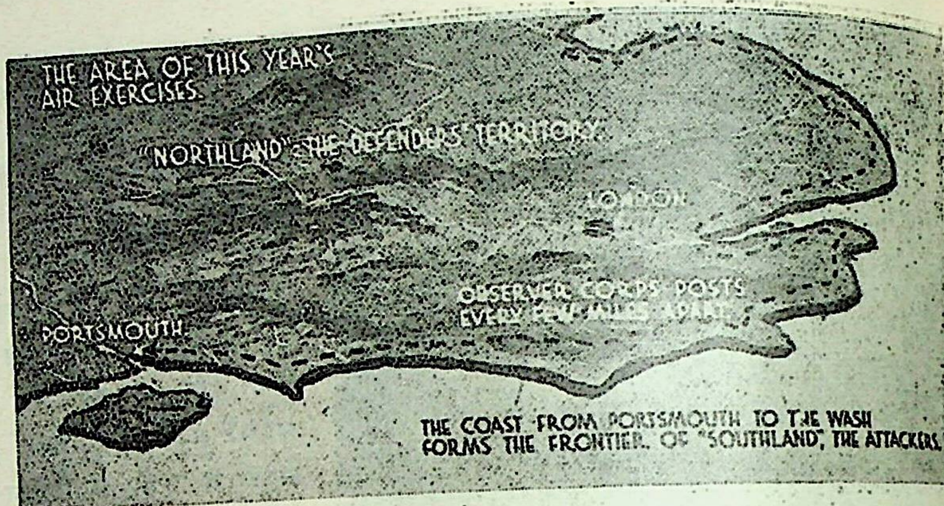
रूस के नौजवान कार्यकर्त्ता, जो पैराशूट की पोशाक में और हवाई जहाज़ पर चढ़ने के पूर्व परेड कर रहे हैं। कहा जाता है कि इन दस्तों में १५% स्त्रियाँ हैं।

रंग, सुगन्ध और नक़ली सिल्क बनानेवाले कारख़ानों की सहायता ली जा रही है।

इँगलैण्ड, अमेरिका, जर्मनी, जापान, रूस, फ़्रांस और दूसरे छोटे-छोटे राज्यों में अत्यन्त संहारक साधनों की खोज के लिए अलग-अलग विभाग नियुक्त कर दिये गये हैं। इन विभागों में वहाँ की सरकारें प्रचुर धन ख़र्च कर रही हैं। आकाश-मार्ग से गैस-वर्षा करना और शत्रु-पक्ष के वायुयानों द्वारा की गई गैस-वर्षा से अपनी प्रजा और सेना की रक्षा करना आज इन अनुसंधान-विभागों की प्रमुख समस्याएँ हो रही हैं। जर्मनी में तो इन दोनों ही बातों के लिए अलग-अलग विभाग नियुक्त कर दिये गये हैं। इनका प्रमुख उद्देश्य आकाश-मार्ग से युद्ध करने के साधनों को व्यापक बनाना है, जिससे महत्वपूर्ण सैनिक और व्यावसायिक केन्द्रों और ख़ास तौर पर बड़े-बड़े नगरों के नागरिकों के



जर्मनी के अधिनायक हर हिटलर और वायुसेना-मंत्री जेनरल गोरिंग "रिचथोफ़न" दस्ते का निरीक्षण कर रहे हैं।



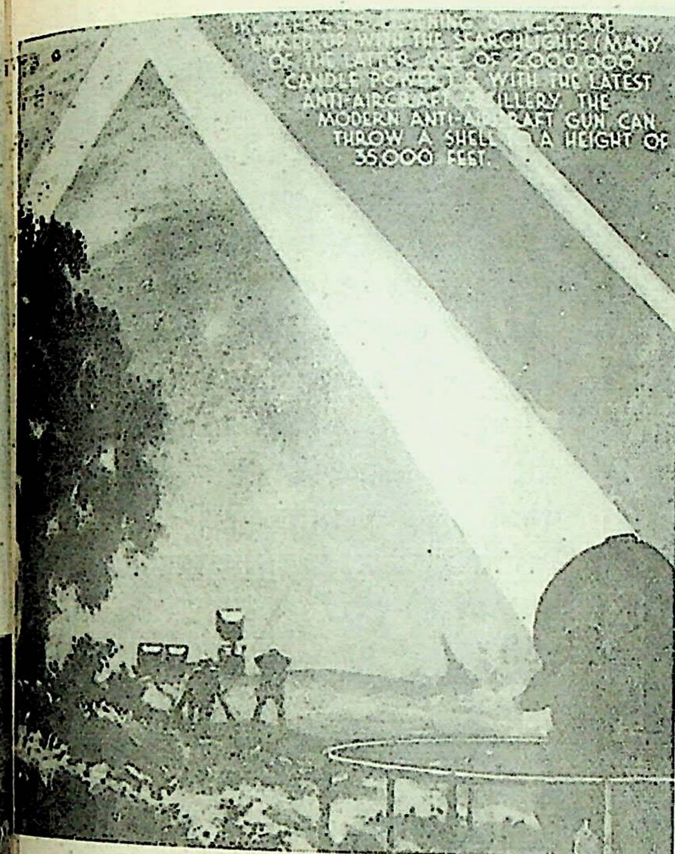
लंदन शहर को सामुद्रिक आक्रमण से बचाने की स्कीम। पोर्ट्स्माउथ से वाश तक "साउथलैंड" की सरहद क़ायम कर दी गई है।

विरुद्ध वायुयानों द्वारा निष्ठुरतापूर्वक सफल युद्ध किया जा सके। इस प्रकार के विभाग केवल जर्मनी तक ही सीमित नहीं हैं। यूरोप के प्रत्येक देश की सरकार, जिसमें इँगलैण्ड भी शामिल है, इस समय विषाक्त गैस और रोग के कीटाणुओं को युद्धक्षेत्र में काम में लाने के लिए प्रयोग कर रही है। सभी देशों के सेना-विभागों के लिए इस प्रकार के ख़ूँख़्वार प्रयोग करना अनिवार्य बना दिया गया है। इन देशों की जनता भी, वहाँ के वोटर और करदाता भी इन आयोजनों का समर्थन करते हैं। इस प्रकार के प्रयोगों को तनिक भी निन्दनीय नहीं समझा जाता। ऐसे प्रयोगों को सर्वथा उचित और आवश्यक समझकर उनके लिए आर्थिक सहायता भी दी जाती है।



नेपल्स में हवाई हमले से बचने का रिहर्सल।

इँगलैण्ड ने अभी इस वर्ष अपनी सेनाओं को नवीनतम घातक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित करने के लिए ३० करोड़ पौंड (लगभग ४ अरब रुपये) का सार्वजनिक क़र्ज़ लिया है। इस क़र्ज़े की पूर्ति में केवल इँगलैंड की ही जनता ने नहीं दिया है, इँगलैंड के प्रति सहानुभूति वाले विदेशों में रहनेवाले जन-समुदाय ने प्रचुर आर्थिक सहायता दी है। थोड़े ही आवश्यकता से कहीं अधिक धन जमा था। केवल इस एक छोटी-सी घटना



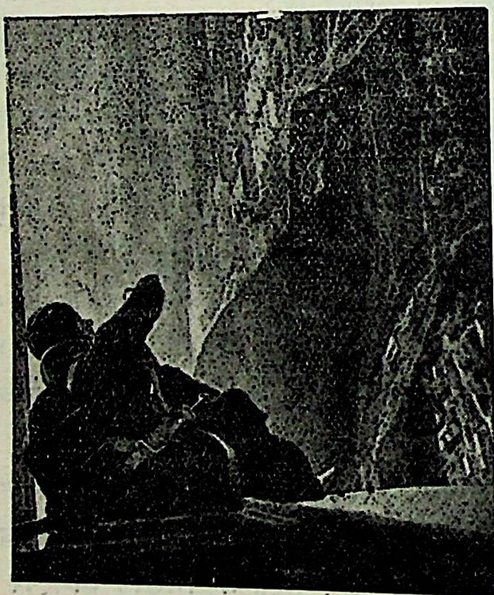
एंटीएक्रेफ़्ट (तोपें), जो ३५ हज़ार फ़ीट की ऊँचाई तक गोलाबारी कर सकती हैं।

...द की अति भीषण तैयारियों और इन तैयारियों ...लिए जन-साधारण की उत्सुकता और सहानु-...ति का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। वास्तव ... सशस्त्र रहने की घोड़दौड़ में ग्रेट ब्रिटेन ...बसे आगे रहना चाहता है। आजकल इँगलैंड ... जो नीति चल रही है, उसका उद्देश्य ... इँगलैंड को सैनिक दृष्टि से अत्यंत बलवान् ...ाना, हवाई सेना, जलसेना और स्थलसेना ... प्रथम श्रेणी का बनाना है। इसलिए ब्रिटेन ने ...ट के अलावा जलसेना के लिए असाधारण ... से १० लाख ५६ हज़ार पौंड की, स्थलसेना ... लिए ६६ लाख पौंड की और वायुसेना के ...ए १ करोड़ १७ लाख पौंड की मंज़ूरी दी है। ... करोड़ पौंड के जिस क़र्ज़े का ऊपर ज़िक्र किया गया है, वह भी बजट के अलावा ही है। इस सैनिक घोड़दौड़ से चर्चिल-जैसे व्यक्ति भी शंकित ो उठे हैं। उनका ख़याल है कि योरप महान् संकट की ओर जा रहा है।

इँगलैंड क्या, आज सारे संसार की दशा यही हो रही है। राष्ट्रों के सैनिक ख़र्चे पिछले पाँच वर्षों में दुगने और चौगने हो गये हैं। पिछले पाँच वर्षों में इँगलैंड का सैनिक ख़र्च ६ करोड़ ५० लाख पौंड से बढ़कर १२ करोड़ ५० लाख पौंड वार्षिक हो गया है। बजट के अतिरिक्त समय-समय पर सेना-विभाग को जो प्रकाश्य रूप में विशेष सहायता दी जाती रहती है, वह अलग। जर्मनी ने अपने सैनिक व्यय को विगत ५ वर्षों में ५ करोड़ २० लाख पौंड से बढ़ाकर ५० करोड़ पौंड कर लिया है। अमेरिका और जापान के सैनिक ख़र्चों में भी समुचित वृद्धि हुई है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का सैनिक व्यय १४ करोड़ पौंड से बढ़कर १८ करोड़ पौंड हो गया है और जापान में २ करोड़ ६० लाख पौंड से बढ़कर ५ करोड़ पौंड।

वास्तव में जर्मनी इस समय अपने को अन्दर ही अन्दर मज़बूत बना रहा है। महायुद्ध के बाद, विजयी राष्ट्रों द्वारा ख़ाक में मिलाये जाने पर भी अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में १५ वर्षों के अन्दर जर्मनी का फिर से सम्मानयुक्त स्थान प्राप्त कर लेना राजनीतिक इतिहास की एक अत्यन्त शिक्षाप्रद कहानी है। नितान्त अधःपतन और घोर राष्ट्रीय अपमान से अपने को मुक्त करके जर्मनी का अन्त-र्राष्ट्रीय अरण्य में निर्भय सिंह के समान दहाड़ना आज सारे यूरोप को भयभीत कर रहा है। परन्तु आजकल रूस जर्मनी और ब्रिटेन से भी चार क़दम आगे है। आज रूस समस्त योरपियन राष्ट्रों में सैनिक शक्ति में प्रबलतम राष्ट्र है। रूस का

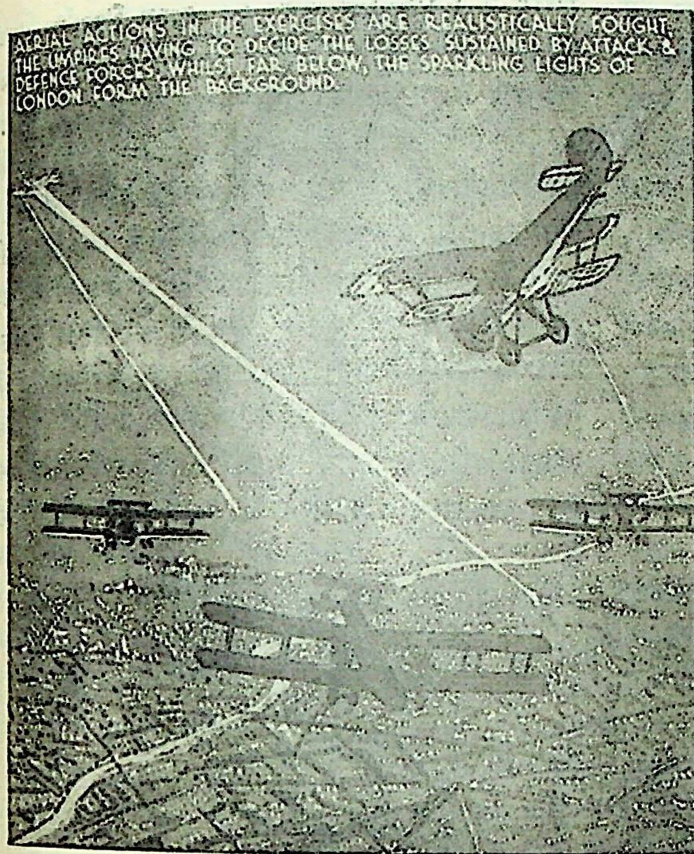
सैनिक व्यय प्रतिवर्ष बढ़ता जा रहा है। रूस ने अपनी आकाशसेना को लोकदृष्टि से छिपाकर सबसे बढ़कर शक्तिशाली बना लिया है। रूस के कुशल विमान-वीरों की तुलना संसार के और किसी भी देश से नहीं हो सकती। रूस की आकाशसेना ने रणकौशल में बड़ी ज़बरदस्त पटुता प्राप्त कर ली है। रूस की आकाशसेना में अब इतनी उन्नति हो चुकी है कि यह किसी भी समय ढाई हज़ार पैदल सैनिकों को किसी भी स्थान में आकाश से नीचे रणभूमि में उतार दे सकती है। वास्तव में रूस की वायुसेना की मात्रा और शक्ति का ठीक-ठीक पता चलाना नामुमकिन है।



सोवियट रूस की एक स्त्री पायलेट, जो कि हवाई जहाज़ से पैराशूट द्वारा उतरती है और जिसके दाहने हाथ में "स्पिकार्ड रिंग" है।

सन् १९३४ में रूस ने अपनी स्थलसेना पर १ अरब ७० करोड़ रूबल ख़र्च किया था (१ रूबल=१॥ रुपया)। १९३५ में यही रक़म बढ़कर ६ अरब रूबल हो गई, और इस वर्ष १९३६ में १५ अरब रूबल ख़र्च कर रहा है। केवल स्थलसेना पर—उसके सैनिकों की संख्या आज ६० हज़ार से बढ़कर १२ लाख है। रूस ने युद्ध की समस्त सामग्री में उन्नति की है। छोटे टैंकों की संख्या शत बढ़ गई है। हलके टैंक १६०, १९२ प्रतिशत, टैंक उड़ानेवाली तोपें शत, टैंकों और हवाई जहाज़ों के मशीनगनें १०० प्रतिशत, हवाईजहाज़ शत, और पनडुब्बियाँ ४०० प्रतिशत इनके अतिरिक्त रूसवालों ने रासायनिक भी बड़ी पटुता प्राप्त कर ली है। और रोग उत्पन्न करनेवाले कीटाणुओं बनाने के लिए सोवियट रूस का सैनिक विभाग बड़े ज़ोरों से काम कर रहा है। युवतियों को हवाई जहाज़ों पर चढ़ने-उतरने उड़ते हुए वायुयानों से आसानी के पड़ने की शिक्षा देने का समुचित प्रबन्ध है

वास्तविक परिस्थितियों का अन्दाज़ ही से नहीं लगाया जा सकता। वास्तविक तो और भी अधिक भयावह हैं। बातों का उल्लेख किया गया है, वह सब रूप से हो रहा है। इसके अलावा भी गुप्त रूप से खर्च किया जा रहा है। ख़र्चे का ब्यौरा तक भी नहीं खोला विशेष ख़र्चों के रूप में भावी युद्ध की तैयारी मनुष्य के जीवन को जल्दी से जल्दी डालने के प्रयत्नों में बराबर लम्बी-चौड़ी ख़र्च की जा रही हैं। प्रायः सभी राष्ट्र से अपने सैनिक ख़र्चे की रक़म को दिखाने की कोशिश करते हैं और इस ख़र्च होनेवाली मोटी-मोटी रक़मों को में डाल देते हैं। अस्त्र-शस्त्रों के प्रकार साथ यदि ये गुप्त रक़में भी मिला ली नरसंहार के लिए ख़र्च किये जानेवाले अर्थव्यय का हिसाब शायद स्वयं जिनके आवाहन के लिए यह सब कुछ रहा है—ही लगा सकें।



गत महासमर के दिनों में लंदन के ऊपर हवाई जहाज़ों की लड़ाई के नक़ली दृश्य।

विभिन्न राष्ट्रों के सैनिक विशेषज्ञ महायुद्ध की समाप्ति के बाद से ही इन तैयारियों में जुट गये हैं। इधर चार-पाँच वर्षों में तो ख़ास तौर पर तैयारियाँ की गई हैं। इस बार इन विशेषज्ञों ने यह साफ़-साफ़ कह दिया था कि केवल सैनिक शक्ति बढ़ाने ही से काम न चलेगा। पुराने सैनिक दाँव-पेंच, अस्त्र-शस्त्र आदि सब दक़ियानूसी हो गये हैं। सर्वथा नवीन सामग्री के निर्माण की आवश्यकता है। विभिन्न देशों की सरकारों ने अपने इन विशेषज्ञों की बातों पर समुचित ध्यान भी दिया है और आज दिन इन भीषण आयोजनों में जो सफलता मिली है, वह मानवसभ्यता को बड़े द्रुत वेग से विनाश-पथ की ओर अग्रसर कर रही है।

६०-७० मील के गति वेग से उड़नेवाले भीमकाय बम बरसानेवाले वायुयान, बड़ी-बड़ी तोपों को ५० मील प्रति घंटे के वेग से ढो ले जानेवाले विशालकाय भारी-भरकम टैंक, विषाक्त तरल गैसें और कीटाणुओं की वर्षा, यह सब इन्हीं ख़ूँख़्वार प्रयत्नों का फल है। विध्वंसक वायुयानों का बेड़ा तो एक साधारण-सी बात हो गई है। आगामी युद्ध के लिए चालकविहीन वायुयानों का भी निर्माण हो रहा है। इस प्रकार के वायुयान रेडियो द्वारा चलाये जा रहे हैं। वही रेडियो, जो आज दिन हम सबके मनोविनोद का साधन बना हुआ है, कल रणक्षेत्र का एक ख़ूँख़्वार शस्त्र बन जायगा। विज्ञान के एक प्रोफ़ेसर का तो यहाँ तक कहना है कि रेडियो द्वारा केवल वायुयान ही नहीं चलेंगे, आगामी युद्ध में भीमकाय तोपों को ढो ले जानेवाले भारी भरकम टैंक, पनडुब्बियाँ और टारपीडो, ये सब रेडियो द्वारा नियंत्रित होंगे। जल, थल, आकाश, सभी जगह रेडियो से चलनेवाले अस्त्र-शस्त्र और विध्वंसक सामग्री को ढोनेवाले यान देख पड़ेंगे। यह सब बातें अनेक अंशों में आजकल भी सम्भव हो गई हैं। वास्तव में यह आधुनिक निर्जीव राक्षस, सजीव कपोल-कल्पित कहे जानेवाले राक्षसों से भी अधिक भीषण सिद्ध होंगे। रेडियो तो रेडियो, रेडियो के सबसे नवीनतम विकसित स्वरूप टेलिविज़न (दूरदर्शन) का भी युद्ध के अवसर पर समुचित उपयोग करने की बातें सोची जा रही हैं। टेलिविज़न द्वारा युद्धस्थल के दृश्य दिखाकर सैनिकों और प्रजा को प्रोत्साहित किया जायगा। इस प्रकार की योजनाओं की तैयारी में मनोविज्ञान के पंडित विशेष रूप से काम कर रहे हैं।

इन सबसे भी अधिक भीषण एक और

आविष्कार हुआ है। उसके तो स्मरणमात्र ही से हृदय काँप उठता है। यह आविष्कार 'मृत्यु-किरण' के नाम से प्रख्यात है। मृत्यु-किरण एक ऐसी अदृश्य आलोकरश्मि है, जिसका आकाश में उड़ते हुए हवाई बेड़े पर प्रयोग करने से वे सब छिन्न-भिन्न होकर क्षणमात्र में नीचे आ जायँगे। इस नवीन किरण के आविष्कारक हैं आधुनिक बेतार यंत्र के जन्मदाता सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक मारकोनी। इस आविष्कार की व्यावहारिक सफलता में ज़बर-दस्त सन्देह प्रकट किये जा रहे हैं। युद्धक्षेत्र में इस प्रकार की किरणों का उत्पादन एक प्रकार से असम्भव-सा बताया जा रहा है।



गैस के हमलों से बचने की पोशाक

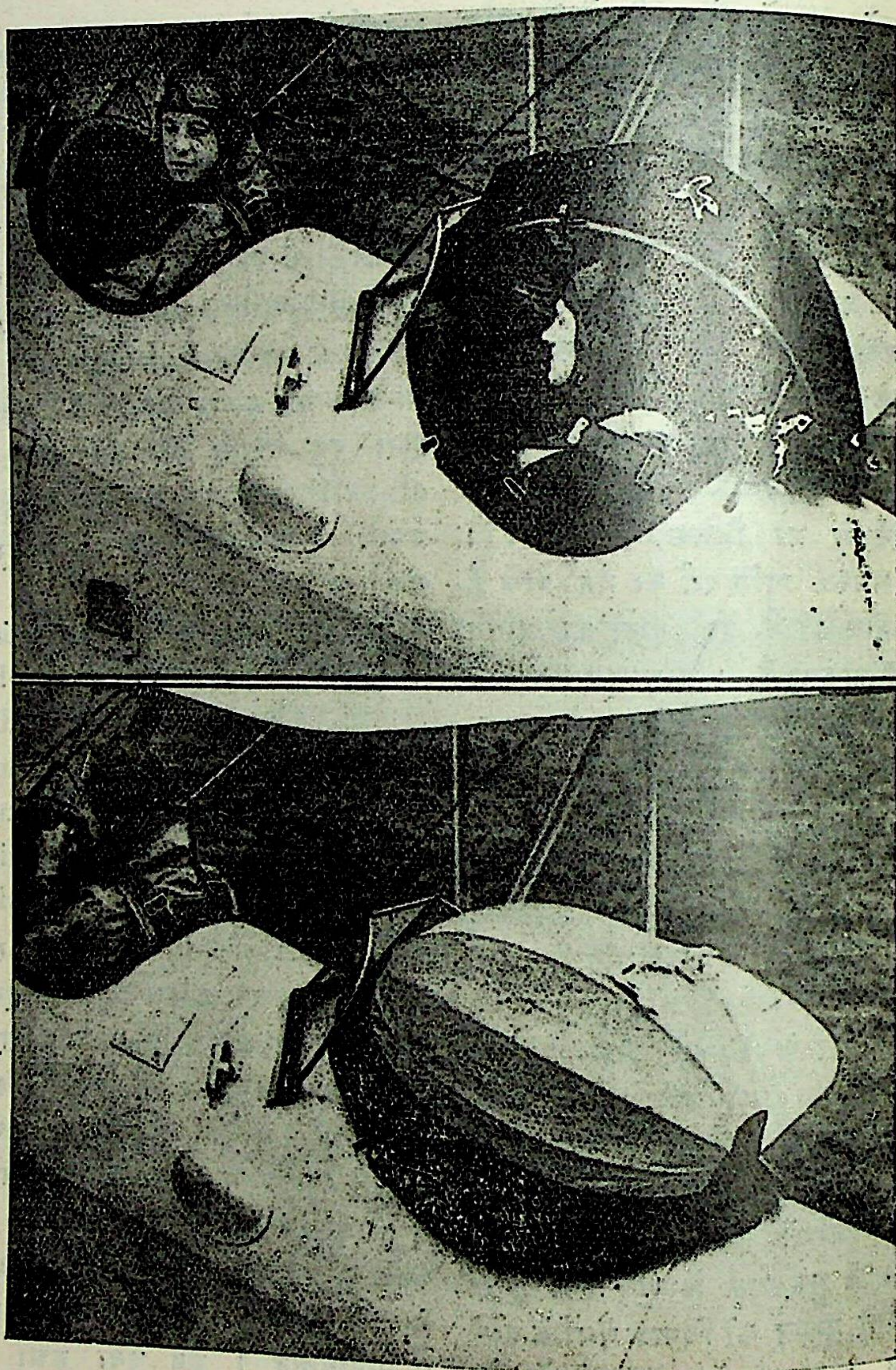
कुछ भी हो, यह निश्चित है कि यदि युद्ध हुआ तो आगामी युद्ध गत महायुद्ध की अपेक्षा अत्यधिक सांघातिक और भीषण होगा। अतः जब युद्ध अनिवार्य ही है तो फिर युद्ध से भी अधिक सांघातिक और विध्वंसक कौन-सी बात हो सकती है? युद्ध तो विध्वंस और विनाश की चरम सीमा है। यह युद्ध भय का राज्य मिटाकर स... यमराज का राज्य स्थापित करेगा। युद्ध आरम्भ होते ही माया-ममता, दया-करुणा सभी को भुला-कर शत्रुदल का विनाश-साधन करना या स्वयं मर मिटना मनुष्यमात्र के परम कर्तव्य हो जायँगे। इस कर्तव्यपथ से विमुख होनेवाले व्यक्ति भी इस बार सहज ही में अपनी प्राणरक्षा न कर सकेंगे। आप युद्ध पसंद करते हैं या नहीं, इसका कोई सवाल ही न होगा। लाख कोशिश करने पर भी उसके विषैले और दारुण प्रभाव से बच सकना यदि असम्भव नहीं तो दुःसाध्य अवश्य ही हो जायगा। राष्ट्रों के कर्णधारों को उस समय अधिक से अधिक सांघातिक एवं विध्वंसक उपायों को काम में लाने की चिन्ता होगी।

विगत महायुद्ध में ८० लाख प्राणियों का संहार हो चुकने पर भी संसार फिर एक बार युद्ध के लिए कमर कसकर तैयार हो गया है। विगत महायुद्ध में अपने प्राणों की भेंट चढ़ा देनेवाले

वीरों की माताओं, बहनों और पत्नियों के आँसू भी अभी तक नहीं पुछे हैं, विधवाओं के कलेजे की कसक अभी तक मिटने नहीं पाई है कि एक और युद्ध--पिछले युद्ध से भी अधिक भीषण युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ हो गई हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि युद्ध प्रकृति का एक अनिवार्य गुण है। मनुष्यों ही में नहीं, वृक्षों, पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों, जल-जन्तुओं आदि सभी प्राणियों में अपने-अपने प्रभुत्व के लिए चिरकाल से एक भीषण संघर्ष चल रहा है। इस प्रभुत्व की प्राप्ति के लिए व्यक्तियों क्या, जातियों के नामो-निशान मिटा देने में भी हिचक नहीं होती। जब संसार के समस्त प्राणिवर्ग का यह हाल है तो मनुष्य तो मनुष्य ही है, वह दूसरे का प्रभुत्व कैसे बरदाश्त कर सकता है। जब सब प्रकार से युद्ध अनिवार्य है तो युद्धस्थल में धर्माधर्म का विचार निरा मूर्खतापूर्ण ही तो होगा। युद्ध आरम्भ हो जाने पर, रणोन्मत्त सेनाओं में भीषण संघर्ष आरम्भ हो जाने पर, यह कहना कि अमुक पक्ष न्याय और धर्म के लिए युद्ध कर रहा है और अमुक पक्ष सरासर अन्याय और अधर्म पर तुला है, और भी ज़बरदस्त ग़लती होगी। युद्ध के सम्बन्ध में इस प्रकार के विचार रखते हुए भी इनमें से कुछ विद्वान् आगामी महायुद्ध की भीषणता के जो चित्र चित्रित किये जा रहे हैं, उनमें विश्वास नहीं करते। नाना प्रकार की विषाक्त गैसों की विध्वंस-लीला में तो उनका तनिक भी विश्वास नहीं। वे युद्धस्थल में वायुयानों द्वारा शत्रु-नगरों पर नाना प्रकार की विषाक्त गैसों के छोड़े जाने और उनके द्वारा असंख्य नरनारियों और शिशुओं के निष्ठुर हत्याकाण्ड को सम्भव ही नहीं मानते। एक वैज्ञानिक का तो यहाँ तक कथन है कि युद्धस्थलों में इस प्रकार का कोई भी आयोजन व्यावहारिक सिद्ध न हो सकेगा। सुप्रसिद्ध विषाक्त गैस मसटर्ड गैस (Mustard gas)—सरसों की गैस में तो इनका तनिक भी विश्वास नहीं। यह मसटर्ड गैस वही गैस है, जिसके सम्बन्ध में यहाँ तक कहा जाता है कि यह गैस या तो युद्ध का अन्त कर डालेगी अथवा युद्ध में इस विषाक्त गैस का प्रयोग किये जाने पर मानव-सभ्यता का ही अन्त हो जायगा। [Mustard gas will either kill War or War with mustard gas will kill civilisation'.] इन लोगों का कहना है कि जब तक यह गैस अच्छी तरह से फैलाई न जा सके, यह सर्वथा निरापद है। और यदि इसके द्वारा कुछ उत्पात होने की सम्भावना भी है तो ब्लीचिंग पाउडर के घोल से इसका समस्त प्रभाव देखते-देखते सफलतापूर्वक दूर किया जा सकता है।

"The socalled mustard gas is comparatively harmless unless it can be suitably spread. There would be no difficulty in having dinner with a jug of mustard gas at one's elbow and if inadvertently a little was upset several of the bleaching powder solutions are simple and successful antidotes."

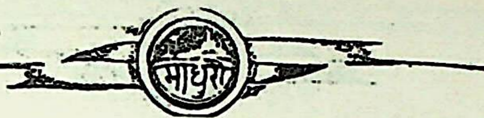
उपर्युक्त दोनों कथन कहाँ तक सत्य हैं, यह निर्णय कर सकना कठिन है, परन्तु इतना अवश्य ही कहा जा सकता है कि गत महायुद्ध के अवसर पर जर्मनी ने इस गैस का उपयोग किया था और उससे शत्रुसेना में त्राहि-त्राहि मचा दी थी, इसकी महान् भीषणता से प्रभावित होकर युद्ध में इसके उपयोग को बिलकुल ही रोक दिया था। पर राष्ट्रसंघ की सुनता कौन है। वह तो एक निर्जीव संस्था है, एक बड़े पैमाने का डिबेटिंग (वादविवाद) क्लब बना हुआ है। उसके निःशस्त्रीकरण-संबंधी समस्त निर्णय रद्दी की टोकरी में फेंक दिये जाते हैं। उसके लाख मना करने पर भी इटली ने निरीह अबीसीनिया-वासियों पर, जो केवल अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए प्रयत्न-शील थे—विषाक्त गैसों का उपयोग किया और राष्ट्रसंघ के समस्त सदस्य इटली



हवाई जहाज़ में हमले से बचने की तरकीब
(१) ऊपर एक मनुष्य दिखाई देता है ।
(२) उसके बचने की तरकीब ।

के इस अनुचित एवं नियमविरुद्ध कार्य का केवल मौखिक विरोध करके रह गये । इस विरोध से इटली का रत्तीभर भी बाल बाँका नहीं हुआ ।

कुछ भी हो, यह निश्चित है कि इस प्रकार की विषाक्त गैसों का आक्रमण सुखकर तो कदापि न हो सकेगा । विषाक्त गैसों से बचने के उपाय



भले ही ढूँढ निकाले गये हैं, पर फिर भी इनकी सहायता से जो युद्ध लड़ा जायगा, वह कितना भयंकर होगा, इसके तो अनुमानमात्र से हृदय काँप उठता है।

संसार के समृद्धिशाली विशाल नगरों का कोना-कोना मनुष्यों से भरा हुआ है। न्यूयार्क, पेरिस, बर्लिन, लन्दन, रोम, कलकत्ता, बम्बई, टोकियो प्रभृति नगरों में करोड़ों मनुष्य निवास करते हैं। युद्ध आरम्भ होने पर इनमें से किसी पर भी वायुयानों द्वारा निरीह जनता पर घातक बमों और विषाक्त गैसों की वर्षा की जा सकेगी। कोई बम बाज़ार में गिरेगा और कोई पार्क में। चारों ओर भीषण हाहाकार और त्राहि-त्राहि मचने लगेगी। सहस्रों नर-नारी भय-त्रस्त होकर इधर-उधर भागेंगे। दग्ध, अर्धदग्ध, विषमूर्छित और श्वासअवरुद्ध जनता के करुण क्रन्दन से दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठेंगी। सर्वत्र संहार और महासर्वनाश का दृश्य उपस्थित हो जायगा। कुछ घन्टों के अन्दर ही बड़े-बड़े समृद्धि-शाली और वैभवपूर्ण नगर देखते-देखते स्वाहा हो जायँगे। ऐसा वास्तव में हो सकेगा या नहीं, इस सम्बन्ध में केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि विशेषज्ञों के मतानुसार ४० वायुयानों द्वारा ल्यूसाइट (Lusite) के १०० टनों की वर्षा से न्यूयार्क जैसे विशाल नगर कम से कम एक सप्ताह के लिए रहने के योग्य न रह सकेंगे। फासजीन (Phosgene) गैस का प्रयोग तो इससे भी अधिक भीषण सिद्ध होगा। इसका तो केवल एक बम न्यूयार्क-जैसे नगर को फ़ौरन् ही ख़ाली करा देगा।

भावी युद्ध की भीषणता केवल इन विषाक्त गैसों ही तक सीमित नहीं है। ऐसी तोपों की बातें भी आये दिन सुनने में आ रही हैं, जो पचासों मन भारी गोलों को सैकड़ों मील की दूरी तक

पहुँचाने की क्षमता रखती हैं। इनके व्यवहार से जो विनाशकारी दृश्य उपस्थित होगा, वह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

परन्तु जहाँ जिसकी लाठी उसकी भैंस के अनुसार कार्य हो रहा है, वहाँ यह सब बातें उचित ही हैं। जहाँ न्याय और धर्म केवल एक ढकोसला भर रह गया हो, उसके वास्तविक स्वरूप को सर्वथा तिलांजलि दे दी गई हो, जहाँ की जनता भी 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की नीति का समर्थन करती हो, वहाँ युद्ध की भीषणता की शिकायत से लाभ। वहाँ दो-चार नगरों, दो-चार देशों की सभ्यता का मिट जाना साधारण-सी बात होनी ही चाहिए। वास्तव में भावी युद्ध की महान् भीषणता ही युद्ध के आवाहन में बाधा डाल रही है और आधुनिक सभ्यता को पतन के पथ पर होने से बचा रही है। लेकिन वकरे की माँ कब तक ख़ैर मनायेगी। युद्ध तो एक दिन होने ही है। युद्ध के साथ ही साथ वर्तमान सभ्यता के पतन का मार्ग भी प्रशस्त हो जायगा।



अस्थि-पंजर

श्रीबालकृष्ण बलदुवा बी० ए०

"यह क्या ?"—"एक अस्थि-पंजर, भू-गर्भ बीच से निकला।
वैज्ञानिक कहते सहस्र दस वर्ष पुराना है यह॥"
"कहाँ मिला ?"—"था नगर पास जो मीलों लम्बा टीला—
किया प्रमाणित पुरातत्ववेत्ताओं ने थी नगरी
अति प्रसिद्ध, प्राचीन समय में प्रजातन्त्र का केन्द्र,
ज्ञान, कला-कौशल, व्यापारों में अतीव सुसमृद्ध।
वहीं खुदाई हुई और सैकड़ों वस्तुएँ निकलीं;
प्रासादों के भग्न खंड, मूर्तियाँ—शिल्प - नैपुण्य
के चरमोत्कर्ष की द्योतक, टूटे-फूटे बरतन—
सुघराई पर जिनकी पटुतम कलाकार तक विस्मित,
और अनेकों वस्तु—सभी अत्यन्त उच्च संस्कृति की
द्योतक; उनमें ही यह मानव-पंजर भी है निकला।
प्रामाणिक विद्वानों का है कथन कि यह अन्वेषण
पुरातत्व में चिरमहत्व की है निश्चय ही घटना;
अब तक जो अनुमान पुरातन स्वर्ण - काल - सम्बन्धी,
उनको सत्य प्रमाणित कर बतलाता हम जो कहते
"उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर यह युग!" कितना भ्रान्त!
यह विकास विज्ञान-ज्ञान का वर्ष सहस्रों पहले
की सम्पत्ति थी, क्रूर काल के हाथों ध्वस्त सभ्यता
की थी सृष्टि (आज जिसके ध्वंसावशेष की प्राप्ति!)।
उनका यह भी कथन—अस्थि-पंजर के अनुशीलन से
ज्ञात हुआ—मानव विकास की उस सीमा तक पहुँचा,
जो इस युग की उन्नति-सीमा से है मिलती - जुलती।
इससे यह भी हुआ प्रमाणित—इस पृथ्वी-तल पर भी
एक समय ही हुआ न मानव विकसित सब देशों में,
किन्तु सभ्यता बर्बरता के साथ - साथ बढ़ती थी
और....किन्तु तुम सुन न रहे, किस ओर ध्यान है पहुँचा ?"
"मेरा ध्यान!—सोचता हूँ मैं—हम सबका अवशेष
इसी अस्थि-पंजर में होता, वर्ष सहस्रों बाद
मिट्टी में मिट्टी होने से—चिह्नहीन होने से—
बचकर यदि मिल सकें किसी को, तो अतिशय सौभाग्य!
किन्तु कौन तब जान सकेगा किसका नर - कंकाल?
था वह कौन?—विश्व - अधिपति, सेनानी जगत्प्रसिद्ध,
राजनीति का कुशल खिलाड़ी कुबेर - सा धनवान,
अविनश्वर कृतियों का कर्ता—कलाकार, वैज्ञानिक—

अपने आविष्कारों से संसार नचानेवाला,
या वह मठाधीश, जिसके चरणों को विश्व पलोटे।
(होंगे ग्रन्थ अदृश्य; हमारी भाषा—गूढ़ रहस्य!)।
और सोचता हूँ—प्रसिद्धि-धन-शक्ति, रात-दिन मानव
जिन्हें प्राप्त करने को अविरल यत्न निरन्तर करता;
जिनके लिए छोड़ जीवन की शान्ति और सन्तोष,
चिन्ता और यातना से प्रतिक्षण है लड़ता रहता,
उन्हीं कीर्ति-अधिकार-सम्पदा का स्वामी बनकर भी,
यदि है अन्त यही—मुट्ठी भर अस्थिमात्र रह जाना,
(वह भी रहे, न रहे—काल की क्रूर कृपा पर निर्भर!),
जिनसे पता न मिले कभी भी हम सबके जीवन का,
उन्नति का, यश का, वैभव का और प्राप्त करने में
उनको प्रकृति-प्रदत्त-मानवी-विभूतियों के व्यय का;
यदि है यही अन्त, यदि जीवन एक कहानीमात्र
जल से लिखी गई, जिसका अस्तित्व न जब तक सूखे
(और बाद में—जैसे ही जल सूखे, पुनः वहीं पर
हो जाए प्रारंभ नव्य-गाथा का लेखन), तो फिर
व्यर्थ-व्यर्थ का निशि-वासर का यत्न प्राप्त करने को
वैभव-शक्ति-कीर्ति, यदि उनका अन्त अस्थिपंजर भर।
(और सोचता हूँ—तो क्या मानव का अधिक महत्त्व
नहीं अन्य जड़-चेतन रूपों से? वह भी बस एक
क्रीड़ा मात्र विश्व-स्रष्टा की? सुन-सुनकर "मानव है
श्रेष्ठ जीव इस सृष्टि बीच" अपने शिक्षित पक्षी से
विद्युत-स्मित से श्रीमुख प्रतिभासित करने का एक
कौशल भर उस विश्व-नियन्ता का? मानव कठपुतली
उसके हाथ, जिसे जब जैसा चाहे, रहे नचाता?
कैसा तो अज्ञान हमारा!—केन्द्र मान अपने को
विश्व बीच, हैं समझ रहे सब कुछ हम ही तो करते
और भूल जाते—प्रतिक्षण राई का पर्वत, पर्वत
राई क्यों हो जाता? क्यों जो आज सर्वआदृत है
कल पद-पद पर ठोकर खाता? क्यों पापी जीवन भर
सुखी और सच्चरित्र निरन्तर कष्ट-व्यथा है सहता?
कभी-कभी कह इसे "कर्म-फल" हम मन को समझाते,
सबसे पहला कर्म क्यों हुआ?—पर न बता यह पाते।
समझ रहे—यह बुद्धि हमारी सब कुछ सुलझा सकती,
इसीलिए हम दूर सत्य से प्रतिक्षण होते जाते
और भोगते कष्ट निरन्तर तृष्णा-भ्रम-बंधन में,
पर न मानते—हैं अशक्त; असहाय; कर न कुछ पाते)॥

निवेदन

श्री 'रमण'

तुम कुसुम का हार देना,
तुम कुमुद का हार देना!
एक क्षण के विश्व में—
प्रियतम! न अपना प्यार देना!!
मैं न गाऊँ, तू न गावे—
'वेदना' बस! आज गावे!
"पी कहाँ" दो बार कहकर—
कुछ व्यथा, कुछ शान्ति पावे!!
विटप से लिपटी लता को—
चिर-विरह का भार देना!
एक क्षण के विश्व में—
प्रियतम! न अपना प्यार देना!!
ज्योत्स्ना के दिव्य रथ पर
चढ़, क्षितिज का कोर देखूँ।
आज अपनी पुतलियों में—
'यातना' का भोर देखूँ!!
आज 'पीड़ा' के मनुज को—
'कसक' का उपहार देना!
एक क्षण के विश्व में—
प्रियतम! न अपना प्यार देना!!
व्यर्थ तेरा, और मेरा—
पागलों का एक सपना!
देखना अपनी चिता में—
कौन दुश्मन? कौन अपना?
ख़ाक के पुतले नरम को—
दर्द का संसार देना!
एक क्षण के विश्व में—
प्रियतम! न अपना प्यार देना!!
चिर-निराशा के तिमिर में,
अब न आगे बढ़ सकूँगा!
जीर्ण जीवन प्राण लेकर—
मैं न पर्वत चढ़ सकूँगा!!
कर सकूँ मैं पार सागर—
वह अमर पतवार देना!
एक क्षण के विश्व में—
प्रियतम! न अपना प्यार देना!!





"ब्रज-भारती"

'ब्रज-भारती' श्रीउमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' की ब्रजभाषा में लिखी नई-पुरानी कविताओं का संग्रह हाल में गंगा-ग्रंथागार से प्रकाशित हुआ है। काव्य-प्रेमियों और काव्यालोचकों के लिए यह पुस्तक अनेक महत्त्व रखती है। सहृदय कवि ने आज के खड़ी बोली के प्रसार पाये काव्य-साहित्य की भावनाओं और व्यंजनाओं को उदारतापूर्वक ग्रहण किया है। साथ ही ब्रजभाषा की पुरानी रूढ़ियों का भी तिरस्कार नहीं किया। नई और पुरानी धाराओं का यह संगम देखने की वस्तु है।

पुस्तक में दो खंड हैं। पहले में नई प्रणाली की कविताएँ हैं, दूसरे में पुरानी की। पहला खंड पढ़ना आरंभ करते ही पढ़नेवाले की दृष्टि नये छन्दों की ओर जायगी। उमेशजी ने गीत लिखे हैं, मुक्तक भी। 'मान'-नामक कविता का ढाँचा गीत का है। नियमित पंक्तियों के बाद 'आज कुंजन में व्याकुल स्याम' की अनुवृत्ति होती है। ब्रजभाषा की गीत-प्रणाली इससे भिन्न है। वहाँ अंत्यानुप्रास प्रायः प्रत्येक पंक्ति में अनुवृत्त होता है अथवा टेक को छोड़ दो-दो पंक्तियों के बाद स्वतंत्र होकर चलता है। उदाहरण के लिए मीरा का प्रसिद्ध 'मेरे तो गिरधरगोपाल दूसरो न कोई' यह लीजिए। 'कोई' के साथ 'सोई', 'खोई', 'लोई,' 'पोई,' 'बोई,' 'होई' आदि की तुक प्रत्येक पंक्ति में बिना रुके आती है। वैचित्र्य के अभाव से इसका प्रभाव मन को उबाने-सा लगता है। दूसरे प्रकार का गीत मीरा का ही

"जब से मोहिं नंदनँदन दृष्टि परयो माई।
तब से परलोक-लोक कछू न सोहाई॥"

लीजिए। आगे चलकर इसमें 'सोहे, मोहे', 'रौना, छौना', 'रेखा, बिसेखा' आदि नई तुकें आ जाती हैं। टेक की तुक यथासमय नहीं दोहराई जाती। गायक को गाने में इससे बाधा हो सकती है। खड़ी बोली के गीतों में यह ढंग प्रायः नहीं होता। अभी तक ब्रजभाषा के जिन आधुनिकों ने गीत लिखे हैं, उन्होंने संभवतः पुराने ढंग को नहीं छोड़ा। उमेशजी ने गीत-रचना का उनके सामने एक और सुन्दर मार्ग खोल दिया है।

गीतों के अतिरिक्त मुक्तकों के पद्य-बंध भी ब्रज-भाषा के लिए नई वस्तु हैं। खड़ी बोली से उन्हें अपनाने में कवि ने समान सहृदयता का परिचय दिया है। एक तो सीधे-सादे चार लाइनवाले



बंध हैं, जिनमें दूसरी चौथी लाइनों का अंत्यानुप्रास समान होता।

यथा—

"मेरे नैनन को आली,
अंजन बनि गयौ निरंजन,
औरै छबि औरै दुति तैं
दीपित दीपित यह जीवन।"

दूसरे प्रकार के बंध वे हैं, जहाँ अंतिम पंक्ति औरों से कुछ घटकर होती है। जैसे—

"हाय! मेरी वह करुनावान
पहिरि किरनन कौ मृदु परिधान,
भई चपला-सी अंतरधान,
तृसित दृग चाहत दरसन दान,
झुक्यौ चरनन मो मान।"

हिन्दी में ऐसे बंधों का प्रचलन पंतजी ने किया है। अँगरेज़ी कविता के लिए तो यह पुरानी बात है। तीसरे प्रकार के बंध और हैं, जिनमें समान तुकवाली पंक्तियों की सजावट में वैचित्र्य रहता है। उदाहरण—

"लावन्य-लोक की दुति-समान,
कल राजहंस पै राजमान,
छहरति मुख की सुखमा किसोर
किरनन मैं बोरी ओर छोर
छायौ दिसि-दिसि महँ जस-बितान,
तू ग्यान किरन जग की महान।"

इस बंध में पहली दूसरी तथा पाँचवीं छठी पंक्तियों की तुकें समान हैं, तीसरी चौथी की उनसे भिन्न हैं। यह छः पंक्तियों का बंध सुन्दर बना है। पहली और अंतिम दो-दो पंक्तियाँ बीच की पंक्तियों को दोनों ओर से बाँध लेती हैं। वैचित्र्य के साथ आंतरिक ऐक्य भी है। एक और प्रकार का भी बंध है, जिसमें तुकें बिलकुल नहीं मिलतीं; उसका भी सफल निर्वाह हुआ है। यथा—

"आज जुन्हाई जाने कैसी जगमगी
छिटकि रही रँगमगी माधवी कुञ्ज मैं?
आज छपाकर जोति प्रान मैं हाय! क्यों
छहरि रहा सुठि कनक छोहरी-सी छिपी?"

अस्तु! छंदों के साथ भावों की भी नवीनता है। हिंदी-कविता की रहस्योन्मुखी अनेक धाराओं का प्रभाव इस पुस्तक में स्पष्ट है। उदाहरण के लिए नारी-सौंदर्य में रहस्य की भावना को लीजिए। ब्रजभाषा-रूढ़ि से भिन्न कवि नये ढंग से नई उपमाओं द्वारा इस रूप का वर्णन करता है—

"कनक-किरन-सी कौन अजान
गई आकुल करि प्रान।
दूर अब वह सुर-रूप विधान,
मधुर मेरी कविता की प्रान,
रूप-माते नैनन की मंजु
सुधा निधि-सर की लहर-समान;
दीप-दुति-सी दुतिमान।"

पाठक यहाँ नारी की अस्पृश्यता, अलभ्यता तथा रहस्यरूप से उसका आवागमन खड़ी बोली की कविता की ही भाँति पावेंगे।

खड़ी बोली की कविता में प्रसादजी की चलाई करुण संगीत-धारा, जिसके अन्य प्रतिनिधि पंतजी तथा श्रीमती वर्मा हैं, यहाँ भी अपना प्रभाव डाले विना नहीं रही। उदाहरण—

"नाहिं अब सुनत मधुर वह गान,
भये चिर बधिर सरिस ये कान,
नयन जुग बने मनहु पासान,
बदन मैं बिफल बयन लै मान,
आज अथयौ दिनमान।"

और भी—

पाइ सीतल सुख-परस नवीन,
ब्रजि उठी दुखी हिये की बान;
सरस वा सौरभ मैं ह्वै छीन,
प्रान चाहत हैं होन बिलीन।

आज नैनन कौ बहि-बहि नीर,
कपोलन पै चमकत जनु हीर।"

विरह में मरणासन्न दशा का वर्णन ब्रजभाषा-कवियों ने बहुत किया है ; परन्तु उमेशजी की कविता में आधुनिकता की छाप स्पष्ट है—

"थकित जीवन तू अरे, बिसराम लै,
मौन ह्वै के सहु बिरह-दुख-भार रे,
तोहि जनमत ही बिधाता ने इहाँ
मृत्यु कौ केवल दियौ उपहार रे !
पौन साँसैं आज कैसी लै रह्यौ,
आज उडगन रोइ मुख पीरौ कियौ,
रोउ री, अब आज तू हूँ रोउ री,
बुझि रह्यौ री, बुझि रह्यौ जीवन दियौ।"

'निशा' 'किरण' 'ज्योत्स्ना' 'लहर' आदि ले-लेकर हिंदी में जैसी कविताएँ लिखी जाती हैं, वैसी ही सफल कविताएँ यहाँ भी पढ़नेवालों को मिलेंगी। जो लोग केवल ब्रजभाषा की कविता पढ़ना पसंद करते हैं, वे आधुनिक हिंदी-कविता की एक विशिष्ट धारा से यहाँ परिचित होंगे। जो केवल खड़ी बोली की कविताएँ पढ़ना चाहते हैं, वे अपने पूर्वपरिचित भावों को पाकर इन्हें भी उसी स्नेह से पढ़ेंगे। 'निशा' का एक चित्र देखिए—

"वह नील-सिखर तैं उतरी—
अनुराग मई निसि-बाला,
स्वागत कौं अवनि खड़ी लै—
सुठि साँझ-सुमन की माला।

वह नीले नभ-सागर मैं—
नीलम की मंद तरी-सी,
वह तैरति आवति देखौ,
मधु वन की सपन-परी-सी।"

ऐसे ही चाँदनी का चित्रण—

"वह सित-सरसिज-सी सेत बरन सुकुँवारी,
वह दिव्य भूति-सी नभ की ज्योति-कुमारी।
सुभ-सहज हसौंही, चल-चितवति रस-सोती,
नव-ससि-मुख की अति अमल, अनूप उज्यारी।"

आगे चलकर—

"दस-दिसि हिंडोल चढ़ि, गहि किरनन की डोरी,
वह झूलि रही, भरि पैंग ललित, रुचिकारी।"

मर्मज्ञों को पंतजी की पंक्तियाँ स्मरण हो आयेंगी।

पंतजी जिस प्रकार अनेक विशेषणों और उपमाओं से एक ही वस्तु को सजाते हैं तथा अनेक नाम-वाली वस्तुओं में रहस्यमयी नारी की आंतरिक समानता देखते हैं, वैसे ही उमेशजी। 'निशा' और 'चाँदनी' से उदाहरण दिये जा चुके हैं। 'अरुण किरण' से लीजिए—

"तुम सहज-सलोनी, सुकुँवारी,
अति रूप-उजागरि, रस-धामिनि,
सारी बसुधा की भूति रुचिर,
वर जोति रूप की तुम भामिनि।
रमनीय विभा-सी नंदन की,
अभिनव वसंत के वैभव-सी,
उरबसी सरिस नभ सरसी मैं,
तुम कनक-कली-सी हौ बिकसी।"

भूमिका-लेखक के शब्दों में—"ब्रजभाषा में नवीन शैली के छन्दों और आधुनिक ढंग के विषयों का ऐसा सुन्दर समावेश करने का सर्व-प्रथम श्रेय उमेशजी को है।" ब्रजभाषा की इस सेवा के लिए उसके प्रेमी उनके चिर-कृतज्ञ रहेंगे।"

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उमेशजी ने ब्रजभाषा-काव्य की रूढ़ियों का एकदम तिरस्कार नहीं किया है। यदि पहला खंड भारती-वंदन से प्रारंभ होता है तो दूसरा पुराने ग्रंथों की भाँति "श्रीगणेश-स्तव" से। जो ब्रजभाषा में भी आधुनिक हिन्दी-कविता के प्रचलित भावों को सहन न कर सकें, उनके लिए यह खंड विशेष रुचिकर होगा। कवित्त लिखने में कवि सिद्धहस्त है। पुरानी रूढ़ियों में सबसे संजीवन यही छन्द है। उसे अपनाकर उसने अपने विवेक का अच्छा परिचय दिया है। विषय नये न होते हुए भी काव्य-चमत्कार यहाँ पर्याप्त मात्रा में वर्तमान है। 'मुरलीधर मोहन', 'वंशी-ध्वनि' आदि कविताएँ पढ़ने पर यह स्पष्ट होगा। 'गजेंद्र-मोक्ष' पर औरों ने भी लिखा है, परन्तु भाषा के ओज और अलंकारों की उपयुक्त सजावट में उमेशजी उन्हें पीछे छोड़ आये हैं। दो कवित्त उद्धृत किये जाते हैं; 'कवित्त' छन्द अपने प्रभाव में अद्वितीय है, ज्ञात होगा।

पहला—

"बारन-उबारन के हेत कैधों आतुर ह्वै,
निकस्यौ तरंगिनी के तीर के अचल सों;
कैधों बन-बागन सों, तट के तड़ागन सों,
पुहुप-परागन सों कैधों नभ-थल सों।
कैधों कढ़्यौ सरस पुनीत पदमाकर सों,
अनिल सों कैधों कल कमल के दल सों;
प्रगट्यौ भुसुन्ड सों कि दंत ही के खंड सों कि
गरज प्रचंड सों कि नैन ही के जल सों।"

दूसरा—

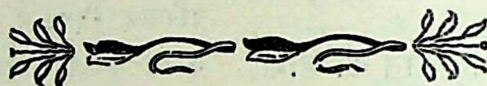
"लमकि उठ्यौ है ज्यौं ही गज के बचाइबे कौं,
तमकि उठ्यौ है नैन रंग कोकनद कौ;
झमकि उठ्यौ है झीनो अंबर अनूप, तैसे
चमकि उठ्यौ है भाल खौर मृगमद कौ,
दमकि उठ्यौ है भ्रव-भंग दामिनी ज्यौं, हिय
धमकि उठ्यौ है देखि दंतन के छद कौ।

कुमकि उठ्यौ है चन्द नन्द के गरे पै ज्यौं ही,
हमकि उठ्यौ है हरी गहिकै द्विरद कौ।"

और उद्धरण देने को जी चाहता है, परन्तु कितने भी दिये जायँ, पूरा आनन्द चमत्कारों से पूर्ण इस पुस्तक को पूर्णतया पढ़ने पर ही आवेगा। अंत में दिया हुआ उमेशजी का 'निवेदन' पूरा हो, यही मनाते हुए हम यह छोटी-सी आलोचना बन्द करते हैं—

"अति कमनीय सांत सिसु सो सुभाव मेरौ,
मोती-सों सरस, सुभ सुन्दर सरल होवे,
मेरे करतल मैं ही सुख बसुधा कौ बसै,
सुलभ सदैव मोहिं मेरौ पुन्य-फल होवे।
ग्यान-जोति कौ ही मिलै दिव्य आभरन मंजु,
गंगाजल बिंदु-सो अनिंदु प्रतिपल होवे,
मेरे सीस पै ही होवै तेरौ कृपा-छत्र, मेरी
जीवन की रेखा इन्दुलेखा-सी अमल होवे।"

रामविलास शर्मा एम्० ए०



"छाया"

"माया"

श्रीयुत "अज्ञात"

चित्रपट-प्रेमी संसार मि० बरुआ को एक सफल डायरेक्टर मानता है। 'देवदास', 'मंज़िल' और 'माया' के निर्माण में उनका कौशल देखकर दर्शकगण उनको उच्च स्थान देने में संकोच नहीं करते। वास्तव में वह एक योग्य कलाकार के रूप में समुचित आदर के पात्र हैं।

मानव भावनाओं और सामाजिक बंधनों की जटिलता का प्रदर्शन ही मि० बरुआ का ध्येय रहा है। प्रत्येक व्यक्ति समष्टि रूप में समाज का निर्माण करता है और व्यष्टि रूप में उन बंधनों को अपने प्रतिकूल पाकर तोड़ना चाहता है—यह नियम प्रत्येक जन-समुदाय में चला आया है।

'देवदास', 'मंज़िल' और 'माया' एक पथ की तीन पगडंडियाँ हैं। तीनों में प्रधान अभिनेत्री यमुना हैं, पर प्रधान अभिनेता भिन्न हैं। शायद मि० बरुआ यह देखना चाहते हों कि यमुना का जोड़ किसके साथ ठीक बैठता है। यदि यही बात है तो मेरी स्पष्ट राय यह ही होगी कि केवल आप स्वयं यमुना के साथ 'मंज़िल'-जैसी चीज़ पैदा कर सकेंगे—अन्य कोई नहीं।

'देवदास' में दुःखान्त घटनाएँ दर्शकों की आँखों में बरबस आँसू खींच लाती हैं। लक्ष्मी का कृपा-पात्र युवक निर्धन कन्या से विवाह करने में असमर्थ है। अतः देवदास पारू की क्षीण स्मृति अपने हृदय-पटल पर अंकित कर अपना समस्त जीवन सुख-प्राप्ति की आशा में नष्ट कर देता है। देखकर हमें समाज पर रोष आता है—हम घृणा से आँखें फेर लेते हैं।

'मंज़िल' असाधारण सुन्दर हुआ है। दुखपूर्ण घटनाएँ दर्शकों के हृदय में पात्र-पात्रियों के प्रति समवेदना और दया उत्पन्न कर देती हैं। हम देखते हैं कि हमारी छोटी-छोटी कमज़ोरियाँ हमारे जीवन की सफलता-असफलता पर कितना अधिकार रखती हैं! दुख—आरंभ से अन्त तक तीव्र ही रहा है, अतः दर्शकगण दुख की खोज करते हैं, पर उन्हें सफलता नहीं मिलती। जीवन वास्तव में दुखमय है—पर उस मनुष्य को अवश्य दुख नहीं है, जो महीक के समान लापर्वाह और शान्त है। क्या हम इससे बड़ी से बड़ी शिक्षा नहीं पाते।

'माया' का रूप दूसरा ही है। यद्यपि हम ऊपर ही ऊपर एक सुखपूर्ण आवरण का अनुभव करते हैं—पर यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो पता चलेगा कि माया के हृदय में आरंभ से अन्त तक दुख की एक स्पष्ट रेखा व्याप्त है। अन्त पूर्ण सुखान्त है। सामाजिक जीवन का चित्रण और मनबहलाव का एक अच्छा साधन है।

प्रथम दो चित्रपट ('देवदास' और 'मंज़िल') मन बहलाने या समय काटने में सहायक नहीं होते। वे दर्शकों के समक्ष मानव-जीवन की समस्याएँ प्रकट करते हैं। उन समस्याओं को सुलझाने में सिर में दर्द होने लगना स्वाभाविक है। हम



अभिनय-गृह से एक हृदयस्थ पीड़ा साथ लेकर घर लौटते हैं और वह रात करवटें बदलते ही बीतती है । माया में हम इस प्रकार के प्रभाव का अनुभव नहीं करते । साधारण सुख-दुख की कथा हमें प्रभावित नहीं करती ।

'माया' का कथानक घटनात्मक है । घटनाओं का क्रम कथा को बढ़ाकर आगे ले जाता हुआ साफ़ दिखाई देता है । माया एक सुन्दर कन्या है । माता-पिता की छत्र-छाया ऊपर से उठ जाने के कारण वह अनाथ हो गई । उसकी जातीय सखी शान्ता के यहाँ उसको आश्रय मिला । यद्यपि माया रिश्ते में शान्ता की बहन थी; किन्तु वहाँ उसको बिलकुल एक दासी के समान रहकर काम-काज करना पड़ता था ।

प्रताप धनी पिता का पुत्र था । पढ़ा-लिखा सुन्दर-सा युवक था । शान्ता से उसका विवाह तै हो चुका था । अपनी पढ़ाई जारी रखने के लिए प्रताप कलकत्ते आया । शान्ता के घर रहने के लिए उसको आज्ञा मिली थी । यहीं पर प्रताप ने माया को पाया ।

प्रताप गानविद्या में निपुण था । उसका गला सुरीला था । माया को गाने का चाव था, पर उसको गाना नहीं आता था । इसी बात को लेकर दोनों में अनजाने ही प्रेम-गान का प्रारंभ हुआ । शान्ता और उसकी मा अपने ही घर में यह सब कैसे देख सकती थीं । शान्ता नये विचारों की युवती थी । अँगरेज़ी चाल-ढाल, अमेचर थियेटरों में नाट्यकला का अभिनय उसके लिए आवश्यक था, पर प्रताप को यह सब पसन्द नहीं था ।

शान्ता और उसकी मा कुछ दिनों के लिए बाहर गईं । रह गये माया और प्रताप । दोनों में झटपट विना कुछ समझे-बूझे, ईश्वर को साक्षी बनाकर विवाह हो गया । कुछ दिनों पश्चात् प्रताप के पिता बीमार हुए—प्रताप उनके पास चला आया । प्रताप और माया के विवाह का अभी किसी को भी पता नहीं चला था । शान्ता के डाह ने पति और पत्नी को अलग पाकर पूरी ... ली । उसने यह भी प्रबंध कर दिया कि ... और प्रताप एक दूसरे के पत्र न पा सकें ।

प्रताप के पिता अपनी मृत्यु से पहले ... का विवाह कर देना आवश्यक समझते थे, ... प्रताप किस प्रकार कहे कि मैं विवाह कर ... हूँ । कुछ दिनों तक तो वह टालता रहा, ... अन्त में उसको सब कुछ साफ़-साफ़ कहना पड़ा । किन्तु इसके पहले वृद्ध पिता शान्ता ... लिख चुके थे कि माया को घर से निकाल ... किया जाय । प्रताप को ठेस लगी—उसके ... की तो मृत्यु ही हो गई ।

माया एक बार फिर अनाथ हो गई । ... में प्रताप के प्यार का दीपक उसके जीवन में ... टिमटिमाया था, किन्तु वह भी अब निराशा ... झोंके में बुझ गया । उसको बाहर निकलना ... प्रताप के कारण उसको अपना आश्रय भी ... पड़ा । अब की बार उसको एक अंधे भिखारी ... प्यार मिला । वहाँ पर उसकी आशा ... अभिलाषाओं का सूर्य उदय हुआ । ... पलकर उसका पुत्र धीरे-धीरे बड़ा होने लगा ।

उधर प्रताप ने कोना-कोना छान डाला । ... उसे माया का पता न लगा । उसने खोज ... में कुछ भी कोर-कसर नहीं रक्खी । उसका ... सराहनीय था । उसे माया नहीं मिली और ... सुख भी नहीं मिला । चित्रपट में उसका ... वि ोग बड़े ही करुणापूर्ण दृश्यों द्वारा दिखाया ... गया है, किन्तु यहाँ पर यह भली भाँति ... में नहीं आता कि प्रताप को उसके पुत्र ... होने की ख़बर कैसे मिली । यदि पुत्र-जन्म ... सूचना उसको मिल सकती है तो फिर माया ... विषय में उसे पूरा हाल ज्ञात हो जाना चाहिए ... अस्तु ।

प्रताप अपने हृदय को शीतल करने के लिए ... सैकड़ों बालकों को खिलौने और मिठाइयाँ ... करता—उस समय उसे इसकी क्या ख़बर ...

कि उसका ही पुत्र कहीं गली में पड़े हुए जूठे केले को चुराकर खाने के अपराध में ख़ूब पीटा जाता होगा। माताओं और पिताओं के लिए यह दृश्य—यह विषमता कितनी हृदयविदारक हो जाती है।

किन्तु इससे भी अधिक करुण दृश्य सम्मुख आने को बाक़ी है। ६-७ वर्षों की कठोर तपस्या के पश्चात्; बड़े-बड़े अरमानों, सुखद इच्छाओं और सफलता की आशा से पूर्ण मानसिक भावनाओं को लेकर माया अपने पुत्र के साथ प्रताप की कोठी पर पहुँची। किंतु शक्तिशाली धनिकों के द्वार भला कभी ग़रीब और दुखियों के लिए खुले हैं? माया द्वार पर से—स्वयं अपने ही उस वैभवपूर्ण गृह से—निराशा की ठोकर मारकर लौटा दी गई। नौकरों का आज्ञा-पालन-धर्म उसी समय के लिए सुरक्षित था। प्रताप को पता भी न चल सका कि उसके सुख और सर्वस्व उसके द्वार पर से भगा दिये गये।

कुछ दिनों बाद यह जानकर कि प्रताप को एक बच्चे की आवश्यकता है—एक दुष्ट माया के पुत्र को चुराकर प्रताप के हाथ बेच आया। मनुष्यों



में धन-लोलुपता की प्रवृत्ति ने प्रताप को अपने पुत्र से मिला दिया। पुत्र के पाने से प्रताप का अधिकांश सुख लौट आया। किन्तु यहाँ पर यह समझ में नहीं आता कि प्रताप अपने पुत्र द्वारा माया का पता लगाने की चेष्टा क्यों नहीं करता ? यदि वह पूरा हाल जानने में असमर्थ रहता है, तब भी इस स्थान पर कुछ चित्र उस असफलता को प्रकट करने के लिए देना आवश्यक था।

उधर माया ने अपने बालक को चुरानेवाले शराबी दुष्ट को पकड़ लिया। छीना-झपटी में शराबी गिर पड़ा—बोतल के गिरने से उसे चोट आई और उसकी मृत्यु हो गई। यहाँ पर शीशे के लगने से तत्क्षण मृत्यु हो जाना कुछ अस्वाभाविक-सा हो जाता है। दूसरे हत्या का पूरा चित्र भी दर्शकों को नहीं दिखाया जाता। यहाँ पर आवश्यकता से अधिक शीघ्रता की गई, जो कि दर्शकों को एकदम खटक जाती है।

माया बराबर अपने पुत्र के लिए चिल्लाती रही। बालक का खोजना उसके लिए हत्या करने के अपराध से अधिक चिन्ता का विषय था। वह न्यायालय में उपस्थित की गई—वहाँ भी उसने पागलों की भाँति अपने पुत्र के लिए चिल्लाना बन्द न किया। संसार की निगाह में वह दोषी थी, और न्यायालय भी तो संसार ही का एक कोना है। किन्तु सौभाग्यवश प्रताप वहाँ पहुँच गया। उसने अपनी पत्नी को पहचाना और अपने चारों ओर देखा। वह बैरिस्टर, जो कि अपनी योग्यता से बड़े से बड़े अपराधियों को बचा लेता था, भला अब अपनी ही स्त्री को अपराधी कैसे देख सकता था ?

माया छूट गई। चित्रपट में यहाँ पर भी आवश्यकता से अधिक शीघ्रता की गई है। न्यायालय का अंश-मात्र कार्यक्रम ही दिखाने के बजाय केवल समाचार-पत्रों द्वारा ही माया के मुक्त होने की सूचना दे दी गई है। दर्शकों की इच्छा इस स्थान पर, प्रताप की उस बैरिस्टरी की योग्यता देखने की होती है, जिसने कि [illegible] पत्नी को सज़ा से बचा लिया।

दुःखान्त होता है। माया और प्रताप [illegible] प्रिय पुत्र के साथ अपना नवीन तथा सुखी [illegible] प्रारंभ करते हैं। शान्ता के विषय में कुछ [illegible] की इच्छा शेष रह जाती है—पता नहीं, [illegible] क्या हुआ ?

यद्यपि कथानक स्वाभाविक हुआ है, किन्तु [illegible] प्रभावोत्पादक नहीं बन पड़ा। दर्शकों के [illegible] चित्रों के आगे-आगे चलते हैं। यह बात हमें [illegible] में तनिक भी नहीं मिलती। दर्शकगण [illegible] होनेवाली घटनाओं का कुछ भी आभास [illegible] पाते, किन्तु यहाँ चित्रपट दर्शकों में उत्सुकता [illegible] वृद्धि नहीं करता।

पात्र-पात्री—

प्रताप एक सुन्दर युवक था। विद्यार्थियों [illegible] समान उसमें उच्छृंखलता और विनोदप्रियता [illegible] मात्रा अधिक थी। वह एक धनी पिता का पुत्र [illegible] और एक सुखी संसार की कल्पना में रत [illegible] था। वह नये ज़माने का प्रेमी था, पर [illegible] शान्ता का सबके सम्मुख नाचना पसन्द [illegible] था—उसका हृदय सरलता की खोज करता [illegible] हृदय में द्वेष-भाव धारण करनेवाली शान्ता [illegible] प्रेम करना उसके लिए असंभव था।

प्रताप हर दशा में स्पष्टवादी (Frank) [illegible] उसने कभी कुछ नहीं छिपाया। माया पर [illegible] अपना प्रेम स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया—[illegible] पिता से भी उसने अपना और माया का [illegible] हो जाने के विषय में सब कुछ खोलकर [illegible] दिया। माया पर शान्ता का अत्याचार [illegible] देखा नहीं गया। अतः प्रताप ने साहस [illegible] माया से विवाह कर लिया। उसने आगा-[illegible] कुछ नहीं सोचा—शुभस्य शीघ्रम्—माया [illegible] सरलता ने उसके मूक सौन्दर्य से अधिक [illegible] पर प्रभाव डाला था।

एक नवयुवक प्रेमी की दृष्टि से प्रताप [illegible]

पति-रूप में वह उच्चतर प्रतीत होता है, किन्तु एक पिता की हैसियत से वह आदर्श हो जाता है। पुत्र-स्नेह ने उसको बालकों का प्रेमी बना दिया था। मन बहलाने के लिए वह अनाथालय के बालकों को ही खिलाया करता। उनको सुन्दर से सुन्दर खिलौने देता—तरह-तरह की मिठाइयों की व्यवस्था करता और उनके साथ हँसता-खेलता।

अंत में माया और अपने पुत्र को प्राप्त करके ही प्रताप को मानसिक व शारीरिक चैन मिला। उसके सुखी संसार का स्वप्न सत्य हुआ।

माया—माया ने बचपन में सुख के दिन देखे थे, किन्तु माता-पिता का देहान्त हो जाने पर उसको शान्ता के टुकड़ों पर निर्वाह करना पड़ा। यद्यपि उसमें स्वाभिमान था—आत्मसम्मान की झलक थी, पर वह शान्ता को छोड़कर—निराश्रय होकर—कहीं जा भी तो नहीं सकती थी। वह परिस्थितियों से विवश थी। शान्ता के यहाँ वह सब प्रकार के कष्ट सहती—पर समय ने उसको सहन-शील बना दिया था। वह नम्र हो गई थी। जैसे-तैसे उसे दिन काटने थे।

शान्ता के घर, माया के जीवन में हम दुख ही दुख पाते हैं—ऐसे समय में प्रताप की सहानुभूति पाना उसके लिए अमृतवर्षा-सा सुखद हुआ। प्रताप का गाना—'गाये जा, गाये जा, बेक़रार दिल गाये जा' उसके लिए सांत्वनापूर्ण प्रेम का सन्देश था। ऐसी दशा में उसका प्रताप के प्रति स्नेह हो जाना स्वाभाविक ही था।

प्रताप से विवाह हो जाने पर भी माया को सुख न मिला। वह शान्ता के यहाँ से निकाल दी गई—एक अंधे भिखारी ने उसे अपनी कुटी में स्थान दिया। वहाँ उसके कई वर्ष बीते। अपने नव-जात पुत्र की सेवा में उसको अपने चारों ओर का दूषित और निर्धन वातावरण तनिक भी न खटका।

बदमाशों की आँखें माया पर लगीं। पर वह घबराई नहीं—न उसने कभी इस बात की शिकायत अंधे भिखारी से ही की। उसकी सहनशीलता और धीरज सराहनीय है। अपने पुत्र के लिए वह सब कुछ सहने को तैयार थी। धनवानों से उसे घृणा हो गई थी, अतः उसने प्रताप के पास जाना उचित नहीं समझा। दूसरे उसे यह आशा भी न थी कि प्रताप उसको स्वीकार ही कर लेगा।

माया का अपने पुत्र पर अगाध प्रेम था। अपने पुत्र की प्रत्येक इच्छा की पूर्ति करना और उसकी पूरी सँभाल रखना वह अपना सबसे प्रिय कर्तव्य समझती थी। उसी के सुख के लिए उसने प्रताप के पास जाने का निर्णय किया, किन्तु नौकरों की कृपा ने उसे प्रताप तक पहुँचने ही न दिया।

माया ने निराश होकर भी घबराना नहीं सीखा था। जब उसका बालक खो गया, तब वास्तव में उसे बड़ा दुख हुआ। पति के छूटने के बाद अब उसका एकमात्र आधार भी न-जाने कहाँ विलीन हो गया। उसने चोर को पकड़ा। हत्या करने का उसका विचार नहीं था, किन्तु अचानक शीशा लग जाने के कारण वह धूर्त्त मर गया। माया पर हत्या करने का अभियोग लगा, पर उसको इन सब बातों की कुछ भी ख़बर नहीं थी—वह तो पागलों की भाँति लगातार अपने पुत्र के लिए चिल्लाती रही।

प्रताप के मिलने पर उसके सुख के दिन लौटे। उसको इस सुखप्राप्ति के लिए कितने कष्ट उठाने पड़े, यह अनुमान करना कठिन है। उसके जीवन में दुख की तीव्र वेदना, जो इस पार से उस पार तक व्याप्त है, हमें बरबस उसकी ओर सहानुभूति-पूर्ण नेत्रों से देखने का आदेश करती है। हमें यह जानकर सुख तथा संतोष होता है कि अंत में उसे पूर्ण सुख प्राप्त हुआ।

शान्ता—शान्ता का चरित्र आधुनिक काल की नये विचारों वाली (Advanced) कन्याओं का नमूना है। वह नाचना अच्छा जानती थी और सबके सम्मुख नाट्यकला का प्रदर्शन उसके लिए अनुचित नहीं था। मित्रों की वाह-

चाही और उनकी शाबाशी लूटने का उसे चाव था। उसका स्वभाव बड़ा ही उग्र था। वह माया को प्रत्येक बात पर झिड़कियाँ सुनाया करती। वह अपने को अन्य सबसे बहुत ऊँचा समझती थी—यहाँ तक कि अपनी मा से भी कुछ कहते हुए वह नहीं डरती थी। प्रताप—उसके मित्र और भावी पति—को चपत मार देना उसकी हृदय-कालिमा और निडर स्वभाव का परिचायक है।

माया और प्रताप की बातें; उनका साथ-साथ बैठना शान्ता को अखर गया। यह स्वाभाविक ही था। कोई भी साधारण स्त्री यह सब नहीं देख सकती थी। उसका मन न तो शान्त रह सकता था और न किसी पर दया कर सकता था। कटु वचन उसके मुँह से बरसते थे, जोकि उसके चरित्र को और भी दूषित कर देते हैं। वह माया और प्रताप के पत्र-व्यवहार के बीच दीवार-सी आकर खड़ी हो गई, जिससे कि प्रताप पर असाधारण विपत्तियों के बादल घिर आये। उसने माया को निराश्रय बनाकर घर से निकाल दिया—पता नहीं, उस समय उसका हृदय कितना कठोर हो गया था?

अभिनय—

यमुना चित्रपट की प्राण हैं। उनके अभिनय में हम असल और नक़ल का भेद भूल जाते हैं। उनका स्वाभाविक अभिनय वास्तव में बड़ा ही उच्च है।

यमुना को दुःखपूर्ण अभिनय करने में असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। इसका दिग्दर्शन हमको 'देवदास' और 'मंज़िल' में भली भाँति मिलता है। माया यद्यपि सुखान्त है और उसमें मनोरंजन की मात्रा भी यथेष्ट है, पर माया के जीवन में विषाद की रेखा यमुना के अभिनय द्वारा काफ़ी स्पष्ट और हृदय-ग्राही हो गई है। समयानुकूल तथा परिस्थितियों के अनुसार ही पटुता से मुद्रा-धारण कर लेना आपकी विशेषता है। अतः हम आपको, आपके आदर्श और चरित्र-पूर्ण स्वाभाविक अभिनय के लिए बधाई दिये बिना नहीं रह सकते।

पहाड़ी सान्याल ने अपना पार्ट बड़ी कुशलता से निभाया है। दर्शकों को हँसा देनेवाली बातें करके भी वे स्वयं गंभीर रह सकते हैं—यह आपकी विशेषता है। आपके अभिनय में है स्वाभाविकता और कुछ आकर्षण। आपके अभिनय में यह आकर्षण शायद आपके व्यक्तित्व (Personality) के कारण हो। और आपका यह ऊँचा व्यक्तित्व ही आपके अभिनय को उच्च बनाये हुए है। अभिनय से अधिक आपको गानविद्या में सफलता प्राप्त हुई है। कहना चाहिए कि आपके गाने 'बहुत कुछ' होता है, तभी तो वे हम सबके हृदय-हार बने हुए हैं।

हमें अज़ूरी के विषय में बहुत कुछ कहना है। यह तो हम मानते हैं कि शान्ता का पार्ट उन्होंने बड़ी योग्यता से निभाया है, किन्तु हम उनके प्रयत्न को पूर्ण रूप से सफल मानने को तैयार नहीं! शान्ता के चरित्र को उसके हाव-भाव और उसकी बातों द्वारा प्रकट करना काफ़ी कठिन था—यह सत्य है।



अज़ूरी के विषय में सबसे पहली बात तो यह है कि उनका अभिनय प्रभावशाली नहीं है। दर्शक देखते हैं कि साफ़ नक़ल की जा रही है। जहाँ दर्शकों को अपने सम्मुख सत्य का ख़्याल न हो, वहाँ अभिनय किसी काम का नहीं रह जाता। दूसरे आपके नाच में जो थोड़ा-बहुत भद्दापन आ गया है, वह हेय है। हम आपके नाच की तारीफ़ करते हैं। आपका सितारवाला नाच बड़ा ही चित्ताकर्षक और कलापूर्ण हुआ है, पर उसमें कहीं-कहीं पर जो नग्नता आ गई है, वह हमारी राय में आपकी कला को दूषित कर देगी। इस विषय में डायरेक्टर को भी कुछ ध्यान रखना चाहिए था। न्यूथियेटर्स के चित्रपटों में आदर्श-वादिता की रक्षा की जाती है—यही इसकी विशेषता है—पर शायद अब यह अपने उच्च मार्ग को छोड़कर गली-कूचों में आनेवाला है। आशा है, अब आगे वह हमारे सबके हृदय में वही पुराना 'देवदास' और 'मंज़िल'वाला स्थान बनाये रखने की चेष्टा करेगा।

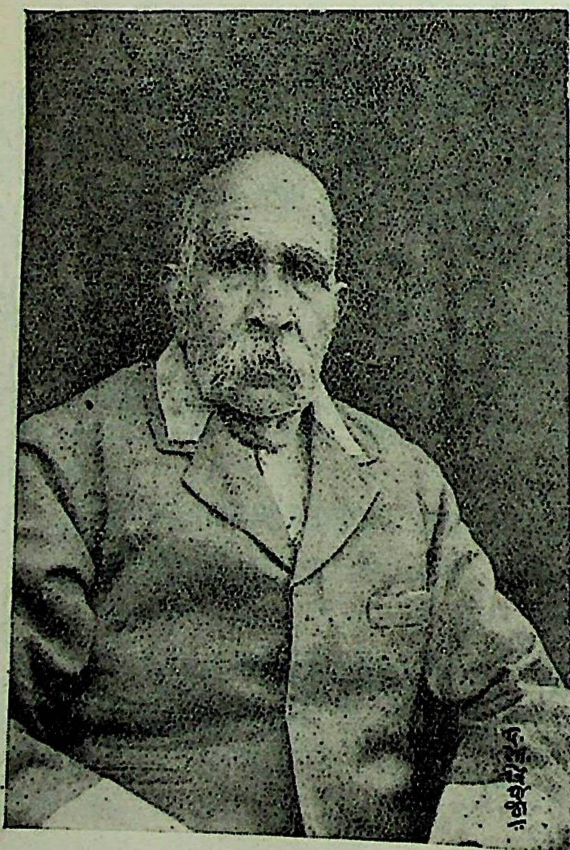
के० सी० दे का अभिनय हम बहुत सुन्दर मानते हैं। 'भाग्यचक्र' में हमको उनका सर्वोत्तम रूप दिखाई देता है। यहाँ पर भी उनका जो थोड़ा बहुत पार्ट है, वह प्रभावशाली और स्वाभाविक हुआ है। यह दो गुण तो आपके स्वयं के हैं।

'माया' में सुन्दर गानों की कमी अवश्य खटक जाती है। 'देवदास' के सुन्दर गाने जनता को बहुत पसन्द आये। 'मंज़िल' में तो गाने का मौक़ा ही नहीं था। 'माया' में सिवा 'गाये जा, गाये जा' के अतिरिक्त कोई सुन्दर चीज़ ही नहीं है। वैसे तो चंडूख़ानेवाला 'साक़ी पिलाये जा मेरे साक़ी पिलाये जा' मन बहलाने के लिए बहुत है।



१—आचार्य द्विवेदीजी का स्वास्थ्य

इधर कुछ दिनों से द्विवेदीजी का स्वास्थ्य बहुत ही गिर गया था। यहाँ तक कि [illegible] विषम ज्वर हो गया था, हिचकियों का ज़ोर [illegible] ऊर्ध्वश्वास का वेग भी अन्त को बढ़ चला [illegible] आपके जीवन की आशा बहुत कम रह गई थी। [illegible] परमेश्वर की कृपा और रानीकटरा-लखनऊ-नि[illegible] हमारे मित्र पं० सुरेन्द्रनाथ वाजपेयी वैद्यरा[illegible]



आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी
(सन् १९३४ का चित्र)



पं० सुरेन्द्रनाथजी वाजपेयी
वैद्यराज—लखनऊ

चिकित्सा से अब आपका स्वास्थ्य बहुत [illegible] ठीक हो गया है। जिस समय वाजपेयीजी [illegible] पुर पहुँचे, उस समय ४-५ वैद्य और [illegible]



एक डाक्टर साहब द्विवेदीजी की चिकित्सा कर रहे थे; पर दशा बदतर ही होती जा रही थी। डाक्टर ने एनीमा का प्रयोग किया था, जिससे द्विवेदीजी को बेहद दस्त आ गये थे और वे बंद ही न होते थे। पर कुशल वैद्य वाजपेयीजी ने जाते ही सब ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और उसका परिणाम यह हुआ कि अब द्विवेदीजी स्वस्थ हैं। यहाँ तक कि आपने अपने हाथ से लिखकर उक्त वाजपेयीजी को कृतज्ञता-सूचक पत्र भेजा है। हमें जहाँ पूज्य द्विवेदीजी के नीरोग होने का अपार हर्ष है, वहाँ मित्रवर वाजपेयीजी की सफलता पर गर्व है। ईश्वर द्विवेदीजी को चिरायु और वाजपेयीजी को उत्तरोत्तर यशस्वी करें, यही हमारी विनम्र प्रार्थना है।

× × ×

२—प्रेमचन्दजी का स्मारक

बा० प्रेमचन्दजी के स्वर्गवास से हिन्दी-संसार का एक रत्न और भारत का एक सच्चा मनुष्य नहीं रहा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। बाबूजी एक प्रवीण साहित्यिक ही नहीं, एक आदर्श पुरुष भी थे। वह हृदय में कपट रखना जानते ही नहीं थे। इन पंक्तियों के लेखक को वर्षों साथ रहकर उन्हें पहचानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, और इसी आधार पर वह कह सकता है कि बाबूजी के समान "मनुष्य" इस ज़माने में विरले ही होते हैं। उनके वियोग का आघात अवश्य ही हिन्दी-संसार के लिए असह्य है। पर काल से किसी का वश नहीं चलता। हमें विवश होकर इष्ट से इष्ट का वियोग बरदाश्त करना पड़ता है। बाबूजी समाज, देश और मातृ-भाषा के प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर गये; अब हमें उनके प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। उनके जीवन में हमने उनके प्रति कितना कर्त्तव्य-पालन किया, इस पर पश्चात्ताप या विवाद करना भी व्यर्थ ही है। श्रीयुत जैनेन्द्रजी ने बाबूजी के स्मारक के बारे में एक अपील निकाली है। बाबूजी का स्मारक अवश्य स्थापित करना चाहिए। इस सम्बन्ध में दो रायें नहीं हो सकतीं। पर उस स्मारक का रूप क्या हो, यह अवश्य विचारणीय है। नागरी-प्रचारिणी सभा काशी और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को इस स्मारक की व्यवस्था में अग्रसर होना चाहिए। आदरणीया शिवरानी देवीजी (प्रेमचन्द-जी की धर्मपत्नी) ने लोगों की दी हुई व्यक्तिगत आर्थिक सहायता को अस्वीकार करके जिस उदात्त भाव का परिचय दिया है, वह प्रेमचन्द की धर्म-पत्नी के अनुरूप ही है। हमारी राय है कि प्रेमचन्दजी का एक स्मारक तो "हंस" पत्र है। इसके लिए वह अन्तिम क्षण तक उद्योग करते रहे हैं। इस-लिए सर्वसाधारण जनता तो हंस की ग्राहकश्रेणी में नाम लिखाकर उनके स्मारक में सहायता पहुँचा सकती है। दूसरा स्मारक एक प्रकाशन-संस्था का खोला जाना ठीक होगा। उससे प्रेमचन्दजी की ग्रंथावली के अलावा सभी प्रसिद्ध हिन्दी-लेखकों की ग्रंथावलियाँ (सस्ते संस्करण के रूप में) निकाली जायँ। यह एक लिमिटेड संस्था हो। इसके हिस्से देश के धनी-मानी सज्जन ख़रीदें। धन का परिमाण एक लाख रुपये से कम न हो। स्मारक के और भी रूप हो सकते हैं। इसका निर्णय शीघ्र ही हो जाना चाहिए।

× × ×

३—अमेरिका का चुनाव

अन्तरराष्ट्रीय जगत् में पिछले मास दो घट-नाएँ उल्लेखनीय हैं। एक तो स्पेन में साम्य-वादी गवर्नमेंट की पराजय और दूसरे अमे-रिका में डेमोक्रेटिक दल की विजय। अगले महीने में स्पेन की घटना की प्रतिक्रियारूप योरप में अगर कुछ विशेष चहल-पहल रहे तो आश्चर्य न होना चाहिए। ब्रिटेन अपेक्षतः शान्त रहा। जर्मनी उपनिवेशों का स्वप्न देख रहा है। टर्की राष्ट्रीय



निर्माण के रचनात्मक कार्य में लगा है। सारी दुनिया सशस्त्र हो रही है।

४ नवम्बर को अमेरिका के प्रेसीडेन्ट का चुनाव था। निर्वाचन के अवसर पर भारत-जैसे देश में भी काफ़ी चहल-पहल मच जाती है। पाश्चात्य देशों की बात ही क्या। ऐसे अवसरों पर उनके यहाँ एक दफ़ा सम्पूर्ण राष्ट्र का अंग-अंग फड़क उठता है। अक्तूबर के मास में अमेरिका में इसलिए घोर राजनीतिक उद्योगिता रही।

प्रत्येक राजनीतिक दल ने अपने-अपने उम्मीदवार खड़े किये थे। कम्युनिस्ट-दल की ओर से अर्ल ब्राउडर (Browder) खड़े हुए थे, साम्यवादी दल की तरफ़ से नारमन टामस, संयुक्त दल (Unionists) की ओर से विलियम लेमके थे, रिपब्लिकनों (Republican) की तरफ़ से लैंडन (Landon) और पिछली शासन-मंडली के प्रमुख प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट डेमोक्रेटिक दल के उम्मीदवार थे।

लड़ाई वास्तव में डेमोक्रेटिक और रिपब्लिकन दल में थी। संयुक्त दल का उतना ज़ोर नहीं था। साम्यवादियों का अमेरिका में बहुत कम प्रभाव है और कम्यूनिस्ट तो बहुत ही कमज़ोर हैं। रूज़वेल्ट को २,५६,३६,२७७ वोट मिले, लैंडन को १,५८,३६,६०६, लेमकी को ७,४४,५७३, नारमन टामस को ६६,८६५, ब्राउडर को ५७,२४३। सेनेट में स्वतंत्र दल की संख्या १, उन्नतिवादियों की १ और किसान और मज़दूर-दलवालों की १ है। रिपब्लिकन १७ हैं और डेमोक्रेट ७५। हाउस ऑफ़् रेप्रेज़ंटेटिव में ३३४ डेमोक्रेट हैं, अर्थात् उनकी बहुत बड़ी बहुसंख्या है। डेमोक्रेट दल का सिद्धान्त यह है कि श्रम और पूँजी में समझौता होना चाहिए। इन दोनों वर्गों के पारस्परिक सम्बन्ध में नई बात पैदा कराई जाय। इनका झुकाव अधिक श्रम के पक्ष में है; किन्तु ये लोग समाज के हर एक वर्ग के साथ न्याय का व्यवहार करना चाहते हैं। रिपब्लिकन दल बड़े-बड़े व्यवसायियों का दल है। यह पार्टी पूँजीवादियों की है, जो अपनी नीति वही रखना चाहती है, जो दुनिया भर के पूँजीवादियों की होती है।

डेमोक्रेट और रिपब्लिकन दल दोनों भिन्न दल ज़रूर हैं, लेकिन दोनों में कुछ बातें समान भी हैं। दोनों ही इस पक्ष में हैं कि यदि योरप में युद्ध छिड़े तो अमेरिका उससे दूर रहे। दोनों ही जनसाधारण को आर्थिक संकट से बचाना चाहते हैं। दोनों किसान-मज़दूरों का संगठन पसन्द करते हैं। दोनों ही व्यापार और व्यवसाय की उन्नति चाहते हैं। रिपब्लिक दल के कुछ एतराज़ रिपब्लिकन नेताओं के भाषण से नीचे दिये जाते हैं—

"गवर्नमेंट को चाहिए कि अपनी आमदनी ज़्यादातर प्रत्यक्ष कर लगाकर निकाले और मुनाफ़े से कर वसूल करे।"

"डेमोक्रेटों ने अप्रत्यक्ष कर को इतना बढ़ाया कि पिछले तीन वर्ष के शासन में २१ प्रति सप्ताह पानेवालों का टैक्स पहले से बढ़ गया है।"

"रोटी में बहुत कुछ टैक्स गुँधा है और कपड़ों में बहुत ज़्यादा कर बुना है।"

(A great deal of Revenue was baked into a loaf of Bread, and woven into a suit of clothes.)

संयुक्त दल के प्रचारक मि० स्मिथ ने एक भाषण में कहा था—

"रूज़वेल्ट—यह बहुत कमज़ोर दिल के चित्त राजनीतिज्ञ हैं, जिन्हें लाल झंडेवाले अपने काम के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं। मैं तो बेहतर यह समझूँगा कि लोग नारमन टामस को प्रेसीडेंट बना दें। शासन की ज़िम्मेदारी उन पर आयेगी, उनकी गरमी ठंडी पड़ जायगी।"

"जान लेविस—नहीं यह लोगों की निजी सम्पत्ति को नष्ट कर देना चाहते हैं। अगर ...



विजय होगी तो ये लोग इस देश के सम्पूर्ण संगठन को सामूहिक रूप दे देंगे। मैं तो पूँजीवाद में विश्वास करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि अमेरिका का बच्चा-बच्चा करोड़पती हो जाय।"

"लैंडन (प्रजातंत्र-दल)—उनके शरीर में तो हड्डी ही नहीं। बड़े-बड़े पूँजीपतियों के हाथ में ये कठपुतली की तरह रहेंगे।"

"हम सामूहिक सम्पत्ति के ख़िलाफ़ हैं। हम तो सामूहिक सम्पत्ति किसी भी बात में नहीं चाहते। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि पानी का नल भी म्युनिसिपैलटी के अधिकार में न रक्खा जाय। पुलिस का मुहकमा—आग बुझाने का संगठन, ये अगर सब-के-सब व्यक्तियों पर छोड़ दिये जायँ तो बेहतर तरीक़े से चलेंगे।"

मज़दूरों के सम्बन्ध में संयुक्त दल के उम्मीदवार मि० विलियम लेमकी ने कहा है—

"मैं सम्पूर्ण रूप से इस बात के पक्ष में हूँ कि किसानों और मज़दूरों को संयुक्त रूप से अपने स्वत्वों के लिए सौदा करने का अधिकार दिया जाना चाहिए। अब ज़माना व्यक्तिगत कार्य करने का नहीं रहा। अब वक्त यह है कि लोग संगठित हों और सामूहिक रूप से काम करें। जो इस मार्ग को न पकड़ेंगे नष्ट हो जायँगे।"

"हम रूज़वेल्ट और लैंडन, दोनों को प्रेसीडेण्ट बनाना नहीं चाहते।....मैं रूज़वेल्ट को बौखलाया हुआ केरन्सकी समझता हूँ। सच बात तो यह है कि मि० रूज़वेल्ट यह नहीं समझ रहे हैं कि क्या हो रहा है, और यह कहाँ जा रहे हैं....और लैंडन तो विगत सभ्यता की एक हलकी छाया-मात्र हैं। जनता वास्तविक नेता की तलाश में है।"

रूज़वेल्ट ने कहा था—

"हम ऐसे राजनीतिक अहदनामे नहीं करना चाहते, जिनके कारण हमें वैदेशिक युद्ध में फँस जाने की सम्भावना हो। हम दुनिया से अलग रहना नहीं चाहते, लेकिन युद्ध से ज़रूर अलग रहना चाहते हैं। हम किसी भी क़ौम पर अधिकार नहीं जमाना चाहते। हम अपने राज का भौमिक विस्तार नहीं चाहते। हम साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ हैं। हम यह चाहते हैं कि संसार में सैनिक प्रतिद्वन्द्विता कम हो और हम प्रजासत्ता, स्वतंत्रता और शान्ति के माननेवाले हैं।" (President Roosevelt) विजय रूज़वेल्ट की हुई और इतनी शानदार कि शायद बहुत दिनों से किसी भी अमेरिकन प्रेसीडेण्ट ने इतनी शानदार कामयाबी नहीं पाई। अमेरिका इस समय पूँजी और श्रम के बीच मध्यमार्ग निकालने के प्रयत्न में है। रूज़वेल्ट की विजय इसी का प्रमाण है।

"हमें एक और चिन्ता है। हम व्यावसायिक संघर्ष को रोकने में असमर्थ हो रहे हैं। हम पूँजी और श्रम का प्रश्न न्यायालयों के ज़रिये हल करने में अभी तक नाकामयाब रहे हैं। अमेरिका के लोग कम घण्टे ज़्यादा मज़दूरी, या सामूहिक रूप से सौदा करने के विरुद्ध नहीं हैं। हम लोगों का विश्वास है कि दरिद्रता और सम्पन्नता के बीच में कम से कम फ़ासला रहना चाहिए। लेकिन अमेरिका-निवासियों के वास्ते सबसे ज़्यादा परेशानी की बात यह है कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्हें कोई दूसरा मार्ग अभी तक नहीं मिला, सिवा इसके कि प्रतिद्वन्द्वी संस्थाएँ क़ायम की जायँ और उद्दण्डता का प्रयोग किया जाय। अमेरिकन लोग यह भी समझते हैं कि यह बात बहुत दूर तक नहीं ले जाई जा सकती। इसका परिणाम अवश्यमेव यह होगा कि श्रेणी-ज्ञान बढ़ेगा, दलबन्दी होगी और हमारा आर्थिक ढाँचा कमज़ोर पड़ जायगा। अमेरिकन लोग यह अच्छी तरह समझते हैं कि श्रेणी-ज्ञान से श्रेणी-शासन पैदा होगा। अगर पूँजी और श्रम को अलग हो जाने और आपस में लड़ने की इजाज़त दे दी गई तो इनमें से कोई न कोई अन्त में शासन-शक्ति को अपने हाथ में कर लेगा। ऐसे दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम से बचने का मार्ग यही है

कि हम अभी से एक दूसरे के न्यायानुकूल स्वत्वों का लिहाज़ रक्खें।"

"करेंट हिस्ट्री" १४ अक्तूबर, १९३६

× × +

४—स्पेन का गृहयुद्ध

विद्रोही अर्थात् जनरल फ़्रैंको और मोला की सेनाएँ मेड्रिड में दाख़िल हो गईं। स्पेन की साम्यवादी सरकार मोटर और लारियों में लदकर एक दूसरे नगर में पहुँच गई। गृहयुद्ध अभी तक जारी है। लेकिन फ़्रांस और रूस अब यह आशा छोड़ बैठे हैं कि वे स्पेन की साम्यवादी सरकार को ज़िन्दा रख सकेंगे। जर्मनी और इटली ने तो यह घोषणा कर दी है कि जिस दिन मेड्रिड की लड़ाई बन्द हुई और फ़ासिस्ट दल ने शान्ति स्थापित कर ली, हम जनरल फ़्रैंको की गवर्नमेंट को न्यायानुकूल गवर्नमेंट मान लेंगे*। फ़्रांस और इँगलैण्ड इसको क़ानूनी उस दिन तक न मानेंगे, जब तक चुनाव भी इसी शासन का अनुमोदन न कर दे।

मेड्रिड की रक्षा के लिए गवर्नमेंट की सेना अर्थात् साम्यवादी सेना ने जो कुछ किया, प्रशंसनीय है। यह सेना अनुभवहीन नवयुवकों की थी। इनका मुक़ाबला था अनुभवी और दक्ष सैनिकों से, जिनके पास वर्तमान युग के नवीनतम और भयंकरतम अस्त्र-शस्त्र काफ़ी मात्रा में पाये जाते थे। यह असम युद्ध इसलिए बहुत दिनों तक नहीं चल सकता था।

इस गृहयुद्ध में स्पेनराष्ट्र के रत्न नष्ट हो गये, जिनकी स्थानपूर्ति अब सम्भव नहीं। भविष्य में, इसलिए राष्ट्रीय निर्माण का कार्य बहुत कष्टकर होगा।

एक साम्यवादी पत्र ने लिखा था—

"इस गृहयुद्ध में स्पेन की स्त्रियों के कारनामे अद्भुत और आश्चर्यजनक रहे हैं। ये ख़न्दकों में बैठकर लड़ी हैं और जहाँ-जहाँ सैनिकों की आवश्यकता पड़ी है, दौड़कर पहुँची हैं। मा[illegible] गोसा, कारडोवा, टोलेडो, सिगोविया [illegible] मोरचों पर ये मौजूद थीं और इनकी आँखें [illegible] से लाल हो रही थीं।

जब किसी देश के निवासी अपनी स्वतं[त्रता] के लिए युद्ध करते हैं—जैसे स्पेनवाले आज [कर] रहे हैं—हम यह देखते हैं कि स्त्रियाँ भी स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए युद्ध में शामिल रहती हैं [और] भयंकर से भयंकर ख़तरे में अपने-आपको डा[लने] के लिए तैयार होती हैं। ऐसे अवसर पर दे[श]-भक्तों को कोई हरा नहीं सकता। हम मे[ड्रिड] और बारसिलोना में सफल हुए हैं और सारे [स्पेन] में विजयी होंगे।"

किन्तु इस साम्यवादी पत्र की आशाएँ [पूरी] नहीं हुईं।

× × ×

५—टर्की की उन्नति

मुस्तफ़ा कमाल अता तुर्क के नेतृत्व में टर्की [कई] ढंगों से उन्नति करता जाता है। पहली बात [तो] यह है कि तुर्क अब समझने लगे हैं कि राष्ट्री[यता] क्या चीज़ है। मज़हबियत और धार्मिक कट्ट[रता] को इन लोगों ने अब बहुत कुछ नष्ट कर दि[या] है। तीसरी बात यह है कि यह देश [अब] किसानी के अलावा व्यवसाय की ओर भी [तेज़ी] के साथ जा रहा है। शायद अन्यत्र भी [एशि]या की सभ्यता इन्हीं तीन मार्गों पर अग्रसर होकर [ही] अपना अस्तित्व क़ायम रख सकेगी।

अर्वाचीन तुर्क की मनोवृत्ति हिन्दुस्तानी मुसल[मानों] की तरह या पुराने तुर्कों के समान [इस्लामी] नहीं है। उसे अब पहली फ़िक्र यह है कि टर्की की उन्नति हो, टर्की समृद्धिशाली [हो] और टर्किश जाति फले-फूले। हिन्दुस्तानी मुसल[मान] के दिल में हिन्दुस्तानी जुलाहिन की [फटी] सुथनियाँ देखकर परोपकार का जोश नहीं [illegible]

* उन्होंने ऐसा कर डाला।

होता; लेकिन ईराक़ या अरब में अगर कोई तूफ़ान आ जाय तो जोश का दरिया उमड़ पड़ता है और सहायता के लिए लाखों रुपये यहाँ से चले जाते हैं। अर्वाचीन तुर्क की यह प्रवृत्ति नहीं। पहले वह घर में दिया जलाता है, उसके बाद मसजिद में।

मसजिद और क़ुरान और मुल्ला, ये तीनों अब ख़लीफ़ाओं की मातृभूमि टर्की में मुस्तफ़ा कमाल अता तुर्क के कारण बहुत निम्न स्थान पर पहुँच गये हैं। इनकी दुर्दशा के सम्बन्ध में जितना कम कहा जाय, उतना ही अच्छा। हम तो यहाँ पर यह दिखाना चाहते थे कि टर्की के प्रजातंत्र ने मुस्तफ़ा कमाल की प्रेरणा से कितनी व्यावसायिक उन्नति की है।

टर्की में जब ख़लीफ़ा लोग राज करते थे, यह देश भारतवर्ष के समान कृषि-प्रधान था। इसका सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक संगठन अर्ध-प्राचीन और धार्मिक सिद्धान्तों पर बना था। पश्चिम के व्यावसायिक देश इस मुल्क में अपना व्यावसायिक माल ख़ूब स्वतंत्रतापूर्वक बेचते थे और करोड़ों रुपये का मुनाफ़ा इस देश से प्राप्त किया करते थे। किन्तु जब मुस्तफ़ा कमाल ने इस देश को आज़ाद किया, तो उन्होंने यह भी चाहा कि टर्की आर्थिक दृष्टि से भी स्वतंत्र बन जाय और परमुखापेक्षी न रहे।

१९२३ में टर्की में प्रजातंत्र क़ायम हुआ; किन्तु मित्र राष्ट्रों ने उस पर यह बन्दिश कर दी थी कि १९२९ तक वह विलायती माल की कर-सूची (Tariff) में कोई परिवर्तन न कर सकेगा। लोसान के सुलहनामे में यह बात स्पष्ट थी कि टर्की विलायती माल पर चुंगी लगाकर स्वदेशी व्यवसाय की उन्नति न करने पावेगा। इसलिए १९२३ से १९२९ तक टर्की विलायती व्यवसायों का बढ़िया बाज़ार बना रहा और स्वदेशी व्यवसाय की कोई उन्नति नहीं कर सका। १९२९ में टर्की में कुल ६५,२४५ कारख़ाने थे, जिनमें कुल २,५७,००० आदमी काम करते थे। सारे देश में कुल तीन मिलें ऐसी थीं, जिनमें १०० से ज़्यादा आदमी मुलाज़िम थे। ३५१ कारख़ानों में ५० से ज़्यादा और १०० से कम आदमी काम करते थे। बाक़ी ६४ हज़ार कारख़ाने इतने छोटे थे कि उनमें ५० से कम आदमी नौकर थे। सम्पूर्ण देश की व्यावसायिक उपज ४३ करोड़ ३२७ लाख ४० हज़ार पौंड थी। ज़्यादातर कारख़ाने धातुओं के, कपड़े के और लकड़ी के थे। ९३ प्रतिशत बाहर से आनेवाला माल बना हुआ होता था और ९५ प्रतिशत दिसावर जानेवाला माल कच्चा होता था।

१९२९ में जब टर्की को आर्थिक स्वतंत्रता मिली, तो टर्की के प्रजातंत्र ने आम तौर से विलायती माल पर कड़ी चुंगी लगा दी और स्वदेशी कपड़े और स्वदेशी शक्कर के व्यवसाय की उन्नति की दृष्टि से विलायती कपड़े और विलायती शक्कर पर बहुत सख़्त टैक्स बाँध दिया। ८ जून, १९२९ से टर्की के इतिहास में उस युग का आरम्भ होता है, जब वह आर्थिक ग़ुलामी को छोड़कर आर्थिक स्वतंत्रता, स्वदेशी व्यवसायों की उन्नति, और राष्ट्रीय स्वावलम्बन के मार्ग पर अग्रसर हुआ है।

टर्की ने पहले अपने व्यवसायों पर ध्यान दिया। कपड़े की मिलें खुलवाईं, ऊनी कपड़े की मिलें क़ायम की गईं। लोहे के बड़े-बड़े कारख़ाने और कोयले की खानें चलने लगीं। ताँबा, गंधक, काग़ज़, कार्ड बोर्ड, रेशम, बोतल, शीशे और दवाओं की फ़ैक्टरियाँ बनीं और राज्य की सहायता से खोली जाने लगीं।

कपड़े की मिलों में राज्य ने १९ करोड़, लोहे की मिलों में १० करोड़ और काग़ज़ की मिलों में ४ करोड़ पौंड लगा दिये। इसी प्रकार हर एक व्यवसाय में शासन ने कई अरब पौंड की सहायता दी। परिणाम यह हुआ कि कपडे और शक्कर का व्यवसाय टर्की में ख़ूब तरक़्क़ी कर गया है। सोवियट रूस ने टर्की को ८० लाख डालर की पूँजी विना सूद के, कपड़े के व्यवसायों की उन्नति के लिए, १९३४ में, उधार दी है। कपड़े की अधि-

कांश माँग टर्की अपनी स्वदेशी उपज से पूरा करता है, और शक्कर के सम्बन्ध में यह देश स्वावलम्बी हो गया है।

व्यवसायियों की पूँजी के लिए टर्की ने अनेक बैंक खोले हैं, जिनको टर्किश प्रजातंत्र हर प्रकार से सहायता देता है। विदेशों से भी पूँजी उधार लेकर टर्की ने अपने बैंकों को इतना सम्पन्न कर दिया है कि ये बैंक अब समस्त स्वदेशी व्यवसायों की उन्नति कर सकते हैं।

खेती के काम को भी मुस्तफ़ा कमाल ने काफ़ी प्रोत्साहन दिया है। किसानों को बहुत कम सूद पर उधार दिलाने के लिए किसान-बैंक खोले हैं। टर्की में १९३४ की अपेक्षा १९३५ में ६०% अधिक अंगूर पैदा हुए हैं। अंजीर की उपज ३२ हज़ार टन हुई है, जो १९३४ से १५% अधिक है। तम्बाकू की उपज १ करोड़ [illegible] लाख किलोग्राम से ३ करोड़ ८० लाख हो गई है।

× × ×

६—ग्रेटब्रिटेन की तैयारी

निकट भविष्य में ब्रिटेश गवर्नमेण्ट अपने यहाँ हवाई जहाज़ का बम फेंकनेवाला बेड़ा संगठित करेगी। इस बेड़े की गति बहुत तेज़ होगी, तथा इसकी मार और विनाशकारी शक्ति अपूर्व होगी। उद्देश्य यह है कि आक्रमण करने का तुरन्त प्रभाव भयंकरतर प्रत्याक्रमण हो। इस नई सैनिक शक्ति में सैकड़ों मन बम के गोले बरसानेवाली और बहुत तेज़ी से दगनेवाली मशीनगनें शामिल होंगी। ब्रिटेन ने यह निश्चय किया है कि ख़र्च चाहे जितना हो जाय, संसार में वह अपनी सैनिक शक्ति प्रबलतम बनावेगा। कैबिनट की यह धारणा है कि Collective Security अर्थात् लीग आफ़ नेशन का बताया हुआ आत्मरक्षा का मार्ग भरोसे के क़ाबिल नहीं, इसलिए ब्रिटेन का कर्तव्य है कि वह अपनी सैनिक शक्ति दुनिया में किसी से भी कम न रक्खे।

ब्रिटेन में एक नया क़ानून बननेवाला है। [illegible] क़ानून के पास हो जाने पर वहाँ की गवर्नमेण्ट [illegible] यह अधिकार मिल जायगा कि वह अनेक [illegible] जुलूसों को (अगर वे उसकी राय में [illegible] पैदा करनेवाले हैं) रोक दे या उनको [illegible] पूर्वनिश्चित मार्ग से ही जाने दे। सभाओं के [illegible] में भी इसी प्रकार के अख़तियारात [illegible] हो जायँगे।

एक विचित्र बात यह हुई है कि इस क़ानून [illegible] पास हो जाने पर कोई दल अपनी संस्था [illegible] विशेष वर्दी न पहन सकेगा। योरप में [illegible] क़ायदा था कि हर एक दल अपनी-अपनी [illegible] ख़ास रंग की कमीज़ें रखता था। किसी दल [illegible] कमीज़ लाल होती थी, किसी की काली। [illegible] बात भविष्य में सम्भव न होगी।

सभाओं में हथियार ले जाना रोक [illegible] जायगा। भाषणों में कटु भाषा का प्रयोग जुर्म [illegible] दिया जायगा। इस क़ानून का उल्लंघन करने [illegible] को दो साल की सज़ा और १०० पौंड [illegible] जुर्माना हो सकेगा।

यह क़ानून अभी तो फ़ैसिस्टों के ऊपर [illegible] सकेगा; किन्तु इसकी धाराएँ इतनी विस्तृत हैं [illegible] और दलों पर भी लग जायँ।

× × ×

७—जर्मन उपनिवेश

"जिस समय जर्मनी अपने पुराने उपनिवे[illegible] को वापस लेने की माँग पेश करेगा, ब्रिटेन [illegible] फ़्रांस, दोनों एक स्वर से हिटलर की इस [illegible] का विरोध करेंगे। फ़्रांसीसी जनता की यह [illegible] राय है कि फ़्रांस मैंडेट द्वारा प्राप्त प्रदेशों को [illegible] करने की कल्पना तक नहीं कर सकता और [illegible] ब्रिटेन। इस बात को साबित करने के लिए आँ[illegible] पेश किये गये हैं कि जब से कैमरून फ़्रांसी[illegible] अधिकार (मैंडेट) में आया, यह प्रदेश [illegible] तर हो गया है और पहला फ़ायदा देसी लोगों [illegible]



हुआ है। पिछले पन्द्रह बरस में देसी जनता की संख्या तीन लाख बढ़ गई है। वर्तमान जर्मन शासकमण्डली ने जर्मन जाति के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये हैं, उनसे तो यह बात हमेशा के लिए तै समझनी चाहिए कि जर्मनी को उसके पुराने उपनिवेश कभी वापस न दिये जायँ। हर हिटलर की इस घोषणा से अधिक हास्यजनक बात और क्या हो सकती है कि उनके मतानुसार नारडिक जाति श्रेष्ठतम जाति है और पीली या ग़ैर गोरी जातियों में दासता की प्रवृत्ति पाई जाती है। जर्मनी के पुराने उपनिवेशों के निवासी सब ग़ैर गोरी जाति के हैं। अगर जर्मन लोग, जिन्हें अपनी जाति की श्रेष्ठता का अभिमान है, फिर इन उपनिवेशों के स्वामी बन गये तो इन बेचारे देसी लोगों का क्या हाल होगा। ब्रिटेन भी इस बात पर दृढ़ है कि जर्मनों को उनके पुराने उपनिवेश वापस न करे। जर्मनी सुलह के प्रस्ताव केवल अपनी युद्ध-मशीन को सुदृढ़ करने का मौक़ा पाने के वास्ते करता रहता है, जिससे वह भावी युद्ध के लिए तैयार हो जाय।"

('चाइना आउट लुक' से)

× × ×

८—चीन की दशा

कहा जाता है कि नैनकिंग की गवर्नमेंट जापान से युद्ध करने की तैयारी कर रही है। यह ख़बर दुःखजनक है; क्योंकि मि० शिगेरो कवागो, जो चीन में जापान की ओर से हाल ही में राजदूत बनाकर भेजे गये हैं, चीन और जापान के सम्बन्ध को ठीक करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। जापानियों के विरुद्ध आन्दोलन का उठना चीन के लिए कोई नई बात नहीं है। लेकिन आजकल जो आन्दोलन जापानियों के ख़िलाफ़ उठ खड़ा हुआ है, वह दूसरी ही क़िस्म का है। यह तेज़ी के साथ उग्र रूप धारण कर रहा है।

साधारण जापानी का यह विचार है कि चीन सैनिक दृष्टि से उसके देश का पासंग भी नहीं है। यह ख़याल ग़लत है। चीन अब वह नहीं रहा, जो पहले था। इसकी सेना अब ऐसी है कि किसी भी युद्ध में वह प्रशंसनीय कारनामे करके दिखा सकती है। चीन की हवाई सेना तेज़ी से उन्नति कर रही है और इस वर्ष के ख़तम होने के पहले चीन के पास ३५० स्काउटिंग हवाई जहाज़, ३०० पीछा करनेवाले हवाई जहाज़, २०० छोटे बम फेंकनेवाले और १०० बड़े बम फेंकनेवाले हवाई जहाज़ मौजूद हो जायँगे। क्वांगटाँग और क्वांग्सी दलों के पास संयुक्त रूप से ३०० जंगी हवाई जहाज़ हैं ही। हम यह आँकड़े केवल यह दिखाने के लिए देते हैं कि लोग चीन को जितना कमज़ोर समझते हैं, उतना कमज़ोर वह नहीं है।

इस सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात याद रखने की यह है कि जापान के ख़िलाफ़ सशस्त्र मुक़ाबला करने के इस प्रोग्राम में चीन को अनेक शक्तियाँ सहायता दे रही हैं। हाल ही की रिपोर्ट है कि चीन और जर्मनी में अभी-अभी एक समझौता हुआ है, जिसके अनुसार जर्मनी चीन को युद्धसामग्री देगा और चीन जर्मनी को उसके बदले में कच्चा माल। यदि यह ख़बर सही निकली तो आश्चर्य न होना चाहिए कि यदि जर्मनी और जापान, जो आज एक दूसरे के मित्र हैं, एक दूसरे के शत्रु हो जायँ। ("ट्रांस पैसिफ़िक")

× × ×



९—भावी युद्ध

"रूस के युद्धविशारदों की यह धारणा है कि भावी युद्ध का परिणाम समरक्षेत्र की पहली लाइन के विजय या पराजय पर निर्भर न होगा। भावी युद्ध में प्रथम लाइन से लेकर देश की अन्तिम सीमा तक विस्तृत प्रदेश समरक्षेत्र हो जायगा। इसलिए युद्ध में जल्द-से-जल्द विजय होने का मार्ग यही है कि शत्रुदल के केन्द्र में ही हलचल मचा दी जाय। इस हलचल को श्रेणीगत युद्ध का रूप दे दिया जाय, जिससे शत्रु के देश अपनी आन्तरिक निर्बलता के कारण ही पस्त हो जायँ।"

"इसी उद्देश्य को नज़र में रखकर लाल सेना के नेताओं ने ऐसे बड़े-बड़े हवाई जहाज़ रखना आवश्यक माना है, जो देश के भीतर बहुत दूर तक पहुँच सकें। श्रेणीयुद्ध का प्रचार कर अगर मौक़ा आया तो ये हवाई जहाज़ शत्रु के केन्द्रीय प्रदेशों पर गोलाबारी करने में इस्तेमाल किये जायँगे।"

(करनल हाटा)

[टोकियो का युद्ध-दफ़्तर]

× × ×

१०—पुर्तगाल भी उपनिवेश चाहता है

"१८८४ में पुर्तगाल में एक वर्ग किलोमीटर में ४४०५ आदमी रहते थे, १८१० में ५५; १९३० में ७४ रहते हैं। यदि हम अपने रहने-सहने के लिए नया क्षेत्र नहीं तैयार कर लेते तो इतनी बड़ी आबादी पुर्तगाल की भूमि के आधार पर जीवित रखना शीघ्र ही असम्भव हो जायगा।

"पुर्तगाल में क़रीब ७० लाख आदमी रहते हैं और यह संख्या बढ़ती ही जा रही है। अगर ब्राज़िल में हमारा उपनिवेश बनता भी रहा तो ३० वर्ष के अन्दर ही हमें पुर्तगाल के १० लाख आदमियों का पालन-पोषण करना अनिवार्य हो जायगा।"

"इसलिए पुर्तगाल को अपने उपनिवेशों की चप्पा-चप्पा ज़मीन चाहिए; क्योंकि अब पुर्त... की भूमि में बढ़ने की कोई गुंजाइश बाक़ी न रही। इंच-इंच ज़मीन, जो जोती जा सकती थी, जोती जा चुकी और व्यवसाय भी वर्तमान स्थिति में जितना बढ़ सकता था, बढ़ाया जा चुका है।"

[पुर्तगाल के प्रधान सचिव डा० अन्तोनियो सलाज़ार के भाषण से।]

× × ×

११—इटली में स्वदेशी

"इटली ने निश्चय किया है कि जो देश ... माल ख़रीदेगा, उसी देश की बनी चीज़ें ... मोल लेगा। इटली सिर्फ़ उन्हीं विदेशी चीज़ों को बाहर से मँगायेगा, जो उसके लिए अत्यावश्यक ... और जिन्हें वह स्वयं नहीं बना सकता। ... व्यापारिक नीति यह होगी कि आयात से ... दिन प्रति दिन ज़्यादा ही होता रहे।...इटली का यह दृढ़ निश्चय है कि उसकी राष्ट्रीय ... बिलकुल क़ायम रहे और उसका सोने का ... सुरक्षित रहे। व्यापारी समुदाय भी इस नीति ... सहमत है" (Revista Commercial I... American)

× × ×

१२—कृतज्ञता-प्रकाश

मेरी पूजनीया माताजी के वैकुण्ठवास के ... चार को पढ़कर अनेक इष्ट-मित्रों और सज्जनों ... सहानुभूति और सान्त्वना प्रकट करने ... पत्र भेजे हैं। उनके पत्रों से मुझे बहुत ... हुआ है। उन सबका मैं कृतज्ञ हूँ। अलग-... कृतज्ञताज्ञापक पत्र लिखने में समयाभाव ... है। इसलिए मैं उन सब स्नेहियों के प्रति ... पंक्तियों के द्वारा अपनी हार्दिक कृतज्ञता ... करता हूँ।

× × ×



१३—माधुरी का कहानी-अंक

कहानी-अंक बहुत शीघ्र निकलेगा । उसकी बहुत-सी सामग्री तैयार हो चुकी है। महीने की सूचना माधुरी की आगामी संख्या में दी जायगी। उसमें कहानी-कला पर संपादकीय, कहानी-साहित्य के क्रम-विकास का इतिहास, विदेशी कहानी-लेखकों की सर्वश्रेष्ठ २०-२५ कहानियाँ और भारतीय श्रेष्ठ कहानी-लेखकों की २०-२५ कहानियाँ तथा हिंदी के वर्तमान श्रेष्ठ कहानी-लेखकों और लेखिकाओं की कहानियाँ रहेंगी। इस अंक की सामग्री चुनी हुई और बहुमूल्य होगी । हिंदी के वर्तमान श्रेष्ठ कहानी-लेखकों को हम इस अंक में लिखने के लिए सादर निमंत्रित करते हैं। आशा है, माधुरी का यह विशेषांक अपने ढंग का अद्वितीय होगा। सफलता ईश्वर के हाथ है।

विज्ञापनदाताओं को भी इस सुअवसर से लाभ उठाना चाहिए। यह अंक बहुत बड़ी संख्या में छपेगा और इसे लाखों आदमी पढ़ेंगे।



समन बिनावर इनफ़िसाल मुक़द्दमा

(आर्डर ५ क़ायदा १ व ५)

नम्बर मुकदमा २७७ सन् १६३६ ई०   ता० पेशी १०—१२—३६

बअदालत अडिशनल मुन्सिफ ज़िला बनारस

राजनाथ मिश्र वल्द गजाधर मिश्र सा० मौजा गजईपुर परगना कसवार राजा जिला बनारस मुद्दई

बनाम

रामकिशुन वगैरह

बनाम (१) रामकिशुनसिंह } पिसरान इन्द्रजीतसिंह साकिनान मौजा चोलला प० कसवार राजा जि०
(२) रामअलम्बसिंह } बनारस हाल मुकीम खोजोई प० अठगावाँ जिला बनारस मुद्दाअलेह

हरगाह मुद्दई ने आपके नाम एक नालिश बाबत २६४॥≡)॥ के दायर की है लिहाजा आपको हुक्म होता है कि आप बतारीख १० माह दिसम्बर सन् १६३६ ई० बवक्त दस बजे दिन के असालतन या मारफत वकील के जो मुकदमे के हालात से वाकई वाकिफ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़े मुकदमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख्स हो कि जो जवाब तमाम सवालात का दे सके हाजिर हो और जवाबदिही दावा की करे और हरगाह वहीं तारीख जो आपके इज़हार के लिये मुकर्रर है वास्ते इनफिसाल कतई मुकदमा के तजवीज हुई है पस आपको लाजिम है कि उसी रोज अपने जुमला गवाहों को जिनकी शहादत पर व नीज तमाम दस्तावेजात को जिन पर आप अपनी जवाबदेही के ताईद में इस्तदलाल करना चाहते हों पेश करें आपको इत्तिला दी जाती है कि अगर बरोज मजकूर आप हाजिर न होंगे तो मुकदमा बगैर हाजिरी आपके मसमू और फैसल होगा।

बसब्त मेरे दस्तखत और मोहर अदालत के आज बतारीख २७ माह नवम्बर सन् १६३६ ई० जारी किया गया।

बहुक्म अदालत (हस्ताक्षर) मुन्सरिम

नोटिस

बअदालत जनाब स्पेशल जज साहब बहादुर सीतापुर दर्जा दोम

मुकद्दमा नंबर १८३ सन् १६३६ ई० इनकमबर्ड   बयान तहरीरी १७-३-३७   पेशी २०-३-३७

गजराजसिंह वल्द मु० गयाप्रसाद कायस्थ साकिन वाड़ी परगना वाड़ी तहसील सिधौली जिला सीतापुर

बनाम

१—श्रीपाल वल्द मुरलीधर अग्रवाल सराउग जैनी साकिन गंज सिंधौली जिला सीतापुर डाकखाना सिधौली

२—मुरलीधर ख़लफ़ बाबू रामदयाल अग्रवाल साकिन गंज सिधौली परगना वाड़ी तह० सिधौली डाकखाना सिधौली

हर खास व आम को बज़रिए नोटिस हाजा इत्तिला दी जाती है कि मुक़दमा मुन्दर्जे उनवान में मुसम्मे गजराजसिंह सायल ने दरख्वास्त हस्ब निफाज़ दफा ४ ऐक्ट नम्बर २५ सन् ३४ ई० इनकम्बर्डस्टेट्स अदालत हाजा में बज़रिये जनाब साहब कलक्टर बहादुर सीतापुर गुजरानी है और मिनजानिब अपने बयान तहरीरी बतफसील कर्ज़ा जात मयतफसील जायदाद दाखिल कर दिया लिहाजा वह अशख़ास जिनका करजा डिगरीशुदा या गैर डिगरीशुदा बज़िम्मा सायल मुन्दर्जे बाला के जात या जायदाद पर हो अन्दर तीन माह तारीख शाया होने नोटिस गजट से अपना बयान तहरीरी बनिस्बत अपने (कर्जा के दाखिल करें वर्ना कोई उज्र किसी शख्स का अगर कानूनन उसको दाखिल करने बयान तहरीरी का हक था बाकी न रहेगा) बाद में काबिल समाअत न होगा और दरख्वास्त कर्जख्वाह मसमू व फ़ैसल होगी।

लेख-सूची

नोटिस हस्ब दफ़ा ६ यू० पी० इनकमबर्ड स्टेट्स ऐक्ट २५ सन् १९३४

बअदालत जनाब स्पेशल जज साहब बहादुर दर्जा अव्वल जिला लखनऊ

मुक़दमा नम्बर ८६ सन् १९३६ ई०   तारीख़ पेशी ७ अप्रैल १९३७ ई०

मु० हुसैनी बेगम जौजे हकीम मिर्ज़ा मुहम्मद जाफ़र हुसैनख़ाँ साकिन कटरा अबुतुराब
शहर लखनऊ   सायल

बनाम

जगन्नाथप्रसाद वल्द मंगलसाह साकिन कस्बा काकोरी जिला लखनऊ

हरगाह कि सायल मज़कूरवाला ने दरख़्वास्त ज़ेर दफ़ा ४ ऐक्ट नम्बर २५ सन् १९३४ गुज़रानी है लिहाज़ा नोटिस हस्ब दफ़ा ६ ऐक्ट मज़कूर दिया जाता है कि जिस शख़्स का क़र्ज़ा डिग्रीशुदा या ग़ैर डिग्रीशुदा जात व जायदाद सायल मुतज़करेवाला पर हो वह अपना बयान तहरीरी बज़रिये मुश्तहरी नोटिस गज़ट से अन्दर तीन माह अदालत हाज़ा में पेश करे।

ऐसा न करने पर दरख़्वास्त मज़कूर गैरहाज़िरी में एकतरफ़ा समाअत की जावेगी

आज बतारीख़ १९ दिसम्बर सन् १९३६ ई० मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत से जारी किया गया

वक्त हाजिरी बदफ़्तर १० बजे से ४ बजे तक   बहुक्म अदालत (हस्ताक्षर) मुंसरिम

बअदालत पं० ठाकुरप्रसाद दुबे साहब बहादुर स्पेशल जज सेकेन्ड ग्रेड जौनपुर

फ़ार्म इत्तिलानामा हस्ब दफ़ा ६ ऐक्ट जायदाद हाय मकरूज़ा संयुक्त प्रान्त

मुकदमा नं० ८४ सन् १९३६]   तारीख मोकररा ६—१—३७

इश्तिहार

हरगाह एक दरख़्वास्त हस्ब दफ़ा ४ ऐक्ट जायदाद हाय मक़रूज़ा संयुक्त प्रान्त सन् १९३४ ई० (ऐक्ट २५ सन् १९३४ ई०) जैसा कि बरूय ऐक्ट ४ सन् १९३५ ई० तरमीम हुआ है

१—भगवानप्रसादसिंह वल्द जगन्नाथसिंह २—अनरुद्ध बहादुरसिंह पेसर नाबालिग भगवानप्रसादसिंह बविलायत जगतम्बासिंह साकिन अदारी परगना घिसुवा जौनपुर ने इस ग़रज़ से पेश की है कि ऐक्ट जायदाद हाय मक़रूज़ा संयुक्त प्रान्त के अहकाम उन पर लगाये जायँ।

लिहाज़ा इस तहरीर की रू से हस्ब दफ़ा ६ (१) ऐक्ट जायदाद हाय मक़रूज़ा संयुक्त प्रान्त सन् १९३४ ई० जैसा कि बरूय ऐक्ट ४ सन् १९३५ ई० तरमीम हुआ है, इत्तिला दी जाती है कि सब लोग जो भगवानप्रसादसिंह मज़कूर की जात या जायदाद के ख़िलाफ़ हर क़िस्म के डिग्री किये हुए और विना डिग्री किये हुए निज के क़र्ज़ों के मुताल्लिक दावे रखते हों गजट में इस इश्तिहार के छपने की तारीख से तीन मास के भीतर अपने दावों के मुताल्लिक तहरीरी बयानात उस हाकिम के सामने पेश करें जिसके दस्तख़त नीचे दिये हुए हैं। ऐसा न करने पर हर एक दावा डिग्रीशुदा या ग़ैर डिग्रीशुदा खिलाफ़ सायल मज़कूर उन अग़राज़ व मौरक़ाज़ात के लिए ज़ेर दफ़ा १३ ऐक्ट मज़कूर बाज़ाब्ता बेबाक मुतसव्विर होगा

बहुक्म अदालत (हस्ताक्षर) मुंसरिम



पनिहारिन



सम्पादक

रूपनारायण पांडेय

प्रतिनिधि-सम्पादक (सी० पी०)—मातादीन शुक्ल

वर्ष १५, खंड १, संख्या ६, पूर्ण संख्या १७४	पौष	३१२ तुलसी संवत्, १९९३ वि०

गीत

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"

लाज लगे तो
जाओ, तुम जाओ !

फेर लो नयन,
चलो मञ्जु-गुञ्जर, धर
नूपुर-शिञ्जित-चरण,
करूँ वरण, प्राणों में आ
छवि पाओ—
लाज लगे तो।

मेरा जीवन
छाया, छाया-प्रशमन
मेरा जीवन, मरण;
आवरण सदा, न लोक-
नयन, सुहाओ—
लाज लगे तो।

संस्कृत की कुछ कवयित्रियों की रचनाएँ

पं० किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री

आदि युग में भारत ने गार्गी-जैसी विदुषियों को जन्म दिया था, सो तो है ही; पर मध्ययुग में भी इस देश में कैसी-कैसी विदुषियाँ हो गई हैं, इसका आभास कुछ कवयित्रियों के बचे-खुचे पद्य-रत्नों से चलता है, जो 'सुभाषित-रत्न-भाण्डागार' आदि सूक्ति-ग्रन्थों में संगृहीत हैं। अवश्य ही इस बड़े युग में सैकड़ों कवयित्रियों का प्रादुर्भाव हुआ होगा; पर अब उन सबके नामों का भी पता नहीं है। विदेशी आक्रमणकारियों के द्वारा हमारा जो साहित्य नष्ट किया गया, उसमें न-जाने कैसे-कैसे रत्न थे! इसके अतिरिक्त, हमारी उदासीनता भी हमारे साहित्य के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने में बहुत बड़ा कारण है। एक बहुत लम्बे अर्से तक तो केवल ब्राह्मण ही, त्यागी साहित्य-प्रिय ब्राह्मण ही, हमारे साहित्य के एकमात्र रक्षक और संवर्द्धक रहे! शेष सब लोग उधर से एकदम उदासीन रहे! इसका फल बहुत बुरा हुआ! हमारा बहुत-सा साहित्य सदा के लिए अस्त हो गया।

यह दुःख की बात है कि किसी स्त्री-कवि का संस्कृत में आज कोई अविकल या विकल ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है! केवल कुछ कवयित्रियों के कुछ फुटकल पद्य-रत्न परम्परया चले आये यत्र-तत्र संगृहीत मिलते हैं। परन्तु इन पद्यों को देखकर उन कवयित्रियों के पाण्डित्य तथा प्रतिभा का क़ायल होना पड़ता है। यह असम्भव जान पड़ता है कि ऐसी-ऐसी उत्कृष्ट कवयित्रियों ने जन्म में केवल दस-दस, बीस-बीस पद्य ही बनाये हों। यदि वे ऊँचे दर्जे की कवयित्रियाँ न होतीं, तो संस्कृत के महासागर में इतने दिन तक वे [illegible] रह सकतीं?

जान पड़ता है, पुरुष कवियों की उपेक्षा स्त्री-कवियों की ओर सदा रही है और वे इनका उपहास भी करते रहे हैं। कवियों में गम्भीर [illegible] कम होते हैं और अधिकांश छिछोरे हो जाते [illegible] भाँड़पन करने लगते हैं। किसी कवयित्री [illegible] सामने देखकर ये लोग जाने कैसे हो जाते [illegible] सामने मज़ाक़ तक करने लगते हैं। [illegible] कवयित्रियों के असमय मुरझा जाने का एक भी कारण है।

संस्कृत-कवयित्रियों में 'विकटनितम्बा' [illegible] 'फल्गुहस्तिनी' नाम भी मिलते हैं। [illegible] ये नाम मज़ाक़ में पुरुष-कवियों के रक्खे हुए [illegible] होते हैं। इनके अपने असली नाम कुछ [illegible] होंगे। इस प्रकार के रक्खे हुए नाम कभी [illegible] ऐसे प्रचलित हो जाते हैं कि असली नाम [illegible] कुल ही छिप जाते हैं। इन नामों से ही [illegible] पता चल जायगा कि उस समय भी कवि [illegible] कैसे-कैसे लोग थे।

एक बात और। इन संस्कृत-कवयित्रियों [illegible] अधिकांश रचना शृंगार-सम्बन्धिनी ही [illegible] है। परन्तु इससे यह न समझना चाहिए



दूसरी तरह की रचना उन्होंने की ही न होगी। वस्तुतः स्त्री-मुख से निकली हुई, श्रृंगार, वात्सल्य तथा करुण रस-सम्बन्धी, रचना अधिक हृदय खींचती है और उस समय के वैसे कवि-पुङ्गवों की ज़बान पर इन कवयित्रियों की श्रृंगार-रचनाओं के ही कुछ नमूने जम पाये होंगे, जो किसी प्रकार बचे रहे।

आजकल कुछ लोग श्रृंगार-रचना के नाम पर मुँह फुलाया करते हैं और कहा करते हैं कि काव्य में स्त्री के अंग-प्रत्यंग का वर्णन करके उनका अपमान करना है। ऐसे महापुरुषों को इन विदुषी कवयित्रियों की श्रृंगार-रचनाएँ देखनी चाहिए। हाँ, हम यह मानते हैं कि श्रृंगार का समय होता है, और सीमा भी होनी चाहिए। श्रृंगार समय से ही शोभा पाता है। जब मारू की आवाज़ हो, तब श्रृंगार-गीत कैसे? समय-समय की रचना शोभा पाती है। आजकल श्रृंगार की ही भरमार अपेक्षित नहीं; पर प्राचीन श्रृंगार-रचनाएँ उपेक्षित भी तो नहीं की जा सकतीं। जो लोग श्रृंगार का एकान्त विरोध करते हैं, वे ग़लती करते हैं। श्रृंगार-जैसा सरस रस संसार से यदि उठ जाय, तो फिर यहाँ रह क्या जायगा? और, यह असम्भव है—

जे चाहत सिंगार रस, जाय जगत ते भागि।
ते कर गहिकै चन्द कौं, चहत जरावन आगि॥

ख़ैर, संस्कृत-कवयित्रियों की कुछ श्रृंगारी रचनाएँ उपलब्ध हैं। आगे इनके नमूने दिये जाते हैं।

विकटनितम्बा

इनके दो संस्कृत-पद्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। देखिए, कैसी रचना है—

अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृङ्ग
लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु।
मुग्धामजातरजसं कलिकामकाले,
बालां कदर्थयसि किं नवमालिकायाः!

अरे भौंरे! तेरा मन बहुत चञ्चल है; पर ज़रा तो विचार से काम ले! जिस चमेली की कली की ओर तेरी दृष्टि है, उसमें अभी धरा ही क्या है? इस सुन्दर कली में न तो अभी पराग है और न मधुर मकरन्द! यह तो अभी ज़रा-सी ही है। तब तक तू अपना मन उन दूसरी लताओं पर लगा, जो तेरे उपमर्द को सहन कर सकें।

यहाँ कलिका के विशेषण 'अजातरजसम्' और 'बालाम्' बहुत सुन्दर हैं।

रजोदर्शन से पूर्व स्त्री-प्रसंग धर्मशास्त्र से भी निषिद्ध है और आयुर्वेद से भी।

इसी पद्य की छाया पर हिन्दी के कविवर बिहारीलालजी का यह सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक दोहा है—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु,
नहिं विकास यहि काल।
अली-कली ही ते बँध्यो,
आगे कौन हवाल?

परन्तु 'अजातरजसम्' की बात यहाँ न आ पाई है।

* * *

दूसरा चित्र देखिए—

बाला तन्वी मृदुतनुरियं त्यज्यतामत्र शङ्का,
दृष्टा काऽपि भ्रमरभरतो मञ्जरी भज्यमाना?
तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं पीडनीया,
मन्दाक्रान्ता विसृजति रसं नेक्षुयष्टिः समग्रम्!

कामशास्त्रीय विधान है। किसी से कहा जा रहा है—आप अपने मन से यह शंका निकाल दें कि यह बाला दुबले-पतले शरीर की है और कोमलाङ्गी है! अतः रहसि—एकान्ते एषा निर्दयं पीडनीया भवता! कारण, इक्षुयष्टि यदि अच्छी तरह मरोड़ी न जाय, तो पूरा रस नहीं देती। सो, यदि तुमको पूरा रस उससे लेना है, तो ज़रा अपनी शक्ति का उपयोग करो।



शीलाभट्टारिका

दूति त्वं तरुणी युवा सचपलः श्यामास्तमोभिर्दिशः
सन्देशः सरहस्य एव विपिने संकेतकावासकः !
भूयो भूय इमे वसन्तमरुतश्चेतोनयन्त्यन्यथा,
गच्छ क्षेमसमागमाय निपुणे रक्षन्तु ते देवताः !

सन्देहपूर्वक सन्देश भेजा जा रहा है। कोई 'तरुणी' और 'निपुण' दूती के द्वारा सन्देश भेजती हुई कहती है—दूती ! देख, तू युवती है और वह युवक चञ्चल है ! अँधेरे से दिशाएँ काली हो रही हैं ! सन्देश वही रहस्य का है और संकेत-स्थान वन। ये वसन्ती पवन के झोंके मन को कुछ का कुछ कर रहे हैं ! यों ख़तरे की तो पूरी सामग्री है; पर क्या किया जाय ! तू जा, कुशलपूर्वक लौटने में देवता लोग तेरी रक्षा करें।

व्यंग्य लिखने की ज़रूरत नहीं।

* * *

वियोग में नींद कहाँ ?—

प्रियाविरहितस्यास्य, हृदि चिन्ता समागता।
इति मत्वा गता निद्रा, के कृतघ्नमुपासते ?

जब से प्रिया का वियोग हुआ, तब से नींद इसके पास नहीं आई। चिन्ता से नींद का नाश होता है, अतएव उत्प्रेक्षा है—प्रिया के चले जाने पर इसके हृदय पर चिन्ता ने अधिकार कर लिया, मानों यह समझकर ही नींद ने साथ छोड़ दिया। कृतघ्न आदमी का साथ कौन दे ?

* * *

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपाः,
ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ,
रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते।

सखी ! क्या बताऊँ ! मेरे पतिदेव वही और मैं भी वही ! कुछ बदल नहीं गया है। वे ही वसन्त की रातें हैं, जिनमें अनन्त क्रीड़ाएँ हो चुकी हैं। वासन्ती पवन भी मालती और कदम्ब की सुगन्ध से मिश्रित वही है। इसमें भी कोई नई बात नहीं हो गई है। फिर भी, रेवा के किनारे उस बेंत की कुंज में विहार करने के लिए मन मचल रहा है।

* * *

किसी ने किसी सन्देशवाहिनी के द्वारा सन्देश भेजा था, जो स्वयं कृतकार्य होकर आई है। उससे जवाब तलब किया जा रहा है—

श्वासः किं त्वरितागता पुलकिता कस्मात्प्रसादः कृ...
स्रस्ता वेण्यपि पादयोर्निपतनान्नीवीगमाद्रागतः...
स्वेदार्द्रं मुखमातपेन गमितं क्षामा किमित्युक्ति...
दूति ! म्लानसरोरुहाकृतिधरस्यौष्ठस्य किं वक्ष्य...

अरी ! तेरी साँस ज़ोर-ज़ोर से कैसे चल रही है ? जवाब मिला—जल्दी-जल्दी दौड़कर आने से। अच्छा, तो तू पुलकित क्यों हो रही है ? उत्तर दिया—उन्होंने कृपा कर के आपका सन्देश ग्रहण कर लिया, इसलिए। तो फिर यह तेरी वेणी क्यों बिखर रही है ? इसलिए कि उन्हें मनाने के लिए मुझे न-जाने कितना पाँवों पड़ना पड़ा। सहज ही थोड़े मान गये। नीवी में यह ढीलापन ? इस जल्दी से इतनी दूर आने-जाने से। और यह इतना पसीना क्यों आ रहा है ? वाह ! यह तो धूप से। और तू सूख-सी क्यों रही है ? आपकी बातों से। ख़ैर, जाने दे ! कुम्हलाये हुए और मसले हुए कमल की तरह जो तेरे ओंठ हो रहे हैं, इनका जवाब तू क्या देगी दूती !

विज्जका

अन्योक्ति है—

केनाऽत्र चम्पकतरो बत रोपितोऽसि !
कुग्रामपामरजनान्तिकवाटिकायाम् !
यत्र प्रवृद्धवनशाकविवृद्धिलोभाद्,
भो भग्नवाटघटनोचितपल्लवोऽसि !

अरे चम्पकतरु ! तुझे किस बेवकूफ़ ने



कुगाँव में गँवार लोगों के समीप बग़ीचे में लगा दिया ? यहाँ तो ये लोग जंगली साग-भाजी बढ़ाने के लिए तेरे पल्लव-पत्ते नोच-खसोट कर बाढ़ लगाते हैं ! यह दुर्दशा ?

बिहारी के 'फूल्यो अनफूल्यो भयो गँवई-गाँव गुलाब' आदि दोहे इसी आधार पर हैं ।

कोषःस्फीततरः स्थितानि परितः पत्राणि दुर्गं जलम्,
मैत्रं मण्डलमुज्ज्वलं चिरमधो नीतास्तथा कण्टकाः ।
इत्याकृष्टशिलीमुखेन रचनां कृत्वा तदत्यद्भुतम्,
यत्पद्मेन जिगीषुणाऽपि न जितं मुग्धे त्वदीयं मुखम् ।

हे सुन्दरी ! यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि तेरे मुख को जीतने की इच्छा से कमलपुष्प ने ऐसी बड़ी तैयारी की, तो भी वह असफल ही रहा । तेरे मुख के सामने नीचा ही देखा उसने । तैयारी भी तो देखिए—शिलीमुखों को खींचकर सन्नद्ध हुआ । कोष उसका बढ़िया ही ठहरा । चारों ओर पत्र फैले हुए । जल-दुर्ग उसका । मित्र-मण्डल भी प्रकाशमान होकर करों का पूरा सहारा देता रहा । उसने अपने सब कंटकों को भी नीचा दिखा दिया—पछाड़ दिया ! परन्तु तेरे मुख से हार खाई ।

बहुत सुन्दर पद्य है । 'शिलीमुख' (भ्रमर और बाण) आदि पद बहुत ही सुन्दर आये हैं ।

गते प्रेमाबन्धे प्रणयबहुमाने विगलिते,
निवृत्ते सद्भावे प्रणयिनि जने गच्छति पुरः ।
तदुत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्य प्रियसखि गतांस्तांश्च दिवसान्,
न जाने को हेतुर्दलति शतधा यन्न हृदयम् !

प्रिय सखि ! न-जाने यह मेरा हृदय फटकर टूक-टूक क्यों नहीं हो जाता ! इसके सौ टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ! हाय ! वह प्रेमाबन्ध कहाँ गया ? उस प्रणयमान की बात कहाँ ? सब नष्ट हो गया । और तो और, सद्भाव भी तो नहीं रहा । प्रेमी सामने से निकले चले जाते हैं और इधर मुँह भी नहीं करते । इस हालत में, सखी, उन दिनों की याद आती है, जब 'पसीना गुलाब था !' आज यह हाल हो रहा है ।

धन्यासि या कथयसि प्रियसङ्गमेऽपि,
नर्मोक्तिचाटुकशतानि रतान्तरेषु ।
नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण,
सख्यः शपामि यदि किञ्चिदपि स्मरामि !

कोई विदग्धा कह रही है—अरी सखी ! तू धन्य है, जो सुरत में भी नर्म-क्रीडा की सैकड़ों मीठी-मीठी बातें करती रहती है । और सखियो, मुझे तो क़सम है जो प्यारे का नीवी पर हाथ पहुँचते ही कुछ भी ख़बर रहती हो !

कहने का मतलब यह कि तू धन्य क्या, बिलकुल गई-बीती है । उस समय और बातों की बात कहाँ ? कवयित्री विज्जका की गर्वोक्ति भी पढ़ने योग्य है—

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता ।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं— सर्वशुक्ला सरस्वती !

मेरा नाम विज्जका है और वर्ण नीलोत्पल के समान श्याम । कविवर दण्डी ने मुझे न जानकर यह व्यर्थ ही लिख दिया कि 'सर्वशुक्ला सरस्वती !' कारण, सरस्वती तो मैं हूँ और मेरा वर्ण शुक्ल नहीं, श्याम है ।

वस्तुतः उनकी यह गर्वोक्ति उचित आधार पर प्रतीत होती है ।

नागमा

सुश्री नागमाजी का भी एक पद्य—

शुकतुण्डच्छविसवितुश्चण्डरुचः पुण्डरीकवनबन्धोः ।
मण्डलमुदितं वन्दे कुण्डलमाखण्डलाशायाः ।

पुण्डरीकबन्धु, प्रचण्डदीप्ति भगवान् भास्कर का मण्डल उदित हो रहा है । इसे प्रणाम । कैसा रक्तवर्ण है, तोते की चोंच की तरह ! यह प्राची का सुवर्ण-कुण्डल है ।

मारुला

कवयित्री मारुला का यह सुन्दर पद्य दशा-विशेष का उत्तम चित्र है—



कृशा केनाऽसि त्वं प्रकृतिरियमङ्गस्य ननु मे,
मलाधूम्रा कस्माद् गुरुजनगृहे पाचकतया !
स्मरस्यस्मान् कच्चित् ? नहि-नहि नहीत्येवमवदत्,
शिरःकम्पं बाला मम हृदि निपत्य प्ररुदिता !

मैंने पूछा—तुम ऐसी दुबली क्यों हो गई हो ? जवाब दिया—अजी, यह तो मेरे शरीर की प्रकृति ही है। मोटी कब हुई हूँ ? अच्छा, तो उज्ज्वलता कैसे नष्ट हो गई ? इसके उत्तर में बोली—आप जानते हैं, गुरुजनों के घर रसोई बनाती रही हूँ; इसीलिए। ख़ैर, यह तो बतलाओ, मेरी याद भी कभी आती रही ? मैंने ऐसा पूछा, त्यों ही सिर हिलाती हुई वह 'नहीं, नहीं, नहीं' कहने लगी और मेरे उरःस्थल पर पड़कर न-जाने कितना वह रोई !

और बेचारी क्या करती ?

फल्गुहस्तिनी

त्रिनयनजटावल्लीपुष्पं निशावदनस्मितम्,
ग्रहकिसलयं सन्ध्यानारीनितम्बनखक्षतिः।
तिमिरभिदुरं व्योम्नः शृङ्गं मनोभवकार्मुकम्,
प्रतिपदि नवस्येन्दोर्बिम्बं सुखोदयमस्तु नः।

प्रतिपदा के नवचन्द्र का उदय हम लोगों को सुखकर हो। यह शिव की जटा-लता का सुन्दर पुष्प है, निशा-सुन्दरी का मधुर स्मित है, ग्रहों का कोमल किसलय है, सन्ध्या-नारी के कटि में विराजमान नखक्षत है, अन्धकार को भगानेवाला आकाश का शृंग है, और है भगवान् मनोभव का सुप्रसिद्ध धनुष ! फिर क्यों न सुखकर होगा ?

मोरिका

इनका नाम कहीं-कहीं 'मारिका' भी लिखा है, जो प्रमाद से अथवा परिहास से सम्भव...

कोई प्रवास के लिए तैयार है; परन्तु ... की तरफ़दारी करती हुई सखी उसे रोक रही ...

मा गच्छ प्रमदाप्रिय प्रियशतैरभ्यर्थितस्त्वं मया
बाला प्राङ्गणमागतेन भवता प्राप्नोत्यवस्थां प...
किञ्चास्याः कुचभारनिःसहतरैरङ्गैरनङ्गाकु...
त्रुट्यत्कञ्चुकजालकैरनुदिनं निःसूत्रमस्मद्गृ...

देखो जी, इस समय मत जाओ। हे प्रमदा... देखो तो सही, मैंने तुम्हारी कितनी मिन्नत-... मद की है। जब तुम भीतर से निकलकर ... आँगन तक, चलने के लिए आते हो, वह ... बड़ी ख़तरनाक हालत में हो जाती है। ... आगे न-जाने क्या हो। और यह भी तो ... इसके ये दिन कौन-से हैं ? इसके अनङ्गभाव ... ऐसे उमड़ते हुए उठ रहे हैं कि प्रतिदिन ... 'चर्र-चर्र' फटती है। सीते-सीते चोली हद ... और अब हमारे घर में एक धागा भी नहीं ... है। न मानोगे, चले जाओगे, तो यह ... विवसना रहेगी; इसका भी ध्यान रहे। ... दिन प्रवास के हैं ?

उपसंहार

यहाँ तक कुछ पद्य दिये गये। विशेष ... इन कवयित्रियों के विषय में उपलब्ध ... और यदि किसी के जीवन के सम्बन्ध ... ज्ञात भी है, तो विस्तार-भय से उसे नहीं ... गया और इसीलिए इन पद्यों को विस्तृत ... या आलोचना नहीं की गई। विज्ञ पाठक ... देखेंगे कि इन स्वर्गीय संस्कृत कवयित्रियों की रचना में कितनी विदग्धता है।



ज्योतिष के सम्बन्ध में

आचार्य श्रीराधारमण शर्मा, शास्त्री, काव्यतीर्थ

दक्षिण विहार के लब्धप्रतिष्ठ और सुप्रसिद्ध ज्योतिषी श्रीयुत पं० देवताचरणजी मिश्र का पौत्रकल्प और कट्टर सनातनधर्मावलम्बी होकर भी मैं आज ज्योतिष के विरोध में इन पंक्तियों को लिखने बैठा हूँ—इसे क्या कहूँ ? अविवेक, अपनी अज्ञता या समय और परिस्थिति की पुकार ! कुछ समझ में नहीं आता । किन्तु हृदय इस बात का विश्वास बड़े ज़ोरों से दिला रहा है कि पंक्तियों में अज्ञान या अविवेक की बू नहीं है । यदि कुछ है, तो वह है—ज्योतिष के प्रति बद्धमूल अन्धभावनाओं के कारण होनेवाली हिन्दूसमाज की हानियों को देख कलेजे में उठनेवाली हूक, समय और परिस्थिति की सुनकर न भुला दी जा सकनेवाली ज़ोरभरी पुकार ।

मैं नहीं कहता, ज्योतिषशास्त्र असत्य है । सत्य को असत्य बता देना बड़ी हिमाक़त बड़े दुस्साहस की बात होती है, और ज्योतिषशास्त्र को असत्य सिद्ध करना तो वैसा ही होगा, जैसे प्रभाकर की चमकती हुई प्रभा को अमा का अन्धकार बतलाना । "प्रत्यक्षं ज्योतिषःशास्त्रं चन्द्रार्कौ यस्य साक्षिणौ" दिनेश और निशेश जिसके साक्षी हों—उसे अप्रत्यक्ष या असत्य सिद्ध करना उन्मत्तालाप के अतिरिक्त और समझा ही क्या जा सकता है। किन्तु फिर भी आज यह बात खेद, पर पूर्ण विश्वास के साथ कहनी पड़ती है कि किसी समय ज्योतिष समाज के लिए अतीव उपकार की वस्तु होकर भी आज तो वह केवल अपकार की चीज़ ही हो रहा है । उससे हानि को छोड़ लाभ नहीं होता; और यदि कदाचित् कुछ लाभ होता भी हो, तो वह हानि के अनुपात में इतना कम है कि वह पूर्णतया नगण्य ही है । उस लाभ की कोई वक़त नहीं है । संस्कृत में एक कहावत है—"आपदामापतन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम्" आपत्तियों के आने के समय हितैषी भी उसके कारण बन जाते हैं । ठीक यही बात ज्योतिष के लिए भी लागू समझिए ! यह समय हिन्दू-समाज की विपत्तियों का है । हिन्दू सभी तरह निःस्व, पीड़ित, पददलित और निर्जीव हो रहे हैं; फिर किसी समय का यह उपकारी विज्ञान-बन्धु भी आज क्यों न अपकारी बन जाय ! हम क्यों न इससे लाभ की जगह हानियाँ उठाने लगें ।

ज्योतिष के मुख्यतः दो भेद हैं—फलित और गणित । फलित ज्योतिष वह है, जिसके द्वारा फल कहे जाते हैं । आप पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन पढ़ते हैं—"यदि आप अपने भविष्य की बातों को जानना चाहते हैं, यदि आप नौकरी, परीक्षा, मुक़दमा आदि में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, यदि आप हज़ारों लाखों रुपये पाने का उपाय जानकर सुखपूर्वक अपना जीवन-यापन करना चाहते हैं, और यदि आप यह जानना चाहते हैं कि मेरा यह और आगामी वर्ष कैसा रहेगा तो किसी फूल-फल, या दिन का नाम एक कार्ड पर लिख



भेजें, आपके पास २॥) की वी० पी० से इन बातों के सच्चे उत्तर शीघ्र भेज दिये जायँगे। रुपये पहले भेजने से किन्हीं दो प्रश्नों के उत्तर मुफ़्त दिये जायँगे।" इस तरह के सैकड़ों विज्ञापन आप पत्रों में पढ़ा करते हैं। बड़े-बड़े शहरों में, स्थान-स्थान पर एक पंचांग खोलकर बैठे हुए ज्योतिषी एक-एक दो-दो आने में आपको आपके भूत-भविष्य-वर्तमान की बातों को बताने के लिए तैयार मिलते हैं; और शहरों में ही नहीं, दिहातों में भी आपके दरवाज़े पर महीने में कम से कम एक बार तो ऐसे किसी पंजाबी या देशवाली ज्योतिषीजी का शुभागमन हो ही जाता है, जो महज़ एक-दो पैसे के ख़र्च में हो आपको आपका हाथ देखकर भूत-भविष्य वर्तमान की समस्त बातें बता दे सकते हैं। पत्र-पत्रिकाओं के ये विज्ञापनदाता, शहरों के फ़ुटपाथों पर ये बैठनेवाले, और शहरों और ग्रामों में ये घूमनेवाले ज्योतिषी-नामधारी लुटेरे जिस लुप्त या अस्तंगत विज्ञान के नाम पर भोले-भाले शिक्षित और अशिक्षित भाइयों को ठग अपने टके सीधे करते हैं, कुछ उदरपूर्ति और कुछ हज़ारों रुपये एकत्र कर गुल-छर्रे उड़ाया करते हैं—उसी का नाम फलित ज्योतिष है।

एक युग था, जब फलित ज्योतिष जनता के महान् आदर की वस्तु थी और जहाँ इसके द्वारा मनुष्य अपनी भावी विपत्तियों से सावधान हो उसके प्रतिकार के लिए प्रयतमान होते थे, वहाँ कुछ अपने कार्यों में होनेवाली विघ्नबाधाओं का पहले से ही ज्ञान प्राप्त कर उसे मिटा अभीप्सित सफलता-सम्पत्ति पाने में कृतकार्य भी हुआ करते थे। किन्तु जिस युग की बात मैं कह रहा हूँ, उस युग में भी इसके ज्ञाता कितने थे? जो ज्योतिष-शास्त्र में पारंगत हो योग का अनुशीलन किया करते थे, वे ही इस ज्ञान के अधिकारी होते थे; और इस ज्ञान या विज्ञान के अधिकारी होने के बाद तो उनकी क़दर देवताओं की तरह होने लगती थी। उनके चरणों में विभूति और कीर्ति लोटती रहती थी। उन्हें ज्योतिष और ज्योतिषियों के नाम पर कलंक-कालिमा लगानेवाले ज्योतिषी-नामधारी इन की तरह न तो विज्ञापनबाज़ी करनी पड़ती थी, न दो-चार पैसों के लिए घर-घर की ख़ाक छाननी पड़ती थी। सोचने की बात है, जो मनुष्य त्रिकाल-दर्शी होगा, जिसे दूसरों के भूत-भविष्य-व की बातों को बताने, दूसरों को मुक़दमा, परीक्षा आदि कार्यों में सफलता दिलाने की प्राप्त होगी, जिसमें दूसरों को धनवान् बनाने की क्षमता होगी, वह स्वयं विज्ञापनबाज़ी करने जायगा, या कुछ पैसों के लिए दर-दर क्यों फिरेगा? उसके चरणों पर तो लोग लुढ़कते और उसके सामने सोने-चाँदी का ढेर लगाते। किन्तु खेद है, यह साधारण-सी बात भी से लोग नहीं समझते, और जहाँ लाखों आदमी इन बातों में अपनी गाढ़ी कमाई के पैसे हैं, वहाँ शिक्षित भी काफ़ी संख्या में अपने कटाते हैं; जिसके ज्वलन्त उदाहरण पत्रों में निकलनेवाले इन विज्ञापनों की प्रचुर संख्या है।

अभी कुछ वर्षों की बात है। गया में—इन पंक्तियों के लेखक का घर है—एक साधु हुए थे। उस समय मेरा कालेज बन्द था, काशी से अपने घर आया हुआ था। दूसरे दिन ही मैंने उनकी बड़ी तारीफ़ सुनी। कई आदमियों ने कहा—वे फलित ज्योतिष के दिग्गज विद्वान् हैं। भूत-भविष्य-वर्तमान की बातें ही नहीं, लोगों के मन की बात भी ठीक-ठीक बतला देते हैं, जैसे उन्होंने प्रत्यक्ष हो। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। एक दिन कुछ मित्रों के साथ मैं भी उनकी सेवा में पहुँचा। चलने के पूर्व मैंने अपने एक पाकेट में और दूसरे में एक रूमाल में बाँधकर आम, जामुन, नीबू, क्रोटन आदि के कुछ पत्ते डाल थे। जाकर मैंने देखा, जिज्ञासुओं की भीड़ हुई थी। साधु महोदय एक आदमी का हाथ



न-जाने क्या-क्या बातें बता रहे थे। क्रमशः मेरी भी बारी आई। उन्होंने मेरा दाहना हाथ झट अपने हाथ में ले कहना शुरू किया—'आपकी आयु तो काफ़ी है, ७३वें वर्ष में मृत्यु होनी चाहिए, पर ३८वें वर्ष में एक कठिन मारक योग है, उसका उपचार करना होगा। सम्पत्ति भी आपको बहुत रहेगी, पर........"

पर के आगे कुछ सुनने के पूर्व मैंने अपना हाथ खींचते हुए कहा—"महाराज! मैं यह सब जानना नहीं चाहता।"

"तो आप क्या जानना चाहते हैं?" उन्होंने साश्चर्य पूछा।

"जानना तो बहुत कुछ चाहता हूँ" मैंने अपने पॉकेट से दस रुपये निकाल उनके सामने रखते हुए कहा, "पर पहले केवल दो प्रश्नों का उत्तर आपसे पाना चाहता हूँ। यदि उत्तर ठीक हुए तो मेरी यह तुच्छ भेंट सामने रक्खी है।"

"पूछो, क्या पूछना चाहते हो?" उन्होंने कुछ रूक्ष स्वर में कहा।

"पहली बात तो यह कि मैं कहाँ पढ़ता हूँ, और दूसरी बात मेरे रूमाल में कौन-सी चीज़ बँधी है।"

"तुम पटना-कॉलेज में पढ़ते हो, और तुम्हारे रूमाल में घड़ी बँधी हुई है। क्यों ठीक है न?"—उन्होंने मीन-मेष आदि जन्तुओं का नाम ले कुछ मीन-मेष करते हुए कहा।

"बिल्कुल नहीं, मैं हिन्दूविश्वविद्यालय-काशी में पढ़ता हूँ—यह बात यहाँ बैठे कई सज्जन जानते हैं, पूछ लीजिए; और रूमाल में क्या बँधा है यह भी देख लीजिए।" मैंने रूमाल खोल पत्ते दिखला दिये। जिज्ञासु-मण्डली अवाक् हो गई। साधु ज्योतिषी का चेहरा लज्जावनत हो गया। मेरी इच्छा हुई—अब उठ चलूँ, किन्तु मित्रों के ज़बर्दस्त आग्रह से मुझे एक प्रश्न और पूछना पड़ा—मेरे कितनी सन्तान हैं, पर इसका उत्तर भी उन्होंने एकदम ग़लत दिया। उन्होंने कहा—एक लड़का है, किन्तु मैं उस समय तक निस्सन्तान था। मेरे घर की "सुषमा" का उस समय जन्म भी नहीं हुआ था। मैंने दसों रुपये उनके सामने से उठा पाकेट में डाल लिये और मित्रों के साथ उठकर चला आया। कई अन्य जिज्ञासु भी मेरे साथ ही उठ गये। साधुजी महाराज मुझ पर मौन-अभिशाप की वर्षा करते ही रह गये।

इसी प्रकार एक बार और, मैं अपने 'आदर्श-भवन' में अपने ससुर - महामहोपाध्याय पं० रामावतारजी शर्मा एम्० ए० साहित्याचार्य (प्रोफ़ेसर पटना कालेज) के साथ बैठा बातें कर रहा था। अचानक एक ज्योतिषाचार्य महाशय आ पहुँचे और लगे अपने त्रिकालज्ञान की अनन्त तारीफ़ें करने! पूज्य शर्माजी हँसते हुए उनकी बातें सुन रहे थे। उनकी बातों का ख़ात्मा होता न देख, उन्होंने पूछा—"अच्छा पंडितजी! बतलाइए, आज मैं कहाँ से आ रहा हूँ।" पंडितजी ने उत्तर दिया—ही ही ही ही ही, और चुपके से चलते बने। पूज्य शर्माजी ने कहा—"मेरा वश चले तो इन 'सर्टिफ़ाइड रौबरों' (Certified Robbers=प्रमाणपत्र-प्राप्त डाकू) को कालेपानी भेज दूँ।" मैं हँसता रह गया।

इन फलित ज्योतिषवालों की सबसे बड़ी धूर्तता यह होती है कि वे कभी वर्तमान की बातों को नहीं बताते, भूतकाल की बातों को भी बाध्य किये जाने पर ही बताते हैं। वे केवल भविष्य की बातें बताते हैं, जिसमें उनकी क़लई खुलने का खटका न रहे, और तत्काल उनकी सचाई-झुठाई का पता लोगों को न लग सके। आप उनसे वर्तमान काल की बातों को पूछें या भूत-काल की बातें पूछें, वे जहाँ तक बन पड़ेगा, उन्हें टालने या बातों ही बातों में उड़ा देने की भरपूर कोशिश करेंगे, या बहुत पूछने पर कुछ गोलमटोल बातें कह जायँगे। हाँ, भविष्य की बातें वे आपको धारा-प्रवाहरूप से सुना देंगे और उसी के चक्र में फँसा वे आपकी हज़ामत भी बना लेंगे। अतः



जब ऐसे महापुरुष मिलें, तो उनसे आप वर्तमान या अपनी आँखों के सामने गुज़री हुई बातों को ही पूछें, तुरत सारी कलई खुल जायगी।

अब रहा गणित-ज्योतिष! गणित-ज्योतिष ही एक प्रकार से ज्योतिष की आत्मा है, और उसी के सम्बन्ध में कहा गया है—प्रत्यक्षं ज्योतिषः शास्त्रं चन्द्रार्कौ यस्य साक्षिणौ। किन्तु खेद है, हमारे दुर्भाग्य की छाया इस पर भी पड़ चुकी है। दैवदुर्विपाक से उसकी महत्ता उसकी उपयोगिता को भी ग्रहण लग गया है। सोमनाथ-विजय के समय अत्याचारी पिशाच महमूद ने हमारे धर्मग्रन्थों की जो होली जलाई थी, वह होली, जो २१ दिनों तक अहोरात्र धाँय-धाँय कर जलती रही थी, उसमें हमारी जो बहुमूल्य दुर्लभ साहित्य-सम्पत्ति भस्मसात् हुई थी, उसमें ज्योतिष का भी पूरा हिस्सा था। ज्योतिष के भी सैकड़ों ग्रन्थरत्न जलकर ख़ाक हो गये थे। उन ग्रन्थों के अभाव के कारण एक तो ज्योतिष स्वतः क्षीणकाय और अधूरा हो गया है; उस पर जो ग्रन्थ लब्ध हैं भी, उनका भी आज जैसा पठन-पाठन और उपयोग होता है, वह परम खेद का ही विषय है, और मैं आगे कुछ पंक्तियों द्वारा उस पर प्रकाश डालूँगा।

गणित-ज्योतिष का उपयोग हमारे जीवन में मुख्यतः जन्म, छट्ठी, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कारों एवम् यात्राओं के समय होता है। यों तो कुँआ खोदने, हल चलाने, मकान बनवाने, दूकान खोलने, कपड़ा पहनने, तेल लगाने, बाल बनवाने, पेड़ लगाने, नहाने, चिकित्सा करने आदि मानव-जीवन के समस्त छोटे-बड़े कामों के लिए गणित-ज्योतिष द्वारा मुहूर्त बतलाये जाते हैं; और कुछ लोग उन्हें मानते और उन्हीं के अनुसार कार्य करते हैं। यद्यपि उनकी संख्या कृष्णपक्ष की चन्द्रिका की तरह दिन-दिन क्षीण ही होती जा रही है। हाँ, उपर्युक्त संस्कारों एवम् यात्रादि के समय मुहूर्त देखने-दिखलानेवालों की संख्या अभी काफ़ी है। यद्यपि उनकी संख्या भी ह्रास की ही ओर है।

उपर्युक्त मानव-संस्कारों का आरम्भ ज्योतिष का प्रमुख और सर्वप्रथम उपयोग समय होता है, जिस समय बालक पृथ्वी पर जन्म लेता है। बालक के जन्म लेते ही पिता या घर के अन्य कोई, बालक ने कैसे समय में जन्म लिया है, कोई ख़राब नक्षत्र या योग वग़ैरह तो नहीं है, उसे कब मा के स्तन लगाया जाय, किस समय उस नवजात की प्रसूता को स्नान कराना होगा, इत्यादि बातों की जानकारी के लिए ज्योतिषीजी के पास जाते हैं, और ज्योतिषीजी गणित द्वारा इन बातों के बताने के बाद जिस नक्षत्र में बालक उत्पन्न है, उसी के आधार पर जन्म-कुण्डली का निर्माण करते हैं। यह जन्मकुण्डली ही वह प्रमुख वस्तु है, जिसके आधार पर उस बालक के जीवन के, जन्म-ग्रहण करने से लेकर चितारूढ़ होने तक के, सम्पूर्ण संस्कार और धार्मिक विधि सम्पन्न होती हैं, उसी के आधार पर उसके भावी स्थिति, सन्तति, सम्पत्ति, विपत्ति आदि बातें बताई जाती हैं। अतएव उस प्रधान वस्तु जन्म-कुण्डली के सम्बन्ध में ही मैं यहाँ कुछ विचार किया चाहता हूँ।

जन्मकुंडली का निर्माण जितना ही सरल है, उतना ही कठिन और दुरूह भी। जिन्हें ह्रस्व-दीर्घ का भी ज्ञान नहीं होता, जो यह भी नहीं जानते कि नक्षत्र शब्द पुंलिंग है या स्त्रीलिंग; या जो ज्योतिष के सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं सरल ग्रन्थ 'मुहूर्त-चिन्तामणि' का एक श्लोक भी शुद्ध-शुद्ध नहीं पढ़ सकते, उसका अर्थ करना तो बड़ी दूर की बात है, वे भी ज्योतिषी हैं; और वे भी सदा जन्मकुंडलियाँ बनाया करते हैं। दूसरी ओर जो मेधावी विद्वान् हैं, जिन्होंने व्याकरणादि के साथ ज्योतिष का भी उचित्‌-वत् अध्ययन किया है, उन्हें भी जन्म

बनाने में प्रचुर कठिनाई का सामना करना पड़ता है। पर अधिक संख्या तो पूर्ववर्णित ज्योतिषियों की ही है, जिनके द्वारा आज हमारी भयंकर क्षति हो रही है, और जो हिन्दूसमाज के लिए मूर्तिमान् अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं।

मुझे लोग साहित्यिक समझने की कृपा करते हैं, इसलिए मेरी यह बात अगर अतिशयोक्ति न समझ ली जाय, तो मैं सखेद कहूँगा—आज तक मेरी आँखों के सामने से जितनी कुंडलियाँ गुज़रीं, उनमें ७५ फ़ी सदी मुझे ऐसी ही मिलीं, जिनके आरंभ में उसके लेखक—"आदित्यादि ग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशयः" भी नहीं लिख सके हैं, उन्होंने लिखा है—'आदितादि ग्रहाः सरवे नछ्त्राणी च राशयः" और इन्हीं जन्मकुंडलियों पर उन विचारों के समस्त धार्मिक और लौकिक कार्य निर्भर करते हैं, जिनकी वे हैं। हा हन्त !

जन्मकुंडलियों के निर्माण के लिए सिर्फ़ विद्वत्ता या ज्योतिष की पूर्ण अभिज्ञता की ही ज़रूरत नहीं होती, सबसे बड़ी ज़रूरत होती है ठीक समय की! उस समय की, जिसमें बालक जन्म लेता है। यदि समय में दो मिनट की भी कमी-बेशी हो गई तो समझ लीजिए, उस समय में बीतनेवाले मुहूर्त के आधार पर बननेवाली कुंडली, और उस कुंडली के आधार पर होनेवाले काम सब व्यर्थ हो गये। कारण, मुहूर्तों में परिवर्तन दो मिनट के अन्दर भी हो जाया करता है; अतः ठीक समय का ज्ञान साधारण बात नहीं है। मान लीजिए, शुक्रवार के प्रातःकाल आपके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। आपने अपनी 'रिष्टवाच' देखी। उसमें ७ बजकर २० मिनट हुए थे, पर आपकी आफ़िसक्लाक में पूरे साढ़े सात हो गये थे। आपने मोहल्ले की दूसरी-दूसरी घड़ियाँ देखने के लिए आदमी भेजे तो किसी में ७ बजकर २० मिनट ही हुए थे, तो किसी में २६ तो किसी में १८ और किसी में ३६ मिनट हो गये थे। बताइए, अब आप किसे ठीक समझेंगे?

यह बात काल्पनिक या भावुकताभरी नहीं है। इस लेख के पाठक एक ही समय भिन्न-भिन्न मोहल्लों की भिन्न-भिन्न घड़ियों को देख इसकी सत्यता की परीक्षा कर ले सकते हैं।

किन्तु, यह सब होने पर भी मैं मानता हूँ, शहरों में फिर भी समय का ज्ञान कुछ हो ही जाता है। पर दिहातों में? वहाँ की बात तो कुछ न पूछिए! एक सीधा-सादा दिहाती आता है और ज्योतिषीजी से कहता है—"पंडितजी! हमार नाती भइल है"। जब ज्योतिषीजी पूछते हैं—किस समय, तो वह उत्तर देता है—"इहे एक पहर दिन या रात बीत गइल रहले, या शुकवा उग गइल रहल"। अब वह दिहाती ज्योतिषीजी कुछ पढ़े-लिखे भी हों, तो भी उन्हें ठीक समय का पता भला लग ही कैसे सकता है। वे किसी तरह अटकल पर जैसी-तैसी कुंडली तैयार कर दे देंगे। ये बातें मैं अनुमान नहीं, प्राप्त अनुभवों के आधार पर लिख रहा हूँ।

ऐसी परिस्थिति में इन कुंडलियों द्वारा हमको, आपको भिन्न-भिन्न मौक़ों पर जो क्षति पहुँचती है, वह तो पहुँचती ही है, विवाहों के अवसर पर तो इनसे कभी-कभी भयानक हानि होती है। एक लड़की है, उसका पिता एक लड़के की तलाश में व्यग्र है। बहुत दौड़धूप और व्यय के बाद एक मनोऽनुकूल लड़का मिलता है। लड़का पढ़ा-लिखा सुशील और सम्पन्न है। उसे अपार हर्ष होता है, पर उसका हर्ष उस समय घोर विषाद में परिणत हो जाता है, जब ज्योतिषीजी उसकी लड़की और उस मनोनीत लड़के की कुंडली देख कुंडली न बनने की घोषणा करते हैं। दोनों की कुंडली ठीक है या ग़लत, यह राम जाने! पर उस अभागे पिता को व्यथा तो बढ़ ही जाती है। इसी तरह एक युवक और युवती हैं। दोनों एक दूसरे को प्यार करते हैं। दोनों सजातीय हैं। दोनों के पिता भी यह सम्बन्ध पसन्द करते हैं। पर यह सम्बन्ध केवल इसलिए



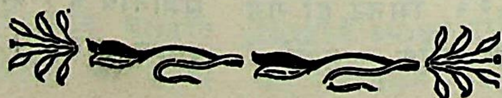
नहीं होता कि निगोड़ी जन्मकुंडली मिलती नहीं। दोनों का जीवन नीरस, निर्जीव, निरानन्द हो जाता है। इस तरह की घटनाएँ आये दिन नित्य ही सैकड़ों की तादाद में घट रही हैं।

विवाह के समय कुंडली दिखलाकर विवाह करने से कोई विशेष लाभ होता हो—यह बात भी नहीं है। ऐसे सैकड़ों विवाह हुए हैं, जिनमें कुंडली दिखलाई ही नहीं गई और वे विवाह पूर्ण मंगल और आनन्दमय सिद्ध हुए हैं। दूसरी ओर मैंने अपनी आँखों देखा है, कुंडली मिलाकर ज्योतिषीजी की पूर्ण सम्मति से शादियाँ हुई हैं, और कुछ ही मास के अन्दर लड़की विधवा या लड़का विधुर हो गया है, अथवा वे विवाह दुःख-कलह आदि के कारण सिद्ध हुए हैं।

अभी कुछ वर्षों की बात है, काशी क्वीन्स कॉलेज के प्रोफ़ेसर एवं पंचांग-प्रणेता सुप्रसिद्ध ज्योतिषी पं० रामयत्नजी ओझा को दो कुंडलियाँ दिखलाई गई थीं। एक लड़के की और एक लड़की की! उन्होंने देखकर कहा, शादी बहुत अच्छी बनती है। पूर्ण सौभाग्य योग है। सन्तान-योग भी अच्छा है। कई दूसरे ज्योतिषियों ने भी यही बात कही थी। पर आप सुनकर विस्मित होंगे—विवाह होने के चार ही मास बाद लड़की विधवा हो गई। लोग भाग्य की बात कहकर चुप हो बैठे। लेकिन मैं कहता हूँ, जब सब होने पर भी फिर भी भाग्य की ही प्रधानता रही तो इन कुण्डलियों के मिलान के व्यर्थ ही नहीं, कष्टकर झमेले में पड़ने की क्या ज़रूरत! यह बात तो बिल्कुल प्रत्यक्ष है कि आज इन कुण्डलियों के झमेले के कारण ही कितने सुन्दर सुशील और सुशिक्षित लड़के के गले मूर्खा और कुरूपा लड़की मढ़ दी जाती है, और कितनी धनसम्पन्न और सुशिक्षिता और सुन्दरी लड़कियाँ अयोग्य लड़कों की भेंट होती हैं।

पाठकों को गत मार्च की घटना ... होगी। अलीगढ़ के एक ज्योतिषी ने— उनका राजवल्लभजी नाम था—बड़े ... मान के साथ और बड़े ही ज़ोरदार ... विश्वास दिखाते हुए पत्रों में और पुस्तकों ... घोषणा कर दी—"३ मार्च को भयङ्कर ... होगा, और ३ मार्च से १८ मार्च तक ... शादियाँ होंगी, उनमें वर या वधू का देहान्त ... जायगा। इसी तरह इस अवधि में जन्म ... बच्चे भी नहीं बचेंगे। महामारी आदि ... रोगों का अत्यन्त प्रकोप होगा। भूकम्प ... माल की अत्यधिक हानि विहारवालों ... फिर होगी। आदि-आदि" जनवरी ... भूकम्प में विहार में खण्डप्रलय हो ही ... इस घोषणा के निकलते ही विहार में ... दहशत फैल गई। लोग प्राण लेकर ... भागने लगे। सबके चेहरे पर मुर्दनी ... हज़ारों रुपयों की क्षति लोगों को हुई। ... होने रुक गये। लग्न के दिन थे, अतः ... यहाँ विवाह की तैयारियाँ हो चुकी ... लोगों की तो भीषण क्षति हुई। लोगों ... कण्ठगत-से हो गये। पर आख़िर हुआ ... नहीं। यदि भारत की जगह यह कोई ... देश होता तो जनता में इस प्रकार का ... आतंक फैलानेवाले को वर्षों बड़े घर की ... खानी पड़ती।

आशा है, 'माधुरी' के पाठक और ... प्रेमी यदि ठंडे दिल से इस लेख पर ... करेंगे, तो उपरिलिखित बातों को ... और माननीय पायेंगे और ज्योतिष के ... उपयोग और झूठे ज्योतिषियों के चकमे से ...



सिंहलद्वीप और लंका

ज्योतिषाचार्य श्रीसूर्यनारायण व्यास

अब यह बार-बार बतलाने की ज़रूरत नहीं कि 'लंका' के विषय में इंदौर के विद्वान् श्रीयुत माधवराव विनायकराव किबे साहब ने एक शंका उपस्थित कर दी है। किबे साहब के मतानुसार वह लंका मध्यप्रांतीय अमरकंटक में आती है। जब यह वाद उपस्थित कर दिया गया है तो अनेक शंकाएँ सामने आ गई हैं, कुछ विद्वान् सिंहलद्वीप को ही लंका बनाने लगे, श्रीकिबे साहब ने जिस प्रकार अपने पक्ष में मध्यप्रांतीय लंका के प्रमाण पेश किये हैं, उसी प्रकार दूसरे विद्वानों ने 'सिंहल' को 'लंका' कहने के लिए भी प्रमाण जुटा लिये हैं। हम अपने पिछले कई लेखों में पत्रों द्वारा यह प्रकट कर चुके हैं कि श्रीकिबे साहब की दलीलें, बलहीन और शाब्दिक खींचतान हैं। आज हम यहाँ यह बतलाने का मान करेंगे कि जो लोग 'सिंहल' को ही 'लंका' बतलाते हैं, वे भ्रमपूर्ण पथ पर हैं। 'सिंहल' और 'लंका' ये अलग-अलग स्थान थे।

प्रचलित लोकोक्ति को लेकर बहुत-से लोग मानते हैं कि सिंहलद्वीप और लंका एक ही स्थान के नाम हैं। किन्तु वास्तव में ये दोनों स्थान भिन्न-भिन्न हैं।

(क) महाभारत वनपर्व के ५१वें अध्याय से मालूम होता है कि वन-वासी पांडवों की दुखी अवस्था देखकर श्रीकृष्ण अत्यन्त दुखी होकर धर्मराज युधिष्ठिर से कहते हैं—

या सा समृद्धिः पार्थानां इन्द्रप्रस्थे बभूव ह।
राजसूये मया दृष्टा, नृपैरन्यैः सुदुर्लभा २१
यत्र सर्वान् महीपालान् शस्त्रतेजोभयार्दितान्।
स वंगांगान् स पौण्ड्रोड्रान् स चौलद्रविड़ान्धकान् २२
सागरानूपको श्चैव ये च प्रान्ताभिवासिनः।
सिंहलान् बर्बरान् म्लेच्छान्, ये च लंकानिवासिनः २३

इत्यादि

(एक समय राजसूय-यज्ञ में पांडवों की जैसी समृद्धि मैंने देखी थी, वैसी समृद्धि शायद ही किसी राजा के भाग्य में हो। उस यज्ञ में दुनिया भर के राजा आकर आपके परिवेशक का कार्य करते, आपकी सेवा-सुश्रूषा करते थे। आर्य! आज आपकी यह दशा!)

इस स्थल पर श्रीकृष्ण ने जिन राजाओं के समुदाय के नाम गिनाये हैं, उनसे 'सिंहल', और 'लंका' इन दो पृथक्-पृथक् राज्यों का निर्देश मालूम होता है।

(ख) महाभारत सभापर्व के ३४वें अध्याय से पता चलता है कि राजसूय-यज्ञ में आमन्त्रित महाराजा युधिष्ठिर के दर्शनार्थ नाना प्रकार की भेंट लेकर जो राजाओं का समूह आया था, उसमें—"द्राविडाः सिंहलाश्चैव राजा काश्मीरकस्तथा॥ द्राविड़, सिंहल और काश्मीर देश के

राजागण आये थे। यहाँ पर लंका का नाम-निशान नहीं है।

(क) चिह्नवाले अवतरण में 'परिवेशक' का कार्य करनेवालों में 'सिंहल,' और 'लंका' के राजा मालूम पड़ते हैं। यह बात सच है, किन्तु (ख) चिह्नित अवतरण में भेंट लानेवालों में सिर्फ़ सिंहलद्वीपपति मालूम होते हैं—लंकापति नहीं। इससे सिंहल और लंका का भिन्न-भिन्न होना स्पष्ट होता है।

(ग) उक्त सभापर्व के ३१वें अध्याय से पता चलता है कि—"सहदेव, भारत की दक्षिण दिशा के सब राज्यों को जीतते हुए, समुद्र-तट पर उपस्थित हुए, और वहाँ—

"सागरद्वीपवासांश्च नृपतीन् म्लेच्छयोनिजान् ६७

निष्पदान् पुरुषांश्चैव कर्णप्रावरणानपि।

ये च कालमुखा नाम, नरराक्षसयोनयः॥

द्वीपस्ताम्रारुणश्चैव, पर्वतं रामकं तथा॥ ६८॥

× × ×

दूतैरेव वशं चक्रे करमेनानदापयन्॥ ७०॥

(इन सब जातियों को और, ताम्रद्वीप, तथा रामक पर्वत-वासियों को उन्होंने दूत भेजकर अधीन कर लिया, और उन्हें कर देनेवाला राजा बनाया।)

इस स्थान पर 'ताम्रद्वीप,' और रामक पर्वत, का नाम मिलता है। सिंहल, या लंका का नाम नहीं मिलता, किन्तु यह ताम्रद्वीप (या ताम्र-पर्ण) शायद सिंहल का प्राचीन नाम न हो?

(घ) पुनः प्राचीन ग्रीक-लेखकों ने भी सिंहल के पृथक् अस्तित्व को स्वीकार किया है। उनके मतानुसार सिंहल का नाम तप्रबेन (Taprobane) अर्थात् ताम्रपर्णी है। सिंहल के प्रसंग पर उन्होंने 'लंका' का कुछ भी उल्लेख नहीं किया है। ताम्रद्वीप जीतने के बाद समुद्र-तट के प्रदेश पर जाकर, सहदेव ने पौलस्त्य-विभीषण के पास दूत भेजा। विभीषण ने अपने बल का अभिमान न करके विजयी सहदेव का प्रभुत्व स्वीकार कर ... प्रकार की भेंट भेजी—

(ङ) ततः कच्छागतो धीमान्, दूतान् माद्रवतीसु...

प्रेषयामास शैलेन्द्र पौलस्त्याय महात्म...

विभीषणाय धर्मात्मा प्रीतिपूर्वमरिन्द...

स चास्य प्रतिजग्राह शासनं प्रीतिपूर्वकम्...

इस स्थान पर रावण-वध के बाद लंका सिंहासन पर श्रीरामचन्द्र द्वारा राज्याभि... विभीषण का नाम मिलता है। उसकी राज... 'लंका' का नाम आप ही आप कल्पना में आ... है। ताम्रद्वीप की जीत के समय 'सागरद्वीपवा...' 'नरखादक,' और 'नानारूपधर' जाति का ... मिलती है। परन्तु वह विभीषण के राज... बिलकुल अलग स्वरूप में वर्णन की गई है।... से इस ताम्रद्वीप ही का बाद में सिंहल नाम ... होगा, यह नहीं अनुमान किया जा सकता।

(च) सुप्रसिद्ध वराहमिहिर की 'बृहत् सं...' के १४वें अध्याय में लंका और सिंहल ... पृथक् स्थल बतलाये गये हैं। उसमें दक्षिण ... के उल्लेख योग्य स्थलों के नाम गिनाते हुए ... की ओर से दक्षिण की ओर आये हुए ... का निर्देश किया गया है—

"अथदक्षिणेनलंकाकालाजिनसौर-कीर्णतालि...

गिरिनगर-मलयदर्दुर-महेन्द्रमालिन्दभरुकच्छ...

कांची मरुचीपट्टनचेर्य्यार्ढ्यकसिंहला ऋषभ...

अर्थात् बृहत्संहिता के समय में भी ... और 'सिंहल' दोनों पृथक् स्थान थे।

(छ) श्रीमद्भागवत पंचम स्कंध के ... अध्याय में जंबूद्वीप में आये हुए आठ उ... वर्णन के प्रसंग पर 'लंका' और 'सिंहल' ... दो पृथक्-पृथक् द्वीपों का निर्देश प्रकट होता ...



श्रीशुक उवाच—

जम्बूद्वीपस्य च राजन् उपद्वीपान् अष्टौ उपदिशन्ति सगरात्मजैरश्वान्वेषणे इमां महीं परितः निखनद्भिरुपकल्पितान् ॥ २८ ॥

तद्यथा—स्वर्णप्रस्थः, चंद्रशुक्लः, आवर्त्तनो-रमणकः, मंदहरिणः पाञ्चजन्यः, सिंहलः, लंका—इति ॥ २९ ॥

एवं तव भारतोत्तम जम्बूद्वीप-विभागः यथोपदेशमुपवर्णितः ॥ ३० ॥

अर्थात्—"हे राजन् ! कोई-कोई विद्वान् कहते हैं कि जंबूद्वीप में आठ उपद्वीप हैं। सगर राजा के पुत्रों ने यज्ञ के अश्व को ढूँढते हुए चारो तरफ़ की खुदाई करते समय यह सब रचना की थी। इन आठ द्वीपों के नाम ये हैं—स्वर्णप्रस्थ, चन्द्र-शुक्ल, आवर्तन, रमणक, मंदहरिण, पांचजन्य, सिंहल और लंका। हे भारतश्रेष्ठ ! जंबूद्वीप के विभाजन के संबन्ध में मुझे जो उपदेश मिला था, उसी का मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया है।" इस स्थल पर भी यही विदित होता है कि सिंहल और लंका पृथक् द्वीप थे।

(ज) मार्कंडेय पुराण के ५८वें अध्याय में कूर्म-विभाग के भाषण में कूर्म के दक्षिण ओर से आये हुए दक्षिण भारत के अनेक देशों के क्रमिक स्थानों का उल्लेख है। उस सूची के अनुसार लंका के बाद अनेक देशों के नाम आने पर 'सिंहल' का निर्देश किया गया है।

नक्षत्रत्रितयं पादमाश्रितः पूर्वदक्षिणम्।
लंका कालाजिनाश्चैव शैलिकानिकटास्तथा:॥२०॥
महेन्द्रे मलयाद्रौ च दर्दुरे च वसन्ति ये।
कर्कोटकवने ये च भृगुकच्छाः स कोंकणाः॥२१॥

× × ×

तथा वारिचराः कोलाश्चर्मपट्टनिवासिनः।
गणबाह्याः पराः कृष्णा द्वीपवासनिवासिनः॥२५॥

× × ×

दक्षिणाः कौरुषा ये च ऋषिकास्तापसाश्रमाः।
ऋषभाः सिंहलाश्चैव तथा कांचीनिवासिनः॥२७॥
ताम्रपर्णी तथा कुक्षिरिति कूर्मस्य दक्षिणाः॥२८॥

(नक्षत्र त्रितय अर्थात् आश्लेषा, पितृ, मघा और पूर्वाफाल्गुनी—ये तीन नक्षत्र पूर्व दक्षिण तरफ़ से आश्रय ले रहे हैं। लंका, कालाजिन, शैलिक, निकट, महेन्द्र, मलय और दर्दुर, पर्वत में आई हुई सब बस्ती, कर्कोटक।

वन में आये हुए प्रदेश, भृगुकच्छ, कोंक-वारि-चर, कोल, चर्मपटवासी, गणबाह्य, और कृष्ण-कायद्वीप-वासी—दक्षिण, कौरुप, ऋपिक, ताप-साश्रम, ऋषभ, सिंहल, कांची, ताम्रपर्ण, और कुक्षि, यह समुदाय कूर्म की दक्षिण तरफ़ आया हुआ है।

इस स्थल पर लंका का बड़े-बड़े देशों के मिश्रण-व्यवधान के साथ सिंहल का अवस्थान भी सूचित होता है।

(झ) बालरामायण, कर्पूर-मंजरी और काव्य-मीमांसा आदि बहुत-से ग्रंथों के कर्ता प्रसिद्ध परिव्राजक कविराज जयशेखर ई० स० की ९वीं सदी के अंत में हुए थे। उनके बाल-रामायण नाटक के तीसरे अंक से मालूम होता है कि लंकेश्वर रावण को खुश करने के लिए सीतास्वयंवर-नामक नाटक खेला गया था। उक्त स्वयंवर में सीता के पाणि-ग्रहण के हेतु आये हुए राजाओं में राजशेखर-नामक सिंहलराज उपस्थित हुए थे। वहाँ पर सीता को प्राप्त करने के लिए आतुर इस अभिनय का दूसरा प्रमुख पात्र लंकाधिप रावण, दंभपूर्वक सिंहलपति राजशेखर से कहता है—

"रावण—सिंहलपते ! किमिदं संदिह्यते ?



न च संदहे—दहे: वीरव्रतनिर्वाह: ।" इससे भी मालूम होता है कि सिंहलपति राजशेखर और लंकापति रावण ये पृथक् व्यक्ति हैं, और लंका तथा सिंहल दोनों भिन्न राज्य हैं।

(ट) लंका और सिंहल संपूर्णतः दो भिन्न राज्य होने का उक्त बालरामायण के १०वें अंक में उल्लेख है। रामचन्द्र सीता को लेकर पुष्पक-विमान में बैठकर अयोध्या लौटे, उस समय विभीषण इत्यादि साथ थे। राम सीता को ऊपर से नीचे के विविध स्थान बतलाते थे। पुष्पक के नीचे आई हुई 'लंका'-नगरी और रावण आदि का वधस्थान, रणभूमि, ये सब एक के बाद एक रामचन्द्रजी सीता को बतलाते जाते थे। पुष्पक, नक्षत्र के वेग से चल रहा था। देखते-देखते राम-सीता आकाश मार्ग पर बहुत ऊँचे पहुँच गये। पुष्पक के अगले भाग से दूरी पर इंद्रधनुष-जैसा एक विशाल प्रदेश का सुन्दर चित्र नैसर्गिक चित्र की तरह नज़र में आया। उसे देखकर कौतूहल-वश जानकीजी रामचन्द्रजी से पूछती हैं—

"सीता—अखण्डिताखंडलकोदंडप्रतिरूप: कतर: पुनरेष: उद्देश: ?"

अर्थात्—"अभग्न इन्द्रधनुष जैसा यह कौन-सा प्रदेश दीख रहा है ?" प्रत्युत्तर में विभीषण ने कहा—

"पश्यस्यग्रे जलधिपरिखं मंडलं सिंहलानाम्।"

अर्थात्—"यह सामने समुद्र परिखा से वेष्टित जो अर्धवृत्ताकार देश दिखाई दे रहा है, उसका नाम सिंहल है।" यहाँ पर यह जानने योग्य है कि विभीषण ने लंका के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा। कारण, उन्होंने बहुत समय पहले ही लंका छोड़ी थी। और लंका के संबंध में जो कुछ कहना था, वह रामचन्द्र के सामने कह ही चुके थे। इस समय तो सामने सिंहल देश था। सीताजी ने उसी के सम्बन्ध में पूछा भी था। अतएव विभीषण ने इतना ही उत्तर दिया। इसके अतिरिक्त पहले अपनी राजधानी लंका के सम्बन्ध में कुछ न कहकर विभीषण ने अपनी [चतुरता] और बुद्धिमत्ता ही का परिचय दिया। सिंहल राजधानी तो दूसरे की थी। अतएव उसकी चर्चा छेड़ देना—समयोचित भी मालूम होता है।

उपर्युक्त अवतरणों से यह स्पष्ट विदित होता है कि रामचन्द्र की बतलाई हुई लंका, और विभीषण का बतलाया हुआ सिंहल, भिन्न-भिन्न राज्य थे।

'लंकावतार-सूत्र' ग्रंथ से मालूम होता है कि भगवान् बुद्ध ने लंका के अंदर मलय पर्वत पर रावण को उपदेश दिया था। इसमें भी सिंहल नाम का कहीं उल्लेख नहीं है।

अब हम कुछ प्रख्यात इतिहासज्ञों के अनुमान पर विचार करेंगे, जिसके अनुसार वे लंका और सिंहल को एक स्थान के दो नाम मानते हैं। इतिहासज्ञों का कहना है कि बंगाल में बुद्ध के समकालीन सिंहबाहु नामक एक राजा था। कुछ कारण-वश उसका पुत्र विजयसिंह राज्य त्याग कर [जहाज़] से लंकाद्वीप को चला गया था। वहाँ उसने अपने पराक्रम से एक नवीन राज्य की स्थापना की। कुछ समय के पश्चात् इसी सिंहवंश के नाम पर लंका का नाम सिंहल हो गया।

इस विषय में केवल यही कहना है कि [राज्य] का त्याग कर विजयसिंह ने बाहर किसी द्वीप में राज्य स्थापित कर लिया होगा, और संभव है इस विजयसिंह के जीते हुए द्वीप का नाम सिंहल भी पड़ गया हो, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह जिस द्वीप में गया, वह लंका ही होगा और वही लंका आगे चलकर सिंहल बन गया हो। इसका कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता। लंका और सिंहल भिन्न-भिन्न राज्य थे, इसके अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं। हमने कुछ प्रमाण दिये भी हैं। अंत में एक बात हम और कहना चाहते हैं। विजयसिंह ताम्रपर्णी ही गया था, और वही ताम्रपर्णी, अथवा प्राचीन ताम्रद्वीप अब से सिंहवंश के नाम से सिंहलद्वीप [कहलाया], यह अधिक संभव जान पड़ता है।

श्रीभुवनेश्वरप्रसाद की तारीफ़

श्रीसूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

गत मास की 'माधुरी' (पूर्णांक १७२) में 'श्रीसूर्यकान्त त्रिपाठी निराला'-शीर्षक एक लेख श्रीभुवनेश्वरप्रसाद का लिखा हुआ निकला है। जब यह लेख छपने को दिया जानेवाला था, इसी अवसर में मैं 'माधुरी' के कुछ पुराने अंक—जिनमें मेरे लेख छपे थे—ख़रीदने के लिए 'माधुरी'-कार्यालय गया हुआ था; मेरी अपनी प्रतियाँ खो गई थीं। कुछ देर बाद 'माधुरी' के सम्पादक आदरणीय पंडित रूपनारायणजी पांडेय आये। यह मेरा उनका चार महीने बाद साक्षात्कार था। मैं काशी से कुछ दिनों के लिए लखनऊ गया था। प्रणाम-नमस्कार के पश्चात् मुस्किराते हुए पांडेयजी ने कहा—"दो लेख आये हैं; एक तुम पर है, एक पन्त पर; नये ढंग के हैं; भुवनेश्वरप्रसाद को तो तुम जानते होगे, उनके लिखे हुए।" मैंने सुन लिया। भुवनेश्वरप्रसाद का स्वरूप-निर्णय इसलिए नहीं किया कि इससे उनके हित में अहित होने की सम्भावना थी। मैं वहाँ से अमीनाबाद, अपने डेरे पर, आया। दूसरे या तीसरे दिन स्कालर कवि-मित्र श्रीरामविलास शर्मा के यहाँ जाकर 'कला की रूपरेखा' लिखी, जो 'माधुरी' के इसी आलोचित अंक में प्रकाशित है। जल्दी के कारण उसे शर्माजी को देकर 'माधुरी'-कार्यालय भेज देने के लिए कहा। साथ एक चिट्ठी पांडेयजी को लिखी। लिखते समय भुवनेश्वरप्रसाद की याद आई। मैंने पांडेयजी को विस्तार के साथ लिख दिया कि मुझे विश्वास नहीं, श्रीभुवनेश्वरप्रसाद मेरे सम्बन्ध में सही-सही लिखेंगे (अगर वह व्यक्तिगत है, आलोचना नहीं), और भुवनेश्वरप्रसाद की मेरी तब तक कोई बातचीत नहीं हो सकती, जब तक वे अट्ठारह साल की उम्र में एम्० ए० पास करके, आई० सी० एस्० की परीक्षा में चुने जाने की पूरी योग्यता रखते हुए भी उसे छोड़कर, हिन्दी की सेवा के विचार से आये हुए नहीं। मैंने यह भी लिख दिया कि मैं आपकी स्वाधीन वृत्ति पर दबाव नहीं छोड़ता, आप चाहें तो छाप सकते हैं; परन्तु इसका भविष्य आप ही के हाथों (मेरा उत्तर 'माधुरी' में छपने पर) श्रीभुवनेश्वरप्रसाद के लिए अत्यन्त अहितकर प्रमाणित होगा, वे साहित्य में दाग़ी होकर शायद ही फिर उभर सकें। पर पांडेयजी ने सम्पादकीय ज़िम्मेदारी की ओर ही देखा।

अस्तु, लेख छपने पर मैंने उसे पढ़ा। मुझे सप्रमाण या आलोचनात्मक तो उसमें कुछ न देख पड़ा; हाँ, यह देखा कि भुवनेश्वरप्रसाद ने मेरे सम्बन्ध में एक साथ कई सम्मतियाँ दी हैं, मैं ही नहीं, रवीन्द्रनाथ, प्रेमचन्द और सुमित्रानन्दन भी एक ही हाथ घसीट लिये गये हैं।

मैं जानना चाहता हूँ, मेरी बातचीत जिस



ढंग से शुरू की गई है, क्या उस ढंग से मेरी भुवनेश्वरप्रसाद-जैसे मनुष्य से बातचीत हो सकती है ?—ऐसी बातचीत के लिए कोई पूर्व-परिचय, भूमिका आदि बिलकुल ज़रूरी नहीं ?

सच यह है कि वह बातचीत सब ग़लत है। बातचीत हुई, पर नासमझी के कारण उसका रुख़ (Direction) पूरा-पूरा बदल दिया गया है, जैसे, उनके बर्न्स का नाम लेने पर मैंने कहा—"कौन, वह लोहालक्कड़वाला ?" (मेरा मज़ाक़ में कलकत्ते की लोहेवाली बर्न एंड कम्पनी की ओर इशारा था।) इस पर उन्होंने कैसी मुखाकृति बनाई, यह सोचने पर ही मालूम होगा। इस तरह और-और बातें हैं।

उनके स्वरूप का पता उनके परिचय के पन्द्रह रोज़ के अन्दर-अन्दर, उन्हीं के एक सहपाठी से मिला, जो बराबर अच्छी तरह पास करता हुआ भी उस समय तक एम्० ए० न हो सका था, और इन्हें अपनी दृष्टि की आँच से सत्य का परिचय दे चुका था। वे सब अनेकानेक बातें, जिनके जानकार लखनऊ के अच्छे-अच्छे प्रतिष्ठित और विद्वान् मनुष्य हैं, मैं इसलिए छोड़ रहा हूँ कि श्रीभुवनेश्वरप्रसाद के परिचय से और भी अनेक सज्जन अभिज्ञता प्राप्त कर चुके हैं और उन्हीं में से दो के उल्लेख यहाँ देता हूँ। ये दोनों उल्लेख इन सज्जनों के अपने हाथ के लिखे हुए हैं। प्रथम हैं हिन्दी के सुपरिचित कहानी-लेखक पंडित वाचस्पतिजी पाठक और दूसरे, प्रयाग-विश्वविद्यालय के एम्० ए०, पंडित बलभद्रप्रसादजी मिश्र, जो इस समय दैनिक 'भारत' में सह० सम्पादक के रूप से रहते हुए उक्त विश्वविद्यालय से डी० फ़िल की तैयारी कर रहे हैं। इतने से शायद भुवनेश्वरप्रसादजी के परिचय में प्रकाश की कमी न रहेगी—

"श्रीभुवनेश्वरप्रसाद अपनी एक पुस्तक लीडर-प्रेस से छपाना चाहते थे। उन दिनों मेरा उनका साक्षात् परिचय भी हुआ था। परिचय करानेवाले मेरे मान्य अधिकारी ने बतलाया कि ये बी० ए० (अथवा एम्० ए०, ठीक स्मरण नहीं) हैं। इनको अत्यन्त होनहार समझकर इनके ... चाहते थे कि यह आई० सी० एस० में ... किन्तु सरकारी नौकरी करते हुए हिन्दी की ... सेवा नहीं हो सकती, अतः अपने सबसे ... होकर अब यह इधर ही आ गये हैं।—ये ... इनसे सुनकर ही उन्होंने मुझे बतलाई थीं।

ऐसी बातें एक साथ सुनकर मुझे कुछ आश्चर्य न हुआ। मैं ऐसे कुछ लोगों को ... हूँ, जो अपनी कल्पना से अपने एक दूसरे ... निर्माण करते हैं, और उसी निर्मित ... परिचय दूसरों को उनसे पहली भेंट में प्राप्त ... है। कुछ बहुत दिनों तक उन्हें उसी ... पहचानते हैं, कुछ शीघ्रता से उनकी कल्पना ... दीवार तोड़कर उन्हें झाँक लेते हैं। मैंने ... मन कुछ सोचा और एक दृष्टि बग़ल में ... नवयुवक पर डाली। उसने पाजामा और ... पहन रक्खी थी। उसके रूखे बड़े बाल अस्त- ... हो रहे थे। नीचे गालों पर कुछ चकत्ते ... दीख रहे थे। इन सब रूप-रेखाओं से मुझे ... झलक रहा था कि यह किसी दूसरी दुनि- ... भटक रहा है। यह स्पष्ट था कि अपने ... पहले से अनुभव प्राप्त करनेवालों को मूर्ख सम- ... कारण यह अपनी ही चाल चलना चाहता है ... उस समय उससे कोई बात नहीं की, और ... वह पुस्तक, जो मुझे देखने को दी गई थी ... उठ आया।

फिर तो यह युवक मेरे अधिक परि- ... आता गया। और-और बातों को छोड़कर ... साहित्य के सम्बन्ध में उसकी बातें कहीं ... भी सीमा नहीं है। उसकी प्रवृत्तियाँ बहुत ... जान पड़ती थीं। जैसा कि अपने 'माधु- ... लेख में उसने स्वीकार किया है कि ... नाम उसने केवल इसलिए लिया था ... विश्वास था कि निरालाजी ने यह नाम ...



होगा, ऐसा ही उसके परिचितों ने अनुभव किया है कि विदेशी लेखकों के नाम के बल पर अपने दम्भपूर्ण महाज्ञान की विज्ञप्ति उसकी साहित्यिक साधना है। भारतीय संस्कृति का, हिन्दी के उद्गम-काल से आज तक की साहित्य-सृष्टि का और इस भाषा के मूल से अभिधा और व्यंजना का जिसे ज्ञान न हो; मेरी समझ में वह केवल विदेशी लेखकों के नाम रटकर कुछ कर सकेगा, कोरी विडम्बना है। अपने कुछ दिनों के परिचय में उस युवक ने मेरी ऐसी धारणा नहीं बनने दी, जिससे मैं समझता कि साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर उसने मनन कर, उसके भीतर पैठकर उसने कुछ पाया है। उसने जो कुछ पाया है, उसे वह बहुत जल्द उगल देता है, देखनेवाले देखते हैं, उसमें कुछ नाम हैं, जिसे लेकर हिन्दी का उद्धार नहीं किया जा सकता।

किन्तु मुझे 'माधुरी'वाले लेख को देखकर उसकी अनिश्चितता का एक और तरह का प्रमाण मिला। जिन दिनों वह यहाँ रह रहा था, उन दिनों की बात है। एक दिन उसने कहा—"हिन्दी की कविता में कुछ नहीं है। हाँ, सोने के कुछ कण निराला की कविता में हैं।" मैंने पूछा—"और लोग ?" तो मि० ने मुँह बनाकर कहा—"और किसी के पास कुछ नहीं। हिन्दी में बहुत गर्म हो रहे पन्तजी ने केवल टीन चमकाई है।" मैं सुनकर चुप हो रहा। कारण, मैं अपना मत रखता हूँ और यह कुछ समझकर उत्तर दे रहा है, ऐसा मेरा विश्वास न था। इसीलिए आगे चलकर इस बातचीत के कुछ देर बाद मैंने 'निराला'जी के एक छन्द को उपस्थित करके कहा—"महाशयजी, आप इसे समझा देंगे ?" महाशयजी ने फिर चेष्टा तो बहुत की, पर वह वैसी ही थी, जैसा एक साहित्य-समालोचक पन्तजी की एक वायु पर लिखी कविता के अर्थ में अंत और अनंत का समन्वय, प्रेयसी को सम्बोधित कर करते थे। मैं चुप रह गया और अपनी समझ की सचाई देखकर मैंने अपने को बधाई दी।

मैं इस प्रसंग को यों समाप्त कर दूँगा। क्योंकि और जो बहुत-सी बातें हैं, उनकी चर्चा अत्यन्त गर्हित है। पर मुझे इससे अवश्य आश्चर्य हुआ है कि 'निराला'जी के सम्बन्ध में इस लेखक ने जिस स्वर का उपयोग किया है, वह हिन्दी के भीतर से उनको बहुत ही अपमानित करनेवाला है। फिर भी योग्य सम्पादक ने कुछ भी ख्याल नहीं किया। साथ ही इस लेख की क्या उपयोगिता है, इससे साहित्य को क्या मिला है, ये प्रश्न अलग हैं। हाँ, एक नौसिखिए लेखक को आचार्य के टोन में बोलते हुए देखने का लाभ इस लेख द्वारा अवश्य प्राप्त होता है।

वाचस्पति पाठक

भुवनेश्वरजी के संस्मरण

"आप भुवनेश्वरप्रसाद को जानते हैं ?" नवम्बर मास की 'माधुरी' मेरे सामने रखते हुए 'निराला' जी ने अपनी बैसवारी बोली में मुझसे पूछा।

"भुवनेश्वर नाम के एक महाशय से परिचय पाने का सौभाग्य (?) तो मुझे है।' मैंने उत्तर दिया।

"देखिए उनका एक लेख 'माधुरी' के इस अंक में छपा है।"

'माधुरी' खोलकर उस छोटे-से लेख को कुछ मिनटों में पढ़कर मैंने पत्रिका को एक ओर रख दिया।

"क्यों कैसा है ?" 'निराला'जीने फिर प्रश्न किया।

"जान पड़ता है, रूपनारायणजी का भुवनेश्वरजी से सिर्फ़ एक ही बार का परिचय है, अन्यथा उनका जैसा ज़िम्मेदार पत्रकार ऐसे लेख को अपनी पत्रिका में शायद ही स्थान देता। ग़लत या सही, कम से कम मेरी तो ऐसी ही धारणा हुई है कि भुवनेश्वरजी की जिन व्यक्तियों से एक से अधिक बार बात-चीत हुई है, वे उनमें गहराई और ज़िम्मेदारी का सर्वथा अभाव पाते हैं। अतः



जब इस लेख में मुख्य आधार व्यक्तिगत बात-चीत ही रक्खा गया है तो भुवनेश्वरजी के एक से अधिक बार सम्पर्क में आनेवाला व्यक्ति तुरन्त ही यह समझ लेगा कि उन कथनों के विश्वसनीय होने की सम्भावना कम है। और जब लेख के मूल आधार की प्रामाणिकता में ही सम्पादक को सन्देह हो, तब वह उसे कैसे अपनी पत्रिका में स्थान दे सकता है।" इन शब्दों में मैंने उस लेख के सम्बन्ध में अपने विचार 'निराला'जी को बतलाये।

इस पर निरालाजी ने फिर मुझसे प्रश्न किया, "क्या आप इस लेख के लेखक-सम्बन्धी अपने विचार मुझे लिखकर देने की कृपा करेंगे?"

"मुझे इसमें कोई एतराज नहीं है।" मैंने कहा।

'निराला' जी की इस इच्छा के अनुसार मैं भुवनेश्वरजी के संस्मरण अत्यन्त संक्षेप में लिख रहा हूँ। पूरे विवरण से तो एक नये उन्नीसवें पुराण के निर्माण की आशंका है।

पहली भेंट के समय भुवनेश्वरजी ने अपने सम्बन्ध में मुझे जो बातें प्रत्यक्ष अथवा संकेतरूप में बतलाईं, वे यह थीं कि वे किसी विश्वविद्यालय से एम्० ए० की डिग्री प्राप्त कर चुके हैं। उन्होंने कई भाषाओं का, विशेषकर अँगरेज़ी साहित्य का अत्यन्त गम्भीर अध्ययन किया है। पं० सुमित्रा-नन्दन पंत के अनुरोध से उन्होंने उन (पंत) की कविताओं का अँगरेज़ी में अनुवाद करना प्रारम्भ किया था, परन्तु काम को उठाने के बाद उन्हें यह दिखाई दिया कि यह व्यर्थ का परिश्रम होगा; क्योंकि पन्तजी की कविता अत्यन्त साधारण है। पंत ने सिर्फ़ टीन पर पालिश की है। अतः पंत के अनुवाद का काम उन्होंने छोड़ दिया। वे आस्कर वाइल्ड को संसार का सर्वश्रेष्ठ कलाकार मानते हैं और उनके एक उपन्यास का अनुवाद भी वे कर चुके हैं, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। पं० जवाहरलाल नेहरू उनकी प्रतिभा और योग्यता के क़ायल हैं। नेहरूजी ने उनसे अपनी पुस्तक 'Glimpses of World Histo सम्मति माँगी थी और उनके यह उत्तर देने कि वह H. G. Wells की इसी विषय पुस्तक का संक्षिप्त रूपान्तर है, नेहरूजी इस प्र और दूसरे विषय पर बातचीत करने लीडरप्रेस के जनरल मैनेजर ने उन्हें 'भारत' साप्ताहिक संस्करण के सम्पादन में सहयोग के लिए बुलाया है, परन्तु हिन्दी-सेवा अधिक रुचि रखने के कारण उन्होंने इसे स्वी नहीं किया।

इन सब बातों को सुनकर मुझे बड़ा आ हुआ। ऐसा जान पड़ा कि यदि ये कथन हैं तो हमारे साहित्य के लिए यह बड़े दुर्भाग्य बात है कि ऐसे असाधारण और चमत्कारी को अभी तक उचित प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि प्राप्त हुई। परन्तु भुवनेश्वरजी के अन्तिम अर्थात् लीडरप्रेस की भुवनेश्वरजी का स पाने को उत्सुकता से मन में कुछ सन्देह हु उस समय लीडरप्रेस में नौकरी करते मुझे हो चुके थे और प्रेस के अहाते में ही मेरा होने के कारण लीडरप्रेस के विधाताओं सम्पर्क में भी काफ़ी आ चुका था। यह अनुभव के प्रतिकूल ठहरती थी कि किसी प्रसिद्धिहीन व्यक्ति का सहयोग पाने इतनी उत्सुकता दिखलावें। लगभग एक अन्दर ही भुवनेश्वरजी से कई बार भेंट हुई उनकी ही बातों से तथा कुछ ऐसे मित्रों चर्चा चलाने पर, जो भुवनेश्वरजी से काफ़ी से और अच्छी तरह से परिचित थे, मुझे अवधि में ही यह निश्चय हो गया कि वे गहराई के व्यक्ति हैं। मैं इस नतीजे पर कि आत्मविज्ञप्ति तथा अँगरेज़ी और हिन्दी प्रमुख साहित्यिकों के बारे में ऊटपटाँग बातें का उन्हें मर्ज़ है। उन्होंने अँगरेज़ी, फ्रें आदि साहित्यिकों के ग्रंथों तथा साहित्यिकों याद कर लिये हैं और उसी आधार पर



सबके असाधारण पांडित्य का दावा करते हैं। इसके बाद २ मास में कम से कम १० बार भुवनेश्वरजी से भेंट हुई होगी। उनकी बातचीत का ढंग सदैव वैसा ही रहता था। काम से थककर फ़ुर्सत के समय मखौलबाज़ी करने का वे बहुत अच्छा साधन जान पड़े, परन्तु यदि काम के बीच में वे अपने हवाई घोड़े दौड़ाने लगते थे तो उनको टालने की इच्छा भी होती थी। हिन्दी के प्रमुख साहित्यिकों के निज जीवन आदि के बारे में उनके कथन कभी-कभी अत्यन्त अपमान और कलंकपूर्ण जान पड़ते थे, जिनके उल्लेख का साहस मैं नहीं कर सकता। कुल मिलाकर भुवनेश्वरजी के संबंध में मेरे मन में यही धारणा बँधी है कि वे काठ की हाँडी हैं, जो सत्य की आँच के सामने ठहर नहीं सकती।

बलभद्रप्रसाद मिश्र

भुवनेश्वरप्रसादजी का उत्तर

We should be slower to think that the man at his worse is the real man, and certain that the better we are ourselves the less likely is he to be at his worst in our company—

I. Barrie

पांडेयजी के सौजन्य से अपने नवम्बर की 'माधुरी' में प्रकाशित निराला पर लिखे लेख का 'उत्तर' पढ़ा मय दो शहादतों के। इसे मैं किस रूप में स्वीकार करूँ, मैं नहीं जानता। अगर यह निरालाजी का Vindication है तो कुरुचिपूर्ण, अगर Revenge तो बहुत सख़्त। Egotism निरालाजी का स्वभाव-व्यसन है। उनके निकट उनका अपनापन उतना ज़रूरी और सार्वजनिक है कि किसी भी प्रसंग में उसे नहीं भूलते। स्कालर कवि मित्र रामविलास शर्मा के यहाँ बैठकर लेख लिखना, एक नंगे को अपना चादर दे देना। जो निरालाजी को ज़रा भी ईमानदारी से जानते हैं, वह यह भी जानते हैं कि अपनी कला और कविता के बारे में बातें करते वक़्त उनका रूप इससे भी भिन्न होता है। मैं फिर कहता हूँ कि इस प्रसंग में कमोबेश मैंने उनके शब्द ही दुहराये हैं और कलकत्ते की बर्न्सवाली बात उस वक़्त मुतलक़ नहीं हुई थी और न उसे सुनकर मेरा अदर्शनीय मुख दर्शनीय ही हो गया था। रही एम्० ए०, और आई० सी० एस्० का फ़रेब, मैं अपराधी प्लीड करता हूँ, कर चुका हूँ कई बार। परिस्थितियाँ बलवती मनुष्य से इससे भी जघन्य काम करवाती हैं, मुझसे करवा चुकी हैं। इन्हें एक संग्राम करते हुए कलाकार पर दाग़ लगाने के लिए प्रयोग करना हलकापन है। ख़ैर अगर इस एक बात से जन्म भर के लिए मैं Taboo किया जा सकता हूँ तो मेरी बला इसकी परवा करे। लेकिन नहीं, यह शायद मेरी आदत है, मेरा सब कुछ एक छल है, धोका है, मक्कारी है। इसके दो शाहिद हैं, उनकी असली Bonafides तो यह हैं कि वह निराला के मित्र, प्रशंसक हैं।

श्रीवाचस्पति पाठक और श्रीबलभद्रप्रसाद मिश्र भावी डी० फ़िल० से मैं ऐसा ही वैसा परिचित हूँ। हाँ, बातचीत लीडर में होने के कारण रोज़ होती थी, मगर सदैव असुखकर। बलभद्रप्रसादजी के दिखाने के दाँत शायद अधिक सुंदर थे। उन दोनों ने मेरे ऊपर चार्जशीट लगाये हैं, मैं उनका सिलसिलेवार उत्तर दूँगा। पाठकजी से मेरा परिचय कराते हुए उन 'सज्जन' ने केवल यह कहा था—यह मेरे मित्र हैं भुवनेश्वरप्रसाद। इनकी यह किताब हम प्रकाशित कर रहे हैं। आपसे मिलना चाहते हैं। पुस्तक उन्हें मैंने दी थी। उसका प्रकाशन बिना पाठकजी के तै हो चुका था। एम्० ए०, बी० ए०, आई० सी० एस्० की कोई बात उस वक़्त नहीं हुई थी, ऐसा मेरा विश्वास है और यह भी कि वह सज्जन इसे किसी अंश में Bear out करेंगे।

निराला की कविता पर मेरी सम्मति बिलकुल Mutilate की गई है। मेरे शब्द "मैंने निरालाजी

का परिमल श्रम से पढ़ा और जहाँ तक भाषा का सवाल है, सिर्फ़ भाषा का, निराला के यहाँ पिघला हुआ सोना है, पंतजी ने टीन झलझला दी है।" उनकी कोई कविता मेरे सामने अ के लिए नहीं रक्खी गई थी। पाठकजी ने कहा था "यदि आप कृपा कर 'तुलसीदास' के अर्थ मुझे समझा दें तो अच्छा हो" पर बात यहीं ख़तम हो गई।

उनके लेख के टोन पर मुझे कुछ नहीं कहना है, वह भद्र पुरुष हैं और मुझसे अधिक Safe हैं। मैं नौसिखिया हूँ या आचार्य, उनकी स्थिति पर बहुत थोड़ा असर डालेगा।

मिश्रजी का वक्तव्य लम्बा है और संगीन। पहले उनका बचाव है. सस्ती कहानी के ढंग पर लिखा हुआ, बाद में एक चार्जशीट, जिसमें बहुत-सी बातें किसी न किसी तरह जोड़ी गई हैं।

पंतजी के अनुवाद की बात सही है। मैंने पंतजी के ज्ञान में उनकी २० कविताओं का अनुवाद किया और बाद में उसे लाहासिल समझकर छोड़ दिया, शायद मैं सफल भी हुआ था।

दूसरी भारत की बात। मैंने कहा था कि मेरा भारत के मैनेजर से परिचय हुआ था, जब वह अर्धसाप्ताहिक से दैनिक हो रहा था। यदि मैं इलाहाबाद में होता तो शायद आपका सहयोगी होता। यह सब बातें, ध्यान रहे, एक H मूड की की हुई हैं। मैं उनसे कभी उनके काम से नहीं मिला। ख़ैर।

पंडित जवाहरलाल की बात यों है कि ... कहा था, किंतु प्रेमचंदजी से, जब वह उक्त पुस्त... अनुवाद कर रहे थे या उसे सुधार रहे थे। ... मैंने मिश्रजी से कही। मिश्रजी से मेरी बातें ... and take के मूड में हुई हैं। ज़ब्तशुदा चांद का ... वाड़ी अंक तकिये के नीचे रखनेवाले मनुष्य ... जवान आदमी की कुछ गर्हित बातें होंगी ... नहीं। वह मेरे बारे में क्या राय रखते हैं, ... लिए कोई भी मूल्य नहीं रखता। वह ... भद्दे तरीक़े से प्रकाशित करते हैं मुझे ... होता है, पर ग़मो ग़ुस्सा मुझे नहीं है। ... ने लेख छपने से पहले ही मुझे जो ... उसका Idea दे दिया था। मैं इसके लिए ... था और अब अपनी ओर से इसे समाप्त ... हूँ। अगर मैं वाक़ई मर गया हूँ तो ... एक शेर निरालाजी, मिश्रजी, पाठकजी, पसेपर्दा और सज्जन सुन लें।

गर नहीं है मेरे मरने से तसल्ली न स...
इम्तहाँ और भी बाक़ी हों तो यह भी न स...

भुवनेश्वरप्रसाद

आँखें

श्रीनत्थाप्रसाद दीक्षित 'मिलिन्द'

विक्षिप्त का रूपक

हो घन रोईं, कभी हँसीं विद्युत हो, उर मध्य समा गईं आँखें ;
फाड़ दिये पलकें पट तो कभी, मौन अलाप सुना गईं आँखें ।
होके मिलिन्द अबोध समान, कभी-कभी क्रोध में आ गईं आँखें ;
पागल रूप दिखा करके, मन पागल मेरा बना गईं आँखें ।

वर्षा का रूपक

चाहती हैं करना प्रिय को, करुणार्द्र इसी अड़ पै अड़ीं आँखें ;
होती अमावस पावस की, जब देखती हैं उनकी कड़ी आँखें ।
रक्त सितासित वारिद-सी, रहती उमड़ी हैं घड़ी-घड़ी आँखें ;
विद्युत-से चमके कभी वो तो, लगाती हैं सावन की झड़ी आँखें ।

हिंडोले का रूपक

आशा की रेशम - डोर बँधी हुई, ये बरुनी लतिकाएँ सुहाईं ;
लालिमा पाटल पुष्प बिछा, पटुली पुतली की मिलिन्द लगाईं ।
आँखें हिंडोला बनी प्रिय की, सित झालर मौक्तिकों की लटकाईं ;
सिद्धि की साधिका राधिका रंगिनी, संगिनी श्याम की झूलने आईं ।

सीपी का रूपक

पानिप में रहीं डूबी सनेह के, सिन्धु में डालके उज्ज्वल झाईं ;
जो घनश्याम के रूप के स्वाति के बिन्दु को पीकर भी न अघाईं ।
प्यार न तो भी मिला प्रिय का, हैं विदीर्ण किये उर को उठ धाईं ;
अश्रु का मौक्तिक कोष लिये हुए, सीपियाँ-सी अँखियाँ भर आईं ।

'कुइनी'



श्रीश्यामनारायण बैजल एम्० ए०

रात का समय था। तारों की चमकती चादर अंधकार में स्नान कर रही थी। वैज्ञानिक के कमरे की दीवारें दूर से किसी प्रकार का भी स्पष्ट चित्र आँखों को पेश नहीं कर रही थीं। केवल कमरे के अंदर चमकनेवाली रोशनी जुगनू की भाँति मालूम हो रही थी।

वैज्ञानिक कमरे में बैठा था। उसके सामने दूरदर्शक दूरबीन रक्खी हुई थी। वह उस दूरबीन द्वारा नभोमंडल में न-जाने क्या पढ़ रहा था। आसमान के जुगनू उसे न-जाने किन-किन भावों को प्रदान कर रहे थे। हरएक नूतन भाव के साथ उसका मुख नई-नई आकृतियों को न्योता दे रहा था।

उसके सामने ही एक छोटी-सी मेज़ पड़ी थी। उस पर काग़ज़ फैले हुए थे। वैज्ञानिक हाथ में पेंसिल लिये अपने हृदय में होनेवाले भावों को उन काग़ज़ों पर लिख रहा था। उसकी आँखों की किरणें कभी काग़ज़ और कभी तारोंभरे आसमान पर तैर रही थीं।

वैज्ञानिक जब कालेज में पढ़ता था, तभी से उसे इस विद्या से प्रेम था। अब उसने अपने अध्ययन द्वारा इस विद्या में काफ़ी निपुणता प्राप्त कर ली थी। इन वर्षों में निर्धनता ने उसके अध्ययन के साथ कितनी पुरदर्द कुश्तियाँ लड़ी थीं, यह उसका दिल ही जानता था, और आज की निर्धनता को अपने कमरे के अन्तराल में छिपाये वह नभोमंडल पर चमकनेवाले ग्रहों और उ[illegible] की चालें देख रहा था।

क़रीब-क़रीब वह सब ग्रहों की रूपां[illegible] संबंध में जानकारी प्राप्त कर चुका था। हाँ, [illegible] पास जब दूरबीन न थी, तब तो केवल [illegible] चकोर आँखों ने ही पुस्तकों के नीले पृष्ठों [illegible] नीले आकाश के साथ अनेक प्रकार के [illegible] किये थे, पर अब एक वृद्ध वैज्ञानिक ने उसके [illegible] लेख पर मोहित हो उसे एक दूरबीन प्रदान [illegible] दी थी।

वसंत की इस रात में वह 'बुध' को दू[illegible] द्वारा देख रहा था और उसकी गति आदि [illegible] संबंध में कुछ काग़ज़ पर लिख रहा था। [illegible] इस ग्रह के बारे में बहुत कुछ जानना चाहता [illegible] पर स्पैकट्रोमीटर का अभाव बार-बार [illegible] अपनी निर्धनता की याद दिला रहा था।

कुछ देर बाद उसने अपनी दूरबीन का [illegible] शुक्र की ओर कर दिया। शुक्र के संबंध में [illegible] पहले कई बार अध्ययन कर चुका था। पर [illegible] परिभ्रमण का समय वह अभी तक नहीं नि[illegible] सका था। इसके अलावा उसका विश्वास था [illegible] शुक्र के साथ एक और उपग्रह भी लगा हुआ [illegible] इसी उपग्रह की खोज करना उसके जीवन [illegible] ध्येय था।

वैज्ञानिक अपने काम में कितना तल्लीन [illegible] और उसकी मानसिक शक्तियाँ अपने आ[illegible]



संसार में कितनी असाधारण अनुभूतियों का अनुभव कर रही थीं, यह सिवा उस वातावरण के कौन जानता था ? किसी भी प्राणी की आँखें कमरे के चहुँ ओर फैले हुए अंधकार में जीवन नहीं फूँक रही थीं ? फिर कौन उसे देखता ?

पर यथार्थ में यह बात न थी। क्योंकि 'कुइनी' कुछ अनमनी-सी होकर रात्रि के इस प्रथम पहर में घर से निकल आई थी और वैज्ञानिक से अपरिचित होने पर भी उसके इस अथक परिश्रम को देखने को ठिठक गई थी। वह स्वयं स्थानीय कालेज में इसी विद्या में एम्० ए० होने जा रही थी। इसके अलावा सितारों से उसे प्रेम था, वह इस विद्या की तह में घुसकर कुछ नये मोतियों को खोजना चाहती थी।

उसके मन में तो आया कि वह वैज्ञानिक की प्रयोगशाला के अंदर चली जाय, पर अपरिचय ने पैर में ज़ंजीर डाल दी। वह बाहर जादू से पराजित रमणी की नाईं खड़ी हो गई। उसके पैर स्थिर हो गये। किसी विशेष काम में डूबे हुए व्यक्ति को देखकर किसके पैर स्थिर नहीं हो जाते ?

कुइनी इस समय अपने जामे में भी न थी।—पर कुइनी कौन थी ? क्यों इस समय रात्रि में घर से निकल आई थी ?

कुइनी धनीमानी माता-पिता की लड़की थी। यों तो उसके पास काफ़ी हुस्न न था, पर फिर भी गोरे रंग की अजस्र धारा उसके शरीर पर इस ख़ूबी के साथ अवतरित हुई थी कि उसने उसके अवयवों में एक अलौकिक चमक-दमक ला दी थी। वह ख़ूबसूरत मालूम होती थी। सौन्दर्य के विशेष पारखियों को छोड़, सब कोई उसे ख़ूबसूरत कहते थे।

वह स्थानीय कालेज में पढ़ती थी। कई नवयुवक उससे प्रेम करते थे, पर उनमें से अधिकों की प्रीति की दीवार बालू के कणों को जोड़-जोड़कर बनी थी। कुइनी इसे ख़ूब समझती थी। इसी लिए उसका दिल हुस्न के संवर्द्धित बोझ से दबा होने पर भी और मोहब्बत की रिक्तता अपने आंतरिक संसार में अनुभव करने पर भी किसी भी नवयुवक को कोई स्थान नहीं प्रदान कर सका था।

निस्संदेह 'हेनरी' उस पर जी-जान से फ़िदा था। इसे कुइनी भी महसूस करती थी, पर उसकी रूप-रेखा कुइनी के दिल पर रोब जमाने के लिए काफ़ी न थी। वह उसके प्रेम का उत्तर प्रेम से नहीं, बरन् एक बाह्यात्मक सहानुभूति से देना चाहती थी।

जब भी वह उससे इस संबंध में बात करता था, वह उसे एक धीमी-सी 'नहीं' और सहानुभूति के अलावा कुछ उत्तर नहीं देती थी। अभी ६ घंटे पहले की ही बात है, हेनरी ने उससे अपनी आँखों में आँसू भरकर कहा था—"कुइनी, क्या तुम्हारी 'नहीं' कभी हाँ का रूप नहीं धारण करेगी ? क्या मैं निराशा ही को अपनी प्रेमिका समझ लूँ ? क्या मेरी आशाओं पर तुम इस प्रकार ताला लगा दोगी ? क्या तुम मेरे अरमानों को इस प्रकार कुचल डालोगी ?"

हेनरी के इन दर्दभरे शब्दों ने उस दिन उसकी सहानुभूति में कँपकँपी ला दी थी और इच्छा होते हुए भी वह अपनी सहानुभूति के चक्र को ज़ोर से न चला सकी थी। उसने कहा था—"हेनरी मैं चाहती हूँ कि मैं तुमसे प्रेम करने लगूँ, पर मैं मजबूर हूँ। हेनरी, मुझे क्षमा करो।"

हेनरी की आँखों ने उस दिन काफ़ी पानी बहाया, पर वह कुइनी की सहानुभूति को प्रेम का जामा पहनाने में असफल रहा।

थोड़ी देर बाद हेनरी चला गया, और कह गया—"प्रिये कुइनी; अब शायद मैं तुमसे इस संबंध में कुछ न कहूँगा। एक बार मेरी अंतिम नमस्ते को तुम दिल से स्वीकार कर लो।"

अंतिम शब्द को हेनरी ने बड़े धीमे से कहा था। हेनरी के चले जाने के बाद कुइनी न-जाने क्या-



क्या सोचती रही थी। उसके अंतिम नमस्ते का अर्थ, जो वह उस समय भावोद्रेक के कारण न समझ सकी थी, उसने उसे उस दिन बड़ा निर्बल बना दिया था। 'अंतिम नमस्ते' का वह बार-बार आत्मघात से संबंध स्थापित करने लगी थी। और यह 'अंतिम' शब्द वाक़ई भयंकर प्रमाणित हुआ; क्योंकि जिस समय 'कुइनी' यह सब सोच रही थी, उसी समय उसका यह विचार वास्तविकता की छत्रछाया में शरण लेकर हेनरी के कमरे की दीवारों को आत्मघात की गवाही देने के लिए तैयार कर रहा था।

तो हाँ, एक घंटे पहले ही की तो बात है—कुइनी ने अपने कलेजे पर पत्थर रखकर सुना था कि हेनरी अब इस संसार में नहीं है।

ओफ़्! कुइनी सुनते ही काँप गई थी। यदि उसे ऐसा मालूम होता तो वह शायद उससे प्रेम करने लगती। पर अब इमारत गिर गई थी। कुइनी की आत्मा दुखी थी। उसने उसी के कारण तो आत्महत्या की थी। यह एक ऐसा भाव था, जो उसकी आत्मा को हरएक विचार के साथ मलिनता और संताप प्रदान कर रहा था। माना कि वह निर्दोष थी, पर आत्महत्या तो उसने उसी के कारण की थी।

यही नहीं, कुइनी को बदनामी का भी डर खाने को दौड़ रहा था। वह सोच रही थी कि कल कालेज कैसे जाऊँगी। सब कोई हेनरी के प्रेम के संबंध में जानता है। यही नहीं, कालेज के सभी विद्यार्थी, यह भी जानते हैं कि कुइनी के उत्तर हेनरी के प्रति निराशात्मक ही रहे हैं। फिर क्या कालेज की हरएक दीवार, हरएक ईंट उसकी ओर उँगली नहीं उठायेगी? माना कि उसमें उसका क्या दोष? कोई किसी को प्रेम करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता, और फिर प्रेम क्या कोई ऐसी चीज़ है। पर ज़रा-सी कमज़ोरी की भी आहट पाकर दुनिया के कान खड़े हो जाते हैं। संसार के होठ फड़कने लगते हैं। संसार छोटे से छोटे अवसर का प्रयोग केवल दूसरों की कमज़ोरी देखने के लिए ही करता है, इस... को कुइनी अपने काल्पनिक संसार में खूब ... रही थी। पर साथ ही वह अपने-आपको ... से शुद्ध पा रही थी। कोई भी किसी ... करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता। वह ... रही थी कि जैसे हेनरी ने उसके सामने ... दिल पसारा था, यदि ऐसे ही और बहुत-से ... पसारते और सब आत्मघात की गठरी सिर ... रखकर उसके सामने उपस्थित होते, तो ... क्या करती? वह एक ही की तो हो ... थी? कहीं संसार में आत्मघात की गाड़ी ... सकती है। नहीं? इसमें हेनरी ही का दोष ... वह निर्दोष है। कल कालेज का समाज ... उँगली उठाये—उठाये। ज़ोर से कहे कि यही ... है, जिसके कारण हेनरी ने अपने को शूट ... है कहे, किन्तु उसे कोई दोषी नहीं ठहरा सकता ... पर बदनामी!

कुइनी एक बार फिर काँप गई।—... अपने इन्हीं विचारों को शांत करने के लिए ... के इस ओर बढ़ आई थी, और इस ... यद्यपि वह वैज्ञानिक के कमरे के सामने खड़ी ... तथापि उसका मानसिक संसार उपर्युक्त ... विचारों से दबा जा रहा था।

कुइनी काफ़ी देर तक वैज्ञानिक के ... पार्श्व में खड़ी रही। पर उसका दिल न-जाने ... वैज्ञानिक से वार्तालाप करने के लिए ... लगा। पहले तो उसकी हिम्मत न हुई, पर ... वैज्ञानिक ने अपने कार्य से फ़ारिग़ होकर ... दूरबीन और चार्ट आदि को रखना आरंभ किया ... उसकी हारी हुई हिम्मत ने भी रंग ... आरंभ किया और वह धीरे-धीरे वैज्ञानिक ... कमरे की चौखट के पास पहुँच गई।

वैज्ञानिक के कानों ने किसी की आहट ... और उसकी आँखों ने अपने पंख पसार ...



उसने एक रमणी को देखते हुए कहा—"आइए, अन्दर चली आइए।"

कुइनी की पलकें झुक गईं। अभी द्वार पर खड़े-खड़े वैज्ञानिक के अथक परिश्रम को देखकर उसका हृदय श्रद्धा की गोद में अठखेलियाँ करने लगा था, और अब उसकी नम्र बोली के सामने उसकी श्रद्धा उसकी पलकों की ही नाईं और झुक गई थी। वह अपने हृदय में एक अकथनीय गुदगुदी का अनुभव करने लगी थी। श्रद्धा ने प्रेम से मैत्री स्थापित कर ली थी। निस्संदेह इस मैत्री में अभी गहरा रंग न आ पाया था। कुइनी अंदर आकर बैठ गई।

वैज्ञानिक ने कहा—"आपको पहचाना नहीं। मेरे योग्य कार्य ?"

कुइनी ने मोहब्बतभरी वाणी में कहा—"कुछ नहीं। मैं रात में इस समय कुछ अनमनी-सी होकर घूमने चली आई थी। आपको वैज्ञानिक रिसर्चेज में संलग्न देखकर रुक गई थी। मैं भी इस विद्या से प्रेम करती हूँ। एम्० ए० में यही विषय ले रक्खा है।"

—"तो क्या आप स्थानीय कालेज में पढ़ती है।"

—"जी हाँ।"

—"आपका शुभ नाम ?"

—"कुइनी। आपका शुभ नाम ?"

—"एलबर्ट"

—"तो क्या विज्ञान-शीर्षक पत्र में आपके ही लेख प्रकाशित होते हैं।"

—"जी हाँ।"

—"आपके लेख अधिकतर शुक्र ग्रह से संबंध रखते हैं।"

"मुझे शुक्र के पास एक और उपग्रह मालूम होता है। शुक्र की गति पिछले कई वर्षों तो तेज़ रही, पर अब इस समय मंद चल रही है। इससे यह अनुमान होता है कि शुक्र के आसपास कोई और ग्रह भी है, जो उसकी चाल को विचलित करता है। अब तक शायद मैं इस नये तारे की खोज कर लेता, पर निर्धनता के कारण इन्स्ट्रूमेन्ट्स नहीं मँगा सकता। यह दूरबीन भी मुझे दान में ही प्राप्त हुई है।"

थोड़ी देर वे दोनों चुप बैठे रहे। उसके बाद अपने होठ के अग्रभाग को बढ़ाते हुए या यों कहूँ कि अपने अधर की इस नई आकृति द्वारा अपने मुख को लावण्यमय तथा सलज बनाते हुए कुइनी ने कहा—"मैं कुछ रिसर्च करना चाहती हूँ। आपने शायद अवान्तर-ग्रह-शीर्षक मेरा लेख पढ़ा हो। यद्यपि वैज्ञानिकों का कहना है कि सीरिस सबसे बड़ा तथा एलिन्ज सबसे छोटा ग्रह है, पर मेरा अनुमान है कि इनसे भी बड़े और छोटे ग्रह हैं, जिनका हम अभी पता नहीं चला सके हैं।"

विद्वान् रूप को देखकर कम फिसलता है, पर रूप और विद्वत्ता का जोड़ा उसे बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। यही दशा वैज्ञानिक की हुई। उसके रूप ने उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं डाला था, पर अब विद्वत्ता ने कुइनी के हुस्न में बिजली-जैसी चमक पैदा कर दी थी। वैज्ञानिक का दिल तो आज तक कामदेव के बाणों को सहन करने को एक अटल क़िले की नाईं खड़ा रहा था, इस समय उस क़िले की दीवारें उन बाणों ने हिला दी थीं। उसने अपनी नम्र बोली में और नम्रता लाते हुए कहा—"मैंने आपका लेख तो पढ़ा था। बहुत सुन्दर था। क्या ही अच्छा हो, यदि मुझे अपनी रिसर्चेज़ में आपका सहयोग प्राप्त हो जाय। बोलिए, क्या आप सहायता करेंगी ?"

इस अंतिम प्रश्न की रूप-रेखा बनाने में वैज्ञानिक को अपने काल्पनिक जगत् में कितना परिश्रम करना पड़ा था, यह उसका दिल जानता था और साथ ही इस प्रश्न का उत्तर पाने पर उसके कितने सहसा ही जागे अरमानों की अवस्था निश्चित होने जा रही थी, यह भी उसका दिल जानता था। कुइनी की आँखें भी वैज्ञानिक की इस मधुर



बोली में न-जाने क्या-क्या पढ़ रही थीं। उसने कहा—"अवश्य सहायता करूँगी। पर मैं जानती ही क्या हूँ?"

"फिर भी।"

कुइनी और वैज्ञानिक में थोड़ी देर तक और बातें होती रहीं। फिर कुइनी कल आने का वादा कर चली गई।

कुइनी कमरे से थोड़ी दूर आगे ही बढ़ पाई होगी कि हेनरी का चित्र फिर उसकी आँखों के सामने खिच गया। उसके साथ-साथ बदनामी और कालेज के युवकों तथा युवतियों के इशारे उसके नेत्रों के सामने आँसू की नाईं स्थिर हो गये। उसने सोचा, इस मामले में उसे वैज्ञानिक से राय लेना चाहिए थी। वह उसे निर्दोष ही बताता। पर फिर उसने विचारा कि उसने वैज्ञानिक से इस संबंध में नहीं कहा, अच्छा किया, और न इस संबंध में वह उससे कुछ कहेगी। वह न-जाने मेरे विषय में क्या सोचे। फिर जो बात मुझे संसार की निगाह में गिरा सकती है, उसे अपने ही मुँह से कह देने से फ़ायदा। और वह भी किस लिए? इसलिए न कि "निर्दोषता का सार्टीफ़िकट" प्राप्त हो जाय। पर यह तो संसार है। संसार का मुँह कौन बन्द कर सकता है। इसी विचार-सागर में तल्लीन वह अपने मकान की अट्टालिका के सामने फिर आ गई। वह घर में चली गई और पलँग पर जाकर लेट गई।

प्रतिदिन की भाँति प्रातःकाल सुनहरी किरणों तथा चिड़ियों की मधुर वाणी के साथ फिर आ पहुँचा। किन्तु आज का प्रातःकाल कुइनी के लिए प्रतिदिन की भाँति सुन्दर न था और न उन चिड़ियों की बोली में उसे जान प्रतीत हो रही थी।—कालेज की इमारत उसकी आँखों के सामने नाच रही थी। कान्डोलेन्स सभा का जीता-जागता चित्र उसकी नेत्रकिरणें रच रही थीं, पर इस चित्र में वह अपने स्थान को नहीं रँग पा रही थी।

वह कालेज न जाय तो क्या हर्ज है! ... ऐसा करना और उपहासास्पद होगा। उसकी ... हाज़िरी हरेक की आँखों में कण बनकर खटकेगी ... यही क्यों, यह ग़ैरहाज़िरी उसकी क्रूरता का ... दित चित्र भी कालेज के हरेक विद्यार्थी के ... पर अंकित कर देगी। नहीं, वह जायेगी ... अवश्य जायेगी। कान्डोलेन्स-सभा में थोड़ी ... खड़ी होकर आँसू बहायेगी। विद्यार्थी-समाज ... कटु बौछारों को साहस के साथ सहेगी। जब ... पाप ही नहीं किया है तो मैं क्यों डरूँ! पर ... ही देर बाद उसने फिर सोचा, पाप और बदनामी में अन्तर ही क्या है। पाप से भी तो हम बदनामी के कारण डरते हैं।

कालेज का समय आया और डरावने भूत ... भाँति आया। वह कालेज गई। उस दिन ... में पढ़ाई नहीं हुई। हेनरी की कान्डोलेन्स ... हुई। प्रस्ताव पास हुआ और कालेज के ... एक दिन के लिए बन्द कर दिये गये।

पर इतने समय में कुइनी की क्या दशा हुई? सच तो यह है कि कुइनी ने जितना सोचा ... नहीं था, उससे अधिक कानाफूसियाँ उसे ... आईं। कालेज के लड़के एक दूसरे से पूछते— ... कौन कुइनी है?" बात यहाँ तक रहती तो ... हर्ज न था, पर एक लड़का तो कुइनी से ही ... प्रश्न पूछ बैठा। उस समय कुइनी से यदि ... पूछता कि तू क्या चाहती है तो शायद कुइनी ... उत्तर "मौत" ही होता। फिर भी कुइनी ने ... की ही बूँदों को अपने कपोलों पर बहाते ... कहा—"मैं ही वह दुर्भागिनी हूँ।"

इस लड़के का नाम लावल था। लावल ... हृदय था। उसे एक कहानी-लेखक का दिल ... था। वह समाज को ग्रंथियों को समाज की ... लगाकर नहीं देखता था। हेनरी की मृत्यु ... संबंध में उसके विचार कालेज के अन्य विद्यार्थियों जैसे न थे। वह कुइनी को निर्दोष समझ रहा ... इस समय उसे अपनी ग़लती नज़र आ रही ...



उसे 'कुइनी' से ही ऐसा प्रश्न नहीं करना चाहिए था। वह कुइनी के आँसुओं को देखकर स्वयं रो उठा। पलकों पर उसके आँसू स्थित हो गये। उसने एक कहानी-लेखक की वाणी में कहा—"आप निर्दोष हैं। आप बेकार आँसू बहा रही हैं। वह जो आप पर उँगली उठा रहे हैं, वह भी आपको निर्दोष समझते हैं, पर हमारे कमज़ोर अवसरों का सब उपयोग करते हैं, यह भी उपयोग कर रहे हैं। बकझककर चुप हो जायँगे।"

कुइनी के दिल पर इस सांत्वना ने जान डाल दी। सूर्य की कड़ी धूप से जले हुए पथिक को बरगद की छाया मिल गई।

लावल अपनी ग़लती से इतना दब गया कि उसने उस दिन उसका साथ नहीं छोड़ा। यही नहीं, वह कान्डोलेन्स मीटिंग के बाद साथ-साथ कुइनी के घर तक आया, और उसे बराबर सांत्वना देता रहा। कुइनी भी लावल की दयादृष्टि पर मोहित हो गई और मेरा विचार तो यहाँ तक है कि यदि 'कुइनी' अपना दिल वैज्ञानिक को न दे आई होती, तो शायद वह लावल पर न्योछावर हो जाती। पर यह मेरा विचारमात्र है। इसमें सचाई का अंश कितना है, यह ईश्वर जाने।

दिन आये। कुइनी कालेज रोज़ गई। इन दिनों के प्रथम पद तो बदनामी और अप्रत्यक्ष बौछारों से दबे हुए थे, पर धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों दिनों के पर कटते गये त्यों-त्यों इन बौछारों का रंग फीका होता गया। कालेज का वातावरण समय की प्रगति के साथ हेनरी ही को भूल गया। फिर भला वह उन बौछारों को क्यों नहीं भूल जाता। पर कुइनी अपने को निर्दोष समझने पर भी भय का साथ न छोड़ पाई। कालेज का कोई विद्यार्थी यदि उसकी ओर देखता तो वह यही समझती कि वह उसके पिछले ऐतिहासिक पन्नों को पढ़ रहा है।—इस समय कितनी वेदना, कितना दुःख और कितना मार्मिक अनुताप उसके मुख पर व्याप्त हो जाता था, वह पेंसिल की क़ैद में नहीं आ सकता; क्योंकि जो भाव अकथनीय हैं, वे कथनीय कोशिश करने पर भी नहीं हो सकते।

ख़ैर, कालेज में उसे संतोष देनेवाला लावल ही था। और ऐसे अकथनीय अवसरों पर ही नहीं, वरन् अन्य अवसरों पर भी वह उसे संतोष देता रहता था। वह प्रतिदिन कालेज से उसके साथ आया करता था। कुइनी कभी-कभी उसके घर पर चली जाया करती थी। कुइनी उसकी सहानुभूति से काफ़ी दब गई थी। पर वह इस सहानुभूति से आगे नहीं बढ़ना चाहती थी। लेकिन लावल के विचार ऐसे न थे। वह कहानी-लेखक था। स्त्री की प्रकृति को वह ख़ूब समझता था। वह सहानुभूति की ऐनक लगाकर उस दुनिया को दूर क्षितिज पर देख रहा था, जिसे दीवानों की दुनिया मुहब्बत के नाम से पुकारती है। इस बात का कुइनी भी अनुभव कर रही थी। पर वह वैज्ञानिक को दिल देने के बाद किसी अन्य को अपने मन-मन्दिर में सजाना नहीं चाहती थी। और इधर लावल की मैत्री के साथ ही साथ वैज्ञानिक से भी उसकी मैत्री कहीं अधिक बढ़ गई थी।

उस रात वह वैज्ञानिक से मिलने का वादा कर आई थी। पर वह दूसरे दिन इतनी दुखी रही कि मिलने के लिए उत्सुक होने पर भी न जा सकी थी। वह तीसरे दिन उसके पास गई। उस दिन घंटों उन दोनों में सौर-मंडल पर बहस होती रही। चौथे दिन से उन दोनों ने अपनी रिसर्चेज़ करना आरम्भ कर दीं। कुइनी ने कुछ नवीन इन्स्ट्रूमेन्ट्स के लिए भी आर्डर दे दिया, जो कि वैज्ञानिक अपनी निर्धनता के कारण नहीं मँगा सका था।

इन रिसर्चेज़ के साथ-साथ वे दोनों प्रतिदिन एक दूसरे के और पास होते गये। दोनों ने आकाश के तारे की खोज में ही नहीं, वरन् एक दूसरे की देह में स्थित संसार के शायद सबसे बड़े तारे की खोज में भी अपना समय व्यय किया। इस खोज



के परिणाम का उस कमरे की दीवारों को उस दिन पता चला, जिस दिन वैज्ञानिक के गर्म-गर्म ओष्ठ कुइनी के कपोलों पर प्रेम की सबसे बड़ी निधि को जमा करने के लिए व्यग्र हो गये। कुइनी ने भी उस निधि को अपने कपोलों पर सदैव के लिए सुरक्षित रखने के लिए व्यग्रता प्रकट की। वह प्रथम चुम्बन था। सचमुच दोनों ने एक दूसरे का दिल समझ लिया और दोनों को कुछ ही सप्ताहों में एक दूसरे के बिना जीवन काटना असंभव प्रतीत होने लगा। दोनों को सौर-मंडल से प्रेम था। दोनों एक दूसरे को वैज्ञानिक समझ रहे थे, फिर भला इससे अच्छा जोड़ा क्या हो सकता था।

तो हाँ, उस प्रथम चुम्बन के बाद उनका प्रेम मशीन के रूप में हो गया था। उसमें तीव्रता आ गई थी। चुम्बन प्रेम की साँस है।

शायद उस दिन शुक्रवार था—बादल घिर जाने के कारण कुइनी और वैज्ञानिक ने अपनी रिसर्चेज़ में कुछ भी कार्य न किया। न तो वैज्ञानिक ने शुक्र के उपग्रह पर कुछ नोट्स लिखे और न कुइनी ने अवान्तरग्रहों को दूरबीन से देखा। हाँ, उस समय उन दोनों ने एक दूसरों के कपोलों पर जो नोट्स लिखे, वे अवर्णनीय थे।

वैज्ञानिक ने उसी दिन कुइनी से कहा—"कुइनी! हम दोनों को विवाह कर लेना चाहिए।" कुइनी ने धीमी 'हाँ' में इसका उत्तर दिया और वह लजीली-सी होकर वैज्ञानिक के सुन्दर मुख से निगाहें उठाकर कमरे की दीवार के एक-एक कोने को देखने लगी।

वैज्ञानिक ने कहा "कब ?"

"जब भी आप चाहें। पर सुन्दर तो यही होगा कि जब आप शुक्र के उपग्रह को खोज निकालें, तब हम विवाह करें। शुक्र प्रेम का तारा है। उसका उपग्रह भी प्रेम का द्योतक होगा। जिस प्रकार हिन्दू-स्त्री ध्रुव सितारे को देखकर अपने विवाह-बंधन को पूर्ण रूप देती है, उसी प्रकार इस नये सितारे को देखकर मैं—न-न क्यों—अपने विवाह को पूर्ण रूप देना चाहती हूँ। और मेरा विचार है कि आप एक-दो मास में उस सितारे को खोज निकालेंगे; क्योंकि ... का परिचालन जो आपने निकाला है, वह ... बीसों बिस्वे ठीक प्रतीत होता है।"

"कुइनी, तुम बड़ी भावुक हो। जैसी तुम्हारी इच्छा। शुक्र के उपग्रह को तो मैंने खोज ... है। ग्रीनविच की आब्ज़र्वेटरी में जाकर ... रिसर्चेज़ को और पक्का रूप दूँगा। यह नया ... आटम के आरम्भ में दिखाई देगा। वहाँ से ... आने के बाद मैं विवाह-बंधन में बँध जाऊँगा।"

कुइनी ने हँसते हुए कहा—"मैं भी तो ... चाहती हूँ।"

वैज्ञानिक ने उसके कपोलों पर से चुम्बनों ... उठाते हुए कहा—"कुइनी, मैं एक मास ग्रीनविच में रहूँगा। इतने दिनों में मुझे भूल न जाना।"

कुइनी का दिल बड़ा कमज़ोर था। ... वाक्य को सुनकर उसके आँसू पलकों पर ... आये। उसने आह के साथ कहा—"मैं ... नहीं भूलूँगी एलबर्ट।" वह कह लेने के बाद ... वैज्ञानिक को एक गंभीर आलिंगन दिया। ... देर बाद वह चली गई।

एक मास बाद वैज्ञानिक ग्रीनविच को ... गया।

वैज्ञानिक और कुइनी का प्रेम उन दोनों के माता-पिता को अवगत था। इसके अलावा दो और व्यक्ति ऐसे थे, जो इस प्रेम के संबंध में जानते थे। पर हाँ, लावल यद्यपि कुइनी से ... मिला करता था, तथापि उसके इस प्रेम से ... में अनभिज्ञ था। कुइनी उसे इस प्रेम से ... भी नहीं करना चाहती थी। इस भावना ... विशाल अन्तराल में स्त्री-संबंधी कौन-सी ... ज़ोरियाँ नर्तन दिखा रही थीं, इसे सिवा ... के कौन जानता था ?

कुइनी लावल से प्रेम नहीं करती थी। ...



लावल ने जो कन्डोलेन्स मीटिंगवाले दिन सहानुभूति प्रदर्शित की थी, वह लावल और कुइनी के प्रतिदिन मिलने के कारण विशाल वृक्ष के रूप में उन दोनों के मध्य में स्थित हो गई थी। कुइनी ख़ूब समझती थी कि लावल किन भावों को लेकर उसके घर पर आता है। वह चाहती थी कि वह न आया करे, पर वह मजबूर थी। वह उससे मना नहीं कर सकती थी। सहानुभूति के वृक्ष की छत्रछाया ने उसकी जिह्वा पर ताला लगा दिया था।

वैज्ञानिक के ग्रीनविच चले जाने के बाद तो वह कई बार रात के बारह-बारह बजे तक कुइनी के पास बैठा रहा। उसने अभी तक अपने भावों को आँखों द्वारा ही कुइनी पर प्रकट किया था, पर अब वह जिह्वा द्वारा भी अपने भावों को प्रकट करना चाह रहा था। उसे परिस्थिति का इन्तज़ार था।

उस दिन सायंकाल को वे दोनों घूमने गये। यद्यपि कुइनी नहीं चाहती थी कि वह घूमने जाय, तथापि उसके कमज़ोर दिल में इतना साहस न था कि वह उसको मना करे। वह अनमनी-सी होकर भी साथ चली गई।

लावल अपने भावों को व्यक्त करने के लिए ही कुइनी को साथ लाया था।

जब अंधकार काली चादर होकर दोनों को दबोचने लगा तो लावल ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—"कुइनी" और उसके बाद उसकी जिह्वा की शक्ति गुमसुम हो गई। उसके इस शब्द के उच्चारणमात्र से ही उसके भाव अनायास ही में जाग गये। वह बेबस हो गया। उसी बेबसी के आलम में उसने कुइनी के कपोलों पर 'चुम्बन' अंकित कर दिया।

कुइनी इस चुम्बन के लिए तैयार न थी। वह उससे कहना चाहती थी कि वह ऐसा फिर न करे। पर उसका हृदय ज़रूरत से ज़्यादा निर्बल था। इसके अलावा लावल की प्रथम सहानुभूति पर जो परिचय की दीवार खड़ी हो गई थी, वह आज क़िले के रूप में खड़े होने के कारण उसकी जिह्वा को कील रही थी। उसे यदि ऐसा पता होता तो शायद वह प्रथम परिचय को विष की घुट्टी पिला देती। पर कौन नहीं जानता कि मनोविज्ञान का ज्ञान अनुभव के बाद उपलब्ध होता है। फिर भी उसने अपनी सब शक्तियों को उपयोग में लाकर कहा—"लावल" उसके बाद उसकी शक्तियों ने जवाब दे दिया और वह चुप हो गई।

लावल ने अंधकार के कारण उसकी आकृति नहीं देखी। उसने उसके 'लावल' शब्द को दूसरी दृष्टि से देखा। उसने कहा—"कुइनी, तुम नहीं जानती हो कि मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूँ। क्या कुइनी, तुम मेरी नहीं होगी?"

कुइनी और वह घूमते-घूमते चर्चयार्ड में आ गये थे। पास ही में हेनरी की क़ब्र थी। हेनरी की मृत्यु के बाद कुइनी इस ओर नहीं आई थी। हेनरी ने आत्महत्या की थी। इसी कारण उसे इस स्थान से डर लगा करता था। अतः उसने लावल के प्रेम को अपने कान की संपत्ति न बनाकर कहा—"चलो, अब लौट चलें।"

"नहीं ज़रा देर इस क़ब्र के पास बैठकर हम बातें करेंगे।"

"नहीं लावल, मुझे डर लगता है।"

"डर—डर काहे का। ओफ़! समझ गया। क्या तुम हेनरी की क़ब्र से डरती हो?" यद्यपि बात सच थी, तथापि उसने कहा "यह बात नहीं है। फिर भी...."

"मेरी बात का उत्तर देने के बाद चली जाना।"

वे दोनों एक क़ब्र के पास बैठ गये।

लावल ने फिर अपना प्रश्न दोहराया।

कुइनी हिम्मत करके कहना चाहती थी कि मैं वैज्ञानिक से प्रेम करती हूँ। मुझे क्षमा करो। मैं तुम्हारी नहीं हो सकती। पर वह चुप थी। वह अपनी हिम्मत को जुटा रही थी।



लावल ने फिर कहा—"कुइनी, लो क्या तुम मुझसे प्रेम नहीं करती हो ?"

कुइनी ने धीमी आवाज़ में कहा—"नहीं।" न-जाने कहाँ की हिम्मत इस समय उसकी जिह्वा पर आ गई थी।

लावल काँप गया। जिस बात की उसे आशा न थी, वही बात वह अपने कानों से सुन रहा था। वह तो कहानी-लेखक था। उसके अन्दर का मनोवैज्ञानिक उससे बराबर कह रहा था कि कुइनी तुमसे प्रेम करती है। पर आज वह इस नहीं को सुनकर विचलित हो गया था। उसने तो कई मित्रों से कह दिया था कि कुइनी और उसका शीघ्र ही विवाह होगा, पर आज इस अतीत विश्वास में 'नहीं' की चिनगारी न-जाने कहाँ से घुस आई थी।

उसने आँसुओं को बहाते हुए कहा—"कुइनी, मेरी आशाओं को ऐसे भस्मीभूत न करो। मेरे प्राण निकल जायँगे। मैं तुम्हें जी-जान से प्यार करता हूँ। कह दो हाँ। एक बार कह दो कि मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। क्या तुम हेनरी की भाँति मेरी भी क़ब्र को इस नहीं से आच्छादित करना चाहती हो।"

कुइनी काँप गई। उसे याद आ गया—वह दिन, जिसदिन उसने हेनरी से नहीं कहा था। आह! उस नहीं का परिणाम आज क़ब्र बना उसकी आँखों के सामने खड़ा था। आज की नहीं भी क्या उसी भयंकर रूप में ढलेगी? यह भावना उसके मस्तिष्क पर एक विशाल निर्बलता बनी नाच रही थी।

लावल ने गहरी साँस भर लेने के बाद फिर कहा—"नहीं। कुइनी, तुम्हें मेरी होना पड़ेगा। मेरा प्रेम तुम्हारी इस नहीं को हाँ में परिवर्तित करके रहेगा। और यदि तुम मेरी नहीं होगी, तो सच कहता हूँ कि मैं जान दे दूँगा। तुम कल ही सुनोगी कि लावल इस संसार में नहीं है।"

कुइनी थर-थर काँप रही थी। हेनरी की मृत्यु उसी के कारण हुई थी। उसी हत्या के बोझ वह अपने शीश से नहीं उतार सकी थी। अभी तक उसकी आत्मा संतोष को नहीं प्राप्त कर सकी थी, और आज वही समस्या दूसरे रूप में उसकी आँखों के सामने खड़ी थी। यही क्यों, यदि दुनिया को यह पता चल गया कि हेनरी की भाँति लावल ने भी उसी के कारण आत्महत्या की, तो गज़ब हो जायगा। कालेज की दीवारें उसे खा जायँगी। हरेक विद्यार्थी उसको अपने धिक्कारों के अन्दर दबा देगा। पर वह क्या कर सकती थी? क्या उसे लावल से प्रेम करना चाहिए, क्या उसे वैज्ञानिक को धोका देना चाहिए? वह सोच रही थी कि क्या ये समस्याएँ उसके जीवन के ही लिए बनी थीं? जो लावल हेनरी की मृत्यु को बुरा कह चुका था, आज स्वयं उस कृत्य को करने को तैयार था। यदि ज़मीन फटकर उसे अपनी गोद में ले लेती तो शायद उसे उस समय सबसे बड़ी ख़ुशी प्राप्त होती।

उसने कहा—"लावल, मैं सच कहती हूँ, मैं तुमसे प्रेम नहीं कर सकती। मेरा दिल टूट चुका है। पर देखो, तुम आत्महत्या न करना। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। मैं किसी दीन की रहूँगी। लावल! मेरे दिल के अलावा तुम मुझसे जो कुछ माँगो, मैं दे सकती हूँ।" लावल सुन रहा, पर वह कुइनी की कमज़ोरी को समझ रहा था। उसी कमज़ोरी का लाभ उठाते हुए उसने कहा—"तुम्हारी ख़ुशी, कुइनी, मैं तुम्हारे विना जीवित न रह सकूँगा। मैं तो अब तक यही समझता था कि तुम मुझसे प्रेम करती हो, और मैं ही क्यों मेरे मित्रों का यहाँ तक विश्वास है कि हम-तुम जल्द विवाह-बंधन में बँध जायँगे। आज तुम यह कह रही हो। मैं तुम्हारे वियोग में जीवित न रह सकूँगा। ख़ैर. तुम्हें क्या? तुम जाओ।"

कुइनी रो पड़ी। स्थिति हर पहलू से गंभीर हो गई थी। उसने कहा—"मैं अभी

वास्तविक सौंदर्य चाहते या चाहती हो तो

राज ज़ीनत पिल्ज़ का सेवन कीजिये

सब क्रीम, स्नो, पाउडर बेकार हो जाते हैं, यदि मनुष्य के शरीर में रक्त कम हो, खराब हो, पीला हो, या सफ़ेद हो या शरीर में किसी कारण निर्बलता आ गई हो। हमने श्रीमान् पण्डित ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य (आविष्कारक अमृतधारा) की संरक्षकता में टायलेट का कारख़ाना जारी किया, तो पंडितजी ने अपने विशेष अनुभूत प्रयोगों से हमको "राज ज़ीनत वटी" का एक अद्भुत प्रयोग दिया, जिससे हर स्त्री-पुरुष वास्तव में सुन्दर बन सकता है। इन गोलियों में निम्न-लिखित गुण हैं—

(१) रक्त शुद्ध करती, उत्पन्न करती और लाल करके चेहरे पर लाली लाती है, और रक्त-विकार से उत्पन्न हुई फ़ुन्सी, झाई, दाग़, मुँहासा बालझड़ आदि को दूर करती हैं।

(२) किसी कारण से निर्बलता हो या किसी रोग से उठे हों, तो बहुत शीघ्र फिर शरीर के भीतर बल तथा स्फूर्ति भरती हैं। ये गोलियाँ जनरल टानिक हैं और जनरल डिबीलिटी, निर्बलता, सुस्ती को दूर करती हैं।

(३) स्त्री तथा पुरुष दोनों सेवन कर सकते हैं और दोनों की शक्ति बढ़ाती हैं, तथा यौवन स्थिर रखती हैं। बूढ़ों में यौवन की उमंगें भरती हैं, पुरुषों के प्रमेह, स्वप्नदोष, सुस्ती रोग दूर होते हैं। स्त्रियों के श्वेत प्रदर (श्वेत पानी) आदि को हितकर हैं। इन रोगों के वास्ते भटकने की आवश्यकता नहीं। विश्वास-पूर्वक सेवन कीजिये।

(४) खाँसी, नजला, जुकाम, कटि-पीड़ा, कमर की निर्बलता, स्थायी सिर-पीड़ा, मस्तिष्क की निर्बलता, वातज, कब्ज रोगों को भी दूर करती हैं।

(५) इनसे पाचन-शक्ति तीव्र होती है, खाया-पिया शरीर में लगता है। हर प्रकार की शक्तियाँ बढ़ती हैं, कोष्ठबद्धता नहीं रहती है, शरीर फुर्तीला होता है। प्रतिदिन प्रातः दो गोली दूध, चाय, छाछ, शर्बत आदि के साथ खानी चाहिये। सेवन-विधि-पत्र साथ होगा। मूल्य २८ गोली एक रुपया। सेवन कीजिये और ज़िंदगी का मज़ा उठाइये।

ज़ीनत टूथ-पाउडर
यह देशी अति लाभदायक द्रव्यों का संग्रह है। दाँतों और मसूड़ों के लिये अद्वितीय वस्तु है। पायोरिया का निश्चित इलाज है। मूल्य प्रतिशीशी ।।)

राज-स्नो
घर से बाहर निकलते समय इसे लगाना न भूलिये मूल्य प्रति शीशी ।।।)

राज-डेपिलेटरी पाउडर
अर्थात् बाल उड़ाने का पाउडर मूल्य ।।) नमूना =)

राज-कोल्ड क्रीम
चमड़ी की रक्षा करती है। सुन्दरता बढ़ाने में उत्तम है। चेहरा में पड़ी हुई झुर्रियाँ भी इस से दूर होती हैं। मूल्य ।।।)

राज टूथ पाउडर
यह सफ़ेद रंग और विलायती ढंग का मंजन है, जो दाँतों को साफ़ करने और रोगों को दूर करने में अति उत्तम है। मूल्य प्रति शीशी ।=)

ज़ीनत उबटन मूल्य १)

ज़ीनत हेयर आयल मूल्य ।।।)

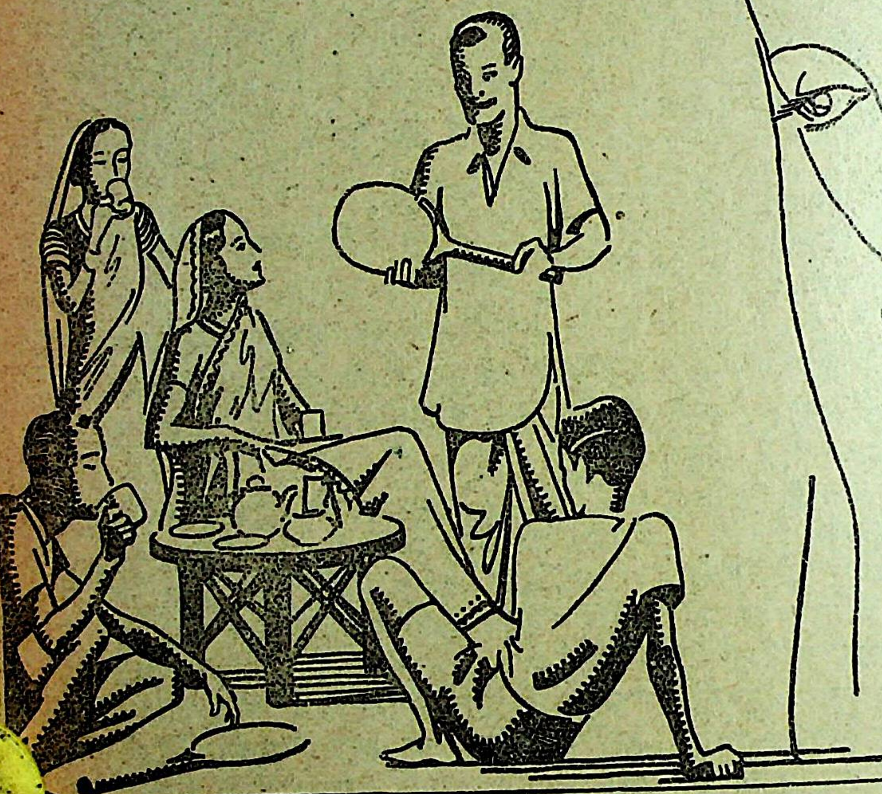
राज ज़ीनत हेयर फ़िक्सिंग क्रीम मूल्य ।।)

ज़ीनत हेयर लोशन इत्यादि मूल्य १)

आवश्यकतानुसार वस्तुएँ मँगवाइये। इस्तेमाल करके प्रसन्न होइये और हमारे परिश्रम का गुण-गान कीजिये।

मैनेजर राज ज़ीनत वर्क्स, नं० १६, राजभवन, एबट रोड, लखनऊ

और भी स्वास्थ्य-सम्पन्न राष्ट्र बनाइये



आपके बच्चे कैसे बढ़ रहे हैं ? क्या उनका स्वास्थ्य सुदृढ़ है, या कोई ऐसी भी बात
जिससे उनकी तन्दुरुस्ती वृद्धि में बाधा पड़ती है ? इन दिनों भारतीय मातायें अपने परिवार
भलाई की जिम्मेवार ही नहीं हैं, बल्कि सम्पूर्ण जाति की उन्नति का उन पर ही दायित्व है
इस देश में सुदृढ़ तथा स्वस्थ स्त्री-पुरुषों की आवश्यकता और भी अधिक है। अतएव
खाद्य-पदार्थों की भरपूर देख-रेख की बहुत ज़रूरत है। रोज़ाना पारिवारिक भोजन-सामग्रियों
सूची में चाय की आवश्यकता कभी न भूलिये। यही वह हानिरहित, स्फूर्तिदायक पेय
जिसकी आपके लड़के लड़कियों को बहुत ज़रूरत रहती है।



❀ चाय तैयार करने का तरीक़ा—ताज़ा पानी खौलाइये। साफ़ बर्तन ज़रा गर्म कर लीजिये। उसमें प्रत्येक के लिये एक तथा एक चम्मच अधिक बढ़िया भारतीय चाय रखिये। पानी खौल जाते ही चाय पर ढाल दीजिये। पाँच मिनटों तक चाय को सीझने दीजिये ; इसके बाद प्यालों में ढालकर दूध और चीनी मिलाइये।

एकमात्र पारिवारिक पेय—भारतीय चाय



जाऊँगी, पर मुझसे वादा करो कि तुम आत्महत्या न करोगे।"

"मैं कुछ वादा करने को तैयार नहीं हूँ। वादा उसके साथ किया जाता है, जो दूसरे का ख़याल करे। कुइनी, मैं नहीं समझता था कि तुम मुझे इस प्रकार धोका दोगी।"

कुइनी को विश्वास होता जा रहा था कि लावल आत्महत्या किये बिना नहीं मानेगा। उसका अंग-अंग पीपल के पत्ते की नाईं काँपने लगा। वह अब दूसरी क़ब्र खोदने जा रही थी। यह ठीक है कि इसमें उसका दोष क्या है? उसे वैज्ञानिक का ख़याल आया।

उसने कहा—"लावल, मुझे क्षमा करो।"

"मेरा-तुम्हारा अब कोई सम्बन्ध नहीं रहा। फिर क्षमा काहे की।"

"लावल, मैं मजबूर हूँ। देखो, तुम आत्महत्या न करना।"

"तुम यहाँ से चली जाओ और कुछ न कहो।"

"नहीं लावल, मुझसे वादा करो कि तुम आत्महत्या न करोगे।"

"कुइनी, तुम सच ही बात जानना चाहती हो तो लो अपनी आँखों ही से देख लो।"

बिजली की चमक की भाँति उसने अपने हाथ को जेब में डाला और पिस्तौल को निकाल-कर बोला—"कुइनी, इसी पिस्तौल से मैं अपना जीवन यहीं ख़त्म करूँगा। और देखो।"

इसके बाद पिस्तौल का मुँह उसने अपनी ओर करके कहा—"गोली अब छूटी।"

इतना ध्यान रहे कि यह सब दृश्य लावल कुइनी की एक बहुत भारी कमज़ोरी जान लेने के बाद कर रहा था और सचमुच इस कमज़ोरी का रंग लावल के इस रूप के बाद तो और भी बदल गया।

कुइनी ने झपटकर पिस्तौल पकड़ ली और डरते-डरते बोली—"लावल, ऐसा न करो—ईश्वर के लिए ऐसा न करो। मैं सच कहती हूँ, मैं तुमसे प्रेम करूँगी।"

अंतिम बात कुइनी ने कलेजे पर पत्थर रखकर कही थी। इसके अन्दर कितना अनुताप, कितना दुःख, कितना विषाद छिपा था, यह उसका दिल जानता था।

थोड़ी देर बाद पिस्तौल नीचे आ गई थी।

कुइनी और लावल का विवाह हो गया।

थोड़े दिन बाद ही वैज्ञानिक भी ग्रीनविच से आ गया। उसने सितारे की खोज कर ली थी। अब केवल उसे अपनी खोज को पुस्तक द्वारा संसार के सामने लाना था।

वह जब ग्रीनविच से चला था, तब बहुत ख़ुश था। उसका हृदय भविष्य में होनेवाले विवाह की ख़ुशी से लदा था, पर जब वह ग्रीनविच से यहाँ आया तो उसे स्थिति दूसरी ही नज़र आई। वह तो चकरा गया।

वह कुइनी से ख़ुद जाकर मिला।

कुइनी ने आँसुओं का एक दरिया बहा दिया। उसने वैज्ञानिक को अपनी स्थिति समझाई और उसके क़दमों पर गिरकर माफ़ी माँगी।

वैज्ञानिक ने उसकी दास्तान सुन लेने के बाद यह अवश्य कहा—"कुइनी, मेरा-तुम्हारा विवाह हो भी तो नहीं सकता। ग्रीनविच की आबज़र्वेटरी से शुक्र का उपग्रह और ग्रह एक ही नज़र आया। तुम्हें याद होगा कि तुमने तारे की खोज कर लेने के बाद ही मेरे साथ विवाह करने को कहा था।"

यह बात कितने बड़े सच को छिपाकर कही जा रही थी। और इसके अन्दर कितना संतोष, कितनी वेदना छिपी थी? क्या कुइनी इसे समझती थी।

जो भी हो, सितारेवाला सच झूठ ही बना रहा; क्योंकि वैज्ञानिक अपनी खोज को पुस्तक द्वारा संसार के सामने कभी नहीं लाया।



रामचरितमानस में कुछ आधुनिक काव्य-कला की विशेषताएँ

श्रीरामविलास शर्मा एम्० ए०

एक सन्त कवि जैसे तुलसीदास और एक आधुनिक कवि जैसे श्रीरवीन्द्रनाथ, इन दोनों में अन्तर है । तुलसीदास उस कोटि के कवियों में हैं, जिनके लिए विषय की गरिमा ही सब कुछ है । उन्होंने कविता करने के लिए कला की साधना नहीं की ; भावावेश में जब कविता की तो कला स्वयं उनकी अनुगामिनी हुई । जब आवेश कम हुआ तो कविता अपनी ऊँचाई से गिर गई । सन्त कवियों में इसी कारण इतनी काव्य-विषमता है । कला का उन्होंने अलग से अध्ययन नहीं किया ; सुन्दर विषय को सुन्दर-से-सुन्दर ढंग से कैसे सजाया जा सकता है, इस पर उन्होंने विशेष माथापची नहीं की । उनमें कला का विकास भाव के साथ अपने आप होता है ; जान-बूझकर वे कला द्वारा अपने भाव की सुन्दर-तर अभिव्यंजना करना अथवा उसके हल्केपन को ज्ञात न होने देना नहीं सीखे । क्या पूर्व और क्या पश्चिम, सर्वत्र हम ऐसे कवियों के अनुगामियों को क्रमशः उनके उदाहरण से लाभ उठाते देखते हैं । अपने पूर्ववर्तियों की बुराइयों और भलाइयों का मनन कर ये आधुनिक अपना मार्ग साफ़ करते जाते हैं । काव्य-कला इस भाँति अनुदिन निखरती जाती है । तुलसीदास के समय अलंकार एवं छंद-ग्रंथों की कमी न थी । आज और भी नहीं है । हम अनेक आधुनिकों को देखते हैं कि वे इन[illegible] का सहारा ले अपनी कविता चमकाना पसन्द[illegible] करते । क्या छन्द, क्या अलंकार, क्या अन्य[illegible] अपना कुछ मौलिक उत्पन्न करने की चेष्टा[illegible] हैं । यह प्रवृत्ति जो आधुनिक कवियों की [illegible] है, हम तुलसीदास में पाते हैं । उन पर [illegible] ग्रन्थों का प्रभाव पड़ा है और सदा अच्छे [illegible] नहीं । परन्तु उनकी मौलिकता उससे बहुत[illegible] चमकती दिखाई देती है ।

पहले उनके छन्द चौपाई को लेते हैं[illegible] इतना छोटा और साधारण छन्द है कि ए[illegible] कवि के हाथ आते ही सुनार की हथौड़ी की[illegible] नियमित समय पर ठुक्-ठुक् शब्द करने लग[illegible] तुलसीदास की चौपाइयाँ इतने गति-[illegible] होकर चलती हैं कि अन्त के विराम की [illegible] पुनरावृत्ति भूल-सी जाती है । बार-बार [illegible] तुक का आना खटके नहीं, इसलिए उन्होंने [illegible] विभिन्नता रक्खी है । साधारणतः अन्त में [illegible] अक्षर आते हैं; परन्तु उनकी एक-सी ध्वनि [illegible] इसलिए वह वहाँ पर कभी-कभी दो लघु [illegible] लघु का प्रयोग करते हैं । बालकांड में ३१[illegible] के पश्चात् देखिए—

> "रामचरित चिन्तामनि चारू।
> सन्त सुमति तिअ सुभग सिंगारू॥



जगमंगल गुनग्राम राम के ।
दानि मुकुति धन धरम धाम के ॥
सदगुरु ज्ञान बिराग जोग के ।
बिबुध बैद भव भीम रोग के ॥"

यहाँ तुक में लघु-गुरु के प्रयोग से चौपाई की गति में विभिन्नता आ जाती है ; एक विचित्र ढंग से छन्द अन्त में खिंच जाता है । पहली पंक्ति की अपेक्षा औरों में विराम अधिक भारी होकर गिरता है । थोड़ा आगे की और चौपाइयाँ देखिए—

"मन करि विषय अनल बन जरई ।
होइ सुखी जौं यहि सर परई ॥
रामचरितमानस मुनि भावन ।
बिरचेउ संभु सुहावन पावन ॥
त्रिविध दोष दुख दारिद दावन ।
कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन ॥
रचि महेस निज मानस राखा ।
पाइ सुसमउ सिवा मन भाखा ॥
तातें रामचरितमानस बर ।
धरेउ नाम हिअ हेरि हरषि हर" ॥

इन पाँच चौपाइयों में तुकों की कितनी भिन्नता है । पहली में लघु-गुरु, दूसरी तीसरी में गुरु के बाद दो लघु, चौथी में गुरु-गुरु और पाँचवीं में लघु के बाद दो लघु । सबके प्रभाव भिन्न हैं । यह एक रास्ता है। जिससे "बटु-समुदाई" के वेद पढ़ने को उन्होंने "दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई" से दूर रक्खा है ।

चौपाई के भीतर ही उसका गति-वैचित्र्य बनाये रखने के लिए उन्होंने एक और सूक्ष्म प्रयोग किया है, जो वैसे पढ़ने में ऊपर नहीं दिखाई देता । यह है यति को एक ही स्थान पर न गिरने देना । चौपाई में यदि ८-८ पर निरन्तर यति हो तो वह अवश्य थोड़ा-सा पढ़ने पर पाठक को उबा दे । यहाँ चौपाई के भीतर जो यति आती है, एक तो वह अत्यन्त हल्की होती है—तिस पर कवि उसको एक जगह नहीं रहने देता । अँगरेज़ी साहित्य के विद्यार्थियों को विदित है कि पोप और उसके अनुयायियों द्वारा समानता के कारण Heroic Couplet में कितनी नीरसता आ गई थी ; जिन साधनों से रोमांटिक कवियों ने उसे दूर किया और पोप के पहले वह दूर रक्खी गई थी, वह यति का एक जगह सदा न गिरना था । नीचे की चौपाइयों में यति-विभिन्नता देखिए—

"राखि न सकइ । न कहि सक जाहू ।
दुहूँ भाँति । उर दारुन दाहू ।
लिखत सुधाकर । गा लिखि राहू ।
विधिगति बाम । सदा सब काहू ।
धरम सनेह । उभय मति घेरी ।
भइ गति साँप । छुछूँदरि केरी ।
राखौं सुतहिं । करौं अनुरोधू ।
धरमु जाइ । अरु बन्धु बिरोधू ।
कहौं जान बन । तौ बड़ि हानी ।
संकट सोच । बिबस भइ रानी ।
बहुरि समुझि । तिय धरमु सयानी ।
राम भरत दोउ । सुत सम जानी ।
सरल सुभाउ । राम महतारी ।
बोली बचन । धीर धरि भारी ।
तात जाउँ बलि । कीन्हेहु ठीका ।
पितु आयसु सब । धरम क टीका" ।

मैंने जहाँ-जहाँ यति दी है, किसी का कहीं-कहीं मतभेद हो सकता है । जब यति बहुत हल्की आती है तो कहना कठिन होता है कि वह यहाँ गिरी । कहीं यति मानना भी खटकता है ; एक चौपाई भाग इतना गुँथा होता है । परन्तु यति-भिन्नता है, यह स्पष्ट है । पहली में ७,९ और ६,१० पर, दूसरी में ८,८ और ७,९ पर, तीसरी में ७,९ और ७,९ पर, चौथी में ७,९ और ६,१० पर, पाँचवीं में ८,८ और ७,९ पर, छठी में



६,१० और ६,७ पर, सातवीं में ७,६ और ७,६ पर तथा आठवीं में ८,८ और ८,८ पर यति है।

रामचरितमानस की कला की सूक्ष्मता उसके सभंग स्वर-विस्तार पर निर्भर है। छोटे-बड़े स्वर पारस्परिक आकर्षण में बँधे बीच में कोमल व्यंजनों को डाल कविता का मनोहर जाल बुनते चलते हैं। भाव के अनुकूल ऊँचा-नीचा करते वे उसे नीरसता की भूमि पर गिरने से बचाये रहते हैं। प्रत्येक चौपाई-समूह के बाद जब दोहा आता है तो स्वर-विस्तार का एक दीर्घ आवृत्त समाप्त होता है। पाठक को यहाँ कुछ क्षण विराम करने का अवसर मिलता है, उसके पश्चात् वह दूसरी तरंग पर बहने के लिए तैयार होता है। बीच में जो छन्द आते हैं, वे चौपाइयों की गति को बदल दीर्घ विराम देते हैं। जिन सूक्ष्म स्वर-तन्तुओं से यह सारा जाल बुना गया है, उन पर हाथ रखते उनके बीच की छोटी-छोटी गाँठों को खोज निकालना अत्यन्त दुष्कर है; फिर भी कहीं-कहीं हमें उनका आभास मिल जाता है और हम कह उठते हैं, यहाँ के माधुर्य का कारण स्वरों का इस भाँति सजाना है। बालकांड के इन आरम्भ के सोरठों को लीजिए—

जेहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवर बदन।
करौ अनुग्रह सोइ, बुद्धिरासि सुभ-गुन-सदन ॥१
मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवौ सकल कलि-मल-दहन ॥२
नील सरोरुह-स्याम, तरुन-अरुन-बारिज-नयन।
करौ सो मम उर धाम, सदा छीर-सागर-सयन ॥३
कुंद-इंदु-सम देह, उमारमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह, करौ कृपा मर्दन-मयन ॥४
बंदौं गुरु-पद - कंज, कृपासिंधु नररूप हरि।
महा-मोह-तम-पुंज, जासु बचन रवि-कर निकर ॥५

स्वरों की अद्भुत मैत्री यहाँ स्पष्ट है। पहले सोरठे में "होइ" और "सोइ" का दीर्घ ओ दूसरे सोरठे के "होई" में अनुवृत्त होता है। दोनों वह एक स्वर के बंधन से बाँध लेता है। तीसरे के "नील-सरोरुह" में पुनः वह उठता है; के सोरठे के "महामोह" में भी हम उसे पा हैं। सबसे अधिक आवृत्ति यहाँ "आ" स्वर होती है। पहले के "गननायक" और "बुद्धिरासि" में, दूसरे के "बाचाल" "जासु" "कृपा" "दयाल" में, तीसरे के "स्याम", "बारिज" "धाम", "सदा" और "छीर सागर" में, चौथे "उमारमन" "करुना अयन", "जाहि" और "कृपा" में तथा पाँचवें के "कृपासिंधु", "महा-मोह" "जासु" में। प्रत्येक दोहे में "आ" का बार-बार वर्तन वह प्रधान तार है, जिससे सब सोरठे में गूँथे हुए और एक खिंचाव से ऊपर उठे हुए अब "औ" को देखिए। पहले के "करौ" दूसरे के "द्रवौ" में, तीसरे के "करौ" में वैसे ही चौथे के "करौ" में तथा पाँचवें के "बंदौं" उसकी अनुवृत्ति होती है। दूसरे तीसरे सोरठे की मध्य यति "आल" और "आम" पर है। "आ" को और न दोहरा चौथे सोरठे की मध्य यति "एह" पर होती है। "ए" स्वर-मैत्री के लिए काम देता है। इसी भाँति दूसरे सोरठे "मूक" का ऊ और पाँचवें के "बर-रूप" का तीसरे सोरठे का पहला चरण "नील-सरोरुह" "ई" से उठता है, उसी के अंतिम चरण के "छीर सागर" में उसकी मधुर अनुवृत्ति होती है। दो खों पर, सोरठा इन दो स्वरों पर जाता है। इन सोरठों की पारस्परिक मैत्री मात्र पर निर्भर नहीं; छोटे-छोटे अनुप्रास बिखरे हैं और साथ ही पदों के बड़े आवर्त आते हैं। पहले के दूसरे चरण में "करिवर-बदन" है, दूसरे के उसी चरण में "गिरिवर-गहन" तीसरे में तरुन-अरुन की मधुर लपेट है। उसके तीसरे चरण का "मम", चौथे सोरठे के पहले के "सम" से मेल खाता है। पाँचवें सोरठे दूसरे चरण के "बर-रूप" के "अर" की



उसी के अंतिम चरण के "कर-निकर" में होती है। इसके अतिरिक्त चार सोरठों के दूसरे चौथे चरणों के अंत में "अन" आता है और जैसे चौथे सोरठे में, कभी वह बीच में भी आ जाता है। सोरठों के पश्चात् जब "बंदौं गुरु-पद-पदुम-परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।" आदि चौपाइयाँ शुरू होती हैं तो आरंभ में ही हम पाँचवें सोरठे के पहले चरण का "बंदौं गुरु-पद" वहाँ दोहराया पाते हैं। नीचे की चौपाइयाँ इस भाँति उस सोरठे से विलग नहीं होने पातीं। साथ ही गुरु-पदों पर विशेष ज़ोर पड़ता है। कंज के स्थान में यहाँ "पदुम-परागा" का प्रयोग अर्थ का जो मधुर विकास करता है, उस पर जो लिखा जाय थोड़ा।

दोहा और उसके बाद आनेवाली चौपाइयाँ स्वरों से किस भाँति जोड़ी गई हैं, यह दो उदाहरणों से और दिखाता हूँ।

बालकांड में—

"राजत राजसमाज महँ, कोसल-राज-किसोर।
सुन्दर-स्यामल-गौर-तन, बिस्व-बिलोचन-चोर॥
सहज मनोहर मूरति दोऊ।
कोटि-काम-उपमा लघु सोऊ।"

यहाँ "कोसल", "बिलोचन", "मनोहर", "दोऊ" "कोटि" और "सोऊ" के "ओ" दोहे और चौपाई के चरणों को आपस में बाँधते हैं।

अयोध्याकांड में—

"सबके उर अभिलाषु अस, कहहिं मनाइ महेसु।
आपु अछत जुवराज-पद, रामहिं देउ नरेसु॥
एक समय सब सहित समाजा।
राजसभा रघुराज बिराजा॥"

यहाँ "सबके", "महेसु", "देउ" और "नरेसु" के "ए" स्वर को "एक" के "ए" में उठाकर चौपाई चलती है।

अनुप्रासों का दुरुपयोग तुलसीदास के पूर्व भी हुआ था और पश्चात् भी। ऐसा तब होता था, जब लोग समझते थे कि उनके बहुल प्रयोगमात्र से कविता में चमत्कार आ जायगा। रामचरित-मानस में उनकी कमी नहीं; परंतु मौलिकता यह है कि उनमें विभिन्नता है, जान-बूझकर वे एक साथ इकट्ठे नहीं किये गये और एक स्वाभाविक रीति से इधर-उधर फूट निकलते हैं। अनेक कवि-कृतियों में उन स्थलों की आलोचकों द्वारा प्रशंसा की गई है, जहाँ पाठ-ध्वनि अर्थ की व्यंजना में सहायता देती है। रामचरितमानस की "कंकन-किंकिनि-नूपुर-धुनि सुनि। कहत लषन सन राम हृदय गुनि।" इसके लिए अनेक बार उद्धृत की गई है। यहाँ दर्शनीय यह है कि पहले चरण में कङ् के बाद किङ् तथा कन के बाद किनि आता है; उसके बाद धुनि सुनि में "उनि" की आवृत्ति होती है। चौपाई का दूसरा चरण "क" से आरंभ होता है, जैसे पहला हुआ था; दोनों की मैत्री का यह प्रच्छन्न कारण है। कंकन के "अन" की अनुवृत्ति लषन सन में होती है और सुनि के "उनि" की स्वभावतः "गुनि" में। अनुप्रास इस तरह विचित्रता लिये एक दूसरे से मिलते हैं; उनसे अर्थ की सुन्दर अभिव्यक्ति होती है। परंतु सर्वत्र यह कला इतने ऊपर नहीं रहती। तुलसीदास स्वरों से बड़े-बड़े काम लेते हैं। परंतु उनका वह कार्य अर्थ के ऊपर नहीं झलकता। बालकांड की यह प्रसिद्ध चौपाई लीजिए—

"अब जनि कोउ माखै भटमानी।
बीर-बिहीन मही मैं जानी॥"

दूसरे चरण में चार बार दीर्घ "ई" स्वर का प्रयोग हुआ। प्रत्येक शब्द पर स्वरपात है। इतनी बड़ी पृथ्वी वीरों से हीन है, कैसा दुख है, इस अर्थ के द्योतन में इस स्वरानुवृत्ति से सहायता मिलती है। थोड़ा आगे का दोहा लीजिए—

"उदित उदयगिरि-मंच पर, रघुबर बालपतंग।
बिकसे संतसरोज सब, हरषे लोचन-भृंग॥



प्रत्येक चरण में "अं" के साथ स्वर ऊपर उठता है ; इससे रामचंद्र के मंच पर चढ़ने का भाव स्पष्ट होता है। बालकांड के एक दोहे के इन चरणों में "निसा घोर गंभीर बन, पंथ न सुनहु सुजान।" एक विशेषता है, जो अन्यत्र भी हम रामचरितमानस में पा सकते हैं। अनुस्वारवाला वर्ण, उसके आगे पीछे दीर्घ 'आ' 'ओ' 'ई' आदि स्वर तथा 'घ' 'भ' से गंभीर ध्वनिवाले व्यंजन रात्रि के अंधकार और वन की दुर्गमता को प्रकट करते हैं। ऐसे ही अनुस्वार-युक्त वर्ण के बाद "ओ" स्वर का सुन्दर प्रयोग नीचे देखिए—

"लखन लखेउ रघुवंसमनि, ताकेउ हर-कोदंड।
पुलकि-गात बोले बचन, चरन चापि ब्रह्मण्ड॥
दिसि-कुंजरहु कमठ अहि कोला।
धरहु धरनि धरि धीर न डोला।
रामु चहहिं संकर-धनु तोरा।
होहु संजग सुनि आयसु मोरा।"

दोहे में तीन बार "अं" की अनुवृत्ति होती है ; उसी का "ओ" के साथ दोनों चौपाइयों के पहले चरणों में प्रयोग होता है। रामचंद्र के कार्य की महत्ता और लक्ष्मण का ब्रह्माण्ड को चरण तले चाप प्रतिज्ञा करना भली भाँति ध्वनित होता है। दोहे में "ल" और "च" के अनुप्रास पहली चौपाई के पहले चरण में "क" के, दूसरे चरण में "ध" और "र" के, तथा दोनों चौपाइयों के चारों चरणों में "ह" के अनुप्रास देखने योग्य हैं।

एक और भी सुन्दर उदाहरण सुन्दरकांड में है—

"स्याम-सरोज-दाम-सम सुन्दर।
प्रभु-भुज करि-कर सम दसकंधर।
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा।
सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा।"

पहली चौपाई के "ज" और "अं" की शक्ति दूसरी के "भुज कंठ" में जैसे एकत्र हुई हो। सीता की प्रतिज्ञा अपनी दृढ़ता के स्वर को पूर्ण शक्ति पाये है।

ऊपर उद्धृत किये सोरठों में से एक में "तरुन-अरुन" में पद का आवर्त आता है। रामचरितमानस की एक विशेषता है। ये इतनी स्वच्छंदता से और इतनी स्वाभाविकता से आते हैं कि इनको अनुप्रासों की किसी सीमा में रखना न संभव है, न उचित होगा। चौपाइयों, छंदों में ये सर्वत्र बिखरे हैं। कभी अर्थ की पुष्टि करते हैं, कभी छंद के चरणों को आपस में बाँधते हैं, कभी अपने सौंदर्य के लिए रहते हैं। कुछ उदाहरण चौपाइयों से लीजिए—

(१) "उठहु राम भंजहु भवचापा।
मेटहु तात जनकपरितापा।"
(बालकांड)

(२) "कहँलगि सहिअ रहिअ मनमारे।
नाथ साथ धनु हाथ हमारे।"
(अयोध्याकांड)

(३) "नयन नीर पुलकित अति गाता।
मन धरि धीर कही मृदु बाता।"
(सुन्दरकांड)

(४) "प्रभु सनमुख धाए खल कैसे।
सलभ समूह अनल कहँ जैसे।"
(लंकाकांड)

(५) "राम कहा सेवकन्ह बुलाई।
प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई।"
(उत्तरकांड)

यहाँ दो चरणों में समान आवर्तों की आवृत्ति उनके पारस्परिक बंधन का कारण होती है। स्वाभाविकता भी देखिए, ऐसा नहीं जान पड़ता कि एक भी हठात् सौंदर्य के लिए लाया गया है। बिना खोजे हुए बहुतों पर ध्यान भी नहीं जाता। दूसरे उदाहरण में लक्ष्मण की उक्ति इन्हीं आवर्तों द्वारा उनका आवेश प्रकट करती है।

इस प्रकार का सौंदर्य सबसे अधिक छंदों में है। प्रत्येक छन्द में आवर्तों के लिए जैसे कुछ जगह पूर्वनिश्चित रक्खी जाती हो। उदाहरण देखिए—

(१) "होनहार का करतार को
रखवार जग खरभरु परा।
दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि
कहुँ कोपि कर धनु-सरु धरा।"
(बा० कां०)

(२) "तनखीन कोउ अति पीन
पावन कोउ अपावन गति धरे।
भूषन कराल कपाल कर
सब सद्य सोनित तन भरे॥"
(बा० कां०)

(३) "पुर नारि सकल पसारि अंचल
विधिहि बचन सुनावहीं।"

(४) "भरि भुवन रहा उछाहु
रामविवाहु भा सबहीं कहा।"
(बा० कां०)

(५) "केहि हेतु रानि रिसानि
परसत पानि पतिहि नेवारई।"
(अयो० कां०)

(६) "जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ
उपाइ करि कुल पालहीं।
हठि फेरु रामहिं जात बन
जनि बात दूसरि चालहीं।"
(अयोध्याकांड)

(७) "लागे सराहन भाग सब
अनुराग बचन सुनावहीं।
(अयोध्याकांड)

(८) "यह तनय मम सम विनय
बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए।
गहि बाँह सुर-नर नाह
आपन दास अंगद कीजिए॥"
(किष्कि० कां०)

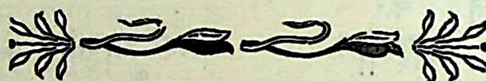
(९) "चिक्करहिं दिग्गज डोल महि
गिरि लोल सागर खरभरे।"
(सुन्दरकांड)

(१०) "रघुबीर निज मुख जासु गुनगन
कहत अगजग नाथ जो।
काहे न होइ विनीत परम
पुनीत सदगुन-सिंधु सो।"
(उत्तरकांड)

यहाँ आवर्तों के कारण छन्द पढ़ने में जो आनन्द आता है, वह उनकी विशेषता का सबसे बड़ा परिचायक है। स्वर की लहरें एक स्थान से उठ दूसरे पर जाकर गिरती हैं। आनन्द पूरा छन्द पढ़ने में आता है; व्यर्थ स्थान न भरने के लिए मैंने उन्हें पूरा नहीं उद्धृत किया। जहाँ छन्द की और लड़ियाँ विभिन्न स्वरों से बँधी अपने बंधन का परिचय न देती हुई आगे बढ़ती हैं, वहाँ ये आवर्त कुछ अपना आकार दिखा पाठक को परम सुख देते हैं। छन्द की गति जब रुक-रुककर आवर्त लेती हुई चलती है, तब पदों की आवृत्ति उनमें और सौंदर्य भर देती है। ऊपर के उदाहरणों में हम देख सकते हैं, कहीं-कहीं उनसे अर्थ की भी पुष्टि होती है। पहले उदाहरण में "आर" की आवृत्ति लोगों की असहायता, संसार के हाहाकार की ओर इंगित करती है। दूसरे उदाहरण में "आरि" की आवृत्ति से अंचल पसारने का भाव खुलता है। पाँचवें में "आनि" के आवर्त क्रुद्ध रानी का राजा द्वारा धीरे-धीरे छुआ जाना भली भाँति दिखाते हैं; तीन आवर्त आने से लड़ियाँ एक दूसरे को धीरे-धीरे स्पर्श करती हैं। परन्तु इस तरह के विश्लेषण को दूर तक ले जाने में भय है। कवि प्रायः



बिना ये सब बातें सोचे उन्हें रखता है ; आलोचक उनका सौंदर्य परखते दूर की कौड़ी खोजने का साहस कर सकता है । फिर भी रामचरित-मानस में इन आवर्तों का सौंदर्य इतना अधिक है कि यह सोचना कठिन हो जाता है कि कवि अपनी इस कला-चातुरी से अनभिज्ञ रहा होगा । तुलसीदास उन्हें खींच-खाँचकर नहीं लाये, पढ़ने पर ऐसा ही लगता है । और, यह उनके भाषा के प्रवाह के लिए भी सत्य है । सहृदय कवि-हृदय से फूटी निर्झरिणी-सी वह सहज अबाध प्रवाहित है । पर कौन जानता है, इसके लिए उन्हें कितनी साधना करनी पड़ी हो ; "संकर चापु जहाजु" के स्थल पर ही एक बार क़लम रखकर सोचना पड़ा हो । जैसा भी हो, आवर्तों का यह सौंदर्य आपको रवीन्द्रनाथ की कविता में, अनेक अंग्रेज़ कवियों के मुक्त छन्दों में, वर्तमान हिंदी-कविता में भी निरालाजी में बहुतायत से मिलेगा। तुलसीदास यहाँ भाषा को एक मौलिक ढंग से सजाने में आज की विकसित काव्य-कला का आभास देते हैं । कला की अन्य दिशाओं में संभव है, उनसे भूलें हुई हों । परन्तु जहाँ भाषा का सम्बन्ध है, वे आधुनिक से आधुनिक के आगे हैं ।



महाकवि भारवि के अनौचित्य

पंडित श्रीमहावीरप्रसाद जोशी, काव्यतीर्थ, साहित्याचार्य,

यह शीर्षक पढ़कर शायद हमारे कई भारवि-रचनाभिज्ञ पाठक महोदय झुंझला उठेंगे कि कविता-कानन-केशरी महाकवि भारवि और अनौचित्य ! छोटे-मुँह बड़ी बात !! क्या कभी ऐसा हो सकता है ? किन्तु हम इसके लिए इतना ही कहना आवश्यक समझते हैं कि जहाँ गुण होते हैं, वहाँ दोष भी ज़रूर रहते हैं । 'सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः' के अनुसार यह तो निश्चित ही है कि मनुष्य की कृति में दोष का न होना ही आश्चर्य का विषय है, न कि दोष का होना ; क्योंकि परमात्मा के सिवा दोषों से दूर कोई नहीं रह सकता । इसी लिए बड़े-बड़े विद्वानों से भी भूल हो जाती है । जैसा कि किसी ने कहा है कि—'मुनीनां च मतिभ्रमः' अर्थात् मुनियों को भी मतिभ्रम हो सकता है। और फिर कवि तो अपनी कल्पना की उड़ान में आकर, भावावेश के वशीभूत होकर साधारण दोषों की ओर ख़याल करने का ध्यान ही नहीं रख सकता । इसलिए इस लेख से हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हम कविता-कमलिनि-रवि भारवि पर आक्षेप करें, किन्तु उनकी कविताओं पर विवेचन करना अर्थात् ऐसे असाधारण कवि की रचना में भी दोष मिल सकते हैं—जोकि हमारे प्राचीन आचार्यों ने दिखाये हैं—उनको हिन्दी-साहित्य के पाठकों के आगे रखना ही तात्पर्य है और यह दोष हमारी कपोल-कल्पना या हमारी प्रतिभा-चातुरी-प्राप्त भी नहीं है, किन्तु सिर्फ़ मम्मट, विश्वनाथ आदि की उक्तियों की आम्रेड़ना—दोहराना मात्र है । अतः आशा है कि प्रेमी पाठक ! इसे मात्सर्यमयी दृष्टि से न पढ़कर सहृयता-पूर्वक इनका विवेचन करते हुए हमारे प्राचीन आचार्यों की अन्वेषणशीलता पर आश्चर्य प्रकट करेंगे कि किस तरह बाल की खाल निकाली है । जैसे कज्जल से ललना का लोचन श्रीहत नहीं होता, किन्तु श्रीयुत ही होता है; ठीक इसी तरह इस विवेचन से महाकवि की कविता में भी किसी तरह का धब्बा नहीं लगेगा, किन्तु उत्तरोत्तर उनकी कीर्ति-कौमुदी विस्तृत ही होती रहेगी ।

अस्तु, अब हम प्रस्तुत की ओर अग्रसर होते हैं

(१)

आचार्यों का कथन है कि महा-कवि भारवि की कविता में प्रसाद गुण का प्रायः अभाव है । हम यह नहीं कहते कि उनकी कविता में प्रसाद गुण है ही नहीं, किन्तु प्रसाद की ओर कवि का ख़याल बहुत कम है । यद्यपि अर्थ-गौरव भारवि की कविता का एक प्रधान गुण माना जाता है, किन्तु हम यह निःसङ्कोच कह सकते हैं कि जिस प्रसाद गुण ने सहृदयों के हृदय में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है, उसका निर्वाह करने में महाकवि सफल नहीं ो सके, जैसे कि कविकुल-गुरु कालिदास !! किसी एक-आधे पद्य के लिए



हम नहीं कह सकते, किन्तु समष्टिरूपेण विवेचन करने पर हमारा यही विचार है।

(२)

द्रौपदी की युधिष्ठिर के प्रति उक्ति है—

अबन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां
भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना
न जातहार्देन न विद्विषादरः॥

काव्य-प्रकाशकार कहते हैं कि यहाँ 'जातहार्देन' पद के विशेष्य 'जन्तुना' इस पद का विवक्षित अर्थ 'अदाता' है, किन्तु यह इस अर्थ का वाचक नहीं है, इसलिए यहाँ अवाचक दोष है। इस पद्य का अभिप्राय यह है कि अपमान होने पर अपने क्रोध को सफल कर दिखानेवाले एवं आपत्तियों को ठुकरानेवाले व्यक्ति के स्वयमेव प्राणी वशीभूत हो जाते हैं। किन्तु उपर्युक्त तेजोविहीन व्यक्ति के शत्रु होने पर तो असमर्थतया कोई डरता नहीं। और मित्र होने पर अदाता होने के कारण कोई आदर नहीं करता।

(३)

युधिष्ठिर के प्रति भीम की उक्ति है—

विपदोऽभिभवन्त्यविक्रमं रहयत्यापदुपेतमायतिः।
नियता लघुता निरायतेरगरीयान्न पदं नृप-श्रियः॥

इसमें दो दोष हैं—एक तो उपसर्ग का भग्न प्रक्रम, और दूसरा पर्याय का। जैसे कि 'वि' उपसर्ग का उपक्रम करके आगे इसके स्थान में 'आ' का प्रयोग करना। लघुता का प्रयोग करके 'अगरीयान्' का प्रयोग करना। मम्मटाचार्य ने लिखा है कि इस जगह—'तदभिभवः कुरुते निरायतिम्। लघुतां भजते निरायतिलघुता वान्तपदं नृपश्रियः' ऐसा पाठ रहता तो अच्छा रहता।

(४)

भग्न प्रक्रम का ही एक उदाहरण और है। द्रौपदी अर्जुन से कहती है—

यशोऽधिगन्तुं सुखलिप्सया वा
मनुष्यसंख्यामतिवर्तितुं वा।
निरुत्सुकानामभियोगभाजां
समुत्सुकेवाङ्कमुपैति लक्ष्मीः॥

तुमुन् का उपक्रम कर उसकी जगह स... उपयोग से यहाँ पूर्वोक्त दोष है। 'सुखमीहितुं'... देने से शुद्ध हो सकता है।

(५)

जलक्रीड़ा-वर्णन करते समय एक नायिका... वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—

प्रियेण संग्रथ्य विपक्ष-सन्निधा-
वुपाहितां वक्षसि पीवर-स्तने।
स्रजं न काचिद्विजहौ जलाविलां
वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि॥

कितना सुन्दर पद्य है। किन्तु एक अक्षर... उलट-पलट से दूषितों की श्रेणी में आ ग... इसमें नकार काचित् के बाद में होना चाहिए... 'काचिन्न' ऐसा पाठ होना चाहिए था। अब '... तु सर्वा एव विजहुः' इस विपरीत अर्थ... सम्भावना है।

(६)

युधिष्ठिर उत्तेजित भीमसेन को शान्त करने... लिए कह रहे हैं।

सहसा विदधीत न क्रिया-
मविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं,
गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥

यहाँ श्रीविश्वनाथ कविराज का मत है... जैसे 'पाप करनेवाले को दुःख मिलता है'... कहने से 'पाप न करनेवाले को सुख मिलता...' यह बात स्वयं ही प्रकट होती है, इसी...



द्वितीय पद के कहने पर तृतीय एवं चतुर्थ पद का अभिप्राय स्वयं प्रकट हो सकता है। इसलिए उसके कहने की ज़रूरत न होने पर भी कहना—प्रकट हुए को फिर शब्दों से प्रकट करना दोष है—और इस दोष का नाम पुनरुक्त है।

(७)

अर्जुन का किरात-वेशधारी महादेव के साथ युद्ध हो रहा था, उस समय अर्जुन ने कुपित होकर महादेवजी के वक्षःस्थल में भुज-प्रहार किया। इसी अभिप्राय का एक श्लोक है—

उन्मज्जन्मकर इवामरापगाया,
वेगेन प्रतिमुखमेत्य बाण-नद्याः।
गाण्डीवी कनक-शिला-निभं भुजाभ्या-
माजघ्ने विषम-विलोचनस्य वक्षः ॥

इस पद्य में 'आजघ्ने' यह पद ठीक नहीं है; क्योंकि अकर्मक या स्वाङ्गकर्मक हन् धातु से ही आत्मनेपद में प्रत्यय होता है और सकर्मक हन् धातु से आत्मनेपद नहीं होता। इसलिए यहाँ पर 'आ जघान' होना चाहिए, न कि 'आजघ्ने'। इस दोष को साहित्यशास्त्रविज्ञों ने 'च्युत-संस्कृति' कहा है।

यद्यपि कई महाशय 'प्राप्य' का अध्याहार कर 'स्ववक्ष आजघ्ने' ऐसा मानते हैं, पर वीर पुरुष युद्ध में अपनी छाती नहीं पीटा करते। इस-लिए यह दोष ही है। और भी इसके कई समा-धान किये गये हैं। पर वह सब खींचा-तानी मात्र है। बस, आज इतना ही, आगे फिर कभी।

वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य की आवश्यकताएँ

ठा० मार्कण्डेयसिंह एम्० ए०, साहित्यरत्न

साहित्य और समाज में अन्योन्याश्रय संबंध रहता है। साहित्य, चाहे वह किसी भी समय का क्यों न हो, अपने तत्कालीन समाज के अनुकूल ही बनेगा। परन्तु यदि वह ऐसा न हो, तो उसे सच्चा साहित्य नहीं कहेंगे और न तो वह अपने समकालीन समाज के भाव और विचार का आदर्श ही होगा। अतएव साहित्य का समाज के साथ-साथ चलना नितान्त आवश्यक है।

समाज का स्वरूप समय-विशेष के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। जैसा समय होगा, जैसी परिस्थिति रहेगी, ठीक उसी के अनुकूल समाज की रूप-रेखा बनेगी। जब एक सिद्धांत चरम कोटि पर पहुँच जाता है, जब एक रस्म व रिवाज की हद हो जाती है, तब परिस्थिति सामाजिक परिवर्तन के लिए बाध्य करती है। इतिहास इसका साक्षी है कि सामाजिक स्थिति में एकरूपता का रहना असम्भव है। ब्राह्मण-काल की बलि, यज्ञ और पशु-हत्या के पश्चात् बौद्ध-काल की अहिंसा-वृत्ति का प्रचार अवश्यम्भावी था और इसके सीमातिक्रमण के पश्चात् पुनः ब्राह्मण-धर्म का प्रचार भी एक अनिवार्य परिणाम था। जब पोप की सत्ता अति को पहुँच गई, जब सारा योरप पोप के अंगुलि-निर्देश पर काम करने लगा, तब उसके विरुद्ध मार्टिन ल्यूथर ने अपनी आवाज़ उठाई और कैथलिक धर्म के विरोध में प्रोटेस्टेन्ट धर्म उठ खड़ा हुआ। यह भी उपर्युक्त व्यापक नियम का परिणाम ही है। इस प्रकार समयानुसार धार्मिक परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन भी सदैव से होते आ[illegible] और भविष्य में भी होते रहेंगे, इसमें तनि[illegible] सन्देह नहीं। समय और परिस्थिति का ही [illegible] है कि कभी जन-समूह आस्तिक हो जाता है[illegible] कभी नास्तिक, कभी साम्राज्य-वादी हो ज[illegible] और कभी राष्ट्रवादी एवं साम्यवादी; कभी [illegible] स्पृश्य का पक्षपाती रहता है और कभी [illegible] घोर विरोधी। कभी वह वीरत्वपूर्ण हो [illegible] है तो कभी विलासी और क्लीब, तथा [illegible] निराशामग्न हो भाग्यवादी हो जाता है और [illegible] आशावादी और उद्योगी। कहने का तात्पर्य [illegible] कि समाज पर समय का प्रभाव अमिट और दु[illegible] है। यह सदैव रहा है और रहेगा।

वर्तमान समय यन्त्रों का युग है। यह [illegible] कौशल की उन्नति का युग है। इसमें का[illegible] महत्त्व (Dignity of labour) सर्वत्र [illegible] हो रहा है। अब पूर्वकालीन कोरी दार्शनि[illegible] के लिए स्थान नहीं है, हर एक बात में [illegible] हारिकता देखी जाती है। आदर्शवाद के स्था[illegible] भौतिकवाद, काल्पनिकता के स्थान में वास्तवि[illegible] और यथार्थवाद, नियन्त्रण के स्थान में स्वा[illegible] वाद और सामाजिक विषमता के स्थान में [illegible] वाद का दौरदौरा है। अन्ध-परम्परा और [illegible] में किसी का भी विश्वास नहीं देख पड़ता; [illegible] लोग प्रत्येक विषय की स्वयं छानबीन कर[illegible]



उसके कारण और प्रमाण की खोज करते हैं। सभी बातें विज्ञान की कसौटी पर कसी जाती हैं। आजकल भावुकता (Sentimentalism) तो मानसिक दुर्बलता समझी जाती है। बुद्धि जिसे स्वीकार करे, आज वही मान्य है, वही ग्राह्य है। बीसवीं शताब्दी बुद्धिवादी है। ईश्वर और जीव की आध्यात्मिक चर्चा इसके लिए महत्त्व नहीं रखती, उपनिषद् की दार्शनिकता और इमर्सन की फ़िलासफ़ी इसके लिए बेकार की बातें हैं। यह तो ठोस राजनीति और अर्थ-शास्त्र की जटिल समस्याओं को रुचिकर समझती है; इन्हीं के हल करने में अपनी बुद्धि और वाणी की सार्थकता मानती है। परोक्ष और अलौकिक इसके लिए सारहीन और महत्त्व-शून्य हैं, यह तो प्रत्यक्ष और लौकिक को महत्त्व देती है और यही इसका क्षेत्र है। यह 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' को ज़रा भी नहीं मानती। यह तो आज डंके की चोट कहती है—

> कौन कहता है कानों में,
> किसी का कहना तू मत मान ?
> अन्ध-विश्वास दिलाते वे,
> इसी में बनते हैं विद्वान्।

आज वर्त्तमान शताब्दी के मनुष्य के लिए धर्म कोई वस्तु नहीं, यह तो विडम्बना है; ईश्वर कोई सत्ता नहीं—यह तो दिमाग़ का फ़ितूर है—ढोंगियों की कल्पना है। अब तो प्रार्थना दोषी हृदय की दुर्बलता, पूजा-पाठ आडम्बर, देवालय धोखे की टट्टी, दान-दक्षिणा आलस और अनाचार की प्रचारक तथा तीर्थ-स्थान पाप के डेरे माने जा रहे हैं। नित्य-प्रति प्राचीन धार्मिक और सामाजिक बन्धनों को तोड़कर नवीन सिद्धान्त बनाये जा रहे हैं और फलतः नित्य-प्रति हमारा समाज बदलता जा रहा है। पचास वर्ष पहले जो समाज की दशा थी, वह आज बिलकुल नहीं। परिवर्तन तो इतना हो गया है कि सहसा पहचान नहीं हो सकती। मेरे इस कथन की पुष्टि व्यक्तिगत उदाहरण से सरलता से हो सकती है। किसी भी बुड्ढे बाप और जवान बेटे को ले लीजिए और उनके रहन-सहन और भाव-विचार की तुलना कीजिए। देखिए, कितना बड़ा अन्तर पड़ गया है। कहने का आशय यह कि वर्त्तमान समय पहले का-सा नहीं, यह बिलकुल नया और दूसरी तरह का हो गया है।

तो अब तनिक सोचिए कि क्या हमारा हिन्दी का वर्तमान साहित्य समय के साथ है ? क्या इसकी गति समय की गति के मेल में है ? क्या हमारे वर्तमान साहित्य में सामयिक भाव-विचार और जीवन-पद्धति प्रतिबिम्बित होती हैं ? उत्तर मिलेगा—नहीं, हमारा साहित्य समयानुकूल कदापि नहीं। विचार करने पर विदित होगा कि हम परिस्थिति के दबाव से नित्यशः दूसरे होते जा रहे हैं। हमारे हृदय और मस्तिष्क बदलते जा रहे हैं। हमारे धर्म-अधर्म की परिधि, हमारे रहन-सहन का स्वरूप, हमारी नैतिकता की रूपरेखा, हमारे सामाजिक सम्बन्धों का निर्णय, हमारे शिष्टाचार की विधि, हमारी शिक्षा-प्रणाली एवं हमारी सभ्यता और संस्कृति—सभी बातें बदलती जा रही हैं। कल जो हमारे लिए पाप था, आज वही अन्यथा समझा जा रहा है; कल जो शिष्टाचार के विरुद्ध था, आज वही सभ्यता में दाख़िल है; कल जो स्वभावानुकूल था, आज वही कृत्रिम और हेय है; कल जो त्याज्य था, आज वही ग्राह्य है और जो ग्राह्य था, वही त्याज्य है। जब अतीत और वर्तमान में इतना अन्तर और विरोध है तो क्या प्राचीन और वर्तमान साहित्य में कोई अन्तर न पड़े, यह ठीक बात है ? कदापि नहीं। यदि यह सत्य है कि साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है और समाज समय एवं परिस्थिति के हाथ का पुतला है, तो यह मानना पड़ेगा कि साहित्य—सच्चा और वास्तविक साहित्य—समय के साथ-साथ

अपनी रूपरेखा और शील-सौन्दर्य में परिवर्तित होता रहेगा।

अतः अब विचारणीय प्रश्न यह है कि हमारे आधुनिक हिन्दी-साहित्य की क्या दशा है। हिन्दी-साहित्य का वर्तमान काल भारतेन्दु के समय से माना जाता है। तब से अब तक के साहित्य पर दृष्टि डालने से ज्ञात होगा कि हमारे साहित्यिक परिवर्तन की गति अपेक्षाकृत बहुत ही मन्द है। देखिए, गत ६०-६५ वर्षों में भारतीय समाज कहाँ से कहाँ चला गया, लेकिन अभी हमारा हिन्दी-साहित्य वही 'सूरदास की कारी कमरिया' बना हुआ है। यह अभी तक वही पुराना राग अलाप रहा है। वे ही पौराणिक कथाएँ, वे ही पुराने दक़ियानूसी ख़याल अभी तक चले आ रहे हैं। वैज्ञानिक आलोक में कितनी कवि-समय सिद्ध बातें असत्य प्रमाणित हो चुकी हैं, कितने नये पदार्थों और स्थानों का आविष्कार हो चुका है, परन्तु अब भी हमें उपमा-रूपक के लिए कमल, हंस और चातक के अतिरिक्त और कुछ देख ही नहीं पड़ता। प्रकृति-वर्णन में हमें—हमारे कवियों को—वे ही वृक्ष-लताएँ, वे ही पशु-पक्षी मिलेंगे, जिनका उल्लेख पूर्व कवियों ने किया है; वही वर्ण्य-वस्तु और वही वर्णन-शैली। कहीं भी परिवर्तन का नाम नहीं। हमारी रचनाओं में अब भी सर्वत्र पुराना ही वातावरण दिखलाई पड़ता है। कहीं पुराणों के अन्ध-विश्वास का नया कलेवर रचा गया है, तो कहीं इतिहास के गड़े मुर्दे उखाड़े जाते हैं। कोई राम-कृष्ण के इतिहास पर अपनी वर्णन-चातुरी दिखलाता है, तो कोई जनमेजय और श्रीहर्ष की समकालीन परिस्थिति का चित्रण करता है। हिन्दी-साहित्य में खण्डकाव्यों की तो आजकल भरमार है ही, कई महाकाव्य भी इन दिनों लिखे गये हैं; परन्तु क्या इनमें से एक भी कोई ऐसी पुस्तक है, जो अपने युग का चित्रण है? क्या किसी में हम अपने जीवन का शब्द-चित्र देखते हैं? प्रियप्रवास और साकेत नामी हमारे दोनों महाकाव्य (?) क्या वर्तमान समय के [प्रति]निधि महाकाव्य कहे जा सकते हैं? सच [पूछि]ए तो अभी बीसवीं शताब्दी का प्रतिनिधि [महा]काव्य बनने को है। साकेत और प्रियप्र[वास,] अजातशत्रु और राज्यश्री सभी पुराने वाता[वरण] की चीज़ें हैं!

आप कहेंगे कि ऊपर जो कुछ कहा गया, वह ठीक नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि आजक[ल] जितनी रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं, वे नवी[न] ढंग की हैं, सबमें नवीनता की छाप है। ह[म] इसे मानता हूँ। परन्तु वह नवीनता, जिसे [हम] देख रहे हैं, बाहरी है; वह वर्ण्य वस्तु और भावों और विचारों की भी नहीं, वह तो ... ऊपरी ढाँचे की है, भाषा और शैली की है। ... भी केवल नवीनता ही है, सामयिकता न[हीं।] नवीनता और मौलिकता के प्रलोभन में ... कवियों और लेखकों ने उपयुक्तता और [साम]यिकता पर तो तनिक भी ध्यान नहीं दि[या।] आजकल की यह नवीनता ठीक वैसी ही है, ... कि पुराने बर्तन पर की क़लई, जिसमें ... आकर्षण भले ही हो, स्थायित्व और उप[योगिता] तनिक भी नहीं रहती। यदि सूक्ष्म दृष्टि से ... जाय, तो हमारे साहित्य के इस नूतन स्व[रूप में] कला का कुछ भी अंश नहीं। यदि कुछ है ... वह है कलाबाज़ी, व्यर्थ की उछल-कूद, ... अकाण्ड-ताण्डव। आये दिन का शायद ... कोई साहित्यग्रन्थ हो, जिसमें विश्व की ... विभूति के दर्शन की अणुमात्र भी सम्भाव[ना] और जिसमें 'रमणीयता' हो। चमत्कार की ... छोड़िए। इसके लिए तो मैंने पहले ही संके[त कर] दिया है कि कलाबाज़ी की आजकल कमी ... बात की बात में बात पैदा करना—यही तो ... जा रहा है। क्या कह दें कि लोग अकचका ... कैसा वाक्य-विन्यास रखें कि वह लाक्षणि[क हो] जाय, कैसी काल्पनिक उड़ान लें कि 'अद्भु[त'] आ जाय—बस कुछ ऐसे ही वर्तमान सा[हित्य]



सेवियों के मोटो रहते हैं। मंगलमय और रसात्मक साहित्य से उनका विशेष प्रयोजन नहीं। वे तो उक्ति-वैचित्र्य के भूखे रहते हैं। अस्तु, आजकल मौलिकता और कला का केवल स्वाँग भरा जा रहा है। वास्तविक नूतनता—अन्तर्जगत् की नूतन सृष्टि—तो कहीं भी नहीं मिलती। सर्वत्र वही पुरानापन नज़र आता है!

तो फिर, इस पुरानेपन का कारण क्या है? क्यों हमारा वर्तमान साहित्य हमारे आधुनिक समाज से पीछे पड़ा है? और क्यों इसमें अवरोध (Stagnation) दिखलाई पड़ता है? कारण बिलकुल स्पष्ट है और वह है लेखकों में अनुभूति की कमी, पर्यवेक्षण का अभाव, सत्यनिष्ठा (Sincerety) और प्रतिभा की अनुपस्थिति। आजकल के हमारे कवि तो भानुमती के स्कूल के बाजीगर से जान पड़ते हैं। वे कहीं का ईंट और कहीं का रोड़ा ले कुनबा जोड़ने में लगे रहते हैं। उन्हें अनुभूति और पर्यवेक्षण की आवश्यकता ही क्या है? ठीक ही है—स्थानीय उपयोगिता (Place-utility) भी तो कम महत्त्व नहीं रखती। जो व्यक्ति भिन्न-भिन्न स्थानों से पर-निर्मित वस्तुओं को एकत्र करके रख दें, वह यदि अपने को कुछ—कुछ नहीं बहुत कुछ भी—समझे, तो उसे अपनी अहम्मन्यता के लिए काफ़ी गुञ्जाइश है। परन्तु याद रहे, यह केवल अहम्मन्यता-मात्र ही है—सच्चे गर्व का काम नहीं। और यदि कहीं ऐसा व्यक्ति मौलिक होने का दावा करे, तो इसे उसकी धृष्टता, निर्लज्जता और अनधिकार-चेष्टा के अतिरिक्त और क्या कहेंगे? आजकल हमारे साहित्यकारों में ऐसे एक नहीं, अनेक देखने में आते हैं। इनमें 'बनानेवाला' शायद ही कोई मिले, सबके सब 'जोड़ने ही वाले' हैं और सभी बिना तेल-घी लगे पकौड़ी खाया चाहते हैं। धुरन्धर लेखक बनने की यही चाट, ख्याति का यही प्रलोभन उनसे उचित-अनुचित सभी कुछ कराता है। वे चोरी करते हैं, पर चोरी के माल को पसीने की कमाई बतलाने में तनिक भी नहीं हिचकते; नक़ल करते हैं पर असल बनने में ज़रा भी नहीं। सोचते हैं कि ऐसा डूबकर पानी पी रहा हूँ कि ख़ुदा भी न जाने। ख़ैर अगर इतना ही हो, तो भी ग़नीमत है, पर वे तो निर्लज्ज भी परले सिरे के हैं; क्योंकि अगर कहीं उनकी चोरी पकड़ी भी गई, तो भी चेहरे पर ज़रा भी शिकन नहीं पड़ती। वे उल्टे सीनाजोरी करते हैं और पूछने पर धौंस क्या जमाते हैं कि मौलिकता तो शैली की है, न कि भावों और विचारों की। भई, मेरी रचना में भावापहरण और शब्दानुवाद थोड़े ही है। यह तो केवल छायानुवाद-मात्र है और सच पूछिए तो इसके बिना कुछ लिखना असम्भव-सा है। बस, इसी मिथ्या आश्वासन के बल पर ऐसी ही विपरीत बुद्धि के कारण वे लोग अपने को धोखा देते हैं और साथ ही दूसरों को भी। बस, इसी धारणा के फल-स्वरूप आज हमारा साहित्य नक़ली भावों की दूकान हो रहा है। इसका बाज़ार अब सच्चा नहीं रहा—इसकी चीज़ें भी अब सच्ची नहीं रहीं। घूस-घास, विज्ञापन और दलबन्दी के बल पर ख़ूब अंधाधुन्ध मची हुई है। बस, ये ही सब कारण है कि हमारा साहित्य निरन्तर पुनरावृत्तियों से केवल स्थूल और दीर्घकाय भर होता जा रहा है, कहीं भी इसकी स्वस्थ और विकार-हीन वृद्धि नहीं हो रही है। निस्सन्देह, इसकी यह अवस्था चिन्त्य है और इसके सुधार के लिए उपाय ढूँढना चाहिए। नहीं तो साहित्य और काव्य के नाम पर अधिकांश जो कुछ हो रहा है, वह पानी पीटने के समान परिश्रम-मात्र ही सिद्ध होगा।

अस्तु, वर्त्तमान साहित्य की उपरिनिर्दिष्ट अवस्था के सुधार के लिए पहला उपाय है लेखकों के उद्देश्य में परिवर्तन। हम देखते हैं कि आजकल लिखना एक पेशा हो गया है। थोड़ा-बहुत भी पढ़-लिख लिया और नौकरी नहीं मिली, तो फिर मातृभाषा की सेवा (?) करने के लिए सन्नद्ध हो



गये । बेचारे ऐसा करें क्यों न ? जीविका के लिए इसके अतिरिक्त दूसरा साधन ही क्या है ? लेकिन फ़ायदे के लिए क़ायदा बिगाड़ना ठीक नहीं । व्यक्तिगत लाभ के लिए समाज-हित की हत्या अक्षम्य अपराध है । मेरा तो विश्वास है कि ज्ञान-लव-दुर्विदग्ध अनभ्यस्त लेखकों से साहित्य की उन्नति कदापि नहीं हो सकती । ऐसे लेखक इस कोठी का धान उस कोठी भले ही कर लें, किन्तु कोई वास्तविक वस्तु—कोई सारवान् साहित्यिक कृति—कदापि नहीं उपस्थित कर सकते । खेद है कि आजकल ऐसे ही साहित्य-सेवियों की भरमार है, जिनके कारण साहित्य की अवस्था उत्तरोत्तर शोचनीय होती जा रही है । अस्तु, आवश्यकता है कि लेखक समुदाय अपने ध्येय में परिवर्तन करे । सच पूछिए, तो हमें आज आवश्यकता है ऐसे लेखकों की, जो साहित्य-सेवा को एक महायज्ञ समझें, जो इसे परोपकार का एक साधन समझें और जिनका उद्देश्य हो कि हम मानव-कल्याण के लिए अपने स्वार्थ को होम कर देंगे । वस्तुतः लोक-कल्याण की यही पवित्र भावना सच्चे साहित्य-सेवी का लक्ष्य होना चाहिए । भारतीय साहित्यकारों का यही लक्ष्य अतिदीर्घ-परम्परा से रहा है और यही कारण है कि हमारा प्राचीन भारतीय वाङ्मय उदात्त गुण-सम्पन्न, आदर्श और मंगलमय है ।

दूसरी बात, जिसकी आवश्यकता है, लेखकों के भाव और विचार की सत्यता है । बौद्धिक बेईमानी (Intellectual dishonesty) सभी साहित्यिक अनर्थों की जड़ है । इससे सत्य का लोप और असत्य का प्रसार होता है; इससे व्यक्तिगत साहित्यिक विकास को बड़ा धक्का पहुँचता है; और इसी से अन्धानुकरण को प्रोत्साहन मिलता है । आज हम देखते हैं कि हमारे लेखक ख़ुद नहीं सोचते । कोई वस्तु क्या है, किसी घटना का क्या कारण है, इसके विषय में लोग ऐसा क्यों कहते हैं—आदि प्रश्नों पर वे स्वयं विचार नहीं करते । वे तो बाबा वाक्यं प्रमाणं पर चलते हैं। ऐसा करने से क्या कभी मौलिकता आ सकती है ? सोचने की बात छोड़िए, वे स्वयं Feel नहीं कर सकते । उनमें मानसिक दासता इतनी मात्रा बढ़ गई है कि उनका अन्तः क्रिया-हीन हो गया है । उनके हृदय पर कि[सी] भी व्यक्ति, दृश्य, घटना या कार्य का कुछ असर नहीं पड़ता । वे नित्य-प्रति प्रकृति के रमणीय दृश्यों के विषय में पढ़ते और सुनते हैं, प्रायः देखते भी हैं, परन्तु कभी उनके द्वारा प्रभावित नहीं होते । वे नित्यप्रति बाल-सूर्य को देखते हैं; नित्यप्रति प्रकृति प्रातःकाल में नई सजधज आती है, लेकिन किसी को भी कोई नई बात, नया सौंदर्य नहीं देख पड़ता । इसका एक मात्र कारण अनुभूति का अभाव है । जब स्वानुभूति नहीं, नवीन उद्भावना कैसे हो सकती है, और नूतन उद्भावना नहीं, तो साहित्य के [i] सामयिकता कैसे आ सकती है ? स्वानुभूति [एवं] विचार-शक्ति के अभाव के साथ-साथ आ[जकल के] लेखकों में अवेक्षण-शक्ति तो बिलकुल नहीं के बराबर है । पर्यवेक्षण-शक्ति (Power of obser-vation) लेखक की प्रधान विशेषता होनी चाहिए । हमारे लेखकों की तो यह दशा है कि सौ-[दो सौ] किताबें पढ़ लीं, बस, धुरन्धर बन बैठे । दुनिया का अनुभव और लोक-प्रवृत्ति का अध्ययन कुछ भी नहीं रहता । जड़ और चेतन प्रकृति के चिरन्तन सौंदर्य पर न तो वे मुग्ध हो सकते हैं और न उसके अद्भुत रहस्य पर चमत्कृत हो[ते हैं]; न तो उसके अविनाशी सत्य से प्रभावित हो[कर] किसी सिद्धान्त पर पहुँच सकते हैं और न उसके शिव-स्वरूप का ग्रहण ही कर सकते हैं । प्रकृति-सम्बन्धी यही विराट् अनभिज्ञता—[प्रकृति] के सत्य, शिव और सुन्दर की यही अनु[भूति-] शून्यता हमारे वर्तमान लेखकों की सर्वप्रधान [त्रुटि] है और यही हमारे साहित्य में फैले हुए अनर्थों का मूल है । अस्तु, हमारे लेखकों



चाहिए कि वे अपनी अवेक्षण-शक्ति को बढ़ावें। कोरा देखना 'अवेक्षण' नहीं। किसी भौतिक पदार्थ का दृष्टि-पथ में आना 'देखना' है, इससे—नेत्र की इस क्रिया से—पदार्थ के बाह्य रूप का स्थूल ज्ञान-मात्र हो जाता है। परन्तु 'अवेक्षण' किसी भौतिक पदार्थ का इस प्रकार भली भाँति देखना है कि उसके बाह्य रूप और उसकी अन्तरात्मा दोनों का सूक्ष्म और व्यापक बोध हो जाय। तो हाँ, वर्तमान लेखकों को, अपनी पर्यवेक्षण-शक्ति को तीव्र बनाना चाहिए। उन्हें इसके बाद तब स्वयं अनुभव करने की आदत डालनी चाहिए। परम्पराभुक्त रूढ़ियों पर ही विश्वास न करके उन्हें चाहिए कि स्वानुभूति से काम लें और अपने पर्यवेक्षण को अनुभूति का रूप दें। अनुभूति की यही मौलिकता मौलिक साहित्य की जननी है। जब सच्ची अनुभूति की प्राप्ति हो जाती है, जब वास्तविक सहृदयता आ जाती है, तभी कोई सच्चा कवि या लेखक हो सकता है। मौलिक स्वानुभूति को बुद्धिगम्य, तर्कपूर्ण और विशेष प्रभावशाली बनाने के लिए स्वयं विचार करने और अध्ययन की भी आवश्यकता पड़ती है। परन्तु स्मरण रहे, विचारशक्ति या बुद्धितत्त्व और अध्ययन ये पीछे की बातें हैं, काव्य के लिए प्रथम और प्रधान उपकरण अनुभूतिमूलक भाव ही हैं। किसी भी लेखक में जब अनुभूति और बुद्धि की तीव्रता और व्यापकता आ जायगी, जब उसके भाव और विचार उत्कृष्ट हो जायँगे, तो वह अभ्यास और स्वाध्याय के बल पर उनको व्यक्त करने का परिमार्जित और कलापूर्ण साधन भी स्वयं बना लेगा। अतएव, हमारे लेखकों को चाहिए वे अपने आप स्वयं देखें-भालें—अवेक्षण करें; स्वयं अनुभव करें; इतना ही नहीं, स्वयं सहानुभूति करें, फिर स्वयं विचार करें (तथ्या-तथ्य का निर्णय करें) और तब स्वयं अपनी प्रवृत्ति के अनुसार अपनी शैली में उसे व्यक्त करें। इस प्रकार देश, काल और परिस्थिति का ध्यान रखते हुए स्वाध्याय की नींव पर जो काव्य-प्रासाद निर्मित होगा, वह मौलिक होगा, स्थायी और त्रिताप से लोक की रक्षा करने में समर्थ होगा।

ऊपर जो कहा गया है कि हमारे लेखकों के उद्देश्य में परिवर्तन होना चाहिए और उनके भावों और विचारों में सत्यता होनी चाहिए, वह सब साहित्य के भाव-पक्ष की आवश्यकताएँ हैं। अब रही साहित्य के कलापक्ष की बात। परन्तु अभी इस पर कुछ कहने के पूर्व भाव-सम्बन्धी दो-एक बातें और कह देना अप्रासंगिक नहीं होगा। हम देखते हैं कि हमारे लेखक आजकल जन-साधारण की बोध-शक्ति का ध्यान नहीं रखते। जनता में किसी भाव को ग्रहण करने की शक्ति है या नहीं, वह किसी बात को समझ सकती है या नहीं—इसकी वे परवा नहीं करते, प्रत्युत अपनी धुन में मस्त रहते हैं और सदैव ऊँची उड़ान भरा करते हैं। यह निश्चय है कि जन-साधारण कभी भी गूढ़ दार्शनिक तत्त्वों को भली भाँति नहीं समझ सकता, और यदि ऐसे दार्शनिक भाव कहीं तात्त्विक विवेचन के रूप में रक्खे जायँ, तब तो वे और भी दुर्बोध्य हो जायँगे। हम अपने वर्त्तमान लेखकों में यह कुप्रवृत्ति बहुत अधिक मात्रा में पा रहे हैं। प्रायः हमारे अधिकांश कवि सदैव अतीन्द्रिय जगत् में विचरण करते पाये जाते हैं। वे कभी अनन्त में मँडलाते हैं, तो कभी विश्व के कोलाहल के उस पार 'दूर सुदूर निभृत निर्जन में' ध्यान-मग्न रहते हैं। उनकी हृत्तन्त्री से ऐसी झनकार निकलती है, जो उनके लिए—उनके वर्गवालों के लिए भी—चाहे कितनी ही राग-पूर्ण हो, जन-सामान्य के लिए तो बेसुरी है, निरर्थक है। अतएव, हमारे साहित्य के लिए इसकी बड़ी भारी आवश्यकता है कि लेखकों के भाव जन-साधारण के उपयुक्त हों। मेरा तो विश्वास है कि साहित्य की विभूति वे ही भाव होते हैं, जो प्राणी-प्राणी के हृदय तक पहुँचकर उसको प्रभावित कर सकें। ऐसे ही सद्भावों से, ऐसे ही सरल, सुबोध



और हृदय-ग्राही भावों से सत्साहित्य का विधान होता है। अधिक से अधिक का अधिक से अधिक कल्याण (The greatest good of the greatest number) साहित्य का उद्देश्य होना चाहिए। इसलिए, साहित्य का साधारणीकरण बड़े महत्त्व की वस्तु है। ज़रा आप ही सोचिए, उस उत्तम से उत्तम पदार्थ से हमारा क्या लाभ, यदि वह हमारे काम की वस्तु नहीं ? यदि हम उसका उपयोग नहीं कर सकते, तो वह कौड़ी का तीन है। भला, गंधर्वनगरी का प्रकाश कभी आलोक प्रदान कर सकता है ? हमारे साहित्य-कारों को यह मोटी बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि उनकी कृति जीवन की: जीवन से और जीवन के लिए है। यह 'जीवन' एक व्यक्ति का नहीं, एक असाधारण व्यक्ति का नहीं, वरन् इस 'जीवन' का अर्थ जन-साधारण के जीवन, मानव-समाज के सामान्य जीवन से है। इसी सामान्य जीवन के आदर्श रूप का स्पष्ट और भावपूर्ण चित्रण तथा उसके द्वारा लोक का कल्याण-विधान साहित्य की सफलता है। अस्तु, समाज का ध्यान रखते हुए यह कहना पड़ता है कि ईश्वर और जीव का आध्यात्मिक और रहस्यात्मक विवेचन, असीम और अनन्त का अन्वेषण, प्रकृति में अलौकिक और अज्ञेय की उद्भावना और अतीन्द्रिय जगत् (Metaphysical realm) का काल्पनिक स्वप्न हमारे साहित्य के लिए अधिक उपयोगी नहीं। हमें तो अपने साहित्य में ऐसे भावों भी आवश्यकता है, जिनसे समाज में सदाचार की नींव पड़े, लोकादर्श का स्वरूप बने और सुनीति का पथ प्रशस्त हो, जिनसे व्यक्ति का सर्वतोमुखी विकास हो, सह-जीवन (Corporate life) के लिए उसमें अनुशीलन-शक्ति (Power of adaptability) आवे, और वह व्यक्ति और समाज के आपेक्षिक महत्त्व को समझे। आज हमें आवश्यकता है ऐसे साहित्य की, जो हमें आलस्य से मुक्त कर सके, क्रियाशील बनावे और जो गाँवों में प्रवेश कर अज्ञान जनता के मूलबद्ध दुर्विचारों का उच्छेदन
उनके पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष की प्रबल अग्नि
शान्त करे और उनमें संजीवनी शक्ति
हमारा साहित्य जो कुछ चुने हुए लोगों (
cted few) का विनोद हो रहा है, यह
नहीं। इससे न साहित्य की उन्नति हो
है और न समाज का कल्याण। अतएव,
'वादियों' को अब राग-मोह छोड़कर इस
सोचना चाहिए। अभी कुछ बिगड़ा नहीं
यदि अब से भी सुधार किया जाय तो यह
हुआ रोग छूट सकता है।

फिर हम देखते हैं कि हमारे साहित्य में
तक भावों और विचारों का वात्याचक्र-सा
रहा है। बरसाती नदी की भाँति हमारे
में सर्वत्र असंयत प्रवाह, कर्दमिल जल
मर्यादा का अभाव दिखलाई पड़ रहे हैं।
भी क्षेत्र में संयम नहीं, मर्यादा नहीं।
सम्बन्ध में सबसे खटकनेवाली बात लेख
विचारों की उच्छृङ्खलता है। संयत
(Restrained Thinking) प्रौढ़ साहित्य
सूचना है। उससे निसर्ग की रक्षा और
स्वरूप प्रतिष्ठित होता है। साहित्य की उपा
बढ़ती है और उसमें सन्तुलन (Balance)
रहता है। जिस प्रकार जब नदी का जल
हो स्थिर गति से अपनी मर्यादा के भीत
बहता है, तब उसमें स्वच्छता, मनोहरता
अन्य सद्गुण आते हैं, उसी प्रकार साहि
भी भाव और विचार की मर्यादा-रक्षा से—
संयतता रहने से—निर्मलता आती है
मंगलकारी गुणों से विभूषित होता है।
विश्वास है कि अंधड़ और तूफ़ान का
प्रभाव नहीं पड़ सकता; जितना प्रशान्त
गम्भीर समीरण का पड़ता है। झंझावात
ही आपको झकझोर दे, आपकी स्वास्थ्य
कड़ा आघात पहुँचा दे और आपको अभिभूत
परन्तु उसका प्रभाव बिल्कुल क्षणिक और



कर होगा । इसके विपरीत, शान्त पवन अपने कोमल स्पर्श से, अपने गम्भीर और शीतल आश्लेप से आपको चिरकाल के लिए प्रभावित कर देगा । साहित्य में भी भावों और विचारों का अन्धड़ अल्प-प्रभाव ही होता है और उनका गम्भीर और संयत स्वरूप सदैव बड़ा गहरा प्रभाव डालता है । उदाहरण के लिए आप विहारी और घनानन्द के विरह-वर्णन को देख सकते हैं। विहारी के विरह-वर्णन में ऊहात्मक पद्धति का अनुसरण किया गया है—राई का पहाड़ बनाया गया है । उनकी विरहिणी नायिका के तापतप्त श्वास के सम्पर्क-मात्र से गुलाब-जल बोतल का बोतल भाप बनकर उड़ जाता है । विरह-वेग के ऐसे ही एक नहीं, अनेक चित्र विहारी-सतसई में खींचे गये हैं, जिनमें बड़ी ही उथल-पुथल है; परन्तु वे सभी चित्र प्रायः पाठक के विनोद की सामग्री हो जाते हैं । पाठक कवि की ऐसी दूर की सूझ से क्षण-भर के लिए चमत्कृत हो जाता है सही, परन्तु उसके हृदय पर विरह-भाव का कोई रसात्मक प्रभाव नहीं पड़ता । किन्तु घनानन्द का विरह-वर्णन बिल्कुल दूसरे प्रकार का है । उसमें विरहिणी के हृदय की मूक वेदना साकार होकर सामने आती है, जिसमें संयम है और प्रशान्तता है। इसी लिए यह वर्णन हृदय के अन्तरतम प्रदेश तक पहुँचता है और टिकाऊ सिद्ध होता है। अस्तु, आवश्यकता है कि हमारे साहित्य में विचार और भाव का संयम हो । मैं स्वीकार करता हूँ कि अभी तक हमारे साहित्य का परिवर्तनकाल रहा है और परिवर्तनकाल में कोई निश्चित मर्यादा नहीं रहती; परन्तु अब समय बहुत बीत गया । 'परिवर्तन' की आड़ में अब इस उच्छृङ्खलता का समर्थन नहीं किया जा सकता । अब हमें काव्य के अन्तर्जगत् में सामञ्जस्य और संयम का विधान करना ही होगा ।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के भावपक्ष की कतिपय आवश्यकताओं का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया गया है। अब आइए, इसके कला-पक्ष की आवश्यकताओं पर भी विचार किया जाय । इस सम्बन्ध में पहली बात जो देख पड़ती है, वह है विषय-क्षेत्र की संकीर्णता और विभिन्न विषयों का अभाव। १८०० ई० के पूर्व के हिन्दी-साहित्य पर दृष्टि डालने से तो यह कमी और भी खटकती है, परन्तु आजकल भी यह अभी दूर नहीं हुई है और न सुचारु रूप से इस दिशा में समुचित प्रयत्न ही हो रहा है। हमारा साहित्य पद्य-प्रधान है और इसमें भी असाधारण शृंगार और भक्ति-भावना का बाहुल्य है; जीवन के व्यावहारिक पक्ष का चित्रण कहीं नहीं मिलता। यह बात पूर्व-साहित्य पर ही नहीं, वर्तमान साहित्य पर भी लागू है। आज की पद्य-बद्ध रचनाओं में हम सर्वत्र पुरानी परिपाटी ही पाते हैं। हाँ, कुछ कवियों ने छायावाद नाम की एक नवीन धारा अवश्य चलाई है, परन्तु यह भी कुछ नपे-तुले शब्दों और चुनी-चुनाई कल्पनाओं की ही चीज़ हो रही है। बस, इसके अतिरिक्त हमारे पद्य-साहित्य में विशेष कुछ नहीं । न तो कहीं जीवन की विविधता है और न विभिन्न अवस्थाओं और व्यापारों का चित्रण ही। अँगरेज़ी-साहित्य के परिशीलन से यह बात बहुत स्पष्ट हो जाती है । हमें अपने साहित्य से यह ठीक-ठीक नहीं ज्ञात हो सकता कि पृथ्वीराज के समय से आज तक के भारतीय जीवन की रूप-रेखा क्या है। मेरे इस कहने का तात्पर्य यह है कि किसी काल की परिस्थिति को ही प्रधान कार्य-वस्तु मानकर अभी तक कोई भी रचना नहीं हुई है। किसी पौराणिक कथा का वर्णन करते हुए अथवा किसी रस-विशेष का निरूपण करते हुए सामयिक परिस्थिति की छाप थोड़ी-बहुत पड़ जाय, यह दूसरी बात है । देखिए, भारतवर्ष में कितने ही ऐसे ऐतिहासिक वीर पुरुष हुए हैं, जिनके जीवन पर उत्तमोत्तम काव्य हो सकते हैं और जिनसे उनके समय का प्रामाणिक चित्रण हो सकता है।



परन्तु आज तक हिन्दी-साहित्य में इस पर नहीं के बराबर ध्यान दिया गया है। इसको भी छोड़िए, हमारे साहित्य में सामान्य जीवन की बहुरूपता का भी अलग-अलग चित्र नहीं मिलता। हमारे ग्रामीण कृषकों का जीवन कैसा है, भारतीय गोप-जीवन (Pastoral life) का सौन्दर्य क्या है, हमारे व्यापारिक जीवन की विशेषताएँ क्या हैं— आदि विषय अभी तक अछूते पड़े हैं। आज हम कोई भी ऐसी पद्य की पुस्तक नहीं पाते, जिसमें अपने श्रमजीवियों की समस्या पर विचार हो, धनकुबेरों और पूँजीपतियों के निर्दय व्यवहारों की चर्चा हो और आर्थिक जीवन की जटिल परिस्थिति के लिए कोई मार्ग दिखलाया गया हो। आज कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं मिलेगी, जिसमें साहसिक जीवन (Adventurous life) का चित्रांकण हो, यात्राओं का मार्मिक विवरण हो और महत्त्वाकांक्षा-पूर्ण जीवन का आदर्श खड़ा किया गया हो। मानवजीवन के विभिन्न वर्ग, श्रेणी और अवस्थाओं के उपयुक्त भी हमारे साहित्य में विशेष रचना अभी तक नहीं हुई। भिन्न-भिन्न व्यवसायवाले लोगों के भाव-विचार के अनुकूल भिन्न-भिन्न प्रकार के साहित्य की आवश्यकता पड़ती है। हमारे साहित्य में अभी इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया। बालोपयोगी साहित्य का तो अभी श्रीगणेश ही हो रहा है; स्त्री-साहित्य के नाम की चर्चा भर चल रही है। कृषक-साहित्य, सैनिक-साहित्य और वाणिज्य-सम्बन्धी साहित्य आदि की तो अभी बात ही नहीं है। परन्तु यदि सच पूछिए तो इन बातों की बड़ी आवश्यकता है; इनके बिना हमारे साहित्य में पूर्णता कभी नहीं आ सकती।

यह तो हुई पद्य की बात। हमारा गद्य-साहित्य तो और भी गया-गुज़रा है। पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव के परिणाम-स्वरूप अब हमारा गद्य कुछ उन्नति अवश्य कर रहा है, परन्तु यह उन्नति अभी नगण्य है। हमारा गद्य-साहित्य अभी तक अनुवाद-मात्र ही है। मौलिक रच का तो सर्वथा अभाव ही है। ऊपर प विषय में जो त्रुटियाँ बतलाई गई हैं, वे सभी पर भी लागू हैं। इसके अतिरिक्त गद्य में भी बहुत-से अभाव हैं। साहित्य के कुछ वि ऐसे हैं, जिनका विवेचन गद्य में ही समी होता है; जैसे, राजनीति-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, शास्त्र, तर्क-शास्त्र, मनोविज्ञान, विभिन्न का निरूपण, विज्ञान और सदाचार-शास्त्र आदि। वर्तमान हिन्दी-गद्य-साहित्य में ऐसे विषयों बहुत कम पुस्तकें पाई जाती हैं। जो हैं भी, वे अस्पष्ट अनुवाद-मात्र हैं अथवा बहुत सा पाठ्य-पुस्तकें। इन विषयों पर गवेषणा-पूर्ण नाओं का अभी सर्वथा अभाव है।

रचना-प्रणाली पर ध्यान देने से भी हि साहित्य की कुछ आवश्यकताएँ प्रतीत होती हमारे साहित्य का अधिकांश पद्यमय है और भी मुक्तक रचनाएँ ही अधिक हैं। प्रबन्ध-का की पहले भी कमी थी और अब भी है। आज तो प्रबंध-काव्यों की रचना बहुत कम हो रही है। पूछिए, तो जीवन के विभिन्न पक्षों की संश्लिष्ट मार्मिक अनुभूति स्वाभाविक रूप में प्रबन्ध-का के द्वारा ही हो सकती है। मुक्तक रचनाओं में भावों, व्यापारों या दृश्यों के स्फुट चित्र रूप से अपूर्ण रहकर ही हमारे सामने आते जिनके साथ हमारी भावना सुसम्बद्ध तादात्म्य का अनुभव नहीं कर सकती। आज हम प्रगीत मुक्तकों का एक नया प्रचलन देखते जो पश्चिम का न्यूनाधिक प्रभाव है। इनके आकस्मिक हृदयोद्गार की अभिव्यक्ति तो होती है, परन्तु प्रबन्धकाव्य द्वारा तीव्रता के व्यापक भावों का जो विधान होता है, वह नहीं मिलता। अतएव, हमारे वर्तमान कवियों जीवनव्यापिनी प्रबन्ध-रचना की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। निर्झरिणी उड़ती हुई फुहार शस्य के लिए उतने लाभ



नहीं, जितने की पुष्करिणी के परीवाह को गम्भीर जल-धारा। इस सम्बन्ध में दूसरी आवश्यक बात है दृश्यकाव्य-रचना की कमी। हिन्दी-साहित्य में नाटकों का बहुत ही अभाव है। पाश्चात्य साहित्य के नाटकों को देखते हुए तो यही कहना पड़ता है कि हमारे यहाँ नाट्य-कला और नाटक-रचना अभी बिल्कुल आदिम अवस्था में हैं। हिन्दी की कोई भी ऐसी वर्तमान नाटक-पुस्तक नहीं, जो आधुनिक नाट्यशास्त्र (Canons of modern dramaturgy) के अनुकूल और रंगमंच के उपयुक्त हो। 'प्रसाद' के नाटक हमारी नाट्य-कला की शैशवावस्था को ही सूचित करते हैं। इसके अतिरिक्त हमारे हिन्दी के नाटककारों की संख्या भी बहुत ही कम है। दो-चार को छोड़कर गणनीय नाटककार दूसरे नहीं मिलेंगे। जहाँ उपन्यास और गल्प लिखनेवालों की भरमार है, वहाँ दृश्य-काव्यकारों की यह कमी वस्तुतः चिन्त्य है; और इसलिए आवश्यकता है कि हिन्दी-साहित्य के इस अंग की वृद्धि की ओर ध्यान दिया जाय। साहित्य के अन्य अंगों की अपेक्षा दृश्यकाव्य से समाजोन्नति की अधिक सम्भावना रहती है—इसे कौन नहीं जानता? निस्सन्देह नाटक मनोरंजक शिक्षक हैं और अभिनय-शालाएँ अपूर्व एवं जीवित शिक्षणालय। अस्तु, अपनी नाट्य-कला के विकास के लिए हमें सतत प्रयत्नशील होना चाहिए। हिन्दी-साहित्य का तीसरा अंग, जिसकी पुष्टि की आवश्यकता है, समालोचना है। सत्समालोचना वह कसौटी है, जिस पर साहित्य का सोना परखा जा सकता है। यह सत्साहित्य के वास्तविक मूल्य को अनभिज्ञ पाठकों के सामने रखती है, गम्भीर साहित्यिक विशेषताओं को स्पष्ट करती है, और इस प्रकार मंगलमय साहित्य के महत्त्व-साधन और प्रचार में सहयोग देती है। साथ ही यह निषिद्ध साहित्य के दुर्गुणों को इंगित करके, उसके विपाक्त परिणाम का चित्र खींचकर पाठक के आत्मा और समय की रक्षा करती और असत्साहित्य के प्रसार को रोकती है। हिन्दी-साहित्य में ऐसी समालोचना का सर्वथा अभाव ही समझिए। आजकल तो हमारे साहित्य में समालोचना का ऐसा विकृत रूप बन रहा है, जिससे पारस्परिक वैमनस्य और अन्धाधुन्ध के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। समालोचना के नाम पर आजकल पुराना वैर साधा जाता है—दिल की कसक निकाली जाती है। शुद्ध बुद्धि की प्रेरणा से, तथ्य-निरूपण के विचार से बहुत कम लोग समालोचना के लिए क़लम उठाते हैं। पण्डित रामचन्द्रजी शुक्ल का उद्योग इस दिशा में प्रशंसनीय है। परन्तु अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। हमें तो आवश्यकता है सत्समालोचकों के एक बहुसंख्यक समुदाय की, जिसकी दृष्टि हमारे साहित्य-प्रासाद के कोने तक पहुँच जाय और जो इसका व्यापक निरीक्षण करके सदसत् का निरूपण करे। अँगरेज़ी साहित्य में समालोचकों ने जो श्लाघनीय काम किया है, वह छिपा नहीं है। शेक्सपियर को उसके समालोचकों ने ही शेक्सपियर बनाया है और डाक्टर जान्सन की कीर्त्ति बासवेल पर ही बहुत कुछ निर्भर है। अँगरेज़ी में एक-एक कवि अथवा लेखक पर पूरा साहित्य तैयार हो गया है। एक-एक क्लैसिकल ग्रन्थों पर अनेक समालोचना की पुस्तकें निकली हैं, जो प्रत्येक भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से लिखी गई हैं। परन्तु खेद है कि हमारे साहित्य में विश्व-वंद्य कवियों पर भी अभी तक कुछ नहीं—हाँ, नहीं के बराबर ही—लिखा गया है। विश्व-विभूति, काव्य में रहस्यवाद के जन्म-दाता कबीर और उनके साहित्य पर क्या कोई उल्लेखनीय सम्पत्ति है? क्या भक्तप्रवर, कविवर्य सूरदास और उनके 'सागर' के रत्न के हेतु किसी जीवन्मृत ने उचित प्रयास किया है? मैं मानता हूँ कि किनारे पर डुबकी लगानेवाले कुछ हैं, परन्तु इससे तो विशेष सिद्धि हो नहीं सकती। मैं फिर पूछता हूँ—क्या प्रेम के प्रतीक अमरनाम भावुक जायसी और



उनकी कृति पर विशेष छानबीन की गई है ? मैं 'चन्द' आदि रायसा-कारों की बात बिल्कुल छोड़े देता हूँ, परन्तु क्या कोई कह सकता है कि देव, रसखान, घनानन्द, भूषण आदि वश्यवाक् कवियों पर—जिनकी भाषा को अपरिचित और दुरूह बताकर कोई भी सच्चा बहाना (Valid excuse) नहीं दे सकता—पर्याप्त समालोचना हुई है ? अवस्था तो इतनी चिन्तनीय है कि समालोचना की कौन कहे, प्राप्त ग्रन्थों का पाठ भी अभी तक शुद्ध नहीं किया जा सका है । सर्वत्र मनमानी घरजानी है । 'रामचरितमानस' का भी पाठ अभी तक शुद्ध और प्रामाणिक नहीं है । जो ग्रन्थ-रत्न आजकल सारे हिन्दू-समाज का धर्म-ग्रन्थ हो रहा हो, और जिसका प्रचार घर-घर हो, उसका अभी पाठ तक भी शुद्ध न हो, यह क्या लज्जा की बात नहीं ? अस्तु, हमारे वर्तमान साहित्य की आज यह आवश्यकता है कि प्राचीन ग्रन्थों का पाठ शुद्ध और प्रामाणिक किया जाय तथा उन पर मौलिक, विस्तृत और विश्लेषणात्मक समालोचना-ग्रन्थ लिखे जायँ । साथ ही समा-लोचना-शास्त्र पर भी तात्त्विक विवेचन की आवश्यकता है । हिन्दी के वर्तमान साहित्य का चौथा अंग, जिसके विकास की आवश्यकता है, निबन्ध है । हिन्दी में मौलिक और उच्च कोटि के निबन्ध तो कहीं-कहीं पर ही देखने को मिलते हैं। अतः इसके आदर्श के लिए भी हमें अँगरेज़ी साहित्य को ही देखना पड़ेगा । अँगरेज़ी का निबन्ध-साहित्य जितना समुन्नत है, सम्भवतः उतना कोई भी दूसरा नहीं है । निबन्ध, लेखक के व्यक्तित्व और उसके व्यक्तिगत भाव और प्रवृत्तियों का जैसा सच्चा चित्र (True picture) होता है, वैसा कविता, नाटक, उपन्यास आदि नहीं हो सकते । दृश्य-चित्रण, भाव-निरूपण तथ्य-मीमांसा और घटना-वर्णन आदि के लिए निबन्ध-जैसा सुबोध, संक्षिप्त और प्रभावोत्पादक साधन दूसरा नहीं । इसमें विचारों का अकृत्रिम स्रोत बहता है, और भाषा की निसर्ग-सिद्ध सुषमा ... पड़ती है । कहने का आशय यह कि निबन्ध ... साहित्य का एक विशेष अंग है और इसकी ... और पुष्टि अवश्य होनी चाहिए । अस्तु, ... वर्तमान साहित्य-कारों को इस अंग पर ... ध्यान देना चाहिए और गम्भीर विचारात्मक निबन्ध लिखकर स्वसाहित्य की श्रीवृद्धि करनी चाहिए ।

हिन्दी-साहित्य के कला-पक्ष की आवश्यकता ... के विषय में ऊपर कुछ कहा गया है । मेरी ... में यह प्रयास अधूरा ही रह जायगा, यदि आधुनिक भाषा के सम्बन्ध में कुछ न कहा जाय । ... भाव का शरीर और कला का उपकरण है ... एव इसका विचार कर लेना बहुत ज़रूरी ... हमारे वर्तमान साहित्य की भाषा खड़ी बोली ... १६०० ई० के पहले इसका स्वरूप बहुत अनिश्चित था । पीछे, भूतपूर्व सरस्वती-सम्पादक वयोवृद्ध पूज्य द्विवेदीजी ने इसकी बहुत कुछ ... की, परन्तु फिर भी इसकी हालत बहुत ... नहीं है । इसमें एक ओर तो कृत्रिमता दिन-रात-चौगुनी बढ़ रही है, दूसरी ओर स्वे-च्छाचारिता भी अपना काम नये जोश-ख़रोश से ... रही है । लेखकों में भाषा-सिद्धान्त की अवहेलना ... तो अभी है ही । इसके निवारण का कोई ... सुसंगठित प्रयत्न नहीं किया जा रहा है । ... जान-बूझकर 'व्याकरण की लोहे की ... तोड़ रहा है, कोई अनजान में ऐसा करता ... कोई 'उनकी आज्ञानुसार' लिखता है और ... 'उनके आज्ञानुसार' । कोई कहता है 'मुझे ... बात पूछनी है', और कोई कहता है 'मुझे ... बात पूछना है' । विराम-चिह्नों के प्रयोग ... कोई निश्चित नियम ही नहीं । कहीं इसका ... प्रयोग है तो कहीं बिलकुल अभाव । ... तात्पर्य यह कि अभी हमारा व्याकरण ... और व्यवस्थित नहीं हुआ, और इसी ... हमारे भाषा-प्रयोग में अवांछित बहुलता ...



पड़ती है। हमारे उच्चारण में तो विशेष नहीं, परन्तु लिपि में बहुत भिन्नता पाई जाती है। कहीं विभक्तियाँ शब्दों से सटाकर लिखी जाती हैं तो कहीं हटाकर। चन्द्रबिन्दु और अनुस्वार में अन्तर ही नहीं माना जाता। 'ये' और 'ए', 'यी' और 'ई' में भी भेद नहीं समझा जाता। इन सब त्रुटियों में सुधार की बहुत आवश्यकता है। व्यवस्था ही शक्ति है। जब तक किसी संस्था में व्यवस्था नहीं, तब तक उसमें बल और गति नहीं आ सकती। भाषा भी एक मानवी संस्था (Human Institution) है, अतः इसकी व्यवस्था भी अनिवार्य है; अन्यथा इसमें शक्ति और विकास का होना असम्भव ही होगा। खड़ी बोली की व्यवस्था की आवश्यकता के साथ-साथ इसमें एक और सुधार की आवश्यकता है। वह है इसकी बढ़ती हुई कृत्रिमता को रोकना। भाषा की कृत्रिमता और दुरूहता साहित्य की उपादेयता में बाधा डालती हैं और भाव तथा विचार के प्रभाव को नष्ट अथवा कम से कम संकुचित और सीमित कर देती हैं। तत्समता के प्रलोभन से हमारे बहुत-से लेखक आजकल भाषा के मधुर व्यावहारिक रूप पर तनिक भी ध्यान नहीं देते। यह प्रवृत्ति हानिकारिणी है और आकस्मिक क्रान्ति की सूचना देती है। अतएव, हमें चाहिए कि हम अपनी साहित्य-भाषा को व्यावहारिक बनावें।

वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य की भाव और कला-सम्बन्धी आवश्यकताओं का दिग्दर्शन ऊपर कराया गया है और साथ ही लेखकों के उद्देश्य-परिवर्तन की ओर भी संकेत किया गया है। प्रस्तुत लेख इस विषय का मार्मिक और पूर्ण विवेचन नहीं, प्रत्युत इसके द्वारा यह आवश्यक विषय छेड़ा भर गया है। अतएव, यदि इस लेख से हमारे विद्वान् लेखकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और इस विषय पर व्यापक प्रकाश डाला गया, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा। और यदि कहीं इस तुच्छ प्रयास के कारण हमारे साहित्य-सेवियों का कुछ सुधार हुआ और फलतः हिन्दी-साहित्य की कतिपय त्रुटियों का निवारण और आवश्यकताओं की पूर्त्ति हुई, तो मैं अपने को कृतकृत्य और अपने अहोभाग्य समझूँगा।

ममता-कितनी!

श्रीहरशरण शर्मा "शिव"

छोटा-सा मिट्टी का घर है,
उससे मन की ममता कितनी।

सुख का अरुण-प्रकाश उसी में,
दुख का गहन तिमिर है छाया।
प्राणों के पंछी का उसमें,
एक झुंड बसने को आया।
करुणा-घन सावित कर जाते,
स्नेह-चाँदनी धवल बनाती।
यौवन का वसन्त अँगड़ाता,
अनिल सुरभि आँगन में लाती।
पीड़ाओं की आँधी चलती,
सहने की है क्षमता कितनी।

रुचिर-कल्पना-बल्लरियों के,
छवि-तोरण हैं दृग-द्वारों पर।
चहक-चहक खग पुलकित रहते,
भाव-कुसुम के उपहारों पर।
शैशव की ऊषा में आतीं,
नव उमंग की किरणें रक्तिम।
श्रमित-जरा-संध्या भर जाती;
अपनी आशा-आभा अंतिम।
मृदुल-पुष्प-सा कठिन कुलिश-सा,
पर है उसमें समता कितनी।

हिन्दी के सम्पादक

श्रीबैजनाथप्रसाद दुबे 'विशारद'

हिन्दी-साहित्य की उन्नति के साथ ही साथ समाचार-पत्रों और मासिक पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में अच्छी अभिवृद्धि हुई है। हिन्दी-साहित्य की उन्नति का अधिक श्रेय इन्हीं को दिया जा सकता है। आज अनेकों लेखकों और कवियों को इन्हीं की बदौलत हिन्दी-संसार में प्रसिद्धि मिली है। अनेक इनका आश्रय लेकर साहित्यिक कहलाने का गौरव प्राप्त कर रहे हैं। परन्तु कुछ दिनों से हिन्दी-संसार की एक शिकायत इन पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों के नाम सुनाई पड़ रही है। कुछ लोग इन्हें साहित्य की वृद्धि में रोड़ा समझते तो कोई इन्हें लेखकों का शत्रु या मित्र बतलाते हैं। हिन्दी-साहित्य-संसार की आज की परिस्थिति में आलोचकों का ऐसी तीव्र आलोचना करना कहाँ तक क्षम्य है एवं सम्पादकों के दुर्व्यवहार को प्रकाश में लाना कहाँ तक उचित है, इस बात पर आज इस लेख में प्रकाश डाला जायगा। यदि यह कहा जाय कि परिस्थिति ऐसी है कि दोनों ही (लेखक और संपादक) अपनी ज़िम्मेदारियाँ निभाने में असमर्थ हैं और समय देखकर (स्वार्थ-वश) दोनों ही मनमानी करने में नहीं चूकते, तो कोई अत्युक्ति न होगी। यही कारण है कि आज लेखक संपादकों को दोष देते हैं और संपादक लेखकों को कोसते हैं। यदि दोनों ही ईमानद[ारी] से काम लें तथा योग्य-व्यक्ति ही संपादक [बनाये] जायँ तो दोनों में परस्पर का यह मतभेद [दूर] हो जाय।

हिन्दी-संसार में प्रति वर्ष नई पत्र-पत्रि[काओं] का जन्म होता है, जिनमें से अधिक पत्रि[काएँ] तो संपादक की अयोग्यता से ही साल के अ[न्त] अन्त में बन्द हो जाती हैं। कुछ पत्रिकाओं [के] सम्पादक रिकार्ड की सुइयों की तरह [काम] करते हैं, इससे उस पत्रिका की नीति के निर्धार[ण में] एक भी सम्पादक सफल नहीं होता। कुछ प[त्रि]काओं के विषय ऐसे होते हैं, जो साप्ताहिक [पत्रों] से सम्बन्ध रखते हैं। परन्तु सम्पादक के व्यक्ति[त्व] पर छाप लगाकर ऐसे लेख मासिक पत्रों [में] प्रमुख स्थान पा जाते हैं। मित्रता सभी कोई [करता] है। सभी के मित्र होते हैं। परन्तु सम्पादकों [की] मित्रता हिन्दी-संसार में जैसी प्रसिद्धि पा [गई] है, वैसी दूसरों की मित्रता नहीं। गुण की [परख] करने में सम्पादकों को 'कसौटी' मानने में [आज] कोई सहमत नहीं हो सकता; क्योंकि उनमें [यह] मित्रता-रूपी कमज़ोरी घर कर गई है। [अतः] अब बहुत शीघ्र हिन्दी-साहित्य में सम्पादक[ों] पद के लिए हमें योग्यता एवं व्यक्तित्व की [एक] रूपरेखा निर्धारित करना अनिवार्य है।

पत्रकार-सम्राट् नार्थक्लिफ़ का कहना है—"सम्पादक का काम बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। उसकी निगाह चारों तरफ़ होनी चाहिए। उसमें विचार-शक्ति, कल्पना-शक्ति और दूरदर्शिता होनी चाहिए। लोगों के सम्मुख आज कौन-से विषय हैं, या होने चाहिए, इसका ज्ञान उसे होना जरूरी है। समाचार-पत्र के लिए यदि कोई बात अत्यन्त घातक है, तो वह है सम्पादक का 'अब हमारा पत्र ठीक चल रहा है', कहकर सन्तोष प्रकट करना।" (युगान्तर, महा-पुरुषांक)। आज हिन्दी-संसार में ऐसे कितने सम्पादक हैं ? शायद कोई हो। श्री० आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने जिस लगन और तत्परता से कार्य किया था, वह सराहनीय है। उन्हीं का श्रम आज का हिन्दी-साहित्य है। परन्तु क्या आज द्विवेदीजी का स्थान लेनेवाला कोई सम्पादक है ? हमारे विचार से हिन्दी-संसार में अभी इस पद के योग्य व्यक्ति उत्पन्न ही नहीं हुआ। इसका एक कारण यह भी है कि साहित्य में दलबन्दियाँ भी बहुत हो गई हैं। दूसरे, पत्रों का प्रकाशन भी हिन्दी के हित को दृष्टि में रखते हुए न होकर व्यवसाय को दृष्टि में रखकर हो रहा है। हम सरस्वती की पुरानी फ़ाइलें देखते हैं और आजकल की पत्रिकाओं से मिलाते हैं। उस समय के विषयों का चयन देख-कर हमें दंग रह जाना पड़ता है। परन्तु इसका दोष हम किसे दें ? उस समय लेखक थोड़े थे और पत्र तो दो-चार ही थे। आज लेखकों और पत्रों की भरमार है, परन्तु फिर भी ठोस सामग्री का अभाव है। इसके लिए हम सम्पादकों को इसलिए दोषी कह सकते हैं कि वे लेखकों को नये-नये विषयों को सुझाने में असमर्थ हैं। उनका ज्ञान इतना अल्प है कि वे लेखों को परिष्कृत और परिवर्द्धित भी नहीं कर सकते। कई संपादक हिन्दी-साहित्य में ऐसे मिलेंगे, जिन्हें लेख लिखने का पूरा पूरा ज्ञान नहीं है। उनके लेख आज तक किसी पत्र-पत्रिका में प्रकाशित नहीं हुए। उन्होंने न तो कोई पुस्तक ही लिखी और न किसी पुस्तक का अनुवाद ही किया। परन्तु पत्र का सम्पादन कर रहे हैं। हम इस बात को मानने के लिए तैयार हैं कि सम्पादन-कला-सम्बन्धी ज्ञान के निमित्त भारत में ऐसे कोई साधन नहीं हैं, जिनसे सम्पादन-कार्य में योग्यता प्राप्त की जा सके। परन्तु जब तक लेखन-कला का ज्ञान भली भाँति न हो गया हो, सम्पादन-कला में कोई व्यक्ति हाथ डाले तो उसे सफलता नहीं मिल सकती। हमारे विचार से सम्पादक-पद के लिए उच्च लेखक ही उपयुक्त व्यक्ति हो सकता है। वही लेखकों की कठिनाइयों, लेख की बारीकियों एवं भाषा की त्रुटियों का ज्ञाता हो सकता है, दूसरा नहीं।

सम्पादक के लिए कितनी योग्यता चाहिए, यह निश्चित नहीं किया जा सकता। साहित्य के सभी विषयों पर उसका अधिकार होना तो आवश्यक ही है। साथ ही हिन्दी के सिवा संस्कृत, आंग्ल, उर्दू, फ़ारसी, मराठी, गुजराती और बँगला भाषाओं का भी उसे जानना उतना ही आवश्यक है, जितना कि इन भाषाओं के साहित्य से हमारे हिन्दी-साहित्य का सम्पर्क है। यदि संक्षेप में हम सम्पादक को 'विश्व-कोष' कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। संसार के सभी विषयों का समुचित ज्ञान यदि किसी व्यक्ति में सन्निहित रहता है तो वह सम्पादक ही है।

लेखक की कृति में गुणावगुण की परख कर लेना तो आजकल एक मामूली-सी बात हो गई है। परन्तु बिना 'समालोचनातत्त्व' को जाने-समझे किसी की कृति को कसौटी पर कसने का ऐसा कोई भी साधन आज अधिकांश संपादकों के पास नहीं है, इसी से हिन्दी की ऊँचे स्टैंडर्ड



की पत्रिकाओं में भी एक दूसरे की कृतियों पर भ्रष्ट आलोचनाएँ, प्रत्यालोचनाएँ पढ़ने में आती हैं। बड़े-बड़े लेखक भी हृदय के गंदे विचार प्रकट करने में नहीं हिचकते। प्रतिष्ठाप्राप्त लेखक होने के कारण संपादक भी इनके लेखों को ज्यों का त्यों पत्र में प्रकाशित कर देते हैं। इससे कभी-कभी हिन्दी-साहित्य में बड़ी भद्दी भूलें सत्य के रूप में पाठकों के गले उतारी जाती हैं। और, ऐसा केवल सम्पादक की कमज़ोरी से ही होता है। जो पुस्तकें लेखकों द्वारा समालोचनार्थ आती हैं, उनकी समालोचना हिन्दी-साहित्य के कल्याण को देखते हुए ही होनी चाहिए। ऐसी पुस्तक, जिसको लोकमत समादर की दृष्टि से नहीं देखता, हालाँकि वह एक प्रतिष्ठित लेखक द्वारा प्रणीत हुई है, उसके लिए संपादक का प्रशंसा के पुल बाँध देना साहित्य के साथ घोर अन्याय करना है। कभी-कभी तो एक संपादक जिसकी प्रशंसा करता है, दूसरा उसकी निन्दा करने में कोई कसर नहीं रखता। इसके लिए यह अच्छा होता कि हिन्दी-साहित्य के कुछ विद्वानों की एक समिति बन जाती, जिसका काम हिन्दी-साहित्य में निकलनेवाली समस्त पुस्तकों की आलोचना करना होता। इन विद्वानों की आलोचना ही सब पत्रों में प्रकाशित होती, जिससे कि यह रात-दिन की 'दाँता किलकिल' दूर हो जाती।

यद्यपि आधुनिक समय में कविता पिंगल के बन्धन से मुक्त होने का प्रयत्न कर रही है, जिधर देखिए, उधर गीतों की भरमार है, और साहित्य की उन्नति के लिए यह कोई बुरी बात नहीं है; किन्तु इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग भी अच्छा नहीं। इस नवीन धारा की बाढ़ में हमने न-जाने अपने कितने पुराने कवियों को उखाड़ फेंका है, जो पिंगल के सूत्र में आबद्ध थे। इसका दोष सम्पादकों को इसलिए दिया जा सकता है कि उन्होंने नवीनता को अपनाने में जितनी तत्[परता] से काम लिया है, प्राचीनता को ठुकराने [में] उतनी ही उतावली कर गये हैं। इस नवीन [धारा] में कुछ कवियों ने भारतीय संस्कृति और [सभ्यता] को बहाने में भी कोई आगा-पीछा नहीं सो[चा]। उनकी इस उच्छृंखलता से कुछ लोगों ने वि[रोध] भी किया; परन्तु सम्पादकों का दामन पक[ड़ने] से उनका कुछ न बिगड़ा और वे उसी गति में [कार्य] करते हुए चले जा रहे हैं। भावी संतति के [लिए] ऐसे साहित्य का संचय हानिकारक है। सम्पा[दकों] को चाहिए कि वे ऐसे साहित्य को प्रश्रय [न दें] और यदि हो सके तो उसका प्रबल विरोध [करें]। लोक-मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले साहित्य [को] पनपने देना साहित्य को गंदगी से भरना है।

पत्र-पत्रिकाओं के सामाजिक, धार्मिक, [राज]नीतिक, जातीय, साहित्यिक आदि विभाग [किए] जा सकते हैं। आज की निकलनेवाली इन प[त्रि]काओं में कई पत्रिकाएँ ऐसी हैं, जो जातीय [होते] हुए भी साहित्य से ओत-प्रोत हैं। धार्मिक हो[ते] भी साहित्य और समाज के लेखों से भरी [रहती] हैं। इसका कारण यह है कि सम्पादक उस पत्र [की] नीति पाठकों को समझाने में असमर्थ हैं। [यदि] 'सम्पादकीय' लेखों द्वारा वे समय-समय पर [अपनी] नीति समझाते रहे होते तो लेखक उनके [पास] अन्य विषयों के लेख न भेजते। परन्तु सम्पा[दक] की कमज़ोरी ने उस पत्र को अपने स्थान [पर] न रहने दिया। अतः सम्पादक को पत्र की [नीति] पर पूर्ण ध्यान देना चाहिए।

सम्पादक की क़ानून-विषयक योग्यता [भी] पर्याप्त होनी चाहिए। सरकारी नीति की [कटु] आलोचना करने से कई सम्पादक, जेल [और] जुर्माने की सज़ा पा चुके हैं। अभी तक क[ई] पत्रों से ज़मानतें वसूल की जा रही हैं। स[माज] या जाति की एकदम अवहेलना करने में



कई सम्पादकों को नीचा देखना पड़ा है। इन दो चक्की के पाटों के बीच में पड़कर सम्पादक का पिस जाना सम्भव ही है। अतएव सम्पादक में 'साँप मरे न लाठी टूटे' वाली बुद्धि का होना भी अनिवार्य है। उसके क़लम में ऐसा जादू हो कि वह दोनों के दोषों की निन्दा करते हुए अपने को सुरक्षित रख सके। सम्पादक की इस परिस्थिति का वर्णन 'नवराजस्थान' के सुयोग्य सम्पादक श्री० रामनाथ 'सुमन' ने क्या ही अच्छे शब्दों में किया है—"भारतीय पत्रकार वह बेज़बान प्राणी है, जिसके हाथ-पैर ज़ंजीरों से जकड़े हुए हैं। जिसके सिर पर राजद्रोह-क़ानून की तीखी तलवार लटक रही है, दिल में आग, कलेजे में तड़पन, आँखों में आँसू और मुँह में धुआँ है, पर ओठ सिले हुए हैं। हाथ में क़लम है, पर काग़ज़ पर क़ानूनी नियन्त्रणों की भयावनी छाया है। उसके दिल में जोश है और ओठों से देश-प्रेम का राग उठने को व्याकुल है, पर वह बोल नहीं सकता—वह बोलना जो राष्ट्र को जगा दे और वह लिखना जो दिलों में आँधी पैदा कर दे। एक बेचैन दिल जिस पर लोहे की चादर पड़ी है—एक बेक़रार समन्दर जो बाँधों में बंद है।

"ऐसा यह भारतीय पत्रकार है। बन्धनों और साँकलों में बँधा हुआ। पर जनता उसको बड़ी-बड़ी आशाओं से देखती है। यदि वह उस आशा का जवाब दे तो क़ानून की चक्की हाज़िर है और यदि वह ज़रा धीरे से बोले अथवा अप्रिय-सत्य को प्रिय भाषा में व्यक्त करने की कोशिश करे तो जिनकी सेवा करने वह चला है, उनकी नज़रों से गिर जाय और जनता उसे डरपोंक कहकर फेंक दे। इन दो, सदा निर्दयता-पूर्वक चलती हुई, चक्कियों के बीच यह बेज़बान-प्राणी अपने कर्तव्य में रत है।"

इसी तरह के मिलते-जुलते हुए विचार 'आज'-सम्पादक बाबूराव विष्णु पराड़कर ने व्यक्त किये हैं। जिन कठिनाइयों का सामना करते हुए वे गये हैं और आये दिन जिन कठिनाइयों से वे पार हो रहे हैं, उन्हीं का सच्चा हाल वे इस प्रकार लिखते हैं—"सिर में चक्कर आ रहे हों, थकावट और श्रम से हम चूर हो रहे हों। पर इन बातों का पत्रकार के जीवन में कोई स्थान नहीं।... प्रतिदिन लिखना ही पड़ेगा, चाहे लिखने के लिए कोई विषय मिले या न मिले। लेख होना ही चाहिए। टीका-टिप्पणी होनी ही चाहिए। प्रतिदिन यह कार्य करते-करते हमारा मस्तिष्क भले ही यन्त्रवत् हो जाय, हमारी बुद्धि कुण्ठित हो जाय, इससे किसी को कोई मतलब नहीं।...... सम्वाद-दाताओं और पत्र-प्रेषकों की चिट्ठियों के बण्डल के बण्डल प्रतिदिन आपके सामने लद जायँगे। उस समुद्र से आपको पार पाना ही पड़ेगा। तरह-तरह की चिट्ठियाँ होंगी। विभिन्न प्रकार की उनमें बातें रहेंगी। इनकी उद्धरणी करने में भले ही आप खीझ उठें, पर उससे बचने का कोई उपाय नहीं है। सब पत्रों को देखना ही होगा, उनका शोधन करना होगा। हज़ार सावधानी करने पर भी यदि आपसे भूल हुई, भूल भी ईमानदारी के साथ हुई, कोई समाचार क़ानून की व्यापक और उड़ती हुई धाराओं में अप्रत्यक्ष रूप से भी आ गया, तो बस परेशानी भोगिए। सरकारी अधिकारियों की डाँट सुनिए, चेतावनी सुनिए, खेद प्रकाश कीजिए, ज़मानत की ज़ब्ती भोगिए और यदि इससे भी काम न चला तो जेल जाइए, जुर्माना दीजिए।...आर्थिक कठिनाइयों को झेलते हुए शरीर और स्वास्थ्य को बिगाड़ते हुए भी पत्रकार अपने कर्तव्य का पालन करने पर भी जब दुहरी मार खाता है तो उसके मानसिक क्लेश की सीमा पार हो जाती है।"

सम्पादकों की उपर्युक्त कठिनाइयों को पढ़कर

मनोमालिन्य

श्री० "गँवार" एम्० ए०, डी० लिट्०

(१)

चन्द्रप्रकाश ने उस साल लखनऊ मेडिकल-कालेज से एम्० बी० बी० एस्० (प्रथम भाग की) परीक्षा पास की थी और इन्दिरा ने क्रास्थवेट-गर्ल्ज़ कालेज, प्रयाग से इण्टरमीजिएट की। दोनों के पिता अपने समय में म्योरकालेज में सहपाठी थे। एक ने बी० ए० के उपरान्त एल्-एल्० बी० पास करके कानपुर में वकालत शुरू की, दूसरे ने एम्० ए० करके फ़ाइनेंस डिपार्टमेंट की परीक्षा पास की और फिर सरकारी नौकरी कर ली। वकील बा० मोहनलाल दृढ़ आर्यसमाजी थे। वे और उनके मित्र बा० राधारमण, दोनों ने अपने विद्यार्थी-जीवन में प्रयाग में आर्यसमाज की स्थापना, रात्रिपाठशालाओं की आयोजना आदि सार्वजनिक कामों में यथेष्ट भाग लिया था। बा० मोहनलाल की राजनीतिक कार्य पर भी कुछ अभिलाषाभरी दृष्टि थी, इसलिए उन्होंने सरकारी नौकरी की ओर कभी नीयत नहीं की। बा० राधारमण इतने कट्टर नहीं थे।

हॉस्टेल से निकलकर दोनों मित्र अलग-अलग हो गये। कालान्तर में कभी-कभी पत्र-व्यवहार अथवा कहीं आकस्मिक भेंट में ही मित्रता सीमित रह गई। एक दूसरे के पारिवारिक जीवन से भी उन दोनों को कुछ-कुछ परिचय था। मोहनलाल ने इन्दिरा को बचपन में देखा था और राधारमण ने चन्द्रप्रकाश को जब वह कानपुर स्कूल में पढ़ता था तभी देखकर पसन्द किया था। उनकी इ[illegible] थी कि अपनी प्यारी पुत्री इन्दिरा का वि[illegible] चन्द्रप्रकाश से करेंगे, पर जब तक कि चन्द्र[illegible] की उन्नति अवश्यंभावी है, इसका उनको नि[illegible] न हो जाय, तब तक वे इसकी बात छेड़[illegible] चाहते थे। अब जब चन्द्रप्रकाश ने दो वर्ष मे[illegible] कालेज में रहकर डाक्टरी की प्रथम परीक्षा[illegible] कर ली और उधर इन्दिरा ने भी इण्टर का[illegible] तब राधारमण ने मोहनलाल से इस प्रस्ता[illegible] उनकी राय माँगी। राधारमण के मन में[illegible] दुविधा और थी। वे थे माथुर कायस्थ और[illegible] लाल श्रीवास्तव। यद्यपि दोनों विद्यार्थी-[illegible] में जाति और उपजाति को कोसा करते थे, प[illegible] गृहस्थाश्रम में आते ही सब ऊँच-नीच दि[illegible] पड़ने लगती है। राधारमण को ख़याल हु[illegible] कहीं पूर्व प्रान्त में रहनेवाले मोहनलाल में[illegible] विषय की दृढ़ता न बाक़ी रही हो। मोह[illegible] इस समय कानपुर आर्यसमाज के प्रधा[illegible] प्रान्त के गिने-चुने आर्यसमाजी नेताओं में[illegible] उनकी ओर से उपजाति के कारण कोई[illegible] नहीं थी। इन्दिरा भी उन्हें पसन्द थी।[illegible] बाधा यह थी कि चन्द्रप्रकाश ने अभी[illegible] शिक्षा समाप्त नहीं की थी और उसकी[illegible] भी २२ वर्ष की थी। २५वें वर्ष के पूर्व[illegible] का विवाह उनको जँचता न था। उन्होंने[illegible] राधारमण को स्पष्ट लिख दिया कि "लड़के[illegible]



मेरा वैसा आपका। इन्दिरा को मैं अपनी बेटी के तुल्य समझता हूँ। सम्बन्ध करने में मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? पर चन्द्रप्रकाश की शिक्षा समाप्त हो लेने दीजिए और उधर इन्दिरा भी तब तक बी० ए० कर ले।"

राधारमण मोहनलाल के विचार से सहमत हो गये। और दोनों, चन्द्रप्रकाश और इन्दिरा अपना-अपना अध्ययन करते रहे। दो साल बाद इन्दिरा ने बी० ए० करके अपनी शिक्षा समाप्त की और चन्द्रप्रकाश ने चतुर्थ वर्ष का डाक्टरी का कोर्स। इनको अभी एक साल और बाक़ी था। राधारमण ने मोहनलाल से फिर पूछा कि अब क्या किया जाय। वे इसके लिए तैयार थे कि इन्दिरा को प्रयाग-विश्वविद्यालय में एम्० ए० में भरती करवा दें, तब तक चन्द्रप्रकाश अपने पाँचवें वर्ष का भी कोर्स समाप्त कर ले। पर मोहनलाल को इन्दिरा को आगे पढ़वाना पसन्द नहीं था। इसलिए नहीं कि वे स्त्रियों के एम्० ए० करने के विरुद्ध थे, पर इसलिए कि लड़कियों और लड़कों को एम्० ए० में साथ-साथ पढ़ना पड़ता था, एम्० ए० के लिए लड़कियों का अलग प्रबन्ध न था। राधारमण इस विषय में अधिक उदार विचार के थे। वे दृढ़ आर्यसमाजी न थे। ऐसी दशा में मोहनलाल ने, राधारमण के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया कि विवाह-सम्बन्ध कर दिया जाय, चन्द्रप्रकाश की बची शिक्षा का एक वर्ष कटते कितनी देर लगती है।

राधारमणजी की पोस्टिंग इस समय दिल्ली में थी। कानपुर से बड़ी सज-धज के साथ बारात गई और शुद्ध वैदिक रीति से विवाह हुआ। दूलहे की बारात में आतशबाज़ी और नाच के स्थान में तेजसिंह और नत्थासिंह की भजन-मंडलियाँ थीं। क़रारदाद का कहीं नाम न था। गुप-चुप भी कोई चेक नहीं काटा गया। बा० राधारमण ने काफ़ी दिया, पर अपनी इच्छा से। सो भी ज़ेवर और सामान के रूप में। नक़दी नाममात्र को थी।

इन्दिरा विवाह के उपरान्त चार-पाँच दिन को कानपुर आई। बा० मोहनलाल की धर्मपत्नी का देहान्त कई वर्ष पूर्व हो गया था। उनके और कोई संतान भी न थी। इन्दिरा का स्वागत मोहनलाल के घर में स्वयं मोहनलाल और उनकी बहन ने किया।

(२)

इन्दिरा जब दिल्ली लौटी तो उसके मन में एक विशेष तरङ्ग दौड़ रही थी। इन चार-पाँच दिन के जीवन से उसके शरीर में एक नई स्फूर्ति, एक नई ज्योति-सी आ गई थी। यद्यपि उसे चन्द्रप्रकाश से मिलने का चार ही पाँच बार मौक़ा मिला, तथापि यही अवसर उसके अब तक के जीवन के तत्त्व थे। वरवधू ने एक हृदय की एकता, प्राणों के परस्पर तारतम्य और जीवन की अभिलाषाओं की पूर्ति का एक दूसरे को साधन समझ लिया। यद्यपि वे दूर-दूर थे, पर उनका अन्तःकरण एक स्थान पर था। वियोग की व्यथा को कम करने का कोई उपाय था तो वह परस्पर पत्र-व्यवहार। यह निरन्तर चलने लगा।

दशहरे की छुट्टियों में पिता के आदेश के अनुसार चन्द्रप्रकाश दिल्ली गये। यहाँ दो वियुक्त पक्षियों की तरह इन्दिरा और वह मिले। बा० राधारमण का रहन-सहन प्रायः आजकल के सरकारी उच्च अधिकारियों की तरह अँगरेज़ी था। नाश्ते को यहाँ चाय कहा जाता था और चौके के स्थान पर थी मेज़-कुर्सी। चन्द्रप्रकाश भी हॉस्टेल में इसके आदी हो गये थे। पर आर्य-सामाजिक वातावरण में पले हुए उनको यह अँगरेज़ीपना घर पर कुछ अच्छा नहीं लगा। इससे अधिक बात जो चन्द्रप्रकाश को बुरी लगी, वह था यहाँ प्याज़ लहसुन का खाया जाना। इन्दिरा भी खाती थी। एक रोज़ चन्द्रप्रकाश ने इन्दिरा से प्यार से कहा, "प्याज़-लहसुन छोड़ दो। क्या तुमको इससे बड़ी रुचि है? मुझसे तो इसकी बू सही नहीं जाती।" इन्दिरा बोली, "मुझे भी कोई विशेष अच्छा नहीं



लगता, पर यहाँ बचपन से खाती आई हूँ, एक-बारगी छोड़ूँगी तो यह लोग क्या कहेंगे । अब तो थोड़े दिनों बाद तुम्हारे साथ रहना ही है; जब चलूँगी तो वहाँ छोड़ दूँगी ।" चन्द्रप्रकाश चुप हो रहे ।

अब की जब चन्द्रप्रकाश इन्दिरा से अलग हुए तो उनको वियोग की व्यथा अधिक असह्य मालूम हुई । पर कोर्स पूरा करना आवश्यक था । इन्दिरा ने साहस दिलाया । बोली, "आप इतने अधीर क्यों होते हैं. आपसे अधिक तो मैं व्यथित हूँ । पर जिसमें कोई उपचार सम्भव नहीं, उस व्याधि को तो सहना ही पड़ेगा ।"

मोहनलाल की इच्छा के अनुसार राधारमण ने गौने की बिदा बड़े दिन की छुट्टियों में कर दी । चन्द्रप्रकाश के घर पर इन्दिरा ने प्याज़-लहसुन का नाम भी न लिया । सबेरे उठकर ही ससुरजी के सन्ध्या-हवन की सामग्री स्वयं जुटा देती । घर का और भी काम-काज थोड़ा-बहुत देखती । मोहनलाल की आत्मा प्रसन्न थी और उनको सन्तुष्ट देखकर पुलकित थे चन्द्रप्रकाश । इन्दिरा से कहते, "मा के न रहने के बाद से अब फिर घर घर-सा लगता है । देखती हो, बाबूजी तुमसे कितने खुश हैं । हाय ! यदि मा के सामने तुम आ जातीं और वे तुमको देख पातीं । कितनी हर्षित होतीं वे । पर उनकी यह अभिलाषा उनके साथ अपूर्ण गई ।" चन्द्रप्रकाश को उद्विग्न देखकर इन्दिरा उन्हें थपथपाती और कहती, "यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं उनके दर्शन का सौभाग्य न प्राप्त कर सकी ।"

अबकी चन्द्रप्रकाश के लखनऊ चले जाने पर भी इन्दिरा कुछ दिन कानपुर रही । पर राधारमण के आग्रह न करने पर भी मोहनलाल ने उसके शीघ्र ही दिल्ली लौट जाने का प्रबन्ध करवा दिया । वे यह नहीं चाहते थे कि बहू को अकेले घर में रहने के कष्ट का अनुभव हो ।

अप्रैल के अन्त तक चन्द्रप्रकाश की परीक्षा समाप्त हो गई । इन्दिरा से उन्होंने तै कर था कि परीक्षा समाप्त होते ही वे उसे लिवा लावेंगे । पर अन्तिम दिनों में इन्दि लिखा, "बाबूजी नैनीताल में एक कॉटेज भर के लिए ले रहे हैं । मा और नरेन्द्र वहाँ रहेंगे । बाबूजी भी कुछ दिनों की छुट्टी वहीं पहुँचेंगे । मुझसे भी चलने को कहते हैं । मैं क्या उत्तर दूँ । सब कुछ तुम पर निर्भ यदि तुम भी चलो और मुझे अनुमति दो सम्भव है । जुलाई में हम दोनों कानपुर चले तब तक कानपुर की वह तपिश भी जायगी । निश्चय पूर्णरूप से तुम्हारे हाथ मुझसे जो कहोगे, मैं वही करूँगी ।"

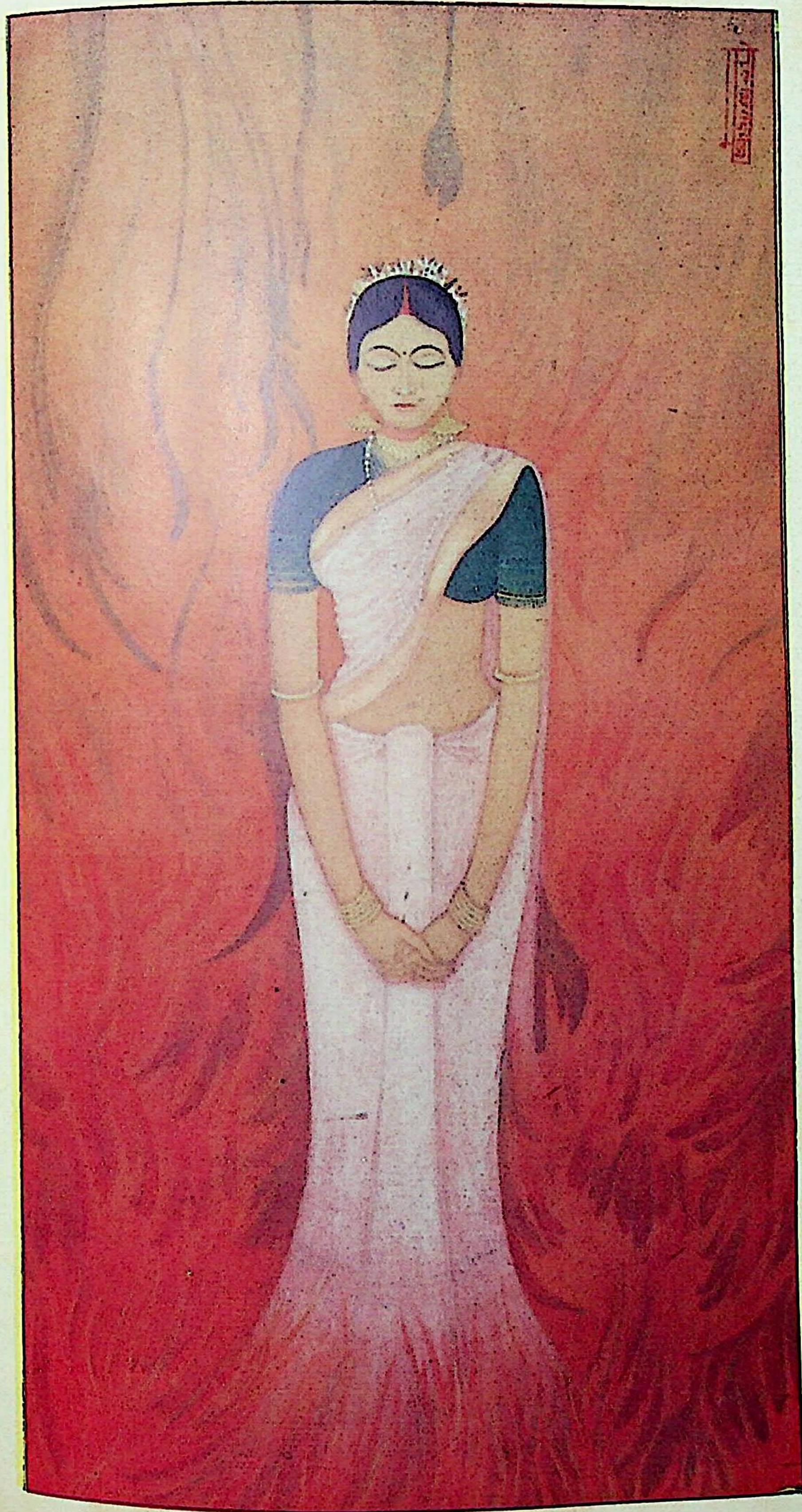
चन्द्रप्रकाश ने उत्तर दिया, "मैं सहमत मैं भी परीक्षा के परिश्रम और उस पर से वियोग की व्यथा से बहुत हार गया हूँ । है, पहाड़ पर काफ़ी आराम मिल जायगा फिर तुम्हारे साथ निश्चिन्तता । पर बाबूजी अनुमति के बिना यह कुछ सम्भव नहीं । मैं इस विषय में कुछ लिखूँगा नहीं । यदि तुम बाबूजी से यह प्रस्ताव करवा सको तो पिताजी स्वीकार कर लेंगे ।"

मोहनलाल ने चन्द्रप्रकाश को लिखा, "राधारमणजी सपरिवार नैनीताल जा रहे उनकी इच्छा है कि तुम भी उनके साथ रहो । मैं सोचता हूँ कि इधर तुम भी परिश्रम से थक गये होगे, अच्छा है आराम कर आओ । लौटकर यहाँ शुरू करना ।"

लखनऊ से चन्द्रप्रकाश कानपुर गये । पन्द्रह दिन घर पर रहे, तब पिता के आज्ञा पर नैनीताल गये । वे मोहनलाल को यह नहीं बनाने देना चाहते थे कि विवाह के कारण पिता के प्रति प्रेम और कर्तव्य में कुछ कमी

(३)

चन्द्रप्रकाश का पहाड़ आने का



स्वाहा



अवसर था। उनके पिता को घर से निकलने की कम आदत थी। आते-जाते थे तो प्रतिनिधि-सभा के वार्षिकोत्सव में, गुरुकुलों में अथवा कांग्रेस के अधिवेशनों में। पहाड़ पर जाना वह उच्च अधिकारियों के 'बड़प्पन' की बात समझते थे। इसी लिए इच्छा रहते हुए भी चन्द्रप्रकाश ने कभी पिता से पहाड़ पर घूमने का प्रस्ताव नहीं किया था। चन्द्रप्रकाश को यह नई दुनिया दिखाई दी। कितनी विभिन्न थी यह मैदान के रहन-सहन से। गरमी में भी गरम कपड़े। बरफ़ का-सा ठंडा पानी। मीलों चलकर भी थकावट का नाम नहीं। भूख का कोई अन्त ही नहीं। इन्दिरा अपने बाबूजी के साथ प्रायः हर साल पहाड़ जाती थी, इसलिए उसको कोई विशेष उल्लास नहीं था। बहुधा वह चन्द्रप्रकाश को मधुर-मधुर छेड़ती। देखे हैं आपने पाइन ट्रीज़ (चीड़ के पेड़)। वाह डाक्टर साहब! किताबों में पढ़कर ही क्षयरोग-पीड़ितों के लिए चीड़ के वनों में घमने की सलाह देंगे!" चन्द्रप्रकाश कहते कि "ऐसे रोगियों को आपके पास भेज दिया करूँगा।" इन्दिरा और उसके भाई पर्वतीयों की तरह घाटियों में धमधम कर उतर जाते। चन्द्रप्रकाश पैर पूरा जमाकर चलने का प्रयास करते और तब लुढ़कने-से लगते! इन्दिरा कहती, "अजी डाक्टर साहब, हिम्मत करिए, हिम्मत। इसी हिम्मत से मरीज़ों की चीड़-फाड़ करेंगे?" चन्द्रप्रकाश कहते, "इसमें क्या हिम्मत? बकरियाँ भी तुम्हारी ही तरह इस चोटी से उस चोटी पर चढ़ती चली जाती हैं। हिम्मत तो ताक़त में है! यहाँ तो केवल अभ्यास की बात है।"

दस ही पाँच दिनों में चन्द्रप्रकाश को भी पहाड़ का अभ्यास हो गया। अब सबके सब रोज़ कहीं न कहीं पिकनिक करने जाते। कभी चीनापीक, कभी खुरपाताल, कभी गोविन्दनगर, कभी उसके ही नीचे महादेवजी के मन्दिर। भोवाली, भीमताल, सातताल, रामगढ़ आदि का भी चक्कर लगा आये। कभी-कभी शाम को चाँदनी रात में इन्दिरा और चन्द्रप्रकाश अकेले टहलने निकल जाते। कितनी उमंग भरी थीं वे चाँदनी रातें! कितने सुहावने थे वे प्रातःकाल। महीना सवा महीना बात करते-करते बीत गया।

(४)

पहाड़ पर धोबी, मेहतर, नाई इन सब कर्म-करों का उतना बाहुल्य नहीं रहता, जितना मैदानों में। पहाड़ी को मैले कपड़े भी मैले नहीं लगते। बहुत मैल मालूम हुआ तो साबुन से धो लिये। पहाड़ियों के बाल उतनी शीघ्रता से नहीं बढ़ते, जितने मैदानवालों के और बढ़े भी तो उनको बोझ नहीं लगते। मेहतर की आवश्यकता पहाड़ पर मैदानियों की उत्पादित की हुई है, यह बात पहाड़ी लोग बड़ी शेख़ी से कहते हैं।

इन लोगों की काटेज ज़रा बस्ती से दूर थी, इसलिए धोबी ज़रा दिक़्क़त से आते थे। राधारमणजी के दफ़्तर के एक बाबू ने एक धोबी ठीक कर दिया था, पर वह दो ही धोब धोकर बैठ रहा। साहब लोगों को धुलाई पसन्द नहीं आई। एक रोज़ चन्द्रप्रकाश को बाज़ार में गनेश धोबी मिल गया। वह इनके कपड़े होस्टेल में धोता था। एक फ़ौजी रेज़िमेंट के साथ इस समय कुछ महीनों को नैनीताल आ गया था। चन्द्रप्रकाश ने उसे काटेज से कपड़े ले जाने को कहा। उसने कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार कर लिया।

पहली ही धोब धोकर लाया था कि इन्दिरा गनेश पर बिगड़ी, "तुम मेरी साड़ी पर काली-काली-सी यह चित्तियाँ कहाँ से डाल लाये? मेरी ३०) की साड़ी बर्बाद कर दी। बुड्ढे हो गये, कपड़ा धोना नहीं आया।" धोबी बोला, "सरकार! साड़ी भीगी ही मैले कपड़ों की टोकरी में पड़ी रही होगी। तभी चित्तियाँ पड़ गईं। मेरा इसमें कोई कुसूर नहीं।" चन्द्रप्रकाश इस समय आरामकुर्सी पर लेटे हुए अख़बार पढ़ रहे थे। इन्दिरा उनको सम्बोधन कर बोली, "यह आपका धोबी बड़ा



बदज़बान है। एक तो काम बिगाड़ लाया और ऊपर से बदतमीज़ी करता है।" चन्द्रप्रकाश ने अख़बार हटाकर गनेश से कहा, "क्या बात है? साड़ी ले जाकर ठीक कर लाओ। मालिक से इस तरह नहीं बोलते।" गनेश चुप हो गया। पर इतने से इन्दिरा को सन्तोष नहीं हुआ। बोली, "अच्छे होते हैं लखनऊ के धोबी। मामूली कपड़ा भी धोना नहीं आता। मैं इस साड़ी को ख़राब करने के लिए ४) तुम्हारी धुलाई में से काटूँगी।" गनेश बोला, "बहूजी, आप सब काट लें। पर कुसूर मेरा नहीं है।" इन्दिरा अब उबल पड़ी। उसको नौकरों से जवाब सुनने की आदत नहीं थी। उच्चाधिकारी की बेटी थी। उसने गनेश को "बदतमीज़, बदमाश, पाजी" कहकर क्रोध प्रकट किया। चन्द्रप्रकाश को नौकरों से काम बिगड़ जाने पर भी उनको डाँटना-फटकारना पसन्द नहीं था। वे अब बोले, "भाई, उसे गाली क्यों देती हो? दाम काट लो न। बस, समाप्त करो।" इन्दिरा इस आशा में थी कि उसके प्रति धोबी को जब वह एक सुना रही थी तब दस सुनावेंगे। इधर चन्द्रप्रकाश उलटा उसी को मना करने लगे। वह लाल मुँह किये हुए अन्दर चली गई। इन्दिरा ने धोबी को उस बार कपड़े नहीं दिये। केवल वह साड़ी उसके सिर पर पटक गई।

धोबी तो चला गया, पर छोड़ गया एक मलिन रेखा। उस रोज़ चन्द्रप्रकाश इन्दिरा से कुछ नहीं बोले। शाम का भोजन भी दोनों ने अरुचि से खाया। भोजन के उपरान्त चन्द्रप्रकाश अकेले टहलने चले गये। सोने के पूर्व इन्दिरा दूध लेकर आती थी। आज नौकर लाया। इन्दिरा का पलँग उसी बड़े कमरे में रहता था, जहाँ उसके दोनों भाई और माँ, सारा परिवार सोता था। चन्द्रप्रकाश का बाहरी कमरे में। रात को बहुधा इन्दिरा अपने-आप, सबके सो जाने पर, बाहर आ जाती थी। यदि उसकी आँख लग जाय तो चन्द्रप्रकाश उसे जगा लाते थे। आज इन्दिरा नहीं आई और न चन्द्रप्रकाश बुलाने गये। इन्दिरा ने सोचा, "कुसूर उनका है, यदि मैंने ग़लती भी की होती, तब भी मेरे मुक़ाबले में उनको धोबी का पक्ष नहीं लेना चाहिए था। और फिर मैंने कहा ही क्या था। उनको मुझसे माफ़ी माँगनी चाहिए। जब बुलाने आवेंगे, तब कहूँगी कि पहले माफ़ी माँगो।" चन्द्रप्रकाश सोच रहे थे, "ऐसी मुँहफट है यह औरत। ग़रीब निःसहाय आदमियों को गाली सुनाती है और जब समझाओ तो ताव दिखाती है। मैंने कहा ही क्या था? साधारण-सी बात। यदि बुरी भी लगी थी तो मुझसे क्यों बोलना ही बन्द कर दिया। आज आवे तो बताऊँ।" आधी रात तक जगने पर भी उन्होंने इन्दिरा को आया न देखा तो सोचने लगे, "तो आज आप आवेंगी भी नहीं। मज़े में सो रही होंगी। जो औरत इतने कांड के उपरान्त भी शान्तिपूर्वक सो सके, उसको जगाकर क्या होगा?" तब भी कमरे में पड़े-पड़े ही दो-एक बार खाँसी की कि शायद इन्दिरा जग जाय। एक बार कमरे से निकलकर बाहर बरामदे में भी आये। पर इन्दिरा आई नहीं। उसने सोचा, "मैं समझती थी कि सो गये होंगे। पर जगते हैं और जानकर भी नहीं आ रहे। ऐसी दशा में मेरी बला जाती उनके पास।"

दोनों ने एक दूसरे की इन्तज़ारी करते-करते लेटे-लेटे सुबह कर दी। एक साधारण-सी बात पर इस प्रकार दोनों एक दूसरे से इतना तन गये। अभी दो दिन पूर्व ही प्याज़ पर दोनों में बहस हो चुकी थी। चन्द्रप्रकाश ने कहा था, "देखो तुमने प्याज़-लहसुन नहीं छोड़ा। ऐसी भी क्या जिह्वा-लोलुपता।" इन्दिरा ने कहा, "इसमें बुराई ही क्या? फ़ायदे की चीज़ है। यह बड़ा लाभदायक है। हैज़े और ... के कीड़ों को मारता है।" चन्द्रप्रकाश "पर बदबू..." इन्दिरा—"और आप जो लाशें चीरते हैं, उनसे ख़ुशबू निलकती होगी?" "वह तो ..."



बूरन ज्ञान-उपार्जन के लिए करता हूँ, मेरी ज़बान मेरे क़ाबू में है।" इन्दिरा बोली? "मेरी भी ज़बान मेरे क़ाबू में है। मैं तो ओषधि-तत्त्वों के कारण खाती हूँ।"

धोबीवाले काण्ड के दूसरे दिन दोनों अपने-अपने बिस्तर से उठे, थके-से माँदे से। नरेन्द्र चाय के लिए बुलाने आया। चन्द्रप्रकाश ने कहा, "भाई, मेरा प्याला यहीं भेज दो।" उनकी चाय बाहर आ गई। बाक़ी परिवार ने नित्य की तरह मेज़ पर चाय पी। नरेन्द्र बोला—"जीजा, टहलने चलो।" चन्द्रप्रकाश बोले, "भाई मुझे दो-तीन ज़रूरी ख़त लिखने हैं। आज तुम लोग हो आओ।" इन्दिरा ने सोचा "शायद ज़रूरी लिखना हो। चलो मैं इन लोगों के साथ हो आऊँ। नहीं तो यह कहेंगे कि मियाँ-बीबी दोनों नहीं आये।" चन्द्रप्रकाश ने मन में कहा, "देखा, अपने आप चली गईं। यह न ीं कहा कि लौटकर ख़त लिख लेना। उसको तुम्हारी पर्वाह ही क्या है।" शाम को चाय के बाद जब फिर टहलने जाने का मौक़ा आया, तब चन्द्रप्रकाश ने वीरेन्द्र से कहा "चलो आज फ़्लैट पर टेनिस का बड़ा बढ़िया मैच है। देख आवें।" वीरेन्द्र चल दिया। जब दोनों चले गये तो इन्दिरा को मालूम हुआ। नरेन्द्र ने कहा—"चलोगी इन्दिरा मैच देखने?" इन्दिरा तिनगकर बोली, "कैसा मैच?" नरेन्द्र बोला, "जीजा कहते थे बड़ा अच्छा होगा।" इन्दिरा बोली, "होगा तुम्हारे जीजा के लिए अच्छा। मैं नहीं जाती।" नरेन्द्र अपनी मा और बहन का बड़ा ख़याल रखता था। वह भी मैच देखने नहीं गया। तीनों तल्लीताल की ओर थोड़ी दूर टहलकर लौट आये। चन्द्रप्रकाश और वीरेन्द्र ज़रा देर में लौटे। मैच के बाद सिनेमा देखने चले गये थे।

रात को कमरे का दर्वाज़ा नरेन्द्र अन्दर से बन्द कर लेता था। इन्दिरा चौके के काम से निपट-कर देर में आती थी और लेटने के पूर्व बाहर निकलने का दर्वाज़ा खोल रखती थी। आज वह नरेन्द्र के सोने के पूर्व ही सो गई थी। चन्द्रप्रकाश ने सोचा "यह खिचा-खिची ठीक नहीं। मैं आज उन्हें यहाँ बुलाकर साफ़-साफ़ बातें कर लूँ" उठ-कर गये तो दर्वाज़ा अन्दर से बन्द पाया। लौटे तो ग़ुस्सा भरे। ज़ोर से अन्दर से सिटकनी लगा ली। पड़कर ख़र्राटे लेने लगे। इन्दिरा उठी, आहट ली। सब सो रहे थे। सोचा, "इनसे बिगड़कर कितने दिन रह सकूँगी। चलूँ पूछूँ तो कि मेरा क्या क़सूर था।" दर्वाज़ा खोलकर बाहर आई। देखा बाहर के कमरे का दर्वाज़ा अन्दर से बन्द। ज़रा धीरे से खटखटाया भी।" पर वहाँ खोलता कौन, उसके पति कल रातभर जागने के कारण आज गाढ़ी नींद में थे। इन्दिरा खण्डिता नायिका की तरह रोषभरी बिस्तर पर लौटी।

इसी तरह तीन-चार दिन बीत गये। इसके उपरान्त राधारमण दो सप्ताह के लिए आ गये। फिर पिकनिकों का सिलसिला लगा। इन्दिरा अपने पिता के सामने चन्द्रप्रकाश के समक्ष पहले भी नहीं आया करती थी। अब भी नहीं आई। राधारमण को उनके परस्पर मनोमालिन्य का कुछ पता न चला। राधारमण पूर्व की तरह अपने बच्चों से हिल-मिलकर खाते-पीते। क़हक़हा लगाते। चन्द्रप्रकाश कमरे में पड़े-पड़े उपन्यास या अख़बार देखा करते। जब राधारमण, नरेन्द्र, वीरेन्द्र और चन्द्रप्रकाश ब्रिज खेलते तब इन्दिरा या तो अपनी मा के पास बैठती या स्वयं कोई किताब उठाकर पढ़ने लगती।

टहलने सब लोग साथ-साथ जाते। पर स्व-भावतः दो टोलियाँ बन जातीं। चन्द्रप्रकाश और इन्दिरा अलग-अलग टोलियों में रहते। दस-बारह दिन और चन्द्रप्रकाश और इन्दिरा के परस्पर एक अक्षर भी बोले बिना निकल गये।

राधारमण ने चन्द्रप्रकाश से उनके भविष्य की बात पूछी। चन्द्रप्रकाश ने कहा—"बाबूजी, प्रैक्टिस करूँगा।" राधारमण बोले, "दिल्ली आकर



प्रैक्टिस करो न ? वहाँ से आई० एम्० एस्० में निकल जाने का उद्योग हो सकेगा।" राधारमण को अफ़सरी का चाव था। इन्दिरा भी पति का अफ़सर होना पसन्द करती थी। पर चन्द्रप्रकाश, मोहनलाल के पुत्र थे। सरकारी चीज़ों से उनको चिढ़ थी। बोले, "नहीं साहब! मुझे कानपुर अच्छा लगता है। पिताजी को अकेले छोड़ना भी ठीक नहीं। और फिर नौकरी का बन्धन भी नहीं पसन्द करता।" राधारमण क्या कहते?

एक रोज़ बाहर के कमरे में चारों आदमी ब्रिज खेल रहे थे। इन्दिरा ने अन्दर से पान लगाकर भेजे। वीरेन्द्र ने कहा "जीजा, पान खाओ।" चन्द्रप्रकाश ने तश्तरी में पान देखे। देखकर कहा "तुम खाओ। मैं नहीं खाऊँगा" राधारमण ने पूछा "क्यों?" चन्द्रप्रकाश ने कहा, "बाबूजी, मुझसे यह कुनैन के ज़ायके के बँगला पान नहीं खाये जाते।" राधारमण बेतकल्लुफ़ आदमी थे। अन्दर बैठी हुई इन्दिरा को सम्बोधित कर बोले, "बेटी! यह कुनैनवाले पान कैसे खाती हो?" इन्दिरा बोली, "बाबू! उसी तरह जैसे लोग कुनैन से भी ज़्यादे कड़ुए करेले।" सब खिल-खिलाकर हँस पड़े। करेले चन्द्रप्रकाश को बहुत पसन्द थे। वे कुछ झेंप गये।

(५)

राधारमण के चले जाने पर फिर वही नीर-सता। वही खींचा-तानी। नरेन्द्र-वीरेन्द्र को इसका कुछ पता न था, कुछ इन्दिरा और चन्द्र-प्रकाश को चिढ़ा-चिढ़ा देखते थे, पर कारण ठीक समझ न पाते थे। अपनी मा से कहा—"इन्दिरा से जीजा कुछ नाराज़ मालूम होते हैं?" मा ने अब तक इस बात की पर्वा नहीं की थी। उनको ठाकुरजी की पूजा और रसोई इन्हीं दो बातों से मतलब था। लड़कों से यह बात जानकर उन्होंने चन्द्रप्रकाश से कहा, "बेटा! क्या बात है, नरेन्द्र कहता था कि तुम इन्दिरा से नाराज़ हो।" चन्द्र-प्रकाश ने कहा, "नहीं मा! मैं क्यों नाराज़ हूँगा। मैंने कहा नौकरों को गाली नहीं देनी चाहि[ए] बस इसी पर बिगड़ गईं।" इन्दिरा की [मा] बोलीं, "ठीक तो है, इसमें क्या बुरी बात थी। आजकल की लड़कियाँ ऐसी ही होती हैं। [मैं] डाँट दूँगी।"

शाम को इन्दिरा से मा ने कहा, "बेटी, स्त्री [को] पुरुष से दबकर रहना चाहिए। फिर उन्होंने कोई ऐसी बात भी नहीं कही थी। गाली देने [को] मना किया था।"

इन्दिरा ने मा से तो कुछ नहीं कहा। [वहाँ से] आकर सीधी बाहर के कमरे में गई। चन्द्रप्रकाश, नरेन्द्र और वीरेन्द्र शतरंज बिछाये बैठे थे। इन्दिरा ने चन्द्रप्रकाश से रोषभरे स्वर में कहा— "आपने मा से मेरी शिकायत की। पुरुष हो[कर] मुझसे कहने की हिम्मत नहीं पड़ी? यहाँ [भी] मनसाहत है?" चन्द्रप्रकाश ने एक बार इन्दिरा के चेहरे की तरफ़ देखा और चुप हो रहे। इन्दिरा के चले जाने के बाद धीरे से गुन-गुनाये, "[कैसी] औरत है।"

(६)

जुलाई का आरम्भ था। एक दिन चन्द्रप्रकाश को अपने कालेज के प्रिंसिपल का पत्र मिला। [उसमें] उन्होंने लिखा था कि यदि तुम हाउस-सर्जन[ी का] काम करना पसन्द करो तो एक सप्ताह के [अन्दर] आ जाओ। चन्द्रप्रकाश को पहले भी आशा थी कि उनको हाउस-सर्जनी का आफ़र मिलेगा, पर उन्होंने कभी इसकी इच्छा नहीं की। [उन्होंने] सोचा था कि सीधे चलकर कानपुर में प्रै[क्टिस] जमावेंगे। परन्तु अब चन्द्रप्रकाश ने इस पर [फिर] विचार किया। सोचा, "इन्दिरा के साथ तो रहना नहीं। अच्छा है दो-एक साल उसी [उ]चित वातावरण में और बिताये जायँ। प्रै[क्टिस] करने के पूर्व अच्छा तजुर्बा भी हो रहेगा।"

दूसरे रोज़ नरेन्द्र से बोले, "आज शाम [को] जाऊँगा।" नरेन्द्र हक्का-बक्का रह गया। [बोला] "आख़िर, कहाँ और क्यों?" चन्द्रप्रकाश

प्रिंसिपल का पत्र दिखा दिया। कहा, "मेरा जाना ज़रूरी है" और सामान ठीक-ठाक करने लगे। घर भर में खलबली मच गई। नरेन्द्र की मा बोली, "बेटा, यदि जाना है तो दो-एक दिन रुककर जाना। हम लोग भी साथ हो लेंगे। बरेली से हम लोग दिल्ली चले जायँगे, तुम लखनऊ।" चन्द्रप्रकाश न माने। इन्दिरा को अब कुछ चेतावनी हुई। उसको अपने अंधकारमय भविष्य का कुछ आभास हुआ। मन में आया दौड़कर चन्द्रप्रकाश से कहे, "प्रियतम! आज नहीं, कल जाना। मुझे भी साथ लिये चलो", पर संकोचवश हिम्मत नहीं पड़ी।

उस रोज़ मूसलधार पानी पड़ रहा था। इन्दिरा चाहती थी कि ख़ूब पानी बरसे और आज कोई सवारी काठगोदाम न जा सके। वे रुक जावें और मैं रात को उनको मना लूँ। चन्द्रप्रकाश को इन्दिरा के हृदय की क्या मालूम, वे अपना सामान पैक कर रहे थे। वीरेन्द्र से इन्दिरा ने कहा, "अपने जीजा से कहो, आज न जायँ। रास्ते में लैंडस्लाइड होने का और लारियों के लड़ जाने का अन्देशा है।" वीरेन्द्र ने कहा तो चन्द्रप्रकाश ने उत्तर दिया, "यार वीरेन्द्र, तुम भी इतने डरपोक हो। ख़तरे आदमियों पर ही आते हैं।" वीरेन्द्र से इन्दिरा ने कहा, "क ो, जिज्जी कहती हैं।" वीरेन्द्र ने कहा, "जिज्जी कहती हैं।" चन्द्रप्रकाश एक तिरस्कारपूर्ण हँसी हँसकर रह गये। वे अपने निश्चय पर दृढ़ थे।

बरसते पानी में इन्दिरा, नरेन्द्र और वीरेन्द्र लारीस्टैंड तक चन्द्रप्रकाश को पहुँचाने आये। लारी चली तो इन्दिरा के चेहरे पर थी परेशानी और था विषाद।

उस रात इन्दिरा को बिलकुल चैन नहीं मिला। सोचती, "यदि लारी फिसल गई। यदि ऐसे पानी में खड्ड में गिर गई।" बार-बार अपने को धिक्कारती "क्यों नहीं मैंने उनको ज़बर्दस्ती रोक लिया। उनका अपराध ही क्या था। बेकार इतना बवंडर मैंने खड़ा किया।" दस बजे नौकर को स्टैंड पर यह पता लगाने भेजा कि वह लारी सकुशल काठगोदाम पहुँच गई कि नहीं। नौकर बिना कुछ पता पाये ही लौट आया। अब इन्दिरा की तबीयत और घबराई। नरेन्द्र को जगाकर बोली, "नरेन्द्र! मालूम नहीं, लारी पहुँची या नहीं।" नरेन्द्र बोला, "अब तो लारी का दफ़्तर बन्द हो गया। सबेरे पूछ आऊँगा। और कोई तरकीब नहीं।" हताश इन्दिरा फिर लेट रही, पर उसे नींद ज़रा नहीं आई। तरह-तरह के विचार उसके मन में तरंगें लेते। "यदि उस रात मैं उनके पास चली जाती। यदि दूसरे दिन दर्वाज़ा बन्द न होता। यदि मैं माफ़ी माँग लेती। अगर वह आज न जाते।"

सबेरे ही जाकर नरेन्द्र पता लगा लाया कि रात को कोई दुर्घटना नहीं हुई। तब इन्दिरा को कुछ चैन पड़ा। सोचा कि "पता लग जाय कि कहाँ हैं तब पत्र लिखूँ।"

चन्द्रप्रकाश सीधे कानपुर गये। पिता को समझाया कि एक-आध साल हाउस-सर्जनी करके यदि प्रैक्टिस की जायगी तो बेहतर होगा। मोहन-लाल ने अनुमति दे दी। दो-तीन दिन घर पर रहकर चन्द्रप्रकाश ने लखनऊ आकर मेडिकल कालेज के अस्पताल की हाउस-सर्जनी का चार्ज ले लिया।

इन्दिरा, नरेन्द्र, वीरेन्द्र ने चन्द्रप्रकाश के सकुशल पहुँचने की सूचना की प्रतीक्षा की, पर कोई सूचना न ीं आई। इन्दिरा का मन नैनीताल से बिलकुल उचट गया था। बरसात में वैसे ही पहाड़ दुःखदायी हो जाते हैं। न कहीं आने के न जाने के। और ऊपर से इन्दिरा को थी अपनी ही मनोव्यथा। चार-पाँच दिन में यह लोग भी दिल्ली चले आये।

इन्दिरा के सामने प्रश्न था कि अब क्या करे। अपने पिता से बोली, "बाबूजी, मुझे प्रयाग भेज दो। मैं एम्० ए० पढ़ूँगी।" राधारमण बोले, "बेटी, तुम्हारा संरक्षक अब मैं नहीं रहा। चन्द्-



प्रकाश को लिखकर अनुमति माँग लो। या मैं मोहनलाल को लिखूँ।"

राधारमण ने मोहनलाल को लिखा कि "इन्दिरा के आगे पढ़ने के बारे में आपकी क्या राय है। यदि अनुमति हो तो उसको एम्० ए० कर लेने दिया जाय। यहाँ दिल्ली में रहेगी, रोज़ नरेन्द्र-वीरेन्द्र के साथ कालेज हो आवेगी।" मोहनलाल ने चन्द्रप्रकाश को लिखा, "बेटा! तुम तो वहाँ क्वार्टर में रहते ही होगे। बहू को बुला लाओ। तुमको भी आराम रहेगा, और उसका भी मन लग जायगा। वहाँ तो वह आगे पढ़ने की इच्छा करती है।" चन्द्रप्रकाश ने उत्तर दिया, "आप जानते हैं कि यहाँ मेरी चौबीस घंटे की ड्यूटी है। रात-बिरात अस्पताल के चक्कर लगाने पड़ते हैं। ऐसी दशा में स्त्रियों का यहाँ अकेले रखना ठीक नहीं। यहाँ का वातावरण भी अनुकूल नहीं। यदि आप घर पर रखना चाहें तो बुलवा लें। आगे पढ़ने के बारे में जैसा आप उचित समझें, आज्ञा कर दें।" मोहनलाल ने राधारमण को लिख दिया, "आगे पढ़ाने के विषय में आप मेरी राय जानते ही हैं। पर यदि चन्द्रप्रकाश बहू को अनुमति दे दे, तो मुझे कोई आपत्ति न होगी। मैं सोचता हूँ कि अगले दशहरे में बहू को बुलवा लूँ। मुश्किल यह है कि यहाँ घर पर कोई और स्त्री न होने से, बहू को यहाँ रहने में दिक़्क़त होगी।"

इन्दिरा ने इस आशा से कि दो-तीन महीने बाद ससुराल जाना ही है, पढ़ने का इरादा छोड़ दिया।

(७)

चन्द्रप्रकाश का प्रायः सारा समय काम में लगता। और कोई विचार वह मन में आने ही नहीं देते। हाउस-सर्जन की ड्यूटी भी है बड़ी कड़ी। दम मारने की फ़ुर्सत नहीं। हर डिपार्टमेंट का काम थोड़ा-बहुत देखना। ऊपर से अस्पताल की प्रायः पूरी ज़िम्मेवारी। इन्दिरा के जितना ही मुश्किल से यह महीने कटे, चन्द्रप्रकाश के उतनी ही आसानी से। दशहरे के दिन निकट आये। मोहनलाल ने चन्द्रप्रकाश को लिखा, "बेटा, बहू को लि[वा] लाओ।" चन्द्रप्रकाश ने ड्यूटी की संलग्नता [और] अवकाश का अभाव बताकर असमर्थता प्रकट की। मोहनलाल बोले, "अच्छा बड़े दिन पर सही।"

इन्दिरा की आशा मन में ही रह गई। को[ई] बुलाने ही नहीं आया। बड़े दिन पर चन्द्रप्रका[श] कालेज के लड़कों के साथ मद्रास चले गये। [व]हाँ मिडवाइफ़री की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध था।

जनवरी में इन्दिरा ने चन्द्रप्रकाश को [प]त्र लिखा, "नाथ! मुझको क्या आज्ञा है?" चन्द्र[-]प्रकाश ने लिख भेजा, "मैं आज्ञा देनेवाला कौन? आप जैसा उचित समझें करें।" इन्दिरा को [यह] उत्तर असह्य हो गया। उसने भविष्य विधि [के] ऊपर छोड़ दिया और चुप हो रही।

चन्द्रप्रकाश को जब इन्दिरा का कोई और [पत्र] नहीं मिला, तब वह सोचने लगे, "ऐसे कितने दि[न] चलेगा। आख़िर ज़रा-सी बात थी। हम [दो]नों ने बिगाड़ कर लिया। माना कि क़ुसूर इन्दि[रा] ही का था, पर मैं भी तो अड़ गया। वही [क्ष]मा माँग लेती तो क्या होता?" पर स्वयं पत्र लिख[ने] की हिम्मत न पड़ी। इधर यह घुट रहे थे [और] उधर इन्दिरा अन्दर ही अन्दर घुली जा रही थी। कई महीने निकल गये।

अप्रैल के अन्त में राधारमण का निमन्त्र[ण] मोहनलाल के पास नरेन्द्र के विवाह में सम्मिलि[त] होने के लिए आया। मेरठ में इतिहास के प्रोफ़े[सर] डा० ब्रजकिशोर भटनागर की पुत्री से शादी [थी।] मोहनलाल ने सम्मिलित होने की स्वीकृति दे [दी] और चन्द्रप्रकाश को भी लिख दिया कि "[इस] अवसर पर सम्मिलित होना आवश्यक है। उध[र] से बहू को भी लिवाये लावेंगे।"

नरेन्द्र ने चन्द्रप्रकाश को पत्र लिखा, "और यदि तुम न आये तो निश्चय रक्खो, मैं बारात [में] न जाऊँगा। चाहे जितनी बदनामी हो।" चन्द्र[-]प्रकाश ने लिखा, "यार, साले की शादी में

आऊँगा तो कब आऊँगा । इसी अवसर पर तो ख़ूब ख़ातिर होती है। देखूँ, नई दुलहिन पाकर तुम्हारी क्या दशा होती है । वैसे तो विवाह को बहुत कोसा करते थे ।"

(८)

बारात मेरठ से लौट आई । बा० ब्रजकिशोर ने ख़ूब आतिथ्य-सत्कार किया । दान-दहेज़ भी अच्छा दिया । मोहनलाल और चन्द्रप्रकाश की, मान्य होने के कारण, विशेष आवभगत हुई ।

चन्द्रप्रकाश इन्दिरा से मिलना चाहते थे, पर मेहमानों की चहल-पहल धूम-धाम में कोई तुक न बैठती थी। निश्चय कर रक्खा था कि यह झगड़ा जिस तरह हो, समाप्त करेंगे ।

रात को वह और वीरेन्द्र एक छत पर लेटे हुए इधर-उधर की बातें कर रहे थे । वीरेन्द्र को नौकर थोड़ी देर में बुला ले गया । चन्द्रप्रकाश अकेले रह गये और थोड़ी देर में उनको झपकी आ गई ।

एकबारगी चेहरे पर उन्हें पानी के बूँद मालूम पड़े । हड़बड़ाकर उठ बैठे । देखें तो सिरहाने ज़मीन पर बैठी इन्दिरा आँसू टपका रही थी । चन्द्रप्रकाश ने उसे अपनी ओर घसीट लिया । इन्दिरा का जी जब ज़रा सँभला तो बोली, "प्रियतम ! क्या मेरा अपराध सचमुच इतना भारी था ?"

चन्द्रप्रकाश ने कहा—"डियर ! माफ़ करो ।" थोड़ी देर बाद चन्द्रप्रकाश ने पूछा, "दुलहिन कहाँ है ?" इन्दिरा मुस्कराकर बोली, "अभी नरेन्द्र के कमरे में पहुँचा आई हूँ ।"

(९)

लौटकर चन्द्रप्रकाश दो दिन घर पर रहकर लखनऊ जाने लगे । इन्दिरा ने कहा, "मैं भी चलूँगी ।" चन्द्रप्रकाश ने कहा, "बाबूजी क्या कहेंगे ?" इन्दिरा ने कहा "मैं पूछे लेती हूँ, पर मैं दो दिन को चलूँगी, ज़रूर ।" इन्दिरा के पूछने की ज़रूरत नहीं पड़ी, मोहनलाल ने स्वयं आग्रह करके इन्दिरा को चन्द्रप्रकाश के साथ भेज दिया ।

चन्द्रप्रकाश अस्पताल चले गये थे । इन्दिरा ने नौकर से कहा, "गनेश धोबी का घर देखा है ?" नौकर बोला, "हाँ सरकार, यहीं थोड़ी दूर पर है । पर बाबूजी तो और से कपड़े धुलवाते हैं । गनेश को उन्होंने छुड़ा दिया ।" इन्दिरा बोली, "तू दौड़कर उसे बुला ला ।" गनेश ने आकर झुककर बहूजी को सलाम किया । इन्दिरा बोली, "गनेश, अच्छे रहे । कपड़े धोओगे ?" धोबी बोला, "हाँ सरकार, अच्छा हूँ । सरकार माई-बाप हैं, आपकी ख़िदमत न करूँगा तो खाऊँगा क्या ?" इन्दिरा बोली, "फिर तो साड़ी न ख़राब करेगा ?" गनेश बोला, "हुज़ूर, एक बार क़ुसूर हो गया । माफ़ करें । ऐसी ख़ता यदि फिर करूँ तो सौ जूते लगवावें ।" इन्दिरा दौड़ी गई और कैशबक्स से निकालकर एक दस रुपये का नोट गनेश के हाथ में देकर बोली, "यह है तुम्हारा इनाम ।" मन में बार-बार कह रही थी, "बेवक़ूफ़, पहले क्यों नहीं कहा था कि क़ुसूर हो गया । माफ़ करिए" ।

चन्द्रप्रकाश अस्पताल से लौटे तो देखें क्या कि गनेश हाथ में उल्लास से १०) का नोट थामे, एक बीसी, दो बीसी और पाँच कर रहा है । इन्दिरा कपड़े लिखने में मस्त थी । चन्द्रप्रकाश मुस्कराकर बोले, "क्यों रे, फिर झगड़ा करने आ गया ?" आँखें नचाते हुए गनेश बोला, "हुज़ूर, जोड़ी बरकरार रहे । ग़ुलाम टलनेवाला नहीं ।"

चन्द्रप्रकाश सीधे कमरे में चले गये । पीछे-पीछे इन्दिरा पहुँची । दोनों हँसते हुए एक दूसरे के भुजपाश में बँध गये । चन्द्रप्रकाश ने कहा, "है तू बड़ी पगली ।" इन्दिरा बोली, "क्षमा कीजिए, डाक्टर साहब । पागलपन में आप मुझसे बाज़ी मार ले गये । मैं हारी ।"



वन्दी के मन्दिर में वसन्त

आचार्य श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री

मधु बरसाता मधु सगन्ध, है खुला माधवी मधुशाला,
पी जी भर फिरती ढुलकाती, तू मादकता का प्याला!
बौराते रसमय रसाल, झूमतीं बाल-बल्लरियाँ,
मुँद जातीं पलकें कलियों की, कँपती मृदु मञ्जरियाँ!
अंग-अंग जाते सब सिहर-सिहर, उर पुलकित होता,
आतीं भर-भर आँखें, जी रह-रह सुध-बुध सब खोता।
विरह न तुझे किसी से, करना भी न किसी से सङ्गम,
कूक कोकिले, इच्छा-द्वेषरहित तू मुक्त विहङ्गम।
मैं भी मुक्ति-पथिक प्राणी हूँ, बँधी देह पर मेरी,
आत्मा? हाँ, वह भी वन्दी है, मानवता की चेरी।
बेमन मन को झुका रहा मैं, तू उन्मन है, कूक;
जकड़ी जाती कड़ी-कड़ी, केवल बल होता टूक।
उन्नत-शिर होने को करता नर-पिशाच ढिग नत-शिर,
बैठ-बैठ जाता मन, यौवन उभर-उभर आता फिर।

× × ×

"मुसकाती आती होगी ऊषा चुप मम आँगन में,
बाल-सखी-सी खोद-खोद रेणु भरे केश सघन में।
मीना मेरी दीना लघु भगिनी को जगा-जगाकर,
भाग-भाग जाती होगी गालों पर कुंकुम लाकर।
तब तू किसी रसाल-डाल पर बैठ कूकती होगी,
वह भी तुझ-सा बोल चिढ़ाने में न चूकती होगी।"
"तपी दुपहरी में जब सब लड़के घर सोते होंगे,
आँचल से ढँक मुँह अम्मा के, श्रम से रोते होंगे।
तब वह बाग-बाग में चुनती चलती नन्हें आम,
वह मेरी भगिनी है उसे न लगता होगा घाम।
खिन्न-मुखी क्षणभर छाया में बैठी होगी हाय,
ताकती हुई मेरा पथ झट इधर-उधर निरुपाय।
मा उसकी यह हवा—डुलाने लगती होगी अञ्चल,
कुहू-कुहू कह तब तू करती होगी उसे अचञ्चल।
तेरे ही स्वर से वह भी वैसा कह, हँसती होगी,
मेरी स्मृति की नागिन क्षणभर उसे न डँसती होगी।"
"चरागाह से गायें रँभा-रँभा जब आती होंगी,
शिशु-मण्डलियाँ घर-आँगन में शोर मचाती होंगी।



तब वह भी धीरे-धीरे आती होगी कुछ गाती,
अब कब आवेंगे भैया, सोचती और बिलखाती।
तेरा यह स्वर सुन पड़ता होगा हाँ उसे तभी जो,
हिलते होंठ भूलते होंगे फिर स्मृति शोक सभी तो।"
कूक कोकिले, बेसुध मैं भी बनूँ, न मुझे सुहाता,
विश्व निस्सत्व यह, रह-रह अहरह साहस खोता जाता।

× × ×

झन-झन झनक उठीं कड़ियाँ क्यों अभी अचानक इतनी,
आती ही जावेंगी नित-प्रति, घड़ियाँ ऐसी कितनी?
रग-रग ख़ून खौलने लगता, प्राण खलबला जाते,
फाँसी, मेरे भाई की? उफ़! नयन छलछला जाते।
तोड़-तोड़ दूँगा जो झन-झन झनक रहीं ये कड़ियाँ,
इतनी विपुल भुजाएँ बाँधेंगी मोती की लड़ियाँ?
मतवाली पशुता नाचेगी मानवता-छाती पर,
इतराएगी जड़ता मेरी ही प्रकाश थाती पर।
होगा तम का ही शासन ज्योतिःप्राणा वसुधा पर,
होगा इच्छाओं का ही प्रतिवार क्षुधा पर भोजन।
उड़ जा कोयल, मादक स्वर-लहरी की मुझे न चाह,
होगा अभी-अभी शहीद मेरा भाई वह, आह!

× × ×

एक बार बस एक बार मुन्नी से मैं मिल पाता,
गोद उठा दो-चार बार चुमकार उसे आ जाता,
चलते समय कहा था—"मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा,
घबराना मत, तुझ-सी बहन कहाँ फिर मैं पाऊँगा।"
सो इतने दिन बीते, कैसे वह एकाकी होगी,
बनकर मेरी बहन हाय! निसदिन पछताती होगी।
कोई घर में नहीं, कौन सुध उसका लेता होगा,
जीवन, अपनी तरणि अश्रु-अम्बुधि में खेता होगा।

श्रीमहादेवी वर्मा की कविता

(आलोचना)

पं० हरनारायण मिश्र एम्० ए०

कविता जीवन की अभिव्यक्ति है, उसकी आलोचना है। वह जीवन के जितने समीप एवं सन्निकट रहेगी, जीवन के तथ्य तथा उसकी वास्तविकता का उसमें जितना ही प्राचुर्य होगा, वह उतनी ही उत्कृष्ट, महत्त्वपूर्ण, आकर्षक तथा मर्मस्पर्शी हो सकेगी और उतनी ही चिर-स्थायी भी होगी। किसी कवि की कृति से हम क्यों प्रभावित होते हैं, उसकी रचना हमारे मर्म-स्थल को क्यों स्पर्श करती है, हम आत्म-विभोर होकर उसमें क्यों तन्मय एवं तल्लीन हो जाते हैं, इसका उत्तर एक ओर तो रचना की कला में अंतर्हित है और दूसरी ओर इस बात में कि वह जीवन की सच्ची अनुभूति पर निर्भर है, उसमें सजीवता है, स्वाभाविकता है।

यदि हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो अवश्य ही इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि दुःख ही जीवन का असंदिग्ध सत्य है, आह ही जीवन का रहस्य है, अश्रु ही जीवन की सारपूर्ण फ़िलासफ़ी है। वेदना और जीवन पर्यायवाची शब्द हैं। इन दोनों में भाई और बहन का सम्बन्ध है। अँगरेज़ी के अमर कवि शेली ने अपनी Misery (दुःख)-शीर्षक कविता में लिखा है--

Misery we have known each other
Like a sister and a brother.

वेदने ! मैं तुझसे पूर्णतया परिचित हूँ। तू बहन है और मैं तेरा भाई हूँ।

अपनी एक दूसरी कविता में उन्होंने लिखा है

Oh lift me as a wave, a leaf, a cl[oud]
I fall upon the thorns of life I bl[eed]

ऐ झंझा के विक्षिप्त झकोरे ! तू मुझे एक [लहर] के समान, एक पत्ती के समान, एक बादल के स[मान] उठा ले। मैं जीवन के कंटकों पर गिर प[ड़ा हूँ] और रुधिर की धारा मेरे शरीर से प्रवाहि[त हो] रही है।

यह केवल शेली के हृदय का चीत्कार [नहीं] यह तो विश्ववेदना की अभिव्यंजना है, मान[व] का करुण क्रन्दन है। इस संसार में अपने[को] सुखी समझना अज्ञान है, आत्म-प्रवंचना [है।] जीवन के साथ-साथ वेदना की उत्पत्ति हुई [है।] बालक जन्म लेते ही रो पड़ता है। उसका [रोना] ही जीवन-संगीत है। उर्दू के एक कवि ने [बहुत] और मेरी सम्मति में ठीक कहा है—

जब से इस आलमे-फ़ानी में हुए हम पै[दा]
किशवरे-दिल में उसी दिन से हुआ ग़म पै[दा]

यह ग़म ही हमारा शुभेच्छु सहचर है, [स]मित्र है। अमीर साहब फ़र्माते हैं—

असीर आया जो वक़्ते बद तो सबने राह ली ...
हज़ारों सैकड़ों में दर्दोग़म दो आशना ...



स्वयं संसार के रचयिता भगवान् कृष्ण का गीता में कथन है 'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्' - यह संसार अनित्य है, दुःखमय है, अतएव मेरा भजन करो।

भगवान् बुद्ध का भी कोमल हृदय संसार-व्यापी दुःख और पीड़ा से द्रवीभूत हो गया था। जीवन के क्रन्दन से वह आकुल हो उठे थे। उनकी फ़िलासफ़ी दुःखात्मक फ़िलासफ़ी थी।

श्रीमती महादेवी वर्मा की कविता पर इसी दुःखात्मक फ़िलासफ़ी की छाया है—छाया ही क्यों, उसका अत्यन्त गहन प्रभाव है। अपनी 'रश्मि' के प्राक्कथन में उन्होंने स्वयं लिखा है—"भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी संसार को दुःखात्मक समझने-वाली फ़िलासफ़ी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।" जीवन के उषा-काल में भगवान् बुद्ध की दुःखात्मक दार्शनिकता अथवा यों कहिए कि जीवन की एकमात्र अनुभूत वास्तविकता से असमय परिचय हो जाने का परिणाम यह हुआ है कि उनके हृदयोद्गार, उनकी सम्पूर्ण कविता दुःख में ही अनुरंजित है। मानव-जीवन के समान वह भी एक अश्रुपूर्ण, वेदना-प्रधान वस्तु है। उसमें हृदय की कसक है, मार्मिक चीत्कार है, मधुर पीड़ा है, सम्मोहक संगीत है और है वह माधुर्य, जो दुःखात्मक भावों के कलात्मक व्यक्तीकरण में छिपा रहता है। महाकवि शेली ने कहा है—

Our sweetest songs are those that tell of
saddest thoughts.

वेदनामय संगीत जीवन का सबसे मधुर संगीत होता है। यही कारण है कि महादेवीजी की कविता इतनी हृदयग्राही, मर्मस्पर्शी, प्रभावोत्पादक तथा शान्तिप्रदायिनी होती है। उनके हृदय का चीत्कार, हमारे हृदय के चीत्कार को शान्त करता है, उनकी वेदना हमारी वेदना को कम करती है, उनकी पीड़ा में हम अपनी पीड़ा को एक कर देते हैं, उनकी अश्रुमाला में हम अपने भी दो-चार आँसू पिरो देते हैं और अपने दुःख-सन्तप्त हृदय को शीतल कर लेते हैं, उनकी आह पर, सम्मोहक सुमधुर आह पर हम अनायास ही वाह कर देते हैं।

द दिल कितना पसन्द आया उसे
मैंने जब की आह उसने वाह की।

यह कवि के लिए एक अत्यन्त गौरव की बात है, उसकी उच्च कला की ही परिचायक है कि हम उसकी रचना में इतने तन्मय हो जाते हैं, एक प्रकार से हम स्वयं कवि हो जाते हैं, हममें भी उन्हीं भावों तथा मनोवेगों का उद्रेक हो जाता है, जो कवि के हृदय में है। यह कला की परा काष्ठा है, उसका चरम विकास है। अत्यन्त सफल कवि और कलाकार ही अपने भावों को इस प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं कि पाठकों के हृदय में भी वही भाव जाग्रत् हो उठें।

महादेवीजी की कविता का जब-जब मैंने अध्ययन किया है, वस्तुतः प्रत्येक अवसर पर हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् और कवि श्रीप्रोफ़ेसर मुन्शी रामशर्मा 'सोम' एम्० ए० की निम्नाङ्कित पंक्तियों का मुझे स्मरण हो आया है—

तुझे शूल भी फूल रूप हैं,
तिमिर बना मंगल प्रकाश है;
हाहाकार हँसी का मंदिर,
चिर दुख में सुख का विकास है।

महादेवीजी को दुःख अत्यन्त प्रिय तथा रुचिकर है। वह सदैव दुःख ही की माला गूँथा करती हैं। दुःख को वह जीवन की एक नितान्त आवश्यक वस्तु समझती हैं। वह मनुष्य को मनुष्यता का अधिकारी बनाता है और उसके हृदय में उस महत्ता एवं विशालता का



उद्रक करता है, जो देवत्व की जन्मदात्री है। निष्ठुर हृदय में वह दया-दाक्षिण्य का संचार करता है। करुणा-शून्य हृदय में वह करुणा के स्रोत प्रवाहित करता है। स्वार्थी को त्यागी और विलासी को योगी बनाता है। 'रश्मि' की उपक्रमणिका में महादेवीजी ने लिखा है, "दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख चाहे हमें मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर अधिक उर्वर बनाये विना नहीं गिर सकता।" महादेवीजी की कविता आद्योपान्त इसी भाव से ओतप्रोत है। स्थान-स्थान पर उन्होंने इसी भाव को व्यक्त किया है। आइए, उनकी दुःख-शीर्षक रचना का रसास्वादन करें—

रजतरश्मियों की छाया में धूमिल घन-सा वह आता
इस निदाघ से मानस में करुणा के स्रोत बहा जाता।
उसमें मर्म छिपा जीवन का
एक तार अगणित कम्पन का
एक सूत्र सबके बन्धन का
संसृति के सूने पृष्ठों में करुण काव्य वह लिख जाता।

× × ×

मृगमरीचिका के चिर पथ पर
सुख आता प्यासों के पग धर
रुद्ध हृदय के पट लेता कर
गर्वित कहता 'मैं मधु हूँ मुझसे क्या पतझर का नाता'।
दुख के पद छू बहते झर-झर
कण-कण से आँसू के निर्झर
हो उठता जीवन मृदु उर्वर,
लघु मानस में वह असीम जग को आमन्त्रित कर जाता।

ये पंक्तियाँ एक ओर तो महादेवीजी की कवित्व-शक्ति की द्योतक हैं और दूसरी ओर उनके उन विचारों की पुष्टि करती हैं, जिनका उल्लेख उन्होंने अपनी भूमिका में किया है। इन [illegible] शब्दों में दुःख जैसे गहन, गम्भीर एवं [illegible] विषय पर महादेवीजी ने कितना सुन्दर [illegible] विचारपूर्ण काव्यात्मक निबन्ध लिख दिया [illegible] मैं तो यही कहूँगा कि उन्होंने गागर में सागर [illegible] दिया है। रचना जितनी संक्षिप्त है उतनी ही [illegible] गर्भित भी। यह जीवन की पूर्णानुभूति का [illegible]णाम है। कवयित्री महादेवी ने उन्मीलित [illegible] सहृदयतापूर्वक जीवन का साक्षात्कार कि[illegible] और उन्हें इस संसार में प्रायः वेदना और [illegible] दृष्टिगोचर हुई है। उन्होंने सुख का [illegible] देखा है, उसके भी दर्शन किये हैं। अतएव [illegible] वास्तविक मूल्य एवं महत्त्व से वह पूर्णतया [illegible]चित हैं।

हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त [illegible]
दिल के बहलाने को ग़ालिब यह ख़याल अ[illegible]

सुख की हक़ीक़त का कवि को ज्ञान है। [illegible] बहलाने के लिए वह एक अच्छा खयाल है। [illegible] स्वप्न सुखद होते हैं। पर हैं वह स्वप्न ही। [illegible] एवं क्षणभंगुर। सुख जीवन की मरुभूमि [illegible] मरीचिका के समान है। जीवन की वह स[illegible] प्रतारणा है। उसका आध्यात्मिक मूल्य [illegible] नहीं है। वह हृदय को संकीर्ण एवं संकुचि[illegible] देता है। मनुष्य स्वार्थी, आत्म-सेवी तथा [illegible] हो जाता है और 'गर्वित कहता मैं मधु हूँ [illegible] क्या पतझर का नाता'। परन्तु दुःख। वह [illegible] का मर्म है, उसका अमिट सत्य है। [illegible] आध्यात्मिक मूल्य भी अत्यधिक है। वह [illegible] को उदार तथा संवेदनाशील बनाता है। [illegible] मनुष्योचित भावों का उदय करता है। 'हो [illegible] जीवन मृदु उर्वर' ठीक यही भाव इँगलैंड [illegible] मान Poet Laureate जान मेजफील्ड ने [illegible] किया है—Men are made human b[illegible] mighty fall. अँगरेजी के कवि ग्रे ने [illegible]



को Tamer of the human breast कहा है। स्वयं दुःख का अनुभव कर चुकने पर हम दूसरों के दुःखों को भली भाँति समझ सकते हैं और उनके प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति भी प्रदर्शित कर सकते हैं। यदि सुख अहंकारी हिटलर की अमानुषिक सत्ता का परिचायक है तो दुःख प्रेमावलम्बित साम्यवाद का संदेशवाहक है, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को पुष्ट करने-वाला है। 'लघु मानस में वह असीम जग को आमन्त्रित कर जाता'। महादेवीजी की यह रचना अत्यन्त सुन्दर है। मधुर संगीत, विचार-गाम्भीर्य तथा उक्ति-वैचित्र्य इसकी विशेषताएँ हैं। शब्द-सौष्ठव ऐसा है कि पंक्ति को पढ़ते ही मनुष्य की दशा का ज्ञान हो जाता है। गर्वित कहता 'मैं मधु हूँ मुझसे क्या पतझर का नाता'। ये शब्द अहंकार तथा मदान्धता प्रकट करते हैं। सुनते ही विदित हो जाता है कि यह किसी पागल का प्रलाप है।

अन्तिम दो छन्दों में सुन्दर विभिन्नता है। हम अभी उल्लेख कर चुके हैं कि दुःख महादेवीजी को अत्यन्त प्रिय है। दुःख के ही स्वर्ण-सूत्र में उन्होंने अपने भावों तथा विचारों को गूँथा है। उनकी कविता की प्रायः अधिकांश पंक्तियाँ अश्रु-मणियों से जटित हैं। उनकी दृष्टि में ईश्वर दुःख से प्रेम करता है, दुःख के गहन अन्धकार में ही वह मनुष्य को दर्शन देता है।

> करुणामय को भाता है
> तम के परदों में आना ;
> हे नभ की दीपावलियो,
> तुम पल भर को बुझ जाना।

महादेवीजी की इन सहज सुन्दर पंक्तियों में दैन्य है, अनुनय विनय है, हृदय की करुण पुकार है। हे नभ के नक्षत्रगण, हे तारिकाओ! तुम एक क्षण के लिए छिप जाओ। मेरे स्वामी को, मेरे करुणेश को तम के परदों में ही आना अच्छा लगता है। मुझे अपने प्रियतम से मिल लेने दो और मिलकर अपने सन्तप्त हृदय को शीतल कर लेने दो। महादेवीजी जीवन के क्रन्दन को एक क्षण के लिए भी नहीं भूलतीं।

> कह दे माँ अब क्या देखूँ
> देखूँ खिलती कलियाँ या
> प्यासे सूखे अधरों को,
> तेरी चिर यौवन-सुषमा
> या जर्जर जीवन देखूँ।
> देखूँ हिमहीरक हँसते
> हिलते नीले कमलों पर,
> या मुरझाई पलकों से
> झरते आँसू-कण देखूँ।
> तेरे असीम आँगन की
> देखूँ जगमग दीवाली।
> या इस निर्जन कोने के
> बुझते दीपक को देखूँ।
>
> × × ×
>
> तुझमें अम्लान हँसी है
> इसमें अजस्र आँसू-जल,
> तेरा वैभव देखूँ या
> जीवन का क्रन्दन देखूँ

वास्तव में, जैसा महादेवीजी ने लिखा है 'यह जग है विस्मय से निर्मित'। कहीं ख़ूब-ख़ूबी, कहीं हाय-हाय। एक ओर तो प्रकृति अपनी पूर्ण आभा में विद्यमान है वसन्त का अखंड साम्राज्य है, पक्षियों का मनमोहक कलरव है, सरिता का कलकल निनाद है, सौन्दर्य है, सुषमा है और दूसरी ओर जीवन का पतझर है, रुदन है, क्रन्दन है, वेदना है, पीड़ा है। मनुष्य अपनी निर्धनता देखे या प्रकृति की अनन्त सुषमा। कवि ने इस संसार का अत्यन्त सुन्दर चित्र अङ्कित किया है। उसके दोनों पक्षों को दिखलाया है, यद्यपि यह प्रतीत होता है कि जीवन का क्रदन ही उसके हृदय को द्रवीभूत करता है।



महादेवी वर्मा ने वास्तव में एक सच्चा कवि-हृदय पाया है। वह एक दार्शनिक कवयित्री हैं। उनके विषय अत्यन्त गम्भीर होते हैं। जीवन के जटिल प्रश्न आपके हृदय को आंदोलित करते रहते हैं। इस संसार की रचना किसने की और किस उद्देश्य से प्रेरित होकर की, मानव-जीवन और उसका लक्ष्य क्या है, इत्यादि-इत्यादि गहन विषय आपके ध्यान को आकर्षित करते हैं, और आप उन्हें सुलझाने में संलग्न रहती हैं। आप संसार को खुले नेत्रों से सहृदयतापूर्वक देखती हैं और आश्चर्य प्रकट कर देती हैं, अपने अनुभवों को मधुर मंजुल शब्दों में व्यंजित कर देती हैं। किसी दार्शनिक के समान तर्क-वितर्क नहीं करतीं। आश्चर्य कविता का जीवन है और तर्क उसकी मृत्यु। महादेवीजी की ?-शीर्षक रचना इसी आश्चर्य का ज्वलंत उदाहरण है। शीर्षक विचित्र तो अवश्य है, किन्तु है वह पूर्णोपयुक्त। वह इस बात का परिचायक है कि कवि इस संसार के विषय में कुछ नहीं जानता, वह उसका रहस्योद्घाटन करने में सर्वथा असमर्थ है, उसके हृदय में प्रश्न तो उठते हैं, किन्तु उनका सन्तोष-जनक उत्तर उसे नहीं मिलता—

हुआ क्यों सूनेपन का भान,
प्रथम किसके उर में अम्लान।
और किस शिल्पी ने अनजान,
विश्वप्रतिमा कर दी निर्माण।
काल सीमा के संगम पर,
मोम-सी पीड़ा उज्ज्वल कर।

× × ×

उसे पहनाई अवगुंठन,
हास औ' रोदन से बुन-बुन।
कनक-से दिन मोती-सी रात,
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात,
मिटाता रँगता बारम्बार।
कौन जग का वह चित्राधार,

× × ×

पोंछती जब हौले से वात,
इधर निशि के आँसू अवदात।
उधर क्यों हँसता दिन का बाल,
अरुणिमा से रंजित कर गाल।

अपने एकाकीपन का अनुभव करके किस ने इस विश्व की रचना कर डाली, क[...] चित्राधार है जो अपने कलापूर्ण चित्रों को [...] करता और फिर उन्हें मिटा डालता है, [...] कवि के हृदय में जन्म लेता है। वह इसका [...] ढूँढता है, पर कोई उत्तर उसे नहीं मिलता [...] विफल-प्रयास ही होता है। वह नहीं जान[ता] क्या रहस्य है—फिर सोचता है कि क[...] क्षणभंगुरता ही इस जीवन का मर्म है।

अथक सुषमा का सृजन विनाश,
यही क्या जग का स्वासोच्छ्वास।

× × ×

आदि में छिप जाता अवसान,
अन्त में बनता नव्य विधान;
सूत्र ही है क्या यह संसार,
गुथे जिसमें सुख-दुख जयहार।

जीवन एक महान् प्रहेलिका है। कवि [...] नहीं कि किन उपकरणों के संयोग से [...] दीप की रचना हुई है। दीपक का टिमटिमा[ना] उसके आश्चर्य का कारण है। उसका बुझ[ना] तो स्वाभाविक ही है, नैसर्गिक ही है। चारों [...] घोर वर्षा हो रही है। झंझावात के प्रबल [...] वृक्षों को समूल नष्ट किये दे रहे हैं। एक [...] प्रलयंकर तूफ़ान छाया हुआ है। वात-वि[...] होकर दीपक का बुझ जाना तो बुद्धि[...] किन्तु उसका जलते रहना आश्चर्यजनक [...] रहस्यपूर्ण है—

किन उपकरणों का दीपक,
किसका जलता है तेल!

किसकी वर्त्ति, कौन करता
इसका ज्वाला से मेल
× × ×
कुहरे-सा धुँधला भविष्य है,
है अतीत तम घोर ;
कौन बता देगा जाता यह
किस असीम की ओर
पावस की निशि में जुगुनू का—
ज्यों आलोक - प्रसार,
इस आभा में लगता तम का
और गहन विस्तार ।
इन उत्ताल तरंगों पर सह—
झंझा के आघात,
जलना ही रहस्य है बुझना—
है नैसर्गिक बात ।

जीवन-दीप का बुझना प्राकृतिक बात है । महादेवीजी को 'बुझ जाना' बहुत अच्छा लगता है। उनकी कविता में स्थान-स्थान पर हमें यह भाव दृष्टिगोचर होता है—

इस असीम तम में मिलकर
मुझको पल भर सो जाने दो
बुझ जाने दो देव ! आज
मेरा दीपक बुझ जाने दो

यह है महादेवीजी के हृदय की करुण पुकार। मृत्यु का वह स्वागत करती हैं । उनके निकट वह जीवन का काव्य है, उसका विकास है। अमरता को वह जीवन का ह्रास समझती हैं—

अमरता है जीवन का ह्रास
मृत्यु जीवन का चरम विकास

आप मर्त्यलोक की क्षणभंगुरता के लिए देव-लोक को ठुकरा सकती हैं। मिटने के अधिकार पर सब कुछ न्योछावर कर सकती हैं—

क्या देवों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार
रहने दो हे देव अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार

मृत्यु को कवींद्र रवींद्र ने भी जीवन का विकास ही माना है—Thou, the last fulfillment of life ! oh Death. अँगरेजी के एक अन्य कवि ने भी ऐसा ही विचार प्रकट किया है—Death is life's high meed.

'हश्र' साहब ने भी कुछ ऐसा ही कहा है—

जब से सुना है मरने का नाम ज़िंदगी है
सर से क़फ़न लपेटे क़ातिल को ढूँढते हैं

अपनी अंत-शीर्षक कविता में भी महादेवीजी ने यही विचार व्यक्त किया है। अंत आदि का पूर्व-गामी है। उसमें उद्भव-भावना अंतर्हित है—

विश्व जीवन के उपसंहार
तू जीवन में छिपा बेणु में ज्यों ज्वाला का वास
तुझमें मिल जाना ही है जीवन का चरम विकास
पतझड़ बन जग में कर जाता नव वसन्त संचार
इस अनन्त पथ में संसृति की साँसें करतीं लास
जाती हैं असीम होने मिटकर असीम के पास
कौन हमें पहुँचाता तुझ बिन अंतहीन के पार

अपना अंत करके ही हम अंतहीन से, परमात्मा से मिल सकते हैं ।

न पा सकते जिसे पाबंद रहकर क़ैदे-हस्ती में
सो हमने बेनिशाँ होकर तुझे, ओ बेनिशाँ पाया
—हसरत मोहानी

कौन हमें पहुँचाता तुझ बिन अंतहीन के पार। अन्त अथवा मृत्यु कोई भयंकर वस्तु नहीं। वह तो हमें परमात्मा से साक्षात्कार कराती है। सीमित और असीम एक हो जाते हैं।

शेली ने भी अपनी Adonais रचना में, जिसको उन्होंने कविवर कीट्स की मृत्यु पर लिखा था, मृत्यु की अत्याकर्षक फ़िलासफ़ी अङ्कित की है। उन्होंने लिखा है, कीट्स ! वह तो जीवित है, जाग्रत् है, स्वयं मृत्यु की मौत हो गई है। कीट्स तो प्रकृति के साथ, परमात्मा के साथ एक हो गया है। उसकी ध्वनि सर्वत्र गूँज रही है। वह सर्वत्र विद्यमान है।



He lives, he wakes—'tis Death is dead,
not he!

× × ×

He is made one with Nature : there is heard
His voice in all her music, from the moan
Of thunder to the song of night's sweet bird;
He is a pretence to be felt and known
In darkness and in light, from herb
and stone,—
Spreading itself when'er that Power may move
Which has withdrawn his being to its own;
Which weilds the world with never-wearied
love,
Sustains it from beneath, and kindles it above.

महादेवीजी की 'उस पार'-शीर्षक रचना भी उच्च कोटि की है और विसर्जन-भावना सुन्दरता-पूर्वक व्यक्त की गई है—

घोर तम छाया चारो ओर
घटाएँ घिर आईं घनघोर;
वेग मारुत का है प्रतिकूल
हिले जाते हैं पर्वतमूल;
गरजता सागर बारम्बार
कौन पहुँचा देगा उस पार
तरंगें उठीं पर्वताकार
भयंकर करतीं हाहाकार
अरे उनके फेनिल उच्छ्वास
तरी का करते हैं उपहास
हाथ से गई छूट पतवार।
कौन पहुँचा देगा उस पार

कवि ने तूफ़ान का अत्यन्त सजीव वर्णन किया है। उसका चित्र ही अङ्कित कर दिया है। शब्द भी ऐसे हैं कि उनको पढ़ते ही तूफ़ान तथा उसकी भयंकरता का ज्ञान हो जाता है। कवि इस संसार के उस पार जाना चाहता है। किन्तु वह अकेला और असहाय है। अन्धकार का साम्राज्य छाया हुआ है। नहीं जानता कि वह उस ... को कैसे पहुँचे जहाँ—

पुष्प में है अनन्त मुस्कान
त्याग का है मारुत में गान
सभी में है स्वर्गीय विकाश
वही कोमल कमनीय प्रकाश

जब वह इस दीन दशा में है, किसी ... की 'मधुमय मोहक तान' उसके कर्ण-कुहरों ... पड़ती है—

तरी को ले जाओ मँझधार
डूब कर हो जाओगे पार;
विसर्जन ही है कर्णाधार,
वही पहुँचा देगा उस पार

विसर्जन ही उस स्वर्ण प्रदेश के पहुँचने ... साधन है।

इशरते क़तरा है दरिया में फ़ना हो जाना

महादेवीजी की इस रचना को पढ़कर ... गुप्तजी की रचना का स्मरण हो आता है

मरण मेरे शरण आया है न लूँ क्या
और यह तनु दान भी उसको न दूँ क्या

इस प्रकार मैं हलका होकर सहज पार हो ज...
देह नहीं हूँ मैं देही हूँ तुझे शीघ्र ही पा...
बस मुझे विश्वास दे विश्वेश तू इस ...
मैं निहत्था जा रहा हूँ इस अँधेरी रात ...

महादेवीजी की रचनाओं में विचार-... मधुर संगीत तथा कोमल शब्द-विन्यास ... ही; उसमें वह भावुकता एवं मार्मिकता ... जो हमारे अन्तस्तल की रागात्मिका वृत्ति ... जाग्रत् कर देती है और कवि तथा पाठ... हृदयों में सामंजस्य स्थापित कर देती है। ... उसमें तल्लीन हो जाते हैं और उस लोको... आनन्द का अनुभव करने लगते हैं, जो एक ... कोटि का कवि, एक सफल कलाकार ही ... सकता है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि शब्द...

के हृदय से निकल रहे हैं। जब तक कवि स्वयं अपनी रचना में तन्मय नहीं हो जाता, वह अपने पाठकों के हृदयों में तन्मयता का भाव जाग्रत् ही नहीं कर सकता। सचाई कविता की कसौटी है। यह सचाई हमें महादेवीजी की कविता में मिलती है। उसमें स्वाभाविकता है, कृत्रिमता नहीं। कौन ऐसा सहृदय पाठक होगा, जिसकी हृत्तन्त्री महादेवीजी के इस करुण स्वर से झंकृत न हो उठे—

> अपने इस सूनेपन की
> मैं हूँ रानी मतवाली,
> प्राणों का दीप जलाकर
> करती रहती दीवाली
> मेरी आहें सोती हैं
> इन ओठों की ओटों में,
> मेरा सर्वस्व छिपा है
> इन दीवानी चोटों में॥
> चिन्ता क्या है, हे निर्मम !
> बुझ जाये दीपक मेरा ;
> हो जायेगा तेरा ही
> पीड़ा का राज्य अँधेरा

महादेवीजी की उद्धृत कविता की प्रथम चार पंक्तियों को पढ़कर अमेरिका की प्रतिभाशील कवयित्री Edna St. Vincent Millay की इसी भाव की कविता का स्मरण हो आता है—

> My candle burns at both ends
> It will not last the night ;
> But oh my foes and oh my friends
> It gives a lovely light.

महादेवीजी की रचनाओं में उन सब गुणों का बाहुल्य है, जो एक उच्च कोटि की कविता के लिए अपेक्षित होते हैं। उनमें भावों की सुकुमारता, विचारों की गहनता तथा कल्पना की ऊँची उड़ान है। आपके वर्णन अत्यन्त पूर्ण होते हैं। चित्र अङ्कित करने में तो आप अद्वितीय हैं। आपकी कविता पर आपके अनुभवों की स्पष्ट छाप है। भावुकता का तो कहना ही क्या—वह तो शायद आप ही के हिस्से में पड़ी है, और यों भी स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक भावुक होती हैं। अश्रुओं का तो निर्झर ही आपकी कविता में बहता है, यह भी कदाचित् स्त्रीत्व का परिणाम है। बक़ौल स्वर्गीय प्रेमचन्द के 'आँसू औरतों के पलकों में ही छिपे रहते हैं'। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि महादेवीजी के हृदय से कविता का स्रोत ही उमड़ा पड़ता है।

मन्दिर का पुजारी

श्रीरामरतन भटनागर 'हसरत' बी० एस्-सी०

उस क़स्बे और दूर-दूर के गाँवों में वही एक मन्दिर है। आप वहाँ जाइए—दूर से नये बने प्रासादों के ऊपर मन्दिर के कँगूरे पर एक पाँव से खड़े हनुमान् की मूर्ति आपको दिखाई देगी। उसका दूसरा पाँव, जो कभी हवा में पीछे टँगा रहा, टूट गिरा है और उसके दाहने हाथ पर सोने की एक कलसी थी, जो अब नहीं है। दूसरे हाथ में पीछे की ओर गिरी गदा अब भी है।

एक समय उस मन्दिर में एक पुजारी था। उसमें नया कुछ भी नहीं था। पूजा करनेवाले मन्दिर के अन्धविश्वासी, धर्मभीरु पुजारियों की तरह वह भी था, यहाँ तक कि उसके कपड़े-लत्ते और रहन-सहन में भी कोई भेद न था। वह लंबे क़द, गेहुएँ रंग और मुट्ठी भर मांस का स्वामी था। उसकी मूछों और भौंहों के बाल सफ़ेद हो चुके थे और उसके सिर पर बाल न थे। कह नहीं सकते, वह जन्म से गंजा था अथवा आयु की दुर्बलता के कारण उसके बाल गिर गये थे।

वह कब और कैसे वहाँ आ पड़ा, कोई कह नहीं सकता। हाँ, एक दिन आरती के बाद बूढ़े पुजारी ने उसको अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। लोग समझते थे पुजारी के कोई लड़का न था, उसने उसे गोद लिया था। धीरे-धीरे वह बड़ा होने लगा। पुजारी ने उसका विवाह कर दिया। उसके पुत्र-पुत्री हु[ए]... बूढ़े पुजारी का देहान्त होने पर वह वहां का... बन गया।

बचपन से उसका एक वाक्य था, जो... पिता पुजारी ने उसे सिखाया था। मंत्र की... वह उसकी जिह्वा पर रहता। जाने-अनजाने... उसे गुनगुनाता—राम की इच्छा।

जैसे स्वयम् सब देवार्पण कर रहा हो!... क़स्बे और दूर-दूर के गाँवों का वही एक... था। दूर-दूर से भक्तगण देवता के दर्शन के... आते। मन्दिर का दालान पूजार्थियों से... रहता। उनमें पुरुष होते, स्त्रियाँ होतीं... होते। वे भिन्न-भिन्न आयु, भिन्न-भिन्न... और भिन्न-भिन्न रूप-रंगों के होते। प्रसाद... बाँटते उसका हाथ थक जाता, परन्तु उसके... पर परिश्रम की झलक न आती। उसके... प्रसन्न मुख को देखकर ईश्वर-भक्ति के प्रति... आस्था उत्पन्न हो जाती थी। वह देवता... होकर उस पाँच बत्तियों की आरती को अ... में घुमाता, उसकी आँखों में अपार्थिव... भर जाती।

उसकी स्त्री साधारण स्त्री थी। दोनों... के देहान्त के समय उनकी मरण-शय्या पर... कर आँखों में आँसू लाते हुए उसने पति को... देखा था। पति ने दोनों बार कहा—...



इच्छा ! और स्त्री ने दोनों बार मन्दिर के देवता की ओर मुँह कर अविश्वास के भाव से कहा था—राम कहाँ हैं ? भगवान् कहाँ हैं ?

पुजारी का हृदय पत्नी के अविश्वास के शब्दों से काँप उठा था, परन्तु उसने पत्नी को उनके लिए भर्त्सना नहीं की थी।

अन्त में स्वयम् जब वह चलने लगी, अवतार को छाती से चिपटाकर बेचारी अभागी स्त्री ने कहा था—

राम तुम यदि कहीं हो—

पुजारी ने विचलित होकर कहा—राम कहाँ नहीं है ? तुम्हारा अविश्वास तुम्हें मार रहा है।

पत्नी ने फिर भी कहा—राम, तुम हो तो मेरे अवतार को चिरंजीवी करना। और फिर स्वभाव के अनुसार कहा था—

राम कहाँ हैं ?

पत्नी के देहान्त के बाद पुजारी ने अवतार की सेवा में और उसके पालन-पोषण में कुछ समय देना उचित समझा। उसने रोकर कहा—भगवान्, तेरी सेवा में चूक हो तो क्षमा करना। अवतार को चिरंजीव करना, मेरे राम।

अवतार जब बड़ा हुआ, पुजारी ने उसे धीरे-धीरे पूजा की विधियाँ बता दीं। धर्म-ग्रन्थों के नाम पर वर्ण-परिचय के सहारे तुलसी के मानस से उसका परिचय था। अवतार जब संस्कृत, बीन के बँधे कंठ से रामायण का उच्चारण करता, दिन की मंदिर-चर्चा से थका प्रौढ़ पुजारी बार-बार झूम-झूमकर कहता—राम की इच्छा, मेरे राम की ऐसी इच्छा !

अब अवतार मंदिर में पूजा में पुजारी का साथ देता, प्रसाद बाँटने में उसका हाथ बटाता। मंदिर में भीड़ लगी रहती और लोग पिता-पुत्रों से प्रसादी पाकर प्रसन्न-प्रसन्न कभी दो-चार मील चलकर घर लौटते।

और अवतार जब उस बार बीमार पड़ा और वैद्यों ने विसूचिका बताई, पुजारी का विश्वास एक बार डगमगा गया। उसने भी अपनी पत्नी के स्वर में कहना चाहा—परंतु सदा की तरह यही जिह्वा से निकला—राम की इच्छा !

वह कई दिन तक बिछौने से उठ न सका।

पुजारी के चिंतन की कोई वस्तु संसार में अब न रह गई थी। वह उदास रहने लगा, जैसे उसकी इंद्रियाँ शिथिल हो गई हों।

रामनवमी का दिन आया। भगवान् राम का जन्म-दिवस मंदिर में सदा धूम-धाम से मनाया जाता था। पुजारी ने शिथिलता छोड़ दी और मशीन की तरह पूजा के सँवारने में लग गया। लोग उसकी कर्मण्यता पर आश्चर्य करते। वह बार-बार कहता जाता—राम की इच्छा ! जैसे राम की इच्छा उसे उत्तेजना देती हो, उसके हाथ चलते न थकते, उसकी टाँगें दौड़ती न थकतीं।

उस दिन भगवान् के सिंहासन के सम्मुख झुककर, रात की आरती के बाद, उसने शुद्ध हृदय से कहा—"तू न्यायी है, राम ! मैंने अवतार से प्रेम किया था, तूने न्याय कर दिया। मेरा सब देवार्पण है। प्रेम करने का अधिकार मुझे केवल सीतापति से है। मैं अपना सारा अवकाश राम को दे डालूँगा।"

आरतियाँ फिर चमकने लगीं, मंदिर के घंटे दुगनी गति से बजने लगे और प्रसाद के लिए भीड़ लगी रहती।

वर्षों के बाद जब आरतियों में भीड़ कम होने लगी, बूढ़े और झुकी पीठ के पुजारी ने प्रश्न की आँखें उठाकर जानना चाहा—

एक भक्त ने कहा—"पुजारी बाबा, लोग गाँव छोड़कर शहरों में जा रहे हैं। गाँव में खेती से वह प्राप्ति नहीं होती। लोग खेती छोड़कर नौकरी करने निकल जाते हैं।

पुजारी ने आश्चर्य से उसे देखा।

स्वभाव के अनुसार पुजारी सवेरे मंदिर में देवता के सामने आ बैठता। देर रात गये तक



वह बैठा रहता। मंदिर में आनेवालों की गिनती गिर गई थी, और चढ़ावा उसके पेट भरने के लिए पूरा न पड़ता था। वह तब भी देवता के सम्मुख देखकर प्रतीक्षा करता।

एक दिन कुछ लोगों को बाज़ार में देखकर उसने पूछा—"ये कौन हैं?"

ये मिलें खोलेंगे। गाँव के लोग अब बाहर न जायँगे। यहीं मिलें खुल जायँगी।

पुजारी उस दिन भगवान् को देर तक सिर नवाता रहा। उसका हृदय आनन्द से भरा था। उसने सोचा—वे फिर आएँगे। देवता परित्यक्त न रहेंगे। अब की धूम-धाम से रामनवमी होगी।

परंतु वे न आये!

कुछ न समझकर पुजारी आश्चर्य से मुँह देखता रहता। मिलें चल निकलीं। गाँव के बाहर के लोग भी गाँव-क़स्बों में आ बसे थे। क़स्बा स्वयं अब नगर हो गया था, परंतु मंदिर के देवता की आरती अब भी सूनी-सी रहती। पुजारी प्रतीक्षा करता बैठा रहता। कई-कई दिन तक वह अन्न-जल ग्रहण किये बिना बैठा रहता।

वे अब क्यों आते, मेरे राम—वह वेदना से कहता—वे शायद धर्म में और देवता में विश्वास नहीं करते। वे क्या कभी नहीं आवेंगे? देवता क्या भोग लगाये बिना रहेंगे? देवता का प्रसाद क्या कोई ग्रहण न करेगा?

फिर रामनवमी का दिन था। कमर झुकाकर लाठी टेकता हुआ भगवान् के भोग के लिए सामान लेने जब वह बाज़ार में गया, उसने जगह-जगह मज़दूर देखे। वे रात-भर की मदिरा की ख़ुमारी के बाद काम पर जाते थे। कारख़ाने का देवता भोंपू का शंखनाद कर उन्हें अपनी पूजा के लिए बुलाता था।

दूकानदार ने कहा—"तुम तो बड़े दिन चले, पुजारी बाबा?"

पुजारी ने कहा—"देवता जब तक चलाये। भाई, यह क्या अनर्थ है, पूजा का दिन है।"

दूकानदार ने कहा—"सो तो रामनवमी... पुजारी! घर में सालिग्राम को जल दे... काम भी चलाना था, तुम्हारी ओर न आ... और अब तो वे ईश्वर और मंदिरों में कुछ... आस्था नहीं रखते!"

कौन?—पुजारी ने जिज्ञासा की!

वे ही जिनका राज्य हो गया, मज़दूर-कि... वे शराब पीते हैं, मिलें चलाते हैं, सभा... हैं और बस धर्म को उन्होंने तिलांजलि दे दी...

पुजारी ने वेदना के रुँधे कंठ से कहा—... कलयुग है, भाई! और कल तो सभा में—... प्रस्ताव पास किया है—दूकानदार ने कहा... वे ईश्वर में और मंदिर में विश्वास न... वे मंदिरों में कारख़ानों के दफ़्तर खोलेंगे।"

पुजारी का अंतर रो उठा। उसे अपने... के भविष्य का ध्यान कर रोना आ गया... लकड़ी उठाकर चलते हुए कहा—"राम... जो इच्छा!"

उस दिन राम के सिंहासन के आगे ... आँसू की गंगा बहा दी। फूट-फूटकर रो... कहा—"वे तुझे भूल गये हैं, देवता, उन्होंने... छोड़ दिया है।"

पुजारी प्रसाद लिये बैठा रहा। दिन ... गया, साँझ बीत गई, रात आधी हो चुकी... का प्रसाद पाने कोई न आया। उसने देव... और देखकर उसाँस छोड़ी, मंदिर के द्वार... से बंद किये और पड़ रहा। चिंता ओर... परिश्रम से वह मुर्दा हो रहा था। उसे ... गई। उसने एक आवाज़ सुनी। वह चौंक ... किसी ने द्वार पर दस्तक दी थी। जल्दी ... उसने द्वार खोल दिया।

एक भक्त था। चढ़ावे का प्रसाद लिये ... खड़ा था। पुजारी ने प्रसाद लिया, आरती ... की और देवता के सिंहासन की ओर बढ़ा—...

देवता का सिंहासन ख़ाली था और जहाँ ... क्षण पहले वह भक्त खड़ा था, उसी स्थान...

धनुष-बाण धारण किये भगवान् खड़े थे। भगवान् ने प्रसाद ग्रहण कर लिया।

× × ×

दूसरे दिन मज़दूरों के अनीश्वरवादी नेता जब मंदिर के सहन में पहुँचे, उन्होंने देखा—मूर्ति के सामने पुजारी सोया पड़ा है। उन्होंने उसे उठाने के लिए बढ़ना चाहा, परंतु तब मंदिर के किवाड़ बंद हो गये और उनके आगे गदा उठाये एक भयंकर अमानवीय मूर्ति ने स्थान ले लिया।



हमारे शासकों के देश में

बालकों की शिक्षा

श्रीलक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज

बच्चे राष्ट्र की मूल्यवान् सम्पत्ति हैं। भविष्य में देश की उन्नति अथवा अवनति का भार उन्हीं के सिर पर है। जातीय नौका के वे ही भावी केवट हैं। वे चाहे होशियारी से इसे उत्थानरूपी किनारे की ओर ले जायँ, चाहे अपनी असावधानी और नासमझी के कारण बीच में ही उसे असफलता की चट्टान से टकराकर चूर-चूर कर दें। कल का यह कार्य आज के बच्चों का हो ज़रूर जाता है, पर इस महान् उत्तरदायित्व को पूर्ण करने में उनको जो चीज़ सफल बनानेवाली है—जो उनमें इस गुरुतर अनुष्ठान को पूर्ण करने की क्षमता पैदा करनेवाली है—वह है उनकी शिक्षा। यह उनको कैसी मिलती है, अच्छी या बुरी—इस पर उनका न कोई क़ाबू है और न अधिकार। यह काम उनके आज के बड़े-बूढ़ों का है, सुधारकों का है, राष्ट्रवादी नेताओं का है, शासन-यंत्र के संचालकों का है और है विचारशील विद्वानों का। अतः बच्चों के ऊपर ज़िम्मेदारी का भार सौंपकर बड़े-बूढ़े भी हाथ झाड़कर अलग नहीं हो सकते; विशेषकर तब तक, जब तक कि वे उनके लिए समुचित शिक्षा का प्रबन्ध न कर दें—ऐसी शिक्षा का, जो उन्हें उस कार्य के सम्पादन के योग्य बना सके, जिसकी कि उनसे आशा की जाती है।

जिस देश के निवासी—बड़े-बूढ़े—अपने उक्त कर्तव्य का पालन नहीं कर सकते, वे आगे चलकर बच्चों से उत्तरदायित्व निभाने की आशा करें तो यह उनकी सरासर भूल है, भ्रम है। तेल तो ति[ल] से ही निकला करता है, भूड़ की बालू से न[हीं]। जो देश आजकल उन्नतिशील दिखाई पड़ते [हैं] वहाँ के लोगों ने पहले अपने कर्तव्य का [भली] भाँति पालन करके अपनी सन्तान को [योग्य] बनाया है। किसी देश की समृद्धि, शक्ति [और] सफलता को नापने की दो ही कसौटियाँ [हैं—] वहाँ की शिक्षा का आदर्श तथा उसकी व्यापक[ता]। अन्य प्रगतिशील राष्ट्रों की भाँति इँगलैंड [की] बहुमुखी सफलता का मूल भी वहाँ के शिक्षा[ल]यों—वहाँ की आक्सफ़ोर्ड और केम्ब्रिज यूनिव[र]सिटियों में ही छिपा हुआ है। ज़रा और बा[रीकी] से देखिए तो पता लगेगा कि इनसे भी अ[धिक] वहाँ की उन्नति का श्रेय वहाँ के उन प्रारम्[भिक] स्कूलों को है, जहाँ बच्चों को शुरू से यथो[चित] शिक्षा देकर यूनीवर्सिटियों और कालेजों के [लिए] उम्दा फ़सल तैयार की जाती है, जिससे ब[ढ़िया] जिन्स पैदा होती है। इस लेखमाला में 'भा[रत]' के पाठकों को वहाँ की शिक्षा-प्रणाली [और] तत्सम्बन्धी अन्य आवश्यक बातों का दि[ग्दर्शन] कराया जायगा। पाठक देखेंगे कि भारत [और] इँगलैंड की शिक्षा-सम्बन्धी अवस्थाओं में कि[तना] आकाश-पाताल का अन्तर है।

इँगलैंड का गोखले

शिक्षा-सुधार की ओर सबसे पहले [ध्यान] देनेवाला व्यक्ति था बरमिंघम का सुप्रसिद्ध [...]

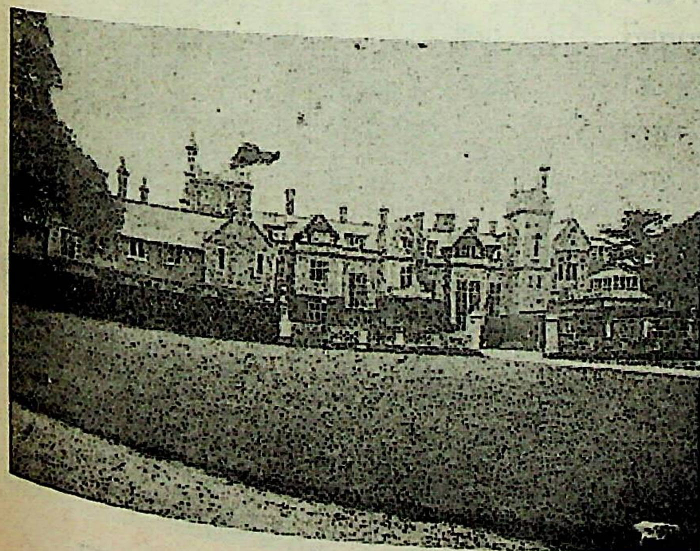
एक जोसेफ़ चेम्बरलेन। उससे पूर्व वहाँ भी शिक्षा की दशा सन्तोषजनक न थी। चेम्बरलेन को बरमिंघम नगर के उन असंख्य बालकों पर दया आई, जो जंगलियों की तरह अशिक्षित, नंगे बदन, नंगे पैरों और 'असभ्य जातियों की सन्तानों से भी बदतर दशा' में बरमिंघम की गलियों में मारे-मारे फिरते थे। जो दशा बरमिंघम की थी, वही किसी न किसी हद तक देश के प्रत्येक नगर के लिए कही जा सकती थी। चेम्बरलेन ने सर्वप्रथम उनकी शिक्षा के लिए आवाज़ उठाई, जिसकी गूँज देश के कोने-कोने में पहुँची। सन् १८६७ में उसने शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त ठीक किये, जिनका संक्षेप में सारांश यह था—

(१) सरकार के लिए बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करना उतना ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है, जितना कि उनके भोजन का।

(२) शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार किसी प्रकार के धार्मिक विचारों द्वारा संकुचित न किया जाय।

(३) बच्चों का यह जन्मसिद्ध अधिकार माता-पिता की इच्छा पर न छोड़ा जाय।

चेम्बरलेन के विचार स्कूलों की इमारतों के सम्बन्ध में भी बड़े उच्च थे। यद्यपि वह अपने सब विचारों को तो पूर्ण होते न देख सका, किन्तु दो बातों में उसे पूरी सफलता हुई। उसकी कोशिशों के परिणामस्वरूप इँगलैंड के स्कूलों से फ़ीस हटा दी गई और शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। चेम्बरलेन की तरह ही भारत में स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले ने शिक्षा के सम्बन्ध में आवाज़ ऊँची की थी, पर इस अभागे देश में आज तक गोखले की योजना पर अमल न हो सका। शायद यह एक स्वतंत्र और पराधीन देश के बीच रहनेवाला आवश्यक अंतर है। अस्तु।



एक आधुनिक स्कूल की इमारत

प्रारम्भिक शिक्षा के तीन विभाग

चेम्बरलेन के उस ज़माने को आज लगभग ६० वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके। तब से बराबर देश के बड़े-बड़े विद्वान् इँगलैंड के बच्चों की शिक्षा को आदर्श ढाँचे में ढालने का प्रयत्न करते रहे हैं। गत महायुद्ध के बाद तो शिक्षण-व्यवस्था में बड़े आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये, विशेषकर प्राइमरी शिक्षा का तो काया-पलट ही कर दिया गया। इन सब बातों का फल यह हुआ है कि वहाँ की शिक्षा-प्रणाली को यदि आदर्श नहीं कहा जा सकता तो कम से कम उसे सफल और ठोस कहने में किसी को आपत्ति न होगी। वहाँ पर शिक्षा की अवस्था कुछ अर्थों में तो चेम्बरलेन के विचारों से भी आगे बढ़ गई है और जहाँ उसके विचारों तक नहीं आ पाई, वहाँ उनके अत्यन्त निकट पड़ोस में अवश्य है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, वहाँ ५ वर्ष से लेकर १४ वर्ष तक की आयु तक बच्चों की शिक्षा अनिवार्य है। हाँ, अभिभावकों के लिए इस विषय में यह क़ानूनी बन्धन नहीं है कि वे अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में ही भेजें। सार्वजनिक शिक्षा तीन श्रेणियों में विभक्त है। वे ये हैं—

(१) इन्फ़ेन्ट स्कूल—(Infant

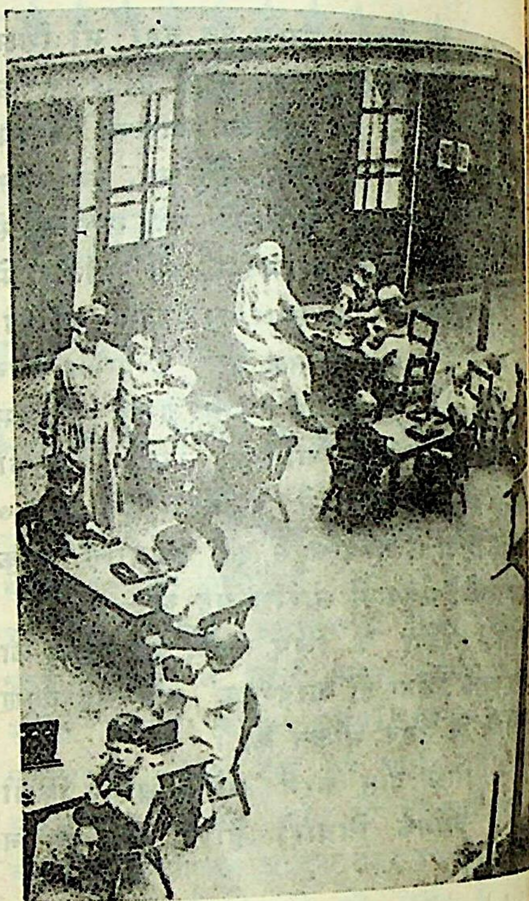
School) ५ वर्ष से लेकर ७ वर्ष की आयु के बच्चों की शिक्षा के निमित्त ।

(२) जूनियर स्कूल—(Junior School) ७ वर्ष से लेकर ११ वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए ।

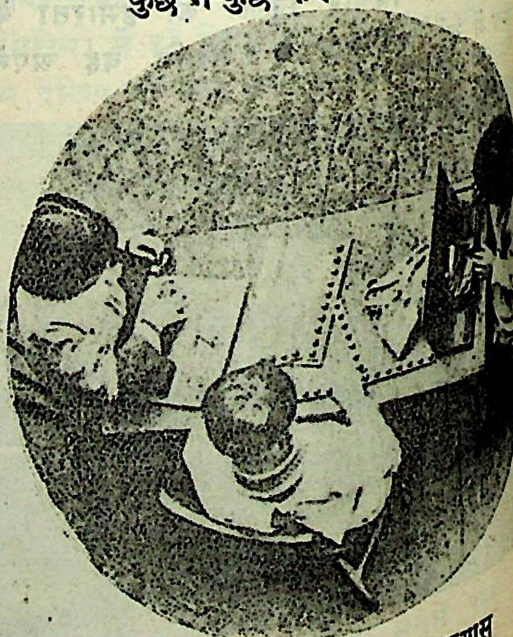
(३) सीनियर स्कूल—(Senior School) ११ वर्ष से लेकर १४ वर्ष तक की आयु के बच्चों के वास्ते ।

नर्सरी स्कूल

इन स्कूलों के अतिरिक्त पिछले १० वर्षों में देश के भिन्न-भिन्न भागों में नर्सरी स्कूलों को स्थापना हुई है, जहाँ २ वर्ष से लेकर ५ वर्ष तक की आयु के बच्चों (Pre-school Child) को शिक्षा दी जाती है । यह शिक्षा अनिवार्य नहीं है । इन स्कूलों का सूत्रपात एक विशेष लक्ष्य की पूर्ति करने को हुआ है । बड़े-बड़े कारबारी नगरों में ग़रीब मज़दूरों को तंग गलियों और गंदे तथा एक दूसरे से सटे हुए घरों में रहना पड़ता है । इसका बच्चों के स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता था । दूषित वातावरण में रहने के कारण वे अनेक रोगों के शिकार बन जाते थे । बहुत-से तो इसी कारण काल के ग्रास भी हो जाते थे । ऐसी मृत्युओं की संख्या काफ़ी ऊँची पहुँच गई थी । डाक्टरी जाँच कराई गई और रिपोर्ट यह आई कि इन मृत्युओं की संख्या बहुत नीचे लाई जा सकती है, यदि उनको इस गन्दे स्थान से निकालकर किसी उपयुक्त स्थान में रक्खा जाय और प्रारम्भिक तीन वर्ष की आयु तक उनकी तन्दुरुस्ती का विशेष ध्यान रक्खा जाय । इसी ध्येय की पूर्ति के हेतु उक्त स्कूलों की स्थापना हुई है । ये स्कूल प्रायः खुले हुए मैदान में स्थित होते हैं और प्रत्येक के पास में ही एक बग़ीचा लगा रहता है । स्कूल की इमारत बँगले की तरह की होती है । यहाँ बच्चों को भानेवाली ऐसी बहुत-सी सामग्री एकत्रित रहती है, जो बच्चों का मनोरंजन करने के साथ ही साथ उन्हें कुछ सीखने में भी सहायक सिद्ध होती है । भिन्न-भिन्न



नर्सरी स्कूल के बच्चे बाहर खुली हवा में बैठे कुछ-न-कुछ करने में संलग्न हैं



संख्या सीखने का प्रथम प्रयास



प्रकार के खिलौने, चित्र, मिट्टी और लकड़ी का बना हुआ अन्य शिक्षा-सम्बन्धी सामान, फूल तथा फुलवारी में काम करने के विविध प्रकार के औज़ार आदि अनेक ऐसी वस्तुएँ हैं, जिनका नर्सरी स्कूल में पाया जाना साधारण-सी बात है। बालकों को जीवित पशु-पक्षियों से स्वाभाविक प्रेम होता है। अतः स्कूल में उनके लिए पालतू पशुओं का रक्खा जाना भी आवश्यक है। इन स्कूलों में बालकों को किसी शासन-विशेष (Discipline) के अन्दर नहीं रक्खा जाता। वे अपनी इच्छा के अनुसार जितने समय तक किसी कार्य को चाहें कर सकते हैं—अपनी इच्छा के अनुसार ही बाहर आ-जा सकते हैं। स्कूल ही में उनको गाना और नाचना (Rlythmic dance) भी सिखाया जाता है।

यहाँ उनके स्वास्थ्य की ओर जितना ध्यान दिया जाता है, वह वास्तव में अत्यन्त ही लाभदायक है। स्कूल के अन्दर ही गर्म और ठंडे पानी के स्नानागार मिलेंगे। किन्हीं-किन्हीं स्कूलों में तो सबसे पहले बच्चों को स्नान ही कराया जाता है, फिर बाद में किसी दूसरे कार्य का आरम्भ किया जाता है। उनके कान, नाक, दाँत गले तथा मुँह की सफ़ाई का उचित ध्यान रक्खा जाता है। कुछ स्कूलों में प्रति सप्ताह एक नर्स आती है, जो प्रत्येक बच्चे के शरीर के इन भागों की परीक्षा बड़ी सावधानी से करती है। जहाँ किसी बालक की कोई चीज़ ज़रा भी ख़राब देखी जाती है, तुरन्त उसकी चिकित्सा का स्कूल की ओर से बढ़िया से बढ़िया प्रबन्ध किया जाता है।

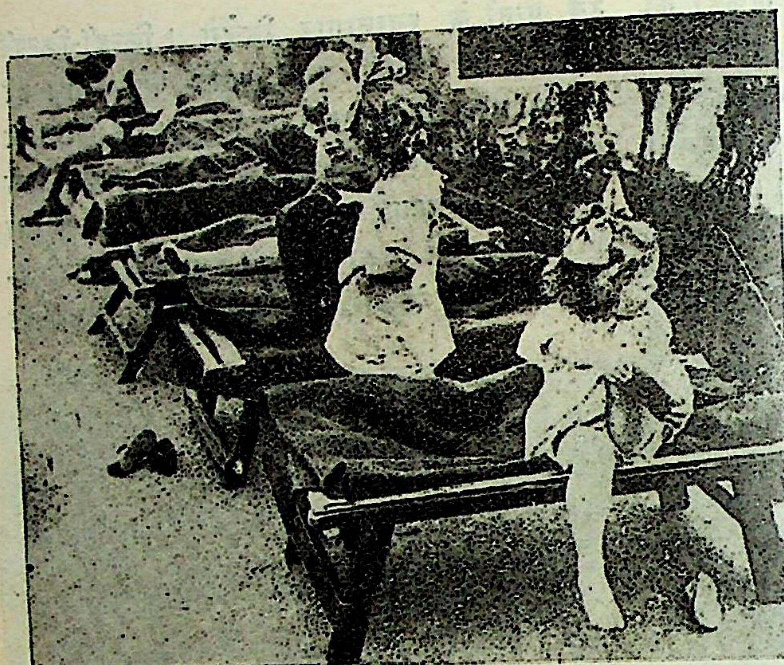


स्कूल में बच्चों के दाँत साफ़ कराये जा रहे हैं



बच्चों को स्नान कराया जा रहा है

इन नर्सरी स्कूलों में बच्चों को बलवर्द्धक ख़ूराक भी नाममात्र का चन्दा देने पर मिलती है। दूध और फल तो प्रायः दिन में कई-कई बार मिलते हैं। जिन बच्चों के माता-पिता अपनी निर्धनता के कारण व्यय करने में असमर्थ होते हैं, उनके चन्दे की दर में काफ़ी रियायत कर दी जाती है। कहीं-कहीं तो धनिक लोगों ने



तीसरे पहर के आराम की तैयारी हो रही है

इस प्रकार की सामग्री का प्रबंध अपने ही पैसे से कर दिया है। जहाँ पर इन सारी बातों की ओर इस प्रकार की सावधानी बर्ती जाती है, वहीं बच्चों के आराम की तरफ़ भी काफ़ी दिलचस्पी से काम लिया जाता है। दोपहर बाद उनके सोने का प्रबन्ध स्कूल ही में रहता है। प्रत्येक को अलग-अलग चारपाई मय स्वच्छ बिस्तर और ओढ़ने के वस्त्र के दी जाती है।

इस प्रकार इँगलैंड अपने छोटे बच्चों की ख़बरगीरी करता है। इधर भारत में क्या होता है? यह बात किसी से छिपी नहीं है। पाठक स्वयं आँख खोलें और देख लें। हाथ कंगन को आरसी क्या?

इन्फ़ेन्ट-स्कूल

इँगलैंड के इन्फ़ेन्ट-स्कूल उसके लिए वास्तव में गर्व करने के योग्य हैं। अँगरेज़ जाति ने उनको इस दशा में लाने के लिए सचमुच बड़ी दूरदर्शि और बुद्धिमानी से काम लिया है। अनिवार्य शिक्षा का प्रारम्भ यहीं से होता है। इन छोटे-छोटे बालकों को शिक्षा देने का यह कार्य बहुत महिला-शिक्षकों के सिर है। ये महि इस कार्य के लिए विशेष रूप से शिक्षित (Trained) की जाती हैं। जिस आयु तक के बच्चों से इन्हें काम पड़ता है, उनके विषय में उन्हें विशे मनोवैज्ञानिक अध्ययन करना पड़ है। स्कूलों में बालक-बालिकाओं की शिक्षा साथ-साथ होती है। समय की पाबन्दी, निर्भयता तथा अध्यवसा आदि जिन गुणों के लिए अँगरे



इन्फ़ेन्ट स्कूल के बच्चे क्लासरूम में काम कर रहे हैं

जाति विख्यात है, वे सब गुण इन्हीं स्कूलों में बालकों में उत्पन्न किये जाते हैं। कोई बच्चा कितनी ही दूर से आता हो, स्कूल का घंटा बजते ही स्कूल में दिखाई देगा। वास्तव में उसे घर से भेजा ही ऐसे समय पर जाता है कि वह स्कूल में ठीक समय पर पहुँच सके। बच्चे के लिए माता-पिता अपनी ओर से कोई बात उठा नहीं रखते। भारतवर्ष की-सी बात नहीं है कि जिस मदर्से में चाहा, बच्चे का नाम लिखा दिया और फिर छुट्टी पाई, उधर से बिल्कुल आँखें बन्द कर लीं। कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में शिक्षित माता-पिता उस संख्या में नहीं पाये जाते, जितने कि इँगलैंड में। यह बात किसी हद तक ठीक भी है, किंतु अनेक शिक्षित घरानों के माता-पिता भी इस तरफ़ उपेक्षा करते देखे जाते हैं।

शिक्षा के विषय

इन स्कूलों में बालकों को पढ़ाये जानेवाले विषयों का चुनाव बहुत सोच-समझकर किया जाता है। नीचे हम इस प्रकार के विषयों की एक नमूने की सूची (Curriculum) उद्धृत करते हैं—

(१) ज्ञानेन्द्रिय-शिक्षण (Sense training)
(२) भाषा
(अ) वाक्शिक्षा
(ब) कहानियाँ
(स) कविताएँ
(द) पठन
(इ) रचना (मौखिक)
(३) लेख
(४) संख्या
(५) व्यायाम
(६) मिट्टी के खिलौने, ड्राइंग, काग़ज़ की भिन्न वस्तुएँ, साधारण खिलौने आदि बनाने के हाथ के काम
(७) प्रकृति-निरीक्षण—वार्तालाप और भ्रमण (Nature Walks and Talks) द्वारा
(८) गाना, खेल और नाच आदि

प्रत्येक स्कूल में हाथ के काम करने का अलग कमरा होगा, ज्ञानेन्द्रिय-शिक्षण की पूरी सामग्री मिलेगी और गाना तथा नाच सिखाने के वास्ते एक हाल होगा।

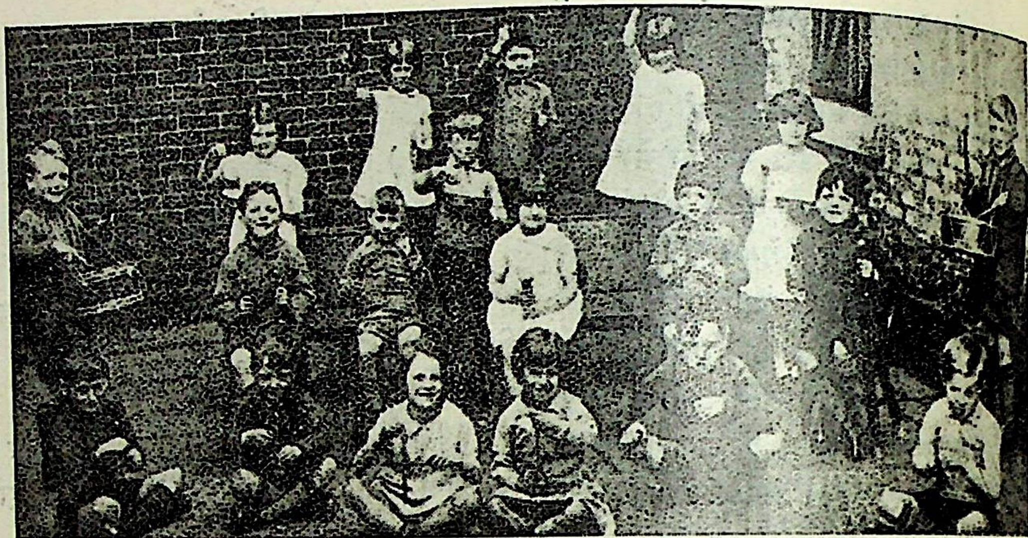
बुद्धि नापने के उपाय

जब बच्चे पहले-पहल इन स्कूलों में पढ़ने आते हैं तो एक विशेष प्रकार के प्रश्नों द्वारा उनकी बुद्धि की नाप कर ली जाती है। पाँच वर्ष की आयु के बालक की बुद्धि इस प्रकार के प्रश्नों द्वारा नापी जाती है—

(१) आज्ञाओं को समझना और तदनुकूल कार्य करना।
(२) साधारण वस्तुओं के नाम बताना।
(३) परीक्षक के कह चुकने पर दो-तीन संख्याओं को दुहराना।
(४) दो समानान्तर रेखाओं की समता करना और छोटी-बड़ी बतलाना।
(५) देखकर कोई साधारण भूमिति की शक्ल खींचना।
(६) नीला, लाल, हरा, पीला आदि रंगों को ठीक-ठीक पहचान लेना। आदि-आदि।



बच्चे कहानी सुन रहे हैं



बच्चों का बेन्ड

उपर्युक्त विधि से यह जान लिया जाता है कि अमुक बालक किस हद तक मेधावी है और स्कूल की शिक्षा से कहाँ तक लाभ उठा सकेगा।

पिछड़े हुए बालकों की शिक्षा

पिछड़े हुए बालकों का जैसा ध्यान इन स्कूलों में रक्खा जाता है, वह वास्तव में अनुकरणीय है। इस प्रकार के बालकों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) वे, जो किसी अस्थायी रोग-विशेष के कारण स्कूली शिक्षा से पूरा लाभ नहीं उठा सकते, अथवा वे, जो बीमारी के कारण या उम्दा ख़ूराक न मिलने के कारण शारीरिक वृद्धि न कर सकने की वजह से शिक्षा में पिछड़ गये हैं।

(२) वे, जिनको कोई स्थायी रोग है, जैसे बहरापन, दृष्टि-दोष इत्यादि।

(३) वे, जो वंश-परम्परागत अवस्थाओं के कारण पिछड़े हुए हैं।

जब इस प्रकार के बच्चे स्कूल में आते हैं तो स्कूल की महिला-शिक्षक कुछ दिनों तक बड़े ध्यान से उसका अध्ययन करती है। बच्चे के स्कूल आने से पूर्ववाले जीवन के सम्बन्ध में विविध प्रकार की पूछ-ताछ करती है और स्कूल-नर्स से भी पूरी सहायता लेती है। कहना न होगा इस प्रकार के बालकों को और बालकों से भि[न्न] प्रकार का कार्य दिया जाता है और उसके लि[ए] उन्हें समय भी यथोचित रूप से दिया जाता [है] ताकि बच्चे को स्कूली शिक्षा भार न मालूम प[ड़े]।

पाठन-विधि के कुछ नमूने

प्राइमरी स्कूल में जानेवाले भारतीय बच्चे[ों को] पाठकों ने देखा ही होगा। जहाँ स्कूल का स[मय] आया और बच्चे के खिलते हुए चेहरे पर उदा[सी] छा जाती है। कभी-कभी तो यह मलिनता [रोने] का रूप धारण कर लेती है। पर इँगलैंड के स्[कूल] जानेवाले बालकों के साथ बात ही बिल्कुल [उलटी] होती है। बड़ी हँसी-ख़ुशी से बालक बिना कि[सी] प्रकार का कष्ट अनुभव किये स्कूल जा रहा [है]। क्यों? कारण यह है कि वहाँ के स्कूलों में बाल[कों] के मन लगानेवाली बातों का बाहुल्य होता है[, और] उनके साथ प्रेम का व्यवहार किया जाता [है]। भारत में व्यर्थ ही इन स्कूलों में बच्चों की [डाँट-डप]ट रहती है, जिससे स्कूल को प्यार कर[ने के] स्थान में बच्चों को उलटी उससे घृणा हो [जाती] है। शिक्षा-विधि भी भारत के इन स्कूलों में [अब] भी वही बाबा आदम के समय की चली आती [है]।



स्कूल-हाल में बच्चों का खेल

पहले ही दिन से तोता-रटन्त का काम बच्चों को सौंप दिया जाता है। अब बालक पढ़े तो कैसे पढ़े?—अपनी शिक्षा में मन लगावे तो कैसे लगावे।

इँगलैंड के स्कूलों में भी कभी इस क़िस्म की बातें होती थीं, जब वहाँ के शिक्षकों का मूल-सिद्धान्त था—

Ram it in, Jam it in,
Children's heads are hollow.
Slam it in, Cram it in,
Still there is more to follow.

इसका संक्षेप में हिन्दी में अर्थ यह हुआ कि बालकों के दिमाग़ में जैसे भी ठूँस-ठाँस करके अपनी बातों को भर दो। जब इँगलैंड के स्कूलों की यह दशा थी तो वहाँ के बच्चों की भी स्कूल के प्रति उसी प्रकार की भावना रहती थी। क्लाइव (पलासी के युद्ध का नेता) उसी का एक उदाहरण है। पर अब दशा बिल्कुल बदल गई। अब तो ऐसे तरीक़े काम में लाये जाते हैं, जिनसे खेल का खेल और पढ़ाई की पढ़ाई (Play way) दोनों काम साथ ही सिद्ध हो जायँ। स्कूल ही में पढ़ाई के घंटों में बुद्धिवर्द्धक खेल कराये जाते



स्कूल की दूकान पर बच्चों को प्रारंभिक गणित की शिक्षा दी जा रही है

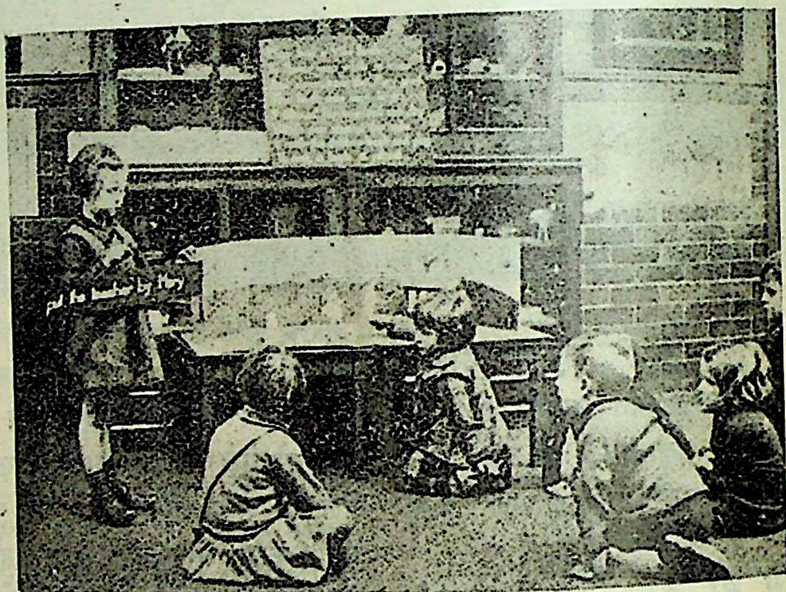


हैं। पास के चित्र में बच्चे स्कूल के हाल में ऐसे ही खेल रहे हैं।

फिर पढ़ना-लिखना सिखाने के लिए भी बड़ी-बड़ी मनोवैज्ञानिक, सुगम तथा मनोरंजक विधियाँ काम में लाई जाती हैं। गणित सिखाने के लिए स्कूल ही में एक छोटी-सी दूकान होती है, जहाँ जाकर बच्चे स्वयं क्रय-विक्रय करते हैं। दूकान में बनावटी तथा असली सिक्के मिलते हैं और बाज़ार से छोटे-मोटे खिलौने आदि एकत्रित रक्खे जाते हैं।

पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि इन बातों का बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ता होगा।

(क्रमशः



पढ़ना सीख रहे हैं

माधुरी के पाठकों से पोस्टेज माफ़

निराश मनुष्यों को अपार शक्ति प्रदान करनेवाला—

शुद्ध शिलाजीत पाक।

(सूर्यताप में रासायनिक प्रक्रिया द्वारा शोधित शिलाजीत मिश्रित)

जो लोग शिलाजीत को कटु होने के कारण सेवन नहीं कर सकते या जिन्होंने आजकल के कई नवीन विज्ञापनबाज़ों के अशुद्ध शिलाजीत को सेवन करके अपने धन तथा शरीर को नष्ट और शिलाजीत को बदनाम किया है उनके लिए हमने स्वर्णभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, रौप्यभस्म तथा हिमालय की नवीन मूसली, साल, मिश्री, केशर व कस्तूरी इत्यादि बहुमूल्य दवाइयों के योग से गङ्गाजल द्वारा यह पाक तैयार किया है। इसका सेवन करने से सर्वप्रकार के प्रमेह, स्वप्न-दोष, धातुक्षीणता, शीघ्रपतन, बहुमूत्र, नपुंसकता, वीर्य का पानी के समान पतला हो जाना तथा पाख़ाने में धातु टपक जाना, कमर, रीढ़ और पुट्ठों के दर्द तथा सब तरह के वातरोग दूर होकर संसारी सुखों का यथेष्ट आनन्द प्राप्त होता है। एक माह के सेवन करने योग्य ६० तोले के डिब्बे का मूल्य ६) रु० दो डिब्बे लेने से डाकख़र्च माफ़।

बुद्धि, स्मरणशक्ति और आवाज को बढ़ानेवाला—

ब्राह्मी (सरस्वती) पाक।

गङ्गा किनारे की छाया में सुखाई हुई शुद्ध ब्राह्मी बूटी मिश्रित।

वैद्यक-शास्त्र में ब्राह्मी बूटी के समान बुद्धिवर्धक दूसरी दवा नहीं है। हमारे प्राचीन ऋषि-महर्षि तो केवल इसी का सेवन करके ऐसे-ऐसे ग्रन्थ लिख गये हैं कि जिनका समझानेवाला भी आजकल मुश्किल से मिलता है। इसी के प्रभाव-से गौतम-से फ्लासफर, व्यास-से ज्ञानी, बृहस्पति-से पंडित होते थे। इसी का प्रभाव था जबकि शङ्कराचार्यजी ने दिग्विजय किया था। इसके सेवन से मनुष्य कुशाग्र बुद्धि, दूरदर्शी, अद्भुत स्मरणशक्तिवाले हो जाते हैं। प्रिय मित्रो! हम प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि इसका एक महीना भी व्यवहार किया जाय तो महीनों की भूली हुई बातें याद होने लगेंगी, भारी से भारी परिश्रम से भी मस्तिष्क निर्बल न होगा और न दिल घबरायगा। इसलिये गवैयों, नाट्यकारों, वक्ताओं, वकीलों, मास्टरों, विद्यार्थियों, एडीटरों जिनको कुछ देर पहले की बात भूल जाती हो स्मरणशक्तिहीन, बुद्धिहीन, मनुष्यों ने शतशः प्रशंसापत्र दिये हैं। एक माह के सेवन करने योग्य ६० तोले के डिब्बे का मूल्य ६) रु० दो डिब्बे लेने से डाकख़र्च माफ़।

शुद्ध च्यवनप्राश—दमा, क्षय, तपेदिक, फेफड़े और जिगर के लाइलाज रोगी इसी से आराम होते हैं। बूढ़ों को जवान और जवानों को बलवान्; शुद्ध गंगाजल तथा देशी खांड के योग से पवित्रापूर्वक बनने के कारण अत्यन्त गुणकारी और स्वादिष्ट होता है। प्रचारार्थ मूल्य केवल लागत मात्र ३) तीन रुपये सेर। २ सेर लेने से डाकख़र्च माफ़।

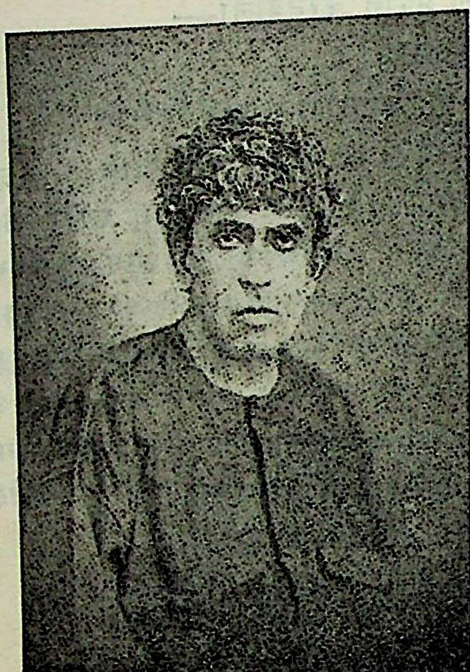
शुद्ध सत्वशिलाजीत—२२ वर्ष से हज़ारों बार की परीक्षा में इसको कभी निष्फल होते नहीं देखा। भारतवर्ष से लेकर विलायती टापुओं तक के वैद्य, डाक्टर, हकीम बराबर हमारे यहाँ से मँगाते और व्यवहार में लाते हैं। मूल्य प्रचारार्थ केवल लागतमात्र पाँच तोले की सुन्दर शीशी का २।) २ शीशी लेने से डाकख़र्च माफ़।

नोट—असली औषधियों के योग से बनने के कारण हमारी औषधियों का मूल्य लागत के मुक़ाबले में अत्यन्त ही अल्प है, इसलिये हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि हमारा विज्ञापन अन्य विज्ञापनों की तरह बार-बार नहीं छपेगा। जिन्हें आवश्यकता हो वे आज ही पता नोट कर लें। अधिक परिमाण में मँगानी हो तो थोकभाव का सूचीपत्र मँगवा लीजिये।

पता—**मंगलदत्त शुक्ल अध्यक्ष वनौषधिडिपो, पो० कनखल, यू० पी०**

हिन्दुस्थान से बाहर के ग्राहकों से भी इंडियन पोस्टेज माफ़

सन् १९३७ का ३ रंगी तस्वीर वाला



साधुवर टी० एल्० वास्वानीजी

शक्ति-आश्रम के संस्मर[ण]

(उत्तरार्द्ध)

श्रीह्वानचांग बी० ए०

आधुनिक और आधुनिक - विरोधी (Modern and Anti-Modern) पर वास्वानीजी का अति रोचक और मार्मिक व्याख्यान हुआ, जो प्रति रात्रि को लगभग एक सप्ताह तक जारी रहा। उसका सारांश हम नीचे देते हैं—

"टालस्टाय की डायरी का अन्तिम शब्द है— बचो ! बचो !! (Escape ! Escape !!) आधुनिकता से बचो। अमेरिकन दार्शनिक थारो का भी यही भाव था। और 'रिस्ट्रीटिस्ट स्कूल' के इन महापुरुषों की यह ध्रुव धारणा हो गई है कि आधुनिक सभ्यता केवल 'लस्ट'—शक्ति-लालसा की उपासक है और साथ ही हिंसक और क्रूर भी। पश्चिम के समस्त राष्ट्र जंगली ईसाइयत (Baptized Barbarism) से लबालब भरे हैं। और जैसा कि ग्रेट वार से प्रकट होता है आधुनिक सभ्यता को क्रूरता का भयानक रोग लग गया है और वह दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। उसके आसुरी विज्ञान, विषाक्त गैसों, कुटिल राजनीति और सभ्य (?) पुरु[षों] जुर्म-साहित्य में दिलचस्पी इस बात को सिद्ध [करने] में सहायक होती है। प्राचीन काल में भी [...] थी, पर वह इतनी सुव्यवस्थित न थी [...] आजकल के-से वैज्ञानिक और राजनीतिक [...] पुरुष उसके संचालक और अंग थे।

आधुनिक विज्ञान का ध्येय है प्रकृति-वि[जय] प्राचीन ऋषियों का ध्येय था प्रकृति-सह[योग] आधुनिक सभ्यता ने मनुष्यों को केवल संयमशील (Acquisional), मनोवि[कारी] (Passional) और एक कोलाहल मचाने[वाला] (Noisy) जानवर बना रक्खा है। अर्थ[-] संचय और स्वार्थपूर्ति यही इस युग की [...] है। हरबर्ट स्पेंसर के अनुसार योरप अपनी [...] लालसा, धनलोलुपता और क्षिप्रता के [...] पुनः जंगली (Rebarbarised) बन सकता है [...]

स्पेंग्लर (Spengelor) की प्रसिद्ध [...] 'पश्चिम की बर्बादी' (Decay of the [...] में तो साफ़ बता दिया गया है कि पश्चि[म] [...]



प्रकार मरणोन्मुख हो रहा है। जिस सभ्यता का कोई भविष्य, कोई ध्येय नहीं, उसका अनुकरण करना मूर्खता है।

यद्यपि पश्चिम रसायन-शास्त्र, भौतिक विज्ञान, खगोल-विद्या, ओषधि-शास्त्र, समाज-विज्ञान तथा साहित्य में ख़ूब पारंगत है—महान् है, परन्तु आत्म-विज्ञान, जीवन-विज्ञान में भारत के सम्मुख वह केवल एक अबोध शिशु है। 'सफल जीवन' की कुंजी अभी उसके हाथ नहीं आई है। 'जीवित रहो और जीवित रहने दो' का सिद्धान्त उसको अभी सीखना है। विना इसके कल्याण नहीं—और आगामी घोर प्रलयंकर विनाश से छुटकारा नहीं। एक दिन रौबट-मनुष्य (यांत्रिक मनुष्य) अपने स्रष्टा कारीगर मनुष्य को खा जायगा। यह आसुरी सभ्यता अपनी क़ब्र स्वयं ही खोद रही है।

अतः भारतीय नवयुवको, जिंदा रहना सीखो। संयम से रहो ; ब्रह्मचर्यव्रत धारण करो और साथ में पदार्थ (Matter) की भी अवहेलना न करो। इससे घृणा करने के कारण ही भारत अधोगति को प्राप्त हुआ है। गीता के मध्यवर्ती मार्ग का अनुसरण करो और सदैव आत्मनिरीक्षण करते रहो कि तुम परमात्मा की सेवा से विमुख तो नहीं हुए जा रहे हो।

नेपोलियन को मैं आधुनिक स्फूर्ति का प्रतीक मानता हूँ। योरप में ईसा के बाद नेपोलियन ही एक ऐसा महापुरुष है, जिस पर सबसे अधिक पुस्तकें लिखी गई हैं। वह शक्ति का पुत्र था और हाल की खोजों से पता लगा है कि वह उदर-पीड़ा से नहीं मरा, बरन् उसे विष दिया गया। सेंट हेलेना-जैसी एकाकी जगह उस शक्ति-पुत्र के लिए अति संकुचित थी। कर्मक्षेत्र में वह अद्वितीय है, केवल श्रीराम और श्रीकृष्ण से ही मैं इस क्षेत्र में उसकी तुलना कर सकता हूँ। उसने कौटुम्बिक राष्ट्रीयता का विरोध कर अपने अनेकों शत्रु पैदा कर लिये थे। पर उसकी पराजय का मुख्य कारण था उसकी वाद की अहम्मन्यता। अर्जुन, गुरु गोविंद, शिवाजी, अब्राहम लिंकन-जैसा अवैयक्तिक (Impersonal) केवल परमात्मा का यंत्रमात्र वह न बन सका। आधुनिक युग में हमें शक्ति और भक्ति दोनों की ही आवश्यकता है।"

एक दूसरे व्याख्यान (कर्म-वाद) में साधुजी ने बताया कि परमात्मा का यन्त्र बनने के लिए मनुष्य को महान् शक्ति और अडिग आत्म-शुद्धि, निःस्वार्थ प्रेम और कर्म-यज्ञ की आवश्यकता है। भारतीय नवयुवको ! हमें पुनर्निर्माण करना है। अतः इस कोटि के यन्त्र बनो। और इस ध्येय की पूर्ति के लिए पहले विकासवाद के इस त्रिविध पथ के अनुगामी बनो—

(१) पशु बनो—हाँ सशक्त उपयोगी पशु बनो—ख़ूब व्यायाम करके शरीर को सुदृढ़ एवं सहनशील बनाओ।

(२) फिर मनुष्य बनो—क्षत्रिय बनो—अर्जुन बनो।

(३) अन्त में अपने व्यक्तित्व को परमात्मा में लीन कर दो—अवैयक्तिक (Impersonal) बनो।

मैं देखता हूँ, भारत में आजकल सच्ची धार्मिकता नहीं है, शक्ति नहीं है, स्फूर्ति नहीं है, जीवन नहीं है। धर्म ही जीवन है। मास्टर एकरे (Acre) का, जो कि एक प्रसिद्ध जर्मन तत्त्ववेत्ता है, क़थन है कि मैं अपने बरतनों पर पालिश करते हुए अपने परमात्मा को पा लेता हूँ। एक कृषक उसे पाता है अपने खेत में, सिपाही युद्धक्षेत्र में। यदि कोई व्यक्ति अपने-आपको परमात्मा के यन्त्र बनाने का अधिकारी बना सके तो वह व्यक्ति-विशेष महान् और अथाह शक्ति का स्रोत बन सकता है।"

अन्य महापुरुषों की नाईं वास्वानीजी भी एक खरे 'गीताजीवी' हैं। प्रतिदिन एक घंटे तक वह

गीता के अमर वाक्यों की गम्भीर, स्पष्ट और हृदयग्राही विवेचना करते !

उन्होंने बताया कि गीता तो समस्त धार्मिक ग्रन्थों का निचोड़ है। यह तो एक सार्वभौम मानवी धर्म की मीमांसा करनेवाला बड़ा ही उत्तम ग्रन्थ है। गेटे द्वारा प्रतिपादित विश्वमान्य मानवी धर्म के सुन्दर सिद्धांतों का इसमें पूर्ण समावेश हुआ है। इसमें अमर, अमिट भारतीय संस्कृति बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्फुटित हुई है। व्यावहारिकता, वेदान्त, साहित्य, शक्ति और आत्मबोध का यह एक अद्वितीय रचनात्मक महाग्रन्थ है। मनुष्य-विश्लेषण का यह विश्वगीत इमर्सन, थारो, एड्विन, एनीबेसेन्ट आदि पश्चिमीय उद्भट विद्वानों तक को भी प्रभावित कर सका है और अलबरूनी, फ़ैज़ी, दारा, सैयद इब्राहीम-जैसे विद्वान् मुसलमानों को भी।

गीता न तो नकारता (Rejection) का आदेश करती है, न भोग का। प्रवृत्ति और निवृत्ति (सांख्य और जैमिनि स्कूल) का सुन्दर समन्वय कर गीताकार ने निष्काम कर्म का सिद्धान्त संसार को प्रदान किया, जो जीवन को समुन्नत करने के लिए अद्भुत है, दिव्य है।

सेशन समाप्त होने पर वास्वानीजी का दीक्षान्त भाषण तो उनकी अन्तर्वेदना से रंजित था—

"आत्मसंयम और नैतिक बल की प्रधानता से ही राष्ट्र का गौरव बढ़ेगा। मैं नवयुवकों से कहता हूँ, विलासिता को दूर करो, योगी बनो। विलासप्रिय होकर रहना मातृद्रोह है। माता को सबल पुत्रों—शक्तिशाली युवकों की आवश्यकता है। सरलता ही सच्ची सभ्यता है। सरल बनो। मनुष्यत्व इन्द्रिय-तृप्ति में नहीं, बल्कि आत्मसंयम से प्राप्त होता है। हिन्दुओं के धर्मग्रन्थों में तप ही सभ्यता और ज्ञान की अभिव्यक्ति का आधार है। युवको, क्या तुम्हें स्मरण है—हाँ, क्या तुम्हें अब भी महात्मा बुद्ध और उनके संघ की [illegible] आती है ? हमारा राष्ट्र, क्षत-विक्षत हो रहा है, भारत माता आहत हो रक्ताश्रु बहा रही है। [illegible] तो कल्पना करता हूँ ऐसे युवकों की—[illegible] पवित्र, त्यागी, कर्मठ युवकों की—जो [illegible] शीघ्र संकट हरें, उसकी बेड़ियाँ काटें। [illegible] परमात्मा का एक टूटा पात्र हूँ, तब भी [illegible] आत्मा के पुत्रो ! मेरे हृदय में आशा है, श्रद्धा [illegible] शक्ति द्वारा ही छुटकारा संभव है। अपने [illegible] और सद्गुरुओं में श्रद्धा रक्खो। मेरी आशा [illegible] युवकों में निहित है—वही भविष्य के [illegible] हैं। यूनान की भाँति भारत को भी [illegible] व्यायामशील प्रवृत्ति (Athletic Spirit) की आवश्यकता है।

मैं तो तुम सबमें इब्सन के गुरु निर्माता (Charac-ter builder) के पाने की आशा करता [illegible] "खटखटाओ और द्वार तुम्हारे लिए खुल [illegible] (Knock and it shall be opened [illegible] you) और युवक ही इसे खटखटायेंगे। [illegible] आत्मा का मन्दिर है। इसे दृढ़ और [illegible] रक्खो। सभ्यता केवल बौद्धिक (Intellectual) ही नहीं होनी चाहिए, बरन् व्या[illegible] (Athletic) भी होनी चाहिए। राम [illegible] हनुमान् के वीरतापूर्ण कामों से निरन्तर [illegible] ग्रहण करते रहो। शरीर-निर्माण (Body-build-ing) का संदेश देश भर में फैला दो। [illegible] सनातन युवावस्था (Eternal youth) [illegible] प्रतिनिधि अंकित किये जाते हैं। शरीर [illegible] यन्त्र है, और टूटा यन्त्र कार्यसिद्धि में [illegible] भारी रुकावट है। स्वस्थ बनो। सूर्यपुत्र [illegible] तेजवान् ! केवल स्वस्थ राष्ट्र ही जीवित रह [illegible]

यूनानी युवक मनुष्यत्व (Manhood) की डिग्री प्राप्त किया करते थे। एथेन्स का [illegible] मनुष्य इसके लिए सोलन की शपथ लिया [illegible]



था। भारतीयों को मनुष्य बनने (Man-making) की शिक्षा की आवश्यकता है— तपोशक्ति—Silent Service की! भारत का नवनिर्माण तपोबल से होगा—तपस्या-जनित शक्ति से, हाँ तपस्वी-राजनीतिज्ञों द्वारा। सुक़रात कहा करता था कि आत्मा को चीन्हो। महात्मा बुद्ध कहते थे, आत्मविजयी बनो। यही भारतीय आदर्श है, जिसके कारण भारत आज भी जीवित है।

उठो और जागो! ऐसा उपनिषद् का आदेश है! हाँ युवको - मेरे बच्चो—उठो! जागो!! और कर्तव्य-पथ पर जा डटो। जीवन का उद्गम रचनात्मक वलिदान है। निरन्तर प्रार्थना करते रहो कि परमात्मा तुम्हें वलिदानस्वरूप ग्रहण करे!!!

योरपीय युवक की विशेषताओं का वर्णन करते हुए साधुजी ने कहा कि भारतीय युवक को भी उन्हीं की भाँति जीवन का समालोचक होना चाहिए। जर्मनी के 'यंग गार्ड' और 'वान्डरवोगल' (घूमती चिड़िया)-नामक युवक-संघ पर पर्याप्त प्रकाश डाला। जर्मनी के ८ करोड़ की आवादी में १ करोड़ (६० लाख युवक और ४० लाख युवतियाँ) इसके सदस्य थे। स्त्रियाँ बड़ी सफल प्रचारक (Propagandist) होती हैं। उन्हीं के कारण इस आन्दोलन को बहुत कुछ सफलता प्राप्त हो सकी। उनके हृदय विरोध और विद्रोह (Protest and Revolt) की भावनाओं से परिस्रावित थे। और वह अधिकतर नकारवादी थे। विद्यार्थी अपने शिक्षकों से असंतुष्ट थे। वे कहते थे - "हमारे शिक्षकों का ज्ञान अति क्षुद्र है। भला वे हमें क्या सिखा सकते हैं। वे तो बस केवल बेहूदापन (Rubbish) ही सिखाते हैं। हम बजाय इन क़ैदखानों (स्कूलों) में जाने के उन्हें बर्बाद कर डालेंगे।" संक्षेप में वे शिक्षकों की स्वेच्छाचारिता (Despotism) के बहुत विरुद्ध थे।

'वान्डरवोगल' चिड़ियों की-सी स्वतन्त्रता चाहते थे। बाह्य संयम हानिकारक हो सकता है, पर आन्तरिक नहीं। उनमें आन्तरिक संयम था। ग्राम-ग्राम, बाजार-बाजार वह गाते-बजाते निकलते थे। वह प्रकृति के सम्पर्क में रहते थे। सरल जीवन, ग्राम-सेवा, वीर-पूजा उनके कार्यक्रम के मुख्य अंग थे। सारांश योरपीय युवक-संघों का मुख्य उद्दश्य था कर्मशीलता और शान्ति (Activism and unitism)। अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत और उच्च बना किसी प्रकार के बेहूदा रस्म-रिवाज को न मानो। समाज को समालोचनात्मक दृष्टि से देखो; क्योंकि तुम्हारा समाज से गहरा सम्बन्ध है। तुम समाज के प्रवल स्तम्भ हो, तुम युवक लोग भविष्य के निर्माता (Builders of tomorrow) हो। 'अर्वाचीन (Modern) के 'चैलेंज' को स्वीकार करने के लिए सदैव उद्यत रहो। पर यहाँ भारत में हम क्या करते हैं—कोरी बातें, और अधिक गप्पें! सच्ची आलोचना Cynnicism (मक्कारी) से उत्पन्न नहीं होती। उसका आधार तो विशुद्ध सहिष्णुता है। पर भारतीय विद्यार्थी अपना बहुत-सा समय व्यर्थ की राजनीतिक, आर्थिक, और सामाजिक नेताओं की नुक़्ताचीनी में खो देते हैं। उनकी आलोचना कभी रचनात्मक नहीं होती। आलोचक बनो, व्यावहारिक बनो, यही पश्चिम का संदेश है।

एक ओजमय व्याख्यान में साधुजी ने भारतीय विद्यार्थियों का 'युग-धर्म' निश्चित किया—

(१) उनको सबसे पहले अपने शरीर को (अधिक सेवा करने के उपयुक्त) खूब शक्तिशाली बनाना है (Service on a physical plane)। भारत माता कहती है कि यदि तुम मेरी सेवा करना चाहते हो तो पहले स्वस्थ बनो—आयुष्मान् बनो—शरीर को सुदृढ़, सहनशील

बनाना राष्ट्र का निर्माण करना है। अतः आत्मा के इस मन्दिर को सुन्दर, दृढ़ और दीर्घजीवी बनाओ।

(२) अपने नेताओं का आँख मूँदकर अनुसरण न करो। स्वतन्त्र विचारक बनो।

(३) वाचाल न बनो। डींग न मारो। मूक सेवा-कार्य करते रहो। केवल प्रस्तावों में ही विश्वास न रक्खो। व्यावहारिकता का ध्यान रखते चाहे केवल एक ही प्रस्ताव पास करो, तभी तुम Distraction के रोग से बच सकोगे।

(४) खादी पहनो। वह देश-सेवा का मुख्य स्तम्भ है।

(५) प्रति रविवार और गामयों की छुट्टियों में कोई देश-कार्य करो। मज़दूरों और कृषकों की शिक्षार्थ रात्रि-पाठशालाओं का संचालन करो। १५ युवकों का एक जत्था यदि मिलकर काम करे तो पढ़ाई में विशेष हर्ज न होगा। उनको पढ़ना, लिखना, सफ़ाई आदि के साधारण नियम सप्रेम सिखाओ।

(६) स्त्रियों को जाग्रत् करो। इससे स्वराज्य के अधिक निकट पहुँचोगे। स्त्रियों में ग़ज़ब की प्रोपेगेंडा-प्रवृत्ति होती है। प्रत्येक मुहल्ले में, गाँव में उनकी सहायता करो—संगठन करो। म्यूनिसिपैलिटी से 'मेजिक लैन्टर्न' लेकर उन्हें अभय और कर्मण्य बनानेवाले व्याख्यान दो। रामायण और महाभारत की स्फूर्तिप्रद कहानी द्वारा उनमें जीवन और जागृति के सुन्दर भाव भरो। दहेज की प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन करो। 'स्त्रियों की हीनता' के कुविचारों को नष्ट करो।

(७) अछूतों को अपनाओ। उनकी हर तरह से सेवा करो। उनको उबारो।

(८) 'सत्य' और 'उपयुक्त' के लिए सदैव आन्दोलन करो। इसकी चिन्ता न करो कि इससे कोई अप्रसन्न होता है!

अंतिम दिवस और विध्वंस

भारत युवक-संघ का प्रधान उद्देश्य था [illegible] युवकों का नवोत्थान। और जब वास्वानी[illegible] संघ के इस केन्द्रीय शक्ति-आश्रम की [illegible] की थी—युवकों का उद्यान लगाया [illegible] उसकी सफलता में वह अपने आदर्शों [illegible] देखते थे। उनकी आशा थी कि इस [illegible] देश में आश्रम को कभी आर्थिक सं[illegible] सामना न करना पड़ेगा; विशेष कर जब [illegible] वह स्वयं अपने पैरों पर खड़ा न हो[illegible] वास्वानीजी आश्रम में धीरे-धीरे घरेलू [illegible] (विशेषतः निर्धन श्रमिक वर्ग के लिए) करना चाहते थे। आश्रम का अपना फलों [illegible] 'फ़ार्म' 'टालस्टाय फ़ार्म' की कोटि का बनाना [illegible] थे। पर १९२९ के 'समर-सेशन' में स्वामी [illegible] को आश्रम के अधिक दिन और चलने में [illegible] के कारण से निराशा हो रही थी। वास्[illegible] किसी राष्ट्र का नवोत्थान (Renaiss[illegible] तब तक अपूर्ण रहता है, जब तक कि [illegible] दार्शनिकों, तत्त्ववेत्ताओं, सुधारक और [illegible] त्मिक महापुरुषों को उनके कल्याणकारी [illegible] वास्तविकता का रूप देने के लिए धनादि [illegible] अनुकूल परिस्थितियाँ उपस्थित नहीं [illegible] तेंतीस हज़ार रुपया प्रति मास धनिक [illegible] द्वारा प्राप्त होने पर ही सत्याग्रह-आश्रम [illegible] संचालन गांधीजी १५ वर्ष तक सफलतापूर्वक [illegible] सके थे। पर बीच-बीच में उन्हें आर्थिक [illegible] कारण घोर निराशा का सामना भी करना [illegible] था। पर गांधीजी महान् साधक हैं [illegible] परमात्मा ने सदैव ही उन्हें अपना यन्त्र ब[illegible] अनुकम्पा दिखाई है, अतः सहायता कर[illegible] 'खुद चले आयेंगे' नालों में असर होने [illegible] अनुसार किसी चुम्बकीय आकर्षण से खिंच[illegible] ही आते थे। वास्वानीजी भारतीय [illegible]

पश्चिमीय तथा पूर्वीय दर्शन, इतिहास और साहित्य के प्रकाण्ड पंडित हैं और मोशिये पाल रिचार्ड, प्रो० हैंस कोहन, अरनैस्ट हारविट्ज़, डा० बौनवैसिल (पश्चिमीय युवक संघों के नायक) तथा कला-मर्मज्ञ रोरिच आदि महापुरुषों ने वास्वानीजी को (A true prophet, a new messanger of the new spirit, a saint, a sage, a seer, a Rishi of the new India, a leader of Great Future) नवीन तरुण भारत का निर्माता करके माना है। शक्ति-आश्रम के दो मास के प्रोग्राम में ही सेवाव्रती युवकों का मानो कायापलट हो जाता था, और इस पूर्व और पश्चिम का सुन्दर समन्वय किसी भी विदेशी 'टूरिस्ट' को महाप्रभावान्वित कर देता था। वह तो वास्वानीजी का स्थान केवल गांधी और टैगोर के बाद ही आँकता! वास्वानीजी का उद्देश्य अधिक सांस्कृतिक, अन्तरराष्ट्रीय, रचनात्मक और एकांगी था—देश के युवकों का पुनरुत्थान। वास्वानीजी का जनता में प्रसिद्ध न होने का कारण है उनकी प्रोपेगेंडा-प्रवृत्ति से घृणा और केवल अँगरेज़ी में ही भाषण देना। उनकी राजनीति तो 'शक्ति' की राजनीति है शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक शक्ति से ही वह प्रत्येक भारतीय युवक को ओतप्रोत देखना चाहते हैं। वह तो सच्चे त्यागी सेवाव्रती भिक्षुकों और भिक्षुणियों की तलाश में थे और हैं।

पर शक्ति-आश्रम का रोचक कार्यक्रम केवल कालिजों के छात्रों को ही अधिक आकृष्ट कर सका; क्योंकि सेवाभाव रखनेवाले युवकों का, जिनका सेवा-क्षेत्र कुछ कारणों से सीमित रहता है, शक्ति-आश्रम में २ मास बिताना आदर्श ढंग से छुट्टियाँ मनाना था। पर आश्रम का व्यय क़रीब ३५) प्रति मास होने से निर्धन विद्यार्थी की वहाँ गुज़र नहीं हो सकती थीं। दो मास वहाँ रहने का आशय था १००) का व्यय। इससे हम देखते हैं कि केवल मध्यवर्ती श्रेणी (Meddle Class) के इने-गिने छात्र ही इससे लाभ उठा सके। फिर वही प्रोग्राम हर साल रखने से पहले सेशन में आये हुए विद्यार्थियों को कुछ नवीनता भी दिखाई न देती। अतः नये सेशन में पुराने छात्र बहुत कम आते। डाक्टर केशवदेव शास्त्री का आश्रम-स्थापना के दूसरे ही वर्ष असमय देहावसान हो जाने से तो वास्वानीजी का मानों दाहना हाथ ही जाता रहा। वास्वानीजी को योग्य सहकारी भी न मिल सके। स्वामी आनन्द से १९२९ के सितम्बर के सेशन में तीव्र मनोमालिन्य हो गया। १९३० के ग्रीष्म में 'बैन' को आनन्द स्वामी अकस्मात् हरिद्वार की एक धर्मशाला में अपना मुसाफ़िरी पता लिखाते मिले थे और पेशे के खाने में सफ़ेद खादी का कुर्ता पहने हुए इन चश्माधारी युवक को संन्यासी लिखते धर्मशाला का मैनेजर झिझक रहा था। 'बैन' से सप्रेम मिले जैसे दो नौका-भग्न मल्लाह मिले हों। साधुजी को Slave of Intution ecentric आदि-आदि कह अपनी नाराज़गी का परिचय दे रहे थे और कहते थे, भई, मैं तो आध्यात्मिक मौत मर रहा हूँ। १९२९ में आश्रम खुलने के एक सप्ताह पश्चात् ही एक हद दर्जे का चलता-पुर्ज़ा, बातूनी ईसाई नवयुवक आश्रम में दाख़िल हुआ और ऐसा मालूम होने लगा कि आश्रम के कार्यक्रम को वह बड़ा समालोचनात्मक दृष्टि से देखता है। वैसे था बड़ा मिलनसार। एक सप्ताह बाद उसकी पर्दानशीन बीबी भी आ पहुँची। इनके तर्ज़ को देखकर इन महाशय के सी० आई० डी० होने का सबको पूरा संदेह हो गया। पीछे पंजाब के एक बड़े धनिक पुरुष अपनी दो सुन्दर पुत्रियों सहित आश्रम में आये। वे बड़े सभ्य और सुसंस्कृत थे। उनकी छोटी लड़की को, जो मुश्किल से ९ साल की ज्ञात



होती थी, अपने भाई से तलाक़ (Divorce) के प्रश्न पर धाराप्रवाह अँगरेज़ी में बहस करते हमने, एक ऐसे वाद-विवाद के पश्चात्, वीर-मंदिर में देखा है। इन पर भी गवर्नमेंट का भेजा 'आश्रम के यमदूत' होने का संदेह होने लगा, यद्यपि वास्वानीजी के मासिक पत्र डान को देखने से यह मि० डावर साधुजी और उनके मिशन के बड़े शुभचिंतक ज्ञात होते हैं।

काँचघर के इस सैनीटोरियम में शायद फिर गवर्नमेंट ने सिस्टर पर कई बार ज़ोर डाला कि वह काँचघर को शक्ति-आश्रम के लिए किराये पर न उठायें। फिर भी १९३० तक आश्रम वहीं चालू रहा। राष्ट्रीय आंदोलन का सनसनीदार कर्मपरायणता का दिव्य युग था वह! वह स्फूर्तिमय १९३०! अतः अब कुछ सीखने का समय न था—उस वर्ष केवल सात या आठ विद्यार्थी आये थे। सेक्रेटरी सत्यार्थीजी थे। १९३१ में आश्रम हरिद्वार में रहा। इस बार अँगरेजी संन्यासी स्वामी ज्ञानानन्द सेक्रेटरी थे।

इसके पश्चात् वास्वानीजी उत्तराखंड को त्याग कला-मर्मज्ञ रोरिच के शब्दों में 'एक सफल शिक्षा-क्षेत्र' (सेंट मीरा और शक्ति-स्कूल के रूप में) अपनी जन्मभूमि हैदराबाद (सिंध) में स्थापित करने के लिए चले आये, और भारत-युवक-संघ एवं पाँच सौ शक्ति-आश्रम भारत भर में स्थापित करने का उनका विराट् स्वप्न पूरा न हो सका।

फिर भी साधुजी के इस प्रयोग को असफ[ल] नहीं कहा जा सकता। उनका शक्ति, त्या[ग], बलिदान, सेवा, सरलता, तपस्या, संयम, श्रद्धा तथा रचनात्मक सुसंस्कृत राष्ट्रीयता (Creati[ve] Cultural Patriotism) का अमर सं[देश] जिन युवकों को प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हु[आ] है, वे तो अवश्य ही नवनिर्माण के पथ पर [चल] लगे होंगे। और इस ग्राम-पुनरुत्थान के यु[ग में] क्या वह अपने-अपने ग्राम और मुहल्लों में 'सांस्कृतिक सैनीटोरियम' खोलने की शुभ कल्[पना] न करते होंगे?

वास्वानीजी यद्यपि मातृभाषा में व्याख्या[न न] दे सकने के कारण श्रद्धालु साधारण जनता केवल विनीत भाव से हाथ जोड़कर ही श्रद्धा[-] भाव से भले बैठ जाते हों, पर जिन्होंने उन[के] दर्जनों पुस्तकों को पढ़ा है और अँगरेजी के व्या[-] ख्यानों को सुना है, वही जानते हैं कि उनका [प्रत्येक] एक शब्द उनकी अंतर्वेदना से रंजित है, [पवित्र] बनानेवाला है और एक शक्ति-स्फुलिंग है! [हमें] आज भी यही आशा है कि आश्रम में एकत्रि[त] सैकड़ों 'वान्डर-वोगल' (घूमती चिड़िया) [उस] शक्ति-संदेश को भारत भर में फैला भारत के [उत्]थान में सहायता करें।

क्या कभी फिर उस 'आशियाने' का आ[बाद] होगा? क्या कभी फिर वह उजड़ा 'आशिया[ना] आबाद होगा?

आज स्वप्न में भी वह स्वप्न याद आता है!

अन्तरराष्ट्र

श्रीशीतलासहाय बी० ए०

१—भयंकर समझौता

अन्तरराष्ट्रीय जगत् में इस मास की सबसे भयंकर घटना जर्मनी और जापान का सुलहनामा है। प्रकट यह किया गया है कि इस सुलहनामे का उद्देश्य साम्यवाद के उग्र रूप को सहयोगपूर्वक दबाना है, किन्तु दुनिया ने इसका मतलब यह समझा है कि जापान और जर्मनी रूस को पस्त करने के लिए तैयारी कर रहे हैं। इस सन्धि ने सार्वभौमिक युद्ध को निश्चित रूप से निकटतर कर दिया है। यद्यपि इसकी शर्तों के शब्द मधुर और परिष्कृत हैं, किन्तु उनका प्रभाव योरप के राजनीतिक जगत् में अत्यन्त कटु और भयंकर पड़ा है। ख़बर है कि जर्मनी और जापान ने इस बात की भी कोशिश की थी कि इस समझौते में ग्रेटब्रिटेन भी शामिल हो जाय, लेकिन ब्रिटिश शासकमण्डली ने शामिल होना उचित नहीं समझा। इस समझौते में इटली की पूरी-पूरी सहानुभूति है।

जापान और जर्मनी का यह सुलहनामा इस उद्देश्य से हुआ है कि साम्यवाद के उग्र रूप को अर्थात् कम्यूनिज़्म को संसार से यथासम्भव नेस्तनाबूद कर दिया जाय। जर्मनी में साम्यवाद के विरुद्ध बड़ी ज़ोरदार लहर पाई जाती है। वहाँ के लोग इस राजनीतिक सिद्धान्त का सत्यानाश करना अपना धार्मिक कर्तव्य समझते हैं। जापान की मनोदशा भी इसी प्रकार की है। इस समझौते के पीछे एक बात और छिपी है। जर्मनी का या यों कहिए नाजीदल का उद्देश्य यह है कि दुनिया भर की जर्मनभाषा-भाषी जनता जर्मन Reich के अधीन हो जाय और उसे पूर्वीय प्रदेश में फैलने का अवसर मिले। यह बात उसी समय सम्भव है, जब सोवियेट प्रजातंत्र के अन्तर्गत देशों से बड़े-बड़े भाग, जिनमें कच्चे माल की बहुतायत है, निकल जायँ और जर्मनी में शामिल हो जायँ। जर्मनी ने जापान से इसी लिए समझौता कर लिया है। अवसर आने पर जब जर्मनी रूस पर आक्रमण करेगा, तब जापान रूस की बहुत काफ़ी शक्ति को पूर्वीय क्षेत्र में फँसाये रक्खेगा और जर्मनी को सुविधा मिलेगी। इस सुलहनामे से जापान का फ़ायदा यह है कि अब जापान चीन पर विना खटके अपना प्रभुत्व जमाता जायगा। रूस हस्तक्षेप नहीं कर सकता। अमेरिका बोल नहीं सकता।

"स्टेट्समैन" का ख़याल है कि हिन्दुस्तान को भी इस समझौते से शंकित होना चाहिए। शायद इस पत्र को यह आशंका है कि चीन पर क़ब्ज़ा कर लेने के बाद जापान हिन्दुस्तान पर अपनी गृद्ध-दृष्टि डालेगा।

रूस में इस जर्मन-जापान-संयोग से काफ़ी तहलका मचा है। जिस दिन इस सुलहनामे की



ख़बर प्रकाशित हुई, रूस ने जर्मनी का चैलेंज स्वीकार करते हुए अपनी सैनिक-शक्ति की प्रबलता से दुनिया को वाक़िफ़ कर देना मुनासिब समझा। एडमिरल आरलफ़ (Admiral Orloff) ने, जो रूसी जल-सेना के प्रमुख हैं, सोवियेट कांग्रेस के सामने भाषण देते हुए इस सम्बन्ध में निम्न-लिखित शब्द कहे—

"१९३३ से सोवियेट जलसेना में बहुत बड़ी उन्नति हो गई है। पनडुब्बियाँ सतगुनी बढ़ गई हैं, वारशिप तिगुने हो गये हैं, Coastal artillery ७५ गुनी, Anti aircraft दुगने, और Naval हवाई शक्ति ५ गुनी हो गई है। पैस्फ़िक और बालटिक की पनडुब्बियों का बेड़ा अब इतना तेज़ है और पानी में इतनी देर तक डूबा रह सकता है कि दुनिया में किसी और देश का बेड़ा इसका मुक़ाबला नहीं कर सकता (They are ready to annihilate any enemy approaching our coast) और यह तैयार बैठे हैं कि अगर कोई दुश्मन हमारे समुद्री तट पर आवे तो उसका सत्यानाश कर डालें।" यह धमकी जर्मनी को दी गई है। दूसरा भाषण इसी सम्बन्ध में सुनिए—

"हज़ारों हवाई जहाज़ और हज़ारों टैंक स्टालिन की गवर्नमेंट की रक्षा करने के लिए तैयार बैठे हैं। यह शक्ति यही नहीं कि दुश्मन को रूस की सरहद पर ही परास्त कर देगी, बल्कि दुश्मन को उसके देश में भी नष्ट-भ्रष्ट कर डालेगी।" (कैप्टेन कज़ाको)

हेराल्ड ट्रिब्यून की राय है कि "जर्मन-जापान-समझौता घटनाओं की श्रृंखला की पहली कड़ी है, जिसके कारण अमेरिका भी सार्वभौमिक युद्ध में घसिटे बिना नहीं रह सकता। हम ऐसे समझौते को देखते हुए चुपचाप नहीं बैठ सकते। इसके कारण जापान एशिया में मज़बूत हो जाता है और उसे इस बात का मौक़ा मिल जाता है कि वह फ़िलिपाइनद्वीप पर क़ब्ज़ा कर ले और उसके आगे भी बढ़े। अगर जर्मनी कभी यह चाहता कि अमेरिका उसका फिर दुश्मन बने और अपने पुराने मित्र-दल की ओर झुक जाय तो इससे बेहतर दूसरी तरकीब उसके लिए थी ही नहीं। उसने अब यह बिलकुल निश्चय कर लिया है कि योरपियन युद्ध सार्वभौमिक युद्ध हो जाय। इससे भी अधिक पागलपन की कल्पना कोई कर सकता है ?"

× × ×

२—मिसर की स्वतंत्रता

नवम्बर के दूसरे सप्ताह में ब्रिटेन और मिसर की संधि मिसरी पार्लियामेंट द्वारा स्वीकृत हो गई। २०२ मेम्बर इसके माफ़िक थे और ... ख़िलाफ़। ब्रिटिश-पार्लियामेंट के दोनों भागों अर्थात् कामन्स और लार्ड्स सभाओं ने भी संधि को निर्विरोध पास कर दिया है। ... इस संधि का श्रेय और मिसर को स्वतंत्रता दिलाने की ज़िम्मेदारी इटली के डिक्टेटर सीनियर मुसोलिनी की है।

योरपीय महायुद्ध के बाद आज पन्द्रह वर्ष से मिसर और इँगलैंड के ताल्लुक़ात कटु से कटु होते रहे। आन्दोलन उठे, बलवा-फ़साद हुए, ... और समझौते की जितनी कोशिशें हुईं, नाकाम रहीं। स्वतंत्र होने की राष्ट्रीय शक्ति उठी, ... गई और फिर उठी। अन्तरराष्ट्रीय शक्ति ने ... मिसर को आज़ाद कर दिया।

वह अन्तरराष्ट्रीय शक्ति क्या थी? ब्रिटिश गवर्नमेंट ने देख लिया कि भूमध्यसागर में ... दिन प्रति दिन प्रभावशाली होता जाता ... असंतुष्ट मिसर को भड़ी पर चढ़ाकर इटली ब्रिटिश साम्राज्य को किसी भी समय भयंकर नुक़सान पहुँचा सकता है। स्वेज़ नहर, जो ब्रिटिश-साम्राज्य के लिए जीवन-रक्त-प्रवाहिनी नाड़ी है, किसी दिन ख़तरे में पड़ जा सकती है। असन्तुष्ट मिसर को इसलिए सन्तुष्ट करो। उसे आज़ादी दो।

ब्रिटिश-राजनीतिज्ञों ने इसलिए मिसरियों

समझाया। उनको उनके देश का लाभ बताया। उन्होंने कहा कि अगर मिसर देश से ब्रिटिश-सेना बिलकुल हटा ली गई तो इटली मिसर को हज़म कर जायगा। मिसर स्वतंत्र होने के बजाय इटली के अधीन होकर रहेगा। इसलिए ब्रिटिश-सेना को ऐसे-ऐसे स्थानों में रहने दो, जहाँ तुम्हें वैदेशिक शत्रु

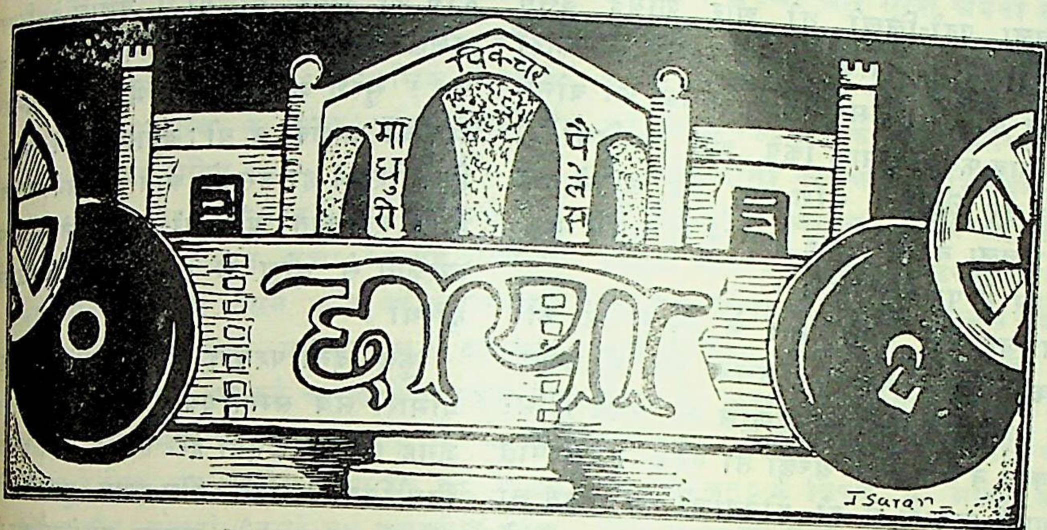


से मुक़ाबला करने की आवश्यकता है। यह बात मिसरी राजनीतिज्ञों की समझ में आ गई। सौदा तै हो गया और ब्रिटिश-मिसर-संधि संसार के सामने है।

मिसर को मुकम्मिल आज़ादी नहीं है। सैनिक मामलात में वह बहुत हद तक ब्रिटिश के अधीन है, लेकिन जिस अन्तरराष्ट्रीय स्थिति ने मिसर को स्वतंत्रता दिलाई, उसी ने मिसर में ब्रिटिश-सेना को अनिवार्य बना दिया है।

नहस पाशा ने इसी बात को समझाते हुए अपनी पार्लियामेंट में कहा था—"सम्भव है, आप इस समझौते के बारे में वह राय न रखते हों, जो दूसरे की है। लेकिन इतनी बात से तो आप इनकार नहीं कर सकते कि इस समझौते से हमारी स्वतंत्रता की गारंटी हो जाती है। अगर आपको सेना-सम्बन्धी शर्तें कड़ी मालूम हों तो आपको यह न भूलना चाहिए कि इन बंदिशों का जन्म म[illegible] बूरी के कारण हुआ है। हमारी स्थलसेना कम[illegible] है। हम अपने देश को अरक्षित नहीं छोड़ स[illegible] स्वेज़ नहर की रक्षा में ग्रेटब्रिटेन का फ़ायद[illegible] और हमारा भी इसी में भला है कि स्वेज़[illegible] ब्रिटिश-सेना रहे। इसलिए हमने समझौता [illegible] लिया है। जब हमारी सेना मज़बूत हो जाय[illegible] तो वह ब्रिटिश-सेना का स्थान ले लेगी।"

समझौते की शर्तें ये हैं कि अगर मिसर[illegible] आक्रमण हो तो ब्रिटेन और ब्रिटेन पर[illegible] तो मिसर एक दूसरे के लिए युद्ध करें। [illegible] की ज़िम्मेदारी है कि सिर्फ़ स्वेज़ नहर [illegible] नहीं, बल्कि सारे मिसर की भूमि की शत्रुओं[illegible] रक्षा करे। स्वेज़ नहर के क्षेत्र में १० हज़ार ब्रिटि[illegible] सैनिक अफ़सर रहेंगे और ४०० हवाई सैनिक



मंज़िल

लेखक—'वही'

कथानक—महिम निर्धन होते हुए भी पढ़ा-लिखा और दार्शनिक (Philosophical) था। दर्शनशास्त्र में उलझा हुआ उसका ...क संसार की चहल-पहल से दस हाथ दूर रहना चाहता था। आश्चर्य तो यहीं पर होता है कि उस बेख़बर मनुष्य पर प्रेम ने कैसे अधिकार ...लिया। पर वह सहृदय था और था प्रेमी ...-जाति का ही एक जीव।

सुरेश महिम का बचपन का साथी था। असा-... धनी होते हुए भी सुरेश ने यह प्रकट कर ...था कि ऊँचे-ऊँचे मेघों के विशाल हृदय में ...के एक छोटे-से छेद से भी प्रेम होता है। इस ...के जीवन में सुरेश कई बार स्वयं अपनी ...भी परवा न करके महिम को मृत्यु की गोद ...जीता-जागता उठा लाया था। इन्हीं कारणों ...महिम सुरेश का हृदय से आभारी था और ...के प्रति उसके हृदय में असीम आदर की ...-फूल रही थी।

अचला यद्यपि बहुत अमीर न थी, पर उसमें एक प्रकार का व्यक्तित्व था। उसमें आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियों के समान किसी से दबने की आदत न थी। वातावरण की लहरों के बीच वह इधर-उधर हिलती-डुलती-सी दिखाई देती है। उनमें से निकलने की चेष्टा करना उसने नहीं सीखा था।

अचला का महिम पर प्रगाढ़ प्रेम था। वह महिम के लिए गाँव का निवास, निर्धनता का जीवन, सब कुछ सहने को तत्पर थी। उधर सुरेश का यह विचार था कि महिम को किसी भी दशा में एक छोटे घराने की कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए। प्रारंभ में वह वास्तव में महिम का शुभचिन्तक था, पर अचला के सौन्दर्य ने उस पर भी अपना जादू फेंका और सुरेश अब स्वयं अचला से विवाह करने की इच्छा करने लगा। परमार्थ ने स्वार्थ के वस्त्र धारण कर लिये। अचला के पिता केदार बाबू भी अब महिम के स्थान पर सुरेश से अचला का विवाह करने को राज़ी हो गये।



अचला पढ़ी-लिखी थी और शायद उसने अपनी सखियों के साथ कुछ और भी जानकारी प्राप्त कर ली थी। उसने पथ के कंकड़ों को बीना, काँटे झाड़-फूँककर साफ़ किये और झाड़ियों को काटकर दूर किया। सुरेश बाबू मुँह ताकते रह गये। अचला ने 'मेम' बहू के रूप में अपने गाँव-वाले घर में पदार्पण किया।

अचला को अपने पति के विषय में कोई आशंका न थी, पर हाँ, उसके पति ने उसको अन्य बातों के साथ-साथ मृणाल के विषय में भी कुछ क्यों न बताया? अच्छा तो पहले उसके पति की शादी मृणाल से ही होनेवाली थी! तब तो अवश्य ही उन दोनों के हृदय में कोमल भावों का उदय हुआ होगा। तो फिर दोनों में शादी हुई क्यों नहीं? मृणाल के विषय में पूछने पर महिम ने साधारण भाव से कह दिया—"तुम मृणाल को नहीं पहचान सकोगी।"

शंकाएँ बढ़ने लगीं। मृणाल और महिम पास-पास बैठते हैं, गप्पें हाँकते हैं! यह सब क्यों होता है? अचला के हृदय में एक द्वन्द्व उठ खड़ा होता है। विपत्तियों के बादल आ-आकर घिरने लगते हैं।

अचला उसी दिन सुरेश को अपने झोंपड़े में एक शुभचिन्तक के रूप में पाती है। सुरेश ग़लती करता है, वह समझने लगता है कि अचला मुझे प्यार करने लगी है। पर अचला का हृदय डाँवाडोल ही रहा था। उसी रात वह 'छोटा-सा घर' जलकर राख हो जाता है; सबेरे अचला सुरेश के साथ अपने पिता के पास लौट आती है; और महिम बेचारा दीन-दुनिया से अलग अपने दार्शनिक भावों में निमग्न अकेला रह जाता है।

दर्शकगणों के हृदय में इस समय एक प्रश्न खलबली मचा देता है।—"अचला महिम को निस्सहाय अवस्था में छोड़कर सुरेश के साथ अपने पिता के यहाँ क्यों लौट आई?" इसके कई कारण थे; पहला तो वही आधुनिक शिक्षा का प्रभाव, दूसरे सुरेश ने अचला को केदार बाबू के अस्वस्थ होने की ख़बर दी थी। मृणाल के [illegible] अचला का उसके पति से मनमुटाव हो [illegible] था! सुरेश के साथ जाने में उसको [illegible] भय की आशंका न थी; क्योंकि उसने [illegible] कि सुरेश ने ही उसको आग में जलने से [illegible] है। एक बात और थी—महिम ने [illegible] प्रसन्नता से सुरेश के साथ जाने की [illegible] दी थी।

कुछ दिनों पश्चात् ही महिम की [illegible] बीमारी सब सम्बन्धियों को एक बार [illegible] जगह एकत्र कर देती है। डाक्टर कहते [illegible] निमोनिया। सबके होश-हवास गुम [illegible] अंत में अचला और मृणाल की सेवा [illegible] धूप से महिम स्वास्थ्य-लाभ करता है। [illegible] यह तय होता है कि महिम आब-हवा [illegible] लिए अचला के साथ कुछ दिनों जबलपुर [illegible]

स्टेशन पर दर्शकगण देखते हैं कि [illegible] मर्दाने डब्बे में बैठा हुआ है और अ[illegible] में! पता नहीं, इस स्थान पर उस [illegible] लड़की ने उस पुराने रिवाज को [illegible] लिया। पति-पत्नी का एक ही [illegible] बैठना स्वाभाविक होता। संभव है, [illegible] के सम्मुख अचला ने अपने पति के साथ [illegible] अधिक ज़ोर न दिया हो। किन्तु [illegible] लज्जाशील अथवा दबनेवाली युवती [illegible]

ख़ैर। ट्रेन के छूटते-छूटते, सुरेश [illegible] आता है और यह कहकर कि मुझे भी [illegible] जबलपुर जाना है, झट से महिम के [illegible] घुस जाता है। ट्रेन की गति धीरे-[illegible] लगती है।

प्रकृति भी सुरेश का साथ देती है। [illegible] पर मूसलाधार पानी के बीच [illegible] स्वाभाविक हड़बड़ाहट के मध्य सुरेश [illegible] के बहाने अचला को किसी अन्य [illegible] बहका ले जाता है। अचला का [illegible] आ जाना तनिक भी अस्वाभाविक [illegible]



पानी की झड़ी में उस स्टेशन से दो गाड़ियाँ दो ओर बारी-बारी से रवाना होती हैं—एक में असहाय अवस्था में अचला, मानसिक वेगों के कारण अस्थिर सुरेश के साथ; और दूसरी में अभागा बेख़बर महिम।

इस स्थान पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि जब अचला को ज्ञात हुआ कि वह धोखे से भगा लाई गई है तो उसने ट्रेन की ज़ंजीर क्यों न खींची या और किसी प्रकार बचने की चेष्टा क्यों न की? इसके भी कई कारण थे—प्रथम तो यह कि उस समय घबराहट आदि के कारण अचला के लिए यह असंभव था कि वह बैठकर कोई तरकीब सोचती; दूसरे वह पूर्णरूपेण सुरेश के हाथ में थी। भला सुरेश उसको हाथ-पैर फैलाने का समय क्यों देने लगा? तीसरे वह कुछ समय पश्चात् ही तो गिरकर मूर्च्छित हो गई; अन्यथा अपने बचाव की कुछ न कुछ चेष्टा अवश्य करती।

अब अचला और सुरेश एक मकान में साथ-साथ रहते हैं। संसार समझता है कि दोनों पति-पत्नी हैं, पर संसार ग़लत मार्ग पर है। असंख्य चेष्टा करने पर भी सुरेश अचला का प्यार न पा सका, वह बेचारी तो अपने पति को खोकर अत्यन्त व्याकुल थी।

लेकिन अचला सुरेश को छोड़कर अपने पति के पास लौट क्यों न गई? कारण यह था कि सुरेश अचला को भगा लाया था, भला अब वह अपना कलंकित शरीर लेकर पति के सम्मुख कैसे जा सकती थी? उसको तनिक भी आशा न थी कि ऐसी घटना के घटने के पश्चात् भी वह महिम द्वारा अपना ली जावेगी। केदार बाबू भी शायद ही उसको स्वीकार करते और सबसे बढ़कर तो यह कि प्रारंभ में कुछ दिनों तक तो सुरेश ही अचला को ऐसा कोई कार्य करने ही न देता और कुछ दिनों सुरेश के साथ रहने के बाद अचला का अपने पति के पास लौटना और भी असंभव-सा था।

ख़ैर; अचला और सुरेश अपनी दूसरी दुनिया न बसा पाये। दोनों का हृदय दुखमय हो रहा था। एक दिन सुरेश को कॉलरा हो गया, महिम भी मरणासन्न मित्र को देखने आया।

ऐसे स्थानों पर यह स्वाभाविक होता है कि बुरे कर्मोंवाला मनुष्य, अपने को उस मनुष्य के सम्मुख पाकर, जिसको कि उसने जीवन भर दुःख ही दुःख दिया है, उसके सम्मुख अपने सब बुरे कर्मों के लिए क्षमा की प्रार्थना करे। किन्तु यहाँ सुरेश ने अपने बुरे कर्मों के लिए न तो अधिक दुख प्रकट किया और न अचला की पवित्रता और सरलता के विषय में महिम से कुछ कहा। अतः सुरेश की मृत्यु पर भी महिम अचला के विषय में पहले की भाँति ही अंधकार में रहता है।

सुरेश का दाह-कर्म करके महिम लौट रहा है, अचला उसके पीछे लड़खड़ाती हुई जाती दिखाई देती है। महिम को अब अचला की तनिक भी पर्वा नहीं है, और होने भी क्यों लगी? जिस अचला ने महिम को सदैव मानसिक कष्ट दिया है, उसको भला वह कैसे क्षमा कर सकता था। पर अचला की गिड़गिड़ाहट से उसका पत्थर का हृदय पानी हो जाता है और अन्त में दर्शकों के सम्मुख वह हृदयद्रावक दृश्य आता है, जिसमें कि अचला और महिम अपने कष्टों को भूलकर, एक दूसरे की त्रुटियों को क्षमा कर तथा एक दूसरे के प्रति अपने कर्तव्यों का नया पाठ पढ़कर, दोनों हाथ में हाथ डाले अपने नव-जीवन की मंज़िल पर अग्रसर होते हैं। अचला पहली बार, सदैव के लिए नतमस्तक होती है।

अतः कथानक सुन्दर है। यद्यपि उपन्यास अथवा कथानक घटनापूर्ण है, पर वे सब घटनाएँ एक सुरेश के मानसिक उद्वेगों पर ही निर्भर हैं। घटनाओं और भावों के सम्मिश्रण के कारण कथा चित्रपट के लिए और भी अधिक कठिन हो जाती है। दर्शकों के सम्मुख समयोपयुक्त मनोभावों का प्रकट करना वास्तव में कठिन है, और यह तभी



हो सकेगा जब कि Actor तथा Actress अपने व्यक्तित्व को कथानक के पात्र अथवा पात्री के व्यक्तित्व से इस प्रकार मढ़ दें कि दर्शकगण उनको सम्पूर्ण रूप से पात्र अथवा पात्री के रूप में ही देखें। ऐसा होने पर ही दर्शकगण अपने हृदय में गहरे से गहरे प्रभाव का अनुभव कर सकेंगे।

पात्र तथा ऐक्टिंग

महिम दार्शनिक है और है ला-पर्वाह। वह अधिक बातूनी नहीं है। उसको एकान्त प्रिय है। उसका यह स्वभाव नहीं है कि वह साधारण बातों को भी अपने मस्तिष्क में नमक-मिर्च लगाकर एक स्थूल रूप दे दे। किसी पर अविश्वास करने की उसकी आदत नहीं है और न किसी पर उसको सन्देह ही होता है। वह सुरेश की ओर से सर्वथा निश्चिन्त-सा रहा; क्योंकि सुरेश ने उसके साथ सिवा भलाई के कोई बुराई न की थी। अनेक स्थलों पर वह सुरेश और अचला को साथ-साथ छोड़कर चला जाता है; अचला को सुरेश का शाल ओढ़े हुए सोते देखकर भी उसका मन वैसा ही निर्मल बना रहता है। ये सब बातें उसके व्यक्तित्व को बहुत ऊपर उठा देती हैं।

महिम का अचला के प्रति हृदय से प्रेम था। एक छोटे-से गाँव में चारों ओर प्रेमपूरित सरिताओं से सिंचित, उसका हृदय यह सोच ही न सकता था कि कोई उसके मार्ग का कंटक बन बैठेगा। वह सर्वदा निश्चिन्त-सा रहा, कष्टों के बीच उसका उज्ज्वल हृदय उज्ज्वलतर प्रकट होता है। यदि महिम के स्थान पर अन्य कोई व्यक्ति होता, तो उसकी सुरेश से अवश्य ले-दे हो जाती। किन्तु महिम तो गंभीरता और आदर्शपूर्णता के घेरे के बाहर जाता ही नहीं है।

बरुआ, महिम के रूप में काफ़ी सफल हुए हैं। बरुआ का शान्त और विचारपूर्ण व्यक्तित्व महिम के स्थान पर राई-रत्ती ठीक बैठ गया है। हम यहाँ तक मानने को तैयार हैं कि उनका ऐक्टिंग त्रुटिहीन रहा है।

अचला के विषय में लोगों की भिन्न-भिन्न रायें हो सकती हैं। वह महिम से प्रेम करती थी और उसके इस प्रेम की गहराई इसी से जानी जा सकती है कि उसने अनेकानेक कष्टों की संभावना होते हुए भी महिम से ही विवाह किया। वह सब कुछ सह सकती थी, पर मृणाल उसके लिए असह्य थी। यह स्वाभाविक ही है कि एक स्त्री अपने पति का दूसरी स्त्री से प्रेम करना किसी भी दशा में नहीं देख सकती। इसी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त ने अचला का मन उसके पति की ओर से कुछ-कुछ हटा दिया था। पर वह सदैव पति-भक्त रही। सुरेश की बातें और उसके कार्य उसको बहुत बुरे लगते थे, किन्तु वह मजबूर थी—अपने पति के परम प्रिय मित्र का वह अनादर भी न कर सकती थी और न महिम से सुरेश की शिकायत ही कर सकती थी।

अतः सूक्ष्म दृष्टि से देखने तथा विचार करने पर हम यह देखते हैं कि अचला का प्रत्येक पग स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ा है। उसने जो-जो कार्य किये—चाहे वे अच्छे हों अथवा बुरे—बहुत सोच-समझकर किये और यह सच है कि उसने जो कुछ किया, वह उसी भाँति किया, जैसा कि कोई अन्य स्त्री उस स्थान पर तथा उस वातावरण में करती। उसके अच्छे कार्य सुन्दर हैं और बुरे केवल बेबसी के कारण ही घटित हो गये हैं।

यमुना अचला के रूप में त्रुटिहीन है। उसकी ऐक्टिंग सुधरी हुई तथा भावपूर्ण है। यमुना समयानुसार मनोभावों को प्रकट करने में बहुत सफल हुई है। उसके हाव-भाव उसके हृदय के गुप्त भावों की भूमिका बन जाते हैं।

सुरेश का चरित्र उतना ख़राब नहीं है, जितना कि चित्रपट द्वारा प्रदर्शित किया गया है। सुरेश आजकल के उन कॉलेज के विद्यार्थियों का एक नमूना है, जोकि अपने मनोभावों के कारण अपने को सँभाल नहीं सकते। अपने मनोभावों से प्रेरित होकर वह शीघ्र ही कार्य कर बैठता है।

उस समय उसको अच्छे-बुरे का ध्यान नहीं रहता, यद्यपि कार्य कर चुकने पर वह हृदय से दुखी होता है और अपनी त्रुटि को स्वीकार करता है। उसको अपने हृदय पर तनिक भी अधिकार नहीं है।

सुरेश का अचला पर थोड़ा प्रेम नहीं था। उसने अनेकानेक—अच्छी-बुरी—युक्तियों से उसको प्राप्त करने की चेष्टा की, पर वह असफल रहा। अपने जीवन में उसने पूर्णरूपेण निःस्वार्थ भाव से दुखियों की सेवा की। महिम को बचपन में कई बार मृत्यु के मुख से बचाना, आग में जलते हुए किसी अपरिचित को बचाने में अपने हाथ को घायल कर लेना और प्लेग में बीमारों की सेवा करना, उसके जीवन में आदर्शवादिता की छाप पर छाप लगा देते हैं। अतः हम सुरेश के चरित्र को किसी प्रकार भी दोषपूर्ण कहने को तैयार



नहीं हैं, यद्यपि यह सच है कि मनुष्य अपने जीवन के प्रत्येक पहलू में पूर्णरूप से आदर्शवादिता का साथ नहीं दे सकता ।

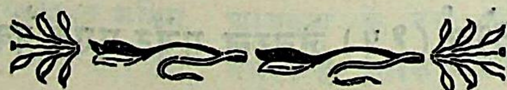
पर हम देखते हैं कि पृथ्वीराज सुरेश के रूप में दर्शकों के सम्मुख सफलता के रूप में नहीं आता है। उसका Over acting अनेक स्थलों पर अस्वाभाविकता ला देता है । कमरे में ज़ोरों के चक्कर काटना, हाथ मलना और मुँह का बुरी तरह बनाना—बहुत अधिक मात्रा में हो जाने के कारण ऐक्टिंग को त्रुटिपूर्ण कर देता है । इन सब बातों के कारण पृथ्वीराज सुरेश के चरित्र में, दर्शकों की दृष्टि में बहुत ही अधिक बुराई ला देता है ।

मृणाल का चरित्र अवश्य प्रशंसनीय है । वह एक सरल बालिका है तथा उसकी बातें सदैव हँसी-मज़ाक से भरी रहती हैं । यद्यपि यह सब बातें एक कोमल हृदय की उपज हैं, पर वे अचला के सम्मुख एक उलझे हुए डोरे के पिंड के रूप में आती हैं । मृणाल का विवाह एक बूढ़े बीमार आदमी से हुआ है, पर यह दुर्भाग्य भी उसकी खिलखिलाहट में तनिक भी रुकावट नहीं डाल सकता । मलिना का ऐक्टिंग सुन्दर हुआ है । सादा और ऊँची-ऊँची धोती पहनकर और अपनी चालढाल से वह एकदम एक देहातिनी के रूप में प्रकट होती है ।

देवदास में भी पारू का चरित्र मंज़िल की अचला के समान उच्च और प्रशंसनीय था । पारू यद्यपि देवदास की मधुर स्मृति अपने हृदय से न निकाल सकी, पर वह अपने बूढ़े पति की भी पूर्ण भक्त रही । यहाँ अचला यद्यपि पूर्णरूपेण सुरेश के हाथों में रही, पर उसने अपने पति की भक्ति अपने हृदय से एक क्षण को भी दूर न की । 'देवदास' में पारू को जीवन-भर एक घोर मानसिक क्लेश के सागर में डुबकियाँ खाना पड़ा था और वही हाल अचला का 'मंज़िल' में हुआ । अचला और महिम के विवाह की प्रसन्नता थोड़े ही दिनों में एक दिन डूबते हुए सूर्य के साथ विलीन हो गई । 'देवदास' में देवदास को एक साधारण मनुष्य होने के कारण अपने मानसिक क्लेश को दूर करने के लिए मदिरा और वेश्या का साथ करना पड़ा था—किन्तु यहाँ महिम एक दार्शनिक युवक था । उसने यद्यपि मानसिक क्लेश का अनुभव किया, किन्तु वह इतना शान्त-हृदय था कि उसको किसी का सहारा नहीं लेना पड़ा ।

खेल का अन्त सुख में होता है । अचला और महिम दोनों मिलकर जीवन-पथ पर अग्रसर होते हैं । यदि पाठकों के हृदय को शान्त करने के लिए यह थोड़ा-सा सुखपूर्ण भाग अन्त में न दिखाया जाता तो खेल वास्तव में एक घोर दुखान्त नाटक होता । पर इस एक सुख से दुख से भरे हुए खेल पर कोई ख़ास प्रभाव पड़ता नहीं दिखाई पड़ता ।

यमुना का ऐक्टिंग उसको बधाई का पात्र बना देता है । कभी-कभी तो यह भी विचार आ जाता है कि क्या यमुना प्रेम करनेवाली, असफल तथा दुखी स्त्रियों का जीवन ही दर्शकों के सम्मुख प्रकट करने के लिए पैदा हुई है।





ज्ञानविमुख नारी

श्रीकामाख्याप्रसाद त्रिपाठी एम्० ए०, बी० एल्०

[दुनिया की सृष्टि-लीला क़ायम रखने के लिए क़ुदरत ने स्त्री-जाति को ख़ास कर भेजा है। इसी से उसमें दाम्पत्य-प्रेम, पुत्र-स्नेह इत्यादि सृष्टि-प्रेरणाओं को ज़्यादातर बोया है। इन कामों से इसे क़तई फ़ुरसत नहीं। तुलना में पुरुष-जाति को यथेष्ट अवसर है। इस फ़ुरसत में पुरुष ने ज्ञान की सीढ़ी बनाई। इस ज्ञान को नारी ने कभी नहीं अपनाया। वरन् अवज्ञा की। अगर कभी कौतूहल दिखाया भी तो हमें पुचकारने के लिए। ज्ञान की खोज में जब उसे हम भूलने लगते हैं तो वह ज़िन्दगी देकर भी हमें फाँसती है। ज्ञान देकर नहीं, वरन् नित-नूतन यौवन-केलि और सतीत्व की सहिष्णुता से।]

मिट्टी फोड़कर पौदा निकलता है, बढ़ता है। उसके हरे-हरे पत्ते होते हैं। पत्तों के नीचे भुट्टा आता है। भुट्टा लड़की है। कुछ दिन के बाद उसमें यौवन के तरंग उठने लगते हैं। आवेग में उसकी छाती काँप उठती है। पेड़ के बीच से प्रकृति का संकेत आता है; फुनगी में नर-बीजों के उत्पन्न होने का। कहाँ, ठीक बता नहीं सकती। देखती नहीं, चारो तरफ़ से पत्तियाँ रुँधी हुई हैं। अदृश्य नर-बीज से मिलने की प्रबल आशा जगती है। प्रकृति की कठोर प्रेरणा। प्रकृति-सी प्रबल। क्या कहे। पत्तियाँ मुँह निकालने नहीं देतीं, नहीं तो अपने रूप से ही नर-प्राण को खींच लातीं। दिल घबरा उठता है। सिर के बालों को झकोर पत्तों में छेद करती है। बिखरे बालों के तार उसी तरफ़ से बाहर निकलते हैं। अपना सौन्दर्य उनको पहनाती है; अपने मुँह का रूप उनमें पोंछती है। चमकते हुए बाल उज्ज्वल हवा में हिल-मिल कर नाचते हैं। औरत-भुट्टा का रूप, उसका आवेग बालों में आ जमता है। नर-बीज ऊपर पकता है; पककर झरता है। हवा में हिलता-डोलता दूर को जाता है। औरत-भुट्टा बाल फैलाकर उनको पकड़ती है। बालों के भीतर उनको सोखती है। प्रकृति की बोई हुई गुप्त वासना पूर्ण होती है। यौवन के तरंग पेट के भीतर छिप जाते हैं।



बाल निष्प्रभ हो जाते हैं। पत्तों का आवरण झर जाता है। वह यौवन-तरंग को पेट में छिपाकर मिट्टी में लेट जाती है।

क़रीब ही लहकता हुआ चने का खेत था। उसने न देखा। बैंगन के पौदे में बैंगन लगा; हरा बैंगन धूप में किस तरह रंग बदलता गया, उसे जान न पड़ा। डाल पर बैठे हुए खड़रैचे की पूँछ का नाच उसकी आँख में न पड़ा। भौंरे की छेड़-छाड़ से अपने रूप को बचाने में ही समय बीत गया।

हवा में उड़ते हुए फूलों का यह तात्पर्य मोपासाँ की कहानी के एक नायक के ध्यान में आया है। उद्भिद्-शास्त्रज्ञों ने इस पर ग़ौर किया है। उद्भिद्-मादाओं का रहन-सहन, उनके फूलों का रंग पंखड़ी-विहीन नर-फूलों को फाँसने के लिए बिछाया हुआ जाल है। उद्भिद्-नारियों ने ही दुनिया को सिखलाया है कि रंग में ही सौन्दर्य का विकास है। मनुष्य-जाति की औरतों ने भी जो रंग की अर्चना क़ायम रक्खी है, वह केवल उनके मन में पड़ी हुई उद्भिद्-औरतों के मन की छाप है। बाहरी ढकोसलों में औरतों का अटल विश्वास है। सिंही के केसर-हीन स्कन्ध इस नियम के व्यतिरेक ज़रूर हैं। मगर हम सिंह के केसर में जो ख़ूबसूरती देखते हैं, सिंह उस सौन्दर्य को शायद सिंही के कंधे पर केसरों को पाकर न देखता। मुमकिन है कि केसर सिंही के चिकने कंधों का रंग छिपा रखते। विशेषतः आदमी ने अपने मुँह के बालों को असुन्दर मान उन्हें बना डालना उचित समझा है, जिस पर शेक्सपियर बिना हँसे न रह सका। एंटोनी ने शेर कहलाने के लिए अपने शूर बाप के माफ़िक लम्बी दाढ़ी रक्खी थी। मगर वह जब क्लियोपैट्रा के साथ पहलेपहल मिलने गया तो उसने उस प्यारी दाढ़ी को असुन्दर समझ मूँड़ डाला। (Ant. and Cleo. ii. 223-5)

Our courteous Antony,
Being barbared ten times o'er
Goes to the feast!

उद्भिद् और पशुओं की स्त्री-जाति अपने ... में ही मस्त है। क़ुदरती हुक्म यह है कि ... को प्राणी-बहुल करना ही पड़ेगा। एक ... से अनेक सिंघाड़े होंगे। अकेली मृगी से ... मृग उत्पन्न होंगे। थोड़ी-सी दूब की जड़ से ... भरी घास को फैलना ही पड़ेगा। इसके ... पुरुष का सहयोग। नर का मन बुलन्द होता ... भुट्टे का मर्द-फूल ऊपर बैठकर चारो तरफ़ ... है। चने के खेत पर नज़र दौड़ाता है। ... रंग बदलना देख हँसता है। भौंरे के साथ ... भागता है। दुनिया की प्राणी-सृष्टि का ... इसमें भी उमड़ता है, मगर उसके लिए ... पोशाक पहनना नहीं पड़ता। वह आपही ... है; उसे दूसरे को खींचना नहीं पड़ता। ... की एक नायिका की तरह इधर-उधर ... न देख गाड़ी के ऊपर बटुए को खोल ... शीशा निकाल बाल सँवारना नहीं पड़ता। ... ने औरतों को ऐसे एक काम का ज़िम्मेदार ... है, जिससे उसे फ़ुरसत नहीं रहती। ... कोशिश से वह अपने रूप की हाट खोलती ... पुरुष उसे देखकर मुग्ध हो जाता है; ... भर लेने को दौड़ आता है। मगर हाथ में ... रूप झर जाता है। पुरुष का मन उचट ... फिर फ़ुरसत।

उद्भिद् और पशुओं में स्त्री-जाति का ... होता है, प्रकृति भी इस प्राधान्य को ... और पुरुष-जाति को अवज्ञा की दृष्टि से ... है। इसका प्रमाण ममाखी के छत्ते में ... रानी-मक्खी का होना है। उस अवस्था ... जाति की फ़ुरसत किसी काम में नहीं ... मर्द-फूल मर जाता है; औरत-फूल में ... है। गाय बच्चा देती है; उसे चाट-चाटकर ... करती है; बैल खा-खाकर साँड़ होता है। ... अण्डे देती है, फोड़ती है, बच्चों को खिला... कर उड़ना बताती है; कबूतर बैठा पास ... गुटुरगूँ करता है। इनमें ज्ञान खोजने की शक्ति ...



इसी से इस दुनिया में लटकते हुए असंख्य कार्य-कारण के तारों में से एक पर भी चढ़ न सके। मगर विचार-शील पुरुष के मन में ये तार छिप न सके। आदमी के मर्द-मन को कार्य-कारण के अपूर्व संबन्ध ने मोह लिया और ऊपर को खींचने लगा। लम्बी फ़ुरसत घट गई। उसके वक़्त का दामन खिच गया। ज्ञान की खोज में पुरुष निकल पड़ा। औरत को भूलने लगा। स्त्री पुरुष को खोज न पाई। डर से उसकी छाती काँप गई। बार-बार उठकर अपने चेहरे को शीशे में देखा। उमर की कोई निशानी उसमें नज़र न आई। घाँघरा खोल सारी पहनी। वह भी खोल डाली, चद्दर से छाती ढकी, पीठ पर रक्खी, फिर उससे घूँघट काढ़ एक आँख से देखा। उसे भी फेंक दिया। कमर तक बाल किये, फिर कंधे के ऊपर बाल काट डाले। लम्बाई में फ़र्क जान ऊँची एँड़ी के जूते पहने। चेहरे पर सफ़ेद-लाल रंग घिसा, हाथों में चूड़ी पहनी, गले में माला पहनी, बालों में फूल गुहे। हंस की चाल चली, फिर कूद-फाँदकर नाची। मगर फिर भी पुरुष का मन उन तारों से चढ़ता ही गया। झट-पट पुरुषों की लिखी हुई किताबें पढ़ीं कि शायद उनसे पुरुष की चाह का भेद खुले। वहाँ उसने पढ़ा उन चञ्चल और स्थायी भावों की टीकाओं को, जो औरत के अनजान में प्रकट हो पुरुष के मन को मोह चुके थे। प्रश्न था—"मुझे भूलते हुए पुरुष के मन को अपने ही चंगुल में किस तरह फाँसूँ?" "कृष्णकान्त के दानपत्र* का यह प्रश्न आज भी बहुत-सी सतियों के जीवन में उठता है। उत्तर दो मिले। पहले तो उसने तुषार-शृङ्ग की तरह या समुद्र की लहरों की तरह छिन-छिन में रंग बदलना शुरू किया, जिससे आजीवन देखने पर भी पुरुष ऊब न जायँ। समुद्र-तरंगों के समान नित-नूतन नारी का यौवन है। शेक्स-पियर के एनोबार्बास ने हँस-हँसकर क्लियोपैट्रा का जो चरित्र-वर्णन किया था, वह आज भी नारी-यौवन का आदर्श हो रहा है (Ant. and Cleo. ii. 236-41)—

"Age cannot wither her nor custom stale
Her infinite variety: other women cloy
The appetite they feed but she makes hungry
Where she most satisfies: for vilest things
Become themselves in her, that the holy
priests
Bless her when she is riggish."

दूसरा है सतीत्व। आँखों के सामने यौवन के तरंग काम देते हैं, मगर ओट होते ही निष्फल हो जाते हैं। मर्द को युद्ध में भेजना ही पड़ेगा। रोटी की तलाश में भेजना ही पड़ेगा। जाकर फिर न लौटे तो? ज्ञान की प्यास ने या पराई नारी के यौवन ने उसे लौटने न दिया तो? वह कौन-सी फाँस है, जिससे उसे वह वन, ऊसर, सागर, विदेशी औरतों के यौवन-तरंग के उस पार से भी खींच लावे? नित नूतन यौवन-बाण तो और-और औरतें सहज ही में पा सकती हैं, मगर वह कौन-सा तीर है, जिसे मुझको छोड़ और कोई नहीं जानती? जवाब भी उसे जल्द मिल गया। उसने सतीत्व की महिमा गाई। उसने देखा, पुरुषों को सिखलानी होगी एकनिष्ठा। कैसे एक ही पर तन-मन-धन निछावर किया जाता है। इसमें स्त्री को काफ़ी स्वार्थ-त्याग करना पड़ा। स्वामी को उसने पुत्र-रत्न दिया। परन्तु स्वामी सोते हुए पुत्र-स्त्री-धन आदि को छोड़ ज्ञान की खोज में संन्यासी हो गया। जैसे बुद्धदेव। स्त्री ने बाक़ी ज़िन्दगी सतीत्व में बिताई। राजा भर्तृहरि संन्यास को चले। गुरुजी ने फ़र्माया, स्त्री को माता कहकर उससे भिक्षा लाओ। राजा सारा महल रुलाकर भीख लाये। स्त्री ने रो-रोकर सतीत्व-व्रत पाला। दुष्यन्त ने गर्भिणी शकुन्तला को कलङ्किनी कहकर त्याग दिया। वही शकुन्तला 'नियमम्लानमुखी धृतैकवेणी' ७ सालों तक राह

* बंकिमचन्द्र चटर्जी का एक उपन्यास।



देखती रही। कृष्णकान्त के दानपत्र की नायिका ने लातें खाकर भी स्वामी के शराब के प्याले में आविर्भूत होना न छोड़ा। आख़िरकार सुमार्ग पर लौटा ही लाई। कैलाश पर बैठे-बैठे ज्ञान-रूपी शिव ने सुना कि निर्बोध अबला उनके समान आसन पर बैठने की कोशिश कर रही है। कौतूहल हुआ—"देख आवें, कौन वह अपूर्व शक्ति है, जिसके बल पर वह इतना मन को बाँधती है।" जाकर देखा तो ऊसर संसार है। वहाँ बैठी हुई अबला के रूप से सतीत्व के रेशे निकल उड़-उड़कर संसार में फैल रहे हैं। उस सौंदर्य से उनका ज्ञान परास्त हुआ। पुरुष ने ज्ञान-बल से जो शक्ति पाई थी, नारी ने चरित्र-बल से उसका मुक़ाबला किया। यही वजह है कि दुनिया में स्त्री-चरित्र का इतना ज़्यादा समादर है। चरित्र स्त्री का सर्वस्व है। यह उसका सौंदर्य है, गौरव है, ज्ञान है। पुरुष का सर्वस्व ज्ञान है; उसमें अच्छे चरित्र का होना सोने में सोहागा है। इस शक्ति से शक्तिमती सीता रावण के यहाँ घोर कष्ट में रहने पर भी जानती थीं कि राम उनको भूल नहीं सकते। ज्ञान के मार्ग में भटकते हुए भी पुरुष स्त्री को भूल न सका। Ulysses जब युद्ध को गया तो Penelope उसके ध्यान में रही। Dimitry जब रेल की रोशन-कोठरी में बैठ, एक हाथ में शराब का प्याला और दूसरे में प्यार बेचनेवाली औरत को ले गुलछर्रे उड़ाता है, Katisha तब बाहर के बरफ़ में गिड़-गिड़ाती है, और रो-रोकर शीशे की खिड़कियों में हाथ पटक-पटक डिमित्री-डिमित्री पुकारती है. और गाड़ी चलने पर ज़मीन में गिर जाती है। शोक और विरह सहकर भी एक ही का ध्यान करने की शक्ति ने ज़रूरत पड़ने पर हँसते-हँसते जलती हुई आग में कूदने की शक्ति ने अन्त में पुरुष को जीत लिया। नई जवानी जो कर न सकी थी, उसे सहनशीलता ने कर दिखाया।

सतीत्व और जवानी के नित-नूतन तरंग, इन दोनों जंज़ीरों से औरत ने पुरुष को बाँध रक्खा है। इसकी हर एक कड़ी बहुत ही ज़बर्दस्त मगर इत्तिफ़ाक़ से दोनों जब एक साथ आ मि हैं, तभी पूर्ण स्त्री-शक्ति का ज्ञान हो सकता दोनों की मिलित रोशनी के सामने देखन नज़र भी नीची हो जाती है। अक्सर इनमें कोई एक शक्ति न होने से स्त्री मर्द के मन को रखने में असमर्थ होती नज़र आती है। यु सिस् को केलिप्सो ने अपने द्वीप में क़ैद कि आशिक़ होकर। सुन्दर लता-मण्डप है। च समुद्र लहरें मार रहा है। इस कामोद्दीपक वन में केलिप्सो अपनी जवानी खोलकर रख है युलिसिस् के सामने। मगर युलिसिस् घर लौटने के लिए व्याकुल है। जहाँ पेने २० साल से राह देखती है। युलिसिस् डगमगाकर रुक जाता है। केलिप्सो के तरंग टूटते हैं ; मरुभूमि में पानी के सूख जाते हैं ; युलिसिस् के जिगर में वहाँ इसी तरह एक महान् स्त्री-शक्ति की पराजय है। शेक्सपियर की अक्टेविया और क्लि का चरित्र परखने से मालूम होता है, शक्तियाँ किस तरह एक दूसरे के आश्रित हैं। पैट्रा ने जब सुना कि एन्टनी रोम जा रहा उसे डर हुआ, "शायद वहाँ जाकर वह जाय।" कितना रोया-गाया। घंटे भर विषाद, प्रेम, गुस्सा, घमन्ड, खीझ, सौतियाडाह इत्यादि भावों का ढोंग रचा। सोचा था, भावों के प्रवाह में एन्टनी को बहा देगी। एन्टनी फिसलता-फिसलता गया। क्लियोपैट्रा थी सुख की साथिन। के अन्तरतम प्रदेश में, जहाँ दुःख का स्थान है, तक क्लियोपैट्रा के प्रेम ने अभी तक प्रवेश कर पाया था। गंभीर कर्तव्य के सामने स्थान हिल उठा, तब क्लियोपैट्रा के उस हुए आँसू कुछ न कर सके। एन्टनी चला हाँ, कुछ दिन बाद क्लियोपैट्रा ने इस दूर करने का उपाय खोज निकाला

एन्टनी तब था मृत्यु के घर का यात्री। उधर अक्टेविया थी एक सती। स्वामी जब त्याग कर चला गया तो वह उसके घर का तद्दारुक करती रही; भाई के बुलाने पर भी न गई। एन्टनी के अन्याय को भूल उसकी पहली स्त्री के बच्चों का प्रतिपालन करती रही। कोसना तो दूर था; उसके भाई ने जब गुस्से में कुछ कहना चाहा तो मना ही किया। मगर वह थी धीर। उसके सौन्दर्य में चिर-नवीन यौवन-केलि का उल्लास न था। क्लियोपैट्रा के ढोंगों का मतवाला एन्टनी चाहता था जवानी के नित-नूतन तरंग। इसी से एन्टनी का तितली-मन अक्टेविया की सौम्य मूर्ति के सामने आते ही वशीभूत हो गया और विछोह के साथ-साथ भूलने में देर न लगाई। सतीरूपी अक्टेविया से ऊब दीपकरूपी क्लियोपैट्रा के रूप में पतंग-सा जल मरा। हाय, अगर सती अक्टेविया में केलिमयी क्लियोपैट्रा का विकास होता!

मर्द को ज्ञान से रोकने के लिए औरत ने दो जंज़ीरें बनाईं। यह सोचने की बात है कि ज्ञान की राह से पुरुष के समान होकर उसका हृदय नहीं जीता; पुरुष के खोजे हुए ज्ञान में अपनी पाई हुई चिनगारियों को मिलाकर उसको सम्पूर्ण बनाने की चेष्टा नहीं की। तिस पर भी उसने हमें जीत ही तो लिया। उसने जीता उपयोगी होकर। शरीर से उपयोगी वह पहले भी थी; अब वह मानसिक उपयोगी होने की कोशिश करने लगी।



पुरुष के खोजे ज्ञान को न खोजकर उस खोज में जो अवसाद आता है, उसमें पुरुष को ढाढ़स देने, और प्यार के हाथों से उस थकावट को मेंट देने लगी। आजीवन ज्ञान खोजने में अवसाद आ घेरता है। उस समय पुरुष का मन नन्हें बच्चे से भी कोमल रहता है, कठोर स्पर्श में चूर-चूर हो जाता है। नारी का मधुर स्पर्श उसमें जल सींचता है। फ़ाउस्ट ने पढ़ने में ज़िन्दगी गँवाई। जब उसमें ज्ञान को न पाया तो अवसाद घिर आया। निराशा के अँधेरे से वह गिरने लगा। इस बीच मार्गरिट से भेंट हो गई। मार्गरिट ख़ूबसूरत थी। उसके रूप का उजियाला बाहर की घास पर फैल रहा था। पनघट पर चमक रहा था। प्रेम हुआ। आशा-जल पाकर उसकी मन-दूब फिर पनप उठी। हमारे अवसाद को नारी का स्पर्श इसी तरह खोता है। इस बात को समझने में औरत के सहज गुण को देर न लगी। आँखें मूँदकर ऋषि ध्यान में बैठे। स्त्री पास ही खड़ी रही। एकटक ऋषि का मुख निहारती रही। हर्ष-विषाद की रेखाएँ एक-एक उनके मुँह पर दौड़ने लगीं। देव-दर्शन-सुख में ऋषि-मुख ने हर्ष दर्शाया। मन में आया, "किस वस्तु से आये हुए देव का स्वागत करूँ ?" चेहरे पर लाल-सफ़ेद फूलों के भाव दौड़ने लगे। औरत ताड़ गई! दौड़कर पास से फूल तोड़ लाई। ऋषि ने फूल की तरफ़ हाथ बढ़ाया, उसने भी अंजलि में डाल दिया। पार्थिव चीज़ के छू जाने से ध्यान टूट गया। मिजाज़ तमतमा आया। क्रमशः फूलों का इतिहास व्यक्त हो उठा। ग़ुस्सा शान्त हो गया। औरत के ऐसे स्वार्थ-त्याग ने दुनिया को मोह रक्खा है। पुरुष के उपयोगी होने की सहज प्रवृत्ति औरत में किस तरह प्रकाशित होती है, यह Knut Hamson ने Growth of the Soil में अच्छी तरह दिखलाया है। Isaac सभ्यता-युग का एक आदिम निवासी है। सड़क से चली हुई एक औरत आती है। घर के अन्दर घसती है। विना पूछे। पूछने से शायद जाने न दे। घर लीपती है। चीज़-वस्तु सँभालकर रखती है। ... दुहती है। खाना पकाती है। आइज़ाक ... आता है। सब अजीब मालूम होता है। ... के बोझ से दबा हुआ आइज़ाक। उसे ... होते आज बहुत दिन हुए। खाना परोसे ... हुए उसे उस तरह बैठे देख, उसके कुल ... पर आइज़ाक का ग़ुस्सा न आया। उसे निक... बाहर करने की बात भूल गया। हम ... जाते। इसी तरह औरतें पीछे से अनजान ... आकर हमारी जीवन-संगिनी हो बैठती हैं। ... उनकी नेकनामी है। मगर फिर भी हमारा ... प्रश्न जैसा का तैसा रह जाता है, हमारी ... पीछे से इस तरह सहारा न देकर सामने से ... ढूँढकर क्यों नहीं सहायता पहुँचाती ? और ... सहायता न करना ही होता तो बात थी। ... तो पुरुष की शत-मुखी ज्ञान-कामना की ... कर की गई अवज्ञा है। कभी-कभी ... सदृश औरतें गणित सीख लेती हैं; और कभी ... तर्क में शंकराचार्य को भी परास्त करती ... मगर फिर भी कहना पड़ता है कि ज्ञान ... लिए ज्ञान उसने कभी नहीं सीखा। ज्ञान ... उसके जीवन का मुख्य उद्देश्य न रहा। ... होती ही ज्ञान-विमुख है।

यही वजह है कि औरत ने मर्द के ... ज्ञान में राई भर भी गौरव नहीं दिखला... हमारे ज्ञान को उसने नीच कौतूहल की ... देखा, प्यासी नज़रों से नहीं। हमारी ... उसने कभी ग़ौर नहीं किया। औरत के ... बात नहीं पचती, यह किंवदन्ती हो गई है ... तो कैसे ? पुरुष का ज्ञान उसके लिए ... ढेला है। उसे जिस किसी को देने में ... फेंकने में वह कुंठित नहीं होती। पुरुष के ... का अवदान नारी के लिए क्षणिक कौतूहल ... सामग्री है। हमारे ज्ञान में कोशिश दिखला... बच्चा चुपकाती है। काम-वासना में उन्मत्त ... धर्म का तथ्य पूछती है। खाना खाने ...

युद्ध की ख़बर लेती है। एक हाथ से रोटी सेंक दूसरे से जन्म-जन्मान्तर का व्याख्यान सुनती है। देवता की पूजा का सरंजाम करती है। हमारी पूजी मूर्तियों को प्रणाम भी कर लेती है। मगर पुरुष के ध्यान का जहाँ प्रारम्भ है, वहीं उसका शेष है। वेदी में वह स्वामी के साथ बैठती ज़रूर है, मगर स्वामी जब ध्यान करने लगता है, तो वह सिर घुमाकर पड़ोसिन से पूछती है, "आज क्या खाया?"

औरत हुई सृष्टि-होम की कृति। क़ुदरत उसे सृष्टि-होम में झोंकती है। वह आज भी स्वार्थों के त्याग सृष्टि की चिनगारी फूँक रही है। राख उड़कर उसका मुँह काला करती है, मगर उसे पता नहीं।

स्त्री-जीवन के इस तत्त्व की सम्यक् उपलब्धि करने पर ही G. B. Shaw जैसे लोग कहने लगे हैं कि प्रकृति की नाट्य-क्रीड़ा में मर्द औरत को नहीं, बल्कि औरत मर्द को ढूँढ़ती फिरती है। ज्ञान का सागर पर्वत, गुफ़ा चाहे जहाँ हम छिपें, मगर वह हमें ढूँढ़ निकाले बिना नहीं मानने की। फहाश को ढूँढ़ निकाला। स्त्री के उर्वशी-रूप ने कितने मुनिवरों की तपस्या तहस-नहस कर डाली है। जब पुरुष-स्त्री को मूल ज्ञान-मार्ग में बढ़ता है तो सृष्टि का नारी-प्राण काँप उठता है, प्रकृति की सृष्टि-वासना में कंपन पैदा होता है, उस कंपन से उर्वशी का जन्म होता है। उसके नाच से ज्ञान-ध्यान टूटता है।

जिस समाज में लड़कियाँ ८ साल में ब्याही जाती हैं, वहाँ के लोग इस प्रच्छन्न नाटिका को जल्द समझ न पायेंगे। योरप में भी १९ शताब्दी

के पहले ये भावनाएँ प्रचलित न थीं। १९वीं शताब्दी के आख़िर में Ibsen की नोरा Dolls' House में व्यक्तित्व खोज घर से निकली। कुमारी लड़कियों का झुंड यौवन में कौमार-व्रत लिये औघट-घाट फिरने लगा। पाश्चात्य जगत् का गार्हस्थ्य-आश्रम टूट गया। बन्धन टूट जाने से पुरुष ज्ञान की तरफ़ झुक गये। शादियाँ कम होने लगीं। संपूर्ण यौवन की असंपूर्ण वासना जल उठी। क़ुदरती सृष्टि-वासना डर से सज... गई। प्रकृति के हाथ की कठपुतली औरत ... ढूँढ व्याकुल हो उठी। G. B. S. ने देखा, ... and Superman लिखा।

स्त्री पुरुष को खोजती है, उसके ज्ञान-वासना ... अवज्ञा कर। उसके ज्ञान में उसे कोई उत्साह नहीं ...

गीत

श्रीनीलकण्ठ तिवारी "ज़ख़्मी" बी० ए०, साहित्यरत्न

कौन-सा यह स्वप्न बोया ?

नत पलक के तम-गगन में, स्वप्न तारक कौन बोया ?
आँख का तारा बनी तू, ज्योति का संसार लेकर
दृष्टि-किरणें बुन रहीं तुव, चन्द्रिका-सा हास मृदुतर
श्वास के प्रति तार ने तुव, अमिय-सिञ्चित-स्वर पिरोया
मन्दिरों की घंटिका-ध्वनि-सी बनी शुचि प्राण-धड़कन
आज उर की हूक में पिक-कूक का होता निनर्तन
प्रेम-रव तुव कोकिले! उर-शङ्ख में मम गूँज सोया
है भरित प्रति अश्रु-कण में, हास का तुव रौप्य-सागर
रूप-पय-पथ है खचित तुव, पुत्तली की तम-अमा पर
आलवालों पर अधर के, प्रेम-चुम्बन बीज बोया
स्वप्न-पङ्किल हे विहङ्गिनि श्वास-नीड़ों की सुवासिनि
आर्द्र उर-मृत्स्ना-मृणालिनि प्रेम मानस-राजहंसिनि
उर पुलिन मम प्रेम-गङ्गा, बन प्रिये! तूने डुबोया
उठ गईं सौंदर्य-पलकें, तृप्ति तृष्णा बन बढ़ी अब
वेदना-वल्लरि बढ़ी उर-द्वार नयनों से खुले अब
हास अधरों पर प्रिये! मैं, आह बनकर आज खोया
यह समस्या प्रेम की हासाश्रु-सी अतिगूढ़ है क्यों ?
हास नभ पर प्रेम के हा! अश्रु-घन आरूढ़ हैं क्यों ?
स्वर्ग-तृष्णा बन प्रिये! घन-सा घुमड़ मैं ख़ूब रोया
भावना के खण्डहर में, इन्द्र-नगरी-सी बसी तू
दृष्टि के वृन्दावनों में राधिका ही-सी लसी तू
पुण्य-शय्या तू बनी मैं, सुरभि-अम्बर तान सोया
तव प्रणय-कर्पूर-दीयट, पर जला मैं आरती बन
चार नयनों के गगन में, तन गये हम इन्द्रधनु बन
अश्रु-निर्मित "ताज" तू मैं, बन कला का हास खोया



१—प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट और अमेरिका का विधान

जनवरी १९३७ से अगले चार साल के लिए प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के दुबारा राष्ट्रपति चुने गये हैं। प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट के चुनाव के साथ अमेरिका में यह विचार घर कर गया है कि अमेरिका के विधान में महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन होंगे। अमेरिका के बाहर भी उनके चुनाव का यही अर्थ लगाया गया है। प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट ने यद्यपि इस बात का खंडन किया है कि वह अमेरिकन विधान में हेरफेर करने का विचार कर रहे हैं, मगर उनके इस कथन से विधान में परिवर्तन की संभावना का अन्त नहीं हुआ।

सुप्रीम कोर्ट के इस निर्णय से कि फ़ेडरल सरकार औद्योगिक, व्यावसायिक और खेती की अवस्था का नियंत्रण नहीं कर सकती और प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट के 'नीरा' पर वज्र-प्रहार होने से यह प्रश्न ज़ोरों से अमेरिकन और बाहरी जनता के सामने उपस्थित है। सुप्रीम कोर्ट के इस निर्णय को पढ़कर पार्लमेंटेरियन परंपरा में पले हुए लोगों को बड़ा धक्का लगा है। जो लोग देश की पार्लमेंट की सत्ता को सर्वोपरि मानते हैं, वे सुप्रीम कोर्ट द्वारा पार्लमेंट के निर्णय की मिट्टी पलीद होते देखकर चौंक उठें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

प्रो० हेरल्ड लास्की का अमेरिकन विधान पर यह मत है—"अगर फ़ेडरल सरकार देश के व्यवसाय और खेती की दशा का नियंत्रण नहीं कर सकती तो स्टेट्स भी इन परिवर्तनों को नहीं कर सकते। फलतः विधान की इस व्याख्या के फलस्वरूप प्रगति की गाड़ी रुक जायगी। सिद्धान्ततः इससे यह मालूम होता है कि फ़ेडरल सरकार शिक्षा और रोज़गार के पुनः संस्थापन में शक्तिहीन-नपुंसक है। यह रिकंस्ट्रक्शन फ़ाइनेंस कार्पोरेशन (पुनः रचना राजस्व कार्पोरेशन), टेननीजी घाटी का परीक्षण और सार्वजनिक उपयोगी कार्यों का नियंत्रण, सिक्यूरिटीज़ बाज़ार पर हमला करता हुआ प्रतीत हो रहा है।"

स्टेट इन कार्यों की जिम्मेवारी लेने में असमर्थ है और सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय किया है कि इसके बजाय कि इन कामों को फ़ेडरल सरकार करे, इनका न होना ही ठीक है। सुप्रीम कोर्ट की



फ़ेडरल सरकार के ऊपर इस सत्ता के ठीक विरुद्ध एक उदाहरण ब्रिटिश परंपरा में मिलता है। आयरिश होमरूल बिल की चर्चा के समय यूनियनिस्ट पार्टी ने एक इस आशय का संशोधन पेश किया था कि आयरिश धारा सभा के ऊपर प्रिवी कौंसिल की एक जुडीशियल कमेटी का अधिकार स्थापित किया जाय। इस संशोधन को अस्वीकार करते हुए तत्कालिक प्रधान मन्त्री मि० एस्क्विथ ने कहा था कि इस तरह का अधिकार जुडीशियल (न्याय) संस्था को नहीं दिया जा सकता; क्योंकि वे जनता में अपने लिए विद्यमान सम्मान व आदर को क्षति पहुँचाये बग़ैर राजनीतिक वाद-विवाद से बचकर निर्विकार भाव से निर्णय नहीं दे सकते। निष्पक्ष-न्याय पर आँच आने के संदेह से स्व० लार्ड एस्क्विथ ने उक्त संशोधन को मानने से इन्कार कर दिया था।

समय-समय पर ऐसी कठिनाइयाँ आने पर अन्य देश किस तरह उनसे पार होते हैं, इस विषय पर अमेरिका के क़ानून और विधान-समस्या के विशेषज्ञों ने विशेष रूप से अध्ययन किया है। हावर्ड यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर मि० इलियट का कथन है कि सामाजिक नीति पर अमेरिका में कोर्ट सेंसर कर सकता है और उग्र क्रान्तिकारी व रेडिकल सामाजिक परीक्षण को रोक भी सकता है। मगर ब्रिटिश डोमीनियनों में जुडीशियल नियन्त्रण की अपेक्षा राजनीतिक नियंत्रण पर अधिक भरोसा किया जाता है और समाज-नीति में आवश्यक परिवर्तन राष्ट्र की इच्छा से, जोकि पार्लामेंट द्वारा प्रकट होती है और जिसकी सभा सर्वोपरि है, कर लिये जाते हैं। मगर यह बात अमेरिका में सम्भव नहीं है। प्रो० इलियट इसको स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि हमारे यहाँ जज क़ानून के भाष्यकार हैं, वाणी हैं और मुख हैं। सब वर्गों व सब श्रेणियों को संरक्षण देने के साथ हमारी गवर्नमेंट एक प्रतिबन्ध और सं[illegible] का एक मिश्रण है, जिसमें शक्तियों का वि[illegible] और जुडीशियल आलोचना का भी स्था[illegible] ये सब उपाय एक वर्ग का दूसरे वर्ग पर [illegible] स्थापित न होने देने के लिए किये [illegible] आपका मत है कि विधान के विध्वंसक [illegible] वाले उपायों के होने से ही राजनीतिक [illegible] स्थिरता रहती है। आपका यह भी विचार [illegible] विधान में संशोधन का विचार छोड़कर [illegible] के निराकरण का अन्य उपाय हमें ढूँढ़ना [illegible] आपने इसका यह उपाय बताया है कि [illegible] समान क़ानून बनाने के लिए सब सं[illegible] जायँ। मगर व्यवहार में यह उपाय कठि[illegible] किसी सीमा तक अव्यावहारिक सिद्ध हु[illegible] दूसरा उपाय यह है कि फ़ेडरल गवर्नमेंट [illegible] सहायता देकर विभिन्न क्षेत्रों में सर्वो[illegible] ग्रहण कर सकती है। अमेरिकन विचार[illegible] राय है कि फ़ेडरल शक्ति को अमल में [illegible] लिए यह उपाय आज़माइश के क़ाबि[illegible] अन्तरराष्ट्रीय कोर्टों और कन्वेशनों का [illegible] राष्ट्र अमेरिका में सम्मान है। सुधारक [illegible] बनाने के लिए इनका आश्रय ले सकते हैं [illegible] इनके आधार पर क़ानून बना सकते हैं [illegible] तीसरा उपाय यह सुझाया गया है कि [illegible] के ढंग पर फ़ेडरल लोन कौंसिल बनाई [illegible] फ़ेडरल गवर्नमेंट द्वारा विभिन्न उद्देश्यों [illegible] में नियुक्त अफ़सरों से फ़ेडरल गवर्नमेंट [illegible] रूप से लेन-देन का सम्बन्ध रक्खे। इस[illegible] है कि अमेरिकन जहाँ फ़ेडरल गवर्नमेंट को [illegible] शाली बनाना चाहते हैं, वहाँ वे [illegible] विधान में परिवर्तन नहीं चाहते। इसक[illegible] है सुप्रीम कोर्ट में उनकी अत्यन्त आस्था [illegible] व विश्वास का होना। सुप्रीम कोर्ट [illegible] 'स्वतन्त्रता का मन्दिर' (टेम्पेल आफ़ [illegible]

कहते हैं। ओहियो स्टेट के एटर्नी जनरल ने सुप्रीम कोर्ट के बारे में विगत जनवरी में बड़े अभिमान के साथ कहा था—"हमारे इतिहास से सिद्ध है कि सुप्रीम कोर्ट वैधानिक पद्धति की अन्तिम रक्षक व चहारदीवारी है। अपने कार्य के अनुरूप वह सिद्ध हुआ है। भविष्य में भी यही केवल ज़िम्मेवारी को निभा सकता है। यही केवल अपने सामने आये हुए महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के विचार और निर्णय की वैधानिक पद्धति को बिना बाधा व बन्धन के क़ायम रखने में अपनी प्रतिष्ठा, शक्ति और अपनी ताक़त क़ायम रख सकता है।"

सुप्रीम कोर्ट के प्रति अमेरिकन जनता की यह मान्यता, विश्वास व श्रद्धा सम्भवतः प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट के विधान परिवर्तन के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है और आश्चर्य नहीं जो अमेरिकन जनता की इस श्रद्धा की चट्टान से प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट के विधान-परिवर्तन के मन्सूबे टकराकर चूर-चूर हो जावें।

× ×

२—गवर्नरों का वेतन

कविवर विशाखदत्त ने अपने प्रसिद्ध 'मुद्राराक्षस' नाटक में मौर्य-साम्राज्य के संस्थापक आचार्य चाणक्य की कुटी का वर्णन इस प्रकार किया है—

"उपलशकलमेतत् भेदकं गोमयानाम्,
वटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तूपमेतत्।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभि-
र्विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्॥"

[कहुँ परे गोमय शुष्क, कहुँ सिलपरी सोभा दै रही।
कहुँ तिल, कहुँ जव-रासि लागी बटुन जो भिच्छा लही॥
कहुँ कुस परे, कहुँ समिध सूखत भार सों ताके नयो।
यह लखौ छप्पर महा जरजर होइ कैसो झुकि गयो॥]

इसको पढ़कर इस युग के सेगाँव के ऋषि महात्मा गांधी की साफ़-सुथरी मनोमुग्धकारी व्यवस्थित कुटिया का चित्र आँखों के सामने आ जाता है। इन दोनों चित्रों का जब हम प्रान्तीय स्वायत्त शासन आरम्भ होने पर गवर्नरों को मिलनेवाले वेतन और भत्तों से मुक़ाबला करते हैं, तब ज़मीन-आसमान का अन्तर मालूम होता है, और सहसा अनुभव होने लगता है कि वर्तमान शासन-व्यय भारतीय आवश्यकताओं और भारतीय परम्परा के सर्वथा विरुद्ध है। गवर्नरों का वेतन एक लाख से अधिक वार्षिक ठहराया गया है। इसके अतिरिक्त छुट्टी का भत्ता अलग है। उसके तथा उसके सम्बन्धियों के माल पर चुंगी ज़कात नहीं लगेगा। ये सुविधाएँ पर्याप्त नहीं थीं, इसलिए रहने के मकान के सामान-सुमान की व्यवस्था, खाने-पीने का इन्तज़ाम, फ़ौजी सेक्रेटरी, और उसका विभाग, बैंड, प्रवास, बाडीगार्ड, मोटर आदि के वास्ते अलग खर्च दिया जायगा। इस पर धारासभा उँगली तक नहीं उठा सकेगी। एक बम्बई के गवर्नर के भत्ते की रक़म ही उदाहरणार्थ लीजिए—छुट्टी का भत्ता प्रतिमास ४००० रु०, रहने के बँगले के फ़र्नीचर, सामान वग़ैरह की मरम्मत के वास्ते प्रतिवर्ष २३०००; खाना-पीना—अतिथि-सत्कार आदि २५००० रु०; मिलिटरी सेक्रेटरी व उसका महकमा १३६००० रु०, बैंड ४५००० रु०, बाडीगार्ड ७८००० रु०, सर्जन और उसका महकमा ३३६००० रु०, प्रवास ६५०००) मोटर आदि विविध खर्चे १०८०००)। छुट्टी का भत्ता प्रति मास ५५०० रु० पर्यंत भारतमंत्री को बढ़ाने का हक़ है। प्रेसीडेन्सी गवर्नरों को छोड़कर अन्य प्रान्तीय गवर्नरों को बैंड नहीं दिया गया है। भारत-उपमन्त्री मि० बटलर के शब्दों में गवर्नरों को अपना काम प्रतिष्ठा व सम्मान के साथ करने के लिए यह कम से कम खर्च अत्यावश्यक है।



यह बताने की ज़रूरत नहीं है कि इस बीसवीं सदी में भी इस देश में एक कोट्याधीश से लँगोटीबन्द का अधिक सम्मान है, इसलिए विना तड़क-भड़क व दिखावे के भी इससे शतांश ख़र्च पर गवर्नर पूरे सम्मान और प्रतिष्ठा के साथ अपने पद का कार्य कर सकता है, और ऐसा करने से उस पद की प्रतिष्ठा घटने के बजाय बढ़ जायगी।

आश्चर्य की बात यह है कि मि० बटलर जिस ख़र्च को भारत के लिए कम से कम बताते हैं, उससे कम पर ब्रिटेन व ब्रिटिश-साम्राज्य में राजकर्मचारी प्रसन्नतापूर्वक कार्य कर रहे हैं। लन्दन के टाइम्स ने अँगरेज़ नौजवानों से आई० सी० एस्० में भरती होने के लिए अपील करते हुए लिखा है—

"स्वदेश के ट्रेज़री खर्रे और नियमों की तुलना में भारतीय सिविलियनों के पास रक्षार्थ पार्लामेण्टरी ऐक्ट है और एक शर्तनामा है, जो भारतमन्त्री और उसके बीच में व्यक्तिगत रूप से किया जाता है। साम्राज्य भर में ऐसी कोई सेवा नहीं है, जिसमें ५० साल की उमर से पहले ही किसी मेम्बर को कम से कम २३०० पौं० की गारण्टी दी जाती हो, और केवल २१ साल की लगातार सक्रिय सेवा के बाद किसी प्रकार के कर आदि देने के बग़ैर प्रति वर्ष १००० पौं० पेन्शन मिलने की व्यवस्था हो। वह लगभग ३५ साल की उमर में साढ़े दस साल की सेवा के बाद स्तीफ़ा दे सकता है; क्योंकि उसको यह अनुपम लाभ मिला हुआ है कि यदि वह भारत की अवस्था अपने अनुकूल नहीं पाता तो उचित पेन्शन पर समय से पहले ही त्यागपत्र दे सकता है। स्वदेश की नौकरी में अत्यधिक तनख़्वाह १४५० पौं० है। यहाँ तक कि अंडर सेक्रेटरी, डिप्टी अण्डर सेक्रेटरी और इसी के समान पद पर बहुत थोड़े व्यक्ति पहुँचते हैं। ६० साल की में जाकर ८०० पौं० पेन्शन मिलती है। सी० एस्० के दिये गये अंकों में चुनी हुई जगहों को स्थान नहीं दिया गया। बृहस्पतिवार को हुई घोषणा हमें स्मरण है कि जब प्रान्तीय स्वायत्त शासन होगा, तब आज के समान ११ प्रान्तों में प्रान्तों के गवर्नर सिविलियन होंगे।"

यह किसी राष्ट्रीय पत्र की टिप्पणी बल्कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के मुखपत्र का विचारपूर्ण मत है। जब आई० सी० एस्० एक मामूली सदस्य ब्रिटेन के ऊँचे से ऊँचे पर चढ़े व्यक्ति से वेतन, पेन्शन, छुट्टी वग़ैरह में अच्छी स्थिति में है, तब गवर्नर स्वीकृत रक़म की अधिकता अपने आप ही कने लगती है। इससे यह भी मालूम कि लार्ड सिन्हा के समान भविष्य में कोई भारतीय गवर्नर की गद्दी पर फिर अधिष्ठित हो और आश्चर्य नहीं है कि डेन्सियों के गवर्नर भी भविष्य में सिवि होने लगें। असल बात यह है कि दूसरों पर हरेक मौज उड़ाना चाहता है। इससे का विदेशीपना भी ज़ाहिर होता है।

× ×

३—जापानी ग्रेजुएटों का संरक्षण

भारत-सरकार ने बार-बार प्रार्थना करने पर भी बेकारों की मर्दुमशुमारी करने से इनकार कर दिया है। शिक्षित बेकारों के साथ सहानुभूति दिखाने के अतिरिक्त वह कुछ नहीं करती। इसके विपरीत जापान-सरकार अपने के ग्रेजुएटों व स्नातकों को काम पर लगाने की पूरी कोशिश करती है। ख़ास कर इस बात का ब्यौरा देखने के लिए कि कौन स्नातक कहाँ क्या कर रहा है, जापान-सरकार ने एक ख़ास



'सेन्ट्रल एम्प्लायमेंट एक्सचेन्ज डिपार्टमेंट' खोल रक्खा है। इसकी १६३४ की रिपोर्ट हमारे सामने है। रिपोर्ट के दो भाग हैं। एक में यूनिवर्सिटियों और कालेजों द्वारा संगृहीत अंक दिये गये हैं और दूसरे में बैंक व औद्योगिक व व्यावसायिक फ़र्मों द्वारा दिये गये अंक दिये गये हैं।

विश्वविद्यालयों व कालेजों द्वारा संगृहीत अंकों को देखने से मालूम होता है कि ११२५ में जहाँ ६६.६ प्रतिशत स्नातकों को रोजगार मिला था; वहाँ १६३४ में केवल ४४.६ को ही मिला। सबसे कम आर्थिक संकट के साल १६३१ में केवल ३६ प्रतिशत को ही मिला। मगर यह धीरे-धीरे बढ़-कर ४४.६ तक पहुँच गया। इससे यह ख़याल न करना चाहिए कि जापानी ग्रेजुएटों में बेकारी का बाजार गर्म है; क्योंकि रिपोर्ट में कहा गया है कि कुछ जापानी युवक स्वतः ही व्यवसाय में गये। इनकी संख्या भी प्रतिवर्ष बढ़ रही है। १६२६ में जहाँ ये ५.६ प्रतिशत थे, वहाँ १६३४ में ६.६ प्रतिशत हो गये। शेष में से कुछ तरुणों ने अपना शिक्षण जारी रक्खा। १६२५ में इनकी संख्या ८.७ प्रतिशत थी और १६३४ में इनकी संख्या १०.८ प्रतिशत हो गई। कालेज व यूनि-वर्सिटी छोड़ने पर जो विद्यार्थी रोजगार पाने में सर्वथा असफल रहे, उनकी संख्याएँ १६२५ में १२.४ और १६३४ में १६.६ प्रतिशत रहीं। रिपोर्ट से यह भी पता लगता है कि विज्ञान, खेती, और मछली, शिल्प व दस्तकारी का विषय लेने-वाले छात्रों को रोजगार मिलने में बहुत आसानी रही। १६३४ में विज्ञान के ग्रेजुएटों में से ७४.६; खेती और मछली के ६१.४; शिल्प और दस्त-कारी के ५८.१ प्रतिशत ग्रेजुएटों को रोजगार मिला। चिकित्सा में ४७.७ प्रतिशत को रोजगार मिला। शेष, क़ानून, साहित्य, अर्थशास्त्र का प्रति-शत ३८.४ रहा।

बैंकों और व्यावसायिक तथा औद्योगिक फ़र्मों द्वारा दिये गये अंकों से पता चलता है कि वे यूनिवर्सिटी के स्नातकों का अधिकाधिक मात्रा में उपयोग करने लगे हैं। १६२७ में बैंक व व्यावसायिक फ़र्मों द्वारा काम पर लगाये गये ग्रेजुएटों की संख्या २५६६ थी। उस समय से यह संख्या निरन्तर बढ़ती गई और १६३४ में यह ८.८६ हो गई। 'बिजिनेस-हाउसेज़' विशेषकर ग्रेजुएट को अब अधिक पसन्द करने लगे हैं। १६२७ में जहाँ उन्होंने केवल ४८ को स्थान दिया था, वहाँ १६३४ में २७२ ग्रेजुएटों को उन्होंने अपने यहाँ जगह दी है।

जापान के इस उदाहरण से हमारे विश्वविद्या-लय और व्यावसायिक फ़र्म बहुत कुछ सीख सकते हैं, उसका अनुकरण करके देश में बढ़ रही बेरोज़गारी को दूर करने में सहायक हो सकते हैं। यूनीवर्सिटियाँ ऐसा विभाग खोलकर न केवल अपने छात्रों को रोज़ी ढुँढवाने में सहायक हो सकती हैं, बल्कि अध्ययन के काल में उन्हें बता सकती हैं कि किस प्रकार की शिक्षा से विद्यार्थी का भला होगा। इसी प्रकार हमारे औद्योगिक व व्यावसायिक फ़र्म ग्रेजुएटों को अपने यहाँ काम देकर बता सकते हैं कि शिक्षणालयों में किस क़िस्म की व्यावहारिक व तात्त्विक शिक्षा की इस समय ज़रूरत है। यदि ऐसा हो तो देश के विश्वविद्यालयों और फ़र्मों में एक घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाय, जो देश के लिए सब दृष्टि से लाभदायक सिद्ध होगा।

× × ×

४—बेकारी से लड़ने का तरीक़ा

भारत-सरकार अभी सप्रू-कमेटी की सिफ़ा-रिशों पर विचार कर रही है, और कुछ प्रान्तीय सरकारें जहाँ कुछ नौजवानों को खेती पर लगाकर व दर्ज़ीशाला खोलकर अपने कार्य की इतिश्री



समझ रही है, वहाँ योरपियन राष्ट्र बेकारों के लिए उपयोगी कार्य कर रहे हैं। जेकोस्लोविका ने १९३१ में 'बेकार तरुणों के लिए गृह' बनवाये थे। इसमें १४ से २० साल तक के बेकार तरुण रक्खे जाते हैं। इन लोगों को गरम मकान, भोजन और मनोरंजन के साधन सरकार की ओर से जुटाये जाते हैं। यह तो हुई सर्दियों की बात। गर्मियों में इनके दल बना लिये जाते हैं और इनको सैलानियों के लिए सड़कें तैयार करने में, तैरने के तालाब बनाने व उनकी मरम्मत करने, खेलने के मैदान तैयार करने, वृक्ष रोपने और इसी तरह के सार्वजनिक कार्यों में इनको लगाया जाता है। इनका ख़र्च कुछ तो वे संस्थाएँ उठाती हैं, जिनका यह कार्य होता है, और कुछ सरकार उठाती है जो सहायता के रूप में उन संस्थाओं को देती है। इस प्रकार तरुण व्यक्ति, रोज़ी, काम, शिक्षा और मनोरंजन प्राप्त करते हैं। संगठित सामाजिक शक्ति किस प्रकार बेकारी से लड़ सकती है इसका यह एक अच्छा उदाहरण है।

× × ×

५—परित्यक्त सन्तान

संसार के नवीनतम फ़ैशनों की जननी पेरिस में प्रतिवर्ष २००० अवांछनीय बच्चे त्याग दिये जाते हैं। इनमें से बहुत-से ऊँची स्थिति पर पहुँचे हुए हैं। दो इनमें से सिनेटर हैं, चार डेपुटीं (फ़्रेंच पार्लमेंट के मेंबर) हैं और एक अंडर-सेक्रेटरी आफ़ स्टेट हैं। सेना में दो जनरल और सात और ऊँचे पदों पर हैं। नौसेना में एक एडमिरल और ६ कैप्टेन हैं। इनके जन्म का गुप्त रहस्य कभी नहीं बताया जाता। इसलिए जो लोग युद्ध में मारे गये, उनके असली नाम सम्माननीय नामों (रोल आफ़ आनर्स) में दर्ज नहीं किये गये। स्टेट को बच्चा देने में किसी औपचारिक नियमों के पालन की जरूरत नहीं है, न कोई प्रश्न पूछा जाता है। माताएँ स्टेट-होम रात और दिन के किसी समय अपने बच्चे को ले जाती हैं। नर्स पहले हरेक माता को प्रेरणा करती है कि वह अपनी सन्तान का त्याग न करे; इस यत्न के व्यर्थ होने पर वह कुछ सवाल करती है, जिनका उत्तर देना माता की इच्छा पर निर्भर है। जब बच्चा कुछ बड़ा हो जाता है, तो छोटे-छोटे परिवारों में भेज दिया जाता है। स्टेट उनकी शिक्षा-दीक्षा पर ध्यान रखता है। यदि बालक तेज हुआ तो उसकी शिक्षा जारी रक्खी जाती है। उसे माध्यमिक स्कूल और कालेज भेजा जाता है और यूनिवर्सिटी-शिक्षा दी जाती है।

यह एक ऐसे देश के उदाहरण हैं, जिसकी सभ्यता पर हमारे तिलकधारी नेता हँसते हैं और जिसका मजाक़ उड़ाने में कभी नहीं चूकते। इस देश में न-जाने कितने बच्चे इस तरह माताओं द्वारा तीर्थों में छोड़ दिये जाते हैं, मगर उनकी परवरिश और शिक्षा का समाज और सरकार की ओर से कोई इन्तज़ाम नहीं है। क्या इन परित्यक्त सन्तानों में कर्ण-सरीखे दानवीरों और शूरवीरों का उत्पन्न होना सम्भव नहीं है? क्या 'दया-धर्म' को परम धर्म माननेवाला हिन्दू-समाज इन अज्ञात माता-पिता की सन्तानों की रक्षा का इन्तज़ाम करेगा? क्या भारत के प्रत्येक तीर्थ



पर और बड़े-बड़े शहरों में परित्यक्त सन्तानों के लिए गृह बनाकर उनकी सुरक्षा और शिक्षा-दीक्षा का समाज प्रबन्ध करेगा ? या आज के समान माता व पिता के अपराध का दंड मासूम बच्चों को देता रहेगा ? क्या हम आशा करें कि हमारे नेता राष्ट्र की व्यर्थ जा रही इस मानवीय शक्ति का संरक्षण करने की ओर ध्यान देंगे ?

× × ×

६—भारत में सिंचाई

भारत कृषि-प्रधान देश है। गवर्नमेंट यह बात मानते हुए भी यहाँ सिंचाई की उत्तम व्यवस्था नहीं करती। किस प्रान्त में कितनी भूमि सींची जाती है, यह निम्न-तालिका से ज्ञात होगा—

	१९३१-३४ में सींची गई भूमि (एकड़ों में)	१९३४-३५ में सींची गई भूमि (एकड़ों में)
मद्रास	७४५६६३०	७३०२३९०
बम्बई दक्खिन	३७८०७२	२८७८१३
सिंध	३९१५२४०	४०६९३५६
बंगाल	५५१९४	१९२८६६
युक्तप्रान्त	३७३७५१९	३८२७३५१
पंजाब	१०९४३७२६	१०४८५१४६
बर्मा	२०७७६६५	२०५४०७८
बिहार और उड़ीसा	८८००२३	८५२७२९
मध्य-प्रान्त (बरार छोड़कर)	३८१३६३	३२२८९२
सीमाप्रान्त	३९३०६६	४०६५७२
राजपूताना	२८२४९	२६५३७
बलूचिस्तान	२०९६८	२०५३३
सर्व योग	३०२६७७१५	२९८८८२६७

(सीमाप्रान्त में पहाड़पुर नहर से ३१४९८ एकड़ सींची जानेवाली ज़मीन को इसमें शामिल नहीं किया गया है।)

नवीन पूसा का उद्घाटन करते हुए स्वतः वायसराय ने नहर से सींची जानेवाली ज़मीन को कुछ खेती की जानेवाली ज़मीन के अनुपात में असन्तोषजनक बताया है। यह कुल खेती की ज़मीन का २२वाँ भाग है। यदि इस अवस्था में खेत की पैदावार न बढ़े और किसानों की हालत, फ़सल हर साल बिगड़ जाने से, प्रतिदिन बिगड़ती जाय तो सरकार के सिवा और कौन जिम्मेवार है ?

× × ×

७—भारत में परदेशी बैंक

पिछले २५ वर्षों में भारत में बैंकों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है। १९१३ में भारत में ... ज्वाइण्टस्टाक बैंक थे। १९२५ में यह संख्या ... कर ७४ पहुँच गई। १९३४ में इनकी संख्या ... हो गई। मगर एक्सचेंज-बैंकों—विनिमय बैंकों—की संख्या इस अवधि में बहुत नहीं बढ़ी। १९१३ में भारत में एक्सचेंज-बैंकों की संख्या १२ थी; १९२५ में १८ हो गई और १९३४ ... घटकर १७ रह गई। इनमें से १० बैंक ...



में विस्तृत पैमाने पर कार्य करनेवाले बैंकों की एजेन्सियाँ मात्र हैं। सच्चे अर्थों में एक भी एक्सचेंज-बैंक देशी नहीं है। इसका फल यह होता है कि समुद्र पार होनेवाले सारे व्यापार का लेन-देन इन विदेशी बैंकों द्वारा होता है और भारत का लाखों रुपया इस प्रकार विदेशों को जाता है। एक भी देशी एक्सचेंज-बैंक न होने का एक कारण विदेशों में कोई भारतीय एक्सचेंज-बैंक का न होना था। इस अभाव की पूर्ति सर पोचखानवाला के प्रयत्न से सेन्ट्रल बैंक आफ़ इन्डिया ने कर दी है। इसलिए आशा करनी चाहिए कि भारत में शीघ्र ही देशी एक्सचेंज-बैंकों का उदय होगा और वे विदेशी एक्सचेंज-बैंकों का स्थान लेने में समर्थ होंगे।

× × ×

८—खाँड-व्यवसाय

खाँड भारत के उन व्यवसायों में है, जिनको भारत-सरकार से संरक्षण प्राप्त हुआ है, और इस कारण अपनी जड़ इस देश में जमाने में सफल हुए हैं। ताज़ी रिपोर्ट से पता लगता है कि खाँड देश में आवश्यकता के अनुरूप पैदा होने लगी है। ३१ अक्तूबर १९३६ को स्टाक में १२०००० से १४०००० टन खाँड स्टाक में थी। इस प्रचुर उत्पत्ति के कारण खाँड का दाम गिर गया है और खाँड-व्यवसायियों की हालत बिगड़ गई है। नये साल का भविष्य उज्ज्वल नहीं मालूम होता। ख्याल किया जाता है कि इस साल (१९३६-३७) पिछले साल की अपेक्षा अधिक खाँड उत्पन्न होगी। पिछले साल मौसम में गन्ने की खाँड ९००००० टन उत्पन्न हुई थी। इस बार ९५२००० टन का अनुमान है। इसके साथ यदि खाँडसारी और गुड़ से उत्पन्न खाँड को जोड़ दें तो इसकी मात्रा १०९४०००० हो जायगी। इसके साथ हमें पिछली बची १२००० टन और आयात ५०००० टन खाँड भी जोड़नी चाहिए। इस प्रकार उपयोग के लिए कुल खाँड देश में १२६४००० टन होगी। सरकारी अनुमान है कि इस देश में १०८०००० टन की खपत है। मगर बर्ड एण्ड कम्पनी का कहना है कि सरकार ने देश में खपत का अन्दाजा ठीक-ठीक नहीं लगाया है। इधर खाँड-व्यवसायी और शुगर-मिलों के संचालक खाँड की खपत के लिए और इसके निकास के वास्ते बाजार ढूँढने का सम्मिलित प्रयत्न कर रहे हैं। यह युग 'रैशनाईलिजेशन' का है। मगर केवल खपत और बिक्री में सम्मिलित प्रयत्न करने से लाभ न होगा, जब तक कि उत्पत्ति भी सम्मिलित होकर और एक निश्चित योजना के अनुसार नहीं की जाती।

जावा पर असर

भारतीय खाँड को संरक्षण मिलने से जावा का खाँड-व्यवसाय चौपट हो गया है। नीदरलैंड इंडीज का मुख्य व्यवसाय खाँड का निर्यात था। इसके बिगड़ जाने से उसे गहरा नुक़सान हुआ है। १९२८ में फ़ैक्टरियों की संख्या १७८ थी; मगर १९३५ में घटकर केवल ३९ ही रह गई। गन्ने की खेती का क्षेत्र १९३१ से अब केवल आठवाँ भाग रह गया है। १९२८ में २९२३६०० टन खाँड की पैदावार थी; १९३५ में ५१२००० टन केवल रह गई। जावा का खाँड-व्यवसाय केवल निर्यात के भरोसे टिका हुआ था, इस कारण भारत की मंडी छिन जाने से वैज्ञानिक शोधों द्वारा उत्पादन के सस्ते से सस्ते तरीक़े भी उसको गिरने से नहीं बचा सके। गन्ने की खेती योरपियन ज़मीन्दारियों पर होती थी; इसलिए उनको भारी क्षति पहुँची है। लगभग ८००००० मज़दूरों को अलग कर देना पड़ा है। १९२९ में मज़दूरों को वेतन व रेण्ट में १२½ करोड़ गिल्डर दिया गया था। १९३४ में इसमें ९६½ प्रतिशत



कमी कर दी गई थी। जहाँ पहले गन्ने की खेती की जाती थी, वहाँ अब भोज्य पदार्थों की खेती की जाती है। संरक्षण के बल से किस प्रकार भारतीय व्यवसाय टिक सकते हैं, इसका यह एक अच्छा उदाहरण है।

× × ×

६—अनंग-रंग

यह एक पौष्टिक और वीर्यवर्द्धक औषधि है। ये गोलियाँ कस्तूरी, स्वर्णभस्म आदि बहुमूल्य पदार्थों से बनाई गई हैं। हमने अपने एक मित्र को सेवन करने के लिए यह दवा दी थी। उन्होंने इसकी बड़ी प्रशंसा की। वास्तव में यह दवा निर्बलों के लिए बहुत उपयोगी है। सबल और श्रीमान् लोग भी इसका सेवन करके जीवन को स्फूर्तिमय बना सकते हैं। ४० गोलियों की क़ीमत ४) है। मिलने का पता—गोविन्द-राम वैदिक फ़ार्मेसी, पोस्ट कुरावली, ज़िला मैनपुरी।



गीत

श्रीरतनलाल जोशी "रत्न" विशारद

आज कोकिल विकल रोई।

निखिल जग की विरल पलकें, सजल करुणा ने भिगोई।

कुसुम-शिशु को गोद ले कल,
सजनि, लतिका तरल-अञ्चल
चीर संसृति-मर्म अविरल—
सिसकियाँ भर विपुल सोई।
कल्पना - कलियाँ कलित - तन
अश्रु - सिंचित विपिन से चुन,
वेदना के सूत्र में मन—
म्लान उडुगन ने पिरोई।

लघु क्षीण-सी आशा-किरण-
चिर तिमिर मन का ज्योति-कन
कुलिश-कर ने समय के, घन—
तिमिर के लय में डुबोई।
विषाद - छाया में चिरन्तन
वलित - वायु - उसाँस से तन
प्रणय ने मृदु सिहरते मन—
कौन-सी मृदु बेलि बोई।



लेख-सूची

चित्र-सूची

(रंगीन)

सम्मन बग़रज़ क़रारदाद उमूर तनक़ीह तलब

मुक़द्दमा नम्बर २०० न० सन् १९३६ ई०] [तारीख़ पेशी २५ माह फ़रवरी सन् १९३७ ई०

बअदालत जनाब पंडित हरीशंकर साहब बहादुर मुनसिफ़ मुक़ाम रायबरेली

सुरजबख़्श कौम कुरमी व० मातादीन } साकिन चितवनया परगना कुम्हरावाँ
रामगोविंद वल्द रामअधीन } ज़िला रायबरेली

बनाम

भैरोप्रसाद वल्द रामचरन ब्राह्मण साकिन रायपुर मजरे बैंती परगना कुम्हरावाँ ज़िला रायबरेली वारिद हाल मुक़ाम छावनी खीवणी शहर बम्बई चौथे कारखाने के सामने सतनरायन वाजपेई की चूना भट्टी

वाज़े हो कि मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत् ४६६) केदायर की है लिहाज़ा तुम्हें हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ २५ माह फ़रवरी सन् १९३७ ई० को बवक़्त १० बजे दिन पर असालतन या मारफ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूरात अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और तुमको हिदायत की जाती है कि जुमला दस्तावेज़ात को जिन पर बताईद अपनी जवाबदिही के इस्तदलाल करना चाहते हो पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा तुम्हारी ग़ैर हाज़िरी में मसमू और फ़ैसल होगा।

आज बतारीख़ २९ माह जनवरी सन् १९३७ ई० मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत से ...



भूतपूर्व सम्राट् एडवर्ड अष्टम

(वर्तमान ड्यूक आफ़ विंडसर)



माधुरी

सम्पादक
रूपनारायण पांडेय
प्रतिनिधि-सम्पादक (सी० पी०)—मातादीन शुक्ल

वर्ष १५, खंड २, संख्या १, पूर्ण संख्या १७५	माघ	३१३ तुलसी संवत्, १९९३ वि०

प्रार्थना

श्री "कमलाकर"

प्रतिभा की प्रभा को प्रभाव परे
नव भाव की भावना चेरी रहै;
लहि पूरो प्रसाद अलंकृत ह्वै
बर बानी बिनोद-घनेरी रहै।
अनमोल कुबेर के कोषहु सों,
तिन अर्थन की लगी ढेरी रहै;
पद - पंकज - दासी बिकासमुखी
जगदंब, सदा मति मेरी रहै।





आदर्श सन्तान-निग्रह

श्रीरामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए०, एल्-एल्० बी०

आजकल भारत के शिक्षित समुदाय का ध्यान सन्तान-निग्रह की समस्या पर विचार करने में लग रहा है। सार्वजनिक सम्मेलनों, महिला-परिषदों और समाचार-पत्रों में इस विषय पर गरमागरम बहसें होने लगी हैं। देश के नेता और समाजसुधारक भी इस दिशा में बड़ी दिलचस्पी ले रहे हैं। सन्तान-निग्रह-आन्दोलन की विश्वविख्यात प्रचारिका श्रीमती मारगरेट सैंगर के भारत में आगमन से इस आन्दोलन को यथेष्ट लोकप्रियता प्राप्त हुई है। कुछ दिन पहले ट्रावनकोर में अखिल-भारतवर्षीय महिला-परिषद् के अवसर पर श्रीमती सैंगर ने 'सन्तान-निग्रह' का बड़ी प्रबलता से समर्थन किया। यही नहीं, श्रीमती सैंगर ने देशपूज्य महात्मा गान्धीजी से, इस विषय में, वार्तालाप कर और उसे समाचार-पत्रों में प्रकाशित कर अपने प्रचार को अधिक आकर्षक और लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया था।

भारत की जनसंख्या सन् १९३१ में—एक दशाब्दी में ३½ करोड़ बढ़ गई। यह आश्चर्यजनक वृद्धि इस आन्दोलन को उग्रता प्रदान करने में प्रेरक कारण बनी है। वैसे, भारत में जनता की भीषण निर्धनता, राष्ट्रीय स्वास्थ्य-हीनता, मातृत्व का पतन, बाल-मृत्यु की प्रचुरता सन्तान-निग्रह की आवश्यकता अनुभव कराने के लिए यथेष्ट कारण हैं।

सन्तान-निग्रह इस युग में भारत के लिए आवश्यक और हितकर है—इस बात पर कम मतभेद पाया जाता है। परन्तु सन्तान-[illegible] (Birth control) के साधनों (Meth[illegible]) [illegible] सम्बन्ध में मतभेद है।

एक पक्ष का यह कथन है कि भारत को [illegible] निग्रह की आवश्यकता तो है; परन्तु उसके [illegible] कृत्रिम साधनों (Artificial Means) की [illegible] श्यकता नहीं है। आत्म-संयम ही सबसे [illegible] उपाय है। स्पष्ट शब्दों में इसका अर्थ यह [illegible] जब पुरुष और स्त्री को सन्तान उत्पन्न करने [illegible] इच्छा हो, तभी उनको मैथुन करना [illegible] बिना सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के मैथुन [illegible] पाप है, घोर अपराध है। इस पक्ष के सबसे [illegible] और उग्र समर्थक हैं गान्धीजी।

दूसरा पक्ष भी सन्तान-निग्रह की आवश्[illegible] का अनुभव करता है, परन्तु वह सन्तान-नि[illegible] लिए कृत्रिम उपायों (Artificial Meth[illegible]) पर ही अधिक ज़ोर देता है। इस पक्ष [illegible] सम्मति है कि काम दाम्पत्य-जीवन की एक [illegible] पूर्ण और जीवनदायिनी शक्ति है; [illegible] दाम्पत्य-जीवन से ऐसा ही घनिष्ठ सम्पर्क [illegible] कि पति और पत्नी का। काम-वासना और [illegible] स्वाभाविक भाव है। दाम्पत्य-जीवन में [illegible] सन्तुष्टि स्वास्थ्य के लिए हितकर और [illegible] प्रेम की अभिवृद्धि ही नहीं करती, प्रत्युत [illegible] रिक, मानसिक और आत्मिक सहयोग और [illegible]



जस्य (Harmoney) की प्रतिष्ठा करती है।

वास्तव में विचारपूर्वक देखा जाय, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि गान्धीजी का पक्ष एक आदर्श है—एक ऐसा आदर्श, जिसका इस आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता के युग में पालन बहुत कठिन ही नहीं, वरन् औसत स्त्री-पुरुष के लिए संभव नहीं। जिन पाठकों ने गान्धीजी की 'आत्मकथा' का अध्ययन किया है अथवा रूसी महात्मा टाल्स्टाय की दैनिक 'डायरी' का स्वाध्याय किया है, वे सहज ही यह अनुभव कर सकते हैं कि इन महात्माओं का यौवन-काल आजकल के सामान्य दम्पति के जीवन के समान कामवासना-पूर्ण और असंयमी रहा है। इन दोनों श्रद्धास्पद विभूतियों ने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध भाग में अपनी यौवन के उन्माद की मीठी भूलों को स्वीकार कर आत्म-संयम और विवाहित जीवन में ब्रह्मचर्य-धारण की आवश्यकता का अनुभव किया, अपने जीवन में पालन किया और दूसरों को ऐसा करने का 'उपदेश' भी दिया।

यह तो एक अनुभव की बात है कि ४५ या ५० वर्ष की आयु के बाद शारीरिक शक्तियों के शिथिल हो जाने से कामशक्ति भी बहुत हीन हो जाती है, उसमें ग्रीष्म की आँधी और तूफ़ान की प्रचण्डता नहीं रहती। ऐसे अवसर पर पुरुष-स्त्री स्वतः अपनी शक्तिहीनता का अनुभव कर 'तपस्वी' और 'ब्रह्मचारी' बन जाते हैं। पर आप तनिक निष्पक्ष होकर विचार कीजिए कि स्वस्थ दम्पति-युगल, जिनका शरीर पूर्ण यौवन को प्राप्त कर चुका है, जिनके पास अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए सब आवश्यक उपकरण अपनी स्थिति (Status) के अनुकूल उपस्थित हैं और जिनमें परस्पर प्रेमाकर्षण भी बहुत तीव्र है, अपने दाम्पत्य-जीवन में कब तक, लाख चेष्टा करने पर भी, ब्रह्मचर्य का पालन कर सकेंगे? क्या ऐसे युवक दम्पति-युगल से यह आशा की जा सकती है कि वे विवाहोपरान्त ब्रह्मचारी बनकर रहेंगे—आठों प्रकार के मैथुनों से दूर रहेंगे और ऐसा करते हुए भी वे परस्पर प्रेम-पूर्वक अपना जीवन बिता सकेंगे? जब उनको सन्तानोत्पादन की इच्छा होगी, तब केवल एक बार परस्पर एक दूसरे के शरीर का स्पर्श या आलिंगन करेंगे?

प्रेमी दम्पति के जीवन में वर्ष में ऐसे अनेकों अवसर आते हैं, जब उसकी तीव्र प्रेम-भावना (Emotion of love) अपनी अभिव्यक्ति (Expression) के लिए उनके शरीर में एक ऐसी आकर्षण-शक्ति या विद्युत् को पैदा कर देगी, जिसके प्रभाव से उनका शरीर बिना किसी बाह्य उत्तेजना के बरबस अपने जीवनसंगी या जीवनसहचरी के शरीर से लिपट जायगा।

मन की ऐसी स्थिति में उन दम्पतियों से, जिनके हृदय प्रेम के रस में निमज्जित हो चुके हों और अपने को एक विचित्र जगत् का प्राणी समझकर अभूतपूर्व आनन्द को प्राप्त करने में तल्लीन हो गये हों, उनसे यह आशा करना कि वे आत्म-संयम (Self-control) का पालन कर शरीर-स्पर्श से वंचित रह सकेंगे, शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान के प्रति अनभिज्ञता प्रकट करना है।

श्रीमती मारगरेट सैंगर से भेंट करते समय महात्मा गान्धीजी ने स्त्रियों को एक बड़ा विचित्र, पर अव्यावहारिक उपदेश दिया है। गान्धीजी ने कहा है कि जब उनके पति सहवास के लिए इच्छा प्रकट करें, तो उन्हें चाहिए कि वे उनकी इच्छा का प्रतिकार करने का प्रयत्न करें; एकदम अपने पतियों को आत्मसमर्पण कर देना उचित नहीं है। इस प्रकार वे स्वयं आत्म-संयमी बन सकेंगी और अपने पतियों को भी आत्मसंयमी बना सकेंगी।

गान्धीजी को यह जानना चाहिए कि प्रतिकार (Resistence) अमोघ साधन नहीं है और न वह प्रत्येक दम्पति के लिए प्रत्येक काल में हितकर ही हो सकता है। जब युगल-दम्पतियों में से एक अपनी काम-चेष्टा को सन्तुष्ट करने के लिए, बिना



दूसरे की इच्छा-अनिच्छा का विचार किये, अपने साथी के साथ बलात्कार करने लगता है, तब, वास्तव में, उस दूसरे का यह कर्तव्य है कि वह प्रतिकार द्वारा उसकी इच्छा का विरोध करे। परन्तु जब स्थिति ऐसी हो कि पुरुष और स्त्री दोनों ही आन्तरिक भाव से सहवास के लिए इच्छुक हों, किसी के बाहरी दबाव या कृत्रिम वातावरण के प्रभाव से या धमकी से नहीं, तो क्या आप यह विचार कर सकते हैं कि स्त्री या पुरुष प्रतिकार का सहारा लेकर आत्मसंयम की रक्षा कर सकेंगे ? जब स्त्री-पुरुष दोनों में प्रेम अति उग्र और प्रचंड रूप में विद्यमान हो और कोई शारीरिक प्रतिबन्ध मौजूद न हो, तो प्रेम की अभिव्यक्ति के मार्ग में बाधा उपस्थित करनेवाली संसार में कोई वस्तु नहीं है। वह समय ऐसा होता है कि समाज का मिथ्या भय, नीति के उपदेश, लोकाचार, सदाचार और लज्जा के भाव विलीन हो जाते हैं।

× × ×

इस समय सन्तान-निग्रह के उपायों की चर्चा शिक्षित और धनिक वर्ग के पुरुषों और स्त्रियों तक ही परिमित है। कहना न होगा कि सन्तान-निग्रह के आन्दोलन का सबसे अधिक अनुचित लाभ उठानेवाले शिक्षित और धनिक श्रेणी के लोग हैं, जिनको सब प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। भारत के कालेजों और यूनिवर्सिटियों के युवकों और युवतियों में सन्तान-निग्रह के साधनों और उपायों का व्यवहार सबसे अधिक होता है, ऐसा हमारा विश्वास है।

क्या वास्तव में कालेजों और यूनीवर्सिटियों के युवक और युवती सन्तान के व्यर्थ भार से इतने दबे हुए हैं कि उन्हें कृत्रिम साधनों के अपनाये विना मुक्ति नहीं मिल सकती ? हमारा यह भी विश्वास है कि कालेजों के युवक और युवतियाँ बड़ी आयु में अपना विवाह-संबंध करते हैं। तब उनको इन कृत्रिम उपायों की ज़रूरत क्यों पड़ती है ? और श्रीमती मारगरेट सैंगर-जैसी प्रचारि[illegible] अपने लच्छेदार तथा रसीले व्याख्यान [illegible] विद्यालयों के छात्रों को ही क्यों देती हैं ?

वस्तुतः इसका यथार्थ कारण यह है कि [illegible] विद्यालयों और कालेजों में सहशिक्षा ([illegible] education), युवक और युवतियों को साथ-[illegible] शिक्षा देना है। सहशिक्षा के कारण युवक-युव[illegible] को प्रेम-नाटक के अभिनय के लिए [illegible] वातावरण और रंगभूमि मिल जाती है। [illegible] व्यापार (इसे प्रेम-व्यापार कहना प्रेम की प[illegible] को कलंकित करना है) बड़े ज़ोर-शोर से [illegible] है। वैसे तो अभिभावकों (Guardians) भी अपने युवक या युवती की पाप-[illegible] अप्रत्यक्ष रीति से पता चल जाता है; परन्तु [illegible] व्यापारी, 'गर्भ-धारण' के उत्तरदायित्व से [illegible] के लिए कृत्रिम साधनों का प्रयोग करने लगे [illegible]

इस समय भारत के सरस्वती-मन्दिरों [illegible] मन्दिरों के समान पापाचार, व्यभिचार [illegible] अनीति का प्रचार बढ़ता जा रहा है। [illegible] की देवदासियाँ और 'पुजारी' संस्कृति और [illegible] के इन केन्द्रों को पतन की ओर ले जा रहे हैं।

शिक्षित वर्ग में अनावश्यक रूप से सन्तान-[illegible] के कृत्रिम उपायों का व्यवहार दो प्रका[illegible] समाज और राष्ट्रीय स्वास्थ्य (National Hea[illegible] के लिए विनाशकारी सिद्ध होगा। जब [illegible] पुरुष-स्त्री अनावश्यक रूप से सन्तान-निग्रह [illegible] लगेंगे तो अनुपाततः शिक्षित व्यक्तियों की [illegible] न्यून हो जायगी। दूसरी ओर ग़रीब [illegible] अज्ञ रहने से अज्ञान और ग़रीबी का [illegible] होगा; अयोग्य, बलहीन, मूर्ख, निर्धन और [illegible] पुरुषों और स्त्रियों की संख्या में वृद्धि होने [illegible] दूसरा बुरा परिणाम, जो पहले से किसी [illegible] कम भयानक नहीं है, यह होगा कि कालेजों [illegible] विश्वविद्यालयों में व्यभिचार के प्रचार [illegible] जीवन का सर्वनाश हो जायगा, जीवन की [illegible] त्रता नष्ट हो जायगी, सामाजिक संबंधों [illegible]



प्रकार से स्थायित्व का अभाव हो जायगा और गृह-जीवन सारहीन बन जायगा।

विश्वविद्यालयों का, दूसरे अर्थ में, उद्देश ही विपरीत हो जायगा। विश्वविद्यालय मानस-जीवन की शक्तियों का सामंजस्यपूर्ण विकास करते हैं— संस्कृति, आचारों, विचारों और नीति के सुन्दर आदर्शों और सिद्धान्तों को जन्म देते हैं।

जब इस पुनीत उद्देश्य में विकार आ गया, तब कहाँ रही सभ्यता और कहाँ रही संस्कृति? अतः आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है भारत के युवक-समाज में शील और चारित्र की शिक्षा देनेवाली आदर्श व्यवस्था की। क्या शिक्षा-विशेषज्ञ और शिक्षक शिक्षा के इस पहलू पर विचार करेंगे?

यह इस देश का दुर्भाग्य है कि इसके अधिकांश पुरुषों और स्त्रियों को अपनी क्षुधा-तृप्ति के लिए अपनी अधिक शारीरिक शक्तियों और समय का व्यर्थ व्यय करना पड़ता है; तब कहीं उन्हें दो दाने अन्न प्राप्त होता है। ऐसी निर्धनता में अपना जीवन बितानेवाले अधिक सन्तान पैदा करके मृत्यु का आवाहन करते हैं। अपना पेट भरें या अपनी सन्तान का?—यह बड़ी विकट समस्या आ उपस्थित होती है। ग़रीब चाहते हैं दिन-भर की थकन और चिन्ताएँ दूर करने के लिए तनिक सहवास का 'सुख' और उनके सिर पर आ पड़ता है गर्भ-स्थिति का गंभीर भार। 'भगवान् की इच्छा' से गर्भ-स्थिति हो जाती है और उसका परिणाम भोगना पड़ता है बालक, माता और पिता को।

श्रीमती सैंगर और उनके पद-चरणों पर चलनेवाली भारतीय महिलाओं का यह कर्तव्य है कि वे ग्रामों और नगरों की निर्धन और अज्ञ जनता में अपने विज्ञान की ज्योति का प्रकाश करें और उन्हें बतलावें कि 'गर्भ-स्थिति भगवान् की इच्छा का नहीं, प्रत्युत स्त्री-पुरुष के मैथुन का परिणाम है।' हर वर्ष अखिल-भारतवर्षीय महिला-परिषद् के वार्षिक अधिवेशन भारत के सुविख्यात और विशाल बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, लाहौर और पूना-जैसे स्थानों में होते हैं, सुशिक्षिता और विदुषी महिलाएँ १००-२०० की संख्या में आ विराजती हैं तथा सन्तान-निग्रह (Birth Control) पर प्रस्ताव पास कर, ज़ोरदार भाषण देकर अपना कर्तव्य पूरा समझ लेती हैं। क्या ऐसा करते समय उन्हें अपनी ग़रीब बहनों और ग्रामीण बहनों की दुर्दशा का कभी विचार आता है?

ध्रुव सत्य तो यह है कि शिक्षित पुरुष और शिक्षिता महिलाओं का दृष्टि-कोण ही एक दूसरे प्रकार का है। वे Birth Control आन्दोलन को केवलमात्र सम्पन्न-वर्ग के पुरुषों की विलासिता का साधन समझते हैं। वे इसके द्वारा राष्ट्र के स्वास्थ्य और समाज के आर्थिक सुधार की कल्पना ही नहीं कर सकते। प्रायः यह देखा जाता है कि शिक्षितों और धनिकों के सन्तान वैसे ही कम संख्या में पैदा होती है और बहुतेरे विलासी धनिकों के तो सन्तान बिलकुल नहीं होती, तब उनको सन्तान-निग्रह की क्या ज़रूरत पड़ती है?

शिक्षितों में सन्तान-निग्रह के कृत्रिम उपायों का फ़ैशन बढ़ता जा रहा है—ठीक उसी प्रकार जैसे क्रीम, वैसलीन, जम्पर, साड़ी और ब्लाउज़ का। वे गर्भधारण को एक व्यर्थ का भार समझने लगी हैं, जो स्वार्थी पुरुष-समाज ने उन पर अबला होने की स्थिति में बरबस लाद दिया है। समानता के पद की आकांक्षा रखनेवाली 'आधुनिक स्त्री' के मस्तिष्क में यह विद्रोह की भावना अब बढ़ती जा रही है।

मैथुन और सहवास का पूर्ण आनन्द प्राप्त हो जाय; पर उसका कोई दायित्व उनके ऊपर न रहे; यह कौन-सा न्याय है?

क्या कृत्रिम उपाय स्वास्थ्यकर हैं?

सन्तान-निग्रह के लिए दो प्रकार के कृत्रिम उपाय व्यवहार में लाये जाते हैं। एक यांत्रिक (Mechanical) साधन और दूसरे रासायनिक (Chemical Methods) साधन। पुरुष के प्रयोग



के लिए पिशवी (French Lether) होती है, जिसे मैथुन के समय गुप्त अंग पर चढ़ा लिया जाता है। वीर्य तथा शुक्राणु इसी पिशवी में रह जाते हैं और वे गर्भाशय में प्रवेश नहीं कर पाते । इसी कारण गर्भ-स्थिति भी नहीं हो सकती । स्त्रियों के प्रयोग के लिए भी रबर की 'पेसरी' टोपी मिलती है। इस टोपी को गर्भाशय के मुख पर इस प्रकार से लगा लेती हैं कि जिससे शुक्राणु व वीर्य गर्भाशय में प्रवेश न कर सके। इसके लिए स्पंज का प्रयोग भी किया जाता है।

इन यंत्रों के अतिरिक्त रासायनिक उपाय भी काम में लाये जाते हैं । कुछ ऐसी ओषधियाँ हैं, जिन्हें मैथुन से पूर्व स्त्री अपनी इन्द्रिय में रख लेती है। उनके प्रभाव से शुक्राणु का नाश हो जाता है और गर्भधारण नहीं हो सकता ।

सन्तान-निग्रह के ये समस्त उपर्युक्त साधन परिपूर्ण नहीं हैं और न पूर्णतः निर्दोष हैं। पुरुष और स्त्री के प्रयोग में आनेवाले यंत्र बहुधा रबर के बने होते हैं; इसलिए उनके फट जाने का भी भय है। परन्तु सबसे अधिक हानिकर बात यह है कि इनके प्रयोग से स्त्री-पुरुष स्वाभाविक रीति से मैथुन का आनन्द नहीं प्राप्त कर सकते। स्त्री-पुरुष की जननेन्द्रियों (Sexual organs) पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ता है और स्नायुमण्डल को कृत्रिम उत्तेजना से भी हानि पहुँचती है। अप्राकृतिक मैथुन से जो हानि जननेन्द्रियों को पहुँचती है, वही घातक प्रभाव इन यंत्रों (Rubber appliances) के प्रयोग से होता है।

रासायनिक उपाय तो स्वास्थ्य के लिए बिलकुल ही हानिकर हैं । उनके प्रयोग से जननेन्द्रियों की शक्तियाँ नष्ट हो जाने का भय रहता है। उनके प्रयोग से यदि वैज्ञानिक ढंग से शुद्धि नहीं की गई तो जननेन्द्रियों में विष फैल जाने का डर है। फलस्वरूप पुरुष-स्त्री को भयंकर और घातक रोग भी लग जाते हैं। इसलिए इन कृत्रिम साधनों के प्रयोग से, स्वास्थ्य की दृष्टि से, बहुत ही हानि पहुँच सकती है। नैतिक दृष्टि से भी इनका प्र वांछनीय नहीं है । इनके प्रयोग से व्यभिचार दुराचार में अतिशय वृद्धि हुई है; इसका प्र तो बिलकुल प्रत्यक्ष है । जब पुरुष-स्त्री को ग धारण का भय नहीं रहता, तब उनके अनि यौन सम्बन्ध (Illegal Sex-relations) नि प्रतिष्ठित रहते हैं; उन्हें न समाज का भय र है और न स्वास्थ्य की हानि का।

आर्थिक दृष्टि से भी कृत्रिम साधन वांछ नहीं हैं। ये साधन इतने बहुमूल्य और दु हैं कि ग़रीब जनता इनसे कोई लाभ नहीं सकती । जो दम्पति ।) आने या ।≈) प्रति कमा कर अपने बड़े कुटुम्ब का पालन करते इनके प्रयोग के लिए धन कैसे ख़र्च कर सकें

ऐसी स्थिति में समस्या का हल कैसे हो पुरुष और स्त्री निरपेक्ष ब्रह्मचारी नहीं बन सकते न कृत्रिम उपायों का प्रयोग ही उचित है, तब किया जाय ?

प्राकृतिक साधन

निस्सन्देह संसार के वैज्ञानिक और इ का एक बड़ा भाग इन साधनों की विफल अनुभव कर चुका है । इसी लिए अब कुछ वि डाक्टर ऐसे उपाय के परीक्षण में लगे हुए हर प्रकार से प्राकृतिक हो। आदर्श सन्तान-नि (Ideal Contraceptive) वही हो सकता है पुरुष और स्त्री की मैथुन-प्रक्रिया में कोई हा उत्पन्न न करते हुए सफलतापूर्वक गर्भ-निरो सके। दूसरे शब्दों में, स्त्री-पुरुष को मैथुन के यह ज्ञान न रहे कि उन्होंने किसी कृत्रिम का प्रयोग किया है।

आस्ट्रिया के डा० एच्० कौनस (H. Kn और जापान के डाक्टर ओगिनो ने प्राकृतिक निरोध के सम्बन्ध में जो परीक्षण किये यद्यपि अभी सत्य सिद्ध नहीं हुए, तथापि उ संसार के सामने ऐसे सिद्धान्त रक्खे हैं, जो विश्व में मान्य सिद्धान्तों के सर्वथा विपरी



इस समय सभी देशों में, इस सम्बन्ध में, कुछ ऐसे विचार प्रचलित हैं, जो परस्पर साम्य रखते हैं—

१—डिम्ब-ग्रन्थि से डिम्ब (Ovum) मासिक-धर्म से प्रायः पाँच दिन पूर्व निकलता है। डिम्ब का मासिकधर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब स्त्री का मासिकधर्म बन्द हो जाता है, तब डिम्ब-रचना भी बन्द हो जाती है।

२—ऐसा अनुमान किया जाता है कि डिम्ब (Ovum), डिम्ब-ग्रन्थि (Ovary) और डिम्ब-प्रणाली (Fullopian Tube) से गुज़रता हुआ गर्भाशय में प्रायः १० दिन में आता है।

३—पुरुष के शुक्राणु स्त्री की जननेन्द्रिय में १०-१५ दिन तक जीवित रह सकते हैं और उनमें गर्भस्थिति की योग्यता भी बनी रहती है।

४—मासिक धर्म की समाप्ति के बाद १२ दिन तक ऋतुकाल माना गया है। इसी समय में गर्भ-धारण की सबसे अधिक संभावना रहती है।

५—ऋतुकाल से ४ दिन पूर्व भी गर्भ-स्थिति का समय है।

६—रजोदर्शन के प्रथम दिन से लेकर १६ दिन के बाद १७वें दिन से २३वें दिन तक का समय गर्भधारण के लिए ठीक नहीं है।

इन दिनों डिम्ब और शुक्राणु का संयोग संभव नहीं हो सकता।

डाक्टर कौनस के परीक्षण और सिद्धान्त इन उपर्युक्त विश्व-प्रचलित विचारों के सर्वथा विपरीत हैं। ५०० स्त्रियों का पूर्ण विवरण प्राप्त करके डॉ० ओगिनो ने यह निष्कर्ष निकाला है कि—

(१) रजोदर्शन से १२ से १६ दिवस पूर्व डिम्ब निकलता है।

(२) यदि डिम्ब से शुक्राणु का संयोग नहीं हुआ तो कुछ घंटों में ही वह नष्ट हो जाता है। उसमें गर्भधारण की शक्ति नहीं रहती।

(३) पुरुष के शुक्राणु स्त्री के गर्भाशय में ३ दिन से अधिक जीवित नहीं रह सकते।

इस सिद्धान्त को एक उदाहरण देकर अधिक स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है। एक स्त्री २८ दिन के अन्तर से नियमित रूप से रजोदर्शन करती है। उसका अन्तिम रजोदर्शन १ नवम्बर को शुरू हुआ तो उसका दूसरा रजोदर्शन २९ नवम्बर को प्रारम्भ होगा; क्योंकि डिम्ब का निष्कासन १२ से १६ दिन मासिकधर्म से पूर्व होता है; अतः हम इनको २९ में से निकाल दें तो १३ से १७ नवम्बर तक का समय मिलता है। इन पांच दिनों में ही डिम्ब का शुक्राणु से संयोग हो सकता है और फलस्वरूप गर्भस्थिति हो सकती है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि यह स्त्री गर्भधारण नहीं कर सकती, यदि १ नवम्बर से ९ नवम्बर और १८ नवम्बर से २८ नवम्बर तक मैथुन किया जाय।

डाक्टर नोरमेन हेयर ने अपनी पुस्तक 'काम-विज्ञान का विश्वकोश' (Encyclopaedia of Sexual knowledge) में एक स्थान पर उपर्युक्त सिद्धांत के सम्बन्ध में लिखा है—

"To sum up the whole matter up, one must say that, while, impregnation is less likely to occur on the days ragarded by Knaus as 'Safe', the possibility of error is so great that it is unwise to trust to the method at all."

डाक्टर कौनस ने गर्भधारण से मुक्त समय का जो साधन बतलाया है, वह विश्वास करने योग्य नहीं है।

यह प्रत्येक स्वस्थ स्त्री के अनुभव की बात है कि रजोदर्शन के समय तथा उसके बाद १०-१२ दिन तक उसे कामवेग और दूसरे समय की अपेक्षा अधिक उग्रता से अनुभव होता है। ऋतुकाल में सहवास की इच्छा स्वाभाविक है। पशुओं में भी ऋतुकाल में कामशक्ति अधिक प्रबल हो जाती है और उसी समय में वे भी गर्भ-धारण करते हैं। वास्तव में इसी समय स्त्रियाँ—अधिकांश स्त्रियाँ



अतिशय कामासक्त हो जाती हैं। इसी अवसर पर वे गर्भ धारण करती हैं।

डाक्टर आर० एल्० डिकिन्सन (न्यूयार्क) ने 'Safe period' का विशेष अध्ययन किया है। Safe period ऐसे समय को कहते हैं, जब स्त्री को गर्भधारण की कुछ भी संभावना नहीं रहती। डाक्टर का कथन है—

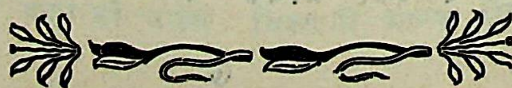
"मास में ऐसा कोई समय नहीं, जब कुछेक स्त्रियों ने गर्भधारण नहीं किया हो। रजोदर्शन से पूर्व का एक सप्ताह ऐसा काल है जब गर्भधारण की सबसे कम सम्भावना रहती है। स्त्रियाँ अपने मासिकधर्म के समय गर्भधारण के योग्य होती हैं, परन्तु मासिकधर्म के बाद ८-१० दिन तक वे गर्भधारण के लिए सबसे अधिक योग्य होती हैं। अतः जो स्त्री-पुरुष प्राकृतिक रीति से सन्तान-निग्रह के इच्छुक हैं, वे बड़ी आसानी से मासिक-धर्म के पूर्व सप्ताह में मैथुन कर सकते हैं। यह निस्संदेह सत्य है कि ऐसा करते समय उनको अपनी अधिक उत्तेजना के अवसर पर संयम का पालन करना पड़ेगा। मासिकधर्म के बाद स्त्री जिस स्वाभाविक काम-वेग का अनुभव करती है, उसकी ओर से उसे अपना मनोनिग्रह कर इन्द्रियों पर क़ाबू करना पड़ेगा।"

श्रीमहादेव देसाई ने 'हरिजन-सेवक' पत्र में श्रीमती सैंगर के लेख का उत्तर देते हुए एक स्थल पर लिखा है—

"वर्धा में जो बातचीत हुई, उसमें श्रीमती सैंगर ने इतने अधिक मित्र-भाव से, इतनी अधिक जिज्ञासा-वृत्ति से बर्ताव किया कि कुछ पूछिए नहीं। गान्धीजी से उन्होंने कहा—'पर आप कोई उपाय भी तो बताइए। संयम मैं भी चाहती हूँ ; संयम मुझे अप्रिय नहीं; पर शक्य संयम का ही पालन हो सकता है?' सत्य-शोधन की नम्रता से गान्धीजी ने कहा—'निर्बल मनुष्यों के लिए एक उपाय दिखाई देता है। वह उपाय हा[ल] एक मित्र की भेजी हुई पुस्तक में देखा है। [उ]स[में] यह सलाह दी है कि ऋतुकाल के बाद के [कुछ] दिनों को छोड़कर विषय सेवन किया जाय। [इस] तरह भी मनुष्य को महीने में १०-१२ दिन मि[ल] जाते हैं और सन्तानोत्पादन से भी बच सकता है। इस उपाय में बाक़ी के दिन तो संयम-पाल[न में] जायँगे। इसलिए मैं इस उपाय को सहन कर सकता हूँ।' (साप्ताहिक अर्जुन, १० फ़रवरी १९३[६])

कहना न होगा कि महात्मा गान्धीजी Safe period के सिद्धान्त का समर्थन किया है। वास्तव में है भी यह उपाय स्वाभाविक। [इसके] अतिरिक्त मैथुन-प्रणाली (Techinique of Co[ition]) में भी इच्छा में आवश्यकतानुसार परिवर्तन [कर] सन्तान-निग्रह की समस्या स्वाभाविक रूप में [हल] हो सकती है। वात्स्यायन ऋषि ने अपने सुप्रसिद्ध 'काम-सूत्र' ग्रन्थ में ऐसे कतिपय आसनों का [वर्णन] किया है, जिनके व्यवहार से सन्तान-निग्रह [हो] सकता है। आसनों का विषय ऐसा है कि शि[ष्टा]चार की रक्षा करते हुए उसका भली भाँति वि[वेचन] कठिन है। इसलिए मैं उन आसनों के संबंध में यहाँ प्रकाश डालने में असमर्थ हूँ।

इस लेख का सारांश यह है कि आज के [युग में] सन्तान-निग्रह की अतीव आवश्यकता है। [पर] उसके लिए प्रचलित कृत्रिम साधनों का [प्रयोग] हानिकर और व्यभिचार का प्रचारक तथा [...] है। सन्तान-निग्रह किया जाय, परन्तु स्वा[भाविक] रीति से। इस विषय में यदि कुछ अन्वेषण [किया] जाय और इधर कुछ परीक्षण किये जायँ, तो [कोई] कारण नहीं कि सन्तान-निग्रह का विश्वस्त [...] उपाय प्राप्य न हो सके। आशा है, इस [विषय] पर विद्वान् लोग विचार करेंगे और अपने [...] प्रकाशित करने की कृपा करेंगे।



महापुरुष का रहस्य

श्रीसन्तराम बी० ए०

प्रायः लोगों को धारणा है कि महापुरुष जन्म से ही लोकोत्तर शक्ति, अद्भुत प्रतिभा और विशेष व्यक्तित्व लेकर संसार में आता है। ऐसे मनुष्यों को कोई ईश्वर-प्रेरित कहने लगता है, कोई संस्कारी जीव और कोई ईश्वर का अंश। परन्तु विचारपूर्वक देखने से पता लगता है कि जिनको संसार महापुरुष की पदवी से विभूषित करता है, जो संसार में सफल-काम माने जाते हैं, वे ऐसे लोग होते हैं, जो अपने ध्येय पर अटल रहते हैं। अनेक विफल मनुष्य भी अपने लिए कोई ध्येय तो बनाते हैं, परन्तु मार्ग में पड़नेवाली कठिनाइयों और खतरों को लाँघने के लिए जिस ध्रुव संकल्प और आत्म-त्याग की आवश्यकता है, उसके अभाव के कारण, अथवा कष्टों और रोगों के कारण, वे उस तक पहुँचने नहीं पाते।

सफलता उसी मनुष्य को प्राप्त होती है, जिसे अपने लक्ष्य के सिवा कोई दूसरी चीज दिखाई ही नहीं देती। मार्ग में पड़नेवाली कठिनाइयों के विषय में वह उदासीन होता है। वह उनको ठोकर मारकर परे ढकेल देना चाहता है, वह अपने को बलपूर्वक चरम सीमा तक ले जाना जानता है, वह केवल अपने साहस और दृढ़ संकल्प के आश्रय पर काम करना जानता है। जब वह अपने ध्येय पर पहुँच जाता है, तब हजारों छोटे-छोटे मनुष्य सिर हिलाकर कहते हैं—"ठीक है, परन्तु दैव उसका सदा साथ देता रहा है। देखिए, प्रत्येक बात कैसी सीधी पड़ती रही है।" ये लोग इस बात पर ध्यान नहीं देते कि उसने अपना दैव स्वयं अपने बाहुबल से बनाया है।

संसार में वे ही मनुष्य सफल हुए हैं, जिन्होंने अपनी अप्रसिद्धि के दिनों में अपने लिए स्वयं अवसर पैदा किये थे; क्योंकि वे जानते थे कि यदि हम संयोग मिलने की प्रतीक्षा में बैठे रहे तो वह संयोग कभी नहीं मिलेगा। कोई दूसरा आकर हमारे मुँह में चम्मच से दूध डाला करे, तभी हम पनप सकते हैं, यह कोई अच्छा भाव नहीं। यदि आप संसार में बढ़ना चाहते हैं तो आपके लिए आवश्यक है कि आप संसार का गला पकड़कर दबायें और जो कुछ उससे लेना चाहते हैं, बलपूर्वक ले लें। संसार आपकी कुछ भी परवा नहीं करेगा, जब तक आप उससे परवा नहीं करावेंगे। वह आपकी परवा करे भी क्यों?

जो तन्दुरुस्त नवयुवक गला फाड़-फाड़कर सहायता के लिए चिल्लाता है, उसके लिए हमारे मन में सहानुभूति का कोई बड़ा भाव उत्पन्न नहीं होना चाहिए। हमें मालूम है, सफल मनुष्यों को कैसी-कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा

था। धार्मिक क्षेत्र में भगवान् बुद्ध, महात्मा ईसा और ऋषि दयानन्द को ; राजनीतिक क्षेत्र में गेरी बाल्डी, मेज़िनी, डी० वेलरा और लेनिन को ; व्यापारिक क्षेत्र में राक फ़ैलर, बाटा और फ़ोर्ड को ; अन्वेषणकर्ताओं में स्टेंग्ले, मंगोपार्क, कोलंबस, स्काट और लिविंगस्टन को ; इसी प्रकार वैज्ञानिक क्षेत्र के अनेक आविष्कारकों को अपनी ध्येय-प्राप्ति में जिन कष्टों और कठिनाइयों में से होकर जाना पड़ा था, उनका पता उनके जीवन-चरितों के पाठ से लग सकता है। स्वर्गीय लार्ड कर्ज़न को बचपन में पीठ में चोट लगने से सारी उम्र तकलीफ़ रही, श्री० रेमज़े मैकडानल्ड एक ख़ान खोदनेवाला मज़दूर था, लायड जार्ज का पिता जूते गाँठता था, उपन्यास-सम्राट् राबर्ट लुई स्टीवनसन और महाकवि कीट्स क्षयरोग से पीड़ित थे।

जो लोग संसार में बड़े बने हैं, उन्होंने इतना ही नहीं कि अपने शारीरिक कष्टों और त्रुटियों की कुछ परवा नहीं की, बरन् उन्होंने अवसरों से लाभ उठाने में भी कभी संकोच नहीं किया। माता-पिता के रोकने पर भी स्वामी दयानन्द अमरता की तलाश में घर से भाग निकले थे। लार्ड किचनर जब कि लेफ़्टिनेन्ट था और साईप्रस टापू में नियुक्त था, अपनी सारी कारगुज़ारी को ख़तरे में डालकर बिना अनुमति लिये सिकन्दरिया की बमवृष्टि देखने चला गया था। वापस लौटने के सिगनल (संकेत) की ओर नेलसन ने अपनी अंधी आँख कर दी थी। लिप्टन-चाय के मालिक सर टामस लिप्टन ने अपनी पहली दूकान खोलने के लिए अपना सर्वस्व लगा दिया था। अलकाक और ब्राउन ने, मालिसन और लिंडबर्ग ने अटलांटिक महासागर को उड़कर पार करने के लिए अपने जीवन को जोखिम में डाल दिया था।

निर्भीक और दुःसाहसी होने के अतिरिक्त ऐसे लोग परिश्रम भी बहुत करते हैं। इनके [illegible] के घंटे कोई नियत नहीं होते ; वे तब तक [illegible] करते रहते हैं, जब तक कि थककर लेट नहीं [illegible] नींद से जागकर वे फिर उसी प्रकार काम [illegible] लगते हैं। कभी कभी तो ऐसे लोगों का म[illegible] लोहे का-सा मज़बूत होता है, जिसको [illegible] चीज़ ख़राब नहीं कर सकती। बहुधा वे [illegible] इच्छा-शक्ति और नाड़ी-बल से ही काम [illegible] रहते हैं। इतना ही नहीं कि वे घोर [illegible] करते हैं, वरन् वे अपने जीवन को इस [illegible] संगठित करते हैं कि नियत समय में वे [illegible] प्रतिद्वन्द्वियों की अपेक्षा कहीं अधि[illegible] कर लेते हैं।

मैंने आज तक सचमुच कोई ऐसा बड़ा [illegible] नहीं देखा, जो उतावला हो, या जो क्षीण[illegible] या जो बहुत अधिक लिप्त रहता हो। वे [illegible] जानते हैं कि उतावली और दौड़धूप [illegible] द्योतक हैं और रगड़ समय तथा शक्ति [illegible] नाश है। सफलता अधिकतर सोच-समझकर [illegible] करने पर निर्भर करती है। सबसे बड़ी बा[illegible] है कि सफल होनेवाले मनुष्य जनता को [illegible] भाँति समझते हैं; क्योंकि इस जीवन में [illegible] दूसरों के द्वारा ही काम करा सकता है [illegible] जान पड़ता है कि उनको मनुष्य-प्रकृति का [illegible] ज्ञान परम्परा से मिलता है, इसलिए किसी [illegible] के लिए योग्य व्यक्ति चुनने में उनसे [illegible] कम भूल होती है, और अपने संसर्ग में आ[illegible] लोगों पर अच्छा संस्कार डालने में भी वे नहीं चूकते।

सचमुच जितने बड़े आदमी हुए हैं—[illegible] सेनापति हों, लेखक हों, या व्यापारी हों [illegible] सबमें एक विशेष आकर्षण पाया जाता [illegible] सबने लकीर की फ़क़ीरी छोड़कर अ[illegible] नवीन मार्ग निकाला था। इसी लिए तो

उद्योग इतनी शीघ्रता और इतनी रम्यता से फलीभूत हुए थे। एक बात और भी मज़े की है। जो मनुष्य जितना बड़ा है, उतना ही अधिक उसमें सौजन्य और नम्रता होती है। एक डिप्टी और उसके चपरासी के व्यवहारों में जो अन्तर देख पड़ता है, वह इसका प्रमाण है।

महापुरुष अपने मन में कहता है—"यह मेरे लिए नया मनुष्य है। हो सकता है कि यह कभी बड़ा उपयोगी सिद्ध हो। शिष्टता में कुछ दाम नहीं लगता। इसे अपनी पूरी योग्यता दिखाने का अवसर देना चाहिए।"

सारांश यह कि महापुरुष में कल्पना-शक्ति होती है, और इसके बिना कभी किसी ने सफलता नहीं प्राप्त की।

सफल होने के पूर्व उसे इस कल्पना की आवश्यकता होती है, ताकि वह देख सके कि संसार को किन चीज़ों की ज़रूरत है और मैं उसकी ज़रूरतों को कैसे पूरा कर सकता हूँ। अपने सोचे हुए उपायों को क्रिया का रूप देने के पूर्व ही वह अपनी कल्पना-शक्ति से अन्तिम परिणाम को देख लेता है। जिन दिनों लार्ड नफ़ील्ड बाइसिकिल बनाया करता था, उन्हीं दिनों उसने कल्पना कर ली थी कि किसी दिन ऐसी बड़ी-बड़ी फ़ैक्टरियाँ खड़ी हो जायँगी जो इतने सस्ते मोटरकार तैयार करेंगी, जिन्हें साधारण मनुष्य भी ख़रीद सकेंगे। सचमुच कालान्तर में ऐसी फ़ैक्टरियाँ बन गईं।

सफल मनुष्यों को दृढ़ आत्मविश्वास की आवश्यकता होती है और बहुधा उनमें वह होता भी है। संग्राम चाहे कितना ही कठिन क्यों न हो, उनको अन्ततः अपने विजयी होने के विषय में तनिक भी सन्देह नहीं होता। यह उनका धर्मोन्माद या वृथा गर्व नहीं, बरन् अटल प्रत्यय होता है। वे इसे जानते हैं। यदि उनसे इसकी व्याख्या करने को कहा जाय तो वे न कर सकेंगे, और व्याख्या से उन्हें आनन्द भी नहीं आवेगा। हम अवश्य सफल होंगे, यह बात उन्हें स्वतः प्रत्यक्ष होती है।

सभी सफल मनुष्य स्वप्न देखनेवाले होते हैं। स्वप्न में वे जो कुछ देखते हैं, उसके पीछे लग जाते हैं। इसका अर्थ यह न समझिए कि वे बैठे-बैठे ख़याली पुलाव पकाया करते हैं और अपने को काल्पनिक साम्राज्यों के सम्राट् समझकर मन ही मन गर्व से फूले नहीं समाते। वे अपनी लोकयात्रा का स्वप्न देखते हैं और स्वप्न को सचाई बनाकर दिखा देते हैं।

इस प्रकार एक मनुष्य सारे संसार में अपने धर्म के प्रचार का, दूसरे हिन्दू-समाज को जात-पाँत के भेद-भाव से मुक्त कर देने का, तीसरा किसी महारोग की अमोघ ओषधि ढूँढ निकालने का, चौथा अपने व्यापार को विश्व-व्यापी बना देने का, और पाँचवाँ कोई अमर ग्रन्थ लिख जाने का स्वप्न देख सकता है।

उनके कार्यों की विविधता के रहते भी यदि हम उनकी आत्मा के भीतर उस समय झाँककर देख सकें, जब वे अपना कार्य आरम्भ करते हैं, तो हम एक सद्गुण उन सबमें देखेंगे। और वह सद्गुण है सच्चे स्वप्न देखना, लोकयात्रा का प्रथम पग उठाने के पूर्व मार्ग में पड़नेवाली सभी कठिनाइयों को समझ लेना।

इसमें संदेह नहीं कि उन सबसे भूलें होती हैं; क्योंकि भूल सब कोई करता है, परन्तु ये भूलें नैमित्तिक होती हैं, इनका उस स्वप्न के ढाँचे पर कुछ भी प्रभाव नहीं होता।

'ट्रात्स्की'—एक धुरंधर लेखक

श्रीमोहनलाल महतो साहित्यालंकार

महान् की ओर

सन् १९०२ की बात है।

लंदन की घनी आबादी के भीतर एक दुमंज़िला मकान था। आज से ३४ वर्ष पहले इस मकान में संसार का सबसे बड़ा क्रान्तिकारी लेनिन अपना अज्ञातवास पूरा कर रहा था। उस समय रूस के प्रबल प्रताप ज़ार का प्रतापादित्य मध्यगगन में पहुँचकर आग के शोले बरसा रहा था—नीचे करोड़ों नरतनधारी जीव 'कबाब' की तरह भुन रहे थे। बहुतों का अस्तित्व लुप्त हो रहा था और बहुत-से भाड़ के चने की तरह भुन रहे थे—यह हाल था तत्कालीन रूस का। लेनिन ने रूस की सीमा के बाहर अपना आसन जमाया था और बहुत-से क्रान्तिकारी या तो साइबेरिया के नरक में ठेलकर पहुँचा दिये गये थे या 'शान्ति और व्यवस्था' के नाम पर लटका दिये गये थे। अपने कुछ प्रमुख सहकर्मियों के साथ लेनिन लन्दन में जा छिपा था और वहीं से क्रान्ति का संचालन करता रहता था। गोर्की वग़ैरह बहुत-से क्रांतिकारी लन्दन की सँकरी गलियों की अँधेरी कोठरियों में कालयापन कर रहे थे।

हाँ, तो १९०२ की शरदऋतु का सबेरा कुहरे और कँपकँपी पैदा करनेवाली तीखी हवा के साथ लन्दन के पूर्वाकाश में हुआ। सारा शहर गरम कमरों में, कम्बल लपेटे, पड़ा था, जागृति अभी कोसों दूर थी। सदा सतर्क राजनीतिज्ञ, भोले-भाले बच्चे, पाई-पाई को उदरस्थ करने वाले महाजन और भुखमरे सभी नींद की कम्बल ताने सो रहे थे, पर एक नौजवान टैक्सी से उतर कर एक तंग गली में घुसा और चश्मा चढ़ा तथा आँखें सिकोड़कर दरवाज़ों पर के नम्बर पढ़ने का—व्यग्र भाव से—प्रयत्न करने लगा। इधर उधर दौड़ने के बाद उसे इच्छित मकान मिल गया। उसने आराम की साँस ली और दरवाज़े पर की लगी हुई बिजली की घंटी का बटन दबा दिया। तत्काल बन्द दरवाज़े के भीतर से किसी के चलने-फिरने की आहट मिली और चर्र से भारी दरवाज़ा खुल गया। तत्काल एक स्त्री उस नवयुवक के सामने उपस्थित हो गई। किसान या देहात की स्त्री-सी लगती थी। स्त्री दरवाज़ा खोलकर खड़ी हो गई, वह लेनिन की जीवन-सहचरी क्रुप्सकाया थी। सामने खड़ा हुआ नवयुवक उसका अभिवादन कर रहा था, वह था विश्व-विख्यात क्रान्तिकारी लेखक—'ट्रात्स्की'।

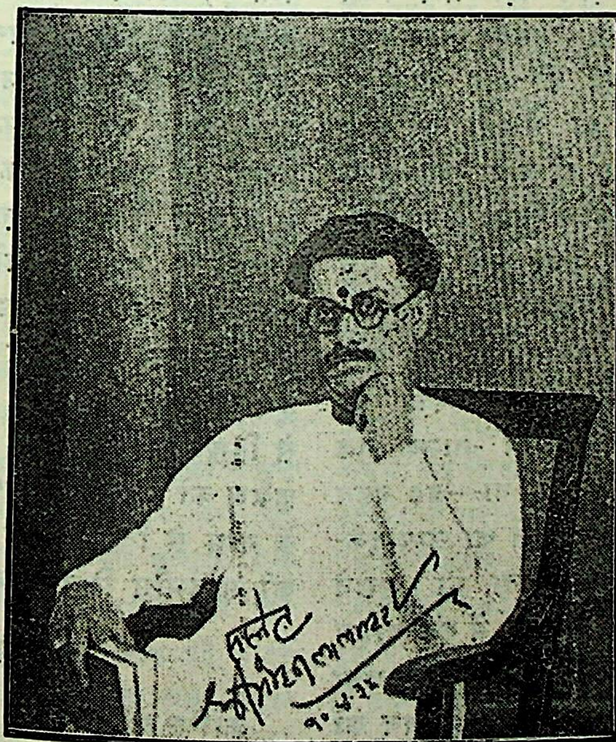
ट्रात्स्की यह सबसे पहली बार लेनिन से मिलने आया था, यद्यपि दोनों की क्रांति के सम्बन्ध में एक मुद्दत से—परिचित थे; दोनों मन ही मन एक दूसरे के क़ायल थे; एक दूसरे की प्रतिभा का लोहा मानते थे, एक दूसरे की कार्यशैली और

के जी-जान से समर्थक थे। विना लेनिन के ट्राटस्की शून्य (०) था और विना ट्राटस्की के लेनिन अकेला एक अंक। दोनों के मिलन ने दोनों के मूल्य को दसगुना अधिक बढ़ा दिया। यह है १९०२ की शरदऋतु के एक धुँधले प्रभात की घटना। गोकि ३४ वर्ष की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं के नीचे यह छोटी-सी घटना दब गई है, पर इसका अस्तित्व आज भी महत्त्व रखता है।

सारा लन्दन सुख की निद्रा में निमग्न था और इधर बारूद के ढेर पर आग की एक छोटी-सी चिनगी उड़कर गिर गई। आश्चर्य की बात है कि इस बारूदख़ाने का धड़ाका हुआ रूस के आँगन में १४-१५ साल बाद, अक्तूबर की एक भयावनी रात को—विधिगति की आलोचना कौन कर सकता है। जो होना था वही हुआ।

गाँव के आँगन में

ट्राटस्की का जन्म एक ऐसे यहूदी परिवार में हुआ था, जिस परिवार का प्रत्येक व्यक्ति क़ाग़ज़, क़लम, दावात की धमाचौकड़ी से पाक था। उन दिनों संसार में रूस एक अजीब तरह का देश समझा जाता था। देहातों में केवल हलधर ही नज़र आते थे, 'क़लमधर' का सोलहो आने टोटा था। यदि किसी गाँव में पत्र आता तो फिर पत्र पानेवाला नोन-सत्तू बाँधकर शहर की ओर दौड़ पड़ता पत्र पढ़वाने के लिए। हमारे यहाँ जिस तरह निरक्षरता का तांडव सरेआम होता दिखलाई पड़ता है, उसी तरह रूस में भी उन दिनों ज़ारशाही के साथ "निरक्षरताशाही" का अखंड शासन चलता था। इसी वायुमंडल में ट्राटस्की ने सबसे पहली बार साँस ली। वह निरक्षर समाज में धीरे-धीरे बढ़ने लगा और वहाँ पहुँचने के योग्य हो गया, जहाँ पुस्तकों का पहाड़—अम्बार—लगा हुआ था। जिस समय ट्राटस्की स्कूल में शिक्षा पा रहा था, उसी समय से उसकी प्रवृत्ति स्वाध्याय की ओर झुकी। वह मास्टरों की नज़रें बचाकर क्लासरूम में ही बैठा साम्यवादी पुस्तकें पढ़ा करता, नहीं तो चुपके से बाहर निकल पड़ता। देहात के हरे-भरे मैदान में—जिसमें पुष्ट गायें और मोटे-ताज़े घोड़े चरते होते—ट्राटस्की का मन बहुत लगता था; क्योंकि वह वर्जित साहित्य का पाठक था। रूसी क़ानून के अनुसार जो पुस्तकें भयंकर समझी जातीं और जिनका किसी के पास पाया जाना भयंकर अपराध समझा जाता, ट्राटस्की ऐसी ही पुस्तकों की ओर विशेष रूप से लपक पड़ता था और वह प्रायः स्वाध्याय करते हुए अपने-आपको भूल जाता था। घर में भी उसका अधिक समय पुस्तकों के साथ कटता था। उस समय ज़ारशाही तलवार की धार की तरह ख़तरनाक थी। जिसने उसे स्पर्श करना चाहा, उसे अपनी अभागी उँगलियों से हाथ धोना पड़ा। बालक ट्राटस्की आराम से ढेरों वर्जित साहित्य लाकर अपने कमरे की



लेखक



भरने लगा—अपढ़ गाँव या परिवार में उसे इस काम में सहूलियत मिली। यदि उसका पिता पढ़ा-लिखा होता तो पुत्र को विपथगामी (?) होने से निश्चय ही रोकता। ट्राट्स्की ने अपनी स्कूली शिक्षा को एक किनारे रखकर स्वाध्याय किया। उसने बहुत ही थोड़े समय में क्रान्तिवादी साहित्य का एक प्रधान हिस्सा पढ़ डाला। वह सभी क्रान्तिवादी रूसी नेताओं में अधिक स्वाध्यायशील बनना चाहता हो, ऐसी बात नहीं है, पर उसकी प्रवृत्ति ही कुछ ऐसी है कि वह किसी भी अवस्था में रहे, अपनी दिमाग़ी स्थिरता नहीं खोता। केवल पढ़ना ही ट्राट्स्की ने अपना ध्येय बना लिया, ऐसी बात नहीं है—वह एक राजनीतिक संस्था के साथ हो गया और मज़दूरों में प्रचार करने के लिए तत्काल पर्चे और पुस्तिकाएँ लिखने लगा। ट्राट्स्की की भाषा बहुत ही तीखी होती थी, जिससे पुलिसवाले एकबारगी ही घबरा-से उठे। उग्र भाषा के कारण उसके पर्चों को लोगों ने ख़ूब पढ़ा और जिस संस्था ने पर्चों को बँटवाया था, उसका ध्यान महज़ १८ साल की उम्र के ट्राट्स्की की ओर आकर्षित हुआ। इतने छोटे-से लड़के की लेखनी का ओज देखकर किसी का भी चौकन्ना हो जाना स्वाभाविक ही है। इधर लोगों ने ट्राट्स्की के विषय में सोचना-समझना शुरू किया और उधर पर्चे पर पर्चे निकलने लगे। ट्राट्स्की की लेखनी ने वह तूफ़ान पैदा किया कि लेनिन का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ। उन दिनों लेनिन "इस्क्रा" का सम्पादन करता था और "मारतोब"-नामक एक ग़ज़ब का लेखक उसका सहयोगी था—वह बहुत ही तेज़ लिखता था। छः सम्पादकों का सम्पादक-मंडल 'इस्क्रा' का सम्पादन करता था। पुराने और अनुभवी क्रान्तिकारियों के बीच में एक बाइस वर्ष के नवयुवक का सगौरव सिर ऊँचा करके खड़ा होना एक अनहोनी-सी बात थी। पर लेनिन की दृष्टि बहुत ही पैनी थी। वह ट्राट्स्की के लेखों को पढ़कर प्रभावित हो चुका था। देहात की सँकरी घाटी से निकल जब ट्राट्स्की खुले मैदान में ... गया तो उसकी लेखनी ज़ारशाही के काग़ज़ों ... पर मानो आग बरसाने लगी। अपनी प्रखर ... और फड़कती हुई लेखन-शैली के कारण ... लेनिन के प्रधान सहकर्मियों में बन गया, ... अभी उसकी मसें भींग रही थीं और वह ... २२ साल का एक नौजवान था। हमारे ... २२ वर्ष के जवान जिस समय मा का ... पकड़कर जलेबी के लिए हठ किया करते ... समय—महज़ बाइस साल का—ट्राट्स्की ... अध्ययनशीलता के कारण क़लम का ... चुका था। शेख़ सादी ने गुलिस्ताँ में क्या ... लिखा है—

> बालाये सरश ज़े होशमन्दी;
> मीताफ़्त सितारये बुलन्दी।

(अर्थात्—"होनहार बिरवान के होत ... पात") धीरे-धीरे ट्राट्स्की की लेखनी पर ... पानी चढ़ता गया; 'सान' चढ़ती गई। ... छोटे परचे लिखने में उस समय अपनी ... शान रखता था। उसका एक-एक पर्चा, ... लिखी हुई एक-एक लकीर तत्कालीन रूसी ... के मार्ग में हिमालय बनकर खड़ी हो जाती ... ट्राट्स्की के एक जीवनी-लेखक ने लिखा है ... "साम्यवादियों के सशस्त्र आक्रमणों से ट्राट्स्की ... लेख ज़ारशाही के लिए कम घातक सिद्ध ... हुए।" 'इस्क्रा' के पृष्ठों पर ट्राट्स्की 'पेरो' ... से दिखलाई देता था। रूसी भाषा में ... क़लम को कहते हैं। अपने दल में ट्राट्स्की ... के नाम से विख्यात हो गया। यह उसकी ... की सार्वभौम विजय नहीं तो और क्या है ...

नरक में—

क्रान्ति की विफलता के बाद रूस की ... ने पूरे वेग से दमनचक्र चलाना आरम्भ ... जैसा कि स्वाभाविक भी था। इसी सिल...



ट्राट्स्की भी पकड़ लिया गया। यह १९०६ की घटना है—आज से ३० वर्ष पहले। इस असफल क्रान्ति के कारण रूस के कार्यकर्ताओं पर मानो शनिदृष्टि पड़ गई। बहुत-से तो प्राण लेकर दूसरे देशों की ओर दौड़ पड़े और जो पकड़ लिये गये, वे संगीन की नोक में बाँधकर कोर्टमार्शल के लिए रख छोड़े गये। ट्राट्स्की भी पकड़ा गया, पर वह नेता बन चुका था, जनबल उसके साथ था। उसकी प्राणरक्षा का यही प्रधान कारण बना। न्याय के नाटक का दुखान्त हुआ। ट्राट्स्की को इस सिलसिले में बहुत दिनों तक एक विचाराधीन क़ैदी की तरह जेल के सीखचों के भीतर रहना पड़ा और अपने बेकार समय से उसने पूरा-पूरा लाभ भी उठाया स्वाध्याय करके। जेल के जिस कमरे में ट्राट्स्की बन्द किया गया था, वह एक पुस्तकालय के रूप में परिणत हो गया। जेल-कर्मचारियों में से प्रत्येक ट्राट्स्की से परिचित था, उसकी लेखनी का चमत्कार प्रत्येक ने देखा था, प्रत्येक उसे मन से चाहता था, उसकी लौह-लेखनी के प्रभाव से—जादू से—प्रत्येक जेल-कर्मचारी अपने क़ैदी किन्तु महान् लेखक का भक्त बन चुका था। 'ड्यूमा' (रूसी-पार्लामेंट) के सदस्यों पर भी ट्राट्स्की की क़लम का जादू चल चुका था। वह जेल में भी अपने स्वाध्याय को जारी रख सका—यह ग़नीमत है। जिस 'बलवे' के प्रधान के रूप में ट्राट्स्की पकड़ा गया था, वह कोई साधारण नहीं ख़ूनी बलवा था। कितनों की जानें गईं, दोनों पक्ष—प्रजा और सरकार—के कितने हताहत हुए, पता नहीं। ऐसी अवस्था में यह संभव था कि ट्राट्स्की को गोली से उड़ा देने की ही सज़ा दे दी जाती, पर निर्ममचित्त ट्राट्स्की ऐसे संकट-काल में भी ख़ूब पढ़ता था। वह जेल की कोठरी में बैठा पुस्तकों में इस तरह लिप्त हो जाता था, जैसे कोई पुस्तकालय में बैठा ख़ूब सरस उपन्यास पढ़ रहा हो। उसने स्वयं एक स्थान पर लिखा है कि "गिरफ़्तारी के बाद मैं १५ मास तक, विचाराधीन क़ैदी के रूप में, जेल में बन्द रहा, पर इस बार की मेरी क़ैद बहुत ही सुखमय रही; क्योंकि मुझे पढ़ने के लिए काफ़ी पुस्तकें मिल जाती थीं—आनन्द से समय व्यतीत करने के लिए इससे अधिक और चाहिए ही क्या।"

आप ट्राट्स्की के इन कुछ ही शब्दों से यह अनुमान लगा सकते हैं कि वह किस कोटि का विद्वान् या अध्ययनशील है। जहाँ हमारे नवयुवकों को बाल सँवारने और सैर-सपाटे से ही फ़ुर्सत नहीं मिलती, वहाँ ट्राट्स्की की अध्ययनशीलता की चर्चा चलाना भी एक प्रकार से अनुचित ही कहा जा सकता है।

ट्राट्स्की का मुक़दमा जब समाप्त हो गया तो उसे सीधे "साइबेरिया" के बर्फ़ीले मैदान में पटक दिया गया। "सन् १९०५" नाम की अपनी पुस्तक में ट्राट्स्की ने इस मुक़दमे का सविस्तर वर्णन किया है। जिस स्थान पर ट्राट्स्की कैद किया गया, वहाँ से रेलवे लाइन ६०० कोस की दूरी पर थी और पोस्ट-आफ़िस ३०० कोस की दूरी पर—ग़ज़ब! कुछ दिनों तक ट्राट्स्की साइबेरिया के एक गाँव में रहा, पर उसकी क़लम बराबर काग़ज़ पर थिरकती ही रही। कुछ ही दिनों में उसने एक पुस्तक लिख डाली और फिर एक सूनसान रात को भाग खड़ा हुआ वह साहस का पुतला अपनी पुस्तक और क़लम के साथ। कोई दो सप्ताह हिरन की गाड़ी पर ट्राट्स्की ने काटे और 'फ़िनलैंड' पहुँचकर दम लिया। फ़िनलैंड में भी वह स्थिर नहीं रह सका। उसने अपनी नई लिखी पुस्तक—"वहाँ, फिर वापस"—के रूप में परिवर्तन करना आरंभ किया, जो पीछे "क्रान्ति-काल में रूस की अवस्था" के नाम से "सैक्सनी" की राजधानी 'ड्रेसडेन' में प्रकाशित हुई। आप सोच लें कि विचाराधीन क़ैदी के रूप में उसने एक पुस्तक लिखी और दूसरी साइबेरिया के नरक में बैठकर। स्त्री-सन्तान से अलग और मृत्यु की काली छाया में बैठे हुए ट्राट्स्की ने



अपनी लेखनी को जितना उपयोग में लाया, उतना गद्दीदार कुर्सियों के भार बने हुए हमारे भारतीय कलाकार (?) नहीं काम में ला सकते। नाना प्रकार की चिन्ताओं का बहाना करते हुए हम अपने जीवन को सिर पीटकर समाप्त कर देते हैं, पर विपत्ति के भँवर में पड़ा हुआ ट्राटस्की सदा स्थिर मस्तिष्क से लेखन-व्यापार पर दृढ़ बना रहा। सचमुच संसार में उसी का जीवन सफल माना जाता है, जिसने श्रम और समय का महत्त्व समझा हो। Genius is another name for infinite capacity for taking pains.

चिन्ता की चिता पर

ट्राटस्की के कपाल में विधाता ने 'भगोड़ा' शब्द लिख दिया है। वह आज तक भागा-भागा फिर रहा है। रूसी क्रान्ति के पहले भी वह संसार-भर की गलियों की ख़ाक छानता फिरा और आज भी उसकी दशा में कोई फ़र्क नहीं पड़ा है। सुना है कि वह 'नारवे' से भी खदेड़ दिया गया। जो हो!

हाँ, तो 'साइबेरिया' से भागकर ट्राटस्की जहाँ भी गया, उसके दो साथियों ने उसका साथ नहीं छोड़ा—'क़लम' और 'पेट'। ये दोनों ही आज भी उसके साथ-साथ भाग रहे हैं। इधर-उधर घूमकर जब ट्राटस्की "बोहीमियाँ" के एक गाँव में रहने लगा तो उसकी लेखनी ने फिर हुरदंग मचाना आरम्भ किया। 'पेट' तो नरक की आग की तरह हर घड़ी जलता ही रहता था। वह वहाँ से लिखता-पढ़ता जब 'बालकन' पहुँचा तो उसे एक अख़बार मिल गया, जिसका नाम था—"मिसिल"। 'मिसिल' में ट्राटस्की ने भूखों मर-मरकर लिखना आरम्भ किया और इतना लिखा कि पीछे सोवियटदल ने उसके निर्वासन-काल में लिखे गये लेखों को जमा करके कई मोटी-मोटी जिल्दों में छापा। 'बालकन' में ट्राटस्की का जीवन बहुत ही चिन्ताग्रस्त रहा। रोटी का भयानक सवाल उसके सामने था, पर दो-दो दिन फ़ाक़ा करके भी वह पुस्तकालय का जाना नहीं छोड़ता था और न क़लम की निब की रोशनाई को ही सूखने देता था। ट्राटस्की अनेक भाषाओं का विद्वान् लेखक है। योरप की प्रायः सभी भाषाओं पर उसका प्रौढ़ अधिकार है। अपनी मातृ-भाषा के अतिरिक्त वह प्रायः सभी योरपीय भाषाओं में ख़ूब अधिकारपूर्वक लिख और बोल सकता है। वह जिस देश में भागकर जाता, सबसे पहले उस देश की भाषा और साहित्य का गहरा ज्ञान प्राप्त करता। हमारी हिन्दी में शायद ही कोई लेखक होगा, जो भारत की प्रधान-प्रधान भाषाओं पर भी अधिकार रखता हो। ... में तो ट्राटस्की की आर्थिक दशा इतनी ... कि वह अपनी प्राणों से भी प्यारी पुस्तकें बेंच देने को लाचार हो गया, जिन्हें वह ... रोटी के पैसे बचाकर संग्रह कर सका था। ... दशा में भी उसका लिखना बन्द नहीं हुआ। ... वह कई पुस्तकें लिखकर वियना से भाग ... हुआ। १९१४ में पेरिस पहुँचकर उसने ... ३०) की पूँजी से जिस दैनिक पत्र को जन्म ... वह उसकी अमर लेखनी के स्पर्शमात्र से ... पेरिस का एक प्रधान पत्र बन गया—यह ... की क़लम की करामत और प्रलयंकारी ... यहीं उसने बहुत-सी पुस्तिकाएँ भी लिखीं, ... प्रचार स्विटज़रलैंड में ख़ूब हुआ और ... भाषाओं में अनूदित होती हुई वे अमेरिका ... पहुँच गईं। अपनी इन पुस्तिकाओं के चलते ... को जेल की हवा तक खानी पड़ी, पर ... क़लम की शोख़ी ज्यों की त्यों बनी रही। ... एक पुस्तक को अमेरिका के तत्कालीन ... डॉ॰ विलसन ने, प्रकाशक को तार भेजकर ... वाया। पुस्तक प्रेस में थी। उन्हें ... भेजे गये—उन दिनों वे अपनी विश्व... "१४ शर्तें" लिख रहे थे और ट्राटस्की के ... जानने की इच्छा ने उन्हें परेशान कर ... यह जर्मनयुद्ध के संध्याकाल का हाल है।



ट्राटस्की की इस पुस्तक की हज़ारों प्रतियाँ बिकीं और संसार ने उसकी लेखनी का लोहा मान लिया, यद्यपि उस पुस्तक में 'युद्ध की ओर साम्यवादियों की प्रवृत्तियों' की ही चर्चा की गई थी। इसी पुस्तक ने ट्राटस्की के जीवन के सुख-सपनों का अंत भी कर दिया। रूस के वर्तमान तानाशाह स्टेलिन ने इस पुस्तक से "ट्राटस्कीवाद" का प्रचार होते देखकर बेचारे ट्राटस्की को १९२३ में रूस की सीमा से बाहर खदेड़ दिया। वह अपनी क़लम के ही प्रताप से सातवें आसमान पर जा बैठा और शोख़ क़लम की ही करतूत से आज पथ का एक भिखारी मात्र बना हुआ है। संसार के सभी देशों के द्वार उस अभागे के लिए बन्द हैं। भले ही कोई उसकी विपत्ति का साथी न हो, पर उसकी प्यारी क़लम और पुस्तकें सदा उसके सामने हाज़िर रहती हैं। उसे किसी दूसरे मनोरंजन की परवा नहीं। वह पहले भी सुखी था और आज भी है।

गोलियों की झड़ी में

ट्राटस्की में एक गुण है और वह है उसका स्थिर रहना। किसी प्रकार की भी आपदा क्यों न आवे, ट्राटस्की सदा चट्टान की तरह स्थिर बना रहता है—वह विचलित होना जानता ही नहीं, और यही कारण है कि उसके जीवन का प्रत्येक क्षण काम में ही लगता है। लिखने और पढ़ने के विषय में ट्राटस्की अत्यन्त उत्सुक-चित्त है। अपने प्रथम निर्वासन-काल में वह 'साइबेरिया' के एक सुनसान मैदान में था। सैकड़ों कोस चारों ओर बर्फ़ की मरुभूमि फैली हुई थी और सूर्य का दर्शन हफ़्तों क्या, महीनों तक होना कठिन हो जाता था। बर्फ़ का तूफ़ान सारी रात हाहाकार करता रहता था। "साइबेरिया" 'उत्तर-ध्रुव' का छोटा भाई माना जाता है। जहाँ का पारा शून्य से भी ४२ दरजे नीचे उतर जाता है, वहाँ की सर्दी का आप अनुमान लगा सकते हैं। ट्राटस्की जिस कच्चे घर में रक्खा गया, वहाँ "तिलचट्टों" का राज्य था। सारा घर देखते-देखते तिलचट्टों से भर जाता था और फिर उस घर में किसी का क्षण भर ठहरना कठिन हो जाता था। असंख्यासंख्य घिनौने "तिलचट्टे" दिनरात ट्राटस्की को कष्ट दिया करते थे। यदि कोई दूसरा मनुष्य होता तो उस घर को क्षण भर में परित्याग करके खुले मैदान में खड़ा हो जाता और वह भले ही गिरनेवाली बर्फ़ के नीचे दब जाता, पर ट्राटस्की एक बार जब पुस्तक लेकर बैठ जाता तो फिर 'तिलचट्टों' की क्या बात है, गोलियों की बौछार भी उसे विचलित नहीं कर सकती थी। उस नरक में बैठकर ट्राटस्की समस्त दिन स्वाध्याय करता, क़लम चलाता और हज़ार-हज़ार 'तिलचट्टे' उसके सिर, कन्धों और पीठ पर दौड़ा करते। पति की दशा पर तरस खाकर उसकी स्त्री ध्यानावस्थित ट्राटस्की के शरीर पर से 'तिलचट्टों' को उठाकर दूर हटा दिया करती थी, पर ट्राटस्की को क्या मालूम कि उसके शरीर पर 'तिलचट्टे' दौड़ रहे हैं या साँप-बिच्छू। अब भी एक अच्छी-सी पुस्तक या क़लम-काग़ज़ मिल जाने के बाद ट्राटस्की अपने-आपको बिसार बैठता है।

यह तो पुरानी बात है। पर जब ज़ारशाही का अन्त करके रूस में साम्यवादियों का शासन स्थापित हुआ और उसका प्रधान लेनिन बना तो ट्राटस्की को अत्यन्त कठिन काम उसने सौंपा। यह काम ऐसा था, जिसे ट्राटस्की ही पूरा कर सकता था।

इसके पहले भी ट्राटस्की लालसेना का संगठन करता था। ज़ारशाही से खुलेआम लड़ने के लिए जो सेना—मज़दूरों और किसानों की—तैयार की गई थी और जिसने 'पेट्रोग्रेड' के क़िले पर लाल झंडा—देखते-देखते फहरा दिया था, उसका संगठन-कर्ता एकमात्र ट्राटस्की था और लेनिन की तेज़ नज़रों से अपने ऐसे साथी की दुर्दमनीय क्षमता छिपी नहीं थी। सरकार और क्रान्तिकारियों में जिस समय अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलती थीं, उस समय ट्राटस्की गोलियों की सनसनाहट के बीच में



बैठकर लेख पर लेख लिखा करता, जो पर्चों के रूप में छपकर क्रान्तिवादी सैनिकों में बँट जाया करते और जिनसे उनका—सैनिकों का—उत्साह कभी ठंडा नहीं पड़ता। क़लम और तलवार दोनों एक साथ चलाकर ट्राट्स्की ने संसार के सामने एक अद्भुत दृश्य उपस्थित कर दिया है। आप अपने को ज़रा ट्राट्स्की के स्थान पर स्थापित करके सोचिए—आपके चारों ओर हज़ार-हज़ार सैनिक लड़ रहे हों, तोपों से गोले गिर-गिरकर प्रलय उपस्थित कर रहे हों, कहीं कैंपों में आग लगी हो तो कहीं ख़ून से लिपटे हुए ग़रीब सैनिक तड़प रहे हों। बम और तोप के धुएँ से आकाश का रंग मटमैला हो गया हो और धूप भी मुर्दे के चेहरे की तरह पीली पड़ गई हो। आपके सिर पर हाहाकार करते हुए हवाई जहाज़ उड़ रहे हों और चारों ओर तुमुल संग्राम छिड़ा हो। आपके पैरों के पास भी मुर्दों का ढेर लगा हो तथा हवा में बारूद और नाना प्रकार की जलनेवाली वस्तुओं की गन्ध भरी हो। साथ ही मज़ा यह भी हो कि आप भी एक ओर से लड़ रहे हों और वह भी एक प्रधान की हैसियत से, ऐसी अवस्था में क्या आप आराम से बैठकर लेख लिख सकते हैं या पुस्तकों में तन्मय हो सकते हैं?—असम्भव है। पर ट्राट्स्की भयानक संग्राम के बीच में बैठकर—तलवार को म्यान में रखकर—क़लम चलाता था और अवसर आते ही क़लम को जेब में डालकर तलवार खींच लेता था। 'क्रेमलिन क़िले' में बैठा हुआ वह समस्त रूस की लालसेना का जब संचालन करता था और तीन-तीन दिन निराहार रहकर सोवियट-कांग्रेस की बैठकों में भाग लेता था, उस समय भी उसका दिमाग़ ठीक-ठीक काम करता था और लेख तथा पुस्तकें लिखा करता था। उसके लिए 'साइबेरिया' का निर्वासन, ट्रेन का सफ़र, जंग की खाइयाँ, क्रेमलिन का आफ़िस या सोवियट-कांग्रेस की बैठकें समान रूप से आनन्ददायक थीं। वह सर्वत्र स्थिर मस्तिष्क रहता और सर्वत्र स्वाध्याय और अपने लेखन-व्यापार क़ायम रखता। ज़ारशाही के भय से वह जहाँ भागकर छिपता, वहाँ-वहाँ उसके साथ पुस्त कालय चलता और वह चाहे कैसी भी स्थि क्यों न होता, पुस्तकों और क़लम से जी बह करता। यही कारण है कि भयानक सं अवसर पर भी ट्राट्स्की विचलित नहीं होता घबराहट की अवस्था में एक भी ग़लत या यिक काम नहीं कर बैठता। रूसी क्रान्ति में ट्राट्स्की प्राणरूप में वर्तमान रहा। ग़ज़ब की दृढ़ स्थिरता के कारण ट्राट्स्की शिक्षा प्राप्त होते हुए भी आज संसार एक महान् विद्वान् लेखक के रूप में उपस्थित वह वर्षों तक गोलियों की बौछारों में साहित्य-निर्माण करता रहा, तोपों की गड़ के बीच में बैठकर क़लम चलाता रहा, धड़ाके के बीच में बैठकर स्वाध्याय करता और रणक्षेत्र में मुरदों और घायलों के बैठकर लेख पर लेख और पुस्तक पर लिखता रहा। ट्राट्स्की की महत्ता इसी उसकी कार्य करने की क्षमता आज तक नीय और अक्लान्त बनी हुई है, यद्यपि समस्त जीवन यातनाओं में उसने व्यतीत है। जिसका भूतकाल अग्निमय हो और चिन्तामय तथा भविष्य अन्धकारमय, संज्ञाशून्य होकर मिट जाना चाहिए; पर की शक्ति और प्रतिभा का वेग उसके प्रारम्भ से लेकर आज तक एक-सा है। वह अपने दर्जे का अकेले एक ही साहित्यिक बर्नार्डशा ने उसकी पुस्तिकाओं को पढ़कर, संख्या हज़ार से ऊपर हैं और जो प्रायः में, जेल में, निर्वासन में और जंग के मैदान लिखी गई हैं, पढ़कर उसे "पुस्तिका-लेखकों के सम्राट्" कहा है। वह अभागा साहित्यिक न केवल पुस्तिका-लेखकों का ही सम्राट् है, साहित्यिकों का भी महिमामय सम्राट् है।



वर्षों रेलगाड़ी पर

जब ज़ार की सरकार का ज़ार के साथ अन्त हो गया, जब रूस के क़िले पर 'हँसिया और हथौड़े' के चिह्न से चिह्नित लाल झंडा हवा में उड़ने लगा, तब लेनिन ने देश के भिन्न-भिन्न सैनिक-संगठनों को एक सूत्र में पिरोने की बात सोची। बहुत-से प्रान्त अभी स्वतंत्र तथा सोवियट-शासनतन्त्र से बाहर थे। केन्द्र पर ही लाल नेताओं का प्रभुत्व था, पर उतने ही को समस्त रूस नहीं कहा जा सकता। पड़ोसी राष्ट्र रूस की अव्यवस्था तथा अराजकता से लाभ उठाना चाहते थे और कुछ बिगड़ेदिमाग़ सेनापति अपनी सेना का अलग संगठन कर रहे थे और चाहते थे कि केन्द्र पर अधिकार स्थापित करके बोलशेविकों का कचूमर निकाल दिया जाय। ऐसी दशा में लेनिन आराम की साँस कैसे ले सकता था, जब कि उसका बना-बनाया खेल मिट्टी में मिल जाने ही वाला हो। उसने ट्राटस्की को युद्ध-मंत्री का पद प्रदान किया तथा समस्त रूस का दौरा करके सेना-संगठन करने का भार उस पर लादकर अपने-आपको निश्चित कर लिया। ट्राटस्की किसी भी काम से जी चुरानेवाला नहीं है। ख़तरों से उसे ख़ास उल्फ़त आज भी है। वह मौत से आँखमिचौनी खेलना जी-जान से पसन्द करता है। इस महान् कार्य को पूरा करने के लिए एक ख़ास तरह की लड़ाईवाली रेलगाड़ी बनाई गई, जिसमें रेडियो, तोपें और हवाई जहाज़ों पर गोली मारनेवाली बन्दूकें लगाई गईं। इस गाड़ी में एक पुस्तकालय भी था और पलटन भी थी। ट्राटस्की चार साल तक इसी ट्रेन पर रात-दिन सफ़र करता रहा। कई बार यह ट्रेन उड़ते-उड़ते बची और कई बार बाग़ियों से इस ट्रेन को मुक़ाबला करना पड़ा। ख़तरों के बीच से आगे बढ़ती हुई इस ट्रेन में बैठकर ट्राटस्की ने रूस की क्रान्ति का एक सर्वाङ्ग-पूर्ण इतिहास लिखा, जो कई हज़ार पृष्ठों में छपकर तैयार हुआ। अपनी उस जीवनी "My life" का एक प्रधान अंश भी उसने इसी अवस्था में लिखा, जो कई जिल्दों में छपी है। इतना ही नहीं, इसी गाड़ी पर प्रेस भी था, जिससे एक अख़बार निकलता था। यह अख़बार बेतार के तार से आये हुए क्रान्ति की सफलता के समाचारों को छापता था तथा इसके पृष्ठ के पृष्ठ ट्राटस्की के लेखों से भरे होते थे। इसके अतिरिक्त छोटे-बड़े परचे और पुस्तिकाएँ तो लाखों की संख्या में छपती ही रहती थीं, जिनका लेखक अकेला ट्राटस्की होता था। १०-१२ घंटे नित्य वह साहित्य-सेवा करता था और बाक़ी समय सोने, खाने आदि कामों में लगाता था। वह रात को भी बहुत ही कम सोता और कई-कई रातें तो किताबों और क़लम के साथ व्यतीत कर डालता। ट्राटस्की-जैसा तेज़ लेखक रूस तो क्या, संसार में भी कम पाये जा सकते हैं। शार्टहैन्ड लेखक भी उसके मुक़ाबले में कम ठहरते हैं। पुस्तक पढ़ना भी वह कमाल का जानता है। पेज पर पेज उलटता हुआ वह घंटों में हज़ारों पृष्ठ की मोटी पुस्तक समाप्त कर डालता है। मोटी-मोटी पुस्तकों को वह देखते-देखते समाप्त कर डालता है और जब लिखने बैठता है तो देखते-देखते उसकी मेज़ तथा फ़र्श को लिखे हुए काग़ज़ के टुकड़ों से भर जाते विलम्ब नहीं लगता। वह लिख-लिखकर प्रायः फ़र्श पर डालता जाता है और इस प्रकार उसकी कुर्सी के चारों तरफ़ लिखे हुए काग़ज़ के टुकड़ों का अम्बार-सा लग जाता है। मैं अपने इस लेख के इतने अंश को ६ घंटों में लिख सका हूँ, पर ट्राटस्की ६ घंटों में एक पुस्तक लिखकर मेज़ से उठने की क्षमता रखता है। हम लोग एक घंटे में १०० पृष्ठ सहूलियत से पढ़ सकते हैं, बशर्ते कि हमारा पाठ्य विषय उपन्यास हो, पर ट्राटस्की सम्भवतः इतने ही समय में ५०० पृष्ठों की ख़बर लेगा—यह हाल है उस महान् लेखक का, जो आज निराश्रय और बेघर-द्वार का हो चुका है। यदि ट्राटस्की क्रान्तिकारी न होकर केवल साहित्यिक ही रहता तो भी वह आज



संसार की दृष्टि में जितना समादृत है, उससे नीचे कदापि न होता।

कोई चार वर्ष के बाद ट्राटस्की "लेनिनग्रेड" लौटा और लेनिन ने उसका स्वागत किया। इसके बाद राजनीतिक उलट-फेर का युग आया। लेनिन की मृत्यु के बाद ट्राटस्की स्टेलिन की आँखों का काँटा बन गया। वह षड्यंत्रों के फेर में पड़कर रूस से बाहर खदेड़ दिया गया और जिस पौदे को उसने अपने रक्त से सींच-सींचकर बड़ा किया था, उसका फल चखना उसके जले कपाल में विधाता ने नहीं लिखा था—वह अपने स्वदेश से दूर कर दिया गया।

दर-दर का भिखारी

लेनिन की मृत्यु और ट्राटस्की के दुर्भाग्य का आरम्भ एक ही क्षण में होता है। जब ट्राटस्की के निर्वासन की आज्ञा लेकर वह पुलिस आई, जिसका एक दिन ट्राटस्की बिना ताज का बादशाह था तो उसकी स्त्री बीमार थी। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था और खिड़की खोलकर झाँकना भी आफ़त का सामना करना था। उसी समय ट्राटस्की-परिवार को रूस की सीमा से बाहर निकल जाने का हुक्म केवल इसी लिए जारी किया गया कि ट्राटस्की की नीति से स्टेनिल की नीति का मेल नहीं बैठता था। उसकी उग्र नीति और प्रचंड व्यक्तित्व भी स्टेनिल के लिए असह्य था। ट्राटस्की चुपचाप रूस से बाहर जाना नहीं चाहता था, इसी लिए वह अपने कमरे में जाकर बैठ गया और भीतर से किवाड़ लगा दिये गये। पुलिस के अधिकारी जब किवाड़ तोड़ने की आज्ञा लेने गये तो इस बीच में ट्राटस्की एक लेख लिखने लगा। जिसे एक घंटे बाद अपने महान् गौरवपूर्ण पद से नीचे गिरकर किसी अज्ञात दिशा की ओर जाने को लाचार होना पड़ेगा और जो यह भी नहीं जानता कि उसके बच्चों का क्या होगा और उसकी जीवन-सहचरी कहाँ रहेगी, विशेषतः वह ख़ुद अपने भविष्य के विषय में भी कुछ नहीं जानता, वह ट्राटस्की ऐसे संगीन अवसर में भी लेख लिखने बैठ गया क़लम लेकर ... ऐसी बात नहीं है कि जिसके मुक़ाबले में कोई ... समानान्तर बात तत्काल मिल जाय।

इस कथा के बाद ट्राटस्की के निर्वासन ... की कथा है, जो हम समाचार-पत्र के पाठकों ... आँखों से अगोचर-सा ही है। यदा-कदा कोई ... संवाददाता उससे भिन्न-भिन्न स्थानों पर ... कौशल की सहायता से मिला है, जो उसे ... पुस्तकालय में बैठकर लिखते-पढ़ते देखकर चकि... हुआ है। आज विदेशी पत्र ट्राटस्की की ... का प्रसाद पाने के लिए उत्सुक रहते हैं। ... इधर बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं और लेनि... एक सर्वांगपूर्ण जीवनी भी लिखी है, ... "मार्क्सवाद और लेनिनवाद" पर एक ... नात्मक ग्रन्थ भी लिखा है। यदि ट्राट... प्रकाशित ग्रन्थों और परचों का संग्रह किया ... तो एक छोटी-सी लाइब्रेरी बनते देर नहीं ...

एक कहानी और सुन लीजिए—अपने ... निर्वासन-काल में जिनेवा में ट्राटस्की एक ... के यहाँ ठहरा हुआ था। वह वकील रूसी ... क्रान्तिकारियों की सेवा किया करता था। ... को उसने अलग एक कमरा दे दिया। ... अनजान लोगों ने गाड़ियों पर लाद-लादकर ... के पास हज़ारों जिल्दें किताबों की पहुँ... ट्राटस्की कभी अपने कमरे के बाहर ... रखता था। वकील साहब ने जब कभी ... देखा तो अपने शरणागत को सदा सिर ... मेज़ पर लिखते-पढ़ते ही देखा—उन ... महायोद्धा नेपोलियन की आलोचनात्मक ... लिख रहा था। ट्राटस्की की पुस्तकें ... मेरे सामने उपस्थित नहीं है, इसी लिए ... में असमर्थ हूँ कि ट्राटस्की-लिखित नेपोलि... यह जीवनी प्रकाशित हुई या "दीमकों" की ... ब्रेरी में पहुँच गई।

पूर्णाहुति

ऐसा धुरंधर लेखक है ट्राटस्की। लेनिन ...

प्रचंड अध्ययनशील था, पर ट्रॉटस्की की तुलना उससे न ीं की जा सकती। ट्रॉटस्की की कोटि का लेखक वह नहीं था। लेनिन की जीवनी में से यदि उसके क्रान्तिपूर्ण विचारों और कार्यों को बाद दे दिया जाय ो उसका कोई उतना चमत्कारपूर्ण रूप संसार के सामने नहीं रह जाता, जिसकी बदौलत वह आज करोड़-करोड़ पीड़ितों का श्रद्धाभाजन बनता; आशा की एक रेखा बनता। पर यदि हम ट्रॉटस्की को उसके ध्वंसक विचारों और कार्यों को बाद देकर भी देखते हैं तो भी वह एक महिमामय रूप से सिर ऊँचा किये खड़ा दिखलाई पड़ता है; क्योंकि उसकी क़लम साहित्याकाश में एक युग तक उज्ज्वल तारा की तरह चमकती रहेगी, जिस पर सबों की दृष्टि अचानक पड़ जायगी और उसे छिपाया भी न ीं जा सकता। साहित्यसंसार में भी ट्रॉटस्की का एक गौरवपूर्ण स्थान है। राजनीतिक दंगल की चर्चा चलाना मेरे लिए असंभव है।

इस छोटे-से लेख में महान् ट्रॉटस्की की अध्ययन-शीलता की पूरी कहानी स्पष्ट होना असंभव है। मैंने प्रयत्न किया है कि संसार का वह सबसे भयानक मनुष्य न केवल एक नरव्याघ्र ही है, बल्कि एक स्वनामधन्य विद्वान् साहित्यिक भी है। रूस के वर्तमान भाग्य-विधाता की तुलना में उसने अपनी आत्मा पर विजय पाई है, अतएव नेपोलियन के शब्दों में—

"He that ruleth his spirit is greatest he that taketh a city."

मृत्युलोक में अमरत्व की झाँकी

चेचक के टीके के आविष्कार की कथा

श्रीरणजित् राव आयुर्वेदालंकार

मुझे दो शताब्दी पूर्व के एक महापुरुष की प्रतिमा दिखाई दे रही है। अविचल आत्म-विश्वास और अश्रान्त अध्यवसाय की मूर्ति है वह! यह प्रतिमा है—चेचक के टीके के आविष्कारक डॉक्टर एडवर्ड जैनर की। रूढ़ियों के क्रीत-दास, नवीनता के अन्धविरोधी अज्ञ मानव-समुदाय का उपहास एक ओर; दूसरी ओर खुद जैनर के चिकित्सक-बन्धुओं की तीव्र-विरोध-मिश्रित उपेक्षा; और इन सबसे बढ़कर बीस से अधिक वर्षों की अवसादिनी चिन्ता और श्रम के होते हुए भी पर्याप्त प्रमाण की अनुपलब्धि—इन सब के मर्मभेदी आक्रमणों की अवगणना कर एक दिन उसने पहले-पहल अपने शिशु को टीका लगाया अपनी आविष्कृत चिकित्सा पर दृढ श्रद्धा के बल पर! कृतज्ञ देशवासियों ने पीछे से इस अलौकिक दृश्य को एक प्रतिमा खड़ा कर अङ्कित किया। किसी अननुभूतपूर्व कर्म (ऑपरेशन) की आशङ्का से कातर बच्चा पिता-जैनर की ममतामयी गोद में बैठा है। उसका दाँया हाथ पिता ने अपने एक हाथ में उठाया है। दूसरे हाथ से पिता—मानो द्रवीभूत आत्मविश्वासरूप—औषध बच्चे के शरीर में प्रविष्ट कर रहा है। असाधारण मनोयोग, अस्खलित धैर्य और प्रगाढ़ गाम्भीर्य टपक रहे हैं उसके आकार से। मैं लेख लिखने बैठा हूँ, और यही प्रतिमा रह-रहकर मेरे मनो-मन्दिर में अपनी झलक दिखा रही है। जिन डॉक्टर जैनर की यह प्रतिमा है, उन्हीं के आविष्कार का विवरण अगली पंक्तियों में दिया जा रहा है।

जैनर का पिता ग्लौसेस्टरशायर (इंग्लैं... का पादरी था, और उसे तीन वर्ष का ... मर गया था। पीछे से जैनर का पालन... उसके पितृकल्प बड़े भाई ने किया। ब... ही जैनर घण्टों अपने साथियों के साथ घों... पक्षियों के घोंसले जमा करता रहता था। ... क्रम से यही प्रवृत्ति पशु-पक्षियों की चीर-... परिणत हो गई। बड़े भाई की इच्छा ... जैनर अपने पिता की ही वृत्ति स्वीकार ... उसने अपनी वृत्ति के अनुसार चिकित्सक ... निर्णय किया, अतः उसे एक कुशल और ... सर्जन के पास चिकित्सा की शिक्षा के लिए भे... गया। वहीं काम करते हुए एक दिन ... को साधारण—घटना घटी, जिसने जैन... समय एक तरुण विद्यार्थी—को मानव-जाति ... महान् पुरुष के रूप में इतिहास में अमर ...

एक दिन एक ग्रामीण युवती कुछ ... सलाह लेने दवाख़ाने आई। उसका केस ... होने से जैनर को सौंप दिया गया। ... चेचक का प्रसंग छिड़ा, और स्त्री ने ... की—"मुझे चेचक नहीं हो सकता; ... काऊ-पौक्स* हो चुका है।" जैनर ...

* चेचक की जाति का गौओं का एक रोग।



पड़ा । एक साधारण ग्रामीण स्त्री, और सारा चिकित्साशास्त्र—तात्कालिक—जिसका भय माने उस, साक्षात् यमी-सखीस्वरूप, व्याधि के प्रति यह दावा । यह या तो प्रमत्त-प्रलाप था, या अनुभवसिद्ध सत्य का स्पष्ट प्रकाशन ।

उसे निरा प्रलाप समझकर इस घटना की उपेक्षा की जा सकती थी; पर उस दशा में मानव-जाति एक बड़े ईश्वरीय उपहार से वञ्चित रह जाती । और यह सुहाता भी किसे ? किसी जरठ पुरुष को, जिसके मस्तिष्क की रेखाएँ पक चुकी हों, जो नवीनता के नाम ही से भड़के, जिसकी दुर्बल इन्द्रियाँ स्वल्प-से श्रम से झिझकें ! यौवन के स्वाभाविक साहस, नवीनता के प्रति प्रेम और बचपन ही से विकसित असामान्य कौतूहल और जिज्ञासा का धनी जैनर भला इस मार्ग को कैसे पसन्द कर सकता था ? वह अभी अनुभवशून्य और अशिक्षित था, इससे क्या ? उसने दूसरा मार्ग पकड़ा । उसे इस दावे के पीछे प्रकृति का कोई रहस्य छिपा प्रतीत हुआ; जिसको प्रकाश में लाने से मानव-जाति का असीम कल्याण हो सकता था ।

प्रारम्भिक शुष्क विस्मय के पीछे शीघ्र ही जैनर की जिज्ञासा-वृत्ति जाग उठी । अनुसन्धान शुरू हुआ । जैनर का औत्सुक्य और आश्चर्य द्विगुणित हो गये, जब उसे विदित हुआ कि जिस बात ने उसे इतना स्तब्ध कर दिया था, वह उस इलाक़े की ग्वालिनों के लिए सामान्य-सी बात थी ।

कौन नहीं जानता कि चेचक कितना फैलनेवाला रोग है, और इसके रोगियों का क्षणिक संपर्क भी कितना रक्षणीय होता है । परन्तु उस प्रदेश की अनेक ग्वालिनों को, रुग्ण गौओं का दूध दुहते हुए, हाथों पर काऊ-पौक्स का हलका-सा असर हो चुका था । उन्हें चेचक के रोगियों का संपर्क होने पर भी वह रोग न हुआ था, यद्यपि स्वयं उन्हें इसकी पूरी आशङ्का थी । फलतः उन लोगों में उक्त धारणा घर कर गई थी ।

जैनर स्वप्न-लोक में विहार करने लगा । ख़ुद जैनर के शब्दों में—"हरी घास पर बैठकर मैं प्रायः अपने विषय का अनुध्यान किया करता । सोचता, संसार के प्रधान संकटों में एक का उच्छेद होने को है, और मैं उसका निमित्त होनेवाला हूँ । इस आशा से मैं हर्षाविष्ट हो जाता । साथ ही सोचता—तब कितना स्वाश्रय, सुख और शान्ति का धाम होगा मेरा गृहस्थाश्रम ! ये भाव कभी-कभी सीमा से बढ़ जाते और मैं ध्यान-मग्न-सा हो जाता । आज यह स्मरण कर मुझे सन्तोष होता है कि इन भावनाओं के अन्त में, मैं सदा उस महती शक्ति का भक्ति-नम्र होकर आभार मानता, जो इस तथा अन्य करुणाओं का मूल स्रोत है ।"

इक्कीस वर्ष की अवस्था में जैनर लन्दन पहुँचा । वहाँ चार वर्ष तक चिकित्सा-शास्त्र का गहरा अभ्यास कर अपने घर लौट आया, और वहीं प्रैक्टिस करने लगा । समय बीतते न बीतते उसने नगर में अपना विशेष स्थान बना लिया । किसी को कल्पना भी न होती कि अपने रोगियों को देखने के लिए घोड़े पर चढ़कर जानेवाला रँगीला डाक्टर, जो आकृति से इतना ख़ुश-मिजाज़ और इतना संतुष्ट जान पड़ता था, अपने हृदय में कैसी दुर्दान्त—कैसी गहरी व्यथा छिपाये हुए है ! चेचक का एक-एक केस, जो उसके देखने-सुनने में आता, जैनर को अपने लिए अभिशाप-रूप प्रतीत होता । बेचारा जैनर अपने दिल का भार हलका करने के लिए तरह-तरह के छोटे-मोटे काम करता, यहाँ तक कि कभी-कभी कविता भी करने बैठता ।

जैनर की कठिनाई का कुछ आभास इस बात से हो सकता है कि जो कीटाणु-शास्त्र आज इतना पल्लवित हो गया है, उसका बीज ही जैनर के सौ वर्ष बाद बोया गया था । फलतः, परीक्षण का कोई आधार न होने के कारण वैज्ञानिकों से अपना सिद्धान्त क़बूल करवाना बालू से तेल निकालना था । वृद्ध चिकित्सकों के लिए जैनर के विरुद्ध एक ही युक्ति बहुत थी, और वह यह कि जैनर युवा और अनुभवशून्य था, इसलिए उसका



भ्रान्त होना निश्चित था। कैसी प्रतारणा?

ऐसे उदाहरण प्रायः मिलते, जिनमें एक बार चेचक या काऊ-पौक्स होने के पीछे उनका दुबारा आक्रमण न पाया जाता। पर ऐसे भी दृष्टान्त पाये गये, जिनमें एक बार काऊ-पौक्स होने के बाद भी चेचक का हमला हुआ। थोड़ी देर को लगा कि जैनर का पत्त अब डूबा! पर नहीं, दैव को तो इन्हीं घटनाओं से जैनर को उबारना अभीष्ट था। अनुसंधान से पता लगा कि यदि काऊ-पौक्स एक विशेष सीमा तक पहुँच चुका हो, जिससे उसका विष प्रबल हो चुका हो और तब उसकी छूत किसी व्यक्ति को लगे, तभी वह चेचक के प्रभाव से शून्य रह सकता है।

जैनर की यह सबसे बड़ी विजय थी। इससे टीके का सिद्धान्त तो स्थिर हो गया, पर उसे अभी वास्तविकता की अग्नि-परीक्षा में से गुज़रना था। आख़िर यह भी हुआ। १४ मई, १७९६ को जैनर ने एक आठ वर्ष के बालक को काऊ-पौक्स के सुपरीक्षित द्रव का टीका लगाया। टीका सफल हुआ—बच्चे पर काऊ-पौक्स का असर हुआ। पहली जुलाई को उसे चेचक के विष का टीका किया गया, पर उसे कुछ न हुआ। टीके की विश्वसनीयता पर मुहर लग गई।

टीका चल निकला। आज उसका जैसा प्रचार है, वह सर्वविदित है। कम महापुरुषों को अपने जीवन में ऐसी प्रसिद्धि मिली होगी, जैसी जैनर को। रूस में जिस बच्चे को पहले-पहल टीका लगाया गया, उसका धार्मिक नाम 'वैक्सीनोव' (वैक्सीन=काऊ-पौक्स का विष) रक्खा गया। सरकार की ओर से १८०१ में जैनर को दस हज़ार पाउंड पुरस्कार मिला। १८०६ में उसे दुबारह बीस हज़ार पाउंड मिले।

मनुष्यजाति को टीके से कितना लाभ हुआ है, इस विषय का संक्षिप्त निरूपण करके हम यह लेख समाप्त करेंगे। दिये गये अङ्क 'बर्क' की 'मैनेजमेण्ट ऐण्ड मेडीकल ट्रीटमेण्ट ऑव चिल्ड्रेन इन इण्डिया' से लिये गये हैं। इँगलैण्ड में सन् १७९६ में (जिस वर्ष टीके का आविष्कार हुआ) चेचक के कारण हुई मृत्युएँ अन्य रोगों से हुई मृत्युओं से १८ प्रतिशत अधिक थीं। प्रति चार रोगियों में एक की मृत्यु हुई। अन्धों में आधों का कारण चेचक थी।

१७६१ से १७७० तक दस वर्षों में (अर्थात् टीके के आविष्कार के पूर्व) १००० मृत्युओं में १०८ चेचक के कारण हुईं; जब कि १८५१ से १८६० तक १० वर्षों में (अर्थात् टीके के प्रचार के पश्चात्) १००० मृत्युओं में चेचक के कारण केवल ११ मृत्युएँ हुईं। बर्लिन में टीके के प्रचार के पूर्व प्रति दस लाख मनुष्यों में ३४२२ चेचक से मरते थे; टीके के प्रचार के बाद यह संख्या १७६ ही रह गई।

'लैन्सेट' कहता है कि 'लीसेस्टर' में चेचक के २८१ रोगियों में १२६ को टीका नहीं लगा था। इन १२६ में ८३ दस वर्ष से कम उम्र के थे, जिनमें ९ रोगवश मर गये। इसके विपरीत दस वर्ष से कम उम्र के जिन बच्चों को टीका लगा था, उनमें एक को भी चेचक न हुई; और अधिक उम्र के जिन टीकेवाले पुरुषों को चेचक हुई, उनमें एक की भी मृत्यु नहीं हुई।

प्रिवी काउंसिल के मेडिकल ऑफ़िसर की रिपोर्ट से चेचक के टीके की विश्वसनीयता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है—

चेचक के रोगी	प्रति सौ रोगियों में मृत्यु-संख्या
१. विना टीके के	३५
२. जिनके टीका हुआ बताया गया, पर चिह्न नहीं पाये गये (अर्थात् अपूर्ण टीकेवाले)	२३.५७
३. एक चिह्नवाले	७.०३
४. दो चिह्नोंवाले	४.०७
५. तीन चिह्नोंवाले	१.६३
६. चार चिह्नोंवाले	०.५५

इससे स्पष्ट है कि सफल टीकों की संख्या जितनी अधिक होगी, मनुष्य चेचक से उतना ही अधिक रक्षित रहेगा।

आजकल कभी-कभी टीके के विरुद्ध आवाज़ सुनने में आती है। विषयान्तर और विस्तार के भय से मैं इस संबन्ध के विवाद में नहीं उतरूँगा। इतना अवश्य कहूँगा कि जब तक उक्त तथा अन्य अङ्क साची हैं, तथा जब तक टीके से अधिक विश्वस्त इलाज हाथ नहीं आता, तब तक चिकित्सक-जगत् किसी अधिकारी या अनधिकारी की टीका के विरुद्ध एक बात भी सुनने को तैयार नहीं।



बदला

लेखक

श्रीदेवीप्रसाद श्रीवास्तव

एम० ए०

(१)

बाबू हीरालाल एक अप-टू-डेट जेन्टिलमैन हैं। आपके पिता किसी दफ़्तर में ७०) रु० मासिक वेतन पर बाबू हैं, पर हीरालाल के रहन-सहन से किसी को यह ज्ञात नहीं हो सकता था; क्योंकि आपका ठाठ बिलकुल राजसी ढंग का है। आप नित्य प्रति आध घंटा अपने झउआ भर बालों को कंघे से सुलझाना, घुमावदार पैजामानुमा धोती पहनना, दिन भर में चवालीस दफ़े दर्पण के सामने क़वायद करना, प्रत्येक बार बाहर निकलते समय चेहरे पर पॉन्ड्स क्रीम लगाना, यदा-कदा नौकरों पर अकारण ही हाथ साफ़ कर देना और अन्तर्जातीय विवाह का पक्षपात करना ही आधुनिक सभ्यता की परा काष्ठा और संस्कृति की सीमा समझते थे। आप कई वर्ष के लगातार भगीरथ-प्रयत्न के बाद इन्ट्रेन्स क्लास से बिदा होकर कालेज में पहुँचे थे। इनके पिता ने इनको बहुतेरा समझाया, अपनी हालत का दिग्दर्शन कराया, अपनी छूछी थैली की कल्पना कराई और बहुत कुछ चाहा कि हीरालाल स्थानीय किसी कालेज में भर्ती हो जायँ, पर हीरालाल पिता की दशा और वाक्यों का कुछ भी ख़्याल न कर इसको फ़ैशन के विरुद्ध समझकर घर छोड़कर लखनऊ चले ही गये।

आजकल हमारे परिचित हीरालाल यूनिवर्सिटी में फ़र्स्ट इयर क्लास में पढ़ते हैं और वहीं एक बोर्डिङ्ग हाउस में रहते हैं।

(२)

दशहरे की छुट्टियाँ अभी-अभी ख़तम हुई थीं—छात्रगण अपने-अपने घरों से होस्टल वापस आ रहे थे—धीरे-धीरे जो स्थान पन्द्रह दिन बिल्कुल जनशून्य हो गया था, फिर चमक उठा और रात्रि को एक बार फिर पहले की भाँति चहलपहल शुरू हो गई और बिजली की रोशनियों का दीपावली जगमगा उठी—अभी बहुतेरे विद्यार्थी नहीं आये हैं; क्योंकि कालेज खुलने को अभी एक रोज़ और बाक़ी है, पर हर एक गाड़ी से कोई न कोई आता अवश्य है।

छः बजे शाम की गाड़ी लखनऊ स्टेशन पर धड़धड़ाती हुई पहुँची—हमारे नायक भी एक इंटर क्लास से अँगरेज़ी टोप लगाये हुए सिगार मुँह में और बेंत हाथ में लिये उतरे और कुली-कुली पुकारते हुए गाड़ी रुकने से पहले ही खट से फ़ार्म पर कूद पड़े। एक बूढ़ा, पर मज़बूत कुली आगे बढ़ा। बाबू साहब बेंत के इशारे से उसको गाड़ी के अन्दर कुछ बताकर और उसके कुर्ते की बाँह पर सिला हुआ ३७ नम्बर एक बार अवहेलना की दृष्टि से देखकर सीटी बजाते हुए फाटक की ओर बढ़े। बूढ़ा भी असबाब सर पर लादे उनके पीछे हो लिया। सन्ध्या हो गई थी और स्टेशन के



हॉस्टल दूर था। वहाँ मेस इत्यादि का प्रबन्ध अभी ठीक तौर पर शुरू नहीं हुआ होगा, यही सोचते हुए हीरालाल कुली को साथ लिये हुए अपने एक सम्बन्धी के घर, जो लगभग एक फ़र-लाङ्ग पर रहते थे, चले। वहाँ पहुँचकर असबाब उतरवाकर और अपनी घड़ी देखते हुए उसको डाँटकर बोले—"ओह तुम बहुत देर में लाया, तुम बहुत सुस्त है, बिलकुल रात कर दी।" बुड्ढे ने कहा—"हुज़ूर, दूर भी तो काफ़ी है और फिर बोझा भी बहुत। आप सरकार जवान हैं, मैं बुड्ढा हूँ, फिर भी आपके साथ ही साथ पहुँच गया हूँ।" "ओह बको मत" कहते और छड़ी घुमाते हुए हीरालाल उसकी तरफ़ दो पैसे फेंककर मकान के अन्दर चले गये। बेचारे कुली ने वह दोनों पैसे देखकर दो आँसू गिरा दिये और गिड़गिड़ाकर पुकारने लगा—"बाबू साहब, दो पैसे तो बहुत कम हैं, एक आना तो स्टेशन पर ही मिलता है। मैं तो एक फ़रलांग से इतना असबाब लाया हूँ, दो गाड़ियाँ भी छूट गईं। कम से कम दो आने तो दीजिए। मेरे बच्चे भूखों मर जायँगे, भगवान् आपके बच्चों को अच्छा रक्खे।" बहुत पुकारने-चिल्लाने के बाद बाबू हीरालाल ऊपर छज्जे पर बाहर निकले और डाँटकर बोले—"सुअर का बच्चा, बहुत टिर-टिर करेगा, तो जूतों से तेरी ज़बान निकलवा ली जायगी, सामने से हट जा।" इतना कहकर और नीचे खड़े हुए कुली पर जला हुआ सिगरेट का टुकड़ा फेंक-कर बाबू साहब अन्दर दाख़िल हो गये और ज़ोर से किवाड़ बन्द कर लिये। फ़िर बहुत चिल्लाने-पुकारने पर भी बाहर न आये। आख़िर बेचारा कुली आध घंटे बाद अपने भाग्य को कोसता अपनी पगड़ी सँभालता हुआ चला गया।

(३)

उन दिनों नगर की जनता में बड़ी सनसनी फैल रही थी—बंबई की पारसी थियेट्रिकल कंपनी लगभग डेढ़ मास से अपने तमाशे दिखा रही थी और अपने कला-कौशल से सबका मन मोह लिया था। जिधर देखिए उधर ही धूम मच रही थी। कोई नाटकों के प्लाट की, कोई सीन-सीनरी की, कोई किसी पात्र-विशेष के अभिनय की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा कर रहे थे। उस समय कम्पनी ही सबके बातचीत का मुख्य विषय हो रही थी। इधर कालेज के भी बहुतेरे छात्रों ने उसके कई खेल देखे और हास्टल में उसकी चर्चा कई रोज़ तक बराबर होती रही। बाबू हीरालाल को तमाशा देखने का कोई ऐसा शौक़ नहीं था; क्योंकि वह कोई विशेष रूप से न तो कला-कौशल के प्रेमी ही थे और न अधिकारी। कभी-कभी तो वह इन चीज़ों को भली प्रकार समझ भी न पाते थे। पर जिसको इतने सहपाठी देख आये, उसको मैं क्यों न देखूँ, इस विचार ने हीरालाल को उत्सुक और लालायित कर दिया। फ़ैशन ने बेर-बेर चिल्लाकर कहा, तुमको भी इस मण्डली का तमाशा अवश्य देखना चाहिए। हीरालाल ने अपना पर्स टटोला तो उसमें एक रुपया और कुछ रेज़गारी के सिवा और कुछ न था और दूसरे ही रोज़ बिसकुट-वाले को तीन महीने का दाम देने का वादा था। सोचने लगे कि बिसकुटवाले को तो हफ़्ते-दो हफ़्ते के लिए और टाल देंगे; क्योंकि यह बाएँ हाथ का खेल था, मगर फिर भी तो पूरा नहीं पड़ता था। उनके-जैसे आनबान के मनुष्य को एक रुपये के टिकट में जाना तो शोभा भी नहीं देता। नहीं-नहीं, वह एक रुपये में कदापि नहीं जा सकते। इसमें कितनी बड़ी इन्सल्ट है। फिर थैली का बटन बन्द करते हुए सोचने लगे कि क्या करूँ। उनके अभिन्नहृदय मित्र फ़ैशन ने फिर ज़ोर दिया, अजी इसमें क्या बात है, किसी से कुछ रुपया उधार ले लेना और फिर ऐसे शुभ कार्य के लिए तो बिलकुल फ़ैशन के विरुद्ध नहीं है। बाबू साहब ने सोचा कि बिलकुल ठीक है। जैसे-तैसे करके हीरालाल ने चार रुपये किसी से उधार ले लिये और एक रुपया अपना मिलाकर पाँच रुपये का टिकट लेकर उसी रात्रि को नाटक देखने गये।



बड़ी अवहेलना का भाव धारण किये हुए बाहर तमोली से पान खाकर छड़ी घुमाते हुए हीरालाल स्पेशल क्लास के फाटक में घुसे और बीचोबीच एक सीट पर विराजमान हुए। खड़े होकर चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई तो खिल पड़े। देखा कि दो रुपये के दर्जे में उनके बहुत-से सहपाठी बैठे हुए हैं। आपने उनकी ओर देखकर फिर अपनी ओर देखा। आपका स्वाभिमान उबलते हुए दूध की तरह उमड़ पड़ा। आपको एक चिन्ता उस समय यही थी कि किसी तरह वे लोग मुझे देखें कि मैं पाँच रुपये में बैठा हूँ। जब आपकी सब चेष्टाएँ निष्फल हुईं और आपसे न रहा गया तो आख़िर में हल्लो कहकर उनको पुकार ही दिया और बोले कि यार हम तो अपनी आई-साइट (Eye sight) से परेशान हैं, नहीं तो हम भी तुम्हारे ही पास आकर बैठते। इतने में तीसरी घंटी बजी और छम-छम के साथ परदा उठा। कोई चार घंटे के बाद लगभग दो-ढाई बजे नाटक समाप्त हुआ। हीरालाल पात्रों के अभिनय की कोई अच्छाई या बुराई तो परख नहीं सकते थे, लेकिन दर्शकों ने कई बार तालियाँ पीटी थीं, इससे उनको पूरा विश्वास था कि हो न हो नाटक है अच्छा ज़रूर। इधर नाटक समाप्त होते ही भीड़ का समुद्र उमड़ पड़ा। कुछ लोग सवारियों पर कुछ लोग पैदल अपने-अपने घर को चल दिये। हीरालाल बाहर न जाकर स्टेज पर से ही ग्रीनरूम में घुस गये और वहाँ मैनेजर से मिलकर ऐसा उत्तम तमाशा करने पर उसे बधाई दी, साथ ही साथ कुछ पात्र-विशेष के ऐक्टिङ्ग पर इधर-उधर कुछ नुक़्ताचीनी भी कर दी। मैनेजर ने बड़ी आवभगत से बाबू साहब को बिठाया और चाय इत्यादि पिलाई। इसी तरह पर थोड़ी देर तक बातचीत होती रही। लगभग आध घंटे बाद बाबू हीरालाल मैनेजर से गुडनाइट और शेकहैन्ड करके बाहर निकले। देखा तो बाहर घोर सन्नाटा छाया हुआ था। पौष-मास की चुभती हुई हवा साँय-साँय चल रही थी। जहाँ तक नज़र जाती थी, कोई ताँगा या इक्का नहीं दिखाई देता था। ज़रा आगे बढ़कर एक-दो पुकार भी लगाई, पर सिवा प्रतिध्वनि के कोई जवाब न मिला। एक बार हीरालाल काँप गये। इधर थियेटरवाले भी अपने फाटक बन्द करके बत्तियाँ बुझाकर सो गये थे। थोड़ी देर हीरालाल किंकर्तव्यविमूढ़ होकर खड़े रहे, फिर और कोई चारा न देखकर पैदल ही चल पड़े। बड़ी सड़क पर तो जैसे-तैसे करके चले गये, पर आगे जो लम्बी गली उनको पार करनी थी, उसकी कल्पना-मात्र से उनके रोंगटे खड़े हो गये। थोड़ी ही देर बाद वह गली के पास पहुँचे। उस कूचे को देखते ही बाबू हीरालाल के देवता कच कर गये। एक क्षण के लिए उनकी हृदयगति रुक-सी गई। भयानक अन्धकार था और गली पतली होने के कारण हवा का वेग बहुत तीव्र हो रहा था। वह नि...न, दर्शन की भाँति टेढ़ी, भविष्य की तरह अन्धकारमय गली हीरालाल को भाग्य की तरह घूर रही थी। बहुत दूर पर एक छोटी-सी लालटेन आशा की भाँति टिमटिमा रही थी। उससे रोशनी होना तो दूर रहा, वह भयानक अन्धकार को और भी वीभत्स बना रही थी। कोई चारा न देखकर हीरालाल ने गली में पदार्पण किया। अभी एक पग भी आगे न बढ़े थे कि उनकी छड़ी उनके हाथ से छूट पड़ी। हीरालाल का हृदय धक से रह गया। सोचने लगे, हे भगवान्, इतना बड़ा अपशकुन न मालूम क्यों हो रहा है। चारों ओर देखकर उन्होंने से छड़ी उठाकर फिर धीरे-धीरे चलने लगे। यों तो बाबू हीरालाल ऊपर से बड़ी लाग-डाँट रखते थे और बोर्डिंगहाउस में किसी फलफलहारी पर तमाचों के रूप में अपना बल भी प्रदर्शित कर देते थे, पर वास्तव में वह मन के बड़े कच्चे और स्वभाव के बड़े कायर और भीरु थे। विशेषकर भूत-प्रेत का डर उनको बहुत ज़्यादा था, हालाँकि वह सबसे यही कहा करते थे कि भूत-प्रेत कोई चीज़ नहीं, केवल मूर्खों की कल्पना

है, मुझे कोई भूत दिखलावे तो जानूँ। और जो भूतों की घटनाएँ और कहानियाँ कभी-कभी मित्रगण सुनाया करते थे, उन्हें वह घृणामिश्रित हँसी हँस-कर टाल दिया करते थे। आज उस विकट अँधेरी रात में उस निर्जन गली में वे सब कहानियाँ सजीव होकर छायाचित्र की भाँति उनके सामने साक्षात् नाचने लगीं। पग-पग पर उनको ऐसा भास होता था, मानो कोई उनका पीछा कर रहा है। पीछे फिरकर देखा तो मालूम हुआ, कोई मुँह बाये दौड़ा आ रहा है। एक कंकड़ उनके पैर से ठोकर खाकर दीवार से जा लगा। वह चौंक पड़े। वह खड़खड़ाहट उन्हें तोप की आवाज़ से भी अधिक मालूम पड़ी। उन पर मानो वज्रप्रहार हो गया। उस समय बाबू हीरालाल के तन और मन की क्या दशा थी, सो तो वह ही जानें, पर हाँ, वह चारों ओर देखते हुए बहुत तीव्र गति से बढ़े चले जा रहे थे। थोड़ी ही दूर चले होंगे कि सामने से गाय के आकार का एक जीव आता हुआ दिखाई पड़ा। बाबू हीरालाल के होश हिरन हो गये। एक क्षण के लिए उनको ऐसा प्रतीत हुआ कि उस जीव के सिर है ही नहीं। दूसरे ही क्षण ऐसा मालूम हुआ, जैसे उसके पाँच-छः सिर हों। बाबू साहब को काठ मार गया। इन्होंने कई आद-मियों से सुना था कि भूतप्रेत बहुधा असाधारण रूप में रात्रि में विचरते हैं। समझ गये कि हो न हो यह कोई प्रेत अवश्य है। पर करते क्या, चित्रवत् एक दीवार से चिपककर खड़े हो गये। वह वस्तु इनके सामने से होकर निकल गई। नज़-दीक से देखा कि साधारण गाय है, तब हीरालाल के होश-हवास ठीक हुए। इसी प्रकार चलते-चलते कई गली पार कर गये। इतने में एक कुत्तों का झुंड भूँकता हुआ इनकी तरफ़ दौड़ा। हीरालाल घबराये। उस समय इनकी छड़ी ने इनकी बड़ी सहायता की। अगर छड़ी न होती तो शायद कुत्ते इनके ऊपर ही आ पड़ते। बाबू साहब के सामने में कुत्ते क़तार बाँधकर खड़े हो गये, जिससे इनका आगे बढ़ना बिल्कुल असम्भव हो गया। इन्होंने बहुतेरा प्रयत्न किया कि कुत्तों को हटा दें, पर इस डर से किसी को मारते नहीं थे कि ऐसा न हो, सब एक साथ धावा बोल दें। इस दशा के विचार मात्र से बाबू साहब घबरा उठे। परेशान होकर वह थोड़ी देर वहीं खड़े-खड़े निकलने का रास्ता देखने लगे। उनकी नज़र दाहनी ओरवाली गली में जो पड़ी तो क्या देखते हैं कि एक व्यक्ति एक काला-सा कोट पहने सिर पर कोई भारी चीज़ लपेटे और हाथ में एक मोटा डन्डा लिये इन्हीं की ओर बढ़ा हुआ चला आ रहा है। बाबू साहब व्याकुल हो उठे। उन्होंने एक क्षण के लिए अपनी कलाई पर बँधी हुई सुनहरी घड़ी की ओर देखा और फिर उसको कोट की आस्तीन से भली प्रकार छिपा लिया। उनको मालूम हुआ कि मानो उनकी वह घड़ी ही छीनने के लिए यह डाकू उनकी तरफ़ बड़े वेग से बढ़ा चला आ रहा है। एक बार बाबू ने सोचा कि भागूँ, फिर देखा कि कुत्ते अभी वैसे ही डटे हुए हैं, अगर भागे तो एक साथ पीछे दौड़ पड़ेंगे, जान और आपत्ति में फँस जायगी। इसलिए ठिठककर खड़े रहे। इतनी देर में वह व्यक्ति और निकट आ गया। बाबू हीरालाल घड़ीवाला हाथ कोट की जेब में डालकर अपने जीवन का समस्त साहस बटोरकर ऐसे असहाय होकर खड़े हो गये, जैसे उन्हें फाँसी होने जा रही हो। वह व्यक्ति इनसे दो-तीन हाथ की दूरी पर आकर खड़ा हो गया और आश्चर्य से बोला—बाबू, आप ऐसी अँधेरी रात में यहाँ कैसे? अभी तक तो हीरालाल गुड़िया की भाँति निश्चल खड़े थे, अब उनको कुछ होश आया। उनको उस व्यक्ति का स्वर कुछ परिचित-सा मालूम हुआ, लेकिन उनका बोल न फूटा। मन-ही-मन सोचने लगे कि इसको क्या कहीं देखा है। उन्होंने उस व्यक्ति की ओर सिर से पैर तक देखा। दूरस्थ लालटेन की क्षीण किरणों में उन्होंने देखा कि उसके कोट की बाँह पर ३७ नम्बर बड़े-बड़े अक्षरों में लाल डोरे



बड़ी अवहेलना का भाव धारण किये हुए बाहर तमोली से पान खाकर छड़ी घुमाते हुए हीरालाल स्पेशल क्लास के फाटक में घुसे और बीचोबीच एक सीट पर विराजमान हुए। खड़े होकर चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई तो खिल पड़े। देखा कि दो रुपये के दर्जे में उनके बहुत-से सहपाठी बैठे हुए हैं। आपने उनकी ओर देखकर फिर अपनी ओर देखा। आपका स्वाभिमान उबलते हुए दूध की तरह उमड़ पड़ा। आपको एक चिन्ता उस समय यही थी कि किसी तरह वे लोग मुझे देखें कि मैं पाँच रुपये में बैठा हूँ। जब आपकी सब चेष्टाएँ निष्फल हुईं और आपसे न रहा गया तो आख़िर में हल्लो कहकर उनको पुकार ही दिया और बोले कि यार हम तो अपनी आई-साइट (Eye sight) से परेशान हैं, नहीं तो हम भी तुम्हारे ही पास आकर बैठते। इतने में तीसरी घंटी बजी और छम-छम के साथ परदा उठा। कोई चार घंटे के बाद लगभग दो-ढाई बजे नाटक समाप्त हुआ। हीरालाल पात्रों के अभिनय की कोई अच्छाई या बुराई तो परख नहीं सकते थे, लेकिन दर्शकों ने कई बार तालियाँ पीटी थीं, इससे उनको पूरा विश्वास था कि हो न हो नाटक है अच्छा ज़रूर। इधर नाटक समाप्त होते ही भीड़ का समुद्र उमड़ पड़ा। कुछ लोग सवारियों पर कुछ लोग पैदल अपने-अपने घर को चल दिये। हीरालाल बाहर न जाकर स्टेज पर से ही ग्रीनरूम में घुस गये और वहाँ मैनेजर से मिलकर ऐसा उत्तम तमाशा करने पर उसे बधाई दी, साथ ही साथ कुछ पात्र-विशेष के ऐक्टिङ्ग पर इधर-उधर कुछ नुक़्ताचीनी भी कर दी। मैनेजर ने बड़ी आवभगत से बाबू साहब को बिठाया और चाय इत्यादि पिलाई। इसी तरह पर थोड़ी देर तक बातचीत होती रही। लगभग आध घंटे बाद बाबू हीरालाल मैनेजर से गुडनाइट और शेकहैन्ड करके बाहर निकले। देखा तो बाहर घोर सन्नाटा छाया हुआ था। पौष-मास की चुभती हुई हवा साँय-साँय चल रही थी। जहाँ तक नज़र जाती थी, कोई ताँगा या इक्का नहीं दिखाई देता था। ज़रा आगे बढ़कर एक-दो पुकार भी लगाई, पर सिवा प्रतिध्वनि के कोई जवाब न मिला। एक बार हीरालाल काँप गये। इधर थियेटरवाले भी अपने फाटक बन्द करके बत्तियाँ बुझाकर सो गये थे। थोड़ी देर हीरालाल किंकर्तव्यविमूढ़ होकर खड़े रहे, फिर और कोई चारा न देखकर पैदल ही चल पड़े। बड़ी सड़क पर तो जैसे-तैसे करके चले गये, पर आगे जो लम्बी गली उनको पार करनी थी, उसकी कल्पना-मात्र से उनके रोंगटे खड़े हो गये। थोड़ी ही देर बाद वह गली के पास पहुँचे। उस कूचे को देखते ही बाबू हीरालाल के देवता कूच कर गये। एक क्षण के लिए उनकी हृदयगति रुक-सी गई। भयानक अन्धकार था और गली पतली होने के कारण हवा का वेग बहुत तीव्र हो रहा था। वह नि...न, सर्प की भाँति टेढ़ी, भविष्य की तरह अन्धकारमय गली हीरालाल को भाग्य की तरह घूर रही थी। बहुत दूर पर एक छोटी-सी लालटेन आशा की भाँति टिमटिमा रही थी। उससे रोशनी होना तो दूर रहा, वह भयानक अन्धकार को और भी वीभत्स बना रही थी। कोई चारा न देखकर हीरालाल ने गली में पदार्पण किया। अभी एक पग भी आगे न बढ़े थे कि उनकी छड़ी उनके हाथ से छूट पड़ी। हीरालाल का हृदय धक से रह गया। सोचने लगे, हे भगवान्, इतना बड़ा अपशकुन न मालूम क्यों हो रहा है। चारों ओर देखकर उन्होंने से छड़ी उठाकर फिर धीरे-धीरे चलने लगे। यों तो बाबू हीरालाल ऊपर से बड़ी लाग-डाँट रखते थे और बोर्डिंगहाउस में किसी फलफलहारीवाले पर तमाचों के रूप में अपना बल भी प्रदर्शित कर देते थे, पर वास्तव में वह मन के बड़े कच्चे और स्वभाव के बड़े कायर और भीरु थे। विशेष कर भूत-प्रेत का डर उनको बहुत ज़्यादा था, हालाँकि वह सबसे यही कहा करते थे कि भूत-प्रेत कोई चीज़ नहीं, केवल मूर्खों की कल्पना...



है, मुझे कोई भूत दिखलावे तो जानूँ। और जो भूतों की घटनाएँ और कहानियाँ कभी-कभी मित्रगण सुनाया करते थे, उन्हें वह घृणामिश्रित हँसी हँस-कर टाल दिया करते थे। आज उस विकट अँधेरी रात में उस निर्जन गली में वे सब कहानियाँ सजीव होकर छायाचित्र की भाँति उनके सामने साक्षात् नाचने लगीं। पग-पग पर उनको ऐसा भास होता था, मानो कोई उनका पीछा कर रहा हो। पीछे फिरकर देखा तो मालूम हुआ, कोई मुँह बाये दौड़ा आ रहा है। एक कंकड़ उनके पैर से ठोकर खाकर दीवार से जा लगा। वह चौंक पड़े। वह खड़खड़ाहट उन्हें तोप की आवाज़ से भी अधिक मालूम पड़ी। उन पर मानो वज्रप्रहार हो गया। उस समय बाबू हीरालाल के तन और मन की क्या दशा थी, सो तो वह ही जानें, पर हाँ, वह चारों ओर देखते हुए बहुत तीव्र गति से बढ़े चले जा रहे थे। थोड़ी ही दूर चले होंगे कि सामने से गाय के आकार का एक जीव आता हुआ दिखाई पड़ा। बाबू हीरालाल के होश हिरन हो गये। एक क्षण के लिए उनको ऐसा प्रतीत हुआ कि उस जीव के सिर है ही नहीं। दूसरे ही क्षण ऐसा मालूम हुआ, जैसे उसके पाँच-छः सिर हों। बाबू साहब को काठ मार गया। इन्होंने कई आद-मियों से सुना था कि भूतप्रेत बहुधा असाधारण वेश में रात्रि में विचरते हैं। समझ गये कि हो न हो यह कोई प्रेत अवश्य है। पर करते क्या, मूर्तिवत् एक दीवार से चिपककर खड़े हो गये। वह वस्तु इनके सामने से होकर निकल गई। नज़-दीक से देखा कि साधारण गाय है, तब हीरालाल के होश-हवास ठीक हुए। इसी प्रकार चलते-चलते आधी गली पार कर गये। इतने में एक कुत्तों का समूह भूँकता हुआ इनकी तरफ़ दौड़ा। हीरालाल बड़े घबराये। उस समय इनकी छड़ी ने इनकी बड़ी सहायता की। अगर छड़ी न होती तो शायद कुत्ते इनके ऊपर ही आ पड़ते। बाबू साहब के रास्ते में कुत्ते क़तार बाँधकर खड़े हो गये, जिससे इनका आगे बढ़ना बिल्कुल असम्भव हो गया। इन्होंने बहुतेरा प्रयत्न किया कि कुत्तों को हटा दें, पर इस डर से किसी को मारते नहीं थे कि ऐसा न हो, सब एक साथ धावा बोल दें। इस दशा के विचार मात्र से बाबू साहब घबरा उठे। परेशान होकर वह थोड़ी देर वहीं खड़े-खड़े निकलने का रास्ता देखने लगे। उनकी नज़र दाहनी ओरवाली गली में जो पड़ी तो क्या देखते हैं कि एक व्यक्ति एक काला-सा कोट पहने सिर पर कोई भारी चीज़ लपेटे और हाथ में एक मोटा डन्डा लिये इन्हीं की ओर बढ़ा हुआ चला आ रहा है। बाबू साहब व्याकुल हो उठे। उन्होंने एक क्षण के लिए अपनी कलाई पर बँधी हुई सुनहरी घड़ी की ओर देखा और फिर उसको कोट की आस्तीन से भली प्रकार छिपा लिया। उनको मालूम हुआ कि मानो उनकी वह घड़ी ही छीनने के लिए यह डाकू उनकी तरफ़ बड़े वेग से बढ़ा चला आ रहा है। एक बार बाबू ने सोचा कि भागूँ, फिर देखा कि कुत्ते अभी वैसे ही डटे हुए हैं, अगर भागे तो एक साथ पीछे दौड़ पड़ेंगे, जान और आपत्ति में फँस जायगी। इसलिए ठिठककर खड़े रहे। इतनी देर में वह व्यक्ति और निकट आ गया। बाबू हीरालाल घड़ीवाला हाथ कोट की जेब में डालकर अपने जीवन का समस्त साहस बटोरकर ऐसे असहाय होकर खड़े हो गये, जैसे उन्हें फाँसी होने जा रही हो। वह व्यक्ति इनसे दो-तीन हाथ की दूरी पर आकर खड़ा हो गया और आश्चर्य से बोला—बाबू, आप ऐसी अँधेरी रात में यहाँ कैसे ? अभी तक तो हीरालाल गुड़िया की भाँति निश्चल खड़े थे, अब उनको कुछ होश आया। उनको उस व्यक्ति का स्वर कुछ परिचित-सा मालूम हुआ, लेकिन उनका बोल न फूटा। मन-ही-मन सोचने लगे कि इसको क्या कहीं देखा है। उन्होंने उस व्यक्ति की ओर सिर से पैर तक देखा। दूरस्थ लालटेन की क्षीण किरणों में उन्होंने देखा कि उसके कोट की बाँह पर ३७ नम्बर बड़े-बड़े अक्षरों में लाल डोरे



से सिला हुआ है। उसको देखते ही हीरालाल के मुँह से चीत्कार निकलते-निकलते रह गई, जैसे कोई सिंह देख लिया हो। वह अनायास ही एक क़दम पीछे हट गये, जैसे किसी कठोर वस्तु से धक्का खा गये हों। एक क्षण के लिए उन्हें अपना काल सामने खड़ा दिखाई पड़ा। एँ, यह क्या वही कुली है। हीरालाल को काठ मार गया, उनका बदन बिल्कुल बर्फ़ हो गया, काटो तो लहू नहीं। सोचने लगे कि अब आज अवश्य यह अपना उस रोज़ का बदला निकालेगा। चाहे मार ही डाले, कौन देखनेवाला है, कोई पता नहीं पा सकता। ऐसी अँधेरी में तो कोई गन्ध भी नहीं पा सकता। सोचने लगे कि हाय-हाय मैं क्यों मैनेजर को बधाई देने गया—मेरे भी जीवन-नाटक पर यवनिका-पतन होनेवाला है; क्यों न मैं अपने उन्हीं मित्रों के साथ, जो दो रुपये में देख रहे थे, हास्टल चला गया। आख़िर नाटक देखने आने ही की क्या आवश्यकता थी। नाटक न देखने से कोई हानि तो थी ही नहीं—इसी प्रकार न-मालूम क्या-क्या उधेड़-बुन करने लगे। उस व्यक्ति ने अपना डण्डा दीवाल से लगाकर खड़ा कर दिया और सिर में लपेटी हुई लोही खोलने लगा। हीरालाल को ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे लाठी में कोई अदृश्य कमानी लगी हुई है और वह उड़कर अब उनके सिर पर पड़ने ही वाली है। सचमुच एक पल के लिए अपनी मूर्ति सामने ज़मीन पर पड़ी देखी कि सिर फट गया है और ख़ून बह रहा है। यह देखकर हीरालाल विकल हो गये। उन्होंने अपने सिर पर हाथ रखकर देखा कि सब ठीक है, सिर गर्दन पर मौजूद है। इतने में वह व्यक्ति लोही को बदन पर लपेटता हुआ बोला, चलिए बाबू, मैं आपको पहुँचा आऊँ, नहीं तो ये कुत्ते आपका रास्ता दूभर कर देंगे। इस प्रश्न से हीरालाल को यह संदेह हुआ कि इसने इन्हें कदाचित् पहचाना नहीं, ढाढस की एक हल्की रेखा बिजली की तरह हीरालाल के हृदय में चमक उठी। वह ज़रा निर्भय होकर बोले—नहीं भाई, तुम क्यों तकलीफ़ करोगे, मुझे हास्टल ही जाना है, नज़दीक ही तो है, चला जाऊँगा। बूढ़े व्यक्ति ने जवाब दिया, नहीं बाबू, तकलीफ़ काहे की, आपका बोर्डिङ्ग हौस अब बहुत दूर थोड़े ही है, दस मिनट में पहुँचा आऊँगा। हीरालाल की हालत फिर पहले-जैसी हो गई। उनको विश्वास हो गया कि इसने अवश्य मुझे पहचान लिया और अब यह अपना पुराना बदला ज़रूर चुकावेगा। उस समय यह कुछ स्थिर न कर सके। उस व्यक्ति ने दीवार के सहारे खड़ी अपनी लाठी उठाते हुए कहा कि चलो बाबू, चलें। हीरालाल उस समय संज्ञाहीन-से हो रहे थे। सोचने-विचारने की शक्ति उनमें बिल्कुल न रह गई थी। इसलिए सम्मोहित व्यक्ति की तरह उसके साथ हो लिये। पग-पग पर उनको यह आशंका हो रही थी कि अब इसने मुझे मारा, अब मारा, न-मालूम कहाँ ले जाकर मारे। एक बार उसने अपनी धोती कसने के लिए कमर में हाथ लगाया—हीरालाल समझ गये कि करौली निकाल रहा है और बचने के लिए थोड़ा-सा पीछे हट गये। पर जब काफ़ी दूर निकल गये और बूढ़े ने कोई प्रहार न किया तो हीरालाल को कुछ तसल्ली हुई। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनको पूर्ण रूप से आश्वासन हो गया; क्योंकि उनके हृदय में अब भी उथल-पुथल मच रही थी। वह सोचते थे कि क्या ठिकाना है, ज़ात का कुली ही तो है, उसका क्या ठीक। अगर मैं ऐसी स्थिति में होता तो ऐसा अच्छा मौक़ा कभी हाथ से न-जाने देता, बदला अवश्य लेता; क्योंकि कहा भी है *Tit for Tat*, फिर मैं तो इन्ट्रेंस पास पढ़ा-लिखा मनुष्य हूँ, उच्च कुल का हूँ, उच्च वंश का हूँ और यह तो निरा उजड्ड मूर्ख नीच जाति का महज़ एक कुली ही है, यह कभी न चूकेगा। फिर यह सोचने लगे कि आख़िर यह उस गली में ऐसे वक़्त पर क्यों आया। हो न हो, उसने मुझे गली में घुसते हुए देखा तभी प्रतिकार उसको वहाँ लाया। अब भी वह

बार ज़रूर करेगा। अब यद्यपि हीरालाल को बहुत कुछ धैर्य और ढाढस हो गया था, फिर भी वह बहुत बच-बचकर चल रहे थे। अपनी शंका पुष्ट या निवारण करने के लिए आख़िर वह पूछ ही बैठे—क्यों भाई, तुम उस गली में ऐसी रात को क्या कर रहे थे? बूढ़े ने बहुत ही सरल ढंग से जवाब दिया—मैं रात को दो बजेवाली गाड़ी देखकर घर जा रहा था। इतना कहकर वह चुप हो गया। थोड़ी देर बाद हॉस्टल की अट्टालिका हीरालाल को दृष्टिगोचर हुई। उनकी बत्तीसी खिल पड़ी, मानो कोई पड़ी निधि पा गये हों। उन्होंने हाथ-पैर हिलाये, देखा कि उनकी घड़ी बाक़ायदा हाथ पर बँधी हुई है और कोई जेब भी नहीं कटी है। आख़िर हॉस्टल आ गया और बाबू हीरालाल अपने कमरे का ताला खोलने लगे। 'बाबू साहब सलाम' कहकर वह व्यक्ति जिस अन्धकार से आया था, उसी में विलीन हो गया।

परिचय

श्रीजयनाथ "नलिन" साहित्यरत्न

सिसकता उच्छ्वास हूँ मैं!
श्याम नीरद-शृंखला की क़ैद
में मधुमास हूँ मैं।

मैं न समझा क्या हुई वह
हाय! स्वर्णिल स्वप्न-बेला!
सुप्त अभिलाषा-चिता पर
लग रहा क्यों आज मेला?

स्वप्न हूँ, सूखा सुमन हूँ,
मिलन का उपहास हूँ मैं।

श्याम रजनी के हृदय में
डूबती-सी रश्मि-रेखा।
विश्व ने भर अश्रु भीगी
पुतलियों से हाय! देखा।—

मधुर शारद पूर्णिमा की
रश्मि का आभास हूँ मैं!

रह गया मधुकर दिवाना
शूल में निर्दोष बिंधकर!
तड़पकर, मधु प्यार लेकर,
सिसककर करवट बदलकर!—

उस भ्रमर की सिसकती-सी
आह का इतिहास हूँ मैं!

चूमने दीपक-शिखा को
क्यों बढ़ा हा! शलभ सत्वर
प्यार पाया आह भर कर,
भस्म होकर, प्राण देकर।

भस्म होते प्रेम-दीवाने
शलभ का हास हूँ मैं!
सिसकता इतिहास हूँ मैं!

'प्रसाद'जी का 'आँसू'

(कवि की भावना का सामंजस्य-पूर्ण विवेचन)

श्रीरामनाथ गुप्त बी० ए०

परिवर्तनशीलता एवं नश्वर मायाडम्बर में लिपटा हुआ विश्व प्रतिपल पतित और स्खलित होकर किस ओर दौड़ा चला जा रहा है? अभावों की—अरमानों की झोली फैलाये वह किस निधि को उर में भर लेना चाहता है? एक अपूर्ण एवं अतृप्त आकांक्षा की तड़प से वह किस पत्थर को पानी-पानी कर देना चाहता है? अपनी उत्सुक वेदना से वह अनन्त आकाश को नापता हुआ किस प्रतिमा को चूम लेना चाहता है? उफ़! पवन का यह तरल प्रवाह किसका सन्देशा ला रहा है? यह शीतल चाँदनी किस 'शशि' की ओर प्राणों को खींचे हुए ले जा रही है? ये उपवन, फूलों की यह राशि और यह मादक सौरभ इस बेहोशी के वातावरण में किसके लिए पागल बन रहे हैं? उषा की ईषत् लालिमा और अरुणोदय की लाल-पीली किरणें किस आभा की खोज में अप्रतिहत गति से विलीन होती जा रही हैं?

ग्रीष्म की विरसता में बादलों का बरसना, मोरों का मंजुल नृत्य, कोयल की दर्दीली कुहक, पपीहे की पी-पी प्राणों की बेकल पुकार, तरुदल की मर्मर-ध्वनि और पृथ्वी माता के अन्तराल से निकली हुई यह भीनी-भीनी सुगन्ध अरे, किस छिपे हुए संगीत की, किस छिपे हुए सौंदर्य की झलक दिखा रही हैं? पुरानी पीड़ा सजग हो रही है, अतीत ऊपर उठ रहा है—बीच का परदा क्षीण से क्षीणतर होता जा रहा है! अपनी वेदना एवं कचोटों को चुपचाप सहेजकर अपने में समेट रखनेवाला सकुचीला एवं भावुक हृदय—जाने क्यों मचल रहा है! आज उसकी गहनता-गम्भीरता क्या छोटी-छोटी नयन प्यालियों में साकार होगी! लोकलाज और शिष्टाचार के बन्धनों को तोड़कर करुणा की कादम्बिनी, यह देखो उमड़ती चली आ रही है—

> जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति-सी छाई;
> दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आई।

ठीक है, ऊपर बरसें बादल और नीचे बरसें पगली आँखें; सजल श्यामल घनों की सघनता में दमके दामिनी और इधर भरे हुए दिल में जले शीतल ज्वाला। पानी की ये बड़ी-बड़ी बूँदें अपनी एकान्त तीव्रता से दामिनी को सजग-चपल बनाती रहें और इधर उर की यह शीतल ज्वाला भी दृग-जल के ईंधन से अमरत्व प्राप्त करती रहे! ऐसी दशा में इस लहरीले तीखे पवन और इन ऊर्मिल उच्छ्वासों का काम ही क्या है?—

> शीतल ज्वाला जलती है ईंधन होता दृगजल का;
> यह व्यर्थ साँस चल-चल कर करती है काम अनिल का।

ईंधन के रूप में इस 'दृगजल' का उद्गम कविवर बाबू जयशंकर'प्रसाद' के भाव-प्रवण हृदय से हुआ है! 'आँसू' की ये लड़ियाँ उनकी आँखों की सृष्टि हैं! अतीत जब वर्तमान से दिल खोलकर मिलने आता है, तब रुलाई आ ही जाती



है! अतीत और वर्तमान मिलकर भविष्य पथ का निर्माण करेंगे! जीवन का यह कितना महत्त्व-पूर्ण क्षण है! इस समय की कवि की विकल रागिनी में कितनी मूर्छना होगी—कितनी चेतनता; कितना हाहाकार होगा—कितना सन्तोष, आज यही तो हमें देखना है!

कवि का 'अतीत' अरसे से आँखों से ओझल रहा है, इस समय सहसा वह सामने आया है। परिणाम-स्वरूप उसके मानस में भीषण उथल-पुथल मच जाना स्वाभाविक ही है। निराशा और अन्धकार उसके जीवन में जड़ता उत्पन्न कर रहे हैं। इस आभासित जड़ता को देखकर उसका हृदय विकल हो जाता है और भविष्य शून्य-सा दिखाई पड़ता है। वह तड़पकर निराश व्यक्ति की तरह कह उठता है—

मानस सागर के तट पर क्यों लोल लहर की घातें—
कल-कल ध्वनि से हैं कहतीं कुछ विस्मृत बीती बातें?
आती है शून्य क्षितिज से क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी—
टकराती बल खाती-सी पगली-सी देती फेरी?
क्यों व्यथित व्योम गंगा-सी छिटकाकर दोनों छोरें,
चेतना तरंगिनि मेरी लेती है मृदुल हिलोरें?

जीवन के इस प्रगाढ़ अन्धकार में, जिस समय कवि को न तो कोई मार्ग ही दिखाई दे रहा है और न कोई मार्ग-दर्शक ही मिल रहा है, वह सचाई के साथ अपनी व्यथा की गीली रागिनी गाने चला है। आगम तो कुछ सूझ ही नहीं पड़ता, अतः पिछली बातें ही एक-एक करके उसके सामने आती-जाती हैं। वह उन्हें देखता है, देखकर रोता है और फिर यह कहकर—

मादक थी—मोहमयी थी मन बहलाने की क्रीड़ा;
अब हृदय हिला देती है वह मधुर प्रेम की पीड़ा।

अत्यन्त निराश हो जाता है और निराश व्यक्ति जीवन को बेगार ढोना समझे तो आश्चर्य ही क्या?—

सुख आहत शान्त उमंगें बेगार साँस ढोने में;
यह हृदय समाधि बना है, रोती करुणा कोने में।

स्वाभाविक कविता में जो मनोविज्ञान होता है, वह हमें यहाँ स्पष्ट दिखाई दे रहा है। 'आँसू' में कला के नाम पर न तो अलंकारों की भरमार की गई, न शब्दों की झनकार भरी गई और न आडम्बर का शृंगार ही किया गया! मानव सत्य का पूर्ण विकास 'आँसू' में स्वतः ही होता गया है! इसमें कवि को प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। ऐसी दशा में भी जो अलंकार आ गये हैं, वे अत्यन्त मधुर एवं हृदयस्पर्शी बन गये हैं।

प्रारम्भ में कवि ने हमें नहीं बताया कि उसका अतीत जीवन क्या था? उसमें कितनी श्री थी, कितनी सुरभि? केवल प्राकृतिक उद्दीपन उसके स्थायी भाव को जगा देते हैं और वह विकल हो उठता है, बीते जीवन की सुधि आती है, उसे भावावेश होता है—वह गाने लगता है। गाते-गाते वह वर्तमान से ऊपर उठ जाता है और अतीत उसके सामने प्रत्यक्ष हो जाता है। सहसा उसे ऐसा प्रतीत होता है कि उसका प्रेम-पात्र उसके सामने ही खड़ा विहँस रहा है। उसे सम्बोधन कर वह कहता है—

मेरे क्रन्दन में बजती क्या वीणा?—जो सुनते हो,
धागों से इन आँसू के निज करुणा-पट बुनते हो।
रो-रोकर सिसक-सिसककर कहता मैं करुण कहानी,
तुम सुमन नोचते सुनते करते जानी अनजानी।

वियोग में संयोग के ये चित्र कितने मनोहर हैं? प्रेमी की बढ़ती हुई विकलता और प्रेम-पात्र का जानी अनजानी करना किसी सरल निष्ठुर... 'सु—मन' को नोचता नहीं तो क्या है? हाय, निष्ठुर सौंदर्य!!

कवि के विगत जीवन के पृष्ठ अब एक-एक कर खुल रहे हैं, वह बता रहा है कि अपने प्रेम...

...' की प्राप्ति के लिए उसे कितनी तपस्या; ...नी साधना और कितनी लम्बी प्रतीक्षा करनी ...ी थी !—

...नी निर्जन रजनी में तारों के दीप जलाये !
...की धारा में उज्ज्वल उपहार चढ़ाये !!

जिस एक 'प्रियतम' से बिछुड़कर अखिल ...ड माया के बन्धन में जकड़ गया है, वही ...तम' कवि के प्रेमपात्र के रूप में नीचे आया ...; कवि ने उसे देखते ही बिना किसी प्रकार ...परिचय या पूछ-ताछ के समझ लिया ...उसका जीवन-साध्य ही उसके निकट उपस्थित ...है। कवि प्रतिभा के सिवा इस प्रकार 'प्रिय-...दर्शन' की क्षमता और किसमें होती !

...था, नीचे आये प्रियतम मिलने को मेरे,
...उठा अकिंचन देखे ज्यों स्वप्न सबेरे।
...राका मुसकाती थी पहले देखा जब तुमको,
...से जाने कब के तुम लगे उसी क्षण हमको !

...प्रिय-आगमन के साथ ही पूर्ण चन्द्र की ...हँसती-सी प्रतीत होने लगी। इन पदों में ...की गहरी अनुभूति का सफल प्रतिनिधित्व ...गया है। जीवन के सुख-दुःख में एक भाव ...रहनेवाले मित्रों की मित्रता 'प्रथम दर्शन' ...ऐसी प्रगाढ़ हो जाती है, जैसे कि वे वर्षों के ...हों ! बात यह है कि ऐसी अवस्था में बाहरी ...का परिचय-अपरिचय विशेष महत्त्व नहीं ...। अन्तर अन्तर को अपने आप देख ...पहचान लेता है। इस कार्य में मानवीय ...या शिष्टाचार की तनिक भी आवश्यकता ...पड़ती। यह कार्य तो एक दैवी प्रेरणा से स्वतः ...हो जाता है। हम सब इस बात का जीवन में ...कर चुके होंगे ! कवि अपने प्रथम मिलन ...परिचय को इस प्रकार अंकित करता है—

...राका जलनिधि का जैसे होता हिमकर से,
...की किरनें आतीं मिलती हैं गले लहर से।

वास्तव में यह आध्यात्मिक मिलन है, जो भाषा के बन्धन में नहीं आ सकता। इसके बाद संयोग की उन्मद घड़ियों का चित्रण अनोखी एवं भाव-प्रधान ध्वन्यात्मक शैली में सुन्दरता के साथ किया गया है। कुछ पद सुनिए—

घन में सुन्दर बिजली-सी बिजली में चपल चमक-सी,
आँखों में काली पुतली पुतली में श्याम झलक-सी।
प्रतिमा में सजीवता-सी बस गई सुछवि आँखों में,
थी एक लकीर हृदय में जो अलग रही लाखों में।
माना कि रूप-सीमा है सुन्दर ! तब चिर यौवन में,
पर समा गये थे, मेरे मन के निस्सीम गगन में।
लावण्य-शैल राई-सा जिस पर वारी बलिहारी,
उस कमनीयता कला की सुषमा थी प्यारी-प्यारी।

जटिल जगत् की व्यावहारिकता तथा अभिनव सौंदर्यों की आकर्षण-शीलता भी इतनी सक्षम नहीं हो सकी कि कवि के हृदय में अंकित इस 'एक लकीर' को वे मिटा पातीं। कवि ! क्या तुम्हें यह बताना होगा कि तुम्हारी यह 'एक लकीर' कितनी अनन्त, सूक्ष्म एवं व्यापक है ? उसकी अमिट छाप निखिल विश्व के उर-उर में, प्राण-प्राण में, कण-कण में लगी हुई है। क्या संसार के कुटिल आवर्त पड़कर भी वह कभी कहीं से धुल सकेगी ? जीवन के घात-प्रतिघात, उत्थान-पतन, संयोग-वियोग क्या उसे कभी मिटा सकेंगे ? तुम अपने 'आँसुओं' को लेकर उसकी ओर बढ़ रहे हो—उसे प्रत्यक्ष करने के लिए प्रयत्न शील हो, पर तुम क्या यह नहीं जानते कि यह विराट् दृश्यमान ब्रह्मांड अपने 'विरह-काव्य' को लेकर निशा-दिवा के पंख फड़फड़ाता हुआ उसी ओर उड़ा चला जा रहा है ?

'आँसू' में कवि ने अपने प्रेम-पात्र का अत्यन्त अनूठी शैली में रूपांकन भी किया है। काव्य का इतना चमत्कार एवं करुण भाव-प्रवणता आधुनिक हिन्दी-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। जो पावन सौंदर्य आपको यहाँ देखने को मिलेगा,



वह प्राचीन कवियों के 'नखशिख'-वर्णन या अर्वाचीन कवियों के रूपांकन में नहीं मिलेगा। बात यह है कि 'आँसू' एक विरह-काव्य है। इसमें वर्णित सौंदर्य एवं शृंगार विरह के आँसुओं से निखर उठा है। इसके साथ ही यह एक सुन्दर 'आत्मगीत' (Subjective) भी है। इसका सम्बन्ध कवि के व्यक्तिगत जीवन से है। 'आँसू' में कवि हमें अपनी बातें सुनाता है, और वह भी उस समय, जब वियोग के एक युग के पश्चात् उसके हृदय का यौवन-सुलभ चापल्य प्रौढ़त्व एवं स्थैर्य में परिवर्तित हो गया है। पवित्र सौंदर्य की गंगा तो अथक तथा सतत तपश्चर्या के द्वारा ही पृथ्वी पर बहाई जा सकती है। प्रारम्भ में कवि अपने प्रेम-पात्र के हृदयहारी कोमल मुख-सौंदर्य तथा इसके साथ ही निष्ठुर हृदय के स्वभाव का वर्णन करता हुआ कहता है—

बाँधा था विधु को किसने इन काली जंज़ीरों से,
मणिवाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से ?

इस पद में उपमेय पूर्ण रूप से लुप्त है। बल्कि यों कहिए कि पाठक को उपमान-उपमेयों का कोई भान ही नहीं होता। साधारण तौर पर इस पद का अर्थ इस प्रकार होगा—

'इन काली जंज़ीरों से चन्द्रमा को किसने बाँधा था ? जिन सर्पों के मणि हुआ करती हैं, उनके मुख में हीरे क्यों भरे हुए होते हैं ?'

इस अर्थ से कवि का अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो पाता। आगे के पदों से ज्ञात होता है कि कवि अपने प्रेम-पात्र के विभिन्न अंगों के सौंदर्य का चित्रण कर रहा है। थोड़ा रुककर विचारने से मालूम होगा कि इस पद में 'विधु', 'काली जंज़ीरों', 'फणियों' तथा 'हीरों' शब्द उपमान के रूप में प्रयुक्त किये गये हैं। कवि-परम्परा में 'विधु' नायक या नायिका के 'मुख' का उपमान होता है, इसी प्रकार 'काली जंज़ीरें' शब्द लहरीले तथा घुँघराले केश-पाश के उपमान के रूप में ही आता है। 'हीरे' की उपमा धवल दंतपंक्ति से दी जाती है। पर इस पद में 'हीरों' शब्द अर्थ-गौरव से भरा हुआ है। हीरे की कनी विष का भी काम करती है। 'मणिवाले फणियों' के साथ 'हीरों' का अर्थ विष भी लेना होगा। सब बातों के सामंजस्य से इस पद का यह अर्थ प्रतिध्वनित होता है—

"चन्द्रमा के समान सुन्दर छविवाले (प्रेम-पात्र के) इस मुख को काली लहरदार एँड़ी-विचुम्बित अलकों से किसने सम्बद्ध कर दिया है। (अर्थात् एक तो मुख की छटा ही इतनी निराली एवं मनोहर है, ऊपर से ये खुले हुए केश-पाश सौंदर्य को और भी आकर्षण से भर देते हैं।) जब पहले ही इतना सौंदर्य था, तब बात-बात पर रूठने तथा मान करनेवाले तथा अन्तःस्थित कला की रुचि से चमत्कृत (मणिवाले फणियों) इस प्रकार के श्रीसम्पन्न मुखों को ऐसी धवल अमल विशुभ्र दंतपंक्ति (हीरों) से क्यों युक्त किया गया ?"

'फणियों' या सर्पों के साथ इसका अर्थ इस प्रकार होगा—

"जिन महाभाग्यवान् सर्पों को विधाता ने मणि जैसी अमूल्य निधि प्रदान की है, उन्हें विष (हीरों) की थैली क्यों दे दी ? सुन्दरता में जहर क्यों मिला दिया ? गुलाब के श्री-सुरभि-सम्पन्न सुमनों में ये तीक्ष्ण काँटे क्यों लगा दिये ?" इस व्यापार का उत्तर कौन दे ?

इतना अर्थ-गौरव कवि ने उपर्युक्त चार चरणों में ही भर दिया है। मनोहर-सुकुमार मुख[illegible] प्रदर्शित कठोरता के चित्रण के लिए कवि को इतना ध्वन्यात्मक, अस्पष्ट तथा कल्पना-गूढ़ बनना पड़ा है। पाठक को इस पद में काफ़ी दिमाग़ी कसरत करनी पड़ती है। इसके बाद का रूपांकन इ[illegible]



अस्पष्ट तथा दुरूह नहीं है। रूप-राशि की हृदय-हर छटा का भावपूर्ण चित्र बनाकर कवि अपने मधुर संयोग क्षणों का मार्मिक तथा सजीव शैली में वर्णन करता है। मिलन एवं संयोग के इन वैभव-सम्पन्न पलों में कवि ने अपना सब कुछ लुटा दिया था। उसके रात और दिन अपने 'प्रेम-देवता' की ज्योत्स्ना में स्नान किया करते थे; मिलन की मधुर मुरलिका मुकुलों के अधरों में उमंग एवं हास्य की गरिमा लहराती थी; मधुपों का संगीत छिड़ता था; तरुदल तथा अभिनव किसलय अपनी सहज थिरकन से ताल देते थे; और फिर—

ढल जाती थी सुख रजनी मुख-चन्द्र हृदय में होता,
श्रम-सीकर सदृश नखत से अम्बर पट भीगा होता।

किन्तु, हाय!

आवेगी कभी न वैसी फिर मिलन-कुञ्ज में मेरे,
चाँदनी शिथिल अलसाई सुख के सपनों से मेरे!

अभी मानस की प्यास बुझी भी न थी; अतृप्ति की तड़पन दिल को मसल ही रही थी कि सहसा कवि के प्रणय-मिलन पर वियोग का काला पर्दा गिर गया, और उसके हृदय में विकसा हुआ स्नेह-सरोज व्यथा की ज्वाला में असमय ही झुलस गया!

प्रेम की इतनी-सी बूँदें कवि के रोम-रोम में विद्युत्-सी दौड़ रही हैं! अतीत जीवन कल्पना और सपना बनकर उसके सामने आता है। संयोग में जो प्रणय हिम की तरह शीतल था, वह अब ज्वाला बनकर जावन को जला रहा है। उधर रात-दिन नयन-सीपियों से मोती ढुलका करते हैं। प्रतीक्षा में सन्ध्या प्रभात और प्रभात सन्ध्या बन जाते हैं, पर एक बार भी उस निर्दय छवि' के दर्शन नहीं हो पाते। कवि प्रलाप करता है—

मादकता से आये तुम, संज्ञा से चले गये थे,
हम व्याकुल पड़े बिलखते, थे उतरे हुए नशे से!

जीवन की सारी चेतनता को साथ लेकर वह (प्रेमपात्र) चला तो गया, पर संयोग-क्रीड़ारत उसकी इन्द्रधनुष-सी आभा हृदय में अब तक अपने प्रेममय दर्शन दे ही रही है!

अम्बर असीम अन्तर में चंचल चपला से आकर,
अब इन्द्रधनुष-सी आभा तुम छोड़ गये हो जाकर!

इस आभा को कौन मिटा सकेगा? मानो कवि यहाँ सूरदास की भाँति कह रहा है

हाथ छुड़ाये जात हो निबल जानि कै मोंहि,
हिरदै से जब जाहुगे सबल बदूँगो तोंहि!

कवि का वियोगजन्य यह जड़त्व अधिक काल तक नहीं रहता। शीघ्र ही वह अनुभव करने लगता है कि उसका प्रेमपात्र उससे कहीं दूर नहीं गया। भले ही वह साकार रूप में उसके सामने न हो, अपने सूक्ष्मरूप में तो वह उसके (कवि के) चतुर्दिक्—भीतर और बाहर—आकाश-सा वर्तमान है ही! तभी तो वह गाता है—

शीतल समीर आता है कर पावन परस तुम्हारा,
मैं सिहर उठा करता हूँ बरसाकर आँसू-धारा।
मधु मालतियाँ सोती हैं कोमल उपधान सहारे,
मैं व्यर्थ प्रतीक्षा लेकर गिनता अम्बर के तारे।

पर अभी कवि की यह भावना दृढ़ता नहीं प्राप्त कर सकी! निराशा के एक झोंके से ही कवि को अपनी शक्ति पर, सामर्थ्य पर सन्देह होने लगता है! जिस चन्द्रकिरण के सहारे उसकी तरणी धरणी के निकट पहुँच रही थी, जब वही ओझल हो गई, तब किसका आसरा किया जाय? कवि को अपनी तुच्छता का भान होता है—

अवकाश शून्य फैला है, है शक्ति न और सहारा,
अपदार्थ तिरूँगा मैं क्या? हो भी कुछ कूल किनारा!

कवि की भावुकता यहाँ पर अपनी अन्तिम अवस्था पर पहुँच जाती है। जिस प्रेम के पारा-



वार में उसकी नैया तिर रही थी, वह अब फेनिल होकर रुष्ट सर्प की भाँति ऊर्मियों के फन को उठा-उठाकर फुफकार रहा है। कवि के मन में तृष्णा की एक पुकार ने प्रेम के इस समुद्र में सुधा-सम्प्राप्ति की कामना की थी ! पर मिला क्या ?—बड़वानल ! समुद्र की आग !! प्रलय की ज्वाला !!! हा, हन्त !

पर कवि का सीमा पर पहुँचा हुआ निराश सन्ताप एक बार फिर शक्ति को बटोरता है, वह कहता है—

चमकूँगा धूल-कणों में सौरभ हो उड़ जाऊँगा,
पाऊँगा कहीं तुम्हें तो ग्रह-पथ में टकराऊँगा !

भावावेश में उसे विभ्रम-सा हो जाता है। तारे भरी रात में चन्द्रमा को देखकर वह कह उठता है—

इस गगनयूथिका वन में तारे जूही से खिलते,
सित शतदल से शशि तुम क्यों उनमें जाकर हो मिलते?

इसके बाद वियोग-विगलित हृदय फिर धरणी पर उतरता है और जीवन से समझौता करते हुए कहता है—

निर्मोह काल के काले पट पर कुछ अस्फुट लेखा,
सब लिखी पड़ी रह जाती सुख-दुखमय जीवन रेखा !
दुख-सुख में उठता गिरता संसार तिरोहित होगा,
मुड़कर न कभी देखेगा किसका हित-अनहित होगा।
मानव-जीवन-वेदी पर, परिणय हो विरह-मिलन का,
दुख-सुख दोनों नाचेंगे, है खेल आँख का, मन का !

अब कवि साधारण भाव-जगत् में विचरण कर रहा है। बहुत-सी बातों को सोचता हुआ वह दुःख-सुख से मेल करता है और अपने आराध्य देवता को चुनौती देते हुए कहता है—

इस शिथिल आह से खिंचकर तुम आओगे—आओगे,
इस बढ़ी व्यथा को मेरी, रो-रोकर अपनाओगे !

अब कवि को ज्ञात होता है कि वह अकेले ही दुखी नहीं है, उसके सामने फैली हुई यह विशाल वसुधा भी दुःख की ज्वाला में विदग्ध हो रही है ! इसी लिए वह सबको विस्मृति में डुबोने के लिए 'निशा' का आह्वान करता है—

नीलिमाशयन पर बैठी अपने नभ के आँगन से,
विस्मृति का नील नलिन रस बरसो अपांग के घन से।

जब मानव अपनी वियोगजन्य सन्तापकथा को भूल सकेगा; हृदय में निरन्तर उठनेवाली कसक और कचोट से मुक्ति प्राप्त कर सकेगा तब—

विस्मृति समाधि पर होगी वर्षा कल्याण-जलद की,
सुख सोये थका हुआ-सा चिन्ता छुट जाय विपद की।
चेतना-लहर न उठेगी जीवन समुद्र थिर होगा,
संध्या हो सर्ग-प्रलय की विच्छेद-मिलन फिर होगा!

पर यह तो भाव-जगत् की बातें हैं। लाख समझाओ, पर आँसू की धारा तो टूटती ही नहीं। कवि चेष्टा करता है और आँखों में उमड़े हुए आँसुओं को छिपाता है, पर व्यर्थ !! बार-बार ऐसा करने से वह स्वयं अपने-आपसे ऊब जाता है—वह कहने लगता है—

अपने आँसू की अंजलि आँखों में भर क्यों पीता !
नक्षत्र पतन के क्षण में उज्ज्वल होकर है जीता !

संयोग के वे सोने के दिन और रजत-सी हँसी तथा वियोग के ये दुःखद पल और पहाड़-से क्षण क्या आपस में मेल नहीं कर सकते ? कवि कहता है—

वह हँसी और यह आँसू—घुलने दे मिल जाने दे,
बरसात नई होने दे कलियों को खिल जाने दे।
चुन-चुन ले रे कन-कन से जगती की सजग व्यथाएँ,
रह जायेंगी कहने को जन-रंजनकरी कथाएँ।

इन पदों में दुःख का कितना भव्य स्वरूप है! कवि का आशा का कितना सुनहला सन्देश है! कवि का वियोग जड़ता नहीं उत्पन्न करता, निष्क्रियता नहीं फैलाता, प्रत्युत वह चेतनता, सजीवता तथा क्रिया-शीलता का ही वेग भरता है। वह कर्तव्य का, शक्ति का ज्ञान सम्प्रदान करता है और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से ऊपर उठने की प्रेरणा उत्पन्न

करता है। करुणा का प्रतिनिधित्व करनेवाला कवि जीवन के साथ चलकर, संसार के बीच में घुलकर अपनें विरह-गीतों को स्वाभाविक रूप में सजाता है- यही उसके 'आँसू' का रहस्य है। वास्तव में आधुनिक हिन्दी-कवियों में कवि 'प्रसाद' ने जितना संवेदन-शील हृदय पाया है, उतना शायद किसी को नहीं मिला। इसी से जीवन की वेदना, भावों की गम्भीरता, जगती की अनुभूति, उज्ज्वल भविष्य-निर्माण की भावना एवं आशा का एक विमल सन्देश हमें उनकी रचनाओं में मिलता है। विश्व का हलका से हलका स्पर्श उनके कोमल हृदय में बवंडर उठाने के लिए पर्याप्त से भी अधिक होता है। ऐसी दशा में वियोग की इस तमसाकार निशा में कवि 'आँसू' बहाने के लिए विवश हुआ तो आश्चर्य ही क्या? उसके दिल में, दिमाग़ में, मानस में, अंतर में प्रेम की होली जल रही है, लपटें उठ रही हैं, आग के टुकड़े ऊपर उड़ रहे हैं। उन्हें वह कैसे छिपाये? जब निशा की गोद में प्रातःकाल चन्द्रदेव शयन करने लगते हैं और जब अस्ताचल की घाटी में सूर्यदेव दिन भर चलकर श्रांति मिटाने लगते हैं, नक्षत्रों का अस्तित्व छायापथ में जब लुट जाता है और सघन श्यामल घनों के हृदयों में जब बिजली बन्दिनी हो जाती है—

[illegible] विश्वमंदिर की पहने किरणों की माला,
तुम एक अकेली तब भी जलती हो मेरी ज्वाला!

और जब संसार सुख की शय्या में शान्ति की गोद में विचरण करता रहता है—

तब भी तुम सतत अकेली जलती हो मेरी ज्वाला!

कवि को अपनी इस ज्वाला पर केवल सन्तोष ही नहीं होता, उसे गर्व भी होता है; क्योंकि उसी के प्रकाश के सहारे वह द्वन्द्वज विश्व के रहस्य को जान सका है और उसकी अनुभूति संसृति के हृदय के साथ समष्टिरूप में एकत्व प्राप्त कर सकी है। अभी तक वह अकेला था, अब वह जगती के स्पन्दन के साथ ही स्पन्दित हो रहा है। वह गाता है—

तेरे प्रकाश में चेतन संसार वेदनावाला,
मेरे समीप होता है पाकर कुछ करुण उजाला।
उसमें धुँधली छायाएँ परिचय अपना देती हैं,
रोदन का मूल्य चुकाकर सब कुछ अपना लेती हैं।

अतः—

जगद्वन्द्वों के परिणय की दे सुरभिमयी जयमाला,
किरणों के केसर रज से अब भर दे मेरी ज्वाला।
निर्मम जगती को तेरा मङ्गलमय मिले उजाला,
इस जलते हुए हृदय की कल्याणी शीतल ज्वाला!

संयोग-वियोग के मधुर सकरुण उल्लास एवं उच्छ्वास के पश्चात् कवि अपने प्रेम-पात्र का जो स्वरूप अङ्कित करता है, वह कितना शाश्वत, अमृत एवं मंगलमय है; यह इन पदों में देखिए—

मेरी आहों में जागो सुस्मित में सोनेवाले,
अधरों से हँसते-हँसते आँखों से रोनेवाले।
इस स्वप्नमयी संसृति के सच्चे जीवन तुम जागो,
मंगल किरणों से रंजित मेरे सुन्दरतम जागो।
अभिलाषा के मानस में सरसिज-सी आँखें खोलो,
मधुपों से मधु गुञ्जारो कलरव से फिर कुछ बोलो।
प्राची के अरुण मुकुर में सुन्दर प्रतिबिम्ब तुम्हारा,
उस अलस उषा में देखूँ अपनी आँखों का तारा।
कुछ रेखाएँ हों ऐसी जिनमें आकृति हो उलझी,
तब एक झलक! वह कितनी मधुमय रचना हो सुलझी।
जिसमें इतराई फिरती नारी-निसर्ग-सुन्दरता,
छलकी पड़ती हो जिसमें शिशु की ऊर्मिल निर्मलता।
आँखों की निधि वह मुख हो अवगुण्ठन नील गगन-सा,
वह शिथिल हृदय ही मेरा खुल जावे स्वयं मगन-सा।
मेरी अनामिका सङ्गिनि! सुन्दर कठोर को मलते,
हम दोनों रहें सखा ही जीवन-पथ चलते-चलते।

अन्तिम पद बड़ा ही मर्म-स्पर्शी है। भावनाओं के कितने पुञ्ज, लालसाओं के कितने कुञ्ज इस पद के वर्ण-वर्ण में तड़प रहे हैं। उफ़! कवि अपनी



संगिनी का उस संगिनी का, जिसने प्रथम दर्शन में ही उसे आत्मानन्द प्रदान किया है, उस संगिनी का, जो उसके मानस-पूजा की प्रतीक है, उस संगिनी का, जिसके साथ उसने यौवन-सुलभ क्रीड़ाएँ तथा अठखेलियाँ की हैं, आज नाम लेते हुए भी सिहरता है। प्रेम की व्यापकता में आज बाह्य सौंदर्य डूब गया है। तन की रेखाओं के लिए कवि के मानस में कोई आकर्षण नहीं रहा! संसार की विषय वासनाएँ— ऐन्द्रिय कामनाएँ बहुत पीछे छूट गई हैं। आज कवि अपनी कठिन साधना तथा तपस्या में सफल हुआ है। प्रेम अपने मधुर शाश्वत रूप में उसके सामने विहँस रहा है। वह अपनी दिव्य दृष्टि से अनन्त एवं विशुद्ध सौंदर्य के दर्शन कर रहा है। उसमें 'नाम और नामी' का कोई विशेष मूल्य नहीं रह गया है। इसी लिए वह अपनी संगिनी को 'अनामिका' (नाम विहीन) सम्बोधन प्रदान करता है।

हम दोनों रहें सखा ही जीवन-पथ चलते-चलते।

कितनी पवित्र भावना है। कवि मानो अपनी तपःपूत वाणी से मानवता का शृंगार कर रहा है! कविकृत 'स्कन्द गुप्त' नाटक में नायक स्कन्दगुप्त के ये शब्द, जो नायिका देवसेना से कहे गये हैं, हमें यहाँ पर स्मरण आते हैं।

"स्कन्द—देवी! यह न कहो; जीवन के शेष दिन, कर्म के अवसाद में हम बचे हुए दुखी लोग एक दूसरे का मुँह देखकर काट लेंगे।" (पंचम अंक, पृष्ठ १६८)

यही स्कन्द 'प्रसाद' की वाणी में मानों फिर कह रहा है—"हम दोनों रहें 'सखा' ही जीवन-पथ चलते-चलते।" 'सखा' शब्द ध्यान देने योग्य है। प्रेमी और प्रेमिका के ऐन्द्रिय रूप में नहीं—केवल आत्मिक सख्य रूप में ही जीवन पथ चलने की कामना 'प्रसाद' के पवित्र उत्सर्ग-शील प्रेम की परिचायिका है।

पर यह विश्व तो विलासोन्मुख सौंदर्य-जाल में बेतरह लिप्त है! विषयलोलुपता तथा कामुकता, जिसके जीवन में घुल-मिल गई हो, वह प्रेम के इस निस्स्वार्थ रूप को बलि की इस मीठी भावना को— कैसे ग्रहण कर सकेगा? कामिनी और कान्त की जगमग बाह्य रेखाओं में जो प्रेम को क़ैद करना चाहते हैं, उनके भ्रम को मिटाने के लिए प्रसादजी को यह स्पष्ट कहना ही पड़ा

* हे मेरे प्रेम! बताओ तुम स्त्री हो या कि पुरुष हो।
वे दोनों पूछ रहे हैं—तुम कोमल हो या कि परुष हो।

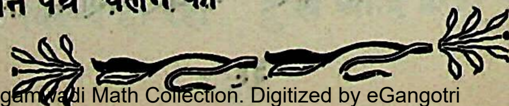
कितना अच्छा काव्योचित व्यंग्य है इस पद में! प्रेम को 'स्त्री-पुरुष', 'कोमल-कठोर' 'कटु-मिष्ट' की नाप लेकर नापने या तौलनेवाले (जगत् के स्त्री और पुरुष) क्या इस व्यंग्योक्ति से चेतेंगे!

इसके बाद कवि के कुछ और सुन्दर तथा अश्रुप्लावित गीत हैं! अन्तिम पद में कवि समस्त विश्व के दुःखों के निचोड़ को लेकर दूसरे शब्दों में पीड़ित मानवता का वास्तविक प्रतिनिधि बनकर—प्रभात की हिम-बूँदों की तरह विश्व-सदन में 'आँसू' निष्कर्ष मौन हाहाकार—बरसाना चाहता है। इस प्रकार मानव की सहानुभूति, सहकारिता और सहयोग को सामंजस्य (Harmony) के सूत्र में संग्रथित करता हुआ जगती को भव्य व्यापकता का स्वरूप प्रदान करता है। इस प्रकृति का भी तो यही उद्देश्य है—

सबका निचोड़ लेकर तुम सुख से सूखे जीवन में।
बरसो प्रभात-हिमकन-सा आँसू इस विश्व-सदन में।

कवि की इस स्निग्ध भावना को अमरत्व मिले!

* यह पद 'आँसू' में नहीं है। एक बार बातचीत करते समय 'प्रसादजी' ने इस पद की चर्चा की थी। यहाँ प्रसंगवश इसके उद्धरण के लिए मैं 'प्रसादजी' के निकट क्षमा-प्रार्थी हूँ।—लेखक



ज़ुर्राफ़ों की सभा

'चित्रभास' बी० ए०

"हम सब ज़ुर्राफ़े भाई है"—एक वृद्ध ने कहना शुरू किया। 'है' या 'हैं' ? एक वैयाकरण ने चकित होकर पूछा।

वृद्ध की लम्बी गर्दन ऊपर को तन गई, उसने जोश में आकर दुहराया "हम सब ज़ुर्राफ़े भाई है, मैं कहता हूँ कि हम भाई है, 'हैं' नहीं। हम में एकवचन-बहुवचन का भेद नहीं है, हम एक है। आप लोग हर बात में मनुष्यों की नक़ल करते। मनुष्यों में भी अनेक दोष हैं और उनका सबसे बड़ा दोष यह है कि वे 'हम' के साथ बहुवचन क्रिया का प्रयोग करते हैं। मैं पूछता हूँ कि इससे लाभ क्या है ?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं"—सब ज़ुर्राफ़ों ने एक साथ चिल्लाकर कहा। मनुष्य के दोषों का आभास पाकर वे बहुत प्रसन्न होते थे।

"हाँ तो हम सब ज़ुर्राफ़े भाई है, यह सिद्ध हो चुका। हममें ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, एकवचन-बहुवचन का बिलकुल भेद नहीं है। इसलिए इस सभा का प्रेसीडेण्ट चुनने में हम मनुष्यों के तरीक़ों का प्रयोग कभी नहीं कर सकता।"

सारे सभासदों ने वृद्ध का अभिप्राय समझने के लिए अपनी लम्बी गर्दनें ऊपर उठा लीं। कुछ ने कहा—इसका अर्थ, इसके मानी, दादा हम इसका अर्थ नहीं समझे।

हा, हा, हा! वृद्ध ठहाका मारकर हँसा, कुछ सभासद भी हँसे। "मैं इसका अर्थ अभी समझाता हूँ"—वृद्ध ने कहा। सब ख़ामोश हो गये। "हम सब ज़ुर्राफ़े भाई है"—वृद्ध ने प्रारंभ किया—"यह मेरा पहला तर्क है। 'ज़ुर्राफ़े' (बहुवचन) मैं इसलिए कहता हूँ कि हम बहुत है, हमारी संख्या बहुत है और हम बहुत देश में फैला है ; और 'है' एकवचन इसलिए कि हम एक है, हममें भेद-भाव नहीं है, हमारा रूप-रंग, हमारी बुद्धि सब एक क़िस्म का है, ज़रा भी फ़रक नहीं यानी हम सब एक माफ़िक़ है। समझ गये न ?"

कई हज़ार लम्बी गर्दनें एक साथ हिनहिना उठीं।

वृद्ध का चेहरा सतेज हो गया। उसने वेग से नाक फड़काते हुए कहा—"इसलिए हम मनुष्यों की तरह प्रेसीडेण्ट नहीं चुन सकता।"

कौतूहल और जिज्ञासा में सारी सभा मौन थी। वृद्ध ने कहा—

"मनुष्य लोग वोट से सभापति चुनते हैं। कुछ को ज़्यादा वोट मिलते हैं कुछ को कम। मैं पूछता हूँ कि जब सब ज़ुर्राफ़े भाई है, सब सब तरह से एक है, तो किसी को कम किसी को ज़्यादा वोट क्यों मिलेंगे ?"

"कभी नहीं, कभी नहीं"—सबने चिल्लाकर कहा।

अब आप लोग पूछ सकता है कि मनुष्यों में यह भेद क्यों है। सवाल कठिन है, पर जवाब सीधा है। मनुष्यों में भेद इसलिए है कि वह लोग 'सोचते हैं।"

'सोचने' का ठीक अभिप्राय क्या है ? एक छोटे ज़ुर्राफ़े ने प्रश्न किया।

"सोचना एक रोग है" वृद्ध ने संक्षेप में उत्तर



दिया । "मनुष्य ख़ुद नहीं जानता कि इस रोग का क्या कारण है और क्या स्वरूप ।

"इस रोग का एक स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि मनुष्य की अँगुलियों में एक विशेष विकार हो जाता है वे क़लम लेकर काग़ज़ पर घिसना शुरू कर देती हैं, इसे 'लिखना' कहते हैं। यह दशा उन्हीं की होती है जिनमें उक्त रोग ज़्यादा भयंकर रूप धारण कर लेता है।

"इस लिखने की दशा में"—वृद्ध ने कहना जारी रक्खा—"एक और चीज का क़लम और अँगुलियों के साथ उपयोग होता है, जिसे स्याही कहते हैं।

"मनुष्यों को इस लिख सकने का बड़ा अभिमान है। काग़ज़ पर स्याही और क़लम से वे जो कुछ लिखते हैं, उसे वे 'विचार' कहते हैं।

"ये विचार तरह-तरह के होते हैं और उनके अनुसार ही मनुष्य भी भिन्न-भिन्न प्रकृति के होते हैं। सच तो यह है कि मनुष्यों में भेद डालने-वाले ये विचार ही हैं।"

सभा में सन्नाटे का आलम था, श्रोता कुछ ऊब चले थे, कुछ ऊँघने भी लगे थे।

"इन विचारों का अवश्य ही स्याही से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए अगर हम ज़ुर्राफ़े भाई हमेशा भेद-भाव रहित होकर रहना चाहता है तो हमें परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमारे बीच में कभी स्याही को न भेजे।"

सब ज़ुर्राफ़ों ने अपनी गर्दनें आसमान की ओर उठा दीं। वृद्ध ने प्रार्थना की—

"उस ख़ुदा परमात्मा से, जो कि आसमान पर है, हम सब ज़ुर्राफ़े भाई विनम्र होकर प्रार्थना करता है कि हमारे बीच में कभी स्याही न आए, कभी क़लम न आए, कभी दावातें न आएँ।"

सब ज़ुर्राफ़े मौन होकर आकाश को देख रहे थे। वृद्ध ने फिर कहा—

"उस ख़ुदा परमात्मा से, जो कि आसमान पर है, हम प्रार्थना करता है कि हम जैसा है वैसा ही बना रहे; हमारे शरीर में कोई परिवर्तन न हो, हमारे मस्तिष्क में कोई परिवर्तन न हो, हमारे विचारों में कोई परिवर्तन न हो।"

सारे सभासदों ने मौन रहकर अनुमोदन किया। इसके बाद कुछ नवयुवक अपनी गर्दनें नीची करने को चंचल हो उठे।

"ठहर जाइए" वृद्ध ने कहा, "अभी हमें मनुष्यों के लिए प्रार्थना करनी है, जो कि गुमराह हो गये हैं।" और उसने फिर प्रार्थना की—

"उस ख़ुदा परमात्मा से, जो कि आसमान पर है, हमारा निवेदन है कि वह मनुष्यों को ठीक रास्ते पर लाये; वह उनकी स्याही, उनके क़लम और उनकी दावातों को नष्ट कर दे और उनके भेद-भावों को मिटा दे।"

दो क्षण रुकने के बाद उसने फिर कहा—

"हम सब ज़ुर्राफ़े भाई मिलकर प्रार्थना करता है कि मनुष्यों के पास स्याही न रहे, क़लम न रहे, दावातें न रहें; उनकी बुद्धियाँ एक-सी हो जायँ, उनमें परिवर्तन न हो, विचार न हो, अनेकता न हो।"

सारे सभासदों ने एक साथ हिनहिनाकर कहा, "आमीन।" उनकी गर्दनें अभी तक आसमान की ओर उठी हुई थीं।



बच्चों में प्रेम और घृणा*

पं० बलभद्र दीक्षित

हम लोगों का बचपन इतना बिगड़ गया है कि अपने बच्चों को सुधारने के लिए हम स्वयं अस्वाभाविक हो जाते हैं। चार बरस के बच्चे को ज़िद करते देख हम यह नहीं देख पाते कि उसकी ज़िद का कारण क्या है। अपने बड़प्पन के ग़ुरूर में झुँझलाकर हम उसे अनुचित रीति से दबा देते हैं।

ज़्यादातर लोग यह समझ बैठे हैं कि जिस तरह प्रकाश का उलटा अन्धकार है, उसी तरह प्यार का उलटा नफ़रत है; यह ग़लत है। 'प्यार करने' का उलटा है 'न प्यार करना'। नफ़रत का असली रूप है बिगड़ा हुआ प्यार। बच्चा जिसे स्वाभाविक रीति से प्यार करता, उसी को हमने अपने मिथ्याचार और अज्ञान के ज़ोर से नफ़रत करना सिखा दिया है।

मैं लखनऊ में था। मेरे चार साल के एक बच्चे को गेंदे के फूलों का बड़ा शौक़ था। मेरे क्वार्टर के सामने एक क्यारी में गेंदे के दरख़्त थे। रोज़ सुबह वह ओस में वहाँ जाता और कुछ गुनगुनाते हुए गेंदों की टहनियों, पत्तियों और फूलों को बड़े प्यार से सहलाता। फूलों को अपने होठों और गालों से छुआकर कभी-कभी दूर से सूँघता भी। यह छिपकर, सारा करिश्मा देखकर एक दिन बहुत-सी बातें कीं। उसने कहा, 'बड़े सुन्दर हैं, बड़ी प्यारी ख़ुशबू है, कई दरख़्त गमले में लगवाकर मा की तुलसी की जगह रख दो।' हाउस के कम्पाउंड में कई प्रकार के और फूल थे। देशी और विलायती गुलाब ख़ूब खिल रहा था। बच्चा उस ओर कभी न जाता। गुलाब उसे पसन्द न था।

उन्हीं दिनों—हाउस में एक किरायेदार आकर ठहरे। उनकी वृद्धा माता वैष्णव थीं। एक वक़्त के पूजन में चार सौ फूल का ख़र्च था। पूरा कम्पाउंड किरायेदार की हद में आ गया। इस कारण इन गेंदों पर भी उसका क़ब्ज़ा हो गया। काम पर जाते वक़्त एक सुबह मैंने देखा बड़ी बेरहमी से दरख़्तों को घसीटकर माली गेंदे के फूल तोड़ रहा है। मेरा बच्चा मकान के दरवाज़े पर भरा-सा खड़ा है। मैंने माली को डाँटा तो उसने खीसें निपोरकर कहा—'मालिक, ठाकुरजी के फूल कुत्ते ने छू डाले, इस कारण अम्मा सरकार मुझसे बहुत ख़फ़ा हैं।'

शाम को जब मैं घर आता हूँ तो देखता हूँ, गेंदे के सब दरख़्त जड़ से कटे पड़े हैं। मैं कारण समझ गया। फ़ौरन् जाकर बच्चे से पूछा। उसने बड़ी निर्भीकता से कहा, 'मैंने सब दरख़्त खुरपी से काट डाले हैं। उस माली के बच्चे ने उन्हें अधमरा कर डाला था?' मैंने ज़रा बनकर कहा, 'इसका नतीजा क्या होगा?' उसने बिगड़-

* 'बच्चों के बाप' पुस्तक का एक अध्याय।

कर जवाब दिया, 'कुछ भी हो। अब तुम नौकरी छोड़ दो। ये लोग बड़े हत्यारे हैं। मैंने उस कलूटे (माली) की बड़ी ख़ुशामद की कि इन गेंदों को मैं सींचता हूँ, इन्हें मैं देखता हूँ, लेकिन वह—(माली) न माना। हज़ारों (गेंदे) घायल पड़े थे; देखे न जाते थे।'

कितना नाज़ुक व्यवहार है। यहाँ पर बच्चा जिस चीज़ को प्यार करता था, दख़लन्दाज़ी हो जाने से, वह उसी को नष्ट करने पर तुल गया। इस कृत्य से बच्चे को जितनी परेशानी हुई, मैं कई दिन तक देखता रहा। मैंने यह देखकर कि उन सूखे गेंदों को दिन में कई बार वह दुखभरी निगाह से देखता है, उन्हें जल्द साफ़ करा दिया। लेकिन यह भी मुझसे छिपा न रहा कि गेंदों को काट डालने में उसे एक भयानक सन्तोष था।

ऐसे क़िस्से अक्सर होते हैं और अख़बारों में पढ़ने को मिलते हैं कि एक युवक पहले एक युवती को प्यार करता है, फिर उसी को एक दिन क़त्ल करता है; जुर्म इक़बाल करके फाँसी की सज़ा ले लेता है। कारण हमेशा क़रीब-क़रीब एक ही होता है। वह उसे वर्षों से प्यार करता था; वह उसके प्यार की चीज़ थी। अब नामर्द दुनियादार और उनका समाज उसके प्यार में बाधक हो रहे थे। उनका प्रतिनिधि, एक व्यभिचारी युवक इसके रास्ते में खड़ा किया गया था। वह अपनी योग्यता, धन और षड्यन्त्र से इसकी प्रेयसी को छीन लेना चाहता था। यह उसका किसी तरह मुक़ाबला न कर सकता था। बस, अपने प्यार की चीज़ को नष्ट कर ख़ुद नष्ट हो जाने पर आमादा हो जाता है। संसार रोगी दिमाग़ों से भर गया है, उसी का यह दुष्परिणाम है। अन्यथा मनुष्य और सिंह की प्रकृति एक होती है। किसी के पछाड़े हुए शिकार को खाने से वह भूखों मर जाना ज़्यादा पसन्द करता है। एक चीज़ पर बहुतों का प्यार अपना अलग-अलग सुख रखता है। एक स्त्री होती है, कोई उसे अपनी पत्नी का प्यार करता है। कोई उसके बहन के प्यार का भागी होता है। बहन और लड़की के प्यार की कई एक ख़ूबियाँ बीवी के प्यार में नहीं हो सकतीं। उसी तरह पत्नी-प्रेम का चित्र अपना निराला रङ्ग रखता है। पति, भाई, बाप, देवर, ननद एक ही स्त्री को प्यार करते हैं। सबके प्यार जुदे होते हैं।

बच्चे में प्यार करने का अंकुर प्राकृतिक होता है। तन्दुरुस्त बच्चा हर एक प्यारी चीज़ को प्यार करने लगता है। उसमें यह प्यार करने का माद्दा प्यार किये जाने से पनपता है। जब तक बच्चे में ज्ञान नहीं आता, तब तक वह दूसरों से प्यार किये जाने को ही स्वयं प्यार करना समझता है। 'अम्मा उसे बहुत प्यार करती हैं' इसी को वह समझता है, वह अम्मा को बहुत प्यार करता है। अगर कोई काका किसी कारण से इसे प्यार नहीं करता है तो बच्चा भी उसे प्यार न करेगा। ऐसी हालत में समाज-भय से अथवा धार्मिक भय से शिष्ट माता-पिता जब उसी काका को बच्चे से प्यार कराना चाहते हैं तो वह कृत्रिमता से काका को प्यार तो ज़रूर करता दिखने लगता है, परन्तु इन जबरन प्यार करानेवालों (माता-पिता) को वह टके का समझने लगता है। गुरु जनों के प्रति सिखलाई हुई विनम्रता और श्रद्धा नक़ली हो जाती है। नासमझ मा-बाप बच्चे की तमीज़ से ख़ुश होते हैं, परन्तु जिस तरह पिटकर या पिट जाने के भय से पालू कुत्ता मालिक के सामने दुम हिलाने लगता है, वही कैफ़ियत बच्चे की होती है।

प्यार किसी को सिखलाने की चीज़ नहीं। वह आप-आप होता और बढ़ता है। बच्चे जो भाई-बहन एक दूसरे को प्यार करते हैं। वे जैसे-जैसे बढ़ते हैं, उनमें स्वाभाविक रीति से प्रेम प्रौढ़ होता जाता है। उनके छोटे से प्रेम-प्रणय में मा-बाप की बहुत बड़ी लेक्चर-बाज़ी ख़तरनाक साबित हो सकती है। पाँच-छः साल की अवस्था तक बच्चा नितान्त स्वार्थी होता है; यही शुभ भी है। अपने श्याम, शंकर, कमलू और शान्ता ...

...से एक सेर बर्फ़ी लाये हैं। हर बच्चा यही चाहेगा कि सब बर्फ़ियाँ उसी को दे दी जावें। अगर बच्चों में से एक भी बाँटने का मालिक कर दिया जायगा, जैसा कि शिक्षित मा-बाप बहुधा किया करते हैं, तो उसे दूसरों का हिस्सा देना बहुत अखरेगा। अगर वह बाबू (बाप) के ...उपदेशों अथवा मार के भय से ठीक-ठीक बट-वारा कर भी गया तो उसके अन्तर में दूसरे बच्चों के प्रति डाह बग़ैर हुए नहीं रह सकता। 'अगर ये लोग न होते (बीमार होते, या नाना-मामा के यहाँ होते) तो पिताजी ने मुझी को सारी मिठाई दी होती' ऐसी हालत में बच्चों में ऐसे विचार उठने स्वाभाविक हैं।

लखनऊ में मेरे साथ मेरे बच्चे थे और एक भतीजा था; वही सबमें बड़ा था। मैं जब कोई मिठान् (खाने की चीज़) लाता तो उसी को आपस में तक़सीम करने के लिए दे देता। चार-छः बार के प्रयोग में मैंने देखा, न हिस्सा-बाँट करनेवाला राज़ी रहता है और न हिस्सा लेनेवाले ही। सबमें झगड़ा, मार-पीट, गालीगलौज तक की नौबत आ जाती। कारण क्या था—भतीजा अपना हिस्सा सबसे ज़्यादा रख लेता। दूसरे बच्चे, चूँकि वहाँ अविश्वास ही राज्य कर रहा था, अपने हिस्से हर एक से अधिक घसीटना चाहते। बस यही झगड़े की बुनियाद थी। मैंने ख़ुद हिस्सा बाँटना शुरू कर दिया, झगड़ा मिट गया। बात क्या हुई। मेरे ऊपर कुछ को विश्वास था, जिन दो-एक को नहीं था, उन्होंने जाँच की; मैं हर बार बहुत ईमानदार ठहरा। बस, कक्कू बेइन्साफ़ी नहीं कर सकता, यही धारणा सबकी हो गई। पहले एक-एक शुक्रती के दाने पर सिर फूटते थे। अब देखा गया, एक बच्चा दूसरे को अपने हिस्से की चीज़ दे देता है; फिर किसी दूसरे दिन उसकी एवज़ में दूसरी चीज़ ले लेता है। कभी बिला किसी शर्त के भी आदान-प्रदान हो जाता है।

क़रीब डेढ़ साल हुआ, मेरे बड़े भाई साहब का शरीरपात हो गया है; भावज भी थोड़े दिन हुए मर गईं। उनके दो बच्चे हैं; बड़ा सात साल का, छोटा चार साल का। एक कुटुम्ब में हम तीन भाई हैं, हमारी स्त्रियाँ हैं। माताजी हैं। उन लड़के-लड़कियों को छोड़कर, जिनका शुमार अब घर के बालिग़ आदमियों में है, सोलह चलने-फिरने और बोलनेवाले बच्चे हैं; ग़र्ज़ेकि तीस आदमियों का कुटुम्ब है। मुझे छोड़-कर घर के और लोग स्वभावतः स्वर्गीय भाई साहब के बच्चों का लालन-पालन विशेष रूप से करते हैं। उन्हें और बच्चों से हिस्सा ज़्यादा दिया जाता है। छोटे बच्चे को गोद में अधिक देर तक लिया जाता है। मैं अपने गाँव से थोड़ी दूर एक रियासत के राजकुमारों को शिक्षा दे रहा हूँ। दूसरे-तीसरे जब घर जाता हूँ तो अजीब कैफ़ियत होती है। बड़े बच्चे (जो दस साल के ऊपर हैं) समझने लगे हैं कि रमा-कान्त (स्वर्गवासी भाई साहब का छोटा, चार साल का बच्चा) के मा-बाप नहीं है, इस कारण उसके साथ रिआयत करना बेजा नहीं है। दादा और बापू (मेरे दो भाई) को उसका ख़ास ख़याल रखना चाहिए। लेकिन छोटे बच्चे मुझसे शिकायतों की झड़ी लगा देते हैं। दादा ने नानी (वही रमाकान्त) को दो पेड़े दिये; हमें आधा मिला। बाप ने नानी को बहुत चाय दी; शक्कर अलहदा से डाल दी; उसे हिस्से पर हिस्सा दिया, ऐसी कितनी ही शंकाओं का समाधान करते-करते मेरा नाकों दम आने लगता है। नादान बच्चे यह नहीं समझ पाते कि नानी और मुनान के मा-बाप गुज़र गये हैं, इसलिए समाज और भगवान् से शाबाशी लेने के लिए उनके साथ हमें ख़ास रिआयत करनी चाहिए। बल्कि इस बात की जाँच किसी वक़्त भी की जा सकती है कि वे हिस्सा-बाँट करनेवालों से अस-न्तुष्ट रहते हैं। मेरे चार साल के (पुत्र) बचन और बराबरी के कान्तू (भतीजे) में हाल ही



में एक शाम सलाह हो रही थी। मैंने सुना।

बचन—क्यों रे कन्तुआ, एक बात कहूँ ? दादा मनवाँ (बाज़ार) से जानू (चिज्जी, मिठाई) लाया था। नानी को हमसे तुमसे दो जलेबी ज़्यादा दिये। बुधुवा ने सबब पूछा तो कहा नानी की जिजिया मर गई है, इसलिए उसे ज़्यादा देते हैं। अगर मेरी अम्मा मर जाय तो मुझे भी ज़्यादा हिस्सा मिलेगा ? और तेरी बोनी मर जाय तो तुझे भी ?

कान्तू—भइया (हमारा २४ साल का भतीजा) भी तो नानी ही को बहुत प्यार करते हैं। अपना हिस्सा पाया, पूरा नानी को दे दिया। मैंने माँगा तो कहा, तुमको देंगे तो सबको देना पड़ेगा।

बचन—(खिलकर) जभी तो मैं नानी के दो पके पिहँटुआ (एक ख़ास फल) चुराकर खा गया। दीदो ने बहुत धमकाया; सुधुआ को झकझोरा भी, मगर मैंने साँस न ली।

इन सब बातों का मतलब यह है कि और बच्चे नानी से डाह कर रहे हैं। साथ ही साथ बापों से भी उनकी नफ़रत बढ़ रही है। उनकी समझ से बाप उन्हें कम प्यार करते हैं। चार बच्चे बड़े सूक्ष्म विचारक हैं। उनके स्वास्थ्य पर इन बातों का विशेष प्रभाव पड़ रहा है। नानी जिस वक़्त ज़्यादा हिस्सा लेता है, वह दादा अथवा बापू की गोद में बैठकर उसे जल्द-जल्द निगल जाना चाहता है। दूसरे बच्चे, मुजरिम क़रार देकर उसे घूरना चाहते हैं। वह उनकी निगाह बचाना चाहता है। मैंने देखा है, चोरी से दी हुई चीज़ को, किसी कोने में बैठ, बार-बार इधर-उधर देखकर वह उलटी-सीधी खाने लगता है। नानी बला का तेज़ है। कभी-कभी अपने बापू की गोद का गुरुत्व लेकर अपने भाइयों को वह इतनी गिरी निगाह से देखता है कि वे चिढ़ें।

बच्चों को अधिक प्यार करना उतना ही ख़तरनाक है, जितना कि कम प्यार करना। ज़रूरत से ज़्यादा प्यार किये हुए बच्चे बुज़दिल और दुनिया के लिए बेकार हो जाते हैं; घर में शेर लेकिन बाहर झेंपू होते हैं। कम प्यार किये हुए बच्चे निर्दयी और हिंसक हो जाते हैं।

मेरी दृष्टि में आज-कल एक सम्भ्रान्त घर की लड़की की जीवनी है। वह सोलह साल की है; बी॰ ए॰ फ़र्स्ट ईयर तक पढ़ी। इस वक़्त पागलपन का इलाज हो रहा है; बहुत गुमसुम रहती है। उसे पुरुषों के प्रति बड़ी घृणा है; ब्याह का नाम लेने से चिढ़ती है। बाप एक बीमा-कम्पनी में सर्वेसर्वा हैं; हज़ार-बारह सौ रुपये माहवार की आमदनी। कुटुम्ब में यही लड़की और इसकी मा है।

लड़की और मुझमें एक दिन निम्नाङ्कित वार्तालाप हुआ—

मैं—आख़िर यह ख़ब्त तुमको कब से हो गया कि सभी पुरुष गन्दे होते हैं ?

लड़की—मैंने अपनी आँखों देखा है उनकी गन्दगी का चित्र। संसार का जब इतना बड़ा आदमी बदबूदार साबित हुआ तो और कौन होगा जो डर्टी न हो।

मैं—आप तो पढ़ी-लिखी और समझदार लड़कियों में हैं। एक-दो की गन्दगी से पुरुष-समाज को वैसा ही क़रार देना अन्याय है। मैं कैसा हूँ!

लड़की (घृणित मुखाकृति से)—आप भी गन्दे हो सकते हैं। आप ख़ूबसूरत लड़कों को प्यार करते हैं ? माताजी (मेरी स्त्री) इससे बहुत दुखी होंगी।

इस केस के जब मैं बहुत पीछे पड़ा तो मालूम हुआ कि लड़की के मस्तिष्क और हृदय में सबसे बड़ा धक्का इस बात का लगा है कि उसके मा-बाप एक दूसरे को प्यार नहीं करते, बल्कि एक दूसरे को वे प्यार करने योग्य रहे ही नहीं हैं। बाप घर के अन्दर दुश्चरित्र है, कहता कुछ और है, करता कुछ और। बच्चे के लिए संसार का सबसे बड़ा आदमी गुरु अथवा बाप होता है। उसका ही गंदा होना कितना भयानक है। पिता का आचरण



...मा पर बग़ैर छाप मारे नहीं रहता । माता-पिता ...ते हैं, परन्तु इससे सदाचारी रहने को कहते हैं । ...उनकी जघन्यता देखकर यह पागल हो जाती है । ...इस लड़की को घर में प्यार नहीं मिल रहा है, ...इस कारण किसी को प्यार करने के लिए इसके ...पास प्यार नहीं है ।

स्त्री-पुरुष में प्यार न होना संतान को कितना ...घातक है । कम प्यार की हुई औरतें अपने ख़ाविन्दों ...को ज़हर खाकर जान दे देने की धमकी दिया करती हैं, इसका प्रभाव बच्चों पर बड़ा नाशकारी पड़ता है । जाहिल बाप जब मा को मार डालने के नाटक में उठता है, उस वक़्त बच्चों की क्या दुर्दशा होती है, यह सहृदय ही समझ सकते हैं ।

भाई-बहनों में एक के सद्‌गुणों की मिसाल लेकर दूसरे की आलोचना करना भी उनमें घृणा जाग्रत् करता है । बाप के दरबार में सब बच्चे 'राजापूत' होते हैं । बच्चा अपनी कमज़ोरियों के अन्दर से ही शहज़ोर बनाया जा सकता है ।



स्त्री-जगत के प्रति गोस्वामीजी के कटु वाक्य

श्रीराजबहादुर लमगोड़ा
एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

(सितंबर १९३६ में छपे लेख का परिशिष्टांश)

मेरी सदा ही की धारणा है कि सुतर्क, वादी और प्रतिवादी दोनों की ज्ञानवृद्धि का हेतु बनता है। उदाहरणार्थ उपनिषदों की शैली हमारे सामने है। यवन-देश के अरस्तू और अफ़लातूँ-जैसे विद्वानों के ग्रंथ भी बहुधा इसी शैली में रचे गये हैं। स्वयं रामचरितमानस के रहस्य भी सुतर्क के प्रश्नोत्तरवाली शैली द्वारा खोले गये हैं।

मैं गत दीपावली में श्रीचित्रकूट की वार्षिक यात्रा पर गया था। लौटते समय मेरे मित्र शिवकुमारजी ने इस लेख-विषय के संबंध में अपनी कुछ शंकाएँ प्रकट कीं। मेरे उत्तर बहुधा वही थे, जिनका ज़िक्र असली लेख में हो चुका है। हमारा वाद-विवाद उस दिन समाप्त न होकर दूसरे दिन भी श्रीवाल्मीकि-आश्रम की यात्रा में जारी रहा। उस संघर्षण के परिणाम-स्वरूप जिन दो बातों का मुझे अनुभव हुआ, उन्हें प्रिय पाठकों के समीप रखता हूँ कि इस विषय की यथाशक्ति सर्वांग-पूर्ति हो जाय।

× × ×

तुलसीदासजी ने अपने ग्रंथ का नाम 'रामचरित-मानस' रखकर हमें साफ़ बता दिया है कि यह कथा श्रीशंकरजी के 'मानस' में सुरक्षित थी, जिसके प्रकटीकरण का हेतु पार्वतीजी का सुतर्क बना। इससे क्या यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि इस ग्रंथ में शिवजी के ही वाक्यों को निर्णयात्मक माना जाय, अन्यथा नाटकीय शैली होने के कारण अनेकानेक चरित्रों की परस्पर विरोधी बातों का एकीकरण कठिन होगा। तुलसीदास ने शिवजी को ही भगवान् राम का परम भक्त माना है। अतः हमें अब यह देखना है कि स्त्री-जगत के संबंध में शिवजी के विचार क्या थे। शिवजी "सदाशिवयोगी" हैं और "कामारि" भी, परन्तु लोक-संग्रह के निमित्त वे विवाह भी करते हैं और फिर भक्त की मर्यादा-स्थापनार्थ सती के सीता-रूप धारण करने के कारण ऐसा संकल्प भी करते हैं कि—

यह तनु सती भेंट अब नाहीं।

शिवजी का यह विवेक विचारणीय है कि वे सती के केवल उस "तनु" का परित्याग करते हैं जिसमें सती ने सीता-रूप धारण किया था।

रामजी सीता-वियोग में सांसारिक मनुष्यों की भाँति विलाप करते हुए दिखते हैं, परन्तु शिवजी उन्हें "सच्चिदानंद जगपावन" कहकर ही प्रणाम करते हैं। सती के हृदय में शंकाओं का एक [illegible] उठता है, जिसके समाधान में शिवजी यों कहते हैं

सुनहु सती तव नारि सुभाऊ;
संशय अस न धरिय उर काऊ।

इत्यादि

बस, यह कठोर से कठोर शब्द हैं, जिन्हें शिवजी ने नारी-जाति के निमित्त कहा है। बात यह है कि स्त्री में हृदय-शक्ति प्रधान होती है, न कि मस्तिष्क की विवेचना-शक्ति, इसी लिए शिवजी के समझाने पर भी सती का शंका-समाधान नहीं होता। तुलसीदासजी लिखते हैं—

लागि न उर उपदेश' जदपि कह्यो शिव बार बहु,
बोले बिहँसि महेश, हरिमायाबल जान जिय।

कितना उदार भाव है कि शिवजी सती पर दोषारोपण नहीं करते, अपितु सारी घटनाओं का कारण "हरिमायाबल" को ही बताते हैं। सती-जी राम की परीक्षा को चल देती हैं और इसी हेतु से सीता का रूप धारण करती हैं। वह रूप ऐसा है कि लक्ष्मणजी भी चकित हो जाते हैं। तुलसीदासजी एक वैरागी कवि की हैसियत से स्त्री-जाति के प्रति खरी-खोटी सुनाने लगते हैं, पर सोचिए तो सही, भगवान् राम के विचार क्या हैं। कवि लिखता है—

निज मायाबल हृदय बखानी,
बोले बिहँसि राम मृदु बानी।
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू,
पिता समेत लीन्ह निज नामू।
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू,
बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू।

आगे कवि स्वयं फिर लिखता है—

रामबचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोच,
सती सभीत महेश पहँ चली हृदय बड़ सोच।
मैं शंकर कर कहा न माना,
निज अज्ञान राम पहँ आना।

सच है, स्त्री भाव-प्रधान है और इसी लिए सती के हृदय-सागर में हम पहले-पहल और फिर मर्म जान लेने पर "अति संकोच" "बड़ सोच" के ज्वार-भाटे की लहरों का उथल-पुथल देखते हैं। शिवजी के हृदय में भी प्रेम और कर्तव्य का संघर्षण होने लगता है। कवि लिखता है—

परम प्रेम नहिं जाइ तजि किये प्रेम बड़ पाप,
प्रगट महेश न कहेउ कछु हृदय अधिक संताप।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि शिवजी ने स्त्री-जगत् की कोई कड़ी आलोचना कभी नहीं की और उनके इष्टदेव राम ने तो उतना भी नहीं कहा। यदि यहाँ भावों का आवेश है तो आगे चलकर हमें स्त्री के त्याग का दृश्य भी दिखता है। शिवजी के अपमान से सती ने अपनी देह को ही यज्ञकुंड में जला दिया। इसी से तो आज 'सती'-शब्द स्त्री के त्याग का द्योतक बन गया है। सतीजी दूसरे जन्म में पार्वती-रूप धारण करती हैं और हमारे सामने प्रेम की उस दृढ़ प्रतिज्ञा का आदर्श रखती हैं, जिसने उनके कौमार्य-जीवन को ही तप-मूल बना दिया था। प्रतिज्ञा यह है कि—

जन्म-जन्म यह रगर हमारी,
बरहुँ शम्भु न तु रहहुँ कुँवारी।

जो लोग तुलसीदासजी को स्त्री-जगत् का विरोधी समझते हैं, उन्हें यह भूल जाता है कि उस शिव-धनुष की दृढ़ता की उपमा, जिसे रावण और बाणासुर तक ने नहीं छुआ, एक सती के मन की दृढ़ता से ही दी गई है। कवि के शब्दों में—

डिगै न शम्भु शरासन कैसे,
कामी बचन सती मन जैसे।

सच है, तप और त्याग, प्रेम की दृढ़ता से मिलकर हिन्दू-स्त्री के विशेष गुण का प्रतिपादन करते हैं। अभी हाल में टैगोरजी का एक भाषण समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ था, जिसमें यह दिखाया गया था कि इन्हीं गुणों के आधार पर स्त्री ने सभ्यता की मर्यादा को पशुबल-प्रधान होने से बचाया है, जो आगे के लिए भी बहुत आशा-प्रद है। महात्मा गांधी भी कहते हैं कि हमें सती और सीता चाहिए, न कि पशुबल और मस्तिष्कीय

अहंकारवाली स्त्रियाँ (Amazons and prudes)। इन दोनों कथनों को तो हम पुरुष-वचन कहकर टाल सकते हैं, परन्तु नवीन भारत की सर्वश्रेष्ठ महिला श्रीमती नायडूजी भी तो यही कहती हैं कि भारतवर्ष की महिला को, चाहे वह स्वर्णसिंहासन पर बैठी हो या झोपड़े के द्वार पर, सीता, सती और सावित्री की कसौटी पर ही खरा उतरना पड़ेगा।

अब यदि हम इस महाकाव्य के चरितनायक की ओर ध्यान दें तो विषय और भी स्पष्ट हो जाता है। जब मैंने यह कहा कि भगवान् राम ने तो स्त्रियों के प्रति कभी एक कठोर शब्द का प्रयोग नहीं किया तो मेरे मित्र शिवकुमार के मुख पर हर्ष के चिह्न प्रगट हो गये और उन्होंने गद्गद स्वर से कहा कि "मेरी सब शंकाओं का समाधान हो गया। ठीक है, राम ने तो बालि को डाँटते हुए यह कहा है—

"मूढ़ तोहिं अतिशय अभिमाना,
नारिसिखावन करेसि न काना।"

मानो संकेत से भगवान् यह कह रहे हैं कि पुरुष अभिमानी होता है और नारी के सत सिखावन को न मानकर भूल करता है। देखिए, माता कैकेयी के विषय में भरत ने न-जाने कितने कठोर वचन कहे हैं, परन्तु भगवान् राम तो बार-बार यही कहते रहे कि माता कैकेयी को वही लोग दोष देते हैं—

"नाहिं न साधु सभा जिन सेई।"

अन्त में मेरा निवेदन यह भी है कि "चाँद" में प्रकाशित मेरे "मानस में सीता" वाले लेख को भी अवश्य पढ़ा जाय, जिसमें पूरा प्रसंग स्पष्ट हो जाय।



मौत अच्छी

श्रीगणेशबिहारीलाल श्रीवास्तव
बी० ए०

"Oh Death ! if you wish to devour at all, then devour such as these……'

एक ओर—

……अँगरेज़ी अस्पताल की एक कोठरी। प्रकाश बहुत ही कम। चारों ओर सन्नाटा…… मौत का सा सन्नाटा। दूर पर गिर्जे की घड़ी ने देकर समय दिया—दो बजे। ओफ़! कितनी भीषण अँधेरी रात्रि! कहीं-कहीं से रोगियों के कराहने का हृदयविदारक शब्द……हे भगवन्! कैसा भयावह वातावरण!!

उसी टिमटिमाते प्रकाश में मैंने देखा—एक अस्थिपंजर चारपाई पर धरा हुआ था—अस्थि-पंजर, केवल हड्डियों का ढाँचा, जिस पर एक बारीक पतली खाल चढ़ी हुई थी। समीप जाकर देखा, चेहरा सूखकर बिलकुल बिगड़ गया था। प्रकृति की आवश्यकताओं की पूर्ति भी चारपाई पर ही हो रही थी। श्वास बहुत ही मंद गति से चल रही थी। पास ही दो सज्जन—परिचारक—बैठे मृत्यु के खिलवाड़ को एकटक म्लान मुख से निहार रहे थे—चुपचाप, गहन शांति से। कभी-कभी रोगी एक चीत्कार का स्वर करके छटपटा उठता था।

—फिर छटपटाया, घिघियाता हुआ अस्पष्ट-सा स्वर!!

—"हे भगवन्! इस छटपटाकर बुरी तरह जीने से तो अब……"

—"क्यों भाई क्या रोग है इसे?" मैंने भी दुखित हृदय से धीरे से पूछा। "क्या बताएँ साहब, नगर में प्रकोपित विषैले रोग से तो आप भी परिचित ही होंगे—आज तीन दिन से रोगी की बिलकुल ऐसी ही दशा है। न तो चेतना आती है, और न इस दुख से छुटकारा ही मिलता है। हाय! मेरा इकलौता……क्या उस रोग को मुझ ग़रीब ही का घर उजाड़ना था।"

मैंने देखा कि उसकी अंतर्निहित वेदना नेत्रों की राह निकल भागना चाहती है—गले में जैसे उसके कोई रोड़ा-सा अटकता जा रहा है। फिर भी वह कहता ही गया—"मगर अब इसके कष्ट भी तो नहीं देखे जाते।"

"डाक्टर क्या कहते हैं?"—मैंने समवेदना के स्वर से पूछा।

"डाक्टर! डाक्टर!!……"

ओफ़! कैसी करुण दशा है। बरबस आँखों से आँसू निकल रहे हैं। हे भगवन्!! ऐसे दारुणतम कष्ट से तो मौत……

"मौत अच्छी?"

"हाँ! भाई मौत अच्छी—ठीक ही कहते हो।"

× × ×

दूसरी ओर—

कलकत्ते के हॉवड़ा स्टेशन से जो सड़क स्यालदा स्टेशन जाती है, उसे हैरीसन रोड कहते हैं। इस सड़क पर छकड़े से लेकर ट्राम और रिक्शा, और मोटर और घोड़ागाड़ी सभी लगातार चलती रहती हैं। इस सड़क पर इतना टैफ़िक



रहता है कि बेचारे पैदल चलनेवालों को बहुधा ठहरकर सोचना पड़ता है कि क्या करें। विना कंधे से कंधा भिड़ाये आप चल नहीं सकते। घन-घन, टन-टन, भौं-भौं, हटो जी इत्यादि सुनते-सुनते आदमी की ज्ञानसंज्ञा लुप्त हो जाती है। अब आप हिम्मत करके बढ़े—बेतहाशा, बाईं ओर से बस का बिगुल बजा किर्र...र...र, सिटपिटा गये, दाहिनी ओर घूमे तो सिर पर ट्राम – किधर जाय, किधर बचे। मगर यह बीसवीं शताब्दी है। अब तो चलना ही पड़ेगा—चाहे बुड्ढा हो, चाहे जवान। विना चले तो गड्ढा भर सकता नहीं; क्योंकि बाइबिल का आदेश यही है—यही मनुष्य-मात्र को शाप है—

"In the sweat of thy face, shalt thou eat bread."

हाँ, तो—अपने शिथिल पैरों पर साठ वर्ष की पुरानी हड्डियों का बोझ लिये रामसेवक चला जा रहा है—इसी हैरिसन रोड पर—बड़े बाज़ार के क्षेत्र में। सोचता है, इसका नाम बड़ा बाज़ार किसने रक्खा। जिस बाज़ार में चार पैसे उदरशांति के लिए न मिल सके, वह बड़ाबाज़ार कैसा? उसे तो छोटे से भी छोटा होना चाहिए। इससे तो गाँव ही भला, जहाँ गड्ढा भरने के लिए जुगाड़ करने से कुछ मिल तो जाता है। और कुछ नहीं तो सहानुभूति के चार शब्द तो सुनाई दे ही जाते हैं। मुसीबत में सहानुभूति ही एक लाभप्रद ओषधि है। इससे टूटा हुआ हृदय जुड़ जाता है, सवेग भागती हुई शक्तियाँ पुनः लौट आती हैं। मनुष्यों को नवजीवन-सा मिल जाता है। मगर इस कहने के बड़ेबाज़ार में यह भी नहीं। मशीन के प्रयोग की भाँति सब अपनी-अपनी राह चले जा रहे हैं, जैसे केवल चलने, भागने और अपनी ही धुन में बेतहाशा मस्त रहने के अतिरिक्त इनके पास और कोई भी काम नहीं। किसको फ़ुरसत है कि रुककर पूछे—भाई कैसे हो, खाना खाया अथवा नहीं, मरते हो या जीवित हो। × × × पीछे से अचानक भौं-भौं हुआ।

"बाप रे" कहकर वह थोड़ा और बाँ को दब गया।

हैरीसन रोड, जहाँ चीतपुर रोड को पार करती है, उस चौराहे पर बड़ी ही सावधानी की आवश्यकता है। मध्य में खड़ा हुआ सिपाही दिन भर नाचता ही रहता है। उसके नाच में एक वारांगना के नृत्य-कौशल का-सा आनंद तो नहीं आता, फिर भी उसके Motions खड़े होकर देखने की वस्तु अवश्य हैं। प्रत्येक नया यात्री घंटों खड़े होकर इस आनन्द को सहास्य उठाता है।

इसी चौराहे पर पहुँचकर बूढ़े रामसेवक के पास खड़े रहने के अतिरिक्त कोई और चारा न रहा। सोचता था, कब मार्ग मिले और कब जाय। पैर काँपने लगे थे। थककर एक ओर हटकर फ़ुट-पाथ पर बैठ गया। समीप के होटलों की सुगन्ध उसकी नाक में घुसी जाती थी, मानो उसकी भूली हुई क्षुधा-अग्नि को प्रज्वलित करके ही छोड़ेगी।

बूढ़े की दृष्टि सहसा एक नवयुवक पर पड़ी। उसने सोचा—इतना ही बड़ा तो मेरा भी लड़का था, जिसके कारण गाँव छोड़कर मुझे कलकत्ते आना पड़ा। हाय रे मुसीबत! पारसाल वह भी देखते-देखते चला गया—अब मेरा है ही कौन—बूढ़े की गहरी निश्वासों को अनुभव करनेवाला वास्तव में वहाँ था भी कोई नहीं।

—"अरे राम, यहाँ तो रात भी हो जायगी मगर रास्ता नहीं मिलेगा"-- इतना कहकर बूढ़ा उठा और धीरे-धीरे हॉवड़ा की ओर अग्रसर हुआ।

सँभलकर... सँभल... ओ बुड्ढे... बु... ड्ढे- भौं, भौं, भौं ओह राम!!! रा SSS म...। की SSSS करके बस में ब्रेक लगा, जो कि हॉवड़ा के



...रही थी। सीं SSS करके ट्राम रुकी, जिसका ...बाराबाज़ार की ओर था। चारों ओर से ...इकट्ठी हुई, जैसे कोई मेला हो।

"क्यों भाई, क्या हुआ ?"

"Accident (ऐक्सीडैंट)"

"कैसा ?"

"एक बुड्ढा दब गया।"

"मर गया, या बच गया।"

"...वाले के सितारे सीधे थे। जान बच ...। टाँग में फ़्रैक्चर हो गया है।' चारों ओर ...स्वर आ रहा था—"चलो अच्छा हुआ। ...बची और लाखों पाये।"

-मगर बूढ़े के नेत्रों में आँसू थे। वह कह ...था—हे भगवान, अब और क्या-क्या कष्ट ...जो जीवित रक्खा। चलने-फिरने से भी ...कर दिया। ओह! ऐसे जीने से तो......

बूढ़े की बात सुनकर लोगों ने क़हक़हा लगाया—...है, पागल है; और बरजोरी मोटर पर ...कर वहाँ पहुँचाया, जिसे हम अस्पताल ...हैं।

लेकिन फिर भी कुछ मनुष्य थे—जो उसकी ...को समझते थे और कह रहे थे—परमेश्वर ...जीवन से तो......

× × ×

तीसरी ओर—

कलकत्ते के दक्षिण-पूरब की ओर, बंगाल की ...के तट पर एक सुन्दर छोटा-सा नगर है—...। बड़े-बड़े विशाल मन्दिर हैं उसमें। और ...हैं कि श्रीजगन्नाथजी का वह स्थान है। ...भारी तीर्थ है। जहाँ पर केवल एक बार ...से फिर कभी संसार में नहीं आना पड़ता। ...पर श्रीभगवान् कृष्ण ने अन्तिम समाधि ली ...। श्रीकृष्ण, बलदेव और सुभद्रा की तीन ...की बनी विशाल मूर्तियाँ हैं—जिनकी ओर केवल एक बार देखने से कलाकार की प्रशंसा करनी पड़ती है। ये मूर्तियाँ एक बहुत ही प्राचीन मन्दिर में प्रतिष्ठित हैं।

वैसे तो सर्वदा ही वहाँ पर मेला-सा लगा रहता है, मगर रथयात्रा अथवा स्नान-यात्रा जैसे पर्वों पर भीड़ का कुछ अनुमान नहीं हो सकता। समझिए जैसे समूचा भारत ही इस तनिक-सी नगरी में फट पड़ेगा। उस विशाल मन्दिर में जहाँ भक्ति से हृदय गद्‌गद हो जाता है—श्रद्धा जागरूक होती है, वहाँ दो बातों पर अतिशय क्रोध भी हो आता है। एक तो वहाँ पंडों की हठधर्मी, जैसी कि लगभग प्रत्येक तीर्थस्थान में देखने में आती है। हाँ, बाईजी, एक पैसा। यह काकभुशुन्ड हैं, तीनों लोकों के दुखों को निवारते हैं। हाँ! जजमान !! यह एकादशी है उलटी लटकी है— चढ़ाइए। देखिए यह इधर...उधर।

अब अगर आप दिये जाइए, तब तो ठीक, अन्यथा फिर सुनिए—यह दर्शन करने आये हैं। गाँठ में कुछ है नहीं, दर्शन करेंगे। जजमान देगा, तभी पायगा इत्यादि। जैसे दर्शनों के ठेकेदार हैं। भगवान् को मोल ले लिया है। पैसा दीजिए, झाँकी लीजिए— अन्यथा दस बात सुनिए।

दूसरी बात, जिस पर क्रोध आता है, वह है मन्दिर की निर्माणकला। प्रवेशद्वार से घुसते ही दीवारों में चित्रित चित्रों को देखते जाइए। आप देखेंगे कि उन चित्रों में, मूर्तियों में इतनी अधिक अश्लीलता है कि भले आदमी की गरदन स्वयमेव नीची हो जाती है। भगवान् के पवित्र स्थल में ऐसे गंदे कामोत्पादक चित्र! राम !! राम !!!

मन्दिर के सहारे ही से एक मार्ग समुद्र की ओर जाता है। अधिक दूर नहीं। केवल एक मील के अंतर से ही सागर की उत्ताल तरंगों के दर्शन होने लगते हैं। चित्त में उल्लास भर जाता है। बाल-वृद्ध-वनिता सभी तो आनन्द से विहार



करते हैं। और वास्तविक बात तो यह है कि कुछ इनी-गिनी संख्या को छोड़कर शेष सब समुद्र-लालसा ही से पुरी खिंचे चले जाते हैं।

इसी मार्ग पर तनिक धीरे-धीरे चलकर इधर-उधर के दृश्य देखिए—बरगद के पेड़ के नीचे एक औरत बैठी है - अपने शिथिल अंगों को चिथड़ों से ढके हुए। नाक के स्थान पर केवल दो छिद्र हैं। नेत्र जैसे कभी थे ही नहीं। कान सफ़ाचट। सारे शरीर से कोढ़ चू रहा है। स्वर में कितनी वेदना! मैंने पूछा—"बुढ़िया मरना चाहती है ?"

ही, ही, ही, ही, बाबू मखौल करते हो, ही ही......मरे मेरा दुश्मन, ही, ही, ही......ओफ़्! जीवन !!! ऐसे जीवन से तो......

और यह दृश्य—

पैशाचिक देह लिये यह कितना भयावह मनुष्य लेटा है—गूँगा और बहरा। न-जाने किस प्रकार इतना भारी पत्थर पेट पर रक्खा है। हाथों से हीन है, एक टाँग भी टूट गई है—सारे शरीर में फुंसियाँ-सी निकल रही हैं। स्वर कितना विकराल......

और यह—

लूला और लँगड़ा—कोढ़ से शिथिल, आँख से अंधा। लाचार, बेबस कितना पुराना टाट बिछाये लेटा है—पास ही पड़े हैं कुछ चावल और बिखरी हुई हैं दो-एक पाइयाँ।......

और, और यह भी देखिए तनिक......

हाय! हाय!! दस वर्ष का बालक। दोनों पैर जाँघ पर से कट गये हैं। धड़ ही धड़ है। हाथ भी टूटा है। कितना करुण-क्रंदन, हृदयविदारक। बरबस आँखों से वृष्टि लानेवाला। अभी बेचारा दस ही वर्ष का है। न-जाने कितने वर्षों तक इस अपाहिज को जीवित रहना पड़ेगा। बाज़ आये ऐसी ज़िन्दगी से। वास्तव में ऐसे जीवन से तो......

और यह हैं कुछ दृश्य उस नगरी के, जिसे कहा जाता है साक्षात् भगवान् का स्थान। जहाँ मनों प्रसाद मन्दिर से दिन में कई वार निकलता है और धर्म के ठेकेदार उस प्रसाद की विक्री करते हैं और करते हैं इन दुखियों के साथ......और ......और......

× × ×

एक चौथा दृश्य और—

रामकुमार को मैं बचपन से जानता हूँ। आरंभ और मैं तो यही कहूँगा कि इससे भी और पूर्व प्रारम्भ से ही वह रोगी रहा है। इस वार वह अपने चौबीसवें वसंत में प्रवेश तो कर रहा है, मगर इन लम्बे-लम्बे चौबीस वर्षों के भीतर, जिसको नीरोग कहते हैं, वैसा उसने कभी आनन्द नहीं उठाया। शरीर अत्यन्त कृश और दुबला है। चेचक ने उसकी सुन्दर आकृति को और भी सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया है। ऐसी-ऐसी कड़ी बीमारियाँ उसने अपने इस छोटे-से जीवन में देखी हैं, जिनको सुनकर त्राहिमाम् कहना पड़ता है। अपने जीवन से वह निराश-सा हो चला है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है।

अपनी तेईसवीं वर्षगाँठ पर जैसे-तैसे उसने कॉलिज की निम्नतम डिगरी ली और उसी समय उसे नौकरी भी मिली तो किसी बैंक-वैंक में। [illegible] कभी किसी को भली लग ही नहीं सकती। [illegible] भगवान् ने उसे भाग्यहीन बनाकर ही इस [illegible] में उतार दिया हो। और ऐसे ही समय [illegible] पर एक और वज्रपात हुआ। सिलसिला [illegible] प्रकार है—

रामकुमार के दुखी और अंधकारपूर्ण [illegible] में प्रकाश-किरण प्रदान करनेवाला उसका [illegible] मित्र था, जो कि उसका था सहारा, अवलम्ब [illegible] सब कुछ। और जिसके कारण उसने इतने [illegible] ढेर के ढेर वर्ष किसी प्रकार काट भी दिये।

सायंकाल से प्रातः हुआ और प्रातः से फिर सायंकाल। इसी प्रकार अनेक सायंकाल और प्रातः के बाद एक दिवस रामकुमार को देखना ही पड़ा कि उसका वही सहारा, एकमात्र अवलम्बन प्रस्थान की तैयारी कर रहा है—ऐसे स्थान के लिए, जहाँ से लौटकर कभी कोई नहीं आता। हट्टा-कट्टा शरीर,... सुडौल और सुन्दर बदन और इतना सब होने पर भी इतनी शीघ्र जाने की तैयारी। अभी अवस्था ही क्या है। जिसका मुख देखकर बेचारे ने इतने वर्ष काट दिये, अपने दुखों को भूल गया, रोगी शरीर और आये दिन होनेवाले कष्टों को विस्मरण किया, अब उसी के पयान की तैयारी !!! हे भगवान !! कैसा तेरा नियम है? सुना था कि कमज़ोर और दुर्बल व्यक्ति ही शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होते हैं...परन्तु! परन्तु...यहाँ पर कितना गहरा भेद! कितना विकराल अंतर !! गुंचा बिना खिले ही मुरझा गया !!!

सृष्टि के स्टेज पर समय ने कुछ और रूपान्तर किया—

अब अभागा रामकुमार स्वयं अचेतन पड़ा है। बुखार है, खाँसी है, सिर-पीड़ा है, पेट-पीड़ा है और हृदय-पीड़ा है। डाढ़ में दर्द है, मसूढ़े सूज गये हैं। यहाँ कष्ट है, वहाँ कष्ट है। तात्पर्य यह कि समस्त शरीर ही बेचारे का असमर्थ है। कभी-कभी कराहने की ध्वनि सुन पड़ती है। सिरहाने बैठकर मैंने माथे पर हाथ रक्खा—तवे-सा जल रहा था।

उसने धीरे से नेत्र खोले—स्वतः ही।

"कैसा जी है? दवा नहीं पियोगे।"

"कहाँ तक दवा पिऊँ। अब तो बहुत ही बेचैनी है।"

उसका चेहरा गम्भीर था—मैंने इतने दिन साथ रहकर कभी उसे खिलखिलाकर हँसते नहीं देखा। आज उसने अस्वाभाविक रूप से हँसते हुए कहा—"भैया, हर एक की सीमा होती है। अब तक कष्ट सहन करते-करते ही इतना बड़ा हुआ हूँ। परन्तु यह मानसिक कष्ट......ओफ़ कितना निरर्थक जीवन......डाक्टरों के जवाब दे चुकने पर भी......अभी कितना दुख और बदा है.......ओफ़, ऐसे दुखी और शिथिल जीवन से तो........

हैं SSS !!! क्या कहा इसने? मेरा तो सिर चकराने लगा। और वह उसी प्रकार से अस्फुट स्वर से चिल्ला रहा था......

उसी समय किसी ने मेरे कानों से मुँह सटाकर कहा—निश्चय ही यह ठीक कह रहा है—संसार में ऐसे बहुत-से प्राणी हैं, जिनके लिए मृत्यु ही रामबाण है—संसार को उनसे कोई लाभ नहीं। कर्मशील जगत् में अकर्मण्यता का कोई काम नहीं × × × ×

और अब तो मुझे ऐसा भास हुआ कि कमरे का अणु-अणु—संपूर्ण वातावरण—वही शब्द प्रतिध्वनित कर रहे हैं—वही! वही !! बिलकुल वही !!!

मेरा कंठ अवरुद्ध हो चुका था—उसके सीने पर तब मैंने अपना सिर रख लिया। आँसू कम्बख़्त रुक ही नहीं रहे थे। ज्ञात हो रहा था कि हिचकी का तार अब नहीं टूटेगा—उसकी शिथिल उँगलियाँ मेरे सिर के बालों को सहला रही थीं—उन्हीं में धीरे-धीरे फिर रही थीं। उसका असीम कष्ट, उसकी अन्तःप्रज्वलित वेदना मुझसे अब नहीं देखी जा रही थी, तभी मेरे हृदय में विचार हुआ—

Oh Death! Death!! if you wish to devour at all, then devour such as these, your action then would be praiseworthy and inspiring, landable and invigorating.

और बस पटाक्षेप

हिमालय !

श्री वेदव्रत

जय, विशाल ! सितभाल !
हिमालय !!

× × ×

वसुधा के शुभ रत्नाकर !
सुन्दरता के स्मित साकार !
दूँ इस छवि पर तन-मन वार,
देव-बाल ! भू-पाल ! हिमालय !!

× × ×

भरत-भूमि के पुण्योदय !
'क्षुद्रभाव के नाशक'—भय !
मोहकता के वर संचय !
महिमामय ! स्थिर ढाल ! हिमालय !!

× × ×

तुम सच्चे गुरु, गरिमामय,
जहाँ सीखता विश्व विनय ;
चिर अतीत के यश अक्षय,
मायामय ! जग-माल ! हिमालय !!

× × ×

साधक ! हो किसमें तन्मय ?
मिला उसी की लय में लय,
है समाधि का कभी समय,
नैष्ठिक ! तापस-बाल ! हिमालय !!

× × ×

भावुक ! थाम हृदय रसमय,
अपलक देखो यह अभिनय,
विविध दृश्य, उपचय-अपचय,
ओढ़ रश्मि का जाल, हिमालय !!

× × ×

व्योम तुम्हारा सखा सरल,
लेकर कृष्ण मेघ अविरल,
पहनाता है स्निग्ध तरल,
प्रियतम शीतल शाल, हिमालय !!

× × ×

पयः पान करवाती सुमधुर,
प्रिया तुम्हारी सरिता सुन्दर,
वह माता तुम पिता प्रियंकर,
अंचल में हम बाल, हिमालय !!

× × ×

छीन लिया तुमने मेरा मन
अहो ! छली हो, या वत्सल वन !!
यहीं बिता दूँ अपना जीवन,
पकड़, ख्याल की डाल ; हिमालय !!

× × ×

यह विभूतियाँ, अनुपम अविचल,
है अनन्त विस्तृत मोहन-बल,
मन्द पवन बहता है शीतल,
बिखरी ज्योति अनोखी चञ्चल !

× × ×

मेरा कोमल मृदु अंतस्तल,
विस्मृति का परिमित है अञ्चल
कैसे भूलूँ पाऊँ मैं कल ?
वन्दन शत-शत तुम्हें हिमाचल !
अद्भुत, मायाजाल ; हिमालय !!
जय विशाल ! सितभाल ! हिमालय !!

* सम्वत् १९९२ में गुरुकुल के विद्यार्थियों की कविता में श्रीब्र० वेदव्रत की बनाई हुई सर्वश्रेष्ठ कविता, जिसके लिए उनको गुरुकुल की ओर से श्रीला० चिरंजीलालजी श्रीनगर से प्राप्त 'पुरुषार्थवती-पदक' दिया गया है ।—सं० मा०

श्रीमान् पूर्णचन्द्रजी नाहर

(संस्मरण)

आचार्य श्रीराधारमण शर्मा, शास्त्री, काव्यतीर्थ

(१)

उस दिन प्रातःकाल उठकर जल्दी-जल्दी नित्यकृत्यों से छुट्टी पाई, और 'कार' मंगवाकर काशी से आये हुए अपने कुछ साहित्यिक मित्रों को 'बुद्धगया' का दर्शन कराने चला गया। सचमुच मुझे इस बात के लिए ईषद् गर्वमिश्रित हर्ष होता है कि जहाँ मेरी कुटिया—आदर्श-भवन, गया—को पचासों महापुरुषों, नेताओं, धर्मगुरुओं, साहित्यिकों और पत्र-सम्पादकों के चरण-रज से पूत होने का पुण्य-गौरव प्राप्त है और प्रायः प्रतिदिन प्राप्त होता ही रहता है, वहाँ मुझे उन समागत सज्जनों को दिखाने के ही बहाने बराबर इस महत्तीर्थ के दर्शन का महनीय सौभाग्य भी मिलता रहता है, जहाँ बैठकर राजकुमार गौतम न केवल भगवान् बुद्ध बन गये, बल्कि जहाँ पाये हुए प्रकाश से उन्होंने विश्व के आधे से अधिक मानव के अन्तस्तम को दूर कर उसमें स्निग्ध शान्तिपूर्ण अनिर्वचनीय हर्षालोक भर दिया और आज भी जिनके तपश्चरण-पूत स्थल में श्रद्धा से नतमस्तक होने भारत, वर्मा, चीन, जापान, श्याम, सुमात्रा, मलाया आदि-आदि दूर देशों से प्रतिवर्ष लाखों सज्जन आया करते हैं। बुद्धगया के पावन दर्शन से मन को जो मधुर मोद मिला, वह तो मिला ही, 'सुप्रभातम्'-सम्पादक भाई केदारनाथ शास्त्री की ज़िन्दादिली और चुहलों से तो मार्ग भर बड़ा ही आनन्द रहा। हम लोग ११ बजते न बजते लौट आये। मैं आकर आज की आई डाक देख ही रहा था कि श्रीयुत उपाध्याय ने आकर पूछा—"आज का 'साप्ताहिक विश्वमित्र' देखा ?"

"क्यों, क्या बात है ? कोई नई ख़बर है ?"—मैंने पूछा।

"हाँ, नाहरजी की मृत्यु हो गई।"

"झूठ बोलते हो !"—मैं चिल्ला उठा। किन्तु ऐसी बातें सत्य से भी कुछ अधिक हुआ करती हैं। मैंने साप्ताहिक विश्वमित्र उठाकर देखा—सचमुच नाहरजी की मृत्यु का दुःखद समाचार था। मुझे मालूम हुआ, जैसे मेरे सामने चमकता हुआ मध्याह्न किसी जादूगर के उँगली दिखाते ही अकस्मात् निशीथ में परिवर्तित हो गया हो। सारी मित्रमंडली शोकाभिभूत हो गई। भाई रामकुमार वर्मा की यह पंक्ति मेरे सजल नयन-घनों के बीच विद्युत्पंक्ति-सी चमक उठी—

"जगती में सुख के ही समीप दुख
छिपकर करता है निवास।"

हम जानते हैं, भगवान् ने हमें गीता में बतलाया है—'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।' जन्म लेनेवाले की मृत्यु, मरनेवाले का जन्म अटल है—यही चिरन्तन सत्य है—अपवादहीन, नियममुक्त ! फिर भी हम इसे भूले रहते हैं, और जब हम अपने किसी प्रियजन की मृत्यु का संवाद सुनते हैं तो हमें जो क्षोभ, जो व्यथा, जो मनस्ताप होता है, वह तो होता ही है, हमें वह बिलकुल आकस्मिक अभवितव्य-सा जँचता है और तब तो इसकी आकस्मिकता और अभवितव्यता की मात्रा और भी बढ़ जाती है, जब वियुक्त प्राणी की

मृत्यु असामयिक होती है या हमारे स्वार्थों को धक्का लगानेवाली! श्रीमान् नारहजी की मृत्यु भी—उनके वृद्ध हो जाने पर भी—असामयिक कही जायगी। कारण? अभी हमें उनकी ज़रूरत थी, अभी उनके न होने से हमारे स्वार्थों को धक्का लगेगा, अभी उनमें यौवन, यौवन की प्रौढ़ कर्मण्यता थी। मैं यह सब सोच-सोच म्लान हो रहा था। मेरे स्मृतिपट पर कई वर्ष पूर्व के दृश्य आ-आकर प्रतिफलित हो रहे थे।

× × ×

जाड़े के दिन थे और १९३३ का साल। डाक्टरों की सम्मति से मैं अपने दुर्बल स्वास्थ्य की मरम्मत के लिए राजगृह की पार्वत्य भूमि में सपरिवार रहकर गन्धक-मिश्रित उष्णजल के सोतों का आनन्द ले रहा था। राजगृह विहार का प्रकृतिनिर्मित सेनिटोरियम है, विश्वविश्रुत नालन्दा के पार्श्व में बसा हुआ, छोटी-छोटी पर्वत-मालाओं, पर्वतों का हृदय फाड़कर निकलनेवाले ठंडे और गरम जल के मनोरम झरनों, और उपवन-सरीखे वनों से नयनाभिराम! राजगृह का महत्त्व इन्हीं में है। वह कोई नगर नहीं है; महज़ छोटा-सा गाँव। फिर भी वहाँ जाड़े के अवसर पर सैकड़ों स्वास्थ्यचिन्तकों और हज़ारों जैनों की भीड़ होती है। वह जैनों और बौद्धों का एक महान् तीर्थ भी है।

मैं वहाँ पंचायती अखाड़े में सपरिवार ठहरा हुआ था। अखाड़े के श्रीयुत महन्तजी ने अपना दोमंज़िला नया मकान मुझे पूरा का पूरा दे रक्खा था, नहीं तो मुझे भी अन्य यात्रियों की तरह या तो धर्मशाला की किसी छोटी कोठरी में अपनी दुनिया बसानी पड़ती, या फिर किसी मिट्टी के झोपड़े में रहने का सुख लूटना पड़ता।

राजगृहवास के आरम्भिक दिनों में ही धर्मशालाओं के बीच एक सुन्दर-सा बँगला देख जब उसके भी धर्मशाला होने की कल्पना कर मैं निश्चिन्त हो गया था, तो एक दिन किसी पंडे ने मुझे बताया—यह नाहरजी का बँगला है। नाहरजी बड़े अच्छे आदमी हैं, वे दो-चार दिन में ही यहाँ आनेवाले हैं, उनके आ जाने से राजगृहवासी सनाथ हो जाते हैं आदि-आदि। मैंने सुना, सोचा—होंगे कोई नाहरजी, मुझे क्या मतलब! और इन बातों को भूल गया। मैं स्वीकार करता हूँ—उन दिनों पुरातत्त्व के इस अगाध विद्वान्, सौजन्य के इस मूर्तरूप, आतिथ्य के इस व्यसनी और सहृदयता के इस स्तम्भ से मेरा धुँधला-सा परिचय था।

उसके कई दिन बाद एक दिन, मैं राजगृह के छोटे-से अस्पताल में बैठा अस्पताल के डाक्टर मि० पी० गुप्ता से गप्पें लड़ा रहा था। डाक्टर बंगाली थे, पर हिन्दी के बड़े हिमायती! सहृदय भी आला दर्जे के थे। मेरी बदक़िस्मती या ख़ुशक़िस्मती से जब उन्हें पता मिला—मैं भी साहित्यिक क्षेत्र के पाँचवें सवारों में हूँ, तो वे बड़े ही प्रसन्न हुए। फिर तो उनसे साथ छुड़ाना कठिन हो गया। उनके लिए मेरे पास एक और आकर्षण था, और वह था मेरे पास आनेवाली पत्र-पत्रिकाओं का ढेर! उन्हें अस्पताल से छुट्टी मिलती नहीं और आ जमते। ख़ैर।

गप्पों के बीच डाक्टर ने अकस्मात् कहा—"सुनते हैं, कल नाहरजी आ गये।"

"कौन नाहरजी?"—मैंने दरयाफ़्त किया।

"ओह! आप नाहरजी को नहीं जानते! कलकत्ते के पूर्णचन्द्रजी नाहर!"

"ज़ानता हूँ, वे पुरातत्त्व के विद्वान् हैं।"

"बस? अरे, वह पुरातत्त्व के विद्वान् तो हैं ही, उससे कहीं अधिक सौम्य, सहृदय और सुशील हैं। मेरा दावा है—जो भी एक बार उनसे मिल लेगा, वह उनके सौजन्य का आजन्म क़ायल रहेगा। वह मनुष्य नहीं, देवता हैं। यहाँ उनका अपना बँगला है; वे जाड़े भर प्रायः यहीं रहते हैं।"

झूठ क्यों बोलूँ—मुझे उस समय डाक्टर की बातें अविश्वसनीय नहीं तो अत्युक्तिपूर्ण ज़रूर मालूम हुईं।



फिर भी मैंने कहा—"तो कल चलकर मिला जाय।"

"ज़रूर"—डाक्टर ने कहा, और दूसरे दिन प्रातः ९ बजे हम लोग नाहरजी के बँगले पर पहुँचे। बँगला बड़ी ही सुरुचि से बना हुआ है। सामने काफ़ी मैदान है। फूल लगे हुए हैं। बँगले के बरामदे और मैदान में यथास्थल कुछ शिला-खंड और मूर्तिखंड रक्खे हुए हैं, जो नवागन्तुक को तुरन्त बता देते हैं, यह किसी पुरातत्त्व-विशारद का वासस्थान है। हम लोग कमरे में घुसे। कमरे में एक ओर पुस्तकों से भरी आलमारियाँ, और दूसरी ओर एक चौकी पर प्राचीन शिलालेख और ताम्रपत्र रक्खे हुए थे। पुरानी इमारतों, भग्नावशेषों, जंगलों और पहाड़ों के चित्र कमरे की शोभा बढ़ा रहे थे। कुछ चित्र नालन्दा-सम्बन्धी भी थे। कमरे के अन्दर एक व्यक्ति बैठा कुछ लिख रहा था—गेहुँआ रंग, ५० के ऊपर की अवस्था होने पर भी तेजस्वितापूर्ण मुखमंडल, नाटा क़द, और आकर्षण भरी बड़ी-बड़ी आँखें! यही थे, अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त, पुरातत्त्व के महान् मर्मज्ञ विद्वान् श्रीपूर्णचन्द्रजी नाहर एम्० ए०, बी० एल्०, एम्० आर० ए० एस्० आदि। हम लोगों के पैर की चाप सुन उन्होंने अपनी चश्मा-लगी आँखें ऊपर उठाईं और क़लम रखते हुए बोले—"अहा, डाक्टर साहब! आइए, आपने क्यों कष्ट किया, मैं तो आप लोगों से मिलने आता ही। कहिए, कुशल तो है?"

कुशल-प्रश्नोत्तर के बाद ही नाहरजी ने मेरी ओर संकेत करते हुए पूछा—"आपका परिचय?" डाक्टर ने परिचय देना प्रारम्भ किया। आज मैं मानता हूँ—उस दिन श्रीनाहरजी का परिचय देने में उन्होंने ज़रा भी अत्युक्ति से काम नहीं लिया था, वह तो आवश्यकता से भी कम कहा गया था। हाँ, श्रीमान् नाहरजी को मेरा परिचय देने में उन्होंने—मेरे रोकने पर भी—अत्युक्ति से काम ले ही लिया। उन शब्दों को सुन मैं संकोच के भार से दबा जा रहा था।

डाक्टर की बातों की समाप्ति के साथ ही श्रीमान् नाहरजी के करकमल मुकुलित हो मेरी तरफ़ उठ गये मैं ज़रा लज्जित हो गया।

नाहरजी ने मुझसे पूछा—"कब आये, कहाँ ठहरे हैं?"। मैंने सारी बातें बता दीं। उसके बाद जो बातें आरम्भ हुईं, तो दो घंटे तक बातें होती रहीं। मैंने देखा नाहरजी पुरातत्त्व के ही कोरे विद्वान् न थे। वे बहुज्ञ थे, उनकी प्रतिभा बहु-मुखी थी। उनके मुख से चन्दबरदाई से आरम्भ कर भूषण, देव, बिहारी और आज के हरिऔध, गुप्त, प्रसाद और पन्त के युग तक की कविताओं का क्रमिक इतिहास सुन मैं जितना विस्मित हुआ, उतना ही आनन्दविभोर भी। मैं समझता हूँ, इतना विस्तृत और गवेषणात्मक अध्ययन अधि-कांश कविवरों का भी न होगा। जैनदर्शन की तो उनमें विलक्षण विज्ञता देखी। आपने शायद इस पर एक पुस्तक भी लिखी है। जिस समय मेरे श्वशुर महामहोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा एम्० ए० साहित्याचार्य-प्रणीत सप्तम दर्शन पर आपने अपने विचार प्रकट करना प्रारम्भ किया, मुझे विदित हुआ—आपने जैन-दर्शन के साथ ही प्राचीन हिन्दू-दर्शन का भी मननात्मक दर्शन किया है। साढ़े ग्यारह बज रहे थे। मेरे भोजन का समय बीत रहा था। इधर डाक्टर की अँतड़ियाँ भी कुलकुला रही थीं, अतः मैंने जाने की आज्ञा चाही, तो वे वहीं भोजन करने का ज़बर्दस्त आग्रह करने लगे। अन्ततः प्रबल अनुरोध और संध्या में पुनः मिलने की प्रतिज्ञा करने के बाद अनुमति मिली। हम लोग लौटे।

(२)

घर आकर भोजन के बाद मैं आज के समा-चार-पत्र पढ़ ही रहा था कि नौकर ने आकर ख़बर दी—कोई नये सज्जन मुझसे मिलने को बाहर खड़े हैं। यह बेवक़्त का मिलना! फिर यह हैं कौन जो यहाँ—जहाँ अभी मेरे मित्रों और परि-चितों की संख्या एक दहाई के समीप ही है—



मुझसे मिलने आये हैं ! मैं उठकर बाहर आया। देखा, देखकर मेरे हर्ष और विस्मय की सीमा न थी, स्वयं श्रीमान् पूर्णचन्द्रजी नाहर खड़े मुस्किरा रहे थे।

झटपट उन्हें ले जाकर कमरे में बैठाया, पूछा—"आपने स्वयं कैसे कष्ट किया, और इस समय ?"

"हाँ, आपको असमय कष्ट दिया, क्षमा करेंगे। संध्या में आपने पुनः आने का वचन दिया है—यही याद दिलाने आया हूँ। ऐसा न हो आप भूल जायँ। एक बात और, इस समय तो मेरे अनुरोध को आपने ठुकरा दिया, यदि संध्या में भी ऐसा ही हुआ तो मेरी आत्मा को बड़ी चोट लगेगी।"

मैं उनके सौजन्य पर मुग्ध था। इतने बड़े सम्पन्न विद्वान् में इतनी अधिक विनम्रता देख कई वर्ष पूर्व पढ़ा हुआ किसी कवि का एक श्लोक मेरे स्मृति-प्रांगण में आ कूदा—

"लक्ष्मीर्यत्र न गीस्तत्र यत्र गीस्तत्र नो रमा।
ते यत्र विनयो नास्ति, सा च सा च स च त्वयि॥"

(जहाँ लक्ष्मी निवास करती हैं, वहाँ सरस्वती नहीं रहतीं। यदि कभी किसी तरह दोनों ने एक ही स्थान चुन भी लिया, तो विनय तो वहाँ रहेगा ही नहीं। उसका उन दोनों से पुराना द्वेष है, किन्तु आश्चर्य है, इन तीनों ने ही आपको अपना आश्रय बना रक्खा है।)

मैंने नाहरजी को यह श्लोक सुनाया तो वे अट्टहास कर उठे। बोले—"बनाने लगे न ? तो मैं चलता हूँ। कई ज़रूरी कामों को छोड़कर आया।"

"आपने व्यर्थ ही कष्ट किया। मैं तो आता ही ! भला आप जैसे महान् की अधिकाधिक संगति कौन न चाहेगा और यदि आपने मुझे पहले दर्जे का भुलक्कड़ ही समझ लिया था, तो याद दिलाने किसी आदमी को भेज देते, या एक स्लिप लिख दी होती।"—मैंने कहा। "आप मुझे आदमी नहीं समझते ?" उन्होंने हँसते हुए कहा—"धूप बड़ी प्यारी मालूम हुई, इसलिए स्वयं टहलता चला आया। आप बिलकुल पास ही तो हैं।"

नाहरजी जाने को हुए तो मैंने पूछा—"आपका सत्कार मैं, एक अकिञ्चन, किस तरह करूँ ?"

"अपनी कृपा द्वारा"—उन्होंने छूटते ही कहा।

"वह तो मैं देना नहीं, पाना चाहता हूँ। पान मँगवाऊँ ?"

"खाता ही नहीं, क्षमा करेंगे।"

अन्ततः कुछ इलायची लेकर वे चले गये। मैं उन्हें थोड़ी दूर पहुँचा आया। संध्या के बाद मैं उनके यहाँ पहुँचा। थोड़ी देर इधर-उधर की बातों के बाद मैं भोजन करने बैठा। भोजन के लिए जितनी तरह की चीज़ें और जितने परिमाण में लाई गईं, वे मेरे-जैसे अल्पाशी के पाँच-छः शाम के लिए पर्याप्त थीं। अत्यन्त हठ के बाद मैं उनमें से कुछ चीज़ें निकाल सका। भोजन की चीज़ें जितनी स्वादु और मधुर थीं, वह तो थीं ही, जिस प्रेम से बैठकर वे खिला रहे थे, वह और भी मधुर और चिरस्मरणीय था। भोजन के बाद कुछ देर और ठहर मैं घर लौट आया। यहाँ आने पर पता लगा—नाहरजी ने परिवार भर के लिए खाने की चीज़ें भेजी हैं।

(३)

राजगृह में सबसे बड़ा दोष यह है कि वहाँ शारीरिक ख़ुराक यथेष्ट मिल जाने पर भी मस्तिष्क का ख़ुराक बिलकुल नहीं मिलती। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के एक 'रद्दीएष्ट' और नाममात्र के असफल पुस्तकालय को बाद देने के बाद न तो वहाँ और कोई पुस्तकालय है, और न वहाँ कोई पत्र-पत्रिका ही मिलती है, जिससे वहाँ जानेवाले सज्जन अपने अवशिष्ट समय का कुछ उपयोग कुछ मानसिक मनोरंजन कर सकें। यह तो ख़ैरियत थी, मेरे पास कुछ पत्र-पत्रिकाएँ आ जाती थीं, अन्यथा समय काटना असम्भव हो जाता। श्रीनाहरजी से परिचय होने के बाद तो इनकी और भी कमी नहीं रही। उन्



वैज्ञानिक पुस्तकालय से मस्तिष्क जितना भोजन प्राप्त करता, उससे कहीं अधिक उनकी बातों से मिला करता !

जब तक मैं वहाँ रहा, १०-१५ दिन ही ऐसे बीते होंगे, जिस दिन मैं उनसे नहीं मिला और इसका कारण और कुछ नहीं, उनका स्वयं मेरे डेरे पर आ जाना ही होता था। उनकी सज्जनता, उनकी विद्वत्ता का जितना अधिक प्रभाव मुझ पर पड़ा, उतना ही उनकी कर्मण्यता का भी पड़ा। वृद्ध होने पर भी मैंने उन्हें राजगृह में ७-८ घंटे नित्य और कभी-कभी तो १५-१६ घंटे मानसिक श्रम करते देखा और तारीफ़ यह कि वे कलकत्ते से राजगृह जाड़े में स्वास्थ्य सुधारने आते थे। उन दिनों श्रीमान् नाहरजी पुरातत्त्व-सम्बन्धी अपनी चौथी पुस्तक लिख रहे थे, जो मथुरा पर लिखी जा रही थी। पुरातत्त्व विषयक उनकी तीन मोटी-मोटी पुस्तकें पहले ही निकल चुकी थीं। मुझे प्रसन्नता है, उस पुस्तक के लेखन में मुझे भी थोड़ा कुछ समय लगा उनकी सेवा करने का सुअवसर मिला था।

एक दिन प्रातःकाल मैं बैठा कुछ लिख रहा था कि श्रीमान् नाहरजी आ पहुँचे। आते ही आपने पूछा—"आप नालन्दा देख चुके ?"

"अभी कहाँ ! सोच रहा हूँ, परसों जाऊँगा।"

"परसों ठीक न होगा, मुझे अवकाश नहीं है। कल ही चलिए, मैं गाइड बनकर साथ चलूँगा। मेरे चलने से आप कुछ अच्छी तरह देख सकेंगे और मुझे भी आपकी सेवा का कुछ मौक़ा मिल जायगा।"

श्रीनाहरजी का यह मेरे साथ अत्याचार (अति+आचार) था। मैंने रोका—"देखिए, आप मुझसे विद्यावयोवृद्ध हैं, मेरे प्रति ऐसे शब्द और वह भी बारम्बार आपको शोभा नहीं देते। मैं आपके समक्ष बालक हूँ—मुझे यों लज्जित न किया करें।" वे 'वाह' कहकर रह गये। दूसरे दिन हम लोग नालन्दा चल पड़े।

नालन्दा—राजगृह से आठ मील दूर उत्तर की ओर है। भारतवर्ष के स्वर्णयुग—गुप्तकाल—में इसकी स्थापना हुई थी। यही वह हमारा विश्वविद्यालय था, जहाँ पढ़ने भारत के ही नहीं, चीन, जापान, तुर्किस्तान, सिंहल, सुमात्रा आदि देशों के विद्वान्—छात्र नहीं—आया करते थे, और जहाँ केवल प्रोफ़ेसरों की संख्या १४०० थी। नालन्दा के इतिहास में भारतवर्ष के लगभग सात सौ वर्षों का इतिहास सोया हुआ है; और इसके खण्डहरों में हमारी वह प्राचीन विभूति, सभ्यता और संस्कृति धूलिधूसरित पड़ी है, जिसके अणुमात्र से भी हम उन स्वार्थपर निन्दकों से अपनी महत्ता बलात् स्वीकार करा सकते हैं, जो हमारी प्राचीन समृद्धि, सभ्यता और संस्कृति के साथ ही हमारे विज्ञान पर भी मूर्खतापूर्ण ताने कसते हैं। खुदाई में जैसे-जैसे विशाल सुन्दर और कल के बने-से हज़ारों छात्रावास, अध्यापन के कमरे, पुस्तकालय, भोजनागार आदि निकले हैं, उन्हें देख कोई भी सहृदय अपने गत वैभव की याद में दो आँसू गिराये विना नहीं रह सकता। हम मूर्ख असभ्य और निर्धन समझे जानेवाले काले ग़ुलाम, अपने महाप्रभुओं के शुभागमन के पूर्व क्या थे—इसे देखना हो तो कोई नालन्दा में देखे।

नालन्दा के गौरवपूर्ण इतिहास और उसके दर्शनीयतम स्थानों के संक्षिप्त वर्णन के लिए भी इस पत्र के २०-२५ पृष्ठ चाहिए, अतः उसे यहीं छोड़ता हूँ।

सचमुच नाहरजी की कृपा के कारण ही मैं नालन्दा की प्रत्येक वस्तु, और उसका नवनिर्मित संग्रहालय अध्ययनात्मक दृष्टि से देख सका। हम लोग रात्रि में राजगृह लौट आये।

उसके बाद मैं प्रायः दो सप्ताह और वहाँ रहकर लौट आया। श्रीमान् नाहरजी-जैसे विद्वान्, उदार और सहृदय सज्जन का साथ छूटने का मुझे मार्मिक दुःख था; इच्छा थी, कुछ दिन और साथ रहता, पर घर के कई आवश्यक कार्यों ने मुझे इससे



वञ्चित रक्खा। श्रीमान् नाहरजी राय हरिप्रसाद-लाल साहब के कुर्कीहार गाँव की खुदाई में निकली बुद्धमूर्तियों के देखने के लिए मेरे साथ ही गया आनेवाले थे, पर मेरे पूज्य पिताजी ने सूचना दी—अब रायसाहब के पास मूर्तियाँ नहीं रहीं, अतः उनका आना भी रुक गया।

नाहरजी के पाण्डित्य से अधिक उनकी शालीनता और सौजन्य ने मुझे अपना क्रीतदास बना रक्खा था, और जहाँ उन क्षणों की मधुर संस्मृति मेरे प्राणों के अजिर में प्रसन्नता, भावप्रवणता और उत्साह की राशि बिखेरती रहती थी, आज वह मार्मिक वेदना का उपहार दे रही है। एक दिन नाहरजी अपने साहित्यिक मित्रों का पत्र मुझे दिखला रहे थे। मैंने देखा—हिन्दी के कृतविद्य और लब्धप्रतिष्ठ प्रायः समस्त विद्वानों के अतिरिक्त योरप के भी प्रायः दो दर्जन विख्यात विद्वानों के घनिष्ठतापूर्ण पत्र थे। हिन्दी-साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी उनके प्रति बड़ा सम्मान रखते थे, और साहित्यमहारथी एवम् ब्राह्मण होने पर भी नाहरजी को सदा 'श्रद्धेय' और 'प्रणाम' ही लिखा करते थे।

(४)

श्रीमान् नाहरजी ने गया लौटने के समय मुझसे प्रतिज्ञा करा ली थी, मैं शीघ्र ही कलकत्ते आकर उनसे मिलूँगा, और उनके सुप्रसिद्ध नाहर-म्यूज़ियम को देखूँगा; किन्तु आये अभी दो मास भी नहीं बीते थे कि १५ जनवरी, १९३४ का प्रलयंकर भूकम्प हुआ। बिहार में मृत्यु के वीभत्स ताण्डव से चारो ओर हाहाकार और उथल-पुथल और प्रलय मच गया। भूकम्प के तीसरे दिन प्रातः ही मुझे नाहरजी का अर्जेण्ट तार मिला। उन्होंने मेरे परिवार का कुशल पूछा था। नाहरजी की अहैतुक, पर असीम औदार्यपूर्ण प्रीति का यह ज्वलन्त उदाहरण था, जिसकी याद आज हृदय को बुरी तरह कचोट रही है।

भूकम्प के प्रायः एक मास बाद मैं एक दिन अकस्मात् किसी कार्यवश कलकत्ते चला गया—महज़ दो दिन के लिए! दूसरे दिन जब मैं श्रीनाहरजी से मिलने गया, और कुशल-प्रश्न के बाद बतलाया—मैं आज रात में ही चला जाऊँगा, तो वे बड़े नाराज़ हुए। कहने लगे तो फिर आप आये ही क्यों? इससे कहीं अच्छा था, आप मुझसे मिले विना ही कलकत्ते से चले जाते। मुझे उनके अनुरोध से एक दिन और रह जाना पड़ा। उस एक दिन के आतिथ्य में भी उनका सौजन्य और भक्तिपूर्ण स्नेह अद्वितीय चिरस्मरणीय रहा।

उस दिन पहली बार मैंने नाहरजी के साथ नाहर-म्यूज़ियम देखा। नाहर-म्यूज़ियम को देख मुझे ो अनिर्वचनीय आनन्द मिला, वह तो मिला ही, खेद भी कम नहीं हुआ। कारण इस यात्रा के पूर्व मैं १३-१४ बार कलकत्ते गया था, पर हर बार इसकी उपेक्षा करता आया था। नाहर-म्यूज़ियम को श्रीमान् नाहरजी ने अपने स्वर्गीय भ्राता श्रीकुमारसिंहजी नाहर की स्मृति में इसके अपने भव्य भवन में स्थापित किया है, और यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि यह म्यूज़ियम साहित्य, कला, पुरातत्त्व और इतिहास के प्रेमियों के लिए एक तीर्थ ही है। इस म्यूज़ियम में अपने कठिन अध्यवसाय, प्रचुर धनव्यय और सुदृढ़ लगन के फलस्वरूप श्रीनाहरजी ने जैसी-जैसी बहुमूल्य दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण प्राचीन और अर्वाचीन वस्तुओं का संकलन किया है, वैसा संकलन भारत के एकाध म्यूज़ियम में ही कदाचित् होगा। इस म्यूज़ियम में प्राचीनकालीन नाना प्रकार की सोने, चाँदी, स्फटिक आदि बहुमूल्य पत्थरों की मूर्तियाँ, शिलालेखों, चित्रों, सिक्कों, अस्त्र-शस्त्रों, आभूषणों, बर्तनों, दीपों तथा कला और पुरातत्त्व-सम्बन्धी अन्यान्य बहुत-सी वस्तुओं के अतिरिक्त, प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों का भी एक सुन्दर विशाल और बहुमूल्य संग्रह है; जिसमें जैनधर्म की प्रायः समस्त प्रकाशित और अप्रकाशित पुस्तकें संगृहीत हैं। संग्रहालय में कुछ अत्यन्त बहुमूल्य प्राचीन

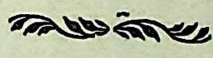
...ग्रन्थ भी हैं। बौद्धधर्म की एक पुस्तक बर्मा से प्राप्त हुई है, जिसमें सोने के १५ पत्र हैं। प्रत्येक-पत्र पर ६ पंक्तियाँ हैं, और इसकी लिपि पाली है। प्रत्येक पत्र २१ इंच लम्बा और ६ इंच चौड़ा है। पुस्तक में कई सुन्दर चित्र भी हैं। इसी तरह और भी कई बहुमूल्य पुस्तकें हैं।

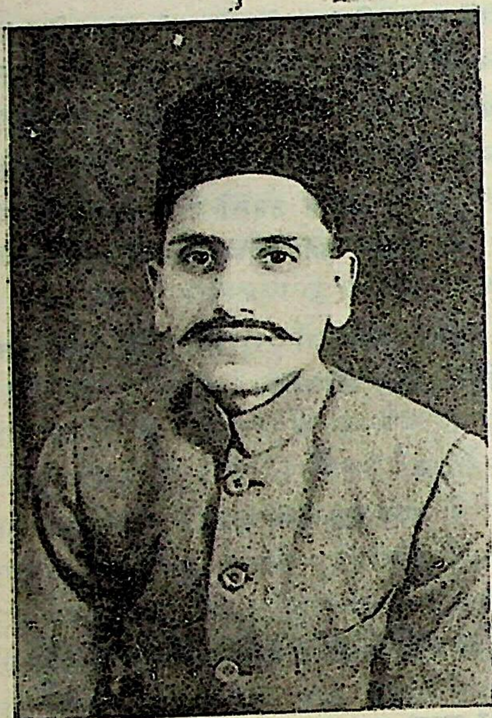
म्यूज़ियम में साढ़े तीन सौ के लगभग प्राचीन चित्रों का भी संग्रह है। जिनमें कुछ अभ्रक पर, कुछ शीशे पर, कुछ कपड़े पर, और एक चमड़े पर बना हुआ है। चित्रों में इण्डोपर्शियन, पर्शियन, इण्डोचाइना, मुग़ल, राजपूत, लखनऊ, बंगाल और बिहार आदि सभी क़लमों के चित्र हैं। प्राचीन, तत्कालीन और अर्वाचीन चित्र अलग-अलग एकत्रित हैं। एक चित्र मुग़लसम्राट् शाहजहाँ का अपनी प्रेयसी के साथ नाचते हुए का है। आज-तक भारत के किसी और चित्रसंग्रह में ऐसा चित्र नहीं देखा गया। नाहर-म्यूज़ियम के साथ एक पुस्तकालय और भी है, जिसका नाम 'गुलाब-कुमारी-पुस्तकालय' है। इसका नामकरण श्रीमान् नाहरजी ने अपनी स्वर्गीया माता के नाम पर किया है। नाहर-म्यूज़ियम और पुस्तकालय के अति संक्षिप्त वर्णन के लिए भी कम से कम २५-३० पृष्ठ चाहिए। भारत ही नहीं, इँगलैण्ड, जर्मनी, डेनमार्क, नारवे, अमेरिका, इटली, जेकोस्लोवाकिया, चीन, जापान, रूस आदि के बड़े-बड़े विद्वान् और पर्यटक इस म्यूज़ियम को देख इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा कर चुके हैं। इस म्यूज़ियम के संस्थापक, संग्राहक, सञ्चालक और प्रबन्धक एक-मात्र नाहरजी हैं—हा हन्त—थे।

श्रीनाहरजी पर लक्ष्मी और सरस्वती का समान स्नेह था। आपके चार पुत्र और पाँच पुत्रियाँ हैं, जो सभी सुशिक्षित, सौजन्यवान् और सुसंस्कृत हैं। आशा ही नहीं, विश्वास है, श्रीयुत विजयसिंहजी नाहर आदि आपके सुपुत्र अपने पिता के इस कीर्तिस्तम्भ संग्रहालय की रक्षा-वृद्धि के लिए सदा सचेष्ट और जागरूक रहेंगे।

भूल गया था, मिलन-दिनों की उस स्निग्ध विभा के बाद विभावरी का यह तमस्तोम भी आने को था! आज जब सौजन्य-सिन्धु नाहरजी की याद आती है, तो मन रो पड़ता है। हृदय के कोने-कोने में वेदना चीख उठती है। आँसू हृदय के सन्ताप को धोने का असफल प्रयास करने लगते हैं।

किन्तु नहीं, नाहरजी जीवित हैं, जीवित रहेंगे! कीर्तिर्यस्य स जीवति।





मेरी जापान-यात्रा तथा जापानी जीवन पर विहंगम दृष्टि

सेठ लक्ष्मणप्रसाद बैंकर और रईस

गत ग्रीष्म-ऋतु में मैंने जापान जाने का विचार किया और तदनुसार २८ मई १९३६ को बम्बई से रवाना हुआ। इन दिनों अरब सागर में तरंगें कुछ अधिक वेग से उठा करती हैं, जिनके कारण जहाज़ प्रायः कुछ हिलता रहता है। प्रारम्भ के दो दिन तक कुछ चक्कर से मालूम होते रहे। अन्य यात्रियों से, जो पहले भी समुद्र-यात्रा कर चुके थे, पूछने पर ज्ञात हुआ कि ऐसी दशा कुछ ही समय तक रहती है, यह जानकर कुछ शान्ति हुई। दो दिन के पश्चात् यात्रा बड़ी सुगमता से व्यतीत होने लगी। अन्य-अन्य देशों के पुरुषों से मिलना और उनसे बातचीत करना और उनके रहन-सहन को देखना, उनके साथ खेल इत्यादि में भाग लेना, यह सब मनोरंजन के साधन थे। मांस खानेवालों के लिए जहाज़ पर काफ़ी अच्छा प्रबन्ध था ही। मुझे यह संदेह था कि जहाज़ पर शायद उन लोगों के लिए, जो मांसहारी नहीं हैं, खाने का संतोषजनक प्रबन्ध न होगा—किन्तु उनके लिए भी अच्छा प्रबन्ध था। जो कमी मालूम हुई, उसको जहाज़ के स्टुअर्ड ने बड़ी तत्परता से पूरा कर दिया। जहाज़ के भोजन-प्रबन्धकों ने भोजन में किसी प्रकार की कमी नहीं रहने दी।

कोलम्बो (Colombo) के बन्दरगाह पर जहाज़ लगभग एक दिन ठहरा। यहाँ पर केवल मुख्य मुख्य स्थानों के ही देखने का समय मिला, जैसे अजायबघर, बुद्धजी का मन्दिर, लेत्रीनियाँ पहाड़, विक्टोरिया पार्क आदि। यहाँ के भारतवासी प्रवासी अधिकतर व्यापारी हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार का व्यापार करते हैं। नगर के चारों ओर हरियाली ही हरियाली है। रेशम व जवाहिरात की दुकानें और बड़े-बड़े दफ़्तर प्रायः बन्दरगाह के समीप हैं। यहाँ के निवासी अधिक संख्या में नंगे पैर ही दिखाई देते हैं।

कोलम्बो (Colombo) से चलकर जहाज़ पिनांग (Penang) पहुँचा। यह पहाड़ी टापू है। इसके चारों ओर आबादी है और हरियाली ही



होती है। मोटरगाड़ी से इस टापू के चारों ओर टेढ़े-मेढ़े मार्गों से जाना पड़ा। चित्त अत्यन्त ही प्रसन्न था। यहाँ पर चीनी लोग भी रहते हैं। उनका एक सर्पों का (Snake Temple) मन्दिर बहुत ही प्रसिद्ध है। मन्दिर के प्रत्येक स्थान पर सांप ही सांप दृष्टिगोचर होते हैं और चीनी लोग इन्हीं की पूजा करते हैं। एक दूसरा मन्दिर चीनी लोगों का है, जो बहुत बड़ा है। यहाँ पर मगर, सुअर और भाँति-भाँति के जानवर हैं, जिनकी चीनी लोग पूजा करते हैं। भगवान् बुद्ध की मूर्त्ति भी है। ये सब जानवर पवित्र और शुद्ध समझ-कर मन्दिर में रक्खे गये हैं। इनको खाने के काम में भी लाते हैं। शायद खाद्य पदार्थों में समझे जाने के कारण ही वे शुद्ध एवं पवित्र माने गये हैं। यह कोई बड़ा व्यापारिक स्थान मालूम नहीं पड़ता।

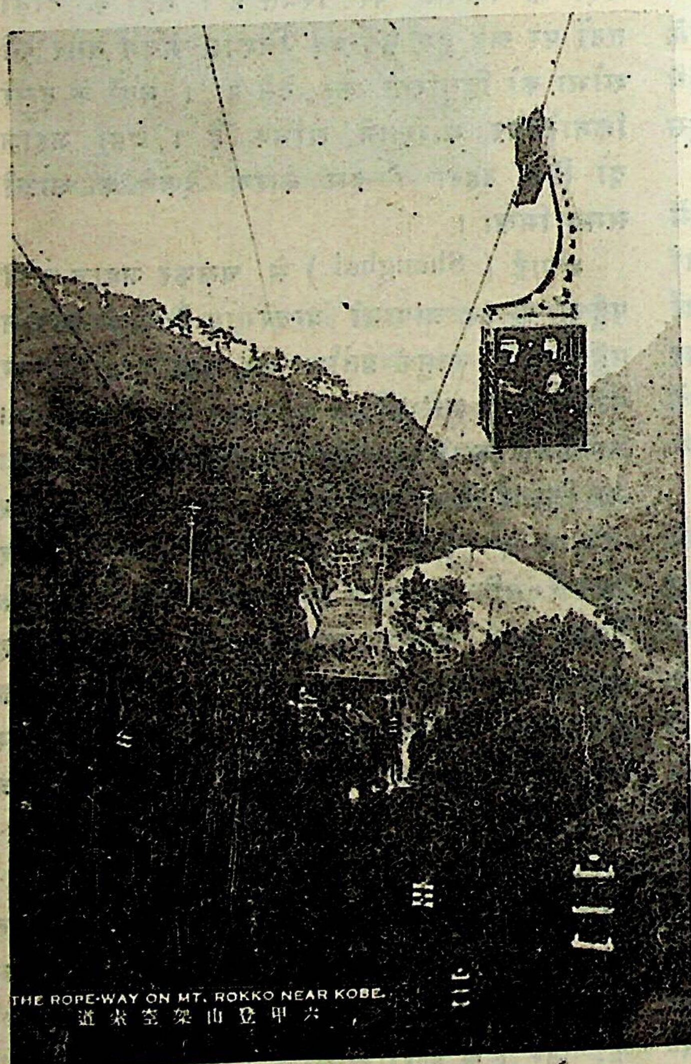
सिंगापुर (Singapore) पूर्वी बन्दरगाहों में मुख्य है। इस स्थान पर अनेक जहाज़ और किश्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। नगर बहुत ही सुन्दर है। यहाँ पर एक अजायबघर भी है। चीनी लोग यहाँ पर बहुत बड़ी संख्या में बसते हैं। समुद्रतट पर खड़े हुए विशाल भवन एवं अट्टालिकाएँ बड़ी ही रम-णीय एवं मनोहर प्रतीत होती हैं।

हाँगकाँग (Hongkong) एक पहाड़ी टापू है, जो ब्रिटिश-सरकार के अधीन है। बन्दर के समीप का पहाड़ी दृश्य अति ही रमणीय एवं मनोरंजक है। यहाँ के उपवन एवं पार्क बड़े ही मनोरंजक हैं। पहाड़ी पर जाने के लिए ट्राम जाती है। साधारणतया देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि ट्राम चक्करदार रास्ते से पहाड़ी की चोटी पर पहुँचती होगी। किन्तु यह बात नहीं है। वह पहाड़ी पर बिलकुल सीधी और पहाड़ी पर जाती है। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर स्टेशन हैं। ऐसी ट्राम स्विट्ज़रलैंड में पाई जाती हैं। अँगरेज़ों ने इस नगर को बहुत ही सुन्दर बनाया है। इस बन्दर पर बाहर से आने-वाली किसी वस्तु पर किसी प्रकार का कर नहीं है—इसी कारण यहाँ वस्तुएँ सस्ती मिलती हैं। यहाँ भारतीय व्यापारी भी हैं। पुलिस में पंजाबी सिक्ख ही अधिक हैं। जहाज़ से इस नगर का दृश्य रात्रि के समय अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है। पर्वत के शिखर पर बराबर आबादी होने के कारण चारों ओर प्रकाश दिखाई देता है।

चीन का दूसरा बन्दरगाह शंघाई (Shan-ghai) है। यह नगर कई विदेशी जातियों के अधीन है, और अपने-अपने भाग में अपना-अपना प्रबन्ध है। अँगरेज़ी भागों में सिक्ख खड़े दिखाई देते हैं। यह बड़ा बन्दरगाह है। यह ह्विंगपो (Whingpoo) नदी के किनारे पर स्थित है। नदी के दोनों तटों पर खड़े हुए बड़े-बड़े विशाल भवन नगर की शोभा को द्विगुणित कर देते हैं। नदी के दूसरे किनारे पर कारख़ाने अधिक हैं। यहाँ जहाज़ दो दिन ठहरा। इस कारण देखने का काफ़ी समय मिला।

शंघाई (Shanghai) से चलकर जहाज़ कोबे पहुँचा। यह जापानी बन्दरगाह है। मैं जापान पहुँचने की उत्सुक प्रतीक्षा कर रहा था। बन्दर पर जापानी क़ुलियों का पहनावा एक-सा ही था। यह बात किसी अन्य बन्दरगाह में नहीं थी। मेरा यह विचार कि जापानी बड़े साफ़-सुथरे रहते हैं, और भी दृढ़ हो गया। हम कोबे होटल में जाकर ठहरे। किन्तु वहाँ शाकाहारी भारतीयों के लिए कोई प्रबन्ध नहीं था। अन्त को यह सुनकर कि वहाँ हिन्दुओं के लिए भी होटल है, बड़ी प्रसन्नता हुई। इसी में अधिकतर भारतवासी ठहरते हैं। इसका नाम ईस्टर्नलॉज (Eastern lodge) है। भोजन की सब सुवि-धाएँ हैं। यहाँ पर भारतवासियों की संख्या लग-भग १८०० के है। कुछ तो बाल-बच्चों सहित रहते हैं, जिनमें अधिकतर कमीशन-एजेन्ट का काम करते हैं। अर्थात् जो वस्तुएँ भारत आती हैं, उन्हीं के द्वारा आती हैं। कुछ अपनी इच्छा-नुसार अन्यान्य कार्य करते हैं। यहाँ एक भारतीय

क्लब भी है। यहाँ हिन्दू-मुसलमान विना किसी भेद-भाव के एकता से रहते हैं। आजकल भारतीय क्लब के सभापति एक मुसलमान सज्जन हैं। जापान में हिन्दू-मुसलमानों में कोई भी द्वेष-भाव नहीं है। कोबे के मुख्य बाज़ार में पुरुष और स्त्रियाँ सायंकाल को बहुत बड़ी संख्या में घूमती हैं। रात्रि के समय रंग-बिरंगी रोशनी अतीव सुन्दर प्रतीत होती है। ओसाका (Osaka) जापान का सबसे बड़ा व्यापारिक शहर है और कोबे के समीप ही है। ओसाका (Osaka) जाते वक़्त कुछ न कुछ आबादी मिलती है। मेरा अनुमान है कि कुछ समय के बाद ये दोनों नगर एक ही हो जायँगे। ओसाका और कोबे के बीच में ट्रैफ़िक (Traffic) बहुत ही अधिक है—सड़क पर भीड़ सदैव रहती है—दस-बारह मिनट के अन्तर से विजली की गाड़ियाँ इधर-उधर आती-जाती हैं—ट्रामों और मोटरों का तो कहना ही क्या। वहाँ के ट्रैफ़िक (Traffic) को देखकर बुद्धि भ्रान्त-सी हो जाती है। ओसाका में थोकबन्द माल बेचनेवाली दूकानें अधिक हैं। नगर के चारों ओर असंख्य कारख़ाने हैं। यहाँ के स्टोरों को देखने से अचम्भा होता है। हर प्रकार का माल आठ-आठ दस-दस मंज़िलों के स्टोरों में भरा पड़ा है। भिन्न-भिन्न वस्तुओं का प्रबंध अलग-अलग है। कोबे और ओसाका के समीप ही एक रोप ट्रेन (Rope train) है, जो एक पहाड़ी की चोटी तक जाती है। आश्चर्यजनक वस्तु है। यह पृथ्वी पर नहीं चलती, किन्तु लटकती हुई आती-जाती है। एक बार १५-२० मनुष्य जा सकते हैं। पहाड़ की चोटी से नगर का दृश्य बड़ा ही सुन्दर और मनोरंजक दिखाई देता है।



रोप ट्रेन का दृश्य

कियोटो (Kyoto) जापान की पुरानी राजधानी है और प्राचीन काल के महल इत्यादि भी मौजूद हैं। यहाँ आजकल फ़ौज रहती है। नगर में एक सुन्दर भवन है, जिसमें प्राचीन काल के चित्र प्रदर्शिनी के रूप में रक्खे हुए हैं। इस भवन में लकड़ी के बड़े खम्भे लगे हुए हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में जापान की बड़ी-बड़ी इमारतों में लकड़ी ही काम में लाई जाती थी। नगर उतना सुन्दर नहीं है, जितना ओसाका अथवा कोबे। कियोटो (Kyoto) के पास एक आप नारा नगर है। यह भी किसी समय जापान की राजधानी रह चुका है। यहाँ एक उपव बहुत ही प्रसिद्ध है, जिसमें सैकड़ों हिरन पाये जाते हैं। जापान का सबसे बड़ा बु

भगवान् का मन्दिर भी यहीं पर स्थित है, जिसमें महात्मा बुद्ध की विशाल मूर्ति है।

याकोहामा (Ukohama) जापान का द्वितीय बन्दरगाह है। यहाँ पर भी कुछ भारतीय हैं, जो कमीशन-एजेन्ट का काम करते हैं। किंतु इस शहर में कोई हिन्दुस्तानी होटल नहीं है। नगर बड़ा सुन्दर है। याकोहामा से कुछ दूर जापान की राजधानी टोकियो (Tokiyo) है—संसार के नगरों में इसका दूसरा नम्बर है। Traffic की तो हद ही नहीं है। नये ढंग के भवन ही अधिक संख्या में हैं। सम्राट् का सुन्दर भवन नगर के समीप ही है। इस नगर में सब आवश्यक सामग्रियाँ सुगमतापूर्वक मिल जाती हैं। राजधानी होने के कारण बड़े दफ़्तर यहीं हैं। थियेटर, सिनेमा आदि की भी कमी नहीं है। जापान में सबसे अच्छा बाज़ार इस दृष्टि से टकाराज़ूका है। यहाँ का प्रबन्ध उत्तम है। टोकियो से हम मोटरकार से वापस आये। इस कारण हमें जापान के ग्रामीण जीवन पर दृष्टिपात करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। जापानी कृषक बड़े ही उद्यमी हैं। स्त्रियाँ भी कृषि में भाग लेती हैं। चावल की अधिक पैदावार है। चाय की भी कमी नहीं है। प्राकृतिक दृश्य भी बड़े हृदयहारी हैं।

फ़्यूजी (Fuji) पर्वत, जो कि कोणाकार है, किसी समय में ज्वालामुखी था। इसकी चोटी सदैव बर्फ़ से आच्छादित रहती है। इसमें गर्म पानी तथा गन्धक के सोते भी हैं—यहाँ पर मनुष्य प्रायः स्नान एवं मनोरंजन के लिए आते हैं। जापान में सिंचाई का भी बहुत अच्छा प्रबन्ध है।

जो जापान के इतिहास से ज़रा भी परिचित है, वह जानता है कि जो जापान सत्तर वर्ष पहले किसी भी गणना में नहीं था, वही आज संसार के स्वाधीन उन्नतिशील देशों में गिना जाता है। अजायबघरों में जापान का प्राचीन पहनावा इस बात का द्योतक है कि आज से सौ वर्ष पूर्व जापान पूर्ण-रूपेण असभ्य था तथा अज्ञान की गहरी निद्रा में मग्न था। वे क्या-क्या कारण हैं, जिनसे आज वह उन्नतिशील देशों में अग्रगण्य हो गया? जिस देश की आबादी भारत की जनसंख्या का पाँचवाँ या छठवाँ भाग है, वह समस्त संसार को अपनी ओर आकर्षित करे। उसकी रहन-सहन, शिक्षा-प्रणाली संसार के लिए उदाहरण हो, उसके नागरिकों का कार्यक्रम, रंग-ढंग निराला ही हो, संसार के लगभग सभी देशों में उसकी व्यापारिक साख और धाक हो और ये सब चमत्कार आधी शताब्दी में ही हो जायँ। ये विचार प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में उथल-पुथल मचाया करते हैं। जो कुछ मैंने थोड़े समय में देखा और विचार किया, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि जापान की उन्नति के निम्नलिखित कारण हैं—

सच्ची देश-भक्ति, उत्कट विद्या-प्रेम, उत्तम शासन (Discipline), दृढ़ कर्तव्य-पालन, अटूट राजभक्ति।

(शेष फिर)

विश्व-शान्ति

श्रीइंद्र विद्यालंकार एम्० ए०, काव्यतीर्थ

क्या संसार में विश्वशान्ति की स्थापना हो सकती है ? हाँ, यदि कदाचित् संसार में विश्वराष्ट्र, विश्वधर्म और विश्व-भाषा की स्थापना हो सके।

राजनीतिक दूरदर्शिता रखनेवाले विचारक तो ऐसी विश्वशान्ति से निराश हो चुके हैं; क्योंकि उनके सम्मुख एक विश्वराष्ट्र की कल्पना केवल आदर्शजगत् की कल्पना है। लेखक की अपनी एकान्त प्रिय सम्मति में भी 'विश्वशान्ति' एक स्वप्नमात्र है—प्रपञ्च है, वेदान्तियों की माया है। आज सृष्टि को बने हज़ारों नहीं, लाखों वर्ष व्यतीत हो चुके। मनुष्य-जाति को भी अपनी वन्यता तथा असभ्य अवस्था से निकले हुए सहस्रों शताब्दियाँ गुज़र चुकीं—परन्तु धर्म के सम्बन्ध में एक मत नहीं हो सका। सत्य एक है—उसके अनेक रूप नहीं हो सकते। यदि अनेक धर्म केवल अनेक मार्ग ही समझ लिये जायँ, जिनका प्राप्तव्य उद्देश्य एक हो, भिन्न-भिन्न उपायों से एक सत्य की प्राप्ति करना ही ध्येय मान लिया जाय तो इन भिन्न-भिन्न दिशाओं में जानेवाले मार्गों का संघर्ष किस लिए ? हिमालय के शिखर पर पहुँचने की कितनी ही पगडंडियाँ हों—उन पर चलनेवाले पथिक अपने-अपने समान लक्ष्य का चिन्तन करते हुए निर्विवाद वहाँ तक पहुँच जाते हैं। उनमें परस्पर कोई कलह नहीं, कोई परस्पर टक्कर या द्वेषभाव नहीं। परन्तु अनेक धर्म आजकल एक उद्देश्य, एक ध्येय के शिखर तक पहुँचते-पहुँचते आपस में संघर्ष क्यों उत्पन्न करते हैं ? स्पष्ट है कि वे अनेक धर्म अनेक मार्ग के सदृश नहीं, अपितु एक मार्ग पर अनेक विभिन्नप्रकृति पथिकों के समान हैं, जो अपने उद्देश्यों की कल्पना में ही मतभेद नहीं रखते, परन्तु मार्ग के पग-पग के संबंध में भी परस्पर-विरोधी विचार रखते हैं। ऐसी भयानक अवस्था में उन पथिकों की क्या शोचनीय स्थिति होगी—यह केवल सोचने से ही रोमांच होता है। वे निस्सन्देह आपस में लड़ मरेंगे और एक दूसरे के विनाश में उन्मत्त होकर सत्य के विशुद्ध मार्ग को ही रक्तरञ्जित करेंगे। बस, यही कल्पना आजकल के धर्मों की है। आज वे संसार में अशान्ति फैलाने के मुख्यतम साधन हैं। आज इन धर्मों ने मिथ्या आडम्बर का रूप धारण करके संसार में जितना कोलाहल किया है, उतना किसी एक तत्त्व ने अब तक नहीं किया। तो विश्वधर्म कब स्थापित हो सकेगा ! यह तो कल्पना-क्षेत्र से बाहर की बात है—असम्भव है, नितान्त असम्भव है। संसार के महापुरुषों ने अपनी असमर्थता को स्वीकार किया—वे धर्म में एकता के स्थान पर अनेकता उत्पन्न करने के निमित्त बने। उनके कारण आज अधिक विक्षुब्ध अवस्था में है—विश्वधर्म की रूपरेखा आज अधिक अस्पष्ट तथा क्षीण है। धर्म-नेताओं ने सचमुच विश्वधर्म की कल्पना को असम्भव बनाकर 'विश्वशान्ति' के सन्दिग्ध भविष्य को और अधिक अन्धकारमय कर दिया है। कम से कम इस समय किसी भी तीव्र दृष्टि से ऐसे काल का अनुमान नहीं किया जा सकता, जब संसार के धर्म परस्पर सौहार्द से एकता-सूत्र में ग्रथित होकर किसी एक ऐसी



रचना की सृष्टि कर सकें, जिसके सौरभ से एक बार तो सारा विश्व महक उठे और वसन्त के उपवन की तरह उन्मत्त कोकिलों के स्नेहसङ्गीत से तरंगित हो सके । ऐसी कल्पना दूर है—बहुत दूर है।

और विश्वभाषा ! यह तो विश्वधर्म से भी अधिक कठिन पहेली है। आज समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपनी मातृभाषा से प्रेम करता है—मोह करता है। एक प्रान्त में अनेक भाषाएँ हैं, उनकी एकसूत्रता ही असम्भव है। एक राष्ट्र की भाषा अथवा विश्वभाषा का चिन्तन करना मूर्खता है। बंगालियों को बंगाली-भाषा से अनुराग है, महाराष्ट्रों को मराठी और मद्रासियों को तामिल, कनाड़ी आदि से। वे इस अनुराग को कब छोड़ सकते हैं। शताब्दियों से, पितृपरम्परागत अपने जन्म-स्वत्व का किस तरह परित्याग कर सकते हैं ! यह अप्राकृतिक कल्पना है कि कोई अन्य भाषा उनकी मातृभाषा का स्थान ले सके। राष्ट्र के एकत्व के नाम पर ऐसा महान् त्याग अस्वाभाविक है।

इसी तरह योरप के छोटे-छोटे देश, जो भारतवर्ष के प्रायः प्रान्तों के समान हैं, कब अपनी राष्ट्रीय भाषा का विसर्जन कर सकते हैं और कब एक …न भाषा का निर्माण कर सकते हैं ? फ़्रांस को अपनी फ़्रेंच से प्रेम है, जर्मनी को जर्मन से और इंगलैंड को इँगलिश से। ये स्वात्माभिमानी …न राष्ट्र कब अपनी-अपनी जातीय भाषा के स्थान पर किसी अन्य विश्वभाषा को अपनी शिक्षा तथा व्यवहार का माध्यम बनाना स्वीकार कर सकते हैं ? वे तो गुलाम देश होते हैं, जो पर-भाषा को अपनी भाषा बनाने और पर-संस्कृति को अपनी संस्कृति बना लेने में संकोच नहीं करते। प्रत्येक स्वतन्त्र देश तो आत्मगौरव से प्रेरित होकर पर-भाषा, पर-संस्कृति का यथाशक्ति तीव्र विरोध करता है और अपने पूर्वजानुगत स्वत्व का विनाश नहीं होने देता। चाहे हम इसे जातीयता के संकीर्ण भाव कहें, चाहे आत्म गैरव के उच्च विचार। परन्तु यह सत्य है कि आज कोई भी जीता-जागता राष्ट्र अपनी राष्ट्रभाषा को छोड़कर किसी भी अन्य देश की भाषा को अपनाने को तैयार नहीं। न केवल किसी अन्य देश की भाषा को, अपितु किसी 'विश्वभाषा' को भी अपनी भाषा से उच्च स्थान देने को तैयार न ीं।

भाषाशास्त्री लोग अन्तर्जातीय भाषा-संघों द्वारा कितना ही प्रयत्न करें कि किसी एक विश्व-भाषा (Esperanto) का निर्माण हो सके, परंतु उनको विफलता का ही सामना करना पड़ता है। जब तक भाषा की व्यावहारिकता को प्रत्येक देश स्वीकार नहीं करता, तब तक विश्वभाषा की रचना केवल काग़ज़ों की रचना-मात्र है। भाषा का अर्थ ही है, जो भाषण की जाय तथा प्रयोग में लाई जाय। एस्पिरेन्टो—विश्वभाषा का आज संसार में किसी जगह व्यवहार नहीं, न इसका व्यवहार होना सम्भव ही है। परिणामतः भिन्न भाषाओं के कारण भिन्न विचार, भिन्न सभ्यता, भिन्न संस्कृति होना सर्वथा स्वाभाविक है। ऐसी भिन्नता के भैरव निनाद में एकता का ऐकान्तिक गीत कहाँ। सुतरां एक विश्वभाषा अभी क्रियात्मक विचार-शैली से बाहर की वस्तु है। कल्पना-जगत् में इसका कोई स्थान नहीं। जब धर्म और भाषा की एकता ही एक स्वप्न है तो विश्वशान्ति की स्थापना एक महास्वप्न है।

तीसरी आवश्यक स्थापना विश्वराष्ट्र की है। कितनी असम्भव—प्रत्येक राजनीति का विद्यार्थी जानता है। यदि मनुष्य को स्वधर्म अथवा स्व-भाषा का परित्याग करना ही अति कठिन है तो अपने राष्ट्र के प्रभुत्व को हस्तान्तरित कर देना कितना अस्वाभाविक है। कौन प्राणी अपनी हुकूमत को छोड़कर स्वयं दूसरों के बन्धन में रहना स्वीकार करेगा ? एक विश्वराष्ट्र की स्थापना के साथ संसार के सब राष्ट्रों को अपने स्वातन्त्र्य का विसर्जन कर, एक विश्वव्यापी राज्य-प्रबन्ध में



अन्यतम भागों की तरह एक पराधीन भाग बनना पड़ेगा ? क्या किसी स्वाधीन आत्मगौरवप्रिय देश को ऐसी अधोगति स्वयं अपने पर सह्य हो सकती है ? क्या इँगलैंड या जर्मनी किसी ऐसे विश्वराष्ट्र के सदस्य बन सकते हैं, जिसमें अपने व्यक्तित्व का लोप हो जाय ? इँगलैंड तो अपने साम्राज्यान्तर्गत राष्ट्रों और उपनिवेशों का एक साम्राज्यसंघ (Imperial Federation) नहीं बना सकता ; क्योंकि इससे अपनी पार्लियामेंट की राजनीतिक स्थिति पर आघात पहुँचता है । यह कब हो सकता है कि शताब्दियों से प्रभुत्वशाली, भूमंडल के एक तिहाई अंश का भाग्य-विधाता हाउस आफ़ कामन्स, अपने अधीनस्थ उपनिवेशों और राष्ट्रों के समान, एक अन्यतम व्यवस्थापक परिषद् बन जाय और उसकी प्रभुता (Sovereign) का सदा के लिए विनाश हो जाय । ऐसा स्वाभिमानी दर्पोत्सिक्त देश एक विश्वराष्ट्र में कब प्रविष्ट हो सकता है और अपने ऐतिहासिक महत्त्व-पूर्ण उन्नत स्थान का कब परित्याग कर सकता है ? राजनीतिक विचारक तो ऐसे विश्वराष्ट्र की कल्पना अक्रियात्मक और अव्यावहारिक मानते हैं।

परन्तु दार्शनिक लोग अब भी विश्वसंगठन की सम्भावना को क्रियात्मक क्षेत्र की कल्पना स्वीकार करते हैं। उनके विचार में मनुष्य सामाजिक प्राणी है । उसने वन्य—जंगली अवस्था से निकलकर परिवार, नगर, राष्ट्र और साम्राज्य की अद्भुत सामाजिक रचनाएँ कीं । वह अब उनसे भी आगे बढ़कर एक दिन विश्वसंघ की रचना भी कर सकता है । यह सर्वथा सम्भव है कि मनुष्य किसी दूर भविष्य में जगत्बन्धुत्व के आदर्श को प्राप्त कर ले तथा एक राष्ट्र की सुन्दर सृष्टि का निर्माण कर ले । ग्रीस के कितने ही प्राचीन सम्प्रदाय विश्वराष्ट्र की सत्ता को निकट-कालीन मानते थे । स्टोइक और एपीक्यूरियन (Stoics and Epicureons) लोग एक ऐसे मनुष्य-संगठन (Parliament of man) में विश्वास रखते थे। इसी तरह सिनिक्स (Cynics) लोग जगन्नागरिकता (World citizenship) पर दृढ़ आस्थावान् थे। उनके कथनानुसार संसार एक नगर के समान परस्पराश्रित संस्था होनी चाहिए, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति एक नागरिक धर्म का पुजारी हो और एकभ्रातृत्व सम्बन्ध से परस्पर उन्नति में सहायता करनेवाला हो । पोलिवियस, सिसरो, आलिपवन प्रभृति रोमन विचारकों ने इन्हीं यूनानी सम्प्रदायों के आधार पर रोमन साम्राज्य की स्थापना का बीज बोया, और वे वस्तुतः सारे संसार में एक राष्ट्र की स्थापना का संकल्प करते थे। उन्होंने संसार को एक नियम में बद्ध करने के लिए (*Jus gentium*) की सृष्टि की, जिससे विश्वबन्धुत्व का विचार सुदृढ़ तथा क्रियात्मक बन सके । जब तक ऐसे विचारों का प्रभाव रहा, तब तक विश्वराष्ट्र की कल्पना एक सजीव जाग-रूक कल्पना थी । परन्तु रोमन साम्राज्य के आकस्मिक विनाश के बाद विश्वराष्ट्र की यह कल्पना फिर समय के अभेद्य अन्धकार में विलीन हो गई । यदि साम्राज्य-लिप्सा के कारण पिछले रोमन सम्राटों ने अत्याचार और दुराचार न किए होते तो रोमन साम्राज्य ही किसी दिन एक विशाल सुन्दर विश्वराष्ट्र की संस्था में परिणत हो गया होता । वह समय था, जब सभी अविकसित राष्ट्र परस्पर हित-साधन के लिए एक राष्ट्र में संगठित हो जाते और विश्वराष्ट्र की स्थापना हो जाती।

ऐतिहासिक लोग रोमन साम्राज्य-सदृश ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर ही विश्वसंघ के आदर्श को आवश्यक प्राप्तव्य ध्येय स्वीकार करते हैं। उनका मत है कि यदि जूलियस सीज़र, महान् सिकन्दर, नेपोलियन प्रभृति संसार के महाविजेता वैयक्तिक अध्यवसाय से संसार के एक बड़े भाग को संगठित तथा एकत्रित कर सकते थे तो क्या कारण है कि विश्व के महान् राजनीतिक मस्तिष्क एक विश्वराष्ट्र की रचना न कर सकें ? मध्यकाल में धर्म के आधार पर कुछ ऐसे प्रयत्न किये

और उन्हें सफलता प्राप्त हुई। इसी तरह विश्व-प्रेम की भित्ति पर होली रोमन साम्राज्य से भी बड़े जगद्व्यापी विश्वचक्र का निर्माण किया जा सकता है। अरस्तू एक ऐसे विश्वव्यापक संघ की आवश्यकता अनुभव करता था और नगर-राष्ट्र से विकसित हुए विश्वराष्ट्र की उपयोगिता को भी स्वीकार करता था। वर्तमान समय में भी कितने ही आदर्शवादी ऐतिहासिक विचारक, इस कल्पना को अव्यावहारिक नहीं मानते। उनके कथनानुसार अनेक महासमरों, महायुद्धों के उपरान्त भी, कलहप्रिय राष्ट्रों के परस्पर द्वेषानल में भस्म होने के बाद भी, विश्रान्त अवस्था में विश्व-राष्ट्र का विशाल भवन अवश्य बनेगा और जगत् में एक बार मनुष्यत्व का अटूट सम्बन्ध संसार के जन-समाज को एक सामाजिक तथा राजनीतिक बन्धन में बाँध देगा।

अर्थशास्त्री लोगों की सम्मति भी ऐसे विश्व-राष्ट्र की सम्भवनीयता के पक्ष में है। उनका मन्तव्य है कि वर्तमान आर्थिक प्रवृत्ति भी संसार को एक सूत्र में ग्रथित करती जा रही है। चाहे जन पर इस सत्य का प्रकाश हो या न हो, पर आज संसार के सब राष्ट्र आर्थिक आवश्यकताओं के रूप में एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते जा रहे हैं। व्यावसायिक जगत् में राष्ट्रों की भौगोलिक मर्यादाएँ, राजनीतिक सीमाएँ कोई रुकावट नहीं डालतीं और सारा विश्व परस्पराश्रित होकर आर्थिक उन्नति में अग्रसर है। कोई कच्चा माल पैदा करता है और कोई उस माल को लेकर पक्के में परिणत करता है। पहला अपनी व्यावसायिक आवश्यकताओं के लिए दूसरे पर अवलम्बित है और दूसरा अपने खाद्य पदार्थों के लिए पहले पर आश्रित है। ऐसी अवस्था में कौन-सा देश तटस्थ, आत्मावलम्बी होकर रह सकता है। आर्थिक आवश्यकताओं की विषम प्रेरणाओं से प्रेरित होकर वस्तुतः प्रत्येक राष्ट्र परावलम्बी और पराधीन है। यहाँ तक राजनीतिक दृष्टि से शत्रुदेश भी आर्थिक दृष्टि से परस्पर मित्र बने रहते हैं। यह ऐसी हितकारी परिस्थिति है कि प्रत्येक दूरद्रष्टा विचारक इसके भावी शुभ परिणाम का अनुमान कर सकता है। निस्संशय ऐसी ही आर्थिक कठिनताओं से विवश होकर किसी पुण्य दिवस में विश्वसंघ की स्थापना की जा सके और संसार के राष्ट्र इच्छापूर्वक नहीं, तो आवश्यकता और स्वार्थ के कारण ही सही, एक जगद्व्यापी चक्रवर्ती राज्य का सूत्रपात कर सकें।

उपर्युक्त सब विचारधाराओं के अनुसार विश्व-राष्ट्र की कल्पना एक सजीव कल्पना है और हम उसका हृदय से आदर करते हैं। हम उन महापुरुषों के, महातत्त्ववेत्ताओं के सम्मुख नतमस्तक हैं, जो इस कल्याणमयी पुण्य भावना को आज तक भी जीवित रक्खे हुए हैं और जो उसे क्रियात्मक बनाने के लिए सतत अध्यवसाय कर रहे हैं। हमारी प्रबल कामना है कि संसार में एक दिन विश्वराष्ट्र की स्थापना हो सके और पराधीन बनाये हुए भाग्य-हीन भारत सदृश देशों पर स्वतन्त्र-समान राज-सत्ता का आधिपत्य हो सके। दुर्बल को बलवान् के साथ समकक्ष होने में क्या आपत्ति हो सकती है? कमज़ोर को मज़बूत ताक़त के एक समान बना दिये जाने में क्या एतराज़ हो सकता है?

परन्तु प्रश्न तो है बलवान् राष्ट्रों का। चूहों की एसेम्बली में स्वीकृत हुए विश्वराष्ट्र-स्थापना के प्रस्ताव का क्या बल और क्या प्रभाव हो सकता है। बिल्ली की म्याँऊँ का क्या प्रतिकार है? मान लिया, विश्वराष्ट्र से जगत् का अधिकतम कल्याण है, मान लिया कि सब देशों और जातियों के मानसिक नेता अपने-अपने प्रकारों से विश्वसंघ की स्थापना का आशामय संगीत गा रहे हैं। किन्तु, संसार के महान् राष्ट्र-कर्णधारों की क्या विचार-धारा है? क्या उनके हृदयों में भी विश्वसंघ के ऐसे चेतोहारी संगीत का झंकार उठ रहा है? क्या प्रेम, भ्रातृत्व, जगद्बन्धुत्व का तंत्रीनाद उन राष्ट्रनिर्माताओं की आत्मा में भी कोई कोलाहल



उत्पन्न कर रहा है ? क्या इँगलैण्ड, संयुक्तराष्ट्र, फ़्रांस, जर्मनी प्रभृति महाशक्तियाँ भी विश्वराष्ट्र के संगठन में सम्मिलित होने के लिए उद्यत हैं ?

हमारी तो तुच्छ धारणा है कि उपर्युक्त सब प्रश्नों का उत्तर निराशा से पूर्ण है । हम तो कोई ऐसा निकट या दूर समय कल्पनागोचर नहीं कर सकते जब कि भूमंडल के शक्तिशाली राष्ट्र निर्बल राष्ट्रों के प्रति सदयतावश अथवा स्वार्थवश भी, एक विश्वसंघ में एकत्रित हो सकें । यदि कभी असम्भव घटनाएँ सम्भव हो सकती हों तो निस्सन्देह विश्वराष्ट्र की स्थापना भी किसी दूर भविष्य में सम्भव हो सके । परन्तु वर्त्तमान अल्पदृष्टि से तो किसी ऐसे परिवर्तन की कोई क्षीणतम आशा भी प्रतीत नहीं होती ।

तो विश्वशान्ति का आदर्श एक सुदूरतम कल्पना है । संसार में एक धर्म, एक भाषा, एक राष्ट्र के असम्भव होने के कारण परिणामी विश्वशान्ति का भी स्थापित होना एक अनहोनी के सिवा और क्या है ? वेदों की मंगल-प्रार्थनाएँ, क़ुरान और बाइबिल की आयतें इस विश्वशान्ति का आह्वान नहीं कर सकतीं । इस देवता की आराधना, ऋग्वेद की ऋचाओं, यजु के उद्गीथों, साम के सङ्गीतों और अथर्व के अभिचारों से भी होनी कठिन है । संसार के राष्ट्र इसी तरह लड़ते आये हैं और लड़ते रहेंगे । बलवानों की टक्कर से निर्बलों का संहार होता आया है और होता रहेगा । मनुष्य मनुष्य-शोणित का पिपासु रहा है और रहेगा । यह ध्रुव सत्य है, अमिट मर्यादा है, अटल नियम है और प्रबल भवितव्यता है। सन्तप्त आत्माओं से चाहे हम मनुष्यजाति के इस अन्धकारमय भविष्य पर अश्रुपात करें, ठंढी आहें भरें और करुण क्रन्दन भी करें, तो भी विश्वशान्ति का आदर्श, यह निश्चित है, मरुमरीचिका के समान हमसे दूर ही दूर चला जा रहा है ।





जावा में भारतीय संस्कृति और कला

श्रीसतीशचन्द्र काला

जावा द्वीप के मनोहर दृश्यों ने संसार के कई मनुष्यों का ध्यान आकर्षित किया है। वहाँ के हरे-भरे वृक्षों तथा कुंजों के बीच छिपे पशु-पक्षियों की ध्वनि संध्याकाल में अपूर्व दृश्य उत्पन्न कर देती है। Perpins ने जावा-द्वीप के लिए Paradise of Earth कहा है। जावा के निवासियों का सौंदर्य-प्रेम इसी कारण बहुत चढ़ा-बढ़ा है।

वर्तमान जावा के निवासियों का मुख्य धर्म इस्लाम है! किंतु उनका आचार-व्यवहार तथा रहन-सहन हिन्दुओं-जैसा है। इतना अवश्य है कि वहाँ के निवासी इस्लामी तीर्थ-स्थानों का यात्रा करने के लिए जाते हैं। १६वीं शताब्दी तक हिन्दू लोगों का जावा पर पूर्ण अधिकार रहा। किसी कारण हिन्दू-राजाओं की शक्ति कम हो गई और मुसलमान लोग जावा के अधिकारी बन गये। इस्लामी सभ्यता के आने से जावा की संस्कृति को कुछ धक्का पहुँचा। मुसलमान-विजेताओं ने भारतवर्ष की भाँति कभी किसी तीर्थ-स्थान, मंदिर व मूर्तियों को नष्ट नहीं किया। प्रचार भी उन्होंने कुछ न किये। न तो उन्होंने कला-कौशल की उन्नति में ही योग दिया और न उन्होंने कोई कलामय वस्तु ही स्मारकस्वरूप छोड़ी। जावा में अभी तक हिन्दू-तत्त्व ज्यों का त्यों बना है।

जावाद्वीप में भारतीय संस्कृति व कला कैसे पहुँची, यह प्रश्न अभी विवादग्रस्त है। किंतु अधिकतर पुरातत्त्व-विशारदों का यही मत है कि बौद्ध-धर्म के प्रचलन के साथ-साथ भारतीय संस्कृति भी जावा में पहुँची। बौद्ध भिक्षु व प्रचारक संसार के भिन्न-भिन्न भागों में अपने धर्म का प्रचार करने के लिए गये। किंतु कोई ऐसा विशेष प्रमाण नहीं है, जिसके आधार पर हम यह कह सकें कि अवश्य जावाद्वीप में कोई प्रचारक या भिक्षु गया था। बौद्ध-काल में अवश्य भारतवर्ष में कई पर्यटक विदेशों से आये थे। हुयेन-सांग, इत्सिंग और इतिहासज्ञ तारानाथ ने तो उस काल के अमूल्य इतिहास लिखे हैं। अन्य कई युवक भी भारतवर्ष में बौद्ध-दर्शन का अध्ययन करने के लिए आते थे। इसी तरह जावा से भी कोई न कोई यात्री यहाँ अवश्य आया होगा। Dr. F. Broch ने इस विषय पर काफ़ी खोज की है। उनका कहना है कि जावा के भ्रमण-साहित्य (Travel-literature) में कुछ ऐसे चिह्न प्राप्त हुए हैं, जिनसे कि पता चलता है कि जावा से कई यात्री अन्य देशों में भ्रमणार्थ निकले थे। इसके अतिरिक्त नालंदा में भी एक ऐसा थाल (Plate) मिला है, जिसको कि सुमात्रा के किसी राजकुमार ने नालंदा-मठ (Nalanda



Monastery) को भेंटस्वरूप प्रदान किया था ।*

कहा जाता है कि मलाया और आस्ट्रेलेशियन लोग मध्य-एशिया के निवासी थे, कालांतर में उनकी आर्थिक दशा में दुर्बलता आती गई और कुछ ही समय बाद उनकी संपूर्ण शक्ति का ह्रास हो गया। दुर्भाग्यवश इसी समय मंगोलियन लोगों ने भी उनको शक्तिहीन जानकर उन पर धावा किया। अपनी दुर्बलता समझकर ये लोग भारतवर्ष की ओर बढ़े। भारतवर्ष में भी ये लोग कुछ उपार्जन न कर सके। अंत में ये दक्षिण की ओर आये और शीघ्र ही कई द्वीपों में बस गये।

जावाद्वीप की कला पर हिंदू-प्रभाव सीधा मगध से आया है। मगध कई वर्षों तक भारतीय संस्कृति और शक्ति का प्रधान केंद्र रहा। इसलिए यह स्वाभाविक था कि यह संस्कृति स्वयं विस्तृत होकर इधर-उधर फैले। जावाद्वीप तक इस संस्कृति को पहुँचते-पहुँचते सैकड़ों वर्ष लगे। मगध से पहले यह संस्कृति अमरावती पहुँची और वहाँ से कृष्णा नदी के निकटवर्ती स्थानों से होते हुए अंत में यह लंका-द्वीप में पहुँची। लंका-द्वीप की कई मूर्तियाँ जावाद्वीप में मिली हैं। जावा की कला पर बंगाल का प्रभाव ईसा की पहली शताब्दी का मालूम होता है। ईसा की दूसरी शताब्दी में अमरावती की कला भी बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। लंका और जावा में यात्रियों का बहुत आना-जाना रहा करता था। इन्हीं में से कोई यात्री वहाँ मूर्तियाँ भी ले गया होगा। †

जावाद्वीप तथा भारतवर्ष के निवासियों के रहन-सहन तथा कला में बहुत समानता है। प्रथम तो जावा में जितनी भी वस्तुएँ हैं, उनके तथा भारतीय नामों में बहुत समानता है। जावा में पहुँचते-पहुँचते अवश्य इनमें कुछ परिवर्तन हो गया है। जावा के सर्वोच्च शिखर का नाम सुमेरियू है। हमारे पौराणिक ग्रंथों में भी कई स्थानों पर "सुमेरु" पर्वत का ज़िक्र मिलता है। इसी प्रकार वहाँ की सबसे बड़ी नदी का नाम भी "सिरायू" है, जो कि भारतवर्ष की "सरयू" नदी का अपभ्रंश है। प्राचीन काल में सरयू के निकट अयोध्या नगरी थी। जावा में हिन्दू-प्रभाव लगभग १५०० वर्ष तक रहा। किंतु इसी बीच जावा की संपूर्ण संस्कृति हिन्दूमय हो गई। रामायण व महाभारत का वहाँ विशेष प्रचार है। वहाँ के एक ज्वालामुखी पर्वत का नाम अर्जुन है। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा में भी कितने ही संस्कृत शब्द हैं। भग्नावशेषों के मध्य में भी विष्णु, ब्रह्मा व महेश की मूर्तियाँ मिली हैं। गणेशजी की मूर्ति को भी वहाँ पर लोग बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। जावा की मूर्तियों में वही वेश-भूषा है, जो कि बंगाल के पाल राजाओं के काल में बनी मूर्तियों की है। वहाँ राजा के लिए—राजा-प्रभु या भूपति कहते हैं।

बोखुदर मंदिर बौद्ध-शिल्प के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। यह मंदिर बौद्ध-चैत्य या स्तूप था। इस मंदिर के सात विशाल खंड हैं। इन खंडों पर लगभग ५०४४ बुद्ध की मूर्तियाँ बनी हैं। इस मंदिर के निर्माण-काल के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। फिर भी मंदिर में विशुद्ध हिन्दू-धर्म की झलक है। गांधार, मथुरा, साँची तथा बहुत स्तूपों में महात्मा बुद्ध के सम्पूर्ण जीवन को चित्रित किया गया है। जावा में बुद्ध के जीवन का एक छोटा-सा भाग ही व्यक्त किया गया है। बुद्ध के उत्पन्न होने से लेकर बनारस में सूत्रों के प्रचार करने तक की ही घटनाएँ वहाँ चित्रित की गई हैं। प्रमानंग भी बौद्ध कला का सर्वोत्तम उदाहरण है। प्रमानंग में भगवान् रामचन्द्र के जीवन तथा गौरव का चित्रण किया गया है।

* Art of Java and India-Voget.

† Hindu Javanese Bronze—A. J. Kempers.



एक प्रकार से संपूर्ण वाल्मीकीय रामायण वहाँ पत्थरों पर खोदकर रख दी गई है। इस मंदिर में शिव की मूर्तियाँ भी हैं। बोखुदर में जातक-कहानियों का भी आभास मिलता है, इन मंदिरों की कला साँची के स्तूप से मिलती-जुलती है। प्रमानंग व बोखुदर के मंदिरों में भी कुछ दिशाओं में समानता है, यद्यपि दोनों अपने-अपने ढंग के हैं।

प्रम्बनाम के विशाल मैदान के निकट मीरावी-नामक प्रसिद्ध ज्वालामुखी है। यहाँ पर भी कई मंदिर बने हैं, जो कि चाँदी लोरोजो व येंग नाम से पुकारे जाते हैं। यह ८ सुन्दर मंदिरों का एक समूह है। ये मंदिर प्राचीन भारतीय शिल्प-कला के अद्वितीय नमूने हैं। यह मंदिर Conical shape के होते हैं। कुछ मंदिरों में ब्रह्मा, विष्णु व महेश की मूर्तियाँ रक्खी हैं। इधर-उधर दीवारों पर भी रामायण की कुछ घटनाएँ चित्रित की गई हैं। इस विशाल समूह के बीच का बड़ा मंदिर पिरामिड की तरह है। इन मंदिरों का निर्माण राजकुमार दैश ने ९वीं शताब्दी में किया था।

जावा के मंदिरों में बौद्ध-धर्म का बहुत प्रभाव मालूम होता है। चित्रों से पता चलता है कि यहाँ महायान-शाखा ही का अधिक प्रचार हुआ। हीनयान शाखा का यहाँ कोई भी चिह्न नहीं। चाँदी में दूत व चंदी पावन नामक मंदिरों में महात्मा बुद्ध की बहुत अच्छी मूर्तियाँ मिली हैं। कितनी ही मूर्तियों की तुलना गुप्त-काल की मूर्तियों से की जा सकती है। भारतवर्ष में राक्षसों की मूर्तियों का भी प्रचलन है। जावा में भी इस प्रकार की कई मूर्तियाँ बनी हैं। हमारे यहाँ यह प्रथा है कि दरवाज़े के ऊपर कोई शुभ-चिह्न या कोई मूर्ति बना दी जाती है। जावा के दरवाज़ों के ऊपर "काल-मकर"-नामक मूर्ति बनाई जाती है। इसके अतिरिक्त दरवाज़ों के दोनों तरफ़ भी कुछ मूर्तियाँ जावा में रक्खी जाती हैं। भारतवर्ष में शेर के सिर को प्रायः दरवाज़ों के ऊपर लगाया जाता है।

जावा, बाली और सुमात्रा के नृत्य जगत्प्रसिद्ध हैं। बाली की कला में तो किसी विशेष देश का प्रभाव बतलाना कठिन है, किंतु इधर-उधर भारतीय कला के जो चिह्न प्राप्त हुए हैं, उनसे पता चलता है कि बाली की भारतीय कला किसी हिन्दू-वातावरण में ही फैली होगी। जावा में हिन्दू-धर्म ३ भागों में बँटा है (१) स्मार्त, जो कि पंच-ईश्वरों की पूजा करते हैं—(२) शिव के उपासक और (३) विष्णु-उपासक। जावा के मध्य भाग में हिन्दू-कला का प्रभाव अधिक स्पष्ट है। सन् १९४३ ई० में जावाद्वीप-निवासियों को विदित हुआ कि उनके धर्म (बौद्ध) के ऊपर हिन्दू-धर्म का झीना आवरण है। जावा और बाली में पूजा करते समय शंख और बाजों की ध्वनि से समस्त मंदिर गूँज उठता है।

जावाद्वीप में केवल भारतीय स्थापत्य तथा मूर्तिकला ही नहीं फैली, किंतु इसके साथ-साथ अभिनय-कला तथा नृत्य भी फैला। जिस प्रकार प्राचीन हिन्दू-अभिनयों में मूक-भाषा का प्रयोग होता था, उसी प्रकार जावा में भी भाव नृत्य द्वारा तथा मूक-भाषा द्वारा व्यक्त किये जाते हैं। हिन्दुओं की भाँति जावा के निवासी भी नृत्य को ईश्वर का देन समझते हैं *। जावा में नृत्य-कला तेलगू से पहुँची †। बाली और जावाद्वीप के निवासी त्योहारों को बड़ी धूमधाम से मनाते हैं। रात्रि के शांत वातावरण में वहाँ की स्त्रियाँ दल बनाकर नृत्य करती हैं। नृत्य का स्थान प्रायः वट-वृक्षों के नीचे होता है। नृत्य के साथ

---

* Hindu Javanese Dances—
Th. B. V. Lelyveld.

† A. K. Coomarswamy.

"सम्मेलन" भी होता रहता है। नर्त्तकियाँ पैरों ही से नहीं, किंतु अपने अंग-प्रत्यंग से—इसका अनुसरण करती हैं। संगीत व तालों के अनुसार ही नृत्य की चंचल व धीमी गति रहती है। जावा-द्वीप-निवासी अर्जुन के वीर-कार्यों पर विशेष श्रद्धा रखते हैं। "मुद्राओं" का प्रचार भी वहाँ भारतवर्ष से ही गया है। बौद्ध-स्थूल कला में भी "मुद्राओं" को विशेष महत्त्व मिला है। महात्मा बुद्ध ने स्वयं मुद्राओं द्वारा अपने सूत्रों का प्रचार किया था। नृत्यों के विषय सब महाभारत व रामायण से लिये गये हैं।

हिन्दू-कला शक्तिशाली थी और जावाद्वीप की कला दुर्बल, किंतु हिन्दू-कला के आने से जावा की संस्कृति बिलकुल नहीं दबी। जावा की कला स्वयं धीरे-धीरे हिन्दू-कला में मिल गई। ५५६ ए० डी० में जावाद्वीप यवनों के हाथ में चला गया। १५वीं शताब्दी तक भी समुद्र के निकटवर्ती कुछ राज्य हिन्दू-नरेशों के आधपत्य में थे।



भगवान् बुद्ध और जात-पाँत

प्रो॰ धर्मदेवजी शास्त्री सांख्य-वेदान्त-तीर्थ

भारतवर्ष में जातपाँत का रोग बहुत फैला हुआ है। यदि मैं भारतवर्ष की अधोगति के कारणों में जन्ममूलक जातपाँत को एक मुख्य कारण कहूँ तो अत्युक्ति न होगी। देश के सभी विचारक नेता इसकी बुराइयों का अनुभव कररहे हैं। महापुरुषों की दृष्टि व्यापक होती है—इसी-लिए भारत के सामाजिक और धार्मिक नेताओं ने इस बुराई के विरुद्ध क्रान्ति की है। महर्षि दयानन्द, राजा राममोहन राय आदि क्रान्तिकारी नेताओं ने इसकी कड़े शब्दों में आलोचना की हैं।

इधर बौद्ध-ग्रन्थों के सुलभ होने के कारण उनके स्वाध्याय से यह प्रतीत होता है कि भगवान् बुद्ध ने भी जात-पाँत की बहुत कड़े शब्दों में समालोचना की है, तथा इसे त्याज्य बताया है। पाठकों के विचारार्थ मैं उन ग्रन्थों के कुछ उद्धरण हिन्दी-अनुवाद में उपस्थित करूँगा। प्रकरण का पता भी साथ ही लिख दिया है, जिससे स्वाध्यायशील पाठक उन स्थलों को देख सकें और इस पर अधिक विचार कर सकें।

(१) मज्झिम निकाय अस्सलायण सुत्तान्त—

(क) "माता और पिता के रज तथा वीर्य से जन्मप्राप्त कर्ता जीव न क्षत्रिय होता है और न ही ब्राह्मण। न वह वैश्य होता है और न शूद्र।"

टिप्पणी—भगवान बुद्ध का यह वचन—हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों के—"जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते" मनुष्य जन्म से शूद्र होता है—कर्मों से ही वह द्विज (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य) बनता है" की अपेक्षा भी व्यापक दृष्टि का द्योतक है।

(ख) "दो ही वर्ण होते हैं, आर्य एवं अनार्य। मनुष्य अनार्य से आर्य तथा आर्य से अनार्य बन सकता है। फिर इस बात का कोई अर्थ नहीं कि अमुकवर्ण ही जन्मना श्रेष्ठ है।"

(म॰ नि॰ अ॰ सु॰)

टिप्पणी—हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों के निम्न-वचन का भी उपर्युक्त भाव है—

"धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते। अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णः जघन्यं वर्णमापद्यते।" अर्थ समान है।

(२) "उच्च कुलवाला भी प्राणी—हिंसक, चोर, व्यभिचारी, असत्यवक्ता, पिशुन, कटुभाषी, बकवादी, लोभी और द्वेषी होता है, इसी से तो मैं कहता हूँ कि उच्च कुल में जन्म लेना मात्र श्रेयोदाता नहीं।

साथ ही उच्च कुल में जन्म लेना मैं पाप भी नहीं मानता; क्योंकि उच्च कुल का मनुष्य भी अहिंसक-अस्तेन-सदाचारी और अद्वेषी हो सकता है। इसी प्रकार नीच कुल का पुरुष भी हिंसक और अहिंसक, लोभी और लोभरहित, द्वेषी और द्वेषरहित हो सकता है।

(मज्झिमनिकाय फासुकारि सुत्तन्त)

टिप्पणी—इसमें स्पष्ट ही जन्म को महत्व न देने का आदेश भगवान् बुद्ध ने किया है।

(३) (क) यह तो तुम जानते ही हो कि—जीवों में परस्पर में भेदक अनेक विशेषताएँ होती हैं। जीवों में श्रेणी-भेद भी पाया जाता है।

परन्तु मनुष्यों में ऐसी विशेषता नहीं। मनुष्यों के शरीर में तो ऐसा कोई भी भेदक लिंग (चिह्न) नहीं है। मनुष्यों के केश, सिर, कान, नेत्र, मुँह, नासिका, ग्रीवा, कंधा, पेट, पीठ, हाथ-पाँव, नख आदि अंगों में परस्पर भिन्नता कहाँ है।

(मज्झिम निकाय वासेट्ठ सुत्तन्त)

टिप्पणी—भगवान् के इस वचन से यह भी प्रतीत होता है कि ब्राह्मणादि वर्ण हैं, जाति नहीं। न्याय-दर्शन के इस सूत्र के प्रकाश में इसको अधिक स्पष्टता से देखा जा सकता है।

"आकृतिर्जातिलिंगाख्या" न्यायदर्शन

अर्थ—जाति की अभिव्यञ्जिका आकृति है।

(ख) "दूसरों को परिचर्या करके जो अपनी जीविका-निर्वाह करता है—उसे नौकर ही कहा जायगा—ब्राह्मण नहीं।

व्यापार करनेवाले को व्यापारी और शिल्प करनेवाले को शिल्पी ही कहा जायगा, ब्राह्मण नहीं।

शस्त्रास्त्र द्वारा निर्वाह करनेवाला व्यक्ति सैनिक ही है, ब्राह्मण नहीं।

कर्म ही पर यह जगत् स्थित है। अपने कर्म से एक मनुष्य ब्राह्मण और अपने ही कर्म से दूसरा व्यक्ति अब्राह्मण होता है। (म० नि० वा० सु०)

टिप्पणी—भगवान् कृष्ण के—

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः"

वचन के प्रकाश में उपर्युक्त विचार का मनन करना चाहिए।

(४) (क) केवल उच्च कुलीनता से ही लोभ नष्ट नहीं हो जाता और न ही द्वेष तथा मोह नष्ट होता है। ऊँचे कुल में जन्म न लेने पर भी मनुष्य धर्मपथ का पथिक है, यथाविधि धर्माचरण करता है। तो वह प्रशंसा और पूजा का पात्र है। (मज्झिम निकाय सधुरिस धर्म सुत्तन्त)

(ख) जो मनुष्य अपना ऊँचे कुल में जन्म होने के कारण अहंकार करता है तथा दूसरों को निकृष्ट समझता है—संन्यास लेने पर भी वह असज्जन ही है।

(म० नि० सु० सु०)

(५) "तू जाति न पूछ। बस केवल आचरण ही पूछ।" (बुद्ध-चर्या अन्तरीप सुत्त)

टिप्पणी—मिलने पर जाति-सम्बन्धी प्रश्न पूछनेवालों को इससे आदेश ग्रहण करना चाहिए।

(ख) "जो व्यक्ति जातिवाद तथा गोत्रवाद के बंधनों में जकड़े हैं, वे अद्वितीय विद्या और आचरण की सम्पत्ति से परे हैं।"

(बुद्ध-चर्या अम्बट्ठ सुत्त)

(६) "कोई व्यक्ति जटाधारी होने, अमुक गोत्र में उत्पन्न होने तथा अमुक माता का पुत्र होने से ब्राह्मण नहीं होता।

सत्य तथा कर्म का साक्षात्कार करनेवाला व्यक्ति ही पवित्र और ब्राह्मण है।"

(धम्मपद ब्राह्मण वर्ग)

(७) "जन्म से ही कोई मनुष्य चांडाल नहीं हो जाता और न ही कोई जन्म से ही ब्राह्मण होता है।

कर्म से ही मनुष्य चांडाल तथा ब्राह्मण बनता है।"

(सुत्त निपात)

(८) 'मज्झिम निकाय में एक स्थान पर स्पष्ट शब्दों में भगवान् के वचन हैं—"मूर्खों की यह चिरकाल से धारणा है कि जन्म से ही मनुष्य ब्राह्मण होता है। विद्वान् मनुष्य यह कदापि स्वीकार नहीं कर सकता कि ब्राह्मण जन्म से होता है।"

इन उपर्युक्त भगवान् बुद्ध के वचनों से यह स्पष्ट होता है कि वे जन्म को महत्त्व नहीं देते थे।

परम पिता की कृपा और अपने उत्साह से कभी भारतीय हिन्दू भी इस प्रकार व्यर्थ के अभिमान को त्यागकर मानव मात्र के हित में ही अपना हित समझेंगे।



करुणा

लेखक
श्रीयुत बालगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव

(१)

मातृहीना करुणा ने उस समय अपने जीवन के शुभ्र तप्त तथा छिटकते हुए मध्याह्न में प्रवेश किया था। रूप, माधुर्य और अनुपम लावण्य ने उसके शरीर पर अपना अटल साम्राज्य स्थापित कर लिया था।

जब उसने युवावस्था में पदार्पण किया, उसके पिता रामदास सदैव उसके विवाह की चिन्ता में मग्न रहते थे। वे २५) मासिक वेतन के सरकारी कर्मचारी थे। उनकी पत्नी करुणा की स्मृति के पूर्व ही कराल-काल के अन्धकार में विलीन हो गई थी। अतः करुणा का पालन-पोषण उसकी विधवा चाची द्वारा हुआ था, जो सकुटुम्ब अपने पति की मृत्यु के पश्चात् रामदास के यहाँ आ गई थी।

रामदास इनका पालन अपना कर्तव्य समझकर करते थे। सायंकाल को दफ्तर से आते तो अपनी ही चिन्ता को करुणा के मुखदर्पण में प्रतिबिम्बित देखते। उनका हृदय सिहर उठता। वह अपने स्नेह-जल-सिंचित पौदे को किसी अन्य ऐसे माली को अर्पण करना चाहते थे, जो अपने स्वच्छ प्रेम-वारि से उसे सींचकर फल-युक्त कर दे। जहाँ कहीं किसी वर का पता लगता, दौड़कर जाते।

उधर समय ने भी साथ नहीं दिया। वह भी द्रुत वेग से भागने लगा। करुणानद का वर्ष-जल अपरिमार्जित एवं सीमारहित हुआ चाहता था। पापी समाज उँगलियाँ उठाने लगा। सयानी लड़की घर में रख छोड़ी है। क्या कारण है? कोई-कोई तो रामदास के मुख पर ही व्यंग्यपूर्ण शब्द कह उठते। वे दुखी होकर निराशारूपी रजनी के अन्धकार में वर-पथ-भ्रष्ट होकर भटक ही रहे थे कि क्षितिज में आशारूपी प्रभाकर के आविर्भाव से आश्वासन-प्रद आलोक हुआ। मृत शरीर में जीवन संचार हुआ, जब कि रामदास ने बूढ़े कृष्णकान्त का, जो दूर के नाते में उनके कोई लगते थे, यह पत्र पढ़ा—

इंदौर
२५ अप्रैल, ३०

प्रिय० रामदास,

मैं बहुत दिनों से करुणा के विवाह के सम्बन्ध में तुम्हें लिखने के लिए इच्छुक था, परन्तु कारण-वश न लिख सका। मैंने करुणा के लिए उपयुक्त वर ढूँढ लिया है। वर की आयु २५, २६ वर्ष की है। पढ़ा-लिखा है। घर का अमीर है। कपड़े की बड़ी भारी दूकान है, जिससे ७०-८० रुपये मासिक की आय है। लड़का क्या, हीरा है। करुणा इस घर में जाकर राज करेगी—शीघ्रता करना,



कहीं ऐसा न हो कि लड़का हाथ से निकल जाय, अन्यथा पछताना पड़ेगा। उत्तर शीघ्र देना।

भवदीय
कृष्णकान्त

पत्र पढ़ते-पढ़ते रामदास के मुख पर एक स्वर्गीय आनन्द की रेखा दौड़कर उसके हृदय-सागर को तरंगित करती हुई उसमें विलीन हो गई। घर में आकर करुणा की चाची को पत्र पढ़कर सुनाया। वह फूली न समाई और बोली—"अब देर करने की क्या आवश्यकता है। उन्होंने लड़का देख ही लिया है। अनुकूल सम्मति का पत्र भेज दो।"

रामदास ने "हाँ" लिख दी।

(२)

आज रामदास के यहाँ विवाहोत्सव है। उन्हें आज अपने शरीर की भी सुधबुध नहीं है। वे आज पुलकित हृदय से उस पुनीत मुहूर्त की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब वे अपने भावी जामाता का दर्शन करेंगे। करुणा का हृदय उत्कट उत्कंठा के झूले पर हिचकोले खा रहा था।

धीरे-धीरे वह समय आ ही गया। बारात बाजे-गाजे सहित कन्या के घर की ओर आई, मानों आनन्द-स्रोत ही उमड़ा चला आ रहा हो। अंतःपुर के स्त्री-मंडल में चहल-पहल मच गई। अश्वारोही वर के द्वार पर आते ही द्विगुण वाद्य-ध्वनि से आकाश-मंडल परिपूर्ण हो गया। परन्तु रामदास का हृदय धक-धक कर रहा था। चिरकालीन इच्छुक दृष्टि वर के मुख पर पड़ी और पड़ी की पड़ी ही रह गई। उनकी आँखें पथरा गईं। एक पल ही में विस्मय, आश्चर्य और शोक उनके हृदय-रंगमंच पर अभिनय करते हुए निकल गये। उनके नेत्रों के सम्मुख अन्धकार छा गया। वर कुरूप था। उसकी आयु ३५ वर्ष से कम न थी। उसका शरीर भारी और मुख चेचक के दाग़ों से अलंकृत था। वह किसी भी प्रकार से करुणा के योग्य न था। परन्तु वे सँभले और किसी न किसी प्रकार वर को मदिरा-सेवी की नाईं लड़खड़ाते हुए वेदी के निकट ले गये। कन्या-पक्षवाले अधीर हो उठे, सब एक दूसरे को नाक मुँह सिकोड़कर संदेहात्मक दृष्टि से देखते और आपस में काना-फूसी करते। रामदास ने आज अनुभव किया कि इस संसार में अपनी परछाईं तक का विश्वास नहीं करना चाहिए। उसके नाना ही ने आज उसके साथ विश्वासघात किया और उनकी एकलौती पुत्री का सुख ही नहीं, वरन् सब कुछ छीन लिया। परन्तु अब क्या हो सकता था। रामदास छाती पर पत्थर रखकर रह गया। यदि वे सम्बन्ध-विच्छेद करते तो बड़ी भारी बदनामी होती, अतः चुप रहे। परन्तु उनके हृदय में शोकाग्नि धू-धू करके जल रही थी। स्वस्ति-वाचन प्रारम्भ हुआ, परन्तु वे चिन्तितावस्था में शोक से ओत-प्रोत बैठे थे।

करुणा के फेरे फिर रहे थे और उसके साथ ही उसके काल्पनिक सुवर्ण-महल हिन्दू-समाज की नीचता अथवा लोलुपता में विलीन हो रहे थे।

(३)

विवाहिता करुणा के सुसराल आते ही वास्तविकता के अग्नि-कणों से कृत्रिमता की राख हट गई। उसने देखा जगदीशनारायण उसके पति केवल ३०) मासिक वेतन पर एक कपड़े की दुकान पर मुनीम हैं। सिर पर कुछ ऋण भी है। घर की अवस्था शोचनीय है। परन्तु इसका किंचित् मात्र भी प्रभाव उसके उदार हृदय पर न पड़ा। वैभव और सम्पत्ति का प्रेम से क्या सम्बन्ध? वे तो वासनान्ध स्वार्थी मनुष्यों के भोग-विलास के कारण मात्र हैं।

सचमुच करुणा स्वच्छ प्रेम के सम्मुख संसार के समस्त वैभव को भी लात मारने को उद्



यात्रा

चित्रकार—श्री बी० एन्० जिजा



थी। उसका हृदय प्रेमक्षुधा से क्षुधित था। वह जगदीश को प्राणों से अधिक प्यार करती थी। जगदीश भी उसे प्रेम करने लगा।

समय हँसते-हँसते व्यतीत होने लगा। कुछ दिनों में करुणा की गोद भी भर गई। उसमें सरोज खेलने लगा। सरोज वास्तव में 'सरोज' ही था।

(४)

सरोज के जन्म ने जगदीश को पूर्वपरिचित कुमार्ग पर देखा। करुणा के अगाढ़ प्रेम की आकर्षण-शक्ति ने जगदीश को अल्प समय के लिए कुमार्ग से हटा लिया था। परन्तु वह फिर भ्रमर की नाईं करुणा-पुष्प को छोड़कर यत्र-तत्र मँडराने लगे। अब वह अर्ध-रात्रि में घर आता और मदिरा की मादकता में अचेत पड़ रहता। क्रमशः मदिरा और वेश्या की अग्नि में समस्त पूँजी भस्म हो गई। ऋण भी बहुत हो गया। तक़ाज़ेदार दिन भर द्वार पर ही खड़े रहते। करुणा के शान्त हृदय में अशान्ति की अग्नि प्रज्वलित हो उठी, वह दुःख से पागल हो उठी, परन्तु उसने धैर्य का त्याग न किया और अपने आभूषणों इत्यादि से ऋण चुका ही दिया।

जगदीश की आँखें अब भी न खुलीं। वह समझने लगा कि करुणा के पास मा के घर का गुप्त धन है, जो उसने उससे छिपा रक्खा है। अस्तु, एक दिन जब वह सायंकाल को दूकान से आया तो करुणा से कुछ रुपया मदिरा-सेवन के लिए माँगे, वह कहाँ से देती। उसका पत्ता-पत्ता क़र्ज़ की भेंट हो गया था। वह बोली—"मेरे पास तो एक भी कौड़ी नहीं है।" इन शब्दों ने अग्नि में घृत का कार्य किया। वह क्रोध से लाल हो उठा और गालियों की बौछार करने लगा, मानो ज्वालामुखी ह फट गया हो। यद्यपि करुणा अवनीतल के समान शांत और गंभीर थी तथापि उसका हृदय इस असहनीय अत्याचार से काँप उठा। उसके मुख से अनायास ही निकल पड़ा—"मेरे पास मांस, मदिरासेवन के लिए कोष थोड़े ही गड़ रहा है। मैं......" बात समाप्त होने भी नहीं पाई थी कि चूल्हे की जलती लकड़ी का प्रहार कलेजे पर हुआ। वह अचेत होकर गिर पड़ी। जगदीश ने बग़ल में बोतल दबाई और बाहर का रास्ता लिया।

अब प्रायः जगदीश घर से बाहर ही रहता। एक दिन करुणा कुएँ से पानी ला रही थी कि कुछ चरित्रहीन युवक उसे छेड़ने लगे। एक बोला!—

"........."

करुणा के पैर के नीचे से धरती निकल गई। वह सहम गई—उसके पैर भारी हो गये, परन्तु जैसे-तैसे उसने घर की ड्योढ़ी पकड़ी। अब वह सूर्योदय से पूर्व ही पानी भर लाती।

(५)

इन्दौर में आजकल महामारी का प्रकोप है। हज़ारों मनुष्य प्रतिदिन इसकी भेंट होते हैं। ऐसी अवस्था में जगदीश तीन दिन से ग़ायब है। सरोज के मुख पर भी इस भयंकर रोग के लक्षण दिखाई देने लगे।

करुणा अकेली थी। उसकी दवा-दारू किस प्रकार करती। सरोज का रोग बढ़ता ही गया। वह असहाय और अनाथों की नाईं जर्जरित अवस्था में खटिया पर पड़ा पूछता—बाबूजी कब आवेंगे?

इन शब्दों में कितनी वेदना, कितनी हृदय-ग्राहकता थी। करुणा का हृदय मसोस उठता। उसकी वेदना जग पड़ती। अपने कलेजे के टुकड़े सरोज को छाती से चिपटाकर कहती—"अभी आएँगे सरोज! दवाई लेने गये हैं।"

सरोज मुरझाने लगा। उसकी अवस्था शोचनीय हो गई और रात्रि के तीसरे पहर में बुझ ही गया। करुणा पर वज्राघात हुआ। पति से

काँटे

श्रीनारायणलाल कटरियार

हम चले होकर निछावर आह के,
क्यों बनें काँटे तुम्हारी राह के।
फूल बनते तो बिखरते चरण पर,
लिपट जाते बन सुवास अधीर हो;
याद बन गोपन-मधुर आते कभी,
मिलन, बिछुड़न की सलोनी पीर हो।
अब खिली कलियाँ, मधुर-मधुमास है;
मधुप मूर्छित-सा तुम्हारे पास है।
हम किनारे हैं कराह-कराह के,
क्यों बनें काँटे किसी की राह के।
पथिक, यह पथ तो अनन्त, असीम है,
फूककर रखना क़दम, दिल थाम ले।
जो पहुँचना चाहता है अन्त तक,
तो कभी मत लौटने का नाम ले।

जा चुके मंसूर, मजनूँ तुम चले,
धन्य हो, आओ ज़रा मिल लें गले।
सब गये अपनी निबाह-निबाह के
क्यों बनें काँटे तुम्हारी राह के।

मत इधर आना बयार वसन्त की,
हाँ, इधर तो कंटकों का जाल है।
मत इधर तू कूकना कोयल भली,
दिल-जलों का दिल इधर पामाल है।

जा उधर जिस ओर सुखमय बाग़ हों,
सुमन हों बिखरे, सनेह-पराग हो।
आज दिन हैं अकथनीय उछाह के,
क्यों बनें काँटे तुम्हारी राह के।

बुन्द-सत्ता

श्रीपं० प्रणयेश शुक्ल

तारक इन्दु की सृष्टि कहाँ
नव-रश्मियों का रवि-जाल बिछाते
ज्योतित होते महातम के
उस उद्भव में क्षण में छिप जाते ?
केवल नित्य प्रकाश वहाँ है,
वहीं वह साँवली मूरति पाते;
हैं जहाँ बुन्द में सिन्धु समा रहे
देखे न सिन्धु में बुन्द समाते ! ॥ १ ॥

आई कहाँ से, कहाँ को चली ?
औ' कहाँ-कहाँ से करती है किनारा ?
कोई न जान सका, इसमें
भँवरों का गया भ्रमजाल पसारा !
मोह - तरंगों में आ पड़ा जो
कभी भूल से हो न सका वह न्यारा।
जीवन - राशि समेटती - सी
बही जा रही है यह 'जीवन-धारा' ॥ २ ॥

विश्व-पति

श्रीरमेश दुबे एम्० ए०, साहित्यरत्न

तेरी अलकावली से यामिनी सजाती तन
आभा मुख मंजु की प्रभात भर लाया है;
हिमता हिमांशु ने सुदीप्ति को दिवाकर ने
सुमन समूह ने तुम्हीं से हास पाया है।

श्वास ले चली है यह समीर इठलाती-सी
चेतना ने आहट तुम्हारा नित्य पाया है;
व्यर्थ खोजते हैं हम तुमको तुम्हीं में, तुम
विश्व में समाये, विश्व तुममें समाया है।

जूनिया

सामाजिक उपन्यास

प्रथम खंड

मत-परिवर्तन

पं० गोविन्दवल्लभ पंत

पहला परिच्छेद—पटोत्तोलन

जूनिया के पूर्वज न-जाने कहाँ से आकर उस पहाड़ पर बस गये थे, ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। उन्होंने कभी अक्षर और अर्थ का संग्रह नहीं किया, उन्होंने कभी कुचलने-वालों को हाथ में शस्त्र ले वक्र दृष्टि से नहीं देखा, कदाचित् इसी लिए इतिहासकार उनकी उपेक्षा कर गया।

अंधकार में भी कुछ आलोक है और उजाले में भी कुछ अँधेरा। धनाभाव के कारण जूनिया के पूर्वज मोटा खाते और पहनते थे। वे प्रकृति के अधिक संसर्ग में थे, यही आशीर्वाद उनके साथ था। जब शिशिर की पहाड़ी वायु धनिकों के बंद कक्ष में बाँज के कोयले धधकाती और ऊन का अधिक उपयोग कराती, तब खेत में केवल फटा कोट पहने हाली अपने अंग और हवा के बीच में किसी परदे की कमी का अनुभव ही नहीं करता है। अभ्यास ही ने हमें परिपूर्ण और सुखी बनाया है।

जूनिया के पूर्वजों की कहीं खेती न थी, घर-द्वार भी नहीं। किसी पहाड़ी ज़मींदार के खेत लेकर उन्हें बोते-काटते और उसके प्रतिदान में बिना कुटा और बिना पिसा अन्न पाते। उनकी स्त्रियाँ और बच्चे भी उन्हें सहायता पहुँचाते थे। खेती के अतिरिक्त वे लकड़ी, पत्थर, ताँबे और लोहे पर भी अपनी कारीगरी दिखाते थे। विवाह आदि उत्सवों को वे अपने गीत-वाद्य से मुखरित करते थे और ग्राम्य देवताओं तथा वीरों को जागरित करने में वे ही ढोल पीटते थे।

वे जिस ज़मींदार के आश्रित होकर रहते, उसे गुसाईं कहते थे। जूनिया के पिता के गुसाईं व्यवहार-कुशल और सहृदय व्यक्ति थे। जूनिया के पूर्वज गुसाईं के पूर्वजों की लगभग एक सदी से सेवा करते चले आये थे।

चारों ओर चीड़ के पेड़ों से घिरी हुई पर्वत-मालाएँ हैं। उनके पक्षों पर झरते-लहराते अनेक नाले बरसात में अपनी छवि दिखाते हैं। नीचे आकर वे सब उन दो नदियों में मिल गये हैं, जो प्रायः पूरे वर्ष-भर सजल रहकर आसपास की खेती को सफल करती हैं। दोनों नदियाँ पूरे मील-भर तक प्रायः समतल भूमि पर बहती हैं। उस विस्तार में तीन गाँव हैं। उत्तर की ओर सिरे पर जो गाँव है, वहीं जूनिया के पिता खेतों में हल चलाते थे।

गुसाईंजी ने जूनिया के पिता को जीवन की सभी आवश्यक सुविधाएँ दे रक्खी थीं। खाने-पीने को देते थे, नया-पुराना कपड़ा-लत्ता देते थे, नमक-तेल देते थे। मकान बनाने के लिए जगह दे रक्खी थी, फल-तरकारी उगाने के लिए कुछ ज़मीन भी उसके अधीन कर रक्खी थी।

जूनिया के पिता को कभी किसी अभाव का

अनुभव नहीं हुआ। उसे जब कोई आवश्यकता हुई, गुसाईंजी ने ज़रूर उसका बहुत बड़ा हिस्सा पूरा किया।

जूनिया का जन्म हुआ। वह चलने-फिरने लगा। बालक की चपलता जब उसे गुसाईंजी के खेलते हुए बालकों की ओर खींचती, तब जूनिया की माता उसका हाथ खींचकर कहती—"हैं, हैं! वहाँ नहीं बेटा, उधर नहीं जाते।"

बालक जूनिया यदि अधिक ज़िद करता तो उसकी माता उसे गोद में उठाकर अपने घर चली जाती थी। बालक धीरे-धीरे यह समझ गया कि गुसाईंजी के बालकों के साथ उसे नहीं खेलना चाहिए। क्यों नहीं खेलना चाहिए? इसका ठीक-ठीक उत्तर उसके माता-पिता किसी ने भी नहीं दिया, यह भेद उसके मस्तिष्क में पत्थर की लकीर बनकर पक्का हो गया।

वह और भी बड़ा हुआ। माता-पिता के साथ खेतों पर भी काम करने के लिए जाने लगा। एक दिन ग्रीष्म के दोपहर में वह गुसाईंजी के मकान के निकट ही खेतों पर काम कर रहा था। उसे ज़ोर की प्यास लग गई। पास ही गुसाईंजी की बावली थी। जूनिया ने इधर-उधर देखा, कोई दिखाई नहीं दिया। वह चुपके से बावली की ओर बढ़ गया और ज्यों ही एक चुल्लू भरकर पिया और फिर उधर हाथ बढ़ाया त्यों ही गुसाईंजी के भाई उधर लोटा लिये छींकते हुए निकल आये, जूनिया को देखते ही उसकी ओर दौड़ते हुए चिल्लाये—"मारो चांडाल को। तमाम बावली जूठी कर दी।"

जूनिया सिर पर पैर रखकर भागा। गुसाईंजी के भाई ने भूमि पर पड़ी हुई एक लकड़ी उठाकर उसे पीटने को उसका पीछा किया, जूनिया भागा हुआ अपने घर पहुँचा।

उसके पहुँचते ही गुसाईंजी के भाई भी आये और क्रोध से लाल आँखें कर जूनिया के पिता से कहने लगे—"तुम्हारा बेटा हमारी बावली जूठी कर आया है, मैं उसे बिना पीटे नहीं छोड़ूँगा।"

पिता ने जूनिया की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर कहा—"क्यों रे सच है न?"

जूनिया सिटपिटा गया। पिता ने उसके कई झापड़ लगाये, जूनिया रोने लगा। उसकी माता घर के बाहर निकल आई और कहने लगी—"क्या हो गया? क्यों उसे इतना पीट रहे हो? ठौर-कुठौर कहीं लग जायगी।"

गुसाईंजी के भाई बड़बड़ाते हुए चले—"इन्हें गाँव में जगह दे रक्खी है और हमें इनका जूठा खाना होगा। अंधेर की हद हो गई।"

स्वामी के पीठ फिराते ही पिता ने हाथ रोक लिया और माता बीच में पड़कर बेटे को मकान के अंदर ले गई और उसे कुछ गुड़ देकर शांत किया।

उस दिन के बाद फिर जूनिया ने गुसाईंजी के मकान की दिशा ही छोड़ दी।

जूनिया के मकान से दो मील ऊपर दो गाड़ी की सड़कें एक दूसरी को काटती हैं। यात्रियों की सुविधा के लिए वहाँ पर अनेक दूकानें हैं। उस स्थान का नाम चौमुखिया प्रसिद्ध है। चौमुखिया में जूनिया की बिरादरी का एक बढ़ई रहता था। वह चीड़ की नरम लकड़ी को छील-छालकर मकान के खटे-दरवाज़े बना लेता था। बैलगाड़ियों के पहिए भी जोड़ता था। वह लोहे का काम भी करता था। बैलों के नाल बनाकर ठोकता और बैलगाड़ियों के पहियों में लोहे का घेरा भी पहनाता था।

जूनिया उस बढ़ई की दूकान तक कभी-कभी हो आता था। जब जूनिया उसको गरम लोहा पीटते देखता, तब वह उड़ती हुई चिनगारियों में अपने जीवन के स्वप्न निहारने लगता। पिता से पिटकर जब जूनिया के मन में स्वामी का विद्रोह पनपने लगा तो वह खेती का काम छोड़, रोज़ उस बढ़ई की दूकान पर काम सीखने को जाने लगा। शाम को घर आता और सुबह खा-पीकर दस बजे तक वहाँ पहुँच जाता।



बढ़ई की दूकान पर जाते-जाते उसे छः महीने हो गये, पर मज़दूरी के नाम पर उसने कभी एक पाई भी नहीं पाई थी। बढ़ई उससे यही कहता था—"एक तख़्ता सीधा नहीं चीर सकते, एक कील सीधी नहीं ठोक सकते। मेरी दो आरियों के दाँत तोड़ दिये, एक हथौड़ा खो दिया। तुम्हारी क्या मज़दूरी हो सकती है? धौंकनी चलाते हो तो उससे क्या हुआ? कोई-न-कोई यहाँ पर तंबाकू पीने आ ही जाता है, और वही बायें हाथ से मेरी धौंकनी की डोरी खींचता रहता है। धीरज रक्खो, काम धीरे-धीरे ही आता है। काम के लायक हो जाओगे तो मज़दूरी विना माँगे ही मिलेगी।"

जूनिया ने धीरज रक्खा। छः महीने और बीत गये। फिर भी उसे मज़दूरी कुछ न मिली। घर पर पिता उसे मूर्ख सिद्ध करते थे और चौमुखिया में बढ़ई उसे बेवक़ूफ़ बनाता था। जूनिया के परिश्रमी होने में संदेह नहीं था, पर हाथ में सफ़ाई परिमित परिमाण ही की थी।

समय के अंतर ने जूनिया के मन के घावों पर मरहम-पट्टी कर दी थी। एक दिन उसकी माता ने कहा—"घर का काम देखो बेटा, चौमुखिया में कुछ नहीं रक्खा है। तुम्हें साल-भर वहाँ जाते-जाते हो गया, पर पैसे के नाम पर तुमने कोई कानी कौड़ी भी नहीं दिखाई। तुम अब अवस्था में बढ़ चले, विवाह-योग्य हो गये हो। पिता का कहना मानो कि शत्रुओं को हँसी उड़ाने का अवसर न मिले।"

जूनिया ने ज़रूरत से अधिक नरम पड़कर कहा—"मा, मैंने तुम्हारी और पिताजी की आज्ञा का उल्लंघन ही कहाँ किया। खेत पर काम करने को मैं तैयार हूँ। मिहनत करने से नहीं डरता, पर गुसाईं के घर के निकट काम करने नहीं जाऊँगा।"

"तो नदी-किनारे के खेतों पर ही जाया करो। तुम्हारे पिता की अवस्था बढ़ चली। उनसे अधिक परिश्रम नहीं हो सकता।"

जूनिया निर्दोष स्वर में कहने लगा—"मा, बावली में पानी बहता हुआ था। बहता पानी शुद्ध है, उसे कौन जूठा कर सकता है?"

माता—"कुछ भी हो बेटा, वे हमारे स्वामी हैं, उनकी बात माननी ही पड़ेगी। उनके आश्रय में रहना है।"

जूनिया ने उत्तेजित होकर कहा—"मैं उनका आश्रय ही छोड़ दूँगा, मा! उनके गाँव को त्याग कर कहीं चला जाऊँगा। मज़दूरी करने को हाथों में बल है तो संसार में बहुत जगह है।"

जूनिया दूसरे दिन से चौमुखिया में नहीं गया। घर ही पर खेतों में काम करने लगा। दिन-भर खेतों में हल चलाता, टूटी दीवालें चुनता, काँटे साफ़ करता, सिंचाई के बाँधों को बंद करता और खोलता था। कभी नदी-किनारे की पनचक्की पर पीसने को चला जाता और कभी लकड़ी-घास के लिए जंगलों में भी धँस जाता।

इस प्रकार आठ वर्ष बीत गये। जूनिया अपने माता-पिता की एकमात्र संतान था। घर में एक व्यक्ति का मुख और देखने के लिए जूनिया की माता जूनिया का विवाह कर एक बहू ले आई।

हेमंत बीत चला। नंगे वृक्षों में कोंपलें प्रकट होने लगी थीं और आँगन का तुषार मिट चला था। अंतरिक्ष की आड़ से नवीन वसंत हँसने लगा। केतकी की लताओं में खिले हुए श्वेत पुष्प दशों दिशाओं में सुगंध प्रसारित करने लगे। रसौंत के कुंज खिलकर उन पर सुवर्ण बिखर गया था। निरक्षर जूनिया में कोई भी भावुक वृत्तियाँ नहीं थीं। फिर भी जब वह कृषि के भार को कुछ हलका कर अपनी पत्नी के सिर पर रखता तो उससे पूछता था—"भारी तो नहीं हुआ?"

उसकी स्त्री विनत पलकों में उत्तर देती थी—"नहीं।"

स्त्री भार वहन करते चली जाती और जूनिया उसे देखते ही रहकर सोचता—"इतनी सुन्दर ऋतु इतनी मधुर होकर संसार में पहले कभी नहीं आई।"



जूनिया के विवाह के पाँच वर्ष बाद उसकी माता सुरलोक को सिधारीं। काम का बोझ उस पर तथा उसकी स्त्री पर और भी बढ़ गया। जूनिया गुसाईंजी के मकान के निकट फिर नहीं गया। जूनिया के मन में मैल कुछ नहीं था, पर वह हठी बहुत था। उसकी स्त्री ज़रूर गुसाईं-जी के यहाँ काम-धंधा करने जाती थी।

पिता ने एक दिन जूनिया से कहा—"बेटा, गुसाईंजी के यहाँ चलकर उनसे क्षमा माँग लो। मैं बूढ़ा हो चला, मुझे कुछ ही दिन का मेहमान समझो। मेरे मरने पर गुसाईंजी से अदावत रक्खोगे, तो तुम्हारी इस गाँव में कैसे गुज़र होगी? फिर क्या खाओगे? कहाँ रहोगे?"

जूनिया ने सुदृढ़ होकर उत्तर दिया—"पिताजी, मज़दूर का कहीं घर नहीं है। जहाँ भी वह चार पत्थर ढोकर दीवालें खड़ी कर लेता है, वहीं वह अपना सिर छिपाने के लिए मकान बना लेता है। जहाँ भी वह हाथ में कुदाल लेकर कपाल में पसीना निकाल लेता है, वहीं उसे तवे पर सेंकने के लिए पाव-भर आटा मिल जाता है। आप मन को व्यर्थ की चिंताओं से कमज़ोर न करें।"

उस वर्ष के अंदर-ही-अंदर जूनिया के पिता का भी शरीरांत हो गया। जूनिया को जहाँ भी अंधकार दिखाई देता, वहीं वह अपनी पत्नी को हाथ में टिमटिमाता हुआ प्रकाश लिये देखता।

जूनिया के पिता की मृत्यु के तीन महीने बाद उसके गाँव के समीप के जंगल में एक मनुष्य-भक्षक बाघ ने प्रवेश किया। उसने अनेक नर-नारियों को अपना ग्रास बनाया, आस-पास के समस्त प्रांत में उस हिंसक जीव का आतंक फैल गया, लोगों ने जंगल जाना छोड़ दिया, घरों में भी बड़ी सावधानी से रहने लगे।

नैनीताल के रिटायर्ड कप्तान हॉवर्ड साहब जंगली जानवरों के शिकार में बहुत बड़ी दिल-चस्पी रखते थे। आपके शिकारी जीवन की अनेकों स्मृतियाँ आलोकचित्रों, खालों, सींगों तथा भुस-भरे जीवों के रूप में आपके बँगले में सजी हुई थीं। मनुष्य-भक्षी जन्तुओं के वध में आपने अनेक बार असीम साहस और अद्वितीय वीरता का परि-चय दिखाया था।

मनुष्य-भक्षी बाघ के समाचार हॉवर्ड साहब के कानों तक बिजली की गति से पहुँचे। उन्होंने उसी समय अपने नौकरों को कूच की आज्ञा दे दी। ख़ानसामा ने उसी वक़्त साहब की टिन-बोतलें, छुरे-काँटे, प्याले-तश्तरियाँ आदि सावधानी से पैक किये, बैरा ने उनके कपड़े, साबुन, टूथब्रश, सेफ़्टीरेज़र, दर्पण, कंघी और बिस्तरा बाँधा। साईस उनके घोड़े को यात्रा के लिए तैयार करने में लग गया। साहब बंदूक़-बारूद के संग्रह में निरत हुए।

सुबह के आठ बजे होंगे। साहब नाश्ता कर चुके थे, नौकरों-चाकरों ने आध ही घंटे में सब तैयारियाँ कर दीं।

बैरा ने बड़े अदब से साहब के समीप जाकर कहा—"हुज़ूर, सब सामान तैयार है?"

"हमारा शिकारी तंबू भी बाँधा? शायद उसकी भी ज़रूरत पड़े।"

"वह भी शिकारी ने पैक कर लिया है हुज़ूर।"

"क़ुली?"

"चार डोट्याल क़ुली बुला लिये गये हैं।"

"यहाँ से चौमुखिया पगडंडी का रास्ता कै मील है?"

"जी हुज़ूर। गाड़ी की सड़क से पंद्रह मील का फेर है।"

"पगडंडी का रास्ता ठीक है न?"

"जी हुज़ूर, घोड़ा बड़े मज़े में जा सकता है।"

"हम भी पगडंडी के रास्ते जावेंगे।"—कहकर साहब ने शिकारी को बुलाया और उसे बन्दूक़ तथा कारतूस सौंपे।

शिकारी ने बड़े उत्साह के साथ बन्दूक़ और कारतूस सँभाले।



साहब ने एक छै चेंबर का रिवॉल्वर निकाल-कर शिकारी को देकर कहा—"इसे भी सावधानी से रक्खो।"

शिकारी ने मुसकाकर उसे भी सँभाला।

साहब हँसते हुए बोले—"आज बहुत ख़ुश हो, बहुत दिनों में शिकार मिला है, क्यों? यहाँ बैठे-बैठे सुस्त हो गये थे न? हम पैदल ही उसका शिकार करेंगे, मचान नहीं बनेगा।"

"हुज़ूर के लिए यह नई बात नहीं है। पिछले साल ही तो आपने बनकटिया के जंगल में पैदल ही वह शेरनी मारी थी।" कहकर शिकारी ने बँगले के बरामदे की ओर संकेत किया, जहाँ वह भुस-भरी शेरनी खड़ी थी।

हॉवर्ड साहब ने कुछ आँखें मूँदकर किसी अतीत को याद करते हुए कहा—"वह शेरनी कितनी सुन्दर थी, उसे जीवित ही पकड़कर पाल लेने की इच्छा होती थी।"

शिकारी ने उनकी हाँ में हाँ मिलाई।

कप्तान साहब ने कहा—"चलो, कूच करें। शाम को मंज़िल पर पहुँचना है।"

कप्तान साहब, उनका ख़ानसामा, बैरा, सईस, शिकारी और माल से लदे हुए चार डोट्याल चले। कप्तान साहब घोड़े पर थे, रास्ते का अधिकांश सड़कमय था, एक ही बजे चौमुखिया के डाक-बँगले पर पहुँच गये। तीन बजे तक उनके नौकर और पाँच बजे तक उनके डोट्याल भी आ पहुँचे। कुटियों में, साहब के तमाम नौकरों ने मिल-कर उनका सामान खोल डाकबँगले में सजा दिया, पर साहब को आरामकुर्सी पर चैन कहाँ। उनका शिकारी मार्ग में से ही मनुष्यभक्षी के सच्चे और ताज़े समाचार एकत्र कर लाया था।

शिकारी ने साहब के निकट जाकर कहा—"हुज़ूर, बाघ ने अब तक पच्चीस नरनारियों का भोजन किया है। यह पटवारी के पास के अंक हैं, जो शीघ्र ही आपको सलाम करने आपकी सेवा में हाज़िर होगा। यहाँ से तीन मील नीचे एक गाँव है। गाँव के नज़दीक ही एक शिवजी का मन्दिर है। कल शाम ख़ूब उजाला रहते ही बाघ मन्दिर के अन्दर घुस गया और पुजारी को खींचकर पास ही जंगल में लेकर खा गया। सारे गाँव और उसके आसपास त्राहि-त्राहि मची हुई है। गाँववाले दिन में भी द्वार बन्द कर मकानों के अन्दर बैठे हैं। यहीं चौमुखिया में देखिए; कितनी शून्यता है हुज़ूर, कोई भी अकेला नहीं दिखाई देता। लोगों ने इस दिशा को छोड़ दिया। आज हमें रास्ते में ही कितने कम यात्री नज़र आये।

साहब ने उसी समय शिकार को चलने की उत्तेजना प्रकट की। शिकारी भी पूरे उत्साह से उनका साथ देने को तैयार हो गया। बैरा, ख़ान-सामा और चारों डोट्याल कुली भी साथ चलने के लिए राज़ी कर लिये गये। उसी समय चार आदमियों और अपनी बन्दूक़ को लेकर पटवारी साहब भी आ पहुँचे।

छै उस समय नहीं बजे थे। सूरज के डूबने में अभी कुछ देर थी। बाघ के घबड़ाने को तुमुल-ध्वनि उत्पन्न करने के लिए कुछ लोगों ने मिट्टी-तेल के ख़ाली कनस्तर गलों में लटकाये, हाथों में लाठियाँ लीं। अन्धकार में पथ देखने के लिए कुछ लालटेनें भी साथ रख ली गईं। हॉवर्ड साहब सदल-बल गाँव की ओर चले। वह गाँव जूनिया के गुसाईंजी का और वह मन्दिर और पुजारी भी उन्हीं के थे। जूनिया का घर पथ के निकट ही था। शिकारियों का शोर सुनकर वह भी उत्सुकता से प्रेरित हो उनके साथ होने लगा।

पत्नी ने उसका हाथ खींचकर कहा—"नहीं, वहाँ न जाओ।"

जूनिया ने हाथ छुड़ाकर कहा—"जाने दो, इतने आदमी हैं, डर की कोई बात नहीं है। अगर उसी बाघ का ग्रास होना है तो वह मकान के अन्दर भी आ सकता है। डरो मत, दरवाज़ा बन्द कर लो; सानी!"

सानी जूनिया की पत्नी का नाम था।

जूनिया ने तेज़ी के साथ आँगन में से अपनी कुल्हाड़ी उठाकर कंधे पर रक्खी और दौड़कर शिकारियों के दल में जा मिला। सानी ने हाथ जोड़कर भगवान् से प्रार्थना की—"हे परमेश्वर, कुशल करना!"

गुसाईंजी के घर से कुछ फ़ासले पर जंगल के निकट ही शिवमंदिर था। शिकारियों को वहाँ तक पहुँचने में कुछ भी देर नहीं लगी। सूरज अभी-अभी डूबा था।

हॉवर्ड साहब ने मंदिर के निकट पहुँचते ही बाघ के पदचिह्न और रक्त के छींटे तलाश करने आरंभ किये। पटवारीजी ने उन्हें मंदिर के अंदर न जाने की सलाह दी।

साहब को मंदिर के बाहर ही रक्त-बिंदुओं का सूत मिल गया था। यह उनके सहारे सावधानी से बंदूक़ सम्हाल आगे को बढ़े। उनका शिकारी और पटवारीजी भी अपनी-अपनी बंदूक़ें लिये कुछ फ़ासले पर उनके साथ-साथ चले और शेष दल उनके पीछे-पीछे हो लिया।

निकट की एक गुफा के द्वार तक सूत बराबर मिलता गया। गुफा से कुछ दूर पर खड़े होकर कप्तान साहब कहने लगे—"मेरा अनुमान है, बाघ इसी गुफा के अंदर है। बहुत सावधानी से काम लेने की ज़रूरत है। ज़रा-सा चूक जाने पर प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।"

जूनिया भय से काँपने लगा। डोट्यालों ने कनस्तर पीटकर एक अजीब ध्वनि पैदा की। कुछ-कुछ अँधेरा हो चला था। साहब ने लालटेनें जलाकर बत्ती कम कर लेने की आज्ञा दी।

अचानक साहब को गुफा के अंदर दो चमकते हुए नेत्र दिखाई दिये। उन्होंने शिकारी और पटवारीजी को सावधान किया तथा शेष दल से दौड़कर दक्खिन का मार्ग रोक लेने को कहा। आज्ञा पाते ही वे तुरंत भागे। जूनिया की धोती एक झाड़ी में अटक गई और वह वहाँ पर अकेला ही रह गया।

बाघ गुफा के द्वार पर आया और जूनिया को अकेला पाकर उसकी ओर ताकने लगा। जूनिया को और कुछ न सूझा, वह मंदिर की तरफ़ भागा। बाघ जूनिया की दिशा में कूदना ही चाहता था कि साहब ने आज्ञा दी—"गोली छोड़ो।"

जूनिया मंदिर में पहुँच गया था। मृत्यु के भय ने उसके पैरों में अद्भुत शक्ति दे दी थी। जूनिया मंदिर के अंदर घुस गया और द्वार ढक लिये।

"धड़ाम्! धड़ाम्! धड़ाम्!"—तीन गोलियाँ एक साथ छूटीं।

बाघ घायल होकर हवा में कई फ़ीट ऊँचा उठा और भयानक चीत्कार छोड़कर भूमि पर गिर पड़ा। कप्तान साहब ने फिर गोली छोड़ने का हुक्म दिया, तीन गोलियाँ उस पर और पड़ीं।

बाघ ने भूमि पर छटपटाकर प्राण दे दिये। सबकी जान में जान आई। डोट्यालों ने शोर का आस-पास के गाँवों को प्रतिध्वनित कर दिया—"बाघ मार डाला गया! बाघ मार डाला गया!"

लालटेनों की बत्तियाँ तेज कर दी गईं। मृत बाघ बाँधा गया और डोट्याल उसे लादकर कनस्तर बजाते, जय पुकारते चौमुखिया की ओर चले। ग्रामवासियों के दल का दल बाघ और उसे मारने-वालों के दर्शन के लिए आने लगा। जूनिया भी शोर सुन मंदिर के द्वार खोल उन लोगों में आ मिला।

अनेक लोग उन्हें चौमुखिया तक पहुँचाने गये। चौमुखिया के डाकबँगले में रात के बारह बजे तक ख़ूब चहल-पहल रही। साहब ने डोट्यालों को मज़-दूरी के सिवा पाँच रुपये इनाम के दिये। डोट्याल एक बकरी ख़रीद लाये और उसे मार-पकाकर उत्सव मनाने लगे। खा-पीकर डोट्यालों का गीत-नृत्य हुआ।

जूनिया ने भी घर पहुँचकर सानी से कहा—"ख़ुशी मनाओ और पूरियाँ पकाओ प्रिये! आज जूनिया मृत्यु के मुख से निकलकर आया है।"



तीन-चार दिन में ही कप्तान हॉवर्ड साहब का यश दूर-दूर फैल गया। सरकार ने भी उनके गुण गाये और उन्हें इनाम दिया। इनाम का सारा धन कप्तान साहब ने शिकारी को दे दिया।

दूसरा परिच्छेद—ग्राम-त्याग

दूसरे दिन प्रभात होते ही जब गुसाईंजी बाघ के वध से निडर हो रहे थे, तब किसी ने जाकर उन्हें यह सुनाया कि रात को जूनिया ने शिवजी के मंदिर में घुसकर उसे अपवित्र बना दिया है।

गुसाईंजी नख से शिखा-पर्यंत भड़ककर कहने लगे—"कौन कहता है?"

आगंतुक ने तुरंत ही उत्तर दिया—"मैं कहता हूँ और कहता कौन है। कल रात ही पटवारीजी ने मुझे सारी कथा सुनाई थी। मंदिर पूजा के योग्य नहीं रहा।"

"हैं! मंदिर पूजा के योग्य नहीं रहा। मेरे पूर्व पुरखाओं द्वारा प्रतिष्ठित शिवजी का मंदिर, चांडाल ने अपने पाप-प्रवेश से कलंकित कर दिया। हा! भगवान्! शूलपाणि! तुम्हारा तीसरा नेत्र नहीं खुला! चांडाल तुम्हें रौंदकर चल दिया और तुम अपना त्रिशूल खोजते ही रह गये।"

गुसाईंजी के क्रोध का पारावर नहीं रहा। उन्होंने तत्क्षण ही अपने भाई से पुकारकर कहा—"ले आ, मेरी लाठी ले आ। मैं उस चांडाल के बच्चे को आज जीता न छोड़ूँगा।"

गुसाईंजी को उत्तेजित देखकर भाई उनकी लाठी को अंदर छिपाकर बाहर आया और उन्हें शांत करने के लिए बोला—"जाने दीजिए, जो होना था हो चुका। आप स्थिर होकर बैठिए, मैं अभी जाकर उसकी ठीक-ठीक मरम्मत कर आता हूँ।"

आगंतुक कहने लगा—"आप भी उसके यहाँ न जाइए। मालूम नहीं बातों-ही-बातों में नौबत कहाँ तक बढ़ जाय। आपका हाथ चल जाने पर कहीं उसने भी पत्थर उठाया तो अच्छी बात न होगी।"

गुसाईंजी बोले—"इस बेईमान को हमने खाने-कमाने को खेत दिये, रहने को जगह दी। इसने हमारा मंदिर अपवित्र कर दिया। मैं उसे अब एक क्षण के लिए भी अपनी भूमि पर खड़ा नहीं देखना चाहता।"

गुसाईंजी क्रोध से काँप रहे थे। आगंतुक ने और उनके भाई ने उन्हें पकड़कर बिठाया।

गुसाईंजी ने अपने एक सेवक को बुलाकर कहा—"जाओ उस कमीने को बुलाकर मेरे सामने लाओ।"

सेवक जूनिया के घर की ओर चला।

गुसाईंजी का क्रोध कुछ शांत हो गया था। आगंतुक कहने लगा—"मंदिर का वायु-मण्डल हवन और वेद-मंत्रों से शुद्ध कर दिया जायगा। मूर्ति की फिर से प्राण-प्रतिष्ठा कर दी जायगी।"

सेवक ने जूनिया के घर पर जाकर पुकारा—"जूनिया रे! कहाँ धँसा बैठा है? चल, निकल।"

जूनिया ने रात में ही कल्पना कर ली थी कि गुसाईं को उसके मंदिर-प्रवेश की बात ज्ञात हो जाने पर फिर वह उस गाँव में न रह सकेगा। वह उस गाँव को बहुत दिनों से छोड़ देना भी चाहता था।

उस दिन सुबह उठते ही जूनिया ने अपनी स्त्री से कहा—"सानी! इस गाँव से अब हमारा अन्न-जल उठ गया है। मैं चौमुखिया में जाकर नया गुसाईं तलाश करता हूँ। तुम मेरे आने तक लोटा-तवा, नोन-तेल, कपड़ा-कंबल आदि बाँधकर रख लेना। अनाज का कोई दाना हमारे घर में है नहीं, बैल दोनों गुसाईंजी के ही हैं। एक बूढ़ी बकरी है, उसे हाँक ले चलेंगे। इसके सिवा और हमारे पास है ही क्या? घास और लकड़ी का संग्रह है, उसे ढोकर क्या करेंगे? जंगल ही से न ले आवेंगे?"

जूनिया चौमुखिया को चला गया था और अभी तक वापस नहीं आया था।

सेवक ने कर्कश स्वर में फिर कहा—"तेरे कान



फूट गये हैं ? सुनता नहीं है रे जूनिया !"

सानी ने बाहर निकलकर दबे स्वर में कहा—"घर पर नहीं हैं; चौमुखिया की तरफ़ गये हैं।"

"हूँ, घर पर नहीं हैं। गुसाईंजी का मंदिर अपवित्र कर दिया। ऐसा घमंड उसे हो गया। देवता कुपित हुए हैं और अब जूनिया उनके शाप से बचकर निकल नहीं सकता।"

"ऐसा न कहो, ऐसा न कहो। वह सब जान-बूझकर नहीं किया गया। प्राणों पर आ बनी थी, प्राण किसे प्रिय नहीं है। देवता बड़े-छोटे दोनों ही के हैं।"

"देवता इनके भी हैं ! चल चुड़ैल ! अभी मालूम हो जायगा। गुसाईंजी बुलाते हैं।"

"चलिए।"

"सानी जाकर गुसाईंजी के सामने खड़ी हुई। सानी बहुत परिश्रमी और सीधे-साधे स्वभाव की स्त्री थी। गुसाईंजी ने उसे देखकर कहा—"सानी ! तेरे पति ने अक्षम्य अपराध किया है। मैं उसे क्षमा न करूँगा और कदाचित् देवता भी नहीं। तेरा श्वसुर बड़ा नेक था, मुझे तुझ पर भी दया आती है। मैं उसका मुँह देखना नहीं चाहता। मेरा क्रोध न बढ़े, इसलिए तू जा और उससे कह दे मेरा गाँव छोड़कर चला जाय, आज ही चला जाय। मेरे खेत उसके विना विना-जुते रह जा ँ, मगर मैं उसे अब इस गाँव में आबाद नहीं देख सकता।"

सानी की आँखों में आँसू भर आये।

गुसाईंजी तत्क्षण फिर कहने लगे—"जा अभी जाकर कह दे।"

सानी ने आदरपूर्वक पीठ फिराई और आस-पास के पथ, खेत और वृक्षों पर आर्द्र दृष्टि-निक्षेप करती हुई चली। उसका मन बिछोह की पीड़ा से बेचैन होने लगा और वह मन-ही-मन सोचती हुई चली—"क्या सचमुच ये सब कुछ मुझे छोड़ देने पड़ेंगे ? आज ही !"

सानी ने घर आकर देखा, जूनिया लौटकर एक चीड़ के कटे तने में बैठा, उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

सानी ने पति के निकट जाकर बड़े गंभीर स्वर में कहा—"गुसाईंजी बहुत नाराज़ हैं।"

"क्यों ?"

"तुमने उनके मंदिर में प्रवेश कर उसे अपवित्र कर दिया।"

"सानी, देवमंदिर की इमारत मेरे पुरुषाओं ने एक-एक पत्थर ढोकर चिनी है। उसके अंदर की मूर्तियाँ भी उन्होंने ही गढ़ी हैं। वे देवता की पूजा कर वरदान लेनेवाले हो गये और हम, उनके चरणों की धूल, जब काल हमें निगलने के लिए जबड़ा फैलाता है तब, हम उसके अंदर आ-कर अपनी प्राण-रक्षा भी नहीं कर सकते।"

"वह कहते हैं, आज ही हमारे गाँव से निकल जाओ।"

"जूनिया इन बातों से डरनेवाला नहीं है, वह कब का इस गाँव से निकल गया। उदास न होओ प्रिये ! चलो, मैं तुम्हें इस संकुचित गड्ढे से निकाल-कर उदार विस्तार में ले चलूँगा, जहाँ मनुष्य के अधिकार इस तरह आँखें बंद कर पैरों से मसल नहीं दिये जाते। चलो, जूनिया अब एक क्षण इस भूमि पर टिका नहीं रह सकत ।"

सानी की आँखों से दो आँसू क [illegible] पृथ्वी पर गिर पड़ीं।

"यह क्या तुम रोने लगीं। मैं मकान ठीक कर आया हूँ और एक नये गुसाईं तलाश कर आया हूँ। उन्होंने मुझे काम देने का वादा किया है। तुमने बिस्तर-बर्तन बाँध लिये हैं न ?"

सानी ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ।"

जूनिया—चलो, सामान ही कितना है, मैं सिर पर लादकर ले चलता हूँ।

"गुसाईंजी से मिलने नहीं जाओगे ?"

"नहीं।"

"क्या कहेंगे ?"

"जो चाहें कहें। जूनिया ने कभी उनके साथ बेईमानी नहीं की है, इसी लिए उसे उनका कुछ भी भय नहीं है। चलो, अब देर करने की आवश्यकता नहीं है।"

जूनिया ने बर्त्तन-बिस्तर सिर पर रख लिये। एक डलिया में कुछ चीज़ें रख सानी ने अपने मस्तक पर सँभालीं।

दोनों कुछ देर में चौमुखिया जा पहुँचे। जूनिया ने बढ़ई को अपनी कष्ट-कथा सुनाकर पाँच-सात दिन के लिए रहने को एक कोठरी माँग ली थी।

जूनिया के नये गुसाईं की चौमुखिया के आस-पास पर्याप्त खेती थी, कुछ लेन-देन का काम भी करते थे और चौमुखिया में उनके दो मकान भी थे। एक मकान किराए पर दिया गया था, दूसरे में नीचे उनकी कपड़े और किराने की दूकान थी और ऊपर वह रहते थे।

जूनिया चौमुखिया में आते ही उनके निकट गया। वह उस समय दूकान में बैठे थे। जूनिया बाहर ज़मीन पर बैठ गया।

गुसाईंजी ने कहा—"क्यों रे जूनिया आ पहुँचा?"

"जी सरकार, आ पहुँचा। अब आपकी ही शरण हूँ।"

"हमारी शरण क्या, अपने परिश्रम की शरण हो। परमेश्वर की दया से मेरे पर्याप्त खेती है। कमा, खा, कुछ हमें भी दे।"

"पर सरकार, मैं हल अब नहीं चलाऊँगा।"

"तो क्या कुरसी पर बैठेगा?"

"नहीं, कुरसी पर बैठने की बात नहीं कहता। राज-मज़दूर का काम करूँगा, बढ़ई का काम भी मैंने सीखा है और कई महीनों तक मैंने लोहा भी पीटा है। उधर झरने की बग़ल में जो आपका खेत है, उसमें मुझे एक झोपड़ी खड़ी कर लेने की आज्ञा दीजिए। गाड़ी की सड़क के पास यह ज़मीन आप ही की है। इसमें एक नया मकान बनाने का मुझे ठेका दे दीजिए, देखिए, कैसा सुन्दर बिलकुल नये फ़ैशन का मकान मैं आपके लिये बना देता हूँ।"

गुसाईंजी ने हँसकर कहा—"अच्छा फिर देखा जायगा, इस समय जा।"

"मकान बना लीजिए सरकार! बड़े मौक़े की जगह है।"

"अरे पैसा भी तो मकान बनाने को चाहिए।"

"पैसा क्या चाहिए, लकड़ी-पत्थर से तमाम पहाड़ बने ही हुए हैं। सरकार से इजाज़त लेने-भर की देर है। मिहनत मेरी रही, कुछ कील-छपके देस से मँगा लीजिए। सैकड़ों बैलगाड़ियाँ आती-जाती रहती हैं।"

"देखा जायगा।"

"तब तक मेरे रहने का कुछ ठौर-ठिकाना कर दीजिए। झरने के पास की ज़मीन दे दीजिए। वहाँ पर आपके लिए तरकारी उगाऊँगा और एक झोपड़ी बनाकर चौकसी करूँगा।"

"उस ज़मीन के लिए मुझसे कई लोगों ने कह रक्खा है, बोल साल में उसके लिए क्या देगा?"

"जो उचित रक़म आप निश्चित करेंगे, वह दूँगा, क्यों न दूँगा। इसके सिवा मैं तो आपका हर समय का सेवक ठहरा।"

"पर तू एक बात गड़बड़कर रहा है।"

"कौन-सी?"

"यही हल न चलाने की बात।"

"गुसाईंजी, हल चलानेवाले तो सैकड़ों घूमते-फिरते हैं, मगर मैं आपको कुछ कारीगरी कर दिखाऊँगा।"

"मैं तेरे पैरों को गाँव छोड़ नगर की ओर जाते हुए देखकर ही समझ गया था। एक बात तो बता, तूने अपने पुराने गुसाईं को क्यों छोड़ दिया? क्या उन्होंने तुझसे चला जा कह दिया।"

"सारी बात अन्न-जल की है। वह पूरा हो गया। मैं वर्षों से उस गाँव में पड़े-पड़े घबड़ा गया था। पिताजी के कारण अब तक रहा। अब अवसर मिला और चला आया।"



"आख़िर कारण भी तो कुछ हुआ ही होगा ?"

"चोरी-बेईमानी कुछ नहीं की। कल बाघ के शिकार की बात तो आप जानते ही हैं सरकार !

"हाँ, तू उनके मन्दिर में घुस गया था ?"

"बस यही कारण है। नाराज़ होकर मुझसे ज़मीन छोड़ चला जा कह दिया। मैं चला आया। आपकी ही आशा में आया हूँ। झरने के पास वह जगह मुझे दे दीजिए। मैं कल ही से उसमें रहने को झोंपड़ी बना लेता हूँ।"

"जूनिया ! तेरा पिता बड़ा सीधा पुरुष था, कुछ जानता ही न था। तू बात करने में बड़ा निपुण हो गया है। अच्छा इस समय जा, कल आना।"

"जो आज्ञा सरकार ! तो मैं कल से पत्थर ढोना शुरू कर देता हूँ। खाने को न भी हो, सिर छिपाने को कुछ हो जाना चाहिए।"

"वह भी हो जायगा।"

"कल ठीक दिन है, मैं कल ही से वहाँ पर दीवार खड़ी कर देना शुरू करता हूँ।"

नये गुसाईं ने सिर हिलाते हुए कहा—"हूँऽऽ, हूँऽऽ।"

जूनिया ने सानी के पास जाकर कहा—"सब ठीक कर आया हूँ। झरने के पास की ज़मीन गुसाईंजी ने मुझे दे दी है। वहीं एक कोने में एक झोंपड़ी खड़ी कर लेंगे। हमारे कमाने-खाने भर को बहुत है। निकट ही नगर है। तरकारी उपजाकर वहाँ बेच लावेंगे। जो कुछ पैसा प्राप्त होगा, गुसाईंजी को देंगे। कुछ बच जायगा तो उससे अपना नोन-कपड़ा चलावेंगे।"

सानी ने चिंतित होकर एक गहरी साँस ली।

जूनिया उसे धीरज देते हुए कहने लगा—"तुम सोच में क्यों पड़ गईं। गुसाईंजी यहाँ एक मकान और बनाने का विचार कर रहे हैं। मुझे उसका ठेका मिलेगा। चिंता छोड़ दो, अब हमारे खाने-पहनने का कष्ट जाता रहेगा। अब जूनिया हल हाथ में नहीं लेगा।"

"तो कैसे दिन पार होंगे ?"

"होंगे कैसे नहीं। अगर ज़मीन खोदनी ही पड़ेगी तो कुदाल से खोदूँगा, मगर हल न छूऊँगा, न छूऊँगा, न छूऊँगा। तुम ख़ूब जानती हो सानी, जूनिया बड़ा बेढब सिड़ी है।"

"मकान कच्चा बनाओगे ?"

"कच्चे का क्या काम। झरने के पास ही पर्याप्त पत्थर पड़ा हुआ है। अपने हाथ के काम करने वाले हैं, चार दीवारें खड़ी करते क्या देर लगती है। दो-चार छोटे-छोटे चीड़ के पेड़ कहीं से काट लाऊँगा, उन्हें छत में जमाकर चीड़ की पत्तियों से उसे छा डालेंगे।"

सानी के मुख में कुछ संतोष की छाया उदित देखकर जूनिया बढ़ई के दूकान की ओर बढ़ा।

दूकान में बैठे हुए बढ़ई ने तम्बाकू पीते-पीते कहा—"कहाँ हो आया जूनिया ! आ बैठ तम्बाकू पी।"

जूनिया बैठते हुए बोला—"यहीं गुसाईंजी के पास गया था।"

"क्या कहते हैं ? कहीं ठौर-जगह देने को राज़ी हैं ?"

"हाँ, राज़ी कर लाया हूँ।"

जूनिया के मन में जो बढ़ई बन जाने की इच्छा पोषित हो रही थी, उसे उसने प्रकट नहीं किया।

बढ़ई बोला—"काम क्या करेगा ?"

जूनिया ने अवसर पाकर कह ही [illegible] दिया—"तुम्हारे चरणों के पास बैठकर कुछ हथौड़ा पीटना सीखा है। उसी से कहीं पत्थर तोड़, लकड़ी फाड़ कमा खाऊँगा, पर हल नहीं चलाऊँगा।"

बढ़ई ने अपनी घबराहट छिपाकर कहा—"कहाँ फेर में पड़ गया है। मेरी ही दूकान पर काम कर। कुछ मज़दूरी भी दूँगा।"

जूनिया कहने लगा—"तुम्हारा भरोसा है, अब तुम्हारे पास काम बढ़ जाय, तब मुझे ख़बर कर देना, मैं दिन-रात खपकर उसे पूरा कर जाऊँगा। रह गई मज़दूरी की बात, तुम्हें जो पसंद हो

देता। न भी दोगे तो क्या चिंता है, पेट पालने को कहीं-न-कहीं से मिल ही जायगा।''

जूनिया ने दूसरे दिन प्रभात ही से पत्नी-सहित गुसाईंजी की ज़मीन पर जा अधिकार जमाया और सात दिन में ही रहने भर को मकान बना डाला।

समस्त ग्रीष्म ऋतु उस दंपति ने मकान के चारों ओर दीवालें चुनकर, खेत तैयार करने में बिता दी। उन्होंने खेतों में नाना प्रकार की तर-कारियाँ बो दीं। जल समीप ही था, उन्होंने भूमि को सींचकर अपने मकान के चारों ओर हरियाली उपजा दी।

गुसाईंजी अपना मकान बनवाने को राज़ी नहीं हुए। पर उन्होंने अपने एक ठेकेदार मित्र से जूनिया की सिफ़ारिश कर दी। उन्होंने निकट ही गाड़ी की सड़क पर एक नया पुल बनाने का ठेका ले रक्खा था। कुल काम दस हज़ार का था। उन्होंने जूनिया को पाँच आने रोज़ पर पत्थर ढोने में रख लिया।

धीरे-धीरे जूनिया के दिन सुधरते दिखाई देने लगे। उसकी पत्नी कभी-कभी गुसाईंजी के यहाँ छोटा-मोटा काम करने चली जाती और कच्चा-पक्का ले आती। तरकारी बेचकर भी जूनिया ने कुछ पैसा कमाया, पर इतना नहीं, जितनी आशा थी।

उस नूतन निवास में जूनिया के दिन बीतने लगे। उसने हल पर हाथ सचमुच में फिर नहीं रक्खा।

(क्रमशः)



तिलक कामोद–त्रिताल

गत मसीतखानी]

[ले०—कुमार बुद्धिभद्र दीक्षित

स्थायी

प़	नी़	प़	री	ऽ	री	सा	री	प	म	ग	सा	री	ग	नि़	सा
×				२				०				३			
री	म	प	ध	म	प	सां	प	ध	म	ग	सा	री	ग	नी़	सा
×				२				०				३			

अन्तरा

प	ध	प	सां	ऽ	प	सां	ऽ	रीं	गं	रीं	मं	गं	रीं	नी	सां
×				२				०				३			
प	नी	सां	रीं	सां	ऽ	प	ध	म	री	ऽ	म	ग	री	नी़	सा
×				२				०				३			

तोड़ा (१)

प़	नी़	प़	री	ऽ	री	सा	री	सारी	मप	धप	मग	सारी	गसा	रीऽ	साऽ
×				२				०				३			

तोड़ा (२)

प़सा	सासा	नि़सा	सासा	रीग	गग	नि़सा	सासा	रीम	मम	पध	मप	सांसां	पध	मग	रेसा
×				२				०				३			

तोड़ा (३)

प़	नी़	प़	री	प़नी़	सारी	गऽ	साऽ	सारी	मप	धऽ	मऽ	पध	सांरीं	गंऽ	सांऽ
×				२				०				३			
रींपं	मंगं	सांरीं	मंगं	सांरीं	सांनी	धप	पध	पम	गरी	रीप	मग	सारी	मग	रीसा	नि़सा
×				२				०				३			

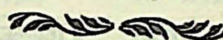


तोड़ा (४)

प़	नि़	प़	री	ऽ	री	सा	री	प	म	ग	सा	पप	मग	रीसा	नि़सा
x				२				०				३			
सांसां	पध	मग	रीसा	पंपं	मंगं	रींसां	नीसां	मंगं	रींसां	नीसां	रींरीं	सांनिं	धप	पध	सांरीं
x				२				०				३			
गंऽ	पध	सारी	गंऽ	सांरीं	ऽसां	नीध	पध	सांऽ	पध	मग	रीग	पऽ	मग	रीसा	नि़सा
x				२				०				३			

तोड़ा (५)

.	नि़	प़	री	ऽ	री	सा	री	सारी	मप	धऽ	धप	मग	सारी	गऽ	साऽ
x				२				०				३			
सांरीं	मप	धसां	पध	सांरीं	गंऽ	सांरीं	मंगं	सांरीं	मंगं	रींसां	नीध	पध	सांरीं	गंगं	रींसां
x				२				०				३			
नीध	पध	परीं	सांनी	धप	नीध	मप	धध	पम	गरी	पप	मग	रीसा	नि़सा	ऽ	पऽ
x				२				०				३			



अन्तरराष्ट्र

आज का जर्मनी

श्री० विष्णुदत्त मिश्र 'तरङ्ग'

हिटलर की वैदेशिक नीति की चर्चा करनेवाले भूल जाते हैं कि आज का जर्मनी वह सत्ता है, जिसके इशारे पर राष्ट्र काँपते हैं और ब्रिटिश सिंह और रूसी भालू थर्रा जाता है। हिटलर के शासनारूढ़ होने का सबसे बड़ा वरदान यह है कि उसने जर्मन-जाति में स्फूर्ति पुनः जाग्रति की है, जिसके कि अभाव में जर्मनी राष्ट्रों की शक्ति के हाथ का खिलौना बन गया था, जिसको कि राष्ट्रों ने 'मुर्दा' समझ रक्खा था। आज दुनिया में इस सत्य को माननेवालों की कमी नहीं है, जो कि यह विश्वास करते हैं कि जर्मनी की पराजय और उसके बाद 'मनुष्य-जाति को समानाधिकार' देने के सिद्धान्त का सबसे बड़ा उल्लंघन जर्मनी के मामले में किया गया।

जर्मनी के ऊपर सबसे बड़ा अभियोग यहूदियों के साथ सख्ती करने का बताया जाता है। जर्मनी ने यह अनुभव किया कि जब तक जर्मनी की आर्थिक सृष्टि के कर्णधार वे लोग रहेंगे, जोकि जर्मन-जाति की आकांक्षाओं के विरोधी हैं, तब तक जर्मन राष्ट्र जीवन के वास्तविक स्रोतों से अज्ञात रहेगा। आज अगर जर्मनी निर्बल नहीं रहना चाहता तो उसके इस निश्चय में "दुर्बलो देवापि घातकः" के सिद्धान्त को उल्लंघन करता है। फ्रांस, ब्रिटेन, रूस और जीकोस्लोवेकिया के बन्दूकों के घेरे में अपनी बन्दूक ठीक साधने की नीति जीवित रहने की नीति है।

× × ×

हिटलर ने सर्वप्रथम जो कार्य किया है, वह राष्ट्र को व्यवस्था और अनुशासन के प्रति राष्ट्र में भावनाएँ जाग्रत कर दी हैं। जीवित देशों की राजनीति का तत्त्व यही है कि प्रारंभ से ही राष्ट्र के हरेक बच्चे-बच्चे को राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित किया जाय। जच्चा और बच्चा की खबरदारी के लिए जर्मन-सरकार की एक अलग संस्था है जिसका कि काम यह देखना है कि जच्चा और बच्चा दोनों का पालन-पोषण उचित रीति से होता है। हरेक मा को मासिक भत्ता दिया जाता है कि वह बच्चे के पालन-पोषण में खबरदारी रक्खे। इसके बाद वह स्कूल में भरती किया जाता है जहाँ कि उसे विविध शिक्षाएँ प्राप्त होती हैं। जिस तरह हमारे यहाँ बालचर संघ है, उसी तरह ये बच्चे "हिटलर यूथ लीग" में भरती किये जाते हैं। हरेक बच्चे को प्रारंभ से ही जीवन में अनुशासन और जाग्रति के लिए उत्साहित किया



जाता है। पिछले वर्ष ६० हज़ार बच्चे देश के विभिन्न भागों में सैर करने के लिए ले जाये गये। इसी तरह क़रीब ७० हज़ार माताओं को भी देश की सैर कराई गई। हिटलर की सरकार का सिद्धान्त यह है कि बच्चों को प्रकृति की ओर आकर्षित किया जाय।

कल्पना कीजिए कि राष्ट्र के हरेक बच्चे को राष्ट्र अपनी प्यारी वस्तु समझकर उसके ज्ञान के विकास में संलग्न है। दुनिया में जर्मनी का यह उदाहरण अपने दृष्टिकोण से अनोखा है।

× × ×

बेकारी घटाने में जर्मनी का स्कीम हमारे देश के लिए अनुकरणीय है। जर्मनी में क़रीब २ लाख व्यक्ति बेकार हैं। हिटलर की सरकार का सिद्धान्त है कि हरेक व्यक्ति का यह हक़ है कि राष्ट्र उसे जीविका-उपार्जन का साधन प्रदान करे। जर्मन की सरकार ने शहरों में व्यवसाय ढूंढ़नेवालों पर प्रतिबंध लगा रक्खा है। हम भारत में देखते हैं कि लोग गाँवों में काम नहीं करना चाहते और शहर भागते हैं। इस दृष्टि से यह अनुशासन बड़ा लाभप्रद साबित हो रहा है। बड़ी-बड़ी ज़मींदारियों को छोटे-छोटे किसानों में बाँटकर हज़ारों परिवारों की जीविका की व्यवस्था की गई है। जर्मनी की लेबर-एक्सचेंज-संस्था जहाँ जिस लायक मज़दूरों की ज़रूरत होती है, वहाँ लोगों को भेजती है। जब तक कोई व्यक्ति अपने पेशे में पूर्णता प्राप्त कर नहीं लेता, तब तक उस धंधे को करने की इजाज़त नहीं मिलती। इसका नतीजा यह हो रहा है कि लोग धंधों में [illegible] की ओर अग्रसर होकर राष्ट्र की उत्तमता [illegible] को नष्ट नहीं होने दे रहे हैं। मज़दूरों को छोटे-छोटे मकान देकर उनमें सब्ज़ी पैदा करने का रिवाज डाला गया है, जिससे कि वे अपने व्यय का थोड़ा-सा भार हलका कर सकें।

× × ×

मज़दूरों और कारख़ानेदारों के बीच जर्मनी में झगड़े के समाचार पाठकों ने हिटलर के शासन के बाद सुने ही नहीं होंगे। जर्मन सरकार ने इसके लिए एक नवीन व्यवस्था की है। जर्मनलेबर-फ्रांट संस्था के सामने सभी मामले रक्खे जाते हैं और दोनों पक्षों की बात सुनने के बाद दोनों पार्टियों को राज़ी कर दिया जाता है। यह संस्था ९३ फ़ीसदी मामलों का निपटारा कर देती है और शेष ७ प्रतिशत विशेष अदालत के सामने पेश होते हैं, जिसका कि निर्णय अन्तिम होता है। मज़दूर हड़ताल नहीं कर सकते; क्योंकि जर्मन-सरकार का ख़याल यह है कि इस नाज़ुक आर्थिक स्थिति में कड़ी व्यवस्था के बिना काम नहीं चल सकता। राष्ट्र के हित के लिए छोटे-छोटे समूहों को बलिदान करने का आदर्श है।

× × ×

जर्मनी के जंगलों को साफ़ करके खेती तथा विस्तार के लिए अधिक ज़मीन प्राप्त करने की ग़रज़ से लेबर-सर्विस स्थापित है। यह संस्था जंगलों को साफ़ करती, गाँव बसाती और खेत तैयार करती है। इसके बदौलत हज़ारों आदमियों को काम मिलता है। सभी श्रेणी के युवकों को इस संस्था में काम करना अनिवार्य है।

× × ×

किसानों की दृष्टि से हिटलर ने बड़े महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं। सभी किसानों के क़र्ज़ की जाँच करके वे कम किये गये और किसानों को "नेशनल खाद्य-संस्था" के अन्तर्गत रख दिया गया। किसानों के माल को रखने के लिए बाज़ार में ऊँची बाज़ार-दर मुक़र्रर की गई और मंडियाँ क़ायम की गईं। इन मंडियों को चलानेवाले किसानों के ही नौकर रक्खे गये। फलस्वरूप



किसानों द्वारा पैदा किये जानेवाले अनाज की क़ीमत ६० फ़ीसदी बढ़ा दी गई है और विदेशी खाद्यों की प्रतिस्पर्द्धा से बचाने के लिए नये-नये क़ानून बनाये गये।

इसके सिवा आवश्यकता से अधिक पैदावार को भेजने के लिए अन्य देशों से आर्थिक समझौते किये गये। इसके सिवा राष्ट्र को सस्ते मूल्य पर चीज़ें उपलब्ध करने के लिए हालैण्ड से मक्खन मँगाने का, लटेविया से सुअरों के मँगाने का बन्दोबस्त किया गया है। जर्मनी की आर्थिक नीति यह है कि राष्ट्र को ऐसे मूल्य में चीज़ें उपलब्ध हों कि हरेक नागरिक को वे प्राप्त हो सकें। जर्मनी में इसके सिवा अपने देश के बने हुए माल को भी प्रोत्साहन देने की नीति बड़े ज़ोरों से बरती जा रही है।

× × ×

राष्ट्रीय संतति को शुद्ध बनाने के लिए जर्मनी की सरकार ने एक नया क़ानून बनाया है। इसके अनुसार अविवाहितों पर २ से ५ प्रतिशत तक आमदनी पर कर लगाया जाता है। लेकिन इसके विपरीत स्वस्थ दम्पति को ६०० मार्क से लेकर १००० मार्क तक धन क़र्ज़ पर दिया जाता है। एक-एक बच्चे के बाद इस क़र्ज़ का २५ फ़ीसदी माफ़ कर दिया जाता है। इस धन से नवदम्पति वस्त्र ख़रीदते, सामान ख़रीदते और वस्त्र-व्यवसायी तथा सामानवालों का व्यापार बढ़ता है। अभी तक ५ करोड़ मार्क इस तरह क़र्ज़ दिये जाते हैं। इस धन से नवदम्पति मकान बनवा चैन से गुज़र करते हैं। इस क़ानून का प्रभाव यह हुआ है कि अधिक स्वस्थ दम्पति अधिक स्वस्थ संतति पैदा करते हैं। सन् १९३४ में इस कारण ७ लाख ४० हज़ार शादियाँ हुईं और ११ लाख ७० हज़ार बच्चे कुल पैदा हुए। जर्मनी की पैदायश इस तरह तरक्क़ी पर है। नवीन दम्पत्तियों को इस तरह गाँवों में रहकर छोटा व्यवसाय करने का अवसर मिलता है।

× × ×

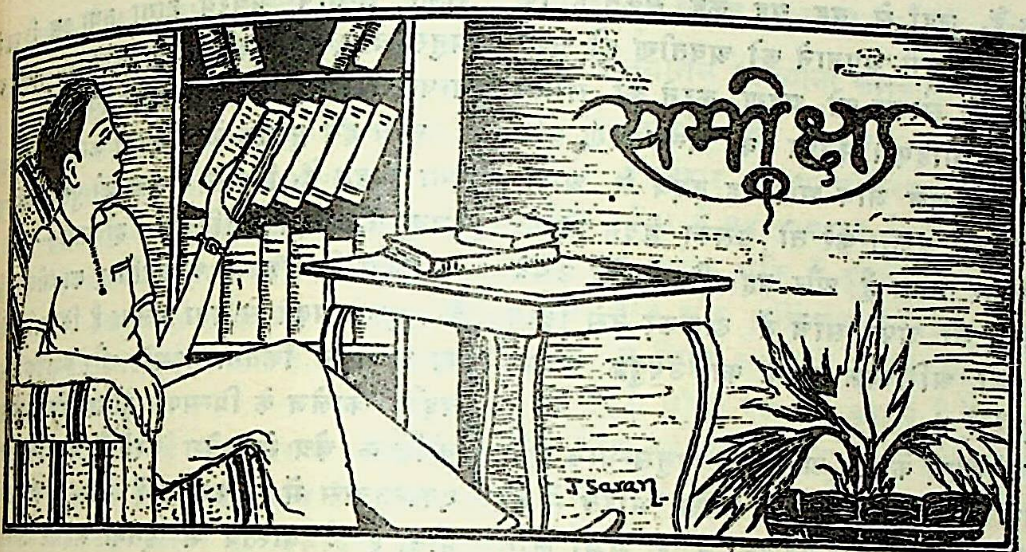
सच तो यह है कि जर्मन-राष्ट्र जीना जानता है। इसके सामने व्यक्तिगत हित प्रधान नहीं है। इसका पता इसी बात से चला कि इस वर्ष गर्मी में विश्वविद्यालयों से ऐसी लड़कियों की माँग की गई जोकि कारख़ानों में बिना वेतन के काम करें और इसके बदले में वहाँ की मज़दूर स्त्रियों को तीन सप्ताह के अवकाश का समय दें। इतने अधिक प्रार्थनापत्र आये कि जर्मनी की सरकार को चुनाव में मुशकिल पड़ गई और हज़ारों स्त्रियों को इस तरह पूरी तनख़्वाह पर जाने का मौक़ा मिला। जीना और दूसरों को जीने देने का ऐसा भाव अगर जर्मन-राष्ट्र में न होता, तो निश्चयतः वह अभी तक नष्ट हो गया होता।

जर्मन सैलानी जीव होते हैं। उन्होंने एक संस्था बनाई है, जिसका उद्देश्य है—"आनन्द के द्वारा शक्ति प्राप्त करो। इस संस्था का मुख्य काम भ्रमण की प्रवृत्ति जागृत करना है और जर्मन सरकार २० लाख मार्क की सालाना मदद इसे देती है। इस संस्था के द्वारा ३॥ लाख व्यक्तियों ने सैर की और जीवन का आनन्द लिया।

× × ×

यह सब हिटलर के राज्य में हो रहा है और अगर हम प्रोपेगेण्डा में न पड़कर निष्पक्ष रूप से विचार करें तो तह तक पहुँच सकेंगे।





१—"श्रीअरविन्द और उनका योग ।"

श्रीअरविन्द विश्व की उन महामहिम विभूतियों में हैं, जो समय-समय पर जगत् के वेदनापूर्ण दुःखमय जीवन में आनन्दमयी चेतना का संचार करने के लिए अवतीर्ण हुआ करते हैं। यद्यपि भारत की रत्नगर्भा वसुन्धरा को अनेकों विश्वजनीन महात्माओं की जन्मदायिनी होने का सौभाग्य प्राप्त है, तथापि श्रीअरविन्द में कुछ मौलिक विशेषताएँ हैं, जो उनके पूर्व कहीं भी प्रादुर्भूत नहीं हुई थीं । इसीलिए यह आधुनिक भारत के ही नहीं, समस्त विश्व के भाग्योदय का समय है। श्रीअरविन्द की साधना केवल [illegible]ात्मक जगत् से निकलकर मुक्त होकर अदृश्य हो जाना नहीं है, प्रत्युत उस अदृश्य, अव्यक्त, सच्चिदानन्द परब्रह्म की 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं' समर्थ शक्ति को नीचे दृश्य जगत् में अवतीर्ण कराना है, जिससे इस दृश्य जगत् में ही वह अव्यक्त निर्बन्ध स्वरूप चाक्षुष प्रत्यक्ष हो। आदि युग में भक्त-प्रह्लादजी के अन्तःकरण से समष्टि-उन्नति की सुस्पष्ट भावना अभिव्यञ्जित हुई थी, उन्होंने भगवान् नृसिंह से जो यह प्रार्थना की थी कि भगवन्! अधिकांश महात्मा केवल अपनी ही मुक्ति की कामना से निर्जन वन में मूक तपस्या किया करते हैं, दूसरों के हित के लिए उनकी निष्ठा नहीं होती, परन्तु देव ! इन दुःखी जीवों को छोड़कर मैं तो अकेले मुक्त होना नहीं चाहता, क्योंकि इस संसार में भटकते हुए जीव के लिये आपके सिवा दूसरा कोई सहारा देनेवाला नहीं है।*—उसी का यह विकास है । श्रीअरविन्द की योग-साधना का ध्येय मानव-समष्टि में देवत्व की चिर-प्रतिष्ठा करना है । उन्होंने उस शक्ति-विशिष्ट भगवच्चैतन्य का पता पाया है, जो पार्थिव जीवन को बदलकर दिव्य बना सकता है । वह इस जगत् को मिथ्या कहकर इसे त्यागने या आत्मा को परब्रह्म में विलीन करने की बात नहीं बतलाते, उनका अभिप्राय मानव-जीवन में ही भगवत्तत्त्व की चिर स्थापना करना है । आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान में श्रीअरविन्द का यह नवीन सूत्राध्याय है, जिसमें ऐसी शक्तियाँ संगृहीत हैं, जिनका अभी तक पता नहीं था । वह योग के द्वारा उस सत्य को प्राप्त

* प्रायेण देवमुनयः स्वविमुक्तिकामा मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः । नैतान् विहाय कृपणो विमुमुक्षु-रेको नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥

श्रीमद्भागवत ७।९।४४



हो चुके हैं, जहाँ से वह यह कह सकते हैं कि ईश्वरीय शक्ति हमें अपनाने को अवतीर्ण हो चुकी है, हमें उसके संस्पर्श को ग्रहण करने की क्षमता प्राप्त करनी चाहिए। मनुष्य का अन्तःकरण यदि ठीक तरह से खुल जाय और वह हृदय से आरोहण की सतत इच्छा करे तो उसका हृदय दिव्य-शक्ति से भर जाता है और वह दिव्यशक्ति उसके अंग-प्रत्यंग को अपने साँचे में ढालकर उसे दिव्य जीवन को अभिव्यक्त करने का उपयुक्त साधन बना देती है।'

श्रीअरविन्द के इस अभूतपूर्व अनुसन्धान और विलक्षण अनुभूति की चर्चा केवल भारत में ही नहीं, समस्त विश्व में हो रही है। सभी लोग उनके योग के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्कण्ठित हैं। बँगला, गुजराती और विशेषतः अँगरेज़ी-भाषा में उनके विचार प्रकट हुए भी हैं, पर हिन्दी-संसार उनके सिद्धान्तों से प्रायः अपरिचित है। अतः इसी न्यूनता की पूर्ति के लिए श्रीमदनलालजी गाडोदिया के उद्योग से कलकत्ते में श्रीअरविन्द-ग्रन्थमाला का उद्घाटन हुआ है। इसके द्वारा श्रीअरविन्द के सभी ग्रन्थों का हिन्दी में प्रकाशन होगा, जिससे हिन्दीभाषा-भाषी जनता को श्रीअरविन्द के विचारों से लाभ उठाने का अवसर प्राप्त हो गया है। इस अभिनन्दनीय कार्य के लिए हिन्दी-संसार सदा ही श्रीयुक्त मदनलालजी का ऋणी रहेगा।

'श्रीअरविन्द-ग्रन्थमाला' का प्रथम पुष्प 'श्रीअरविन्द और उनका योग' नाम से प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक का प्राप्तिस्थान '४ हेयरस्ट्रीट, कलकत्ता' और मूल्य ॥) है। इसमें भिन्न-भिन्न विषयों पर आठ निबन्ध हैं, जो सभी श्रीअरविन्द-आश्रम के कतिपय विद्वान् साधकों द्वारा लिखे गये हैं। यद्यपि इस पुस्तक में श्रीअरविन्द के जीवन तथा योग का प्रास्ताविक परिचय मात्र दिया गया है, तथापि सम्पूर्ण पुस्तक के अध्ययन से जिज्ञासुओं को नवजीवन-लाभ की एक वस्तु पाकर सन्तोष अवश्य होगा तथा इस विषय में अनुसन्धान करने की सुरुचि बढ़ेगी। पुस्तक की भाषा सरस, सुबोध और धारा-प्रवाह है।

नीचे हम पुस्तक के विषयों का दिग्दर्शन करा देना चाहते हैं, जिससे पाठकों को पुस्तक की उपादेयता का भली भाँति ज्ञान हो जाय—

प्रथम निबन्ध में श्रीअरविन्द का जीवन-चरित है। इसके पढ़ने से पता चलता है कि श्रीअरविन्द का अध्ययन कितना गम्भीर और व्यापक है। बड़ौदा-कालेज के प्रिन्सपल होकर फिर कैसे राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं और कारागृह में एकान्तवास में रहकर उन्हें कैसे अन्तर्ज्ञान प्राप्त होता है? वास्तव में इतना महत्तर ज्ञान और ऐसी अलौकिक प्रतिभा रखनेवाले महापुरुष के जीवन की दिशा का अध्यात्म-साधना की ओर मुड़ जाना तथा स्वल्पकाल में ही इतनी अधिक उन्नति प्राप्त कर लेना स्वाभाविक ही है।

दूसरा निबन्ध 'जीवन-कला-योग' है। इसमें श्रीअरविन्द के योग के सम्बन्ध में जो कुछ लोगों में भ्रम फैल गया था, उसका निवारण किया गया है। साथ ही उनके योगका प्रामाणिक विवेचन हुआ है, जिसका सार यों है—'श्रीअरविन्द का योग हठयोग, लययोग आदि तांत्रिक साधनाएँ नहीं हैं। उनके योग का अभिप्राय है, मनुष्य-जाति में भगवान् को अभिव्यक्त और मूर्तिमान् करना। मनुष्य-जीवन का केवल दुःख दूर करना ही नहीं, बल्क उसका सर्वथा परिवर्तन और रूपान्तर कराना—मनुष्य-जीवन को दिव्य बनाना ही उनका लक्ष्य है।'

'मानव-जीवन को दिव्य बनाने का यह अर्थ नहीं कि मनुष्य-जाति अब रहेगी ही नहीं, सब-के-सब देवता ही हो जायँगे। बल्कि इसका तात्पर्य है मानव-जीवन का विकास होना। जैसे, पशुयोनि में विकास होते-होते मनुष्य की उत्पत्ति हुई, पर सारी पशु-जाति बदल नहीं गई, उसी प्रकार मनुष्य-जाति के रहते हुए ही मानव-जीवन में दे



का विकास होगा—मनुष्य देवता बन जायँगे।' ऐसा होना केवल अनुमान ही नहीं है, इसके सम्बन्ध में श्रीअरविन्द का कथन है कि यह केवल हो सकने की बात नहीं है, अवश्य होनेवाली है। इसका होना अनिवार्य और ध्रुव सत्य है।....जिस शक्ति के द्वारा यह कार्य होगा और अभी हो रहा है, वह कोई वैयक्तिक मानव-शक्ति नहीं है........ वह शक्ति है, स्वयं सर्व-शक्तिमान् भगवान् की। श्रीभगवान् ही उस कार्य में लगे हैं, इसीलिए यह अवश्य होनेवाला है।'

कितनी निर्भरता है। ईश्वर में कितनी दृढ़ निष्ठा और कितना अटल विश्वास है। भगवान् करें, इस प्रत्यक्षदर्शी योगी की सद्भावना से शीघ्र मानव-जाति का मंगल हो। आगे चलकर इस निबन्ध में यह भी समझाया गया है कि मानव-जीवन में भगवच्चैतन्य के अवतरण का यथार्थ स्वरूप क्या है? वह कैसे होता है? उसका कार्य-क्षेत्र क्या है और उससे क्या होनेवाला है? इत्यादि।

तृतीय निबन्ध है—श्रीअरविन्द का पूर्णयोग। इसकी विवेचना-शैली बहुत ही गम्भीर और सारपूर्ण है। इसमें बड़ी ही सूक्ष्मदर्शिता के साथ श्रीअरविन्द के योग की पूर्णता का प्रतिपादन किया गया है। 'मनुष्य इस समय जिस रूप में जीवन व्यतीत कर रहा है, वह दुःख, द्वन्द्व और जन्म-मृत्यु के भय से पूर्ण है। उसे इस मृत्यु-संसार-सागर से ऊपर उठना होगा। पर ऊपर उठकर वह जायगा कहाँ? जिस भगवान् से वह आया है, जिसके अन्दर ही उसका सनातन निवास है, जिसके मानसिक वियोग से ही वह दुःखी है। उसी भगवान् में उसे ज्ञानपूर्वक स्थित होना होगा, अनिर्वचनीय आनन्द का उपभोग करना होगा। परन्तु इसके लिए तीव्र वैराग्य और उपासना की आवश्यकता है। वैदिक काल में इस प्रकार की साधना के दो अंग थे, ज्ञान और कर्म। आगे चलकर ये दोनों ही स्वतंत्र साधन बन गये। गीता में इनकी स्वतंत्र साधनता का यों उल्लेख है—

"ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।"

परन्तु गीता का सिद्धान्त लक्ष्य कुछ और ही है। उपसंहार में भगवच्छरणागति का उपदेश देकर गीता ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ज्ञान और कर्म की पूर्णता भक्ति में ही है। जिस साधना में कर्म, ज्ञान और भक्ति इन तीनों का समन्वय है, गीता में सिद्धि का वही उत्कृष्ट मार्ग है। इतना ही नहीं, गीता यह भी कहती है कि मोक्ष-प्राप्ति के लिए यह जीवन, यह शरीर छोड़कर कहीं जाना न होगा। मृत्यु के पूर्व 'इहैव फलमश्नुते' इसी शरीर में मनुष्य भगवान् के साथ पूर्णरूपेण युक्त होकर उनका साधर्म्य प्राप्त कर सकता है। वैदिक काल से लेकर अब तक साधना की जितनी पद्धतियाँ प्रचलित हुईं, उनमें अधिकांश का यही मंतव्य था कि यह संसार, यह शरीर और यह जीवन मिथ्या है, इससे हटकर परमेश्वर में मिलना ही परम पुरुषार्थ है। आचार्य शंकर की शिक्षा का यही मूल तत्त्व है। बौद्धों और उनकी शिक्षा में कोई विशेष अन्तर नहीं है। भक्ति-सम्प्रदाय में यद्यपि यह मत गृहीत नहीं हुआ, तथापि इसका भी यही लक्ष्य रहा कि इस सांसारिक जीवन का त्याग कर संसार से ऊपर गोलोक या वैकुण्ठ में जाकर भगवान् के साथ संयुक्त होना है।

सारांश यह कि प्राचीन काल से कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—ये जो तीन प्रकार की साधनाएँ चली आ रही हैं, इनका चरम लक्ष्य दुःखमय सांसारिक जीवन से ऊपर उठकर परमेश्वर में लीन होना रहा है। परन्तु इस पृथ्वी पर ही मानव-जीवन के अन्दर रहकर भगवान् के साथ साधर्म्य प्राप्त करने का जो मार्ग हम गीता के अन्दर पाते हैं, वह कहीं भी स्फुटित नहीं हुआ और श्रीअरविन्द की साधना में हमें उसी का विकाश देखने को मिलता है। यहाँ कर्म, ज्ञान और भक्ति का पूर्ण सामञ्जस्य है। यही श्रीअरविन्द



के योग की पूर्णता है, मनुष्य के अन्दर जो देवत्व निहित है, उसको देह, प्राण और मन में पूर्ण विकसित करना होगा। जरा, व्याधि और मृत्यु को जीतकर अमृतत्व लाभ करना होगा। यही उनका लक्ष्य है।'

चौथा निबन्ध है—नवस्वरूप-दर्शन और बोध। इसमें परम्परागत योग की मीमांसा और प्राचीन तत्वज्ञों के प्रयत्न की समीक्षा करके श्रीअरविन्द के योग की नूतनता प्रदर्शित की गई है। विज्ञान के अवतरण से मानव-जीवन कैसे दिव्य बनता है, इसका प्रकार समझाया गया है। साथ ही इस निबन्ध में श्रीअरविन्द के नवीन अनुसन्धानों का दिग्दर्शन कराया गया है। 'बर्गसन और हालडेन आदि पाश्चात्य तत्त्व-विचारकों ने जीवन की शक्तिमत्ता का उल्लेख किया है, परन्तु उनकी आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि प्राणगत ज्ञानवृत्ति के परे नहीं पहुँच सकी है, यहाँ यदि किसी की प्रतिभा चमकी है, तो वह श्रीअरविन्द की ही है। उन्होंने प्राण, मन, बुद्धि, अधिमानस, विज्ञान और परात्पर ब्रह्म में स्थित विशाल ज्ञानालोक ढूँढ निकाले हैं। श्रीअरविन्द यह बतलाते हैं कि सूक्ष्मशक्ति अधिमानस लोक तक स्थूलशक्ति से समाच्छन्न है और उसके परे विज्ञान-शक्ति तथा परात्पर-शक्ति अवस्थित है। विज्ञान-शक्ति पृथ्वी पर उतर आ सकती है और हमारे स्वरूप को सर्वथा रूपान्तरित कर सकती है।'

इस निबन्ध में श्रीअरविन्द-योग की शक्ति का भी उल्लेख हुआ है, जो इस प्रकार है—'श्रीअरविन्द का योग केवल आध्यात्मिक-जीवन में ही काम देनेवाला नहीं है, बल्कि उससे ज्ञान के विभिन्न विभागों में भी क्रान्ति होनेवाली है। उस योग की पूर्ति होने पर उसके द्वारा मनोविज्ञान, शरीर-विज्ञान, जीवविज्ञान, गर्भजीव-विज्ञान और भूत-विज्ञान आदि शास्त्रों में नये सिद्धान्त स्थापित होनेवाले हैं।....इससे काव्य में नये अलंकार और कला में नये आदर्श उत्पन्न ोनेवाले हैं। भावाभिव्यञ्जन के जो मार्ग हैं, उनमें भगवत्-शक्ति अनुविष्ट होगी और तत्त्वज्ञान, कला तथा सायंस वास्तव में रूपान्तरित तथा दिव्य बनेंगे।'

पाँचवाँ निबन्ध है—श्रीअरविन्द और उनका सम्प्रदाय। पाण्डिचेरी के एकान्तवास में श्रीअरविन्द क्या करते और क्या नहीं करते हैं—इस सम्बन्ध में लोगों में कुछ भ्रान्त धारणा फैली हुई थी। उसका निराकरण करते हुए सत्य को स्पष्ट किया गया है।

छठें निबन्ध में श्रीअरविन्द के गीता-भाष्य की सुन्दर समालोचना है।

सातवें निबन्ध में शुद्ध आध्यात्मिक जीवन का सुन्दर चित्रण किया गया है। दम्भपूर्ण भ्रान्त धारणा के वशीभूत होकर लोग जिसको आध्यात्मिक जीवन समझते हैं, उसका युक्तिपूर्वक निराकरण किया गया है।

और अन्तिम आठवें निबन्ध में ईश्वर के स्वरूप और राज्य का सुन्दर विवेचन हुआ है तथा संसार को यह आशाभरा अमर सन्देश भी दिया गया है कि वह दिन अवश्य ही आनेवाला है, जबकि इस पृथ्वी पर ही ईश्वर के राज्य की प्रतिष्ठा होगी।

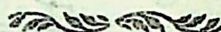
श्रीअरविन्द में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन तर्क, अनुमान और शास्त्रार्थ के बल पर नहीं करते, अपितु प्रयोग करके आज़माये हुए प्रत्यक्षदर्शी वैज्ञानिक की तरह पूर्ण विश्वास के साथ अपना अनुभव प्रकट करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सुदीर्घ काल से दुःख-सागर में डूबी हुई मानव-जाति श्रीअरविन्द को उस नवीन युग का अवतार मानने में भूल नहीं कर सकती, जब कि महात्मा ईसा का यह वचन कि 'हे भगवन् ! तुम्हारा भगवद्राज्य पृथ्वी पर उत्तर आये' पूरा होनेवाला है।

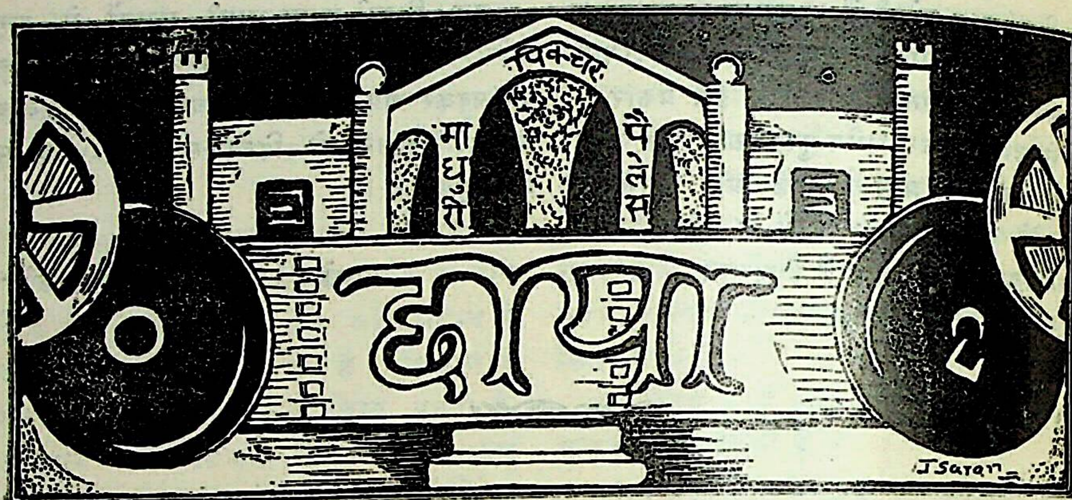
श्रीअरविन्द के आश्रमवासी साधकों के अतिरिक्त अन्य भी उनके सिद्धान्तानुयायी बहुत-से साधक हैं, जो भारत के विभिन्न प्रान्तों में रहकर साधना किया करते हैं और उन्हें श्रीअरविन्द से

दिव्य शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। उनकी आध्यात्मिक अनुसंधान की रुचि प्रतिदिन बढ़ती है, उन्हें नित्य नूतन अनुभव प्राप्त होता है। उनके इस प्रकार के साधकों से दो-एक के समीप कुछ काल तक रहने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है और उतने ही समय में मेरे ऊपर उन साधकों के संयम और महत्व का बहुत प्रभाव पड़ा है। अस्तु।

हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से अनुरोध करेंगे कि वे श्रीअरबिन्द-ग्रन्थमाला की पुस्तकों को पढ़कर अपना जीवन सुधारने का प्रयत्न करें। बड़े ही सौभाग्य से हिन्दी-संसार को यह सुयोग प्राप्त हुआ है।

पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'





भारत का सर्वश्रेष्ठ कलाकार कौन है ?

श्रीसतीशचन्द्र निगम

भारतवर्ष में सर्वश्रेष्ठ कलाकार कौन है ? इस प्रश्न को हाथ में लेने से एक विचित्र समस्या हमारे सामने आ उपस्थित होती है। इस समय लोगों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कोई किसी वस्तु को पसन्द करता है, कोई किसी वस्तु को; इससे किसी विशेष वस्तु पर या किसी व्यक्ति-विशेष पर राय देने से भिन्न-भिन्न मत पैदा हो जाते हैं। अस्तु, इन भिन्न-भिन्न मतों को लक्ष्य में न रखकर केवल कला को सामने रखकर हम इस गुत्थी को सुलझाने की कोशिश करेंगे।

सिनेमा-क्षेत्र में कला क्या है। यह तो स्वयम् एक अच्छा ख़ासा लम्बा-सा विषय है, जिस पर हम कभी फिर प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे; क्योंकि इस समय हमारा मतलब कुछ और है। सिनेमा में कला तो क्या हर एक कला पर कुछ कहना या कुछ लिखना बहुत कठिन होता है। इस समय तो केवल हम यही कह सकते हैं कि कला को हृदय में, अधिकतर, केवल अनुभव किया जा सकता है, वर्णन नहीं। जिस बात से जिस वस्तु से एक विशेष गुदगुदी हमारे अन्दर पैदा हो जाय जिसके सुनने या देखने मात्र से हृदयतंत्री के तार अपने-आप बज उठें, मन में एक लहर पैदा हो जाय और शरीर रोमांचित हो उठे; और ऐसी बात अधिकतर अदृश्य में हो, साफ़ न हो, उस महान् कवि वाटसन के शब्दों में, "The art of art is to refrain", छिपी हो, जिस पर सरसरी निगाह डालने पर उससे हम यों ही निकल जायँ पर कोंचकर निकालने में चिहुँक उठें; उस समय हम उसको कला कहेंगे और वह वस्तु कलापूर्ण होगी। महान् लेखक रसकिन के शब्द "Whatever bit of a wise man's work is honestly and benevolently done, that bit is his piece of art." भी हमारी इस कला में ठीक उतरना चाहिए।

इस समय कलाकार से मतलब हमारा अभिनेताओं और अभिनेत्रियों से नहीं, उनके डाइरेक्टरों अथवा निर्देशकों से है; क्योंकि निर्देशक के ऊपर ही चित्र की सफलता-असफलता निर्धारित



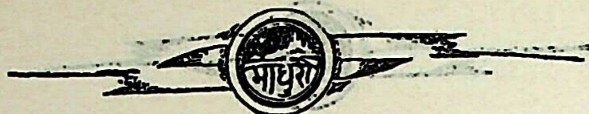
रहती है। अभिनेताओं और अभिनेत्रियों की सफलता भी उन्हीं महानुभावों के ऊपर रहती है, यह मानी हुई बात है; उस पर अधिक कहना फ़िज़ूल है।

भारतवर्ष में निर्देशक बहुत-से हैं, पर उनमें से कलाकार कौन-कौन है तो वह थोड़े-से हैं, जोकि हमारी उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। श्रीयुत चन्दूलाल शाह (बम्बई), श्रीरामाशंकर चौधरी (बम्बई), श्रीयुत नीतन बोस (कलकत्ता), श्रीयुत प्रमथेश बरूआ (कलकत्ता), श्रीयुत शांताराम जी (पूना), श्रीयुत देवकीकुमार बोस (कलकत्ता), इसके अलावा जो हैं वह नहीं के बराबर किसी तरह काम चला रहे हैं। जानते तो हैं कि मि० भवनानी, मि० सर्वोत्तम बदामी, मि० फ्रेंज आस्टीन (बोम्बेटाकीज़), मि० इज़रामीर, मि० सरदार, मि० लुहार, बाबूराव पेन्टर, मि० नंदलाल, मि० गांगुली, मि० विनायक, प्रफुल्लराव, ज्योतिष बनर्जी आदि-आदि भी हैं, पर न तो उन्होंने कोई कला की चीज़ अभी तक दी है और न अभी उनसे आशा ही है। इससे इन व्यक्तियों को हम यों ही छोड़ देते हैं।

मि० चन्दूलालशाहजी की सर्वश्रेष्ठ कलापूर्ण कृति अभी तक 'बैरिस्टर की बीबी' ही रही है। इसके बाद हमने आपको नीचे गिरते ही देखा है। आप एक पक्के बनिये हैं, रुपये की ओर सबसे अधिक ध्यान है। कला इस मसले को आपसे हल नहीं कर पाती। इससे हम उनको यहीं छोड़ते हैं। मि० रामाशंकर चौधरी के एक अच्छे कलाकार होने में कोई शक नहीं, पर आप उतने ऊँचे कलाकार नहीं हैं, जितना कि और लोग। आपकी कला के सबसे उत्कृष्ट चित्र 'माधुरी' और 'टेम्पिल बेल्स' हैं। इसके आगे आप नहीं बढ़ सके हैं इसका क्या कारण है, हम समझ नहीं सकते, पर आपके शब्दों से ऐसा मालूम होता है (जो आपने एक Interview में हाल में दिये थे) कि आप एक विचित्र परिस्थिति में अभी तक फँसे चले आते हैं। इससे आप अपनी पूर्ण कला अभी तक नहीं दिखा सके हैं। पर आपकी महत्तर आकांक्षाएँ हैं, आप समय की बाट जोह रहे हैं। देखें वह समय कब आता है, पर हम उनको उस समय तक यहीं छोड़ते हैं।

अब रहे मि० नीतन बोस, मि० बरूआ, मि० शांताराम और मि० देवकी बोस। यही भारत के सच्चे कलाकार हैं, इसमें हमें कोई शक नहीं। और लोग भी ऐसा ही कहते हैं। पर इनमें सर्वश्रेष्ठ कौन है, इसको हम नीचे दिखाने की चेष्टा करेंगे।

मि० नीतन बोस और मि० प्रमथेश बरूआ न्यू थियेटर्स के डाइरेक्टरस हैं (मि० देवकी बोस पहले यहीं थे पर अब नहीं हैं)। और इनकी कला हमारे सामने अनेक रूपों में आ चुकी है। प्रश्न अब यह है कि इन चित्रपटों की कला जो कि न्यू थियेटर्स से निकले हैं, उनका श्रेय इन डाइरेक्टरों को ही है या कम्पनी के कुछ और कलाकारों को भी है। विचार करने से वहाँ की परिस्थिति का पूरी तरह से अध्ययन करने से हमें पता चलता है कि इसका श्रेय पूर्ण रूप से डाइरेक्टरों को ही नहीं, पर अन्य कलाकारों को भी है। न्यू थियेटर्स के चित्रों की सबसे बड़ी सफलता उसके पृष्ठसंगीत (Back Grouud Music) और संगीत पर है। इसका सारा श्रेय वहाँ के संगीत-निर्देशक मि० आर० सी० बोरलजी पर है। फिर इसके अलावा कम्पनी में मि० कुन्दनलाल सैगल, के० सी० डे आदि जैसे गायक हैं, जिन्होंने अब काफ़ी धूम मचा रक्खी है। Music के अलावा इनके चित्रों की सफलता बहुत हद तक यहाँ के कुशल अभिनेताओं और अभिनेत्रियों पर भी है। भारत का सर्वश्रेष्ठ अभिनेता, जोकि एक ही है, जिस पर हमें मान है—मि० पृथ्वीराज कपूर बी० ए०—यहीं पर है। मि० सैगल, मि० पहाड़ी सान्याल, मि० नवाब आदि जैसे प्रथम श्रेणी के अभिनेता यहीं पर हैं। भारत की प्रथम श्रेणी की अभिनेत्रियाँ मिस उमाशशि, मिस जमना, मिस चन्द्रा



यहीं पर हैं। फिर इनके चित्रों की सफलता का श्रेय यहाँ के फोटोग्राफर्स साउंड इन्जीनियर्स पर भी है। उसके अलावा मि० अमरमल्लिक, मि० केदार, मि० सुदर्शन-जैसे प्रभावशाली मनुष्य यहीं पर हैं। इस तरह यहाँ के चित्रों की सफलता का भार बहुत दर्जे तक निर्देशक के कंधे पर से हट जाता है। इसी भाँति मि० शांतारामजी प्रभात-कम्पनी के सर्वेसर्वा हैं और प्रभात के भाँति Well equipped कम्पनी और भारतवर्ष में नहीं है। इससे आपको तो हर तरह की ही सुविधाएँ हैं। फिर आपको मि० फत्तेलाल, मि० धायबार आदि जैसे कलाकारों का सहयोग प्राप्त है। रहे मि० देवकीकुमार बोस। पहले आप न्यू थियेटर्स में थे, अब इधर-उधर मारे फिर रहे हैं। अस्तु इन बातों को भी ध्यान रखकर हम सर्वश्रेष्ठ कलाकार ढूँढने की कोशिश करेंगे।

मि० नीतन बोस ने हिन्दी 'चंडीदास', 'डाकू मंसूर' और 'भाग्यचक्र' अभी तक बनाये हैं। 'डाकू-मंसूर' उस परिस्थिति में बना था, जब कि न्यू थियेटर्स ने अपनी नीति बदलना चाही थी, जब कि उसका ध्यान Box Office की ओर खिंचा था, इससे यह आपकी सबसे निकृष्ट चीज़ रही है। रहे 'चंडीदास' और 'भाग्यचक्र'। 'चंडीदास' पहले एक महान् कलाकार के हाथों से बन चुका था; इससे उसका अधिक श्रेय हम नीतन बोसजी को न दे सकेंगे। हाँ 'भाग्यचक्र' आपकी सर्वश्रेष्ठ कलापूर्ण कृति है। भाग्यचक्र में कला है, लेकिन हमारी कसौटी की नहीं। उस चित्र की सारी सफलता कुशल अभिनेताओं के अभिनय, संगीत और कहानी पर है। कहानी हमारे सुदर्शनजी की लिखी हुई है और इसके सिवा चित्र में उतनी अधिक कला नहीं है, जितनी मंज़िल या जीवन-नाटक में है। इससे नीतन बोसजी कलाकार होते हुए भी हमारी श्रेणी में नहीं आते।

अब रहे मिस्टर बरूआ, मिस्टर शांताराम और देवकी बोस। इस समय मिस्टर बरूआ 'देवदास' और 'ग्रहदाह' या 'मंज़िल' बनाकर एकाएक लोगों के सामने चमक गये हैं। देवदास कैसा चित्र है, इसमें भिन्न-भिन्न मत हैं और 'मंज़िल' कैसा है इसमें भी भिन्न-भिन्न रायें हैं, पर अपने विचार से कला की कसौटी पर 'ग्रहदाह' ही अधिक सच्चा उतरता है, 'मंज़िल' देवदास से कला में अधिक अच्छा है और यह उस श्रेणी में आ जाता है, जिसमें 'भूकम्प के बाद' और 'जीवन-नाटक' हैं। पर 'मंज़िल' या 'ग्रहदाह' और 'देवदास' की सफलता का रहस्य क्या है, क्या इसका सारा श्रेय डाइरेक्टर के ऊपर है तो इन बातों से हम सहमत नहीं। देवदास और ग्रहदाह का ५०% श्रेय उस महान् कलाकार के कंधे पर चला जाता है, जिन्हें हम शरतचन्द्र चटर्जी कहते हैं। 'कला बंगालियों की बपौती है' शरतचन्द्र उन्हीं व्यक्तियों में से हैं। उनको कौन नहीं जनता, देवदास और ग्रहदाह उनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यास हैं। देवदास उनकी एक 'नगण्य' कृति है। उसमें घटनाएँ एक के बाद एक उतरती चली आती हैं। बरूआजी का 'देवदास' शरतचन्द्र के 'देवदास' से ज़रा भी अधिक नहीं है, पर कम ही है। कोई बात दो-एक छोड़कर, जो कि बरूआजी ने स्वयं डाली है, हर एक बात, हरएक Motion ऐसी नहीं है, जो उपन्यास में न हो। ग्रहदाह में केवल एक घटनाचक्र ही नहीं है, पर मनोविज्ञानिक गुत्थियों से भरा एक अनुपम कलापूर्ण उपन्यास है और यही कारण है ग्रहदाह देवदास से अधिक कला की कसौटी पर उतरता है। उससे यह आधा श्रेय शरतबाबू पर चला जाता है। आधे में से २५% अभिनेताओं और अन्य व्यक्तियों पर और २५% निर्देशकजी पर। देवदास की अच्छी ख़ासी सफलता सैगल, के० सी० डे और जमना पर है। सैगल के गाने देवदास की सफलता में सबसे अधिक हाथ रखते हैं। इसी प्रकार ग्रहदाह, जिसका कि हीरो सुरेश है, उसकी भूमिका में मि० पृथ्वीराज कपूर के अभिनय पर बहुत कुछ सफल रहा है। मिस जमना और बरूआजी स्वयं उसमें अच्छा

अभिनय किये हुए हैं। हमारा मतलब इन बातों से यह नहीं है कि मिस्टर बरूआ कोई अच्छे डाइरेक्टर नहीं हैं; वह ज़रूर हैं, पर सबसे बड़े नहीं। उनकी इस तक़दीर का फ़ैसला उनकी आगामी कृति 'माया' ही कर सकेगी।

अब रहे शांताराम और देवकी बोसजी दोनों ही अलग-अलग भारत का नाम उज्ज्वल किये हैं, पर श्रेष्ठ कौन है यह तो आगे चलकर ही मालूम हो सकेगा। शांतारामजी ने अभी तक सात चित्र बनाये 'अयोध्या का राजा', 'जलती निशानी', 'मायामछीन्द्र' 'सैरन्ध्री', 'अमृतमंथन', 'महात्मा' और 'अमर ज्योति'। देवकी बोसजी ने भी अभी तक सात चित्र बनाये 'चंडीदास' (बँगला), 'पूरण-भक्त, राजरानी मीरा', 'सीता', 'भूकम्प के बाद', 'जीवन-नाटक' और 'सुनहरा संसार' (अभी बन रहा है)। दोनों ने एक साल में एक चित्र हमारे सामने रक्खा है! शांतारामजी के पहले चित्र 'अयोध्या के राजा', 'जलती निशानी' 'मायामछीन्द्र' बहुत अधिक कलापूर्ण चित्र नहीं थे। उनकी कला 'अमृतमंथन' से शुरू होती है, 'महात्मा' में कुछ आगे बढ़ती है, 'अमर ज्योति' में और भी आगे। पर देवकी बोसजी का चंडीदास से लेकर अन्त तक सारे चित्र कलापूर्ण हैं और सब बारी-बारी से आगे बढ़ते चले जा रहे हैं। शांतारामजी के चित्रों में Powerful dialogue, gorgeous settings, enchantment great dramatic turning point आदि से भरे रहते हैं और Box Office चित्र बनाने के लिए वह त्रुटियों से भरे रहते हैं। अवसर-कुअवसर पर गाना इन चित्रों में मामूली बातें हैं। Dramatic गाने (दो व्यक्तियों की बात गाने में) भी अब भी रहते हैं। पिछले चित्रों 'महात्मा' और अमर-ज्योति ने वह कला अब अपनाना शुरू की है, जिसे हम चाहते हैं, पर अभी यह कला पूर्ण स्वरूप नहीं धारण कर पाई है। फिर उनकी सारी कला अवसर-कुअवसर गाने में स्टेज के जैसे गानों से और अन्य बातों से नष्ट हो जाती है। यदि यह कुछ बातें छोड़कर उसी कला को शांतारामजी और आगे बढ़ायें तो वह हमारे सर्वश्रेष्ठ कलाकार हो सकते हैं, अन्यथा तब तक नहीं।

रहे अब श्रीयुत देवकीकुमार बोसजी। आप ही भारत के सर्वश्रेष्ठ कलाकार कहे जा सकते हैं। उनके अभी तक जितने चित्र बने हैं, उनकी बराबरी और कोई चित्र नहीं कर सकता। (केवल बरूआजी के 'ग्रहदाह' को छोड़कर फिर भी यह भूकम्प के बाद और जीवन-नाटक से पीछे रह जाता है)। बात सच तो यह है कि इस समय जो इस क्षेत्र में भारत ने उन्नति की है, उसका सारा श्रेय देवकी बोसजी ही को है। जिस समय देश 'लैलामजनू', 'शीरींफरहाद', 'सावित्री-सत्यवान्' 'अयोध्या का राजा' 'सुबह का सितारा' आदि जैसे चित्र बना रहा था, उस समय आपने पहले-पहल चंडीदास और पूर्ण भक्त बनाकर देश का नाम गौरवमय किया था। जिस समय चन्दूलाल शाह राधा रानी जैसे चित्र बना रहे थे जब कि शांतारामजी अयोध्या का राजा और मायामछीन्द्र जैसे चित्र ही निकाल सके थे जिस समय बरूआजी का पता नहीं था जिस समय नीतन बोसजी देवकीबोसजी के निर्देशन में कार्य सीख रहे थे उस समय यह महान् कलाकार चंदीदास और पूर्ण भक्त बना चुका था जिनकी बराबरी आज तक न तो शांतारामजी और न नीतन बोस या बरूआ ने ही की है। जिस समय सारा फ़िल्म-जगत् नाटकी बातों को लिए हुए आगे बढ़ रहा था—जिस समय नाटकी तौर पर शैरों में बात-चीत होती थी अवसर-कुअवसर पर गाना एक मामूली बात थी, जादूभरी बातें—तलवारबाज़ी और अस्वाविकता जब चित्रों में भरी रहती थी उस समय इस कलाकार ने चंडीदास पूर्णभक्त में स्वाभाविकता और गानों की नई पुट देकर उस इतने बड़े प्रवाह को अकेले खड़े होकर बदल दिया था। और इस समय कौन ऐसा नहीं है जिन्होंने उनकी बातों को नहीं अपनाया। पर ठाठ कला-



कार का यह रहा कि जब देखा कि अब सब उस स्थान तक आ गये जहाँ पर कि वह स्वयं था फिर और आगे बढ़ा एक नया रंग पकड़ा एक नई बात पैदा कर दी और अपने पूर्णभक्त चंडीदास सीतावाले Standard को छोड़कर अब 'भूकम्प के बाद', 'जीवन नाटक' और 'सुनहरा संसार' जैसे चित्र बनाना प्रारम्भ कर दिये।

इन चित्रों में एक कवि के हृदय की झलक रहती है। इनमें कवित्व रहता है इनमें साहित्य रहता है इनका एक-एक चित्र हमारे पास एक-एक सन्देश भेजता है। महान् कवि Wordsworth का सन्देश या Back to nature वही सन्देश हमको आपके 'जीवन-नाटक' से राजकवि के मुँह से 'फिर लौट चलो कुदरत की ओर' मिला यही उस चित्र की प्रधान धारा है इसी का उसमें प्रवाह है। इसी भाँति उनका इन्क्लाब हमको 'प्रेम-बुलावा सबको है' की पुकार देता है। इनके चित्रों में कोई विशेष चरित्र, कोई उपन्यासिक चित्रण नहीं होता पर सारे संसार का होता है। कला की दृष्टि से आपका 'इन्क्लाब' या 'भूकम्प के बाद' सबसे महान् चित्रपट है उसमें सारे संसार का चित्रण है। उसका 'मुसाफ़िर' सारे संसार को देख चुका है वह इसको भली भाँति समझता है वह अब इसके चक्कर में नहीं आनेवाला है, उसकी 'रैनी' इस संसार से ऊब चुकी है वह छुटकारा पाना चाहती है वह इसको तोड़कर भागना चाहती है उसका 'जैसवाल' युवक है वह संसार की ऊट-पटांग बातों को सहन नहीं कर सकता; वह Revolution चाहता है, वह समाज में इन्क्लाब करना चाहता है, उसको तोड़-मरोड़कर अपने मन का बनाना चाहता है। इस प्रकार उसके हर एक चित्र में संसार के किसी कोने का चित्र खिंचा हुआ होता है उसमें संसार की एक बड़ी ज़बरदस्त समस्या सुलझी हुई है। इसी भाँति जीवन-नाटक की 'कौन' उस महान् पुकार को जिसको संसार अभी तक चिल्लाता चला आया है 'फिर लौट चलो कुदरत की ओर' को न सुन इस संसार के झमेले में आ कूदती है। इस चक्कर में उसे असलियत का पता चलता है। उसे मालूम होता है कि 'हम संसार में एक दूसरे को खा जाना चाहते हैं' 'हमें दुखियों के दुःख की क्या परवाह' 'हमें सुखी होने के लिए दूसरों की गरदन पर छुरी फेरना पड़ती हैं' 'हमें प्रेम करने के लिए दूसरों का हृदय तोड़ना पड़ता है' वह इनसे घबड़ा जाती है, परेशान आ जाती है। फिर एक बार वही पुकार होती है 'फिर लौट चलो कुदरत की ओर'। वह इस बार इसे सुनती है और इस गोरखधंधे को लात मारकर चली जाती है। इसी प्रकार इनका तीसरा चित्र 'सुनहरा संसार' (जो लेखक के लिखते समय बन रहा है) इस समय सारे संसार के सामने जो Problem जो समस्या है और जो कि सबसे बड़ी समस्या है जिसके हल करने के लिए संसार के महान् से महान् दिमाग़ लगे हुए हैं, उसे लेकर बन रहा है। वह समस्या है पेट की और Un employment की इस समस्या को लेकर बोसजी बढ़ रहे हैं। हमें पूरी-पूरी आशा है कि अब एक नई चीज़ नई तौर पर हमारे सामने आनेवाली है।

आपके पहले के चित्र अपनी स्वभाविकता अपनी नई-नई सूझें सुन्दर रूप में गाने आदि लिये रहते थे स्वभाविकता और सूझों ने उन चित्रों में कमाल ही कर दिया था। कलाकार ने अपनी कला से अपनी सूझों से हमें 'सीता' में लाखों वर्ष पहले रामचन्द्र और लक्ष्मण के सामने ला खड़ा किया था। हम सचमुच उस समय के बाल्मीक आश्रम में लव और कुश को पालती हुई सीता के सामने जा खड़े हुए थे। इसी प्रकार वृन्दावन की गलियों में प्रभु के प्रेम की मतवाली मीरा को 'मेरे तो गिरधरगोपाल दूसरा न कोई' गाते हुए ज़मीन पर घसीटते हुए देखकर सचमुच हमारे सामने सच्ची मीरा आ खड़ी हुई थीं। इसी भाँति चंडीदास को अपनी रामी को वेश्या अवस्था में हाथों में लिये हुए ज़मींदार द्वारा देख-

निकाले पर ले जाते हुए देखकर कौन बंगाली न रोया होगा, किसको अपने कवि चंडीदास की एक बार याद न आई होगी। कलाकार की कला की हद हो गई है जब कि उसका एक चित्रपट कलकत्ते जैसे शहर में एक सिनेमा में डटकर २९ सप्ताह चला। भारतवर्ष में इस रिकार्ड को न कोई अब तक तोड़ सका है और न कभी कोई तोड़ सकेगा।

अब आपके नवीन चित्रों में एक समस्या होती है, एक नया रस होता है, एक नई सूझ होती है। मिल्टन, कीट्स, शैली, विकटर ह्यूगो, वर्ड्सवर्थ—इवान तुर्गनेव और गोर्की की कला के पुजारियों के लिए आपके चित्रपट अद्वितीय होते हैं आपके इन चित्रों में ज़बरदस्त मनोविज्ञान की गुत्थियाँ होती हैं ज़बरदस्त फ़िलासफ़ी होती है। (Techneque) तान्त्रिक कला में आपके बराबर कोई नहीं है। तान्त्रिक कलाकार और निर्देशक की हैसियत से भारतवर्ष में तो क्या सारे संसार में आपका मुक़ाबला करनेवाले बहुत थोड़े हैं। फिर तारीफ़ यह, चित्र की कहानी—प्लाट—सीनरियों आदि सभी आपका होता है। अभिनेता कैसा भी हो उसे आप ठोंक-पीटकर ठीक कर लेते हैं। आपके चित्रों में जिसने भी अभिनय किया सदैव के लिए अमर हो गया। 'पूरणभक्त' के कुमार कभी भुलाये नहीं भुले जा सकते। भारत के प्रथम श्रेणी के अभिनेता और अभिनेत्री आपके ही बनाये हुए हैं। भारत के प्रथम श्रेणी के अभिनेता दुर्गादास बनर्जी पृथ्वीराज कपूर और नवाब आप ही की बदौलत इस क्षेत्र में श्रेय पाये हुए हैं। भारत की सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्रियाँ श्रीमती दुर्गाबाई खोटे और उमाशशि आप ही की बनाई हुई हैं।

इस प्रकार भारतवर्ष में इस क्षेत्र में यदि अच्छे अभिनेता निकले तो आपके कारण; अच्छी अभिनेत्रियाँ निकलीं तो आपके कारण; भारतवर्ष ने जो इस कला में उन्नति की तो आपके कारण; चित्रपटों में स्वाभाविकता आई तो आपके कारण; उनमें ठीक से पृष्ठ-संगीत का दौड़दौड़ा हुआ तो आपके कारण; गानों में एक नई पुट दी गई तो आपके कारण; भारत के सर्वश्रेष्ठ चित्र बने तो आपके द्वारा। ऐसे महान् कलाकार को यदि हम 'भारत का सर्वश्रेष्ठ कलाकार' न कहें तो फिर क्या कहें?

(नोट—'माया' और 'सुनहरा संसार' अब जनता के सामने आ गये हैं—संपादक)

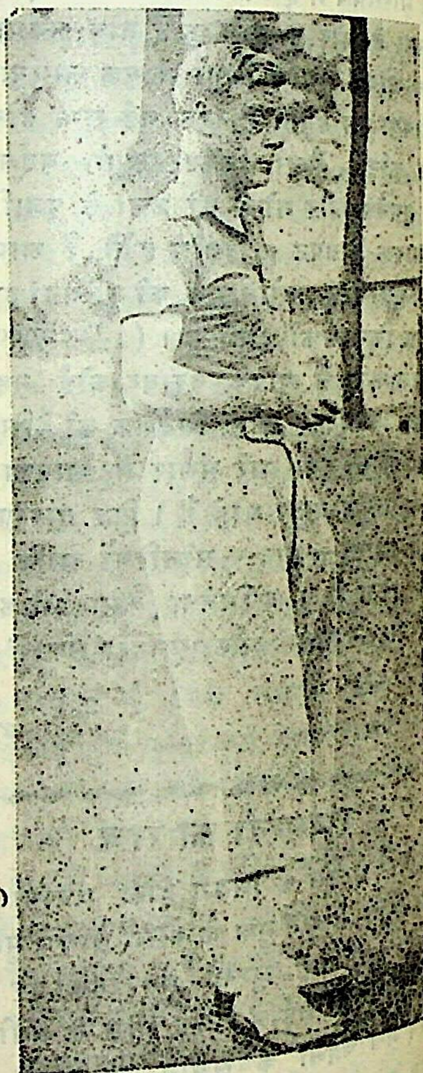
प्रेम की वेदी पर

श्रीलक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज

एक पुरानी कहावत चली आती है—

'स्त्रीचरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः'

भूतपूर्व सम्राट् एडवर्ड अष्टम के राज्य-परित्याग-अभिनय को देखकर इसके अतिरिक्त और कहा ही क्या जा सकता है ? भावी प्रबल है। जो विगत दिसम्बर के पहले सप्ताह में भूमण्डल के सबसे शक्तिशाली साम्राज्य का स्वामी था—उस साम्राज्य का जिसके अन्तर्गत कभी सूर्यनारायण अस्त नहीं होते—वह दूसरे ही सप्ताह में एक साधारण नागरिक, ब्रिटिश-साम्राज्य की प्रजा के अन्य निवासियों की तरह ही रह जाता है। इसी का नाम है कर्म, भाग्य और भवितव्यता। कभी-कभी इतिहास की रचना किस तीव्र गति से होती है, इसका अनुमान इसी एक बात से लग सकता है कि लगभग वह बच्चा जिसकी आयु केवल एक वर्ष और छः मास की है, तीन सम्राटों का शासन-काल देख चुका है। वे तीन हैं—सम्राट् पंचम जार्ज, एडवर्ड अष्टम और जार्ज छठवें। अभी कल-परसों की-सी बात है कि साम्राज्य भर में सम्राट् पंचम जार्ज की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया था और एडवर्ड अष्टम के सिंहासनारोहण पर उन्हें बधाई दी गई थी। कौन जानता था कि इतने अल्पकाल में ही फिर परिवर्तन होगा और परिवर्तन भी कैसा कि जिसकी समानता का उदाहरण प्रधान मंत्री के ही शब्दों में पूर्वकालिक इतिहास में नहीं मिल सकता। शासन-काल क्या जीवन का अन्त भी अवश्यम्भावी है, पर जिन परिस्थितियों में सम्राट् एडवर्ड ने सिंहासन छोड़ा है, वे अपने ढंग की निराली, अनोखी और शिक्षा-प्रद हैं। अन्त तो होता, अब



एडवर्ड अष्टम
(खिलाड़ी की पोशाक में)

न होता, आगे होता, पर चकित करनेवाली बात तो यह है कि वह अन्त इतना शीघ्र आ पहुँचा—

हसरत उन गुंचों पे है जो बे खिले मुरझा गये।

× × ×



'विशाल-भारत' के सुयोग्य सम्पादक श्रीबनारसीदास चतुर्वेदी ने भूतपूर्व सम्राट् के इस प्रेम की कहानी को तूल देकर लिखने की मनोवृत्ति को "धोबी मनोवृत्ति" के नाम से पुकारा है और अमेरिका तथा इँगलैंड के अनेक पत्रों को उक्त दोष का भागी बताया है। उनका कथन है कि जिस प्रकार राम-राज्य में धोबी ने श्रीराम के ऊपर यह लाञ्छन लगाया था कि उन्होंने जानकीजी को रावण के यहाँ रह आने पर भी रख लिया, उसी प्रकार कुछ पत्रकारों ने भूतपूर्व सम्राट् और उनकी प्रेयसी मिसेज़ सिम्पसन के पारस्परिक प्रेम के विषय में ऐसी-ऐसी बातें खोद निकाली हैं, जिनको विज्ञप्ति देना, जिन्हें प्रकाश में लाना नितान्त वाञ्छनीय न था। हमारा इस विषय में श्री चतुर्वेदी जी से मतभेद नहीं है, फिर भी हमें अपने इस लेख में पाठकों की पूर्णरूपेण जानकारी के लिए इस विषय की थोड़ी-बहुत चर्चा करनी ही पड़ेगी। कारण यह है कि ऐतिहासिक घटनाओं के 'कारण और कर्म' (Cause and effect) में अनन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है, अतएव यथोचित जानकारी तभी की जा सकती है, जब उस घटना-सम्बन्धी पूर्व ज्ञान भी हो। अस्तु।

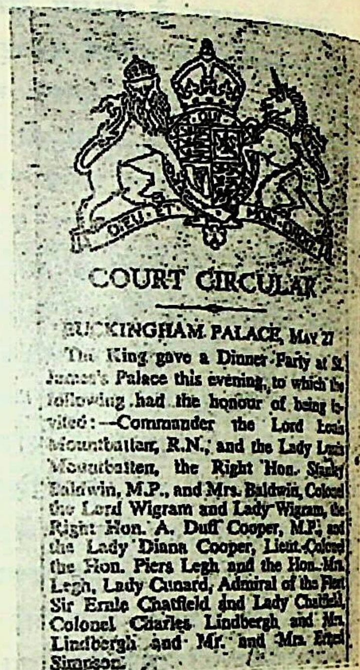
परदे के पीछे

कहते हैं कि सम्राट् जार्ज पंचम ने अपने जीवन-काल में एक बार राजकुमार एडवर्ड से जब विवाह का प्रस्ताव किया तो राजकुमार ने स्पष्ट शब्दों में यह उत्तर देकर कि—"मैं उस स्त्री से शादी करूँगा जिससे कि मैं करना चाहूँ न कि उससे जिससे कि आप चाहें।" उन्हें निरुत्तर कर दिया था। होते-होते समय बीतता गया—एक के बाद दूसरा वर्ष आया और चला गया—सम्राट् जार्ज पंचम का शासनकाल भी समाप्त हो गया, राजकुमार एडवर्ड 'प्रिंस ऑफ़ वेल्स' से 'सम्राट् एडवर्ड अष्टम' के नाम से घोषित भी हो गये पर उनकी शादी न हो पाई। यहाँ तक कि कुछ लोगों को तो यह आशा होने लगी थी कि कदाचित् सम्राट् अविवाहित ही रहना पसन्द करेंगे। निदान आशा के अन्धकार में एक ऐसा अवसर भी आया जब कि आशा की किरण भी लोगों को दीख पड़ी। बात यह हुई कि सम्राट् हो जाने पर कुछ दिनों बाद एडवर्ड अष्टम ने पार्लियामेंट को सूचना दी थी कि वह उनके लिए ख़र्च की व्यवस्था करते समय उनकी सारी आवश्यकताओं का विचार रक्खे। सम्भव है कि निकट भविष्य में ही वे किसी सुन्दरी के साथ विवाह-सूत्र में बँध जाने का निर्णय करें। एडवर्ड अष्टम के इन वाक्यों के आधार पर लोगों ने अनुमान का प्रासाद बनाना प्रारम्भ किया। ब्रिटिश-साम्राज्य की भावी अधीश्वरी कौन होगी? इस विषय में अनेक मत प्रकट किये जाने लगे। कोई किसी रमणी का नाम पेश करता तो कोई किसी दूसरी को ही सम्राज्ञी होने का अधिकारी ठहराता। इन अनुमानों की असत्यता आज किसी पाठक से छिपी नहीं है। सारा संसार जानता है कि एडवर्ड अष्टम किसे अपना प्रेम-दान कर चुके थे, किसे अपनी जीवन-सहचरी बनाने का वचन दे चुके थे—वे थीं श्रीमती सिम्पसन।

ये श्रीमती सिम्पसन कौन हैं? इस प्रश्न पर प्रकाश डालना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है—पाठकों का समय नष्ट करना है। पाठक उनके विषय में आवश्यकता से अधिक जानते हैं। यहाँ केवल इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि आप अवस्था में एडवर्ड अष्टम के लगभग बराबर ही थीं—दोनों चालीस से एक दो वर्ष ऊपर। इससे पूर्व आप अपने दो पतियों को तलाक़ दे चुकी थीं। एडवर्ड अष्टम और श्रीमती सिम्पसन एक दूसरे के सम्पर्क में कब और कैसे आये, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ लोगों का विचार है कि सन् १९३५ से ही दोनों में घनिष्ठता स्थापित होनी प्रारम्भ हुई थी। कुछ भी हो पक्के तौर से सम्राट् एडवर्ड और श्रीमती सिम्पसन की मित्रता का पता संसार को राज-प्रासाद से प्रकाशित होनेवाले २७ मई के सरकारी







COURT CIRCULAR

BUCKINGHAM PALACE, MAY 27

The King gave a Dinner Party at St. James's Palace this evening, to which the following had the honour of being invited:—Commander the Lord Louis Mountbatten, R.N., and the Lady Louis Mountbatten, the Right Hon. Stanley Baldwin, M.P., and Mrs. Baldwin, Colonel the Lord Wigram and Lady Wigram, the Right Hon. A. Duff Cooper, M.P., and the Lady Diana Cooper, Lieut.-Colonel the Hon. Piers Legh and the Hon. Mrs. Legh, Lady Cunard, Admiral of the Fleet Sir Ernle Chatfield and Lady Chatfield, Colonel Charles Lindbergh and Mrs. Lindbergh and Mr. and Mrs. Ernest Simpson.

मई २७ का सर्क्यूलर

श्रीमती सिम्पसन

(अपने भवन में जहाँ भूतपूर्व सम्राट् एडवर्ड अष्टम प्रायः दावत खाने आया करते थे ।)

सर्क्यूलर से चला, जिसमें मिस्टर सिम्पसन और श्रीमती सिम्पसन का 'सेंटजेम्स पैलेस' में दिये गये एक राज-भोज में उपस्थित होने का उल्लेख किया गया था ।

उक्त भोज में प्रधान मंत्री मिस्टर बाल्डविन भी सपत्नीक उपस्थित थे । इसी सर्क्यूलर से यह बात संसार को विदित हुई कि श्रीमती सिम्पसन शाही मित्र-मण्डली में से एक थीं । धीरे-धीरे दोनों में हेल-मेल बढ़ता गया, यहाँ तक कि दोनों का बहुत-सा समय साथ-साथ गुज़रने लगा । पिछले साल जब गर्मियों में सम्राट् विदेशों में सैर-सपाटे के लिए गये तो श्रीमती सिम्पसन भी उनके साथ थीं । विदेशी समाचार-पत्रों में इस विषय को लेकर बड़ी-बड़ी मनोरंजक बातें प्रकाशित होती

थीं—विशेषकर अमेरिकन पत्रों में। इँगलैण्ड की राजभक्त प्रजा में सम्राट् के प्रति आदर और प्रतिष्ठा के



सम्राट् और श्रीमती सिम्पसन मछलियों के शिकार के लिए साथ-साथ जा रहे हैं ।

भाव अधिक होने के कारण वहाँ के पत्र तो इस विषय में मौन धारण किये रहते थे। होते-होते इँगलैंड का मौन भी टूटा और सबसे पहले ब्रेडफ़ोर्ड के पादरी डाक्टर ब्लंट (Dr. Blunt) ने सम्राट् और श्रीमती सिम्पसन के इस मेल-मिलाप की कड़ी आलोचना करते हुए जनता का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित किया। यहीं से इस विषय ने सार्वजनिक रूप धारण किया और पत्र-पत्रिकाओं में टीका-टिप्पणी होनी आरम्भ हुई।

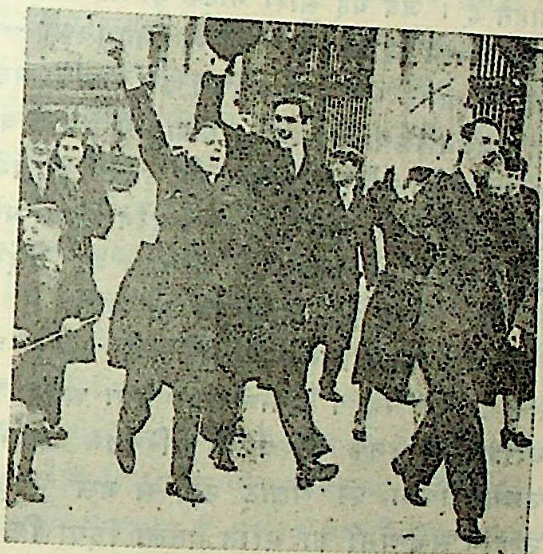
बाद की घटनाएँ

इसके बाद जो कुछ हुआ वह सब हमारी आँखों के सामने हुआ। जिस समय ये सारी घटनाएँ प्रकाश में आईं, उन दिनों पार्लियामेंट के प्रधान मंत्री मिस्टर बाल्डविन अवकाश पर थे।



प्रधान मंत्री मिस्टर बाल्डविन

उनकी छुट्टी अभी कुछ दिन की और शेष थी, पर जब उन्होंने देखा कि यदि शीघ्र ही इस विषय पर परामर्श न किया गया तो जनता में अनेक प्रकार के भ्रम फैलने का अन्देशा है तो उन्होंने अपनी शेष छुट्टी ख़ारिज कराई और वे सम्राट् से इस सम्बन्ध में वार्तालाप करने के लिए तैयार हुए। सम्राट् शिकार पर गये हुए थे, प्रधान मंत्री वहीं उनसे मिले। इस प्रकार का विवाह औचित्य की सीमा के अन्दर आता है या नहीं आता, यह निर्णय करना बड़ी टेढ़ी खीर है, पर सम्राट् का जो व्यव-





नवयुवकों के दो प्रदर्शन जिनमें सम्राट् के महल के पास जाकर उनका समर्थन करने के लिए जनता से प्रार्थना की जा रही है।

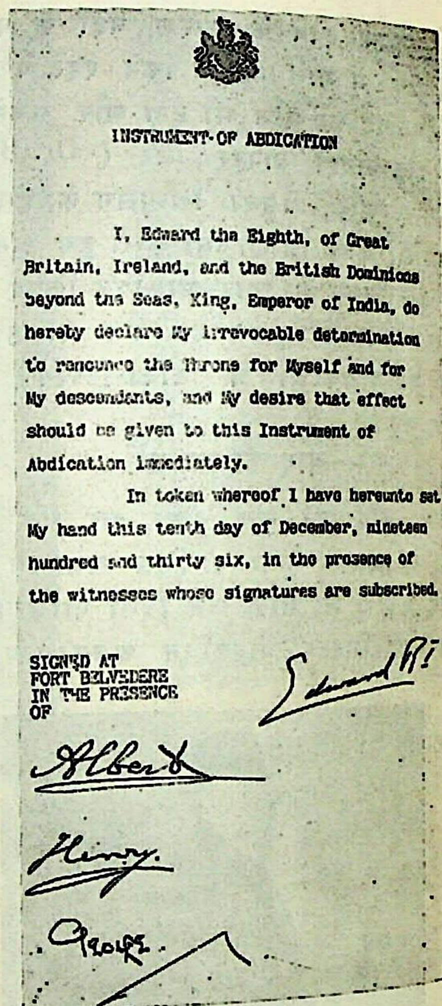


हार इस सम्बन्ध में रहा, वह शुरू से लेकर आख़ीर तक सराहनीय रहा। उन्होंने प्रधान मंत्री को स्पष्ट बतला दिया कि वे श्रीमती सिम्पसन से विवाह करने का निश्चय कर चुके हैं। यहाँ प्रधान मंत्री और सम्राट् की परस्पर होनेवाली बातचीत को विस्तारपूर्वक वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि जो कुछ उसका परिणाम रहा, वह प्रत्यक्ष ही है। हाँ, एक बात का उल्लेख करना ज़रूर चाहते हैं। जब यह सारा नाटक हो रहा था, उस समय लन्दन की जनता—विशेषकर नवयुवकों—की ओर से अनेक ऐसे प्रदर्शन किये गये जिनमें सम्राट का समर्थन किया गया था। सम्राट् ने इस अवसर पर अपना जो व्यवहार रक्खा, वह उनकी दूरदर्शिता का बड़ा ज्वलन्त प्रमाण था—उन्होंने किसी प्रकार की दलबन्दी का अवसर तो आने ही नहीं दिया।

३२५ दिन के शासन का अन्त

सम्राट् अपने निर्णय में आदि से लेकर अन्त तक दृढ़ बने रहे। प्रधान मंत्री तथा अनेक अन्य व्यक्तियों ने उनके निश्चय में परिवर्तन कराने का उद्योग किया, पर सम्राट् टस से मस न हुए। उन्होंने सच्चे प्रेमी की भाँति बतला दिया कि चाहे मुझे राज्य छोड़ना पड़े, पर जो वचन मैं दे चुका हूँ उससे विमुख नहीं हो सकता। निदान वही हुआ, जिसकी आशा थी। विगत १० दिसम्बर के दिन उन्होंने इस सम्बन्ध में अपना अन्तिम फ़ैसला दे दिया और उसी दिन सिंहासन-त्याग-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये।

जिस समय एडवर्ड अष्टम ने उक्त पत्र पर हस्ताक्षर किये उस समय वहाँ उनके तीनों भाई उपस्थित थे। पत्र पर उन्हीं तीनों की गवाही भी है। ११ दिसम्बर को, अगले ही दिन, पार्लियामेंट द्वारा उनका यह त्यागपत्र स्वीकार कर लिया गया। उसी दिन शाम को राजभवन में उन्हें बिदाई का भोज दिया गया, जिसमें उनकी माता महारानी मेरी भी उपस्थित थीं। भोज के उपरान्त उन्होंने अपना अन्तिम बिदाई का सन्देश



INSTRUMENT OF ABDICATION

I, Edward the Eighth, of Great Britain, Ireland, and the British Dominions beyond the Seas, King, Emperor of India, do hereby declare My irrevocable determination to renounce the Throne for Myself and for My descendants, and My desire that effect should be given to this Instrument of Abdication immediately.

In token whereof I have hereunto set My hand this tenth day of December, nineteen hundred and thirty six, in the presence of the witnesses whose signatures are subscribed.

SIGNED AT FORT BELVEDERE IN THE PRESENCE OF

Edward RI

Albert

Henry

George

सम्राट् का त्याग-पत्र

ब्राडकास्ट किया, जिसके शब्द ये थे—

"At long last I am able to say a few words of my own. I have never wanted to withhold anything, but until now it has not been constitutionally possible for me to speak. A few hours ago I discharged my last duty as King and Emperor, and now that I have been succeeded by my brother, the Duke of York, my first words must be to declare my allegiance to him. This I do with all my heart. You all know the



reasons which have impelled me to renounce the throne. But I want you to understand that in making up my mind I did not forget the country or the Empire which as Prince of Wales, and lately as King, I have for 25 years tried to serve. But you must believe me when I tell you that I have found it impossible to carry the heavy burden of responsibility and to discharge my duties as King, as I would wish to do, without the help and the support of the woman I love. And I want you to know that the decision I have made has been mine and mine alone. This was a thing I had to judge entirely for myself. The other person most nearly connected has tried up to the last to persuade me to take a different course. I have made this, the most serious decision of my life, only upon the single thought of what would in the end be best for all. This decision has been made less difficult to me by the sure knowledge that my brother, with his long training in the public affairs of this country and with his fine qualities, will be able to take my place forthwith, without interruption or injury to the life and the progress of the Empire. And he has one matchless blessing, enjoyed by so many of you and not bestowed on me—a happy home with his Wife and Children. ......I now quit altogether public affairs and I lay down my burden It may be some time before I return to my native land, but I shall always follow the fortunes of the British race and Empire with profound interest, and if at any time in the future I can be found of service to His Majesty in a private station I shall not fail. And now we all have a new King. I wish him, and you, his people, happiness and prosperity with all my heart. God bless you. God save the King."

"निदान मैं अपने दो-चार शब्द आपसे कहने के योग्य हुआ हूँ। वैसे तो मैंने कभी आपसे कोई बात गुप्त रखनी नहीं चाही, पर अब से पूर्व मेरे लिए आपसे बोलना नियमानुसार सम्भव न था। कुछ घंटे हुए मैंने अपना सम्राट् होने का अंतिम कर्तव्य पालन कर दिया। अब मेरे स्थान पर मेरे भाई सम्राट् हुए हैं, अतः मेरा कर्तव्य है कि मैं पहले उनके प्रति अपनी स्वामिभक्ति प्रकट करूँ, सो यह मैं हृदय से करता हूँ। जिन कारणों से मैंने सिंहासन त्यागा है, वे आप सबको विदित ही हैं, किन्तु मैं यह कहता हूँ कि आप इसे भली भाँति समझ लें कि इस निश्चय पर आते समय मैं अपने देश या साम्राज्य को नहीं भूला हूँ, जिनकी पिछले २५ वर्ष से मैं राजकुमार और सम्राट् की हैसियत से सेवा करता आया हूँ। आप मेरा विश्वास करिए कि उस स्त्री के बिना, जिसे मैं प्रेम करता हूँ, सम्राट् के महान् उत्तरदायित्व के भार को इच्छानुकूल सहन करना मेरे लिए असम्भव था। आप यह भी सच मानें कि यह फ़ैसला मेरा स्वतंत्र फ़ैसला है। यह मामला ही ऐसा था, जिसका कि मुझे स्वतंत्र रूप से निर्णय करना था। जिस व्यक्ति का इस मामले से निकटतम सम्बन्ध था, उसने हरचंद इस बात की कोशिश की कि मैं अपने निर्णय में परिवर्तन कर लूँ। अपने जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले इस महत्त्वपूर्ण निर्णय को मैंने सब लोगों के लिए हितकर समझकर किया है। ऐसा करना मेरे लिए यह समझकर उतना कठिन नहीं रहा कि मेरा स्थान मेरे भाई, जिन्हें इस देश के सार्वजनिक कार्यों की लम्बी शिक्षा मिली है और जिनमें अनेक उपयुक्त गुण हैं, मेरे स्थान की पूर्ति

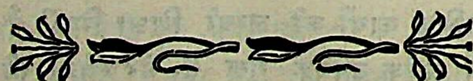
करेंगे। इससे साम्राज्य के जीवन अथवा उसकी उन्नति में किसी प्रकार की बाधा और हानि न पहुँचेगी। फिर उनके साथ, आप लोगों की तरह ही, एक बात और भी है, जो मुझे नसीब न हो सकी, वह है—उनका बाल-बच्चों का घर। मैं अब अपने सब सार्वजनिक कार्यों से हाथ खींचता हूँ और अपना भार उतारे देता हूँ। मैं अपनी मातृभूमि को अब कुछ दिन बाद लौटूँगा........ यदि कभी मैं अपनी निजी हैसियत में भविष्य में सम्राट् की सेवा करने के योग्य समझा जाऊँगा तो अवश्य करूँगा। अब हम सबके एक नये राजा हैं। मैं उनके और उनकी प्रजा आप सबके मंगल की अपने हृदय से प्रार्थना करता हूँ। भगवान् आपका भला करें। ईश्वर राजा को चिरंजीवी करें।"

प्रस्थान

इस सन्देश को अपनी पूर्व प्रजा को देकर ड्यूक आफ़ विंडसर (एडवर्ड अष्टम की नई उपाधि) प्रस्थान की तैयारी करने में लग गये। ठीक उसी दिन २४८ वर्ष पूर्व एक दूसरे आंग्ल-बादशाह—जेम्स द्वितीय—ने देश छोड़ने की तैयारी की थी। प्रेम का क्या मूल्य है, उसमें कितनी शक्ति है, यह सिद्ध करने के लिए अब कवियों के पास एक और प्रबल प्रमाण हो गया। नारी-जाति के कारण कभी-कभी संसार के इतिहास में बड़े-बड़े महत्त्व-शाली परिवर्तन हुए हैं; आधुनिक युग का यह परिवर्तन अपनी तरह का अनन्य ही है।

दूसरे ही दिन भोर होने से पूर्व ही 'ड्यूक आफ़ विन्डसर' का जहाज़ किसी अज्ञात स्थान को रवाना हो गया। उनकी मूक वाणी कह रही थी—

'ख़ुश रहो अहले वतन हम तो सफ़र करते हैं'



विज्ञानिका

काँच के करिश्मे

श्रीश्यामनारायण कपूर

काँच के मकान, सड़कें और कपड़े, काँच के सबसे ताज़े करिश्मे हैं। हाल ही में मकान बनाने के लिए एक सर्वथा नवीन प्रकार के काँच का आविष्कार हुआ है। काँच की अर्धशून्य ईंटें बनाकर तैयार की गई हैं। इन ईंटों को मिट्टी की पकी हुई ईंटों की तरह इमारतें बनाने के काम में लाया जा सकेगा। काँच की ईंटें मिट्टी की ईंटों की अपेक्षा अधिक मज़बूत और उपयोगी होंगी। इनमें से होकर बाहर का ८० प्रतिशत प्रकाश मकान के अन्दर प्रवेश कर सकेगा। गर्मी और सर्दी को यह ईंटें उसी तरह रोकेंगी, जैसे मामूली ६ इंचवाली ईंटें। इन ईंटों की एक विशेषता और है। इनको जोड़ने पर मकान में कोने अथवा समकोण न बन सकेंगे न छतों पर और न फ़र्श पर। जिस शक्ल सूरत की ईंट की ज़रूरत होगी आसानी से तैयार हो जायगी। यह भी समाचार मिले हैं कि नार्वे और स्वीडन में कुछ मकान पूरी तौर पर सिर्फ़ काँच के तैयार किये गये हैं। इँगलैंड और दूसरे योरोपियन देशों में फ़ैक्टरी, स्कूल और दूसरी सार्वजनिक संस्थाओं की इमारतों की तैयारी में काँच का व्यवहार नित्यप्रति बढ़ता जा रहा है। केवल खिड़कियाँ शीशे की बनाने के बजाय पूरी दीवारें काँच की बनाई जा रही हैं। एक ऐसे भी काँच का आविष्कार हो चुका है जिसमें होकर मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक सूर्य की समस्त रश्मियाँ बेरोक-टोक निकल जाती हैं। यह काँच 'विटाग्लास' के नाम से मशहूर है। सूर्य की पराकासनी किरणों (Ultraviolet-Rays) के ज्ञान और उनकी उपयोगिता ने इस काँच का निर्माण कराया है। परीक्षा करने पर पता चला है कि मामूली काँच, जिसे सर्वसाधारण अपने मकानों की खिड़कियों और रोशनदानों के काम में लाते हैं, सूर्य की सम्पूर्ण रश्मियों को होकर जाने नहीं देता। मनुष्य शरीर के लिए उपयोगी और उसके स्वास्थ्य के लिए परमावश्यक पराकासनी किरणें तो उसमें प्रवेश ही नहीं कर पातीं। इस कठिनाई को दूर करने के लिए विटाग्लास का आविष्कार किया गया है। इस काँच का प्रचार नित्यप्रति बढ़ता जा रहा है। लन्दन की रसासन बनानेवाली सुप्रसिद्ध कम्पनी 'इम्पीरियल केमिकल इन्डस्ट्रीज़ लिमिटेड' ऐसे २० हज़ार फ़ीट शीशे काम में ला रही है। मकान बनाने के लिए और भी नाना-नाना प्रकार के शीशों का आविष्कार हो चुका है। इन सबका संक्षिप्त उल्लेख आगे चल-



कर किया जायगा। वास्तव में काँच हमारे लिए आज इतना महत्त्वपूर्ण और आवश्यक पदार्थ हो रहा है कि उसके विना हमारी बहुत-सी रोज़मर्रा की ज़रूरतें भी पूरी नहीं हो पातीं ; अधिक क्या काँच के बिना हमारे मकानों में रोशनी की भी मुश्किल पड़ जाती है।

दीपावली के दिन विद्युत्दीपों की अपूर्व छटा दर्शनीय ही होती है। सहस्रों दूकानें और भव्य भवन विद्युत्-प्रकाश से जगमगा उठते हैं। जहाँ अभी विद्युत्-प्रकाश की पहुँच नहीं हो पाई है, वहाँ लोग अपनी दूकानों और मकानों को गैस, लेम्पों और नाना प्रकार के दूसरे लेम्पों से सुसज्जित करते हैं। आजकल की दीवाली काँच के विद्युत्-दीपों के विना बिलकुल सूनी मालूम होती है। यद्यपि जो सौन्दर्य और माधुर्य मिट्टी के छोटे-छोटे चिराग़ों की रोशनी में है वह बिजली की बढ़िया से बढ़िया रोशनी में नहीं मिल सकता, परन्तु फिर भी शहरों और विद्युत्-क्षेत्रों में रहनेवाले हम सब लोग विद्युत्-प्रकाश के इतने आदी हो गये हैं कि दीपावली ही क्या साधारण रोज़मर्रा की रातें भी विद्युत्-प्रकाश के विना सूनी लगती हैं। यह स्पष्ट है कि नाना प्रकार के आधुनिक लेम्प और विद्युत्-दीप काँच के बने होते हैं। लेम्प ही क्या, काँच की सैकड़ों और हज़ारों ऐसी वस्तुओं का निर्माण हो चुका है जो हमारी दैनिक आवश्यकताओं में गिनी जाती हैं। दीपावली के दिन तो इन वस्तुओं का प्रदर्शन विशेष रूप से दर्शनीय होता है। विद्युत्-दीपों के चकाचौंध पैदा करनेवाले प्रकाश में काँच की ये सब वस्तुएँ जगमगा उठती हैं। कट-ग्लास (Cut-glass) की चीज़ें तो हीरे की तरह चमक उठती हैं। काँच के मोतियों की रंगबिरंगी माला सच्चे मोतियों की माला को भी मात करती हैं। वास्तव में आजकल की दीपावली की रोशनी के वैभव का बहुत कुछ श्रेय काँच को प्राप्त है।

काँच आजकल हम लोगों के लिए इतना साधारण सा पदार्थ हो गया है कि हम उसके वास्तविक महत्त्व को भी समझने में भूल कर जाते हैं। विद्युत्-प्रकाश के सार्वभौमिक प्रचार का बहुत कुछ श्रेय काँच ही को प्राप्त है। विद्युत्-दीपों की बदौलत आधुनिक नगरों का सौन्दर्य दिन की अपेक्षा रात को कई गुना बढ़ जाता है। वास्तव में आज तो हम ऐसे किसी भी घर की कल्पना नहीं कर सकते, जिसमें काँच की बनी कोई न कोई चीज़ न हो। शीशे का गिलास, मुँह देखने का दर्पण, दवा या तेल रखने की शीशी अथवा लालटेन की चिमनी प्रभृति काँच की चीज़ें तो ग़रीब से ग़रीब घर में भी मिलती हैं। वास्तव में काँच का इतना अधिक प्रचार हो गया है कि हमें यह विश्वास करने में भी संकोच होता है कि एक ज़माना ऐसा भी था जब अपने मकानों में काँच की खिड़कियाँ लगानेवालों पर टेक्स लगाया जाता था। वास्तव में उन दिनों बड़े-बड़े दर्पण तथा शीशे की अन्य सामग्री किसी व्यक्तिविशेष के धनी होने का अच्छा सबूत समझा जाता था। उन दिनों शीशे इतने मँहगे मिलते थे कि सर्वसाधारण उनसे अपने मकानों की खिड़कियों को सुशोभित करने का स्वप्न में भी ध्यान न कर सकते थे। काँच के इतने अधिक प्रचार का श्रेय तो १९वीं शताब्दि में होनेवाले आविष्कारों को प्राप्त है। इन आविष्कारों की बदौलत ही काँच इतना सस्ता और सुलभ हो गया है, और बहुत महत्त्वपूर्ण होते हुए भी इसकी गणना साधारण वस्तुओं में की जाने लगी है।

आविष्कार

काँच का आविष्कार कब, कैसे और किसके द्वारा हुआ था, यह सब ठीक-ठीक नहीं मालूम। परंतु अत्यन्त प्राचीन खण्डहरों की खुदाई करने पर ऐसी बहुत-सी चीज़ें मिली हैं जिनसे यह बात भली भाँति सिद्ध हो जाती है कि काँच अत्यन्त प्राचीन काल से काम में लाया जा रहा है। उन दिनों भी इससे अनेकों विचित्र वस्तुएँ बनाई जाती थीं।

जिन दिनों योरप में सभ्यता के प्रकाश की किरणें तक न पहुँच पाई थीं, उससे भी पहले चीनवाले शीशे की वस्तुओं को काम में लाते थे। भारत में भी काँच अथवा शीशे की वस्तुओं का व्यवहार कुछ आज की बात नहीं है। योरप में सबसे पहले इटलीवालों ने काँच का निर्माण आरम्भ किया था और शीघ्र ही अपने काँच के सामान के लिए बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। आज भी इटली अपनी इस प्रसिद्धि को पूर्ववत् बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील है।

रोम-साम्राज्य के वैभवपूर्ण दिनों में मिस्र-देश ने कांच के निर्माण में अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। अपने देश में व्यवहार करने के साथ ही उसे विदेशों में भी प्रचुर मात्रा में भेजा करते थे। कुछ अधिकारी विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि कांच फूँकने (Glass Blowing) का आविष्कार ईसवी सदी के आरम्भिक वर्षों में मिस्रवालों ही ने किया था। विगत कुछ वर्षों में मिस्र-देश में नील नदी की उपत्यका में होनेवाली खुदाई ने प्राचीन मिस्र के काँच के व्यवसाय में अनेक महत्त्व-पूर्ण बातें बतलाई हैं। मिशिगन-विश्वविद्यालय की अध्यक्षता में होनेवाली खुदाई से यह स्पष्ट हो गया है कि अब से डेढ़ दो हज़ार वर्ष पूर्व मिस्र-वालों ने काँच के व्यवसाय में असाधारण सफलता प्राप्त कर ली थी और तत्कालीन मिस्र के गाँवों में भी काँच के बर्तन आदि प्रचुर संख्या में व्यवहार में लाये जाते थे। इस बात के भी प्रमाण मिले हैं कि काँच के बर्तन उन दिनों भी काफ़ी सस्ते थे। चौथी शताब्दी में तो काँच की लोकप्रियता बहुत बढ़ गई थी। वैसे काँच का व्यवहार ईसवी सदी के आरम्भ में भी प्रचुर मात्रा में किया जाता था। परंतु ईसा की तीसरी सदी में एलेक्ज़ेन्डर सिवेरस (Alexander Severus) और आरलिएन (Aurelian)-नामक रोमन सम्राटों ने काँच के व्यवसायियों, काँच बनानेवालों और काँच के व्यवहार करनेवालों पर लम्बे-चौड़े टेक्स लगा दिये थे। परन्तु इन सम्राटों के बाद चौथी सदी में ३०६ से ३३७ ई० तक शासन करनेवाले कांस्टेनटाइन दि ग्रेट (Constentine the Great) ने इस टेक्स को बिलकुल माफ़ कर दिया था। इससे काँच के व्यवसाय को बहुत प्रोत्साहन मिला और वह बहुत लोकप्रिय हो गया। दाम भी सस्ते हो गये और विदेशों को भी अच्छी तादाद में भेजा जाने लगा। मिस्रवालों ने उन दिनों भी काँच की रंग-बिरंगी और नक़्क़ाशीदार चीज़ें बनाने में सफलता प्राप्त कर ली थी। खुदाई में उन दिनों की बनी हुई काँच की जो चीज़ें मिली हैं, उनकी सफ़ाई और कारीगरी को देखकर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। पुरातत्त्व-वेत्ताओं को इस बात के भी प्रमाण मिले हैं कि काँच के लेम्पों का व्यवहार सबसे पहले मिस्रवालों ही ने किया था। ईसा की चौथी शताब्दी के पहले अन्य देशों की भाँति मिस्र और रोमवाले भी मिट्टी के चिराग़ जलाया करते थे। काँच के परावर्तन सम्बन्धी गुणों (Reflecting power) का पता चलने पर मिस्रवालों ने काँच के लेम्प बनाना शुरू किया। आरम्भ में ये लेम्प प्रमुख धर्मस्थानों आदि ही में व्यवहार में लाये जाते थे और यह प्रथा अब भी किसी हद तक क़ायम है।

* * *

योरप में काँच के निर्माण के बारे में एक कथा भी प्रचलित है। कहा जाता है कि अब से चार हज़ार वर्ष पूर्व कुछ यात्री फ़ोनीशियन (Phonaecian) जहाज़ पर मिस्र से सीरिया को जा रहे थे। रास्ते में शाम हो जाने पर उन लोगों ने जहाज़ को किनारे पर लगा दिया। जिस स्थान पर जहाज़ रोका गया था, वह पेलिस्टाइन में कार्मेल पर्वत के निकट था। रात में उन यात्रियों ने वहीं समुद्र-तट पर आग सुलगाकर भोजन बनाने की व्यवस्था की। चूल्हा बनाने के लिए ईंटों के अभाव में ये लोग जहाज़ से एक प्रकार के सोडे की ईंटें उठा लाये और बालू पर उनका



चूल्हा बनाकर भोजन बनाया। अगले दिन सुबह को जब वे लोग जहाज़ पर वापस जाने लगे तो उन्हें चूल्हे के पास एक प्रकार के सर्वथा नवीन पारदर्शक पदार्थ के टुकड़े देख पड़े। यह काँच के टुकड़े थे। बालू और सोडे के संयोग से आग की गरमी पाकर काँच तैयार हो गया था।

काँच ने संसार की काया पलट दी

यह कहानी कहाँ तक सत्य है यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, परन्तु इससे इतना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि काँच का निर्माण बालू और सोडे के संयोग से होता है। बालू-जैसी अपदार्थ और नगण्य वस्तु से काँच का निर्माण ठीक वैसी ही बात है, जैसे कोयले से हीरे का बनना। परंतु यह दोनों ही बातें सर्वथा सत्य हैं। विज्ञान की सहायता के विना सत्य होते हुए भी इनकी सत्यता में विश्वास करने में संकोच होता है। बालू जैसे नगण्य पदार्थ से बनाये जाने पर भी आज काँच ने संसार की काया पलट दी है। आज हम काँच का जो वैभव देख रहे हैं वह सहस्रों वर्षों के कठिन परिश्रम का फल है। हज़ारों वर्षों के प्रयत्नों के फलस्वरूप काँच की नाना प्रकार की वस्तुओं का बनना सुलभ हो गया है। नाना प्रकार की वस्तुओं के निर्माण के साथ ही विभिन्न प्रकार के काँच भी बनाये जाने लगे हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि प्रतिदिन व्यवहार में लाई जानेवाली काँच की वस्तुओं की तैयारी के लिए कम से कम तीन-चार सौ प्रकार का काँच तो ज़रूर ही व्यवहार में लाया जा रहा है। विगत ५० वर्षों में काँच के निर्माण में विशेष उन्नति हुई है। काँच के भौतिक और रसायनिक गुणों का विधिवत् और पूर्ण रीति से अध्ययन किया गया है। फलस्वरूप प्रत्येक काम के लिए विशेष प्रकार के काँच का निर्माण सम्भव हो गया है। फ़ौलाद के समान मज़बूत और पानी के समान पारदर्शक काँच से लेकर, मुलायम, झुकनेवाले, अपारदर्शक और ज़रा से धक्के से टूटकर चूर-चूर ो जानेवाले सभी श्रेणियों के काँच सुलभ हैं। थोड़ी-सी गर्मी से काँच को किसी भी शक्ल में बदला जा सकता है। काँच के दर्पण तो घर-घर में पाये जाते हैं। इन दर्पणों का बनाना बच्चों का खेल-सा हो गया है।

काँच और विज्ञान

वास्तव में काँच को उन्नति का अधिकांश श्रेय विज्ञान को और विज्ञान की उन्नति का श्रेय काँच को प्राप्त है। काँच के विना विज्ञान शायद आज अपनी इस उन्नत अवस्था तक न पहुँच पाया होता और विज्ञान की सहायता के विना काँच की भी आज जैसी उन्नत अवस्था न होती। आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगशालायें काँच की सामग्री से भरी पड़ी हैं। काँच के उपकरणों के विना प्रयोगशाला में एक साधारण-सा प्रयोग करना भी असम्भव जैसा है। यह बात विज्ञान के किसी अंगविशेष के लिए लागू न होकर, समस्त अंगों के लिए सत्य है। भौतिक, रसायन, औषधि और ज्योतिष प्रभृति की उन्नति का मार्ग तो काँच के विना एक प्रकार से अवरुद्ध ही हो जाता। ज्योतिष-विज्ञान आज जिस उन्नत अवस्था को पहुँच चुका है, उसका अधिकांश श्रेय काँच ही को प्राप्त है। काँच के विना हम दूरबीन और ख़ुर्दबीन की तो कल्पना तक न कर सकते थे। दूरबीन के विना ज्योतिष-विज्ञान के अनेकों सत्य, जो हाल ही में ज्ञात हुए हैं, सर्वथा अज्ञात बने रहते। ख़ुर्दबीन के विना तो कीटाणु-विज्ञान का जन्म भी न हुआ होता।

दूरबान

दूरबीन के उपकारों और गुणों की चर्चा 'विश्वमित्र' के पिछले अंक में इन पंक्तियों के लेखक द्वारा 'अनन्त अंतरिक्ष के रहस्य' शीर्षक लेख में की जा चुकी है। यहाँ संक्षेप में इतना और कहा जा सकता है कि इधर दो-तीन वर्षों में जिस दूरबीन के निर्माण का श्रीगणेश किया गया है, उसके बन जाने पर तो ज्योतिष-विज्ञान सम्बन्धी अब तक जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया गया है, उसमें



एक ज़बरदस्त क्रान्ति उत्पन्न हो जायगी। इस दूरबीन के दर्पण का व्यास २०० इंच है अथवा क़रीब-क़रीब १७ फ़ीट है। औसत मनुष्य की उँचाई का क़रीब-क़रीब तिगुना। संसार भर में इससे बड़ा दर्पण अभी तक नहीं बना और न निकट भविष्य में बनने की आशा ही है। इस दर्पण और दूरबीन की तैयारी में पूरे दस लाख पौंड के ख़र्चे का तख़मीना है। अब तक जो बड़ी से बड़ी दूरबीन व्यवहार में लाई जा रही है, उसके दर्पण का व्यास केवल १०० इंच है। उस दूरबीन से मनुष्य १ अरब ५० करोड़ नक्षत्रों का निरीक्षण में समर्थ हुआ था। इस नवीन दूरबीन से यही संख्या बढ़कर २ अरब तक पहुँच जायगी। मंगल ग्रह के बारे में तो बहुत-सी नवीन बातें मालूम होंगी। बहुतों का अनुमान है कि इस दूरबीन की सहायता से यह भी पता लग जायगा कि वहाँ प्राणिवर्ग का निवासस्थान है अथवा नहीं?

फ़ोटोग्राफ़ी और सिनेमा

दूरबीन और ख़ुर्दबीन ही की भाँति फ़ोटोग्राफ़ी का भी आविष्कार असम्भव जैसा ही था। यदि आविष्कार हो भी गया होता तो वह शायद इतना लोकप्रिय तो न हो पाया होता और फ़ोटोग्राफ़ी के बिना न सिनेमा होते और न टाकी। सिनेमा, टाकी, बाइस्कोप प्रभृति आधुनिक मनोविनोद एवं ज्ञान-प्रसार के साधनों का सर्वथा अभाव होता।

काँच के नगर की कल्पना

अमेरिका के सर्वश्रेष्ठ धनी राकफेलर ने रेडियो की लोकप्रियता एवं उपयोगिता को देखकर एक 'रेडियो-नगर' बनवाने का आयोजन किया है। इस रेडियो-नगर में सभी काम रेडियो एवं विद्युत्-शक्ति द्वारा सम्पन्न होंगे। प्रत्येक छोटे-बड़े काम के लिए रेडियो-इलेक्ट्रिक कम्पनों की सहायता ली जायगी। इस रेडियो-नगर ही के आधार पर बहुत से महानुभाव 'काँच के नगर' के निर्माण की भी कल्पना करने लगे हैं। काँच की सर्वतोमुखी उन्नति, सुलभता एवं लोकप्रियता आदि बातों को देखते हुए निकटभविष्य में काँच के नगर के निर्माण का आयोजन होना कोई बड़ी बात नहीं मालूम होती। शीशे की सड़कों के निर्माण के प्रयोग तो आरम्भ भी हो गये हैं और उनमें आशातीत सफलता भी मिली है। इन प्रयोगों के परिणाम पर योरप और अमेरिका में काफ़ी दिलचस्पी भी ली जा रही है।

शीशे की सड़कें

शीशे की सड़कों की कल्पना को व्यावहारिक रूप देने का श्रेय लन्दन के तरुण वैज्ञानिक मि० जार्ज जे० रिकेट्स को है। पूर्ण रूप से काँच की श्रेष्ठ सड़क बनाने के लिए उन्होंने कई वर्ष तक लगातार प्रयोग किये। शुरू-शुरू में इन प्रयोगों से कोई विशेष लाभप्रद परिणाम निकलता न देख पड़ा और उन्हें बड़ी निराशा हुई। परन्तु वे हतोत्साह न हुए और बराबर अपने काम में लगे रहे। अन्त में उन्हें सड़क बनाने के लिए काँच के मनोवाञ्छित टुकड़े बनाने में सफलता प्राप्त हुई। यह टुकड़े बने भी बहुत ही मज़बूत हैं और उन्हें भारी हथौड़ों की चोटों से भी नहीं तोड़ा जा सका है। इन टुकड़ों को जोड़कर काँच की जो सड़क बनाई जायगी, वह आधुनिक बढ़िया से बढ़िया सड़कों से श्रेष्ठतर और अधिक टिकाऊ साबित होगी। इन सड़कों के बनाने के लिए काँच के जो टुकड़े बनाये जायँगे, उनका निर्माण भी बहुत ही सरल और सस्ते में होगा। काँच की टूटी-फूटी चीज़ों के टुकड़ों को पिघला फिर से मनोवाञ्छित शक्ल में ढालकर काम में लाया जायगा। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि यही टुकड़े अब तक भारस्वरूप मालूम होते हैं और इनको कैसे काम में लाया जाय, यह एक समस्या है। इस तरह की सड़कों का आयोजन करनेवाले विशेषज्ञों का अनुमान है कि इन काँच की सड़कों की लागत भी आधुनिक सड़कों से कुछ अधिक न



होगी। नमूने के तौर पर परीक्षा के लिए इस तरह की जो सड़कें बनी भी हैं बड़े-बड़े इञ्जीनियरों ने उनकी विधिवत् परीक्षा करके अपनी स्वीकृति दे दी है। इन सड़कों के निर्माण से सड़कों के इतिहास में एक नवीन युग उपस्थित हो जायगा। ऐसा मालूम होता है कि यह काँच की सड़कें सर्वप्रथम इटली में बनकर तैयार होंगी। मुसोलिनी के प्रधान इञ्जीनियर पिअरो प्यूरिसेली इटली में काँच की सड़कें बनाने का आयोजन भी करने लगे हैं और इटली की सड़कों के सर्वश्रेष्ठ होने की परिपाटी को पूर्ववत् बनाये रखना चाहते हैं। काँच की सड़कों के साथ ही साथ काँच के मकान भी बनने लगे हैं। अमेरिका की एक सुप्रसिद्ध काँच बनानेवाली कम्पनी ने अपने दफ़्तर की विशालकाय इमारत काँच ही की बनाई है। अस्तु, निकट-भविष्य में रेडियो-नगर ही की भाँति काँच के नगर की कल्पना करना कुछ असंगत नहीं मालूम होता।

गोलियों का भी असर नहीं होता

दो-तीन वर्ष पूर्व एक ऐसे काँच का भी निर्माण हुआ है; जिस पर बन्दूक़ की गोलियों का भी कुछ असर नहीं होता। आशा है कि इस तरह का शीशा शीघ्र ही बाज़ार में बिकने भी लगेगा। इसे बनानेवालों और इसकी जाँच करनेवालों का कहना है कि इस पर बारूद-भरी हुई लोहे की गोलियाँ उसी तरह कोई असर नहीं कर पातीं, जैसे रबड़ या परों की गेंदें ईंट और चूने की दीवार पर। यदि इस काँच के बारे में इसके आविष्कारकों का जो दावा है, वह सत्य मान लिया जाय तो निकट-भविष्य में, जब कि युद्ध की सम्भावना नित्यप्रति बढ़ती जा रही है, लोग ईंटों-पत्थरों के मकान के बजाय इस नवाविष्कृत काँच के मकान बनाना कहीं अधिक पसंद करेंगे। इस प्रकार के शीशे की बड़ी-बड़ी चादरें बनेंगी और उन्हें आसानी से लोहे के मज़बूत फ़्रेमों में जड़कर मकान बनाये जायँगे। यह शीशा भी मनचाहे रंग का बनेगा और शौक़ीन लोग मनचाहे रंग-बिरंगे मकान तैयार करा सकेंगे। इन रंगों में एक ख़ास बात यह होगी कि सूर्य के प्रकाश की तेज़ी में कोई फ़रक़ न पड़ेगा। इस तरह के मकान अधिक साफ़-सुथरे रक्खे जा सकेंगे और स्वास्थ्यप्रद भी होंगे। उनमें लिपाई-पुताई का भी झंझट न होगा। एक बार पानी अथवा साबुन से धो देने से वे नये के समान चमक उठेंगे। इस प्रकार के मकानों को पूर्ण स्वास्थ्यप्रद बनाने के लिए ऐसे काँच का भी निर्माण किया जा रहा है, जिसमें होकर सूर्य का सम्पूर्ण प्रकाश निकल सके। आजकल आम तौर पर जो काँच के शीशे काम में लाये जाते हैं, उनमें होकर सूर्य की पराकासनी (Ultra-violet Rays) किरणें नहीं निकल पातीं। यह किरणें मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए बहुत ही आवश्यक सिद्ध हुई हैं। अस्तु, अब खिड़कियों और रोशनदानों के लिए ख़ास तौर पर ऐसे शीशे बनाये जाने लगे हैं, जिनमें होकर पराकासनी किरणें भी निकल सकें। लन्दन (मिलबैंक) की रसायन बनानेवाली सुप्रसिद्ध इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीज़ नामक कम्पनी इस प्रकार के तीस हज़ार फ़ीट शीशे व्यवहार में ला रही है। भविष्य में बननेवाले काँच के मकान इसी नवीन शीशे के बनाये जायँगे।

एक ही तरफ़ से देख सकेंगे

काँच के मकानों के लिए और भी कई तरह के शीशे बनाये जा रहे हैं। हाल ही में कुछ ऐसे काँच बनकर तैयार हुए हैं, जिनमें केवल एक ही तरफ़ से देखा जा सकता है। ऐसे काँच की दीवार के बहुत निकट तक पहुँचने पर भी आपको उसके भीतर का दृश्य बिलकुल ही दिखाई न देगा। आप उसके बिल्कुल निकट पहुँचकर भी उससे सट कर खड़े होकर अन्दर की चीज़ों का शायद बहुत ही धुँधला स्वरूप देख सकेंगे। परन्तु इसके सर्वथा प्रतिकूल घर में रहनेवाले व्यक्ति आपको दूर होने पर भी बख़ूबी देख सकेंगे।

एक बार इँगलैंड के एक पत्रप्रतिनिधि को



खिड़कियों में लगाये जानेवाले नये प्रकार के शीशे को देखने के लिए आमंत्रित किया गया। यह शीशा दूकान की सामनेवाली खिड़की पर लगाया गया था। उसका आकार-प्रकार सर्वथा नवीन था और वह खिड़की में बिलकुल ऐसे ढंग से लगाया गया था कि प्रकाश का परावर्तन न हो सकता था। शीशे के बिलकुल निकट ले जाकर दूकानदार ने पत्रप्रतिनिधि से पूछा—"आपकी इस शीशे के बारे में क्या राय है ?" इस पर पत्रप्रतिनिधि ने उत्तर दिया—"पहले शीशा लग जाने दीजिए। उसके बाद मैं अपनी राय बतलाऊँगा।" परन्तु यह जानकर कि शीशा वहाँ लगा हुआ था। पत्रप्रतिनिधि के आश्चर्य का ठिकाना न रहा !

मोटर का शीशा

मोटरों के लिए भी अब बिलकुल नये ढंग के शीशे तैयार होने लगे हैं। आजकल आम तौर पर जो शीशे मोटरों में लगाये जाते हैं, वे अक्सर बहुत ख़तरनाक साबित होते हैं। टूटने पर वे इधर-उधर छिटक जाते हैं और अक्सर ड्राइवर एवं दूसरे यात्रियों को शारीरिक क्षति पहुँचाते हैं। अब जो शीशे बनाये जा रहे हैं, उनमें यह बात बिलकुल न हो सकेगी। ये नवीन शीशे प्लाईवुड (Plywood) के सिद्धान्त पर बनाये जा रहे हैं। काँच की पतली-पतली चादरों के कई परत एक दूसरे पर रखकर इस तरह चस्पाँ कर दिये जाते हैं कि वे सब मिलकर एक ही चादर के रूप में दिखाई देते हैं। इस शीशे की यह एक विशेषता होती है कि भारी से भारी चोट पड़ने पर शीशा चिटक भले ही जाय, पर वह टूटकर इधर-उधर न छिटकेगा और इस प्रकार मोटर-ड्राइवर अथवा मोटर के यात्रियों को किसी प्रकार की शारीरिक क्षति न पहुँचा सकेगा। इस तरह के शीशों की तैयारी में बहुत ही सावधानी से काम लिया जाता है। शीशे की जुड़ाई के समय और जुड़ाई के बाद किनारों आदि में हवा न घुसने देने का विशेष प्रबन्ध किया जाता है।

हाल ही में एक बिलकुल नये ढंग के शीशे का आविष्कार हुआ है। यह शीशा भारी से भारी चोटें सहन कर लेता है, लेकिन अगर इत्तिफ़ाक़ से कोई चोट ऐसी पड़ गई जिसे यह बर्दाश्त न कर सका तो टूट-फूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाने के बजाय वह चौकोर छोटे-छोटे दानों के रूप में बिखर जाता है। इन दानों के बिखरने से किसी प्रकार के ख़तरे का अन्देशा नहीं होता।

काग़ज़ की तरह मुड़नेवाला

एक और मज़बूत शीशा बनाया गया है। यह पाँच टन के बोझे को बर्दाश्त कर लेता है। इस शीशे के ४० इंच लम्बे, एक फ़ुट चौड़े और एक इंच मोटे तख़्ते की हाल ही में जाँच की गई थी। इस जाँच का उद्देश्य यह देखना था कि भारी से भारी बोझा उठाने पर यह तख़्ता कितना झुकता है। अस्तु, भारी बोझा उठानेवाली मेशीन-क्रेन में इसे मज़बूत रस्सों के सहारे लटका दिया गया। इस काँच के तख़्ते के बीचोबीच से एक भारी विशालकाय पिंजड़ा लटकाया गया। इस पिंजड़े में तीन हाथी और उनके हाथीवान भी थे। इन सबसे काँच पर क़रीब ५ टन का भार हो गया था। इस दबाव से काँच थोड़ा झुक गया था। इसके अलावा अब ऐसे शीशे भी बनाये जा रहे हैं जो काग़ज़ की तरह मोड़े जा सकते हैं।

रसोई के बर्तन

यह सब पढ़कर पाठकगण शायद आश्चर्य करें कि क्या यह सब बातें उसी काँच के बारे में कही जा रही हैं, जिसकी बनी वस्तुएँ वे आये दिन इस्तेमाल करते हैं। वे वस्तुएँ तो छुए से टूटती हैं और ज़रा-सी सर्दी-गर्मी बरदाश्त नहीं कर सकतीं, और कहाँ ये नये काँच के तख़्ते जो ५ टन का बोझा उठाने पर भी सही-सलामत रहते हैं। परन्तु ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह सर्वथा सत्य है। वैज्ञानिक प्रयोगों के फलस्वरूप उपर्युक्त सभी बातें सम्भव हो गई हैं। अब तक सिर्फ़ भोजन करने के लिए काँच के ब र्तन काम में आते थे, अब



भोजन पकाने के लिए भी काँच के बर्तनों का आविष्कार हो गया है। तेज़ आँच में भी ये बर्तन बख़ूबी काम में लाये जा सकते हैं। मामूली सर्दी-गर्मी का तो इनके ऊपर कोई असर ही नहीं पड़ता। तेज़ आँच में बढ़ते ज़रूर हैं, पर चारों ओर समान रूप से। कमबेश नहीं। इस तरह से उनके जल्दी-जल्दी टूटने का ख़तरा नहीं रह जाता। बर्तनों के साथ ही अब फ़र्नीचर भी काँच का बनने लगा है। मेज़ों पर तो काँच की चादरें अब भी बिछाई जाती हैं, पर अब सम्पूर्ण मेज़ें भी काँच की बनेंगी। और उन पर मेज़पोश बिछाने की भी ज़रूरत न रहेगी। धीरे-धीरे और दूसरी रोज़मर्रा के काम की चीज़ें भी काँच की बनने लगेंगी। शीशे की सड़कें, शीशे के मकान, शीशे के बर्तन और शीशे का फ़र्नीचर। इतना ही नहीं, अब शीशे के कपड़े और शीशे के आभूषण भी बनने लगे हैं।

काँच के कपड़े

शीशे के आभूषण भी नई बात नहीं हैं। काँच के रंग-बिरंगे मोती बरसों से आभूषण के काम में लाये जा रहे हैं। हाँ, शीशे के कपड़े अलबत्ता एक नवीन बात है। वास्तव में काँच की संसार को यह सबसे आख़िरी देन है। काँच का ऊन और सूत भी तैयार होने लगा है। वैज्ञानिक प्रयोगों में तो काँच के ऊन (Glass wool) की आये दिन ज़रूरत पड़ती है। सूत भी इतना अधिक बारीक बनाया जाता है कि एक इंच की चौड़ाई में पूरे एक हज़ार तार समा जाते हैं। कहा जाता है कि २ इंच चौड़े और १२ इंच लम्बे काँच के टुकड़े से इतने लम्बे काँच के तार तैयार हो जाते हैं कि उनको अटलांटिक महासागर के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचाया जा सकता है। काँच की पोशाकें ऐसे ही बारीक तारों से तैयार की जाती हैं। कहा जाता है कि इन पोशाकों का मुक़ाबिला बढ़िया से बढ़िया सिल्क की पोशाकें भी नहीं कर सकतीं। लोगों का अनुमान है कि सिनेमा-अभिनेत्रियों में ये पोशाकें शीघ्र ही बहुत लोकप्रिय हो जायँगी। काँच के इन्हीं करिश्मों को देखकर बहुत-से लोग आधुनिक युग को काँच का युग भी कहने लगे हैं।





१—स्वर्गवासी रायबहादुर लाला सीताराम बी० ए० और स्वर्गवासी श्रीअमृतलाल चक्रवर्ती

हिंदी के दो वयोवृद्ध और यशस्वी सेवकों के स्वर्गवास की सूचना पाकर हमें अत्यंत दुःख हुआ। दोनों महानुभावों ने अपने-अपने क्षेत्रों में हिंदी की जो अमूल्य सेवाएँ की हैं, वे हिंदी के इतिहास में अमर रहेंगी। रायबहादुर लाला सीतारामजी ने शेक्सपियर के नाटकों का उस समय अनुवाद किया था जब हिंदी का गद्य नितांत शैशवावस्था में था और यह शेक्सपियर के नाटकों का हिंदी में अकेला अनुवाद है। इसके सिवा गद्य और पद्य की मौलिक रचनाओं से उन्होंने हिंदी का मस्तक उज्ज्वल किया है। श्रीअमृतलाल चक्रवर्ती हिंदी के वयोवृद्ध और अनुभवी सम्पादकों में से थे। आपके देहान्त से हिंदी-पत्रकारों के सर पर से एक बुजुर्ग का साया उठ गया।

ईश्वर परलोकगत आत्माओं को शान्ति और उनके कुटुम्बियों को सान्त्वना दे।

२—संयुक्तप्रांत की औद्योगिक और कृषि-प्रदर्शनी

लगभग दो मास से लखनऊ नगर भारतभर के यात्रियों और व्यवसायियों का केन्द्र हो रहा है। यू० पी० सरकार की ओर से संयुक्तप्रांत की औद्योगिक और कृषि-प्रदर्शनी का उद्घाटन सूबे के गवर्नर सर हेरीहेग के हाथ से ५ दिसंबर को हुआ था। तब से आज तक प्रदर्शनी में और उसके कारण नगर में विशेष चहल-पहल रही है। प्रदर्शनी के संबंध में अखिल भारतीय संगीत-सम्मेलन, कवि-सम्मेलन, मुशायरा, हिंदुस्तानी एकेडेमी का वार्षिक अधिवेशन आदि अनेक आकर्षक कार्यक्रम सुचारु रूप से संपन्न हुए हैं। प्रांत की प्रगति समझने के लिए प्रदर्शनी के विषय में कुछ जानना आवश्यक है।

लखनऊ के प्रसिद्ध रूमी दरवाज़े के पास लगभग १३० एकड़ जमीन घेरकर (विक्टोरिया-पार्क चौक और उसके आसपास के स्थान में) लकड़ी, कपड़े और वसली (Card-board) का एक नगर बसाया गया है जो ब्रिटिश राज्य और देशी राज्यों की पिछले २५ वर्षों की उद्योग और कृषि-



संबंधी उन्नति को स्पष्ट करता है। सुविधा के लिए प्रदर्शनी के निम्नलिखित विभाग कर लिये गये हैं—

१—कपड़ा-विभाग (Textiles)
२—शिक्षा-विभाग (Education)
३—बिजली-विभाग (Hydro-electric)
४—जंगल-विभाग (Forestry)
५—कृषि-विभाग (Agriculture)
६—शकर-विभाग (Sugar)
७—रसायन (Chemical)
८—इंजीनियरिंग (Engeneering)
९—हस्तकला-कौशल (Hand-craft)
१०— कला (Art)
११—फ़ोटूग्राफ़ी (Photography)
१२—मनोविनोद (Amusements)

इन विभागों के अतिरिक्त सैकड़ों की संख्या में Pavillions और स्टाल हैं। फिर भी सुविधा के लिए हम इस प्रदर्शनी को तीन बड़े-बड़े भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) कृषि और उद्योग
(२) कला
(३) विभिन्न

कृषि-विभाग में (क) शकर बनाना, (ख) तेल बनाना, (ग) दूधवाले जानवरों का प्रदर्शन, (घ) कृषि इत्यादि सम्मिलित हैं। खेती-विभाग में जोतने, बोने, चारा काटने, खेत काटने, भूसा उड़ाने, निराने की नई मशीनें और नये औज़ार दिखाये गये हैं। यह बहुत दूर तक फैला हुआ है। साथ ही नये-पुराने नियमों से खेत बोकर दिखाये गये हैं और यह सिद्ध किया गया है कि नये तरीक़ों से उपज अधिक होती है। जानवरों के भाग में उनका पालन-पोषण, दूध-दुहना इत्यादि बताया गया है। शकर, खांड, गुड़ और तेल बनाने के पुराने और नये ढंग दिखाये गये हैं। खेती-विभाग में भिन्न-भिन्न फ़सलों के नाशकारी कृमि कीट और उनसे बचाने के उपाय बताये गये हैं। मशीन से साबुन का बनाया जाना भी इस विभाग में दिखाया जाता है। इंजीनियरिंग विभाग में भारत में भारतीय वस्तुओं और वैज्ञानिकों की बनाई 'ईजादें' दिखाई गई हैं। यह मशीनें या तो आविष्कृत हैं या पुनर्जीवित की गई हैं या नक़ल करके तैयार की गई हैं। यदि इन मशीनों का प्रचलन हो जाय तो प्रतिवर्ष भारत का विदेशों के द्वारा शोषण का बहुत भाग कम हो जाय। इस विभाग में दो-एक मशीनें विशेष उल्लेखनीय हैं। एक तो सीने की मशीन जिसका नाम 'ऊषा' है। दूसरे, कुछ पंप (Pumps), जोतने की मशीन आदि।

कपड़ा-विभाग (Textiles) में हिन्दुस्तान की बड़ी-बड़ी मिलों के कपड़े आये हैं। यू० पी० सरकार की ग्रामसुधार की स्कीम के अनुसार देशी करघे और चर्खे और बुनाई-कताई की अन्य मशीनें आई हैं। ये बहुधा लकड़ी की हैं। और इतनी सरल हैं कि आसानी से चलाई व बनाई जा सकती हैं। बुनाई के सम्बन्ध की मशीनों की प्रतियोगिता भी हुई थी जिसमें अल्मोड़ा और बिहार को पुरस्कार मिला था। रेशम और उन्हीं के कीड़ों का पालना और उनसे रेशम प्राप्त करना भी सिखाया गया है। पानी से बिजली प्राप्त करना और नहर से पानी प्राप्त करना 'मॉडिल' के द्वारा स्पष्ट किया गया है। जंगल-विभाग में एक इमारत दिखाई है जो भूचाल से सुरक्षित रह सकेगी। और जिसकी लकड़ी पौडर द्वारा कीड़ों और पानी से भी सुरक्षित है।

रसायन - विभाग में आयुर्वेदिक, हिकमत, यूनानी, एलोपेथी और होमोपेथी दवाएँ हैं। बंगाल-केमिकलवर्क्स, हिन्दुस्तानी दवाखाना और इंडियन मेडिकल सप्लाई कम्पनी आदि इस

दिशा में भारत की प्रगति को सूचित करते हैं। कला-विभाग में चित्रकला, शिल्प-कला और फ़ोटोग्राफ़ी के उत्कृष्ट नमूने संगृहीत हैं। इनमें से कुछ विदेशों से प्राप्त हुए हैं। पाश्चात्य देशों में फ़ोटोग्राफ़ी का आर्ट कितना बढ़ा है और वह चित्रकला के कितने समीप पहुँच गया है, इनसे स्पष्ट होता है। तात्पर्य यह कि भारत के विभिन्न भागों और विशेषतः संयुक्तप्रान्त की विभिन्न दिशाओं में उन्नति दिखाने का यू० पी० सरकार का उद्देश सफल हुआ है। विदेशी कला कौशल के नमूने सामने रखने से भारत के उद्योग-धन्धों और कला को आवश्यक प्रोत्साहन मिलेगा।

× × ×

३—प्रदर्शनी का कला-विभाग

लखनऊ-प्रदर्शनी में कला-भवन (Fine Art Court) विशेष स्थान रखता है। इसमें १८७ वर्तमान चित्रकारों ने भाग लिया है और ५०१ चित्र भेजे हैं। अधिकांश चित्रकारों ने पूर्वी कला को अपनाया है। इन चित्रों में केवल ४८ चित्र पाश्चात्य ढंग के हैं। इससे भारतीय चित्रकारों की मनोवृत्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। हमारा अनुमान है कि भारतीय चित्रकार पश्चिमी ढंग के सेन और पाश्चात्य टेकनीक (Western Technique) को दृष्टि में रखकर भी भारतीय चित्रकला के उत्कृष्ट नमूने पेश कर सकते हैं। यह हर्ष का विषय है कि हमारे कलाकार भारतीय कला और प्राचीन संस्कृति की रक्षा पर कटिबद्ध हैं और विशेषतः पश्चिमी भावों की गोद में पलकर। इस चित्र-संग्रह में देश के विभिन्न भागों के और विभिन्न स्कूलों के चित्रकार हैं। अवनीन्द्र ठाकुर का 'टेगोर स्कूल' का इनमें विशेष स्थान है। श्रीठाकुर के "चीनी यात्री", "मांझी की नौका" और "उत्तरा और बृहन्नला" चित्र उल्लेखनीय हैं। श्रीअवनीन्द्र नाम योरपीय दृष्टि-कोण और सतर्क-पर्यवेक्षण से काम लेकर प्राचीन भित्ति-चित्रों की छटा दिखा सकते हैं। 'रूपरेखा' और हल्की छाया की पुट देकर हिंदू-गाथाओं को अंकित करने में वे विशेष रूप में सफल हुए हैं। इस क्षेत्र में काम करनेवाले अन्य चित्रकार श्रीवीरेश्वर सेन, हेडमास्टर स्थानीय गवर्नमेंट फ़ाइन आर्ट स्कूल और श्रीयुत ललित मोहन सेन हैं। श्रीवीरेश्वर सेन के प्रकृति चित्र देखने योग्य हैं। अन्य चित्रकार जिन्होंने वर्तमान कला के सिद्धान्तों को अपनाया है और जिनके चित्र प्रदर्शित किये गये हैं, यह हैं—

श्रीअसितकुमार हलदार, श्रीक्षितिन मजूमदार, श्रीदेवीप्रसाद राय चौधरी, श्रीदुर्गाशंकर भट्टाचार्य, श्री आर० एन० चक्रवर्ती, श्री पी० आर० राय, श्री के० एम० धार, श्री जी० बी० देव, श्री बी० सी० वाज, श्रीवसु मजूमदार, श्रीमासोंजी। पौराणिक गाथाओं पर श्रीचैतन्यदेव चटर्जी के बौद्ध-चित्र और श्रीरामेश्वर चटर्जी के चित्र विशेषतः 'वर्षा की आत्मा' उल्लेखनीय हैं। मुसलमान चित्रकारों में श्री सैयद हसन असकरी, श्रीसज्जाद हुसेन, सैयद जाफर हुसेन आदि के चित्र हैं। दुःख की बात है कि इन कलाकारों के चित्र कला की परख में टेगोर स्कूल के चित्रकारों के मुक़ाबले में पूरे नहीं उतरते। संयुक्त-प्रान्त के ४५ चित्रकारों के चित्र होने पर भी पहली श्रेणी के चित्र बहुत कम हैं। सर्वश्री जिज्जा, विजयवर्गी, मेहर और शाह आदि के अच्छे चित्र प्रदर्शित नहीं हैं। बम्बई-कला स्कूल का प्रदर्शन भी ठीक नहीं हुआ है।

दो विशेष उल्लेखनीय चित्रकार प्रोफ़ेसर निकोलस और मिस शेरगिल हैं। प्रोफ़ेसर निकोलस रोरिक संसारप्रसिद्ध चित्रकार हैं और गहरे रंगों में पश्चिमी ढंग के चित्र इनकी मौलिकता है। रंगों



के विषम-मेल और विशेष रेखाओं के द्वारा वे विषय की गहराई तक उतर जाते हैं। उनके पूर्वीय प्रकृति के चित्र उनकी अमर रचनाएँ हैं। इस प्रकार भारत और तिब्बत के दुर्गम भागों की गवेषणा कर और उसके सौंदर्य से संसार को आकर्षित कर उन्होंने भारतीयों पर अनिर्वचनीय उपकार किया है।

× × ×

४—श्राफ़ कालेहैंड मरसराइज़र

रुई के सूत या कपड़े को खिंची हुई दशा में कास्टिक सोडा (Caustic Soda) के एक विशेष शक्तिवाले घोल में चलाया जाता है तो उसमें चमक आ जाती है और वह रँगने के लिए सरल और उपयुक्त हो जाता है। इस कपड़े को 'मर-सिराइज़्ड' कहते हैं। लगभग ४३·२ लाख सालाना का मरसराइज़्ड सूत भारत में विदेश से आता है। अब गवर्नमेंट स्कूल आफ़ ड्राइंग ऐंड प्रिंटिंग कानपूर के प्रिंसिपल एच्० बी० श्राफ साहब और प्रोफ़ेसर डी० जी० काले ने मिलकर एक मशीन "श्राफ कालेहैंड मरसराइज़र" तैयार किया है। यह मशीन लकड़ी की है और इसकी लागत ५० या ६० रुपये होगी। दो मनुष्य इस पर काम कर सकते हैं और ८ घंटे में लगभग २५ सेर सूत मरसराइज़ कर सकते हैं। एक ही मशीन पर ६ या ७ रुपए रोज़ बच सकते हैं। यह मशीन ग्रामसुधार आयो-जना (Rural Uplift Work) के लिए बहुत ही लाभदायक है। हमें आशा है कि कार्यकर्ता और उत्साही सज्जन इसके प्रचार में सहायक होंगे।

× × ×

५—कविसम्मेलन और कविता

लखनऊ-प्रदर्शनी के संबंध में महाराजा सैलाना के सभापतित्व में अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन का आयोजन हुआ था। सम्मेलन विशेष रूप से सफल रहा और इसके लिए कार्यकर्ता बधाई के पात्र हैं। इस सफलता का मूल्य इस तरह और भी बढ़ जाता है कि लखनऊ सदियों से उर्दू का केन्द्र रहा है और सम्मेलन की तिथि से पहले आल-इंडिया मुशायरा की बैठकें समाप्त हुई थीं। दोनों दिन उपस्थिति आशातीत रही। इस सम्मेलन से कई विचारणीय बातें स्पष्ट रूप से सामने आईं। एक तो यह कि हिंदी के प्रति लोगों की उत्सुकता बढ़ रही है। विश्वविद्यालयों और कालेजों में हिंदी की पढ़ाई के कारण विद्यार्थीगण हिंदी के लेखकों और कवियों के संबंध में अधिक से अधिक जानने और सुनने के इच्छुक हैं। दूसरे, व्रजभाषा की कविताओं और रीति कविताओं के प्रति नई जनता की विशेष सहानुभूति नहीं है; कदाचित् समय से दूर पड़ने के कारण अथवा पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से वह उसे पूर्ण रूप ग्रहण नहीं कर सकती। तीसरे, खड़ीबोली की कविता एक विशेष स्थान पर पहुँचकर ठहर-सी रही है। इसको इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं। श्रीअजमेरीजी, श्रीबच्चनजी, श्रीभगवतीचरण वर्मा की कविताएँ बड़े ध्यान से सुनी गईं। ये कविताएँ कुछ अधिक स्पष्ट थीं। परंतु अधिकांश कविताएँ व्यथा और पीड़ा को अंकित करती थीं, विशेषकर हमारी कवयित्रियों की कविताएँ। इससे केवल आज की हिंदी-कविता की कमज़ोरी और (Morbidity) ही दिखाई पड़ती है। हम नहीं समझते कि हमारे नवयुवक कवियों और नवयुवती कवयित्रियों में यह विषाद कहाँ से घुस पड़ा। कदाचित् हिंदी-कविता का करुणावाद जिसके उत्तरदायी कवि श्रीप्रसाद, श्रीपंत और सुश्रीमहादेवी वर्मा हैं, इसका कारण हो। कदाचित् इन नवीन कवियों की कविता उनकी अपनी भावनाएँ नहीं वरन् प्रसिद्ध कवियों



का अनुकरण-मात्र हों। परंतु हो जो, यह करुण-वाद—यदि यह एक Pose भी न हो—देश और जाति की इस हीन अवस्था में श्रेयस्कर नहीं जान पड़ता। कविता में जिस आनंद, उत्तेजना और अनुभूति की विशेष सृष्टि है, वह यहाँ कहाँ है? जो साहित्य-संसार त्यागकर रोने में ही अपनी इतिश्री समझ ले और संसार को कर्मक्षेत्र की जगह आँसुओं की घाटी (Valley of Tears) बना दे, वह जाति और देश के जीवन के लिए कहाँ तक सहायक हो सकता है? इस करुणवाद के गीतों में श्रीरामकुमार वर्मा और 'जागो फिर एक बार' के कवि श्रीनिराला के आनंद और जीवन के स्वर आज दब से गये हैं और यह साहित्य के लिए विशेष हर्ष की बात नहीं। आल-इंडिया मुशायरा के अध्यक्ष के पद से नवाब हज़ारी के भाषण का यह अंश हमारे साहित्यिकों के लिए विचारणीय है—"कविता भले ही सुन्दर हो, यदि वह अपने समय की भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं करती और यदि उसमें समय की आत्मा प्रतिष्ठित नहीं है तो वह जीवित कविता नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि यदि जनता की प्रवृत्ति मार्जित न हो और उसकी नैतिकता का पतन हो गया है तो कवि उसका अनुसरण करे। उस समय कवि का कर्तव्य होगा कि उसके सम्मुख उच्च आदर्श उपस्थित करे और उसकी प्रवृत्तियों और भावनाओं को परिष्कृत करे।"

× × ×

६—हिन्दुस्तानी एकेडमी

प्रदर्शनी के संबंध में ही हिन्दुस्तानी एकेडमी के पंचम साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। इस अवसर पर अध्यक्ष पद से श्रीयुत राय राजेश्वरबली का जो भाषण हुआ था वह विचारणीय है। उन्होंने इस कथन का पूर्ण रूप से प्रतिवाद किया कि एकेडमी का उद्देश्य एक नई भाषा निकालने का है और उसकी वजह से हिंदी-उर्दू के सर्वोत्तम हितों को हानि पहुँचने की सम्भावना है अथवा हिन्दुस्तानी एकेडमी को राष्ट्रभाषा के प्रचारवाले पहलू से कुछ भी मतलब है। एकेडमी के मनोनीतों का आशय यदि यही रहा हो कि एक ऐसी शैली का निर्माण किया जाय जिसमें उच्च-से-उच्च विचारों को प्रकट किया जा सके, भाषा-सौष्ठव और लालित्य में कमी न होने पावे और साथ ही साथ दोनों भाषाओं के बोलने और लिखनेवालों को उसके समझने में भी कोई कठिनाई न हो, तो यह देखना है कि इस प्रकार वह एक खिचड़ी भाषा तो नहीं तैयार कर रही है और कि वह साहित्य की भाषा के रूप में वांछनीय भी है अथवा नहीं। स्वयं एकेडमी दस वर्ष के अपने जीवन में इस उद्देश की ओर कितना बढ़ सकी है, यह इसी से स्पष्ट है कि उसके त्रैमासिक पत्रों की भाषा अन्य साहित्यिक पत्रों की भाषा एवं शैली से किसी प्रकार सरल नहीं है। हमारा विचार है कि इस प्रकार के प्रतिद्वंद्वी विचार रखना अपनी विवेक-बुद्धि को भुलावा देना है। उच्च-से-उच्च विचारों को प्रकट किया जाय और भाषा-सौष्ठव और लालित्य में कमी न आने पाये, इसके लिए आवश्यकता होगी पारिभाषिक शब्दों की और यह शब्द फ़ारसी अथवा संस्कृत के ही होंगे अथवा उन भाषाओं के शब्दों के तत्सम रूप होंगे। अब यदि उनकी जगह तद्भव शब्दों की भरमार की जायगी अथवा किसी वैज्ञानिक अथवा दार्शनिक विषय का प्रतिपादन करते हुए पारिभाषिक कठिन शब्दों के साथ दूसरी भाषा के चलते शब्दों और मुहावरों का प्रयोग होगा तो भाषा की स्वच्छता और जिसे भाषा-सौष्ठव कहा गया है, वह असम्भव है। भले ही कहानियों, समाचारों और हर प्रकार के हल्के साहित्य में



इस तरह के तद्भव शब्दों और हिंदी-उर्दू के सरल प्रयोगों से काम चल जाय (और ऐसे शब्द और प्रयोग वांछनीय भी हैं और आज भी प्रयुक्त हो रहे हैं), उनके आधार पर विचारशील साहित्य की सृष्टि करना हास्यास्पद होगा। हमारा विचार है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के नाम से विभिन्न प्रान्तों के आदान-प्रदान की जो भाषा बनेगी और जो बोल-चाल की भाषा होगी केवल व्यावहारिक रह सकेगी; उत्कृष्ट साहित्य की सृष्टि के लिए संस्कृत और फ़ारसी का सहारा लेकर चलना पड़ेगा। और साहित्य की भाषा बोल-चाल की भाषा हो यह आवश्यक भी नहीं है। कारण कि बोल-चाल की भाषा व्यावहारिक वस्तु है और साहित्य की भाषा अध्ययन-अध्यापन की चीज़।

अध्यक्ष ने अपने भाषण में सस्ती पुस्तकों के प्रकाशन और गाँववालों में साहित्य की सृष्टि के लिए ज़ोर दिया है। हम इनका समर्थन करते हैं। सस्ती पुस्तकों का प्रकाशन लेखकों को जन-प्रिय बनाने और साहित्य को जनता तक पहुँचाने में बड़ा सहायक होगा। अँगरेज़ी और बँगला में इस तरह के सस्ते प्रकाशन हो रहे हैं। इस दिशा में यदि कोई महत्त्वाकांक्षी प्रकाशक काम करे तो उसे अन्त में बड़ा लाभ हो सकेगा। हिंदी के प्रचार और क्षेत्र-विस्तार के लिए यह बड़ा महत्त्वपूर्ण काम होगा। यदि नागरी-प्रचारिणी सभा यह काम अपने हाथ में ले सके और प्रेमचंद-प्रभृति लेखकों के सस्ते संस्करण हो जायँ तो पुस्तकों की माँग अवश्य बढ़ेगी और हिंदी के लिए भविष्य में अधिक पाठक मिल सकेंगे। गाँववालों, मज़दूरों और अन्य व्यवसायियों के लिए भी व्यावहारिक साहित्य की सृष्टि होना आवश्यक है और इस प्रकार हमारा साहित्य एकांगी नहीं रहेगा और जनश्रुत हो सकेगा।

× × ×

७—कहानी-अंक

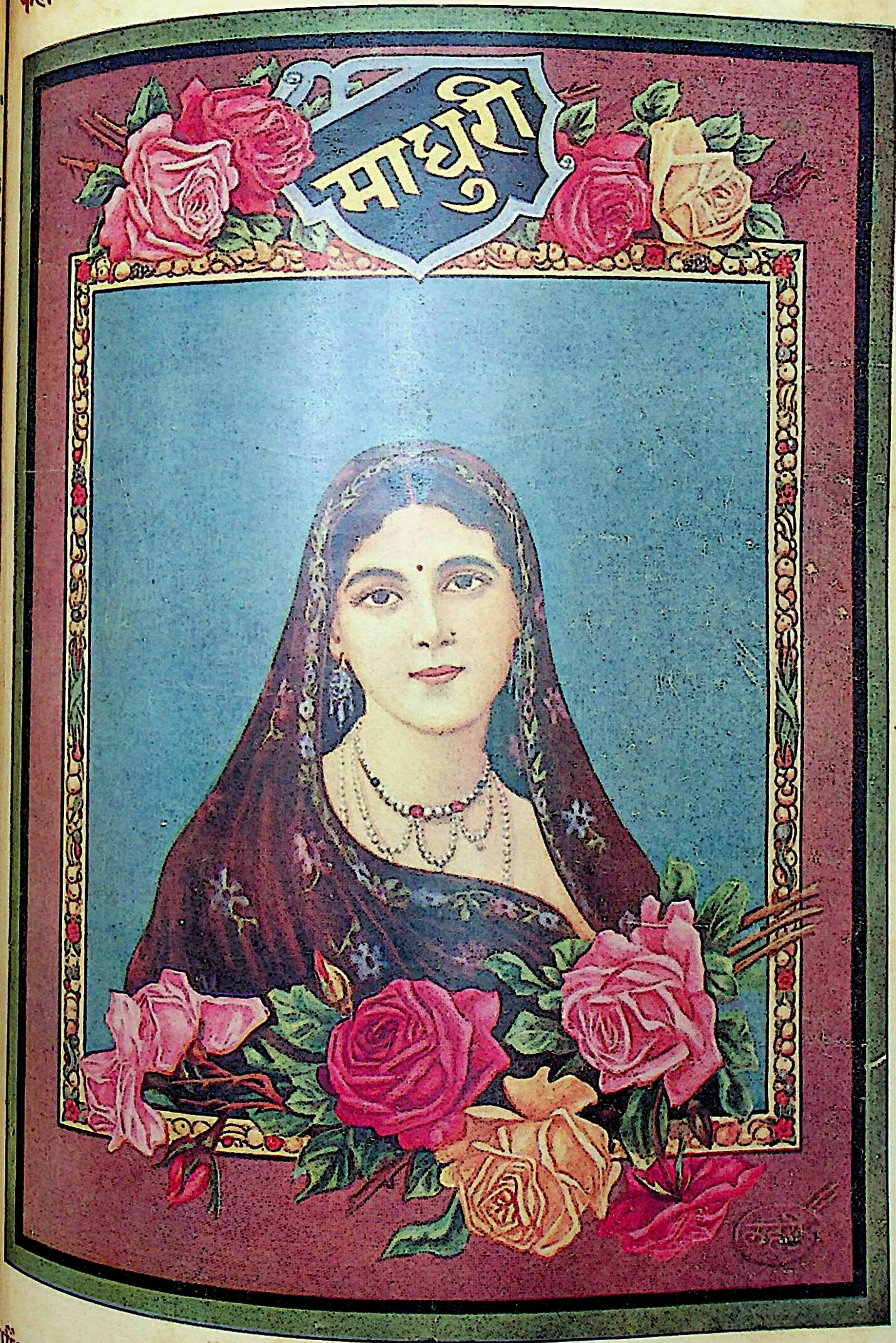
जनवरी के अंक में हमने माधुरी के कहानी-अंक की सूचना दी थी। पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि माधुरी का आगामी अर्थात् मार्च का अंक कहानी-अंक होगा। हमने प्रयत्न किया है कि इस अंक में पाठकों को पाश्चात्य और भारतीय साहित्य की उत्कृष्ट रचनाओं का एक स्थान पर रसास्वादन हो सके। इस प्रकार पाठक भारतीय, और विशेषकर हिंदी-कहानी-साहित्य की प्रगति पर भी अपनी धारणा बना सकेंगे। हिंदी के प्रतिष्ठित लेखकों में से श्रीइलाचंद्र जोशी, श्रीभगवतीचरण वर्मा, श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्री'पहाड़ी', श्रीरामविलास शर्मा, श्री'कौशिक', श्रीमोहनलाल महतो आदि की रचनाएँ हमें प्राप्त हो गई हैं। अन्यान्य प्रसिद्ध लेखकों की रचनाएँ प्राप्त करने की चेष्टा की जा रही है। इस प्रकार हम इस अंक को सर्वांग-पूर्ण बनाने का प्रयत्न करेंगे। इस अंक से जो माधुरी के ग्राहक बनेंगे उन्हें यह अंक ६॥) में ही भेजा जायगा।

कहानी-अंक

March 1937.

फाल्गुन सन् १९३७ ई०

पूर्ण संख्या १७६



वार्षिक मू० ६॥)

संपादक—

रूपनारायण पाण्डेय

इस अंक का मू० २)

लेख-सूची

चित्र-सूची

(रंगीन)

(इकरंगा)

---

५००) रुपया इनाम

पहेली भरिये और इनाम पाइये

प्रथम इनाम २५०), दूसरा इनाम १००), तीसरा इनाम ५०), शेष इनाम १००)

संकेतमाला

बायें से दायें

१—विष्णु

४—सिनेमा में देर से बिछुड़े हुए प्रेमियों के····का दृश्य रोमांचकारी होता है।

६—इस पहेली को हल करने के लिये····को देखना लाभदायक है।

८—देखो नं० ३ 'ऊपर से नीचे'।

९—प्राचीन····की ओर से लोगों का ध्यान हटता जाता है।

१०—इसके आगे किसी का बस नहीं चलता।

११—ब्रह्मा की उत्पत्ति इससे हुई है।

१६—इस इमारत को देखकर लोग दंग रहजाते हैं।

१८—बिगड़ाहुआ 'दाड़िम'

२०—बहुत बड़ी हो तो रखने में कठिनाई होती है।

२३—दशरथ ने कैकेयी को वरदान देकर अपने ही ऊपर आफ़त ले ली।

२४—यदि अपना···· ही ठिकाने न हो तो गम्भीर कार्य नहीं हो सकता।

२५—इससे कभी-कभी ज़रूरी काग़ज़ों का नुक़सान हो जाता है।

२६—कचहरी

२७—यदि दवाई का···· ठीक न हो तो गुणकारी नहीं हो सकती।

ऊपर से नीचे

१—पेट में चूहे कूदते हों तो ब्राह्मण लोग····रसोई ही साफ़ कर जाते हैं।

२—सज्जन मनुष्यों का स्वभाव इस फल के सदृश होता है।

३—कीर्ति।

४—इसके प्रयोग में अनुभवियों को भी सावधानी की आवश्यकता होती है।

५—इससे किसी प्रकार की सहायता की आशा रखना व्यर्थ है।

७—इसका गाना मृदु होता है।

१०—कार्य।

१२—चुनाव के दिनों में बहुत लोगों ने····देकर कांग्रेस की सहायता की है।

१३—इनके मारे बहुधा नाक में दम हो जाता है।

१४—तैरने के मैच में····का विचार न करनेवालों का जीतना कठिन होता है।

१५—पेट भर खाना न मिले तो घोड़े का स्वभाव····हो जाता है।

१६—समृाट् एडवर्ड ने प्रेम के लिये इसको ठुकरा दिया।

१७—"तरल" का अपभ्रंश

१९—यह सब गड़बड़ "महाभारत" से ही हुई है।

२१—बहुत लोग भोजन के साथ इसे ध्यान रखते हैं।

२२—पेड़ों के नये पत्ते···· होते हैं।

२४—यह तेज़ न हो तो रात को पढ़ने में कठिनाई होती है।

1 स	त्य	2 मा	[illegible]	3 श	ण	■	4 ि	ला	5 प
	■	रि	■	6	द्द	7 ो	ष	■	ि
री	■	8		■	■		■	9 ो	त
■	10 का		■	11 क	12	ल	13 ना		■
■		■	14	■		■	े	■	15
16 ा	ज		ह	17	■	■	18 ा	19	ि
ज	■	20	रा		■	21 ा	र		य
■	22 को	■	23		दा	न	■	24 ा	ल
25 दी		क	■	■	26 अ	दा			■
	ल	■	27 अ	नु	ा		■	ा	■

सुगम वर्ग पहेली नं० २ फ़ीस ॥)

इस पहेली के संबंध में मुझे मैनेजर का निर्णय स्वीकार होगा।

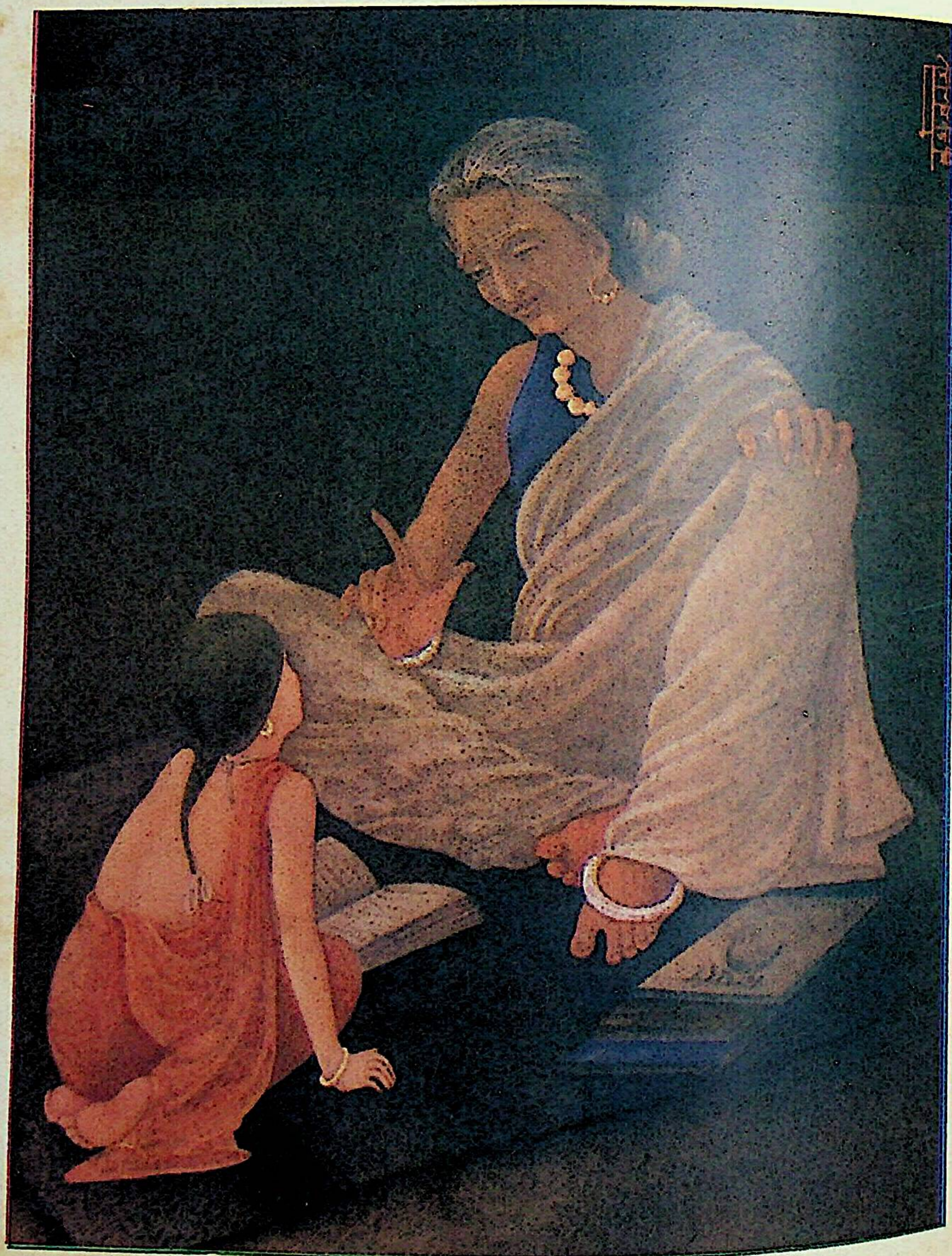
नाम ································

पता ································

ठिकाना ·········· उत्तर नं० ··········

नोट—अर्जुन साप्ताहिक में प्रकाशित कूपन ही पर अपना हल भेजना चाहिये।

संयोजक—सुगम वर्ग पहेली नं० २, अर्जुन-कार्यालय, दिल्ली।



कहानी

नानी की ज़बानी

N. K. Press, Lucknow.



सम्पादक
रूपनारायण पांडेय
प्रतिनिधि-सम्पादक (सी० पी०)—मातादीन शुक्ल

वर्ष १५, खंड २, संख्या २, पूर्ण संख्या १७८	फाल्गुन	३१३ तुलसी संवत्, १९९३ वि०

मनुष्य की कहानी

(१)

७ और शक्तिमान् परमात्मा ने पृथ्वी से धूल ले मनुष्य को बनाया और उसके नासिका-रन्ध्रों में जीवन की श्वास फूँक दी ; और मनुष्य एक जीवित प्राणी हो गया।

८ और शक्तिमान् परमात्मा ने अदन के पूर्व की ओर एक बाग़ लगाया ; और वहाँ पर उसने उस मनुष्य को रक्खा जिसे उसने बनाया था।

९ और पृथ्वी में से शक्तिमान् परमात्मा ने प्रत्येक वृक्ष उत्पन्न किया जो दृष्टि को सुन्दर और जिसका फल खाने में मधुर था ; बाग़ के बीच में जीवन का वृक्ष भी, और पाप-पुण्य के ज्ञान का वृक्ष।

१५ और शक्तिमान् परमात्मा ने आदमी को लिया और उसे ईडन के बाग़ में उसकी देखभाल और रक्षा करने के लिए रख दिया।

१६ और शक्तिमान् परमात्मा ने मनुष्य को आज्ञा दी, यह कहते हुए, बाग़ के प्रत्येक वृक्ष के फल तू स्वतंत्रता से खा सकता है।

१७ परन्तु तू पाप-पुण्य के ज्ञान-वृक्ष का फल नहीं खायगा ; क्योंकि जिस दिन तू उसका फल खायगा, अवश्य मर जायगा ।

२१ और शक्तिमान् परमात्मा ने आदम को एक गंभीर निद्रा में सुला दिया ; और उसने उसका एक अस्थिखंड निकाल लिया और वहाँ पर मांस भर दिया ।

२२ और वह अस्थिखंड जिसे शक्तिमान् परमात्मा ने मनुष्य से लिया था, उसने उसकी स्त्री बनाई और उसे पुरुष के पास लाया ।

२३ और आदम ने कहा, अब यह मेरी अस्थि की अस्थि है, और मांस का मांस है ; इसका नाम स्त्री होगा ; क्योंकि यह पुरुष से बनी है ।

२४ इसीलिए पुरुष अपने माता-पिता को छोड़ देगा, और अपनी स्त्री के संग रहेगा ; और वे दोनों एक शरीर होंगे ।

२५ और वे दोनों नग्न थे, पुरुष और उसकी स्त्री, और वे लज्जित न थे ।

(२)

१ अब साँप उन सभी जीवों में चतुर था जिन्हें शक्तिमान् परमात्मा ने उस बाग़ में उत्पन्न किया था, और उसने स्त्री से कहा, यही न, परमात्मा ने कहा है, तुम बाग़ के प्रत्येक वृक्ष के फल न खाओगे !

२ और स्त्री ने साँप से कहा, हम बाग़ के वृक्षों के फल खा सकते हैं ;

३ परन्तु उस वृक्ष के फल जो कि बाग़ के बीच में है, परमात्मा ने कहा है, तुम नहीं खाओगे, न तुम उन्हें छुओगे, नहीं तो मर जाओगे ।

४ और साँप ने स्त्री से कहा, तुम अवश्य नहीं मरोगी ।

५ क्योंकि परमात्मा जानता है कि जिस दिन तुम उसका फल खाओगी, उस दिन तुम्हारी आँखें खुल जायँगी, और तुम परमात्मा की तरह हो जाओगी, पाप-पुण्य को जान जाओगी ।

६ और जब स्त्री ने देखा कि वृक्ष के फल खाने में मधुर और देखने में सुन्दर थे, और ऐसा वृक्ष जिससे मनुष्य ज्ञानी हो जाता, उसने उसके फल को लिया, और खाया, और अपने साथ के पति को भी दिया ; और उसने खाया ।

७ और उन दोनों की आँखें खुल गईं, और उन्होंने जाना कि वे नंगे थे ; और उन्होंने अंजीर की पत्तियों को एक साथ सिया, और अपने लिए आच्छादन बनाया ।

१६ स्त्री से उसने (परमात्मा ने) कहा, तेरे गर्भ से अनन्त व्यथाओं का जन्म होगा ; दुःख में तू अपने बच्चों का पोषण करेगी ; और तेरी इच्छा तेरे पति की इच्छा होगी, और वह तेरे ऊपर शासन करेगा ।

१७ और उसने आदम से कहा, इसलिए कि तूने अपनी स्त्री की बात सुनी है, और वृक्ष का फल खाया है, जिसके लिए मैंने तुझे आज्ञा दी थी, तू उसे नहीं खायगा ; यह भूमि तेरे कारण अभिशप्त है ; दुःख में ही तू उसकी उपज अपने जीवन के सारे दिनों में खायगा ।

१९ अपने पसीने की कमाई से तू रोटी खायगा, जब तक तू धूल में न मिल जाय ; क्योंकि तू उसी में से बना है ; क्योंकि तू धूल है और धूल में ही तू लौटकर मिलेगा ।

२४ इसलिए उसने मनुष्य को बाहर निकाल दिया और उसने अदन के पूर्व द्वार पर देवदूत नियुक्त किये, और एक जलती हुई तलवार जो दोनों तरफ़ हिलती थी, जीवन के वृक्ष का रास्ता रोकने के लिए थी ।

(ओल्ड-टेस्टामेंट)

सम्पादकीय

१—कहानी की कला

कहानी का मनोविज्ञान

बच्चे पाँच वर्ष के भी न हुए कि कहानियाँ गढ़ने लगते हैं। कहानी कहने-सुनने की प्रवृत्ति उनमें स्वाभाविक होती है। बच्चा अकेला हुआ तो कल्पना में कोई भाई-बहन, परी, चूहा पैदा कर लेता है और उसके साथ विचरता है। बड़ा बालक देख नहीं पाता कि बच्चा केवल कल्पना की पटभूमि पर उतार रहा है, 'आकार' को समझना चाहता है।

ये काल्पनिक चित्र बहुत दिनों तक संतोष नहीं देते। उनमें Climax नहीं होता, अन्त नहीं होता। घटनाओं को एक सूत्र में पिरो दें तो कथा नहीं बन जाती। ऐसा होता है कि बच्चा जब बड़ा और बुद्धिमान् हो जाता है, कही हुई कथा में वह जोड़-तोड़ करता है, सँवारता है। घटना जो घटित हुई, उसमें कई बातें छोड़ दें तो लाभ ही होगा। वह साफ़-साफ़ है तो उसे छानकर प्रकाश में लाना होगा ; उसमें तारतम्य नहीं—दूसरा रूप देना होगा ; वैषम्य को अधिक स्पष्ट करना और वार्तालाप को नीरस और बेमतलब होने से बचाना होगा। यहाँ कथा कहनेवाला प्रवेश करता है।

कहानी कहने-सुनने की प्रवृत्ति स्वाभाविक क्यों है? घटनाएँ कैसे अपनी मौलिक सत्ता बना लेती हैं? घटनाओं में भी विशेष मनुष्य को क्यों पसंद आती है? साहस (Adventure) की कथाएँ और हत्याएँ देख-सुनकर मनुष्य क्यों आनन्द ले रहा है? यह मनोविज्ञान के प्रश्न हैं। हमें इनका हल खोजना होगा। घटनाओं और चरित्रों का साक्षात् स्पर्श अच्छा लगता है, ज्ञान और आनन्द के तंतुओं को इससे उत्तेजना मिलती है। प्रारंभिक काल में मनुष्य का जीवन जंगली था, संघर्षमय था, घटना-प्रधान था। जय और हत्या की लिप्सा—शिकार—परिस्थितियों और मन की ही नहीं, आत्मा की भी पुकार थी। शत्रु को पत्थर की तेज़ फलक चढ़े भाले से वेधकर आदिपुरुष किलकारी मारता था और आत्मा बार-बार प्रतिध्वनि की भाँति जयनाद करती थी। युगों बाद जब मनुष्य सभ्य हो गया, पशुओं से उसे विशेष भय न रहा। नगरों में रहने लगा, उसने हत्या की प्रवृत्ति को सभ्य और परिष्कृत रूप देकर आज के शिकार का नाम दिया। शिकारी, मनुष्य की हत्या-प्रवृत्ति को प्रदर्शितमात्र करता है और भी नूतन रूप से मनुष्य घटनाएँ पढ़कर ही आनन्द लेता है। जैसे वही पात्र है। वह अलग खड़ा नहीं रह सकता, उनमें आनन्द लेता है। संक्षेप में कहानी का यही मनोवैज्ञानिक आधार है।

कहानी का रूप

कहानी (Short story) साहित्यकला में सर्वोच्च है। बेलज़ाक, मोपाँसा, अनातोले फ़्रांस, टालस्टाय,



तुर्गनीव, चेख़व, कोनार्ड, शेरवुड, एन्डरसन और अन्य कलाकारों की श्रेष्ठतम कृतियाँ उनकी कहानियों में मिलेंगी। साहित्य का कोई दूसरा अंग विषय और परिभाषा की इतनी तन्मयता नहीं चाहता। कहानी में उड़ान की जगह नहीं।

उपन्यास में पटभूमि और पात्रों का एक के बाद दूसरा, फिर तीसरा चित्र देते जाइए, पात्रों को प्रमुखता में लाने के लिए पटभूमि को जिस तरह चाहिए Tone दीजिए। प्रारम्भ से अन्त तक पाठक आपसे एक विशेष तस्वीर की माँग न करेगा।

कहानी में इसकी जगह नहीं, यह सम्भव नहीं। पूरी कहानी, पूरी तस्वीर, पात्र, पटभूमि, कार्य, गढ़न सभी लेखक के मस्तिष्क में काग़ज़ पर आने के पहले पूरा चित्र बना लेते हैं। उपन्यास और कहानी की परिभाषा में वही अन्तर है, जो शिल्प-कला और चित्रकला में। चित्रकला में चित्रकार Accumulated effect पैदा कर रहा है। वह चित्र-पट पर अपने मन का चित्र उतारता है और इस कार्य के बीच में मन के सोचे चित्र में नई-नई बातें जोड़ता जाता है। रंगों को वह हल्का-गाढ़ा कर सकता है, बदल सकता है। उसके बुरुश के साथ उसका मानसिक चित्र साकार होता है, बढ़ता है और बदलता है। शिल्प में छेनी और हथौड़े की प्रत्येक चोट कुछ देती है अथवा कुछ ले जाती है। शिल्पी को अपना पूरा चित्र पहले गढ़ लेना होता है। वह उसमें जोड़ कुछ नहीं सकता। पहली चोट के पहले ही उसे काट-छाँट कर लेनी होती है।

× × ×

कहानी उत्तेजना के अन्यतम क्षणों का फल है। वह ऐसी हो कि एक बैठक में पढ़ी जा सके। इसका अर्थ यह नहीं कि कहानी उपन्यास का संक्षेप मात्र हो, उपन्यास के एक हज़ार पन्नों में जो कहा गया है, उसे कहानी के चालीस पन्नों में जमा कर दिया जाय। कहानी और उपन्यास में आकार का ही अन्तर नहीं है, प्रत्युत अर्थ, गठन और परिभाषा का भी।

कहानी का विषय और टेकनीक

कहानी का विषय ऐसा हो, जो उसकी सीमा में ठीक-ठीक और प्रभावशाली ढंग से—रोचकता से—कहा जा सके; पढ़कर ऐसा लगे कि कुछ जोड़ने पर खोया कुछ न जाता तो लाभ भी कुछ न होता। उसकी बाह्य रेखाएँ (Outlines) साफ़ उतरनी चाहिए। उसके भागों में एक हिसाब चाहिए। भीड़ का विचार उठाये बिना ही वह अपना अर्थ पूरा करे। अपने ढाँचे पर पूर्ण हो।

अर्थ यह नहीं कि उसे एक क्षण, एक पात्र अथवा एक घटना तक ही सीमित रहने दिया जाय। वह पात्र दृश्य अथवा अनुभव के एक कोण को विकास में लावे, वह समय के वर्ष-बन्धनों को लाँघकर कई पीढ़ियों तक चली जाय। परन्तु वह विषय में तन्मयता ला सके। वाशिंगटन इरविंग की रिपवान विंकिल नाम की कहानी में एक जीवन की कथा है, परन्तु केन्द्र पर न आती हुई जीवन की घटनाओं को दबाकर बहुत ही कम जगह में विषय उपस्थित किया गया है। मोपाँसा की कई कहानियों में यही बात मिलेगी। जहाँ भी मिलेगी, कहानी भर में एक ही अर्थ दिखाकर और जो उससे संबंधित नहीं, उसे दबाकर कलापूर्ण प्रभाव पैदा किया गया है।

दूसरी आवश्यक बात ऐक्य है—अर्थैक्य, भावैक्य, कर्मैक्य और फलतः प्रभावैक्य (Unities of motive, purpose, action and as result that of impression)। कहानी में केवल एक और केवल एक भाव होना चाहिए और इस भाव का प्रकाशन पूर्ण रूप से होना चाहिए। यह सच है, जो प्रत्येक सुन्दर कहानी में मिलेगा, वह चाहे किसी भाव को लेकर चली हो। उपन्यास में इतने विभिन्न ताने-बाने हो सकते

कि उनमें कोई केन्द्र ही दिखाई न पड़े, अथवा विश्लेषण में दो या अधिक दिखाई दें। कहानी में अवश्य ऐसी परिस्थिति अवाञ्छनीय है। इसके विपरीत कहानी में प्रधान भाव (Germinal Idea) साफ़ होना चाहिए और उसके संचारी भाव और अनुभाव किसी भी प्रकार उलझे हुए न हों। कला की दृष्टि से कहानी को जाँचने पर हम अर्थ और व्यंजना (Effect) की एकता (Singleness) को प्रधानता देते हैं।

इस एकता तक पहुँचना कहानी-लेखन की प्रथम कठिनाई है और इसी से उपन्यास-कला से कहानी-कला कठिन हो जाती है; इसी से इसकी कलामय सफलता पाठक में कलाजन्य आनन्द की सृष्टि करती है।

इसकी सीमा और केंद्रीभूत सत्ता के कारण ही कहानी लिखने में प्रत्येक बाहर की और गौण बात को छोड़ना होता है, ठीक-ठीक दृष्टिकोण लेना होता है, कथा के प्रत्येक अंग को आवश्यक दामों में आँकना होता है और भिन्न-भिन्न भागों को रूप में संश्लिष्ट करना। कहानी में परिभाषा की कमज़ोरियाँ उपन्यास से कहीं जल्दी झलक जाती हैं।

फिर भी कहानी के लिए कोई एक नियम निर्धारित किया नहीं जा सकता। कुछ नियम हैं, जो अन्ततः विषय और भाव से संबंध रखते हैं, जैसे विशेष कहानी में वार्त्ता-भाग हो अथवा नहीं अथवा समस्त कहानी वार्ता-रूप में ही हो। परन्तु सभी कहानियों में प्राकृतिक वर्णन को स्थान कम मिलना चाहिए। हाँ, कुछ कहानियों में स्थानीय रंग देने की आवश्यकता होती है। वहाँ वर्णन अलग वस्तु नहीं रह जाता, वह पात्रों और घटनाओं के समझने के लिए अनिवार्य होता है।

कहानी का विषय क्या हो? किसी भी विषय और मसाले (Material) को लेकर कहानी लिखी जा सकती है। कहानी का विषय-क्षेत्र इतना विस्तृत है कि मनुष्य की समस्त इन्द्रियाँ, हृदय और मस्तिष्क उसे पूरा-पूरा नाप नहीं सकते। यह विषयक्षेत्र अपरिमित है, अनंत है। कोई नाटकीय घटना अथवा परिस्थिति; ऐसी कई घटनाएँ; पात्र की एक विशेष मानसिक स्थिति, एक अनुभव, जीवन का एक रुख़, एक नैतिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक अथवा आध्यात्मिक समस्या, कोई भी एक सुन्दर कहानी का बीजस्थल बन सकती है।

अस्तु। कहानी का विषय लेखक का व्यक्तिगत अनुभव नहीं है, बल्कि उस अनुभव पर वह जो फ़ैसला देता है, वह है। जो वह देखता है, वह नहीं; बल्कि उसके सम्बन्ध में उसके विचार और धारणाएँ हैं। कहानी में जो प्रतिफलित होगा, वह लेखक का व्यक्तित्व है, उसका अनुभव नहीं।

कहा जाता है कि कला का काम प्रकृति का यथार्थ चित्रण करना है। परन्तु फ़ोटोग्राफ़ चित्रकला का सर्वोत्कृष्ट रूप नहीं है। आँख देखती ही नहीं, वह चुनती भी है।

कहानी और जीवन

और कलाकार का मस्तिष्क शीशे की भाँति नहीं है, जो अपने सामने के चित्र के जैसा ही अक्स (Image) लेता हो और उसकी रूप-रेखाओं को बड़ी सावधानी से उतार देता हो। कलाकार वही देखता है और वही सृष्टि करता है, जिसकी उसका मन आज्ञा देता है और जो वह देख सकता है। देखने के साथ ही वह एक भावना की सृष्टि कर लेता है। हो सकता है, कलाकार एक पेड़ को देखे और उसकी प्रत्येक टहनी और पत्ते न देख सके; संभव है, वह उसमें एक वस्तु देखे, जो पृथ्वी में जकड़े हुए अपने ज़ीवन को स्वतंत्र करने की चेष्टा में लगी हो। वह उसे चित्र का रूप दे; इसके पहले उसे मन में देख लेना होगा। जब तक वह उसे स्पष्ट मन में नहीं देख लेता, उसका कोई अस्तित्व नहीं। साधारणजन जो पढ़ा-सुना है, वही देख



सकता है। कलाकार अपनी प्रवृत्ति और धारणा से देखता है।

कलाकार और वैज्ञानिक दोनों अपनी प्रवृत्ति से विषय को पकड़कर उसको अनुभवों की भूमि पर उतारते हैं, केवल उनकी प्रवृत्ति और अनुभवों की अभिव्यक्ति के रूप भिन्न हैं। दोनों, ही जीवन में जो प्रमुख, किंतु आशातीत है, उसे खोज निकालना और सामने लाना चाहते हैं। कहानी जीवन का जैसा-का-तैसा प्रतिबिंब नहीं है, वह पुनः सृष्टि है। जीवन में जो बात नहीं रहती, वह कहानी में उपस्थित रहती है, उसे चाहे हम आलोचना कहें, विचार कहें अथवा मूल्य कहें। कहानी में चित्रित जीवन को यही प्रधान बना देती है। अतएव इतिहास, घटनाएँ और जीवन कहानी की सृष्टि नहीं कर सकते। वास्तविक जीवन में ऐसी उत्तेजनाएँ काम करती हैं, जो परिस्थिति के लिए किसी काम की नहीं। जीवन में Balance नहीं होता।

जीवन में ऐक्य नहीं होता, कहानी में होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि जब हम अन्त पर पहुँचें, पात्रों और कहानी की विषमताएँ दब जायँ और कहानी पूरा, एक-रस चित्र दे सके।

पूर्णता और ऐक्य ही कहानी की दो प्रधान आवश्यकताएँ हैं। जीवन में न पूर्णता होती है न एकरसता। कम से कम हमारे अनुभव में तो नहीं आती। जीवन में किसी भी व्यक्ति की किसी विषय पर इतनी पुष्ट धारणाएँ नहीं होतीं। जीवन हमें उलझा देता है। कहानी जब जीवन का निर्माण करती है, तब वह समस्त उत्तेजनाओं और असंबंधित चेष्टाओं को दूर कर देती है। इसी से हम उसके जीवन के चित्र के विषय में विचार कर सकते हैं, उसे समझ सकते हैं। परन्तु जो हम समझ पाते हैं, वह लेखक का दृष्टिकोण होता है। लेखक दो बूढ़े-बुढ़ियों को देखता है, तब तक के चित्रों से उनका जीवन बनाना चाहता है। वह कल्पना का सहारा लेता है और उसकी जीवन के विषय में जो धारणा है, उसे काग़ज़ पर उतार देता है। कदाचित् उनके जीवन की सत्य-सत्य घटनाएँ उसके काम की नहीं होतीं। परन्तु वह उनके जीवन और उनके अनुभवों में दिलचस्पी नहीं लेता, कहानी में वह अपने विचार और जीवन के प्रति अपनी धारणाएँ देना चाहता है। निराकार और धुँधले रूप से वे उसके मन में रहे होंगे। बाहर की चीज़ ने उन्हें आकार देकर स्पष्ट-मात्र कर दिया। अतएव पात्र और घटनाएँ कहानी का निर्माण नहीं करते। लेखक ने उनके विषय में पहले क्या धारणा बना रक्खी है और उसके भावों को कैसी उत्तेजना मिली है, यही उसकी नींव होते हैं।

एक परिभाषा

कहानी का यह विषय कहानीकार के मस्तिष्क में उत्पन्न होता है। यह घटना के रूप में हो, अथवा प्लाट के; परिस्थति के रूप में अथवा पात्र के या किसी कार्य के, किसी स्थूल रूप में अथवा सूक्ष्म भाव के रूप में, जिसे स्थूल बनाना हो। Stevenson ने कहा है—

"There are, so far as I know, three ways and only three, of writing a story. You may take a plot and fit characters to it, or you may take a character and devise incidents and situations to develop it, or lastly, you may take a certain atmosphere and get actions and persons to realise it." इस लेखक के कहे अनुसार कहानी के तीन प्रकार होंगे—

(१) प्लाट की कहानी
(२) पात्र की कहानी
(३) वातावरण की कहानी (The story of Impression)

कहानी का ढाँचा

कला गहरी गई तो उसका ढाँचा बाह्य नहीं रह जाता, उसका एक आन्तरिक गठन भी होता है। सतह पर देखने से हम उसे पकड़ नहीं सकते



पाठक, दर्शक एवं श्रोता को इसे स्वयम् खोज निकालना होता है। बाहर की चीज़ से वह स्वयम् भीतर पुनः निर्माण करता है। कथा के एक पृष्ठ से दूसरे पृष्ठ पर, एक पाठ से दूसरे पर हम पहुँच जाते हैं, परन्तु अज्ञात भाव से अपनी दृष्टि पीछे की बातों पर रखते हैं। इस प्रकार हम रूप की सृष्टि करते हैं।

कहानी के ढांचे का कारण उसकी मर्यादा है। भाषा और टेकनीक की यही मर्यादा कथाकार को सौन्दर्य-भाव की सृष्टि करने में सहायक हो सकती है। कथाकार के हाथ में उसके बेढंगे औज़ार ही शैली-विभूति बन जाते हैं। परन्तु साधारणतः गठन साधन-मात्र है। हम जब चित्र देखते हैं, तो हमारी दृष्टि संपूर्ण चित्र पर पड़ती है। कहानी में परिस्थिति इससे भिन्न है। कहानीकार एक ही दिशा में काम करता है। शब्दों, वाक्यों, पैराग्राफ़ों और दृश्यों के सहारे वह मूल-भाव की अभिव्यक्ति करता है। चित्र का केन्द्र कनवास के किसी भी भाग में हो सकता है; किन्तु यह कहानी में अंत में रहना आवश्यक है। वाक्यों को वाक्यों पर और दृश्यों को दृश्यों पर खड़ा करके कलाकार जो बनाता है, वही गठन है। कहानी का बीजार्थ खुल जाने पर लेखक कुछ और कहना चाहे तो उसका तत्त्व जाता रहेगा, मूल्य भी जाता रहेगा। बीजार्थ जहाँ कहानीकार खोलना चाहता है, उससे पहले ही खुल जाय तो भी कहानी का प्रभाव मारा जाता है।

कहानी धीरे-धीरे खुलती है। प्रत्येक पहला प्रमाण दूसरे तक पहुँचने पर धुँधला हो जाता है। अंत को स्पष्ट करने में कहानी का प्रत्येक भाग सहायता देता है, परन्तु उनका बहुत कुछ अंश पीछे पड़ जाता है। यही कारण है कि पाठक अंत ही अधिक ग्रहण कर पाते हैं।

कहानी बीजरूप में जीवित वस्तु है। वह गढ़ी नहीं जा सकती। अंतर्दृष्टि (Intution) से कहानीकार कुछ ग्रहण करता है। जो ग्रहण करता है, उसमें से कुछ चुन लेता है, कुछ छोड़ देता है और अंत में वह संपूर्ण भाव (Complete Idea) की सृष्टि करता है। कहानी की परिभाषा के अनुसार आवश्यक है कि कथा धीरे-धीरे खुले। कहानी की बनावट (गठन) का यही तात्पर्य है। अधिकतर ऐसा होता है कि कथाकार जब कहानी सोचता है तो साथ-साथ उसे गूँथ भी देता है, जिससे अंत में वह खुल सके। कभी-कभी लेखक के मस्तिष्क में इस प्रकार के गठन का भाव स्पष्ट रहता है।

हो सकता है कि रूप और गठन का कहानी में प्रधान स्थान न हो। कुछ कहानीकारों ने अपनी कहानियों में नाटक के एक ढंग (Suspense) को अपनाया है। लेखक पाठकों को एक सूत्र पर लटकाये रखता है और इसमें सफल होकर ही कला की सार्थकता समझता है। परन्तु अब इसका महत्त्व जा रहा है और प्लाट इसका स्थान ले रहा है।

कहानी-कला

कहानी घटनाओं और पात्रों के कार्यों से सम्बन्ध रखती है। पात्र जो काम करते हैं अथवा उन पर जो कार्य होता है, उसे हम 'प्लाट' कहते हैं। दूसरी बात, यह घटना पात्रों पर घटती है अथवा पात्र उन्हें घटाते हैं। जिनका सम्बन्ध घटनाओं से होता है, वे पात्र कहाते हैं। तीसरी बात पात्रों की बातचीत है, जो चरित्र-चित्रण के ही अन्तर्गत है। चौथे, घटनाएँ कहीं पर और कभी घटनी चाहिए। अतएव, आते हैं स्थान और समय। अब शैली का प्रश्न आ जाता है और इसके साथ कहानी से संबंध रखनेवाली सूची समाप्त हो जाती है। फिर भी एक बात रह जाती है और वह है कहानी के अंतर्गत जीवन की समालोचना। प्रत्येक कहानीकार अपनी कहानी में जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण रखता है, जीवन की समस्याओं को उसके प्रकाश में देखता है। यह बात कहानी से अनजाने ही उपलब्ध हो जाती है।

प्लाट

जीवन के किसी भी अंग से कहानी का प्लाट लिया जाय, कहानीकार ऊपर की सतह की चीज़ों को ही छूकर नहीं रह जाता। उसकी पहुँच गहरी होती है और उसका ध्यान उन संघर्षों, वासनाओं एवं समस्याओं पर होता है, जो जीवन का तानाबाना बनाती हैं। साहित्य यों ही जीवन की व्याख्या है।

इसके लिए विशेष घटनाएँ और विशेष पात्र आवश्यक नहीं। प्रतिदिन की तुच्छ घटनाओं पर खड़ी कहानी भी इतनी ही ज़ोरदार, नैतिक और केन्द्रस्थित हो सकती है। वह दुःखान्त ही नहीं, सुखान्त भी हो सकती है। कारण, प्रश्न सौन्दर्य-दर्शन का है। कहानी किसी भी वस्तु पर निर्धारित हो सकती है, यदि वह वस्तु जीवन की विषमताओं और संघर्षों की ओर संकेत कर सके।

कथा का उद्देश्य आनन्द-प्रदान करना है, थकी शिराओं को विश्राम देना है। कोई भी कहानी इस उद्देश्य को पूरा करे तो अच्छी कहानी कही जायगी। टेकनीक की उच्चता, नाटकीयता, चरित्र-चित्रण, परिहास, इनमें से कोई भी या सभी कहानी को साहित्य की उच्च भूमि पर उठा सकते हैं। फिर भी कहानी का आधार ठोस, बहुमूल्य और महान् हो तो सर्वोत्तम है। परन्तु केवल यह ऊँचा और बहुमूल्य आधार ही कहानी में उच्चता नहीं ला सकता। किस तरह लिखा गया है, एक ही विषय के स्पष्टीकरण के जो हज़ार तरीक़े हैं, कथाकार ने उनमें से सर्वोत्तम चुना है या नहीं—यहीं पर कलाकार का व्यक्तित्व आ जाता है।

व्यक्ति और चुनाव की बात जब आ ही गई तो उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार करेंगे। हर अच्छे साहित्य में लेखक को अपनी आत्मा एवं अपने अनुभवों के प्रति सच्चा होना पड़ता है। कहानी कहानी है, मानकर चलना धोका है। कहानी अगर सत्य का 'चेहरा' लगाकर सामने नहीं आती तो कहानीकार असफल रहा। वह जो लिखे, उसकी पहुँच और पकड़ जानी-पहचानी चीज़ों पर होनी चाहिए। जो नहीं जानता, वह छोड़ दे। जीवन के सभी क्षेत्रों में जान-पहचान के लिए लेखक को व्यक्तिगत संपर्क में आने की आवश्यकता नहीं। मनुष्य सभी कोनों को नहीं छू सकता। इस तरह का ज्ञान पुस्तकों अथवा अनुभवी मनुष्यों की बातचीत से सीखा जाता है। प्रतिभाशाली लेखक पढ़ी-सुनी सभी बातों को अपने अनुभव और कल्पना से मिलाकर उसे सत्य का आभास देने में सफल होता है। ऐतिहासिक कहानीकार को ऐसा ही करना होता है। आवश्यक है कि कथाकार जीवन का बहिर्मुखी और बहुमुखी अध्ययन करे। तब वह सुनी-पढ़ी बातों में अनुभव का स्पर्श करने लगता है।

कहानीकार का व्यक्तित्व

कथा, वार्तालाप, घटना और समालोचना के अतिरिक्त कहानी में कुछ और भी रहता है। पढ़ते समय पाठक अनुभव करता हो कि लिखे हुए शब्दों के पीछे एक व्यक्तित्व छिपा है। यह लेखक का व्यक्तित्व है अथवा वह व्यक्तित्व है, जिसमें लेखक पाठक के सामने आना चाहता है। यह संभव है, लेखक ने अपने जिस व्यक्तित्व का साधारण करण कथा में किया है, वह उसके मित्रों द्वारा जाने हुए उसके रूप से मिला हो। यह भी संभव है कि भिन्न-भिन्न कथाओं में वह अपने व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न भाग प्रकाश में लावे। इस प्रकार का व्यक्तित्व कथा के कहने और पात्रों और घटनाओं को स्पर्श करने के ढंग में साफ़ झलक जाता है।

प्राचीन काल के कहानीकारों को आज के कहानीकारों से एक सुविधा प्राप्त थी। वे कहानियाँ लिखते नहीं थे, सुनाते थे। आवाज़ को बदलकर और हाथ की क्रियाओं से वे उसे कहीं अधिक सरस कर देते थे। वे अपने विश्वास को कहीं अधिक



शक्ति से प्रकट कर सकते थे। आज का कहानीकार शैली से वही करना चाहता है। उसको केवल शब्दों के चुनाव और वाक्यों के बनाव का सहारा रहता है। इन्हीं का सहारा लेकर लेखक पाठकों की कल्पना में अपने व्यक्तित्व का प्रकाश डाल सकता है, पाठकों से एक अद्भुत संबंध स्थापित कर सकता है।

इसमें भी उपन्यासकार को कहानीकार से अधिक सफलता मिलने की आशा है। कहानी के आकार के कारण लेखक के व्यक्तित्व को खुलने की जगह बहुत कम रहती है। कदाचित् कई कहानियों में कहानीकार का व्यक्तित्व खुले। किसी भी एक कहानी को पढ़ते समय पाठक का ध्यान उस व्यक्तित्व की ओर रहता है, जिसे कहानीकार ने अपनी अन्य कहानियों में स्पष्ट किया है। कहानी के ग्रहण करने में यह बात प्रभाव डालती है।

"कला कला के लिए है"

'कला कला के लिए है', 'कलाकार कला के स्पष्टीकरण के लिए लिखता है, अपने आनन्द के लिए लिखता है, जनता के लिए नहीं'—अच्छा होने पर भी यह ठीक नहीं हो सकता। लेखक सदा ही जनता का संबोधन करता है, जनता का उसके मन में स्पष्ट हो अथवा धुँधला, वह उसी को ही लेकर ज़ोर देता है।

कलाकार कल्पना के पात्रों को कल्पित घटनाओं में रखकर ही बस नहीं करता; घटनाओं, पात्रों अथवा जीवन के रूपों का आविष्कार करने में उसे जो उत्तेजना मिली है, उसमें जो रस की अनुभूति हुई है, उसे वह पाठकों तक पहुँचाना चाहता है, उनमें जगाना चाहता है।

व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का ढंग स्वयम् व्यक्ति के भीतर है। विशेष परिस्थिति में वह क्या करता है और उसे क्या करना है, यही दो बातें हैं। ये रचना से संबंध रखती हैं। अन्य व्यक्तियों के लिए वे अलग अस्तित्व रखती हैं, स्वयम् लेखक के लिए उनका जुदा अस्तित्व नहीं; कोई भी अस्तित्व नहीं। उसे जो करना है वह जानता है, और वह उसे अपनी समस्त शक्ति लगाकर सबसे अच्छे ढंग से करने का प्रयत्न करता है। उसके करने के कई ढंग हो सकते हैं, जो उसकी किसी कमी के कारण स्वाभाविक हो गये हैं। उन्हें वह बदल नहीं सकता और वह जान-बूझकर ही कुछ बाहरी आवरण ग्रहण कर सकता है, जो उसके लिए स्वाभाविक नहीं है। इन तुच्छ ढंगों का लेखक की रचना-कला से कुछ संबंध नहीं है। इन्हें हम Mannerism कह सकते हैं।

अतएव लिखने के अच्छे-बुरे ढंग का कोई अर्थ नहीं रह जाता। लिखना, विचारों और भावों को प्रकाश में लाने का साधनमात्र है। प्रत्येक लेखक का कर्तव्य है कि इस साधन को अधिक से अधिक उपयुक्त और स्पष्ट बनावे। इससे अधिक तो वह जा भी नहीं सकता। परन्तु लिखना स्पष्टीकरण मात्र ही नहीं है। वह 'दूसरे तक ले जाने' का नाम है। लेखक को बता ही देना नहीं है उसे जैसा लग रहा है, दूसरे के मन को भी वह वैसा ही लगे, ऐसा करना है। उसे दूसरे के व्यक्तित्व पर अपना सिक्का जमाना है। इसके लिए Rhythm (लय), Balance और Variety of Cadences की आवश्यकता है। संवादी स्वर पूरा-पूरा तोले, अतएव उसके विवादी स्वरों को दबाना होगा; कथा एकरस न हो जाय, उसे बार-बार नये कोने दबाना होंगे।

कहानीकार सब कुछ कह नहीं सकता। उसे अपने अनुभवों में से सबसे उपयुक्त चुनने होंगे, शेष को छोड़ देना होगा। कभी-कभी लेखक के एक विशेष ढंग को ही उसका ढंग मान लेते हैं। लेखक के लिए तो विषय के अनुसार ढंग बदलता ही रहेगा। फिर भी एक लेखक को सीधे-सादे ढंग में लिखने में सहूलियत हो सकती है, दूसरे को रँगे ढंग में। परन्तु लेखक जितने विभिन्न ढंग अपने विभिन्न विषयों की



उपयोगिता से मेल देने के लिए देगा, उतना ही अच्छा है।

प्रश्न

कहानी के विषय में दो ही प्रश्न हो सकते हैं—(१) क्या कहानी आनन्दोत्पादक है, ताज़ी है और क्या वह कहने योग्य है ? और (२) क्या वह सुन्दर और कलापूर्ण ढंग पर कही गई है ?

पहली बात समझ में आ जायगी, दूसरी बात टेकनीक से सम्बन्ध रखती है। क्या कहानी तर्क पर पूरी उतरती है, शिथिल तो नहीं हो जाती ? उसके अंगों में साम्य और सम्बन्ध तो है ? घटनाओं का विकास स्वाभाविक है। और अन्त चाहे हमें सूझे या नहीं—स्वाभाविक है और ठीक उतरता है ?

पहले एक बात कह देनी होगी। कहानी-प्रतिभा का कहानीकार की मानसिक योग्यता से कोई बड़ा संबंध नहीं। कभी-कभी उसकी यह योग्यता कहानी के प्रवाह में बाधक हो सकती है। स्वाभाविक ढंग से कहानी कहने की प्रतिभा मानसिक प्रतिभा से भिन्न और ही वस्तु है। होटलों, घरों और पार्कों में ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जो कथा कह सकेंगे। उनकी योग्यता के विषय में आप संदेह कर सकते हैं।

एक ही विषय को भिन्न-भिन्न प्रभावों से दिखाने के लिए एक ही अथवा भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न रूपों से चलेंगे। इससे कहानी कहने के लिए तीन ढंग हो जाते हैं।

(1) Direct or epic
(2) Antobiographical
(3) Documentary

पहले ढंग में कहानीकार सर्वद्रष्टा होता है। उसका ढंग इतिहासकार का ढंग है। इससे कहानीकार को विशाल क्षेत्र मिलता है और एक बड़ी हद तक स्वतंत्रता। दूसरे में कहानीकार प्रथम पुरुष में लिखता है। वह किसी भी एक पात्र, प्रधान पात्र-पात्री, अथवा कई पात्रों में अपने व्यक्तित्व को ढाल देता है। इस प्रकार वह पाठक के बहुत ही नज़दीक आ जाता है। तीसरे प्रकार में कहानी पत्रों, डायरी अथवा उद्धरणों द्वारा कही जाती है। किसी हद तक यह अस्वाभाविक भी हो सकती है।

चरित्र-चित्रण

हम इस तरह प्रारम्भ करेंगे। क्या कहानी-कार की पात्र-पात्रियाँ हमारी कल्पना के सम्मुख विशेष स्त्री-पुरुषों के सजीव आकार रखकर ठहरती हैं ! महान् कहानी-कलाकार इस परीक्षा में पूरे उतरते हैं। वे हमें जीवन की ठोस ज़मीन पर पहुँचा देते हैं। हम उनके पात्रों के साथ सहानुभूति प्रकट करते हैं, प्रेम करते हैं, जैसे वे हमारी हाड़-मांस की दुनिया के जीव रहे हों। कहानीकार की सफलता है, जब पुस्तक पढ़कर रख देने के बाद भी पात्रों का स्पर्श हमें साफ़ जान पड़े।

कहानी में पात्रों की सृष्टि करना कहानीकार का सबसे पहला काम है। वह कहानी के व्यक्तियों को अगर स्थूल और मांसल नहीं बना लेता, हममें उनके प्रति विश्वास पैदा नहीं कर देता, तो हम उन्हें अपना पूरा ध्यान और हृदय नहीं दे सकते। इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वे पात्र जीवित अवस्था में भी हमें उतने ही प्रिय होते ! कहानी में अवश्य वे हमें अखरते नहीं।

कहानी और जीवन में यह अन्तर होता है कि कहानी में पात्रों के चरित्र खुलकर हमारे सामने आते हैं। वास्तविक जीवन में मनुष्य अपनी अन्यतम इच्छाओं, आकांक्षाओं और आशाओं को प्रकट नहीं करते—जो प्रकट भी करते हैं, वह कला-पूर्ण ढंग से नहीं। असल में, पात्र के संबंध में लेखक जो सूचना देता है, वह हमें इतना आकर्षित नहीं देती, जितनी जो सूचना-पात्र स्वयम् देता है। हम पात्र के कार्यों को देखते हैं, उसकी बातचीत सुनते हैं, उसके ऊपरी मतलबों में क्या रहस्य छिपा रहता है, इसकी खोज करते हैं। उसकी सीमाएँ, उसके भय, जो घटनाओं से स्पष्ट होते हैं, देखते हैं।



इससे हमें मानसिक उत्तेजना मिलती है और यही आनन्द का कारण है।

पात्रों के चित्रित करने में कहानीकार की विशेषता यह है कि उसके पात्र जीवन की प्रतिक्रियाओं के जवाब हो सकें, जिन प्रतिक्रियाओं से पाठक धारणा बना सकें अथवा उसे जान पड़े, वह धारणा बना रहा है—उस धारणा का चाहे कोई भी रूप हो। अथवा इसके प्रतिकूल वह स्वयम् अपनी चेतना को धारणा बनाने से रोके। दोनों दशाओं में पाठक परिस्थिति पर अपने को स्वामी समझकर ऊपर उठ जाता है। इन प्रतिक्रियाओं को जोड़कर पाठक, कहानी के अंत में, पात्र का आकार खड़ा करता है। कहानी के विभिन्न भागों में विभिन्न होते हुए भी पात्र को दृढ़ रहना चाहिए। पात्र को कितनी ही बेमेल बातों का उसकी आदतों से मेल बैठाने में पाठक को आनन्द मिलता है।

समय के साथ पाठकों की रुचि में भी परिवर्तन हो चला है। हम जिसे चरित्र-चित्रण कहते हैं, हमारी पिछली पीढ़ी उसमें आनन्द नहीं लेती थी।

कहानी जब समाप्त हो जाती है तो हम पात्र का स्पष्ट आकार अपने मन में लेकर उठते हैं। कहानी के विभिन्न भागों से उसकी रूप-रेखा ठीक करने में और उसे साकार बनाने में हमें हर्ष होता है।

चरित्र-चित्रण के दो ढंग हैं—

(1) Direct or Analytical

(2) Indirect or Dramatic

पहले में कहानीकार बाहर से चित्रण करता है, पात्रों की वासनाओं, विचारों, भावों का विश्लेषण करता है, उनकी व्याख्या करता है और उन पर रिमार्क देता है। दूसरे ढंग में, वह पदार्पण नहीं करता, दूर खड़ा रहता है। उसके पात्र बातचीत और काम से अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हैं, दूसरे पात्र उन पर विवेचना करते हैं, और बस। अधिकतर दोनों ढंग एक ही कहानी में आ सकते हैं। वैसे तो कहानी में वर्णन और बातचीत दोनों होते हैं और पात्र स्वतंत्र और नाटकीय दोनों ढंगों पर स्वयम् को खोलते हैं।

विभिन्न कलाकार भिन्न-भिन्न ढंगों का भिन्न-भिन्न अनुपात में मेल करते हैं। जिन कहानियों में जीवन की विशदता, विषमता और उलझनें दिखानी होती हैं, उनमें स्वतंत्र ढंग से काम लिया जाता है। परन्तु वर्तमान समालोचक विश्लेषण के ढंग को उत्तमतर समझते हैं। पात्र को अपनी आत्मा खोलने दी जाय। जहाँ भी कहानीकार प्रवेश करता है, उसमें नाटकीय प्रवृत्ति की कमी दीखती है।

बहुधा कहानी के दो भाग किये जाते हैं—पात्र-प्रधान और घटना-प्रधान। वे कहानियाँ, जिनमें प्रधानतः पात्र की ओर ध्यान जाता है, घटनाएँ पात्र के अधीन रहती हैं; वे कहानियाँ जिनमें प्लाट प्रधान होता है, पात्र कहानी चलाने भर के लिए होते हैं और घटनाओं में चरित्र-चित्रण की महत्ता अधिक होती है। घटना-प्रधान कहानी से पात्र-प्रधान कहानियाँ श्रेष्ठ होती हैं। कारण, घटना से जो आनन्द मिलता है, वह क्षणिक और व्यर्थ होता है। चरित्र-चित्रण का आनन्द स्थायी और गहरा। यह सच है कि चरित्र-चित्रण और घटना, दोनों में से एक को लेकर चलने में दूसरी वस्तु को ठेस पहुँचती है। व्यक्तित्व के स्पष्टीकरण में कलापूर्ण प्लाट बनना कठिन है। वैसे ही घटना लेकर चलने में पात्र घटना के सहायकमात्र रह जाते हैं। हम देखते हैं कि सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ चरित्र-चित्रण की कहानियाँ हैं, घटनाओं की नहीं। श्रेष्ठ कहानियों में यह देखने की बात है कि कथा-भाग और चरित्र-भाग के ताने-बाने कितने सटे-बुने हैं।

बातचीत

कहानी में बातचीत का बहुत आवश्यक स्थान है। कलाकार के हाथ में वह कहानी का सबसे अधिक आनन्दवर्धक भाग हो सकता है। बातचीत के द्वारा पात्र पाठकों के बहुत ही निकट आ जाते हैं और कहानी नाटक के इष्ट और विशाल समतल पर पहुँचती है। अच्छे वार्तालाप, वर्णन में जान



डाल देते हैं। बातचीत को अच्छे ढंग से निबाह ले जाने में लेखक की प्रतिभा का दर्शन होता है।

कथा

बातचीत से कथानक के विकास में सहायता मिल सकती है। बातचीत के नीचे घटनाओं का प्रवाह रह सकता है, परन्तु उसका यथार्थ संबन्ध पात्रों के साथ है। भावों, विचारों धारणाओं और वासना के प्रदर्शन के लिए वह अमूल्य है। कहीं घटनाओं का पात्रों पर प्रभाव और एक पात्र का दूसरे पात्र पर Reaction बातचीत द्वारा स्पष्ट दिखाया जा सकता है। नाटकीय ढंग से हाथ में लेने से उसमें विश्लेषण और विवेचन का भी स्थान है और वह स्वाभाविक और प्रभावशाली ढंग से हो सकता है। जहाँ कहीं विवेचन और विश्लेषण अलग से किया गया है, वहाँ वार्तालाप उसको स्पष्ट करने में सहायक होगा।

वार्तालाप में इन बातों का होना आवश्यक है। वह कहानी का आवश्यक और जीवित अंग हो, वह कहानी अथवा पात्र के विकास में Directly or indirectly सहायता दे। व्यर्थ की बातचीत कहानी के पाठक की तन्मयता को आघात पहुँचाती है। बातचीत घटना से संबंधित ही न हो, वह स्वाभाविक, सामयिक और नाटकीय हो, पात्रों के व्यक्तित्व पर उसका आधार हो; वह सरल, स्पष्ट और मनोमोहक हो। कहानीकार के लिए बातचीत एक कठिन समस्या उत्पन्न कर देती है। साधारण पुरुषों की बातचीत आशातीत सुस्त, लम्बी और अनाटकीय होती है। कहानीकार यदि उसे प्रयोग में लावे तो वह मनोरंजक न बन सकेगा। बातचीत यदि मनोरंजक बनावे तो संभव है, लेखक किताबी और अस्वाभाविक काव्य का प्रयोग करे। अतएव उसे स्त्री-पुरुषों की बातचीत को जैसा-का-तैसा दिखलाना श्रेयस्कर नहीं है, परन्तु उसके आधार पर रूढ़िबद्ध वार्तालाप देना है, जो नाटकीय शक्ति और प्रवाह में पूरा उतरे और पाठकों को स्वाभाविक भी जँचे।

चरित्र-चित्रण करने के लिए वार्तालाप सबसे अधिक उपयुक्त है। बातचीत में पात्र अपनी आत्मा खोलकर रख देते हैं। इस प्रकार लेखक अपने पात्रों को संपूर्णतः पाठक के मन पर छोड़ देता है, जैसा चाहे वह आकार दे। यह नाट्यकार का ढंग है। परन्तु नाट्यकार का माध्यम केवल वार्तालाप ही होता है। घटना वार्तालाप के साथ अवश्य रहती है, पर स्वयम् अलग उसका अस्तित्व कम रहता है। नाट्यकार अपने व्यक्तित्व को सामने नहीं ला सकता और न अपनी सम्मति दे सकता है। उपन्यास और कहानीकार इतने बँधे नहीं रहते। परन्तु वे वार्तालाप को इस हद तक अपना सकते हैं। घटनाओं और पात्रों के विचार-मात्र से कहानी नहीं बनती। कहानी में पात्रों के विचारों और उनके कामों का संघर्ष रहता है।

कुछ अर्वाचीन कहानीकार वार्तालाप का प्रयोग नहीं करते और अपने व्यक्तित्व को भी सामने नहीं लाते। वे घटनाओं और पात्र के कामों को ही साधक बनाते हैं। जेम्स ज्वॉइस यही करता है। वह पात्र के कार्य के साथ-साथ उसकी चेतना के उन धुँधले क्षेत्रों पर प्रकाश डालता है, जो उसके विचारों को घेरे रहते हैं—करेक्टर (पात्र) क्या सोच रहा है और क्या कर रहा है, यही नहीं; किन्तु उसके अनुकूल और प्रतिकूल विचार और प्रेरणाएँ भी पाठक के सामने आ जाती हैं।

कहानी के पात्र

प्रत्येक कहानी का संबंध स्त्री-पुरुषों से उनके पारस्परिक सम्बन्ध, विचार और भावना, दुःख-सुख, संघर्ष, सफलता और असफलता से होता है। और चूँकि कहानीकार का संबंध जीवन से है इसलिए वह स्पष्ट, अव्यक्त अथवा सांकेतिक ढंग पर जीवन तक अपनी पहुँच पाठकों के लिए प्राप्य बनाएगा। प्रत्येक कहानी के नीचे, विश्लेषण करने



का जीवन की एक विवेचना मिलेगी। प्रत्येक श्रेष्ठ कहानी में यह आवश्यक है। इसका यह अर्थ नहीं कि कहानीकार दार्शनिक ध्येय लेकर चलता हो। कहानीकार की जीवन के विषय में जो धारणा होगी, वही कथा और पात्रों के चुनाव का आधार होगी। जीवन की नीति और दर्शन दो प्रकार से दिये जा सकते हैं—कहानीकार जीवन के चित्रण के द्वारा उसकी विवेचना भी कर देता है। जीवन जो उसे देता है, उसमें से वह कुछ चुन लेता है, कुछ तत्त्वों को वह प्रधानता देता है, पात्रों और भावों को एक प्रकाश में रखता है, और कथा में नैतिक साम्य स्थापित करता है। इस प्रकार वह जीवन के दार्शनिक तत्त्वों का निर्देश करता है। इसके सिवा वह अलग से स्वयम् पात्रों, घटनाओं और समस्याओं पर विवेचना भी कर सकता है।

कहानी के दार्शनिक तत्त्वों की विवेचना करने में हमको दो बातों का ध्यान रखना होगा—सत्य और नैतिकता।

सत्य और नैतिकता

कहानी का 'सत्य' दर्शन और विज्ञान के सत्य से भिन्न है। विज्ञान के सत्य का आधार वस्तुएँ हैं, जो स्वयम् अपेक्षाकृत हैं। अतएव विज्ञान का सत्य अपेक्षित सत्य है और बदलता रहता है। साहित्य का 'सत्य' रसों, भावों, भावनाओं और सिद्धान्तों पर निर्धारित है। मनुष्यों के जीवन के स्रोत इन्हीं धाराओं में बहते हैं। युगों के परिवर्तन में मनुष्य की ये भावनाएँ और आकांक्षाएँ ही अपरिवर्तित रहती हैं। उनका मान-दंड सदैव ताज़ा और जीवनशील बना रहता है। इसी से जिस साहित्य का आधार उन पर है, वही अमर और अक्षुण्ण रह सकेगा। फिर कलाकार का सत्य जीवन का यथार्थ सत्य नहीं होता, वह आदर्श-सत्य होता है, जिसमें वह भूत और वर्तमान के आगे भविष्य को प्रत्यक्ष देखता है।

यथार्थवाद और आदर्शवाद

यह है, तो फिर कलाकार की कल्पना को उड़ान के लिए यथेष्ट स्थान है। यथार्थवाद के समर्थक कहते हैं कि कहानीकार का पहला कर्तव्य जीवन तक सीधे पहुँचना है और जो मिले, उसे फ़ोटोग्राफ़ की तरह उतार देना। इसको पकड़कर कुछ कहानीकारों ने 'घासलेट'—जीवन के निम्नतम, निकृष्ट और गंदे चित्र दिये हैं। सचमुच उनकी तस्वीरें चुने हुए विषयों के अंगों का विस्तृत और सत्य नग्न-चित्रण करती हैं, परन्तु वे Perspective के इतने बाहर हो जाती हैं कि वह जीवन की जगह और कुछ सामने रखती हैं। कभी-कभी कुछ कहानीकारों ने जीवन के तुच्छ और क्षणिक का अनुपात से अधिक प्रयोग किया है। यह न भी हो तो भी हमें यथार्थवाद को समतल में रखकर देखना होगा। यथार्थवाद को स्वीकार करने पर एक ओर दार्शनिक और वैज्ञानिक सत्य और दूसरी ओर सौन्दर्यात्मक सत्य में संघर्ष अवश्यम्भावी है। कला विज्ञान को स्वीकार कर सकती है, परन्तु उसे बहुत कुछ खोना होगा, जो अवाञ्छनीय है।

तब यथार्थवाद और आदर्शवाद में से किसको चुनें? हाँ, ठीक-ठीक समझ लेने पर हम दोनों से काम ले सकते हैं। दोनों ही बीज-भावनाओं से उत्पन्न होते हैं। हम निकट की, जानी-पहचानी चीज़ों के चित्रण से आनन्द प्राप्त कर सकते हैं और दूर की अपरिचित चीज़ों के चित्रण से भी। दोनों के लिए सीमा बाँधनी होगी। यथार्थवाद को आदर्श की उपस्थिति से कलापूर्ण बनाना होगा, रोमांस (आदर्शवाद) को साहित्यिक सत्य की उपस्थिति से अस्पष्ट और अस्वाभाविक होने से बचाना होगा।

कहानी और शिक्षा

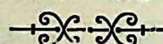
कहानी का कोई नैतिक ध्येय है अथवा नहीं? क्या हम कलाकार से शिक्षा चाहते हैं? देखते हैं, पाठकगण कहानी की नैतिक विवेचना को कुनैन की कड़वी गोली की तरह निगलते



तो हैं, परन्तु उनकी चेष्टा सुन्दर नहीं रहती। उपदेश और कथा एक साथ चल भी नहीं सकते, अन्त में असफलता पल्ले पड़ती है। कथाकार का मुख्य ध्येय जीवन के स्थूल तत्त्व हैं। नैतिक सिद्धान्तों को लाये विना ही वह उन्हें स्पष्ट कर सकता है। यह सच है कि महान् कलाकारों की कृतियों में नैतिक सिद्धान्त मिलते हैं; और कभी-कभी वे अमूल्य और वाञ्छनीय भी होते हैं। तो कला क आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए नैतिकता को स्थान देना होगा, नैतिक सिद्धान्त और उपदेश कहानी में बुनना होगा, दार्शनिक सत्य को जीवन और घटनाओं में प्रतिफलित करना होगा। कहानीकार का क्षण भर के लिए भी उपदेशक का स्थान लेना कला को पतित करना है। संपूर्ण कहानी भले ही अप्रत्यक्ष रूप से नैतिक उपदेश दे अथवा किसी नैतिक सिद्धान्त का हल हो। यह सत्य है कि कला मानसिक और नैतिक भोजन नहीं देती तो स्थायी नहीं है, परन्तु कला और नीति के क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। नीति विश्लेषण करती है, उपदेश देती है; कला आकार देती है, आनन्द देती है। फिर भी सभी कलाएँ विचारों और भावनाओं को आकार देती हैं और इसी से कला की प्रत्येक विशिष्ट कृति में विचारों और भावनाओं का संश्लेषण रहता है, परन्तु कला की आत्मा की आज्ञा पर। बात यों है कि मानव-समाज अपने विकास में अपने नैतिक सिद्धान्तों और नैतिक सौन्दर्य की भावनाओं को अक्षुण्ण बनाये रहा है और उसका क्षेत्र बढ़ाता गया है। जीवन का कोई चित्र देने में हम समय के नैतिक सिद्धान्तों को अनजाने ही छू लेते हैं। इसी कारण नैतिकता की पूर्णतः अवहेलना नहीं हो सकती। इस विवेचना में हमने नैतिकता को विस्तृत अर्थों में लिया है।

शेष

कला का उद्गम जीवन है। कला जीवन से पोषित होती है। जीवन कला का क्षेत्र है। जीवन की ज़िम्मेदारियों से वह विमुख कैसे हो सकती है? कलाकार भी ज़िम्मेदार व्यक्ति है, जीवन के प्रति उसकी भी ज़िम्मेदारियाँ हैं। जीवन को वह वाणी देता है। जीवन में जगह-जगह पर नैतिक तत्त्व खुलते-खेलते हैं। कलाकार की विशेपता है कि वह उन नैतिक तत्त्वों को कला का स्पर्श दे, उन पर पैनी दृष्टि डाले। यहाँ उसकी सफलता उसे महत्त्व देगी।



२—संसार के कहानी-साहित्य का इतिहास

प्रारम्भ

कहानी कहना प्रारंभिक काल से ही मनुष्य के जीवन का अत्यावश्यक अंग रहा है। इसके द्वारा उच्चतम आत्मिक ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है। कहानी कहना बुद्ध के समय से मनीषियों और महात्माओं और सुधारकों का अस्त्र रहा है। शेक्सपियर ने इन्हीं जन-श्रुत गाथाओं के आधार पर अपने अमर नाटक लिखे और यद्यपि समय-समय पर विस्तार, रूपरेखा और आकार-प्रकार में वह बदलती रही है, पर कहानियों की कला आज तक चली आती है और स्वभावतः मनुष्यजाति के अन्त तक चलती रहेगी। वह जीवन की भाँति ही सदा बहार पर रहती है। कहानियों का उद्गम ढूँढने के लिए हमें अप्राचीन, कल्पनातीत काल तक जाना पड़ेगा, जब कि अर्ध-मानव आदिम ने पहली बार इशारों से और बड़बड़ाकर बात की होगी।

इतनी दूर तक हम जा नहीं सकते, परन्तु अब भी दक्षिणी-अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के आदिम निवासियों की गाथाओं से उस काल की कहानियों की रूप-रेखा जान सकते हैं।

इन बर्बर और जंगली जातियों का विश्वास है कि इन कहानियों से बादल बुलाये जा सकते हैं, आकाश की चिड़ियाँ और जंगल के पशु वश में किये जा सकते हैं और दूसरे व्यक्तियों पर जादू भी प्रभाव पड़ सकता है। बर्फ़ से जकड़े देशों से लेकर कांगो के गर्म जंगलों तक कहानी की इस जादू-शक्ति पर विश्वास है। इस जड़ विश्वास के साथ हास्यमय कल्पना और पड़ोसियों के विषय में आनन्द भी है। वे अपनी भावनाओं को पशु-पक्षियों के वार्तालाप के रूप में आकार देकर संतुष्ट होते हैं। अमेरिका के हबशियों की कहानियाँ ऐसी ही कहानियाँ हैं। जो परी-कथाएँ हमें उपलब्ध होती हैं, उनमें से बहुत-सी सुदूर पत्थर-युग से चली आई हैं। वे बच्चों को बहुत प्रिय भी होती हैं; क्योंकि बच्चों और आदिम निवासियों की कल्पना में कोई अन्तर नहीं रहता। वे आश्चर्य की दुनिया में रहते हैं, जहाँ उच्चतम आकांक्षाएँ और कल्पनाएँ सत्य उतरती हैं।

प्राचीनतम कथा जो हमें मिलती है, वह खाफ़री (King Khafri) की कहानियाँ हैं। लगभग ६८०० वर्ष हुए, खाफ़री ने पुरानी कथाओं को एकत्रित किया। ये कथाएँ अधिकतः जादूगरों से संबंध रखती थीं। संभवतः उसका उद्देश्य राजनीतिक था और वह मिसर के धर्म की धर्म-रीतियों और रूढ़ि-मंत्रों को जानना चाहता था। हस्तगत कहानी के पात्र अविश्वासिनी पत्नी और हत्यारा पति हैं। परन्तु उससे इस समय की मिसरी सभ्यता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

दूसरी मिसरी कहानी—The Tale of Ahuri है, जो मूस-कला से संबंध रखती है। इसका लेखक राजपुत्र सेतना है, जो तंत्र-विद्या की खोज में निकल पड़ता है। उसका उद्देश्य एक पुस्तक है, जो उसे एक क़ब्र में मिलती है। परन्तु मृत राजपुत्री आहूरी उसे सावधान करती है।

इसी समय भारतवर्ष में धार्मिक कहानियों का नया ढंग चला। महात्मा बुद्ध ने अपने विचारों को कहानी के सरल रूप में जनता तक पहुँचाया।

ये बुद्ध की जातक-कथाएँ हैं। इन जातक-कथाओं में से बहुत-सी लिपिबद्ध हो चुकी हैं और 'बन्दर और हीरा' और 'राजपुत्री साम्बूल की कथा' बहुत ही सुन्दर हैं। उनके शिष्यों ने भी प्रचार का यह ढंग जारी रक्खा और भारत भर में प्रचलित समस्त कथाओं को अपना लिया।

ये कहानियाँ भारत से फ़ारिस और सीरिया से ग्रीस तक पहुँचीं। पंद्रहवीं शताब्दी में Plaundes नाम के ग्रीक-धर्म-पंडित (Monk) ने इन्हें अनुवादित किया और ईसप के नाम से संबंधित किया। बुद्ध की ये जातक-कथाएँ उनके अनेक जन्मों के अनुभवों का संग्रह-मात्र थीं। वे प्राचीन हिन्दू-समाज का उत्कृष्ट चित्रण थीं।

३२० B. C. के समीप जब जातक-कथाएँ लिपिबद्ध हो रही थीं, विरोधी ब्राह्मणों ने कहानियों के प्रचार-मूल्य को समझ लिया था। बहुत-सी सुन्दर गाथाओं में से कुछ 'पंचतंत्र' के नाम से परिवर्तित कर ली गईं। इन कहानियों में मनुष्य-स्वभाव का बहुत सुन्दर विश्लेषण है।

कालांतर में

ब्राह्मणों ने हितोपदेश की रचना की। इनमें एक कहानी है "राजपुत्र और सौदागर की पत्नी" ये और अन्य बहुत-सी कहानियाँ मनुष्यों और विशेषतः स्त्रियों की नीच-प्रवृत्ति का चित्रण करती हैं। इन कहानियों ने सदियों तक योरप और एशिया की धारणा पर कब्ज़ा रक्खा।

ग्रीक-कहानियों में सबसे प्रथम हस्तगत कहानियाँ Herodotus (490 B. C.) की हैं। वह स्वतंत्र प्रजा-सत्ता का प्रचारक था। इस संबंध में उसकी एक कहानी—Polycrates and His Ring है। परन्तु कहानी-कला में उसका मास्टर-पीस (श्रेष्ठतम कृति) The Treasure of King Rhampsinitus है। अपने स्वर्ण-काल में ग्रीक के लेखकों और विचारकों ने नाटक, इतिहास और दर्शन-ग्रन्थ लिखे थे। ग्रीक के रजतकाल में सिसली के निवासी Theocritus (300 B. C.) की कहानी पहली यथार्थवादी कहानी कही जा सकती है। वह है "The Ladies of Sycruse"। प्लाट बहुत कम है, परंतु नगर का बहुत सुन्दर चित्रण किया गया है। चरित्र-चित्रण और भाषा में ओज और सामंजस्य है। यह संसार की श्रेष्ठतम कला-कृतियों में है। Petronnis और Lucian बाद के कहानीकार हुए हैं। इसी समय Apulenis भी लिख रहा था। इसकी दो प्रसिद्ध कहानियाँ हैं—The Golden Ass और Cupid and Psyche। उसे रहस्यमय से प्रेम था। प्राचीन Cupid और Psyche की कथा को लेकर उसने नवीन श्रेष्ठ कला की चीज़ दी। उसकी कहानी में Psyche मानव-आत्मा है और Cupid स्वर्गीय प्रेम की आत्मा।

ईसाई कथाकार

ग्रीक कहानीकारों के पश्चात् हम एकदम ईसाई कथाकारों पर आते हैं। इनमें पहला Bishop Heliodoms है। वह चौथी शताब्दी में जीवित था। Cnemon नाम की उसकी कहानी उसकी कृतियों में सर्वोत्तम है। इस समय तक Old Testament लिखा जा चुका था। इसमें कविता, नाटक, वृत्तान्त और कहानियाँ गूँथी गई थीं, परन्तु कहानी-कला की श्रेष्ठ कृतियाँ New Testament में लिखी गई हैं। इसकी कई कहानियाँ आत्मा को शान्ति, आनन्द और हर्ष प्रदान करती हैं और वे कला-जन्य आनन्द भी देती हैं।

प्राचीन चीनी कथा कहने में इतने सफल कभी नहीं हुए। चीन में नाटक और उपन्यास कुछ ही समय से लिखे जाने लगे हैं। चीन की सबसे सुन्दर कहानी रूपक में है और उसे Tao Chien (A. D.) ने लिखा था। इस कहानी का नाम है Peach Blossom Fountain। Tao Chien की युवक-प्रकृति इसमें साफ़ झलकती है। Po Chü-i (772 A. D.) की लिखी दूसरी सुन्दर कहानी 'The Lute Girl's Lament' है। इस कहानी में एक लड़की की दुःखान्त कथा है, जिससे लेखक को निर्वासन में मिला था।



इंगलैंड में नार्मन राजाओं से लेकर ट्यूडर-काल तक प्राचीन संसार की कहानियाँ बराबर वातावरण में फैलती रहीं। इन कहानियों में यथास्थान परिवर्तन और परिवर्धन भी हुए। ७वीं सदी में आयरलैंड के चारणों ने The Fate of Deirdre की सृष्टि की। क्रामवेल दक्षिणी वेल्स, और Strath Clyde के चारणों ने छठी शताब्दी के लगभग King Arthur and His Knights की कहानियाँ गाईं। बाद में ये फ्रांस और इटली में भी प्रचलित हो गईं।

ये वीरगाथाएँ जिस काल में प्रचलित हो रही थीं, धर्मगुरुओं ने कहानी को धर्म के प्रचार में प्रयुक्त करना आरम्भ किया। पूर्व की कहानियों में परिवर्तन करके और उन्हें ईसाई-ढाँचा देकर स्टेज पर Miracles Plays के रूप में सामने लाया गया। ऐसी बहुत-सी कहानी जन-श्रुत हुईं।

एक सौ ऐसी कहानियों का संग्रह Gleesta Romanorum के नाम से प्रकाशित किया गया। इन कहानियों में से कई को शेक्सपियर ने अपने नाटकों का विषय बनाया है।

मध्यकाल की मुसलिम गाथाओं का संग्रह (अलिफ़-लैला) है। रोमांस और साहित्य में यह अद्वितीय है। कई कहानियाँ मौलिक नहीं हैं, परन्तु दूसरे देशों से प्रधानतः भारत से ली गई हैं। 'मछुआ और जिन' और 'कुबड़े की कथा' निःसन्देह भारतीय उपज हैं। फ़ारिस की इन कथाओं की भाषा बेजोड़ है। वह कवित्व और लालित्यपूर्ण है।

वर्तमान कहानी का प्रारम्भ

योरप में कहानी का ठीक-ठीक आरम्भ मध्य-काल में Glovamni Boccaccio ने किया। इसकी पुस्तक का नाम Decameron है। कितने ही योरोपियन लेखकों को इन कहानियों से उत्तेजना मिली है। बकेशियो की दृष्टि पैनी थी और वह सूझ जाती थी। वह भिन्न-भिन्न पोज़ बदल सकता था और उसकी कहानियाँ सभी रसों में मिलती हैं। वह योरप की कहानियों का पिता कहा जा सकता है।

मिसर

मिसर की कहानियों का विकास देखने के लिए पेपरी (Papyri) और अन्य स्थानों के पत्थरों पर लिखी गाथाओं का अध्ययन आवश्यक है। मिसर की कहानियों में 'रूप-रेखा' (Form) का विकास बहुत कम रहा है। बाद की कहानियाँ पिछली कहानियों से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं हैं। पेपीरस (Papyrus) की कहानियाँ ईसा के १३०० वर्ष पहले लिखी गई थीं। कुछ बहुत भीर और जीवन-चरित्र-जैसी हैं, अन्य में तीक्ष्ण कल्पना है। कौटुम्बिक और सामाजिक दशाओं का वे ठीक-ठीक चित्रण करती हैं। कभी-कभी ये कहानियाँ विचित्र और असल-सी भी जान पड़ती हैं, परन्तु अन्य प्राचीन मनुष्यों की भाँति, मिसरी भी अन्धविश्वासी थे।

मिसरी-गाथाएँ संसार की प्राचीनतम कहानियाँ हैं। उनकी मौलिकता मार्के की चीज़ है। वे कहानीकार की कला का 'क, ख, ग' हमारे सामने रख देती हैं।

सिकन्दर ने जब मिसर को जीता तो बहुत-सा प्राचीन साहित्य लुप्त हो गया था।

ग्रीस

कहानी न हो, ऐसा कोई देश नहीं है। ग्रीक सभ्यता के प्रारम्भिक काल में 'इलियड' और 'ओडेसी' की गाथाएँ लिखी गईं। किसी एक मनुष्य ने इन्हें नहीं लिखा। संग्रहकर्ता का नाम ग्रन्थकार के रूप में अब तक चला आता है। ये कथाएँ विशेषकर गीतबद्ध थीं और हज़ार-डेढ़ हज़ार वर्ष पहले गाई जाती थीं।

बाद को ग्रीक-कवि हेसियड (Hesoid) ने कहानियों की सृष्टि की और इन्हें हेरोडोटस (Herodotus) ने अपने इतिहास में सजाकर जानदार बना दिया। उसमें ग्रीक को पहला कलाकार मिला था। उसकी कहानियाँ आज भी मनोरंजन करती हैं। तब तक भारत में पंच-तंत्र की पशु-



पक्षियों की कहानियाँ लिखी जा चुकी थीं। कदाचित इन्हीं कहानियों ने ग्रीक-कथाकारों को मुग्ध कर लिया। ग्रीक में इन कहानियों को स्थानीय रंग देकर जो कहानियाँ लिखी गईं, वे Aesop नाम के काल्पनिक व्यक्ति से संबंधित कर दी गईं। उनमें कुछ कहानियाँ कला की उत्कृष्ट सीमा तक पहुँच जाती हैं। ग्रीक-साहित्य के उत्थान के समय के बाद ग्रीस में गद्य-गाथा का प्रारम्भ हुआ।

ग्रीस से कहानियों की कला रोम गई। वहाँ बहुत दिनों तक उसका विकास होता रहा। कालान्तर में रोम की कहानी-कला लुप्त हो गई और बाद में एक हज़ार वर्ष के बाद चमकी।

भारत

हिन्दुओं के प्राचीन महाकाव्यों—रामायण और महाभारत—में क्षेपक के अंतर्गत कितनी ही कथाएँ हैं। परन्तु बाद के साहित्य में कहानियों के बड़े-बड़े संग्रह स्वतंत्र रूप से देखने में आते हैं। इनमें सबसे प्राचीन म० बुद्ध की जातक-कथाएँ हैं। ईसा के पहले की चौदहवीं शताब्दी में भी इनका अस्तित्व था। पंच-तंत्र की कहानियाँ कदाचित् जातक-कथाओं की समकालीन हैं। कई शताब्दियों पश्चात् पंच-तंत्र के आधार पर हितोपदेश की कहानियाँ लिखी गईं। इनमें से बहुत-सी कहानियाँ Didactic हैं। कहानियों का आविष्कार भारत में हुआ अथवा ग्रीक में, यह खोज का विषय है। पश्चिम की कई कहानियाँ जातक और पंच-तंत्र के आधार पर लिखी जान पड़ती हैं।

बाद में १०७० ई० के लगभग सोमदेव ने 'कथा-सरित्-सागर' लिखा। क्षेमेन्द्र का ग्रन्थ 'बृहत् कथा-मंजरी' इसके पहले लिखा जा चुका था। इन दोनों ग्रन्थों का आधार 'गुणाढ्य' की 'बृहत्-कथा' थी, जो कदाचित् पहली शताब्दी में लिखी गई थी।

संस्कृत-साहित्य का कहानी की कला के विकास में कितना हाथ है, कह नहीं सकते। अवश्य ही बड़ा हाथ है; क्योंकि संस्कृत-कहानियों के अनुवाद ईसा से छः शताब्दी पहले हो चुके थे। खोज से पता लग रहा है कि इतिहास के प्रारम्भ से ही दूसरी जातियों ने भारत से विचार और साहित्यकला के पाठ लिये हैं।

रूस

रूस से बाहर रूस का साहित्य तुर्गनेव, टाल्सटाय और डास्तोवस्की के नाम से जाना जाता है। इनके उपन्यास रूसी जीवन के महाकाव्य हैं। रूसी जीवन पर जिस गवेषणा और सत्यान्वेषण की दृष्टि से नज़र डाली गई है, उसका विचार करने पर कहानी-साहित्य का आधिक्य अनुचित नहीं जान पड़ेगा। रूस एक विशाल देश है। मनुष्य-जीवन की विभिन्नता और विचारों की विशालता जितनी वहाँ है, योरप के किसी अन्य प्रदेश में नहीं। क्रान्ति से पहले तक देश की उत्पादक शक्ति सामाजिक उन्नति के लिए ठोस कार्य में लग नहीं सकी थी। तब तक देश आत्म-विकास में लगा था। क्रान्ति की सफलता का मानसिक जीवन पर क्या असर पड़ा, यह बताना अभी कठिन है, परन्तु क्रान्ति से पहले के मानसिक समतल पर देश अभी नहीं पहुँच पाया है, इसमें संदेह नहीं। साहित्य की समस्या है कि रूसी त्याग और वेदना को जीवन की यथार्थता में वह किस प्रकार चित्रित कर सके। समस्त रूसी साहित्य की जड़ में यही भाव है। महान् रूसी लेखकों की कृतियों में जो व्यापक दृष्टिकोण और यथार्थवाद से मिला-जुला आदर्श-चित्रण मिलता है, उसका कारण यही है।

रूसी कहानी की भी वही समस्या है। रूस में उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में पहले-पहल कहानी ने साहित्य की विशेष वस्तु की भाँति प्रवेश किया था। गारशिन और चेख़व उसे क्षेत्र में लाये थे। तब से रूस के कलाकारों, महान् उपन्यासकारों और कवियों में सदा ही उसे प्रकाशन का एक यंत्र माना है।

अलेक्ज़ेन्डर पुशकिन (१७९९-१८३७) ने



कवि था। इसने रूसी जन-श्रुति का आधार लिया। रूसी किसानों में कल्पना और आत्मा की शक्ति पहले इसी ने दिखाई। वह आंग्ल कवि बाइरन से प्रभावित था और इस तरह वह पूर्वी और पश्चिमी साहित्य में शृंखला का काम करता है। पुश्किन की कहानियों में सर्वोत्तम The Queen of Spade है। यह कला की उत्कृष्ट वस्तु है। यह एक भूत-कहानी है, जिसके वर्णन में यथेष्ट कल्पना से सहायता ली गई है, परन्तु इसका मनोविज्ञान इसे नितान्त काल्पनिक होने से बचाता है। अलेक्ज़ेन्डर प्रथम के समय के ऊँची श्रेणी के समाज का अच्छा चित्रण पटभूमि में है। उसकी कहानी 'पिस्तौल का निशाना' में रोमांस और कला का अच्छा सम्मिश्रण है। हिंदी में इसका अनुवाद इसी नाम की पुस्तक में हुआ है, जिसके लेखक हैं बजमोहन वर्मा और श्रीधन्यकुमार जैन। Influenced Michail Leomontoff (1814-41) प्रायः रोमांस की कहानियाँ लिखा करता था। यूरप महाद्वीप के रोमांस के लेखकों का बड़ा ... था। इसकी एक प्रसिद्ध कहानी The Fair Smuggler है।

रूसी साहित्य की यथार्थ शक्ति उसके यथार्थवाद के साथ प्रारम्भ होती है। इसका आविर्भाव निकोलाय गोगल (१८०९-५२) के साथ होता है। गोगल की कृतियों में सत्य और आविष्कार की कल्पना का विचित्र मेल है। वह जीवन से प्रेम नहीं करता, वह उसकी अवहेलना ही करता है। वह जीवन का सब कुछ सुन्दर और मानवीय दिखाना चाहता है, परन्तु वह उसकी कुरूपता को छिपाने का प्रयत्न कभी नहीं करता। अपनी कला-कृतियों में वह रूस की देहाती आत्मा, उसकी नदियों और जंगलों का सुन्दर वर्णन करता है। उसकी कहानी Eve of the St. John में देहाती जीवन का सुन्दर वातावरण उपस्थित किया गया है। अन्धविश्वास सरल आत्माओं में कितनी कम-जोरियाँ उत्पन्न कर देते हैं, यह वह दिखाता है।

उसकी The Carriage कहानी का प्लाट बहुत ही सरल है, परन्तु उसका हास्य उसमें भी निष्क्रिय और आनन्दी जीवन की सुन्दर प्रतिच्छाया पैदा कर देता है।

ईवान तुर्गनेव (१८१८-८८) यह पहला लेखक था, जिसने अलेक्ज़ेन्डर द्वितीय के सुधारों और ग़ुलामी की प्रथा के उठने के बाद की सामाजिक स्थिति का सफल वर्णन किया। उसकी कहानियाँ—विशेष कर जो 'Memoirs of a Sports-man' के नाम से संगृहीत हैं, उसकी मास्टरपीस हैं। वे कला और मानवीय चरित्र-चित्रण दोनों में अद्वितीय हैं। तुर्गनेव ने रूसी प्रकृति का कवित्व-सौंदर्य प्रकाशित किया और पहली बार रूसी पक्षियों, और किसानों के गंभीर भावों और आत्मिक कामों का प्रयोग उसने ही किया। तुर्गनेव के किसान न भावुक हैं, न कृत्रिम! वह सामाजिक प्रचार के लिए उन्हें आदर्श नहीं बना देता। वह उन्हें उनकी समस्त विचित्रताओं और अशिक्षितता की सीमाओं के साथ चित्रित करता है। The Singers तुर्गनेव की विशेष सुन्दर कहानी है। इसमें वह रूसी किसान की कला-प्रेमी प्रकृति, उसका संगीत-प्रेम, उसकी आत्मा में निहित वासना और उसकी व्यापक सहानुभूतियाँ दिखाता है।

फ़िडोर डोस्टोवस्की (१८२२-८१) रूस का महान् रहस्यवादी लेखक हुआ है। उसका विचार है कि संदेहशील और विद्रोही मानवीय और सर्वव्यापी शक्ति में, जो केवल जीवन के दुखी तथा वेदनामय क्षणों में प्रकाश में आती हैं, सदा संघर्ष हो रहा है। डोस्टोवस्की की समस्त कृतियाँ कारुणिक हैं। इसका एक उदाहरण The Honest Thief है। जीवन-पथ में गिरनेवालों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करना ही उसका एकमात्र उद्देश है।

इन महाकलाकारों के साथ-साथ वह कथाकार हैं, जिन्हें सामाजिक आदर्श और संघर्ष से ही मतलब है। Nicolai Schedrin (Michail T. Saltickor 1826-89) इन लेखकों में सर्वश्रेष्ठ है।



वह सत्ताधारियों का मज़ाक उड़ाने में अद्वितीय है—लियो टालस्टाय (१८२८-१९१०) से हमारे पाठक अवश्य ही परिचित होंगे! वे महात्मा, मनीषी, कलाकार और महान् उपदेशक थे। उनकी कहानियाँ उनके साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ से ही उनके जीवन का विशेष कार्य रही थीं। इनमें उनकी वह आत्मा प्रकट हुई है, जो अभी बाद का उपदेशक नहीं बन पाई थी और जिसकी अभिव्यक्ति कितनी ही मनोवैज्ञानिक और कलापूर्ण कवियों में हुई है। १८८१ के पश्चात् टालस्टाय ने धार्मिक संघर्ष पर विजय पाई और कहानी को धार्मिक और नैतिक उपदेशों का अस्त्र बनाया। इन सरल कथाओं को उन्होंने कला से भरने की चेष्टा की। उनकी एक ऐसी कहानी है—मनुष्य को कितनी पृथ्वी चाहिए (How much land does a man need)। यह एक सांकेतिक कहानी है। टालस्टाय का कहानी कहने का ढंग सरल, शक्तिपूर्ण और कलामय है। उनकी एक दूसरी सुन्दर कहानी—The Three Hermits है।

अन्य कहानीकार Nicolai S. Leskov (1831-95) और Nicolai Uspenslay (1837-89) थे। पहला रूस का क्रान्ति-विरोधी और दूसरा मनोवैज्ञानिक लेखक था। Dmitri Mamin Sibrik (B. 1852) यूराल में उत्पन्न हुआ था। उसकी कहानी—In The Hearts of the Urals में प्रकृति की गोद में पले किसानों का मार्के का चित्रण है।

Vsevolod Garshin 1155-88 ने केवल दस कहानियाँ ही लिखी हैं, परन्तु वे रूसी गद्य-साहित्य में अमर स्थान रखती हैं। वह हृदय के अनुभवों से लिखता था। उसकी दो प्रसिद्ध कहानियाँ हैं—'चार दिन' और 'लाल फूल'। लाल फूल में उसने एक पागल की मानसिक दशा का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। उसकी सभी कृतियों पर उसके नास्तिकवाद और उसकी निराशावादी प्रवृत्ति का प्रभाव देख पड़ता है।

एंटनी चेखव (1860-1904) रूसी कहानी-कला में यथार्थवाद का नेता था। उसने रूस के निराशावाद-काल का ठीक-ठीक चित्रण किया है। मोपांसा की भाँति वह भी वातावरण बनाता है और Climax पर पहुँच जाता है। वह अपने नायक के जीवन के कुछ क्षण, कुछ घंटे और कुछ घटनाएँ लेता है और कुछ पृष्ठों में उनकी आत्माएँ स्पष्ट कर देता है। वह और महान् कलाकारों की तरह उपदेश नहीं देता, जैसा-का-तैसा चित्रण करता है। वह हास्य-कहानियाँ लिखने में भी अद्वितीय है।

Feodor Sologub (B. 1863) रहस्यवादी और सांकेतिक कहानियों का जन्मदाता है।

रूस के आधुनिक कथाकारों की कृतियों से झलकता है कि वे उस अन्धकार और दुःख के बन्धन को, जिसने साहित्य और कल्पना को अब तक बाँध रक्खा था, तोड़ रहे हैं। उनमें हल्का सामाजिक स्पर्श है और रूस के कलाकारों की गंभीर विवेचनात्मक प्रवृत्ति को छोड़कर वे मनुष्य के कार्यों का विस्तृत चित्र देते हैं। Mme Estokreva की "Vania" नवीन ढंग का नमूना है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के रूसी साहित्यकारों ने भी जीवन के दुःखान्त और कारुणिक दृष्टिकोण का निर्वाह किया है। परिस्थितियों अथवा मनुष्यों के संघर्ष से व्यक्ति के चरित्र में उपजी दुर्बलताओं के चित्रण करने में कला का प्रदर्शन हुआ है। कलाकारों की कृतियाँ कभी ही जीवन के सुखद क्षणों का स्पर्श कर पाई हैं। बाइरन (Byron) के शब्दों में रूसी कलाकार "मानवीय प्रवृत्तियों का अन्यतम चित्रकार है, और असाधारण व्यक्तियों का मनोवैज्ञानिक विकास बड़े प्रभावशाली ढंग पर अंकित करता है; उसका यथार्थवाद दुःख के अधिक सन्निकट है।" फिर भी मानवता की निम्न-श्रेणियों में विचरते हुए चित्रण के ढंग में असाधारण सफल हैं। उनकी कहानियाँ अधिकतर एक रंग के बने चित्र हैं जिनमें बड़ी सावधानी से ख़ाका उतारा गया है।

पाठक के मस्तिष्क में वह गहरी अनुभूति लेकर उतरते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के इन कथाकारों में Eugene N. Chirikov (1864), Dmitri S. Mery-Korsky (1865), Maxim Gorky (1868), Alexender Kuprin (1870), Leonid W. Andreyev (1870) प्रधान हैं।

इनमें सर्वप्रसिद्ध Maxim Gorky है। पिछली उन्नीसवीं शताब्दी का रूस से बाहर भी सर्वप्रिय लेखक गोर्की है। इसका पूरा नाम था—Alexey Maxinovich Pyeshkov। इसकी कहानियों का विषय अधिकतर इसके ही अनुभव हैं। अपने दुःख, कष्ट और वेदना का उसने कहानियों में कलापूर्ण चित्रण किया है और उसकी प्रतिभा का सबसे अच्छा विकास उसकी कहानियों में हुआ है। उसके नाम का अर्थ है—कटु अनुभव करनेवाला। मानवता के प्रति यह उसका स्वीकृत दृष्टिकोण है। रूस के उन कलाकारों में, जिन्होंने अन्धकार और ग्रहण को कला का विषय बनाया है, वह अद्वितीय है। हलके स्पर्श उसका विषय नहीं बनते। विशेषतः उसने पड़ियों, आवारा और अछूतों—जो जीवन के अन्तर्गत समझे नहीं जाते—के सफल रेखा-चित्र दिये हैं। उसकी दो प्रसिद्ध कहानियाँ हैं—Twenty Six Men and a Girl और In the Steppes। दोनों कहानियों से अधिकांश पाठक परिचित होंगे। पहली कहानी में सभ्य समाज के निम्नतम लोगों का चित्रण है। व्यापार और सभ्यता के नीचे ज़मींदोज़ मकानों में जिन कंकालों की नींवें पड़ी हैं, उनमें कभी-कभी एक स्थान पर रक्त दौड़ जाता है।

गोर्की ने जीवन की कठिनाइयों का स्वाद चखा है। वर्षों तक वह पतझड़ के पत्तों की तरह उड़ता फिरता रहा है। वह आवारा-जीवन का पैग़म्बर भी है। 'स्टेपीज़' में कहानी के अन्त में उसके वाक्य उसकी इस दृष्टि को पूरा व्यंजित करते हैं—"पृथ्वी पर घूमो, सीखने योग्य सीखो, और किसी के गुलाम न बनो।" उसकी इस अंक में दी हुई कहानी माकर चूड्र का भी कुछ ऐसा ही आदेश है। यह उसकी पहली प्रकाशित कहानी और जिप्सी-जीवन का अद्भुत रोमांस है। इससे हिन्दी के जो पाठक गोर्की को ऊपर की दो प्रसिद्ध कहानियों से ही जानते हैं, उसे एक नये प्रकाश में देख सकेंगे।

फ़्रांस

वर्तमान कहानी विशेषतः फ़्रांस की चीज़ है। बहुत हद तक यह कथन ठीक भी है। दूसरे देशों ने साहित्य के इस रूप के लिए इतने प्रतिभाशाली कलाकार नहीं उत्पन्न किये। वस्तुतः उन्होंने इटालियनों से पहले ही कहानी का आविष्कार कर लिया था। बकेशियो और उसके बाद के इटली के कहानीकारों ने फ़्रेंच-दन्तकथाओं और कहानियों के आधार पर रचना की है। फ़्रांस में भी कहानी-कला का सर्वोत्तम विकास अट्ठारहवीं शताब्दी में हुआ। अधिकतर वह Abbes लोगों की चीज़ थी, जो धार्मिक चर्चों से संबंध रखते थे, परन्तु अधार्मिक जीवन व्यतीत करते थे। उनके जलसे बहुधा नटियों के घर अथवा शराबख़ानों में होते थे। इनका प्रधान था—Counte de Caylus। इसने दलित जीवन के बहुत-से चित्र दिये हैं। इसी प्रकार के साहित्यक्लबों में वाल्टेयर की शिक्षा हुई। निर्वासन-काल में उस पर अँगरेज़ों के संसर्ग का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसकी सबसे प्रसिद्ध कहानी—What Women Want पर चासर का रंग है। चासर की तरह यह भी पद्य में है। गद्य में भी उसने सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। वाल्टेयर के बाद Bourdelot, Blanchet और De Voisenon आये। इनमें Voisenon श्रेष्ठ है।

पश्चात् फ़्रांस के कलाकारों ने भी दलितों की सहानुभूति में रचना प्रारम्भ की। Diderot की कहानी—Two Friends of Bourborne इनमें पहला और उत्कृष्ट प्रयास है। इसी समय कहानी-कारों पर प्रसिद्ध महात्मा रूसो का प्रभाव पड़ा।



उन्होंने रूढ़ियों का विरोध किया और Romantic School in French lit की स्थापना की । इस स्कूल के लेखकों में Slendbal, Scribe और De Vigny बहुत प्रसिद्ध हैं।

Vigny की कहानियाँ बेलज़ाक के निकटतम आ जाती हैं।

बेलज़ाक वर्तमान गद्य-कहानी का प्रमुख नेता है। किसी एक अंग में Tolstoi, Sir. Walls Scolt और अन्य कलाकार उससे बढ़ गये हैं, परन्तु फिर भी गहराई और पहुँच में बेलज़ाक सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार है। उसकी बहुत-सी कहानियाँ उपन्यासों से पहले और दूसरे ढंग पर लिखी गई हैं। वे रोमांस हैं।

विक्टर ह्यूगो कल्पना-शक्ति में बेलज़ाक के समान अवश्य था, परन्तु उसे जीवन का इतना अनुभव नहीं था। वह अपने समय का सबसे बड़ा कवि है और उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ रोमांस गद्य-लेखक भी। दीनों और दुखियों से उसे पूर्ण सहानुभूति है।

परन्तु बेलज़ाक और ह्यूगो साहित्य में महान् अवश्य थे; किन्तु मेरिनी ने कहानी का वह रूप दिया, जिसे बाद में मोपाँसा, किपलिंग और चेख़व ने अपने समय की कला का सर्वोत्कृष्ट साधन बनाया।

उसके समय से कहानी गीतों की तरह साहित्य की एक शाखा हो गई। उसके आगे ड्यूमा-बंधुओं की प्रतिभा मंद लगती है।

उसके बाद जार्ज सैंड से ज़ोला (Zola) तक फ़्रांस के कहानीकारों ने कहानी में कला का पूर्ण समावेश कर दिया। मोपाँसा और अन्य बाद में आनेवाले कलाकारों ने कुछ आवश्यक रद्दो-बदल भर किये हैं। इस काल के लेखक विषय, ढंग और दृष्टिकोण में भिन्न थे। कुछ एक दरजे के रोमांस-प्रिय थे और कुछ दूसरे दरजे तक पहुँचे हुए यथार्थवादी। इस समय तक पत्रों के विकास के साथ कहानी की माँग और मूल्य भी बढ़ गया था। Jules Janin, Emile Soweste, Octave Feuillet और Leopes इस समय के प्रसिद्ध लेखक हैं।

इसी समय Gustave Flaubert और Baudleire का प्रादुर्भाव हुआ। मोपाँसा की प्रतिभा को विकसित करने में उसका बड़ा हाथ है। Baudleire पर अमेरिका के पो (Poe) और इँगलैंड के Dequency का बड़ा प्रभाव पड़ा। परन्तु उसने अपनी मौलिकता को नष्ट न होने दिया। वह निराशावादी था, परन्तु वह ऊँचे दरजे का कलाकार था। अपने काल में उसने लेखकों को प्रभावित अवश्य किया; परंतु वह क्षण-स्थायी प्रभाव था। कहानी का इन दिनों इतना प्रचार था कि Alexender Dunies को भी उसे अपना अस्त्र बनाना पड़ा यद्यपि नाटकीय क्षेत्र में वह कहीं अधिक सफल हुआ है। इस काल का अन्त ज़ोला (Emile Zola) के साथ होता है। वह पक्का यथार्थवादी और नग्न सत्य के चित्रण का हामी था।

इस समय फ़्रांस और जर्मनी में युद्ध हो चुका था और अलसासलोरन का प्रान्त फ़्रांस के हाथ से जाता रहा था। युद्ध और उसके परिणाम का फ़्रांस के कहानीकारों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। साहित्य में रोमांटिसिज़्म का विरोध किया गया और उसे जाति की शक्ति का नाशक बनाया गया। अपने स्वप्नों के इस प्रकार भग्न हो जाने पर कलाकारों ने भीतर खोजना प्रारम्भ किया। दुःखवाद ने फिर ज़ोर पकड़ा। फ़्रांस के कलाकार ईश्वर अथवा मनुष्य में विश्वास नहीं रखते थे और उन्होंने कई रूपों में कला में यथार्थवाद की सृष्टि की। परन्तु यह यथार्थवाद विशेषतः नकारात्मक था। उन्होंने स्वच्छ और स्पष्ट यथार्थ चित्रण करके ही इतिश्री न की। वे औरों के प्रति विद्रोह के भाव से भरे हुए थे। इसी कारण उनकी कहानियों और कला में कटुता आ गई है। Dean Swift इन लेखकों में प्रधान था। अन्य लेखक Jules Claretic, Emile Pouvill, Francis Copée और Paul Arene थे।



बाद के लेखकों में दो ने संसारव्यापी ख्याति पा ली है। वे हैं अनातोले फ़्रांस (B. 1844) और मोपाँसा। टाल्सटाय की मृत्यु के पश्चात् कई वर्षों तक योरप में अनातोले फ़्रांस का बोलबाला रहा है। उसकी 'जुडिया का शासक' कहानी बड़ी प्रसिद्ध है। उसकी तुलना बेलज़ाक से की जाती है, परन्तु उसमें बेलज़ाक से कहीं अधिक गहराई, प्रवाह और सौन्दर्य की पकड़ है। हमने 'मृत्यु का उपहार' नाम की कहानी दी है। इसमें उसका फ़्रांस की राज्यक्रान्ति के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। मोपाँसा (1850-1895) को Flaubert ने साहित्य-क्षेत्र के लिए तैयार किया था। वह संसार का एक विशिष्ट कलाकार माना जाता है। उसकी मौलिकता और कल्पना का क्षेत्र अद्वितीय है। भिन्न-भिन्न कहानियों में वह भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होता है।

मोपाँसा के बाद फ़्रांस में एक नये वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ। वे कहते थे, साहित्य में विनाश की जगह सृष्टि का समय आ गया है। उनका एक वर्ग दूर की, सुन्दर और असाधारण वस्तुओं में आनन्द लेता था। Judith Gantie (1850-1917), Pierre Loti (1850) आदि इस वर्ग में आते हैं।

अँगरेज़ी कथा-साहित्य

अँगरेज़ी-कथा-साहित्य के इतिहास की रूप-रेखा ठीक-ठीक देना कठिन है। उसके जन्म और विकास की गति सुस्त और धुँधली रही है। रानी एलेज़ेबेथ के समय के कलाकार जो अन्य देशों में इतने आगे थे, केवल स्पेन और इटली की कुछ कहानियाँ अनुवाद कर रह गये। कहानी के आविर्भाव से पहले नाटक ही नहीं, उपन्यास भी स्थायी साहित्य में गिना जाता था। कहानी-कला के लिए तन्मयता आविष्कार, लेखन-पद्धति और सृष्टि-चातुर्य की आवश्यकता है। परन्तु इस काल के लेखक और उपन्यासकार Lyle, Sidney, Deloney, Greene, Lodge और Nash इसके लिए अनुपयुक्त थे। अट्ठारहवीं सदी का बड़ा भाग बीतने पर भी कहानी अपना उचित स्थान नहीं ग्रहण कर सकी थी। उन्नीसवीं सदी के प्रतिभाशाली लेखकों का स्पर्श पाकर कहानी ने अपने व्यक्तित्व का प्रकाश देख पाया।

इँगलैंड में कहानी का प्रारम्भ हास्य-पुस्तकों से हुआ। इनमें एक पुस्तक का नाम है—Hundred Merry Tales। इसको १५२६ में Rasteli ने प्रकाशित किया था।

बकेशियो ने योरप में एक बार फिर रोमांस को जन्म दे दिया था। दूसरी उपलब्ध पुस्तक सर थाम्स एलियट की है। इसमें The wonderful History of Titus and Gissipus नाम की कहानी मिलती है। यह Decameron की एक कहानी का अनुवाद है।

दूसरी कहानी Sir Philip Sidney की लिखी है। इसका नाम 'पेफेगोनियन राजा और उसका पुत्र' है। शेक्सपियर ने ग्लॉस्टर और दो बेटोंवाली कहानी (जो उसने King Lear में दी है) इसी से ली है।

Danial Defoe की कहानियों के साथ अँगरेज़ी कथा-साहित्य में एक नया युग आ रहा है। कहानियों में यथार्थवाद सीधे-सादे और विश्वास के ढंग से आता है। डिफ़ो की कहानियों में जीवन के वार्तालाप से मज़ा आता है और Edgar Allen Poe के सिवा और किसी की कहानियाँ जीवन के इतने समीप नहीं पहुँचती हैं।

Addison ने भी उतने ही स्वच्छ चित्र देखे हैं। परन्तु वे अधिक सभ्य समाज के चित्र हैं। उसने और Fielding ने अपने समाज का, विशेषतः मध्य श्रेणी के लोगों का, बहुत अच्छा चित्रण किया है। Addison के पत्र Spectator का Rowe De Cowery कदाचित् अँगरेज़ी-साहित्य का विशिष्ट और सर्वप्रथम पत्र है। इतना होने पर भी कहानी और उपन्यास के क्षेत्र अलग नहीं हुए



हैं—उपन्यास में कहानियों को गूँथने की प्रथा है और कहानियाँ छोटे उपन्यास (Novelette) तक पहुँच जाती हैं।

इसके बाद हम Coleridge और Lamb पर आते हैं। Coleridge ने Maria Schöning (जिसमें एक यतीम लड़की को भाग्य से लड़ते दिखाया गया है और जो मानवीय सहानुभूति को अशिष्ट, निर्दय और अन्धविश्वासों से प्रेरित दिखाती है) उसने जर्मनी में लिखी थी। Charles Lambs की Dream Children : a Reverie और Juke Judkins Courlstif आदि कहानियाँ उत्तम रचनाएँ हैं। इस समय के लेखकों पर सुदूर पूर्व का बड़ा प्रभाव पड़ा है। कई लेखकों ने पूर्व के पात्रों और कथानकों को लेकर कहानियाँ लिखी हैं। इन कहानी-लेखकों में James Morier और Mary Mitford प्रसिद्ध हैं। स्त्री-लेखिकाओं ने भी इस समय कहानी के क्षेत्र में पदार्पण किया। Mrs. Shelley, Mrs. Gore प्रतिनिधि थीं। Benjamin Disraeli, Samuel Warron, Mrs. Gaskell, Thackery और Dickens इस युग के अन्य कथाकार हैं। इनमें से अधिकतः पहले दरजे के उपन्यासकार थे। कहानी को अभी वह स्थान नहीं मिला था, जो बाद में मिला। फिर भी इन लेखकों ने कई सुन्दर कहानियों की सृष्टि की है। धीरे-धीरे पत्र-साहित्य के प्रचलन और विकास के साथ, कहानियों का मूल्य बढ़ गया। कहानी केवल आनन्द का विषय नहीं रही। अब तक कहानी का रूप विकसित नहीं हुआ था। धीरे-धीरे उसमें अधिक पूर्णता आती गई। इस युग की कहानी के विकास में Charles Reade, Anthony Trollope, Ruskin, Wilkie, Charles Collins, Thornbery, Lewis, William Morris, Garnett, Hardy, Ouida और A. Conan Doyle का विशेष हाथ रहा है। Trollope की Malachis Cave और Ruskin की King of the Golden River अँगरेज़ी कहानी-साहित्य की Classics मान ली गई हैं। हार्डी अपने अन्यतम यथार्थवाद के चित्रों और निराशावादी दृष्टिकोण के लिए बदनाम है, परन्तु उसने कथा में दक्षिणी-पश्चिमी इँगलैंड की सृष्टि की है। उसके पात्र जीवन से लबालब भरे होते हैं और वह स्थानीय रंग देकर उन्हें ठोस आकार दे देता है। उसके प्लाट मास्टर-पीस होते हैं, शायद इसलिए कि उसने वर्षों भवन-निर्माण का काम सीखा था। सर आर्थर कोनन डायल ने शरलाक होम्स के रूप में एक काल्पनिक पात्र की महान् सृष्टि की है। उसकी पैनी दृष्टि इतिहास की गहराई में उतर जाती है और वह अपने विशेष वर्णनात्मक ढंग से कल्पना को प्रतिबिम्ब की तरह साफ़ झलका देता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में इँगलैंड में कहानी-कला का विकास तेज़ी से और वैज्ञानिक ढंग से हुआ है। इस युग के कहानी-लेखकों में Mrs. Clifford, Mary Coleridge, "Anthony Hope", W. W. Jacobs, "Q", Galsworthy और H. G. Wells विशेष उल्लेखनीय हैं। चालीस वर्ष के इस समय में कहानी लिखने के ढंगों पर काफ़ी प्रकाश पड़ चुका है और नये-नये ढंगों से कहानियाँ लिखी गई हैं। कहानी के विषयों में भी उल्लेखनीय विशालता आ गई है। जीवन, अनुभव और कल्पना का कोई भाग कहानीकार के लिए अवाञ्छनीय नहीं है। अकेले एच्-जी वेल्स ने मनोविज्ञान, भौतिक विज्ञान, व्यापार, कला, समाज आदि कितने ही विषयों पर सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। विज्ञान ने कहानीकार के क्षेत्र को आशातीत विस्तृत बना दिया है।

संयुक्त राज्य

अमेरिका की पहली सुन्दर कहानी Washington Irving की Rip Van Winkle है। यह १८१८ में प्रकाशित हुई थी। समकालीन समाज का हलका, व्यंगमय और सुन्दर करने का इसका प्रयत्न बहुत सफल रहा है। इरविंग का ढंग अठारहवीं



शताब्दी के इँगलैंड के कलाकारों का है और उनमें प्लाट की मौलिकता भी रही है। उसे ... चाहिए और तब वह अद्भुत सृष्टि कर ... है। इसी समय दो अन्य कहानीकार Judge Longstreet और Solomon Smith हो गये हैं। इन्होंने अमेरिका का रंग ही नहीं लिया है, उसका ... भी अमेरिकन है। स्मिथ ने सुन्दर हास्य की कहानियाँ लिखी हैं और वह इस तरह की कहानियों का जन्मदाता माना जाता है।

... तीन वर्ष बाद इन प्यूरिटनों ने Nathaniel Hawthorne को जन्म दिया। यह बहुत नाज़ुक और ... कलाकार है। यह अमेरिका का जादू है। ... प्यूरिटन प्रवृत्तियों पर John Bunyan का ... प्रभाव पड़ा है और यह प्रभाव उसकी ... ही कहानियों में साफ़ झलकता है। वह ... अमेरिकन जीवन का चित्र नहीं देता। ... कारण है उसका एकान्त, दुखी और दरिद्र ...। वह जीवन से हटकर सुन्दर और अद्भुत ... की ओर अग्रसर होता है। उसने प्यूरिटन ... और रस्म-रिवाज़ों का कलाकार और ... की दृष्टि से विश्लेषण किया है। यह उसको ... हुए संकीर्ण लोगों के प्रति उसकी प्रतिक्रिया ...। एक तरह से उसकी कला प्यूरिटन नियमों को ... होते हुए विकीर्ण रंगों में चित्रित करती है।

Edgar Allan Poe अपनी कला और कल्पना का पूरा स्वामी था। उसे ज़बरदस्त कल्पना के साथ ... बुद्धि मिली थी। इनके संश्लेषण ने उसे अद्वितीय कलाकार बना दिया। अमेरिकन साहित्य में वह सबसे अधिक प्रसिद्ध है। अपने क्षेत्र में पो किसी अन्य कलाकार से कम आवश्यक नहीं है। ... समय तक कहानी का गठन सुन्दर और कलात्मक नहीं था। उसने उसे अधिक संगठित ... की चेष्टा की। उसकी अधिकांश कहानियाँ ... और अद्भुत हैं, परन्तु उसने शब्दों के ... और प्रयोग में जादू कर दिया है और ... अपार्थिव वातावरण बनाने में सफल हुआ है। उसने योरप के बाद के सभी लेखकों को प्रभावित किया है। उसमें केवल एक कमी है—भाषा की। कभी-कभी उसका भाषा प्रवाह ठीक नहीं उतरता। उसकी मृत्यु के पश्चात् अमेरिका के गद्य-साहित्य में बहुत समय तक अभाव रहा। कहानियों की गंभीरता नष्ट होने लगी और हास्य-कहानियों का चलन हो गया। इन कलाकारों में C. P. Cranch, Judge Baldwin, General Thorpe, J. T. Fields प्रमुख हैं।

संयुक्तराज्य अमेरिका का साहित्य इँगलैंड के साहित्य की शाखा-मात्र है। पिछली शताब्दी और वर्तमान काल की कहानियों में यदि अन्तर है तो केवल विषयों का। न्यू-इँगलैंड में प्यूरिटन लोगों के प्रभाव में साहित्य का जन्म हुआ और अब भी अमेरिकन जीवन और कला में वह प्रभाव बना है।

अमेरिकन कहानी कल की चीज़ है। Charles Brockeden Brown (1771-1810) वहाँ का पहला उपन्यासकार माना जाता है, परन्तु Fennimore Cooper (1781-1851) और Washington Irving (1783-1789) ने अपनी मौलिक कहानियों और प्रतिभा से सर्वश्रेष्ठ स्थान ग्रहण किया।

उन्नीसवीं शताब्दी के पहले वर्षों में ही इर्विंग आदि ने अमेरिकन कहानी की संस्थापना कर दी थी, परन्तु पो के पदार्पण तक उसने विशेष प्रगति नहीं दिखलाई। पो की कहानियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं और संसार भर में उनका प्रभाव पड़ा है। उसका दूसरा साथी Hawtharne है। वह भी उतना ही बड़ा कलाकार है और उसका समकालीन है। पो के शिष्यों में से Rose Terry Corke (1827-1892) और Fitz James O'Brien (1828-1862) प्रसिद्ध हैं। बाद के कलाकारों ने भी कहानी-कला को विकसित करने में बहुत परिश्रम किया है—वे हैं, Saran Orne Jewett, Bret Hart, Hanry James, Frank Stochton, H. C. Bunner इत्यादि। अमेरिका के कहानी-



कारों ने कहानी की रूप-रेखा को अभिव्यक्ति का कलापूर्ण ढंग दिया है। पिछले ३०-३१ वर्षों के अन्दर कहानी-कला की टेकनीक (परिभाषा) चुस्त हो गई है और एक बड़ी हद तक पूर्णता को पहुँच गई है। वर्तमान के कहानी-लेखकों में सबसे अधिक प्रतिभाशाली Sidney W. Porter (O. Henry) था। इसने कहानी की प्रसिद्धि को अक्षुण्ण बनाये रक्खा है।

१७१० में हेनरी की मृत्यु से अमेरिकन साहित्य की रूप-रेखा और आत्मा में विशेष परिवर्तन हो गया है।

इटली

कहानीकारों में इटली के कहानीकार सबसे अधिक मौलिक हैं। कई दृष्टिकोणों से वे श्रेष्ठ भी हैं। लगभग चार शताब्दियों से उनकी कृतियाँ उनके चारों ओर के जीवन का प्रतिबिंब रही हैं। वर्तमान योरप के किसी भी देश के कलाकारों ने कला का इस प्रकार एकान्त ध्येय से प्रयोग नहीं किया है। डॉन्टे से वर्तमान समय तक जो परिवर्तन हुए हैं, वे इटली के आख्यानिकों में स्पष्ट झलकते हैं।

परन्तु वर्तमान समय में इलटी के कहानीकार विशेष प्रगति नहीं दिखा रहे हैं। रूसी, जर्मन, आँग्ल और फ्रेंच-कहानीकार उनसे आगे हैं। शायद इटालियनों को अपनी प्रतिभा को जल्दी विकसित कर देने का दंड देना पड़ा है। इधर शुभ चिह्न दिखाई पड़ते हैं। इटली के कहानीकार फिर जाग्रत् हो रहे हैं और वे दिन समीप दिखाई देते हैं, जब वे एक बार फिर कला की उत्कृष्ट चीज़ें देंगे।

वर्तमान कहानीकारों ने पुराने कहानीकारों की कला का विकास किया है। उन्होंने ढाँचे को साफ़ किया है, कहने का ढंग सुधारा है और वार्तालाप में लचीलापन पैदा किया है। फिर भी इटली के पुराने कहानीकार कलाकार हो गये हैं। वे महान् कहानियाँ कहते हैं। उनके विषय महत्त्वपूर्ण रहते हैं, इससे वे बड़े कलाकार हैं। वे इन क[...] नियों को साफ़ ढंग पर कह देते हैं, मानव[...] प्रवृत्तियों पर उनका ध्यान रहता है। कहानी क[...] का उनका ढंग बड़ा स्वभाविक है।

इटली का बकेशियो योरप में 'कहानी [...] पिता' माना जाता है। इसके पश्चात् आते हैं— Masuccio, Gio Sabadino, Giovanni Bre[...] और Matteo Bandello इत्यादि। इनमें [...] अधिकतः धार्मिक गुरु (Bishop) हैं।

सोलहवीं शताब्दी के मध्यकाल में कहानी [...] कला गिर गई। मौलिक कहानीकार कम रहे[...] पुरानी कहानियों के आधार पर कहानियाँ लिखी [...] जाने लगीं। लगभग सौ वर्षों तक ऐसा होता रहा। Lingi Capuana (1839) के साथ वर्तमान कहानी-युग का आरम्भ हुआ। फ़्रांस के ज़ोला [...] प्रभावित होकर इसने यथार्थवाद लिखना प्रारम्भ किया। वर्तमान काल के कहानी-लेखकों [...] सबसे प्रसिद्ध Giovanini Verga (1840) है। य[...] सिसली का था और इसने दलितों और किसा[...] के सुन्दर चित्र दिये हैं। उसकी 'She-wol[...]' शीर्षक कहानी उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। मोपाँ[...] ने भी ऐसी दुःखान्त कहानी नहीं लिखी है।

जापान

अट्ठारहवीं शताब्दी में जापान के राजवं[...] की कहानियाँ कोजिकी नाम से संगृहीत हुई[...] जापान की यह पहली सुन्दर साहित्यिक कृति [...] आठ वर्ष पश्चात् जब Nihougi (Chroni[...] of Japan) की सृष्टि हुई तो जापानी सा[हित्य] में नवीन शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। पहला जाप[ानी] उपन्यास ग्यारहवीं शताब्दी में ही लिखा [जा] चुका था। इसकी लेखिका फ्यूज़ीवारा के प्रसि[द्ध] घराने की Muraski-No-Shikibu थी। [...] कहानी का ठीक-ठीक रूप अट्ठारहवीं शताब्दी [में] ही आया। इसको लानेवाले Kiokutei B[...] (1767-1848) और Shikitei Samba (1[...]



(1892) थे। यही पहले ग्रन्थकार भी हैं, जिनकी प्रसिद्धि योरप तक पहुँची। दोनों ने अपनी कहानियों में सामयिक जापान की प्रतिष्ठा की। जापानी साहित्य जन-श्रुतियों के लिए प्रसिद्ध है। Lafcadio Hearn ने कुछ का अनुवाद किया है। सत्रहवीं और अट्ठारहवीं शताब्दियों के अंतिम वर्षों में कहानी का विकास रुका रहा, परन्तु रूस-जापान युद्ध की समाप्ति पर पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव में जापान के साहित्य ने नई शक्ति पाई। युग के लेखकों ने बहुत सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। इनमें Mori Ogwai, Nagai Kafu और Shimazaki Tonson अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्होंने बहुत मनोरंजक कहानियाँ लिखी हैं और जापानी जीवन के भिन्न-भिन्न अंगों पर प्रकाश डाला है।

बेलजियम

वर्षों तक विदेशी आधिपत्य के कारण बेलज़ियम के कलाकार कला को विकसित नहीं कर सके। १८८० में जब Decoster और Gazelle ने बेलज़ियम के साहित्य को फ्रांस और डेन्मार्क के कलाकारों के प्रभाव से मुक्त किया, तो उन्होंने एक बार फिर पुराने जातीय साहित्यकारों से नाता जोड़ा। बेलज़ियम के साहित्य की मौलिकता और विशेषता का कदाचित् यही कारण है। वर्षों के बाद देश की आत्मा ने अपने साहित्य को पहचान-कर उसमें राष्ट्रीय और सामाजिक भावनाओं को अच्छा और पुष्ट किया। बेलज़ियम के कहानीकारों में एक ओर Rodenbach और Blanche Rousseau जैसे संकेतवादी (Symbolist) हैं तो दूसरी ओर Eekhoud और Hubert Krains जैसे यथार्थ-वादी। बेलज़ियम के प्रधान कहानीकार Charles Decoster (1827-79,) George Eekhoud (B. 1854), Eugene Demolder (B.1862), Maurice Maeterlirk (B. 1862), Hubert Krain (1861 B.) हैं। वर्तमान समय का सर्वश्रेष्ठ कहानीकार Blanche Rosseau (B.1895) है।

(Mme. Maurice Belval)—इनकी कृतियाँ कवितामयी होती हैं और ये जीवन के व्यंग और परिहास का चित्रण करने में भी कुशल हैं। इनकी कहानियों में स्वभाव से ही संकेत-प्रकृति रहती है। परन्तु उसके संकेत मौलिक रहते हुए भी अखरते नहीं।

स्कैंडीनेविया

(स्वीडन, डेन्मार्क, नार्वे)

स्कैंडीनेवियन देशों का साहित्य अधिकतः वर्तमानकालीन है और भिन्न-भिन्न देशों में प्रगति का काल भिन्न-भिन्न है। इन समस्त देशों में परियों की कहानियाँ बहुत काल से प्रचलित रही हैं। परन्तु जिसे वर्तमान परिभाषा के अनुसार हम कहानी कहें, उसका विकास बहुत बाद की चीज़ है। इन वर्तमान कहानीकारों में सर्वप्रथम लेखिका Fredrika Bremar (1810-1865) है। इसने अपने समय की रोमांटिक धारा से प्रभावित होकर रचना की है। फ्रांस और प्रूशिया के युद्ध के बाद George Brandes के प्रभाव में आकर स्कैंडीनेविया के कहानीकारों ने यथार्थ का चित्रण प्रारम्भ किया, परन्तु बहुधा वे फ़ोटोग्राफ़ी देकर ही रह गये। इनमें प्रमुखतम August Strindberg (1849-1912) है। इसने साहित्य की सीमाओं का उल्लंघन करने की चेष्टा की थी, परन्तु बाद में रहस्यवाद की ओर झुक गया। स्वीडन के अन्य कहानीकार हैं Daniel Fallstrom (B. 1858), Gustaf af Geijerstain, Selma Lagerlof, Heidenstrain और Hallestrom। इन कलाकारों में सेलमा लेगरलाफ़ की कृतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। उसके प्रकृति के चित्र विशाल और साफ़ होते हैं, परन्तु थोड़े में पात्र का चरित्र-चित्रण करने में भी वह अद्वितीय है। वह स्वीडन की सर्वश्रेष्ठ कलाकार है अपनी सभी कहानियों में उसने प्रकृति को प्रमुख स्थान दिया है।

डेनिश कथाकारों में सर्वश्रेष्ठ Hans C. Ande-



rson (1805-1875) है । यह विश्व-विख्यात है। इसने परियों की कहानियों को मानवीय स्पर्श देकर साहित्य में स्थान देने का श्रेय प्राप्त किया है। अन्य डेनिश लेखक Goldschmidt, Drachmaun, Jacobson और Bang हैं।

नार्वे के कहानीकारों में मुख्य Henrik Steffens, Bjornson और Jonas Lie हैं। यद्यपि नार्वे के साहित्य का जन्म स्वीडन और डेन्मार्क के साहित्यों के पश्चात् हुआ है, पर उसके लेखकों ने अपनी ओर संसार का ध्यान आकृष्ट कर लिया है।



अपनी बात

हमारे सहयोगी

इस विशेषांक के लिए हमने श्रीरामरतन भटनागर 'हसरत' का सहयोग प्राप्त किया है, इसलिए वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

रूपनारायण पांडेय

इस अंक के सम्बन्ध में

कहानी-अंक पाठकों के सामने है। इस अंक को हम जैसा बनाना चाहते थे, बना नहीं सके। इसका कारण विशेषतया हमारी इधर की लम्बी बीमारी है। परन्तु कुछ अन्य कारण भी हैं। माधुरी के इस विशेषांक को उसकी प्रतिष्ठा के अनुरूप बनाने के विचार से हमने विभिन्न भाषाओं के देशी और विदेशी कहानीकारों को दिसम्बर में ही लिख दिया था। अमेरिका के एक कथाकार को छोड़कर अन्य किसी ने पहले पत्र पर ध्यान ही नहीं दिया और उन्होंने भी लिखा कि वे उपन्यास लिख रहे हैं, कहानी हाथ में नहीं है, तैयार होने पर कभी भेजेंगे। हिंदी, उर्दू, बंगाली, मराठी और गुजराती आदि भाषावालों ने बड़े संकोच के साथ कई पत्र भेजने पर कृपा की है। कुछ अभी हमारे अंतिम पत्र की प्रतीक्षा में हैं। ऐसी परिस्थिति में कहानी-अंक प्रेस में गया है। फिर भी जिन-जिन लेखकों ने अपनी अमूल्य सम्मतियाँ और कृतियाँ हमें भेजी हैं, उनके हम आभारी हैं। जिन लेखकों की रचनाएँ इस अंक में नहीं जा सकी हैं, उनसे हम क्षमाप्रार्थी हैं। माधुरी के अगले अंक में हम उनकी रचनाएँ प्रकाशित करेंगे।

सुविधा के लिए हमने इस अंक के तीन भाग किये हैं; पहले भाग में विदेशी कलाकारों की कृतियाँ हैं; दूसरे भाग में हिंदी के वर्तमान लेखकों की; तीसरे में, भारत की विभिन्न भाषाओं के कहानी-लेखकों की। प्रत्येक भाग के पहले कहानी-कला और कहानी की प्रगति के संबंध में सम्पादकीय है। कहानी पर अन्य विद्वानों के समालोचनात्मक लेख भी दिये गये हैं। जहाँ तक संभव हो सका हमने लेखकों के चित्र देने का भी प्रयत्न किया है। विदेशी कहानियों के चुनाव में हम सर्वश्रेष्ठ कहानी देने का दावा नहीं करते, परन्तु चुनी हुई कहानियों में से अधिकांश का अनुवाद हिंदी में पहले नहीं हुआ था।



माकर चूड़

(जिप्सी कहानी)

गोर्की

एक तर और ठंडी हवा स्टेपीज़ के ऊपर किनारे से टकराती हुई लहरों की करुण स्वर और पानी के किनारे की वनस्पति की गंध ले गई। कभी-कभी हवा अपने साथ मुरझाई पीली पत्तियों के दल-बादल उड़ा लाती और उन्हें कैम्प की आग में झोंक देती। हमारे चारों ओर के अन्धकार में एक प्रकम्पन उत्पन्न हो जाता। पतझड़ की रात चमक उठती और दिखलाई पड़ता बाईं ओर अनन्त स्टेपी और दाईं ओर अनन्त सागर, जिसके सामने माकर चूड़ की लेटी हुई देह। वह बूढ़ा जिप्सी* था, जो हमारे कैम्प के घोड़ों की साईसी करता था। कैम्प हमसे पचास गज़ दूर था।

ठंडी हवा के झोंके उसके जिप्सी लबादे में लग रहे थे और उसका ताँबे के रंग का बालदार सीना दिखलाई पड़ जाता था, परन्तु उसे जैसे इसकी ख़बर भी नहीं। अपने आराम की बैठक से मेरी ओर मुड़कर उसने अपने पाइप पर धुआँ खींच और अपने मुँह और नाक से धुएँ का बादल उड़ा दिया। उसकी स्थिर दृष्टि उस अन्धकार पर जमी थी, जो स्टेपीज़ की मृत्यु-जैसी नीरवता पर फैला हुआ था। वह बोले जाता था और हवा से बचने की उसे परवा नहीं थी—

"तो तुम आये हो? अच्छा है! तुमने भला मार्ग चुना है, फेल्कन। हम सभी को जो बदा होता है, मिलता है। जाओ, दुनिया देखो और जब काफ़ी देख चुको, लेट रहो और मर जाओ—और हो चुका!

"जीवन? और लोग?"—वह कहता गया—"हाँ! तुमसे काम? तुम्हीं क्या जीवन के कौर नहीं हो? और लोगों की बात, वे तुम्हारे बिना जीते हैं, तुम्हारे बिना जीते भी रहेंगे। समझते हो, किसी को तुम्हारी ज़रूरत है? तुम रोटी नहीं, छड़ी नहीं, फिर क्यों लोगों को तुम्हारी ज़रूरत हो?

"सीखने के लिए, सिखाने को कहते हो। कभी सीख सकोगे, लोग कैसे ख़ुश होंगे? न, कभी नहीं! बाल पक जायँगे और फिर कहोगे, औरों को सिखाऊँ। परन्तु क्या सिखाने चले हो उन्हें? सभी तो जानते हैं, उन्हें क्या चाहिए? चलते हुए सब ले बैठते हैं, मूर्ख सब खो बैठते हैं और सभी अपने लिए सीख लेते हैं—

"आदमी भी अजीब मज़ाक है। इतना बड़ा ढेर का ढेर लगाना और एक दूसरे से जीवन को

---

* ये लोग खेमे और पशु लिये हुए रूस के घास के मैदानों (स्टेपीज़) में घूमा करते हैं।



छीन लेना, जब दुनिया में इतनी जगह है''—उसने विस्तृत स्टेपीज़ की ओर अपना हाथ फैलाया—''और वे सदा काम कर रहे हैं। क्यों? किसके लिए? कोई नहीं जानता। हल जोतते हुए उसे देखो, सोचो। पहले वह पसीना-पसीना होकर धरती जोतने में अपनी शक्ति खो देता है। फिर अपनी लाश उसमें गिरा देता है और सड़ जाता है। उसका कुछ भी रह नहीं जाता, अपना बोया काट भी नहीं पाता, परन्तु मर जाता है, जैसा पैदा हुआ था—अहमक़।

''इसी के लिए पैदा हुआ था वह—धरती खोदने के लिए, और अपनी क़ब्र भी न खोद सके, इसके पहले गुज़र जाय?—उसने आज़ादी को जाना है क्या? स्टेपीज़ के विशाल विस्तार को समझा है क्या उसने? समुद्र का गम्भीर मर्-मर्, क्या उसका हृदय इस आवाज़ से आनन्दित हुआ है? हाँ! पैदा होने के क्षण से वह गुलाम है और जीवन भर गुलाम रहता है, यही है सब! अपने लिए वह कुछ नहीं कर सकता, कुछ और बुद्धिमान् हुआ तो सिर पर जाल लपेटेगा।''

''मेरी बात, मुझे देखो तो, देखो—मैंने इन पचास वर्षों में इतना देखा है कि अगर तमाम काग़ज़ पर लिखूँ तो वह जो बोरी पड़ी है, उस-सी एक हज़ार भरें। मैं तुमसे पूछूँगा, वह देश बताओ जहाँ मैं हो न आया हूँ। क्यों, तुमने सुने भी नहीं, जितने देश मैंने देखे हैं। इसी तरह रहना है—घूमना, घूमना—कुछ देर के लिए सब जगह रह लेना। जैसे पृथ्वी पर दिन और रात बराबर एक दूसरे का पीछा किये हैं। मैं तुम्हें सलाह दूँगा—घूमो, जीवन के विचार जाने दो, यदि उनकी बीमारी मोल न लेना चाहते हो। जीवन पर जितना सोचो, उतना कम उसे चाहोगे, हमेशा ऐसा रहा है। मुझे भी यही अनुभव हुआ है। हाँ फेल्कन, मैंने इसका अनुभव किया है।''

''मैं जेल में रहा हूँ; गैलेशिया में, वहाँ सोचने का काफ़ी समय था। मैं कहता—मैं इस दुनिया में क्यों आया हूँ। ऐसे विचार मैं एक-रसता तोड़ने के लिए करता था; सचमुच बड़ा एकरस था वहाँ! ऐसे क्षणों में मेरा हृदय चाह से भर जाता, जब मैं जेल के सीकचों में से खेतों को देखता।....... हाँ, फेल्कन, हम इस दुनिया में रहते हैं और यही सब कुछ है। कौन जानता है क्यों? कोई नहीं। और पूछना बेकार है। आनंद से दिन बिताओ, घूमते रहो और देखते रहो, और तुम कभी न चाहोगे वह जो तुम्हें मिला नहीं है—कभी! उस समय मैंने फाँसी दे दी होती। सचमुच फेल्कन, मैंने अनुभव किया है।''

''हाँ तो, एक बार एक से बात हुई......वह तगड़ा-सा था, तुममें से ही होगा—रूसी। उसने कहा, तुम्हें इस तरह नहीं रहना चाहिए, परन्तु जैसे ईश्वर ने बताया है। केवल ईश्वर के पैर पड़ो, और वह तुम्हें जो माँगोगे, दे देगा—और फिर भी वह फटा हुआ पुराना सूट पहने था। मैंने कहा, प्रार्थना से नया कोट लाकर पहनो, जिस पर वह चिढ़ गया। उसने मुझे गाली दी और खदेड़ दिया। उस समय तक वह क्षमा और प्रेम का उपदेश देता था। सो उसे क्षमा करना चाहिए थी, जब मैंने शब्दों से उसके गर्व को धक्का दिया। यह तुम्हारे शिक्षक हैं! वे कहते हैं कम खाओ और आप खाते हैं दिन में दस बार....''

उसने आग में थूका और चुप होकर अपना पाइप भरा। हवा गिरकर हल्की, धीमी, करुण शोकध्वनि रह गई थी, अँधेरे में घोड़े हिनहिनाते थे और कैम्प के अन्दर से मृत्यु-गीत की करुण रागिनी उठ रही थी। गानेवाली माकर की लड़की, सुन्दरी नॉन्का थी। मैंने उसकी आवाज़ पहचान ली। चाहे वह गीत गाती अथवा नमस्ते कहती, उसकी आवाज़ बहुत ही करुण, उत्सुक और असंतोषपूर्ण होती। वह मानों स्टेपीज़ की रानी थी और उसकी काली भूरी आँखों में उसके सौंदर्य की आकर्षक शक्ति और प्रत्येक वस्तु की अवहेलना रहती थी।

माकर ने पाइप मुझे दे दिया।

"पियो। लड़की क्या अच्छा नहीं गाती? क्या समझते हो तुम रे? ऐसी लड़की तुम्हें प्यार करती तो? तुम्हें पसंद नहीं? यह अच्छा हुआ। निःशंक हो। आँखों पर विश्वास न करो और उनसे अलग रहो। लड़की का चुम्बन लेना पाइप के पीने से कहीं अच्छा है। परन्तु एक बार तुमने किसी स्त्री को चूमा कि तुम्हारे हृदय की स्वतंत्रता गई। स्त्री तुम्हें ऐसे बंधन में बाँधती है जो तुम देख नहीं सकते, न तोड़ सकते हो। तुम अपनी आत्मा खो देते हो और बदले में पाते कुछ नहीं। मेरी सलाह मानो; स्त्री से ख़बरदार रहो। वह हमेशा झूठ बोलती है—प्रियतम। दुनिया में सबसे अधिक मैं तुम्हें प्यार करती हूँ—वह कहती है। और यदि कहीं तुमसे एक पिन भी चुभ जाय तो वह तुम्हारा हृदय निकाल लेने के लिए तैयार है। मैं जानता हूँ, मेरे ईश्वर! मैं कितनी अच्छी तरह जानता हूँ। सुनो फ़ेल्कन, तुम्हें कहानी सुनाऊँ। परन्तु उस पर हमेशा ख़बरदार रहो और तुम पक्षी की तरह मुक्त रहोगे—"

"कभी एक युवा जिप्सी था और उसका नाम था जोवार, लोक्यो जोवार। बड़ा बहादुर लड़का था वह और तमाम हंगरी, वोहोमिया और स्लेवोनिया और समुद्र के किनारे के अन्य देशों में वह परिचित था। देश भर में एक गाँव भी न था, जहाँ एक दर्जन मनुष्य न हों, जिन्होंने लोक्यो की हत्या करने की क़सम खाई हो और फिर भी वह जीता रहा। यदि कोई घोड़ा उसकी आँख चढ़ गया तो वह उसको ले भागा, चाहे उसकी रखवाली के लिए एक फ़ौज ही न रक्खी गई हो। हाँ, न उसे शैतान का डर था न मनुष्य का। अगर शैतान भी अपनी फ़ौज लेकर उसके सामने आता तो वह अकेला लड़ने को तैयार हो जाता और मुझे इसमें भी शक नहीं कि शैतान के जबड़े पर जावर का घूँसा पड़ता।

"और सभी जिप्सी उसको पहचानते हैं—उसे देखा था, अथवा उसकी बात सुनी थी। वह केवल घोड़ों को प्यार करता था और वह भी कुछ क्षणों के लिए। फिर उन्हें बेचकर जो रुपया वह पाता, उसे कोई भी माँग लेता। कोई चीज़ न थी, जिसे वह दूसरों में बाँटने को राज़ी न हो जाता। अगर तुम उसका हृदय भी माँगते, तो तुम्हें अनुगृहीत करने के लिए वह सीने से निकालकर तुम्हें दे देता। इसी तरह का आदमी था वह, फ़ेल्कन।"

"हम लोग उस समय बुकावीना में घूम रहे थे। दस वर्ष की बात है। कल की बात की तरह मुझे याद है। बहार में एक बार हम पड़ाव पर थे—मैं, डेनिला, जो कोसाथ के साथ लड़ा था, बूढ़ा नूर और—और डेनिला की पुत्री रड्डा भी हमारे साथ थी।"

"तुम नॉन्का को जानते हो न? लड़कियों में रानी है न वह? परन्तु रड्डा का उससे मुक़ाबला नहीं था। नॉन्का के लिए अवश्य ही बड़े गर्व की बात होती। शब्द रड्डा का वर्णन कर ही नहीं सकते। बेला से कोई उसकी सुन्दरता की अभिव्यक्ति भले ही कर ले, परन्तु वह करेगा जो बेला को अपनी आत्मा की तरह जानता है।"

"अरे, कितने युवा हृदयों को मिटा डाला था उसने। एक बार एक अमीर ने उसे देखा। उसकी दृष्टि उस पर पड़ी कि उसे पक्षाघात हुआ। वह घोड़े पर चढ़ा था और उसे देखता था जैसे उसे बुख़ार आ रहा हो। शैतान की तरह सुन्दर था वह। उसकी ज़ीन पर सोने का काम था और जब घोड़े के नाल पृथ्वी पर पड़ते थे, उसकी बग़ल की तलवार चमक उठती थी।....तलवार भर पर हीरे जड़े थे और उसके सिर की नीली फ़ौजी टोपी तो आसमान का टुकड़ा ही थी। बड़ा अमीर था वह। वह देर तक रड्डा को देखता रहा और तब उसने कहा—चुम्बन दो तो तुम्हें बदले में रुपयों की थैली दूँ। उसने उसकी ओर से मुँह फेर लिया और बस हुआ—"



"क्षमा करो। मैंने शायद तुम्हें नाराज़ कर दिया। एक बार मुस्कराओ तो। हाँ, ? एक बड़ी थैली उसने उसकी ओर फेंकी। परन्तु रड्डा ने केवल सड़क पर ठुकरा दी और हो गया—"

'आहा ! इस तरह की लड़की हो तुम ?' वह बड़बड़ाया। उसने घोड़े को कोड़ा मारा और वह उड़ गया।

"और दूसरे दिन वह फिर आया—इसका बाप कौन है—चिल्लाकर उसने पूछा, और उसकी आवाज़ कैम्प में पहुँच गई। डेनिला आया।

'अपनी बेटी मेरे हाथ बेच दो। मुँहमाँगे दाम मिलेंगे।'

परन्तु डेनिला ने उत्तर दिया—'ऐसा केवल सभ्यों में होता है। वे बेच देते हैं सब, अपने सुअरों से लेकर अपनी आत्मा तक। परन्तु मैं कोसाथ की कमान में लड़ा हूँ और मैं कुछ भी न बेचूँगा।'

अमीर क्रोध से उसकी ओर बढ़ा, तलवार की मूठ पर उसने अपना हाथ बढ़ाया, परन्तु तभी हम में से एक ने उसके घोड़े के कान में दियासलाई दिखा दी और वह सवार को लेकर भागा—हमने कैम्प तोड़ दिया और आगे बढ़ गये। वह दो दिन घूमा और हमें पा गया। उसने कहा—तुम्हारे और ईश्वर के सामने स्वच्छ आत्मा से कहता हूँ। इस लड़की को पत्नी रूप में मुझे दे दो और मैं अपना सब तुममें बाँट दूँगा। मैं बड़ा अमीर हूँ—उत्तेजना से वह जल रहा था और जैसे तूफ़ान में घास की पत्ती, वह ज़ीन पर काँप रहा था।

डेनिला ने अपनी दाढ़ी में कहा—

'हाँ बेटी, बोल !'

रड्डा ने कहा—'अगर गिद्धकन्या अपनी इच्छा से कौओं के घोंसले में चली जाय तो उसका क्या होगा ?

डेनिला हँसा और हमने योग दिया।

'ख़ूब कहा, बेटी मेरी ! जनाब ने सुना ? हो नहीं सकता ! कहीं और भली-सी बत्तख़ ढूँढ लीजिए—वे अधिक आज्ञाशील होंगी

"और हम चले गये। अमीर ने टोपी उता[र] कर ज़मीन पर फेंक दी और दुलकी भागा—इतनी; इतनी तेज़ कि पृथ्वी हिलती थी! ऐ[सी] लड़की थी, फेल्कन।"

"हाँ, और एक शाम हम बैठे हुए सुन रहे थे स्टेपी पर गाना गूँज रहा था। अद्भुत संगी[त] हमारी रगों का ख़ून उबलने लगा और जान प[ड़ा] वह हमें कहीं जाने को कहता है और हममें, हम[में] से हरएक में, एक धुँधली चाह उठी कि सों... दुनिया के मालिक हो रहें। ऐसा संगीत था ... फेल्कन ! और वह पास आता गया, पास आ... गया और सहसा अन्धकार से एक घोड़ा नि[कला] और उसकी पीठ पर बाजा बजाता हुआ कोई !... कैम्प की आग के पास रुक गया; उसने बाजा ... कर दिया और मुस्कान से हमारा स्वागत किया।

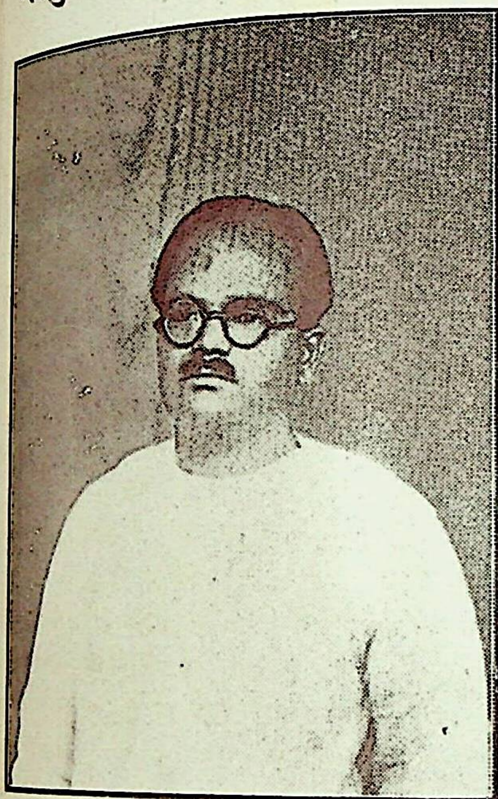
'ओ जोवर, यह तुम हो'—डेनिला ने ह[र्ष से] चिल्लाकर कहा।

"यही था लोक्यो जोवर ! उसकी मूँछें ... कंधे पर आ पड़ी थीं और उसकी भूरी ज़ुल्फ़ें ... मिल गई थीं; चमकीले तारे-जैसी उसकी आँ[खें] चमकती थीं और उसके अट्टहास में सूर्य-... तीव्रता थी ! जैसे वह और उसका घोड़ा एक प[त्थर] से कटे हों।"

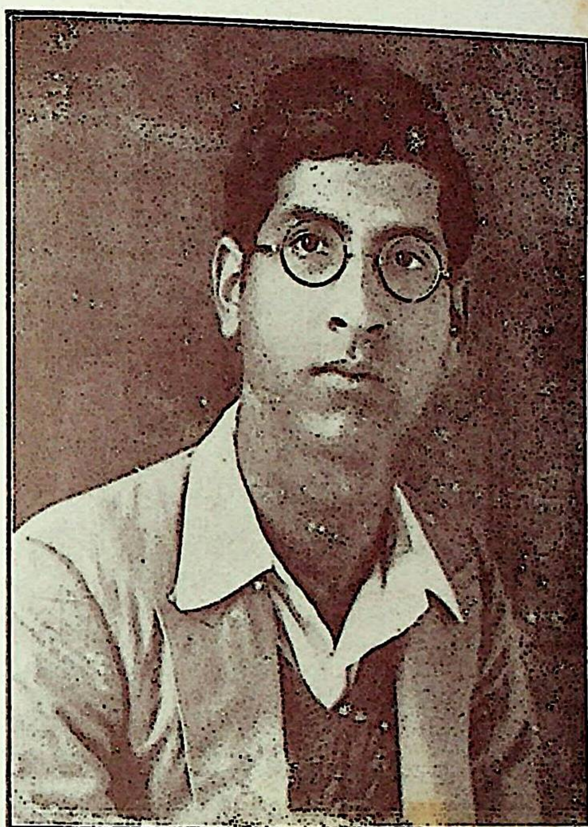
मैं उसे प्रेम न करने लगूँ तो जैसे मुझे ... लगता !

"हाँ फेल्कन, दुनिया में ऐसे भी लोग ... तो ! तुम्हारी आँखों में देखते हैं और आत्मा ... कर लेते हैं और तुम्हें लाज न लगती, ... होता है। ऐसों के संपर्क से तुम और भ... जाते हो। मित्र मेरे, दुनिया में ऐसे बहुत ... लोगों को यह भला न लगेगा। ऐसा ही ... परन्तु आगे यह हुआ—"

"रड्डा ने कहा—लोकियो, तुम बड़ा सु[न्दर] बाजा बजाते हो। इतनी सुरीली धुन—... बाजे को बनाया किसने ?"



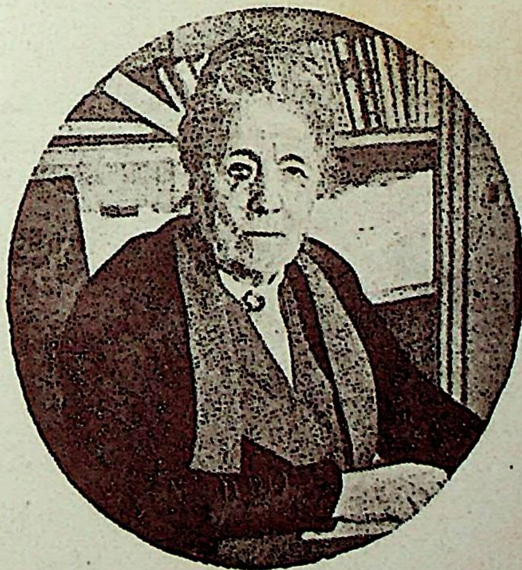
पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी



श्रीयुत "पहाड़ी"



श्रीइलाचन्द्र जोशी



श्रीसेल्मा लेगरलाफ़



"लोकियो हँसा । मैंने इसे बनाया है ! लकड़ी से नहीं, युवती की छाती से । मैं उसे बहुत-बहुत प्यार करता था । इसमें उसके हृदय के तारों के स्वर लगे हैं । फिर भी कुछ बेसुरी होती है, परन्तु मैं जानता हूँ, गज़ से किस तरह काम लूँ । देखती हो ?"

"जानते ही हो, हम जिप्सी लोग पहले ही युवतियों की आँख धुँधली कर देते हैं, जिससे वे हमारे दिलों में आग न लगा दें । लोकियो ने भी किया, परन्तु उसने ग़लत साथी चुना था । रड्डा ने मुँह फेर अँगड़ाई लेते हुए कहा—'हश ! और लोगों ने कहा था, लोकियो बुद्धिमान् है और चालाक है । झूठ बोले थे !'—इतना कहकर वह चली गई ।

'ओ, मेरी सुन्दर ! तुम्हारे दाँत बड़े तेज़ हैं'—लोकियो की आँखें चमक उठीं, जब उसने कहा और वह घोड़े से कूद पड़ा—

'हाँ, कॉमरेडो, मैं आ गया हूँ डेनिला ने कहा'—तुम हमारे अच्छे मेहमान हो । हम सीने लगे, बातचीत की और सो रहे....गहरी नींद सोते रहे !—दूसरे दिन हमने देखा जोवर ने सिर पर पट्टी बाँध रक्खी है । क्या बात है ? क्यों ? 'घोड़े ने लात मार दी'—उसने कहा ।

"कैसा घोड़ा है, हम जानते थे और दाढ़ियों में मुसकाये ! डेनिला भी । क्या ? लोकियो क्या रड्डा के योग्य नहीं था ? ऐसा तो नहीं ! लड़की दिन-जैसी सुन्दर हो और उसकी आत्मा नीच और कंगली हो और तुम उसकी गर्दन में झोला-भर सोना लटका दो, फिर भी पहले से अच्छी नहीं हो सकेगी वह । हाँ, जनाब ! इस तरह उस जगह हम रहते रहे । काम अच्छा था और जोवर हमारे साथ रहा । तुम्हारा साथी बन जाता वह फेल्कन ! बूढ़ों-जैसा विद्वान् और सब कामों में जानकार । वह रूसी और हँगरी भाषा में बोल और लिख सकता था । जब वह बोलने लगता, उसके सुनने के लिए तुम नींद सदा के लिए छोड़ देते ! वह बाजा बजा सकता था—जोवर की तरह किसी मनुष्य को बाजा बजाते संसार ने देखा हो तो मुझ पर बिजली गिर पड़े ! जब वह अपना गज़ तारों पर चलाता, हृदय धड़कने लगता, और दूसरे स्वर पर तुम्हारे हृदय की गति रुक जाती । परन्तु वह बजाता जाता और हँसता जाता । उसकी रागिनी के साथ हम हँसते-रोते ! कभी तो मंद्र स्वरों में प्रेम-प्रार्थना प्रारम्भ होती, जो हृदय पर छुरी फेर देती । कभी यंत्र पर परियों की दुखभरी क़हानियों की बात रागिनी में उठती ; तब प्रिय से छूटती हुई वियोगासन्न युवती की आँसू-भरी आवाज़ । और तब बहादुर प्रेमी की हर्ष-ध्वनि सुनाई पड़ती, जो उसे स्टेपी में बुलाता । और सहसा झरने की तरह उसके गज़ से एक मुक्त और जीती रागिनी उछलती हुई निकलती और ऐसा जान पड़ता, आकाश में सूर्य उस रागिनी की गति पर चलने लगेगा । ऐसा संगीत था वह फेल्कन ।

उस संगीत की ध्वनि पर बदन की प्रत्येक शिरा ऐंठ उठती और तुम उसके ग़ुलाम हो जाते । ऐसे क्षणों में यदि लोकियो कहता—कॉमरेडो, हथियार लो, तो लोकियो जिसकी ओर इंगित करता, उसके हृदय में हम अपनी छुरियाँ भोंक देते । वह हमारे साथ जो चाहता करता और हम उससे प्रेम करते थे, उससे बहुत प्रेम करते थे, केवल रड्डा ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया । यह बुरा नहीं होता, लेकिन वह उससे खेल कर रही थी । उसने छल से जोवर का हृदय बंदी कर लिया था । लोकियो दाँत काटता और मूछें मरोड़ता । उसकी आँखें खड्ड की तरह गहरी और अँधेरी हो जातीं, और कभी-कभी ऐसी चमक उठतीं कि हमारे हृदय काँप उठते । बाँसुरी रोती थी कि उसकी स्वतंत्रता जाती रही । और हम कोल में जागते रहे, सोचते रहे—क्या करना होगा ? हम भली भाँति जानते थे कि जब दो चट्टानें रगड़ती हैं तो बीच में आना मौत है । ऐसा था, फेल्कन ।"



"एक दिन हम बैठे हुए काम की बातें कर रहे थे। हमारी बातचीत एकरस हो रही थी और इसलिए डेनिला ने कहा—'गीत गाओ, जोवर! गीत से हमारा हृदय प्रसन्न करो!' उसने रड्डा की ओर दृष्टि की। वह हमसे कुछ दूर चित लेटी थी, उसका मुँह आकाश की ओर था। और तब उसने गज़ खींचा। यंत्र ोलने लगा, जैसे वह युवती का हृदय हो। और लोकियो ने गाया—

मेरा हृदय आग ले उठता,
जाता जब स्टेपी के पार।
तीर सदृश जाता है घोड़ा,
जैसे हो तूफ़ाँ का भार।

"रड्डा ने सिर उठाया, कुहनी पर उठी और लोकियो की आँखों में मुस्कराई। सूर्योदय की भाँति उसका चेहरा चमक उठा।

हाँ, हाँ, चलो रात्रि से चलकर
पा लें, पा लें दिन का द्वार।
फेंके वहाँ कुहर चादर, गिरि
पाते जहाँ उषा का प्यार!!
अरे, धूप की तरह बढ़ें हम
हो विकीर्ण निशि का आलोक,
दुपहर से निशीथ में कूदें
चिन्हित करें चाँद-सी नोक।

"इस तरह गाया उसने; कोई वैसा अब न गायेगा! परन्तु रड्डा ने कहा, 'जैसे छलनी में पानी पड़ा हो—मैं तुम्हारी जगह होती, लोकियो, तो इतनी उड़ान न भरती। गिर पड़ोगे और अपनी नाक और मूँछें मैली कर लोगे। होशियार रहो।' क्षण भर लोकियो उसे देखता रहा, परन्तु बोला कुछ नहीं। क्रोध रोककर उसने गाना जारी रक्खा।

डेनीला ने कहा—'इसे मैं गाना कहता हूँ। अपने जीवन में मैंने ऐसा गाना नहीं सुना। अगर सच न कहता हूँ तो शैतान मुझे ले जाय!'

बूढ़े नूर ने मूछों पर थपकी दी, कन्धे हिलाये। जोवर के गीत ने हम सबको छू लिया था। परन्तु रड्डा प्रसन्न नहीं हुई थी।

'मक्खी ने गिद्ध की नक़ल करने की चेष्टा की, तो ऐसी ही भिनभिनाई थी'—उसने कहा। हमें ऐसा जान पड़ा, जैसे उसने हम पर बर्फ़ डाल दिया हो।

बाप ने कहा—'तुमने कभी कोड़ों का मज़ा नहीं देखा, रड्डा!' परन्तु जोवर ने टोपी फेंककर जलती आँखों से कहा—'रुको, डेनीला! घोड़ों को लगाम चाहिए। तुम मुझे अपनी बेटी से विवाह करने की आज्ञा देते हो—'

'ख़ूब कहा'—डेनीला हँसा—'यदि तुम चाहो और ले सको।'

लोकियो ने उत्तर दिया—'अच्छा! और रड्डा की ओर मुड़कर उसने कहा—हाँ, तो लड़की, सुनो और घमंडी न बनो। तुम्हारी बहुत-सी बहनों को मैंने देखा है—बहुत-सी। परन्तु किसी ने इतनी आग नहीं लगाई थी, जितनी तुमने। ओ, रड्डा, तुमने मेरी आत्मा को बन्दी कर लिया है। अच्छा, तो मैं क्या करूँ? होना जो है, होकर रहेगा—हाँ, संसार में कोई घोड़ा नहीं, जो तुम्हें मुझसे दूर ले जा सके। मैं कहता हूँ ईश्वर, मेरे गौरव, अपने पिता और इन लोगों को साक्षी बना मुझसे विवाह कर लो। परन्तु ख़बरदार, मेरी आज़ादी में दख़ल न देना; क्योंकि मैं स्वतंत्र मनुष्य हूँ और जैसा चाहूँ, रहना चाहता हूँ।' फिर होंठ दबाकर वह उसके पास पहुँचा। जलती हुई आँखों से उसे लेने के लिए वह बढ़ा।—'अहा'—हमने कहा—'अन्त में रड्डा ने स्टेपीज के घोड़े को लगाम दे ही दी।' परन्तु सहसा हमने उसे हवा में हाथ फेंकते और गिरते देखा।

"गोली खाकर जैसे वह गिर पड़ा। कैसे हुआ! रड्डा थी। उसने उसके पैरों में कोड़ा डालकर घुमाकर उसे खींच लिया था और लोकियो गिर पड़ा।"



"और तब वह फिर लेट रही और मुस्कराते हुए आसमान को देखती रही। हमें प्रतीक्षा थी, लोकियो क्या करेगा ? वह माथा पकड़कर पृथ्वी पर बैठ गया, जैसे उसका सिर फूट जायगा ! तब वह झुके से उठा और हमारी ओर देखे विना स्टेपीज़ में चला गया। नूर ने मेरे कान में कहा—'उसे देखो।' और मैं जोवर के पीछे स्टेपी में, रात्रि के अन्धकार में चला गया। इसी तरह हुआ फेल्कन।

"माकर ने पाइप की राख झाड़ दी और उसे फिर भरा।"

"मैं लबादे में सुकड़ गया और माकर के बूढ़े चेहरे को, जो धूप और हवा से काला हो रहा था, देख रहा था। उसने भरपूर और विचार में जैसे सिर घुमाया, कुछ कहता गया, जिसे मैं सुन न सका। उसकी मोटी, भूरी मूछें हवा में काँप गईं। समुद्र और तट बराबर कानाफूसी करते थे और हवा स्टेपी में उनकी बात ले जाती थी। नानका ने गान बंद कर दिया था और बादलों ने, जो अब आकाश पर छा गये थे, पतझड़ की रात को और अँधेरा और भयावह कर दिया था।"

"लोकियो क़दम-क़दम, धीरे-धीरे, सिर झुकाकर और हाथों को बेजान छोड़कर चल रहा था। नदी के पास आकर वह एक चट्टान पर बैठ गया और सिसकने लगा। ऐसा कि मेरा हृदय उसकी सहानुभूति में रो उठा। फिर भी मैं उसके पास न गया। शब्द मनुष्य के दुःख की अभिव्यक्ति कर नहीं सकते, क्यों न ? हाँ, वह बैठा रहा, एक घंटा, दो घंटा, तीन—नदी के किनारे वह हिले बिना बैठा रहा।"

"कुछ दूर पर मैं पृथ्वी पर लेटा था। चमकीली रात थी, चाँद ने स्टेपी पर झिलमिल चाँदनी बिखेर दी थी और सब कुछ देखना संभव था। सहसा मैंने रड्डा को जिप्सी-कैम्प से लोकियो की ओर आते देखा। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर भी, रड्डा बड़ी अद्भुत लड़की निकली। वह उसके पास पहुँच गई, परंतु लोकियो को ज्ञात नहीं पड़ा। उसने उसके कंधे पर हाथ रख दिया। लोकियो चौंक पड़ा, मुँह पर से हाथ हटा लिया और सिर उठाया। अचानक वह खड़ा हो गया और उसने चाकू की मूँठ पर हाथ रक्खा। मैंने सोचा—वह लड़की को मार डालेगा। सहायता के लिए मैं कैम्प को दौड़ा जानेवाला था, जब मैंने यह शब्द सुने। रड्डा कह रही थी—'फेंक दो, नहीं तो भेजा निकाल दूँगी।' उसने जोवर के सिर पर पिस्तौल से निशाना बाँध रक्खा था। मैंने सोचा—अब बराबर का जोड़ है। देखें, क्या होता है ?"

"रड्डा ने पिस्तौल को बेल्ट में रखकर कहा—'सुनो, तुम्हारी हत्या करने नहीं आई हूँ, सुलह करने आई हूँ। चाक़ू फेंक दो !' उसने चाक़ू फेंक दिया और रड्डा की ओर देखा।"

'लोकियो, सुनो। मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।'

"लोकियो ने कन्धा हिलाया, जैसे उसके हाथ-पैर बँधे हों।"

'मैंने बहुत-से लड़के देखे हैं, परन्तु तुम सभी से सुन्दर और बहादुर हो। दूसरे को अगर मैंने देखा होता, तो मूछें मुड़ा लेते और कहती तो पैरों में गिर पड़ते। वे मेरे किस काम आते ? दुनिया में बहुत कम बहादुर जिप्सी हैं। बहुत कम लोकियो ! किसी को मैंने पहले प्यार नहीं किया, तुम्हें प्यार करती हूँ। फिर भी मुझे आज़ादी प्यारी है, तुमसे अधिक प्यारी है। किन्तु तुम्हारे विना मैं नहीं रह सकती, जैसे मेरे विना तुम नहीं रह सकते। और इसी से मैं चाहती हूँ, तुम तन-मन-धन से मेरे हो जाओ। सुनते हो ?'

वह हँसा—'सुनता हूँ ! मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। कहती चलो।'

'मुझे इतना कहना है, लोकियो; तुम चाहे जो करो, मैं तुम्हें अपना बनाकर छोड़ूँगी। इसलिए मेरी सलाह है, समय मत खोओ। मेरे चुम्बन और आलिंगन तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरी बाहुओं की गर्मी में तुम साहसी जीवन भूल जाओगे और

तुम्हारे गीत, जो जिप्सी लोगों को इतने पसंद हैं, स्टेपी में और नहीं गूँजेंगे। तुम मुझे, अपनी प्यारी रड्डा को ही केवल प्रेम के गीत सुनाओगे। इसी से कहती हूँ—समय मत जाने दो। जैसा कहती हूँ, करो। कल तुम मुझे समर्पण कर दोगे। तुम कैम्प-भर के सामने मेरे पैरों पर गिरोगे, मेरा दाहना हाथ चूमोगे और तब मैं तुम्हारी स्त्री हो जाऊँगी। तो शैतान लड़की यह चाहती थी। अचरज था! पुराने समय में ऐसा कभी हुआ हो, परन्तु जिप्सियों में कभी नहीं। स्त्री की अधीनता ऐसे मज़ाक का तुम ध्यान कर सकते हो?"

"लोकियो उठ खड़ा हुआ और उसने चीख़ दी, जैसे उसके हृदय में गोली लगी हो। रड्डा काँप गई, परन्तु उसने साहस न खोया।"

'कल तक के लिए विदा। कल तुम करोगे, जैसा मैंने कहा है। सुनते हो, लोकियो?' 'सुनता हूँ। ऐसा ही करूँगा'—जोवर ने गहरी उसाँस ली और अपना हाथ उसकी ओर बढ़ाया। परन्तु वह मुड़ गई। आँधी से उखड़े हुए पेड़ की तरह वह काँप उठा, पृथ्वी पर गिर गया, रोने और हँसने लगा।

"बड़ी कठिनता से मैं उसे होश में लाया।"

कैम्प लौटकर मैंने बूढ़ों से सब कुछ कह सुनाया। वे सोचते रहे और अन्त में तय किया कि होनहार देखें। और हुआ यह! दूसरी शाम जब हम आग को घेरे बैठे थे, लोकियो हमारे पास आया। हमें देखे बिना उसने कहा—'सुनो, साथियो! मैंने अपना हृदय टटोल लिया है। वहाँ रड्डा का निवास है, वह रानी-जैसी हँस रही है। मेरी आज़ादी वहाँ नहीं है। वह मुझसे अधिक अपनी स्वतंत्रता को प्यार करती है और मैं अपनी स्वतंत्रता से अधिक उसे। मैंने तय किया है कि उसके क़दमों पर गिरूँ। उसने मुझे ऐसी ही आज्ञा दी है। तुम देखो कि आज़ाद लोकियो जोवर को उसकी सुन्दरता ने कैसा फाँसा है। फिर वह मेरी स्त्री हो जायगी और मुझे न तुम्हें गाना सुनाने की इच्छा होगी, न अपनी आज़ादी खोने का दुःख प्रकट करने की। ठीक कहता हूँ न, रड्डा?'—आँख उठाकर उसने बड़ी करुणा से उसे देखा। उसने उत्तर नहीं दिया, सिर को बेतरह हिलाया और पैरों की ओर इशारा किया। हम दुःख और आश्चर्य से देखते थे, समझते कुछ भी न थे।

'तो?' रड्डा ने जोवर से कहा—'पड़, जल्दी न करो! काफ़ी समय है। आज तुम्हारी शान रहेगी'। लोकियो हँसा। जैसे तलवारें लड़ती हों, उसकी हँसी की आवाज़ थी।

'तो, कामरेडो, यही कहानी है। मेरे लिए क्या रहा है? यही कि देखूँ, रड्डा का हृदय इतना कठोर है, जितना उसने दिखलाया है। और यहीं देख रहा हूँ। कामरेडो, क्षमा करना।' और जोवर क्या करेगा, हम जानें, इसके पहले ही हमने देखा—रड्डा ज़मीन पर तड़पने लगी और उसके हृदय में लोकियो का मुड़ा हुआ चाक़ू बेंटे तक घुसा था। हमें जैसे लकवा मार गया!

"परन्तु रड्डा ने चाक़ू खींच निकाला, एक ओर फेंक दिया, खुले हुए व्रण पर अपने काले बालों की एक लट दबा दी और ज़ोर से साफ़-साफ़ कहा—'विदा लोकियो, मैं जानती थी, तुम ऐसा करोगे।' और इन शब्दों के साथ उसने प्राण त्याग दिये।"

"समझ सकते हो कैसी लड़की थी वह? 'और अब मेरी गर्वीली रानी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ूँगा'—लोकियो चिल्लाया और उसकी आवाज़ स्टेपी में गूँज गई। वह ज़मीन पर लोट गया, मृत रड्डा के पैरों पर उसने होठ चिपका दिये और बिना हिले-डुले पड़ा रहा।"

"हमने टोपियाँ उतार ली थीं और दोनों को घेरे खड़े थे।"

"अन्त में नूर ने कहा—'हमें उसे बाँधना चाहिए।' परन्तु वह जानता था, लोकियो जोवर को पकड़ने के लिए एक भी हाथ न उठता। डनीला ने रड्डा का फेंका हुआ चाक़ू उठा लिया और बड़ी देर



तक उसे देखता रहा। उसके होंठ काँपते थे। लड़की का ख़ून फल पर अब भी गर्म था। डनीला जोवर के पास गया और उसकी कमर में ठीक दिल के ऊपर उसने चाक़ू घुसेड़ दिया। फिर वह रड्डा का बाप ही तो था।"

"लोकियो ने डनीला की ओर मुड़कर बजती हुई आवाज़ में कहा—'शाबास! और वह रड्डा की बग़ल में लुढ़क रहा और उसकी आत्मा संसार से उड़ गई।"

"हमारी आँखों के सामने रड्डा पड़ी थी। उसका हाथ लट को सीने पर दबाये हुए था, उसकी बड़ी बड़ी आँखें आकाश को ताकती थीं और उसके पैरों पर लोकियो जोवर की सुन्दर देह पड़ी थी।"

"हम विचार में खोये खड़े रहे। बूढ़े डनीला की भूरी मूछें हिल उठती थीं और उसकी नीली आँखें भयानक हो रही थीं। वह आसमान की ओर देखता था, एक शब्द भी नहीं कहता था।"

"अच्छा, ख़ुदा-हाफ़िज़—दोस्त, चलते-फिरते रहो। एक जगह रहे तो सड़ोगे। यही है।—"

माकर रुक गया, पाइप को उसने झोले में डाला। लबादे की परत सीने पर। पानी पड़ रहा था, झंझावात बढ़ता था और लहरें गंभीर शब्द करती किनारों से टकराती थीं। एक-एक करके घोड़े बुझती आग के पास चले आये थे और घेरा बनाये बड़ी-बड़ी समझदार आँखों से हमें देख रहे थे।

'हॉप, हॉप, एहियो!'—माकर ने उन्हें बुलाया और जब वह अपने प्यारे जानवर की गरदन थपथपा रहा था, उसने मुड़कर मुझसे कहा—'अब सोने का समय है!' लबादे से सिर ढककर वह धरती पर फैल गया और शीघ्र ही सो गया, परन्तु मुझे सोने की चाह नहीं थी। मैं अँधेरे के पार उमड़ते समुद्र की ओर देख रहा था और मुझे रड्डा का सुन्दर और गर्वीला और रानी-जैसा आकार दिखाई पड़ता था। वह अपने काले बालों की एक लट अपने हाथ से पकड़कर व्रण पर दबाये थी और उसकी पतली नाज़ुक उँगलियों में से उसकी छाती का ख़ून बहकर बूँद-बूँद पृथ्वी पर गिरता था, जैसे जलते हुए तारे टूट रहे हों।

और उसके पीछे, सटा हुआ था बहादुर लोकियो जोवर। उसका मुँह घने, काले बालों से ढका था, जिनके पीछे बड़े-बड़े आँसू झरने से झरते थे।

पानी और ज़ोर से पड़ने लगा और हवा लोकियो जोवर और रड्डा की सुन्दर जोड़ी का 'मरसिया' गाने लगी और वे दोनों छाया-मूर्तियाँ रात के अन्धकार में एक दूसरे के चारों ओर चक्कर देती थीं, परन्तु गायक लोकियो गर्वीली, सुन्दरी रड्डा को कभी पकड़ नहीं पाता था....



बदला

ए० आई० फ्रान्सिस

इतिहास में ऐसी घटनाएँ बहुत हैं, जिनसे हमें बलिदान के दृष्टान्त मिल सकते हैं। आनन्द, शान्ति और स्वतंत्रता और कभी-कभी जीवन भी सहृदयता से प्रेम की वेदी पर चढ़ गया है, परन्तु इतिहास ऐसे दृष्टान्तों से भी ख़ाली नहीं, जिनसे जान पड़ता है कि बदले की भावना में मानवीय हृदय क्षमा और स्नेह के विचारों से एकदम रिक्त हो गया है।

नेपोलियन के समय की घटना है। उसने स्पेन और पुर्तगाल को अपने राज्य में मिलाकर योरप का एकछत्र सम्राट् बनने की चाह में लड़ाई का ऐलान कर दिया था। इटली के उस छोटे-से गाँव के निवासियों ने फ़्रांसीसी फ़ौजों की निर्दयता की कहानियाँ सुन रक्खी थीं। उन्हें ज्ञात था कि ये लोग विजित देशों को किस तरह तबाह करते हैं, कैसे घरों को लूटते हैं, मकानों को जला देते हैं और रहनेवालों को मार डालते हैं। गाँव के सब लोग इकट्ठे हुए और उन्होंने बहुत कुछ कहने-सुनने के बाद तय किया कि बजाय इसके कि हम अपना माल-मता और ग़ल्ला शत्रुओं के लिए छोड़ दें, यह अच्छा होगा कि हम गाँव को तबाह कर दें। उनके पास बहुत कम समय था, परन्तु वे दृढ़ता से काम में लग गये और थोड़ी ही देर में उन्होंने उस बस्ती को उजाड़ बना दिया। जिन मकानों को लोगों ने अभी-अभी छोड़ा था, उनकी छतें एक-एक करके पृथ्वी पर आ रही थीं और उनमें से आग की लपटें और धुँआ निकल रहा था। अंगूर की बेलें, जिन्हें बड़ी सावधानी से पाला गया था और जो उस स्थान की सुन्दरता बढ़ा रही थीं, जड़ों से उखाड़कर रख दी गईं। अभी कल की बात है कि पहाड़ी ढालों पर अंजीर के पेड़ अपनी बहार दिखा रहे थे, परन्तु आज उनकी टहनी-टहनी अलग थी। बच्चों की मीठी-मीठी बातों की आवाज़ कहीं न आती थी। परिन्दे भी अपने सुरीले गीत गाते डरते थे। सिवा जलती हुई लकड़ी की कड़कड़ के और उस छोटी-सी नदी के शोर के, जो पास ही टूटे हुए दिलों और उजड़े मकानों से अचिंत बहती चली जाती थी, चारों ओर नीरवता छाई थी।

परन्तु एक कुटिया में, जिसका आधा भाग सड़क पर खड़े होनेवालों की दृष्टि से ओझल रहता था, जीवन के कुछ चिह्न शेष थे। यह एक किसान की कुटिया थी, जो इस समय बीमार होने के कारण लोगों के साथ गाँव नहीं छोड़ सका था। उसकी आनन्द की ज़िन्दगी के तीन वर्ष इसी कुटिया में बीते थे, परन्तु कुछ क्षणों के बाद अब इस पृथ्वी पर किसी घर की आवश्यकता नहीं रहेगी। यदि प्रेम की सुश्रूषा उसके रोग को दूर



हर सकती तो वह कभी का दूर हो गया होता; क्योंकि उसकी स्त्री उसके प्रत्येक शब्द और प्रत्येक इशारे पर काम करने के लिए हर समय उसके सिरहाने खड़ी रहती।

उसने कहा—"थेरेसा, मेरी प्यारी! तुम यहाँ क्यों रहो, जब तुम मुझे मौत के चंगुल से नहीं बचा सकतीं। यदि मुझे विश्वास हो जाय कि तुम नेपोलियन के जंगली सिपाहियों के अपवित्र हाथों से सुरक्षित हो गई हो तो मैं बड़े संतोष से जान दूँगा। जाओ, और अपने लिए और हमारे प्यारे बच्चे के लिए कहीं और घर ढूँढ लो।"

थेरेसा ने उत्तर दिया—"मेरे सरताज, यह कैसे हो सकता है? मैं तुम्हें कैसे छोड़ सकती हूँ। संभव है, सिपाही आयें और उन्हें हमारी कुटिया दिखाई न पड़े; क्योंकि इसका बहुत-सा भाग सड़क पर चलनेवालों की दृष्टि से ओझल रहता है। संभव है कि हम सब उनकी निर्दयता से बच जायँ।"

सुनसान गाँव पर अँधेरा छा रहा था कि मार्च करते हुए पाँवों की आवाज़ ने ख़ामोशी को तोड़ा। फ्रांसीसी सिपाही खाने और आराम की खोज में घूम रहे थे। धूप की गर्मी में चलते-चलते उनके पैरों में छाले पड़ गये थे, परन्तु जब पास ही उन्हें गाँव दिखाई दिया तो वे उछल पड़े। परन्तु रंग-ढंग से उन्हें पता लग गया कि वहाँ क्या गुज़री थी। इस दृश्य को देखकर उनकी बची आदमीयत पशुत्व में बदल गई। जिस खाने की उन्हें बड़ी आवश्यकता थी, वह उनके पैरों के नीचे ख़ाक में रौंदा जा रहा था और इतने अंगूर, जो उन सबकी प्यास बुझा देने के लिए काफ़ी थे, सड़क के गढ़ों में मसले पड़े थे। उन्होंने क़सम खा ली कि एक आदमी भी मिला तो अपने दिल की भड़ास उस पर निकालेंगे। उन्होंने गाँव का कोना-कोना छान डाला, यहाँ तक कि बीमार किसान की कुटिया में उनको जीवन के कुछ चिह्न दिखाई पड़े।

सिपाहियों के अफ़सर ने खटखटाये बिना दरवाज़े को एक धक्का देकर खोल दिया। थेरेसा सामने खड़ी थी। सिपाहियों को देखकर वह अपने पति के बिछौने के आगे खड़ी हो गई, जिससे उसको उनकी ख़ूनी आँखों से बचा ले। परन्तु एक सैनिक ने बढ़कर उसे धक्का दे एक ओर गिरा दिया और तलवार के एक ही वार से उसके पति को उसकी आँखों के सामने मार दिया।

कोई शब्द उस वेदना की अभिव्यक्ति नहीं कर सकता, जो उसके प्रलाप से प्रकट हो रहा था। वह अपने प्यारे की लाश को गोदी में ले आँसू बहा रही थी, परन्तु सिपाहियों ने इसकी परवा नहीं की। प्रेम और सहृदयता उनके हृदयों से कभी की विदा हो चली थी। उन्होंने घसीटकर उसे लाश से अलग कर दिया और आज्ञा दी कि तुरंत खाने की चीज़ें लाये।

थेरेसा को ऐसा जान पड़ता था कि जैसे वह एक डरावना स्वप्न था। वह वेदना और दुःख की मूर्ति बनी कुछ इस तरह घूम रही थी कि जंगली फ़ौजियों को भी भय लगता था। उसने सब सामान लाकर उनके सामने रख दिया और फिर अपने बच्चे को, जिसे वह इस मुसीबत में भूल गई थी, गोद में लेकर थपकाने लगी। बच्चा सो गया।

वह उनके खाने-पीने की चीज़ों में बड़ी तत्परता से चुपचाप लगी हुई थी। फ़ौजी उसकी ओर देख रहे थे और उसकी ख़ामोशी और संतोष उन्हें खाये जा रहे थे। उसने खाना लाकर उनके सामने चुन दिया। वे बुतों की तरह बिना हिले-डुले बैठे रहे। किसी को साहस न हुआ कि एक कौर लेकर मुँह में डाल ले।

अंत में थेरेसा बोली—"तुम खाने की ओर क्यों घूर-घूरकर देख रहे हो। जो तुमने माँगा, मैंने तुम्हें दे दिया। जितना तुम्हारा जी चाहे, खाओ और रास्ता नापो। मेरा पति मर चुका है! आह! तुमने उसे उस समय मारा, जब वह तुम्हारी कायरता और नीचता का सामना करने योग्य न था। जाओ, मैं



एकान्त में उसकी मौत पर आँसू बहाना चाहती हूँ! आह!"

उसके मुँह पर घृणा की हँसी आई और फिर उसने कहा—"मैं समझती हूँ शायद तुम इसलिए देर करते हो कि तुम्हें प्याले में ज़हर मिला होने का भय है। लाओ, इस शराब का पहला प्याला मैं पिये लेती हूँ, जिससे तुम निश्चित हो जाओ।"

उसने हाथ बढ़ाकर एक प्याला उठा लिया और पीने जा रही थी कि फ़ौजी सरदार ने उसका हाथ रोक लिया।

उसने कहा—"मा की मुहब्बत जान की मुहब्बत से कहीं ज़्यादा होती है, इसलिए यह प्याला बजाय अपने मुँह से लगाने के अपने बच्चे के मुँह से लगाओ।" एक ज़हर-भरी मुस्कान के साथ परन्तु क्षण भर रुके बिना उसने अपने बच्चे को जगाया और प्याला उसके होठों से लगाकर दो-चार घूँट पिला दिये। जब वह इस परीक्षा में पूरी उतरी तो उन्होंने निडर होकर खाना पीना शुरू किया। उनकी भूख-प्यास दबी तो उनकी बेहूदा क़समों और हँसी-ठट्ठों ने सारे कमरे को सिर पर उठा लिया।

परन्तु सहसा बच्चे की चीख़ की आवाज़ें उनके कानों में पड़ीं। उन्होंने जान लिया कि उनकी मौत का घंटा बज रहा है। जिसके हाथ में जो कुछ था, उसने वहीं फेंक दिया। वे सबके सब थेरेसा पर टूट पड़े और क्रोध में भरकर पूछने लगे—"यह तूने क्या किया?"

"मैंने क्या किया?"—थेरेसा ने चिल्लाकर कहा—"मैंने तुम्हारे साथ वही किया जो तुमने मेरे पति के साथ किया, जिसे मैं जान से अधिक प्यारा रखती थी और मैंने अपने प्यारे बच्चे को, अपने कलेजे के टुकड़े को, उसकी हत्या का बदला लेने के लिए बलि कर दिया है। जीवन मेरे लिए कुछ क़ीमत नहीं रखता, इसलिए तुम्हारा जो जी चाहे, करो। मैं जानती हूँ, तुम मुझे मार डालोगे, परन्तु मैं यह भी जानती हूँ कि तुम भी किसी पति की पत्नी का हृदय तोड़ने के योग्य न रहोगे क्योंकि कोई घड़ी जाती है और तुम मुरदा हो जाओगे।

बुढ़ापा

हेनरी बारबोरस

जोड़कर उन दोनों की उम्र एक सौ पचास वर्ष थी। उनकी अलग-अलग उम्रें उनमें से एक को भी मालूम नहीं थी। बहुत समय से उन्होंने अपनी आयु के वर्षों को अलग-अलग गिनना छोड़ दिया था और अब वे प्रत्येक वर्ष जोड़ में दो वर्ष बढ़ा देते थे।

उस छोटे-से देहाती घर में, जिसकी छत किसी परिन्दे के परों की तरह फैलती हुई दीवारों के आगे बढ़ गई थी, उन्हें रहते हुए कितने ही दिन, कितनी ही ऋतुएँ, कितने ही वर्ष हो गये थे। यदि आज उनसे कोई कहता—तुम सदा से पति-पत्नी नहीं हो तो उन्हें बड़ा आश्चर्य होता। अतीत के दिनों की उनके मुँह पर हल्की-सी झलक थी और उनकी शक्लों में बहन-भाइयों से बढ़कर मेल था। जब गाँव के लोग इस बुढ़ापे में भी उनकी यह मुहब्बत देखते तो वे यह विचार करने लगते कि यदि इनमें से एक दुनिया से उठ गया तो दूसरे के लिए यहाँ का एकान्त असहनीय हो जाएगा। दोनों बूढ़े-बुढ़ियों के लिए जाड़ा बड़ा बुरा पड़ा। उसने उनके बदन पर कठोरता से असर डाला, उनकी कमर को थोड़ा तोड़ दिया और उनके गालों में गढे डाल दिये। वह अपनी आँखों के आगे धुँधला-सा परदा देखने लगा और वह कभी-कभी बेहोश हो जाया करती। जब बहार आई तो छाया में रहना उन्हें अच्छा नहीं लगा और धूप की खिलखिलाहट बेमज़ा जान पड़ी। ज़िंदगी उन्हें बोझ हो गई। सुबह से शाम करना एक जान-लेवा मुसीबत से कम न रहा।

एक दिन जब वह पिछले दिन की तरह, बल्कि उससे भी अधिक शिथिल अपने घर के आगे बैठा था, उसकी पत्नी खरहों के लिए घास लाने बाहर निकली। ज्यों ही उसने जँगले के फाटक को पार किया, उसकी साँस का आना-जाना बंद हो गया। वह पहली मंज़िल थी। वह फिर आगे बढ़ी। उस जगह से, जहाँ वह अच्छे बच्चे की तरह बैठा था, बुड्ढे की धुंधली आँखें अपनी पत्नी को देख न सकीं, परन्तु उसने उसके पैरों की आवाज़ सुन ली। उसने आँखें बन्द कर लीं, जिससे वह उसे अपनी कल्पना में जाते हुए देख सके।

जब वह गली के मोड़ पर पहुँची, उसने अपनी आँखें एक बार ज़ोर से खोलीं और फिर एकदम गिर पड़ी। उसके मुँह से कोई आवाज़ नहीं निकली और वह हिली-डुली नहीं।

एक राही वहाँ ठहर गया। एक लड़की उछलती-कूदती आ खड़ी हुई। पहले एक, फिर एक



और स्त्री आई। लोग उसे एक दूकान में उठा ले गये। उन्होंने देखा—वह मर चुकी है।

घर ख़ाली हो गये। दूकान और आस-पास भीड़ हो गई। तीन कुर्सियाँ जोड़कर बुढ़िया को उन पर लिटा दिया गया। उसका पीला और कुछ बिगड़ा हुआ चेहरा देखकर डर लग रहा था।

किसी ने कहा—बूढ़े को ख़बर देनी चाहिए।

एक दूसरे ने कहा—नहीं। उसे नहीं। पहले उसकी बहू को बताना चाहिए। वह सामने खड़ी है—ओ मारगेरेट।

वह आई, कुरूप और बावली-सी। उसके झुके हुए कन्धों से उसका ढीला कपड़ा लटक रहा था और उसके गाल कड़ी और सूखी रोटी की तरह सिमड़े थे।

जब उसने अपने पति की, जिसे मरे अब एक ज़माना हो चला था और जिसे अब वह लगभग भूल चुकी थी, मा की लाश को देखा, वह सिर से पाँव तक काँप गई। उसके होंठ सफ़ेद हो गये और उसके चौड़े-चकले मुँह में उसकी आँखें घूमने लगीं। उसने नाक को सकोड़ते हुए अपनी आस्तीन से उसे पोंछा और हल्के से कहा—"आह इसका बेचारा पति!"

किसी की ओर देखे बिना वह अजब बेढंगेपन से भीड़ की ओर मुड़ी और कहने लगी—"बुढ़िया की मौत की ख़बर उसे कोई न सुनाये। मैं उसे ख़ुद बताऊँगी। और उसने अपने मुँह को प्रार्थना के ढंग पर घुमाया।"

इसके बाद एक-एक करके लोगों ने जाना शुरू किया, यहाँ तक कि ज़रा-सी देर में सारी भीड़ छँट गई।

मारगेरेट लाश को उठवाकर बिस्तर पर ले गई। फिर जल्दी से कमरे का दरवाज़ा बन्द कर बूढ़े के पास पहुँची। वह प्रतीक्षा कर रहा था।

लकड़ी का फाटक खुला तो उसकी आवाज़ से चौंककर उसने अपना सिर ऊपर उठाया।

मारगेरेट ने कहा—"मैं हूँ, बाबा!"—वह बुत की तरह बैठ गया।

"आओ, बाबा, घर चलने का समय है!"

उसने एक आह की और उठ खड़ा हुआ और फिर एक आह की। उसके हाथों को आगे की ओर फैलाकर हिलाना शुरू किया। उसके चेहरे में कोई चीज़ चमकती हुई दिखाई देती थी।

मारगेरेट ने कहा—"क्यों, क्या है बाबा?"

उसने उत्तर दिया—"मुझे दिखाई नहीं पड़ता—कोई चीज़ नहीं दीखती!"

"आह!" मारगेरेट ने कहा।

इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि यह उसकी हद की सादगी थी, जिसने उसे इतने बड़े सदमे के लिए तैयार कर दिया था कि उसकी ज़बान से इस एक शब्द के सिवा और कुछ न निकला। उसने उसका हाथ थाम लिया, जिसकी आँखें अपने साथी के छिप जाने के बाद अब देखना ही नहीं चाहती थीं।

अपने पाँवों को घसीटता हुआ वह भंडारख़ाने में पहुँचा। उसने एक कुर्सी की पीठ को छुआ और उस पर बैठ गया। उसकी साँस कठिनाई से चलती थी। वह आहें भरता, कराहता और ज्यों ही वह उसे बताने के लिए मुँह खोलती, वह चिल्लाने लगता।

"यह अब बस हो चुकीं! मेरी आँखें! आह! अभी यह दुख बदा था!"

घंटों तक वह रंज में डूबा रहा।

एक क्षण के लिए जब उसे ज़रा होश आया तो उसने पूछा—"वह कहाँ गई। ईश्वर के लिए, वह क्या कर रही है?"

दो बार की बेहोशी के बीच में उसने अपने होश ठीक किये। वह अपनी पत्नी की प्रतीक्षा



...रहा था । वह फिर बेहोश-सा हो गया । बहुत-से लोग आये । कुछ अंदर आये, कुछ खिड़कियों में से ही देखकर चले गये, परन्तु किसी को कुछ कहने का साहस नहीं हुआ । सारा दिन यों ही बीत गया और यह भयंकर हाल उसके कानों तक न पहुँच सकी । अब किसी को उसके पास आने का साहस नहीं होता था ।

कभी-कभी मारगेरेट उसके कमरे का दरवाज़ा बन्द करके अपने आँसुओं से भरे मुँह को साफ़ करती हुई उठ दौड़ती । वह बार-बार बुढ़िया को देखने के लिए जाती थी और कमरे की दो मोम-बत्तियों की धुँधली रोशनी में बुढ़िया रात की छाया में आँख से ओझल हो रही थी । वह थक-कर चूर हो रही थी, परन्तु बराबर भाग-दौड़ में लगी थी । वह बड़े साहस से मुसीबत का सामना कर रही थी । वह अच्छी तरह जानती थी कि उसे क्या करना चाहिए—वह, जो साकार शोक थी, वह, जिसे थकने की आदत हो चुकी थी !

शाम और रात के बीच वह एक बार फिर उसके पास पहुँची । अब उसका चित्त कुछ शान्त हो चला था । मारगेरेट ने एक छोटा-सा लैम्प जलाकर अँगीठी पर रक्खा और मन में सोचा — अब समय आ गया है कि इसे बता दिया जाय, वह जो सदा तेरे साथ रहती थी, आज तुझे छोड़कर चली गई । दुबली-पतली, कमज़ोर और काँपती हुई वह उसके सामने खड़ी हो गई । उसका सिर इस तरह झुक रहा था, जैसे वह किसी बात पर शरमाती हो । उसने अपनी शक्तियों को एक तरह इकट्ठा किया, जैसे वह चिल्लाने चली हो । परन्तु उसकी ज़बान लड़खड़ा गई और उसने कहा—"अब वह कभी—लौटेगी नहीं—कभी नहीं—वह चली गई ।"

बूढ़ा चुप रहा । मारगेरेट ने सिर उठाकर देखा तो वह मुस्करा रहा था—और सो रहा था । वह वहाँ से हट गई और बड़ी सावधानी से कमरे की चीज़ें ठीक करने लगी । सहसा वह हिला और उसने उसे बुलाया । वह इतनी पास जा खड़ी हुई कि वह अपनी उँगलियों से उसके हाथ छू सकता था ?

"सुनो, मेरी बेटी !"—उसने कहा—"यहाँ आओ, और सुनो ! वह लौट आई है । वह यहीं है । मैंने अभी उसे वहाँ देखा है, जहाँ इस समय तुम खड़ी हो । मैं सो रहा था और सहसा मुझे जान पड़ा, वह यहीं है । उसने कमरे की चीज़ों को ठीक किया, फिर चली गई । मैं जान-बूझकर चुप बैठा रहा । सुनो, मैं नहीं चाहता, उसे जान पड़े कि मैं देख नहीं सकता; मैं नहीं चाहता—उसे बड़ा दुख होगा; मैं नहीं चाहता—। उसे उस समय तक दूर रक्खो, जब तक मैं फिर अच्छा न हो जाऊँ, किसी तरह, बेटी ।"

उसने आसन बदला तो कुर्सी में से कराहने की आवाज़ उठी । "उसे ले जाओ । एक या ज़रूरत हो तो कई दिनों के लिए उसे कहीं ले जाओ । उससे कहो—उसे ले जाओ—"

"अच्छा, बाबा, मैं उसे ले जाऊँगी । मैं समझती हूँ, वह तुम्हारी बीमारी की बात जान नहीं सकेगी । मैं शपथ खाकर कहती हूँ, वह जान न सकेगी !"

बूढ़े पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा । उसने कहा—"तू बड़ी अच्छी लड़की है ।" वह फिर चुप हो रहा !

दूसरे दिन मारगेरेट ने एक झूठी कहानी बना-कर सुना दी कि बुढ़िया को रिश्तेदार घर लिवा ले गये हैं । पहले वह छोटे बच्चे की तरह आश्चर्य से सुनता रहा । जब उसने समाप्त कर लिया, उसने कहा—"परन्तु वह फिर लौट आई है । कल रात को सोते में मैंने उसकी आवाज़ सुनी थी ।"



मारगेरेट ने नरमी से कहा—"हाँ, हाँ, वह आ गई थी।"

इस तरह दो दिन गुजर गये। बुढ़िया के दफ़न होने के दूसरे दिन जब डाक्टर बूढ़े विक्टर को देखने आया तो उसने आशा के विरुद्ध कहा—"हालत अच्छी है। बुख़ार उतर चुका है और गरमी कम हो रही है। कल वह देखने लगेगा।"

उसके हवास जाते रहे थे। वह एक कोने में दुबकी बैठी थी।

"हाँ, कल—कल!" अपनी आत्मा की गहराई में मारगेरेट ने भी इस शब्द को एक बार दुहराया—कल!

कल वह अपनी आँखें खोलेगा, और फिर, आँखों के होते हुए भी वह उसे देख न सकेगा। कल अपनी चुप्पी के कारण मारगेरेट के हृदय में और उसके शिथिल-से सम्बन्ध में एक झटका लगेगा, बोलने पर भी शायद जो सुरक्षित नहीं रहता। यही जीवन का नियम है। जीवन में सदा ऐसा काल आता है, जिसका अन्त अच्छा नहीं होता और शान्ति और आशा की एक सुबह, जो कभी किसी एक को मिलती है, हमेशा किसी दूसरे के लिए शाम का सन्देश लाती है!



उपहार

अनुवादक, श्रीब्रह्मस्वरूप गुप्त

लेखक, ओ० हेनरी

(१)

एक डॉलर और ८७ सेन्ट। बस उसके पास यही सब कुछ था। इसमें भी ६० सेन्ट की पेनियाँ थीं। ये पेनियाँ बिसाती से, कुँजड़े से और [illegible] बेचनेवाले से लड़-झगड़कर एक-एक करके उसने बचाई थीं। डोरा ने उन्हें तीन बार गिना। एक डॉलर और ८७ सेन्ट। और कल ही तो बड़ा दिन है!

डोरा को रुलाई आ गई। उसकी समझ में नहीं आता था कि वह क्या करे। निराश हृदय से वह एक पुराने फटे सोफ़े पर बैठ गई। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से आँसू गिर रहे थे। जीवन का प्याला मधु से भरा है या विष से?

डोरा के पति का नाम था जेम्स यंग। जब उसे ३० डॉलर प्रति सप्ताह मिलते थे, तब उसने ८ डॉलर प्रति सप्ताह पर एक कमरा किराये पर ले रक्खा था। अब उसकी आमदनी २० डॉलर की रह गई है और बाक़ी १२ डॉलर में मुश्किल से ही गुज़ारा होता है। प्रत्येक शनिवार की सन्ध्या को वह अपने घर आता और तभी डोरा अपने चुम्बनों से और प्रेमभरी मुस्कान से अपने पति का स्वागत करती। उस समय वे दोनों भूल जाते कि वे ग़रीब हैं। क्या प्रेम-राज्य में सभी आत्मविस्मृत हो जाते हैं?

डोरा ने रोना बन्द करके अपनी आँखों और गालों को रूमाल से पोंछ डाला। फिर वह एक खिड़की के पास आकर खड़ी हो गई और बाहर की ओर देखने लगी। महीनों से एक-एक सेन्ट करके वह सिर्फ़ इतना ही बचा पाई थी। उसकी आँखों में एक बार आँसू फिर छलछला आये। २० डॉलर में होता ही क्या है। ८ डॉलर तो किराये के ही निकल जाते थे। ४ डॉलर ऐलिस के पास भेजना होता है। फिर कभी भोज इत्यादि भी लगा रहता है। यों ही सप्ताह भर में सब चुट-पुट हो जाता है। डोरा को याद आया, उसके पास केवल एक डॉलर और ८७ सेन्ट हैं। इससे वह अपने पति के लिए एक उपहार ख़रीदना चाहती है। ओह! केवल एक डॉलर और ८७ सेन्ट में! वह सोचती है एक अत्यन्त सुन्दर और बहुमूल्य उपहार। इसी कल्पना में विभोर होकर वह वहीं खड़ी की खड़ी रह गई।

डोरा अपने पति को प्यार में कहती थी—जिम।

डोरा ने नीचे झाँका। सभी प्रसन्नमुख इधर से उधर दौड़े जा रहे हैं। कल ही तो बड़ा दिन है। सभी के पास कुछ न कुछ चीज़ उपहार में देने के लिए है। और वह? उसे फिर ख़्याल आया कि उसके पास केवल १ डॉलर और ८७



सेन्ट हैं। इतने में अच्छा उपहार कैसे मिल सकता है। यदि २० डॉलर और होते तो ?

डोरा ने देखा कि उसके लम्बे केश खुलकर घुटनों तक फैल रहे हैं। उसने हाथों से फैलाकर देखा, वे केश कितने लम्बे थे। घुटनों से भी नीचे काले बालों ने डोरा के लिए एक नवीन आवरण तैयार कर दिया था। एकाएक उसकी आँखों में एक ज्योति चमक पड़ी, पर दूसरे क्षण ही उसके चेहरे पर विषाद-कालिमा की गहरी छाप लग गई। उसने काँपते हुए हाथों से अपने बालों को लपेटकर जूड़ा बना लिया। पुराने लाल क़ालीन पर दो गर्म बूँदें टपाटप गिर पड़ीं।

पति पत्नी के पास दो ऐसी वस्तुएँ थीं, जिन पर उन दोनों को नाज़ था। जिम के पास एक सोने की घड़ी थी, जिसे वह प्राणों से भी ज़्यादा प्यार करता था। वह उसके पितामह ने ख़रीदी थी और उसके पिता की यही एकमात्र निशानी थी। डोरा को अपने बालों पर गर्व था। वह प्रायः उन्हें खोलकर शीशे में देखा करती और अपने आप ही उन पर मुग्ध होती थी। सुन्दर चिकने और काले लम्बे बालों में वह बार-बार कंघा करती और मन ही मन प्रसन्न होती थी। ये ही उस दम्पति के पास दो ऐसी वस्तुएँ थीं, जिन पर उन्हें गर्व था।

(२)

पुरानी जाकट और पुराने टोप को पहनकर डोरा शीघ्रता से घर से निकली। उस समय भी उसकी आँखों में आँसू भरे थे। घर से सीधी चलकर वह एक दूकान पर ठहरी, जहाँ पर बालों की बनी हुई हर प्रकार की चीज़ें मिलती थीं। दूकान में घुसकर हाँफते हुए डोरा ने पूछा—

"आप मेरे बाल ख़रीदेंगी ?"

"हाँ, मैं बाल ख़रीदती हूँ। आप अपना टोप उतारें, जिससे मैं बालों को देखकर दाम लगा सकूँ।"

और नागिन से बाल नीचे लटक पड़े।

अपने अभ्यस्त हाथों से उठाते हुए दूकान की स्वामिनी ने कहा—"तुम कितना चाहती हो ?"

"जितना भी मिल जायगा।" उसे शंका थी कि वह जिम के लिए उपहार भी ले सकेगी या नहीं।

"मैं २० डॉलर दे सकती हूँ।"

"बहुत अच्छा ! शीघ्रता कीजिए। मुझे एक काम से जाना है।"

और दो घंटे के भीतर ही वे गुलाब की पंखड़ियाँ नीचे झड़ पड़ीं....अपने जिम के उपहार के लिए डोरा ने अपना ख़ज़ाना लुटा दिया। डोरा बिलकुल प्रसन्न थी।

(३)

आख़िर उसे एक चीज़ मिल ही तो गई। वह सोचने लगी—"निश्चय ही यह मेरे जिम के उपयुक्त है।" उतनी अच्छी चीज़ उसे और कहीं नहीं मिल सकी थी। वह एक प्लेटिनम की बनी हुई चमकदार और चित्ताकर्षक घड़ी की चेन थी, जिस पर किसी तरह का गँवारू काम नहीं बना था। "इस चेन को घड़ी में लगाकर जिम हर सोसाइटी में घड़ी निकालकर समय देख सकता है। इस चेन को देखकर जिम कितना प्रसन्न होगा और....और यह बड़े दिन की भेंट।" डोरा ने उसका २१ डॉलर मूल्य चुकाया और बाक़ी ८७ सेन्ट लिये हुए कल्पना की लहरों में डूबती-उतराती वह घर लौट आई। "ओह जिम ! वह सोने की घड़ी इस चेन के साथ कितनी सुन्दर मालूम होगी। उसे चमड़े का फ़ीता लगाते लज्जा सी मालूम होती थी।"

घर पहुँचकर डोरा की ख़ुमारी उतरी। उसने घुँघराले बाल बनानेवाली सलाइयाँ निकालीं और गैस जलाकर कटे हुए बालों को धीरे-धीरे घुँघराने लगी। ४० मिनट में उसने अपने कटे हुए केश ठीक किये। अब वह ऐसी लगने लगी जैसे स्कूल से भागा हुआ कोई लड़का। वह सोचती थी—"अगर जिम मुझसे घृणा करने लगे और मुझे प्यार न....नहीं-नहीं। ऐसा नहीं हो



सकता। और भला मैं एक डॉलर ८७ सेन्ट में कर ही क्या सकती थी ?"

शाम को सात बजे डोरा ने चाय तैयार की और चपाती तैयार करने के लिए स्टोव गरम किया।

(४)

जिम सदैव ठीक समय पर आ जाता था। पर आज उसे कुछ देर हो गई थी। डोरा अपने हाथों में घड़ी की चेन को लेकर उसी दरवाज़े के पास, जिससे जिम घर में आया करता था, मेज़ के एक कोने पर बैठ गई। उसने ज़ीने पर किसी के आने की आवाज़ सुनी और एक क्षण के लिए उसका मुँह सफ़ेद पड़ गया। उसने मन ही मन प्रार्थना की, "हे भगवान् ! जिम को ऐसी बुद्धि दो कि मुझसे घृणा न करे। मुझ पर नाराज़ न...."

इतने में दरवाज़ा खुला। जिम ने अन्दर आकर दरवाज़े को बन्द कर लिया। उस दिन खूब जाड़ा था। वह काँप रहा था। ग़रीब को २२ वर्ष की आयु में ही गृहस्थी के सब झंझट झेलने पड़ रहे थे। उसको एक ओवरकोट की बहुत सख़्त ज़रूरत थी, पर उसके पास मामूली दस्ताने भी नहीं थे।

जिम घर के भीतर आया। वह डोरा की ओर निर्निमेष नेत्रों से देखने लगा। वह चकित था। उसे अपने ऊपर विश्वास-सा नहीं हो रहा था कि वह इस वास्तविक जगत् में है अथवा कोई स्वप्न देख रहा है। डोरा उसके भाव को नहीं समझ सकी। वह डर-सी गई। जिम की आँखों में न क्रोध था, न विस्मय, न घृणा थी और न कुछ ही। वह एक अजीब तरह से उसकी ओर देख रहा था, मानों वह डोरा की आँखों में कुछ ढूँढ रहा हो।

आख़िर डोरा ही उठकर उसके पास आई। और कहने लगी—"जिम, प्यारे ! इस तरह से मेरी ओर न देखो। मैंने अपने बाल कटाकर तुम्हारे लिए एक उपहार ख़रीदा है। भला मैं बड़े दिन के उत्सव पर तुम्हें विना उपहार दिये कैसे रह सकती थी ? ये तो फिर भी बढ़ जायँगे। क्या तुम नहीं जानते कि मेरे बाल कितनी जल्दी बढ़ते हैं। उहँ, क्या तुम इस बात पर मुझसे नाराज़ हो जाओगे। नहीं-नहीं प्यारे ! अच्छा ज़रा हँस दो। देखो कल बड़ा दिन है। और हाँ ! तुम्हें मालूम है, मैंने तुम्हारे लिए क्या ख़रीदा है। अच्छा बताओ तो ! मैंने—मैंने—देखो न ! मैंने तुम्हारे लिए कितनी सुन्दर, कितनी अच्छी चीज़ ख़रीदी है।"

डोरा एक ही साँस में यह सब कह गई।

"तुमने अपने बाल कटा लिये ?" जिम ने बहुत ज़ोर लगाकर कहा—उसे ऐसा मालूम हो रहा था, जैसे उसकी वाक्शक्ति ही लुप्त हो गई हो।

"हाँ ! हाँ ! प्यारे ! मैंने उन्हें कटाकर बेंच भी डाला है। क्या मैं तुम्हें अब अच्छी नहीं लगती ? विना बालों के भी तो मैं तुम्हारी वही डोरा हूँ। क्यों ?"

जिम कमरे के चारों ओर देखने लगा। उसी अवस्था में बोला—"तो तुमने....तो तुम कहती हो, तुमने अपने बाल कटा लिये।"

"अब तुम उनकी चिन्ता न करो। मैंने उन्हें बेंच भी डाला है।" डोरा ने जिम के सूखे गालों पर हाथ फेरते हुए कहा—"कल बड़ा दिन है। चलो उठो, हम लोग ख़ुशियाँ मनावें। मेरे सिर के बाल तो गिने हुए थे, पर क्या कोई मेरे प्रेम को नाप सकता है। हाँ, ला ऊँ तुम्हारे लिए चपातीं तैयार करूँ।"

और थोड़ी देर बाद—जिम ने अपने फटे ओवर-कोट की जेब से एक छोटा-सा बंडल निकाला और लापरवाही से उसे मेज़ पर डाल दिया। "मेरी पगली ! तुम ऐसा कैसे सोच सकती हो कि मैं तुमसे नाराज़ हो जाऊँगा। मेरी डोरा ! भला बाल कटने से मैं तुम्हें कम प्यार करूँगा ? पर अगर तुम इस बंडल को खोलो तो तुम्हें मालूम होगा कि बाल कटाकर तुम कैसी भूल कर बैठी हो।"

पतली और काँपती हुई उँगलियों ने बंडल पर लिपटे हुए तागे को तोड़ डाला। काग़ज़ हटा-



कर अपने लिये आये हुए उपहार को देखकर डोरा ख़ुशी से चिल्ला पड़ी, पर दूसरे ही क्षण उसकी आँखों में आँसू भर आये। वह फूट-फूट-कर रोने लगी।

वह एक अत्यन्त सुन्दर मोतियों से जड़ा हुआ कंघों का जोड़ा था। कमरे की बिजली में वह दमक रहा था। ऐसे कंघों के लिए डोरा वर्षों से लालायित थी। उसके हृदय में एक उत्कण्ठा थी और वह यह जानती थी कि उसकी आशा कभी पूरी भी नहीं हो सकती। पर जब वे कंघे उसे प्राप्त हुए तो वे बाल, जिन पर वे सज्जित होते, कट चुके थे।

पसे-मर्ग मेरी मज़ार पर जो दिया किसी ने जला दिया।
उसे आह! दामने-बाद ने सरे शाम से ही बुझा दिया॥

पर डोरा ने उन्हें प्रेम से छाती से लगा लिया और भीगी हुई पलकों को उठाकर कहने लगी—"मेरे बाल उगते भी बहुत जल्दी हैं जिम!"

जिम ने अभी तक अपना उपहार नहीं देखा था। डोरा ने हाथ बढ़ाकर अपनी मुट्ठी खोली। वह चमकदार मूल्यवान् चेन अपनी आभा को इधर-उधर बिखेर रही थी।

डोरा ने उत्सुकता से पूछा—"क्यों जिम? तुम्हें पसन्द तो है न? मैंने भी सारे शहर में ढूँढ-कर इसे ख़रीदा है। मुझे तो इससे सुन्दर और कहीं मिली नहीं। अब तुम चाहे सौ बार घड़ी निकाल कर देखना। लाना ज़रा अपनी घड़ी देना। मैं उसमें इसे लगाकर देखूँगी, कैसी लगती है।"

पर आज्ञापालन करने की अपेक्षा जिम अपने सिर के नीचे हाथ रखकर उसी फटे सोफ़े पर लेट-सा गया। उसने मुस्कराकर कहा—"प्यारी डोरा! लाओ, हम दोनों अपने-अपने उपहारों को कुछ समय के लिए उठाकर रख दें। इस्तेमाल करने के लिए अभी ये बहुत ही क़ीमती हैं। इन कंघों को ख़रीदने के लिए मैंने अपनी घड़ी बेच दी है....और हाँ तुम कह रही थीं कि चपातियाँ बनाऊँ। लाओ न?"



अमेरिका

रोमांस

ओ० हेनरी

रेवेनेल—कलाकार और कवि रेवेनेल ने पत्र पृथ्वी पर फेंक दिया। सेमी ब्राउन, जो दलाल का मुहर्रिर था और जो खिड़की के पास बैठा था, उछल पड़ा।

"क्या है, रेवी"—उसने पूछा—"समालोचक तुम्हारी चीज़ों पर चोट कर रहे हैं क्या ?"

"रोमांस का अंत हो गया"—रेवेनेल ने धीरे से कहा। रेवेनेल जब धीरे बोलता था तो साधारणत: गंभीर होता था। उसने पत्र उठा लिया, पन्ने उलटे।

"तुम्हारे जैसा असाहित्यिक भी समझ लेगा"—रेवेनेल ने गंभीरता से कहा—"लो, यह पत्र है जो कभी पो (Poe), लावेल (Lowell), ह्वाइटमेन (Whiteman), ब्रेटहार्ट (Bret Harte), ड्यू मॉरियर (Du Maurier) और लेनियर (Lanier) की चीज़ें देता था। बस, इसी से तुम समझ लोगे। इस अंक में तुम्हारे लिए इतना मसाला है—लड़ाई के जहाज़ों के कोयला झोंकनेवालों पर एक लेख, लिवरवर्स्ट (Liverwurst) बनाने की एक विधि। वॉल स्ट्रीट के Standard Preferred International Powder के व्यापार की एक कहानी, रीछ पर एक कविता (इस रीछ पर प्रेसीडेन्ट का निशाना चूक गया था), एक युवती की जिसने जासूस का काम किया है अन्य कहानी, आदि-आदि और अंत में उन्नीस पृष्ठों में सम्पादक ने पत्र के वितरण और प्रकाशन की डींग मारी है। सेमी, सब यह रोमांस विरोधी है।"

खुली खिड़की के सामने सेमी चमड़े की आसमकुर्सी पर मज़े में पड़ा था। वह भूरी चेक का सूट पहने था और उसका रंग उन चार सिगरटों की तम्बाकू से मिल जाता था जो उसकी वेस्ट की जेब से झाँक रही थीं। हल्के भूरे उसके जूते थे, ख़ाकी मोज़े, उसकी क़मीज़ आसमानी रंग की थी और उसका कॉलर बर्फ़ की तरह सफ़ेद और ऊँचा उठा हुआ था। कॉलर पर एक काली तितली उड़कर बैठ गई थी और उसने पर फैला रक्खे थे। सेमी के चेहरे में कुछ भी विशेषता नहीं थी—गोल था, अच्छा लगता था और गुलाबी रंग का था। उसकी आँखों में उड़ते हुए रोमांस के लिए कोई स्थान नहीं था।

रेवेनेल के कमरे की खिड़की पुराने वृक्षों और पेड़-पत्तों के एक बूढ़े बाग़ पर खुलती थी। यह दूसरी मंज़िल का कमरा था और मकान ईंट की ऊँची दीवार से घिरा हुआ था। खिड़की के उस पार एक बहुत पुरानी इमारत थी, जो बाहर के पेड़-पत्तों से ढकी हुई थी। इमारत क़िला थी, जिसके चारों ओर नगर ने घेरा डाल रक्खा था। नगर चीख़-चिल्लाकर उसके दुहरे दरवाज़ों पर धावा बोलता था, दीवार हिला देता था, परन्तु



क़िला किसी तरह सर नहीं होता था। अंदर एक बूढ़े सभ्य रहते थे, जो उसे प्यार करते थे और किसी भी दाम पर बेचना नहीं चाहते थे। इस घिरी हुई इमारत का इतना ही रोमांस था।

प्रत्येक सप्ताह तीन-चार बार सेमी-ब्रॉउन रेवेनेल के कमरे में दिखाई दे जाता। वह कवि के क्लब का आदमी था। उसके बाप-दादे साहित्यिक और सभ्य रहे थे, उसके कारबार ने उसे बिगाड़ दिया था, रोमांस की मौत पर वह एक आँसू भी गिरानेवाला नहीं था। रेवेनेल की खिड़की के सामने चमड़े की आराम-कुर्सी पर बैठना उसे बड़ा भाता था और रेवेनेल को उसकी उपस्थिति अखरती नहीं थी। जान पड़ता है, सेमी को बात-चीत अच्छी लगती थी। दल्लाल का यह मुहर्रिर आधुनिकता का प्रतिनिधि था और रेवेनेल उस पर अपने हृदय का बोझ उतार सकता था।

"मैं बताऊँ तुम्हें क्या हुआ है?" सेमी ने कहा—(यह कामकाजी व्यापार का ढंग उसके पेशे ने उसे सिखा दिया था)। "इस पत्र ने तुम्हारी कुछ कविताएँ लौटा दी हैं, इसी से तुम बिगड़ रहे हो।"

"वॉल स्ट्रीट या वोमेन्स क्लब की प्रेसीडेन्ट चुनने की बात होती तो कुछ ऐसा अनुमान ठीक होता—" रेवेनेल ने शान्ति से कहा—"देखो, यह कविता है—तुम कहने दो तो—इसी अंक में मेरी—"

"पढ़ो तो"—सेमी ने कहा। अभी-अभी उसने खिड़की के बाहर धुँआ छोड़ा था और उसी ओर देख रहा था।

रेवेनेल हरकुलिस से बड़ा नहीं था। कोई भी नहीं है। कमज़ोरियाँ होती ही हैं। उसने पत्र में से कविता पढ़ी—

सेमी ने दाद देते हुए कहा—"यह तो ख़ूब है।"

"पाँच छन्द और हैं"—रेवेनेल ने इतमीनान से कहा—"एक छन्द की समाप्ति पर रुकना स्वाभाविक है। सचमुच।"

"हाँ-हाँ, और सही"—सेमी ने अवहेला से चिल्लाकर कहा—"रोक दो, मेरा मतलब यह नहीं था। जानते हो, कविता मैं बहुत नहीं समझता। जो बची हैं, वह भी पढ़ दो।"

रेवेनेल ने ऊँची साँस ली। पत्र उसने नीचे छोड़ दिया। "ठीक"—सेमी ने ख़ुशी से कहा—"फिर सुनूँगा। अब जाता हूँ। पाँच बजे एक से मिलना है।"

पेड़ों में से इमारत की एक खिड़की साफ़ दिखाई देती थी। उसी खिड़की में, सफ़ेद वस्त्रों से जो उड़ रहे थे, उसके रोमांस और कविता की देवी झुकी थी! रेवेनेल ने जब उसे पहली बार देखा—वह ओस की बूँद की तरह नई थी, लता की-जैसी नाज़ुक, दीवार पर राजकुमारी-सी झुकी हुई सड़क से घिरे बाग़ की हवा ले रही थी। कवि की कल्पना के किसी भी फूल की-सी सुंदर थी वह। क्षण भर वह खड़ी रही और तब अन्दर जाकर ग़ायब हो गई। केब और बिजली की कारों की चरमराहट में उसने उसके गीत के कुछ स्वर साफ़ सुन लिये।

मानों कवि के रोमांस के प्रति व्यंग के उत्तर में और उसके यौवन और सौन्दर्य की आत्मा को जगाने के लिए उसे एक स्वप्न साकार होकर मिला हो। उसकी शक्ति इतनी उद्दाम और विनाशकारी थी कि एक ही क्षण में रेवेनेल का संसार छिन्न-भिन्न होकर अन्य रूप में परिवर्तित हो गया। उस मकान के पास से जाती हुई गाड़ियाँ जैसे प्रेम-गीत गा रही हों, अख़बार के हाकरों की जगह कोयलें चहकती हों, उपवन नन्दन वन हो, वह 'नाइट' हो, जो तलवार, भाले और बाँसुरी के साथ तैयार ही हो।

इस तरह रोमांस ईंट-पत्थरों में झलक उठता है।

शाम के चार बजे रेवेनेल ने उस पार बाग़ की ओर देखा। खिड़की में चार फूल के गमले थे, जिनमें बड़े, फूले लाल-सफ़ेद गुलाब थे। वह उन्हें देखता रहा, तभी वह उनके ऊपर आकर झुक गई और सामने कवि की खिड़की की ओर देखने लगी। उसकी गुलाब के सफ़ेद फूल फीके पड़ गये और ...

ते मिलते ही वह अन्दर चली गई । खिड़की पर सुगन्धित गुलाब रह गये ।

अवश्य ही चिह्न हैं यह । वह न समझे तो रहा । उसने उसकी "चार गुलाब" कविता ती है, वह उसके हृदय में बैठ गई है और यह सका उत्तर है । ज़रूर जानती होगी वह कि कवि वेनेल बाग़ के पार के मकान में रहता है । पत्रों में उसने उसकी तस्वीर भी देखी होगी । यह सुन्दर, भक्तिपूर्ण संदेश यों ही छोड़ नहीं दिया जा सकता ।

रेवेनेल ने देखा—फूलों के पास एक और गमला है, जिसमें एक पौदा है । उसने दूरबीन निकाली और खिड़की के पर्दों के पीछे से देखा—मटर !

ताक़ से उसने एक पुस्तक खींच ली और 'फूलों की भाषा' देखने लगा ।

"मटर........भेंट होगी ।" तो रोमांस कुछ भी अधूरा नहीं छोड़ता, वह आता है तो अपने उपहारों के साथ ! और रेवेनेल मुस्कराया । प्रेमी मुस्कराता है जब वह अपने को विजयी समझता है । स्त्री यदि मुस्काई तो विजय के साथ उसकी मुस्कराहट जाती रहती है । पुरुष का युद्ध समाप्त हो जाता है, स्त्री का आरम्भ होता है । उसको दिखाने के लिए खिड़की पर चार गुलाब के गमले रखने का विचार कितना सुंदर है । कितनी सुंदर, कवित्वमय आत्मा होगी ! अब भेंट होना है ।

घंटी हुई और किसी ने दस्तक दी । सेमी ब्रॉउन आ रहा था ।

रेवेनेल फिर मुस्कराया । परिवर्तन के प्रकाश से सेमी ब्रॉउन भी चमक उठा था ।

सेमी खिड़की के सामने अपनी जगह पर गया । बगीचे के मैले पेड़-पत्तों के पार वह देखने लगा । तब उसने घड़ी देखी और शीघ्रता से उठ गया ।

"चार बजकर बीस मिनट"—उसने कहा—"मैं रुक नहीं सकता । मित्र, साढ़े चार पर मुझे मिलना है ।"

रेवेनेल ने मज़ाक से कहा—"क्यों आये थे जी, जब तुम्हें जाना था इस समय ? मैं समझता था, तुम कामकाजी आदमी अपने मिनटों और सेकिंडों का इससे अच्छा हिसाब रखते होगे ।"

सेमी दरवाज़े में रुक गया और लाल पड़ गया ।

"बात है, रेवी"—उसने कहा—"मैं यहाँ नहीं आता तो जानता नहीं । वह ! लो, मैं तुम्हें बता दूँ—उस तरफ़ उस पुराने घर में अच्छी बच्ची है, मैं जिसे प्यार कर रहा हूँ । बुड्ढा कहता है—'नहीं', पर इससे क्या होता है ? वह उसे बंद रखता है । ऐडिथ की खिड़की यहाँ से दिखाई पड़ती है और वह जब बाहर जाती है, मुझे इशारा दे देती है । आज साढ़े चार बजे ! मुझे तुमसे पहले कह देना चाहिए था, परंतु मैं जानता था !....

"कैसे इशारा पाते हो"—फीकी मुस्कराहट लाते हुए रेवेनेल ने पूछा ।

"गुलाब"—संक्षेप में सेमी ने कहा—"आज चार हैं । मतलब है—ब्रॉडवे और ट्वेंटीथर्ड (Brodway and Twentythird) के पास चार बजे ।"

"परन्तु मटर ?"—रोमांस की उड़ती हुई चादर पकड़ते हुए रेवेनेल ने पूछने का साहस किया ।

"साढ़े"—सेमी ने बाहर जाते हुए पुकारा—"कल मिलूँगा ।"

अँगरेज़ी

झरबेरियाँ

जान गॉल्सवर्दी

प्रसिद्ध चित्रकार, सूडामोर जिसके प्राकृतिक चित्र इतने वर्षों से लोकप्रिय हो रहे थे कि वह उन दिनों को भूल गया था, जब उसके रंग आसमान के रंगों पर अवलंबित रहते थे, वहाँ खड़ा था, जहाँ उसकी चचेरी बहन उसे यों एकदम छोड़ गई थी। सुन्दर, भूरी मूछों और सुन्दर नोकदार दाढ़ी के बीच में उसके होठों पर एक जली हुई मुस्कान थी और वह फ़र्श पर गिरी झरबेरियों को शून्य रहकर ताक रहा था। यह झरबेरी की डाली वह उसे दिखाने लाई थी। जैसे उसने उसे मर्मांतक वेदना पहुँचाई हो। उसने सिर उठाकर ऊपर उसकी ओर क्यों देखा था और घूम क्यों गई थी कि झरबेरियों की डाल से चार झर पड़ीं ? उसने केवल कहा था—"सुन्दर ! मैं उन्हें काम में लाना चाहूँगा !" और उसने उत्तर दिया था –"हे ईश्वर !" और दौड़ गई थी। एलीशिया सचमुच सनक गई थी ; कौन सोचेगा, कभी वह सुन्दर और प्यार करने योग्य रही होगी ? वह झुका और उसने चारों झरबेरियाँ उठा लीं—सुन्दर रंग की, भूरी गुलाबी ! और सफलता और प्रतिभा के नीचे एक कंपन हो आया—भावों की एक बाढ़ आ गई। इनका चित्र बनाऊँ ! लाभ ? कैसे ? वह नीची दीवार तक गया, जो उसके सुन्दर सजे और पुराने घर को अरुण नदी की बाढ़ से बचाती थी। जाड़े की पीली धूप में नदी चाँदी की तरह चमक रही थी। हाँ तो, सचमुच ! प्रकृति का चित्रण कैसे किया जाय—उसके अल्प पारदर्शन और रहस्यमय रंग क्षण-क्षण परिवर्ती उसका भाव ? सुनहरी, भूरी रोशनी और पानी के ऊपर भूरी-भूरी झाड़ियाँ—वे बेचैन, दौड़ती, सफ़ेद मछलियाँ ! अपनी प्रतिभा के प्रति उसे अविश्वास पैदा हो गया—एलीशिया के अविश्वास की तरह, जो उसने 'हे ईश्वर !' कहकर प्रकट किया था। सौंदर्य ! क्या लाभ—और चित्रण करें कैसे ? क्या वह भी यही बात सोच रही थी ? उसने दीवार के भूरे पत्थरों पर चमचमाती चार झरबेरियों को देखा और एक स्मृति उसमें जग उठी। वह कभी कितनी सुन्दर लड़की थी ; लंबी-लंबी पलकों में उसकी भूरी-हरी आँखें चमकती थीं, उसके गाल का गुलाब की पंखड़ियों का रंग और गहरे काले बाल—जो अब इतने भूरे हो गये थे—यों ही खुले पड़े ! वह कितनी आकर्षक और उत्साहवर्धक थी। जैसे पिछले सप्ताह की बात हो, उसे वह दिन याद था, जब वे अरुनडेल से पैदल बरफ़ॉम की तरफ़ चले थे। वह उनतीस का था, वह पर्वती



…ही थी, दोनों चित्रकार थे, दोनों अप्रसिद्ध ! …र्षों के बीच का चुहचुहाती धूप का दिन …था और प्रकृति वसन्त के लिए तैयार हो …रही थी। पहले वह कैसे गप करते थे और …जब उनके शरीर छू जाते थे, उसमें कैसे …एक कम्पन जाग उठता और उसके गालों का …रंग गहरा हो जाता। धीरे-धीरे वह मौन हो …गये। वे गाँव-गाँव घूमते ; खेतों में, नदी के …किनारे।

…बूँदा-बाँदी हो रही थी, परन्तु सूर्य निकल …रहा था और झाड़ी के ऊपर का आकाश फूलों …के नीले रंग का था। सहसा वह रुकी और …चिल्ला उठी—देखो, डिक, वह—आसमान ! …हेक्थार्न की एक झाड़ी—सफ़ेद झाड़ी—…नीले आसमान और चमकते हुए बादलों के …सामने पड़ रही थी। जैसे गा रही हो, इतनी …सुन्दर लगती थी। वहार जैसे उसके अन्दर भर …गई थी। उसके प्रसन्न मुख ने उसके संयम को …तोड़ दिया था और उसे बाहुओं में कसकर उसने …उसके होंठ चूम लिये थे ! उसके मुँह का भाव …उसे आज भी याद था, जैसे कोई बालक नींद में …जगा दिया गया हो ! वह समाधिस्थ रह गई, …फिर छोड़ने लगी, हट गई, काँपने लगी और …फिर सिसकने लगी ! तब, उसकी बाहुओं से …छिटककर वह भाग गई। वह खड़ा रहा—अचंभे …में और चोट खाया, फिर सम्हलकर आधे घंटे …तक उसे खोजता रहा। अन्त में उसने उसे भीगी …घास पर बैठा पाया। उसकी मुद्रा जड़ थी। …उसने कुछ कहा नहीं, न उसी ने—केवल "आओ …चलें, रेल छूट जायगी"। उस शेष दिन और दूसरे …दिन—जब तक वे साथ रहे—वह अनुभव कर …रहा था, जैसे वह उसकी आँखों में गिर पड़ा हो, …कुसुम ! उसे यह ज़रा भी अच्छा नहीं लगा, …उसे अपने ऊपर क्रोध हो आया था। उस दिन से हमेशा उसने उसे पागलपन समझा था। इसके सिवा वह क्या हो सकता था ?

उसने झरबेरियों को देखा और जैसे उन्हें स्मृति-चक्र को पीछे घुमा देने की शक्ति हो, उसने पाँच वर्ष बाद का दृश्य देखा ! उसका विवाह हो गया था और वह प्रसिद्ध हो रहा था। अपनी स्त्री के साथ वह एलीशिया के देहात के घर गया था। गर्मी क रात थी, अँधेरी और गर्म। बहुत कुछ कहने-सुनने के बाद वह अपनी अंतिम तस्वीर लाई थी। अब भी वह उसे उसी तरह साकार कर सकता था, जहाँ प्रकाश पड़ता था, वह चित्र रख रही थी। उसका लंबा-दुबला बदन और भी दुबला और लंबा हो रहा था, जैसा उन स्त्रियों का हो जाता है, जो तीस वर्ष की आयु में भी अविवाहित रहती हैं। चित्र रात का सुन्दर और आश्चर्यमय अध्ययन था। उसे याद था कि उसने उस चित्र को किस ईर्ष्या की दृष्टि से देखा था—उसने कभी इससे सुन्दर चीज़ नहीं दी थी। और उसने यह साफ़-साफ़ कह भी दिया था। उसकी आँखें प्रसन्नता से चमक उठी थीं।

"क्या सचमुच तुम्हें पसन्द है ? मैंने इस पर बड़ा परिश्रम किया था।"

"जिस दिन तुम इसे प्रकाश में लाईं" उसने कहा—"तुम्हारा नाम हो गया"। उसने ताली पीट ली और केवल ऊर्ध्व साँस ली—"आह, डिक !" उसकी उपस्थिति से उसे बड़ा आनन्द मिल रहा था, परदे के बाहर बरामदे में वे तीनों कुर्सियाँ खींचकर बैठे, कुछ बातें कीं और तब चुप हो रहे। अंगूर की तरह छलछलाती हुई काली, अँधेरी, सुन्दर और आकर्षक रात थी ! एलीशिया कानों पर हाथ धरे, कुहनी के बल आगे की ओर झुकी बैठी थी। केवल एक बार उसने उसे कहते सुना था—"सुन्दर ! आह, ईश्वर ! सुन्दर !"



उसकी स्त्री ओस के कारण उठ गई, उसके साथ ही वह भी, परन्तु एलीशिया बैठी रही। जब वह अन्दर आई, उसकी आँखों में आँसू चमक रहे थे। दूसरे दिन प्रातः स्टूडियो में जाकर उसने उसे उस चित्र के सम्बन्ध में सलाह देना चाही, परन्तु उसने देखा, उस पर सफ़ेदी पुती है—चित्र के सामने खड़ी एलीशिया उस पर आर-पार बुरुश चला रही थी। उसने उसकी पदचाप सुनी थी और घूम पड़ी थी। उसके दोनों गालों में लाली दौड़ गई और उसने काँपती आवाज़ से कहा—"यह सब कुफ़ था, यही!" मुड़कर वह फिर उसे पोतने लगी। घृणा से भरकर वह चुपचाप लौट रहा। उसने अपनी सर्वोत्तम कृति नष्ट कर दी थी और वह ऐसा चिढ़ा कि कई वर्ष तक बोला नहीं। उसे पागलों से भय रहता था। प्रसिद्धि की सीढ़ी पर पैर जमा लेना और फिर उसे ठुकरा देना! उसके लिए यह बड़े दुख की बात थी। माथा पकड़कर बैठ रहने से ही क्या होता है। कभी-कभी उसे उसकी ख़बर मिल जाती—वह वहीं रहती थी, कभी-कभी दिनभर, रातभर जंगलों, बीहड़ों और खेतों में बिता देती। वह ग़रीब हो रही थी, दुबली हो रही थी और पागल हो रही थी।

लाल झरबेरियाँ भूरे पत्थरों पर चमक रही थीं और उसको एक और स्मृति हो आई! चचा मार्टिन सूडामूर का देहान्त हो गया था और वे सब उसे दफ़नाने और उसकी विल सुनने गये थे। बूढ़े को सभी घृणा की दृष्टि से देखते थे, उसे मक्खीचूस मालदार समझते थे। उसकी यार्कशायर में एक फ़ैक्टरी थी। व्यापार से शायद जीवन भर उसे समय नहीं मिला—अतएव उसने विवाह नहीं किया था। एलीशिया उसके साथ थी। उसके काले बालों में कहीं-कहीं चाँदी के तार झूलने लगे थे, परन्तु सादे कपड़ों में वह बड़ी सुन्दर लग रही थी। उसने उससे जोश के साथ चित्रकारी के सम्बन्ध में बात की थी और वह उसे ताक रहीं थी, जिसमें उसकी दुर्बलता दिखाई पड़ जाती थी। सहसा, चादर के भीतर से एलीशिया ने उसका हाथ कसकर पकड़ लिया, जैसे वह डूब रही हो, तिनके को सहारे के लिए उसने पकड़ लिया हो। सचमुच, उसे विश्वास था, वह जानती भी न होगी कि वह उसका हाथ दबा रही है।

विल पढ़ी जा रही थी। बड़ी संतोषजनक विल थी। सूडामूर सामने के एक तैल-चित्र को स्वप्न में जैसे देख रहा था। सहसा उसने एलीशिया को देखा—उसकी आँखें बंद थीं, उसके सुन्दर पतले होंठ धीरे-धीरे कंपन कर रहे थे। इसी समय विल में उसका नाम पुकारा गया। उसने देखा, उसकी आँखें खुल गई हैं और उनमें पहले दिनों-जैसी गुलाबी दौड़ गई है।

"ख़ूब रहा"—उसने सोचा—"वह प्रसन्न है। अब फ़ाके से नहीं रहेगी।"

एक सप्ताह पश्चात् उसके भाई ने उसे बताया—एलीशिया ने विल का दान लेने से नाहीं कर दी है। "मुझे उसकी आवश्यकता नहीं" उसके पत्र में केवल यही लिखा था—"मैं उसे ले नहीं सकती। उसे उन लोगों में बाँट दो, जो उन गन्दी जगहों में रहते हैं"। सचमुच, सनक इससे ज़्यादा क्या करेगी? उन्होंने तय किया—जायँ, उससे मिल देखें; उसको बचाने का प्रयत्न करना चाहिए।

वह बहुत दुबली हो रही थी। वह नम्र थी अवश्य, परन्तु विल न लेने पर अड़ी थी। "मैं नहीं ले सकती। मुझे दुख होगा, वे बेचारे ग़रीब लूले-बूचे! कितना दुखी है नगर! मुझे उसकी याद न दिलाओ, उसके विषय में मुझसे बात न करो। जैसी भी हूँ, रहने दो।" उन्होंने उसे बुढ़ापे के चित्र सुझाये, परन्तु वह चालीस की थी, फिर



…राज़ी नहीं हुई ! वह चालीस की थी, उसके विवाह की उम्मीद कोई न थी। सुडामोर जानता नहीं था कि उसने कभी शादी की इच्छा की थी या …करने की आशा थी, परन्तु उसकी एक थ्योरी …-वासना के अतृप्त रहने से वह पागल हो …है। इस मूर्खता से उसके हृदय में दया का संचार हुआ और वह उससे भाग न सका। वह …पीने के लिए कभी-कभी उसकी झोपड़ी में आ जाता। मार्टिन के दान-पत्र के रुपयों से उसने …नदी पर छोटा-सा, सुन्दर पुराना घर मोल लिया था और वह एलीशिया से लगभग पाँच …दूर पड़ता था। वह भी जब-तब चली आती, फूल-पत्तियाँ बटोरती लाती और आते ही …पानी में छोड़ देती। वह हैट नहीं लगाती …और देहात भर में पागल समझी जाती थी। …समय मध्य वॉट (Watt) प्रसिद्ध हो रहा था। सूडामूर को वॉट प्रिय न था, परन्तु एलीशिया हमेशा झगड़ा करती कि वह चीज़ों की आत्मा चित्रित करता है। यही उसका संकेतवाद है। वह विशेषतः उसके एक चित्र (Iris) को पसंद करती थी। इन्द्रधनुष को उड़ते हुए स्त्री के आकार में चित्रित किया था और वह उससे मिलता था। वह कहती—"बात तो यह है, उसने असंभव को चित्रित करने की चेष्टा की और जीवन-भर करता रहा। डिक, मैं तुम्हारे नियम नहीं सह सकती। उनसे लाभ ? सुन्दरता बहुत बड़ी है, बहुत गहरी चीज़ है।" बेचारी एलीशिया कभी-कभी बड़ी नास… हो जाती थी।

कैसे हुआ, वह कह नहीं सकता, परन्तु उन्हें …के दिनों में बाहर जाना पड़ा। पहाड़ के सामने एक सुन्दर प्रदेश में उसने एक घर किराये पर ले लिया। वह था, उसकी स्त्री, उनकी बड़ी …और एलीशिया। चित्र खींचने में वह इतना …रहता कि उसे घाटी को घूम डालने के लिए और प्रकृति के संसर्ग में उठने-बैठने के लिए समय नहीं मिलता था। एलीशिया क्या करती थी, कोई नहीं जानता था। जब वह बाहर से आती, पेड़-पत्तों, पशुओं और मनुष्यों के विषय में बड़े उत्साह से न-जाने क्या-क्या कहती। उसकी एक प्रिय जगह थी। वे वहाँ गये। टूटा हुआ गिरजा था, पहाड़ पर। एलीशिया बातचीत और प्रशंसा के बीज में ही ग़ायब हो गई और फिर उन्हें घर पर मिली, जब वे लौटे। जैसे उसे अपने प्रिय स्थान की प्रशंसा बुरी लगी हो और वह भाग आई हो। वह अपने साथ सुनहरी झरबेरियों का एक बड़ा-सा गुच्छा लेती आई थी—सामने पत्थर पर जो चमक रही थीं, वैसी ही। उसके मन में एलीशिया के सम्बन्ध की एक चौथी स्मृति जागी।

क्रिसमस की शाम थी; पाला पड़ रहा था। श्वेत पृथ्वी के ऊपर छाया किये काले आसमान में और कभी इतने सितारे नहीं थे ! बड़ी सुन्दर आकर्षक रात थी परन्तु बड़ी ठंडी। बाहर बरामदे में किसी के लिए पाँच मिनट काफ़ी थे। परन्तु एलीशिया—अद्भुत जीव—खड़ी थी छज्जे पर और अन्दर न आती थी। दो बार वह उससे प्रार्थना कर आया था, उसे कुछ और ओढ़ने को दे आया था, तीसरी बार वह उसे मिली नहीं—जाड़े में पागलों की तरह कहीं घूमने-फिरने के लिए खिसक गई। जब अन्त में आई तो लड़खड़ाई ऐसे, जैसे शराब पी गई हो। दो दिन बाद उसे निमोनिया हो गया और दो महीने पड़ी रही। तब से वह प्रेतनी की तरह घूमती फिरती, न-जाने कहाँ-कहाँ और फूल-पत्ती, चिड़िया, खरहे, कुछ-न-कुछ लिये निकल पड़ती है। वह चित्र नहीं बनाती, उसके विषय में बात भी नहीं करती।

ये झरबेरियाँ ! हाँ तो, शायद आज सुबह भी वह ५-७ मील चलकर चाकपिट (Chalk-



pit) तक गई है, ओस से भीगी घास पर लेटी है, जिस तरह कभी-कभी पकड़ ली गई है! बेचारी! एक बार उसने उसे विवाहने की सोची थी! उसका जीवन नष्ट हो गया! कैसे ?—क्या सौंदर्य के प्रेम से नहीं ? कौन सोच सकता था कि उससे एक स्त्री का जीवन नष्ट होगा, उसे प्रेम, विवाह, मातृत्व, प्रसिद्धि, धन और स्वास्थ्य महँगे पड़ेंगे! परन्तु हुआ तो ऐसा ही कुछ।

सूडामूर ने चारों गुलाबी झरबेरियाँ दीवार से दूर फेंक दीं! प्रकाश और दूधिया पानी; भूरी झाड़ियों के आगे तैरती बतख़; दूर के, जाली से धुँधले पहाड़—यह सौंदर्य है! सौंदर्य! एह, जाने दो। संयम चाहिए! मुड़कर वह सुन्दर सीढ़ियों से होता हुआ अपने स्टूडियो में गया।

तीन तरफ़ बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ थीं, जिनसे प्रकाश घटाया-बढ़ाया जा सकता था। पूरी तस्वीर कोई न थी—वे जल्द-जल्द बिक जाती थीं। सहसा, उसकी दृष्टि पानी में रक्खे झरबेरियों के एक गुच्छे पर पड़ी। एलीशिया इन्हें रख गई होगी। शायद, चित्र खींचने के लिए। परन्तु जब उसने उन्हें चित्रित करने की बात चलाई थी तो वह 'ईश्वर' कहकर भाग गई थी। अब यहाँ कैसे ? क्या इस तरह पर उसने प्रकट किया—"क्षमा करो, मैं थोड़ी असभ्य हो गई थी।"

सचमुच वह दया की वस्तु थी। झरबेरियाँ चाँदी के प्याले में धूप में चमक रही थीं। वे कैसे विजयी हों—जीवन, एलीशिया! उसने सब गड़बड़ा दिया था, परन्तु कौन जानता है, उसने अपने प्रेमी सौंदर्य के साथ एकान्त में, तारों की छाँह में, धूप में, चाँदनी में, खेतों में, जंगलों में, पहाड़ी पर क्या आनन्द का अनुभव किया है ? फूल और पत्तियों की उड़ान, हवा का चक्कर और छाया-प्रकाश के उड़ते-भागते खेल—ये सदा ही मनुष्य की पकड़ के बाहर रहे हैं। उसने उन्हें गोद में खिलाया है, आगे का कोई विचार नहीं किया है और वह प्रसन्न हुई है! जीवन का मूल-धन उसने खो दिया, कौन कहेगा ?......झरबेरियाँ! झरबेरियों के एक गुच्छे ने उसके हृदय में सन्देह जगा दिया। हाँ तो, यह भी सौंदर्य था, परन्तु बाहर-बाहर का सौंदर्य, जो कुछ रूप-रंगों ने मिलकर वस्तु-विशेष में उत्पन्न कर दिया था। वह बाजार की चीज़ थी—और कुछ भी नहीं! और, झरबेरियाँ हल्की, दूर की धूप में चमचमा रही थीं।

प्याला लेकर उसने लाल, सफ़ेद और हल्के नीले रंग मिलाये। यह क्या है ? दूर, उसके पीछे कौन साँस छोड़ता था ? कहाँ ? कुछ भी नहीं!

"जाने भी दो"—उसने सोचा "यह लड़कपन है। यह उतना ही बुरा है, जितनी एलीशिया!" वह अपने निराले ढंग पर झरबेरियाँ चित्रित करने लगा।



मुहब्बत

स्टेनलेजे राबनस्टेन

मुझे यह कहने में कुछ भी देर न लगेगी कि मुहब्बत करना रुपया कमाने से कहीं अधिक कठिन है। रुपया तो अहमक भी पैदा कर सकता है, पर मुहब्बत नहीं कर सकता। आप अदालत में ही जाकर तलाक़ों की फ़ेहरिस्त देख लीजिए कि कितनों ने अपनी मूर्खता से मुहब्बत को चूर-चूर कर दिया है।

ऑलिवर हेलब्रान एक सफल लेखक है, जो अपनी स्टडी के कमरे में बैठा एक उपन्यास का पहला परिच्छेद अपनी टाइपिस्ट जेसेका काकेस को लिखा रहा है। हेलब्रान अपनी उम्र के साठ वर्ष बिता चुका है, परन्तु मुहब्बत की कहानियों का प्रभाव है कि उसका दिल अभी जवान है, [illegible] की उष्णता उसके रक्त में लहरें मारती है और वह हर साल पच्चीस उपन्यास लिख डालता है। उसके प्रतिद्वन्द्वी, जो अभी जवान हैं, उस पर क्रोध करते हैं, परन्तु कल्पना की उड़ान में [illegible] जोर।

जेसेका काकेस केवल इक्कीस वर्ष की है, परन्तु चूँकि सत्रह वर्ष की उम्र से रुपया कमाने का बोझ उस पर पड़ चुका है, इसलिए अब वह [illegible] औरत है। वह अनाथ है, हमेशा अकेली रही है और उसकी जानकारी बहुत कम है। उसका बदन लंबा-तगड़ा नहीं, मगर उसमें काम करने की अस्वाभाविक शक्ति है।

हेलब्रान ने कहा—मेरी कहानी पिछली सभी कहानियों से जुदा रंग रखती है।

अनुभवी जेसेका ने उत्तर दिया—हाँ, सब लेखक यों ही कहा करते हैं। मैंने जिस किसी की किताब लिखी है, उसे यही कहते सुना है कि यह किताब इस सदी की सबसे अच्छी किताब है।

जेसेका ने काग़ज़ के साफ़ तख्ते पर मोटे हरफ़ों में 'पहला परिच्छेद' लिखा और कहने लगी—अच्छा तो मैं तैयार हूँ। आप शुरू कीजिये—

हेलब्रान ने कहा—कहानी का नाम है—'दौलत या मुहब्बत।' नायिका एक दुखी लड़की है और मैं कह देना चाहता हूँ कि उसकी तस्वीर उतारने में मैं तुम्हारे व्यक्तित्व से सहारा लूँगा। मुझे आशा है कि तुम नहीं न करोगी।

जेसेका ने रंज की आवाज़ से कहा—नहीं, बिल्कुल नहीं। अब मुझे इन बातों की आदत सी हो गई है और जब तक मुझे प्रत्येक शुक्रवार को दाम मिले जाते हैं, मैं इन बातों का विचार नहीं करती—

"आओ, फिर शुरू करें"



"अच्छा"

हेलब्रान ने लिखाना प्रारम्भ किया—दोपहर का समय था । बाग़ में तपती हुई धूप में एक पुरुष और एक युवती खड़े थे। लड़की का सिर सोने की भाँति चमक रहा था । स्टेफ़नब्रेस्ट ने ईर्ष्यालु दृष्टि से युवती की ओर देखा, जो एक आरामकुर्सी पर लेटी हुई थी ।

नया पैरा—

सहसा वह उस तरफ़ मुड़ा।

'ग्लोरिया, मुझे तुमसे मुहब्बत है । तुम्हारी मुहब्बत मेरे हृदय में न जाने कब से भरी है। तुम संसार में अकेली हो । मुझे अपने एकांत का साथी बना लो। ग्लोरिया, तुम मुझसे शादी करोगी।'

'नहीं'—उसने उत्तर दिया । 'तुम मुझ पर बड़ी मेहरबानी करते हो पर मैं तुमसे शादी नहीं कर सकती।' मिस काकेस ने जो चुपचाप लिख रही थी पेंसिल हाथ से रख दी और हेलब्रान की ओर देखने लगी। बोली—माफ़ कीजिए, आप सचाई से दूर चले जा रहे हैं। एक लड़की जो मुझ-जैसी अकेली हो—ग्लोरिया-जैसी - वह शादी के संदेश को इस तरह टाल नहीं सकती, यह प्रकृति के विरुद्ध है—

हेलब्रान समय व्यर्थ नहीं बिताता । बोलने से पहले उसने कोई दस सेकेंड जेसेका की ओर देखा।

उसने कहा—साधारणतः मुहब्बत के विषय में कुछ कहने का अधिकार जवानों को ही समझा जाता है । मेरी गिनती अब बूढ़ों में है । परन्तु मुझे उम्मीद है कि मैं अभी इतना बूढ़ा नहीं हुआ हूँ कि इस विषय में मेरे विचार ग़लत समझे जायँ—यद्यपि लोगों ने नये-नये ढंग अपना लिये हैं और सभ्यता में भी उन्नति हो गई है।

जेसेका की हँसी कमरे में गूँज गई।

उसने उत्तर दिया—बुढ़ापे की तो ख़ैर कोई बात नहीं, आपके विचार ज़रूर दक़ियानूसी हैं। आज हम लोग ज़िंदगी को व्यापार की तरह देखना चाहते हैं । हर आदमी और हर चीज़ आजकल दुनिया में आर्थिक स्थिति रखती है। मुझे इसका अनुभव तो नहीं, परन्तु जानती हूँ कि लड़कियाँ मुहब्बत से अधिक धन पर मुग्ध हो जाती हैं—

हेलब्रान ने धीरे से कहा—जड़वाद।

लड़की ने कहा—जड़वाद ही तो आज की सभ्यता का संदेश है।

हेलब्रान ने कहा—मैं इससे मुकरता नहीं। यह सिर्फ़ कहने की बात है और करने में—मुझे यक़ीन है कि कोई इस ज़माने की लड़की भी किसी करोड़पति से विवाह करने से उतनी ही दूर रहेगी, जितनी दो पुश्त पहले की लड़की। उसे उससे मुहब्बत रही तो बात दूसरी है।

"मैं सहमत नहीं । जब आप यह मानते हैं कि मैं ऊपर से सिद्धान्त की बात कहती हूँ तो आपको यह भी मान लेना होगा कि ग्लोरिया स्टेफ़न को बिना सोचे समर्पण कर देती।"

हेलब्रान ने गर्व से कहा—मेरी कहानियाँ जीवन के यथार्थ चित्र देती हैं । अगर उनका आधार सिद्धान्त हों तो वे बिक नहीं सकतीं। ग्लोरिया, जैसा मेरा उसका—तुम्हारा—ख़याल है किसी व्यक्ति से केवल विवाह करने के लिए अपने को गिरा नहीं सकती, इसीलिए कि वह बड़ी अमीर है।

जेसेका ने उत्तर दिया—आपका विचार ठीक नहीं। चूँकि आप मुझे इस कहानी में घसीट रहे हैं, मैं कह सकती हूँ कि यदि मुझसे कुरूप से कुरूप आदमी विवाह करने को कहे तो मैं मना न करूँ—शर्त यह कि उसके शब्दों के पीछे सदा सोना खनखना रहा हो!



हेलब्रान ने कहा—कुछ भी हो, तुम ग़लत कह रही हो!

"नहीं, ग़लत नहीं। काम, काम, काम—और किस लिए? क्या मैं इतना कमा लेती हूँ कि आनन्द ले सकूँ? मैं आपको ऐसी लड़कियाँ दिखा सकती हूँ, जो एकान्त और ग़रीबी से तंग आकर आराम के उन क्षणों की चाह लिए फिरती हैं जिनको दौलत ही ख़रीद सकती है।"

हेलब्रान ने दुःख से कहा—संसार में कुछ चीज़ें ऐसी हैं, जिन्हें दौलत मोल नहीं ले सकती।"

जेसेका ने कहा—"सच है, परन्तु इस समय मेरे पास क्या है—हाँ, रुपया हो, तो—

"कुछ ऐसी चिन्ताएँ होती हैं, जो तुम अभी नहीं जानतीं।"

जेसेका ने हँसकर कहा—एक वक़्त में मैं एक ही को पति बना सकती हूँ और मैं सोचती हूँ, वह एक काफ़ी है—

हेलब्रान लड़की की तेज़ और साफ़ बातचीत से खिल उठा। सहसा उसके चेहरे का रंग-ढंग बदल गया। वह उसकी ओर बढ़ा और उसने जेसेका के हाथ अपने हाथों में लिये और कहा—

"मिस काकेस, जेसेका! जो कुछ तुम कह रही हो, मुझे उसमें आशा की एक किरण चमकती दिखाई देती है। मुझे तुमसे बहुत मुहब्बत है, तुम्हारी मुहब्बत मेरे दिल में बसी है—तुम अकेली हो—मुझे अपने एकान्त का साथी बना लो। जेसेका, तुम मुझसे शादी करोगी?"

उसने ये शब्द चाहभरी दृष्टि से उसे देखते हुए समाप्त किये। उसकी आवाज़ में अद्भुत कम्प थी।

"शादी करूँ।" जेसेका ने घबराकर कहा—फिर बोली—"नहीं। आप मुझ पर बड़ी मेहरबानी करते हैं, मगर मैं आपसे शादी नहीं कर सकती। इसका मतलब यह नहीं कि मुझे आपसे मुहब्बत नहीं—एक तरह मुझे आपसे मुहब्बत है—पर—मैं जवान हूँ और आप बूढ़े हैं और—" और उसने अपना मुँह हाथों में छिपा लिया।

हेलब्रान ने बेचैन होकर कहा—स्टेफ़न ब्रेस्ट भी ऐसा ही था। चलो, अब लिखो। खाने से पहले मैं इस परिच्छेद को समाप्त कर देना चाहता हूँ।



फ़रीद

ब्लेडो भरट्स्क

क्या तुम चट्टानों के समुद्र की कल्पना कर सकते हो ? ऐसी जगह कि जिधर दृष्टि डालो चट्टान-ही-चट्टान दिखाई दे—सफ़ेद, नीली, नंगी चट्टान आसमान से बातें करती हुई। इसी की आकाश की नीलिमा को छूती हुई चोटी को 'वेलो' कहते हैं । चट्टानों के बीच में एक झील है—बहुत लम्बी, कीचड़ और उपजाऊ मिट्टी से भरी हुई। उसे 'ब्लाटो' कहते हैं ।

इसी जगह फ़रीद से मेरा परिचय हुआ। मैं एक चट्टान के पीछे छिपकर जंगली बतख़ों के उतरने की प्रतीक्षा कर रहा था और कोई दो सौ क़दम की दूरी पर उसकी बन्दूक़ की आवाज़ मेरे कानों में आ रही थी। जब शाम का अँधेरा छा गया तो नये चाँद की रोशनी में वह दिखाई पड़ा। वह मुझे देव की तरह दिखाई पड़ता था और उसकी बन्दूक़ उसके कंधे पर तोप-जैसी लगती थी।

सत्य तो यह था कि उसकी बन्दूक़ मेरी से कोई डेढ़ गज़ लंबी थी और उसकी नली एक मोटे-ताज़े बच्चे की कलाई से ज़्यादा चौड़ी थी। मैं अपनी जगह मुस्कराया—मैं जिसके पास दो नलियों वाली हल्की 'लँकास्टर' थी। और जब मैंने फ़रीद को बतख़ों से भरा थैला उठाते देखा, तो उसे सलाम किया और हम गहरे दोस्त बन गये। शिकार के समय हृदय का पात्र छलक पड़ता है और इस लिए मित्रता बहुत जल्दी हो जाती है।

पतझड़ की उस ऋतु में हम क़रीब-क़रीब हर रोज़ उससे मिलते थे। यह वह समय था, जब कोसीनावालों ने राज्य के प्रति विद्रोह का झंडा उठाया था।

फ़रीद ने मुझसे कहा—तुम बड़े बहादुर हो जो यहाँ तक आने की हिम्मत करते हो।

मैं अट्टहास कर उठा।

"क्या यह बहादुरी है कि मैं अपनी जान की परवा नहीं करता? और परवा क्यों करूँ! आज मैं हूँ, कल मेरा नाम-निशान भी नहीं होगा।"

फ़रीद ने कहा—सच। मगर मैंने उसकी आँखों को देखकर जाना कि वह मुझे फुसला रहा है। वह मेरे विचार का नहीं है। फ़ौजी अफ़सर और फ़रीद के मित्र मेरी उसकी दोस्ती से हैरान हुआ करते थे; क्योंकि फ़रीद ऐसा व्यक्ति था, जो अपने सिवा और किसी की तरफ़ आँख उठाकर भी नहीं देखता था।

काम-काज में लगे रहने के कारण मैं कुछ दिनों के लिए फ़रीद से नहीं मिल सका। बारिश



ने हमारे एक अफ़सर और चार सिपाहियों को क़त्ल कर दिया था और लगभग सारी फ़ौज हत्यारों के पकड़ने को भेज दी गई थी।

अक्तूबर का महीना था, लेकिन दिन जूलाई-जैसा गर्म था। तीसरे पहर के समय कुछ आदमियों के साथ मैं एक छोटे-से गाँव में पहुँचा। गाँव के पहले ही मकान के समीप मुझे कई सिपाही दिखाई पड़े। सारी की सारी पलटन मौजूद थी। कर्नल ने मुझे देखकर ख़ुशी के लहजे में कहा—एक तो हमें मिल गया।

मैं बहुत ख़ुश हुआ और मुझे दिनभर की थकान भूल गई।

"ख़ूब हुआ। हम अच्छी तरह अपने साथियों का बदला लेंगे।"

कर्नल ने कहा—उधर देखो। हमने उसे गोली से उड़ा देने का फ़ैसला किया है।

मैंने देखा तो फ़रीद बे दीवार के साथ लगा हुआ था और आसमान को देख रहा था।

मैंने कहा—क्या यह हो सकता है ? तुम्हारे पास इसका क्या सबूत है ?

कर्नल ने कहा—"सबूत वह है।" एक चट्टान पर दो आदमी सिर झुकाये बैठे थे और कनखियों से इधर-उधर देख रहे थे। ये दोनों फ़रीद बे की प्रजा थे, उसकी जाति के थे और उसी की भाषा बोलते थे। यहा फ़ौज को इस गाँव में लाये थे और कहते थे कि हमने फ़रीद बे को अपनी आँखों से एक चट्टान के पीछे छिपकर फ़ौजी अफ़सर को बन्दूक़ का निशाना बनाते देखा है।

मैं हैरान हो गया। मुझे उस पागल द्वेष और ईर्ष्या का भली भाँति ज्ञान था, जिसकी आग एक सदी से उन लोगों के दिलों में अपने हाकिम के विरुद्ध सुलग रही थी, इसलिए मैं उन गवाहों की सचाई पर संदेह करने लगा। मैंने उनसे प्रश्न करने प्रारम्भ किये—इस विचार से कि शायद अफ़सरों ने उनकी बात समझने में ग़लती की हो। उन्होंने दुहराया। उनकी बात अभी ख़तम भी नहीं हुई थी कि मेरे पीछे से किसी ने गरजकर कहा—तुम झूठे हो।

मैंने मुड़कर देखा तो फ़रीद बे वहीं खड़ा था। उसके हाथ बँधे हुए थे; आँखें आसमान पर लगी थीं और गर्दन तनी हुई थी।

गवाह शायद हँस-हँसकर उसका मुँह चिढ़ा रहे थे। इनाम उनकी जेब में था।

फिर मैं फ़रीद बे के पास गया।

"तुम अपनी सफ़ाई क्यों नहीं पेश करते, म्याँ ?"

"मुझसे कोई पूछे भी। वे तो इन हरामख़ोरों की बात सुनते हैं।"

उसका लंबा-चौड़ा क़द और उसकी चुप्पी देखकर वह मुझे शहीद जान पड़ रहा था। मेरे हृदय में ख़ून जम गया। अब मैंने कर्नल की ओर ध्यान दिया। उसने इस बीच में गोली मारनेवालों को चुनकर खड़ा कर दिया था।

मैंने कहा—हमारा अफ़सर कब और किस वक़्त मारा गया था ?

उसने उत्तर दिया - परसों बुध के दिन, शाम से कुछ पहले।

"परसों, बुध के दिन दोपहर के बाद से रात तक तो फ़रीद बे ब्लाटो के किनारे मेरे साथ शिकार खेलता था।"

कर्नल ने रंज से कहा—क्या यह हो सकता है ?

"मेरा कहना उसके लिए जमानत है"

"और वे गवाह ?"

"कुत्तों की तरह बकते हैं"

"इनको शिकंजों में कस दो।"

मैंने फ़रीद बे के हाथ खोल दिये। उसका बदन इस तरह काँप रहा था, जैसे एक पत्ता तेज़ हवा में काँपता है और उसकी ज़बान चुप थी।

कुछ देर के बाद जब हम दोनों कहवा पी रहे



थे, फ़रीद ने जोश से कहा—मेरे आक़ा, मेरे भाई! इस अहसान के बदले जो कुछ भी तुम चाहो, मैं उसके लिए हाज़िर हूँ।

उस दिन के बाद हम गहरे दोस्त बन गये। फ़रीद के साथ मुझे उसी क्षण प्रेम पैदा हुआ था, जब मैंने पहली बार उसे देखा था; परन्तु अब उसकी उस दिन की वीर तस्वीर आँखों में उतर गई। मैंने अपने आपसे पूछा, क्या निरतीबा के किनारों पर पत्थर के पुल के सिवा रोम के ऐश्वर्य का और उसकी सभ्यता का कोई और चिह्न शेष नहीं रहा है।

फ़रीद, जो मुझसे दस वर्ष छोटा होगा, किस तरह मेरी सेवा करता और मेरा ध्यान रखता है। शिकार में मेरी बन्दूक और सब दूसरा सामान वही उठाता है और जब कभी मैं उसके घर जाता हूँ तो ऐसा जान पड़ता है, जैसे वह मेरे बैठने के लिए इतनी अच्छी और आराम की जगह नहीं दे सका है, जितना वह चाहता है। अक्सर वह घरभर के गलाचे-तकिया ला रखता और क़हवा, लेमोनेड और सिगारों की इतनी भरमार करता कि बीमार पड़ जाता। अब मेरे लिए वह महान्-काय देव नहीं रह गया था, बल्कि एक नन्हा बच्चा, एक प्यारा दोस्त।

वह बहुधा बड़ी मिन्नत से कहता—काश! मैं तुम्हारे किसी काम आ सकूँ......मुझे मालूम हो सके कि तुम्हारी सबसे बड़ी चाह क्या है?

एक रोज़ एक असभ्य और बेढंगा विचार मेरे सिर में समाया। समझ नहीं पड़ता, यह हद से बढ़ी हँसी की शकल थी या ख़ुशी की, जिसने मेरी अक़्ल पर परदा डाल दिया था, जब फ़रीद ने एक बन्द दरवाज़े को ज़रा-सा खोलकर चाय का सामान ले रहा था तो दरवाज़े की एक छोटी-सी दराज़ में मेरी आँखों ने एक स्वप्न-सा देखा। पूर्व के हरम, और उनकी परी-जैसी लौंडियाँ मेरी आँखों में फिरने लगीं। किसी की जादूभरी आँख की एक झलक ने मुझ पर बिजली-सी गिरा दी। पलभर में एक ख़्याल ने मेरे दिमाग़ को अपनी लपेट में जकड़ लिया। और मैं कह उठा—

"लो फ़रीद, मेरी एक चाह है।"

"हाँ भाई, कहो। पूरी होकर रहेगी"

क्षण भर मैं रुका, कुछ झेंपा, पर मेरा जंगली शौक़ सचाई और सभ्यता की सीमाएँ पार कर गया था। मैंने कहा—"तुम्हारी बीबी को मुझसे छिपना नहीं चाहिए, जब कि मैं तुम्हारा भाई हूँ। मैं उसे एक बार देखना चाहता हूँ।"

फ़रीद मेरे लिए क़हवा उँडेल रहा था। एक क्षण के लिए वह रुक गया। उसने मेरी आँखों में आँख डालकर बड़ी गंभीरता और शान्ति से देखा। फिर बड़ी ही नरम आवाज़ में बोला—"क्या सचमुच तुम्हारी यही चाह है?"

वह चुप हो गया। अपना हाथ सिर की तरफ़ उठाकर उसने टोपी को गर्दन पर सरका लिया। अपने मुँह और सिर को हाथ से मलने लगा। फिर दृष्टि नीची कर झुककर मेरे सामने खड़ा हो गया। दो बड़े-बड़े आँसू उसकी आँखों से निकल रहे थे, जिन्हें उसने जल्दी से पोंछ डाला।

मैंने इन दो आँसुओं में वह दर्द देखा, जिसने उसके मज़बूत दिल को पिघला दिया था। मुझे बड़ी लज्जा आई। मैंने कहा—ख़ुदा के लिए फ़रीद, मुझे माफ़ करो। मैं नहीं जानता था मेरी माँग इतनी बड़ी और कठिन होगी। यक़ीन जानो, मुझे यह पता न था। लो, मैं कहे देता हूँ मुझे उसे देखने से इनकार है, बिल्कुल। मैंने इसे ऐसी ही छोटी बात समझकर कह दिया था, मैं तो हँसी कर रहा था।

मैं इसी तरह उसकी प्रार्थना कर रहा था और फ़रीद रो रहा था। आँसू जब थम गये, उसने

छा—और तुम्हारी हँसी में शायद जाहिदा की जान चली जाती।

"कैसे ? ख़ुदा न करे ! तुमने क्या ठाना था जी।"

"आज तुमने दूसरी बार मेरी जान बचाई—इसके बाद कि तुम्हारी आँखें उसे देख लेतीं, इस पिस्तौल की आँख के सिवा कोई उसे देख नहीं पाता।"



. . . .
. . . .
. . . . . .

जर्मनी

फूल

आर्थर शिट्सलर

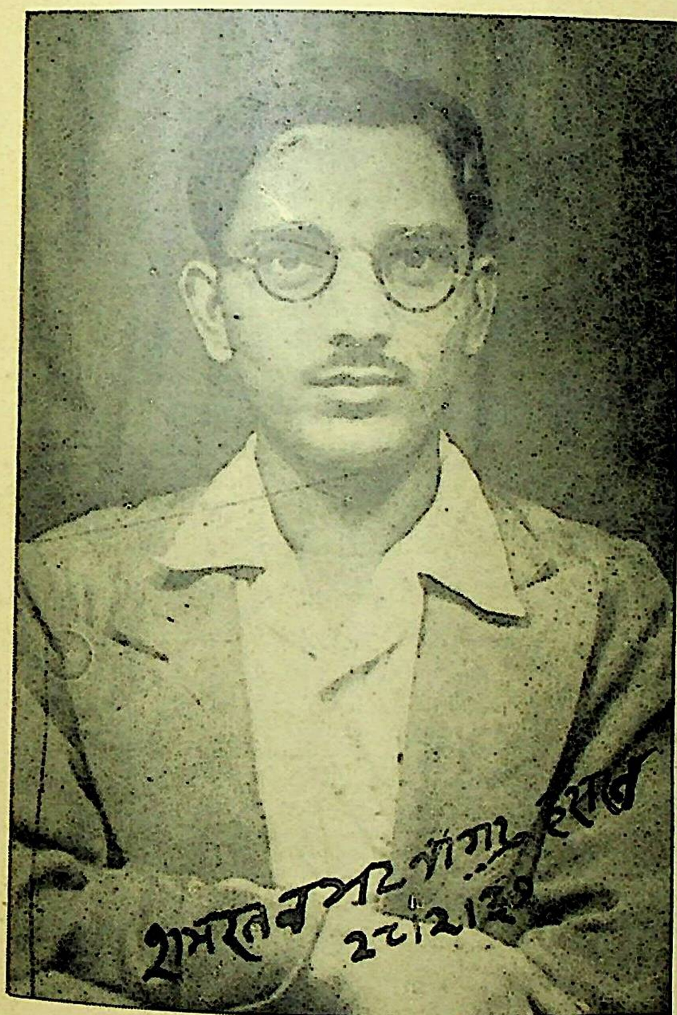
सारी दोपहर मैं सड़कों पर घूमता रहा । बर्फ़ धीरे-धीरे और बड़े-बड़े टुकड़ों में गिर रही थी। और अब मैं घर पर हूँ, मेरा चिराग़ जल रहा है और मेरी किताब पास बन्द पड़ी है। मेरे आराम की सब चीज़ें मेरे पास हैं, परन्तु सब बेकार हैं। मुझे एक ही चीज़ सूझ रही है।

परन्तु वह क्या मर नहीं गई थी, जहाँ तक मेरा उसका सम्बन्ध था? औरों की तरह, जो मर-कर पृथ्वी के नीचे सोया करते हैं, हमेशा के लिए—बहार में, गर्मी में, और जब आज की तरह बर्फ़ गिरती है। उनके लौटने की कोई आशा नहीं। जब वह संसार की दृष्टि से चली गई, मेरी दृष्टि में भी नहीं रह सकी। शोक? नहीं। कोई जो हमारा होता है, जिसका व्यक्तित्व हमारे मन में साफ़ है, जब क़ब्र में उतरता है तो हमें केवल भय होता है।

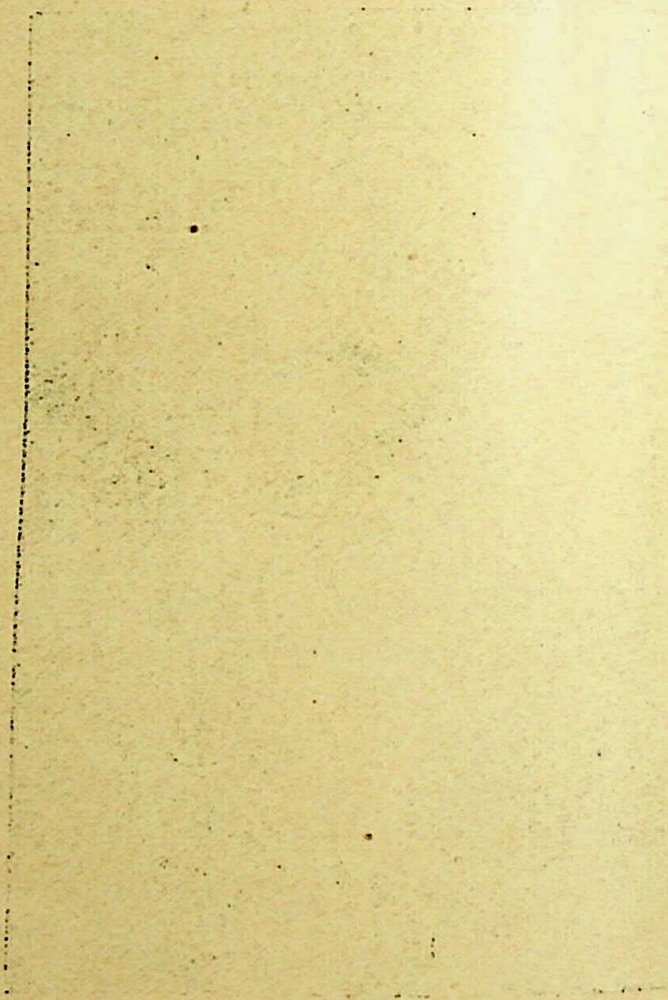
मैंने जब जाना, वह मुझे धोका दे रही है, मुझे कितना दुःख हुआ था, परन्तु उसके साथ कितना कुछ मिला था!—क्रोध, घृणा, जीवन से भय और हाँ, मानभंग; दुख बाद में आया। परन्तु साथ ही संतोष कि वह भी जल रही है, दुखी है। वे अब भी हैं, कभी-कभी मैं उन्हें पढ़ा करता हूँ, इसके दर्जनों ख़त जो सिसकते हैं, प्रार्थना करते हैं, क्षमा माँगते हैं। आज भी वह मेरी आँखों के सामने है—काले कपड़े हैं, छोटा-सा हेट है। [illegible] फाटक से निकलता हूँ तो एक कोने में तारों [illegible] छाँह में खड़ी है, मुझे देख रही है। अब [illegible] मैं वह अंतिम मिलन याद कर लेता हूँ, जब [illegible] बच्चों-जैसे गोल मुँह में लगी सुन्दर, बड़ी आँ[illegible] फाड़े मेरे सामने खड़ी थी—जब वह मुझे छोड़[illegible] जा रही थी, मैंने अपना हाथ नहीं मिलाया [illegible] अन्तिम बार जब वह जा रही थी—और मैं[illegible] खिड़की से झाँककर उसे जाते देखा, यहाँ तक कि [illegible] मेरी आँखों से ओझल हो गई, सदा के लिए [illegible] अब वह लौट नहीं पायेगी।

मैंने जान लिया तो केवल एक घटना के कार[illegible] हफ़्तों, महीनों मैं जान नहीं पाता। एक दि[illegible] उसका चाचा मिला। मैंने उसे साल भर से न[illegible] देखा था, क्योंकि वह बोना अक्सर नहीं आता [illegible] मैंने उसे केवल दो-तीन बार पहले देखा था।

तीन व[र्ष] पहले हम पार्टी में मिले थे। उस[illegible] चाचा दूसरी मेज़ पर कुछ मित्रों के साथ बैठा [illegible] तब कुछ मित्रों के साथ मैं प्रेटर में था। जाते [illegible] पहले वह मुझसे मिला और उसने कहा—[illegible] भतीजी तुम्हारे प्रेम में पागल हो रही है। [illegible] और उसकी मा भी साथ थीं। मुझे आश्[illegible] हुआ कि क्या अद्भुत और कैसी मूर्खता की [illegible] है कि एक बूढ़ा आदमी झाँझों—बाजों के नीचे [illegible]



श्रीरामरतन भटनागर "हसरत"

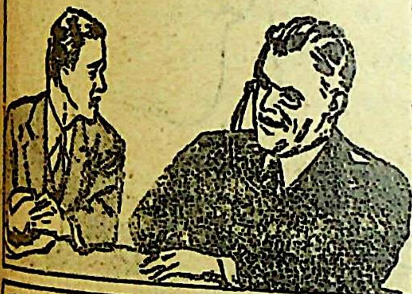


डाक्टर साहब यह मेरा सिर का दर्द व क़ब्ज़ की शिकायत तो ज़रूर ही दूर कर देनी चाहिए.

तुम्हारे शरीर का समस्त तंतुजाल ढीला और क्षीण हो गया है इसके लिए तुम्हें विटेमिन 'बी' युक्त क्वेकर ओट्स के सेवन करने की बड़ी ही आवश्यकता है.

लो जरा सुनो ...

...की बात है कि एक ऐसा रोगी मेरे पास आया जिसका शरीर क्षीण हो गया था.



उसकी जुलाब लेने की आदत पड़ गई थी उसकी पाचन शक्ति मारी गई थी और इसके सारे शरीर की नाड़ियां क्षीण हो चुकी थीं.

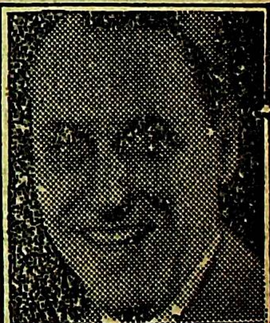


...ने देखा कि उसकी नाड़ियों को विटेमिन "बी" के ... की अत्यन्त अवश्यकता है जिसका संग्रह शरीर में नहीं हो सकता. और जिसे केवल प्रतिदिन ... पदार्थ से ही प्राप्त किया जा सकता है. अतः ... उसे क्वेकर ओट्स का पथ्य नित्य लेने का ... किया।



कुछ दिनों बाद जब वह मुझे धन्य वाद देने आया मै उसे पहिचान भी ना सका। मैंने देखा कि उसकी तो कायापलट ही हो गयी थी. शरीर में रक्त का पूरा सचार हो गया था अंग प्रत्यंग पनप रहे थे. क्यों कि उसके लिये जिस जीवनतत्व "बी" की अवश्यक्ता थी वे उसे मिलने लगे थे.





...मैंने डाक्टर साहबसे सलाह ली थी

अब मेरे लिए सिरदर्द और नसों की कमज़ोरी सदा के लिए बिदा हो चुकी है.

अब तो मैं विटेमिन "बी" को क्वेकर ओट्स द्वारा नित्य प्राप्त कर लेता हूं.



नसों की दुर्बलता रोग्यता सिरदर्द क़ब्ज़ और शरीर का दुबलापन आदि शिकायतें विटेमिन "बी" के पोषण न मिलने के कारण पैदा हो जाया करतीं हैं. जो क्वेकर ओट्स में भरपूर रहता है. इसको नित्य सेवन करना चाहिए क्यों कि इसका संग्रह शरीर में रह नहीं पाता.

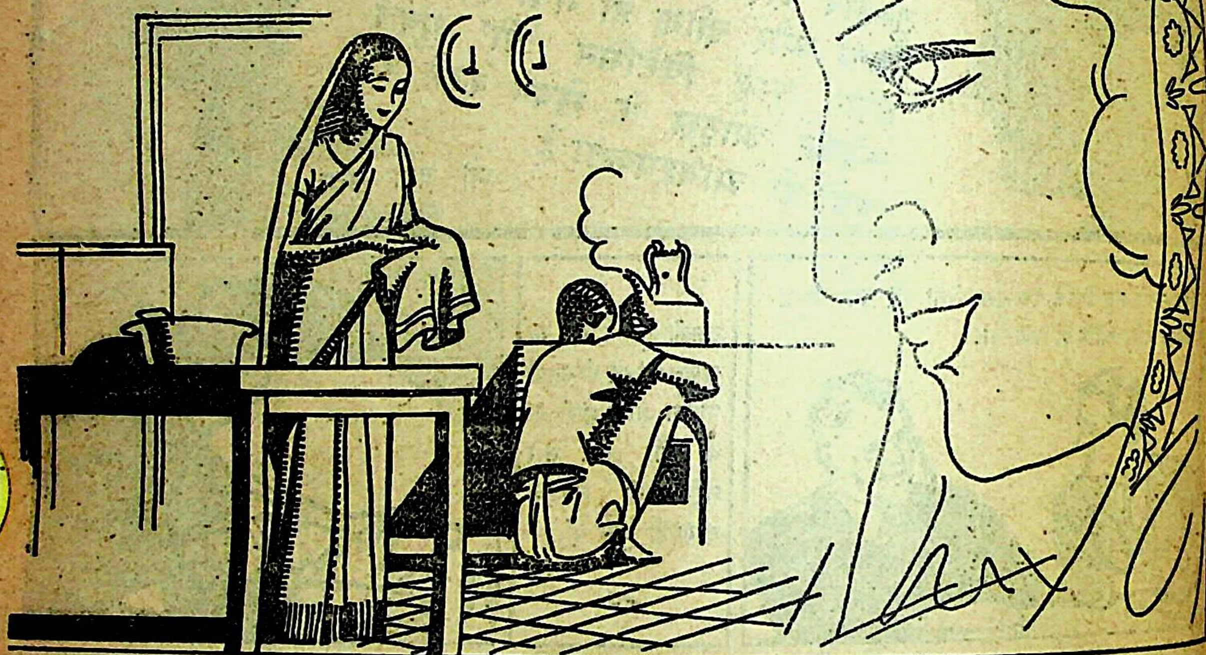
क्वेकर ओट्स बलवर्धक भोजन है. इसमें धातु का संचय भरपूर है. जिससे रक्त खूब बढ़ता और गाढा होता है. और शक्ति भी भरपूर देता है कि जिससे जीवन के वास्तविक सुख का उपभोग किया जा सकता है.

जिलहों की शरीर पुष्टि के लिए विश्व चिकित्सक क्वेकर ओट्स का ही आहार नियोजित करते हैं. आहार विज्ञान द्वारा निर्दिष्ट पथ्यों के होते हुए भी राज्य चिकित्सालयों के चिकित्सकों ने इन शिशुओं को एक ... का होने से पहले ही क्वेकर ओट्स देना आरम्भ कर दिया था।

क्वेकर ओट्स

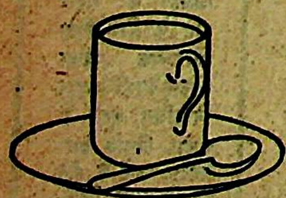
आपको बल पूर्वक रहने के लिये शक्ति प्रदान करता है

गृहस्थी के काम हो जाने पर आपका सहायक



जब आपके पति काम पर चले जाते हैं, आपके बाल-बच्चे अपने अपने ठिकाने लग जाते हैं औ आप देखती हैं कि गृहस्थी के सब काम हो गये तो क्या आपको कभी कुछ थकावट नहीं आती घर में इधर उधर दौड़ना अवश्य थकावट लाता है, लेकिन क्या आप यह जानती हैं कि यह दिन ग्यारह बजे की थकान एक प्याला बढ़िया भारतीय चाय पीने से सहज ही दूर हो सकती है ! सम संसार की बुद्धिमती स्त्रियों ने सब पेयों में चाय को ही सबसे अधिक तरोताज़ा करनेवाली माना है यह तेज़ी से थकावट दूर कर शरीर और मन में नयी शक्ति भर देती है । एक सप्ताह तक एक प्या नित्य पीजिये और देखिये, आप कितनी बदल जाती हैं ।

❀ चाय तैयार करने का तरीक़ा——ताज़ा पानी खौलाइये । साफ़ बर्तन ज़रा गर्म कर लीजिये । उसमें प्रत्येक के लिये एक तथा एक चम्मच अधिक बढ़िया भारतीय चाय रखिये । पानी खौल जाते ही चाय पर ढाल दीजिये । पाँच मिनटों तक चाय को सीझने दीजिये ; इसके बाद प्यालों में ढालकर दूध और चीनी मिलाइये ।



एकमात्र पारिवारिक पेय—भारतीय चाय



बात कहे और मुझसे ही, जो भली भाँति इसे जानता है और जिसके होठों पर अब भी चुम्बन का स्वाद लगा है। और आज सुबह ? मैं उसके पास से निकल गया। अधिकतर सभ्यता के कारण मैंने उसकी भतीजी की बात पूछी। उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता था, उसके पत्र कभी के बन्द हो गये थे, केवल उसके भेजे हुए फूल मुझे बराबर मिलते रहे थे। शायद वे हमारे ख़ुशी के दिनों की यादगार हों। महीने में एक बार वह आते हैं, पत्र नहीं; केवल मौन फूल। और जब मैंने बूढ़े से पूछा तो वह तकता रह गया—"नहीं जानते, बेचारी लड़की एक हफ़्ता हुआ, मर गई ?" मुझे गहरा धक्का लगा। तब उसने और बातें भी बता दीं। बहुत दिनों से बीमार थी, खाट पर मुश्किल से एक हफ़्ता पड़ी होगी। "क्या बीमारी थी उसे ?" "मेलेनचोलिया, अनेमिया—डाक्टर एकमत नहीं थे"—

वृद्ध चला गया, परन्तु मैं वहीं रह गया—जैसे पत्थर दुख पड़ा हो। मेरी शिराएँ शिथिल हो रही थीं और मुझे जान पड़ा कि मेरे जीवन का एक भाग आज अभी समाप्त हो गया। ऐसा क्यों ? मेरे हृदय में उसके लिए कोई भावना नहीं थी, जब मैंने उसके सम्बन्ध में विचार करना छोड़ दिया था। परंतु इतना लिखकर मैं शांति का अनुभव कर रहा हूँ; मैं दृढ़ हो रहा हूँ, अपनी गृहस्थी को पहचानने लगा हूँ। और अधिक सोचना मूर्खता है, दुख देना है ! आज दूसरे हैं, जिन्हें मुझसे अधिक दुख के कारण हो सकते हैं।

मैं टहल आया हूँ। कड़े जाड़े का दिन है। आसमान इतना भूरा, इतना ठंडा, इतना दूर दिखाई पड़ता है—और अब मुझे शान्ति मिल गई है। बूढ़े से मैं कल मिला था, जान पड़ता है, बरसों हो गये। जब उसका विचार करता हूँ, मैं उसकी कटी-छटी और पूरी-पूरी रेखाएँ देख पाता हूँ—उसके प्रति जो क्रोध आता था, अब नहीं आता है। वह पृथ्वी पर नहीं है, वह कफ़न में सड़ रही है, वह दफ़न कर दी गई है, ये बातें मुझे छूतीं नहीं; मुझे दुख नहीं है। संसार मेरे लिए अन्य दिनों से शान्त है। क्षणभर के लिए मुझे अनुभव हुआ है—ख़ुशी नहीं है, रंज नहीं है, ख़ुशी-रंज की मुद्राएँ हैं; हम हँसते-रोते हैं और आत्मा की उपस्थिति चाहते हैं। इस समय मैं गंभीर विषयों का अध्ययन कर सकता हूँ, पुरानी तस्वीरों में—जिनका अब तक मेरे लिए कोई अर्थ नहीं था—सौंदर्य-लाभ कर सकता हूँ और जब मुझे बिछड़े हुए मित्रों का ध्यान आता है, तो मेरा हृदय पहले की तरह दुखी नहीं होता—मृत्यु से भाई-चारा हो गया है, वह घूमती-फिरती है, हानि कुछ नहीं पहुँचाती।

सड़क पर बर्फ़ की ऊँची परतें जम उठी हैं। ग्रेटल मेरे पास आई और उसने मुझे स्ले पर चढ़ने को कहा। पक्की, चपटी सड़कों पर हम चढ़कर चले, स्ले की घंटी टन्-टन् करती थी और हमारे ऊपर नीला आकाश था। वह सराय पर उतर गये। आग जल रही थी, परन्तु इतनी गर्म थी कि हमें मेज़ दूर ले जानी पड़ी। ग्रेटल ने मेरे कन्धों का सहारा ले लिया, और लम्बी सड़क पर दूर तक देखती रही। उसके गाल और कान आग से लाल हो उठे थे। तारों की छाँह में हम घर लौटे। ग्रेटल मेरे पास बैठी, मेरे दोनों हाथ उसने अपने हाथों में लिये, तब वह बोली—"तो मैंने तुम्हें आज फिर पा लिया है।"

थोड़ी देर बाद जब मैं लेट रहा, एक विचित्र विचार मेरे मन में उपस्थित हुआ। मुझे लगा कि मैं कठिन और सर्द हो रहा हूँ—जैसे कोई, जिसे प्यार किया हो, मिट्टी देकर क़ब्र पर आँसू-हीन और भाव-हीन खड़ा हो। जैसे इतना कठिन हो गया हूँ कि मृत्यु की भीषणता से मेल नहीं खा पाता—शायद यही !

बिदा, बिलकुल बिदा ! जीवन, आनन्द और थोड़ा-सा प्रेम उस सब मूर्खता को भगा देता है। मैं फिर मिलने-जुलने लगता हूँ, वे प्रत्येक आनन्द

की चीज़ की बात करेंगे। मुझे वे पसन्द हैं। और ग्रेटल बेचारी कितनी मेहरबान है, जब वह खिड़की पर खड़ी होती है और उसके सुनहले बालों पर धूप खेलती है, वह कितनी सुन्दर लगती है।

आज बड़ी अजीब बात हुई। आज के दिन वह मुझे फूल भेजती थी और फूल मुझे मिले, जैसे कोई परिवर्तन नहीं हुआ हो। वह लंबे, तंग सफ़ेद बक्स में पहली डाक से आये। बड़ी सुबह थी और मैं लेटा हुआ था। जब मैं बक्स खोल रहा था, मेरी चेतना पूरी जाग्रत् हो गई। मुझे धक्का लगा। फूल जब मैंने हाथ में लिये, मेरा हृदय काँप उठा। परन्तु मैं समझता हूँ, कैसे आज आये ये। शायद वह बीमार थी, भावी का उसे गुमान हो रहा था, परन्तु उसने फूलों के लिए माली को कह दिया होगा। इसी प्रकार व्याख्या हो सकती है, यही स्वाभाविक है, करुणा इसमें अवश्य है। और जब वे मेरे हाथ में थे, बेजान और जड़ होने पर भी वे काँपते थे, डुलते थे। मैं समझता हूँ, वे उसके पास से यह जताने आये थे कि वह हमेशा बताती रही थी, मरने पर अब भी बता रही थी कि वह प्रेम करती थी, उसका प्रेम दृढ़ था। अरे, हम मृत्यु को समझते नहीं हैं, समझ कभी न सकेंगे। मनुष्य मरता तब है, जब उसके जाने-पहचाने सब मर जाते हैं। आज मैंने इन फूलों को और समय की तरह नहीं छुआ। मुझे भय लगा, मैं उन्हें कष्ट न दूँ, उनकी आत्मा चुपके-चुपके रोये नहीं।

मैं मूर्ख नहीं बनना चाहता। वे केवल फूल हैं, बीते हुए अतीत के संदेश हैं, क़ब्र के नहीं। वे फूल मात्र हैं, माली ने उन्हें तागे में पिरोया, उनको रुई में लपेटा और सन्दूक़ में रखकर डाक से भेज दिया। मैं उनके विषय में क्यों सोचता हूँ? मैं खुली हवा में बड़ी देर तक रहता हूँ, दूर तक टहलता हूँ। मैं मनुष्यों में पड़ जाता हूँ तो वे मुझे अखर जाते हैं।

फूल लंबे, हरे बरतन में हैं। उनके डंठल पानी में हैं, उनकी महक कमरे में उड़ रही है, हालांकि उन्हें एक हफ़्ता हो गया और वे मुरझा रहे हैं। जिन बातों पर मैं क़हक़हा लगाता था, उन पर अब मैं विश्वास करता हूँ। मैं विश्वास करता हूँ, मनुष्य प्रकृति से—बादलों और झरनों से बात कर सकता है। मुझे प्रतीक्षा है कि ये फूल बोल दें। परन्तु नहीं, मुझे तो विश्वास है, वे बोल रहे हैं—अब भी—वे हमेशा रो-रोकर पुकार रहे हैं और मैं समझ गया हूँ।

मुझे हर्ष है, जाड़ा बीत गया। बहार की साँस हवा में थिरकने लगी है। मेरे रहने में कोई परिवर्तन नहीं, परन्तु लगता है, जैसे मेरे अस्तित्व की सीमाएँ फैलती जा रही हैं। कल दूर चला जाता है और कई दिन पहले की घटनाएँ धुँधली, स्वप्निल हो रही हैं। ग्रेटल दूर से आती है। परन्तु जब वह बोलने लगी है, उस समय मुझे वर्तमान का भान हो उठता है। परन्तु जब वह चली जाती है, कोई तस्वीर नहीं रह जाती, कुछ याद नहीं रहता; मैं फूलों के साथ अकेला रह जाता हूँ। अब वे बिलकुल मुरझा गये हैं। उनमें सुगंध नहीं रही। ग्रेटल ने उन्हें नहीं देखा था, आज देखा, मुझसे पूछने चली, परन्तु कोई भीतर डरा गया। वह बोलते-बोलते रुक गई और मुझे छोड़कर भाग खड़ी हुई।

पंखड़ियाँ धीरे-धीरे गिर रही हैं। मैं उन्हें छूता नहीं, छू लूँ तो मिट्टी हो जायँ। उन्हें मुरझा देखकर मुझे दुख होता है। मैं खड़ा नहीं रह सकता, भाग निकलता हूँ। सड़क में होता हूँ तो लगता है, लौट चलूँ, उन्हें देखूँ-भालूँ। ग्रेटल कमरे में विचित्रता का अनुभव कर रही है। वह मुस्कराती नहीं, ज़ोर से बोलती नहीं। मैं उसका उस भाँति स्वागत भी नहीं करता। डर लगता है, वह पूछेगी और मैं जानता हूँ; मेरे लिए वे कठिन परीक्षा होंगे।

बहार! खिड़कियाँ खुली हैं। कल शाम मैं और ग्रेटल सड़क में झाँक रहे थे। मैंने कोने में देखा, लैम्प की रोशनी वहाँ कम थी और सहसा मैं

एक छाया देखी। देखा भी और नहीं भी—मैंने आँखें बंद कर लीं और मैं पलकों में से देखने लगा। लैम्प की धुँधली, पीली रोशनी में वह खड़ी थी। उसका चेहरा चमक रहा था, जैसे पीली धूप उस पर पड़ रही हो। तब मैं धीरे से खिड़की से हट आया, मेज़ के सामने बैठ गया। मैं समाधिस्थ बैठा रहा—मैं जानता था बाहर, कोने में, वह प्रतीक्षा कर रही है। ग्रेटल भी खिड़की से चली आई, क्षण भर मेरी कुर्सी के पीछे खड़ी रही, फिर विदा हो गई।

मैंने फूलों की ओर ताका। वे नहीं रहे, डंठल रह गये हैं। और वे भी बुरी तरह सूख गये हैं। मैं पागल हो रहा हूँ। ग्रेटल ने मुझसे पूछा नहीं, मेरी दशा वह समझती है। वह भाग गई है, जैसे उसने कमरे में भूत देखा हो।

× × ×

मैं इन पत्रों पर विचार कर रहा था कि ग्रेटल आ गई। इतने सबेरे वह कभी नहीं आई। मुझे आश्चर्य हुआ। क्षण भर वह द्वार पर ठिठकी और मैं उसे ताकता रह गया। वह मुस्कराई और बढ़ी। उसके हाथ में ताज़े फूलों का गुलदस्ता था। बिना कुछ कहे उसने वह मेज़ पर रख दिया। उसने मुरझाये डंठल और फूल उठा लिये, जैसे मेरा हृदय मुट्ठी में मसल दिया हो। मैंने उठकर उसका हाथ पकड़ना चाहा, परन्तु वह मुस्करा दी। हाथ उठाकर उसने उन्हें खिड़की से बाहर फेंक दिया। जी में किया, कूद पड़ूँ, परन्तु ग्रेटल सामने पड़ गई। उसने गुलदस्ता उठाकर मेरे आगे कर दिया। बड़ी स्वस्थ, ताज़ी सुगंध थी। फूल सफ़ेद थे, सुन्दर थे, हँस रहे थे और मुझे जान पड़ा, तिलिस्म टूट गया है। ग्रेटल मेरे पीछे खड़ी थी। वह मेरे बालों में हाथ फेर रही थी।—"बड़े मूर्ख हो!" उसने कहा। क्या जानती थी, उसने क्या कर डाला था? मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और उसे चूम लिया।

डेन्मार्क

बेचारी लड़की

हेन्स क्रिश्चियन एन्डरसन

भयंकर जाड़ा था।

बर्फ़ पड़ती थी और अभी से अँधेरा हो गया था। साँझ हो गई—वर्ष की अंतिम साँझ। ठंड और अँधेरी में एक छोटी-सी बच्ची, नंगे सिर-पैर सड़क में चल रही थी। घर से जब चली थी, अवश्य ही वह स्लीपर पहने रही थी, परन्तु वह किस काम के थे? वे उसके बहुत बड़े थे। इतने बड़े थे कि अब तक उसकी मा उन्हें पहना करती थी। सड़क पर एक जगह दो गाड़ियाँ बड़ी तेज़ी से आमने-सामने आ रही थीं। लड़की बेचारी उनके बीच में आ गई और भागकर निकल जाने में उसके स्लीपर रह गये।

एक स्लीपर तो मिला ही नहीं, दूसरा एक लड़का छीनकर भाग गया। उसने सोचा होगा—जब मेरे बच्चे होंगे, मैं इसका पालना बनाऊँगा। तो, अब लड़की को नंगे पाँव चलना पड़ रहा था। जाड़े से उसके पाँव भी लाल और नीले हो रहे थे। एक पुराने कपड़े में वह कुछ दियासलाइयाँ लिये थी, हाथ में एक बंडल था। दिन-भर किसी ने उसका ध्यान न किया, न एक पैसा दिया।

जाड़े और भूख से काँपती हुई वह रेंग रही थी। बेचारी लड़की दीनता की तस्वीर बनी थी। उसके सुन्दर, लम्बे बालों को, जो घुँघराते हुए उसकी गरदन पर गिरते थे, बर्फ़ के परत जमे जाते थे, परन्तु उसे इस बात का कुछ ध्यान न था। खिड़कियों में प्रकाश जल रहा था और भुनी बतख़ की सुगंध आ रही थी। उसे ध्यान आया—आज New Year's Eve का त्यौहार है।

दो मकानों के बीच के कोने में एक की आड़ लेकर वह बैठ गई, दुबककर बैठ गई। पाँव उसने सिकोड़ लिये थे, परन्तु उसे अब भी जाड़ा लगता था। उसे घर जाने का साहस न था; क्योंकि उसकी दियासलाइयाँ बिकी नहीं थीं और उसको कुछ भी नहीं मिला था। पिता उसका उसे मारेगा। और घर भी ठंडा था; सिर पर छत के सिवा कुछ न था, छत में से सीटी बजाती हुई हवा नीचे आती थी।

जाड़े से उसके हाथ सुन हो उठे। वह एक दियासलाई जलाये, दीवार से एक तीली रगड़कर जलाये और हाथ सेंके तो ठीक हो! एक तीली उसने खींची, चिर्र। वह बोली और जल उठी। उसने अपना हाथ उस पर रक्खा। मोमबत्ती की जैसी गर्म, चमकीली लौ थी। अद्भुत प्रकाश था। लड़की को जान पड़ा, वह एक बड़े स्टोव के सामने बैठी है और स्टोव में चमकते हुए पीतल के पाँव लगे हैं और पीतल का उसका ढक्कन है। आग कैसी जलती थी, कितना अच्छा था! परन्तु लौ बुझ गई स्टोव गायब हो गया और उसके हाथ में जली हुई तीली रह गई।

दूसरी रगड़ी। वह जल उठी और जब उसका प्रकाश दीवार पर पड़ा तो वह पतले परदे जैसी हो



गई और वह कमरे में देखने लगी। मेज़ पर बर्फ़-सा सफ़ेद कपड़ा बिछा था, उस पर चमकीली रक़ाबियाँ लगी थीं। मसालों से भरे बतख़ के भुने मांस से ख़ूब-सा धुँआ उठ रहा था, और वह देखने में बड़ा भला लगता था। बतख़ रक़ाबी से उछल निकली और चाक़ू और काँटे लगे हुए ही लड़की की ओर बढ़ने लगी। तब दियासलाई बुझ गई और सामने मोटी, भीगी, ठंडी दीवार रह गई। उसने और तीली जलाई। वह एक बड़े सुन्दर क्रिसमिस के पेड़ के नीचे बैठी थी। पेड़ की शाखाओं पर हज़ारों मोमबत्तियाँ जल रही थीं और छापेख़ाने-जैसी रंगीन तस्वीरें लटक रही थीं। तीली बुझ गई। मोमबत्तियाँ ऊपर चढ़ने लगीं। उसने देखा, वे आकाश के तारे बन गई हैं। एक तारा टूटा, पीछे आग की लकीर बनाता हुआ—

'कोई मर रहा है'—छोटी लड़की ने सोचा। उसकी दादी उसे बहुत प्यार करती थी, वही केवल उसे प्यार करती थी और वह मर गई थी। दादी ने उसे बताया था, तारा जब टूटता है, कोई आत्मा ईश्वर के पास जाती है!

दीवार पर उसने तीली रगड़ी। प्रकाश में उसकी दादी सुन्दर, स्पष्ट और प्रेम की दृष्टि डालती खड़ी थी।

'दादी'—बच्ची ने चिल्लाकर कहा—'दादी, मुझे ले चलो! मैं जानती हूँ, दियासलाई बुझने पर तुम चली जाओगी गर्म आग की तरह, गर्म खाने की तरह, बड़े-से क्रिसमस के पेड़ की तरह तुम भी ग़ायब हो जाओगी—'

और उसने जल्दी-जल्दी दियासलाइयों के बंडल जला डाले। वह दादी को रोकना चाहती थी। और तीलियाँ ऐसी जलीं कि दोपहर से भी अधिक उजाला हो गया। दादी कभी इतनी बड़ी और इतनी सुन्दरी नहीं रही थी! उसने छोटी बच्ची को गोद में ले लिया और दोनों प्रसन्न-प्रसन्न पृथ्वी के ऊपर उठने लगीं। उठने लगीं बहुत-बहुत ऊपर, जहाँ न ठंड थी, न भूख, न चिन्ता—ईश्वर था।

परन्तु कोने में, दीवार से सटी, बेचारी लड़की, वर्ष की अंतिम साँझ को बर्फ़ से जमकर रह गई थी। उसके गाल लाल हो रहे थे और उसके होंठ मुस्करा रहे थे। नये वर्ष का सूर्य उगा तो वह छोटी-सी लाश रह गई थी। वह बैठी थी ठंड से जकड़ी हुई, अकड़ी हुई। दियासलाई का बंडल जला हुआ था। 'गरम करना चाहती थी बदन को।'—लोगों ने कहा। कैसी सुन्दर चीज़ें उसने देखी थीं और कैसी शान से दादी के साथ नये दिन के पास गई थी वह, किसी ने नहीं जाना।



पोलैंड

गोधूलि

विलेडी स्लॉ रेमॉन्ट

सोकोल लेटा हुआ दम तोड़ रहा था। बड़ी देर से वह इस तरह पड़ा था। वह बीमार पड़ा और बेकार लाश की तरह ठुकरा दिया गया। भले आदमी कहते थे कि इसकी हत्या करना ठीक न होगी, हाँ, इसकी खाल से बहुत अच्छा चमड़ा बनेगा। तो, भले आदमियों ने उसे धीरे-धीरे, अकेले और विस्मृत मरने दिया। वही भली आत्माएँ कभी-कभी उसके ठोकर लगा देतीं कि वह जान लें, धीरे-धीरे मर रहा है। परन्तु उन्होंने उसकी ओर कुछ ध्यान नहीं दिया। कभी-कभी शिकारी कुत्ते, जिनके साथ वह शिकार में दौड़ता था, उसे देख जाते। परन्तु कुत्तों की आत्मा भद्दी होती है (शायद मनुष्यों के संसर्ग के कारण ही) और स्वामी की प्रत्येक पुकार पर वह सोकोल को एकदम छोड़कर भाग खड़े होते थे। केवल लप्पा नाम का एक बूढ़ा, अन्धा साइबेरियन हाउन्ड औरों से देर तक ठहरा रहता। वह नाँद के नीचे पड़ा हुआ ऊँघता। सोकोल की ओर देखकर वह दुख से घबरा उठता। उसकी बड़ी-बड़ी, भिक्षा-माँगती हुई, रोती आँखें उसे डरा देती थीं।

ऐसे बूढ़ा घोड़ा एकान्त में दुख भोगने के लिए छोड़ दिया गया था। दिन उसका साथ देते—सुनहले, गुलाबी दिन अथवा भूरे, कड़े, दुखी दिन—वे उसकी आँखों में झाँकते, जैसे दुख... चुपके विदा हो जाते........परन्तु सोकोल को केवल रातों का भय था—जून की [illegible]टी, डरावनी, ख़ामोश और दम घोटनेवाली रातें। तभी उसे जान पड़ता था वह मरकर रहेगा और भय से वह पागल हो जाता। वह लगाम चबाने लगता और दीवार पर खुर मारता। वह भागना चाहता, छुटकारा चाहता।

एक दिन जब सूरज डूब रहा था, वह कूद पड़ा, दीवार की दराज़ों से छनकर जो प्रकाश आता था उसे घूरने लगा और तब उसने एक स्वर में देर तक हिनहिनाना जारी रक्खा। डूबते हुए दिन की भारी नीरवता में से किसी ने उसकी आवाज़ का उत्तर नहीं दिया। अबाबीलें पास से उड़ गईं घोसलों में घुसकर चिल्लाने लगीं अथवा सूरज की अन्तिम किरणों में भिनभिनाते हुए पतंगों में तीर-सी निकलीं। दूर के चरागाहों से काम में लगे हुए हँसियों की खनकार आती थी और अब और सब्ज़ी के खेतों से पत्तों का खड़कना, मक्खियों की भिनभिनाहट और धीमी-धीमी आवाज़ें सुनाई पड़ती थीं।

परन्तु सोकोल के चारों ओर गहरी, भयानक नीरवता थी, जो उसे कपा देती थी। भय से वह जड़ हो गया, पागलों की तरह वह रस्सी तुड़ाने



लगा....। वह टूट गई और वह सहन में भाग आया।

धूप से वह चौंधिया गया। उसने सिर झुका लिया और हिले-डुले बिना खड़ा रह गया, जैसे सुन हो गया हो। धीरे-धीरे उसकी शिथिल शक्तियाँ लौट आईं; खेतों-वनों-चरागाहों की धुँधली स्मृतियाँ उसके मस्तिष्क में फिर गईं। उसमें दौड़ जाने की अबाध इच्छा उत्पन्न हो गई।—दूर पर ग्रन्त पाने की इच्छा—फिर पहली तरह जीने की प्यास—सहन से बाहर जाने का मार्ग वह खोजने लगा। तीन तरफ़ मकान थे। उसकी खोज व्यर्थ गई। फिर-फिर उसने चेष्टा की, यद्यपि प्रत्येक पल उसे अनिर्वचनीय दुःख देता था, पुराने ज़ख़्मों से ख़ून बहता था।

अन्त में वह लकड़ी की बारी से जा लड़ा। वह सामने के खेत को, जिसमें कुत्ते धूप ले रहे थे, देर तक देखता रहा, पार के मकान को, जिसकी खिड़कियाँ धूप के सुनहले रंग में चमक उठती थीं, वह देर तक देखता रहा। उसने बड़े सानुग्रह, बड़े करुण ढंग पर हिनहिनाना प्रारम्भ किया।

कोई आ जाता, प्यार का एक शब्द उससे कहता या दुलार से पीठ पर हाथ फेरता, तो वह प्रसन्नता से लेट रहता और प्राण छोड़ देता। परन्तु चारों ओर एकान्त था, सुनसान था, फीका-फीका था।

बड़ी निराशा से उसने बाड़ा चबाना शुरू किया। सारे बोझ को उस पर झुकाकर वह फाटक को ऐंठने लगा। वह खुल गया और उसने बाग़ में प्रवेश किया। हिनहिनाते हुए वह बरामदे तक पहुँच गया। किसी ने सुना नहीं। बड़ी देर तक वह इस तरह खड़ा रहा, खिड़कियों के पर्दों की ओर ताकता रहा। सीढ़ियों पर चढ़ने की भी उसने चेष्टा की। तब उसने मकान की परिक्रमा की।

सहसा वह जैसे सब कुछ भूल गया। केवल देखा—समुद्र जैसे निस्सीम, दूर तक, अनन्त दूर तक, क्षितिज तक फैले खेत। इन कल्पनाओं के जादू से वह लड़खड़ाने और निःशङ्क होकर आगे की ओर गिरने लगा।

सोकोल काँप उठा। वेदना से उसकी आँखें चमक उठीं। उसकी साँस भारी चलने लगी और जलते हुए नथनों को ठंड पहुँचाने के लिए उसने घास पर नाक रगड़ डाली। कड़ी प्यास लग रही थी; परन्तु छुटकारे के विचार की उत्तेजना और गंभीर भय से वह लड़खड़ाता हुआ आगे, आगे बढ़ा। गेहूँ और अनाज के डंठलों में लड़खड़ाते उसके पैर अधिक भारी हो गये। लीकें उसे गड्ढे जैसी लगतीं, घास उसका पैर फाँस लेती, पृथ्वी तक खींच ले जाती। झाड़ियाँ रास्ता रोकतीं। समस्त पृथ्वी उसे बड़ी चाह से अपनी ओर खींच रही थी। बालियों में वह क्षितिज को नहीं देख पाता था।

बेचारे की गूँगी आत्मा भय के अन्धकार में भीतर-भीतर बैठती गई। पहचान वह कुछ न पाता था, परन्तु जैसे कुहरे में अन्धा हो रहा हो, लड़खड़ा जाता था। सहसा एक तीतर उसके पैरों में से उड़कर निकल गया। वह सहम रहा, रुक रहा, हिल नहीं सका। खेतों में उड़कर जो कौए जा रहे थे, उसे देखकर रुक गये, एक नाशपाती के पेड़ पर जा बैठे, काँव-काँव करने लगे। वह घिसटकर चरागाह तक आ गया और दम खोकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। टाँगें उसने फैला दीं, आसमान को देखा और गहरी साँस छोड़ी। कौए पेड़ों से उतर आये और उसके पास-पास पृथ्वी पर फुदकने लगे।

पतली घास में चोंच तेज़ करते हुए वे पास आते गये। कुछ काँव-काँव करते हुए उसके ऊपर से उड़े और उसने उनकी भय पैदा करनेवाली गोल आँखें और आधी खुली चोंचें देखीं। परन्तु वह हिल न सका। उसने पृथ्वी पर पैर मारे और कल्पना की कि वह फिर उठ गया है, खेतों के पार दुलकी भाग रहा है। वह शिकार के पीछे

भाग रहा है, शिकारी कुत्ते उसकी बग़ल में भोंक रहे हैं, आँधी की तरह उड़ रहे हैं।

उसकी वेदना इतनी बढ़ गई कि उसने चीख मारी और पैरों पर उठ खड़ा हुआ। कौए चिल्लाते हुए उड़ चले।

अब उसे कुछ दिखाई नहीं देता था, समझ कुछ न पड़ता था। आसपास की सभी चीज़ें हिल रही थीं। जान पड़ा कि वह गहरी कीचड़ में आधा धँस गया है। उसके बदन में शीत दौड़ गया और वह निर्जीव पड़ रहा।

सूरज डूब गया। गोधूलि ने ख़ामोश चादर से सब कुछ ढक दिया। दूर कोई कुत्ता भोंक रहा था।

लप्पा दौड़ता हुआ अपने मित्र के पास पहुँचा, परन्तु सोकोल ने उसे पहचाना नहीं। बूढ़े कुत्ते ने उसे चाटा, पंजे से पृथ्वी उधेड़ी और खेतों के पार चिल्लाता हुआ दौड़ गया। सहायता के लिए कोई न आया।

घास ने सोकोल की पूरी खुली आँखों में झाँका, पेड़ उस तक पहुँचे, उसकी ओर शाखाएँ बढ़ाईं। चिड़ियाँ चुप हो रहीं। हज़ारों जीव उसके शरीर पर रेंगने लगे, मांस पंजों से नोचने-फाड़ने लगे। डरकर कौओं ने काँव-काँव की।

भय से लप्पा के रोंगटे खड़े हो गये, वह बेतरह चीख़ा-चिल्लाया।



वीरी की आत्मा

कैमिल लेमोनियर

होटल की छोटी बच्ची पिटी ने मुझसे पूछा, मैंने वह लड़का देखा है या नहीं, जो अपनी बाँसुरी पर छोटी-छोटी धुनें अलापता है। पता नहीं इससे उसका मतलब क्या था? मुझे वीरी में रहते हुए तीन दिन हो गये थे और ऐसा कोई भी लड़का मेरे सामने नहीं पड़ा था। ईश्वर जाने—मैंने सोचा—वीरी में क्या ऐसा भी कोई लड़का होगा। यहाँ तो बाजा बजाना बेकार होगा, क्योंकि मकान बन्द रहते हैं और कदाचित् कभी-कभी खिड़कियों में बूढ़े-बुढ़ियों के चेहरों के दर्शन हो जाते हैं। कभी-कभी कोई युवती भी दिखाई दे जाती है, जिसकी टोपी की चमकती किनारी गालों को छूती होती है। उसे सुनेगा कौन? वीरी के छोटे-से अजीब-से गाँव में लोग इस तरह रहते हैं, जैसे वे हरे-नीले शीशे के भीतर रक्खी हुई 'ममी' हों।

मेरी तो उस स्थान के विषय में ऐसी ही धारणा है। यदि मुझे सड़क पर वह लड़का बाजा बजाता हुआ मिल जाता, मैं होठों पर उँगली रखकर उसे मना कर देता, जिसमें उन मकानों के अन्दर सोया हुआ एकान्त सिहर न उठे। धूप भी सड़क के बीच में सोने के गालों पर सोई रहती है। एक समय जो नगर जाग्रत् था, उसे जगाते-जगाते थककर वह बीमार पड़ गई और अब बेहोशी की नींद में सोई है। उसका प्रकाश सड़क के बीच में ही बुझ जाता है, उस भिखारी के पैरों की तरह, जो बार-बार दरवाज़े से ख़ाली लौट-लौट आता है, अन्दर की छाया अपने को बन्द कर बैठी रहती है।

मैं सौ वर्ष तक भी जीता रहूँ तो वीरी की उस सड़क को भूल नहीं सकता, न उन मकानों को ही भूल सकता हूँ, जो इस तरह खड़े हैं, जैसे पूजा में हाथ जोड़े हों। सब कुछ जीवन से दूर चला जाता है, इतना दूर कि अपने अस्तित्व का ही संदेह होने लगता है। तुम्हारे आगे-आगे एक धुँधली छाया चलती और तुम कह नहीं सकते, वह तुम्हें कहाँ ले जायगी। परन्तु वह गिरजे के सहन की ओर ले जायगी, जहाँ सब इसी तरह गये हैं। दीवार के आगे समुद्र है, जिसमें जहाज़ हैं, सिर पर बादलों से भारी आसमान है, जो समुद्र के विशाल हृदय पर उलटा हुआ है। उस नगर में मुझे जान पड़ा, जैसे मैं मर रहा हूँ, जैसे मेरा दिल इतने-इतने धीमे धड़क रहा है।

"पिटी की बच्ची जाँच रही थी झुठलाकर कि मैं कहाँ तक यकीन कर जाता हूँ"—मैंने सोचा—



"नहीं तो वह कोई पुरानी कहानी कह रही होगी, जब कोई मरा नहीं था यहाँ।"

उसी समय मुर्गों ने बाँग दी। किसी ने गीत गाया। उस समय दादा के समय की इतवार की किसी दोपहर की याद आती थी। दादा दरवाज़े के नीचे की नाली की जाली देखते होते थे और बेत की मूठ पर उनके हाथ लगे होते थे। रागिनी की धुन आती थी, जैसे किसी टूटे बाजे से निकल रही हो। आवाज़ धीरे-धीरे सुस्ती में रेंग-सी रही थी और उसने मुझे उदास बना दिया था। मानों मुझे सहसा पुराने वीरी की आख़िरी रागिनी सुन पड़ी हो।

पब्लिक स्क्वायर के टाउनहाल की इमारत सुन्दर थी। वह भली भाँति सजी थी। अँगीठियों पर राजाओं और संतों की मूर्तियाँ थीं। मेरा अनुमान ऐसा है—प्राचीन वीरी का इतिहास कौन जानता है? मैंने धारणा बनाई कि यही वह आवाज़ थी, जिसका उस बच्ची ने ज़िक्र किया था। मैंने उन पुरानी मूर्तियों को अवहेला की दृष्टि से देखा। वे निश्चित समुद्र की ओर देख रही थीं। शताब्दियों से वे इसी तरह खड़ी थीं। उनके सिर एक ओर थे, जैसे जो कभी न हुआ हो, उसकी प्रतीक्षा करती हों। शायद वे भरी-भरी आँखें, जो पत्थर में खुदी थीं, उस जहाज़ी बेड़े की प्रतीक्षा करती थीं जो एक दिन बन्दरगाह के बाहर गया था। स्क्वायर पर एक पुराना चर्च था, जिसकी ताली शायद वर्षों से समुद्र-तल में विश्राम कर रही थी।

इसका व्यङ्गार्थ पढ़कर मैं मुस्करा उठा। सब शहर छोड़ चुके थे और ढूहों से लगी दीवार के नीचे विश्राम कर रहे थे। कुछ ही बूढ़े लोग बच रहे थे।

फिर भी पत्थर की मूर्तियाँ, तलवार और ख़ंजर लिये, जीवितों पर आज्ञा करती जान पड़ती थीं।

मैं टॉवर तक गया और द्वार पर मैंने तीन बार दस्तक दी। मैंने ऐसा मज़ाक से किया था—मैं जानता था, इस पुराने अल्लाह मियाँ के घर में चूँ करने को कोई है नहीं। मृत्यु की छाया में और नीरवता में शोर कैसा लगेगा, यह मैं जानना चाहता था। सहसा मैं आश्चर्य से मु‍ हो गया—द्वार खुला और अजब-सी आँखोंवाले एक युवा ने दर्शन दिये। ज़ीलैंड के रहनेवाले जैसी वह नीले मख़मल की जाकट पहने था, जिस पर चाँदी के हुक लगे थे। वह वैसा बाजा लिये था, जो बन्दर की दूकानों में मिलता था और जिस पर वे यात्रा के समय साँझ होते-होते कभी द्रुत, कभी विलंबित चाँदी से खनकते सुर निकाले थे। स्वप्न से जैसे झकझोरकर उठा दिया गया हो, ऐसे वह देख रहा था। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। यही तो वह लड़का नहीं है, जिसे पिटी ने स‍ था—धुनें अलापता है।

सिर मोड़े विना वह मेरे साथ-साथ चलने लगा। गुलाबी रँगी दीवारों की छाया में, पुरा‍ शीशों की लंबी, सीधे खिड़कियों के साम‍ गोभी और प्याज़ के बग़ीचों में होकर हम च‍ जाते थे। उसने धीरे-धीरे चौराहा पार कर लि‍ और वीरी के दुख के गीत एक बार फिर सा‍ साफ़ स्वरों में गूँज उठे। हवा ने उन्हें धीरे‍ उठाकर बिखेर दिया और समुद्र की ओर‍ मकानों की छतों पर वे फैल गये। युवक ने बा‍ कन्धे से लगा लिया था और स्वरों पर उँ‍ रख-रखकर वह यंत्र की धौंकनी दबा-फैला र‍ था। उसकी धुन का अर्थ उसकी ही समझ‍ आता होगा। बाजे से सिर लगाकर वह मुस्करा‍ था, जैसे वह इस दुनिया का न रहा हो। मैं स‍ झता, तब मैं समझ गया था, किसी रहस्य‍ लड़के पर जादू कर दिया और किसी विल‍ ढंग से वीरी-गाँव के रहस्य से उसका सुर मि‍

दिया था, परन्तु मैं उसे समझ नहीं सकता। और तब जो हुआ, उसने मुझे परेशान कर दिया। युवक ने टॉवर की ओर आलों में बैठी मूर्तियों की ओर देखा, तब दूर के समुद्र के ऊपर दृष्टि फेरी और उसकी आँखें किसी और ही दिन की रोशनी से चमक उठीं। बाजा और भी तेज, और भी दीवानगी से बज रहा था, और जान पड़ता था कि नगर की बूढ़ी आत्मा बजानेवाले की उँगलियों के नीचे सिहर उठी थी। सड़क में उसी तरह वह बढ़ता गया। उसके पैरों के नीचे की जमीन हिल-हिल उठती थी, और वह यंत्र को कभी सिर पर उठा लेता था, कभी बड़ी शीघ्रता से उसे पृथ्वी तक ले आता था। कभी आँखें बंद कर, बनी सी, गंभीर मुस्कराहट से वह बजाता रहता था—लय और ताल कभी उससे छूट नहीं पाते थे। तब उन छोटे-छोटे मकानों में सहसा जीवन का संचार हो गया। बरसों से बन्द दरवाजों में जो जीवन सो रहा था, वह शायद उसी युवक की प्रतीक्षा करता था, जागकर बाहर आ गया। खिड़कियों के पीछे युवतियों के मुख पर अट्टहास बज उठता। वीरी की सभी सुन्दरियाँ गोटेलगे परदों के पीछे आकर खड़ी हो जातीं, उनके मुँह इस तरह खुले रह जाते, जैसे भौंरों के झुरमट में गुलाब हों। उन्हें छाया में से निकलकर नई सज्जा में आता देख, मुझे ऐसा लगा कि ये गुड़ियों के घरौंदे हैं; जो जादू से जीवन में प्रस्फुट हो गये हैं—वीरी की सभी गुड़ियों के मकान हैं।

इस तरह वादक सड़कों पर फिरता रहा। उसकी रागिनियाँ करुणतर होती गईं। आँखों से आँसू निकले पड़ते थे। यह वीरी की आत्मा थी, जो बीते हुए प्यार और बीती हुई बहार पर रो रही थी—उन युवतियों पर आँसू बहाती थी, जो आस से दबी थीं और उन युवकों के लिए रोती थी, जो समुद्र पार गये, लौटे नहीं। अंत में तारों की झंकार दूर के ढूहों पर नीरवता में खो गई।

जब मैं होटल में लौटा, मैंने पिटी से कहा—तुमने ठीक कहा था। एक लड़का है, जो बाजे पर धुन भरता है। निःसंदेह उसकी आत्मा दुखी है। लोग क्या जानते हैं, उसे क्या हो गया था?

छोटी बिल्ली की-सी आँखोंवाली बच्ची हँसी और खिड़की पर बैठे एक मनुष्य की ओर उसने इंगित किया।

इससे पूछो—उसने कहा—मुझसे अच्छा बता देगा।

जानी-पहचानी कहानी थी। एक दिन यह युवक किसी लड़की पर मुग्ध हो गया। वह खिड़की में झाँक रही थी। एक दिन वह उसके मकान में नृत्य करने और बाजा बजाने आया। उस घर में दूसरे युवक भी आते थे और वे भी लडकी को चाहते थे। जब युवक रोता, वह कह देती—"क्या आशा करते हो? मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, परन्तु उसे भी प्यार करती हूँ—वह जो परले दरवाजे रहता है और मैं उसे भी प्यार करती हूँ, जो अभी आयेगा—अरे, मैं सबको प्यार करती हूँ।" एक बार उसने एक झाड़ी के पीछे उसे दूसरे युवक की बाहुओं में देख लिया। उसने छुरी खींची और दोनों की हत्या कर डाली।

और उस दिन से—जो कहानी कह रहा था, कहता गया—उस दिन से वह बाजा बजाता सडकों में घूमता है। उसे कोई भय नहीं। बच्चे उस पर पत्थर फेंकते हैं और लड़कियाँ हँसती हैं। वह जैसे समझता नहीं, क्यों?

परन्तु मुझे विश्वास नहीं हुआ कि सच्ची बात इतनी ही है। ऊपर से सब ठीक जान पडता है, परंतु साफ़-साफ़ बात में भी रहस्य छिपा होता है। इसे खोजना चाहिए; क्योंकि यह ऊपर की चीज से



कहीं सुन्दर होता है। अब मैं समझ गया हूँ कि वह चर्च के भीतर से क्यों निकला था। वीरी का गाँव और बाजेवाला युवक, दोनों एक ही तरह के पागल हैं। समुद्र की हवा ने दोनों के सिर घुमा दिये हैं। जो कभी लौटने का नहीं, जाता रहा। मुर्ग़ की बाँग में उसी का शोक बोल रहा है, बाजे में उसी के स्वर सिसकते हैं।

वीरी में सदा से एक विचित्र युवा रहता आया है, जो ढूहों में घूमा-फिरा करता है और जो दूर तक फैले समुद्र को ताकता रहता है।



नर्तकी

लेफ़केडियो हार्न

(१)

जैसा अब भी होता है, पहले भी जापान के युवा कलाकार देश के भिन्न-भिन्न भागों में पैदल यात्रा करते थे। वे रास्ते के सुन्दर दृश्य देखते जाते थे, उनके चित्र उतारते थे और प्रसिद्ध बौद्ध-मन्दिरों में सुरक्षित कला की चीज़ों का अध्ययन भी करते थे। इन यात्राओं के फल-स्वरूप वे सुन्दर पुस्तकें और प्रकृति के चित्र देखने में आते हैं, जो आजकल इतने अद्भुत और अग्राह्य समझे जाते हैं और जो भली भाँति स्पष्ट कर देते हैं कि केवल जापानी ही प्रकृति को सफलता से खींच सकता है। तुम जब प्रकृति-पर्यवेक्षण का उनका ढंग जान लेते हो, तो विदेशी ढंग तुम्हें अस्वस्थ और आत्मा-रहित लगते हैं। विदेशी कलाकार जो देखता है, उसका यथार्थ चित्र उतार देता है; देशी कलाकार जो अनुभव करता है, ऋतुओं का भाव और समय और स्थान का ठीक-ठीक इंगित, सब देता है। वह इंगित पश्चिमी कला में नहीं पाया जाता। पश्चिमी चित्रकार विस्तृत रूप-रेखाएँ देता है; जिस कल्पना को वह जाग्रत् करता है, उसे वह पूरा-पूरा संतोष दे देता है। परन्तु उसका पूर्वी बन्धु विस्तृत रूप रेखाओं को या तो दबा देता है, अथवा उन्हें आदर्श बना देता है। दूरियों को वह कुहरे से ढक देता है, प्रकृति के चित्र पर बादलों की किनारी चढ़ा देता है। उसके अनुभवों में केवल सुन्दर और अद्भुत ही शेष रहता है। वह कल्पना से आगे बढ़ जाता है, उसे उत्तेजना देता है, उनमें उस प्रकाश की प्यास छोड़ जाता है. जो कभी-कभी आत्मा में चमक उठती है। इन स्पर्शों में वह समय और स्थान की आत्मा को चमका देता है, जैसे उसने जादू कर दिया हो। वह स्मृतियों और चमत्कारों का चित्रकार है, कटे-छटे सत्य का नहीं। इसी में उसकी अद्भुत शक्ति छिपी है। वह सबसे अधिक व्यक्तित्वशून्य है। उसके मानव-चित्रों में कोई स्पष्ट व्यक्तित्व नहीं रहता। वे स्वयम् एक जाति के चित्र होते हैं। यह कला स्टूडियो में नहीं पैदा हुई, यात्रा और पर्यवेक्षण ने इसे जन्म और तदनन्तर विकास दिया है।

बहुत-बहुत वर्ष हुए, एक युवा कलाविद्यार्थी पहाड़ों के रास्ते क्योटो से चूडो पैदल जा रहा था। सड़कें तब थोड़ी ही और ख़राब थीं, और आज के समय से यात्रा इतनी क़ठिन थी कि कहावतें चल निकली थीं। वही चीड़ और देवदारु के वन थे, वही बाँस के झुरमट, वही छप्परों के



गाँव, वही धान के खेत, जिनमें किसानों के पीले, फूस के हैट दिखाई देते थे। रास्तों पर उन्हीं दिनों में वही जीज़ू की मूर्तियाँ उन्हीं यात्रियों पर मुस्कराती दीखती थीं। और गर्मी के दिनों में अब की तरह तब भी नंगे-भूरे बच्चे उथली नदियों में खिलखिलाते होते थे और नदियाँ धूप में खिली पड़ती थीं।

विद्यार्थी के लिए यह सब नया नहीं था; वह बहुत यात्राएँ कर चुका था। रास्तों और सरायों की कठिनाइयाँ वह सह चुका था और प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न रहने का आदी हो गया था। परन्तु इस बार दिन ढलने के बाद वह ऐसी जगह में पड़ गया, जहाँ ठहरने का कोई स्थान नहीं दिखाई देता था और जो खेतों से भी दूर पड़ता था। एक पहाड़ी से उतरकर उसने किसी गाँव को जाना चाहा और इस चेष्टा में वह रास्ता खो गया।

चाँद चमक नहीं रहा था, और देवदारु की छाया ने अँधेरी फैला रक्खी थी, जहाँ वह भटक गया था। जंगली प्रदेश जान पड़ता था, जहाँ हवा में पत्तों के खड़खड़ाने और कीड़ों की सीटी के सिवा कोई आवाज़ नहीं आती थी। इस आशा में कि उसे नदी मिल जायगी, जिसको पकड़कर वह बस्ती तक पहुँच सकेगा, वह बढ़ता गया। अंत में एक झरना उसके रास्ते में पड़ गया। उसे मुड़ जाना पड़ा और तब उसने सोचा कि पास की सबसे ऊँची चोटी पर पहुँचकर जीवन के चिह्न ढूँढने की चेष्टा करे। परन्तु ऊपर पहुँच-कर उसे चारों ओर पहाड़ियों के ढेर ही दिखाई दिये। उसने तारों की छाँह में ही रात बिताने की सोची। परन्तु तभी ढाल से उतरकर कुछ अन्तर पर स्पष्ट ही किसी निवास-स्थान से निकली पीली रोशनी की एक लकीर देख पड़ी। वह उस ओर बढ़ा और उसने एक झोपड़ी का पता पा लिया, जो किसी किसान की जान पड़ती थी। प्रकाश, जो उसने देखा था, दरवाज़े की दराज़ से छनकर अब भी आ रहा था। वह बढ़ा और उसने दस्तक दी।

(२)

कई बार दस्तक देने और पुकारने के बाद उसने अन्दर कुछ हलचल सुनी और किसी ने उससे पूछा—"क्या चाहते हो?" आवाज़ बहुत मीठी थी और प्रश्नकर्ता सामने नहीं था, परन्तु उसे आश्चर्य होता था कि वह शुद्ध शहरी बोल रही थी। उसने उत्तर में कहा "मैं विद्यार्थी हूँ, रास्ता भूल गया हूँ; चाहता हूँ, अगर हो सके, खाना और रातभर के रहने के लिए जगह मिल जाय। यदि न हो सके तो पास के गाँव का पता जानकर ही वह अनुगृहीत होगा।" उत्तर में आवाज़ ने कई प्रश्न किये, उसने आश्चर्य प्रकट किया कि कैसे वह उस रास्ते से उधर पहुँच सका। अंत में निश्चिंत होकर उसने कहा—"ठहरिए, मिनट भर बाद खोलती हूँ। रात में गाँव पहुँचना कठिन होगा और रास्ता भी ख़तरनाक है।"

द्वार खुला और काग़ज़ की लालटेन लिये एक स्त्री बाहर आई। लालटेन को यों पकड़े थी कि अपरिचित का चेहरा चमक जाता था, परन्तु उसका अँधेरे में ही रहता था। उसने मौन हो कर उसे देखा-भाला और तब संक्षेप में कहा—"ठहरो, पानी लाती हूँ।" वह एक आश... ले आई, उसे दरवाज़े की दहलीज़ में रख दि... और मेहमान को तौलिया दी। उसने ... जूते उतार दिये, पैरों से पथ की धूल पोंछी। ... उसे अन्दर के साफ़-सुथरे और शायद एक ... कमरे में लिवा ले गई। कमरे के एक भाग ... अलग कर रसोई बना ली गई थी। बैठने के लि... उसे आसन दिया गया।



तब उसने उसे देखा और उसके चेहरे की सुन्दरता और नज़ाकत से चौंक पड़ा। वह उससे तीन-चार वर्ष बड़ी रही होगी, परन्तु अभी जवानी पर थी। वह गाँव की लड़की कभी नहीं थी। उसी मीठी आवाज़ में उसने कहा—"मैं अकेली रहती हूँ और मेरे यहाँ मेहमान नहीं आते। आज रात तुम्हें और यात्रा करना कठिन और भयावह होगा। इसलिए सुबह तक ठहर सकते हो। तुम्हें आराम तो न मिल सकेगा, परंतु बिस्तर का प्रबन्ध मैं कर दूँगी। मैं समझती हूँ भूखे होगे। देवता का प्रसाद रक्खा है, कुछ खाना अच्छा नहीं है, परन्तु लाये देती हूँ।"

पथिक भूखा था, प्रसन्न ही हुआ। युवती ने आग जलाई, रकाबियाँ तैयार कीं, कुछ साग-पात और चावल सजाये और उसके सामने ला रक्खे। जब तक वह खाता रहा, वह बोली नहीं और उसकी गंभीरता उसे अखर गई। उसके कुछ प्रश्नों का उत्तर उसने केवल सिर हिला-कर हाँ और ना में दिया भी और इसी लिए उसने भी बात बढ़ाने की चेष्टा नहीं की।

इस समय में उसने देख लिया था कि मकान साफ़-सुथरा है। जिन बर्तनों में खाना दिया था, चमक रहे थे। कमरे में जो कुछ सस्ती चीज़ें थीं, सुन्दर थीं। जिन काग़ज़ के सरकनेवाले पल्लों से आल्मारियाँ बनी थीं, उन पर बड़े-बड़े चीनी अक्षरों और चित्रों में सजावट की गई थी—विषय, जो इस तरह की सजावट में रहता है। कवि और चित्रकारों के वही विषय, जैसे वसन्त, चाँदनी, नदी, वर्षा, आकाश और तारे, शरद और नदी, शिशिर-समीर। कमरे के एक कोने में एक वेदी रक्खी थी, जिस पर रक्खे सन्दूक के काम किये दरवाज़े खुले थे और अन्दर की नाम-लिखित तख़्ती दिखाई पड़ती थी। इसके आगे फूलों के बीच में दीप जल रहा था, और इस गृहमूर्ति के ऊपर साधारण चित्रों से कहीं अच्छा क्षमा देवी का एक चित्र टँगा था। चित्र में देवी के सिर के जूड़े में चन्द्रमा गुँथा था।

विद्यार्थी ने जब भोजन समाप्त कर लिया तो युवती ने कहा—"मैं तुम्हें अच्छा-सा बिछौना नहीं दे सकती। केवल एक काग़ज़ की मच्छर-दानी है। बिछौना और मच्छरदानी मेरी हैं। परन्तु आज रात मुझे बहुत काम करना है और मुझे सोने का समय नहीं मिलेगा। इससे मेरी प्रार्थना है, उस पर तुम विश्राम करो।"

तब उसकी समझ में आया कि किसी अज्ञात कारण से वह अकेली है और बहाना बनाकर अपना एकान्त बिछौना उसे दे रही है। उसने विरोध किया, कहा कि कहीं फ़र्श पर पड़ रहूँगा, और मुझे मच्छरों की चिन्ता नहीं है। परन्तु उसने बड़ी बहन के लहजे में कहा कि उसे यह करना होगा। उसे सच ही कुछ करना है और वह जहाँ तक सम्भव है, अकेली रह जाना चाहती है। फिर वह कुछ कह न सका, क्योंकि कमरा एक ही था। उसने फ़र्श पर चटाई बिछा दी, एक लकड़ी का तकिया ले आई, काग़ज़ की मच्छर-दानी तान दी, एक बड़ा-सा परदा डाल दिया और उससे इस तरह बिदा माँगी, जैसे वह चाहती है, वह अभी लेट रहे। वह सोने चला गया, परन्तु उसे यह सोचकर हिचक जान पड़ी कि उसने उसे व्यर्थ कष्ट दिया।

(३)

वह थका हुआ था और लेटते ही सो गया। जब वह जगा, उसे सोये बहुत देर न हुई थी। उसने पदचाप सुनी थी, परन्तु वह चलने में पैरों की आवाज़ नहीं थी। वह दौड़ने की और उत्ते-जना की चाल की आवाज़ थी। उसके ध्यान में आया कि कहीं डाकू न घुसे हों। अपने लिए उसे विशेष डर नहीं था; क्योंकि उसके पास खोने

के लिए कुछ भी नहीं था। उसको केवल गृह-स्वामिनी की चिन्ता थी। मच्छरदानी के दोनों ओर काग़ज़ में जालियाँ कटी थीं और इनमें से एक में से उसने झाँकने की चेष्टा की, परन्तु परदा बीच में रहा। उसने पुकारने की बात सोची, परन्तु यह सोचकर रह गया कि यदि परिस्थिति अच्छी नहीं है तो उसका सामने पड़ जाना बेकार और दुस्साहस होगा। जिन आवाज़ों ने उसे बेचैन कर दिया था, वे लगातार आ रही थीं और अधिक-अधिक रहस्य होती जाती थीं। उसने जान लड़ा देने की सोची। जल्दी-जल्दी कपड़े लपेटकर वह चुपके से मच्छरदानी के बाहर निकल आया और परदे के ऊपर से झाँकने लगा। जो देखा, उसने उसे आश्चर्य-चकित कर दिया।

दीपक के प्रकाश में युवती पूरी सज्जा में नृत्य कर रही थी। वह 'गेशा' के कपड़े पहने थी, परन्तु वे साधारण नर्तकियों के कपड़ों से अधिक मूल्य के थे। क्षणभर उसे जादू का संदेह हुआ। किसानों के अन्धविश्वास और स्त्रियों की दन्त-कथाएँ उसे याद हो आईं; परन्तु बौद्ध मूर्तियों और धार्मिक चित्रों से उसे अपने संदेह पर लज्जा हुई। रात्रि के इस समय और इस स्थान पर उसका सौन्दय अति प्राकृतिक हो रहा था, परन्तु इससे भी अद्भुत उसका नृत्य था। उसी समय उसे ऐसा लगा कि वह जो देख रहा है, किसी ने छिपाना चाहा था। उसका धर्म है लौट जाय, परन्तु इस दृश्य ने उसे मुग्ध कर लिया था। प्रत्येक पल वह अनुभव कर रहा था कि वह महान् कलाकार की कला देख रहा है और धीरे-धीरे उसका जादू उस पर चल गया। सहसा वह रुक गई, हाँफने लगी, फेंट खोल दी और अंचल छुड़ाने के लिए मुड़ी। सहसा उसकी आँखों से भिड़ते ही वह बेतरह चौंक पड़ी।

वह क्षमाप्रार्थी हुआ।

पहले युवती को क्रोध आ गया, परन्तु जैसे जैसे उसने अपनी उत्सुकता प्रकट की, उसका भाव बदल गया। वह मुस्कराई और उसके सामने बैठ गई। "मैं तुमसे अप्रसन्न नहीं हूँ," उसने कहा—"मुझे शोक है कि तुमने मुझे देख लिया, क्योंकि तुमने मुझे पागल समझा होगा। इसी से मुझे अपने एकांत नृत्य के अर्थ भी कहने पड़ेंगे!"

और उसने अपनी कहानी कही। वह अपने समय की सबसे अधिक प्रसिद्ध नर्तकी रही है और उसने उसका नाम सुन रक्खा था। एक समय राजधानी में यह नाम सर्वप्रिय था, परन्तु एक दिन एकदम वह समाज के जीवन से अंतर्धान हो गई और किसी ने नहीं जाना कि वह कहाँ गई, क्यों गई! वह एक नवयुवक के साथ, जो उससे प्रेम करता था, भाग आई थी। वह गरीब था, परन्तु दोनों के पास देहात में रहने के लिए काफ़ी धन था। उन्होंने दूर पहाड़ों में एक घर बनाया और कई वर्ष तक वे केवल एक दूसरे के लिए ही जीवित रहे। वह तो उसकी पूजा ही करता था। वह नाचती तो उसे बड़ा आनन्द मिलता। प्रत्येक संध्या को वह अपनी प्रिय रागिनी बजाता और वह उस पर नृत्य करती। एक वर्ष, सर्दी के दिनों में वह बीमार पड़ गया और उसकी सेवा से भी न बच सका। तब से वह उसकी स्मृति लिये अकेली रहती है। रोज़ वह उसके चित्र को फूल चढ़ाती थी और पहले की तरह रात को नृत्य करती। यह उसकी व्याख्या थी। युवती ने कहा—उसने उसके सो जाने की प्रतीक्षा की थी और तब बहुत-बहुत धीमे पैरों से नाचने की चेष्टा की थी। उसकी नींद उचट गई, इसके लिए उसे माफ़ करें।

उसने थोड़ी चाय बनाई। दोनों ने

[नाप] पी । तब उसने पथिक से सो जाने का आग्रह किया ।

वह देर तक सोता रहा । जब वह जागा, सूरज निकल आया था । उसको पिछली साँझ की तरह इस बार भी सादा खाना मिला । जब वह विदा होने लगा, उसने उसे कुछ देना चाहा, परन्तु उसने यह कहकर लेने से इनकार कर दिया—"जो मैंने दिया है, उसका कुछ भी मूल्य नहीं होता; वह केवल कर्तव्य था । आप यहाँ के कष्ट भूल जायँ और एक ऐसे व्यक्ति की, जिसके पास देने को कुछ भी नहीं है, शुभ कामनाएँ याद रक्खें !" उसने उसे रास्ता बताया और जब वह पहाड़ से उतरने लगा, जब तक वह दृष्टि के ओझल नहीं हो गया, वह उसे देखती रही । घंटे भर बाद वह जाने हुए रास्ते पर पड़ गया । सहसा उसे ध्यान आया—वह उसे नाम बताना तो भूल ही गया । फिर उसने सोचा—"इससे होता भी क्या है ! मैं हमेशा ग़रीब ही रहूँगा ।" और वह चल गया ।

(४)

कितने ही वर्ष बीत गये, जमाना बदल गया और चित्रकार बूढ़ा हो गया । परन्तु तब तक वह प्रसिद्ध हो गया था । उसके चित्रों पर मुग्ध होकर सभी राजे-महाराजे उसे रखना चाहते थे । वह धनी भी हो गया था और राजधानी में उसका एक विशाल भवन था । भिन्न-भिन्न प्रान्तों के कलाकार उसके शिष्य थे, उसके साथ रहकर सीखते थे और उसका नाम देश भर में गूँज रहा था ।

एक दिन एक बुढ़िया उसके भवन के फाटक पर पहुँची और उसने उससे मिलना चाहा । नौकरों ने उसे भिखारिणी समझा और बुरी तरह भरत्सना करने लगे । परन्तु उसने केवल कहा—"मैं तुम्हारे मालिक से कहूँगी कि क्यों आई हूँ ।" उन्होंने उसे पागल समझा और बहाना करके टरका दिया । उन्होंने कहा—वह हैं नहीं, हम जानते नहीं कब लौटेंगे ।

परन्तु बूढ़ी बार-बार आती रही । दिन बीते, हफ़्ते बीत गये और हर बार उससे कुछ झूठ बोल दिया जाता, परन्तु वह प्रत्येक दिन उसी समय पहुँच जाती, उसकी बग़ल में एक बंडल होता । तब नौकरों ने अंदर ख़बर देकर ही पीछा छुड़ाना उचित समझा । उन्होंने कहा—द्वार पर भिखारिणी-जैसी कोई स्त्री है । पचास बार आई है और प्रति बार कहती थी—जो कहना है, मालिक से मिलकर कहूँगी, पागल जान पड़ती है ।

चित्रकार ने कहा—तुमने मुझसे पहले क्यों नहीं कहा ? वह स्वयम् द्वार पर गया । उसने पूछा, वह क्या चाहती है, क्या भीख ?

परन्तु उसने उत्तर दिया—मुझे रुपये-खाने की ज़रूरत नहीं है । मुझे एक चित्र खिंचवाना है । चित्रकार को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह उसे अन्दर ले गया । वहाँ उसने अपनी गठरी खोली, सोने की किनारी लगी रेशमी साड़ी निकाली, उसका रंग उड़ा हुआ था और वह फट गई थी । पिछले दिनों में नर्तकियाँ ऐसा कपड़ा पहनती थीं ।

बूढ़ी जब साड़ी की तहें खोल रही थी, जब वह काँपती हुई उँगलियों से उसकी सिल्वटें मिटाती थी, चित्रकार के मन में एक अतीत स्मृति जाग रही थी, उसकी कल्पना में एक बार फिर पहाड़ एकान्त मकान, कमरा, काग़ज़ की मच्छरदानी, मंद जलता दीप, और रात के सन्नाटे में उसके सामने नाचती हुई युवती के दृश्य फिर गये । सहसा उसने बूढ़ी को अभिवादन किया । उसने कहा—"मुझे क्षमा करो, मैं क्षणभर के लिए तुम्हें पहचान न सका था । हमें मिले चालीस वर्ष हो गये हैं । मुझे तुम



अच्छी तरह याद हो। तुमने मेरा स्वागत किया था, अपना एक ही बिछौना दे दिया था और मैंने तुम्हें नाचते देखा था। तब तुमने अपनी कहानी कही थी। तुम नर्तकी रही थीं। तुम्हारा नाम मैं भूला नहीं हूँ।"

वह अचरज में पड़ गई, उलझ गई, उत्तर न दे सकी। वह बूढ़ी हो गई थी, उसने बड़े दुख झेले थे और उसकी स्मृति धुँधली पड़ गई थी। बड़ी देर के बाद उसने हर्ष के आँसू भरकर कहा—"ईश्वर ने मुझे राह दिखाई है। परन्तु मास्टर ने जब मेरा घर पवित्र किया था, मैं ऐसी नहीं रही थी। बुद्धदेव की कृपा है कि मैं तुम्हें अब भी याद हूँ।"

और उसने अपनी सीधी-सादी कहानी का शेष भी सुना डाला। ग़रीबी के कारण उसे मकान छोड़ना पड़ा और बुढ़ापे में वह एक बार फिर नगर में आई, जहाँ उसका नाम लोग कभी का भूल चुके थे। इससे भी अधिक दुःख उसे इस बात का था कि वह मृतात्मा की प्रसन्नता के लिए प्रत्येक साँझ नाच नहीं सकती थी। अतएव वह चाहती थी कि उन कपड़ों में अपनी तस्वीर खिंचवाये। वह चाहती थी कि मृतक का सम्मान साधारण कृति से ही न हो। प्रसिद्धि सुनकर वह चित्रकार के पास आई थी। वह नाचने के कपड़े साथ लाई थी, इसलिए कि कदाचित् चित्रकार उसे उनमें चित्रित करना पसंद करे।

वह संतोष से सुनता रहा। उसने कहा—चित्र बनाने में मुझे प्रसन्नता होगी। आज मुझे कुछ काम करना है, जिसमें मैं देरी नहीं कर सकता। कल आओ तो जैसा चाहोगी और जैसा कर पाऊँगा, तुम्हें चित्रित कर दूँगा।

परन्तु उसने कहा—मुझे बड़ा दुःख है, बड़ा दुःख है। इस अनुग्रह के बदले में आपको ये कपड़े ही दे डाल सकती हूँ और इनका कोई मूल्य नहीं। कभी ये बहुमूल्य थे। परन्तु कदाचित् ही आप इन्हें लेना पसंद करें। याँ अजीब-से हैं। अब की नर्तकियाँ इन्हें नहीं पहनतीं।

चित्रकार ने कहा—उसकी बात रहने दो। नहीं, मुझे प्रसन्नता है, थोड़ा पुराना कर्ज़ा चुकाने का मुझे यह मौक़ा मिल रहा है। कल जैसी चाहोगी, तुम्हारी तस्वीर बना दूँगा।

वह उसके चरणों में लेट गई, उसको धन्यवाद देने लगी। उसने कहा—तब मैं जो प्रार्थना करती थी, पूरी कर दो। मेरी जवानी तुमने देखी है। उसे मेरे बुढ़ापे का चित्र न बनाओ। मैं नहीं चाहती। तुम्हें मेरी जवानी याद है। ओ मास्टर, मुझे फिर युवा कर दो। मुझे सुन्दर बना दो, जिससे उसकी आँखों में मैं सुन्दर लगूँ। वह मास्टर की कृति देखेगा। वह मुझे क्षमा कर देगा कि मैं नाच नहीं सकती।

मास्टर ने कहा—तुम मुझे ख़ूब याद हो। तुम सुन्दरी थीं। कल आओगी तो मैं तुम्हारा चित्र खींच दूँगा। जब हम पहले मिले थे, तुम सुन्दरी थीं। मैं तुम्हें वैसा ही बना दूँगा। केवल आओ अवश्य।

(५)

अगले दिन ठीक समय पर वह आई। सफ़ेद रेशम पर कलाकार ने उसकी एक तस्वीर बना दी। वह उसकी जवानी की तस्वीर थी। कूची के स्पर्श से बूढ़ी की गई जवानी लौट आई। उसकी मुरझाई कली खिल गई। वह बाँस की तरह पतली, चिड़ियों की तरह चमकीली आँखें, रेशम सोने की साड़ी में आकाश की परी-सी। उसने उसको रेशम पर मढ़ा, रोलर और हाथी-दाँत लगाया, उसे सफ़ेद लकड़ी के सन्दूक में रक्खा और बूढ़ी को दे दिया। वह उसे कुछ देना भी चाहता था, परन्तु उसने इनकार कर



दिया—मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है। यही मैं चाहती थी। अब मुझे कुछ इष्ट नहीं रह गया। मुझे दुख है कि मैं ये कपड़े ही दे सकती हूँ और इनका कोई मूल्य नहीं है। इन्हें स्वीकार करो। मैं प्रार्थना करूँगी कि तुम सुखी रहो।"

चित्रकार ने मुस्कराकर कहा—"मैंने किया ही क्या है! तुम्हें ख़ुशी होती है तो यह मैं रक्खे लेता हूँ। फिर भी मैं तुम्हारा पुराना कर्ज़दार रहूँगा। कहाँ रहती हो, मुझे बताओ, जिससे मैं तुम्हें लटकते हुए भी देख लूँ।"

परन्तु उसने क्षमा माँगी। उसने बताया नहीं। उसकी तुच्छ कुटिया क्या महानुभावों के योग्य है। उसने बार-बार उसे धन्यवाद दिया और वह रोती हुई गई।

चित्रकार ने नौकर को दौड़ाया। "इस बुढ़िया के पीछे-पीछे जाओ और उसके निवास-स्थान को देख आओ"—उसने कहा।

(६)

दूसरे दिन सुबह सूर्योदय के एक घंटे पहले चित्रकार उस नौकर को साथ लेकर नदी के किनारे-किनारे, शहर के बाहर, अछूतों की बस्ती में गया।

झोपड़ी का दरवाज़ा उन्होंने बंद पाया। आवाज़ दी, उत्तर नहीं मिला। दरवाज़ा अंदर से बंद नहीं था, ठेलने पर खुल गया। किसी ने उत्तर नहीं दिया। चित्रकार घुसा। कभी जब वह भोला-भाला युवक था, कभी एक और बार वह इसी तरह उसी के द्वार पर खड़ा था।

झुककर देखा—बुढ़िया पतली फटी चादर ओढ़े सो रही है। भद्दे-से ताक़ पर चालीस वर्ष पहले की वेदी, सन्दूक़ची, पटिया थी। दीपक जल रहा था। क्षमा की देवी की तस्वीर नहीं थी। उस एकान्त कुटी में अधिक कुछ नहीं था—ओढ़ने-पहनने के फटे-पुराने वस्त्र थे, लाठी थी, भीख माँगने का प्याला था।

परन्तु चित्रकार इन चीज़ों में उलझना नहीं चाहता था। वह चाहता था, उसे जगाये और चकित कर दे। दो-तीन बार उसने उसका नाम लेकर पुकारा।

तब सहसा उसने जान लिया, वह मर गई है। उसके मुख पर दृष्टि पड़ने पर उसे आश्चर्य हुआ। वह अब युवती जान पड़ रही थी। यौवन की एक छाया-सी, उड़ती हुई मिठास-सी उस पर लौट आई थी। उससे भी एक बड़े कलाकार के स्पर्श से दुख की रेखाएँ पिघल गई थीं और झुर्रियाँ अद्भुत रूप से सँवर गई थीं।



फ्रांस

गिलमो की चट्टान

मोपाँसा

आजकल गिलमो के शिकार का मौसम है। पहली मई से अप्रैल के अंत तक आपको अबरेटा के छोटे से घाट पर कुछ बूढ़े सभ्य शिकारी बूट और शिकारी कोट पहने दिखाई पड़ेंगे। ये पास के एक होटल में चार-पाँच दिन बिताकर कहीं चले जाते हैं। तीन सप्ताह बाद दूसरी बार आते हैं और फिर साल भर ग़ायब रहकर दूसरे साल दिखाई पड़ते हैं।

ये गिलमो के पुराने शिकारी हैं। तीस साल पहले ये बीस के लगभग थे, अब कुछ ही रह गये हैं।

गिलमो बहुत कम बाहर निकलता है! उसका स्वभाव अजीब है। क़रीब-क़रीब सारे वर्ष यह न्यूज़ीलैंड और सेंट पेरी के दूर के द्वीपों में रहता है और बच्चे देने के दिनों में हर साल इनमें से एक झुंड प्रशान्त-महासागर को पार करके अबरेटा के पास की एक चट्टान पर गिलमो अंडे देने और उनसे बच्चे निकालने के लिए आ जाता है। कोई पक्षी उस स्थान के सिवा किसी दूसरी चट्टान पर दिखाई नहीं देता। वे हमेशा उसी जगह आते हैं और बन्दूक़ का निशाना बनाये जाते हैं। जब बच्चे उड़ने योग्य हो जाते हैं तो ये फिर साल भर के लिए फिर अदृष्ट हो जाते हैं।

क्यों ये किसी अन्य जगह नहीं जाते? इसी चट्टान का कोई और कोना नहीं ढूंढ़ निकालते? कौन-सी शक्ति, कौन-सा विशेष भाव इन नन्हें प्राणियों को इस जगह आने को विवश कर देता है? पहले-पहल वे यहाँ कैसे आये और किसने उन्हें इसी चट्टान पर मृत्यु के घाट उतार दिया और क्यों उनकी आनेवाली नस्लें यहाँ फिर भी आती हैं!

संख्या में ये कुछ अधिक भी होते—यही अधिक-से-अधिक सौ। यों जान पड़ता है जैसे अकेला यही ख़ानदान यहाँ हर साल हज करने आता है।

प्रत्येक वसंत ऋतु में ज्यों ही ये पक्षी चट्टान पर दिखाई पड़े, वहीं पहले शिकारी आ जाते हैं। कभी, जब वे युवा थे, गाँव का बच्चा-बच्चा उन्हें जानता था और अब जब वे बूढ़े हो चुके हैं, उसी उत्साह से वहाँ इकट्ठा होते हैं, जिस तरह तीस-चालीस वर्ष पहले आया करते थे।

पिछले वर्ष, अप्रैल की एक शाम को इन शिकारियों में से तीन शिकारी वहाँ दिखाई



हुई। मोशियो आरनल अभी नहीं पहुँचा था। उसने अपनी अनुपस्थिति की कोई सूचना भी नहीं दी थी, परंतु इतना पता था कि वह जीवित है। प्रतीक्षा करते-करते अंत में वे तीनों खाने की मेज़ पर बैठ गये। भोजन का समय समाप्त हो चुका था कि होटल के सहन में एक गाड़ी आई और जल्द ही मोशियो ने कमरे में प्रवेश किया।

वह अपने हाथ मलता हुआ बड़ी प्रसन्नता से बैठ गया। उसने पेट भरकर खाना खाया। उसके एक साथी ने फ्रांक-कोट पहनने पर आश्चर्य किया। उसने उत्तर दिया—"जल्दी में बदलने का समय नहीं मिला।"

मेज़ से उठते ही वे सोने चले गये, जिससे सुबह होते ही शिकार को चल दें।

मल्लाहों ने खिड़की के शीशों पर छोटे-छोटे कंकड़ मार-मारकर तीन बजे ही शिकारियों को जगा दिया। कुछ ही मिनटों में वे तैयार होकर समुद्र-तट पर पहुँच गये। सूर्योदय अभी नहीं हुआ था। तारों का प्रकाश फीका पड़ गया था। ठंडी हवा चल रही थी और वे गर्म कपड़ों में काँप रहे थे।

शीघ्र ही दो नावें आगे बढ़ीं और किनारे की नन्हीं-नन्हीं लहरों पर तैरने लगीं। अँधेरा दूर हो गया और आसमान साफ़ दिखाई पड़ने लगा। समुद्र-तट, जो अभी धुंध में छिपा था, दिखाई देने लगा। वह सहसा एक चट्टान के सामने आ गये, जो गिलमो की चट्टान कहलाती है। पक्षी वहाँ चुप और जड़ की भाँति निश्शंक बैठे थे और शिकारियों को देखकर उड़ने का कोई उपक्रम नहीं करते थे। उनमें से कुछ दूर चट्टानों के किनारों पर पिछली ओर झुके हुए जान पड़ते थे। उनकी टाँगें इतनी छोटी थीं कि जब वे चलते थे तो जान पड़ता था, वे दो छोटे-छोटे पहियों पर चल रहे हैं। कभी-कभी उड़ते-उड़ते वे शिकारियों के ठीक सिरों पर आ पहुँचते थे।

पहले दिन मोशियो आरनल ने बड़े उत्साह से शिकार किया। दस बजे जब सूरज पूरी तेज़ी से चमक उठा तो चट्टानें तपने लगीं, वे लौट आये। उस समय मोशियो के मुख पर घबराहट थी और जान पड़ता था कि वह किसी गहरे विचार में डूबा हुआ है।

ज्यों ही वे घर पहुँचे काले कपड़ों में एक नौकर दिखाई पड़ा। उसने मोशियो आरनल के कान में कोई बात कही। मोशियो ने कुछ रुककर कहा—"नहीं, कल सुबह।"

दूसरे दिन वे फिर शिकार में लग गये। उस दिन मोशियो आरनल का निशाना बहुधा चूक जाता, हालाँ कि पक्षी स्वयम् डरकर उसके पैरों में आ गिरते। उसके साथी हँसते हुए उससे पूछने लगे—"क्या तुम्हें आज कोई दुख है अथवा किसी के प्रेम में पड़ गये हो?" उसने स्वीकार करते हुए कहा—"हाँ, ठीक है। एक विचार ने मुझे चक्कर में डाल दिया है। मुझे अभी चल देना चाहिए।"

"क्या तुम जा रहे हो? क्यों जाते हो?"

"किसी आवश्यक काम के लिए मैं अधिक देर नहीं ठहर सकता।"

इसके पश्चात् वे दूसरी बातों में लग गये।

तीसरे पहर भोजन के बाद नौकर फिर आया। मोशियो आरनल ने घोड़े जोतने को कहा। वह जाने को था कि अन्य शिकारी आ गये और ठहरने का अनुरोध करने लगे।



एक ने कहा—"तुम दो दिन से हमारे साथ हो। ऐसा ही आवश्यक काम था तो पहले दिन से चले गये होते।"

मोशियो आरनल घबराया हुआ था।

देर तक विचार में डूबे रहकर उसने हिचकिचाते हुए धीमी आवाज़ में कहा—"तुम देखते हो...तुम देखते हो, मैं यहाँ अकेला नहीं हूँ। मेरा दामाद मेरे साथ है।"

यह सुनकर सब सन्न रह गये। मोशियो आरनल को बड़ा दुःख हो रहा था। उसने कहा—"अभाग्य! वह मर गया। मैं उसकी लाश को अपने घर ले जा रहा था कि मुझे वादे का ध्यान आया और विवश होकर मुझे यहाँ आना पड़ा। अब तुम जान गये कि मैं इससे ज्यादा देर यहाँ नहीं ठहर सकता।"

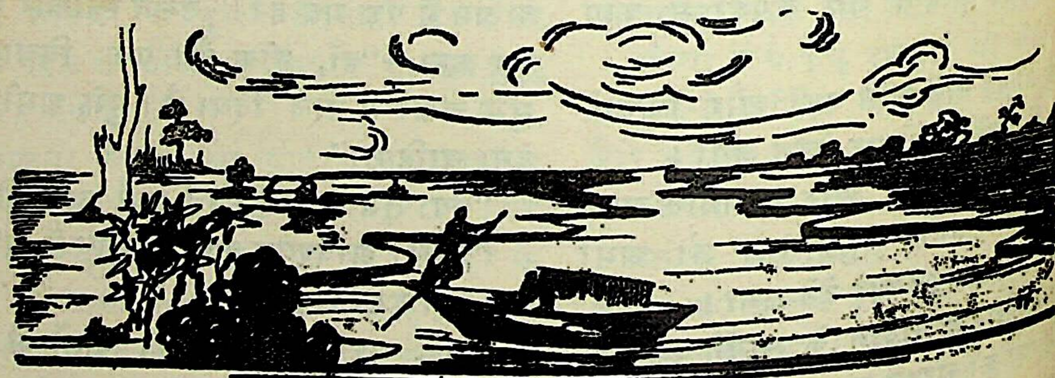
एक शिकारी ने, जो दूसरों से अधिक साहसी जान पड़ता था, कहा—"अब, वह मर गया है...स्पष्ट है, तुम सरलता से एक दिन और यहाँ रह सकते हो।"

दूसरे शिकारी भी कहने लगे—"हाँ, तुम अस्वीकार नहीं कर सकते।"

यों जान पड़ता था, जैसे मोशियो के सिर से बोझ उतर गया है, फिर भी वह कुछ तक दुखी दिखाई देता था। उसने कहा—"तुमने यह बात हृदय से कही है?"

सबने एक साथ कहा—"छोड़ो, इस बात को, मित्र! मृत्यु की दशा में दो दिन कम अथवा दो दिन अधिक का कोई प्रश्न नहीं।"

यह सुनकर मोशियो आरनल निश्चिन्त हो से क़फ़न देनेवाले नौकर से कहने लगा—"अच्छा, भले आदमी! अब परसों सही!"



ईवानिच

एन्टनी चेखव

(१)

स— में नये आनेवाले जब जीवन के भारीपन और एकरसता की शिकायत करते, नगर के रहनेवाले, जैसे बचाव के लिए, कहते कि स—खूब अच्छा शहर है—लायब्रेरी है, थियेटर है, क्लब है; नाचघर हैं और वहाँ भले, होशियार और दिलचस्प कुटुंब हैं, जिनसे जान-पहचान बढ़ सकती है; और वे टरकिन के घर को सभ्यता और प्रतिभा के उदाहरण में बतला देते।

गवर्नर के पास ही यह कुटुम्ब प्रधान सड़क पर रहता था। इवान पेट्रोविच टरकिन, जो तगड़ा, खूबसूरत और गेहुएँ रंग का गलमुच्छोंदार आदमी था, जनता के हित-जैसे कामों के लिए धन-संग्रह करने के लिए खेल कराता था। इनमें, वह बड़ी उम्र के फ़ौजी अफ़सर का पार्ट लेता और बड़े सुन्दर और आकर्षक ढंग पर खाँसता। उसे बहुत-सी कहानियाँ, बहुत-सी गप्पें और बहुत-सी कहावतें याद थीं, और मज़ाक करना पसंद था, परन्तु वह अपनी चेष्टा इस प्रकार बनाये रखता कि यह कहना कठिन होता कि वह हँसी कर रहा है या गंभीर है। उसकी पत्नी वेरा आसीफ़ोना दुबली-पतली और देखने में अच्छी थी। वह उपन्यास और कहानियाँ लिखा करती। आगन्तुकों को उन्हें पढ़कर सुनाने में उसे बड़ा आनन्द आता। पुत्री, एक्टरीना इवानोवना, जो अब युवती थी, पियानो पर गाती थी। संक्षेप में, कुटुम्ब के प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिभा विशेष ढंग की थी। वे आगन्तुकों का स्वागत करते और बड़ी सादगी से अपनी विशेषताएँ दिखाते। उनके पत्थर के घर में जगह काफ़ी थी। वह गर्मी में ठंडा रहता था। आधी खिड़कियाँ घने, पुराने बाग़ में खुलती थीं, जहाँ बहार में बुलबुलें गाती थीं। जब मिलनेवाले आते, रसोई-घर में चाक़ू-छुरे खड़कते और सहन में भुनी प्याज़ की गंध आती—और इससे पता चल जाता था कि खूब-सा स्वादिष्ट खाना मिलेगा।

और जब मित्री ईवानिच स्टारज़ेबा ज़िला-डाक्टर होकर आया और स—से छः मील की दूरी पर ड्यालिजा में रहने लगा, उससे भी कहा गया कि सभ्य होने के नाते उसके लिए आवश्यक है कि टरकिन-घराने से



परिचय प्राप्त करे। जाड़े की ऋतु में एक दिन बाज़ार में इवान पेट्रोविच से उसका परिचय कराया गया। उन्होंने मौसम के संबंध में, थियेटर के संबंध में और हैज़े के सम्बन्ध में बातें कीं। इवान पेट्रोविच ने डाक्टर को दावत दी। बहार के दिन थे; कोई त्यौहार की और छुट्टी थी। रोगियों को देखकर ईवानिच दिल बहलाने के लिए नगर गया। उसे कुछ खरीदना भी था। उसके पास अभी गाड़ी नहीं थी और वह मज़े में गाता हुआ चला जाता था—

"जीवन के प्याले से मैंने
आँसू जब न पिये थे.........."

नगर में उसने खाना खाया, पार्कों में घूमा, तब पेट्रोविच की दावत की याद यों ही आ गई और उसने तय किया कि चलें, देखें वे कैसे लोग हैं।

कैसे हैं आप?—इवान पेट्रोविच ने, जो उसे सीढ़ियों पर ही मिल गया था, पूछा। "ऐसे अच्छे आदमी से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, बड़ी! चले आओ, मैं तुम्हें अपनी सहधर्मिणी से परिचित कराऊँ। मैं कहता हूँ, वेरोचका"—डाक्टर को अपनी पत्नी से भेंट कराते हुए वह कहता गया—"मैं इनसे कहता हूँ कि दिन भर अस्पताल में बैठे रहने का इन्हें कोई अधिकार नहीं है। इन्हें अवकाश का समय समाज को देना चाहिए, चाहिए न?"

वेरा आसीफ़ोना ने उसे अपने पास स्थान देते हुए कहा, "बैठो, तुम मेरे साथ नाच सकते हो। मेरा पति बड़ा ईर्ष्यालु है, 'ओथेलो' है। परन्तु हम चेष्टा करेंगे और इस तरह रहेंगे कि वह कुछ जान न पावेगा।"

"अरी बिगड़ी बत्तख!"—इवान पेट्रोविच ने धीरे से कहा और उसका माथा चूम लिया—"तुम ठीक समय पर आ गये हो" उसने डाक्टर को संबोधन कर कहा—"मेरी स्त्री ने एक पोथा-सा उपन्यास लिखा है और वह उसे आज सुनाने जा रही है।"

स्टार्ज़ेव का परिचय एकटरीना इवानावना से कराया गया। वह अट्ठारह वर्ष की लड़की थी, मा की तरह दुबली-पतली और सुन्दर। उसके मुँह पर अभी बचपन था और उसका शरीर कोमल और लंबा था। उसके सुन्दर और स्वस्थ सीने के उभार से उसके यौवन का पता चल जाता था।

उन्होंने चाय पी। शाम होते-होते दूसरे लोग भी आ गये। इवान पेट्रोविच ने अपनी हँसती आँखें उन पर लगा दीं और कहा—"कैसे हैं आप लोग?" तब ये गम्भीर मुद्रा बनाकर ड्राइंग-रूम में बैठ गये और वेरा आसीफ़ोना ने अपना उपन्यास आरम्भ किया। वह इस तरह प्रारम्भ होता था "बड़ा कड़ा पाला पड़ रहा था......" खिड़कियाँ खुली हुई थीं और रसोईघर से चाकुओं की खड़खड़ाहट और भुने प्याज़ की गन्ध आती थी। आरामकुर्सी बड़े मज़े की अनुभव होती है, ड्राइंगरूम के धुँधले प्रकाश में इतना अच्छा लगता था और गरमी की सांझ के समय जब सड़क से बातचीत और हँसी की आवाज़ और सहन से लिली की भीनी गन्ध आती, यह ठीक-ठीक समझना कठिन था कि बाहर कड़ा पाला है और बर्फ़ीले मैदान में डूबता हुआ सूरज अपनी फीकी किरणों से प्रकाश दे रहा है। वेरा आसीफ़ोना ने पढ़ा कि कैसे एक सुन्दर काउन्टेस ने अपने गाँव में एक स्कूल, एक अस्पताल और एक पुस्तकालय की स्थापना की, कैसे



वह एक चित्रकार के प्रेम में पड़ गई । जो जीवन में कभी घटता नहीं, वह पढ़ रही थी, फिर भी उसके सुनने में आनन्द आता था—लोग बड़े आराम से बैठे हुए थे और दिमाग़ में ऐसे सुन्दर और शान्त विचार आ रहे थे कि उठना कोई चाहता नहीं था।

"बुरा नहीं है"—इवान पेट्रोविच ने धीमे स्वर में कहा।

और श्रोताओं में से एक ने, जो दूर की बात सोच रहा था, अस्पष्ट कहा—"हाँ... सचमुच..."

एक घंटा बीता, दूसरा घंटा। पास के नगर के बाग़ों में एक बैंड बज रहा था और कोरस चलता था। जब वेरा आसीफ़ोना ने अपनी पांडु-लिपि बंद कर दी, लोग पाँच मिनट तक चुप रहे।

"क्या आपकी कहानियाँ पत्रों में छपती हैं?"—स्टार्ज़ेव ने वेरा आसीफ़ोना से प्रश्न किया।

"नहीं" उसने उत्तर दिया—"मैं उन्हें नहीं छपवाती। मैं लिख डालती हूँ और पड़ा रहने देती हूँ। प्रकाशित क्यों कराऊँ ?...हमारे पास खाने को काफ़ी है।" और किसी कारण से सभी ने एक ऊर्ध्व साँस ली।

"और अब, बच्ची, गीत गाओ"—इवान पेट्रोविच ने अपनी पुत्री से कहा।

पियानो का ढकना उठा और गीत का पृष्ठ खोला गया। एक्टरीना इवानोवना बैठ गई और दोनों हाथों से बजाने लगी। अपनी तमाम शक्ति से उसने आरम्भ किया; उसके कंधे और छातियाँ हिलती थीं। बार-बार वह एक ही सुर बजाती थी और जान पड़ता था, वह छोड़ेगी नहीं, जब तक कि रीड टूट न जायँगे। कमरा शोर से भर गया; प्रत्येक वस्तु से आवाज़ निकलती थी—फ़र्श से, छत से, कुर्सी-मेज़ों से। वह कोई कठिन गीत निकाल रही थी, जो लंबा और बेमज़ा था। स्टार्ज़ेव को ऐसा मालूम हुआ कि किसी पहाड़ी के ऊपर से पत्थर लुढ़क रहे हैं और लुढ़के जाते हैं और वह चाहने लगा कि वे इस तरह गिरना छोड़ दें। उसी समय उसने एक्टरीना को देखा—वह परिश्रम से लाल हो उठी थी, उसके माथे पर एक लट झुक आई थी और उसने उसे बेतरह आकर्षित किया। बीमारों और किसानों में जाड़ा बिताकर, इस तरह ड्राइंग-रूम में बैठकर उस युवा और चतुर प्राणी को देखते रहना और इस प्रकार की बेमज़ा परन्तु सभ्य आवाज़ों को सुनना इतना अच्छा था, इतनी नई बात थी......

जब वह समाप्त कर चुकी और खड़ी हुई, पेट्रोविच ने कहा—"ख़ूब, बच्ची, तुमने कभी ऐसा सुन्दर बाजा नहीं बजाया होगा। डेनिस को यमराज ले जाय, तुम कभी ऐसी सुन्दर चीज़ न दे सकोगे।"

सब उसे घेरकर खड़े हो गये, उसे बधाई देने लगे और आश्चर्य प्रकट कर कहने लगे कि बहुत समय से उन्होंने वैसा गाना नहीं सुना था। वह धीमी मुस्कराहट से सुनती रही और उसके चेहरे से विजय झलकती थी।

"ख़ूब, बहुत अच्छा।"

"ख़ूब", स्टार्ज़ेव ने कहा। वह भी जोश में भर गया था। "तुमने कहाँ शिक्षा पाई है ?" उसने एक्टरीना इवानोवना से पूछा—

"......मैं ?"

"नहीं, मैं......के लिए तैयार हो रही हूँ



और अब तक मैडम जेवलास्की के साथ काम करती रही हूँ।"

"क्या तुमने हाईस्कूल की पढ़ाई समाप्त कर ली है ?"

"ओ नहीं" वेरा आसीफ़ोना ने उसकी ओर से उत्तर दिया, "घर पर उसके लिए शिक्षक लोग हैं। जानते हो, हाईस्कूल में या बोर्डिंग-स्कूल में बुरे प्रभाव भी हो सकते हैं। लड़की जब बढ़ रही हो, तो उसे मा को छोड़कर और किसी के प्रभाव में पड़ना नहीं चाहिए।"

"कुछ भी हो, मैं तो......जा रही हूँ", एक्टरीना इवानोवना ने कहा।

"नहीं, बच्ची अपनी मामा को प्यार करती है। बच्ची पापा-मामा को दुखी नहीं करेगी।"

"नहीं, मैं जाऊँगी, जाऊँगी"—एक्टरीना इवानोवना ने खेल करते हुए, पैर ज़मीन पर मारकर कहा।

जब भोजन आया, तो इवान पेट्रोविच ने अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की। आँखों में हँसकर, उसने कहानियाँ कहीं, गप्पें कीं, व्यंग किये, भद्दी पहेलियाँ सुलझाईं। वह अजीब-सी भाषा में बातें करता था और यह बात उसकी आदत में मिल गई थी।

परन्तु यहीं समाप्त नहीं हो गया। जब खा-पीकर मेहमान हाल में आये और अपने-अपने कोट और छड़ियाँ खोजने लगे, पावा निकल आया—वह चौदह वर्ष का युवा था, सिर घुटा था और बाल लाल थे।

"आओ, पावा, खेल करो"—इवान पेट्रोविच ने उससे कहा।

पावा नाटकीय ढंग से खड़ा हो गया, हाथ फैला दिये और दुखान्त नाटक के ढंग पर चिल्लाया—"अभागी स्त्री, मर जा !"

सब कोई हँसी से लोटपोट हो गये।

स्टार्ज़ेव ने सोचा और अब वह सड़क पर आ गया था—"यह तो खूब है।"

वह रेस्टारेंट में गया और उसने शराब पी; तब घर की ओर लौटा और रास्ते में गाता गया—

"कितना मधुर, शान्तिदायक है
प्रिये, तुम्हारा कोमल स्वर..."

जब वह सोने लगा, छः मील चलने पर भी उसे थकान न थी। उसे लगता था कि वह खुशी से और बीस मील चला जाता।

(२)

स्टार्ज़ेव टरकिन-घराने में फिर जाना चाहता था, परन्तु अस्पताल में काम बहुत था और उसे समय न मिल सका। इस तरह काम में और एकान्त में एक वर्ष से अधिक बीत गया। परन्तु एक दिन हलके, नीले लिफ़ाफ़े में गाँव से उसके नाम एक ख़त आया।

वेरा आसीफ़ोना बहुत दिनों से बीमार थी, परन्तु अब बच्ची उसे यह कहकर रोज़ डराती थी कि वह गाना सीखने.........जा रही है; फलतः उसे दौरे आने लगे थे। शहर के सभी डाक्टर आ चुके थे, अब ईवानिच की बारी थी। वेरा ने बड़ी करुण प्रार्थना की थी और उसे पत्र लिखकर बुलाया था। स्टार्ज़ेव ईवानिच गया और उसके बाद तो कई बार गया।

वेरा आसीफ़ोना को आराम भी हो चला और वह हरएक से कहती—अद्भुत डाक्टर है ईवानिच। परन्तु अब ईवानिच बीमार वेरा आसीफ़ोना के लिए वहाँ नहीं जाता था। छुट्टी थी। एक्टरीना ने पियानो का अपना कठिन अभ्यास समाप्त किया, तब वे देर तक चाय-पानी पीते रहे और इवान पेट्रोविच ने



कहानियाँ कहीं। इसी समय घंटी बजी और इवान पेट्रोविच को मेहमान का स्वागत करने के लिए बाहर जाना पड़ा। स्टार्ज़ेव ने इस अवकाश का लाभ उठाया और एक्टरीना से कहा—

"खुदा के लिए, मैं प्रार्थना करता हूँ, इतना हैरान न करो। आओ बाग़ में चलें।"

उसने अपने कंधे हिलाये, जैसे समझ नहीं पा रही है, क्या करे। परन्तु वह उठी और उसके साथ चली गई।

ईवानिच ने कहा—"तुम तीन-चार घंटे पियानो बजाती हो, तब अपनी मा के पास बैठी रहती हो। तुमसे बात करना ही नहीं हो पाता। मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ, मुझे पन्द्रह मिनट प्रतिदिन दिया करो।"

पतझड़ की ऋतु आ रही थी। बाग़ में नीरवता थी और पीली पत्तियाँ उड़ती फिरती थीं। अभी से अँधेरा हो चला था।

स्टार्ज़ेव कहता गया—"मैंने हफ़्ते-भर से तुमसे बात नहीं की। तुम नहीं जानतीं, मुझ पर क्या बीतता है। बैठो और मेरी बात सुनो।"

"क्या चाहते हो तुम?"—एक्टरीना ने कठोर पड़कर कहा।

"एक हफ़्ते से मैंने तुमसे बात नहीं की। मैं तुम्हारे शब्दों के लिए प्यासा रहता हूँ। बोलो!"

एक्टरीना की आँखों में और गालों पर चमक आ गई, परन्तु उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

"क्या पढ़ती हो आजकल? बताओगी" —उसने अब पूछा।

"मैं सेम्सकी की पुस्तक पढ़ रही हूँ"

"सच?"

"हा, हा, हा"—एक्टरीना ने कहा—"इस सेम्सकी का कितना बढ़िया नाम था, एलेक्ज़े-फ़ियोफ़िलाक्टिच"।

"कहाँ जाती हो"—उसे उठकर घर की ओर भागते देख स्टार्ज़ेव ने चिल्लाकर कहा।

"मुझे तुमसे कुछ कहना है......पाँच मिनट ठहरी रहो......केवल......"

वह रुकी, जैसे कुछ कहना चाहती हो, मगर फिर काग़ज़ का एक परचा उसके ऊपर डालकर भाग गई और पियानो पर जा बैठी।

स्टार्ज़ेव ने पढ़ा—"स्मशान में......डेमेटी की क़ब्र के पास......रात के ग्यारह बजे।"

साफ़ था, एक्टरीना हँसी कर रही थी। रात के उस समय क़ब्रस्तान में मिलने को कौन कहेगा, जब सड़क पर, बाग़ में और कहीं भी मिला जा सकता है? और एक समझदार पेशेवर डाक्टर के लिए यह कितना हास्यास्पद था कि साँसें भरे, प्रेम-पत्र भेजे, क़ब्रों का चक्कर काटे और स्कूल के लड़कों की तरह व्यवहार करे? लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे?—क्लब में मेज़ के सामने बैठे हुए स्टार्ज़ेव के मस्तिष्क में ये विचार घूम गये और सहसा, साढ़े दस बजे वह क़ब्रस्तान की ओर चल पड़ा।

चाँदनी फैली हुई थी, हवा में गर्मी थी। क़साई-ख़ाने के पास कुत्ते भौंक रहे थे।

"सबको एक न एक सनक होती है," उसने सोचा। एक्टरीना भी सनकी होगी। कौन कह सकता है? शायद हँसी न कर रही हो और आवे।

एक हलकी-सी बेकार की आशा ने उसे पागल बना दिया था।

मिनट बीते, फिर घंटे बीत गये।

वह न-जाने क्या-क्या सोचता था, वह



चिल्लाकर कह देना चाहता था कि वह उसे चाहता है, हृदय से चाहता है, उसके लिए वह प्राणों की चिंता नहीं करेगा......।

क़ब्रें उसकी दृष्टि में पत्थर की बनी नहीं रह गई थीं। चाँदनी में वे बहुत सुन्दर युवतियाँ जान पड़ती थीं। पेड़ों के नीचे उसे छाया-कृतियाँ दिख रही थीं...और प्रतीक्षा बड़ी कठिन थी...।

जैसे परदा पड़ गया हो, चाँद को बादल के एक टुकड़े ने ढक लिया और सहसा सब अँधेरा हो गया। जाड़े की अंधी रात थी। स्टार्ज़ेव को फाटक ढूँढने में बड़ी कठिनाई हुई। एक-दो घंटे में उसे गली मिली, जहाँ वह अपनी गाड़ी छोड़ आया था।

"मैं थक गया, पैरों पर खड़ा भी नहीं रह सकता"—उसने कोचवान से कहा।

(३)

दूसरे दिन वह एक्टरीना के घर उसका वचन लेने के लिए गया, परन्तु मौक़ा अच्छा नहीं था। एक्टरीना अपने कमरे में दासी से बाल सँवरवा रही थी। उसे 'डान्स' में जाना था।

बड़ी देर तक उसे बाहर प्रतीक्षा करनी पड़ी। इवान पेट्रोविच ने जान लिया कि डाक्टर उकता रहा है। उसने जेब से एक खत निकाला और पढ़कर सुनाने लगा। परंतु स्टार्ज़ेव सुन नहीं रहा था...वह सोच रहा था—"मुझे आशा है, अच्छा दहेज़ मिलेगा।"

उसकी पिछली रात जागते ही बीती थी और अब जैसे उसने नशा खा लिया हो। उसकी आत्मा मूर्च्छित हो रही थी, परंतु उसके मस्तिष्क का एक ठंडा और शून्य भाग चिंतन कर रहा था।

'मेरे लिए क्या वह ठीक रहेगी ? यह भी तो सोचना चाहिए, न ? वह बिगड़ी हुई है, सनकी है, दोपहर में दो बजे तक सोती है और तुम बड़े अस्पताल के डाक्टर हो..."

"तो इससे क्या ?"—उसने सोचा।

"मुझे इसकी चिंता नहीं है।"

वह सोचता गया—"और अगर यह शादी हो गई तो ये लोग कहेंगे कि शहर ही चले आओ।" अंत में एक्टरीना आई। वह नाच के कपड़े पहरे हुई थी।

वह विदा हो रही थी और चूँकि अब उसे बैठे रहने का कोई काम न होता, वह उठ खड़ा हुआ और कहने लगा कि घर चलने का समय है ; बीमार बैठे होंगे।

"तो क्या किया जाय ?" इवान पेट्रोविच ने कहा—"मज़बूरी है। जाओ और रास्ते में बच्ची को क्लब में छोड़ते जाना।

वर्षा हो रही थी। अँधेरा था और गाड़ी की छत पर टपटप बूँदें पड़ रही थीं।

स्टार्ज़ेव ने कहा—"कल मैं क़ब्रिस्तान गया था। तुम बड़ी निष्ठुर हो !..."

"तुम गये थे ?"

"हाँ, गया था और दो बजे तक रहा। वहाँ मुझे बड़ा कष्ट हुआ...।"

"कष्ट होगा ही, अगर हँसी समझ नहीं सकोगे।"

कोई उसे इतना अधिक प्यार करता है और उस प्रेमी को उसने इस तरह छकाया—एक्टरीना हँस पड़ी और सहसा चीख पड़ी। क्लब के पास मोड़ था और गाड़ी एकदम तिरछी हो गई थी। स्टार्ज़ेव ने उसकी कमर में हाथ डाल दिया। भय से वह उससे चिमट गई और वह अपने को रोक नहीं सका। उसने कई बार उसके गाल और होंठ चूमे और कसकर सीने से लगा लिया।

"बस, बहुत हुआ"—एक्टरीना ने कठोरता से कहा।

स्टाज़ेंव घर गया, परंतु कपड़े बदलकर लौट आया। वह सूट पहरे था, गले में टाई बाँधे था, जो कालर से निकली पड़ती थी। वह एक्टरीना से कह रहा था—"जो लोग प्यार नहीं करते, वे कितना कम जानते हैं! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि सच्चे प्रेम के संबंध में किसी ने आज तक नहीं लिखा। मैं समझता हूँ कि प्रेम की यह मीठी और सुन्दर वेदना बताई नहीं जा सकती। जिसने एक बार इसका अनुभव किया है, वह इसे शब्दों में अभिव्यक्त करना नहीं चाहेगा।...... मेरा प्रेम अनन्त है। मैं तुमसे भीख माँगता हूँ, प्रार्थना करता हूँ"—स्टाज़ेंव ने अन्त में कहा—"मेरी पत्नी बन जाओ।"

"मित्री ईवानिच", एक्टरीना ने क्षण भर बाद गंभीर मुद्रा बनाकर कहा—"मित्री ईवानिच, इसके लिए धन्यवाद। मैं तुम्हारा आदर करती हूँ, परन्तु..." वह उठ खड़ी हुई और खड़े-खड़े कहती गई "परन्तु, क्षमा करना, मैं तुम्हारी पत्नी नहीं बन सकती। हमें गंभीरता से विचार करना चाहिए। मित्री ईवानिच, तुम जानते हो, मैं जीवन से भी अधिक कला को प्यार करती हूँ। मैं संगीत पसंद करती हूँ, मैं पागल की तरह उसे चाहती हूँ, मैंने अपना सारा जीवन उसे दे दिया है। मैं कलाकार बनना चाहती हूँ; और मैं चाहती हूँ प्रसिद्धि, सफलता और स्वतंत्रता। मैं समझती हूँ, तुम शहर में रहना चाहते हो और इस प्रकार बीमार और सूना जीवन बिताना तुम्हें अच्छा लगता है। मेरे लिए यह सब असह्य होगा। पत्नी बनना—नहीं जी, तुम मुझे क्षमा करो। मनुष्य को ऊँचे आदर्श की ओर बढ़ना चाहिए और गृहस्थ-जीवन मुझे बाँध रक्खेगा। मित्री ईवानिच, तुम चतुर हो और समाज में तुम्हारा आदर है। तुम औरों से अच्छे हो......" उसकी आँखों में आँसू भर आये "मुझे तुम्हारे लिए हृदय से दुख है, परन्तु......परन्तु तुम समझ जाओगे..."

और रो न पड़े, इसलिए वह मुड़कर कमरे में चली गई।

ईवानिच के हृदय की धड़कन बंद होने लगी थी। उसकी साँस रुक रही थी। क्लब से बाहर निकलकर उसने टाई ढीली की और एक गहरी साँस खींची। वह शरमिंदा हो रहा था। उसके गर्व को धक्का लगा था। एक्टरीना उसे यों अस्वीकार कर देगी, यह उसको गुमान न था। उसे अपनी भावनाओं पर और अपने प्रेम पर लज्जा हो आई।

तीन दिन तक वह कुछ न कर सका; न खा सका, न सो सका। फिर उसे समाचार मिला कि एक्टरीना गाना सीखने मॉस्को चली गई है और वह पहले की तरह, शान्ति से रहने लगा।

बाद में, जब उसे याद आती कि कैसे वह रात भर क़ब्रों में बैठा रहा था और कैसे एक सूट ख़रीदने के लिए उसने शहर भर छान मारा था, वह कहा करता—"क्या पागलपन था वह!"

(४)

चार वर्ष बीत गये। शहर में उसका काम ख़ूब चलने लगा। दिन भर उसे बीमारों को देखने के लिए यहाँ-वहाँ चक्कर लगाना पड़ता। बड़ी रात गये वह घर लौटता था। वह चौड़ा और तगड़ा हो गया था। जब वह रात को लौटकर आता; तो अपनी



मकान उसने ख़रीद लिये हैं और तीसरे की खोज में है। बैंक में उसे पता लगता है—एक मकान नीलाम पर चढ़ रहा है। वह वहाँ जाता है—नंगी-उघारी औरतें और मकान के बच्चे आश्चर्य से उसे देखते हैं, परन्तु उसे इसकी चिंता नहीं। छड़ी से वह दरवाज़ा ठोंकता है और कहता है—

"यह स्टडी है? यह सोने का कमरा है और यह क्या है?"

साथ ही वह भारी-भारी साँसें लेता और माथे पर से पसीना पोंछता जाता है।

शायद उसके गले में और चर्बी आ गई है। उसकी आवाज़ बदल गई है—पतली और तेज़ हो गई है। उसका मिजाज़ भी बदल गया है—वह चिड़चिड़ा हो गया है; वह बेसब्री से फ़र्श पर छड़ी बजाता है और बदमज़ा आवाज़ में कहता है—"कृपा करके मेरी बातों का जवाब दीजिए। बेकार बात न कीजिए!"

वह अकेला है। शुष्क जीवन व्यतीत करता है। किसी बात से उसे दिलचस्पी नहीं।

वह होटल में खाना खाता है। खाना खाते हुए वह समय-समय पर मुड़ता और बात-चीत में शामिल हो जाता है।

"क्या कह रहे हो? हाँ? हाँ?...कौन?"

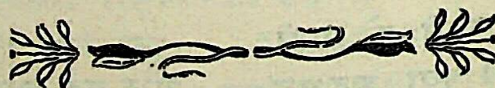
और जब कोई टरकिन घराने की बात करता है, वह पूछता है—

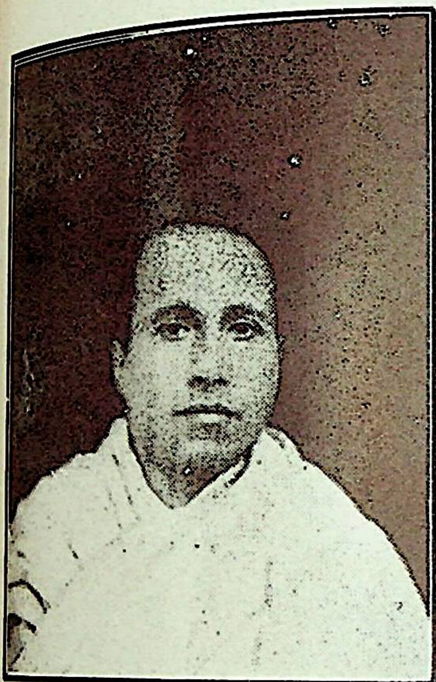
"किन लोगों की बात तुम करते हो! जिनकी एक बेटी है, जो पियानो बजाती है!"

अब उसके संबंध में यही उल्लेखनीय है।

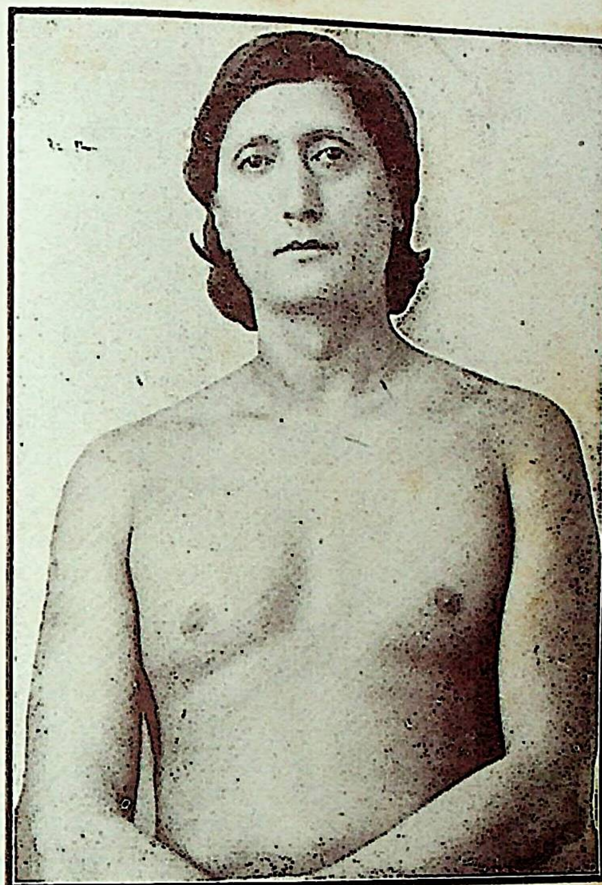
और इवान पेट्रोविच कुछ भी बदला नहीं, वह वैसा ही है। अब भी हँसी करता है, गप्पें लड़ाता है। वेरा आसीफ़ोना अब भी उपन्यास पढ़ती है और एकटरीना प्रत्येक दिन चार घंटे पियानो बजाती है। वह प्रौढ़ हो चली है, अक्सर बीमार रहती है और हर साल पत-झड़ के दिनों में अपनी मा के साथ क्रीमिया जाती है। इवान पेट्रोविच उन्हें पहुँचाने जाता है। रेल जब चलने लगती है, वह अपने आँसू पोंछता है और चिल्लाकर कहता है—"नमस्कार।"

वह अपना रूमाल झंडी की तरह हिलाने लगता है।





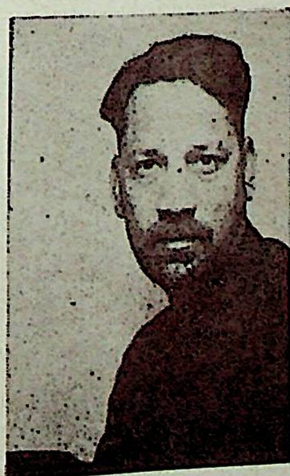
श्रीजयशंकरप्रसाद



पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'



श्रीशंकरचरण श्रीवास्तव



श्रीयुत हुसैनी

हिंदी के तीन कहानी-लेखक कवि

श्रीरामविलास शर्मा एम्० ए०

सर्वश्री प्रसाद, पंत और निराला पहले कवि हैं, फिर और कुछ। उनकी कविता में सृजन करनेवाली प्रतिभा साहित्य के अन्य अंगों के संवारने में भी आगे ही रहती है। वे कहानी-लेखक भी हैं। कहानी-क्षेत्र में उनका कवि जगत् उनके साथ रहता है। उनकी कहानियों को पढ़कर, उन्हें उनकी कविताओं के लेखक ने ही लिखा होगा, बार-बार स्मरण हो आता है। कहीं पर कविता की एवं परिचित सामग्री ही हम इन कहानियों में पाते हैं; कहीं कहानी-कला पर काव्यकला की छाप पड़ने से एक नवीन विचित्र कला का जन्म हुआ; कहीं कहानियाँ हमें वह वस्तु देती हैं, जो उनकी कविताओं में प्रायः दुर्लभ है। इस लेख में हमें इन्हीं की विवेचना करनी है।

*(१) प्रसादजी की कविता में जिस प्रकार के प्रकृति-वर्णन, गंध, संगीत, रूप, यौवन के प्रति आकर्षण करुणा के संदेश और सबके ऊपर बीती भारतीय संस्कृति के स्वप्न की हम एक छाप पाते हैं, वे ही सब बातें हमें उनकी कहानियों में मिलती हैं। कहानी-लेखक के रूप में उन्होंने व्यक्ति और समाज की समस्याओं को सुलझाने की भी चेष्टा की है। यह बात कविता से भिन्न कहानियों की अपनी चीज़ है; कम से कम उस परिमाण में वह उनकी कविता में विद्यमान नहीं। ऐसा ही अन्य कवियों ने भी किया है। उनके अंतिम निर्णय अपने-अपने हैं। पहले प्रसादजी की कविता में प्रकृति-वर्णन लेते हैं। चाँदनी रात, नीले आकाश में चमकते नक्षत्र, संध्या, उषा, ताल और नदी का किनारा, घने पेड़ों की छाँह, शरद और हेमंत के उजले दिन, मालती-कुंज—इन सबसे हम उनकी कविताओं में भली भाँति परिचित हैं। अपनी कहानियों में वे ऐसे पात्रों की सृष्टि करते हैं, जिन्हें ये सब समान रूप से प्रिय हैं। 'आँधी' कहानी में श्रीनाथ का चाँदनी में ऊँघना लेखक की एक वैयक्तिक मानसिक क्रिया का परिचायक है।

"चंदा के तट पर बहुत-से छतनारे वृक्षों की छाया है; किंतु मैं प्रायः मुचकुन्द के नीचे ही जाकर टहलता, बैठता और कभी-कभी चाँदनी में ऊँघने लगता।"

चाँदनी अन्य कवियों को भी प्रिय है; परंतु प्रसादजी को उसमें जो मादकता मिलती है, जिससे श्रीनाथ ऊँघने लगता है, वह उनकी अपनी अनुभूति है।

उसी कहानी में अन्यत्र—

* इस लेख में "आँधी", "पाँच कहानियाँ" और "सखी" से उद्धरण दिये गये हैं। वे क्रमशः पुस्तक-मंदिर काशी, लीडर-प्रेस इलाहाबाद और सरस्वती-पुस्तक-भंडार लखनऊ से प्रकाशित हैं।—लेखक



"अंधकार को भेदकर शरद का चन्द्रमा नारियल और खजूर के वृक्षों पर दिखाई देने लगा था। चन्दा का ताल लहरियों में प्रसन्न था। मैं क्षण भर के लिए प्रकृति की उस सुन्दर चित्रपटी को तन्मय होकर देखने लगा।"

'दासी' में चाँदनी की मादकता ही दर्शित है। "वसन्त की चाँदनी रात अपनी मतवाली उज्ज्वलता में महल के मीनारों और गुम्बदों तथा वृक्षों की छाया में लड़खड़ा रही है, अब जैसे सोना चाहती हो।"

शरत् की धूप इसी तरह सुस्ती लाती है—"शरद-काल की उजली धूप ताल के नीले जल पर फैल रही थी। आँखों में चकाचौंध लग रही थी। मैं कमरे में पड़ा अँगड़ाई ले रहा था।" इसी भाँति संध्या-सौंदर्य—"संध्या हो चली थी। उस निविड़ वन में उन नवागत मनुष्यों को देखकर पक्षीगण अपने नीड़ को लौटते हुए अधिक कोलाहल कर रहे थे।....सूर्य की अंतिम किरणें झुरमुट में घुसकर मधूलिका के कपोलों से खेलने लगीं।"

प्रसादजी की कहानियों की नायिकाएँ बहुत कुछ एक दूसरे से मिलती-जुलती हैं। इसका कारण लेखक का नारी की उस मादकता के प्रति आकर्षण है, जो उसकी कविता में हम अभिव्यक्त पाते हैं। अपनी इस वैयक्तिक कवि-रुचि के बार-बार अपनाने से उनकी पात्रियों में वैसी विभिन्नता नहीं आ पाई, जैसी समाज की नारियों का अधिक तटस्थ हो अध्ययन करने से आ पाती। वे अधिकांश युवती, रूप और यौवनवाली, प्रेमी के लिए त्याग कर सकनेवाली और अपनी मादकता से लोगों को आकर्षित करनेवाली होती हैं। मादकता उनकी सामान्य विभूति है; उसकी न्यूनाधिक छाया सबमें है।

लैला—"सुरमीली आँखों में कितना नशा है और अपने मादक उपकरणों से भी रामेश्वर को अपनी ओर आकर्षित करने में वह असमर्थ है। रामेश्वर पर मुझे क्रोध आया और लैला को अपने विचारों से उलझते देखकर मैं मुस्करा उठा।" (आँधी)

फ़ीरोज़ा—"वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। फ़ीरोज़ा युवती से अधिक बालिका थी। अल्हड़पन, चंचलता और हँसी से बनी हुई वह सुन्दर बाला, सब हृदयों के स्नेह के समीप थी।" (दासी)

मधूलिका—"वह कुमारी थी। सुन्दरी थी। कौषेय वसन उसके शरीर पर इधर-उधर लहराता हुआ स्वयं शोभित हो रहा था। वह कभी उसे सँभालती और कभी अपने रूखे अलकों को। कृषक-बालिका के शुभ्र भाल पर श्रमकणों की भी कमी न थी; वे सब बरौनियों में गुँथे जा रहे थे। सम्मान और लज्जा उसके अधरों पर मन्द मुस्कराहट के साथ सिहर उठते।"

बनिये की लड़की—"मदिरा-मन्दिर के द्वार-सी खुली हुई आँखों में गुलाल की गरद उड़ रही थी। पलकों के छज्जे और बरौनियों की चिकों पर भी गुलाल की बहार थी। सरके हुए घूँघट से जितनी अलकें दिखलाई पड़तीं, वे सब रँगी थीं। भीतर से भी उस सरला को कोई रँगीन बनाने लगा था।"

अनेक कहानियों में, भारतीय संस्कृति की, जैसी प्रसादजी ने उसकी कल्पना की है, छाप है। आँधी कहानी में भी, जिसकी नायिका एक बलूची बालिका है, हम इस संस्कृति का रूप देखते हैं।—"एक नया पीपल अपने चिकने पत्तों की हरियाली में झूम रहा था। उसके नीचे शिला पर प्रज्ञासारथि बैठे थे। नाव को अटकाकर मैं उनके समीप पहुँचा। अस्त होनेवाले सूर्य-बिम्ब की रँगीली किरणें उनके प्रशान्त मुखमण्डल पर पड़ रही थीं। दो-ढाई हज़ार वर्ष पहले का चित्र दिखाई पड़ा, जब भारत की पवित्रता हज़ारों कोस से लोगों को वासना-दमन करना सीखने के लिए आमन्त्रित करती थी। आज भी आध्यात्मिक रहस्यों के उस देश में उस महती



...का आशीर्वाद बचा है। अब भी बोधि-
... तपते हैं! जीवन की जटिल आवश्यकता
... लगाकर जब काषाय पहने संध्या के सूर्य के रंग
... मिलाते हुए ध्यान-स्तिमित लोचन मूर्तियाँ
... देखने में आती हैं, तब जैसे मुझे अपनी
... का विश्वास होता है, और भारत की
... का अनुभव होता है। अपनी सत्ता का
... लिए कि मैं भी त्याग का अभिनय करता हूँ
... और भारत के लिए तो मुझे पूर्ण विश्वास
... इसकी विजय धर्म में है।" प्रसादजी के
... के मूल में विद्यमान प्रेरणा का इससे सुन्दर
... मिलना कठिन है। यह बौद्धकालीन
... का स्वप्न उनकी कविताओं, नाटकों और
... कहानियों की जान है। जब श्रीनाथ
... रूपरेखा की आलोचना करते हुए मन में
... है—"यह वास्तविक गान्धार प्रतिमा
... ग्रीस और भारत का इस सौंदर्य में समन्वय
...—तब हम इस कल्पित कहानी के पात्र को
... परिचित कवि प्रसादजी की ही भाव-
... और विचारों से निर्मित पाते हैं। 'पुरस्कार'
... में कौशल की एक पुरानी रस्म का वर्णन
... 'व्रत-भंग' पुराने पाटलिपुत्र की एक कहानी
... संगीत, शिल्प-कला, नारी-सौंदर्य इस
... स्वप्न के निर्माण में प्रधान उपकरण हैं।
... के नवीन उपवन के सौध-मन्दिर में अगुरु,
... और केसर की चहल-पहल, पुष्पमालाओं
... संध्या में नवीन आयोजन और दीपा-
... में वीणा, वंशी और मृदंग की स्निग्ध
... ध्वनि बिखरती रहती। नन्दन अपने
... आसन पर लेटा हुआ राधा का अनिंद्य
... एकटक चुप-चाप देखा करता। उस
... प्रकोष्ठ में मणि-निर्मित दीपाधार की
... नर्तकी अपने नूपुरों की झंकार से नन्दन
... राधा के लिए एक क्रीड़ा और कौतूहल का
... करती रहती। नन्दन कभी राधा के
... हुए उत्तरीय को सँभाल देता।" इस
संस्कृति का संदेश है करुणा। वह इसी कहानी में भली भाँति व्यक्त हुआ है। नन्दन पिता के भय से स्त्री से अलग हो जाता है, परंतु बाढ़ में दुखियों की सहायता करते हुए उसे पिता से भी अलग होना पड़ता है। वह अपनी स्त्री से पुनः मिलता है और उसकी करुणा के आगे उसके शत्रु कपिंजल को नत होना पड़ता है।

प्रसादजी कहानियों में जब सामयिक देश और समाज का चित्रण करते हैं, तब भी उनका वह दृष्टिकोण बदलता नहीं है। जो करुणा उनके बौद्ध भारत का विश्व के लिए महान् संदेश है, वही उनकी इन दूसरी प्रकार की कहानियों में भी ध्वनित है। इनमें बहुत बातें ऐसी हैं, जो उनकी कविता में प्रायः नहीं हैं। व्यंग्य, परिहास, ग़रीब और समाज की निम्न-श्रेणी के लोगों के यथार्थ चित्रण उनकी कहानियों की अपनी वस्तुएँ हैं। परन्तु उनका संदेश वही करुणा है। 'मधुआ' कहानी में पाटलिपुत्र के श्रेणी के प्रासाद के बदले एक शराबी की गंदी कोठरी और उसके फटे कम्बल में लिपटे एक बासी पराठे के टुकड़े का वर्णन है। परन्तु 'व्रत-भंग' के नन्दन के कार्य से इस शराबी का कार्य कम महत्त्वपूर्ण नहीं। पिता और उसके धन को त्याग नंदन बाढ़-पीड़ितों की सहायता को सन्नद्ध होता है; शराबी अनाथ बालक मधुआ के लिए कहानी सुनाकर जीविकोपार्जन का सहज मार्ग ही नहीं, शराब पीना भी छोड़ देता है। सान रखने की कल लेकर एक बार वह फिर मधुआ के साथ निकल अपने नये जीवन का आरम्भ करता है। संदेश दोनों का ही करुणा है।

अतीत का स्वप्न देखनेवाले कवि जब सामयिक संसार का अध्ययन करते हैं तो उनका अध्ययन अन्य कहानी-लेखकों से भिन्न होता है। अतीत का सौंदर्य उन्हें सामयिक देश-काल में नहीं मिलता तो वे खीझ उठते हैं। बहुधा सम-सामयिकता में अपनी मानसिक ख़ुराक न पाने से ही वे अतीत की ओर झुकते हैं, अथवा अपने भीतर एक नये



संसार का सृजन करते हैं। प्रसादजी ने कहानियों में समाज की परिस्थितियों से मुँह नहीं मोड़ा। दृष्टि गड़ाकर उन्होंने उन्हें देखा है और समस्याओं के अनुसार विभिन्न परिणामों पर पहुँचे हैं। समाज की पतन की ओर ले जानेवाली वृत्तियों पर कहीं क्रोध किया है, कहीं निराश हो गये हैं, कहीं उनसे लड़कर उन्हें सुलझाने का आदेश किया है, कहीं समस्याएँ हठात् सरलता से अपने-आप सुलझ गई हैं। "एक चिन्ता-पूर्ण आलोक में आज पहले-पहल शराबी ने आँख खोलकर कोठरी में बिखरी हुई दारिद्र्य की विभूति को देखा और देखा उस घुटनों से ठुड्डी लगाये हुए निरीह बालक को। उसने तिलमिलाकर मन-ही-मन प्रश्न किया—किसने ऐसे सुकुमार फूलों को कष्ट देने के लिए निर्दयता की सृष्टि की?" ('मधुआ')। जैसा हम देख चुके हैं, शराबी इस बालक की रक्षा के लिए नियति से युद्ध ठान फिर घर से निकल पड़ता है। 'विजया' कहानी में यही समाज के प्रति विद्रोह की भावना वर्तमान है। "समाज से डरो मत। अत्याचारी समाज पाप कहकर कानों पर हाथ रखकर चिल्लाता है, वह पाप का शब्द दूसरों को सुनाई पड़ता है; पर वह स्वयं नहीं सुनता। आओ चलो हम उसे दिखा दें कि वह भ्रान्त है।" 'नीरा' में निवास की सहृदयता से समस्याएँ आप सुलझ जाती हैं। वह अनाथ नीरा से विवाह करने को राज़ी हो जाता है और उसका बूढ़ा नास्तिक पिता भगवान् का नाम लेता हुआ मर जाता है। परन्तु समाज में सर्वत्र ऐसी सहृदयता नहीं। यदि निवास न होता तो नीरा की रक्षा कौन करता और बूढ़े को ईश्वर का विश्वास कौन कराता? "अमिट स्मृति" में इस सहृदयता के अभाव से एक कभी न मिटनेवाली टीस का जन्म होता है। ईश्वर पर विश्वास कराने के लिए यहाँ निवास नहीं। 'अमिट-स्मृति' से बनिये की लड़की का वर्णन ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। साल भर बाद उसी को मनोहरदास दूसरे रूप में देखता है—"एक विकलाङ्ग दरिद्र युवती उसी [illegible] पड़ी थी। उसका चलना-फिरना असम्भव [illegible] जब मैं कुएँ पर चढ़ने लगा, तो उसने दाँत [illegible] कर हाथ फैला दिया।....वह पचास [illegible] बीती हुई घटना आज भी प्रत्येक होली [illegible] होकर सामने आती है।"

(२) आदर्श-लोक की कल्पना और [illegible] जीवन का संघर्ष पंतजी की कहानियों का [illegible] आकर्षण है। जहाँ तक कहानी-निर्माण का [illegible] है, एक समस्या का उलझना और सुलझना, [illegible] कहानी बनती है। सम्भव है, कुछ लोग इन्हें [illegible] कहने में हिचकें, जैसे वे निरालाजी के [illegible] चमार को कहानी कहने में हिचकते हैं। [illegible] नियाँ स्केचों की ढंग की हैं। एक व्यक्ति या [illegible] व्यक्तियों को लेकर उसकी या उनकी [illegible] वैयक्तिक परिस्थितियों का मानसिक [illegible] भावनाओं का चित्रण होता है। [illegible] घटनाओं के हेर-फेर से पाठक को चकित [illegible] वाली बातें इनमें कम होती हैं। पंतजी [illegible] ताओं में वैयक्तिक भावनाओं का सदैव [illegible] रहा है। इसलिए कहानियों में कथा [illegible] प्रतिभा न्यून मात्रा में मिले, यह स्वाभावि[illegible] उन्होंने समाज और व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक [illegible] को बिना बदले बहुत कुछ वैसे ही रख [illegible] उससे भी अधिक अंश की जन्मभूमि उनकी [illegible] की पूर्वपरिचित कल्पना है।

कवि पंतजी ने अपनी काव्य-कला [illegible] विशेषताओं से अपनी गद्य-लेखनकला को [illegible] है। कुछ तो काव्य से अधिक गद्य में ही [illegible] हुई हैं। इन्द्रियों से ग्राह्य अनेक सूक्ष्म [illegible] उन्होंने अपने गद्य में सफलता से चित्रि[illegible] है। इस चित्रण में वे अधिकतर उपमाओं [illegible] यता लेते हैं। अपनी कविता की उपमाओं [illegible] वे प्रथम से प्रसिद्ध हैं। गद्य में उनका [illegible] भी स्वाभाविक और स्वतन्त्र हो गया है।

"गालों की गोल रेखाओं को संसार [illegible]

टेढ़ा-मेढ़ा विकृत कर दिया है।
तरह चूसकर रात-दिन के शेष चिह्नों की तरह
से काटे हुए स्याह, सफ़ेद, घनी, दाढ़ी-मूछों ने—जिन्हें
में एक बार बनाने की भी नौबत नहीं
—उस सोलह साल के फूल को सुखाकर
की झाड़ी से घेर लिया है। दुर्भाग्य के
की शीर्ष, शुष्क धाराओं की तरह, सिकुड़े
पर गहरी चिन्ता की रेखाएँ पड़ गई
...मुख का रंग धूप से जलकर काला पड़ गया
और उसका प्रत्येक चर्म-अणु सूजी के दाने की
शोक-ताप में पककर फूल गया है। रोड़े
तरह गले में अटकी हुई हड्डी मांस के सूख
से बाहर निकल आई है।" (पानवाला)

आकार-प्रकार के वर्णन में उपमाओं ने सजी-
सा दी है। उनके विना शायद वह उतना
न होता। उपमाएँ यहाँ कविता की अना-
प्रसाधन-सामग्री न बन मूल-भावना की
में सहायक होती हैं। नीचे के उदाहरण
द्वारा एक मनोवैज्ञानिक तथ्य भली भाँति
हुआ है—

"सतीश के मुख की हँसी, कटी हुई पतंग की
हृदय की डोर से अलग हो, होठों पर चक्कर
हुई, जैसे वहीं-की-वहीं निःस्पन्द हो गई।"
(गुंजन)

इसी भाँति ऊपर की ही कहानी में अन्यत्र—
की भौंहों के उठने-गिरने के साथ जिस
उठना-बैठना पड़ता, इशारे पर जिस तरह
होता और उसकी उच्चारण-हीन चुप्पी के जिस
भिन्न-भिन्न अर्थ लगाने पड़ते हैं, उन सबको
के कानों में इतनी बार डाल दिया गया
कि रेल की यात्रा के बाद उसके घर-घर शब्द
तरह वे बातें सरला के मस्तिष्क में अपने-
चक्कर खाती रहती थीं।"

इस प्रकार के वाक्य व वाक्य-समूह पंतजी की
शक्ति एवं मनोविज्ञान के अध्ययन के सहज
है।

कविता का प्रभाव गद्य की व्यंजना-शैली पर ही नहीं पड़ा; पंतजी की कहानियों में प्रकाश पाई कल्पना और विचारधारा उनकी कविता की ही है। प्रसिद्ध है कि वे छायावादी हैं और अनेक-रूपता के पीछे छिपे ऐक्य की उपासना करते हैं। सरस्वती में छपी गांधीजी के प्रति उनकी कविता पढ़िए, "तुम रक्तहीन, तुम मांसहीन" इत्यादि और गुंजन में 'भावी पत्नी के प्रति' या 'अप्सरा' कविताएँ पढ़िए। सभी के पीछे एक सत्य है, जो "अदृश्य, अस्पृश्य, अजात" है। कहानियों में इस दार्शनिक तथ्य की ओर संकेतमात्र न कर वे रूपों की विभिन्नता की भी व्याख्या करते हैं। 'उस बार' कहानी में—"प्रेम तत्वतः एक होते हुए भी भिन्न स्वभावों में भिन्न रूप से काम करता है।" आगे चलकर वे इन रूपों का विश्लेषण करते हैं। "सतीश के लिए विजया का जो मूल्य था, वही मूल्य सुबोध के लिए सरला का होते हुए भी, दोनों का प्रेम-पदार्थ भिन्न-भिन्न तन्तुओं का बना था। सतीश के प्रेम का प्रवाह शरीर से हृदय की ओर और सुबोध का हृदय से शरीर की ओर था। एक फ्रायड के सिद्धान्तों का नमूना था, दूसरा प्लैटो के। यह नहीं कि एक प्रेमी था, दूसरा कामीमात्र। दोनों में आदर्श भेद था। सतीश प्रेम को विजया के लिए संचित रखते हुए भी अन्य स्त्रियों से शारीरिक स्वतंत्रता लेना बुरा नहीं समझता था। वह मनुष्यत्व और पशुत्व की दो अलग राहों से चलने का पक्षपाती था। सुबोध देह के संसर्ग को सच्चे प्रेम के अधीन रखना चाहता था। आत्म-दान से ही उसका पशु मनुष्यत्व की पवित्रता पा सकता था। एक को आत्मत्याग द्वारा योग का अधिकारी बनना पसंद था, दूसरे को आत्म-त्याग भोग के लिए केवल साधन-मात्र था। दोनों की मानसिक स्थिति दोनों के लिए सत्य थी।"

'उस बार' कहानी में, प्रेम के रूपों के विश्लेषण की उत्कृष्ट चेष्टा की गई है। परंतु पंतजी ने प्रेमियों



को मोटे रूप से कुछ प्रचलित श्रेणियों में ही विभक्त कर संतोष कर लिया है। इनमें से प्रत्येक में न-जाने कितनी विभिन्नताएँ हों, उनका दर्शन नहीं होता। कहानी में उसके लिए पर्याप्त स्थान भी नहीं। इसी लिए इस मोटे विभाजन से हमें तुष्टि नहीं होती। कहानी में प्रेम का कोई एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाजन अथवा एक से अधिक ऐसे विभाजनों का संकलन अधिक रुचिकर होता।

पंतजी ने प्रेम-तत्त्व के समान नारी के रूपों का भी दैहिक व मनोवैज्ञानिक वैचित्र्य चित्रित करने की चेष्टा की है। उनकी असफलता यहाँ उनके अनुभव की कमी की साक्षी है। नारी के प्रति अपने काव्य के दृष्टिकोण से वे इतने आकृष्ट हैं कि हाड़-मांस की अनेक नारियों में हठात् एक ही कल्पना निखर उठती है। पंतजी ने जीवित, अपने मनोविकारों से अपना विभिन्न अस्तित्व सिद्ध करनेवाली नारियों का वर्णन नहीं किया; उन्होंने उनकी कल्पना की है। इसके लिए उन्होंने ऐसे पात्रों की सृष्टि भी की है, जो स्वयं नारी की कल्पना से एक मानसिक सुख का अनुभव करते हैं। गुंजन की "प्राण, तुम लघु-लघु गात" ही 'उस बार' की सरला है—"कम से कम देह की सामग्री में जैसे आत्मा उतर आई हो।" ऐसे ही नलिन की कल्पना—

"नारी जो अज्ञेय है, गुलाब की तरह, सौंदर्य की तरह सदैव अज्ञेय ही रहती है; जो रहस्य एवं कल्पना की बनी है, छूने पर भी छुई नहीं जा सकती, बाहुओं में बाँध लेने पर भी बाँधी नहीं जा सकती; वह सृष्टि में सबसे सारमयी, पूर्णतामयी, नित्य नई, प्रत्येक पल बदलती हुई, नारी-कुमारी-प्रेमिका-देवी-परी-प्रभात-संध्या, वसंत-शरद की सार्थकता-संसार के, जीवन के समस्त अभावों की पूर्ति—उसका नाम? उसका नाम भी है? वह रूप-सी अरूप, वह नामवती अनाम है! अनिर्वचनीय है! रहस्य है!" (उस बार)

अकाट्य शाप की भाँति कवि-कल्पना लेखक का पीछा नहीं छोड़ती; समय असमय क[...] के पात्रों में उदय हो उनमें कवि के व्यक्तित्व [...] छाया दिखा वह सारे निर्माण को ढेर कर [...] है। 'अवगुंठन' कहानी के निम्न वाक्य [...] की पंक्तियों से मिलाते चले जाइए—

"एक दिन बहुत बड़ी धूमधाम, सजधज [...] बन्धु-बान्धवों के उत्सव-कोलाहल के बीच [...] ही लज्जा की लपेटनों में खोई हुई-सी नववधू [...] चुपके उन्हीं पुराने रीति-रस्मों के [...] रामकुमार के पिता शिवकुमार की विशाल [...]लिका में प्रवेश कर उसे अपने नवीन सुहाग [...] मौन मधुरिमा से भर दिया।........रामकु[...] को भी जान पड़ा कि छुईमुई के पौदों [...] अस्तित्वहीनप्राय, केवल अनुमानमात्र [...] वहू, अपने संकोच में अत्यधिक सिमट [...] कारण भी व्यक्त एवं स'व्याप्त हो उठी है। [...] अपने को छिपाने की कला ने मानो उनका सौन्द[...] कहीं अधिक प्रस्फुटित कर दिया है। समस्त [...] में, बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे, न-जाने किस [...] बल से उस संकोच में सिमटी हुई, अपने [...] भीतर छिप जानेवाली बहू की उपस्थिति की [...] पुष्पित-पल्लवित होकर फैल गई है।"

नारी-पात्रों की समानता पंतजी के पुरुष-[...] के प्रति चरितार्थ नहीं होती। एक ओर पं[...] दूसरी ओर पार्वती के पति, दोनों अपने [...] आकार में भिन्न और स्पष्ट हैं। यह दूसरी [...] है कि वे स्वयं ज़्यादा हाथ-पैर नहीं डुलाते [...] मनोवैज्ञानिक उन्हें मेज़ पर लिटाकर हमें उनकी [...] मानसिक हलचल, उनकी भावनाओं के [...] की जाँच कराया करता है। जो बात कविता [...] अधिक उनकी कहानियों में विस्तार से व्यक्त हुई [...] है, वह है व्यक्ति और समाज का संबन्ध। वर्तमान [...] समाज के संगठन से असंतोष और एक सुन्दर [...] समाज की कल्पना को उन्होंने अपने पात्रों [...] विषय बनाया है। परंतु वहाँ इस असंतोष [...] जानते हुए भी हम समाज-यंत्र के उन ढीले [...]

पुर्गों को स्पष्ट नहीं जान पाते, जो उसके कारण हैं। कहानियों में क्षेत्र अधिक होने से व्याख्या विस्तृत मिलती है। वास्तव में अनेक पात्र इस व्याख्या के लिए आधारमात्र हैं। 'पानवाला' कहानी में पीतांबर एक संकेत है, जिससे लेखक व्यक्ति और समाज के प्रति अपने विचारों को प्रकट करता है। यह अनुमान करना कठिन है कि पीतांबर हो इन विचारों के लिए एकमात्र कारण होना चाहिए। यही दोष निरालाजी की "देवी" में दिखाई पड़ता है। एक पगली को देखकर निरालाजी, एक पानवाले को देखकर पंतजी जैसे सोते से जाग पड़ते हों; समाज की दशा का उन्हें सहसा ज्ञान हो जाता हो, जो उन्हें पहले न रहा हो। कहानी-लेखकों से हम आशा कर सकते हैं कि उन्हें समाज से अधिक परिचय हो। आसमान की ओर देखते हुए ज़मीन में ठोकर लगने से चौंककर एक ही पत्थर को पकड़कर बैठे न रहें। वे हमारे पथ के पत्थरों का, कंटकों का सानुपात, एक कुशल पथिक की भाँति चित्रण करें। तभी हम बचा-बचाकर आगे चल सकेंगे।

अस्तु; यह कम नहीं कि पंतजी आधुनिक संस्कृति, आधुनिक समाज में परिवर्तन चाहते हैं। यही नहीं, उन्होंने क्रोध से, व्यक्ति के प्रति सहानुभूति से, उन पर कड़ी चोटें की हैं। उन्होंने अहंउदासीनता से पतन को देख नहीं लिया, उसके प्रति अपनी भरपूर प्रतिक्रिया को कहानी में स्थान दिया है।

"उस षोड़श-वर्षीय किशोर का चित्र इस चित्र से कैसे मिल सकता है? वह सब समय की मानवी प्रकृति की कला का नमूना था, यह हमारी इस समय की सभ्यता की मानवी विकृति का नमूना है।........

पुष्प को मिलनेच्छा सुगन्ध कही जाती है, मनुष्य की प्रणयेच्छा दुर्गन्ध; उसे निर्मल समीर वाहित करता है, इसे कलुषित लोकापवाद। नर-पुष्प के वीर्य का गीत गाता हुआ भौंरा, नृत्य करता हुआ मलयानिल स्त्री-पुष्प के गर्भ में पहुँचा आता है, मनुष्य का वीर्य स्वेच्छाचार की अच्छी कोठरियों, पाशविक वेश्याचार की गन्दी नालियों में सहस्र प्रकार के गर्हित, नीरस, कृत्रिम मैथुनों द्वारा छिपे-छिपे प्रवाहित होता है! यह इसलिए कि हम सभ्य हैं, मनुष्य के मूल्य को, जीवन की पवित्रता को समझ सकते हैं। असंख्य जीवों से परिपूर्ण यह सृष्टि एक ही अमर दिव्य शक्ति की अभिव्यक्ति है, प्रकृति के सभी का ँ पुनीत हैं, मनुष्यमात्र एक ही आत्मा है—हम ऐसे-ऐसे दार्शनिक सत्यों के ज्ञाता एवं विधाता हैं, हम प्रकाशवादी हैं।"

यह तीव्रता, यह रोष पंतजी की कविताओं में नहीं मिलता। वह उनकी कहानियों की श्रेष्ठ मौलिक देन है।

(३) निरालाजी की कविता की छाया उनकी कहानियों में औरों से कम नहीं पड़ी। उनकी कहानियों का दर्शन उनके काव्य का दर्शन है। परन्तु कहानियाँ उनके काव्य की प्रतिच्छाया-मात्र नहीं। उनमें बहुत कुछ अपनी काव्य से भिन्न मौलिकता है। 'चतुरी चमार' में यथार्थ वर्णन, 'देवी' में व ंग्य, 'भक्त और भगवान्' में भारतीय प्रतीकों का तत्त्व-दर्शन प्रायः सभी में हास्य का पुट——ये सब उनकी कहानियों में नवीन हैं। यहाँ हम देखेंगे, कहाँ तक कवि का दृष्टिकोण कहानी-लेखक का दृष्टिकोण रहा है।

निरालाजी के गीतों और अन्य पद्यों में जो रहस्यशक्ति की वंदना है, वह जहाँ-तहाँ उनके गद्य में भी मिलती है। 'भक्त और भगवान्' में मन का ऊपर आकाश में चढ़ना और धीरे-धीरे उतरना, विश्व के सभी पदार्थों का अज्ञात शक्ति की उपासना में रत दिखाई देना, फिर अंत में प्रिया का दर्शन हमें उनकी 'तुलसीदास' कविता और उसमें वर्णित मानसिक क्रियाओं का स्मरण कराते हैं। नीचे की पंक्तियाँ उनकी अनेक कविताएँ समझने के लिए सुन्दर टिप्पणी का काम कर सकती हैं—

"मन धीरे-धीरे उतरने लगा। देखा, आकाश



की नीली लता में सूर्य, चन्द्र और ताराओं के फूल हाथ जोड़े खिले हुए अज्ञात शक्ति की समीर से हिल रहे हैं, पृथ्वी की लता पर पर्वतों के फूल हाथ जोड़े आकाश को नमस्कार कर रहे हैं—आशीर्वाद की शुभ्र हिम-धारा उन पर प्रवाहित है; समुद्रों की फैली लता में आवर्तों के फूल खिले हुए अज्ञात किसी पर चढ़ रहे हैं, डाल-डाल की बाँहें अज्ञात की ेर पुष्प बढ़ाये हुए हैं। तृण-तृण पूजा के रूप और रूपक हैं। इसके बाद उन्हीं-उन्हीं पुष्पों के पूजा-भावों में छन्द और ताल प्रतीयमान होने लगे—सब जैसे आरती करते, हिलते, मौन भाषा में भावना स्पष्ट करते हों। सबसे गन्ध निर्गत हो रही है, सत्य की समीर वहन कर रही है, पुष्प-पुष्प पर अज्ञात कहाँ से आशीर्वाद की किरणें पड़ रही हैं, इसके बाद उसकी स्वर्गीया प्रिया वैसे ही सुहाग का सिन्दूर लगाये हुए सामने आई।"

पंतजी की भाँति निरालाजी की स्त्री-पात्रियाँ अधिकांश एक ही साँचे की ढली हैं। उनके कहानी-संग्रह 'लिली' में यह प्रत्यक्ष है, अनेकों की अधखिले फूलों से उपमा दी गई है—सभी प्रायः १६-१७ साल की। उनका आँखों में मुसकराना, प्रथम प्रेम में काँपना, प्रिय को अलौकिक जान पड़ती हुई, उसके प्राणों से संभाषण करना आदि पेटेन्ट बातें हैं—

"उसी क्षण आँखों के सामने वह सोलह साल वाली साक्षात् आभा अपने पूर्ण यौवन में उभरी स्वर्ग की अप्सरा-सी झलमलाने लगी। वह मधुर ध्वनि याद आई! वह 'अच्छा' प्राणों में घुलकर अमृत बन गया।" (सफलता)

व्यक्ति और समाज का प्रश्न निरालाजी की कविताओं में अछूता नहीं है। उनकी कविताओं में प्रसिद्ध 'भिक्षुक' भी एक है। भिक्षुक की तुलना 'देवी' कहानी से करने पर गद्य और पद्य में एक ही विषय पर की गई चिन्तनाओं का अन्तर मालूम हो जाता है। 'भिक्षुक' में समाज के प्रति विद्रोह नहीं, किसी पर व्यंग्य नहीं; कवि भावुकतावश भिक्षुक से सहानुभूति दिखाता है। भिक्षुक की दयनीयता और उसके प्रति अपनी कोमल प्रतिक्रिया—इन्हीं से वह संतोष कर लेता है। भिक्षुक और उसके साथ के बच्चों की ऐसी दुर्दशा क्यों—यह प्रश्न उसके मन में उठता ही नहीं। वह पहले ही दया दिखाने चल पड़ता है। इसी लिए यह कविता उथली भावुकतावाली 'देवी' कहानी से कम चिंतना-तथ्य रखनेवाली है। कविता के अन्त में कवि का आश्वासन-वाक्य, "अभिमन्यु-जैसे हो सकोगे तुम" भिखमंगों का मज़ाक-सा मालूम पड़ता है। देवी में सब कुछ उलट गया है। भिन्न पुरुष की भाँति लेखक अपने हृदय का अमृत उसे नहीं देने जाता। पगली और उसके बीच स्वाभाविक आदान-प्रदान होता है। जो काम लेखक से नहीं होता, वह पगली कर देती है। सड़क पर मार्च करते गोरे सिपाही उसके लम्बे बालों को देखकर मुसकराते थे। वह चुप रहा। परन्तु "जब सिपाही मिलिटरी ढंग से लेफ़्ट-राइट लेफ़्ट-राइट दुरुस्त, दर्प से जितना ही पृथ्वी को दहलाते हुए चल रहे थे, पगली उतना ही उन्हें देख-देखकर हँस रही थी। गोरे गम्भीर हो जाते थे।" तब, "मैंने सोचा मेरा बदला इसने चुका लिया।" पगली को लेकर लेखक ने समाज की, शासन की, हमारी प्रचलित रूढ़ियों की खरी आलोचना की है। और 'देवी' के अन्त में मनुष्य की मनुष्यता के प्रति अविश्वास की हँसी है। होटल का नौकर संगम पहले दस रुपये पाने की प्रसन्नता में हँसता है। "मैंने देखा, हँसते वक़्त उसका मुँह नवयुवतियों की आँखों को मात कर कानों तक फैल गया है।" परन्तु लेखक का चेक लेकर मैनेजर विना उसे दाम दिये चला जाता है। संगम आकर शिकायत करता है। लेखक के समझाने पर कि वह घर रुपये लेने गया है, लौटकर उसे और दूसरों को भी देगा, "संगम वैसा ही फिर हँसा।"

"पीताम्बर उसी तरह ठठाकर हँस रहा है।"



"पापवाला" के अन्त में भी यही अविश्वास की झलक है।

सर्व श्रीप्रसाद, पंत, निराला तीनों को वर्तमान समाज से असंतोष है। किसी को कम किसी को अधिक। किसी ने उस पर तीव्र व्यंग्य किया है, किसी ने रोष। उनके काव्य की विशेषताएँ भिन्न-भिन्न हैं। उनका न्यूनाधिक प्रतिरूप हमें उनकी कहानियों में मिलता है। परन्तु यह असंतोष वह केन्द्रभूमि है, जहाँ वे समान रूप से आकर एकमत होते हैं।



पछतावा

श्री० शिवरानीदेवी

(स्व० प्रेमचंदजी की धर्मपत्नी)

(१)

गिरधरसिंह अपने भाई का सब लेकर और बेंचकर भागा तो बम्बई पहुँचा। वहाँ उसके गाँव के दो-एक आदमी और थे। किन्तु सबके-सब फ़ाकेमस्त थे। गिरधर के पास हज़ार-दो हज़ार रुपया था, इसलिए सभी ने उसका बड़ा स्वागत किया।

गिरधर पंचमसिंह से बोला—क्यों भाई, तुम क्या काम करते हो ?

पंचम ने जवाब दिया—भाई, मैं क्या बताऊँ क्या करता हूँ। रंडी का दलाल हूँ। जब मैंने देखा कि कोई काम नहीं मिलता, तो सोचा कि जब गाँव-घर छोड़कर आया ही हूँ, तो जो काम मिल जाय, वही सही। भागते भूत की लँगोटी भली। कौन यहाँ देखने आता है।

गिरधर—यार, तुम तो घर पर कहते थे कि बम्बई में काम टूटा पड़ता है।

पंचम—तो क्या यह काम नहीं है भाई ?

गिरधर—यह रंडी की दलाली, भला कोई काम है। सरासर ज़िल्लत। तुम्हें मिलता क्या है ?

पंचम—मिलता क्या है। जै आदमी फँसा ले जाऊँगा, उतने रुपये मिलें, तो भी खाने भर को बहुत है। फिर, जो साहब लोग जाते हैं, उनका मैं सौदा-सुलुफ़ भी ला देता हूँ। जब चलने लगते हैं तो ख़ुश होकर धेला-पैसा दे ही मरते हैं।

गिरधर बोला—तो ठीक है। हाँ मैं तो बातों में लग गया। यहाँ खाने का क्या इन्तज़ाम करना होगा ?

पंचम—चलो होटल में। वहीं भोजन होगा, और क्या।

गिरधर—कौन लोगों का होटल है भाई।

पंचम—मैं तो जैनियों के होटल में खाता हूँ। यहाँ कौन पूछता है, किसका होटल है। यह सब तो गाँव का ही रोग है।

गिरधर बोला—तो चलो भाई, भोजन करें। मेरे पेट में चूहे कूद रहे हैं।

पंचम—चलो मैं तो तैयार हूँ।

दोनों चले गये।

(२)

गिरधरसिंह को बम्बई में आये दो महीने हो गये, तब एक दिन उन पर भी रंग चढ़ा। पंचम से बोले—तुम जिसे चाहो उस रंडी के पास ले जा सकते हो भाई।

पंचम बोला—जो रुपया ख़र्च कर सकते हैं, वे सब जा सकते हैं। कोई ख़ास आदमी होते हैं, जो जाते हैं।

गिरधर शर्माते हुए बोले—तो अच्छा आज मैं भी जाना चाहता हूँ। मुझे भी अपने साथ ले चलना, देखूँ कैसा रंग रहता है।

पंचम हँसकर बोला—पहले अपने कपड़े-लत्ते



दुरुस्त कर लो। क्या उसे भी कोई गाँव की चमा-रिन समझे बैठे हो कि जैसे हुआ सब ठीक है। दो-चार बार तो तुम्हें उसकी सूरत ही देखने को मिलेगी। जब खुश होगी, हाँ, तब कहीं और काम की बारी आवेगी।

गिरधर बोला—चलो, चलो, मुझे भी कोई अनाड़ी समझा है। मैं उससे ऐसी बातें करूँगा कि बीबीजी खुश हो जायँगी।

पंचम बोला—सुनो भाई, वहाँ कोई वकालत नहीं करनी होती। जो जितना ही बे-दरेग़ रुपया ख़र्च कर सकता है, उसी की जीत होती है, उसी की क़द्र होती है। समझे आप?

गिरधरसिंह बोले—मेरे पास जो कुछ भी रुपया है, वह सब मैं खोने को तैयार हूँ। ज़िन्दगी में क्यों अरमान बाक़ी रह जाय।

पंचम—भाई, मैं भी यही सोचता हूँ। चार दिन की ज़िन्दगी रो-रोकर क्यों काटें। रुपया पैसा तो आता ही जाता रहता है, जवानी तो बार-बार नहीं मिलती। इसलिए जो भोग मिल सकता है, उसे क्यों छोड़ें।

गिरधर बोला—हाँ जी, रोना तो ज़िन्दगी भर का है। कुछ दिन तो हँस-खेल लें। तो कल का ठीक समझें?

पंचम—ठीक है। मैं तो अब अपने काम पर जाता हूँ।

गिरधर बोला—मैं भी कहीं घूमने जाता हूँ।

पंचम—जाओ, लेकिन जल्दी आना, जिसमें मैं आऊँ तो भटकूँ न।

पंचम चला गया।

(३)

गिरधरसिंह आज ख़ूब सज रहे हैं, जैसे कोई पहली बार अपनी ससुराल जाता हो।

पंचम बाहर से आया तो देखा, बाबू साहब अच्छे सेठजी बने बैठे थे।

पंचम हँसकर बोला—यार, तुम तो पहचाने नहीं जाते हो।

गिरधर बोला—तो क्या तुम समझते थे, मैं बेवक़ूफ़ हूँ। मैंने भी ख़ूब सीखा है। जो कुछ कोर-कसर बाक़ी थी, वह बम्बई आकर पूरी हो गई।

पंचम बोला—हो तो यार, तुम बुद्धिमान्। इसमें कोई शक नहीं। मैं तो इतने दिन रहा और रात-दिन यह सब मेरे ही हाथों होता है, लेकिन मुझे बनना नहीं आया। जो पंचम घर पर था, वही यहाँ भी रहा। कुछ न कर पाया।

गिरधरसिंह मूछों पर ताव देते हुए बोले—रुपये में यही तो गुण है। मैं तो कहता हूँ कि ईश्वर चाहे और कुछ न दे, किन्तु रुपया ज़रूर दे। तब हमें और कुछ ढूँढने में कोई कष्ट न होगा। पर जब पास पैसा नहीं तो सभी दुःख है।

पंचम बोला—हाँ भाई। रुपये की ही सब करामात है। तभी न देश छोड़ परदेश में पड़े हैं।

गिरधर बोला—मुझे और किसी से प्रेम नहीं है। मैं तुमसे सच कहता हूँ, गाँव के नाम से तो मुझे घृणा हो गई है। अपना खाव-पहनाव देख-के देखनेवाले जले जाते हैं।

पंचम बोला—हाँ भाई, कही तो मेरे मन की। गाँव में यह रोग तो है। मेरी इच्छा तो गाँव देखने की कभी नहीं होती। खाता हूँ, आराम की नींद सोता हूँ। न कोई चिन्ता, न फ़िकर।

गिरधर—मैं तो गाँव को नमस्ते करके आया हूँ। अब तो यहीं मरना है। चाहे जैसे भी होगा। फिर कौन बीबी-बच्चे बैठे हैं रोने के लिए, जिनकी फ़िक्र की जाय।

बारह का घंटा सुनाई पड़ा। दोनों अपने बिस्तर पर सोने गये।

गिरधर—यार पंचम, बारह बज गये। मालूम भी न हुआ इतनी रात गई है। गाँव में तो सरे-शाम ही जैसे सियापा पड़ जाता है।

पंचम—अब सोओ भाई। रात बहुत गई।

दोनों सो गये।



(४)

घर पर जैसे सब कामों में बाज़ी गिरधरसिंह की थी, इसी तरह रंडी के घर में भी बाज़ी बाबू साहब के ही हाथ रही। रोज़ नये-नये उत्साह से जाते थे और तरो-ताज़ा होकर घर आते थे।

पंचम आकर बोला—बड़े उस्ताद हो यार। यहाँ भी तुमने बाज़ी मार ली। आज बीबी साहबा तुम्हारी बड़ी तारीफ़ करती थीं। मुझसे कहती थीं कि तुम अब तक जितने ग्राहक लाये, उन सबों में यह रत्न है। और ख़ुश होकर मुझे पाँच रुपये इनाम के दिये। समझ लो। मैंने भी ख़ूब तारीफ़ों के पुल बाँध दिये। फिर क्या है। मैंने कहा—साहब कोई ऐसे-वैसे आदमी थोड़े ही हैं। बड़े भारी इलाक़े के मालिक हैं। आये हैं दो-चार महीने बम्बई की सैर करने।

गिरधर बोला—सच ! मेरी तारीफ़ करती थीं। नहीं भाई, तुम झूठ बोलते हो।

पंचम बोला—नहीं भई, तुम्हारी क़सम। कहती थीं कि अभी तक जितने ग्राहक लाये हो, उन सबों में यह रत्न है।

गिरधर गुब्बारे की तरह फूल गया, और बोला—इन्हीं सबको देखकर तो आँखें खुलती हैं। ये किसी का दिल लेती हैं तो दिल देना भी तो जानती हैं। नहीं घर में ब्याह कर बीबी लाओ, और ख़ुश करने के लिए जान भी दे दो, तब भी मिजाज़ हमेशा बिगड़ा ही रहता है। घर में जाओ तो काटने को दौड़ती है। मैं तो भाई, कहता हूँ, गार्हस्थ्य जीवन नरक से भी बदतर है। न-जाने कैसे गधे होते हैं, जो जीवित रहते हैं।

पंचम—तभी तो भाई, अब कोई शरीफ़ उसमें नहीं फँसना चाहता। कौन अपनी ज़िन्दगी नरक में डाले।

गिरधर—मैं तो इन रोगों से पहले ही कोसों भागता था और अब की तो कोई बात नहीं है। यार पंचम, सच कहना भाई, तुमने भी इनका कभी प्यार पाया है कि रुपये ही पाते रहे हो ?

पंचम मुँह गिराकर बोला—भाई, मेरे पास रुपये कब थे। और जब रुपये हुए तो इन्हीं के काम से छुट्टी नहीं मिलती। रात की रात तो जागते ही जागते बीत जाती है। दिन को आराम न करूँ तो मर जाऊँगा कि ज़िन्दा रहूँगा। फिर मेरी तबियत यों ही भर जाती है। कभी-कभी इच्छा हुई, तो औरों के पास गया हूँ। इनके पास फटकने की तो मेरी हिम्मत नहीं होती।

गिरधर बोला—इसमें हिम्मत का क्या सवाल है?

पंचम बोला—क्यों नहीं। भाई, जिनका मैं नौकर हूँ, उनसे तो मेरी बोलने की भी हिम्मत नहीं होती और क्या कर सकता हूँ।

गिरधर—तुम हो ख़ासे गावदी।

पंचम—उनके साथ उनकी और बहनें भी तो हैं न।

गिरधर बोला—भाई, मेरी इच्छा तो होती है कि हरदम सुन्दरबाई के पास बैठा उनका मुँह निहारा करूँ।

पंचम—जवानी के यही तो माने हैं। और क्या रोने का जी चाहेगा भाई—इस उम्र में !

गिरधर—मेरी समझ में नहीं आता, तुम कैसे अपनी तबियत पर क़ाबू पाते हो।

पंचम—भाई, मजबूरी सब सिखला देती है।

गिरधर बोला—भाई, मुझे तो पाँच-छः महीने के ये दिन ज़िन्दगी भर नहीं भूलेंगे। लेकिन ये चैन के दिन अब बहुत दिन नहीं चल सकते—अब मेरे पास कुल १००) रुपये और हैं।

पंचम मुँह बनाकर बोला—अच्छा, अब ख़ाली हाथ हो गये ?

गिरधर—वही तो कहता हूँ कि अब एक-दो दिन और हैं ये सुख के दिन, बस। लेकिन हाँ, अगर मुझे कहीं काम मिल जाय, तो फिर क्या पूछना है। ठीक है न भाई ?

पंचम उदास होकर बोला—भाई, तुमने यह बुरी ख़बर सुनाई।

गिरधर—उँह, यह तो हुआ ही करता है।

इसकी क्या फ़िक्र। मैंने तो सोच लिया है कि रुपये आते ही मैं चटपट सबसे पहले सुन्दरबाई के ही दर्शन करूँगा। और काम जाय चूल्हे-भाड़ में।

पंचम ने घड़ी देखी तो पाँच बज गये थे। जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और गिरधर से बोला—भाई, मैं तो जाता हूँ काम पर। आज बातों में ऐसा लगा कि वक़्त का ज़रा भी ख़याल ही न रहा।

यही कहता हुआ वह चला गया।

(५)

आज दो महीने से गिरधर बीमार है। गनोरिया हो गया है। पंचमसिंह का भी कहीं पता नहीं है। किराया-मकान भी तीन महीने से चुकता नहीं किया गया है। आज कई दिन से मालिक मकान आता है और धमकी देकर चला जाता है। गिरधर सोचता है—बस, कल का दिन और। अब तो वह मकान से ज़रूर ही निकाल देगा और जो कपड़े-लत्ते हैं लेकर चल देगा। मैं राह का भिखमंगा बना पड़ा रहूँगा। चलने का बूता भी मुझमें नहीं है कि भीख माँगकर खा लूँगा। वह बार-बार पंचम को कोसता है। फिर सोचता है, मैं पंचम को क्यों कोसता हूँ। पंचम मेरा कौन था। फिर मेरे कर्म ही कौन बड़े अच्छे हैं। हाय! भैया का मारनेवाला हत्यारा तो मैं ही हूँ। उनके सीधे होने का पुरस्कार उन्हें मिला क्या? तड़प-तड़पकर मरना। और सुख भोगा मैंने। तो भला ऐसी आत्मा कभी मुझे क्षमा कर सकती है। उनके बाल-बच्चों को भूखा मारनेवाला पापी मैं ही हूँ। भैया जब मेरे ही भले को सिखाने आते थे, तो मैं उनको काटने को दौड़ता था। हाय भगवान्, मैं पापी हूँ। शीघ्र ही मेरा अन्त कर दो। यही सब सोचते-सोचते गिरधर को झपकी लग गई। सपना देखता है कि भय्या आये हैं और मुस्कराकर गिरधर से कहते हैं—सब ठीक ही है। यही हाल तो मेरा भी था। जब मैं रोता था, तू हँसता था। हाँ, क्या मैं रोता था, तो मेरी आत्मा नहीं रोती थी—नहीं भाई, मेरी भी आत्मा रोती थी, इसलिए कि मैंने अपने बाल-बच्चों के साथ अन्याय किया था। हाँ, फ़र्क़ मुझमें-तुझमें इतना ही था कि दुनिया मुझे अन्यायी नहीं कहती थी, इसलिए कम दुःख था। तेरे लिए सब हँसते हैं। मैं भी हँसता हूँ। फिर देखता है—मा और भावज-भतीजा है। मा कहती है—तुझ नीच ने मेरी कोख से जन्म लेकर मेरे मुँह में कालिख लगा दी है। गिरधर रोकर कहता है—मैं तो ख़ुद ही अपने कर्मों को रो रहा हूँ। क्षमा कर मा। मा, साड़ी में से चमचमाती हुई कटार दिखलाकर कहती है—मैंने तो क्षमा करना सीखा ही नहीं। जो लड़का दूध की, मा के दूध की लज्जा नहीं रखता, उसे मा कहने का कोई हक़ नहीं है। मा को उसकी हत्या करने में कोई पाप नहीं है। क्षमा करना ही पाप है; क्योंकि तू ने समाज की हत्या की है। जो करोड़ों आदमियों की हत्या का बायस है और उस हत्यारे की जन्म देनेवाली पापिनी मैं हूँ। इसलिए मुझसे क्षमा माँगना व्यर्थ है। जैसे ही मा अपनी कटार लेकर आगे बढ़ती है, गिरधर की भावज मा के हाथ से कटार को छीन लेती है, और मा से बोली—मा, इन्होंने मेरी हत्या की है। इनको मुझसे क्षमा माँगना चाहिए था। किन्तु तुम मेरी भी मा हो। मैं तुमसे इनके लिए क्षमा चाहती हूँ, ये तो ख़ुद ही अपनी करनी का फल भोग रहे हैं। गिरधर रोकर भावज के पैरों में गिरना चाहता है। जैसे चारपाई से उठने को होता है, गिर पड़ता है। नींद खुल जाती है।

(६)

कोई दरवाज़ा खटखटा रहा है। गिरधर दरवाज़ा खोल देता है। सामने दो कानिस्टिबल और वही रोज़वाला मालिक मकान का चपरासी हरखूसिंह सामने मिलते हैं।

हरखू बोला—आज किराया दो। नहीं जो सामान हो, देकर मकान छोड़ दो। अब बहुत भलमंसी हो गई।



गिरधर रोकर बोला—अरे भाई, तुम घर छोड़ने को कहते हो, मैं दुनिया छोड़ने को तैयार हूँ।

हरखू—तेरे जैसा नीच आदमी मैंने आजतक न देखा था।

गिरधर रोकर बोला—हरखू भैया, दो-चार दिन और रहने दो, नहीं बेमौत मर जाऊँगा।

दोनों सिपाही हरखूसिंह से बोले—सेठ साहब ने हम लोगों को हुक्म दिया है कि उसके पास जो सामान हो, नीलाम करके उसको आज मकान से बाहर कर दो। मुँह क्या देखते हो।

हरखू गिरधर से बोला—अब क्या सोचते हो?

गिरधर बोला—क्या सोचता हूँ। कुछ नहीं। और मेरे पास रक्खा ही क्या है। मरता क्या न करता वाली कहावत है।

चपरासी बोला—साला फ़िलासफ़ी बघार रहा है।

जो कुछ था, बाहर रखकर नीलाम कर दिया, जिसमें मुशकिल से २०) रुपये हाथ लगे, जो लेकर सब चले गये, और गिरधर ने अपना नाम "पथिक" रक्खा।

(७)

पथिक दिनभर सड़क की पटरी पर पड़ा था। भूखा प्यासा कुछ फटे हुए गुदड़े बिखरे पड़े हैं। मक्खियों का गोल का गोल उसका हिमायती था—साथी था। कोई राहगीर आँखें फाड़-फाड़कर उसकी तरफ़ देखता है तो वह जैसे डर जाता है। उस दिन जो सपना देखा था, उसी के विषय में रात-दिन पड़ा सोचा करता है। कभी किसी को दया आ गई तो दो-चार पैसे मिल गये। उसी से खाना खा लेता है। नहीं, तो अपनी करनी को सोच-सोचकर रोता है, पछताता है। जहाँ रात हुई, उसकी आँखों के सामने डरावने सपनों का बाज़ार लग जाता है। वह अपने को काल के मुँह के सामने देखता है।

आज पन्द्रह दिन के बाद एक स्त्री उसके पास जाकर बोली—तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है।

पथिक बोला—मैं एक पापी हूँ। मेरा नाम पथिक है और पाप ही मेरा कर्म है।

स्त्री—अगर तुम मेरे झोपड़े में रहना चाहो, तो चलो मैं तुमको लिवा चलूँ। क्या तुम्हारे कोई नहीं है?

पथिक—नहीं मा, पापियों के कौन हो सकता है। मुझ-जैसे से ईश्वर भी मुँह फेर ले तो कोई अनहोनी बात नहीं।

स्त्री—तुम्हारा घर कहाँ है, कहाँ के रहनेवाले हो?

पथिक—मा, जहाँ मरने भर को जगह मिले, वहीं मेरा घर समझो।

स्त्री एक डोलीवाले को ले आई और उसी में बिठाकर पथिक को अपने घर लिवा ले गई।

(८)

स्त्री ने पथिक को अपने घर में लाकर पहले तो खाने को दिया।

पथिक बोला—मा, तुम मुझ पापी पर किस नाते इतनी दया दिखा रही हो?

स्त्री—बेटा, हम सभी पापी हैं। मैं कौन बड़ी धर्मात्मा हूँ। हम सभी पापी हैं।

पथिक—मा, तुम मेरी आँखों में देवी का रूप मालूम होती हो। मैं तुमको अपनी कहानी सुनाऊँ तो बहुत मुमकिन है, तुम्हें मेरी सूरत से भी नफ़रत हो जाय।

बुढ़िया बोली—बेटा, मेरी भी कहानी बड़ी विचित्र है। यही समझो कि मैं पूरी हत्यारिनी हूँ।

पथिक—मा, सुना दे अपनी कहानी। मुझे मालूम हो जाय कि मैं ही पापी नहीं हूँ। मुझ-जैसे करोड़ों जीव दुनिया में रेंग रहे हैं, जिससे मेरी ग्लानि की व्यथा कम ो जाय।

बुढ़िया बोली—बेटा, कभी सुना दूँगी। कोई आज ही साइत तो है नहीं। तुम सो जाओ। कई दिन के बाद आज तुम्हें आराम मिला है।



पथिक बोला—अच्छा मा, जैसा तुम कहोगी, वैसा ही मैं करूँगा। मैं सोता हूँ।

बुढ़िया—हाँ बेटा, सो जाओ। कहकर बाहर निकल आई।

(६)

आज बुढ़िया कई दिन से बीमार है। और, पथिक तो पहले ही से बीमार था। उस पर न दवा न पानी। उसी तरह बुढ़िया भी पड़ी है।

पथिक से बोली—सुन लो मेरी विचित्र कहानी, जो उस दिन कहने को कहते थे।

पथिक बोला—हाँ, मा, सुना दो।

बुढ़िया—सुनो। मैं एक ठाकुर के घर की स्त्री हूँ। मेरे घर में मेरा देवर था और पति था। एक लड़का हुआ। मेरे ससुर पहले ही मर चुके थे और सास मेरे आने के कई साल पर। घर-ज़मीन, गृहस्थी सब कुछ मैं और मेरा पति हम दोनों ने मिलकर बनाया था, क्योंकि मेरा पहले का घर सब स्वाहा हो चुका था। ख़ैर, जब मेरा देवर जवान हुआ—हाँ, एक बात कहना तो भूल ही गई। मेरे पति देवर को बेटे से भी ज़्यादा प्यार करते थे। हाँ, जब मेरे देवर जवान हुए, वह मेरे बेटे को बराबर खाना-पहनना भी नहीं देना चाहते थे। इसी पर मुझसे उनसे कभी-कभी दो बातें हो जाया करती थीं। देवर महाशय घर का काम कुछ न करते थे, इसलिए मेरे पति को उनसे कुछ कहने की हिम्मत न पड़ती थी। कई बार मुझसे और मेरे देवर से झगड़ा भी हो गया और इस झगड़े की जड़ वह अपने भाई को समझ कर उनसे अलग होने का प्रस्ताव करने लगे। मेरे पति ने टालना चाहा। लेकिन वह न माने। आख़िर पति अलग होने को राज़ी तो हो गये, लेकिन बोले—मैं हिस्सा-बाँट करके कुछ न लूँगा। तू लेकर आराम से रह, मैं अपने बाल-बच्चों को लेकर कहीं मैदान में पड़ा रहूँगा। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि तू सुखी रह।

घर में मैं भी रूठी रहने लगी, वह काम जी तोड़कर करने लगे। उनका प्राण लेने के लिए बीमारियों ने जैसे होड़ लगा ली। काम की होड़ मेरे पति लगाते और उनका जीवन लेने को यम होड़ लगा रहा था। मेरे पति चाहते थे कि मैं जल्दी से सब पहले-जैसा कर दूँ। लेकिन हथेली पर सरसों नहीं जमता। हाय, वह मुझे कितना डरते थे, जिसमें मैं उनके भाई को कुछ न कहूँ! एक दिन मुझे उनकी हालत पर दया आई—क्रोध भी था, रंज भी था। इसी लिए मैं कभी कुछ बोलती ही न थी। हाय, उस दिन भी क्रोध में दया और दया में क्रोध मिला हुआ था। ख़ैर। मैं बोली—"अब क्या करने पर तुले हो। राह की भिखारिन तो बना दिया। साधु ही बनना था तो शादी-ब्याह क्यों किया।" हाय, तब वह बोले—"मैं तो तुम लोगों को छाती से लगाये हूँ। लेकिन तुम्हारे ही लिए मरता हूँ।" मैंने तब भी चुभती हुई ज़बान से जवाब दिया—"तो यों छाती से लगाने से ही क्या निहाल कर दिया? मैं सब जानती हूँ। इतनी बच्ची नहीं हूँ कि तुम्हारी बातों में आ जाऊँगी। जो आदमी अपने ख़ून के बच्चों को प्यार नहीं करता, उनका ज़िम्मेदार नहीं होता, उसकी स्त्री को क्या उम्मीद हो सकती है। मैं भी अपनी क़िस्मत को ठोंक-कर बेफ़िक्र हूँ।" हाय, उस समय वह रोकर बोले—"सोनिया, मुझे गधा कह ले, बेवक़ूफ़ कह ले, भोंदू कह ले। मुझमें सब ऐब हैं, लेकिन मैं हृदयहीन नहीं हूँ। मैं अब तेरे सामने क़सम खाने योग्य नहीं हूँ। मुझे अब मालूम हुआ कि जिसे मैं न्याय समझता था, वह मुझसे अन्याय हुआ।" हाय, मैं बड़ी पापिनी हूँ। मैं फिर व्यंग से बोली—"यह सब कहकर सफ़ाई दे दो। दिल में चाहते होगे कि ये मा-बेटा दोनों मर जायँ तो फिर अपने चहेते भाई को लेकर मौज़ करें, यह क्यों नहीं कहते।" हाय भगवान्, तुम कैसे मुझ पापिन को क्षमा करोगे। वह फिर रोकर बोले—"सोनिया, मैं इसी से कभी



तेरे सामने मुँह न खोलता था कि तू अब की तरह तब भी मुझ नीच का विश्वास न करती।" हाय, उसी रात को उन्हें बुख़ार चढ़ा। तीसरे दिन वह तो चले गये, मैं बैठी अपने कर्मों को रोती रही। रोने-गाने का दैन्य ज़्यादा दिन न ठहर सका। मैंने देवर को अपने स्वामी का हत्यारा समझा। सुना था कि वह बम्बई चला गया। मैं भी हाथ में कटार लेकर, जो कि सफ़ेद थी, लेकिन ख़ून में रँगकर लाल होना उसका सबसे बड़ा कृत्य था, बम्बई की तरफ़ बढ़ी। उनका हत्यारा, उनका भाई, मेरा देवर है, उसको मारकर मैं सुखी होऊँगी। यहाँ आने पर मालूम हुआ कि मिलवालों ने हड़ताल कर दी थी। मेरा बेटा भी उनमें था। हाय, मिल-मालिक ने गोली चलवा दी। उस गोली का निशाना मेरा बेटा हुआ, मेरा लाल। अब मेरे दो दुश्मन हो गये। मैंने मिल के मालिक के घर बच्चा खेलाने की नौकरी कर ली। मैं पापिन हूँ। उस बच्चे का पाप लेकर मैं अपने बच्चे के ख़ून का बदला लेना चाहती थी। कई साल रहने पर उस मिल-मालिक का बेटा मोटर से चोट खाकर मर गया। एक ओर मेरी रक्त-पिपासा शान्त हुई, दूसरी तरफ़ मुझे ज्ञान मिला, ज्ञान का प्रकाश मिला। मैं उसमें आलोकित हो उठी। मुझे मालूम हुआ कि ईश्वर ने मुझे मा की पदवी दी है। वह कर्तव्य पूरा करने के लिए, उसकी ज़िम्मेदारी को कंधा लगाने के लिए। लेकिन, हाय, मुझे यह अक़्ल आई बड़ी देर पर, जब मेरा सर्वस्व मेरा वंश नष्ट हो चुका था। मुझको यह भी मालूम हुआ कि अपने पति की हत्यारिन मैं ही हूँ। मैंने स्त्री के रूप में जन्म तो पाया, मा भी बनी, लेकिन मा का दिल न पाया। अगर मिला होता तो मैं इस सब पाप की भागी न बनती। स्त्री होने के माने हैं, सारे संसार पर मा का-सा स्नेह रखना। जिसमें यह स्नेह न हो, उसमें स्त्रीत्व नहीं है, उसे औरत होने का कोई हक़ हासिल नहीं है। फिर देवी महाशक्तियाँ क्यों कहलाती हैं? इसलिए न कि वह संसार को अपने अंचल में, गोद में छिपाकर सब विपत्तियों से उसका बचाव करती हैं। अगर आज उसमें यह बात न रह जाय, तो वह माता के पद से तुरंत च्युत हो जाय। हे भगवान्, अब ग्लानि की [illegible] नहीं सही जाती, कलेजा फटा जाता है।

हाथ में कटार को उठाकर कहती है—रे पापिन तैंने ही सब हत्या और पाप किया है, आज तेरी लीला का अंत हो जायगा।

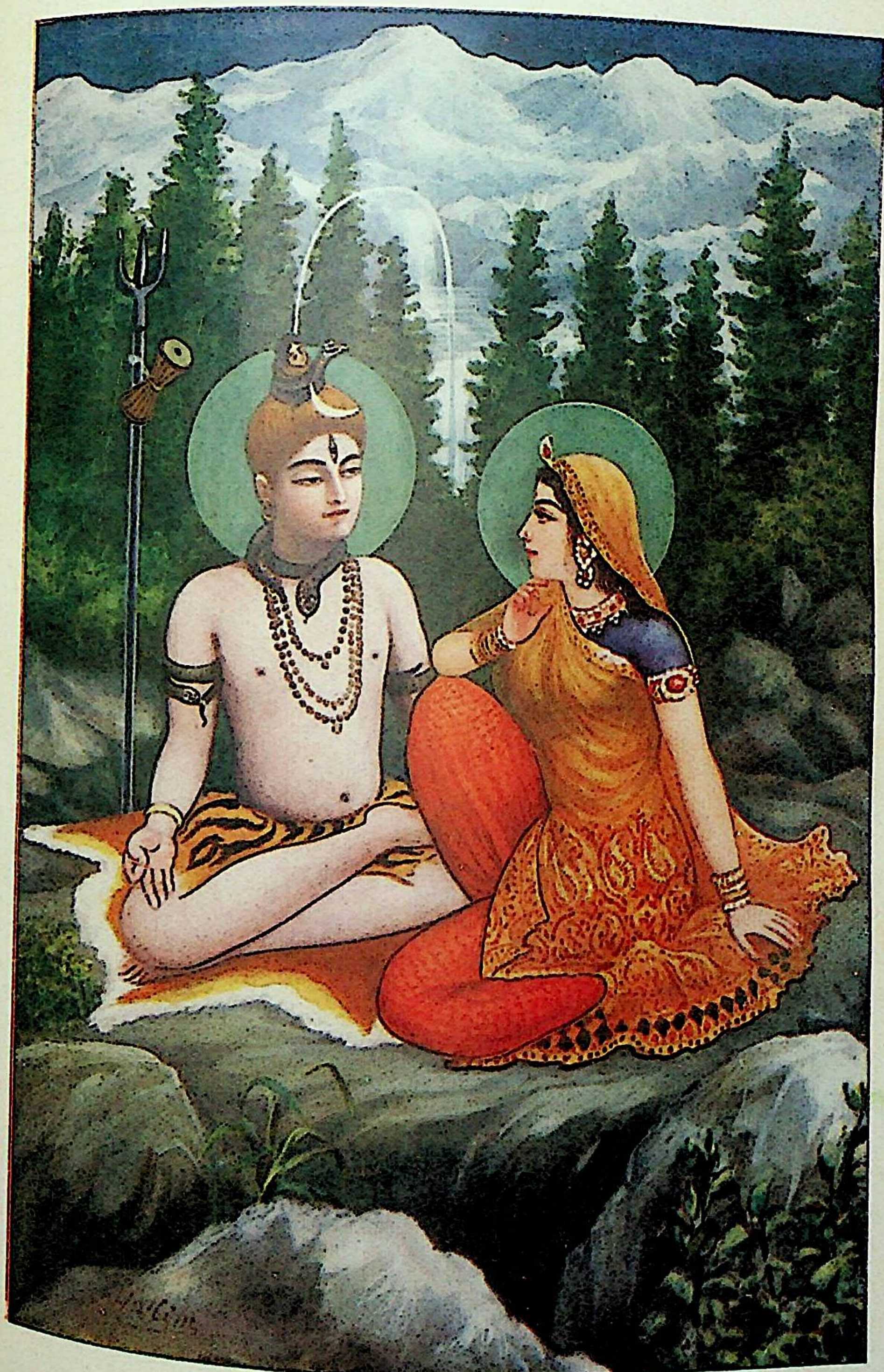
गिरधर बोला——माता, तुम्हारा हत्यारा तो मैं हूँ।

बुढ़िया के हाथ से कटार छीनकर बोला—तुम आज इसे हृदय के आर-पार कर दो, मेरे पापी नारकीय जीवन का अन्त हो जाय। मैं तुम्हारा उपकार मानूँगा। कहता हुआ वह उसके पैरों में लोट गया।

बुढ़िया बोली——तू हत्यारा नहीं है, तू तो मेरा बेटा है। कहती हुई उसने झुककर गिरधर को छाती से लगा लेना चाहा, लेकिन वह छाती तक आ भी न पाया था कि निश्चेष्ट होकर पंछी [illegible] से गिर पड़ा। मालूम हुआ कि पंछी पिंजड़ा छोड़कर उड़ गया था।

वह भी गिर पड़ी। उसने गिरधर को अपना [illegible] करना चाहा। वह अपना सब कुछ गँवाकर [illegible] क्षमाशील हो गई थी। लेकिन वह क्षमा गिरधर न सह सका। उसको शोक और ग्लानि का ऐसा धक्का लगा कि वह फिर न उठ पाया और [illegible] उसने शायद उठने की इच्छा ही की। उसे [illegible] देवी के चरणों में ज़्यादा सुख मिल रहा था।





N. K. Press, Lucknow.

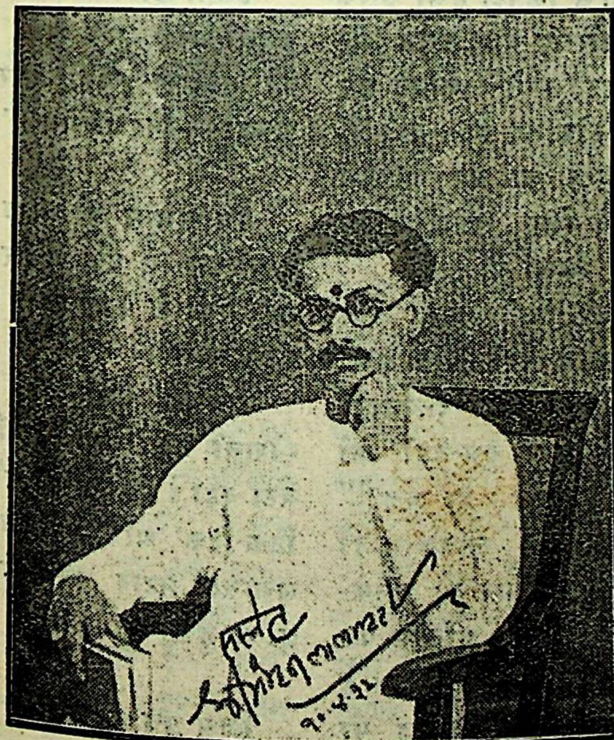
सदाशिव और पार्वती

भूली हुई स्मृति

श्रीमोहनलाल महतो साहित्यालंकार

(१)

कभी-कभी खोई हुई स्मृति जब फिर लौटकर आ जाती है तो हृदय का प्रत्येक रक्त-कण हाहाकार करने लगता है। पिछले सप्ताह की बात है, मैं एक आवश्यक काग़ज़ खोज रहा था। धूल झाड़कर पुरानी फ़ाइलों की एकान्तता, शान्ति, निश्चिन्तता पर उपद्रव करना शुरू किया। इसी सिलसिले में दो-तीन पुराने पत्र भी—अपनी-अपनी नीरव कहानी का भार लिये—निकल पड़े। पहला एक कार्ड था उस युग का, जब दो पैसे में उसे किसी ने ख़रीदा था। अक्षर धुँधले पड़ गये थे, पर लेखक की बातों का मूक रूप ज्यों का त्यों उसमें छिपा हुआ था। किसी सम्पादकजी ने लिखा था—"एक दर्जन व्यंग्यचित्र भेजिए, पाँच-छः कहानियाँ और तीन-चार कविताएँ भी।"



इस कहानी के लेखक

कार्ड के ललाट पर लाल अक्षरों में लिखा था Urgent. एकाएक मुझे हँसी छूट गई—कार्ड को फाड़कर फेंक दिया। दूसरा लिफ़ाफ़ा था एक कवि मित्र का। सुन्दर लेटर-पेपर पर आपने कलेजा निकालकर रख दिया था। आपका जीवन कंटकाकीर्ण हो गया था और वह केवल इसी लिए कि मैंने उनके पत्र का "छोटा-सा" उत्तर दिया था। भावुक कवि की—सातवें आसमान की—बातें मैं भला साधारण कहानी-लेखक क्या समझता। इस पत्र को भी टुकड़े-टुकड़े करके मेज़ के नीचे डाल दिया। १५-१६ साल के अपने अतीत जीवन की बातें याद करके मेरा मन उदास-सा हो गया। आज मैं पुराने साहित्यिकों का पद प्राप्त करके सचमुच एकान्त कोने में बैठ गया हूँ, जहाँ मैं हूँ और है मेरा थोथा आत्म-गौरव।



जिस आँगन में बच्चे काठ का घोड़ा बनाकर खेल रहे हैं, बच्चियाँ मिट्टी की पूरी-तरकारी बना रही हैं वहाँ से दूर—मकड़ी के जाले से भरे हुए—इस बुजुर्गी के एकान्त कोने में मैं आज अकेला हूँ, केवल अपने आपको संगी बनाकर बड़प्पन का नाटक खेल रहा हूँ।

ख़ैर, तीसरा लिफ़ाफ़ा उठाया। इस लिफ़ाफ़े पर किसी मज़बूत हाथ से पता लिखा गया था। काले-काले अक्षर लिफ़ाफ़े की छाती पर मानों लोहे की कील से खोद दिये गये थे। इन अक्षरों को मैं कुछ-कुछ पहचानता था। यदि बोलने की क्षमता होती तो अक्षर अपने लेखक का नाम चीख़-चीख़कर लेते; पर वे तो अपने लेखक के बेज़बान संदेशवाहक हैं। यदि लेखक से आपका परिचय रहा तो उसके अक्षर आपके हृदय-पट पर एक धुँधला-सा चित्र—स्मृति के रंगों से रँगकर—आँक देंगे, जिसे आप, चाहें तो, पहचान सकते हैं।

इस लिफ़ाफ़े की सम्पूर्णता में लिपटा हुआ उसके प्रेषक का जो स्मृतिसुलभ परिचय था, उसने मेरे मन को चौंका दिया। मैंने डरते-डरते—काँपते हुए हाथों से—पत्र निकाला। ठीक तो है—वही है, वही अभागा है, उसी हुतात्मा का यह अन्तिम अन्तर्नाद है। मैं क्षण भर के लिए सन्नाटे में आ गया। पत्र में उसके प्रेषक ने लिखा था—

"वन्दे। मेरे प्यारे साथी, वन्दे। तुम्हें क्या मालूम कि इस अनन्त आकाश के नीचे, प्रति क्षण, क्या-क्या होता रहता है। कहीं आनन्द-बधावा और कहीं विधवा-विलाप, कहीं दूध-दही की नदियाँ बह रही हैं तो कहीं 'हा अन्न! हा अन्न!!' का हाहाकार गूँज रहा है। आँखों में सावन-भादों की धुँधली घटाएँ उमड़ रही हैं। संसार की अनेकरूपता को नमस्कार! हाँ तो मैं यह अन्तिम पत्र लिख रहा हूँ—बस, अन्तिम। दिन ढल रहा है और मेरे जीवन की सन्ध्या मानस-क्षितिज पर उदास छाया डालने ही वाली है। मैं वेदान्ती नहीं हूँ। सीधे तरीक़े से सोचता हूँ। हम—मत-भेद रहते हुए भी—वर्षों एक दूसरे के आश्रय में एकाकार रहे। परिस्थिति ने हमें दो पथों पर चलने को बाध्य किया। आज तुम क़लम लेकर संसार के उत्थान-पतन का लेखा-जोखा रखने को व्याकुल हो रहे हो और मैं—मैं अब अपनी टूटी हुई नैया का लंगर उठा चुका हूँ। समय आ गया है कि मैं तुमसे अन्तिम विदाई लूँ। तुम्हारा संसार एक विशाल नाटक है और मेरा संसार है बाल्द-ख़ाना। तुम मुग्ध दृष्टि से नाट्यकार की कला का आनन्द लूट रहे हो और मैं जलती हुई मसाल लेकर अपने संसार में पथ खोज रहा हूँ। मैंने जन्म ग्रहण किया था एक उजड़ी हुई, सुख-शान्तिहीन, दरिद्रतामयी झोपड़ी के एक कोने में और अब अपनी उन लाचार आँखों को बन्द करूँगा वात्सल्य-हीन अवस्था में, चट्टानों की चहारदीवारी के भीतर, जिसके घेरे में कभी भी सुखद परिस्थिति की शीतल शोभा नहीं निखरी—बस!

इतना ही निवेदन करना था, इतनी ही बातें कहनी थीं। मुझे क्षमा करो, जिससे मेरी आत्मा को तुम्हारी चारों ओर चक्कर न काटना पड़े। अच्छा—स्नेहालिंगन।"

× × ×

पत्र समाप्त हो गया। मैंने अनुभव किया कि वायुमंडल में एक प्रकार की उदासी—सन्नाटा—भर गया है। न-जाने किधर से झिल्ली-रव सुन पड़ने लगा।

रात हो चुकी थी। कमरे में कोई चुपके से रोशनी जला गया, पर मैं मेज़ के सामने मूर्छित-सा बैठा रहा। मेरी नन्हीं-सी हाथ-घड़ी की 'टिक-टिक-टिक-टिक' आवाज़ निस्तब्धता पर मानों प्रति क्षण लगातार प्रहार कर रही थी—चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था।

(२)

जिस पत्र की चर्चा चला चुका हूँ, उसका प्रेषक मेरा एक पतित मित्र था। आप 'पतित' शब्द पर मत चौंकें। हमारे देश में ग़रीब मनुष्य पतित



समझा जाता है। संसार भर के दोष, पातक, अपराध दरिद्र के सिर पर आकर जमा हो जाते हैं। ग़रीबी समस्त दोषों की जड़ है—ऐसी बात नहीं है। ग़रीब के सिर पर आसानी से कलंक का टीका थोप दिया जा सकता है, यह बात संसार का प्रत्येक सुखी व्यक्ति, धनी सज्जन जानते हैं। जानते ही नहीं हैं, बल्कि इस पर बड़े समारोह के साथ ध्यान भी देते हैं।

और, मेरा वह पतित बन्धु, जिसका पत्र आपको सुना चुका हूँ, एक रहस्यमय अभागा था। उसका नाम चाहे कुछ भी रहे, पर आप यह मान लें कि उसे मैं 'दिनेश' कहता था। हाँ, तो दिनेश एक रहस्यमय अभागा था। मुझे विश्वास है कि उसका दुर्भाग्य देश के बहुसंख्यक अभागों का प्रतिनिधित्व कर सकता है। आज दिनेश नहीं है, पर इस पत्र के रूप में उसकी कसक-कहानी मेरे सामने मौजूद है।

बारह-तेरह साल पहले की बात है, मैं इसी कमरे में बैठा कुछ लिख रहा था। हृदय में किसी अज्ञात और अदृश्य जगत् की सुन्दरी की विरह-वेदना की कसक बलपूर्वक भरकर एक करुणामयी कविता लिखने की फ़िक्र में था। चाहता तो यह था कि ऐसी वेदनापूर्ण कविता लिखूँ कि जो इसे पढ़े वह मुरीद हो जाय, फड़क उठे और मेरे पीड़ामय हृदय पर सौ-सौ जान से न्योछावर हो जाय। इतने में कमरे का भारी पर्दा उठाकर एक नवयुवक आया। लम्बा शरीर, पुष्ट बाहें, चौड़ी छाती और फूल-सा निर्दोष, खिला हुआ चेहरा। बातों के सिलसिले से पता चला कि यह एक ग्रामीण, अथच "देहाती" है। गँवई के रहनेवालों को हम शहर-निवासी 'देहाती' कहते हैं और "शहरी मूर्ख" को भी 'देहाती' विशेषण से भूषित करते हैं। 'कोष' में चाहे जो कुछ लिखा हो, पर हम शहरी लोग 'देहाती' शब्द को मूर्ख शब्द के स्थान पर काम में लाते हैं। 'गाँव'-शब्द से ही 'गँवार' बना है—हम शहरी, देहातियों को मूर्ख समझते हैं, यह शास्त्रसम्मत बात है। जो दूसरों को महलों में बसाकर स्वयम् तीन हाथ लम्बी झोपड़ी में गुज़र करे, जो दूसरों के लिए दूध-दही की नदियाँ बहा दे, पर अपने बच्चों को सत्तू घोलकर पिलावे, वह गँवार नहीं तो और क्या है। मैं कहानी-लेखक हूँ—उपदेशक नहीं। मैं क्षमा किया जाऊँ।

जो नवयुवक उस दिन मेरे सामने आया था, वह एक देहाती था—ग्रामीण था। उसने उच्च शिक्षा भी पाई थी, घर-द्वार बेंच-बूँच एक-दो डिग्रियाँ हासिल करके वह अब नौकरी की खोज में दर-दर का भिखारी बन बैठा था। बातों ही बातों में उसने मुझे समझा दिया कि वह अपनी वर्तमान स्थिति से अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा है। मैं सिर से पाँव तक काँप उठा। मैं समझता था कि जो मनुष्य अपनी वर्तमान स्थिति के प्रति विद्रोही हो उठता है, वह दुर्दान्त हो जाता है। वह नवयुवक दिनेश था—वही दिनेश, जिसका अन्तिम पत्र आज अपने आगे रखकर मैं हक्का-बक्का-सा बना बैठा हूँ। दिनेश ने अपनी कथा का उतना ही अंश सुनाया, जितना अंश उसके हृदय की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए काफ़ी था। उसके कहने की शैली क्रोधोत्पादक थी—करुणोत्पादक नहीं। वह अपनी दशा की कहानी ऐसे शब्दों में सुना रहा था कि सुनते-सुनते मैं उत्तेजित-सा हो उठा। क्षण भर ठहरकर मैंने सोचा कि यह नवयुवक अपनी स्थिति को दयनीय नहीं समझता, बल्कि अपने दुर्भाग्य पर वज्रपात करने के लिए—कुचले हुए साँप की तरह—फूत्कार छोड़ रहा है, पर लाचारी की हथकड़ियाँ कौन तोड़ सकता है।

मैंने कई नवयुवकों से मिलकर उनकी बातें सुनी हैं, पर प्रत्येक के हृदय में वेदना की ही कसक देखी है। वे अपनी दुर्दशा की कहानी श्रोता को रुलाने की ग़रज से सुनाते हैं, पर दिनेश ने ऐसे शब्दों में अपनी बीती कथा सुनाई कि मेरे-जैसे महानरम प्रकृति के कोरे कवि का भी ख़ून गरम हो उठा। मुझे यह तै कर लेते विलम्ब नहीं लगा



कि यह नवयुवक अपने अन्तर में ज्वालामुखी दबा-कर रुई के गोदाम में घूम रहा है—! कई बार दिनेश मेरे यहाँ आया। उसकी बातें मैं ध्यान से सुनता था। कई बातों में हमारा गहरा मतभेद भी था—मतभेद की खाई हमारे बीच में दुर्भाग्य की तरह फैल गई थी, पर हम एक दूसरे से स्नेह रखते थे। कभी-कभी दिनेश का प्रज्वलित यौवन-सुलभ तेज असह्य-सा हो जाता था। मैं उसे सदा समझा-बुझाकर शान्त करता था।

एक बार जब मैं किसी काम से दिल्ली जा रहा था, दिनेश स्टेशन पर आया। फटी हुई कमीज़ के भीतर से उसका गठा हुआ शरीर बड़ा ही भला मालूम पड़ता था। गाड़ी के समय के पहले—अपनी आदत के अनुसार—मैं स्टेशन पर पहुँच गया था। सर्दी की रात थी और रेलवे लाइन की बत्तियाँ कुहरे के भीतर से धुँधली-सी जान पड़ती थीं। भारी-भारी ख़ाकी कोट पहने दो-चार पुलिस के सिपाही प्लेटफ़ार्म पर टहल रहे थे। हवा में ग़ज़ब की कँपकँपी भरी हुई थी। ऐसी रात को एक फटी-सी कमीज़ पहने दिनेश हठात् मेरे सामने आकर रुक गया। वह हाँफ रहा था—थका-सा था। एकाएक कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ—सहमते हुए मैंने प्रश्न किया—"किधर चले दिनेश?" मेरे प्रश्न को शायद उसने सुना ही नहीं या सुनकर भी टाल दिया। वह पूरी उँचाई में तनकर खड़ा हो गया। आज उसके इस प्रकार के खड़े होने में कुछ अस्वाभाविकता थी। मैंने स्पष्टतः अनुभव किया कि उसके मुँह से शराब की कड़ी गंध आ रही है—उसने बाज़ारू शराब पी ली थी। मुझे बड़ा दुःख हुआ दिनेश के इस कृत्य पर। मैं चुप-चाप—एकटक—उसकी ओर विस्मय-विस्फारित नेत्रों से देखने लगा। क्षण भर रुककर शराबी दिनेश बोला—"क्या सोच रहे हो? मैंने शराब पी ली है। दिल के हाहाकार को शराब के विष से मिटाना चाहता हूँ—सुना है तुमने? मेरा घर लूट लिया गया! मैं आज पथ का भिखारी हूँ।"

मैंने दिनेश की इस बात पर विश्वास नहीं किया। शराब के झोंके में—सम्भवतः—वह बोल रहा हो। जिसका घर लूट लिया जाय, वह शराब पीकर मटरगश्ती करता फिरे—असंभव बात! एकदम असंभव!! घृणा से मेरा मन भर गया—मैं दिनेश के प्रति मन ही मन कठोर हो उठा। दिनेश—दिनेश की ऐसी घृणित दशा! जिस नवयुवक की अच्छाइयों पर मैं निसार था, उसकी यह हालत।

दिनेश फिर बोला—"मैं घृणा का पात्र हूँ! तुम जानते हो, मैं दरिद्र हूँ—देहाती हूँ। मुझमें दोषों का रहना संभव है। दरिद्रता समस्त दोषों की जड़ है। धनी लोग दरिद्र की आत्मा को कलंक की कालिमा में रँगा हुआ देखते हैं।" वह इतना बोलकर घबराया-सा लाइन की ओर देखने लगा। इसी समय गाड़ी आई और मैंने बिना उसकी ओर दृक्पात किये जाने का उपक्रम किया।

अपनी गाड़ी की खिड़की से देखा कि अस्त-व्यस्त भीड़ से दूर खड़ा होकर दिनेश एकटक "मॉल्टेड मिल्क" के विज्ञापन की ओर देख रहा है, जो उसके सामने ही दीवार से जड़ा हुआ था। कैसी बेख़ुदी थी, कैसा हृदय-मंथन था!

गाड़ी चल पड़ी—मुझे याद है, अपने 'बर्थ' के बग़ल की खिड़कियों को बन्द करके मैं न-जाने किस चिन्ता में डूब गया—सम्भवतः दिनेश के विषय में ही कुछ सोच रहा था। सोचते-सोचते नींद आ गई—मैं सो गया।

(३)

दिल्ली में मुझे रह-रहकर दिनेश की याद आती थी। मैं "मद्यप दिनेश" का मित्र नहीं था—था उस दिनेश का अपना, जो अपने सद्गुणों के कारण किसी के हृदय में भी स्थान पा सकता है। मैं लगातार सोचता-सोचता थक-सा गया कि वह शराबी क्यों बन बैठा। उसके इस पतित जीवन के आरम्भ का इतिहास मैं जानना चाहता था—पर मेरे इस हृदयमंथन की शक्ति का उपाय! मैं

दिनों तक मन उद्विग्न-सा रहा, पर धीरे-धीरे मन की चंचल गति की बात सोचकर संतोष कर लिया—मानव-चरित्र की गहनता का पता लगाना असंभव-सा ही है।

मेरे घर से जो पत्र आया, उसमें दिनेश की चर्चा थी। दिनेश हमारे परिवार में दूध-मिस्री की तरह मिल गया था। दिनेश—! क्या कहूँ !! दिनेश-जैसा लुभावना व्यक्तित्व विरले ही किसी नवयुवक के नसीब होगा। मेरा छोटा भाई लिख रहा था कि "दिनेश उजाड़ डाला गया! वह नौकरी के फेर में पड़कर इधर-उधर घूम रहा था और इधर उसके घर में हठात् आग धधक उठी। खेत वग़ैरह तो लगान की देवी के आगे पहले ही 'बलि' दे दिये गये थे—बचा था एक खपरैल, वह भी अब राख का ढेर बन गया है।"

इस पत्र ने मुझे चौंका दिया। सचमुच दिनेश लूट लिया गया। उसका पिता साधारण काश्तकार था। दिनेश को उसने बड़ी लगन से पढ़ा-लिखा कर—प्यार का शीतल जल सींच-सींचकर—लुभावना बनाया, उन्नत बनाया। बेकारी ने देशके अनेक होनहार नवयुवकों को विपथगामी बनाकर बरबाद कर डाला, जिसका इतिहास हमारे दुर्भाग्य का इतिहास है। दिनेश-जैसा प्रतिभाशाली युवक, जिसका मस्तिष्क छुरे की धार की तरह तेज़ हो, यदि विपथगामी बन जाय तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। उच्च-शिक्षाप्राप्त दिनेश ने देश की आर्थिक गुत्थी को सदोष समझा और उसे पूर्ण रूप से विश्वास है कि नौकरी के भरोसे उच्च शिक्षा का पहाड़ सिर पर लादना मूर्खता है। हमारे यहाँ खेती के अतिरिक्त पेट भरने के केवल दो साधन और हैं—पहला नौकरी और दूसरा भीख माँगना। ये दोनों साधन क़ानून-सम्मत हैं, पर इनके अतिरिक्त चोरी, पाकटमारी, डकैती, ठगी आदि साधन भी हैं, पर इन्हें सभ्य समाज (?) ग़ैर क़ानूनी रूप देता है।

दिनेश को मैं कोरे शब्दों के भरोसे शान्त रखना चाहता था, पर हृदय की भूख होती तो मीठी-मीठी बातों से मिट जाती, किन्तु पेट की ज्वाला के लिए हलवा, लड्डू, मटन, चॉप न सही, मुट्ठी भर सत्तू तो चाहिए ही। मैं दिनेश के लिए अच्छे-अच्छे सिद्धान्त-वाक्य संग्रह कर सका, पर मुट्ठीभर अन्न—दो रूखी-सूखी रोटियों—की कोई व्यवस्था न कर सका। ऐसी दशा में दिनेश की ग़रीब पत्नी और उसके तीन नन्हें-नन्हें फूल-जैसे बच्चों के जीवन-मरण का प्रश्न कैसे हल हो सकता था।

मैं दिल्ली से लौटकर घर आ गया। घर पहुँचते ही जब मैंने दिनेश की खोज की तो पता चला कि वह घर गया है। मैं चाहता तो बहुत था कि उस अभागे नौजवान की नमक-रोटी के लिए कुछ करूँ, पर यहाँ अपना ही "गोन" भारी था—गरदन टूट रही थी, कमर झुककर मेहराब बन चली थी। केवल सहानुभूति प्रकट कर देने से ही दिनेश का घाव भर जायगा, ऐसी आशा नहीं थी। धीरे-धीरे एक मास समाप्त हो गया। वर्षा आई धानी चूनरी पहनकर और दिनेश आया आँखों में सावन-भादों भरे। उसके छोटे बच्चे की तबीयत ख़राब थी। शीतला का आक्रमण हुआ था। पास पैसा न रहने के कारण रोग अन्तिम सीमा के निकट पहुँचने का प्रयत्न कर रहा था। मैंने कुछ देकर उसे बिदा किया। आँखों में आँसू भरकर जाते समय दिनेश ने ज़ोर से कहा—"भाई, दान के भरोसे कब तक मेरा परिवार जीवित रह सकेगा? मैं चाहता भी नहीं कि ख़ैरात के बल पर संसार की छाती को रौंदता रहूँ। माना कि इस समय तुमने मेरे बच्चे की रक्षा की, पर मुझे तो इसका मलाल है कि मैं अपने बच्चों के लिए कुछ न कर सका—मैं अयोग्य हूँ।" दिनेश चला गया, पर मेरा मस्तिष्क चाक की तरह घंटों घूमता रहा।

धीरे-धीरे मैंने अपने मन की पीड़ा को ठेल-धकेलकर आराम की साँस ली। एक वर्ष तक दिनेश का कोई पता न चला। मैंने भी उसे भुला देने का प्रयत्न किया। उस अभागे की जितनी चिट्ठियाँ

अपने पास मिलीं सबको खोज-खोज करके नष्ट कर दिया । इतनी क़िलेबन्दी के बाद भी दिनेश को मैं अपने मन की सीमा के बाहर नहीं कर सका । दिनेश की स्मृति मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे हृदय पर बराबर नाच जाती थी । मैं सचमुच उसके 'याद' से घबराता था, डरता था । सच कहता हूँ—वह कितना अभागा युवक था, उफ़् !!!

(४)

पूस का महीना था और मैं अपने कमरे में बैठा कुछ लिख रहा था—ग़ज़ब की सर्दी पड़ रही थी । रात काफ़ी बीत चुकी थी । मैं एकाग्र मन से काग़ज़ के मैदान में क़लम की घुड़दौड़ का मज़ा ले रहा था कि सुगन्ध के एक झोंके के साथ दिनेश आया । कमरा विलायती फूलों की महक से भर गया । मैंने चौंककर देखा तो दिनेश को झुककर जूते का फ़ीता खोलते पाया । क्या वह सचमुच दिनेश था—नहीं ! मैं आज भी यह स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं हूँ कि वह दिनेश था, जिसे मैंने उस दिन दामी कपड़ों में—क़ीमती शाल ओढ़े और हँसते हुए देखा था ।

दिनेश के चेहरे से रुखाई टपकती थी—वह मानो धीरे-धीरे 'नर' से 'नरपशु' बनता जा रहा था । मैं घृणा से भर गया । दिनेश आकर—एक कुर्सी पर—बैठ गया । मैं उससे क्या पूछता ? आँखों से ही देख रहा था कि आज वह एक नया दिनेश है—पुराना, ग़रीब, सहृदय दिनेश महाशून्य में विलीन हो चुका है । उस समय मुझे दिनेश से पूछना चाहिए था कि 'तुमने कौन-सा व्यवसाय शुरू किया है या आजकल तुम कैसे हो ?' पर न-जाने क्यों, उसके कपड़ों से निकलनेवाली सुगंध ने और उसकी चढ़ी हुई लाल-लाल आँखों ने मुझे चिढ़ा दिया । आज न-जाने क्यों उसके चेहरे से नम्रता और सज्जनता की जगह पर उजड्डपन की छाया झलकती थी ।

दिनेश के जाने के बाद मैंने अपनी ग़लत धारणा के लिए मन ही मन प्रायश्चित्त किया । वह सचमुच दया का पात्र था—परिस्थिति ने उसे कमीनेपन की ओर धकेल दिया था । यह दुःख की बात है कि वह उन दिनों एक जुआख़ाने का संचालक था!!!

आज दिनेश की चर्चा चलाना व्यर्थ है । वह संसार के पर्दे के उस पार चला गया—फाँसी की तख़्ती उसके लिए "स्वर्गनसेनी" बनी, पर मैं देखता हूँ कि संसार में एक क्या, करोड़ों दिनेश हो चुके हैं, मौजूद हैं और होंगे । यह कमीना क्रम जारी है ।

मैंने अत्यन्त दुःख से यह समाचार सुना कि दिनेश ने एक जुआख़ाना खोला है होटल के नाम पर । वहाँ वेश्याओं के साथ शराब की व्यवस्था भी रहती है । शहर के नामी-नामी पगड़ी-तमग़ाधारी—हमारी संस्कृति के प्रतिनिधि वहाँ पहुँचते हैं । चोरी, पाकटमारी, ज़हरख़ोरी बड़े समारोह के साथ चलती है । ख़ून भी यदाकदा हो जाता है, पर किसकी मजाल, जो उस होटल का नाम भी ले, जिसके मैनेजर पं० दिनेशचन्द्र एम्० ए० जैसे संभ्रांत सज्जन हों तथा जिस होटल में मिस्टर 'फ़लाने' सी० आई० ई० और रायबहादुर [illegible] 'ढेमाके' ओ० बी० ई०, एम्० एल्० ए० की मोटरें हर घड़ी आती-जाती रहें । बस, मामला साफ़ हो गया । कितने राजा-बहादुर, ज़मींदार आज दिनेश के अभिन्नहृदय मित्र हैं ।

यह पापगाथा सुनकर मैं कराह उठा । मैंने उस अभागे तथा शिक्षित गुण्डे को समझा दिया कि तुम विनाश के पालने पर झूल रहे हो तो उसने व्यंग्यपूर्ण हँसी हँसकर कहा—"भैया, मेरे इस जघन्य जीवन का आदि कारण समाज के यही ऊँची पगड़ीवाले हैं । इनकी पाप की आग में मैं नहीं जल सकता । आग भड़की न कि एक-एक को उठाकर मैं उसमें झोंक दूँगा । मैं आज राक्षसी नाटक का सूत्रधार हूँ—तुम बैठे-बैठे तमाशा देखो ।" मैं सन्नाटे में आ गया—प्रतिहिंसा की ऐसी ज्वाला !

दिनेश की हताश जीवनधारा किस दिशा की ओर प्रवाहित हो रही है—यह बतलाना मेरे लिए

असंभव-सा ही है। मनुष्य कैसा रहस्यमय पुतला है—उफ़!

दिनेश के कहने पर एक बार मैं उस होटल में भी गया। देखा, शानदार इमारत में सात-आठ सजे-सजाये कमरों में—तरह-तरह के लोग भरे हुए हैं। 'वेटर' कन्धे पर साफ़ तौलिया डाले इधर-उधर दौड़ रहे हैं। बिजली के स्वच्छ प्रकाश में वहाँ के अन्धकाराच्छन्न पतित जीवन को देखकर मैं घिना-सा उठा। एक कमरे में एक अर्धनग्न, मदविह्वलाक्षी बैठी है। कई फतिंगे उसकी रूपाग्नि में गिरने के लिए मँडरा रहे हैं। बोतलों की सजावट निराली है। इस गिरोह में दो मंज़िली तोंदवाले एक सेठजी भी पीली पगड़ी बाँधे बैठे हैं, जिनकी दाहिनी अनामिका में हीरे की एक अँगूठी चमचमा रही है। इन सेठजी को मैं जानता हूँ। कई धर्मशालाएँ बनवाकर आपने 'दानीशिरोमणि' की उपाधि किसी 'मंडल' से प्राप्त करने का गौरव पाया है। एक दूसरे सज्जन हैं एक इस्टेट के ऊँचे अधिकारी। अभी नौजवान हैं—खुद मोटर चलाते हैं। आपने भी जनता में सुनहली कीर्ति पाई है। नौजवान हैं और ग्रेजुएट भी।

इसी प्रकार मैंने कई परिचित जनों को देखा और देखा एक अधगोरी युवती की बग़ल में बैठकर उसका स्वास्थ्यपान करते एक प्रोफ़ेसर साहब को। दिनेश ने मुझे बतलाया कि नगर का ऐसा कोई विरला ही भला आदमी (?) होगा, जो यहाँ न आता हो। उस होटल का वायुमंडल कुछ ऐसा भारी-सा था कि मैं उसमें भरपेट साँस नहीं ले सका। खुली सड़क पर निकलकर मैंने आराम का अनुभव किया। मेरे मन में रह-रहकर यह प्रश्न हुड़दंग मचाने लगता था कि आख़िर दिनेश ने इस तमाशे के लिए साधन कहाँ से जुटाये। मेरे इस प्रश्न का कौन उत्तर देता! दिनेश की यह "माया-पुरी" मेरे लिए आश्चर्य से भरी हुई थी। मैं यह सोच भी नहीं सका कि ऐसा होना भी संभव हो सकता है।

(५)

आख़िर वह दिन भी दूर नहीं रहा, जब मुझे बतलाया गया कि दिनेश कुछ दिनों तक चोरों के गिरोह के साथ था। उसके बाद बड़े पैमाने पर अपने पापमय व्यवसाय को चलाने के लिए उसने बाक़ायदे डकैती शुरू कर दी। गुंडों का वह सरग़ना बन बैठा तथा बढ़-बढ़कर हाथ मारने लगा। डकैती से पिंड छुड़ाकर वह जुआख़ाने का प्रधान बना। पुलिस की नज़रों से बचता हुआ दिनेश कुछ दिनों तक अपने जुआख़ाने की कमाई खाता रहा, फिर यह जुआख़ाना आज 'होटल' की सूरत में बदल गया। यहाँ तक कि चोर दिनेश, डकैत दिनेश और जुआरी दिनेश से इन मि० दिनेशचन्द्र एम्० ए० का सम्बन्ध जोड़ना बड़े-बड़े पुलिस अधिकारियों के लिए भी असंभव हो गया है। मुझे पता नहीं कि दिनेश का नन्हा-सा परिवार का क्या हुआ। मैंने इसका पता लगाना भी उचित नहीं समझा। कोई तीन-चार वर्ष तक उसने अपने होटल को बड़े समारोह के साथ चलाया, पर एक दिन उस पर—दिनेश पर—परिस्थिति ने विपत्ति का पहाड़ धकेल दिया।

दिनेश ऐसी विपत्ति का स्वागत करने के लिए क़तई तैयार न था, पर आपदा सदा अनाहूत ही आती है, यह बात भी सोलहो आने सही नहीं है। बात यह है कि दिनेश के शानदार होटल में एक पंजाबी सज्जन लाहौर से आये। एक कमरा आपने अपने लिए किराये पर लिया और फिर रागरंग में तत्काल लिप्त हो गये। उस्तादों से यह बात छिपी नहीं रही कि इन पंजाबी भाई के पास मोटी रक़म है। पता लगने भर की देर थी कि हत्यारों की एक गुप्त समिति बैठी। बेचारा पंजाबी यह क्या जानता था कि उसके कमरे के बादवाले कमरे में ही उसकी हत्या का षड्यन्त्र रचा जा रहा है। इस अभागे पंजाबी के पहले एक-दो यात्री और भी सुरधाम को भेजे जा चुके थे।

एक सुन्दरी वेश्या के द्वारा पंजाबी सज्जन पर



किसी तेज़ विष का प्रयोग शराब के प्याले की सहायता से किया गया। फलतः अपने देश से दूर, मित्रों से दूर, सहायकों से दूर, स्त्री-संतान से दूर—उफ़् लिखा नहीं जाता। तड़प-तड़पकर बिना एक बूँद जल के बेचारा पंजाबी मर गया। उसका यथा-सर्वस्व दिनेश की जेब में समा गया। क्षणभर में—आतिशबाज़ी की तरह—सारा खेल 'छूमन्तर' हो गया। सदा की तरह दिनेश ने अपने प्रभात का हँसते हुए स्वागत किया। सदा की तरह होटल के कर्मचारी आये और सदा की तरह ही सारी रात वहाँ वासना की आग पूर्ण वेग से धधकती रही। देखते-देखते एक सप्ताह समाप्त हो गया—कहीं से विरोध या संदेहभरा एक शब्द भी नहीं सुन पड़ा।

इसके बाद—? इसके बाद विनाश ने धीरे-धीरे अपना विकराल जबड़ा फैलाना शुरू किया। एक ज़मींदार का पाकेट काटा गया। पाँच हज़ार के नोट देखते-देखते लूट लिये गये। यह ज़मींदार पुराना पियक्कड़ और व्यभिचारी था। इस लूट के गलीज से अभी बदबू निकल ही रही थी कि एक तीसरा गुल खिला। एक नौजवान वेश्या के पेट में किसी ने १० इंच लम्बा छुरा घुसेड़ दिया—बेचारी वेश्या की पापी देह होटल के एक बन्द कमरे में प्रातःकाल पड़ी पाई गई। इस बार पुलिसवालों ने जँभाई लेकर अपनी नींद तोड़ी। चालाक दिनेश ने परिस्थिति की गहराई को माप लिया अपने अनुभव के 'बाँस' से—वह उड़नछू हो गया। और तो मैं नहीं जानता, पर ५-६ मास के बाद दिनेश मेरे यहाँ आया। उसने मुझे बतलाया कि वह बेदाग़ छोड़ दिया गया है। मैं उसकी बेहद गंदी ज़िन्दगी से घिना-सा उठा था। मैं चाहता ही था कि उसे जी भरकर फटकारूँ, पर उसने स्वयम् कहा कि "अब मैं अपनी ज़िन्दगी से ऊब उठा हूँ। स्त्री-बच्चों के लिए मैंने काफ़ी धन-संग्रह कर लिया है। मेरे बच्चे अब एक राजकुमार की तरह रहेंगे, स्त्री रानी की तरह शान से ज़िन्दगी बसर करेगी।" मैं उसका एक शब्द भी सुनने के लिए तैयार न था, पर हृदय की निर्बलता के कारण अपने घर से निकाल भी नहीं सकता था। चलते-चलते दिनेश ने कहा—"मैं जब तक ईमानदारी को अपने गले का हार बनाये रहा, दुख भोगता रहा। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि जिस ज़मींदार का पाकेट मारा गया, उसने हमारा सत्यानाश कर दिया था। मेरे तीन बच्चों में से एक को उसने चबा डाला था। मेरा फूल-सा बच्चा, जो आठ साल का था, इतना पीटा गया कि छः मास खाट पर पड़ा-पड़ा मर गया। मेरी ग़रीबी के दिन जब थे तो १) मासिक पर मेरा बच्चा उसके यहाँ ख़िदमतगारी करता था—एम्० ए० पास बाप का बच्चा ख़िदमतगार! वहीं उस पर चोरी का इलज़ाम लगाकर मेरी आँखों के सामने ही मेरे 'नगेश' को जूतों से ख़ूब पीटा गया! उसी दिन मुझे अपनी लाचारी और ग़रीबी का ज्ञान हुआ। मेरी साध्वी स्त्री की बेइज़्ज़ती की गई चोरी की चीज़ खोजने के बहाने पर—मैं खड़ा-खड़ा देखता रहा! मैं आँखें पसार-कर अपने बच्चे का पीटा जाना, उसका चिल्लाना, उसका तड़पना, उसके मुँह और नाक से रक्त की धारा बहना, उसका मूर्छित होना—देखता रहा और देखता रहा अपनी स्त्री की घोर बेइज़्ज़ती! फिर? बस, अब अधिक नहीं कहूँगा। परिस्थिति ने मुझे पाप-पथ का पथिक बनाया है।"

इतना कहकर पागल की तरह अट्टहास करता हुआ दिनेश कमरे से बाहर हो गया। चारों ओर सन्नाटा-सा छा गया! क्या यह बात सही नहीं है कि मनुष्य ख़ुद तो कुछ होना चाहता है और परि-स्थिति उसे कुछ बना डालती है। उदाहरण के लिए हम दिनेश का नाम ले सकते हैं। वह चाहता था अध्यापक होना, क्लर्क होना, व्यवस्थाविभाग का एक अंग बनना, एक अच्छा नागरिक बनकर जीना, पैसे कमाना, बस इतनी ही-सी उसकी मुराद थी। परिस्थिति ने उसके साथ अत्याचार किया। वह देखते-देखते चोर बना, डकैत बना, ख़ूनी बना, गुंडों का सरग़ना बना, ज़हर देनेवाला



बना और अभी और न-जाने वह क्या-क्या बनने-वाला है। अब वह सुखी है ? सचमुच अब वह सुखी है। उसने अपने काले कारनामों से प्रान्त का प्रान्त दहला दिया, बड़े-बड़े पूँजीवाले हतबुद्धि हो गये। डकैती, चोरी, ख़ून का ऐसा आतंक फैला कि शहर से दूर पर रहनेवाले—ग्रामीण—धनी अपने को किसी क्षण भी लुटा हुआ समझने लगे। एम्० ए० पास दिनेश ने अपनी शिक्षा की सारी महत्ता को पापकर्म के संपादन में लगाया। अपने जिस ज्ञान से वह देश और कला का उपकार करता, उसी ज्ञान को उसने नरसंहार, धनहरण आदि नृशंस कामों की ओर लगा दिया। कमल जब सड़ता है तो वह कीचड़ से भी अधिक बदबूदार हो जाता है। दिनेश एक उच्च-शिक्षाप्राप्त नवयुवक था। उसकी पापगाथा भी साधारण पापियों से अधिक गम्भीर, कलापूर्ण, सनसनीख़ेज़ होनी चाहिए।

मुझसे मिलकर दिनेश जब गया तो मैं उसकी बातें सोचता-सोचता थक-सा गया। सच तो यह है कि उसके जैसे भयंकर तथा घृणित मनुष्य के प्रति भी मेरे हृदय में स्नेह था। मैं जानता था कि दिनेश पापी नहीं है, अपराधी नहीं है, आवारा नहीं है। समाज ने उसे जैसा बनाना चाहा, वह बन बैठा। पेट का प्रश्न भी कितना भयंकर और ठोस होता है। सिद्धान्त और आदर्श पेट के सामने नहीं टिकते। भूखा मनुष्य कोई भी पाप कर सकता है, झल्लाया हुआ मनुष्य निष्ठुर हो जाता है; उसके सामने मनुष्यता नहीं फटकती। दिनेश—दिनेश की बात क्या कहूँ। उसने उच्च आकांक्षाओं को मद्देनज़र रखकर एम्० ए० पास किया, पर कल्पना के हवाई क़िले से जब वह वास्तविकता की भूमि पर उतरा तो उसे सर्वत्र निराशा ही निराशा दिखलाई पड़ी। स्त्री-संतान का भार सिर से पड़ा। नवयुवक-हृदय दिनेश ने कुछ दिनों तक तो अपने मन की लगाम पर ध्यान दिया, पर दुर्भाग्य ने प्रहार पर प्रहार करके उसे विचलित कर दिया। उस मेधावी युवक ने—जिसने संसार के इतिहास का मनन किया था—अपने आपको उसी साँचे में ढाल दिया, जिस साँचे में समाज उसे ढालना चाहता था या ढालने पर उतारू था। अब दिनेश एक दुर्दान्त प्राणी बनकर समाज के सामने आया तो चारों ओर से 'क़ानून,' 'क़ानून' की पुकार मच गई। ख़ैर, जो होना था वह होकर ही रहा। हम एक तटस्थ व्यक्ति हैं, जिनका काम नदी की लहरों का हिसाब रखना है, पानी नापना नहीं। इस कहानी के रूप में हम उसी हिसाब को लिख रहे हैं—बस।

(६)

कितने दिन बीत गये—आज याद नहीं है। दिनेश का कोई पता नहीं चला। हमने भी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। हम जानते थे कि उसके जीवन का प्रवाह पूरे वेग से किस दिशा की ओर जा रहा है।

एक दिन दिनेश का एक साथी हमें स्टेशन पर मिला। यह साथी कलकत्ते का एक नामी छुरा-बाज़ था। 'कोकेन' बेंचना इसका प्रधान पेशा था। पाकटमारी से भी कुछ उल्फ़त थी। बीस साल के लिए यह कलकत्ते से खदेड़ दिया गया था—बस। होटल में यह दिनेश का प्रधान सहायक था। दिनेश के श्रीमुख से इस नरपशु की पूरी कहानी सुन चुका था—स्टेशन पर देखते ही मेरा माथा ठनका। सम्भवतः पाकट काटने के अभ्यास को ठीक रूप में रखने के लिए यह इस ओर आया हो। नमस्कार-प्रणाम के बाद इसने बतलाया कि दिनेश आजकल फ़रार है। अपने ही गाँव के ज़मींदार पर उसने घातक आक्रमण कर दिया था। परिणाम भयंकर हुआ। मधुमेह का रोगी वह ज़मींदार हलके से घाव को भी नहीं बर्दाश्त कर सका। इधर पुलिसवालों के सामने दिनेश के सारे पुराने पाप प्रकट हो गये। ज़मींदार पर दिनेश ने किसी व्यक्तिगत मनमुटाव के कारण हमला किया था।"

मुझे यह भी पता चला कि वह—दिनेश—



इधर बच्चे चुराने का रोज़गार करता था। उसी ज़मींदार का एक बच्चा स्कूल से लौटते समय चुरा लिया गया। ज़मींदार ने दिनेश पर संदेह किया और पुलिस में ख़बर देने के पहले उसके घर पर धावा बोल दिया। इसी कांड को लेकर दो-दो हाथ दोनों ओर से चले। दिनेश ने अपने हाथ में क़ानून का अधिकार लेकर तमंचा चला दिया। बच्चा दिनेश के घर से बरामद नहीं हुआ। ज़मींदार पालकी पर लादकर अस्पताल पहुँचाया गया। मैंने इस बार माथा ठोका। बस, अब 'पूर्णाहुति' की बारी आ गई, पाप का घड़ा भर गया—अब वह फूटने ही वाला है। यह बात सही है कि हमें पाप से घिनाना चाहिए। पापी तो दया का पात्र होता है। दिनेश के पापों का मैं शत्रु था, पर चाहता था कि समाज दिनेश को जीने का और आत्मसुधार करने का अब भी अवसर दे—सच-मुच वह जीने का अधिकारी है।

बच्चे चुराने की एक नई सनक उसमें पैदा हो गई थी। मैं समझता हूँ कि उसने एक साँस में संसार भर के पातकों को कर डालने का मानों निश्चय सा कर लिया था। चोरी, डकैती, जुआ, ख़ून, ठगी के बाद नम्बर आया बच्चे चुराने जैसे घृणित पाप का। अब मैं यह सोचने लगा, और अब कितने कुकर्म बचे हैं।

सावन की कजरारी रात थी—मेघ पर मेघ लदे हुए आकाश में घूम रहे थे। मूसलधार वर्षा हो रही थी। आधी रात हो चली थी। मैं अपने एक लेख का संशोधन समाप्त करने ही वाला था कि हठात् मेरे कमरे में दिनेश आया। उसने आते ही कमरे का दरवाज़ा बन्द कर दिया और कुन्डी चढ़ाकर वह खड़ा हो गया। मैं अकचकाकर उसकी ओर देखने लगा। अपने भीगे कपड़ों के कारण वह कुर्सी पर बैठना नहीं चाहता था। उसके फ़क् चेहरे को देखकर मेरा दिल भर गया—हाय! अभागा दिनेश!! मैंने उसे कुछ सूखे कपड़े दिये। अब उसने धीमे स्वर में कहना शुरू किया—"सुना है तुमने, मैं आज एक घोषित ख़ूनी हूँ? इससे पहले भी मैंने कई ख़ून किये थे, पर किसी को पता भी न चला। पर आज मेरे सिर के लिए इनाम की घोषणा की जा रही है। मैंने क्या किया, यह शायद तुम नहीं जानते। मैंने उस पापी ज़मींदार के छोटे बच्चे को चुरवा लिया, जिसने मेरे बच्चे को जूतों से पीट-पीटकर मार डाला था। मैंने इस कई दर्जन बच्चे उड़ाये और बहुत-सा धन पाया। ज़मींदार के बच्चे को पैसे के लिए मैंने नहीं चुराया था—बदले की भावना थी। आज मेरा हृदय शीतल हो गया। हाँ, उस मूर्ख ने मेरे घर पर धावा बोल दिया था। उसका बच्चा तो वहाँ था ही नहीं, मुझसे एक भूल यही हुई कि मैंने तमंचे से काम लिया। उसके कन्धे के नीचे चोट आई, पर नौ दिन अस्पताल में रहकर उसकी मृत्यु हो गई। मेरे होटल में ही उसकी गहरी रक़म उड़ा ली गई थी—वह मन ही मन मुझसे झल्लाया हुआ था। मेरे बढ़ते हुए वैभव की चमक ने भी उसे चौंधिया दिया था। अब मैं उस गाँव का आधा हिस्सेदार भी हूँ, जिसमें मेरा और उसका घर है। जो होना था, हो चुका।

"मैं कब तक इस तरह भागता फिरूँगा, पता नहीं। अपने इस भगोड़े जीवन से ऊब-सा उठा हूँ। पुलिस के सामने मेरे पुराने पापों की गाथा भी प्रकट हो गई है। मैं आया हूँ तुमसे क्षमा-याचना करने। मैं एक मास तक और भागता रहूँगा, फिर एक दिन थाने पर हाज़िर हो जाऊँगा। कुछ काम अभी शेष हैं—घर की व्यवस्था भी करना बाक़ी है। मैं पापी नहीं हूँ—मैं सोचता भी नहीं कि मैंने कभी भी पाप किया है। पाप और पुण्य का सवाल मेरे सामने नगण्य है।"

एक साँस से इतना बोलकर दिनेश चुप हो गया। मैं हकाबका-सा बैठा रहा। मैं क्या उत्तर देता उस नरराक्षस को, जिसने अपने सुनहले जीवन को जान-बूझकर हाहाकारमय बना लिया है। और हम

हठात् दिनेश उठकर खड़ा हो गया

छोड़कर बोला—"बस, बिदा दो, पर संभव है कि एकाध बार और तुम्हारे दर्शन करूँ। सचमुच आज मेरे हृदय में ज़रा-सी भी ग्लानि नहीं है—मैं फाँसी के फन्दे का आगे बढ़कर स्वागत करूँगा, पर सच कहूँ कामरेड ! मैं मरना नहीं चाहता—यदि कुछ दिन और जीवित रहता तो थोड़े-से पाप और कमा लेता। मैं चाहता हूँ कि समाज की सारी व्यवस्था को मटियामेट कर दूँ—ख़ैर।"

इतना बोलकर वायुवेग से दिनेश मेरे पैरों पर गिर गया और फिर क्षणभर में आग की लपट की तरह उठ खड़ा हुआ। मेरे मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। देखते-देखते उसने दरवाज़े को खोल दिया और अन्तिम बिदाई ली। स्वप्न की तरह यह सारा दृश्य क्षणभर में समाप्त हो गया। मैं अपनी कुर्सी पर अर्धमूर्छित-सा बैठा रहा। कोई १५ मिनट बाद किसी ने फिर मेरे कमरे में प्रवेश किया। लौटकर देखा तो दो सशस्त्र पुलिस-आफ़िसर हैं।

× × ×

ठीक एक मास के बाद दिनेश का एक पत्र आया, जिसे इस कहानी के आदि भाग में आपके सामने पेश कर चुका हूँ। सच कहता हूँ—अब मैं पत्रों का संग्रह कभी भी नहीं करता। जब कोई पत्र आया—पढ़ा और फाड़कर फेंक दिया। बस!

लाभदायक सूचना

अमृतधारा के ३६वें वार्षिकोत्सव की खुशी में

१ मार्च से ३१ मार्च तक, जो सज्जन अपना पत्र संसार के किसी भी डाकखाने में डालेंगे, उनको

कविविनोद, वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्तजी शर्म्मा वैद्य की तैयार की हुई

अमृतधारा और इसके ५ मिश्रण

तथा स्वर्णभस्म

¾ मूल्य पर अर्थात् रुपया में चार आने कमी पर और

अन्य औषधियाँ और पुस्तकें

आधे मूल्य पर दी जायेंगी।

जो सज्जन इस बीच में रुपया जमा करा देंगे, उनको जब तक वह रुपया समाप्त न हो, इसी रियायत का अधिकारी समझा जायेगा, चाहे जितनी बार वह औषधियाँ और पुस्तकें मँगावें।

जिन सज्जनों के पास इस समय तक सूचीपत्र न पहुँचा हो, वह एक कार्ड लिखकर मँगवा सकते हैं।

जो सज्जन नियमपूर्वक निदान करके चिकित्सा कराना चाहें, वे चिकित्सा नियम भी साथ ही मँगा लें। जितना शीघ्र आर्डर आवे उत्तम है। ऐसा न हो कि अन्तिम समय ही बीत जावे। एजंटों को भी अमृतधारा रियायती मूल्य पर देने को लिखा गया है। अमृतधारा और इसके मिश्रण तो हर घर में वर्तमान ही रहने चाहिएँ। उनके मूल्य इस प्रकार होंगे।

अमृतधारा पूरी शीशी २॥) के स्थान १॥।=)	अमृतधारा की मीठी टिकियाँ ।) के स्थान ≡)
,, आधी ,, १।) ,, ,, ॥।≡)	,, लोशन ,, १) ,, ,, [illegible]
,, नमूना ,, ॥) ,, ,, ।=)	,, बाम ,, १) ,, ,, [illegible]
,, मरहम ,, १) ,, ,, ॥।)	,, सोप ,, ॥।=)

कुछ घरेलू औषधियों का वर्णन सूचीपत्र में है।

पत्रव्यवहार व तार का पता—**अमृतधारा १२ लाहौर।**

अभाव की प्रतिक्रिया

बा० भगवतीचरण वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०

सुधा सोच रही थी, "और माधुरी ! वह कितनी सुखी है । बन्धनों से मुक्त, स्वच्छन्द वातावरण में जीवन व्यतीत करनेवाली ! उसके चारों ओर उल्लास और उत्सव, उसका प्रत्येक क्षण—एक पुलकित स्पन्दन ! वह जीवित है, संसार में उसका एक स्थान है, अस्तित्व की सार्थकता को वह जानती है ! और मैं ?....."
अचानक उसके सामने लेटा हुआ साल भर का बच्चा रो पड़ा ।

सुधा चौंक उठी ; उसके जीवन की कुरूपता साकार बनकर उसके सामने आ गई, उदास-मन उसने बच्चे को उठा लिया, उसके बाद उसने चारों ओर देखा ।

वह इंटर-क्लास के डब्बे में किनारेवाली बर्थ पर बैठी थी, बैठी क्या थी, लेटी थी । बीचवाले बर्थ पर उसके दो बच्चे रामू और रामा एक दूसरे पर [illegible]-फँदे सो रहे थे, और दूसरे किनारेवाले बर्थ पर उसके पति देवता एक उपन्यास पढ़ने में मग्न थे । और उसके उस पचास मील फ़ी घन्टे की रफ़्तार से दौड़ते हुए संसार में सिवा उसके पति के और तीन बच्चों के कोई न था ।

सुधा की गोदवाला बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था । सुधा ने अपना ध्यान अपने भरे हुए सूनेपन से हटाया और वह बच्चे को दूध पिलाने लगी । धीरे-धीरे रेल का डब्बा, उसके पति और उसके बच्चे उसकी आँखों के आगे से ओझल हो गये, उसकी आँखों के आगेवाले सूनेपन में छायाचित्र की भाँति एक के बाद एक उसके अतीत की बातें आने लगीं । वह लड़कियोंवाला स्कूल, जहाँ सुधा और माधुरी पढ़ती थीं—गुरुआनियाँ—लड़कियाँ खेल-तमाशे—और........और........उन दिनोंवाले भविष्य के सुख-स्वप्न ! वह सोच रही थी, "और हम दोनों कितनी भोली थीं, कितनी अनजान थीं, कितनी सुखी थीं ! हम दोनों विवाह करने का कल्पना से कितनी प्रसन्न होती थीं—कामदेव से सुन्दर और....संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष के रूप में अपने भावी पतियों की कल्पना में मग्न हो जाती थीं न !—उफ़, वह जीवन का कितना सुन्दर काल था ! पर वह केवल कल्पना ही थी"—इस बार उसने अपने पति की ओर देखा । उसके पति अब किताब रखकर ऊँघ रहे थे । भरा हुआ चेहरा, बड़ी-बड़ी मूछें, तोंद कुछ निकली हुई । सुधा के मुख पर एक करुण मुसकराहट आई । वह कह उठी, "कामदेव का-सा सुन्दर पति क्या ऐसा ही हुआ करता है ?" और पति ने चौंकते हुए कहा, "क्या कह रही हो ?"

सुधा कुछ सहम-सी गई, दबी ज़बान उसने कहा, "कुछ नहीं !" और वह फिर सोचने लगी, "हाँ, तो फिर हम दोनों के विवाह हुए, हम दोनों को ही 'पति देवता' प्राप्त हुए, और फिर

वहीं से मेरी तथा माधवी की जीवन-धाराएँ अलग-अलग हो गईं। मुझे पति मिला, और पति ने मुझे तीन बच्चे दिये। बन्धन के बाद बंधन, और मैं उन बन्धनों से जकड़ती जाती हूँ, स्वयम् अपनी इच्छा से। अब मेरा अस्तित्व ही क्या रह गया है—गुलामी और बन्धन!" सुधा ने खिड़की के बाहर देखा, हरे-भरे मैदान कुँआर की धूप में चमकते हुए एक के बाद एक तेज़ी से निकलते चले जाते थे। जुवार की फ़सल लदी हुई खड़ी थी, और....सुधा ने झल्लाकर हँसती हुई प्रकृति से अपनी आँखें हटा लीं। वह फिर सोचने लगी, "और माधुरी! उसका भी तो विवाह हुआ था! पर उसका पति उसको न बाँध सका। उसकी आत्मा की सुन्दरता ने उसे असीम साहस दिया, और वह लोक-लाज को ठुकराकर समाज की रूढ़ियों को कुचलते हुए कार्य-क्षेत्र में अग्रसर हो गई। इस समय उसकी कितनी ख्याति है, उसका कितना मान है। मुझसे कभी भी वह पढ़ने में तेज़ नहीं रही, पर फिर भी वह जीवन की सार्थकता पर विश्वास करती थी। अपने पति को छोड़कर, अपने घर-बार को छोड़कर वह सेवा-भाव में रत है।" सुधा ने गोदवाले बच्चे को, जो अब सो गया था, अपने सामने लिटा दिया। उसकी विचारधारा उसे असह्य हो उठी थी, उससे मन हटाने के लिए उसने माधुरी की पुस्तक, जो उसके संदूक़ में बन्द थी, निकाली। पन्ने के बाद पन्ने वह उलटने लगी, पर किताब पढ़ने में भी उसका मन न लगा। किताब रखकर वह फिर विचार-मग्न हो गई—"माधुरी का हृदय कितना सरल है, कितना कोमल है, उसमें कितनी करुणा है। उसके लिखने की प्रत्येक पंक्ति से सारे विश्व के प्रति उसकी सहानुभूति प्रतिध्वनित होती है। और इतनी महान् होते हुए भी उसमें अभिमान छू तक नहीं गया है। उसका पत्र कितना मधुर है, उसने मुझसे आग्रह किया है कि मैं उसके साथ ठहरूँ। लेकिन नहीं—ये भला वहाँ कैसे ठहर सकते हैं? नहीं, होटल ही ठीक रहेगा। [illegible] इससे क्या? मैं एक दिन माधुरी के साथ [illegible] सकती हूँ। आज दस साल बाद माधुरी से मिलूँगी। दस साल—और कितना अधिक परिवर्तन हो चुका है"—और अचानक रामू और रामा दोनों ही चीख़ पड़े।

सुधा ने उधर देखा, रामू रामा का [illegible] अपने दाँतों में दबाये था और रामा दूसरे हाथ से रामू की पीठ पर गदागद घूँसे मार रही थी और साथ ही चीख़-चीख़ कर रो रही थी।

सुधा उठ खड़ी हुई, उसने रामू को और रामा को अलग किया, और फिर अन्यमनस्क भाव से अपनी जगह पर आकर बैठ गई। गाड़ी इस समय तक कानपुर नगर की सीमा में प्रवेश कर चुकी थी, जंगलों और मैदानों के स्थान पर पक्के बँगलों की क़तारें दीख रही थीं। सुधा ने अपने पति को हाथ पकड़कर उठाया, "उठो जी! अब बाब ठीक करो; देखो कानपुर आ गया।"

एक जम्हाई के साथ सुधा के पति उठ खड़े हुए, गाड़ी उस समय तक प्लेटफ़ार्म पर पहुँच गई थी।

सुधा के पति बाबू रामनारायण इलाहाबाद नगर के प्रमुख वकील थे। वे एक मुक़दमे में कानपुर गये थे। इस अवसर पर सुधा भी उनके साथ हो ली थी, केवल माधुरी से मिलने के लिए। स्टेशन पर बाबू रामनारायण के मुअक्किल की कार मौजूद थी। कार पर सवार होकर सब लोग होटल पहुँचे। उसी दिन संध्या के समय अपने बच्चों के साथ सुधा माधुरी से मिलने के लिए गर्ल्स कालेज पहुँची।

माधुरी देवी गर्ल्सकालेज के बोर्डिंग हाउस में ही रहती थीं। सुधा को देखते ही वे दौड़ी आईं और सुधा से लिपट गईं। दस वर्ष बाद दो सखियाँ आपस में मिली थीं। काफ़ी देर तक दोनों में कुशल-क्षेम और शिकायत की बातें होती रहीं।



आठ वर्ष की बालिका रामा और पाँच वर्ष का बालक रामू चुप खड़े हुए यह तमाशा देख रहे थे। साल भर का श्यामू अपनी बहन की गोद में सो रहा था।

माधुरी सुधा को अपने कमरे में ले गई। कमरा अच्छी तरह से सजा था। सुन्दर चित्र और फ़ोटोग्राफ़ दीवारों पर लटक रहे थे, सागौन की चमकती हुई अलमारियों में किताबें सजी हुई रक्खी थीं। दरवाज़ों पर रेशमी परदे टँगे थे और फ़र्श पर क़ालीन बिछा था। एक कोने में एक सुन्दर पलँग बिछा था, और कमरे के बीचोबीच चार आरामकुर्सियाँ पड़ी थीं।

सुधा ने बैठते हुए कहा—"न-जाने कबसे तुमसे मिलने की सोच रही थी, लेकिन गृहस्थी से फ़ुरसत ही नहीं मिलती। माधुरी, तुम कुछ दुबली हो गई हो, लेकिन यह ज़रूर है कि तुम पहले से भी सुन्दर दिखने लगी हो। तुम्हारे ऊपर मुझे ईर्ष्या होती है, तुम कितनी सुखी हो!" कहते-कहते सुधा मुस्करा पड़ी।

माधुरी भी मुसकराई—"क्या बतलाऊँ मुझे तो अपने काम-काज से फ़ुरसत ही नहीं मिलती। दिन भर कालेज में पढ़ाना, और उसके बाद भी लड़कियाँ मुझे घेरे रहती हैं। फिर राजनीतिक और साहित्यिक जीवन! कई बार सोचा कि तुम्हें लिखूँ, लेकिन फिर सोचा कि तुम वकील साहब के साथ रहकर हम लोगों को भूल ही गई होगी!"

रामा ने रामू को देखा और रामू ने रामा को। दोनों की आँखें मिलीं और उन्होंने आपस में एक दूसरे से कहा—"यहाँ बैठना बेकार है, इन दोनों की बातचीत में हमें ज़रा भी दिलचस्पी नहीं है, तो फिर आओ, थोड़ी देर तक बाहर खेला जाय!" रामा ने श्यामू को माधुरी के पलँग पर लिटा दिया। इसके बाद दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़कर खिसक गये।

सुधा ने कहा—"क्या बतलाऊँ, मैं तो बुरी तरह से बंधनों से जकड़ गई हूँ। माधुरी, तुम नहीं जानतीं—मेरी कल्पना का संसार नष्ट हो गया। मैं जब कभी सोचती हूँ कि तुम अपने मार्ग पर रत हो, जीवन देख रही हो, तब मुझे तुमसे कितनी ईर्ष्या होती है, यह मैं ही जानती हूँ। जब मैं तुम्हारी प्रशंसाएँ पढ़ती हूँ या सुनती हूँ, तब मैं अपनी कायरता पर अपने को धिक्कारने लगती हूँ!"

माधुरी हँस पड़ी, "क्यों बनाती हो?"

"नहीं सच कहती हूँ!" सुधा ने बड़ी गम्भीरता-पूर्वक कहा, "अच्छा, एक बात तो बतलाओ, माधुरी, सच कहना, तुम्हें कभी परमेश्वरी बाबू की भी याद आती है?" (परमेश्वरी माधुरी के पति का नाम था)

सिर हिलाते हुए माधुरी ने कहा, "नहीं, उनकी याद भला मुझे क्यों आवे? मेरा जीवन भरा-पूरा है, मुझे चाहनेवालों की कमी नहीं है, मुझ पर प्राण न्योछावर करने को अनेकों व्यक्ति सुन्दर से सुन्दर और सम्पन्न से सम्पन्न तैयार रहते हैं। यह देखो, मेरे पुजारियों की तसवीरें दीवारों पर टँगी हैं।"

सुधा उठ खड़ी हुई, प्रत्येक चित्र को उसने ग़ौर से देखा, और फिर लौटकर वह कुरसी पर बैठ गई। एक ठंडी साँस लेते हुए उसने कहा, "शायद तुम भाग्यवान् हो, मैं ठीक कह नहीं सकती।" और वह कुछ सोचने लगी।

माधुरी ने सुधा का हाथ पकड़कर हिलाया, "सोच क्या रही हो? यही तो जीवन है। दुनिया में कौन किसका होता है? बन्धन तो जीवन का अपवाद है, सुख स्वच्छन्दता में और केवल स्वच्छन्दता में है, यह समझ लो। और फिर प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए होता है, सुख व्यक्तिगत है। एक बात और भी जान लो, परिवर्तन ही गति है और जीवन स्वयम् प्रगति है। मैं तो परिवर्तन पर विश्वास करती हूँ।" इतना कहते-कहते माधुरी ज़ोर से हँस पड़ी।



सुधा ने कुछ कहा नहीं, उसने केवल माधुरी की ओर देखा—अनिमेष दृगों से; उसी प्रकार जिस प्रकार भक्त अपने भगवान् को देखता है।

माधुरी रुकी नहीं, वह कहती गई, "हम दुखी इसलिए हैं कि हम सुखी होना नहीं जानते। सुख में अपने को डुबा दो और दुख का कोई अस्तित्व ही न रह जायगा। दुख तो केवल एक मानसिक विकार है। जिस भगवान् ने करुणा और रुदन को बनाया है, उसी ने आमोद-प्रमोद को भी बनाया है। यह हमारे ऊपर है कि हम किसे चुनते हैं। और मैं सच कहती हूँ कि यह हम स्त्रियों का दुर्भाग्य है कि हम लोग करुणा और रुदन को ही चुनती हैं, हम गुलामी स्वीकार करती हैं और फिर हम जीवन भर रोती हैं।...."

सुधा माधुरी की बातें सुन रही थी, समझ रही थी और शायद अनुभव कर रही थी। वह जीवन का एक ऐसा पहलू देख रही थी, जिसे उसने पहले कभी न देखा था। एकाएक श्यामू के रोने की आवाज़ उसके कानों में पड़ी। उसने उठकर श्यामू को गोद में ले लिया, फिर कुरसी पर बैठ गई।

माधुरी ने श्यामू को देखा, उसकी भृकुटी कुछ चढ़ी और फिर उठकर वह बाहर चली गई। नौकरानी को मिठाई के पैसे देकर वह लौट आई।

उसने फिर आरम्भ किया, "सुधा, मैंने बन्धन देखा है और मैंने स्वच्छन्दता देखी है, मैंने गुलामी देखी है और मैंने स्वाधीनता देखी है। अब मैं इस निर्णय पर पहुँची हूँ कि जीवित वह है जो स्वच्छन्द है, स्वाधीन है। तुम नहीं जानतीं कि किस प्रकार मैं अपने व्यक्तित्व से जन-समुदाय को प्रभावित करती हूँ; अपने सुख से किस प्रकार मैं दूसरों को सुखी बनाती हूँ। फूल को देखो, वह अपना सौरभ बिना किसी भेद-भाव के सारे संसार को लुटाता है और अपने सौन्दर्य से प्रत्येक व्यक्ति को मोहित करता है। रस और सौन्दर्य असीम हैं, पर पुरुष-जाति ने अपने स्वार्थ और अपनी पाशविकता से प्रेरित होकर उस रस और उस सौन्दर्य को सीमा में बाँध रक्खा है।" माधुरी खिलखिलाकर हँस दी।

सुधा भी मुसकराई। बहुत दिनों बाद उसने अपने निर्जीव से हृदय में एक पुलकित स्पन्दन का अनुभव किया। एक सूने से युग के बाद उसने आँखें खोलीं, और माधुरी के रूप में उसने अस्तित्व की सार्थकता तथा जीवन के कौतूहल तथा उत्सुकता को देखा। उसकी सोई हुई आत्मा अचानक जाग-सी उठी। इस समय संध्या समाप्त हो गई थी, माधुरी का सुन्दर और सजा हुआ कमरा बिजली के प्रकाश में जगमगा रहा था और वायु-मण्डल एक भीनी सुगन्ध से महक रहा था। सुधा के सामने माधुरी रेशम की सफ़ेद साड़ी पहने हुए साक्षात् जीवन की प्रतिमा की भाँति बैठी थी।

उसी समय रामा और रामू आपस में लड़ते हुए कमरे में घुस आये। रामू रामा के बाल पकड़े था और रामा चिल्ला-चिल्लाकर रो रही थी।

सुधा एकाएक चौंक-सी उठी। उसकी कल्पना का सम्मोहन क्षणभर में नष्ट हो गया। वह उठी और उसने रामू तथा रामा को अलग किया। इसके बाद वह बैठ गई। अपने क्रोध को दबाने के लिए हलकी-सी मुसकराहट अपने मुख पर लाते हुए उसने कहा, "क्या बतलाऊँ, ऐसे बदमाश लड़कों से पाला पड़ा है।"

सुधा की बात समाप्त भी न हो पाई थी कि माधुरी का मीठा स्वर एक अजीब कर्कशता के साथ उसके कानों में पड़ा, "सुधा! तुम्हारे कितने बच्चे हैं?"

माधुरी के स्वर ने सुधा के हृदय पर एक आघात-सा किया। सहमकर उसने कहा, "तीन! एक-लड़की और दो लड़के!"

माधुरी ने दुहराया, "तीन! तीन बच्चे! तीन-तीन बच्चे होना तुम बरदाश्त कैसे करती



हाँ ! मेरे तो अगर बच्चा होता तो मैं उसका गला घोंट देती ।"

माधुरी का यह वाक्य सुनकर सुधा स्तब्ध-सी रह गई। पर एक क्षण बाद ही उसके अन्दरवाली माता तड़प उठी। सुधा की करुण उदासीनता के स्थान पर उसको क्रोध आ गया। उसकी भृकुटी तन गई, उसकी आँखें भर आईं। उसने माधुरी की ओर पूरी नज़र से देखा—माधुरी हँस रही थी, ज़ोर से हँस रही थी, एक विक्षिप्त की भाँति हँस रही थी।

उस समय सुधा को माधुरी में एक कोमल तथा आदर्श स्त्री के स्थान में एक "पिशाचिन" दिखलाई पड़ी। बल लगाकर उसने कड़े स्वर में कहा, "माधुरी, क्या कह रही हो ?"

पर माधुरी हँसती ही गई—"ठीक कह रही हूँ—बिलकुल ठीक कह रही हूँ। सुधा ! ये तुम्हारे तीन-तीन बच्चे ! मुझे तुम पर दया आती है। मैं समझ नहीं पाती कि किस प्रकार तुम इन [illegible] को पालती-पोसती हो !"

सुधा की आँखों में आँसू भर आये। माधुरी से वह भी कुछ कटु बात कहना चाहती थी, पर उसकी समझ में न आ रहा था कि वह कौन-सी कटु बात कहे। उसने माधुरी पर से आँखें हटा लीं, और अपने बच्चों की ओर देखा। रामू और रामा दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए माधुरी को देख रहे थे। उनके मुख पर भय और आश्चर्य की रेखाएँ स्पष्ट थीं।

सुधा ने उठकर दोनों बच्चों को पकड़ लिया। इस बीच में नौकरानी ने मिठाई की तश्तरियों के साथ कमरे में प्रवेश किया। माधुरी सुव्यवस्थित होकर बैठ गई; अपने स्वाभाविक कोमल स्वर में उसने कहा, "सुधा, आओ जलपान कर लो !"

सुधा के क्रोध पर उसकी शिष्टता ने विजय पाई, वह आकर बैठ गई। पर उससे कुछ खाया न गया। वह उस समय सोच रही थी, बड़ी तेज़ी के साथ अपने सामने बैठी हुई 'पिशाचिन' पर सोच रही थी।

पानी पीकर सुधा उठ खड़ी हुई। घड़ी देखते हुए उसने कहा, "अब चलूँगी, देर हो रही है। वे मेरा इंतज़ार कर रहे होंगे।"

माधुरी ने सुधा का हाथ पकड़ लिया, "अरे अभी, इतनी जल्दी ! अभी तो बातें भी नहीं शुरू हुईं; हम दोनों ने न अपनी कही और न एक-दूसरे की सुनी। फिर मैंने तो तुम्हें अपने साथ ठहरने ो लिखा था।" यह कहकर उसने सुधा को कुरसी पर बिठलाना चाहा।

पर सुधा ने बल लगाकर अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा, "नहीं, अब चलना ही चाहिए। मैं उनसे बतलाकर भी नहीं आई हूँ; वे चिन्तित होंगे !"

माधुरी सुधा के साथ दरवाज़े तक गई, "तो फिर कल शाम को आओ न ! और देखो रात भर यहीं रहने का इंतज़ाम करके आना !"

"कल सुबह हम लोग जा रहे हैं !" रूखे स्वर में सुधा ने उत्तर दिया, और अपने बच्चों के साथ वह कार पर बैठ गई। सुधा होटल लौट आई। उसे अपने चारों ओर एक भयानक अंधकार दिखलाई दे रहा था। वह बेर-बेर कह उठती थी, "पिशाचिन ! पिशाचिन !"

बाबू रामनारायण सिनेमा से लौटे। उन्होंने सुधा से कहा, "माधुरी से मिल आईं ?"

"हाँ !" सुधा ने केवल इतना ही कहा। वह माधुरी का नाम तक न सुनना चाहती थी। अपनी इच्छा के प्रतिकूल सुधा माधुरी पर तब तक सोचती रही, जब तक वह सो न गई।

× × ×

किसी ने कहा, सुधा ! तुम मुझ पर नाराज़ हो गईं ! तुम मुझे पिशाचिन समझ रही हो ! सुधा, तुम ग़लती करती हो। तुम मुझ पर क्रोधित मत हो, हाथ जोड़ती हूँ, तुम मुझ पर दया करो, मेरी हालत पर अफ़सोस करो। तुम समझती हो

कि मैं बच्चों का गला घोंट सकती हूँ—नहीं सुधा ! सुनो, तुम्हारे बच्चों ने मेरे अभाव पर एक भयानक आघात किया और उस आघात से मैं तड़प उठी। मुझमें बदले की भावना आई। उस समय मैं अपनी तड़पन में बेहोश हो गई, भले-बुरे का ज्ञान मुझसे जाता रहा। बदला लेना चाहती—तुमसे बदला लेना चाहती थी—बच्चों की मा से बदला लेना चाहती थी। तुम इतनी सुखी हो और मैं इतनी दुखी—यह भाव मेरे लिए असह्य हो उठा। मैं अपने को सुखी बनाकर तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकती, पर तुम्हें दुखी बनाकर मैं तुमसे अपनी बराबरी करवा सकती थी। और यही मैंने किया भी। सुधा, मुझे क्षमा करो ! तुम्हारे पास सब कुछ है, और मेरे पास केवल एक भयानक अभाव है—उसके सिवा कुछ भी नहीं।"

सुधा चौंककर उठ बैठी। होटल के कमरे में अन्धकार फैला था। उसने स्विच दबाया, कमरा प्रकाश से भर गया।

एक चारपाई पर वह और श्यामू लेटे थे, बीच वाली चारपाई पर रामू और रामा एक दूसरे पर लदे-फँदे सो रहे थे और तीसरी चारपाई पर बाबू रामनारायण शाल ज़मीन पर फेंककर सिकुड़े पड़े थे।

सुधा उठी, श्यामू को उसने ठीक तरह से लिटाया, फिर उसने अपने पति पर शाल डाल दिया। बीचवाली चारपाई पर उसने रामा और रामू को अलग किया। फिर उसने बच्चों का मुँह चूमा।

फिर वह हाथ जोड़कर कमरे के बीचोंबीच खड़ी हो गई। ऊपर छत की ओर मुख करके तथा अपनी आँखें बन्द करके उसने बहुत करुण स्वर में प्रत्येक शब्द पर ज़ोर देते हुए कहा "भगवान् ! माधुरी को सुमति दो, उसको शक्ति मार्ग दिखलाओ और उसको क्षमा करो ! मैं उसकी ओर से प्रार्थना करती हूँ।"



महात्माजी का सत्य संदेश

अपने जीवन की प्रेम वटी

प्रिय पाठको, मैं एक जिमींदार का लाड़ला बेटा हूँ। कुसंगतों के कारण मुझे जरियान और प्रमेह रोग हो गया। पहिले तो एक दो साल मैंने लोकलाज के कारण अपना भेद छिपाये रक्खा परन्तु रोग ने भयानक सूरत अख्तियार कर लिया। अब मैं घबड़ा उठा। संसार चारों ओर से अँधेरा मालूम होने लगा। तब मेरी आँखें खुलीं। रुपया पैसा की मेरे यहाँ कमी न थी, इलाज शुरू किया गया। बड़े बड़े डाक्टरों, वैद्यों, हकीमों की दवायें मँगाईं और खाईं मगर रोग बढ़ता ही गया ज्यों २ दवा की। आखिर मामला यहाँ तक आ पहुँचा कि मैं आत्महत्या की सोचने लगा और इस दुखमय जीवन से मर जाना बेहतर समझने लगा। हमारे गाँव के पास ही एक मील की दूरी पर ईंटों का एक खेड़ा है दैववश उसी खेड़े पर काठियावाड़ के एक प्रसिद्ध त्यागी योगीराज आ बैठे और एक झाड़ी में आसन लगाकर ईश्वरचिन्तन में मग्न हो गये। गाँव के बालक और युवकों ने जब उन्हें देखा तो उनकी प्रशंसा गांव में फैला दी कि खेड़े पर एक महात्मा आये हुए हैं जो बड़े तेजस्वी प्रतीत होते हैं। यह सुनकर लोगों के समूह के समूह उनकी सेवा में जाने लगे। जब मैंने यह सुना तो मैं भी निराशा और आशा को साथ लिये उनके चरणों में जा उपस्थित हुआ। उस तेजस्वी आत्मा के दर्शन करते ही मेरा चित्त गद्गद और प्रसन्न हो गया और नमस्कार कर एक ओर बैठ गया। महात्माजी मेरी शकल और दशा देखकर फ़ौरन् ताड़ गये और मेरी ओर आकर्षित होकर बोले कि बेटा, तुम बड़े निराश और दुखी मालूम होते हो, क्यों तबियत कैसी है और तुम्हारे दुखी होने का कारण क्या है। बस ऐसा लगा था जैसे मेरे दिल के घावों को किसी ने छेड़ दिया हो। मैं फूट फूटकर रोने लगा। महात्मा यह दशा देखकर बेचैन हो उठे और मेरे पास आकर मुझे धीरज देने लगे। जब उन्होंने मुझसे दोबारा पूछा तो मैंने अपनी बीमारी का सारा हाल उनके सम्मुख रख दिया। इस तरह उन्होंने मुझे आशा बंधाई। इसके पश्चात् उन्होंने एक प्रयोग मुझे बतलाया, जिसको बनाकर मैंने सेवन किया, अब मैं बिलकुल आरोग्य हूँ। प्रयोग—असली त्रिफला का चूर्ण ५ तोला, असली सूर्यतापी शिलाजीत ३॥ तोला, असली वङ्ग भस्म ६ माशा, असली सूर्यछाप केसर ६ माशा, असली अकरकरा ६ माशा, असली नेपाली कस्तूरी ६ रत्ती, इन सब औषधियों को कूट छानकर खरल में डालकर ऊपर से दालचीनी का तेल २० बूँद, बैरोजा का तेल २० बूँद, चन्दन का तेल २० बूँद मिलावे। इसके बाद असली ब्राह्मी बूटी के अर्क में बारह घण्टे तक घोटकर झरबेरी बेर के बराबर गोलियां बना लें और छाया में सुखावें। बस, औषधि तैयार है:—सेवनविधि—एक गोली प्रातः और एक गोली सायंकाल पाव भर गाय के दूध में १ तोला शकर मिलाकर खाय। इसी औषध के सेवन से २० रोज में मैं आरोग्य हो गया था और अब उस परम पिता परमात्मा की कृपा से मेरे तीन बच्चे हैं जो बिलकुल आरोग्य हैं। उस वक्त से अब तक मैं यही औषध बनाकर लोगों को दाम के दाम पर दे रहा हूँ जिससे सैकड़ों रोगियों ने फ़ायदा उठाया है और उनकी आशाओं की पूर्ति हुई है। प्रयोग ऊपर भली प्रकार समझा दिया गया है। इसको बनाकर लाभ उठावें। अगर आप इसके बनाने में असमर्थ हों या कारोबार के कारण आपको फ़ुरसत कम मिलती हो या असली चीजें न मिल सकती हों तो हमसे बनी बनाई तैयार औषध मँगा लें और उसके आश्चर्यजनक गुण देखें। यह औषध वीर्य का पतलापन, बीसियों किस्म के प्रमेह, पेशाब के साथ चूने की तरह वीर्य का जाना, पाखाना के समय धातु का जाना, स्वप्नदोष व [illegible], सुस्ती, कमजोरी और नामर्दी, जवानी में बुढ़ापे की हालत, असली ताक़त की कमी, सोचने की ताक़त का कम हो जाना वग़ैरह दूर करके अत्यन्त ताक़त देती है और नस-नस में नयी ज़िन्दगी का संचार करती है। क़ीमत फ़ी पैकट ४० गोली २) दो रुपया और ३ पैकट का ५) रुपया। डाक-ख़र्च अलग। म० फ़ीस =)

निवेदक—साधु श्यामलालजी रईस,

एक कहानी

श्रीशंकरचरण श्रीवास्तव

उसने कही थी ! लेकिन इसलिए नहीं कि मैं आपसे कह दूँ । पत्र और पत्रिकाओं में प्रकाशित कर दूँ । बल्कि इसलिए कि मैं उसे अपने दिल के ख़ज़ाने में रख छोड़ूँ । वहीं गूँजने दूँ । वहीं लय हो जाने दूँ । वहीं खिलने दूँ । वहीं मुर्झाने दूँ । और कभी-कभी; जैसे मृग अपनी नाभि-स्थित कस्तूरी के सुगन्ध से बेचैन हो जाता है, वैसे ही मैं भी अपने हृदय के उस मधु-बयार से अकचका-सा जाऊँ और जो मुझी में है उसे ढूँढने के लिए आकाश की लम्बी-चौड़ी पटी पर अपनी आँखें गड़ाने लगूँ !!....और सच; जब तक ये बातें केवल उसी की रहीं, मैंने उन्हें वैसे ही छोड़ दिया था । लेकिन जब अपनी भी कुछ ऐसी ही बातें हो गईं तो जगह ख़ाली करनी पड़ी । कहिए, एक छोटे-से दिल में मैं कितनी बातें रखता ?

अजी, उसने मुझसे कहा था । मैं आपसे कह रहा हूँ । यह काग़ज़ तो बोलेगा नहीं ; हाँ, आप किसी से न कहिएगा । समझे ?

× × ×

बादल गरज रहे थे । पानी बरस रहा था । हम बैठे सुन रहे थे; छोटी-बड़ी बूँदों की रिमझिम । वह अचानक बोल उठा, "पृथ्वी फट जायगी । पानी निकल आवेगा । दुनिया लय हो जायगी ।"

"तब ?" मैंने विना कुछ समझे हुए पूछा ।

"मैं एक बुद्बुद बन जाऊँगा । और उस मह- सागर को आदि से अन्त तक तैरता रहूँगा ।"

"क्यों ?"

"जो साध पूरी नहीं हुई, उसे लेकर सागर झिरझिरी खेलते रहने की इच्छा होती है ।"

"किन्तु लाभ ?"

"शिव सती के शव को लेकर क्यों दौड़ते फिरे !"

"नहीं कह सकता ।"

"शव एक स्थूल आधार था । पर उसके अन्तर्गत जो एक सूक्ष्म प्रेरणा थी, वह थी एक अतृप्त कामना और एक अधूरी साध !"

"लेकिन तुम भी हो मज़े के आदमी !"— मैं कहकर हँसने लगा ।

उसने फिर कोई कहने लायक़ बात नहीं कही । बिलकुल चुप हो गया । बैठा भी कुछ ही देर । उठकर चला गया । उसके जाते-जाते मैंने पूछा— "चले ?"

उसने बड़ा गम्भीर उत्तर दिया—"देर हो रह गया !" और चला गया ।

× × ×

एक दिन उसने मुझसे पूछा, "कभी किसी को प्यार किया है ?"

"नहीं तो ।" मैंने उत्तर दिया ।

वह मुझे बेतरह घूरने लगा। मैंने उसकी निगाहों से तंग आकर पूछा, "क्यों ?"

उसने कहा, "यों ही।"

मैंने कोशिश की, समझ जाऊँ। पर कुछ समझ नहीं सका। हम दोनों चाँदनी में टहल रहे थे। उसने एक पेड़ के नीचे खड़े होकर फिर पूछा, "किसी को सुन्दर देखा है ?"

"बहुत" मेरे मुँह पर चाँदनी छन रही थी। वह बिलकुल अँधेरे में था।

"तब ?" उसने पूछा।

"कुछ नहीं।" मैंने कहा।

"किसी ने तुम्हारे दिल में घर नहीं बनाया ?"

"नहीं।"

"माथे में चक्कर नहीं काटा ?"

"नहीं।"

वह अब की अपनी निगाहों से मेरी चमड़ी उधेड़ लेता, पर मैं भी अँधेरे में जा खड़ा हुआ।

"तुम कभी किसी की याद नहीं करते ?" उसने ज़रा ठहरकर पूछा।

"नहीं।" मैंने उत्तर दिया।

"क्यों ?"

"याद मेरी समझ में एक निष्क्रिय कार्य है। वह सार्थकता के रूप में असार्थकता और उत्तेजना के रूप में आलस्य है।"

उसने पूछा "कैसे ?"........पर कुछ परिचित आ गये। और बातें छिड़ गईं।

× × ×

"मैं रात को तुम्हारे ही बारे में सोचता रहा।" उसने सबेरे-सबेरे आकर कहा।

"क्या ?" मैंने पूछा।

"यही कि तुम कैसे आदमी हो।"

"तो फिर क्या निश्चय किया ?" मैंने सहास्य पूछा।

"कुछ नहीं।" कहकर वह मेरे कम्बल पर बैठ गया।

"आज तुम बहुत उदास हो !" मैंने कहा।

उसने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा, "नहीं तो।" किन्तु उसकी खिन्नता जैसे और भी बढ़ गई। मैंने उसे बहलाने का प्रयत्न करते हुए कहा, "कैसा अच्छा सबेरा है !"

"पर अच्छी चीज़ों का प्रभाव जो बुरा होता है !!"

"कैसे ?"

"तुम्हें क्या बतलाऊँ !"

"मैं तुम्हें नहीं समझता।"

"नहीं समझोगे। किसी ने नहीं समझा।"

"क्या तुम इतने गूढ़ हो ?" मैंने हँसकर पूछा। पर उसने शायद मेरी हँसी नहीं देखी। अपनी धुन में उत्तर दिया, "सभी गूढ़ हैं। सभी सरल हैं। एक हद तक हम सभी एक दूसरे को समझते हैं। उसके बाद ? कुछ नहीं !"

"तुम कितना मुझे समझते हो ?"

"वही, जितना तुम चाहते हो कि मैं तुम्हें समझूँ।"

"अच्छा, आज सिनेमा चलोगे ?" मैंने बात बदली।

"चलूँगा। लेकिन है क्या ?"

"शायद 'इवेंजलिन'। कोई अँगरेज़ी शो है। नाम बड़ा है। कोई डान्स भी है।"

"किसका ?"

"मिस सुनैना का।"

वह जैसे कुछ सोचने लगा। फिर बोला, "चलूँगा।" और घर जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। उसमें यह भारी दोष था। बिना बुलाये आ जाता और लाख रोकते रहने पर भी चला जाता। बड़ा विक्षिप्त था। उसकी विक्षिप्ति उसकी आंतरिक अतृप्ति की परिचायिका थी। पर उसी के साथ मेरे काशी के ६ महीने बीते ! बड़ा अच्छा आदमी था !!

× × ×

वह समय पर आ गया। हम सिनेमा-गृह के लिए चल खड़े हुए। लोगों की छोटी-बड़ी



टोलियों को पार करते हुए वहाँ जा पहुँचे। कोई टिकट ले रहा था, कोई शरबत पी रहा था। कोई पान खा रहा था। कोई सिगरेट पी रहा था। कोई बिना हँसी के दाँत निपोर रहा था। कोई हँसी आने पर भी दाँत छिपा रहा था। कोई आँखें लड़ा रहा था। कोई आँखें बचा रहा था।....सिनेमा के अहाते में मानो मनुष्यों की प्रदर्शनी खुली थी। विभिन्न वेश और विभिन्न आकृति। हमने भी टिकट लिये और एक आने के पान ख़रीद-कर हॉल में दाख़िल हो गये। बाजे बज रहे थे। बत्तियाँ चमक रही थीं। अभी शो शुरू नहीं हुआ था।

एक, दो, तीन; शो शुरू हो गया। बत्तियाँ बुझ गईं। लोग अँधेरे में टपाटप आने लगे। जूतें खटाखट बजने लगे।

× × ×

शो सुन्दर था। विरह की मार्मिक कहानी थी। प्रेमी और प्रेमिका, दोनों ही एक दूसरे के लिए तड़पते रहे। एक बार दोनों ही दो किश्तियों पर चढ़के एक दूसरे को ढूँढने निकले। दोनों पास आ गये। हम सबों ने सोचा, मिल गये। पर भगवान् ने मिलने नहीं दिया! बीच में ही एक झाड़ी पड़ गई। दोनों दो ओर से दो विपरीत दिशाओं में निकल गये। किसी ने किसी को नहीं देखा।.... दर्शक प्रशंसा में ताली पीटने लगे। उसकी तो रोते-रोते हिचकियाँ बँध गई थीं।

इन्टरवल में मैंने पूछा, "कहो?" उसने कहा, "कुछ न पूछो।' शो फिर शुरू हो गया। हम फिर देखने लगे। पर जब अन्त आया, प्रेमिका एक हास्पिटल की नर्स बन चुकी थी। प्रेमी भी बीमार होकर वहीं गया। पर दुर्भाग्य सौभाग्य का द्रोही होता है। वरदान मृत्यु के दिन मिला!....जब उन दोनों ने एक दूसरे को पहचाना तो वह मर रहा था। कितनी कामनाएँ थीं! कितनी लालसाएँ थीं। पर प्रेमी ने उन सबों को समेटकर कहा?; "Sing the song I love!"

(वही गीत गाओ, जिसे मैं प्यार करता हूँ!) वह गाने लगी! वह मरने लगा!!

× × ×

शो समाप्त हो गया। बत्तियाँ जल गईं। [illegible] के आँसू उनके पलकों पर चमकने लगे। कितने उठने लगे, घर जाने के लिए। कितने बैठे रहे, [illegible] विमूढ होकर।....सिनेमा के मैनेजर ने स्टेज पर आकर कहा, "अभी, मिस सुनैना का [illegible] होगा।" कहिए, कैसा पट-परिवर्तन हुआ? [illegible] के बाद ज़िन्दगी आ गई! रोदन के बाद [illegible] झलकने लगा!! आन्तरिक उत्फुल्लता अपने लि[illegible]स्टिक से लोगों के होठ रँगने लगी। लाल-[illegible] हँसी लोगों के अधरों पर खेलने लगी।....हाँ, उसने कहा, "चलो!!" लेकिन जब मैं नहीं गया, [illegible] बैठा रह गया।

वासना की सारी विभूतियों को लेकर [illegible] सुनैना आ गई! जादू के हज़ार-हज़ार मंत्र उसके [illegible] के पदरव से प्रतिध्वनित होने लगे। आँखें [illegible] तीर छोड़ने लगीं। भौंहें कमान बन गईं। [illegible] उसका सारा शरीर मानो मेसमेरिज़्म की [illegible] शक्ति के साथ सारा स्टेज कँपाने लगा।....[illegible] की दुनिया वशीभूत और पराजित होने लगी।

रूमालों में बाँध-बाँधकर पुरस्कार फेंके [illegible] लगे। स्टेज पर पुरस्कारों की वृष्टि होने लगी।... हाल में प्रेमियों की सृष्टि होने लगी।... सारी बातें देखकर मेरी तो आँखें चौंधियां गईं। सच पूछिए तो सुध-बुध जाती रही। पर [illegible] डांस समाप्त हुआ तो मेरा साथी मेरे पास [illegible] था। न-जाने कब चला गया था।

जब दूसरे दिन उसके डेरे पर गया तो मकान-मालिक ने कहा, "रात ही किराया साफ़ करके चले गये! कहाँ, पता नहीं।"

मैं आकर घर बैठ रहा। सोचा, जो अजीब-[illegible] बातें करते हैं, वे अजीब आदमी होते हैं!!

× × ×

दूसरे साल—

चैत्र के नवरात्रों में मैं विन्ध्याचल गया। मा के बच्चे हज़ारों की तादाद में उनके दर्शनों को आ रहे थे। झाँझिये नाच रहे थे, गा रहे थे। मन्दिर के चतुर्दिक् मातृत्व सजीव हो रहा था। जहाँ देखो, क्षमा, शान्ति और आनन्द !!.... लोगों से कंधे छिल रहे थे ! श्रद्धा से हृदय गद्गद हो रहे थे। सभी माता के यहाँ गा रहे थे। वे माता के दर्शनों के प्रेमी थे। मैं भी उन्हीं में था। कुछ देखता; कुछ सुनता। कुछ सोचता; कुछ समझता। हाथों में प्रसाद लिये मैं भी अग्रसर हो रहा था। पंडे चिल्ला रहे थे "बाबू इधर !!".... मैं जा रहा था, अपनी राह।

मातृमन्दिर के चारों ओर पंडित पाठ कर रहे थे। मंत्र-ध्वनि के मनोरम गुंजार से हृदय विह्वल हो रहा था। पर कुछ लोग वहाँ भी बातें कर रहे थे। अपनी और पराई चर्चा में निमग्न थे। मुझे भी उन्हीं से होकर जाना पड़ा। वे मन्दिर के द्वार पर ही खड़े थे। उन्हीं में से किसी ने कहा, "ऐसा महात्मा नहीं देखा। कालीखोह के ऊपर रहते हैं।" मैं आगे नहीं सुन सका। माता के श्रीचरणों में चला गया। वहाँ की दिव्य ज्योति की क्या बतलाऊँ !!....माताएँ तो मेरी और आपकी भी पूज्य हैं, फिर जो सारे विश्व की जननी हैं, सारी माताओं की माता हैं; मातृत्व का आदि और विसर्जन हैं, उनकी बड़ाई कौन कर सकता है !! वे ही शक्ति हैं। वे ही सिद्धि हैं। वे ही स्थिति हैं। वे ही संहार हैं।

जब मैं पूजा करके बाहर निकला तो एक भक्त बड़े ही मधुर स्वर में कह रहे थे—

"जयन्ती ! मंगला ! काली ! भद्रकाली ! कपालिनी !!
दुर्गा!क्षमा!शिवा!धात्री!स्वाहा!स्वधा!नमोस्तुते !!!"

दूसरे—

"अचिन्त्य - रूप - चरिते सर्वशत्रुविनाशिनि !
रूपं देहि ! जयं देहि ! यशो देहि ! द्विषो जहि !!"

तीसरे—

"रौद्रायै ! नमो नित्यायै ! गौर्यै ! धात्र्यै नमोनमः !
ज्योत्स्नायै ! चेन्दुरूपिण्यै ! सुखायै संततं नमः !!"

चौथे—

"या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता !
नमस्तस्यै ! नमस्तस्यै !! नमस्तस्यै नमोनमः !!!"

पाँचवें—

"या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ! नमस्तस्यै !! नमस्तस्यै नमोनमः !!"

भक्त अपने-अपने प्रकरणों में थे और अपने पाठों में दत्त-चित्त निमग्न थे। मैं उन्हें सुनता हुआ सीढ़ियों से होकर गली में उतर आया। पर दोनों अंतिम श्लोकों का चित्त पर प्रभाव बना रहा। कितना सुन्दर, जो माता है, वही क्षुधा है !! कैसे सिद्ध वाक्य थे ! मैं मुग्ध हो गया। जो कारण है वही कर्त्ता। जो प्रेम का उत्पादक है वही है प्रेम की कामना !!—मैं इन्हीं विचारों में डूबा धर्मशाला के दरवाज़े पर आ गया। मैनेजर साहब वहीं मिल गये, और मैं उन्हीं से बातें करता हुआ भीतर चला गया।

× × ×

दूसरे दिन—

कालीखोह से दर्शन करके जब ऊपर चढ़ने लगा तो फिर उन्हीं महात्मा की चर्चा सुनी। चढ़ाई काफ़ी ऊँची थी। भगवती-भगवती करके मंज़िल तै हुई। पहाड़ पर पहुँचकर हम सबों ने आनन्द की साँस ली।

पहाड़ पर की एक प्रथा है। यात्री पत्थर के छोटे-छोटे खंडों का मन्दिर बनाते चलते हैं। दो-चार पत्थर ऊपर-नीचे रख दिये और मन्दिर बन गया ! हम भी इसी विनोद में लगे। पर अभी कुछ ही दूर गये थे कि देखा, एक महात्मा एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। दर्शक उन्हें घेरकर खड़े हैं। हमारी टोली भी वहीं पहुँचकर खड़ी हो गई। उन महात्मा ने जैसे उस जमघट से



ऊबकर कहा—"आख़िर तुम यहाँ क्यों खड़े हो ?"

'बुध-जनों' ने कहा—"दर्शनों के लिए !"

"ग़लत कहा ।" महात्मा ने डाँटा ।

अपने युगल-करों को कँपाते हुए कुछ वृद्ध भक्तों ने कहा, "दर्शन ! केवल दर्शन !!"

"नहीं । जिसकी रीति हमारे समुदाय से विभिन्न होती है, वह हमारे लिए एक आश्चर्य की वस्तु होता है । वह रूपवान् हो अथवा कुरूप ; पागल हो अथवा पंडित, पर हम उसे एक तमाशे की तरह देखने लगते हैं ।....मैं भी तुम्हीं में से हूँ । मेरा भी तुम्हारे ही-जैसा स्वभाव था । किन्तु जब आदमी जमात छोड़कर अलग हो जाता है ; कहीं जाकर अकेले बैठ रहता है तो वह फिर अकेला ही रहना चाहता है !"

लोग स्तब्ध हो गये । फिर एक-एक करके खिसकने लगे । मैं भी जाने के लिए उठ खड़ा हुआ और उनके चरणों पर रुपये रखकर मुड़ा ही था कि मुझे आशीर्वाद और मेरे रुपये देते हुए उन्होंने कहा, "अब ये तुम्हारे उपभोग के हैं । इनकी उपयोगिता मेरे लिए नहीं !"

मैं मुग्ध हो गया । एक बार फिर बैठ रहा । और सब चले गये । मैं ही अकेले रह गया । वे मुझे कुछ देर तक देखते रहे । फिर मुझसे पूछा, "तुम्हारा नाम ?"

"प्रमोद ।"

"मैंने तुम्हें कहीं देखा है ?"

"नहीं कह सकता ।"

"तुम कभी काशी में रहते थे ?"

"जी हाँ ।"

"कहाँ ?"

"बुलानाला ।"

"सम्भव है, वहीं देखा हो ।"

"आप कहाँ रहते थे ?" मैंने डरते-डरते पूछा ।

"जहाँ अब रहता हूँ ।" उन्होंने हँसकर कहा ।

मैंने बातों-बातों में पूछा, "महाराज, भोजन ?"

"हमरे तो जल-वायु है....हमें चिन्ता काहे की !!"

"यदि आज्ञा हो तो सेवा में कुछ..." श्र- के मारे अधिक नहीं पूछ सका ।

"शाम को ; यदि इच्छा हो तो ।" लापरवा उत्तर मिला ।

"........दिन रहते आ जाऊँगा......" मैं सटपटा गया ।

"तो फिर अब जा । किन्तु आना !" उन्होंने कहा, और मैं चरणों को स्पर्श करके विदा हुआ ।

× × ×

जब मैं शाम को उनका भोजन लेकर वहाँ पहुँचा तो उन्होंने कहा, "तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था ।"

मैं भला इस अनुग्रह का क्या उत्तर देता । उनके चरणों को स्पर्श करके वहीं बैठ रहा । कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं । सूर्य डूब रहा था । अंतिम यात्री वापस जा रहे थे । पर्वत के सन्नाटे में एक विचित्र पवित्रता का आभास हो रहा था ।

मैं उनसे दूर बैठा था । पर वे मेरे पास हो खिसककर आ बैठे, और मेरी पीठ पर हाथ रखके पूछा, "मुझे पहचाना नहीं, प्रमोद ?"

"नहीं ।"

"स्मरण करो ; काशी !"

"भूलता हूँ ।"

"इवेंजलिन का शो और सुनैना का डान्स !!"

मैं जैसे खोई हुई चीज़ पाकर उछल पड़ा "अरे तुम ?"

"हाँ भाई ।"

"भला उस दिन भाग क्यों गये ?"

"बतलाऊँगा ।"

"यह रूप कैसा ?"

"वह भी बतलाऊँगा ।"

"कब ?"

"पहले चलो ; खा लें । तुम भी खाओगे न !"

"महात्माजी की जैसी आज्ञा ।" मैं कहकर

हँसने लगा। फिर हम खाने बैठ गये। ग़नीमत यह थी कि अब कोई यात्री नहीं था।

जब हम खा चुके तो उन्होंने कहा, "आज तुम्हें अपनी कहानी सुनाऊँगा, प्रमोद। पर बोलना मत। केवल सुनना। नहीं तो नहीं कहूँगा।"

"क्यों ? यह बन्धन क्यों ?"

"तुमने वर्डसवर्थ की 'सालिटरी-रीपर' कविता पढ़ी है ?"

"पढ़ी है।"

"फिर तुम्हें यह समझना चाहिए कि हमारी ऐसी भी भावनाएँ होती हैं, जिन्हें व्यक्त करने के समय हम तन्मय हो जाते हैं और हमारी तन्मयता ही हमारी उस साधना की सार्थकता है !"

"अच्छा कहो !" मैं चुप हो गया और वह कहने लगा।

× × ×

उसकी कहानी

"मैं नैना को प्यार करता था। यह एक सत्य था। मैं उसे प्यार करूँगा। यह एक विश्वास था। वह मुझे प्यार करेगी। यह एक धारणा थी....भावों की इन्हीं मधुर रेखाओं पर मैंने अपने जीवन का एक नया परिच्छेद प्रारम्भ किया था। उसके अक्षर बड़े ही सुन्दर थे। चित्र बड़े मनोहर थे। पर उनका एक ही आधार था। एक ही विषय था। केवल नैना !!

मैं अपने उन्हीं सुहासित दिनों में पुकारता, "नैना !"

नैना अपनी ‍ोकदार आँखों की बरछी से मुझे वेधती चुप रह जाती। पर जब मैं बार-बार पुकारता, "नैना !" तो वह अपनी मुसकानों की माला अपने अधरों से उलझाते हुए कहती, "उन्हें देखना आता है। पर बोलना नहीं।"

"और तुम ?"

"मेरा नाम नीना है।"

"नहीं नैना।"

"नहीं नीना।"

"आओ, बहस कर लो !"

"अच्छा, रहे !"

"अमुक व्यक्तियों को हम उनके नाम से नहीं पुकारकर केवल 'वकील साहब,' 'डाक्टर साहब,' 'पंडितजी,' 'सम्पादकजी' तथा 'हकीम साहब' कहकर ही उनके नाम का बोध कर लेते हैं। जानती हो क्यों ?"

"नहीं।"

"हमारा विशेषण ही हमारा परिचायक है। वही हमारा रूप है। हम जिस चित्र के विशेषज्ञ हैं, हम उसी के स्वरूप हैं।....फिर, तुम्हारी आँखें बड़ी सुन्दर हैं। अद्वितीय हैं। अनमोल हैं। इसीलिए तुम नैना हो।"

एक अच्छे क़हक़हे के साथ मेरी डिग्री हो जाती। वह हार जाती। और मुझे एक अजीब ढंग से देखती हुई कहती; "तुम बड़े शरीर हो। तुम बड़े होशियार हो।"

यदि किसी सुन्दरी से तुम्हें भी ऐसी ही निन्दा और प्रशंसा मिली होती ! तुम फूले नहीं समाते। मैं भी पागल हो रहा था। वह मुझे पैमाने पर पैमाने दे रही थी।

एक दिन वह एक ऐनक पहनकर आई और बोली, "अब तुम्हारी आँखों की हिफ़ाज़त होगी !"

"पर मेरी ये हुईं कब से ?"

"जिस दिन तुमने इन्हें अपनी बनाया।"

"सच ?"

"निगोड़े फूट जाय तुम्हारी आँख।" और चश्मा पटककर भाग खड़ी हुई।

मैंने उसे बड़ी मिन्नतों से बुलाया। पर उसने आते ही पूछा, "क्या तुम मेरी आँखों के अतिरिक्त मुझे भी चाहते हो ?"

"कैसे बतलाऊँ ?"

"फिर तुम बी० ए० पास क्यों नहीं कर लेते ? जभी तो हम अपने इस प्रहसन को नाटक का भी रूप दे पायेंगे।"



"सच नैना ?" मैंने उद्गार और अनुरोध के साथ पूछा।

"सच। हज़ार बार सच। प्रेम उसी को दिया जाता है, जो उसका पात्र होता है।....मैं तुम्हारे सम्बन्ध में प्रायः सोचती हूँ।"

कितना सुन्दर! मैंने उसकी कोमल उँगलियाँ चूम लीं। उसने मुझे आँखें दिखलाते हुए कहा "शरीर!" पर मैंने फिर शरारत कर दी!! वे मेरे प्रोत्साहन और प्रतिरोध, असामंजस्य और उत्तेजना तथा स्वप्न और विलास के दिन थे।.... सौन्दर्य को जब अपना ज्ञान हो जाता है तो वह अपने कवि और उपासक तथा प्रेमी और पुजारी को ढूँढने लगता है। मैं यह सब कुछ बनकर नैना के रूप के सिंहासन के पास गया था। मुकुट पहन लेना मेरे मन की बात थी। पर मैंने ही विलम्ब कर दिया। पाप अनधिकार करना ठीक नहीं होता।....जो बस की बात होती तो तुम्हें वे दिन दिखला देता।

मैं जी-जान से पढ़ने लगा। मुझे बी० ए० पास करना था। वह प्रायः मेरी सुध किया करती। उसने मेरा नाम रक्खा था "तपस्वी।"

× × ×

जब मेरी परीक्षा का फल निकला तो वह अपने पिता के साथ न-जाने कहाँ-कहाँ सैर करने गई थी। कुछ महीनों के बाद जब वह घर आई तो उसके साथ एक बड़ा ही सुन्दर युवक था। सब लोगों ने अनुमान किया, कोई राजकुमार है। और यह बात आज-कल में सभी को मालूम हो गई कि उसी के साथ नैना की मँगनी हुई है। मेरी तो दशा ही बिगड़ गई। फिर भी नैना में मेरा पूरा विश्वास था। पर जब मैं उसके यहाँ कई बार गया और वह नहीं मिली तो मैं काँप उठा। ख़त भेजा तो सुना; बिना पढ़े फाड़कर फेंक दिया!....आख़िर एक दिन फिर गया। कुमार साहब कहीं बाहर गये थे। मेरी रसाई हो गई। मुझे देखते ही उसने पूछा, "कौन काम है, जी ?"

"प्रसन्न तो हो नैना ?" मैंने कहा।

"मेरी छोड़ो। अपनी कहो। मुझे और भी काम हैं।"

"मैं बी० ए० हो गया।" मैंने जी कड़ा करके कहा।

"फिर कमा-खा।" मेरी नैना ने उत्तर दिया।

"और तुम्हारी प्रतिज्ञा ?"

"मूर्ख! हँसी को भी कहीं गाँठ बाँधते हैं। भला कैसे तुम यह विश्वास कर सके?....कभी अपनी सूरत भी देखी है? अपनी स्थिति पर भी विचार किया है?" वह उठकर चली गई। मैं भी घर चला आया। उसी दिन पहले-पहल यह ज्ञान हुआ: मैं दरिद्र हूँ और रूपहीन। मैंने उसी दिन अपना गृह और ग्राम छोड़ दिया। फिर लौटकर नहीं गया।

× × ×

यह बात मेरे मन में जैसे विद्रोह मचा रही थी कि दुनिया धनहीन और रूपहीन का तिरस्कार करती है। मैं इस पर जितना ही सोचता उतना ही पागल बनता जाता था। तुम यह विश्वास नहीं करोगे, पर उन दिनों मेरी कुछ ऐसी ही इच्छा थी कि मैं दुनिया से धनवानों और रूपवानों का नाम ही मिटा दूँ। किसी को सुन्दर और धनवान् देखता तो बग़ल की भुजाली पर हाथ चला जाता। मैं पागल हो गया था।

मैं इसी धुन में काशी पहुँचा। देखा, एक बड़ी भद्दी, रूपहीना तथा काली युवती भिक्षाटन कर रही थी। मैं उसे पैसे देने की बात कहकर धर्मशाला ले गया, और वहीं उसे एकान्त में ले जाकर पूछा, "तुम अपनी शादी क्यों नहीं कर लेतीं ?"

"कौन पूछेगा मुझे, भला!" उसका सरल उत्तर था।

"यदि मैं पूछूँ ?" मैंने अपने उसी आवेश में कहा।

"हँसी करते हो, बाबूजी ?" और वह जाने लगी।



मैंने उसकी बाँह पकड़ ली और कहा, "बाबा विश्वनाथ के धाम में मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।"

वह विश्वास और अविश्वास के बीच एक विचित्र संकट में पड़ गई।....बेचारी के एक ही आँख थी। उसी से उसने मुझे देखते हुए कहा, "भला यह क्या कर रहे हो, बाबूजी ? तुम्हें तो कोई रानी भी पाकर प्रसन्न हो सकती है।"

"पर मैं तुम्हें प्यार जो करता हूँ।"

"लेकिन कहीं इस जूते को सेज पर रख के फिर पछताना न पड़े।" उसने कहा। और उसकी फूटी और ताकती दोनों ही आँखों से आँसू बहने लगे।

मैंने कहा—"विश्वास रक्खो !"

हम लोग उसी दिन शाम की गाड़ी से कलकत्ते चले गये। मुझे एक पचीस रुपये की नौकरी मिल गई। सात रुपये किराये का एक मकान ले रक्खा। बाक़ी अट्ठारह में अपनी गुज़र थी !

× × ×

तुम हँसोगे, पर वह मेरे जीवन का एक अद्भुत रोमान्स था। नैना की सारी घृणाओं का बदला मैं उस रूपहीना को प्यार करके ही चुकाता। और वह ? किसी भक्त ने भगवान् की भी वैसी पूजा नहीं की होगी, जैसी वह मेरी करती। मैं उसका भगवान् था। मैं उसका देवता था। मैं उसका स्वामी था।

वह प्रायः कहती—"मैंने उस जन्म में तपस्या की थी। लेकिन सच बताना, भला तुम-जैसे राजा की निगाह मुझ-जैसी भिखारिणी पर कैसे जा पड़ी ?"

मैं कहता—"तुम न-जाने क्यों मुझे भा गई !"

वह कहती—"चुप भी रहो !" और मेरे पैरों को प्यार करने लगती। मेरे पैरों के अतिरिक्त मेरे किसी भी अंग का उसने कभी प्यार नहीं किया। वह कहती—"अब की इन्हीं तक पहुँचने की तपस्या रही। अगले जन्म में शायद आगे बढ़ सकूँ !!"

× × ×

केवल दो वर्षों में ही यह परिच्छेद समाप्त हो गया। उसे भयानक ज्वर हो आया, और कुल एक सप्ताह की बीमारी में ही उसने अपना शरीर बदल दिया। मैं ख़ूब दौड़ा। काफ़ी दवा की। पर वह नहीं बच सकी !

अपने बीमारी के दिनों में प्रायः कहती—"जाने कब किसी नाबदान पर भूखों मर गई होती। कूड़ा-गाड़ीवाले डोमों ने न जाने किस खंदक में फेंक दिया होता मुझे। अजी, कोई देखता भी नहीं। कोई सुनता भी नहीं। पर आज यह तुम्हारी ही कृपा है कि एक राज-रानी की तरह मर रही हूँ।"

अपने मरने के दिन उसने मेरा ही चरणामृत लिया और फिर मेरे ही पैरों पर सिर रखकर मर गई !!

कहो, कैसी थी वह विभूति ? नैना ! सौ नैना भी उसके चरणों की धूल की तुलना में नहीं आ सकती। उसी दिन मैंने इसे पहले-पहल सोचा, जो हमसे हीन हैं वे हमारी पूजा और जो हमसे महान् हैं वे घृणा करते हैं !

हाँ, तो उसके श्राद्ध के बाद ही मैं काशी आ गया। कलकत्ते में जी नहीं लगा। काशी का जीवन तो तुम जानते ही हो।....रही डान्सवाली बात; प्रमोद, वह मेरी ही नैना सुनैना बनकर डान्स कर रही थी। मैंने तुरंत बाहर आकर दरियाफ़्त किया। मेरा संदेह ठीक ठहरा। नैना का सिविल मैरेज हुआ था और शायद उसने अपने पति को तलाक़ दे दिया। अब वह फ़िल्म-स्टार के रूप में जहाँ-तहाँ विचरण किया करती थी।

मेरे हृदय में एक अजीब-सी आँधी उठी, विचित्र तूफ़ान उठा। मैं डर गया। काँप उठा। रातों-रात अपनी रूपहीना की स्मृति-मंजूषा को लेकर काशी-धाम से भाग आया !....अब यहीं



रहता हूँ। इसी रूप में। और इस रूप की मर्यादा की रक्षा करता हूँ। मेरे लिए यह विश्व मेरी माता की गोदी है और उसी में मैं बिहार करता हूँ।.... और जगद्धात्री की सन्तान को क्षुधा क्यों सतायेगी ? मैं अकड़ा रहता हूँ।....हाँ, रूपहीना का कुरूप चित्र मेरी आँखों में ही रहता है !

× × ×

जब वह कह चुका तो अष्टमी का चाँद डूब गया था। मैं उसी की कहानी के सागर में डूब रहा था। क्या कहता ! कुछ कह नहीं सका !!

पर उसी ने कहा—"रात बीत गई। अब सो रहो, यहीं, मेरे ही आसन पर। मैं ज़मीन पर लेट जाऊँगा !"

मैंने नहीं चाहा। पर बात उसी की रही। मैं सोने लगा। वह अपना जी बहलाने के लिए गाने लगा। पर्वत की जन-शून्य दुनिया में उसकी विहाग की टीप कृष्ण-मुरली की तरह मधुर लगती थी। वह गाता था—"चलो सो रहें आधी रात गई !!!"



वसंत-विदा

[गोविंदवल्लभ पंत]

शिशिर-ऋतु खिंचकर बोली—"नहीं,
"मुझे जाना ही होगा नाथ !"
ग्रीष्म बोला—"ठहरो कुछ और,
"मधुर है प्रिये तुम्हारा साथ।
"आज डाली पर खिलते फूल,
"हृदय में उगती आशा नई..."
प्रिया ने लेकिन सुनी न एक,
छुड़ाकर हाथ चली ही गई।
उसी क्षण मुरझाए सब फूल,
उड़ गया रंग. मिट गया राग।
हो गया विरह से विकल ग्रीष्म,
उसी की फैली जग में आग।



स्वाभिमान

पंडित विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक

—"तुम बाबा यहाँ कैसे घुस आया ?"

सवेरे नौ बजे का समय था।... कम्पनी लिमिटेड के बड़े बाबू अपने बैठकख़ाने में बैठे कुछ काग़ज़-पत्र उलट-पलट रहे थे। शरीर के मोटे-भद्दे, साँवला-रंग! सिर के बाल अधिकांश सफ़ेद हो चुके थे। मुख पर कर्कशता। माथे पर की स्थायी सिकुड़नें उनके दुस्स्वभाव का प्रमाणपत्र थीं।

सहसा किसी का आहट पाकर उन्होंने सिर ऊपर उठाया और नाक के अग्रभाग पर रक्खी हुई ऐनक के ऊपर से सामने खड़े हुए एक युवक को देखकर उपर्युक्त वाक्य कहा। युवक की वयस २३ वर्ष के लगभग थी। रंग गोरा, नाक-नक़्शा सुडौल, शरीर गठा हुआ। ट्वीड का एक पुराना घिसा हुआ सूट शरीर पर। एक मैली सोला हैट हाथ में। जूतों में मरम्मत की चिप्पियाँ लगी हुईं, पर पालिश अप-टू-डेट। युवक बोला—"क्यों, यहाँ आने में क्या हर्ज है ? यह ज़नानख़ाना तो नहीं है।" यह कहकर युवक एक कुर्सी पर बैठ गया।

—"ज़नाना नहीं है बोलके तुम जहाँ चाहेगा घुस जायगा, ऊँ ?"

—"हाँ, यदि मैं घुसना चाहूँ तो कोई शक्ति मुझे रोक नहीं सकती।"

—"हम तुमको अभी पुलिस में दे दे तो क्या करे ?"

—"हम तुमको जान से मार डालें तो तुम क्या करो ?"

बंगाली बाबू का चेहरा श्वेत पड़ गया। कुछ क्षण तक अवाक् होकर वह युवक का मुँह ताकते रहे, तत्पश्चात् सँभलकर बोले—"तुम किस माफ़िक बोलता है, ऊँ ?"

—"जिस माफ़िक तुम बोलता है, उसी माफ़िक हम बोलता है। तुम हमको पुलीस में क्यों देगा ? हमने तुम्हारी चोरी की है क्या ?"

—"बिना इजाज़त किसी के घर में घुसने से "ट्रेसपासिंग" होता है, यह मालूम है ?"

—"यह आपका बैठकख़ाना है। कोई आदमी किसी काम से आपसे मिलना चाहे तो मिल सकता है। इसमें इजाज़त की ज़रूरत नहीं है। इसलिए यह ट्रेसपासिंग नहीं हो सकता।"

—"तुम तो क़ानून का भी पंडित है ऊँ ?"

—"कामनसेन्स ही क़ानून है।"

—"अच्छा बाबा, हम तुमसे हार गया। अपना



काम बोलो, हमको तुमसे दिमाग़ लड़ाने का फ़ुरसत नहीं है—ऊँ ?"

—"काम बस इतना ही कि आप अपने आफ़िस में कोई नौकरी दिला दें !"

बंगाली बाबू "हो ! हो !" करके हँस पड़े। हँस चुकने पर सिर हिलाकर व्यंगपूर्वक बोले—"माँगने नौकरी आया है और बात इस माफ़िक करता है मने कोई नवाब हो। तब तो ख़ूब नौकरी करेगा—ऊँ ? कहाँ तक पढ़ा है ?"

—"बी० काम० पास किया है।"

—"बाप रे ! बी० ए० पास करके दिमाग़ ख़राब हो गया। आजकल का एज्यूकेशन ऐसा ही है। आजकल का ग्रेज्युएट भीख भी माँगेगा तो दिमाग़ के साथ—ऊँ ?"

—"जब दिमाग़ है तो उससे काम लेना ही पड़ेगा।"

—"अच्छा बाबा, तुम ख़ूब काम ले ! नौकरी हमारे पास कोई नहीं है—सलाम !"

—"है कैसे नहीं, मैंने पूरा पता लगा लिया है, तब आया हूँ। चालीस रुपये की एक जगह ख़ाली है।"

—"बी० काम० पास करके मा-बाप का पैसा ख़राब किया और अब चालीस रुपया का नौकरी ढूँढता है—ऊँ ?"

—"ख़ैर, आपको इससे कोई मतलब नहीं। मैंने मा-बाप का पैसा ख़राब किया या क्या किया।"

—"बाबा हमको तुम्हारी किसी बात से मतलब नहीं है—तुम हमारा प्रान क्यों खाता है। सलाम !"

—"इतनी जल्दी पिंड नहीं छुड़ा सकोगे बाबू। नौकरी की बाबत क्या कहते हो ?"

—"नौकरी जब है नहीं, तब कहाँ से देगा ?"

—"है कैसे नहीं। वह चालीसवाली पोस्ट ?"

—"गाँजा का दम मारने का भी आदत है क्या ? ऊँ ?"

—"हाँ-हाँ ! आपको शौक़ हो तो निकालूँ। चिलम और आग आप मँगवा लीजिए।"

—"बाबा ! हम तुम्हारे हाथ जोड़ता है, तुम यहाँ से जाय।"

—"बाबू, हम तुम्हारे हाथ और पैर दोनों जोड़ता है, वह चालीसवाली पोस्ट हमें दिला दे।"

—"बाबा की मुश्किले पड़े गेलूम। शालार बेटा किछूतेइ माने ना। ठीक डाकातेर मतन देखाच्छे !" बंगाली बाबू अपने ही आप बोले।

—"तुम बँगला में गाली दोगे तो मैं अपनी भाषा में गाली दूँगा। इससे फ़ायदा क्या होगा ?"

—"बाबा हम तुमको गाली नहीं देता है तुम जाय यहाँ से।"

—"शालार बेटा किसको बोलता है ?"

—"हम बाबा कुछ नहीं बोलता है, तुम हमें माफ़ करे और यहाँ से जाय। हमारा आफ़िस का बख़त हो गया।"

—"तो इसमें घबराने की क्या बात है। हम तुम्हें आफ़िस तक पहुँचा देंगे।"

—"हम तो बाइसिकिल पर जायगा।"

—"बड़ा बाबू होकर बाइसिकिल पर जाता है ! छिः-छिः इतना कंजूसी !"

बाबू लाल हो गया। कुछ तेज़ होकर बोला—"तुमको क्या मतलब है ! तुम कौन है ? हम चाहे जाहे पर जाय।"

—"ठीक बात। आप चाहे जाहे पर जाय। हमारे ठेंगे से। पर आज तो हम भी आपके साथ चलेगा, इसलिए बाइसिकिल पर नहीं जाने सकेगा। हमारे साथ-साथ पैदल चलने होगा—बाइसिकिल हाथ में लेकर।"



—"और जो हम आफ़िस न जाय तो क्या करेगा ?"

—"तब तो बड़ी अच्छी बात है। हमारा तुम्हारा साथ छूटेगा।"

बाबू ने इसका कोई उत्तर न दिया। काग़ज़-पत्र समेटकर मेज़ की दराज़ में बंद किये और मेज़ पर रक्खी हुई घंटी बजाई। ऐनक नाक पर से उतारकर केस में रखते हुए बाबू बोला—"तुम बड़ा ख़ुशदिल आदमी है। ख़ुशदिल आदमी को हम ख़ूब पसंद करता है। नौकरी होने से ज़रूर देता। पर क्या करे, नौकरी नहीं है। तुम हमसे कभी-कभी मिलता रहे—पोस्ट ख़ाली होता रहता है। जब होगा तभी देगा। समझे—ऊँ ?"

नौकर आकर खड़ा हो गया था।

युवक बोला- "बाबू, तुम भारी चालाक है। चालाकी से हमको टालना चाहता है। सो हम टलनेवाला नहीं है—समझे ?"

"एके बारे डेसपेरेट होये उठे छे देखची" बड़-बड़ाते हुए बाबू साहब उठे और नौकर से बोले—"कमरा बंद करो और हमारा साइकिल बाहर निकालकर रक्खो।

युवक नौकर से बोला—"कमरा बन्द करने की अभी ज़रूरत नहीं है। साइकिल बाहर निकालकर रक्खो। जब बाबू जायँगे तो हम भी इनके साथ जायँगे—तब कमरा बंद करना।"

बाबू ने युवक को इस प्रकार देखा मानो कच्चा खा जायँगे, परन्तु मुँह से कुछ न बोले—"चुप-चाप अन्दर चले गये।"

(२)

बैठकख़ाने और अन्तःपुर के बीच में जो द्वार था, उस पर पर्दा पड़ा हुआ था। कुछ क्षणों पश्चात् युवक ने देखा कि पर्दा कुछ हिला और उसका एक कोना इस प्रकार सिकुड़ गया, जैसे कोई पर्दे के पीछे से बैठक देख रहा है। युवक समझ गया कि बाबू साहब ने भीतर जाकर स्त्रियों से युवक के संबंध में कुछ कहा है, इसलिए कोई स्त्री उसे देखने आई है। युवक ने तुरंत मेज़ पर तबला बजाकर गाना आरम्भ किया—"मोहन का लई के अलग रहिबे हो—मोहन का लई के।" युवक के गाना आरम्भ करते ही पर्दा हिलकर बराबर हो गया। युवक समझ गया कि देखने-वाला हट गया, उसने मुस्कराकर गाना बंद कर दिया। कुछ क्षणों पश्चात् एक अष्टवर्षीया कन्या पर्दे से लिपटी खड़ी दिखाई दी। युवक ने उसे पुचकारकर कहा, "आओ, खोकी, आओ ! आओ बेटी !" कन्या ने कुछ मुस्कराकर गर्दन टेढ़ी की और "ऊँ" कहकर कुछ सिकुड़ गई। युवक फिर बोला—"आओ बेटी यहाँ आओ! तुम्हें हम घुमाने ले चलेंगे ! घूमने चलेगी ?" लड़की खिलखिलाकर हँसती हुई भीतर भाग गई !

आध घंटे पश्चात् बाबू साहब सूट-बूट से लैस पान चवाते हुए आये और आते ही युवक से बोले— "अच्छा बाबू, आज तुम जाय और... आज कौन डे है—बुध—अच्छा सेटरडे (शनिवार) को हमसे इसी बख़त मिले—ऊँ ?"

—"हाँ, तब तक तुम वह पोस्ट किसी बंगाली को दे-दे और हम टापता रह जाय—क्यों ? यही मतलब है न ?"

—"बाबा तुम तो न-जाने कैसा आदमी है। किसी तरह नहीं मानता। अच्छा हम तो आफ़िस जाता है। तुम्हारा जो ख़ुशी आवे सो करे।"

—"हम भी आपके साथ आफ़िस चलेगा।"

बाबू ने कुछ जवाब न दिया, चुपचाप बैठक के बाहर आकर अपनी साइकिल उठाई और चले। युवक भी साथ-साथ चला। मकान से कुछ दूर तक गली पड़ती थी, उसके पश्चात् सड़क।



सड़क तक बाबू साइकिल हाथ में लिये हुए आये। सड़क पर पहुँचकर बाबू जैसे ही साइकिल पर चढ़ने लगे, वैसे ही युवक ने हेन्डिल पकड़ लिया और कहा—"बाबू, क्या अकेला ही जायगा ?"

बाबू उत्तेजित होकर बोले—"और नहीं क्या तुम्हारे लिए वेट करेगा।"

युवक बोला—"यह बात ग़लत है। या तो हमारे साथ पैदल चले, या हमें पीछे खड़ा कर ले।"

—"तुम कैसा आदमी है बाबा ! तुम अधिक गड़बड़ करेगा तो हम हल्ला मचाकर पुलिस को बुलावेगा।"

इसी समय एक ख़ाली इक्का उधर से निकला। युवक इक्का देखकर इक्केवाले से बोला—"इक्का ख़ाली है ?"

"हाँ-हाँ बाबू, आइए !" कहकर इक्केवाले ने इक्का रोक लिया। युवक उचककर इक्के पर बैठ गया और बाबू से बोला—"बाबू सलाम !" बाबू ने कुछ उत्तर न दिया ! इक्का आगे बढ़ा ! इक्केवाले ने पूछा—"कहाँ ले चलूँ ?"

—कम्पनी का नाम बताकर युवक बोला—"फरवट ले चलो। इन बाबू से पहले पहुँचना है।"

इक्केवाला रास की डोरी घुमाकर बोला—"अभी लीजिए बाबू ! यह बाबू भला क्या चल सकेंगे। जितनी देर में यह वहाँ पहुँचेंगे उतनी देर में तो मैं दो चक्कर कर सकता हूँ।"

दस मिनिट में इक्का उक्त कम्पनी के दफ़्तर के सदर दरवाज़े पर पहुँच गया। युवक इक्के से उतरा और इक्केवाले को बिदा करके वहीं टहलने लगा। पाँच मिनिट पश्चात् युवक ने देखा कि बाबू साहब चर्ख़ा कातते हुए आ रहे हैं। युवक हटकर ज़रा आड़ में हो गया। बाबू साहब आये। एक चपरासी ने दौड़कर साइकिल सँभाली। बाबू साहब सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। उसी समय युवक लपककर उनके पीछे जा पहुँचा। बाबू साहब को पता नहीं लगा।

बाबू साहब अन्दर घुसे। द्वार पर बैठे हुए चपरासी ने युवक को ग़ौर से देखा; पर कुछ बोला नहीं। युवक बाबू साहब के पीछे-पीछे उनके रूम में चला गया। बाबू साहब ज्यों ही घूमकर कुर्सी पर बैठने लगे, त्यों ही उनकी दृष्टि युवक पर पड़ी। युवक को देखते ही बाबू साहब का दम निकल गया। कुर्सी पर धसककर बैठ गये और बोले—"तुम यहाँ भी आ गया !"

—"जहाँ मालिक जायगा, वहाँ नौकर भी जायगा।" युवक मुस्कराकर बोला और कुर्सी पर बैठ गया।

—"तुम हमारा नौकर है या बाप ?"

—"मैं तो अपने को नौकर ही समझता हूँ—आप जो चाहे समझिए।"

—"हम तुमको चपरासी से कहकर निकलवा दे तो तुम क्या करेगा ?"

—"हम बाहर खड़ा रहेगा और जब शाम को आप घर जाने लगेगा, तब आपको समझ लेगा। देखो बाबू ! हम जेल से नहीं डरता, फाँसी से नहीं डरता। जेल हो जायगा तब भी ठीक है, वहाँ खाने को तो मिलेगा। फाँसी हो जायगा तो और भी अच्छा है, सब झगड़ों से मुक्ति मिल जायगी। अब आप जो उचित समझिए, कीजिए।"

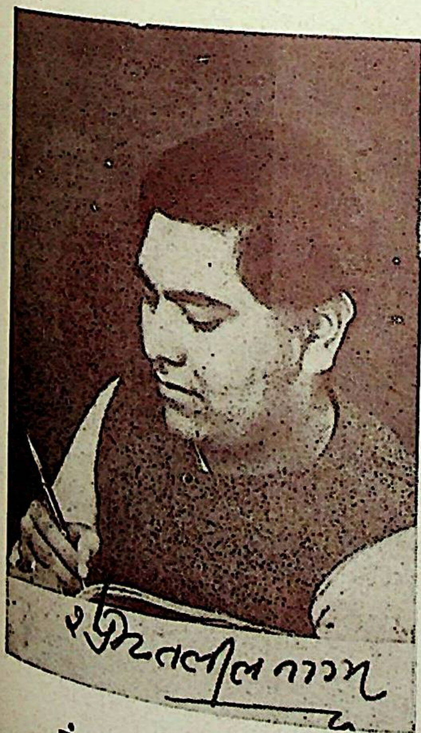
बाबू साहब कुछ क्षणों तक बैठे सोचते रहे। सहसा उन्होंने मेज़ पर रक्खी हुई घंटी बजाई। बाहर से एक चपरासी अन्दर आया। बाबू ने उससे पूछा—"साहब आ गया ?"

—"हाँ हुज़ूर आ गया !"

"अच्छा जाओ।" कहकर बाबू साहब उठे और कमरे के बाहर चले गये।



पं० नरोत्तमप्रसाद नागर



पं० अमृतलाल नागर



श्री सत्येन्द्र बी० ए०



(३)

बाबू के चले जाने पश्चात् युवक कमरे की छत को ताकता हुआ विचारों में मग्न हो गया। दस मिनट के पश्चात् एक चपरासी अन्दर आकर युवक से बोला—"साहब ने आपको सलाम दिया है!" युवक उठ खड़ा हुआ। खड़े होकर उसने कोट को नीचे खींचा, टाई सीधी की, आस्तीन पर लगे हुए क़लई-चूने को हाथ से रगड़कर साफ़ किया, तत्पश्चात् वह चपरासी के पीछे-पीछे चला।

कई बरएडों में चक्कर खाते हुए युवक एक कमरे के द्वार पर पहुँचा। इस द्वार पर पीतल की एक बड़ी प्लेट लगी थी, जिस पर खुदा था—'मैनेजिङ्ग डायरेक्टर'! चपरासी ने कहा—"अन्दर जाइए!" युवक ने एक बार पुनः कोट बैंचा और टाई को सँभाला; तत्पश्चात् अन्दर प्रविष्ट हुआ। अन्दर जाकर उसने देखा, बड़े बाबू अपराधी की भाँति साहब के सामने खड़े हैं। उनकी मुखाकृति देखने से पता चलता था कि वह रोना चाहते हैं, पर आँसुओं को नष्ट नहीं करना चाहते। युवक अन्दर पहुँचते ही किञ्चित् मुस्कराकर बोला—"गुडमार्निङ्ग सर! हाउ डू यू डू सर!" साहब ने गम्भीरतापूर्वक युवक का अभिवादन स्वीकृत किया। साहब कुछ क्षणों तक युवक को ध्यानपूर्वक देखता रहा, तत्पश्चात् अँगरेज़ी में बोला—"तुम हमारे बड़े बाबू को क्यों परेशान कर रहे हो!" युवक निर्भीकतापूर्वक अँगरेज़ी में बोला—"मैं बाबू को बिलकुल नहीं परेशान कर रहा हूँ। यदि बाबू साहब ऐसी बातों से भी परेशान होते हैं, जिनसे परेशान होने की कोई भी आवश्यकता नहीं, तो इसमें मेरा क्या दोष?"

बाबू साहब अँगरेज़ी में बोल उठे—"हुज़ूर! यह पढ़ा-लिखा गुण्डा है। मेरे घर में विना इजाज़त घुस गया। वहाँ बैठा रहा, मेरे बार-बार कहने से भी नहीं हटा। यहाँ तक साथ-साथ आया, और यह धमकी देता है कि पुलीस से नहीं डरता, फाँसी से नहीं डरता।" युवक मौन खड़ा रहा। साहब ने युवक से किञ्चित् मुस्कराते हुए पूछा—"बाबू ठीक कहते हैं?"

—"यह बाबू बार-बार मुझे पुलीस में देने की धमकी देते थे, इसलिए मुझे यह प्रकट करना पड़ा कि इनकी धमकी बेकार है।"

—"तुम जब इस तरह किसी को परेशान करोगे तो धमकी देनी ही पड़ेगी।" बाबू बोले।

—"नौकरी पाने की कोशिश करना किसी को परेशान करना नहीं कहलाता बाबू साहब!"

—"नौकरी पाने के लिए किसी का खून कर डालोगे क्या?"

इतना सुनते ही साहब ने ज़ोर से क़हक़हा लगाया। हँसते हुए बोला—"यह तो अच्छा मज़ाक़ रहा!"

युवक बोला—"मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि आप बात को उसके ठीक पहलू से देख रहे हैं।"

साहब बड़े बाबू से बोला—"अच्छा तुम जाओ! अब यह तुम्हें परेशान नहीं करेगा, मैं इसे समझाये देता हूँ।"

बाबू साहब युवक को घूरते हुए कमरे के बाहर चले गये। उनके चले जाने पर साहब युवक से बोला—"कुर्सी पर बैठ जाओ!"

"धन्यवाद!" कहकर युवक एक कुर्सी पर साहब के सम्मुख बैठ गया।

—"तुम्हारा जीवट मुझे पसंद आया! तुम्हारा क्या नाम है?"

—"मेरा नाम देवीप्रसाद शर्मा है। मैंने पिछले साल बी० काम० पास किया है। साल भर से नौकरी के लिए प्रयत्न कर रहा हूँ। आपके यहाँ चालीस रुपये की पोस्ट खाली है, यह सुनकर इच्छा हुई कि इस पोस्ट के लिए प्रयत्न



करूँ। लोगों ने मुझे मना कर दिया था कि बड़े बाबू के पास मत जाना, वहाँ जाने से कोई लाभ न होगा। बड़े बाबू वह पोस्ट किसी बंगाली को ही देंगे। परन्तु बहुत कुछ सोच-विचार करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि मेरा काम बड़े बाबू द्वारा ही होगा। मैं इनके घर पहुँचा। इन्होंने देखते ही मुझे पुलीस में देने की धमकी दी। उसके बाद जो कुछ हुआ वह बाबू ने आपसे बताया ही होगा।" साहब आँखें बंद करके ख़ूब हँसा। युवक भी मुस्कराता रहा। हँस चुकने पर सिर हिलाता हुआ बोला—"बहुत दिनों के बाद मुझे इतनी अच्छी हँसी आई है। तुम जीवटदार आदमी हो मि० शर्मा। मैं ऐसे ही आदमियों को पसंद करता हूँ।"

—"जो स्वयम् जीवटदार होता है, वह जीवटदार को ही पसंद करता है। बड़े बाबू तो मुझ पर बड़े ही नाराज़ हैं।"

—"वह केवल तुम पर ही नहीं, दुनिया भर पर नाराज़ रहता है। वह ख़ुश किस पर रहता है, यह जानने के लिए मैं बहुत उत्सुक हूँ।"

—"शायद वह ऐसे आदमियों पर ख़ुश रहते हैं, जो अर्ज़ी हाथ में लेकर थरथर काँपते हुए उनके सामने पहुँचते हैं और उनकी जयजयकार मनाते हुए उन्हें दीर्घायु तथा सुखी रहने का आशीर्वाद देकर भिखारी की भाँति उनसे आध सेर आटे का प्रबंध कर देने की प्रार्थना करते हैं।"

साहब मेज़ पर हाथ मारकर बोला—"बिल्कुल ठीक! परन्तु केवल नौकरी दिलाने तक! नौकरी दिलाने के पश्चात् फिर ख़ुश नहीं रहता। नाराज़ होने का कोई न कोई कारण शीघ्र ही उत्पन्न हो जाता है।"

—"आप बड़े उदार हैं, जो यह बात जानते हुए भी इन्हें अपने यहाँ रक्खे हुए हैं।" युवक ने कहा।

—"क्या करें! अपने काम का चौकस है, इसलिए बरदाश्त करना पड़ता है। हमको अपने काम से काम है और उसमें वह उस्ताद है! अन्यथा अन्य मामलों में तो वह बिल्कुल ही निराशाजनक है। ख़ुशामद बहुत पसंद करता है और मुझे ख़ुशामदी और ख़ुशामदपसंद दोनों से घृणा है।"

—"प्रत्येक अच्छा आदमी इन बातों से घृणा करता है।"

—"अच्छा तो तुम नौकरी चाहते हो?"

—"जी।"

—"तो कल बाक़ायदा अर्ज़ी लिखकर लाओ! सीधे मेरे पास लाना, बड़े बाबू के पास मत जाना।"

—"बहुत अच्छा! मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ। अच्छा तो अब आज्ञा दीजिए। कल अर्ज़ी लेकर सेवा में उपस्थित होऊँगा।"

यह कहकर युवक खड़ा हो गया और प्रणाम करके बिदा हुआ। युवक के चले जाने पर साहब अपने ही आप बोला—"अच्छा आदमी है!"

(४)

दूसरे दिन ११ बजे दिन को देवीप्रसाद अर्ज़ी लेकर पहुँचा। साहब ने उसके आने की सूचना पाकर उसे अपने कमरे में बुलवा लिया। देवीप्रसाद ने साहब के सामने मेज़ पर अर्ज़ी रख दी और खड़ा रहा। साहब ने अर्ज़ी पढ़कर उसके हाशिये पर लाल स्याही से कुछ लिख दिया। लिखने के पश्चात् बोला—"फ़िलहाल मैं तुम्हें यह चालीस की पोस्ट देता हूँ। अगर तुमने अच्छी तरह काम किया तो जल्द ही तुम्हारी तरक़्क़ी कर दी जायगी।"

यह कहकर साहब ने घंटी बजाई। एक चपरासी अन्दर आया। चपरासी को अर्ज़ी देकर साहब ने कहा—"इसे बरा बाबू के पास ले



...आओ।" इसके पश्चात् वह युवक से अँगरेज़ी में बोला—"तुम भी बड़े बाबू के पास जाओ—वह तुम्हें तुम्हारा काम इत्यादि बता देंगे।"

...साहब को धन्यवाद देकर युवक चपरासी के साथ-साथ बड़े बाबू के कमरे में गया। बड़े बाबू ने अर्ज़ी को पढ़ा, साहब ने जो लिखा था, उसे पढ़ा, फिर युवक को सिर से पाँव तक देखा और फिर अर्ज़ी पढ़ी! युवक चुपचाप खड़ा था। दोबारा अर्ज़ी पढ़ चुकने पर बाबू साहब बोले—"तुम कितने दिन नौकरी कर सकेगा—यह देखना है।"

युवक बोला—"आप कितनी जल्दी मुझे निकाल सकेंगे, यह मुझे भी देखना है।"

—"हम काहे को निकालेगा—तुम्हारा कम निकालेगा। अच्छा! अब अधिक बात नहीं—अपनी ड्यूटीज़ समझ लो।"

× × ×

देवीप्रसाद ने तीन महीने के अन्दर ही अपनी कार्यकुशलता से यह प्रमाणित कर दिया कि जिस पोस्ट पर वह काम कर रहा है, वह उसकी योग्यता को देखते हुए बहुत नीची है।

एक दिन देवीप्रसाद किसी कार्यवश बड़े बाबू के कमरे में गया। बड़े बाबू उस समय एक क्लर्क को डाँट रहे थे—"तुम बिल्कुल गधा है, ठोकर मारकर निकाल देने के क़ाबिल है।"

क्लर्क घिघियाकर बोला—"सर! ग़लती हुई, माफ़ करें, अब कभी ऐसा न होगा। आप मा-लिक हैं, दया करें।"

—"साला लोग ने कम्पनी को धर्मशाला समझ रक्खा है—जिसे देखो, नौकरी करने चला आ रहा है।" यह कहते हुए बाबू ने देवीप्रसाद की ओर देखा। देवीप्रसाद समझ गया कि यह चोट उस पर की गई है। वह तुरंत ही बोला—"साला लोग ने कम्पनी को अपने बाप का घर समझ रक्खा है, तभी दूसरे को घुसने नहीं देना चाहता।"

क्लर्क अवाक् तथा भयभीत होकर देवीप्रसाद का मुँह ताकने लगा। इधर बाबू साहब आग-बबूला होकर बोला—"यू सुअर, तुम किस माफ़िक'—बाबू इतना ही कह पाये थे कि देवीप्रसाद ने लपककर बाबू का टेटुवा पकड़ लिया। बाबू ने शोर मचाया—"ख़ून! ख़ून!"

तीन-चार चपरासी दौड़कर अन्दर आये। उन्होंने आकर बाबू साहब को देवीप्रसाद के पंजे से छुड़ाया। बाबू साहब चपरासियों से बोले—"इसे साहब के पास ले चलो। आज या तो यही रहेगा या हमीं रहेगा।"

एक चपरासी, जो देवीप्रसाद की बाँह पकड़े था, देवीप्रसाद को घसीटने लगा। देवीप्रसाद ने एक झटका देकर बाँह छुड़ा ली और चपरासी से कहा—"बाँह पकड़कर क्यों घसीटता है, क्या चोर-डाकू समझा है? हम ख़ुद चले चलते हैं।"

चपरासी भयभीत होकर पीछे हट गया। देवीप्रसाद साहब के कमरे की ओर चला, पीछे-पीछे बड़े बाबू उक्त क्लर्क को साथ लेकर चले। सब लोग साहब के सामने पहुँचे। साहब ने घबराकर पूछा—"क्या मामला है?"

बड़े बाबू अँगरेज़ी में बोल उठे—"सर, इसने मुझे गाली दी और मेरा गला पकड़कर दबाया। चपरासी लोग न दौड़ आते तो मेरा गला घोट देता। आप इन सबसे पूछ लें।"

साहब के नेत्रों में परिहास का भाव उत्पन्न हुआ; पर मुख गम्भीर रहा। उसने एक चपरासी की ओर देखकर पूछा—"बड़ा बाबू ठीक बोलता?"

चपरासी बोला—"गाली-वाली तो हम लोगों ने सुनी नहीं। बाबू साहब चिल्लाये ख़ून! ख़ून! यह सुनकर हम लोग दौड़कर अन्दर गये तो



इन बाबू को बड़े बाबू का गला पकड़े देखा। हम लोगों ने बड़े बाबू को छुड़ाया।"

साहब ने देवीप्रसाद की ओर देखकर कहा—"यह क्या मामला है ?"

देवीप्रसाद बोला—"क्या आप मेरी बात पर विश्वास करेंगे ? क्योंकि यहाँ तो बड़े बाबू के खिलाफ़ कोई कुछ न कहेगा। अतएव मेरी निर्दोषिता पर विश्वास करने के लिए केवल मेरे ही कथन पर विश्वास करना होगा।"

—"हाँ-हाँ कहो !" साहब नम्रतापूर्वक बोला।

—"मैं एक काम से बड़े बाबू के कमरे में गया। उस समय बाबू इस क्लर्क को डाँट रहे थे। केवल डाँट ही नहीं रहे थे, वरन् बड़े बुरे ढंग से इसका अपमान कर रहे थे और गाली दे रहे थे। मुझे देखकर इन्होंने मुझ पर चोट करने के लिए कहा—"साला लोग ने कम्पनी को धर्मशाला समझ रक्खा है। जिसे देखो, नौकरी करने चला आता है।" इस पर मैंने कहा—"साला लोग ने कम्पनी को अपने बाप का घर समझ रक्खा है, तभी दूसरे को घुसने नहीं देना चाहते।" इस पर बाबू ने मुझे "सुअर" कहकर गाली दी। तब मैंने इनका गला पकड़ा, परन्तु मेरा इरादा इनका गला घोंटने का कदापि नहीं था, मैं केवल इन्हें चुप करना चाहता था। मेरे गला पकड़ते ही ये खून ! खून ! चिल्लाने लगे—बस इतनी बात है।"

साहब ने क्लर्क की ओर देखकर उससे पूछा—"क्यों ? क्या बात है, ठीक-ठीक बोलो।"

क्लर्क रोनी सूरत बनाये खड़ा था। साहब की बात सुनकर कसर-मसर करने लगा और भयभीत नेत्रों से बड़े बाबू की ओर देखने लगा।

साहब ने क्लर्क को डाँट बताई—"बाबू की ओर क्या देखता है। बाबू तुम्हें खा नहीं जायगा, ठीक बात बोलो।"

क्लर्क ने अक्षरशः वही कह दिया, जो देवीप्रसाद ने कहा था। इसके पश्चात् वह बोला—"बड़े बाबू हमेशा सबको गाली दिया करते हैं। एकाध बार दो-एक क्लर्कों को रूल भी मार चुके हैं।" यह कहकर क्लर्क रोने लगा।

—"किसको रूल मारा—नाम बोलो।" साहब ने कहा।

क्लर्क ने दो नाम बताये। साहब ने चपरासी को उन आदमियों को बुलाने के लिए कहा। कुछ क्षणों में वे दोनों आ गये।

साहब ने उनसे पूछा—"बड़े बाबू ने कभी तुमको रूल मारा था ?"

दोनों क्लर्कों ने बड़े बाबू की ओर भयपूर्ण नेत्रों से देखा।

साहब बोला—"बड़ा बाबू तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा—ठीक बात बोलो।" दोनों ने बड़े बाबू का रूल मारना स्वीकार किया और यह भी कहा—कि बड़े बाबू गाली तो सबको ही दिया करते हैं। साहब ने बड़े बाबू पर तीव्र दृष्टि डाली। बड़े बाबू इस प्रकार खड़े थे मानो फाँसी का हुक्म सुनाया जानेवाला है। साहब ने बाबू से कहा—"आप स्तीफ़ा दें—आज ही दें।"

बड़े बाबू काँपते हुए हाथ जोड़कर बोले—"सर, इस दफ़ा माफ़ करें ! इस देवीप्रसाद के कारण ऐसा हुआ।"

साहब कड़ककर बोला—"देवीप्रसाद ! देवीप्रसाद ! सब ख़राबी की जड़ देवीप्रसाद ! तुम्हारी आदत बिगाड़नेवाला देवीप्रसाद नहीं है, ख़ुशामदी क्लर्क लोग हैं, जिन्हें आत्माभिमान छू नहीं गया। इन्हीं लोगों ने तुम्हारी आदत ख़राब की, जिससे आज तुम्हें यह दिन देखना पड़ा। अगर देवीप्रसाद की तरह इन लोगों को भी अपनी इज़्ज़त का ख़याल होता तो तुम्हारी

मिज़ाज इतना न बिगड़ता। जाओ अभी स्तीफ़ा लिखकर भेजो।" इसके पश्चात् देवीप्रसाद की ओर देखकर बोला—"मैं जानता हूँ कि तुम इनका सब कार्य भली भाँति कर सकते हो, इस लिए तुम इनसे चार्ज लेकर फ़िलहाल इनकी जगह पर काम करो—फिर बाद को देखा जायगा।"

देवीप्रसाद ने बड़े बाबू की ओर देखा। बड़े बाबू की आँखों से आँसू बह रहे थे। उन्होंने गद्गद कंठ से कहा—"सर! इस बार माफ़ी दें। मैं बड़ा ग़रीब हूँ। मेरे छोटे-छोटे बच्चे।" इतना कहकर बाबू साहब बच्चों की तरह रोने लगे। देवीप्रसाद साहब से बोला—"आप इस बार बड़े बाबू को माफ़ कर दें। अब आयन्दा इनसे कोई ऐसी ग़लती न होगी। मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण से इनकी जीविका जाय! यदि ऐसा होगा तो मेरी आत्मा को सदैव पश्चात्ताप रहेगा।"

साहब नेत्र विस्फारित करके बोला—"तुम! तुम! इनकी सिफ़ारिश करते हो!"

—"हाँ साहब! यह बुड्ढे आदमी हैं, अब इन्हें कहीं नौकरी मिलना कठिन है। इसलिए माफ़ कीजिए। आपके पुराने आदमी हैं। इस ख़याल से इस बार माफ़ी दे दें।"

—"अच्छा! जब तुम इनके लिए इतना त्याग कर रहे हो कि बड़े बाबू की पोस्ट मिलने का अवसर खो रहे हो, तब मुझे माफ़ी देनी ही पड़ेगी। मगर बड़े बाबू! आयन्दा आप अपना बर्ताव ठीक कीजिए।"

बड़े बाबू नेत्र पोंछते हुए बोले—"सर! एक प्रार्थना और स्वीकार करें। देवीप्रसाद को मेरा सहकारी बना दें। इनके साथ रहने से मुझे बड़ी मदद मिलेगी।"

—"अब तुम ठीक रास्ते पर आ रहे हो। जाओ, आज से देवीप्रसाद तुम्हारे सहकारी नियुक्त किये गये।"

सब लोग कमरे के बाहर चले गये। सबके चले जाने पर साहब अपने ही आप बोला—"कितना अच्छा आदमी! मैं तो पहले ही समझ गया था।"

चिट्ठी-पत्री

श्रीइलाचन्द्र जोशी

मुरादाबाद, ३ अक्टोबर

प्यारी बहन,

आज मेरा जी कुछ उचाट-सा है। पास में कोई काम इस समय न होने से तुम्हें पत्र लिखने की इच्छा हुई है। जीवन की बहुत-सी पिछली बातें याद आ रही हैं। ऐसा मालूम हो रहा है, जैसे तुमसे और अपने विगत जीवन की संगिनी, दूसरी लड़कियों से मिले हुए कई युग बीत चुके हों। मुझे ससुराल आये केवल दो ही महीने हुए होंगे, पर इतने ही अर्से में सारा पूर्व जीवन स्वप्न की अस्पष्ट छाया की तरह मालूम पड़ने लगा है। तुम निश्चय ही मन-ही-मन मुसकरा रही होंगी और कहती होंगी—"मैं तो पहले ही कह चुकी थी कि ससुराल की हवा लगते ही तुम्हारा ढचर ही बदल जायगा और इस जगत् की बात भूलकर दूसरे ही संसार में विचरने लगोगी!" ठीक है, बहन, तुमने ठीक ही कहा था। वास्तव में मेरी दुनिया ही बिलकुल बदल गई है; और यही कारण है कि आज कुछ समय के लिए तुम्हारी दुनिया की याद आने से तुम लोगों के प्रति मैं एक ऐसे मोहक आकर्षण का अनुभव कर रही हूँ, जैसा पहले कभी नहीं किया था।

यह जीवन एक स्वप्न नहीं है, जैसा कि अक्सर लोग कहा करते हैं, बल्कि इसके स्तर-स्तर में नाना प्रकार के विचित्र रंगीन तथा भौतिक स्वप्नों का जाल बिछा हुआ है। आश्चर्य यह कि एक स्तर के स्वप्नों से दूसरे स्तर के स्वप्नों का कोई सम्बन्ध, कोई संयोजक कड़ी कहीं नहीं दिखाई देती। यह एक बात ऐसी है, जो सबसे अधिक अनोखी और कभी-कभी आतंकजनक मालूम होती है।

ख़ैर, इन सब फ़ालतू बातों को जाने दो। तुम अवश्य यह जानने के लिए उत्सुक होंगी कि ससुरालवालों के साथ मेरी कैसी बनती है। यों ससुराल के लोग सब सुशिष्ट हैं। इनका कुल कुलीन होने से इन्हें अपने कुल की मर्यादा की रक्षा का बड़ा ख़याल रहता है, इसलिए कभी-कभी कुछ कड़ाई इनके व्यवहार में पाई जाती है। पर वास्तव में यह कड़ाई इन लोगों की गौरव-शीलता का द्योतक है, और मैं भली भाँति समझती हूँ कि मेरे प्रति इन लोगों के मन में यथेष्ट स्नेह का भाव वर्तमान है। जब कभी इस विषय में कुछ कमी पाई जाती है तो मैं विशिष्ट रूप से समझ लेती हूँ कि इसमें मेरा ही दोष है।

बहन, मुझे एक नया अनुभव ससुराल में हुआ है। तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मेरे सामा-जिक विचारों में अब मूलतः परिवर्तन होने लगा



है। मेरे मन में यह धारणा दृढ़ रूप से जमने लगी है कि अँगरेज़ी शिक्षा भारतीय समाज की शान्ति और शृंखला में अशान्ति और पारस्परिक वैमनस्य बढ़ाने के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं पहुँचा रही है। तुम्हें और भी अधिक आश्चर्य यह मालूम करके होगा कि मैं पर्दा-प्रथा की प्रखर पक्षपातिनी हो-उठी हूँ और पर्दे को नारी के सबसे आवश्यक तथा सबसे सुन्दर शृंगार के तौर मानने लगी हूँ। एक जूनियर कैम्ब्रिज-पास लड़की को इस प्रकार का सुधार-प्रतिपन्थी मत प्रकट करते देखकर तुम्हारा चकित रह जाना स्वाभाविक है। पर विश्वास रक्खो, मैं अपने गहरे अनुभव से यह बात कह रही हूँ।

उस रोज़ लाला व्रजमोहनलाल के लड़के के विवाह में मैं घर की दूसरी स्त्रियों के साथ गई हुई थी। वहाँ नई दुलहन को देखा। वह घूँघट काढ़े हुए थी और नई लाज के कारण बड़ी शालीनता के साथ सिर झुकाये बैठी थी। उसे देखते ही मेरा सारा शरीर पुलकित हो उठा और किसी अज्ञात कारण से अपूर्व श्रद्धा और स्नेह के भाव हृदय में उमड़ उठे। घूँघट में यह कौन-सी रहस्यमयी शक्ति है, जो दूसरों को बरबस अपनी ओर खींच लेती है? मैं ठीक कह नहीं सकती, पर युवक का-सा अज्ञात आकर्षण मैं इसमें पाती हूँ। उस समय मुझे उस नव-विवाहिता लड़की पर ईर्ष्या होने लगी, जिसने सारे महिला-समाज की श्रद्धा तथा पुलक-भरे स्नेह का भाव अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। मैं सोचने लगी—"काश कि मैं भी इसी प्रकार घूँघट काढ़कर सलज्ज और सुमधुर नम्रता के भाव से सारे वायुमंडल को छा देती!" मुझे पूरा विश्वास है कि विवाह के बाद जब मैं प्रथम दिन निरावरण अवस्था में ससुरालवालों के सामने बेहयाओं की तरह बेपर्दा खड़ी हुई तो दर्शकों में से किसी की अन्तरात्मा ने मुझ पर वह स्नेहपूर्ण मंगलमय आशीर्वाद नहीं बरसाया, जैसा स्वयं मैंने तथा मेरे साथ की दूसरी स्त्रियों ने उस घूँघटवाली नव-वधू पर वर्षित किया। और उस आशीर्वाद का कितना बड़ा महत्त्व इस समय मेरे लिए है, यह बात शायद तुम न समझ सकोगी, बहन! क्योंकि भगवान् की कृपा से तुम्हें उस संघर्ष का सामना नहीं करना पड़ा, जिसने मेरा सारा जीवन-चक्र ही पलट डाला है।

मैं कितना चाहती हूँ कि मैं भारतीय समाज के सनातन आदर्शों को पूर्ण रूप में अपना लूँ; पर जिन संस्कारों से मेरा जीवन गठित हुआ है, उनके कारण क्या ऐसा होना अब सम्भव है? फिर भी मैं अपनी ससुरालवालों की कृतज्ञ हूँ कि वे मुझ-जैसी बेमेल स्त्री की बहुत-सी ऐसी बातों को सहन कर लिया करते हैं, जो उनके दृष्टिकोण में अक्षम्य हैं।

मुन्नू की कुशल लिख भेजना। जिस दिन मैं ससुराल के लिए रवाना हुई थी, उस दिन वह जिस तरह बिलख-बिलखकर रोया था, वह तुमने भी देखा था। तुम जानती हो, मुझे छोड़कर वह अपने मन की बात यदि किसी व्यक्ति से कह सकता है तो वह व्यक्ति केवल तुम हो। पिताजी उसके मन की बात कभी नहीं जान सकते और माताजी—वे सहृदय अवश्य हैं, पर उनके स्वभाव से तुम परिचित ही हो। इसीलिए कहती हूँ बहन, कि उसकी ख़बर लेते रहना। शेष फिर।

तुम्हारी—
प्रमीला

× × ×

इलाहाबाद, १९ अक्टूबर

बहन प्रमीला,

तुम्हारा पत्र मिला। यह न समझना कि तुम्हारी मालती निरी मूर्ख है। तुमने अपने पत्र में अपनी ससुरालवालों की तारीफ़ के जो पुल बाँधे हैं, उनसे उनकी योग्यता का परिचय उतना नहीं मिलता, जितना तुम्हारे हृदय की दुर्बलता और इच्छा-शक्ति के अभाव का पता चलता है।



निस्सन्देह यह आश्चर्य की बात है कि तुम अँगरेज़ छोकरियों के साथ शिक्षा पाने के बाद भी पर्दा-प्रथा का गुणगान करने लगी हो। शायद तुम यह सोचती हो कि तुम्हारा हृदय सचमुच पर्दा-प्रथा की महत्ता स्वीकार करने लगा है। पर यह निरा ढोंग है। तुम्हारा अभिमानी हृदय नाना सांसारिक तथा सामाजिक चक्र में दलित और पिष्ट होकर अन्त में अपने आपको ठगना चाहता है और नम्रता, दैन्य और विनय की चरम सीमा को पहुँचकर अपने अभिमान के भाव की तुष्टि करना चाहता है।

पर मुझे यह दीनता तनिक भी पसन्द नहीं है। मुझे प्रसन्नता तब होती, जब तुम उस अत्याचारी समाज के प्रति विद्रोह का भाव बनाये रहतीं, जो तुम्हें अपने लौहयन्त्र में इस निर्दयता से पीस रहा है। मैं जानती हूँ कि तुम्हें इतने अधिक विरोधों का सामना करना पड़ा है कि अन्त में तुम्हारे मन ने विद्रोह की लेशमात्र भावना को भी तिलाञ्जलि देकर अपने को पूर्णतया समाज की बलि-वेदी पर समर्पित कर देना चाहा है। काश कि मैं तुम्हारे स्थान पर होती। मैं स्वयं मरती भी तो अत्याचारियों को भी अपनी विद्रोहाग्नि से झुलसा-झुलसाकर मारती। पर तुम्हें विद्रोह की अपेक्षा सांसारिक यश बहुत अधिक प्रिय है और नैतिकता के ख़िलाफ़ एक पग भी इधर-उधर चलने का साहस तुममें नहीं है।

तुम्हारे ससुरालवालों के अत्याचार की कहानियों से मैं बहुत-कुछ परिचित हूँ, इसलिए तुम उन्हें छिपाने की लाख चेष्टा करने पर भी मुझसे तुम्हारी कोई बात छिपी रह नहीं सकती, यह बात याद रखना। तुम स्वयं प्रयत्न करने पर भी असलियत छिपाने में असमर्थ सिद्ध हुई हो। तुम्हारी बातों को पढ़कर मुझे दुःख जो कुछ हुआ सो हुआ ही, पर उससे अधिक तुम्हारी कमज़ोरी और अबलापन के भाव पर क्रोध आया।

मुन्नू अच्छा है। पर जब से तुम गई हो, तब से वह ऐसा उदास रहा करता है कि उसका चेहरा देखते ही मेरे हृदय में हाहाकार-सा मचने लगता है। उस दिन सन्ध्या को उसके पास गई और उसका हाल पूछने लगी। उसे दिलासा देने की चेष्टा करते ही वह मेरे अञ्चल में अपना मुँह छिपाकर चुपचाप रोने लगा और टप-टप आँसू गिराने लगा। वह ऐसा अन्यमनस्क हो उठा है कि तिमाही इम्तहान में फ़ेल हो गया, जिसकी वजह से तुम्हारे पिताजी ने उसे ख़ूब पीटा और विमाताजी ने (माफ़ करना, पर मैं उन्हें 'माताजी' कहकर आवश्यकता से अधिक श्रद्धा प्रकट करने में असमर्थ हूँ) भी बहुत कुछ बुरा-भला कहा। तुम्हारे जाने के बाद दोनों ने बेचारे को पीटने और डाँटने की मात्रा बहुत बढ़ा दी है। मुझे उस पर बहुत तरस आता है। पर लाचार हूँ, कभी-कभी दिलासा देने के सिवा और कुछ नहीं कर पाती। केवल यही भरोसा है कि भगवान् उसकी रक्षा करेंगे। तुम्हें अधिक दुःख देना नहीं चाहती, इसलिए पत्र यहीं पर समाप्त करती हूँ।

तुम्हारी स्नेहपात्री—मालती

पुनश्च—

तुम्हारा पत्र मैंने सरयू भैया को दिखाया था। उनके सम्बन्ध में तुमने पत्र में एक शब्द भी नहीं लिखा था, इसलिए उन्हें अवश्य ही दुःख हुआ होगा। क्या उन्हें इतनी जल्दी भूल गईं?

× × ×

मुरादाबाद, २ दिसम्बर

बहन मालती,

तुम्हारा पत्र बहुत दिनों के बाद मिला। धन्यवाद। ***प्रमीला के सम्बन्ध में तुमने पूछा है कि ससुराल में उसके दिन आनन्दपूर्वक कट रहे हैं या नहीं। उसका हाल कुछ न पूछो, बहन! उसका बहुत बुरा हाल है। मुझे उस बेचारी के अन्धे और निर्दयी पिता पर बड़ा क्रोध आता है, जिन्होंने उसे अँगरेज़ छोकरियों के स्कूल में शिक्षा देने के बाद ऐसे कुसंस्कारों से घिरे हुए, दकियानूसी

पुराने ख़यालातोंवाले घराने में ब्याह दिया है। समाज और कुल का ख़याल करके उन्होंने लाड़-प्यार से पली हुई गाय को इस कटघरे में डाल दिया है। उफ़! तुम उस अत्याचार की कल्पना भी नहीं कर सकतीं, जिसका शिकार वह बनी हुई है। कटघरे के पशु की हालत भी उससे कहीं बेहतर होगी। उसकी बेपर्दगी के लिए सारा परिवार उस पर बेहद बिगड़ा हुआ है। पर केवल पर्दे का अभाव ही उन लोगों की नाराज़गी का कारण नहीं है। प्रमीला में 'तिरिया-चरित्र' का एकदम अभाव होने और उसके स्वभाव के सरल निष्कपट सौजन्य के कारण भी ससुरालवाले उससे सब समय असन्तुष्ट रहते हैं। घर की स्त्रियाँ, बच्चे और बड़े-बूढ़े सभी उसे बात-बात में कोसते रहते हैं, ताने कसा करते हैं, और (लिखते हुए दुःख होता है) ऐसे असम्भव और भद्दे कलंक उस पर लगाते हैं कि कोई दूसरी स्त्री कभी विष खाकर मर गई होती। पर इस अनोखी लड़की में विधाता ने न-मालूम पृथ्वी माता की तरह कैसी अपार सहनशीलता दी है कि नीम के घूँट की तरह सबकी कड़वी से कड़वी बातें बेमालूम पी जाती है। उसका भीतर भले ही गन्धक की-सी आग से जलता हो, पर बाहर उसके मुख में सब समय अटल शान्ति झलकती रहती है। तुम कहती हो, वह जूनियर कैम्ब्रिज पास है। आश्चर्य है! इस बात पर विश्वास नहीं होता। बहन, आजकल की अँगरेज़ीदाँ लड़कियों से उसके स्वभाव में रंचमात्र भी समता नहीं पाई जाती। आधुनिक नारी के स्वभाव का तीव्र विद्रोहात्मक भाव उसकी आत्मा में अणुमात्र भी वर्तमान नहीं है। समझ में नहीं आता कि उसकी इस आश्चर्यजनक सहनशीलता की प्रशंसा की जाय या निन्दा। कभी इस बात के लिए उस पर बड़ा क्रोध आता है और कभी अपार श्रद्धा से उसके आगे हृदय झुक जाता है।

एक दिन मैंने उसे न्योता देकर बुलाया! उसे जब मालूम हुआ कि तुम मेरे मामा की लड़की हो तो परम स्नेह से गले मिली और मेरी दो-चार बातों से उसके धीरज का सब बाँध टूट पड़ा। वह सिसक-सिसककर बेअख़्तियार रोने लगी। मेरी भी आँखों से बरबस आँसू निकल आये।

मैं अपने जासूसी चक्करों से उसके ऊपर किये जानेवाले अत्याचारों का सब हाल मालूम किये रहती हूँ। पर उस दिन उसने एक नई बात सुनाई। उसका एक जेठ है, जो वर्षों से बीमारी की हालत में पड़ा हुआ है। चूँकि वह कमाऊ नहीं है, इसलिए इस परिवार के ढाई कुल-भूषण पुरुष तथा स्त्रियाँ उसकी लम्बी बीमारी से उकता गई हैं और उसकी तरफ़ से प्रायः उदासीन-सी रहा करती हैं। किसी को उस अभागे मरीज़ की सेवा का ध्यान नहीं है। प्रमीला से यह बात न देखी गई। वह वक़्-बेवक़् कभी उसे गरम दूध दे आती, कभी उसका पीकदान साफ़ कर लाती, कभी उसका बिस्तरा ठीक तरह से बिछाकर उसके आराम से लेटने का उपाय कर देती। वह बेचारा खाँसता और कराहता हुआ उसे आंतरिक आशीर्वाद दिया करता। प्रमीला की यह 'हरकत' न तो उसके बुड्ढे और शराबी ससुर से देखी गई, न उसकी सास और ननदों से। चारों ओर से उस पर बेहूदा व्यंग से बुझे हुए ऐसे कठोर वाक्य-बाणों की वर्षा होने लगी कि सभ्य समाज में उसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

तुम निश्चय ही उसके पति का हाल पूछना चाहती होगी और तुम्हें आश्चर्य हो रहा होगा कि मैंने पत्र के प्रारम्भ में ही उसके पति का उल्लेख क्यों नहीं किया। यदि उसके सम्बन्ध में मुझे तनिक भी संतोष होता तो मैं अवश्य पहले ही उसका उल्लेख करती। पर सारा दुःख तो इसी बात का है कि पति का अत्याचार उस पर किसी से कुछ कम नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि वह 'हिन्दू-कुल-तिलक' और अपने माता-पिता का परम



भक्त है। पर इसी कारण अपनी निस्सहाय पत्नी पर उसका अत्याचार भी सबसे अधिक प्रबल है। वह अपने परिवार और समाज को यह दिखाना चाहता है कि उसकी जिस पत्नी से उसके माता-पिता नाराज़ रहते हैं, उससे वह उनसे भी अधिक घृणा करता है; क्योंकि ऐसा करना हिन्दू-धर्म के अनुसार उसका परम कर्तव्य है!

बहन, इस नराधम पति की बात तुमसे क्या कहूँ! तुम्हें सुनकर मार्मिक कष्ट होगा। उस रोज़ उसके शराबी पिता प्रमीला के ऊपर सुबह से ही बेतरह बिगड़े हुए थे। कारण? कारण कुछ भी नहीं, इस मकान में अकारण ही सब घटनाएँ घटा करती हैं। पिता के परम भक्त पुत्र ने अपनी भक्ति का चरम प्रमाण देने के उद्देश्य से निरपराधिनी प्रमीला को एक ऐसी लात जमाई कि वह धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ी और चारों ख़ाने चित लेट गई! जो मानसिक वेदना उसे पहुँची होगी, उसके आगे शारीरिक पीड़ा नगण्य है। तथापि तुम्हारी प्रमीला ने मुँह से 'उफ़' तक नहीं निकाला और चुपचाप उठकर अपने पलँग पर जाकर लेट गई। सुनती हूँ, तब से वह अभी तक नहीं उठी और बुख़ार भी उसे आ गया है।

उसके नर-पशु पति की उस पर नाराज़ी का एक और रहस्यमय कारण मैंने सुना है, जिसका उल्लेख करने से भी तुम्हारा रोंआ-रोंआ काँप उठेगा।

उस अभागिनी के लिए दुःखित रहने से कोई लाभ नहीं हो सकता, बहन! स्त्रीयोनि में जन्म लेने से इस प्रकार के निर्यातन अनिवार्य हो उठते हैं—जूनियर कैम्ब्रिज पास स्त्री के लिए भी विधाता ने वे ही नियम बनाये हैं, इसलिए भगवान् से तुम भी प्रार्थना करो कि अगले जन्म में पुरुष बनकर जन्म लेना पड़े।

तुम्हारी स्नेहकांक्षिणी

जानकी

मुरादाबाद, ४ दिसम्बर

बहन मालती,

प्रमीला के जिस बुख़ार को मैं साधारण समझे थी, उसने उग्र रूप धारण कर लिया है। मैं उसे देखने गई थी। सारा मुँह तमतमाया हुआ था और आँखें अस्वाभाविक रूप से चमक रही थीं। पीड़ा से वह अत्यन्त व्याकुल जान पड़ती थी और अत्यन्त बेबस-सी होकर दीन भाव से कराह रही थी। मुझे देखते ही उसकी आँखें डबडबा आईं। उसे अधिक बोलने की शक्ति नहीं थी। मुझसे उसने बहुत हलकी और मुरझाई हुई आवाज़ में इशारे के साथ बैठने को कहा। डाक्टर ने उसकी बीमारी को न्यूमोनिया क़रार दे दिया है। यह एक आश्चर्यजनक काकतालीय है कि पति की लात की चोट से उसे बुख़ार आया और वही साधारण ज्वर न्यूमोनिया में परिणत हो गया! पर विधि का विधान विचित्र है। चलो अच्छा ही हुआ। यदि इस रोग से उसकी मृत्यु हो जाय तो मुझे दुःख बड़ा भारी होगा, पर साथ ही इस बात की तसल्ली भी होगी कि बर्बर पशुओं से भी अधम मनुष्यों के पञ्जों से उसे सदा के लिए छुटकारा मिल जायगा।

पतिदेव के मित्र डा० कैलाशनाथ को तुम जानती होगी। बड़े सज्जन और सहृदय पुरुष हैं। वही प्रमीला का इलाज कर रहे हैं। इसी वर्ष उन्होंने प्रैक्टिस शुरू की है, पर इतने ही अर्से में वह मुरादाबाद में काफ़ी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। उनसे मैंने पूछा था। वह प्रमीला की अवस्था को सन्देहजनक बताते हैं।

तुम्हारी

जानकी

× × ×

मुरादाबाद, ६ दिसम्बर

प्रिय सरयू,

तुम्हारा पत्र मुझे समय पर मिल गया था, पर कई झंझटों के कारण उसका उत्तर न दे सकी।



तुमने लिखा है कि........भाई, असल में बात यह है कि.......

इधर मैं एक विचित्र रोगिणी के इलाज में व्यस्त हूँ। ज़ाहिरा तौर पर वह न्यूमोनिया से पीड़ित है, पर मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि उसकी किसी गुप्त मानसिक पीड़ा ने इस बीमारी का रूप धारण किया है। मैंने उसके ज्वर का कारण मालूम करने की बहुत चेष्टा की, पर कोई ठीक तरह से कुछ नहीं बता सका। सबने केवल यही कहा कि कल उसके पति ने ज़ोरों से उसके लात जमाई थी, और इस घटना के कुछ ही देर बाद बुख़ार की हरारत शुरू हो गई। एक मनोवैज्ञानिक डाक्टर की हैसियत से मैं यह कहूँगा कि उसका दीर्घकालव्यापी मानसिक पीड़न पति की लात से चरमावस्था को पहुँच जाने के कारण उसके अज्ञात चेतन ने एक घातक रोग का आश्रय पकड़ लिया। तुम कहोगे कि इतनी घातक बीमारियों को छोड़कर उसने न्यूमोनिया का ही आश्रय क्यों पकड़ा। मनोविज्ञान इसका भी सन्तोषजनक उत्तर देने के लिए तैयार है, पर चूँकि मुझे इस समय अवकाश नहीं, इसलिए मैं इस विषय को अधिक तूल देने में असमर्थ हूँ।

मुझे उस स्त्री के 'बीस्ट' पति से ऐसी नफ़रत हो गई है कि जब वह मेरे सामने खड़ा होता है तो इच्छा होती है कि उसे तत्काल 'शूट' कर दूँ। पर अफ़सोस है कि मुझमें इतना नैतिक साहस नहीं है। लड़की अँगरेज़ी शिक्षा पाई हुई है और मैंने अपने मित्रों से सुना है कि स्वभाव और चरित्र में भी वह बहुत अच्छी है। और रूप? उत्कट रोग की दशा में भी उसका जो सौंदर्य मैंने देखा, वैसा इस जीवन में शायद ही कहीं किसी का देखा हो। केवल शारीरिक सौंदर्य की बात मैं नहीं कह सकता। उसके चेहरे में एक ऐसा रहस्यमय तेज झलकते हुए मैंने देखा, जो अनुपम था।

उसका पशु-पति उस रोज़ अत्यन्त दीन भाव से, डबडबाई हुई आँखों से अपनी पत्नी के पलँग के पास बैठा था। मैं चाहता था कि उसके मुँह पर थूक दूँ। मैं समाज के इन दुष्ट कीटों के प्रति दया दिखाना घोर दुर्बलता समझता हूँ। पर मैं अत्यन्त आश्चर्य के साथ इस बात पर ग़ौर कर रहा था कि रोगिणी बीच-बीच में अत्यन्त सदय और सकरुण भाव से इस नराधम की ओर देख रही थी। उसकी आँखों के भाव से यह स्पष्ट झलकता था कि उसने अपने घोर नीच पति को केवल क्षमा ही नहीं किया, बल्कि उसके पश्चात्ताप की हालत पर तरस खाती हुई वह उसके प्रति मंगल-कामना भी वर्षित कर रही है। डाक्टर खड़ा है, पर उसके प्रति उसका तनिक भी ध्यान नहीं है; लेकिन पति की दीन दशा उससे बिलकुल भी नहीं देखी जा रही थी! मैं विस्मय-विमुग्ध होकर मन-ही-मन सोचने लगा—क्या यह लड़की सचमुच जूनियर कैम्ब्रिज पास है!

पत्र लिखते-लिखते मुझे एक आश्चर्यजनक प्रेरणा हुई है। मुझे याद है, लखनऊ में, होस्टल में तुम अक्सर एक लड़की की चर्चा हम लोगों से किया करते थे। जहाँ तक मुझे स्मरण है, उस लड़की का नाम भी प्रमीला था और मेरी रोगिणी का नाम भी वही है। तो क्या?....नहीं भाई, यह बात सम्भव कैसे हो सकती है!

पत्र शीघ्र देना। अन्तिम बात के सम्बन्ध में मेरा कौतूहल बहुत बढ़ गया है।

तुम्हारा वही कैलाशनाथ

× × ×

इलाहाबाद, ७ दिसम्बर

प्रिय कैलाशनाथ,

तुम्हारा पत्र पढ़कर मेरी मानसिक दशा कुछ विचित्र-सी हो उठी है। हाँ, यह अवश्य ही वही प्रमीला है, जिसकी चर्चा मैं तुम लोगों से किया करता था। तुमने पत्र में फ़ालतू बातें बहुत लिखीं, पर यह नहीं लिखा कि उसके जीने की कोई उम्मीद है या नहीं; क्योंकि इस समय यही एक

बात ऐसी है, जिसका जानना मेरे लिए सबसे ज़रूरी है। मेरी चचेरी बहन मालती के पास प्रमीला की बीमारी के सम्बन्ध में जो पत्र आये हैं, उनसे केवल यही पता चलता है कि बीमारी ख़तरनाक है। पर जीने की कोई आशा है भी या नहीं, मैं यह बात बहुत शीघ्र जानना चाहता हूँ। काश कि तुम्हारी तरह मैं भी उसके इलाज के लिए उपस्थित होता! यह बात मैं इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि मुझे तुम्हारी योग्यता पर विश्वास नहीं है। तुम जानते हो, मैं तुम्हारी योग्यता की कैसी क़दर करता हूँ। पर तुम यह बात भी समझ सकते हो कि प्रमीला के जीवन के वर्तमान संकट-काल में मुझे उसके पास उपस्थित रहने की इच्छा होना स्वाभाविक है। पर क्या यह सम्भव है? प्रमीला के ससुरालवालों का जो हाल मैंने सुना है, उससे तो यह बात मुमकिन नहीं जान पड़ती कि वे लोग मुझे उसके पास जाने देंगे।

पत्रोत्तर लौटती डाक में देना। तुम्हारा सरयू

× × ×

मुरादाबाद, ८ दिसम्बर

प्रिय सरयू,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम यदि प्रमीला को देखने के लिए इस क़दर उत्सुक हो तो फ़ौरन् चले आओ। मैं तुम्हें अपने सहकारी डाक्टर के बतौर वहाँ ले चलूँगा। इस बात पर किसी को भी एतराज़ नहीं हो सकता। उसकी हालत नाज़ुक होती चली जाती है, इसलिए तुम पत्र मिलने पर उसी दिन किसी गाड़ी से चले आना। विशेष बातें तुम्हारे आने पर होंगी।

तुम्हारा कैलाशनाथ

× × ×

एक्सप्रेस तार, मुरादाबाद, ६ दिसम्बर

६ बज के ३५ मिनट

आज सुबह ७½ बजे के समय प्रमीला की मृत्यु हो गई। अब तुम्हारा आना व्यर्थ है।

कैलाशनाथ

इलाहाबाद, १० दिसम्बर

प्रिय कैलाशनाथ,

आख़िर मेरे देखे बिना ही प्रमीला की मृत्यु हो गई! मैं कौन ऐसा दैवी शक्तिशाली व्यक्ति था कि मृत्यु मेरा लिहाज़ करके दो-एक दिन ठहर जाती। पर कोई नहीं समझ सकता कि अन्तिम समय प्रमीला से एक बार भी न मिल सकने के कारण मेरी कितनी बड़ी हानि हो गई! कुछ भी हो, इस घटना से मैं बड़ा भारी 'फ़ैटलिस्ट' हो गया हूँ और विधि-विधान के रहस्य का महत्त्व स्वीकार करने लगा हूँ। ख़ैर।

प्रमीला की चर्चा मैं बीच-बीच में तुम लोगों से अवश्य किया करता था, पर तुम उन बातों से इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते कि उसने मेरे जीवन में कितना बड़ा स्थान अधिकृत कर रक्खा था।

वह मेरी चचेरी बहन मालती की बाल्य-संगिनी थी। बड़ी शान्त-स्वभाव और अत्यन्त सङ्कोचशील थी। मैंने उसे कभी अपने जीवन में एक बार भी हँसते हुए नहीं देखा—वह इतनी गम्भीर थी! अवश्य बीच-बीच में विशेष-विशेष अवसरों पर उसके मुख में सलज्ज मुसकान की झलक दिखाई देती थी; पर हँसी—बच्चों की-सी बेधड़क हँसी—उसमें कभी नहीं पाई गई। वह बहुत कम बोलती थी और बहुत धीरे। कैसी ही संकटजनक अथवा उत्तेजक परिस्थिति क्यों न आ पड़े, पर उसे कभी ज़ोर से बोलते नहीं सुना गया। वह इतना कम बोलती थी कि कोई गिननेवाला होता तो वह आसानी से मालूम कर सकता था कि वह प्रतिदिन कितने इने-गिने शब्द मुँह से निकाला करती है। मैं इन छोटी-छोटी बातों का उल्लेख इसलिए कर रहा हूँ कि उनसे उसकी रहस्यमयी प्रकृति का थोड़ा-बहुत परिचय तुम्हें प्राप्त हो सकता है। शान्ति, सौजन्य, सहृदयता, सरलता, लज्जा तथा सरस गाम्भीर्य का अपूर्व समन्वय उसके चरित्र में पाया जाता था। तिस पर वह अद्भुत रूपवती



थी, जिसके साक्षी तुम स्वयं हो और यथेष्ट शिक्षा-प्राप्त। यदि वह मेरी ओर कभी आँख उठाकर भी न देखती तो भी उसके इन मिश्रित गुणों का प्रभाव मुझ-जैसे भावुक व्यक्ति के ऊपर पड़े बिना न रह सकता था। तिस पर मेरी अभिमानी आत्मा को यह सन्देह होने लगा था कि वह मेरे प्रति उदासीन नहीं है। स्मरण रहे, मैं 'सन्देह' कह रहा हूँ, 'विश्वास' नहीं; क्योंकि अन्त तक मैं उसके मन की यथार्थ बात मालूम न कर सका—उसके स्वभाव की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह अपने मन की कोई भी बात किसी पर तनिक भी प्रकट नहीं होने देती थी—किसी घनिष्ठतम रूप से परिचित व्यक्ति से भी नहीं। मालती से अधिक घनिष्ठता उसकी किसी से नहीं थी। कुछ समय तक मालती का यह विश्वास था (और इस बात पर बड़ा गर्व भी था) कि वह प्रमीला के मन की बहुत-सी बातें जानती है। पर पीछे उसका यह भ्रम दूर हो गया था। वह बाह्य संसार में विचरण करते रहने पर भी वास्तव में अपने अन्तर्जगत् में ही निवास करती थी—जहाँ वह अवश्य ही निर्मुक्त और निर्द्वन्द्व विचरती होगी।

आज मुझे बहुत सोचने पर यह बात निश्चित रूप से प्रतीत हो रही है कि इस स्वार्थमय वास्तविक संसार में वह अपने को प्रवासिनी और विदेशिनी-सी समझती थी और यहाँ के प्रत्येक प्राणी को शंका और सन्देह की दृष्टि से देखा करती थी कि न-मालूम कौन कब उसके विरुद्ध कैसा षड्यन्त्र रच बैठे! अपने अन्तर्जगत् की वह रानी थी, इसलिए वहाँ उसे किसी प्रकार का भय नहीं था। वहाँ वह अवश्य ही कुछ सखियों तथा सङ्गिनियों के साथ खेला करती होगी, पर वे संगी कौन थे और सङ्गिनियाँ कौन थीं, इस बात का पता विधाता को ही शायद लग सके।

उसकी मा मरकर एक छोटे भाई की रखवाली का भार उसे सौंप गई थी। उसकी विमाता वैसी ही थी, जैसा कि इस कुसंस्कारों से भरे हुए देश में विमाताओं को होना पड़ता है। उसके पिता के हृदय में अवश्य ही अपने बच्चों के प्रति स्नेह का भाव रहा होगा, पर वे स्नेह जताना नहीं जानते थे, वरन् उनके व्यवहार से विशेष कठोरता प्रकट होती थी। उसके एक चाचा थे, जो उसे और उसके भाई को जी-जान से चाहते थे। वे कलकत्ते में व्यापार करते थे और वहाँ से अपनी भतीजी और भतीजे के लिए प्रति मास आवश्यकता से अधिक रुपये, बढ़िया-बढ़िया कपड़े और दूसरी दामी चीज़ें भेजा करते थे। जब कभी वे इलाहाबाद आते या प्रमीला कलकत्ते जाती तो वह अवसर प्रमीला के लिए जीवन में सबसे अधिक आनन्द का होता। चाचा को वह सचमुच बहुत चाहती थी। उसके चाचा की ज़िद के कारण ही उसे अँगरेज़ छोकरियों के स्कूल में पढ़ना पड़ा था, वर्ना उसका स्वाभाविक झुकाव भारतीय शिक्षा की ओर ही था। यही कारण था कि जूनियर कैम्ब्रिज तक पढ़ने और अँगरेज़ छोकरियों के संसर्ग में रहने पर भी उसके स्वभाव की भारतीयता में आँच भी नहीं आने पाई थी। यदि यह बात किसी अपरिचित व्यक्ति से कही जाय तो वह अविश्वासपूर्वक हँसेगा। पर तुम स्वयं प्रमीला के स्वभाव से बहुत कुछ परिचित हो गये हो।

पहले कह चुका हूँ कि मालती के पास वह आया-जाया करती थी। इसी सिलसिले में उसके साथ मेरा घनिष्ठ परिचय हो गया था। पर यह केवल बाहरी परिचय था। उसके भीतर का परिचय मैं अन्त तक प्राप्त न कर सका, यद्यपि मुझे यह विश्वास है कि उसकी नीरव, किन्तु मर्मभेदी दृष्टि मेरा भीतरी परिचय पा गई थी। वर्षों तक हेलमेल रहने पर भी उसने कभी मेरे साथ अधिक बातें नहीं कीं। वह केवल मेरे प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर अत्यन्त नम्रता तथा सौजन्य के साथ दे दिया करती थी, पर स्वयं उसने कभी मेरे साथ किसी विषय की चर्चा नहीं छेड़ी। किन्तु



उसकी नीरवता में भी एक ऐसी रहस्यभरी सहृदयता थी, जो बीच-बीच में बरबस मुझे यह विश्वास दिलाना चाहती थी कि वह मेरे प्रति उदासीन नहीं है। पर यह विश्वास स्थायी नहीं रहता था और मेरा मन अभी तक सन्देह और दुबधा के झूले में झूलता रह गया है। फिर भी मुझे एक बात का सन्तोष है। वह यह कि मुझे जीवन में एक ऐसी नारी से परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिसमें असाधारण गुण वर्तमान थे। उसने भले ही मुझे कभी नहीं चाहा हो, पर मैं उसे सदा चाहता रहा हूँ और चाहता रहूँगा और अपनी इस चाह के कारण मैं अपने को धन्य समझता हूँ; क्योंकि मुझे इस बात पर विश्वास हो गया है कि विधाता की इस सृष्टि में कुछ निराली आत्माएँ ऐसी भी होती हैं, जो किसी प्रकार की पार्थिव चाह या लगावट से दूर होती हैं और जिनकी सरस तथा करुण स्नेहधारा सब पर समान रूप से बरसती है। ऐसी महान् आत्माओं से परिचित होने का सौभाग्य बहुत कम लोगों को होता है। इसी लिए उन्हें चाहनेवालों को भी मैं धन्य मानता हूँ।

विह्वल आवेग के कारण बहुत-सी बेसिर-पैर की बातें लिखकर तुम्हारा समय नष्ट किया है, क्षमा करना।

तुम्हारा

सरयू

× × ×

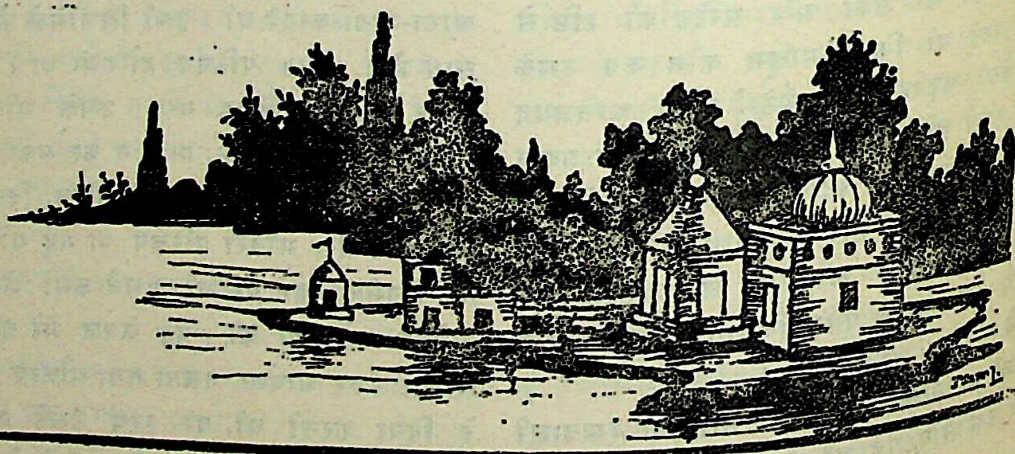
इलाहाबाद, १६ दिसम्बर

बहन जानकी,

तुम्हारा पत्र समय पर मिल गया था। अनेक झंझटों में पड़ने और चित्त की अशान्ति के कारण अभी तक उत्तर न दे सका, क्षमा करना।.... प्रमीला की मृत्यु का शोक लगा ही था कि इस बीच एक दूसरी दुःखदायी घटना हो गई। सरयू भैया पाँच रोज़ से लापता हैं। बिना किसी से कुछ कहे-सुने वे न-मालूम कहाँ चल दिये, इस बात का कुछ भी पता अभी तक किसी को नहीं लगा।

तुम्हारी स्नेहाकांक्षिणी

मालती



रामू और भाभी

श्री० 'पहाड़ी'

"तुमको अब उमा कहूँगा···"

वह इसका उत्तर दे न सकी।

"सुनो, भाभी-भाभी कहने से ऊब गया हूँ। भाभी मैं अब तुमको रखना नहीं चाहता। नाम में तुम क्यों न खुल जाओ। नाम छुपाने की चीज़ नहीं। यदि उसे छुपाना ही चाहती थी, तो क्यों अपनी सारी किताबों पर नाम लिखा था ? उसे रबर से मिटा डालो न।

भाभी फिर भी चुप रही।

रामू कह रहा था—भाभी ही कहना भर मैं अब नहीं चाहता। तुम मेरा नाम क्यों ले लेती हो, अधिकार बराबर ही हम क्यों न बाँट लें। माना कि तुम बड़ी हो। रिश्ते में बड़ी, समाज के क़ानून से बड़ी, उम्र में बड़ी, फिर भी बराबर मैं तुमको पाता हूँ। 'तुम' मैं कहता हूँ, ठट्ठा भी कर लेता हूँ। लेकिन ज़रा नाम लिया, तो चौंक उठीं तुम। यह तुम्हारा कैसा न्याय है ?

उमा कुछ बोली नहीं, दवा का वक्त हो चला था। चुपचाप दवा उँडेलकर काँच के छोटे गिलास में दे दी ?

रामू ने दवा का घूँट मुँह बिचका पी डाला। और उमा पूछ बैठी—कड़वी है क्या ?

"चखकर ही न देख लो। तभी तो समझोगी कि कैसी है। वैसे तो रोज़ ही कहती हो, दवा मीठी है।"

और उमा ने एक 'डोज़' दवा निकाली। पीना ही चाहती थी कि, रामू टोक बैठा—"नहीं, नहीं; यह क्या कर रही हो। ज़रा बात पर ठहरकर अटक जाती हो।"

उमा क्या कहे। अपने को उसके वश में पाती है। अलग रहना नहीं जानती। चाहती है कभी ज़रा, पर आगे मूक बनी रही ही चलती है।

रामू चुपचाप लेट गया था। कुछ सोच बोल बैठा—"उमा! नहीं, भाभी, जाओ न, आज का अख़बार आ गया होगा।"

उमा उठी। अपना अधिकार वह पाये ही थी। अख़बार उठा लाई।

रामू ने अख़बार ले, फिर भाभी को देते कहा—"अच्छा भाभी, तुम ही न पढ़कर सुना दो।"

भाभी हँस पड़ी। फिर बोली—"अख़बार ही पढ़ना जानती तो यहाँ होती। किसी दफ़्तर में नौकरी न कर लेती!"

रामू ख़ुद न जानता था कि वह भाभी को भाभी न कहकर, कभी-कभी एकान्त में नाम से पुकार लेना क्यों चाहने लगा है। यह भावना मन में



उठती है, जी चाहता है कि पहले वह उमा भाभी, उमा भाभी कहता-कहता, भाभी को भूल जावे और उमा भर ही याद रख ले। 'भाभी' में जो आत्मीयता है, उसे वह नाम से गिरी लगती है। सच वह जब यही सोचता है तो उसकी माँग अनुचित नहीं। वास्तविकता और गौणता के संघर्ष में उमा और भाभी को लेकर वह अलग नहीं रह सकता। यही तो चाहता है, कहे— "उमा।" इतने और अधिकार का हक़ उसे अब क्यों न मिले। और कल, जब उसने भाभी को नाम लेकर पुकारा, तब वह ज़रा ग़ुस्सा क्यों हुई थी। ग़ुस्सा होना क्या ज़रूरी था। यह भी क्या उसने अपने अधिकारों में समेट लिया है। ग़ुस्से बिना क्या यह नारी भाभी अधूरी है। और जब ग़ुस्सा होती है तो—?

भाभी दूध ले आई थी। दूध वह अब पीना नहीं चाहता। दूध पीते-पीते वह थक गया है। रोज़ दूध। उसका जी दूध देखकर मतलाने लगता है। वह नहीं पियेगा दूध।

भाभी दूध गिलास में औटाकर पास आई। वह चुप ही था।

भाभी बोली—"लो दूध पी लो।"

"मैं नहीं पीऊँगा। मन नहीं करता।"

"कुछ दिनों की बात और है। आज ना न करो। अभी-अभी बेदाना अनार मँगवाया है। अंगूर तो आज बाज़ार भर में नहीं मिले। डॉक्टर कह गया है, अगले हफ़्ते से पहले अन्न नहीं मिलेगा; फिर मैं क्या करूँ। मुझसे रूठो—रूठो। दूध ने क्या बिगाड़ा है।"

रामू में ना करने की सामर्थ्य नहीं थी। चुपचाप दूध पी डाला। फिर चुपचाप लेट गया। उमा गृहस्थी के काम में लग गई।

धीरे-धीरे, रामू अच्छा हो रहा था। एक सप्ताह से दूसरा भी कट गया। रामू अब ख़ूब चल-फिर लेता है। कमज़ोरी हट रही है। भाभी को आज भी उसकी परिचर्या से फ़ुरसत नहीं मिलती।

उस दिन, दिन में सब लोग सोये थे। रामू चुपचाप बाहर बैठा अख़बार पढ़ रहा था। पास ही चूड़ीवाले की आवाज़ उसने सुनी। रामू के दिल में एक बात उठी। चूड़ीवाले को बुलवाकर बैठाया और चुपचाप अन्दर गया। देखा, थकी भाभी एक कोने में सो रही है। उसके हाथ की नाप तागे से ले ली। फिर बाहर आकर, चार नीली-नीली रेशमी चूड़ियाँ ख़रीद लीं। मन में एक नया उत्साह था, उसी में वह खेलने लगा। लगता था, कुछ पा गया हो। या परिपूर्णता, जो पास न थी, स्वयं आ लगी हो। अपने तक की सीमा में वह अब कितना सुखी था।

रात्रि को जब भाभी कमरे में आई और उसे ऊनी चादर उढ़ा रही थी, तो वह उचककर उठ बैठा। ज़रा हँसता-हँसता चूड़ियाँ सिरहाने से निकालीं। भाभी के हाथ पर रख बोला—"लो पहनो।"

उमा भला पहन सकती है? कैसे वह पहनेगी। रामू भी तो ग़ुस्सा हो सकता है। उलझन में वह अवाक् खड़ी रह गई। रामू ने कहा—"पहन लो न भाभी।"

उमा ना कैसे करे। चुपचाप पहन लीं। कुछ कहने की सामर्थ्य उसमें न थी। चुप मन मारे रही।

रामू अपनी विजय को दबोचे सो गया।

भाभी बड़ी देर तक सो न सकी। चटाई पर फ़र्श में लेटी, किसी उधेड़-बुन में लगी थी। आख़िर सोई ही। नौकर दरवाज़े के पास ख़र्राटे भर रहा था।

आधी रात जा चुकी थी। उसी काली-काली अँधियारी में रामू ने सिसकियाँ सुनीं। समझ गया, भाभी रोई है। वह ख़ूब रोई है। अन्दर ही अन्दर उमड़े आँसुओं को बटोर मन ही मन पी जावे



की इच्छा रखकर भी अपने को सँभाल न सकी। वह चुप न रह सका। सोचा, कुछ कहेगा लेकिन समझावेगा क्या? बात वही खुद नहीं सुलझा पाया। फिर भी हल्के से पुकारा—भाभी! कोई बोला नहीं, ज़रा उसकी आँख लगी कि फिर वे ही सिसकियाँ। मानो रोना थमता नहीं। रोनेवाला लाचार है। रामू फिर बोला—"भाभी!"

कोई आहट नहीं हुई। कुछ भी उत्तर नहीं मिला। वह अब क्या करे। सिसकियाँ भी शून्य में लीन हो गईं। बड़ी देर तक उसे नींद नहीं आई। जब आई, तब वह समझ नहीं सका था।

सुबह देर से उसकी नींद टूटी। तकिया हटा रहा था कि चूड़ियों की खनखनाहट से ज़रा चौंका। वे चारों चूड़ियाँ उसके सिरहाने सँवारी रखी थीं। साथ में एक चिट थी। उस पर लिखा था—

रामू,

यह सब भी तू अब सीख गया है? समझता है कि मैं भाभी हूँ। तू ही सच्चा है। लेकिन मैं भाभी हूँ ज़रूर, पर भाभी के आँचल से लिपटी वह पूरी भाभी नहीं। तू कुछ भी नहीं समझ पाता है क्या? यदि मैं तेरी बात काटते डरूँ, तो क्या तू अपने को कभी पहचानेगा नहीं, कुछ भी सीखेगा नहीं। चूड़ियाँ लौटाती हूँ। यद्यपि लौटाने का अधिकार खो बैठी हूँ। फिर भी भीख माँगती हूँ। मैं दयनीय हूँ, स्वामी ने कहा था। उसे सँभालना। उनकी सुहाग-चूड़ियाँ कहाँ हैं मेरे पास? अब तू 'चाह' में अपने को क्यों खोये। जो समझे, वही मुझ तक पहुँचाने का पूरा अधिकार पा, अपने को भूल जाता है न। भाभी अपने को अब नहीं लिखती, नाम छिपाते डरूँ क्यों? यह तो समाज का एक बंधन है। नारी को ज़रा 'सीमा' में रख दिया है और तुम यही तो चाहते थे, आगे अब कुछ कहने या अनुरोधों में मुझे उलझाने से पहले बात सब सोच-समझ लेना।

तुम्हारी ही उमा (उर्फ़ भाभी)

रामू इस पत्र के लिए तैयार नहीं था। इतनी बिखरी बातें, 'सुहाग', 'नारी', 'भाभी', 'उमा'? सारा रिश्ता; क्या है, यह सब, ज़रा-सी चिट एक जीवन 'ट्रेजडी' सुझा गई। कैसे वह उस परिवार में आया। फिर भाभी—? और वही भाभी तो है यह—

भाभी का स्वामी? बात फिर टेढ़ी-मेढ़ी राह पर चली...।

वह उस 'हिल स्टेशन' गरमी की एक छुट्टी में आया था। वहीं पड़ोस के मकान में एक सभ्य परिवार रहता था। उसी परिवार में वह खिंच गया। वहीं उसे एक भाई मिला था और भाभी भी।

भाभी पहले कहाँ आती थी पास। दूर ही दूर रहती थी। डरती-सी थी तब। आगे छिपकर कभी ज़रा बोलने लगी थी और भाग जाती थी। कई बार उसने देखा था, भाभी उसकी चुटकी पर मीठी मुस्कान बखेरती, साड़ी का छोर मुँह में दबाये ज़रा हँस लेती है।

एक दिन भाभी हारमोनियम बजा रही थी। वह चुपके-चुपके आया। आते ही बोला—"अब तो ज़रूर किसी फ़िल्म-कम्पनी में भरती की जाओगी।"

भाभी लाज से उठकर भागने की सोच रही थी कि भाई साहब आफ़िस से आ गये। बस भाभी बीच में गिरफ़्तार हो गई। भाई बोले—"शरम क्यों? सुना दो न वह सुबहवाला गीत।"

भाभी चुप शरमाई खड़ी भर थी। हाँ, हल्की मुस्कराती उसे देखती रही।



रामू ने कहा—"भैया, मेरी भाभी 'जुबेदा' से कम थोड़े ही है।"

और बस भैया हँस पड़े थे।

दिन ज़रा बढ़े। महीने भी चलते-फिरते थके नहीं। होली की एक तारीख़ को उसने भाभी को कुछ पुड़िया रंग की भेज लिखा था "उनके साथ खेलना।"

—"अभी तक उठे भी नहीं। सोये ही रहोगे क्या।" भाभी आकर बोली।

रामू चुपचाप उठा।

"अब तो धूप हो गई है, घूमने जाना ठीक नहीं होगा। डॉक्टर भी आनेवाले होंगे।" कह भाभी चली गई।

रामू ने देख लिया था। भाभी का चेहरा आँसुओं से ख़ूब धुला था। रात्रि-भर वही वह पा सकी। भाभी कुछ उदास भी लगती थी। उसने समझ लिया भाभी उससे गुस्सा नहीं। फिर वही पुरानी टूटी लीक पर वह आगे बढ़ा।

वही भाभी तो है यह। अचानक एक दिन सुना था, शिकार में 'ऐक्सिडेन्ट' हो गया। भाई मर गये। बन्दूक़ की एक गोली जीती, प्राण हारे। मानो मौत पर ही हमारे सारे जीवन का हिसाब अटका हो। और मौत का आना वहाँ पर ज़रूरी न भी हो, तो भी वह आई। उस बात को आज २½ साल हो गये हैं। आज भी भाभी को वह वैसा ही दिक़ करता है। भाभी भी तो सारे दुःख और वेदना को भूल हँसती है। बात-बात में चुटकी भी ले लेती है। उसी भाभी का यह चिट। उसके अधिकारों की चर्चा। वह कितना निर्दयी है। पापी भी···।

"लो यह डाक आई है।" भाभी कुछ चिट्ठियाँ लिये आई।

रामू ने चिट्ठियाँ ले लीं। खोलने से पहले सोचा, भाभी पर वह टिक गया है, ठहर भी। भाभी विना रोग में वह एक मिनट न चल सकता था। चिट्ठी उसने खोली। भाभी चुपचाप खड़ी थी। रामू बोला—"भाभी, बड़े भैया की चिट्ठी आई है। मा चाहती है, मैं उसके पास जल्दी पहुँच जाऊँ।"

भाभी पहले तो चुप रही। लेकिन जब देखा, रामू कुछ बोल नहीं सकता तो कहा—"जल्दी ही जाना ठीक है। आख़िर मा का दिल ठहरा। भगवान् ने अपने को बचा लिया।"

रामू बात काटकर बोला—"भगवान् नहीं, भाभी, तुमने।"

"फिर वही नास्तिकता की बातें करने लगे।"

रामू आगे नहीं बोला।

—उस हिल-स्टेशन में रामू अबकी भाभी के अनुरोधों पर अनुरोधभरे पत्रों को पाकर गर्मी की छुट्टी व्यतीत करने आया था। कुछ दिनों तक वह भाभी को कॉलेज के क़िस्से सुनाता रहा। दिन मज़े में कट रहे थे। भाभी अपने दुःख को बिसारे उसकी बातों में ही अपने को पाती थी। रामू की बातों में वह क्या नहीं पा गई। कई बार भाभी से उसका झगड़ा हुआ। कभी भाभी रूठ जाती, तो वह मनाकर ख़ुश कर लेता। अक्सर दोनों जब झगड़ते थे तो मन ही मन प्रण कर लेते कि एक दूसरे से बातें न करेंगे। फिर जब एक दूसरे की चार आँखें होतीं तो दोनों मुस्करा उठते। आगे नौकर को आड़ में रख दोनों अपनी बात रख लेते। अंत में अनजाने ही दोनों बातें नये सिरे से शुरू कर देते थे। यह किसी ने न सोचा कि कौन हारा और कौन जीता।

रामू अब के 'टिसीकोटो' (जापानी बाजा) लाया था। वह उसे ख़ूब बजा लेता है। भाभी भी उससे सीखना चाहती थी, लेकिन कहाँ बजा

जाती है। तार अक्सर तोड़कर मन मारकर रह जाती है। रामू हँस ही तो देता है।

दिन आगे बढ़ रहे थे। एक दिन रामू भीगकर आया। दूसरे दिन उसे बुख़ार आ गया। धीरे-धीरे 'टाइफ़ाइड' का रूप धारण कर लिया। भाभी ने दिन-रात परिचर्या में कोई कसर न रक्खी। वह डेढ़ मास में बिलकुल अच्छा हो चला था।

अगले दिन रामू चला जायगा। लॉरी में अगली सीट 'बुक' हो गई। सारी व्यवस्था ठीक हो चली, रामू का दिल जाना नहीं चाहता है, पर असमर्थ है। कर्त्तव्य के आगे झुक पड़ा है। लगता है, भाभी में एक अनमनापन आ रहा है, वह उसे दबाये भी हँसती ही रहती है।

उसी सन्ध्या को रामू और भाभी बैठे थे। राम जा रहा है, भाभी उदास बैठी थी। भाभी से वह क्या बोले। भाभी को समझा सकता तो। वह कुछ भी नहीं कह सकेगा। उसका दिल भारी हो रहा है, उसमें सामर्थ्य नहीं रही है, वह इतना कमज़ोर अपने को इस नारी भाभी के आगे क्यों पा रहा है? इसी भाभी में वह क्या-क्या नारी-तत्त्व नहीं पा गया। भाभी का नारीपन उसके चारों ओर आज उसे घेरे है। भाभी भी कुछ नहीं कहती, वह भी तो, अरे चुप है। भाभी क्या सोच रही है। ये दो महीने रोगी की सेवा में काट, भाभी अपने को कृतार्थ मान लेती है, भाभी महान् है। वह भाभी से दूर ही जा रहा है अब। कुछ सोचकर वह बोला—"भाभी जाने दोगी।"

अरे भाभी की आँखों में आँसू थे भाभी रो ही सकती है और—? रामू ने भाभी का हाथ थाम कहा—"छिः भाभी रोती हो।"

भाभी के आँसू कहाँ थम पाते थे। अनजाने-सी भाभी उठी। आँसू पोंछने को आँचल उठाना चाहा। रामू ने भाभी का आँचल पहले ही उठा लिया था। रामू भाभी के आँसू पोंछ रहा था। भाभी ख़ूब रोना चाहती थी, आँसू थमते ही नहीं थे। सारा दुःख फूट-फूटकर बह जाना चाहता था। फ़र्श की दरी पर आँसू की बूँदें टपक रही थीं, रामू आँचल थामे ही खड़ा भर था। कुछ भी उसे सूझता नहीं था।

इसी बीच भाभी की सास आ गई। भाभी डरकर अलग हट गई। सास ने सब देखा। बोली—"बहू क्या कर रही है। जा रसोई देख।"

उमा डरकर चुपचाप बाहर चली गई।

फिर भाभी रामू के पास कहाँ आई। अगला दिन आया। आज उसे वह 'हिल-स्टेशन' छोड़ना था। दिन के दो बजे मोटर छूटती थी और भाभी सुबह से ही कहीं चली गई थी।

रामू को जाना ज़रूरी था। भाभी अभी तक न आई थी। रामू चुपचाप चला जाना न चाह कर भी 'मोटर-स्टैंड' की ओर बढ़ गया।

मोटर चल पड़ी थी। वह कुछ सोचना चाहता था, पर विचार रुक रहे थे। उसने कोट की जेब में सिगरेट की डिबिया निकालने को हाथ डाला तो एक लिफ़ाफ़ा मिला। देखा उमा का लिखा था। खोला और पढ़ा—

रामू,

तू सोचता होगा, भाभी ने यह क्या किया। मेरा भाग्य, जाते देख भी तो न सकी। इतना ही क्यों, आगे की स्वतन्त्रता सारी छिन गई है। कलवाला पत्र तुम बिस्तर पर ही छोड़ गये थे और चूड़ियाँ भी। तुम जब बाहर थे, सासजी कमरे में गई थीं, वे उनके हाथ लग गये। भारतीय विधवाओं का कोई 'अस्तित्व' नहीं होता, उसी बात को पकड़कर मुझे तुम्हारे आगे आने और पत्र लिखने तक की मनाही है। और कल संध्या का वह दृश्य—? अपने तक ही रो सकती हूँ—



तुम दुःख न मानना। तुम तक पहुँचना चाहती थी, ताकि दिल साफ़ हो जावें। आगे तुम्हारे पास न पहुँच सकूँगी। अब बुरा न मानना। मेरा व्यवहार अन्यायशून्य है। तुम भले रहो, यही भगवान् से प्रार्थना है। तुम भी कभी पत्र न लिखना, अपनी भावुकता को बिसारे ही रहना। हमें समाज में टिकने को क़ानूनों के साथ चलना पड़ता है। वही क़ानून तुम पर लागू कर निश्चित हो, तुमसे प्रार्थना करूँगी कि मुझे पत्र न लिखना। मेरी बात मान ही लेना।

क्या तुम अपनी इस भाभी को नहीं पहचानते हो। मेरा क्या है? कुछ भी तो नहीं। वही तो हाल है, जो शायर ने लिखा है—

> हमारी घुट-घुट के हसरतें मर मिटीं,
> मैं उन हसरतों का मज़ार हूँ।

सासजी को चिट्ठी देना। और बस।

पुनश्च—कल मैं अब तुमसे नहीं मिल सकूँगी। मेरा जी ठीक नहीं है। बुरा न मानना, यह ज़रूरी है। अपने को मैं नहीं डरती। हाँ, कोई तुमको लेकर कुछ कह दे तो, तुम पर लगी बात मैं सह न सकूँगी। मैं कमज़ोर हूँ, अशक्त हूँ, तुमसे डरती हूँ—इसी से बिदा लेने का साहस नहीं। भाभी को भूल न जाना। बस।

× × ×

रामू ने अपनी और भाभी की यही कहानी पिछले साल मुझे सुनाई थी। जिनकी याद रह पाई, लिख दी है।

पिछले दिनों रामू के पत्र मिले थे। बड़े उलझे, बिलकुल बिखरे, दुःख और वेदना में भीगे।

[पहला]

भाई !

मन अच्छा नहीं है। अच्छा ही नहीं कहना भर काफ़ी नहीं होगा। कहाँ है वह उत्साह, वह ख़ुशी, वह उमंग, वह जीवन की ज़िन्दादिली। दिल अब कहीं टिकता नहीं है। मन अटकता कहाँ है। कल रात—! हाँ, हाँ, सच-सच ही लिख रहा हूँ। झूठ में मैं अब अपने को नहीं पाता। हाँ, तो दुःख की परिभाषा ढूँढने चला! बड़ी देर तक कुछ समझ सका नहीं, और आख़िर में अटका मौत पर—।

तुम सोचते होगे कि रामू को क्या हो गया है। भाई, रोऊँ न तो क्या करूँ।

रोना ही तो पाया है—मैंने। तुम मुझे भूल नहीं सकते हो। ख़ूब पहचानते जो हो। और वही रामू तो हूँ मैं, आन्तरिक अन्तर मुझमें आया भी हो, पर बाहरी मैं वैसा ही हूँ। हृदय शान्त नहीं, वेदना और पीड़ा घुला रही है।

तुम आज पहाड़ों के बीच छिपे हो। आख़िर वहाँ जाना क्या इतना ज़रूरी था। माना कि वह तुम्हारा घर ही है। फिर भी लगता है मेरी लाश रौंद-रौंदकर ही तुम चले गये थे। तुम वहीं रहो। अब मैं तुमसे कुछ माँगने का अधिकारी नहीं। न माँगूँगा ही। कुछ दिन पहले सोचता था कि तुमको अपने पास बुला लूँ। लेकिन वह चाहना अब फीकी पड़ गई है। अब तुम्हारी ज़रूरत मुझे नहीं है। तुम भी यदि आज मुझे कुछ समझ ही लो, तो भी मैं कुछ कह नहीं सकूँगा।

कल सुना, भाभी आख़िर अपने मायके चली गई है। उस नारी का वही आख़िरी आश्रय था। कहीं वह रहे, अच्छी रहे, यही चाहना है।

अधिक लिख नहीं सकता। न चाहता ही हूँ। सोचता भर रह जाता हूँ कि जीवन निरी भावुकता नहीं। कोरी सनक नहीं। एक बात और भी जोड़ दूँ। वही पुराना रोग फिर उभर आया है। पिछले दिनों से अकेले रहते डर लगता है।

Heart trouble (हृदयरोग) फिर बढ़ गया है।
'बीट्स' 'मिस' होने लगी हैं।
दिल फिर डूब रहा है। पत्र देना।

तुम्हारा ही, रामू

[दूसरा]

भैया, पहला पत्र मिला न। परसों ही तो भेजा था। आज के पत्र की लिखावट से चौंकना मत। मैं कुछ नहीं लिख सकता, इसी से छोटे भैया से पत्र लिखाने को बाध्य हुआ हूँ। मन की ख़राबी बहुत बढ़ गई है। अब लगता है कि...? और क्या भाभी को देखने की आकांक्षा साथ जायगी। वह नारी भाभी, अपना आँचल सिमेटे, घूँघट में मुँह छुपाये, वैधव्य की काली-काली चदरिया ओढ़े आज भी हृदय में चलती-फिरती लगती है।

क्या तुम भाभी को चिट्ठी नहीं लिख सकते हो। मैं—? तुम ही कहो, अब कैसे लिखूँ। उसका अंतिम अनुरोध—वे आँसू! वह देन सी भाभी। चिट्ठी नहीं, नहीं, नहीं लिखूँगा। तुम लिख दो ना। मैं तुमको Medium बनाना नहीं चाहता हूँ। तुम्हारे भी कुछ अधिकार हैं। जितना मैं तुम्हारे पास हूँ, उसी के सहारे भाभी तक तुम्हारी पहुँच क्यों न हो। व्यावहारिक और वास्तविक बातें जो हैं, उनको हम अपने पर ही लागू नहीं कर सकते। न कोई सीमा ही रख सकते हैं।

तुम ज़रूर लिख भर देना भाभी को, और मैं—! लिख ही देना उसे, रामू की सारी बातें। यह भी लिखना, "रामू की भाभी समाज तुमको निगल गया। तुम्हारे चारों ओर एक ऐसी रेखा खींच दी कि रामू असहाय था। तुम उसमें अपने को पा हर गईं। हमारे तुम्हारे अधीन बात न थी।" यह भी लिख देना—"तुम अपने भगवान् पर विश्वास किये रहो; मैं आज भी उसे नहीं मानता! मैं उसे क्यों मानूँ?"

हाँ, लो, भाभी का फ़ोटो भी भेज रहा हूँ। यही आज तक तुमसे छिपाया था। आज तुम्हारे पास भेजना ज़रूरी है। इसी से तुम भाभी को पहचान लोगे। मेरी भाभी उमा का ही यह फ़ोटो है। यदि कहीं भाभी को देख पाओ तो......

—पत्र अधूरा था। बाक़ी रामू नहीं लिखवा सका। नीचे उसके भाई ने लिखा था—भाई साहब की तबीयत ठीक नहीं है। घर के लोग घबराये हैं।

× × ×

दूसरी चिट्ठी मिली ही थी कि तार आ पहुँचा—Come immediatly Ramoo seriously ill. [फ़ौरन चले आओ, रामू सख़्त बीमार है]

× × ×

रामू मर ही गया। हम सब उसे बचा न सके। डॉ० हार गये थे। ऐसी मौत ख़ुदा किसी को न दे। २५ साल का जवान, एम्० ए० तक पढ़ा। लेकिन मौत से कौन जीता।

अभी-अभी रामू के अन्तिम संस्कार से निपट कर लौट आये हैं। कैसी धुँधली-धुँधली संध्या थी। रामू की चिता से रंग-बिरंगा धुआँ निकल रहा था। मैं पास ही कुछ दूर रेत में बैठा मुट्ठी भर-भर रेत उठाता-उठाता उसकी कई ढेरियाँ बना रहा था। अचानक एक धड़ाका हुआ। मेरा ध्यान बँटा। चिता की ओर मैंने देखा। लगा कि उस रंग-बिरंगे धुएँ में से एक नारी-प्रतिमा ऊपर उठ रही है। रामू के भाई ने जो फ़ोटो चिट्ठी के साथ मुझे भेजा था—उससे यह नारी मिलती-जुलती थी।

वह नारी-प्रतिमा हल्की मुसकराती ओझल हो गई।

लगा कि रामू के हृदय की अन्तिम ग्रंथि भाभी भी उससे हट गई।

उपहार

पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी

विमला खाना परोस रही थी। कमल बैठा पत्र लिख रहा था। वह सोचता था कि जब इसे समाप्त कर लूँगा, तब उठूँगा। देर ही क्या है, कुछ भी तो और अधिक नहीं लिखना है। बस, यही दो-तीन—हाँ, दो ही—पंक्तियाँ और लिखने को हैं कि फिर मैं हूँ और भोजन।

और विमला मन-ही-मन झुँझला रही थी कि जब तक मैं शाक पकाऊँ-पकाऊँ, तब तक तो आफ़त मचा दी। दो-दो मिनट में विकल हो-होकर पछते रहे कि कितनी देर है—कितनी देर है! और अब जब मैं खाना परोसने लगी, तो भी 'आया, आया, बस अभी हाल आया' कह रहे हैं—मगर आते नहीं! बस, इनकी यही प्रकृति मुझे अच्छी नहीं लगती। कितनी तकलीफ़ होती है खाना पकाने में!—बनाना पड़े, तो मालूम हो जाय! और मालूम क्या हो जाय ख़ुद भी तो न खा सकें उसे! फिर भी किसी तरह जो मर-खप के बना भी लूँ, तो यह हाल है इनका कि मुझे ही बेवक़ूफ़ बनना पड़ता है। कुछ कहो, तो झट जवाब दे बैठेंगे कि फिर बनाती ही बेकार हो—मैंने तो हज़ार बार कहा कि महराजिन रख ो।....मैं भी बैठी रहूँगी, इसी तरह। जब बुलाना व्यर्थ है, तो बुलाया ही क्यों जाय? न, मैं अब नहीं बुलाऊँगी, नहीं किसी तरह नहीं।

"अरे, सुनती हो?"

विमला को ही लक्ष करके कमल ने कहा था। लेकिन विमला ने सुनकर भी नहीं सुना। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। वह क्यों उत्तर दे! किसको उत्तर दे? किसे उसके उत्तर की अपेक्षा है! जब कहते-कहते हार गई, तब नहीं आये। और अब इतनी देर के बाद भी, वहीं से कहते हैं—'सुनती हो?' कौन सुनती है? कोई तो नहीं सुनती! क्यों सुने कोई? क्या पड़ी है उसे, जो सुने! वह नहीं सुनती है। कोई नहीं सुन रहा है। कोई सुनने क्यों लगा? वह सुनती तो है, मगर नहीं सुनती।—हाँ, नहीं सुनती।

कमल अब उठकर उसके पास चला आया। वह चला तो आया, पर निकट खड़ा रहकर बोला—कुछ लोग आ गये हैं और उनसे इसी समय दो बातें कर लेनी हैं। बेचारे बड़ी दूर से आये हैं। मुझसे यह नहीं हो सकता कि उन्हें बैरंग वापस लौटा दूँ। कुछ वक़्त देना ही पड़ेगा। कुछ ऐसी ही आवश्यकता है। समझती हो न? तुम अब खाना खा लो। मुझे शायद देर ही लग जाय।...शायद क्या, बल्कि निश्चित है देर लग जाना।

विमला ने पहले तो चाहा कि वह चुप ही रहे, अब भी, उनकी इस बात का कोई उत्तर न दे। किन्तु वह वास्तव में इस प्रकार की नारी नहीं



है। परिस्थिति और कारण को लेकर उसकी मर्यादा की अवमानना करना उसकी प्रकृति के प्रति-कूल है। वह अतीत से उलझती रहती है; क्योंकि उसी का प्रभाव लेकर भविष्य को देखती है। किन्तु वर्तमान की उपेक्षा उसे स्वीकार नहीं होती। अतएव उसने कहा—किन्तु क्या दस-पाँच मिनट के लिए उन्हें रोक नहीं सकते ? वे लोग क्या तुम्हारा इस समय भोजन करना भी रोक देना उचित समझेंगे ? तुम्हारी असुविधा का क्या उन्हें कुछ भी ख़याल न होगा ?

कमल ने लक्ष किया, विमला ख़ुद भी भूखी है। समय भी अधिक हो गया। इसी स्थिति में उसने भोजन बनाया है। कितनी देर से वह प्रतीक्षा में बैठी है और अब, जब कि मुझे उसके साथ बैठकर खाना चाहिए, मैं उससे इस प्रकार का प्रस्ताव कर रहा हूँ !

उसने एक बार फिर जो विमला के उत्तप्त मुख की ओर ध्यान से देखा तो उसे अपना प्रस्ताव सर्वथा अप्रीतिकर प्रतीत हुआ। वह लौट पड़ा। लौटते हुए कह गया—अच्छा, तो मैं अभी आया। उन्हें कमरे में, आदर के साथ बिठा आऊँ और साथ ही दस मिनट तक और अधिक प्रतीक्षा करने की अनुमति ले आऊँ।

"ओह ! तुम आये हो—मेरे राधाकान्त बाबू—यह डेपूटेशन लेकर ! अच्छा। लेकिन, यार बहुत दिनों में मिले हो, और फिर इस डेपूटेशन के साथ ! ख़ैर, मैं अभी आया। मैंने अभी तक भोजन नहीं किया है। कुछ इतने आवश्यक कार्यों में लगा रहा कि भोजन करने तक को समय पर न उठ सका। जा ही रहा था कि पता चला, आप लोग तशरीफ़ लाये हैं।" कमल ने स्वाभाविक उल्लासमुखरित ढंग से कहा।

"अच्छा तो है। कर आओ भोजन, लेकिन अकेले-ही-अकेले भोजन कर लोगे ?" राधा बाबू ने हास के मृदुल दोलन में, साधारणतया कह दिया।—उसी प्रकार, जैसे कोई भी मित्र दूसरे से, ऐसी स्थिति में प्रायः कह ही देता है।

"अच्छी बात है, मेरा सौभाग्य ! चलो, तुम भी चलो।" कमल के उत्तर के साथ उसका हार्दिक उल्लास भी मिश्रित होकर फूट निकला।

"ऐसे नहीं जाता। इस तरह तुमको तो कुछ मालूम न होगा, किन्तु दूसरी आत्मा को जो आकस्मिक कष्ट होगा, उसको मैं कैसे सहन करूँगा ! न यार कमलेश, मुझे इस समय भोजन नहीं करना है, मैं तो यों ही कह उठा था। मैं भोजन कर चुका हूँ।" राधा बाबू कहते-कहते गम्भीर हो उठे।

कमल ने लक्ष किया, यह राधाकांत, एक समय कितना चटुल था ! क्लास भर इसके मारे परेशान, बल्कि एक प्रकार से आंदोलित रहता था। और आज देखता हूँ कि इस कालान्तर में ही वह कैसा विवेकशील बन गया है !

तब उस राधाकान्त के प्रति कमल पहले अजेय आदरभाव से देखकर रह गया, फिर कुछ सोच-समझकर बोला—"नहीं राधे, असुविधा की कोई बात न होगी। कम पड़ेगा तो कुछ और बाज़ार से मँगवा लूँगा। चलो, चलो ; अब तुम्हें चलना पड़ेगा।"

× × ×

"मेरे एक मित्र भी खायँगे विमला। बड़े ज़बर-दस्त आदमी हैं। इच्छामात्र करने से सफलता इनके चरण चूमती रही है। मुझे इनका क्लासफ़ेलो रहने का गौरव प्राप्त हो चुका है। मुझे पता ही न था कि जेल जा-जाकर भी यह शैतान बजाय दुर्बल पड़ने के इतना मोटा पड़ जायगा। देखती क्या हो, वज़न में तीन मन से कम न होगा। यह जो कुछ भी तुमने बना रक्खा है, मैं तो समझता हूँ, केवल इसके लिए भी काफ़ी न होगा।" कमल ढूँढ-ढूँढकर ऐसे शब्दों का प्रयोग कर रहा है, जिससे विमला को पता चल जाय कि उसका यह मित्र ऐसा-वैसा साधारण व्यक्ति नहीं है। बड़ा आदमी तो वह है ही, साथ ही उसका घनिष्ठ मित्र भी है।



तब विमला ने स्वामी के इस घनिष्ठ मित्र को केवल एक दृष्टि से देखकर सारी को सिर पर, आगे तक, कुछ और अधिक खिसका लिया है। दो थालियों में भोजन जैसा परोस कर रक्खा था, उसे पूर्ववत न रखकर उसमें थोड़ा-थोड़ा कम कर लिया है, क्योंकि आकस्मिक आतिथ्य और समय-असमय के जलपान के लिए जो मिष्ट और सलोने खाद्य पदार्थ उसने बना रक्खे हैं, उनका भी उपयोग उसे अब करना है। बाज़ार से ही कुछ मँगाना पड़ा, तो फिर गृहस्थी की मर्यादा ही क्या रही ?

तुरन्त उसने कहा—आइए।

तब कमल अपने राधे को लेकर भोजन करने बैठ गया। वह भोजन कर रहा है और साथ ही साथ कुछ सोचता भी जाता है। यों निरन्तर उसे कुछ न कुछ सोचना ही पड़ता है। बात कम, काम अधिक—यही उसकी प्रकृति है। किन्तु जब कोई मित्र आया हो और साथ में बैठा भोजन कर रहा हो, तब भी मौन ही बने रहना तो कुछ अधिक उत्तम या आवश्यक, प्रीतिकर या शोभन, प्रतीत नहीं होता। मानों इसी बात को लक्ष कर कमल ने कह दिया—और कहो राधे, ख़ूब अच्छी तरह से हो न ? किसी प्रकार की कोई असुविधा या कष्ट या....और क्या कहूँ ?

अन्तिम शब्द कहते-कहते कमल राधे के मुँह की ओर देखकर हँस पड़ा।

"देखता हूँ, तुम बहुत बड़े आदमी हो गये। यहाँ तक कि तुमने इतना वैभव अर्जित कर लिया, इतना कि तुम्हें देखकर मुझे ईर्ष्या होती है, तो भी तुम्हारा वह असाधारण सारल्य ज्यों का त्यों बना है!" राधे भोजन करते हुए अपनी ये बातें इतने मन्द क्रम से करता जाता है कि न तो उसकी आहार-गति प्रतिहत होने पाती है, न वार्ता-विनोद में ही किसी प्रकार की अरोचक मति का संयोग हो पाता है। साथ ही साथ वह कभी-कभी विमला पर भी एक दृष्टि डाल देता है।

"तो तुम्हारा ख़याल यह है कि काल-गति से हमारी प्रकृति भी बदल जाती है ! लेकिन भाई राधे, मैं ऐसा नहीं मानता। जीवन के प्रकम्पित अवधान हमारी गति बदल सकते हैं, हमारे आचार, व्यवहार की रूप-रेखा को भी उलट-पुलट डालते हैं। मैं यह मानता हूँ। किन्तु....किन्तु हमारी नैसर्गिक प्रकृति पर उनका अनुशासन कभी चल नहीं सकता, क्षणिक परिवर्तन करने में भले ही वे यदा-कदा सफल होते रहें।"

राधे कमल की इस बात को सुनकर मुसकराने लगा।

और कमल ने उसके इस हास की यथार्थता को लक्ष करके कहा—जान पड़ता है, मेरे साथ तुम्हारा मतभेद पूर्ववत् बना है।

विमला दोनों को बातें करती छोड़कर भंडार में चली गई थी। लौट आकर उसने दोनों कटोरियों में मिष्टान्न और नमकीन पदार्थ दोनों थालियों के निकट रख दिये। तब उसी समय एक कटोरी से कुछ खुरमे एक साथ उठाकर मुँह में डालने के पूर्व राधे बोला—तुम्हारे गार्हस्थ्य-जीवन के इस सफल स्वरूप के लिए मैं तुम्हें बधाई देता हूँ कमलेश।

कमल हँसने लगा। बोला—अच्छा-अच्छा, यह बात है ! धन्यवाद। फिर विमला की ओर उत्फुल्ल लोचनों से देखकर कहने लगा—सुनती हो विमला, राधे तुम्हें बधाई दे रहा है।

विमला चाहती, तो उत्तर में कुछ कह सकती थी। किन्तु वह कुछ कह न सकी। हाँ, किंचित् में थोड़ी मुड़कर, कढ़ाई में रक्खे हुए शाक को एक कटोरे में सम्हालकर रखने में व्यस्त अवश्य हो गई।

तब राधे ने उस समय न तो उस विमला को ही कुछ कहने का अवसर दिया, न कमलेश को। अब वह उसकी उस बात पर आ गया, जिस पर उसे मतभेद था। वह बोला—हाँ, तुम्हारी उस बात को तो मैं भूल ही गया था, प्रकृति-परिवर्तन के सम्बन्ध में जो तुमने अभी कही थी।



"हाँ, हाँ, कहो, कहो । मैं जानना चाहता हूँ, इस विषय में तुमने क्या अनुभव किया है, तुम्हारे विचार क्या हैं ?" कमल ने कहा ही था कि राधे बोल उठा—"असल बात यह है कमलेश भाई, कि मनुष्य की प्रकृति ही को पहले ज़रा समझ लेने की ज़रूरत है । क्या उसकी प्रकृति है, और क्या अप्रकृति, वास्तव में इसी का समझ लेना आवश्यक है। लोग प्रायः कहा करते हैं, फ़लाँ आदमी तो बिलकुल ही बदल गया । लोग उसकी रूप-रेखा, उसके आकार-प्रकार को देखकर ही प्रायः इस तरह की बातें कह डालते हैं । पर परिस्थितियों के चक्र में घूमते और छिन्न-भिन्न होते हुए उसके क्षण-क्षण के जीवन को देखकर वे यह नहीं सोचते कि प्रकाश सदा प्रकाश ही रहता है । यह बात दूसरी है कि कोई प्रकाश दिन का हो, कोई निशा का। अब यहाँ प्रश्न यह है कि दिन का प्रकाश तो प्रकाश है और उसे संसार स्वीकार करता है । किन्तु जो प्रकाश रजनी के अन्तर से फूटा हुआ है, वह अन्धकार क्यों है !"

तब तत्काल उत्तरंग मानस से कमलेश बोल उठा—"वन्डरफ़ुल ! कितनी अच्छी बात तुमने अनायास कह डाली ! वाह !!"

विमला ने उसी समय एक बार राधे के उस तेजोमय मुख की ओर दृष्टि-क्षेप किया । थोड़ी देर से उसकी छाती के भीतर भूकम्प-कालीन रत्नाकर की भाँति जो भीम विस्फूर्जन प्रध्वनित हो रहा था, राधे के इस कथन को लेकर और फिर एक बार उसकी ओर देखकर आपसे आप वह बिलकुल शिथिल, ध्वस्त हो उठा। जिस त्यक्त अतीत ने आज तक उसके मन-प्राण तक को बार-बार स्तम्भित, विकल-विकम्पित कर-करके एक अव्यक्त अभियोग से अतिशय अस्थिर किंवा विमूढ़ कर डाला था, निमेष मात्र के इस वैकल्पिक उपायन से उसके अभिभूत चित्त की सारी दुर्बलता बात-की-बात में निश्चय प्रशान्त हो उठी ।

इसी समय भोजन करके दोनों मित्र उठ खड़े हुए ।

× × ×

रात के ग्यारह बजे हैं । कमलेश सो रहा है । पास ही विमला भी लेटी हुई करवटें बदल रही है । कुछ स्वप्न उसके मानस-पट पर उतर आये हैं ।

"तुम्हारी यह आदत अच्छी नहीं है भैया ।"

"कौन-सी ?"

"पूछते हो कौन-सी !"

"लो, जब मालूम नहीं है, तब पूछना भी गुनाह है !"

"हाँ, गुनाह है । मैं तुमसे भैया जो कहती हूँ ।"

वह चुप रह गया । उसका मुख यकायक उतर गया । कोई बात वह फिर न कह सका । तब वह चलने लगी । कुछ उद्विग्न होकर, अपना ही तिरस्कार अपने ऊपर लादकर । किन्तु उसी समय उसने सुना, वह कह रहा है—मेरी इस बुरी आदत के अनुभव करने का तुम्हें अब कभी अवसर न मिलेगा विमला । मैं यहाँ से चला जाऊँगा ।

वह लौट पड़ी । अपनी मर्यादित गम्भीरता से विचलित होकर वह बोली—सचमुच, क्या तुम कानपुर छोड़ दोगे ?

"छोड़ना ही पड़ेगा विमला; क्योंकि मनुष्य की प्रकृति बदल नहीं सकती ।" उत्तर में वह कुछ कह न सकी थी । यद्यपि उन निर्वाक्, निस्पन्द, निष्ठुर क्षणों ने उसके इस जीवन को ही व्यर्थ कर डाला, तो भी उन क्षणों को वह फिर कभी न पा सकी । आज तक न पा सकी ।

किन्तु वह था कितना दृढ़प्रतिज्ञ !—उसने कानपुर छोड़ ही दिया । यद्यपि उसने कोई अपराध नहीं किया था । एकमात्र यही आदत थी उसकी कि वह मुझे देखकर पुलकित हो उठता था । उसके उस हास-मुखरित आनन की उद्दीप्त आभा, उसकी उल्लास-तृप्त आँखें, अपना आंतरिक भाव प्रकट करने का लोभ-संवरण न कर सकती थीं । मुहल्ले की बात ठहरी । वह कभी



अपनी सखियों के साथ निकलती, कभी मा-भाभी के साथ। और इन सबके साथ निकलने पर भी वह उसकी ओर एक बार देखे विना मानता न था। फलतः एक अदम्य बहिरभिमुखी लज्जा से वह बिलकुल संकुचित तथा अभिभूत हो उठती थी।

बस, यही उसका अपराध था—और उससे संलग्न यही उसकी असुविधा!

और उसके बाद यह आज का दिन है।

"तुम्हारे गार्हस्थ्य जीवन के इस सफल स्वरूप के लिए मैं तुम्हें बधाई देता हूँ।" और मेरे गार्हस्थ्य जीवन का यह कैसा सफल स्वरूप है! "किन्तु जो प्रकाश रजनी के अन्तर से फूटा हुआ है, वह अन्धकार क्यों है?" कौन कहता है कि वह अन्धकार है! क्या अब भी किसी में इतना साहस है कि वह उसे अन्धकार कह सके? किन्तु यह बात तो तुमने अपने आपको देखकर कह डाली है; क्योंकि तुम एक प्रकार के अकल्पित स्वप्न हो। किन्तु यह तो एक कविता हुई। और इस विमला के भीतर जो नारी है, वह तो वैसी उस प्रकार की निरी कविता नहीं है, उसका एक शरीर है, एक हृत्पिंड। कभी उसे छूकर देखते, तो जान पाते कि बाहर से प्रकाशमयी झलक मारनेवाली इस विमला के भीतर का अन्धकार अभी तक पूर्ववत् स्थिर है। अपने स्थान से वह टस-से-मस भी नहीं हुआ है। अभी तक उसके भीतर की गर्वित नारी उसी प्रकार तृषित है, जैसी वह कभी पहले थी। उसके प्रकृत स्वरूप का सांगोपांग अर्थ किया ही नहीं जा सका—यहाँ तक कि वह अभी तक मा भी नहीं हो सकी! और फिर भी तुम उसके गार्हस्थ्य जीवन का साफल्य देखने चले थे! ओह! इस परिवार का अंतरंग न देखकर उसके बाह्य स्वरूप पर तुम ऐसे मुग्ध हो उठे कि एक बधाई भी उसे दे डाली। किन्तु तुम्हारी यह बधाई तो उन्हीं के लिए थी। मेरे साथ उसका सम्बन्ध क्या? न, वह बधाई मेरे लिए नहीं है, नहीं है।

किन्तु ठीक तो है। उन्होंने कह डाला था—सुनती हो विमला, राधे तुम्हें बधाई दे रहा है।

लेकिन उनके कहने से भी वह बधाई मेरे लिए नहीं हो सकती। वह उनके लिए थी, हाँ उन्हीं के लिए। तो क्या वास्तव में वे बधाई के पात्र हैं। क्यों भला? क्या वे बधाई के पात्र केवल इसलिए हैं कि मेरे जीवन की यह धारा भी उन्हीं के साथ-साथ प्रवाहित हो रही है। तो तुम सोचते हो कि यह विमला अभी तक इसमें समर्थ है कि उसकी संगति का लेशमात्र किसी को भी बधाई का पात्र बना सकता है? उफ़! तुम ऐसा क्यों मानते हो राधे भैया? क्या तुम अपनी प्रतिज्ञा भूल गये? क्या तुम्हें याद नहीं रहा कि तुमने किसी से कुछ कहा था? कहा था कि मैंने इस बुरी आदत के अनुभव करने का अब तुम्हें कभी अवसर न मिलेगा!.... तो फिर इतने दिनों के बाद तुमने यह अवसर क्यों दिया?

झर झर झर!

ये आँसुओं के बूँद हैं कि सुधार्णव के मोती!

ओह! जीवन के ये दस वर्ष यों ही बीत गये। युग पलटा, कितने भूकम्प आये। कितनी रिम-झिम रातें, कितनी शारदी निशाएँ, कितने वासन्तिक दोलन आये और गये; किन्तु राधे की छाया भी कहीं न देख पड़ी। और एक युग के बाद, जान-बूझकर भी नहीं, अनायास वे जो इस कुटीर में आ ही पड़े, तो यह विमला, यह मूर्त कालिमा, अपने आपको न देखकर दोष देती है उसे, जो दिवाकर की भाँति वरेण्य और मनस्वी है!

तो तुम मुझसे बोले क्यों नहीं? कुछ विस्मय और कुछ दुलार से ओत-प्रोत होकर तुमने मुझे निकट पाकर, मेरा नाम लेकर, पुकारा क्यों नहीं! तुम्हारी मुद्रा इतनी गम्भीर क्यों बनी रही? एक बार भी सिर उठाकर तुमने मुझे ध्यान से देखा क्यों नहीं? हूँ, मुझसे छूटकर जाओगे कहाँ?

झर झर झर!

ये अमृत के बूँद क्रमागत रूप से क्यों आ रहे



है! झरने से बूँद तो यों निरन्तर आ सकते हैं, किन्तु इस प्रकार के अमृत-बूँदों को वह कहाँ से लायेगा? और उनके निस्राव के साथ यह निस्वन कैसा है! ये रुदन की सिसकियाँ हैं कि निर्झर की उत्ताल ऊर्मिमालाओं का अजस्र मुखरित महोल्लास।

× × ×

"हूँ! तुम रोती हो विमला?

यकायक उठकर झट से विद्युत्-प्रकाश प्रस्फुटित-कर कमल विमला के पलग पर आकर उससे मिश्रित होकर बैठ गया। फिर उसके सिर की कुन्तल राशि, वेणी और उसके अन्तिम छोर तक अपना वाम हस्त फेरते हुए बोला—रोती क्यों हो विमला। बतलाओ। मैं जानना चाहता हूँ, क्या मुझसे कोई अपराध हुआ है?

अब विमला आँसू पोंछकर, स्थिर होकर, बैठ गई। उसका एक हाथ अब भी कमल के हाथों में था। उसके रुद्र गम्भीर मुख की अप्रकृतभंगिमा देखकर कमल यकायक स्तब्ध हो उठा और उसी समय विमला बोली—"अपराध?....अपराध की बात पूछते हो?"

"हाँ"

"तो इस राधे को तुम अन्दर क्यों ले आये? किससे पूछकर ले आये?"

कमलेश अवाक् हो उठा। तुरन्त तो वह कोई भी उत्तर न दे सका। किन्तु क्षण भर के बाद बोला—"वह मेरा एक मित्र था, चिरपरिचित मित्र। उसका स्वागत-सत्कार करना मेरे लिए आवश्यक था....किन्तु वह कोई भी हो, उसके सम्बन्ध में इतना सोचने की आवश्यकता ही क्या है?"

"वह क्यों आया था?"

"एक प्रस्ताव लेकर।"

"क्या उत्तर दिया?"

"उसकी बात मान लेना ही मैंने उचित समझा। स्वदेश के पीछे उसने अपना जीवन उत्सर्ग कर रक्खा है। उसे निर्विरोध कौंसिल में जाना चाहिए उसके पक्ष में मैंने अपने आपको रोक लिया है।"

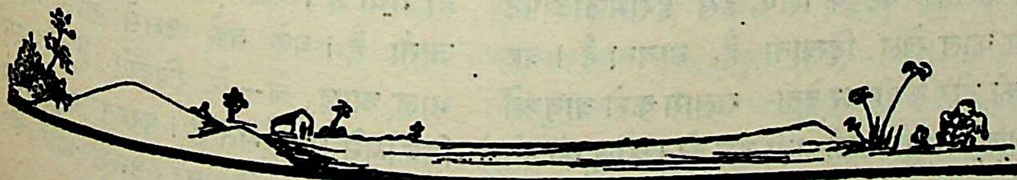
"जी—व—न उ—त्स—र्ग कर र—क्खा है!" विमला ने अतिशय मंद स्वर में अटक-अटककर इस तरह कहा कि कमल उसकी अपरूप मुद्रा को देखकर चकित-स्तम्भित हो उठा। क्षण भर रुककर बोला—"बात क्या है विमला? मैं ज़रा साफ़-साफ़ जानना चाहता हूँ।"

"वह मेरा शत्रु है। मेरी जीवन-धारा को उसने व्यर्थ ही में विकृत करने की चेष्टा की है। मुहल्ले के नाते से मैं उसकी बहन होती हूँ। फिर भी जान-बूझकर उसने मेरी अवहेला की। मैं इसे कैसे सहन कर सकती हूँ?"

× × ×

"अरी पगली—यह मेरी ही भूल है! लेकिन तुम जानती हो विमला, मैं कुछ आज का नया भुलक्कड़ नहीं हूँ।....ख़ैर, मुझे इसका दुःख है।" चलते-चलाते वह अपनी सोने की घड़ी तुम्हें भेंट-स्वरूप दे गया है। उसने कहा भी था—"यह घड़ी मेरी बहन को दे देना। तुम उसे ले लो अभी। वह मेरे कोट के भीतरी जेब में पड़ी है।"

और विमला सोचती है—यह उपहार है कि मृत्यु!



कल्लन और कालू

श्रीरामरतन भटनागर 'हसरत' बी. एस्-सी.

कल्लन और कालू के नामों का अर्थ लगाओ तो एक बात निकलती थी और यदि एक वह बोली न बोलता होता, जिसे हम मनुष्यों की बोली कहते हैं और जो हम अर्थ लगाकर समझ लेते हैं तो हम दोनों को कल्लन या कालू कह सकते थे। कालू भालू था और कल्लन, जो कालू को भालू का नाच नचाकर दोनों के लिए रोटियाँ पाता था, मनुष्य नहीं था और भालू भी नहीं था; परन्तु वह मनुष्य से भालू के निकटतर था। मनुष्य को सामाजिक जीव कहा है और बेचारे कल्लन का समाज कालू तक सीमित था। वे दोनों एक दूसरे को समझते थे, प्यार करते थे। कल्लन जब सो जाता, कालू कुटिया के दरवाजे पर जाग कर पहरा देता। स्वयं कल्लन में कालू के प्रति अक्षय सहानुभूति थी।

कालू पृथ्वी पर लेटकर कल्लन के सिखाये अनुसार पेट दिखाता और कल्लन कहता—कालू राजा, क्यों नाचते हो? और जनता की ओर अपील करता—पेट के लिए, इस हरामजादे पेट के लिए कालू खेल दिखाता है, नाचता है। वह कालू की डोर लंबी कर देता—सलाम करो बाबुओं को, कालू। बाबुओं की बड़ी उम्र हो। कालू को जो रोटी-पैसा दे उसकी बड़ी उम्र हो, दूधों-पूतों फले। तब कालू को पेट दिखाते और सलाम करते देखकर हँसी आ जाती और जेब से पैसा निकल पड़ता। स्त्रियाँ रोटियाँ देतीं और कल्लन वहीं कालू को रोटी बाँट देता।

एक सुबह कल्लन कालू को टहलाने ले गया। प्रतिदिन का उसका नियम था, वह कालू को खुला कर साथ ले लेता और जंगल में दूर निकल जाता। कालू आदमी की तरह दो पिछले पैरों पर चलता और सुबह की अँधेरी में वे दो भालू जान पड़ते। कालू कभी-कभी बेर के पेड़ों के नीचे रुक जाता और तने पर पाँव टेककर और डालियाँ झुकाकर बेर खाता। एक दिन वह ऐसे ही किसी काम में लगा था कि उसने कुछ सुनकर कान खड़े किये और कल्लन की ओर देखा। कल्लन ने सुना—कुछ दूर झाड़ियों में से बच्चे की रोने की आवाज़ है। वह कालू के साथ वहाँ गया।

कालू को बच्चों को खिलाते-खेलते उनसे प्रेम हो गया है। वह बड़े प्रेम से उनके पास पहुँच जाता है। बड़े बच्चे उससे डरते नहीं। 'भालू आलू ले'—वे चिढ़ाते हैं और उसके दाँत निकालने पर हँसते हैं। परन्तु वह छोटे बच्चों को अधिक चाहता है। वह उनके आगे अपना बाँ



मुँह खोलता नहीं, किन्तु उसे शिकायत है वे फिर भी रोते हैं, उसके पास फटकते नहीं।

कल्लन और कालू ने देखा—एक डलिया में एक कुछ दिनों का बच्चा पड़ा है। कल्लन को बच्चों से विशेष प्रेम नहीं है और इस बच्चे का इस तरह मुँह विचकाकर रोना उसे बुरा जान पड़ा।

शैतान, हराम का है!—उसने कठोर दृष्टि से उसके छोटे-छोटे हाथ-पैरों का संचालन देखते हुए कहा।

जो परित्यक्त था, उसे देखकर चुप हो रहा। उसका रोना बंद हो गया। कल्लन कुछ देर तक उसे देखता रहा! फिर न-जाने क्या सोचकर उसने उसे डलिया से उठा लिया। बच्चा हाथ-पैर चला रहा था। उसने कहा— चुप रे हरामज़ादे! नहीं मानता तो रो। उसने उसके हल्के से चुटकी काट ली। बालक रो पड़ा।

कालू को अपने स्वामी का यह व्यवहार पसंद नहीं आया, हम कह सकते हैं। उसने मुँह से घो-घो आवाज़ निकालकर जैसे प्रश्न किया—क्यों, ऐसा क्यों हुआ? कल्लन ने उसे कालू के मुँह के पास रख दिया। कालू उसके मुँह पर साँस छोड़ता रहा। बच्चा रोना भूलकर उसकी ओर हाथ-पैर चलाने लगा।

मदारी ने बच्चे को फिर डलिया में डाल दिया। वह छोट रहा था, परन्तु भालू फिर-फिरकर डलिया को देख लेता था। बच्चा रो पड़ा, कल्लन ने मुड़कर कालू को प्रश्न की दृष्टि से देखकर कहा—कालू, यह छोटा रोना-शैतान उठा ले चलें न? कालू ने अपनी जबान बंद जबड़े से बाहर लपलपा कर जो कहा, वह मदारी ने शायद स्वीकृति समझी। उसने बच्चे को ले लिया और चल पड़ा।

घर पर पहुँचकर उसे पड़ी, इस छोटे रोने शैतान का क्या किया जाय। हरामज़ादा—उसने उसे गोद में उठाकर कहा—छोटा हरामज़ादा! इसे मौत उठा ले। मैं इसको क्या करूँ? मैं इसे कहाँ लिये फिरूँ? इसकी मा मेरे पास आकर रहे न? यह ज़रूर हराम का है, इसी से इतना सुन्दर है। उसने उलट-पुलटकर उसे देखा। वह उसे लिये हुए सुजान अहीर के यहाँ गया और कुछ दूध माँग लाया। सुजान ने कहा—भैया, बालक बड़ा होनहार है। हराम का है तो क्या हुआ? इसे पालो और बड़ा बनाकर कोम बढ़ाओ।

मदारी ने कहा - बड़ा रोना बच्चा है। हराम की औलाद है न?

घर पर लाकर दूध गरम कर उसे पिलाया। गरम दूध पाकर बालक सो रहा। उस दिन मदारी का नगर का खेल रह गया। वह कालू को बच्चे की खाट के पास बिठाकर बाज़ार से कुछ गरम कपड़ा लेने चला।

लौटा तो कालू उसे समस्या की तरह देखता हुआ दोनों हाथों को हिलाकर मक्खियाँ डुला रहा है! यह क्या कालू—उसने दुलार से पूछा—तुम इस छोटे शैतान को प्यार करते हो।

कल्लन के सब प्रश्नों का उत्तर कालू के पास था घो-घो करना और जबान लपलपाना।

बच्चा धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। कल्लन जब खेल करने जाता तो उसे छाती से चिपटाकर ले जाता। लोग आश्चर्य की वस्तु की तरह, जैसे वह सदियों पहले की छोट फ़ेरो राजकुमार की ममी हो, उसे देखते। कल्लन कहता—इसे इसकी मा झाड़ी में छोड़ गई थी। यह हराम की औलाद है। बड़ा रोना शैतान है। कालू को दिखाकर वह कहता—कालू, तुम इसके बाप हो न? कालू सिर हिलाकर जिस अन्दाज़ से कुछ कहने की चेष्टा करता उससे तो हम यही समझते हैं, उसे इनकार न होगा।



बच्चे के लिए कल्लन को ख़र्च करना पड़ता हो, यह बात नहीं। उसने देखा, उसकी आमदनी बढ़ गई है। बच्चे को रोटी-दूध मुफ़्त मिलता है। छोटे-छोटे बच्चों के गरम कपड़ों की उतरने उसे गरम रखने को काफ़ी थीं। बच्चे ने पहला उच्चारण जो किया, वह कल्लन से अधिक कालू की भाषा थी। उसने कहा—घो-घो। मनुष्य की भाषा में 'कालू' उसने बाद को और कठिनता से सीखा।

कल्लू ने उसे एक छोटी-सी लाल पगड़ी ला दी। अब वह पैदल चल लेता था। छोटी-सी लाल पगड़ी बाँधकर वह कैसा भला लगता था। कालू उसको देखकर मन में प्रसन्न होता। जब वे अकेले होते तो तरह-तरह के खेल खेलते। कालू पीठ के बल लेट जाता और उसे पंजों से मारता। बालक उसका नाम लेकर हँसता। कल्लन के आते ही कल्लू गम्भीर बन जाता और बालक भी तब उसे उस तरह नोचता-खसोटता नहीं। जैसे आपस की साँठ-गाँठ हो।

उसका कोई नाम न था। कालू ने उसे क्या नाम दिया, सो हम नहीं जानते। कल्लन अवश्य उसे—ओ बे! हरामज़ादे! शैतान! रोने! आदि नामों से पुकारता। कुछ नामों से बच्चे की विशेषता प्रकट होती, कुछ से कुछ भी नहीं। उसकी मा का नाम नहीं था, पिता का नाम नहीं था और स्वयं उसका कोई नाम नहीं था।

बच्चा अब समझदार हो गया था। वह दूर-दूर खेलने निकल जाता। कालू अधिकतर उसका साथ देता। गाँव के कुत्ते जब उसे भोंककर डराते, कालू पीछे से मोर्चे पर आ जाता, और कालू उसे मीठे-मीठे बेर देता और उनके लिए काँटों में देर तक अटकता। जब और जितनी बार वह उसे अपने पुरुषार्थ का कुछ दे सकता, वह प्रसन्न होता और उसकी प्रसन्नता उसकी घो-घो से जान पड़ती।

बालक अब बड़ा हो गया था। वह नगर को जाता। वह देखता, दूसरे छोटे-छोटे बालक हैं। वे बालक खेलते हैं, झगड़ते हैं और मिल जाते हैं। घर की एकरसता से वह जैसे उकता गया था। घर पर कालू था जो भालू था और कल्लन था जो कालू से अधिक भालू था। कालू और कल्लन दोनों उससे स्नेह करते थे, परन्तु वह चाहने लगा था खेल के साथी। दूर-दूर गाँव में उसने अपने खेल के साथी बना लिये थे। हाँ, उसका नाम नहीं था और वह विना नाम का ही जान लिया जाता था।

एक दिन बालक कहीं घूमने गया था। कालू उसके साथ नहीं था। साँझ हो गई, रात के पहले घंटे समाप्त हुए और फिर सुबह हो गई। फिर साँझ हुई और बालक लौटा नहीं। मदारी ने क्रोध से कुछ भुनभुनाते दीपक जला दिया। वह गाँव भर ढूँढ आया था। उसने प्रत्येक जाननेवाले से पूछा था—वह हरामज़ादा लौंडा कहीं चला गया।

किसी ने कहा—कल्लन भाई, इधर तुमने उसकी नकेल ढीली कर दी थी। बुरा हुआ!

कल्लन कहता—हराम का जो है। एक गाँव से वह दूसरे गाँव गया। फिर नगर गया। उस हरामज़ादे बालक का कहीं पता न लगा।

कालू द्वार पर प्रतीक्षा करता था। कल्लन थके-हारे की तरह खाट पर पड़ गया। कालू समझता था। उसकी आँखें भीग रही थीं। कल्लन ने उसे पास बुलाकर थपकाया।

कालू, अब वह हरामज़ादा लौंडा भाग गया—उसने कहा।

हरामज़ादा—वह बार-बार कहता।

वह फिर उठा और बाहर चला गया। तड़का हो रहा था, जब वह लौटा। लाल-लाल आँखें कर उसने कालू को घूरते हुए कहा—



उसका सिर तोड़ दूँगा। वह क़दम तो रक्खे!

दूसरे दिन जब वह सात वर्ष पहले की तरह कालू के साथ खेल दिखाने गया, किसी ने पूछा—मदारी वह लड़का तेरा क्या हुआ?

मर गया, हरामजादा—उसने थोड़े में कहा। हराम के बच्चे का कौन एतबार—वह होठों में गुनगुनाया।

दिन बीते, रातें बीतीं और एक पखवाड़ा बीत गया। सुबह से बड़ी तेज़ आँधी चल रही थी। सब अन्धकारमय था। सड़क पर पत्थर-कंकड़ उड़ रहे थे और वे गोलियों के छर्रों की तरह लगते थे। बाहर पेड़ जैसे दैत्य झकझोर रहे हों। कल्लन और कालू दो प्रेतों की तरह दरवाज़ा बंद कर बैठे थे। सहसा कालू उठकर दरवाज़े के पास गया। पंजे के बल खड़े होकर घो-घो करते हुए उसने दरवाजा खोल दिया। बाहर की आँधी आँधी की तरह हड़बड़ाकर घुस आई।

धूल जब साफ़ हुई कल्लन ने देखा, एक कोने में वह खड़ा है।

क्या है रे, निकल यहाँ से—उसने झपटकर उसे पकड़ लिया और दरवाज़े की ओर ढकेल दिया—जा अपनी हरामज़ादी मा के पास।

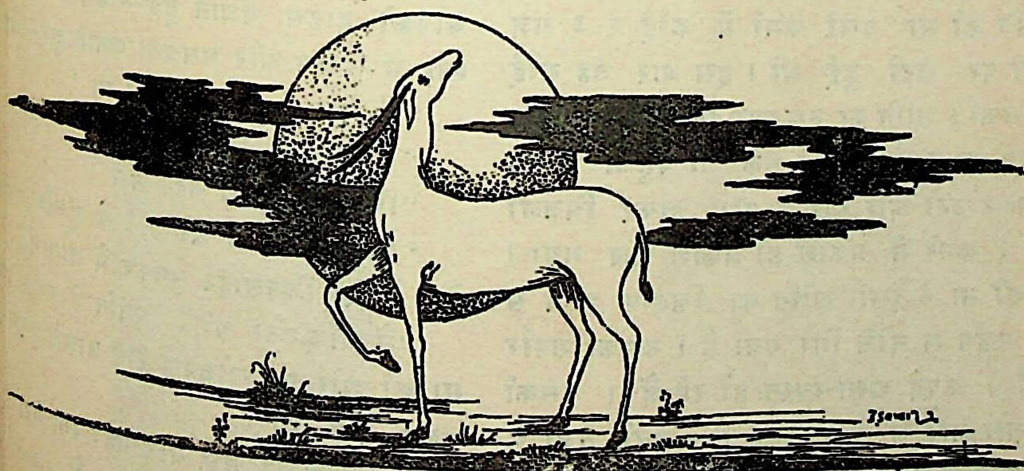
बालक स्तब्ध रह गया। दरवाज़ा कसकर पकड़ते हुए उसने केवल कहा—मैं भूखा हूँ।

कल्लन ने देर तक उसे घूरा। बाहर बड़े ज़ोरों में आँधी चल रही थी। एक बड़ा पेड़ आवाज़ करता हुआ गिर पड़ा और बिजली कड़क उठी।

वह हाथ में रोटी का एक बड़ा टुकड़ा लिये लौटा।

इधर आ। किवाड़ बन्द करता आ और इसे खा—हरामज़ादे! उसने डाँटकर कहा।

जैसे तीन दिन का भूखा हो, वह उस टुकड़े पर टूट पड़ा था और मदारी की गालियों का ध्यान न कर खाये जा रहा था।



मुर्दा

कुँअर मोहनसिंह सेंगर

(१)

"मा, मा, देख फिर वही जा रहा है।"

पर शायद किसी ने इसे सुना नहीं। स्वयं शांति भी इसको न सुन सकी होगी। वृक्षों के अंतराल, बस्ती के सुषुप्त प्रांगण और काँपते हुए शीत वायु के अंतस्तल को चीरती हुई यह आवाज़ विभावरी की निस्तब्धता में विलीन हो गई।

कोई २-३ मिनट बीते होंगे। शांति ने फिर ज़ोर से चिल्लाकर कहा—"मा-मा, देख वह मुझे भी लिये जा रहे हैं।........हाय, मा मुझे बचा। अरे, मुझे कोई बचाओ।"

शांति की मा उसी कमरे में कोई २-३ गज़ की दूरी पर लेटी हुई थी। इस बार वह सोई न रह सकी। शांति का उच्च स्वर निद्रा के आवरण को पार कर उसके कानों तक जा पहुँचा। वह हड़बड़ाकर उठी और द्वार के पास जाकर बिजली जलाई। कमरे में प्रकाश ही प्रकाश फैल गया। शांति की मा ने देखा, शांति का लिहाफ़ आधे से ज़्यादा पलँग से नीचे गिर गया है। उसका शरीर खुला है। कपड़े अस्त-व्यस्त हो रहे हैं। उसकी साँस ज़ोर-ज़ोर से चल रही है—बड़ी तेज़ी से वह हाँफ़ रही है। मुँह उसका एकदम लाल हो रहा है। ललाट पर और गले के नीचे पसीने की बूँदें साफ़ दिख रही हैं।

कुछ क्षण किसी अनिष्ट की प्रत्यक्ष आशंका से काँपकर, कुछ सोचने का विफल प्रयत्न कर शांति की मा ने पास की खूँटी पर टँगे हुए तौलिये को उतारा और शांति का पसीना पोंछते हुए घबराई-सी आवाज़ में पूछा—"शांति, क्या हुआ बेटा, छाती पर हाथ आ गया क्या ?"

शांति ने एकदम आँखें खोल दीं। उनमें नाच रहा था भय, बेचैनी और आत्म-विस्मृति।

एक अँगड़ाई लेते हुए शांति ने कहा—"सुबह हो गया क्या मा ? बिजली अभी तक जल रही है !"

"नहीं, सुबह नहीं हुई, मेरी रानी बेटी ! अभी रात काफ़ी है।" शांति की मा ने अपने आपको ढाढस बँधाते हुए—अपनी घबराहट के स्वर में संतोष और प्रसन्नता जताते हुए—कहा।

"तो तुम अभी सोईं नहीं मा ?"

"मैं सो गई थी, बेटा।"

"फिर इस समय यहाँ कैसे ?"

"छाती पर हाथ आ जाने से तू चौंक उठी थी, बेटा। तेरी चिल्लाहट सुनकर मैं जाग गई।"

"मैं चौंक उठी थी !" शांति ने गर्दन उठाकर मा की ओर एक खोजपूर्ण दृष्टि डालते हुए कहा—"कब, कैसे, मा ?"

"अभी-अभी, तुझे याद नहीं क्या बेटा ?"

"हाँ, कुछ-कुछ याद आ रहा है.......।" शांति की आँखें चमकने लगीं। उसके शरीर के रोम एक



पं० विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक



श्रीश्यामनारायण बैजल एम्० ए०



श्रीउपेंद्रनाथ "अश्क" बी० ए०, एल्० एल्० बी०



श्रीमोहनसिंह सेंगर



उठ खड़े हो गये। साँस फिर तेज़ी से चलने लगा। छाती ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगी। शांति ने सारे कमरे में नज़र घुमाई और फिर एकदम उठकर मा के गले से लिपट गई और बोली—"मा, देखो मैं तुमसे कितनी बार कह चुकी हूँ कि मुझे अपने साथ ही सुलाया करो। अकेली सोने में मुझे बुरे सपने........मा........मुझे डर....लग....रहा.... है!" कहकर शांति और भी ज़ोर से अपनी मा की छाती से चिपट गई।

मा का हृदय दहल उठा। उसकी आँखें भर आईं। कुछ सोचने का उसने प्रयत्न किया। उसने देखा—काले भूत और गहन अंधकारमय भविष्य के बीच यह अभागा वर्त्तमान का क्षण, साँय-साँय करती हुई नागिन-सी अभागिनी हवा काली-काली रात और बिजली के प्रकाश से आलोकित कमरे में भरा हुआ दो आत्माओं का सघन अंधकार! सब अपनी-अपनी गति से चल रहे थे, पर उसकी प्राणों से प्यारी बेटी शांति ?............ ओह!

१६ वर्ष की शांति को भग्न-हृदया माता ने गोद में उठा लिया और अपने पलँग की ओर चलते हुए कहा—"चल बेटी, मैं तुझे अपने साथ ही सुलाती हूँ। अब डर न लगेगा।"

शांति का ख़ाली पलँग मानों उत्सुकतापूर्वक पूछ रहा था—"अब क्या शांति के डरने के दिन हैं! क्या अब वह मा के साथ सोने लायक़ है?"

(२)

थाली में रक्खे हुए कटोरे में खीर परोसते हुए शांति की मा ने अपने पति से कहा—"देखो, मैं तुमसे कितनी बार कह चुकी हूँ, लड़की की हालत बिगड़ती जा रही है और तुम कुछ ध्यान नहीं देते।"

"तो तुम्हीं बताओ न, और क्या करूँ?"—शांति के पिता ने झुँझलाते हुए कहा—"वैद्य, हकीम, डाक्टर, ओझा, औलिये, पीर-पैग़म्बर, देवी-देवता, जादू-टोना, मैस्मेरिज़्म और न-जाने किस-किस की शरण ले चुका हूँ। अब तुम जो बताओ, वह करूँ। दौड़-धूप करने में या पैसा ख़र्चने में अगर मैंने कोई सुस्ती या कंजूसी की हो, तो तुम मुझे दोष दे सकती हो। प्रयत्न करना मनुष्य के हाथ है, पर सफलता मिलना या न मिलना तो विधाता के ही हाथ में है।"

"तो फिर लड़की को हाथ से गई समझो।"

"यदि ईश्वर को यही अभीष्ट है, तो तुम, मा और हकीम-औलिये सब मिलकर भी उसे बचा नहीं सकते।"

शान्ति की मा साड़ी में मुँह छिपाकर सिसक-सिसककर रोने लगी। शान्ति के पिता ने भोजन समाप्त कर थाली में हाथ धोये और उठ खड़े हुए।

(३)

अपने कमरे में आरामकुरसी पर लेटी हुई शान्ति एक पुस्तक पढ़ रही थी। सामने मेज़ पर रक्खी हुई टाइम्पीस टिक-टिक टिक-टिक कर रही थी। जब-तब वह सामने से पुस्तक हटाकर घड़ी पर भी एक नज़र डाल लेती थी। धीरे-धीरे उसके स्कूल जाने का समय हो रहा था। अकस्मात् उसके कानों में आवाज़ पड़ी—'रामराम सत्य है!' वह एकदम चौंक पड़ी। उसका ध्यान पुस्तक के पृष्ठों से हटकर दूर सड़क पर आती हुई इस अभागी जन-मंडली की ओर खिंचा चला गया। उसका चेहरा एकदम निस्तेज हो गया। साँस के आने-जाने में असाधारण तेज़ी आने लगी। ज्यों-ज्यों शब्द पास आता गया, उसके हृदय की धड़कन बढ़ने लगी; आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं।

शब्द और पास आया। शांति के कल्पना के घोड़े दौड़े—ख़बर लाये कि नंगे सिर, नंगे पाँव अभागे लोगों की एक मंडली है। बीच में चार आदमी कंधे पर सीढ़ी रक्खे हैं। उसमें एक मुर्दा सोया है। वह पुरुष है। नहीं, नहीं, स्त्री है और वह भी सुहागिन; क्योंकि शव के ऊपर गोटा लगी हुई लाल रंग की साड़ी जो रक्खी है। हाँ, हाँ, वह अवश्य कोई स्त्री है। पर क्या शान्ति-जैसी?



छिः, शान्ति-जैसी भला कैसे हो सकती है? शान्ति कुमारी है, वह विवाहिता, सुहागिन और लड़के-लड़कियों की मा जान पड़ती है। शान्ति पढ़ी-लिखी है, बड़ी भावुक है—वह ऐसी थोड़े ही होगी? पर वह है कैसी—गोरी या काली? शान्ति का रंग तो गुलाब को भी शरमानेवाला है। पर हाँ, शान्ति से भारी वह अवश्य है। देखो न, अर्थी उठानेवाले आदमियों के पाँव कैसे भारी पड़ रहे हैं, कंधे भी दबे जा रहे हैं।

आवाज़ बिलकुल नज़दीक आ गई। शान्ति को ऐसा लगा, मानो उसके घर के सामने खड़े होकर हज़ारों आदमी उच्च-स्वर से कह रहे हैं—'रामराम सत्य है!' शान्ति से बैठा न रहा जा सका। पर उसके पाँव उठने से इनकार कर रहे थे। उसे ऐसा जान पड़ रहा था, मानो शत-सहस्र कंठों से निकला हुआ 'रामराम सत्य है' का उच्च घोष उसके कानों के पर्दे फाड़कर उसके हृदय में पहुँचकर हज़ारों साँप-बिच्छुओं के एक साथ दंशन करने की भाँति ज़ोर से काट रहा था। मानो एक तीव्रगामी भारी जल-प्रवाह उसके तिनके से हृदय को अगम-अथाह जल-राशि में बहाये लिये जा रहा था। जैसे कोई डाक्टर एक साथ उसके सैकड़ों इंजेक्शन लगा रहा हो।

आवाज़ अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर कुछ ढलने लगी। शान्ति अब न बैठ सकी। उसे ऐसा लगा, मानो उसका कोई प्रियजन सदा के लिए उससे बिछुड़ रहा है। उसने अपने हाथ की पुस्तक फेंक दी और तेज़ी से खिड़की की ओर बढ़ी। चिक हटाकर उसने देखा, कुछ आदमी एक शव को लिये 'रामराम सत्य है' कहते हुए तेज़ी से श्मशान की ओर बढ़े जा रहे हैं। शान्ति चित्र-खचित-सी खड़ी यह सब देखती रही। उसकी दृष्टि के सामने एक मुर्दा सड़क पर से गुज़र रहा था। पर अन्तर्दृष्टि से वह देख रही थी। शान्ति का—स्वयं उसी का—शव सड़क पर पड़ा है और 'रामराम सत्य है' कहनेवाले लोग उसे लाँघकर, कुचलकर, ठुकराकर, आगे बढ़े जा रहे हैं। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो हज़ारों व्यक्ति उसके मुँह पर पदाघात कर निकल गये।

शान्ति देखती रही। झुककर देखती रही। फिर खिड़की के बाहर आधा शरीर निकालकर जहाँ तक देख सकती थी, देखती रही। आख़िर जब शव आँखों से ओझल हो गया, 'रामराम सत्य है' का शब्द अस्पष्ट हो चला, तो वह मुड़ी, एक दृष्टि अपने कमरे में चारों ओर डाली और चिल्लाती हुई बाहर निकली—"मा, मा, देख वहाँ फिर जा रहा है!"

शान्ति की मा आटे के हाथ धो रही थी। बोली—"क्या है बेटा?"

"क्या, क्या, अपनी आँख से आकर देख, फिर कोई मुर्दा जा रहा है।"

शान्ति के पास आते हुए उसकी मा ने कहा—"जाता होगा, बेटी। यह राजमार्ग है। इधर होकर दिन भर में न-जाने कितनी चीज़ें आती-जाती हैं। तू भला किस-किस से ख़ुश-नाख़ुश होगी?"

"तुम तो फिर वही बहकावे की बातें करने लगीं। क्या इतने बड़े शहर में और कहीं मकान ख़ाली नहीं मिलते? जब तुम्हें मालूम है कि यह रास्ता श्मशान को गया है, इस पर से होकर रोज़ मुर्दे गुज़रते हैं, जिन्हें कि मैं देख नहीं सकती, तो क्या इसे बदलना आवश्यक नहीं?"

मा ने शान्ति को छाती से लगा लिया और उसके मुँह पर हाथ फेरते हुए कहा—"नहीं मेरी रानी बेटी, तू नाराज़ न हो, अगले महीने इस मनहूस मकान को ज़रूर बदल देंगे। मैं तो ख़ुद इस अभागे मकान में नहीं रहना चाहती। यह तो तेरे पिता की ही लापरवाही का फल है बेटी, कि ८-८ महीनों का किराया चढ़ा रक्खा है, जिसे न एक साथ दिया जा सकता है और न मकान ही बदला जा सकता है।"

"तो मैं मर जाऊँ, तब बदलना, अच्छा!"

"दुर पगली, ऐसी बात मुँह से न निकाल।



बेटा, खाना खा ले। तेरे स्कूल जाने का समय हो गया।"

"हाँ, अब खाने के बहाने भुलावा दे दो। अच्छा चलो।"

(४)

शान्ति अपनी कक्षा में पहुँची और किताबें डेस्क पर रखकर अपनी जगह पर बैठी ही थी कि उसकी एक सहेली ने आकर कहा—"शांता, तुझे मालूम है, आज विमला क्यों नहीं आई?"

"नहीं तो"—शान्ति ने अन्यमनस्कतापूर्वक कहा।

"आज उसकी मा मर गई है!"

"उसकी मा मर गई है?" शान्ति ने चौंककर आँखें फाड़कर अपनी सहेली की आँखों में धीरे-धीरे उमड़ते हुए आँसुओं को देखा।

"हाँ, तभी तो आज मैं चौथे घंटे के बाद छुट्टी लेकर जा रही हूँ।"

"क्या उसे जला आये?"

"हाँ, हाँ। आज प्रातःकाल ६-६॥ बजे। तुम्हारे घर के आगे होकर ही तो उन्हें श्मशान ले जाया गया है।"

शान्ति इस बार कुछ न बोली। चल-चित्र की भाँति एकदम पट-परिवर्त्तन हुआ। शान्ति को भान हुआ, वह अपने कमरे में आरामकुरसी पर बैठी कोई पुस्तक पढ़ रही है। उसके कानों में शत-शत कंठों का यह उच्च स्वर प्रवेश कर रहा है—'राम-राम सत्य है!' कल्पना के घोड़े फिर चले। उसने देखा, लोग विमला की मा को लिये जा रहे हैं—श्मशान की ओर—जलाने के लिए! ओफ़....

अध्यापिका ने पूछा—"शांति, अच्छा तुम बतलाओ—मुग़ल-साम्राज्य के पतन के क्या-क्या कारण थे?"

शांति का स्वप्न टूटा। खड़ी होकर उसने कहा—"मुझे क्षमा कीजिएगा, आज मैं कुछ न बता सकूँगी। मेरा सिर बड़े ज़ोर से घूम रहा है। मेरी तबियत ठीक नहीं है।"

"तो फिर स्कूल क्यों आईं? तुम्हें छुट्टी ले लेनी चाहिए थी।"

"सुबह तबियत ज़्यादा ख़राब नहीं थी, इसलिए चली आई। अब कृपा कर मुझे छुट्टी दे दीजिए।"

"अच्छा जाओ।"

शांति ने पुस्तकें उठाईं और बिना किसी से कुछ कहे-सुने कमरे से बाहर निकल आई। घर पहुँचते-पहुँचते उसे तेज़ बुख़ार हो आया और वह अपने कमरे में जाकर सो रही।

(५)

चार मास बाद।

अपने पिता की गोद में सिर रक्खे शांति रो रही थी। वे उसे ढाढस बँधा रहे थे। कह रहे थे—"बेटा शान्ति, रो मत, तुझे तो उल्टी मुझे सान्त्वना देनी चाहिए। पर तू तो स्वयं इतनी रो रही है कि मेरा धीरज छूटा जा रहा है।"

"भला, मा के बिना मैं कैसे रहूँगी, पिताजी? इस घर में मेरा जी अब कैसे लगेगा? आप पुरुष हैं, सारा दिन घर के बाहर बिता देंगे। पर मेरा समय कैसे कटेगा?"

"बेटा, इसका जवाब मैं क्या दूँ? मा-बाप सदा किसके जीवित रहे हैं?........देख, लोग जमा हो गये हैं, मैं नीचे चलता हूँ। तू....रो....ना....म....त!" शांति के सिर पर हाथ फेरते हुए उसके पिता नीचे चले गये। शांति बैठी-बैठी सिसकती रही। उसकी अजस्र अश्रुधारा और भी वेगवती हो गई।

सहन में आकर उसने देखा, उसकी मा का शव सीढ़ी पर बाँधा जा चुका है। देखते ही देखते वह बाहर ले जाया गया। उपस्थित स्त्री-पुरुषों ने एक बार फिर बड़े ज़ोर से रोना आरंभ किया और.... और चार आदमी शव को उठाकर चल दिये! पीछे चलनेवाले कह रहे थे—'रामराम सत्य है!'

शांति अस्त-व्यस्त वस्त्रों में सबसे पीछे रोती-बिलखती दौड़ी जा रही थी। रातभर रोने से



उसकी आँखें लाल हो रही थीं और कुछ-कुछ सूज भी गई थीं। मार्ग में दो-एक व्यक्तियों ने उसे देखा और सहानुभूति एवं समवेदना दिखाते हुए बोले—"बेचारी इस लड़की की मा मर गई जान पड़ती है। देखो, कैसी बेहाल हो रही है।"

शांति के हृदय की ज्वाला को बढ़ाने में ये शब्द ईंधन का और उसकी उमड़ती हुई आँसुओं की बाढ़ को और भी उद्विग्न रूप देने में तूफ़ान का काम कर रहे थे।

शव को उतारकर चिता पर रख दिया गया। सब ओर से उस पर मोटी-मोटी लकड़ियाँ चुन दी गईं। जब आग लगाई जा रही थी, तो शांति ने मुँह फेर लिया और अपनी दोनों आँखों को हथेलियों से मज़बूती से मूँद लिया।

चड़चड़ाहट की आवाज़ सुनकर शांति ने चिता की ओर देखा। उसकी मा की ममता, हँसी, सहज स्वभाव, भविष्य की आकांक्षाएँ लपलपाती हुई लाल-लाल लपटों में धुआँ बनकर अनंत आकाश की ओर उड़ रही हैं। शांति के जी में आया—वह भी उसी में जल मरे। पर छिः, संसार इसे क्या समझेगा? उसके जी में आया कि एक बार अपनी सारी शक्ति बटोरकर ज़ोर से रोकर कह दे—'मा'—पर इस समय साहस उसके पास कहाँ था? चिता जल रही थी—मूक व अचल शांति उसे निर्निमेष दृष्टि से देख रही थी।

(६)

शांति ने देखा—उसकी मा उसी स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ उसके पलँग की ओर बढ़कर कह रही है—"बेटा, मुझे इतनी जल्दी भूल गई क्या? मेरी रानी बेटी—"

भय, आह्लाद और आश्चर्य से शांति काँप उठी। यह क्या? क्या सचमुच यह उसकी मा ही है! तो इतने दिन तक यह कहाँ छिपी थी? वह तो मर गई थी न? नहीं, यह सामने प्रत्यक्ष जो खड़ी है! हाँ, हाँ, शांति की मा ही तो है यह!

"अच्छा, मुझसे बोलेगी भी नहीं? भूल गई क्या?"

"मा, मा!" आह्लाद से शांति चिल्ला उठी।

"हाँ बेटा, तू इतने दिन कहाँ रही? पगली कहीं की—"

"मा! मैं.......हाँ, हाँ, मैं तुम्हें भूली नहीं हूँ। मुझे....डर...."

"दुर पगली, अभी तक तुझे डर ही लगता है। जवान होने आई, अब डरती ही रहेगी क्या?"

शांति की साँस ज़ोर-ज़ोर से चल रही थी।

"डर मत, मेरी रानी बेटी। अगले महीने ज़रूर यह मकान बदल देंगे। मैं तो खुद इस अभागे मकान में नहीं रहना चाहती। यह तो तेरे पिता की लापरवाही का फल है बेटी, कि दस-दस महीनों का किराया चढ़ा रक्खा है—जिसे न एक साथ दिया जा सकता है और न मकान ही बदला जा सकता है।"

"तो मैं मर जाऊँ, तब बदलना, अच्छा!"

"दुर पगली, ऐसी बात मुँह से न निकाल। चल, खाना खा ले। तेरे स्कूल जाने का समय हो गया।"

"हाँ, अब खाने के बहाने भुलावा दे दो। अच्छा चलो।"

शांति एकदम उठ खड़ी हुई। आँखों को मल-कर उसने देखा। चारों ओर अंधकार फैला है। वायु की साँय-साँय निशा की निस्तब्धता को भंग कर रही है। वृक्षों के पत्तों का मरमर शब्द रोता हुआ-सा जाकर क्षितिज में विलीन हो जाता है। क्या तो शांति यह क्या स्वप्न देख रही थी! क्या सचमुच उसकी मा उससे बातें नहीं कर रही थी? यह सब क्या था?

शांति अपने कमरे से बाहर आई। देखा, अँधेरा है। आकाश में कुछ तारे टिमटिमा रहे हैं। बस। वह ज़ीने से उतरकर नीचे आई। रसोई घर के किवाँड़ खोले—देखा, कहीं कुछ न था। घर का द्वार खोला—बाहर चबूतरे पर आई।



कहीं कुछ न था । चबूतरे से उतरकर वह सड़क पर आई । इधर-उधर देखा । कहीं कुछ न था । कुछ क़दम आगे चली । पीछे मुड़कर देखा—कहीं कुछ न था । वह फिर आगे बढ़ी ! पास की झोपड़ी में सोते हुए किसी व्यक्ति ने खाँसा—शांति उसी ओर बढ़ी । झोपड़ी के पास जाकर देखा—कहीं कुछ न था । वह और आगे बढ़ी—कुछ और आगे बढ़ी—आगे बढ़ती ही गई—श्मशान आ गया—फिर आगे बढ़ी । हाँ, यही तो चिता है, जिस पर उसकी मा को जलाया गया था । शांति को जान पड़ा—मानो उसकी मा वहाँ सो रही है । लकड़ियों का बोझ लादे नहीं—राख की एक उजली झीनी चादर ओढ़े—शांत, सस्मित और प्रसन्न वदन ! हाँ, हाँ, उसी की मा !!

शांति नीचे झुकी, उसकी उँगलियाँ शीतल राख में कुछ खोई हुई चीज़-सी ढूँढने लगीं । पर कहीं कुछ न था । उसे दिख रहा था, उसकी मा वहीं सो रही है । पर....पर....कहाँ....कैसे ?

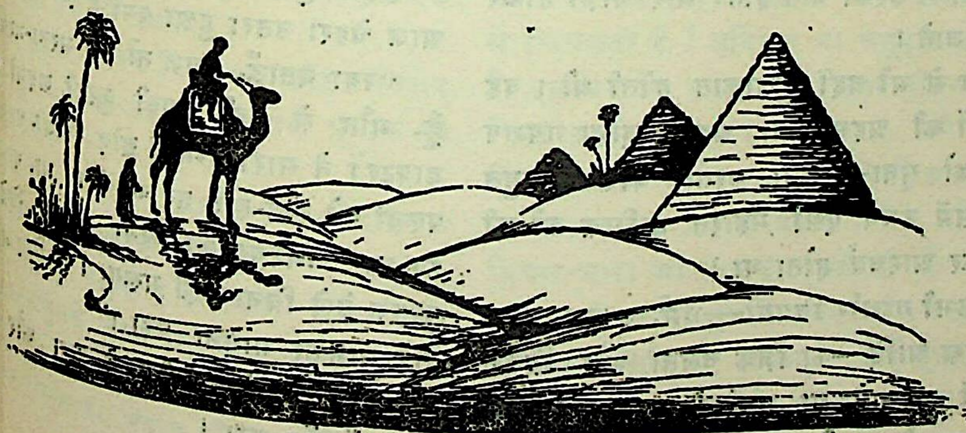
झुँझलाकर उसने राख की एक मुट्ठी भर ली और अपने मुँह के पास ले जाकर देखने लगी । अनायास उसके मुँह से निकल पड़ा—"इसमें सोई है मेरी मा, विश्व की मा, ईसा और बुद्ध की मा, राजा और सम्राटों की मा, धर्मात्मा और पापी की मा, भले और बुरे की मा, स्त्री और पुरुष की मा ! कितनी प्यारी, पवित्र और श्रद्धास्पद है यह राख !"

दूसरे ही क्षण शांति ने मुट्ठी की वह राख लेकर अपने मुँह पर पोत ली और खिल-खिलाकर हँसती हुई बोली—"यह है मेरी मा । इसमें छिपी है मेरी मा । मेरी प्यारी मा । विश्व की मा, ईसा और बुद्ध................"

× × ×

दूसरे दिन प्रातःकाल कुछ लोग खड़े कह रहे थे—"श्मशान में यह बिना जला मुर्दा कैसा पड़ा है ?"

"न जाने कौन है ? कोई लड़की जान पड़ती है !" एक ने कहा ।



दार्शनिक

श्रीनरोत्तमप्रसाद नागर

कब, क्यों और कैसे हमारे साथ दिनेश का संसर्ग स्थापित हुआ, यहाँ इसका इतिहास देने की ज़रूरत नहीं। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि वह दार्शनिक था, शरीर से दुबला-पतला, आकृति के 'कट' से शहरी, 'मैनर्स' के लिहाज़ से अच्छे घर का। हाँ, उसकी आँखों में उसकी एक निजी विशेषता थी, चेहरे पर वे ही वे दिखाई देती थीं। उनमें बड़ी चमक थी। संक्षेप में कुशाग्र बुद्धि का आईना थीं।

शरीर-रक्षा के निमित्त रोज़ की नपी-तुली 'चक्की' पीसने के बाद शाम को 'अय्याशी' की ज़रूरत पूरी करने के लिए हम सब मुख़्तार साहब के कमरे पर जमा होते। गम्भीर-से-गम्भीर और हल्की-से-हल्की बातें होतीं और ताज़ा होकर घर लौट जाते।

दिनेश से भी वहीं मुलाक़ात होती थी। वह हम लोगों की अहमक़ाना, अक़्लमन्दाना गपशप गुफ़्तगू को सुना-ही-सुना करता, बोलता बहुत कम। इसमें उसने ऐसी महारत हासिल की थी कि देखकर आश्चर्य होता था।

जब कभी गम्भीर विषयों—धर्म, अध्यात्मवाद, दर्शन-शास्त्र आदि—का ज़िक्र चलता और दिनेश को उसमें उसकाने या घसीटने का प्रयत्न किया जाता, उसकी सम्मति जानना चाहा जाता तो वह यही कहता कि उसके विचार उसकी पुस्तक में संगृहीत हैं।

हम कोशिश करने पर भी इससे अधिक कुछ नहीं जान पाते। दिनेश का 'छुटकारा' उसकी पुस्तक थी और उसकी ओर निर्देश कर वह मुक्त हो जाता।

जब पुस्तक के बारे में पूछते, तो कहता, "शीघ्र ही छपकर आप लोगों के सम्मुख आयेगी।"

पर दिन-पर-दिन बीतते गये और पुस्तक सामने नहीं आई।

× × ×

चौकड़ी जमा थी—हरीश, सुरेश, दिनेश, मुख़्तार साहब—सभी मौजूद थे।

हरीश सुरेश की ओर मुख़ातिब हुआ—"क्यों, आज चेहरा उतरा हुआ क्यों है?"

"क्या बताऊँ, आज तो बस मरता-मरता बचा हूँ, मौत से बड़ी तगड़ी कुश्ती लड़नी पड़ी। डाक्टरों ने सारी उम्मीदें छोड़ दी थीं, घरवालों ने पल्लों को रोते-रोते तर कर दिया था, पर मैं भी दृढ़ था—निश्चय कर लिया था कि दिनेश की पुस्तक देखे बिना नहीं मरूँगा। आख़िर मौत को हार मानकर भागना पड़ा।"

'जीते रहो!'—हरीश ने कहा और अट्टहास कमरे में गूँज उठा।



इतने में मोहन हाँफता हुआ आया और दरवाज़े में आकर खड़ा हो गया। सबकी नज़रें उधर फिरीं। कहा—"आज कौन-सा मैदान मार आये, जो इतना हाँफ रहे हो?"

"अजी क्या पूछते हो, जैसे ही पता लगा कि आज दिनेश की पुस्तक प्रकाशित हो गई है, भागा-भागा बुकस्टाल पर पहुँचा। वहाँ देखा कि जिज्ञासुओं की एक भीड़ जमा थी। बड़ी धक्कम-धक्का से एक प्रति हाथ आई।"

"कहाँ है, हम भी तो देखें।"

मोहन ने कमर के पीछे छिपा हुआ हाथ सामने किया और एक मोटी-सी सजिल्द पुस्तक सामने रख दी।

कवर पर हाथ से लिखा था, 'मुक्ति का मार्ग' नीचे की ओर लेखक का नाम था, दिनेश।

पुस्तक को खोला गया—प्रत्येक पृष्ठ कोरा।

फिर एक लम्बा ठहाका—

दिनेश कटकर रह गया।

ऐसे अवसर पर मैं और मुख़्तार साहब दिनेश का सहारा साबित होते थे।

× × ×

कुछ मास बाद—

एक दिन सुबह-ही-सुबह दिनेश का निमंत्रण-पत्र मिला। मालूम हुआ कि उसकी पुस्तक प्रकाशित हो गई है और इसके उपलक्ष में वह एक होटल में पार्टी दे रहा है। पुस्तक की एक-एक प्रति भी वहीं भेंट की जायगी।

नियत समय पर सब मित्र उस होटल विशेष में जमा हुए। दुआ-सलाम के बाद पुस्तक की प्रति पेश की गई।

पुस्तक का नाम वही था, मुक्ति-मार्ग और लेखक के स्थान पर था, 'एक दार्शनिक।'

"यह क्या?" हरीश ने इसे देखा और देखते ही कहा—"तुमने इस पर अपना नाम क्यों नहीं दिया?"

"नाम? नाम का महत्त्व ही क्या है। मैं तो एक साधन-मात्र हूँ, संदेश-वाहक हूँ, संदेश के सामने वाहक का महत्त्व ही क्या? यह तो ऐसा ही होगा, जैसे डाकिया प्रत्येक पत्र पर केवल इसलिए कि पत्र-वाहक है, अपना नाम डाल दे।"

"मैं इस तरह के आत्म-त्याग, या सही शब्दों में आत्म-विनाश, का क़ायल नहीं। जिस चीज़ को पूरा करने में जीवन का सबसे अच्छा अंश काम में आया हो, उसका श्रेय न पाना या उसे छोड़ देना कोई माने नहीं रखता।"

"लेकिन उसका पाना ही क्या हमारी इच्छा पर निर्भर करता है। लिखना चाहते हैं, इसीलिए तो नहीं लिखते? वरन् हम लिखते हैं किसी आन्तरिक प्रेरणा, शक्ति, के वशीभूत रहकर। इच्छा रहने पर भी उस प्रेरणा को रोका नहीं जा सकता, न उसे इशारों पर नचाया ही जा सकता है। इसके लिए श्रेय कैसा! यह तो बिलकुल वैसा होगा, जैसा कि कोई बुद्धिहीन युवती, केवल इसलिए कि वह सुन्दर है, पुरुष की आराधना की माँग पेश करने लगे। इस तरह के श्रेय का मूल्य वही होता है, जो कि अबोध बालक के 'हप्पा खा लेने' के एवज़ में थपथपाने या 'बड़ा अच्छा है' की 'प्रशंसा' की चाह का होता है।" दिनेश कहता गया, "श्रेय? नौका को सहायता देनेवाली अनुकूल वायु क्या श्रेय की इच्छा रखती है? और जब वह प्रतिकूल होकर विनाश का साधन बनती है, तब क्या वह लोगों की बदनामी के डर से झिझकती है? प्रतिकूल या अनुकूल वह चलती है, इसलिए कि चलना ही उसका जीवन है, चले बिना उससे रहा नहीं जायगा। उसे पर्वा नहीं कि लोग क्या कहेंगे, वृक्षों, झोपड़ियों और नौकाओं पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा? मेरे मस्तिष्क की विचार-धारा भी बिलकुल ऐसी ही है। प्रकृति के प्रांगण में और मुझमें ज़रा भी अन्तर नहीं। दोनों ही प्रकृति के नियम के वशीभूत हो चलते हैं। फिर अगर मैं कोई पुस्तक लिखता हूँ, तो इसमें मेरा श्रेय क्या है?"



पहली बार ही दिनेश को बोलता हुआ सुन रहे थे। सब आगे को झुक गये थे। दिनेश चुप हो गया था और मुख़्तार साहब पुस्तक के पृष्ठों में उलझे जा रहे थे—और मेज़ पर खाना चुना-चुना रक्खा था।

"इसे रखिए अब," दिनेश ने कहा, "खाना ठंडा हुआ जा रहा है। पुस्तक में कल तक कोई अन्तर नहीं पड़ेगा—वह ऐसी ही रहेगी।"

हरीश—"बिलकुल ठीक। सच पूछा जाय, तो असल फ़िलासफ़ी भी यही है।"

हरीश के 'रिमार्क' के प्रभाव को ज़ाया करते हुए मुख़्तार साहब ने कहा—"बेहतर तो यह होगा कि आप अपनी पुस्तक के मूल तत्वों पर, संक्षेप में, सार-रूप में, प्रकाश डालते जायँ और साथ-ही-साथ खाने को ठंडा भी न होने दिया जाय।"

मैंने मुख़्तार साहब का समर्थन किया। हरीश ने मुँह बिचकाया, फिर खाने की ओर देख कर संतोष की साँस ली और फ़िलहाल चुप होकर रह गया।

दिनेश ने कहना शुरू किया।

"यह दृश्य संसार, मेरी सम्मति में, एक दैवी सिद्धान्त पर टिका है। इसे हम शक्ति, चेतना, ख़ुदा—चाहे जिस नाम से पुकार सकते हैं। इस चेतना का एक खण्ड, सम्पूर्ण से अलग होकर, 'आत्मा' के रूप में आ गया है—मानव की आत्मा, उसका 'जीव' यही है। अपने खण्डित रूप में इसे चैन नहीं मिलता और फिर से उसी सम्पूर्ण चेतना में, जिसका कि वह एक अंश है, मिल जाने के लिए तड़पता रहता है। व्यक्ति का जीवन उस सम्पूर्ण चेतना का एक व्यथित खण्ड है और मृत्यु उस सम्पूर्ण चेतना के साथ पुनर्मिलन है। इसी लिए जीवन, हालाँकि वह एक अनिवार्यतः है, दुःखद है, अशान्ति और पीड़ा का आगार है। इस लोक को 'मृत्युलोक' भी इसीलिए कहा गया है और मुक्ति की कल्पना मृत्यु में ही की गई है। जीवन का अन्तिम ध्येय, उसकी सार्थकता मृत्यु है।"

हरीश कुछ कहना चाहता था, पर मुख़्तार साहब को कुछ कहता देख, चुप हो गया।

"लेकिन आप," मुख़्तार साहब ने कहा, "सम्पूर्ण चेतना से उसके एक खण्ड को अलग क्यों करते हैं?"

"इसलिए कि खण्ड द्वारा उसकी सम्पूर्णता को व्यापक रूप मिलता है। 'अहं' की चेतना उसके विनाश पर ही तो आश्रित है। मृत्यु से ही जीवन की कल्पना, उसकी चेतना, सम्भव हो पाती है।"

"तो आपकी वह सम्पूर्ण चेतना," मुख़्तार साहब ने कहा, "अपने में एक सूनापन महसूस करती है और इसीलिए खण्डों में विभाजित होती है।"

"लेकिन इससे भी बढ़कर 'संहार' का 'असारता' का अस्तित्व है, जो कि 'निर्माण' और 'सार' की 'चेतना' का द्योतक है। अतः वह 'चेतना' ही उसका प्रमुख ध्येय है।"

"तो तुममें और अन्य दार्शनिकों में, तुम्हारी फ़िलासफ़ी तथा प्रचलित धर्म में, कोई अन्तर नहीं। दोनों ही संसार को असार, आँसुओं की दुनिया और जीवन को बन्धन तथा मृत्यु को मुक्ति मानते हैं," मैंने कहा।

"नहीं, बड़ा भारी अन्तर है," दिनेश ने कहा। "यह सही है कि दोनों जीवन को बन्धन और मृत्यु को मुक्ति मानते हैं, लेकिन अन्य दार्शनिकों तथा धर्मों के सामने यह प्रत्यक्ष नहीं है कि परमात्मा ने मानव की सृष्टि क्यों की और सृष्टि करने के बाद उसे बन्धन में क्यों रक्खा? मृत्यु-लोक में ही क्यों पटक दिया, बजाय इसके कि उसे, शान्ति और सुख के साथ, स्वर्ग में ही रक्खा जाता? जब कि मैं मेरे सामने प्रत्यक्ष है।"

"यही न कि वह आधारभूत शक्ति अपनी सार्थकता पाने के लिए अपने को जीवित खण्डों

विभाजित करती है। इसी से उसे अपने अस्तित्व की चेतना प्राप्त होती है।"

"हाँ, बिलकुल यही।" दिनेश ने मुख़्तार साहब की पुष्टि करते हुए कहा।

"कुछ देर के लिए इस तुलना को छोड़ो," मैंने कहा, "सभी आत्मतत्ववेत्ता तथा धर्म मानव की पहुँच से बाहर, अज्ञात, अदृश्य तथा रहस्यमय शक्ति की व्याख्या करने का प्रयत्न करते हैं। मानव-स्वभाव हमेशा प्रत्येक चीज़ को खोलकर देखना चाहता है। वह क्या है, क्यों है, किसलिए है, कहाँ से आई है—आदि प्रश्न उसके मस्तिष्क को घेर लेते हैं और वह उनका उत्तर पाने का प्रयत्न करता है। जब बुद्धिगम्य उत्तर मिल जाता है, तो सन्तुष्ट हो जाता है; नहीं मिलता, तो वह कल्पना से काम लेता है और कोई-न-कोई कारण दे देता है। और इस कारण का संगत-असंगत होना व्यक्तिविशेष के ज्ञान पर निर्भर करता है। यहाँ तक तो, ख़ैर, किसी हद तक ग़नीमत कहा जा सकता है। लेकिन जब इस तरह की अनिश्चित कल्पना को, एक 'सम्भावना-मात्र' को सत्य-सिद्ध रूप में पेश किया जाता है, तो वह निन्दनीय मूर्खता के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाती। प्रायः सभी धर्म और आत्मतत्ववेत्ता इस अपराध के अपराधी हैं। इसके मुक़ाबले में विज्ञान की स्थिति अधिक स्वस्थ और माननीय है। ज्ञात और अज्ञात की सीमाओं को वह खोजता है। इस तरह से वह एक स्थान पर जाकर रुक गया है। उससे आगे जो है, वह फ़िलहाल उसकी समझ से बाहर है। आगे जो कुछ है, उसकी कल्पना वह उस स्थान पर खड़े-खड़े नहीं करता, करेगा भी नहीं, जब तक कि आगे बढ़ नहीं लेगा। इसी लिए वह अनिश्चित, असम्भव और भ्रान्तिपूर्ण कल्पनाओं और विकृत धारणाओं से बचा है। जब कि धर्म और आत्मतत्व शास्त्र कल्पना का सहारा देता है और अब तक के प्राप्त ज्ञान को भी कल्पना से विकृत कर, एक अजीब चीज़ पेश करता है—इस तरह से करे-कराये पर भी पानी फेर देता है............।"

"निश्चित या ध्रुव सत्य-जैसी कोई चीज़ नहीं है," दिनेश ने कहना शुरू किया, "ख़ुद विज्ञान को भी, ज्ञान की वृद्धि के साथ, पूर्वस्थित व्याख्याओं और उनके मूल कारणों में परिवर्तन करने पड़े हैं और आज का 'सत्य' कल अज्ञान की उपज हो सकता है। जो कुछ दृश्य है, साकार है, वह दृश्य वस्तु के परमाणुओं पर के गुणों पर निर्भर करता है। संसार इन्हीं परमाणुओं से बना है। मानव भी इन्हीं परमाणुओं की सृष्टि है। मानव-जाति की सामूहिक चेतना उतना ही ज्ञान पाती है, जितनी कि प्रत्येक परमाणु की सामर्थ्य है। संसर्ग के फल-स्वरूप सीमित चेतना व्यापक रूप धारण करती है। चेतन जीव का विकास इसी तरह होता है। प्रारम्भ में परमाणु बिखरे हुए-से होते हैं, धीरे-धीरे पास आते हैं और संगठित होकर साकार और सजीव हो उठते हैं। एक परमाणु, अपने विकास-क्रम में, सीमा को पार कर चेतना के संसर्ग में आता है। चेतना का प्रारम्भिक रूप उसके लिए अस्पष्ट, धुँधला-सा और प्रकाश-अंधकार का भ्रम-सा होता है। धीरे-धीरे वह स्पष्ट हो जाता है। विश्व के रहस्योद्घाटन के प्रयत्न ठीक ऐसे ही होते हैं—जैसे-जैसे हमारा विकास होता जायगा, प्रकाश अधिकाधिक स्पष्ट होता जायगा।"

"धारणा आकर्षक है, कवित्वपूर्ण भी है, लेकिन है निरी कल्पना ही, आनुमानिक कल्पना के इन महलों में सार कुछ भी नहीं। अज्ञान को आकर्षक भ्रम का लबादा पहनाकर जल्दी से छुटकारा मिल जाता है...." मैंने कहा।

"हाँ, यह आत्म-भ्रम है," मुख़्तार साहब ने कहा, "जिसे हम नहीं जानते, उसे जानने का भ्रम अपने में उत्पन्न करना सुखकर भले ही हो, पर ठीक नहीं है—अनन्त की ओर कल्पना का दामन पकड़कर दौड़ने से कोई लाभ नहीं। स्वप्न-लोक में ज्ञान का भण्डार नहीं है। वह तो यहीं है,



इसी पृथ्वी पर है। प्राकृत विज्ञान इस दिशा में अच्छा प्रकाश डालता है। उसके अध्ययन से पता चलता है कि उन्नति के प्रत्येक क़दम के साथ कोई नया सत्य, नई व्याख्या प्रतिपादित नहीं होती, वरन् उससे यही सिद्ध होता है कि पूर्वस्थापित सत्य, पूर्वस्थापित व्याख्या की धारणा ग़लत थी, अविश्वसनीय थी। फलतः विज्ञान का क्षेत्र उलझने के स्थान पर सुलझता जाता है और उसे अनन्त की ओर दौड़ने की ज़रूरत नहीं होती। प्रकृति विज्ञान के विकास का इतिहास, इस दृष्टि से, पढ़ने योग्य है................"

पास के कमरे से किसी युवती की उत्तेजक हँसी सुनाई पड़ी, गिलासों के खनकने की आवाज़ आई और फिर किसी युवक के कामोत्तेजक स्वर में विलीन हो गई। हरीश के कान खड़े हुए, आँख मारते हुए उसने मुख़्तार साहब की ओर देखा, पर प्रोत्साहन का अभाव देखकर, व्यथित हरकत के साथ, चुप रह गया।

"तो मुख़्तार साहब" मैंने कहा, "आप क्यों नहीं प्रकृति-विज्ञान के विकास पर एक पुस्तक लिखते?"

"इस विषय पर इतना अधिक लिखा जा चुका है कि और कुछ लिखना पिष्टपेषण तो होगा ही, साथ ही मूर्खता पर उतरी हुई धृष्टता भी होगी," मुख़्तार साहब ने कहा।

"नहीं, आपका ख़याल ग़लत है," दिनेश ने कहा, "यह सही है कि बहुत-सी पुस्तकों में पिष्टपेषण होता है, लेकिन इससे मस्तिष्क के आधारभूत तत्त्वों का साम्य ही सिद्ध होता है। एक व्यक्ति के विचार दूसरे से कभी नहीं मिलते, अगर सब एक ही सम्पूर्ण चेतना के खण्ड नहीं होते। सबके आधारभूत तत्त्वों के गुणों में साम्य नहीं होता। इसी तरह, हम देखते हैं कि हमारा अपना कहने के लायक़ कुछ भी नहीं है; जो कुछ है, वह तो एक सम्पूर्ण चेतना की देन है, जिसका कि हम एक खण्ड हैं। यही कारण है, जो मैंने अपनी पुस्तक पर अपना नाम नहीं दिया..."

पासवाले कमरे से युवती की बेसाख़्ता हँसी इस बार ज़ोर पकड़ती जा रही थी, फिर कुर्सियों के ज़ोर से पटके जाने की-सी आवाज़ आई और पैरों की आहट तथा साड़ी की सरसराहट दूर होती महसूस हुई।

हरीश ने घड़ी की ओर देखा और चौंककर बोला—"ओह, बहुत देर हो गई!"

औरों को भी जैसे होश आया—"ओह, बहुत देर हो गई!"

सब उठे और दिनेश से बिदा ले, चल दिये। मुख़्तार साहब, हरीश और मैं साथ-साथ चल रहे थे। कुछ देर सब चुप रहे। फिर हरीश ने कहना शुरू किया।

"एकदम व्यर्थ की बकवास! जिसका न है सिर, न पैर—मालूम होता था कि भूतों की सभा में बातें हो रही हैं! अगर पासवाले कमरे की खिलखिलाहट और सिसकारियाँ और सामने खाना न होता, तो मेरा तो पूरा मरण ही हो जाता!"

"क्यों ख़्वामख़्वाह इतना बौखला रहे हो?" मैंने कहा।

"तुम लोग कोई आदमी हो! एक—दो—तीन—और चार, पूरे चार घंटे तक कहाँ बैठे रहे, और एक भी ऐसी बात नहीं, जिसका कोई मतलब हो, काम की हो, जिसमें कुछ जान हो। और तुम लोग जवान हो! अपने को जवान कहते हो!! काश कि तुम देखते पाते कि स्वयं जवानी तुम लोगों की जवानी पर पूरे चार घंटे तक मर्सिया पढ़ती रही!"

"तो आख़िर तुम चाहते क्या हो, हरीश?"

"मैं चाहता क्या हूँ?—केवल इतना ही कि एक बार तुम लोगों को इस जीवन-क्षेत्र में घास चरने के लिए छोड़ दिया जाय, एक बार तुम्हें आटे-दाल का भाव मालूम हो जाय, तेल और तेल की धार देखने के लिए तुम्हें मजबूर किया जाय, तब मालूम होगा कि आत्मा क्या है—कल्पना



का गेंद या लोहे के चने । सारी फ़िलासफ़ी धरी रह जायगी, कोई भी 'वाद' फिर मिज़ाजपुरसी के लिए न फटकेगा....।'',

उनसे विदा हो अपने घर में दाख़िल हुआ । कमरे की बत्ती जलाई, कपड़े उतारे और अनन्त की ओर खुली हुई खिड़की पर जा खड़ा हुआ। कुछ देर एकटक शून्य की ओर देखने के बाद वहाँ से हटा और कमरे में टहलने लगा । टहलते-टहलते मेज़ पर पड़े एक लिफ़ाफ़े पर नज़र पड़ी। उसे उठाया । पता दिनेश के हाथ का लिखा हुआ था । खोलकर पढ़ना शुरू किया——

"प्रिय बन्धु,

मैं अपना काम पूरा कर चुका और अब अपने अन्तिम ध्येय की पूर्ति कर रहा हूँ——अपने सीमित व्यक्तित्व को अनन्त व्यापकता में विलीन कर सार्थक हो रहा हूँ । इस तक के पहुँचने से पहले ही मैं शारीरिक बन्धन से मुक्त हो जाऊँगा । अपने इस मित्र के शुभ अन्त के लिए कामना करना ।

तुम्हारा दिनेश''

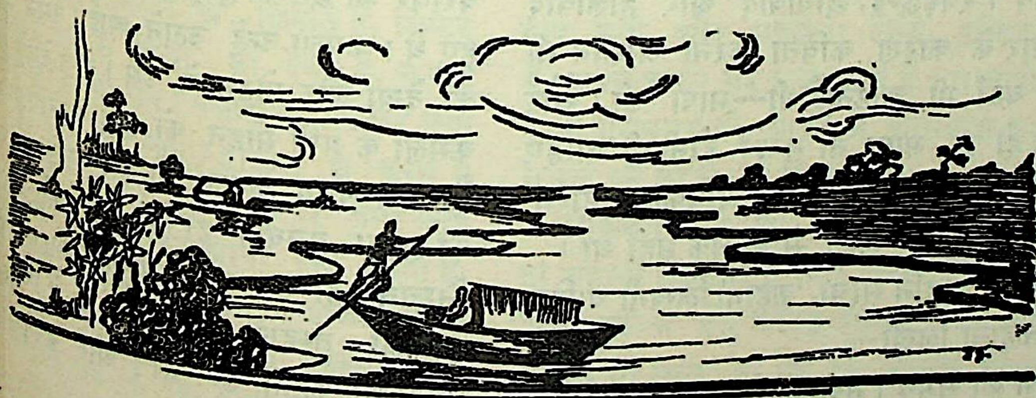
पत्र को पढ़ा और धक-से रह गया । यह कैसा बीभत्स मज़ाक़ ! नहीं, दिनेश ऐसा मज़ाक़ नहीं कर सकता । तो फिर क्या यह भयानक सत्य है ?

पहने-अन-पहने कपड़ों में मुख़्तार साहब के कमरे की ओर लपका । वहाँ मालूम हुआ कि मुख़्तार साहब को भी एक पत्र मिला था और अभी-अभी चले गये हैं ।

दिनेश के कमरे पर पहुँचा । मुख़्तार साहब भी वहीं थे । पलँग के पास आरामकुर्सी पर दिनेश पड़ा था । सिर छाती पर झुका हुआ था । वहाँ ख़ून का धब्बा था, पास में ही रिवाल्वर पड़ा था ।

मुख़्तार साहब ने दिनेश का हाथ अपने हाथ में लिया । मेरी आँखें उनकी ओर फिरीं । धीरे से वेदनापूर्ण आवाज़ आई——'ख़त्म हो चुका !'

दिनेश की आँखें खुली हुई थीं——चमक के साथ उनमें अपूर्व नीरव शान्ति थी, मुक्ति का सन्तोष था ।



'हम तो कहानी लिखेंगे !'

श्रीमती माधवी बी० ए०

मिस्टर 'क' की बड़ी भारी हसरत थी कि किसी तरह उनका नाम अख़बार में छप जाय। लोकसेवी वे थे नहीं, खेल से भी उन्हें शौक़ नहीं था, और शायद इनके ज़रिए वे अपना नाम करना भी नहीं चाहते थे। वे तो चाहते थे लेखक बनना।

लेकिन लेखक बना कैसे जाय? गम्भीर लेख के लिए अध्ययन की जरूरत थी और उन्होंने तो जब से मैट्रिक की परीक्षा में फ़ेल हो पढ़ना छोड़ा सिवा 'दैनिक वर्तमान' और 'साप्ताहिक अर्जुन' के कुछ देखा ही न था। उन्होंने सोचा, कविता की जाय। रबड़छन्द, छायावाद और हालावाद के प्रचार के कारण कविता करना आसान भी है, पर यहाँ भी कठिनाई थी—भाषा की। और कुछ न हो पर भाषा तो सुन्दर होनी ही चाहिए और मिस्टर 'क' का भाषा पर अधिकार सहारनपुरी 'जात्ते' और 'खात्ते' से अधिक नहीं था।

अन्त में उन्होंने सोचा, 'कहानी लिखनी चाहिए' और कहानी लिखी—

शाम का समय। नदी का किनारा। एक युवक, एक युवती।

युवक ने कहा, 'मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, मैना।'

युवती ने कहा, 'मैं भी तुम्हें प्यार करती हूँ तोता!'

थोड़ी देर के लिए मिस्टर 'क' को इन मैना और तोता की प्रेम-बात और चुम्बन-आलिंगन के आदान प्रदान का वर्णन करने के लिए छोड़ दीजिए और मेरे साथ किसी शरीफ़ घर की अकेली, सुनसान छत पर चलिए।

मोहन और कमला पास-पास के घरों में रहते हैं। दोनों का एक दूसरे के घरों में आना-जाना है, बोल-चाल है। उस दिन शाम को मोहन अपने घर की छत पर बैठा कोई किताब पढ़ रहा था। बराबर की छत पर कुछ कपड़े सुखाने के लिए डाले हुए थे। कमला उन्हें उठाने आई। उसने मोहन को देखा और मोहन ने उसे। रोज़ देखते-देखते कमला के प्रति मोहन को कुछ अनुराग हो गया है। इस समय कमला को देख उससे बात करने की इच्छा बलवती हो उठी। पर कहे क्या, वह निश्चय नहीं कर पाता। अन्त में मोहन ने कहा, "कमला, तुम्हारी अम्मा घर में हैं।" कमला सकुचाकर कहती है, 'हाँ!' और कपड़े उठाकर शीघ्रता से चली जाती है।

इस घटना को मिस्टर 'क' की कहानी से



मिलाइए ! कौन-सी आपको अधिक स्वाभाविक और सम्भावनीय मालूम होती है ! ज़रा थोड़ी देर के लिए कल्पना कीजिए, एक हिन्दू का घर जहाँ हवा भी साँस लेते डरती है, वहाँ की लड़की नदी किनारे एक युवक से कहती है, "मैं तुम्हें प्यार करती हूँ तोता !" अगर यह भी मान लें कि युवक-युवती स्वाधीन विचारों के माता-पिता की सन्तान हैं तो भी यह असम्भव है। मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि युवक और युवती एक दूसरे को कितना ही प्रेम क्यों न करते हों, पर अवसर आने पर युवती युवक के प्रश्न का उत्तर मौन से ही देगी। उसकी ज़बान के बजाय उसके चेहरे के भाव इस प्रश्न का उत्तर देंगे। ९९ प्रतिशत युवक-युवतियों के साथ ऐसा ही होता है। आप कहेंगे, सचमुच मिस्टर 'क' की कहानी वाहियात है। पर आपके कहने से क्या, आज पचासों लेखक मिस्टर 'क' की तरह वास्तविक प्रेम की, स्वाभाविकता की और स्त्री-सुलभ लज्जा की हत्या करने पर तुले हैं। स्त्रियाँ असहाय हैं न, और साहित्य के ठेकेदार हैं पुरुष !

अब मिस्टर 'ख' की कार्यवाही सुनिए। आपने अपने नायक-नायिका रक्खे कॉलेज के पढ़े-लिखे, एम० ए० के छात्र और छात्रा मिस रूबी और मिस्टर सक्सेना। मिस्टर 'ख' लिखते हैं, मिस्टर सक्सेना ने जब से 'रूबी' को देखा है, न रात को नींद न दिन को चैन। क्लास में प्रोफ़ेसर क्या कहते हैं, उन्हें पता नहीं। होस्टल के कमरे में मित्रों के ख़त आये पड़े रहते हैं, पर उन्हें कोई खोलता तक नहीं। नौकर खाना रख जाता है, पर उन्हें खाने का ध्यान नहीं......अन्त में दोनों की शादी हो जाती है, या दोनों किसी 'प्रेमनगर' को चल देते हैं, या गंगा का वक्षःस्थल, कैसे 'आर्सेनिक' अथवा रेल की पटरी !'

यह तो मिस्टर 'ख' का कहना है, पर अगर आप पता लगाएँ तो कुछ और ही मालूम होगा। बात यह है कि मिस रूबी ज़रा 'लिपस्टिक' ज़्यादा लगाती हैं और चोटी गूँथते समय आगे की दो-चार छोटी लटों को हवा में उड़ने के लिए यों ही छोड़ देती हैं, और क्लास में जब वे हथेली पर गाल टेककर बैठती हैं तो एक तरफ़ का झुमका चम-चम चमका करता है।

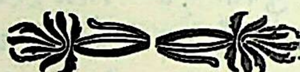
शाम को दो भिन्न-भिन्न स्थानों में दो भिन्न-भिन्न दृश्य दिखाई देते हैं—मिस रूबी से उनकी क्लास की साथिन मिस रेवा कहती हैं, "उसे देखा रूबी, वही मोटा थल-थल सक्सेना। क्लास में हमें कैसे घूर-घूरकर देखता रहता है !" रूबी कहती हैं, "जैसे घुग्घू हो ! बिलकुल उल्लू है !"

दूसरी तरफ़ मिस्टर सक्सेना से मिस्टर वाजपेयी कहते हैं, "क्यों यार, आजकल तो मामला कुछ गहराई में है।" मिस्टर सक्सेना पूछते हैं, 'क्यों क्या हुआ ?' वाजपेयी जवाब देते हैं, 'ओहो ! जैसे ख़ुद जानते ही नहीं ! क्लास में किधर नज़र रहती है जनाब की ?' और सक्सेना हँसते हुए कहते हैं, 'अरे यार ! तुम भी क्या बातें करते हो ? उस रूबी से मतलब होगा तुम्हारा ? दुबली-पतली, जैसे तपेदिक़ की मरीज़ ! मैं तो ज़रा उसके झुमके का 'कट' देख रहा था।' इसके बाद रूबी और सक्सेना दोनों, इम्तिहान देते हैं, अपने-अपने घर चले जाते हैं। न शादी होती है, न प्रेमनगर की यात्रा, न आर्सेनिक का पान, न रेल की पटरी पर शयन।

लेकिन मिस्टर 'ख' को कौन समझावे ? उन्हें तो कहानी लिखनी है और उसके लिए जब तक 'प्रेम-बात' न हो, विरह-व्यथा न हो अन्त में संयोग या मृत्यु न हो तो कहानी अधूरी ही रहती है। वैसे वास्तविक जीवन में चाहे मिस्टर 'ख' की—जब कि वह सातवें दर्जे में एलजबरा के सवाल हल करते होंगे—किसी काली-कलूटा



और कानी-कुबड़ी लड़की से शादी हो गई होगी और 'प्रेम-वार्ता' के नाम पर उन्होंने 'रायल सिनेमा' में बुलबुले-बग़दाद के संवाद ही सुने होंगे, पर इससे क्या होता है, उनकी कल्पना-शक्ति बड़ी प्रबल है और चाहे स्वाभाविकता और वास्तविकता की दिन-दहाड़े हत्या ही क्यों न हो जाय, पर उनका कहना यही है कि "हम तो कहानी लिखेंगे !"



अतीत के अञ्चल में

श्रीसत्येन्द्र बी० ए०

पूर्णिमा की शुभ्र रजनी—

सुषमा अपने 'बेड रूम' (Bed Room) की विशाल खिड़की में बैठी निर्निमेष दृष्टि से देख रही है—सामने सुदूर क्षितिज तक पार्वत्य उपत्यका फैली हुई है। कुछ दूर तक चाँद की निर्मल चाँदनी में जैसे सब कुछ खोया हुआ-सा दिखाई देता है और उसके बाद अन्धकार—पहले हल्का, फिर गहरा और तब और भी गहरा। मसूरी की बिजली की बत्तियों ने 'गन हिल' को झिलमिल कर रखा है, पर फिर भी अँधेरा बना ही रहता है और उससे भी अधिक गहरे अन्धकार ने सुषमा के हृदय में घर कर लिया है।

"साहब नहीं आये हज़ूर!" सुषमा ने घूम कर देखा। उसकी बच्ची की आया खड़ी थी। मानो गहरी नींद से जागकर सुषमा ने कहा 'हूँ!'

आया ने अपनी बात को दोहराया "६ बज गये हैं। बावर्ची पूछ रहा है, साहब का खाना रख दिया जाय?"

सुषमा ने उसी अनिर्लिप्त स्वर में पूछा—"बेबी सो गई?"

"जी हाँ। अभी सोई है।"

मशीन की भाँति उठकर सुषमा अपनी बच्ची के कमरे की ओर चली। एक छोटे पालने पर उसकी बेबी सोई हुई थी। उसका चाँद सा चेहरा छोटे-से मुलायम कम्बल के बाहर निकला हुआ था और दोनों छोटे-छोटे हाथ—मुट्ठी बँधी हुई—दोनों तरफ़ निकले हुए थे। धीरे-धीरे चलती हुई सुषमा पालने के पास जाकर खड़ी हो गई। एक मिनट बाद उसके होठ 'बेबी' के मुख की ओर झुकने लगे और दूसरे ही क्षण वह अपनी बच्ची का मुँह चूम रही थी।

आया ने घबराकर और डरकर कहा, "बेबी जाग जायगी हज़ूर।"

और सचमुच बेबी ने करवट ली। ज़रा सी 'ऊँ हूँ' उसके मुख से निकली और तब वह शान्त हो गई।

तब सुषमा ने आया की ओर मुड़कर कहा, "साहब आज नहीं आवेंगे, बावर्ची से क़हो, खाना उठाकर रखने की कोई ज़रूरत नहीं।"

आया चली गई और सुषमा फिर उसी खिड़की पर आ बैठी, मानो उस चाँदनी



और अँधेरे में से कुछ ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न करने लगी।

ऐसी ही निर्मल और निस्तब्ध रात्रि थी। राकेश की ऐसी ही शुभ्र ज्योत्स्ना और उपत्यकाओं का यही गहरा अन्धकार। इसी प्रकार इसी बँगले में इसी खिड़की पर बैठी सुषमा ऐसे ही शून्य की ओर देख रही थी। दूर से किसी नाच-घर के "ऑरचेस्ट्रा" की क्षीण ध्वनि मार्ग के बँगलों और पेड़ों तथा वनस्पति से पूर्ण उपत्यका को पार करती हुई आ रही थी। उसके साथ ही सुषमा का हृदय भी संगीत की ताल पर झनकार देने लगा था। किसी के साथ हाथ से हाथ, पैर से पैर और साँस से साँस मिलाते हुए नृत्य करने की कितनी तीव्र इच्छा हो उठी थी? सड़क पर से गुज़रनेवाली रिक्शा की घंटी की घननघन ने उसे कितना विचलित कर दिया था और वह सोचने लगी थी, "ये लोग सिनेमा का शो देखकर लौट रहे होंगे—शायद पति-पत्नी हैं, कौन जाने प्रेमी-प्रेमिका ही हों। इनका जीवन कैसा सुखी है? एक ने अपने आपको किस प्रकार दूसरे में लय कर रक्खा है? मैं भी सिनेमा देखूँगी! मैं भी नाच-घर जाऊँगी!" और वह सचमुच उठ खड़ी हुई थी।

उसी समय, इसी तरह आया ने आकर कहा था, "साहब नहीं आये हज़ूर!"

'साहब नहीं आये हज़ूर!" ओह! इन चार शब्दों में कितना विष भरा था? एक सोफ़े पर गिरकर सुषमा ने कहा, "साहब नहीं आये हज़ूर!" और फिर मानो समस्त दिशाएँ कहने लगीं, "साहब नहीं आये हज़ूर!" कमरे की एक-एक चीज़ चिल्ला-चिल्लाकर प्रतिध्वनि कर लगी थी, "साहब नहीं आये हज़ूर!"

और तब भी दूर से 'ऑरचेस्ट्रा' की आवाज़ आ रही थी! सुषमा को ऐसा प्रतीत हुआ, वह भी कह रही हो "साहब नहीं आये हज़ूर!"

सुषमा ने झल्लाकर खिड़की का दरवाज़ा बन्द कर दिया था!

आज वे सब घटनाएँ मानो सिनेमा की तसवीर की भाँति सुषमा की आँखों के सामने नाचने लगी हैं।

तीन वर्ष पूर्व की स्मृति फिर जाग उठी है। आज सुषमा मानो अतीत में से कुछ ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न कर रही है।

× × ×

हाँ, तो तीन वर्ष पूर्व भी ऐसी ही रात्रि थी, यही निस्तब्धता और इसी तरह "साहब नहीं आये हज़ूर" की प्रतिध्वनि!

दूसरे दिन सुषमा के सोकर उठने से पहले ही उसके पति अविनाशचन्द्र लौट आये।

सुषमा जब उठी तो आया ने आकर कहा, "साहब लौट आये हैं!"

उदासीन स्वर में उसने पूछा, "कहाँ हैं?"

"बाहर बरामदे में—चाय पी रहे हैं।"

सुषमा एक अँगड़ाई लेकर बाहर आई। देखा, अविनाशचन्द्र अच्छी तरह गरम लबादे में ढके हुए चाय पी रहे हैं। एक ओर ज़मीन पर 'टाइम्स आफ़ इंडिया' खुला पड़ा था। चाय पीते हुए बीच-बीच में वे "मार्केट रिपोर्ट" पढ़ते जाते थे!

सुषमा ने पास आकर पूछा, "कब आये?"

अविनाशचन्द्र ने अख़बार पर ही नज़र गड़ाये-गड़ाये कहा, "अभी, थोड़ी देर पहले पहले ही गेट * से...।"

* मसूरी जाने के लिए निश्चित समय पर मोटर की सड़क के गेट खुलते हैं।

सुषमा एक कुर्सी खींचकर पास ही बैठ गई थी। अविनाशचन्द्र ने कैफ़ियत देते हुए कहा, "क्या बताऊँ शेयर-होल्डरों की मीटिंग कुछ ज्यादा देर तक होती रही और मुझे 'मोट' न मिल सका।"

सुषमा चुप।

अविनाशचन्द्र कहते रहे, "लेकिन खुशी की बात यह है कि मैं डाइरेक्टरेट में आ गया!" यह कह उन्होंने उत्सुकतापूर्ण दृष्टि से सुषमा की ओर देखा, मानो वे उसके चेहरे पर किसी विशेष परिवर्तन की आशा करते थे।

लेकिन सुषमा उसी तरह निर्जीव-सी बैठी थी। थोड़ी देर बाद उसने कहा, "और यहाँ मैं अकेली घबरा गई थी!"

सुषमा सोच रही थी, "इस पुरुष के हृदय से जैसे किसी ने सारी भावुकता एक बार ही नष्ट कर दी है। मिल, चाय, बग़ीचा, ज़मींदारी, डाइरेक्टरेट, मार्केट रिपोर्ट इनके सिवा मानो सब कुछ शून्य है। जैसे ब्रह्मांड का समस्त आकर्षण इन चार-पाँच शब्दों में आकर केन्द्रित हो गया हो। इनके परे भी कुछ है, उसकी इन्हें कोई चिन्ता नहीं—इच्छा नहीं—आकांक्षा नहीं।"

अविनाशचन्द्र ने कहा, "दोपहर के गेट से जयन्त आ रहा है। साथ में इन्दु भी है।"

सुषमा का ध्यान सहसा भंग हो गया। "जयन्त—इन्दु! अच्छा!! ये सब आ रहे हैं!"

सुषमा सोचती है, "जयन्त आ रहा है!" क्यों? जयन्त का आगमन सुनकर वह इतना विचलित क्यों हो उठी है, जयन्त का नाम सुनकर उसका हृदय क्यों झनझना उठा है? जयन्त! वह दुबला-पतला युवक, जिसकी पतली उँगलियाँ रंग और कूची के सम्मिश्रण से एक नई सौन्दर्यमयी सृष्टि की रचना कर डालती हैं। जिसके भाव भाषा का सहयोग पाकर एक नवीन संगीत को जन्म देने लगते हैं! हाँ, वही तो जयन्त है। डेढ़ वर्ष पहले भी वह आया था और इसी तरह सुषमा की हृदयवीणा को झनझना गया था। अपने पैसा इकट्ठा करने में व्यस्त पति की अनुपस्थिति में जयन्त से उसे कितना आश्वासन मिलता था। पूर्णिमा की निर्मल रात्रि में अपनी वाटिका में बैठकर या सिनेमा के अन्धकार में एक दूसरे के पास बैठे हुए उन्होंने कितनी आत्मीयता का अनुभव किया था? कैसे, उसने कभी-कभी सोचा था, मानो जल की दो धाराएँ विभिन्न दिशाओं से आकर एक अभिन्न धारा में परिवर्तित हो गई हैं! तो वही जयन्त अब फिर आ रहा है? क्यों? अब तो उसका विवाह भी हो चुका है! क्या अब भी जयन्त वैसा ही होगा? वही चपलता! वही मोहक दृष्टि!! वही प्रेमपरिपूर्ण हृदय!!!"

सुषमा के सुख-स्वप्न को भंग करते हुए अविनाश ने कहा, "मुझे एक्ज़ीक्यूटिव इन्जीनियर से मिलने जाना होगा। तुम उनके ठहरने का सब इन्तज़ाम कर देना!"

सुषमा सोचती है, "हाँ, उनके ठहरने का इन्तज़ाम सुषमा तो करेगी ही। जिनके साथ एक बार सुषमा ने इतनी आत्मीयता का अनुभव किया था, क्या आज उनके ठहरने का इन्तज़ाम भी वह न कर सकेगी?"

अविनाशचन्द्र उठकर नहाने के लिए चले गये। सुषमा उसी तरह बैठी रही। तभी उसकी आया छोटी-सी दो महीने की बेबी को गोद में लिये हुए आई। सुषमा ने



उठकर अपनी बच्ची को चूमते हुए सोचा, "मेरी बेबी कितनी सुन्दर है?" और तब उसे ऐसा अनुभव हुआ कि जयन्त, जो उसके इतने निकट आ गया था, मानो दूर जा पड़ा हो। उसने मन ही मन कहा, "लेकिन जयन्त, अब तो मेरा समस्त प्रेम—सारा आकर्षण इस बच्ची की ओर है। अब मैं तुम्हें कुछ नहीं दे सकती! कुछ नहीं!! तुम क्यों आ रहे हो? क्या तुम नहीं जानते, इस दो मास के छोटे बच्चे ने तुम्हें बहुत दूर कर दिया है। जो प्रेम मैंने पति को न दे सकने पर तुम्हें देना चाहा था, वह आज इस बच्ची ने छीन लिया है!"

और सुषमा को अपनी "बेबी" का सौन्दर्य बढ़ता-सा जान पड़ा। उसने उसे ज़ोर से अपने हृदय से चिपटा लिया!!

× × ×

जयन्त अनुभव कर रहा है कि सुषमा उससे बची-बची फिरती है। उसे आश्चर्य होता है? क्या यह वही सुषमा है?

सुषमा के सम्पर्क में आकर जब पहली बार उसने अनुभव किया कि इस धन, ऐश्वर्य और कला के बाद भी कोई ऐसी चीज़ है, जिसके बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण रहता है तो वह विचलित हो उठा था। वह धीरे-धीरे सुषमा की ओर खिंचता जा रहा था, पर सहसा एक दिन जयन्त ने अनुभव किया, वह सुषमा को कभी नहीं अपना सकेगा! और तब उसने घर लौटकर कहा था, "मा, अब तुम चाहो तो..." मा जयन्त की बात समझ गई थी।

जयन्त ने इन्दु में सुषमा को ढूँढने का प्रयत्न किया, पर उसने देखा, इन्दु इन्दु है; वह सुषमा नहीं हो सकती।

इन्दु में सब कुछ था—पढ़ी-लिखी गृह-कार्य में दक्ष, सुशील और आधुनिक लड़कों में जो होता है वह भी उसमें था, पर वह रात्रि को १२ बजे तक बग़ीचे में बैठे रहने की अपेक्षा ६ बजे सो जाना स्वास्थ्य के लिए अधिक लाभप्रद समझती थी, ख़ाली बैठे-बैठे गप्पें हाँकने के बजाय किताबें पढ़ना या कुछ और काम करना पसन्द करती थी। और यही सब जयन्त को अच्छा न लगता था। वह अत्यधिक भावुक था और वास्तविकता का ज़रा-सा उल्लेख भी उसे ठेस पहुँचाने के लिए पर्याप्त होता था। तब जयन्त ने एक बार फिर सुषमा के पास जाने का विचार किया!

लेकिन जयन्त ने देखा, अब अधिक बातें करने से सुषमा के सर में दर्द होने लगता है और बातें भी जैसे उसके पास अपनी बच्ची के सम्बन्ध के अतिरिक्त हैं ही नहीं। "देखो हमारी 'बेबी' है न सुन्दर?", "अच्छा, तुम्हीं बताओ यह बिल्कुल तुम्हारे भाई के समान है कि नहीं?", "हमारी बेबी रानी बनेगी, तब तुम इसे क्या दोगे जी?", "जाओ, तब तुमसे बात भी न करेगी!" इत्यादि सुषमा अपनी बच्ची को छाती में छिपाकर भाग जाती है। जयन्त देखता रह जाता है। यह सब क्या हो रहा है? सुषमा को क्या हो गया है?

और सुषमा की आजकल विचित्र अवस्था है। वह जैसे जयन्त से भयभीत हो उठी है। उसे अपने ऊपर, अपने हृदय पर विश्वास ही नहीं रहा। वह जयंत के सामने जाते घबराती है। उसकी आँखों की तरफ़ देखते घबराती है। शायद जयन्त की आँखें उसके हृदय को न छेद दें!

आजकल सुषमा अपनी बच्ची को अपने पास से अलग नहीं होने देती। उसे ऐसा अनुभव हो रहा है कि यह कवच उसे समस्त आपदाओं से बचा लेगा। मानो वह एक ऐसा वरदान हो, जिसके सामने से दूर होते ही सुषमा का महान् अकल्याण हो जायगा। वह अब ख़ुद बेबी को नहलाती है, दूध पिलाती है और जब तक सो नहीं जाती, और सो जाने पर भी अपनी गोद से अलग नहीं करती। आया परेशान है। नौकर परेशान है और जयन्त तो सबसे ज़्यादे परेशान है।

लेकिन अविनाशचन्द्र को इसकी कुछ ख़बर नहीं। अब भी वे उसी तरह अपना मिल, ज़मींदारी और मार्केट-रिपोर्ट में व्यस्त हैं। लेकिन आजकल वे देखते हैं कि जब वह घर में आते हैं और जितनी देर रहते हैं, सुषमा उनके पास से नहीं टलती। उन्होंने आत्मीयता की ऐसी बाढ़ सुषमा में कभी न देखी थी। और सुषमा चाहती है कि अविनाशचन्द्र घर में ही बने रहें। उनसे उसे कभी विशेष प्रेम न हुआ था, और न अब है, लेकिन उसे ऐसा अनुभव होता है कि अविनाश उसे सब विपत्तियों से बचा सकते हैं। वह किसी से नहीं डरती, सिर्फ़ जयन्त से डरती है और जयन्त के अतिरिक्त सब जगह सबके पास अपने-आपको सुरक्षित समझती है।

इन्दु है कि उसे किसी बात की चिन्ता ही नहीं। हर वक़्त घर के कामों में लगी रहती है। जो कमी सुषमा के कारण हुई थी, वह मानो इन्दु ने पूरी कर दी। जब से वह आई है, उसने सुषमा के घर को फिर से व्यवस्थित कर डाला है। जयन्त देखता है, सुषमा उससे भागी-भागी फिरती है और स्वयं उसकी स्त्री को उससे बात करने की फ़ुरसत नहीं। कभी-कभी इन्दु को ध्यान आता है तो कहती है, "बहन, तुम ज़रा उनके पास जाकर बैठो, अकेले होंगे, मैं यह काम कर लूँ।" पर सुषमा नहीं जाती—नहीं जाती!

× × ×

बड़ी मुश्किल से जयन्त इस पिकनिक के लिए सब लोगों को तैयार कर पाया है।

लेकिन पहाड़ी नदी के किनारे आते ही इन्दु बैठ गई, "मुझसे तो आगे न जाया जायगा।" सुषमा ने हाथ पकड़कर कहा; "चल! मैं तो नहीं डरती।"

सुषमा का हाथ पकड़कर इन्दु जल में उतरी। छोटी-सी पहाड़ी नदी कलकल करती भागी जा रही थी। उस पार ऊँचे-ऊँचे टीले थे। नदी में जल तो अधिक नहीं था, पर ओह, प्रवाह कितना तेज़ था और शीतलता तो बस, जैसे छुरियाँ बदन में घुसी जा रही हों! दो-चार क़दम चलने पर ही इन्दु का पैर एक काई लगे पत्थर पर जा पड़ा और इन्दु फिसल गई। बड़ी मुश्किल से गिरते-गिरते बची। उसने सुषमा से हाथ छुड़ाया और गिरते-पड़ते किनारे की ओर लौट आई। "न, न! मैं आगे नहीं जा सकती। तुम लोग जाओ। मैं यहीं नहाकर तुम्हारा इन्तज़ार करूँगी।"

लाचार खाने-पीने का सब सामान और नौकर इसी किनारे छोड़ने पड़े। अविनाश ने कहा, "ठीक तो है सुषमा, हम लोग भी इसी किनारे नहा लेंगे। और ज़रा जल्दी भी तो है, मुझे आज कलक्टर साहब ने बुलाया है!"

"ओह! अविनाश बाबू!! क्या तुम्हारे लिये कलक्टर और अपने एक्ज़ीक्यूटिव आफ़िसर



के अलावा दुनिया में और कोई नहीं ?" सुषमा ने सुनकर भी नहीं सुना। आज अपनी बच्ची से दूर, सुषमा की चपलता फिर लौट आई है । वह आगे—बहुत आगे बढ़ती चली गई ।

जयन्त को यह सब बहुत अच्छा लग रहा है। वह प्रसन्न-वदन सुषमा के पीछे-पीछे चला जा रहा है। नदी के शीतल जल का आघात उसके सारे शरीर में अद्भुत आनन्द-मयी धाराओं का संचार कर रहा है। कुछ दूर तक अविनाशचन्द्र ने साथ चलकर कहा, "अब तो लौट चलो सुषमा । मुझे शहर लौटने में देर हो जायगी।"

पर सुषमा आज कुछ न सुनेगी। आज वह फिर डेढ़ वर्ष पूर्व की सुषमा हो गई है।

सुषमा को अनुभव हो रहा था कि जयन्त उसके पीछे-पीछे आ रहा है। आज सुबह से ही न-जाने क्यों सुषमा का हृदय जयन्त के लिए विचलित हो उठा है। जिस कमज़ोरी को न आने देने के लिए वह अपनी बच्ची और पति के साये में छिपी-छिपी फिरती थी, आज जैसे स्वयं उसे निमंत्रण दे रही है।

अविनाशचन्द्र ने कहा, "अच्छा, तो मैं लौटता हूँ । तुम जब इच्छा हो, आना ।"

यह कहकर अविनाश बाबू थोड़ी देर तक खड़े रहे। उन्हें आशा थी, सुषमा लौटेगी। पर सुषमा न लौटी। चिढ़कर अविनाशचन्द्र खुद ही लौट पड़े।

सुषमा चली जा रही थी और जयन्त उसका अनुसरण कर रहा था। सुषमा सोचती है, "जयन्त मुझसे बात क्यों नहीं करता ?"

सहसा जयन्त ने कहा, "सुषमा ! अविनाश लौट गया है !"

जयन्त के स्वर में सुषमा को अपूर्व माधुर्य का आभास हुआ। कहीं बोलने से यह माधुर्य खंडित न हो जाय, इसलिए सुषमा चुप रही।

जयन्त ने पुकारा "सुषमा !"

सुषमा सोचती है "हाँ इसी तरह पुकारे जाओ जयन्त। रुको मत, रुको मत।"

जयन्त ने फिर कहा, "सुषमा, तुमने सुना नहीं ?"

सुषमा मन ही मन कहती है, "सब सुन रही हूँ जयन्त ! सब सुन रही हूँ !"

जयन्त ने सुषमा के कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "सुषमा !"

सुषमा ने वह हाथ हटाया नहीं। पर उसे अनुभव हुआ, वह बेहोश हो जायगी। इतना आनन्द वह अकेले नहीं सँभाल सकती।

सुषमा जल की धारा के साथ ही बहुत दूर तक बढ़ आई थी। अब वह किनारे-किनारे आकर एक शिलाखंड पर बैठ गई।

जयन्त भी उसके पास आकर बैठ गया।

"सुषमा !'

सुषमा चुप है।

"तुम मुझसे दूर-दूर क्यों भागी फिरती हो सुषमा ?"

सुषमा आज न बोलेगी !

"तुम जानती ो सुषमा, मैं यहाँ अपूर्व क्यों आया था ?"

हाँ, सुषमा जानती है, पर उससे क्या !

"सिर्फ़ तुम्हारे लिए—उन गुज़रे दिनों की मधुमयी स्मृति सुषमा को देखने के लिए।"

"......"

"लेकिन—"

"......"

"तुम्हें क्या हो गया है ? तुम बोलतीं क्यों नहीं ?"

जयन्त ने सुषमा का हाथ दबाया। ह

और सुषमा ने सिर उठाकर जयन्त की ओर देखा, कहा—"जयन्त।"

"हाँ, सुषमा" जैसे सब कुछ समझते हुए जयन्त ने कहा, "मैं जानता हूँ सुषमा, तुम्हारा जीवन सुखी नहीं है। और इसी लिए तो मैं यहाँ आया हूँ। मेरा जीवन भी सुषमा, तुम्हारी ही तरह वेदना में तड़पते-तड़पते व्यतीत हो रहा है। तुम देखती हो, इन्दु से मैं सुखी नहीं हो सका हूँ। अविनाश को तुम्हारी परवा नहीं है और इन्दु को मेरी परवा नहीं। हम दोनों चाहें तो अब भी अपने जीवन को सुखी बना सकते हैं...।"

जयन्त कहता गया और सुषमा सुनती गई। उसे ये सब बातें आज बड़ी अच्छी लग रही हैं।

जयन्त उसका एक हाथ दबाये, दूसरे से पीठ सहला रहा है।

सहसा उन दोनों का ध्यान भङ्ग हो गया। एक पहाड़ी औरत कुछ बकरियों को लिये चली आ रही थी। उसकी गोद में एक छोटा बच्चा था।

सुषमा को अपनी बच्ची का ध्यान हो आया। वह एकदम उठकर खड़ी हो गई।

जयन्त ने पूछा, "क्या हुआ सुषमा ?"

सुषमा वेग से उल्टी भाग चली।

जयन्त पूछ रहा है, "क्या बात है ? क्या हुआ?" पर सुषमा उसी तरह चुपचाप भागी जा रही है। उसकी साँस चढ़ गई है, पर वह भागी जाती है। कोई भयानक शक्ति उसे आगे ढकेल रही है। वह पीछे मुड़कर भी नहीं देखना चाहती।

जयन्त देख-देखकर हैरान है—"यह सब क्या हो रहा है ?"

× × ×

सुषमा ने लौटकर देखा, इन्दु हँस-हँसकर एक पानी भरने आई हुई पहाड़ी छोकरी से बातें कर रही है। सुषमा को लौटते देख कर इन्दु ने कहा, "लो, अविनाश बाबू तो खाकर लौट भी गये। उन्हें कलक्टर से मिलना था। देखो खाना तो ठंडा भी हो गया है।"

सुषमा निर्जीव की तरह घास पर पड़ गई। इन्दु ने घबराकर पूछा, "अरे क्या हुआ तुम्हें ?" फिर कुछ और देखकर पूछा, "अरे तुम अभी तक नहाईं भी नहीं। वे कहाँ हैं ?"

जयन्त चुपचाप आकर पीछे खड़ा हो गया था। बोला, "भागने से थक गई होंगी !"

जयन्त का स्वर सुनकर सुषमा एकदम उठ बैठी और नहाने का प्रबन्ध करने लगी।

× × ×

दूसरे दिन चाय पीते वक़्त जयन्त ने कहा, "मैं आज जाऊँगा, अविनाश !"

"अरे इतनी जल्दी ! अभी तो कुछ दिन और ठहरो।"

इन्दु ने कहा, "वाह मैं तो अभी सुषमा को छोड़कर नहीं जा सकती।"

जयन्त ने म्लान हँसी के साथ कहा, "तो तुम यहीं रहना, मेरे मुक़दमे की तारीख़ है।" सुषमा चुप थी।

दोपहर को एकान्त में सुषमा को पाकर जयन्त ने कहा, "मैं जा रहा हूँ सुषमा !"

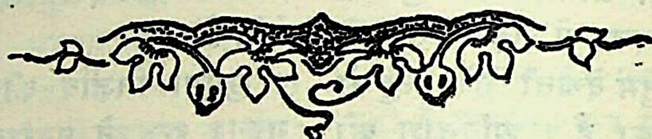
सुषमा ने ज़मीन की ओर देखते हुए कहा, "अच्छा !"

चलते वक़्त सुषमा दरवाज़े की ओट में खड़ी थी। अविनाश बाबू ने हँसते हुए कहा, "अरे जयन्त ! सुषमा को तो गुड बाई कह दो।"



जयन्त कमरे की ओर चला। दरवाज़े की ओट से सुषमा बाहर आ गई।

जयन्त ने कहा, "नमस्ते, भाभी!"—आज पहली बार उसने भाभी कहा था। जवाब में सुषमा ने चुपचाप अपनी बच्ची को जयन्त के आगे कर दिया। जयन्त ने बेबी का मुँह चूमा और जल्दी में बाहर चला आया।



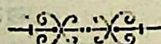
गीत

कुँअर चन्द्रप्रकाशसिंह

नील तेरा हास!
दन्त-मुक्तावलि-कलित
तारक-बलित आकाश!

नयन-इंगित पर तरंगित,
संसरण-जीवन-मरण नित,
मन्द गन्ध-स्पन्द, सृत
मृदु-मृदु समीरण, लास

सूर्य शत, शत-शत महत ग्रह,
भ्रान्त-से आक्रान्त अहरह,
शान्त मानव, प्राप्त वह
चिर शरण, स्थिर आवास!



झूठे ख़त

श्रीश्यामनारायण वैजल एम्० ए०

जीवन की उनींदी मस्तानी ने डेज़ी के लिए पलकपाँवड़े बिछा दिये थे। उसका अंग-अंग सुन्दर न होने पर भी यौवन में आई हुई अंगड़ाइयों से अठखेलियाँ कर रहा था और वह दूर क्षितिज पर आशा और इच्छाओं के सुन्दर बीजों पर खिलनेवाले उन कुसुमों को देख रही थी, जो स्त्री के चित्र को पूर्ण रूप प्रदान करते हैं, जो उसे अल्हड़ बालिका की मधुर गलियों से निकालकर उन सांकड़ी गलियों में ले जाते हैं, जहाँ वह स्त्री के नाम से संबोधित की जाती है।

कल तक तो डेज़ी बालपन की गोद में खेल रही थी, पर अब सौन्दर्य की झूमती आँधी ने उसके अंग-प्रत्यंग को सलज्जता के साथ क्रीड़ा करने के लिए छोड़ दिया था। वह व्याकुल हो उठी थी, और कुछ ही दिनों के बाद उसके हृदय में प्रेम की रिक्तता ने न-जाने कहाँ से स्थान ग्रहण कर लिया था। इसी रिक्तता के साथ उसकी वहशी लालसाएँ सम्मिलित थीं, जो तुषार के कारण अपना मनो-मानी आवरण उतारनेवाली थीं—इन्हीं लालसाओं को ही तो लेकर वह कालेज के द्वार तक आई थी। इन्हीं लालसाओं की ऐनक लगाकर उसने न जाने कितने पुष्पों को कालेज के प्राचीर के अंदर खिलते देखा था। वह एक पुष्प को अपने जीवन का संगी बनाने के लिए न मालूम क्यों उत्सुक हो गई थी। उसकी कोमल कल्पनाएँ उस पर अपना दम तोड़ना चाहती थीं। उसके रूप का स्वागत करने के लिए वे क़दम-क़दम पर चुम्बनों का सुन्दर फ़र्श बिछाना चाहती थीं।

इस पुष्प का नाम टर्नर था। टर्नर हुस्न का जीता-जागता दिया न था। पर फिर भी साधारणतया अच्छा था। ऊपरी टीमटाम ने उसे अवश्य दीपक का रूप प्रदान कर दिया था।

यद्यपि टर्नर डेज़ी के कालेज में ही पढ़ता था, तथापि उसने डेज़ी के रूप को कभी जी भरकर न देखा था। डेज़ी लालसाओं की कलियों से अपने आपको सजाये कई बार अदबदाकर उसके पास ही बैठी थी, पर उसके प्रयासों का परिणाम उसकी कलियों के अर्द्धविकसित स्वरूप को मिटाने भर में ही फलीभूत हुआ था। जब कभी वह टर्नर को सामने से आते देखती थी, तभी उन अँगड़ाइयों को लेकर खड़ी हो जाती थी, जिन्हें देखकर हरएक पुरुष की वांछनाएँ तमतमा उठती हैं। किन्तु टर्नर इन दम तोड़नेवाली अदाओं को मार्ग में आये अनेक कुओं की भाँति छोड़ता चला गया था। उन्हें देखकर उसके हृदय में किसी प्रकार की गुदगुदी या किसी प्रकार के स्पंदन का अनुभव नहीं हुआ था। यही नहीं, यद्यपि वे हाव-भाव उसका स्वागत करने के ही लिए उपस्थित

किये जाते थे, तथापि वह उनके अक्षरों को नहीं पढ़ पाता था, क्योंकि प्रेम में आई हुई अनुभूतियाँ प्रेम के पश्चात् ही स्पष्ट और व्यक्त चादर को अपने अंग का वस्त्र बनाती हैं।

रमणी के तीर व्यर्थ जाने पर तरकस की शरण में नहीं जाते। वे उसके हृदय को चकोटी ले, उसे अपने अपमान की याद दिलाकर पागल बना देते हैं। वह अपने आप प्रेम-पयोधि में और अधिक डूबकर तीरों में तीव्रता लाने की चेष्टा करने लगती है। डेज़ी भी कोई अपवाद न थी। उसके रूप का प्याला अपनी मधुरिमा को छलकाकर या दूसरे शब्दों में अपने हलके तीरों को छोड़कर भी व्यर्थ प्रमाणित हो चुका था। इस स्थिति का सामना कर उसके हृदय की हूक अपनी मधुरिमा को निश्चित सीमा में न रखकर किसी अन्य जगत् की शरण में जा उन उपायों को सोच रही थी, जिन्हें कार्य रूप में परिणत करने में अनुराग की चमक में चार चाँद लग जाते हैं, जहाँ पहुँचकर अनुराग की इमारत की जड़ें अधिक मज़बूत हो जाती हैं, जहाँ अनुराग अपने आपको अधिक सुरक्षित रूप में पाता है।

पर टर्नर तो जेनी से प्रेम करता था। जेनी हुस्न की जीती-जागती प्रतिमा थी, मानों सौंदर्य ने उसी के लिए अपनी सुन्दरता को रचा हो। उसके उमड़ते हुए यौवन ने उसके सौन्दर्य को और विकसित रूप प्रदान कर दिया था। अपने सुन्दर अंगों के हलके भार से उसके शरीर का हरएक भाग दबता प्रतीत होता था और वह अभी निकले चाँद की नाईं उज्ज्वलमयी और गुलाब के फूल की अधखिली कलियों की नाईं लज्जावती मालूम होती थी। उसके गुलाबी गालों और होठों पर जी तोड़नेवाली—धीमी मुस्कराहट सदा बसी रहती थी।—टर्नर इसी मुस्कराहट के आगे अपनी कल्पित और यौवन के दिनों में आई आदर्श अभिलाषाओं को न्योछावर कर चुका था। उसकी कल्पित रूप-पिपासा जेनी को अपने आदर्श के अनुसार पा, प्रेम की गोद में खेलने के लिए उतावली हो उठी थी। उसने आहों की शरण में जा अपनी पलकों को एकान्त में बैठकर ख़ूब भिगोया था। धीरे-धीरे यह प्रेम-आँसू प्रेम-माग में आये पत्थरों का उल्लंघन करते हुए उस स्थान तक पहुँच गये थे, जहाँ गर्म-गर्म ओष्ठ अपने आपको गुलाबी गालों की संरक्षता में समर्पित कर देते हैं, जहाँ आलिंगन और चुंबन की चहारदिवारी अपनी सुदृढ़ता का परित्याग कर टूटी-फूटी इमारत का रूप प्रकट करने लगती है और जहाँ क्षणिक काल के लिए अनुराग-भरी प्रतिमाएँ अपने आपको एकीकरण के विशाल कुटीर में स्थापित कर सुदूर क्षितिज पर विवाह के सुन्दर दृश्य को पढ़ने की चेष्टा करने लगती हैं।

ये दिन कितने अच्छे होते हैं।

सचमुच प्रथम बार जब जेनी ने अपने गुलाबी कपोलों को टर्नर के होठों के आगे विस्तृत रूप में फैला दिया था, उस दिन उसे कितना आनंद आया था। उसे ऐसा प्रतीत हुआ था, मानों वह इस संसार में हो ही नहीं। धीरे-धीरे उस आनंद की सीमा बढ़ती गई और जेनी अपने आपको विवाह-रज्जु में जकड़वाने के लिए लालायित हो उठी।

यद्यपि डेज़ी जेनी के कालेज में ही पढ़ती थी, तथापि उसे अपने कालेज में खिलनेवाले इस प्रेम-वृक्ष के सम्बन्ध में कुछ पता न था। उसने उड़ती हुई ख़बरों से इस सम्बन्ध में कुछ मसाला अवश्य इकट्ठा किया था, पर यह संकलित मसाला इतनी कमज़ोर लड़ियों द्वारा पिरोया गया था कि उस पर यकायक विश्वास न होता था। उसे संदेह अवश्य था। इसी संदेह को लेकर ही वह तो मुर्झाये फूल जैसी हो गई थी। डेज़ी टर्नर से कितना प्रेम करती थी, यह उसका दिल ही जानता था। रात-दिन वह उसी के कल्पित या वास्तविक चित्र को अपनी पलकों में छिपाकर ज़िन्दा रह रही थी और अब संदेह उससे कह रहा था कि जेनी उसकी संगिनी; संगिनी ही क्यों उसकी परम सहेली—उस

चित्र को सदैव के लिए उससे छीन रही थी। संदेह उसकी आदर्श लालसाओं की जड़ों को हिला रहा था। वास्तवमय उसकी लालसाएँ, टर्नर पर अपने प्रेम द्वारा विजय प्राप्त करना चाहती थीं, पर संदेह इस समय उससे न-जाने कैसी कानाफूसी कर रहा था। यौवन की गोद से इन लालसाओं ने उठकर अभी ठीक तौर से अँगड़ाई भी न ली थी, पर अब उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों उनकी सरसों का हराभरा खेत तुषार की फुहार के साथ मैत्री स्थापित कर रहा हो। डेज़ी के हृदय में उठा संदेह उसकी लालसाओं को मायूसी की ज़ंजीरों से जकड़ रहा था।

कुछ दिन बाद डेज़ी के संदेह की रूपरेखा और निखर आई। तो हाँ, उस दिन ही की तो बात है। डेज़ी अपनी हृदय-विदारक आहों को एक दर्दमंदी का रूप दे अपने कमरे में बैठी कुछ सोच रही थी। दुःख अदृश्य आँसुओं का आवरण ओढ़ उसकी बड़ी-बड़ी नीली आँखों से टपक रहा था। इसी समय जेनी ने उसके कमरे में प्रवेश किया। वैसे जेनी उसके पास प्रायः आया ही करती थी, पर इस समय उसके आने में कुछ अचरज की भावना मिली हुई थी। इसी अचरज को पढ़ते हुए और अपने कपोलों पर खेलनेवाली मनोवृत्तियों पर एक अलौकिक आकृति का पर्दा डालते हुए उसने कहा—"ख़ैर तो है जेनी। इस समय कैसे कष्ट किया? ऐसा मालूम होता है कि तुम विशेष ख़ुशी के आलम में घबरा-सी गई हो; क्योंकि अत्यंत आह्लाद और उल्लास से जो घबराहट प्राप्त होती है, वही तुम्हारे मुख पर नाच रही है।"

जेनी ने पास ही पड़ी आरामकुर्सी पर बैठते हुए कहा—"नहीं-नहीं। ऐसी कोई बात नहीं है। पर मैं तुम्हारे पास एक ख़ास काम के लिए आई हूँ। यदि तुम कर सको तो कहूँ। पर एक शर्त है कि तुम उस संबंध में किसी से कुछ न कहोगी।"

डेज़ी ने हँसते हुए कहा—"ऐसा क्या काम है? मैं भी तो सुनूँ।"

जेनी ने अपने माथे पर सुन्दर बलों को डालते हुए कहा—"पहले वादा करो कि तुम किसी से न कहोगी।"

डेज़ी ने अपने मुख पर गंभीरता और हैरत लाते हुए कहा—"जेनी, तुम आज कैसी बातें करती हो। मैं तुम्हारे कितने ही भेदों को जानती हूँ। पर क्या तुम बता सकती हो कि मैंने उन भेदों को किसी पर भी प्रकट होने दिया है।"

जेनी ने फिर हँसते हुए कहा—"कोई बहुत भारी काम नहीं है। सिर्फ़ एक प्रेम-पत्र का उत्तर लिखाना है। लिख तो मैं भी सकती थी, पर तुम जानती ही हो कि मैं शुरू ही से स्पष्टवादी रही हूँ। अतः मैं भावुक-भाषा का प्रयोग ठीक-ठीक नहीं कर पाती हूँ। पर देखो, मैं एक बार फिर कहे देती हूँ कि तुम इस पत्र का किसी से भी ज़िक्र न करना।

इतना कह लेने के बाद जेनी ने अपनी जेब में से एक पत्र निकाला। डेज़ी पत्र को पढ़ने लगी। पत्र पढ़ लेने के बाद उसने कहा—"इसका ऐसा उत्तर लिखना कि पढ़नेवाले की तबियत फड़क उठे।"

डेज़ी न-जाने क्या सोच रही थी। आख़िर यह प्रेम-पत्र किसका लिखा हुआ था। किसने उसे जेनी के पास भेजा था। क्या यह टर्नर का पत्र था। क्या उसने जो ख़बरें सुनी थीं और जिन्हें वह संदेह के पिटारे में छिपाये हुई थी, सच थीं। यद्यपि उसे नब्बे फ़ी सदी यक़ीन-सा हो गया था कि टर्नर के ही हाथ का पत्र है, तथापि उसने जेनी से कहा—"इस पत्र का उत्तर मैं अभी लिखे देती हूँ। पर क्या तुम बहन बताओगी कि यह प्रेम-पत्र तुम्हारे पास किसने भेजा है?"

जेनी मुस्कराते हुए बोली—"मैं तो समझी थी कि तुम समझ गई होगी। ख़ैर, प्यारे टर्नर का यह पत्र है।" इसके बाद उसने धीमी-सी लज्जा का अनुभव करते हुए कहा, "मैं टर्नर से बहुत स्नेह करती हूँ। और टर्नर भी डेज़ी, मुझसे बहुत प्रेम करता है। पर वह बड़ा भावुक है। उसके अनुराग का कण-कण भावुकता के मसाले से बना है।



उसकी भावुक मनोवृत्ति से मुझे डर लगता है।"

डेज़ी का अतीत सन्देह मिट गया। पर इस समय वह न-जाने कहाँ थी। उसके प्यारे टर्नर ने जो पत्र जेनी के लिए लिखा था, उसमें यदि कहीं जेनी के स्थान पर प्रिये डेज़ी होता तो वह कितना ख़ुश होती। उसकी बुझी हुई हसरतें खिल उठतीं। उसकी अरमानों की डूबी नौका जल पर तैरने लगती। उसकी लालसाओं के खेत हरे-भरे हो जाते। पर उसके भाग्य में यह पत्र कहाँ लिखा था। वह इतनी क़िसमतवाली कहाँ थी। थोड़ी देर के लिए उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं और न-जाने कौन-से भाव-चित्र उसके नेत्रों के सामने से गुज़रने लगे। उसने कुछ देर बाद आँखें खोलीं और फिर अपनी निराशाओं के बोझ से झुकी हुई आँखों को जेनी के मुख पर क्षणिक काल के लिए निर्निमेष रूप से लगा दिया। वह उसके मुख का अध्ययन करने लगी। वह उसके रूप का अपने रूप से मिलान करने लगी। वह उसके रूप में नाचनेवाली उस छवि को पढ़ने लगी, जिस पर टर्नर ने अपने को क़ुर्बान कर दिया था; साथ ही वह मेज़ पर लगे दर्पण में उस छवि का अभाव अपने मुख पर ढूँढने का प्रयास करने लगी।

जेनी ने उसकी इस भावभंगी और मुद्रा का कुछ और ही अर्थ लगाते हुए कहा—"डेज़ी, तुम किस सोच में पड़ गई हो? ऐसा मालूम होता है कि तुम्हें भी अपने किसी प्रेमी की याद आ रही है। क्यों यही बात है न?"

निस्सन्देह डेज़ी अपने स्नेह के प्रतिबन्धनों की स्मृति के कारण ही मिलान करने लगी थी। अतः उस सोच के आलम में उसके मुँह से सहसा ही निकल पड़ा "यही बात है" और फिर वह चुप हो गई।

जेनी की जिज्ञासा जाग पड़ी। उसने हँसते हुए डेज़ी से कहा—"डेज़ी, तुम किससे प्रेम करती हो?"

यद्यपि डेज़ी के मुख से उसका सुप्त प्रेम अनायास ही जेनी के सामने जाग गया था, तथापि वह टर्नर का नाम बताने को कभी उद्यत न थी। वह जानती थी, नाम बताने का परिणाम क्या होगा। जेनी का जो दिल इस समय डेज़ी के पास था, वह नाम सुनते ही कोसों मील का फ़ासला तय कर जायगा। उसने अपने दिल में सोचा कि वह नाम नहीं बतायेगी। और फिर नाम बताने से फ़ायदा! यकतर्फ़ा प्रेम के विषय में कुछ भी कहना अधिक उपयुक्त नहीं। उसने हलकी-सी मुस्कान को अपने लाल-लाल अधरों पर लाते हुए कहा—"मैं नाम नहीं बताऊँगी।" उसके बाद उसने अपनी आकृति में और बनावट लाते हुए कहा—"नाम बताने से कुछ लाभ नहीं; क्योंकि तुम उसे नहीं जानती हो। वह बाहर रहता है।" यह झूठ कितनी अर्द्धविकसित अभिलाषाओं की कलियों को कुचलकर आ जा रहा था, यह उसका दिल ही जानता था। जेनी ने फिर पछा—"वह तुमसे प्रेम करता है?"

डेज़ी के जी में आया कि सच-सच बता दे कि वह प्रेम नहीं करता, पर वह स्त्री-सुलभ कमज़ोरी का अनुभव करने लगी। हरएक स्त्री को अपने रूप का गुमान होता है। रमणी-हृदय अपने रूप के आगे हरएक को शीश झुकाता देखना चाहता है और फिर जिससे वह प्रेम करे, उससे तो वह सिवा इसके और कोई आशा नहीं करता है। यही कमज़ोरी डेज़ी के हृदय में आ पड़ी थी। वह उसे सत्य को छिपाने के लिए मजबूर कर रही थी। इसके अलावा डेज़ी अब अभी-अभी जेनी के मुख से उसके प्रेम की विजय सुन चुकी थी, तब उसके लिए झूठ बोलना ही श्रेयस्कर लग रहा था। वह चाहती थी कि जेनी से सच-सच कह दे। पर अपनी एक ऐसी कमज़ोरी, जो पराजय का जीता-जागता गीत अपने भीतर छिपाये थी, उसे झूठ बोलने को मजबूर कर रही थी। अतः उसने अनमनी-सी होते हुए कहा—"हाँ, प्रेम करता है।"

"पत्र आते होंगे?"

डेज़ी को तो आज तक अपने प्रेमी से कोई पत्र

कहीं प्राप्त हुआ था। पर अभी-अभी जो झूठ उसने बोला था, वह अपने बीज को वृक्ष-रूप में देखना चाहता था। एक झूठ और झूठ बोलने के लिए उसे विवश कर रहा था। उसने कहा—"हाँ, आते ही हैं।"

—"डेज़ी! मैंने तुम्हें अपना पत्र दिखा दिया है, क्या तुम मुझे अपना पत्र न दिखाओगी?"

डेज़ी ने जो असत्य का डोरा अपने हृदय में चक्कर लगानेवाली एक कमज़ोरी को सन्तुष्ट करने के लिए पिरोया था, वह क़दम-क़दम पर मकड़ी के जाल की नाईं होता जा रहा था। उसने कहा—"इस समय तुम मजबूर न करो। मैं फिर दिखाऊँगी।"

—"मैं कल इसी समय आकर देखूँगी। अच्छा, अब मेरा काम तो करो।"

डेज़ी ने उसके पत्र का उत्तर लिखना आरम्भ किया। उसका फ़ाउंटेनपेन काग़ज़ पर तैरने लगा। भावों की लड़ियाँ अतिशयोक्तियों और गम्भीर आहों को एक-एक अक्षर से प्रकट करने लगीं। क्या नहीं टर्नर के प्रति लिखे जानेवाले इस पत्र में वह अपने उद्गारों को प्रकट कर रही थी या जेनी के?

थोड़ी देर बाद जेनी चली गई, पर चलते-चलते वह कह गई कि मैं तुम्हारे पत्रों को अवश्य कल आकर देखूँगी।

जेनी तो चली गई, पर डेज़ी को वह सोच के सुपुर्द कर गई। डेज़ी जेनी के स्वभाव से ख़ूब परिचित थी। वह जानती थी कि जेनी पत्र देखने किसी-न-किसी दिन आवेगी अवश्य। किन्तु वह उसे कौन-से पत्र दिखायेगी। वह सोच रही थी, बेकार झूठ बोल के उसने एक आफ़त मोल ली। नहीं, कल वह जेनी से सच-सच कह देगी कि उसके पास कोई पत्र नहीं है। किन्तु इससे उसे सन्तोष न होता था। उसे सत्य कहने में एक और डर लग रहा था। कहीं इस झूठ को सत्य का रूप देने में उसे टर्नर के प्रति रहनेवाले अपने प्रेम को भी शब्दों का जामा न पहनाना पड़े। ऐसा हो जाने की काफ़ी संभावना थी। यदि कहीं ऐसा हो गया तो कितना भयंकर होगा। इससे तो इस झूठ को निबाहना ही ठीक है। इसके अलावा इस झूठ को निबाहने में एक प्रकार का आनन्द था। जिसका अनुभव हम सभी अपने जीवन में किया करते हैं। कोई हमसे प्रेम करता है, कोई हमारे पास प्रेमभरे पत्र भेजता है, इसके कहने में हम न-जाने कैसे विचित्र उल्लास का अनुभव किया करते हैं। और स्त्रियाँ तो अपने रूप को अपनी सहेलियों के सामने अत्यन्त अच्छा प्रभावित करने के लिए कभी-कभी झूठमूठ को ही इस अस्त्र का व्यवहार कर लेती हैं। ऐसे समय में उनके अंतरतम प्रदेश में झूठ का भारी बोझ आनन्द के मुक़ाबले में किसी क़दर हलका ठहरता है। डेज़ी भी इसी स्थिति में वह रही थी। झूठ बोलने में और झूठ को निबाहने में उसे इन्हीं उपर्युक्त लिखित भावनाओं से मिलता-जुलता आनन्द महसूस हो रहा था।

उसने सोचा, वह इस झूठ को निबाहेगी। वह दो पत्र ख़ुद ही ऐसी शैली में लिखेगी, मानो उनको किसी ने उसके पास भेजा हो। उन पत्रों को टाइप कर वह नीचे बनावटी दस्तख़त कर देगी। जेनी को वह इन्हीं पत्रों को दिखा देगी। इस झूठे क़िले की स्थापना में, इस विचार-पद्धति में, उसे एक अलौकिक प्रकार का सन्तोष प्राप्त हो रहा था।

वह थोड़ी देर सोचती रही—फिर उसके बाद उसने बड़ी अच्छी भाषा में पत्र लिखने आरम्भ किये। उसने अपने को पुरुष की स्थिति में मान अपने ही प्रति उन पत्रों को लिखा। पहले तो उसे एक-दो बार काग़ज़ फाड़ना पड़ा, पर कुछ देर बाद दोनों पत्र तैयार हो गये। उसने उन्हें टाइप कर लिया और सोने चली गई।

दिन आये और चले गये। डेज़ी के वे दोनों झूठे पत्र देखने जेनी न आई। पर उन दोनों पत्रों को पढ़ने में डेज़ी को विशेष प्रकार का आनन्द उपलब्ध हुआ। यही क्यों, इसी आनन्द को लूटने के



लिए उसने दो-तीन और काग़ज़ रँग डाले। जिस प्रकार एक कलाकार अपनी कृति ही से अपने-आप ही आनन्द पाता है, उसी प्रकार स्वांतःसुखाय का लक्ष्य अपने सम्मुख रखकर वह पत्र लिखने लगी। धीरे-धीरे इस स्वांतःसुखाय के आनन्द की मात्रा इतनी बढ़ गई कि उसने अपनी दो-एक अन्य सहेलियों को भी वे पत्र दिखा दिये। पहले तो उसने इन झूठे पत्रों को एक हलके-से मज़ाक़ का अनुभव करने को ही दिखाया, पर अपनी सहेलियों को पत्र दिखा लेने के बाद उसे न-जाने क्यों उन पर झूठ का पर्दा पड़ा रहना ही अच्छा लगा। कोई उससे भी प्रेम करता है, कोई उसे भी आहों-भरे ख़त भेजता है, कोई उसके रूप के आगे भी दिल तोड़ता है, कोई उसको भी मुहब्बत की मनिका कह पुकारता है, कोई उसको भी प्रेम की रानी कहकर सम्बोधित करता है, आदि-आदि पत्रों में लिखे विचार झूठ होने पर भी उसे जिस गर्व की अनुभूति करा रहे थे, उस गर्व को वह सत्य की फूँक से उड़ाना नहीं चाहती थी।

कालेज की छुट्टियों के दिन आ गये थे। छुट्टियों के एक-दो दिन पहले ही जेनी डेज़ी के घर पर मिलने आई। डेज़ी ने हँसते हुए कहा—"उस दिन पत्र लिखाकर तुम मेरे यहाँ से क्या गईं, फिर तुमने दर्शन ही नहीं दिये। क्या मिस्टर टर्नर ने मेरे यहाँ आने को मना कर दिया है ?"

यह अन्तिम वाक्य कितने अरमानों को कुचल-कर कहा जा रहा था, सो डेज़ी का दिल ही जानता था।

जेनी ने कहा—"परीक्षा के कारण न आ सकी थी। और, फिर तुम भी तो इन दिनों किताबों में व्यस्त रही होंगी। परसों मैं अपने घर चली जाऊँगी और यदि पास हो गई तो शायद इस कालेज और इस होस्टल में फिर न आऊँ।"

—"क्यों ?"

—"अब मैं अपने पिताजी के पास रहकर ही पढ़ूँगी।"

इसके बाद वे दोनों थोड़ी देर को चुप हो गईं। डेज़ी ने कुछ कालोपरान्त मुस्कराते हुए पूछा—"अपने प्रेम के विषय में कुछ कहो। वह शुभ दिन कौन-सा होगा, जब तुम्हारा और मिस्टर टर्नर का प्रेम विवाह के रूप में बदलेगा ?"

जेनी ने अपनी लजीली नेत्रकिरणों को अपने उभरे हुए स्तनों का टैनजैंट बनाते हुए कहा—"इस विषय में हम दोनों को अपने माता-पिता से आज्ञा लेना है। उसके बाद वह शुभ दिन अवश्य आ जायगा। ईश्वर ने चाहा तो इन्हीं छुट्टियों में...."

इसके बाद उसके अधरों पर धीमी मुस्कराहट आ गई। इसी मुस्कान पर तो टर्नर मर मिटा था। यदि सचमुच इस समय टर्नर होता तो वह न-जाने कितने माधुर्यपूर्ण चुम्बनों को उसके लाल-लाल होठों से ढूँढ लाता। जेनी ने कुछ देर चुप रह जाने के बाद कहा—"डेज़ी, अपने प्रेम के विषय में भी तो कहो। तुमने पत्र भी नहीं दिखाये। अब तो बहुत सारे पत्र आ गये होंगे।"

डेज़ी ने झूठ को निबाहते हुए कहा—"बहुत से आ गये हैं।"

—"आज मैं तुम्हारे पत्रों को अवश्य देखूँगी।"

डेज़ी इस बात के लिए उद्यत थी। उसका स्वभाव इस संबंध में अजीब ही सा हो गया था। उसकी यह कमज़ोरी यहाँ तक बढ़ गई थी कि वह स्वयं इस प्रश्न को लाने की कोशिश किया करती थी, और जब यह प्रश्न इस समय उसके बिना बुलाये ही उपस्थित हो गया था, तब वह भला पत्रों को क्यों न दिखाती। वही झूठे पत्र दिखाये गये। पत्रों के ऊपर टीका-टिप्पणी हुई। और फिर जेनी यह कहकर कि 'अब तो मुलाक़ात शायद कन्वोकेशन के अवसर पर हो' चली गई।

जेनी के घर चले जाने पर टर्नर के दिन तो शून्यवादी हो गये। उसकी कोठरी में निराशा का ताला पड़ गया। जेनी की स्मृति के बोझ से लदे हुए ये दिन टर्नर को अच्छे न लगे। दिन भर

उसकी याद में वह व्यस्त रहने लगा। पहला सप्ताह ख़त की प्रतीक्षा में कट गया। डाक के वक़्त पर वह पोस्टआफ़िस तक बढ़ जाता था। पर पोस्टआफ़िस तक लगाये ये चक्कर व्यर्थ ही प्रमाणित हुए, क्योंकि कोई भी दिन जेनी के पत्र से लदा हुआ नहीं आया।

दूसरे सप्ताह का आरंभ हो गया। टर्नर को पूर्ण विश्वास था कि यह सप्ताह पत्र से ख़ाली न जायगा। पर जब इस सप्ताह का भी अंतिम दिन अस्त की तैयारी करने लगा तब तो उसके विश्वास की रूपरेखा फीकी पड़ने लगी। टर्नर के चेहरे पर मायूसी नाचने लगी। जेनी से उसे ऐसी आशा न थी। वह तो चलते-चलते कह गई थी कि घर पहुँचते ही पत्र डालूँगी। साथ ही यह भी कह गई थी कि उस पत्र पर जो पता लिखूँ, उसी पते पर पत्र लिखना। टर्नर अजीब मुसीबत में फँस गया था। वह पत्र लिख नहीं सकता था, क्योंकि उसे ठीक-ठीक पता न मालूम था। और उसने, हाँ, उसकी प्यारी जेनी ने अपने पते से सुसज्जित पत्र अभी तक लिखा नहीं था। टर्नर ने सोचा, शायद डेज़ी के पास कोई पत्र आया हो। उसके पास चलकर पूछना चाहिए। शायद जेनी बीमार हो, इसीलिए पत्र न भेज सकी हो। वह डेज़ी के घर पर चलने की तैयारी करने लगा। इससे पहले उसे डेज़ी से एकाध ही दफ़ा जेनी के साथ ही बातचीत करने का अवसर प्राप्त हुआ था। इसी कारण वह कुछ झिझकता हुआ उसके घर की ओर चला।

डेज़ी अपने बरामदे में बैठी ज़ोला के 'दि लेडीज़ पैराडाइज़'-शीर्षक उपन्यास को पढ़ रही थी। उसने जब टर्नर को अपने बरामदे की ओर आते देखा, तब उसे यकायक विश्वास न आया। उसे आश्चर्य-सा हुआ। इस आश्चर्य के साथ ही उसका अतीत अनुराग, जिसे वह जेनी के पास आये प्रेम-पत्रों को देख लेने के बाद निद्रादेवी के सुपुर्द ही कर चुकी थी, अनायास ही जाग पड़ा। उसके स्नेह-जल से असिंचित गाल सहसा ही अपनी शुष्कता को छोड़, लज्जा का अनुभव करने के साथ-साथ लाल हो गये। उसने सलज्ज हँसी में धीमी वाणी से कहा—"आइए मिस्टर टर्नर! आप इधर विराजिए।"

अंतिम वाक्य उसने एक आरामकुर्सी की ओर संबोधित करते हुए कहा। टर्नर बैठ गया। वह जिस काम के लिए आया था, उस संबंध में कुछ कहना ही चाहता था कि स्वयं डेज़ी ने उससे पूछा—"कहिए, कोई जेनी का पत्र आया?"

इस प्रश्न के साथ ही टर्नर का कार्य तो समाप्त हो गया। उसे मालूम हो गया कि जेनी ने डेज़ी के पास भी कोई पत्र नहीं भेजा है। उसने बड़े हताश लहज़े में कहा—"मेरे पास तो अभी तक कोई पत्र नहीं आया। बड़ा आश्चर्य है। मुझे उसका ठीक-ठीक पता भी नहीं मालूम।"

—"पता उसका निश्चित भी नहीं है; क्योंकि उसके पिताजी अभी छुट्टियों से एक-दो दिन पहले ही तो शायद बदलकर उस स्थान पर आये हैं। पर जेनी को अब तक पता लिख देना चाहिए था।"

उसने विरक्तिपूर्ण वाणी में कहा—"कौन किसी की परवा करता है। संसार में प्रेम शायद मुँह देखे का ही है। डेज़ी, आज दो-तीन सप्ताह होने आये, पर कोई भी पत्र नहीं। यदि प्रेम होता तो ऐसी बात हो सकती थी।"

इस अंतिम वाक्य को वह नाउम्मेदी के जोश में कह तो गया, पर उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उसे यह वाक्य नहीं कहना चाहिए था।

डेज़ी जेनी के प्रेम की सत्यता के विषय में कुछ शब्द कहना चाहती थी, पर वह नारी-हृदय की एक विशिष्ट कमज़ोरी का अनुभव करके रह गई। और मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि यदि डेज़ी टर्नर को प्रेम न करती होती तो अवश्य उसके अधर कई छोटे-छोटे-से वाक्यों की कलियों को विकसित रूप प्रदान करते।

टर्नर भावुक था और इस समय उसकी भावुकता अपने सब उपकरणों को लेकर जाग पड़ी थी। भावुकता के आवेश में ही वह उपर्युक्त वाक्य भी कह गया था। उस वाक्य को कह लेने पर निस्संदेह उसने कमज़ोरी का अनुभव किया, किन्तु उस अनुभव से वह सँभला नहीं। वह भावुकता की कमज़ोरी के पाश में फँसकर एक कवि की स्थिति में पहुँच गया। उसके माथे पर उदासीनता छा गई। उसके सौन्दर्य-परिपूर्ण मुख ने कवित्वपूर्ण आकृति को अपना लिया। इस स्थिति में पहुँचकर वह न कहने योग्य बातें भी कहने को उद्यत हो गया। उसने कहा—"डेज़ी, तुम नहीं जानती हो कि मैं जेनी से कितना प्रेम करता हूँ। पर मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जेनी मुझसे उतना प्रेम नहीं करती। मेरा दिल ही जानता है कि मैं कितनी वेदना का इस समय अनुभव कर रहा हूँ। डेज़ी, तुमने यदि किसी से प्रेम किया होगा तो तुम अवश्य जानती होगी कि वियोग के दिन कितने कष्टदायी होते हैं। डेज़ी, तुम किसी से प्रेम करती हो?"

डेज़ी के मन में तो आया कि वह उससे कह दे कि वह उसी से प्रेम करती है। पर वह रुक गई। वह अपने प्रेम को प्रकट कर जेनी के साथ किसी प्रकार की दग़ा नहीं करना चाहती थी। अतः उसने अपने पुराने झूठ ही को निबाहते हुए कहा—"करती हूँ" और उसके बाद उसकी आँखों में उसके बहुत रोकने पर भी आँसू की दो बूँदें झलक आईं। उसने अपने आँसुओं को छिपाना चाहा, पर टर्नर की आँखों से ये आँसू की बूँदें न छिप पाईं।

टर्नर ने अपने भाव का आँसुओं से सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहा—"ऐसा प्रतीत होता है कि आपकी दशा मेरी-जैसी ही है। डेज़ी, मुझे पूछना नहीं चाहिए, फिर भी मैं पूछता हूँ कि क्या वह तुमसे प्रेम करता है?"

डेज़ी की आँखों से जो आँसू बरबस ही निकल पड़े थे, वे अब शुष्क हो गये थे, और अब उसने अपनी प्रथम कमज़ोरी को काफ़ी वश में कर लिया था। उसने सच्ची बात को छिपाते हुए और एक धीमी-सी शीतल आह लेते हुए कहा—"मुझे प्रेम करते हैं।"

—"पर आपके मुख से यह बात नहीं प्रकट होती। मैं आपको जब से कालेज में देख रहा हूँ, तब से आपके मुख की उदासीनता का अध्ययन कर रहा हूँ, और मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि आप जीती-जागती लुटी हुई लालसा हैं। हो सकता है, मेरा अध्ययन ग़लत हो।"

डेज़ी जिससे प्रेम करती थी, डेज़ी जिस पर अपने को क़ुर्बान कर चुकी थी और डेज़ी जिसकी दिलरुबा बनकर ही ज़िन्दा रहना चाहती थी, वह उसके बारे में यह सोचता है। वह उसकी नाउम्मेदियों को उसके मुख पर पढ़ चुका है। वह उसको एक मिटी हुई लालसा समझता है। डेज़ी को बड़ा आश्चर्य हो रहा था। पर उसका अध्ययन उसके सम्बन्ध में कितना सही था। उसके जी में आया कि उससे सच-सच कह दे, उसको बता दे कि वह मिटी हुई लालसा किस व्यक्ति के कारण है। उसकी जिह्वा सच्चे भेद को बताने के लिए बिलकुल तैयार थी। वह साहस जुटा रही थी, पर नहीं जुटा पाती थी। सत्य कह देने में उसे दग़ा नज़र आ रही थी। वह जानती थी कि उसकी प्रिय सहेली जेनी टर्नर से प्रेम करती है, तो ऐसी स्थिति में टर्नर के आगे अपना प्रेम प्रकट करना पाप है। क्या वह जेनी को धोका देगी? वह पहले तो चुप रही, पर फिर बोली—"आपका अध्ययन ठीक नहीं है। मैं सच कहती हूँ, वह मुझसे प्रेम करते हैं। उनके पत्र जो मेरे पास हैं, वे उनकी हार्दिकता को प्रकट करते हैं।"

डेज़ी न-जाने क्यों इतना कह गई। जेनी के प्रति जो धोका न देने की भावना अभी उसके हृदय में जाग्रत् हुई थी, वह वहीं तक न रह कर अपने आपको अधिक पुण्यात्मा बनाने के



लिए अनायास ही इतनी दूर बढ़ गई कि डेज़ी को अकथनीय बातें भी कथनीय प्रतीत हुईं। जिस झूठ की आवश्यकता न थी, वह भी उसके मुँह से अपने आपको जेनी के प्रति अधिक आत्मिक प्रमाणित करने के लिए निकल गया था।

टर्नर ने विरक्ति का भाव अपने मुख पर लाते हुए कहा—"हो सकता है। पर यदि आप अपने प्रेमी के पत्रों की लिखावट और मैटर दिखा दें तो मैं अपनी विद्या द्वारा उन पत्रों की हार्दिकता को बतला दूँ?"

—"सचमुच"

यह कहकर डेज़ी ने कहा—"वे पत्र तो टाइप हैं, पर क्या आप मैटर से नहीं बता सकते?" डेज़ी इस समय अपने झूठे पत्रों को अपने हृदय की कमज़ोरी के कारण, दिखाने को लालायित हो रही थी। इस कमज़ोरी का ऊपर ज़िक्र हो चुका है।

डेज़ी ने दो ख़त टर्नर के सामने लाकर रख दिये। टर्नर ने उन पत्रों को पढ़ लेने के बाद कहा—"इन पत्रों से यद्यपि अतिशयोक्ति टपकती है, तथापि इनमें हार्दिकता है; पर फिर भी डेज़ी आप क्यों दुखी हैं?"

डेज़ी अपनी आँखों के आँसुओं को रोके खड़ी थी। टर्नर की यह बात सुनकर वह रो पड़ी। साथ ही उसे अपने से ग्लानि हुई। वह टर्नर से प्रेम करती थी। टर्नर के सिवा उसने किसी व्यक्ति के प्रति प्रेमभरी आँखों से नहीं देखा था, और आज वह अपने प्रेमपात्र से ही झूठ बोल रही थी। उसी को अपने लिखे हुए झूठे ख़त दिखला रही थी। उसकी आत्मा रो रही थी। वह उसके शरीर को नोच रही थी। उसकी आत्मा की गवाही उस कार्य के विरोध में थी। वह चाहती थी कि इन झूठे ख़तों को झूठ ही रहने दे, पर उसकी आत्मा टर्नर के सामने सच-सच कह देने के लिए ज़ोर दे रही थी।

टर्नर ने उसके आँसुओं को टपटप गिरते देख कहा—"मैंने आपको व्यर्थ दुखी किया। मैं इस सम्बन्ध में कुछ न पूछूँगा। मुझे क्षमा करो।"

उसने अपने आँसुओं को पोंछते हुए कहा—"नहीं-नहीं, आपका इसमें कुछ अपराध नहीं। अपना भाग्य।"

दोनों थोड़ी दूर चुप रहे। इसके बाद टर्नर ने चलने की सी भाव-भंगी करते हुए कहा—"अच्छा, अब जाता हूँ।"

डेज़ी का जी चाहता था कि टर्नर आज इसी प्रकार उसके सामने बैठा रहे। वह इस समय बहुत अच्छा लग रहा था। इसके अलावा वह झूठे ख़तों का भेद उसके सामने अभी-अभी खोलना चाहती थी। उसकी आत्मा उसे मजबूर कर रही थी—टर्नर चलने लगा, पर डेज़ी ने अचानक ही उससे कहा—"मिस्टर टर्नर, ये ख़त झूठे....हैं।"

इतना कह लेने के बाद वह फूट-फूटकर रोने लगी। टर्नर की समझ में कुछ न आया, पर उसका भावुक हृदय कुलाचें मारने लगा। उसने डेज़ी को सँभालते हुए कहा—"आज तुम्हें क्या हो गया है?"

डेज़ी चाहती थी कि उसके आँसू रुक पड़ें, पर आँसू रुकते न थे। उसने रोते-रोते ही कहना शुरू किया। उसका एक-एक अक्षर आँसुओं के गहरे समुद्र से निकल रहा था। उसने कहा—"ये पत्र मैंने अपने आप अपने ही प्रति लिखे हैं। मैं जिसे प्रेम करती हूँ, वह मुझसे प्रेम नहीं करता; पर दिल को सन्तुष्ट करने के लिए ये झूठे ख़त मैंने लिखे हैं। ये पत्र बिलकुल झूठे हैं। इस झूठ बोलने के लिए आप मुझे क्षमा करेंगे।"

यह दो-तीन साँसों में कह लेने के बाद वह फिर रोने लगी। टर्नर भी आश्चर्य में पड़ गया। किन्तु उस भावुक को यह भावुकतापूर्ण बात बहुत पसंद आई। डेज़ी के इन झूठे पत्रों ने उसकी आँखों में उसके रूप को बिठा दिया। थोड़ी देर के लिए वह जेनी को भूल गया था। उसकी भावुकतापूर्ण बात उसको इतनी पसंद आई कि उसका



दिल उसके होठों का चुम्बन लेने के लिए उत्सुक हो गया।

टर्नर ने धीमे स्वर में पूछा—“अच्छा, अब यह बता दो कि वह व्यक्ति कौन है, जिससे तुम प्रेम करती हो ?”

—“यह न पूछो।”

—“तुम्हें मेरी क़सम......”

—“मैं न बताऊँगी........”

—“नहीं डेज़ी, बता दो। शायद मैं फ़ायदा पहुँचा सकूँ।”

—“तुम लाभ पहुँचा सकते हो, पर मैं........”

पता नहीं यह वाक्य कहते समय उसे जेनी का ध्यान था या नहीं। उसने कहा—“फ़ायदा हो सकता है तो अवश्य तुम्हें नाम बताना होगा....।”

डेज़ी के मन में प्रेम जाग उठा था। उसे वह टर्नर के मुँह पर प्रतिबिम्बित होता ही देख रही थी। वह नाम बताने से जेनी को दग़ा देगी—यह वह भूल गई। उसने कहा—“मैं काग़ज़ पर लिखे देती हूँ।”

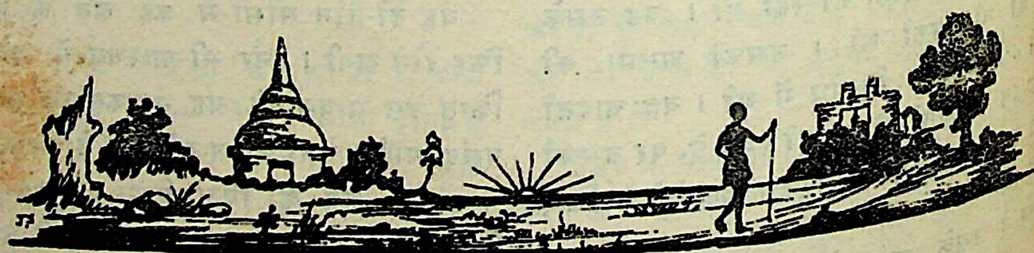
वह तैयार हो गया। उसने काग़ज़ पर नाम लिख दिया। काग़ज़ पर अपना नाम देखकर वह भावुक जेनी को भूल गया। डेज़ी के प्रेम की भावुकता ने, उसके भोलेपन ने, उसके आँसुओं ने उसे उसका ग़ुलाम बना दिया। और, फिर कोई स्त्री हमसे प्रेम करती है, इस बात को सुन-कर हरएक पुरुष ही फिसल जाता है। फिर उन हृदयों के विषय में, जो अभी-अभी यौवन के प्रांगण में भावुकता का छाता लगाकर आये हों, कुछ कहना क़लम के क़ाबू का रोग नहीं।

उसने डेज़ी की कलाई को अपने हाथ में लेते हुए कहा—“सचमुच” और उसके बाद किसी के गर्म-गर्म ओष्ठ डेज़ी के गालों पर से चुम्बनों को बीनने लगे।

× × ×

कुछ दिन बाद डेज़ी और टर्नर का विवाह हो गया। अख़बारों में फ़ोटो निकले। जेनी ने भी इन चित्रों को देखा। उसके आश्चर्य का पारावार न रहा। उसने टर्नर के लिखे प्रेमपत्रों को उसी दिन उसके पास लिफ़ाफ़े में रखकर भेज दिया और साथ ही यह भी लिख दिया कि मेरे पत्रों को वापस भेज दो।

टर्नर को जब यह लिफ़ाफ़ा मिला, तब उसने मज़ाक़ के लिए अपने इन पुराने पत्रों में प्रिय जेनी के स्थान पर प्रिय डेज़ी लिख दिया; और उसने डेज़ी को वे पत्र दे दिये। पर डेज़ी ने उन पत्रों को अपने पास न रखते हुए कहा—“मैं इन झूठे ख़तों पर ही तुम अपने दस्तख़त कर दो। मेरे लिए तो यही सच्चे हैं।”



ट्रू स्नैप्स !

श्रीयुत "अज्ञात"

मनुष्य कुरूप है। वह सौंदर्य का शत्रु तथा कुरूपता का प्रेमी है। यह एक कठोर सत्य है, और आप इसको मानने के लिए सहसा उद्यत नहीं होंगे। पर आपको मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे छोटे-से जीवन का यही एक कटु अनुभव है, और मैं यह बात किसी भी भले आदमी को भली भाँति समझा सकता हूँ।

सच पूछिए तो सौन्दर्य इस स्वार्थी संसार की वस्तु ही नहीं है। वह तो कवि-कल्पना और नन्दन-कानन का पुष्प है। सौन्दर्य को हस्तगत करने की इच्छा ही सौन्दर्य की सबसे बड़ी शत्रु है। हम कोई सुन्दर पुष्प देखते हैं तो हम इतने ही से सन्तुष्ट नहीं होते कि वह सुन्दर है। हमारे हृदय में उसे तोड़ने की उत्कट अभिलाषा होती है। यही है हमारी स्वार्थपरता और यही है सौन्दर्य की विनाशक।

मैंने इस जीवन में अनेक स्वप्न देखे हैं, और संसार में अनेक सुन्दर वस्तुएँ देखी हैं। पर वे सुन्दर स्वप्न और वे सुन्दर वस्तुएँ सब एक-एक कर नष्ट हो गईं और उनके स्थान भयंकर कुरूप-से-कुरूप दृश्य उपस्थित हो गये हैं। सौंदर्य के इस विनाश को देखकर यही समझ में आया कि इस संसार में कुरूपता ही का साम्राज्य है और ज्ञान-विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ उसका शिकंजा और भी दृढ़तर होता जा रहा है, और हम अग्रसर हो रहे हैं इस कुरूपता की ओर विना सोचे-विचारे विना किसी शंका के।

आज से तीन वर्ष पहले मेरे जीवन को एक ऐसे ही सुन्दर स्वप्न ने लहरा दिया था। इस प्रगतिमय जीवन के कुछ क्षण उसकी स्मृति में मधुर हो जाते थे। एकान्त में बैठे-बैठे कभी हृदय में कुछ गुदगुदी हो उठती थी और अनजाने ही मैं मुस्करा पड़ता था। कभी-कभी मित्र-मंडली में ऐसा होने पर प्रश्नों की झड़ी लग जाती थी। पर अब वह सब नष्ट हो गया है, और उसके स्थान पर एक कसक-सी रह गई है, जो इस कष्टमय जीवन को और भी दुखी बना रही है।

अब मैं कानपुर नगर का एक प्रसिद्ध तथा अनुभवी फ़ोटोग्राफ़र हूँ और उस समय मैं फ़ोटोग्राफ़री सीख रहा था। जाड़े के दिन थे, काम अधिक था। बाँदा नगर से इन्हीं दिनों एक आर्डर आया और मैं एक सीनियर असिस्टेंट को लेकर सुबह छः बजे की गाड़ी से चल दिया। तीन-चार घंटे का सफ़र था, वह रूबी० एम्० आयर की "लव ऐन्ड ऐ लाई" के पृष्ठ उलटते-उलटते कट गया। नगर में पहले ही से ख़बर फैल गई थी कि कानपुर से फ़ोटोग्राफ़र आये हैं। दूसरे लोग भी तसवीर खिंचाने आने लगे। तीन साढ़े तीन



के समय एक लम्बे-से क़द का एक युवक आया। उसका रंग गोरा था। आँखों पर चश्मा लगा था। देखने में सम्भ्रान्त कुल का मालूम पड़ता था। उसके मुख पर चिन्ता की हल्की-सी छाप थी। उसने आकर रेट पूछे और अपने घर चलकर एक फ़ोटो खींचने की प्रार्थना की। एक बिजनेसमैन की तरह मैं तुरन्त जाने के लिए तैयार हो गया। ताँगे पर बैठकर हम उसके घर पहुँचे।

वह मकान एक छोटा-मोटा बँगला-सा था, सामने एक छोटा-सा उद्यान था। वह युवक ताँगे से उतरा और हमसे ठहरने को कहकर जल्दी से मकान में चला गया। मैं भी ताँगे से उतरा; असिस्टेंट से कैमरा आदि उतारने को कहकर बाग़ में चला गया। बाग़ छोटा था, पर सुरुचिपूर्ण था। क्यारियाँ बनी थीं और उनमें विशेषकर गुलाब के पौदे लगे थे। एक कोने में फ़व्वारा देखकर मैं उसकी ओर बढ़ा, परन्तु बढ़ते ही रुक गया। फ़व्वारे के पास ही मिट्टी का एक गुम्बद उठाकर उस पर........के ....। और उसमें जहाँ-तहाँ पत्थर लगाकर पहाड़ की सीनरी बनाने की चेष्टा की गई थी। उस गुम्बद पर एक युवती बेसुध बैठी हुई थी, उसके एक हाथ में कोई पुस्तक थी, जिसके पढ़ने में वह लीन थी। उसके दूसरे हाथ में लाल गुलाब का एक फूल था। अनजाने ही वह हाथ उठा हुआ था, जिससे वह फूल होठों के समीप तक पहुँच गया था। मैं रुक गया और रुककर ध्यान से देखने लगा। उसका रंग गोरा था, और चेहरे पर एक मनोहर लालिमा दौड़ी हुई थी। वह लाल सारी पहने थी, जो सिर से खसककर कंधे पर आ रही थी। उसके लम्बे-लम्बे काले बाल पीठ पर फैले हुए थे। वह जम्पर पहने थी, जिसकी बाँहें बहुत ही छोटी थीं। अस्तु, उस लाल साड़ी पर लम्बी गोरी बाँहें दूर ही से झलक रही थीं। मैंने देखा और देखकर अपने को भूल-सा गया। मेरा व्यवसाय ही ऐसा है कि मुझे अनेक सुन्दर स्त्रियाँ देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। सम्भवतः मैंने उससे भी सुन्दर युवती देखी होंगी, पर विश्वास मानिए "सौन्दर्य"—शब्द के सर्वोत्तम अर्थ में—मैंने वहीं देखा था। बेसुध होकर मैंने जेब से "पिजन कैमेरा" निकाल लिया और पलक मारते "स्नैप" ले लिया। यह सब एक आध मिनट ही में हो गया। कैमरा बन्द कर मैं जेब में रख ही रहा था कि उसने दृष्टि ऊपर उठाई। मुझको देखकर वह चौंकी और जल्दी से अन्दर चली गई। इस उलझन में उसका फूल वहीं गिर पड़ा। मैं बढ़ा और वह फूल उठाकर जेब में रख लिया। फिर बाग़ में टहलने लगा। कुछ ही देर बाद वह युवक बाहर आया और देर होने के लिए क्षमा माँगने लगा। शिष्टाचार की बातें होने के बाद उसने कहा—"हाँ, तो फ़ोटो आप किस जगह लीजिएगा? देखिए, मेरी बहन की फ़ोटो खींचनी है। यह विवाह की बातचीत के समय वर-पक्ष को दिखानी पड़ेगी। अस्तु, विशेष ध्यान रखिएगा।

"आप बिलकुल निश्चिंत रहिए।" मैंने उत्तर दिया। एक स्थान ढूँढकर मैंने कैमरा फ़िट किया और उस युवक से अपनी बहन को बुलाने को कहा।

"परन्तु" वह बोला—"कपड़े किस रंग के होने चाहिए?" "काले हों तो बहुत अच्छा है।" मैंने कहा। कुछ देर बाद वही युवती एक काली सारी पहने आई और अभिवादन कर निर्धारित स्थान पर बैठ गई। सौन्दर्य की उस प्रतिमूर्ति को देखकर एकबारगी ही मेरे हृदय में हलचल-सी मच गई। वह कुर्सी पर बैठी थी। जब मैं उसे पोज़ देने लगा तो वह मुस्करा उठी। मैं और भी घबरा गया। फ़ोकस ठीक करने के बहाने मैंने पीछे जाकर "ब्लैक क्लाथ" अपने ऊपर डाल लिया और उसके प्रतिबिम्ब को देख-कर सोचता रहा कि किस पोज़ में इसका फ़ोटो सर्वोत्तम आयेगा। पर यह सोच लेने के बाद जैसे ही मैंने कर बाहर निकाला, वह फिर मुस्करा

ली। मैंने फिर घबराकर "ब्लैक क्लाथ" की साथ ही और असिस्टेंट को भी अन्दर लेकर पोज़ बताया और उसी प्रकार बैठाने को कहा। जब तक वह पोज़ देता रहा, मैं अपना मुँह ढके रहा और उसे बताता रहा, उसके बाद जब मैंने अपना सिर निकाला तो उसकी ओर देखा ही नहीं। एक चोर की भाँति दृष्टि नीची किये ही किये मैंने अपना सब काम किया। परन्तु जब "एक्सपोज़" करने का समय आया, तब मुझे फिर दृष्टि ऊपर उठानी पड़ी और तुरन्त ही वह मुस्करा पड़ी। मैंने समझ लिया कि यह फ़ोटो मैं न खींच सकूँगा, और मैंने असिस्टेंट से "एक्सपोज़" करने के लिए भी कहा। वह आश्चर्य में था कि क्या बात है। ऐसे मैं कभी उसे कुछ न करने देता था। अस्तु, उसने आकर लेन्सकैप पकड़ी और मैं अलग हट गया। जब असिस्टेंट कह रहा था "वन्" मुझे सहसा मालूम होता पोज़ के साथ उसकी दृष्टि जिस ओर रक्खी थी, मैं उसी ओर हट गया हूँ। असिस्टेंट ने कहा "टू" और उसके "थ्री" कहते ही मेरी आँखें ऊपर उठ गईं। दृष्टि मिलते ही वह मुस्करा उठी तथा मुँह पर लालिमा दौड़ गई।

असिस्टेंट कह रहा था "दैट्स आल राइट थैंक्यू"। वह उठकर भीतर चली गई। वह युवक कहने लगा "मैं इसकी केवल एक ही कापी लूँगा और आप प्लेट "डिस्ट्राय" कर दीजिएगा। इसकी और कोई कापी न रहेगी।" मैंने उसे विश्वास दिलाया कि ऐसा ही होगा।

* * *

इस घटना को आज तीन वर्ष हो गये हैं। अब मुझे इस व्यवसाय में उतना उत्साह नहीं रहा है। स्वयं फ़ोटो खींचने अब मैं बहुत कम जाता हूँ और सारा काम सहकारी ही करते हैं। आज महीना भर हुआ—एक दिन सभी कर्मचारी काम पर चले गये थे। दूकान पर केवल मैं और झाड़-पोंछ करनेवाला आदमी ही रह गया था। मैं अन्दर हिसाब-किताब देख रहा था। एकाएक तेज़ी से किसी कार के रुकने की आवाज़ हुई। मैं बाहर निकला तो देखा, एक युवक घबराया हुआ-सा कार से उतर रहा है। मुझे देखते ही बोला—"कृपया शीघ्रता कीजिए, मेरी पत्नी मृत्युशय्या पर पड़ी हुई है, आप चलकर उसका फ़ोटो खींच दीजिए।" वह एक दुबला-पतला-सा युवक था। उसका मुख पीला हो रहा था। आँखें गढ़े में हो रही थीं। दाढ़ी बढ़ी थी। बड़े-बड़े बाल थे, जो पीछे की ओर फेंके हुए थे। होठ पान खाने से काले हो रहे थे। मुँह में सिगरेट दबी हुई थी! मुझे देखते ही घृणा-सी मालूम हुई और मैं कहने ही वाला था कि "इस समय कोई कर्मचारी नहीं है और मैं जाने में असमर्थ हूँ।", पर उसके मुख पर बारी-बारी से लापरवाही और व्याकुलता के भाव देखकर मुझे आश्चर्य-सा हुआ। उससे कुछ न कहकर मैं कैमरा आदि लेकर उसकी कार में जा बैठा। कार में बैठते ही मुझे मदिरा की तीव्र गन्ध आई। मेरा हृदय और भी दुखित हो गया। एंजिन स्टार्ट कर वह युवक ड्राइव करने बैठा।

इतने साल के व्यवसाय के बाद मैं अब स्वयं एक कार रखता हूँ, और स्पीड ला तोड़ने के अभियोग में जुर्माना भी भुगत चुका हूँ। पर आपको मैं विश्वास दिलाता हूँ उस दिन मैं सचमुच डर गया। एंजिन की घरघराहट के साथ ही एकदम चालीस मील की रफ़्तार से कार दौड़ पड़ी। और कुछ ही मिनटों में शहर को छोड़कर—कैन्टोनमेंट पारकर—शहर की बाहरी सड़कों पर अस्सी मील फ़ी घंटा के हिसाब से दौड़ रही थी। नगर पीछे रह गया था। हम नदी के बराबरवाली सड़क पर जा रहे थे। एकाएक मोटर की रफ़्तार एकदम कम हो गई और वह घूमकर एक बड़ी-सी कोठी की ओर चल पड़ी। चपरासी अन्दर से फाटक खोल ही रहा था और एक ओर का ही द्वार खोल पाया था



कि मोटर अन्दर धँस गई और चपरासी लड़खड़ाता हुआ दूर जा गिरा, पर उस युवक ने घूमकर भी न देखा और गुर्राकर बोला—"उल्लू के पट्ठे साले सब सोते रहते हैं ।"

मैं आश्चर्य में था । मोटर रुक गई । दो चपरासियों ने दौड़कर कैमरा उतारा । वह युवक मुझे अन्दर आने को कहकर अन्दर चला । यह सब इतनी शीघ्रता से हो रहा था कि मुझे चारों ओर देखने का अवकाश भी न था । वह एक बड़े-से कमरे में घुसा । दरवाज़े पर हरी मख़मल का परदा पड़ा हुआ था । उस पर ज़री का काम हो रहा था । कमरे के पीछे एक बड़ा-सा दरवाज़ा था । वह एक बड़े बाग़ में खुलता था । इस दरवाज़े के पास एक पलँग था । पलँग के पास दो नर्सें बैठी थीं । नगर के प्रसिद्ध डाक्टर सिनहा मेज़ के पास कोई "इंजेक्शन" देने की तैयारी कर रहे थे । मुझे देखकर उन्होंने हाथ मिलाया । उनके चेहरे से साफ़ प्रकट था कि वे निराश हो चुके हैं । पलँग के पास जाने पर मुझे मालूम हुआ कि दो तकियों के बीच में एक रोगिणी स्त्री पड़ी है । उसका सिर एक तीसरे तकिये पर था । आँखें खुली थीं, पर भावशून्य । वह देखती थी छत की ओर—टकटकी बाँधकर । हम लोगों की आहट पाकर उसकी आँखें घूमीं, और वे पत्थर-सी आँखें उस युवक पर जम गईं । उनमें एक बार एक तीव्र घृणा झलक पड़ी । फिर उसने मेरी ओर देखा । उसकी दृष्टि स्थिर हुई—कोमल हुई । उनमें हल्की-सी ज्योति आई और वह मुस्करा उठी । आह ! कैसी कारुणिक थी वह मुसकान, कितना व्यङ्ग भरा था उसमें—कितना कौतुक था—कितना धिक्कार था, यह मैं आज तक न जान पाया हूँ और न जान सकूँगा ।

"आप नहीं पहचान सकते," वह धीरे-धीरे बोली, "कैसे पहचान सकते हैं आपने ठीक तीन वर्ष पहले मुझे अपने यौवन की उमंगों में देखा था, और अब आप देख रहे हैं एक बिखरते फूल को ।" उसने आँखें बन्द कर लीं और संज्ञाशून्य-सी हो गई । डाक्टर साहब, उस युवक और नर्सों ने मेरी ओर आश्चर्य से देखा । पर किसी ने कुछ कहा नहीं । डाक्टर साहब ने आगे बढ़कर "इंजेक्शन" दे दिया । उसकी आँखें फिर खुलीं "डाक्टर साहब" उसने कहा "आप मुझे व्यर्थ ही छेद रहे हैं । मैं अब जा रही हूँ नरक से स्वर्ग को । मनुष्य-रूपी शैतान से दूर देवताओं के पास ।" फिर उसने मेरी ओर देखा—"आप ही मि० वर्मा फ़ोटोग्राफ़र हैं । आपने ही मेरी फ़ोटो यहाँ नरक में आने से पहले खींची थी ।"

उसने फिर उस युवक की ओर देखा, फिर बोली, "मैंने उसे नष्ट कर दिया । मैं नहीं चाहती थी इस भ्रष्ट जगह में कोई मुझे उस रूप में देखे, जब मैं प्रसन्न थी, संतुष्ट थी और सुखी थी ।"

वह युवक अप्रतिभ होकर दूसरी ओर देख रहा था । उसके चेहरे से साफ़ प्रतीत होता था कि यदि उसके सम्मुख एक मरणासन्न स्त्री और दो सामर्थ्यवान् व्यक्ति न होते तो वह कुछ भयंकर कार्य कर डालता ।

वह रोगिणी फिर बोली, "आप अब फिर फ़ोटो लेने आये हैं । उस समय मैं मुस्कराई थी अपने बालपन की समाप्ति पर, अब मुस्कराऊँगी जीवन की समाप्ति पर । उस समय आपने मुझे तो पोज़ दिया था उसकी प्रशंसा करते मैं न थकती थी । अब मैं स्वयं पोज़ दूँगी, देखिए", कहकर वह सबों के रोकने के पहले ही पलँग पर उठकर बैठ गई । सिर हिलाकर उसने खुले बालों को अपने मुँह पर बिखरा लिया । उसके पीले मुख पर गढ़े पड़ गये । दाँत थोड़े से बाहर निकल आये और वह मुस्कराई । उस युवक की ओर देखकर और उसके हृदय की घृणा, निरादर व्यंग और तीव्रता सभी उसके चेहरे पर खिंच गये थे । किसी अदृष्ट शक्ति ने मेरा हाथ जेब में डाल दिया और पिजन कैमरा निकल आया । खटका दबते ही वह खुला और फ़ोटो एक्सपोज हो गया ।

उधर वह निर्जीव होकर गिर पड़ी ।

* * *



में कमरे में दो बड़े इनलार्जमेंट लगे हैं। जिन पर आयलपेंटिंग की हुई है। एक में एक युवती एक गुम्बद पर बैठी है। उसके एक हाथ में एक पुस्तक है, दूसरे में लाल गुलाब का फूल। दूसरी तसवीर एक मरणासन्न स्त्री की है जो बाल बिखेरे भयंकर रूप से मुस्करा रही है। इसके कोने में एक मुरझाया गुलाब का फूल जड़ा हुआ है। पहली पर लिखा है "सौन्दर्य", दूसरी पर "कुरूपता।" मेरे सिवा यह कोई नहीं जानता कि वे दोनों चित्र एक ही स्त्री के हैं, और वह मुरझाया गुलाब का फूल वही फूल है, जो वह युवती हाथ में लिये है।



त्रिबेनी

श्रीजैनेंद्रकुमार

त्रिबेनी आख़िर चौके से बाहर आई। यह कुलच्छनी लड़का जाने कहाँ धूल में खेलता फिरता है। और आता है तो रोता हुआ। घड़ी भर चैन नहीं लेने देता—हाँ तो।

चौके से बाहर आकर कान पकड़कर उसने कहा—क्यों रे! तू कहाँ था? बोल, कहाँ था? बोलता नहीं?—तो जा, मर।

बच्चा न बोला, न गया, न मरा। रोता आया था, सो रोना भी बन्द हो गया और मुँह फुलाकर गुमसुम खड़ा हो गया।

त्रिबेनी ने कान और खींचकर कहा—क्यों रे! जवाब क्यूँ नहीं देता? कहाँ गया था?

लड़के का नाम रिपुदमन है। वह फूले काठ के लट्ठे की नाईं अटल, अपराजित बना हुआ खड़ा रहा।

"अभी तो कपड़े पहनाये थे, अभी कैसे कीचड़ कर लाया? क्यों रे! गया कहाँ था?" कहकर घर में खाने को हो तो बच्चे के लिए लेने चली गई।

रिपुदमन आँगन में अकेला रह गया। पहले तो वह खड़ा रहा, खड़ा रहा। फिर उसके बाद चुपचाप बाहर निकला और पास के एक कुएँ पर चढ़, उसमें पैर लटकाकर बैठ गया।

कुछ गजक-रेवड़ी हाथ में लिये त्रिबेनी जो आई तो देखती है, आँगन में चिड़िया का पूत भी नहीं है। बोली—'पाजी कहीं का, और एक[illegible] चलती हुई दरवाज़े से बाहर आ गई। पुकार[illegible] बोली—ओ, कहाँ गया रे। ले, यह ले।

इतने में देखती क्या है कि वह सामने कुएँ [illegible] पैर लटकाकर जो बैठा है, वह रिपुदमन! [illegible] गई, बाँह पकड़कर झटके से उसे उठाया, [illegible] घसीटती हुई ले चली। घिसटते हुए बाल[illegible] बोला—मैं नहीं खाऊँगा। कुछ नहीं खाऊँगा। कभी नहीं खाऊँगा। अब बालक ने अपना [illegible] ही छोड़ दिया, और वह धरती पर गिरा [illegible] लगा। उसको सीधा थामे रखने में त्रिबेनी [illegible] कलाई दुख चली। तब उसने बालक की [illegible] छोड़कर कहा—"नहीं खायगा? तू नहीं खायगा!" और यह कहकर उसे थप्पड़ों, लातों से मारने लगी।

बालक रोया बिलकुल नहीं। उल्टे उद्दंडता [illegible] चिल्लाता रहा—मार ले आज। तू ख़ूब मार [illegible] जी भरकर मार ले। मैं नहीं खाऊँगा। तैने [illegible] क्यों पकड़ा? मैं तो नहीं खाऊँगा मरी।

"मत खा, मत खा, चंडाल!" कहकर हाथ [illegible] गजक और रेवड़ी को ज़ोर से बच्चे के सिर [illegible] पटककर त्रिबेनी झींकती हुई घर में चली गई।

अन्दर चूल्हे के पास गई। आँच मन्दी हो [illegible] थी। उसने धुआँ देकर जलती हुई लकड़ी [illegible] ज़ोर से चूल्हे के भीतर किया। पास से उठा[illegible]



दूसरी लकड़ी को भी उसमें ठूँसा। फिर ज़ोर-ज़ोर से फूँक मारने लगी और बीच-बीच में झल्लाने लगी। आँच आख़िर बल आई। उसने चूल्हे की बटलोई को ठीक किया। फिर वहीं चूल्हे के बराबर माथे को हथेली में लेकर बैठ रही।

..........अब तक नहीं आये! छुट्टी नहीं हुई? ऊँह होगा कुछ।....सच, अब मुझसे नहीं होता काम। वह जानें, उनका काम जाने। अब फिर....यह साँसत आये साल सिर पर रक्खी है। भगवान् तूने औरत को क्यों जनमा! आये दिन यही धंधे! तिस पर क्लेश! मुझसे नहीं होता, नहीं होता। सिर तो फटा जाता है, कैसे करूँ?....

उठकर कमरे में आकर खाट पर बैठ गई। उसका जी ठीक नहीं रहता। ब्याह के बाद से ही कुछ गड़बड़ हाल। तबीयत अनमनाई, मिचलाई रहती है। सिर में दर्द तो हर घड़ी बना रहता है। हरारत भी लग आया करती है। आराम चाहती है, पर आराम कहाँ मिलता है। और मिलता है तो उससे भी उकताहट जल्दी आ जाती है। एक दिन कटता है, दूसरा दिन आ जाता है। उसकी समझ में नहीं आता, ये दिन पर दिन क्यों आते हैं? कहाँ से आते हैं? सब कुछ एक साथ ख़तम क्यों नहीं हो जाता। जीना एक दिन के लिए हो और ख़ूब ख़ुशी से फुलझड़ी की तरह उस दिन जी लिया जाय, और फिर अगले दिन के लिए कुछ रहे ही नहीं—ऐसा हो तो क्या हर्ज़ है? देखो, पड़ोस में उनके घर कैसी हँसी रहती है। बच्चे कैसे फूल से खिले रहते हैं। एक हम हैं कि........ऊँह....हैं! क्या वक़्त हो गया। वह आते न हों।

सोचने लगी कि वह उठे, जाकर गरम पानी ठीक कर दे, कुछ नाश्ते का बंदोबस्त कर दे, क्योंकि वह आते ही होंगे।

त्रिवेनी के पति मनसाराम स्कूल में मुदर्रिस हैं। २५) माहवार पाते हैं। ब्याह को पाँच से कुछ ही ऊपर साल हुए हैं। बड़ा बच्चा रिपुदमन है ही। एक लड़की हुई थी, जो एक बरस से ऊपर की होकर चेचक में जाती रही। दूसरा बच्चा मरा पैदा हुआ, आख़िरी गर्भ गिर गया। इस तरह तीन प्राणी हैं। इतने में एक तरह से गृहस्थी मज़े में निभ जाती है। दो-चार रुपये बचाकर वे दोनों जने आयन्दा के लिए सैंतकर जोड़ते भी जाते हैं। इस भाँति गृहस्थी की गाड़ी चल ही रही है।

चल तो रही है, पर चूँ-चूँ भी करती जाती है। जिया जा रहा है, पर जीने का कुछ रस नहीं मिल रहा। दोनों जने मिलते तो हैं, बोलते भी हैं। आये साल दोनों अपने बीच नई सृष्टि भी करते हैं। पर ढर्रा है, चल रहा है। जो हो रहा है, हुए जा रहा है। कुछ लुत्फ़ नहीं, सार नहीं। मानों सब कुछ बीतने के लिए बीत रहा है। मौत आवेगी तब कहीं छुट्टी होगी।

त्रिवेनी सोच रही थी कि अब उठूँ, जाऊँ, उनके लिए पानी ठीक कर दूँ। इतने में पति आ गये।

आते वक़्त रास्ते में उन्होंने देखा था कि रिपुदमन धरती से चिपटकर पड़ा है। रूठा मालूम होता है। शायद पिटा हो। उन्होंने पूछा था—"क्यों रे! क्यों रो रहा है?" जब पूछने और बाँह पकड़कर झिटकने से भी लड़का नहीं बोला, तब मास्टर ने कहा था, "मा ने मारा होगा। क्यों?" बालक फिर भी कुछ न बोला। इस पर भारी मन से मास्टर बच्चे को वहीं छोड़ चुप-चाप चले आये थे।

त्रिबेनी उठ रही थी कि पति को आता देखकर खाट पर ही बैठी रही। पति कमरे में आये, साफ़ा उतारकर खूँटी पर लटका दिया, कोट भी उतारकर टाँग दिया और बिना बोले चुपचाप बाहर आँगन में आ गये। वहाँ घड़े से पानी लेकर हाथ-मुँह धोने चले।

त्रिबेनी बैठी देखती रही। दोनों में से कोई



कुछ नहीं बोला। पति ने आराम से वक़् लगा-कर हाथ-मुँह धोया, अँगोछे से पोंछा, फिर कमरे में आये। वहाँ आकर कोट पहना, साफ़ा सिर पर रखते हुए कहा—"मैं खाना नहीं खाऊँगा आज।"

पल भर मौन रहकर त्रिबेनी ने कहा—"खाना नहीं खाओगे? कल भी नहीं खाओगे?"

"नहीं दोगी तो नहीं खाऊँगा। देखो, मेरा इन्तज़ार मत करना। लौटने में मुझे आज देर हो सकती है।"

"कुछ काम है?"

"काम भी है।"

इसके बाद त्रिबेनी ने कुछ नहीं पूछा। मास्टर-जी ने भी कुछ अपेक्षा नहीं की और क़दम बढ़ा-कर चले गये।

त्रिबेनी कुछ देर तो वहीं की वहीं बैठी रही। थोड़ी देर बाद उठी और जाकर चूल्हे में पानी झोंक दिया, बटलोई को उतारकर धरती में पटक दिया। फिर आकर उसी खाट पर मुँह ढाँपकर पड़ गई।

आधा घंटा हुआ होगा कि त्रिबेनी उठी। एक साथ उठकर झाड़ू से घर का आँगन बुहारने लगी। वहाँ कूड़ा ज़्यादा नहीं था, पर त्रिबेनी आँगन साफ़ करना चाहती थी। बुहारी हाथ में थी, तभी उसने सुना कि कोई दरवाज़े के बाहर से 'उन्हें' पूछ रहा है। पूछ रहा है—मास्टर मन्सारामजी का घर क्या यही है? मास्टरजी! मास्टरजी!!

पहले तो उस स्वर पर चौंकने को हुई, फिर 'होगा कोई' मन में यह कहती हुई वह अपने काम में लगी रही। इतने में ही आगत व्यक्ति अन्दर आ गया और आँगन के किनारे खड़े होकर पुकारने लगा—मास्टर मन्सारामजी! मास्टरजी हैं?

त्रिबेनी ने आँख ऊपर उठाकर देखा। देखकर वह सन्न रह गई। बुहारी हाथ से खिसक गई। वह व्यक्ति भी अचकचा गया। हठात् बोला—"मास्टरजी हैं? मैं—मिलने आया था।"

क्षणेक तो त्रिबेनी विमूढ़ रह गई। फिर उसके मुँह से निकला 'आओ'। निकला तो, पर वह वहीं की वहीं रह गई।

व्यक्ति ने बिलकुल ही पास आकर मानों उसकी आँखों में कहा—"मैं—मिलने आया हूँ। वह हैं?"

अब त्रिबेनी स्वस्थ हो आई। मुस्कराकर बोली—वह तो नहीं हैं....।

कहकर अन्दर गई और एक कोने से मोढ़ा खींचकर अपनी धोती से उसे झाड़कर खाट के पास बिछा दिया। किनारे एक काठ की कुर्सी पड़ी थी, उसे भी बिछा दिया! नीचे पड़ी दरी खींचकर, तह करके कुर्सी पर डाल दी। व्यक्ति आँगन में खड़ा था। त्रिबेनी ने कहा—आइए।

व्यक्ति ने हँसकर कहा—लेकिन मैं तो एक हूँ। और वह कमरे में गया।

त्रिबेनी ने उधर ध्यान न देकर कहा—बैठिए।

व्यक्ति के बैठने से पूर्व वह ही कमरे से बाहर चली गई। चौके में पहुँचकर उसे अचरज हुआ कि उसने यह चूल्हे में पानी कब डाल दिया, क्यों डाल दिया? क्या अब अँगीठी में आग सुल-गावे? उसने अँगीठी ली और आँगन से होकर घर से बाहर चली।

व्यक्ति ने आँगन में से जाते हुए उसे देखकर कहा—"क्या कर रही हो? क्या इरादा है?"

लेकिन त्रिबेनी ने उसकी बात सुनी भी नहीं और बाहर जाकर एक पड़ोसिन से कहा—"बीबीजी, अपने हेम से चार पैसे का दही मँगा दो। और रबड़ी, चार पैसे की रबड़ी और दो बीड़े पान... और तुम्हारे घर में आँच हो गई है? दो कोयले आँच के और दे दो, बीबीजी! मुझे जल्दी है!"

कहकर पड़ोसिन को पैसे दे दिये और अँगीठी में कोयले लेकर चली आई।

जा रही थी, तब व्यक्ति ने फिर कहा—"यह क्या रही हो?" लेकिन त्रिबेनी ने कुछ नहीं सुना। चौके में जा अँगीठी में कोयले डालकर वह जल्दी जल्दी फूँक मारकर उन्हें दहकाने में लगी रही।



आँच हो गई, तब वही आलू की बटलोई उस पर रख दी।

अब कमरे में आई। अतिथि ने कहा—"यह क्या कर रही हो? देखना कुछ....।"

वह बोली—"मास्टरजी यहाँ नहीं हैं....।"

"नहीं हैं? कब आयेंगे?"

"मालूम नहीं। देर भी हो सकती है?"

"कितनी देर?"

"मालूम नहीं।"

"अच्छा, तो मैं चलूँ। मिलना था। मुझे इसी गाड़ी से जाना भी है।"

"आप मास्टरजी से ही मिलने आये थे? वह तो हैं नहीं।"

व्यक्ति कुछ देर त्रिबेनी को देखता रहा। वह भी देखती रही। सहसा वह बोला—"मेरा ताँगा खड़ा है। ताँगेवाला इन्तज़ार करता होगा।"

त्रिबेनी ने कुछ नहीं कहा, चुपचाप खड़ी रही। जब देखा कि उसे बोलना ही होगा, नहीं तो यह आदमी प्रत्याशा से उसे देखता ही न रहे, तब बोली—"मैं क्या कह सकती हूँ। आप आये हैं। जाना चाहें तो रोकनेवाले मास्टरजी होते, वह हैं नहीं। क्या उनके नाते मैं रुकने को कह सकती हूँ?"

व्यक्ति ने कहा—"त्रिबेनी, हम सच क्यों न बोलें? सच यह है कि मुझे मालूम नहीं। और अब तो कल मुझे कानपुर ज़रूर पहुँचना है। यह आख़िरी गाड़ी है। मुझे जाने दो, त्रिबेनी।"

त्रिबेनी ने कहा—"जाओ न। मैं क्या कुछ कहती हूँ।"

"लेकिन तुम नाराज़ तो नहीं हो?"

"नाराज़? नाराज़ होकर क्या कर लूँगी?"

"देखो त्रिबेनी, इसी से मुझे और भी चलना चाहिए। लो, मैं चला।"

व्यक्ति कुर्सी से उठा। त्रिबेनी दरवाज़े की राह छोड़ अलग हो गई। जैसे किसी की राह के बीच में होकर खड़ी होनेवाली वह कौन है। वह कोई नहीं है। पति की पत्नी है और पति इस समय नहीं है।

व्यक्ति ने कहा—"अच्छा तो त्रिबेनी, मुझे माफ़ करना।"

त्रिबेनी कुछ नहीं बोली। व्यक्ति चलकर आँगन में आ गया। कमरे में से ही अब त्रिबेनी ने कहा—"लेकिन सुनो। मैं पूछती हूँ, तुम आये क्यों?"

व्यक्ति मुड़कर त्रिबेनी की ओर देखता हुआ खड़ा रह गया। दिन हुए, ज़िन्दगी में एक बात आई थी। वह आई नहीं कि बीत गई। उस नन्हीं-सी बात की क़ब्र के ऊपर से बरस के बरस धड़-धड़ाते हुए निकल गये हैं। वही बीती बात उन सब वर्षों को व्यर्थ बनाकर आज कोंपल फोड़कर हरी-हरी उठ आना चाहती है क्या। न, न, सो न होने देना होगा। अतिथि कुछ न बोला।

त्रिबेनी ने कहा—"नहीं आते तो कुछ हर्ज था?"

व्यक्ति यह सुनकर एकाएक लौटकर कमरे में आ गया और कुर्सी पर बैठ गया। बैठकर थिरता से बोला—"सुनो त्रिबेनी, इसके बाद गाड़ी रात के एक बजे जाती है। लेकिन ख़ैर। एक काम करो। ताँगे में से सामान मँगवा लो।"

"सामान मँगवा लूँ?"

"हाँ, मँगवा सकती हो। यह हैं ताँगेवाले के पैसे। पर त्रिबेनी, बड़ी दया हो, अगर न मँगवाओ, मेरे यहाँ रहने से किसको सुख मिलेगा? तुमको नहीं, मुझको नहीं। फिर किसको?.... त्रिबेनी, मैं फिर कहता हूँ, मुझको जाने दो।"

त्रिबेनी कुछ देर चुप रही। फिर धीमे-से-धीमे बोली—"मैं तो कुछ भी नहीं कहती। मैंने कभी तुम्हें लिखा? तुम्हें बुलाया? फिर तुम क्यों आये?"

व्यक्ति लज्जा से कुछ लाल हो आया, जैसे अभियुक्त हो, बोला—"मैं यह नहीं जानता था, त्रिबेनी। सच नहीं जानता था। नहीं तो—।"

उस समय शीघ्रता से त्रिबेनी ने कहा—"जाना बिलकुल ज़रूरी है?—बिलकुल?

"ज़रूरी?—लेकिन मैं तुमको एक क्षण भी दुःख



नहीं दे सकता, त्रिबेनी। इसलिए बिलकुल ज़रूरी है।"

इतने में पड़ोसिन का वह लड़का हेम चाची चाची कहता हुआ अन्दर आया और चार-चार पैसे की दही और रबड़ी और दो बीड़े दिखाकर बोला—"चाची, देख, मैं दौड़कर लाया हूँ। दही वाला कम देता था। मैं भला कम लेनेवाला हूँ? मेरा नाम है, हेम। मैंने कहा—और रख। उसने और रक्खा। मैंने कहा—और रख। वह इधर-उधर करने लगा। चाची, उन्ने समझा, मैं लड़का हूँ। मेरा नाम है, हेम। मैंने कहा, रखता है या नहीं। चाची, रखवा के छोड़ा, रखवा के। चाची, अब तुम्हीं बताओ, इस काम का मेरा एक पैसा हुआ कि नहीं। क्यों चाची?"

चाची त्रिबेनी ने कहा—"एक नहीं, दो। ला, यह चीज़ यहाँ मोढ़े पर रख दे। और देख, हेम भैया, चौके में से दौड़ के एक तश्तरी तो ले आ।"

तश्तरी आ गई। सामान उस पर रख दिया गया। दो पैसे हेम ने पाये और वह उछलता हुआ भाग गया।

अब त्रिबेनी ने अतिथि से कहा—"तो मैं खाना न बनाऊँ?" अतिथि ने आश्चर्य से कहा—"खाना? खाना बनाने की सोच रही थीं?"

"कहो तो न बनाऊँ।"

अतिथि ने ज़ोर से कहा—"नहीं, बिलकुल नहीं। मैं मानता हूँ। मैंने ग़लती की, मैं आया। मैं नहीं खाऊँगा। मैं नहीं खा सकता। मैं इसी गाड़ी से चला जाऊँगा।"

त्रिबेनी उसे देखती रही। बोली—"तो इन चीज़ों को वापस कर दूँ? मेरे दस पैसे ख़र्च हुए हैं। दस पैसे।—जानते हो? तुम बड़े आदमी हो—क्या जानोगे?" वह कठिन हँसी हँसी—"और इन्हें अब वापस कौन करेगा?"

व्यक्ति कुछ देर तो मानो सहमा-सा रह गया। फिर एकाएक वह भी खिलकर हँसा। ज़ोर से बोला—"छोड़ो—छोड़ो। अच्छा यह बताओ, तुम्हारे क्या बाल-बच्चे हैं?" कहकर वह और भी हँसा।

त्रिबेनी की मुस्कराहट फैल गई, पर वह मुस्कराहट कठिन से और कठिन हो आई। बोली—"बाल-बच्चा! है क्यों नहीं। हुए चार, है एक। बाहर तुम्हें कोई नहीं मिला?"

व्यक्ति की हँसी भी इस पर सहसा रुक गई। मूढ़ बना, वह बोला—"क्या—आ....?"

त्रिबेनी ने उसी भाव से कहा—"क्या-आ नहीं; बाल-बच्चा! सच तुम्हें बाहर कोई नहीं मिला?"

व्यक्ति ने हँसकर कहा—"तुम जाने कैसी बात करती हो। पर, सचमुच एक लड़के से मैंने मकान पूछा था। वह धरती पर पड़ा था। मेरी बात सुनकर चुपचाप उठा, और मुझे यह मकान बता गया। फिर जाकर वहीं लेट गया। लेकिन तुम कह क्या रही हो?"

मैं कह रही हूँ—"बाल-बच्चा!" और उसकी हँसी और भी अनबूझ हो गई।

त्रिबेनी की इस हँसी को देखकर व्यक्ति काँपकर पीला पड़ गया। फिर एकाएक व्यस्त भाव से बोला—"देखो-देखो, मैं कहता न था, मुझे आना चाहिए। देखो अब तुम रो रही हो। मैंने सच बड़ी भूल की, मैं आया। मुझे माफ़ करो, त्रिबेनी। मैं चला। त्रिबेनी इसी मिनट चला जा रहा हूँ। फिर तुम क्यों रोओ।"

इस आदमी के मन की व्यथा को क्या वह समझती नहीं। तब वह उसे अपने आँसुओं से कैसे बहा दे? उसे अपना दुःख अपना पाप मालूम हुआ। वह गुमशुम खड़ी रह गई। आँखों में जो पानी आ रहा था, वहीं रुक गया। और सचमुच वह प्रसन्न बनी बोली—"कभी राज़ी-ख़ुशी का ख़त साल-छै महीने में नहीं डाल दे सकते? इतना काम रहता है?"

व्यक्ति ने रुककर कहा—"काम? पर अब तो ख़त नहीं ही डाल सकता। बताओ, क्यों डालूँ!



और राज़ी-ख़ुशी । ओह, राज़ी और ख़ुशी तो मैं सदा का हूँ ।"

त्रिवेनी ने असमंजस में कहा—"अच्छा-अच्छा । जैसी तुम्हारी मर्ज़ी । मेरी कोई, कैसी, कुछ इच्छा नहीं है। ख़ुश रहो, यह चाहिए ।........अच्छा और तो कुछ न खा सके, लो, यह पान तो ले लो।"

हाथों से उठाकर त्रिवेनी ने तश्तरी सामने कर दी।

अतिथि ने रुककर कहा—"पान, मैं—"

त्रिवेनी अब भी हठात् मुस्कराई । बोली—"पान नहीं खाते तो जाने दो ।"

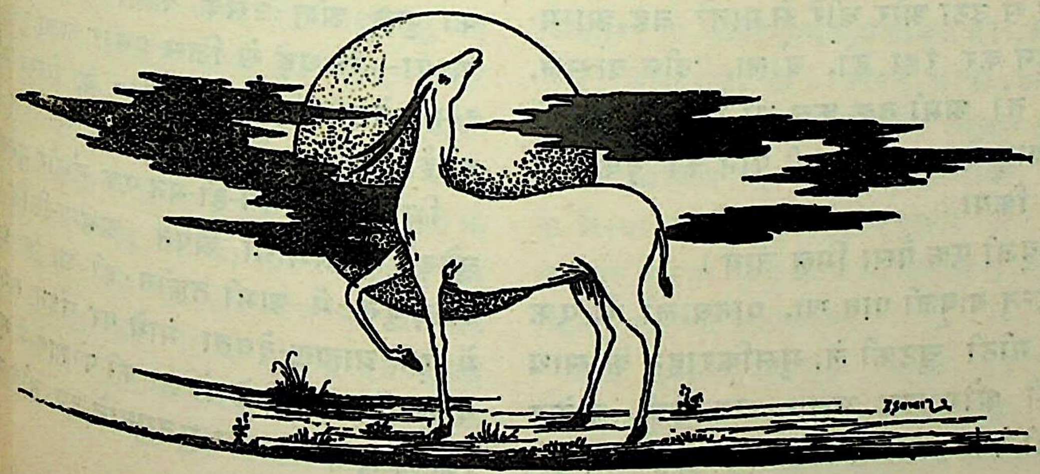
व्यक्ति ने उस मुर्झाई मुस्कान को देखा और जल्दी मचाकर बोला—"अच्छा लाओ, जल्दी लाओ।" और रखकर फिर उठाई हुई त्रिवेनी के हाथों में थमी तश्तरी में से मानों झपटकर बीड़ा उसने उठा लिया ।

त्रिवेनी ने कहा—"इधर स्टेशन से तो कभी-कभी गुज़रते होगे । काम का हरज न हो तो छठे-छमाहे दर्शन दे दोगे तो ऋण रहेगा ।"

व्यक्ति ने कहा—"ऋण ! तुम जानतीं नहीं, त्रिवेनी । लेकिन तुम्हारे प्रताप से अब यह क़सूर मुझसे न होगा ।"

यह कहकर वह हठ-पूर्वक अपने को सँभाल-कर चल ही दिया । पान हाथ में रहा ।

त्रिवेनी देखती रही, देखती रही । फिर मानो मूर्च्छा से जाकर एकदम कर्तव्य-तत्पर हो पड़ी । सोचने लगी, रात को जब पति आवेंगे, मैं उनसे क्षमा माँगकर अपने आँसुओं से उनका सब क्रोध बहा दूँगी । मैं बड़ी स्वार्थिन हूँ, बड़ी स्वार्थिन हूँ । इसी तरह की बातें सोचते-सोचते वह बाहर गई और बच्चे को गोद में उठाकर चूमती हुई घर ले आई । उससे रो-रोकर माफ़ी माँगने और मनाने लगी । लेकिन बच्चे ने जब तक दोने की पूरी रबड़ी नहीं खा ली, तब तक नहीं प्रकट होने दिया कि उसका क्रोध तनिक भी मंद हुआ है । उस समय उस स्त्री में यह भाव हुआ कि यह बच्चा इतना बड़ा क्यों हो गया कि मैं आज उसे अपना स्तन-पान नहीं करा सकती । उसकी छाती में मानो दूध उमड़ने लगा ।



कूड़ा-कर्कट

श्रीयुत कालीचरण चटर्जी एम्० ए०

'बाबा दिया-लिया, यही तुम्हारे काम आवेगा।'

विलोबी मेमोरियल हाल के सामने से जो सड़क कचहरी की ओर चली गई है, उसी सड़क के नुक्कड़ पर बैठा-बैठा एक काना भिखारी सतेज एवम् सुगम्भीर स्वर से यों चिल्ला रहा था। उसकी अवस्था ६० को पार कर गई थी। मुँह पोपला हो गया था और चेहरे पर चेचक के दाग़ कसरत से थे; बाल सन की तरह सफ़ेद, परन्तु स्थान-स्थान पर लटुरिया पड़ी हुई तथा बिखरे हुए थे। उसकी एक आँख कदाचित् चेचक से जाती रही थी।

जब दिन के १० बज गये, तब वह उस स्थान से उठा और धीरे से मानो वह आत्म-निवेदन कर रहा हो, बोला, "दीन-वत्सल, आज तो अभी तक कुछ भी नहीं।" इतने में एक बाबू ने सड़क पर की पान की दूकान में प्रवेश किया।

बाबूजी एक पैसा मिल जाय।

परन्तु बाबूजी पान खा, पानवाली से एक शिष्ट मीठी चुटकी ले, मुसकिराहट के साथ उसकी ओर एक झलक भर देख, पाकेट में मनी-बेग रख, सिगरेट की कश लेते हुए दूकान से निकलकर सड़क पर आये और उन्होंने कचहरी का रास्ता लिया। दरिद्र भिक्षुक की करुण प्रार्थना उनके कानों तक शायद पहुँची ही नहीं। पर वह ऐसी अव-हेलना के पीने का अभ्यस्त हो चुका था।

दो नवजवान उसी सड़क से होते हुए कंधे से कंधा मिलाकर पोस्ट-आफ़िस की तरफ़ जा रहे थे। स्फीत शिरायुक्त एक शीर्ण हस्त उनकी ओर प्रसारित कर फिर उसने कहा, "दुहाई बाबा लोगों की, एक पैसा मिल जाय।"

सिर से पैर तक उसकी हुलिया देखकर दोनों युवक आगे निकल गये। उनके मंतव्य का कुछ अंश उसके कानों तक बहते हुए आया—चिथड़े से जिस प्रकार सजा हुआ है, इससे बेटा सी० आई० डी० के सिवा और कोई हो ही नहीं सकता।

भिखारी ने मन-ही-मन एक गंभीर मुस्कान छोड़ी। अभागा अपने अभीष्ट-सिद्धि की उधेड़बुन में अभी तल्लीन ही था कि इतने में एक ब्राह्मण-देवता माथे पर चंदन लगाये, बीसवीं शताब्दी के पंडित की पोशाक में सुस-ज्जित, कुछ मंत्र-तंत्र गुनगुनाते हुए तीव्र गति



से फ़ारेस्ट-आफ़िस की ओर जाते हुए दिखाई पड़े। भिखारी उनके सामने जा बोला, "महाराज, इस दीन दुखारी को एक पै..."

उसका कथन अभी ख़त्म नहीं हो पाया था कि पंडितजी क्रोध से एकदम अग्निमय हो गये। आँखें चढ़ाकर, भौंहें तानकर उस पर कोप-बहिर्भूत शब्दों की बौछार करते हुए टूट पड़े और बोले, "तेरी यह आँख भी फोड़ दूंगा।" इतने में और एक सज्जन ने उनको पकड़ लिया और पूछा, "हाँ-हाँ, पंडितजी, क्या माजरा है ?"

"देखिए तो ज़रा इस कमबख़्त को; दफ़्तर जाते वक़्त एक आँख दिखाता है।" फिर उन कटु शब्दों की झड़ी लगा दी।

बेचारे का हृदय तीव्र गति से स्पंदन कर रहा था; उसकी दुर्दशा विद्रोह की अग्नि सुलगा रही थी। परन्तु बुभुक्षा की तीव्रता के कारण उससे कुछ भी कहते न बना। उसके मुँह से केवल एक मर्मभेदिनी आह निकली।

जन-स्रोत सड़क पर अविराम गति से बह रहा था। उसी के बीच वह मानो एक दुर्गंधमय कूड़े का ढेर था; सभी उसको एक बगल में छोड़कर इधर-उधर जा रहे थे।

सहसा एक युवक और एक तरुणी राइट-लेफ़्ट, राइट-लेफ़्ट की चाल से किसी सुखद स्वप्न में विभोर होकर आते हुए दृष्टि-गोचर हुए। युवक हैट, गाग्लस, ब्लेज़र और पैंट से सुसज्जित था और उसके हाथ में कोई वस्तु बादामी काग़ज़ से लिपटी हुई थी। तरुणी के हाथ से एक स्याह रंग का सुदृश्य लेदर-बेग लटक रहा था; वह फ़िरोज़ी रंग की क़ीमती सारी पहने हुए थी, पैर में हाई-हील्ड शू था और कान में सोने के एयररिंग थे। चश्मे से आच्छादित रहने पर भी उसके विलासभरे मदिर नेत्रों में पूर्ण यौवन की मधुमय मादकता धूप-छाँह की झिलमिली-सी उत्पन्न कर रही थी।

—माई-बाबा, एक पैसा इस अपाहिज को मिल जाय।

वह मृग-नयनी रुक गई और अपनी सुदृश्य बेग से एक चमकती हुई चवन्नी निकालकर उसके हाथ पर रख दी। युवक विरक्त-भाव से बोला, इन सब Scoundrels (बदमाशों) को पैसे देकर Help (सहायता) करने के माने इस जघन्य वृत्ति को प्रश्रय देने के हैं। Let them work (ये काम करें) नहीं तो...

शेष शब्द उसने नहीं सुन पाये, क्योंकि एक कार भस्-भस् निर्घोष करता हुआ समस्त शब्दों को कुचलकर चला गया।

परन्तु इस प्रकार टिप्पणी सुनते-सुनते उसके कान भर गये थे।

जेठ का महीना था। सुनील आकाश से मानो आग के अंगारे बरस रहे थे। तप्त, तीखी लू की प्रचंड गरम लपटों से तथा धूल-भरी सड़कों से उड़ते हुए धूलि-कण से राहगीर व्याकुल थे। परन्तु विश्व-प्रकृति की सारी रुक्षता, समस्त कठोरता मानो उस भिखारी के शरीर-मन में पुञ्जीभूत हो उठी थी।

११ बज गया था। परन्तु ओफ़, अभी से चारों दिशाएँ अग्नि की भाँति ज्वलंत हो गई थीं। भीषण लू के आकाशव्यापी झोंकों के सिवा कहीं कुछ नहीं दीखता था। सड़क पर पैर धरना असम्भव-सा प्रतीत होता था। किन्तु वह था उपायशून्य।

अब उसने झटपट गिरते-पड़ते घनी बस्ती का रास्ता लिया। उसके बाल में तेल कभी पड़ा था या नहीं, अनुमान करना कठिन



था; उसका मुख बड़े-बड़े अपरिच्छन्न दाढ़ी के बालों से ढका हुआ था। मारे भूख के उसका पेट पीठ में लगा जा रहा था, मारे प्यास के उसका हलक़ सूख गया था; इन्हीं कारणों से उसका कलेजा क्लान्त तथा विषादभरा मुँह को आ रहा था। उसके बदन पर एक पुराना कोट था—किसी ने किसी समय शायद दिया होगा। गले के पीछे का भाग पसीने और धूल से चीकट हो गया था। नाना प्रकार के पैबन्द से मरम्मत होने पर भी वह अब व्यवहार योग्य नहीं रह गया था।

उस कोट पर उसने एक प्रेमभरी दृष्टि फेंकी; सोचा, मेरा जीवन भी इसी प्रकार पैबन्द से बना है।

"अबे सुअर कहीं का, आँखें फूट गई हैं क्या?"

खाकी वरदी और लाल पगड़ी से सुसज्जित एक कांस्टेबिल अपने विशाल वपु को किसी प्रकार सँभालकर झूमते-झामते उसी सड़क से जा रहा था। हवा के झकोरों से भिखारी के जर्जर कोट का एक अंश उस कांस्टेबिल को अकस्मात् छू जाने से, उसने उसका कान पकड़कर उसकी कनपटी पर एक ज़ोर से थप्पड़ लगाकर उपर्युक्त प्रश्न किया।

वह आँखें फाड़-फाड़कर ताकता रह गया।

ओफ़, असह्य है—इतनी गर्मी अब बर्दाश्त नहीं होती। पसीने से वह बिलकुल तर था। अब उसे चाहिए था थोड़ा-सा विश्राम—थोड़ी-सी शीतलता।

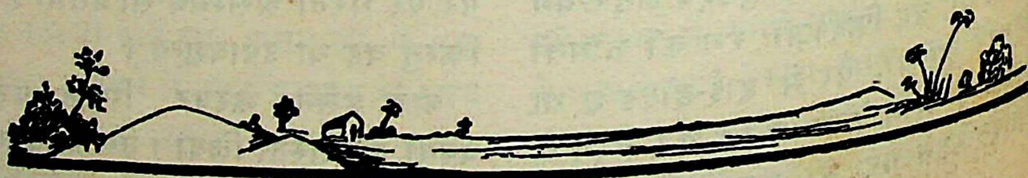
वह अब किंकर्तव्यविमूढ़ होकर धूप की ज्वालामयी लपटों से रक्षा पाने के लिए बेसुध सा दौड़ने लगा। विश्राम की जगह कहीं नहीं दिखाई दी। उसने अंतिम चेष्टा की।—वह सेठघाट है न? आः, उसके पानी के अन्दर पैठकर अब वह शारीरिक थकावट को दूर करेगा—तनिक शीतल हो जायगा। घोर दुःख से घिरे रहने पर भी उसके हृदय के अन्तस्तल से एक आराम की निःश्वास निकल आई।

कोट उतारने का भी अवकाश नहीं था। उसने आव गिना, न ताव; झटपट वह ज़ीने की तरफ़ बढ़ता गया—बड़ी आशा से, मानो उसमें एक जीवनी-शक्ति-सी आ गई हो। पानी में एकदम कूद पड़ने का विचार किया। किन्तु ओफ़्; भगवान्, फिर मेरा कान पकड़कर कौन खींच रहा है?

एक हट्टा-कट्टा युवक उसका कान पकड़, उसे एक ज़ोर से चपत चखाकर, आदर्श वीरता का दृष्टान्त दिखलाता हुआ कहता गया—उल्लू का पट्ठा, मरने के लिए तुझे और कोई जगह नहीं मिली! यहाँ आया है स्नान करने! जानता नहीं, यहाँ आज एक स्वीमिंग क्लब खोला जायगा?

आग की-सी गरम पृथ्वी पर वह धम् से बैठ गया; हाथ से वही चवन्नी सशब्द सीढ़ी पर गिरकर पानी के अन्दर चली गई।

साथ-ही-साथ उसकी आँख से बुझ गई—समस्त रोशनी, समस्त।



मानभंग

श्रीमहावीरप्रसाद पोद्दार

'सुनती हो'

'सोच लो तुम्हीं, तुम्हारे सामने ही सोते समय कान में तेल डाला था ।'

'तो क्यों भई एक बात पूछें तुमसे, तेल तो जैसे तुमने रात में डाला था, पर उसको गरम किया था कि नहीं !'

'तो गरम करने को कोई गोले का तेल तो था नहीं, जो कान में जम जाता । फिर अभी तो उतनी सर्दी भी नहीं पड़ने लगी है कि तुम इसी बहाने मुझे बहरी समझने लगे ।'

'अब यदि बात बढ़ाती ही हो तो दूसरी बात है, नहीं तो 'सुनती हो' कहने में तो कोई वैसा ऐब भी नहीं है—एक बात कहें तुमसे ।'

'नहीं, वैसे तो होने के लिए कोई ऐब नहीं भी है, पर भई, उस गरमी में तो अपना गौना हुआ है, ये कहो कि इसमें अब तुम्हारे पास हूँ, नहीं गये साल तक तो सदा ही हम लोग शिमले जाते रहे हैं । और कान में तेल तो वहाँ भी डालते ही थे । सो जब वहाँ न जमा, जहाँ बरफ़ पड़ती है, तो यहाँ तो ये है कि हाँडी में मक्खन तक तैरा करता है ।'

'सो भई शिमले के लिए तो ये है कि बड़े आदमी फिर रहें कहाँ । और यह तो तुम्हारे पिताजी को मालूम था ही कि मैं आज तक पहाड़ भी क्या, कलकत्ते से कोल्हापुर तक नहीं गया हूँ । सो भई इस हिसाब में तो यहाँ शिमले और मोती-झील का सम्वाद ही व्यर्थ रहा । दूसरे जब शिमले-सरीखी ठंडी जगह में रहकर तुम्हारे कान में गोले का तेल तक नहीं जमा, तो ऐसी अवस्था में यह तो मैं सोचूँगा कैसे कि तुम बहरी हो सकती हो, पर भ्रम में पड़ गया था ज़रा, कि तुम्हें रात को कान में तेल डालने की कैसे याद आई । कल तक तो तुमने पड़ोसिन बुढ़िया को चर्खे की करनी के छिद्र में उँगली से अण्डी का तेल लगाते देखकर उपहास किया है—मैंने स्वयं देखा था—सच मानो इतना आश्चर्य हो रहा है मुझे रात से, कि कैसे, ऐशेस डी की जगह तुमसे कान में कड़ुआ तेल डाला गया । बाथ से शीशी उठाकर लाई थीं कि रामा दे गया था सच कहना । और क्यों भई, तुम यदि कड़ुआ तेल कान में डाल सकती हो तो शीशी भी उठाकर ला सकती हो । पर एक बात कहें तुमसे—हाथ पोंछने के लिए तौलिया वहाँ टँगा था कि नहीं ; क्योंकि आज धोबी को कपड़े हमीं ने दिये थे । शायद है, कहीं भूल गये हों दूसरा टाँगना ।'

'तो इसमें तो दोष मेरा ही है । न रामा को मार्शो को घुमाने भेजती, न इतना यह सब होता ।'

'अब इतना तो मैंने पूछा भी नहीं कि रामा मार्शो के साथ गया है या दूसरे काम से । मैंने तो आकर देखा—बरेठा बैठा है, सोचा रामा काम

से गया होगा। मैं ही कपड़े दे दूँ, थोड़े तो हैं ही। नये थोड़ी देर बाद बदल दिये जायँगे तो भी उतना हरज नहीं है। भई, हम लोग तो बखत पर अपने हाथ से भी काम कर लेते हैं। एक बात कहें तुमसे।'

'तो यों करने के लिए क्या मैं नहीं कर लेती हूँ! जाने दीजिए भई, आप तो हमें चिढ़ाने लगते हैं।'

'पुनः नहीं तो भला ये भी कोई बात हुई। अच्छा, हम बतावें। ठीक-ठीक बताओ, क्या बात है?'

'कौनसी बात।'

'रातभर इतनी ठोंस कैसे बनी रहीं तुम।'

'तो आप पहेली बूझ रहे हैं कि आफ़िस जा रहे हैं?'

'दफ़्तर तुम कहो न जायँ। हमें क्या, टेलीफ़ोन से काम कर लेंगे।'

'ये आपकी मर्ज़ी है। पर आवश्यकता तो आप एक प्रकार से ऐसा करने की व्यर्थ ही अनुभव कर रहे हैं।'

'व्यर्थ तो कैसे है भई। तुमने तो जैसे एक प्रकार से व्यर्थ कह दिया, पर अपनी गम्भीरता भी तो तनिक देखो। क्या ज़रा सी बात, जिसके लिए तुमने नौकर से लेकर कुत्ते तक को दोषी बना डाला, पर साफ़ बात नहीं कह दी। हमने सोचा, यह तो इतना मान कर लेती हैं, पर हम तो इस समय के गये कहीं चार बजे आवेंगे, और ये दो-तीन घण्टे तुम्हें फ़ुरसत के मिलेंगे तो और भर जाओगी। फिर वही—हम कुछ कहेंगे तो तुम यह डर दिखा दोगी कि मैं कान में तेल डालकर सो जाऊँगी। इसी लिए मैंने सोचा कि इस समय चलो मैं ही पहले बोल लूँ, पर देख रहा हूँ कि तुम अभी साफ़ निकलती आ रही हो—तो ठीक है। एक बार कहीं पढ़ा भी था कि कान में तेल डालना लाभदायक है। आते समय वैद्यजी से भी पूछ लेंगे, और निश्चय हो जायगा। अच्छा भी है, यदि इसी प्रकार तुम्हारा कड़वी चीज़ों से थोड़ा प्रेम और बढ़ जाय, तो बातचीत में थोड़ा स्वाद भी अच्छा बन जायगा, पर भई अब तुम ज़रा जल्दी से समाप्त करो यह विषय। कोई चला जाय—देर हो रही है हमें।'

'जाओ। मैंने तो पहले ही कहा—देर होगी।'

'अच्छा तो, जूते पहनूँ? तब तक लिखकर ही दे दो—कहने में शरम लगे तो।'

'तो भई आप करें तो काम क़ायदे से किया करें, नहीं तो नौकर के न करने पर मैं स्वयं करना जानती हूँ। बरेठा यदि बैठा था, तो रामा तो विदेश नहीं गया था; आकर कपड़े दे देता। आपने मैले तो दे दिये, पर पहले उनकी जगह नये बदले बिना क्या मालूम हो किस तरह खोलियें चढ़ेंगी, घंटों लग जायँगे चादरें छांटने मिलाने में।'

'भई वाह शेष में मतलब की बात नहीं कही—अभी तक तुमने।'

'हाँ, तो मैं तो इसी तरह नहाकर पहले तेल ले लेती हूँ। शाम को देखा, वहाँ तौलिया वग़ैरह कुछ नहीं—क्या करती? आपने ही तो बताया था कि यदि कभी क्रोध आवे तो फ़ौरन् काम में लग जाने से ठीक हो जाता है। अतः सामने यही तेल दिखाई दिया। सोचा, कान में ही डाल लूँ।'

'पर अन्त में यह प्रयोग व्यर्थ हुआ क्यों! चलो अच्छा किया—इतना कर लिया तो ख़ैर रही—गम्भीर ही हुईं तुम। नहीं तो क्यों भई, एक बात पूछें तुमसे, हमने उस दिन तुम्हें यह न बता दिया होता—तो शायद क्रोध में तुम हमें चपतियाँ भी देतीं। जब तुम ख़ाली एक तनिक से प्रश्न पर इतनी देर बहस करती हो तो—एँ। पर तुम जैसी स्त्रियाँ क्रोध भी करें तो वह बहुत मीठा लगता है! पर एक बात कहें तुमसे—इतनी बातों में तुम झूठ कितना बोलीं?'

'तो फिर क्यों नहीं चलते हैं, पहाड़ पर आप!



हमें नहीं यहाँ अच्छा लगता । आधा सीजन हो गया—अरे तो हाँ ।'

'हाँ भई, यह तो ठीक है । पर हम लोग तो तुम जानों गरम देश के आदमी । ज़रा में ज़्यादा—पहाड़ पर बसें—रङ्ग सफ़ेद पड़ जाय—क्या फ़ायदा ? तुम्हारे लिए एक प्रकार से ठीक है । एक काम करो, मार्शो को ले जाओ, साहब की तरह पीछे-पीछे पूँछ हिलाता चलेगा । हमें व्यर्थ कष्ट दोगी और उतना समय नष्ट होगा ।'

'ऊँ—जाने दीजिए भई, आप तो मानते नहीं हैं ।'

द्वार पर बातें हो रही थीं, लजाकर भीतर को होने लगीं ।

'अच्छा तो कब चलें, बताओ ?'

'दस दिन में ।'

'और जो पहले चलें तो ?'

'अच्छा तो मैं Route देखती हूँ । तब तक आप हो आइए जल्दी से ।'

'वर्धा, के लिए कहो फ़ोन कर दें । छः घंटे पहले तो इनफ़ार्म कर देना चाहिए कम से कम ।'

'जाने दीजिए तो—आज से कभी नाम भी लूँ तो ।'

'भई, यह तो मुश्किल है । अब बताओ, तुम इतनी जल्दी करती हो, कल नया टाइम-टेब्ल आएगा, देख लेना । क्या जानें कौन-सी मेल में कितना अन्तर पड़ गया हो ।'

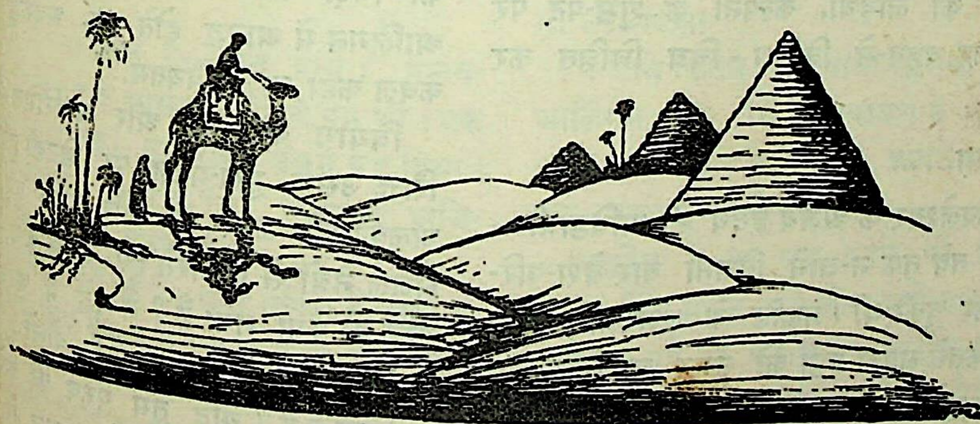
'अच्छा भई, मैं हार गई । अब आप कृपा करके बता दीजिए, कब चलेंगे । मेरा मन यहाँ नहीं लगता ।'

'ले चलेंगे कहो—चलेंगे नहीं ।'

'अच्छा, यों ही सही ।'

'तो लिख लो चाहे—अगले सप्ताह में । पर एक बात सुनो, तेल तो नहीं डालोगी वहाँ ?'

मान-भंग होते ही ओठ खिल गये । आँसू वस्त्र से पोंछती भीतर भाग गईं ।



अवशेष !

श्रीअमृतलाल नागर

फूटे हुए श्यामल-आवरण के बिखरे हुए तार, युवकों की अस्थायी भावनाओं से उड़ते हुए, एकत्र होकर, चमकते हुए विश्व के मान-चित्र पर घोर नैराश्य और अंधकार का परिधान बुनकर उढ़ा रहे थे। नेपथ्य में बजते हुए किसी वाद्य-यंत्र की स्वरोर्मियों-सा मधुर मेरा भावुक-हृदय बीते हुए युग के अवसान का मार्मिक गीत गाना चाहता था—गा रहा था।

संघर्षण-मय जीवन की भूत, वर्तमान और भविष्य की रोतीं, हँसतीं और गाती हुई अनेकों घड़ियों की लड़ियाँ, कल्पना के शुभ्र-पट पर बिखरकर बहुत-से विचित्र - चित्र चित्रित कर गईं।

सहसा......

अखिलेश्वर के अजेय हृदय की अधिष्ठात्री—माया—तब तक न-जाने कितनी बार वेश-परिवर्तन कर चुकी थी। ब्रह्मांड के उपाख्यान के न-जाने कितने सहस्र पृष्ठों को उलट चुकने के उपरान्त, आज से कुछ सौ वर्ष पहले की वह साधारण-सी गाथा......

× × ×

उत्तप्त वातावरण में जवानी की पहेलियाँ बुझाती हुई वह स्वयं एक पहेली सी बन गई थी। उन्मीलित नेत्रों के रक्तिम डोरों में विश्व का समस्त वैभव बिखेरकर उसने एक बार बूढ़े ब्रह्मा की ओर कटाक्षपात किया, फिर मुस्करा पड़ी। कौन जाने वह क्या थी ?...पार्थिव शरीर की इन छोटी - छोटी दस उँगलियों पर गिनकर कौन उसकी विशेषताएँ गिना सका ?—किसमें इतनी शक्ति है ?...शायद स्वयं सर्वज्ञ भी उसे आज भी नहीं समझ सकते।

रण-क्षेत्र में जाने के लिए प्रस्तुत अपने पति को बिदा करते समय, उसने उसके प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध होते हुए, अवरुद्ध कंठ से केवल कहा था—'प्रियतम...'

वियोग की व्यथा और अपरिमित स्नेह से सिक्त उसके मुख-मंडल पर छिटकी हुई दो-एक अलकों को ऊपर की ओर हटाते हुए, उसने सजल नेत्रों से निहारते हुए, उससे कहा—'आज तुम्हें हो क्या गया है ? मैं युद्ध में आज पहली बार तो जा नहीं रहा।...हूँ।...बोलो...।'

'क्या कहूँ ? यदि तुम पुरुष की अपेक्षा स्त्री होते।'—रोदन और हार्दिक क्रन्दन से भरे हुए गले को ज़रा साफ़ करते हुए उसने कहा—'... तुम मेरे अन्तर की भावनाओं को क्या ...



सकते हो ? तुम तो...'। मनस्ताप आवेग के साथ गलकर वह निकला।

एक मीठी-सी चपत उसके गाल पर जड़कर उसने कहा—'छिः ! पागल !'

'..................'

'..................'

'अच्छा.........'

'जाओ, भगवान् बुद्ध मेरे सौभाग्य की रक्षा करेंगे।'

संध्या की धूमिलता में जब तक वह छाया के रूप में भी दिखलाई पड़ता रहा, वह उसे देखती रही।

× × ×

अग्नि के बिखरे हुए कणों में, नीरवता की सैकड़ों मौन-वेदनाओं को मिलाकर उसने केवल एक उष्ण-उच्छ्वास को अपने भावुक-मस्तिष्क की मज्जा-तंतुओं में भर लिया। ज्येष्ठ की आभा-हीन संध्या में, सौध पर खड़ी हुई वह उत्तप्त आकाश में 'अरुण'-पतन देख रही थी, अथवा कुछ और, कौन जाने ?

और तब परिचारिका ने उसे उसके आने की सूचना दी।

'तो, मैं क्या करूँ ?—आते होंगे।' प्रणय-प्रतिष्ठा उसे गर्व के आसन पर बैठाये हुए थी। एक बार अँगड़ाई लेकर, मुस्कराकर उसने कह दिया। परिचारिका मुस्कराई, सिर झुकाकर अभि-वादन किया, फिर चली गई।

'तुम यहाँ बैठी हो ?...बड़ी तपिश है, यहाँ।'

'इसके लिए तुम क्यों चिन्ता करते हो ? तुमसे मतलब ?'

'भगवती आज अप्रसन्न हैं, जान पड़ता है।—परन्तु मेरा अपराध ? दड...'—करबद्ध हो, खड़ा हुआ वह ओष्ठाधरों पर अस्फुट मुस्कान प्रस्फुटित कर रहा थ।

'चलो, बहुत हुआ।...मुझे इस तरह लज्जित करते हुए तुम्हें...।'—रक्तिम कपोल आप-ही-आप नीचे झुक गये।

............कितने सुन्दर थे वे दिन !

कल्पना के धवल पट पर संयोग की बीती घड़ियों के स्वप्न ही वियोग के लम्बे-लम्बे दिनों में शान्तिदायक होते हैं। यह एक 'ध्रुव-सत्य' है।

× × ×

बीते हुए क्षणों की स्मृतियाँ, केवल करुण-कहानियों-सी, अपना स्थायी प्रतिबिम्ब मस्तिष्क-पटल पर नाचता हुआ छोड़कर, मन को अन-मनस्कता और हूक की प्रबल धारा में प्रवाहित कर, चपल किशोरी की भाँति भाग जाती हैं—मुस्कराकर, बिजली-सी कौंधती हुई।...अद्भुत !

दिन यों ही आते-जाते रहते हैं।

...और वे गाथाएँ भी...!

....

'अब और कितने दिन युद्ध होगा, बबुला ?'

'कौन जाने देवि।' गर्दन ऊपर की ओर उठाते हुए, एक दीर्घ निश्वास छोड़कर बबुला ने उत्तर दिया—'इधर पाँच-छः दिवसों से कोई सम्वाद भी नहीं मिला।'

'न-जाने कितने युद्ध-यात्री सैनिकों के अन्तिम आलिंगन हुए होंगे !' भावावेश में वह बड़बड़ा उठी—आन्तरिक वेदना का अवशेष केवल वे कुछ टपकते हुए आँसू थे।

'बुद्धदेव ने तो युद्ध करने की आज्ञा नहीं दी।...फिर भी न-जाने लोग क्यों लड़ते हैं ?'—

बारह वर्ष का किशोर अनुचर अनजाने में ही स्वामिनी के मनस्ताप को प्रबल कर बैठा।

'तू क्या जान सकेगा, बबुला, वे क्यों लड़ते हैं ?'

नत-मस्तक सेवक ने अनुभव किया, उसकी वाणी में अस्थायी तीव्रता का आवेग था। उसने हठात् उसकी ओर देखा, स्वामि... के सौम्य



मुख-मंडल पर उस समय झंझा, दावा, वर्षा और विहंगों के करुण आलाप की क्षयी छाया थी।...और—और—

'उन्माद, धन, स्त्री, विलासिता, राज्य अधिकार !!! ओह ! इन क्षण-भंगुर विनाशी हेय अपदार्थों के लिए वे भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन भी कर सकते हैं ? अहिंसा के पुजारी—हिंसात्मक प्रवृत्ति रखते हुए भी देश और समाज में क्यों मान्य हैं ?'

'विश्व के इतिहास में एक काली रेखा अंकित हो जायगी—बौद्ध योद्धा भी थे—और संसार बेचारे इतिहासकार को मूर्ख बतलाकर गम्भीर अट्टहास कर कह उठेगा—बौद्ध युद्ध भी करते थे ! ॐ नमः बोधिसत्वाय !—अहिंसा को परम धर्म माननेवाले युद्ध में लिप्त रहें ! आश्चर्य !'

....

'भगवान् ने क्या इन्हें हृदयवान् नहीं बनाया, बबुला ?'—चिन्तन के उन कुछ आवेगशील क्षणों के बीत जाने पर वह केवल इतना ही कह सकी।

'आपने क्या कहा, देवि ?'—क़ालीन का ऊन नोचना बन्द कर, चौंककर उसने कहा।

'कुछ नहीं।...तुम जाओ, बबुला।' अश्रु-सिक्त कंठ में अत्यधिक कम्पन के बल पड़े थे।

बबुला अप्रतिभ हो चला गया।

'भगवान् ने तो इन्हें युद्ध करने की आज्ञा नहीं दी।—फिर भी ये युद्ध करते हैं !—किसलिए ? अधिकार के लिए—परिश्रम के श्रेय के लिए ?...

'...वे युद्ध के आवाहन की अवज्ञा न कर सके। मेरा प्रेम, मेरा रोदन, मेरे विरह-वियोग की कल्पना, सब कुछ मिलकर भी उन्हें युद्ध में जाने से न रोक सके ? वे युद्ध से प्रेम करते हैं.........अस्त्र-शस्त्रों का प्राण-घातक आघात, निराश्रित घायल, युद्धस्थल में पड़े हुए कितने ही—पानी...पानी, एक घूंट, केवल......'

भावोन्माद का प्रबल आवेग उसे इससे अधिक कल्पना भी न करने दे सका। उस समय उसे मूर्च्छा-मात्र ही आ गई।

वह कितनी देर मूर्च्छित रही, कौन जाने ?

परिचारिकाएँ तत्परता से उसकी शुश्रूषा करने में संलग्न थीं।

उसने एक बार, एक क्षण के लिए आँखें खोलीं, फिर बन्द कर लीं। दासियों ने संतोष की एक साँस ली।

'न-मालूम कितनी देर से यों ही पड़ी होंगी।...वह तो कहो, मैंने सोचा, स्वामिनी इतनी देर से अकेली हैं—मैं आ गई।...आज स्वामी घर पर होते तो हम लोगों पर कितना बिगड़ते !'

एक दासी ने उसके पैर के तलवे धीरे-धीरे मलते हुए दूसरी से कहा ; और उसने एक क्षण के लिए पंखा झलना बन्द कर दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा—'भगवान् सबकी लाज रखते हैं, बहन।'

सबने एक साथ ही एक निःश्वास छोड़ दी।

बबुला तभी बाहर से दौड़ता हुआ आया, परन्तु स्वामिनी की दशा देखकर सहसा पीछे हट-सा गया।

'क्यों क्या हुआ, इन्हें ?'—अनेक क्षण बीत जाने पर उसने इतना ही पूछा था।

उसने वैसे ही आँखें खोली थीं।

'क्यों, क्या हुआ था, मुझे ?'—उसने प्रश्न किया।

'आप......'

'स्वामी युद्ध से लौट आये हैं, देवि।' दासी की बात काटकर बबुला बोल उठा।

सब आँखें एक साथ ही उसकी आँखों में घुसने की चेष्टा करने लगीं।



क्या हो रहा है, यहाँ ?'

उस विजयगर्वित पुलकित वदन को; और उस उल्लसित स्वर को उन लोगों ने बहुत दिनों बाद देखा-सुना था।

चौंककर दासियाँ अभ्यर्थना के लिए उठ खड़ी हुई।

वह उठ बैठी—मुस्कराकर, सिर आँचल से ढकती हुई।

प्रसन्नमुख बबुला आज्ञाकारिता की प्रत्यक्ष प्रतिमा बन गया था।

× × ×

ब्रह्मदेश के न-जाने किस बौद्ध-मन्दिर का वह घंटा, ईश्वर जाने कब, कैसे और क्यों मेरे आवास में आ गया था। संसार के बहुत से दर्शनीय पदार्थों में मैं उसे भी आकर्षण की एक वस्तु समझता रहा।—और एक दिन......

लखनऊ म्यूजियम के क्यूरेटर महोदय ने उसे देखकर अपने साथ ले जाने की इच्छा प्रकट की।

बहुत दिनों बाद, काग़ज़ के एक टुकड़े पर, म्यूज़ियम ऑफ़िस से केवल इतना लिखकर आया था—

"आज से कोई चार सौ वर्ष पूर्व 'मांगकुन्' और उसकी पत्नी 'शिन्-था' ने अपने प्रेम में उत्तरोत्तर प्रगाढ़ता पाने की इच्छा से यह घंटा भगवान् बुद्ध की सेवा में अर्पित किया था—अपनी अमर-स्मृति के स्वरूप।"

नारी

श्रीउपेन्द्रनाथ 'अश्क' बी०, ए० एल्-एल्० बी०

(१)

रामदयाल पूरा बहुरूपिया था। भेस और आवाज़ बदलने में उसे पूरी क्षमता प्राप्त थी। कालेज में पढ़ता था तो वहाँ उसके अभिनय की धूम मची हुई थी; अब सिनेमा की दुनिया में आ गया था तो यहाँ भी उसकी तूती बोलने लगी थी। कालेज से डिग्री लेते ही उसे बम्बई की फ़िल्म-कम्पनी में अच्छी जगह मिल गई थी और अल्प काल ही में उसकी गणना भारत के श्रेष्ठतम अभिनेताओं में होने लगी थी। लोग उसके अभिनय को देखकर आश्चर्य-चकित रह जाते थे। उसके पास प्रतिभा थी, कला थी और ख्याति के उच्च शिखर पर पहुँचने की आकांक्षा थी। इसी लिए जब भी वह कोई नया भेस बदलता, किसी नये पात्र की हैसियत से काम करता तो बहुरूप और अभिनय में वह बात पैदा कर देता था कि दर्शक अनायास ही वाह-वाह कह उठते और फिर हफ़्तों उसकी कला की चर्चा लोगों में चला करती।

दो महीने हुए, उसकी शादी हुई थी। दादर में छोटी-सी कोठी किराये पर लेकर वह रहने लगा था। कभी समय था कि वह निर्धन कहाता था, परन्तु अब तो वह धन-सम्पत्ति में खेलता था। रुपये की उसे क्या परवा थी। उसका विवाह भी उच्च घराने में हुआ था। पत्नी भी सुन्दर और सुशिक्षित मिली थी। जिस प्रकार बादल सूखी धरती पर अमृत की वर्षा करके उसे सैराब कर देता है, इसी प्रकार निर्धनता से सूखे हुए रामदयाल के दिल को भाग्य ने वैभव की वर्षा से सींच दिया था।

सन्ध्या का समय था। साये बढ़ते-बढ़ते किसी भयानक देव की भाँति संसार पर छा गये थे। रामदयाल वाचनालय में बैठा था। अभी तक कमरे में बिजली न जली थी और वह किवाड़ के समीप कुरसी रक्खे एक लेख पढ़ने में निमग्न था।

चपरासी ने बिजली का बटन दबाया। क्षण-भर में प्रकाश से कमरा जगमगा उठा। रामदयाल ने रुमाल से ऐनक को साफ़ किया और फिर लेख पर अपनी दृष्टि जमा दी। वह 'नवयुग' का 'महिला-अंक' देख रहा था। अंक देखना तो उसने यों ही शुरू किया था, परन्तु एक लेख था कुछ ऐसा रोचक कि एक बार जो पढ़ना आरम्भ किया तो समाप्त किये बिना जी न माना।

लेख में किसी अभिनेता के अभिनय की विवेचना न थी। छद्मवेष कलाकार पर कोई बड़ी बात न लिखी गई थी। एक सीधा-सादा लेख था, जिसमें स्त्री-स्वभाव पर एक नूतन दृष्टि-कोण से प्रकाश डाला गया था। एक सर्वथा नई बात थी। लिखा था—



"स्त्री प्रेम की देवी है। वह अपने प्रिय पति के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर सकती है। वह उसकी पूजा कर सकती है, किन्तु यदि उसका पति उसके शुद्ध प्रेम की अवहेलना करे; उसकी मुहब्बत को ठुकरा दे तो अवसर मिलने पर वह अपने प्रेम की प्यास बुझाने के लिए किसी दूसरी चीज़ को ढूँढ लेती है—चाहे वह चल हो वा अचल, सजीव हो वा निर्जीव! यही प्रकृति का नियम है।"

रामदयाल उठा और गम्भीर मुद्रा धारण किये हुए पुस्तकालय के बाहर निकल आया।

सड़क रोशनी से नव-वधू की भाँति सज रही थी। रामदयाल अपने हृदय की गति के समान धीरे-धीरे चला जा रहा था। उसे देखकर कौन कह सकता था कि यह वही प्रसिद्ध अभिनेता है, जो अपनी कला से भारत भर को चकित कर देता है।

(२)

उर्मिला उसकी पत्नी का नाम था। वह अनुपम सुन्दरी थी, कल्पना से बनी हुई कोमलता की प्रतिमा और मीठे मादक स्वर की सूरत में विधि ने उसे जादू दे डाला था। संगीत-कला में उसने विशेष क्षमता प्राप्त कर ली थी और यह नैपुण्य सोने में सुहागे का काम कर रहा था। जब भी कभी वह अपनी कोमल अँगुलियों को सितार के परदों पर रखती और कान उमेठकर तारों को छेड़ती तो सोये हुए उद्गार जाग उठते और कानों के रास्ते मिठास और मस्ती का एक समुद्र सुननेवाले की नस-नस में व्याप्त होकर रह जाता। रामदयाल उस पर जी-जान से मुग्ध था और वह भी उसे हृदय की समस्त शक्तियों से प्यार करती थी। दोनों को एक दूसरे पर गर्व था, दोनों को एक दूसरे पर अभिमान था। मगर यह सब कुछ स्थायी न हो सका। असार संसार में कोई वस्तु स्थायी हो भी कैसे सकती है? मनोमालिन्य की आँधी ने मुहब्बत के इस छोटे-से पौदे को दम भर में बर्बाद कर दिया।

उर्मिला नीचे ड्राइंगरूम में बैठी थी। वह रामदयाल की प्रतीक्षा कर रही थी। सामने के भवन में आज कोई युवक घूम रहा था। वह कुतूहल-वश उसे देख भी रही थी। उसके कान सीढ़ियों की ओर लगे हुए थे; परन्तु आँखें उस युवक को बेचैनी से घूमते देख रही थीं। यह कोठी कई दिनों से ख़ाली थी, परन्तु अब कुछ दिन से उसे किसी ने किराये पर ले लिया था और उसने दो-तीन बार किसी युवक को बिजली के प्रकाश में घूमते देखा था। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे वह बेचैन हो, जैसे व्याकुलता उसे बैठने न देती हो।

अँगीठी पर रक्खी हुई घड़ी ने टन-टन करके ९ बजाये। सामने के भवन में रोशनी बुझ गई। उर्मिला अपने आपको अकेली-सी महसूस करने लगी। उसने सितार उठाया, उसकी कोमल अंगुलियाँ, उसके परदों पर थिरकने लगीं, उसके अधर हिले और दूसरे क्षण एक करुणापूर्ण गीत वायुमण्डल में गूँज उठा—

'सखि इन नैनन ते घन हारे'

स्वर में दर्द था, लोच था और लय थी, सीने में प्रतीक्षा की आग थी, इन्तज़ार की जलन थी। वह तन्मय हो गई, अपनी ही मधुर ध्वनि में खो गई और उसे यह भी मालूम न हुआ कि रामदयाल कब आया और कब तक किवाड़ की आड़ में खड़ा उसे देखता रहा।

वह गाती गई, बेसुध होकर गाती गई। उसकी आँखें सितार पर जमी हुई थीं, उसके कान सितार के मादक स्वर से डूब गये थे। रामदयाल की भ्रुकुटी तन गई और वह ख़ामोशी से मुड़ गया। खाने के कमरे में उसने दासी से खाना मँगाया और खाकर सोने चला गया। उर्मिला गाती रही, अपने दर्दभरे गीत को वायु के कण-कण में बसाती रही। देवता आया और चला गया, पुजारी उसकी पूजा ही में व्यस्त रहा।

दूसरे दिन रामदयाल प्रातः ही घर से चला



गया और बहुत रात गये घर लौटा। उर्मिला दौड़ी-दौड़ी गई और गंगासागर में पानी ले आई।

रामदयाल के चेहरे से क्रोध टपक रहा था।

"आप इतनी देर कहाँ रहे ?"

रामदयाल चुप।

उर्मिला ने पानी का भरा हुआ गंगा-सागर आगे कर दिया। घर में दो दासियाँ तो थीं, परन्तु पति की सेवा वह स्वयं किया करती थी। रामदयाल जब संध्या को घर आया करता तो वह उसका हाथ-मुँह धुलाती। तश्तरी में कुछ खाने को लाती और पंखा झलती। रामदयाल ने हाथ न बढ़ाये। वह चुपचाप खड़ी उसकी गम्भीर मुद्रा को देखती रही।

उसका हृदय धड़कने लगा। बीसियों प्रकार की शंकाएँ उसके मन में उठने लगीं। उसने उन्हें बुलाने का इरादा किया, किन्तु झिड़क न दें, यह सोचकर चुप हो रही। आशा ने फिर गुद-गुदी की, निराशा ने फिर दामन पकड़ लिया। मनुष्य के हृदय में जब सन्देह उत्पन्न हो जाता है तो निराशा हमदर्द की भाँति समीप आ जाती है और आशा मृग-मरीचिका बनकर दूर भाग जाती है। फिर भी उसने साहस करके पूछा—

"जी तो अच्छा है ?"

"चुप रहो !"

"स्वामी ?"

"मैं कहता हूँ, ख़ामोश रहो !"

उर्मिला खड़ी की खड़ी रह गई। निराशा ने आशा को ठुकरा दिया और अब उसमें उठने का भी साहस न रहा।

उसे कल की घटना याद हो आई, परन्तु साधारण-सी बात पर इतना क्रोध! वह समझ न सकी। उन्हें तो इस बात पर प्रसन्न होना चाहिए था। न ीं, यह बात नहीं, उससे अवश्य कोई दूसरी अवज्ञा हो गई है। हो सकता है, किसी से झगड़ पड़े हों। अथवा कोई दूसरी घटना घटी हो। अशुभ की शंका से उसका मन उद्विग्न हो उठा। वह रामदयाल के चरणों से लिपट गई। उसने कहा—"दासी से कोई अपराध हो गया हो तो क्षमा कर दें।"

रामदयाल ने पाँव खींच लिये, उर्मिला मुँह के बल गिरी। वह सोने चला गया।

उर्मिला बहुत देर तक उसी तरह बैठी रही और फिर लेटकर धरती में मुँह छिपाकर आँसू बहाने लगी। उसे विश्वास न होता था कि उसके पति ने इतनी-सी बात पर उसे नज़रों से गिरा दिया है। रामदयाल के प्रति उसके मन में कई प्रकार के विचार उठने लगे। उसने उन्हें आज तक शिकायत का मौक़ा न दिया था। उसने उनकी साधारण-सी बात को भी सिर-आँखों पर लिया था, फिर यह निरादर क्यों? यह अव-हेलना क्यों?

उसे शंका होने लगी, 'किसी अभिनेत्री ने उनके जीवन-वृक्ष को विष से सींचने का प्रयास तो नहीं किया,' किन्तु दूसरे क्षण अपने इन विचारों पर उसे घृणा हो आई। ग्लानि से उसका सिर झुक गया। रामदयाल चाहे किसी के मोह में फँस जाय, परन्तु उर्मिला के लिए ऐसा सोचना भी पाप है। तो फिर वह अपने पति से इस अन्यमनस्कता का कारण ही क्यों न पूछ ले। क्यों, क्या उसे इस बात का अधिकार नहीं था? वह सहधर्मिणी नहीं क्या? अर्धांगिनी नहीं क्या? यह सोचकर वह उठी। उसके शरीर में स्फूर्ति का संचार हो आया। वह जायगी, अपने पति से इस क्रोध का कारण पूछकर रहेगी और उस समय तक न छोड़ेगी, जब तक वह उसे सब कुछ न बता दें या उसे अपनी भुजाओं में भींचकर यह न कह दें—मैं तो हँसी कर रहा था।

उसके मुख पर दृढ़ संकल्प के चिह्न प्रस्फुटित हो गये। वह उठी और धीरे-धीरे रामदयाल के कमरे में दाख़िल हुई। वह लेटा हुआ था। उसके चेहरे पर एक गम्भीर मुसकराहट खेल रही थी—अव्यक्त वेदना की अथवा गुप्त सुख की, कौन जाने!

उर्मिला के आते ही वह उठ बैठा । उसने कड़क-कर कहा—"मेरे कमरे से निकल जाओ, जाकर सो रहो, मुझे तंग मत करो ।''

"क्या अपराध ?''

"मैं कहता हूँ, चली जाओ ।''

उर्मिला खड़ी की खड़ी रह गई, जैसे किसी जादूगरनी ने उसके सिर पर जादू की छड़ी फेर दी हो । वह स्फूर्ति और संकल्प, जो कुछ देर पहले उसके दिल में पैदा हुए थे, सब हवा हो गये । इच्छा होने पर भी वह दुबारा न पूछ सकी । उदासी का कारण पूछना, अपने अकारण क्रोध का गिला करना, अपने क़सूर की माफ़ी माँगना, सब कुछ भूल गई । कल्पनाओं के भव्य प्रासाद दम भर में धराशायी हो गये, आशाओं के हरियाले पहाड़ मीलों दूर चले गये ।

वह चुपचाप वापस चली आई और सारी रात गीले विस्तर पर सोये हुए मनुष्य की भाँति करवटें बदलती रही । नींद न-जाने कहाँ उड़ गई थी ।

(३)

समय के पख लगाकर दिन उड़ते गये ।

रामदयाल अब घर में बहुत कम आता था । उर्मिला की सेवा के लिए दो दासियों में एक और की वृद्धि हो गई थी । वह उनसे तंग आ गई थी । वह सेवा की भूखी न थी, मुहब्बत की भूखी थी और मुहब्बत के फूल से उसके दिल की वाटिका सर्वथा शून्य थी । बरसात के बादल आकाश पर घिरे हुए थे । ठंडी हवा साक़ी की चाल चल रही थी । बाहर किसी जगह पपीहा कूक उठा था । वायु का एक झोंका अन्दर आया । उर्मिला के हृदय में उल्लास के बदले अवसाद की एक लहर दौड़ गई । दिल की गहराइयों से एक लम्बी साँस निकल गई । उसने सितार उठाया और जुदाई का गीत गाने लगी । आवाज़ में दर्द था, ग़म था, और जलन थी । वायुमंडल उसके गीत से झंकृत होकर रह गया । अपने गीत की तन्मयता में वह बाह्य संसार को भूल गई । रात की नीरवता में उसका गीत वायु के कण-कण में बस गया ।

सहसा सामने के भवन से, जैसे किसी ने सितार की आवाज़ के उत्तर में गाना आरम्भ किया—

"पिया बिन चैन कहाँ मन को"

राग क्या था, किसी ने उर्मिला का दिल चीर-कर सामने रख दिया था । वह अपना गाना भूल गई और तन्मय होकर सुनने लगी । क्या आवाज़ थी, क्या जादू था ? रूह खिंची चली जाती थी । एक महीने से वहाँ कोई सितार बजाया करता था, किन्तु उर्मिला ने कभी उस ओर ध्यान न दिया था । आज न-जाने क्यों, वह उसका हृदय अनायास ही गीत की ओर आकर्षित हुआ जा रहा था । इच्छा हुई खिड़की में जाकर बैठ जाय, परन्तु फिर झिझक गई, उसी तरह जैसे नया चोर चोरी करने से पहले हिचकिचाता है ।

वह खिड़की से झाँकने के लिए उठी । उसे अपने पति का ध्यान हो आया, वह फिर बैठ गई । उसने सितार को उठाया, फिर रख दिया कि गानेवाला यह न समझ ले कि उसके गीत का उत्तर दिया जा रहा है । उठकर उसने एक पुस्तक ले ली और पढ़ना आरम्भ कर दिया, परन्तु पढ़ने में उसका जी न लगा । उसे हर पंक्ति में यही अक्षर लिखे हुए दिखाई दिये—

"पिया बिन चैन कहाँ मन को"

ऊबकर उसने पुस्तक को फेंक दिया और आराम-कुरसी पर लेट गई । गानेवाला अब भी गा रहा था और गीत उसकी नस-नस में बसा जा रहा था । विवश होकर वह उठी । उसने सितार को उठाया, तारों में झनकार पैदा हुई, परदों पर अँगुलियाँ थिरकने लगीं और वह धीरे-धीरे गाने लगी । शनैःशनैः उसका स्वर ऊँचा होता गया । यहाँ तक कि बेसुध होकर पूरी आवाज़ से वह गा उठी ।



"पिया बिन चैन कहाँ मन को"

गीत समाप्त हो गया। दरोदीवार पर छाया हुआ जादू टूट गया। वह जल्दी से उठकर खिड़की में चली गई। उसने देखा, युवक सितार पर हाथ रक्खे उसका गाना सुन रहा है।

उसके शरीर में सनसनी दौड़ गई—विजय की सनसनी! उस समय वह रामदयाल, उसकी मुहब्बत, उसकी जुदाई, सब कुछ भूल गई। उसके हृदय में, उसके मस्तिष्क में केवल एक ही विचार बस गया—उसने दूसरे रागी को मात कर दिया है।

इसके बाद प्रतिदिन दोनों ओर से गीत उठते और वायुमण्डल में बिखर जाते। दो दुखी आत्माएँ संगीत द्वारा एक दूसरे से सहानुभूति प्रकट करतीं, दिल के दर्द गीतों की ज़बान से एक दूसरे ो सुनाये जाते।

एक महीना और बीत गया। कम्पनी एक नई फ़िल्म तैयार कर रही थी और इन दिनों रामदयाल को रात को भी वहीं काम करना पड़ता था। कई रातें वह कम्पनी के स्टूडियो में ही बिता देता। इतने दिनों में वह केवल एक बार घर आया था। उर्मिला का दिल धड़क उठा था। पहली धड़कन और इस धड़कन में कितना अन्तर था। पहले वह इस डर से काँप उठती थी कि रामदयाल कहीं उससे रुष्ट न हो जाय, अब वह इस ख़ौफ़ से मरी जाती थी कि कहीं वह उसके दिल की बात न जान ले, कहीं वह रातभर रहकर उनके प्रेम-संगीत में बाधा न डाल दे। पापी प्रेम! जीवन में इसका पदार्पण होते ही दिल और आँखें कैसे बदल जाती हैं? नहीं, आँख और दिल तो वही रहते हैं, केवल उनकी सहानुभूति के केन्द्रों में परिवर्तन हो जाता है।

अक्तूबर का अन्तिम सप्ताह था। रामदयाल घर आया। उर्मिला उसके मुख की ओर देख भी न सकी, उसके सामने भी न हो सकी। रामदयाल ने उसे बुलाया भी नहीं। वह दासी से केवल इतना कहकर चला गया—"मैं अभी और एक महीने तक घर न आ सकूँगा। चित्रपट के कुछ दृश्य ख़राब हो गये हैं, उन्हें फिर दोबारा खिंचा जायगा।" जब वह चला गया तो उर्मिला ने सुख की एक साँस ली, उसके हृदय से एक बोझ-सा उतर गया। वह कोई चीज़ चाहती थी, जिसके सामने वह अपना मुहब्बतभरा दिल खोलकर रख दे। रामदयाल वह नहीं था, उस तक उसकी पहुँच न थी। पानी उँचाई की ओर नहीं जाता, निचाई की ओर ही बहता है। रामदयाल ऊँची जगह खड़ा था और गानेवाला नीची जगह, उर्मिला का दिल उसकी तानों में फँसकर रह गया।

उस दिन उर्मिला ने एक मीठा गीत गाया, जिसमें उदासीनता के स्थान पर उल्लास हिलोरें ले रहा था, अब वह कमरे में बैठकर गाने के बदले बाहर बरामदे में बैठकर गाया करती थी। दोनों की तानें एक दूसरे की तानों में मिलकर रह जातीं। उनके दिल कबके मिल चुके थे।

संध्या का समय था। उर्मिला वाटिका में घूम रही थी। उसकी आँखें रह-रहकर सामनेवाले भवन की ओर उठ जाती थीं। उस समय वह चाहती थी, कहीं वह युवक उसकी वाटिका में आ जाय और वह उसके सामने दिल के समस्त उद्गार खोलकर रख दे।

वह अकेला ही था, यह उसे ज्ञात हो चुका था, किन्तु कभी उसने दिन के समय उसे वहाँ नहीं देखा था। अब अँधेरा बढ़ चला था और डूबते हुए सूरज की लाली धीरे-धीरे उसमें विलीन हो रही थी। ठंडी बयार चल रही थी और प्रकृति झूम रही थी। उर्मिला के दिल को कुछ हुआ जाता था, कुछ गुदगुदी-सी उठ रही थी। वह एक बेंच पर बैठ गई और गुनगुनाने लगी।

'साजन कब दरस दिखाओगे'

धीरे-धीरे यह गुनगुनाहट गीत बन गई और वह पूरी आवाज़ से गाने लगी। उसे ध्यान नहीं रहा कि वाटिका के बाहर कोई उसका गाना



[illegible]वा होगा। वह अपने गीत की धुन में मस्त [illegible] गई। वाटिका की फ़सील के दूसरी ओर [illegible] किसी ने धीरे से उसके कंधे को छुआ। उसके [illegible] में कम्पन पैदा हो गया और वह सिहर उठी।

"आप तो ख़ूब गाती हैं!"

बैठे-बैठे उर्मिला ने देखा, वह एक सुन्दर बलिष्ठ युवक था। छोटी-छोटी मूछें ऊपर को उठी हुई थीं। बाल लम्बे थे और बंगाली फ़ैशन से कटे हुए थे। गले में सिल्क का एक कुर्ता था और [illegible] में धोती।

उर्मिला ने कनखियों से युवक को देखा। दिल [illegible]हा, भाग चल, पर पाँव वहीं जम गये। पंछी [illegible] के पास था, दाना सामने था, अब फँसा कि तब फँसा।

"आप के गले में जादू है।"

उर्मिला ने युवक की ओर देखा और मुसकराई। वह भी मुसकरा दिया। बोली, "यह तो आपकी [illegible] है, नहीं मैं तो आपके चरणों में बैठकर चिर-[illegible] तक सीख सकती हूँ।"

वह हँसा।

"आप अकेले रहते हैं?"

"हाँ"

"और आपकी पत्नी?"

युवक का मुख उतर गया। "मेरी पत्नी," वह [illegible] से बोला, "मेरी पत्नी कहाँ है। इस निष्ठुर संसार में मैं सर्वथा एकाकी हूँ। मुहब्बत से ठुकराया हुआ, यहाँ आ गया हूँ। कोई मुझे पूछनेवाला नहीं, कोई मुझसे बात करनेवाला नहीं।"

युवक के स्वर में कम्पन था। उर्मिला ने देखा, उसका मुख पीला पड़ गया है और अवसाद तथा निराशा की एक हल्की-सी रेखा वहाँ साफ़ दिखाई [illegible] है। उसके हृदय में सहानुभूति का समुद्र उमड़ [illegible] और उसकी आँखें डबडबा आईं।

वह दीवार फाँदकर बेंच पर आ बैठा। उर्मिला अभी तक बैठी ही थी, उठी न थी। वह तनिक खिसक [illegible], किन्तु उठने का साहस अब उसमें नहीं था।

युवक ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। उर्मिला के शरीर में सनसनाहट दौड़ गई। उसने हाथ छुड़ाना चाहा। युवक की आँखें सजल हो गईं। उसका हाथ वहीं का वहीं रह गया। वह फिर बोला—

"मेरा विचार था, मैं यहाँ आकर, एकान्त में गाकर अपना दिल बहला लिया करूँगा। मेरे पास धन और वैभव का अभाव नहीं, परन्तु इससे मुझे चैन नहीं मिलता, हृदय को शान्ति प्राप्त नहीं होती। इसीलिए मैं सितार बजाता था। इसकी मनोमोहक झनकार मेरे चंचल मन को एकाग्र कर देती थी, इसमें मुझे अपार शान्ति मिलती थी, परन्तु अब तो सितार भी बेबस हो गई है, वह भी मुझे शांत नहीं कर सकती, मेरी शान्ति का आधार अब मेरे सितार बजाने पर नहीं रहा।

युवक ने 'मेरे' पर ज़ोर दिया। उर्मिला सब कुछ समझ रही थी। उसने फिर हाथ छुड़ाने का प्रयास किया। युवक ने उसे नहीं छोड़ा और विद्युत् वेग से उसे अपने प्यासे ओठों से लगा लिया। उर्मिला के समस्त शरीर में आग-सी दौड़ गई। उसने हाथ छुड़ा लिया और भाग गई।

"फिर कभी दर्शन होंगे?"

उर्मिला ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह अपने कमरे में आ गई और पलँग पर लेटकर रोने लगी। पंछी जाल में फँस चुका था और अब मुक्त होने के लिए छटपटा रहा था।

(४)

कितनी देर तक वह लेटे-लेटे रोती रही। उसे रह-रहकर अपने पति की निष्ठुरता का ध्यान आता था। आत्मग्लानि से उसका हृदय जला जा रहा था। वह इस मार्ग को छोड़ देना चाहती थी। पश्चात्ताप की आग उसे जलाये डालती थी। वह चाहती थी, उसका पति आ जाय, उसके पास बैठे, उससे प्रेम करे और वह उसके चरणों में बैठकर इतना रोवे, इतना रोवे कि उसका पाषाण-हृदय पानी-पानी हो जाय।



उठकर वह रामदयाल के पुस्तकालय में गई। एक छोटी-सी मेज़ पर एक कोने में उसके पति का एक फ़ोटो चौखटे में जड़ा रक्खा था। उसने उसे उठाया, कई बार चूमा और उसकी आँखों से आँसू बह निकले।

रामदयाल के पैरों की चाप से उसके विचारों का क्रम टूट गया। वह उठी और सच्चे दिल से उसका स्वागत करने को तैयार हो गई। उस समय उसका मन साफ़ था। विशुद्ध प्रेम का एक सागर वहाँ उमड़ा आ रहा था, जिसके पानी को पश्चात्ताप की आग ने स्वच्छ और निर्मल कर दिया था। वह बाहर आई। रामदयाल के चेहरे पर उसने एक उड़ती हुई निगाह डाली। आज वह अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहा था। इच्छा होती थी, प्रलय-पर्यन्त उसे देखती रहे। जब हमारा मन निर्मल होता है तो हमें प्रत्येक वस्तु निर्मल दिखाई देती है।

वह रसोई से पानी ले आई और रामदयाल के सामने जा खड़ी हुई। उसकी आँखें सजल थीं और मन आशा के धागे से बँधा डोल रहा था। उसने देखा, रामदयाल ने उसके हाथ से गिलास लेकर मुँह धो लिया और फिर उसे कुछ लाने को कहा और जब वह मिठाई ले आई तो रामदयाल ने तश्तरी लेने के बजाय उसे अपनी भुजाओं में लेकर उसके मुँह में मिठाई का एक टुकड़ा रख दिया। एक क्षण के लिए उसके मुख पर स्वर्गीय आनन्द की ज्योति देदीप्यमान हो उठी। उसने सिर उठाया, देखा, रामदयाल उसी तरह बैठा है और वह उसी तरह गिलास लिये खड़ी है। आशा का धागा टूट गया, मादक कल्पना हवा हो गई। सत्य सामने था—कितना कटु, कितना भयानक ?

रामदयाल ने संकेत से उसे चले जाने को कहा। वह चुपचाप पुतली की भाँति चली आई। मानो वह सजीव नारी न होकर अपने आविष्कारक के इशारे पर चलनेवाली एक निर्जीव मूर्ति हो। अपने कमरे में आकर उसने पानी का गिलास अँगीठी पर रख दिया और धरती पर लोटकर रोने लगी। धरती में, मूक और ठंडी धरती में उसे कुछ आत्मीयता का आभास हुआ, कुछ बहनापा-सा दिखाई दिया और वह उसके अंक से लिपटकर रोई, ख़ूब रोई, मानो एक दुखी बहन दूसरी दुखी बहन के गले मिलकर आँसू बहा रही हो।

कई दिन तक वह अपने कमरे के बाहर न निकली। रामदयाल दासी से कह गया था—"मैं और पन्द्रह दिन घर न आ सकूँगा, इसलिए तुम सावधानी से रहना।" उर्मिला को अपने पति की निर्दयता पर रोना आता था। वह पाप की नदी में बही जा रही थी और उसका पति उसे बचाने को हाथ तक न हिलाता था। वासना की विकराल लहरें लपलपाती हुई उसकी ओर बढ़ी आ रही थीं और उसका पति निश्चेष्ट और निष्क्रिय एक ओर खड़ा तमाशा देख रहा था।

साथ के भवन से बराबर गीत उठते थे। उनमें उल्लास की तानें न होती थीं, दुःख और वेदना का बाहुल्य रहता था। उर्मिला की संगीत-प्रिय आत्मा तड़प उठती थी, परन्तु वह अपने कमरे से बाहर न निकलती थी।

शाम का वक़्त था। गानेवाला प्रलय के गीत गा रहा था। उसका एक-एक स्वर उर्मिला के हृदय में खुबा जा रहा था। वह उठी, ड्राइंग-रूम में आ गई। उसका सितार असहाय भिखारी की भाँति एक ओर पड़ा था। उस पर मिट्टी की एक हलकी-सी तह जम गई थी। उसने उसे कपड़े से साफ़ किया और एक आवेश से उठा लिया। उसकी आँखों में आँसू छलक आये। गानेवाला गा रहा था।

'प्रियतम क्यों रूठ गये हमसों'

उर्मिला ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और उसकी कम्पित उँगलियाँ सितार के परदों पर

सिसकने लगीं। बेख़याली में यही गीत उसके सितार से निकलने लगा—

'प्रियतम क्यों रूठ गये हमसे'

वह गाता हुआ अपने भवन से उतरा और दीवार को फाँदकर उर्मिला के पास आ बैठा। वह सितार बजाती रही और वह गाता रहा—

'प्रियतम क्यों रूठ गये हमसे'

दोनों अपनी कला के शिखर पर जा उड़े थे। उसने शायद इससे पहले इतना अच्छा न गाया हो और उसने शायद इससे पहले इतना अच्छा सितार न बजाया हो और गीत की लय तथा सितार की झनकार मानो रूठे हुए दिलों को एक होकर एकता का मार्ग बना रही हों।

गीत समाप्त हो गया। उर्मिला युवक की भुजाओं में थी। अपने विशाल वक्षःस्थल से भींचते हुए युवक ने उसे चूम लिया। उर्मिला चौंकी, युवक पीछे हटा। वह उठकर भागने को हुई। युवक ने उसे बिठा लिया और अपनी लम्बी मूँछें उतार दीं और सिर के लम्बे-लम्बे बाल दूर कर दिये।

गोधूलि का समय था। सन्ध्या के क्षीण प्रकाश में उर्मिला ने देखा—वह अपने पति के सामने बैठी है। वह हँस रहा था, परन्तु उर्मिला के मुख पर मृत्यु की-सी नीरवता थी।

"देखा हमारा बहुरूप उर्मिला", रामदयाल ने विजय की ख़ुशी में उसे अपनी ओर खींचते हुए कहा। कौन जानता है कि वह "नवयुग" में प्रकाशित लेख की परीक्षा कर रहा था। अब जब उसे प्रकृति के इस अटल नियम का पता चल गया था, उसने प्रण किया था कि वह उससे दिल से मुहब्बत करेगा। प्रेम के बदले प्रेम लेगा। उपेक्षा के बदले प्रेम पाने की कोशिश न करेगा।

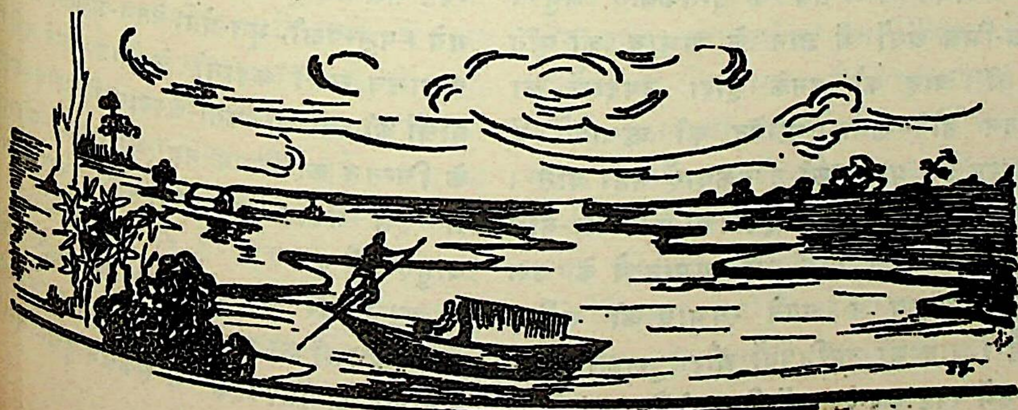
"अभी आई" और उर्मिला ऊपर अपने कमरे को भाग गई।

पन्द्रह मिनट बीत गये। रामदयाल अपने विचारों में विमग्न रहा। उसके विचारों का सिलसिला उर्मिला के कमरे से आनेवाली एक चीख़ से टूट गया। वह भागकर ऊपर पहुँचा। देखा उर्मिला के कपड़ों को आग लगी हुई है और वह शान्त भाव से जल रही है। दासी चीख़ रही थी और पानी लेने दौड़ी गई थी।

उर्मिला ने तड़पते हुए कहा, "इस पापी शरीर ने अपने पति को पति की सूरत में नहीं, बल्कि अन्य पुरुष के रूप में प्रेम किया है और यह उसका पश्चात्ताप है।"

रामदयाल काँप उठा। उसने उसे बचाने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु उर्मिला बच न सकी। आग ने उसकी शुद्ध आत्मा को उसके शरीर से पृथक् कर दिया।

मूर्तिवत् खड़ा रामदयाल नारी-हृदय के इस पहलू पर विचार करने लगा।



सम्पादकीय

प्राचीन भारत का कहानी-साहित्य

वर्तमान समय में कहानी का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन माना जाता है, परन्तु प्राचीन कहानी-साहित्य में हम कहानी के इस उद्देश्य को गौण रूप में पाते हैं। सदुपदेश ही अधिकतर प्राचीन कहानी का प्रधान हेतु ोता है अथवा सदुपदेश के साथ-साथ किसी विषय-विशेष में ज्ञान की कमी पूरी करने की भावना निहित रहती है। हँसी, मनोरंजन और धार्मिक शिक्षा कहानीकार के ध्येय के रूप में बाद को आते हैं। इन आदि कहानियों में मानव और अमानव अथवा मानव और अति-मानव की सृष्टि और उनका पारस्परिक संबंध रोचक रूप में हमारे सामने आता है।

वैदिक भारतवर्ष में इस प्रकार की अनेक दन्त-कथाएँ प्रचचित थीं। तब ये दन्तकथाएँ मनुष्य के भिन्न-भिन्न अंगों में ज्ञान के अभाव की पूर्ति करती थीं। बाद को इनके द्वारा उपदेशों का प्रतिपादन होने लगा। ऋग्वेद की ऋचाओं में हम अवश्य इस प्रकार की दन्तकथाएँ नहीं पाते। परन्तु तब ऋग्वेद का उद्देश्य देवताओं और यज्ञ-याग का वर्णन ही है। फिर भी अमानवों के उस चित्रण में मनुष्य ने अपने स्वभाव को अंकित किया है। बाद को उपनिषदों और पुराणों में ये कथाएँ हमें स्पष्ट रूप-रेखा में मिलती हैं। छांदोग्य-उपनिषद् में सत्यकाम की कथा और कठोपनिषद् में नचिकेता आदि की कथाएँ ऐसी ही कथाएँ हैं। ये कथाएँ किसी सीमा तक उपदेशप्रद हैं और बाद की उपदेशपूर्ण कहानियों के लिए मार्ग बनाती हैं। कहानी-साहित्य की दृष्टि से ऋग्वेद की अपाला की कथा, ब्राह्मणों की वामदेव और रोहित की कथाएँ और उपनिषदों के आरुणि और नचिकेता के उपाख्यान अत्यंत प्राचीन हैं। पिछले काल के दार्शनिकों ने भी न्याय और दर्शन के सिद्धान्तों को ग्राह्य बनाने के लिए इस प्रकार की आख्यायिकाओं का प्र ोग किया है। कहानी की इस गम्भीर विषयों को समझाने की उपादेयता का बराबर उपयोग ोता रहा है। इसका एक स्पष्ट फल यह हुआ कि कहानी के उपकरण-कारण में ... और मानव गये। पशु-पक्षी, भूत-प्रेत, चेतन-अचेतन और मानव-अमानव सभी कहानी के पात्र बनने लगे। ... पात्रों की स्वाभाविकता-अस्वाभाविकता तब कथाकार के चिन्तन का विषय नहीं थी। सूत्रों और ... के उदाहरणों में इस प्रकार की कथाओं के ... बाहुल्य है।

कालान्तर में बुद्ध की जातक-कथाएँ लिखी गईं। वैशाली की महासमिति के उपरान्त इन आख्या... कथाओं का त्रिपिटक में संकलन हुआ, अतएव ...



कथाएँ ईस्वी से पूर्व चौथी शताब्दी में रची गई होंगी। यह भी सम्भव है कि इन जातक-कथाओं में प्राचीन आर्यगाथाओं के नवीन संस्करण भी रहे हों। बौद्ध-भिक्षुओं के द्वारा ये कथाएँ संसार के समीपवर्ती और दूरवर्ती भागों में पहुँचीं। संसार के कहानी-साहित्य के इतिहास में हम बता चुके हैं कि इन जातक-कथाओं का प्रभाव कितना व्यापक था। मध्य-एशिया, योरप और अरब, मिसर आदि भू-खंडों में इन कथाओं ने पहली बार कहानी नाम की वस्तु का आविर्भाव किया। ग्रीस में इन्हीं जातक-कथाओं का रूपान्तर किया हुआ संग्रह ३०० बी० सी० के समीप डेमी ट्रीसिसकोलिरीयस ने किया। यही संग्रह बाद को 'ईसप की कहानियाँ' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन ईसप की कहानियों का जो, जैसा हम बता चुके हैं, जातक-कथाओं का रूपान्तर-भाग थीं, योरप के कथा-साहित्य पर किसी न किसी रूप में सत्रहवीं शताब्दी तक प्रभाव रहा।

पुराण तो एक प्रकार से धार्मिक उपाख्यानों और ऐतिहासिक घटनाओं के संग्रह-मात्र ही हैं। इन पौराणिक गाथाओं ने धर्म-प्रधान हिन्दू-प्रवृत्ति को शताब्दियों तक जकड़ रक्खा है। महाभारत में भी—जो पंचम वेद कहा जाता है—प्रसंग-वश में बहुत-सी छोटी-छोटी आख्यायिकाएँ वर्तमान हैं।

बुद्ध की जातक-कथाएँ अधिकतर पाली और प्राकृत में हैं, परन्तु बाद को ब्राह्मणों ने प्रचार का अच्छा साधन देखकर इन्हें स्वतन्त्र रूप से अपना लिया। पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ग्रंथों में इस प्रकार की कथाएँ हैं। संस्कृत-भाषा में ही नहीं, अपभ्रंश और पैशाचिक भाषाओं में भी इन जातक-कथाओं के आधार पर कथा-सृष्टि हुई। गुणाढ्य की 'बृहत्-कथा' कदाचित् पैशाचिक भाषा में ही थी। यह सम्भवतः ६०० ई० पूर्व में लिखी गई होगी। अब यह ग्रन्थ लुप्त हो चुका है, परन्तु इसकी अनेक कथाएँ 'बृहत्-कथा-मंजरी' और 'कथा-सरित्-सागर' के रूप में अब भी संस्कृत में उपलब्ध हैं।

संसार-साहित्य में एक अन्य प्रभावशाली ग्रन्थ—'अलिफ़लैला' (सहस्र-रजनी-चरित्र) रहा है। परन्तु इसमें भी जातकों के राजा ब्रह्मदत्त और कथा-सरित्-सागर के नरवाहनदत्त का अनुकरण कर एक व्यक्ति-विशेष को केन्द्र बनाकर भिन्न-भिन्न कहानियों को कह डालने का ढंग रक्खा गया है। संस्कृत-साहित्य में भी 'दशकुमार-चरित्र' इस प्रकार की पुस्तक है।

उपदेश के उद्देश्य से प्रारम्भ होकर कथा बराबर मनोरंजन की ओर बढ़ती रही है। यह तो अवश्य है कि समाज के धर्म-प्रधान होने के कारण प्राचीन कहानियों का प्रधान उद्देश्य धार्मिक अथवा नैतिक शिक्षा रहा है, परन्तु 'दशकुमार-चरित्र' के समय तक लौकिकता और सांसारिकता की शिक्षा की ओर कहानी का झुकाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

हिंदी-कहानियों का विकास

हिंदी में कहानियाँ अनुवाद के रूप में आती हैं। बैताल-पचीसी, सिंहासन-बत्तीसी और शुक-बहत्तरी आदि कथा-ग्रन्थ संस्कृत और अन्य भाषाओं से अनूदित हैं। संवत् १६२१ विक्रमी के लगभग लिखी श्रीगोकुलनाथजी की 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' कदाचित् हिंदी की पहली गद्य-रचना और कहानी है। इसके पश्चात् जटल ने १६८० सं० के लगभग 'गोरा-बादल की कथा' लिखी। इसके बाद हमें श्रीलल्लूलाल, सदल मिश्र और इंशाअल्लाहख़ाँ की कथाएँ मिलती हैं। लल्लूलालजी का 'प्रेमसागर' और 'सुखसागर' प्रसिद्ध हैं। ये अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ की चीज़ें हैं। सदल मिश्र का 'नास्तिकोपाख्यान' भी इसी समय का लिखा है। परन्तु भाषा-विकास के सिवा इन ग्रन्थों को कोई श्रेय नहीं; कारण, इनमें कथानक की मौलिकता नहीं है। प्रेमसागर और सुखसागर 'भागवत' के आधार पर लिखे गये हैं और



नास्तिकोपाख्यान का आधार एक पौराणिक कथा है। इन बातों का ध्यान रखते हुए श्रीइंशा-अल्लाहख़ाँ की 'केतकी की कहानी' हिंदी की पहली मौलिक कहानी-रचना है।

अतएव, हिन्दी-कहानी का प्रारम्भ १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ; परन्तु अठारहवीं सदी के मध्यकाल तक कोई अन्य मौलिक रचना नहीं हुई। शताब्दी के अंतिम चरण में राजा शिवप्रसाद ने 'राजा भोज का सपना' और भारतेन्दुजी ने 'आप-बीती और जग-बीती' लिखी।

इस समय तक हिन्दी-गद्य-शैली कई प्रकार से परिष्कृत हो गई थी और उसकी शैली में रोचकता का समावेश हो गया था। इसी समय 'क़िस्सा साढ़े तीन यार', 'सारंगा-सदावृक्ष' आदि कथाएँ लिखी गईं। मनोरंजन और स्त्री-जाति के विरुद्ध प्रचार के सिवा इनका कोई उद्देश्य था ही नहीं।

भारतेन्दु-काल में बँगला और अँगरेज़ी से हिन्दी में अनुवाद होना प्रारम्भ हो गया था। अँगरेज़ी से भी शेक्सपियर इत्यादि के लेखों के अनुवाद हो रहे थे।

वर्तमान युग की कहानियों के विकास का विशेष श्रेय हिन्दी-पत्र-जगत् को है। पत्रों में मनोरंजन के लिए एक ही अंक में प्रकाशित होने के लिए छोटे-छोटे कथानकों के रूप में कहानी का विकास हुआ। 'सरस्वती' और 'इन्दु' ने इस ओर बड़ी सेवा की। सरस्वती में प्रकाशित अधिकांश कहानियाँ अँगरेज़ी और बँगला से अनूदित होती थीं। मौलिक रचनाओं की संख्या कम थी। बँगला में तब तक काफ़ी कहानियाँ लिखी जा चुकी थीं और बाद की मौलिक हिन्दी-साहित्य की सृष्टि पर बँगला का यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। मौलिक कहानियों के विकास में 'इन्दु' का हाथ प्रधान रहा है।

श्री 'प्रसाद'

प्रथम वर्तमान युग की मौलिक कहानी 'ग्राम', जिसके लेखक बाबू जयशंकर 'प्रसाद' हैं, १९११ में 'इन्दु' में प्रकाशित हुई थी। अतएव, प्रसादजी को हम हिन्दी-कहानी का प्रवर्तक कह सकते हैं। प्रसादजी अपने युग के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। वे कवि की दृष्टि से देखते हैं, परन्तु अन्य कवि कहानीकारों की अपेक्षा उनकी दृष्टि तीव्र है और उनकी अनुभूति आश्चर्यजनक है। उन्होंने भिन्न-भिन्न विषयों पर, भिन्न-भिन्न समाजों और व्यक्तियों को आधार बनाकर सफल कहानियाँ लिखी हैं।

प्रसादजी की कहानियों में हमें हिन्दू-संस्कृति के दर्शन होते हैं और यह बात उनकी ऐतिहासिक और सामाजिक, सभी प्रकार की कहानियों में एक-सी मिलती है। प्रसादजी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को भारत की मुक्ति का मूल-मंत्र समझते हैं और बार-बार वह इस बात पर ज़ोर देते हुए जान पड़ते हैं। उनकी कहानियों में एक प्रकार की मनोरंजक भावुकता और स्वाभाविकता है। कविता का एक विशेष पुट देकर और कथनोपकथन को जड़ वार्तालाप से ऊपर उठाकर उन्होंने इन कहानियों को समय, देश और समाज के बंधनों से मुक्त कर अमरता की भूमि में स्थान दिया है। उनकी 'आकाश-दीप', 'स्वर्ग के खँडहर में', 'पुरस्कार' आदि कहानियों में कला का सुन्दर विकास हुआ है।

प्रसादजी ने सामाजिक त्रुटियों को ध्येय बनाकर भी कहानियाँ लिखी हैं, परन्तु काल्पनिक और ऐतिहासिक कहानियों में ही वह अधिक सफल हुए हैं। वे मनोवैज्ञानिक ढंग से भी चित्रण कर सकते हैं और उनकी कहानियों में पात्रों का मानसिक विश्लेषण पर्याप्त रहता है।

प्रसादजी ने भिन्न-भिन्न कहानियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है। वे अलंकार-पूर्ण भी हो सकते हैं और प्रसाद-गुण-युक्त भी। उनकी बहुत-सी कहानियों में भाषा की सुन्दरता देखने योग्य है। परन्तु कभी-कभी जब वह अप्रचलित शब्दों की भरमार-सी कर देते हैं, वे साधारण पाठकों के लिए कठिन हो जाते हैं।



पण्डित विश्वम्भरनाथ जिज्जा

आपकी 'परदेशी' - शीर्षक कहानी १९१२ में इन्दु में प्रकाशित हुई थी। आपने भी कहानी के विकास में बड़ी सहायता की है। ये कहानियाँ भाषा और भाव की सरलता और सीधी-सादी कहानियाँ होने के कारण अब समय के पीछे जा पड़ी हैं, परन्तु एक समय आपकी 'पंजाब-मेल' आदि कहानियों पर जनता मुग्ध थी।

पण्डित विश्वम्भरनाथ 'कौशिक'

कौशिकजी ने १९१३ में 'रक्षाबंधन' - शीर्षक कहानी के साथ 'सरस्वती' के द्वारा हिन्दी में प्रवेश किया था। अब आपकी कहानियों के दो संग्रह निकल चुके हैं—चित्रशाला और मणिमाला। '...ताई' कहानी उनकी सर्व - श्रेष्ठ कहानी मानी जाती है।

श्रीकौशिकजी की अधिकांश कहानियाँ सामाजिक हैं और किसी विशेष नैतिक ध्येय को सामने रखकर लिखी गई हैं। उनकी कहानियों में पात्रों का सुन्दर मानसिक विश्लेषण रहता है, परन्तु उनकी सबसे प्रधान बात उनकी भाषा और विशेष कर कथा का वार्त्तालाप-भाग है।

श्रीचन्द्रधर शर्मा गुलेरी

गुलेरीजी की एक कहानी 'उसने कहा था' १९१५ ई० में सरस्वती में प्रकाशित हुई है। यह उनकी एकान्त उपलब्ध कहानी है। यह हिन्दी की सबसे पहली सर्वांगपूर्ण यथार्थवादी कहानी है और कला के प्रत्येक अंग पर पूरी उतरती है। हमारी सम्मति में यह हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। इस समय हिन्दी में मौलिक रचनाएँ होने लगी थीं। १९१४ में पं० ज्वालादत्त शर्मा और श्रीचतुरसेन शास्त्री ने हिन्दी में प्रवेश किया। दोनों कहानीकारों के ढंग और ध्येय भिन्न-भिन्न थे। शर्माजी की सामाजिक और घटनाप्रधान कहानियों की उन दिनों बड़ी माँग थी। अब उनकी कहानियाँ अवश्य समय के पीछे पड़ गई हैं। शायद इसका कारण यह हो कि उसी ढंग पर बाद में प्रेमचन्द की सुन्दर कृतियों ने उनका स्थान ले लिया है। शर्माजी भी उन कहानी-लेखकों में से हैं, जो 'कला कला के लिए है' के प्रतिपादक नहीं हैं। उनकी प्रत्येक कहानी में एक नैतिक ध्येय रहता है। इस प्रकार वे भी प्रेमचन्द-स्कूल के अन्दर आ जाते हैं। शास्त्रीजी की रचनाओं में नग्नता और एक प्रकार की सुन्दर भावुकता है—'दुखवा कासों कहूँ मोरी सजनी' में उनकी भावुकता और मनोरंजक शैली स्पष्ट सामने आती है। परन्तु 'कला-कला के लिए' सिद्धान्त के माननेवालों की भाँति कहीं-कहीं वे हिन्दू-आदर्श से गिर गये हैं।

स्वर्गीय प्रेमचन्द

१९१६ में बाबू धनपतराय (मु० प्रेमचन्द) के पदार्पण के साथ हिन्दी-कहानी-साहित्य में एक अपूर्व परिवर्तन हो गया है और १९३६ के अंत में इन प्रेमचन्दजी का स्वर्गवास हिन्दी-साहित्य की एक प्रमुख घटना रहेगी। प्रेमचन्दजी हिन्दी में आने के पूर्व वर्षों उर्दू में लिख चुके थे और उस साहित्य में उनका प्रमुख स्थान था। अपनी अपूर्व मौलिकता और प्रतिभा के कारण हिन्दी में प्रवेश करते ही उन्होंने चोटी का स्थान प्राप्त कर लिया।

प्रेमचन्दजी की भाषा उर्दू-मिश्रित हिन्दी (अथवा हिन्दोस्तानी) है। आज यह भाषा प्रेमचन्द की मुहर पाकर टकसाली हो गई है। उत्तरी-भारत के हिन्दू-मुसलमान बराबर हेर-फेर से इसी भाषा का प्रयोग करते हैं। इस भाषा ने प्रेमचन्द को सर्वप्रिय बना दिया और यह हिन्दू-मुस्लिम-संस्कृति के मेल का कारण बनी।

प्रेमचन्दजी की कहानियाँ भारतीय सामाजिक जीवन का चित्र हैं। समाज के प्रत्येक अंग ने उनसे आवश्यक सहानुभूति पाई है और इसी विशाल सहानुभूति के कारण वे हिन्दू-मुसलमान, ईसाई, अँगरेज़ और अन्य जातियों के गढ़ में प्रविष्ट करने में सफल हुए हैं। उन्होंने सभी के विशेष चित्र



दिये हैं । उनके उपन्यास इसी भारत के विशाल क्षेत्र को सामने रख देते हैं । वह गृहस्थ-जीवन के सफल कवि हैं, यद्यपि हम यह मान लेते हैं कि शरतबाबू ने इसी क्षेत्र में अधिक सुन्दर चित्र दिये हैं।

दो बातें प्रेमचन्दजी की अपनी विशेषता हैं

१—गाँव के चित्र

२—कवित्व-मय कहानियाँ

प्रेमचन्दजी जनता के लेखक थे । उन्होंने अपनी कहानियों के द्वारा उन सहस्रों मूक और दीन किसानों और मज़दूरों का प्रतिनिधित्व किया है, जो आज तक साहित्य में 'अछूत' माने जाते थे । उन्होंने पहली बार दलित वर्ग के साहित्य (Proletriat literature) की सृष्टि की है और इस प्रकार वे हिन्दी के गोर्की नहीं तो गोर्की के बहुत निकट आ जाते हैं ।

परन्तु प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ वे हैं, जिनमें उन्हें यथार्थवाद को छोड़कर आदर्शवाद के क्षेत्र में काम करना पड़ा है। हम इन्हें कवित्वपूर्ण कहानियाँ इसलिए कहते हैं कि उनमें कहानीकार ने विषय को कवि की दृष्टि से खोजा-सँवारा है । 'कामनातरु', 'आत्माराम' और 'शतरंज के खिलाड़ी' इन कहानियों में सर्वश्रेष्ठ हैं । इनमें कहानीकार कवि की भाँति तत्त्वों और सीमाओं के बंधन से मुक्त हो गया है और उसकी प्रतिभा को उड़ान भरने के लिए अवकाश और आकाश काफ़ी मिले हैं ।

इन कहानियों के बाद ऐतिहासिक कहानियों का स्थान आता है ! 'प्रसाद' के बाद यदि दूसरा ऐतिहासिक कथाकार है तो वह प्रेमचन्द हैं । परन्तु 'प्रसाद' की दृष्टि जहाँ भारत के हज़ारों वर्ष पूर्व के आश्रमों और बौद्ध-कालीन सभ्यता की ओर उठती है, वहाँ प्रेमचन्द समीपवर्ती मुग़ल-काल तक जाकर रह जाते हैं । 'प्रसाद' की भाँति प्रेमचन्दजी भी वर्तमान परिस्थिति का निदान पीछे मुड़कर भारतीय सभ्यता और संस्कृति में ही खोजते हैं, परन्तु दोनों के आदर्श भिन्न-भिन्न हैं । हाँ, मुसलिम चित्र इतनी सहानु- भूति और स्पष्टता के साथ उन्होंने दिये हैं कि वे एक विजातीय की कृति नहीं जान पड़ते। इनसे प्रेमचन्द का विशाल हृदय झलक पड़ता है।

इसके अतिरिक्त प्रेमचन्दजी ने पहली और अंतिम बार जन-समूह और समष्टि का चित्रण किया है । देश के वर्तमान आन्दोलनों का जैसा चित्र उनकी कृतियों में है, दूसरी जगह नहीं । कोई विदेशी यदि एक स्थान पर भारत की जानकारी चाहता है तो प्रेमचन्द की कृतियाँ उसकी ज्ञान-पिपासा को पूरा कर देंगी । इस क्षेत्र में वह शरत् और रवि बाबू से आगे हैं । शरत् और रवि व्यक्ति और घर, और अन्ततः समाज से बाहर नहीं जाते । बाहर के संघर्षों का प्रतिबिं उनकी कृतियों में नहीं है, अतः उनकी कृ कृतियाँ केवल सामयिक ही रह जायँगी । परन्तु हमें विश्वास है, प्रेमचन्दजी की कृतियाँ भवि के इतिहासकार को भरपूर सहायता देंगी।

परन्तु यह सब है तो भी प्रेमचन्दजी दोष से शून्य नहीं हैं । कहीं-कहीं विशेष पात्रों के साथ उनकी भाषा शिथिल हो गई है। वे मनुष्य- स्वभाव के इतने बड़े पारखी नहीं, जितने शरतबा अथवा रविबाबू हैं और उनकी कहानियों में इत तीव्र संघर्ष नहीं । उनके चरित्र अद्भुत सृष्टि न हैं । वे हमें रोज़ मिल सकते हैं और हम उ बहुधा किसी न किसी श्रेणी के अंतर्गत रख सक हैं । उनकी कहानियाँ केवल कहानियाँ हैं—केवल कहानियों से तात्पर्य यह कि वे अपनी आं कला से नितान्त शून्य हैं । दादी-नानी की कहा- नियों की भाँति उनसे साधारण श्रोताओं की तृ हो सकती है, उनका मनोरंजन भी हो सकता परन्तु अब के 'वादों' में पले पाठकों को व अवश्य 'पहली चीज़' लगेंगी ।

श्रीराय कृष्णदास

राय साहब की कहानियाँ हिन्दी की कहानि कहानियों में एक युगान्तर उत्पन्न कर देती

आप भारत के प्रसिद्ध कला-प्रेमी और कला-समर्थक माने जाते हैं और आपकी रचनाओं में कला का—विशेषकर चित्र-कला और स्थापत्य का प्राधान्य रहता है। आपकी पहली कहानी १९१७ में प्रकाशित हुई थी। आपकी 'अन्तःपुर का आरम्भ'-शीर्षक कहानी आदि-काल के नर-नारी के स्वभाव का सूक्ष्म चित्रण करती है। यह कहानी भारतीय साहित्य में अपने ढंग की एक कही जायगी।

श्रीहृदयेश

स्वर्गीय चंडीप्रसाद 'हृदयेश' का रचना-काल १९१९ है। इनकी रचनाएँ कवित्वपूर्ण होती हैं। प्रकृति के सुन्दर चित्रण और लालित्यपूर्ण भाषा के लिए उनकी कहानी देखने की वस्तु है। इनकी भाषा का बाद के नवयुवक लेखकों और जनता पर विशेष प्रभाव रहा है—'सन्ध्या की शोभा रात्रि के क्रमशः प्रगाढ़ होते हुए अन्धकार में विलीन हो गई है। विशाल गगनमंडल में धीरे-धीरे तारकाओं का उदय होने लगा है और दिवस का विकट कोलाहल, रात्रि की नीरव शान्ति में धीरे-धीरे विलुप्त होता जा रहा है'—इत्यादि

(उन्मादिनी)

कहानी-कला और विशेषकर कथानक और चरित्रचित्रण की दृष्टि से हृदयेशजी की कहानियों में विशेष प्रतिभा नहीं है, परन्तु उनकी विशेषता उनकी यही भाषा और कवित्वमय चित्रण है, जो कथानक के स्वतः प्रवाह में बाधा डालता है।

पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त और श्रीसुदर्शन

१९१९ के लगभग इन दो लेखकों ने हिन्दी में प्रवेश किया। सुदर्शन तो पहले ही उर्दू में लिखा करते थे। इनकी कहानियाँ चरित्र-चित्रण-प्रधान हैं। उर्दू-महावरों और भाषा के प्रवाह के लिए प्रेमचन्दजी के बाद सुदर्शनजी का ही नाम आता है। इनकी कहानियों के कई संग्रह निकल चुके हैं। वर्तमान कहानी-साहित्य में इनको प्रशंस-नीय स्थान प्राप्त है। पं० गोविन्दवल्लभ पन्त की पहली कहानी 'मिलन-मुहूर्त' १९१९ में 'प्रतिभा' में प्रकाशित हुई थी।

कलापूर्ण ढंग की छोटी कहानियाँ इनकी अच्छी होती हैं।

श्री'उग्र'

उग्रजी का रचना-काल १९२२ है। आपके प्रवेश से हिंदी के कहानी-साहित्य में नवीन शक्ति और एक क्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ है। उग्रजी ने न केवल भाषा की दृष्टि से एक नवीन, चलती हुई, चुलबुली भाषा की सृष्टि की, अपितु इनकी कहानियों का दृष्टिकोण ही सर्वथा नवीन था। वह समाज के प्रति एक विद्रोह की भावना लेकर उठे थे और उनकी कहानियों ने हिन्दुओं की सामाजिक जागृति में विशेष भाग लिया है।

उग्र उन कहानीकारों में प्रधान हैं, जो 'कला कला के लिए' के समर्थक हैं। इन्होंने समाज का नग्नतम चित्रण किया है, जो किसी हद तक अवांछनीय भी है। 'उसकी मा', 'कला का पुरस्कार', 'प्यारे और ख़ुदाराम' उनकी उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। हमारे विचार में प्रेमचन्दजी के बाद सामयिक समाज और विशेषकर देश की राजनीतिक प्रगतियों का जितना सुन्दर चित्रण उग्रजी ने किया है, अन्य किसी ने नहीं। भाषा, शैली, कल्पना और कथानक सभी में एक मौलिकता है। 'दोज़ख़ की आग', 'चिनगारियाँ', 'बलात्कार' आदि नाम से उनकी कहानियों के संग्रह निकल चुके हैं। हिन्दू-मुसलिम समस्या पर उनकी कहानियाँ देखने योग्य हैं। भाषा की चुहल देखिए—

'मेरी एक बीबी थी। गुलाब की तरह ख़ूबसूरत, मोती की तरह आबदार, 'कोहेनूर' की तरह बेशक़ीमत, नेकी की तरह नेक, चाँद की तरह सादी, लड़कपन की हँसी की तरह भोली और जान की तरह प्यारी।

(दोज़ख़ की आग)

'लड़कपन खो जाने पर उन्मत्त जवानी फूल-



फूलकर हँस रही थी, बुढ़ापे के पाने पर फूट-फूटकर रो रही है। उस 'खोने' में दुःख नहीं, सुख था; सुख ही नहीं, नरक भी है! लड़कपन का खोना— वाह! वाह!! बुढ़ापे का पाना—हाय! हाय!!

(बुढ़ापा)

उनकी 'चिनगारियाँ' में संगृहीत कहानियाँ क्रान्तिमय साहित्य में अ ेखी हैं और उनके बाद इस क्षेत्र में नाम लेने को केवल 'अज्ञेय' हैं।

श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी ने भी सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। उनमें से कई कहानियाँ बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं। आपकी कहानियाँ अधिकतर प्रेमचन्द-स्कूल की कहानियों की विशेषता रखती हैं। इधर आपने 'अज्ञेय' आदि के ढंग पर विशेष मनोवैज्ञानिक कृतियाँ लिखना प्रारम्भ किया है।

श्रीजैनेन्द्रकुमार जैन

जैनेन्द्रजी की पहली प्रकाशित कहानी 'हत्या' है। इस कहानी के साथ १९२७ ई० में वह कहानी के क्षेत्र में आये हैं और अब प्रेमचन्दजी के स्वर्गवास के बाद शायद हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार भी मान लिये गये हैं।

जैनेन्द्रजी की कहानियों में उनका व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है। वे जैसे नीरस शुष्क, दार्शनिक के रूप में सामने आते हैं, उनकी कहानियाँ उसी रूप को परोक्ष में बार-बार लाती हैं। कदाचित् यही व्यक्तित्व और कठिन-गंभीर व्यक्तित्व उनके जनता के अधिक समीप पहुँचने में बाधा डाल रहा है। वे अवश्य प्रेमचन्दजी के आगे के कलाकार (और कहानीकार से पहले कलाकार) के रूप में जनता के सामने आये हैं। भाषा, दृष्टिकोण और बर्ताव—सभी दृष्टियों से उन्होंने कहानी-जगत् में एक नवीन सृष्टि की है। उनकी भाषा एक दार्शनिक की भाषा है, जो पग-पग पर विचार कर तब आगे बढ़ती है। विचारशील पात्रों और चरित्रों के संघर्ष को सामने रखने के लिए यह भाषा बड़ी उपयुक्त है। 'वातायन', 'दो चिड़ियाँ' और 'एक दिन' नाम से उनकी कहानियों के तीन संग्रह भी निकल चुके हैं और उनकी कहानियों की संख्या सवा सौ से ऊपर पहुँच गई है। इन कहानियों में 'एक रात', 'दो चिड़ियाँ', 'पढ़ाई', 'आलोचक', 'एक यात्रा' श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार की विश्लेषण-प्रधान कहानियों के लिए जैनेन्द्रजी में हिन्दी को सुन्दर लेखक मिल गया है। परन्तु इधर की कहानियों में जैनेन्द्रजी धीरे-धीरे 'रस' से दूर होते जा रहे हैं। जीवन के अन्दर दार्शनिकता का पुट देकर उसे नीरस बनाकर चित्रित करना कहानी-कलाकार के लिए अक्षम्य अपराध हो जाता है। जैनेन्द्रजी में यही बात पाई जाती है। जिस प्रकार कहानी की उपादेयता उसके नैतिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन के द्वारा नहीं बढ़ाई जा सकती, इसी प्रकार 'रस' को छोड़कर दर्शन और 'थ्योरी' का आश्रय लेकर चलना कलाकार को उसे पद से नीचे खींच लाता है। बाद की प्रकाशित कहानियों में उनकी 'पत्नी'-शीर्षक कहानी श्रेष्ठ है। इसमें वे भारतीय नारी की 'स्पिरट' ठीक पकड़ पाये हैं। परन्तु जान पड़ता है, वे इस विषय में अधिक चिन्तनशील नहीं हैं। उन्होंने 'भाभी' नाम की एक नारी-सृष्टि को प्रधानता दी है और यह कई-कई कहानियों (भाभी, ग्रामोफोन का रेकार्ड) और उनके नये उपन्यास (सुनीता) में बार-बार आई है। फिर भी वह भारतीय नारी और भाभी के पवित्र सम्बन्ध की सुन्दर और वाञ्छनीय कृति नहीं। मनोविज्ञान के उत्साह में जब लेखक भारतीय नैतिक तत्त्वों की साफ़-साफ़ अवहेलना करता है तो वह असह्य हो जाता है।

श्रीवात्स्यायन (अज्ञेयजी)

अज्ञेयजी की अधिकांश कहानियाँ एक ख़ास ढंग से लिखी गई हैं। इसे हम मनोवैज्ञानिक ढंग के अन्तर्गत रख सकते हैं। अधिकतर कहानियाँ पात्रों की पिछले दिनों की अस्फुट चित्र-कल्पनाएँ (Retrospection) होती हैं। मनुष्य को अपनी किसी नवीन समस्या को पुरानी घटनाओं के प्रकाश

में उलझाना होता है, अतीत के ये चित्र सिनेमा-चित्रों की भाँति इस तेज़ी से आते हैं कि हमारी धारणा-शक्ति उन्हें जहाँ-तहाँ ही पकड़ सकती है। इस प्रकार की कहानियों में चेतना के प्रवाह को दिखाने के लिए कथानक में तेज़ी लाना आवश्यक है। अज्ञेयजी की 'शान्ति हँसी थी' कहानी में यह है।

"जानकीदास, मुजरिम, तुम पर जुर्म लगाया गया है कि तुमने ता० १४ दिसम्बर को....हाली-वुड के दरवाज़े पर दंगा किया और कि तुम्हारी रोज़ी का कोई ज़रिया नहीं है। बोलो; तुम्हें जवाब में कुछ कहना है।" मजिस्ट्रेट उसे ५ मिनट का अवकाश देता है और जानकीदास सोचता है—शान्ति ने रोटी उसके हाथ में थमाकर उसी में भाजी डालते-डालते कहा था "इस वक़्त तो खा लेते हैं, उस जून मेरी एकादशी है।"

वह कोई भी काम करना चाहता है? कोई पढ़ाने का काम? क्लर्क का, बढ़ई का? निर्धनता की इस आँच में तपकर मनुष्य के विचार और कार्य थक जाते हैं। तब वह किसी भी काम को इस तरह कार्यशून्यता से बचने के लिए, पकड़ लेता है, जैसे डूबता हुआ तिनके को........और उसकी चेतना-शक्ति फिर भी सोई रहती है। इसी से जानकी-दास टिकट लेता है बिना सोचे हुए और जब जेब में एक पैसा भी नहीं है—

और यह सब पाँच मिनट में अस्फुट अर्ध-चेतना मन (Subconcious mind) में फिर जाता है।

इस प्रकार की कहानियों के लिए अज्ञेयजी ने जिस मनोवैज्ञानिक भाषा का सहारा लिया है, वह जैनेन्द्रजी की भाषा से अधिक प्रौढ़ और उपयुक्त है।

अज्ञेय की दूसरी कहानियाँ राजनीतिक हैं—अधिकांश में पात्र और घटनाएँ विदेशी चादर में सामने आते हैं। उनकी 'अकलंक', 'रोज़ा' और 'कड़ियाँ' ऐसी ही श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। इन कहानियों में बार-बार स्त्री की दृढ़ता, कार्यशक्ति और दैवी शक्ति का प्रदर्शन किया गया है। ये कहानियाँ प्रेम और देश-भक्ति के संघर्ष की कहानियाँ कही जा सकती हैं।

अन्य कहानियों में ग़रीबों, दलितों और अन्त्यजों के प्रति हार्दिक क्रन्दन है। उनके विचार से—'कहानी जीवन की प्रतिच्छाया है और जीवन स्वयम् एक अधूरी कहानी है, एक शिक्षा है, जो उम्र भर मिलती है और समाप्त नहीं होती'।

(कड़ियाँ)

'एकाकी तारा', 'पहाड़ी जीवन' 'पगोडावृक्ष'-शीर्षक उनकी अन्य सुन्दर कहानियाँ हैं। परन्तु अर्धचेतन-मन की क्रियाओं की व्याख्या में एकान्त मनोवैज्ञानिक ध्येय होने के कारण वे अस्पष्ट होते जा रहे हैं और रूप (Form) में कहानी के रंग और मनोरंजकता को खो देते हैं। यह उनके कहानी-सम्बन्धी विचारों का एकान्त फल है, परन्तु कहानी में हम जीवन की भाँति अपूर्णता नहीं चाहते। वहाँ हम एक चित्र चाहते हैं और कहानी की मनोरंजकता का विषयपूर्ण चित्र ही बन सकता, ब्रश का जहाँ-तहाँ होता हुआ रंग नहीं।

पिछले ७-८ वर्षों में कहानी का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। नये-नये लेखकों ने रंगमंच पर पदार्पण किया है और उन्होंने कहानी को कला की एक विशिष्ट वस्तु बना दिया है। सामूहिक रूप से, व्यक्तिगत रूप से नहीं, ये लेखक कहानी के क्षेत्र और रूपरेखा के विस्तार और विकास में एक महान् शक्ति रहे हैं। श्रीइलाचन्द, श्रीऋषभचरण श्रीभारतीय, पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, धनीराम प्रेम, मुक्त, कृष्णानन्द गुप्त, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मोहनलाल महतो वियोगी, रघुपतिसहाय, राजेश्वर-प्रसाद, विनोदशंकर व्यास, द्विज और वाचस्पति पाठक इनमें प्रधान हैं। इनमें से कुछ अवश्य प्रेम-चन्द अथवा प्रसाद से प्रभावित होकर लिख चुके हैं



और यह बात मानना पड़ेगी कि इनमें विशेष प्रतिभा नहीं। यहाँ प्रतिभा से हमारा तात्पर्य उस व्यक्तित्व से है, जो दूसरों को अपनाकर भी मौलिकता की रक्षा कर सकता है और जो कलाकार को एक प्रभावशाली और महान् बनाता है। इन लेखकों में श्रीवाचस्पति पाठक, श्रीराजेश्वर-प्रसादजी, श्रीचन्द्रगुप्त विद्यालंकार और श्रीव्यास विशेष प्रतिभाशाली कहे जा सकते हैं। पाठकजी की कहानियों के दो संग्रह 'द्वादशी' और 'प्रदीप' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु ये कहानियाँ कहानी से अधिक रेखाचित्र (Sketch) कही जा सकती हैं और इस रूप में लेने पर ये हिन्दी की ख़ास चीज़ें हैं। इनमें लेखक की अद्भुत पर्यवेक्षण शक्ति का पता लगता है। 'काग़ज़ की टोपी, 'रावी' इनकी सुन्दर रचनाएँ हैं। श्रीविनोदशंकर व्यास छोटी कहानियाँ लिखने में सिद्धहस्त हैं। उनकी कहानियाँ कलापूर्ण हैं। 'भूली बात' '४० कहानियाँ' आदि नाम से उनकी कहानियों के कई संग्रह भी निकल चुके हैं।

हिन्दी में हास्य-रस की कहानियाँ बहुत कम हैं। इस क्षेत्र में केवल दो नाम लिये जा सकते हैं—श्रीजी० पी० श्रीवास्तव और श्रीअजीमबेग चग़ताई। श्रीवास्तवजी का हास्य उनकी लतख़ोरीलाल'-शीर्षक कहानियों में स्पष्ट है, परन्तु वह कोई ऊँचे दरजे का हास्य नहीं है। वह केवल समाज की निम्नश्रेणी की मनोवृत्ति को संतुष्ट कर सकता है। हाँ, श्रीचग़ताईजी की कहानियाँ अवश्य कलापूर्ण और सुन्दर हैं। उनकी 'कोलतार' कहानी बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। परन्तु जहाँ तक स्पष्ट है, हिन्दी के कहानीकार में वह स्वस्थ मनोवृत्ति नहीं, जो हास्य के रूप में स्पष्ट हो सके। शायद इसका कारण उनके चारों ओर का गंभीर वातावरण और उनकी अपनी परिस्थितियाँ हों। श्रीअन्नपूर्णानन्द और श्रीबेढब बनारसी ने भी हास्यरस की कहानियाँ लिखी हैं। बेढबजी का 'बनारसी इक्का' उल्लेखनीय है।

श्रीभगवतीचरण वर्मा

'इन्सटालमेंट' के नाम से वर्माजी की कहानियाँ संगृहीत हो चुकी हैं। वर्माजी पहले एक सफल कवि के रूप में हिन्दी में अवतरित हो चुके हैं, अब कुछ दिनों से कहानीकार के रूप में आ रहे हैं। कहानियाँ पढ़ने पर जान पड़ता है, कवि से अधिक वे कथाकार के रूप में सफल होंगे। 'इन्स-टालमेंट' में इन कवि-कहानीकार की पंद्रह कहानियाँ संगृहीत हैं। वर्माजी ने एक नई तरह की परिहास की कहानियाँ लिखकर श्रेय प्राप्त किया है। इन व्यंग-परिहास की कहानियों में वे बिलकुल नये रूप से हमारे सामने आते हैं। परन्तु यह परिहास निरालाजी के परिहास-जैसा गम्भीर और अतः स्थायी नहीं है—अधिकतः 'गल्प' में आ जाता है।

'मुग़लों ने सल्तनत बख़्श दी' और 'विक्टोरिया क्रास' इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ किसी गहरी सम्वेदना अथवा भावना का पुट देकर नहीं लिखी गईं। हम समझते हैं, परिहास की इन कहानियों में 'वरना हम भी आदमी थे काम के' सर्वश्रेष्ठ है। वर्माजी के कथानक विशेषतः नवीन समाज को लिये हुए होते हैं। उन्होंने नवीन नारी का भी चित्रण किया है। यह नवीन नारी धन के लिए प्रेम बेच देती है, परन्तु अपने हृदय का एकांश भी पुरुष को नहीं देती। वह पुरुष को भुलावा देकर मार्ग तक पहुँचा देती है। 'बॉय एक पेग', 'प्रेजेन्टस', 'एक विचित्र चक्कर है' और 'उत्तरदायित्व' कहानियों में इसी नारी को बार-बार उन्होंने दुहराया है। अभी 'तीन वर्ष'-शीर्षक उपन्यास में उन्होंने इसकी पुनरावृत्ति की है। प्लाट की यह समानता कहानीकार की प्रतिभा के सम्बन्ध में सन्देह पैदा कर देती है। कहानी कहने का ढंग भी एक-सा रहता है—एक पात्र होटल में, घर पर अथवा कहीं चाय अथवा शराब पीते हुए कहानी कहता है। स्पष्ट है कि इस प्रकार के ढंग में केवल एक ही प्रकार का दृष्टिकोण दिया जा सकता है और

प्रत्येक कहानी में अवांछनीय है। यह कहानी को अनावश्यक रूप से संकीर्ण बना देता है।

वर्माजी की कहानियों की प्रधान दिलचस्पी उनकी भाषा है, जो उर्दू का आवश्यक पुट पाकर उनकी अपनी विशेष चीज़ बन गई है। और इसके सिवा वे विचार हैं, जो कथानक के धरातल के नीचे अंतःसलिला की भाँति बहते हैं और जो कहीं-कहीं उनके पात्र प्रकट रूप से सामने रख देते हैं।

श्रीनिराला

निराला की कहानियाँ अधिकतः एक कवि की कहानियाँ हैं। उनकी दृष्टि कवि की दृष्टि है—विद्रोहात्मक किन्तु काल्पनिक। उनकी कहानियों के दो संग्रह—'लिली' और 'सखी' प्रकाशित हो चुके हैं। 'भक्त और भगवान्' उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। यह कहानी-क्षेत्र में एक नई भूमि उपस्थित करती है। यह एक सुन्दर आध्यात्मिक कहानी है। हिन्दू-मूर्ति में जो प्रतीक है, उसकी सफल व्याख्या है। भक्त उन प्रतीकों की उपासना करता हुआ अमूर्त तक पहुँचता है। स्त्री की माँग में सिंदूर देखकर हनूमान् का स्मरण होना और स्त्री का शनैः-शनैः अंजना में परिवर्तित हो जाना स्वयम् ही की रहस्य-गर्भता और शक्तिपूजा का सुन्दर द्योतक है। अधिकांश कहानियों में व्यक्त और अव्यक्त रूप से कहानीकार-कवि ने अपनी अभिव्यक्ति की है। इन कहानियों में लेखक के 'अहम्' के सुर ऊँचे बजते हैं, परन्तु यही उसकी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। यह कहानियाँ हैं—'स्वांमी सारदानन्द और मैं', 'देवी', 'भक्त और भगवान्' और 'चतुरी चमार'।

निरालाजी की अधिकांश कहानियों का रचना-संगठन अच्छा नहीं हुआ है। वे किसी समस्या को सामने नहीं रखतीं अथवा रखती भी हैं तो वे उनके कहने के कवि-ढंग में दब जाती हैं। प्रत्येक कहानी के अंत में वह बाजीगर की भाँति कथानक को आश्चर्यजनक मोड़ (Turn) देना चाहते हैं। उनकी 'चाय' 'सखी' आदि कहानियाँ और निरुपमा (उपन्यास) इसी अस्वाभाविकता के कारण कला से हट गये हैं। उनकी पात्रियाँ स्त्री-स्वभाव पर पूरी नहीं उतरतीं, वे हद से अधिक ज्योति से गढ़ी जाती हैं और प्राणों में मुस्कराकर रह जाती हैं। हमारी समझ में उनकी 'न्याय' कहानी के प्रतिमा, राजीव और थानेदार सभी मूर्ख हैं, यद्यपि ये सभी पात्र अपने को हद से ज़्यादा चतुर समझेंगे।

'देवी' उनकी दूसरी सुन्दर कहानी है। इसमें निरालाजी अपने श्रेष्ठ कलाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। शायद कारण यह हो कि इस प्रकार की कहानी में लेखक को 'प्लाट' का बन्धन और डर नहीं रहता। वे चरित्रों को लेकर काल्पनिक प्लाट बनाते हैं, इसी कारण कथानक के नाते असफल रह जाते हैं। परन्तु इस सीमा में न रहने के कारण 'देवी'-कहानी ने उन्हें व्यंग और परिहास का अच्छा मौक़ा दिया है। वे शब्दों (Pun), ध्वनियों और अर्थों को भिन्न-भिन्न ढंग पर व्यंग और परिहास के लिए प्रयुक्त करते हैं। संगमलाल को संग-मलाल बनाना और चतुरी को ('चतुरी चमार' कहानी में) जूतों का सम्पादक बनाना और उसके जूतों को अपरिवर्तनवाद के नमूने बताना, निरालाजी की सुन्दर सूझ है। 'देवी' कहानी तो आदि से अन्त तक व्यंग की भावना में पुष्ट होती है। उसका प्रतिपादित विषय ही मनुष्यता के प्रति लेखक का अविश्वास है।

अन्त बड़ा सुन्दर हुआ है—'एक रोज़ सुबह उसी तरह बग़ल में मुट्ठी दबाए (संसार का एक्स X बने हुए) संगम ने आकर कहा—"बाबू, आप का चेक भुनाकर मैनेजर साहब भाग गये हैं।" "नहीं, संगम" मैंने समझाया, "मैनेजर साहब बड़े अच्छे आदमी हैं। घर रुपये लेने गये हैं। उन्हें कई सौ रुपये देने हैं—लकड़ी, घी, आटा, दूध और किराये के। लौटकर रुपये दे देंगे"—संगम वैसा ही फिर हँसा।



भाषा कवित्वपूर्ण और कहीं-कहीं दार्शनिक हो जाती है, जो कहानी के प्रवाह में सहायता नहीं देती।

श्रीसुमित्रानन्दन पन्त

आप भी हिन्दी के प्रसिद्ध कवि हैं। पिछले वर्ष 'पाँच कहानियाँ' नाम से इनकी कहानियों का एक संग्रह भी निकल चुका है। ये कहानियाँ अधिकतर वर्णनात्मक हैं। अधिकांश कहानियों में व्यक्ति की कोई समस्या अथवा उलझन नहीं है। सामाजिक उलझनों का विश्लेषण और उनकी आलोचना ही प्रत्येक कहानी के पीछे कथाकार का उद्देश्य जान पड़ता है। कहानी न कहकर इन्हें हम 'रेखाचित्र' (Sketch) भी कह सकते हैं। 'पीताम्बर' पानवाला है। कवि-कहानीकार पीताम्बर की बाह्य रेखाओं से मुड़कर उसके पीछे के जीवन की ओर देखता है और उसकी वर्तमान अवस्था का दोषी समाज को बताता है। 'उस बार', 'दम्पति' और 'बन्नू' प्रेम-कहानियाँ हैं। तीनों कहानियों में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से लेखक ने प्रेम की परिभाषा देने की चेष्टा की है। 'बन्नू' में स्वस्थ प्रेम का चित्रण है और लेखक दिखाना चाहता है कि प्रेम संन्यासी-जीवन से बाहर नहीं है। 'दम्पति' कहानी में वर्तमान हिन्दू-जीवन की नीरसता और उसके रूढ़िवाद के प्रति भयानक असंतोष है। प्रत्येक क़दम पर वह भारतीय स्त्री-पुरुष के पत्नी-प्रेम और पति-भक्ति की भावनाओं पर संदेह करता है।

पंत के अवतरण के साथ कहानी-संसार को चिंतन के लिए एक नई वस्तु मिली है। मनोरंजन के पीछे एक समस्या और वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति गंभीर विद्रोह की भावना कलाकार के दृढ़ ढंग पर अंकित की गई है।

परन्तु सुन्दर होते हुए भी पंत का मनोविज्ञान आश्चर्यजनक और अन्दर तक पैठा हुआ नहीं है। वह प्रेम की जो परिपाटियाँ करना चाहता हैं, वे बड़ी स्थूल हैं। प्लेटो और फ्रॉड (Fraud) के बीच में जो प्रेम के कई स्रोत बहते हैं, कहानीकार की पहुँच उन तक नहीं है। कहानियाँ भी इसकी 'थ्योरी' के कारण पूरे रूप से नहीं उतरतीं, रेखा-चित्र बनकर रह जाती हैं। वस्तुतः उसकी कहानी के पात्र उसके विचार प्रकट करने के साधन-मात्र बनकर रह जाते हैं, स्थूल नहीं बन पाते। यह पंत कहानीकार के ऊपर पंत-कवि और विचारक की विजय है।

इधर दो-तीन वर्षों से कई नवीन कहानीकार क्षेत्र में आये हैं। उनमें कई विशेष प्रतिभाशाली भी जान पड़ते हैं। वे हैं—वीरेश्वरसिंह बी० ए०, पहाड़ी, अमृतलाल नागर, ज्ञानचन्द्र जैन, धर्मवीर, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', चित्रभास, उमेश-शंकरचरण श्रीवास्तव, सत्येन्द्र बी० ए० आदि। इन नवीन लेखकों की रचनाएँ भिन्न-भिन्न परिपाटियों के लेखकों के ढंगों में सामंजस्य कर और उन्हें एकता के सूत्र में तागकर नवीन शैली का प्रादुर्भाव कर रही हैं। इनमें से श्रीपहाड़ी, श्रीवीरेश्वर, और श्रीअश्क विशेष प्रतिभाशाली हैं। पहाड़ीजी का ढंग विशेष कर मनोवैज्ञानिक है। अमृतलाल नागर और ज्ञानचन्द्र जैन पश्चिमी लेखकों, विशेषकर मोपाँसा और चेख़व, से विशेष प्रभावित हैं और इनकी रचनाओं में कवित्व के साथ-साथ कहानी की सृष्टि होती है। माधुरी की पिछली संख्या में प्रकाशित श्रीचित्रभास की 'ज़ुराफ़ों की सभा'-शीर्षक कहानी मनुष्य-जाति पर सुन्दर व्यंग (Satire) है। आशा है, कालान्तर में ये लेखक हिन्दी-कहानी के इतिहास में विशेष भाग लेंगे।

हिन्दी की कहानी-लेखिकाएँ

कहानी-साहित्य के बढ़ने के साथ ही कहानी-लेखिकाएँ भी इधर आईं और यद्यपि उनकी संख्या गिनी-चुनी है, पर उनका साहित्य में मुख्य स्थान है।

श्रीतेजरानी पाठक बी० ए० गृहस्थी की कहानियाँ सफलता से निभा गईं—और उनके उपन्यास और कहानियों में भारतीय गृहस्थ की उलझनों



प्रकृति और वसन्त

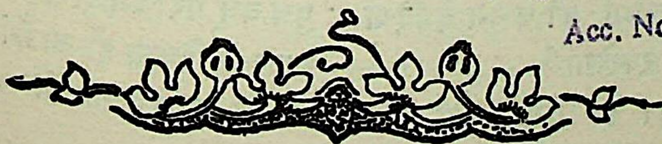
[चित्रकार—पं० गोविन्दवल्लभ पन्त]



समस्याओं का अच्छा चित्रण होता है। श्रीउषा मित्रा ने हिन्दी में क़रीब १०० कहानियाँ लिखी हैं। दो-तीन उपन्यास भी लिखे हैं और नाटक भी, साथ ही संगीत-साहित्य का भी उनको पूरा ज्ञान है। शायद ही कोई हिन्दी की कहानी-लेखिका इतना लिख पाई हो। वे Fancies को ख़ूब सोचती और सुलझाती हैं। अपने जीवन में साहित्य ही उनकी प्रधान चीज़ है। अपनी पीड़ा, वेदना और दुःख को उनकी कहानियाँ हमारे आगे रखती हैं। श्रीशिवरानी देवी का अपना दायरा है—ग़रीब किसानों भी झोपड़ियों में, सन्ध्या के झुटपुटे में डलिया लिये गाँव में खेतों से लौटती ग्रामीण वधुओं में वे शहर से दूर रहना पसन्द करती हैं। उनका लिखना सीधा सच्चा होता है, अपने पात्रों में वे ग़रीब ईमानदार चरित्र ही अधिक लाती हैं। श्रीकमला चौधरी मनोवैज्ञानिक गुत्थियाँ व समस्या सुलझाने में जितनी सफल हुई हैं—शायद ही अन्य कोई लेखिका हुई हो। आपका 'उन्माद'-संग्रह निकल चुका है, 'पिकनिक' प्रेस में जा रहा है। आपकी कहानियाँ गृहस्थी की सुलझी पहेलियाँ हैं। श्रीसुभद्रा कुमारी चौहान सोसाइटी और सामाजिक अंगों को ले अपना कवि हृदय लेकर आईं और सफल रहीं। श्रीतारा पांडेय की कहानियाँ अपने निराले ढंग की हैं—चित्रण करने व अपनी भाषा में 'प्रसाद-शैली' की अनुयायी रहीं। उनकी कहानियों में नारी-हृदय की पूर्ण झलक है। श्रीसरस्वती मल्लिक की कहानियाँ भी गृहस्थ के दायरे में घूमती-फिरती रहीं। इधर वे ख़ूब लिख रही हैं। श्रीहोमवतीजी ने क़रीब चालीस कहानियाँ लिखी हैं—पर सब पुराने ढर्रे की हैं—वे कविता में जितनी सफल र ीं, कहानी में नहीं। श्रीसुशीला आग़ा की अपनी एक मस्ती है। और चुलबुलाहट अपनी कालेजी शिक्षा की वजह से वे पुरानी चीज़ें अपनी कहानियों में न रख नये ढंग से लिखती हैं। उनमें एक नई जान है। श्रीनिर्मला मित्रा ने अभी-अभी लिखना शुरू किया है। जितनी भी चीज़ें लिखी हैं, उनसे लगता है कि ये काफ़ी सुलझी हैं। उनसे हमें काफ़ी आशा है। श्री० ललिता चन्दोला की कहानियाँ भी इधर निकल रही हैं, उनमें भी पूर्ण प्रतिभा है।

हिन्दी-कहानी-साहित्य में अच्छा लिखनेवाले लगभग ६० कहानी-लेखक हैं। प्रतिमास दैनिक, साप्ताहिक और मासिक साहित्य के रूप में नई-नई कहानियाँ हमारे सामने आती हैं। हम समझते हैं, इस सम्पादकीय लेख में हम सभी लेखकों का उल्लेख नहीं कर सके हैं। ऐसा संभव भी नहीं था। हमने केवल विशिष्ट व्यक्तियों और विशेष आन्दोलनों की विस्तृत विवेचना की है। जो लेखक-गण हमारी विहंगम-दृष्टि की परिधि के अंदर नहीं आ सके हैं, वे कृपया हमें क्षमा करेंगे।

पिछले सम्पादकीय अंश में हमने लिखा था कि हम भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओं की कहानियों के विकास पर सम्पादकीय नोट देंगे। हमें दुःख है कि हमें इसके लिए क़ाफी सामग्री नहीं मिल सकी। विभिन्न भाषाओं के कहानी-साहित्य पर आये हुए कुछ लेख ही देकर हम संतोष कर रहे हैं।



अन्धकार में आलोक*

श्रीशरत्‌चंद्र चटर्जी

(१)

बहुत दिनों की बात है। सत्येन्द्र चौधरी ज़मींदार का लड़का था। जब वह बी० ए० पास करके अपने घर लौटा, तब उसकी मा ने कहा—बेटा, वह लड़की बिलकुल लक्ष्मी है। मेरी बात मानो और एक बार जाकर उसे अपनी आँखों से देख आओ।

सत्येन्द्र ने सिर हिलाकर कहा—नहीं मा, अभी यह मुझसे न होगा। नहीं तो फिर मैं परीक्षा में पास न हो सकूँगा।

मा ने कहा—क्यों न हो सकेगा? बहू रहेगी मेरे पास और तेरी पढ़ाई, लिखाई होगी कलकत्ते में। मैं तो नहीं समझ सकती कि इससे तेरे पास होने में क्या बाधा पड़ेगी।

सत्येन्द्र ने कहा—नहीं मा, वह ठीक नहीं होगा। अभी मुझे समय नहीं है।

यह कहकर सत्येन्द्र बाहर जा रहा था कि उसकी मा ने कहा—जाओ मत, खड़े रहो, एक बात और भी कहना है। फिर कुछ रुककर कहा—बेटा, मैंने उन लोगों को वचन दे दिया है। क्या तू मेरी बात न रक्खेगा?

सत्येन्द्र मुड़कर खड़ा हो गया और कुछ असन्तुष्ट होकर बोला—मुझसे बिना पूछे उन्हें वचन ही क्यों दिया?

लड़के की बात सुनकर मा के मन में बहुत कष्ट हुआ। उसने कहा—ख़ैर, तो मुझसे भूल हो गई। पर तुमको तो अपनी मा की बात रखनी पड़ेगी। इसके सिवा वह विधवा की लड़की बहुत दुखिया है। बेटा, मेरी बात सुनो—मान जाओ।

'अच्छा, फिर कहूँगा' कहकर सत्येन्द्र बाहर चला गया। मा बहुत देर तक चुपचाप वहीं खड़ी रही। यही उसकी एकमात्र सन्तान थी। सात आठ बरस हुए स्वामी का देहान्त हो चुका था। तब से बेचारी विधवा स्वयं ही गुमाश्तों और कारिन्दों की सहायता से अपनी बहुत बड़ी ज़मींदारी की व्यवस्था करती थी। लड़का कलकत्ते में रहकर किसी कालेज में पढ़ता था। उसे अपनी ज़मींदारी वग़ैरह की कुछ भी फ़िक्र नहीं करनी पड़ती थी। विधवा मा ने अपने मन में सोच रक्खा था कि जब लड़का वकालत पास कर लेगा, तब मैं उसका ब्याह कर दूँगी और अपने पुत्र तथा पुत्र-वधू पर ज़मींदारी और गृहस्थी का सब भार देकर निश्चिन्त हो जाऊँगी। उसने यह भी सोचा था कि इससे पहले मैं अपने लड़के को गृहस्थी

* हिंदी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय से प्रकाशित सुलभ साहित्यमाला से सधन्यवाद उद्धृत।



के झंझटों में फँसाकर उसकी उच्च शिक्षा में बाधक नहीं होऊँगी। पर इस बीच में कुछ और ही बात हो गई। स्वामी की मृत्यु के उपरान्त इतने दिनों तक इस मकान में कोई काज-कर्म नहीं हुआ था। उस दिन किसी व्रत के उपलक्ष में गाँव-भर के सब लोगों को निमन्त्रित किया गया था। उसमें स्वर्गीय अतुलचन्द्र मुकर्जी की दरिद्र विधवा भी अपनी ग्यारह बरस की लड़की को साथ लेकर आई थी। लड़की उसे बहुत पसन्द आई। वह केवल सुन्दरी ही नहीं, इस छोटी अवस्था में ही अशेष गुणवती थी और यह बात उसके साथ केवल दो-चार बातें करने से सत्येन्द्र की मा की समझ में आ गई थी।

उस समय मा ने मन-ही-मन कहा था कि अच्छा, मैं अपने लड़के को ज़रा यह लड़की दिखला तो लूँ। फिर देखूँगी कि वह इसे कैसे ना-पसन्द करता है।

दूसरे दिन जब सत्येन्द्र दोपहर के बाद कुछ खाने के लिए अपनी मा के कमरे में पहुँचा, तब स्तब्ध होकर खड़ा रह गया। उसने देखा कि उसके खाने की जगह के ठीक सामने ही एक आसन पर हीरे, मानिक और मोतियों से सजी हुई मानों कोई वैकुंठ की लक्ष्मी बैठी है!

मा ने भी कमरे में पहुँचकर कहा—खाने बैठो।

सत्येन्द्र की मानों तन्द्रा भंग हो गई। उसने कुछ हड़बड़ाकर कहा—यहाँ क्यों, मैं और किसी जगह बैठकर खा लूँगा।

मा ने मुस्कराते हुए कहा—तू सचमुच कुछ ब्याह तो कर नहीं रहा है, फिर इस ज़रा-सी लड़की के सामने लज्जा किस बात की?

'मैं किसी से लज्जा नहीं करता' कहकर सत्येन्द्र कुछ अप्रतिभ होकर वहीं सामनेवाले आसन पर बैठ गया। मा वहाँ से चली गई। सत्येन्द्र दो ही मिनट में बहुत जल्दी-जल्दी किसी प्रकार भोजन समाप्त करके उठ गया।

अपनी बाहरवाली बैठक में पहुँचकर उसने देखा कि इसी बीच में उसके कई मित्र भी वहाँ आ पहुँचे हैं और चौसर बिछी हुई है। उसने पहले से ही दृढ़ता-पूर्वक आपत्ति प्रकट करते हुए कहा—मैं किसी तरह नहीं बैठ सकूँगा। मेरे सिर में बहुत सख़्त दर्द हो रहा है *। इतना कहकर वह एक कोने में चला गया और तकिये पर सिर रखकर आँखें बन्द करके लेट गया। मित्रों को मन-ही-मन कुछ आश्चर्य हुआ। उन्होंने खेलनेवालों की कमी के कारण चौसर उठाकर शतरंज ला बिछाई। संध्या तक कई बाज़ियाँ हुईं, बहुत-सी बातें और कहा-सुनी हुई, पर सत्येन्द्र न तो एक बार भी अपने स्थान से उठा और न उसने किसी से यही पूछा कि कौन हारा और कौन जीता। आज उसे ये सब बातें अच्छी ही नहीं लग रही थीं।

जब उसके मित्र चले गये, और वह मकान के अन्दर पहुँचकर सीधा अपने सोने के कमरे में जा रहा था, तब भंडारवाले बरामदे में से मा ने पूछा—तू आज अभी से सोने क्यों जा रहा है?

सत्येन्द्र ने कहा—मैं सोने नहीं, पढ़ने जा रहा हूँ। एम्० ए० की पढ़ाई मामूली नहीं होती, समय नष्ट करने से कैसे काम चलेगा!

---

* बंगालियों में यह प्रथा है कि जब किसी का विवाह होने को होता है, तब वह अपने घनिष्ठ मित्रों के साथ पहले भावी वधू को पसन्द करने के विचार से देखता है। इस अवसर पर अनेक प्रकार के परिहास और वधू की अनेक प्रकार की परीक्षाएँ होती हैं। इसी के लिए उसके मित्र वहाँ एकत्र हुए थे और उनका अभिप्राय समझकर सत्येन्द्र ने बीमारी का बहाना किया था।

—अनुवादक



इतना कहकर वह धम् धम् शब्द करता हुआ ऊपर चला गया।

आधघंटा बीत गया, पर उसने एक सतर भी नहीं पढ़ी। टेबुल पर सामने किताब खुली हुई रक्खी थी और वह कुरसी पर लेटा हुआ ऊपर की तरफ़ मुँह करके छत की कड़ियाँ गिन रहा था। अचानक उसका ध्यान टूट गया, उसने कान खड़े करके सुना—झम्! क्षणभर बाद ही फिर सुनाई पड़ा—झम् झम! सत्य सीधी तरह से बैठ गया। इतने में उसने सिर से पैरों तक गहने पहने हुई वही लक्ष्मीस्वरूपा कन्या धीरे-धीरे आती हुई देखी। वह आकर उसके पास खड़ी हो गई। सत्य टकटकी लगाकर देखने लगा। लड़की ने बहुत ही कोमल स्वर से कहा—मा ने आपकी सम्मति पूछी है।

सत्य ने कुछ देर तक चुप रहने के बाद पूछा—किसकी मा ने?

लड़की ने कहा—मेरी मा ने।

सत्य को इसका कोई उत्तर ढूँढे न मिला। कुछ देर बाद उसने कहा—मेरी मा से पूछ लेना, उन्हीं से मालूम हो जायगा।

लड़की वहाँ से जा ही रही थी कि सत्य सहसा उससे पूछ बैठा—तुम्हारा नाम क्या है?

लड़की 'मेरा नाम राधा-रानी है' कहकर चली गई।

(२)

उस ज़रा-सी राधा-रानी के ध्यान से बलपूर्वक अपना पीछा छुड़ाकर सत्य एम्० ए० पास करने के लिए कलकत्ते चला आया। उसने निश्चय कर लिया कि जब तक मैं विश्वविद्यालय की समस्त परीक्षाओं में उत्तीर्ण न हो जाऊँगा, तब तक किसी प्रकार विवाह न करूँगा; और यदि संभव हुआ तो उसके बाद भी न करूँगा। कारण, गृहस्थी के झगड़ों में फँसने से मनुष्य का आत्मसम्मान नष्ट हो जाता है, इत्यादि-इत्यादि। तो भी रह-रहकर उसके मन में न-जाने क्या होने लगता है! और यदि कभी कहीं कोई स्त्री दिखाई पड़ जाती है तो उसके पास ही एक और छोटा सा मुख उसे दिखाई पड़ने लगता है और वही छोटा मुख उस स्त्री को आवृत करके अकेला ही विराजता रह जाता है। इस प्रकार सत्य किसी तरह उस लक्ष्मी की प्रतिमा को भुला नहीं सकता। वह सदा से स्त्रियों की ओर से उदासीन था, पर अब अकस्मात् उसे न-जाने क्या हो गया है कि जब कभी वह रास्ते में या और कहीं किसी वयस्क लड़की को देखता है, तो उसका जी चाहता है कि मैं उसे अच्छी तरह देखूँ। हज़ार चेष्टाएँ करने पर भी वह किसी प्रकार उसकी ओर से अपनी दृष्टि नहीं हटा सकता। देखते-देखते हठात्, और सम्भव है कि अत्यन्त लज्जा के कारण, उसका सारा शरीर सिहर उठता और वह तुरन्त ही वहाँ से, जिधर मुँह उठता उधर ही, जल्दी से खिसक जाता।

सत्य को तैरकर स्नान करने का बहुत शौक़ था। उसके चोरबागानवाले मकान से गंगा अधिक दूर नहीं थीं और इसी लिए वह प्रात: जगन्नाथ-घाट पर स्नान करने जाया करता था।

आज पूर्णिमा का दिन था। घाट पर कुछ भीड़ हो रही थी। गंगा किनारे आकर जिस उड़िया ब्राह्मण के पास वह अपने सूखे वस्त्र आदि रख कर जल में उतरता था, उसी की ओर जब बढ़ा जा रहा था, तब एक जगह बाधा पाकर उसे कुछ रुक जाना पड़ा। वहाँ उसने देखा कि चार-पाँच आदमी एक तरफ़ देख रहे हैं। सत्य ने उनकी दृष्टि का अनुसरण करके ज्यों ही देखा त्यों ही वह विस्मय से स्तब्ध हो गया।

उसे ऐसा जान पड़ा कि मैंने एक साथ इतना अधिक रूप आज तक कभी किसी स्त्री-शरीर में



देखा ही नहीं! उसकी अवस्था अठारह-उन्नीस वर्ष से अधिक नहीं थी। वह एक मामूली काली किनारी की सफ़ेद धोती पहने थी। उसके सारे शरीर में कोई गहना नहीं था। वह घुटनों के बल बैठी हुई मस्तक पर चन्दन की छाप लगवा रही थी और उसका परिचित पण्डा एकाग्र मन से उस सुन्दरी के मस्तक और नाक पर चन्दन चर्चित कर रहा था।

सत्य पास जाकर खड़ा हो गया। पण्डे को सत्य से भी यथेष्ट दक्षिणा मिला करती थी, इसी लिए उसने उस रूपसी के चन्द्र-मुख की ख़ातिर-दारी छोड़कर अपने हाथ का छापा फेंककर बड़े बाबू के सूखे वस्त्र लेने के लिए हाथ बढ़ाया।

दोनों की आँखें चार हो गईं। सत्य जल्दी से अपने कपड़े पंडे के हाथ में देकर सीढ़ियाँ उतरता हुआ जल में जा पहुँचा। पर आज वह तैरा नहीं और किसी प्रकार जल्दी-जल्दी स्नान करके जब कपड़े बदलने के लिए ऊपर पहुँचा तब उसने देखा कि वह असामान्या रूपसी वहाँ से चली गई है।

उस रोज़ दिन भर सत्य का मन गंगा-गंगा करता रहा। दूसरे दिन पूरी तरह से सबेरा भी नहीं होने पाया था कि गंगा माता ने उसे इतनी ज़ोर से अपनी तरफ़ खींचा कि वह खूँटी पर से एक धोती लेकर तुरन्त गंगाजी की तरफ़ चल पड़ा।

घाट पर पहुँचकर उसने देखा कि वह अपरि-चिता रूपसी स्नान करके अभी-अभी ऊपर आई है। जब सत्य स्नान करके स्वयं पण्डा के पास पहुँचा, तब वह रूपसी आज भी पहले दिन की तरह पण्डे से ललाट में चन्दन लगवा रही थी। आज भी दोनों की आँखें चार हुईं। आज भी उसके सारे शरीर में बिजली दौड़ गई और वह किसी प्रकार जल्दी से कपड़े बदलकर वहाँ से चल पड़ा।

(२)

सत्य ने समझ लिया कि यह स्त्री नित्य ही प्रातःकाल स्नान करने के लिए आया करती है। अब तक जो हम दोनों का साक्षात् नहीं हो सका, इसका कारण यह है कि मैं इससे पहले स्वयं ही देर करके स्नान करने आया करता था।

गंगा-किनारे आज सात दिनों से बराबर दोनों की देखादेखी होती आ रही है, पर आज तक कोई बातचीत होने की नौबत नहीं आई। कारण, जहाँ, केवल आँखों-आँखों में बातें होती हैं वहाँ मुख को मूक होकर ही रहना पड़ता है। वह अपरिचित रूपसी चाहे जो हो, पर उसने आँखों से बातें करने की शिक्षा का अभ्यास किया है, एवं इस विद्या में वह पारदर्शिनी है, सत्य के अन्तर्यामी ने इस बात का अपने निभृत अन्तर में अनुभव कर लिया।

उस दिन जब वह स्नान करके कुछ अन्य-मनस्कता से अपने घर लौट रहा था, तब अचानक उसे सुनाई पड़ा—ज़रा सुनिए तो! उसने सिर उठाकर देखा तो रेल्वे लाइन के उस पार वही रमणी खड़ी हुई है। उसकी कमर पर बाईं ओर जल की भरी हुई पीतल की एक छोटी कलसी है और दाहने हाथ में गीली धोती। उसने सिर हिलाकर संकेत से बुलाया। सत्य इधर-उधर देख उसके पास जा खड़ा हुआ। उसने उत्सुक नेत्रों से देखकर मृदु स्वर से कहा—आज मेरी नौकरानी नहीं आई है। यदि आप कृपा कर मुझे कुछ दूर तक पहुँचा दें, तो बहुत अच्छा हो। हमेशा वह अपने साथ एक नौकरानी लेकर आया करती थी, पर आज अकेली थी। सत्य के मन में कुछ दुबधा हुई कि यह ठीक नहीं है। उसने एक बार चाहा भी, पर वह किसी तरह अपने मुँह से 'नहीं' न कह सका। रमणी उसके मन का भाव समझकर कुछ हँसी और



इस प्रकार की हँसी जिन्हें आती है, उनके लिए संसार में कुछ भी अप्राप्य नहीं है। सत्य तुरन्त ही 'चलिए' कहकर उसके पीछे हो लिया। दो-चार क़दम आगे बढ़ने पर स्त्री ने फिर कहा— नौकरानी बीमार है, वह आ नहीं सकी। लेकिन मैं भी बिना गंगा-स्नान किये नहीं रह सकती; और देखती हूँ कि आपको भी यह बुरी आदत पड़ी हुई है! सत्य ने धीरे-धीरे कहा—जी हाँ, मैं भी प्रायः गंगा-स्नान करने आता हूँ।

"यहाँ आप कहाँ रहते हैं?"

"मेरा मकान चोर-बागान में है।"

"मेरा मकान जोड़ा-साँकू में है। आप मुझे पथरिया घाट के मोड़ तक पहुँचा दीजिएगा और तब बड़ी सड़क से चले जाइएगा।"

"अच्छी बात है।"

फिर बहुत देर तक दोनों में कोई बातचीत नहीं हुई। चितपुरवाली सड़क पर पहुँचकर स्त्री घूमकर खड़ी हो गई और फिर वही हँसी हँसकर बोली—बस मेरा मकान पास ही है, अब आप जा सकते हैं—नमस्कार।

सत्य नमस्कार करके गर्दन नीचे किये जल्दी से चला गया। उस रोज़ उसके मन की जो अवस्था रही, वह लिखकर बतलाना असम्भव है। उस दिन क्या हुआ था, यह केवल वही अनुभव कर सकेंगे, जिन्हें यौवन काल में पंच-शर के प्रथम पुष्प-बाण का आघात सहना पड़ा है। सब लोग यह बात नहीं समझ सकेंगे कि किस उन्मादक नशे में मत्त होने पर जल-स्थल आकाश पाताल सब रंगीन दिखने लगते हैं और किस प्रकार सारा चैतन्य, अपनी सारी चेतना खोकर, एक प्राणहीन चुम्बक के टुकड़े की तरह, केवल उसी एक ओर झुक पड़ने के लिए प्रत्येक पल उन्मुख हो रहता है।

दूसरे दिन सबेरे सत्य ने जागकर देखा कि धूप निकल आई है। व्यथा की एक तरंग उसके कण्ठ तक को झकझोरती हुई निकल गई और उसने निश्चित रूप से समझ लिया कि आज का सारा दिन बिलकुल ही व्यर्थ गया। नौकर सामने से चला जा रहा था। उससे ख़ूब डपटकर कहा— हरामज़ादे, इतना दिन चढ़ गया और तूने मुझे जगाया तक नहीं। जा, तुझ पर एक रुपया जुर्माना करता हूँ।

उस बेचारे के होश-हवास गुम हो गये और वह चुपचाप देखता रह गया। सत्य बिना दूसरा वस्त्र लिये ही ग़ुस्से से भरा हुआ घर से निकल गया।

बाहर आते ही उसने किराये की एक गाड़ी ली और गाड़ीवान को पथरिया घाट से होकर चलने का हुक्म देकर रास्ते के दोनों तरफ़ प्राणपण से अपनी आँखें बिछा दीं। पर जब गंगाजी के पास पहुँचकर उसने घाट की ओर देखा, तब उसका सारा क्षोभ शान्त हो गया। बल्कि ऐसा जान पड़ा कि मैंने मानों अकस्मात् सड़क पर पड़ा हुआ एक अमूल्य रत्न पा लिया है।

ज्यों ही सत्य गाड़ी से उतरा, त्यों ही उस स्त्री ने मुस्कराकर नितान्त परिचितों की तरह कहा—आज बहुत देर कर दी? मैं आध घंटे से यहाँ खड़ी हूँ! जल्दी नहा लीजिए। आज भी मेरी नौकरानी नहीं आई है।

'बस, एक मिनट और ठहर जाइए।' कहकर सत्य जल्दी से जल में उतरा। उसका तैरना न जाने कहाँ चला गया! वह जैसे-तैसे जल्दी-जल्दी दो-तीन डुबकियाँ लगाकर आ पहुँचा और बोला— मेरी गाड़ी कहाँ गई?

रमणी ने कहा—मैंने उसे किराया देकर विदा कर दिया है।

"आपने किराया दिया!" "हाँ दे दिया, चलिए," कहकर वह एक बार और भुवनमोहिनी हँसी हँसकर आगे बढ़ गई।



सत्य एकबारगी अपना दिल दे बैठा था, नहीं तो लाख निरीह और लाख अनभिज्ञ होने पर भी उसे एक बार अवश्य सन्देह होता कि आखिर यह सब क्या मामला है!

रास्ता चलते-चलते रमणी बोली—आपने अपना मकान कहाँ बतलाया था? चोर-बागान में?

सत्य ने कहा—हाँ।

"वहाँ क्या केवल चोर ही रहते हैं?"

सत्य ने चकित होकर पूछा—क्यों?

"आप चोरों के राजा जो ठहरे!"

इतना कहकर रमणी गरदन कुछ टेढ़ी करके कटाक्ष करती और मुस्कराती हुई फिर चुपचाप मराल गति से चलने लगी। आज उसकी कमर पर जो कलसी थी, वह कुछ बड़ी थी और उसमें भरा हुआ गंगा-जल छला-छल छला-छल शब्दों के द्वारा मानों कह रहा था—अरे मुग्ध, अरे अंध युवक, सावधान! यह सब छल है—यह सब धोखा है। और इस प्रकार वह जल उछल-उछलकर कभी व्यंग्य और कभी तिरस्कार करने लगा।

मोड़ के पास पहुँचकर सत्य ने संकोच के साथ कहा—गाड़ी का किराया!

रमणी मुड़कर खड़ी हो गई और अस्फुट तथा कोमल स्वर से बोली—एक तरह से वह आपका ही दिया हुआ तो है!

सत्य ने इस इशारे को न समझकर पूछा—मेरा दिया हुआ कैसे?

"मेरे पास अब अपना है ही क्या, जो मैं दूँगी! जो कुछ मेरा था, वह सब तो तुमने पहले ही चोरी और डकैती करके ले लिया है।"

इतना कहकर उसने तत्काल ही मुँह फेर लिया। मानों वह अपनी उच्छ्वसित हँसी के वेग को बलपूर्वक रोकने लगी।

यह अभिनय सत्य नहीं देख सका, इसीलिए चोरी के इस प्रच्छन्न संकेत ने तीव्र विद्युत्-रेखा की तरह उसके संशय-जाल को आरपार विदीर्ण करके हृदय के अन्तस्तल तक प्रकाशित कर दिया। उसी समय उसका जी चाहा कि मैं इस आम सड़क पर ही इसके लाल-लाल पैरों पर लोट जाऊँ। लेकिन इसके बाद पल-भर में ही बहुत अधिक लज्जा के कारण उसका सिर इस प्रकार नीचे झुक गया कि वह फिर सिर उठाकर अपनी प्रियतमा के मुख की ओर देख भी न सका और चुपचाप सिर झुकाये धीरे-धीरे चला गया।

रमणी के आज्ञानुसार नौकरानी फ़ुटपाथ पर खड़ी हुई राह देख रही थी। वह पास आकर बोली—अरे तुम इस बेचारे को क्यों इस तरह नचाती फिरती हो? इसके पास कुछ है भी? चार पैसे मिल भी सकेंगे?

रमणी ने हँसते हुए कहा—सो तो नहीं जानती, पर इस तरह के बेवक़ूफ़ों को नाक में नकेल पहनाकर चक्कर खिलाने में मुझे बड़ा मजा आता है।

दासी ने कुछ देर तक ख़ूब हँसने के बाद कहा—यह भी तुम कर सकती हो! पर और चाहे जो कहो, देखने में किसी राजा का-सा लड़का मालूम होता है। जैसा बढ़िया चेहरा-मोहरा है, वैसा ही बढ़िया रंग भी है और तुम दोनों का जोड़ा भी ख़ूब मिलता है। जब तुम खड़ी-खड़ी उससे बातें कर रही थीं, तब ऐसा मालूम होता था कि मानों एक जोड़ी गुलाब के फूल खिले हुए हैं!

रमणी ने मुस्कराते हुए कहा—अच्छा चल। अगर पसन्द आ जाय, तो न हो तू ही ले लेना।

पर नौकरानी भी सहज में हारनेवाली नहीं थी। उसने भी उत्तर दिया—



"दीदी, तुम यह चीज़ जीतेजी किसी को न दे सकोगी, यह मैं अभी से कहे देती हूँ !"

(४)

ज्ञानियों का कथन है कि आँखों-देखी भी असंभव घटना को किसी से मत कहो। कारण, अज्ञानी उस पर विश्वास नहीं करते। इसी अपराध में बेचारे श्रीमन्त को* मसान जाना पड़ा था। जो हो, यह बात बिलकुल ठीक है कि सत्य ने उस दिन घर लौटकर टेनिसन की कविताएँ पढ़ी थीं और वह डान जुआन का बँगला-अनुवाद करने बैठा था। वह इतना बड़ा हो गया था, पर फिर भी उसके मन में ज़रा भी सन्देह नहीं हुआ कि दिन-दहाड़े, इतने बड़े कलकत्ते शहर की आम सड़क और घाट पर, ऐसे अद्भुत प्रेम की बाढ़ कैसे आ सकती है तथा उस बाढ़ की लहरों में ह[illegible] कर चलना उसके लिए कहाँ तक निरापद है!

दो दिन बाद जब दोनों फिर उसी तरह स्नान करके घर लौट रहे थे, तब रास्ते में उस अपरिचिता ने सहसा कहा—कल रात को मैं थिएटर देखने गई थी। बेचारी सरला का त्रास देखकर छाती फटने लगी।

सत्य ने सरला का नाटक तो नहीं देखा था, पर हाँ, 'स्वर्णलता' पुस्तक अवश्य पढ़ी थी, इसलिए उसने धीरे से कहा—हाँ, बेचारी बड़े कष्ट से मरी थी।

उसने लम्बी साँस लेकर कहा—ओह, उसे कितना भीषण कष्ट हुआ था। तुम बतला सकते हो कि सरला ने अपने पति को इतना क्यों चाहा

---

* बँगला में कवि-कंकण श्रीमुकुन्दराम चक्रवर्ती का लिखा हुआ 'चंडी काव्य' नाम का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसमें 'श्रीमन्त'-नामक एक वणिक् की कथा है। कहते हैं कि एक व्यापारी जब व्यापार करने के लिए सिंहल जाने लगा, तब उसकी स्त्री को चार मास का गर्भ था। चलते समय वह अपनी स्त्री से कह गया कि यदि मैं किसी कारण से लौटकर घर न आऊँ तो तुम्हारे गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न हो, उसी को मेरा पता लगाने के लिए सिंहल भेजना। इस व्यापारी ने सिंहल जाते हुए समुद्र में कमल पर बैठी हुई एक स्त्री को देखा और सिंहल पहुँचकर वहाँ के राजा से उस कमल-कामिनी का वर्णन किया। राजा ने कहा कि तुम मुझे उस कमल-कामिनी को दिखलाओ। वणिक् राजा को अपने साथ लेकर गया, परन्तु समुद्र में कहीं कमल-कामिनी न दिखाई पड़ी। इस पर राजा ने उसे कारागार में बन्द कर दिया।

उधर स्त्री के गर्भ से जो बालक उत्पन्न हुआ, उसका नाम 'श्रीमन्त' रक्खा गया। वह बाल्यावस्था से ही चंडी का भक्त था। अपने पिता का पता लगाने के लिए वह सिंहल को चल दिया। मार्ग में जब कभी उस पर कोई विपत्ति आती थी, तब चंडी प्रत्यक्ष दर्शन देकर उसकी रक्षा करती थी। उसे भी एक स्थान पर चंडी उसी कमल-कामिनी के रूप में दिखाई पड़ी। श्रीमन्त ने सिंहल पहुँचकर अपने पिता का पता लगाया तो मालूम हुआ कि मेरे पिता यहाँ के राजा को कमल-कामिनी नहीं दिखा सके, इसी अपराध में कारागार में बंद कर दिये गये हैं। सोलह वर्ष के बालक श्रीमन्त ने राजा से जाकर कहा कि मैंने भी वह कमल-कामिनी देखी है। राजा उसके साथ भी गया, परन्तु कमल-कामिनी न दिखाई पड़ी। इस पर राजा ने आज्ञा दी कि इसका सिर काट डालो। जब वधिक सिर काटने के लिए उसे श्मशान में ले गये, तब चंडी ने एक वृद्धा के रूप में प्रकट होकर श्रीमन्त की रक्षा की, उसके पिता को कारागार से मुक्त कराया, श्रीमन्त को राजा से सिंहल का आधा राज्य दिलवाया और अंत में राजकुमारी के साथ उसका विवाह कर दिया। —अनुवादक

और उसकी जेठानी क्यों प्रेम नहीं कर सकी ?

सत्य ने संक्षेप में उत्तर दिया अपना-अपना स्वभाव।

"हाँ, यही बात है। ब्याह तो सभी का होता है, पर क्या सभी स्त्रियाँ और पुरुष एक दूसरे पर समान रूप से प्रेम कर सकते हैं ? नहीं। ऐसे बहुत-से लोग होते हैं, जो मरते दम तक यह भी नहीं जानते कि प्रेम किसे कहते हैं। जानने की शक्ति ही उनमें नहीं होती ; देखते नहीं, बहुत-से लोग ऐसे होते हैं जिनके सामने हज़ार अच्छा गाना-बजाना हुआ करे, पर फिर भी वे मन लगा-कर नहीं सुन सकते और बहुत-से किसी बात से भी क्रोधित नहीं होते—क्रोध कर ही नहीं सकते। लोग उनकी बहुत तारीफ़ करते हैं, पर मेरा तो जी उनकी निन्दा करने को ही चाहता है।"

सत्य ने कुछ मुस्कराते हुए पूछा—क्यों ?

रमणी ने उद्दीप्त कंठ से उत्तर दिया—इसलिए कि वे अक्षम होते हैं। अक्षमता में थोड़ा बहुत गुण भी हो तो हो सकता है; परन्तु दोष ही अधिक है। यही जैसे सरला का जेठ। स्त्री के इतने बड़े अत्याचार से भी उसे क्रोध नहीं आया।

सत्य चुप रहा, उसने फिर कहना आरम्भ किया—और उसकी स्त्री प्रमदा भी कैसी शैतान है! अगर मैं होती तो उस राक्षसी का गला ही घोंट देती।

सत्य ने हँसते हुए कहा—पर तुम होतीं कैसे ? प्रमदा नाम की सचमुच कोई औरत तो थी नहीं—वह तो कवि की कल्पनामात्र—

रमणी ने बीच में ही रोककर कहा—तो फिर कवि ने ऐसी कल्पना ही क्यों की ? अच्छा, सभी कहते हैं, सब मनुष्यों के अन्तःकरण में भगवान् हैं, आत्मा है, परन्तु प्रमदा का चरित्र देखने से तो नहीं मालूम होता कि उसके अंतर में भगवान् थे। मैं तुमसे सच कहती हूँ, कहाँ होना तो यह चाहिए कि बड़े-बड़े आदमियों की पुस्तकें पढ़कर लोग भले बनें और एक दूसरे के साथ प्रेम करें, सो तो नहीं, एक ऐसी किताब लिखकर रख दी कि जिसे पढ़ते ही मनुष्य के प्रति मनुष्य के मन में घृणा उत्पन्न हो जाय और इस बात पर विश्वास ही न हो कि सचमुच ही सब लोगों के अन्तःकरण में भगवान् का मन्दिर है !

सत्य ने विस्मित होकर उसके मुख की ओर देखते हुए कहा—मैं देखता हूँ कि तुम खूब किताबें पढ़ती हो ?

रमणी ने उत्तर दिया—अँगरेज़ी तो जानती नहीं, पर हाँ, बँगला की जितनी किताबें निक-लती हैं, सभी पढ़ती हूँ। कभी कभी तो ऐसा होता है कि मैं रात भर पढ़ती ही रह जाती हूँ। यही तो बड़ी सड़क है, चलो न, मेरे मकान पर जितनी किताबें हैं, सब तुमको दिखलाऊँगी।

सत्य ने चौंककर पूछा—तुम्हारे मकान पर ?

वह बोली—हाँ, मेरे मकान पर, चलो, तुम्हें चलना पड़ेगा।

हठात् सत्य का चेहरा पीला पड़ गया। उसने डरते हुए कहा—नहीं-नहीं। छीः-छीः—

"छीः छीः कुछ नहीं। चलो।"

"नहीं नहीं, आज नहीं—आज रहने दो।"

इतना कहकर सत्य काँपते हुए पैरों से शीघ्रता-पूर्वक चल दिया। आज उसे अपनी इस अपरिचिता प्रेमिका के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई, जिसके भार से उसका हृदय अवनत हो गया।

(५)

सवेरे गंगा-स्नान करके सत्य धीरे-धीरे अपने डेरे पर लौट आया था। उसकी दृष्टि क्लान्त और सजल थी। उसकी पलकें अभी तक भीगी हुई थीं। आज चार दिन हो गये हैं, वह अपनी उस



अपरिचिता प्रियतमा को नहीं देख पाया, आजकल वह गंगा-स्नान करने नहीं आती।

इधर कई दिन से उसने आकाश-पाताल की न-जाने कितनी बातें सोची हैं, उनकी सीमा ही नहीं। बीच-बीच में उसके मन में यह दुश्चिन्ता भी उत्पन्न हुई थी कि कहीं ऐसा न हो कि वह इस संसार में ही न रह गई हो, अथवा कहीं ऐसा न हो कि वह मृत्यु-शय्या पर पड़ी हो! न-जाने उसे क्या हुआ!

वह उस गली को जानता था, पर और कुछ भी नहीं पहचानता था। किसका मकान है और वह कहाँ है, यह कुछ नहीं जानता था। याद करने से पश्चात्ताप और आत्म-ग्लानि के कारण हृदय दग्ध हुआ जाता था। क्यों न मैं उस दिन साथ जाकर मकान देख आया? क्यों मैंने उस दिन उसके इतने बड़े अनुरोध की उपेक्षा की?

उसे सचमुच ही प्रेम हो गया था और वह सिर्फ़ आँखों का नशा नहीं, हृदय की गहरी प्यास थी। उसमें छल या कपट की कहीं छाया भी नहीं थी; जो कुछ था, वह सचमुच ही पवित्र हार्दिक स्नेह था।

"बाबूजी!"

सत्य ने चौंककर देखा कि उसकी वही दासी, जो साथ आया करती थी, रास्ते के एक किनारे खड़ी हुई है।

सत्य कुछ घबराया हुआ जल्दी से उसके पास जा पहुँचा और भर्राई हुई आवाज़ से उसने पूछा—उन्हें क्या हुआ है? और तत्काल ही वह रो पड़ा, अपने आपको सँभाल ही न सका। दासी ने सिर झुकाकर किसी प्रकार अपनी हँसी छिपाई। शायद उसने इस डर से कि कहीं मुझे सत्य के सामने ही जोर से हँसी न आ जाय। सिर झुकाये हुए ही कहा—उनकी तबीयत बहुत ख़राब है, वह आपको देखना चाहती हैं।

"अच्छी बात है। चलो।"

यह कहकर सत्य आँसू पोंछता हुआ उसके पीछे-पीछे चल दिया। कुछ दूर बढ़कर उसने दासी से पूछा—क्या बीमारी है? क्या बहुत ज्यादा बढ़ गई है?

दासी ने कहा—नहीं, कोई बड़ी बीमारी तो नहीं है, पर बुख़ार बहुत तेज़ है।

सत्य ने मन-ही-मन ईश्वर को मनाया और दासी से फिर कोई प्रश्न नहीं किया। मकान के सामने पहुँचकर देखा कि मकान बहुत बड़ा है और उसके दरवाज़े पर एक हिन्दुस्थानी दरबान बैठा हुआ ऊँघ रहा है। दासी से पूछा—मेरे जाने से उनके पिता नाराज़ तो न होंगे? वे तो मुझे पहचानते नहीं।

दासी ने कहा—उनके पिता नहीं हैं, खाली मा हैं। पर उनकी तरह उनकी मा भी आपको बहुत प्यार करती हैं।

सत्य ने और कुछ कहे विना उस मकान में प्रवेश किया।

सीढ़ियाँ पार करके तीसरी मंजिल के बरामदे में पहुँचकर उसने देखा कि बराबर-बराबर तीन कमरे हैं और बाहर से देखने पर सभी खूब सजे हुए जान पड़ते हैं। कोनेवाले कमरे में से जोर की हँसी के साथ तबले और घुँघरुओं के बजने की आवाज़ आ रही है। दासी ने उसी की तरफ़ हाथ से इशारा करके कहा—यही कमरा है, अन्दर चलिए।

इतना कहकर दासी कुछ और आगे बढ़ी और उसने दरवाज़े के आगे पड़ा हुआ पर्दा हाथ से हटाते हुए खूब ऊँची आवाज से कहा—दीदी, ये हैं तुम्हारे नागर!

कमरे में जोर का ठहाका लगा और शोर मच गया। वहाँ सत्य ने जो कुछ देखा, उससे उसका सिर चकरा गया। उसे ऐसा जान पड़ा



कि हठात् मैं बेहोश होकर गिरना चाहता हूँ। किसी प्रकार चौखट का सहारा लेकर और आँखें बन्द करके वह वहीं दरवाज़े पर बैठ गया।

उस कमरे में तख़्त पर ख़ूब मोटा गद्दा बिछा था और उस पर दो-तीन आदमी बैठे हुए थे, जो देखने में भले आदमी से जान पड़ते थे। एक हारमोनियम और दूसरा तबला रक्खे बैठा था। एक आदमी ख़ूब मज़े में शराब पी रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि वह युवती अभी-अभी नाच रही थी। उसके दोनों पैरों में घुँघरू बँधे हुए थे, सारा शरीर नाना गहनों से सजा हुआ था और उसकी सुराराग-रंजित आँखें झूम रही थीं। वह जल्दी से सत्य के पास आ पहुँची और उसका हाथ पकड़कर ख़ूब खिलखिलाकर हँसती हुई बोली—अरे यार, कहीं तुम्हें मिरगी की बीमारी तो नहीं है ? लो भाई, अब मज़ाक़ रहने दो, उठो—मुझे इससे बड़ा डर लगता है।

जिस प्रकार कोई हत-चेतन मनुष्य प्रबल विद्युत् के स्पर्श से काँप उठता है, ठीक उसी प्रकार उस युवती के कर-स्पर्श से सत्य भी सिर से पैर तक काँप उठा।

रमणी ने कहा—मेरा नाम है श्रीमती बिजली, और क्यों दोस्त, तुम्हारा क्या नाम है—बुद्धू या सुद्धू ?

सब लोग ख़ूब ज़ोर से ठठाकर हँस पड़े और वह दासी तो हँसती-हँसती ज़मीन पर ही लोट गई। बोली—वाह दीदी, तुम भी ख़ूब रंग लाना जानती हो !

बिजली ने कुछ बनावटी क्रोध दिखलाते हुए बिगड़कर कहा—चुप रह। बहुत बढ़-बढ़कर बातें न किया कर। और फिर सत्य से कहा—आइए, यहाँ आकर बैठिए। इतना कहकर बिजली सत्य को ज़ोर से खींचती हुई लाई और एक कुरसी पर बिठाकर स्वयं घुटनों के बल उसके पैरों के पास बैठ गई और हाथ जोड़कर गाने लगी—

आजु रजनि हम, भाग्ये पोहायनु[1],
पेखनु[2] पिय मुखचंदा।
जीवन-यौवन सफल-करि माननु,
दसदिसि भेल[3] निरदंदा।
आजु मम गेह, गेह करि माननु,
आजु मम देह भेल देहा।
आजु विधि मोहे, अनुकूल होयल,
टूटल[4] सबहु संदेहा।
पाँच बान अब लाख बान हउ,
मलय - पवन बहु मंदा।
अब सो न जबहुँ मोहे परिहोयत[5]
तबहुँ मानब निज देहा।

उस आदमी ने, जो शराब पी रहा था, उठकर सत्य के पैरों के पास आकर साष्टांग प्रणाम किया। वह नशे में चूर था, रोता हुआ बोला—महाराज, मैं बड़ा पातकी हूँ—मुझे अपने चरणों की थोड़ी-सी रज—

अदृष्ट की विडम्बना से सत्य ने आज स्नान करने के बाद एक मुकटा पहन रक्खा था।

जो आदमी हारमोनियम बजा रहा था, वह अभी तक बहुत कुछ होश में था। उसने कुछ सहानुभूति दिखलाते हुए कहा—क्यों बेचारे को झूठ-मूठ तमाशा बना रही हो ?

बिजली ने हँसते हुए कहा—वाह, झूठ-मूठ कैसे ? यह सचमुच का तमाशा है, तभी तो ऐसे मज़े के दिन यहाँ लाकर तुम लोगों को तमाशा दिखला रही हूँ। अच्छा बुद्धू, तुम्हें मेरे सिर की क़सम है, सच-सच बतला तो दो कि तुमने मुझे क्या समझा था ? मैं नित्य गंगा-स्नान करने जाती हूँ, इसलिए न तो मैं ब्राह्मो हूँ, न मुसलमान और न ईसाई। तब हिन्दू के घर की

१ व्यतीत की। २ देखा। ३ हुए। ४ टूट गये। ५ छोड़कर।



इतनी बड़ी लड़की देखकर तुम्हें समझना चाहिए था कि या तो मैं सधवा हूँ या विधवा। भला बतलाओ तो कि फिर तुम क्या समझकर मुझसे प्रीति लगाने चले थे? मुझसे ब्याह करना चाहते थे या भुला कर कहीं उड़ा ले जाना चाहते थे?

फिर खूब ज़ोर का ठहाका लगा। इसके बाद सब मिलकर न-जाने क्या-क्या कहने लगे। सत्य ने न तो सिर ही उठाया और न किसी का कोई जवाब ही दिया। वह मन-ही-मन क्या समझ रहा था, यह बतलावे ही किस तरह और बतलाने पर उसे मानता ही कौन? ख़ैर, जाने दो उस बात को।

बिजली सहसा चकित होकर उठ खड़ी हुई और बोली—वाह मैं भी खूब हूँ। अरे ओ श्यामा, जा, जल्दी जा, बाबू साहब के वास्ते कुछ जल-पान तो ले आ—बेचारे स्नान करके आये हैं और मैं अब तक सिर्फ़ मज़ाक़ ही कर रही हूँ।

बोलते-बोलते ही कुछ ही समय पूर्व का उसका व्यंग्य और उपहास की अग्नि से उत्तप्त स्वर स्नेह-युक्त अकृत्रिम अनुताप से सचमुच ही बिलकुल ठंडा पड़ गया।

थोड़ी ही देर में दासी ने एक थाली में जल-पान का बहुत-सा सामान लाकर उपस्थित कर दिया। बिजली उसे अपने हाथ में लेकर सत्य के सामने घुटनों के बल बैठ गई और बोली—अच्छा, लो मुँह ऊपर करो, कुछ खा लो।

सत्य अभी तक अपनी सारी शक्ति एकत्र करके अपने आपको सँभाल रहा था। अब उसने सिर उठाकर शान्त भाव से कहा—मैं नहीं खाऊँगा।

"क्यों, क्या तुम्हारी जाति चली जायगी? मैं क्या कोई भंगिन हूँ या मोचिन?"

सत्य वैसे ही शान्त स्वर से बोला—अगर आप वह होतीं तो मैं खा लेता। लेकिन आप जो कुछ हैं, वह हैं। बिजली ने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा—देखती हूँ कि बुद्धू बाबू भी छुरी-कटारी चलाना जानते हैं!

यह कहकर बिजली फिर हँसी। किन्तु उसकी वह हँसी केवल शब्द ही शब्द थी, हँसी नहीं थी। इसी लिए इस हँसी में और कोई साथ नहीं दे सका।

सत्य ने कहा—मेरा नाम सत्य है, बुद्धू नहीं। मैंने कभी छुरी-कटारी चलाना तो नहीं सीखा, परन्तु अपनी भूल का पता लगने पर उसे सुधारना अवश्य सीखा है।

बिजली हठात् कुछ और कहना चाहती थी, किन्तु उसे रोककर अन्त में बोली—क्या तुम मेरा छुआ नहीं खाओगे?

"नहीं।"

बिजली उठकर खड़ी हो गई। इस बार उसके परिहास के स्वर में कुछ तीव्रता आ गई। उसने कुछ ज़ोर देकर कहा—तुम खाओगे ज़रूर, यह मैं कहे देती हूँ। आज नहीं तो कल और कल नहीं तो दो दिन बाद, पर खाओगे ज़रूर।

सत्य ने गरदन हिलाकर कहा—देखिए, भूल सभी से हुआ करती है और मेरी भूल कितनी बड़ी है, यह सब समझ गये हैं। लेकिन आपसे भी भूल हो रही है। मैं कहता हूँ कि आज नहीं, कल नहीं और चार दिन बाद भी नहीं, इस जन्म में नहीं और अगले जन्म में भी नहीं,—मैं आपका छूआ नहीं खाऊँगा। मुझे आज्ञा दीजिए, मैं जाऊँ—आपके निःश्वास से मेरा रक्त सूखा जाता है।

उस मुख पर गहरी घृणा की एक ऐसी स्पष्ट छाया दीख पड़ी कि वह उस शराबी की आँखों से भी छिपी न रही। उसने सिर हिलाते हुए कहा—बिजली बीबी, अरसिकेषु रहस्यनिवेदनम्! जाने दो—जाने दो। इसने तो सवेरे का सारा ही मज़ा किरकिरा कर दिया।



बिजली ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह स्तम्भित होकर सत्य के मुँह की ओर देखती हुई खड़ी रही। सचमुच उससे बहुत बड़ी भूल हो गई थी। उसने कल्पना भी नहीं की थी कि ऐसा मुँह-चोर और शान्त आदमी इस तरह बोल सकता है।

सत्य अपना आसन छोड़कर खड़ा हुआ। बिजली ने कोमल स्वर से कहा—"थोड़ी देर और बैठो।"

यह सुनते ही वह शराबी चिल्ला उठा—ऊँ हूँ हूँ! अभी पहली चोट में ज़रा जोर दिखलावेगा—अभी जाने दो। डोर ढीली कर दो, डोर ढीली कर दो।

सत्य कमरे से बाहर निकल आया। बिजली ने पीछे से जाकर उसका रास्ता रोक लिया और धीरे से कहा—वे लोग देख लेते, नहीं तो मैं उसी समय हाथ जोड़कर तुमसे कहती कि मुझसे बहुत बड़ा अपराध हुआ है।

सत्य ने कोई उत्तर न दिया और मुँह फेर लिया।

बिजली ने फिर कहा—यह बग़लवाला कमरा मेरे पढ़ने-लिखने का है। ज़रा-सा चलकर उसे देख न लो? उसे ज़रा अन्दर चलकर एक दफ़े देख लो, मैं तुमसे माफ़ी माँगती हूँ।

सत्य 'नहीं' कहकर सीढ़ी की तरफ़ बढ़ा। बिजली ने उसके पीछे पीछे चलते हुए पूछा—कल मुलाक़ात होगी?

"नहीं।"

"क्या और कभी मुलाक़ात नहीं होगी?"

"नहीं।"

रुलाई के मारे बिजली का गला भर आया। थूक निगलकर, ज़ोर लगाकर और गला साफ़ करके उसने कहा—मुझे विश्वास नहीं होता कि अब मुलाक़ात न होगी। फिर भी यदि न हो तो बोलो, क्या तुम मेरी एक बात पर विश्वास करोगे?

उसका भग्न स्वर सुनकर सत्य विस्मित हुआ, लेकिन इधर पन्द्रह-सोलह दिनों से जो अभिनय वह देखता आ रहा था, उसके मुक़ाबले में तो यह कुछ भी नहीं था। तो भी वह मुँह फेरकर खड़ा हो गया। उसके मुख की प्रत्येक रेखा पर अविश्वास के चिह्नों को पढ़कर बिजली की छाती फट गई। पर वह करती ही क्या? हाय-हाय! विश्वास दिलाने के समस्त उपाय ही उसने अपने हाथों कूड़े के समान झाड़-पोंछकर फेंक दिये थे?

सत्य ने पूछा—किस बात पर विश्वास करूँ?

बिजली के होंठ तो फड़के, पर उनसे आवाज़ न निकली। उसने आँसुओं के भार से दबी हुई आँखें एक बार पल भर के लिए ऊपर उठाईं और फिर पहले की तरह नीची कर लीं। सत्य ने भी यह देख लिया, पर आँसू भी क्या नक़ली नहीं होते? बिजली ने सिर उठाये बिना ही समझ लिया कि सत्य प्रतीक्षा कर रहा है। पर उस बात को वह किसी तरह भी मुँह से न निकाल सकती थी, जो बाहर निकलने के लिए कलेजे के अंजर-पंजर ढीले किये डालती थी।

वह उसे प्यार करने लगी थी और ऐसा प्यार करने लगी थी, जिसका एक कण भी सार्थक करने के लोभ में यदि सम्भव होता तो वह अपने रूप के भांडार—शरीर—को भी शायद एक सड़े-गले वस्त्र के समान त्याग दे सकती, पर उस पर विश्वास कौन करेगा? वह दाग़ी असामी जो थी। अपने सारे शरीर में अपराध के करोड़ों चिह्न रखते हुए, विचारक के सामने खड़ी होकर, वह किस मुँह से यह बात कहती कि यद्यपि अपराध करना ही मेरा पेशा है, फिर भी इस बार मैं निर्दोष हूँ? ज्यों-ज्यों बिलम्ब होने लगा, त्यों-त्यों ही उसे जान पड़ने लगा कि विचारक मुझे फाँसी की आज्ञा देनेवाला ही है। पर वह उसे रोके



कैसे ? सत्य अधीर हो उठा था, बोला—अब जाता हूँ।

बिजली सिर तो ऊँचा न कर सकी, पर इस बार उसके मुँह से बात निकली। उसने कहा—जाओ। लेकिन सिर से पैर तक अपराधों में मग्न होने पर भी मैं जिस बात पर विश्वास करती हूँ, उस पर अविश्वास करके तुम अपराधी मत बनना। विश्वास रक्खो कि सभी के शरीर में भगवान् निवास करते हैं और जब तक मृत्यु नहीं हो जाती, तब तक वे उसे छोड़कर नहीं जाते।

कुछ देर चुप रहकर फिर बोली—यह ठीक है कि सभी मन्दिरों में देवता की पूजा नहीं होती, लेकिन फिर भी उनमें रहनेवाले देवता ही होते हैं। उन्हें देखकर सिर भले ही न नवा सको, किन्तु ठुकराकर भी नहीं जा सकते।

यह कहकर जब उसने पैरों की आहट से सिर उठाकर देखा तब सत्य चुपचाप धीरे-धीरे चला जा रहा था।

स्वभाव के विरुद्ध विद्रोह किया जा सकता है, पर उसे बिलकुल उड़ाया नहीं जा सकता। नारी-शरीर पर सैकड़ों अत्याचार किये जा सकते हैं, पर नारीत्व का तो अस्वीकार नहीं किया जा सकता! बिजली नर्तकी है, फिर भी नारी तो है! जन्म-भर सहस्रों अपराध करने के कारण अपराधी होने पर भी उसका यह देह नारी-देह ही तो है। कोई घण्टे भर बाद जब वह अपने कमरे में लौट आई, तब उसकी लांछित अर्द्ध मृत नारी-प्रकृति अमृत के स्पर्श से जाग उठी थी। इस थोड़े से समय में ही उसके सारे शरीर में जो अद्भुत परिवर्तन हो गया था, उसका पता उस शराबी तक को चल गया। उसने अन्त में मुँह खोलकर कह ही डाला—क्यों बाईजी, तुम्हारी आँखों की पलकें तो भीगी हुई हैं? मैया री, यह लड़का भी कैसा ज़िद्दी है कि ऐसी बढ़िया चीज़ें भी उसने मुँह में न डालीं, अच्छा लाओ तो जी, थाली ज़रा इधर बढ़ा दो।

यह कहकर शराबी ख़ुद ही थाली खींचकर निगलने लगा।

लेकिन उसकी एक बात भी बिजली के कानों में न गई। अचानक जब उसकी नजर अपने पैरों की तरफ़ गई, तब उसे ऐसा जान पड़ा कि उनमें बँधे हुए घुँघरुओं के तोड़ों ने मानो बिच्छुओं की तरह डंक निकालकर उसके दोनों पैरों में काट खाया है। उसने जल्दी-जल्दी उन्हें खोलकर फेंक दिया।

एक ने पूछा—घुँघरू खोल दिये?

बिजली ने सिर उठाकर कुछ मुस्कराते हुए कहा—हाँ, अब मैं इन्हें नहीं पहनूँगी।

"इसका मतलब?"

"मतलब यही कि न पहनूँगी। बाईजी मर गई!"

शराबी मिठाई खा रहा था। बोला—आख़िर बीमारी क्या हुई?

बिजली को हँसी आ गई। यह वही हँसी थी। उसने हँसते हुए कहा - जिस बीमारी से दिया जलाने पर अन्धकार मर जाता है और सूर्य के निकलने से रात मर जाती है, आज उसी बीमारी से तुम लोगों की बाईजी सदा के लिए मर गई।

(६)

चार बरस बाद की बात है। कलकत्ते के एक आलीशान मकान में एक बड़े ज़मींदार के लड़के का अन्न-प्राशन है। खिलाने-पिलाने का विराट व्यापार ख़तम हो चुका है। सन्ध्या के बाद मकान के बाहरवाले प्रशस्त आँगन में महफ़िल का इन्तज़ाम किया गया है। अनेक प्रकार के आमोद-प्रमोद और नाच-गान का आयोजन हो रहा था। वहाँ एक तरफ़ तीन-चार नर्त्तकियाँ बैठी हैं। वे नाचेंगी—गायेंगी। दूसरी मंजिल के बरामदे में

चिक की आड़ में बैठी हुई अकेली राधा-रानी नीचे आये हुए लोगों को देख रही है। निमंत्रित स्त्रियों का अभी तक शुभागमन नहीं हुआ है।

सत्येन्द्र ने चुपचाप पीछे से पहुँचकर धीरे से पूछा—इतने ध्यान से क्या देख रही हो ?

राधा रानी ने अपने स्वामी के मुख की ओर देखकर हँसते हुए कहा—वही जो सब लोग देखने के लिए आ रहे हैं। जो बाईजी आई हुई हैं, उन्हीं की सजधज देख रही हूँ। लेकिन, तुम अचानक यहाँ कैसे आ गये !

स्वामी ने हँसते हुए उत्तर दिया—तुम यहाँ अकेली बैठी हो, इसीलिए कुछ बातचीत करने आ गया।

"चलो, जाओ !"

"सच कहता हूँ ! अच्छा, यह तो बतलाओ कि इन सबमें तुम्हें कौन पसन्द है !"

राधा रानी ने 'वह' कहकर उँगली से उस स्त्री की ओर इशारा किया, जो सबसे पीछे बहुत ही सादी पोशाक में बैठी हुई थी।

सत्य ने कहा—वह तो बहुत ही दुबली-पतली रोगिणी-सी है।

"हाँ, पर वह सबसे अधिक सुन्दरी है। पर बेचारी ग़रीब मालूम होती है, बदन पर औरों की तरह गहने नहीं हैं।"

सत्येन्द्र ने सिर हिलाकर कहा—होगी। लेकिन जानती हो कि इन लोगों की मजूरी क्या है ?

"नहीं।"

सत्येन्द्र ने हाथ से दिखलाते हुए कहा—इन दोनों को तो तीस-तीस रुपये देने होंगे, उसे पचास देने होंगे, और जिसे तुम सबसे ग़रीब बतलाती हो, वह दो सौ रुपये लेगी। राधा-रानी ने चौंक कर पूछा दो सौ ! क्यों, क्या वह बहुत अच्छा गाती है !

"गाना कभी सुना तो नहीं। लोग कहते हैं कि आज से चार-पाँच बरस पहले बहुत ही अच्छा गाती थी, पर नहीं कहा जा सकता कि अब अच्छा गा सकेगी या नहीं।"

"तो इतने रुपये देकर बुलवाया ही क्यों ?"

"इससे कम पर वह आती ही नहीं। इतने पर भी आने के लिए राज़ी नहीं थी, बहुत मुश्किलों से मना-मुनूकर बुलवाई गई है।"

राधा-रानी ने और भी अधिक विस्मित होकर पूछा—रुपया देना और फिर मनाना कैसा !

सत्येन्द्र ने पास पड़ी हुई एक कुरसी खींच ली और उस पर बैठकर कहा—पहली बात तो यह है कि आजकल उसने यह पेशा छोड़ दिया है। उसमें गुण चाहे जितने हों, पर इतने रुपये जल्दी कोई देना नहीं चाहता, और इसलिए उसे कहीं आना-जाना नहीं पड़ता। यही उसकी चाल है। और दूसरा कारण है मेरी ख़ुद की ग़रज़।

इस बात पर राधारानी को विश्वास नहीं हुआ। तो भी आग्रह के मारे उसने कुछ आगे खिसक आकर कहा—तुम्हारी ग़रज़ तो क्या ख़ाक होगी ; लेकिन यह तो बतलाओ, उसने पेशा क्यों छोड़ दिया है !

"सुनोगी !"

"हाँ, कहो।"

सत्येन्द्र ने क्षण भर चुप रहने के बाद कहा—इसका नाम बिजली है। किसी समय—लेकिन रानी, यहाँ अभी और लोग आ जाएँगे, अन्दर चलोगी !

"चलो, चलो।" कहकर राधा-रानी तुरन्त उठ खड़ी हुई।

❀ ❀ ❀

अपने स्वामी के चरणों के पास बैठकर राधा-रानी ने सब बातें सुनकर आँचल से अपनी आँखें पोंछ लीं और अंत में कहा—इसी लिए

आज उसका अपमान करके बदला लोगे ? तुम्हें यह अक़्ल भला किसने दी ?

उधर स्वयं सत्येन्द्र की आँखें भी सूखी नहीं थीं। बातें करते समय कई बार उसका गला भी भर आया था। उसने कहा—हाँ, अपमान तो है, पर हम तीनों आदमियों के सिवा और कोई इसे न जान सकेगा। किसी को ख़बर भी न होगी।

राधा-रानी ने उत्तर नहीं दिया। एक बार और आँचल से अपनी आँखें पोंछकर वह बाहर चली गई।

निमन्त्रित भले आदमियों से सारी महफ़िल भर गई थी और ऊपरवाले बरामदे से बहुत सी स्त्रियों के सलज्ज चीत्कार चिक का आवरण भेद कर बाहर निकल रहे थे। और सब नर्त्तकियाँ तो प्रस्तुत हो गई थीं, पर बिजली अभी तक सिर झुकाये चुपचाप बैठी हुई थी। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। उसने पहले जो धन एकत्र किया था, वह इधर लम्बे पाँच बरसों में प्रायः समाप्त हो चुका था और उसी के अभाव की मार से आज उसे विवश होकर वह कार्य स्वीकार करना पड़ा, जिसका वह शपथपूर्वक परित्याग कर चुकी थी। लेकिन वह सिर उठाकर खड़ी नहीं हो सकती थी। अभी दो घण्टे पहले उसे इस बात की कल्पना भी नहीं थी कि अपरिचित पुरुषों की सतृष्ण दृष्टि के सामने मेरा शरीर इस प्रकार पत्थर की तरह भारी हो जायगा और पैर इस प्रकार भँजकर टूट जाना चाहेंगे।

"आपको बुला रही हैं।"

बिजली ने सिर उठाकर देखा कि बारह-तेरह बरस का एक लड़का पास ही खड़ा है। उसने ऊपरवाले बरामदे की ओर संकेत करके फिर कहा—बहूजी आपको बुला रही हैं।

बिजली को विश्वास नहीं हुआ। उसने पूछा—कौन बुलाता है ?

"बहूजी बुलाती हैं।"

"तुम कौन हो ?"

"मैं उनका नौकर हूँ।"

बिजली ने सिर हिला कर कहा—नहीं, मुझे नहीं बुलाती होंगी, तुम फिर जाकर एक बार पूछ आओ।

लड़का थोड़ी देर बाद फिर आकर बोला—आपका ही नाम बिजली है न ? आपको ही बुला रही हैं। आइए मेरे साथ, बहूजी खड़ी हैं।

बिजली ने जल्दी से अपने पैरों के घुँघरू खोल दिये और वह उस लड़के के पीछे-पीछे मकान के अन्दर चली गई। उसने समझा कि शायद घर-मालकिन की कोई ख़ास फ़रमाइश है, इसी लिए मुझे बुलाया है।

सोने के कमरे के दरवाज़े के पास राधा-रानी लड़के को गोद में लिये हुए खड़ी थी। कुछ तो घबराहट से और कुछ संकोच से। धीरे-धीरे ज्यों ही बिजली उसके सामने जाकर खड़ी हुई, त्यों ही राधा-रानी आदरपूर्वक हाथ पकड़कर उसे अन्दर खींच ले गई और एक कुरसी पर उसे ज़बरदस्ती बैठाते हुए हँसकर बोली—बहन, मुझे पहचान सकती हो ?

बिजली आश्चर्य से हतबुद्धि हो रही। राधा-रानी ने अपनी गोद के लड़के को दिखलाते हुए कहा—अगर तुमने अपनी छोटी बहन को नहीं पहचाना, तो इसका तो ख़ैर कोई दुःख नहीं, लेकिन अगर इसे भी न पहचान सकोगी, तो मैं सचमुच ही तुमसे बहुत लड़ाई करूँगी! इतना कहकर वह मुस्कराने लगी।

इस प्रकार की मुस्कराहट देखकर भी बिजली के मुँह से कोई बात न निकल सकी। फिर ... सका अन्धकारपूर्ण आकाश धीरे-धीरे ...



होने लगा। उस अनिन्द्य-सुन्दर मातृ-मुख से हटकर उस ताज़े खिले हुए गुलाब के समान शिशु के मुख की ओर उसकी टकटकी लग गई। राधा-रानी निस्तब्ध हो रही। बिजली बहुत देर तक टक लगाकर उस बालक की ओर देखती रही, फिर सहसा उसने खड़े होकर दोनों हाथ पसारकर उस बालक को अपनी गोद में ले लिया और उसे ज़ोर से अपने कलेजे से लगाकर वह रो पड़ी। राधा-रानी ने पूछा—क्यों बहन, पहचान लिया?

"हाँ बहन, पहचान लिया।"

राधा-रानी ने कहा—बहन, तुमने समुद्र-मंथन करके उसमें से निकला हुआ विष तो स्वयं पी लिया और समस्त अमृत अपनी इस छोटी बहन को दे दिया। उन्होंने तुम्हें चाहा था, इसी लिए मैं उन्हें पा सकी हूँ।

सत्येन्द्र का एक छोटा-सा फ़ोटो अपने हाथ में लेकर बिजली टक लगाकर देख रही थी। उसने सिर उठाकर मुस्कराते हुए कहा—बहन, विष का विष ही तो अमृत है। पर मैं भी वंचित नहीं हुई हूँ। उस विष ने इस घोर पापिष्ठा को भी अमर कर दिया है।

राधा-रानी ने उसका इस बात का कोई उत्तर न देकर कहा—क्यों बहन, एक बार उनसे मुलाक़ात करोगी।

बिजली ने क्षण भर तक आँखें बन्द करके स्थिर होकर कहा--नहीं बहन। चार बरस पहले जिस दिन वे इस अस्पृश्या को पहचानकर और घृणा के मुँह फेरकर चले गये, उस दिन मैंने दर्प के साथ कहा था कि फिर मुलाक़ात होगी और तुम फिर आओगे। पर मेरा वह दर्प नहीं रहा, वे फिर नहीं आये। पर आज मेरी समझ में आ रहा है कि क्यों दर्पहारी भगवान् ने मेरा वह दर्प तोड़ दिया। बहन, वे तोड़कर किस प्रकार फिर से गढ़ देते हैं और छीनकर किस प्रकार लौटा देते हैं, इसे जितनी अच्छी तरह मैं जानती हूँ और कोई नहीं जानता। एक बार और आँचल से अच्छी तरह आँखें पोंछकर वह बोली—मैंने अत्यधिक हार्दिक कष्ट के कारण भगवान् को निर्दय निष्ठुर कहकर अनेक दोष दिये हैं; परन्तु अब मैं समझ रही हूँ कि इस पापिष्ठा पर उन्होंने कितनी दया की है। यदि वे मुझे उन्हें लौटा ला देते, तो मैं सब तरफ़ से मिट्टी हो जाती। उन्हें भी न पाती और ख़ुद को भी खो देती।

राधा-रानी का गला रोने से रुँध गया था, इसलिए वह कुछ भी न कह सकी। बिजली फिर कहने लगी—सोचा था कि यदि कभी मुलाक़ात होगी, तो उनके पैर पकड़कर फिर एक बार माफ़ी माँग देखूँगी। लेकिन अब इसकी कोई आवश्यकता नहीं रही। बहन, मुझे केवल यह चित्र दे दो। इससे अधिक मैं और कुछ नहीं चाहती। अगर चाहूँ भी, तो भगवान् को सहन न होगा—अच्छा, अब मैं जाती हूँ। यह कहकर बिजली खड़ी हो गई।

राधा-रानी ने भर्राये हुए स्वर से पूछा—अब फिर कब भेंट होगी बहन?

"नहीं, अब भेंट नहीं होगी बहन। मेरा एक छोटा-सा मकान है, उसे बेचकर जितनी जल्दी हो सकेगा, यहाँ से चली जाऊँगी। पर बहन, क्या एक बात बतला सकोगी? आख़िर इतने दिनों बाद उन्होंने क्यों मुझे एकाएक स्मरण किया? और जब उनका आदमी मुझे बुलाने गया, तब क्यों उसने एक झूठा नाम बतलाया?

मारे लज्जा के राधा-रानी का मुख लाल हो गया और वह सिर झुकाकर चुप रह गई।

बिजली ने कुछ देर तक सोचने के बाद कहा—

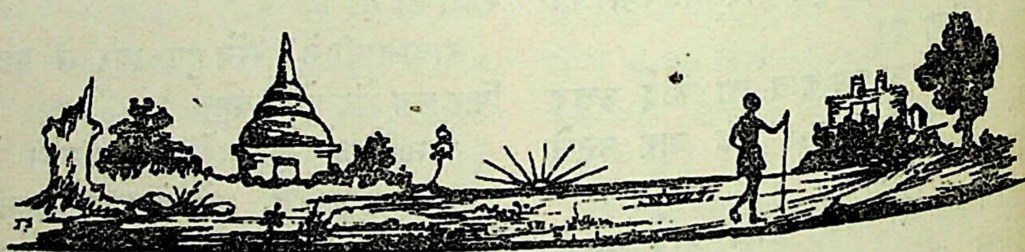


मैं समझ गई। मेरा अपमान करना चाहते थे, इसलिए? है न यही बात? इसके सिवा और तो कोई कारण नहीं मालूम होता कि क्यों उन्होंने इस प्रकार मुझे यहाँ बुलाने के लिए इतनी चेष्टा की।

राधा-रानी का सिर और भी नीचे झुक गया। बिजली ने हँसकर कहा—बहन, इसमें तुम्हारे लज्जित होने की कौन-सी बात है? लेकिन उनकी भी भूल है। उनके चरणों में मेरे शत कोटि प्रणाम जताकर कह देना कि यह बात होने की नहीं। अब अपना कहलाने लायक मेरे पास कुछ है ही नहीं, अपमान करेंगे, तो सारा अपमान स्वयं उन्हीं का होगा।

"अच्छा बहन, नमस्कार।"

"बहन नमस्कार। मैं अवस्था में तुमसे बहुत बड़ी हूँ, फिर भी तुम्हें आशीर्वाद देने का अधिकार मुझे नहीं है।—मैं काय-मन से ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ बहन, तुम्हारे हाथ की चूड़ियाँ अक्षय हों। जाती हूँ।"



धर्म की जीत*

श्रीयुत "हुसैनी"

रियासत लछमनपुर के तअल्लुक़ेदार ठाकुर धनपतिसिंह बहुत ही क्रोध में थे। कोठी भर में खलबली पड़ी थी। अन्दर रानी की तेउरियों पर भी बल था। मामा, दाइयाँ, मेहरियाँ, बाँदियाँ भी आँखें लाल-पीली कर रही थीं। बड़े फाटक के पहरेदार से लेकर ठाकुर साहब के सामने रहनेवाले नौकरों तक सब चुप थे। कुछ उनमें से ऐसे थे, जिनके मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं, कुछ ऐसे थे कि उनके चेहरे पर निर्दयता बरस रही थी। ख़ुद ठाकुर साहब आरामकुर्सी पर बैठे झूम रहे थे। सामने नंगी तलवार एक छोटी-सी मेज़ पर रक्खी थी, दाहनी ओर कुँअर साहब बैठे थे। चेहरा तमतमाया हुआ, आँखों में आँसू।

ठाकुर साहब ने होंठ चबाते हुए कहा—"मेरी ही प्रजा, वह भी चमार और उसकी मजाल कि तुम पर लाठी उठाए? तुमने सीधे बन्दूक़ उस पर क्यों न दाग़ दी!..... ख़ुद तो नामर्दी की और आये हो मुझसे शिकायत करने!...... ख़ून करके आये होते, मारके आये होते तो देखा जाता। पुरखों के समय से होता चला आया है, "जान जाए पर आन न जाए", आज कोई नई बात न थी, परन्तु किसी नीच, कमीने की गाली सुनकर धमकी सहकर तो न आये होते।"

फिर सामने खड़े हुए पियादों की ओर पलटकर बोले—"कौन गया उस पाजी चमार को पकड़ने कि अभी तक पलटा ही नहीं?"

वह हाथ बाँधकर बोला—"सरकार, सुखनराय और पाँच पियादे गये हैं, आता ही होगा!"

ठाकुर साहब ने तलवार उठाई, उसको उलट-पलटकर उसकी चमक देखते रहे। फिर बाएँ हाथ के अँगूठे से उसकी बाढ़ देखी, फिर उसे मेज़ पर रखकर उठ खड़े हुए। दालान में टहलने लगे, बिल्कुल इस अन्दाज़ से टहलते थे, जैसे कटहरे में बन्द सिंह। हर शख़्स को यक़ीन था कि आज चमार की ख़ैर नहीं, देखते ही गर्दन उड़ा देंगे। थी भी बात ग़ुस्से की। कुँअर साहब शिकार खेलने जाएँ, ज़ख़्मी शिकार उसकी झोपड़ी में घुस जाय और वह कुँअर साहब को न अन्दर घुसने दे और न फ़ैर करने दे, बल्कि लाठी लेकर

---

* उर्दू की यह कहानी उसी ज़बान में लिखी गई है, जो बनारस कमिश्नरी के चमार, पासी और दूसरी "अछूत" जाति के लोग बोलते हैं।



मारने और मरने के लिए तैयार हो जाय। आज तक ऐसी सरकशी देखी न सुनी। जिस हाँडी में खाय उसी में छेद करे, जिस डाल पर बैठे उसी को काटे। ठाकुर साहब टहल ही रहे थे कि एक बूढ़ चमार को पियादे खैंचते हुए लाये। आँखें धँसी हुई, पिचखा गाल, गले में एक कंठा, जिस्म पर एक फटा-सा कुर्त्ता, और टाँगों में एक छोटी-सी मैली धोती।

राजा साहब ने देखते ही गरजकर पूछा—"क्यों जी, इसी नीच ने आज कुँअर पर लाठी उठाई थी?"

पियादों ने कहा—"हाँ हुजूर, यही था।"

राजा साहब ने उसी तरह चमार से पूछा "क्यों बे, तेरी यह मजाल कि कुँअर पर लाठी उठाई? बोलता क्यों नहीं..........बोल!"

उसने धीमी मगर निडर आवाज में कहा—"हाँ हजूर, हजूर माई-बाप हन। हम झूँठ तनिको ना कहब। ई साँच बाए कि हम कुँअर साहब के मारे का लाठी उठौली, प्रन्तू जरा सरकार हमरौ बतिया सुन लेईं, हम आपन झोंपड़िया माँ बइठल रहलीं, ई हे कोउ चार घड़ी दिन चढ़ल रहल, बैलन का लेहना बाल के हम ऊहे छुट्टी पौउले रहलीं, हम सोचलीं तनिक और सूरूज देवता लटक आवें तो नाँदन माँ जल देके उनहुन्का खूँटा पर बाँध देईं, ई सोंच के हम सरकार चिलम भरलीं अउर नरियल ताजा कइके वइसै मुँह से लगउले रहलीं कि पच्छूँ ओर से सोर उठल। अइसन जान पड़ल कि जइसन कतहूँ लड़ाई होत हौ। धाएँ-धाएँ, तड़-तड़, ऊहे जात बा, ऊहे जातबा। हजूर हम नरियल हाथ माँ लीहे ठाढ़ हो गइलीं, हजूर अब हमार ईऊ सिन ना रहल कि हम लड़ाई झगड़ा माँ पड़ीं, बूढ़ भै गइलीं, अब सरकार मास हाड़ छोड़ देहलस, बेटा बेटी पतोह स्त्री सबका एही हाथन मघट पहुँचा चुकल, अब हमका का हौ, जेह के कारन हम अब परान देईं। फिर सरीर माँ जान नाहीं, तो सरकार हम सोर सुन कै खाट छोड़ के ठाढ़ हो गइलीं अउर नीरयल कोना से लगा के ओसारा से आगे चढ़लीं कि दरोज्जा के नगीच से देखीं कि अखिर बात का हौ। हजूर जानत बाटीं की जब हमार "खिलौना" जीअत रहल तो ऊ हमार झोंपड़िया के चारों और पोरसा भर दिवाल बना देहले रहल। ऊ दिवाल माँ एगो चाँचर का फाटक भी हौ ऊ चँचरा ओ घड़ी खुलल रहल, हम जैसै दरवजा के पास पहुँचलीं एगो हरिना हजूर हमार अँगनवां में घुस आइल। हजूर ई हम ना जनती की काहे परन्तू सरकार हम आगूँ बढ़ के चाँचर बन्द कै के एहर से जन्जीर लगा देहलीं। हरिना हजूर भाग के हमार ओसरवा माँ चढ़ गइल, ओसरवा हजूर ढेर ऊँच ना हौ, बस इहे कोउ हाथभर ऊँच बाटे परन्तू हजूर ऊ उहके ऊपर चढ़े माँ दूइ दफे तबे गिर पड़ल। अउर हजूर अस काँपत रहल जस केहू जड़य्या माँ काँपे। जब ऊ कोना में ठाढ़ होइ गयल तौ हजूर हम देखली कि हजूर ओहकी अँखिया से बिल्कुल ओही परकार आँसू बहत रहल जइसन केहू बालक की नैनन से। जब हजूर हम खिलउना के मारत रहलीं तौ ऊ अइसन पड़े कि अइसन रोअत रहल की हम का जान पड़े कि हमहूँ का रोवे के चाही, और हजूर हम सदा खिलउना का साथ-साथ ओहका माई का फटकार खाके भाग जात रहली। तौ हजूर ऊ हरिना दुलकत माँ ठाढ़ काँपत रहल अउर ओहकी काजर लगी अँखिया से टपर-टपर आँस गिरत रहल ओकरे सथवें हम देखलीं कि हजूर उकरे पुट्ठा से खून बहत रहल, हजूर मोसे अब खून ना देखा जात। जब से हजूर बड़े सरकार का समै माँ हम हन से अउर खजूरपुरावालन से लाठी चलल अउर हमार बड़ भाई गरीबे ओहे माँ मारा गइल, हजूर हमसे खून ना देखल जात। हम ऊ



हरिना का खून देखतै सरकार दिवाना हो गइलीं। हजूर हमार वोटी-बोटी काँपे लगल, हजूर हरिना गऊ समान सीधा बा, हजूर हमार ओसारा माँ मानौ गऊ का लोहू टपकत रहल। अबहिन हम दलान की ओर बढ़ले रहलीं कि हजूर कुँअर साहब, मुन्सीजी अउर सब लोग पहुँच गइलन, हजूर माई-बाप वाँटी, हजूर के पुरखन का हम चमार बसावल हईं—परन्तू साँच का आँच नाहीं हजूर। कुँवर साहब ओह घड़ी सरकार का पुत्र ना रहलन, हजूर उनकर चेहरा कसाई माने रहल। हजूर ऊ हत्या कइले रहलन। हजूर उनकर हृदय कठोर रहल, उनकर नैनन माँ तनिको दया ना रहल, हजूर ओह घड़ी उनकर अँखिया बिलाई समान चमकत रहल, अउर सरकार उनकर साथ जितना मनई रहलन, सब हमका हजूर हुँड़ाल मालूम होत रहलन, हजूर हम उन लोगन के देखते दुआरी पर ठाढ़ हो गइलीं, ई हरिना के हमार ओसारा माँ आवत देख लेहले रहलाँ। कुँवर साहब हमसे चाँचर खोले का कहलाँ मुदा हजूर हम कइसे खोलतीं ? हजूर ऊ हरिना ना रहल गऊ माता रहलीं, हरिना अइसन जान पड़ल कि ई सब समझत रहल। काहे की ऊ जब कुँअर साहब के अउर उनके सिकारियन के देखलस तौ न हजूर ऊ भागल न उचकल बल्कन हजूर जहाँ ठाढ़ रहल ऊहें ऊ बईठ गयल अउर हजूर ऊ अइसन दाँत चिआर के कराहे लागल जस हजूर कोऊ मेहरिया रोवे। हम हजूर कुँअर साहब से हाथन जोड़ के कहलीं कि रउराँ ओहका जाए देइँ, हमार घर माँ ना मारीं, मुदा हजूर कुँअर साहब हमार चाँचर अइसन जोर से हिलउलाँ, जानो बतास आएल हौ अउर सगरौ उखाड़ कै फेंक देहैं, ऊ कहेन या तो खोल दे या ओहका बाहर निकाल दे। अब जरा सरकार एहका देखीं कि हरिना हमार ओसारा माँ बा, बइठल बा, कराहत बा, रोवत बा, हे राम लोहू-लोहान बा अउर ई हमसे कहत बाटाँ ओह का बाहर हँकादे। हजूर हम परजा सही, आपका बसावल सही, परन्तू हजूर हम मनई हयन, बूढ़ भयन, अब हमसे खून ना देखल जात, हमसे अब कठोरपना ना सहल जात, हम हजूर एही कारन ना चाँचर खोललीं न ओहका बाहर हँकौलीं। बस हजूर इहै बात हमका याद बा, ओकरे बाद का भयल ई कुँअर साहब जानें, हमरे ऊपर हजूर भूत सवार हो गयल, हम ई भूल गइलीं की हजूर हम बूढ़ भइलाँ, हम अकेल हँईं, हम परजा हँईं, हम इतना जानत रहलाँ कि हम मनई हँईं अउर हमसे एक जनावर दया चाहत हौ, फरयाद करत हौ, हमार सरन माँगत हौ। हम हजूर कुँअर साहब पर लाठी उठउलीं जरूर, पर हजूर हमरी आँख माँ ऊ ओ घड़ी कसाई रहलन, भेड़िया रहलन, गिद्ध रहलन, अउर हजूर ऊ हरिना ना रहल हमार बेटा रहल, हमार मेहरिया रहल, हमार पाहुन रहल!

हजूर माई बाप हएन जो चाहें सजा दें, हम बूढ़ भइलीं, थोड़ दिन अउर जिए का हौ बुरी भली कट जाई।"

ठाकुर साहब ने कुँअर की तरफ़ देखा और चुपके से कहा—"अहिंसा परमो धर्मः!"

वह आँखों में आँसू भरे उठे, और बूढ़े किसान की ओर झुक गये।

कुँअर ने कहा—"बाबा क्षमा करो, मैं अब शिकार न खेलूँगा।"



वह देवी है !❀

अनुवादक—य-वेंकटेश्वर राव 'अरविन्द'

(१)

"अम्मा—अम्मा"—एक तरुणी के मुख से प्रसव की प्रथम वेदना की आहें निकलीं।

"क्या है बेटी……तुम्हारी माता मरी" डबडबाई आँखों से प्रेममूर्ति माता सरला के मुख पर हाथ फेरने लगी।

"…………"

"कहो बेटी ! आँखें खोलकर देखो" कह कर माता ने अपने प्यारभरे मुखड़े को बेटी के मुँह के पास रक्खा। उस युवती के कोमल अधरों पर लज्जा की नीरस रेखा……

"मेरी आँखों की बात मत कहो। वे तो मेरे प्रभु की सर्वस्व हैं।"

आँखों में मंद हास भर आया।

माता का हृदय विदीर्ण हो गया। गद्गद और अस्पष्ट स्वर से कहा—"वह तेरा प्रभु नहीं, भयंकर यम है।" अन्तिम बात सरला के कानों में शूली की नाईं आ चुभी। आँखों में आँसू छलछला आये।

"मा ! ऐसी बात मत कहो। वह मेरे प्रभु हैं। मेरा और उनका जीवन एक सूत्र में गुँथा हुआ है। मेरे रक्त से प्रभु का रक्त मिलकर एक हो गया। वे ही मेरे देव और प्रभु हैं।" (फिर बाधा—कराह—नयनों में अश्रु)।

"सरला, मेरी बेटी ! डाक्टर के आने का समय हुआ। भाई, बुलाने गया है। रोओ नहीं बेटी ! मेरा हृदय टूक-टूक हो रहा है।"

"भाई……भाई……मुझे क्षमा करनेवाले उदार मूर्ति। उसकी भलाई के लिए भगवान् से प्रार्थना करूँगी। मा ! वह देवतुल्य है……देवतुल्य……।

"सरला !……"

"मा ! ……मा ! ……" किसी चाह से भरी दृष्टि।

"कहो बेटी ! कहो, कहो ; कुछ डर नहीं ; कहो।"

"मा ! मेरे लाल को……" आँखें अश्रु-पूरित हो जाती हैं। माता का दिल पानी-पानी हो जाता है।

"नहीं, बेटी ! तुम्हारा बच्चा तुम्हारे कोमल वक्ष पर खेलेगा। तुमसे शैशव क्रीड़ा करेगा। गोद में बैठकर अमृत-पान करेगा।"

"मा ! भैया……?"

"भैया भी वही चाहता है बेटी ! आशीर्वाद देता है। नहीं तो—उतनी दूर से यहाँ पर क्यों आते बेटी !"

सरला के मुख पर एक तरह की तृप्ति और मातृज्योति चमक उठी। इतने में दरवाज़े खटखटाने की आवाज़ हुई। सफ़ेद पोशाक में

❀ मूल-लेखक—श्रीवाड्रेव चलपतिराव



"सिस्टर"—पीछे, मेम साहबा और सीतापति।

(२)

"बाबू, आप बाहर जाइए" सिस्टर ने सीतापति से कहा।

"ये भी जायँ, तो 'बेटर'; क्योंकि 'रिलेटिव्स' का पास रहना अच्छा नहीं।" मेम साहबा ने सरला की माता कामेश्वरी की ओर इशारा करते हुए सिस्टर से कहा।

अपनी दुलारी बेटी के पास से दूर हट जाने की आशंका से माता सिहर उठी। पर अस्पताल की आज्ञा।

सरला के कमरे से दूर, एक महल के बरामदे में दो दैन्य मूर्ति। बाहरी आँखें मुँद गईं। उनको सरला हृदय की आँखों में दिखाई पड़ने लगी। आधे घंटे तक दोनों मौन से रहे। इसके बाद कामेश्वरी की गरम उसास ने उस मौन मुद्रा को भंग किया—

"बेटा! समझ नहीं सकी, उस दुरात्मा का काम...."

"...........,"

"मैंने समझा कि वह तुम्हारे लिए आ रहा है; किन्तु स्वप्न में भी नहीं सोचा कि इतना दारुण कांड हो रहा है!"

सीतापति का हृदय द्रवीभूत हो गया। दोनों हाथों से मुँह पर के बाल हटाते हुए—

"मा! मैं क्या कर सकता? मैं जानता हूँ कि इस छोटी-सी उम्र में ही सरला अभागिनी हो गई। उसने कहा—सीतापति! अगर तुम राज़ी हो तो सरला के साथ शादी करूँगा।" सरला की स्वीकृति पर ही मैं राज़ी हो गया.... मगर...."

"बेटी!...." वह बोल नहीं सकी। अभागिनी माँ के दग्ध हृदय के लिए की हुई सहायता के उपलक्ष में उस मातृदेवी ने अनेक आशीर्वाद दिये। सीतापति के अंतराल में लहर उठी—"मा! वह तेजोराशि है। उसके हृदय में सरला के प्रति अथाह प्रेम—गौरव........। परन्तु....दुनिया.... हाँ, दुनिया से वह दब गया। वह ख़ुद अपने आपमें दग्ध हो गया—होता जा रहा है—दैव घटना—"

"बेटा! जब तुमको मालूम हुआ........" माता रो पड़ी।

"माँ! मेरे भी हृदय है। सरला और मैं एक ही रक्त के बने हैं। एक ही छाती का अमृत पिया है। उसकी ख़ुशी मेरी ख़ुशी, और उसकी उदासी मेरा सर्वनाश है—पर—सीतापति अपने को रोक नहीं सका।"

बग़ल में से मुसकराती हुई "सिस्टर" आ खड़ी हुई।

"क्या हुआ बहन?....क्या हुआ?" माता झट खड़ी हो गई।

"बालरवि है, बालरवि—तेजोराशि है। नहलाकर लिटाया है। आइए, शिशु को देखें—उसका बाल-रुदन सुनें—।"

मा और बेटा फूले न समाये। भगवान् ने उनकी टेर सुनी। उनके मुँह से 'सिस्टर' के लिए अनायास ही आशीर्वाद की ध्वनि निकल आई।

(३)

एक महीना बीत गया। झूले में बालक का रुदन-गान, उस गान के साथ स्वर मिलानेवाली सरला की लोरी। अंचल से कसे हुए कटिस्थल, बिखरकर छितराई लट, आँखों में काजल, क्षीण देह—उस रुचिरमुख चन्द्रमंडल से छिटक पड़नेवाली मधुर हास-चन्द्रिकाओं से कमरा दीप्तिमान् हो रहा था। 'फ़लालैन' में लिपटा हुआ कोमल गोरा शिशु अपने दन्तहीन मुख से सर्वज्ञता का प्रदर्शन कर रहा था। आज सरला माता हो गई। उसके लिए वही सर्वस्व है।

"बहन!........"

"भैया!—...." बालशिशु के गुलाबी गालों

पर लाड़ बरसानेवाले मधुर आनन ने कृतज्ञता का रूप धारण कर लिया।

"बहन! अब तक मैंने तुमको अनंत लाड़-प्यार से अपने हृदय में रक्खा—माता, वह भी मातृ-प्रेम से दुनिया की आँखों से तुमको छिपाती आई; पर—भविष्य—दुनिया—" सीतापति आगे कुछ बोल नहीं सका।

सरला ने परिवर्तित मुद्रा से कहा—"भैया! तुम लोगों के ऋण से मैं उऋण नहीं हो सकती।" उसके मन में इसी की आवृत्ति होने लगी।

"हाँ, सच है, भैया देवता हैं, माता देवी है। मैं महापापिनी हूँ। मेरे पापों का अंत नहीं।"

"बहन! और कितने दिन रहें? घर भी तो जाना चाहिए?...."

"............"

"अगर यहाँ पर कोई नौकरी मिल जाय, तो यहीं पर रह जायँ।"

इतने में मदर (नर्स) आकर—

"बाईजी! ये तुम्हारे कौन लगते हैं?"

"भाई"

"तुम्हारे पति न आये?....क्योंजी! उनको नहीं बुला भेजा?"

"ख़बर तो भेजी; लेकिन वे अभी तक नहीं आये। कल-परसों आ जायँगे" सिर नीचा किये कंपित हृदय से सीतापति ने जवाब दिया और वहाँ से चल दिया।

"बाईजी! तुम्हारे पति क्या करते हैं?" बालक को पास लेकर चूमती हुई 'मदर' ने पूछा।

"मदर........?"

बच्चे से खेलती हुई 'मदर' ने एकाएक सिर उठाकर सरला के मुँह पर प्रश्नात्मक दृष्टि डाली।

"मुझे अस्पताल में नर्स की नौकरी मिल सकेगी?"—कहा सरला ने—पैर के नख को ज़मीन पर घिसते हुए। 'मदर' चकित हो गई।

"क्यों बेटी! नौकरी करोगी? तुम्हारे वे मानेंगे?"

"हाँ, मानेंगे क्यों नहीं? जनता की सेवा—उसमें भी दीन-दुखियों की; वे ख़ुशी से मान जायँगे।"

"लेडी-डाक्टर से बात-चीत करूँगी; हाँ, लेकिन—पहले वेतन ज़्यादा नहीं मिलेगा।"

"मेरी और मेरे बच्चे की गुज़र तो हो सकेगी!"

"गुज़र? और तुम्हारे पति?"

"उनकी कमाई पर क्यों निर्भर रहूँ?"

"अच्छी बात है, पूछकर शाम को बताऊँगी।"

चार महीने बीत गये। सरला ने 'नर्स' का काम करना अच्छी तरह सीख लिया। सीतापति भी मुन्सिफ़ कोर्ट में ६० रुपया महीना कमाने लगा। 'नर्सों के वार्ड' में अपने दुलारे नाती के साथ खेलती हुई कामेश्वरी अत्यंत आनंद के साथ दिन बिताने लगी।

(४)

चार बार बरसात, गर्मी, जाड़ा आये और गये। लड़का भी माता के साथ कभी-कभी अस्पताल आया-जाया करता है। उस बच्चे की तुतली बातें रोगियों के लिए अमृत-धारावत् और उसकी नव मुसकुराहट शुभ्र चन्द्रिका सदृश है! सरला आर्तजनों के लिए आनन्दमूर्ति है। बीमारी उसके पैरों की आहट से ही भाग जाती है। उसकी मातृ-वत्सलता पर रोगी और प्रति-कारीगण आश्चर्यचकित हो जाते हैं। सफ़ेद ड्रेस में छिपा, सौंदर्य को विकीर्ण करनेवाला शरीर, उस कनक वर्ण बदन के ऊपर थिरकनेवाली हास-द्युति और शुभ्र चाँदनी-सा धवल रूमाल सिर पर बाँधे आती हुई 'सिस्टर सरला' मानों स्वर्ग की परियों की याद दिलाती है। कड़वी दवा—शीशी में से औन्स-ग्लास में डालकर जब वह पिलाती है तो रोगी अत्यन्त ममता के साथ अमृत की तरह 'घट-घट' पी जाते हैं। सरला उस अस्पताल में एक देवीस्वरूपिणी आदर्श-ज्योति हो गई है।

एक दिन शाम के पाँच बज रहे थे। मेडिकल वार्ड के द्वार पर एक गाड़ी आ रुकी। हाल में



कमला मरीज़ों की देख-रेख कर रही थी। अपनी ड्यूटी के अनुसार वह झट गाड़ी के पास आई। गाड़ी में एक मरीज़। बग़ल में एक वृद्ध दंपति। उस दंपति ने सरला को प्रणाम किया।

सरला ने 'Ward Boys' को बुलाया और रोगी को नीचे उतरवाया। जीवन की रेखा आँखों में कहीं झिलमिला रही थी। शरीर सूख गया था—कृशित और धँसे हुए सिकुड़नवाले शरीर से रोगी घबरा रहा था।

रोगी खाटपर सुला दिया गया, सामने दैन्य-मूर्ति माता-पिता खड़े रहे। एक क्षण में फिर सरला सर्जन को साथ लिये आई। सर्जन ने इंजेक्शन दिया, रोगी को मीठी नींद लगी। सर्जन और सरला चले गये।

दस मिनिट में सरला आई।

"बाबूजी! कोई डर नहीं। मैं अभी डाक्टर से पूछ आती हूँ। यह इंजेक्शन देह की पीड़ा हरकर सुख-निद्रा देगा। फिर एक घंटे में आकर देखेंगे" वृद्ध दंपति को आश्वासन देती हुई सरला बोली।

रोगी की माता—"अम्मा, चार वर्ष से लड़के की यह हालत है। कितनी ही दवाएँ और कितने ही वैद्य बदले। न-जानें—भाग्य में क्या बदा है? इकलौता बेटा है।"

"कोई परवा नहीं, मैं चौबीस घंटे साथ रह-कर इनकी देख-रेख करूँगी।"

"क्या मालूम माईजी! भगवान् ने आप लोगों का सहारा धरा दिया है।"

बग़ल के रोगी—

"मौसीजी! वह माता रोगियों के लिए संजीवनमूर्ति है। उस माता के नाम से ही सब बीमारियाँ छू-मन्तर हो जाती हैं।"

मरीज़ ने ज़रा करवट बदली।

"क्या चाहिए?" सरला नज़दीक जा देह पर हाथ रखकर बोली।

"प्यास"—मरीज़ ने कृशित हाथ से संकेत किया। चमचे से गले में पानी डाला—पीकर फिर रोगी सो रहा। दूसरे दिन सवेरे सरला ने प्राइवेट रूम में उसके लिए अलग प्रबंध करवाया। कैसा हृदय है उसका?—बूढ़े निहाल हो गये। रोगी का मनोभार कम होने लगा। रोगी की टहल करती हुई सरला सदा बग़ल में रहती। इस प्रकार एक महीना बीत गया।

(५)

एक दिन दोपहर में—

"सिस्टर!"

"मेरा नाम सरला है, मुझे उसी नाम से पुकारिए।"

रोगी ने आँखें मींच लीं। अंत में उसाँस छोड़ता हुआ—"मैं वैसा नहीं पुकारूँगा, सिस्टर ही कहूँगा।"

"क्यों? वह नाम लेने में कुछ दोष है?"

"वह नाम?, मेरी हृत्तंत्री को हिलाने लगता है,—असमर्थ हूँ। सह नहीं सकता।"

"..........."

"आपकी तन्दुरुस्ती अच्छी रहती है न?"

"आँ—अच्छी ही है; परन्तु कभी-कभी पैर टटाता रहता है।"

"सिस्टर सरला! यह ऊधमी बच्चा बड़ी रार मचाता है। कहाँ हो? छुट्टी में रहकर भी रोगियों की देख-रेख में जान खपाना क्या जी?"—कहती हुई बग़ल के बरामदे में से, और एक सिस्टर बाबू को—छोटे लड़के को—सरला के सामने ले आई। छोटा-सा पैंट, सुन्दर कोट, पैरों में बूट;—सिर पर हैट उम्र से बढ़ी-चढ़ी बुद्धि—उत्साह, उदासी में आनन्द भरनेवाला सरल सहज सौंदर्य से पूर्ण मुख।

"बाबू! मेरी तरह डाक्टर का काम करोगे?" माता ने पुचकारते हुए बेटे से पूछा।

"मेले कान में लबल कहाँ है?"

"वह नहीं, इधर आओ"—रोगी की खाट



के पास ले जाकर—"देखो ! तुमको पहले अपने छोटे हाथों से इनके पाँव पलोटना होगा।"

बाबू झटपट तैयार हो गया।

"सिस्टर ! लड़के के कोमल हाथ दर्द करने लगेंगे। मेरे कठिन पाँव दबवाओगी ?"

"मैं डाकतर हूँ।"

आज रोगी के उन शुष्क नीरस अधरों पर वर्षों पहले की लुप्त हुई मुसकराहट पुनः चमक उठी।

"यह पाँचवाँ बरस बीत रहा है" रोगी ने धीरे-धीरे मन में कहा।

वह कुछ नहीं बोली—उसकी दृष्टि निमीलित हो गई।

इतने में मदर आई।

"प्रभाकर ! कैसा है !"

"मदर ! तुम्हारे ऋण से उऋण नहीं हो सकता। मैं अपने ख़ून से इस सिस्टर के पैर धुला दूँ, तब भी मेरा क़र्ज़ अदा नहीं होगा। देखिए —यह दुधमुँहा बाबू डाक्टर बनकर कहता है कि मैं आपकी परीक्षा करता हूँ। मेरे पैर दबा रहा है। मैं तुम लोगों को क्या दे सकता हूँ— इस छोटे बाबू को क्या दे सका ?—मदर ! मैं अभागा हूँ........"

"सिस्टर सरला ! ...." मदर ने कहा प्रभाकर ने विकल और अकुलाते हुए नेत्रों से सिर उठाकर देखा........

"नहीं....हाँ....सिस्टर का नाम....सरला।"

"क्या कहते हैं ?...." कुर्सी पास खींचकर बैठते हुए मदर ने पूछा।

"उनका नाम सिस्टर है न ? वही कह रहा हूँ।"

सरला की आँखें जलपूर्ण हो गईं। मदर की नज़र सहसा उन दोनों के मुख पर पड़ीं। सरला रोगी के चरणों पर गिरी और चूमने लगी। रोगी हक्काबक्का-सा होकर—

"आँ—आँ—आँ" यह क्या ?

उठ नहीं सका। आवेग के साथ हाँफता हुआ गद्दे पर जा गिरा। मदर घबराहट के साथ—"सरला ! यह क्या करती हो ?" कह उठी। भोला-भाला लड़का चकित दृष्टि से सबके मुख की ओर निहारने लगा।

"मदर ! ये मेरे देवता हैं—देवता।"

"सरला—सरला—मैं—परम नीच हूँ।"

मदर सरला को दूर ले गई। उस दिन सरला रोगी के पास सरला फिर नहीं आई। लड़का बहुत देर तक रोगी के बिछौने पर सोता रहा।

(६)

शाम के छः बजे हैं।

सीतापति प्रभाकर के कमरे में आया। लड़का कुरसी पर बैठा, अपने छोटे-छोटे पैर हिलाते हुए प्रभाकर से कुछ वाद-विवाद कर रहा था।

"ब्रदर !...." सीतापति।

"..........."

"कुशल से हो ?"

प्रभाकर सिर उठा नहीं सका।

"ब्रदर ! मैं तुम्हारा मित्र सीतापति हूँ।"

"हाँ, मैं तो परम नीच हूँ। मुझे क्षमा करो। मेरे पाप ने मुझे खा लिया। सरला, भोलीभाली सरला, उसे अपवित्र किया। भैया ! मैंने उस प्रेम-मूर्ति पर विनिर्मल हृदय से प्यार किया। पर हाय ! माता-पिता की कठोर आज्ञा ने पवित्र पुनीत प्रेम पर विजय पा ली। सरला को अपार सागर में छोड़, मैं निर्दय चला आया। पर दूसरे ही महीने में खाट की शरण लेनी पड़ी। अभी तक भुगतना पड़ रहा है। आज ही उससे कुछ सका हूँ। अब—आख़िरी बार आँखें बंद भी कर लूँ, तब भी मेरा जीवन धन्य हो जायगा। क्या तुम मुझे क्षमा कर सकते हो ?" बोलते-बोलते प्रभाकर की आँखों से अविरल अश्रु-धारा बह चली। हिचकियाँ बँध गईं।

"प्रभा ! क्यों रो रहे हो ? वह मेरी बहन है। हम दोनों का उद्गम-स्थान एक है और एक ही

रुधिर से हम बने हैं। तुम्हारे सद्गुण और उसके प्रभाव को देख और पहचानकर ही तुम्हारे आनंद का विघ्न नहीं बना। मैं तुम्हारी निंदा नहीं करूँगा। तुमने—अपने जन्म के कारणभूत माता-पिता की आज्ञा का पालन किया। उनका गौरव रखने के लिए अपने सुखों का बलिदान किया। हृदय है, जानता हूँ—पहचानता हूँ। मेरी माता ने सरला को जन्म दिया। सरला का आनंद ही मेरी माता की तृप्ति का कारण होगा और उनकी तृप्ति मेरे लिए गौरवास्पद होगी। इसी से मैंने उसे कभी नहीं चिताया। "विधि का लिखा को मेटन हारा" वह अपना कर्म-फल भोगती आई है। वैसा भी नहीं कहूँगा—वह ख़ुश नसीब है—उसने माता का स्थान पा लिया। अभागिनी रहकर उसे सुखों से वंचित रखता, तो आज वह यह पवित्र मातृस्थान कहाँ से पाती?—सबों ने कहा कि वह विधुरा है, उसका जीवन इस जन्म में ऐसे ही अंतरित हो जायगा। देखा? वह धारा उसी दिशा में नहीं रुकी—और एक उपधारा की सृष्टि हो गई—फिर भी........"

पार्वती परमेश्वर की तरह मुस्कराते हुए प्रभाकर के माता-पिता आ गये। सीतापति ने नमस्कार किया। उन दोनों ने उसे निर्मल चित्त से आशीर्वाद दिया। इसके बाद थोड़ी देर निस्तब्धता छा गई।

सरला अपना सहज शृंगार किये आई। छोटा लड़का जल्दी-जल्दी खाट से उतरकर माता के पैरों में लिपट गया। बूढ़े दंपति ने आशीर्वाद दिया—सरला सिर झुकाकर खड़ी हो गई।

"पिताजी! इस ज्योति को पहचानते हो?" आनंद से परिप्लावित कंठ से पिता ने 'नहीं' के संकेत से सिर हिलाया—माता अप्रतिभ होकर सोचने लगी।

"पिताजी!....सरला ने—पिता—जी....मुझे प्राण-दान दिया—पिताजी।"

उस वृद्ध दम्पति ने इतने दिनों से सरला की सेवा-सुश्रूषा आँखों देखी थी। विना किसी को श्रम दिये, रात-दिन की उसकी सेवा पर उन दोनों ने अपने हृदय में कई बार आशीर्वाद दिये; किंतु उस समय इसकी उन्हें ख़बर न थी कि वही महापतिव्रता सरला है। यह रहस्य आज खुल गया।

"पिताजी! देखिए, इस लड़के को!" प्रभाकर की आनंदोद्रेक से भरी वाणी ने पिता का सिर नीचा कर दिया—माता अचेत-सी हो गई। आज भी उनकी संकीर्ण धर्मभीरुता नहीं छूटी। जनता की झूठी प्रशंसा के लिए लालायित रहनेवाली उनकी आँखें सत्यता की इस स्पष्ट ज्योति से चौंधियाँ गईं। सिकुड़नों से भरे उनके मुँह पर जिस आनंद का स्वर्गिक सुख प्रदीप्त हो रहा था, क्षण में उसके ऊपर कालिमा पुत गई—आनंद की रेखा विलीन हो गई। प्रभाकर दीन भाव से देख रहा था....। सरला झट से अपने लाल को गोद में लिये चली गई। सीतापति सिर झुकाकर बाहर चला गया। प्रभाकर म्लान मुख से तकिये पर पड़ा रहा।

एक सप्ताह बीत गया। सरला फिर कहीं प्रभाकर को नहीं दीखी।

× × ×

एक दिन सर्जन ने आकर कहा कि अब तुम लोग अस्पताल छोड़कर घर जा सकते हो। प्रभाकर अपने कमरे में—कुर्सी पर बैठे कुछ सोच रहा था—मन किसी दीर्घ चिंता में निमग्न था। इतने में लड़का—दौड़ता हुआ आया और........

"बाबूजी!"

प्रभाकर अपने को रोक नहीं सका; चट से उठकर बच्चे को गोद में उठा लिया।

"मा—ऊँ—आपको—यह चिट्ठी।"

बच्चे को गोद में लिये ही—दाहने हाथ से पत्र खोलकर, हृदय की धड़कन को रोकते हुए पढ़ने लगा।



"प्रभो !

भवदीय पवित्र चरणों में सरला की विनीत प्रार्थना। आप मेरे दैव हैं। आपका कुशल-क्षेम ही मेरे लिए शरण्य है। मेरे भावी जीवन के अंधकार के नाशन-हेतु आपने इस लाल को—इस प्रातरवि को मुझे दान दिया। आज मेरी और कोई कामना नहीं रही; अपने इस लाल के लिए इस भाररूप जीवन को वहन करूँगी। मेरे जीवन के प्रथम प्रभात में ही दुर्दिन की घटा छा गई थी; पर आपकी प्रेम-रश्मियों ने उसे हर लिया। इन भौतिक नयनों से दूर होते हुए भी आप मेरे मनोनयनों के नज़दीक हैं। प्रभो ! यह हृदय आपका है। सुना है कि आज इस अस्पताल से चले जानेवाले हैं; इसलिए अंतिम प्रार्थना भेज रही हूँ। ग़लतियाँ माफ़ करें। यह शेष जीवन, जनता की सेवा में—दीन-दुखियों के सुधार में बिता दूँगी। भगवान् करे, आपको मेरे लिए अधिक दुख झेलना न पड़े। प्रभो ! विदा—

आपकी चरणसेविका
सरला"

पत्र ने प्रभाकर को विक्षिप्त कर दिया। उसकी आँखों के सामने पूर्वस्मृतियाँ एक-एक करके बिजली की तरह कौंध गईं। वह पागल की तरह चिल्लाता हुआ—"अहा ! वह देवी है—देवी......" ज़मीन पर गिर पड़ा और मूर्छित हो गया।

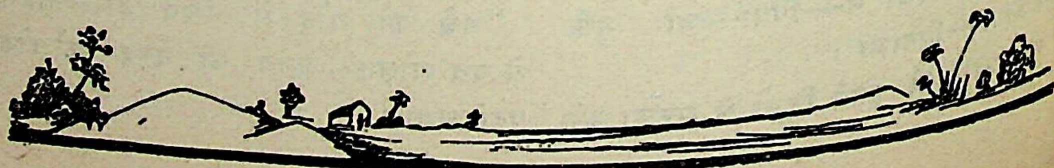
बच्चा हक्का-बक्का-सा होकर पिता की ओर निहारता रह गया।



मज़दूर से

सैयद क़ासिमअली साहित्यालंकार

तेरी मिहनत पर अमीरों की इमारत का मदार। तेरे दम से चल रहा है कुल जहाँ का कारोबार॥
फिर भी है हालत बुरी दुनिया में तेरी फ़ाक़ेमस्त। सारी दुनिया को खिलाकर भी तू ख़ुद है तंगदस्त॥
तेरे बच्चे खाते फिरते ठोकरें हैं दर-बदर। है किसी को भी नहीं दुनिया में तेरी कुछ फ़िकर॥
क्यों नहीं है ध्यान तुझको अपनी हालत का ज़रा। क्यों नहीं है गर्व तुझमें अपनी इज़्ज़त का ज़रा॥
काँप रहा है दिल तेरा अब ज़ुल्म से बेदाद से। मर रहा मज़दूर क्यों तू भूख से फ़रियाद से॥
होश में आ, उठ ! बदल दे गर्दिशे तक़दीर को। संगठन की शक्ति से झट तोड़ दे ज़ंजीर को॥



चन्द्रग्रहण*

अनुवादक—श्रीरामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर, बी० एस्-सी०

"कल दादी आवेगी। शालिनी, कल अपनी दादी आवेगी!" हाथ में का तार का पीला काग़ज़ झंडे की तरह फहराते हुए कमलाकर चिल्ला उठा। मानों वह विजयवार्ता लेकर आनेवाला सैनिक ही था। शालिनी के पास भी झंडा था, पर उसको फहराने का उसे साहस न होता था। भैया का काग़ज़ पीला था, उसका था सफ़ेद; भैया के काग़ज़ पर अँगरेज़ी अक्षर लिखे थे, उसका काग़ज़ था कोरा। चन्दर इस काग़ज़ की नाव बना-देगा, वह नाव मैं हौज में छोड़ूँगी—लेकिन दादी—ऊँ हूँ, दादी उस नाव पर बैठकर थोड़े ही आनेवाली थी।

शालिनी घबरा गई। कमलाकर के झंडे का वह जवाब न दे सकी। उसे चुप रहती देख कमलाकर ने अकड़कर कहा—"सुनती हो शाली! अपनी दादी कल आवेगी।"

"और परसों चन्द्रग्रहण है।" शालिनी के मुँह से निकल गया। वह ख़ुद न समझ सकी कि ऐसी बात उसके मुँह से क्यों निकली। जीवन में आगे चलकर शायद उसके प्रतिभाशाली कवयित्री होने के ये लक्षण हो सकते हैं। उसका काव्य चन्द्रग्रहण तक ही पहुँच सका, पर कमलाकर के एक अच्छे समालोचक होने की बात दिखाई दी। उसने बहन को चिढ़ाते हुए कहा—"चन्द्रग्रहण की क्या—एक दिन छुट्टी मिल जायगी। पर दादी कैसी अच्छी-अच्छी चीज़ें लावेगी।"

शालिनी की आँखों के सामने पिछले महीने में देखे हुए मेले के दृश्य आने लगे। सीटी, बाजा, कुकूकू करनेवाला मुर्गा, घर्रर उड़नेवाला हवाई जहाज़—दादी क्या-क्या ले आवेगी? मैं दादी को गाना सुनाऊँगी। कौन-कौन-से गाने? हाँ!

"ऊँचा झंडा लहे हमाला।"

दादी फिर छाती से लगाकर चुम्बन करेगी और कहेगी।

शालिनी विचारशृंखला से जग गई। देखती है कि कमलाकर बाग़ में चन्दर से बातें कर रहा है। उसके हाथ में तार का काग़ज़ था। सारे घर भर में दादी के आने की ख़बर पहुँचाना उसका कर्तव्य ही था। धूपबत्ती का क्या? एक बार जला दो, सारा घर सुगन्धमय हो जायगा।

शालिनी चन्दर के पास गई। तब तक कमलाकर वहाँ से चला गया था। चंदर, घर का नौकर वह। अभी उधर जेल के कार्यालय में कर्मचारियों को दादी को आने की ख़बर देने का काम कमलाकर

* मराठी के सफल कहानी-लेखक श्री वि० स० खांडेकर की 'क़िर्लोस्कर मासिक पत्रिका' में छपी हुई कहानी का अनुवाद।



जैसा 'रूटर' न करेगा तो और कौन करेगा ? और ये 'रूटर के तार' महँगे थोड़े ही थे । लिमलेट की, गोली, बहुत हुआ तो चाकोलेट, इस दाम पर कौन ये ख़बरें न लें।

शालिनी के पास आते ही चंदर ने गमले में रखी हुई काग़ज़ की दो नाव निकालकर उसे दी । स्कूल से आते ही मा किस तरह अपने को खाने के लिए देती है ? चन्दर भी वैसा ही है । ऐसा ही कुछ सोचकर शालिनी ने चन्दर से कहा—"चंदल, कितने-कितने अच्छे हो तुम ।"

चन्दर ने हँस दिया । पर उसकी हँसी धूप के समान उज्ज्वल न थी, संधि-प्रकाश की तरह म्लान थी। मानो उसके दुखी हृदय की छाया ही उस हँसी पर पड़ी हो । प्रकाश और अंधकार ! जेल से छूटते ही शालिनी के पिता की दिखाई हुई दया इतना ही उसका प्रकाश । और ! और सब काला अंधकार। अस्पृश्य कहकर, ग़रीब समझकर चोर, शराबी, क़ैदी—कुछ न कुछ समझ सारे संसार ने उसके हृदय को काली कोठरी में बन्द कर दिया था। चन्दर की धीमी हँसी शालिनी को अच्छी न लगी । काग़ज़ की नाव पाने पर उसका आनन्द असीम हो गया था । पर उन नावों को बनानेवाला चन्दर पृथ्वी पर कष्ट सहता रहे, यह उसको कैसे अच्छा लगता । बाएँ हाथ का पाश चन्दर की कमर में डालकर वह बोली—"सच चन्दल, बहुत ही अच्छे हो तुम । क़सम खाती हूँ, तुम बड़े ही अच्छे हो ।"

अस्पृश्य कभी अच्छा होता है ? क़ैदी कभी अच्छा हो सकता है ? चोर कभी अच्छा होता है ? शराबी भी अच्छा होता है ?

कितने प्रश्न । आघात । आघात मानो लोहार के हथौड़े । सारे प्रश्न चन्दर के सिर में घूमने लगे । उसने शालिनी की ओर देखा । वह छोटी-सी बच्ची ये प्रश्न कैसे समझेगी ? आँखों में भरे हुए आँसू पोंछने के लिए चन्दर ने गर्दन घुमाई । उसकी दृष्टि गमले के गुलाब पर पड़ी । मैं मिट्टी साफ़ करता हूँ, पानी देता हूँ, तब जाकर कहीं ये गुलाब फूलते हैं । मेरे जीवन में अगर ऐसा होता तो । कहाँ होने को वैसा । अस्पृश्य का जीवन ! गुलाब के और आगे उसकी नज़र गई । एक जला हुआ ताड़ का पेड़ खड़ा था। पिछली बरसात में उस पर बिजली गिरी थी। उसका अंग जल गया था, पर पेड़ नाममात्र के लिए ज़िन्दा था । उसमें हरे पत्ते न उगे—मेरा जीवन—अस्पृश्य का जीवन इस पेड़ की तरह ही है।

शालिनी वेणी से ब्रूच निकालकर नावों से खेल रही थी । चन्दर उसे हौज़ पर ले गया। शालिनी ने दोनों नावें हौज़ में डाल दीं । दोनों शान से पानी में तैरने लगीं । शालिनी भी आनन्द में मग्न हो गई, पर जल्द ही उसके आनन्द में विघ्न आ गया । एक नाव में पानी भरने लगा और देखते-देखते वह डूब गई । चन्दर भी इसका अर्थ न समझ सका । सच्ची नाव डूबने पर मल्लाह को जितना दुःख न होता होगा, उतना उसे हुआ। वह शालिनी को अत्यंत प्यार करता था।

चार साल पहले जब वह जेल से छूटा, तब बाबू ने उसे नौकर रख लिया । इस नई दुनिया में उसके विश्रान्ति-स्थान दो ही थे । बाग़ में का कोमल गुलाब और घर में की छोटी शाली । गुलाब के पत्ते और शालिनी का हास्य दोनों ही उसे समान आनन्द देते । गुलाब फूलता या शालिनी बोलने लगती। गुलाब सड़ जाता या शालिनी बीमार पड़ती—चन्दर को ऐसे समय पर समान सुख-दुःख होता। शालिनी की नाव डूबने से उसे दुख हुआ, उसका रहस्य भी यही था ।

चन्दर का चेहरा दुखी देख शालिनी ने उसके कंधे पर अपना गला रक्खा और कहा—"मैंने ही गलती की चन्दर, इस ब्रूच से मैंने ही नाव के पेंदे में छेद किया था ।" चन्दर का चेहरा खिल उठा । उसने कहा—"डूबने दो वह नाव ! वैसी पच्चीस नावें अपनी शालिनी के लिए मैं बना दूँगा।"

पच्चीस नावें ! मेरी गुड़िया की शादी में ...



पार अगर किसी गुड्डे से होगी तो बरात ले जाने के लिए उन पचीस नावों का उपयोग होगा, यह सोचकर शालिनी को अति आनन्द हुआ। प्रेमपूर्ण दृष्टि से चन्दर की ओर देखते हुए उसने पूछा—

"कब बनाओगे उनको ?"

"कल।"

"कल दादी आवेगी।"

"परसों।"

"परसों चन्दरग्लहन है।"

"फिर—फिर।"

"चन्दर—चन्द्र—" बापू के चिल्लाने की आवाज़ आई। शालिनी रानी अपने बेड़े की बात सोचती थी कि चन्दर चला गया।

(२)

दादी के आने की ख़बर से कमलाकर और शालिनी को बड़ा आनन्द हुआ था। मानों कल से दिवाली ही शुरू होनेवाली थी। आज तक कभी न देखी हुई दादी! वह कैसी होगी, क्या-क्या लावेगी, एक-दो क्या अनेक कल्पना-तरंगों में वे दोनों डूब गये थे। लेकिन बापू और अम्मा की स्थिति वैसी न थी। वर्षा किसी समय हुई तो क्या, किसानों के बच्चे हमेशा उसका स्वागत करते हैं, पर खेत पक जाने के बाद बरसनेवाले पानी से किसानों को कितना कष्ट होता है! कमलाकर-शालिनी की दादी का जेलर साहब के घर होनेवाला आगमन उसी प्रकार का था।

तार पढ़ते ही बापू की आँखों के सामने पिछले पन्द्रह साल का इतिहास आ खड़ा हुआ। शिक्षा ख़तम होने पर मुझे अच्छी नौकरी मिली, शादी की बातचीत होने लगी। व्यसनाधीन मामा एक जगह मेरी शादी तै करने लगे। दहेज भरपूर, लड़की भी रूप में ख़राब नहीं। मामा का स्वार्थ उसमें रहने से उसी लड़की से शादी कर लेने के लिए उन्होंने आँखों से अश्रु भी निकाले। मा की इच्छा नहीं थी, पर मैंने इनकार किया। कालेज में मेरा एक ग़रीब मित्र था। मैं अगरवाल वह खत्री। बेचारे की बहन ग़रीबी के कारण एक बूढ़े के गले बाँधी जा रही थी। अपनी दलाली डूबते देख मामा ग़ुस्सा हो गये। दहेज नहीं, इसलिए मा का भी ग़ुस्सा बढ़ा। "बापू, जाति की तरफ़ भी देखो—" आख़िरकार आँखों में अश्रु लाकर उसने कहा।

"क्या देखूँ! अगरवाल और खत्री, एक ही हाथ की दो उँगलियाँ"—मैंने जवाब दिया।

मा शादी के पहले ही काशी चली गई। तब से महीने में एक चिट्ठी और बीस रुपये के मनीआर्डर की रसीद, इतना ही उसका और मेरा सम्बन्ध! कमलाकर के होने का समाचार सुनने के बाद 'कमलाकर को आसीष' इतने अक्षरों की उसकी मासिक पत्रिका में भरती हो गई, पर शालिनी के होने के बाद लड़की किसकी तरह है, यह एक प्रश्न उसने पूछा था। लेकिन उसके बाद की चिट्ठियों में 'कमलाकर और शालिनी को आसीष' इतना ही फरक होने के सिवा और कुछ न हुआ। इस साल हरद्वार का कुम्भ-मेला आया। वह काशी से हरद्वार आई और अब हरद्वार से—यहाँ।

बहू के साथ मा कैसा बर्ताव करेगी, इसकी बापू को चिन्ता थी ही, पर बहू से ज़्यादा फ़िक्र उनको चन्दर की थी। किसी पेड़ के कीड़े निकाल डालें, उसे रोज़ पानी दें और अब फल लगने का आनन्द हो, इतने में आँधी आकर उस पेड़ को उखाड़ फेंक दे—चन्दर की हालत ऐसी तो न होगी। जल से अस्पृश्य अस्पृश्य है, इसलिए ग़रीब, अज्ञान की वजह से भोला और व्यसनाधीन। अज्ञान और ग़रीबी, इन दोनों राक्षसों की औलाद और क्या होगी? शराब—चोरी—जेल—फिर चोरी—फिर जेल।

चार साल पहले चन्दर दूसरी बार जेल से छूटा। क़ैदी था, तब तक उसकी चाल-ढाल कितनी सीधी थी। मेरे पास रहकर बेचारे ने लिखना-

पढ़ना सीखा। व्यसन छूट गये। वह आदमी हो गया। कल बेचारा सुख से घर बना लेगा।

चन्दर अस्पृश्य है, यह समझकर मा क्या करेगी। आते ही चली जायगी या उसे निकाल देने को कहेगी? दोनों ही दुखी करनेवाले कार्य थे। एक तरफ़ आग और एक तरफ़ आँधी। पन्द्रह साल पर लौटकर आनेवाली मा मेरे घर सुख से रहे, पर यह हो कैसे सकता था? नाती को देखने की अभिलाष में वह बहू की जाति भूल सकती थी, पर चन्दर को सबके-जैसा घर में घूमता देख वह चुप बैठेगी?

इन प्रश्नों के उत्तर मा से थोड़े ही मिल सकते थे? धर्म की दोनों आँखों पर सैकड़ों वर्ष से पड़े हुए मोतियाबिन्द का आपरेशन किस तरह किया जाय? चन्दर को चार दिन के लिए कहीं बाहर भेज सकते हैं, पर मा हमेशा के लिए यहीं रह जाय तो? आज की मौत कल पर ढकेलने से क्या फ़ायदा। जो कुछ एक बार होना हो, हो जाने दो।

(३)

दादी आ गई, उसने अपने लड़के और बहू का चेहरा घी में देखा। शालिनी और उसकी तो घंटे भर में पट गई। बिल्ली के बच्चे को जब कोई पहले हाथ लगाता है तो वह भौचक्का रह जाता है, पर एक बार आदमी की आदत हो जाय, तो वह तुम्हारे पैर पर आसन जमावेगा। छोटे बच्चे बिल्ली के बच्चों की तरह होते हैं। दरवाज़े के पीछे छिपकर दादी की तरफ़ देखनेवाली शालिनी एक घंटे में ही दादी की गोद में सिर छिपाकर गुड़ियों का ब्याह, चन्दर की नाव, चन्दर काला होकर भी कितना अच्छा है, इसका वर्णन, 'झंडा ऊँचा रहे' यह गाना इत्यादि कितनी ही बातें करने लगी। दादी के साथ वह बाग़ में गई और चन्दर को पुकारने लगी। लेकिन चन्दर को आगे आने का साहस न हुआ। दादी ने उसे दूर से ही देख लिया।

छोटे बच्चों की जिज्ञासा आँधी के समान होती है। दादी काशी में रहती है, यह शालिनी को मालूम था, पर इतने से उसका समाधान कहाँ होने का! दोपहर को काशी की पाठशालाएँ, काशी के जेल, काशी की गुड़िया इत्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछकर उसने दादी से मुलाक़ात (Interveiw) लेनी शुरू कर दी। यह मुलाक़ात वह दूसरे दिन अपनी सखियों से कहनेवाली थी। आख़िर में शालिनी ने दादी से पूछा—"दादी, काशी में महारों को छूते हैं?"

मन्दिर में फेरा लगाते समय अँधेरे में सर फूट जाय, वैसे ही दादी को हुआ। उसने ग़ुस्साकर कहा—"कितनी बड़बड़ करती हो शाली?"

अपने महत्त्वपूर्ण प्रश्न का रूपान्तर गड़बड़ में होता देख कौन चुप बैठेगा? शालिनी भी ज़ोर से चिल्लाई—"चन्दर महार है और हम लोग उसे छूते हैं।"

सवेरे दादी के आने के समय से अब तक प्रशांत महासागर पर चलनेवाले जहाज़ की तरह सब ठीक था। पर शालिनी का आख़िरी वाक्य जहाज़ को टकरानेवाला बर्फ़ का पहाड़ हो गया। बड़ी तेज़ी से जहाज़ में पानी भरने लगा। दादी, मा और शालिनी सबकी आँखों से आँसू बहने लगे। बापू आफ़िस में और कमलाकर स्कूल में गया था। दादी ने पन्द्रह साल का इतिहास बड़बड़ाकर बहू का बदला ले लिया। ज्वालामुखी का स्फोट होने तक ही उस पर अंगूर की हरी-हरी लताएँ दीख पड़ती हैं, पर उसके मुँह से एक बार लावा निकलने दीजिए, उसकी पँचकोसी में जाने की भी किसी की हिम्मत न होगी। दादी के क्रोध से बहू की भी वही स्थिति हो गई। अपनी जाति, पति, सबकी सब तरह की निन्दा उस बेचारी को सहनी पड़ी। 'धर्म डूब गया' यह तो दादी की गद्य कजली का ध्रुपद था। शालिनी की मा को सास की गालियाँ जब असह्य हो गईं तो उसने अपना ग़ुस्सा लड़की पर उतारा। आज



उसी ने लगाई थी। मानो शालिनी के मुँह से यह बात न निकलती तो चन्दर महार है, यह बात दादी को कभी मालूम न होती।

मा के हाथ का प्रसाद मिलते ही शालिनी रोती हुई बाहर बाग़ में गई। उसकी बाल-बुद्धि में स्वभावतः यह बात आई कि चन्दर के सिवा अपने को और कोई आश्रयदाता नहीं। शाली कहाँ गई, यह देखने के लिए दादी कुछ देर बाद बाहर आई। बाग़ में आकर देखती क्या है कि चन्दर एक पेड़ के नीचे बैठा है; शालिनी उसके गले में हाथ डालकर—आग में घी पड़ गया। धीरे से वह उस पेड़ के पीछे गई। चन्दर शालिनी को समझा रहा था—"रोना मत शाली, तू सयानी है न? तू किसकी है?" शालिनी ने अभी-अभी मा के हाथ की मार खाई थी। वह चिल्ला उठी—'तुम्हारी, तुम्हारी'। यह सुनते ही चन्दर की आँखें भर आईं। उसने बड़े प्रेम से शालिनी का चुम्बन किया।

यह दृश्य देखते ही दादी जल उठी। वह एक-दम चिल्लाई 'शाले!' बिजली की कड़क सुनकर डरनेवाली बछिया की तरह शाली डरकर चन्दर की गोद से हट गई। दादी के क्रोधपूर्ण चेहरे की ओर देखकर वह घबरा गई, पर फूल और बालक कभी मुँदी रहने पर भी उसकी कोमलता छिपती नहीं है? शालिनी दादी के गले लगने दौड़ी। "हो, ख़बरदार, मुझे छुएगी तो! सारे घर भर में छूत फैला दी है मुओं ने' चिल्लाती हुई वह पीछे खिसकी। फिर भी शालिनी उसके पास जाने लगी। दादी ने मारने के लिए हाथ उठाया। शालिनी डरकर पीछे हटी। पर एक पत्थर से ठोकर खाकर वह गिरी। चन्दर ने झट उसे उठा लिया।

चंदर वहाँ न होता तो शायद दादी ने शाली को उठा लिया होता, पर अब वे गुस्से में ही लौट चली गई। चंदर ने शालिनी को उठाया। उसके सिर से ख़ून बह रहा था। उसको अपने कुरते से पोंछकर शालिनी को वह घर में ले आया। दरवाज़े की सीढ़ियाँ चढ़ते समय उसे दादी के शब्द सुनाई दिये—"आने दो बापू को, प्राण चाहे चले जायँ, पर पानी का घूँट भी इस घर में न पियूँगी! सुधार कर रहे हैं सुधार! मा को भूखों मार डालने का सुधार करें अब।"

चंदर ने ये शब्द कुल्हाड़ी के घाव की तरह सुने। वह अपना मुँह शालिनी के मुँह के पास लाया, पर इतने में दादी के पैरों की आहट मिली। वह धीरे से पीछे घूमा और शालिनी की तरफ़ देखते हुए बाग़ के फाटक में से बाहर चला गया।

ग्रहण के बहुत पहले से ही वेध लगते हैं। मा का तार हाथ में पड़ने के समय से ही बापू की छाती धड़क रही थी। अब तो चंदर का भी पता नहीं था। कोतवाल साहब को उन्होंने चंदर की खोज करने के लिए चिट्ठी लिखी।

ग्रहण के दिन तो घर को भी ग्रहण लगा था। सिर की चोट के कारण शालिनी को बुख़ार चढ़ आया था। बापू ने दिन भर में कुछ खाया नहीं। दादी समझी कि बेटा धार्मिक हो गया। आसमान के चंदर से ज़्यादा वे पृथ्वी पर के चंदर के लिए चिंतित थे। यह शंका भी दादी को न आई।

शाम हो गई थी। शालिनी का बुख़ार धीरे-धीरे उतर रहा था। उसने बापू को पूछा—"बापू, आज चंद्रग्लहन है न?"

"हाँ।"

"क्या होता है ग्लहन में?"

"चंदू मामा का मुँह काला होता है। फिर वह उसको धो डालता है।"

"किस चीज़ से धोता है? साबुन से? आसमान में चाँदनी रहती है, वही साबुन का फेन होता है न बाप। बापू, दादी कहती थी कि चंदर ने मुँह काला किया है। चंदू मामा की तरह वह धोकर आवेगा न?"



ग्रहण लगने का समय आ गया था । शालिनी सोई थी । कमलाकर बाहर घूम रहा था । दादी ने अपना पूजा-पाठ शुरू किया । बाप वहीं खिड़की में बैठे थे ।

दादी ने पूछा—"ग्रहण लगा या नहीं ?"

"अभी थोड़ी देर में लगता है । यह ग्रहण तो एक-दो घंटे में छूट जायगा, पर कल लगा हुआ ग्रहण—"

"बड़े भारी ये हो तुम बापू ! एक महार गया तो छप्पन मिलेंगे वैसे ।"

"पर वह एक गया, उसका पाप—"

"वाह ! महारों को छूना पुण्य और उनको भगा देना पाप—"

"मा, तू १५ वर्ष काशी में रही—अच्छा जाने दो वह—एक बात कहो—सारे आदमी ईश्वर के बच्चे हैं न ?"

"हैं तो क्या ! महारों के गले में ब्राह्मण पड़े। अपनी-अपनी योग्यता से रहें सब लोग !"

"कल शालिनी ने शबरी का गाना तुम्हें सुनाया, वह तुम्हें अच्छा लगा । भील के जूठे बेर राम ने बड़े प्रेम से खाये । देवता को यह सब छजता है और हम आदमी—"

दादी क्या जवाब देती । बापू ने आगे कहा—"देखो मा, चंद्र को जैसा ग्रहण लगा है, वैसा ही हम लोगों के यहाँ अछूतों का लगा है ! पर इन दोनों ग्रहणों में कितना फ़र्क है । सूर्य और चाँद के बीच में आई हुई पृथ्वी दो घंटे में दूर हो जायगी, पर अछूत और उन्नति इन दोनों के बीच में आई हुई यह दुष्ट रूढ़ि सैकड़ों वर्षों से चली आती है ।"

"वे होते क्यों नहीं बड़े ! किसने उनका हाथ रोका है ?"

बापू ने हँसकर कहा—"उनको छूकर उनके हाथ रोकने का काम हम हिंदू कैसे करेंगे ? हम सिर्फ़ उनके पैरों में मन-मन भर की बेड़ियाँ डालकर अज्ञान की, ग़रीबी की काली कोठरी में बंद कर देते हैं । मा, पंख काटने के बाद पक्षी कभी उ[ड़] सकता है ?"

"मैं नहीं समझती तुम्हारी ये सब बातें ।"

"अब यह चंदर की ही बात देखो । मैं क[बूल] करता हूँ कि बहुत-से अछूत गंदे रहते हैं, श[राब] पीते हैं, कभी-कभी चोरी भी करते हैं । प[र] ईश्वर के घर इन सब पापों का घड़ा हमारे [ही] सिर पर फूटेगा ।"

"यह कैसे ?"

"ये सब पाप उन लोगों से हमी कराते हैं। चंदर का ही देखो, वह तुम्हारे गाँव का र[हने] वाला है !

"अच्छा फिर ।"

"चंदर को चोरी के लिए सजा हुई । पर पह[ली] चोरी उसने कब की ? मंदिर में अन्नकूट के ल[ड्डू] बट रहे थे । वह महार का बच्चा, किसी ने उस[को] नहीं दिया, उसने एक लड्डू धीरे से ले लिया । उसको स्कूल में जाने की बड़ी इच्छा थी पर मास्टर साहब ने उतनी भी दया उस [पर] नहीं दिखाई । वह घुमक्कड़ हो गया । धीरे-[धीरे] बीड़ी पीने की उसको आदत लग गई ।"

"तो यह किसका दोष ?"

"दोष, मा, तुम्हारे छोटे भाई साहब, [तुम्हारे] मामा साहब, कालेज और युनिवर्सिटी में [उनके] लिए कितने रुपये ख़र्च हुए थे, पर अब, [शराब,] वेश्या—सारी विद्याओं में पारंगत हैं जनाब !"

"मैंने तो उसे यहाँ मिलने के लिए बु[लाया] है—" दादी ने कहा ।

"आने दो न । शाली को चन्दर का [मुँह] अच्छा लगता है, पर मामा साहब का मुँह [नहीं]। आने दो, देखो फिर मज़ा । जाने दो, इसके ... शराब और चोरी में चन्दर फँस गया । उसे ... मिली । घर की अपेक्षा जेल का जीवन ... अच्छा मालूम हुआ । उसने फिर से चोरी ..."

दादी की जिज्ञासा जाग्रत् हुई । उसने [पूछा]—"पहले कैसे उसको सज़ा हुई ?"



"हम लोगों की ही कृपा से। अपने मामा-साहब ही मुखिया थे उसके! किसी इन्सपेक्टर को चोरी से चुराई गई शराब पकड़कर अपनी तनख़्वाह बढ़ानी थी। मामा साहब और वे दोस्त बन गये। मामा ने शराब की बोतलें एक ट्रंक में भरकर चन्दर को वह ट्रंक कहीं पहुँचाने को कहा। रास्ते में इन्सपेक्टर साहब खड़े ही थे। बस, चन्दर को सज़ा, मामा को दावत और इन्सपेक्टर को तरक़्क़ी मिल गई।

"हरे नारायण!" दादी ने कहा

"चार वर्ष चन्दर हमारे यहाँ रहा, पर उसने कभी चोरी न की। शराब, चोरी सब उसने छोड़ दिया। हम लोगों की तरह आप भी होते हैं वह। संसार-सागर में तैरना सिखाने के बदले हम उनके गले में बड़े-बड़े पत्थर बाँध देते हैं। ग़रीबी के कारण अछूत रुपये-पैसे की चोरी करते होंगे, पर हम उनकी आत्मा चुरा लेते हैं। चन्दर ही को लो, कितना अच्छा है वह, यहाँ रहने से किसी को सुख और समाधान न होगा, यह सोचकर बिना पूछे ही वह चला गया और—"

"ग्रहण पूरा लगा या नहीं" दादी की आवाज़ ने बापू को फ़र्क मालूम हुआ।

"छूट रहा है अब ग्रहण—बाहर कोई आया है? इतनी रात में, अरे ये तो मामा साहब ही आ गये।"

मामा साहब और उनके मुँह की दुर्गंध दोनों ने एक साथ घर में प्रवेश किया। मामा ने कहा—"तुम्हारी चिट्ठी मिली। अभी आ रहा हूँ, गाड़ी ज़रा लेट हो गई थी।"

"हाँ, और यह आपके सफ़ेद कोट पर लाल धब्बा कैसा है। किसी ने थूक तो नहीं दिया।"

"हँ हँ हँ"—मामा ने कहा

बाहर फिर किसी के आने की आहट मिली। दो सिपाही चन्दर को पकड़कर लाये थे। बापू ने कोतवाल साहब की चिट्ठी पढ़ी। स्टेशन पर एक शराब की दूकान थी। ग्रहण के कारण इतनी रात में भी दूकानदार ने वह पिछले दरवाज़े से खुली रक्खी थी। वहाँ कुछ दंगा-फ़साद होने की ख़बर पुलिस को लगी और कुछ सिपाही वहाँ गये। बहुत-से आदमी भाग गये। चन्दर पास ही था। उसके कुरते पर ख़ून लगा था। पुलिस ने शक पर उसे पकड़ लिया।

बापू ने चन्दर के पास जाकर देखा। उसके कुरते में वही शाली की चोट का ख़ून था।

"चन्दर, स्टेशन पर क्यों गये थे तुम?"

चन्दर ने डरते-डरते जबाब दिया "जा—जान देने—"

बापू को देखने के लिए अन्दर से दादी और मामा बाहर आये।

"चन्दर, देखो" बापू ने कहा। चन्दर ऊपर देखने लगा। उसकी नज़र मामा साहब पर पड़ी। वह क्रोध से आपे से बाहर हो गया। बापू ने दोनो की तरफ़ देखा और कुछ देर सोचकर मामा-साहब से कहा—"मामा साहब, ये सिपाही आये हैं आपके लिए।"

"म—म—। मेरे लिए?"

"हाँ, किसी शराब की दूकान में झगड़ा हुआ?"

"होने दो झगड़ा, मुझे नींद आ रही है—मैं जाता हूँ अन्दर।"

मामा साहब अन्दर आये। सिपाही भी चिट्ठी लेकर चले गये। बापू ने चन्दर से कहा—"चन्दर, दादी के पैर पड़ो।" चन्दर पैर पड़ने लगा। बापूने मा से पूछा—"मा कुछ दुर्गंध तो नहीं आती न, इसके मुँह से?"

"ग्रहण छूटा, ग्रहण छूटा।" बाहर से कमला-कर चिल्लाया। शालिनी जगी और दौड़कर बाहर आई। "ग्लहन छूटा, ग्रहन छूटा" वह भी चिल्लाई। उसकी दृष्टि चन्दर पर पड़ी। उसके पास जाने के लिए वह दौड़ी, पर दादी को देखते ही खड़ी हो गई। दादी समझ गई। उसने प्रेम से कहा—"जा बच्ची, तू चन्दर के पास जा।"

चंदर को लिपटकर शालिनी चिल्लाई—"बापू, ग्लहन छूटा, ग्लहन छूटा।"



तेलुगू का कथा-साहित्य

श्रीव्रजनन्दन शर्मा

यों तो कहानियाँ मनुष्यों के साथ ही उत्पन्न हुईं ; पर आज हम जिसे लघु-कथा या Shoak story कहते हैं—वह इसी शताब्दि की चीज़ है। तब से अब तक कहानियों के कई एक अवतार हो चुके हैं। हम उसे कभी तो पोपली बुढ़िया नानी की पंखवाली परियों के रूप में; कभी तोता-मैना के पिंजरे में; कभी जासूसों और ऐयारों के बटुओं में; तो कभी समाज-सुधारक की पगड़ी में देख चुके हैं। आज वह मनोवैज्ञानिकों की रसायन-शाला में ढलकर नये रूप को हमारे सामने आई है। इस अन्तिम रूप को संसार में पदार्पण किये अभी अर्द्ध-शताब्दि से अधिक नहीं हुआ। हिन्दी-जगत् के इस थोड़े-से काल में ही हमने देख लिया है कि यह कहानी-कला अपने कई प्रिय सम्राटों को ठुकराकर आगे बढ़ती जा रही है।

तेलुगू का आधुनिक कथा-साहित्य भी अभी हाल का बच्चा है। अभी दूध ही पी रहा है। अभी अंगों का पूरा विकास नहीं हुआ है। इसलिए यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह गोरा होगा या काला? सुन्दर होगा या कुरूप?— पर, अभी, इस नव्य साहित्य की चर्चा करने के पहले मैं उचित समझता हूँ कि इसका पूर्वाभास दे दिया जाय।

हम भारतीय भाषाओं के इतिहास पर दृष्टि करें तो मालूम पड़ेगा कि ईसा की १०वीं शताब्दि के आसपास बहुत-सी नवीन भाषाओं का जन्म हुआ जिनमें हिन्दी और तेलुगू भी है। यहाँ भाषा से मेरा मतलब साहित्य से है। आधुनिक भारतीय साहित्य-लतिकाएँ जो आज लहलहा रही हैं— पुष्पित हैं—उसी समय के अंकुर हैं।

तेलगू-लतिका का वह अंकुर भी अपने साथियों से आगे बढ़ गया। तेलुगू का प्राचीन साहित्य गौरव की वस्तु है। तेलुगू का गद्य प्रायः पद्य के साथ ही पैदा हुआ। परन्तु पहले गद्य-ग्रन्थ देखने में नहीं आते। यहाँ गद्य से मतलब पद्य-काव्यों में आये हुए गद्य-खंडों से है। तेलुगू के अधिकांश काव्य चंपू ही हैं।

ख़ैर, गौरव की वह प्राचीन परम्परा ... भारत गाढ़-निद्रा में निमग्न हुआ। कई शताब्दि तक भारतीय साहित्यों में कोई उल्लेख-योग्य ... नहीं हुआ। इधर कुछ वर्षों से देश में नया ... आया है। राजनीति में गांधीवाद और साहित्य में रवीन्द्रवाद ने काफ़ी प्राण भर दिया। यहीं ... 'भारत' का 'नवजीवन' प्रारम्भ हुआ—ऐसा विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है। तथा 'भारत-भारती' 'विश्व-भारती' से होड़ करने चली है। इस ... में स्वभावानुसार कोई आगे और कोई पीछे है।



तेलुगु-साहित्य इस हलचल से भला कैसे बच सकता है? पर, यह कहा जा सकता है कि इसकी रफ़्तार उतनी तेज़ नहीं है। उपन्यास और कहानियों की भी यही हालत है। तेलुगू में कथात्मक गद्य की पुस्तकें क़रीब ३० या इससे कुछ अधिक वर्षों से प्रच-लित होंगी। रेलवे-साहित्य की कोटि में आनेवाली कुछ कथा-पुस्तकें लोक-प्रिय हुईं। जिनमें श्रीमधिर सुब्बन्ना दीक्षितुलुजी का "काशी भजलीलु"-नामक ग्रन्थ प्रथम स्थान पावेगा। यह हिन्दी की "बैताल-पचीसी" की कोटि का होगा। इसमें एक यात्री काशी जाता है और रास्ते में नाना तरह की असम्भव-सम्भव घटनाएँ देखता और सुनता है। श्री-चिन्नय-सूरि ने तेलुगू-गद्य में परिवर्तन कर उसे कुछ नये रूप में रक्खा। आप ही का "नीति-चन्द्रिका"-नामक ग्रन्थ कथात्मक गद्य है—जिसे साहित्य में स्थान मिला। यह "हितोपदेश" के 'मित्रलाभ' और 'मित्रभेद' का अनुवाद है। पर, इसकी भाषा बड़ी ही क्लिष्ट है। इसके बाद तो प्रसिद्ध भाषा-सेवी श्रीवीरेश-लिंगम् ने लेखनी उठाई और गद्य को स्थिर रूप दिया। तेलुगू के प्रथम उपन्यास-लेखक भी आप ही हैं। तेलुगू का प्रथम उपन्यास 'राजशेखर-चरित्र' (वीरेशलिंगम् का) बहुत ही सुन्दर उपन्यास है। तेलुगू गृह-जीवन का वैसा सुन्दर चित्र अन्यत्र मिलना मुश्किल है। आपने कुछ प्रहसन वग़ैरह भी लिखे। उसके बाद कई प्रसिद्ध लेखकों ने ऐतिहासिक और पौराणिक कहानियाँ शुद्ध गद्य में लिखीं। पर, उसे हम आज के कहानी-साहित्य का प्रारंभ नहीं मान सकते।

आजकल जिसको हम गल्प कहते हैं, उसका प्रारंभ आज से क़रीब १७-१८ वर्ष पहले राज-महेन्द्री से निकलनेवाले साप्ताहिक पत्र "त्रिलिंग" द्वारा हुआ। तब से वह लड़ी टूटी नहीं, बल्कि तीव्र गति से बढ़ रही है। और, आजकल कोई भी ऐसा महीना नहीं जाता, जिसमें अच्छी-बुरी प्रायः १०० सौ कहानियाँ न निकलती हों। लगभग पचास ऐसे लेखक भी होंगे, जिनके नाम की कहानी बार-बार हमारे सामने आती हैं। क़रीब २५ ऐसी रफ़ पेपर वाली दुअन्नी मासिक पत्रिकाएँ हैं, जो इन्हीं कहानियों से भरकर निकलती हैं। इनमें इन कहानियों की ही प्रधानता रहती है। इस तरह कहानी-साहित्य का कलेवर काफ़ी मोटा होता है। पर, यह बात सची है कि मोटे शरीर का सारा भाग कामिल नहीं होता। उसमें सार बहुत कम होता है।

तेलुगू की प्रकाशित इन कहानियों में सैकड़े में १०-१२ के सिवा बाक़ी सब थर्ड क्लास की होती हैं। उनमें चुम्बन-आलिंगन तथा विषय-वासना को भड़कानेवाले घासलेटी चरित्र के सिवा और कुछ तत्त्व नहीं रहता। कुछ कहानियाँ तो ऐसी भी—प्रायः अधिक संख्या में—छपती हैं, जिन्हें कोई भी ज़िम्मेदार पत्रकार नहीं छापेगा और न कोई रुचि-सम्पन्न पाठक पढ़ेगा। फिर यहीं इस दुराचार का अन्त नहीं होता। ये दुअन्नी-पत्रिकाएँ और पालिश चढ़ाकर—यानी उस कहानी के अनु-रूप अश्लील चित्र देकर—उन्हें प्रकाशित कर पाठकों के शान्त मन को भड़काने में सहायता देती हैं। फ़ासिस्ट न होने पर भी कभी-कभी इन पत्रिकाओं को देखकर इच्छा होती है कि कम से कम इन संपादकों और लेखकों के लिए ही सही—कोई हिटलर आवे।—उस श्रेणी के गल्पों और उनके लेखकों के बारे में इससे ज़्यादा और कुछ नहीं कहना चाहता कि वे समाज और साहित्य—दोनों के लिए शापरूप हैं। भगवान् जितना शीघ्र इनसे साहित्य का पिंड छुड़ावे, उतना ही अच्छा।

तेलुगू की कहानियों का—जिन्हें कहानी कहने में किसी को भी हिचकिचाहट न होगी—यदि सरसरी निगाह से अवलोकन किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि तेलुगू के कथाकार कला की ओर ही विशेष ध्यान दे रहे हैं। आदर्शवादी लेखक बहुत ही कम हैं। इनकी कला निरुद्देश्य-सी जान पड़ती है। ये कुछ सन्देश नहीं देना



चाहते, और मेरी समझ में निरुद्देश्य कला को अपने पवित्र पथ से गिरने से बचाना साधारण कलाकार की क्षमता से बाहर की बात है। कहानियों में रशियन कलाकारों ने जो ढंग अख़्तियार किया है—वह यहाँ के लेखकों की दृष्टि में नहीं आया है। असल में रूसी साहित्य का इधर बहुत कम अध्ययन हो रहा है। ज़्यादातर अँगरेज़ी और फ़्रेंच का अध्ययन और उसी की नक़ल हो रही है। इसलिए हम तेलुगू-कथाकारों की मनोवृत्ति भी कुछ वैसी ही पाते हैं। कला और आदर्श का समन्वय करनेवाले लेखक नहीं हुए हैं। यहाँ टालस्टाय को आदर्श माननेवाले कम, पर मोपाँसा के अनुयायी ज़्यादा हैं। यहाँ अभी प्रेमचन्द, कौशिक या सुदर्शन के दर्शन नहीं होंगे। विशुद्ध मनोवैज्ञानिक कथाएँ निकल रही हैं। इधर लेखकों का ध्यान गया है। ऐतिहासिक कहानियाँ नहीं के बराबर हैं। समाज को अपने लक्ष्य में रखकर लिखी गई कहानियों में कला की कमी खटकती है। जासूसी कहानियों और उपन्यासों की भी कुछ दिन धूम थी। पर अब उनकी चर्चा भी नहीं है। इधर अनुवाद भी धड़ल्ले से हो रहा है। अँगरेज़ी और फ़्रेंच के अनुवादों के अलावा बँगला और हिन्दी के अनुवाद भी धड़ल्ले से हो रहे हैं। बँगला से कैसा अनुवाद हुआ—यह मैं नहीं जानता। फिर भी मेरा विश्वास है कि वह अनुवाद अच्छा ही हुआ होगा, क्योंकि उसका ज़िम्मेदार लेखकों ने ही अनुवाद किया था। कारण बँगला सामान्य लोगों ने नहीं पढ़ी थी। पर, इधर हिन्दी का प्रचार ज़्यादा होने से हर आम ख़ास हिन्दी जान गया है। और ऐसों की संख्या भी काफ़ी है, जो मातृ-भाषा में लिखने की क्षमता नहीं रखते। ऐसे लोगों ही के पल्ले हिन्दी की कहानियाँ पड़ी हैं, अतः अनुवाद बहुत बुरे ढंग से होता है। मूल-लेखकों का नाम तक नहीं दिया जाता, और वह अनुवाद मूल-लेखकों की इज़्ज़त घटाता ही है। अभी हाल के किसी पत्र में प्रेमचन्द की कहानी 'सौत' का अनुवाद किसी ने 'प्रेमबलि' नाम देकर किया था। कहानी पढ़ जाने पर, मेरे मुँह से निकल गया—'यह प्रेमचन्द जी की बलि है, प्रेम-बलि नहीं।' इसी तरह नित्य प्रेमचन्द और सुदर्शनजी आदि की बलि दी जा रही है। फल-स्वरूप पाठक हिन्दी की कहानियों का असली मूल्य नहीं पहचान पाते। इस ओर उचित ध्यान देना आवश्यक है।

अब मैं तेलुगू के शक्ति-मान् गल्पकारों का परिचय देने के पहले यहाँ की 'साहिति-समिति' का परिचय देना आवश्यक समझता हूँ, जिसने तेलुगू में नवीनता की लहर चला दी। इस 'समिति' ने बहुत-से उगते हुए कहानी-लेखकों और कवियों को नई रुचि और नये आदर्श की ओर मोड़ा। जिस समय मैंने आन्ध्र देश में प्रवेश किया, उस समय—अर्थात् १९२४ ई० में—इस 'समिति' का काफ़ी प्रभाव और सम्मान था। सौभाग्य से समिति के सभापति और संस्थापक श्री शिवशंकर शास्त्रीजी से उसी समय से मेरा परिचय है। वे बड़े ही रसिक हृदय के साहित्यिक हैं। आप बँगला, संस्कृत, अँगरेज़ी, हिन्दी, तेलुगू आदि भाषाओं के ज्ञाता और पंडित हैं। आप ही की प्रेरणा से तेलुगू में नव्य-साहित्य का प्रारंभ हुआ। इसी 'समिति' की मुख पत्रिका 'साहिति' और 'लिख' ने नये कथाकारों को खूब प्रोत्साहन दिया। अच्छी-अच्छी कहानियाँ प्रकाशित हुई। आगे मैं जिन कहानी-लेखकों का परिचय दूँगा, उनमें अधिकांश इसी 'समिति' के शिक्षित थे। अब इस 'समिति' का कार्य शिथिल हो चुका है। इसी लिए साहित्यकारों का कोई निर्देश या मार्ग-प्रदर्शन नहीं करता। अब मैं तेलुगू के कुछ कहानी-लेखकों का संक्षिप्त, परन्तु भरपूर परिचय देकर इस लेख को समाप्त करूँगा, जिनसे तेलुगू साहित्य को आशा है, तथा जो वहाँ के प्रतिष्ठ लेखक हैं।

(१) श्रीमुनिमाणिक्यं नरसिंहाराव B.A.

—आप मछलीपट्टम् हाई-स्कूल में अध्यापक हैं। आप शुरू से ही 'साहिति-समिति' के सदस्य रह चुके हैं, और तभी से कहानियाँ लिख रहे हैं। आपकी कुछ कहानियों का मैंने अनुवाद भी किया है। अपनी कहानियों में आपने गृह-जीवन का सुन्दर चित्र खींचा है। एक ही नायक-नायिका, एक ही वातावरण और स्थान को लेकर लेखक ने पचासों कहानियाँ लिख डाली हैं। कहानियों में परिवार में होनेवाली छोटी-छोटी घटनाओं का ही सुन्दर चित्र होता है। मनोविज्ञान ही आपकी कहानी का आधार है। रुचि भी सराहनीय है। अश्लीलता का कहीं नाम न। कहानियों में सर्वत्र मधुर हलका हास्य-रस का पुट रहता है। आपकी 'कांतं' (नायिका) की कहानियाँ बहुत प्रसिद्ध हो गई हैं। कहानियों का संग्रह भी "नेनुमा कांतं"—"कांतं कन्दलु" नाम से छपा है। "उपाध्यायुडू"-नामक हास्य-रसात्मक एक पुस्तक भी मेरे देखने में आई है। आपकी कहानियों में 'धूप-छाँह' और 'समुद्र-स्नान' आपकी कला का परिचय देती हैं।

(२) श्रीमोकपाटि नरसिंह शास्त्री—आप तेलुगू के हास्य-रस के सुप्रसिद्ध लेखक हैं। आपका 'बैरिस्टर पार्वतीश'—श्रीवास्तवजी के 'लतखोरी लाल' की तरह की सुन्दर पुस्तक है। नवीन साहित्य में इस पुस्तक का प्रचार सबसे अधिक हुआ। आपकी भाषा भी बड़ी सरल होती है। यद्यपि आपने बहुत थोड़ी कहानियाँ लिखी हैं, पर वे इनी-गिनी कहानियाँ ही आपको उत्तम कलाकार के स्थान पर बिठलाती हैं। आपकी कहानी में 'न्याय' बड़ी ही सुन्दर कहानी है। इस कहानी में आपने धनी और ग़रीब समस्या और समाज का पक्षपात आदि बातें दर्शाई हैं। सुन्दर कलात्मक कहानी है। 'एकोदर' वग़ैरह आपके कुछ ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इधर आपकी कहानियाँ देखने में नहीं आती हैं।

(३) श्रीचिन्ता दीक्षितुलु B. A. L. T.,—आप भी राजमहेन्द्री या उसके आसपास किसी हाई-स्कूल में अध्यापक हैं। आप तेलुगू-गल्पकारों के सम्राट् कहे जाते हैं। प्रारंभ में आपने ही सुन्दर कहानियों का लिखना आरम्भ किया। आप सचमुच अच्छे कलाविद् और विदग्ध हृदयवाले हैं। आप की कहानियाँ विशेषतः मनोवैज्ञानिक होती हैं, और सुन्दर भी। इस तरह की कहानियाँ लिखने में आपका कोई सानी नहीं। आप बाल-स्वभाव का भी बड़ा सुन्दर चित्रण करते हैं। इस विषय के आप विशेषज्ञ कहे जा सकते हैं। बाल-स्वभाव का चित्रण करनेवाली आपकी कहानियाँ सचमुच ही लाजवाब हैं। आपकी कथा-वस्तु और चित्रण में विविधता रहती है। आपकी कहानियाँ अभी तेलुगू के गौरव की चीज़ हैं। 'एकादशी' नाम से आपकी कहानियों का सुन्दर संग्रह प्रकाशित हुआ है। 'शबरी'-नामक भावपूर्ण नाटक भी आपने रचा है। आपका प्रकृति-निरीक्षण बड़ा ही सुन्दर है। आप सचमुच कथाकारों के सम्राट् हैं।

(४) श्रीगुडिपाटि वेंकटाचलम्—आप ट्रेनिंग-स्कूल के प्रधानाध्यापक हैं। आपका कला-ज्ञान बहुत ऊँचे दर्जे का है। आपके कहने का ढंग भी बड़ा हृदयग्राही है। आपकी शैली 'उग्र' से मिलती-जुलती है। भाषा बड़ी सुन्दर और कथा-वस्तु बड़ी रोचक होती है। आप सब तरह के उच्च कलाकार हैं। पर, एक ही ऐब है—आपकी रचनाओं में—जिससे सब गुड़ गोबर हो गया है।—आपने अश्लीलता और नग्नता को कला और यथार्थवाद के नाम पर प्रश्रय दिया है। मैं कई बार आपकी पुस्तक लेकर पढ़ने बैठा, पर बारबार आपकी रुचि से मेरा मस्तिष्क भन्ना गया और प्रयत्न करके भी पुस्तक पूरी न कर सका। आप सुधारक हैं बड़े, पर उग्र। आपने प्राचीन पौराणिक नायकों का हमारी भावना के विपरीत, पर कलात्मक और सुन्दर चित्रण किया है। आप समाज में अराजकता के प्रचारक हैं। विवाह के, पातिव्रत्य के प्रबल शत्रु, बन्धन-हीन प्रेम के प्रचारक।



फिर भी आपका व्यंग तीर की तरह कहीं-कहीं पर घाव करता है, पाठक छटपटा जाता है। बहुत अंशों में आप 'उग्र' के अनुरूप हैं। पर, अश्लीलता में उनसे भी कहीं आगे बढ़ गये हैं। आपका तर्क अकाट्य होता है। आपके कई उपन्यास, नाटक, कथासंग्रह प्रकाशित हुए हैं—जिनमें 'शशिरेखा', 'दैव भिच्चिन भार्या' आदि प्रसिद्ध हैं।

(५) श्रीपाद सुब्रह्मण्यम् शास्त्री—आप "प्रबुद्ध-आन्ध्र"-नामक मासिक के सम्पादक हैं। आपने बहुत-सी कहानियाँ लिखी हैं। लोगों ने पसन्द भी की हैं। शैली सुन्दर होती है। कथोपकथन अच्छा। पर, कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक। आपकी सब कहानियाँ समाज-सुधार को लक्ष्य में रखकर लिखी गई हैं। आप आन्ध्रत्व के बड़े अभिमानी और पोषक हैं। आपकी कहानियों में वैचित्र्य कुछ भी नहीं होता। आपकी कहानियों में से यदि विधवा और उसका पतन—हटा दिया जाय तो और कुछ न बचेगा। कला भी श्रेष्ठ नहीं। साधारण श्रेणी के लेखक हैं।

(६) ताता कृष्णमूर्ति B. A. B. L.—आपकी कहानियाँ भी मुनिमाणिक्यं नरसिंहाराव की तरह ही पारिवारिक जीवन का चित्र होती हैं। आप अच्छी रुचि के लेखक हैं। 'रामप्रिया' नाम से आपकी कथाओं का संग्रह भी प्रकाशित हुआ है।

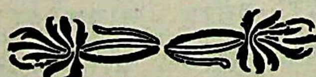
(७) वेलूरि शिवराम शास्त्री—आप तेलुगू के बड़े पंडित और लेखक हैं। यद्यपि आपमें कहानीकार की मौलिकता कम है, फिर भी आपकी रुचि परिमार्जित है। आप परिश्रम से कहानि[यां] लिखते हैं। आपकी कहानियों में मुझे 'पीतल क[ा] दरवाज़ा' और 'डिप्रेशन-चंवू' बहुत पसंद आई[ं]।

(८) श्री टी० शिवशंकर शास्त्री—आ[प] तेलुगू के आधुनिक साहित्यकारों के गुरु हैं। आ[प] ही 'साहिति-समिति' के सभापति तथा 'साहि[ति]' तथा 'सखि' पत्रिकाओं के संपादक थे (अब [वे] पत्रिकाएँ नहीं हैं)। उन पत्रिकाओं का प्रत्[ये]क उज्ज्वल रत्नों से भरा है।

आपने भी इधर 'नीलकंठ कथलु' नाम से कु[छ] कहानियाँ लिखी थीं। पर, जैसे सफल कवि आ[प] हैं, वैसे सफल कथाकार नहीं। आप बहुत-[सी] पुस्तकों के लेखक और अनुवादक हैं। हिन्दी [के] प्रति आपकी बड़ी सहानुभूति है।

(९) कविकोंडल वेंकटराव—आपकी कहा[-] नियाँ भी सुन्दर होती हैं। आप ही ऐसे कथाका[र] हैं, जो सहानुभूति के साथ मज़दूरों और कृषको[ं] का चित्रण करते हैं। कृषक-जीवन का बड़ा [ही] सुन्दर चित्र खींचा है आपने।

ऊपर के गल्प-लेखकों के सिवा और भी बहु[त] से अच्छे-अच्छे लेखक हैं, जिनमें सर्वश्री मुद्दकृष्ण, वेंपटि नागभूषणम्' बोड्डु वापिराजु विश्वनाथ सत्यनारायण चलं तथा श्रीमती कनुपर्ति वरलक्ष्मम्मा देवी का नाम लिया जा सकता है। बहुत-[से] लेखकों का परिचय मैं नहीं दे सका, तथा जिनका परिचय दिया है, उनमें बहुत-सी बातें अगर मतभेदवाली निकलें तो पाठक मेरी अल्पज्ञता जानकर क्षमा करेंगे।



कहानी का शीर्षक

श्री० अज़हरअली फ़ारूक़ी मौलवी फ़ाज़िल (पंजाब), फ़ाज़िल अदब (इलाहाबाद), दबीर कामिल (लखनऊ)

कहानी स्वयं जितनी आकर्षक होती है, उससे कहीं अधिक उसके भाग होते हैं। उसके भिन्न-भिन्न भाग उस समय तक आकर्षक और प्रभावित करनेवाले नहीं बन सकते, जब तक कहानी-कला की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों पर ध्यान न दिया जाय। जो पाठक कहानी-कला की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को जानते हैं, वे ही कहानी की अच्छाई और बुराई को पहचान सकते हैं। कहानी-लेखक भी इन्हीं लोगों को प्रसन्न और संतुष्ट करने की चेष्टा करता है, और वह अपनी इस चेष्टा में जितना ही अधिक सफल होता है, उतना ही उसे गौरव प्राप्त होता है, और वह कह सकता है कि उसने कहानी-कला के नियमों का पूरा-पूरा पालन किया है। किन्तु कहानी का प्रारम्भ—उसका शीर्षक—ऐसी चीज़ है, जहाँ पर उसकी सारी कला समाप्त हो जाती है। कहानी की आत्मा और उसकी कलात्मक सुन्दरता पर जान देनेवाले शीर्षक पर ध्यान दिये बिना कहानी पढ़ना प्रारम्भ कर देते हैं; और वे केवल यही देखते हैं कि उसका लेखक कौन है। किन्तु साधारणतया वे लोग, जो कहानी को केवल मनोरंजन के लिए पढ़ते हैं और अपने उस समय को, जिसे उन्होंने मनोरंजन के लिए निश्चित किया है, बरबाद होते नहीं देख सकते, किसी अनाकर्षक कहानी को पढ़ने के लिए कदापि तैयार नहीं हो सकते। इसलिए वे तुरन्त कहानी के शीर्षक पर दृष्टि डालते हैं। यदि शीर्षक तनिक भी आकर्षक और मनोरंजक हुआ तो उन्होंने कहानी पढ़ना प्रारम्भ कर दिया; अब चाहे वे अपनी आशा में सफल हों या असफल, किन्तु कहानी-लेखक ने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया। जो मनुष्य केवल मनोरंजन की खोज में निकला था, उसे लेखक ने ऐसा जादू-भरा सौन्दर्य दिखलाया कि वह मंत्र-मुग्ध हो गया। शीर्षक के पढ़ने के बाद पाठक के हृदय में जो उमंग उत्पन्न होती है, कलाकार कहानी में उसी का चित्रण करने चलता है। इसी लिए हम कहानी के शीर्षक को अच्छी या बुरी कहानी का माप-दण्ड कभी नहीं बना सकते।

अब तक प्रायः कहानी के शीर्षक का यही माप-दण्ड रहा है, किन्तु अब समय के परिवर्तन के साथ इसमें भी परिवर्तन होता जा रहा है। कहानी-लेखकों को शीर्षक लिखने के पहले कहानी के ध्येय पर ध्यान देना चाहिए और सम्पूर्ण कहानी से पाठक पर जो प्रभाव डालना हो, उसे दृष्टि में रखकर शीर्षक रखना चाहिए। कुछ कहानी-लेखक कहानी लिखने के पहले ही शीर्षक लिख लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वे कहानी लिखते



समय सदा उसी शीर्षक पर ध्यान देते हैं। इस प्रकार उनकी कहानी की धारा, उसकी कथावस्तु की स्वाभाविकता और पात्रों के कार्य के स्वाभाविक क्रमादि में दोष आ जाता है। कहानी के लिए प्रभाव का ऐक्य (Unity of impression) और केन्द्रीयता (Concentration), ये दो वस्तुएँ बहुत आवश्यक हैं।

इन बातों को दृष्टि में रखने के बाद कहानी-लेखक के लिए शीर्षक लिखने के बहुत-से ढंग हैं। कहानी समाप्त कर लेने पर मस्तिष्क पर थोड़ा-सा भी ज़ोर देने से एक से एक अच्छे शीर्षक दृष्टि में आते जायँगे। कहानी लिखने के पश्चात् यदि कोई लेखक थोड़ी देर के लिए कवित्वमय अथवा रोमांटिक बन जाय और अपनी कल्पना की उड़ान से कुछ सहायता ले तो शीर्षकों की कमी नहीं। वह कभी अपनी कहानी का शीर्षक 'अरमानों की समाधि', 'प्रेम का पुजारी', 'प्रेमी की चिता' रख सकता है और कभी 'उषा की होली', 'आँचल का दूध', 'पहला पाप', और 'कल्पना' रख सकता है।

सम्भव है कि कहानी को सार्थक बनाने के लिए यह पद्यात्मक शैली पसन्द न की जाय, इसलिए यदि केवल एक बात पर ध्यान दिया जाय तो फिर किसी और नियम अथवा शैली के जानने की आवश्यकता नहीं रह जाती। वह यह है कि कहानी का शीर्षक सांकेतिक (Suggestive) होना चाहिए।

प्रायः यह सम्भव है कि इस अवसर पर नवीन लेखक सांकेतिकता के उस धोखे में फँस जायँ, जो सुन्दर कलाओं (Fine arts) के प्रत्येक अंग की सर्वोत्तम सुन्दरता समझी जाती है। कविता, कहानी-कला, चित्रकला और इसी प्रकार की अन्य कलाओं को देखने और सुनने के पश्चात् हम इस बात को उनकी बड़ी सुन्दरता समझते हैं कि कलाकार ने उनमें कुछ ऐसी सूक्ष्म बातें रख दी हैं, जिनको देखकर हमारी कल्पना (Imagination) आपसे आप काम करने लगती है और हम जितना अधिक सोचते हैं, उतना ही अधिक आकर्षण और उतनी ही विशेष सुन्दरता हमको ज्ञात होती हैं। कहानी के शीर्षक में यह नियम काम में नहीं लाया जा सकता। कारण, सफल कहानी की सबसे बड़ी सुन्दरता यह है कि वह पाठक को यथा-शक्ति असमंजस में रक्खे और उसकी उत्सुकता को बराबर बढ़ाती रहे। यदि कहानी का शीर्षक इस प्रकार का हो, जो उसके परिणाम पर ऐसा प्रकाश डाले, जिससे कहानी पढ़ने की उत्सुकता में कमी आ जाय तो यह उसकी सुन्दरता नहीं, प्रत्युत एक बड़ा भारी दोष है। अतः यह जानना आवश्यक है कि कहानी के शीर्षक में सांकेतिकता (Suggestivity) का अर्थ बिल्कुल अलग है। उसका ध्येय केवल यही है कि शीर्षक ऐसा होना चाहिए कि जब कहानी पढ़नेवाला उसे समाप्त कर चुके तो यह समझे कि वह शीर्षक इस कहानी के लिए यदि सबसे अच्छा नहीं, तो कम से कम बहुत अच्छा तो अवश्य है। इसलिए शीर्षक लिखते समय हमको निम्न-लिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए। पहली बात जो कहानी का आधार (Base) है, वह उसका मन्तव्य (Motive) है अर्थात् यह कौन-सी ऐसी वस्तु है, जिसने कहानी-लेखक को वह कहानी लिखने को बाध्य किया है। यह पहला प्रश्न है, जो हमारे मस्तिष्क में उठता है। श्रीप्रेमचन्दजी और श्रीसुदर्शन की कहानियों के शीर्षक प्रायः उनके उद्देश्य (Motive) से प्राप्त किये गये हैं। उदाहरणार्थ कर्मों का फल, अन्धेर, ममता, त्रियाचरित्र और महातीर्थ इत्यादि। इनके पढ़ने के पश्चात्, यदि हम इनके शीर्षकों पर ध्यान दें तो परिणाम यही निकलेगा कि निस्सन्देह यही शीर्षक इन कहानियों के लिए सबसे अधिक उचित (Fit) हैं।

कभी-कभी कहानी-लेखक अपनी कहानी का शीर्षक केवल उस भाव के आधार पर रखता है, जिसको उसने अपनी कहानी में प्रकट किया है।

कहीं प्रेम का भाव दिखाया गया है तो उसका शीर्षक 'प्रेम,' 'प्रेम की जीत,' 'प्रेमी का त्याग,' 'प्रेम की भेंट,' 'प्रेमकी धारा,' 'प्रेम-गंगा,' इत्यादि रख दिया जाता है। यदि कहीं त्याग कहानी का ध्येय है तो सरलता से 'त्याग' ही शीर्षक रख दिया जाता है। इसी प्रकार घृणा, स्पर्द्धा, शोक, क्रोध इत्यादि भावनाओं पर यदि कथा-वस्तु निर्भर हो तो इसी प्रकार के शीर्षक अच्छे समझे जाते हैं।

बहुधा कहानी-लेखक कहानियों के शीर्षक उनके उन पात्रों को भी बनाते हैं, जिन्होंने कहानियों की कथावस्तु और उनके आरोह (Climax) में सबसे अधिक भाग लिया है। इस प्रकार के उदाहरण बहुत-से मिलेंगे, जहाँ या तो उस पात्र के किसी विशेष कार्य का नाम अथवा उसके किसी विशेष गुण का नाम, जो कहानी की कथावस्तु में सबसे अधिक प्रभाव डालता है, शीर्षक के रूप में रख दिया जाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कहानी के मुख्य पात्र के उस गौरव अथवा अधिकार को, जो उसे समाज में प्राप्त होते हैं, रख दिया जाता है।

प्रथम प्रकार की कहानियाँ, जिनमें केवल नाम शीर्षकरूप में लिखे जाते हैं, दो प्रकार की हैं—(१) वे शीर्षक, जो किसी क्लासिकल (Classical) या रोमान्टिक (Romantic) कहानी से लिये गये हैं। उदाहरणार्थ प्रेमचन्दजी की "रानी सारन्धा"।

(२) वह शीर्षक, जिनमें स्थानीय रंग की झलक दिखाई पड़ती है या जो अन्य भाषाओं के अनुवाद मात्र हैं, जैसे ग़बन, शतरंज के खिलाड़ी आदि। वे तो वे नाम हैं, जिनके नायक (Hero) के किसी विशेष गुण का नाम नहीं लिया गया है, और इस प्रकार के शीर्षक कम हैं। ऐसी कहानी के शीर्षक जहाँ किसी विशेष गुण का वर्णन किया गया है, अधिक हैं। ऐसे शीर्षक सांकेतिक (Suggestive) भी होते हैं, उदाहरणार्थ 'गुदड़ी में लाल', 'मेवाड़ का मोती' इत्यादि

कुछ शीर्षक ऐसे भी होते हैं, जो कहानी की किसी विशेष घटना की ओर संकेत करते हैं और पाठक समझ लेता है कि इस कहानी में क्या है। यही कारण है कि ऐसे शीर्षक पसन्द नहीं किये जाते। किन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं, जो कहानियों को ललित और मनोहर बना देती हैं। उदाहरणार्थ कुछ ऐसे शीर्षक ये हैं 'खोया चन्द्रहार', 'चोर का धन', इत्यादि। ये ऐसे शीर्षक हैं, जो कहानी की किसी घटना को तो अवश्य प्रकट करते हैं, परन्तु उनमें ऐसा सौन्दर्य है कि वे पाठकों को उत्सुक बनाये रहते हैं। पाठक खोया चन्द्रहार नाम की कहानी को इसलिए पढ़ता जाता है कि वह उस चन्द्रहार के खोये जाने को विशेष रूप में देखे।

कुछ कहानियों के शीर्षक ऐसे होते हैं कि न तो उनसे कथावस्तु की प्रकृति (Nature) का ही पता चलता है और न यही कहा जा सकता है कि उनमें कहानी की किसी अन्य कला की पूर्ति की गई है। उनका सम्बन्ध सीधे Setting से होता है अर्थात् सामञ्जस्य से रहता है। उनके शीर्षक पढ़ने से पाठक समझ सकता है कि घटनाएँ किसी वातावरण (Atmosphere) से सम्बन्ध रखती हैं। यदि उसको उस प्रकार की घटनाओं में आनन्द आता होगा तो वह उनको पढ़ेगा, अन्यथा शीर्षक को समझकर वह कहानी को छोड़ देगा। उदाहरण के लिए प्रेमचन्दजी की कहानियाँ लीजिए। वे प्रायः ग्राम्य जीवन के चित्रों से परिपूर्ण होती हैं। यह बात अधिकतर उनके शीर्षक से ही ज्ञात हो जाती है। यह सांकेतिकता का एक सुन्दर उदाहरण है।

कुछ कहानियों के शीर्षक उस समय अथवा उस क्षण से सम्बन्ध रखते हैं, जिसमें कोई प्रसिद्ध घटना हुई हो। इस प्रकार के शीर्षक कभी रोमान्टिक होते हैं, और कभी जोश से भरे हुए। पर इनके लिए सांकेतिक होना भी आवश्यक है। उदाहरण के लिए दो शीर्षक लीजिए, 'काशी से पटना' और



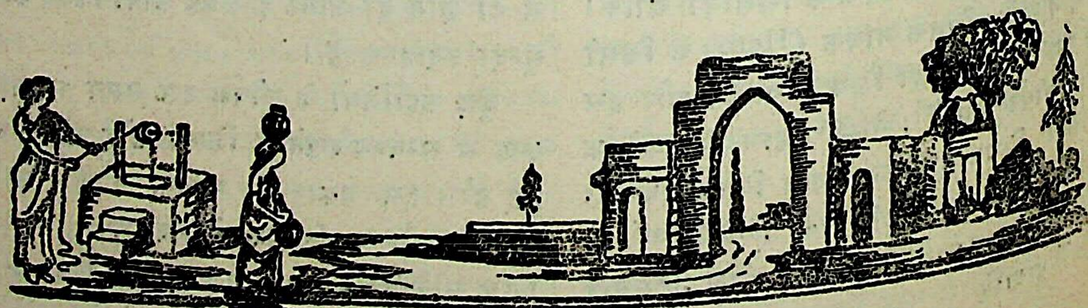
'सुहाग की रात' । प्रथम शीर्षक आनन्द-प्रदायक अवश्य है, परन्तु उसे देखने से मालूम होता है कि उसमें कोई साधारण घटना वर्णित है । दूसरा शीर्षक रोमान्टिक, प्रसिद्ध और उपदेश उपस्थित करनेवाली किसी घटना की कल्पना हमारे सम्मुख उपस्थित करता है ।

बहुत-से कहानी-लेखक अपनी कहानियों के शीर्षक उनके परिणाम पर रखते हैं । कहानी जिस विशेष घटना पर समाप्त होती है, उसका वर्णन शीर्षक में होता है । उदाहरणार्थ 'हरिजन का उपहार', 'चित्रकार की मौत' आदि । इस प्रकार की कहानी पढ़ने के पहले ही हम उनका परिणाम जान जाते हैं, अतएव बड़ी बेचैनी से उसके तह (Bottom) तक पहुँचने की चेष्टा करते हैं ।

ऐसे शीर्षक भी पसन्द किये जाते हैं, जिनकी स्थापना (Foundation) कहानी की मानसिक स्थिति (Mood) अथवा सार-तत्त्व (Spirit) पर हो । कुछ कहानियों के शीर्षक में दुःख और शोकावेग होता है, कुछ में प्रसन्नता और आनन्द । इस प्रकार की कुछ कहानियों में यदि दुःख और रंज ही हो अथवा केवल आनन्द और प्रसन्नता ही हो तो बहुत अच्छा होता है । इससे कहानी-लेखक का झुकाव (Inclination) ज्ञात हो जाता है ।

आज के दिन प्रत्येक देश और जाति के लिए प्रत्येक समय कोई न कोई सामाजिक अथवा राजनीतिक आन्दोलन ऐसा होता है, जिसको कम से कम प्रत्येक व्यक्ति अपने विशेष दृष्टिकोण से देखने की चेष्टा करता है । उस समय की कहानियों पर समाज के आन्दोलन का प्रभाव अवश्य पड़ता है । इसलिए ऐसे काल में कहानी-लेखक को चाहिए कि वह अपनी कहानी का शीर्षक ऐसा बनावे, जो उसी आन्दोलन से सम्बन्धित विषयों पर प्रकाश डाले और जनता उसके शीर्षक को पढ़कर कहानी पढ़ने को बाध्य हो जाय । उदाहरणार्थ भारतवर्ष में ये कहानियाँ निकलती हैं—'हरिजन - बाला', 'अछूत' और 'सत्याग्रह' आदि ।

ये और इसी प्रकार के अन्य नियम हैं, जिनकी सहायता से कहानियों के शीर्षक बनाये जा सकते हैं । किन्तु कहानी-लेखक को निम्न बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है—(१) चूँकि शीर्षक का ध्येय पाठक को कहानी की ओर आकर्षित करना है, इसलिए शीर्षक में कोई मनोहारिता न हो तो कोई ख़राबी भी नहीं होनी चाहिए । (२) वर्णनात्मक दार्शनिक, लम्बी और अकाव्यात्मक कहानियों में ये शीर्षक कभी पसन्द नहीं किये जा सकते । (३) कहानी-लेखक सदा यह बात अपनी दृष्टि में रक्खे कि शीर्षक सांकेतिक (Suggestire) हों । इसके पश्चात् वह अपनी कहानी का शीर्षक रोमांटिक, क्लासिकल, काव्यात्मक, यथार्थवादात्मक (Realistic) आदि भी बना सकता है ।



हमारे नये सम्राट् तथा सम्राज्ञी

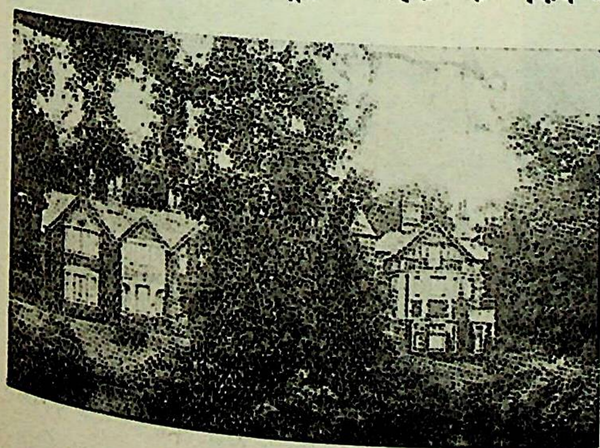
श्रीलक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज एम्० ए०

'माधुरी' के गताङ्क में हमने भूतपूर्व सम्राट् एडवर्ड अष्टम के सिंहासन-त्याग की कहानी वर्णन की थी। वर्तमान लेख में उनके बाद ब्रिटेन के सिंहासन पर आरूढ़ होनेवाले सम्राट् जार्ज तथा सम्राज्ञी एलिज़ाबेथ के विषय में ज्ञातव्य बातों का वर्णन किया जायगा। राजा अथवा सम्राट् का व्यक्तित्व असाधारण पद पर होने के ही कारण असाधारण क़रार दिया जाता है, चाहे उसके व्यक्तित्व में असाधारण गुणों का समावेश हो या न हो। इसी कारण सर्वसाधारण में अपने राजा या सम्राट् के विषय में जानने की उत्सुकता भी बनी रहती है।

जन्म तथा शैशव

सम्राट् जार्ज का पूरा नाम है—एलबर्ट फ़्रेडरिक आर्थर जार्ज। इनका जन्म सेन्ड्रिङ्घम महल के यार्क-काटेज-नामक स्थान में १४ दिसम्बर सन् १८९५ ईसवी को हुआ था। आप अपने बड़े भाई एडवर्ड (वर्तमान ड्यूक आफ़ विंडसर) से आयु में १८ महीने छोटे हैं और अपनी बहन मेरी से १६ महीने बड़े। जब इनका जन्म हुआ था, उस समय महारानी विक्टोरिया जीवित थीं। उस समय इनको राजकुमार एलबर्ट के नाम से पुकारा जाता था। महारानी विक्टोरिया की मृत्यु के समय राजकुमार एलबर्ट की अवस्था पाँच वर्ष की थी।

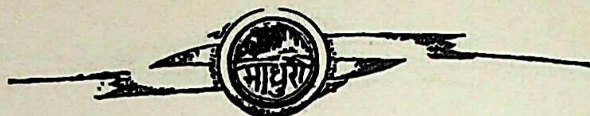
आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने बड़े भाई के साथ घर पर ही हुई। पहले राजकुमारों की शिक्षा का कार्य मिसेज़ बिल के सुपुर्द हुआ और फिर इस पद पर मिस्टर एच० पी० हेन्सेल नियुक्त किये गये। राजकुमारों की शिक्षा अँगरेज़ी राज-



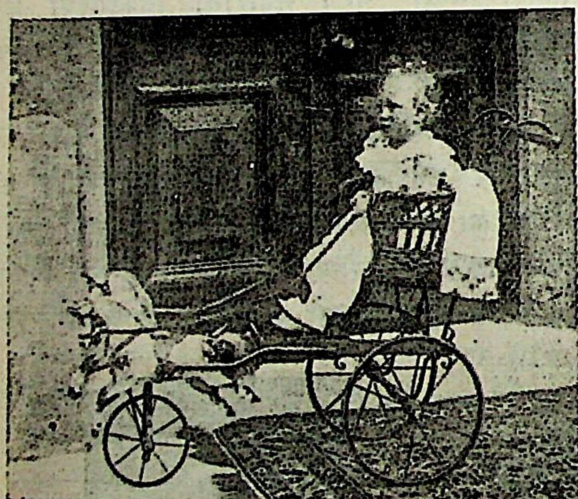
यार्क-कॉटेज
सम्राट् का जन्म-स्थान



सम्राट १ वर्ष की आयु में



घराने के उपयुक्त ही हुई। इसी समय सम्राट् को विभिन्न प्रकार के खेल भी सिखाये गये। सम्राट् पढ़ने और खेलने, दोनों में ख़ूब परिश्रम करते थे। देहात और समुद्र-तट के स्थानों में आपका मन विशेष रूप से लगता था। ग्राम के अन्य बच्चों के साथ विविध खेल खेलने में उन दिनों सम्राट् की बड़ी रुचि रहती थी। फुटबाल, क्रिकेट, गोल्फ़, निशानेबाज़ी तथा घोड़े की सवारी आदि करने में सम्राट् थोड़े ही समय में काफ़ी निपुण हो गये। साथ ही आपको मछली का शिकार करने की शिक्षा भी उन्हीं दिनों में दी गई। इस प्रकार सम्राट् के जीवन के पहले कुछ वर्ष—उनकी बाल्यावस्था—पढ़ने-लिखने और खेल-कूद में व्यतीत हुई, और बड़ी सावधानी तथा तत्परता के साथ उन्हें अपने भावी जीवन के महान् उत्तरदायित्व को सफलतापूर्वक निभाने के योग्य बनाया गया।



सम्राट् बाल्यावस्था में

होते-होते इस समय तक सम्राट् की अवस्था भी १३ वर्ष के निकट पहुँच गई और अब—१४ वर्ष के लगते ही—उन्हें जहाज़ी शिक्षा दिलाने की बात सोची गई।

जहाज़ी शिक्षा

सम्राट् जार्ज पंचम के ही काल से राजघराने के राजकुमारों को जहाज़ी विद्या से बड़ी रुचि रही है। सम्राट् जार्ज पंचम के विषय में तो, उनकी इस रुचि के कारण ही, कहा जाता है कि यदि वे सम्राट् न होते तो 'मल्लाह' ही बनते। इसीलिए उन्हें 'मल्लाह राजा' (Sailor Monarch) के नाम से पुकारा जाता था। पिता की भाँति पुत्र को भी जहाज़ चलाने की कला से बड़ा प्रेम है। इस कला की शिक्षा भी आपने भली भाँति प्राप्त की है और वह भी जहाज़ के एक छोटे-से कर्मचारी के पद से प्रारम्भ करके। इस विद्या को प्राप्त करने के लिए आपको आसबोर्न के जहाज़ी शिक्षा के विद्यालय में भर्ती कराया गया। आपका नाम जल-सैनिकों की नवसिखुओं की श्रेणी में लिखाया गया और वहाँ २ वर्ष तक आपने बड़े परिश्रम के साथ कार्य किया। फिर आपको डार्टमाउथ भेज दिया गया और वहाँ



सम्राट् कैडेट की पोशाक में

भी आपने दो वर्ष रहकर बड़ी लगन के साथ जहाज़ी विद्या के साथ ही साथ भौतिक विज्ञान, विद्युत्, इंजीनियरी, जहाज़-संचालन-कला का विकास और उसके इतिहास आदि विषयों का गम्भीर अध्ययन किया। सन् १९१२ में आपको 'कम्बरलैंड' जहाज़ पर काम सीखने के लिए—जहाज़-संचालन की कला का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त



करने के लिए भेजा गया। यहाँ कुछ दिन रहने के उपरान्त आप 'कोलिंगवुड' जहाज़ पर मिडशिपमेन (Midshipman) की हैसियत से भेजे गये। यहाँ सम्राट् को जहाज़ के अन्य कर्मचारियों की भाँति हीं बड़ा कठिन जीवन व्यतीत करना पड़ा। वास्तव में यह अँगरेज़ जाति का गुण है कि सार्वजनिक सेवा के समय वे अपने अन्दर से छोटे-बड़े का भेद भुला देते हैं। छोटा हो या बड़ा—राजकुमार हो या मज़दूर-पुत्र—जिसके लिए जो कर्तव्य निश्चित कर दिया गया है, वह उसे अवश्य करना पड़ेगा। फिर उसके करने मात्र से ही काम न चलेगा, उस समय उसके साथ किसी प्रकार की रियायत न की जायगी और न उसे विशेष सुविधा देकर उसके कार्य को सरल बनाने की चेष्टा की जायगी। यह ठीक भी है, भला 'खेलत में को काको गोसइयाँ !'

एक मनोरंजक घटना

हाँ, तो सम्राट् भी अन्य कर्मचारियों की भाँति ही इस जहाज़ पर कठिन कार्य करते और साधारण जीवन व्यतीत करते थे। उन दिनों की उनकी दिन-चर्या कुछ इस प्रकार थी—प्रातःकाल उठकर ६ बजे तक तैयार हो जाना पड़ता था। खाने-पीने के लिए केवल एक प्याला कोको का उस समय उन्हें मिल जाता था। इसके बाद उन्हें तुरन्त अपने कार्य पर चला जाना होता था और वहाँ जाकर दिनभर कड़ा काम करना पड़ता था। भोजन जो मिलता था, वह भी बड़ा ही साधारण—ग़रीब मज़दूरों का-सा, जिसमें साधारणतया ये चीज़ें होती थीं—रोटी, पनीर, प्याज़ और थोड़ी-सी जौ की शराब। पाठक, ज़रा विश्व के महान् सम्राट् की सन्तान की इस ख़ूराक का मुक़ाबला भारतीय रजवाड़ों के पुत्रों के भोजन से कीजिए। कहाँ छोटे-छोटे रजवाड़ों के पुत्रों के जीवन की यह दशा और कहाँ ऐसे सम्राट् के पुत्र का, जिसके साम्राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता, ऐसा कठोर जीवन और ऐसा रूखा-सूखा भोजन !

कहते हैं कि जिस समय सम्राट् के पिता (स्वर्गीय जार्ज पंचम) जहाज़ी काम सीखा करते थे तो एक बार वे साधारण कर्मचारी की भाँति जहाज़ में कोयला झोंकने का कार्य कर रहे थे। उसी समय किसी अन्य देश का कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति जहाज़ का निरीक्षण करने आया था। उस समय सम्राट् का वेप तथा उनके वस्त्र आदि सभी इस क़दर साधारण हैसियत के थे कि वह परदेशी उन्हें पहचान भी न सका। बाद में जब उसे पता चला कि महारानी विक्टोरिया के पौत्र वे ही थे, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। ऐसी ही एक घटना वर्तमान सम्राट् के साथ भी हुई। यह उन्हीं दिनों की बात थी, जबकि आप कोलिंगवुड जहाज़ पर काम करते थे। योरप में विगत महायुद्ध छिड़ा हुआ था। स्वर्गीय सम्राट् जार्ज पंचम युद्ध की दशा से अपने आपको परिचित करने के लिए जहाज़ों तथा सेनाओं का निरीक्षण करते फिरते थे। इसी सम्बन्ध में वे एक दिन कोलिंगवुड जहाज़ को भी देखने के लिए चले आये। अतः सब कर्मचारी क़तार बाँधकर सम्राट् के निरीक्षण के लिए खड़े किये गये। राजकुमार का पद बड़ा छोटा था और इसलिए वे सबसे अंतिम पंक्ति में अपनी श्रेणी के लोगों के साथ खड़े थे। जब सम्राट् सब लोगों की सलामी ले चुके तो बड़ी देर बाद राजकुमार एलबर्ट का भी नम्बर आया। ज्यों ही सम्राट् उनके निकट आये, राजकुमार ने नियमानुसार अपनी एड़ियों की आवाज़ के साथ सम्राट् को सलामी दी और अपना कर्त्तव्य समाप्त किया। सम्राट् भी सलामी को स्वीकार करते हुए आगे बढ़े। न उस समय पिता ने पुत्र से कुछ कहा और न पुत्र ने ही पिता से—यद्यपि दोनों को एक-दूसरे से अलग हुए काफ़ी समय व्यतीत हो चुका था। पिता की उस समय पुत्र के लिए तथा पुत्र की पिता के प्रति, ऐसे दीर्घ काल के बाद मिलने पर, क्या भावनाएँ हो सकती हैं, इसका संतानवान् व्यक्ति बड़ी आसानी से अनुमान कर सकता है। पर उस समय पिता-पुत्र का

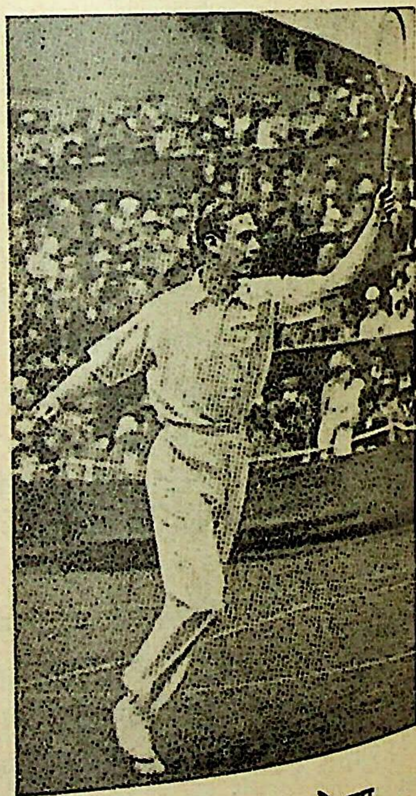
नाता न था, वहाँ तो सम्बन्ध था—सम्राट् और जहाज़ी सैनिक का।

महासमर-सम्बन्धी सेवाएँ

पाठकों में से बहुतों को पता होगा कि सम्राट् जार्ज छठे को आँतों के फोड़े का रोग बार-बार परेशान करनेवाला और उन्हें रोग-शय्या पर सीमित करनेवाला रहा है। उधर तो महासमर ज़ोरों से छिड़ा हुआ था और राजकुमार एलबर्ट की यह उत्कट अभिलाषा थी कि वह युद्ध में ठोस सेवा करके यश प्राप्त करें और उधर यह भयानक रोग बार-बार उठ खड़ा होता था, जिससे सम्राट् को महायुद्ध के दिनों में कई बार अवकाश लेकर अस्पताल की शरण लेनी पड़ी। इन्हीं दिनों आपके फोड़े का आपरेशन भी किया गया और आप पुनः लड़ाई पर चले गये, किन्तु कुछ समय बाद आप फिर बीमार होकर स्वदेश लौट आये। इलाज कराने के बाद स्वस्थ होकर सम्राट् फिर युद्धभूमि में आ पहुँचे। ज़टलैंड की सुप्रसिद्ध लड़ाई के समय आप मौजूद थे। इस अवसर पर आपने जिस धैर्य और वीरता का प्रदर्शन किया, वह सराहनीय थी। उस समय के युद्ध-सम्बन्धी सरकारी पत्रों में आपके इन गुणों की प्रशंसा का उल्लेख किया गया है। युद्ध-काल में आप तीसरी बार फिर बीमार पड़े और घर लौट गये। जब आप स्वास्थ्य लाभ कर इस बार फिर लौटे तो आपने अपना नाम हवाई सेना में लिखा लिया; क्योंकि उधर से ऐसे व्यक्तियों की बड़ी माँग थी, जो योग्यतापूर्वक हवाई सेना में काम कर सकें। कुछ दिनों तक इस प्रकार आप हवाई सेना में कार्य करते रहे। होते-होते सन् १९१८ आ पहुँचा और उसी वर्ष योरपीय महासमर के अन्त की घोषणा हुई। युद्ध समाप्त होने पर कुछ दिनों तक आपने हवाई सेना में और काम किया और बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की। हवाई सेना के अधिकारियों ने आपको शनैः-शनैः विंग-कमान्डर के उच्च पद तक पहुँचा दिया। महायुद्ध के बाद सैनिक कार्यवाहियाँ शान्त-सी हो गईं—युद्ध के बादलों के हट जाने से शान्ति का प्रकाश चमकना प्रारम्भ हो गया। अतः सम्राट् ने भी सेना से त्यागपत्र देकर घर लौट चलना ही उचित समझा।

ट्रिनिटी-कालेज में

सन्धि के पश्चात् समाचार-पत्रों ने एकमत होकर सम्मति प्रकट की कि महायुद्ध के कारण जिन युवकों की शिक्षा-प्राप्ति में बाधा पहुँची थी, वे फिर से अपनी शिक्षा पूरी करने के लिए विश्व-विद्यालयों और कालेजों में भर्ती हो जायँ। यह निश्चय था भी बड़ा विवेकपूर्ण। अतः अनेक युवकों ने विभिन्न विश्वविद्यालयों में अपना नाम लिखा लिया और वे पुनः रणचण्डी की सेवा छोड़ सरस्वती माता के चरणों में बैठ गये। सम्राट् ने भी कैम्ब्रिज-विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी-कालेज में अपने पठनक्रम को पुनः शुरू किया। यह तब



सम्राट् टेनिस खेलते हुए

१९१९ की बात है। ट्रिनिटी-कालेज में उनके साथ उनके भाई राजकुमार हेनरी (ग्लाउसेस्टर के ड्यूक) भी थे। उनके पिता ने दोनों भाइयों को कालेज के छात्रालय में न रखकर उनके लिए एक मकान किराये पर ले दिया। दोनों भाइयों के साथ वहाँ विंगकमान्डर सर लुई ग्रिग संरक्षक की हैसियत से रहते थे। दोनों भाइयों की शिक्षा का उद्देश्य डिग्री प्राप्त करने का न था, वरन् वे यह चाहते थे कि वे वहाँ रहकर उन विषयों का अध्ययन कर सकें, जिनकी सहायता की उन्हें अपने भावी जीवन में आवश्यकता थी। सम्राट् को इतिहास, अर्थशास्त्र तथा राजनीति-शास्त्र से विशेष रुचि थी। इसके अतिरिक्त उन्हें औद्योगिक प्रश्नों से भी बड़ा प्रेम था। अर्थशास्त्र और औद्योगिक समस्याओं के सम्बन्ध में आपका ज्ञान बढ़ा-चढ़ा है। सम्राट् कालेज को साधारण विद्यार्थियों की भाँति ही जाते थे। उनके पास एक बाइसिकिल थी और इसी को आप कालेज आने-जाने के काम में लाते थे। सम्राट् को दिखावट और शेख़ी पसन्द न थी। उनकी युनिवर्सिटी की पोशाक भी तड़क-भड़क की न थी। उनके साथ विश्व-विद्यालय के अधिकारियों का बर्ताव भी और विद्यार्थियों के समान ही था। सम्राट् ने एक बार अपने भाषण में कालेज छोड़ने के बाद उस घटना का वर्णन किया था, जिसके कारण उन्हें जुर्माना देना पड़ा था। बात यह थी कि एक दिन वे शहर की सड़क पर युनिवर्सिटी की पोशाक (गाउन और टोपी) पहने सिगरेट पीते हुए जा रहे थे। जब यह बात विश्व-विद्यालय के प्रोक्टर को मालूम हुई तो उन्होंने इन पर आठ पेन्स जुर्माना किया। सम्राट् ने ट्रिनिटी-कालेज में ख़ूब परिश्रम के साथ अध्ययन किया। यहीं पर उन्हें पुस्तकें एकत्रित करने का शौक़ हुआ, जिसके परिणामस्वरूप आज उनके पास एक बहुत बड़ा पुस्तकालय है, जिसमें उन विषयों पर, जिनसे कि सम्राट् को प्रेम है, उत्तमोत्तम पुस्तकों का संग्रह देखा जा सकता है। सम्राट् पुस्तकें मोल लेने के भी बड़े शौक़ीन हैं। और समय-समय पर प्रकाशित होनेवाले विविध ग्रन्थों को ख़रीद कर पढ़ते रहते हैं, जिनसे उनका ज्ञान समय से पीछे न रहने पावे।

विवाह और यात्रा

सम्राट् के जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालने के बाद अब हम उनकी जीवन-सहचरी तथा दोनों के प्रेम-सूत्र में बँध जाने की चर्चा पर आते हैं। सम्राज्ञी का पूरा नाम है—लेडी एलिज़बेथ बोज़ ल्योन। आप स्काटलैंड के एक प्रतिष्ठित जागीरदार की पुत्री हैं। आपका जन्म ४ अगस्त, १९०० ई० को हुआ था। अतः आप आयु में सम्राट् से लगभग पाँच वर्ष छोटी हैं। आप बड़ी सुन्दर और सुकुमारी हैं तथा आपकी प्रारम्भिक शिक्षा आपकी माता के चरणों पर हुई थी।

सम्राट् से आपका परिचय महायुद्ध के अंतिम वर्षों से प्रारम्भ होता है। सम्राट् उन दिनों राजकुमार एलबर्ट थे और सम्राज्ञी भी सम्राज्ञी न थीं। उन दिनों केवल एक से दूसरे की जान-पहचान हो गई थी। सम्भव है, सम्राट् के हृदय में उनके प्रति प्रेम का सूत्रपात भी तभी से हो गया हो, पर सन् १९२१ ई० में दोनों को एक दूसरे के निकट-तर आने का मौक़ा मिला। उन दिनों सम्राज्ञी की माता सख़्त बीमार थीं और राजकुमार एलबर्ट अपनी बहन मेरी के साथ उनके मेहमान बनकर उनके घर आकर ठहरे थे। माता के रोगी होने के कारण राजपरिवार के इन अतिथियों की ख़ातिरदारी का भार पुत्री—कुमारी एलिज़बेथ को अपने सिर लेना पड़ा। एक दूसरे के अधिक सम्पर्क में आने के कारण दोनों में परस्पर घनिष्ठता बढ़ती गई और उसके साथ ही साथ पारस्परिक प्रेम भी। फिर कुछ दिनों बाद ही जब राजकुमारी मेरी का विवाह हुआ तो आप वधू की सहेलियों में से एक थीं। उनकी कार्य-पटुता और सुन्दरता ने उस समय ही विशेष रूप से सम्राट् को आक-



षित किया था। सन् १९२३ ई० में आप फिर एक बार सम्राज्ञी के पिता के घर जाकर रहे और अब यह निश्चय हो गया कि दोनों का विवाह हो जायगा। स्वर्गीय सम्राट् जार्ज पंचम ने भी इसकी स्वीकृति दे दी और इसी वर्ष २६ अप्रैल को वेस्ट मिन्सटर अबे के गिरजाघर में दोनों का पाणिग्रहण-संस्कार बड़ी धूप-धाम से हो गया।

विवाह के बाद १९२४ ई० में पति-पत्नी दोनों अफ़्रीका की यात्रा करने चले गये। अनेक देश-प्रदेशों में यात्रा करने के बाद दोनों जब लन्दन में लौट आये तो उसके अगले ही वर्ष—१९२६ ई० में आपकी पुत्री राजकुमारी एलिज़बेथ का जन्म हुआ। सन् १९२७ ई० में आप दोनों ने आस्ट्रेलिया की यात्रा की। वहाँ की कामनवेल्थ-सरकार अपने नये पार्लियामेंट-भवन में अपना अधिवेशन करनेवाली थी और इस अधिवेशन के उद्घाटन के लिए आपसे प्रार्थना की गई थी। इस कार्य के लिए आप न्यूज़ीलैंड होते हुए आस्ट्रेलिया पहुँचे तो आपका बड़ा स्वागत किया गया। जब आस्ट्रेलिया की यात्रा के पश्चात् फिर राजधानी आये तो लन्दन की जनता ने आपका बड़े जोश के साथ स्वागत किया और उन्हें एक सार्वजनिक सभा में इस यात्रा की सफलता पर बधाई दी।

सम्राट् के चरित्र की कुछ विशेष बातें

अन्त में हम सम्राट् के चरित्र की कुछ उल्लेखनीय बातों का वर्णन करके अपने इस लेख को समाप्त करते हैं। सम्राट् को किसी भी प्रकार के जीवन से घृणा नहीं है। समय आने पर वे स्वयं छोटे से छोटा कार्य करने को तैयार रहते हैं। एक बार की बात बतलाई जाती है कि आप इँगलैंड के किसी सरेस के कारख़ाने को देखने के लिए गये। कारख़ाने के प्रबन्धकों ने यह तय किया कि उन्हें सरेस बनाने की वह क्रिया न दिखाई जाय, जबकि उसे पशु की अँतड़ियों से पहले-पहल की तैयारी की क्रिया में डाला जाता है। इस निश्चय का कारण यह था कि उस स्थान में बड़ी दुर्गन्ध आती है। जब आप कारख़ाने के अन्य विभाग देख चुके, तो आपने उसके प्रारम्भिक विभाग को देखने की भी इच्छा प्रकट की। लोगों ने अपना विचार जब आपके सम्मुख प्रकट किया तो आपने कहा—"मैं वहाँ अवश्य जाऊँगा। यदि वे लोग वहाँ दिन भर कार्य कर सकते हैं तो क्या मुझे वहाँ पर थोड़ी देर ठहरना भी असह्य होगा?" आप वहाँ जाकर ही माने।

बच्चों से आपको बड़ा प्रेम है। आपकी दो पुत्रियाँ हैं—कुमारी एलिज़बेथ और मार्गरेट रोज़। आप उन्हें अत्यन्त प्यार करते हैं और लड़कियाँ भी आपको अपना खेल का साथी (Playmate) समझती हैं। आप प्रतिवर्ष स्कूल के बच्चों को बुलाकर समुद्र-तट पर एक दावत दिया करते हैं। आपमें अपने बड़े भाई (ड्यूक आफ़ विन्डसर) से कुछ बातों में विशेष अन्तर है। आप थोड़े-से गम्भीर प्रकृति के पुरुष हैं। एक मनचले व्यक्ति ने आपको King George's Serious Son 'सम्राट् जार्ज का गम्भीर पुत्र'—के शब्दों से भूषित किया है। वास्तव में बात यह है कि आप किसी व्यक्ति को अपना मित्र बनाने में शीघ्रता नहीं करते। वे ऐसा करने से पूर्व उसका अध्ययन करना पसन्द करते हैं।

कहते हैं, आपकी मुस्कराहट में अपने बड़े भाई का-सा 'मोहनी मंत्र' तो नहीं है, पर आपने अपनी अध्ययनशीलता तथा अनवरत परिश्रमी स्वभाव के कारण अभी से लोगों के हृदयों पर अपनी छाप लगानी प्रारम्भ कर दी है। आपके सुखी परिवार का उल्लेख ड्यूक आफ़ विन्डसर ने अपनी अन्तिम घोषणा में किया था। हम हृदय से आपको अधिकतर सुखी बनाने की कामना करते हैं।



लेख-सूची

फ़ार्म इत्तिलानामा हस्ब दफ़ा ६ ऐक्ट जायदाद हाय मक़रूज़ा संयुक्त प्रांत

बअदालत पं० ठाकुरप्रसाद दूबे साहब बहादुर स्पेशल जज सेकेन्ड ग्रेड जौनपुर

मुक़दमा नं० १६६ सन् ३६ ई०   तारीख़ पेशी १७—४—१६३७ ई०

इश्तिहार

हरगाह एक दरख़्वास्त हस्ब दफ़ा ४ ऐक्ट जायदाद हाय मक़रूज़ा संयुक्त प्रान्त सन् १६३४ ई० (ऐक्ट २५ सन् १६३४ ई०), जैसा कि बरूय ऐक्ट ४ सन् १६३५ ई० तरमीम हुआ है।

१—रघसरनसिंह वल्द दुर्खासिंह २—दीपनरायनसिंह ३—बोधईसिंह ४—भैरोंसिंह ५—मुन्नूसिंह ६—जैनरायनसिंह सा० गौरा पट्टी परगना अंडियाहू जौनपुर की ओर से इस गरज़ से पेश हुई है कि ऐक्ट जायदाद हाय मक़रूज़ा संयुक्त प्रान्त के अहकाम उस पर लगाये जायँ।

लिहाज़ा इस तहरीर की रू से हस्ब दफ़ा ६ (१) ऐक्ट जायदाद हाय मक़रूज़ा संयुक्त प्रान्त सन् १६३४ ई० जैसा कि बरूये ऐक्ट ४ सन् १६३५ ई० तरमीम हुआ है, इत्तिला दी जाती है कि सब लोग जो सायलान मज़कूर की ज़ात या जायदाद के ख़िलाफ हर दो डिग्री किये हुए और बिना डिग्री किये हुए निज के क़र्ज़ों के मुताल्लिक़ दावे रखते हों वे गज़ट में इस इश्तिहार के छपने की तारीख़ से तीन मास के भीतर अपने दावों के मुताल्लिक़ तहरीरी बयानात उस हाकिम के सामने पेश करें जिसके दस्तख़त नीचे दिये हुए हैं। और ऐसा न करने पर हर एक दावा डिग्रीशुदा या ग़ैर डिगरीशुदा ख़िलाफ सायल मज़कूर जुमला अग़राज़ व मौरकाजात के लिए ज़ेर दफ़ा १३ ऐक्ट मज़कूर बाज़ाब्ता बेबाक़ मुतसव्विर होगा।

बहुक्म अदालत (हस्ताक्षर) मुन्सरिम

फार्म इत्तिलानामा हस्ब दफ़ा ६ ऐक्ट जायदाद हाय मक़रूज़ा संयुक्त प्रांत

बअदालत पं० ठाकुरप्रसाद दूबे साहब बहादुर स्पेशल जज सेकेन्ड ग्रेड जौनपुर

मुकदमा नम्बर ११ सन् ३७   तारीख़ पेशी २४—४—३७

इश्तिहार

हरगाह एक दरख्वास्त हस्ब दफ़ा ४ ऐक्ट जायदाद हाय मकरूजा संयुक्त प्रान्त सन् १६३४ ई० (ऐक्ट २५ सन् १६३४ ई०), जैसा कि बरूय ऐक्ट ४ सन् १६३५ ई० तर्मीम हुआ है,

१—ठा० बन्शीसिंह २—भगवानसिंह ३—रामअधारसिंह ४—रामगेनसिंह ५—दुबदारसिंह ६—जनारदनसिंह ७—भरवूलसिंह ८—मुखरामसिंह ९—राजकिशोरसिंह १०—राजपतसिंह ११—जैद्रथसिंह १२—शिवद्रथसिंह साकिनान पोखरा परगना केराकत जौनपुर की ओर से इस ग़रज़ से पेश हुई है कि ऐक्ट जायदाद हाय मकरूजा संयुक्त प्रान्त के अहकाम उस पर लगाये जायँ।

लिहाजा इस तहरीर की रू से हस्ब दफ़ा ६ (१) ऐक्ट जायदाद हाय मक़रूज़ा संयुक्त प्रान्त सन् १६३४ ई०, जैसा कि बरूय ऐक्ट ४ सन् १६३५ ई० तर्मीम हुआ है, इत्तिला दी जाती है कि सब लोग जो सायलान मज़कूर की जात या जायदाद के ख़िलाफ़ हर दो डिग्री किये हुए और बिना डिग्री किये हुए निज के करजों के मुताल्लिक दावे रखते हों वे गजट में इस इश्तिहार के छपने की तारीख़ से तीन मास के भीतर अपने दावों के मुताल्लिक तहरीरी बयानात उस हाकिम के सामने पेश करें जिसके दस्तख़त नीचे दिये हुए हैं। और ऐसा न करने पर हर एक दावा डिग्रीशुदा या ग़ैर डिग्रीशुदा ख़िलाफ सायल मजकूर जुमला अग़राज व मौरकाजात के लिये ज़ेर दफ़ा १३ ऐक्ट मजकूर बाजाब्ता बेबाक़ मुतसव्विर होगा।



शिक्षिता

[चित्रकार—श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातू]

N. K. Press, Lucknow.



सम्पादक
रूपनारायण पांडेय
प्रतिनिधि-सम्पादक (सी० पी०)—मातादीन शुक्ल

वर्ष १५, खंड २, संख्या ३, पूर्ण संख्या १७७	चैत्र	३१३ तुलसी संवत्, १९९४ वि०

परिचय

श्रीजितेन्द्रकुमार

जिसमें न सुगन्ध की मादकता
मुरझाया हुआ वह फूल हूँ मैं।
जिसका न महत्त्व ज़रा जग में
वह राह की थोड़ी-सी धूल हूँ मैं।

जिसमें भरा वेदना का जल हो
वह सिन्धु का सूना-सा कूल हूँ मैं!
जिन आँखों का फूल कभी था सखे,
उन आँखों का ही अब शूल हूँ मैं।

जिसमें न कोई झनकार रही
वह वीणा का टूटा-सा तार हूँ मैं।
अपने में लिये कितने युग से
मधु-पीड़ा का कोमल भार हूँ मैं!

ठुकरा दिया प्रीतम ने जिसको
वह हाय! उपेक्षित प्यार हूँ मैं!
अवसादों की एक कहानी हूँ आह
उमंगों की बीती बहार हूँ मैं!

अर्थ-शास्त्र की तात्त्विक रूप-रेखा

पं० रामनिवास शर्मा भू० पू० "सौरभ"-संपादक

Economics may be described as the Science which teaches us what rules mankind should observe in order to advance in material prosperity.

Pierson.

अर्थ-शास्त्र की साधारण व्याख्या

अर्थ-शास्त्र का अभिप्राय मनुष्य का दैनिक आर्थिक क्रिया-कलाप है, परन्तु इसके दो पक्ष हैं—एक अर्थ और दूसरा मनुष्य। इनमें मनुष्य मुख्य है और अर्थ गौण, और यह इसलिए कि मनुष्य की इच्छा, सुख-दुःख और सन्तोष-असन्तोष के विचार से ही अर्थ-सम्बन्धी विषयों से इसका सम्बन्ध है। किन्तु यह वैयक्तिक नहीं, अपितु सामाजिक है। सामाजिक दृष्टि से Pierson के मत से इसका अभिप्राय है—

Economics only takes into account the economic efforts of men living with other men working with others, giving in exchange for the services or goods of others their own services or the products of their own labour.

अर्थात्—अर्थ-शास्त्र उन मनुष्यों के आर्थिक परिश्रमों पर विचार करता है, जो अन्य मनुष्यों के साथ रहते हैं, काम करते हैं, और उनकी सेवा अथवा वस्तुओं के बदले में अपनी सेवाएँ और परिश्रम के फल को भी देते हैं।

अर्थ-शास्त्र की तात्त्विकता

संसार में मुख्यतः दो वस्तुएँ हैं—एक प्रकृति और दूसरा मनुष्य। प्रकृति-तत्त्व के सहारे बननेवाले विज्ञान अनेक हैं, उनमें मुख्यतः प्राकृतिक (Natural) है। वैसे ही मानवीयता से सम्बन्ध रखनेवाले शास्त्र भी अनेक हैं, उनमें मुख्यतम हैं—नैतिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और Legal (व्यवस्था-सम्बन्धी)। यद्यपि ये सब विज्ञान अपनी व्यवच्छेदकता और व्यावहारिकता के कारण विभिन्न हैं, परन्तु तत्त्वतः सब एक-ही हैं और इनमें कुछ का तो एक दूसरे के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध भी है। जैसे व्यवहार-शास्त्र (Jurisprudence) और राजनीति का आपस में एक तरह से तादात्म्य भाव ही है, वैसे ही सी० विलियम ए० के शब्दों में कर्त्तव्य-पालन, अधिकारों के लिए प्रयत्न और आवश्यकताओं की पूर्ति—इन तीन विषयों से और अर्थ-शास्त्र के साथ समधिक सम्बन्ध है, और इन



शास्त्र का तात्पर्य इन्हीं बातों का एक विचारात्मक तत्त्व है।

पियर्सन के मत से यद्यपि अर्थ-शास्त्र के अब तक अनेक नाम रहे हैं, परन्तु इसका मुख्य नाम राज-नीतिक अर्थ-शास्त्र (Political Economy) है, किन्तु अर्थ-शास्त्र का नवीनतम नाम तो सामाजिक अर्थ-शास्त्र (Social Economy) ही है। पहले में राज्य की प्रधानता थी और इस दूसरे में प्रजा और राष्ट्रीयता की। फिर यह सामाजिक अर्थ-शास्त्र भी दो प्रकार का है। एक केवल सामाजिक और दूसरा व्यावहारिक। पहला Abstract (तात्त्विक) और दूसरा Voluntary (ऐच्छिक) है। इन दोनों का अभिप्राय प्रत्यक्ष-परोक्ष-रूप से मानव-समाज के आर्थिक उद्देश्यों को उत्तमोत्तम बनाना है, किन्तु इन दोनों का सम्बन्ध मुख्यतः सामाजिक और नैतिक विज्ञानों से है।

अर्थ-शास्त्र का पारिभाषिक अर्थ

साधारण बोलचाल में "अर्थ" शब्द का तात्पर्य प्रायः सोना, चाँदी आदि समझा जाता है, परन्तु अर्थ-शास्त्र में इसका अर्थ है—वे उपयोगी वस्तुएँ, जिनसे हमारी आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। किन्तु जो वस्तुएँ श्रम-साध्य नहीं हैं और जिनका श्रम-साध्य वस्तुओं से विनिमय नहीं हो सकता, अथवा किसी भी रूप में मूल्य नहीं मिल सकता, उनकी गणना इस अर्थ में नहीं की जा सकती। डा० सी० एस्० के शब्दों में अर्थ की लाक्षणिकता में इन बातों का होना आवश्यक है—

१. उससे किसी आवश्यकता की पूर्ति होनी चाहिए।
२. वह किसी उद्यम का फल होना चाहिए।
३. वह मात्रा में ससीम होना चाहिए।
४. वह विनिमय-साध्य होना चाहिए।

"शास्त्र" शब्द का अर्थ विज्ञान है। इस विषय में विद्वानों का मत इस प्रकार है—

"यदि कोई विषय मौलिक और व्यापक नियमों का आधार हो, और कार्य-कारण की शृंखला से समन्वित भी, तो वह विज्ञान या शास्त्र कहलाता है। अर्थ-शास्त्र भी अर्थात्मक व्यापक नियमों से बँधा हुआ है। साथ ही इसमें तर्कात्मक कार्य-कारण-भाव भी पाया जाता है, इसलिए यह भी एक शास्त्र है, परन्तु है यह विवरणात्मक और विवेचनात्मक।"

अर्थ-शास्त्र का विकास

यह बात तो ठीक तरह नहीं कही जा सकती कि अर्थ-शास्त्र का प्रारम्भिक जीवन-तत्त्व कब शुरू हुआ, परन्तु यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि Traite' de Economic Politique-नामक पुस्तक, जो १६१५ ई० में प्रकाशित हुई थी, उसमें सबसे पहले Economy शब्द लिखा गया था। परन्तु उस समय इसका अभिप्राय Domestic Economy (पारिवारिक अर्थ-शास्त्र) था। इसके बाद धीरे-धीरे योरप के विभिन्न राज्यों में Economy का अभिप्राय राज्य या राष्ट्र की एकानोमी समझा जाने लगा और अब कुछ समय से तो यह विषय एक विज्ञान के रूप को धारण कर रहा है।

अर्थ-शास्त्र के वैज्ञानिक रूप का प्रारम्भ सबसे पहले अमेरिका में छठी शताब्दी में हुआ था और वहाँ यह Co-ordinate के स्थान में Composite Inco-ordinate Logical System of doctrines स्वीकार किया गया; और इसके बाद खानों और धातुओं की आर्थिकता के कारण धीरे-धीरे इसकी Mercantile System (वाणिज्यिक पद्धति) की स्थापना हुई। आठवीं सदी में Montesquieu's Spirit of Laws-नामक पुस्तक के Laws are the necessary relations resulting from the nature of things (अर्थात् "नियम वस्तुओं की प्रकृति के परिणाम-स्वरूप उनके आपस के आवश्यक सम्बन्ध हैं") इस अमर वाक्यांश ने इसको और भी अधिक विज्ञान का रूप देने में सहायता की। परन्तु १७५८ ई० में यह वस्तुतः विज्ञान मान लिया गया। किन्तु इस विषय में Tableau Economical पुस्तक से बहुत सहायता मिली, और इसके द्वारा ही



इसकी Physiocratic पद्धति की भी स्थापना हुई, जिससे व्यापार और अध्यवसाय आदि पर कृषि को विशेषता दी गई और भूमि धन का मुख्य Source (उत्पत्ति-मूल) समझी जाने लगी।

१७७६ ई० में आदम स्मिथ ने "प्राकृतिक अन्वेषण और जातीय सम्पत्ति के कारण"-नामक अपनी पुस्तक में पुराने समय के अनेक आर्थिक सिद्धान्तों के समर्थन और खंडन के साथ-साथ अपनी नई पद्धति और विचारों से काम लिया। उसने सबसे पहले Physiocratic सिद्धान्त की ख़बर ली और धन की उत्पत्ति में अध्यवसाय को उसका वैध (Legitimate) स्थान दिलाया, और प्राकृतिक अर्थ-शास्त्रीय Laws (नियमों) को वैयक्तिक कर आदि बातों को पूर्णतः दृढ़ किया तथा विकसित भी। इसकी पुस्तक का प्रभाव लगभग एक शताब्दी तक इँगलैण्ड के आर्थिक क्षेत्र में रहा और अब भी वह किसी दृष्टि से बना हुआ है।

आदम स्मिथ के बाद तीन अर्थ-शास्त्री और उत्पन्न हुए, जिन्होंने इस विषय को आगे बढ़ाया और इन तीनों का आधी सदी तक अर्थ-शास्त्रियों के मस्तिष्क पर प्रभाव रहा। पहले दो Maltpus और Ricards इँगलिश थे और तीसरा Jean Baptiste Say फ्रेंच। इनके बाद अर्थ-शास्त्र में एक ऐसा अशास्त्रीय और अनैतिक तूफ़ान आया, जो अब तक बराबर चल रहा है और अभी वर्षों तक शान्त होता नहीं दीखता।

कार्य-क्षेत्र, विभिन्न मत और अर्थ-शास्त्र

पूर्व-कथनानुसार अर्थ-शास्त्र का मुख्य अभिप्राय अर्थ-संबंधी नहीं, अपितु मनुष्य-संबंधी है; क्योंकि मानवीय उपयोगिता के उद्देश्य से ही अर्थ-शास्त्र के विविध अर्थों और विभागों की सृष्टि और इसी के सम्बन्ध से श्रम, पूँजी, खेती, राज्य, कार्यालय, यन्त्रालय आदि अर्थ-शास्त्रीय विषयों की उत्पत्ति भी हुई है। परन्तु ऐसे भी लोग हैं, जो अर्थ-शास्त्र के मानवीय होने से समस्त वैयक्तिक और सामाजिक विषयों से इसका सम्बन्ध मानते और इसीलिए आचार-शास्त्र, नीति-शास्त्र और राजनीति-शास्त्र आदि से भी इसका प्रत्यक्ष-परोक्ष सम्बन्ध समझते हैं। किन्तु इसके विरुद्ध अर्थ-शास्त्र के इतिहास में ऐसे भी विद्वान् मिलते हैं, जो केवल राष्ट्रीय मितव्ययिता से सम्बन्ध रखनेवाले कार्य-कलाप को ही इसका विशेष क्षेत्र समझते हैं। साथ ही ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है, जिनकी दृष्टि में इसके क्षेत्र निम्नलिखित संकुचित विषय ही हैं—

१. व्यवसाय-शास्त्र (Industrial)
२. धन-शास्त्र (Chrematistics)
३. स्वर्ण-शास्त्र (Chrysology)
४. कुबेर-विद्या (Plutology)
५. श्रम-शास्त्र (Ergonomy)

कुछ विद्वान् इसे Catallactics (विनिमय संबंधी विद्या) का शास्त्र भी समझते हैं। कुछ इसे जातीय अर्थ-शास्त्र भी कहते हैं। इनके अनुसार से जातीयता-सम्बन्धी प्रायः सभी बातों के साथ अर्थ-शास्त्र का सम्बन्ध है। परन्तु अर्थ-शास्त्र का सच्चा नाम और विषय-क्षेत्र तो निम्नलिखित है—

Economics is the science which treats of the phenomena arising out of the economic activities of mankind in society. अर्थात् मनुष्य के सामाजिक, किन्तु आर्थिक श्रम-जन्य घटनाओं के अन्वेषण करने की विधि का नाम अर्थ-शास्त्र है। परन्तु पियर्सन के मत से आर्थिक विषय मुख्यतः उत्पादन है। वह इस बात को इस तरह स्पष्ट करता है—

"अर्थ-शास्त्र का समस्त मामला उत्पादन पर निर्भर है। विनिमय उत्पादन से पृथक् नहीं, साथ ही विभाजन भी उसी का अंग है।" पर एक स्थान पर वह सम्पूर्ण आर्थिक सिद्धान्त और कार्य-कलाप का कारण Consumption (उपभोग) को मानता है। उसके शब्द ये हैं—



The whole theory of Economy depends upon correct theory of consumption. *

अर्थ-शास्त्र के उद्देश्य

अर्थ-शास्त्र का उद्देश्य मानव-जीवन को मुख्यतः लौकिक बातों में सहायता देना है, परन्तु अनेकों के मत से इसका उद्देश्य जीवनोपयोगी सामाजिक, नैतिक, व्यावहारिक और प्राकृतिक बातों में मनुष्य की सहायता करना है। परन्तु कुछ विद्वानों की राय से आहार-व्यवहार, केलि-क्रीड़ा, शासन आदि बातों को उत्तमता के साथ चलाना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। अनेक विद्वानों की सम्मति में टुकड़े-टुकड़े के लिए भटकनेवाली दुःखित प्रजा का दुःख दूर करना और लोगों के परिश्रम का पूरा-पूरा पारिश्रमिक दिलाना भी इसी का काम है। आलसियों और विलासियों को अपनी शिक्षा के द्वारा मार्ग पर लाना भी इसी की कर्तव्य-सीमा की बात समझी जाती है। आर्थिक क्षेत्र को अपनी सत्पद्धति और नियमों के द्वारा पवित्र रखना और मनुष्य-जीवन को उच्च बनाना भी इसी का काम बतलाया जाता है। पृथ्वी, आकाश और पाताल में होनेवाले प्रत्येक आर्थिक व्यवहार को उत्पादक बनाना तो इसका अद्वितीय कर्तव्य माना गया है। संसार के आर्थिक व्यवहारों में साम्य उत्पन्न कर पृथ्वी को स्वर्ग बनाना भी इसकी कर्तव्य-सीमा से बाहर नहीं है।

अर्थ-शास्त्र के उद्देश्य और विशेष मत

अर्थ-शास्त्रियों का कथन है कि समस्त संसार अर्थ-शास्त्र के पवित्र उद्देश्य से परिपूर्ण है। उन का यह दावा भी है कि अर्थ-शास्त्र का भी मत है और धर्म है और वह भी लोकायत है। साथ ही जीवन-दाता और उच्च। म० एस्० वी० इस विषय में इस तरह लिखते हैं—

"अर्थ-शास्त्रीय समस्याएँ जीवन की समस्याएँ हैं और जीवन का प्रत्यक्ष-परोक्ष सम्बन्ध प्रत्येक ज्ञात वस्तु से है। इस दृष्टि से मानव-समाज और उससे सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक बात को उपयोगी और उत्पादक बनाना ही अर्थ-शास्त्र का अद्वितीय उद्देश्य है। इस विषय में पियर्सन इस तरह कहता है—

"यद्यपि अर्थ-शास्त्र का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी है, तथापि इसका मुख्य सम्बन्ध उद्योग-धन्धा करनेवाले व्यक्ति से है और ऐसे व्यक्ति के लिए अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से निम्नलिखित बातें विचारणीय हैं—

जातीय अर्थ-सम्बन्धी Structure (निर्माण) को पूर्णातिपूर्ण कैसे करना चाहिए, और सर्व-साधारण का इसके लिए क्या कर्तव्य है? साथ ही मनुष्य आपस के सहयोग से जीवित है, अपने साथियों के जान-माल और परिश्रम से ही अपन निर्वाह करता है, और इस समय तो मानवीय सहयोग अत्यधिक विस्तृत और जटिल हो गया है; एक तरह से मानवीय शक्ति के नियन्त्रण से बाहर हो गया है। इस समय बड़े से बड़े देश और जाति की छोटी से छोटी बात अन्यान्य देशों और जातियों के प्रभावों से प्रभावित रहती है। फिर पूँजी-पति, साम्राज्य-वादी, नवीन विकास-प्रकाश आदि तो इसे और भी जटिल बना रहे हैं। ऐसी दशा में इन सब बातों में अर्थ-शास्त्रीय दृष्टि से अपने कर्तव्य का पालन करना समाज के प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य हो जाता है।"

म० वी० डी० की सम्मति में अर्थ-शास्त्र का उद्देश्य न केवल अर्थ-सम्बन्धी बातें ही हैं, अपितु मानवीय सुख-शान्ति और समृद्धि से सम्बन्ध रखनेवाला प्रत्येक विषय भी है; और इसका कारण यह है कि अर्थशास्त्र जातीय और अन्तर्जातीय समस्त विषयों से परिपूर्ण है। एक विद्वान् के मत से अर्थ-शास्त्र आर्थिक सापेक्ष दृष्टि से (न कि निर-पेक्ष आर्थिक दृष्टि से) मनुष्य के अर्थात्मक चरित्र का हिसाब रखना भी सिखाता है और यह इस-लिए कि आय-व्यय आदि का मनुष्य के चरित्र पर असर पड़ता है। अनेक व्यक्ति इसका उद्देश्य

* अर्थ-शास्त्र के समस्त सिद्धान्त Consumption (उपभोग) के शुद्ध सिद्धान्त पर ही अवलम्बित हैं।



समाज के सम्पूर्ण आर्थिक सम्बन्धों की जाँच-पड़ताल भी बतलाते हैं। परन्तु इसकी वास्तविक सार्थकता तो असल में प्रत्येक मानवीय विषय पर आर्थिक दृष्टिकोण से विचार करना ही है।

अर्थ-शास्त्र की प्रकृति

अर्थ-शास्त्र सामाजिक होने के कारण जटिल और परिवर्तन-शील है। यद्यपि इसकी सभी बातें और नियम नितान्त परिवर्तनशील नहीं हैं तो भी यह अन्यान्य गणितात्मक विज्ञानों की तरह सरल और Exact (यथार्थ) नहीं है, अपितु कठिन और Inexact (अयथार्थ) है। और, यह इसलिए कि जब भौतिक सिद्धान्तों और सचाइयों में भी हमारी सम्मतियाँ अल्पज्ञता या भौतिक वस्तुओं की परिवर्तनशील प्रकृति के कारण बदलती रहती हैं तो फिर मनुष्य और समाज, जोकि मानवीय और प्राकृतिक अनन्त बातों से प्रभावित होनेवाले हैं, उनके शास्त्र और सिद्धान्त चाहे वे नैतिक, राजनीतिक या आर्थिक ही क्यों न हों, एक ही रूप में सदा कैसे रह सकते हैं? परन्तु इसके अत्यधिक जटिल और दुरूह होने पर भी मुद्रा के कारण इसकी व्यावहारिकता में किसी तरह के झगड़े उत्पन्न नहीं होते। साथ ही विनिमय के सिद्धान्तों से भी इसमें पर्याप्त सहायता मिलती है। कुछ विद्वानों का अर्थ-शास्त्र की प्रकृति के विषय में निम्नलिखित मत भी है—

क—अर्थ-शास्त्र की प्रकृति मानवीय व्यवहार-सम्बन्धी विकास है; किन्तु इसकी सर्वोत्तम प्रकृति तो वैयक्तिक और सामाजिक सुख-शान्ति का उत्पादन है।

ख—प्रत्येक आर्थिक विषय में मनुष्य की सहायता करना ही इसकी वास्तविक प्रकृति है।

इसकी प्रकृति के विषय में अनेक अर्थ-शास्त्रियों का यह भी मत है कि मनुष्य का समस्त जीवन ही आर्थिक है। इसका सम्पूर्ण मनस्तत्त्व और व्यवहार अर्थ-पूर्ण ही है। इसलिए समाज की प्रत्येक बात को आर्थिक दृष्टि-कोण से देखना परखना ही इसकी सच्ची प्रकृति है। यद्यपि अनेक विद्वान् इस बात को पूर्ण सत्य नहीं मानते और यह इसलिए कि हिन्दू-दृष्टिकोण से जीवन में अर्थ की अपेक्षा धर्म और मोक्ष का दर्जा ऊँचा है, और इनसे भी बढ़कर आत्म-तत्त्व का; परन्तु फिर भी यह बात तो स्वीकार ही करनी पड़ती है कि भौतिक संसार तो मुख्यतः आर्थिक ही है। उसकी प्रत्येक समस्या और उलझन का परोक्ष-प्रत्यक्ष सम्बन्ध अर्थ-कलह से ही है। ऐसी दशा में वर्तमान-कालीन अर्थ-शास्त्रियों के शब्दों में यही कहना ठीक मालूम होता है कि अर्थ-शास्त्र की वास्तविक प्रकृति असल में सामाजिक, व्यावहारिक और व्यावसायिक ही है।

अर्थ-शास्त्र के अध्ययन की विशेषता

अर्थ-शास्त्र के अध्ययन की विशेषताएँ अनन्त हैं, उनमें कुछ मुख्य ये हैं—

१. अर्थ-शास्त्र का अध्ययन बुद्धि और मनोवृत्तियों (Faculties) को अन्य शास्त्रों की अपेक्षा अत्यधिक तेज़ करता है; क्योंकि इसका मुख्य कार्य मनुष्य की परिवर्तनशील आर्थिक प्रवृत्तियों (Motives) और प्राकृतिक मौलिक एकरूपता (Uniformity) के सिद्धान्तों का अन्वेषण है।

२. इससे समाज के अनन्त आर्थिक प्रश्नों का समाधान होता रहता है, यदि यह न हो तो आजकल के अमेरिका और योरप आदि देशों में—जिनके Legislation (व्यवस्थापन) की आधार-भित्ति ही आर्थिक है, अनन्त क्लेश उत्पन्न हो जायँ, उनकी उन्नति तो वस्तुतः बिलकुल रुक जाय, और विशेषतः श्रमी पुरुष तो वहाँ बड़े झगड़े में पड़ जायँ। साथ ही व्यापारी, शिल्पी, अर्थ-नीति-वेत्ता और राज-नीतिज्ञों का भी इसके ज्ञान के बिना काम चलना ही असम्भव हो जाय।

मार्शल के शब्दों में तो बहुत पहले से ही अर्थ-शास्त्र से सामाजिक समस्याओं के समाधान में सहायता मिलती रही है। फिर आजकल



का अर्थ-शास्त्र तो सामाजिक समस्याओं के सुलझाने में अपना विशेष स्थान रखता है।

३. अर्थ-शास्त्र का अभिप्राय मनुष्य की आवश्यकताओं और उद्यमों में सहायता देना है। परन्तु इसका मुख्य प्रयत्न तो उत्पादन के द्वारा समाज की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। साथ ही दारिद्र्य जैसे पिशाच को उत्पादन के द्वारा नामशेष करना भी है, जो कि मानव-जाति को दीन-हीन बनाकर अनन्त क्लेशों में फँसा रहा है।

अर्थ-शास्त्र और अनुशीलन-पद्धति

अर्थ-शास्त्र की अन्वेषणात्मक और अनुशीलनात्मक पद्धतियाँ गणितात्मक (Mathematical) हैं। पद्धति का अभिप्राय उन तथ्यों और सचाइयों के अन्वेषणात्मक व्यावहारिक क्रिया-कलाप से है, जिनसे कोई विज्ञान अपने आवश्यक सम्बन्धों और आत्म-तत्त्वों को विकासोन्मुख रख सकता है।

तार्किक दृष्टि से इसकी पद्धति Deductive (निगमनात्मक आनुमानिक) है। अनेक विद्वान् Inductive (व्याप्ति-मूलक आनुमानिक) भी मानते हैं; परन्तु अर्थ-शास्त्र की प्राचीन पाठशाला तो Deductive ही मानी जाती है।

अर्थ-शास्त्र की एक नई पाठशाला Realistic (वास्तविक) भी है। यह Inductive पद्धति को ही मानती है। परन्तु व्यवहार-शास्त्र (Jurisprudence) के दृष्टिकोण से तो इसकी Deductive पद्धति ही है। इसके सिवा इसके गणितात्मक, उदार, साम्यवादी, राष्ट्रीय साम्यवादी क्रिश्चियन साम्यवादी आदि स्कूल भी हैं। परन्तु ये सब किसी एक ही पद्धति को नहीं मानते। इनमें कोई किसी पद्धति को मानता है तो कोई किसी को। परन्तु ठीक बात तो यह है कि अर्थ-शास्त्र के भावात्मक और अभावात्मक दोनों प्रकार के तत्त्वों और सिद्धान्तों को समझने के लिए Deductive और Inductive दोनों प्रकार की पद्धतियों से ही काम लेना चाहिए; क्योंकि प्रत्येक साधारण और विशेष आर्थिक व्यापार में हम इन दोनों के बिना किसी भी बात के कार्य-कारण-भाव पर ठीक तरह विचार नहीं कर सकते।

अर्थ-शास्त्र के दृष्टिकोण से वस्तु-तत्त्व को समझने की दो पद्धतियाँ और भी हैं। उनमें एक आन्तरिक है और दूसरी बाह्य। आन्तरिक सिद्धान्तात्मक (Theoritical) है और बाह्य व्यवहारात्मक (Practical)। पहली से हम किसी वस्तु की आर्थिक दार्शनिकता को समझते हैं और दूसरी से उसकी व्यावहारिकता को। पहली में Deductive प्रणाली से काम लिया जाता है और दूसरी में Inductive से। पहली कलात्मक है और दूसरी विज्ञानात्मक। संक्षेप में इन सब पद्धतियों का अन्वितार्थ इस प्रकार है—

क. प्रकारात्मक—सैद्धांतिक और व्यावहारिक

ख. क्रियात्मक—विज्ञानमय और कलामय

ग. तर्कात्मक—अनुमानात्मक और प्रत्यक्षात्मक

अर्थ-शास्त्र और हेत्वाभास

अन्यान्य विज्ञानों की तरह अर्थ-शास्त्र में भी हेत्वाभासों (Fallacies) की भरमार रहती है। इसमें भी लोग मनमाने ढंग से सोचने लगते हैं। कभी-कभी तो बड़े-बड़े विशेषज्ञ भी हेत्वाभासों के शिकार हो जाते हैं। परन्तु यह होता इसलिए है कि जिस Data (निर्दिष्ट विषय-समूह) से हम किसी परिणाम पर पहुँचते हैं, वह अपर्याप्त और अप्रमाणित होता है। साथ ही जिन आर्थिक जातीय प्रतिक्रियाओं पर हमें तर्क करना होता है, वे भी प्रायः सूक्ष्मतम, किन्तु अनैतिक होती हैं। ये हेत्वाभास अनेक हैं। इनमें से कुछ साधारण किन्तु आवश्यक निम्न-लिखित हैं—

१. अपर्याप्त तथ्यों से किसी बात का साधारणीकरण (Generalisation)।

२. कार्य और कारण का आपस का विश्रृंखलित सम्बन्ध (Confusing)।

३. किसी एक कारण का एक ही परिणाम मानना।



४. किसी एक कार्य को एक ही कारण का परिणाम समझना।

अर्थ-शास्त्र और इतिहास

मानव-इतिहास असल में आर्थिक इतिहास है। वैराग्यमय इतिहास इसका अपवादात्मक पक्ष है। ऐसी दशा में इस बात की परम आवश्यकता है कि इतिहास का अध्ययन आर्थिक परम्परा के साथ किया जाय *। इतिहास का अध्ययन आर्थिक दृष्टिकोण और आर्थिक व्यवहारों से रिक्त कदापि नहीं रहना चाहिए। उन्नत देशों के लोग इतिहास के आर्थिक दृष्टिकोण को अच्छी तरह समझते हैं। परन्तु दुःख है कि हमारे यहाँ इस ओर अब तक लोगों का साधारण-सा ध्यान भी आकर्षित नहीं हुआ।

अर्थ-शास्त्र और उपयोग

अर्थ-शास्त्र में अर्थ के उपयोग, अनुपयोग, दुरुपयोग, सदुपयोग आदि का भी वर्णन है। इन सबके तात्त्विक प्रकार-भेदों में कुछ मुख्य प्रभेद इस तरह हैं—

१. बौद्धिक
२. संयमात्मक
३. विलासितामय
४. कलात्मक

उल्लिखित प्रत्येक प्रकार में विषयात्मक स्टैंडर्ड की रक्षा के लिए अर्थ का विनियोग अत्यन्त आवश्यक है। बौद्धिक (सिद्धान्तात्मक और व्यवहारात्मक) कार्य तो अर्थ के उपयोगी क्षेत्र हैं ही, परन्तु आर्थिक संयम की भी इसमें अनिवार्य आवश्यकता है। अनेकों के मत से विलासिता और संयम भी अर्थ के असाधारण, किन्तु निकृष्ट उपयोग हैं। परन्तु पीढ़ियों में पलकर ये भी साधारण और आवश्यक हो जाते हैं। कलात्मक आर्थिक उपयोग को तो प्रत्येक विद्वान् एक अत्यावश्यक और साधारण बात मानता है। फिर भी इन विचारों पर विभिन्न दृष्टि-कोण, स्थान, समय और व्यष्टि-समष्टि के विचार से बहुत कुछ कहा जा सकता है। परन्तु कौन-सा आर्थिक उपयोग उचित है और कौन-सा अनुचित, इस पर ठीक-ठीक फ़ैसला तो अर्थ-शास्त्र के मर्मज्ञ ही दे सकते हैं। फिर व्यष्टि-वाद, समष्टि-वाद और अराजकता-वाद आदि की दृष्टि से तो प्रत्येक प्रकार के आर्थिक उपयोग को समझने के लिए अनेक सिद्धान्त और नियम काम में लाये जाते हैं; किन्तु उनसे भी उपयोग के प्रकारों की उत्तमता-अधमता का ठीक-ठीक फ़ैसला नहीं होता। अंत में परम्परा, सामयिकता और Static (स्थिति-शील) विधि से ही प्रत्येक विभाग की उपयोगिता-अनुपयोगिता का पता लगाना पड़ता है।

अर्थ-शास्त्र के मौलिक तत्त्व

अर्थ-शास्त्र के अनन्त तत्त्व हैं, परन्तु उनमें मुख्यतम मौलिक ये हैं—

१. उत्पादन
२. विभाजन
३. विनिमय
४. उपभोग *

फिर इनके भी अनेक भेद-प्रभेद हैं, उनमें से प्रमुख ये हैं—

क—उत्पादन के आवश्यक आधार

१. पूँजी
२. प्रबन्ध
३. श्रम
४. भूमि

ख—विभाजन के भेद

१. किराया

* यह मत आधुनिक अर्थ-शास्त्रियों का है, अन्यथा इतिहास केवल अर्थात्मक नहीं हो सकता, विशेषतः भारतवर्ष का।

* आवश्यकतावश इस लेख में उत्पादन आदि अर्थ-शास्त्रीय अनेक तत्त्वों का उल्लेख अन्यत्र भी हुआ है।

२. पारिश्रमिक
३. श्रम की समस्याएँ
४. ब्याज और अन्य प्रकार का लाभांश

ग—विनिमय के प्रभेद

१. विनिमय के सिद्धान्त
२. विनिमय के साधन
३. ऋण
४. बैंक-विधि
५. व्यापार

घ—उपभोग के प्रकार

१. इच्छा
२. आवश्यकता
३. प्रक्रिया
४. संतोष

उपर्युक्त अर्थ-शास्त्रीय मूलतत्त्वों के सहयोगात्मक प्रभेद इस प्रकार हैं—

१. उत्पादन और व्यय
२. विभाजन और व्यय
३. विभाजन और विनिमय

अर्थ-शास्त्र के मूलतत्त्वों की उत्पत्ति का सार

अर्थ-शास्त्र के मूलतत्त्वों की उत्पत्ति का सार यह है कि मनुष्य को किसी भाव की पूर्ति के लिए किसी वस्तु की आवश्यकता होती है, और इसी-लिए वह उस वस्तु की प्राप्ति के उद्योग में प्रवृत्त होता है। परन्तु जब उसे वह वस्तु प्राप्त हो जाती है, तो फिर वह विनिमय-क्रम के द्वारा धीरे-धीरे उससे अन्यान्य यथेष्ट वस्तुओं को प्राप्त करता रहता है*। परन्तु उद्योग का फल मनुष्य को श्रम-विभाग, श्रेणी-विभाग और समवाय-परिश्रम के कारण उसकी योग्यता और श्रम आदि के अनुपात से मिलता है। बस, यही चारों मूलतत्त्वों की उत्पत्ति का सार है। इन मूलतत्त्वों में अनेक लोग साहस और बुद्धि को भी सम्मिलित करते हैं, और कुछ विद्वान् विविध विद्याओं को भी। परन्तु इन चार या छः तत्त्वों का विस्तार आजकल अत्यधिक हो गया है। साथ ही इनकी जटिलता भी बहुत बढ़ गई है। इसका कारण यह है कि विविध आविष्कारों, ईजादों और भोग-सामग्री की वृद्धि के कारण मनुष्य की इच्छा, कामना और आव-श्यकताओं की संख्या अनन्त हो गई है एवं इनकी पूर्ति के लिए मानव-प्राणी इस समय सम्पूर्ण प्रकृति को ही दुहने के लिए कटिबद्ध हो रहा है। फिर सामाजिक विकास, अन्तर्जातीय कलह, स्पर्द्धा, स्वतन्त्रता, व्यापार, शिल्प और वैयक्तिक तथा दैशिक विविध स्वार्थों के कारण भी जीवन-संग्राम के समधिक जटिल हो जाने से धन के वितरण आदि के अनन्त प्रश्न उत्पन्न हो गये हैं। साथ ही अन्तर्जातीय मामलों के कारण स्वयं मूल्य और विनिमय की पद्धतियाँ भी शास्त्र का रूप धारण करती जा रही हैं। और, अब कुछ बरसों से तो Dynamic (बल-संक्रान्त) विधि के कारण प्रायः नैतिक और आध्यात्मिक विषय भी संसार-व्यापिनी आर्थिक कला के कार्य-कारण बने हुए हैं।

अर्थ-शास्त्र और अंगावयव

अर्थ-शास्त्र के मुख्य विषय यद्यपि उत्पादन, विभाजन, विनिमय और व्यय हैं, परन्तु इन्हीं के रूपान्तर सहस्रों विषय और भी हैं। इनमें से वैय-क्तिक, नागरिक, जातीय, दैशिक और सार्वभौम मुख्य हैं। इनमें भी फिर प्रत्येक के शतशः भेद हैं। उनमें कुछ व्यावहारिक निम्नलिखित हैं—

१. आर्थिक इच्छा
२. आर्थिक वस्तुएँ
३. आर्थिक क्रिया-कलाप
४. आर्थिक संस्थाएँ
५. मानव-प्रकार
६. भौगोलिक स्थिति

* अब भी कहीं-कहीं वस्तु-विनिमय की यह प्रथा देखी जाती है। परन्तु उन्नत समाज में इसका काम मुद्रा और नोट इत्यादि से लिया जाता है।



अर्थ-शास्त्र के मुख्य उत्पादक स्थान और तत्त्व

अर्थ-शास्त्रीय तत्त्वों के मुख्य उत्पादक स्थान और तत्त्व निम्नलिखित हैं—

क. स्थान	ख. तत्त्व
१. राज्य	१. सुधार
२. शिल्प-व्यवसाय	२. आविष्कार
३. कम्पनियाँ	३. उत्पादकता
४. घरू प्रयोग	४. मूल्य-विनिमय
५. छोटे धन्धे	
६. नये-पुराने परीक्षण	

इन सबमें राज्य मुख्य तत्त्व है। इसके निम्न-लिखित स्वतन्त्र कार्य हैं, और इन्हीं के द्वारा प्रायः सम्पूर्ण अर्थ-शास्त्रीय कार्यों का सम्पादन भी होता है—

१. राज्य के उत्पादक कार्य्य-कलाप
२. राज्य के अनुत्पादक कार्य-कलाप
३. राज्य का व्यापार—व्यवसाय में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप
४. राज्य के प्रत्यक्ष सामाजिक क्रिया-कलाप
५. राज्य के व्यापार-व्यवसाय में सुबीते उत्पन्न करनेवाले प्रयत्न
६. निरपेक्ष अर्थ-शास्त्र के प्रचार-प्रसार में राज्य की योजनाएँ
७. आर्थिक व्यवस्था-स्थापक राजकीय क़ानून-क़ायदे
८. आर्थिक विषयों में राज्य का प्रमुख संयमन (Control)
९. रक्षा और शान्ति के स्थायी फंड
१०. शिक्षा-प्रचार के सुबीतों के स्थायी फंड
११. सामाजिक सौन्दर्य (Humanity) के फंड
१२. जनता के स्वास्थ्य, घर और रहन-सहन की परवा
१३. रोगी, निर्धन और बेकारों के लिए प्रबन्ध

अर्थ-शास्त्रीय औद्योगिक व्यवस्था-सम्बन्धी मुख्यतम बातें ये हैं—

प्रकृति और जन-संख्या, व्यावसायिक प्रकृति, गवर्नमेन्ट का चरित्र, छोटे पैमानों पर काम करने के लाभ, सुधार-सम्मत व्यवस्थाओं की सीमा, वर्तमान-कालीन औद्योगिक कार्यों के व्यवस्थापन की रीतियाँ, वैयक्तिक उत्पादकता, हिस्सेदारी, संयुक्त मूलधन की जोख़िम, ठेकेदारी की व्यवस्था, क्रमोन्नति और व्यावसायिक विभिन्नता, सहयोगात्मक साहस, म्युनिसिपल राज्य के साहस, प्रतियोगिता, व्यापार की व्यवस्था, बाज़ार, बाज़ार का विकास, बाज़ार के क़ानून-क़ायदे, आदर्श बाज़ार की आवश्यक बातें, बाज़ार और विनिमय, नई पूँजी के लिए व्यापार, व्यापार की पद्धति, अर्थ-सम्बन्धी न्याय की कल्पना आदि-आदि

आर्थिक आवश्यकता का तात्त्विक विश्लेषण और वर्गीकरण

पूर्व-कथनानुसार आर्थिक आवश्यकता दो प्रकार की है। एक भाव-पूरक, दूसरी अभाव-पूरक। भाव-पूरक वह आवश्यकता है, जिसमें मनुष्य को अपने प्रकृति-दत्त तत्त्व और सामग्री के विकास और परिष्कार के लिए कुछ करना पड़े; और अभाव-पूरक वह है, जिसमें उसे जीवनोपयोगी वैयक्तिक और सामाजिक वस्तुओं को प्राप्त करने का उद्योग करना हो। अभाव-पूरक आवश्यकताएँ वस्तु-भेद, श्रेणी-भेद और तत्त्व-भेद से तीन प्रकार की हैं। वे ये हैं—

क. वस्तु-भेद	ख. श्रेणी-भेद	ग. तत्त्व-भेद
१. जीवन-संस्थापक	१. प्रतियोगी	१. उत्पादक
२. जीवन-रक्षक	२. सहयोगी	२. अनुत्पादक
३. शान्ति-दायक	३. पूरक	३. घातक

क. मनुष्य के लिए पहले वर्ग की आवश्यकताओं में पहली जीवन-संस्थापक आवश्यकताएँ अन्न, वस्त्र और निवास-स्थान के भेद से तीन प्रकार की हैं। और दूसरी जीवन-रक्षक आवश्यकताओं में शक्ति और बुद्धि का उत्पादक वस्तु-समुदाय है। तीसरी शान्ति-दायक आवश्यकताओं में आधि-व्याधि के नाशक शिक्षालय, चिकित्सालय और संग्रहालय



आदि हैं, जिनसे मानसिक, शारीरिक और व्यावहारिक क्लेशों में सहायता मिलती है।

ख. दूसरे वर्ग की श्रेणी-गत आवश्यकता कक्षा-गत आवश्यकता है। इसमें पहली प्रतियोगी आवश्यकता है। वह किसी वस्तु के अभाव की पूर्ति की प्रक्रिया से उत्पन्न होनेवाली है—जैसे बाज़ार में मिठाई ख़रीदते समय तमोली की दूकान पर लोगों को पान खाते देखकर पान ख़रीदने की आवश्यकता उत्पन्न होती है। सहयोगी आवश्यकता है—मोटर के साथ ड्राइवर की। तीसरी पूरक-नामक आवश्यकता है—दूध के लिए शक्कर ख़रीदने की।

ग. तीसरे वर्ग की तात्त्विक आवश्यकताओं का यह अभिप्राय है कि हम जो भी आवश्यक वस्तु ख़रीदें, उसमें यह ध्यान रक्खें कि वह किसी अभाव की पूरक होने के साथ ही वंश-परम्परा की उत्पादिका भी हो, अर्थात् उसके फल का क्रम नष्ट न होने पावे। साथ ही कम से कम स्वयं वस्तु तो स्वरूपतः अनुत्पादक सिद्ध न हो, चाहे फिर उसकी वंश-परम्परा न भी चलती हो। इन सब बातों के सिवा प्राप्त वस्तु कम से कम किसी वस्तु या वस्तु-समुदाय की घातक तो बिल्कुल न हो।

आवश्यकताओं की मौलिक उत्पादक कारण-माला

भाव और अभाव-पूरक आवश्यकताओं का तात्पर्य प्राकृतिक, सामाजिक और वैयक्तिक सामग्री का उत्पादन और प्रवर्धन है। प्राकृतिक आवश्यकता का अभिप्राय समय, स्थान और परिस्थिति से उत्पन्न हुई आवश्यकताओं की पूरक वस्तुएँ हैं। सामाजिक का तात्पर्य ज्ञान, शक्ति, धन और श्रम-सम्बन्धी बातें हैं। वैयक्तिक, शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तियों की विकासक और रक्षक वस्तु और क्रिया-प्रक्रिया है। इन आवश्यकताओं की पूरक सामग्री के प्रकारभेद इस तरह हैं—

क. प्राकृतिक—ताप, शीत, वर्षा वातावरण, पवन और जल से उत्पन्न होनेवाले दुःख को दूर करनेवाली वस्तुएँ। साथ ही ज्ञान, विज्ञान, कला और साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली संख्यातीत सामग्री भी।

ख. सामाजिक—व्यापार, शिल्प और सभ्यता-सम्बन्धी अनन्त वस्तुएँ हैं।

ग. वैयक्तिक—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से सम्बन्धित वस्तु-समुदाय है। इनके सिवा जगत् की प्रायः मानवीय भाव-पूरक सभी वस्तुएँ इसी में सम्मिलित हैं *।

आर्थिक आवश्यकता और सभ्यता

आर्थिक भाव-अभावमय आवश्यकताओं की कोई निश्चित सीमा नहीं है। सभ्यता के साथ-साथ इनकी क्रम-वृद्धि होती रहती है। सभ्यता आवश्यकता को बढ़ानेवाली वस्तु है। इस बात से कौन अनभिज्ञ है कि आजकल एक साधारण किसान भी अपने लिए अत्यधिक आवश्यकताओं का अनुभव करने लगा है। सच तो यह है कि आजकल के सभ्य देशों में तो प्रत्येक नवाविष्कृत वस्तु मनुष्य-मात्र की आवश्यकता हो गई है। हालैंड और स्विट्ज़रलैंड-जैसे देशों के एक सभ्य गृहस्थ की आवश्यताएँ राजपूताने के मध्य-कालीन राजाओं की विलास-सामग्री से कहीं अधिक प्रतीत होती हैं। परिग्रह का विस्तार ही तो असल में आजकल की सभ्यता का चिह्न है, और यही सभ्यता आज पृथ्वी के कोने-कोने में अधिकाधिक फैलती जा रही है। आजकल का सच्चा गृहस्थ वस्तुतः वही है, जो अधिक से अधिक वस्तुओं को काम में लाता हो।

अर्थ-शास्त्रीय प्राकृतिक और मानवीय तत्त्व

समाज, राज्य और गार्हस्थ्य, ये आर्थिक उपयोगिता की तीन विभिन्न रंगस्थलियाँ हैं, परन्तु इनका माध्यम राज्य है। राज्य वस्तुतः समाज और गार्हस्थ्य के बीच की वस्तु है। व्यष्टि और समष्टि, दोनों से इसका सम्बन्ध है। राज्य के भी अर्थात्मक

* आजकल अमेरिका आदि देशों में भाव-पूरक कलात्मक, वैज्ञानिक और साहित्यिक वस्तुएँ भी संख्यातीत-सी ही हैं।



मुख्यतः दो अंग हैं। एक प्राकृतिक और दूसरा मानवीय। इन दोनों का विश्लेषण इस तरह है—

क. प्राकृतिक	ख. मानवीय
१. भूमि	१. श्रम
२. समुद्र	२. साहस
३. वायुमंडल	३. पूँजी
	४. साधन

वैयक्तिक दृष्टि से इनके निम्नलिखित प्रकार-भेद भी हैं—

१. भूमिपति, २. समुद्रपति *, ३. व्यवसायपति, ४. साहसिक, ५. पूँजीपति

प्राकृतिक तत्त्व-माला

१. भूमि का तल, उसकी उत्पादक शक्तियाँ और पदार्थ

२. समुद्र का तल और उसके पदार्थ

३. स्वयं वायु-मंडल और उसमें पाये जाने-वाले तत्त्व

४. पशु, पक्षी, कीट, जलचर आदि जीव और वानस्पतिक वस्तुएँ

५. गर्मी, सर्दी, प्रकाश, जल, भाप और बिजली

मानवीय तत्त्व-माला

क. श्रमात्मक व्यवसाय के दो प्रकार हैं, एक वैयक्तिक और दूसरा समूहात्मक

ख. साहस का अर्थोत्पादन में प्रधान स्थान है, परन्तु यह एक प्रेरक कारण है। प्रत्येक प्रकार के वैयक्तिक और सामाजिक कार्य में इसके द्वारा ही मनुष्य अपने को कष्टों, दुःखों और हानियों में डालकर कर्तव्य का पालन करता है।

ग. पूँजी किसी मनुष्य के व्यय से बचा हुआ वह भाग है, जो कि सम्पत्ति के उत्पादन में लगाया जा सके।

घ. श्रम के समस्त साधन और विधि आदि तत्त्व भी मानवीय बातों में सम्मिलित हैं।

---

* समय पाकर समुद्रपति की तरह कोई वायु-मंडल-पति भी हो सकता है।

राज्य की आर्थिक विशेषता के विषय में अर्थ-शास्त्रियों की यह सम्मति है—

राज्य सम्पत्ति के उत्पादन का एक नैमित्तिक कारण है; क्योंकि राज्य के विना शान्ति नहीं हो सकती, और विना शान्ति के उत्पादन-सम्बन्धी कोई भी कार्य ठीक तरह नहीं हो सकता, इसलिए यह मानना ही पड़ता है कि सम्पत्ति के उत्पादन में राज्य भी एक कारण है।

अर्थ-शास्त्र और उत्पादकता

आर्थिक उत्पादकता के अनेक अर्थ बतलाये जाते हैं, परन्तु इसका मुख्य अर्थ है—किसी वस्तु को मूल्यवान् और उपयोगी बनाना, अर्थात् उसको कला और परिश्रम आदि से ऐसा रूप देना कि वह पहले से अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी बन जाय। साथ ही उससे श्रम और धन भी मिल सके और उसकी उत्पादक-परंपरा भी नष्ट न हो। यदि किसी वस्तु में ये बातें नहीं हैं तो वह उत्पादक नहीं कही जा सकती; क्योंकि जब उससे किसी भी वस्तु या तत्त्व की उत्पत्ति नहीं हो सकती तो फिर उसकी उत्पादकता का क्या अर्थ है? उत्पादकता के प्रकार और उसके कारण निम्नलिखित हैं—

क. प्रकार	ख. कारण
१. आर्थिक उत्पादकता	१. श्रम
२. रूपान्तरित उत्पादकता	२. व्यवस्था
३. कलात्मक उत्पादकता	३. साहस
	४. प्रकृति
४. अधिकारात्मक उत्पादकता	५. राज्य
	६. पूँजी

हम जिन श्रम-साध्य मूल्यवान् वस्तुओं की उत्पादकता चाहते हैं, वे निम्नलिखित भागों में विभक्त हैं—

क.	ख.
१. उत्पादकात्मक	१. बाह्य
२. नश्वर	२. आन्तरिक
३. स्थायी	

फिर ये वस्तुएँ भी दत्त (Transferable)

अदत्त (Non-transferable) और दत्तादत्त भेद से तीन प्रकार की हैं। साथ ही स्वत्व और अधिकार की दृष्टि से इनके निम्नलिखित प्रकार भी हैं—

१. वैयक्तिक २. जातीय ३. सार्वभौम

अर्थ-शास्त्र और आधुनिक विविध समस्याएँ

आजकल विविध आर्थिक समस्याओं के कारण अर्थ-शास्त्र की विभिन्न व्याख्याएँ भी तैयार हो गई हैं, और पूँजी-पति और श्रमियों के अनन्त झगड़ों ने इस शास्त्र को और भी विचित्र रूप दे दिया है। इसी लिए अब यह इतना जटिल हो गया है कि इसका समझना और इसकी व्याख्या करना साधारण व्यक्तियों का काम नहीं रहा है। साथ ही कला, विज्ञान और राष्ट्रीयता ने तो इसको और भी समधिक जटिल बना दिया है। फिर नवीन सिद्धान्त और परिस्थितियों की बदौलत भी यह विषय बड़ा कठिन हो गया है। वर्तमान-कालीन जीवन-संग्राम और भविष्य के आनुमानिक आदर्शों ने भी इसमें अनेक परिवर्तन कर दिये हैं। सोशियालिज़्म, कम्युनिज़्म, फ़ासिज़्म और अनार्किज़्म आदि अर्थ-शास्त्रीय प्रकार इन कठिनाइयों के ही विभिन्न परिणाम हैं। वैदिक साम्यवाद भी इन्हीं की उपज है। फ़ोर्ड-वाद भी इन्हीं की एक साधारण लहर है। अर्थ-शास्त्र के आचार्यों के शब्दों में इन सबका अर्थ आर्थिक उत्पादन, विभाजन, विनिमय और भोगमय विश्वात्मक साम्य का उत्पन्न करना है।

अर्थ-शास्त्रीय समस्याओं के मुख्यतम उत्पादक कारण

आजकल अर्थ-शास्त्र की नित्य ही नई-नई समस्याएँ उत्पन्न होती रहती हैं। म० एच्० एस्० की सम्मति में इनके मुख्यतम उत्पादक कारण निम्नलिखित हैं—

क.		ख.	
१.	विज्ञान	१.	बेकारी
२.	पूँजी-वाद	२.	आचार-हीनता
३.	साम्राज्य-वाद	३.	व्यक्ति-वाद
४.	सैनिक-वाद	४.	वर्ग-वाद

उल्लिखित बातों के सिवा, परावलम्बन, सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा, मिथ्या परलोक-वाद और तत्व-वाद की कटुता भी इसका भावात्मक कारण है। बढ़ी हुई भोगेप्सा, अकर्मण्यता और अराजकता-वाद आदि से भी इसका परोक्ष-प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। भारतवर्ष के धर्माभास और योरप के अनीति-वाद से भी किसी दृष्टि से इसका सम्पर्क है। अनेकों की दृष्टि में इस अर्थ-कलह के प्रधान उत्पादक कारण ये हैं—

१. वर्तमान कालीन विश्व की नव संस्कृति
२. आर्थिक अनैतिकता
३. सार्वभौम आदर्श की कमी

महात्मा गांधी की दृष्टि में इसका प्रधान कारण अनैतिक अर्थ-शास्त्रीयता है। हमारी दृष्टि में इसका मुख्य कारण है—वास्तविक नैतिक आदर्शों की कमी, परन्तु इनसे भी अधिक व्यावसायिक क्रियात्मक आदर्शों की कमी है। बस, संसार की आर्थिक अशान्ति के ये ही प्रधानतम कारण हैं।

व्यष्टि-समष्टि की सापेक्ष निर्धनता और बेकारी

१. व्यष्टि—आर्थिक सापेक्ष दृष्टि से आज प्रायः समस्त संसार और मुख्यतः भारत-निवासियों की वैयक्तिक दशा अत्यन्त ही हीन, दीन और पतित है। उन्नत देशों के भी अधिकांश व्यक्ति निर्धन, दुखी और बेकार हैं। निम्नलिखित देशों की व्यक्ति-गत आय से यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है—

१. इँगलैंड	४८ पौंड		२. संयुक्त राज्य	४४	पौंड
३. न्यूज़ीलैंड	४०	,,	४. कनाडा	३६	,,
५. आस्ट्रेलिया	३६	,,	६. स्काटलैंड	३६	,,
७. आयलैंड	२३	,,	८. दक्षिण अफ़्रीका	१२	,,
९. भारत	२	,,			

परन्तु इसको भी हम वास्तविक वैयक्तिक आय नहीं कह सकते; क्योंकि इसमें आय का अधिक भाग इने-गने पूँजी-पतियों, लार्डों और सरकारी नौकरों आदि में ही सीमित है। यदि हम इस संख्या को इस सारिणी से निकाल दें तो फिर

भारतीय व्यक्तिगत आय तो शून्य में बदल जायगी। हाँ, अन्य देशों के व्यक्तियों की वार्षिक आय सम्भवतः इकाई तक पहुँचे। इस व्यक्तिगत आय की ख़राबी के मुख्यतः ये कारण हैं—

वैयक्तिक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक। इनमें वैयक्तिक कारणों के उत्पादक कारण हैं—अयोग्यता, आलस्य और वैराग्य आदि; सामाजिक कारणों के उत्पादक कारण हैं—अशिक्षा, कुशिक्षा और असमानाधिकार; राजनीतिक कारणों के उत्पादक कारण हैं—क़ानूनी ख़राबियाँ। और आर्थिक कारणों के उत्पादक कारण इस प्रकार हैं—

१. अर्थ-विभाजन के दोष
२. दैशिक आर्थिक ख़राबियाँ
३. राजनीतिक डाके और कुप्रबन्ध
४. अर्थ-शास्त्रीय अनैतिकता
५. सामाजिक रीति-रिवाज
६. वैयक्तिक आय-व्यय के दोष
७. प्राकृतिक दोष
८. यौद्धिक दुःख
९. आदर्श-प्रतियोगिता की कमी
१०. शिक्षा की ख़राबी और ईश्वरीय अकृपा।

इन त्रुटियों के निवारणार्थ अब तक जो कुछ कार्य होता रहा है, वह यह है—

१. दरिद्रों के लिए क़ानून-क़ायदे (Poor Laws)
२. म्युनिसिपल सहायक कार्य
३. दान के विशेष फ़ंड
४. बेकार श्रमिक-ऐक्ट

इनके सिवा समाज ने जिन बातों की ओर क़दम बढ़ाना शुरू किया है, वे इस प्रकार हैं—

१. श्रम-प्रवाह का नियन्त्रण
२. कार्य और पारिश्रमिक औसत

इन दोनों के प्रकार-भेद क्रमशः ये हैं—

क. १. मज़दूर, बाज़ार
२. श्रम-विनिमय और नियन्त्रण के विशेष उद्योग।

ख. १. जनता के कार्यों का वैज्ञानिक विभाजन
२. पारिश्रमिक के विशेष स्थिति-स्थापक गुण

२. समष्टि की सापेक्ष समधिक आर्थिक हीनता और दरिद्रता के कारण ये हैं—

१. भौगोलिक परिस्थिति, २. दैशिक कुपरम्परा, ३. कुशासन, ४. सामयिक गुणों की न्यूनता, ५. प्रतियोगिता की कमी, ६. वास्तविक जीवन-शिक्षा की अनभिज्ञता, ७. स्थानीयता के दोष, ८. दूषित मनोवृत्ति।

इन बातों के सिवा इसके कारण जातीय चरित्र, बुद्धि, साहस, उत्साह आदि की ख़राबियाँ भी हैं। इन बातों का सापेक्ष दुःखद परिणाम कुछ देशों की निम्नलिखित वार्षिक सापेक्ष आय से स्पष्ट हो जायगा—

क. संयुक्तराज्य	२०१६ पौंड
ख. इँगलैंड	१७५० ,,
ग. भारत *	६०८ ,,
घ. कनाडा	२१६ ,,
ङ. स्काटलैंड	१७३ ,,
च. आस्ट्रेलिया	१६४ ,,
छ. आयलैंड	१०३ ,,
ज. दक्षिण आफ़्रिका	७५ ,,
झ. न्यूज़ीलैंड	५० ,,†

आर्थिक दशा और भारत

आर्थिक बातों में भारत की बड़ी दीन-हीन दशा है। यह व्यापार, श्रम, पूँजी और पूँजी-पति आदि की दृष्टि से चलनी हो रहा है। राष्ट्र की दृष्टि से महात्मा गांधी भारत को सम्पन्न देश ही नहीं मानते। वे तो योरपीय दरिद्रों से भारतीय धन

* भारत की जातीय वार्षिक आय का यह अंक भी शुद्ध नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इसमें भी पूर्वोक्त वैयक्तिक आय की तरह ही अनन्त साम्राज्य-सम्बन्धी Dynamic विषय सम्मिलित हैं।

† अधिक सम्भव है, इस समय विविध अन्तर्राष्ट्रीय कारणों से वैयक्तिक और दैशिक आय का यह औसत भी न रहा हो।



वानों की तुलना करने लगते हैं। भारतीय भाव-निर्णय का मामला भी हृदय को कम्पित करने-वाला है। विनिमय, नोट और सिक्के के क्लेश भी किस भारतीय को बेचैन नहीं करते। सैनिक व्यय और ग्रामीणों की आर्थिक दशा तो हमारे विचार-णीय विषय बने हुए हैं। अधिकांश भारतीय वैश्य भी धीरे-धीरे व्यापारियों की श्रेणी से निकलकर तौल, मोल, बाँट और मिलावट आदि की ख़राबी को ही अपनी कमाई का साधन समझ बैठे हैं। खानों, जंगलों, कम्पनियों आदि के लाभों से तो भारतीय बिल्कुल ही वंचित हैं। नौकरियाँ भी इन्हें ऐसी ही मिलती हैं। सारे देश में चोरी, लूट-मार और डाकों की संख्या दिन-दिन बढ़ती जा रही है। अनेक नेताओं के शब्दों में शिक्षित याचकों (Educated Beggars) की संख्या भी कम नहीं, और उनकी वैयक्तिक आय का औसत तो शून्य ही है। साधारण याचक ो पहले से ही एक करोड़ के लगभग बताये जाते हैं। वैसे तो समस्त देश ही अर्थ-हीन और याचक है। भूखों की संख्या भी ख़ासी है, उनमें प्रायः चारों वर्णों के व्यक्तियों का समावेश हो जाता है।

अर्थ-शास्त्र के ज्ञान की कमी से हानियाँ

भारत में तो इस समय भी अधिकांश लोग अर्थ-शास्त्र को ठीक तरह नहीं समझते। वे यह भी नहीं जानते कि धन क्या है? श्रमोत्पन्न विनिमय-साध्य वस्तु किसे कहते हैं? पूँजी और धन में क्या अन्तर है? और न यह जानते हैं कि किसी वस्तु के मूल्य-निर्णय में समस्त विश्व के व्यय, उत्पादन, वितरण और विनिमय-विज्ञान का हाथ क्यों होता है? साथ ही यह भी नहीं जानते कि जिन वस्तुओं को वे तुच्छ समझकर फेंक देते हैं, वे भी द्रव्य या द्रव्योत्पत्ति का पूर्वरूप हैं। इस बात को तो अनेक शिक्षित व्यक्ति तक नहीं जानते कि धन न केवल सिक्का, धातु और अन्यान्य वस्तुएँ हैं, अपितु श्रमोत्पन्न और विनिमय-साध्य समस्त वस्तुएँ ही धन हैं। कुछ पढ़े-लिखे तो अब भी हमारे यहाँ ऐसे हैं, जो तिनका और मिट्टी को आर्थिक दृष्टि से नहीं देखते, अपितु इनका प्रयोग हीनता के उदाहरणों में ही करते हैं। करोड़ों मनुष्य ऐसे भी हैं, जो धन को गाड़ना उसका नाश न समझकर लाभ ही समझते हैं।

अर्थ-सम्पादन की नैतिकता

आर्थिक दृष्टि से Commercial Transaction (व्यापारिक सौदा) केवल एक व्यावसायिक तत्त्व है। इसमें शास्त्रीय दृष्टि से स्वार्थ-बुद्धि का कहीं नाम तक नहीं है। यद्यपि व्यापार में लगे हुए लोग प्रायः संसार को स्वार्थ-परायण देख पड़ते हैं, परन्तु असल में वे सभी ऐसे नहीं हैं। अधिकांश लोग उसमें वस्तुतः उच्चता और उन्नति के उद्देश्य से ही लगे हुए हैं। इसमें उनकी दृष्टि एक-मात्र व्यवसाय-सम्पादन की होती है। ऐसी कार्य-तत्परता असल में एक प्रकार का नैतिक और आध्यात्मिक योग है, नकि स्वार्थ-तत्परता। म० एस्० वी० के शब्दों में तो व्यवसाय-सम्पादन एक प्रकार की सामाजिक साधना है, क़ुर्बानी है। फिर इसमें शक्ति-परिवर्तन और वस्तु-परिवर्तन के वैज्ञानिक सिद्धान्त ही तो काम कर रहे हैं, जिनका स्वार्थ से कोई सम्बन्ध ही नहीं मालूम होता; क्योंकि विनिमय Equal Value है, जो कि एक प्रकार का साम्य, विकास या क़ुर्बानी है। Pierson ने इस विषय में इस तरह कहा है—

A transaction is purely commercial when it involves an agreement whereby a sacrifice of many goods or labour is made in exchange for some confidence regarded by the person making the sacrifice as being of at least equal value.

अर्थात्—अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से वही कार्य व्यापारिक कहा जा सकता है, जिसमें धन, वस्तु और श्रम की क़ुर्बानी करनेवाले मनुष्य को आपस के समझौते के आधार पर यह विश्वास हो कि अवश्य ही वह लाभ में रहेगा, अथवा उसका



घाव तो भर जायगा, या कम से कम वह हानि में तो नहीं रहेगा ?*

उक्त विद्वान् फिर एक स्थान पर लिखता है कि हम वास्तविक व्यावसायिक प्रकृति के ऐसे गणनातीत नैतिक उदाहरण दे सकते हैं, जिनसे यह अच्छी तरह सिद्ध हो सकता है कि वे उदाहरण किसी स्वार्थ-पूर्ण उद्देश्य से नहीं, अपितु किसी नवीन बात, परिष्कृत रुचि, कृतज्ञता या कला के सदभ्यास के लिए ही उत्पन्न किये गये हैं, और उन सबका मुख्यतम एकान्त उद्देश्य मानवीय आत्मबलि ही है। फिर वही यह भी कहता है कि प्रत्येक कार्य आवश्यकता-वश किया जाता है, इसीलिए वह हमारा आध्यात्मिक कर्तव्य-कर्म, तप या आत्म-बलिदान है, न कि केवल भौतिक या घातक स्वार्थ। फिर द्रव्य-संग्रह कोई बुरी बात नहीं; यह तो एक उच्च कार्य है और व्यापारिक व्यवसाय का अभिप्राय भी व्यावसायिक वृत्ति या जीवन है, न कि कुत्सित स्वार्थ; क्योंकि आर्थिक न्याय-नियम स्वार्थ पर नहीं, अपितु व्यावसायिक-क्रिया कलाप पर अवलंबित हैं, और इसी लिए वे आर्थिक न्याय-नियम कहलाते हैं। यहाँ स्वभावतः एक प्रश्न यह भी उठता है कि जब हमारे सब कार्य-जीवन-संग्राम की कटुता से आवृत्त हैं तो ऐसी दशा में भी क्या Commercial Transaction (व्यापारिक कारबार) का अभिप्राय असामाजिक नहीं है ? परन्तु हम इसको नहीं मानते, कारण जीवन-संग्राम स्वयं एक विकास, उत्पादन और क्रान्तिमय स्वाभाविक, किन्तु साधारण संशोधक तत्त्व और मनोवैज्ञानिक रहस्य है। फिर जिन कार्यों में हमारा निरपेक्ष व्यावसायिक चरित्र पूर्णतः पाया जाता , वे तो विनिमयात्मक होने के कारण आवश्यक और उपयोगी ही होते हैं। इस विषय में निम्न-लिखित बातें भी विचारणीय हैं—

व्यवसाय-सम्पादन का सम्बन्ध विनिमय से है और विनिमय का अन्यान्य आर्थिक नियमों से; और इसी तरह इन नियमों का न्याय से, न्याय का गृह-विज्ञान से, गृह-विज्ञान का सामाजिकता से, सामाजिकता का नैतिकता और नागरिकता से, और नागरिकता का फिर उसी व्यवसाय-सम्पादन की गति-मति और नीति-प्रतीति से। ऐसी दशा में भला आर्थिक व्यवसाय अनैतिक कैसे हो सकता है ?

अर्थशास्त्र और वैयक्तिक नैतिकता

यह कहा जाता है कि अर्थशास्त्रीय साहित्य में निरपेक्ष वैयक्तिक नैतिकता के लिए स्थान नहीं है और यह इसलिए कि आर्थिक क्रिया-कलाप में केवल व्यावसायिक क्रिया-प्रतिक्रिया ही विकासोन्मुख रहती है। परन्तु आर्थिक क्षेत्र में कुछ ऐसे भी विद्वान् हैं, जो कि वैयक्तिक अर्थात्मक नैतिकता के हिमायती हैं। वे आर्थिक नैतिकता की आवश्यकता को भी स्वीकार करते हैं। यद्यपि अनेक लोग आर्थिक जीवन में नैतिक और विषयात्मक पारिभाषिक व्यवहार की परवा नहीं करते, परन्तु ऐसे लोगों के कृत्यों से आर्थिक क्षेत्र को पवित्र रखने के लिए ही तो सापेक्ष वैयक्तिक नैतिकता की आवश्यकता है। इस विषय में म० H. Sidgwick का कथन है—

Meanwhile it is always open to any individual, who dislikes the selfish habits of feeling an action naturally engendered by the individualistic organisation of society to contract them in his private sphere by practising of commanding a voluntary redistribution of wealth for the benefit of others.

अर्थात्—अर्थात्मक बातों में जो व्यक्ति समाज की व्यक्तिगत दुर्व्यवस्था के कारण उत्पन्न

---

* ऐसी दशा में अर्थ-शास्त्र-सम्मत किसी भी कार्य को हम अनैतिक कैसे कह सकते हैं, जब कि वह नैतिक विश्वास के आधार पर किया जाता है।

हुई भाव और क्रिया-सम्बन्धी स्वार्थ की परम्परा को पसन्द नहीं करता, उसका कर्तव्य है कि वह अपने वैयक्तिक क्षेत्र में दूसरों की भलाई के लिए द्रव्य को ईमानदारी से इच्छा और संयम-पूर्वक बाँटने की आदत डाले।

यहाँ यह कह देना भी अनुचित न होगा कि जो लोग आर्थिक नैतिकता के विरोधी हैं, उनके लिए भी यह बात तो विचारणीय है कि इस तरह की नैतिकता का समावेश अर्थ-शास्त्र-सम्मत है और एक दृष्टि से इसका आवश्यक अंग भी।

आर्थिक नैतिकता और हिन्दू-जाति

हिन्दू-धर्म-शास्त्रों में अर्थ के कार्य धर्मायत्त माने गये हैं। अर्थ धर्म से आक्रान्त है। यही कारण है कि उनके आर्थिक व्यवहारों में अर्थ-कलह का अवसर ही नहीं आता। फिर उनके अर्थ-कलह की नाम मात्र-सी भी मात्रा मुख्यतः वैश्य-वर्ण का विषय होने से ¼ ही रह जाती है और यह भी फिर दान-धर्म के महत्त्व से शून्य में बदल जाती है। यही कारण है कि एक विद्वान् के शब्दों में हिन्दुओं के अर्थ-कलह की प्रकृति चरित्रात्मक, गौरव-पूर्ण, उपकारमय और समधिक सरल है।

इन बातों के सिवा हिन्दुओं का प्रत्येक कार्य सत्य, शिव और सौन्दर्य से परिपूर्ण है। इनका वाणिज्य-व्यवसाय और शिल्प भी अहिंसा, पवित्रता और सौन्दर्य से युक्त है। यही कारण है कि उनके धर्म-शास्त्रों में निम्नलिखित आर्थिक संरक्षण (Safe Guards) मिलते हैं—

जो अर्थ में पवित्र है, वही पवित्र है। केवल पानी और मिट्टी से कोई भी व्यक्ति पूर्णतः पवित्र नहीं हो सकता। कलाकारों और व्यापारियों के हाथ सदैव पवित्र होने चाहिए इत्यादि-इत्यादि।

इसमें एक विशेषता यह भी है कि हिन्दू-जाति के आध्यात्मिक होने से भी इसके सम्पूर्ण आर्थिक, राजनीतिक आदि कार्यों में पवित्रता, सौन्दर्य और सार्वजनिक और सार्वभौम भाव पाये जाते हैं। और अब भी ये नामशेष नहीं हुए। हिन्दू-जाति के प्रकृति, सहानुभूति, परोकार और निवृत्ति-परायणता आदि तत्त्व भी इसके अर्थ-शास्त्र और अर्थ-व्यवहार की निरपेक्ष सात्त्विकता और सार्वभौम उपयोगिता के प्रमाण हैं।

अर्थ-शास्त्र और एक अद्भुत बात

अर्थ-शास्त्र में कम से कम आजकल एक बड़ी ही अद्भुत बात का दौरदौरा है। वह यह कि अनेक अर्थ-शास्त्री अर्थ-शास्त्र के साथ नीति-शास्त्र का सम्बन्ध नहीं मानते, यद्यपि इसके साथ नीति-शास्त्र का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है और इसके सामाजिक होने से परोक्ष भी। फिर व्यावसायिक नीति भी तो एक नैतिक तत्त्व है। इसके सिवा अर्थ-शास्त्रीय व्यापार और व्यवसाय कोई "डाके" तो हैं ही नहीं कि जिनका नीतिसम्मत कोई अर्थ हो ही न सकता हो। साथ ही आर्थिक प्रतियोगिता भी तो चरित्र-साध्य ही है। इसमें भी तो किसी न किसी प्रकार के मनुष्योचित चरित्र की आवश्यकता होती है। फिर यह है तो मानवीय ही, न कि पाशविक। फिर समझ में नहीं आता कि अर्थ-शास्त्र-जैसे उच्च और पवित्र विषय को अनेक लोग अपवित्रता, नीचता और पाप का विषय क्यों समझते हैं? और इसमें अनैतिक तत्त्वों का अनुमोदन क्यों करते हैं? कारण, अर्थ-शास्त्र की भी अपनी नीति है और उसके अधिकारियों और व्यावसायियों का शीलव्रत भी। इसके सिवा अर्थ-शास्त्रीय अन्वेषण में तो प्राकृतिक, नैतिक और सामाजिक तत्त्वों की अत्यधिक आवश्यकता होती है। फिर अर्थ-शास्त्रीय "सत्य" भी तो एक वस्तु है। उसमें क्या हेतु-वाद (Reasoning) की आवश्यकता नहीं होती? क्या हेत्वाभासों पर विचार नहीं किया जाता? इस विषय में निम्नलिखित बातें भी समधिक ध्यान देने योग्य हैं—

यह बात विज्ञान-सम्मत है कि प्रकृति की प्रत्येक बात नैतिक है। फिर सामाजिक शास्त्र की बातें तो अनैतिक हो ही नहीं सकतीं। इसके सिवा "अर्थ-शास्त्र" यह शब्द भी नैतिकता का ही



व्यञ्जक है। इसके उत्पादन, वितरण और विनिमय आदि तत्त्व भी नैतिक ही हैं, विशेषतः वितरण और विनिमय तो नैतिकता की उच्च घोषणा हैं।

अर्थ-शास्त्र और धर्म

अर्थ-शास्त्र का धर्म के साथ भी गहरा सम्बन्ध होना चाहिए। यद्यपि आधुनिक अर्थ-शास्त्री इस बात को मानने को तैयार नहीं, परन्तु हमारी समझ में अर्थ-शास्त्र दो प्रकार का है। एक धार्मिक अर्थ-शास्त्र और दूसरा अधार्मिक। फिर जब हम यह मानते हैं कि अर्थ-शास्त्र सामाजिक शास्त्र की एक शाखा है और इसका सम्बन्ध अन्यान्य शास्त्रों की तरह नीति-शास्त्र से भी है तो ऐसी दशा में धर्म के साथ तो इसका सम्बन्ध अपने आप स्थापित हो जाता है, क्योंकि नीति और समाज-शास्त्र का धर्म के साथ अकाट्य सम्बन्ध है। इसके सिवा हिन्दुओं का समाज-शास्त्र-निवृत्ति प्रधान है और सम्पूर्ण-निवृत्ति-परक तत्त्व धर्म-मूलक हैं; ऐसी हालत में अथ-शास्त्र भी धर्म-मूलक ही सिद्ध होता है। कदाचित् किसी के मत में समाज-शास्त्र की निवृत्ति-मूलकता अमान्य हो तो इसका उत्तर यह है कि प्रवृत्ति-मूलक सभ्यता और अनैतिक अर्थ-शास्त्रीयता से तो समाज में कभी शान्ति स्थापित नहीं हो सकती और न अर्थ-शास्त्र का वास्तविक उद्देश्य ही प्रमाणित हो सकता है। साथ ही न्याय, वेदान्त आदि हिन्दू-शास्त्रों की तरह अर्थ-शास्त्र मुक्ति-प्रद और शान्ति-विधायक भी सिद्ध नहीं हो सकता। फिर आधुनिक दृष्टि से तो अर्थ-शास्त्र के व्यावसायिक क्रिया-कलाप का संतोष (Satisfaction) और शान्ति-जैसे नीति-तत्त्वों से सम्बन्ध माना गया है। फिर भी क्या इसके धार्मिक होने में सन्देह हो सकता है?

अर्थ-शास्त्र और सुधार-उद्धार

अर्थ-शास्त्र संसार के अन्यान्य आधुनिक शास्त्रों की तरह ही अभी दोष-पूर्ण है। इसके तात्त्विक और व्यावहारिक दोनों रूप ही दोष से ख़ाली नहीं हैं। कम से कम इसके दूसरे रूप में तो पर्याप्त दोष हैं, इसलिए उसके सुधार-उद्धार की अत्यन्त आवश्यकता है और कुछ विद्वानों के मत से इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए निम्नलिखित बातें समधिक विचारणीय मालूम होती हैं—

क. १. अर्थ-शास्त्रीय अनैतिकता की रोक-थाम
 २. अर्थ-शास्त्रीय उच्छृङ्खलता का नियन्त्रण
 ३. अर्थ-शास्त्रीय Dynamic (बल-संक्रान्त) पद्धति का संशोधन।

ख. १. अर्थ-शास्त्रीय Exactness (यथार्थता) का उत्पादन
 २. अर्थ-शास्त्रीय, सौन्दर्य की अभिव्यंजना
 ३. अर्थ-शास्त्रीय व्याख्या-पद्धति के संरक्षण

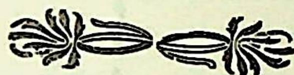
ग. १. अर्थ-शास्त्रीय सामाजिक संस्कृति
 २. अर्थ-शास्त्रीय सात्त्विक परम्परा
 ३. अर्थ-शास्त्रीय तात्त्विक सरलता

उपर्युक्त बातों के सिवा निरपेक्ष और निष्काम अर्थ-शास्त्रीय व्यावहारिकता की भी अनिवार्य आवश्यकता है; क्योंकि इसके बिना भी अर्थ-शास्त्र का व्यावहारिक अंग कदापि सन्तोष-जनक और सुख-शान्ति-प्रद नहीं हो सकता।

अंत में यहाँ यह कह देना भी समुचित मालूम होता है कि आजकल सम्पूर्ण संसार ही आर्थिक क्लेशों से दीन, हीन और पतित-सा हो रहा है। निर्धन, बेकार और किसान आर्थिक दुःख-दावानल से स्वाहा हो रहे हैं। साथ ही पूँजी-पति, ज़मींदार और व्यवसायी भी कम दुखी नहीं हैं। इनके भी अपने-अपने दुःख हैं। सारांश यह कि आज का प्रायः प्रत्येक मनुष्य भावात्मक और अभावात्मक आर्थिक दुःखों से पीड़ित है। और इसका प्रधानतम कारण अर्थ-शास्त्र की अशास्त्रीयता और अनैतिकता ही है। इस समय प्रचलित अर्थ-शास्त्र का एक भी तत्त्व ऐसा नहीं है, जो दुःखद सिद्ध न हो रहा हो। इसके उत्पादन, वितरण, विनिमय और उपभोग आदि सबके सब तत्त्व संसार की अशान्ति को बढ़ा रहे हैं। बड़े-बड़े



साम्राज्य इस 'अर्थ-रोग' की चिकित्सा में लगे हुए हैं, परन्तु सब इसमें ऋणांक ही ला रहे हैं। ऐसी दशा में इस बात की अनिवार्य आवश्यकता प्रतीत होती है कि संसार भारतीय सभ्यता को ग्रहण करे, क्योंकि इसके विना समाज-शास्त्र और राज-नीति-शास्त्र जैसे प्राणपोषक विषय भी सुखद नहीं हो सकते और न अर्थ-शास्त्र का सात्त्विक परिष्कार ही हो सकता है। फ़्रेडरिक पिन्काट के शब्दों में निवृत्ति-प्रधान भारतीय नैतिक सभ्यता ही असल में एक ऐसी वस्तु है, जिससे मानव-समाज का ठीक तरह सुधार, उद्धार और कल्याण हो सकता है।



मन्सो

श्री'अज्ञेय'

यह कहानी कहानी-अंक के लिए आई थी। परन्तु विलम्ब से आने के कारण इस अंक में जा रही है। मा० सं०

जब उस दिन, एक विचित्र विस्मय में भर-कर अपने झोपड़े के द्वार पर आते ही मैंने अपने हाथों को हथकड़ियों में बँधे हुए पाया, तब, उस अनहोनी, यद्यपि चिर-अपेक्षित, घटना के दबाव के बीच में भी, मैंने यह सोचा था कि इस विघ्न द्वारा कुछ पूर्ण हो गया है,—कुछ ऐसा, जिसका कोई अन्त मैं सोच ही नहीं पाता था.... पर आज इतने दिन बाद तुम्हारे सम्बन्ध में एक दूरस्थ भाव हृदय में जमाकर, जब मैं अपने उस दिन के विचारों को लिखने बैठा हूँ, तब यह सोच-सोचकर मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं कि मैं तुम्हारे सम्बन्ध में जो कुछ लिख रहा हूँ, जो कुछ लिखूँगा, वह कभी तुम नहीं जान पाओगी—तुम्हें कभी यह भी ज्ञात नहीं होगा कि मैंने कभी तुम्हारे बारे में कुछ लिखा—कभी कुछ सोचा भी! मन्सो, जब ऐसा है, तब वे सारे विचार, यह सारा एकाग्र चिन्तन, यह लिखना, यह सौन्दर्य को घेर-घेरकर इकट्ठा करने की चेष्टा, यह निरन्तर खोज, और यह अप्राप्ति के प्रति विद्रोह—ये सब कितने व्यर्थ हैं!

यदि मैं अपने को विश्वास दिला सकता कि मैं जो लिख रहा हूँ, जो निर्माण कर रहा हूँ, वह कला की वस्तु है और इसलिए मेरे व्यक्तिगत जीवन से अलग है, तब शायद मैं लिख सकता। पर वह झूठ है, मैं जानता हूँ, वह झूठ है! यह कला नहीं है, यह सर्वलौकिक वस्तु नहीं है; यह है मेरी घोर व्यक्तिगत व्यथा, जिसे दुबारा भुगतकर मैं चाह रहा हूँ भूत को जिला लेना, एक धुँधले चित्र में नई दीप्ति और नया जीवन डाल देना—यह जानते हुए कि वह चेष्टा है व्यर्थ!

× × ×

मैं विवश हूँ। जब-जब इस चेष्टा की निरर्थकता जानकर मेरे प्राण रो उठते हैं, तभी कविता की दो-एक पंक्तियाँ मेरे मस्तिष्क में फिर जाती हैं और उन्हें गुनगुनाते हुए मुझे फिर भ्रम हो आता है कि एक धुँधला-सा चित्र मेरे आगे खड़ा है, जो मेरे स्पर्शमात्र से जी उठेगा, और मैं आत्म-विस्मृत होकर तत्काल आगे हाथ बढ़ा देता हूँ—

Spirit of sadness! In the spheres
Is there an end of mortal tears?
O, is there still in those great eyes
That look of lonely hills and skies?

मुझे अभी याद है, उन दिनों के एक दिन, तुम्हें अपने दृष्टि-पथ से जाते हुए देखकर, तुम्हारा वह वन्य सौन्दर्य, तुम्हारी आँखों की अथाह नीलिमा देखकर, यह सोचकर रो उठा था कि सौन्दर्य की जिस प्रकार की अनुभूति मैं कर सकता हूँ, जिसके लिए मेरे पास इतने साधन



उस प्रकार की अनुभूति तुम्हें कभी नहीं प्राप्त हो सकती, क्योंकि वे साधन तुम्हारे पास नहीं हैं, न होंगे। कालिदास और शेली, रेफ़ेल और रोज़ेटी, हमारी संस्कृति की असंख्य सौन्दर्यानुभूतियाँ, तुम्हारे जीवन-क्षितिज से परे हैं और रहेंगी, हम तुम्हारे विवश उपासक रहेंगे, किन्तु तुम वही सरल, स्वच्छन्द, अछूती वन्य मन्सो ही रह जाओगी.... एक ओछी पहाड़ी झील की तरह, जिसके उथले किन्तु स्वच्छ शान्त मुकुर में, जहाँ तल के कंकड़-पत्थर दीख जाते हैं, वहाँ आकाश का अबाध विस्तार और शरत्कालीन मेघपुञ्जों की रहस्यमयी गति भी प्रतिबिम्बित होती रहती है....

पर यह शायद मेरा मिथ्या दर्पमात्र है? सम्भवतः तुममें भी उसी दर्जे की अनुभूति-क्षमता थी, पर उन वस्तुओं के सम्बन्ध में नहीं? नहीं तो, यह कैसे होता कि उस दिन तुम्हारी आँखें एकाएक ऊपर उठकर मेरी दृष्टि को ललकारकर पूछतीं, "परदेसी, कभी तुमने—?"

* * *

(१)

शेखर जिस झोपड़े में छिपकर अपने दिन बिता रहा था, वह पहाड़ के उतार में, एक बड़ी-सी चट्टान की आड़ में, बना हुआ था। किसी ज़माने में शायद वह गूजरों ने गायें बाँधने के लिए बनाया था, किन्तु बाद में जब वह ज़मीन किसी राजपूत के हाथ आ गई थी, तब उसने उसी को लीपपोतकर किराये पर उठाने लायक़ झोपड़े में परिवर्त्तन कर दिया था। उस समय उसे एक और राजपूत ने किराये पर लिया था; और अपने को दीन मलिन वसनों में छिपाये हुए शेखर इसी राजपूत की नौकरी में यहाँ रहा करता था—उसकी भूमि के रक्षक की हैसियत से। उसे काम कुछ नहीं था, अतः यही उसका सबसे बड़ा काम था कि सोचे, क्या करे। वह झोपड़े के तंग और नीचे दरवाज़े में बैठ जाता, और कुछ नीचे जाते हुए श्वेत पहाड़ी पथ की ओर, या तलहटी के पारवाले पहाड़ के अंक में एक स्वर रोते (या गाते या हँसते) हुए छोटे-से झरने की ओर देखा करता। कभी एकाएक उसकी इच्छा होती, कुछ गाए, किन्तु पहाड़ी गीत न जानने के कारण, अपना भेद खुल जाने के डर से, वह चुप रह जाता। इसी डर से वह कुछ पढ़-लिख भी नहीं सकता था। वह वहीं चुपचाप आँखोंवाले अन्धे और ज़बानवाले गूँगे की तरह बैठा रहता, उसके मन में अस्फुट कविता की अधूरी पंक्तियाँ दौड़ा करतीं, या कहाँ-कहाँ की स्मृतियाँ; और उसे क्षोभ होता कि उसका जीवन कितना सूना है, आज ही नहीं, सदा से कितना सूना रहा है....

हाँ तो, वह उस श्वेत पहाड़ी पथ की ओर स्थिर दृष्टि से देखा करता था। उस पथ में कुछ नई बात नहीं थी, एक साधारण पहाड़ी पथ था। किन्तु शेखर जो उसकी ओर इतनी देर देखते-देखते भी नहीं उकताता था, उसका कारण यह था कि सब ओर हरियाली से घिरे रहने के कारण उसे चील वृक्षों की आड़ में से थोड़ी देर के लिए निकलकर खो जानेवाले इस पथ की धवलता का, एक नयेपन का, एक कोमलता या सजीवता का आभास दे जाती थी। शेखर को मानों जान पड़ता था कि वह पथ उसी के जीवन का प्रतिबिम्ब है—प्रतिकूल अवस्थाओं से घिरा हुआ, किन्तु क्षणभर के लिए उस आच्छादन को काटकर प्रकट और देदीप्यमान....

कुछ दिनों तक, यही एकमात्र कारण था। फिर एक दिन एकाएक शेखर ने जाना, जो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ होती हैं, उनका पूर्वाभास नहीं मिलता, लोकश्रुति चाहे जो कहे। जिस क्षण ने उसके जीवन की स्वीकृतिमय थकान को एक उत्कंठित प्रतीक्षा में बदल दिया, उसका कोई आभास शेखर को पहले नहीं मिला।

शेखर न-जाने क्या-क्या सोचते-सोचते थक गया था। उसका सिर मानों घूम रहा था। वह



दरवाज़े से उठकर भीतर जाने को ही था कि उसने देखा—

आकस्मिक अनुभूति घटनाक्रम को उलट-पुलट कर देती है। उस समय शेखर की स्मृति में जो चित्र जम गया, वह था केवल दो चौंक-कर ऊपर उठी हुई आँखें—किन्तु आँखें कैसी ! शेखर जानता है कि जिस समय उसने पहलेपहल पथ पर उसे देखा, उसका सिर झुका हुआ था, क्योंकि उसने एक कन्धे और ग्रीवा के बंक के ऊपर एक घड़ा टिका हुआ था, और दूसरे कंधे पर उसके सिर को ढकनेवाला काला और बोझल रूमाल लटक रहा था। यह तो बाद में हुआ था कि शायद शेखर की कोई आहट पाकर, उसने क्षण के अंश भर रुककर, चौंकी हुई दृष्टि से ऊपर देखा था, और फिर शेखर की उत्कंठित दृष्टि के आगे सिमटकर जल्दी से आगे बढ़ गई थी....

वह सब, ऐतिहासिक दृष्टि से, बिलकुल ठीक और अनुक्रमिक है; पर—वे आँखें ! उस सारे चित्र का केन्द्र वे हैं, वैसे ही, जैसे चन्द्रोदय के समय उसकी पूर्व ज्योति, पर्वतों की रजत-रेखा-खचित करती हुई प्रथम किरणें, खिल उठनेवाले बादल, तारों का क्रमशः छिप जानेवाला झिलमिल कम्पन, सब ऐतिहासिक क्रमबद्ध सत्य होकर भी उदय के उस प्रकांड और मनोमोहक सत्य के आगे कुछ नहीं रहते—उस समय नहीं रहते, केवल बाद में धीरे-धीरे चोरों की तरह चित्र में अपने-अपने स्थान पर आ विराजते हैं....

आँखें देखती हैं, मन परखता है, वाणी कहती है। इन तीनों की शक्तियाँ अलग-अलग क्षमता रखती हैं—अतः उसकी आँखों का वर्णन ऐसा करना कि दूसरा उन्हें चित्रित कर सके, असम्भव है। बर्न जोन्स (Burne Jones) के चित्र देखने से जान पड़ता है, उसके हृदय में ऐसी ही किन्हीं आँखों ने स्थान पाया होगा, जिन्हें चित्रित करने में उसने अपना जीवन बिता दिया; किन्तु यदि मन्सो की आँखें उसने देखी होतीं, तो वह आत्महत्या कर लेता। या अगर उसका ग्रन देखने की सामर्थ्य रखता, तो आज उन्हें देखकर जी उठता और कहता, 'यह है वह अवर्ण्य सत्य, जिसे मैं कह नहीं पाया हूँ....'

शेखर ने सोचा, उसका जीवन उतना सूना नहीं है, जितना उसने समझा था। उसके जीवन में प्रकट हुई एक नई उत्कंठा, अस्तित्वमात्र के प्रति एक ममत्व, एक आग्रह, एक प्यास....उसके दिन पहले की अपेक्षा छोटे हो गये—कितने छोटे और कितने सरल ! एक क्षण तक प्रतीक्षा, उसके बाद उस क्षण का चिन्तन—बस, यही तो थी उसकी चर्या.......

पर, ईश्वर की बुद्धिमत्ता का सबसे अच्छा प्रमाण है मानव-हृदय का असन्तोष, तृप्ति की असम्भवता। यदि एक बार पाकर ही हम सन्तुष्ट हो जाते, तो कुछ दिन में संसार जड़ होकर नष्ट हो जाता। निरन्तर भूख, निरन्तर माँग, निरन्तर प्राप्ति, निरन्तर वृद्धिगत भूख—यही जीवन का अनिवार्य और नितान्त आवश्यक क्रम है.......

(२)

वह नित्य क्रम हो गया था ! नित्य ही वह प्रतीक्षा, वह 'आकस्मिक' चौंकी हुई ऊपर उठी दृष्टि, वह आँखों का मिलन, वह क्षणिक—क्या ? वह 'अकस्मात्', किन्तु इच्छा से धारण की हुई मुद्रा, उसके बाद एक त्वरितगति कँपकँपी-सी, और काले रूमाल का अवगुण्ठन, और कंधे पर रक्खे हुए घड़े की ओट। कभी शायद वेणी में बँधे हुए छोटे-से घुँघरू का बहुत हल्का-सा रुनझुन।

यह सब अभी तक आकस्मिक ही था, किन्तु शायद नित्य होने के कारण इनकी आकस्मिकता पुरानी हो गई थी। तभी तो, उस दिन, जब शेखर अपने अभ्यस्त स्थान पर खड़ा-खड़ा एक विचारपूर्ण प्रतीक्षा में उलझा हुआ था, तब उसके मन में एक दबा हुआ-सा असन्तोष था कि इस क्रम में कोई परिवर्त्तन क्यों नहीं होता।



वह अपने सामने की पर्वतमाला, स्वच्छ आकाश, जिसकी स्वच्छता पर बादल का एक छोटा-सा टुकड़ा मानों अधिक ज़ोर दे रहा था, उसमें उड़ते एक विशालकाय गरुड़, सामने के छोटे-से झरने और चीलों की छाया में जड़े हुए उस पथ के टुकड़े को देखकर, एक विचित्र आत्मविस्मृति के भाव से, मन्सो को सम्बोधित करके, नीरव शब्दों में कह रहा था, यह सारी पर्वतमाला तुम्हारी है। यह सारा प्रदेश, यह सारा बिखरा सौन्दर्य, मेरे लिए है केवल यह छोटा-सा द्वार, यह निर्जन प्रान्तर का छोटा-सा टुकड़ा, वह एक रेखा, जो पथ की धवल रेतीली धूल पर तुम्हारे पैरों की छाप से बन जाती है और जिसे तुम्हारे कन्धे पर के घड़े से छलका हुआ पानी बूँद-बूँद करके धो जाता है....मैं भागा हुआ क़ैदी तुम्हारी इस विशाल सुन्दर सृष्टि में आकर भी अपनी उस छोटी-सी क़ैद में से नहीं भाग पाता....

तभी वह आई। वह नित्यवाला क्रम फिर हुआ। शेखर एक विस्मृति से जागकर दूसरी विस्मृति में खो गया, और फिर क्षण ही भर में जाग पड़ा। उसके मन में अपने ही विचार के उत्तर में एक प्रश्न उठा, "क्यों नहीं भाग पाता ?" और वह अकारण खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने स्वयं नहीं जाना, तब नहीं, कभी नहीं जाना—कि क्यों।

उसने घूमकर, रूमाल हटाकर, शेखर की ओर देखा, और उसकी हँसी का कारण न जानकर भी, उसकी बिलकुल स्वच्छ सरलता का अनुभव करके, विवश होकर मुस्करा दी।

शेखर ने किसी तरह पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?" यह उसे प्रश्न पूछने के बाद ध्यान आया कि उसका हृदय किस अनभ्यस्त गति से धड़क रहा है।

उसने कहा, "मन्सो !" उसकी आवाज़ में रस से बढ़कर कुछ—एक सजीव कम्पन-सा—था, जो वयःसन्धि की भर्राई हुई ध्वनि के सम्मिश्रण से और अधिक आकर्षक हो गया था।

वह आगे बढ़ने लगी। संस्कृति की परिचय-प्रथा के अभ्यस्त शेखर ने शायद आशा की थी कि मन्सो अपना नाम बताकर पूछेगी, "और तुम्हारा ?" पर जब वैसा नहीं हुआ, तो शेखर ने कहा, "मेरा नाम है दाता।" दाता ही वह नाम था, जिसकी आड़ में वह उस समय अपने को छिपाये हुए थी।

मन्सो ने जब फिर घूमकर देखा, तब अभी उसकी मुस्कराहट गई नहीं थी। वह थोड़ी देर स्थिर दृष्टि से शेखर की ओर देखती रही—इतनी स्थिर दृष्टि से कि शेखर स्तब्ध होकर अपने दिल की धड़कन गिनने लगा—एक दो, तीन, चार.... फिर वह खिलखिलाकर हँस पड़ी, बोली, "मुझे क्या ?" और जल्दी से घूमकर, रूमाल से अपना मुँह छिपाकर, पहले से अधिक मुखर स्वर से घुँघरू रुनझुनाकर, चली गई।

कुछ देर तक मन्सो के उस प्रश्न की कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। किंतु उसके बाद ही वह आई; एक बवण्डर की तरह, जो इस नई घटना की नूतनता को भी उड़ा ले गया और हूल-हूलकर एक ही प्रश्न उसके कानों में, मस्तिष्क में, समूचे शरीर, समूचे संसार में ध्वनित करने लगा—मुझे क्या ? मुझे क्या ? मुझे क्या ?

हाँ, तुम्हें क्या ! शेखर कौन है या दाता कौन है, किस संसार का वासी है, किस संस्कृति का प्रतिनिधि, तुम्हें क्या ! किसका शत्रु है, किसका मित्र; किससे लड़ता है, किससे भागता है; किसका सखा है, किसका प्रतिस्पर्धी; किसका विरोधी है, किसका प्रेमी; तुम्हें क्या ! कविता से तुम्हें क्या, कला से तुम्हें क्या, चित्रकारों से तुम्हें क्या, बर्न-जोन्स से तुम्हें क्या ! अवर्ण्य आँखों, और दिव्य सौन्दर्यानुभूति से भी तुम्हें क्या !

पर, क्यों नहीं तुम्हें कुछ ? क्यों, कैसे, किस अधिकार से, तुम हो जीवन की पुकार से परे, सौन्दर्य की अनुभूति से परे, आन्तरिक न्यूनता की प्यासी रिक्तता से परे ? तुम्हें जानना होगा,

मानना होगा, झुकना होगा उसकी प्रेरणा के आगे; उसी प्रेरणा के आगे जो....

जो क्या ? जो हमारे विश्व के स्थायित्व का मूल है, जो उसे बनाये रखता ही नहीं, चलाता भी है, वह अप्रतिहत आकर्षण....

शेखर धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा—

तेरा कहा न मैंने माना
"भर लो अपनी अनुभव-डलिया !"
प्रियतम ! अब क्या रोना-धोना !
"भर लो अपनी अनुभव-डलिया !"
धूल-धूल मधु की रँगरलियाँ !
परिचित भी तू रही अचीन्हीं
तरु पर कुहक उठी पड़कुलिया !

और सोचने लगा, क्या कभी मन्सो के जीवन में ऐसा क्षण नहीं आवेगा, जब वह लौटकर देखेगी, कहीं किसी वस्तु की कमी पाकर परिताप करेगी कि क्यों नहीं, जब समय था, तब उसने स्मृतियों का भण्डार भर लिया....फिर उसे ध्यान आया, क्या वही एक है, जो उस भण्डार को भर सकता है, क्या उसी की, उस भागे हुए क़ैदी की, स्मृति ही एक वस्तु है, जो मन्सो के जीवन में मूल्यवान् हो सकती है, और यह विराट् सौन्दर्य, ये प्रकट और अप्रकट निधियाँ, उसके लिए कुछ नहीं रखतीं, एक स्मृतिभर भी नहीं ? वह दुखित होकर झोपड़े के भीतर चला गया और उग्रगति से इधर-उधर चक्कर काटने लगा....

उसके बाद, तीन-चार दिन तक मन्सो उस पथ पर से गई या नहीं, शेखर ने नहीं जाना। जानने की चेष्टा ही नहीं की। जड़वत् झोपड़े के मध्य में, द्वार की ओर पीठ करके बैठा रहा, विशेषतः मन्सो के जाने के समय के आसपास।

(३)

साँझ घिरती आ रही थी। पर्वत-शृंगों से घिरे हुए उस बड़े प्याले में, जिसमें पहाड़ी झरना बहता था, अन्धकार भर गया था, और बढ़ रहा था। केवल ऊँची चोटियों पर कहीं-कहीं एक रश्मिम-सा प्रकाश था, जो शीघ्र उस बढ़ते हुए सजीव अन्धकार में घुलता-सा जा रहा था। प्रकृति मानों थककर सोने की तैयारी कर रही थी। केवल उसकी साँस की तरह चीलों में वायु की सरसर ध्वनि अनवरत होती जा रही थी....

शेखर का ध्यान उधर नहीं था। वह एक चोटी से कुछ ही उतरकर, एक ऊँचे पत्थर पर खिन्नमन बैठा हुआ था। पहला क्रम टूट जाने से उसका यही क्रम हो गया था—नित्य ही साँझ को यहाँ आकर बैठ जाता, और अँधेरा हो जाने पर धीरे-धीरे उतरकर घर आ जाता। इसमें सुख नहीं था, थी एक कुढ़न, पर फिर भी वह नित्य ऐसा ही करता था, ऐसा करना अपने झोपड़े के द्वार पर प्रतीक्षा करने से अधिक सहज पाता था....

बैठे-बैठे वह शून्य दृष्टि से कुछ दूर नीचे के एक झोपड़े की ओर देख रहा था। उसने देखा, वहाँ से कोई निकलकर धीरे-धीरे उसकी ओर आ रहा है, कमर झुकाये, मानों कुछ ढूँढता आ रहा हो। उस धुँधलके में वह पहचान नहीं सका कि कौन है, किन्तु समीप आकर जब उसने पूछा—"यहाँ क्यों बैठे हो ?" तब शेखर चौंक उठा—'मन्सो !' वह बिना उत्तर दिये ही मन्सो के मुख की ओर देखने लगा। मन्सो ने फिर कहा—"यहाँ साँझ में मत बैठा करो, इधर रीछ आते हैं।"

शेखर को बड़ी उत्कट इच्छा हुई कि कह दे, "तुम्हें क्या ?" पर वह नहीं कह पाया। अपना क्षोभ निकाल देने का इतना सरल उपाय, न जाने क्यों, वह स्वीकार नहीं कर सका। उसने उदास-से स्वर में पूछा—"तुम यहाँ क्या कर रही हो ?"

"एक बूटी ढूँढ रही हूँ।"

"कैसी बूटी ?"

"दवाई है।" कहकर उसने अपने हाथ में पकड़ी हुई एक-दो फुनगियाँ शेखर को दिखा दीं।



"लाओ, मैं भी देखूँ।" कहकर शेखर ने हाथ बढ़ाया, तो वह पलटकर हँसकर भागती हुई बोली—"क्यों, तुम्हें क्या हुआ है ?"

क्षण ही भर में वह झोपड़े के भीतर जा पहुँची। तब शेखर अपने आपको कोसने लगा कि क्यों उसने इतनी जल्दी हार मान ली और इतनी बुरी तरह पिटा ! वह जान-बूझकर बहुत रात गये तक वहाँ बैठा रहा, किन्तु न तो रीछ ही आया, और न—हाँ, इसकी भी एक छिपी-छिपी आशा थी !—न मन्सो ने ही झोपड़े के बाहर आकर देखा कि वह चला गया है या अभी बैठा है। झोपड़े में जो धीमा प्रकाश था, वह जब बुझ गया, तब शेखर धीरे-धीरे सिर झुकाये उतर आया।

*   *   *

शेखर ने निश्चय कर लिया था कि वह अब फिर इधर नहीं देखेगा। वह झोपड़े में बैठा, ज्यों-ज्यों मन्सो के आने का समय निकट आता जाता था, त्यों-त्यों अधिक निश्चयात्मक भाव से अपने को कहे जा रहा था, "नहीं देखूँगा, नहीं देखूँगा; नहीं देखूँगा।" और उसे लग रहा था, सामनेवाले पहाड़ी झरने की ध्वनि भी, मानों उसी के निश्चय की आवृत्ति के साथ-साथ ताल देते-देते अधिकाधिक तीखी होती जा रही है।

जब वह समय आया और बीत गया, और शेखर अपने स्थान से हिला नहीं, तब वह यकायक विजय के उल्लास से फूल उठा—कितनी बार ऐसा होता है कि ठीक पराजय के समय ही हम विजय के उल्लास से भरते हैं !—और उठकर सीधा द्वार की ओर गया। वह तो चली गई होगी, पर शायद उसके पद-चिह्नों को धोनेवाली बूँदों की रेखा अभी बनी होगी, यह सोचते हुए उसने झाँककर देखा।

पथ के किनारे पर बनी हुई मेड़ पर वह बैठी थी, गोद में घड़ा रक्खे, घड़े के मुँह पर दोनों हाथ रखकर उन पर ठोड़ी टेके, स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी।

क्या वह थकी थी ? यदि ऐसा, तो क्यों शेखर से आँखें चार होते ही सकबका कर उठी और घड़ा उठाकर जल्दी से चीलों की ओट हो गई ? शेखर को ऐसा अनुभव हुआ, उसकी विजय और भी पुष्ट हो गई है—मानों उसने कोई चोर पकड़ लिया है। वह फिर खिलखिलाकर हँस पड़ा....

जब वह लौटा, तब उसके मन में उसी की कविता की एक पंक्ति सहसा गूँज उठी।

पर ऐसे भी दिन होंगे जब

स्मृति भी नष्ट हो चुकी होगी ?

उसने देखा, लिखते समय इस पंक्ति के पीछे जो आशंका, जो संशय का भाव था, वह इस समय नहीं है। इस समय उसका उत्तर बिलकुल सीधा, बिलकुल निश्चयात्मक है....

*   *   *

पर, उसके बाद जब शेखर नित्य ही पूर्ववत् झोपड़े के द्वार पर बैठकर प्रतीक्षा करने लगा, और मन्सो नहीं आई, तब धीरे-धीरे उसे ज्ञान हुआ कि जिसे वह अपनी विजय समझे था, वह वास्तव में उसकी पराजय, घोर आत्मसमर्पण था। विजय मन्सो की ही थी और उसी की रहेगी।

वह यह जानने की जितनी ही कोशिश करता कि मन्सो क्यों नहीं आई, उतनी ही उसकी उलझन बढ़ती जाती। एक ही कारण था, जो उसे उचित जान पड़ता था—कि वह जान-बूझकर नहीं आई, किन्तु इसे स्वीकार करने के विरुद्ध उसका समूचा आत्मा विद्रोह कर उठता था। यदि वह उसे बिलकुल महत्त्व नहीं देती, उसकी इतनी उपेक्षा है, तब वह उसे इतना महत्त्व क्यों देने लगी कि केवलमात्र उसी के कारण, उसी को चिढ़ाने के लिए, उस पथ पर से आना छोड़ दे ? यह तो केवल तब हो सकता है, जब—जब वह हो जाय, जो नहीं हो सकता....

एकाएक शेखर को ध्यान आया, मन्सो पानी भरकर ले जाती है, पर वह उसे लौटती ही देखता है, आती कभी नहीं देखता। इसका यही कारण हो सकता है कि वह पानी लेने किसी दूसरे पथ से जाती थी, और अब वापस भी उधर ही से लौटने लगी है। पर क्यों? क्यों?

जिस समय शेखर ने यह सोचा,' उस समय बिलकुल सबेरा था। पर वह उलझन इतनी गौरवान्वित हो गई थी, उसका सुलझाना इतना नितान्त आवश्यक, कि शेखर उसी समय निकलकर मन्सो के झोपड़े की ओर चल पड़ा—यह देखने के लिए कि वह क़िधर से जाती है।

सूर्य की पहली किरण नहीं तो किरणों का पहला पुञ्ज अवश्य मन्सो की झोपड़ी को छूता था। जिस समय शेखर उसके पास पहुँचा, उस समय समूची झोपड़ी उस कोमल धूप में नहा रही थी, पर धूप के रंग में अभी वह स्निग्ध लाली थी, जो सन्ध्या की धूप में देर तक रहती है, किन्तु प्रातःकाल में अत्यन्त क्षणस्थायी होती है।

शेखर ठिठक गया।

मन्सो अपनी झोपड़ी के बाहर एक काली गाय को दुह रही थी। काली घँघरी में आवृत्त घुटनों से टीन का कमण्डल दबाये, काले रूमाल में छिपे हुए सिर को गाय के पेट पर टेके, शेखर की ओर पीठ किये वह बैठी थी, और दूध दुहते हाथों की गति के साथ उसकी वेणी के सिरे पर बँधा हुआ लोलक धीरे-धीरे इधर-उधर झूल जाता था।

उसे पता लग गया कि कोई उसे देख रहा है, क्योंकि उसने कलाई से सिर का रूमाल एक ओर हटाकर, कनखियों से उधर देखा, और शेखर को देखकर, सिर को गाय के पेट में और भी छिपाकर दूध दुहती रही—शेखर को ऐसा लगा, जैसे सदियों तक दुहती रहती।

थोड़ी देर बाद शेखर—आगे बढ़ गया—सिर झुकाये और धीरे-धीरे, और काफ़ी दूर तक चलता गया। एक चोटी पर पहुँचकर, चारों ओर देखकर, धप् से नीचे बैठ गया। और उसका आप पक्षी, जो अब तक आकाश में उड़ रहा था, उतार नहीं था, अब उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती हुई गति से नीचे गिरने लगा, जैसे गुरुत्वाकर्षण-पत्थर।

× × ×

शेखर सोचने लगा कि वह जो मन्सो को अपनी कल्पना में एक विशेष स्थान दे रहा है, वह क्या भूल नहीं कर रहा है? यदि वह चाहता है, मन्सो उसके वास्तविक जीवन का अंश हो तो क्यों वह उसे कल्पना की, देवोचित आराधना की अधिकाधिक ऊँची सीढ़ी पर चढ़ाये जा रहा है? और यदि मन्सो कल्पना की ही वस्तु है, उसके भाव-संसार का कल्पना-सत्य, तो क्यों वह उसे खींच-खींचकर यथार्थता के घेरे में बाँधने की चेष्टा कर रहा है?

वह अपने को समझाने लगा। मन्सो कुछ नहीं है। जो वास्तविकता है, और जो उसकी कल्पित मन्सो है, उनमें कुछ भी साम्य नहीं है। उसकी मन्सो एक वातावरण है, एक स्वप्न, एक छाया जिसकी अस्पृश्यता ही उसका सौन्दर्य और आकर्षण है। मन्सो बाहर कहीं नहीं, उसके सामने नहीं, उसके हृदयस्थ एक चित्र है, बस!

और यह क्या है, जो सामने है? ये बर्न-जोन्स के स्वप्नों से भरी रहस्यमयी आँखें, यह प्रशान्त दिवस के आकाश की स्वर्गंगा के समान अम्बर पर चमकता हुआ वेणीसूत्र, यह....

कुछ नहीं। बर्न जोन्स वहाँ कहाँ है! उससे पूछो, उसने कभी बर्न जोन्स का नाम सुना है? 'बर्न जोन्स के चित्र-सी आँखें'—यह वर्णन क्या उसके लिए कुछ अभिप्राय रखता है? प्रलय-दिवस की कल्पना वह कर सकती है—उसके मनःसंसार में इतना स्थान है? स्वर्गंगा उसके लिए क्या है!

एक बड़े पीड़ित विस्मय में, शेखर को यह ज्ञात हुआ कि उनकी मनोगतियाँ बिलकुल भिन्न तलों पर चलती हैं—शेखर के लिए जो वाक्य ... का सारा अभिप्राय लिये रहते हैं, वे मन्सो ...



लिए कुछ भी महत्त्व नहीं रखते, कुछ भी, अस्तित्व तक नहीं ! और बढ़ते हुए विस्मय, बढ़ती हुई पीड़ा, में वह अपने को बताने लगा कि किसी भी वस्तु का सौन्दर्य वह मन्सो के साथ नहीं बटा सकता—इस मन्सो के साथ, जो उसके मन में नहीं, अपने घर में बसती है ! ओफ़्. संसार की कोई भी (उसकी दृष्टि में) अच्छी, सुन्दर वस्तु ऐसी नहीं है, जिसे देखकर, सुख पाकर वह मन्सो की आँखों की ओर देखे, और उनमें अपने सुख का प्रतिबिम्ब पा सके ! क्या हुआ यदि वे वर्न जोन्स के स्वप्न की आँखें हैं, क्या हुआ....

शेखर की आँखों में आँसू आ गये—इतना आकस्मिक, इतना अभूतपूर्व था यह ज्ञान....

जब आदमी के चोट लगती है, तब उसकी ओर ध्यान देने से पीड़ा अधिक होती है, पर यह जानते हुए भी उसका ध्यान बराबर उधर ही जाता है। शेखर भी रह-रहकर अपने को कहने लगा, "वह दूध दुहती है, पानी लाती है, गायें चराती है, बूटियाँ बीनती है, खाती-पीती है, सो जाती है। इससे बाहर उसका कुछ नहीं, इसके आगे का संसार न उसने देखा है, न देख सकती है, न देखने की इच्छा करती है। इससे बाहर उसकी तृष्णा जाती ही नहीं, और इससे कभी उकताती नहीं कि बाहर जाने को उत्सुक हो।"

वह सोचने लगा, चाहने लगा, कि मन्सो में इस सबके अतिरिक्त भी कुछ होता, उसकी आँखों में इन पहाड़ों और आकाश के सूनेपन की छाया के साथ ही, कुछ और भी, छाया से बढ़कर; उस सूनेपन की अनुभूति नहीं तो उसे अनुभव करने की सामर्थ्य.........

ये विचार उसको जितने ही अप्रिय लगते, उतना ही वह और उन्हें सोचता, और जितना अधिक वह सोचता, उतना ही उसका विक्षोभ बढ़ता जाता, भरी आँखें बहती जातीं।

तब एक क्षण आया, जब वह आगे नहीं सोच सका। वह उठा, और वापस उतरने लगा।

* * *

मन्सो की झोपड़ी के पास आने तक उसकी पीड़ा की तीक्ष्णता बहुत कुछ धीमी पड़ गई थी। उतरते-उतरते जब बीच-बीच में वह उस झोपड़ी की ओर देखता, तब उसमें एक किञ्चित् विषण्ण शून्य भाव के अतिरिक्त कुछ नहीं होता था। किन्तु झोपड़ी के पास आते ही, उसके पुराने सब संशय, वे सारी दुःखद आशंकाएँ पुनः जाग उठीं।

झोपड़ी के बाहर खुली धूप में, घुटने टेककर बैठी हुई मन्सो बछिया को नहला रही थी। उसकी मुद्रा में एक तन्मयता का, एक दिव्य आर्जव का भाव था, किन्तु उसके चेहरे पर उसकी आँखों में थी, वही गहरे रहस्य से भरी हल्की मुस्कान।

शेखर उसके बहुत समीप पहुँच गया था। उसने शायद अपने विचारों के दबाव के कारण ही, सहसा पूछा, "मन्सो, तुम थक नहीं जातीं?" उसने चौंककर केवल आँखें उठाकर शेखर के मुख की ओर देखा—वे आँखें और उनमें वह उठती हुई चितवन—और एक दूरस्थ विस्मय के स्वर में कहा, "नहीं तो—काहे से?"

शेखर जैसे एकाएक बुझ गया। थकना काहे से—यह भी नहीं जानती! और नीचे उतर गया, एक बार लौटकर भी नहीं देखा।

* * *

शेखर में कुछ बदल गया। वह झोपड़ी के बाहर नहीं निकलता, उसके द्वार पर पड़ा रहता, किन्तु किसी प्रतीक्षा में नहीं, किसी आशा में नहीं, किसी उल्लास में नहीं। केवल कहीं पड़ा रहने के लिए पड़ा रहता....

और, मन्सो में भी कुछ परिवर्त्तन हो गया था—या कम से कम उसकी चर्या में अवश्य हो गया था—जहाँ उसने शेखर के झोपड़े के सामने से जाना छोड़ ही दिया था, वहाँ अब वह दो बार जाने लगी थी—पानी लेने भी और लेकर वापस भी।



यह बात शेखर को पहले ही दिन नहीं ज्ञात हुई। उसका मस्तिष्क इतना निकम्मा हो गया था कि दो-तीन दिन तक मन्सो को दो-दो बार देखकर भी उसे किसी परिवर्त्तन का ध्यान नहीं हुआ। किन्तु धीरे-धीरे यह बात उसके मन में स्थान पाने लगी, और एक दिन सहसा उसे पूर्ण ज्ञान हो गया कि, यह परिवर्त्तन हो गया है, और अकस्मात् एक दिन के लिए नहीं हुआ, दैनिक क्रम बन गया है। पर इससे उसे किञ्चिन्मात्र आनन्द नहीं हुआ। अब मन्सो दो बार उधर से जाकर भी उस स्थानविशेष पर रुकती नहीं थी, ऊपर देखती नहीं थी, बिजली की गति से मुस्कराती नहीं थी। इसके विपरीत, शेखर को लगता था, वह जान-बूझकर सिर अधिक झुका लेती है, आँखें अधिक यत्न से पथ पर जमाये रहती है, घड़े को उस कन्धे पर रखती है, जो शेखर के सामने होता है, और रूमाल भी दूसरे कन्धे पर न डालकर उसी कन्धे पर डालती है, ताकि किसी तरह वायु की सहायता पाकर भी शेखर उसके मुख को न देख पाये....और शेखर समझ नहीं पाता था कि यह सब क्यों....

कई दिन बाद एक दिन, जब मन्सो पानी लेकर लौट गई, तब घड़े में टपकी हुई बूँदों की रेखा देखते-देखते शेखर को ध्यान आया कि यह सब शायद उसकी ग़लती है। शायद उसी में कोई त्रुटि है। कोई अक्षमता; शायद मन्सो उससे किसी वस्तु की, किसी भाव की, किसी चेष्टा की आशा करता है। शायद वह किसी चीज़ की प्रतीक्षा, किसी घटना की इच्छा करती है, और शेखर में उसकी न्यूनता पाती है। एक संशय नाचने लगा उसके हृदय में कि यदि उसमें वह मौलिक अयोग्यता न होती, तो शायद यह सारी क्रिया किसी नयेपन की ओर बढ़ती, कुछ फलित होती, 'कुछ' बन सकती! कितनी भयंकर थी यह कल्पना कि मन्सो प्राप्य, स्पृश्य, ज्ञेय थी, पर उसी की किसी कमी के कारण प्राप्त, स्पृश्य, ज्ञात नहीं हो पाई।

उस समय वह कुछ नहीं कर सकता था, अतः उसने निश्चय किया कि अगले दिन, जब मन्सो उधर से जायगी, तब वह अवश्य उससे पूछेगा, पूछेगा कि—

* * *

शेखर ने पुकारा—"मन्सो!"

आवाज़ से वह चौंकी अवश्य, किन्तु रुकी नहीं, न उसने ऊपर ही देखा। प्रत्युत कुछ अधिक सिर झुकाकर, कुछ अधिक तीव्र गति से, आगे निकल गई। चील के पेड़ों की ओट हो गई।

शेखर जड़वत् उस पथ की ओर देखता रह गया, जिस पर आज अभी वह बूँदों की रेखा भी नहीं थी।

जब मन्सो पानी भरकर लौट आई, तब भी शेखर वैसा ही बैठा था; मन्सो को देखकर ही उसकी वह मूर्च्छा टूटी। उसने फिर पुकारा—"मन्सो!" किन्तु अब की बार वह परिवर्तन भी नहीं, सम्पूर्ण उपेक्षा, मानों उसने पुकारा ही नहीं था, यद्यपि उसके स्वर में था कितना विवश आग्रह!

जब वह चली गई, तब शेखर सोचने लगा, क्यों नहीं मैंने पथ पर जाकर उसे बुलाया? पर इस उसके लिए बहुत देर हो चुकी थी। इस के साथ ही साथ उसने सोचा, यदि वह तब भी न बोलती तो?

तो क्या? उचित ही होता!

ज्ञेय? प्राप्य? स्पृश्य? मन्सो, मैं तुम्हें ... कर सकता हूँ, पर छू नहीं सकता....

और इस व्यथित ज्ञान में वह अपनी ... लियत को भूलकर अपने ख़तरे को भूलकर, ... आपको भूलकर, दाता से शेखर होकर, एक ... कम्पित, किन्तु बहुत ऊँचे और भेदक स्वर में गाने लगा—

गये दिनों में औरों से भी मैंने प्रणय किया है—
मीठा, कोमल, स्निग्ध और चिर-अस्थिर प्रेम दिया है।
आज किंतु प्रियतम ! जगी प्राणों में अभिनव पीड़ा—
वह रस किसने इस जीवन में दो-दो बार पिया है ?
वृक्ष खड़ा रहता जैसे पत्ता-पत्ता बिखरा कर—
वैसे झरे सभी वे मेरा अनुभव-भार बढ़ाकर।
किंतु आज साधना हृदय की फल-सी टपक पड़ी है—
प्रियतम ! इसको ले लो तुम अपना आँचल फैलाकर।

(४)

बहुत सबेरे ही उस झरने का पता लगाकर, जहाँ से मन्सो पानी ले जाती थी, शेखर उसके पास जा बैठा था, और बैठा हुआ था। अनेकों विचार उसके मन में उठते और लीन हो जाते थे, किन्तु सभी का सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार मन्सो से था, और उसके आकर्षण की विफलता से....

आज न जाने क्यों, उसका मन अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छ और प्रखर हो गया था—अधिक अलगाव से प्रत्येक बात पर विचार कर सकता था। वह सोच रहा था कि इस आकर्षण का कारण, औचित्य, और फल चाहे जो हो, एक बात अवश्य थी कि वह अब तक मन्सो के प्रति अन्याय करता आया था और वह अन्याय, आकर्षण—क्या वह उसे प्रेम कह सकता है ?—के कारण नहीं, केवल स्वार्थ के कारण। मन्सो क्या सोचती है, क्या सोच सकती है, इस पर उसने विचार नहीं किया, वह अपना ही पक्ष सोचता रहा है....और मन्सो का पक्ष अवश्यमेव विचारणीय है, इसका प्रमाण है उसका कल का बर्ताव—वही क्यों, उसका प्रत्येक कार्य, प्रत्येक शब्द ! मन्सो कुछ हो, असभ्य हो, जंगली हो, अपढ़ हो; है स्त्री और इसलिए स्त्री की स्वाभाविक सहज बुद्धि (Intuition) रखती है, और स्त्री जीवन की माँगों का अनुभव करती है। शेखर क्यों सदा उसे भुला-भुलाकर, अपनी ही बुद्धि के अभिमान पर अपनी माँगों की पूर्ति खोजता आया है ? क्यों नहीं देख पाया कि मन्सो का प्रत्येक शब्द एक ललकार है, जो प्रत्येक स्त्री प्रत्येक पुरुष को करती है, वह पुरुष चाहे वांछित हो चाहे अवांछित, संगी बनने के योग्य हो अथवा अयोग्य ? बल्कि वह ललकार ही तो कसौटी है, जिस पर वह वांछनीयता या योग्यता परखती है।

इस चिन्ता में वह इतना लीन था कि उसने मन्सो को आते हुए नहीं देखा। मन्सो ने आकर, उसे वहाँ बैठे देखकर, अपना घड़ा झरने की धार के नीचे टिका दिया था, और दबे पाँव उससे कुछ ही दूर तक आकर भूमि पर बैठ गई थी। तब भी शेखर ने उसे नहीं देखा। वह चौंका तब, जब मन्सो ने अपनी भर्राई हुई सी आवाज़ में पूछा—"परदेशी, तुम इतने दुखी क्यों दीखते हो ?"

शेखर ने एक बार आँख भरकर उसकी ओर देखा। वह उस दृष्टि के आगे सिमटी नहीं, स्थिर होकर शेखर की आँखों से आँखें मिलाये रही। शेखर ने अनुभव किया, उनमें कहीं परिताप का-सा भाव है और उससे उत्पन्न एक कोमलता।

"इतने दुखी क्यों दीखते हो, परदेशी ?"

हाँ, क्यों ? शेखर अपने आपसे पूछता है। क्या इसलिए कि मन्सो उसकी ओर देखती नहीं ? शेखर चाहता है, अपने को यह विश्वास दिला ले—यद्यपि वह झूठ है ! तब क्यों ? क्या इसलिए कि मन्सो उसके प्रति कठोरता का व्यवहार करती है ? हाँ ! यद्यपि, शेखर जानता है, वह भी झूठ है। तब क्या इसलिए कि शेखर का निर्माण ही दुःख के लिए हुआ है ? हाँ, हाँ, हाँ ! पर यह झूठ भी दूसरे दोनों की अपेक्षा अधिक समुचित नहीं है।

तब, शेखर की बुद्धि से अधिक गहरी कोई चेतना, उसकी मानसिक प्रज्ञा से अधिक विशाल कोई सत्य, उसके मुख से उत्तर दिलाता है—

" हाँ, इसलिए कि दुखी दीखना बहुत सहल है...."

और एक विस्मय में शेखर सोचता है, मन्सो ने



इतनी गहरी अनुभूति, इतनी सर्वग्राही विदग्धता, कहाँ पाई, जो उसकी चितवन में व्यक्त हो रही है? उसमें इतनी समवेदना, इतनी सहानुभूति, इतना विस्तीर्ण और सम्पूर्ण भावैक्य है शेखर के साथ.... शेखर को ऐसे लगता है, उसका अस्तित्व ही मिट गया है, वह मन्सो के भावसंसार का एक अंश हो गया है, मन्सो के, किसी स्वप्न का एक परदा—उसी मन्सो के जो स्वयं आज तक उसके स्वप्न का एक परदा थी! उसकी अनुभूति, उसकी चेतना, उसका अस्तित्वमात्र, मानों कुचलकर उसमें से निष्कासित कर लिया जाता है, और वह मन्सो से एक सम्पूर्ण, एकान्त, आत्यन्तिक एकत्व प्राप्त कर लेता है, कैवल्य....

मन्सो फिर पूछती है—शेखर के जानते एक असम्भव प्रश्न—"परदेशी, तुमने कभी प्यार किया है?"

और, फिर कुछ शेखर के गले में उठता है, जो उसे वह उत्तर देने से रोकता है, जो वह ऐसी परिस्थिति में देता, जो सभ्यता उससे माँगती है—"हाँ, इस क्षण!" वह क्या है, जो उसे बाध्य करके, और बिना किसी प्रकार की लज्जा या आत्मग्लानि के, उत्तर दिलाता है।

"हाँ, अनेकों बार, अनेकों दिन"....

उसे फिर ज्ञात होता है कि वह अपना विचार अधूरा ही कह पाया है, किन्तु वह मन्सो के मस्तिष्क में जाकर सम्पूर्ण हुआ है कि उसने अपना भाव व्यक्त नहीं किया है, किन्तु मन्सो उसे समझ गई है, उसे ही नहीं, उसके आगे की असंख्य अकथित और अकथ्य बातें भी....

तभी, ऊपर कहीं से, एक तीखी, भयभीत सी पुकार आई, "मन्सो! ओ मन्सो! ओ मन्सो!"

मन्सो जल्दी से उठी, और घड़ा उठाकर झरने से ऊपर के चीलों की ओर चल दी। चीलों के छोर पर पहुँचकर, उसने रूमाल हटाकर एक बार स्थिर दृष्टि से शेखर की ओर देखा—एक बहुत दीर्घ क्षण तक, फिर ओझल हो गई चीलों के भीतर घुसकर। चीलों के झुरमुट के भीतर, और शेखर के जीवन से बाहर।

शेखर जब वहाँ से उठकर, एक विचित्र स्निग्ध सन्तोषमिश्रित विस्मय का भाव लिये, अपने झोपड़े के द्वार पर पहुँचा, तब वहाँ दुः बारह सिपाही खड़े थे। शेखर ने चारों ओर देखा, फिर किञ्चित् मुस्कराकर दोनों हाथ बढ़ा दिये।

* * *

उसको बहुत दिन हो गये हैं। आज मैं कारागार में बैठा इस सब कुछ को कल्पना में सजीव कर लाता हूँ, तो मुझे याद आता है कि उस समय, अपने हाथों पर हथकड़ियाँ देखकर, मुझे यही ध्यान हुआ था कि यह उचित हुआ, इसने एक स्मृति को पूर्णता दे दी कि वह यदि उस समय न होता तो एक स्वप्न टूट जाता, और यदि पहले हो जाता, तो वह स्वप्न कभी बन ही न पाता, मैं सदा के लिए उसके प्रति एक अत्याचार कर आता, जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं। पर इसके साथ ही एक घोर अतृप्ति का भाव भी आता है, जो उस दूसरे से किसी तरह भी कम सबल नहीं है....

समय के साथ अनुभव आता है, अनुभव के साथ बुद्धि, बुद्धि के साथ जीवन के प्रत्येक कार्य और प्रत्येक भूल की तर्कसंगत सफ़ाई (Rationalisation); पर यह छोटी-सी घटना अभी तक तर्क के फंदे में नहीं फँसती—क्या इसी लिए कि यह 'घटना' होने का गौरव पा ही नहीं सकी, एक शक्ति का बीजमात्र रह गई, जो अंकुरित नहीं हुआ, और जो इसलिए तर्क से सिद्ध नहीं हो सकता?

एक स्मृति बची है। मैंने अनेकों बार, अनेकों दिन प्यार किया है। वे सारे प्रेम एक एक करके खो गये हैं—एक बढ़ती हुई प्रणय-भूख के हवाले के आगे। किन्तु वह एक प्यार—वह क्या था?—अचल बना रहा है; एक विचित्र

लालसामयी किन्तु फिर भी भावुकता भरी स्मृति। क्या इसी लिए कि उसे स्वप्न में भी पूर्ति नहीं मिली कि मैं उसकी उस एक वाक्य द्वारा हत्या नहीं कर पाया जो कि कहे जाने से पूर्व इतना विशाल, इतना अर्थपूर्ण, इतना अतिशय गौरवान्वित होता है, और कहे जाने के बाद ही इतना निरर्थक—"मैं तुम्हें प्यार करता हूँ"....?

कुछ हो, वह स्मृति बची है। एक सजीव-कम्पनयुक्त, भर्राई हुई सी आवाज़ पूछती है, "तुम इतने दुखी क्यों दीखते हो?" और दो रहस्यभरी आँखें असीम समवेदना, असीम सहानुभूति, असीम आत्यन्तिक भावैक्य, और—असीम अस्पृश्यता की दृष्टि में, स्त्री-हृदय की चिरन्तन ललकार करती हैं—"तुमने कभी प्यार किया है?"

कभी किया है? कभी किया है? कभी किया है?



पंडितजी का सोटा

एक भुक्तभोगी

हल्का काला रंग, मँझोला क़द, ऊपर की ओर से अर्द्धवृत्ताकार मुड़ा हुआ, नीचे का सिरा पीतल के पोले से जड़ा हुआ ; वह पंडितजी की मेज़ पर उनके सामने रक्खा हुआ शीशे के समान चमकता रहता था। कभी किसी ने पंडितजी का सोटे से और सोटे का पण्डितजी से वियोग होते न देखा था। दोनों का हरदम हरघड़ी चोली-दामन का साथ था। दोनों घर से पाठशाला के लिए प्रातःकाल के समय साथ-साथ रवाना होते थे। जब तक पण्डितजी पाठशाला में रहते, उनका सोटा भी वहीं विराजमान रहता। शाम हो जाने पर दोनों जाते भी साथ-ही-साथ थे। यह बात न थी कि सोटा और पण्डितजी का साथ पाठशाला की दीवारों तक ही परिमित रहता, वरन् बाहर भी उसमें कोई अन्तर न आता था। पण्डितजी चाहे एक हाथ में लोटा लिये शौच को जाते हों या कान पर जनेऊ चढ़ाये लघु-शंका को, उनका सोटा उनके हाथ में अवश्य होता था। रोटी बनाते समय वे चौके के बाहर अपनी सीधी करवट को उसे स्थान देते थे और सोते समय उसे खटिया के पाये के सहारे लगाकर सोते थे। कभी-कभी ठाकुरों की चौपाल, लाला की दूकान, नम्बरदार की गढ़ी या बौहरे की बैठक पर पण्डितजी और सोटे के इस सार्वका[illegible] संयोग की चर्चा छिड़ जाती थी। ऐसे अवसरों पर अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार कोई कु[illegible] कहता और कोई कुछ, पर प्रायः लोग दोनों [illegible] पूर्वजन्म का सम्बन्ध ही स्थापित करके इस प्रसं[illegible] को समाप्त कर देते थे।

पण्डितजी ने सोटे का नाम रख छोड़ा था— 'ज्ञानसिंह'। इधर लोगों ने पण्डितजी का 'सो[illegible] राम' के स्थान में 'सोटाराम' नाम रखकर दो[illegible] के अटूट सम्बन्ध की डोर को और भी सु[illegible] और अमर बना दिया था। यदि सोटे [illegible] पण्डितजी का अगाध स्नेह था तो वह भी [illegible] स्वामिभक्ति के साथ अपने स्वामी की सेवा कर[illegible] था। पण्डितजी के साथ-साथ रहने के अतिरि[illegible] उसके दो कर्त्तव्य और थे और वे दोनों आवश्य[illegible] कता और महत्ता में किसी क़दर भी एक दूसरे [illegible] कम न थे। उसका पहला कर्त्तव्य था—रोटी ब[illegible] समय श्वानदेव से चौके की रखवाली करना। [illegible] समय अगर कोई कुत्ता भूलकर भी चौके की [illegible] क़दम बढ़ाता तो ज्ञानसिंह के प्रबल प्रहार [illegible] कारण 'कें' करता हुआ दुम दबाकर वहाँ से [illegible] से भागता और मकान के बाहर ही जाकर [illegible] लेता। फिर वह तब तक पण्डितजी के मकान [illegible]



प्रकृति की शोभा

(चित्रकार—]



तरफ़ आने का नाम न लेता, जब तक या तो उसकी स्मृति-पटल से सोटे की मार के स्मृति-चिह्न मिट न जाते या कड़ाके की भूख बेशर्मी के साथ उसी प्रकार का एक दूसरा प्रहार सहन करने को विवश न कर देती। जिस प्रकार ज्ञानसिंह अपने पहले कर्त्तव्य का सम्पादन करके अपने स्वामी की रोटी बनाने की क्रिया में सहायता करता था, उसी तरह दूसरे कर्त्तव्य को पूर्ण करके वह उन्हें अपनी रोज़ी कमाने के कार्य में सहायता प्रदान करता था। जब कोई छात्र पढ़ने-लिखने में असावधानी करता या चूक करता, इमले में अशुद्धियाँ करता, पहाड़े याद न करता, गणित के प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर निकालने में असमर्थ होता, विना उनकी आज्ञा के बाहर चला जाता, ग़ैरहाज़िरी करता, अधिक शोर मचाता या किसी दूसरे विद्यार्थी को छेड़ता तो पण्डितजी सोटे को ऊँचा उठाकर कहते—"जानता है, इसका नाम ज्ञानसिंह है। एक कसकर लग जायगा तो तीन दिन बुख़ार आवेगा।" पण्डितजी की कक्षा के सभी बालकों को एक न एक दिन ज्ञानसिंह की मार का शिकार होना पड़ा था। उन सबको ज्ञानसिंह की याद अब तक न भूली होगी। वज्र की तरह लगता था। तन्दुरुस्त से तन्दुरुस्त विद्यार्थी को भी पहली चोट पर ही छठी तक का दूध याद आ जाता था। जब भी कोई छात्र ज्ञानसिंह द्वारा दंडित होता था तो वह कई दिनों तक छात्र-मंडली की पारस्परिक चर्चा का विषय हो जाता था। सब लोग ज्ञानसिंह से भयभीत रहते थे। छात्र-समुदाय प्रतिदिन कार्य प्रारम्भ करने से पहले हाथ जोड़कर मन ही मन ज्ञानसिंह को प्रणाम कर लेता था। पण्डितजी को अपनी योग्यता से अधिक ज्ञानसिंह पर गर्व था। वे बड़े अभिमानपूर्वक यदा-कदा ज्ञानसिंह की सफलता का बखान किया करते! कहते—"इस ज्ञानसिंह ने अनेकों को विद्वान् बनाया है। सैकड़ों आज इसकी कृपा के सहारे बड़े-बड़े सरकारी पदों पर पहुँचे हैं। जो इसे सहन कर लेगा, वह फिर संसार में किसी कार्य में रुक नहीं सकता।" पण्डितजी के ये शब्द छात्रों के हृदय में ज्ञानसिंह के प्रति घृणामिश्रित भय के भावों की उत्पत्ति करने में सहायक होते थे। पर किसी के पास चारा ही क्या था। पाठशाला की निरंकुशता ही तो ठहरी।

❀ ❀ ❀

गर्मियों के दिन थे। दोपहर की छुट्टी में अपना काम कराने के लिए पण्डितजी ने अपने छात्रों के नम्बर बाँध रक्खे थे। प्रतिदिन चार छात्रों की एक टोली जाती। पण्डितजी के घर जाकर उनका चौका लगाते, बरतन साफ़ करते, उन्हें स्नान कराते, धोती धोते, दाल साफ़ करते और जब तक पण्डितजी खाना बनाते, तब तक बाहर बैठकर प्रतीक्षा करते। इस बीच में पण्डितजी की छोटी-मोटी आज्ञाएँ आती रहती थीं। आजकल भी ग्रामीण पाठशालाओं के छात्र उक्त प्रकार की विविध सेवाओं से अपने गुरुओं को प्रसन्न रखने का उद्योग करते हैं। हाँ, बड़े-बड़े नगरों में स्थित कालेजों, स्कूलों अथवा यूनीवर्सिटियों की बात ही दूसरी ठहरी। वहाँ तो वातावरण ही दूसरा है।

उस दिन हम चार जनों का नम्बर था—गंगासिंह, मोती, राधेलाल और मैं। हम चारों ही समवयस्क थे और अपनी श्रेणी के अच्छे विद्यार्थियों में हमारी गिनती की जाती थी। भगवान् जाने, किस प्रकार हम चारों में मित्रता के बन्धन दृढ़ हो गये थे और कहाँ से हम चारों में सहकारिता की वह भावना उत्पन्न हो चली थी। कोई उपाधि उठानी होती तो चारों उसमें सम्मिलित होते, खेल-कूद में चारों एक ही ओर रहना चाहते, पाठशाला के खेल-तमाशों में चारों

मुझ पर कितने डंडे पड़े होंगे, इसका मुझे ध्यान नहीं। पण्डितजी के इतना कहने पर सारी पाठशाला के छात्रों को मेरा अपराध विदित हुआ।

थोड़ी देर बाद फिर वही 'पट', खड़ा तो हो मक्कार... ..'पट' .....मैं देखूँ तेरी शैतान। मैं चिल्लाता रह गया कि बे......किंवाड़े बन्द कर देना...'पट' हूँ सारी पसलियों को तोड़ दूँगा।"

मैं सिवा गाय की तरह डकराने के और कर ही क्या सकता था। मेरी "हाय-हाय" और रोना-पीटना भी गुरुजी बन्द करना चाहते और पीटते हुए कहते—"और न हुआ चुप......'पट'—शार कर 'पट'...हल्ला मचा...'पट'।"

यद्यपि मेरा यह कोलाहल पाठशाला के बाहर भी सुना जाता होगा, पर पण्डितजी पाठशाला के एकछत्र शासक थे। कोई क्यों मुझ पर रहम खाता। पण्डितजी हाँफते जाते थे और बीच-बीच में सुस्ताकर अपनी क्रिया को फिर दुहराने लगते। मैंने समझा कि आज पाठशाला से मैं जीवित घर न लौट सकूँगा। 'पटापट' का यह क्रम चलते-चलते जब काफ़ी देर हो गई तो मेरी चेतना-शक्ति जवाब देने लगी। मेरा बोल बन्द हो गया...... नेत्र शक्तिहीन हो आये और मैं.........

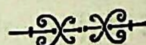
❀ ❀ ❀

जब मेरी आँखें खुलीं तो मैंने अपने आपको एक परिचित व्यक्ति की गोदी में लेटा पाया। यह मेरे पिताजी थे, जो ग्राम की एक लड़की से मेरे पीटे जाने का समाचार सुन खेत से दौड़े आये थे। उनकी आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह रही थी। उस समय सारी पाठशाला में इन दो व्यक्तियों, जैसा असहाय कोई न था—एक मैं और दूसरे मेरे पिताजी। जब मैंने पिताजी को रोते देखा तो फूट-फूटकर रोने लगा और उनके गले लिपट गया।

❀ ❀ ❀

खाना खा-पीकर सो जाने पर किंवाड़ खुले रह जाने के कारण शेरा के आटा खा जाने का यह भीषण दंड भी किसी शिष्य को दिया जा सकता है—यह आज तक मैं स्वयं शिक्षक होने पर किसी भी शिक्षण-नियमावली (Educational Code) में नहीं पढ़ पाया हूँ। पण्डितजी के सोटे ज्ञानसिंह और मेरे वर्तमान जीवन में जो घनिष्ठ सम्बन्ध है, वह कभी भूलने से भुलाया नहीं जा सकता। आज भी कल्पना-शक्ति के जोर से अभ्यास से उस दिन का दर्दनाक नज़ारा मेरी आँखों के आगे उतर आता है। यद्यपि बातें बहुत पुरानी हो गईं—अब न ज्ञानसिंह रहा होगा और न उसके स्वामी, पर—

है ख़याल आज़ाद रहकर भी उसी बेदाद का।
बाग़ से मुझको नज़र आता है घर सैयाद का॥



मा का हृदय

श्रीसाधुशरण

(१)

शिशु की सरल मुसकान देखकर, उसकी मधुर किलकारी सुनकर, उसको अपने कलेजे से चिमटाकर तथा एक बार प्यार के साथ उसका चुम्बन लेकर मा को जो सुख मिल जाता है, उसके लिए उसकी समता कदाचित् संसार का कोई भी अन्य सुख नहीं कर सकता। यदि वास्तव में वह नारी-हृदय है, तो संतान को पेट-भर खिलाकर उसका अपना पेट भर जाते और संतान की तनिक-सी पीड़ा को देखकर अपनी किसी असह्य पीड़ा से पीड़ित के समान तड़फड़ा उठते हुए उसे आप अवश्य पावेंगे। यह उसका दिखावटी या सांसारिक गुण नहीं, वरन् वह प्राकृतिक गुण है, जो नारी की देह में जन्म के साथ उसको मिला है, और उसके हृदय से तभी मिट सकता है, जब उसका या स्वयं प्रकृति का अस्तित्व मिट जाय। मा कहलाने की अधिकारिणी बनने के क्षण से जीवन की अंतिम सांस लेने के क्षण तक संतान के लालन-पालन, प्यार और मंगलकामना में अपने जीवन, यौवन एवं सर्वस्व का होम करते और उसी होम में एक अनिर्वचनीय अलौकिक सुख का आनन्द लेते उसे आप अवश्य देखेंगे। बुन्दो महराजिन ने भी अपने पुत्र के लालन-पालन और प्यार में वैसी सुख का अनुभव किया था, और आज भी करती थी। जब महादेव छः महीने का था, तभी उसके पिता उसको और बुन्दो को अनाथ बनाकर संसार से बिदा हो गये थे। तब से अब तक बुन्दो को जिन-जिन मुसीबतों का सामना करना पड़ा था, वे न कहने के ही योग्य हैं। उसका तो कोई वैसी भुक्तभोगी ही, जिसकी रक्षा और निर्वाह का कोई ज़रिया न हो और जो उसी की अवस्था में विधवा हो गई हो, वर्णन कर सकती है। लेकिन सब सहकर भी बुन्दो ने महादेव को पाल-पोस और पढ़ा-लिखाकर जवान बना लिया था; पढ़ाया भी एक-दो दर्जे नहीं, अपनी परिस्थति से कहीं अधिक, इन्ट्रेंस पास करा लिया था। घर के बर्तन-भाँड़े, गहने-गुरिये बेच दिये, तीन-तीन चार-चार रुपये मासिक पर बड़े-बड़े परिवारों का भोजन बनाया, जिसके-तिसके घर की पिसौनी-कुटौनी की, दो-दो चार-चार पैसों पर बड़ी-बड़ी सिलाई की, स्वयं आधा-आधा पेट खाकर या कई-कई शाम फ़ाक़ा करके दिन काटे, गुदड़ी लपेटकर लाज बचाई; लेकिन पुत्र के खाने-पीने, पहनने-ओढने, पढ़ने-लिखने और शान-शौक़ में कभी कोई कमी नहीं होने दी। उसके तनिक-सा बीमार पड़ने पर ढेरों आँसू बहाये, रात-रात-भर जगकर सेवा की, जिसके-तिसके आगे दाँत दिखाये। उसका वही एक-मात्र प्राणाधार पुत्र दुश्चरित्र निकल जाय



या उसके देखते-देखते किसी पराये का हो जाय, यह बुन्दो के लिए असह्य था। उसने जब से सुना था कि महादेव कल्याणी की दूधवाली की दूकान पर बैठता-उठता है और उसकी लड़की के साथ.... तब से उसके प्राण व्यग्र हो उठे थे। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसे विषय पर वह कैसे अपने जवान पुत्र से बातें करे, कैसे उसको समझावे और किस तरह उसको सीधी राह पर ले आवे! वह भीतर ही भीतर तड़प रही थी। उस दिन से उसका मन पुत्र की ओर से कुछ खिन्न, मलिन और छोटा अवश्य हो गया था; फिर भी वह पुत्र को खिलाये विना आज स्वयं कैसे खा सकती थी। जब अपने मातृत्व के जीवन में कभी एक वक्त भी पहले महादेव को खिलाये विना उसने भोजन नहीं किया—यहाँ तक कि यदि महादेव कभी बीमार पड़ा, तो जब तक नीरोग होकर उसने पथ्य नहीं खा लिया, तब तक बुन्दो ने भोजन नहीं किया, तब आज वह उसको खिलाये विना पहले स्वयं कैसे खा सकती थी!

दिन ढल चुका था, बाबू लोग पेट भरकर एक नींद ले चुके और कामकाजी लोग कुछ खा-पीकर अपने-अपने काम पर चले गये थे। महादेव के लिए चावल, दाल, गेहूँ की रोटियाँ, आलू का भुर्त्ता, घी और चटनी तैयार रक्खी थी; पर उसका कहीं पता नहीं। बुन्दो ने अपने लिए थाली में बाजरे की दो सूखी रोटियाँ और नमक परोस लिया था। भूख से उसका पेट चिंघार मचाये हुए था, प्यास से जिह्वा पर धूल उड़ रही थी—दो वक्त फ़ाक़ा कर चुकी थी, उधर जल्दी से जल्दी खाकर पोस्टमास्टर बाबू के घर पिसौनी करने जाना ज़रूरी था। वह कुछ सोचकर खाने के लिए बार-बार थाली के पास जाती थी और खाना चाहती थी; पर जी नहीं मानता था—नहीं, जब तक बेटे को नहीं खिला लेती, स्वयं कैसे खा लूँ! नहीं, यह नहीं हो सकता। वह थाली पर से उठकर फिर चली आती थी और महादेव की प्रतीक्षा में सड़क पर चारों ओर आँखें दौड़ाने लगती थी।

बुन्दो ने जो कुछ सुना था, उससे अनुमान कर लिया था कि महादेव वहाँ—दूधवाली की दूकान पर बैठा होगा। इससे कभी-कभी उसके जी में आता था कि चलकर उसको खाने के लिए बुला लावे; पर फिर उसका हृदय हिचक जाता था—नहीं, ऐसा करना उचित नहीं; बेटा अपने मन में न-जाने क्या सोचे, क्या कहे, कहीं रंज हो जाय। दूधवाली के सम्बन्ध की वह बहुत बातें जानती थी, इससे चिन्ता, शोक और अपने अनिष्ट की आशंका से कभी कभी उसके प्राण व्यग्र हो उठते थे, तब वह सोचने लगती थी—क्या मैं दूधवाली को जानती नहीं! अपनी जवानी में जब वह स्वयं पचासों घर देख चुकी है, सैकड़ों घाट के पानी पी चुकी है, तब क्या उसकी लड़की वैसी न होगी! उसकी लड़की के पास महादेव के बैठने-उठने को कौन अच्छा समझेगा! दोनों की भरी जवानी! दोनों एक से एक बढ़कर सुन्दर! इस पर मेरा लड़का चाँद का टुकड़ा, सौ में एक! क्या वह राँड़ उस पर....

साढ़े चार बज गये, महादेव भोजन करने नहीं आया। बुन्दो के पिसौनी करने जाने का समय तो निकल ही गया, अब उसके नौकरी पर—रोटी बनाने जाने का समय भी निकलने लगा। उसके प्राण तड़फड़ा उठे। उसने बहुत कुछ सोचकर और मन को बहुत कुछ धैर्य बँधाकर निश्चय किया कि अब आज महादेव के खाने आने की आशा छोड़कर भोजन कर ले और अपनी नौकरी पर चली जाय। वह उठी और खाने के लिए थाली पर बैठी। रोटी का एक टुकड़ा तोड़ा और उसे अपने होंठों के पास ले गई; लेकिन जब उस टुकड़े को अपने दाँतों के बीच दबाया, उसका हृदय तड़फड़ा उठा, प्राण व्यग्र हो उठे—नहीं, यह ठीक नहीं; न-जाने बेटे ने अब तक कुछ खाया है या नहीं; जब तक उसको नहीं खिला लेती, स्वयं कैसे खा लूँ!

उसने रोटी का टुकड़ा मुँह से लौटाकर थाली



में रख दिया, थाली ढाँप दी और चौके से उठ पड़ी। कोठरी का किवाड़ बंद किया और पुत्र की खोज में बड़ी व्यग्र-सी घर से निकल पड़ी।

(२)

कल्याणी-चौराहे पर उसकी दूकान थी। दूध, मलाई, मक्खन, राबड़ी, खोया, दही और दूध ही की बनी कुछ मिठाइयाँ उसकी दूकान का सामान थीं। उसकी लड़की का नाम मनोगी था। मनोगी एक ही रूपवती थी—सोलह वर्ष की चढ़ी जवानी की उमर, हट्टा-कट्टा सुन्दर गठीला शरीर, स्वच्छ काश्मीरी गोरा रंग, पुष्ट-पुष्ट भुजाएँ, केले के थंभ-जैसी मोटी-मोटी चिकनी जंघाएँ, गुंबद-सा उन्नत वक्षस्थल, गुलाब की कोमल पंखड़ियों-से सुकुमारता और गुलाबी लिये सुन्दर करतल और वैसी ही सुन्दर एवं स्वच्छ पाँवों की एड़ियाँ, पूर्णिमा के चन्द्रमा-सा दमकता मुखमंडल, आम के फाँक-सी लम्बी और मृगी की-जैसी काली बड़ी-बड़ी आँखें, सब के ऊपर कमान-सी कटीली भौंहें! जब वह सज-धज से शृंगार करके और कभी गुलाबी, कभी नीली, कभी बैंजनी और कभी फ़ीरोज़ी रेशमी सारी पहनकर तैयार होती, तब उसके सौन्दर्य को देखकर कदाचित् मेनका, रंभा, उर्वशी आदि अप्सराएँ लज्जित हो जाती होंगी। और, थी वह एक साधारण दूधवाली की लड़की!

यों तो दूधवाली की दूकान पर बराबर कुछ न कुछ बिका ही करता था, पर उसकी दूकान शाम को पाँच बजे ख़ूब सजती थी—जब उसकी लड़की बन-ठनकर गद्दी पर आ बैठती थी। इस समय उसकी दूकान की फूल की कुल थालियाँ पूँजी-पंजी बिलकुल साफ़-सुथरी चमकती रहतीं, और सब सामानों से भरी होती थीं। उसकी लड़की के बैठते ही बैठते दूकान पर एक से एक बढ़कर छैल-छबीले युवकों का मेला-सा लग जाता। कोई कुछ माँगता, कोई कुछ। मनोगी मुसकिरा-मुसकिराकर बातें भी करती जाती और सौदा भी बेचती जाती। जो पाव-भर खानेवाला था, वह भी सेर-भर खा जाता। देखते-देखते घंटे-डेढ़ घंटे में ही, कुल थालियाँ ख़ाली हो जातीं और पैसों का ढेर लग जाता। इधर युवकों की आपस की चुहलबाज़ियाँ, हाथा-पाई, गंदे मज़ाक और काना-फूसी।

हाँ, तो आज अभी पाँच बजने में देर थी। दूकान पर और बाहर सड़क पर बिल्कुल सन्नाटा था। मनोगी की मा भी किसी काम से बाहर चली गई थी। महादेव को मनोगी के सम्मुख अपना प्रेम प्रकट करने और दोनों को खुलकर एक दूसरे से बातें करने का इससे बढ़कर सुन्दर और उपयुक्त अवसर और कौन मिल सकता था? बाहर ओसारे में, तारों की जाली के भीतर, दूकान की थालियाँ सजी थीं। भीतर बरांडे में मोढ़े पर महादेव बैठा था—ऐसे स्थान पर, जहाँ से बाहर का कोई भी उसे देख नहीं सकता था, और उसके आगे ख़ूब सज-धज से शृंगार किये बनी-ठनी मनोगी बैठी थी—ऐसे स्थान पर, जहाँ से वह दूकान की थालियों और सड़क पर चलनेवाले पथिकों को स्पष्ट देख सकती थी। दोनों आनन्दविभोर और प्रेमरंगराते हो रहे थे। बातें करते-करते जब-तब दोनों की आँखें मिलतीं और आपस में एक बार ख़ूब जूझकर फिर झुक जातीं; तब एक बार दोनों मुसकिरा उठते, फिर कुछ लज्जित-से हो जाते और तब उनके मुखों पर कभी कोई भाव खेलने लगता, कभी कोई।

"पंडित महादेवजी!"—मनोगी ने एक बार आँखें मिलाकर कहा—"क्या वास्तव में तुम मुझे प्यार करते हो?"

"यह तो ईश्वर ही जानता है; मैं स्वयम् कैसे कहूँ! हाँ, इतना अवश्य कहूँगा कि अब यदि मेरे प्राणों का कोई आधार है, जीवन का कोई सुख है, और हृदय का कोई आराध्य है, तो वह एक—बस, तुम।"



मनोगी मुसकिराने लगी—"पंडितजी, प्रेम-प्रेम की रट सभी लगाते हैं, लेकिन प्रेमी कोई-कोई ही निकलता है। बिरला ही कोई ऐसा प्रेमी मिलता है, जो अपने प्रिय के-जितना ही उसको प्यार करता हो, उसके सुख के लिए अपने सुखों का त्याग और लाभ के लिए अपने लाभों की हानि करने के लिए तैयार रहता हो; नहीं, प्रेम के नाम पर धोखा देनेवाले ही सब निकलते हैं।"

"निकलते होंगे, लेकिन मुझे उस श्रेणी में न समझना। अपने सुखों का त्याग ही न लें, यदि ज़रूरत पड़े, तुम्हारे लिए आज मैं—आज ही अपने प्राणों तक का बलिदान कर देने के लिए तैयार हूँ। और यदि कभी ज़रूरत पड़ेगी, तो तुम देख लोगी कि कैसे मैं अपनी बात को पूरा करके तुम्हें दिखला देता हूँ।"

एक बार आँखें मिलाकर मनोगी ने ज़रा-सा मुसकिरा दिया, फिर तनिक लजाते हुए सिर झुकाकर कहा—"यह सब कहने की बातें हैं। किसी के हृदय को लेने के लिए लोग इसी तरह की बातें बनाया करते हैं; बाद को, जब अपना काम निकल जाता है, धोखा दे देते हैं, कौड़ी को भी नहीं पूछते।"

"मनोगी, क्या तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहीं?"—महादेव ने उत्तेजित होकर कहा।

मनोगी भीतर ही भीतर मुसकिराई, फिर एक बार आँखें मिलाकर ज़रा पलक मार दी, जैसे शिकारी तीर छोड़कर अपना धनुष नीचा कर लेता है। महादेव के कलेजे में जैसे बर्छी घुस गई, वह तड़फड़ा उठा।

"बोलो, क्या तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहीं?"—महादेव ने सँभलकर फिर पूछा।

"विश्वास है, लेकिन उसमें दृढ़ता तो नहीं आती। मैं कैसे समझूँ कि बाद को—मेरा हृदय ले लेने के बाद तुम मुझे धोखा नहीं दोगे; मेरे ऊपर आज जितना प्रेम दिखला रहे हो, अपना उतना ही प्रेम मेरे ऊपर बराबर बनाये रहोगे और मेरे सुख के लिए आज जो-जो कुछ और जैसे-जैसे करने के लिए तैयार हो, वैसे ही आगे भी करते रहोगे?"

"तुम जैसे चाहो, मेरी और मेरे प्रेम की परीक्षा ले सकती हो। इसके लिए मैं जो कहो, करने के लिए, जो पूछो, कहने के लिए और जिधर चलाओ, चलने के लिए तैयार हूँ।"

"मैं जो कहूँ, वह तुम करने के लिए तैयार हो?"

"हाँ। सहर्ष।"

"यदि मैं कहूँ कि मेरे हित के लिए या मेरा अमुक काम बनाने के लिए तुम अमुक आदमी को मार आओ, तो क्या तुम मार आओगे?"

"हाँ। अवश्य—फ़ौरन्।"

आँखें मिलाकर मनोगी फिर मुसकिराई। बातें करते-करते उसकी चंचल आँखें बार-बार सड़क पर दौड़ जाती थीं, और जब किसी युवक के सड़क पर इधर से उधर निकलने की झलक मिलती, तब उसका स्वर कुछ उच्च हो जाता और चूड़ियाँ खनखना उठतीं—इस तरह कि निकलनेवाले का ध्यान उसकी ओर अवश्य आकर्षित हो जाता और मनोगी से आँखें अवश्य मिल जातीं। तब कोई दूर तक उस पर दृष्टि दौड़ाता निकल जाता, कोई कोई सौदा लेने के बहाने ठहरकर उसे पुकार बैठता और कोई पाँव से कंकड़ निकालने या किसी और बहाने ठहरकर उसे भर नज़र देख ही लेता था।

"अच्छा पंडितजी!"—मनोगी ने कुछ ठहरकर कहा—"मुझे पत्नीरूप में स्वीकार करने की बात क्या सच तुमने अपने हृदय से कही है?"

"यदि झूठ कहता होऊँ, देह काम न आवे।"

"ख़ैर, तुम ऐसा चाहते हो; और तुम्हारी माँ! वह कब पसंद करेंगी? वह तो सुनेंगी, तो कहेंगी, कहाँ मैं वाजपेयी और कहाँ वह ग्वालिन। मेरा उसका सम्बन्ध कैसा?"

"उसके चाहने न चाहने से क्या! यदि वो कहने-सुनने से न मानेगी, जहाँ चार हाथ लगा दिये, सीधे मन से मान जायगी।"



मनोगी ने मुसकिराकर और एक बार आँखें मिलाकर फिर ज़रा पलक मार दी। फिर अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर ज़ोरों से अँगड़ाई ली—इस तरह कि उसका उन्नत और उभरा हुआ वक्षःस्थल बिलकुल स्पष्ट हो उठा; और तब महादेव के कलेजे पर जैसे छुरियाँ चल गईं, उसके प्राण व्यग्र हो उठे। उसका धैर्य छूट गया और उन्मत्त-सा होकर उसने मनोगी की ओर अपना हाथ बढ़ा दिया।

जैसे चोट खाकर काली नागिन फन फैलाकर भ'कर फुफकार कर उठती है, मनोगी गरजकर उठ खड़ी हुई।

"ख़बरदार!"—उसने लाल-लाल आँखें करके कहा—"इस तरह हथलपकी न करना; नहीं, फ़ौरन् कान पकड़वाकर बाहर निकलवा दूँगी।"

महादेव को काटो तो ख़ून नहीं। वह बिलकुल कातर, भयभीत और भौचक-सा होकर मनोगी का मुख देखने लगा। यदि दूसरा कोई होता, तो मनोगी की इस बात पर उसका मुख देखना या फिर उसको अपना मुख दिखलाना तो दूर, चूल्लू-भर पानी में डूबकर मर जाता। पर महादेव तो उसके चरणों का ख़रीदा दास हो चुका था—नहीं, मनोगी ने ही उसको अपना वैसा दास बना लिया था! वह हत्यारा-सा उसका मुख ताक रहा था।

मनोगी कुछ देर मौन खड़ी उसका उदास मुख देखती रही, फिर मुसकिराकर आगे बढ़ी, एक हाथ उसके कंधे पर रक्खा और दूसरा उसकी ठुड्डी के नीचे ले जाकर कहा—"पंडितजी, क्या रूठ गये? जब इतने से यह हाल है, तब प्रेम की परीक्षा में पूरे कैसे उतरोगे?"

महादेव अब भी हत्यारा-सा उसका मुख ताक रहा था। सहसा मनोगी चौंक-सी पड़ी।

"पंडित महादेवजी,"—उसने कहा—"देखो, तुम्हारी मा जा रही हैं।"

महादेव ने झाँककर देखा और मनोगी से कुछ कहकर फुर्ती से उठकर बग़ल की कोठरी में छिप गया।

बुन्दो दूधवाली की दूकान पर दृष्टि दौड़ाती पहले कई मकान आगे बढ़ गई, फिर लौटी और दूकान के सामने आकर पुकारा—"रे मनोगी!"

"हाँ, महराजिन!"—मनोगी ने बाहर निकलकर उत्तर दिया।

"क्या महादेव तुम्हारी दूकान पर आया था?"

"नहीं तो। वह मेरी दूकान पर क्या करने आवेगा! उसको तो महीनों से मैंने कहीं देखा भी नहीं।"

बुन्दो का मुख सूख गया। वह उदास-सी होकर लौट पड़ी। महादेव फिर बाहर निकल आया। इसी समय मनोगी की मा लौटकर आई। उसने एक बार मनोगी का मुख देखा, फिर महादेव का; फिर मुसकिराकर कहा—"बेटा, महादेव, स्टेशन पर एक रुपये की लकड़ी ख़रीद आई हूँ। कमलिया की दूकान पर है। जाकर ले आओ। अगर तुम्हारे-भर से बोझा अधिक हो, कोई मज़दूर कर लेना।"

महादेव को जैसे कुबेर की निधि मिल गई, वह आनन्द से उछलता हुआ दौड़ा।

(३)

बुन्दो जानती थी, एक बार खुलकर रो लेना हृदय में बराबर रोने और भीतर ही भीतर घुलकर मरने से कहीं अच्छा है; पर वह अपने हृदय को कैसे समझावे! महादेव पहले दिन ही को और कभी-कभी ही ग़ायब रहता था; अब रात को भी, रात-रात-भर और कई-कई दिनों तक ग़ायब रहता। पहले उसके ग़ायब होने का स्थान मा से चोरी-चोरी था, अब खुलकर कह भी पड़ता—कल्याणी पर दूधवाली की दूकान पर तो था। महराजिन के प्राण व्यग्र थे—पुत्र को कैसे सीधे रास्ते पर लावे! उसने कई दूसरे लोगों से महादेव को समझाया।



था, स्वयं भी छिपे-छिपे अनेक उपदेश दिये थे; पर व्यर्थ।

अंचल में कुछ छिपाये बुन्दो रसोई बनाकर नौकरी पर से तेज़ पांवों से घर लौटी आ रही थी; मन पुत्र की चिंता और मंगल-कामना में व्यस्त था—आज बड़ी देर हो गई, बेटा भूखा होगा।

पोस्टमास्टर बाबू की कहारिन मिली और मुसकिराकर पूछा—"क्या लिये जा रही हो महराजिन ?"

"थोड़ा दही है,"—महराजिन ने दीनताभरे स्वर में कहा—"मालकिन ने दिया है। बेटे के लिए लिये जा रही हूँ। तनिक दही-दूध मिल जाता है, तो वह मन से खा लेता है। उन्होंने मुझे खाने को दिया था और कह रही थीं, यहीं खा लो; लेकिन मेरा खाना अब क्या! बेटा खाय-पहने, सुख करे, इसी में मेरा सुख है।"

"आओ, बैठो न।"

"नहीं बेटी, इस समय बैठूँगी नहीं। आज बहुत देर हो गई है। महादेव खाने आया होगा, भूखा होगा।"

वह कुछ और तेज़ पाँवों से आगे बढ़ी।

महादेव नहा-धोकर श्रृंगार कर रहा था—काले-काले लम्बे बाल, जिनसे चमेली का तेल टपका करता, डेढ़ रुपये की लखनउआ पल्ले की टोपी, भाल में गोलकर लाल तिलक, रेशमी कुरता, चादर, दूध-सी सफ़ेद मख़मली किनारे की महीन धोती, रंगीन मोज़े, हल्के पम्प-जूते, पाकेट में इत्र में बसा रेशमी रूमाल! इन सबके ऊपर जब वह मुँह में पान दबाकर हाथ में पहाड़ी लकड़ी की काली छड़ी लिये निकलता, तो कहीं के किसी नवाब से कम न जँचता। और, यह सब फिट-फाट था बूढ़ी मा की कमाई पर!

पुत्र को तैयार देखकर बुन्दो बिलकुल उतावली हो उठी। "चलो बेटा, चलो"—उसने व्यग्रता के साथ कहा—"भोजन कर लो। आज बड़ी देर हो गई। क्या करूँ, बाबू के घर एक मेहमान आ गया था।"

हाफते-हाँफते उसने बड़ी जल्दी तैयारी की और पुत्र को खाने के लिए चौके पर बैठाया।

"बेटा,"—बुन्दो ने प्रसन्न स्वर में कहा—"आज बड़ी ख़ुशी की बात है—एक तो तुम्हारा विवाह तय हो गया, दूसरे तुम्हारे नौकरी का भी ठिकाना हो गया। विवाह के लिए मुझे लड़कियों की कमी नहीं है। मैं वाजपेयी हूँ, बीस बिस्वा मरजाद है। मेरे यहाँ पचासों लड़कीवाले दौड़े हैं और अभी सैकड़ों आवेंगे, और हज़ार-पाँच सौ दे ही जायँगे। यदि चाहूँ, चार को घर में बैठा लूँ और एक से एक सुन्दर। लेकिन ज़िंदगी का कोई ठिकाना नहीं; नहीं जानती, किस दिन मर जाऊँ, इससे मैंने विवाह तय कर लिया है। लड़की जानी-पहचानी और देखी-सुनी है—बड़ी सुन्दर, सौ में एक; सीने-पिरोने, काढ़ने-बुनने और पकाने-खिलाने में एक ही चतुर; पढ़ी-लिखी भी है—मिडिल पास; सबसे विशेष उमर भी योग्य है—न कम, न ज़्यादा, इसी सावन में चौदह की हुई है। मुझे बहुत पसन्द है। कुछ देगा भी। और नौकरी—नौकरी तुम्हारे लिए पोस्टमास्टर बाबू ने ठीक कर ली है; कहा है, कल भेज देना, मैं साथ चलेगा, मैं अपने सदर डाकख़ाने में बहाल करा लूँगा। एक दरख़्वास्त लिखकर कल उनके साथ जाना, मौक़ा हमेशा नहीं मिलता, संयोग से जगह ख़ाली हो गई है।"

"कौन जगह है ?"—महादेव ने उत्सुकता से पूछा।

"कह रहे थे, अभी पोस्टमैन की एक जगह ख़ाली है, उसी पर बहाल करा लूँगा, बाद में आगे निकाल लूँगा।"

महादेव का मुख धुआँ-सा हो उठा। उसने सिर हिलाकर कहा—"मैं पोस्टमैन का काम नहीं करूँगा।"

"क्यों बेटा ?"—बुन्दो ने चौंककर पूछा—



जहाँ की बात है, सरकारी नौकरी है, फिर तरक़्क़ी की आशा है। कर लोगे तो तुम्हारा एक ठिकाना हो जायगा। मेरा क्या—चार दिनों में मरनेवाली हूँ। बूढ़ी हुई, हाथ-पाँव थके।"

महादेव खा चुका था; पानी पीकर उठा और हाथ-मुँह धोने लगा। बुन्दो यहाँ भी उसके पास तक आई और कहा—"बेटा, मैं तुमसे एक बात कहूँगी—जब लड़की के अंग भरने लगते हैं और लड़कों की रेख निकलने लगती है, तब उनको बहुत सावधान रहने की ज़रूरत होती है। ऐसी उमर में धूर्त लड़कियाँ उनको अपने प्रेमजाल में फँसाने के लिए अनेक चालें चलती हैं। उनसे बहुत बचना चाहिए। तुम कल्याणी की दूधवाली की दूकान पर जाकर बैठते-उठते हो, इसको मैं अच्छा नहीं समझती।"

इतने दिनों से मन को रोकते-रोकते आख़िर बुन्दो ने यह बात पुत्र से कह ही दी। महादेव की भौंहें तन गईं।

"उसकी दूकान पर बैठने-उठने से क्या हो जाता है?"—महादेव ने उग्र स्वर में कहा।

"क्या ज़रूरत उसकी दूकान पर बैठने-उठने की। इसको लोग बुरा समझते हैं। कई लोगों ने इसकी मुझसे शिकायत की है। उसकी लड़की के संबंध की मैं कई बातें सुन चुकी हूँ। उसको तुम नहीं जानते, मैं जानती हूँ। वह रंडी है, साफ़-साफ़ रंडी।"

महादेव की आँखें क्रोध से लाल हो उठीं। उसने डपटकर कहा—'यह तुमसे किसने कह दिया कि वह रंडी है?"

"क्या मेरे आँखें नहीं? रंडी नहीं, तो उसके शरीर पर सोने-चाँदी के दो हज़ार के गहने कहाँ से चढ़े हैं! मामूली दूध की दूकान, घर में कोई कमानेवाला नहीं, फिर रानी के-जैसा ठाट-बाट। आता कहाँ से है? उसको जाति-पाँति का भी कुछ ठीक नहीं। अपने को ग्वालिन बतलाती है, लेकिन इस पर भी लोगों को विश्वास नहीं। कोई कहता है कहारिन है; कोई कहता है, मेहतरानी है। जो भी हो, लेकिन रंडी तो खुले-आम है। शाम को देखते नहीं, उसकी दूकान पर पाँच सौ गुंडों की भीड़ लग जाती है, और सबसे हँस-हँसकर बातें करती है। इसका मतलब!"

"चुपचाप घर में बैठो"—महादेव ने गरजकर कहा—"बेफ़ायदे टरटर न करो, नहीं अभी ठीक कर दूँगा।"

बुन्दो अकचका गई। महादेव ने जल्दी से जूते पहने और सैर-सपाटे के लिए निकल पड़ा।

(४)

बुन्दो के आँसू झर रहे थे। उसके आगे पोस्ट-मास्टर बाबू की पत्नी थीं; बग़ल में उनकी कहारिन। सात दिनों से महादेव का कहीं पता नहीं था, न मनोगी, उसकी मा और उसकी दूकान का, और सातों दिनों से बुन्दो भूखी थी।

"महराजिन,"—पोस्टमास्टर बाबू की पत्नी ने कहा—"तुमने बहुत किया। तुम्हारे-जैसा कोई भी मा नहीं कर सकती। जब तुम्हारे प्यार को सुनती हूँ, दाँतों उँगली दबा लेती हूँ। लेकिन तुम्हारा भाग्य खोटा है। पढ़ा-लिखाकर तैयार कर दिया, उससे तुमको सुख नहीं लिखा है, तो कैसे मिले! अब शोक छोड़ो; जाओ, खाओ-पियो। महादेव ज़िंदा है और रहेगा, तो कभी न कभी आवेगा ही। इस तरह प्राण दे देने से तुम्हें क्या लाभ होगा!"

"महादेव को अगर उससे विवाह ही करना था,"—बुन्दो ने आँखें पोंछते-पोंछते कहा—"तो विवाह करके घर में लाता, मैं उसी को रख लेती। उसके लिए मैं ख़ुशी से अपना जाति-धर्म गँवा देती।"

"विवाह!"—पोस्टमास्टर बाबू की पत्नी ने कहा—'विवाह कौन करनी है। यह सब सुनने की अफ़वाहें हैं। मनोगी विवाह करेगी और उसकी मा करने देगी! उसको तो बीस-बीस पचीस-पचीस रुपये रोज़ की आमदनी है; वह लड़की का विवाह क्यों करने लगी! महादेव तो उसको बिना दाम-



कौड़ी का एक नौकर मिल गया है—दिन-दिन-भर धूप में दौड़ाती है, कुली-जैसा खटाती है। वही उसके घर की लकड़ी काटता है, बाज़ार से अपने सिर पर सामान ढो लाता है, वही उसकी दूकान की थालियाँ और बर्तन-भाँड़े माँजता-धोता है। अगर महादेव पढ़ा-लिखा न होता, तो कहने की बात थी। पढ़-लिखकर उसने न-जाने क्या किया! सुनती हूँ, जब मनोगी दूकान पर बैठती थी, पाँच सौ गुंडों की भीड़ लग जाती थी।"

"मालकिन,"—कहारिन ने कहा—"इसी से—उन्हीं गुंडों से परेशान होकर तो वह शहर छोड़कर भागी भी है।"

बुन्दो के सावन की झड़ी-से आँसू जारी थे।

पड़ोस के घर की एक कहारिन आई और बुन्दो को देखकर उसने उत्सुकता के साथ पूछा—"महराजिन, क्या महादेव का तुम्हें कुछ पता लगा?"

"नहीं बेटी।"—बुन्दो ने आँखें पोंछते हुए कहा।

"अच्छा, मैं कुछ सुन आई हूँ। लालमन कल महराजगंज गया था, वही देख आया है। मनोगी, उसकी मा और महादेव वहीं हैं। मनोगी की मा ने स्टेशन पर दूध की एक दूकान खोली है और तीनों मिलकर उसे चला रहे हैं।"

डूबते को जैसे सहारा मिल गया; बुन्दो ने बड़ी प्रेम-विह्वलता से पूछा—"क्या सच कहती हो बेटी?"

"हाँ-हाँ, सच कहती हूँ। तुम ख़ुद जाकर पूछ लो।"

बुन्दो दौड़ी। उसने पता लगाया और बात ठीक निकली। अब क्या था! वह महराजगंज चलने के लिए तैयार हुई। लेकिन वह था वहाँ से ग्यारह कोस दूर—दूर देहात में और पैदल का रास्ता। फिर भी बुन्दो ने प्रस्थान कर दिया।

इतनी दूर पैदल चलने की उसकी कभी की आदत थी नहीं, इस पर भी जीर्ण वार्द्धक्य की अवस्था—चलते-चलते बुन्दो के पाँवों में फफोले पड़ गये, थकान से अंग-अंग शिथिल हो गया; लेकिन वह पहुँच गई। संध्या से कुछ पहले वह स्टेशन पर पहुँची और बड़ी व्यग्रता के साथ जिससे-तिससे पूछने लगी—"क्या यहाँ पर किसी दूधवाली ने दूध की कोई नई दूकान खोली है? उसके साथ एक लड़की है और एक गोरा-गोरा-सा सुन्दर लड़का, बीस-इक्कीस वर्ष का।" लेकिन किसी ने ठीक पता नहीं दिया—"कौन दूधवाली? यहाँ किसी ने दूध की दूकान नहीं खोली। उधर पूछो।" बुन्दो के चारों ओर निराशा का बादल छा गया। उसकी हिम्मत टूट गई और आगे बढ़ने तथा पीछे लौटने की जैसे उसमें शक्ति ही नहीं रही। जिस मार्ग को वह दिन-भर में तय करके चली आई थी, वही अब उसे समुद्र-सा अगम, दंडकारण्य-सा बीहड़ और लाखों कोसों-सा दूर जान पड़ने लगा।

प्लेटफ़ार्म पर हड़हड़ाती हुई एक ट्रेन आकर लगी और उसमें से निकलकर मुसाफ़िर भड़-भड़ भड़-भड़ स्टेशन से बाहर निकलने लगे। बुन्दो भिखारिन की तरह स्टेशन की एक-एक दूकान और एक-एक आदमी के आगे जाकर दूधवाली का पता पूछती फिर रही थी। सहसा उसके प्रश्न पर एक जानेवाला मुसाफ़िर चौंक पड़ा—"कौन दूधवाली! यहाँ स्टेशन पर तो किसी ने दूध की दूकान नहीं खोली, लेकिन भीतर बाज़ार में एक महराजिन ने दूध की एक नई दूकान खोली थी—यही पाँच-सात दिनों से। क्या उसकी लड़की का नाम मनोगी है?"

"हाँ-हाँ, वही।"—बुन्दो को जैसे मरते प्राण मिल गया, उसने चौंककर कहा।

"तो उसने यहाँ नहीं, बाज़ार में दूध की एक दूकान खोली थी। उसके साथ उसका दामाद भी है। लेकिन उसकी दूकान चली नहीं, इससे उसने उसे तोड़ डाला है और आज इसी ट्रेन से कहीं बाहर जा रही है। अगर भेंट करना है, दौड़ो, जाओ, अभी स्टेशन पर ही होगी—गाड़ी में बैठ गई होगी या चढ़ती होगी।



खुलने में अभी दस मिनट की देर है; दौड़ो, जल्दी जाओ, तो भेंट हो जायगी।"

बुन्दो दौड़ी—बेतहाशा दौड़ी, और दौड़ी-दौड़ी स्टेशन में घुस गई। प्लेटफ़ार्म पर देखा, मनोगी बनी-ठनी शान के साथ अपने सामानों के पास खड़ी है, उसकी मा रेल में बैठ गई है, और महादेव उसके सामानों को, एक-एक करके, अपने सिर पर लाद-लादकर डब्बे में पहुँचा रहा है। बुन्दो पगली-सी हो उठी। वह धीरे से पास गई और ज़ोरों से महादेव का हाथ पकड़कर कहा—"बेटा, तुम मेरे हो, मुझे छोड़कर कहाँ चले जा रहे हो ?"

महादेव अकचका उठा। एक बार उसने मा की अस्त-व्यस्त दशा देखी, फिर मनोगी का मुख देखा, फिर कहा—"तुम यहाँ कहाँ दौड़ी आ गई ? जाओ-जाओ, घर जाओ। मैं बाहर जा रहा हूँ, पाँच-सात दिनों में लौट आऊँगा।"

"नहीं मेरे बेटे, मेरे लाल, मेरे प्राणों के आधार, मैं तुम्हें कहीं भी जाने नहीं दे सकती। तुम मेरे हो, मेरे साथ चलो।"

बुन्दो ने महादेव के हाथ को और ज़ोर से जकड़कर पकड़ लिया। लोग भौंचक-से हो उठे। डब्बों से मुँह निकाल-निकालकर सैकड़ों मुसाफ़िर यह दृश्य देखने लगे। मनोगी ऐंठ से अकड़ी जा रही थी। उसने शेष सामानों को स्वयं उठाकर गाड़ी में लाद लिया और ख़ुद भी डब्बे में जा बैठी।

"छोड़ो, हाथ छोड़ो, जाने दो"—महादेव ने अपना हाथ खींचते हुए कहा—"मैं पाँच-सात दिनों में लौट आऊँगा।"

"नहीं मेरे बेटे, मैं तुम्हें जाने न दूँगी।"

इस दृश्य को देखने के लिए इधर-उधर से भीड़ इकट्ठी होने लगी; तब तक गाड़ी ने सीटी दे दी। महादेव ने झोंके से अपना हाथ छुड़ा लिया और बुन्दो को ज़ोरों का एक ऐसा धक्का दिया कि वह दूर जाकर चारों खाने चित धम से गिरी, और मूर्च्छित हो गई। महादेव कूदकर ट्रेन के डब्बे में बैठ गया। रेलगाड़ी भक-भक करती आगे बढ़ी और देखते-देखते सनसनाती हुई स्टेशन से दूर निकल गई।

(५)

उस चार कोस के मरुस्थल के बीच प्रकृति ने कुछ उर्बर भूमि और बरगद का एक विशाल वृक्ष पैदा कर दिया था। किसी पुण्यात्मा ने वहाँ एक कुआँ खुदवा दिया था। कभी वहाँ एक पौशाला भी थी, लेकिन आज केवल एक झोपड़ी शेष थी। गर्मी में जब बटोही उस मरुस्थल से होकर निकलते, तो वहाँ आते-आते अवश्य संतप्त हो उठते थे और थोड़ी देर वहाँ ठहरकर विश्राम कर लेने की आवश्यकता उन्हें अवश्य महसूस होने लगती थी। बुन्दो दिन-भर वहीं बैठा करती। उसके बाल सन-से श्वेत हो गये थे, सारे शरीर का चमड़ा झूलने लगा था, गरदन काँपने लगी थी। फिर भी वह रोज़ दो कोस चलकर वहाँ आती थी। उसका सूर्योदय भी वहीं होता और सूर्यास्त भी वहीं। उसकी रात का शेष भाग घर पर चक्की पीसने और कुछ विश्राम करने में बीतता था। मरुस्थल की उस झोपड़ी में उसके पास कुछ भीगे हुए चने होते, थोड़ा गुड़ और मिट्टी के घड़े में ठंडा पानी। उसकी आँखें निरंतर वहाँ तक आनेवाले पथों पर दौड़ा करतीं। जब कोई पथिक दूर पर आता दिखाई पड़ता, तब उसका हृदय प्रसन्नता से फूल उठता और आँखें अपलक होकर उसके पथ में बिछ जाती थीं। जब वह पास आ जाता, तब बुन्दो बड़े ध्यान से एक बार उसे सिर से पाँव तक देखती—कदाचित् उसे पहचानने का उद्योग करती; फिर अपनी माता के-जैसा बड़े अनुराग और उल्लास से उठकर उसका स्वागत करती—"आओ बेटा, कुछ देर विश्राम कर लो—तनिक ठंडे हो लो।"

ताप से संतप्त पथिक बरगद की उस शीतल छाया को देखकर अवश्य ही ललचा उठता और



कुछ देर वहाँ विश्राम कर लेने के लिए अवश्य उसकी इच्छा हो उठती—इस पर बुन्दो का सादर स्वागत प्रेमपूर्ण आग्रह । वह बड़ी प्रसन्नता से उसकी बात मानकर बैठ जाता, कुछ देर ठंडा होता और आनन्द के साथ बुन्दो का, चने और पानी का, आतिथ्य स्वीकार कर लेता था ।

बुन्दो किसी से कभी कुछ माँगती नहीं थी, न पाने की आशा ही रखती थी । यदि कोई अपनी इच्छा से दो-चार पैसे उसके आगे रख देता, तो उन्हें भी वह मुसकिराकर बड़े प्रेम, विनय, आग्रह और धन्यवाद के साथ वापस कर देती थी । अपने पसीने से पैदा करके अपना पेट भरना और उसी में से थोड़ा-थोड़ा बचाकर इस तरह पथिकों की सेवा करना उसने अपने शेष जीवन का कर्तव्य ही बना लिया था । उस पथ से बार-बार निकलनेवाले पथिक उससे पूर्ण परिचित हो गये थे और उसे बड़ी भक्ति के साथ 'मा' कहकर पुकारते थे—यहाँ तक कि बूढ़े-बूढ़े लोग भी उसे 'मा' ही कहते । लोगों ने उसका नाम ही 'मा' रख दिया था, और जहाँ कहीं ज़रूरत पड़ती, 'मा' कहकर ही उसकी चर्चा करते थे ।

बुन्दो इस तरह न-जाने किस युग से पथिकों को पानी पिलाती चली आ रही थी, पर कभी उसने किसी से कोई वांछा नहीं की । हाँ, जब बटोही ठंडा होकर उससे बिदा होने लगता, तब वह नेत्रों में आँसू भरकर उससे दो-एक प्रश्न अवश्य पूछती थी । बटोही चाहे जहाँ का भी रहनेवाला हो, जहाँ से भी आ रहा या जहाँ कहीं भी जा रहा हो—इससे बुन्दो को कोई प्रयोजन नहीं । वह उससे पहला प्रश्न पूछती थी—"बेटा, क्या तुम महादेव को जानते हो ?"—कौन महादेव, कहाँ का रहनेवाला, किस जाति का—इन सब बातों से कोई मतलब नहीं । यदि बटोही किसी महादेव को जानने की बात स्वीकार करता, तो बुन्दो उससे दूसरा प्रश्न पूछती—"अच्छा बेटा, वह कुशल से है न ?" यदि बटोही उसके सकुशल होने की बात बतला देता, तो बुन्दो का मुख खिल उठता, उसकी प्रसन्नता की सीमा न रहती और वह उसे अनेक आशीर्वाद देती—"अच्छा बेटा, जाओ । तुम युग-युग जियो, तुम्हारे बच्चे चिरजीवी हों, तुम सुखी रहो, महादेव सुखी रहे ।"

उसको 'महादेव' नाम ही से प्रेम था, और संसार में जितने भी 'महादेव' हों, वह सबका मंगल मनाया करती थी ।

* * *

बुन्दो से बिदा होते आज के इस बटोही का हृदय रो पड़ा—इस तरह, जैसा अपनी मा से विलग होते भी कभी न रोया होगा । बुन्दो ने उसकी भेंट को विनय के साथ अस्वीकृत कर दिया था, इस बात ने उसके हृदय को और भी [illegible] दिया । उसने नेत्रों में आँसू भरकर कहा—"मा, तुम्हारे कुछ ही देर के प्यार से आज मुझे जो सुख मिला है, वह अपनी मा के जीवन-भर के प्यार में भी कभी नहीं मिला था, इस पर तुम मेरी यह तुच्छ भेंट लेने से इनकार कर रही हो, फिर मैं तुम्हारे इस उपकार से कैसे उऋण होऊँगा ?"

बुन्दो का मुख तनिक उदास हो उठा । उसने कहा—"बेटा, इसमें उपकार कैसा ? जैसे तुम अपनी मा के पुत्र वैसे मेरे । मैंने तो, कुछ [illegible] तुम्हें प्यार करके, अपने कर्त्तव्य का पालन किया है । इस तरह इस मरुस्थल में अकेली बैठी-बैठी अपने पुत्रों को प्यार करके कुछ देर अपने मातृत्व का उपयोग कर लेती हूँ, अपने हृदय को सुख से भर लेती हूँ । मेरा अपना पुत्र अपना न [illegible] तो क्या, सारा संसार मेरा पुत्र है, तुम्हीं मेरे पुत्र हो, लाखों मेरे पुत्र हैं । तुम्हें प्यार करके तो मैंने अपने वात्सल्य का सुख लूटा है, इसमें उपकार कैसा !"

बटोही विस्मित होकर बुन्दो का मुख देखने लगा । उसके आँसू भर आये ।



"अच्छा मा, अब आज्ञा दो। लौटती बार फिर तुम्हारा दर्शन करूँगा।"

"अच्छा बेटा, जाओ, भगवान् तुम्हें सुखी रक्खें। लेकिन हाँ, एक बात बतलाये जाओ—क्या तुम महादेव को जानते हो ?"

"कौन महादेव ? हाँ, मैं एक महादेव को जानता हूँ। वह कलकत्ते में मनोगी पानवाली का नौकर था।"

बुन्दो चौंक पड़ी—"वह कुशल से तो है बेटा ?"

"मा, उसका कुशल क्या बतलाऊँ, उसकी बड़ी दुर्दशा हुई है।"

बुन्दो के प्राण व्यग्र-से हो उठे। "अच्छा बेटा, ज़रा देर और बैठ जाओ और उसका हाल बतला दो।"—उसने बटोही का हाथ पकड़कर कहा।

पथिक ने बैठकर कहा—"मा, कलकत्ते में मैं जिस मुहल्ले में रहता हूँ, उसी में मनोगी नाम की एक पानवाली है। आरम्भ में उसकी दूकान ख़ूब चली थी और वह काफ़ी धनी भी थी। लेकिन उसके यहाँ ख़ून के एक-दो मुक़दमे हो गये और उनमें उसके बहुत रुपये ख़र्च हो गये। तब से वह ग़रीब हो गई है, दूकान भी बहुत कम चलती है। महादेव उसी का नौकर था। मनोगी बतलाती तो उसको अपना पति है, पर उसके साथ व्यवहार ख़रीदे दास से भी गया-बीता करती थी। वही पानवाली का चौका-बर्तन करता था, खाना पकाता था, घर झाड़ता था, दूकान धोता था, बाज़ार से सामान लाता था, कपड़े धोता तथा घर के दूसरे काम करता था। इस पर भी यदि कोई बात पड़ जाती, तो मनोगी उसको अपने हाथ से पीटती थी। एक बार मैंने अपनी आँखों देखा, मनोगी उसके सिर पर अपनी जूतियों से तड़ातड़ मार रही थी और वह सिर झुकाये बैठा रो रहा था।"

बुन्दो के आँसू झरने लगे।

बटोही कहता गया—"पर साल बेचारा बीमार पड़ा। बीमारी में उसकी बड़ी दुर्दशा हुई है। जब कभी मैं पान लेने के लिए उसकी दूकान पर जाता था, तो देखता था, बेचारा पड़ा-पड़ा कराहा करता था, यदि कभी पानी माँगता, तो मनोगी डाँट देती—चुपचाप पड़े रहो, टरटर न करो। अंत में उसने बेचारे को घसीटकर सड़क पर डाल दिया। हम लोग उसे उठाकर अस्पताल में ले गये; तब पता लगा, बीमारी राजयक्ष्मा की थी। डाक्टर से कह-सुनकर हम लोगों ने उसको अस्पताल में भरती करा दिया। लेकिन पाँच-सात दिनों बाद सुना, वह अस्पताल से भी कहीं भाग गया। तब से उसको कहीं देखा नहीं। मनोगी भी अब उस मुहल्ले में नहीं रहती। इधर सुना था, अस्पताल से भागकर वह फिर मनोगी के यहाँ गया और उसके हाथ-पाँव जोड़-पकड़कर फिर उसी के यहाँ रहने लगा। उसकी बीमारी अभी अच्छी नहीं हुई है और अब शायद वे तुलापट्टी में रहते हैं।"

सावन की झड़ी-से बुन्दो के आँसू जारी थे।

(६)

बुन्दो बीमार थी—अंतिम बीमारी, पाँच दिनों से बेहोश, कफ घिर आया था, परिचित को पहचानती नहीं थी। बीच-बीच में कभी दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के लिए होश आ जाता, तो बड़बड़ाने लगती। अपना तो कोई था नहीं, पास-पड़ोस की स्त्रियाँ आकर दवा-पानी दे जातीं, उसके जीवन पर तरस खातीं और आपस की कुछ बातें—

"भई, महराजिन को बहुत कष्ट है। इतना कष्ट तो मैंने किसी की मौत में नहीं देखा। जल्दी मर भी जाती, तो इस कष्ट से इसको छुटकारा मिल जाता।"

"भई, इसका प्राण इसके लड़के में अटका है। जब-जब होश आता है, 'महादेव-महादेव' पुकारती है।"

"पोस्टमास्टर बाबू ने उसको तार तो दे दिया



है; साथ ही अपने एक मित्र को भी ख़ूब समझा-कर तार दे दिया है कि जैसे हो महादेव को समझा-बुझाकर भेज दो।"

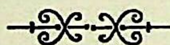
"भई, उनके तार देने से क्या होता है! महादेव का पता लगने पर पहले भी तो उन्होंने उसके पास कई पत्र लिखे थे—कहाँ आया! मनोगी उसे छोड़े तब तो।"

"भई, अब क्यों न आवेगा! क्या तुमने सुना नहीं—पाँच-सात दिन हुए, बंसू कलकत्ते से आया है, तो बतला रहा था, मनोगी ने उसको मारकर घर से निकाल दिया और ख़ुद एक सोनार के घर बैठ गई। महादेव भी तो बीमार है!"

संध्या समीप थी। इस तरह ये स्त्रियाँ बुन्दो की मरणशय्या को घेरे तरस खा-खाकर आपस में बातें कर रही थीं कि बाहर से किसी के पुकारने की आवाज़ आई—"मा!"

बुन्दो चौंककर उठ बैठी, जैसे मुर्दे में जान आ गई हो। एकत्रित स्त्रियाँ भौंचक-सी होकर उसका मुख देखने लगीं। अपनी बातों की धुन में बाहर की पुकार को कदाचित् उन लोगों ने सुना ही नहीं। बाहर से फिर आवाज़ आई—"मा!"

बुन्दो उठकर दौड़ी, जैसे सौ पहलवानों का उसे बल हो, वर्षों से कभी बीमार ही न पड़ी हो। बाहर आकर उसने देखा, महादेव खड़ा है; लेकिन महादेव अब उसका वह महादेव नहीं था—उसकी आँखें गढ़े में धँस गई थीं, गाल पिचके थे, चमड़ा रूखा-सूखा ढीला, रंग बिलकुल पीला जैसे देह में बूँद-भर भी ख़ून न हो, बिलकुल दुबला-पतला और कमज़ोर, मुर्दे-सा! फिर भी बुन्दो का हृदय प्रेमविह्वल हो उठा; उधर मा को देखकर महादेव के आँसू झरने लगे। गोधूलि बुन्दो के पुत्र को अपने धुँधले आवरण में छिपा लेना चाहती थी, अतः "मेरे बेटा, क्या तुम आ गये" कहकर वह दौड़ी और महादेव को अपने कलेजे से चिमटा लिया। लेकिन तुरत ही उसकी भुजाएँ, जिनमें वह महादेव को जकड़े थी, शिथिल पड़ गईं और वह धम से गिर पड़ी। स्त्रियों ने दौड़कर उसे उठाया, लेकिन वह मर चुकी थी।



मैं क्या हूँ ?

श्रीहीरालाल दीक्षित 'दिनेश' काव्यधुरीण, विशारद

प्रणय का उन्माद हूँ मैं !

रोज़ लुटती स्नेह-उपवन
में सबेरे फूल - बाला ;
आज मम उर - चातकी ने
'पी कहाँ' का गान पाला ।

सामने पगली - पिकी लेकर खड़ी बरछी स्वरों की ;
सजनि ! फिर भी स्नेह 'शीरी' हित तृषित 'फ़रहाद हूँ मैं !

खेल ही में चल पड़ा था—
मधुप जलते प्रणय-पथ पर ;
कंज का बंदी बना, पर—
अन्त में निर्दोष बँधकर ।

बिलखते, वन - वन भटकते, तड़पते मजनूँ दिवाने—
के अधर पर का अलौकिक चिर अमर-आह्लाद हूँ मैं !

प्रिय उषा के ताप से तप
स्वर्ण-सुत वह नित निखरती ;
वेदना - वन में नवल नीहार —
के कण बन, बिखरती ।

झूम उठता हूँ, हृदय में शलभ का अनुराग भरकर ;
मौन वीणा में थिरकता मधु - चिरन्तन - नाद हूँ मैं !

क्षितिज - सी ज्वाला निरन्तर
जल रही धू - धू हृदय में ;
सघन - घन से भी कभी क्या
बुझ सकेगी यह प्रलय में ?

चाह थी—जग - स्नेह - शशि की गोद का बनता खिलौना ;
धर्म - संकट में पड़ा पर चिर - अटल - प्रह्लाद हूँ मैं !

मेरी जापान-यात्रा

सेठ लक्ष्मणप्रसाद बैंकर

(शेषांश)

देशभक्ति

जापान की देशभक्ति अतीव प्रशंसनीय है। वह देश के प्रश्न के सम्मुख अपने जीवन को तुच्छ समझता है, यह पूर्णरूपेण सत्य है। एक जापानी अपने देश और धर्म के लिए अपने को न्योछावर कर देता है। उसके देश-प्रेम का इतिहास साक्षी है। जापान का बच्चा-बच्चा अपने इतिहास एवं पूर्वजों के कार्यों से पूर्णतः परिचित है। इसी कारण वे भी अपने प्राण देश-प्रेम की बलिवेदी पर चढ़ाने के लिए सदैव प्रस्तुत रहते हैं।

जापानी लोग भारतीय आमों को बहुत पसन्द करने पर भी उनका भारतवर्ष से मँगाना उचित नहीं समझते, बल्कि अपने देश के फलों पर ही सन्तोष करते हैं, जबकि हम जापान के सेब गर्व-पूर्वक खाते हैं। अन्य वस्तुओं का तो कहना ही क्या, समस्त भारतीय बाजार जापानी वस्तुओं से पटे हुए हैं। जापान विदेश से अनावश्यक वस्तुएँ मँगाने में अपनी मानहानि समझता है जहाँ तक सम्भव है, वह उस वस्तु को अपने ही देश में पैदा करता है और अन्त में विवश होकर ही विदेश से मँगाता है। जापान नक़ल तो तुरन्त ही कर लेता है। कहीं भी कोई लाभदायक वस्तु देखी और उसने अपने पुरुषार्थ से वैसी ही तैयार की। किन्तु शोक! महाशोक!! हमारा ढंग इससे सर्वथा प्रतिकूल है।

जापान की शिक्षा

जापान की इस आश्चर्यजनक उन्नति का द्वितीय कारण वहाँ की शिक्षा-प्रणाली है। प्रत्ये[illegible] बालक को कुछ समय के लिए हर दशा में शिक्षा प्राप्त करने के लिए अनिवार्यतः स्कूल जा[illegible] पड़ता है।

प्रायमरी शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् स्कू[illegible] और कालेजों में भी लड़के और लड़कियाँ ब[illegible] संख्या में शिक्षा प्राप्त करती हैं। एक साधार[illegible] ग्राम में, जिसमें केवल कुछ झोंपड़े ही होते हैं, [illegible] प्रायमरी स्कूल अवश्य होगा। विद्यार्थियों को ह[illegible] प्रकार की सुविधा है। छोटे छोटे बालकों को ए[illegible] ही वेष-भूषा में एक थैला पीठ पर ले जाते हु[illegible] देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है। जापान की [illegible] संख्या भारत की जनसंख्या का पाँचवाँ [illegible] छठवाँ भाग है, और उसका क्षेत्रफल हमारे [illegible] मे कुछ ही ज्यादा है, तब भी उस रिपोर्ट के [illegible] सार, जो मुझे मिली थी, वहाँ ४६ विश्वविद्या[illegible] हैं। १६ तो अकले टोकियो नगर में हैं, [illegible] समस्त भारत में १८ ही हैं। जापान में [illegible] प्रायमरी स्कूल, १०५ नार्मल स्कूल, [illegible]



स्कूल, ७३ अन्धों के स्कूल, १२८ गूँगों के लिए, १२१८ लड़कों के लिए, ६७० लड़कियों के हाई स्कूल, ३३६ कृषि-सम्बन्धी, २६८ व्यापार-संबंधी, ४५०० पुस्तकालय और अन्य-अन्य प्रकार के १८८० स्कूल हैं। इस तालिका द्वारा सरलता से मालूम किया जा सकता है कि जापान में शिक्षा का कैसा व्यापक और उत्तम प्रबन्ध होगा। स्कूलों में हर प्रकार की शिक्षा आवश्यकतानुसार दी जाती है। जापानी युवकों को सैनिक शिक्षा भी दी जाती है। मिडिल क्लास के पश्चात् जापानी लड़के या लड़कियाँ अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कालेज में प्रवेश करती हैं। स्कूल-जीवन में वे अपने उद्देश्य को निश्चित कर लेते हैं। वहाँ भारत की सी दशा नहीं कि B. A. और M. A. पास कर लेने के पश्चात् यह भी निश्चित नहीं कर पाते कि उनको क्या करना है। जापानी शिल्प-कला की ओर अधिक ध्यान रखते हैं। उसके लिए साधन भी अति उत्तम प्राप्त है। स्कूलों में देश-प्रेम का पाठ विद्यार्थियों के हृदय में कूट-कूटकर भर दिया जाता है। हर एक जापानी विद्यार्थी अपने पूर्वजों के जीवन से पूर्ण परिचित रहता है; क्योंकि स्कूलों में ऐसे ही जीवन-चरित्र पढ़ाये जाते हैं। स्वच्छता के लिए जापान प्रसिद्ध है। विद्यार्थी स्वच्छता का पाठ स्कूल और अपने घर पर यथेष्ट रूप से सीख लेते हैं। जापान के विद्यार्थियों का वस्त्राभूषण एक ही समान है, धनी निर्धन सबके साथ एक सा व्यवहार किया जाता है। लिबास बहुत ही साधारण है। लड़कों एवं लड़कियों को व्यायाम के लिए खूब उत्साहित किया जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि कुछ समय में ही उनका औसत क़द एक इंच के लगभग अधिक बढ़ गया है। इसका मुख्य कारण वहाँ के व्यायाम के उत्तम साधन हैं। लड़कियाँ लड़कों के समान प्रत्येक खेल अथवा व्यायाम में भाग लेती हैं। शिक्षा लड़कियों को उनकी उपयोगिता के अनुसार दी जाती है। जैसे भोजन बनाना, सीना-पिरोना, गाना-बजाना, पूजा, त्योहार मनाना, मकान को सजाना आदि। टोकियो में एक लड़कियों का स्कूल देखने का मुझे अवसर मिला। स्कूल के हेडमास्टर साहब ने बड़ी नम्रता एवं उदारता का व्यवहार किया और प्रत्येक क्लास में मुझको ले गये। वहाँ की स्वच्छता और नियमानुवर्त्तिता देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। लड़कियों को अँगरेजी का अभ्यास भी कराया जाता है। ड्रिल भी कराई जाती है। सच तो यह है कि जापान स्वच्छता, एकता एवं नियमानुवर्त्तिता का घर है। मैंने इसके सम्बन्ध में जैसा पढ़ा और सुना था, वास्तव में वैसा ही पाया। कभी-कभी लड़के और लड़कियाँ नगरों में परेड करते हुए निकलते हैं। एक स्कूल के लड़कों को शहर में सैनिकों के समान मार्च करते देखा। हरएक के कंधे पर बन्दूक थी। इससे ज्ञात होता है कि उनको हथियारों का प्रयोग भी सिखलाया जाता है। वास्तव में जापानी शिक्षा वहाँ की आवश्यकता के अनुसार पूर्ण कही जा सकती है। वहाँ ऐसी शिक्षा नहीं दी जाती कि रोटी के प्रश्न को भी हल न कर सके और न विद्यार्थियों को दूसरी दृष्टि से उपयोगी हो। वहाँ बेकारी का नाम नहीं है। क्या ही अच्छा हो, यदि भारतवर्ष में उसी प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध हो जाय; और यह तभी हो सकता है, जब शिल्पकला की ओर ध्यान हो। तभी भारत रोटी के प्रश्न को हल कर सकेगा। तभी देशव्यापिनी बेकारी नष्ट होगी। यह वहाँ की शिक्षा-प्रणाली का ही प्रभाव है, जिसने जापान को वर्तमान जापान बना दिया और थोड़े से ही समय में उसकी गणना सभ्य देशों



में हो गई। जापानी लड़के या लड़कियाँ जब स्कूलों या कालेजों में अपनी शिक्षा समाप्त करके जीवन में प्रवेश करते हैं तो उनको किसी प्रकार की कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता। बड़ी उत्तमता एवं चतुराई से अपने कर्तव्यों का यथेष्ट रीति से पालन करते हैं।

जापान में लड़कियाँ हर महकमे में उतनी ही योग्यता के साथ काम करती दिखाई देती हैं, जितनी योग्यता से लड़के। सच तो यह है कि जापानी लड़कियाँ अपने देश व कुटुम्ब के लिए बड़ी ही उपयोगी सिद्ध हो रही हैं। ट्राम, दफ़्तर, स्टोर, होटल और कारख़ाने इत्यादि में बहु-संख्या में काम करती हैं। मैंने एक भी लड़की ऐसी नहीं देखी, जो मैले वस्त्रों को पहने हो और जिसके बाल भली भाँति न कढ़े हों। स्वच्छता उनकी प्रकृति बन गई है। जिस देश में शिक्षा का सुप्रबन्ध होता है, वह अवश्य ही उत्थान करता है। हर देश अपने भाग्य को स्वयं बनाता है, और उसी पर उसकी उन्नति एवं अवनति निर्भर है। किसी ने ठीक कहा है—

Nations rise and fall according to their destinies, but I believe their destinies are shaped by their peoples and God helps those who help themselves.

जापान को एक स्कूल कहा जा सकता है, जहाँ कि मनुष्य किसी बात को सीखने के लिए इतने इच्छुक रहते हैं, जिस प्रकार बतख़ पानी में तैरने के लिए। यह शायद उनकी शिक्षा और दीक्षा का ही प्रभाव है कि वे मृत्यु से भी नहीं डरते। जब उन्हें जीवन के बलिदान करने की आवश्यकता प्रतीत होती है तो वे उसे एक साधारण वस्तु समझकर बलिदान कर देते हैं। इस बात के सैकड़ों उदाहरण हैं। इन्हीं के कारण जापान ने इतनी उन्नति की है। वह इन्हीं के बल पर समस्त संसार में अपना मस्तक ऊँचा किये हुए है।

जापान की राज-भक्ति

जापान का बच्चा-बच्चा अपने सम्राट् की सच्चे हृदय से प्रतिष्ठा करना जानता है। सम्राट् के विषय में उनकी यह धारणा है कि उसको ईश्वर ने उनकी रक्षा और पथ-प्रदर्शन के लिए भेजा है। इसी आधार पर सम्राट्-भक्ति को उन्होंने धर्म का रूप दे रक्खा है, जिसको शिन्टोइज़्म (Shintoism) कहते हैं। शिन्टोइज़्म का मुख्य सिद्धान्त यही है कि सम्राट् और उसके पूर्वजों की पूजा की जाय।

जापान का धर्म

जापानी लोग प्रायः बौद्ध-धर्म को ही मानते हैं और भगवान् बुद्ध के मन्दिर स्थान-स्थान पर पाये जाते हैं। एक बड़ी आश्चर्यजनक बात यह है कि यद्यपि जापानी बुद्ध भगवान् के सिद्धान्तों को माननेवाले हैं और बुद्धजी का मुख्य सिद्धान्त है "अहिंसा परमो धर्मः" अर्थात् प्राणी मात्र पर दया-भाव रखना और किसी को कष्ट न देना, किसी की जान न लेना; फिर भी लगभग सब जापानी मांसाहारी हैं। मछली उनका मुख्य भोजन है। कुछ पुजारी निस्सन्देह मांस नहीं खाते। जापानियों ने भक्षित जीवों की आत्मा की शांति के निमित्त प्रार्थना करने के लिए वर्ष में एक दिवस नियत कर रक्खा है। वह केवल उस प्रार्थना से ही पाप से छुटकारा चाहते हैं। कुछ नौजवान ऐसा कहते हुए भी सुनाई पड़ते हैं कि बुद्धजी के प्राचीन सिद्धान्त उनकी वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकते। कुछ जापानी ईसाई मत के भी हैं। सच तो यह है कि देश-प्रेम ही उनका मुख्य धर्म है।

जापान की लड़कियाँ व स्त्रियाँ

रेलवे, दफ़्तर, होटल, ट्राम, कारख़ाना, कहीं भी जाइए, जापानी लड़कियाँ काम करती हुई नज़र आती हैं और वे अपने कर्तव्य का पालन बड़ी चतुराई एवं सुन्दरता से करती हैं। प्रत्येक मनुष्य दंग होकर सोचता है कि जापान इतनी सस्ती चीज़ें किस प्रकार तैयार करके विदेशों को भेजता है। इसका मुख्य कारण यह है कि जापान की लड़कियाँ हर जगह अधिक संख्या में काम करती हैं और चूँकि उनको हर प्रकार की शिक्षा मिल चुकी है, वे अपने काम को बड़ी सुगमता से कर लेती हैं। उनका वेतन भी बहुत थोड़ा है; क्योंकि जापान का रहन-सहन बहुत सादा है। इस कारण वह वेतन उनको काफ़ी हो जाता है। भारत में जो स्त्रियाँ कारख़ानों में काम करती हैं, वे ऐसी हैं, जिन्हें अच्छी शिक्षा नहीं मिली। इस कारण वे मोटा और मामूली काम करती हैं। उनको हरएक काम करने को अवसर नहीं दिया जाता : कारण यह है कि वे इस योग्य नहीं। किन्तु जापान की लड़कियाँ वहाँ के लिए उतनी ही उपयोगी हैं, जितने कि लड़के। यही कारण है कि जापान सस्ता माल तैयार करता है। सस्ता माल तैयार करने के और भी कई कारण हैं, किन्तु ये उनमें से मुख्य हैं। जापानी लड़कियाँ अपने ही लिए जीवित रहना नहीं जानतीं। किन्तु अपने देश एव कुटुम्ब के लिए जीवित रहती हैं। यदि आवश्यकता पड़े तो वे बड़ा से बड़ा त्याग करने को प्रस्तुत रहती हैं। उनकी नम्रता देखकर हर विदेशी का सिर नीचे झुक जाता है तथा भारत की प्राचीन स्त्री-सभ्यता का एक चित्र सामने आ जाता है। उनका व्यवहार प्रशंसनीय है। वहाँ की लड़कियों की शादी लगभग २० या २२ वर्ष की आयु में होती है। इस आयु में शादी करना बहुत ही लाभप्रद होता है और होना भी चाहिए। ऐसे कहा जाता है कि ३० फ़ी सदी जापानी लड़कियों को शादी करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता; क्योंकि यहाँ पर लड़कियों की संख्या लड़कों की अपेक्षा अधिक है। यह अवश्य उनके लिए एक बड़ी भारी असुविधा है। इसका जो फल होता है, उनसे जापान मुक्त नहीं है।

जापान में सम्राट् मेजी के शासन-काल से पूर्व स्त्रियों की दशा बड़ी ही शोचनीय थी। वही दशा थी, जो आजकल भारत में है। जिस प्रकार भारतीय स्त्रियों को पुरुषों से नीची तथा पैर की जूती, अथवा सन्तान पैदा करन की मशीन, अथवा अपनी पैशाचिक कामनाओं की शान्ति का साधन समझते हैं, उसी प्रकार जापान ने भी उन्हें एक समय समझ रक्खा था। स्त्रियों को शिक्षित बनाना पाप समझा जाता था। जापान के सम्राट् ने घोषणा की कि दरबारी और अमीरों को यह आवश्यक है कि वे अन्य देशों में, जहाँ तक सम्भव हो, अपनी माता बहनों को भी साथ लेते जायँ, ताकि वे वहाँ की स्त्रियों की दशा तथा रहन-सहन का पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकें और उनके अनुसार अपना जीवन बना सकें। सम्राट् मेजी ने स्वयं पाँच लड़कियों को अपने ख़र्चे से सन् १८७१ ई० में इसलिए अमेरिका भेजा कि वे उस देश की शिक्षा एवं रहन-सहन एवं रीति इत्यादि को सीखकर अपने देश की बहनों का सुधार करें। सम्राट् ने उनको अपने हाथों से रेशमी वस्त्र पहनाये और कहा—"मेरी प्यारी बेटियो, तुम विदेश से शिक्षा प्राप्त कर लौटो तो यह न भूल जाना कि तुम्हारे बादशाह ने तुमको जिस उद्देश्य से अमेरिका भेजा है, वह यहाँ की स्त्रियों का सुधार करना है। जापानी स्त्रियों को शिक्षित बनाना, सभ्य बनाना, एवं नये युग का नवीन पाठ पढ़ाना तथा उनको

अमेरिका की महिलाओं के समान चतुर बनाना, तुम्हारे जीवन का मुख्य ध्येय होगा। यदि तुम इस उद्देश्य की पूर्ति में असफल रहीं तो मेरे दुःख की कोई सीमा न रहेगी।" उस समय से जापानी स्त्रियों की दशा में एक अद्भुत परिवर्तन होता गया और आज वे अपने देश के लिए अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध हुई हैं। सर्वप्रथम सन् १९०० ई० में स्त्रियों की जो सभा स्थापित हुई उसका नाम वोमेन्स पैट्रियाटिक एसोसिएशन (Women's Patriotic Association) था। आज उसके सदस्यों की गणना लगभग ५०००० से भी अधिक है। उसी समय से एक स्त्री के होते हुए दूसरी स्त्री से शादी न करने का क़ानून बन गया। सन् १९३९ ई० से उनको वकालत का पेशा करने का भी अधिकार मिल गया। उनकी शारीरिक अवस्था में भी बहुत परिवर्तन हो गया है। जापानी और अमेरिकन लड़कियों की तुलना करते हुए एक अमेरिकन ने यहाँ तक कहा है कि "कारख़ानों में काम करनेवाली जापानी लड़कियों का स्वास्थ्य हमारी मिसों से कहीं अच्छा है। उनके गुलाबी गाल और मुसकराते चेहरे इस बात के द्योतक हैं कि वे अपनी वर्तमान स्थिति से पूर्ण संतुष्ट हैं।"

कारख़ानों से बाहर हवा खाने अथवा कुछ ख़रीदने के लिए जाती हुई किसी लड़की को देखकर यह कहना कठिन है कि यह किसी मिल में काम करनेवाली लड़की है अथवा किसी कालेज में पढ़नेवाली। जो लड़कियाँ मिलों अथवा कारख़ानों में काम करती हैं, उनको वेतन के अतिरिक्त दवा इत्यादि मुफ़्त मिलती है—साल में ६० या ४० रोज़ का वेतन और दिया जाता है। प्रति वर्ष वेतन में १० से २० फ़ी सदी तक तरक़्क़ी दी जाती है। कारख़ानों में अधिक संख्या लड़कियों वा स्त्रियों की ही होती है। "कानीकफरेची" मिलों में ५५००० स्त्री-पुरुष काम करते हैं, इनमें ५०००० औरतें हैं और ५००० आदमी। भारत की मिलों में भी स्त्रियाँ काम करती हैं, किन्तु शोक उनके मुख पीले वा मैले होते हैं! और जिन मिलों म करोड़ों रुपये साल का माल तैयार होता है, उनके मज़दूर एक धोती और एक चादर के लिए तरसते हैं, यह ठीक वही बात हुई कि पानी में भी मछली प्यासी रहे। धनी मनुष्यों ने ग़रीबी का ध्यान न रखना कुछ अपना धर्म मान लिया है। उनको ज्ञात होना चाहिए कि धनी और ग़रीब दोनों उसी प्रभु के ही पास से आते हैं (Rich and poor both come from heaven.)। मज़दूर सन्तुष्ट न रहने के कारण जितना काम कर सकते हैं, नहीं करते और इस प्रकार वे अपने स्वामियों के लिए उतने उपयोगी सिद्ध नहीं होते, जितने कि अन्य देशों के। भारत में न उनकी दवा का प्रबन्ध है और न उनके स्वास्थ्य एवं बुढ़ापे का ख़याल। इस प्रकार इस सम्बन्ध में भी भारत और जापान में बड़ा अन्तर दिखाई देता है। क्या यह हम आशा कर सकते हैं कि भारतीय मिलों के स्वामी मनुष्यता के नाते अपने निर्धन मज़दूरों के साथ दया व प्रेम का व्यवहार करेंगे?

जापान नम्रता में आजकल सबसे अग्रगण्य है। जिन पुरुषों ने संसार का भ्रमण किया है उनका यह कहना है कि जापान ही संसार में सबसे अधिक नम्र है। मुझे और देश देखने का तो अवसर प्राप्त न हुआ, इस कारण मैं यह नहीं कह सकता कि यह कहाँ तक सच है; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जापानी सदैव प्रत्येक समय मुसकराते अथवा हँसते हुए ही दिखाई पड़ते हैं।

जापानी बड़े प्रेम और आदर के साथ प्रत्येक का स्वागत करते हैं। वे क्रोध करना तो जानते ही



नहीं। दूकानदार हो या अफ़सर सभी का व्यवहार बड़ा नम्र और शिष्ट होता है। वे गाली-गलौज करना जानते ही नहीं। जापानियों के यहाँ जो सबसे बड़ी गाली समझी जाती है, वह है "बाका" अर्थात् मूर्ख।

जापान की वेष-भूषा एवं घरेलू रहन-सहन

जापानी प्रायः पश्चिमी पोशाक में ही दिखाई देते हैं। किन्तु एक लम्बा-चौड़ा ढीला-ढाला कोट भी पहनते हैं—पेट पर गर्म पेटी अवश्य होती है। दफ़्तरों को जानेवाले जापानी लगभग ६० फ़ी सदी अँगरेजी पोशाक पहनते हैं—स्त्रियों की जापानी पोशाक बड़ी विचित्र है। एक लम्बा नीचे तक चोगा अथवा फँगा-सा होता है—उसके ऊपर कमर पर पेटी होती है। इस पेटी के कई चक्कर होते हैं। उनका कहना है कि पेट को गर्म रखने के लिए वे ऐसा करती हैं। पीठ पर एक रंगदार गद्दी होती है, जो साधारणतया फूलदार होती है। सब लड़कियाँ इस पोशाक में दिखाई नहीं देतीं। कुछ ने अँगरेजी पोशाक भी अपना ली है। कुछ लड़कियाँ और स्त्रियाँ अँगरेजी ढंग के केश रखती हैं। मोज़ों को प्रायः सभी प्रयोग में लाते हैं—कोई भी लिबास हो स्वच्छ अवश्य होगा।

जापानी अपने घरों को गुलदस्तों से सजाना बहुत पसन्द करते हैं। गान-विद्या का भी बहुत प्रचार है। दूकानों पर भी ग्रामोफ़ोन की अलाप गूँजा करती है। Radio भी बहुत देखने में आते हैं। इनका खर्च भी बहुत कम है। जापानियों के रहने का मकान हलकी लकड़ी के ढाँचे पर होता है। प्रत्येक स्थान पर स्वच्छता का बहुत ध्यान रक्खा जाता है—मेज़-कुर्सी पर बैठने का रिवाज नहीं है। प्रायः चटाई के बहुत सुन्दर फ़र्श होते हैं। डिपार्टमेंट स्टोर बड़े विशाल भवन हैं—जापान में बिजली का खर्च बहुत थोड़ा है।

क्या हमारे भारतीय भाइयों के हृदय में यह आता है कि एक देश, जिसकी जनसंख्या भारत से बहुत कम है, उन्नति के ऐसे उच्च शिखर पर कैसे पहुँचा ?

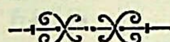
प्राचीन काल का भारत भी उन्नति की पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था, जिसके कारण यह समस्त संसार का आदर्श था। एक समय यह उन्नति के उच्च शिखर पर आसन जमाये हुए अन्य समस्त देशों से प्रत्येक बात में अग्रगण्य था। भारत को देखने के लिए अन्य देश व्याकुल रहा करते थे तथा भारत के मनुष्यों को अपना गुरु बनाने में अपना बड़ा ही सौभाग्य मानते थे—धन्य रे प्राचीन भारत धन्य, किन्तु हम भारतीयों को साथ ही साथ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि भारत की प्राचीन सभ्यता की नींव जल के बुदबुदे पर अथवा बालू पर स्थापित नहीं थी, जो ज़रा से झटके में नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। यदि ऐसा होता तो वह ऐसे भयंकर भूचालों के प्रबल झोकों को सहकर अपने को स्थिर न रख सकती—यूनान और मिसर की सभ्यता उन भूचालों को सह न सकी—अब उनकी प्रगतिशील देशों में कोई गणना नहीं है।

हमारा प्राचीन इतिहास अमूल्य शिक्षाओं से ओत-प्रोत है। यदि हम सतता, श्रद्धा एवं दृढ़तापूर्वक उसी का अनुकरण करते हुए उन्नति की ओर बढ़े चले तो अवश्य ही उन्नति देवी के दर्शन करने में फिर से सफल हो सकेंगे।

यदि आपको जीता-जागता नवीन आदर्श लेना है तो जापान से लीजिए। इतने से अल्प काल में अद्भुत एवं चमत्कृत उन्नति करके आदर्श रूप बना बैठा है। यह नहीं कहा जा सकता कि जापान प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण है। यहाँ भी अपूर्णता के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। कोई भी देश पूर्ण नहीं कहा जा सकता। जहाँ चार गुण होते हैं, वहाँ एक अवगुण भी होता ही है—हमारा लक्ष्य यह होना

चाहिए कि उसके इने-गिने दोषों से बचते हुए उसके गुणों का अनुकरण करें और अपनी प्राचीन आर्य-संस्कृति में जापान के आदर्शों का ऐसा नवीन पुट डालें कि हमारा अपना व्यक्तित्व भी न मिटे और जीवन की नवीन आवश्यकताओं की भी पूर्ति हो जाय।

हे विभो ! क्या हम उस दिन को फिर देखेंगे, जब हमारा देश अपनी ईश्वरदत्त प्राचीन वैदिक सभ्यता की गोद में बैठकर फिर नवजीवन प्राप्त करेगा। तथास्तु।



अँगरेज़ी नाट्य-साहित्य *

श्रीमधुसूदनदास चतुर्वेदी एम्० ए०, विशारद

(२)

विकास की ओर

अनुभवी व्यक्तियों का कथन है कि मनुष्य को प्रथम पग आगे बढ़ाने में जितना सोच-विचार करना पड़ता है उतना दूसरे में नहीं। साहित्य के क्षेत्र में इसी प्रकार हम देखते हैं कि जितना समय किसी नवीन शैली के प्रारम्भ होने में व्यय होता है उतना उसके प्रसार एवं उत्थान में नहीं। अँगरेज़ी नाट्य-साहित्य के अध्ययन में यह भली भाँति देखा जा सकता है कि ट्रोपस के रूप में उत्पन्न होकर नाटकों को मीराकिल, मोरालिटी अथवा इन्टरल्यूडस का रूप प्राप्त करने में ५०० वर्षों का समय लगा था, लेकिन इन्टरल्यूडस से यकायक अँगरेज़ी भाषा के सर्वोत्तम नाटकों की रचना तक पहुँचने में केवल ५० वर्ष ही व्यतीत हुए। जो क्षेत्र ५०० वर्ष में तैयार हुआ था, उसमें इस समय आकर फल उत्पन्न हुए, जिनका आज तक साहित्यानुरागी संसार रसास्वादन कर रहा है।

एलीज़ाबेथ (१५६०—१६०३) का शासन-काल इंगलैंड का स्वर्ण-युग कहा जाता है। इस युग में अँगरेज़ी-साहित्य के सभी अङ्गों की भली भाँति उन्नति हुई। कविता के क्षेत्र में स्पेन्सर, समालोचना के लिए सिडनी, नाटकों के लिए शेक्सपियर, उपन्यास के क्षेत्र में सिडनी एवं लिली इत्यादि का सहयोग प्राप्त हो जाने से इस युग की विभिन्न रचनाएँ एलीज़ाबेथन-साहित्य को अँगरेज़ी-साहित्य का एक प्रधान अंग बना देती हैं। यह स्वर्ण-युग नाटकों की उत्पत्ति का स्वर्ण-युग तो अवश्य ही था। एलीज़ाबेथ के सिंहासनासीन होने के पूर्व इंगलैंड में मिराकिल, मोरलिटी एवं इन्टरल्यूडों का प्रचार था। उसकी मृत्यु के समय शेक्सपियर के उत्तमोत्तम नाटक इंगलैंड की अमूल्य सम्पत्ति बन चुके थे। जनता समझ चुकी थी कि वास्तविक नाटकों में क्या गुण होने चाहिए। नाटक का ध्येय केवल उपदेश न रह गया था। अब वे एक ललित कला समझे जाने लगे थे। इसी युग में मार्लो, लिली, पील, लाज, ग्रीन, किड, शेक्सपियर, बैन जानसन इत्यादि अनेक नाटककारों ने अँगरेज़ी नाटक-साहित्य का भण्डार भरा।

इस युग के नाटक-साहित्य की उन्नति का बहुत कुछ श्रेय इटली के नाटकों के प्रचार को है। फिर भी राष्ट्रीय नाटक-साहित्य का इसमें पर्याप्त हाथ है, यह कहना असंगत नहीं। नाटककार मैडवल (Medwall), जिसका समय १४६० से १५०१

* इससे प्रथम मार्च, १९३६ की 'माधुरी' में 'अँगरेज़ी-नाट्य-साहित्य का प्रारम्भ' लेख प्रकाशित हो चुका है।



तक है—अपनी दो रचनाओं (Nature एवं Fulgens and Lucres) में पर्याप्त सफल हो चुका था। इसके दूसरे नाटक की नायिका लूक्रीस (Lucrece) शेक्सपियर की पोर्शिया के समान ही सजीव है। इसमें मिलाया गया उपकथानक शेक्सपियर के बेनीडिक-बीट्रीस वाद-विवाद के समान है। मैडवल के अतिरिक्त रसल, जो कि उस युग का एक प्रख्यात मुद्रक था, अपने समय में साधारण खेल लिखने में सफल हुआ। आलोचक उसे ट्यूडर-युग का बर्नार्ड शा कह देते हैं। हीवुड के प्रख्यात इन्टरल्यूड, मिराकिल एवं मोरलिटी सभी की सहायता से इस युग का नाट्य-साहित्य सफलता प्राप्त कर सका।

अब तक इँगलैंड की जनता—राजा तथा प्रजा—नाटकों की पूर्णतया भक्त बन चुकी थी। स्कूलों में रोम के प्लॉटस (Plautus) एवं टैरैन्स (Terence) के सुन्दर उद्धरण विद्यार्थियों को कण्ठस्थ कराये जाते थे। विद्यार्थीगण अपने गुरुजनों तथा एकत्रित समाज के समक्ष इनका अभिनय करते। यहीं उनका अँगरेज़ी में अनुवाद होना प्रारम्भ हुआ और धीरे-धीरे वे कतिपय मौलिक लेखकों के लिए आदर्श बन गये। इसी विद्यार्थी-वर्ग के बीच निकोलस उडल (Nicholos Udal) (१५०५-५६) ने अपने प्रहसन Comedy of Roister Doister की रचना की, जिसका श्लेषात्मक पत्र पर्याप्त प्रख्यात है। जब विदूषक प्रेयसी के सम्मुख प्रेमी का यह पत्र पढ़ता है, तो उसका आशय विराम-चिह्नों के हेरफेर से नितान्त भिन्न हो जाता है और प्रेयसी प्रेमी से घृणा करने लगती है। इसका रहस्य बहुत विलम्ब से प्रकट होता है, तब दोनों का विवाह हो पाता है।

इन मौलिक रचनाओं के रहते हुए भी इटली के साहित्य का प्रभाव कम नहीं कहा जा सकता। विना इटली की सहायता के इतने अल्पकाल में इतना उच्च कोटि का बन जाना सुगम न था। यद्यपि हमें अँगरेजी के मिराकिलों में करुणोत्पादक एवं परिहासमय परिस्थितियों का चित्रण मिलता है, फिर भी हम यह कहने का साहस नहीं कर सकते कि केवल उन्हीं के आधार पर इतना सारा साहित्य उत्पन्न किया जा सकता था। वास्तव में इटली की सहायता इस अवसर पर बहुत काम आई।

चौदहवीं शताब्दी से ही इटली के पडुआ नगर में लैटिन के नाटकों का प्रदर्शन प्रारम्भ हो गया था। १५०० ई० तक यही नाटक फरारा और मन्चुआ, रोम व फ़्लोरेन्स आदि नगरों में भी दिखलाये जाने लगे। एरिओस्टो ने कई एक सुखान्त नाटकों की रचना इस समय तक कर ली थी। जो अँगरेज़ इटली भ्रमण करने जाते थे, इनको देखते थे और इँगलैण्ड में इनकी चर्चा चलाते थे। इटली के ये नाटक इँगलैण्ड में एलीज़ाबेथ के गद्दी पर बैठने के पहले ही छपने लगे थे। स्कूलों के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी विद्वानों ने उनका अनुवाद प्रारम्भ कर दिया था।

नाटककार-सम्राट् शेक्सपियर सुखान्त एवं दुखान्त दोनों प्रकार के नाटक लिखने में सफल हुआ है, परन्तु इस युग के अन्य नाटककारों की यह विशेषता नहीं है। इसी लिए हम नाटकों की प्रगति पर, दोनों प्रकार के नाटक तथा नाटककारों को पृथक् करके, विचार करना उचित समझते हैं।

इस युग के सुखान्त नाटकों का आदर्श अधिकांश में प्लौटस और टैरैन्स के नाटक थे। लि... भी लिली से पहले सफल मौलिक नाटकों का अभाव ही है। सर्वप्रथम गैस्कोइन का Supposes, जो कि एक अनुवाद था, बहुत सफल हुआ और इसी लिए अनुवादकों में गैस्कोइन का नाम बहुत विख्यात है। आपका समय १५२५ से १५७७ तक है। आप अँगरेज़ी-साहित्य में पहले गद्य कहानी-लेखक हैं। गद्य में आपने सर्वप्रथम सुखान्त नाटक की रचना की। आप ही ने इटालियन दुखान्त नाटक का सबसे पहले अँगरेज़ी में अनुवाद किया। Masque और Satire (...



एवं परिहासमय नाटक) भी आपने ही सर्वप्रथम लिखे। अँगरेज़ी छन्दःशास्त्र पर भी आपने ही सब-से पहले लेखनी उठाई। आपको अपने समय का डा० जानसन कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

Supposes एरिओस्टो के सुखान्त नाटक का अनुवाद है। इसको पढ़कर मैंने वही आनन्द प्राप्त किया है, जो कि बैन जानसन के सुखान्त नाटकों में मिलता है। यदि इस सुखान्त नाटक का हिन्दी में भाषान्तर किया जाय तो वह भी बहुत लोकप्रिय हो सकता है। इस नाटक का विकास-युग के नाटकों में अच्छा स्थान है। Supposes की विस्तृत आलोचना द्वारा हम यह देखना चाहते हैं कि अब नाट्य-साहित्य में हास-परिहास का क्या स्थान था और उसका क्या स्वरूप था। साथ ही साथ हम यह भी देख सकेंगे कि नाटकों के विषयों में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं।

Supposes नाटक पूरे पाँच अंकों का है। प्रत्येक अंक में बहुत-से (४ से १० तक) दृश्य हैं। सारे खेल का स्थान डैमन के मकान के सामने की सड़क है। अर्थात् दृश्यों का स्थान एक ही है; दूसरे दूसरे पात्र वहीं आकर अभिनय करते हैं। पहले दृश्य में बलबेलिया और नायका पौलीनैस्टा का वार्त्तालाप है। इस वार्त्तालाप से पाठक समझ जाता है कि अविवाहित पौलीनैस्टा अपने पिता के नौकर डलीपो से प्रेम करती है। साथ ही यह ज्ञात हो जाता है कि डलीपो एक उच्चवंश की विभूति है, जिसका वास्तविक नाम एरेस्ट्रैटो है। वह विद्या-ध्ययन के लिए फरारा आया था और पौलीनैस्टा के प्रेम में पागल होकर उसने उसके पिता डैमन का नौकर होना स्वीकार किया और अपने नौकर डलीपो को एरेस्ट्रैटो बना दिया। डैमन ने डाक्टर क्लीएण्डर को पौलीनैस्टा से शादी करने की अनुमति दे दी थी, परन्तु यह पौलीनैस्टा की इच्छा के विरुद्ध था, क्योंकि क्लीएण्डर ठीक ६० वर्ष का था। डलीपो के रूप में एरेस्ट्रैटो का, प्रणय की कठिनाई के सम्बन्ध में, वक्तव्य बड़ा मनोहर है—

But, alas, I find that only love is unsaciable;
For as the flie playeth with the flame till at last
She is cause of her own decay, so the lover that
Thinketh with kissing and colling to content his unbridled apetite,
Is commonly seen the only cause of his own consumption.

क्लीएण्डर के एक पाँच वर्ष के पुत्र के खोने का समाचार हमें दूसरे दृश्य में मिलता है। विवाह के लिए उत्सुक क्लीएण्डर यथासम्भव प्रयत्न कर रहा है। उधर नक़ली एरैस्ट्रैटो भी अपने प्रयत्नों में संलग्न है। प्रश्न रुपये का है। पौलीनैस्टा का पिता उसी को अपनी कन्या दे सकता है, जिसके पास अधिक धन हो। एरैस्ट्रैटो ने धोखा देने के लिए कह दिया कि उसका पिता बहुत-सा धन लेकर आ रहा है। इस तरह से शादी कुछ दिनों के लिए स्थगित हो गई। अब एरैस्ट्रैटो को एक पिता की आवश्यकता पड़ी। उसने एक परदेशी को बेवकूफ़ बनाकर अपने घर लाकर अपना पिता बना लिया। यह चाल ऐसी सफल हुई कि नक़ली एरैस्ट्रैटो के नौकर भी नवागन्तुक को उसका पिता समझने लगे। उधर नक़ली डलीपो ने डा० क्लीएण्डर और उसके स्वामिभक्त नौकर में झगड़ा करा दिया। इसी समय डैमन को पौलीनैस्टा और डलीपो के अनुचित सम्बन्ध का पता लगा, और डलीपो क़ैद कर लिया गया। यह भेद एरैस्ट्रैटो के मित्र पैसीफिलो को भी ज्ञात होता है, परन्तु उसे समय नहीं मिलता कि वह नक़ली एरैस्ट्रैटो को यह बतला दे। इसी समय अचानक एरैस्ट्रैटो का वास्तविक पिता फिलैगैनो अपने लड़के से मिलने फरारा आता है। एरैस्ट्रैटो के मकान पर उसे दूसरा फिलैगैनो मिलता है। दोनों एक दूसरे को



झूठा बतलाते हैं। लाचार असली फिलैगैनो को कहना पड़ता है—

"So long the parrot uses to cry knave in
sport,
That at last she calls her master a knave
in earnest."

नक़ली एरैस्ट्रैटो को भी अपने को असली एरैस्ट्रैटो बतलाना पड़ता है। हताश होकर फिलैगैनो डा० क्लीएण्डर के यहाँ जाता है। बातचीत में डा० क्लीएण्डर को पता चलता है कि नक़ली एरैस्ट्रैटो उसका खोया हुआ लड़का है। इसके बाद उसे शादी की कामना नहीं रहती। इसी समय एरैस्ट्रैटो को डलीपो की गिरफ़्तारी का समाचार मिलता है। अब वह फिलैगैनो से मिलकर सारा हाल कहता है। तुरन्त ही डैमन को ख़बर दी जाती है। विवाह के पश्चात् खेल समाप्त होता है।

इस खेल में वर्णित सभी घटनाएँ १२ घंटे के अन्दर की ही हैं; क्योंकि जिस समय बेलिया और पौलीनैस्टा का वार्तालाप होता है, उसके ३ या ४ घंटे बाद डैमन को समाचार मिल जाता है और डलीपो गिरफ़्तार कर लिया जाता है। हथकड़ी लेने को भेजे गये नौकर तब वापस होते हैं, जब विवाह समाप्त हो जाता है। यूनानी नाटकों की त्रिऐक्य-सम्बन्धी विशेषता इस नाटक में भली भाँति पाई जाती है। स्थान एक ही है। समय एक ही है और घटना भी एक ही है। हम देख सकते हैं कि इस नाटक से जनता को कुछ उपदेश नहीं मिलता। इसका उद्देश्य केवल मनोरंजन है। हम इस उदाहरण से भली भाँति समझ सकते हैं कि अब नाटकों की विशेषता क्या थी। शेक्सपियर के पूर्व तथा पश्चात् सुखान्त नाटकों का आदर्श इसी ढंग के नाटकों की रचना रहा है। ऐसे नाटकों को Classical (प्राचीन परिपाटी के पोषक) कहा जाता रहा है।

Supposes एक सुखान्त नाटक था अवश्य, पर यह केवल एक अनुवाद था। गैस्कोइन का कोई मौलिक नाटक ख्याति लाभ न कर सका। महारानी एलीज़ाबेथ के मनोरञ्जन के लिए आक्सफ़ोर्ड एवं कैम्ब्रिज के विश्व-विद्यालयों में भी नाटकों का अभिनय होता था। इन्हीं अभिनयों के लिए लिखे गये विभिन्न नाटकों में Gammar Gurton's Needle ने कुछ ख्याति प्राप्त की। इसकी रचना सन् १५७५ ई० में हुई। इसके कथानक का आधार एक खोई हुई सुई है। इसमें इंगलैंड के ग्रामीणों की मनोरञ्जन की प्रणालियों पर प्रकाश डाला गया है। इसकी सफलता का कारण इसके कथानक की सृष्टि में व्यय की गई चतुराई है।

सर्वप्रथम सफल कोमेडियन (सुखान्त नाटक के रचयिता) लिली ही समझे जाते हैं। आपका जन्म सन् १५५४ ई० में हुआ था। आपने विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त की। Campaspe (१५८०) आपकी पहली रचना है। यह नाटक ब्लेकफ़्रायर थिएटर में खेला गया। अब तक थिएटरों में भी पर्याप्त परिवर्त्तन हो चुके थे। थिएटरों के स्थान, सड़कों के चौराहों से हटकर पहले चर्चों में बने। उसके पश्चात् स्कूल तथा कालिजों के हाल इस काम में लाये गये। सन् १५७६ ई० में लन्दन के बाहर एक विशाल थियेटर-भवन बनाया गया। लिली के नाटकों को इन थिएटरों में खेले जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। Sapho and Phaon आपकी दूसरी सफल रचना है। आपका Woman in the Moon नाटक कविता में लिखा गया है। कैम्पैस्पे का विषय एलैक्ज़ैंडर और उसका कैम्पैस्पे के प्रति प्रेम है। Sapho and Phaon; Endimion; Midas इन तीनों के कथानक का आधार यूनानी कहानियाँ हैं। इन कहानियों में गुप्त रूप से एलीज़ाबेथ के राज्य-शासन एवं इसी युग की अन्य घटनाओं का वर्णन किया गया है। The Galethea, Love's Metamorphosis और

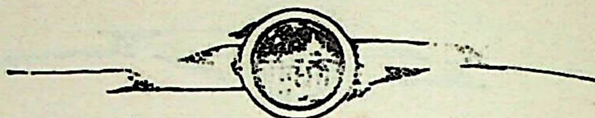


Woman in the Moone में इटली के उन नाटकों की शैली का अनुकरण किया गया है, जिनमें किसान तथा गड़रियों का जीवन दिखलाया गया था। आपकी मृत्यु सन् १६०६ ई० में हुई।

लिली ने अँगरेज़ी नाटक-साहित्य में कला का निर्वाह किया है तथा एक प्रकार से विभिन्न शैलियों के सम्मिश्रण से एक सफल शैली निकाल-कर भावी नाटककारों के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। उसने गैस्कोइन की भाँति गद्य में नाटक लिखे और कलापूर्ण गद्य का उनमें प्रयोग किया। लिली ने अपने सुखान्त नाटकों में अपने समय की कोर्ट-सोसाइटी का रहन-सहन, वातावरण एवं उनके मनोरंजनों का चित्र अंकित किया है। इनके नाटकों में प्रयुक्त वार्त्तालाप उन सुन्दरियों का स्वाभाविक वार्त्तालाप है, जो एलीज़ाबेथ के साथ रहकर अपना जीवन व्यतीत करती थीं। मेरीडिथ का कथन है कि सबसे सफल परिहास वहीं सम्भव है, जहाँ पुरुष व स्त्री को बराबरी का स्थान प्राप्त हो। लिली की रचनाओं में स्त्री-पुरुष का समान आदर होने के कारण वे सफल सुखान्त नाटक हैं। लिली ने Enpheus उपन्यास में उपमा इत्यादि अलंकार एवं संगीतमय गद्य लिखकर एक नवीन शैली का सूत्रपात किया है, जिसका नाम Euphuism है। आपके नाटकों में भी यही शैली सर्वत्र सुलभ है।

लिली का Endymion मैंने पढ़ा है। इसका कथानक एक सुविख्यात यूनानी उपाख्यान है, जिसमें Endymion को Cynthia (चन्द्रमा) के प्रेम में उन्मत्त दिखलाया गया है। चन्द्रमा के लिए अँग-रेज़ी में स्त्री-वाचक सर्वनाम का प्रयोग होता है। Cynthia केवल एक बार सोते हुए Endymion को स्वप्न में सुखी बनाती है। इस कथा से लिली ने अपना नाटक तैयार किया है। लिली का Endymion चन्द्रमा के प्रसिद्ध अवगुणों को गुण सिद्ध करता हुआ अपने मित्र Eumenides की सलाह न मानकर प्रेम-पथ पर दृढ़ रहता है। एण्ड-मियन यह कहने का साहस कर सकता है कि यदि लोग Cynthia (चन्द्रमा) को दृढ़ नहीं मानते तो "Why not twigs that become trees, children that become men and mornings that grow to evenings, term wavering for they continue not at one stay," (फिर वृक्षों में परिवर्तित होने-वाले अंकुरों को, मनुष्य बननेवाले शिशुओं को, सन्ध्या में परिणत होनेवाले प्रभातों को अस्थिर क्यों नहीं कहा जाता। यह सबके सब भी तो स्थिर नहीं रहते)।

Tellus एण्डामियन से प्रेम करती है, परन्तु दृढ़ प्रेमी Endymion अपनी Cynthia को नहीं भूल सकता। टैलस एक जादूगरनी Dapsus की सहा-यता से एण्डामियन को सुला देती है। Cynthia और Eumenides इसको जगाने के प्रयत्न करते हैं। Eumenides उस सरोवर के किनारे पहुँचता है, जिसमें दृढ़ प्रेमियों की मनोकामना पूर्ण करने की शक्ति है। यहाँ उसकी भेंट Dapsus के पति Geron से होती है। Eumenides के आँसू सरो-वर में पड़ते ही उसे स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि वह एक वरदान माँगे। Eumenides के सामने इस समय दो समस्याएँ हैं—अपनी प्रेयसी व अपना मित्र। Geron की सलाह मानकर वह Endy-mion को जाग्रत् अवस्था में देखने की प्रार्थना करता है; क्योंकि Love is but an eye worm which only tickleth the head with hopes and wishes, friendship the image of eter-nity. As much difference as there is bet-ween beauty and virtue, bodies and shadows, colours and life, so great odds is there bet-ween love and friendship सरोवर से उसे सूचना मिलती है कि यदि Cynthia एण्डामियन का चुम्बन करे तो उसकी निद्रा भंग होगी। Eumenides लौटकर Cynthia को यह सन्देश देता है। Cynthia एण्डामियन को एक चुम्बन द्वारा प्राण-दान देती है। अपराधिनी टैलस का



मामला Cynthia की अदालत में पेश होता है। नाटक को सुखान्त बनाने के हेतु टैलस को एण्डामियन के साथ स्वतंत्रता-पूर्वक रहने की अनुमति प्रदान की जाती है। Semele का पाणिग्रहण Eumenides के साथ होता है। सर टॉफस को भी जादूगरनी की टहलनी Bagoa मिल जाती है तथा Dipsas एवं उसके पति Geron का पुनर्मिलन होता है। पैथोगोरस व मिश्र देश के Gyptes, जो एण्डामियन के उपचार को बुलाये गये थे, अब Cynthia के दरबार में रहना ही पसन्द करते हैं।

लिली ने यूनानी कथा को विस्तृत करके उसे सामयिक बनाया है। नाटक में Cynthia से प्रयोजन स्वयं महारानी एलीज़ाबेथ से है। टैलस स्काटलैण्ड की रानी मैरी का प्रतिबिम्ब है और एण्डामियन जेम्स छठे को चित्रित कर रहा है। लिली के नाटकों में चित्रित किये गये एलीज़ाबेथ के दरबार के ये चित्र इंगलैण्ड की जनता को बहुत रुचिकर प्रतीत हुए। लिली के नाटकों में वर्णित घटनाएँ ४० वर्ष से अधिक समय में फैली हुई हैं; क्योंकि एण्डामियन की निद्रा ठीक ४० वर्ष बाद समाप्त हुई थी। इससे स्पष्ट है कि लिली ने यूनानी नाटकों के त्रिऐक्य-सम्बन्धी नियमों की अवहेलना की; क्योंकि आपके नाटक में दृश्य भी एक से अधिक हैं। स्थल-स्थल पर भाव-पूर्ण एवं ओजस्वी वार्तालाप शेक्सपियर की याद बरबस दिलाते हैं। Sir Tophas का चित्रण शेक्सपियर के As you Like it के Jaques के समान है। नाटक का अन्त बहुविवाहों द्वारा होना शेक्सपियर की भी शैली है। इस प्रकार हम भली भांति समझ सकते हैं कि लिली का नाटक-साहित्य के निर्माण में कितना हाथ था।

लिली का अनुकरण राबर्ट पील ने किया। आपका जन्म सन् १५५८ में एक उच्च वंश में हुआ था। आपने विश्व-विद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त की थी तथा आप University wits में गिने जाते हैं। The Arraignment of Paris आपका प्रथम नाटक है, जिसकी रचना सन् १५८४ ई० में हुई। लिली के नाटकों की भांति इसका विषय भी एक यूनानी कथा है। परन्तु इसमें एक भिन्नता है। जहां लिली के नाटक गद्य में हैं, वहां यह पद्य में है। आपका The Old Wives Tale अपनी मौलिकताओं के लिए विख्यात है। एडवर्ड प्रथम व Battle of Althzar आपकी अन्य रचनाएं हैं।

पील के Arraignment of Paris को पढ़कर यह स्पष्ट हो गया कि यह भी एलीज़ाबेथ की चापलूसी में लिखा गया है। इसमें वर्णित घटनाएं मानवीय नहीं हैं। पेरिस के यह निश्चय करने पर कि वीनस सर्व-सुन्दरी है, अतएव स्वर्ण-सेब उसे ही दिया जाना चाहिए, देवताओं में संग्राम छिड़ गया, अन्त में यह निश्चय किया गया कि एलीज़ाबेथ का सौन्दर्य सर्वश्रेष्ठ है और स्वर्ण-सेब उन्हें ही प्रदान किया गया। नाटक में मानवीय चरित्र-चित्रण न होने से यह विशेष रुचिकर नहीं है। खेल के केवल एक दृश्य की प्रशंसा की जा सकती है। जब जूनो, पलस व वीनस अपनी-अपनी प्रशंसा पेरिस के सम्मुख करती हैं तो प्रत्येक पाठक के लिए आकर्षक दृश्य उपस्थित होता है। वैसे नाटक उच्च कोटि का नहीं कहा जा सकता। इसमें यदि कोई विशेषता अथवा प्रिय सामग्री है तो वह है इसका सङ्गीतमय पद्य।

शेक्सपियर से पहले के सुखान्त नाटकों में लाज (Lodge) तथा ग्रीन (Greene) के मिश्रित प्रयास के फलस्वरूप एक रचना A Looking Glass for London and England पर्याप्त प्रसिद्ध है। इसका झुकाव Romanticism (एक नवीन ढंग की ओर जिससे कई बातों का अर्थ निकलता है) की ओर है। शेक्सपियर के नाटक गैस्कोइन के Supposes से बहुत दूर हैं; परन्तु उपर्युक्त नाटक से बहुत दूर नहीं कहे जा सकते। ग्रीन और शेक्सपियर में पूर्ववर्ती और परवर्ती का ही भेद विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है।



Looking Glass की रचना का समय सन् १५८६ ई० है। इस नाटक में हम कुछ उपदेश की प्रवृत्ति पाते हैं। यह बात इसी काल के अन्य सुखान्त नाटकों में नहीं है। इसमें लन्दन में प्रचलित व्यभिचार घूसख़ोरी, अन्याय इत्यादि का भली भाँति दिग्दर्शन कराया गया है। इसका आरम्भ निनैवा के शासक रसनी की दर्पयुक्त वक्तृता द्वारा होता है, जिसके साथ-साथ उसके चापलूस नौकर उसे और प्रोत्साहन देते हैं। राजा अपनी बहन रमीला से विवाह करना चाहता है। एक दरबारी इसका विरोध करता है। वह तुरन्त ही निकाला जाता है। दूसरे दृश्य में एक देवदूत ओसीयस को स्टेज पर लाया जाता है। इसके बाद ओसीयस का वही कर्त्तव्य हो जाता है, जोकि यूनानी दुखान्त नाटकों में कोरस का होता है। देवदूत के चले जाने पर कुछ शराबी मद्यपान के लिए तैयार होकर स्टेज पर आते हैं। ओसीयस लंदन को चेतावनी देता है। हरएक दृश्य के अन्त में उसका यही कर्त्तव्य है। तीसरे दृश्य में एक सूदख़ोर के अमानुषिक व्यवहारों का दिग्दर्शन कराया जाता है। ग़रीब एल्कन की गाय तथा थर्सीबुलस की सम्पत्ति सूदख़ोर Usurer अपनी केवल बातों से ही हड़प लेना चाहता है। ये दोनों वकील के पास जाने का निश्चय करते हैं।

दूसरे अंक के प्रथम दृश्य फिर राजा रसनी का चरित्र दिखलाता है। रमीला अपने रूप की प्रशंसा अन्य रानी अलविदा के सामने कर रही है। अलविदा उसकी हाँ में हाँ मिलाती है। रसनी अपने विवाह का पूरा प्रबन्ध करने के बाद इधर आता है। इसी समय रमीला पर वज्रपात होता है एवं सब उपाय व्यर्थ होते हैं। रैडगन—एक चापलूस दरबारी—राजा को अलविदा से विवाह करने की सलाह देता है। अलविदा और रसनी सहमत हो जाते हैं। इसी के दूसरे दृश्य में वकील एवं न्यायाधीश के रिश्वती होने का वर्णन है; क्योंकि वे सूदख़ोर से रिश्वत पाकर एल्कन व थर्सीबुलस के विरुद्ध न्याय करते हैं। एल्कन अपने पुत्र रैडगन का स्मरण करके थर्सीबुलस को आश्वासन दिलाता है कि वह न्याय करा देगा। तीसरे दृश्य में मदोन्मत्त शराबी आपस में लड़ते हैं और एक के प्राण जाते हैं। रसनी और अलविदा का उससे मनोरंजन होता है। इसी दृश्य में अलविदा अपने पूर्वपति को ज़हर देकर मार डालती है। देवदूत को कहना पड़ता है—

Where whoredome rains, there murder follows fast;

As falling leaves before the winter-blast.

तृतीय अंक में निनैवी का शुभ-चिन्तक Ionas व देवदूत की बातें होती हैं, जिनका सार यह है कि निनैवी के अत्याचारों का बदला बहुत शीघ्र मिलनेवाला है। Ionas एक सौदागर के जहाज़ पर चढ़कर निनैवी से यात्रा करता है। दूसरे दृश्य में एल्कन का उसके पुत्र रैडगन द्वारा अपमान एवं रैडगन का नारकीय अग्नि में भस्म होना दिखलाया गया है। तीसरे दृश्य में एक लुहार का नौकर उसकी पत्नी से प्रेम करता है। लुहार के देख लेने पर नौकर उसे पीटता है। पत्नी इससे प्रसन्न होती है।

चतुर्थ अंक के प्रथम दृश्य में जहाज़ के मालिक गवर्नर से कहते हैं कि जहाज़ को तूफ़ान से बचाने के लिए Ionas को समुद्र में फेंक दिया गया। दूसरे दृश्य में Ionas निनैवी के समुद्र-तट पर ह्वेल मछली द्वारा फेंका हुआ आता है। ईश्वरीय दूत उसको निनैवी में उपदेश देने की आज्ञा देता है। तीसरे दृश्य में अलविदा एक अन्य राजा के साथ प्रेम करती हुई दिखलाई जाती है। रसनी के आ जाने पर वह फिर रसनी के प्रति अपना प्रेम प्रकट करती है। इसी समय Priests of the sunne सूचना देते हैं कि निनैवी का नाश होगा। मैगी की चापलूसी रसनी को पुनः पूर्ववत् बना देती है। चौथे दृश्य में विदूषक एक कृत्रिम भूत का संहार करता है। पाँचवें दृश्य में ग़रीब एल्कन व थर्सी-

बुलस चोरी करते हुए दिखलाये जाते हैं। Ionas आकर सूचना देता है कि आज के चालीसवें दिन निनैवी का ध्वंस होगा। देवदूत Oseas वहाँ से हटा लिया जाता है।

पंचम अंक में रसनी के आमोद-प्रमोद में बाधा डालता हुआ Iona निनैवी के सर्वनाश की सूचना देता है। रसनी को पश्चात्ताप होता है। सारा राज्य ईश्वर-प्रार्थना में निमग्न हो जाता है। Iona अन्तिम दिवस की प्रतीक्षा करता है। देवदूत सूचना देता है कि ईश्वर ने निनैवी-निवासियों को क्षमा कर दिया। अन्त में सब कार्य सुखपूर्वक समाप्त होता है।

लॉज व ग्रीन के इस नाटक को हम वास्तविक राष्ट्रीय नाटक कह सकते हैं। गैस्कोइन की रचना एक अनुवाद थी। लिली व पील के नाटक यूनानी कथानकों के आश्रित थे तथा इटली के ढंग पर लिखे गये थे। परन्तु Looking Glass सीधा-सादा राष्ट्रीय नाटक के विकास का उदाहरण है। इसका सबसे अधिक प्रभाव नाटककार नैश पर पड़ा। उन्होंने भी एक नाटक इसी ढंग पर लिखा है, जिसमें ग्रीस के निनैवी नगर को ज़रुशलम में बदल दिया गया है। Looking Glass की लोकप्रियता का यह भी एक प्रमाण है। इसके पात्र शेक्सपियर के साधारण पात्रों से मिलते-जुलते हैं।

नैश की रचनाएँ भी शेक्सपियर से पूर्व के नाटकों में गिनी जाती हैं। आपका Summer's Last will and Testament बहुत विख्यात है। यह एक Allegory (रहस्यपूर्ण रचना) है, जिसमें विभिन्न ऋतुएँ अपने सहयोगियों के साथ बारी-बारी से उपस्थित होती हैं।

हम विकास-युग के सुखान्त नाटक एवं नाटककारों की चर्चा समाप्त कर चुके; क्योंकि इनके पश्चात् शेक्सपियर का कार्य आरम्भ होता है। इस युग के अन्य सुखान्त-नाटक-लेखक शेक्सपियर के परवर्त्ती समझे जाते हैं; क्योंकि उनकी कृतियों पर शेक्सपियर का प्रभाव पड़ा है। अब हम दुखान्त नाटकों के विकास का विवरण पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं।

इँगलैंड के निवासियों को इस युग में लैटिन भाषा में लिखे गये प्राचीन दुखान्त नाटक बहुत रुचिकर प्रतीत होते थे। इन दुखान्त नाटकों के लेखक सिनैका की कला इस युग में बहुत सफल समझी गई। सिनैका प्रथम शताब्दी बा० सां० में पैदा हुआ था। इसके सम्बन्ध में अभी तक निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि सिनैका कौन था। हमें रोमन-नाट्य-साहित्य के अन्तिम चिह्न १० दुखान्त नाटक एक ही मनुष्य द्वारा लिखे हुए मिलते हैं। इनके विषय में थोड़ी-सी सूचना इन्हीं में के नाटक आक्टेविया (Octavia) से मिलती है, जहाँ सिनैका स्वयं एक पात्र के रूप में उपस्थित होता है। कुछ लोग इन्हें प्रसिद्ध दार्शनिक सिनैका द्वारा लिखा गया बतलाते हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि इन्हें दार्शनिक के लड़के ने लिखा, जो पिंगल का विशेषज्ञ था। कुछ लोग सिनैका को इन दोनों से भिन्न कोई अन्य व्यक्ति मानते हैं। इन १० नाटकों में के कुछ अंश एक ही समय के एवम् एक ही व्यक्ति द्वारा लिखे हुए भी प्रतीत नहीं होते। रोम के साहित्य में इनका कोई विशेष स्थान नहीं, परन्तु अँगरेज़ी-नाट्य-साहित्य के विकास-युग पर इनका पर्याप्त प्रभाव होने के कारण हम उनका आदर करते हैं।

सिनैका की कला का आधार यूनानी दुखान्त नाटक ही हैं। हम उनकी विशेषताएँ पहले बतला चुके हैं। उनके उदाहरणस्वरूप सोफोक्लीज़ Sophocles (४९५-४०५ बी० सी०) का Antigone (४४० बी० सी०) उपस्थित किया जा सकता है। यह एक सुन्दर रचना है। इसमें एंटीगोन राजा क्रीयन की आज्ञा का निरादर करके अपने भाई का मृतक-संस्कार विधिपूर्वक समाप्त करती है। राजा उसको प्राण-दंड की आज्ञा देता है। राजकुमार हीमैन एंटीगोन से

प्रेम करता था। एंटीगोन की मृत्यु का समाचार पाकर वह भी प्राण-त्याग करता है। रानी पुत्र-शोक में प्राण देती है। अन्त में राजा पश्चात्ताप करता है। यह दुखान्त नाटक उन नाटकों का एक नमूना है, जिनका सिनैका ने अनुकरण किया था। सिनैका के नाटकों में भी कई एक मृत्युएँ कथानक का मुख्य अंग रहती हैं। सिनैका के Media नाटक में माता अपने बच्चों का गला जनता के सामने घोंटती है। इस पाशविक दृश्य को कौन सहृदय देखना पसन्द कर सकता है। फिर भी इस युग में सिनैका के नाटकों का आदर हुआ।

सिनैका की शैली कुछ विशेष सफल न थी। उसके नाटकों में व्याख्यान ही व्याख्यान थे। उसने यूनानी कथाओं को अपने नाटकों का विषय बनाया। इन नाटकों में अभिनय का कुछ विशेष स्थान न था। इनके पात्र कभी-कभी ही हार्दिक उद्गार प्रकट करते हैं। उनकी भाषा अवश्य संगीतमय, प्रभावशाली तथा अलंकारयुक्त है। इसी कारण इँगलैंड में वे इतने लोकप्रिय हो सके। सन् १५५९-१५८० तक इनका अनुवाद अंगरेज़ी में किया गया। सन् १५६० के पहले Troas, Thryestes, Hercules और Furens का अनुवाद हो चुका था। एलीज़ाबेथ के युग के समस्त दुखान्त नाटक इनके ऋणी हैं

सर्वप्रथम सैकविल ने १५६५ ई० में गोरबोडक (Gorboduc) की रचना सिनैका की शैली में की। फिर भी इसमें राष्ट्रीयता का समावेश है। गोरबोडक लैटिन ड्रामा का केवल अनुकरण ही नहीं है। इसका विषय प्रारम्भिक ब्रिटिश इतिहास है। संक्षेप में कथानक इस प्रकार है—इँगलैंड के राजा गोरबोडक ने जीवन-काल में ही अपने राज्य को अपने दो बेटे फैरेक्स और पौरैक्सटों, में बाँट दिया। बेटों में आपस में झगड़ा हुआ। छोटे बेटे ने बड़े को मार डाला। माता बड़े को प्यार करती थी, इसलिए उसने बदले में छोटे को मार डाला। प्रजा इस क्रूरता के विरोध में खड़ी हो गई तथा माता-पिता दोनों के प्राण गये। राज्य के सरदारों ने एकत्रित होकर विद्रोहियों को मार डाला। राजकुमार के कोई पुत्र न था, इसलिए उत्तराधिकारी के निर्वाचन पर पुनः झगड़ा हुआ। सरदारों की इस लड़ाई में बहुत-से सरदार तथा उनके पुत्र मारे गये और बहुत समय तक रियासत वीरान पड़ी रही।

गोरबोडक में सिनैका की शैली के अनुसार समस्त मृत्युओं की सूचना दूतों द्वारा दी जाती है। कोरसों द्वारा उनमें प्रत्येक परिस्थिति पर उपदेश दिया जाता है। मूक-प्रदर्शन भी इसकी विशेषता हैं। सैकविल नाटकों के त्रिऐक्य-सम्बन्धी नियम की चिन्ता नहीं करता। गोरबोडक सिनैका की शैली के अनुसार दृश्यों तथा अङ्कों में विभाजित है। इसमें सिनैका की भाँति अतुकान्त कविता का प्रयोग है।

सैकविल के गोरबोडक के अतिरिक्त गैस्कोइन ने इसी युग में जौकस्टा, Gismond of Salerne, The Misfortunes of Arthur आदि अन्य दुखान्त नाटक लिखे हैं। परन्तु सिनैका की शैली का सहारा लेते हुए सफल शैली में नाटक लिखने का श्रेय टामस किड (Kyd) को है। Kyd का जन्म १५५८ ई० में हुआ था। इन्होंने स्कूल में ही सिनैका के नाटक भली भाँति पढ़ लिये थे, इसी लिए अपने प्रयत्न में किड और लेखकों की अपेक्षा अधिक सफल है। मार्लो से पहले किड ने अपने नाटकों में अतुकान्त कविता (Blank Verse) का प्रयोग किया। किड की सफलता का दूसरा कारण था उसका स्टेज-कौशल का ज्ञान एवं कथानक-कुशलता। उसकी विशेषता अपने पात्रों की मानसिक प्रवृत्तियों का अध्ययन एवं चित्रण है। इसका उदाहरण हीरोनीमो के चित्रण में देखा जा सकता है।

टामस किड की Spanish Tragedy बड़ी विख्यात है, इसकी रचना १५८५–७ में हुई थी। सिनैका के नाटकों की भाँति इसमें मृत्युएँ एक के



बाद दूसरी होती चलती हैं। इसकी प्रशंसा स्वतंत्र रूप से अधिक नहीं की जा सकती, परन्तु हमें इसका कृतज्ञ इसलिए बनना पड़ता है; क्योंकि इसने आगे चलकर शेक्सपियर के निर्माण में विशेष सहायता दी है। इसके कथानक में पुर्तगाल के राजा का स्पेन के राजा के विरुद्ध विद्रोह, परि-णाम-स्वरूप युद्ध एवम् उसके परिणाम दिखलाये गये हैं। इस युद्ध में बेल-इम्पीरिया का प्रणयी एण्ड्रीया मारा जाता है। दैवयोग से एण्ड्रीया की हत्या बाल्थज़ार द्वारा होती है। बेल-इम्पीरिया का भाई लौरैन्ज़ो बाल्थज़ार से ही अपनी बहन की शादी करना चाहता था। हौरेशो बाल्थज़ार को गिरफ़्तार करता है, इसलिए बेल-इम्पीरिया उसी को प्यार करती है। इन घटनाओं के कारण कम से कम १३ प्राणियों के प्राण जाते हैं। खेल का प्रारम्भ उस स्थल से होता है, जब कि एण्ड्रीया मारा जाता है तथा भूत बनकर यह देखता है कि उसकी मृत्यु का बदला कैसे लिया जाता है। स्पेन के राजा को लड़ाई का परिणाम सुनाया जाता है। बाल्थज़ार को हौरेशो की देखरेख में रक्खा जाता है। शेक्सपियर के आयगो की भाँति एक Villain (बदमाश) विलप्पो भी तीसरे दृश्य में सामने लाया जाता है। विलप्पो अपनी शैतानी में सफल नहीं होता और मार डाला जाता है। चतुर्थ दृश्य में हौरेशो और बेल-इम्पीरिया एक दूसरे से प्रेम-निवेदन करना प्रारम्भ करते हैं। बाल्थ-ज़ार भी बेल-इम्पीरिया के प्रति अपना प्रेम प्रकट करता है। एण्ड्रीया का भूत तथा सशरीर प्रति-हिंसा इस नाटक में कोरस का काम देते हैं।

दूसरा अङ्क लौरेन्ज़ो की बाल्थज़ार से मनोहर बातचीत से आरम्भ होता है। लौरेन्ज़ो कहता है—

In time the savage Bull sustains the yoke,
In time all haggard Hawks will stoope to lure.
In time small wedges cleave the hardest oak;
In time, the flint is pierced with softest showers.

बाल्थज़ार का अनुमान है कि बेल-इम्पीरिया के प्रणय में उदासीन रहने में उसी का दोष है, परन्तु लौरैन्ज़ो नौकर को डाट-डपटकर पता लगा लेता है कि इसकी तह में हौरेशो है। इतना ही नहीं, यही धोखेबाज़ नौकर लौरैन्ज़ो को बेल-इम्पीरिया एवं हौरेशो का प्रणयालाप एक निकुञ्ज में सुनवा देता है। छठे दृश्य में बेल-इम्पीरिया में शेक्स-पियर की डैस्डैमौना की समता कुछ अंशों में पाई जाती है। सघन निकुञ्ज में प्रणयी प्रेमालाप में निमग्न हैं। लौरैन्ज़ो वहाँ जाकर हौरेशो की हत्या करता है। बेचारी बेल-इम्पीरिया सहायता के लिए चिल्लाती है और कहती है—

O, Save his life and let me die for him,
O, Save him, brother, save him Balthazar.
I Loved Horatio, but he loved not me.

दूसरे दृश्य में हौरेशो के पिता Hiernimo को अपने पुत्र की मृत्यु का पता लगता है। तीसरे अंक में विलप्पो को फाँसी दी जाती है। हिरोनिमो को रक्त से लिखा हुआ एक पत्र मिलता है, जिससे वह जान पाता है कि लौरैन्ज़ो और बाल्थज़ार ने हौरेशो की हत्या की है। इसके बाद Spanish Tragedy बहुत कुछ शेक्सपियर के हैमलैट से मिलती है। हौरेशो की मृत्यु का बदला चुकाने में विलम्ब और खेल के अन्दर खेल जैसा इसमें है, वैसा ही शेक्सपियर भी है। लेकिन जहां शेक्स-पियर ने सफलता पाई है, वहाँ किड बुरी तरह फँस रह गये हैं। हैमलैट के विलम्ब के अनेक कारण आलोचकों ने खोज निकाले हैं। पर हिरोनिमो के लिए विलम्ब करने का कोई कारण विदित नहीं होता। बेल-इम्पीरिया को कुछ समय तक किसी से मिलने की आज्ञा नहीं दी जाती, लौरैन्ज़ो को सन्देह हो जाता है कि सरबरीन ने उसके सम्बन्ध में शिकायत की है। नौकर द्वारा सरबरीन की और उसके बाद नौकर की हत्या की जाती है



मार डाला जाता है । हर्निमो और उसकी पत्नी इसाबेला दोनों पागल हो जाते हैं । लौरैन्ज़ो व बाल्थज़ार फिर बेल-इम्पीरिया से मिलते हैं । यहाँ हम बेल-इम्पीरिया को फिर शेक्सपियर की नायिका के समान पाते हैं । जब लौरैन्ज़ो उसे बहन कहकर सम्बोधित करता है, उस समय वह जो उत्तर देती है, सर्वथा नाटकीय है—

Now sister !—Sister ? no:
Thou art no brother but an enemy.
Else wouldst thou not have used thy sister so.

भाई-बहन में अन्त में सन्धि हो जाती है, हौरैशो का पिता राजा से मिलने जाता है, परन्तु लौरैन्ज़ो बाधा डालता है । हर्निमो पागलपन में कुछ नागरिकों के पत्र फाड़ डालता है, प्रश्न किये जाने पर कहता है—

That cannot be, I gave it never a wound;
Show me one drop of blood fall from the same;
How is it possible I should slay it then;
Tushe, no; run after, catch me if you can.

१२ दृश्यों के लम्बे अंक के पश्चात् शान्ति-सी हो जाती है । एण्ड्रीया का भूत खिन्न-चित्त होता है । चतुर्थ अंक में एक अभिनय का आयोजन किया जाता है, तब तक Isabella आत्महत्या कर लेती है । हर्निमो लौरैन्ज़ो की हत्या करता है । बेल-इम्पीरिया बाल्थज़ार को मारकर स्वयं मर जाती है । हर्निमो भी प्राणान्त करना चाहता है, परन्तु बचा लिया जाता है; चाकू पाकर वह ड्यूक की हत्या करता है और अपने भी प्राण दे देता है । वायसराय पुर्तगाल को वापस जाता है और राजा उदास होता है । भूत को सन्तोष होता है और सब मुर्दों के हटाये जाने का प्रबन्ध करता है । पाठकों को स्मरण होगा कि इँगलैंड में नाटकों में अभिरुचि उत्पन्न कराने में इन अनेक मृत्युवाले नाटकों का, पहली शताब्दी में, बड़ा हाथ था । किन्तु इस समय में इसके विपरीत इसी प्रकार के नाटक जनता में नाटकों के सम्बन्ध में अभिरुचि उत्पन्न करने में सफल हुए ।

Spanish Tragedy के अतिरिक्त इसी समय किसी अज्ञात नाटककार द्वारा Locrine की रचना हुई । इसका ढंग सिनैका का ही है, परन्तु यह Spanish Tragedy से कम सफल है । Selemers, जिसमें तुर्किस्तान के एक क्रूर शासक का वर्णन है, A warning for fair woman और Arden of Seversham इस युग की अन्य प्रख्यात रचनाएँ हैं, जो इसी शैली पर हैं । किड के पश्चात् सफल नाटककारों में मार्लो का नाम आता है । मार्लो के नाटकों की विशेषता उनमें व्यंजित मार्लो की कवित्वशक्ति है ।

मार्लो का जन्म सन् १५६४ ई० में हुआ था । आपने सन् १५८७ में एम्० ए० की उपाधि प्राप्त की । आपकी प्रख्यात रचनाएँ Tamburlaine few of Malta और Dr. Faustus हैं । Tamburlaine में सिथिया के शासक तैमूरलंग की विजय का वर्णन है । मार्लो पर नास्तिक होने का अभियोग लगाया गया था । इस कारण वह विटनवर्ग (जर्मनी) के डा० फ़ास्टस के जीवन-चरित्र से प्रेम करने लगा । यह प्रेम ही डा० फ़ास्टस नाटक की रचना का मुख्य कारण है । इनके अतिरिक्त मार्लो ने Edward II और Massacre of Paris की भी रचना की है । आपकी मृत्यु सन् १५९३ ई० में हुई । आपके नाटकों में से विशेषाध्ययन के लिए हमने Jew of Malta और Tamburlaine को चुना है ।

Jew of Malta के नायक Barbas को अपनी अतुल सम्पत्ति राज्य को सौंप देनी पड़ती है; क्योंकि माल्टा के ईसाई शासक को १० वर्ष का कर तुर्क-सम्राट् को चुकाना है । बारबस ने चतुराई से अपनी सम्पत्ति का बड़ा भाग अपने मकान में छिपा दिया है, लेकिन मकान ननों के रहने के लिए दे दिये जाने के कारण वह उस धन को पाने में



असमर्थ है। वह अपनी पुत्री Abigail को नन बन जाने की सलाह देता है, ताकि वह चुपचाप इस धन को वहां से ला सके। इस निश्चय के अनुसार काम किया जाता है। इसी स्थल पर जबकि बारबस अपनी कन्या को चुपके से धन लाने का आदेश देता है और प्रकट में नन बनने के लिए धिक्कारता है तो दृश्य बड़ा मनोरंजक हो जाता है। मैथियस, राजकुमार लाडविक को अबीगेल के नन बनने का समाचार देता है। दोनों उसे देखने का निश्चय करते हैं।

द्वितीय अंक में रात्रि के समय बारबस अपना सोना वापस पा लेता है और एक भवन क्रय करके सुखपूर्वक रहता है। गवर्नर से बदला चुकाने के लिए वह ऐसी चाल चलता है कि लाडविक एवं मैथियस दोनों ही उसकी कन्या से प्रेम करने लगते हैं और एक दूसरे के शत्रु बन जाते हैं। मौक़ा पाकर बारबस एक तुर्क ग़ुलाम ख़रीद लेता है, जिसके द्वारा वह अवसर आने पर ईसाइयों का वध करवा सके। तृतीय अंक कई प्राणियों की मृत्यु-शय्या है। लाडविक व मैथियस एक दूसरे को मार डालते हैं। अबीगेल का जीवन मैथियस के बिना व्यर्थ-सा हो जाता है। वह फिर नन बन जाती है। बारबस इस पर क्रोधित होकर समस्त ननों को मरवा डालता है। उधर ईसाई शासक की नीयत में भी परिवर्त्तन होता है तथा वह रुपया पाकर भी कर नहीं चुकाता और युद्ध प्रारम्भ होता है।

चतुर्थ अंक में बारबस द्वारा की गई हत्याओं का पता दो फ़ायरों को मिलता है। वे बारबस को पकड़ने के लिए आते हैं। परन्तु बारबस उन्हें ईसाई बन जाने और बहुत-सा धन देने का प्रलोभन देता है। वे दोनों आपस में लड़ते हैं। दास Ithamore की सहायता से एक का वध किया जाता है और दूसरे को चतुराई से उसका हत्यारा प्रमाणित किया जाता है। दास ईथामूर की मूर्खता से युवती बेलामीरा लाभ उठाना चाहती है। प्रेम-पत्र द्वारा वह ईथामूर को अपने पास बुला लेती है तथा रहस्योद्घाटन की धमकी दे पत्र भिजवाकर ईथामूर के नाम से धन मँगवाती है। ईथामूर का विश्वास है कि Give me a ream of paper, we'll have a kingdom of gold for it.

पाँचवें अंक में धन न पाकर बेलामीरा रहस्य का भण्डाफोड़ कर देती है और ईथामूर व बारबस पकड़े जाते हैं। बारबस मृतवत् बन जाता है तथा चीलों द्वारा खाये जाने के लिए वहीं छोड़ दिया जाता है। लड़ाई में Calymoth विजयी होता है और ईसाई-शासक के स्थान में बारबस को गवर्नर बनाता है। बारबस कैलीमथ को मारकर स्वतंत्र होना चाहता है, परन्तु दुर्भाग्यवश अपने रचे हुए षड्यन्त्र में स्वयं फँसकर मारा जाता है। कैलीमथ की सेना का संहार बारबस के षड्यन्त्र से पहले ही हो जाता है। अतएव पुराना शासक अब स्वतंत्र होकर माल्टा पर शासन करता है।

उपर्युक्त कथानक से मार्लो की कला का भली-भाँति पता चल सकता है। Jew of Malta, गां-बोडक या Spanish Tragedy की भाँति केवल एक वध-गृह ही नहीं है। प्रणय का स्थान इसमें गौण है। चरित्र-चित्रण में कोई सूक्ष्मता नहीं है, फिर भी बारबस यहूदी धनिकों का सफल प्रतिनिधि है। घटनाएँ तथा मृत्युएँ अवसर पर क्रम-पूर्ण ढंग से ही होती हैं। एक के बाद दूसरा प्राणी बरबस प्राण-दान नहीं करता। इस दुखान्त नाटक में सवत्र भयानक रस का ही शासन नहीं है; स्थल-स्थल पर सभी रसों का समावेश है। शेक्सपियर की कला से हम अब बहुत दूर नहीं हैं।

मार्लो का Tamburlaine दो भागों में है। प्रथम भाग में तैमूरलंग की विजयों का सर्वांग वर्णन है। कथानक फ़ारस के राजा व उसके मंत्री दोनों के विग्रह से प्रारम्भ होता है। इस परिस्थिति से लाभ उठाकर तैमूर फ़ारस का बादशाह बनता



है। अरब के बादशाह की कन्या जीनोक्रेट तैमूर की पत्नी बनती है। तैमूर एक के बाद दूसरा देश जीतता हुआ नाटक की समाप्ति पर एशिया, अफ्रीका व योरप के कुछ भागों का सम्राट् बन जाता है। नाटक में भयानक रस पूर्णरूप से व्याप्त है। तैमूर का प्रणय भी भय पर ही अवलम्बित है; क्योंकि ज़ीनोक्रेट को बलपूर्वक पकड़कर ही पत्नी बनाया गया है।

Tamburlaine का ढंग ऐतिहासिक नाटकों का-सा है, जो अधिकांश में दुखान्त होते हुए भी अपनी एक नवीन शैली रखते हैं। इनमें ऐतिहासिक घटनाओं को मनमाना रूप देकर किसी भी शासक का चरित्र दिखलाया जाता है। इस ढंग के नाटकों का प्रारम्भ Bale ने King John लिखकर किया था। इसके पश्चात् Troublesome Reign of King John, The Famous Victories King Lear and his Three Daughters, Edmond Ironside, Thomos of Woodstock, Thomos Lord Cromwell, Thomos More, Death of Robert Hutington इत्यादि कई एक नाटक इसी शैली पर लिखे गये। Tamburlaine इन सबसे अधिक सफल एवं अधिक कलापूर्ण है। शेक्सपियर के ऐतिहासिक नाटक, जो कि इसी शैली का विकसित स्वरूप हैं, अब तक सम्मान की दृष्टि से देखे तथा पढ़े जाते हैं।

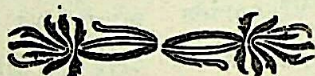
शेक्सपियर के पूर्ववर्ती नाटककारों में राबर्ट ग्रीन का नाम और जोड़ा जाना चाहिए। आपका जन्म सन् १५५८ ई० में हुआ था। कहा जाता है कि आजीविका का कोई उपाय न देख आप एक झरने के किनारे उदास बैठे थे। यहीं एक अभिनेता ने आपको नाटक लिखने की सलाह दी। आप एम्० ए० की परीक्षा में सन् १५८१ में उत्तीर्ण हो चुके थे और योरप-भ्रमण भी कर चुके थे। अतएव आपको इस कार्य में कोई कठिनाई न हुई। आपने मार्लो की शैली का अनुसरण किया। परन्तु शेक्सपियर की भाँति आपमें ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभा न होने के कारण आपको वैसी सफलता न मिल सकी। आपके नाटकों में Alphonous King of Argaon मार्लो के Tamburlaine की शैली पर लिखा गया है। Friar Bacon and Friar Bungy में डाक्टर फ़ास्टस का अनुकरण है। James IV में मार्लो का प्रभाव कम हो जाता है।

ग्रीन का फ़्रायर बेकन और फ़्रायर बंगी मैंने पढ़ा है। यह एक सुखान्त नाटक है। इसमें मार्लो के डाक्टर फ़ास्टस का कई दृश्यों में परिहासमय अनुकरण है। ग्रीन की इस रचना का ध्येय इँगलैंड के विज्ञान की प्रशंसा करना था। प्रणय-गाथा के सहारे आपने जर्मन विज्ञानाचार्य वाण्डमास्ट के कौशल को इँगलैंड के विज्ञानाचार्य फ़्रायर बेकन के कौशल के सामने हेय ठहराया है। नाटक का प्रारम्भ राजकुमार एडवर्ड में फ़्रैसिङ्ग-फ़ील्ड के भटियारे की कन्या के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाने से होता है। राजविदूषक रैल्फ़ सलाह देता है कि राजकुमार को फ़्रायर बेकन की सहायता से मारगरट का मनीवेग बन जाना चाहिए; क्योंकि भीड़-भाड़ में जब वह उसे अपने कपड़ों में छिपा लेगी तो उसे प्रणय-निवेदन का अच्छा अवसर मिलेगा। दूसरा प्रस्ताव यह है कि लेसी किसान बनकर वहाँ रहे और एडवर्ड की ओर से मारगरट से प्रणय निवेदन करे। लेसी वहाँ भेजा जाता है तथा अन्य सब लोग फ़्रायर बेकन के पास जाते हैं। दूसरे दृश्य में फ़्रायर बेकन का कौशल दिखलाया जाता है। तीसरे दृश्य में लेसी मारगरट से प्रणय-निवेदन करता है। चौथे दृश्य में जर्मनी की राजकुमारी एलीनोर राजकुमार से विवाह करने के निमित्त इँगलैंड आती है। इधर फ़्रायर बेकन अपने अद्‌भुत शीशे में एडवर्ड को यह दिखलाते हैं कि लेसी अपने लिए मारगरट से प्रणय-निवेदन कर रहा है। आठवें दृश्य में एडवर्ड, लेसी व मारगरट दोनों के प्रेम की घनिष्ठता पर ध्यान देकर दोनों को क्षमा करता है। नवम दृश्य में फ़्रायर बंगी



एक वृक्ष बनाते हैं। जर्मनी का वाण्डरमास्ट इसका ध्वंस करने के लिए एक हर्क्यूलीज़ उत्पन्न करता है। फ़ायर बेकन इसी हर्क्यूलीज़ की पीठ पर वाण्डरमास्ट को बिठलाकर जर्मनी भेज देते हैं। मारगरेट को पाने के लिए दो स्क्वायर आपस में लड़ते हैं। उनके लड़के बेकन के शीशे में यह दृश्य देखकर वहीं लड़कर मर जाते हैं। बेकन अपने शीशे को तोड़ देता है। उधर माइल्स की असावधानी से बेकन का सात वर्ष के श्रम से तैयार किया गया काँसे का सिर भी नष्ट हो जाता है। बेकन अपनी विद्या से उदासीन बन जाता है। अन्त में लेसी मारगरट व एडवर्ड और एलीनोर का विवाह होता है। बेकन आशीर्वाद देता है, जिसका तात्पर्य महारानी एलीज़ाबेथ की प्रशंसा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

लाज और ग्रीन के सम्मिलित प्रयास का उदाहरण हम पहले देख चुके हैं। इस अद्भुत-रस-प्रधान स्वतंत्र रचना में हम ग्रीन का इँगलैंड के दृश्य व जीवन का प्रदर्शन भली भाँति देख सकते हैं। काल्पनिक होते हुए भी ग्रीन के चित्रण असत्य नहीं प्रतीत होते। ग्रीन ने अपने इस नाटक को पाँच अङ्कों में न बाँटकर १६ दृश्यों में बाँटा है। ग्रीन ने स्त्रियों के चित्रण में उनके सतीत्व पर विशेष ध्यान दिया है। आप का हास-परिहास उच्च कोटि का है। ग्रीन का कार्य अपने अन्य समकालीन नाटककारों से किसी भी प्रकार से कम नहीं है। नाटककार सम्राट् शेक्सपियर की कला में इन सब नाटककारों की कलाओं का आभास स्थल-स्थल पर मिलता है।



जर्मनी के कलाप्रेमी चोर

श्रीसन्तराम बी० ए०

मार्क को उसकी पुरानी क़ीमत पर बनाये रखने की चेष्टा में, कुछ समय हुआ, हिटलर ने आज्ञा प्रचारित की थी कि कोई भी मनुष्य पूँजी को जर्मनी से बाहर न ले जावे। स्वदेश में ही बढ़ती हुई असुरक्षितता से चौंककर, अनेक धनाढ्य नागरिकों ने क़ानून से बचने के उपाय सोचने में अपने मस्तिष्क को लगाया था। उन्होंने जिन चतुर रीतियों का व्यवहार किया था, उनमें से कुछ नीचे दी जाती हैं—

जर्मनी के सरकारी समाचार-पत्र वोलकिशर बिओबचटर (Voelkischer Beobachter) में हाल में एक विज्ञापन छपा कि एक बड़ी लोहे की कम्पनी के डायरेक्टर को प्राइवेट सेक्रेटरी की आवश्यकता है; पूर्ण विवरण-सहित आवेदन-पत्र अमुक नम्बर के लेटर-बक्स के नाम इसी समाचार पत्र के कार्यालय के द्वारा भेजे जाने चाहिए। इस विज्ञापन के पत्र में प्रकाशित होने के कुछ घंटे पश्चात्, समाचार-पत्र के कार्यालय में फ़ोन आया। उसमें एक गृहस्थ ने कहा कि मैं ही वह मनुष्य हूँ, जिसका विज्ञापन पत्र में छपा है। उसने यह भी कहा कि दुर्भाग्य से मुझे काम से स्विट्ज़रलैंड जाना पड़ रहा है; आपकी बड़ी कृपा होगी, यदि आप अगले कुछ दिनों में आनेवाले सब आवेदन-पत्र मेरे पते पर वहाँ भेज देंगे। दूसरे ही दिन इस लोहे के व्यापारी को उसका चिट्ठियों का बंडल ज्यूरिच में मिल गया। जर्मनी की सीमा पर रहनेवाले अफ़सर जानते थे कि वोलकिशर बिओबचटर चोरी से रुपया या हिटलर के संबंध में राजद्रोही साहित्य बाहर भेजने का विचार तक नहीं ला सकता, इसलिए चिट्ठियाँ बिना खोले ही वैसी की वैसी जाने दी गईं। ज्यूरिच के होटल में उस गृहस्थ ने अपना बंडल खोला, कोई २०० चिट्ठियों को तो उसने बिना देखे ही परे फेंक दिया, दूसरी २०० को बहुत सँभालकर खोला और रुपये के उन बंडलों को निकाल लिया, जो उसने आप ही नाज़ी अख़बार को भेजे थे।

❀ ❀ ❀

एक मनुष्य ने अपना सारा रुपया बैंक से निकाल लिया और अपनी मोटर के लिए सुन्दर यन्त्र—जैक, रेंच, पेंचकश, मोचना प्रभृति—बनवाने में सबका सब व्यय कर दिया। ये यन्त्र लोहे के नहीं, बरन् प्लाटिनम के बनवाये गये। एक दिन वह यन्त्रों को मोटर में रखकर चुपके से जर्मनी की सीमा के बाहर हो गया। किसी ने



यन्त्रों पर दृष्टिपात करने का भी कष्ट न किया। परन्तु यदि वे देखते तो भी उन्हें कोई अनोखी बात न देख पड़ती। यन्त्रों के ऊपर तेल और मैल की मोटी तह जमी हुई थी।

❀ ❀ ❀

एक दूसरे मनुष्य ने अपनी वसीयत (विल) बर्लिन में, एक दस्तावेज़ों की सत्यता प्रमाणित करनेवाले सरकारी कर्मचारी के पास, अमानत रख दी और लिफ़ाफ़े पर मोटे अक्षरों में लिख दिया—"मेरे मरने तक न खोला जाय।" इसके कुछ मास उपरान्त वह जर्मनी के निकटवर्ती किसी दूसरे देश को चला गया। वहाँ एक दिन वह नाज़ी कौंसलेट (दूतावास) में गया और कहने लगा कि मैं अपनी वसीयत बदलना चाहता हूँ, परन्तु डाक्टर कहता है कि मेरा स्वास्थ्य इस योग्य नहीं कि मैं वापिस जर्मनी की यात्रा कर सकूँ। क्या कौंसल महाशय जब अगली बार जर्मनी जाँ तो अपने साथ मेरी वसीयत भी लेते आने की कृपा करेंगे? कौंसल (राजदूत) ने कहा, मैं लेता आऊँगा।

चुनाँचे कौंसल लिफ़ाफ़ा ले आया और लाकर उसे दे दिया। जब उसने कौंसल के सामने उसे खोला तो अपनी कृपा की प्रचुरता को देखकर वह दंग रह गया। वह नाज़ी राजदूत था, इसलिए सीमा पर उसे किसी ने दिक़ नहीं किया। इस प्रकार वह अज्ञानतः प्रायः दस लाख मार्क की रक़म जर्मना से बाहर छिपाकर ले आया।

❀ ❀ ❀

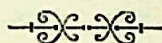
सबसे चतुर एवं सबसे मौलिक योजना एक दूसरे मनुष्य को सूझी थी। कुछ समय की बात है, रीशबेंक के प्रेज़ीडेन्ट, डाक्टर शख्ट (Dr. Schacht) ने घोषणा की कि जो लोग चोरी से धन बाहर ले गये हैं, यदि वे अपना अपराध स्वीकार कर लेंगे और अमुक तारीख़ से पहले पहले वह धन वापस जर्मनी में ले आवेंगे तो उन्हें कोई दंड नहीं दिया जायगा। एक दिन सवेरे एक गृहस्थ, जो बाहर से बहुत घबराया हुआ देख पड़ता था, इन अपराध-स्वीकृतियों के लिए नियुक्त किये हुए अफ़सर के सामने पेश हुआ और उसने स्वीकार किया कि मैंने ज्यूरिच में एक लोहे की पेटी में ५०,००० माक की रक़म छिपा रक्खी है। अफ़सर ने उससे कहा कि मुझे बता दीजिए, वह रक़म कहाँ रक्खी हुई है; मैं ज्यूरिच में जर्मन राजदूत को इसे वापस लाने को लिख दूँगा। गृहस्थ ने कहा—यही तो कठिनाई है। जब तक मैं सामने मौजूद न हूँ, ज्यूरिच का बैंक किसी को मेरी तिजोरी खोलने न देगा। मैं स्वयं ज्यूरिच जाकर रुपया ले आने के लिए तैयार हूँ। अफ़सर को यह बात कुछ अविवेकपूर्ण जान पड़ी। उसने सोचा, इस बात का क्या भरोसा है कि वह वापस आवेगा भी या नहीं! इसलिए उसने समझौता किया। वह गृहस्थ एक नाज़ी कर्मचारी को साथ लेकर ज्यूरिच जाय; क्योंकि उसे एक गिरफ़्तार हुए अपराधी की भाँति यात्रा करना पसंद नहीं था, इसलिए यह तय हुआ कि दोनों गृहस्थ की ही कार में सवार होकर जायँ।

उनको सीमा के पार जाने में कुछ भी कठिनाई न हुई। नाज़ी कर्मचारी को साथ बैठा देखकर कस्टम्सवालों को भरोसा हो गया कि कार में सब कुछ सन्तोषजनक है। परन्तु ज्यों ही वे कुछ मील स्विस प्रदेश के भीतर गये, गृहस्थ ने कार ठहरा ली, द्वार खोला और अफ़सर से कहा—

"मेरी कार से बाहर निकल आइए, जल्दी कीजिए। चाहे तो बर्लिन में अपने लोगों से कह दीजिए कि ज्यूरिच में न मेरी कोई तिजोरी

है और न रुपया, परन्तु मेरा सारा धन—२,०००,००० मार्क—इसी कार में छिपाया रक्खा है। आपके साथ आने के लिए धन्यवाद है, जिससे कस्टम्सवालों ने मेरी तलाशी लेना आवश्यक नहीं समझा।"

गृहस्थ के ये शब्द सुनकर वह कर्मचारी इतना चकित रह गया कि उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला।



उपहार

पं० प्रेमनाथ मिश्र

(१)

एक सेकंड में आत्मा और शरीर, दोनो एक दूसरे से अलग हो जाते हैं, एक मिनट में भूकंप समस्त देश को विध्वंस कर देता है और एक ही रात में मानव-हृदय के बड़े से बड़े अरमान का ख़ून भी हो जाता है।

किसी को उपहार देने की इच्छा शुरू ही से थी। कुछ लाऊँ, अपने पैसे से लाऊँ, अपनी पसंद का लाऊँ और किसी को उपहार-स्वरूप भेंट कर दूँ। उपहार देने योग्य मैंने व्यक्ति भी अच्छा खोजा। अपनी भाभी। परन्तु भाभी कहाँ से आवे? अपने पीछे तो मैं अवश्य एक पल्टन की पल्टन लेकर चला था, मगर आगे केवल एक बड़ी बहन को छोड़कर और कोई नहीं। 'ईं जानिब' ही अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे, फिर भाभी कौन होती। मैंने तरकीब तो अच्छी निकाली थी। बराबर की उम्रवाले दोस्त भी हमारे 'भाई साहब' ही थे, और इस नाते उनकी 'उन' को भाभी कहने का पूरा हक़ था। मगर दोस्ती होना तो टेढ़ी खीर थी।

मेरे एक भाभी भी थीं यानी रिश्ते की भाभी। परन्तु उनसे दोस्ती करना क्या, बात करने में भी डर लगता था। वह बी० ए० पास ठाटदार भाभी। सामने बैठ जायँ तो मेरी ज़बान में दफ़ा १४४ लग जाय। मैं एक देहाती जीव और वह बीसवीं सदी की अप-टु-डेट भाभी।

एक बार जब मैं छोटा था, मज़ाक के नाम पर कुछ छींटाकशी कर दी थी। हाय, हाय, याद आती है तो कलेजा मुँह को आता है। वह डाँट पड़ी कि तबियत ठिकाने हो गई। दोनों ने डाँटा, भाभी ने भी और भाई जान ने भी। मैं मस्तक पर हाथ रखकर रुआँसा-सा रह गया।

फिर मैं कैसे अपनी चाह पूरी करता? मैं तो ऐसी भाभी चाहता था, जिसके साथ मुझे हँसी-दिल्लगी करने का सौ प्रतिशत अधिकार प्राप्त हो और दोस्ती भी ऐसी तगड़ी हो कि मेरे हँसते ही मेरी भाभी के मुख पर मुस्कराहट नाचने लगे और मेरे मुख पर की उदासी के मेघ भाभी के कपोलों पर अश्रु-बिन्दु बरसा सकें।

आख़िर मैंने एक भाभी पा ली। और कैसे उसे अपने मन का भी बना लिया। आह! कैसे सुन्दर दिन थे! कैसी सुन्दर भाभी थीं!

लोग कहा करें कि वह सुन्दर नहीं थीं, पर मेरे लिए तो विश्व का सौन्दर्य उन्हीं में छा रहा



था; क्योंकि वह मुझे अच्छी लगती थीं। फिर एक बार उपहार देने का भी अवसर मिला, परन्तु जो न होने को है, वह कैसे हो सकता है।

(२)

वह मेरे बचपन के दोस्त थे। हम साथ ही साथ खेले, पढ़े और रहे भी। फिर उन्होंने नौकरी कर ली और बाहर चले गये। जब वापस आये तो मेरी भाभी को साथ लेकर आये और मेरे ही निवास-स्थान पर डेरा जमाया। मेरे मकान के नीचे का भाग गुलज़ार हो गया।

इस प्रकार उन्हें रहते-रहते दो महीने बीत गये। उस दिन मैं बाहर से लगभग ग्यारह बजे घर लौटा—चाँदनी रात थी। चन्द्रदेव को देखकर न-जाने क्यों उमंगें उठ रही थीं। उनका यही काम है, सागर में तरंगें और हृदय-सागर में उमंगें उठाने को ही वह पूर्ण रूप में सामने आते हैं। मैंने द्वार पर धक्का लगाया, आवाज़ें दीं। मुझे मालूम हो गया कि द्वार खुलने ही वाला है। दरवाज़ा खुला पर 'फटाक्-फटाक्' करके नहीं, वरन् धीरे से स्त्री-सुलभ नज़ाकत के साथ। मैंने देखा, मेरी भाभी साहबा खड़ी हैं। हाथों में चाँदी के कड़े चमक रहे थे, घूँघट के अन्दर मुस्कराहट खेल रही थी। चुन्नटदार लहँगा, उस पर गोटे-पट्टे का काम, पैरों के नाख़ूनों पर महावर का रंग और पैरों में पैंजनी या नूपुर। भाभी के एक हाथ में दीपक टिमटिमा रहा था, उस दीप-शिखा की ज्योति को देखकर मेरा हृदय भी टिमटिमा उठा। पर यह उस समय ध्यान में ही न आया कि यह छोटा-सा दीपक किसी समय भी बुझ सकता है। मैंने कहा—ओह हो! आज आपको तकलीफ़ उठानी पड़ी।

मुस्कराहट ने ज़ोर पकड़ा। हाथ का दीपक कुछ ऊपर उठ गया। चूड़ियाँ खनक उठीं, नूपुर स्वतः बज गये; मैं हँसता हुआ चला आया। यह मेरी पहली मुलाक़ात थी। हृदय ने कहा—पा गये मन की भाभी। करो दोस्ती।

और दोस्ती हो गई। मैं अधिक स्पष्ट हुआ, वह अधिक खुलीं और धीरे-धीरे उनका घूँघट उठते-उठते बिलकुल उठ गया। बातें शुरू हुईं, घुल-घुलकर हम मिलने लगे। रामायण और महाभारत का पाठ करनेवाली देहातिन भाभी पर रंग चढ़ने लगा।

एक दिन मैं उनके कमरे में बैठा था, बातचीत हो रही थी। मेरे यहाँ से कई बार बुलावा आया, पर तुम्हारे भैया भेजते ही नहीं। पैर पड़ती हूँ, चिरौरियाँ करती हूँ तो मारने दौड़ते हैं।

—और क्यों भाभी। तुम्हें गाली देते हैं तो बुरा नहीं मालूम होता?

वाह जी, पति की गारी—परम पियारी।

—गर्दन हिलाकर वह कह गईं।

मैंने कहा—भाभी, ज़रा अपने हाथों से यह कड़े-वड़े उतारना।

—क्यों? क्या यह डाका डालने का कोई नया तरीक़ा है?

आँखें नचाकर वह बोलीं।

—नहीं, नहीं, ज़रा उतार दो।

मैंने देहाती गहनों से भाभी के शरीर को मुक्त कर दिया। हाथों में सुहागसूचक चूड़ियाँ रह गईं। नूपुर-ध्वनि का उपासक होने के कारण उन्हें भी बिलग नहीं किया और कानों में हिलते हुए इयररिंग भला किसका मन नहीं मोहते!

मैंने कहा—बस भाभी! ऐसे ही रहा करो। बड़ी अच्छी लगती हो। गहनों को बाँधकर सन्दूक़ के हवाले करो।

—हाँ, मुझे भी अब हल्का-हल्का-सा लगता है। एक दिन और—

—यह क्या है? अजी-वाह जी, तुम तो महकने

लगे। मेरे कमरे में आकर भाभी ने मुझे क्रीम लगाते देखा।

—तुम भी महकोगी। मैं मुस्कराया।

भाभी ने भी क्रीम लगा ली।

—मगर मुझे तो अपनी महक मालूम नहीं पड़ती।

—तुम्हें क्या मालूम कि तुम्हारी महक किसे आनन्द दे रही है। मुझे तो साफ़ मालूम पड़ रही है।

—अच्छा। भाभी ने मेरी ओर देखा।

—हूँ। मैंने भाभी की ओर देखा।

और दोनों को हँसी आ गई।

(३)

तीन महीने बीत गये और भाभी कटसैला से चमेली बन गईं। काया-पलट हो गई। अब आप को हल्के रंग की ही सारी पसन्द आती थी। गहनों से तो आपको सख़्त नफ़रत थी, यहाँ तक कि मुझे नूपुर की मधुर ध्वनि भी अब सुनने को न मिलती थी। महावर की लाली के स्थान पर अब चप्पल की स्ट्रैप्स ही नज़र आती थीं। सीधी माँग ने बरसाती नदी की भाँति अपना मार्ग बदल दिया था और टेढ़ी-टेढ़ी-सी दीखती थी।

और उनका कमरा भी केंचुल बदल कर नया हो गया था। कैन्थरडान आयल, अफ़गान-स्नो, रोज़-पावडर, इक्लिप्स कौम्ब, यहाँ तक कि लिप्स्टिक तक भी वहाँ ढंग से रक्खी हुई थी।

हमारे भाई साहब भी आजकल मगन थे। उनकी श्रीमतीजी ने चोला बदला था। अप-टु-डेट बन गई थीं। 'माधुरी' और 'विश्वमित्र' पढ़ती थीं, 'अभ्युदय' और 'भारत' के समाचारों से परिचय प्राप्त करती थीं। अब मारने की क्या, आधी बात तक कहने का साहस न होता था।

दिन रविवार का था, सायंकाल। मैं नीचे उतरा, भाई साहब तैयार खड़े थे।

—किधर को भाई जान?

—आज सिनेमा की ज़िद है।

मैं ज़ोरों से हँसा।

—सिखाने-पढ़ाने को तो मैं, और साथ में सिनेमा देखेंगे आप।

भाभी अन्दर से निकलीं।

—वाह, क्या चादर ओढ़ी है। आखिर हो तो देहातिन ही।

—अजी वाह, क्या ख़राबी है भला? माथे पर लकीरें खींचकर आप बोल उठीं।

—शाल ख़रीदिए, कम से कम चालीस रुपये वाला, तब सिनेमा जाइएगा।

—यार, एक न एक ख़र्चा ही बढ़वाते हो। कुल मुझे अस्सी रुपये ही तो मिलते हैं।

—शाल चाहिए। क्यों! ख़रीद न दो! मुफ़्त में ही भाभी पा गये हो न।

मेरी स्नेहमयी भाभी ने कनखियों से देखकर मुझसे कहा। मैं एकदम चुप हो गया। वो तो सिनेमा-हाउस को चल दिये और मैं अपने खुरखुरे बालदार चेहरे पर हाथ फेरता हुआ खड़ा रहा।

मैंने दुहराया—मुफ़्त में ही भाभी पा गये हो न। तो शाल ख़रीदना ही पड़ेगा। अच्छा तो मैं उपहार दूँगा।

हृदय धड़का—उपहार दोगे?

मारकेट की ओर चला। शाल देखे, अस्सी रुपया, डेढ़ सौ रुपया, पन्द्रह रुपया और चालीस रुपया—सभी तरह के शाल थे। बहुत दूकानें थीं, सभी भरी थीं, पर जेब ख़ाली थी।

ख़ैर, मैं शाल तो ख़रीदूँगा ही, न आज सही। भाभी को अपने हाथों से ओढ़ा दूँगा, ख़ुश हो जायँगी।

और फिर एक दिन जब मेरी जेब गर्म थी मैंने पसन्द किया और चार नोट दस-दस के

दूकानदार के हवाले किये—चल दिया। श्वेत, दूध-सा शाल, हल्की बोर्डर का, अपनी बग़ल में दबाये मैं चला। कड़ाकेदार जाड़ा था, सड़कों में मिलों का धुँआ छा रहा था। कृष्ण पक्ष की रात्रि थी।

कल सुबह होगी, भाभी स्नान करेंगी, अपनी उलझी लटों को सँवारेंगी, सुगन्धित तेल महकेगा। सफ़ेद धोती से अपने को लपेटे हुए ऊपर धूप लेने आयँगी। मस्तक पर सुहाग बिंदी मुस्करायेगी, तब मेरा कमरा उनको आमन्त्रित करेगा और वह झुँझलायँगी—

—वाह जी, धूप से मैं कमरे में नहीं जाती। बड़ी बात करो। और मैं कहूँगा—मुझे चाय नहीं पिलाओगी, भाभी मेरी।

स्मित रेखा अपने अधरों में अंकित कर वह कमरे में आ जायँगी। चाय का प्याला मेज़ पर होगा—भाभी कँपती हुई, सी-सी करती हुई चाय बनावेंगी और तब मैं पीछे से अपनी भाभी को शाल ओढ़ा दूँगा। वह चौंकेंगी।

—नया शाल।

—मुफ़्त में तुम्हें न पाऊँगा भाभी।

उस समय भी न जानता था कि टिमटिमाते हुए दीपक की ये अन्तिम घड़ियाँ हैं। ज्योति एक बार चमक उठी है। घर आ गया। भाईजी बोले—देखो तो तुम्हारी भाभी को क्या हो गया है?

—क्या! मैं घबराकर कमरे में गया। भाभी कराह रही थीं। तुरत ही मैं पड़ोस के डाक्टर को लाया। उन्होंने देखा, परन्तु जंग खाये हुए बुड्ढे डाक्टर के दिमाग़ पर कुछ भी न चढ़ा।

मैंने फ़ोन किया। एक प्रमुख डाक्टर को बुलाया। वह आये। दवा दी गई।—होश आया, फिर कराहने लगीं। मैंने पुकारा—भाभी।

भाभी ने आँखें फाड़कर मेरी ओर देखा। हृदय चीत्कार कर उठा—उपहार दोगे?

भाभी को नींद आ गई।

रात के ग्यारह बजे। ख़ूनी चाँद निकला। प्रकृति चंडी बनी। अन्धकार में भयावना रूप धारण कर, केश फटकारती हुई प्रियतम का उपहार लेने को चंडिका ने हाथ बढ़ाया। चन्द्र ने रक्त से भरा थाल सामने किया। देवी घट्-घट् कर रक्त-पान कर गई। चाँद पीला पड़ गया।

पर उसकी तृषा नहीं बुझी—ज़बान चटकार कर उसने पुकार मचाई—अभी और। अभी और।

पवन सन् सन् करने लगा।

भाभी चिल्लाईं—वह आई। बचाओ, मारेगी। मैंने भाभी को दवा पिला दी।

धीरे-धीरे प्रभात हुआ। भगवान् भास्कर अपने असंख्य करों में स्वर्ण-प्रभा का उपहार लिये उदय हुए। पृथिवी व्याकुल हो उठी। परन्तु कुहरा! भयंकर अन्धकार! उसे कैसे उपहार मिले।

भगवान् के करों में शक्ति थी, वह प्रियतमा को उपहार अवश्य देंगे, परन्तु अभागे मानव में इतनी शक्ति कहाँ!

अपने कमरे से शाल लिये हुए मैं नीचे आया। भाभी मुझे देखकर हँसने लगीं—शाल है। मेरे लिए लाये हो। शाम को चलना, तुम्हारे ही साथ सिनेमा देखूँगी। तुम्हारे भैया मुझे औरतों के दर्जे में बिठालते हैं।

मैं फिर फ़ोन पर गया। लड़खड़ाता हुआ लौटा तो भाभी ज़मीन पर लेटी थीं। भाई साहब के कपोलों पर आँसू की लकीरें बन रही थीं।

सब निस्तब्ध था। भाई साहब बोले—उपहार दोगे?

—हाँ।

और मैंने भाभी के शव को शाल से ढक दिया।

वेदना मुस्करा दी। कुहरा साफ़ हो गया, पर मेरी आँखों के सामने कुहरा ही कुहरा भरा था

गीत

श्रीमती "नलिनी"

एक संसृति की व्यथित को स्नेह-पट प्रिय खोल देना !
एक पल भर के अतिथि को प्यार के दो बोल देना !
इस थकित जीवन पथिक को शरण की प्रिय भीख देना
इस भ्रमित उद्भ्रान्त मन को साधना की सीख देना !

यह विभव की प्यास मेरे हृदय-भिक्षुक को न देना !
एक मद-मतवाले जग का—पूर्ति जिसकी क्षार होना
एक तृष्णा है सुनहली एक जादू एक टोना !
यह तृषा उन्माद उर का भस्म करती उर खिलौना !

जल रहा है इस तृषा से विश्व का प्रत्येक कोना !
बन गया अपना भी जीवन इस जगत् में एक रोना !
निज कृपा के सद्म में प्रिय ! आज दे दो एक कोना !
एक क्षण भर के अतिथि का हाय ! तुम मत मान खोना

आदान-प्रदान

श्रीलक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी "चन्द्र"

(गद्य-काव्य)

प्रेम के आदान-प्रदान ही में जीवन का सुख अन्तर्हित है !

प्रेमी-अलि इस व्यापार से लाभान्वित होता है।

कोयल की सुरीली 'कुहू-कुहू' में प्रेम का आदान-प्रदान परिलक्षित होता है।

प्रेम के आदान-प्रदान से ही दुनिया चिरस्थायी और जीवित है।

प्रेम ही ईश्वर और ईश्वर ही प्रेम है ।

ऋतुराज-वन्दन

श्रीप्रयागनारायण त्रिवेदी 'प्रयाग'

प्राची में 'प्रयाग' अनुराग दिखलाती ऊषा,
रवि-रश्मियाँ भी साजती हैं आरती के साज;
उल्लसित ओस-बुन्द चरण पखारते हैं,
प्यारी परिमल सुमनावली लुटाती आज।
चँवर समीर ले भ्रमर वन वन्दी वीर,
मालिन-सी खड़ी शस्य श्यामला लिये अनाज;
पत्र-पुष्प-फल-जल लेकर वसुन्धरा यों
वन्दन तुम्हारा करती है प्यारे ऋतुराज!

ख़ुशामद

श्रीगोपालस्वरूप भटनागर एम्० ए०

ख़ुशामदी उस व्यक्ति की संज्ञा है, जो थोड़े या अधिक समय के लिए अपनी अन्तर्वृत्ति और चेष्टाओं को किसी ऐसे व्यक्ति के अनुकूल प्रदर्शित करने का बहाना करे, जिससे उसका स्वार्थ सिद्ध होने की सम्भावना हो। "ख़ुशामद" शब्द के अन्तर्गत मन, वचन तथा काया की सभी चेष्टाएँ आ जाती हैं। विशेष उल्लेखनीय इतना ही है कि ख़ुशामद करनेवाला अच्छी तरह समझता है कि ये चेष्टाएँ क्षणिक एवं ऊपरी मात्र हैं। हृदय में वह अपनी चालाकी तथा अन्य व्यक्ति की मूर्खता से भली भाँति परिचित रहता है। यदि उसको यह ज्ञान न हो और चेष्टाओं की विकृति का वह शुद्ध अन्तःकरण से समर्थन करता हो तो उसकी मानसिक स्थिति को भक्ति कहेंगे या दासता। भक्ति में पात्र की महत्ता के साथ-साथ उसके गुणों का ज्ञान तथा पात्र के व्यक्तित्व में अपने आपको मिला देने की भावना रहती है। मानसिक दासता का मुख्य लक्षण है चेतना एवं ज्ञान का अभाव।

क्रोध, मोह आदि के विपरीत ख़ुशामद नैसर्गिक वृत्ति नहीं है। आर्थिक जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में इसका अस्तित्व नहीं रहा होगा; क्योंकि इसका आलम्बन कर्त्ता स्वयं नहीं हो सकता। क्या इसको कला कहा जा सकता है? अन्तर इतना है कि इसमें कला का बाह्य सौन्दर्य आ जायगा, किंतु अन्तर्निहित सात्त्विकता तथा कल्याणकारिता की विस्तृत परिधि अनुपस्थित ही रहेगी। इसमें कला की अमरता भी न रहेगी; क्योंकि फल की प्राप्ति होते ही अथवा भविष्य में स्वार्थ-साधन की आशा न रहने पर चाटुकार की आँखें बदल जाती हैं। एक बात यह भी है कि कला का आनन्द उसके कार्य में है। कवि को फल की विशेष अपेक्षा नहीं रहती। किन्तु ख़ुशामद का कार्य कठिन एवं स्वीय वृत्तियों का अवरोध कष्टप्रद है। यदि ख़ुशामदियों को "तामसिक तपस्वी" कहा जाय तो एक न्यायसंगत अनुप्रास बन जायगा। सफलता तरङ्गिणी की कलकल ध्वनि तथा काल्पनिक शीतलता ही तपस्वी महोदयों को सान्त्वना है।

शिष्टाचार की परा काष्ठा को ख़ुशामद समझना भी उचित नहीं है। शिष्टाचार तो शील का एक अंग है, जिसमें सद्वृत्ति की ओर स्वतः ही प्रेरणा होती है। ख़ुशामद वृत्ति-विकार की कष्टसाध्य प्रेरक है और जो परिणाम-स्वरूप-बिन्दु इस तीखी



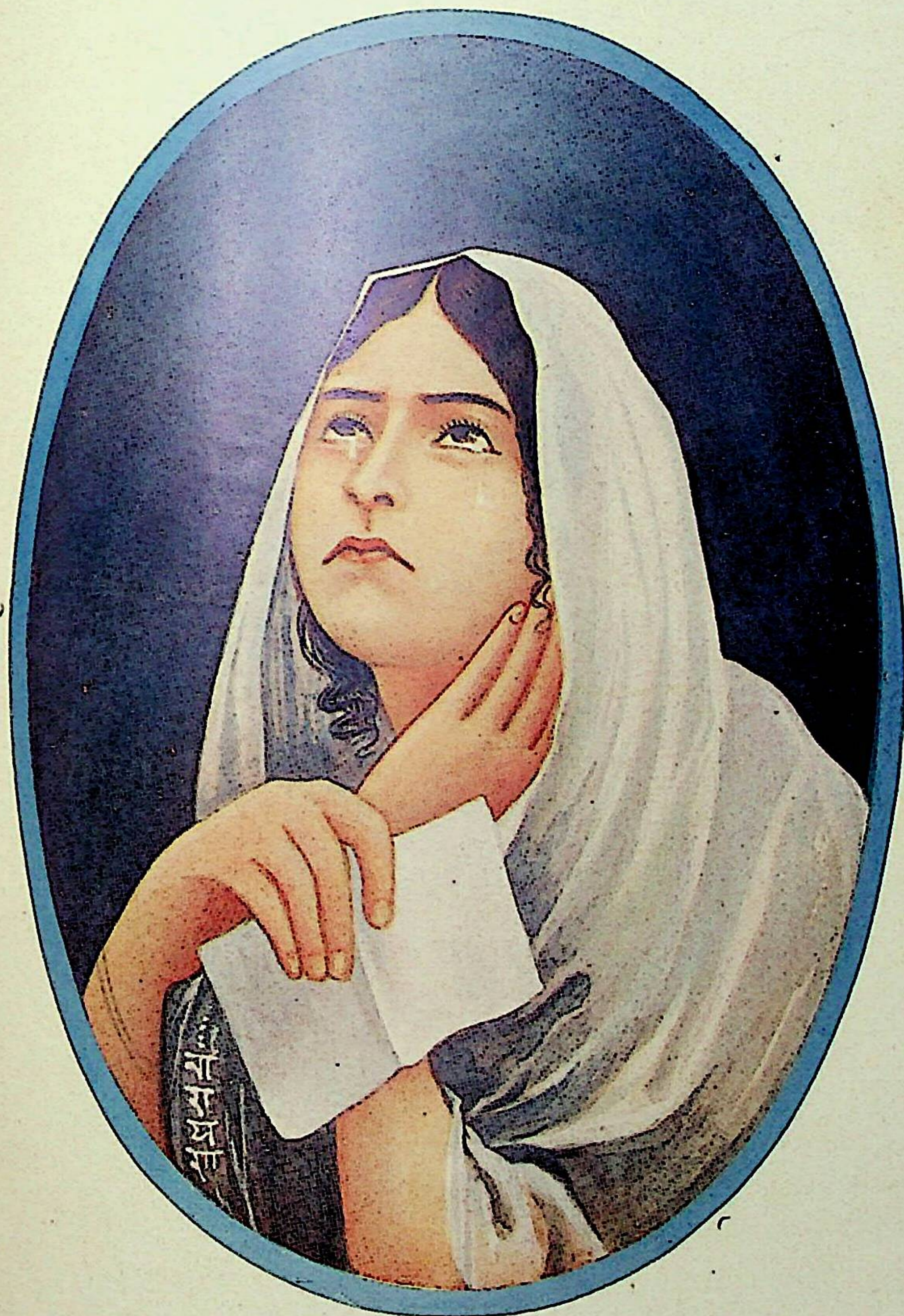
तलवार पर दौड़ने के लिए आह्वान करता है, उस पर भी स्वार्थ की ऐसी गहरी गर्द जमी होती है कि क्रिया में तो आनन्द रहता ही नहीं, वांछित फल की प्राप्ति हो जाने पर भी विवेकशील पुरुषों के चित्त की ग्लानि नहीं जाती। कदाचित् किसी समय शिष्टाचार के क्षेत्र में चाटुकारिता का पलाशवृक्ष उगा होगा, किन्तु उसका बीज रहा होगा स्वार्थजन्य पाखण्ड।

सभी मनोवेगों अथवा वस्तुओं की भाँति .खुशामद की भी तीन श्रेणियाँ हैं। मनोविनोद के उद्देश्य से किसी की मिथ्या प्रशंसा करके उसे उल्लू बनाना सबसे ऊँचे दर्जे की .खुशामद है। यदि उसको दिल्लगी का एक साधन कह दिया जाय तो विशेष हानि नहीं होगी।

मध्यम श्रेणी की .खुशामद का नाम जी-हजूरी है। इसमें अपने शिकार (अथवा आराध्य पुरुष कहिए) की उच्चता तथा अपनी दीनता का ऐसा गाना गाया जाता है कि सुननेवाला शीशे में उतर आवे। पात्र की प्रत्येक ज्ञात सम्मति का समर्थन करना, सम्भव सम्मति के लिए गोल-मोल उत्तर देना, पात्र की अनुपस्थिति में इस रीति से उसकी प्रशंसा करना कि उस तक पहुँच जाय, यहाँ तक उसी को अपने जीवन का आधार घोषित करना, ये सब "जी-हुज़ूरी"-नामक पाठ्य पुस्तक के विभिन्न परिच्छेद हैं, जिनमें पूर्णता प्राप्त करने के लिए अनवरत अभ्यास की आवश्यकता है। इसी पुस्तक के परिशिष्ट भाग में एक बड़ी अचूक .खुशामद का वर्णन किया गया है, जिसका प्रयोग अनुभव और ज्ञान में पके हुए लोगों पर करना चाहिए। "श्रीमान् को .खुशामद से घृणा है, श्रीमान् तो स्पष्टवादिता का ही आदर करते हैं" इत्यादि सूत्र-वाक्यों पर इस भाग में टीका की गई है। इस प्रकार की .खुशामद के प्रयोग के लिए कर्त्ता को अपने स्वाभिमान को तिलाञ्जलि देनी होगी, दूसरे यह भी खटका बना रहेगा कि कहीं पात्र भाँप न जाय।

किन्तु सबसे अधम .खुशामद का वर्णन अभी करना रह गया है। इसमें साधक को दीन वेष धारण करने की आवश्यकता नहीं, न ही अपने देवता को "पत्रं पुष्पं फलं तोयं" अर्पण करना होगा। जो लोग अपनी कटुवादिता के लिए बद-नाम बन गये हों, उनके लिए तो यह साधन अत्यन्त ही सरल है। इसमें मधुर वाणी की अपेक्षा न करनी होगी। बहुत-से वैध विषों के द्वारा भी उपचार किया करते हैं। यहाँ पर जिस विष को काम में लाना है, उसका नाम है पर-निन्दा। इस का प्रभाव प्रयोज्य पर तो होगा ही, और भी अनेक जाने-अनजाने सज्जन दुर्जन इसकी चोट से न बचेंगे। यदि किसी की निन्दा उससे बदला लेने की दृष्टि से की हो तो कदाचित् क्षन्तव्य भी हो जाय, किन्तु एक तीसरे व्यक्ति के आगे स्वार्थ-सिद्धि को लक्ष्य में रखते हुए अन्यों की चुगली खाना ऐसा अपराध है, जिसका कोई परिष्कार नहीं हो सकता। इस प्रकार के पर-निन्दक चाटु-कारों की उपमा देवी के आगे निरपराध प्राणियों की बलि देनेवालों से भी नहीं हो सकती; क्योंकि इनके खड्ग का संचालन करता है अन्धविश्वास, उनकी क़ैंची के पेंच है विश्वासघात।

.खुशामद ने सभी क्षेत्रों में प्रवेश पा लिया है। साहित्यिकों के लिए प्रत्येक पत्र में समालोचना-स्तम्भ खुला हुआ है। धर्मध्वजियों की चाटुकारिता का चारा चुगने के लिए भक्त-मीन-मंडली की कमी नहीं। सभा-सोसाइटियों के चुनाव के समय वोटरों की और डिनरपार्टियों के भाषणों में अफ़-सरों की मूर्खतापूर्ण नङ्गी .खुशामद की जाती है। विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम-निर्धारकों एवं परीक्षकों की सेवा में उपस्थित रहने के लिए भी यह लालची लोमड़ी लालायित रहा करती है। जिसको भगवान्



N. K. Press, Lucknow.

दुखिया





ने धन और अधिकार नहीं दिया, उसका सबसे बड़ा सन्तोष यही है कि .खुशामद की मक्खियाँ उसे तंग नहीं करतीं ।

मानव-समाज के सदस्यों की एक दूसरे के जीवन में उत्सुकता बनी हुई है। आप मेरे लिए क्या सोचते हैं, यही जिज्ञासा मेरे मन में चापलूसों के प्रति प्रेम उत्पन्न करती है। मैं दूसरों को अपने से कितना नीचा समझता हूँ, इसका अन्दाज़ा लगा-कर ही .खुशामदी लोग निंदा के क्षेत्र में आगे बढ़ने का साहस पाते हैं। यदि मैं अपने मिथ्याभिमान, आत्मश्लाघा और अविश्वास को हृदय से किसी प्रकार निकाल सकूँ तो चाटुकारों की जिह्वा अपने आप बन्द हो जायगी। किन्तु इसके लिए आत्म-निग्रह करना होगा। यदि .खुशामद करने के लिए उच्च वृत्तियों को अपनी ही निम्न वृत्तियों के द्वारा दबाना होता है तो .खुशामद सुनने के लिए उनको .खुशामदी का दास बना देना है। .खुशामद-पसन्दगी धीरे-धीरे एक व्यसन बन जाती है और व्यसन विनाश के गहरे गर्त्त में ला फेंकता है। भाटों की विरुदावलि और कवियों के यशोगान ने भारतीय नरेशों का जैसा पतन कराया, वह हम को अविदित नहीं है। हिन्दी के पिछले खेवे का साहित्य क्या है? अनुप्रासपटु कतिपय स्वार्थ-साधकों द्वारा विषय-लिप्त धनिकों की जघन्य क्रीड़ाओं का चाटुकारितापूर्ण अनुमोदन। जिन कविसिंहों में एक जाति को जगाने की शक्ति थी, उनको .खुशामदपसन्द लोगों ने अपनी गोदी का कुत्ता बनाये रक्खा। क्या यह सम्भव नहीं था कि जो प्रतिभा चाटुता के गन्दे नाले में प्रवाहित होकर विष बन गई, वही .खुशामद-पसन्दों के अभाव में देश-प्रेम की अग्नि से तपकर इस मर-णोन्मुख जाति के लिए मकरध्वज बनती। यदि .खुशामदी व्यक्ति अपनी चालाकी के द्वारा मतलब साधता है तो .खुशामद-पसन्द पुरुष उसको प्रोत्साहन देकर न केवल अपनी मूर्खता का परि-चय देता है, बरन् भावी के लिए एक ऐसा गड्ढा खोदे जाने की अनुमति भी दे देता है, जिसमें स्वयं तो गिरेगा ही, दूसरों के गिरने की सम्भावना भी कम नहीं।

पता नहीं .खुशामद का भविष्य क्या होना है? वह समय चला गया, जब सड़क से जाते साहबों को सलाम करने अथवा बँगलों पर जाकर षड्-यन्त्र-कथाएँ सुनाने से नौकरी मिल जाया करती थी। जीवन का संघर्ष ऐसा जटिल होता जा रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने पैरों आप ही खड़ा होना होगा। संरक्षकों और "मेहरबानों" से काम नहीं चलेगा। दूसरे, अनुभवों और उदाहरणों ने किसी सीमा तक चाटुता-प्रेम को धक्का अवश्य पहुँचाया है। जैसा कहा जाता है कि प्रत्येक नवीन दिन हमें अधिकाधिक समझदार बनाता है तो हो सकता है कि हम इस .खुशामद रोग के नाश में संलग्न हो जायँ, और तकल्लुफ़ अथवा वज़ादारी के समान .खुशामद भी पिछली शताब्दी की वस्तु बन जाय। परन्तु यह भी हो सकता है कि विज्ञान के नित्य नूतन आविष्कारों के साथ-साथ जिस प्रकार ठगी और डाकेज़नी के नये-नये स्वरूप प्रकट हो रहे हैं, उसी प्रकार .खुशामद भी कोई ऐसे रूप धारण कर ले, जिनकी हम अभी कल्पना भी नहीं कर रहे हैं।



असन्तोष

श्रीशिवदानसिंह चौहान बी० ए०

(१)

हम तीनों चल तो पड़े, लेकिन यह न सोचा कि कुछ घंटों में ही गहरी रात हो जायगी, और तब भी हमें १५ मील का रास्ता चलना बाक़ी रह जायगा। चलते वक़्त हमारे सामने एक ही विचार था, वह यह कि ज़मींदार के ज़रूरी काग़ज़ और कुछ क़ीमती चीज़ें उसी दिन पहुँच जायँ। दिन भर पानी बरसा था, जिसकी वजह से काम पूरा होने में शाम होने आ गई थी। बादल साफ़ होते ही हम लोगों ने घर का रास्ता नापा।

सड़क पक्की थी, मगर कच्ची से भी गई-बीती। उसके आख़िरी कंकड़ न-जाने कितने दिनों से रेत बन चुके थे। उसमें बड़े-बड़े गड्ढे पड़ गये थे, जो कहीं-कहीं एक गज़ से भी ज़्यादा गहरे थे। गर्मियों में दो-दो फ़ुट रेत तो उसमें शायद सभी जगह भरा रहता होगा। किराये की मोटरों ने बीच-बीच में ऐसी लीकें बना दी थीं, जो किसी बड़े शहर की नालियों से कम गहरी न थीं।

मोटरों की बात लेकर हम लोगों ने कई बार आपस में बहस की थी, और अनेकों बार उनके प्रति अपनी अश्रद्धा और अप्रसन्नता प्रकट कर चुके थे।

हमारे साथियों में एक का नाम नन्दू था। उसके सिर के बाल काले, और सीधे खड़े थे; आँखें मटमैली और मूछें नीचे को झुकी हुई थीं। काला रंग, दुहरा बदन, जिस पर मोटी-मोटी नसें दूर से ही दिखाई पड़ जाती थीं, और क़द लम्बा था। वह शेर की तरह गरजता था और कुत्ते की तरह हाँफता था। जब कभी मोटरों की चर्चा चलती, वह आँधी की तरह उठकर अपना फ़ैसला सुना देता। हमारा मुँह बन्द हो जाता। कई बार वह बड़े तपाक से दुहरा चुका था कि जब से मोटरें चल गई हैं, तब से सैकड़ों ग़रीब गाड़ीवान और इक्केवान, अपनी गाड़ी और इक्के को भट्टी में झोंक, घर पर बैठे मक्खी मारते रहते हैं।

"देखो न!" भयानक गर्जन के साथ वह कहता, "इन मोटरवालों ने सरकार से मिलकर हमारे ख़िलाफ़ कैसा षड्यन्त्र रचा है? मगर तुम निरे जानवर हो; तुम इन बातों को क्या समझो! तुमने कभी व्याख्यान सुना है? कभी उपदेशक देखा है? उसका बड़ा दिमाग़ होता है, और वह सब भीतरी बातों को समझता है!"

इतना कहकर वह हमें बड़े निकट से देखता और अपनी विज्ञता का गर्व हमारे ऊपर बिखेर देता। हम एक विचित्र भाव में भरकर अपने को सान्त्वना देते हुए सोचने लगते कि अभी इन्हें

पर सत्य के समझनेवाले मौजूद हैं—मगर वह कैसे दैवी व्यक्ति होंगे ?

"किराये का फ़ायदा मोटरवाले खाते हैं,"—अचानक हमें इस भाव से जाग्रत् कर वह शेर की तरह दहाड़ उठता—"लेकिन जब उनकी मोटरें सड़क का गज़ों रेत उधेड़कर फेंक देती हैं, और खाईं-सी लीकें बना देती हैं, जब वह विना मोटर तोड़े अपने पैसे नहीं बना सकते, तब हमारी ख़ाली जेबें काट-काटकर उनके लिए सड़कों की मरम्मत कराई जाती है।"

नन्दू के इतना कहते ही हम लोग अपने भीतर निश्चिन्त हो उठते। हमें लगता, जैसे वह उपदेशक नन्दू के मुख से बोल रहा हो। आह ! वह कितने गर्व और विश्वास के साथ बोलता है।

हम लोग नन्दू की इज़्ज़त करते थे; क्योंकि वह हमसे तगड़ा था। अगर उसकी राय के ख़िलाफ़ कुछ कहते तो वह बमक उठता और चील की तरह पंजे फैलाने लगता, मानों एक ही झपाटे में हमें ज़मीन से उठाकर आसमान में कन्दुक की तरह उछाल देगा।

हम लोग चुपचाप चले आ रहे थे। कीचड़ और दलदल के मारे उस दिन हम लोगों को पैर उठाने में भी बड़ी कठिनाई होती थी। कभी कभी अचानक में हमारा कोई न कोई साथी घुटनों तक कीचड़ में फँस जाता। नीचे से छींटों का मुख पर ऐसा झापड़ लगता कि आँखें तिल-मिला उठतीं। दूर-दूर तक इन्सान छोड़, हैवान तक का नामोनिशान न था। थोड़ी ही देर में हम लोगों का दम फूलने लगा, संध्या की मुलायम-मुलायम गीली धूप में हमारी मुख की पसीने की बूँदें चमक उठीं।

हमारा क्रोध बढ़ने लगा। इसी वजह से चलते-फिरते मुर्दे की तरह चुपचाप चले जा रहे थे। रह-रहकर दिल मसोस के हम लोग मोटरवालों को गालियाँ देते और डिस्ट्रिक्ट बोर्डवालों को कोस रहे थे। हमारे ओठ जकड़े हुए थे; अगर उस समय कोई हमारे सामने इन लोगों की बड़ाई करता तो उसे हम लोग विना नमक-मिर्च लगाये कच्चा ही चबा जाते।

हमारे दूसरे साथी ने अचानक उस भयानक निस्तब्धता को तोड़कर हमें भयभीत कर दिया। वह क़द का साधारण और शरीर का मज़बूत था। अभी वह लड़का-सा ही था, इस कारण उसके चेहरे पर कठोरता कम थी। अक्सर वह कुछ आगे की ओर दूर की सोचने की कोशिश किया करता था, जिसकी वजह से हमारी घृणा में तूफ़ानी उबाल आ जाता, और वह उस ग़रीब को भूनने के लिए काफ़ी थी।

नन्दू उसे अक्सर पीट भी देता था। वह कहता—"साला दूर की सोचता है, नहीं जानता कि इससे दिल में एक अनिश्चित भावना और चिन्ता पैदा हो जाती है। और यह कमज़ोरी है। अब कभी ऐसा किया तो पैर बाँधकर कुएँ में उलटा लटका दूँगा। कायर कहीं का।" वह बिल्ली की तरह सहम जाता। मगर जब उसे सूझ पड़ती तो विना कहे न रहता।

कीचड़ में लथपथ हम लोग जब बुरी सूरत बनाये खिंचे से चले जा रहे थे, हमारा दूसरा साथी बोला—"तुम लोग नकेल उठाये ऊँट की तरह विना सोचे चले जा रहे हो। रात आ रही है। अँधेरे में किसी नाली में मेढ़क की तरह पड़ रहना चाहते हो क्या ? भैंसे की तरह तो अभी से हाँफ रहे हो !" यह कहते-कहते उसका चेहरा पीला पड़ गया। नन्दू ने खड़े होकर उसकी ओर घूर-कर देखा, और फिर चुपचाप तेज़ी से चलने लगा।

थोड़ी ही देर में हमारे साथी की इस बात को लेकर हम लोगों में ज़ोर का विवाद शुरू हो गया। हम लोगों ने एक दूसरे को ख़ूब बुरा-भला कहा। उस दिन शाम को ही चल देने की किसने सलाह दी थी, इस पर ख़ासी खिचखिच हुई। कोई इस अपराध को अपने ऊपर लादना ही न चाहता था। जब हम लोगों को कोई बात न मिलती तो



गालों का सहारा लेते । इसी बीच में एक-आध बात और सोच जाते । दल-दल से भरी सड़क पर, जंगल की ऐसी अँधेरी रात में चलकर हम-लोग कभी घर पहुँच पावेंगे या नहीं, इस बात की शंका हमें भयभीत करने लगी।

आसपास कोई गाँव भी नहीं था, और लौट चलने की बेवक़ूफ़ी हम लोग करना नहीं चाहते थे। जब इस आपत्ति से बचने का कोई उपाय न मिला तो हम लोग अपने उस साथी की ओर मुड़े, जिसने इस सारी घबराहट को जन्म दिया था। चोट खाये शेर की तरह हम लोग अपनी असमर्थता का बदला चुकाने के लिए उस पर टूट पड़े । नन्दू ने उसकी गर्दन पकड़ ली, और मैंने एक कसके चपत जमाते हुए कहा—"कुत्ता कहीं का! कितनी बार कहा कि दिमाग़ से काम मत लिया कर। बेहूदे ! दिमाग़ से काम लेनेवाले बेहूदी बातें सोचते हैं, और जहन्नुम में जाते हैं । दूसरों के लिए खाई खोदते हैं, और ख़ुद भी कूद पड़ते हैं। कायर ! छिः कुत्ता !"

भौचक्का-सा होकर वह बड़ी देर तक कातर दृष्टि से हमारी ओर देखता रहा । उसके रोंगटे खड़े हो गये और मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

विश्व के मंच पर सूर्य की किरणों के नृत्य का यह अन्तिम दृश्य था। क्लान्त किरणों के नृत्य में एक विचित्र विश्रान्ति का आवाहन था। हम लोग इस भाव को जाग्रत् न कर पाये सारा वातावरण झिलमिला रहा था। कहीं अगर ज़रा-सा भी हवा का झोंका आ जाता तो भीगे पेड़ों पर से हज़ारों सफ़ेद मोती टपक पड़ते जिन पर सन्ध्या का ऐसा अरुणिम पुट चढ़ता कि वह अनार के दानों की-सी वर्षा हृदय में एक अजीब पुलक भाव भर देती ! लेकिन हम तो आपस में झगड़ रहे थे, यह उद्रेक किसके हृदय में होता ?

देखते ही देखते सन्ध्या की लाली का अभिनय समाप्त हो गया, और रजनी ने अपनी काली चादर ओढ़कर पटाक्षेप कर दिया। शीघ्र ही आकाश में अनेकों दीपक जल उठे । मगर उनका जलना बरसात की इस गहन रात्रि की भयानकता को और भी ज़्यादा बढ़ा रहा था।

उस साथी की मरम्मत के बाद हमारा झगड़ा ख़त्म-सा हो गया। रात के फैलते ही हमें अपने दिल में कुछ मालूम-सा पड़ने लगा। अब तक हमारी चिन्ता थी कि रात को ऐसी बुरी सड़क पर कैसे चलेंगे । लेकिन जब रात आई तो हमें पता चला कि हम व्यर्थ की बात को लेकर झगड़े थे, क्योंकि हमारी असली चिन्ता तो इससे कहीं अधिक भयानक थी। मैंने सोचा कि मैंने उस लड़के को व्यर्थ ही मार-पीट दिया। दयापूर्ण दृष्टि से अँधेरे में उसकी ओर देखकर मैंने उसे क्षमा कर दिया।

यह नई चिन्ता थी अपनी रक्षा की। अगर रात को चोर मिल जायँ तो हम लोग अपने मालिक का माल किस तरह बचावेंगे, इस विचार के उठते ही हम लोग थर-थर काँप उठे। उस सड़क पर भयानक डाके और दर्दनाक ख़ून हर पखवारे एक-दो होते रहते थे। हम लोगों ने सामान [illegible] से बाँधकर लाठियाँ सम्हालीं, और यह निश्चय कर लिया कि कोई भी आवे, उसे पहले ही [illegible] में ज़मीन पर सुला देंगे। इसी तरह श्वास रोके भूखे भेड़िए की तरह हम लोग लम्बे-लम्बे पैर [illegible] कर चुपचाप लपकते चलने लगे। हमारी यह [illegible] चाल हमें कभी-कभी आपत्ति के सिर पर पहुँचने का आभास-सा देकर हमारे शरीर में ठंडी बिजली-सी दौड़ा देती।

कुछ देर बाद हमें अपने पीछे किसी की आहट-सी सुनाई दी। ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे कोई सुअर की तरह कीचड़ में छपर-छपर कर रहा हो। हमारे पैर के नीचे से ज़मीन सरकने लगी। [illegible] दिल की धड़कन में [illegible] कान खड़े हो गये, और दिल की धड़कन में [illegible] नई स्फूर्ति आ गई। हम लोगों ने पीछे मुड़कर लाठी सम्हाल ली। कुछ देर तक टोह लेने पर [illegible] मालूम हुआ कि कोई अकेला जानवर हाँफता हुआ

कीचड़ में फँसता-गिरता हमारी ओर बढ़ता चला आ रहा है। हमने सोचा कि यह चोर नहीं है, लेकिन अगर यह कोई ख़ूँख़ार जानवर ही हुआ, तो भी हमारे लिए ख़तरा कम नहीं था। लपककर हम लोग किनारे के पेड़ की आड़ में छिप गये।

चन्द मिनटों में हमारे सामने से एक हाँफता हुआ आदमी निकला। उसकी सफ़ेद टोपी हम लोगों ने ख़ूब ग़ौर से देख ली थी। अब हम लोग बड़ी हास्यास्पद अवस्था में पड़ गये। अगर हम लोग अब उसे आवाज़ देते, तो वह निश्चय ही हमें चोर समझता और घबराहट के मारे प्राण दे देता। मगर कुछ भी हो, एक साथी जोड़कर अपनी शक्ति बढ़ाने का हम लोभ न रोक सके। नन्दू ने अपनी सामान्य गम्भीर आवाज़ में गरजकर कहा, "कौन जा रहा है? खड़ा रह!"

वह आदमी कुछ भयभीत-सा हो ठिठककर खड़ा हो गया। हम लोग तेज़ी से उसकी ओर बढ़े। नन्दू ने लपककर उसकी गर्दन पकड़ ली, और एक हाथ से उसकी लाठी छीनकर बोला, "चिल्लाना मत नहीं तो भूसा बना दूँगा।"

घबराते हुए काँपती हुई आवाज़ में वह नया आदमी बोला, "तुम कौन हो और मेरी जान क्यों लेना चाहते हो? मेरे पास कुछ भी नहीं है।"

"साला हमें चोर समझता है," मैंने झपटकर एक घूँसा उसकी पीठ पर जमाया।

हमारा दूसरा साथी, जो अब तक चुप था, कुछ सोचता हुआ बोला—"क्यों रे मक्कार, तो तू साधौ गाँठ है! इतनी रात गये अकेला कहाँ घूम रहा है?"

"मैं....मैं बड़ी दूर का यात्री हूँ, तुम भले आदमी हो, मेरे साथ चल सकते हो।"

"ठीक! तुम्हें चोर का डर नहीं लगता?" हमारे दूसरे साथी ने प्रश्न किया।

"चोर? चोर का डर? नहीं! तुम बड़े कायर हो! मुझे चोर का डर नहीं लगता। अच्छा अब मेरी गर्दन छोड़ दो!" उसने नन्दू की ओर मुड़ने की चेष्टा करते हुए कहा।

"हूँ" कहकर किसी भावी आशंका की दुर्गन्धि सूँघकर हमारा दूसरा साथी काँपता हुआ इधर-उधर अँधेरे में आँखें गड़ा-गड़ाकर देखने लगा। "तुम साले चोर से मिले हुए हो? तभी इतनी रात में अकेले निकलते हो कि कोई मुसाफ़िर मिले तो बातों में हिलगा रक्खें? क्यों? धूर्त?"

अपने साथी की यह बात हमें बड़ी गहरी लगी, और नन्दू ने उसकी गर्दन और कसके दबा दी। वह घिघियाने लगा। नन्दू ने गरजकर कहा, "ठीक-ठीक बता, तेरा मतलब क्या है? नहीं तो एक ही घूँसे में जहन्नुम पहुँचा दूँगा! बता, तेरे कितने साथी हैं?"

पहले तो उस आदमी की समझ में न आया कि हम लोगों से कैसे बचाव करे, लेकिन उसे भी यह विश्वास हो गया कि हम लोग चोर नहीं थे, और भय के कारण ही उसे तंग कर रहे थे। इसलिए उसने अपने लिए तरह-तरह की सफ़ाइयाँ पेश कीं, और बताया कि वह एक उपदेशक था, और एक सभा में ज़रूरी व्याख्यान देने के लिए वह ऐसे बेवक़्त चल पड़ा था। उसने अपने कई मित्रों का नाम बताया, जिनका व्याख्यान नन्दू ने सुना था—यह बात नन्दू ने वहीं तुरन्त स्वीकार की।

वह उपदेशक था, यह बात सुनकर हमें अपने व्यवहार पर बड़ी लज्जा आई। सचमुच वह उपदेशक होगा, हमने सोचा, क्योंकि कोई साधारण आदमी इतनी भयंकर रात में क्योंकर सफ़र करता? और उसे चोरों से डर नहीं लगता था! बल्कि चोरों का नाम लेकर हम उसकी नज़र में कायर बन चुके थे। हमने आदर और लज्जा से उसकी ओर देखा।

नन्दू उसकी गर्दन हाथ में पकड़े नीचे से ऊपर तक आँख गड़ा-गड़ाकर घूर रहा था। 'नन्दू अब भी उपदेशक पर शंका करता है', यह सोचकर



हमको बड़ा खेद हुआ। मगर नन्दू ने उसे इस शर्त पर ही छोड़ा कि अगर वह उपदेशक न होकर चोरों का दलाल निकला तो पहले उसी की चटनी बनेगी। हम दोनों नन्दू की बुद्धि पर तरस खाने लगे।

छूटते ही अपने घुटे दम में साँस भर-भरकर हमारा नया साथी, जिसने पूछने पर अपना नाम रामदेव बताया था, चुपचाप हमारे साथ-साथ चलने लगा। नन्दू अब भी शंकित दृष्टि से इधर-उधर देखता चलता था।

मगर चुपचाप कभी राह कटती है? हम लोगों ने कई बातें छेड़ीं। मगर हमारी छोटी-छोटी बातें, जिन पर हम बार-बार सोच चुके थे, जल्दी ही ख़त्म हो जातीं, और उनमें कोई रस भी न आता। एक बात के ख़त्म होते ही हमें कोई दूसरी बात सोचने की चिन्ता धर दबाती, नहीं तो फिर वही श्मशान का-सा सुनसान।

बीच में कई बार रामदेव ने हमें रोककर बड़ी चुभती बातें सुनाई थीं, जिसकी वजह से हमारी श्रद्धा उस पर और बढ़ने लगी, और नन्दू की शंका भी कम हो चली। एक चोर ऐसी बुद्धिमानी की बातें नहीं कर सकता था। हमने सोचा, वह अवश्य उपदेशक है। कुछ देर में ही रामदेव ने तरह-तरह की नई-नई बातें छेड़ दीं, हमें मनोरंजन के साथ-साथ उत्साह मिला। हम लोग उपदेशक के मुख से ऐसी ही बातें सुनने के इच्छुक थे।

मगर बड़ी सफ़ाई से रामदेव ने अपनी तीव्र बुद्धि, दिलचस्पी और सहानुभूति की मदिरा पिला-पिलाकर हम लोगों से हमारे बारे में सब बातें पूछ लीं—कि हम लोग एक बड़े ज़मींदार के यहाँ बिना तनख़्वाह के नौकर थे। बचपन से ही हम लोगों ने उसके यहाँ नौकरी की थी, क्योंकि हमारे बाप-दादों ने ज़मींदार का क़र्ज़ खाया था, और चूँकि ब्याज बहुत न बढ़ जाय, इस कारण ब्याज चुकाने के लिए हम लोग नौकरी करते थे। साल भर नौकरी करने के बाद भी हमारे क़र्ज़ के मूल-धन में कमी न आती थी, बल्कि कुछ बढ़ ही जाता था। नन्दू को नौकरी करते क़रीब चालीस वर्ष के हो गये थे। वह आठ वर्ष की उम्र से ज़मींदार की सेवा में था। हम लोग पढ़े-लिखे नहीं थे और हम ऐसे क़र्ज़ के बोझ से दबे नौकरों की कोई शादी भी नहीं करता था। लेकिन तो भी हमने अपने चरित्र की गाँव पर धाक जमा रक्खी थी।

यह सब जानने के बाद रामदेव ज़ोर का ठहाका देकर उपेक्षा की विकट हँसी हँसने लगा। यह जानते हुए भी कि वह एक उपदेशक था, हम अपनी उपेक्षा बर्दाश्त न कर सकते थे। नन्दू के नथने फूलने लगे। मगर वह कमबख़्त इतनी देर तक एक ही साँस में हँसता रहा कि हम लोगों का दम घुटने लगा, और क्रोध से आँखें चौड़ी हो गईं। नन्दू ने अपने दाहने हाथ का घूँसा सम्हाला, मानों एक ही हाथ में रामदेव का ढेर कर देगा। हम लोगों को मालूम पड़ने लगा, जैसे हमने अपनी दशा का भेद खोलकर अपने आपको लुटा दिया हो। हमें अपने ऊपर ही क्रोध और दया आ रही थी।

अपने व्यवहार के लिए हम पहले से ही शर्मिन्दा थे। मगर अब हमने देखा कि सब कुछ बताकर हमने अपनी शर्म और बढ़ा दी थी, जो कि हम किसी प्रकार न चाहते थे। वह उपदेशक था—मनुष्यों में देवता! और हम? एक ज़मींदार के ग़ुलाम! वह हमें कितना पतित समझता होगा!

"क्यों ग़ुलामो! तुम्हारा मालिक किस धातु का बना है? राक्षस है या जानवर!" रामदेव ने व्यंगपूर्वक कहा।

हमारी देह में आग लग गई। हम उसके मुक़ाबले में पतित हैं, गिरे हैं, पराधीन हैं, इस विचार की दारुण यातना हमारे लिए असह्य हो उठी। उपदेशक की हँसी हमारे कानों में गूँज रही थी। यह दिखाने के लिए कि ग़ुलामी करते हुए भी हम बहुतों से ज़्यादा भाग्यवान् हैं, नन्दू ने क्रोध को

पीते हुए कहा, "हमारा मालिक देवता है। उपदेशक! तूने अभी दुनिया में देखा ही क्या है! अब भी राजा रामचन्द्र-से उदार आदमी पड़े हैं, जो सबके साथ एक-सा बर्ताव करते हैं! हमारा मालिक हमें अपनी चिलम पीने को देता है, और तीज-त्योहार पर कपड़े भी!"

इस बार रामदेव और भी भीषण अट्टहास करके हँसा। हमारी हालत विचित्र होती जा रही थी। एक ओर क्रोध बढ़ता जा रहा था, दूसरी ओर यह ख़याल उठता कि उस पाजी के पास बुद्धि है, अवश्य उसने हमारी कोई कमज़ोर नाड़ी पकड़ ली है। हम लोग शिथिलता का अनुभव कर विवश होने लगे।

"ग़ुलाम दोस्तो," हँसी रोकता हुआ वह बोला, "तुम ज़िन्दगी भर ग़ुलाम रहे, इसी लिए तुम्हें नहीं मालूम कि जीवन में बड़ी-बड़ी बातें भी हैं—कुछ ऊँची और आदर्श। तुम निरे गँवार हो; न तुमने किताबें ही पढ़ी हैं, और न कहीं से तुम्हारे दिल में प्रकाश की कोई किरण पहुँची है। जानते हो, उन्नति या प्रकाश क्या होता है? हम लोग उन्नति या प्रकाश को असन्तोष कहते हैं। लेकिन तुम गधे हो, तुम्हें अपनी इस ग़ुलामी में ही सन्तोष है, फिर प्रकाश तुम्हें कैसे मिले? नरक के कीड़ो, वहीं पड़े सड़ते रहो।"

अचानक रामदेव का पैर मोटी जाँघ तक दलदल में फँस गया और वह कोशिश करके उसे निकालने लगा। हम लोगों को मदद करने की हिम्मत न हुई।

कई बार ज़िन्दगी में हम लोगों ने असन्तोष का अनुभव किया था कि कहीं चल दें, और स्वतन्त्र रूप से खेती करें, लेकिन हम फिर सोचते कि जो खेती करते हैं, वही हमसे कौन अच्छे हैं। जैसा जिसके भाग्य में था वह तो होकर रहेगा ही। हमारे भाग्य में ग़ुलामी थी—एक भले आदमी की ग़ुलामी! यह कम सन्तोष की बात नहीं थी। ज़िन्दगी से ऊबकर बहुतों ने हमारी आँखों के सामने कुत्ते की मौत पाई थी—अपना भविष्य बिगाड़ डाला था, इस कारण रामदेव की यह बात हमारी समझ में न आई कि असंतोष का नाम प्रकाश है या इसका उन्नति से कोई सम्बंध है। इस कारण हम लोग एक अनिश्चित भावना का अनुभव कर काँपने लगे।

अपना पैर निकालकर रामदेव ने जो कुछ मन में आया कहकर हमारी भर्त्सना की और हमें उपदेश-सा देने लगा कि असन्तोष होने से चाहे किसी भी दयनीय अवस्था में मनुष्य क्यों न हो, उसे एक आसरा रहता है कि मौक़ा पाते ही वह उस गर्त में से उछलकर बाहर आ जायगा। दिल में एक हिम्मत रहती है, हर तरह का साहसिक काम करने की। सन्तोष से बड़ी कायरता की निशानी उसने किसी किताब में नहीं पढ़ी थी। और हम लोग हिन्दुस्तान में अब तक असभ्य क्यों बने हुए थे, इसी लिए कि हमारे दिमाग़ के ठेकेदारों ने हमें सन्तोष का पाठ पढ़ाया था।

कुछ बातें समझकर और कुछ न समझकर हम लोग सिहर उठते। कभी-कभी यह ख़याल उठता कि अगर शुरू से ही हमें इतना ज्ञान मिल गया होता तो आज हमें यह पछतावा न होता कि सारी ज़िन्दगी अन्धकार और आलस्य में ही खो दी।

रामदेव ने कीचड़, गड्ढों और अन्धेरे का ख़याल न कर हमें बड़ी-बड़ी शिक्षाएँ दीं। अब हमारा ग़ुस्सा उसके ऊपर से उतर गया था। उसने हमें बताया कि हमारा ज़मींदार हमसे ख़ुश होकर बोलता है, क्योंकि वह बड़ा धूर्त है, और वह जानता है कि उसे हमसे ज़िन्दगी भर ग़ुलामी करानी है।

"तुम निरे गधे हो," उसने कहा, "अगर वह तुमसे गाली देकर बात करता तो तुम उसके यहाँ कितने दिन टिकते? कुछ ही दिनों में या तो तुम्हारी आत्मा घुट-घुटकर मर जाती और तुम जानवर बन जाते, और उलटे इस तरह उस पर



बोझ हो जाते, या अगर तुममें कुछ भी मनुष्यत्व होता तो तुम भाग जाते । और तब तुम्हारे ज़र्मींदार को दावा दायर कर तुम्हारे नाम वारन्ट कटा-के गिरफ़्तार कराने की तवालत उठानी पड़ती । पुलिस तुम्हें पकड़कर फिर ग़ुलामी में झोंक देती, क्योंकि छद्म वेष में ग़ुलामी अब न्यायसंगत है । मगर तुम्हें क्या, तुम्हें तो ग़ुलामी प्रिय है, तुम्हारा मालिक भला आदमी है, और तुम भले ग़ुलाम हो कि ज़िन्दगी भर की ग़ुलामी के लिए ज़र्मींदार ने तुम्हें ख़रीद भी लिया और तुम्हारे मरने के बाद जितनी क़ीमत तुम्हारे ऊपर ख़र्च हुई थी, वह बाक़ी भी रह जायगी, ताकि तुम्हारे खान्दान का कोई और उसी क़ीमत में मोल आ जाय—बक़ाया फिर भी उतना ही ! मगर तुम्हें ग़ुलामी भी मंज़ूर और यह शर्त भी मंज़ूर ! क्यों नहीं तुम्हारा ज़र्मींदार भला आदमी है । कुत्ते ! पाज़ी ! भेड़ से भी ज़्यादा गहरे मूड़े गये हो ।"

रामदेव के व्यंग हमारे दिल में तीर-से चुभ रहे थे । मगर इस पीड़ा के साथ हृदय में एक ऐसी भावना उदित हो गई थी, जिसका हमने कभी अनुभव भी न किया था । हमें मालूम पड़ने लगा, जैसे कोई हमारे दिल के अँधेरे में कुछ टटोल रहा है, और बहुत-सी चीज़ें निकालके बाहर प्रकाश में ला रहा है । उस मस्तिष्क के प्रकाश में हमने देखा कि हमें अब तक धोखा दिया गया था । हमारा यौवन, हमारे हौसले के दिन, सब मीठी छुरी चलाकर लूटे गये थे—न्याय की छाया में और समाज की नज़रों में । हमें अपनी ज़िन्दगी पर घृणा होने लगी, और अपने कुत्ते मालिक से बदला चुकाने के लिए हमारी आत्मा छटपटा उठी ।

आकाश का गहरा अंधकार हमें निगलने की ताक में विकराल मुँह फाड़कर अपनी हज़ारों छोटी-छोटी आँखों से हमारी ओर देख रहा था । कभी-कभी जब कोई पक्षी चौंककर सोते से चीख़ पड़ता तो हमको ज्ञात होता कि हम इस जीवित संसार के साथ हैं, नहीं तो इस समय भावावेश में इतने निमग्न थे कि हमें अपने आस-पास का कुछ भी ज्ञान नहीं रह गया था । गड्ढों में गिरना, और कीचड़ में फँसना; एक क्रम हो गया था और उससे हमारे भावावेश के तार झनझनाकर टूटते न थे ।

"मेरे अच्छे साथियो ! घबराते क्यों हो ! जो गुज़र गया, उसका ख़याल छोड़ो । उस पर किसी का क्या वश ? भविष्य हमारा है, हमारे हाथ में है, जिधर चाहो, उधर उसकी नकेल मोड़ दो। इरादा कर लो कि तुम अपने भविष्य के मालिक बनने के लिए वर्तमान से संघर्ष करोगे । भाग्य के ग़ुलाम जानवर होते हैं, और भले आदमियो, मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि न तुम्हारे सींग हैं, और न पूँछ ।" रामदेव ने हमें उत्तेजित करते हुए कहा ।

इसके बाद हम लोग अनेकों बातचीत करते गये । रामदेव ने हमें कई उपाय बताये, जिनके द्वारा हम लोग भविष्य के मालिक बन सकते थे और ग़ुलामी में से निकल सकते थे । वर्तमान की जंज़ीरें काटकर हम एक झपाटे में भविष्य की गर्दन दबोच देंगे, यह भावना हमारे रोम-रोम में समुद्र की लहर की तरह व्याप्त हो गई और अंग-अंग में गूँज उठी ।

अचानक एक पुलिया के आते ही हमें ज्ञात हुआ कि हम अपने गाँव का रास्ता पीछे छोड़कर दो-तीन मील आगे निकल आये थे । रामदेव को राम-राम कर हम अपना हल्का मन और भारी हृदय लेकर लौट पड़े । मार्ग भर हम लोग इध-ेड़ तेज़ी के साथ रात की सारी बातों पर सा-सरी निगाह फेंकते लपके चले जा रहे थे । बादल घिर आये थे, और झीनी-झीनी बूँदें पड़ना शुरू हो गई थीं ।

(२)

सुबह उठते ही हम लोगों ने अपना सामान बाँधा और मालिक का सामान लेकर उसके सामने हाज़िर हुए । आज हमें मालिक की सूरत में बड़ा



झलक लगने लगा। जिस मूर्ति में हम अब तक स्नेह और उदारता की कान्ति पाते थे, उसी में अब हमें रेगिस्तान की-सी निर्दयता और पहाड़ की-सी कठोरता का आभास मिला।

रात की थकावट और दिल की धड़कन की वजह से हमारे ओंठ गरम हो रहे थे, और थोड़ा-थोड़ा बुख़ार-सा चढ़ा हुआ था।

सामान सहेजवाकर हम लोग ज़मींदार की बग़ल की ओर ज़मीन पर बैठ गये। वह एक आरामकुर्सी पर लेटा दतून कर रहा था। उसकी उम्र क़रीब पैंसठ वर्ष के थी, मगर अभी सिर के बाल पूरे सफ़ेद नहीं हुए थे। उसकी फ़्रेंच-कट की दाढ़ी और गले में पड़ी सोने की जंज़ीर इस समय नंगे शरीर पर दूर से ही फब रही थी।

हम तीनों एक ही लाइन में बैठे थे। नन्दू ज़मींदार के नज़दीक था। हम लोग मौन थे। अभी यह निश्चय न हुआ था कि बात कौन छेड़ेगा। मगर तो भी हमारी नज़र नन्दू पर लगी थी। नन्दू ने दो-तीन बार अपनी मुट्ठी दबाई और ओंठ फड़काये, लेकिन कुछ अस्तव्यस्त-सा होकर वह मेरी ओर देखने लगा। मैंने दूसरे साथी की ओर आँख मारी, मगर उसका चेहरा उतर गया, और उसने कुछ झेंपते हुए जल्दी से अपना सिर झुका लिया।

मुझे उस पर क्रोध चढ़ आया, और नन्दू ने तो उसे ज़मींदार की नज़र बचाकर झकझोर भी दिया। लेकिन वह और भी घबरा गया। इससे यह निश्चय हो गया कि मैं या नन्दू में से ही कोई म्याऊँ का ठौर पकड़ने के लिए पहले हाथ बढ़ायेगा! हमें यह भय हो रहा था कि कहीं ज़मींदार हमारी इस कशमकश को न भाँप ले और पहले से ही सब मामला बिगड़ जाय। उसे हमारे यहाँ बैठने की ख़बर थी।

इसी समय घर से बबुआजी भागता हुआ बाहर आया और "बाबा! कल तुम कहाँ गये थे?" कहता हुआ नन्दू के गले से लिपट गया। नन्दू ने उसे आगे खींचकर उसका चुम्बन लिया, और थपथपाते हुए उससे इधर-उधर की बातें करने लगा। 'पहले कौन कहेगा' की समस्या हमारे सामने से कुछ समय के लिए हट गई।

बबुआजी पाँच वर्ष का बड़ा सुन्दर बालक था। वह हमारे ज़मींदार का नाती था, और नन्दू को बहुत मानता था। वह रात को नन्दू के पास सोता, और अक्सर खेत-खल्यान पर उसके पीछे-पीछे लगा फिरता। नन्दू उसे बहुत प्यार करता था।

जब मैंने देखा कि नन्दू बबुआजी के साथ उलझ पड़ा है तो मैंने ही हिम्मत बाँधी। ज़मींदार जो आराम से आकाश की ओर देख रहा था, उसका मैंने अचानक ध्यान भंग कर दिया। मैंने उससे कहा कि हमारा और उसका जो अब तक का सम्बन्ध था, अब उसमें कुछ परिवर्तन होना चाहिए; क्योंकि अगर इसी हालत में हम लोग पड़े रहे तो हमारा कभी छुटकारा न होगा, और उसका क़र्ज़ भी पूरा न होगा। इस कारण जो ब्याज हमको देना पड़ता था, अगर उसका आधा कर दिया जाय, तो हम अपनी नौकरी में से अपने क़र्ज़ के मूलधन में कटवाते जावेंगे और हमें दस-बारह बीघे खेत सहेज दिया जाय, जिसमें हम खेती करवा लें और उसकी फ़ुरसत के वक़्त देख-भाल भी कर लिया करेंगे, ताकि उसकी कमाई से भी कुछ रुपया कमा सकें। आख़िर इससे क्या फ़ायदा कि हम सारी ज़िन्दगी पटाते-पटाते मर जायँ, मगर रुपया उतना ही चढ़ा रहे।

मैंने बड़े अदब से सारी बातें कही थीं, ताकि उसका मिजाज़ न बिगड़ जाय। मगर वह बड़ा धूर्त निकला। उसने हमारे ऊपर अपने एहसानों की गठरी खोल दी। जब हमारे बाप-दादे बुरी तरह महाजन के, पुलिस के या ज़मींदार के चक्कर में फँसे थे, उस वक़्त उनकी आर्त्त वाणी सुनकर उसका कलेजा पसीज गया था, उससे न रहा गया, और सरकारी मालगुज़ारी रोककर उसने हमारे वंशों



को जेल की हवा खाने से उबारा था। लेकिन हम ऐसे कृतघ्न निकले कि इन एहसानों का कुछ बदला न चुकाया।

नन्दू बबुआजी से उलझा तो था, मगर उसका ध्यान हमारी बातचीत में रक्खा था। बबुआजी को अपनी विशाल बाहों में लपेटकर वह उचककर ज़मींदार से कहने लगा, "ठाकुर साहब! सारी ज़िन्दगी गुलामी करते बीत गई, और अभी आपके एहसान हमारे ऊपर बाक़ी ही हैं? हमने अपनी ज़िन्दगी में कौन-से सुख भोगे?" इतना कहकर उसने बबुआजी की ओर बड़ी इच्छा-पूर्ण दृष्टि से देखा। मुझे उसकी उस दृष्टि को देखकर बड़ी पीड़ा हुई। ओह! उसमें एक गृहस्थ, एक स्वतंत्र गृहस्थ बनने की कितनी तीव्र लालसा थी! अगर उसकी शादी हो गई होती तो बबुआ-जी ऐसे बच्चे उसके घर की भी शोभा बढ़ाते!

मगर ठाकुर साहब ने इन सब बातों पर ज़रा भी ध्यान न दिया। वह बोला—"ऐसी फ़िज़ूल की बातें मत सोचो, कभी फ़ुरसत के वक़्त बातचीत करना। मगर इतना याद रक्खो कि मैंने बहुत कम सूद लगाया है, नहीं तो अब तक तुम बिक गये होते।"

मगर हम यह बात तो पहले से ही सोचे हुए थे कि हमें धोका देकर मोल लिया गया था, और हम बिके हुए थे। इस कारण ज़मींदार की बात पर हमें बड़ी घृणा हुई। नन्दू ने लपककर ज़मींदार का हाथ पकड़ लिया और बोला, "ठाकुर! जो शर्त हम लोगों ने रक्खी है वह तुम्हें मंज़ूर है या नहीं? अगर नहीं, तो हम जाते हैं, न हम रुपये के देनदार हैं और न नौकरी के ख़्वास्तगार! चालीस बरस नौकरी करते हो गये, अभी तुम्हारा दो हज़ार ज्यों का त्यों बाक़ी बना है? बेईमान! आँख में धूल झोंकके डाका डालते हो?"

ज़मींदार ने एक नौकर को इशारा किया, और वह तेज़ी से एक ओर को चला गया। हम लोगों ने आवेश में इस पर ग़ौर नहीं किया।

बबुआजी ने जब यह देखा तो वह पीछे से दौड़कर नन्दू की टाँगों में सिर डालकर ज़मींदार की ओर ताकने लगा। उसकी समझ में न आया कि यह सब क्या हो रहा था। नन्दू ने उस पर एक स्नेहपूर्ण दृष्टि डाली, और अपने दिल की इस कमज़ोर भावना को छिपाने की कोशिश करने लगा।

ज़मींदार में और हम लोगों में काफ़ी धमचक मची। वह किसी भी शर्त पर राज़ी नहीं हुआ। तब हम लोगों का क्रोध बढ़ने लगा, और हम लोग अभी उस कुत्ते को दो-चार लात-घूँसे ही दे पाये थे कि हमें मालूम पड़ा, हम लोग भयानक जाल में फँस गये थे। हमारी कमर में पीछे से किसी ने हाथ डाला और हमारे हाथ जहाँ के तहाँ बाँध दिये। हम लोग थरथर काँपने लगे। देखते ही देखते हम पुलिस की हिरासत में थे। भय के मारे हमारा दूसरा साथी चीख़ने लगा। ज़मीं-दार की गालियों में नया पानी चढ़ गया। राक्षस-से मुँह के थानेदार के जूतों की ठोकरों के मारे नन्दू का शरीर लोहू-लोहान हो गया। बबुआजी कातर दृष्टि से डरता हुआ दूर खड़ा देख रहा था। वह भी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा।

इस अबोध सहानुभूति के पुतले को, जिसने अपने नन्हे से दिल की सारी सिसकती करुणा नन्दू पर उँडेल दी थी, नन्दू फिर कभी अंक भर-कर न भेंट सका! पुलिस हमें पकड़कर ले गई! बरसों के लिए!!

मगर इससे क्या? कभी-कभी जेल की दीवारों को लाँघकर ख़बरें आतीं कि ज़मींदार किसानों के पैरों पर टोपियाँ रखता फिर रहा है, क्योंकि कोई उसके खेत पर काम करने नहीं जाता, तो हम लोग उस दिन ख़ूब खाना खाते और काम छोड़कर शोर मचाते, नाचते, कूदते, कभी जेलर से झगड़ा जाते और तीन-चार कोड़े खाकर अपना [illegible] ठंडा करते।

पुस्तकालयों में पुस्तकों का चुनाव

[श्रीश्यामनारायण कपूर बी० एस्-सी०]

पुस्तकालय जनसाधारण में ज्ञानप्रसार के प्रमुख साधन हैं। ज्ञान-प्रसार के साथ ही वे जनता के आत्मिक, शारीरिक और मानसिक विकास में भी सहायता पहुँचाते हैं। पुस्तकालय मनुष्यमात्र की सेवा करते हैं। उनसे आबाल वृद्ध वनिता, अमीर-ग़रीब, किसान-मज़दूर सबको समान रूप से लाभ पहुँचता है। परन्तु यह उसी समय सम्भव है, जब पुस्तकालय में पुस्तकें संग्रह करते समय जनसाधारण के विभिन्न वर्गों की विभिन्न रुचियों और उनकी आवश्यकताओं का समुचित ध्यान रक्खा जाय। जिस पुस्तकालय में पुस्तकों का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रक्खा जाता है, उसे अपने वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति में बहुत कुछ सफलता मिलती है। वास्तव में पुस्तकालयों के लिए ठीक-ठीक और लोकोपयोगी पुस्तकें संग्रह करना बहुत ही महत्त्वपूर्ण और कठिन कार्य है। कोई भी पुस्तकालय आम तौर पर समस्त प्रकाशित पुस्तकों को संग्रह करने का दावा नहीं कर सकता। समस्त पुस्तकें संग्रह करना तो बहुत दूर, समस्त महत्त्वपूर्ण और आवश्यक प्रतीत होनेवाली पुस्तकों का संग्रह करना भी बहुत ही कठिन कार्य है। छोटे-बड़े सभी पुस्तकालयों को पुस्तकें चुनते समय बड़ी सावधानी से काम करने की ज़रूरत होती है। पुस्तकालय के बजट में पुस्तकों के लिए जो रक़म निर्धारित की जाती है, उसके पैसे-पैसे का पूरा लाभ उठाने की कोशिश की जाती है। पुस्तकालय के प्रत्येक पाठक के लिए उसकी रुचि की पुस्तक संग्रह करने का प्रयत्न किया जाता है।

विवेकपूर्ण चुनाव

परन्तु इस प्रयत्न में पुस्तकों की एक बड़ी संख्या इकट्ठी कर लेना ही पुस्तकालय का उद्देश्य नहीं होना चाहिए। वास्तव में प्रत्येक पाठक के लिए उसकी रुचि की पुस्तक संग्रह करने में थोड़ी-सी चुनी हुई पुस्तकें, पुस्तकों की एक बड़ी संख्या से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती हैं। आम तौर पर पुस्तकालयों के पास इतना धन तो होता नहीं कि वे प्रत्येक मुद्रित पुस्तक को अपने संग्रह में स्थान दे सकें। पुस्तकालय के बजट में और मदों की तरह पुस्तकों के लिए भी एक रक़म निश्चित होती है। उसी रक़म में उन्हें अपने पाठकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होती है। अतएव पुस्तकालयों के लिए पुस्तकें चुनते समय, पुस्तकालय-विज्ञान के एक सुप्रसिद्ध पण्डित के कथनानुसार उतने ही ज्ञान, विवेक और विचार की ज़रूरत होती है, जितने कि 'किसी मनुष्य को अपने लिए एक मकान अथवा पत्नी चुनने में।' वास्तव में विवेक और विचार के बिना संग्रह की गई पुस्तकों से भरे हुए बड़े-बड़े कमरे पुस्तकालय के वास्तविक अर्थ को



चरितार्थ नहीं कर सकते। इसके विपरीत चुनी हुई पुस्तकों के थोड़े-से सेट पुस्तकालय के वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति में कहीं अधिक सफल होते हैं। विवेक और विचार के साथ किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए चुनी हुई पुस्तकों के संग्रह ही को एक वास्तविक पुस्तकालय कहा जाता है।

पुस्तकालयों के लिए पुस्तकें संग्रह करते समय मोटे तौर पर पाठकों की रुचि के साथ ही स्थानीय परिस्थितियों, पाठकों की शिक्षा और साधारण ज्ञान, उनके पेशे और व्यवसाय, एवं आयु आदि का भी ध्यान रखना चाहिए। पाठकों की रुचि और आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ ही एकदम उनकी रुचि का दास हो जाना भी ठीक नहीं। उनकी रुचि को बराबर परिष्कृत करते रहने की भी आवश्यकता है।

प्रत्येक पाठक के लिए पुस्तक

पाठकों की रुचि और आवश्यकताओं को जानने के लिए यह बहुत ज़रूरी है कि पुस्तकालय के अधिकारी, विशेष कर पुस्तकाध्यक्ष बराबर पाठकों के सम्पर्क में आते रहें। इसमें भी सावधानी से काम करने की ज़रूरत है। नई पुस्तकें मँगाते समय पुस्तकालय के अधिकारी, कार्यकर्त्ता एवं पुस्तकाध्यक्ष अपनी ही रुचि तक सीमित न रहकर पाठकों की रुचि का भी विशेष ध्यान रक्खें। यह बात आम तौर पर देखी जाती है कि पुस्तकालय के अधिकारी एवं कार्यकर्त्ता आदि अपनी रुचि की पुस्तकें जल्दी-जल्दी मँगाते रहते हैं। पाठकों की रुचि का समुचित ध्यान नहीं रखते। कभी-कभी तो पाठकों के बराबर कहते रहने पर भी उनकी आवश्यकताओं की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। यदि पुस्तकालय के संचालक एवं कार्यकर्त्ता साहित्यिक अभिरुचि के हुए तो फिर पुस्तकालय में साहित्यिक पुस्तकों ही की भरमार रहती है। साहित्यिक पुस्तकों के अतिरिक्त दूसरे विषयों की पुस्तकों की माँग की ओर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया जाता। इन बातों से पुस्तकालय के वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति में बड़ी बाधा पड़ती है और वे कभी लोकप्रिय नहीं हो पाते। इसके विपरीत जिन पुस्तकालयों में पुस्तकालय-विज्ञान के मौलिक नियम 'प्रत्येक पाठक के लिए उसकी पुस्तक' जुटाने का प्रयत्न किया जाता है, वे पुस्तकालय के वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति के साथ ही जनसाधारण में लोकप्रिय भी होते हैं।

सामान्य ग्रन्थ

पुस्तकों के चुनाव के बारे में खुलासा बातें बताने के पहले एक बात की ओर ध्यान दिलाना और ज़रूरी है। प्रत्येक पुस्तकालय में उसकी आमदनी के अनुसार ज्ञान-कोष (Encyclopedia) शब्द-कोष, वृत्तान्त - संग्रह, गज़ेटियर्स एवं ऐसे ही दूसरे सामान्य ग्रन्थों (Reference works) का संग्रह किया जाना भी ज़रूरी है। ऐसे ग्रन्थ आम तौर पर बहुमूल्य होते हैं और साधारण पाठक स्वयं व्यक्तिगत रूप से अपने लिए मँगाने में असमर्थ होते हैं। बहुमूल्य होने के साथ ही ऐसी पुस्तकें बहुत उपयोगी होती हैं। जनसाधारण की ज्ञान-पिपासा शांत करने के लिए इनसे प्रचुर सहायता मिलती है। अकसर तो विभिन्न पाठकों की आवश्यकताओं की पूर्ति एक ही पुस्तक से हो जाती है। इन सामान्य ग्रन्थों के अलावा, समय-समय पर दूसरे विषयों के जो बहुमूल्य और उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशित हों और जिनका संग्रह करना सर्वसाधारण के लिए व्यक्तिगत रूप से सुलभ न हो, उनका भी पुस्तकालय में ज़रूर संग्रह करना चाहिए।

पाँच नियम

पुस्तकालय-विज्ञान के सुप्रसिद्ध पण्डित श्री एस॰ आर॰ रंगनाथन ने अपनी पुस्तक 'Five Laws of Library Science' [पुस्तकालय-विज्ञान के पाँच मौलिक नियम] में पुस्तकालय-विज्ञान के पाँच मौलिक नियम निर्धारित किये हैं। वे पाँचों नियम ये हैं—

१. पुस्तकें व्यवहार के लिए हैं।
२. सबके लिए पुस्तकें।



३. प्रत्येक पुस्तक के लिए पाठक और प्रत्येक पाठक के लिए पुस्तक।
४. पाठकों के समय की रक्षा कीजिए।
५. पुस्तकालय उन्नतिशील सजीव संस्था है।

उपर्युक्त पाँचों नियमों की विस्तृत विवेचना एवं व्याख्या आदि तो फिर कभी एक स्वतन्त्र लेख में की जायगी। हाँ, इन नियमों से पुस्तकालय के लिए पुस्तकें चुनने में जो सहायता ली जा सकती है, उसका संक्षेप में यहाँ उल्लेख किया जायगा।

पुस्तकें व्यवहार के लिए हैं

पुस्तकालय-विज्ञान का प्रथम नियम है—'पुस्तकें व्यवहार के लिए हैं।' पुस्तकें संग्रह करते समय इस सिद्धान्त को बराबर ध्यान में रखना ज़रूरी है। पुस्तकालय में जितनी भी पुस्तकें जमा की जायँ, सबको व्यवहार में लाने के प्रयत्न किये जायँ। कोई भी पुस्तक ऐसी न जमा की जाय, जिसको कोई पढ़नेवाला न हो। जो पुस्तकें व्यवहार में न आ सकें, वे पुस्तकालय के लिए भारस्वरूप हैं। पुस्तकों की वास्तविक उपयोगिता एवं महत्त्व उनका निरंतर व्यवहार में लाया जाना ही है। जो पुस्तक जितनी अधिक पढ़ी जाती है, वह पुस्तकालय के लिए उतनी ही अधिक महत्त्वपूर्ण है। अस्तु, पुस्तकें मँगाते समय यह बात निरन्तर ध्यान में रखने की है कि पुस्तकालयों में पुस्तकें व्यवहार के लिए जमा की जाती हैं। पुस्तकों के लिखने, प्रकाशित किये जाने और पुस्तकालयों में संग्रह किये जाने का उद्देश्य उन्हें व्यवहार में लाना ही है। इस सिद्धान्त के अनुकूल कार्य करते समय जिस तरह विभिन्न पाठकों के लिए विभिन्न विषयों की पुस्तकें संग्रह करने की ज़रूरत है, उसी तरह विभिन्न स्थानों के लिए तथा विभिन्न श्रेणियों के पुस्तकालयों के लिए भी विभिन्न पुस्तकों के संग्रह करने की ज़रूरत है। पुस्तकालयों के लिए चुनी जानेवाली पुस्तकों को परखने की यह प्रथम कसौटी है। संस्कृत में इस सिद्धान्त से मिलती-जुलती एक कहावत भी है, जिसका आशय है कि जो पुस्तक पढ़ी नहीं जाती, वह विनष्ट हो जाती है।

सबके लिए पुस्तकें

पुस्तकों को इस कसौटी पर कसने के साथ ही उनको चुनते समय पुस्तकालय-विज्ञान के दूसरे नियम—'सबके लिए पुस्तकें' को भी ध्यान में रखना ज़रूरी है। इस नियम के अनुसार, जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, पुस्तकालय के प्रत्येक पाठक के लिए—वह चाहे स्त्री हो या पुरुष, बालक हो अथवा वृद्ध, किसान हो या व्यवसायी, कम पढ़ा हो या विद्वान्, सभी के लिए पुस्तकें जमा की जानी चाहिए; पुस्तकें चुनते समय सबकी विभिन्न रुचियों और आवश्यकताओं को ध्यान में रक्खा जाना ज़रूरी है। संक्षेप में सभी श्रेणियों के पाठकों के लिए यथोचित पाठ्य-सामग्री जुटाने के प्रयत्न किये जायँ।

प्रत्येक पुस्तक के लिए पाठक

पुस्तकों के चुनाव की दृष्टि से पुस्तकालय-विज्ञान के तीसरे नियम, 'प्रत्येक पुस्तक के लिए पाठक'—का बहुत कुछ आशय ऊपर बतलाये गये दोनों नियमों में आ जाता है। जिस पुस्तकालय में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि पुस्तकें व्यवहार के लिए हैं और प्रत्येक पाठक के लिए आवश्यक पाठ्य-सामग्री एकत्रित करना पुस्तकालय का कर्तव्य है, वहाँ कोई भी पुस्तक बेपढ़ी रह ही न सकेगी, प्रत्येक पुस्तक के लिए पाठक का प्रबन्ध अपने आप हो जायगा। फिर भी इस नियम में पुस्तकालय के कार्य-कर्त्ताओं के प्रति बहुत कुछ कह दिया गया है। इसके अनुसार उनकी ज़िम्मेदारी और कार्य-क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है। पुस्तकों का चुनाव करते समय उन्हें पाठकों की रुचि और आवश्यकताओं के साथ पुस्तकों को अधिक से अधिक व्यवहार में लाने के प्रयत्न करने होते हैं। पाठकों की रुचि और आवश्यकताओं को ठीक-ठीक समझना भी कुछ सरल कार्य नहीं है। सरल न होते



हुए भी यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है और इस ओर यथासम्भव अधिक से अधिक ध्यान देना चाहिए। इस कार्य में निम्नलिखित बातों से सहायता ली जा सकती है—

(१) पुस्तकालय के पाठक इस सम्बन्ध में स्वयं जो परामर्श दें।

(२) पाठकों के सम्पर्क में आने पर पुस्तकाध्यक्ष अथवा कार्य-कर्त्ताओं का अनुभव और सिफ़ारिशें।

(३) पुस्तकालय के कार्यक्षेत्र अथवा स्थान-विशेष की जनता के मुख्य पेशे।

(४) स्थानीय अथवा राष्ट्रीय महत्त्व की प्रमुख घटनाएँ।

(५) जनता के अग्रगण्य व्यक्तियों से समय-समय पर मिलनेवाले परामर्श आदि।

पाठकों की रुचि

इस तरह से पुस्तकें चुनने में पुस्तकालय अपने उद्देश्यों की पूर्ति में बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि पाठकों की रुचि और आवश्यकताओं के अनुकूल पुस्तकें चुनने का मतलब यही नहीं है कि पुस्तकालय पाठकों की रुचि का दास हो जाय और उनकी रुचि को उन्नत बनाने एवं परिष्कृत करने की ओर कोई ध्यान ही न दिया जाय। पुस्तकें चुनते समय जहाँ पाठकों की मौजूदा रुचि का ध्यान रक्खा जाय, वहाँ उनकी रुचि को परिष्कृत करने के प्रयत्न करते रहना भी बहुत आवश्यक है। अस्तु, पुस्तकें चुनते समय इस बात का भी पूरा ध्यान रक्खा जाय। छोटी-छोटी बस्तियों, गाँवों और क़स्बों आदि में पुस्तकालय स्थापित करने पर शुरू-शुरू में सम्भव है, पाठकों की अपनी कोई विशेष रुचि न हो। ऐसे मौक़ों पर कार्य-कर्त्ताओं को अपनी विवेक-बुद्धि से काम लेना चाहिए। परन्तु इस सम्बन्ध में भी अनुभव यही बतलाता है कि एक बार पाठ्य मनोवृत्ति पैदा कर देने पर पाठक—वे चाहे जिस श्रेणी के भी क्यों न हों, अपनी-अपनी रुचि की पुस्तकें माँगने लगते हैं। गाँवों में भी यही हाल है। वहाँ पाठक भले ही किसी पुस्तक-विशेष का नाम बताने में समर्थ न हो सकें, परन्तु वे अपनी रुचि के विषय को तो ज़रूर ही बतला देते हैं। ऐसे मौक़ों पर ठीक-ठीक पुस्तकों को उनके पाठकों तक पहुँचाना पुस्तकालय के कार्य-कर्त्ताओं का काम होता है। पुस्तकालय छोटा हो या बड़ा, उसमें पुस्तकें संग्रह करते समय काफ़ी सावधानी से काम लेने की ज़रूरत है। प्रत्येक पुस्तकालय को इस सम्बन्ध में कुछ विशेष नियम बना लेने चाहिए। उलटे-सीधे, जब जो पुस्तक सामने आ गई, उसे पुस्तकालय में स्थान देने से काम नहीं चल सकता। इस तरह से अक्सर बिलकुल बेतुकी और निरर्थक पुस्तकें पुस्तकालय में जमा हो जाती हैं। कभी-कभी तो ऐसी पुस्तकों के लिए पाठक ढूँढना भी कठिन हो जाता है। प्रगतिशील पुस्तकालयों में पुस्तकें चुनने का काम तो नियमित रूप से नित्यप्रति जारी रहता है। पुस्तकालय-विज्ञान के पाँचवें नियम—'पुस्तकालय एक उन्नतिशील एवं सजीव संस्था है'—के अनुसार पुस्तकालय की आर्थिक स्थिति के अनुकूल उसकी पुस्तक-संख्या नित्य प्रति बढ़ती रहनी चाहिए।

महत्त्वपूर्ण सिफ़ारिशें

पुस्तकालय-विज्ञान के सुप्रसिद्ध पण्डित जे० सी० दाना (J. C. Dana) ने अपनी पुस्तक 'लाइब्रेरी-प्राइमर' (Library Primer) में पुस्तकालयों में पुस्तकें चुनते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखने की सिफ़ारिश की है—

(१) पुस्तकालय के निकट और कोई पुस्तकालय है या नहीं? यदि है तो उसकी क्या स्थिति है? उसकी पुस्तकों एवं पाठकों आदि का विवरण।

(२) पुस्तकालय अपने पाठकों और सर्वसाधारण को बुद्धिमान् बनाता है, उन्हें नेक बनने के लिए प्रोत्साहित करता है; और उनके आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने में सहायक होता है।

(३) पुस्तकों के ख़रीदने के लिए, पुस्तका



के पास कितना रुपया है और आगे आनेवाले वर्षों में अन्दाज से इस मद में कितना रुपया ख़र्च किया जा सकेगा।

(४) पुस्तकालय की पुस्तकें आमतौर पर किस प्रकार व्यवहार में लाई जायँगी? उनका व्यवहार केवल पुस्तकालय ही में किया जा सकेगा अथवा पाठकों को घर ले जाने के लिए उधार भी दी जाएँगी, या उधार भी दी जायँगी और पुस्तकालय में रिफ़रेन्स (Reference) के काम में भी लाई जायँगी।

(५) पुस्तकें किस श्रेणी के पाठकों द्वारा व्यवहार में लाई जायँगी। यदि पुस्तकालय के पाठक विद्यार्थी हैं, तो पुस्तकें स्कूली काम में मदद पहुँचाने के लिए चाहिए या साधारण ज्ञान-प्रसार के लिए अथवा दोनों ही बातों के लिए।

(६) पुस्तकालय के कार्य-क्षेत्र की जनता के व्यवसाय, धार्मिक विश्वास तथा जनता की दिलचस्पी के मुख्य विषय।

(७) पाठकों का चरित्र और उनका साधारण इतिहास।

(८) पुस्तकालय के पाठकों की अध्ययन एवं पाठ्य मनोवृत्ति। पाठक अध्ययन के लिए गम्भीर पुस्तकें अधिक पसंद करते हैं या केवल मनोविनोद के लिए।

किस विषय में कितनी पुस्तकें हों

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखने के अलावा उन्होंने साधारण सार्वजनिक पुस्तकालयों में विभिन्न विषयों की कितनी पुस्तकें रहनी चाहिए, उसकी एक सूची भी दी है। पाठकों की जानकारी के लिए उसे यहाँ उद्धृत किया जाता है—

सर्वसाधारण (General)	४
धर्मशास्त्र	२
दर्शन	१
समाज-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र	६
भाषा-विज्ञान	१
विज्ञान	८
कला-कौशल	६
ललित कलाएँ	४
साहित्य	१२
जीवन-चरित्र	१०
इतिहास	१३
भूगोल एवं यात्रा विवरण	१०
उपन्यास, कथा-कहानी आदि	२०
पूर्ण योग—	१००

उपर्युक्त सूची से इस बात का मोटा अन्दाज़ भर लगाया जा सकता है कि आम तौर पर एक साधारण पुस्तकालय में विभिन्न विषयों की कितनी पुस्तकें रहनी चाहिए। प्रत्येक पुस्तकालय अपनी सुविधा और आवश्यकता के अनुसार इनमें समुचित परिवर्तन कर सकता है। यह विषय-सूची उन पुस्तकालयों के लिए लागू नहीं होती जो केवल किसी विषय-विशेष की ही पुस्तकों का संग्रह करते हैं। ऊपर की तालिका से केवल विभिन्न विषयों में रहनेवाली पुस्तकों की संख्या का पता लगता है। इन पुस्तकों के चुनाव के बारे में कुछ मोटी बातें नीचे दी जाती हैं।

पुस्तकों के चुनाव के लिए पुस्तकालय के कार्यकर्त्ताओं को प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित पुस्तक-सूचियों को बराबर देखते रहना चाहिए। इन सूचियों के अतिरिक्त सामयिक पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों में प्रकाशित होनेवाली नवीन पुस्तकों की आलोचनाएँ और परिचय आदि का भी समुचित ध्यान रक्खा जाय। अच्छा तो यह होगा कि इस प्रकार जिन पुस्तकों की जानकारी प्राप्त की जा सके, उनका विवरण एक अलग नोट-बुक या रजिस्टर में दर्ज कर लिया जाय। इस रजिस्टर में पुस्तक का नाम, लेखक, प्रकाशक, विषय एवं उसका मूल्य आदि दर्ज कर लिया जाया करे। पुस्तक की जानकारी किस ज़रिये से मिली, इसका भी ज़िक्र रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त समय-समय पर पुस्तकालय के पाठक जिन पुस्तकों की आवश्यकता बतलावें, उनको भी नोट कर लिया जाय।



प्रामाणिक पुस्तक-सूचियाँ

अँगरेज़ी में ग्रन्थ-पञ्जियों (Bibliographies), ग्रन्थतालिकाओं तथा अन्य साहित्य-पञ्जियों से पुस्तकों के चुनने में बड़ी सहायता मिल जाती है। इनके अतिरिक्त भी पुस्तकालय-संघ एवं प्रकाशक आदि समय-समय पर विभिन्न श्रेणियों के पुस्तकालयों के लिए प्रमाणिक पुस्तक-सूचियाँ प्रकाशित करते रहते हैं। इससे अँगरेज़ी की पुस्तकें संग्रह करनेवाले पुस्तकालयों का काम बहुत कुछ कम हो जाता है। हिंदी में इन तालिकाओं एवं ग्रन्थ-पञ्जियों का सर्वथा अभाव है। इनके अभाव में पुस्तकालयों की कठिनाइयाँ और भी अधिक बढ़ जाती हैं। प्रतिमास निकलनेवाली पुस्तकों का पता किसी को शीघ्र नहीं मिलता। फल यह होता है कि पाठकों को सामयिक प्रकाशन बहुत बासी होकर मिलता है। वास्तव में हिन्दी में अच्छी पुस्तकों के प्रचार का कोई प्रबन्ध ही नहीं है। क्या ही अच्छा हो यदि कुछ पुस्तक-विक्रेता अथवा प्रकाशक मिलकर अथवा कोई दूसरी साहित्यिक संस्था अच्छी पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार के निमित्त एक मासिक पत्र के प्रकाशन का प्रबन्ध करें। इस पत्र में अच्छी-अच्छी पुस्तकों और पत्रिकाओं आदि का परिचय एवं आलोचना आदि रहे। साथ ही इसके द्वारा पुस्तकें पढ़ने की रुचि तथा पुस्तकें संग्रह करने के व्यसन को प्रोत्साहित करने के भी प्रयत्न किये जायँ। ऐसे मासिक पत्र के प्रकाशन में नाममात्र का ख़र्चा होगा और पत्र के उद्देश्य समझाये जाने पर उसे हिन्दी के प्रमुख प्रकाशक सम्भवतः सहर्ष दे देंगे। ऐसे मासिक पत्र के प्रकाशन के साथ ही प्रतिवर्ष एक ऐसा ग्रन्थ भी प्रकाशित होना आवश्यक है, जिसमें वर्ष में प्रकाशित होनेवाली समस्त पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण हो। इन पुस्तकों में से विभिन्न श्रेणियों के पुस्तकालयों के लिए उपयुक्त पुस्तक-सूचियाँ लेखों के रूप में अलग से दी जायँ। फिर भी जब तक इस पुस्तक एवं पत्रिका के प्रकाशन का प्रबन्ध न हो सके, हिन्दी के विद्वान् अपनी-अपनी रुचि की पुस्तकों के बारे में सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखकर इस कार्य में सहायक हो सकते हैं।

विद्वज्जनों का सहयोग

वास्तव में अच्छी पुस्तकें चुनने का सारा का[र्य] पुस्तकालय के कार्य-कर्त्ताओं द्वारा हो भी न[हीं] सकता। छोटे-छोटे पुस्तकालयों और ख़ास क[र] ग्रामीण एवं क़सबाती पुस्तकालयों के कार्य-कर्त्ताओं के लिए तो यह कार्य बहुत ही कठिन है। इस का[र्य] को उचित ढंग से पूरा करने के लिए विद्वानों एवं विशेषज्ञों का सहयोग अनिवार्य है। विशेषज्ञ एवं विद्वज्जन लेखादि लिखकर अपने विचार प्रक[ट] करने के अतिरिक्त समय-समय पर सार्वजनिक पुस्तकालयों को अपने परामर्श द्वारा इस कार्य में सहायता पहुँचा सकते हैं। परन्तु यह उसी समय सम्भव है, जब पुस्तकालय के कार्य-कर्ता स्वयं भी विद्वज्जनों का सहयोग प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहें। विशेषज्ञों के साथ ही विभिन्न विषयों में अभिरुचि रखनेवाले पाठकों से भी उनके विषय-विशेष के बारे में सलाह-मशविरा लेना हितकर होता है।

उपसमितियाँ

प्रत्येक पुस्तकालय में वर्ष के आरम्भ में अपनी आमदनी और ख़र्च का बजट बना लिया जा[य]। इस बजट में पुस्तकालय की आवश्यकताओं एवं आमदनी के अनुकूल पुस्तकें ख़रीदने के लिए एक रक़म नियत कर दी जाय। इस तरह से निय[त] की गई रक़म को बहुत ही सावधानी से काम में लाया जाय। पुस्तकों के लिए जो रक़म नियत की जाय, उसे विभिन्न विषयों में भी विभक्त कर देना अच्छा होता है। जहाँ सम्भव हो सके, वहाँ विभिन्न विषयों की पुस्तकें चुनने के लिए अलग-अलग उपसमितियाँ नियुक्त कर देने से पुस्तकें चुनने का कार्य बहुत कुछ सरल हो जाता है। विभिन्न विषयों के लिए रक़म नियत करते समय इन उप-समितियों से सलाह ले ली जाया क[रे]।

जहाँ अधिक व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करना सम्भव न हो वहाँ ऐसी उपसमितियों में कम से कम तीन व्यक्ति अवश्य रक्खे जायँ। इन तीन में से एक पुस्तकालय अथवा पुस्तक-मंत्री अवश्य हो। इस प्रकार की उपसमितियों के संगठन से पुस्तकालय के पाठकों को पुस्तकालय के काम में अधिक दिलचस्पी लेने के मौक़े मिलते हैं। पुस्तकालय के कार्य-कर्त्ताओं का भी पाठकों से सम्पर्क बना रहता है। कार्य-कर्त्ताओं एवं पाठकों का इस प्रकार का पारस्परिक सहयोग पुस्तकालय की उन्नति में बहुत कुछ सहायक होता है। इन उप-समितियों की बैठकें करने के पूर्व पुस्तकालय के कार्य-कर्त्ताओं को वह सब सामग्री इकट्ठा कर लेनी चाहिए, जिससे पुस्तकों का चुनाव करने में सहायता मिले। इस सामग्री में पुस्तक-विक्रेताओं और प्रकाशकों के सूचीपत्र, पुस्तक-परिचय तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होनेवाली समालोचनाएँ एवं परिचय आदि मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त समय-समय पर पुस्तकालय के काम की जिन पुस्तकों के नाम अन्य साधनों से मालूम हो सकें, उनके बारे में भी समस्त ज्ञातव्य बातें नोट कर लेना चाहिए और उन्हें इन उपसमितियों के सम्मुख उपस्थित कर देना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर, सुविधानुसार, इस सम्बन्ध में बाहरी विद्वानों से भी परामर्श लिया जा सकता है। कुछ अग्रगण्य पुस्तकालयों की पुस्तक - सूचियों को देखकर अथवा उनसे पत्र-व्यवहार करके भी बहुत-सी काम की बातें जानी जा सकती हैं। इस तरह से जो बातें मालूम की जा सकें, उनकी सहायता से विभिन्न पुस्तकों को उनके विषयानुसार नोट कर लेना चाहिए।

बहुत-से पुस्तकालय कुछ ग्रन्थमालाओं एवं प्रकाशकों के स्थायी ग्राहक भी होते हैं। इन प्रकाशकों के द्वारा जो पुस्तकें प्रकाशित हों अथवा जिनके निकट भविष्य में प्रकाशित होने की आशा हो, उनका भी ध्यान रखना चाहिए। इन पुस्तकों के अलावा नीचे लिखी पुस्तकों का भी ध्यान रखना ज़रूरी है—

(१) जो कई भागों में प्रकाशित होती हैं और जिनके भाग कभी-कभी साल भर से भी ज़्यादा समय के बाद प्रकाशित होते हैं, जैसे—ज्ञानकोष, गौरीशंकर-हीराचन्द ओझा का राजपूताने का इतिहास, कविता-कौमुदी आदि।

(२) जिनके लिए कुछ रुपया पेशगी जमा करना होता है अथवा जिनका मूल्य वार्षिक अथवा सामयिक किस्तों में अदा किया जाता है, जैसे—काशी नागरी-प्रचारिणी सभा का सूरसागर अथवा इण्डियन-प्रेस का महाभारत।

(३) सालाना चन्दे के रूप में रुपये देने पर साल भर तक पुस्तकें मिलती रहती हैं, जैसे—हिंदी-ग्रन्थरत्नाकर बम्बई की सुलभ साहित्यमाला।

(४) उपहार में, बिना मूल्य अथवा कुछ ख़ास शर्तों के पूरा करने पर मुफ़्त में अथवा कम दाम में मिलनेवाली पुस्तकें।

(५) किसी निश्चित अवधि तक मँगाने से जिनके मूल्य में विशेष रियायत हो जाती है।

(६) पहले से ग्राहक-सूची में नाम लिखाने से मूल्य में कमी हो जाती है।

(७) एक माला के रूप में प्रकाशित होती हैं।

(८) विशेष अवसरों पर प्रकाशित होती हैं, जैसे—द्विवेदी-अभिनन्दनग्रन्थ, मैथिलीमानग्रन्थ, कांग्रेस-स्वर्णजयन्ती पर प्रकाशित होनेवाला कांग्रेस का इतिहास।

हिन्दी-पुस्तकालयों की कठिनाइयाँ

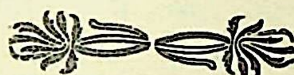
हिन्दी में पुस्तक-व्यवसाय के सुसंगठित और सुव्यवस्थित न होने की वजह से पुस्तकालयों को ठीक-ठीक पुस्तकें चुनने में बड़ी अड़चन पड़ती है। कुछ थोड़े-से बड़े-बड़े शहरों को छोड़कर अन्य स्थानों पर अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं का सर्वथा अभाव है। डाक-महसूल इतना ज़्यादा है कि आम तौर पर डाक से पुस्तकें मँगाने की हिम्मत भी नहीं पड़ती। एक रुपये या बारह आने मूल्य

की पुस्तक पर भी सात आने से कम डाकख़र्च नहीं पड़ता। जितना लाभ पुस्तक के लेखक और प्रकाशक दोनों को मिलाकर भी नहीं हो पाता, उससे दूना महसूल सरकार वसूल कर लेती है। पुस्तक-विक्रेताओं के अभाव के साथ ही साथ समय-समय पर जो साहित्य प्रकाशित होता रहता है, उसके समाचार पुस्तकालयों तक पहुँचने के साधनों का भी अभाव है। इन सब कठिनाइयों के फलस्वरूप छोटे-छोटे शहरों और क़सबों के पुस्तकालय अपने यहाँ आनेवाले पुस्तक-एजेन्टों की बाट जोहा करते हैं और वे अच्छी-बुरी जैसी भी पुस्तकें ले आते हैं, पुस्तकालयवाले उन्हें ही लेकर संतोष कर लेते हैं। डाकख़र्च की बचत के साथ ही इन एजेन्टों से भरपूर कमीशन भी मिल जाता है। कमीशन के लालच में ये एजेन्ट लोग ज़्यादातर तीसरे दर्जे का साहित्य बेचते हैं। अच्छे और उच्च कोटि के साहित्य के प्रकाशक न तो भरपूर कमीशन देते हैं, न आमतौर पर एजेन्ट नियुक्त करते हैं और न अपनी पुस्तकों को पाठकों एवं पुस्तकालयों तक पहुँचाने का और कोई विशेष प्रबन्ध ही करते हैं। इन सब दिक़्क़तों के फलस्वरूप छोटे-छोटे नगरों और क़सबों के पुस्तकालयों तक अच्छी पुस्तकों की पहुँच ही नहीं हो पाती। इससे न केवल अच्छी पुस्तकों के प्रचार ही में बाधा पड़ती है, वरन् पुस्तकालय भी अपने वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति में कृतकार्य नहीं हो पाते।

ऐसी स्थिति में पुस्तकालयों के उपयुक्त यदि प्रामाणिक पुस्तक-सूचियाँ बराबर प्रकाशित होती रहें तो छोटे-छोटे पुस्तकालयों का कार्य बहुत सरल हो जाय और अच्छी पुस्तकों के प्रचार में भी सहायता मिले। विदेशों में छोटे-बड़े सभी प्रकार के पुस्तकालयों के लायक़ चुनी हुई पुस्तकों की सूचियाँ, प्रकाशकों एवं पुस्तकालय-संघों द्वारा पुस्तकाकार प्रकाशित होती रहती हैं। इन सूचियों से सभी श्रेणियों के पुस्तकालय लाभ उठाते हैं। बहुत-से प्रकाशक और पुस्तकविक्रेता इस प्रकार की सूचियों को बिना मूल्य लिये हुए वितरित करते हैं। पुस्तक-विक्रेताओं के अतिरिक्त पुस्तकालय-संघ और दूसरी शिक्षा-संस्थाएँ आदि इस प्रकार की प्रामाणिक सूचियों के प्रकाशन में बड़ी दिलचस्पी लेती हैं और स्वयं भी प्रकाशित करती हैं। विभिन्न विषयों के और विभिन्न श्रेणियों के पुस्तकालयों के लिए अलग-अलग पुस्तक-सूचियाँ मिल जाती हैं। इस तरह से छोटे-छोटे पुस्तकालयों को पुस्तकें चुनने का काम करना ही नहीं पड़ता। ये पुस्तक-सूचियाँ आम तौर पर प्रतिष्ठित विद्वानों और विशेषज्ञों की सहायता से तैयार की जाती हैं। इनका उद्देश्य केवल पुस्तकों का विज्ञापन करना ही नहीं होता, वे सत्साहित्य के प्रचार के साथ ही साथ पुस्तकालयों के कार्य को बहुत सुगम बना देती हैं। पुस्तकालय-संघों की ओर से विभिन्न आयु के बालक-बालिकाओं, स्त्रियों, विद्यार्थियों एवं और व्यक्तियों के काम की किताबों की फ़ेहरिस्तें भी बराबर प्रकाशित होती रहती हैं। हिन्दी में अभी तक इस ओर तनिक भी प्रयत्न नहीं किया गया। इस सम्बन्ध में हिन्दी अपने ही देश की बंगला, गुजराती, तामिल, तेलुगू प्रभृति प्रान्तीय भाषाओं से भी बहुत पीछे है। गुजराती साहित्य की प्रामाणिक पुस्तक-सूचियाँ एवं ग्रन्थ-तालिकाएँ आदि तैयार करने में बड़ौदा के पुस्तकालय-विभाग एवं वहाँ के पुस्तकालय-सहायक सहकारी मण्डल ने प्रशंसनीय कार्य किया है। मद्रास लाइब्रेरी एसोसिएशन ने भी तामिल और तेलुगू भाषाओं की पुस्तक-सूचियाँ तैयार कराकर वितरित की हैं। बँगला में भी इस सम्बन्ध में कुछ कार्य हुआ है। हिन्दी में अभी तक इस महत्त्वपूर्ण विषय की ओर ध्यान तक नहीं दिया गया। परन्तु यह कार्य किसी व्यक्ति-विशेष के करने का नहीं है। जब तक हिन्दी की प्रमुख संस्थाएँ, प्रतिष्ठित विद्वान् और प्रकाशक इस ओर ध्यान न देंगे, इस प्रकार की सूचियाँ तैयार नहीं की जा सकतीं। हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों के पुस्तकालयों का कोई अपना संगठन

होने के कारण भी इस कार्य में बड़ी अड़चन पड़ती है।

अस्तु, इन सूचियों के अभाव में छोटे-छोटे पुस्तकालयों के लिए तो यही उचित होगा कि वे अपनी सुविधानुसार साल में दो-चार बार पुस्तकें ख़रीदने का नियम बना लें और इस बीच में बराबर पुस्तकें चुनने का काम करते रहें। अनियमित रूप से अथवा जो भी सस्ती मद्दी पुस्तक सामने आ जाय, उसे ख़रीद कर सन्तोष न करें। नवीन पुस्तकें ख़रीदते वक़्त विवेक बुद्धि से काम लें। जो भी पुस्तक ख़रीदें, उसे पिछले पृष्ठों में बतलाई गई कसौटियों पर ज़रूर कस लें। इस बात का भी ध्यान रक्खें कि वे सामयिक साहित्य को अपने पाठकों तक पहुँचाने में पिछड़ तो नहीं रहे हैं।



संयम

श्रीइन्द्रदत्त शर्मा

(१)

२४ वर्ष में, मित्र-शत्रु बनाकर कुछ खोकर कुछ पाकर मैंने सीख लिया था, दुनिया दूर से देखने का तमाशा है। इसमें रहो, इसके न बनो। कभी दूसरों को खेलते देखकर जी चाहे या मन मचले तो तुम भी देख लो, खेलो नहीं; क्योंकि बनी-बिगड़ी दोनों एक ही हैं। तुम तय न कर सकोगी निश्चिन्त हो या परिश्रान्त।

उन दिनों विक्टोरिया गर्ल्स हाई स्कूल से मुझे ६५) रु० महीने मिलते थे। माजी ने अपना हाथ छुआकर क़सम खिलाई थी, "बिभा, मेरा बेटा मर गया, तू बहू है, मेरे लिए मेरा बेटा बन जा। मैंने आज तक अपने हाथों चक्की पीसकर खाया है। रुपये की कमी न थी। अब भी डेढ़ लाख बैंक में पड़ा है। ठेकेदार ने उसे तुम दोनों के लिए जमा किया था। अब तू अकेली है, अकेले पैसा न ले सकेगी। मेरा बेटा चौका-बर्तन करके कालेज जाता था, अब तू वही करके स्कूल जाया कर। मैं तब दो आदमियों के लिए आटा पीसती थी। अब भी तो हम दो हैं?" वे रो पड़ी थीं। मैं अक्षरशः उनकी आज्ञा का पालन करती रही। मैं शौक़ीन थी। पन्द्रह रुपये महीने का मकान था, ज़रूरत से ज़्यादा सजा हुआ। माजी को बुरा मालूम होता था लेकिन कभी बुरा न कहा। वे चाहती थीं मैं सादी रहूँ, सफ़ेद धोती पहनूँ, मामूली और कम खाना खाऊँ। और मुझसे कहा करतीं, "बिभा स्कूल की साड़ी दूसरे दिन तो बदल दिया कर? तू मिहनत बिलकुल नहीं करती, घर तरकारियाँ पकाना पाप नहीं, चल, आज मुझे से पूरन-भक्त देखने को जी चाह रहा है।" मुझे मानव-प्रकृति का मज़ाक उड़ाने के लिए अच्छा मौक़ा मिल जाता था। देखो, यह मुझे सिखा रही हैं। प्यार करती हैं। यह चाहती हैं, मैं फूल-जैसी खिली रहूँ, मेरे पराग को पवन न छू सके, कहीं सूर्य की प्रखर किरणें उस पर न पड़ जायँ। अरे पूछो, मुक्त पवन के मृदुल झकोरे उसे खिलाते हैं। प्रातःकालीन रवि-किरणें उसे अनेक वर्ण मल प्रदान करती हैं, उन्हीं से उनका ... में अनुरञ्जन होता है। भला कभी भी किसी ने कमरे में बन्द गमलेवाले फूल को विहँसते, मधु, गन्ध बखेरते पाया है? लेकिन नहीं, मेरा ख़याल ग़लत था, मैं स्वस्थ थी, सुन्दर थी और साथ ही साथ पूर्ण रूप से युवती। मेरे यौवन की उत्ताल तरल तरङ्गों ने मृदु वीचि बनकर मुझे स्वप्निल संसार के चित्र दिखाये, डुबोया नहीं, मेरे हृदय के सन्तप्त नहीं, प्रशान्त अनुराग ...



आँखों में भर-भर होठों में समा-समा मुझे अपने में डुबो लिया।

दुनिया ही की तरह मेरी भी आदत थी। एक शाम को माजी ने कहा, कुछ ऐसा मालूम होता है, मानो पड़ोस के मकान में कोई आया है?

मैं—चार महीने से तो ख़ाली ही पड़ा था।

मा—कभी-कभी फ़ोन की घंटी मैंने सुनी है।

मैं—मुमकिन है कोई आ गया हो।

मा—लेकिन फ़ोन पर किसी ने बात भी नहीं की है।

मैं घूमकर आज का पेपर देखने लगी। उस दिन मैंने भी सुना, फ़ोन की घंटी बज रही थी। उधर से किसी ने रिसीव किया। 'हलो' के बाद दो-तीन मर्तबा यस्-यस् की आवाज़ आई। हम दोनों को निश्चय हो गया कि कोई आ अवश्य गया है। उसके बाद फिर कोई पता न मिला। वही घंटी की आवाज़ या कभी-कभी किवाड़े या ट्रंक बन्द करने की। आपस में बात चलती तो यही निर्णय होता, न-मालूम कौन और कैसा है।

माजी के साथ मैं सिनेमा देखने गई थी। तमाशे का यह शानदार चौथा हफ़्ता था। लेकिन स्पेशल क्लास के बाक्सेज़ ख़ाली पड़े थे। एक पर हम दोनों बैठ गईं। पहली घण्टी बज गई। मैंने ख़ुश होकर माजी से कहा, "आज भीड़ बिलकुल नहीं है?" दूसरी घण्टी के साथ एक बाबू साहब ने हाल में क़दम रक्खा। मेरी उम्र के, दुबले और स्वस्थ, क्लीन शेव्ड, बहुत पतली धोती, पैरों में चप्पल, सुफ़ेद खद्दर का कुरता, ऊपर से जवाहर-बण्डी डटे हुए। मुझे देखकर कुछ मुस्कराये, सम्भव है, सोच लिया हो, "क्या ही सुन्दर पद्मिनी है।" आप बिला तकल्लुफ़ मेरी बग़ल की दूसरी सीट पर बैठ गये। मा से बोले, "मा, क्या आप यह तमाशा देख चुकी हैं?" मा जल गईं, मुझे भी बुरा मालूम हुआ। उत्तर न पाकर भी वे अप्रतिभ न हुए, वरन् अपनी आँखें स्क्रीन पर गड़ा दीं। मैंने कहा, माजी दुनिया गुण्डों से ख़ाली नहीं। उन्होंने झिड़का, "चुप रह, नादान कहीं की"। वे बड़े तपाक के साथ घूम-कर बोले, मा, मेरी ग़लती पर आप उनको न डाटें। मा ने बात को आगे न बढ़ाने के ख़याल से कहा, "बेटा, इसकी आदत ही ऐसी है।" वे मेरी तरफ़ फिर मुस्करा दिये। मैं ख़ून का घूट पीकर रह गई। इसके थोड़ी देर बाद मैनेजर ने आकर पूछा, (आप लाल परी की दुनिया में थे) "ओ, आप यहाँ क्यों बैठी हैं। उठो, चलो ज़नाने में बैठो।" मैंने फटकारा, आप टिकट बेचिए, मैं बैठने में स्वतंत्र हूँ। मैनेजर उन बाबूजी की तरफ़ घूर कर बोले, Is she with you? उन्होंने उसी तरह मुस्कराकर कहा Oh no. मैनेजर ने मुझसे फिर उठने के लिए कहा। मैं लाल हो गई। तड़पकर बोली That's meanness of you all. उसने झपटकर मेरी कलाई पकड़ ली, मैं ग़ुस्से से रो पड़ी। मेरे पड़ोस के बाबूजी मुस्करा रहे थे और मुँह से सीटी बजा रहे थे। मैनेजर ने मुझे अपनी तरफ़ खींचा, मैंने अपना हाथ अपनी तरफ़। वह जब तक दोबारा मेरी तरफ़ बढ़ें, तड़ाक से बाबू साहब का फुल सर्किट दायाँ लपोटा उनके बायें गाल पर पड़ा। दूसरे की ज़रूरत न हुई, ज़मीन सूँघने लगे। मैंने देखा, बाबूजी का चप्पलमण्डित दाहना पैर मैनेजर साहब के सीने पर था। और अपनी चिरपरिचित मुस्कान के साथ वे कह रहे थे, Please see that she is an Indian Lady.

बाबूजी अपनी जगह बैठ गये, जैसे कुछ हुआ ही न हो। मैनेजर साहब भी उठे, हैट वहीं पड़ी रहने दी, फटी पतलून और फूटे मत्थे का ख़याल न कर ऑफ़िस चले गये। तीसरी घण्टी हुई। कुछ बत्तियाँ गुल हो गईं। मा बहुत घबराईं। "बिभा चल, घर चलें।" बाबूजी से, "बेटा, मेरे लाल, मुझे घर पहुँचा दो। आज इज़्ज़त गई।" वे बोले माजी, मेरा खेल न ख़राब करो, इज़्ज़त



इसके साथ है—मेरी गोद में मेरे दाहने हाथ पर उन्होंने अपना बारह फ़ैर का विञ्चेस्टर रिपीटर (रिवाल्वर) रख दिया। मैंने कहा इसे आप ही रखिए, मैं तो चलाना भी नहीं जानती। वे बोले, दिखाती रहना, बस बहुत होगा। हम दोनों ने सिनेमा कैसे देखा, नहीं कह सकती। और बाबूजी ने कैसे देखा, यह भी नहीं कहा जा सकता। इधर थी प्रतिक्षण शंका, भय, चिन्ता और एक मूर्च्छा जैसी; उधर था प्रसन्नता और विनोद का अलौकिक सामञ्जस्य। मुझे सोचना पड़ा, इतनी भयानक दुर्घटना और ऐसी अनुपम गम्भीरता, या चाञ्चल्य। क्या कहूँ। कुछ मा के आग्रह ने कुछ मेरी अनुमति ने और बहुत कुछ उनके अव्यक्त, विश्वस्त, निर्लेप अनुरोध ने हम तीनों को एक साथ एक ताँगे पर चलने के लिए बाधित किया। घर पहुँचकर मा ने उनसे कहा, प्यारे हिमांशु, आज तुमने एक असहाय अबला की रक्षा की है। उत्तर में वे ज़ोर से हँस पड़े। चाय नहीं पी। पान खाते ही न थे। रात में रहने से भी इनकार। उनके बालों को सहलाती हुई मा बोली, बेटा, कल शाम को ज़रूर आना। तुम्हारा घर यहाँ से कितनी दूर है? वे उठते हुए बोले—माजी, मैं आपके पड़ोसवाले मकान में दो महीने से हूँ।

(२)

जैसा कि स्वाभाविक है हिमान्शु बाबू का रब्त-ज़ब्त मेरे घर से बढ़ गया। साथ ही साथ मेरी चिन्ता भी। अधिकतर सन्ध्या का भोजन उनका मेरे यहाँ होता। दिन में दूध पीते या फल खा लेते। मा के विचारों में पर्याप्त परिवर्तन की मात्रा बढ़ गई। घर में महरी लगाई गई, आटा बाज़ार से आने लगा। परन्तु हिमान्शु बाबू में शायद कोई फ़र्क न था। आजकल वे होटल में नहीं खाते थे, लेकिन माहवारी ३०) रु० देना वे ज़रूरी समझते थे। मेरे लिए यह बात सिवा पागलपन के और क्या थी। प्रति दिन मैं चिन्तित हो रही थी। मैं जानती थी कि हिमान्शु बाबू डी० लिट्० हैं, संयम उनके पीछे-पीछे हाथ बाँधे घूम रहा है। फिर भी यह आवश्यक नहीं कि एक युवती उन्हें अपनी बग़ल में दाबे। उनके मुँह से निकली हुई प्रत्येक बात विराग, त्याग और वीरता से भरी हुई होती है। मैं देखती थी, उनकी मतवाली बड़ी, गम्भीर आँखों में यौवन की मादकता हिलोरें ले रही है। प्रफुल्ल मुखाम्बुज, विद्या, विनय और तेज की प्रतिभा से देदीप्यमान तो था, परन्तु होठों पर अनु- लालसा का प्रस्फुटन भी विकास पा रहा था। पूछो तो मैं उन्हें एक प्रोफ़ेसर की दृष्टि से पूज्य मानकर उनकी अध्यक्षता में रातोदिन काम करना पसन्द करती थी, लेकिन एक मित्र की हैसियत से उन्हें अपने कमरे में बैठाल या उनके कमरे में बैठ घण्टों वे बातें करना, जिनमें यह निश्चय न हो, हिमान्शु बाबू सपक्ष में हैं या विपक्ष में, वे मुझसे अनुरागी हैं या विरागी, मुझे बुरा मालूम होता था। मैं निश्चय न कर सकी। दिनोदिन हिमान्शु बाबू मोहरूप और माजी मायास्वरूपा क्यों हुई जा रही हैं। ऐसा कोई समय न होता, जब मैं उनकी शिकायत न सुनती कि एक दुर्घटना के समय उचित सहायता पहुँचाने के कारण हम दोनों व्यक्तियों को उनकी कृपा का धागा, गुलामों की ज़ंजीर बनकर अपने फन्दों को परिखलबद्ध और कड़ियों को अटूट बना रहा है। उन्होंने वे ज़ोर डालकर कहतीं—मेरी इज़्ज़त बचाकर दोनों के शरीरों को ही नहीं, नैसर्गिक दिव्य आत्मा को भी तिहत्तर जन्म के लिए ख़रीद लिया है।

मित्रता हो चाहे शत्रुता, दोनों का आदान-प्रदान प्राण है। एक भी अपार होने पर असह्य है, एक का न होना भी उससे अधिक। उनमें प्रदान की ही मात्रा थी। आदान के नाम पर उनके पास 'न' भी नहीं थी। सीधी तरह इनकार करना उन्होंने न सीखा था। अपनी कौन कहे, वे दूसरों की भी परिस्थितियों को गुलाम बनाये रखते थे। यह असम्भव था कि माजी या मैं, कोई भी उनसे



इच्छा के विरुद्ध एक बात तो कर ले। जब चाहा उन्होंने पूछ लिया, मेरा कैसे विवाह हुआ। मैं कैसे सोलह साल में विधवा हुई, और मेरे ससुर-जी ने किस तरह ठेकेदारी करके रुपया इकट्ठा किया। यों ही जब रुचि हुई, उन्होंने कह डाला उनके कितनी तमाम ज़मीन्दारी है। कैसे विलायत पढ़ने गये और परीक्षा के पहले ही दिन उन्हें तार मिला कि उनकी प्राणप्रिया धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। किस धैर्य के साथ उन्होंने संसार को नश्वर माना, अपना कर्त्तव्य समझकर उस वर्ष पास हुए और दो वर्ष की पढ़ाई भी पूरी की, फिर वहाँ से लौटने पर किस हृदयहीनता के साथ समाज ने बहिष्कार किया। रियासत बड़े भाई को दे दी। अब आप त्यागपूर्ण विधुर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। काश ये सब बातें मैंने पूछी होतीं और उन्होंने बताई होतीं, मैंने सुनाई होतीं और उन्होंने सुनी होतीं तो कितना सुन्दर होता। तो शायद वे मेरे लिए एक पहेली और मैं उनके हाथों का एक खिलौना न होती। दैव! तुम साक्षी हो, मैंने तुमसे कभी अभिमान नहीं किया है, तुम मुझे अजेय या दुर्जेय न समझो। मैं कोमल हूँ, नारी हूँ। हिमान्शु की आत्मा हिमसमूह नहीं शोज्ज्वल ज्वलनराशि है, वह परिपूर्ण सुखमण्डल सुधास्रावी शरदिन्दु बिम्ब नहीं, निदाघकालीन प्रखर मरीचि-संकुल तेजोमय सौरमण्डल है। वहाँ तक पहुँचने के पहले ही मुझे जल जाना होगा। मैं उनके सामने पड़ते ही उन्हीं में समा-सी क्यों जाती हूँ? मेरी चेतना विलुप्त क्यों हो जाती है?

उस दिन इतवार था। माजी अस्वस्थ पड़ी थीं। हिमान्शु ने आकर कहा, बिभा, चलो मेरे घर तुम्हारा निमंत्रण है। मैं उत्तर ढूँढने की कोशिश न कर सकी। चल पड़ी। उनके ख़ास कमरे में भोजन का प्रबन्ध था एक छोटी मेज़ पर, फूल और दूध। एक कोच पर बैठकर बोले, आओ, शुरू करें। मैं कुछ ठिठकी। कोच पर वे बैठ चुके थे। मेज़ के बाद उनका बिछा हुआ पलँग पड़ा था। वे फिर बोले, बिभा बैठ जाओ, बैठो न, खड़े-खड़े तो दावत नहीं खाई जाती। मैं पलँग पर बैठ गई। उन्होंने कहा, "बिभा, यह मेरा पलँग है, क्या तुम्हें इस पर बैठना चाहिए?" मैंने व्याकुल होकर कहा, "क्या करूँ, कोच पर तो आप बैठे हैं।" वह—"यह मैं जानता हूँ। तुम्हें भी मेरे पास बैठना होगा। बिभा, क्षणिक दुर्बलता महा-पतन से अधिक भयंकर होती है।" मैं जाकर पास बैठ गई। खाना शुरू हुआ। मेरे भय, कम्पन, संकोच के पैर डगमगा चुके थे। विश्वस्त थी।

मैं—आपसे बातें करूँ?

वह—पूछने की ज़रूरत?

मैं—हाँ!

वह—हाँ!

मैं। पूछूँ?

वह—मैं ही बतला दूँ।

मैं—कहो!

वह—मैं तुमसे प्रेम नहीं करता।

मैं—क्यों?

वह—तुम मुझसे प्रेम करती हो?

मैं—हाँ।

वह—'हाँ' नहीं। मैं तुमसे प्रेम इसलिए नहीं करता कि तुम मुझसे प्रेम करती हो।

मैं—इसलिए नहीं करते?

वह—क्योंकि प्रेम का भोजन प्रेम नहीं, औदासीन्य है। मेरा नियम है अब विवाह नहीं करूँगा। नर-नारी का प्रेम विवाह न होने से मैं मानसिक व्यभिचार मानता हूँ।

मैं—निर्दय तो नहीं हो?

वह—जिसे आज तक न समझ सकीं, बिभा, उसका पीछा छोड़ो।

मैं—हिमान्शु हो जाऊँ?

वह—बिभा न बनाओ।

वह उठे—देखो यह तो रही गया। आलमारी खोलकर एक प्लेट नमकीन की उठाई।

मैं—आप प्रेम नहीं करते?



वह—नहीं।

मैं—शैम्पेन की बोतल से भी नहीं ?

वह—मैं उसे पीता हूँ, वह मुझे नहीं पीती।

मैं—और मैं आपको पी सकूँगी !

वह—तुम जानो !

मैं—तुम नहीं जानते ?

वह—जानता तो हूँ। कहीं यह न कहो, धोका हुआ।

मैं—नहीं कहूँगी।

वह—बस। ठीक है।

मैंने दोनों हाथों से उनका हाथ पकड़ लिया। अपना हाथ ढीला करते हुए वे बोले, बिभा, छोड़ो। वे मुस्करा रहे थे।

वह—हाथ छोड़ो।

मैं—क्यों छोड़ूँ। मेरा है। बड़ा प्यारा।

वह—बिभा, अपनी और प्यारी ही चीज़ छोड़ दी जाती है। पराई और अप्रिय वस्तु का त्याग कैसा ?

मैंने हाथ छोड़ दिया। रात के दस बज गये थे। बोले, सो रहो। पलँग पर जाओ।

मैं—आप रोक चुके हैं।

वह—अब कह रहा हूँ

मैं जाकर लेट गई। वह उठे, अपनी दवा पी। बोले Good Night. कोच पर पड़ रहे। तीस मिनट बाद मैंने देखा, जैसे दिन भर का थका कोई पथिक श्रान्ति-भवन में पड़ा हो। उठी आकर मा के पास लेट रही।

(३)

बाँसबरेली ज़िले में माजी के मामा का मकान है। गर्मी की छुट्टियों में मुझे वहाँ रहना पड़ा। दो महीने की एक लम्बी-सी अवधि होती है। मेरी आदत है, जो हुआ, हुआ, जो होगा होगा, जो है वही है। हिमान्शु बाबू के मिलने के पहले उनसे मैं बिलकुल अनभिज्ञ थी। बनारस में ही उनकी तमाम बातों को मैंने उन्हीं के पास छोड़ दिया था। यदि कुछ साथ लाई तो उनको दया और शिक्षा। प्रसन्नतापूर्वक कोई कुछ दे दे, उसका अस्वीकरण मनुष्य के लिए पाप हो सकता है। मैंने अपनी आत्मा को यों सन्तोष दिया, मैंने उनसे कुछ नहीं लिया। वे पुरुष थे और भारतीय, मैं भी भारतीय नारी रही। उनमें कोई ऐसी बात न थी, मैं उन्हें सोचूँ, वे निर्बल न थे, मैं उन्हें सहायता पहुँचाऊँ। उनमें प्रेम था, प्रमाद-रहित, सन्तृप्त अभिलाषा थी एक प्रशान्त भूख, जिसे मैं क्या, समय को छोड़कर, कोई भी समर्थ न था न है, जो मिटा दे। एक छोटा-सा उद्यान हरा-भरा रक्खा जा सकता है, एक नाला अपनी गति-विधि मनुष्य को सौंप सकता है। किन्तु महासागर को कौन और कैसे परिष्कृत कर सके। समुद्र तो चुल्लू में नहीं आ सकता। मैं कर ही क्या सकती थी, नारी होकर, हिमान्शु को भूल जाने के सिवा। यही मेरे लिए सम्भव था। यही श्रेयस्कर था। यही था 'शिवा:पन्थान:'।

छुट्टी के सात दिन बाक़ी रह गये। मा के मामा के लड़के इलाहाबाद से आये चार दिन की छुट्टी लेकर मा से मिलने के लिए। लड़के चचा या मामा थे। मेरी स्वतन्त्रता में, रूप ने अवस्था-भेद होने पर भी अनुराग पैदा कर दिया। आपकी आयु पैंतालीस की, आय थी पचपन और सौ बाढ़ की। पुलिस-इन्सपेक्टर थे, शराब क्यों न पीते। बीबी मर चुकी थीं, मा मौजूद थीं। लड़का एक भी नहीं, लड़कियाँ पाँच, २३, २० [illegible] १७, १३ वर्ष वाली। बड़ी बेवा, बाक़ी कुमारी। जिन लोगों का यह विश्वास है कि कालेज के लड़के विलासी होते हैं, उन लोगों ने इन जैसों को नहीं देखा होगा। आप सात फ़ीट लंबे, साढ़े [illegible] चौड़े, ईज़ी चेयर में कभी-कभी "ठकर मुसाहि[illegible] ढा लेते थे। लोग अनुमान कर लेते थे, शायद इनके गर्दन भी हो। मेरी जान कन्धों पर [illegible] चबूतरे पर मटकी जैसा औंधाया था। चेहरा चेचकरू, पुरानी फ़ोर्ड के रेडियेटर-सा, नक़्क़ाशी[illegible] जिस पर वर्ण-समानता के कारण गोबरैले-[illegible]

ख़िज़ाबी मूछें, इमली के चियाँ-सी आँखें क़रीब-क़रीब नदारद, भौंहें बग़ौर देखकर जानी जा सकती थीं। आपको कपड़ों का ख़ास शौक़ था। चूड़ीदार पाजामा, शेरवानी, जैपुरी चुटकी और गोटे का साफ़ा पहन आप घर आते थे। आफ़िस ड्रेस, आपने बताया, जोधपुरी ब्रीचेज हण्टिङ्ग कोट ख़ाकी थी। कप्तान साहब से ख़ूब खेला-मेला थी, रोज़ शाम के वक़्त वहाँ फ़ुल सूट और बूट में जाते। यों ही जब कब दिलबहलाव के वक़्त आप शान्तीपुरी धोती, भागलपुरी का कुर्ता और काशी-सिल्क का डुपट्टा पहन शाम को बाज़ार टहल जाते। उनकी छिपी-छिपी राय में हर शख़्स जैसे भी हो सके दुनिया में ज़िन्दगी का मज़ा लूटने के लिए आया है।

इन्सपेक्टर साहब ने माजी को समझाया, कल चलना होगा, स्टेशन पाँच मील है, रात में चलें, डेढ़ के क़रीब मीरगंज में गाड़ी मिलेगी। माजी और उनकी बड़ी बेटी बहली पर कुछ पहले चल दीं। मैं उनके साथ एक घण्टे बाद ताँगे पर रवाना हुई। सोचा था, रास्ते में साथ साईस है ही, स्टेशन पर मा मिल ही जायँगी, फिर कोई भूत तो है ही नहीं, चल पड़ी। क़रीब तीन मील के बाद छोटा-सा जङ्गल और एक नाला पड़ा। असाढ़ का पूर्ण चन्द्र घन मुक्त निर्मल गगन में विहँस रहा था। जङ्गली बेला और औंदी कुञ्ज से टकराकर वायु के झोंके जड़-चेतन में चेतनता बो रहे थे। निम्नोन्नत भू-भाग जल-सिक्त वारिपूर्ण हँस-हँस मेरी आँखें अपनी तरफ़ खींच रहा था, मानो हिमांशु की मोहक मुस्कान थी। नवोदित मरकत मणि ललित दूर्वादलराशि मुझे उनके आलोल कुन्तल सदृश देख पड़ी। प्रसन्न प्रकृति उनके हृदय-जैसी गम्भीर थी। मैंने आँखें मूँद लीं। विश्वप्रेमी का हृदय प्रकृति का रूपान्तर है। इन्सपेक्टर साहब ने ताँगा रुकवाते हुए कोचवान से कहा, "अरे अँगनुआ, बड़ा ग़ज़ब हो गया, दौड़ बैठक में एक बैग रक्खा है, सरकारी काग़ज़ वहीं रह गये। वह ताँगा छोड़, मुस्कराता हुआ सीधा भागा। दो मिनट बाद कुछ गीं-गीं अस्फुट शब्द करते हुए इन्सपेक्टर साहब ने मुझे अपनी बाँहों में कस लिया। मैं चिल्लाई, छटपटाई, इन्सपेक्टर साहब को लिये ताँगे से नीचे आ गिरी। उनके भारी बोझ से नीचे दबकर मेरा दम घुटने लगा। वह नरपशु अर्द्धचेतन दशा में अपनी नारकीय ज्वालामय उच्छ्वासों से मुझे जला रहा था। मैं बेहोश हो रही थी, जैसे हृत्कम्पन स्थगित-सा हो गया, फिर मालूम पड़ा मानो सीने पर से बोझा हट रहा है। एक पूरी साँस ली। आँखें खुलने पर देखा, हिमांशु बाबू इन्सपेक्टर साहब का पैर पकड़े कुछ दूर घसीट ले गये हैं। मैं उठ बैठी। आहट पा वे मेरी ओर घूमे, बढ़े, बोले, आपके चोट तो नहीं लगी।

मैं—बिभा हूँ।

उन्होंने कहा, यह बात मुझे डेढ़ घण्टा पहले से मालूम थी। इन्सपेक्टर साहब ने अपनी सहायता के लिए अँगनू को पुकारा। बड़ा-सा छुरा हाथ में लिये वह हिमांशु की तरफ़ झपटा। रिवाल्वर की दो गोलियाँ साईस का सीना तोड़ गईं। वह इन्सपेक्टर से बोले—आप न घबराइए, अभी आप को दुनिया का मज़ा लूटना बाक़ी है। इन्सपेक्टर साहब गरजे—"खड़ा रह कमीना कहीं का, अभी इस शैतानी का मज़ा चखाता हूँ।" उन्होंने अपनी जेब में हाथ डाला। हिमांशु बाबू हँस पड़े—"यह रिवाल्वर आप ही का है। अभी नहीं, सुबह आपको मिलेगा।" यह कहकर तीनों कारतूस धड़ाधड़ ख़ाली कर डाले। पास नाले में दो मर्द गहरी कूँड़ थी। उसमें रिवाल्वर फेंक दिया और बोले, "इसे कल निकलवा लीजिएगा।" मुझे साथ ले चल पड़े। चलते-चलते कहा, "इन्सपेक्टर साहब, दिमाग़ की मौज़ूनियत में, अगर वह दूसरे पहलू चले तो सेल्फ़ डिफ़ेन्स (आत्मरक्षा) का क़ानून पढ़कर समझ लीजिएगा। आपका साईस, आपके रिवाल्वर से, जो बेहोशी की हालत में आपकी



जेब से गिर पड़ा था, एक की इज़्ज़त, दूसरे की जान बचाने के लिए मारा गया है।

चलते-चलते !

वह—बिभा, बड़ी प्यारी रात है, बड़ी प्यारी तुम हो।

मैं—आप यहाँ कैसे आ पहुँचे ?

वह—तुम मुझसे बहुत प्रेम करती हो ?

मैं—यह आपने दूसरी बार मेरी रक्षा की।

वह—आज इच्छा हो रही है कि पूछूँ क्या तुम मेरी हो ?

मैं—पूछो न ?

वह—चाँदनी रात थी, टहलने निकला था, तुम मिल गईं।

मैं—आप बनारस से यहाँ कैसे आये ?

वह—मैं कैसे आया ? वह दे तो सामने अमरपुर है। यहीं अपना इलाक़ा और मकान है।

मैं—क्या मैं आपके घर चल रही हूँ ? वहाँ तुम्हारा और कौन है ?

वह—तुम्हारी मा।

मैं—कैसे ?

वह—बड़े भैया स्टेशन उन्हें लेने जा चुके हैं। परसों सब साथ बनारस चलेंगे।

मैं—हिमांशु, आज यह बता डालो मुझे
खींच रहे हो, और ख़ुद क्यों हट रहे हो !
मैं निर्णय सुनूँगी। तुम्हें मुझसे प्रेम है या
मुझे दुर्बल, असहाय या अपनी मानते हो।

वह—बिभा, हिमांशु के विचारों से तुम
नहीं। मैं प्रेम करता हूँ। तुम संयम
संसार को न अपनाओ, अपने को उसे दे
जैसा स्वाभाविक है, एक दिन हमने सोचा
विद्या मेरी है। तुमने भी सोचा होगा,
तुम्हारे हैं। न तुम कुछ कर सकीं, न मैं
सका। अब हमें यह चाहिए; ऐसे रहें, दोनों
आत्माएँ दोनों के ऊपर अमृत बरसायें।
विश्वास है, आज मैं न होता तो विद्या मेरी
रहती। क्या कमल नहीं चाहता होगा, तुम
वाह न करके नन्दन-कानन में उसकी
बनो जाकर। बिभा, कुछ खोकर ही बहुत
मिलता है। हम तुम दोनों ही सुहाग-रात
आनन्द लूट चुके हैं। आज उसकी स्मृति
से अधिक मधुर है। बिभा, उसे न मेटो।
को पजनेवाले भारतीयों का विवाह तोड़ने-जोड़ने
वाला ठेका नहीं। बलिदान का बन्धन होता है।

मैंने प्रसन्न हृदय से स्वीकृति दे दी।

कैलाश

(उर्दू भाषा में)

श्रीमदनमुरारीलाल सक्सेना बी० ए० (आनर्स)

पिछले भादों के महीने में, जिस दिन कृष्ण का जन्म मनाया जानेवाला था, लखनऊ के उन बाज़ारों में, जिनके क़रीब हिन्दुओं की बस्ती है, एक ग़ैर-मामूली चहल-पहल थी। रकाबगंज के उस बाज़ार में, जहाँ सिर्फ़ तरकारी बिकती थी, कई फलों की दूकानें खुली हुई थीं। हर दूकान पर ख़रीदारों का हुजूम था, लेकिन अक्सर तमाशाई भी थे जो महज़ दूकानों की आरास्तगी से अपना दिल भरके चले जाते थे। इन्हीं तमाशाइयों में कैलाश भी था, जो ज़ाहिर सिन में नौ या दस बरस का मालूम होता था। उसके तन पर एक मैली-सी धोती थी और एक फटी हुई क़मीज़। उसके गोरे-गोरे गाल गर्दआलूदा हो गये थे। होंठ ख़ामोशी की वजह से चिपक गये थे। वह अपनी उन सुर्ख़ आँखों से, जिनको वह बार-बार उँगलियों से मल डालता था, दूकानों की आरास्तगी देख रहा था। कभी-कभी जब बेख़ुदी में उसका हाथ क़मीज़ की जेब में जाता और ख़ाली निकल आता तो वह बड़ी हसरतभरी निगाहों से दूकानों में सजे हुए खिलौनों को देखता हुआ आगे बढ़ जाता। इतने में एक लड़के ने पीछे से कैलाश के शाने पर हाथ रख दिया। कैलाश ने मुड़के देखा कि उसका दोस्त नरायन खड़ा मुस-करा रहा है। नरायन ने कहा कि कैलाश, आज हमारे यहाँ झाँकी बन रही है, तुम रात को आना। यह कहके वह तो चला गया, लेकिन कैलाश के नन्हें-से दिमाग़ में एक तूफ़ान बरपा हो गया। लमहे भर



इस लेख के लेखक



में उसके चेहरे ने सैकड़ों रंग बदल डाले। कभी उसकी नज़रें इस तरह उठतीं कि जैसे वह नरायन को देख रहा हो कि कहाँ गया और कभी इस तरह झुकतीं कि जैसे वह कुछ ज़मीन में ढूँढ रहा हो। कभी उसके चेहरे से किसी इरादे के आसार पाये जाते और कभी वह सुकूत तारी हो जाता, जिसका समझना इन्सानी अक़्ल के बाहर है। मालूम नहीं, किस ख़्याल ने उसके पैरों को हरकत दी और वह आहिस्ता-आहिस्ता अपने घर की तरफ़ चल दिया।

× × ×

मशकगंज के मुहल्ले में एक छोटा-सा पुराना मकान था, जिसके एक दालान में कैलाश की मा पारबती खाना पका रही थी। मकान में सिवा पारबती के और कोई नहीं था; क्योंकि जब उसको ज़रा-सा पानी लेना होता या हाँडी से घी निकालना होता तो वह ख़ुद ही उठकर जाती और जल्दी से आ जाती। चूल्हा बार-बार बुझ जाता, जिसको मुँह से फूँकने से उसकी आँखें सुर्ख़ हो गई थीं। उसके चेहरे पर पसीना आ रहा था, जिसको वह बार-बार अपने डुपट्टे के आँचल से पोंछ डालती थी। उसके हाथ तो काम में लगे थे, मगर ध्यान कैलाश की तरफ़ था; क्योंकि यह उसी का इन्तज़ार था, जो ज़रा-सी आहट पर उसकी निगाहों को दर्वाज़े की तरफ़ फेर देता था।

दफ़अतन् दर्वाज़े के खुलने की आवाज़ हुई और पारबती का गर्मी से तमतमाया हुआ चेहरा फूल की तरह खिल गया। यह एक तरकीब थी, जिससे वह अपने ग़म को कैलाश से छिपा डालती थी और उसको रोते से हँसा देती थी। लेकिन आज जब उसकी मुसकिराहट से कैलाश के चेहरे पर कोई असर न हुआ तो घबरा गई और पूछा, क्यों, कैलाश, क्या हुआ? कैलाश ने कोई जवाब नहीं दिया और ऐसी मुहब्बत से अपनी मा के गले में दोनों हाथ डाल दिये कि ग़रीब पारबती का दिल धड़कने लगा।

कैलाश ने कहा—अम्मा, आज हम भी [illegible] बनायेंगे, नरायन के वहाँ झाँकी बन रही है। [illegible] मामूली सवाल पारबती के लिए बहुत कुछ [illegible] एक तरफ़ अपने बच्चों की मुहब्बत और [illegible] तरफ़ अपनी इन्तहाई मुफ़लिसी। उसका [illegible] बेक़रार हो गया। उसको वह दिन याद आ [illegible] जब कैलाश के पिता ज़िन्दा थे और किसी [illegible] की कमी न थी। वह रोना चाहती थी, [illegible] कैलाश सामने खड़ा था और उसके जवाब [illegible] बेताबी से इन्तज़ार कर रहा था। पारबती ने [illegible] कर कहा—अच्छा। कैलाश की ख़ुशी की कोई [illegible] न रही। उसके होठों पर बेसाख़्ता मुसकिरा[illegible] आ गई।

पड़ोस में एक वकील साहब रहते थे, [illegible] घर का काम अक्सर पारबती कर दिया [illegible] थी। कैलाश को समझाके कि यहीं रहना [illegible] अभी आई, पारबती वकील साहब के मकान [illegible] गई और उनकी बीबी से कुछ ऐसे [illegible] अलफ़ाज़ में अपनी ज़रूरत बयान की कि [illegible] सिर्फ़ आठ आने पैसे ही निकालकर नहीं [illegible] बल्कि बहुत कुछ समझाया भी कि तुम ज़रा [illegible] फ़िक्र न किया करो, मैं तुम्हारी मदद के लिए [illegible] वक़्त तैयार हूँ।

जब पारबती अपने मकान में वापस [illegible] तो देखा कि कैलाश ज़मीन पर झुका हुआ [illegible] उठा रहा है। क़रीब आकर देखा कि [illegible] घड़ा टूट गया है और चने की दाल ज़मीन [illegible] बिखरी हुई है, जिसको कैलाश दोनों हाथों [illegible] समेट रहा है। पारबती के आ जाने से कैलाश [illegible] बज़ाहिर कोई असर न हुआ; क्योंकि वह [illegible] तरह ज़मीन पर झुका हुआ था और उसके [illegible] दाल को समेट रहे थे, लेकिन दफ़अतन् हाथों [illegible] हरकत में सुस्ती पैदा हो जाने से ज़ाहिर हो [illegible] कि मा के ग़ुस्से का ख़ौफ़ उसके दिमाग़ पर [illegible] हो रहा है। पारबती ने एक लमहे में इस [illegible] को समझ लिया। कैलाश का झाँकी बनाने [illegible]



चौक में थी और गरम मसालेवाली अलमारी को ख़ाली करना और इस इन्तज़ाम में दाल के घड़े को गिरा देना यह तमाम नक़्शा उसकी नज़रों में फिर गया। पारबती ख़ामोश थी। क्या यह नाराज़गी की ख़ामोशी थी? नहीं, वह सोच रही थी कि वह कैलाश को किस तरह हँसा दे। आख़िरकार वह झुकी और इतना झुकी कि उसका चेहरा कैलाश के चेहरे के पास पहुँच गया। फिर उसने जो ज़रा मुसकिरा के कैलाश की तरफ़ देखा तो कैलाश ने मारे झेंप के उसके दामन में अपना मुँह छिपा लिया। पारबती ने मुसकिराते हुए कहा कि यह तुमसे किसने कहा था कि ख़ुद ही सब इन्तज़ाम कर डालो। कैलाश ने मा का जब यह रुख़ देखा तो अपनी हिमाकत बयान की, जिसको पारबती पहले ही समझ चुकी थी।

पारबती ने चन्द पैसे कैलाश के हाथ में देकर कहा कि अच्छा अब तुम बाज़ार जाओ, चार पैसे के रंगीन काग़ज़, दो पैसे के सुनहरे और रुपहले सितारे, दो पैसे की मोमबत्तियाँ और दो पैसे का एक गटापारचे का बबुआ ले आओ। कैलाश ने इस हिसाब को अच्छी तरह ज़हेननशीन कर लिया और नीची निगाहें किये हुए दर्वाज़े तक आहिस्ता-आहिस्ता गया; क्योंकि दाल के घड़े को लुढ़का देने की झेंप उसको अभी तक सता रही थी। लेकिन ज्यों ही उसने दर्वाज़े के बाहर क़दम रक्खा, एक फ़र्राटा भर दिया और ज़रा-सी देर में फिर उसी बाज़ार में पहुँच गया, जहाँ कुछ देर पहले वह हसरत-भरी निगाह से जब किसी खिलौने को देखता था तो हर खिलौना उसकी तरफ़ से निगाहें फेर लेता था। लेकिन अब तो वही खिलौने उसकी आँखों में आँखें डाल के मुसकिरा रहे थे और एक ऐसी ज़बान में, जिसको सिर्फ़ कैलाश समझ सकता था, कह रहे थे कि मुझे अपने आग़ोश में ले लो। कैलाश दिल ही दिल में हँसता था; क्योंकि वह दुनियावालों के उस फ़लसफ़े से, जो इन्सानों की ज़िन्दगी तलख़ कर देता है, अभी तक नावाक़िफ़ था। उसने अपनी मा की हिदायत के बमूजिब सब चीज़ें ख़रीदीं और दौड़ता हुआ घर वापस आ गया।

कैलाश ने घर में आकर देखा कि दालान की दाहनी तरफ़वाली कोठरी साफ़ हो चुकी है और बीच में अलमारी ईंटों के एक चबूतरे पर रक्खी हुई है। उसके आगे उसकी मा कुछ और ईंटें तरतीब से लगा रही है। कैलाश ने पहुँचते ही पूछा, 'अम्मा, यह क्या कर रही हो?' पारबती ने जवाब दिया कि देखो अलमारी का तो सिंहासन, उसके आगे यह ईंटों की सीढ़ी और उसके आगे मैं एक छोटा-सा हौज़ बना दूँगी जो पानी से भर दिया जायगा, उसमें एक काग़ज़ की नाव बना के छोड़ दी जायगी। इस एहतमाम का ज़िक्र सुनकर कैलाश को यक़ीन हो गया कि उसकी झाँकी नरायन की झाँकी से कहीं ज़्यादा अच्छी रहेगी। वह अपने को उस वक़्त बहुत ख़ुशक़िस्मत ख़्याल कर रहा था; क्योंकि वह जानता था कि जैसी ज़हीन और होशियार उसकी मा है, वैसी दुनिया में किसी की मा नहीं।

पारबती ने आटा छानकर लेई बनाई और रंगीन काग़ज़ से अलमारी को मँढ़ना शुरू किया। ज़रा देर में आधी से ज़्यादा अलमारी सज गई। कैलाश के लबों पर मुसकिराहट खेलने लगी। वह कभी पास से अलमारी को देखता था और कभी दूर से। वह हर तरह से भली मालूम होती थी। उसकी आँखें थकी जाती थीं, लेकिन उसके दिल को सेरी नहीं होती थी। वह थोड़ी-थोड़ी देर के लिए वहाँ से हट भी जाता था और फिर आकर अलमारी को देखता था। इस तरह उसको एक ख़ास लुत्फ़ आता था। आख़िरकार अलमारी सज गई। अब पारबती ने बबुए के लिए कपड़े सीना शुरू किये। कैलाश ने सोचा कि इस चीज़ को मैं तभी देखूँगा, जब यह बिलकुल तैयार हो जायगी। लिहाज़ा अगर बाज़ार का एक गश्त और लग जाय



तो क्या हर्ज है। इस ख़्याल के आते ही वह बाज़ार की तरफ़ चल दिया।

× × ×

कैलाश दूकानों की आरास्तगी से लुत्फ़अंदोज़ हो रहा था। लेकिन बार-बार वह इधर-उधर नज़र करके इस तरह देखता था कि जैसे वह किसी को ढूँढ रहा हो। शायद उसका दिल यह चाह रहा था कि अगर उसको कोई उसका दोस्त मिल जाय तो वह उससे कहे कि हमारे यहाँ झाँकी बन रही है, तुम रात को आना। इतने में नरायन दिखाई दिया। अब की वह हाथों में फूलों के दो ख़ुशनुमा गुलदस्ते लिये था। कैलाश ने देखते ही पूछा—'क्यों नरायन, यह तुम कहाँ से लाये?' नरायन ने इशारा करके बताया कि देखो वह हार-वाला खड़ा है, उसकी टोकरी में बहुत-से गुलदस्ते हैं। चार-चार पैसे देता है। मैंने तो अभी दो ही ख़रीदे हैं, दो फिर ले जाऊँगा। नरायन यह कहके आगे बढ़ गया।

कैलाश फिर उसी शौक़ की दुनिया की सैर करने लगा, जहाँ की दिलफ़रेबियाँ इन्सान को इतमीनान से नहीं बैठने देतीं। उसका दिल चाहने लगा कि कहीं से उसको भी ऐसे गुलदस्ते मिल जाते, लेकिन पैसों का सवाल बड़ा दुशवार था। वह जानता था कि उसके लिए उसकी मा हरगिज़ पैसे नहीं देगी; क्योंकि गुलदस्तों की क़ीमत बहुत ज़्यादा थी। अपनी तंदुरुस्ती और दूसरों से मुक़ाबले की हवस में किसी चीज़ की बेइन्तिहा ख़्वाहिश इन्सान को सिड़ी बना दिया करती है। हिटलर और मुसोलिनी को भी इसी क़िस्म का जिनून है। फिर अगर कैलाश के दिमाग़ में यह ख़्याल पैदा हुआ कि फूल किसी बाग़ से माली की नज़र बचा के तोड़ लाये तो उसने क्या गुनाह किया।

× × ×

मशकगञ्ज से कुछ फ़ासले पर लाला गोकुलचंद का बाग़ था। उसके फ़ाटक पर एक लड़का खड़ा था; जो बार-बार फाटक के अन्दर झाँकता था मगर आगे क़दम बढ़ाने की हिम्मत न होती थी। यह कैलाश था। माली का डर उसको अन्दर जाने से रोकता था। फूलों के पौदे सामने ही नज़र आ रहे थे, जिनको देख-देखकर कैलाश के दिल में शौक़ और ख़ौफ़ की जंग हो रही थी। आख़िरकार शौक़ ने फ़तह पाई और कैलाश अपने दिल को यह समझा के कि माली कहीं गया होगा बाग़ के अन्दर दाख़िल हो गया। फूलों से लदी हुई शाख़ें उसकी तरफ़ झुकने लगीं। उनकी भीनी-भीनी महक के साथ आओ-आओ की धीमी-धीमी आवाज़ें हवा में फैलने लगीं। कैलाश के होठों पर कभी मुसकिरा-हट आती थी और कभी उसकी आँखें घबराये हुए शिकार की तरह इधर-उधर देखने लगती थीं। उसने सोचा कि अब क्या करूँ। कौन से फूल तोड़ूँ और कितने तोड़ूँ। जब कुछ समझ में न आया तो उसने यह तै किया कि बस एक तरफ़ से थोड़े-थोड़े फूल तोड़ चलो। इस बात का फ़ैसला होते ही एक छोटा-सा हाथ झाड़ी की तरफ़ बढ़ा। पत्तियों ने जगह दी। नाज़ुक चुटकियों ने एक फूल को उसकी शाख़ से जुदा कर दिया। ऐसा मालूम हुआ, जैसे सब फूलों ने मिलकर कहा कि 'आओ ख़ुदा हाफ़िज़'। कैलाश उनके जज़्बात को ख़ूब समझता था, इसलिए रुक-रुक के हाथ बढ़ाता था और बहुत नरमी से हर फूल को उसकी शाख़ से जुदा करता था। थोड़ी देर में उसकी क़मीज़ का दामन फूलों से भर गया। वह बहुत ख़ुश हुआ। उसने दामन में अपना हाथ डाला। सब फूल खिलखिला के उसकी उँगलियों में इस तरह लिपट गये, जैसे बच्चे अपने बूढ़े दादा को देखकर उसकी टाँगों में लिपट जाते हैं। कुछ फूलों को उसने मुट्ठी में लिया और हाथ ऊँचा करके फिर दामन में छोड़ दिया। रंग-रंग के फूलों का इस तरह दामन में गिरना उसको अजीब लुत्फ़ दे गया। उसके मासूम छोटे दिल में गुदगुदी होने लगी। मारे ख़ुशी के उसके होंठों पर बेसाख़्ता हँसी आ गई।



आँखें चमकने लगीं । उसने सोचा कि फूल तो बहुत-से हो गये । अब घर लौट चलूँ । घर की याद आते ही वह उन दिलचस्प ख़यालात में ग़र्क़ हो गया, जिनमें अक्सर बड़े-बड़े समझदार लोग जब डूब जाते हैं तो उभरने का नाम नहीं लेते । वह सोचने लगा कि जब मैं अम्मा के पास जाकर खड़ा हूँगा तो वह मेरे दामन को देखकर ज़रूर पूछेंगी कि इसमें क्या है । मैं कहूँगा कि बूझो । वह कहेंगी कि कंकर-पत्थर भर लाया होगा, मगर जब मैं सारे फूल उनके सामने बिखरा दूँगा तो उनको बड़ा ताज्जुब होगा । वह पूछेंगी यह कै पैसे के लाये और तुमको पैसे कहाँ से मिले । मैं कहूँगा, मैंने एक पैसा भी नहीं ख़र्च किया । यह तो मैंने लालाजी की बगिया से तोड़े हैं । वहाँ माली था नहीं । मैं चुपके से गया और बस बहुत-से फूल तोड़ लाया । अब तुम मुझको उसके चार गुलदस्ते बना दो । बाक़ी जो बचेंगे, उनके मैं हार बनाऊँगा । यह सोच कर कैलाश ने फाटक की तरफ़ रुख़ किया । मगर ख़यालात का सिलसिला अभी तक क़ायम था । वह अपने दिल से कह रहा था कि हाँ फिर मैं रात को जब झाँकी बनाऊँगा तो नरायन को बुलाऊँगा । वह हमारे गुलदस्तों को देखकर कहेगा कि यह तो हमारे गुलदस्तों से भी अच्छे हैं, तुमने कहाँ से ख़रीदे हैं । मैं कह दूँगा कि भाई मैंने ख़रीदे तो हैं नहीं, मैं तो लालाजी की बगिया से फूल तोड़ लाया । गुलदस्ते मेरी अम्मा ने बना दिये । नरायन कहेगा क्या बतायें, हमने भी अपनी अम्मा से यही कहा था, मगर उन्होंने कहा कि पैसे ले लो, बाज़ार से जाकर ख़रीद लाओ । बगिया न जाना, वहाँ माली देखेगा तो मारेगा ।

कैलाश अपने दिल से ऐसी ही मज़े-मज़े की बातें करता हुआ झाड़ियों के बीच ख़रामाँ-ख़रामाँ चला जा रहा था कि कुछ दूर पर बाग़ के एक कोने में मेंहदी की झाड़ियों के पीछे किसी चीज़ को हरकत करते हुए देखकर इस तरह ठिठक गया, जैसे कोई शख़्स किसी ख़ूँख़्वार जानवर को झाड़ी के पीछे देखकर सहम जाय । उसको शक हुआ कि माली है और उसका शक ठीक भी था ; क्योंकि फ़ौरन् बाग़ के उसी कोने से "कौन है रे !" की डरावनी आवाज़ बलन्द हुई, जिससे बाग़ के दरो-दीवार हिल गये । दरख़्तों की पत्ती-पत्ती काँप उठी । अक्सर फूल मारे ख़ौफ़ के ज़मीन पर गिर पड़े । कैलाश का दिल धड़क रहा था कि माली सामने आकर खड़ा हो गया । पारबती का ग़रीब लाल इस वक़्त बड़ी मुसीबत में था । नन्हा-सा दिमाग़ कुछ काम नहीं करता था । उसकी निगाहें झुकी हुई थीं । उसकी छोटी-छोटी उँगलियाँ, जो ज़रा देर पहले फूलों से खेल रही थीं, अब दामन को चुटकियों से मसल रही थीं । उसका बदन भर काँप रहा था । ऐसा मालूम होता था कि जैसे बुख़ार आनेवाला है ।

माली लड़कों की इस हरकत से बहुत आजिज़ था । उसने जब देखा कि कैलाश के दामन में फूल भरे हैं तो मुँह से तो कुछ नहीं कहा, लेकिन अपना नजिस लोहे का सा हाथ कैलाश के कान की तरफ़ बढ़ा दिया । कैलाश की आँखें ख़ुदबख़ुद बन्द हो गईं । उसने महसूस किया कि कान उमेठ दिये गये, दर्द बहुत हुआ, आँखें खोलीं तो आँसू झलक आये मगर मुँह से आवाज़ न निकली । उसने दिल मज़बूत कर लिया कि अब जो कुछ आफ़त आयें, वह बरदाश्त कर लेगा । माली का हाथ फिर उठा और तेज़ी से उसके दाहने गाल पर गिरा । कैलाश का दिमाग़ चकरा गया । माली चाहता था कि एक और रसीद करे, मगर कैलाश के हाथ से दामन छूट गया । फूल सब बिखर गये । दो छोटे-छोटे काँपते हुए हाथ ऊपर उठ गये । आँसुओं से डबडबाई हुई आँखें ज़ालिम से फ़र्याद माँगने लगीं । माली का दिल अब भी न पसीजा, मगर ज़रा रुक गया । कैलाश समझा कि अब नजात मिली, मगर कमबख़्त ने फिर मारा । इस तमाचे का पड़ना था कि कैलाश के मुँह से बेइख़्तियार निकल गया 'अरी अम्मा !' काँपती



हुई आवाज़ फ़िज़ा में फैल गई। माली की औरत ने जो सुना तो दौड़ी आई। वह पारबती के पास जाकर अक्सर बैठती और बातें करती थी। कैलाश को देखते ही पहचान गई और जल्दी से उसको अपनी आग़ोश से लगा लिया।

× × ×

पारबती बबुए के लिए कपड़े सी चुकी थी। वह उठी और छप्पर से एक बाँस का टुकड़ा निकाला। उसकी तीलियाँ छीलकर पालना बनाना शुरू किया। चाक़ू से तीलियाँ छीलती जाती थी और मुसकिराती जाती थी। शायद उसके दिल में यह ख़याल गुज़र रहा था कि कैलाश देखेगा तो बहुत ख़ुश होगा। ज़रा-सी आहट होती और वह मुसकिराकर उधर देखने लगती। वह सोच रही थी कि कैलाश जब पालना देखेगा तो हँसता हुआ दौड़ेगा। कभी पालना उठायेगा, कभी उसकी सूरत देखेगा और झेंप जायगा। वह एक सिलसिले में सैकड़ों सवाल कर जायगा। जवाब वह सिवा मुसकिराने के और कुछ न दे सकेगी। इतने में किसी ने बाहर से आवाज़ दी। पारबती दरवाज़े की तरफ़ देखने लगी। फिर बोली कौन? मुन्नी, आओ चली आओ। मुन्नी कैलाश का हाथ पकड़े हुए अन्दर आई। पारबती के हाथ से चाक़ू छूट गया। झपट कर जल्दी से उसने कैलाश को अपनी आग़ोश से लगा लिया। कैलाश के आँसू अभी तक जारी थे। पारबती ने घबरा के पूछा, चलो कहीं चोट आ गई? मुन्नी ने मुहब्बतआमेज़ लहजे में कहा कि नहीं बगिया में फूल तोड़ रहा था। माली ने देखा वह जानते नहीं थे। कहीं मार दिया। वही बेचारा रोने लगा। पारबती के दिल को दुख तो बड़ा हुआ, मगर कैलाश से कहने लगी—ख़ैर, हम तुमको और फूल मँगा देंगे। तुम मुझसे कहते तो मैं तुमको कहीं न कहीं से मँगा देती। इस वक़्त पारबती की आँखों में आँसू आने ही को थे, मगर ज़ब्त कर गई। मुन्नी समझ गई। कैलाश की तरफ़ मुँह करके बड़े दुलार से कहने लगी—अरे, जितने कहो ला दूँ। बेटे, तुम मुझसे आके कहते तो मैं ख़ुद तुमको तोड़ देती।

पारबती का दिल ज़ख़्मी तो हो चुका था, मगर बनावटी मुसकिराहट से कहा—लो, बस फिर क्या। मुन्नी तमाम फूल ही फूल लाकर ढेर कर देगी। पारबती अपने आँचल से कैलाश के आँसू पोंछ रही थी, मगर आँसू थे कि थमते ही न थे। पारबती जितने दुलार-प्यार से कहती, उतने ही ज़्यादा बेटे की आँखों से आँसू बह-बह के मा के नाज़ुक दिल को बेक़रार कर देते। यह [illegible] ऐसा था, जिसका राज़ पारबती की समझ में न आया। वह हैरान थी कि किस तरह चुप करे। कैलाश सिसकियाँ ले लेकर रोया, यहाँ तक कि मा की गोद में सिर रक्खे हुए सो गया। मुन्नी वापस चली गई। पारबती जब अकेले हुई तो कैलाश को देख-देखकर बहुत रोई। वह सो गया था, मगर सिसकियाँ अब भी आ रही थीं। पारबती बहुत ज़ब्त करती थी, मगर कुछ ख़्याल करके फिर रोने लगती।

पारबती जब बहुत रो चुकी तो आहिस्ता से कैलाश का सिर तकिये पर रख दिया। उस वक़्त उसको कैलाश का माथा किसी क़दर गरम मालूम हुआ, मगर यह ख़्याल करके कि यह ज़्यादा रोने की वजह से होगा, वह उस कोठरी की तरफ़ चली गई जहाँ झाँकी बनाने के सामान थे। झाँकी अधबनी पड़ी थी और पारबती का काम में जी नहीं लगता था। मगर महज़ इस ख़्याल से कि थोड़ी देर में कैलाश जागेगा तो झाँकी को देखकर बहुत ख़ुश होगा। वह काम में लगी हुई थी। इतने में मुन्नी भी फूल लेकर आ गई। दोनों ने मिलकर काम किया, यहाँ तक कि दस बजे रात तक सब झाँकी सज गई। पारबती अपने [illegible] हुए घुटनों पर हाथ रख के यह कहती हुई उठी कि चलो सब काम हो गया। मुन्नी ने भी कहा कि हाँ, बस अब तुम भैया को जगा दो तो क़ंदीलें भी जला दें।



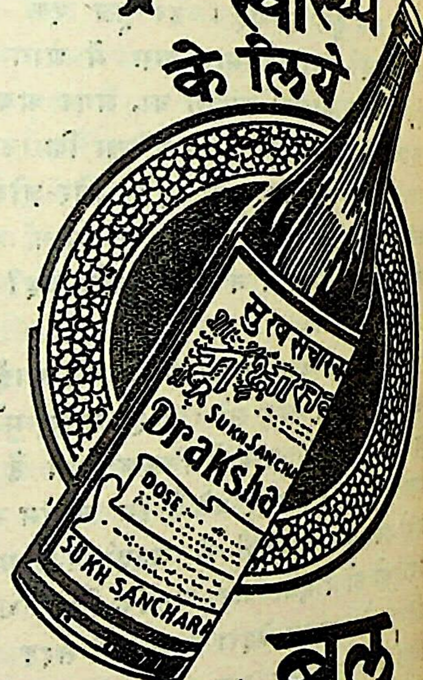
कैलाश उस वक़्त एक ख़्वाब देख रहा था कि वह लालाजी के बाग़ में खड़ा है और फूलों से लदे हुए पौदे हवा में झूम रहे हैं। उसने एक फूल की तरफ़ हाथ बढ़ाया, मगर जैसे ही उसकी उँगलियाँ उसके पास पहुँचीं, उसने महसूस किया कि जैसे फूल में से आँच-सी निकल रही है। उसने दूसरे फूल की तरफ़ हाथ बढ़ाया, लेकिन उसमें से भी आँच निकल रही थी। वह इस अजीब करिश्मे पर हैरत कर रहा था कि फूलों की रंगत बदलना शुरू हो गई। हर फूल एक आग का अँगारा हो गया। तमाम बाग़ में आग लग गई। कैलाश भागना चाहता था, मगर अब हर तरफ़ शोले भड़क रहे थे। उसने देखा कि उसकी मा बाग़ के दरवाज़े पर खड़ी हुई ज़ोर-ज़ोर से पुकार रही है कि बेटे जल्दी से भाग आ। कैलाश के कुछ समझ में न आया और वहीं खड़े खड़े रोने लगा।

पारबती जिस वक़्त कैलाश को जगाने आई तो देखा कि वह उसी तरह सो रहा है, मगर मुँह से कुछ दबी-दबी हुई आवाज़ें निकल रही हैं और आँखों से आँसू इस क़दर बहे हैं कि तमाम गाल तर हो गया है। पारबती ने जल्दी से हाथ बढ़ा के आँसुओं को पोंछना चाहा था कि दिल धक से हो गया। कैलाश का चेहरा आग की तरह गरम हो रहा था। कुछ देर तक पारबती के मुँह से आवाज़ न निकली। आख़िरकार घबरा के मुन्नी को आवाज़ दी। मुन्नी आई। उसने भी जो कैलाश के माथे पर हाथ रखके देखा तो बुख़ार बहुत तेज़ था। पारबती ने जब कई मर्तबा कैलाश को आवाज़ दी तो उसने आँखें खोलीं, मगर फिर बेचैनी से दो-एक करवटें बदलने के बाद बन्द कर लीं और पहली-सी ग़फ़लत तारी हो गई। पारबती की घबराहट बढ़ने लगी। मुन्नी ने कहा कि घबराओ नहीं, मैं अभी जाती हूँ, सुरेश बाबू को बुलाये लाती हूँ, वह आके कोई दवा दे देंगे, बुख़ार उतर जायगा। इतना कहके मुन्नी बग़ैर पारबती की हाँ या नहीं का इन्तज़ार किये हुए बड़ी उजलत से घर के बाहर निकल गई।

मुन्नी के चले जाने से मकान में सन्नाटा-सा हो गया। पारबती ने कैलाश का सिर तकिये से उठा-के अपनी गोद में रख लिया। वह कभी अपने बेटे की तरफ़ निगाह करती थी और कभी अपने मकान की तारीक दीवारों की तरफ़। उसको ऐसा मालूम होता था कि जैसे कोई सियाह रंग का आदमी सफ़ेद कपड़े पहने उसके मकान में मौजूद है, जो उसकी तरफ़ बहुत ग़ौर से देखता है और जिधर भी वह निगाह करती है, उधर वह ख़ामोश क़दमों से चला जाता है। यही शख़्स आधी रात के वक़्त पारबती को एक मर्तबा पेश्तर भी दिखाई दिया था। लेकिन तब उसने अपनी तवज्जोह उधर से हटाने के लिए यह किया था कि कैलाश को आहिस्ता से जगा दिया और कहा कि देखो बेटे तुम्हें कहानी सुनायें। अब कैलाश की ज़िद कि नहीं हमको नींद लगी है और पारबती का यह इसरार कि आज तो तुम शाम ही से सो गये। बेटे का ऊँघना और मा का कहानी सुनाते जाना। पारबती को वह रात याद आ रही थी और वह अपने नासमझ कहानी सुननेवाले के चेहरे को बहुत ग़ौर से देख रही थी, जो बुख़ार की गर्मी से तमतमा रहा था।

अगरचे पारबती की नज़रें कैलाश के चेहरे की तरफ़ से हटती नहीं थीं, फिर भी उसको बार-बार किसी के साये के इधर से उधर जाने का एहसास होता था, जिससे उसके दिल में डर पैदा होता था। उसने घबराके कैलाश को बेदार करना चाहा और उसको आहिस्ता से कई मर्तबा पुकारा। दो-चार आवाज़ों के बाद कैलाश ने बेचैनी से करवटें बदलना शुरू कीं और एक मर्तबा आँखें खोलीं, मगर करा-हती हुई आवाज़ में सिर्फ़ इतना पूछके कि अम्मा अब के बजे हैं, फिर बन्द कर लीं। पारबती का दिल तड़प गया। उसकी आँखों से आँसू जारी हो गये। वह बोलना चाहती थी, मगर मुँह से आवाज़ नहीं

निकलती थी। उसने कई मर्तबा कोशिश की, मगर हिम्मत ने जवाब दे दिया। वह कहा चाहती थी कि अभी बारह बजने में बहुत देर है, मगर यह अल-फ़ाज़ उसकी ज़बान पर आते-आते उसके सीने में तलातुम बर्पा कर देते थे। कैलाश ने फिर कराहना शुरू किया और एक बार फिर पूछा कि अम्मा अब के बजे हैं। पारबती ने दिल मज़बूत करके कहा कि बेटे अभी बारह बजने में बहुत देर है। मगर अभी जुमला पूरा नहीं हुआ था कि घंटे-घड़ियालों की आवाज़ फ़िज़ा में गूँजने लगी। बारह बज चुके थे और सारे शहर में इस वक़्त कन्हैयाजी का जन्म मनाया जा रहा था।



उसकी निष्कलंक रूप-माधुरी

श्रीचक्रधर 'हंस' एम्० ए०, एल्० टी०, शास्त्री, हिन्दी-प्रभाकर

(१)

मिस टोबिट सुन्दरी थी। विधि ने उसके सौन्दर्य की अनुपम प्रतिमा को निर्माण करने में अपना सारा कौशल समाप्त कर दिया था। उसके चन्द्र-धवल मुख-मंडल पर दिन-दिन सौन्दर्य-सौरभ बढ़ रहा था। किशोरावस्था के साथ-साथ उसकी भाव-भंगी में भी भीषण परिवर्तन होने लगा। यौवन के रंग-मंच पर पदार्पण करते ही उसके अंग-अंग से सौन्दर्य की आभा फूटी पड़ती थी। उसकी आँखों में मद की मादकता, कोमल कपोलों पर गुलाबी आभा और पतले अधरों पर लज्जा की लाली छा रही थी।



इस कहानी के लेखक

लखनऊ के किंग जॉर्ज मेडिकल अस्पताल की ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ स्वच्छ व्योम में मुस्करा रही थीं। वे दर्शकों के हृदय में आधुनिक शिल्पकला और अन्य भाव भी जाग्रत करती थीं। कटी-छँटी हरी दूबवाले सामने पार्क किसी अज्ञात के स्वागत के लिए ग़लीचे बिछे हुए थे, और विटपावलियाँ भाँति-भाँति के खिले हुए पुष्पों की मालाएँ लिये हुए खड़ी थीं; समग्र प्रकृति मानो खिल-खिलाकर हँस रही थी; पर मिस टोबिट का मन किसी अज्ञात वेदना से अशान्त था। उज्ज्वल अतीत के सुन्दर स्पष्ट स्मृतिचिह्न उसके हृदय-पट पर अंकित थे, जो उसे विकल बनाते थे। अतीत विलासी जीवन की कितनी ही ललित स्मृतियाँ स्वप्निल चित्रों की भाँति उसकी आँखों के सामने नाचती थीं। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें सरस थीं, पर विषाद-पूर्ण, आरक्त कपोलों पर गुलाबी छटा छा रही थी, पर उनमें वेदना भरी हुई थी। मुख-मंडल भी लावण्यपूर्ण था, पर उस पर भी नैराश्य की काली रेखा खिंची हुई थी। कभी-कभी अतीत की स्मृति के कारण उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू छलछला आते थे और अपने निकट भविष्य की याद कर उसका हृदय काँप उठता था।



नर्स-क्वार्टर और अस्पताल मिस टोबिट के क्षुद्र संसार के दो संज्ञामय गोलार्ध थे। यहीं वह अपने अँधेरे दिनों को व्यतीत कर रही थी। दिन भर काम-धंधे में लगाये रखकर वह अपने अशान्त हृदय को बहलाये रखती, पर रात्रि की भयंकर निस्तब्धता में वह हाहाकार करने लगता। अतीत की अनेक सुनहली चित्रावलियाँ उसकी आँखों के सामने नाच उठतीं और उस स्वप्निल संसार में विचरण करती हुई वह आँखें बंद कर लेती। वह नर्स-कार्य में चतुर थी, किन्तु उसे रोगियों की हाय-हाय अच्छी न लगती थी।

(२)

सन् १९२१ की बात है। लाहौर में प्लेग का इतना भीषण प्रकोप हुआ था कि जिसका स्मरण कर आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। श्मशान में शवों की भरमार से महान् कोलाहल सुनाई देता था। चारों ओर सड़कों पर और गली-गली में मेहतर लाशों को निर्दयता से खींचते हुए दृष्टिगोचर होते थे। मृत मनुष्यों के सम्बन्धियों की 'हाय, हाय' की ध्वनि और व्याधि-पीड़ितों का आर्त-नाद अनन्त आकाश को गुँजा रहा था। एक मास के भीतर ही भीतर लाखों मनुष्य सदैव के लिए अनन्त की गोद में लेट गये। इस महामारी के भीषण आक्रमण से सैकड़ों घर सर्वथा शून्य हो गये।

उन्हीं दिनों की बात है। शाहआलमी दरवाज़े के पास एक चार वर्ष की बालिका बिलख-बिलख-कर रो रही थी। भूख और प्यास के मारे उसका मुख सूख गया था, किन्तु वह अविरत रो रही थी। इन्हीं दिनों लाहौर की ईसाई-संस्था ने भी जनता की ख़ूब सेवा की। ईसाई पादरी जान को हाथ पर रखकर खेल रहे थे। मिस्टर टोबिट बड़े दयावान् और उत्साहपूर्ण पादरी थे। वे स्वयं व्याधि-ग्रसित स्थानों में जा-जाकर ओषधि, वस्त्र और भोजनादि द्वारा व्याधि-पीड़ितों की सहायता करते थे। उन्होंने भी इस रोती-बिलखती हुई बालिका को देखा। उनका जी भर आया। उन्होंने उसकी आँखों से आँसू पोंछे और प्रेमभरे स्वर में कहा—"बेटी! तू रोती क्यों है? तेरे मा-बाप कहाँ हैं? तेरा घर कहाँ है?"

यह सुनकर वह लड़की और भी फूट-फूटकर रोने लगी। उन्होंने उसकी पीठ पर प्यार से थपकी दी और स्नेहभरे शब्दों में उसके घर का परिचय पूछा। बालिका के गले में हिचकियों का तार बँध गया था। उसने पूर्व की ओर उँगली से इशारा किया। मिस्टर टोबिट ने उसका घर खोजा, किन्तु न मिला। सामने से एक आदमी आया। उसने बड़े दुःखभरे शब्दों में कहा—"पादरी साहब, पाँच दिन हुए इसके मां-बाप प्लेग से सदैव के लिए काल की गोद में सो गये हैं। इसके घर में और कोई भी नहीं। यह तब से खाना-पीना छोड़कर लगातार रो रही है। रोते-रोते इसकी आँखें सूज आई हैं। मुखमंडल शोक के आवेग से पीला पड़ गया है। यदि आप इस निरसहाय की सहायता करते तो कितना अच्छा होता।"

मिस्टर टोबिट को नन्दनवन का एक [illegible] पारिजात मिला। उन्होंने देखा, एक छोटी-सी कलिका खिली हुई थी; कितनी उज्ज्वल! कितनी कोमल! वे उस भोले-भाले सौन्दर्य पर [illegible] हो उठे। उन्होंने उसे अपने साथ ताँगे पर बैठा लिया और अपनी कोठी पर ले आये। मिस्टर टोबिट ने उसे प्रेमपूर्वक छाती से लगा लिया और कहा—"बेटी, आज से यही तेरा घर है। तू मुझे [illegible] कहकर पुकारना। तेरा नाम?"

"मिस टोबिट।"

निराश्रय को भगवान् ने आश्रय दिया। [illegible] अनाथ बालिका को मिस्टर टोबिट के यहाँ [illegible] मिला। मिस्टर टोबिट ने विवाह नहीं किया [illegible] उन्होंने अपना जीवन मिशन-संस्था को अर्पण [illegible] दिया था। उनके विशुद्ध हृदय में सन्तति-[illegible] की पवित्र लहर उमड़ आई। उन्होंने सब [illegible] इसी बालिका को समझा। वह अभी [illegible]



बातों से बहुत दूर थी। कच्ची मिट्टी पर बने हुए चिह्नों को मिटाने में क्या देर लगती है। मिस्टर टोबिट के वात्सल्य-प्रेम ने उस बाल-हृदय से माता-पिता की स्मृति को धो बहाया। यहाँ उसे जीवन की सभी सुखमय सामग्री मिली। मिस्टर टोबिट उसे प्राणों से भी अधिक प्यार करने लगे। सभी नौकर-चाकर उसके इशारे पर नाचते थे। दिन-प्रतिदिन दोनों स्नेह के अनन्त पथ पर बढ़ते गये। जिस मातृ-पितृ-सुख से वह अकाल में वंचित हो गई थी, उसका आभास उसने मिस्टर टोबिट में देखा। यहाँ रहकर वह विलासिता के अगाध सागर में डूबने-उतराने लगी। उसकी शिक्षा का भी समुचित प्रबन्ध किया गया। प्रत्येक रविवार को वह मिस्टर टोबिट के साथ चर्च में भी जाने लगी।

(३)

दस-बारह वर्ष बीत गये। मिस टोबिट अब अबोध कच्ची बालिका न रह गई थी। अब बचपन को यौवन के गज ने शैशव के साथ ही कुचल दिया। उसके बचपन की सारी चंचलता, सारी सरल उमंगें अब उससे वर्षों पीछे रह गई थीं और उनका स्थान लज्जा और संकोच ने ले लिया था। उसकी बढ़ती हुई आयु ने उसके हृदय में पली हुई स्नेहलता को सींच-सींचकर और भी सुदृढ़ बना दिया। जिस प्रकार सौन्दर्य-राशि वसन्त के आगमन से प्रकृति-सुन्दरी शोभित होती है, उसी प्रकार मिस टोबिट की रूप-माधुरी परिपूर्ण यौवन से सुशोभित होने लगी। उसके निसर्ग सुन्दर शरीर में चन्द्रकला की भाँति दिन-दिन रूप-लावण्य की अभिवृद्धि होने लगी। निराश बालिका सहसा कली-सी खिल उठी। उसके सुन्दर चेहरे पर चाँदनी बरस रही थी। वह अब भरी जवानी के आलम में झूम-झूमकर इतराने लगी। आँखों में मस्ती के साथ मादकता छा रही थी और अधर पर गुलाबी दौड़ गई। उसके अंग-प्रत्यंग से नव-यौवन की लुभावनी किरणें छिटकने लगीं। अतल सागर के गर्भ में मानो एक मोती चमक रहा था। कमलिनी अब परिपूर्ण रूप से परिस्फुटित हो चुकी थी और नवयौवन खिलखिलाकर हँस रहा था। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में कटाक्ष था; कोमल कपोल भर आये थे; और अधर पर मनभावनी गुलाबी छटा छा रही थी।

मिस टोबिट को सोलहवाँ साल पूरा करने के लिए केवल एक मास बाक़ी था। इस विशाल अन्तर ने उसे क्या से क्या बना दिया। अब उसके उस भोले-भाले हँसते मुखड़े पर यौवन की लाली अठखेलियाँ कर रही थीं। अंग-प्रत्यंग पर नवीन शोभा लहरियाँ ले रही थीं। अब वह जीवन के नूतन स्वरूप में परी-सी जान पड़ती थी। उसने साइंस के साथ मैट्रिक्यूलेशन की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की। मिस्टर टोबिट की धारणा थी कि वे दो वर्ष के बाद उसे डाक्टरी की शिक्षा के लिए विलायत भेजेंगे।

(४)

मिस्टर टोबिट का यों तो हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ शरीर था; पर उनके हृदय के धड़कने की बीमारी थी। एक दिन सायंकाल का समय था। वे आराम-कुर्सी पर बैठकर अपने निजी बग़ीचे में बैठकर बातें कर रहे थे। पुष्पों की मधुर सुगन्ध लेकर ठंडी हवा बह रही थी, जिससे विटप और कोमल लताएँ अनिल-विकम्पित हो उठती थीं। अचानक उनके हृदय की गति रुक गई। लाहौर के सभी प्रसिद्ध डाक्टरों ने अनेक तात्कालिक उपचार किये, पर किसी को भी सफलता न मिली। देखते ही देखते मिस्टर टोबिट नश्वर शरीर को त्याग कर अपनी सब अभिलाषाओं के साथ परलोक सिधारे और साथ लेते गये मिस टोबिट के इतने वर्षों के संचित वैभव को। अभागी क्षण भर में लुट गई। मिस टोबिट ज़ोर-ज़ोर से फफक-फफककर रोने लगी। रोते-रोते उसकी आँखें सूज आई थीं। वह चाहती थी कि इतना रोये, इतना रोये कि उसका हृदय फट जाय, आँखों से ख़ून बहने लगे!



उसके करुण क्रन्दन की हृदय-विदारक ध्वनि कोठी के कोने-कोने में फैल रही थी। वह करुणा-जनक दृश्य शायद ही कोई देख सकता था! उस समय यदि उसके ऊपर वज्र भी गिर पड़ता तो कदाचित् उसे इतना कष्ट न होता। उसको सभी ने धीरज दिया, किन्तु वह अभिशप्ता चन्द्रलेखा की भाँति अवाक् रह गई। उसकी कातर और भोली आँखों से आँसुओं की बूँदें टपटप गिरकर पृथ्वी को भिगो रही थीं। उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो रहा था। उसके भविष्य का भीषण निर्णय हो चुका था। उसके वर्षों का सुखस्वप्न क्षण भर में नष्ट हो गया। उसकी सोने की दुनिया उजड़ गई और अब उसकी स्मृति खँडहर की तरह शेष रह गई। उस कोठी का कोना-कोना उसे काटने दौड़ता था। अतीत विलासी जीवन की अनेक सुखद स्मृतियाँ उसे नागिन बनकर डस रही थीं। वह सिसकियाँ भरकर पलँग पर लुढ़क पड़ी।

एक वर्ष बीत गया। अब रात-दिन मिस टोबिट को उसके भविष्य की चिन्ता का आतप झुलसाने लगा। उसे दिन-दिन आर्थिक समस्या सुलझानी कठिन हो गई। उसका विलास-प्रिय जीवन आपत्तियों के आवरण से आच्छादित हो गया। उसका मन लाहौर से ऊब गया। जो विलासिता की स्वर्णसरिता में स्नान कर चुकी थी, उसे विपत्ति के गँदले स्रोत का स्नान क्योंकर रुचता। मिस टोबिट के मुख पर आन्तरिक व्यथा की कालिमा व्याप्त हो गई। भविष्य जीवन की धुँधली छाया ही आगे-आगे दौड़कर उसकी दृष्टि अवरुद्ध कर रही थी। एक नये पादरी उस कोठी में आकर रहने लगे, इसलिए मिस टोबिट को वह स्थान भी बदलना पड़ा।

(५)

प्रकृति-नटी का अभिनय बड़ा विचित्र है! परिवर्तन भी उसका एक अटल नियम है। दिवाकर अपनी स्वर्णरश्मियों से संसार के एक भाग को प्रकाशित करता है; विश्व का दूसरा भाग ठीक उसी समय निविड़ अन्धकार के आवरण में छिपा रहता है। फिर प्रकाश में अन्धकार आता है और अन्धकार में प्रकाश। सुख और दुख मानव के हृत्प्रदेश को प्रभावित कर अनन्त में विलीन हो जाते हैं। आज मिस टोबिट के विलासी हृदय में प्रेम की सरिता बह रही थी, जिसकी निर्मल धारा में लालसाओं की न-जाने कितनी मछलियाँ उछलती फिरती थीं। किसे विदित था कि यह सारा ऐश्वर्य जगत् की अनित्य नाट्य-शाला का एक छोटा-सा अभिनयमात्र है।

नये पादरी साहब ने सहानुभूति-पूर्ण स्वर में कहा—"बेटी टोबी, आज मिशन-संस्था ने तेरे भविष्य जीवन के विषय में एक अच्छा मार्ग निश्चित किया है।"

"कौन-सा मार्ग, पादरीजी!" उसने कुछ उत्सुकता से पूछा।

"यही कि तुझे नर्स का कार्य सीखने के लिए लखनऊ के किंग जार्ज मेडिकल अस्पताल में भेज दिया जाय। इससे तेरा भविष्य अवश्य ही उज्ज्वल रहेगा।"

मिस टोबिट काठ की पुतली-सी ज्यों की त्यों खड़ी रही। 'कहाँ तो विलायत में डाक्टरी की शिक्षा और कहाँ एक नर्स का कार्य'! एक बार उसे फिर अपने विलासी जीवन की याद आई। उसे कुछ न सूझ पाया कि नये पादरी साहब से क्या कहे। उसे दूध में पड़ी हुई मक्खी की भाँति बाहर किया गया। वह ख़ून का घूँट पीकर रह गई। इतने वर्षों के मोह-बन्धन के कारण लाहौर छोड़ते समय उसके मुँह से एक दुःखभरी लम्बी साँस छूटी; और दो-चार अभागे आँसू ढुलक-कर उसके कपोलों पर आ गये।

(६)

लखनऊ के किंग जार्ज मेडिकल अस्पताल का 'स्टुडेंट-वार्ड' (रुग्ण छात्रावास) प्रसिद्ध है। अस्पताल के साथ सम्बन्ध रखने पर भी यहाँ चहल-पहल रहती है। रुग्ण छात्र अपने दुख भूलकर

हँसी-मज़ाक का पूरा-पूरा मज़ा लूटते हैं। युवक छात्रों की बीमारियाँ भी प्रायः चोट-फटाक की होती हैं; उन्हें वे जवानी की उमङ्ग में भूल-से जाते हैं। रुग्ण छात्रावास में यूनिवर्सिटी के छात्रों का प्रवेश होता है, जिन पर आधुनिक सभ्यता की पूरी छाप लगी रहती है। जो छात्र पुरानी रूढ़ियों का अनुसरण करता है, वह सबके परिहास का लक्ष्य बन जाता है।

इस वार्ड में विशेष-भोजन के अतिरिक्त अन्य अनेक सुविधाएँ भी प्राप्त हैं। अस्पतालों में एक बात की बड़ी परेशानी रहती है कि डाक्टर लोग रोग-परीक्षा (Diagnosis) के लिए आ-आकर रोगियों की छाती या पीठ को उँगलियों से खट-खटाकर और शिर, पैर या हाथों को मरोड़-मरोड़-कर नाकों दम कर देते हैं, पर रुग्ण छात्रावास में यह परेशानी भी कम है।

यूनिवर्सिटी के छात्र 'स्टुडेंट-वार्ड' में जाने के लिए विशेष उत्सुक रहते हैं। एक तो उनका मन परीक्षा की नीरस पुस्तकों से ऊब जाता है और फिर एक विशेष प्रलोभन उन्हें यहाँ नर्सों के शुभ तुषार-धवल मुखमण्डल देखने को मिलते हैं। उन देवियों के मधुर कण्ठ की स्वर-लहरी के सुधा-सिंचन से युवक छात्रों के हृदय आप्लावित हो जाते हैं। वे स्वर्गीय परियाँ जब अपनी अनोखी आन-बान से मुस्कराती हुई अपने क्वार्टरों से वार्डों की ओर आती हैं, छात्रों के अतृप्त हृदय प्रेमोल्लास से विभोर हो जाते हैं। उन गौरांग देवियों की कुंचित कुंतल-राशि में अगणित युवकों के चंचल मन उलझ जाते हैं। इसी स्वर्गीय सुख को प्राप्त करने के लिए यूनिवर्सिटी के छात्र अत्यन्त प्रयत्न-शील होकर यहाँ प्रवेश (Admission) प्राप्त करते हैं। कभी-कभी तो उन्हें इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिर या उदर की कृत्रिम पीड़ा का अभि-नय भी प्रदर्शित करना पड़ता है। उन सुन्दरियों के दर्शन-सुख के अतिरिक्त यहाँ स्पर्श-सुख भी अनायास ही प्राप्त होता है। उष्ण-सेक (Fomentation) करती हुई उन दिव्य प्रतिमाओं के नितान्त कोमल कर-पल्लव जिस समय भावुक युवकों के अंगों को स्पर्श करते हैं, उस समय उनके शरीर में एक विचित्र प्रकार की बिजली प्रवेश कर जाती है। उन रमणियों की भाव-भंगी और मृदु स्वर-लहरी प्रेमी युवकों को विह्वल बना देने में पर्याप्त रहती है। उनकी सहज सुन्दर मुस्कुराहट रसिक युवकों के हृदयों पर एक प्रकार की गुदगुदी जगा-कर उन्हें संज्ञा-शून्य-सा कर देती है। अतएव कभी-कभी सिस्टरें मुस्कुराती हुई रुग्ण युवक छात्रों से कहा करती हैं, "दिव्य सुन्दरियों के चाञ्चल्य-पूर्ण ललित लोचनों की ओर देखो, निःसन्देह तुम शीघ्र आराम हो जाओगे।"

(७)

मिस टोबिट ने लखनऊ में आकर प्रेमी युवक-मंडली के बीच एक क्रांति-सी पैदा कर दी। युवक-मंडली ने देखा—एक गुलाब का फूल खिला हुआ है, उसके पत्ते-पत्ते में, रग-रग में यौवन थिरक रहा है। उसकी अतुलनीय रूप-राशि को देखकर हर कोई चकित रह जाता था। जिस किसी की दृष्टि एक बार उसके ऊपर पड़ जाती, वहीं गड़ जाती थी। उसकी सुन्दरता में एक अजीब आकर्षण था।

जिस समय मिस टोबिट श्वेत वस्त्र धारण कर नर्स के वेश में अपने लावण्य की छटा को छिटकाती हुई अपने क्वार्टर से अस्पताल की ओर अपनी 'ड्यूटी' पर जाती, उस समय उसके नवनीत-स्निग्ध सरोज-सुन्दर मुखमण्डल को देखने के लिए मार्ग के दोनों ओर रसिक युवक छात्रों की भीड़ जुट जाती। मानो नवप्रस्फुटित कमल पर अनेक भौंरे मँडराते थे। अन्य नर्सों के साथ उसके मधुरालाप को सुनकर वे भावों की उन्मत्तकारी बाढ़ में हिलोरें लेने लग जाते। जब शाम को घूमने के लिए वह गुलाबी सारी पहनती, उसमें उसका रूप और भी खिल उठता।—उसके उस गोरे शरीर में यौवन का वह क्षुब्ध उन्माद वसन्त ऋतु में कुसुमराशि के सौन्दर्य की भाँति दृष्टिगोचर होता।



उस सौन्दर्य और यौवन की निधि का चाँद-सा चेहरा रसिक युवकों को मुग्ध कर देता था । कभी-कभी उसके रमणी-सुलभ चाञ्चल्यवाले मुखमंडल पर मधुर मुस्कान भी दृष्टिगोचर होती ।

पहले-पहल जब मिस टोबिट ने दीवार पर लगे हुए शीशे के सामने खड़ी होकर अपनी असाधारण रूप-राशि का अवलोकन किया था, उसके सरल हृदय में प्रेम की पिपासा उत्तेजित होने लगी थी । उसका यौवनोल्लासित हृदय अशान्त होने लगा था । विलासप्रिय लखनऊ उसकी आँख में काँटा-सा खटकने लगा । जब कभी वह भ्रमणार्थ मोटर-कारों पर बैठे हुए विलासियों को देखती, उसका हृदय अशान्त और अधीर हो जाता । वह होटलों और सिनेमाहॉलों में प्रेमियों और प्रेमिकाओं को आमोद-प्रमोद में मग्न देखती हुई अतीत स्मृति में ग़ोता लगाने लगती । दिन भर वह अस्पताल के कार्य में व्यस्त रहती, किन्तु रात्रि की निस्तब्धता में उसके हृदय में भावों का एक तूफ़ान-सा उठ जाता; तब वह गहरी दुःख और वेदनाभरी साँस लेकर रह जाती । उसका भविष्य प्रगाढ़ अन्धकार के परदे की भाँति उसके सामने आ खड़ा होता । उसे अपने वर्तमान जीवन से सन्तोष न था; वह प्रणय के संसार में विचरण करना चाहती थी, इसी में उसे सुख की अनुभूति दृष्टिगोचर होती । उसे रोगियों की रोने-धोने की आवाज़ नहीं सुहाती, उसकी विलास-प्रिय आँखें मानो किसी प्रेम के देवता को ढूँढती फिरती थीं ।

(८)

"अच्छा, गोपाल, तुम्हें एक ख़ुशख़बरी सुनावें, क्या इनाम दोगे ?" इक़बाल ने हँसते-हँसते कहा ।

"हाँ हाँ, मुँहमाँगा इनाम । पर सुनाओ तो क्या ख़बर लाये हो ?" गोपाल ने विशेष उत्सुक होकर पूछा ।

इक़बाल ने कहा—"स्टुडेंट-वार्ड में एक मास के लिए मिस टोबिट की नाइट-ड्यूटी लगी है । अब उसकी नरगिस की फूल-जैसी लजीली आँखें, काश्मीरी सेब-जैसे आरक्त कपोल, कन्धारी अनार-जैसे उरोज, और स्वच्छ मोतियों की माला के समान सुफ़ेद दाँत अनायास देखने को मिलेंगे। कहो ! कैसी ख़बर है ?"

गोपाल ने मुस्कराते हुए कहा—"यार, पूछो मत !"

यह ख़बर सुनकर सारे वार्ड में क़हक़हा मच गया । कई युवक हँसी-ख़ुशी के मारे लोट-पोट होने लगे । कहीं-कहीं शय्याओं पर बोली-ठोली कसी जाने लगी । सभी शय्याओं पर मिस टोबिट की चर्चा होने लगी । सभी इक़बाल को बधाई देने लगे । गोपाल ने हँसी-मज़ाक में इक़बाल का मुँह चूमते हुए कहा—"और कुछ इनाम चाहते हो क्या ?"

गुप्ता ने उत्सुकता से कहा—"मैं आज ही से पेट में कृत्रिम अपेंडिसाइटिस (Appendicitis) की बीमारी का अभिनय प्रारम्भ कर दूँगा। मिस टोबिट रात भर मेरे पास बैठकर मेरे पेट पर उष्ण-सेक (Fomentation) करेगी । यदि वह थोड़ी देर के लिए भी मेरी शय्या से हटेगी तो मैं ज़ोर-ज़ोर से कराहने लगूँगा । वह रात भर मेरे पास बैठी रहेगी और मैं उसके मधुर दर्शन से स्वर्गीय सुख का आनन्द लूटूँगा ।"

सभी छात्र यह सुन खिलखिलाकर हँसे और उसके बुद्धि-चातुर्य की प्रशंसा करने लगे।

खन्ना ने हँसते-हँसते कहा—"मैं अभी एक 'पार्कर फ़ाउंटेन पेन' के लिए आर्डर भेजता हूँ क्योंकि मुझे भी तो मिस टोबिट के प्रेम-पात्र बनने के लिए कुछ उपहार अवश्य ही देना होगा ।"

टामस ने चपलता से कहा—"मिस टोबिट ज्यों ही मेरे पास 'टेंपरेचर' लेने आवेगी, मैं उसके हाथ से 'थर्मामीटर' नीचे गिरा दूँगा । वह भय विचलित-सी होगी । मैं एक नया मँगवाकर रख दूँगा । इस प्रकार वह मेरे साथ सहानुभूति रक्खेगी।"

अब्दुल्ला ने बड़ी उमंग के साथ कहा—"आइए ड्यूटी ख़तम होते ही मैं मिस टोबिट को 'गुड

टाकी' में ले चलूँगा। सुना है, मिस साहेबा सिनेमा की बड़ी शौक़ीन हैं।"

जगदीश ने कहा—"मैं भी मिस साहेबा को एक दिन 'कार्ल्टन होटेल' में चाय के लिए निमन्त्रण दूँगा। वहाँ उनसे 'डांस' (नाच) के लिए आग्रह करूँगा। सुना है, वे डांस में बड़ी चतुर हैं।"

मनोहर ने अपरिपक्क मस्तिष्क की चपलता से कहा—

"चाहे मुझे एक साल की पढ़ाई का ख़र्च इसी में क्यों न लगाना पड़े, पर मैं मिस टोबिट का प्रेमी अवश्य बनूँगा।"

(६)

एक दिन सायंकाल का समय था। अस्ताचल को जाते हुए भगवान् भास्कर की सुनहली किरणें उद्यान के वृक्षों की ऊँची टहनियों का चुम्बन कर रही थीं। रह-रहकर शीतल मन्द पवन बह उठता था, और उपवन के विटपों तथा लताओं के कोमल पल्लव हिल उठते थे। कहीं गुलाब और चमेली की भीनी-भीनी सुगन्ध उड़ रही थी, कहीं रजनी-गन्धा की लता अपने श्वेत और लाल फूलों के पराग से वायुमंडल को सुवासित कर रही थी। वृक्ष की डालियों पर पक्षी बसेरा ले रहे थे। बंदर खेलते हुए एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर छलाँगें मार रहे थे। रईसों की मोटरें इधर-उधर जा रही थीं। धूल उड़-उड़कर विटपों की हरियाली को मलिन बना रही थी। साढ़े पाँच बजे का वक़्त था। टेनिस के खिलाड़ी अपने-अपने रैकेट को बग़ल में दबा-कर टहलते हुए अपने घर की ओर जा रहे थे। हमारी मित्र-मंडली साइकिलों के साथ घूमने निकलना चाहती थी। एक मित्र ने मुस्कराते हुए कहा—

"सुन्दर को अपनी नवविवाहिता पत्नी के लिए कुछ क्रीम, पाउडर इत्यादि ख़रीदना है। यदि अमीनाबाद ही की ओर घूमने निकला जाय तो क्या हानि है?"

"बहुत ठीक", मैंने भी हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा। बहुमत से हमने अमीनाबाद की ही ओर जाना निश्चित किया। युवकों के मस्तिष्क अपरि-पक्क तो होते ही हैं, उन्हें निकट भविष्य का ध्यान ही नहीं रहता। हम सबने आपस में 'साइकिल-रेस' आरम्भ की। मोटरें वेग के साथ 'सन्-सन्' करती हुई इधर से उधर और उधर से इधर निकल जाती थीं, पर हमें इसका कुछ भी ध्यान न था। मेरी साइकिल सबसे आगे थी। मैं क़ैसरबाग़ के चौराहे से अमीनाबाद की ओर मुड़ा कि अचानक एक मोटर मेरे ऊपर से निकल गई। इसके बाद क्या हुआ, मुझे कुछ विदित नहीं। मैं संज्ञा-शून्य आत्म-विस्मृति की दशा में उसी मोटरकार में किंग जार्ज मेडिकल अस्पताल पहुँचाया गया। घावों की तीव्र वेदना से मेरी चेतना-शक्ति जाती रही। मुझे पीड़ा का अभी कुछ बोध न था। जब मैं कुछ चेतन हुआ, तो मैंने अपने आपको 'स्टूडेंट-वार्ड' में पाया। लड़के धीरे-धीरे आपस में कह रहे थे कि आज स्टूडेंट-वार्ड में एक सीरियस केस आया है। बीमार के बचने की बहुत कम सम्भावना है। अब मुझे पीड़ा का बोध होने लगा। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं मरा नहीं, जीवित हूँ, पर मेरा पेट और एक पैर कट गया है। कुछ देर के बाद सारे वार्ड में निस्तब्धता छा गई। डाक्टर लोग मेरी शय्या के चारों ओर घिर गये। मेडिकल कालेज के प्रिंसिपल साहब, अस्पताल के बड़े सर्जन साहब, और यूनिवर्सिटी के वाइस-चान्सलर साहब धीरे-धीरे आपस में कुछ बातें कर रहे थे। अब सर्जन साहब ने मुझे टटोलना शुरू किया तो वास्तव में मुझे पीड़ा का बोध होने लगा। मेरी चीत्कारें वार्ड के कोने-कोने में गूँजने लगीं। मैं दाँतों को पीसकर चुप रहना चाहता था, पर घावों की तीव्र वेदना मुझे सिर से पैर तक विकल कर रही थी। मैं मन में कह रहा था कि तुरन्त मर गया होता ! कितना अच्छा था; क्योंकि मैं अंग-भंग जीवन से मरना कई गुना अच्छा समझता था। मेरे जीवन की आशा औरों



को तो क्या, ख़ुद मेडिकल कालेज के प्रिंसिपल साहब या सर्जन साहब को भी नहीं थी। रात लगभग आधी गुज़र चुकी थी। घड़ी ने टन-टन करके बारह बजा दिये। मेरी आँखों के सामने मृत्यु का भीषण चित्र खेल रहा था। बड़े सर्जन साहब ने बड़ी ही सावधानी और निपुणता-पूर्वक 'लोकल ऐनिस्थीसिया' (Local Anœsthesia) के उपयोग से मेरे घावों का 'स्टिचिंग' (सिलना) तथा ड्रेसिंग (पट्टी बाँधना) किया। इस वक़्त लो० ऐनिस्थीसिया के प्रभाव से ऐसा प्रतीत होता था कि मेरे शरीर पर कोई घाव ही नहीं। सर्जन साहब ने 'वाइस-चान्सलर' साहब से गम्भीर स्वर में कहा—"घाव निःसन्देह बड़े हैं; छाती की दो पसलियाँ टूटी हैं, किंतु हृदय और फेफड़ों पर विशेष आघात नहीं पहुँचा। बायें पैर की हड्डी भी कुछ टूटी है, पर उसका भी कुछ डर नहीं। आशा है, बीमार अच्छा हो जायगा।" इसके अनन्तर हाउस-सर्जन साहब और एक नर्स (मिस टोबिट) के अतिरिक्त मेरे पास अन्य कोई न रहा। दो घंटे के उपरान्त हाउस-सर्जन साहब भी मेरी देख-रेख का भार मिस टोबिट के ऊपर डालकर आराम करने के लिए चले गये। ज्यों ही लो० ऐनिस्थीसिया का प्रभाव कम होने लगा, मेरे अंग-अंग में भीषण वेदना होने लगी। मिस टोबिट को मेरे साथ हार्दिक सहानुभूति थी। वह मुझे धीरज या सान्त्वना देने का पूर्ण प्रयत्न करती थी। यह पहला ही अवसर था कि मुझे ऐसी सुन्दरी की इतनी मीठी स्वर-लहरी सुनने को मिली थी। पीड़ा की वेदना इतनी अधिक थी कि मैं उसका दूध-सा सफ़ेद मुख, गुलाब के फूल से कपोलों और लाल ओठों को भी भली भाँति न देख पाता था। कभी-कभी मैं इतना भर सोच पाता था कि विधाता ने इन करुणा की सजीव मूर्तियों को विपद्-ग्रस्त मनुष्यों को धैर्य-प्रदान करने के लिए पृथ्वी पर भेजा है। मिस टोबिट को देखकर अन्य छात्रों के मानस-पटों पर न-जाने किन-किन कल्पनाओं के चित्र अंकित होते थे, पर मेरे वेदनापूर्ण हृदय में अभी इन कल्पनाओं के लिए स्थान न था। मेरी दयनीय दशा को देखकर मिस टोबिट अत्यन्त कातर और विकल हो जाती थी। निरन्तर उसका मेरे निकट बैठा रहना अन्य सारे वार्ड-वासी छात्रों को बहुत खलता था, उनकी आँखों में मैं काँटे की भाँति खटकता था; क्योंकि मेरे ही कारण वे मिस टोबिट के दर्शन-सुख से वंचित थे।

मेरी दुर्घटना के विषय में मेरे घर को तार दिया गया था। उसी दिन मेरे माता-पिता और अन्य सम्बन्धी मुझे मिलने आये। मेरी सँगनी हो चुकी थी; किन्तु प्राचीन रूढ़ियों के अनुसार नहीं। हम लोगों पर आधुनिक सभ्यता की पूरी छाप लग चुकी थी। मेरी भावी पत्नी भी मुझसे मिलने आई थी। अस्पताल के अधिकारियों की विशेष आज्ञा से मेरे रिश्तेदार दिन भर मेरे पास बैठे रहते थे। मेरे पिताजी ने मेरे मनोविनोद के लिए नाना प्रकार की वस्तुएँ ख़रीदीं। मेरी भावी पत्नी मेरी शय्या के पास बैठकर अपने मधुर कोयल-कण्ठ से मुझे आश्वासन प्रदान करती थी। वह अपने कर-पल्लवों से मुझे खाना खिलाती तथा दूध पिलाती थी। जब मेरे घाव कुछ-कुछ भरने लगे तो मेरे सब रिश्तेदार वापिस चले गये।

(१०)

धीरे-धीरे पन्द्रह दिन बीत गये। अब मेरे घाव लगभग भर चुके थे। मेरे कराहने की ध्वनि सर्वथा बन्द हो चुकी थी। मेरे हृदय में मिस टोबिट के प्रति प्रणय की तरंग लहराने लगी। मैं दिन भर उसे देख-देख मेरा जी नहीं भरता था। मैं रात भर देवी-देवताओं को मनाता कि रात भर मिस टोबिट मेरे पास बैठी रहे। जिस समय मैं उसकी रूप-माधुरी को देखता, मेरा हृदय रसीले भावों से भर जाता। मैं मंत्र-मुग्ध की भाँति उसके तुषार-धवल मुखमण्डल को देखता हुआ निस्तब्ध-सा रह जाता।

जिस समय मिस टोबिट के मधुर कण्ठ से

सुधा की वर्षा होती मेरे हृदय में एक प्रकार की कँपकँपी लग जाती। जिस समय मैं उसके सफ़ेद चेहरे पर लज्जा की लाली देखता तो मेरा हृदय प्रेम-विह्वल हो जाता। मेरे हृदयपट पर उसका चाँद-सा सुन्दर चेहरा, लाल पतले ओंठ, कोमल गुलाबी रंग के कपोल, और टेनिस-कन्दुक-से कठिन उरोज अंकित थे। मैं हर वक़्त अपने शुभ ग्रहों से प्रार्थना करता कि वह दिन कब आवेगा, जब मुझे मिस टोबिट की मुख-माधुरी चूमने को मिलेगी। इस प्रकार की न-जाने कितनी कल्पनाएँ मेरे अन्तर्देश में उथल-पुथल मचाने लगीं। मिस टोबिट को अपनी ओर मुस्कराती हुई देखकर मेरा मन भावोन्माद की उस मंज़िल पर पहुँच जाता, जहाँ अपने ऊपर वश नहीं रह जाता। जब मिस टोबिट क्षण मात्र भी मेरे सामने न होती तो मैं लंबी-लंबी साँस लेने लगता। मुझ पर उसका जादू-सा चल गया। उसकी मदभरी आँखें, गुलाब-से कपोल, कोयल-सी मीठी बोली, बात-बात में लजा जाना! मैं अपना आपा भूल गया।

मुझे वार्ड में लेटे-लेटे पचीस दिन बीत गये। अब मेरे घाव भर गये थे। पर सर्जन साहब की आज्ञा थी कि मुझे अभी दो सप्ताह और वार्ड में रहना होगा। मैं स्वयं भी अभी वार्ड नहीं छोड़ना चाहता था। मिस टोबिट का प्रेम-बन्धन मुझे आकर्षित कर रहा था।

एक दिन सायंकाल को मैंने अपना सूट पहना। हाथ में छड़ी ली और वार्ड के बाहर दालान में धीरे-धीरे टहलने लगा। मेरे गोरे, यौवनमदपूर्ण सुन्दर शरीर पर ज्योत्स्ना अठखेलियाँ कर रही थी। मिस टोबिट अपनी 'नाइट-ड्यूटी' पर जा रही थी। उसकी सहज चाञ्चल्यवाली तिरछी निगाह मेरे ऊपर पड़ी। मेरे उर-देश में अनुराग के बादल उमड़ आये। मैं आनन्द-रस के सरोवर में गोते खाने लगा। मेरा भावुक मन रूप के बाज़ार में विचरने के लिए छटपटाने लगा। मिस टोबिट भी मुझे उस ठाट-बाट में देखकर निस्तब्ध-सी खड़ी रह गई। उसके सारे शरीर में एक प्रकार की बिजली दौड़ गई। उसके अतृप्त हृदय में प्रणय की प्यास जाग्रत् हो उठी। उसके अन्धकारपूर्ण हृदय में आशा की एक किरण झिलमिलाने लगी। जिस आशा के सहारे वह अपने अँधेरे दिनों को काट रही थी, वह उसे पूर्ण होती हुई दिखाई दी। मेरी हृदय-वाटिका में प्रणय-लता को लहराते हुए देखकर उसका हृदय प्रेम की मीठी सुगन्ध से सुरभित हो उठा। उसके कपोल खिल उठे थे, उसके चेहरे से अनभावनी रेखा लुप्त हो गई। आशा की एक क्षीण किरण ने उसके जीवन में एक महान् परिवर्तन कर दिया। मायाविनि दुराशे! संसार को छलना ही तेरा एक मात्र कार्य है। विपत्ति की सघन घटाओं में तू सौदामिनी-सी चमककर उसकी कालिमा को और भी गहरी कर देती है। पिशाचिनि! तू विपद्-ग्रस्त की वेदना पर अट्टहास करती है। तेरा व्यंग्य-हास्य कितना भीषण है! निराशा में एक प्रकार का सुख और शान्ति है, किन्तु तेरी छल-क्रीड़ा विचित्र है।

(११)

मैं दिन भर सोता और रात भर जागा करता था। जब कभी दिन में मेरी आँख खुलती, मुझे मिस टोबिट की याद आती और बहुत बुरा लगता। वह रात भर मेरी शय्या पर बैठी रहती और हम प्रेमालाप में मस्त हो जाते। कभी-कभी वह झुककर लता-से कोमल अपने हाथों को मेरे गले में डाल देती और मैं उसका चाँद-सा सुन्दर माथा चूम लेता। उस समय हम प्रेम के नशे में बेसुध-से हो जाते। फिर हम उसी नशे में मस्त गप-शप करने लगते। हमारी बातों ही बातों में रात समाप्त हो जाती। मैं कहता—"रात कितनी छोटी है प्यारी टोबी! यदि २३ घंटे की रात और एक घंटे का दिन होता तो कितना अच्छा होता! तभी तो एक उर्दू के शायर ने लिखा है—



"वस्ल में घट जाती है, फ़ुरक़त में बढ़ी थी जितनी।
रात आशिक की कभी, दिन के बराबर न हुई॥"

[जितनी वियोग में बढ़ी थी, उतनी ही मिलन पर घट जाती है, इसलिए प्रेमी की रात कभी दिन के बराबर नहीं होती ।] मिस टोबिट एक लम्बी साँस लेकर रह जाती। वह सारी रात मेरी शय्या पर बैठी रहती थी। कुछ रोगियों को रात में दो-तीन बार दवाई पिलानी पड़ती थी। मिस टोबिट उन्हें दो-तीन मात्राएँ एक ही साथ पिला देती। एक अपेंडिसाइटिस का बीमार रात भर कराहता हुआ रह जाता, किन्तु मिस टोबिट ने उसके पेट पर उष्ण-सेक की भी उपेक्षा की।

वार्ड में मैं सबकी आँखों का काँटा बन गया। मेरे ही कारण अन्य रोगी छात्र मिस टोबिट के दर्शन-सुख से वञ्चित रहते। कुछ मनचले छात्रों ने गोष्ठी की और हमें परेशान करने की ठानी। मैं सारे दिन सोता था। वे शोर-गुल कर मुझे व्यर्थ में जगाने लगे। एक-दो छात्र रात भर जागने लगे और जब हम प्रेमालाप में मस्त रहते, वे झूठ-मूठ ज़ोर-ज़ोर से खाँसने लगते। हम उनकी कुछ परवा न कर प्रेम के मादक उल्लास के कारण आत्म-विस्मृति के इन्द्रजाल में बन्दी हो जाते।

हमारा प्रेमालाप सभी छात्रों को असह्य होने लगा। सभी ने हमें तंग करने की ठानी। विभिन्न शय्याओं से हम पर बोली-ठोली कसी जाने लगी। मिस टोबिट के समक्ष ही ये ताने कसे जाते थे। एक छात्र ने व्यङ्ग्य-हास्य-पूर्वक दूसरे छात्र से कहा—"स्टूडेंट-वार्ड में रात भर सुन्दर फ़िल्में चलती हैं। यहाँ बिना ख़र्च किये ही बड़ा अच्छा प्रेमालाप सुनने को मिलता है ौर अत्यन्त हृद्य प्रेमाभिनय देखने को मिलता है। ठीक है न जगदीश!" जगदीश ने भी व्यङ्ग्य के ही आवेश में आकर कहा—"यहाँ के फ़िल्मों में विशेषता इस बात की है कि इनमें चित्र सजीव हैं और वे रात भर चलते रहते हैं।" मिस टोबिट कभी-कभी उन व्यङ्ग्यभरी बोलियों से झुँझला उठती थी, किन्तु करती क्या! ख़ून का घूँट पीकर रह जाती थी।

(१२)

एक दिन शाम को साढ़े सात बजे का वक़्त था। सहसा बिजली की तेज़ सफ़ेद रोशनी से सारा वार्ड उज्ज्वल हो उठा। दीवारों की सफ़ेदी पर, दवाइयों की शीशियों पर वह अपूर्व प्रकाश बिखर कर रोगियों की आँखों में चकाचौंध करने लगा। नर्सें वार्ड के रोगियों का टेंपरेचर ले चुकी थीं। नाइटड्यूटीवाली नर्सें दिव्य अप्सराएँ-सी वार्ड में आने लगीं। मैंने एक सुन्दर युक्ति निकाली। मैंने उदासीन चेहरे से हाउस-सर्जन साहब से कहा—

"डाक्टर साहब! वार्ड के भीतर रोग-शय्या पर पड़े-पड़े मुझे लगभग एक मास बीत गया है। मेरा मन अशान्त और व्याकुल-सा हो गया है। बन्दी की भाँति रोग-शय्या पर पड़े रहकर मेरा मन ऊब गया है। और बड़े सर्जन साहब की आज्ञा है कि मुझे अभी एक सप्ताह और अस्पताल में रहना होगा। यदि आज्ञा हो तो मैं अपनी शय्या बाहर दालान की खुली हवा में लगवा लूँ।"

तीर निशाने पर लग गया। मेरी प्रार्थना स्वीकार की गई। मेरे मन में भावों का बवंडर उठने लगा। मैं आनन्द के अगाध सागर में डूबने उतराने लगा। मेरी आँखों के सामने आज की रात का नग्न चित्र नाचने लगा कि आज रात मैं मिस टोबिट को अपनी गोद में लेकर उसके चाँद-से सुन्दर मुख को चूमता रहूँगा। मैं उसके प्रेमालाप की स्वर्गंगा में जी भरकर स्नान करूँगा। इस प्रकार की न-जाने कितनी कल्पनाएँ मेरे उत्कंठित मानस-पट पर अंकित होने लगीं। मैंने उत्सुकतापूर्वक 'वार्ड ब्वाय' को अपनी शय्या तुरन्त बाहर निकालने को कहा। उसे देरी करते देखकर मेरा जी चाहता था कि यदि मेरे पास पिस्तौल होती तो मैं उसे गोली से मार देता।

(१३)

घड़ी ने टन-टन करके नौ बजा दिये। मैं

शय्या वार्ड के बाहर दालान के एक किनारे की ओर लगा दी गई। मेरी शय्या के चारों ओर ... भी लगा दिये गये। एकान्त में अपनी प्रेमिका से मधुर-मिलन की प्रतीक्षा में मेरा चञ्चल चित्त अधीर हो रहा था। अननुभूत एकान्त सम्मेलन की नवीनता से मेरा हृदय स्पन्दन कर रहा था। प्रेम की मंदाकिनी में नहाने और सौन्दर्य के नन्दन-वन में विचरने के लिए मेरा मन बेचैन हो रहा था। धीरे-धीरे वार्ड की रोशनी बुझी। मिस टोबिट ने नियत समय से पूर्व ही वार्ड के रोगी छात्रों को ओषधि पिलाई और बाहर मेरे पास चली आई। बाहर का अनावश्यक प्रकाश भी बुझा दिया गया। धुँधले प्रकाश के क्षीण-आलोक में मिस टोबिट ने मेरी शय्या के पास प्रवेश किया। मेरी शय्या के एक किनारे पर बैठकर वह अतृप्त लोचनों से मेरी ओर देखने लगी। उस समय वह मादक शृंगार और लावण्य की सजीव प्रतिमा थी। उसका रमणी-हृदय बड़े वेग से स्पन्दन कर रहा था। उन्माद हम दोनों की रग-रग में भीषण वेग से दौड़ने लगा। हम किसके हृदय में आनन्द रस को उँडेलें। मन में आनन्द की हिलोरें उठ रही थीं। चित्त हर्ष के आवेग में विह्वल हो रहा था। मैंने धैर्य को सम्हाला, मिस टोबिट के हाथ को धीरे से पकड़कर कंपित स्वर में कहा—

"प्यारी टोबी! तुम कितनी सुन्दरी हो?"

यह सुनकर उसके चेहरे पर शर्म की लाली दौड़ गई। उस समय उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, गुलाब-सा मुख, और आशा-जैसे फूले हुए कपोल सभी कुछ दर्शनीय थे। उसके रोम-रोम से ज्वाला निकलने लगी। वह सब कुछ भूलकर आनन्द-सागर में ग़ोते लगाने लगी। वह निरुत्तर चित्र-लिखित-सी फ़र्श की ओर ताकती हुई कई क्षण निस्तब्ध बैठी रही। उसका हृदय सागर की उत्ताल तरङ्गों की भाँति विक्षुब्ध हो रहा था। उस समय मेरी दशा भी विचित्र थी। मैं व्यग्रता की उस चोटी तक पहुँच चुका था, जहाँ विवेक मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है। हृदय का उन्माद प्रतिक्षण बढ़ने लगा, तृष्णा चीत्कार करने लगी। अविरत उसके दुग्ध-धौत श्वेत मुख की ओर देखने से भी मेरी दर्शन-पिपासा शान्त न हुई। उसका हृदय भी अधीर था। भविष्य सुखी जीवन की अनेक मीठी कल्पनाएँ सिनेमा की चित्रावली की भाँति उसके मानस-पट पर एक ही क्षण में दौड़ गईं। उसका युवती-हृदय एक गम्भीर प्रश्न को पूछने के लिए उतावला हो रहा था, किन्तु रमणी-सुलभ संकोच पूछने से रोकता था। उसने सारा साहस समेटा और प्रेम से लड़खड़ाती हुई वीणा-विनिन्दित स्वर लहरी से पूछा—

"अच्छा रमेश! एक बात मुझे सच-सच बताओगे?"

"हाँ, क्यों नहीं!" कहकर मेरे मन में भावनाओं का एक तूफ़ान-सा उठ खड़ा हुआ। मेरा मन उसके प्रश्न को सुनने के लिए बड़ा उतावला हो रहा था। मेरे मुखमण्डल पर आशा की एक क्षीण ज्योति झलक उठी। मिस टोबिट मेरे मुख की ओर देखती हुई अपनी अनुपम रूप-माधुरी को चारों ओर छिटक रही थी। उसके शून्य हृदय में प्रेम का प्रदीप जल रहा था, जो एक मामूली आँधी के झोंके से सहसा बुझ सकता था। उसकी आँखों के सामने उसकी भावी उच्च आशाओं का नग्न-चित्र नाच रहा था। उसके हृदय में आशा की तरंगें वेग के साथ उमड़ रही थीं। उसने अपने नन्हें-नन्हें हाथों को मेरे गले में डाला और आशा-भरे रुद्ध स्वर से कहा—

"रमेश! क्या सचमुच तुम मुझसे प्रेम करते हो?" मैं उसकी सुधा-वर्षा करती हुई स्वरलहरी को सुनकर विमुग्ध हो गया। मेरी अतृप्त आँखें उस सौन्दर्य की सजीव प्रतिमा को निहार-निहार-कर तृप्त ही नहीं होती थीं। मेरे हृदय में अनुराग का प्रवाह अधिक वेग से बहने लगा। मैंने उसके



नवनीत-स्निग्ध मुख को चूमकर प्रेम के आवेश में कहा—

"प्यारी टोबी ! क्या इसमें भी सन्देह है कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ ? तुम रूप की रानी और प्रेममयी हो । तुम्हारा प्रेम वारिधि-वेला की भाँति असीम है । तुम्हारे अमूल्य प्रेम के उपहार को कौन स्वीकार न करेगा ?"

आत्म-प्रशंसा सुनकर उसका मुख लज्जा से आरक्त हो गया । उसके सुन्दर नयनों में एक अपूर्व मुस्कान खिल उठी । उसकी नस-नस में प्रेम की धारा बह रही थी । लालसा की प्रबल तरंगों में निर्मल प्रेम की एक क्षीण रेखा छिपी हुई थी । वह आशापूर्ण मधुर स्वर से बोली—

"प्यारे रमेश ! कहो तो तुम प्रणय-रज्जु से बाँधकर मुझे अपनी जीवन-सहचरी बनाने को राज़ी हो ?" यह कह वह उत्सुकता से मेरे मुख की ओर निहारने लगी । उसके हृदय में आशा और निराशा का एक भीषण द्वन्द्व छिड़ा हुआ था । मुझे इस प्रश्न का कुछ उत्तर न सूझा । मैं किंकर्तव्य-विमूढ़-सा फ़र्श की ओर ताकने लगा । मेरी वाक्‌शक्ति कुंठित हो गई । मेरे लिए यह प्रश्न उष्ण दूध-सा हो गया । जो न मुँह के भीतर डाला जाय, न बाहर । मेरे लिए एक ओर गहरी खाई थी और दूसरी ोर जलता हुआ भाड़ । मेरे मन में संकल्प और विकल्प की आँधी उठ रही थी । मेरी चेतनाएँ लुप्तप्राय हो रही थीं । मैं मिस टोबिट के मुख की ओर ताकना चाहता था, किन्तु एक महान् अपराधी की भाँति मेरी आँखें ऊपर नहीं उठती थीं । मेरी भावी पत्नी की तसवीर मेरे सामने आ खड़ी हुई । उसका ज़िक्र मैंने कभी मिस टोबिट से नहीं किया था । मेरे क्षुद्र हृदय में भावों की उथल-पुथल मच गई । एक ईसाई नर्स के साथ विवाह कर समाज में मेरी क्या दशा होगी ? बिरादरीवाले मुझे किस दृष्टि से देखेंगे ? पिताजी की आत्मा को कितना आघात पहुँचेगा ? मेरी आधुनिक ढंग की शिक्षा का क्या यही परिणाम होगा, इत्यादि जटिल सम-स्याएँ एक-एक करके मेरे सामने आ उपस्थित हुईं। अव्यवस्थित चित्त के कारण मैं किसी निश्चि[त] विचार तक न पहुँच सका । मिस टोबिट के भाग्य का निर्णय मेरे ऊपर अवलम्बित था। मैं दलदल के बीच फँसा जा रहा था, बाहर निकलूँ[गा] या नहीं, इसे स्वयं नहीं जानता था। मैं मिस टोबिट की प्रेम की डाली को कदापि ठुकराना नहीं चाहता था और प्रेम की वेदी पर अविवेकी की भाँति समाज, कुल और धर्म की बलि भी नहीं चढ़ाना चाहता था। यह पहेली मुझसे हल न हो सकी ।

मिस टोबिट के विषादपूर्ण हृदय में भी हाहा-कार मचा हुआ था । उसका अंधकारमय जीवन-संसार मेरे सम्पर्क से आलोकित हुआ था, जो उसके अतीत में विस्मृति का आवरण डाल[कर] अपनी स्वर्ण-किरणों में सुख और विलास का ख़ज़ाना भर लाया था। उस अबोध ने कभी भी न सोचा था कि सूर्य सदैव एक ही स्थल को आलोकित नहीं करता, चन्द्र की अमृतवर्षी ज्यो-त्स्ना सदैव एक-सी नहीं रहती। आज उसके जीवन की क्षुद्र नौका अनन्त निराशा-पयोधि में तैर रही थी। कालिमा से भी अधिक काली उसकी भीषण लहरें ज़ोर-ज़ोर से टकरा रही थीं। मिस टोबिट उस पर एक निःसहाय यात्री की भाँति कोमल लतिका-सी काँप रही थी। वायु का एक छोटा-सा झोंका उसे कहाँ उड़ा ले जा[एगा], इसका उसे कुछ ज्ञान न था। मुझे मौन देखकर मिस टोबिट छिन्न लता की भाँति सन्न रह गई। वह निष्प्रभ दृष्टि से एक टक मेरी ओर देखती रही। उसका मुखमण्डल नैराश्य की विषादपूर्ण म्लान रेखा से स्याह हो गया। उसकी आशा-लता पर मानो तुषार पड़ गया था। भावी अन्ध-कारमय जीवन की दुखद स्मृति उसकी आँखों के सामने छायाचित्र की भाँति झूल रही थी। उसका सोने का संसार लुटा जा रहा था, उस[के]



जीवन का अमृत छिना जा रहा था। उसका कल्पित सुख-स्वप्न नष्ट हो चला था। प्रणय की लहलहाती खेती सहसा नष्ट हो चली थी। उसकी सारी आशाएँ कपूर की भाँति उड़ी जा रही थीं। उसका अस्वाभाविक चेहरा उसके आन्तरिक भीषण विचारों का द्योतक बन रहा था। उसके विचार-सागर की चंचल लहरें क्रमशः उसे अशान्त और अस्थिर करने लगीं। उसका दिल बैठ गया, शरीर सिहर उठा और मन एक प्रकार के भय से काँप गया। उसकी सभीत मृगी की-सी बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू छलछला आये। धरित्री पर मञ्जुल मोती के दाने गिरने लगे।

मेरे अन्तर्देश में भीषण द्वन्द्व मचा हुआ था। मैं बार-बार सोचने पर भी न सोच पाया कि मैं मिस टोबिट के कातर हृदय को कैसे धीरज दूँ। मेरा चित्त स्वयं किसी अपार वेदना का अनुभव कर रहा था। मैंने उसे हृदय से लगा लिया और रूमाल से उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से आँसुओं को पोंछ डाला। मैं उसकी अन्तर्वेदना को समझकर सहानुभूति प्रकट करने की इच्छा से कुछ कहना ही चाहता था कि किसी के पैरों की आहट सुनाई दी। मैंने सिर ऊपर उठाया तो सामने से हाउस-सर्जन साहब को आते देखा। मुझ पर वज्राघात हुआ। मेरे पैर-तले की ज़मीन खिसकी जा रही थी। मेरी इच्छा हुई कि धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ। मिस टोबिट तो सन्न रह गई। वह काठ की पुतली-सी ज्यों की त्यों खड़ी रही। उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखों में कितना भय और कितनी आशंका भरी हुई थी! वह भय और लज्जा के कारण सभीत मृगी के समान वार्ड के भीतर चली गई। उसका हृदय चूर-चूर हुआ जा रहा था। उसी समय मेरी शय्या वार्ड के भीतर लगा दी गई। रातभर मैं मिस टोबिट का चाँद-सा मुख न देख पाया। मैंने किसी प्रकार वह काल-रात्रि समाप्त की।

(१४)

सुबह हुई। सारे अस्पताल में हमारे प्रेम की चर्चा सौदामिनी की भाँति फैल गई। हमारे विषय में एक मुँह से अनेक बातें निकलती थीं। एक छात्र ने विस्मयपूर्वक कहा—"जिस समय मैं 'बाथ-रूम' की ओर गया था, मैंने रमेश के पास जाती हुई मिस टोबिट की कुंचित कुंतल-राशि देखी थी।" दूसरे छात्र ने भी उमङ्गभरी आवाज़ में कहा—"दस बजे रात को जब मैं दालान की ओर गया, दोनों का प्रेमालाप बड़े मज़े में हो रहा था।" मेरा मन उस बकरे के समान छटपटा रहा था, जो वध के लिए देवी के सामने खड़ा हो। मुझे लज्जा और अपमान से बचानेवाला कोई न था। जो कोई भी डाक्टर वार्ड में आता था, मैं समझता था कि वह मेरा 'डिस्चार्ज-आर्डर' लेकर आया। मिस टोबिट सुबह होते ही अपने क्वार्टर की ओर चली गई। सारा वार्ड मुझे एक शिकारी कुत्ते की भाँति काटने दौड़ता था। वार्ड में एक-एक क्षण मुझे एक-एक कल्प के समान लगने लगा। मेरे मुँह से बार-बार गहरे दुख और निराशाभरी साँसें बड़े वेग से चल रही थीं। मेरे रिश्तेदार मेरी प्रेम-कथा को सुनकर क्या अनुमान करेंगे? यूनिवर्सिटी के छात्र मेरा कैसा मज़ाक उड़ाएँगे, इत्यादि अनेक भावनाएँ मेरे हृदय में जाग्रत् होकर मुझे बेचैन करने लगीं। उसी समय 'हाउस-सर्जन' साहब आये। उन्होंने मेरे 'डिस्चार्ज' का आर्डर सुनाया। उन्होंने मुझसे कहा, "अस्पताल की मैनेजिंग कमेटी की आज्ञा है कि आज तुम्हें वार्ड ख़ाली करना होगा।" मैं भी अब अस्पताल में अधिक नहीं रहना चाहता था, पर मेरी वस्तुएँ अस्त-व्यस्त पड़ी हुई थीं। अब तो मेरे लिए कोई दूसरी युक्ति ही बाक़ी न थी। मैंने तार का फ़ार्म उठाया और लिखकर पिताजी के पास कानपुर भेज दिया। लगभग तीन बजे मेरे पास घर से आदमी पहुँच गया। मेरा सामान बँधने लगा और मैं घर जाने के लिए सूट पहन-कर तैयार हो गया।



(१५)

आकाश तथा पृथ्वी को रंजित कर सूर्य अस्त होने को था। मीठी-मीठी हवा बह रही थी। सन्ध्या सुन्दरी ने अस्तोन्मुख रवि के आतिथ्य में गुलाबी चादरें बिछा दीं। छोटी-छोटी अनिल-विकंपित डालियों पर चिड़ियाँ चहकने लगीं। नाना भाँति के पुष्पों की भीनी-भीनी सुगन्ध समस्त धरातल को सुवासित कर रही थी। मैं सूट में वार्ड के छात्रों से मिलने लगा, अब अन्तिम बार मिस टोबिट की मनभावनी रूपमाधुरी मेरे सामने आ खड़ी हुई। एक बार फिर उसकी अलसित छवि झीने रेशमी परिधान में झिलमिल-झिलमिल करती हुई धवल अंग-छवि गुलाबी बंधनों को तोड़ने के लिए व्यग्र उन्नत उरोज, मनोहर केश-कलाप, मदिरा के गुलाबी डोरोंवाले विशाल नेत्र, चाँद-से नत सुकुमार पतले ओंठ और रमणी-सुलभ चंचल मुस्कराहट रह-रहकर मेरे स्मृति-पटल पर अंकित होने लगे। एक बार फिर पिछली रातों के मीठे प्रेमालाप और प्रणय की मादक लीलाएँ स्वप्न के चित्रों की भाँति मेरी आँखों के सामने खेल रही थीं। फिर मुझे उन दिनों की याद आई, जब वह अपने नन्हें-नन्हें हाथों को मेरे गले में डालकर अपनी मधुर स्वर-लहरी से मेरे वासनालिप्त हृदय को आप्लावित करती थी। एक बार फिर मेरे मानस में उसकी मधुर-प्रतिमा को देखने की प्रबल लालसा लहराने लगी। मैं बड़ी उदासीनता से ताँगे में बैठा। आकाश से गिरी हुई चन्द्रलेखा की भाँति मिस टोबिट सहसा मेरे सामने आई। उसकी आँखों से आँसुओं का मेह बरस रहा था। उसने व्यग्रता-पूर्वक मेरे सामने एक पत्र फेंका और शीघ्रता से मेरी दृष्टि से निकल गई। मैंने सोचा कि यह मेरी आँखों का भ्रम तो नहीं! मैंने आँखों पर हाथ फेरा। नहीं, भ्रम नहीं। सचमुच ही वह मेरे सामने आई थी। मैं ताँगे से उतरा, बिजली के खम्भे के पास गया और उसके प्रकाश में मिस टोबिट का पत्र पढ़ने लगा—

"प्रिय रमेश,

मैंने तुम्हें भूल जाने का बहुत यत्न किया, किन्तु न-जाने अब तक क्यों न भूल सकी। आज अस्पताल के अधिकारियों ने मुझे शीघ्र ही इस्तीफ़ा देने के लिए बाध्य किया है। मेरा क्षुद्र संसार अब अन्धकारपूर्ण है। संसार में मुझे कोई ऐसी वस्तु नहीं दीखती, जिससे मेरे हृदय को धीरज हो। मेरे कारण तुम्हें बहुत कष्ट पहुँचा है। मेरे अपराधों को क्षमा करना। अब भविष्य में मुझे भूल जाने का यत्न करना। अब मुझे जीने की आशा नहीं। मैं भग्न-हृदया कहाँ जा रही हूँ, नहीं बता सकती। शायद अब तुम्हारा और मेरा यही अन्तिम मिलन हो। मेरी हार्दिक इच्छा यही है कि तुम सदैव सुखी रहो। अब अन्तिम बार "गु····ड······बा····इ" (नमस्ते)।

तुम्हारी······

मिस टोबिट

पत्र पढ़ते-पढ़ते मेरी आँखें सजल हो आईं। मेरी कातरतापूर्ण दृष्टि चारों ओर संसार के कोने-कोने में मिस टोबिट को ढूँढ़ती फिरती थी। ताँगेवाले ने घोड़ा तेज़ किया और स्टेशन की ओर रवाना हुआ। पर मेरा मन पीछे मिस टोबिट



की भोली-भाली सूरत को ढूँढता फिरता था। रात हुई। निशाकर ने शनैः-शनैः अपनी सम्पूर्ण कलाओं की स्निग्ध चाँदनी से समस्त भूमण्डल को धो डाला, और आकाश पर नक्षत्र उज्ज्वल हीरों की भाँति जगमगा रहे थे। बाज़ार की व्योमचुंबी इमारतें उस रमणीय चाँदनी में मुस्करा रही थीं; किन्तु मेरे छोटे हृदय में अन्धकार का आवरण पड़ा हुआ था। कोई अनुभूत चिन्ता मेरे हृदय के अज्ञात कोने में छिपी हुई थी। उस समय मेरे हृदय में भीषण व्याकुलता की हिलोरें उठ रही थीं। मुझे प्रतीत हुआ, मानों कोई मेरा हृदय निकाले ले रहा है, मानो एक असह्य वेदना मेरे अंग-अंग से मेरे रोम-रोम से मेरे प्राण को खींचे ले रही है। मैंने अनिच्छा रखते हुए भी टिकट लिया और घर जाने के लिए गाड़ी पर सवार हो गया।

मैं अतीत स्मृति में ग़ोता लगाने लगा। मिस टोबिट की करुण मूर्ति मेरे हृत्पटल पर चित्रित हो उठी। उसमें कितना क्षोभ, कितना तिरस्कार और कितना व्यंग्य भरा था। मानों मेरे अन्तर्हृदय में वह कह रही थी, "बाह्य रूप पर मरनेवाले नीच युवक, तूने नारी-हृदय का मूल्य न जाना। तुझे क्या मालूम कि इसमें कितनी वेदना, कितना प्रेम, कितना लावण्य और कितनी पवित्रता भरी हुई है। तू रूप के बाज़ार में सौदा ख़रीदना चाहता था; तूने 'प्रीति की रीति' ही न जानी तो तू उसका मूल्य कैसे समझ पाता। पश्चात्ताप की आग अनन्त काल तक तेरे हृदय में जलती रहेगी।"

दो मास के अनन्तर मेरा विवाह-संस्कार भी हो गया, किन्तु मिस टोबिट की निष्कलंक हास्य-माधुरी स्वप्न के धुँधले चित्र की भाँति मेरे स्मृति-पटल पर अब भी स्पष्ट अंकित है।



लेख-सूची

पृष्ठ

चित्र-सूची

(रंगीन)

१. गोपाल-कृष्ण २. प्रतीक्षा

सादे चित्र अनेक

नोटिस

बअदालत जनाब स्पेशल जज साहब बहादुर सीतापुर दर्जा दोम

मुकदमा नम्बर २१० सन् १९३६ ई० बयान तहरीरी २४—८—३७ पेशी ३१—८—३७ ई०

मु० अकबरी बेगम बेवे मुहम्मदसईद कौम सय्यद साकिन सीतापुर मुहल्ला क़ज़्यारा

१—सय्यद तजम्मीज़हुसेन वल्द मुहम्मद सईद साकिन शहर लखनऊ मुहल्ला छोटी शहज़ादी

३—सय्यद रज़वानहुसेन
४—सय्यदहुसेन } पिसरान सय्यद सज्जादहुसेन साकिन सीतापुर मुहल्ला क़ज़यारा

बनाम

१—बासदेवलाल वल्द बलभद्रप्रसाद
२—गिरशचन्दर
३—निरशचन्दर } पिसरान ओंकारनाथ
४—रामनाथ वल्द लालनाथ
५—बसन्तलाल वल्द सूरजप्रसाद
६—शम्भूनाथ
७—गोबिन्दप्रसाद
८—नन्दकुमार
९—कृष्णकुमार
१०—रामकुमार } पिसरान गंगाप्रसाद
११—रकबरप्रसाद
१२—श्यामसुन्दर } पिसरान कुञ्जबिहारी

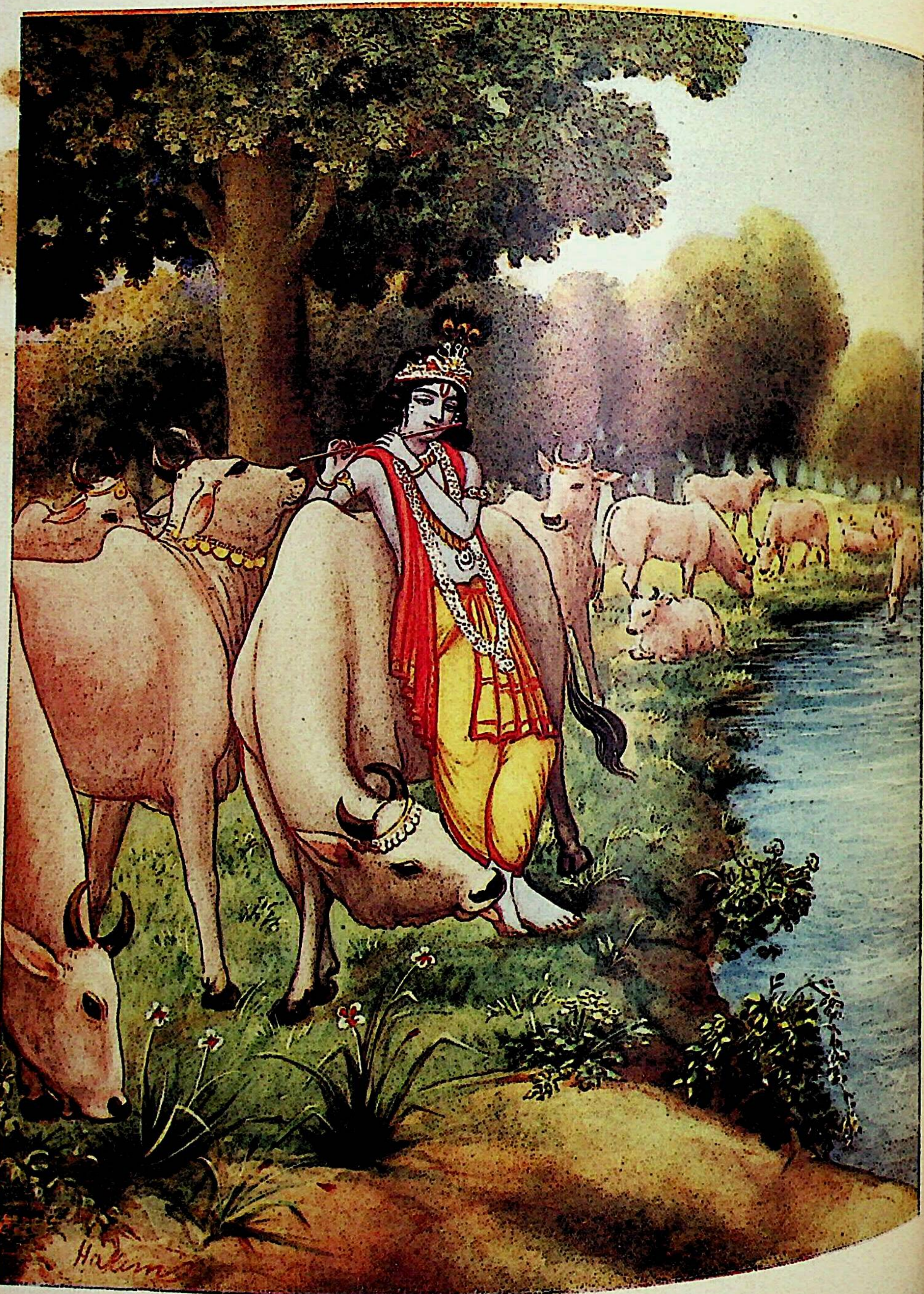
} साकिन भभौंरा परगना भभौंरा जिला सीतापुर

१३—आग़ामिरज़ाजौवाद वल्द मिरजा मुमताजहुसेन साकिन सीतापुर मुहल्ला क़ज़यारा सीतापुर
१४—रहमतलालाह उर्फ़ लल्लू वल्द इलाहीबख्श कौम शेख साकिन तामसेनगंज सीतापुर
१५—सय्यदहुसेन वल्द फ़िदाहुसेन साकिन सीतापुर मुहल्ला क़ज़यारा महमूदी बेगम [illegible] उमरावमिरजा
१६—सैयद महम्मद अहमद वल्द फ़िदाहुसेन साकिन सीतापुर मुहल्ला क़ज़यारा
१७—मु० अख़्तरुननिसा बेगम दुख़्तर फिदाहुसेन
१८—सैयद अहमद वल्द रजाहुसेन साकिन सीतापुर मुहल्ला बंगर
१९—सैयद वजीरहुसेन वल्द रज़ाहुसेन साकिन त्यागपुर असिस्टेन्ट मैनेजर रियासत [illegible] परगना व जिला बहराइच
२०—असगरी बेगम दुख़्तर रजाहुसेन साकिन सीतापुर मुहल्ला क़ज़यारा
२१—महमदहसन वल्द आबदहुसेन साकिन बहराइच प०, जिला बहराइच
२२—मु० जज्जन दुख्तर आबदहुसेन जौजे सबरू त्यागपुर थाना त्यागपुर
२३—मु० शमीमआरा बेगम दुख़्तर आबदहुसेन साकिन सीतापुर मुहल्ला क़ज़यारा प० [illegible]
२४—महम्मद काज़म वल्द आबदहुसेन साकिन बहराइच मुहला अकबरपुर

हर खास व आम को बज़रिये नोटिस हाजा इत्तिला दी जाती है कि मुकद्दमा मुन्दर्जे उनवान [illegible] मुसम्मे अक़बरी बेगम वग़ैरह सायलान ने दरख्वास्त हस्ब निफाज़ दफा ४ ऐक्ट नम्बर २५ सन् [illegible] इनकम्बर्ड स्टेट्स अदालत हाजा में बजरिए जनाब साहब कलक्टर बहादुर सीतापुर गुजरानी है [illegible] मिनजानिब अपने बयान तहरीरी बतफसील कर्जाजात मय तफसील जायदाद दाखिल कर दिया [illegible] लिहाजा वह अशखास जिनका कर्जा डिगरीशुदा या ग़ैर डिगरीशुदा बजुम्मे सायलान मुन्दर्जे [illegible] के जात या जायदाद पर हो अन्दर तीन माह तारीख शाये नोटिस गज़ट से अपना बयान [illegible] बनिस्बत अपने (कर्जे के दाखिल करें वरना कोई उज्र किसी शख्स का अगर कानूनन उसको [illegible] करने बयान तहरीरी का हक था बाकी न रहेगा) बाद में काबिल समाअत न होगा और [illegible] कर्जख्वाहान मसमू व फैसल होगी।

आज बतारीख ३ माह मार्च सन् ३७ ई० मेरे दस्तख़त और अदालत की मुहर से जारी [illegible] [illegible] अदालत (हस्ताक्षर) मुन्सरिम [illegible]





गोपाल-कृष्ण

May, 1937.

माधुरी

सम्पादक
रूपनारायण पांडेय
प्रतिनिधि-सम्पादक (सी० पी०)—मातादीन शुक्ल

वर्ष १५, खंड २, संख्या ४, पूर्ण संख्या १७८	वैशाख	३१३ तुलसी संवत्, १९९४ वि०

गीत

श्रीकुँअर चन्द्रप्रकाशसिंह

जीवन का प्रति चरण मरण रे।

कुसुम-दोल पर लोल ओस-कण,
डोल रहे जग के सुख के क्षण;
वर्ण-भरण रश्मि से उतर द्रुत
बहा विषम वातास—हरण रे!

वह विभोर कैशोर हर्ष हर
गया, घिरे तारुण्य-तपन पर,
जीर्ण जरा के सघन सान्ध्य घन
मृत्यु हँस रही रक्त-किरण रे!

महाकाल सावन में अहरह,
शत-शत सूर्य, चन्द्र, तारा, ग्रह,
बुद्बुद - से उठते - मिटते ये
विकल कह रहे शरण, शरण रे!



भारतीय शक्कर का व्यवसाय ख़तरे में

श्रीशीतलासहाय बी० ए०

भारतवर्ष के अर्थ-मंत्री सर जेम्स ग्रिग ने इस वर्ष के बजट में एक प्रस्ताव यह रक्खा था कि देशी शक्कर पर आठ आना फ़ी मन चुंगी (Excise Duty) और बढ़ा दी जाय। पाठकों को स्मरण होगा कि देशी शक्कर के व्यवसाय को संरक्षण देने के उद्देश्य से भारत-सरकार ने १ अप्रैल, १९३२ से विलायती शक्कर पर ७।) फ़ी हंड्रेडवेट* कर लगाया था और १।।।-) फ़ी हंड्रेडवेट विशेष कर। इस प्रकार १९३२ से ९-) फ़ी हंड्रेडवेट विलायती शक्कर पर टैक्स लग गया था। इसके लिए भारत-सरकार ने एक ख़ास क़ानून पास किया था और इस क़ानून में यह बात साफ़ कर दी थी कि ३१ मार्च, सन् ४६ तक संरक्षण की नीति क़ायम रक्खी जायगी और ३१ मार्च, ३८ तक संरक्षण की यह मात्रा अर्थात् विलायती शक्कर पर ९) का टैक्स क़ायम रहेगा।

अगर ३१ मार्च, ३८ के बाद चुंगी की मात्रा में कोई तब्दीली की ज़रूरत होगी तो गवर्नर जनरल इस विषय की तहक़ीक़ात करावेंगे और तहक़ीक़ात के नतीजे के आधार पर नई नीति क़ायम की जायगी। किन्तु विलायती शक्कर पर चुंगी लगा देने का प्रभाव यह हुआ कि इस मद से सरकारी आमदनी बहुत कम हो गई। १९३१-३२ में गवर्नमेण्ट को २ करोड़ रुपया विलायती शक्कर की चुंगी से मिला था, लेकिन १९३३-३४ में उसे इस मद से केवल ४ करोड़ ७२ लाख रुपया मिला। इस घाटे को भारत-सरकार सहने को तैयार नहीं थी। इसलिए १ अप्रैल, १९३४ से देशी शक्कर पर भी १।-) फ़ी हंड्रेडवेट चुंगी लगा दी गई अर्थात् ।।।=)।। फ़ी मन। शक्कर के व्यवसायियों ने इस एक्साइज़-ड्यूटी को पसन्द नहीं किया। उनका कहना था कि गवर्नमेण्ट ने सन् ३२ में जो संरक्षण दिया, वह इस ड्यूटी को लगाकर कम कर दिया। जो कुछ एक हाथ से दिया, दूसरे हाथ से वापस ले लिया। बहरहाल चुंगी लग गई और नतीजा यह हुआ कि भारत-सरकार को इस मद से १९३४-३५ में ९७ लाख ९१ हज़ार की आमदनी हो गई और १९३५-३६ में १ करोड़ ५९ लाख के क़रीब। इस वर्ष अर्थात् १९३७-३८ में भारत-सरकार के बजट में ३ करोड़ ४२ लाख का घाटा दिखाई दिया। १ करोड़ ८२ लाख की कमी तो उसने पुरानी बचत से पूरी की, लेकिन १ करोड़ ५८ लाख के घाटे को पूरा करने का कोई दूसरा साधन उसे नहीं दिखाई दिया। इसलिए सर जेम्स ग्रिग ने यह तजवीज़ की कि देशी शक्कर पर १।-) फ़ी हंड्रेडवेट की बजाय २) फ़ी हंड्रेडवेट कर लगा दिया जाय। उनका

* एक हंड्रेडवेट एक मन १५ सेर के क़रीब होता है।



अन्दाज़ा है कि इस प्रकार भारत-सरकार को डेढ़ करोड़ रुपये सालाना की आमदनी हो जायगी।

सर जेम्स की तजवीज़ ने आज क़ानून का रूप धारण कर लिया है और देशी शक्कर पर, चाहे वह पिछले साल की ही बनी क्यों न हो, यह नया टैक्स वाजिबुल अदा माना जाता है। सारे देश की यह धारणा है कि इस नये टैक्स से शक्कर का नवजात व्यवसाय ख़तरे में पड़ गया है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि हिंदुस्तान के लिए शक्कर का व्यवसाय आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्व का व्यवसाय है। कपड़े का उद्योग भारत का सबसे बड़ा उद्योग माना जाता है। लेकिन उसके बाद शक्कर का ही दूसरा नम्बर है। इस देश में कपड़े की क़रीब ३६० मिलें हैं और ४ लाख मज़दूर इनमें काम करते हैं। शक्कर की मिलें १७५ के क़रीब हैं और इनसे २ लाख मज़दूरों की रोज़ी चलती है। इतना ही नहीं, इस व्यवसाय की वजह से इस समय २००० ग्रेजुएट काम में लगे हुए हैं और २ करोड़ किसानों की रोज़ी का सहारा है। इस उद्योग से प्रति वर्ष क़रीब १३ करोड़ की सम्पत्ति शक्कर के रूप में इस देश में पैदा हो जाती है और १५ करोड़ रुपया औसतन प्रति वर्ष हिन्दुस्तान से बाहर जाने से रुक जाता है।

पाठक भूले न होंगे कि जब हिन्दुस्तान में शक्कर बनाने का उद्योग नहीं था, तो कई करोड़ रुपया इस देश से विलायती शक्कर के ख़रीदने के लिए निकल जाता था। नीचे के आँकड़े विलायती शक्कर के आयात के हैं—

विदेशी शक्कर का आयात

सन्	(१०००) रुपये
१९२१–२२	२,०५,०२८
१९२२–२३	१,५४,८९०
१९२३–२४	१,५२,३२१
१९२४–२५	२,०६,६६७
१९२५–२६	१,५५,५४१
१९२६—२७	१,८८,९०६
१९२७—२८	१,४६,०५५
१९२८—२९	१,६०,८९५

१९३४-३५ में १२ करोड़ ५० लाख की क़ीमत की शक्कर हिन्दुस्तान में बनी थी। सर टी० राघवाचार्य ने हिसाब लगाकर बताया है कि इस क़ीमत में से ६ करोड़ रुपया तो किसानों को गन्ने की क़ीमत का मिला है। बैलगाड़ियों और रेलगाड़ियों को भाड़े के लिए १ करोड़ २० लाख ख़र्च हुआ। मज़दूरों को २ करोड़ और शिक्षित कार्यकर्ताओं को ५० लाख मिला। इस प्रकार १२ करोड़ ५० लाख में से ९ करोड़ ७० लाख ख़र्च हुआ था। बाक़ी हिन्दुस्तानी पूँजीपतियों का उनकी ३० करोड़ की लागत पर मुनाफ़ा था।

उदाहरण के लिए केवल गोरखपुर ज़िले में क़रीब २५ शक्कर की मिलें हैं। हर एक मिल एक दिन में ५ हज़ार रुपये का गन्ना ख़रीदती है। अर्थात् १ लाख २५ हज़ार रुपये का गन्ना हर रोज़ ख़रीदा जाता है। ये मिलें २५ लाख मन गन्ना फ़ी मिल के हिसाब से पेरती हैं। अर्थात् कुल मिलाकर ६ करोड़ २५ लाख मन गन्ना पेरा जाता है। एक गोरखपुर ज़िले में ही इस हिसाब से ३ लाख ९० हज़ार ६ सौ २५ आदमी अपनी रोज़ी के लिए गन्ने की बिक्री पर आश्रित हैं।

आश्चर्य की बात नहीं कि जब यह तजवीज़ पेश हुई तो देश भर में इस तजवीज़ से तहलका मच गया। देश की यह धारणा है कि इस तजवीज़ से शक्कर के नवजात उद्योग को भयंकर धक्का लगेगा, अनेक मिलें टूट जायँगी, पूँजीपतियों का तो लाखों रुपयों का नुक़सान हो ही जायगा, लाखों किसानों को भी बहुत घाटा उठाना पड़ेगा और हज़ारों पढ़े-लिखे आदमी बेरोज़गार हो जायँगे। इसलिए राष्ट्रीय दल ने असेम्बली में बजट की इस तजवीज़ को विशेष आग्रह के साथ नामंज़ूर कर दिया था, लेकिन यह क़ानून वायसराय ने अपने विशेषाधिकार से पास कर दिया है।

प्रस्ताव क्या है ?

सर जेम्स ग्रिग ने बजट पेश करते हुए अपने भाषण में कहा था—"मैं शक्कर पर एक्साइज़-ड्यूटी अर्थात् चुंगी १।~) से बढ़ाकर २) फ़ी हंड्रेडवेट कर देना चाहता हूँ। इसका एकमात्र कारण यह है कि विलायती शक्कर से जो चुंगी हमको अभी तक मिला करती थी, वह क़रीब-क़रीब ख़तम हो गई है। मैं असेम्बली को यह याद दिलाना चाहता हूँ कि सन् ३० और ३१ में इस मद से पौने ग्यारह करोड़ रुपये की आमदनी थी। यह रक़म अब बिलकुल ख़तम हो गई और इसकी जगह पर अब हमें * २½ करोड़ से कम की रक़म पर, जो चुंगी से मिलती है, संतोष करना पड़ता है। इस बात को ज़ोर देकर बताने की ज़रूरत नहीं कि आमदनी में ७ या ८ करोड़ रुपये के सालाना नुक़सान की वजह से देश की माली हालत पर कितना भारी बोझ पड़ जाता है।

"देश के अन्दर शक्कर की क़ीमत की स्थिति यह है कि अगर २१ आने फ़ी हंड्रेडवेट का बोझ ख़रीदनेवाले पर भी डाल दिया जायगा तो शक्कर की क़ीमत उतनी ही पड़ेगी, जितनी अभी तक थी। रही शक्कर बनानेवालों की बात, उसके बारे में तो मैंने कहा ही है कि अधिक उपज के कारण उद्योग की दुर्दशा हो रही है। चुंगी बढ़ जाने से अधिक उपज की ओर झुकाव कम हो जायगा; क्योंकि कमज़ोर और अयोग्य शक्कर बनानेवाले निकल जायँगे और उद्योग पर बड़ा अच्छा असर पड़ेगा। व्यवसाय अधिक नीचे न जायगा और स्थिति उस समय तक ज्यों की त्यों बनी रहेगी, जब तक इस विषय पर तफ़सीली तहक़ीक़ात नहीं हो जाती, जिसे टैरिफ़-बोर्ड बहुत जल्द करने वाला है।

"इसी वजह से मेरा यह भी विश्वास है कि किसानों पर भी अच्छा असर पड़ेगा; क्योंकि अनिश्चित ख़रीदार के लिए, जिस पर यह भरोसा नहीं किया जा सकता कि वह सारी फ़सल ले ही लेगा, फ़सल तैयार करना कभी फ़ायदे की बात नहीं हो सकती।

"मेरा यह अन्दाज़ा है कि शक्कर की चुंगी से १ करोड़ १५ लाख रुपये की आमदनी बढ़ जायगी।"

चुंगी लगने के एक हफ़्ते के अन्दर ही यह बात साबित हो गई कि सर जेम्स का अन्दाज़ा ग़लत था।

पायनियर जैसा संकुचित विचारोंवाला समाचार-पत्र लिखता है—

"सर जेम्स ग्रिग मि० मडी को अब यक़ीन हो जाना चाहिए कि उनका यह ख़याल कि शक्कर के व्यवसाय पर Excise लगा देने से किसानों की स्थिति मज़बूत हो जायगी, बिलकुल ग़लत था। वाक़या यह है कि भारत की आर्थिक स्थिति के इन ठेकेदार लोगों के अन्दाज़े से कहीं ज़्यादा नुक़सान शक्कर की मिलों का हुआ है।

"गोरखपुर से हमारे एक सम्वाददाता ने लिखा है कि इस क्षेत्र में जितना गन्ना पैदा होता है उसका आधा अभी तक खेत में ही लगा है, और गोरखपुर और पड़रौना के बीच में जितनी मिलें हैं, सबके दरवाज़ों पर सैकड़ों गाड़ियों का ताँता गन्ना लादे हुए खड़ा है। अगर ३१ मार्च के बाद गन्ना लेना बन्द कर दिया गया तो वह आधी फ़सल विना बिके रह जायगी।"

अमृतबाज़ार-पत्रिका की राय है—

"फ़ाइनेंस-मेम्बर ने अपने भाषण में इस बात

---

* भारत-सरकार को विलायती शक्कर की चुंगी से आमदनी हर साल कम होती गई है—

वर्ष	विलायती शक्कर की चुंगी से आमदनी
१९३१–३२	८ करोड़
१९३२–३३	६ ,, ८४ लाख
१९३३–३४	४ ,, ३७२ ,,
१९३४–३५	३ ,, ८१ ,,
१९३५–३६	३ ,, २३ ,,
१९३६–३७	२½ ,,

को स्वीकार किया है कि व्यवसाय की दशा दय-नीय है। ५० प्रतिशत से अधिक कर बढ़ाने की यह तजवीज़ इस व्यवसाय के अस्तित्व का ही ख़ातमा कर देगी। हमने अक्सर अपनी यह राय ज़ाहिर की है कि अगर शक्कर की क़ीमत घट जाय तो हिन्दुस्तान में शक्कर की खपत की बहुत काफ़ी गुंजाइश अभी मौजूद है। मौजूदा साल में शक्कर की क़ीमत घट जाने से शक्कर की बिक्री बढ़ गई थी और देशी शक्कर की चुंगी से गवर्नमेंट को बजट के अन्दाज़े से ३५ लाख रुपये अधिक वसूल हुए थे। इस उद्योग के मज़बूती पकड़ने के पहले अगर गवर्नमेंट ने इस पर और टैक्स लगा दिया तो मुनासिब न होगा। हमें यह न भूलना चाहिए कि कठोर आर्थिक संकट के ज़माने में इस व्यवसाय ने बेकारी कम करने और आर्थिक संकट मिटाने में बहुत सहायता की है।

कानपुर के व्यापारी

चेम्बर ने (व्यापारी-मंडल ने) यह राय ज़ाहिर की है कि "नई चुंगी से उस संरक्षण पर आघात पहुँचता है, जो व्यवस्थापक सभा ने शक्कर के व्यव-साय को इसके पहले प्रदान किया था। हम लोगों की राय में इस फ़ैसले के कारण शीघ्र ही नियुक्त किये जानेवाले टैरिफ़-बोर्ड की सिफ़ारिशों पर बन्दिश लग जाती है और उसके निर्णय पर अनुचित प्रभाव पड़ता है। चेम्बर की सलाह है कि १½ करोड़ का घाटा सोने के निर्यात पर ६॥) फ़ी औंस कर लगाके पूरा किया जाय।"

फ़ाइनेन्स-मेम्बर महोदय ने नई चुंगी का सम-र्थन करते हुए यह कहा है कि कमज़ोर मिलों को ज़िन्दा रहने की कोई वजह नहीं। मालूम यह होता है कि उन्होंने इस बात पर अच्छी तरह ध्यान नहीं दिया कि व्यवसाय की वास्तविक हालत क्या है। आपस की लाग-डाँट से व्यवसाय के सामने संकट-सा आ गया है और मिल के मालिक बड़ी परेशानी में हैं। यह नई चुंगी उनकी कमर तोड़ देगी। शक्कर के व्यवसाय को गवर्नमेंट ने फ़िज़कल-कमीशन की सिफ़ारिश पर संरक्षण दिया था; उद्देश्य यह था कि यह नवजात बालक मज़बूत हो और अपने पैरों पर खड़ा हो सके। उस समय यह भी तय था कि १० वर्ष के बाद तहक़ीक़ात कराई जाय और यह मालूम किया जाय कि और अधिक संरक्षण की ज़रूरत है या नहीं।

व्यवसाय अभी तक बच्चा है और कोई भी मिल अपने पैरों पर खड़े होने के क़ाबिल नहीं हुई है। इसलिए यह कहना कि कमज़ोर मिलों को ज़िन्दा रहने का हक़ नहीं, बेवक़ और बेमौक़े की बात है। टैक्स-बोर्ड ने, जो फ़िज़कल-कमीशन की रिपोर्ट के मुताबिक़ व्यवसाय की अवस्था जानने के लिए मुक़र्रर होनेवाला है, अभी तक अपनी तहक़ीक़ात नहीं शुरू की है। उसके निर्णय के पहले ही एक राय क़ायम कर लेना मुनासिब नहीं। अभी कोई यह नहीं कह सकता कि कौन मिल कमज़ोर है और कौन मज़बूत। पिछले दो साल में बहुत-सी मिलें खुली हैं। इन नवजातों को चम्मच से दूध पिलाने की ज़रूरत है। लेकिन नई चुंगी इनको ख़तम कर देगी।

ये ख़यालात श्रीकेदारनाथ खेतान एम्० एल्० सी० के हैं। उन्होंने यह भी कहा है, "मेरी यह राय है कि हिन्दुस्तान की संगठित से संगठित मिलें भी इस विशेषकर को न सह सकेंगी और धीरे-धीरे मिल-मालिकों को अपनी मिलें बन्द करनी पड़ेंगी।....इस नई चुंगी से अन्त में ग्राहकों का भी नुक़सान होगा; क्योंकि बहुत-सी मिलें बन्द हो जायँगी। आपस की लाग-डाँट से शक्कर की क़ीमत इतनी घट गई थी कि पहले कभी भी इतनी नहीं घटी थी और अगर क़ीमत और घट जाती तो ग्राहकों को फ़ायदा रहता। जितनी सस्ती शक्कर आज मिल सकती है, पहले कभी भी नहीं मिली। अगर देशी व्यवसाय नष्ट हो गया तो हमें विलायती शक्कर के आश्रित हो जाना पड़ेगा और सम्भव है, हमारे सामने वही स्थिति



आ जाय, जो महायुद्ध के मौक़े पर आ गई थी। इस व्यवसाय के नष्ट हो जाने से केवल पूँजीपतियों और ग्राहकों का ही नुक़सान नहीं है, किसानों का सबसे ज़्यादा और स्थायी नुक़सान होगा। यह सभी जानते हैं कि लाखों किसान ऐसे हैं, जो गन्ना बेचकर अपना मतालबा अदा करते हैं। ये लोग ज़रूर इस टैक्स के शिकार हो जायँगे। सच तो यह है कि गन्ने की फ़सल ही एक ऐसी फ़सल थी, जिसने संसारव्यापी आर्थिक संकट के ज़माने में, जब अन्न का भाव इतना घट गया था, किसानों को डूबने से बचाया था।"

"शक्कर की मिलें साल में ६ महीने तक और कभी ज़्यादा मज़दूरों को काम-काज से लगाये रहती हैं और इस प्रकार किसानों के कुटुम्बों को ऊपरी आमदनी करने का मौक़ा देती हैं। इसके अलावा ५० हज़ार से ज़्यादा पढ़े-लिखे आदमी, जैसे डाक्टर, मैनेजर, क्लर्क लोग, इस उद्योग से रोज़ी कमाते हैं। मिलों के बन्द हो जाने से इन लोगों को बेकारी में फँस जाना पड़ेगा। इस नई चुंगी के कारण कितनी ही परेशानियाँ पैदा होनेवाली हैं।"

बिहाररत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने इस विषय पर अपने विचार निम्नलिखित शब्दों में प्रकट किये हैं—

"बिहार और युक्त-प्रान्त के किसानों की स्थिति बहुत गम्भीर हो रही है। शक्कर-बाज़ार की मंदी की वजह से मिल-मालिक गन्ने को, जिसे किसानों ने पैदा किया है, ख़रीदने और पेरने के लिए तैयार नहीं हैं।

"शक्कर पर हाल ही में चुंगी बढ़ जाने की वजह से मिल-मालिकों की स्थिति पहले से ज़्यादा ख़राब हो गई है और उन लोगों में इस बात की ज़ोरदार चर्चा है कि पहली अप्रैल के बाद गन्ना पेरना बन्द कर दिया जाय। अगर इन लोगों ने यह किया तो किसान चौपट हो जायँगे। गन्ना ही इस भाग में (बिहार और युक्त-प्रान्त में) एकमात्र ऐसी फ़सल है, जिसकी बिक्री से किसान लगान देता है और नक़द ख़रीदी जानेवाली चीज़ें मोल लेता है। अगर मिलों ने इनकी गन्ने की फ़सल नहीं ख़रीदी तो इन्हें सारी फ़सल को नष्ट कर डालना पड़ेगा और अगली फ़सल बोने के लिए खेत की सफ़ाई में कुछ घर से ख़र्च करना होगा।"

बरहज के बाबा राघवदास ने हिसाब लगाया है कि अगर सिर्फ़ गोरखपुर ज़िले में मिलें बन्द हो जायँ तो इस ज़िले के किसानों का क़रीब ५० लाख का नुक़सान होगा। बिहार के आँकड़े अभी तक नहीं मिले, लेकिन मुझे विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि ४५ से ५० प्रतिशत फ़सल अभी तक खेतों में खड़ी है और गन्ने की पेराई रुकने से किसानों को बहुत ज़्यादा संकट और आपत्ति में फँस जाना पड़ेगा।"

अन्य देशों की सहायता

हम यह नहीं मानते कि जब हम शक्कर के व्यवसाय की रक्षा का सवाल उठाते हैं, भारत-सरकार से किसी ग़ैरमामूली रियायत की माँग पेश करते हैं। शक्कर के सम्बन्ध में सारी दुनिया में विशेषकर इँगलैंड में ख़ुद जो कुछ राजकीय सहायता दी जा रही है, हिन्दुस्तान की अपेक्षा कहीं ज़्यादा है। अमेरिका की गवर्नमेंट अपने देश के शक्कर के व्यवसाय को प्रति वर्ष ४ करोड़ ५० लाख पौंड की सहायता देती है। जर्मनी ३ करोड़ ४० लाख पौंड की सहायता देता है, फ्रांस १ करोड़ २० लाख, जेकोस्लावोकिया और इँगलैंड ७० लाख पौंड, इटली ६० लाख, आस्ट्रेलिया ५० लाख और हालैण्ड २५ लाख पौंड। इसके मुक़ाबिले में भारत-सरकार क्या करती है।

नीचे लिखे आँकड़ों से पता चलेगा कि अपने देश के शक्कर-व्यवसाय की रक्षा के लिए अन्य देशों ने विलायती शक्कर पर कितनी चुंगी लगा रक्खी है। भारत की चुंगी अपेक्षाकृत बहुत कम है।



नाम	चुंगी प्रति टन पौण्ड
जर्मनी	१४—३—४
जेकोस्लोवाकिया	१८—१३—४
फ़्रांस	२०—६—८
पोलैण्ड	२१—१८—४
फ़िनलैण्ड	२४—०—०
स्पेन	२१—११—८
आयरिश फ़्रीस्टेट	१४—११—८
भारत	१२—०—०

टन=२००० पौण्ड

८२ पौण्ड=१ मन

१ पौण्ड=१३॥=)॥

विशेषज्ञों की राय है कि इँगलैंड में गन्ने की शक्कर का व्यवसाय चल ही नहीं सकता ; क्योंकि वहां गन्ना नहीं पाया जाता। लेकिन चुक़न्दर की शक्कर का भी उद्योग वहाँ कभी भी अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकता । ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट ने एक कमीशन इस सिलसिले में बैठाया था । ग्रीन साहब इसके प्रमुख थे । उन्होंने राय दी थी "हमारी यह ज़ोरदार राय है कि ऐसे व्यवसाय पर, जिसके बारे में कभी इस बात की सम्भावना नहीं हो सकती कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो सकेगा, या ऐसी फ़सल के लिए, जिसकी उपज गवर्नमेण्ट की सहायता के बिना, शक्कर का मौजूदा भाव देखते हुए, कोई एक टके को लेने को तैयार न होगा, लाखों पौण्ड प्रति वर्ष ख़र्च करना कदापि न्याय-संगत नहीं है।''

ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट स्वदेशी सिद्धान्त को इतना ज़्यादा माननेवाली है कि इस राय के होते हुए भी उसने १९२४ से १९३४ तक के दरमियान में ब्रिटिश-शक्कर के उद्योग को ४ करोड़ पौण्ड की सहायता दी। भारत का क़ानून यह है कि अगर कोई मिल १ हंड्रेडवेट शक्कर बनावे तो उसे २) सरकार को देने पड़ते हैं। इँगलैंड का यह क़ानून है कि वहां की शक्कर की मिलें अगर १ हंड्रेडवेट शक्कर बनावें तो सरकारी ख़ज़ाने से उन्हें ५$\frac{1}{2}$ शिलिंग सहायता मिलती है। १९३४ में इस प्रकार सवा सात शिलिंग प्रति हंड्रेडवेट सहायता देकर ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट ने ब्रिटिश-शक्कर के व्यवसायियों को ४४$\frac{1}{2}$ लाख पौण्ड की सहायता सरकारी ख़ज़ाने से दी थी। १९३५ में ६$\frac{1}{2}$ शिलिंग के हिसाब से ३६ लाख ४० हज़ार पौण्ड दिया था और १९३६ में सवा पाँच शिलिंग के हिसाब से २९ लाख ४० हज़ार पौंड।

सर जेम्स ग्रिग ने ब्रिटिश-मंत्रिमंडल को देखकर अगर अपनी नीति बनाई होती तो भारतीय व्यवसाय को आज सहायता (Subsidy) मिलनी चाहिए थी; न कि चुंगी (Excise Duty)।

हमारी आशाएँ

हम आशा करते थे कि शक्कर के व्यवसाय को भारत-सरकार सहायता देगी। इस व्यवसाय के सामने अनेक कठिनाइयाँ और संकट हैं, जिनसे छुटकारा पाना बिना गवर्नमेंट की मदद सम्भव नहीं। पहली आशा तो हमारी यह थी कि गवर्नमेंट इस व्यवसाय के संरक्षण को अपने वादे के मुताबिक १५ वर्ष तक बराबर क़ायम रक्खेगी, और उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करेगी। सर जेम्स ग्रिग ने यह आशा मिट्टी में मिला दी। हिन्दुस्तान की गन्ने की फ़सल और देशों की अपेक्षा बहुत घटिया होती है। अनेक प्रकार के कीड़े फ़सल को नष्ट कर देते हैं। इनसे बचने के लिए वैज्ञानिक उपाय खोज निकालना चाहिए। हिन्दुस्तान का गन्ना एक एकड़ में १५ टन से ज़्यादा नहीं पैदा होता। जावा की उपज ४० टन प्रति एकड़ है। हिन्दुस्तान के गन्ने से ८ या ९ प्रतिशत से ज़्यादा शक्कर नहीं निकलती है। जावा में १३ प्रतिशत शक्कर आसानी से निकाल लेते हैं। भारत-सरकार हिन्दुस्तान के गन्ने की ये सब कमज़ोरियाँ अगर हटा सकती तो हिन्दुस्तानी शक्कर के दाम आधे हो सकते थे। हिन्दुस्तानी मिलों में शक्कर बनाने के बाद जो कचरा शीरा



बच जाता है (जिसे मोलैसेज़ Molasses और Bagasse कहते हैं) बेकार जाता है। अन्य देशों में यह बिक जाता है। अगर हिन्दुस्तान में भी इसकी बिक्री का इन्तज़ाम हो जाय तो व्यवसाय का मुनाफ़ा बढ़ सकता है। वैज्ञानिक सहायता से यह शीघ्र जानवरों के खाने के क़ाबिल बनाया जा सकता है। इसकी खाद भी बहुत बढ़िया हो सकती है। इंजनों में डालने के लिए इससे पावर अलकोहल पैदा कर सकते हैं, जो मोटरों और रेलों के चलाने में भी काम में आ सकता है। फिर सड़कों पर इसे डालकर कुटाई की जा सकती है। बहरहाल "मोलैसेज़" से कई काम निकाले जा सकते हैं। अगर भारत-सरकार इस ओर ज़रा भी ध्यान दे दे तो व्यवसाय को काफ़ी बचत हो जाय।

इस व्यवसाय को सबसे बड़ी सहायता जो भारत-सरकार कर सकती है, वह यह है कि इँगलैंड में शक्कर की बिक्री बढ़ावे। मैंने अपने पिछले लेख में इस बात का ज़िक्र किया था कि जब हम करोड़ों रुपये का बना हुआ माल इँगलैंड से ख़रीदते हैं तो इँगलैंड हिन्दुस्तान की बनी हुई शक्कर क्यों न ख़रीदे। यह कोई अव्यवहारिक तजवीज़ नहीं, बल्कि अगर भारत-सरकार मदद कर दे तो यह तजवीज़ बहुत आसानी से अमल में आ सकती है और करोड़ों रुपयों का हमारा रोज़गार बढ़ सकता है।

इस सम्बन्ध में पहली बात तो हम यह कहना चाहते हैं कि भारतवर्ष में शक्कर बनाने की सम्भावना अनन्त है। केवल ३ वर्ष में १२६ मिलों से, हम साल में केवल ३-४ महीने काम करके ९ लाख टन शक्कर पैदा कर लेते हैं, जिससे हमारी आवश्यकता पूरी हो जाती है। अगर हम चार महीने के बजाय आठ महीने तक मिलें चला सकें, जैसे अन्य देशों में होता है, तो हमारी उपज कम से कम दुगनी हो सकती है। अगर हमारे गन्ने ज़्यादा शक्कर देने लगें, हमारी मिलों से निकला हुआ कचरा शीरा किसी काम में आ जाय अर्थात् हमें सब सुविधाएँ, जो अन्य देशों को हैं, मिलें तो हम इतनी सस्ती शक्कर बना सकते हैं कि विदेशों में भी भेज सकें। जावा हमारा मुक़ाबिला कभी भी न कर पावेगा। कम से कम इँगलैंड में तो हमारी बिक्री हो ही सकती है। ब्रिटिश-साम्राज्य के बाज़ार पर तो हम क़ब्ज़ा कर ही सकते हैं। ग्रेटब्रिटेन में २२ लाख टन शक्कर प्रति वर्ष ख़र्च होती है, इसमें से १७ लाख टन बाहर के देशों से आती है। हिन्दुस्तान यह १७ लाख टन आसानी से पहुँचा सकता है।

क ख ग घ

श्रीबलभद्र दीक्षित

(१)

देहात में मदरसे के मुन्शीजी का दर्जा पटवारी से कम नहीं। लाला का हुक्म लोग भय और आतंक में बजा लाते हैं, मुन्शीजी अपने पाण्डित्य की छाप से श्रद्धा के जीते-जागते पात्र बन जाते हैं। किसी का ख़त आया, समझदारों की राय हुई बस, यह मुन्शीजी ही से खुलेगा। क़ानूनी मामलात में लाला साहब की राय ब्रह्म-वाक्य होती है। दूरदर्शी देहातियों पर दोनों इतने हावी होते हैं कि इन्हें देहात का राजा तक कहा जा सकता है।

सुबह के वक़्त, हुलासपुर के बीच गाँव के कुएँ पर कुछ ख़ाली, कुछ भरे मिट्टी के घड़े और मट-कियाँ जगत पर, सिर पर और देहाती देवियों की कटि पर शोभा पा रही थीं। किसी गम्भीर विषय पर सब आकृष्ट थीं। चौकीदारिन को छोड़ सबके चेहरों पर आतंक था। उन्होंने बारह आने का, लाल का जोड़ा आज ही पहना था, टिकनी की ओर हाथ फेंक, चूड़ियाँ बजाकर कहा, "आख़िर तू रही चमारिन की चमारिन ही।"

परमेसूर की मा, गाँव में सबसे कुलीन अहीरिन थीं। पासिन चौकीदारिन ने जब तक अपने वैभव का वर्णन किया, उनसे सरोकार न था, लेकिन कुलीनता पर हमला देख उनसे न रहा गया। उन्होंने भी सम्बोधित टिकनिया को किया और डरते-डरते आँख के कोने से चौकीदारिन को भी, देखते हुए कहा, 'यह सब सेवा-संवती का परताप है, नहीं तो जुगाधों से भी कभी पासी चमारों ने अहीरों के साथ बभनों के कुएँ में पानी भरा है?"

सुकुलाइनजी दूसरे गाँव से यहाँ यजमानों को आशीर्वाद देने और अपना सीधा लेने आई थीं। पनिहारिनों के जमघट में, लकुट के बल खड़ी काफ़ी दिलचस्पी ले रही थीं। कुलीनता पर आघात उनसे भी न सहा गया; आँखें तरेरकर बोलीं, "मगर एक कुएँ में पानी भर लेने ही से कोई वाजपेयिन नहीं हो सकती। अपने गाँव में हम दो-चार कनवजिये रह गये हैं, अब नदी से पानी ले आया करेंगे।"

चौकीदारिन सबमें प्रतिभाशालिनी थीं। गौण विषयों से जल्द पीछा छुड़ा अपने मुख्य विषय पर आ गईं; कहती सुकुलाइन से थीं, लेकिन कहना टिकनिया से था; कहा, "चौकीदार आज फिर लाला (पटवारी) और मदरसा के मुन्शी को लेकर पड़ाव पर डिप्टी के यहाँ गये हैं।"

टिकनिया का धैर्य छूट गया। बहुत नज़दीक न आकर वह दीनता की पुतली, चौकीदारिन से बोली, "मइया, इस बार और बचा लो। चएटुआ कल से मदरहुआ के मदरसे जाया करेगा। आज



ही जाता, महतों काका के छबीले भइया ने उसे रोक लिया। एक दिन तीन पैसे का बाजरा उधार लाई थी, घास छोलकर आज उसने दाम भर दिये। मेरा चमार तुम्हारा हल जोतता था, तब हम भूकों न मरते थे। मुझे तिलछने ही को तो वह छोड़ गया।"

सुकुलाइन वृद्धा थीं, तीन जवान बेटे खो चुकी थीं। टिकनी रोने लगी तो उन्हें भी रुलाई आ गई। चौकीदारिन अपना ओहदा गिर जाने के भय से ज़्यादा न झुक सकीं। सहानुभूति की शिक्षा बघारकर कहा, "यह तो दुनिया है। राम की मरजी! मरना जरना लगा ही रहता है। क़ानून तो नहीं देखता किस पर क्या बीतती है।"

टिकनी ने आँसू पोंछते कहा, "चौकीदार काका, लाला और मुन्शीजी, मैंने सबकी चिरौरी कर दी थी। अगर चमारों के लिए भी पढ़ने का सरकारी हुकुम हुआ है तो चपटुआ भी क ख ग घ पढ़ने जाया करेगा।

चौकीदारिन के चले जाने पर सन्तुष्ट, असन्तुष्ट पनिहारिनें अपने-अपने घर पहुँच चौका-बर्तन और गोबर-करकट में लग गईं।

(२)

हुलासपुर एक मज़रा था; हदवस्त मौजा चन्दनपुर था, जिसमें इस प्रान्त में रहनेवाले सब प्रकार के हिन्दू बसे थे। पेशेगर मुसलमान भी थे। गाँव भर का मुख्य धन्धा खेती-किसानी था। हल, बैल, खेत, खलियान, क़र्ज़, फ़ाक़ाकशी इन लोगों की एक-सी थी। महाजन की जालसाज़ी, स्वतन्त्रता की हलकी-सी साँस में ज़मींदार की दख़लन्दाज़ी, दरिद्रता के कारण धार्मिक अनुष्ठानों (कथा-वार्ता, मीलाद इत्यादि) में उदासीनता, जिससे पण्डित और मुल्लाओं की असहानुभूति, इन्हें छूत-अछूत, हिन्दू-मुसलमान में विशेष अन्तर सोचने का बहुत कम मौक़ा देती थी। हिन्दू और मुसलमान चार-पाँच महाजन भी थे। चौकीदार, मुखिया, पटवारी और ज़मींदार के अहलकार और इनका आचरण एक तरह का था। सबके सब धार्मिकता में कट्टर, अपनी बात का निर्वाह करनेवाले, साफ़-सुथरे भलेमानुस होने का दावा रखते थे। सबके रोज़ घी-दूध, दो-दो तरकारियाँ और बाज़ार के दिन गोश्त पकता था। ब्राह्मणों में एक नौजवान सिर्री महराज थे। ग़रीब और अमीर दोनों के लिए यह एक पहेली हो रहे थे। औरत मर गई थी; दूसरा ब्याह न किया था; घर एक ग़रीब किसान को बग़ैर बनाने के लिए दे दिया था। खद्दर की दो लुंगियाँ और दो कुर्ते किसानों का काम आधी मज़दूरी पर करके बनवा लिया करते थे। भीगा चना या सत्तू का भोजन; रात किसी के दरवाज़े, उसके दुखोदद में शरीक होकर कट जाती थी। सदा प्रसन्न रहा करते थे। नाम बड़ा सुन्दर था, लेकिन भद्र गण इन्हें सिर्री (पागल) कहा करते थे। यहाँ यह मशहूर था कि बहुत पढ़ लेने और देस-विदेस घूमने से इनका दिमाग़ फिर गया था।

बर्साती शाम होने को थी। लाला (पटवारी) के दर्वाज़े छोटे-बड़े सब जमा हो रहे थे; लड़की की शादी थी। क़ुर्ब जवार में जो लोग शरीफ़, लाला से बराबरी का दर्जा रखनेवाले थे, उन्हें न्योता दिया गया था; किसानों से लड़की के ब्याह की मदद, जो होनी ही चाहिए, ज़्यादातर ख़ूबसूरत, बाक़ी बदसूरत अल्फ़ाज़ में माँगी गई थी। चमार जलाने की लकड़ी चीर रहे थे, अहीर घी-दूध ला रहे थे, काछिनें सब्जी वग़ैरह।

लाला लोगों की बैठक ठहरी। कबाब आये, कूज़े आये, चूज़े आये, साथ ही साथ नकसुर और लड़खड़ाती ज़बान भी आ गई। ऐन मौक़े पर मदरहुआ के मुन्शीजी भी आ गये। 'आइए, हम आप ही की कमी थी', कहकर मेज़मान और मिहमान ग़म ग़लत करने लगे!

पटवारी ने घूँट के ऊपर गज़क चाटते हुए शर्मीली निगाहों से मुखिया को देखकर (इनके सामने एक बार न पीने की प्रतिज्ञा की थी) कहा, "बड़के दादा, मैं अब न पीता हूँ, न



कभी पियूँगा। क्या करूँ, जब तक छुन्नी (लड़की) पार नहीं लग जाती, बड़ी फ़िक्र रहती है। यह कुछ राहत देती है," कहकर कुज्जी साफ़ कर दी।

मुखिया पीते न थे, लेकिन गाढ़ी दूधिया छान चुके थे, सरूर में भरकर कहा, "बड़े गुरू हो छोटे लाला, देखी जायगी, करा देना दफ़ा इकसठ की कार्रवाई, भइया (ज़िलेदार) को उलटी सीधी सुझाबुझाकर।" कोहला (भुना हुआ ख़ुश्क गोश्त) की सोंधी ख़ुशबू पर 'घट' करके इन्होंने राल घूँट ली, लेकिन तम्बाकू थूकने की मुद्रा में हो गये।

कुछ देहाती, साल के ख़र्चे से काट-कपटकर अगर सौ-दो सौ रुपया भी ज़मीन में गाड़ पाते हैं तो अपने को बहुत बड़ा आदमी समझने लगते हैं, उर्दू बूँकते हैं। मुखिया साहब, 'जनाब' को 'ज़नाब', 'फ़ल' को 'फ़ल' और 'सुबह' को 'शुबह' कहते थे। ज़िलेदार ने झोंके में कहा, "ओंबें लाँलाँ साँलाँ, मराँ क्यों जाँताँ हैं 'छुन्नी' काँ जेंवरँ मेंराँ राँ। बेंराँ पूँरें ढाँई सौं अँभीं गिनें देंताँ हूँ।"

आप हकले भी थे। कुछ पी लेने पर पीनेवालों की सख़ावत बढ़ी। ठर्रे की ख़ुशबू पर चमार भी लवच रहे थे। एक लुहार और दो पासियों के, अपने को शौक़ीन समझनेवाले, लौंडे भी किवाड़ की आड़ में लसे खड़े थे, सबको एक-एक कुज्जा दारू और छटी हुई बोटियाँ दे दी गईं।

मदर्से के मुन्शीजी कल शहर से सिनेमा देख आये थे। गिर्दे पर मुँह के बल पड़े गा रहे थे, "पिये जा, गाये जा, ओ बेक़रार दिल........"

ज़िलेदार के इज़ारबंद में गिरह लग गई, खोल न सके, तोड़ दिया तो चुन्नट ढीली हो गई। विहाज़ा नंगे हो गये; खड़े-खड़े कर्म विशेष कर रहे थे और मुन्शीजी से कह रहे थे—आँपनें शाँयँदँ सिंदाँ पीं लीं।

पटवारी साहब को उलटी हो रही थी। इतने में घर से नाइन आई। कहा, ललाइन बुला रही हैं। असली शराबी और शराब नहीं, जो क़ै के बाद कुल्ली करे और करने दे। इनका वर्णन कर रस-भंग करना अपना ध्येय नहीं। यहाँ तो कहने के लिए यह कहना है कि अन्दर के हुक्म पर लाला साहब उलटी टोपी लगाकर तौलिये की जगह धोती से मुँह पोंछते हुए ड्योढ़ी को चले, लेकिन चौंधियाकर घुड़साल में घुस पड़े, जहाँ घोड़ी की दुलत्ती खाने से बाल-बाल बचे। ख़ैर, नाइन की लड़की अंचल से अपना आधा मुँह ढके, मुस्कराती लेकिन डरती-डरती उन्हें ड्योढ़ी टिका ले गई। रास्ते में लाला साहब की विधवा भावज खड़ी थीं। 'लल्ला मैं हूँ, अजी मैं हूँ!' उनके चिल्लाने पर भी पटवारी साहब ऊपर लुढ़क ही तो पड़े। जौज़े पटवारी साहब इन्हें पकड़ कोठरी में घसीट ले गई, वहाँ एक खरखटी खाट पर धसक दिया। क्रोध के पीछे जब करुणा आई तो बड़ी देर तक अपनी छुन्नी और शराब बनाने-बेचने वालों के भाग्य को कोसती रही।

(३)

ज़िलाबोर्ड ने इस परगने में अनिवार्य शिक्षा बतौर नमूना इस ख़याल से पास की थी कि कामियाबी हासिल होने पर दरिद्र देश के सामने यह अपना आदर्श उपस्थित कर देगी। धनिकों और शिक्षितों को अशिक्षितों और दरिद्रियों के प्रति, इस उलट-फेर के युग में पूर्ण सहानुभूति दिखाने का मौक़ा मिला। ज़िलाबोर्ड के चेयरमैन साहब राष्ट्रीय, नर्म दल के थे। कांग्रेस उग्र राजनीतिक संस्था है, असहयोग का पालन केवल दस-बीस उच्च विचार के मनुष्य ही कर सकते हैं, इस कारण उससे सहयोग न कर सकते थे। उनका क्षेत्र दलितोद्धार और शिक्षा थी।

मदरहुआ का मदर्सा चार गाँवों के बीच ऊसर के एक टीले पर, चूँकि अभी अस्थायी था, छप्परों और कच्ची दीवारों से घेरघारकर क़ायम किया गया था। एक मिडिल पास ट्रेनिङ्ग फ़ेल नौउम्र मुन्शी और क़स्बाती स्कूलों का तब्दील किया हुआ फ़र्नीचर, इस साल इसके लिए यही काफ़ी था। जिन ज़मींदार साहब की पर्ती



ज़मीन में यह पुण्य अनुष्ठान हो रहा था, उन्हें भी चेयरमैन साहब के शुभ विचारों और अपनी रिआया का बड़ा क़लक था। अमीर-ग़रीब में बन्धुत्व बनाये रखना, वे कहा करते, बड़ा ज़रूरी था। एक दिन रियासत के बड़े महतों के यहाँ ठाकुर हाथी चढ़कर, अभी हाल ही में लड़की के ब्याह का नेवता करने गये थे। वहाँ भी किसानों की भरी पञ्चायत में कहा, "भाइयो, हम सब एक ही जात और बिरादरी के हैं। एक मा बाप से चार भाई होते हैं—एक राजा का मुसाहब, दूसरा सरकारी मुलाज़िम, तीसरा देश-परदेश करनेवाला व्यापारी और चौथा हल की मुठिया पकड़नेवाला किसान। सबको अपने-अपने हिसाब से रहना पड़ता है, सब एक दूसरे से प्रेम-भाव रखते हैं।"

लेकिन इस अनिवार्य शिक्षा-प्रणाली का प्रभाव किसानों के एक बड़े ख़िस्से पर कुछ का कुछ पड़ रहा था। शिक्षा के पक्ष में केवल वे थोड़े थे, जिनके पास कुटकुटी थी अथवा जिनका जीवन एक कोरे किसान का जीवन न था। देहातियों में शिक्षा के पक्ष और विपक्ष में खेत, खलियान, पनघट, सब कहीं गर्मागरम बहसें हुआ करती थीं।

दलजीत महराज महाजन अपनी असाढ़ी की उगाहियाँ लिखाने जा रहे थे (हस्ताक्षर की जगह आप अँगूठे का निशान बनाया करते थे)। गौढ़ी पर चरवाहों को अटई-डंडा खेलते देखकर सिर्री महराज से, उन्हें (बच्चों को) एक भोंडी गाली देकर कहा, "ये राकस पढ़ना-लिखना पसन्द करेंगे!"

सुखदीन मिसिर पास ही गोबढ़ौर में कंडे पाथ रहे थे। औरत मर गई थी। बहू पर्दे में रहती थी। बारह बरस का बियाहा बेटा खेत-खलियान में हाथ बँटा लेता था, लेकिन दो महीने से रोज़ सुबह लाज़िमी तालीमवाले पकड़ ले जाते थे। बकरियों को आधे दाम पर क़स्साब ले गया, पालो का खेत काटते प्यासों मर जाते। चिढ़कर सिर्री के पहले ही भरे घड़े की तरह भभक पड़े, "अब तो महाजनों के पुरखे पानी पा गये? वही राम आते होंगे। बस, सबको घर ले जायँगे। भगवान् सत्यानास करे इन मदरसावालों का। कंडा, सौदा, बछिया-पड़िया को हरेरी, लौंडों के बिना सब चौपट हुआ जा रहा है। गाय-भैंस कांजीहौस जाकर नीलाम हो रहे हैं? समन और जुर्माने का डर न होता तो मैं सुन्दरवा के गले में गला बाँध-कर बैठ रहता।

दलजीत महराज ने घोड़ी पर चढ़े-चढ़े सुखदीन के जनख़ेपन को इशारा करते हुए शिक्षा के समर्थन में अपने अँगूठे की छाप पर खेद प्रकट करना चाहा। लेकिन सिर्री महराज ने उन्हें बीच ही में टोककर समझा दिया, यह बात बिलकुल सच है, अन्न में प्राण बसते हैं, परन्तु ज्वर के रोगी को वह विष हो जाता है।

देहातियों का 'भेड़िया-धसान' मशहूर है। उनके इतना दिमाग़ नहीं होता कि दिल का हाल [illegible] सकें। गौढ़ी पर अपने विषय की समालोचना होते देख भीड़ इकट्ठी हो गई और हृदय के गोले छूटने लगे। चरन दरोगा ने दलजीत के पक्ष में कहा—

"अकबर कमला कर गहे बरसत कंचन नीर;
माथे छत्र दरिद्र के बूँद न परे शरीर।
थाने के दारोग़ाजी हमारी ही बिरादरी के नाई हैं। यह सब अँगरेज़ी और ए० बे० तक पढ़ लेने ही का प्रताप है कि 'कुरिया तोड़ चौरहा' खड़ा कर दिया; बड़े-बड़े बाँभन उनको नमस्कार करते हैं। लड़के का जनेऊ इस ठाट से किया कि लोगों की छाती पर कोदो दल दिये।" अंगनू अहीर ने सुखदीन की ओर से उत्तर देते हुए कहा, "दादा, जब मढ़ते बनती है तो बजती ख़ूब है। महा-जनों की कैफ़ियत इस वक़्त उस नाई की है, जिसके खेत में ख़ूब धान हुआ था और घर में बखरी भैंसें थीं, गाँव की ख़ैर-सल्लाह पूछने पर हमेशा ज़मीं-दार से कहा करता, सरकार, लोग ख़ूब दूध-भात खाते हैं। तुम्हारे घर चार काम करनेवाले हैं, इसलिए राह-राह नहीं चलते, कलिकवा को करधनी और [illegible]



पढ़ाते हो और चंदिर को चहारुम पास कराकर चकंदारी में भेजोगे।" झींगुर ने झंकारा, "हमारा बिसुवा सुन्दी को जब तक घास लाया, दस सेर दूध देती रही, जब से वह मदरसा पढ़ने जाता है, वह छुटा गई, चिगने भूखों मरने लगे।" सुखदीन ने एक और रद्दा कसा, गोबरभरे हाथ की उँगली गाल पर रख, सर्द आह खींचकर कहा, "जाके पाँव न जाय बिवाई; सो का जाने पीर पराई।"

दुलजीत महराज खिसियाकर मंझरा की ओर चल दिये। चरन दारोग़ा अपना-सा मुँह लेकर अपना काम करने लगे। भगाना भगतिन नीम के नीचे निबकौरी बटोर रही थीं, बड़बड़ा रही थीं, "दइया वह टिकनी का चरटुआ, कलह भइया को पाँसा डालने में मदरसा न जा सका तो दाढ़ी-जारों ने बालक की लोथ उठा दी!"

बहस के प्रारम्भ ही में सिरी महराज चौंककर एक ओर चल दिये थे। टिकनी उन्हें अस्तव्यस्त, दूर ही से, उन्हीं को खोजती दिखाई पड़ी थी। अब वह चरटुआ की पीठ में हल्दी-चूना लगाकर उसे सेंक रहे थे।

(४)

आर्थिक दरिद्रता टिकनी का जन्मसिद्ध अधिकार था। चमार के मर जाने से मानसिक दरिद्रता ने भी उसमें अपना घर कर लिया। प्राकृतिक उपहास शायद अपनी जवानी में था। टिकनी की दुलिया से दरिद्रता अपने सर्वाङ्ग, सम्पूर्ण विकसित रूप पर नाज़ करने लगी थी। पूरे दिन का पेट, अंतड़ली बुख़ार, अब उसे और दुबली न कर सकता था। गर्भ की दशा में सहज शिथिलता को भूख की मार अब और चेतनाशून्यता के द्वारा, क्या बढ़ा पाती। गाल पिचके, ओठ काले, रूखे बाल, सूनी आँखों का वर्णन यदि कोई सहृदय करता तो यही कह पाता कि वह एक मानव-शरीर की सम्पत्ति का उपहास कर रहा था। उसका लहँगा इतना फट चुका था कि उसमें और फटने की ताव न थी। आधी ओढ़नी की चरटुआ ने मदरसा जाने के पहले दिन लुंगी बना ली थी; आधी को जब वह सूखी, काली खुली छाती की ओर खींचती तो तुम्बाकार, नीली नसों से भरा हुआ, मटमैला-पीला पेट सभ्यता और हयादारों से कुछ प्रश्न करता-सा दिखने लगता।

टिकनी के सुख-दुख का समान साथी घर, इसी का-सा, इसकी ओर देख-देख, जैसे समझ-समझ, संसार की सारता और असारता पर हँसता-रोता था। उस पर भी, टिकनी के पति-संयोग के से, परिस्थितियों के प्यार बरस चुके थे। अब प्राकृतिक मार पड़ रही थी। प्रचण्ड वायु के झोंकों ने थप्पड़ों मार-मार जैसे छप्परों का कलेजा छलनी कर दिया हो। हवा की मदद से, मँगरी टापर के अभाव में, बरसाती बूँदों ने लोनी लगी कमज़ोर दीवारों पर अपने बेंड़े कोड़े बरसाये थे। बछड़े के साथ नीम का दरवाज़ा भी चार रुपये पर महाजन बरसात के पहले 'आई-गई' कर खोद ले गया था। वर्षा ने अपनी क्रीड़ा में कवहियों को गलाकर द्वार बन्द कर देना चाहा था, लेकिन वे जैसे ज़िद्दन, अपनी चौकोर शक्ल से अर्द्ध-चन्द्राकार भुरभुरी बन, जब चाहते, मा-बेटों को रास्ता दे देतीं।

चरटू हिन्दी के अलिफ़ दर्जे में, उर्दू के क़ाफ़ जैसा लिखा, फटे टाट पर, बच्चों की आख़िरवाली क़तारों में बैठा था; दोनों पैर आगे को तने हुए, हाथ गिरे, सर झुका। मुन्शीजी स्कूल से दूर एक दरख़्त के नीचे बीड़ी सुलगा रहे थे और पटवारी से, जो लोग चेचक का टीका न लगवाने की तरह बच्चों को स्कूल न भेजना जुर्म, अपनी बेवक़ूफ़ी से नहीं समझ रहे हैं और मोटे हैं, उन पर कार्रवाई ज़ाब्ता कराकर समन निकलवाने को कह रहे थे।

निस्तेज चरटू पढ़ने में तेज़ न था; स्कूल केवल मार और क़ानून के भय से आता था। संस्कारों की सदियों की कमी नये, रोबीले मुन्शीजी एक घण्टे में पूरी करने का दावा रखते थे। लगातार पन्द्रह दिन तक एक हज़ार बार कवर्ग के उच्चारण



में चण्टू ने 'ङ' को 'गा' कहा, लेकिन हठीले मुन्शीजी अपने को यह समझने का मौक़ा न देते कि इसका कारण क्या था।

मास्टर को दर्जे के बाहर देख लड़के होहल्ला मचा रहे थे; मुन्शीजी दूर ही से उपाधिविशेष का प्रयोग कर, उन्हें बीच-बीच में, चुप रहने को धमका रहे थे। बच्चों की खुले हृदय की चुलबुलाहट ने चण्टू को भी देर तक चिन्तित मुद्रा में रहने का मौक़ा न दिया। एक ने इसकी चुटिया खींचकर कहा—भई चण्टू, सब खेल रहे हैं, तुम्हारा मुँह बनाकर बैठना अच्छा नहीं लगता।

चण्टू भी उठ खड़ा हुआ। सबके साथ मुस्कराने लगा। मुन्शीजी लाला से सलाह करते दूर निकल गये थे। लड़के बाहर आकर छप्पर के नीचे खेलने लगे। हलकी फुहार पड़ रही थी। पश्चिम में आँधी का रुख़ था।

आज मदर्से चलते वक़्त टिकनी ने चण्टू से टूटी-टूटी बातें की थीं। उसने कहा था, उसके प्रसव-पीड़ा हो रही थी और शायद उसी में उसका अंत भी हो जाय। कारण बताकर छुट्टी माँगने पर भी सुबह मुन्शीजी ने कहा—यह करिश्मये क़ुदरत है, जिस तरह सब पार-घाट लग जाती हैं, तेरी मा भी तुझे छोटा-सा मुन्ना खिलाने को देगी। चण्टू दुखी उक्त कारणों से था, परन्तु अब हँसने-खेलने लगा; यह सोचकर कि मा सचमुच अच्छी हालत में मिलेगी; जैसा मुन्शीजी ने कहा था, एक मुनुवा भी हो गया होगा। निराशा के बाद आशा कितनी सुखद होती है।

छुट्टी की घंटी हुई। चण्टू ने अपने हिस्से का चना और गुड़ टिकनी के लिए रख छोड़ा था, उसे लेकर जल्द घर चलता हुआ। वह बारह वर्ष का था, लेकिन लकुटी लिये दीन दुर्बल आठ बरस का जान पड़ता था। पानी ख़ूब बरसकर बन्द हो गया था।

× × ×

हुलासपुर और मदरहुआ पुरवा के बीच ग्राम के जङ्गल में एक बरसाती नाला था। सुबह चण्टू जब घर से चला था, और लड़कों के साथ की वजह स्कूल का चपरासी भी साथ था, उस वक़्त नाला सूखा था। अब दौंगरा गिर जाने से उसमें पानी वह रहा था; धार बहुत तेज़ थी। जब चण्टू किनारे पहुँचा, हुलासपुर और चन्दनपुर के लड़के बँधिया पर होकर नाला पार कर चुके थे। कुछ दूर के टीलों पर झूलों में छुई-छुऔवल खेल रहे थे। घर पहुँचने की उत्सुकता और उनका साथ करने की व्यग्रता में उसने समझा, नाला बहुत कम गहरा है और सब इसी सीधे रास्ते होकर निकल गये हैं। नाले में क़दम रखते ही उसने देखा, लड़कों से कुछ पूछकर सिर्री महराज इसकी ओर बढ़े, फिर दौड़ पड़े। चण्टू ने समझा, मा के मुन्ना हो गया, सिर्री काका उससे जल्द चलने को कहने आ रहे हैं। वह पार जाने को आगे बढ़ा, लेकिन निर्दय नाले ने उसे बीच ही में निगल लिया। सिर्री महराज भी क्रोध में इस दानव से लड़कर उसे छीनने लगे, लेकिन थोड़ी देर के उखाड़-पछाड़ में वह इन्हें भी चट कर पचा गया।

(५)

टिकनी के बच्चा और सर्साम साथ ही हुआ। रात भर वह घर के छप्पर और दीवार से पुकारती रही, "चण्टुआ 'क ख ग घ' पढ़ने गया था, अब तक आया नहीं?" सुबह वह दरवाज़े तक खिसक आई। सूखे, सिकुड़े, मरे बच्चे के मुँह पर वह अपना सूखा स्तन रख दुलराकर कहती, "पी ले मेरे मुन्ना, चण्टुआ 'क ख ग घ' पढ़ने गया है। सड़े बच्चे को बँदरिया की तरह वह कई दिन तक छाती से चिपटाये हुए अपनी करुणा से वायुमण्डल को कोंचती रही, "तुमने देखा, चण्टुआ 'क ख ग घ' पढ़ने गया है।"

ब्रजभाषा का एक रत्न

पं० शिवदत्त चतुर्वेदी बी० ए०

रत्नाकरजी की मृत्यु के पश्चात् अथवा यों कहिए कि इस प्रकाश-पुंज के यकायक अस्त हो जाने से हिन्दी-ब्रजभाषा-साहित्याकाश का प्रकाश कुछ धुँधला-सा पड़ गया था। श्री-वियोगी हरिजी व बाबू दुलारेलालजी भार्गव आदि ही तब से अब तक रहे-सहे प्रकाश के अस्तित्व का बोध कराते रहे हैं—वरना दूसरी ओर तो खड़ी बोली के दौर-दौरे के इस युग में कोई तो 'इलाहाबाद' के 'हालावाद' में 'हृदय की वास्तविक, सच्ची अनुभूति'-रूपिणी कविता के दर्शन करके साहित्य की वर्तमान प्रगति पर मुग्ध है, कोई बड़े-बड़े राष्ट्रीय महाकवियों का भोग लगाकर अपनी "छनी-छनाई साहित्यिक-विजया" का घूँट काव्य-प्रेमियों को पिलाने में मस्त हैं। (हमें भी ख़ुशी है कि चलो, और कुछ नहीं तो साहित्य का कलेवर तो बढ़ ही रहा है, चाहे आगे चलकर भले ही स्थूल, बेतुका और बेढंगा हो जाय;) किन्तु इसी बीच में अचानक ही ब्रजभाषा की एक अत्युत्तम सरस सुन्दर रचना "वीर-वधू" को पढ़कर अतीव आनन्द मिला। उक्त ग्रन्थ के रचयिता हैं श्रीयुत सुकवि नाथूरामजी माहौर। इस पुस्तक को पढ़कर आपकी अन्य रचनाओं के अवलोकन की उत्कट लालसा हो उठी और शीघ्र ही "वीर-बाला" मँगवाकर देखी गई। कविवर माहौरजी की रचनाओं को पढ़कर यही धारणा होती है कि ब्रजभाषा-साहित्याकाश में एक जाज्वल्यमान नक्षत्र का उदय हो रहा है।

पूर्वोक्त कवि महोदय की रचना की कुछ विशेषताओं के सम्बन्ध में इन पंक्तियों द्वारा हम साहित्य-प्रेमियों के समक्ष कुछ निवेदन करने का प्रयत्न करके उनसे अनुरोध करते हैं कि ऐसे उदीयमान श्रेष्ठ कवि की कृति का अवलोकन करके काव्यानन्द-लाभ करें। उनकी "वीर-वधू" को पढ़कर हम काव्य-मर्मज्ञ, विद्वद्वर श्रीरमाशंकरजी शुक्ल "रसाल", एम्० ए० के शब्दों में कह सकते हैं कि पुस्तक अपने ढंग की एक है और समय तथा समाज के लिए उपादेय भी है। इस समय देश के लिए ऐसी ही पुस्तकों, कविताओं तथा कवियों की आवश्यकता है, जिनके द्वारा समाज के अन्दर वीरता की टिमटिमाती हुई ज्योति में नवल स्फूर्ति आ सके। कवि प्राचीन परिपाटी के आधार पर चलता हुआ भी देश-काल की नई माँगों की पूर्ति का सफल प्रयत्न कर सकता है।

"वीर-वधू" में एक वीर-वधू का शिख-नख वर्णन है। आज तक हिन्दी-साहित्य में जितने भी ऐसे शिख-नख या नख-शिख पाये जाते हैं, सभी में वर्णित स्त्री के यानी नायिका के प्रत्येक सुन्दर अंग का ऐसा श्रृंगारिक सटीक चित्र खींचा जाता

है, उसके अंग-प्रत्यंग को ऐसा हृदयाकर्षक कहकर वह वस्त्राभूषण आदि से अलंकृत ऐसे रूप में पेश की जाती है कि जो लोग रमणी-सौन्दर्य के उपासक हैं, मानो वह उनकी साक्षात् आराध्य देवी है। ऐसे वर्णन प्रायः अश्लील होते हैं। पाठक अपने पिता या किसी भी गुरुजन के समक्ष ऐसे शिख-नख वर्णनों को बेधड़क नहीं पढ़ सकता। कारण, इन वर्णनों द्वारा कवि की चित्रित उस हृदय-हारिणी सर्वाङ्गसुन्दरी की ओर जो आकर्षण होता है, उसमें कुछ कामुकता की गन्ध होती है, आसक्ति की अपील होती है। किन्तु माहौरजी का शिख-नख उन शिख-नखों की कोटि में नहीं आता। उसे पढ़कर हृदय में आसक्ति के स्थान पर जोश पैदा होता है, वीरांगना के प्रति श्रद्धा और सम्मान उत्पन्न होता है। अतएव यह शिखनख तो ऐसे साहित्य-सिंहासन पर अपना एक विशेष स्थान रखता है।

जहाँ तक वधू के श्रृंगार और सुन्दरता का प्रश्न है, वहाँ तक तो माहौरजी की "वधू" उनसे पहले के कवियोंवाली 'रमणी' के समान ही सुन्दरी है। उसका ठीक वही श्रृंगार है, वही सारी पहने है, वैसी ही बेनी है, मृग-मद-बिन्दु इत्यादि सब वे ही बातें हैं। माहौरजी उसे कछोटा बँधवाकर हाथ में तलवार नहीं देते, किन्तु फिर भी इनमें और उनमें आकाश-पाताल का अन्तर है। जहाँ रीति-कवियों की नायिका के प्रत्येक श्रृंगार में 'रमणीयता' दर्शाई गई है, वहाँ श्रीमाहौरजी की 'वधू' के एक-एक अंग में उसके एक-एक श्रृंगार तथा साज में वीरत्व फूटा-सा पड़ता है, ओज की किरणें-सी निकल रही हैं और उसका प्रत्येक अंग और श्रृंगार उसकी वीरता का द्योतक है—यहाँ तक कि "वीर-वधू" के कुच भी देखनेवालों को ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो शत्रुओं के सिर को चूर्ण करने के लिए भीमसेन की गदा हैं—रीति-कालिक कवियों की तरह वे उन्हें गेंद से, रतिरानी के सिंधौरा से या कलधौत के सरोरुह से अथवा कामभूपति के उलटे नगारे से नज़र नहीं आये। इनके और उन कवियों के हर एक अवयव के वर्णन में ऐसा ही अपरिमित व्यवधान है। क्या-क्या लिखा जाय! पुस्तक पढ़ने पर मालूम हो जाता है कि माहौरजी व उनके पहले के कवियों के दृष्टिकोण में कितना भेद हो गया है! कवि की यह बिलकुल ही नई सूझ है। नायिका के रूप को देखने के लिए माहौरजी ने यह एक और ही नया चश्मा तैयार कर दिया है, जिसके द्वारा हम उसके केवल "मृदूनि कुसुमादपि" को ही नहीं, साथ ही साथ "वज्रादपि कठोराणि" अंग को भी अब भली भाँति देख सकते हैं। "वीर-वधू"-रचना की यह मौलिक विशेषता हिन्दी-साहित्य के अन्तर्गत एक मार्के की चीज़ है, साहित्य-निधि की अमूल्य स्थायी सम्पत्ति है।

अब हमें वीर-वधू की रचना-विषयक अन्य बातों पर दृष्टिपात करना है। अभी तक जो कुछ निवेदन किया गया, उससे पता चल जाता है कि कवि के भाव कैसे पवित्र, कैसे ऊँचे हैं! नायिका को अब केवल कामोत्पादिनी रमणी के रूप में न देखकर उसे एक वीर-वधू के रूप में देखने का आदेश है। ऐसे ही पवित्र भावों की गाड़ी पर बैठकर हम अपने प्राचीन भारतीय आदर्श के स्थान पर पहुँचने की आशा कर सकते हैं। माहौरजी! आपकी इस साहित्यिक नई सूझ के लिए, इस पुनीत भावना को साहित्य में भर देने की कल्पना के लिए आपकी जितनी सराहना की जाय, अपर्याप्त होगी। ऐसे ही भावों से पूर्ण होकर साहित्य "सत्यं शिवं सुन्दरं" वाले पद पर पहुँचता है।

इन कविवर की भाषा का आनन्द तो पूर्ण रूप से पढ़ने पर ही मिल सकता है। "वीर-वधू" में भाव-प्रकाशन की सुन्दरता व उपादेयता तथा सुव्यवस्थित भाषा की सजीवता, सरसता व मधुर ध्वनि का ऐसा मनोहर मिश्रण मिलता है, जो सचमुच चमत्कारपूर्ण है। "वीर-बाला" में तो अत्यन्त ही रसानुकूल भाषा का प्रयोग है। वीर-रस की अभिव्यक्ति के लिए टवर्ग आदि परुष शब्दों का



बाहुल्य है। माहौरजी वीर-रस के बड़े ही सिद्ध-हस्त कवि मालूम पड़े। कहीं-कहीं इनकी भाषा ऐसी प्रांजल है कि उसके प्रभाव से पढ़ने के साथ ही साथ वर्णित रस की प्रतीति-सी होने लगती है। रत्नाकरजी की याद बिना आये नहीं रहती—केवल इतने ही भेद के साथ कि माहौरजी की यह रचना खड़ी बोली में है। "वीर-बाला" का एक छन्द देखिए—

> दुष्ट बर बैरिन की नष्टभ्रष्टकारी पुष्ट
> रुष्ट-सी गरिष्ठ ताक तमक तरेरी थी;
> माल-सी सपष्ट करवाल-सी कलिष्ट काल
> बाल-सी बलिष्ठ ज्वाल-माल-सी उजेरी थी।
> "नाथूराम" हेरी म्लेच्छ-वंसज बरिष्ठन पै
> उतकृष्ट चन्द सम घूमत घनेरी थी;
> कष्ट अदृष्ट देशद्रोहिन की सृष्टि
> बाण-वृष्टि-सी बरिष्ट "बाईसाब" दृष्टि तेरी थी।

वीरत्वपूर्ण भाषा का कैसा अविच्छिन्न प्रवाह है। आपकी रचना में इसी तरह वाक्यविन्यास, शब्दयोजना और अर्थसौष्ठव पद-पद पर मिलता है। शब्दों की तोड़-मरोड़ भी बहुत ही कम है। न्यून-पदत्व या अधिक-पदत्व दोष ढूँढ़ने पर भी कम मिलेंगे। इन सभी बातों पर विचार करने से यही ज्ञात होता है कि कवि का शब्द-भांडार अगण्य है, भाषा पर उसका अधिकार-सा है। माहौरजी ने अपनी "वीर-वधू" में "अरथ अमित अति आखर थोरे" का सिद्धान्त ख़ूब निबाहा है।

इसके अतिरिक्त कवि महोदय ने अलंकारों का भी अत्यन्त ही उचित प्रयोग किया है। उत्प्रेक्षा-अलंकार पर आपका हाथ अधिक रवाँ है। आपकी "वीर-वधू" तो मानो उत्प्रेक्षाओं का अजायब-घर है। "रसाल"जी के शब्दों में समस्त पुस्तक या काव्य को उत्प्रेक्षा-काव्य कहा जा सकता है; क्योंकि प्रत्येक छन्द में उत्प्रेक्षा-अलंकार ही प्रधान है। हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि माहौरजी की रचना में अलंकार भार-स्वरूप कहीं भी नहीं पाये जाते, प्रत्युत वे सर्वत्र ही भाव-व्यंजना और रस का अनुभव तीव्र कराने में ही सहायक हुए हैं। अनुप्रास की छटा तो देखते ही बनती है। और भी अलंकार ऐसे सहज तथा स्वाभाविक हैं, मानो कवि को इनके लिए कोई प्रयत्न ही नहीं करना पड़ा। "वीर-वधू" का एक छन्द है—

> कहैं कौन विधि सुजस तिहारौ
> तुच्छ एक आनन सौं;
> कहि न जात है चतुरानन सौं
> सहसा सहसानन सौं।

ऐसे एक नहीं, अनेकों उदाहरण कवि की अलंकार-योजना के चातुर्य को सूचित करते हैं। चमत्कार की अधिकता और कल्पना की प्रचुरता भी इस काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

अस्तु, माहौरजी के विषय में नवीनता होने के कारण उन्हें नई-नई उपमाओं की सृष्टि करने में भी सफलता मिली है। स्त्री की बेनी की उपमा सर्पिणी से दी जाती है। माहौरजी ने भी उसे माना है, किन्तु देखिए वीर-वधू की वीरता-सूचक किस नवीनता और उपयुक्तता के साथ—

> छवि ऐनी जग जस सरसैनी
> स्याम बरन बेनी है;
> रिपु-मंडूकन ग्रास करन जनु
> गुही ब्याल-स्रेनी है।

कवि की "वीर-वधू" तो रणांगण की नायिका है। उसका प्रत्येक अंग, साज और आभूषण सभी शत्रुओं के दिल को दहलानेवाले हैं। इसी लिए तो वे कहते हैं कि—

> पिकबैनी की परी पीठ पै
> बेनी छबि की आकर;
> बन्दीकरन अरिन रन-आँगन
> रुरुक रही जनु साँकर।

वीर-वधू के उन्नत ललाट को देखते ही अच्छे-अच्छे योद्धाओं का बल टूट जाता है—वीरों के हौसले को पस्त करनेवाले ऐसे मस्तक की उपमा



माहौरजी ने कैसी सुन्दर, कैसी उपयुक्त दी है कि मन प्रसन्न हो जाता है—

बीरन को बल-हरन बाज कौ
सोहत भाल सबल है ;
सम्भुचाप कैं सहित मनहुँ सुभ
सीय स्वयम्बर-थल है ।

विस्तीर्ण ललाट ही स्वयम्बर-स्थल है, जिसमें दोनों नेत्रों के ऊपर जो भौंहें हैं, वे ही संसार के बड़े-बड़े शूरमाओं (रावणादिक) के पुरुषार्थ-गौरव को धूल में मिला देनेवाले शिव-धनुष के टूटे हुए मानो दो खण्ड पड़े हैं। भौंह की उपमा धनुष ही से तो दी जाती है। यहाँ जिस धनुष से दी गई है, वह अपने समय के बड़े-बड़े तीस-मारख़ाँओं के छक्के छुड़ा चुका है, जिसके किंचित्मात्र टस से मस न होने पर बेचारे जनक को वीर-विहीन मही का बोध होने लगा था—वीर-वधू के मस्तकरूपी आँगन में मानो वही यशस्वी धनुष भौंहों के रूप में टूटा पड़ा है। सचमुच, तभी तो उसका सबल भाल वीरों के बलदर्प को हरनेवाला हो सकता है।

वीर-वधू के विशाल मस्तक पर जो रेखाएँ हैं, हमारे माहौरजी को वे भाषा के अक्षर से दीख पड़ते हैं। उन्हें मालूम होता है—

रेखा सहित विशाल भाल भल
सोहत परम नवीनौं ;
रन में बैरिन हार मानि जनु
बिजय-पत्र लिखि दीनौं ।

अहा! कैसी अनुपम सूझ है, कैसी नवीन कल्पना है और कितनी उपयुक्त! वास्तव में यह सब कवि की अद्भुत कवित्वशक्ति के द्योतक हैं। पुस्तक जैसे-जैसे आगे पढ़ते जाते हैं, प्रत्येक छन्द पर ही प्रायः तबियत फड़क जाती है। ऐसी ही कल्पनाएँ, ऐसी ही अनोखी गहरी सूझें पद-पद पर मिलती जाती हैं। उस वीर-रस की प्रत्यक्ष मूर्त्ति वीर-वधू की भौंह पर भी ग़ौर कीजिए—रणक्षेत्र में उस वीरांगना की भौंह में ज़रा-सी शिकन पड़ी कि मानो फ़तह हो गई—इधर भौंह खिंची, उधर शत्रु का झंडा धराशायी हुआ, विजय-दुंदुभी बजने लगी—

भौंह भरीली रस की भाजन
रुचिर रेख बंका है ;
धनु-समान खिंचि जात जवै
तब देति बिजय-डंका है।

माहौरजी के इस छन्द पर महाकवि भूषण के "सिवा पूछैं सिव सौं समाज आजु कहां चलीं! काहू पै सिवा नरेन्द्र भृकुटी चढ़ाई है" वाले कवित्त का स्मरण हो आता है।

कहाँ तक दृष्टान्त दिये जायँ, इस काव्य का तो प्रत्येक ही छन्द उदाहरण हो सकता है। लेख को संक्षिप्त करने की कोशिश करने पर भी वीर-वधू का चिबुक-वर्णन कुछ न कुछ अवश्य लिखने को बाध्य कर रहा है। रण-क्षेत्र में वीर-वधू जिस समय ठोढ़ी उचकाकर शत्रु की ओर देखती है तो माहौरजी कहते हैं कि—

चिबुक चहूँ दिसि चमकीली जब
सनमुख रन रोरै है ;
सुछबि गाढ़ के सिन्धु माहिं नित
अरिनि-अनी बोरै है।

उस बुन्देलखण्डी वीरांगना की ठोढ़ी पर गुदना गुदा हुआ है, उसकी उपमा अत्यन्त ही अनूठी है। कवि कहता है—

वीर-धना ठोड़ी को गुदना
उपमा हिय हरि लेवै ;
बल-सागर जनु डूबि रह्यौ रिपु
सीस दिखाई देवै।

चिबुक-गाड़ की उपमा ऊपर कवि सिन्धु से दे चुका है, जिससे शत्रु-सेना डूब जाती है; वहीं पर गुदा हुआ यह गुदने का निशान क्या है? वीर-वधू के बल-सागर में शत्रु डूब गया है। उसका सिर देख पड़ रहा है।

इसी प्रकार समस्त काव्य को पढ़कर हृदय चकित हो जाता है। उसके वीर-बाने को देखकर हृदय में उत्साह की उमंग आती है और साथ ही कवि के कौशल पर भी मन मुग्ध हो जाता है। बहुत-सी उपमाएँ तो बिल्कुल ही मौलिक हैं। वीर-वधू की नासिका को "अरिन अनी नासन हित जग में, जनु सुरंग-सी सोहै"। सुरंग की उपमा देना इसी तरह "तुल्य कालिका अरिन घालिका जनु द्विनालिका राजै"। दुनाली बन्दूक़ से समता करना माहौरजी की सर्वथा नवीन उपमाएँ हैं। विस्तारभय से कवि की रचना में मौलिकता दिखाने के लिए इन इने-गिने थोड़े-से उदाहरणों से ही सन्तोष किया जाता है; वरना जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, उक्त काव्य का प्रायः प्रत्येक छन्द ही उदाहरणरूप में पेश करने के योग्य है। शब्द-योजना, प्रबंसौष्ठव तथा ऊँची कल्पना सभी देखने की चीज़ है। "वीर-वधू" में काव्य के प्रधान गुण ओज, माधुर्य और प्रसाद तीनों ही पर्याप्त रूप में पाये जाते हैं।

हमें पूर्ण आशा है कि माहौरजी के ऐसे सुन्दर काव्य का साहित्य-संसार में काफ़ी सम्मान होगा, और माहौरजी अपनी अन्य इसी प्रकार की, बल्कि इससे भी बढ़कर मनोहर कृतियों से हिन्दी-ब्रजभाषा-साहित्य के गौरव को बढ़ाने में समर्थ होंगे। अन्त में हम यही कहते हैं कि "वीर-वधू"-काव्य की रचना करके माहौरजी ने साहित्य-निधि में एक स्थायी सम्पत्ति का योग दिया है और इसी प्रकार आप कृपा करते रहे तो शीघ्र ही साहित्याकाश आपके प्रतिभा-प्रकाश से जगमगाने लगेगा।



समानता की वेदी पर

श्रीदयानन्द गुप्त बी० ए०, एल्-एल्० बी०

रमेश का जीवन उसे एक मधुर संगीत की तरह लगता। वह अपने सीमित जीवन ही को मुक्ति समझता, उसी में मग्न रहता। उसे दुनिया के सोचने की छुट्टी न थी, उसके सामने रमा ही उसकी दुनिया बनी हुई थी। उसी के साथ हास्य, वार्तालाप और क्रीड़ा में दिन बिता देता, रातें उसी के आलिंगन और स्वप्नों में खोकर। रमा भी उसे अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देती। यदि कोई मित्र रमेश को आवाज़ देता तो वह कहला देती कि नहीं हैं, कहीं गये हुए हैं। मित्र निराश लौट जाते। दोनों आसक्ति के प्रमोद में बहे जा रहे थे।

एक-एक कर दिन, पक्ष, मास और वर्ष निकल गये। रमेश का द्विरागमन जब वह बी० ए० की अन्तिम श्रेणी में पढ़ता था, हुआ था। वह परीक्षा न पास कर सका और तभी से उसका कालेज छूटा। उसने कालेज की लड़कियों को देखा था और उनकी शोख़ी, मस्ती और अदा को। वह इस चमकीले बाह्य आवरण का क़ायल हो चुका था। उसकी आँखों में वह चमकीला मुलम्मा समा चुका था और उसकी परख की दृष्टि जाती रही थी। उसकी कल्पना में सावन के अंधे की दृष्टि, क्षितिज में हरियाली की भाँति, चमक-दमक निरन्तर घूमती रहती। रमा अधिक पढ़ी-लिखी न थी, पर रूप-यौवन में किसी से कम भी नहीं थी। रमेश की आँखों में रमा में केवल एक कमी नज़र आती थी, वह थी रमा की कम शिक्षा।

रमेश अपने भाग्य को सराहता था, पर वह सोचता था कि अगर रमा मैट्रीक्यूलेशन पास कर ले तो वह भी किसी से कम सौभाग्यशाली न रहे। रमा के साथ सभा-सोसाइटियों में जाने में रमेश को झिझक होती थी; क्योंकि रमा अँगरेज़ी नहीं जानती थी। पहले तो रमेश ने स्थानीय गर्ल्स कालेज में रमा को भरती कराने का विचार किया। एक तो रमा जाते हुए झेपती थी, दूसरे रमेश के सम्बन्धी इस बात के पक्ष में न थे; अतः रमेश को अपना इरादा बदलना पड़ा और उसने रमा की प्राइवेट शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया।

रमा धीरे-धीरे अँगरेज़ी संस्कृति के साँचे में ढलने लगी और उसके वैसे ही पंख उगने लगे। रमेश की दलीलों में अब वह भी दख़ल देती और दोनों मानव-सम्बन्धों व सामाजिक बन्धनों पर तर्क-वितर्क करते।

शिक्षा प्रारम्भ होने से पूर्व जब कभी रमेश उससे यह कहता कि प्रेम के विना विवाह एक प्रकार की वेश्यावृत्ति ही है; प्रेम होने पर ही विवाह करना चाहिए, तो वह चिढ़ उठती थी और कहती, विवाह होने पर आप ही आप प्रेम हो जाता



है। हिन्दू-पत्नी का धर्म पति की सेवा करना ही है, उसकी समानता नहीं। रमेश ठहाका मारकर हँस पड़ता था, जिस पर रमा चुप हो जाती।

अब रमा के विचार-परिवर्तन का काल आया। वह पहले की तरह रमेश के साथ सिनेमा, खेल-तमाशों में जाने में न झिझकती और उसका घूँघट ऊपर को उठता, कम होता हुआ नज़र आता। उसके पैरों में ऊँची एड़ी के जूते दिखलाई देते और वह भी आज़ादी और समानता के रंगीन स्वप्न देखती। दोनों महसूस करते कि वे अब पहले से अधिक सुखी हैं और संसार की आँखों में गड़े जा रहे हैं।

रमेश के जीवन-प्रवाह में अनायास एक बाधा आ खड़ी हुई। उसका एक सहपाठी मित्र उससे एक दिन मिलने आया। दोनों थोड़ी देर में आपस में घुल-मिल गये और बातचीत का रुख़ स्त्री-जगत् की ओर फिरा। रमेश स्त्री-पुरुष के समानाधिकार में विश्वास रखता था, पर नरेश प्रतिगामी प्रवृत्ति का था। रमेश ने कहा, "स्त्रियाँ मानव-जगत् का महत्त्वपूर्ण अंश हैं। उनकी उन्नति व सहायता के बिना कोई देश आगे नहीं बढ़ सकता।"

नरेश—यह ठीक है, पर इसके लिए हमें अपना सामाजिक संगठन और प्रकार का करना होगा। पाश्चात्य देश की स्त्रियों की आज़ादी में मुझे विश्वास नहीं।

रमेश—पर हमारा समाज तो उनसे भिन्न है।

नरेश—इसी लिए हमको उनसे भिन्न प्रकार की आज़ादी देने की ज़रूरत है। वैसी आज़ादी देने पर हमारे यहाँ स्त्री-पुरुष का पवित्र बन्धन कलंकित और शिथिल हो जायगा।

रमेश—परन्तु उनको तो यह असह्य नहीं। प्रेम के बिना ऐसा होना ही चाहिए।

नरेश—पर हमें तो यह रुचिकर नहीं। या तो हम अपने धार्मिक व सामाजिक दृष्टिकोण में वैसी ही क्रान्ति कर लें, तब वैसी ही आज़ादी दे सकते हैं या अपने समाज में सुधार करके उसके अनुरूप समानता दें। मेरे विचार में द्वितीय दृष्टिकोण ही युक्तियुक्त और ग्रहणीय है।

रमेश—समाज में भी तो सुधार की आवश्यकता है।

नरेश—निःसन्देह है, पर पाश्चात्य समाज की नक़ल की ज़रूरत नहीं। वहाँ की स्त्रियाँ तितलियों की तरह पंख खुलते ही आकाश के रंगों से बातें करने लगती हैं।

नरेश थोड़ी देर और बैठकर चला गया, पर रमेश के मस्तिष्क को सोचने के लिए भारी धक्का दे गया। रमेश के हृदय पर नरेश की बातों का गहरा प्रभाव पड़ा। उसका मस्तिष्क सहज ही प्रज्वलित होनेवाली वस्तु की तरह था। वह रात को अपने अध्ययन-कक्ष में सोया और कल्पना उसकी पलकों पर बैठी जागती रही।

सुबह को वह हृदय में भावों का द्वन्द्व लिये हुए उठा। उसने अब अपनी जीवन-परिपाटी पर एक दूसरा चित्र बनाना चाहा, जो नरेश के विचारों से कुछ-कुछ मिलता-जुलता था। अब वह खेल-तमाशों को महत्त्व न देता और उनसे बचने की कोशिश भी करता, पर उसकी पत्नी उसे आगे की ओर ढकेलती। रमा खुले हुए वातावरण की अभ्यस्त हो चुकी थी और सभाओं की सजधज उसे कितनी मोहक लगती, यह वही जानती थी। उसका दिल अख़बारों में सिनेमा-खेलों की प्रशंसा पढ़-पढ़कर देखने के लिए तड़प उठता और वह दिन पर दिन उदास रहती। वह मन में सोचती, "अगर इन्हें यही पसन्द था तो इन्होंने मेरी पहली ज़िन्दगी क्यों बदली? मैं कब कहती थी कि मुझे अपने साथ बाहरी दुनिया में ले चलो? मैं यहीं सुखी थी। इनसे मेरा यह सुख भी न देखा गया। मुझे बाह्य जगत् में खींच लाये और अब वहाँ से मुझे फिर पुरानी चहारदीवारी के पिंजड़े में बन्द करना चाहते हैं।" उसने फिर भी संयम नहीं छोड़ा, वह जलती थी और धुआँ भीतर ही



भीतर घुटता था; पर तब भी उसने रमेश से स्वयं कभी कुछ नहीं कहा ।

देहली-जैसा विख्यात, विशाल शहर । वहाँ नये-नये मनोरंजन रोज़ होते और बहती हुई नदी की लहर की तरह चले जाते । रमा किनारे की लता की तरह चुपचाप उन्हें देखती और उसकी कल्पना के सैकड़ों फूल खिलते और मुरझाकर चू पड़ते । लहर उन्हें बहा ले जाती ।

यकायक अख़बारों के पृष्ठ विज्ञापन से भर गये, 'शान्ता आप्टे का नाच निशात थियेटर में ।' नाचती हुई आप्टे का चित्र अख़बारों के पाठकों की दृष्टि के सम्मुख नाच उठता । सीटें पहले ही से रिज़र्व की जा रही थीं । रमा ने भी विज्ञापन पढ़ा । उसका हृदय उसकी उदासी की अँधेरी में कौंधे की तरह तड़प उठा ; पर तब भी शिला की भाँति उसका संयम कठोर बना रहा ।

रमेश उसकी मानसिक स्थिति जानता था । उससे चुप न रहा गया और उसने रमा से चलने का प्रस्ताव किया । रमा ने अस्वीकार कर दिया और कहा, "किसी भाँति तो मैं अपने हृदय को समझा सकी हूँ । जब फिर भविष्य में जाना नहीं होगा तो आज ही ऐसी क्या ज़रूरत पड़ी है ?"

रमेश—आज तो चलो, कल की कल फिर देखी जायगी ।

रमा—मनुष्य जिस ज़िन्दगी का आदी बन जाता है, उसे वह आसानी से नहीं छोड़ सकता । मैं तो अपनी पहली ज़िन्दगी बदलना ही नहीं चाहती थी । मैं अपने दिल के साथ इस तरह क्रीड़ा नहीं कर सकती ।

रमेश—फिर न जाना, आज तो चलो ।

रमा—नहीं । (उसकी आँखों ने दो गोल-गोल मोती गिरा दिये ।)

रमेश को बड़ी ठेस लगी । उसके हृदय में विचार बड़ी तेज़ी के साथ आने-जाने लगे । अभी तो उसने रमा में कोई दुर्बलता नहीं पाई थी । उसे ऐसा व्यवहार नहीं करना था । रमा आज से पहले उसे कभी ऐसी सुन्दर नहीं मालूम हुई थी, उसका दिल प्यार से भर गया । उसने निश्चय कर लिया कि वह नरेश की बातें भुला देगा । रमा से उसने फिर कहा—

रमेश—आज तो तुम्हें चलना ही होगा । अब हम पहले की भाँति फिर सुखी रहने का प्रयत्न करेंगे ।

आख़िरकार रमा राज़ी हो गई ।

शाम आई और खेल शुरू होने का समय भी निकट आ गया । पहले की भाँति रमा ने उससे पूछा कि वह कौन-सी सारी पहने । वह आज हल्कापन अनुभव कर रही थी और उसके अंतर का पात्र फिर छलका पड़ता था । दोनों पहले दरजे में बैठे और प्रसन्न-वदन घर आये । दोनों फिर पहली सरिता में बहने लगे ।

संसार कर्म-योगियों के लिए ही बना है । इसके नियम अकर्मण्य, विलासी और वैरागियों के लिए शाप हैं । चाहे तुम इसे माया कहो, पर यह सत्य की तरह कठोर अवश्य है । तुम इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते, अन्यथा यह तुम्हारे अस्तित्व को सन्तप्त कर देगा । रमेश इस नियम का कोई अप-वाद नहीं था । वह धीरे-धीरे पैतृक सम्पत्ति का अभाव देखने लगा । रमा भी चिन्तित होने लगी । सिनेमा-संसार उसके हृदय में पैठ चुका था । उसने सहज बुद्धि से सिनेमा खोलने की राय दी । रमेश को भी यह बात पसन्द आ गई ।

सिनेमा भी खुल गया । रही-सही पूँजी उसमें लग गई । बड़े ठाठ-बाट के साथ खोला गया और धूमधाम से चला भी, पर रमेश को घाटा ही नज़र आता । वह व्यवसायी व्यक्ति नहीं था । उसने सभा-सोसाइटी और क्लब देखे थे । उनकी हथेलियाँ खुलना जानती थीं, बन्द होना नहीं । अनेकों पास (Pass) बँटते, यार लोग मुफ़्त देखते । परिचितों की फ़ेहरिस्त में नाम बढ़ते ही जाते थे । सिनेमा क्या था, एक आईने-महफ़िल थी ।

जो होना था, वही हुआ। रमेश क़र्ज़ में डूब गया। महाजनों ने उसे दीवालिया क़रार देने की दरख़्वास्त दी, पर रमेश दीवालिया कहलाना पसन्द नहीं करता था। उसने आभूषण बेचे, ज़मीन-जायदाद बेची और क़र्ज़ अदा किया।

स्वप्न का संसार टूटा और नशे का उतार आया। उसने देखा, जीवन एक युद्ध है और उसे भी तैयार होना ही पड़ेगा।

पर रमेश ने तो कभी कोई व्यवसाय किया ही नहीं था। जब वह कोई काम करने को सोचता तो उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा जाता। उसे अपनी सामाजिक स्थिति का भी ख़याल रखना पड़ता और ऐसे किसी व्यवसाय के लिए उसके पास पर्याप्त धन भी नहीं था। रही नौकरी की बात, वह तो बी० ए० फ़ेल था। आजकल एम० ए० को भी कोई नहीं पूछता। उसके मित्र एक-एक करके धूप के बादलों की तरह खिसकने लगे। रमा भी परेशान थी। वे लोग घर से बहुत कम बाहर जाते थे। उन्होंने अपने नौकरों को भी अलहदा कर दिया था। अन्त में रमेश ने एक दिन रमा से कहा—

रमेश—चलो, कहीं बाहर चलें। यहाँ तो कुछ करते भी लज्जा आती है। बाहर कहीं छोटी-मोटी नौकरी कर लेंगे।

रमा ने पूछा—बाहर कहाँ चलोगे? बाहर तो कोई भी अपना नहीं।

रमेश—यहाँ ही अपना कौन है? बाहर अपने सहायक भी नहीं होंगे तो खिझानेवाले भी नहीं होंगे।

रमा—तो बाहर कहाँ चलोगे?

रमेश ने कुछ सोचकर कहा—बम्बई ठीक रहेगा।

अन्त में दोनों में कुछ देर बातचीत होने के बाद बम्बई ही तय रहा।

दोनों बम्बई गये और एक होटल में ठहरे। रमेश वहाँ के लोगों से जान-पहचान की फ़िक्र में रहता, पर ऐसे बड़े शहर में लोग अपने पड़ोसी ही को वर्षों तक नहीं जानते। रमा रूपमयी थी। उसका यौवन ऐसे शहर में भी लोगों की नज़रों से छिपा न रह सका। रमेश के पास सबसे पहले आनेवालों में थियेटर के कर्मचारी थे, जो रूप-यौवन को स्टेज के प्रकाश में लाने के लिए स्काटलैंड-यार्ड (Scotland Yard) की तरह दक्ष होते हैं।

रमेश इस बात पर राज़ी नहीं था कि रमा अभिनेत्री बनकर रुपया कमावे और उदर-पोषण करे। उसे इस बात के विचार से भी लज्जा आती थी और उसके स्वाभिमान को चोट पहुँचती थी। अतः उसने थियेटर के कर्मचारियों के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। रमेश ने बहुत प्रयत्न किया, पर उसे कोई नौकरी नहीं मिल सकी। इधर रमेश लाचार हो रहा था और उधर रमा उसे दुखी नहीं देख सकती थी। वह जीविकोपार्जन के भार को अपने ऊपर लेने के लिए तैयार थी। थियेटर के कर्मचारी भी चुप नहीं बैठे थे। वे बराबर आते और प्रलोभनों का जाल बिछाकर चले जाते। रमेश का संकल्प छिन्न हो गया और हारकर उसे स्वीकृति देनी पड़ी, पर उसने यह शर्त और रक्खी कि थियेटर के मैनेजर को उसको भी नौकर रखना पड़ेगा, ताकि वह रमा की देख-रेख कर सके। उसकी शर्त ख़ुशी से मंज़ूर कर ली गई।

रमा को प्रारम्भ में दासी का पार्ट दिया गया और उस पार्ट में वह सर्वथा उत्तीर्ण रही। डाइरेक्टर ने उसे प्रोत्साहन दिया और जनता ने करतल-ध्वनि से स्टेज पर उसके आगमन का स्वागत किया। उसका हृदय उल्लास से फूल उठा और आँखें गर्व से चमक उठीं। पर उसका अभिमान यह नहीं सह सकता था कि वह दासी बनकर रहे। वह मुख्य अभिनेत्री बनना चाहती थी, जो डाइरेक्टर की कृपा-दृष्टि के बिना होना दुस्साध्य था। इस विचार ने रमा को डाइरेक्टर की ओर खींचा। डाइरेक्टर के हाथ में रिहर्सल का कार्य था। डाइरेक्टर आदि ही से रमा के रूप से प्रभावित था। उत्तरोत्तर दोनों एक दूसरे के निकट बढ़ते गये।



रमेश प्रारम्भ में अपने को उन सबके बीच में विदेशी महसूस करता, पर वह भी कुछ दिनों में उनका-सा हो गया। उसमें धीरे-धीरे विलासिता भी आ गई और वह मदिरा का सेवी हो गया। रमा भी उससे छिपकर एक-आध घूँट मदिरा पी लेती थी। दोनों सुखी जान पड़ते थे।

धीरे-धीरे रमेश ने यह अनुभूति पाई कि रमा अब उससे दूर खिंचती जा रही है। यह रमेश सहन नहीं कर सकता था। रमेश को अपनी पत्नी के चरित्र पर भी सन्देह होने लगा। उसके पास कुछ धन भी एकत्रित हो गया था। उसने रमा से नौकरी छोड़कर चलने को कहा। इस प्रस्ताव ने रमा के सामने एक परीक्षा ला खड़ी की। अब वह अपने को अधिक छिपा नहीं सकती थी। 'अगर रमेश के साथ वह जाती है तो यहाँ का स्वर्ग उसके हाथ से निकलता है, यदि नहीं जाती है तो रमेश का सन्देह विश्वास में परिणत होता है'—इस समस्या को कैसे सुलझाया जाय? रमा निरन्तर व्यग्र रहती।

आज रिहर्सल की शाम थी। खेल था—'समाज से विद्रोह'। रमा मुख्य अभिनेत्री का पार्ट कर रही थी, और डाइरेक्टर मुख्य अभिनेता का। दृश्य उपवन का था और चन्द्रमा आकाश से शीतल चाँदनी पृथ्वी की गोद में बिखेर रहा था। दोनों प्रेमी और प्रेमिका का पार्ट कर रहे थे और एक दूसरे की कमर में हाथ डाले टहलते हुए बातचीत करते जाते थे—

अभिनेता—आज कितनी मधुर रात है?

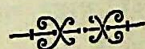
अभिनेत्री—और तुम कितने मधुर लगते हो?

अभिनेता—क्या तुमसे भी अधिक?

दोनों अधर-चुम्बन करने लगे।

रमेश भी दूसरे अभिनेताओं के साथ बैठा रिहर्सल देख रहा था। उसका रुधिर खौल उठा। वह उन्मत्त की भाँति चिल्लाता हुआ दौड़ा, "रमा! रमा! यह सब क्या है? अभी चलो यहाँ से, अभी चलो। बोलो, तुम मेरे साथ चलोगी या नहीं?" रिहर्सल में खलबली पड़ गई। लोग रमेश को पकड़ने दौड़ पड़े; पर इस समय उसमें उन्म... हाथी का बल आ गया था। लोगों को ध... देकर वह रमा के पास पहुँच गया, और ... पकड़कर बोला, "उत्तर दो, चुप क्यों हो?" ... दम सन्नाटा छा गया। सब लोग उत्सुक ... रमा की ओर देख रहे थे, पर रमा दृढ़ थी। ... अविचलित स्वर में कहा, "नहीं"।

रमेश पागलों की तरह चीखता-चिल्लाता ... चला गया। आज उसके जीवन की संध्या-... आ पहुँची थी। उसे मृत्यु-संगीत सुनाई दे ... था। वह सोच रहा था कि मनुष्य जो क़दम ... रख देता है, उसे वह लौटा नहीं सकता। चाहे ... फिर आगे न बढ़े। उसकी स्मरण-शक्ति क्षीण हो... जा रही थी, पर तब भी नरेश का चेहरा उस... आँखों के आगे अँधेरे में सतत घूमते हुए चक्र ... तरह दिखाई देता था, और उसके वाक्य याद ... रहे थे। प्रातःकाल सुना गया कि उसका ... फ़ेल हो गया और यह भी कि उसकी पत्नी ने ... विष देकर मार डाला। अख़बारों के कालम ... कालम इसी आशय के भर गये, पर मेरे ... यही कहा कि उसने स्वयं विष खाकर प्राण दिये।



विचार-संघर्ष

श्रीछविनाथसिंह

इस ज़माने में ही नहीं, पुराने ज़माने में भी नये और पुराने विचार के लोग आपस में लड़ते रहे हैं। कोई भी नया विचार किसी भी समाज में जब-जब घुसना चाहा है, उसे पुराने विचार से समय और परिस्थिति के अनुसार भारी से भारी और छोटी से छोटी लड़ाई करनी पड़ चुकी है। किंतु दोनों तरह के विचारों ने किसी न किसी प्रकार और किसी न किसी सूरत में अवश्य टक्कर ली है यह निश्चित है। इन्हीं दोनों विचारों में जिसका पलड़ा भारी रहा, उसी विचार पर समाज की दीवार क़ायम रही। कितने नये विचार के उठानेवाले इसी समाज की धारा में इस प्रकार बह गये कि आज उनका नाम खोजने पर भी पता नहीं चलता। जिस विचार में सत्य की भावना की मात्रा अधिक होगी, चाहे वह नया हो या पुराना, उसी की अंतिम विजय होगी। यदि पुराना विचार शिथिल पड़ गया है, उस विचार से चलने पर समाज की भलाई नहीं हो सकती, उससे और अधिक अच्छी बात निकल गई है, तो उसी की जीत होना निश्चित है। दुनिया में नित्य ही एक न एक नया सत्य आया करता है, किन्तु वह पुराने सत्य पर तुरन्त ही अधिकार नहीं कर लेता। उस नये सत्य की धारा समाज की भूमि पर उस स्वाभाविक ढंग से नहीं बहती, जिस ढंग से किसी नदी की धारा बहती है। उस नदी में यदि दूसरी नदी की धारा मिलती है तो वह भी उसमें मिलकर बहने लगती है। किन्तु नये सत्य की धारा में पुराना सत्य एक भारी रोड़ा है, जो नये सत्य को स्वाभाविक ढंग से बहने देने से रोकता है।

इन दोनों का संघर्ष ज़रूरी क्यों है? क्या पड़ी है कि दोनों आपस में लड़ें? एक दूसरे की बात दोनों मानकर क्यों नहीं चलते? बुड्ढे और नवयुवक एक दूसरे को दोषी ठहराते हैं। ऐसा क्यों होता है? नवयुवकों का विचार सुधारवादी होता है। उन्हें पुरातन से अधिक मतलब नहीं रहता। वे समाज में सदा क्रांति करने की अभिलाषा रखते हैं। पुराने लोगों के हाथ में शक्ति होती है, धन होता है। इसी के डर से वे नये विचार से सदा डरा करते हैं। नया विचार सुनते ही उनके कान खड़े हो जाते हैं। इसी से नये और पुराने विचार में संघर्ष होता रहता है। नवयुवक और बुड्ढे सर्वदा विचारों में आपस में कशमकश रखते हैं।

इस समय धर्म-संबंधी कशमकश बहुत ही शिथिल मालूम पड़ता है। नहीं तो योरप में पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में कैथोलिकों और प्रोटेस्टेन्टों में जिस प्रकार से तनातनी, मार-काट, छीना-झपटी चल रही थी, उसे हम सहज



ही नहीं भुला सकते। वर्वरता की सीमा यहाँ तक बढ़ गई थी कि कितने लोग ज़िन्दा ही बिना किसी प्रकार की हिचक के, बिना कुछ सोचे अग्नि में झुंड के झुंड स्वाहा कर दिये जाते थे। इसके पहले जब महात्मा ईसा ने अपनी आवाज़ उठाई, उस समय योरप में यहूदी धर्म का बोलबाला था। जब ईसाई-धम का शुरू-शुरू में प्रचार होना शुरू हुआ, उस समय ईसाई लोग विधर्मी समझे जाते थे। किन्तु आज दिन यहूदी लोग ही उलटे विधर्मी समझे जाने लगे हैं। यहाँ तक कि धर्म की कट्टरता की वजह से जर्मनी में आज ६ लाख यहूदियों को हिटलर ने शासन-व्यवस्था से वञ्चित कर दिया है। उन्हें राज्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने का अधिकार बिलकुल नहीं दिया गया है। योरप में ही ईसा मसीह और सुक़रात जैसे महात्माओं को फांसी पर लटकानेवाले धर्म की दुहाई देनेवाले ही थे। धर्म की धुरी को धारण करनेवाले पोपों का वासनामय जीवन, उनके अत्याचार, उनके व्यभिचार, और कहाँ तक गिनाया जाय, उनकी सब करतूतें हमारी आंखों के सामने आज भी ताज़ी हैं।

इसके पश्चात पाँचवीं और छठी शताब्दी में मुसलमानों का झंडा फहराना आरंभ होता है। अरब के सारे पच्छिमी और पूर्वी देशों में उनकी तलवारें धर्म के नाम पर दौड़ चलीं और मुसलमानी धर्म का सारी दुनिया में थोड़े ही दिनों में आतंक छा गया। सर्वत्र लूट-खसोट होती रही। ईसाइयों और मुसलमानों की लड़ाई जेरूसलेम में लगातार होती रही। सोलह-सोलह वर्ष के सुकुमार बालक उक्त स्थान पर आते थे और धर्म के नाम पर क़ुर्बान हो जाते थे। यह एक भारी मज़हबी लड़ाई ईसाइयों और मुसलमानों के बीच हुआ करती थी। धर्म के जोश में इस धार्मिक लड़ाई में सम्मिलित होने के लिए इँगलैंड के एकाध राजा आर्थिक संकट आ पड़ने पर लंदन शहर को बेच देने को तैयार थे। इसी धर्मान्धता में बहुत दिन तक संसार की आँखें न खुलीं। भारत में मुसलमानों ने धर्म के नाम पर जो सामाजिक अत्याचार किया, वे मामूली इतिहास का जाननेवाला जानता होगा।

अब दुनिया के प्रधान धर्मों में बच गये हिन्दू और बौद्ध-धर्म। इन धर्मों की संस्कृति कुछ अधिक शांत, कुछ अधिक गंभीर और कुछ अधिक विवेकशील भी, होने की वजह से और धर्मों की अपेक्षा बहुत कम आपस में छीना-झपटी हुई है। किन्तु इन धर्मों में भी श्रेणी और पक्ष की दूषित भावना होने से यह वर्तमान समाज चौपट हो गया। एक वर्ग का, जो थोड़ा उच्च रहा है, दूसरे वर्ग पर, जो उसकी अपेक्षा उतना ऊँचा नहीं रहा है, बहुत अत्याचार होता रहा है। एक से एक अमानुषिक कार्य यहाँ भी धर्म के नाम पर हुए हैं और आज भी हो रहे हैं। आज दिन यहाँ के मंदिर और मठ व्यभिचार के केन्द्र हो रहे हैं। कितने मठाधिकारियों के यहाँ आये दिन भोगविलास के लिए वेश्याएँ पहुँचती रहती हैं। यात्रियों का गला घोंट और उनके माल असबाब छीन लेने का उदाहरण जितना पंडा और पुजारी संसार के सामने रखते हैं, उतना शायद ही कोई दूसरा वर्ग रखता होगा। यह पंडा और पुजारियों का गिरोह इतना अशिक्षित है कि धर्म की किताबों के साधारण सिद्धांतों को भी नहीं जानता, किन्तु धर्म के नाम पर धर्म की दुहाई देते हुए धर्म की सारी कार्रवाई पूरी जनता के सामने बड़ी सफ़ाई के साथ निभाई जाता है और उस प्रकार की जनता को धर्म इतना बड़ा अन्धविश्वास है कि धर्म के नाम पर भारी से भारी पाप करने में तनिक भी हिचक न ीं होती।

इस समय धर्मयुग का अंतिम दिन है। धर्म के नाम पर क़ुर्बानी होने का समय समाप्त हो रहा है और क ीं-कहीं समाप्त भी हो गया है। अब दिनों जिनके हाथ में धर्म की बागडोर रहा करती थी, वे दूसरों को धर्म और ईश्वर के नाम से डरा-कर अपना काम साध लेते थे। ये कुछ धर्मावलम्बी



पर कहा करते थे कि अमुक कार्य की यदि सिद्धि नहीं होती तो ईश्वर इसका बुरा फल देगा। रोम का पोप ख़ुद ईश्वर का प्रतिनिधि ही बन बैठा था। योरप के कितने राजा दैवी अधिकार (Divine-right) के सिद्धान्त को मानने लग गये थे। ऐसे धर्मवाले पहले तो ईश्वर से लोगों को डरवाते हैं और कहते हैं कि ऐसा करने से ईश्वर तुमको दंड देगा और बाद को अपने हाथ में अधिकार आ लेने पर ख़ुद ही दंड देने लगते हैं, जैसा कि वालटेयर ने एक बार कहा था। पहले अधिकतर राज्यों का अंकुश धर्म था और इसी मज़हबी जोश में कितने राज्य स्थापित हुए और कितने धूल में मिला दिये गये। पहले का ऐसा ही संघर्ष धार्मिक संघर्ष था। एक नये धर्म की लहर से दूसरे पुराने धर्म को लहर से सीनाज़ोरी होती थी। ख़ून की नदी बहाई जाती थी। ऐसा झगड़ा शताब्दियों चलता रहा; बाद को धर्म या धर्म के झगड़े-लड़ाई मिट गये, किन्तु उनसे जो मनुष्यों में अन्ध-विश्वास की नींव पड़ी, वह अब भी उनके हृदयों पर शासन कर रही है।

मनुष्य-समाज का काफ़ी विकास हो जाने पर ही ये धर्म जगह-जगह पर उभरते रहे। इनका अस्तित्व उतना प्राचीन नहीं है, जितना मनुष्य का मनुष्य-समाज! समय-समय पर समाज की कमी को पूरा करने के आशय से ही संसार के इन धर्मों का आना हुआ है। लेकिन समाज का असली रूप न समझने की वजह से इन धर्मों के प्रवर्तक (यद्यपि कुछ जगहों के कुछ लोगों को अपने मत के जहाज़ पर चढ़ा देते थे; वह भी इसलिए कि उन दिनों उन मनुष्यों का आज दिन-जैसा वैज्ञानिक युग न था) समाज में चिरस्थायी शांति स्थापित करने में सर्वथा असफल रहे। उन दिनों धर्म का राग इतना अधिक अलापा जाता था कि लोगों का दिमाग़ समाज की आवश्यक आवश्यकताओं पर न घूम पाया। किन्तु ज्यों-ज्यों उसके लहर की शिथिलता आती गई, लोगों ने मनुष्य की आवश्यक आवश्यकता और मनुष्य-समाज के असली रूप को जानने की ओर अपने मन को लगाना आरम्भ किया। इन धर्मों में तो अधिकतर या पूर्णतः ईश्वर और आत्मा की व्याख्या के सिवा कुछ दूसरा और नहीं दिखाई देता। तब, भला इस आधार पर मनुष्य कैसे सुखी रह सकता है? इससे उसमें सदा अशांति का बना रहना स्वाभाविक है। उसके जीवन की दीवार की नींव जब तक 'एक नवीन, वास्तविक और मनुष्य क्या है?' की नींव पर न दी जायगी, उसमें और मनुष्य-समाज दोनों में अशांति का साम्राज्य छाया रहेगा।

पहले लोगों का मन प्रधानतया धार्मिक होता था। उन दिनों संघर्ष होता भी था तो किसी नवीन धर्म और किसी प्राचीन धर्म में हुआ करता था। लोगों के दल धर्म से प्रभावित होते थे। इसी का तब संघर्ष था। इस समय इस दुनिया में भी प्रधानतया दो दलों की लड़ाई चल रही है। उस दल में एक ओर पूँजीवाद और साम्राज्यवाद है और दूसरी ओर बिलकुल नवीन साम्यवाद और राष्ट्रवाद है। आज दुनिया में जितनी लड़ाइयाँ हुआ करती हैं, वे सब इन्हीं दो मतों की प्रेरणा से हुआ करती हैं। इसी को हम दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि धनी-ग़रीब की सत्ता क़ायम रहने से लड़ाई होती रहती है। इसी आर्थिक असमानता ने ही समाज में कई श्रेणियाँ क़ायम कर दी हैं। इस असमानता के हो जाने की वजह से आज हमारे समाज में बहुत तरह की असमानता जैसे सामाजिक, राजनीतिक आदि हो गई है। यही आज दिन के कलह की जड़ है। जब तक पूँजीवाद रहेगा, इस संसार में चाहे सैकड़ों निःशस्त्रीकरण सम्मेलन हुआ करें या सैकड़ों राष्ट्र-संघ शान्ति के लिए क़ायम किये जायँ, किन्तु युद्ध का होना रोक देना कठिन ही नहीं, असम्भव है। पूँजीवाद साम्राज्यवाद की जड़ है। दुनिया की बेहद अधिक पूँजी चन्द धनिकों



के हाथ में है । इन्होंने ग़रीबों के धन का इस प्रकार शोषण किया कि करोड़ों लोग दाने-दाने को तरसने लगे । उत्पादन में पूर्वकाल की अपेक्षा वृद्धि होने की वजह से यद्यपि मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ गई है, किन्तु उनका सामाजिक दर्जा ऊँचा नहीं हुआ है और जैसा कि मार्क्स ने कहा है कि माल की उत्पत्ति करनेवाले मज़दूरों और पूँजीपतियों में सामाजिक असमानता की खाईं अधिक गहरी हो गई है । इसी से कलह हो रहा है, सबके दिलों में अशान्ति का तूफ़ान उठ रहा है । आज दिन इसी का भारी संघर्ष है । वास्तव में तात्त्विक दृष्टि से पूर्वकाल की धार्मिक लड़ाइयों का आधार सूक्ष्म रूप में आर्थिक रहा है । यदि इसकी ओर लोगों की दृष्टि गई होती और यह समझे होते कि ये सब कलह की जड़ आर्थिक है तो शायद मनुष्य-समाज को इतना कष्ट न भोगना पड़ता । उस समय धर्म भी आर्थिक शोषण का एक साधन था । दुनिया में इस समय भी कुछ अंश तक वह शोषण का साधन है । किन्तु आज पूँजीपतियों के शोषण का नया ही तरीक़ा है ।

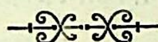
जिस प्रकार पूर्वकाल में धर्म के नाम पर तलवारें सदा म्यान के बाहर रहती थीं, उसी प्रकार आज के धनिकों की बन्दूक़ें अपने लिए, विशेषतः अपने माल की बिक्री और रक्षा के लिए—सदा भरी रहती हैं । उन्हीं धर्मावलम्बियों की तरह ये लोग भी विना असली जड़ को पकड़े शांति की दुहाई देते रहते हैं । इस पूँजीवादी दुनिया के अत्याचार एकदम अमानुषिक हुए हैं और हो रहे हैं । अपने धन की बदौलत इन्होंने भी अत्याचार और व्यभिचार कम न किये । बल्कि एकाध अंगुल बढ़कर ही किये होंगे । सबसे बड़ी जो बात इस पूँजीवाद की दुनिया में हुई, वह यह कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से इतना दूर हो गया कि एक दूसरे को पहचान भी न सका । एक उच्च वर्ग ने दूसरे किसी नीच वर्ग को पशु बना डाला और उसके साथ वैसा ही व्यवहार भी करने लगा । इतना ही नहीं, मनुष्य लोग माल-असबाब की तरह बेचे और ख़रीदे भी जाने लगे ।

साम्राज्यवाद की पुष्टि और साम्यवाद का विरोध करने के ही लिए इस समय फ़ासिस्टवाद का प्रादुर्भाव हुआ है । इस वाद के अनुसार जनता की स्वतन्त्रता का अपहरण हो जाना एक ख़ास बात है । इसने पार्लियामेन्टरी शासन-व्यवस्था-प्रणाली को जड़ से उखाड़कर फेंक दी है । योरप के न केवल इटली, बल्कि जर्मनी, स्पेन, आस्ट्रिया, हंगरी, बल्गेरिया आदि भी उसी फ़ासिस्टवाद के झंडे के नीचे आ गये हैं । इस मत का उदय सन् १९१४ के महासमर की वार्साई की संधि का दुष्परिणाम है । यदि इस संधि में इटली आदि को हिस्सा मिला होता, शक्ति-संतुलन के विचार से देशों का अंग-विच्छेद न कर दिया गया होता, और लड़ाई के हर्जाने के रूप में क़र्ज़ का बेहद बोझ न लाद दिया गया होता तो पार्लियामेंटरी शासन-प्रणाली का ध्वंस न हुआ होता । ऐसे राज्यों में एक फ़ैसिस्ट डिक्टेटर की तूती बोलती है । इस समय इन्हीं साम्राज्यवादियों का आतंक सारे संसार पर छाया हुआ है । इनकी योजना मानवता को नाश करने वाली है ।

इस समय पूँजीवाद का भी अंतिम दिन है और वह मृत्युशय्या पर लेटे-लेटे घुटघुटकर केवल दिन मात्र भर रहा है । मार्क्स की उस उक्ति की दिन-दिन पुष्टि होती चली जा रही है कि पूँजीपतियों का नष्ट होना हटाया नहीं जा सकता । उनका नष्ट होना स्वाभाविक है । किन्तु इस समय उनके कान खड़े हो गये हैं । वे पूर्णतः चौकन्ने हैं और साम्यवाद की लहर को जहाँ तक उनसे हो सकता है, जी-जान से दबाने की कोशिश कर रहे हैं । इस नवीन विचार को वे अपने हृदयों में इस विचार से स्थान नहीं देना चाहते कि अब तक जैसा उन्होंने स्वच्छन्दतापूर्वक कार्य किया है, उसमें बाधा पहुँचेगी । पूँजीपतियों के मन पर पुराना विचार अभी अधिकार किये हुए है । दूसरी ओर नवीन विचारवाले



साम्यवाद की लहर दिनोदिन ज़ोर पकड़ती जा रही है। पुराने विचारों की नींव पर नई दुनिया की दीवार नहीं उठाई जा सकती। लन्दन-यूनिवर्सिटी के राजनीति-शास्त्र के प्रोफ़ेसर हैरल्ड जे० लैस्की अपनी छोटी सी पुस्तक An Introduction to Politics में लिखते हैं "A new world cannot hope to live adequately by the categories of the old." अर्थात् "एक नई दुनिया प्राचीन भावनाओं पर यथोचित रूप से रहने की आशा नहीं कर सकती।" इस समय साम्यवाद की लहर किसी प्रकार भी रोकी नहीं जा सकती। वह लोगों के हृदयों में दिनोदिन बड़ी तेज़ी से घर करती चली जा रही है। आज इसी से पूँजीवाद से कशमकश है। ये ही दो विचार टक्कर पर टक्कर ले रहे हैं। नवीन सत्य की विजय होना निश्चित है। वही एक दिन पुराने सत्य पर हावी होगा। यही मेरा विचार है।



दो फ़्रांक

(एक मनोवैज्ञानिक कहानी)

श्रीजयनाथ 'नलिन' साहित्यरत्न

साइबेरिया का ओमसकस नाम का एक छोटा-सा गाँव, जनसंख्या लगभग दस-बारह हज़ार, बहु-संख्यक भोले-भाले कृषक। घर ईंट-पत्थर के कम—लकड़ी के अधिक हैं। बरफ़ गिरने के कारण छतें आगे-पीछे की ओर ढालू बनी हैं। इसी गाँव में एक बूढ़ा किसान रहता है, इसका नाम है जोसेफ़। इसने जवानी में सुनहरे दिन देखे हैं—हवा के रुख़ के ख़िलाफ़ नाव खेई है; पर अब—अब वे दिन इसे धोखा दे गये हैं।

जोसेफ़ के घर में दो प्राणी हैं। एक स्वयं और दूसरा उसकी पोती सोफ़िया। सोफ़िया—गाँव की राधा—सौंदर्य की प्रतिमा और भोलेपन की मूर्ति है। उसका गोल मुख, गुलाबी गाल, कोमल पल्लव-से मधुर अधर, गहरी नीली आँखें और सुनहरी लच्छेदार लटें किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे।

सन्ध्या का समय—६-७ बजे होंगे। कड़ी सरदी पड़ रही थी। सर्द हवा विषबुझे तीर की तरह हड्डियों को पार करके निकल जाती थी। बरफ़ गिरने लगी थी। घर से बाहर निकलना मौत को छेड़ना था। जोसेफ़ कनपटी पर हाथ रक्खे, सामने पड़ी हुई मेज़ पर कुहनी टेके, सिर झुकाये, आँखें बन्द किये, एक टूटी-सी कुर्सी पर बैठा था। कमरे में धुँधली-सी लालटेन जल रही थी। जोसेफ़ की आयु पचास की होगी; परन्तु देखने में ८० से कम न जँचता था। चिन्ताओं ने उसके मुख की लाली चाट ली थी, मुसीबतों ने उसके गालों पर अपनी अमर छाप—झुर्रियां—छोड़ दी थीं। जोसेफ़ किसी चिन्ता में मग्न था कि सोफ़िया ने आकर उसका विचार-तार तोड़ दिया। वह दौड़ती हुई आई और कूदकर जोसेफ़ के गले में अपने कोमल हाथ डालती हुई बोली, "पापा, क्या बड़बड़ा रहे हो?" बूढ़े ने सिर ऊपर उठाया, सोफ़िया के मुख की ओर देखा और वह उसके बालों पर हाथ फेरता हुआ बोला, "यदि तू मेरी मुसीबत समझ सकती सोफ़ी!...आ खेल।" सोफ़ी कुछ न समझ सकी। दृष्टि गड़ाकर जोसेफ़ की मुखाकृति की ओर देखती रही। कई बार उसके मस्तक पर सलवटें आईं—कई बार उसके मुख का रंग बदला। थोड़ी देर बाद सोफ़िया ने बूढ़े का हाथ हिलाते हुए कहा, "पापा! सुस्त क्यों हो, मेरी क़सम! बताओ न!" बूढ़े ने उसके बालों पर फिर हाथ फेरा और वह गम्भीर मुद्रा से बोला, "तू अभी बालिका है। तू क्या जाने! सुबह डाक्टर आवेगा।"

"इसी लिए सुस्त हो? तो मैं उसे न आने



हूँगी, बस ! अब तो खुश हो जाओ ।" सोफ़िया मुँह बनाकर बाल-चापल्य से बोली । बूढ़ा जोसेफ़ उसकी भोली बातें सुनकर हँस पड़ा । वह मुस्कराते बोला, "अच्छा, न आने देना । जा, अब तो खेल ।"

"आज तुमने मेरे बाल नहीं चूमे, पापा !" सोफ़िया हठ करती हुई बोली । बूढ़े ने उसके बाल चूमे । "बहुत सुन्दर हैं सोफ़ी तेरे ये सोने के लच्छे ।" कहते हुए उसने सोफ़ी को गोद से उतार दिया, वह फिर खेल में लग गई । खेलते-खेलते थककर उसे नींद आने लगी । जोसेफ़ ने उसे एक खाट पर लिटा दिया, वह सो गई ।

* * *

जोसेफ़ खाट पर लेट गया । सोने का प्रयत्न करने लगा; पर नींद कहाँ ! किसी वस्तु को जितना भी प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, अक्सर वह मिलनी उतनी ही कठिन हो जाती है । नींद के विषय में यह बात सोलहो आने सही है । जोसेफ़ को नींद न आती थी । उसकी पुतलियों में डाक्टर अड़ा था, फिर आँखें कैसे लगें ! वह पड़ा-पड़ा बड़बड़ाने लगा, "जीवन कितना विषम है ! केवल दो फ़्रांक की बात ! सुबह आठ बजे तक अदा देने चाहिए । यदि न कर सका तो डाक्टर मुझे झूठा और मक्कार समझेगा । है तो वह बड़ा भला आदमी; अपनी ज़बान से एक बार भी न कहा; पर देने तो हैं ही । दिन भी तो बहुत हो गये ।" वह बड़बड़ाता हुआ उठा, मेज़ पर रक्खी हुई एक डायरी-सी उठाई, उसे उलट-पलटकर देखने लगा । एक पृष्ठ पर दृष्टि जम गई । बहुत देर देखने के बाद उसे मेज़ पर रख दिया । वह खड़ा-खड़ा सोचने लगा—कितने दिन हो गये । पूरे चालीस ! कितना भला आदमी है, अपने मुँह से कभी नहीं माँगता । उसकी दूकान की तरफ़ जाता हूँ तो बुलाकर चाय पिलाता है तब तो शर्म से गर्दन और भी झुक जाती है ।

बारह बज गये, जोसेफ़ को नींद न आई । सिर भारी हो गया । माथे पर हाथ रखकर बैठ गया और सोचने लगा—यह जीवन कितना ग्लानि-पूर्ण है । पैसा जीवन का इतना आवश्यक अंग ! मुख्य प्रश्न तो डाक्टर का है । सुबह ज़रूर आवेगा, वादा कर दिया है । उससे क्या कहूँगा ? छीः ! इस जीवन से मृत्यु अच्छी ! सच, क़सम ख़ुदा की, अगर सोफ़ी न होती तो आत्महत्या कर लेता । उसकी नीली आँखें, सुनहरे बाल, गोल गुलाबी गाल, शहद-भरी बोली, निर्दोष भोलापन मुझे मरने नहीं देते । कल डाक्टर ज़रूर आवेगा । मैं नीची आँखें किये उतरे हुए मुँह से, सिर खुजलाते हुए उसके सामने खड़ा हो जाऊँगा । वह मेरी करुण दशा पर सूखी हँसी हँसते हुए कहेगा, "मि० जोसेफ़, परवा न करो, कोई बात नहीं, फिर कभी देखा जायगा ।" तब मुझे कितनी आत्मग्लानि होगी ! हाँ, एक बात समझ में आती है, काम बन गया ! डाक्टर के आने से पहले ही किसी से दो फ़्रांक ले आऊँ । पर किसके सामने हाथ फैलाऊँ ? उधार ! उफ़ उधार !! कभी नहीं ।

टन्न—टन्न—टन्न....तीन बज गये । जोसेफ़ कुछ चौंका, कुछ सहमा और फिर बड़बड़ाने लगा—तीन ! डाक्टर के आने में केवल पाँच घण्टे शेष हैं । किस-के पास जाऊँ ? हाँ—ठीक है । मना नहीं करेगा, बड़ा नेक है । मुझसे प्रेम रखता है, सम्मान करता है । क्लाइव के ही पास जाऊँ । और ज़रा दिन निकल आवे, उसी के पास जाऊँगा । क्लाइव के सामने हाथ फैलाऊँ ? आज तक उससे सवाल नहीं किया । अगर नाहीं कर दी तो ? बात भी जाय और काम भी न बने ! परन्तु वह नाहीं न करेगा, ज़रूर दे देगा । माँगना ? आपस में माँगना बड़ा बुरा है । परन्तु डाक्टर का प्रश्न बड़ा टेढ़ा है, उसे देना ही है । सभी एक दूसरे से माँगकर काम चलाते हैं । यदि उसके पास न हुए तो ?....न जाऊँगा । देखा जायगा । डाक्टर से झूठा बन लूँगा; पर आपस में हाथ न फैलाऊँगा ! न मिलने पर दो जगह अपमान । नहीं—मना न करेगा—घर का ही तो आदमी है । केवल दो फ़्रांककी ही तो बात



है। उसके लिए कुछ मुश्किल नहीं। काम पर जाने से पहले ही उसके पास जाना चाहिए; कहीं काम पर न चला जाय। उससे माँगूँगा! मेरी क्या दशा होगी। उधार माँगना कितना बुरा है और पैसा कितना आवश्यक! जो हो उधार लाना ही पड़ेगा।

इसी भाव-संघर्ष—उधेड़-बुन में जोसेफ़ को नींद न आई। रात खुली पलकों में ही निकल गई। बहुत तर्क-वितर्क के बाद जोसेफ़ ने क्लाइव से दो फ्रांक उधार माँग लाने का निश्चय किया। टन्न-टन्न टन्न-टन्न-टन्न! एँ! पाँच बज गये! सुबह हो गई! जल्दी चलना चाहिए; कहीं काम पर न चला जाय। डाक्टर के आने में केवल तीन घंटे शेष हैं। यह सोचकर जोसेफ़ फुर्ती से उठा और क्लाइव के घर जाने को तैयार हो गया।

* * *

सूर्योदय में अभी देर थी। रात का अन्धकार भाग रहा था—उसकी भीनी छाया पृथ्वी को ढके हुए थी। सर्दी बहुत ज़ोर की थी। बूढ़ा जोसेफ़ भारी पैर धड़कते दिल और सिकुड़ती कमर से क्लाइव के घर आया। घरवाले मोटे नमदों से सर्दी के तेज़ तीरों के वार रोक रहे थे। सब कम्बलों में लिपटे पड़े थे। जोसेफ़ की कमर टूटी जा रही थी, दाँतों की कड़कड़ी बँध रही थी। बार-बार हाथ पतलून की जेबों में डालता और निकालता था। जोसेफ़ को काँपता देख क्लाइव ने पड़े-पड़े ही कहा, "इधर आओ। अँगीठी दहक रही है।" बूढ़ा पास आ गया। क्लाइव ने उसकी तरफ़ कम्बल सरकाते हुए कहा—

"कम्बल ले लो, बहुत तेज़ सर्दी है।" जोसेफ़ का चेहरा पीला पड़ रहा था, मुँह सूखा जा रहा था। उसने कम्बल ओढ़ा, कुछ सर्दी कम हुई।

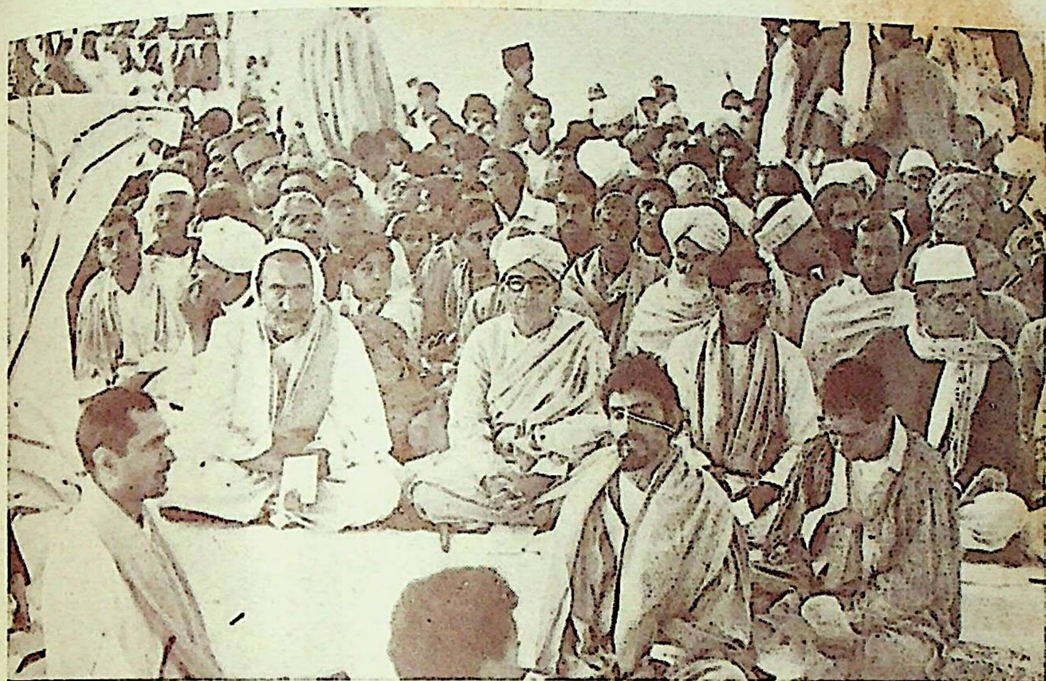
"तुम्हारी सर्दी कम नहीं हुई? चाय पियोगे? इतनी जल्दी क्या थी?" क्लाइव के एकदम इतने प्रश्नों को सुनकर उससे उत्तर न दिया गया। सूखे मुँह से कुछ प्रयत्न किया, बोला—"यों ही चला आया।"

सूर्य का पहिया आकाश की लीक में घूमता दिखाई दिया। सर्दी कम हो गई, पर उसका काँपना बन्द न हुआ—दिल की धड़कन [illegible] हुई। क्लाइव ने जल्दी आने का फिर कारण पूछा, "इतने सबेरे कैसे आये? तुम्हारी सर्दी कम नहीं हुई, और दो-तीन बार चाय पी[illegible] जाना।" 'जाने' का नाम सुनकर बूढ़ा सहम गया। अभी अपनी बात भी न कहने पाया था कि जाने का सवाल पैदा हो गया। जोसेफ़ [illegible] क्लाइव कमरे में आया, सिगरेट सुलगाई। धुआँ उड़ाते हुए क्लाइव ने इतनी जल्दी आने का कारण पूछा। जोसेफ़ सँभला, दिल मज़बूत किया और अपनी बात कहने को तैयार हुआ। बहुत सँभलकर वह बोला, "यूँ ही चला आया, कि[illegible] तुम न मिलते।" "हाँ, आजकल बड़े तड़के जा[illegible] पड़ता है, शाम तक फ़ुर्सत नहीं मिलती। कोई ख़ास काम?" "नहीं, तुम फिर न मिलते।" जोसेफ़ ने सूखी हँसी, उतरे हुए मुँह और संकुचित दृष्टि से कहा।

क्लाइव ने कई बार पूछा, पर जोसेफ़ [illegible] साहस न हुआ कि अपनी बात कह दे। उसका चेहरा उतरा, दिल धड़कता और गला सूखा हु[illegible] था। आँखें संकोच से झुकी जाती थीं। क्लाइव को सन्देह हुआ, उसने फिर पूछा, "जोसेफ़ तु[illegible] सोफ़ी की क़सम—क्या बात है?" जोसेफ़ ने साहस किया, दिल सँभालकर उत्तर दिया, "[illegible] कि तुम चले जाते...." इतना कह पाया था कि गला भर्रा गया, आँखें नीचे झुक गईं।

"हाँ! हाँ! बताओ क्या बात है?" क्लाइव ने बड़ी उत्कण्ठा से पूछा। जोसेफ़ बड़ी कठिनता से बोला, "मुझे दो फ्रांक्स...." "चाहिए" क्लाइव ने बात पूरी की।

"हाँ" मरी-सी आवाज़ में जोसेफ़ ने उत्तर दिया। "इतना संकोच किस लिए! [illegible]



गुरुकुल-कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर आये हुए कुछ प्रतिष्ठित नेतागण। बाईं से दाहनी ओर मध्य में बैठे हुए—(१) ख़ाँ साहब अब्दुलग़फ़ूरख़ाँ, (२) स्वामी सत्यानंद, (३) प्रोफ़ेसर सत्यव्रत, (४) श्रीसत्यमूर्ति एम्० एल्० ए०, (५) आचार्य देव शर्मा इत्यादि।



१४ वर्ष की शिक्षा पाने के बाद गुरुकुल के स्नातकों का ग्रूप
(बीच में श्रीसत्यमूर्ति एम्० एल्० ए० हैं।)

तुम्हारा घर है। जब जो कुछ चाहो, ले जाया करो। इतना संकोच ?"

जोसेफ़ की जान में जान आई। वह सोचने लगा, "क्लाइव कितना भलामानस है। तुरन्त तैयार हो गया। मैं कितना संकोच कर रहा था। आज डाक्टर का पाप काट दूँगा।"

क्लाइव फिर समझाते हुए बोला, "देखो, शरम न किया करो, जिस चीज़ की ज़रूरत हो, ले जाया करो।"

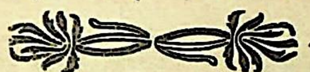
"मैं तो इसे बिलकुल घर ही समझता हूँ।" जोसेफ़ ने कृतज्ञता दिखाते हुए कहा।

"दो फ़्रांक, और उसके लिए इतनी शरम ! तुम तो बड़े तकल्लुफ़बाज़ निकले। वाह ! भाई जोसेफ़ ! चाहे जब ले जाना। शरम न करना तुम्हें मेरे सिर की क़सम है, कल ज़रूर ले जाना दो फ़्रांक। शरम न करना। कहे देता हूँ, ज़रूर ले जाना।"

कल की बात सुनकर बूढ़े के पैरों की धरती निकल गई। डाक्टर आज आठ बजे आवेगा। जोसेफ़ उठकर चलने लगा। उसे जाता देख क्लाइव फिर बोला "कल ज़रूर ले जाना, कभी शरम न करो।"

"अच्छा" कहकर जोसेफ़ कमरे से बाहर हो गया।

सूर्य-किरणें छतों पर नाच रही थीं। भारी पैर, बैठे दिल, निराश नेत्र और उतरे हुए मुँह से जोसेफ़ घर वापस आया।



गीत

श्रीजयनाथ 'नलिन' साहित्यरत्न

खोजते हैं हास रोदन में—
वृथा क्यों प्राण मेरे ?
स्नेह का अरमान पाकर
व्यर्थ सुख की चाह करना।
प्रेम का उपहार—'सन्तत
उर जलाना—आह भरना।'
जल रहे हैं स्नेह के
दीपक बने अरमान मेरे!
बिन्दुओं का मेघ से जब
चिरमिलन - विच्छेद होता;
नीर 'बिन्दु' वियोग में भर
सिसकियाँ तब मेघ रोता!
फिर सिसकते से न निकलें
क्यों हृदय से गान मेरे!

अमर - सुख - संयोग - पद से
क्यों मुझे नीचे गिराया?
सर्वदा को विश्व-ज्वाला का
मुझे बन्दी बनाया!
विरह-पीड़ित और कोई
विश्व में न समान मेरे!
कस रहे उर-वीन के सब
छेड़ना मत तार निष्ठुर!
सह न सकती वेदना-आहत
करुण स्वर-भार निष्ठुर!
बन गये अभिशाप सारे
वे मिलन-वरदान मेरे!!
खोजते हैं हास रोदन में
वृथा क्यों प्राण मेरे!

ऊषा से

श्रीमातादीन भगेरिया

उषे, अरुणिमा-आगरी!
क्यों गाती हो, कौन सुनेगा अमरपुरी का राग री?
आँचल में अनुराग धरे,
या संजीवन फाग भरे,
सखि, तुम जग में टिक न सकोगी, भव का विभव विभावरी।
उषे, अरुणिमा-आगरी!

तुम्हें सुमन खिलते प्रिय हैं,
यहाँ वज्र-निर्मित हिय हैं,
उन्हें कुचलते-विंधते क्या तुम देख सकोगी नागरी?
उषे, अरुणिमा-आगरी!

माली आकर कुसुम चुने,
और अहेरी विहग हने,
पशु-बल का है राज्य जगत् में शीघ्र यहाँ से भागरी।
उषे, अरुणिमा-आगरी!

हिन्दी-कविता में भावसाम्य

श्रीशिवेन्द्र

There is no reason why two independent poets should not think of the same image or idea quite independently. (G. K. Chesterton).

साहित्य-संसार में ऐसे व्यक्ति थे, हैं और रहेंगे, जो दो कवियों की समानभाव की कविताओं को पढ़कर तुरत ही कह देते हैं कि इन लोगों ने (कवियों ने) भावों का आदान-प्रदान किया है। उनके इस कथन से तो यही अर्थ निकलता है कि कवियों का सम्बन्ध इस प्रकृति से था यों कहिए कि इस संसार से न रहे, प्रत्युत कविता पर प्रकृति का तथा सांसारिक अनुभूतियों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। जब दो कवि किसी देश, काल तथा अवस्थाविशेष में पड़कर कविता को जन्म देंगे तो यह ध्रुव है कि उनकी रचनाओं में भावसादृश्य होगा। उनकी कल्पना भी कुछ अंश तक मिलती-जुलती होगी। कारण, कल्पनाएँ भी प्राकृतिक चित्रों तथा सांसारिक अनुभूतियों से ही विशेष सम्बन्ध रखती हैं। रहा कहने का ढंग, सो इसमें अन्तर हो सकता है। बहुत-सी कविताएँ तो ऐसे मिल जाती हैं कि उनमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं दिखाई पड़ता; ऐसी कविताएँ प्राचीन कवियों की विशेष मिलती हैं। नवीन तथा वर्त्तमान कवियों में यह भावसाम्य बहुत कम पाया जाता है; क्योंकि नवीनों की कोई परम्परा स्थिर नहीं हुई है, इसी लिए 'कवि-समय' बने नहीं हैं।

इस प्रकार कहने से मेरा तात्पर्य यही है कि देश, काल तथा अवस्था-विशेष में कविताओं में भाव-सादृश्य हो ही जाता है।

जब हम हिन्दी के कविता-साहित्य को भली भाँति देखते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि भावसाम्य प्राचीन तथा नवीन (आधुनिक) सभी कवियों की कविता में है। ऐसे कवि बहुत ही कम हैं, जो बिलकुल निराले हैं, जिनकी कविता पर किसी की भी छाप नहीं पड़ी है।

अपन पौ आपुही बिसरो !
जैसे सुनहा काँच मँदिल महँ, भरमते भूँसि भरो (रे)।
जौं केहरि बपु निरखि कपजल, प्रतिमा देखि परो (रे)।
वैसे ही गज फटिक-सिला पर, दसनन्हि आनि अरो (रे)।
मरकट मूँठि स्वाद नहिं बिहुरै, घर-घर रटत फिरो (रे)।
कहहिं कबीर ललनी के सुगना, तोहि कवने पकरो (रे)।

('कबीर साहब का बीजक' टीकाकार विचार-दास—सं० १९८३)

आपुन पौ आपुन ही बिसरयो।
जैसे स्वान काँच-मंदिर में भ्रमि-भ्रमि भूँकि परयो।
हरि-सौरभ मृग नाभि बसत है, द्रुम-तृन सूँघि मरयो।
ज्यों केहरि प्रतिबिम्ब देखि कै, आपुन कूप परयो।



जैसे गज लखि फटिक-सिला में, दसननि जाइ अरयो।
मरकट मूँठिछाड़ि नहिं दीन्हीं, घर-घर द्वार फिरयो।
सूरदास नलिनी के सुवटा कहि कौने जकरयो।

पाठक दोनों पदों को पढ़ें और तब हृदय पर हाथ धरकर ठीक-ठीक बतलावें कि क्या यह कहा जाय कि सूरदास जैसे प्रतिभा-सम्पन्न महाकवि ने महात्मा कबीरदास के भाव को ले लिया है (चुरा लिया है)। कोई ऐसी बात महात्मा सूरदास के लिए नहीं कह सकता। कभी-कभी भावसाम्य तो हो ही जाता है। यही नहीं कि केवल एक ही दो कवियों की कविता में ऐसी बात हो; सूर और तुलसी की कुछ कविताएँ देखिए—

आँगन खेलैं नंद के नंदा;
जदु-कुल-कुमुद सुखद चारुचन्दा।
संग-संग बल, मोहन सोहैं;
सिसु भूषन सबको मन मोहैं।
तनु दुति मोर चन्द्र जिमि झलकै;
उमँगि-उमँगि अँग-अँग छबि छलकै।

—सूरदास

आँगन खेलत आनँद-कन्द,
रघुकुल कुमुद सुखद चारु चन्द।
सानुज भरत लषन सँग सोहैं,
सिसु भूषन भूषित मन मोहैं।
तनदुति मोर चन्द जिमि झलकै,
मनहु उमँगि अँग अँग छबि छलकै।

—तुलसीदास

कितना साम्य है। सूरदासजी ने कृष्ण के लिए 'जदु-कुल-कुमुद सुखद चारु चन्दा' कहा तो तुलसी ने श्रीरामचन्द्र के लिए 'रघु-कुल-कुमुद सुखद चारु चन्द'। श्रीकृष्ण की 'तनुदुति मोर चन्द्र जिमि' झलकती है तो श्रीराम की भी 'तनदुति मोरचन्दजिमि' झलकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भाव में ही साम्य नहीं है, भाषा और कहने के ढंग में भी सर्वाङ्ग सादृश्य है। दो-एक कविता और देखिए—

जिन तनु ना हरि भजन कियो।
सूकर, कूकर खग मृग मानों यहि सुख कहा जियो।

—'सूर'

तुलसीदासजी की भी एक ऐसी कविता है—

जो पै लगन राम ते नाहीं।
तौ नर खर कूकर सूकर सम वृथा जियत जग माहीं।

—'तुलसी'

ढूँढने से इन दोनों महाकवियों की ऐसी बहुत-सी कविताएँ मिल सकती हैं, जिनमें भाव ही का सादृश्य नहीं है, बल्कि कहीं-कहीं तो इनकी भाषा और कहने के ढंग में भी बहुत साम्य पाया जाता है। इस प्रकार से साम्य पाये जाने पर भी मैं यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि इन लोगों ने भावों का आदान-प्रदान किया है।

बिहारी, देव, पद्माकर, सेनापति आदि रीति-काल के कवियों की रचनाएँ देखने से भी हमें यह ज्ञात होता है कि इस काल के कवियों की कविताओं में भी वही बात है, जैसी सूर, तुलसी, कबीर आदि में। कुछ अंशों में इस काल के कवियों में भावसाम्य विशेष मात्रा में पाया जाता है। अव-लोकनार्थ कुछ कविताएँ नीचे लिखता हूँ—

कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल;
कहुँ मुरली कहुँ पीतपट, कहूँ मुकुट बनमाल।

—'बिहारी'

ऐसा ही 'सुन्दर' का एक कवित्त है—

कहुँ बनमाल कहुँ गुंजन की माल कहुँ
संग सखा ग्वाल ऐसे हाल भूलि गये हैं;
कहुँ मोर चन्द्रिका लकुट कहुँ पीतपट
मुरली मुकुट कहुँ न्यारे डारि दये हैं।
कुंडल अडोल कहुँ 'सुन्दर' न बोलैं बोल
लोचन अडोल मानों काहू हरि लये हैं;
घूँघट की ओट ह्वै कै चितयो की चोट करी,
लालन तो लोट-पोट तब ही तें भये हैं।



भाव एक ही है। बिहारी ने इसे एक दोहे में कहा है और 'सुन्दर' ने इसी भाव का व्यास करके एक कवित्त में। बिहारी के कृष्ण भी आँखों से घायल होकर बेहाल हैं और 'सुन्दर' के कृष्ण पर भी किसी ने घूँघट के भीतर की चितवन से चोट की है, जिससे वे सुधबुध सब भूल गये हैं, बेहाल तड़प रहे हैं।

बिहारी का एक दोहा है—

कर लै चूमि चढ़ाइ सिर, उर लगाइ भुज भेंटि;
लहि पाती पिय की लखति, बाँचति धरति समेटि।

इसी प्रकार सेनापति की एक नायिका को भी, जो विरह के मारे बेहाल थी, किसी ने अचानक 'चीठी दीनी' तो उसे प्रिय की प्राप्ति का-सा आनन्द हुआ, और—

माथे लै चढ़ाई दोऊ दृगनि लगाई चूमि
छाती लपटाय राखी पाती प्रानप्रिय की।

सूरदासजी ने अपने प्रभु से कहा है—

प्रभु! मेरे अवगुन चित न धरो।

बिहारी की भी यही प्रार्थना है—

मेरे गुन अवगुन गनन, गनौ न गोपीनाथ।

'सुन्दर' और 'इन्शा' की भी एक ही उक्ति देखिए—

ऐसी सिलसिली ओप सुन्दर कपोलन की
खिसल-खिसल परै दीठि जिन परते।
—'सुन्दर'

है सलसलाहट ऐसी सी कुछ नर्म गात है,
जब हाँ निगह का ध्यान पड़ा झट रपट गया।
—'इन्शा'

यदि भली भाँति नहीं तो उड़ती निगाह से तो हमने देख लिया कि रीति-काल के कवियों की रचनाओं में भी भाव-सादृश्य है। इस पर पुनः मैं यही बात कहूँगा कि अवस्था तथा काल-विशेष से भाव-साम्य तो हो ही जाता है; किसी ने किसी के भाव को चुराया नहीं है।

अब यदि मैं वर्त्तमान कवियों की कविताएँ, जिनमें भावसाम्य है, पाठकों के सम्मुख रक्खूँ तो मेरे विचार से, कुछ अनुचित न होगा। ऐसा करने से पूर्व मैं यह कह देना चाहता हूँ कि आधुनिक कवियों की ऐसी कविताएँ बहुत ही कम हैं, जिनमें भाव-सादृश्य हो गया है और वह भी एक-दो पंक्तियों में। आपको इनकी एक भी कविता ऐसी नहीं मिलेगी, जिसमें आद्योपान्त एकता हो, जैसा कि पाठक कबीर, सूर और तुलसी की कुछ कविताओं में देख चुके हैं। एक बात और है—आजकल के कवियों की अभिव्यंजना-शैली भिन्न-भिन्न होती है, इसलिए यदि कहीं भावसाम्य हो भी गया है तो उनके कहने के ढंग में एकता नहीं है।

देखिए—पंतजी के 'पल्लव' में एक पंक्ति है—

हाय किसके उर में उतारूँ अपने उर का भार!

हिन्दी के कवि तथा सुलेखक पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी की भी एक ऐसी ही कविता है—

निज व्यथित हृदय का व्यथित भार,
रे किसके उर में दूँ उतार।

दोनों कवि इसके लिए व्याकुल हैं कि 'अपने उर का भार मैं किसके उर में उतार दूँ।' यहाँ भाव की समता सर्वांश में है। इन्हीं दोनों कवियों की चार पंक्तियाँ और देखिए—

चिर हास अश्रुमय आनन रे! इस मानव-जीवन का
× × ×
विहग-बालिका बन इस वन को तेरे गीतों से भर दूँ।
—'पंत'

मृदु पलकों में आँसू भर अधरों में मधुर हँसी धर
× × ×
तेरे ही शीतल गीतों से गुंजित कर दूँ जग की डाल
—शान्तिप्रिय द्विवेदी

'प्रसाद'जी के 'प्रेम-प्रथिक' की एक पंक्ति है—

किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।



हिन्दी के नवयुवक कवि श्रीसर्वदानन्द वर्मा भी युवकों को यही सलाह देते हैं कि—

तू बढ़ चल उस अविदित थल तक
जिस तक जाने की राह न हो।

पाठक देख रहे हैं कि दोनों कवियों के कहने का तात्पर्य एक ही है।

श्रीभगवतीचरण वर्मा की 'मिलन-संगीत'-नामक एक कविता है। उसके एक छन्द का भाव यह है कि 'हे प्रिये! आज हम लोगों का मिलन हुआ है, सम्भव है, कल बिरह हो जाय' इसलिए—

कुछ सुन लें कुछ अपनी कह लें।

एक दूसरे कवि की भी ऐसी ही पंक्तियाँ हैं—

आज सुख-दुख हम सुना लें
परस्पर हे प्रान।
कल न-जाने मैं कहाँ औ'
तुम कहाँ अनजान।

दोनों कवियों के प्रेमी परस्पर एक ही बात कहना चाहते हैं। कबीरदासजी का एक बड़ा प्रसिद्ध दोहा है—

सो साईं तन मैं बसै, ज्यूँ पुहपन में बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यूँ फिर-फिर सूँघै घास।

बिहार के एक अच्छे कवि आरसीप्रसादसिंह की एक पंक्ति है—

अपने ही सौरभ से पागल भटक रहा कस्तूरी-मृग-सा।

इसी प्रकार वर्तमान कवियों की कविताओं में भी कहीं-कहीं भावसाम्य मिलता है। ऐसी बात कहकर मैं यह नहीं कहना चाहता कि इन लोगों ने भावों का आदान-प्रदान किया है, जैसा कि अन्य काल के कवियों के लिए भी मैं पहले कह आया हूँ।

कविता में भावसाम्य हो जाने पर किसी को भड़कना नहीं चाहिए, क्योंकि भावसाम्य तो दो विभिन्न विदेशी कवियों तक में हो जाता है, हिन्दी के कवि तो एक ही देश के निवासी थे और हैं। किसी विदेशी कवि ने कहा है—

The beauty unadorned is adorned
the best.

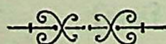
कवि-कुल-गुरु कालिदास ने भी अपने 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' में एक प्रकार से इसी भाव को व्यक्त किया है—

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।

इन दो विभिन्न देशीय कवियों के भावसाम्य को देखकर क्या मैं कहने लगूँ कि इन लोगों ने परस्पर भावों को चुराया है? नहीं, मैं ऐसा नहीं कह सकता और न कहना चाहिए।

अन्त में मैं हिन्दी-संसार से एक बात कह देना चाहता हूँ, क्योंकि ऐसा न करने से लोग मुझे दोष देंगे कि आप हिन्दी के कवियों को प्रोत्साहन देते हैं और उनकी ओर से वकालत करते हैं कि वे हृदय खोलकर भावों का आदान-प्रदान करें; वह बात यह है कि ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है, जो आँख बचाकर दूसरे का माल उड़ा लेते हैं और पीछे पकड़े जाने पर आँखें दिखाते हैं; ऐसे ही लोगों (चोरों) को लक्ष्य करके गोवर्धनाचार्य ने कहा है—

कविरनुहरतिच्छायां कुकविर्भावं पदानि चाप्यधमः।
सकलपदावलिहर्त्रे साहसकर्त्रे नमस्तुभ्यम्॥



भारत में मनुष्य की उत्पत्ति तथा आर्य-जाति की प्राचीनता

श्रीअमृतवसंत

मनुष्य और विकासवाद

संसार के सारे धर्म यही मानते हैं कि मनुष्य जगत् की सृष्टि के साथ ही उत्पन्न हुआ था। परन्तु विज्ञान इस बात को स्वीकार नहीं करता। पृथ्वी की सतह पर तथा उसके गर्भ में अनेक प्रकार की चट्टानों के स्तर पाये जाते हैं। ये चट्टानें भौगर्भिक कारणों से पृथ्वी की आयु के भिन्न-भिन्न कालों में बनी हैं। इनमें जो चट्टानें सबसे नीचे हैं, वे ही सबसे अधिक प्राचीन हैं और इस क्रमानुसार सबसे ऊपर की चट्टान, जिस पर कि हम रहते हैं, सबसे अधिक अर्वाचीन हैं। प्याज़ में जिस प्रकार परत होते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी में इन चट्टानों के परत हैं। इनमें से प्रत्येक चट्टान बनने के समय पृथ्वी पर जो-जो प्राणी थे, उनकी पाषाणीभूत हड्डियाँ (Fossils) आज भी इन चट्टानों में दबी हुई पाई जाती हैं। इन चट्टानों में मनुष्य की हड्डियां कहीं भी दबी हुई नहीं मिलीं। इससे सिद्ध होता है कि सृष्टि या पृथ्वी की उत्पत्ति के साथ मनुष्य उत्पन्न नहीं हुआ था, जैसा कि धर्म-ग्रंथों में लिखा हुआ है।

पृथ्वी की चट्टानों के भिन्न-भिन्न स्तरों में जिन-जिन प्राणियों की पाषाणीभूत हड्डियाँ मिली हैं, उनकी रचना-प्रणाली के आधार पर चार्ल्स डार्विन नामक एक अँगरेज़ विद्वान् ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि संसार के सारे प्राणियों की उत्पत्ति शारीरिक क्रम-विकास (Evolution) से हुई है। इसी प्रकार बन्दर का शारीरिक विकास होकर मनुष्य उत्पन्न हुआ है। इस सिद्धान्त ने सारे धार्मिक जगत् में खलबली मचा दी, धर्म-गुरुओं द्वारा इसका ख़ब विरोध हुआ और आज भी कुछ अंशों में यह विरोध विद्यमान है। भारत भी इस विरोध की लहर से न बचा। यहाँ भी आर्य-समाज द्वारा आज तक इसका विरोध हो रहा है। परन्तु सत्य की सदैव विजय होती है और अब यह सिद्धान्त एक अटल सत्य की भाँति स्थापित हो गया है।

मनुष्य के पूर्वज नर-वानर

डार्विन की मृत्यु के पश्चात् इस सिद्धान्त की बहुत-कुछ उन्नति हुई है। डार्विन के समय में मनुष्य को बन्दर से जोड़नेवाले किसी मध्यस्थ प्राणी की अस्थियाँ प्राप्त नहीं हुई थीं। परन्तु अब तक वे प्रचुर प्रमाण में उपलब्ध हो चुकी हैं। सर्वप्रथम १८६१ में जावा में एक ऐसे नर-वानर (Ape) की पाषाणीभूत हड्डियाँ प्राप्त हुई थीं। इसके पश्चात् १६२४ में, दक्षिण-अफ्रीका में, प्रो० डार्ट को एक ऐसे नर-वानर की खोपड़ी मिली, जो जावा के नर-वानर की अपेक्षा मनुष्य से अधिक मिलती-जुलती थी। इसके पश्चात् चीन में पेकिंग, जर्मनी



में हायडेलबर्ग, इँगलैंड में पिल्ट डाउन आदि स्थानों में भी ऐसे नर-वानरों की हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं, जो मनुष्य को बन्दर से जोड़नेवाली विकास-जंज़ीर की भिन्न-भिन्न कड़ियों के समान हैं। इनके नाम, काल-क्रम के अनुसार, इस प्रकार हैं—

१—जावा-नरवानर (Pithecanthropus Erectus)
२—चीनी नरवानर (Sinanthropus Pekinensis)
३—हायडेलबर्ग नरवानर (Homo Heidelbergensis)
४—पिल्टडाउन-नरवानर (Homo Dawsonii)
५—रोडेशिया-नरवानर (Homo Rhodesiensis)
६—आस्ट्रेलिया-नरवानर (Australopithecus Africanus)

शिवालिक के नर-वानर

भारत के सरकारी भूगर्भ-विभाग के अधिकारी जिस समय उत्तर-भारत की शिवालिक पर्वत-मालाओं में भौगर्भिक अन्वेषण कर रहे थे, उस समय वहाँ उनको प्राचीन काल के प्राणियों के पाषाणीभूत (Fossilised) अस्थि-पंजर बहुत बड़े परिमाण में प्राप्त हुए। इससे अनेक विद्वानों को यह आशा हुई कि मनुष्य को बन्दर से जोड़नेवाले नर-वानरों के अस्थि-पंजर यहाँ भी अवश्य मिलेंगे। इस कार्य के लिए अमेरिका से एक अन्वेषक-दल आया और इसको शिवालिक पर्वत-मालाओं में कुछ नये प्रकार के नर-वानरों की पाषाणीभूत अस्थियाँ प्राप्त हुईं। इन नर-वानरों में उपर्युक्त नर-वानरों की अपेक्षा मानवता के विशेष चिह्न दिखाई दिये। इन नर-वानरों के क्रमशः इस प्रकार भारतीय नाम रक्खे गये—

१—मूल नर-वानर (Dryopithecus)
२—सुग्रीव नर-वानर (Sugrivapithecus)
३—राम नर-वानर (Ramapithecus)
४—शिव नर-वानर (Shivapithecus)

मूल नर-वानर वह जाति थी, जिससे वर्तमान काल के गोरिल्ला, शिम्पैंज़ी तथा मनुष्य के पूर्वज नर-वानर उत्पन्न हुए थे। सुग्रीव नर-वानर की अपेक्षा राम-नर-वानर में मानवता के विशेष चिह्न पाये हैं और राम-नर-वानर की अपेक्षा शिव-नर-वानर में और भी अधिक मानवता के चिह्न दृष्टि-गोचर होते हैं। इसको अंतिम नर-वानर तथा आदिम मनुष्य के बीच की महत्त्वपूर्ण कड़ी (Link) माना गया है।

भारत से नर-वानर का संसार में प्रसार

सर इलियट स्मिथ अपनी पुस्तक The Search for Man's Ancestors में लिखते हैं कि "बहुत संभव है, शिवालिक पर्वत-श्रेणियों के प्रदेश में से ही अनेक प्रकार के वानर और नर-वानर पृथ्वी पर चारों दिशाओं में फैल गये। इनमें से कुछ जावा और बोर्नियो पहुँचे, कुछ अरब और ईरान की ओर जाकर दो शाखाओं में विभाजित हो गये। एक शाखा पश्चिम में फ्रांस और स्पेन तक फैली और दूसरी ने अफ्रीका में प्रवेश किया।" जावा दक्षिण-अफ्रीका, चीन तथा यूरोप में जो नर-वानरों की अस्थियाँ प्राप्त हुई हैं, वे इन्हीं नर-वानरों तथा इनके वंशजों की हैं।

भारत में आदिम मनुष्य

अनुमानतः एक करोड़ वर्ष पूर्व मायोसीन-युग के प्रारम्भ में हिमालय का अस्तित्व नहीं था और भारत से मध्य-एशिया तक सीधा मैदान फैला हुआ था। इन दोनों देशों में प्राचीन प्राणियों की जो एक-सी पाषाणीभूत अस्थियाँ प्राप्त हुई हैं, इससे इस बात की पुष्टि होती है कि इस प्रदेश पर उस समय मूल-नर-वानर (Dryopithecus) विचरा करते थे। जब मायोसीन युग के मध्य में भूकम्पों की परम्परा के कारण यह मैदान ऊँचा उठकर हिमालय के रूप में परिवर्तित हो गया तो भारत भी मध्य-एशिया से अलग हो गया। इसके परिणाम-स्वरूप मूल-नर-वानर दो शाखाओं में विभक्त हो गया। इनमें से जो शाखा, जो भारतवर्ष में रह गई, वह नर्मदा की घाटी तक फैल गई। इस मूल-नर-वानर में से ही विक-सित होकर क्रमशः सुग्रीव, राम और शिव नर-वानर उत्पन्न हुए। शिव नर-वानर मनुष्य से बहुत कुछ मिलता-जुलता था।



आदिम मनुष्य के हथियार-औज़ार

ये नर-वानर हथियार-औज़ारों के तौर पर पत्थर के नुकीले टुकड़ों का उपयोग करते थे। ऐसे पत्थर यूलिथ (Eoliths) कहलाते हैं। इन यूलिथों को अन्य पत्थरों से काटकर और भी अधिक काम के उपयुक्त बनाया गया। ऐसे हथियार गत वर्ष डा० डी० टेरा को रावलपिंडी के निकट काला-चित्ता की पहाड़ी के आसपास बहुत बड़े परिमाण में मिले हैं। इसके पश्चात् इन पत्थर के हथियारों में और भी सुधार हुआ, जिनके उपयोग के काल को चिलियन युग (Chellean age) कहा जाता है। इसी समय योरप में हायडेलबर्ग की जाति का नर-वानर विचरता था। उसके हथियार भी ऐसे ही प्राप्त हुए हैं। ये चिलियन-युग के हथियार डा० टेरा को पोतवार झील के पास प्राप्त हुए हैं।

हिम-युग

इसी समय पृथ्वी की धुरी कुछ अधिक टेढ़ी हो जाने या किसी अन्य कारण से आज से ४ लाख वर्ष पूर्व हिम-युग आया, जिससे उत्तरी गोलार्ध में मध्य एशिया, उत्तर-भारत, योरप और उत्तरी अमेरिका पर बर्फ़ छा गई और दक्षिणी गोलार्ध में आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैन्ड, दक्षिण-अमेरिका का दक्षिणी भाग और दक्षिण-अफ़्रीका बर्फ़ से ढक गये। इस समय यूरोप में नीन्डरथेलर (Neanderthaler)-नामक नर-वानर विचरता था। यह गुफाओं में रहता था, आग जला लेता था, पत्थरों के नुकीले हथियार बनाकर उनसे शिकार कर लेता था। यह जाति हिम-युग के पश्चात् नष्ट हो गई। अनेक विद्वानों का कथन है कि यह जाति नष्ट नहीं हुई, परन्तु इसमें से एक विशेष प्रकार की मानव-जाति का निकास हुआ, जो अब तक थोड़ी-बहुत संख्या में पश्चिम आयर्लैंड तथा ग्रीस में पाये जाते हैं। नीन्डरथेलर के पश्चात् योरप में क्रोमेगनन (Cro-magnon) तथा ग्रेमाल्डी (Gramaldi) जातियों का आगमन हुआ। ये वास्तव में प्रारंभिक मनुष्य की जातियाँ थीं, जिनमें से नर-वानर के लक्षण अधिकांश नष्ट हो चुके थे।

हिमयुग के पश्चात् एक दूसरा हिमयुग आया और दूसरे के पश्चात् तीसरा। आज से ७५००० वर्ष पूर्व उसकी समाप्ति के पश्चात् तक उत्तर भारत के पार्वत्य-प्रदेश में मानव-जाति बहुत कुछ विकसित हो गई थी। इसकी सभ्यता पूर्व पाषाण-युग (Paleolithic age) के माध्यमिक काल की थी। यही जाति संसार की वास्तविक आदिम मानव-जाति थी, जिसका सारे संसार में प्रसार हुआ। यह मानव-जाति गुफाओं में रहती थी तथा शिकार और फल-मूलादि पर जीवन-निर्वाह करती थी। इस समय हिन्द-महासागर में दक्षिण-भारत, पूर्व-अफ़्रीका तथा आस्ट्रेलिया से सटा हुआ एक बहुत बड़ा महाद्वीप फैला हुआ था। एक ऐसा ही महाद्वीप पैसफ़िक तथा दूसरा अटलान्टिक महासागर में फैला हुआ था, जिनके द्वारा यह आदिम मानव-जाति संसार के कोने-कोने में फैल गई। आज भी इस जाति के हथियार-औज़ार कहीं-कहीं प्राप्त होते हैं। यह घटना आज से ६५००० वर्ष पूर्व की है।

आर्यों के पूर्वज

आदिम मानव-जाति के संसार में फैल चुकने के पश्चात् भी एक बहुत बड़ा मानव-समुदाय अपनी आदि-भूमि उत्तर-भारत के पार्वत्य-प्रदेश में निवास करता था। शिवालिक-पर्वत-मालाओं से लेकर पश्चिमोत्तर पंजाब तक के प्रदेश में प्राचीन स्तन प्राणियों (Mammals) के पाषाणीभूत अस्थि-पंजर इतने अधिक परिमाण में मिले हैं कि जितने संसार के और किसी स्थान में प्राप्त नहीं हुए। इससे पता चलता है कि यहाँ स्तन प्राणी बहुत थे। यहाँ जो मानव-जाति निवास करती थी, उसने देखा कि इनके थनों से जो दूध निकलता है, उसको पीकर जीवन-निर्वाह किया जा सकता है। वैसे भी ये प्राणी अहिंसक और सीधे होते थे। अतः इस मानव-समुदाय ने इनको पकड़कर पाला और



इनके दूध पर जीवन-निर्वाह करने लगे। इस प्रकार संसार के और सब भागों में जब मानव-जाति जीवन-निर्वाह के लिए नित्य अन्य प्राणियों की भाँति भटकती हुई शिकार करती थी और फल-मूल संग्रह करती थी, उस समय उत्तर-भारत के पार्वत्य-प्रदेश में बसनेवाली जाति ने जीवन-निर्वाह का मसला इस प्रकार हल कर लिया। प्रत्येक प्राणी के सम्मुख सबसे बड़ा प्रश्न पेट-पूर्ति और विरोधी वातावरण (Unfavourable invironments) से शरीर-रक्षा करना है। इसको हम जीवन-प्रश्न कह सकते हैं।

इस जीवन-प्रश्न के हल हो जाने के पश्चात् ही मानव-जाति में सभ्यता का प्रारंभ हुआ है और यहीं से हम उसको वास्तविक मनुष्य भी मान सकते हैं। उत्तर-भारत की जिस जाति ने सर्व-प्रथम संसार में पशु-पालन द्वारा इस प्रश्न से मुक्ति पाई, यही वह जाति थी, जिसको हम आर्य-जाति कहते हैं। यही कारण है कि संसार की अन्य जातियों की अपेक्षा आर्य-जाति सबसे प्रथम सभ्य हुई, उसी ने शेष मानव-जाति को सभ्यता प्रदान की और आज तक मानव-समाज में वह सर्वोपरि बनी हुई है।

आर्यानावाइजो और श्रीतिलक के मत का खंडन

आर्य-जाति अपनी निवास-भूमि इस उत्तर-भारत के पार्वत्य-प्रदेश को आर्यानावाइजो कहती थी। यह आर्यानावाइजो कहाँ था, इस विषय में अनेक मत हैं। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने इसको उत्तर-ध्रुव प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है। परन्तु यह सिद्धान्त भी असत्य है। अवस्ता में आर्यानावाइजो का जो भौगोलिक वर्णन पाया जाता है, उससे वह बड़े ऊँचे-ऊँचे पर्वतों का प्रदेश प्रमाणित होता है। उत्तर-ध्रुव कभी ऐसा प्रदेश नहीं रहा। वास्तव में उत्तर-भारत का पार्वत्य-प्रदेश ही आर्यों की आदि-भूमि आर्यानावाइजो था, जहाँ आर्य-गण पशु-पालन द्वारा जीवन-निर्वाह करते थे। चतुर्थ हिम-युग में, जो आज से ५०००० वर्ष पूर्व आया था, आर्यानावाइजो के बर्फ़ से ढक जाने पर आर्य-लोग उत्तर-ध्रुव की ओर प्रस्थान कर गये थे। ये सब बातें अवस्ता के निम्न-लिखित अवतरणों द्वारा भली भाँति सिद्ध हो जाती हैं—

आर्यानावाइजो में चतुर्थ हिमयुग का आगमन

अवेस्ता (३, ४—५, ६) में ज़र थुश्र से अहुरमज़्द कहता है कि—

"मैं, अहुरमज़्द, ने आदिम निवास-स्थान, सुन्दर रचना-पूर्ण, सर्वोत्तम आर्यानावाइजो की सृष्टि की। इसके विरुद्ध विनाशकारी आंग्रमइन्यु ने वहाँ दाइवों द्वारा विरचित सर्पों और बर्फ़ को उत्पन्न किया। वहाँ दस महीने शीत-काल के और दो उष्ण-काल के हुए।"

इस अवतरण में स्पष्ट लिखा हुआ है कि आर्यानावाइजो में वर्ष के १२ मास होते थे। उत्तर-ध्रुव में यह बात नहीं पाई जाती। वहाँ ६ मास का दिन और ६ मास की रात होती है। अतः सिद्ध होता है कि आर्यानावाइजो उत्तर-ध्रुव में नहीं था। उपर्युक्त अवतरण आर्यानावाइजो की उस प्राकृतिक दशा का वर्णन है, जो वहाँ हिम-युग के आगमन के पूर्व उत्पन्न हो गई थी। वहाँ बरफ़ पड़ना प्रारंभ हो गया था और शीत के कारण वर्ष में १० मास शीतकाल के हो गये थे। वन्दीदाद, फ़र्गर्द दूसरे के नीचे दिये हुए अवतरण से यह बात पूर्णतया सिद्ध हो जाती है—

अहुर्मज़्द यिम से कहता है कि, "हे विवंघत के पुत्र सुन्दर यिम! इस भौतिक जगत् पर विनाश-कारी शीत-काल आनेवाला है। उसमें ऐसी हिम-वर्षा होगी कि जिसके कारण पर्वतों के सर्वोच्च शिखरों पर एक हाथ बरफ़ जम जायगी। पर्वत-शिखरों पर रहनेवाले, उपत्यकाओं में रहनेवाले, और जंगलों में रहनेवाले, ये तीनों प्रकार के प्राणी नष्ट हो जायँगे। इस शीतकाल के पूर्व इस देश के पशुओं के चरने के लिए दूब घास उत्पन्न होती थी। जल-स्रोतों से पुनः जल



बहने के पूर्व बरफ़ जमना शेष है। और संसार में यह देश, जिसमें कि इस समय छोटे-बड़े पशुओं के पदचिह्न अंकित हैं, बहुत सुख-कारक देश होगा। इसलिए चारों दिशाओं में एक घेरा बनाओ और उसमें भेड़ें, गायें, कुत्ते, पक्षी, रक्त-प्रज्वलित अग्नि के बीज और मनुष्यों को इकट्ठा करो।"

इस अवतरण में सबसे अधिक महत्त्व की बात तो यह है कि आर्यानावाइजो का वर्णन जो इसमें है, वह किसी ऐसे पार्वत्य प्रदेश का, जिसमें बड़े-बड़े पर्वत हैं। "सर्वोच्च पर्वतशिखरों पर एक हाथ ऊँची बरफ़ जमना" "पर्वत-शिखरों पर रहनेवाले" "उपत्यकाओं में रहनेवाले" आदि वाक्यों से यही सिद्ध होता है कि आर्यानावाइजो अवश्य कोई हिमालय का पार्वत्य-प्रदेश था। जिसने उत्तर-पंजाब और काश्मीर का पार्वत्य-प्रदेश देखा होगा, वह अवश्य इस बात को स्वीकार करने में तनिक भी संकोच न करेगा। दूसरी बात इससे यह सिद्ध होती है कि इस देश पर हिम-वर्षा शुरू हो गई थी और इसी लिए आर्यों ने उसको छोड़ा। डा० डी० टेरा के अन्वेषणों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि इस प्रदेश पर भी हिम-प्रलय आया था। इस हिम-प्रलय के पश्चात् आर्य-साहित्य में और किसी हिम-प्रलय का वर्णन नहीं मिलता, जिससे सिद्ध होता है कि वह अंतिम (चतुर्थ) हिम-युग था, जो आज से ५०००० वर्ष पूर्व आया था। इस प्रकार आर्यों की प्राचीनतम घटनाएँ पचास हज़ार वर्ष से भी पूर्व की सिद्ध होती हैं। तीसरी बात इस अवतरण से यह ज्ञात होती है कि इस घटना के समय तक कृषि का आविष्कार नहीं हो पाया था और आर्य पशु-पालक थे। पशुओं के फ़ासिलों (Fossils) का इस प्रदेश में प्रचुरता से मिलना इस बात का समर्थन करता है कि वही आर्यानावाइजो था। चौथी महत्त्वपूर्ण बात यह पाई जाती है कि आर्यों ने अपनी इस प्रिय मातृभूमि को हिम-युग के कारण सदैव के लिए नहीं छोड़ा था। वे हिम-युग की समाप्ति पर पुनः वहाँ आने के उद्देश्य से गये थे। "जल-स्रोतों से पुनः जल बहने के पूर्व बरफ़ जमना शेष है" अर्थात् इस हिम-युग में बरफ़ जम चुकने के पश्चात् पुनः यहाँ के जल-स्रोतों से जल बहेगा। "और फिर यह देश संसार में बहुत अधिक सुख-कारक सिद्ध होगा।" इन वाक्यों में इस पवित्र भूमि में पुनः उनके लौट आने की अभिलाषा स्पष्ट प्रतीत होती है।

आर्यों का सर्व-प्रथम मातृ-भूमि-प्रेम

संसार के इतिहास में यह पहला ही अवसर है कि जिसमें मातृ-भूमि के पवित्र प्रेम का प्रदर्शन पाया जाता हो। उन हमारे पवित्र पूर्वजों ने इसको पूरा भी किया। वे हिम-युग की समाप्ति पर आज से १०००० वर्ष पूर्व पुनः अपनी मातृ-भूमि आये और यहाँ बसकर उन्होंने सारे संसार को सभ्य बनाया।

उपर्युक्त अवतरण में आर्यों के आर्यानावाइजो को छोड़ने की तैयारी का भी विवरण पाया जाता है। इसके पश्चात् ये लोग कहाँ गये, इस बात पर वन्दीदाद, दूसरे फर्गद के निम्न अवतरण द्वारा पूर्ण प्रकाश पड़ता है—

यिम को यह ज्ञान नहीं था कि तैयारी करने के पश्चात् इस भूमि को छोड़कर कहाँ जाना है। अतः उसने अहुरमज़्द से पूछा और अहुरमज़्द ने यिम को यह उत्तर दिया—

"जहाँ सूर्य, चंद्र और तारे एक ही समय उदय होते हैं और एक वर्ष एक दिन के समान होता है"।

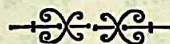
इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि आर्यानावाइजो को छोड़कर आर्य-गण उत्तर-ध्रुव की ओर गये थे; क्योंकि वही ऐसा देश है, जहाँ एक वर्ष एक दिन के समान हो और सूर्य, चंद्र तथा तारे एक ही समय उदित होते हों।

वास्तव में ऋग्वेद में इतनी प्राचीन घटनाओं का उल्लेख नहीं है, जितनी प्राचीन का अवस्ता में पाया जाता है। ऋग्वेद में आर्यों के उत्तर-ध्रुव-गमन के पश्चात् की घटनाओं का वर्णन है। इस प्रकार

अंत को भारतवर्ष ही मानव-जाति की जन्मभूमि सिद्ध होता है। वही आर्यों की आदि-भूमि सिद्ध होता है और वही कृषि की जन्मभूमि था। वहीं से धातु-युग तथा सभ्यता का सारे संसार में प्रचार हुआ। संसार की प्राचीनतम सुमेर, हिटाइट, मिसरी, क्रीटन, चीनी, प्रोटो-इलामाइट, इंका तथा माया संस्कृतियों की माता भी यही भारत-भूमि थी। ये बातें ख़याली पुलाव नहीं हैं, परन्तु वे सत्य सिद्धांत हैं, जिनकी पुरातत्त्व-द्वारा भी पुष्टि होती है। पाठक गण इस विषय पर मेरे अन्य पत्रों में प्रकाशित लेख पढ़ेंगे, तब ये बातें सत्य प्रतीत होंगी।

आर्य-सभ्यता ५० हज़ार वर्ष से अधिक प्राचीन है

लोकमान्य तिलक ने The Arctic Home in the Vedas तथा Orion and the Antiquity of Vedas पुस्तकों द्वारा यह सिद्ध किया है कि वैदिक सभ्यता तथा ऋग्वेद ६५०० वर्ष से भी अधिक प्राचीन है। श्रीअविनाशचंद्र दास ने Rigvedic India तथा Rigvedic Culture में इनको २५ हज़ार वर्ष से भी प्राचीन बतलाया है। मैंने प्रस्तुत लेख में आर्य-सभ्यता को ५० हज़ार वर्ष से भी कुछ अधिक प्राचीन सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। विद्वानों से प्रार्थना है कि मेरे इस सिद्धांत के विषय में अधिक छान-बीन करके अपना मत प्रदर्शित करें।



झण्डीवाला

अनुवादक—श्रीगोपीवल्लभ उपाध्याय

[इस कहानी के मूल-लेखक रशियन ज़ेवोलोड गारशीन थे। उनका जन्म सन् १८५६ में हुआ था। किन्तु उन्हें जीवन भर उद्विग्नता का ही सामना करना पड़ा। साहित्य-प्रवृत्ति में उन्होंने मुख्यतः कहानियाँ ही लिखी हैं, और उनमें लेखक के जीवन की परिस्थिति एवं सर्विया तथा तुर्किस्तान की लड़ाइयों के अनुभव की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। कई शारीरिक एवं मानसिक असह्य यातनाएँ सहन न कर सकने के कारण सन् १८८८ में केवल ३२ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने आत्महत्या करके जीवन समाप्त कर दिया। उनकी कहानियों में नग्नसत्य एवं कठोर वास्तविकता होते हुए भी सुन्दरता है, और इसी कारण उनमें अमर तत्त्व है। उनमें निराशावाद होते हुए भी वह उर्मिल नहीं है। प्रस्तुत कहानी उनकी "Signal"-नामक सुन्दर भावपूर्ण रचना का रूपान्तर है।]

(१)

रामसिंह रेलवे-लाइन का झंडीवाला था।

उसकी झोपड़ी दो स्टेशनों के बीच जंगल में थी। लगभग चार मील दूरी पर एक नई, सूत की मिल भी थी, जो वर्ष भर पहले ही शुरू हुई थी और उसकी ऊँची चिमनी जंगल के पीछे की ओर दूर—बहुत दूर धुँधली-सी दिखाई देती थी। आसपास कुछ फ़ासले से अन्य झंडीवाले चौकीदारों की झोपड़ियाँ भी बनी हुई थीं।

रामसिंह का शरीर एकदम जर्जर हो गया था; क्योंकि वह एक फ़ौजी हाकिम के नौकर के रूप में सौ वर्ष पहले लड़ाई के मैदान में रह चुका था। दिन में ४० से ५० मील तक की अनिवार्य कूच के समय उसने धूप, वर्षा या सर्दी की ज़रा भी परवा नहीं की। सूर्य की तेज़ धूप ने उसे तपाया, सर्दी ने ठिठुराया और वर्षा ने भिगोया; साथ ही कड़ी मेहनत के बाद भूख ने बेतरह अकुलाया भी था। उसके आसपास गोलियाँ सनसनाती रहतीं और ईश्वर की कृपा से वह हर बार बच जाता।

एक बार उसकी पलटन ठीक गोली-मार की सीमा में थी। उस सप्ताह भर तुर्कों के साथ मार-काट होती रही। इन दोनों दलों के बीच केवल एक गहरी खाई थी। सुबह से शाम तक लगातार दोनों ओर से गोली के वार होते थे। उस दशा में छावनी के भोजनालय से हर रोज़ तीन बार चाय की गर्म केटली और आफ़िसर का खाना लेकर रामसिंह को जाना पड़ता था। उसके आस-पास गोलियाँ गूँजती रहतीं, जो चट्टानों से टकराकर भयंकर प्रतिध्वनि उत्पन्न करती थीं। इसी कारण भय के मारे कभी वह रोने भी लगता;

किंतु फिर भी अपना काम ठीक तरह पर किये जाता था।

अंत में बेचारा गठिया के कारण अपंग होकर लड़ाई से वापस लौटा। इसके बाद भी उसने कुछ कम दुःख नहीं झेले। उसके वृद्ध पिता और चार वर्ष के पुत्र की मृत्यु हो चुकी थी, जिसका पता उसे लौटने पर ही लगा। इसलिए वह बेचारा अपनी स्त्री के साथ अलग एकान्त में रहने लगा। वह अधिक काम नहीं कर सकता था; क्योंकि गठिया (संधिवात) से जकड़े हुए हाथों द्वारा खेती हो सकना कठिन था। इसी कारण वह दूर देहात में अधिक दिन नहीं रह सका और किसी नये स्थान में भाग्य की परीक्षा करने निकल पड़ा। वह कुछ दिन पास ही की एक रेलवे-लाइन पर भी रहा; किंतु उस बेचारे का भाग्य कहीं भी न जाग सका। इसलिए उसकी स्त्री ने एक जगह बीच में घर का काम करने की नौकरी ढूँढ ली और रामसिंह बराबर आगे बढ़ता चला गया। एक बार एक एञ्जिन में जाते हुए किसी स्टेशन-मास्टर का चेहरा उसे परिचित सा-जान पड़ा। रामसिंह ने स्टेशन-मास्टर की ओर देखा और उसने इसकी ओर। दोनों ने एक दूसरे को पहचान लिया। वह रामसिंह की पलटन का हाकिम था।

"कौन! रामसिंह?" उसने पूछा।

"जी, हुज़ूर"

"यहाँ कहाँ?"

रामसिंह ने अथ से इति पर्यंत अपनी राम-कहानी कह सुनाई।

"कहाँ जा रहे हो?"

"कुछ नहीं बता सकता, हुज़ूर।"

"अजीब आदमी हो, बता क्यों नहीं सकते! बोलो, क्या चाहते हो?"

"मैं ठीक कह रहा हूँ मालिक! मेरे लिए कहीं भी जाने को जगह नहीं है। मुझे अपने लिए दो रोटी लायक़ काम की खोज करना है। इसी लिए इस लाचार हालत में भटक रहा हूँ।"

उसके मुँह की ओर देखकर कुछ देर विचार करने के बाद स्टेशन-मास्टर ने कहा—"अच्छा तो तुम कुछ समय तक इसी स्टेशन पर टिक जाओ। तुम्हारी शादी तो हो चुकी है न? कहो, तुम्हारी औरत कहाँ है?"

"हाँ हुज़ूर, शादी हो चुकी है, और मेरी औरत पास ही क़स्बे में एक व्यापारी के घर का काम-काज करती है।"

"अच्छा, तो उसे यहाँ बुलवा लो। उसके लिए मैं 'पास' दे दूँगा। यहीं रेलवे-लाइन पर एक झंडीवाले की जगह ख़ाली है, उस पर रखने के लिए मैं बड़े ऑफ़िसर से तुम्हारी सिफ़ारिश कर दूँगा।"

"बड़ी दया होगी हुज़ूर!" रामसिंह ने उत्तर दिया।

(२)

रामसिंह स्टेशन पर टिक गया। वह दिन-भर भोजनालय में काम करता। लकड़ी काटता, मैदान साफ़ रखता और प्लेटफ़ार्म झाड़-बुहारकर साफ़ कर देता। पंद्रह दिन बाद उसकी औरत भी आ गई। उसे लेकर रामसिंह अपनी नौकरी पर झोपड़ी में रहने गया। वह भरपूर ईंधन लकड़ी से भरी हुई एवं गर्म और नई झोपड़ी थी। पहलेवाले चौकी-दार का लगाया हुआ साग-सब्ज़ी का एक छोटा-सा बग़ीचा था और रेलवे-लाइन के दोनों ओर कुछ जुती हुई ज़मीन भी थी। रामसिंह यह सब देखकर ख़ुश हो गया। उसने थोड़ी-सी खेती करने और गाय एवं घोड़ा ख़रीदने का विचार किया।

उसे सभी ज़रूरी सामान दिया गया था। लाल और हरी झंडियाँ, एक-एक गैंती, हथौड़ा, पेचकश, कुदाली, जम्बूर, बड़े स्क्रू और कीलें। गाड़ियों का टाइमटेबुल तथा रेलवे नियम की [illegible] किताबें भी उसे दी गई थीं। प्रारम्भ में तो उसे नींद ही नहीं आई। उसने पूरा टाइम-टेबल याद कर लिया। गाड़ी के समय से दो घंटे पहले वह अपने विभाग में चक्कर लगा आता और झोपड़ी की पटरी पर बैठ जाता। गाड़ी की घरघराहट



सुनने तथा पटरी का कम्पन देखने के लिए वह बराबर प्रयत्न करता । उसने शब्दों के पदच्छेद की तरह सभी मुख्य नियम कण्ठस्थ कर लिये ।

गर्मी का मौसम था और उसे काम भी अधिक नहीं था । सड़क को साफ़ करके वह निश्चिंत था; क्योंकि उन दिनों अधिक गाड़ियों का आवागमन भी नहीं था । रामसिंह दिन में दो बार अपने विभाग का चक्कर लगाता और इधर-उधर पटरी, पाँचे, तख़्ते, स्क्रू आदि देखकर सतह की समता नापता और नल आदि को जाँचकर वह अपने घर लौट आता था ।

वहाँ छोटे से छोटा काम करने के लिए भी इंस्पेक्टर की मंज़ूरी लेनी पड़ती थी, यही एक ख़ामी थी। धीरे-धीरे रामसिंह और उसकी स्त्री एकान्तवास के कारण ऊब गये ।

(३)

दो महीने बीत गये । अपने दोनों ओर के पड़ोसी झंडीवालों से उसने पहचान कर ली । इनमें एक बहुत ही बूढ़ा चौकीदार था, जिसे अधिकारी लोग शीघ्र ही अलग करने का इरादा रखते थे। झोपड़ी में से वह बहुत कम बाहर निकलता था । उसकी स्त्री ही उसका सारा काम करती थी । स्टेशन के पासवाला चौकीदार दुबला-पतला, किन्तु मज़बूत जवान था । दोनों झोपड़ियों के बीच में एक दिन वह रामसिंह से पहली ही बार मिला । रामसिंह ने उसे नमस्कार कर कुशल-क्षेम पूछा । किन्तु उसने तिरस्कार-पूर्वक इसकी ओर देखा । इसने पूछा—"कहो भाई कैसे हो ?" किन्तु वह कोई उत्तर न देते हुए चला गया ।

इसके बाद दोनों की स्त्रियाँ मिलीं; किन्तु उनमें भी विशेष स्नेह-भाव न बढ़ सका । फिर भी दोनों स्त्रियाँ साथ बैठकर दिन बिताया करतीं ।

एक बार रामसिंह ने उस पड़ोसी की स्त्री से कहा—"बहन, तुम्हारे पति अधिक मिलनसार नहीं जान पड़ते ।"

प्रथम तो उस स्त्री ने कुछ नहीं कहा; किन्तु फिर प्रत्युत्तर देते हुए बोली—"वे आपसे किस विषय में बातचीत करते ! सबको अपना-अपना काम होता है । आप अपना काम कीजिए, वे अपना । ईश्वर आपका भला करे ।"

किन्तु इसके बाद भी एक महीने भर में जाकर ये परस्पर परिचित हुए । रामसिंह अपने पड़ोसी किशनसिंह के साथ सड़क पर जाता और दोनों एक जगह बैठकर तम्बाकू पीते हुए पिछले जीवन की बातें करते रहते । किन्तु किशनसिंह अधिकतर शांत ही रहता । रामसिंह अक्सर अपने ग्राम्य जीवन और उस लड़ाई की बातें करता रहता, जिसमें कि उसने अनेक प्रकार के कष्ट झेले थे ।

वह कहता—"मैंने जीवन में कुछ कम दुःख नहीं झेले हैं। पता नहीं, भगवान् अभी और न-जाने कब तक दुःख भोगने को जीता रक्खेगा । ईश्वर ने मुझे कभी सुख नहीं दिया। ख़ैर, उसकी जैसी मर्ज़ी होगी, वही होगा भाई !"

राख झाड़ने के लिए चिलम को रेल की पटरी पर ठोककर किशनसिंह उठ खड़ा हुआ और चलते हुए बोला—"जीवन में हमारे पीछे 'मनुष्य' पड़े हुए हैं; केवल भाग्य का ही दोष नहीं है। इस दुनिया में मनुष्य-जैसा क्रूर प्राणी दूसरा नहीं हो सकता । भेड़िया भेड़िये को नहीं खा जाता, किंतु मनुष्य तो मनुष्य को तत्काल ही भक्षण कर जाता है ।"

"नहीं भाई, ऐसा मत कहो। भेड़िया भी भेड़िये को खा जाता है ।"

"मुझे जैसा अनुभव हुआ, वह मैंने प्रकट किया है। किंतु फिर भी मनुष्य-जैसा घातक दूसरा कोई नहीं हो सकता। यदि उसकी दुष्टता और लालची वृत्ति संसार में न होती तो सब लोग यहाँ सुख से जी सकते। किंतु आज तो प्रत्येक व्यक्ति दूसरे को ेच खाने, काटने या डकार जाने को उद्यत दिखाई देता है ।"

रामसिंह ने थोड़ी देर विचार करने के बाद कहा—"भाई, मुझे तो कुछ पता नहीं। संभव है,



तुम जो कहते हो, वही सच हो। कदाचित् ईश्वर की ऐसी ही इच्छा हो।"

"तब तो शायद तुम्हारे साथ बातचीत करना भी अपने समय को नष्ट करने जैसा हो सकता है। प्रत्येक कष्ट और बुरी बात को ईश्वर के मत्थे मढ़कर शांत भाव से सब कुछ सहन करने का अर्थ मनुष्यता नहीं है भाई। उसे तो पशुता ही कहा जा सकता है। मेरे कहने का आशय इतना ही है।" यों कहकर बिना राम-राम किये वह पीठ फेरकर चल दिया।

रामसिंह भी उठ खड़ा हुआ और बोला—"भाई, नाराज़ क्यों होते हो?" किंतु किशनसिंह ने उसकी ओर मुड़कर देखा तक नहीं, और वह चला गया। फिर भी सड़क के मोड़ पर पहुँचकर जब तक वह आँखों से ओझल न हो गया, तब तक रामसिंह उसे देखता रहा। इसके बाद झोपड़ी में जाकर उसने अपनी स्त्री से कहा—"सीता, अपना पड़ोसी मनुष्य नहीं, हैवान है।"

इतने पर भी दोनों में कभी झगड़ा नहीं हुआ। फिर भी कई बार दोनों पड़ोसी मिले और उन्हीं विषयों पर देर तक बातचीत करते रहे।

(४)

एक बार किशनसिंह ने कहा—"इन झोपड़ियों में भी हमें मनुष्य की करतूत के कारण ही बन्द होना पड़ रहा है भाई।"

"किंतु झोपड़ियों में बन्द होने से क्या बुराई है? इनमें भी रह तो सकते हैं?"

"इनमें रहा जा सकता है! सचमुच! धिक्कार है तुम्हें! तुम जिये अधिक, परन्तु तुमने सीखा कम ही है। इसी तरह अनेक पर दृष्टि डालकर देखा भी थोड़ा ही है। यहाँ या वहाँ झोपड़ियों में बसनेवाले ग़रीब मनुष्यों का जीवन कितना हीन है। नरभक्षक तुम्हें निगल रहे हैं, वे तुम्हारा जीवन-सत्व चूस रहे हैं, और जब तुम बूढ़े हो जाओगे, उस समय, जिस प्रकार ढोर के खाने के लिए ख़ाली छिलके डाल दिये जाते हैं, उसी तरह तुम्हें निकालकर अलग कर दिया जायगा। तुम्हें तनख़्वाह क्या मिलती है?"

"अधिक नहीं, भाई किशनसिंह, सिर्फ़ [illegible] रुपये!"

"और मुझे साढ़े तेरह मिलते हैं। [illegible] ईंधन और दिया-बत्ती के साथ नियमानुसार [illegible] से हमें पंद्रह रुपये मिलने चाहिए। किंतु तुम्हें [illegible] और मुझे साढ़े तेरह देने का निर्णय कौन [illegible] है, इसे तो ज़रा अपने दिल से पूछो! और [illegible] भी तुम कहते हो कि इतने में मनुष्य गुज़र [illegible] सकता है! इसमें डेढ़ या तीन रुपये के [illegible] सवाल नहीं है, और न हर एक को पूरे [illegible] रुपये दिये जाने का ही झगड़ा है। पिछले [illegible] मैं स्टेशन पर गया था। वहाँ से डाइरेक्टर [illegible] को जाते हुए देखने का सौभाग्य भी मुझे [illegible] था। उनके लिए अलग ही सेलून था। उसमें [illegible] निकलकर वे प्लेटफ़ार्म पर आ खड़े हुए थे। किंतु अब मैं यहाँ रहना नहीं चाहता। [illegible] चाहेगा, जाऊँगा। नाक की सीध में चल [illegible]"

"किन्तु किशनसिंह, तुम कहाँ जाओगे? [illegible] यहाँ तुम्हारे लिए मकान है, बाड़ा है, थोड़ी [illegible] ज़मीन भी है और तुम्हारी स्त्री सब काम [illegible] लेती है।"

"क्या कहा! ज़मीन! मेरे ज़मीन के टुकड़े [illegible] तुमने नज़र तो दौड़ाई, किंतु क्या उस पर कहीं [illegible] का भी नाम है! सारी तो ऊजड़ पड़ी है। [illegible] वसन्त पर मैंने 'गोभी' लगाई थी। इसके [illegible] इन्सपेक्टर का दौरा हुआ और उन्होंने पूछ [illegible] लिया 'यह क्या किया! इसकी ख़बर [illegible] नहीं दी! बिना पूछे यह सब क्यों किया! [illegible] सबको जड़ से खोद डालो।' उसे [illegible] हुआ था, वर्ना अच्छी हालत में वह कभी [illegible] न कहता। किंतु इस बार नशे में उसे [illegible] सवार हो गई और मुझ पर तीन रुपया [illegible] कर दिया।"

किशनसिंह चिलम फूँकता हुआ थोड़ी [illegible]



तो शांत रहा। इसके बाद उसने फिर कहा—"अगर ज़रा भी ज़्यादा बात बढ़ती तो मैं उसे ख़तम ही कर देता।"

"तुम बहुत तेज़ स्वभाव के हो भाई।"

"बिलकुल नहीं! मैं गर्म मिजाज़ का नहीं हूँ। बल्कि जो सच बात है, वही कह रहा हूँ और अब भी किसी दिन मैं उसकी नाक तो तोड़ ही दूँगा। मैं बड़े साहब से भी फ़रियाद करूँगा। इसके बाद देखता हूँ, क्या होता है।"

किशनसिंह ने बड़े साहब से शिकायत भी कर दी।

(५)

एक बार सड़क की जाँच करने बड़े साहब आये। तीन ही दिन बाद डाइरेक्टर जनरल की स्पेशल ट्रेन उस रास्ते से गुज़रनेवाली थी। इसलिए पहले से सड़क की देख-भाल करना ज़रूरी था। बड़े साहब ने सब बातों की बारीकी से जाँच की। गिट्टियाँ डलवाई गईं, जोड़ सीधे ठीक कसे गये, स्लीपरों को ठोक-पीट कर देखा गया। कीलें ठोंके गये, खम्भे रँगे गये और क्रासिंग के स्थान पर पीली रेत बिछाने का हुक्म दिया गया। पड़ोस की चौकीवाली स्त्री ने अपने बूढ़े पति को सड़क साफ़ करने के लिए भेजा। इधर सप्ताह भर मिहनत करके रामसिंह ने भी अपने विभाग को ठीक कर दिया। साथ ही उसने अपने पीतल के पट्टे को भी रगड़कर साफ़ और चमकीला बना लिया था। किशनसिंह ने भी सख़्त मेहनत की। ठेले पर बैठकर बड़ा साहब आया। चार आदमी पीछे से उसे ढकेल रहे थे और उसके छहों पहिये सर्राटे से चल रहे थे। घंटे में बीस मील की चाल से ठेला दौड़ रहा था और फिर भी पहिये चूँ-चूँ कर रहे थे। ठेला रामसिंह की चौकी के सामने आकर रुका। उसने तत्काल सामने आकर सलाम किया और सिपाहियाना ढंग से अर्ज़ किया—"सब ठीक हो गया हुज़ूर।"

साहब ने पूछा—"जान पड़ता है, यहाँ तुम बहुत दिन से हो।"

"नहीं हुज़ूर अभी छः महीने भी पूरे नहीं हुए।"

"अच्छा, ठीक है! आगे १६४ नंबर की चौकी पर कौन है?"

उसी ठेले में बड़े साहब के साथवाले ट्राफ़िक-इन्सपेक्टर ने कहा—"किशनसिंह!"

"किशनसिंह.... किशनसिंह वही, जिसके बारे में तुमने पिछले साल शिकायत की थी!"

"हाँ, वही! बड़े ही गरम मिजाज़ का गुस्ताख़ चौकीदार है।"

"अच्छा, तो चलो। ज़रा मैं भी तो उसके गरम मिजाज़ को देख लूँ।" तत्काल ही कुलियों ने ठेले को धक्का लगाया और वह दौड़ने लगा। रामसिंह उसे देखता रहा। उसने सोचा, किशनसिंह और इनके बीच आज चकमक हुए बिना नहीं रहेगी।"

दो घंटे बाद जब वह चक्कर लगाने को निकला तो साँधे की ओर से सड़क की तरफ़ उसने एक आदमी को आते हुए देखा। उसके सिर पर कोई सफ़ेद वस्तु दिखाई देती थी। बहुत देर तक आँखें फाड़कर देखने पर रामसिंह ने पहचाना कि वह किशनसिंह है। उसके हाथ में लाठी थी और कंधे पर एक छोटी-सी पुटरिया। गले में रूमाल भी बँधा हुआ था।

नज़दीक आने पर रामसिंह ने पूछा—"कहाँ चले, किशनसिंह!"

वह बिलकुल पास आ जाने पर एकदम निस्तेज और फीका दिखाई दिया। उसकी आँखें विकराल हो रही थीं। कुछ अस्पष्ट शब्दों में वह बड़बड़ाया—"शहर जा रहा हूँ। कलकत्ते तक जाऊँगा। रेलवे के बड़े आफ़िस में जाना है।"

"बड़े आफ़िस में! तब तो फ़रियाद लेकर जा रहे मालूम होते हो। अरे.... किन्तु जाने दो किशनसिंह, भूल जाओ उसकी बातों को।"

"नहीं भाई! मैं उन्हें नहीं भूल सकता। बात



बढ़ गई है। ज़रा देखो तो। उसने मेरे मुँह पर थप्पड़ मारकर ख़ून निकाल दिया है। मैं जीते-जी इस अपमान को नहीं भूल सकता। मैं उसे यों ही कभी न छोड़ूँगा। उसे अवश्य इसका मज़ा चखाऊँगा।"

रामसिंह ने उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए समझाने के ढंग से कहा—"अरे भाई सब्र करो और भूल जाओ उन सब बातों को! मैं तुम्हें ठीक सलाह देता हूँ कि तुम इस मामले को नहीं सुधार सकोगे।"

"न मामला सुधर सकता है और न मैं उसे ही ठीक कर सकता हूँ, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। भाग्य की बात में तुम ही सच्चे सिद्ध हुए। व्यर्थ की शिकायत तो न करनी चाहिए; किन्तु सत्य के लिए अवश्य सामना करना चाहिए। मैं सत्य के पक्ष पर हूँ, इसी लिए जा रहा हूँ!"

"अच्छा, यह तो बताओ कि बात क्या हुई!"

"हुआ यही कि उसने सब बातों की जाँच की। ठेले में से वह नीचे उतरा और उसने झोपड़ी के अंदर नज़र डाली। मैं पहले ही से जानता था कि वह गर्म होगा; इसलिए मैंने सब कुछ ठीक-ठाक करके रक्खा था। किन्तु जब वह जाने को तैयार हुआ, तब मैंने शिकायत की। वह एकदम झल्लाकर बोला—"सरकारी जाँच होनेवाली है और तुझे अपनी साग-सब्ज़ी की पड़ी है! डाइरेक्टर जनरल का दौरा है और तुझे अपने गोभी के फूल और बग़ीचे की शिकायत सूझ रही है।" अधीर होकर मैं भी उबल पड़ा। बहुत नहीं; किन्तु मेरी थोड़ी-सी बात भी उसे बहुत बुरी लगी और ग़ुस्से में आकर उसने मेरे गाल पर चाँटा मार दिया। मैं चुपचाप खड़ा रहा और सोचने लगा कि 'मैंने ऐसी क्या बात कही थी, जिसका मुझे यह दंड मिला।' वे चले गये, मैं भी चुप रहा और मुँह धोकर वहाँ से चल दिया।"

"और झोपड़ी का क्या किया?"

"मेरी स्त्री वहाँ रहेगी और सब काम देख लेगी। उनकी सड़क की मुझे क्या पड़ी है।"

वह उठ खड़ा हुआ और स्वस्थ होते हुए बोला—"राम-राम, भाई रामसिंह! बड़े आफ़िस में कोई मेरी बात सुनेगा या नहीं, कौन जाने!"

"पैदल तो नहीं जा रहे हो?"

"नहीं भाई! स्टेशन से किसी मालगाड़ी में बैठ जाऊँगा और कल ठेठ कलकत्ते पहुँच जाऊँगा।"

(६)

किशनसिंह बिदा हुआ। वह कुछ दिन ग़ैर-हाज़िर रहा; किन्तु उसके बदले स्त्री ने रात-दिन लगातार काम किया। वह सोई तक नहीं और पति की राह देखते-देखते आधी हो गई। तीसरे दिन डाइरेक्टर जनरल आये। उनकी स्पेशल ट्रेन में एक एंजिन, एक सामान का डिब्बा और दो फ़र्स्ट क्लास कैरेज थे। किन्तु उस समय तक भी किशनसिंह वापस नहीं लौटा था। चौथे दिन रामसिंह उसकी स्त्री के हाल-चाल पूछने गया; उसने देखा कि रो-रोकर उसका मुँह फूल गया है और आँखें सुर्ख़ हो रही हैं।

रामसिंह ने आश्वासन के स्वर में पूछा—"भाई किशनसिंह, वापस लौटे या नहीं?" किन्तु उसने केवल हाथ हिलाकर नकारात्मक संकेत कर दिया और मुँह से एक शब्द तक उच्चारण न करते हुए तत्काल वह अपने काम में लग गई।

(७)

रामसिंह को बचपन से ही नलबाँस की बंसी बनाने का शौक़ था। वह बाँस का बीचवाला भाग जलाकर उसमें आवश्यक छेद करता और एक सिरे पर गीली मिट्टी लगा देता था। इसके बाद वह उनसे ऐसे स्वर निकालता था कि जिसमें हर एक राग बजाया जा सके। फ़ुर्सत के वक़्त अब भी वह बाँसुरी बनाया करता और मालगाड़ी के गार्ड द्वारा शहर के बाज़ारों में बिकने भेज देता था। एक बाँसुरी पर चार आने तो उसे सहज ही मिल जाते थे।

डाइरेक्टर के दौरे के बाद एक दिन कुछ देर की गाड़ी सम्हालने का काम अपनी स्त्री को सौं

कर वह लकड़ियाँ काटने जंगल की ओर चला। वह अपने विभाग के सिरे तक गया। वहीं पर सड़क का मोड़ था। वह सड़क छोड़कर पर्वत की तलहटीवाले जंगल में घुसा। आध मील दूर ही एक तलैया में बाँसुरी के लायक़ नलबाँस उगे हुए थे। वह उनका एक गट्ठा बाँधकर घर की ओर लौटा। सूर्यास्त होने की तैयारी थी और उस घोर शांति में पक्षियों की किलबिलाहट एवं पैरों तले रौंदे जानेवाले सूखे पत्तों के शब्द के सिवा और कोई शब्द नहीं सुनाई देता था। जल्दी में चलते हुए उसे लोहे पर चोट करने की-सी आवाज़ सुनाई दी। इसी लिए वह दूने वेग से चलने लगा; क्योंकि उसके विभाग में तो सड़क की मरम्मत का कोई काम ही नहीं चल रहा था। अतः उसे चिन्ता हुई कि देखूँ, बात क्या है। वह तत्काल ही जंगल में से बाहर निकला। रेल की सड़क उसे सामने ही ऊँचाई पर दिखाई देती थी। उसे मोड़ के पास ही एक आदमी रेल की पटरी पर कुछ करते हुए दिखाई दिया। रामसिंह ने उसी ओर ऊपर चढ़ना आरंभ किया। उसने देखा कि जोड़ के स्क्रू ढीले करके उन्हें उखाड़ने के प्रयत्न में वह आदमी लगा हुआ है। हाथ में हथौड़ा लिये हुए वह खड़ा था और एक ओर निकालकर गिरा देने के लिए उसने पटरी का जोड़ खोलकर अलग कर दिया था। बेचारे रामसिंह की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उसने चिल्लाना भी चाहा, किन्तु वह चिल्ला न सका; क्योंकि वह व्यक्ति दूसरा कोई नहीं, ख़ुद किशनसिंह ही था। पटरी उखाड़कर वह हथौड़ा-जंबूर लिये हुए एक ओर खिसक गया। ठीक उसी समय रामसिंह सीधी चढ़ाई करके उस स्थान पर जा पहुँचा।

"किशनसिंह! अरे भाई, ज़रा यहाँ आओ और हथौड़ा-जंबूर मुझे दो। आ ो हम पटरी को ठीक कर दें और किसी को पता न लगे। आओ भाई, जल्दी करो और इस पाप से अपने आपको बचाओ।"

किंतु किशनसिंह ने पीछे मुड़कर देखा तक नहीं और वह तत्काल जंगल में घुस पड़ा।

उस अलग किये हुए रूल के पास जाकर रामसिंह खड़ा हो गया। उसने सिर पर का गट्ठा फेंक दिया; क्योंकि कुछ ही देर में उधर से एक गाड़ी आनेवाली थी। वह भी मालगाड़ी नहीं, पैसेन्जर ट्रेन थी। उसे रोकने के लिए रामसिंह के पास कुछ भी न था। झंडी भी नहीं थी और न वह उस उखाड़ी हुई पटरी को फिर अपनी जगह जमा ही सकता था। साथ ही अकेले उसे फिर स्क्रू से कसना भी असंभव था।

उसके लिए दौड़कर अपनी झोपड़ी में से पटरी कसने के औज़ार लाने के सिवा कोई मार्ग नहीं था। अतः उसे तत्काल ही दौड़कर जाना चाहिए था। उस समय उसके मुँह से निकला—"हे भगवान्! सहायता दो! रक्षा करो!"

वह अपनी झोपड़ी की ओर लपका; किंतु थोड़ी ही देर में उसका दम फूल गया। फिर भी वह गिरता-पड़ता दौड़ता ही चला गया। वह जंगल से बाहर निकल चुका था और अपनी झोपड़ी से दो-चार सौ फ़िट ही दूर था कि उसे कारख़ाने की सीटी सुनाई दी। उसने समझ लिया कि छः बज गये और सात नंबर की गाड़ी के आने में अब दो-चार मिनट की ही देर है। वह चिल्ला उठा—"हे ईश्वर! उन निर्दोष जीवों पर दया करो।" उसकी आँखों के सामने उखड़ी हुई पटरी के साथ एञ्जिन का बाँया पहिया फिसलता हुआ दिखाई दिया। वह काँपकर एक ओर उलटता और स्लीपर को तोड़कर चूर-चूर करता हुआ दिखाई देने लगा। ठीक उसी जगह पर मोड़ था और सत्तर फ़ीट ऊँची लाइन थी। वहाँ से एञ्जिन लुढ़केगा और उसके साथ तीसरे दर्जे की गाड़ियाँ भी होंगी, जो मुसाफ़िरों से खचाखच भरी होंगी। छोटे-छोटे बच्चे बेचारे इस समय विना किसी भावी संकट की कल्पना किये मौज से खिड़कियों में झाँक रहे होंगे। हे भगवान्, अब मैं क्या करूँ! मुझे कुछ युक्ति सुझाइए नाथ! अब तो मेरे लिए



झोपड़ी में जाकर वापस मोड़ पर पहुँचना भी असंभव है।

क्षण भर में ही रामसिंह झोपड़ी की ओर दौड़ना बंद कर वापस उस मोड़ की ओर लौट चला। वह अधिक वेग से दौड़ रहा था। ठीक किसी यंत्र की तरह, आँधी-तूफ़ान की तरह वह दौड़ता चला जा रहा था। क्या होगा, इसे वह ख़ुद भी नहीं जानता था। तत्काल वह उखाड़ी हुई पटरी के पास जा पहुँचा। पास ही नलबाँस का गट्ठर पड़ा हुआ था। उसने बिना कोई कारण समझे उसमें से एक बाँस निकाला, और वहाँ से फिर आगे की ओर दौड़ चला। उसे गाड़ी नज़दीक आती हुई जान पड़ी। दूर से सीटी की आवाज़ भी सुन पड़ी। पटरी का कम्पन और सनसनाहट भी उसे सुनाई देने लगी। वह थककर चूर हो गया था। इस कारण उससे आगे न दौड़ा जा सका। अतः उस भयंकर स्थान से लगभग छः सौ फ़ीट आगे जाकर वह खड़ा हो गया। क्षण भर में बिजली की चमक की तरह उसके दिमाग़ में एक बात आई और तत्काल ही उसने अपने साफ़े में से एक टुकड़ा फाड़कर जेब में से चाक़ू निकाला। और हाथ पर 'क्रास' (चौकड़ी) बनाते हुए वह बोला—"हे भगवान्, दया करना।"

उसने बाँये हाथ की कुहनी से ऊपरवाले भाग में चाक़ू भोंक लिया। तत्काल ही ख़ून की धार बहने लगी। उसने उस कपड़े के टुकड़े को रँगकर नलबाँस पर बाँध लिया और इस प्रकार ख़तरे से बचानेवाली लाल झण्डी तैयार कर ली।

उस झंडी को लेकर वह खड़ा हो गया। किंतु फिर उसके मन में विचार आया कि अगर एञ्जिन ड्राइवर इसे न देख पावे और वह बिलकुल पास आ जाय तो छः सौ फ़ीट में वह लम्बी गाड़ी कैसे रुक सकेगी।"

इधर उसके हाथ से ख़ून बह ही रहा था। उसे बंद करने के लिए उसने ज़ख़्म को दोनों ओर से दबाया भी; किंतु फिर भी वह बंद न हुआ। असल में उसने हाथ में चाक़ू गहरा मार लिया था। उसका सिर घूमने लगा और उसकी आँखों के सामने काले-पीले तारे चमकने लगे, क्षण भर में ही अँधेरा छा गया। किंतु उसको कान में घन-घनाहट सुनाई दे रही थी। वह न तो गाड़ी को देख ही सकता था और न उसकी घरघराहट ही सुन सकता था। उसके दिमाग़ में केवल एक ही विचार घूम रहा था कि मुझसे खड़ा नहीं रहा जा सकेगा। मैं गिर जाऊँगा और मेरे साथ यह झंडी भी गिर जायगी और मेरे ऊपर से गाड़ी निकल जायगी। हे भगवान् दया करो। ग़रीबों की सहायता करो।

उसके सामने सर्वत्र अंधकार छा गया। उसका मस्तिष्क शून्य हो गया और हाथ में से झंडी भी छूट गई। किंतु वह रक्तरंजित झंडी नीचे न गिरने पाई। रामसिंह उसे एक हाथ में थामे निकट आती हुई गाड़ी के सामने खड़ा ही रहा। ड्राइवर ने यह दृश्य देखकर रेग्युलेटर बंद किया और भाप को निकालना आरंभ किया। गाड़ी खड़ी रह गई।

गाड़ियों में से कूद-कूदकर लोग बाहर निकल पड़े और झुंड बनाकर उन्होंने घायल रामसिंह को घेर लिया। उन्होंने देखा कि एक ख़ून से तरबतर आदमी पटरी पर पड़ा हुआ है। साथ ही दूसरा एक आदमी ख़ून में भीगे हुए चिथड़े को बाँस पर लटकाये पास ही खड़ा है।

किशनसिंह ने सबकी ओर आँख उठाकर देखा और इसके बाद सिर नीचा करके ड्राइवर से कहा—"मुझे गिरफ़्तार कर लो! मैंने ही मोड़ पर रेल की पटरी उखाड़ डाली है।" *

---

* श्रीरामचन्द्र दामोदर शुक्ल एम्० ए० एल्० एल्० बी० कृत "पश्चिमनी कलाकृतियाँ" नामक संग्रह से।



हिन्दी-साहित्य और आलोचना

श्रीभागवत शुक्ल "पाथोद" साहित्य-रत्न

साहित्य-चर्चा और साहित्य का उत्थान दोनों समाज के उत्थान के प्रतीक कहलाते हैं। परिपुष्ट साहित्य सामाजिकता को पुष्ट करता तथा अव्यवस्था, धोखाधड़ी और गोलमाल से समाज की रक्षा करता है। साहित्यिकों का पद धर्म-निर्माताओं से कम कदापि नहीं है। यदि उन्होंने विचार लिया कि समाज में क्रांति करनी है, तो कर देंगे और उनकी इच्छा हुई कि बस समाज की चिन्ता छोड़ उपयोगितावाद की ओर से दृष्टि फेर समाज को केवल शराबोर हो जाने भर की सामग्री ही दें, तो वे वह भी कर सकते हैं।

इस प्रकार साहित्यिक दल शिक्षित तथा अशिक्षित संपूर्ण जनता के मस्तिष्क पर राज्य करनेवाला दल है। वास्तव में वह चाहता भी यही है कि हमारी स्मृति, हमारा आधिपत्य जनता पर अधिक से अधिक समय तक रहे और इसी के लिए भाँति-भाँति के प्रयत्न करता है। उसकी सारी तपस्या और साधना के अंत में केवल एक ही और यही भावना छिपी हुई है। भले ही कोई "स्वान्तः सुखाय" रचना का ढिंढोरा पीटने की ओर अधिक प्रवृत्त हो, अपने को इस लाभ के लोभ से दूर कहता हो, किंतु यह बात पूर्णतया माननीय नहीं कही जा सकती।

इधर कुछ दिनों से भारतीय साहित्य में "कला कला के लिए" कहनेवाले तथा माननेवाले लोगों का एक बड़ा प्रबल दल हो रहा है और उनकी बातों में कुछ तथ्य भी है। दूसरा दल उपयोगिता-मय साहित्य की रचना के प्रचार का पक्षपाती होकर अलग अपनी धुन में मस्त है। इन दोनों दलों के लोग एकान्तवाद के कारण भूल-से रहे हैं। साहित्य में दोनों बातों की आवश्यकता है। केवल आनंद से ही जीवन उन्नत नहीं हो सकता और न केवल उपदेशों और शिक्षाओं से पूर्ण आनंद प्राप्त हो सकता है। दोनों उचित मात्रा में आवश्यक हैं।

हिन्दी-साहित्य यों ही अपनी अल्पशिक्षित तथा मध्यम श्रेणी की जनता के कारण अपना उतना प्रचण्ड प्रचार नहीं पा रहा है। दूसरी ओर आपस की ये धारणाएँ इसे और भी रसातल को पहुँचा रही हैं। प्रतिदिन पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़ आती जा रही है, लेखक और कवि बढ़ते जा रहे हैं; किंतु इन सबमें एक निरुत्साह अलाभ की भावना तथा दशा देख पड़ रही है। प्रकाशन-व्यवसाय का तो पूछना ही क्या! किसी प्रकार जी रहा है। उसे लाभ न होने की वजह से उधर तरह-तरह की चालबाज़ियाँ होती हैं, भाँति-भाँति के रेट तय होते हैं, और इस प्रकार जो कुछ सस्ता मिल गया, उसे जनता के समक्ष रक्खा जा रहा है।

सर्वसाधारण शिक्षित वर्ग पुस्तकों को पढ़ने

भर का शौक़ीन है। उसे साहित्य के संबंध में बैठ-कर विचारने के लिए अवकाश ही कहाँ! वह तो अपने धंधे में संलग्न है। इधर साहित्यिक लोगों का ध्यान कहीं और ही है। वे अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग अलापने में मस्त हैं।

आलोचना और आलोचकों की साहित्य के लिए कितनी आवश्यकता है, इस संबंध में अनेकों लेख निकलते हैं। आलोचनातत्त्व पर भी लिखनेवाले काफ़ी हैं, किन्तु सर्वत्र वही गाया हुआ राग गाया जाता है। मैं भी इस बात का बड़ा कट्टर पक्षपाती हूँ कि साहित्य में सर्वदा उचित आलोचकों की स्थिति अत्यन्त आवश्यक है। आलोचना के विना साहित्य का सुधार होना कठिन और अत्यन्त कठिन है। नये या पुराने किसी भी प्रकार के कवि या लेखक जब तक जनता के समक्ष उचित रीति से न आ जायँ, वर्तमान दशा में अत्यल्प लाभ के बल पर किस प्रकार साहित्य-संबंध बनाये रख सकते हैं।

इधर हिन्दी-साहित्य की दशा ही उलटी है। साहित्यिक उन्नति का अर्थ एकदम नित नव-निर्माण ही माना जा रहा है। अच्छी-अच्छी पुस्तकें तक प्रचार में अधिक नहीं आ रही हैं, और दूसरी ओर सैकड़ों बाज़ारू पुस्तकों की बिक्री तथा संस्करणों का ताँता-सा बँधा जा रहा है। इसमें वास्तव में दोष किसका है? साहित्यिकों को प्रोत्साहन न पाने, प्रकाशकों की पुस्तकों का उचित प्रचार न होने के कारणों में यदि कोई सबसे बड़ा कारण है, तो वह है हिन्दी-साहित्य में प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों की उचित आलोचना-प्रत्यालोचना का अभाव।

वर्तमान अधिकांश आलोचकों की रुचि प्राचीन कवियों की आलोचना तथा आलोचना-तत्त्व की ही ओर अधिक है। शायद वे वर्तमान काल के साहित्यिकों की रचनाओं की ओर कोई विशेष ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं समझते। न-जाने क्यों? आलोचक का कर्तव्य तो प्राचीन साहित्य के गुण-दोषों के वर्णन के साथ-साथ नवीन रचनाओं का उचित परिष्कार करना भी तो है। नये लेखकों तथा कवियों को उनके गुण-दोषों का परिचय कराना भी तो है। "कविः करोति काव्यानि, रसं जानन्ति पण्डिताः।" रचयिता रचना प्रका[शित] करता है, किंतु उसका रस तो सबके समक्ष रख[ना] आलोचकों का कर्त्तव्य है।

हमारे वर्तमान आलोचकों में से अधिकांश की मनोवृत्ति बड़ी ही विचित्र हो रही है। नवीन पुस्तकों की आलोचनाएँ करने का काम तो आज[कल] इन्होंने छोड़-सा ही दिया है। प्रत्येक पत्रिका में पुस्तक-परिचय का एक विभाग अवश्य रहता है, किंतु उसमें परिचय और संपादकों, लेखकों एवं प्रकाशकों में से किसी के परिचित द्वारा कुछ गुण-दोष-गान मात्र ही रहता है। उचित आलोचना तो उतने संक्षेप में होनी भी तो कठिन है। किसी भी पुस्तक के बारे में दो-चार कालम रँग देने से ही काम नहीं चल सकता। एकाध मनुष्य की सम्मति ही पर सारा गुण-दोष विवेचन नहीं छोड़ा जा सकता।

आज हिन्दी-साहित्य में प्रति वर्ष पुस्तकों एवं पत्रिकाओं की इतनी वृद्धि होते हुए भी क्या मैं पूछ सकता हूँ कि उनमें से कितनों के संबंध में जनता को पूर्ण ज्ञान है?

यदि नहीं तो उसका कारण क्या है?

हिन्दी-साहित्य के अधिकांश समुज्ज्वल रत्नों की कृतियों का जनता को सिवा विज्ञापन के और किसी भी प्रकार परिचय ही नहीं होता। लेखक भी उतने अधिक सबके सम्मुख नहीं आ पाते, और इस प्रकार उनकी सारी कृति श्मशान की-सी शान्ति में पड़ी हुई किसी प्रकार खप जाती है। साहित्य का इसे तो दुर्भाग्य ही कहना पड़ेगा कि उच्च कोटि की और तीसरी श्रेणी की संपूर्ण पुस्तकें एक ही प्रकार से बिक रही हैं। जब तक किसी विशिष्ट कृति की उचित आलोचना न की जाय, उसके गुण-दोष जनता के सम्मुख न रक्खे जायँ, तब तक उनके प्रचार की विशेष आशा करना तो व्यर्थ ही है।

इसके साथ ही अपनी रचना सबको, चाहे वह नीरस हो या सरस, अच्छी ही ज्ञात होती है। अपनी एक बार की भूल, बार-बार सामने आने पर भी, जब तक दूसरों द्वारा निर्देशरूप में नहीं देखी जाती, तब तक सुधारनी कठिन होती है। उचित आलोचनाओं के अभाव में लेखक तथा कवि को आगे बढ़ने के लिए भी समुचित प्रोत्साहन नहीं प्राप्त होता। आगे अपने सुधार के लिए अवसर प्राप्त होते रहने पर भी वे अपने-आपको सुधार नहीं पाते। दूसरी ओर यह भी एक बड़ी हानि होती है।

वर्तमान साहित्य की समुचित आलोचना-प्रत्यालोचना होते रहना साहित्य की आंतरिक बातों के सुधार के साथ-साथ लोकरुचि को उसके प्रति जागरित करने का साधन है। जब तक मैं यह नहीं जानता कि अमुक पुस्तक में क्या गुण हैं, अमुक में क्या दोष हैं, सिवा इसके कि मैं उदासीन रहूँ या किसी ऐसी-वैसी पुस्तक पर पैसा व्यय करके फिर अपनी ग़लती पर पछताऊँ, क्या कर सकता हूँ?

मौक़े की बात दूसरी है। कभी संयोगवशात् कोई अच्छी पुस्तक मिल गई तो कहना ही क्या! वर्ना स्वयं पुस्तकों का चुनाव करना अत्यंत कठिन है। आज के साहित्यिकों में सिवा कुछ को छोड़कर अधिकांश ऐसे पड़े हैं, जो प्रतिभाशाली हैं, जिनका हिन्दी-साहित्य में अपना स्थान है, जिनको अधिकांश साहित्यिक लोग जानते हैं, किन्तु जिनकी रचनाओं से सर्वसाधारण जनता अत्यल्प परिचित है। यदि इन सारे दोषों का मूलकारण पूछा जाय तो मैं तो यही कहूँगा कि हिन्दी-साहित्य में उचित आलोचना का सर्वथा अभाव है।

याद रखिए, हमें अपनी आलोचनाओं से घबराने की विशेष आवश्यकता नहीं। गुण-दोषों को सुनने के लिए खिलाड़ियों की भाँति सर्वदा तैयार रहना चाहिए। उसके लिए किसी को कोसने की, बुरा-भला कहने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि ऐसा होने लग गया और विद्वानों की कृतियाँ यदि अच्छी निकलीं तो चाहे हज़ार बार लोगों की बुराई चलती रहे, उसके कुछ गुणग्राहक भी अवश्य ही निकल आवेंगे और इस प्रकार कुछ न कुछ सत्य अवश्य प्रकट होकर ही रहेगा।

वर्तमान हिन्दी-साहित्य के उद्धार तथा प्रचार के लिए इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है। एक बात अवश्य है कि अब तक हिन्दी-साहित्य का क्षेत्र दलबंदियों से एकदम मुक्त नहीं हो पाया है, अतः कुछ दिनों तक यह विषय कुछ वैमनस्य बढ़ाने का कारण अवश्य बन सकता है, किन्तु जब और जहाँ लोकमत जागरित हुआ, निश्चित समझ लीजिए, आलोचना-क्षेत्र से "तू, तू, मैं, मैं"-मात्र करनेवाले आलोचकों का कहीं ठिकाना न रह जायगा। वे अपने-आप सर्दी के दिनों के मच्छरों की भाँति या तो नष्ट हो जायँगे या कहीं अत्यन्त कोने में जा छिपेंगे।

कहनेवालों ने ईश्वर की सृष्टि तक को निपट निर्दोष नहीं कहा है, मनुष्य-कृति की तो बात ही क्या! रुचि-वैचित्र्य भी होता ही है, इसलिए दोषों को कह देने या मात्र गुणों के कह देने से ही कोई आलोचक आलोचक नहीं बन सकता। सर्वत्र ही कुछ न कुछ गुण-दोष होते हैं। अतः जहाँ किसी आलोचक को उक्त श्रेणी के बाहर जाते हुए विद्वान् देखें, तुरंत उसका एकमत होकर विरोध करें, उसकी आलोचना की प्रत्यालोचना करें। यह धाँधाँगर्दी अपने-आप ही मिट जायगी।

साहित्य-सुधार के क्षेत्र में इतना कर्तव्य आलोचकों का है और मैं तो प्रत्येक आलोचक से यह आशा करता हूँ कि यदि वह चाहता है कि उसका आलोचक नाम सफल हो, यदि उसको साहित्य-सेवा की कुछ लगन है, साहित्य का कुछ उपकार करना है तो निर्भय बनकर अपने कर्त्तव्य पर डट जाय। दूसरों के विरोध की चिन्ता करना व्यर्थ है। सब तरह के लोग होते हैं। यह अवश्य ध्यान रहे कि आलोचना करते समय वे न्यायाधीश, सुधारक एवं उपदेशक के पद पर विराजमान रहते हैं, उनका दायित्व सर्वसाधारण नागरिक से सैकड़ों गुना

अधिक होता है, उस समय अपने व्यक्तिगत लाभ-हानि, वैर-मित्रता को कुछ देर के लिए छोड़ ही देना उचित है।

यदि आलोचना करते समय भी व्यक्तिगत बातों पर आलोचक ध्यान देने लग जायँ तो याद रखिए, उनका पद आलोचक का न होकर उस समय शत्रु का बदला लेनेवाले का हो जाता है। वैसी दशा में उन्हें संतोष करके चुप बैठ जाना ही अच्छा है। आलोचना के लिए ज़बरदस्ती कूद पड़ना, किसी के वैयक्तिक चरित्र को ध्यान में रखकर उछल-कूद मचाना, झगड़ा-फ़साद करना समाज-विद्रोह है। कम से कम अपने को विद्वान् कहनेवाले, समझदार कहनेवाले लोगों को तो इस दोष से दूर ही रहना अच्छा है।

इसके साथ-साथ संपादक तथा प्रकाशक महाशयों से भी यह कह देना अनुचित न होगा कि संपादक का पद तलवार पर चलने के पद के बराबर है। आप दो काम करें, या तो साहित्य के संबंध में अपना मतामत देना बन्द कर दीजिए या यदि साहित्य से कुछ सरोकार रखते हैं, आप साहित्य-संरक्षक पद पर आसीन होना चाहते हैं, तो कृपया प्रत्येक कवि, लेखक, आलोचक से कुछ सहानुभूति रखिए, पक्षपात को अपने पास न फटकने दीजिए।

पत्र-पत्रिकाएँ लोकमत के मुख के तुल्य हैं! आप सबकी बातों को उसी रूप में कहने दीजिए, आपकी व्यक्तिगत रुचि के लिए आपका संपादकीय भाग रक्खा हुआ है। आप वहाँ पर अपनी अरुचि भले ही दिखाइए, किन्तु अपने पत्र के कालमों को साहित्यिक आलोचना-प्रत्यालोचना के लिए खुला छोड़ दीजिए। आपके पत्र से आपकी रुचि का प्रचार न होकर लोकमत का प्रचार हो, विचारकों के विचारों का प्रसार हो, इस बात का ध्यान रखिए।

प्रत्येक पक्ष की बातें सुनने के लिए आप धैर्य से तैयार रहें, सबको कहने का अवसर दें। ऐसा न हो कि एक पक्ष, जिसे पकड़ लिया, घसीटे ही चले जाइए। विचार-विभिन्नता के कारण जो लोग द्वेष करना जानते हैं या जो विचार-विभि-न्नता को सहन नहीं कर सकते, वे यदि लोकमत के प्रतिनिधि बनने बैठें तो इससे सिवा हानि के लाभ क्या हो सकता है?

यदि वर्तमान हिन्दी-साहित्य को आलोचित-प्रत्यालोचित होने से वंचित रखने का कुछ दोष आलोचकों पर है, तो कुछ संपादकों पर भी अवश्य है। दोनों के सहयोग से यह काम हो सकता है। यदि इधर ये लोग अभिरुचि रक्खें, इस प्रकार की आलोचनाओं को उत्तेजना दें, तो क्या उचित बातों पर पूर्ण प्रकाश न पड़ जाय?

दूर की बात छोड़िए. आज बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पण्डित अयोध्यासिंहजी उपाध्याय, बाबू जयशंकर "प्रसाद"जी, श्रीप्रेमचंदजी आदि जितने प्रसिद्ध साहित्यिक, कवि तथा लेखक हैं, उनकी कितनी पुस्तकों के प्रकाशित होते ही उनकी आलोचनाएँ छप जाती हैं? यदि नहीं तो क्यों? बहुत से लोग इनकी पूर्ण पुस्तकों तथा प्रतिभा आदि के बारे में बहुत कम जानते हैं।

क्या इस मूर्च्छना को दूर करना कर्त्तव्य नहीं है? साहित्य के विकास के लिए इसकी आवश्यकता नहीं है? यदि है तो मैं तो इस बात के लिए ज़ोर देकर कहूँगा कि इधर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

यह सब कुछ हो रहा है। आज का साहित्य और साहित्यिक भाग्य के भरोसे चल रहे हैं, इनके लिए समुचित प्रबंध करना क्या हिन्दी के इस उन्नतिमय युग में आवश्यक नहीं है? यदि है तो उपाय?

मेरी राय में तो इसके लिए शीघ्रतया कोई उपाय करना चाहिए। प्रबंध क्या किया जाय, इसके लिए तो सुधीवर्ग ही सोच सकता है, किन्तु भी क्या निम्नलिखित उपाय काम नहीं दे सकते?

आज सौभाग्य से हिन्दी-लेखकों का संघ स्थापित हो गया है। उसमें नये-पुराने अनेक लेखक सम्मिलित हैं। यदि साहित्यिकों का श्रेणी-विभा...



जब संघ द्वारा ही उनकी रुचि, रचनाओं आदि का पता लगाकर कर दिया जाय तो अत्यन्त उत्तम हो। इस विभाजन में एक आलोचक-मंडल क़ायम कर दिया जाय। यह आलोचक-मंडल दलबंदियों से मुक्त हो और प्रत्येक कलाकार-या प्रकाशक पत्र-पत्रिकाओं को पुस्तकें भेजने के साथ-साथ इस मंडल को भी भेज दिया करें।

संघ उस विषय के विद्वानों द्वारा उक्त पुस्तक की आलोचना करावे, और उसे प्रकाशित करावे। इस कार्य के लिए उसे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों से सहयोग करके आलोचना के प्रकाशित होने का प्रबन्ध करना चाहिए। पुस्तक के प्रकाशित होते ही उसकी उचित आलोचना-प्रत्यालोचना के लिए विद्वानों के सम्मुख रख दिया जाया करे। इससे लेखक को सुधरने के साथ-साथ उचित पुस्तकों के समुचित प्रचार में सहायता प्राप्त होगी। लेखक तथा प्रकाशक दोनों का इससे हित होगा। इस प्रकार से लेखक और प्रकाशक के साथ-साथ आलोचक का भी कर्तव्य पूरा होगा। आलोचना से ही संतोष न कर प्रत्यालोचना के लिए भी प्रोत्साहन देना होगा।

यह कार्य किसी एक पत्र या पत्रिका से चलने का नहीं, अतः सभी में इस प्रकार के स्तंभों को रखवाना आवश्यक होगा। पत्रिकाएँ अपने वर्तमान स्तंभों को ही बढ़ाकर यह कार्य कर सकती हैं। उन्हें अगर साहित्य के क्षेत्र में काम करना ोगा, तो वे अवश्य ऐसा कर लेंगी। यह अवश्य है कि इस योजना के लिए "लेखक-संघ" को और बढ़ाना होगा। उसका कार्यालय, कर्मचारी आदि भी रखने होंगे।

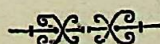
इनके साथ-साथ एक पत्र शुद्ध आलोचना का "समालोचक," "आलोचक" या ऐसे ही किसी नाम से प्रकाशित हो तो और अच्छा हो। यह "आलोचक-मंडल" की देख-रेख में निकले। उसमें वर्तमान साहित्य की प्रगतियों के साथ विभिन्न कृतियों की सामयिक तथा आवश्यक आलोचना-प्रत्यालोचना प्रकाशित कराई जाय। साहित्यिकों को प्रत्येक प्रकार से प्रोत्साहन देना, उनकी कृतियों का प्रचार ही इसका ध्येय हो। पत्र को भरसक मनोरंजन या दूसरी वाहियात बातों से मुक्त रखकर आगे बढ़ाया जाय। एक बात का अवश्य ध्यान रहे कि वह "तू-तू" "मैं-मैं" का अखाड़ा न बनने पावे।

यह तो हुई आलोचना की बात। साहित्यिकों और सर्वसाधारण जनता को हिन्दी के संपूर्ण प्रकाशकों से अवगत होने के लिए अब तक कोई साधन नहीं है। जब तक प्रकाशकों का ही पूरा परिचय न प्राप्त हो, बहुत-से काम अटकलपच्चू ही होते हैं। विज्ञापन या सूचीपत्र कहाँ-कहाँ कितना कोई दे सकता है? इसके लिए भी एक उचित उपाय की आवश्यकता है।

गुजराती में इस प्रकार का एक पत्र है भी, उसका नाम है "साहित्य-विज्ञापक" और बड़ौदे से प्रकाशित होता है। एक ऐसा ही पत्र हिन्दी में भी प्रकाशित किया जाय। उसमें संपूर्ण प्रकाशक अपने विज्ञापन छपाकर दे दिया करें, या विज्ञापन किया करें। लेखक भी विज्ञापन दें और इस प्रकार पत्र संपूर्णरूपेण साहित्य का विज्ञापन किया करे। उसे मुफ़्त में मँगानेवालों को दिया जाय।

इससे सबको साहित्य के विभिन्न प्रकाशन, उसकी प्रगतियाँ भली प्रकार ज्ञात होती रहेंगी। जनता तथा साहित्यिक दोनों को इस प्रकाशन से लाभ होगा। पुस्तकों के अज्ञान के कारण भी बड़ी गड़बड़ी होती है। इससे विज्ञापन, परिचय तथा लाभ तीनों होंगे। यह कार्य श्रम का है, व्यय की भी कोई विशेष चिन्ता नहीं होने की। हिन्दी-साहित्य की वार्षिक पुस्तक निकालने से भी बढ़कर यह कार्य होगा।

इसके लिए उत्साह तथा श्रम की आवश्यकता है। क्या हिन्दी के सपूतों से इतना होना कठिन है?



समाचार-पत्रों में लेखों की सामग्री

श्रीविश्वनाथ कुलश्रेष्ठ सह० संपादक 'लेखक'

जब मैंने थोड़ी-सी ही कोशिश करने पर एक दैनिक पत्र की एक ही प्रति में कई उपयोगी लेखों की सामग्री सहज ही पा ली, तब मुझे उस महान् अँगरेज़ लेखक के कथन की सत्यता मालूम हुई—"मौलिक लेखक उस साहित्यिक चोर का नाम है, जो अपनी रचना की चोरी अधिक से अधिक सफलतापूर्वक छिपा सके।" वास्तव में कोई भी लेखक मौलिक नहीं और न हो ही सकता है। दुनिया में सभी चीज़ें, सभी विचार किसी न किसी रूप में पहले से ही विद्यमान हैं। जो लेखक अज्ञात विचारों को खोज निकालते हैं, उन्हें संसार 'मौलिक' के विशेषण से विभूषित करता है। "मनुष्य दूसरे की आँख में छोटा होकर ही समा सकता है"—यह विचार जगत् में तभी से मौजूद है, जब से मनुष्य और जगत् का उद्भव हुआ; परंतु अगर इसे अभी तक किसी लेखक ने अपने मस्तिष्क से खोज नहीं निकाला, तो आप उसे ढूँढ निकालनेवाले को (कम से कम इस विचार के सम्बन्ध में) मौलिक कहने लगेंगे।

इस लेख में मैं अपने पाठकों को यह बतलाना चाहता हूँ कि किसी समाचार-पत्र की ख़बरों की सहायता से कैसे तरह-तरह के लेखों की रचना की जा सकती है। वास्तव में यदि कोई लेखक बन्धु इस बात की आशा करे कि उसे पत्र में इस प्रकार की ख़बरें मिलें, जो स्वतः लेख हों और जिन पर लेखकों को हाथ-पैर भी न हिलाना पड़ें, तो यह एक आलसीपन और अनधिकार चेष्टा होगी। ख़बरें विभिन्न लेखों के लिए विषय, दृष्टांत आदि प्रदान कर सकती हैं। वे स्वयं लेख नहीं, लेकिन उस रूप में परिणत की जा सकती हैं। लेकिन लेखक की ओर से भी कल्पना और प्रयासादि की आवश्यकता है। एक चोर को भी तो माल चुराने के लिए अपनी कल्पना और मेहनत ख़र्च करनी पड़ती है। हाथ पर हाथ रक्खे हुए बैठे रहने से उसे भी कुछ नहीं मिल सकता। ठीक इसी प्रकार साहित्यिक चोर को भी अपने लेखों के लिए सामग्री प्राप्त करने के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग करना पड़ेगा। हाँ, यह बात अवश्य है कि इस प्रकार से प्राप्त की हुई लेख की सामग्री के लिए जितना परिश्रम आवश्यक होगा, उतना परिश्रम केवल कल्पना द्वारा लेख लिखने की मेहनत से कहीं अधिक कम होगा।

आप यह सुनकर शायद आश्चर्य करने लगें कि एक पाश्चात्य लेखक को केवल तीन पैसेवाले एक दैनिक पत्र की एक प्रति में ही एक दर्जन लेख, आधे दर्जन कहानियों, उतनी ही छोटी कहानियाँ और कम से कम एक उपन्यास की सामग्री मिल गई; और इनसे उसने हज़ारों रुपया पैदा किया। आप पूछेंगे, "यह कैसे ?"

ज़रा धैर्य से काम लीजिए। किसी समाचार-



पत्र की एक प्रति उठाइए और एक तरफ़ से उसकी ख़बरें पढ़ना आरम्भ कीजिए। प्रत्येक ख़बर को पढ़ते समय आपका उद्देश्य निरन्तर यही रहना चाहिए कि किसी न किसी तरह आपको उस ख़बर में अपने लेख के लिए मसाला मिल जाय। उदाहरण के लिए मैं अपने दो-एक अनुभव यहाँ पर देता हूँ।

अभी केवल दो ही साल पहले की बात है। मैंने किसी समाचार-पत्र में पढ़ा, "मथुरा के एक प्रसिद्ध महाजन के लड़के ने रेल के नीचे दबकर आत्महत्या कर ली।" अब यदि इस ख़बर में आप किसी लेख के लिए मसाला ढूँढना चाहते हैं, तो आपका काम केवल ख़बर ही से नहीं चलेगा। अपने हाथ-पैर भी चलाना होगा। तदनुसार मैंने इस विषय में अधिक खोज-बीन की। उस समाचार-पत्र के सम्पादक के पास चिट्ठी डाली और मथुरा में रहनेवाले अपने एक मित्र को भी पूछताछ करने के लिए लिखा। सम्पादक का तो जवाब आ गया कि उसे इससे अधिक कुछ नहीं मालूम है। शायद कुछ दिनों बाद मालूम हो। परन्तु मेरे मित्र की जो चिट्ठी आई, उसमें पूरा-पूरा हाल लिखा हुआ था। एक ख़ास बात, जिसका मुझे उसकी चिट्ठी से पता लगा, वह यह थी कि आत्महत्या करनेवाले उस लड़के का एक छोटा भाई भी था, जिसके साथ माता-पिता बहुत बुरा व्यवहार करते थे। इसी दुर्व्यवहार से दुखी होकर बड़े भाई ने आत्महत्या कर ली।"

मैंने अपने जीवन में और अपने पड़ोसियों एवं कुटुम्बियों के घरों में इस प्रकार के और भी क़िस्से सुन ही रक्खे थे, जिनमें बहुत-से तो आँखों देखे थे। अतः इन सबकी सहायता से मैंने 'पारिवारिक जीवन में आत्महत्याएँ'-शीर्षक एक मनोरंजक लेख लिख डाला, जिसे एक साप्ताहिक ने बड़े मज़े में छाप दिया। और अब तो मेरे पास उस समाचार का पूरा-पूरा विवरण मैजूद था ही, और उसे लिखकर एक दैनिक में भेज दिया और तीसरे दिन उसे मोटे-मोटे अक्षरों में छपा हुआ देखा।

* * *

एक बार मैंने 'भारत' में पढ़ा—"एक दर्ज़ी के नौकर ने अपने मालिक पर मुक़दमा चला दिया; क्योंकि वह नौकर दो साल से बराबर उसके यहाँ काम करता आ रहा था और अभी तक उसे कौड़ी भी नहीं मिली थी।" वास्तव में यह एक अत्यन्त साधारण घटना थी। मैंने कई सम्पादकों के यहाँ बीसों बार देखा था कि उनके यहाँ बहुत-से ऐसे नौकर थे, जो वर्षों से रुपयों की आशा में काम कर रहे थे और सम्पादक उन्हें भविष्य में तनख़्वाह दे देने का विश्वास दिलाकर टाल दिया करते थे। 'भारत' की इस समाचारवाली कटिंग को मैंने अपनी फ़ाइल में लगा लिया। कभी-कभी मैं उसके नीचे थोड़े-थोड़े अपने अनुभव और विचार भी नोट कर दिया करता था। लगभग तीन महीने बाद मेरे पड़ोस में एक ऐसी घटना हुई, जिसने मेरा वह लेख पूरा करा दिया। घटना इस प्रकार थी—

मेरे घर के सामने एक डाक्टर की दूकान थी। उसके यहाँ एक बुड्ढा नौकर काम किया करता था। पाँच साल पहले जब वह बुड्ढा डाक्टर साहब के यहाँ नौकरी खोजने आया था, तब उन्होंने उसे आठ रुपया महीना और खाने व कपड़ों के वादे पर अपने यहाँ नौकर रख लिया था। तब से वह लगातार उन डाक्टर साहब के यहाँ काम करता आ रहा था, परन्तु उसे खाने और कपड़ों के सिवा और कुछ भी नहीं मिला था। बुड्ढे ने कई बार अपनी तनख़्वाह माँगी, परन्तु डाक्टर साहब हरदम 'फिर कभी देने' का वादा कर देते थे।

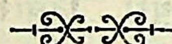
एक दिन बुड्ढा बिगड़ पड़ा और उसने मोहल्लेवालों से डाक्टर साहब की शिकायत की। लेकिन जब मोहल्ले के आदमियों ने मिलकर डाक्टर से बुड्ढे को तनख़्वाह दे देने के लिए कहा तो वे बिगड़कर कहने लगे, "वाह जी! मैंने न-जाने कितनी

बार इस बुड्ढे को भयंकर रोगों से बचाया है। इसलिए पहले यह अपने रोगों में ख़र्च हुई मेरी दवाओं के दाम दे तो मैं भी इसकी तनख़्वाह दे दूँगा। मेरी दवाओं के दाम तो इसकी तनख़्वाह के कई गुने होंगे।"

और डाक्टर साहब की बात भी ठीक थी। तनख़्वाह के रुपये तो निश्चित थे, परन्तु दवाओं के दाम निश्चय करना तो डाक्टर साहब पर ही आश्रित था। वे चाहते तो एक-एक ख़ूराक दवा के दाम एक-एक लाख रुपया माँगते।

जिस दिन यह घटना घटी, उसी रात को मैंने अपना लेख लिख डाला और उसका शीर्षक रक्खा, "बेगारी या नौकरी?" और एक सप्ताह पश्चात् अपने उस लेख को एक प्रसिद्ध साप्ताहिक में प्रकाशित रूप में देखा।

मैं यह नहीं कह सकता कि लेखों के लिए पर्याप्त मसाला और विषय ढूँढने का यही सर्वोत्तम उपाय है। परन्तु अपने अनुभव द्वारा मैंने इस तरीक़े को अत्यधिक सरल और व्यवहार में लाने योग्य पाया है। अपने घर में बैठे हुए एक समाचार-पत्र द्वारा लेखों का मसविदा ढूँढ निकालना घंटों बाहर घूमकर समय बिताने से कहीं अधिक सहल है। आप यदि दिन भर बराबर घूमते रहें तो बीस मील से अधिक स्थान नहीं पार कर सकते; परन्तु एक समाचार-पत्र में तो हज़ारों मील दूर तक की ख़बरें जमा रहती हैं। ये सब ख़बरें रास्ते में पड़े हुए रुपयों के समान हैं—कोई आदमी सबसे पहले जाय और उन रुपयों को बीन ले। बस, इसी की आवश्यकता है।



बीता हुआ मधुमास आया

श्रीशम्भुनाथसिंह 'मधुप' विशारद

वेदना का भार लेकर प्यार मेरे पास आया;
नयन-कोरों में लिखा मैंने अमर इतिहास पाया।
विश्व यह अंचल पसारे माँगता था दान मोती;
नेत्र गिन-गिन दे रहे थे प्रेम की बिखरी चुनोती।
बह चली सरिता नयन की सजनि! प्राणों को भिगोती;
स्वप्न-निर्मित विश्व में रोता हुआ उल्लास आया।
उधर शैशव में छिपी वरदान कलिका दे रही थी;
और विनिमय में मधुर चुम्बन भ्रमर से ले रही थी।
बिखर सौरभ विश्व में सुधबुध उसी क्षण खो रही थी;
देख उपवन ने कहा बीता हुआ मधुमास आया।
बन तभी भगवान् मेरे प्रेम का आभास आया।
तरल विष के घूँट पीना स्वप्न में जिसने सिखाया।
घाव नूतन कर गया अलि सरल स्मृतियों को जगाया;
और निष्ठुर के अधर पर वह मधुरतम हास आया।

स्मृति तुम्हारी

पं० जानकीवल्लभ शास्त्री, साहित्याचार्य

शून्य मेरे गगन-मन में स्मृति तुम्हारी चाँदनी - सी।
झर चुके पतझर न आया था तभी कोमल कनक-दल,
भर गये थे भ्रमर मर्मर-रव मधुर मधुमास के पल।
उष्ण-श्वासों के चिरन्तन-ग्रीष्म में कुछ याद आती—
पक्ष्म घन के लक्ष्म, आँखें कौंधती-सौदामिनी - सी।
मुदिर-पट तनु-स्रस्त तारक-कुसुम व्यस्त निपतित भू पर,
प्राप्त-ज्योति समाधि-विस्मृत जब हुआ अम्बर दिगम्बर।
प्रात, मंगल-गान में द्विज-व्रात के, मैं ढूँढता था—
प्रतनु-तर थी रेख वह होती मिलन की यामिनी - सी।
दिवस-गणना की लकीरें बन गईं तसवीर - सी तब
वह प्रथम रेखा चुभी है पर निशित शित तीर - सी नव
आह, विरह को छोड़ कौन अनित्य जग में नित्य होता!
हाँ, निठुरता भी तुम्हारी एक, मृदुल मृणालिनी - सी।
उपल हो तो आ पुजोगे, प्रणय-मन्दिर रिक्त मेरा,
अनल हो! आ, हृदय आहुति को हुआ अभिषिक्त मेरा।
अश्रु-गंगा-स्नात प्राणों के प्रदीप जला निशा भर—
अर्चना-आतुर जगी पीड़ा अचल - आराधनी - सी।

कविता की सृष्टि

श्रीरामरतन भटनागर "हसरत"

प्रकाश के सात रंग अपनी भिन्न-भिन्न सत्ता खोकर जब एक केन्द्र पर आ जाते हैं तो जो नव-निर्माण होता है, वह सब रंगों से भिन्न, किन्तु विशिष्ट सत्ता रखता है। और रसायन के प्रयोग में दो-दो, तीन-तीन बीज-तत्त्वों के मिलाने से नवीन सृष्टि होती है, जो बाद में कितनी ही नवीन वस्तुओं का करण-कारण बनती है। जैसे प्रकाश के इन भिन्न रंगों और रसायन के बीज-तत्त्वों को एक जगह लाकर नवीन सत्ता में स्थापित करने का श्रेय क्रमशः दर्पण (Lens) और रासायनिक को है, उसी तरह प्रकृति, मनुष्य और सूक्ष्म सत्ता के सहारे नये,-किंतु ऊँचे, धरातल पर निर्माण करना कवि की विशेषता है।

यह निर्माण पहले कवि के मन में होता है और कवि के मन के उस अस्पष्ट, किन्तु बीज-चित्र को वास्तविक कविता कह सकते हैं। यही बीज-कविता, जो सौन्दर्य-बोध से उत्पन्न होकर लिखते समय धीरे-धीरे विकास पाती है, जब अपने विकसित रूप में काग़ज़ पर आती है तो कवि की—हमारे माने में—कविता बन जाती है।

ग्रीक के प्रसिद्ध दार्शनिक सुक़रात ने कविता के सम्बन्ध में विवेचन करते हुए लिखा है—"मैंने उनकी (कवियों की) सबसे सुन्दर रचना ली और उनसे पूछा कि वे उसका क्या अर्थ करते हैं। परन्तु उपस्थित सज्जनों में कोई भी व्यक्ति [illegible] से अच्छा अर्थ कर सकता था। मुझे ज्ञात पड़ा [illegible] कवि अधिक बुद्धिमान् है, इसलिए कविता [illegible] लिखता, किन्तु इसलिए कि उसकी प्रकृति ऐसी [illegible] कि वह उत्तेजित हो सकती है।" सुक़रात का [illegible] लब था कि वह देखे कि कवि कितनी सावधानी [illegible] सतर्कता से रचना करता है और यह कि कहाँ [illegible] जान-बूझकर सृष्टि करता है। इससे दो बातें [illegible] हो जाती हैं। कविता-सृजन और कविता से आनन्द [illegible] लेने की दो भिन्न प्रवृत्तियाँ हैं। वास्तव में [illegible] भिन्न प्रवृत्तियाँ नहीं भी हैं—उनका उद्गम [illegible] ही है, अन्तर इतना है कि कविता-सृजन [illegible] प्रवृत्ति अधिक मुखर होती है। परन्तु जब सुक़रात [illegible] कविता पर विवेचना करता हुआ प्रश्न कर [illegible] था, वह एक अन्य प्रवृत्ति के वशीभूत था, [illegible] काव्य-सृजन और काव्यानन्द से भिन्न है; उसे [illegible] समालोचना-प्रवृत्ति कह सकते हैं। साधारण [illegible] की धारणा इतनी पुष्ट नहीं होती। वह काव्य [illegible] सौन्दर्य और उक्ति की विचित्रता से प्रश्न के [illegible] तल से उसी क्षण ऊपर उठ जाता है अथवा [illegible] प्रश्न आनन्द के नीचे डूब जाते हैं, और [illegible] इन तीनों प्रवृत्तियों के बीच में हम कोई [illegible] विभाजक रेखा भी नहीं खींच सकते।

तो क्या कवि की सृष्टि अनर्गल है? क्या [illegible]

के विभिन्न भागों का उसके मन में कोई क्रमबद्ध और नपा-तुला रूप नहीं होता ? क्या कविता में विचारों का स्थान नहीं ? और यह दार्शनिक कवि क्या चीज़ है ?

कविता को हम यदि उस रूप में लें, जिसमें वह हमारे सामने आती है, छन्दोबद्ध और काग़ज़ पर लिखी, तो हम कविता को संकीर्ण शब्दों में ग्रहण कर रहे हैं। कविता का वास्तविक रूप वह है, जो कवि के मन में चित्र अथवा भाव के रूप में रहता है और जो शब्दों के पहले आता है। प्रत्येक कला का केवल एक तात्पर्य होता है—वह एक विशेष अर्थ के लिए है—और कविता-कला भी एक विशेष अर्थ की पूर्ति करती है। यह अर्थ क्या है ? साधारणतः हम कहते हैं कि साहित्य के प्रत्येक अंग का, और इसलिए कविता का भी, काम है कि वह साहित्यकार के (अथवा कवि के) मानसिक चित्र को पाठक के सामने रक्खे, अर्थात् अभिव्यक्ति। परन्तु इतना ही नहीं है। इसका एक और भी दृष्टिकोण है। अभिव्यक्त किये हुए चित्र और भाव को पाठक ठीक-ठीक ग्रहण कर ले, यह भी साहित्य ही है। दोनों के मिलाने से साहित्य का पूरा रूप बनता है। मैं जो कुछ भी कहना चाहता हूँ, श्रोता उसे समझ न सके तो मेरा तात्पर्य पूरा कब हुआ ? मन की ठीक-ठीक अभिव्यक्ति कब हुई ? 'कला कला के लिए' सिद्धान्त के पक्षपाती कला का वास्तविक अर्थ नहीं करते; वे केवल एक ओर से देखते हैं। साहित्यकार की ओर से साहित्य उसका अनुभव प्रकट करता है और पाठक की ओर वह साहित्यकार का अनुभव उसी प्रकार स्पष्ट करता है।

साहित्यकार इस तरह कहता है कि उसका कहना उसके भाव, चित्र अथवा विचार को प्रकट करता है। यह हो सकता है कि कलाकार किसी हद तक इस प्रकार कह न सके कि उसके भाव, चित्र अथवा विचार उसी तरह पाठक को स्पष्ट हों; पर चित्र में अपने मन की अभिव्यक्ति और चित्र के द्वारा पाठक की ग्रहण-शक्ति में से किसी एक को कुछ प्रधानता दे दे; परन्तु यह असम्भव है कि वह अपने चित्र को इस तरह रक्खे कि वह चित्र कुछ भी अभिव्यक्त न करे और फिर भी वह साहित्य नाम की चीज़ देने का दावा करे। एक पागल के मन में जो चित्र आते हैं, उन्हें वह अपने ढंग पर प्रकट करता है, परन्तु उससे किसी प्रकार उसके मन के चित्र अन्य पर स्पष्ट नहीं होते। साहित्यकार पागल नहीं है और यदि उसका साहित्य पाठक पर कुछ स्पष्ट नहीं करता तो वह पागल के सिवा और कुछ नहीं है।

तो एक ओर साहित्यकार (कवि) है और दूसरी ओर पाठक। साहित्यकार (कवि) अपने अनुभव को व्यक्त करता है और पाठक साहित्यकार के अनुभवों को ग्रहण करता है। और, दोनों के बीच में भाषा का माध्यम है, जिसके द्वारा कवि का अनुभव पाठक तक पहुँचता है। कवि के मन को जो अनुभव होता है, उसमें कवित्व रहता है, परन्तु यदि वह उसे प्रकट न करे तो साहित्य का कुछ भी लाभ नहीं और यदि उसका अनुभव ग्रहण होने की क्षमता नहीं रखता अथवा पाठक को कवि की ठीक-ठीक चित्र नहीं देता, तो भी साहित्य के किसी काम का नहीं। कवि के चित्र, भाव और विचार की सार्थकता इसी में है कि उसके वे चित्र, भाव और विचार पाठक के मन पर उसी तरह ठीक-ठीक रेखाओं के साथ उतर आवें।

शब्द के द्वारा जिस भाव की अभिव्यक्ति होती है, उसे कभी तो हम भाषा से किसी प्रकार अलग नहीं कर सकते, और कभी किसी हद तक अथवा संपूर्ण अलग कर सकते हैं। जहाँ अर्थ की सत्ता भाषा के बिना अक्षुण्ण बनी रहती है अथवा अर्थ प्रधान होता है, वहाँ शुद्ध साहित्य नहीं रह जाता। वहाँ भाषा-विज्ञान, दर्शन अथवा अर्थ-शास्त्र के तत्त्वों, अंकों और सिद्धान्तों को पहुँचाने का साधन-भाग रह जाता है। कविता दूसरी चीज़ है। उसमें चित्र, विचार



अथवा भाव भाषा को छोड़कर चल ही नहीं सकता; उसकी सारी सार्थकता उसके इस अविभाजित रूप में है। आइनस्टाइन (Einstein) अथवा डारविन के सिद्धान्त भाषा के बाहर एक चीज़ हैं। यही नहीं, भाषा के बाहर बहुत बड़ी चीज़ हैं और इसी रूप में उनकी उपयोगिता है। परंतु कवि जब कहता है—

डोलने लगी मधुर मधु वात,
हिला तृण-व्रतति कुंज तरु-पात।
डोलने लगी प्रिये, मधु वात,
धूलि-मधु गंध-गुंज मृदु गात।
खोलने लगीं शयित चिर-काल,
नवल कलि अलस पलक दल जाल।
बोलने लगीं डाल से डाल,
मृदुल पुलकाकुल कोकिल-बाल।

तो वह न कोई सिद्धान्त देता है, न तत्त्व। भाषा और भाव का ऐसा सामंजस्य रहता है कि न भाव के बिना भाषा चल सकती है, न भाषा के बिना भाव ही। अर्थ के रूप में इस उद्धरण में क्या है? यही न, वसंत की हवा डोली, पत्ते हिले, कलियाँ खुलीं और कोयल बोली! परन्तु क्या इन सूचनाओं की पाठकों के लिए कोई उपादेयता है? वे उसके किस काम की हैं? परन्तु इन पंक्तियों को पढ़कर पाठक के मन में उत्साह भर जाता है, उसके नेत्रों में चमक आ जाती है और वह झूमने लगता है। कवि का उत्साह हमारे माने में उसका कवित्व, छन्द के इस शुष्क माध्यम के द्वारा पाठक को छू लेता है और वह जैसे परी देश की रानी की छड़ी हो। पाठक का कवित्व जाग जाता है और वह उसके प्रभाव में पड़कर कवि की तरह हो उठता है। यही कविता की सार्थकता है। कवि ने जो अनुभव किया, वह इस तरह दे दिया गया है कि पाठक उसे कवि के समान ही ग्रहण कर सकता है।

इसलिए जब हम कहते हैं कि कला अभिव्यक्ति है, तब हमारा तात्पर्य होता है कि वह ऐसी अभिव्यक्ति है, जो अन्य तक उसी सरलता से पहुँच जाती है। उपादेयता से अलग अनुभव की अपनी सत्ता है। अनुभव अपने पैरों पर खड़ा रह सकता है। हम एक इमारत को देखकर सोच सकते हैं कि वह रहने के लिए किस हद तक उपयोगी है, उसमें कहाँ नहाने का कमरा रहेगा, कौन बैठक रहेगी, परन्तु हम इन विचारों में न पड़कर भी उसे देखकर प्रसन्न हो सकते हैं। इस प्रकार अनुभव अपने बल पर पूर्ण है। यदि हम शब्दों द्वारा इस प्रसन्नता को प्रकट करें तो उसकी भी अपनी स्वतंत्र और पूर्ण सत्ता होगी, और यदि पाठक में इसी प्रसन्नता का सृजन कर सके तो हमारे शब्द साहित्य के अंदर आ जायँगे।

जीवन में अनुभव की कमी नहीं है। बहुधा ऐसा होता है कि हम उन अनुभवों से पूर्णतः संतुष्ट नहीं रहते, हमारी आवश्यकताएँ और हमारे विचार उनमें मिल जाते हैं। फिर भी हम अधिकतः अनुभवों को अनुभव समझकर उनसे आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु कुछ अनुभव ऐसे भी हैं, जो हमारी चेतना-शक्तियाँ ग्रहण नहीं कर सकतीं, अथवा जिन्हें विशेष प्रकार की और सूक्ष्म चेतना-शक्तियाँ ही ग्रहण कर सकती हैं। आध्यात्मिक और रहस्यवादी अनुभव इसी प्रकार के अनुभव हैं। वे व्यक्ति की चीज़ हैं, समष्टि की नहीं। वे ऐसे हैं, जैसे अन्धकार में आलोक, और सभी उन्हें ग्रहण नहीं कर सकते। इस प्रकार के अनुभव करनेवाला शब्दों की ओर चूँकि शब्द अर्जित ज्ञान के बाहर नहीं जाते—स्थूलता अथवा कमी के कारण अपने अनुभवपूर्ण शक्ति और रूप से प्रकट नहीं कर सकता और जब वह किसी हद तक प्रकट करता भी है, साधारण मनुष्य उन्हें ग्रहण करने में असमर्थ रहते हैं। रहस्यवादी कवियों—और कबीर, वॉगन आदि की अस्पष्टता और अप्रियता का यही कारण है। परंतु सभी अनुभव इस कोटि के नहीं होते; वे प्रकट किये जा सकते

N. K. Press, Lucknow.

प्रतीक्षा

[चित्रकार, श्रीयुत बी० एन्० जिजा]



है और पूरी तरह । यहीं कवि की सफलता और महानता है। इन अनुभवों के अंदर हमारी सभी उत्तेजनाएँ आ जाती हैं। हम विचार को, दर्शन के एक तत्व को अथवा विज्ञान के एक सिद्धांत को अनुभव के रूप में, उसके मूल-तत्व की ओर न जाते हुए, केवल अनुभव के रूप में दिलचस्पी लेते हुए भी ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रकार वे शुष्क विचार, तत्व और सिद्धांत हमारे भाव-चक्र में आकर और हमारे हृदय का रस पाकर साहित्य बन जाते हैं और सत्य न रहकर भी 'सुन्दर' के रूप में जीवित रहते हैं। जीवित ही नहीं रहते, विशेष सत्ता और विशेष मूल्य रखते हैं। सत्य क्या है, कोई भी नहीं कह सकता, परन्तु सुन्दर के रूप में जो है, उसे ग्रहण करने में हमें क्या बाधा है? इसी लिए साहित्य सभी ज्ञान से बड़ा है और सभी से अधिक टिकाऊ है। असल में, जो सुन्दर है, वही एकमात्र और सबके लिए एक-सा सत्य है।

तो साहित्य का अर्थ यह रहा कि साहित्यकार जो अनुभव करे, साहित्य के द्वारा पाठक भी वही अनुभव करने लगे। अनुभव बाहर के स्पर्श से पैदा होता है और कवि यह 'बाहर' अथवा उसके द्वारा उत्पन्न भाव और उत्तेजना, पाठक के सामने साकार कर देता है। तभी वह सफल नहीं हो जाता। उसे तो किसी भी तरह अपना अनुभव पूरा-पूरा देना है और अनुभव 'बाहर' की चीज़ से अलग नहीं! वह तब सफल होगा, जब दोनों देगा और उनके साथ ही पाठक की कल्पना के लिए सुन्दर वातावरण उपस्थित कर देगा।

परन्तु कवि के पास है क्या?—भाषा। भाषा के द्वारा उसे अपने अन्यतम व्यक्तित्व को दूसरे तक पहुँचाना है। और भाषा बड़ी ठोस चीज़ है। वह किस प्रकार यह करेगी? पाठक की कल्पना को उत्तेजित करके।

साहित्य के सृजन में कल्पना का हाथ प्रधान है। वह दोनों के लिए आवश्यक है, पाठक के और कवि के। कवि के अनुभव यदि उसकी कल्पना को उत्तेजित न करें, वह यदि विषय को चित्र की तरह साफ़ सामने नहीं रख सका तो उसकी कृति सुन्दर और पूर्ण नहीं होगी। और, यदि उसके शब्द पाठक की कल्पनाशक्ति को उत्तेजित न कर सकें, कवि के विषय को चित्र की तरह साफ़ सामने नहीं रख सकें तो पाठक को कवि का आनन्द नहीं आवेगा और वह चीज़ साहित्य से कुछ कम रह जायगी। कल्पना के द्वारा कवि जीवन के इतने चित्रों से उस एक चित्र को अलग कर तब तक स्पष्ट रक्खेगा, जब तक वह उसे शब्दों के द्वारा पाठक को न दे सके। उसके शब्द उसके अनुभव की प्रतिच्छाया होंगे।

कवि के शब्द उसके अनुभव के प्रतीक होते हैं। वह अपना अनुभव देता है और अनुभव भाषा के रूप में उसके पास नहीं आता। जिस रूप में वह उसके पास आता है, उसे वह भाषा में ढालता है और पाठक उसे पाकर उसे फिर वही रूप देता है। दोनों ओर यह कल्पना के द्वारा होता है।

अब भाषा की बात है। कवि की भाषा अनुभवों की प्रतीक-मात्र होती है और प्रतीक पूरे चित्र की ओर इंगित कर सकते हैं, स्वयम् पूरे चित्र नहीं होते। इसी लिए कवि का अनुभव पूरी शक्ति से प्रकट होना कभी सम्भव नहीं। इसके सिवा उसके प्रतीक (शब्द) ऐसे हों, जो पाठक में वही चित्र पैदा कर सकें। एक बात और। अनुभवों की कोई सीमा नहीं और भाषा सीमित है। भाषा का आधार वही शब्द हैं, जो उस ज्ञान के प्रतीक हैं, जो मनुष्य को पहले हुआ है। प्रत्येक मनुष्य का अनुभव दूसरे से भिन्न रहता है, परन्तु फिर भी वह उसे एक भिन्न भाषा में नहीं दे सकता। सारी सीमा के साथ भाषा उसे दूसरों की अपनानी होगी। इसी लिए कवि की चेष्टा होती है कि वह उसी सीमित भाषा के द्वारा पाठक की कल्पना को उत्तेजित कर सके और उसे ठीक मार्ग पर चला सके। वह नये शब्द बना सकता है, परन्तु ये



कल्पना को उत्तेजित नहीं कर सकते और बेकार साबित होंगे।

साहित्य की भाषा आम बोल-चाल की भाषा नहीं होती। भाषा में तर्क अथवा व्याकरण के अनुसार एक गठन होता है, परन्तु उसको साहित्यिक भाषा का रूप देने के लिए इससे कुछ अधिक चाहिए। इस सब गठन के ऊपर एक प्रवाह रहता है और उसके पीछे एक शक्ति; कविता में यह बात गद्य से अधिक स्पष्ट हो सकेगी। साहित्य में विचार विचार के लिए नहीं होता; वह कल्पना को संगठित और सुगठित बनाने के लिए होता है। और केवल विचार ही नहीं, अनुभव के साथ कवि को उत्तेजनाएँ, भावनाएँ, छापें (Impressions) और विचार को परिचालित करनेवाले सभी संसर्ग देने होते हैं। पाठक उनका ठीक-ठीक 'तर्जुमा' (अनुवाद) करके अनुभव को मन में जगा पाता है।

इसी लिए कवि को शब्दों के अर्थ और व्याकरण के गठन के ऊपर उठना होता है। वह भाषा की इशारा देनेवाली शक्ति की खोज करता है और उसे पाकर काम में लाता है। भाषा की इस अंतर्हित शक्ति का प्रयोग साहित्य-कलाकार को अन्य लोगों से भिन्न कर देता है।

भाषा की इस अंतर्हित शक्ति का आधार उसकी चार विशेषताएँ हैं। इनको व्यावहारिक रूप से हम अलग नहीं कर सकते, परन्तु चेतना उनकी पृथक् सत्ता को समझती है। भाषा का आधार शब्द है और शब्द के 'माने' (अर्थ) होते हैं और ध्वनि। शब्द के अर्थ और ध्वनि-भागों को हम अलग नहीं कर सकते, परन्तु किसी एक को दूसरे पर प्रधानता दे सकते हैं। अब, इन शब्दों के सामूहिक अर्थ होते हैं (व्याकरण के अनुसार अर्थ) और उनका सामूहिक संगीत (लय)। और इन दोनों हालतों में भी बहुधा किसी विशेष शब्द के विशेष स्थान पर विशेष अर्थ और विशेष ध्वनि होती है। विशेष शब्दों के अर्थों के साथ उनके प्रयोगों और अवसरों के कारण तरह-तरह के छोटे-छोटे अर्थ नि जाते हैं और शब्द का मूल्य इन्हीं मेलों के कारण बढ़ता-घटता है। इसी लिए कविता में शब्दों का चुनाव बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

शब्द के अर्थ का बहुत-सा भाग उसकी ध्वनि से स्पष्ट हो जाता है और इस तरह अर्थ की संपूर्ण व्यंजना में ध्वनि मिली होती है। परन्तु अकेले ध्वनि को भी अर्थ पर महत्त्व दिया जा सकता है। शब्द के निर्माण में जो स्वर और व्यंजन काम में लाये गये हों, उनकी पृथक्-पृथक् ध्वनियों की आवृत्ति-अनावृत्ति और उनकी ध्वनियों में संवाद कलाकार-कवि के हाथ में बड़े महत्त्व की चीज़ हो जाता है। दूसरे, पद्य के प्रत्येक चरण में शब्दों के सामूहिक संगीत में एक प्रकार का उतार-चढ़ाव होता है। इसे हम 'लय' कह सकते हैं। कविता में यह बड़े महत्त्व की चीज़ है। 'लय' के साथ कवित्वपूर्ण वातावरण रहता है और छन्द की गति और लय उपयुक्त वातावरण के पैदा करने में प्रधान भाग रखते हैं। इस कवित्वमय वातावरण के बिना अनुभव जीवित नहीं रह सकता।

भाषा के सम्बन्ध में विचार करते हुए तब हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि भाषा में ध्वनि और अर्थ के द्वारा हम काव्यगत अनुभव को पाठक तक पहुँचाते हैं और उस अनुभव के ग्रहण होने के लिए उपयुक्त वातावरण उत्पन्न कर देते हैं। ऐसा करते समय कवि प्रत्येक बार कहीं ध्वनि और कहीं अर्थ पर अधिक ध्यान देता है और इस प्रकार विभिन्नता की सृष्टि करता है। जब कवि वासुकि का वर्णन करता हुआ कहता है—

"शत-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर"

उसने ध्वनि-सौन्दर्य को सार्थक बनाकर उसके द्वारा अर्थ और चित्र देने की चेष्टा की है। शब्द वासुकि के सहस्र-सहस्र फनों की भाँति फूत्कार कर उठते हैं और अर्थ से भी बड़ी एक चीज़ स्वतः प्रकाशित हो जाती है। परन्तु जब वह कहता है—



अन्धकार गर्ते थाके अन्ध सरीसृप,
आपनार ललाटेर रतन प्रदीप।
नाहीं जाने नाहीं जाने सूर्यालोक लेश !
ते मनि आँधारे आछे एई अन्ध देश।

(अंधा साँप अँधेरे गड्ढे में रहता है। उसे अपने ही मस्तक के रत्न-प्रदीप का हाल नहीं मालूम। सूर्य के प्रकाश का भी उसे ज्ञान नहीं। इसी तरह हमारा यह देश भी अँधेरे में पड़ा हुआ है) वह ध्वनि से अधिक शब्दों के अर्थ-मूल्य का प्रयोग करता है, और ध्वनि से नहीं, अर्थ से काव्यगत अनुभव और उत्तेजना पैदा करना चाहता है।

अंत में कविता के सम्बन्ध में केवल छन्द की बात रह जाती है। छन्द का सम्बन्ध आकार और संगीत से है। कवि का अनुभव विशृंखल नहीं होता और उसके विभिन्न भागों में एक साम्य और सामञ्जस्य होता है। इस साम्य को पाठक के मन में उत्पन्न करने के लिए और उसे ग्रहणशील बनाने के लिए कविता में छन्द की आवश्यकता आती है। केवल इतना ही नहीं है, काव्य-रचना छन्द के रूप के अनुसार चलती है और उपयुक्त छन्द मिलने पर कवि की कल्पना को प्रचलित धारा में बहने की उत्तेजना मिलती है। कविता के कितने भाग का श्रेय छन्द को है, यह खोज करना कठिन है। परन्तु यह अवश्य है कि सफल कविताएँ विशेष छन्दों में हुई हैं और महाकवियों की प्रतिभा विशेष छन्दों पर अवलम्बित रही है। कवि का काम है कि वह काव्यानुभव की सुन्दरतम अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त छन्द, लय और शब्द ढूँढे और अपने अनुभव को पाठक अथवा श्रोता तक सफलतापूर्वक पहुँचा दे। यही नहीं, वह अनुभव पाठक अथवा श्रोता के मन में प्रतिक्रिया उत्पन्न करे और उसके मनस्तंतु उस अनुभव को सजीव कर लें और उसमें रहने लगें।



नृत्यकला और भाव

एक कलाप्रेमी

सुरागोत्पादनं शीर्षं वादनो मध्यमागतः ।
चरणोत्पादनं नृत्यं संगीतिः स्वशरीरिणः ॥

सांसारिक शिक्षा-विषयों तथा शिक्षा-केन्द्रों पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो विना विचार-धारा के प्रवाह में अपने को प्रवाहित किये ही यह बात ज्ञात हो जायगी कि कला तथा विज्ञान ही दो स्तंभ हैं, जिन पर अधिकतर महानुभाव तथा राष्ट्र अपने भवन का निर्माण कर रहे हैं। कला तथा विज्ञान एक दूसरे से इस प्रकार संबद्ध हैं कि इनको एक दूसरे से अलग करना गोवर्धन पर्वत को कनिष्ठिका पर उठा लेना है। परन्तु संसार की रुचि सर्वदा परिवर्तन की ओर होने के कारण वर्त्तमान समय में विज्ञान का नाम अधिक कर्णगोचर होता है और प्राचीन भारत ने, जैसा कि सब पाठकों को विदित होगा, कला को एक बहुत ही ऊँची सीढ़ी पर पहुँचा दिया था।

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि यदि अधिक विस्तार में विचार न किया जाय, तब भी ६४ कला विख्यात थीं। उनमें से चित्रण, संगीत, नृत्य इत्यादि कलाओं को वर्त्तमान उन्नतिशील राष्ट्र भी धीरे-धीरे उच्च कोटि की बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। कहा भी जाता है कि संसार में ऐसा कोई मनुष्य न होगा, जो कुछ गा न सके अथवा भाव प्रकट न कर सके। भाव प्रकट करने की शक्ति प्रायः सभी कलाओं में पाई जाती है। यह एक प्रकार से कलाओं की Common factor मानी जा सकती है। अथवा जितनी कलाएँ हैं, प्रायः सभी नित्य कलाएँ हैं। यह नित्य कला स्थाया रूप में कभी नहीं रह सकती। यदि एक भाव-प्रदर्शन उचित समय से अधिक रहेगा तो इसका अर्थ यह है कि वह अप्राकृतिक होकर कला की कोटि को न पहुँच सकेगा। नृत्य-कला प्रत्येक क्षण के कणों में उत्पन्न तथा विलीन होती है। इसकी माप करना कि अमुक भाव गायक ने कितनी देर तक प्रदर्शित किया, मनुष्य की बुद्धि की सीमा के बाहर है।

कला में भाव की प्रधानता निश्चित हो जाने पर दोनों का भेद जानना परमावश्यक है। कला स्वयं है और भाव है उसका उत्पादक। अर्थात् कला के पहले मन में भाव होना अनिवार्य है। कोई शिक्षक अपने शिष्य को विना स्वयं किये हुए, कला की शिक्षा नहीं दे सकता। कोई चित्रकार चित्र खींचकर दिखलाये विना शिष्य को चित्र बनाना नहीं सिखा सकता। यही है नृत्य-कला। नृत्यकला के ज्ञान के विना वह कला कभी सफल नहीं हो सकती, जिसे नृत्यकला



कहते हैं, जिसका कि भाव ही पूर्ण सम्बन्धी है। दूसरे शब्दों में नित्य कला का ही नाम नृत्यकला है। प्राचीन भारत में नृत्यकला बहुत सम्मान तथा आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। कहते हैं, मुग़ल-बादशाहों के समय से इसका अधःपतन होना आरम्भ हो गया। आधुनिक काल में बहुत कम सज्जन ऐसे होंगे; जो इस कला से अभिज्ञ होने के नाते इसे अच्छा समझते होंगे। अन्यथा अधिक जन तो उसको बुरे स्थान में पड़ी रहने के कारण उसे बुरा समझते और उसे अच्छे स्थान पर रखने की चेष्टा भी नहीं करते। मैं समस्त पाठकों से पूछता हूँ कि क्या नृत्यकला यही है, जिसका कलकत्ता, बम्बई और लखनऊ की उच्चाट्टालिकावासिनी, तन-मन-धनहारिणी, मयङ्क-मुखी बालाओं द्वारा प्रदर्शन किया जाता है; जिसे लालाजी के विवाह में, बीबीजी की शादी में, भैयाजी के जनेऊ में, बाबूजी के गोल कमरे में स्थान दिया जाता है; तथा जिस नृत्य के साथ गायन भी उसी प्रकार का होता है—काश्मीरी भाँड़ आते हैं? नहीं, कदापि नहीं। ईश्वर की इस पवित्र रचना के आचार्य नृत्यकला के पथ-प्रदर्शक प्रोफ़ेसर, वेश्या और भाँड़ ही नहीं हैं। यह वह नृत्यकला नहीं है, जिसके विषय में एक कवि ने लिखा है—

नृत्यकला से बढ़त है, तन, मन, धन, सम्मान ;
जीवित रहत समाज यश, जाति देश की आन।

क्या उपर्युक्त नृत्योपदेश से कोई नीरोग रहा है, धन की वृद्धि हुई है, मन परमात्मा से मिल गया है? क्या वर्त्तमान काल के "नाच" से समाज तथा जाति आगे बढ़ी है? क्या इसी से देश की शान तथा आन स्थापित हो सकी है? यदि इसका उत्तर 'हाँ' में दिया जा सकता है तो कोई भय नहीं है। वर्त्तमान कला को ही सर्वोपरि मानकर उसकी ज्ञानवान् आदरणीय फ़िल्म-ऐक्ट्रेसों तथा लक्ष्मणपुर-निवासी, काश्मीरान्तर-वासी, नृत्यकलाचार्य प्रोफ़ेसर अनारख़ाँ, अंगूर अलीसाहब, जो कि बिना लगाम के घोड़े पर चढ़ते हैं और बेलगाम के बोलते हैं, इन्हीं की शिक्षा द्वारा देश तथा जाति का कल्याण करिए। परन्तु नहीं, कुछ देर विचार करके दक्षिण-भारत की ओर दृष्टि डालिए।

कुछ कारणों से दक्षिण-भारत अब भी नृत्य तथा गायन-कला का क्षेत्र बना हुआ है। वहाँ के निवासी उत्तर-भारतीयों की अपेक्षा कला की प्राचीन प्रणाली में कहीं अधिक अभिज्ञ हैं। वे जानते हैं इनके गुण तथा दोष तथा उसकी उन्नति के साधन। साथ ही वे यह भी जानते हैं कि किस प्रकार हम इन तथा अन्य उपयोगी कलाओं को जीवित रख सकते हैं। उत्तर-भारत में जो संगीत-कला का पुनःप्रचार हो रहा है, उसका श्रेय किसी अन्य को नहीं, दक्षिणी संतानों को ही है। यह उनके लिए गर्व का विषय है। दक्षिण के निवासी भारत माता के दो सुपुत्र हमारी जाति के अमूल्य रत्न जो हुए हैं, उनको कौन ऐसा भारतवासी है, जो न जानता हो। वह थे पंडित विष्णु दिगम्बरजी तथा भातखंडेजी, जिनकी मृत्यु से भारतीय संगीत-समाज में हाहाकार मच गया था, तथा जिसकी जगह अभी तक भरी नहीं है, आँसू अभी पुँछे नहीं हैं। ऐसा ज्ञात होता है, जैसे वह अपने भाइयों से कह गये हों कि "हे भ्रातृगण, हमने अपने पूर्वजों की तथा उनके कार्यों की खोज में जीवन व्यतीत किया और जब तक जिये, कलाओं की खोज की। हम पुनर्जन्मा-सिद्धान्ती हैं। जब हमें पता लगा कि कुछ कला-विज्ञाता बिना अपनी कला दूसरों को ज्ञात कराये, कलाचोर की भाँति अन्य लोक में जाकर छिप गये हैं, तब हमने उन्हें खोज निकालने का प्रयत्न किया, उसी निमित्त तथा उनका स्वागत करने



अब हम दोनों जा रहे हैं। पृथ्वी के रत्नों की तुम खोज करो, हम स्वर्ग से लावेंगे। वह स्वर्ण-समय आने ही वाला है, जिसकी संसार प्रतीक्षा कर रहा है।" इन ऋषियों के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि हमारा उद्देश्य इस समय और ही है। ये दोनों तो कर्मवीर थे। गीता के उपासक थे—निष्कर्म तथा निस्स्वार्थ कार्य करना इनका मुख्य धर्म था।

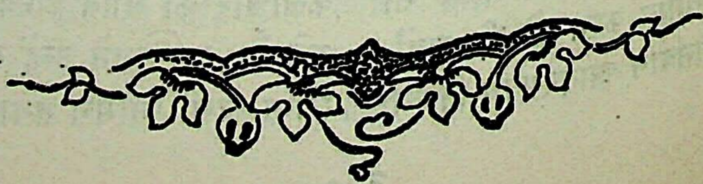
संगीत में वादन, गायन तथा नृत्य, तीनों कलाएँ ही सम्मिलित हैं। अतः विना नृत्यकला के संगीत अपूर्ण है। सांप्रतिक काल में नृत्यकला जर्जर हो चुकी है, साथ ही समाज उसे घृणास्पद समझता है। ठीक ही है। जिस प्रकार रत्नों से जटित सुवर्ण के सुरापात्र को छूने से एक विवेकी हिचकता है, उसी प्रकार नृत्यकला में आये हुए दोषों को देखकर प्रत्येक विचारवान् को दूर रहने का उद्योग करना चाहिए। किन्तु दुःख इस बात का है कि रोगी की श्वास रहते हुए चिकित्सा बन्द कर देना, आशा छोड़ देना, सुवर्ण को कुत्सित स्थान पर पड़ा रहने देना क्या बुद्धिमत्ता है? महात्माओं तथा परोपकारियों ने किस देश, किस जाति अथवा किस कला का पुनरुद्धार नहीं किया? क्या आज से तीस वर्ष पूर्व संगीत की ऐसी ही चर्चा थी, जैसी कि आजकल सुनाई पड़ती है? क्या गाने-बजाने को पाठशालाओं में स्थान दिया जाता था? परंतु अब तो कन्या-विद्यालयों में ही नहीं, बरन् बालक-विद्यालयों में भी संगीत के शिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त केवल संगीत-विद्या की शिक्षा के हेतु भी विद्यालय खुल गये हैं। उनसे हानि के बदले सर्वत्र लाभ ही होता हुआ दिखाई पड़ रहा है। समाज भी इसके प्रति अति उदार हो[illegible] होता है।

"नाहं वसामि बैकुण्ठे"—नारद के प्रति [illegible] वाक्य सत्य होनेवाला है। वह समय दूर [illegible] है, जब प्राचीन गायकों के समान गायक [illegible] भूमि में जन्म लेंगे। अग्नि-उत्पादक तथा [illegible] उत्पादक राग गाये जायँगे और उनसे [illegible] वही होगा। तानसेन, उनके गुरु स्वामी ह[illegible] तथा बैजू बावरे के पुनरागमन में कुछ संदेह [illegible] है - यह अवश्यम्भावी है। परन्तु समय आने [illegible] प्रयत्न करके शिक्षक तैयार करो। नृत्यकला [illegible] प्रादुर्भाव होनेवाला है, परन्तु उसकी खोज [illegible] नृत्य में तथा सिनेमा-नर्तकियों में नहीं [illegible] चाहिए। नीति से काम लेकर आचार्यों से [illegible] विषय पर पूछा जाने पर ही कुछ सफलता [illegible] हो सकती है। अन्वेषण की इस क्षेत्र में [illegible] अधिक आवश्यकता है, परन्तु इच्छा और [illegible] परिश्रम साथ होना चाहिए। "शैले शैले [illegible] माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे" इसको [illegible] मानकर कार्य करने से पूर्ण सफलता की [illegible] की जा सकती है; अन्यथा नहीं।

नृत्यकला के आगे कोई अन्य गुण [illegible] नहीं पा सकता, यदि वह स्वयं वहाँ उपस्थित [illegible] हो। विना नृत्यकला के ज्ञान के विद्वान् भी [illegible] रहे हैं, यथा—

ज्यों कुरूप नर डरत नहिं, बिन पहिने [illegible]
विद्या-धन-मत झुकत नहिं, बिन संगीत सम[illegible]

लेख-वृद्धि होने के कारण अभी मैं [illegible] करता हूँ, परन्तु उद्योग कर रहा हूँ और [illegible] कि आगे भी सेवा में उपस्थित हो सकूँ।



अश्वघोष का 'सौन्दरनन्द' महाकाव्य

पं० किशोरीदास वाजपेयी

महाकवि अश्वघोष बौद्धमत के अनुयायी थे। इनके दो काव्य-ग्रन्थ संस्कृत में उपलब्ध हैं—१—बुद्ध-चरित्र और २—सौन्दरनन्द। इनमें से अंतिम काव्य आलोच्य है। इसे 'महाकाव्य' कहा गया है; परन्तु वस्तुतः एक महाकाव्य में जिन बातों का वर्णन जिस ढंग से होना चाहिए, सो इसमें नहीं है। 'सौन्दरनन्द' में न तो सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण ही है और न मनोभावों का उत्तम अभिव्यञ्जन ही। चरित्र-चित्रण में भी कोई आकर्षण नहीं है। कवि का इन सब बातों की ओर ध्यान ही न था। उसे तो एक धार्मिक भावना व्यक्त करनी थी। 'सौन्दरनन्द' एक धार्मिक काव्य है। धार्मिक तत्त्व ही यहाँ मुख्य हैं और सब कुछ गौण। कवि ने स्वयं अन्त में लिखा है—

इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थगर्भा कृतिः;
श्रोतॄणां ग्रहणार्थमन्यमनसां काव्योपचारात्कृता।
यन्मोक्षात्कृतमन्यदत्र हि मया तत्काव्यधर्मात्कृतम्,
पातुं तिक्तमिवौषधं मधुयुतं हृद्यं कथं स्यादिति।

—मैंने यह काव्य शान्ति के लिए बनाया है, मनोरंजन के लिए नहीं, दिमाग़ी ऐयाशी के उद्देश्य से नहीं। इसमें मोक्ष-तत्त्व भरा हुआ है। जिन लोगों का मन दूसरी ओर लगा हुआ है—जो संसार में फँसे हैं—उन्हें इधर खींच लाने के लिए ही यह कृति है। इसमें मोक्ष-मार्ग से इधर-उधर की दो-चार बातें जो कहीं रखनी पड़ी हैं, सो केवल इसलिए कि इसे काव्यत्व प्राप्त हो जाय, कुछ मिठास आ जाय। कड़वी दवा मधुयुक्त होकर—कुनैन शर्करा से सम्पुटित होकर—कैसी स्वादिष्ट हो जाती है!

कवि की इस कैफ़ियत को पढ़कर सब साफ़ हो जाता है। जिसका जिधर ध्यान ही नहीं है, वह उसका वर्णन कैसे करे? इसलिए आलोचक को कवि के साथ सहानुभूति होनी चाहिए।

दूसरी बात यह है कि अश्वघोष बहुत पुराने कवि हैं। काव्य का रंग धीरे-धीरे ही निखरता है। जायसी की अवधी-कविता में वह मिठास तथा वर्णन-वैचित्र्य कहाँ है, जो परवर्ती तुलसी की वाणी में? परन्तु इससे ऐसा न समझ लेना चाहिए कि अश्वघोष की भारती बिलकुल नीरस ही है। वह मधुर है, पर कालिदास आदि की अपेक्षा उसमें वैसी बात कहाँ है। गुड़ से अधिक स्वादिष्ट मिसरी हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं; परन्तु इससे गुड़ का महत्त्व कुछ कम नहीं हो जाता।

'सौन्दरनन्द' की भाषा

'सौन्दरनन्द' की भाषा साधारणतः सरल और मीठी है; पर अनेक जगह रूखी-सूखी-सी जान पड़ती है। इसका कारण यह है कि कवि ने लिट् तथा लङ् लकार के प्रयोग बहुत ज़्यादा किये हैं, और



सिलसिलेवार किये हैं। दो-दो, तीन-तीन पृष्ठ तक लिट् के प्रयोग चले गये हैं, तो कहीं-कहीं चार-चार पृष्ठ तक लुङ् के ही ! ऐसा मालूम होने लगता है कि 'वासुदेव-विजय' या 'भट्टि-काव्य' पढ़ रहे हैं ! यही नहीं, णिजन्त तथा सन्नन्त प्रक्रियाओं के प्रयोग भी इस प्रकार धारावाही किये गये हैं। ऐसे प्रयोग कितने रूखे और कर्ण-कटु होते हैं, सो बतलाने की ज़रूरत नहीं। यही कारण है कि कालिदास आदि कवियों ने अपने काव्यों को ऐसे शब्द-प्रयोगों से एकदम बचाया है और अपनी भाषा ऊबड़-खाबड़ नहीं होने दी है। यदि कहीं एकाध वैसा शब्द-प्रयोग हो जाय, तो भी सह लिया जाय, जैसे बढ़िया गन्ना चूसते समय गाँठ; परन्तु जब प्रकरण का प्रकरण ऐसे प्रयोगों से भरा हो, तब जी ऊब जाता है। लेकिन सम्पूर्ण पुस्तक में यह बात नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि संस्कृत-भाषा में अपनी गति बतलाने के लिए ही कवि ने कहीं-कहीं वैसे प्रयोगों की झड़ी लगा दी है। शायद संस्कृत के विद्वान् उस समय पाली के इस विद्वान् को कुछ दूसरी दृष्टि से देखते हों, जैसे कुछ दिन पहले संस्कृत के पंडित हिन्दी के कवियों तथा विद्वानों को देखते थे। सम्भव है, इसी लिए अश्वघोष ने, अपना संस्कृत-पाण्डित्य प्रकट करने के लिए, वैसे व्याकरण-मात्र-प्रचलित शब्द-प्रयोग किये हों। आज भी हिन्दी के वे एम्० ए० लोग हिन्दी-लेखों में संस्कृत के अप्रचलित शब्द ढूँढ-ढूँढकर इसी नियत से रखते हैं, जो संस्कृत-भाषा से एकदम शून्य हैं। इनका उद्देश्य यही होता है कि लोग हमें संस्कृत का भी विद्वान् समझें और हिन्दीवालों पर हमारी धाक जमे। परन्तु अश्वघोष के साथ इनका नाम लेना अनुचित है। वह संस्कृत-भाषा का महान् विद्वान् और सुकवि था। यह भी सम्भव हो सकता है कि उस समय वैसी ही संस्कृत-भाषा अच्छी समझी जाती हो। उस समय की जाने दीजिए, आज भी संस्कृत के वैयाकरण लोग ऐसी ही भाषा पसन्द करते हैं, जो खटपट-खटपट करती हुई चले। जो भी हो, 'सौन्दरनन्द' में इस प्र[कार] के नीरस शब्द-जाल की भी छटा है। साथ ही दूसरी तरह की मीठी भाषा भी है, जिसका न[मूना] यहाँ दिया जायगा।

कथानक

'सौन्दरनन्द' का कथानक बहुत सरल है। छोटा है। कवि ने पहले 'कपिलवस्तु' को [नगरी] कैसे बसी और इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय 'गौतम' [से] 'शाक्य' कैसे हुए, सो लिखा है। हमें यह [ऐसी] कल्पना मालूम होती है, जैसे बुँदेला आदि [क्षत्रियों] की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इधर तरह-तरह [की] कल्पनाएँ जाग्रत् हुई हैं। ख़ैर, फिर कपिल[वस्तु] में राजा शुद्धोदन के यहाँ भगवान् बुद्ध प्रकट [होते] हैं। उनकी दूसरी—छोटी—रानी से एक [और] पुत्र उत्पन्न होता है, जिसका नाम 'नन्द' रक्खा [जाता है।] बुद्ध विरक्त हो जाते हैं और तपस्या आदि करते हैं। अन्ततः उन्हें दिव्य ज्ञान हो जाता है।

नन्द संसार के सुख-विलास में पड़ जाता है। अपनी 'सुन्दरी' प्रिया के साथ सुख से दिन बिताता है। दोनों एक दूसरे में मस्त हो जाते हैं।

एक दिन 'सुन्दरी' के साथ नन्द अपने म[हल] के श्रृंगार-गृह में चन्दन-आह्लाद में निमग्न [था।] सखियाँ सेवा में लगी थीं। गर्मी के दिन [थे।] महलों के ऊपर यह क्रीड़ा हो रही थी।

ठीक इसी समय भगवान् बुद्ध भिक्षा के लि[ए] इस महल में पधारे। क्षण भर नीची गर्दन कि[ये] खड़े रहे, जब किसी ने कुछ ध्यान न दिया, [तो] उलटे लौट पड़े। ध्यान कौन देता और कौन देख[ता,] वहाँ तो सब क्रीड़ा में मस्त थे।

जब बुद्ध भगवान् ड्योढ़ी के बाहर निकले, [तो] एक सखी ने देख लिया, हवा खाने के लि[ए] जिसने तुरन्त खिड़की खोली थी। उसने सम[झा,] हाथ जोड़कर नन्द से निवेदन किया कि भग[वान्] भिक्षा न पाकर लौटे जा रहे हैं। नन्द घबर[ाकर] चलने को हुआ। प्रिया से आज्ञा माँगी। [जब] दम्पती अनुराग-मग्न हों, तब किसी साधु [की]



का आना स्वभावतः कैसा मालूम होगा, अनुभव की बात है। सुन्दरी शायद यह भी जानती थी कि बुद्ध भगवान् भी भगवान् नारद की तरह उस पुरुष को तुरन्त अपना-जैसा बना लेते हैं, जो ज़रा भी उधर झुके। जिस पर विशेष कृपा करना हो, उसी के घर प्रायः भिक्षा के लिए वे जाते भी होंगे। महल में अचानक भिक्षा माँगने वे पहुँचे होंगे, तब सुन्दरी को क्यों न चिन्ता होती? जब नन्द ने प्रिया से आज्ञा माँगी कि मैं गुरु-दर्शन करके अभी लौटता हूँ, तब सुन्दरी की क्या दशा हुई, सो कवि के ही शब्दों में—

सा वेपमाना परिषस्वजे तं
शालं लता वातसमीरितेव।
ददर्श चाश्रुप्लुतलोलनेत्रा
दीर्घं च निश्वस्य वचोऽभ्युवाच ॥
नाहं यियासोर्गुरुदर्शनार्थ-
मर्हामि कर्तुं तव धर्मपीडाम्।
गच्छार्यपुत्रेहि च शीघ्रमेव
विशेषको यावदयं न शुष्कः ॥

वह काँपती हुई नन्द से चिपट गई, जैसे प्रबल वायु के द्वारा झकझोरी हुई लता शाल वृक्ष से चिपटी हो। अपने तरल नेत्रों में आँसू भरकर उसने प्रिय को एक बार देखा और लम्बी साँस ली। फिर बोली—आप गुरु-दर्शन की इच्छा से जाना चाहते हैं। यह धर्म है और मैं आपको इस धर्म-पथ से हटाती नहीं हूँ। हे आर्यपुत्र! आप जायँ; पर दर्शन करके तुरन्त चले आइए, जब तक मेरे शरीर में लगा हुआ यह चन्दन सूख न जाय।

नन्द का मन भी दोलायमान था। वह प्रिया की अनुमति पाकर चला तो, पर आगे को पाँव नहीं पड़ते थे। इधर प्रिया का अनुराग खींचता था और उधर कर्तव्यपथ आकर्षित कर रहा था—

तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष
भार्यानुरागः पुनराचकर्ष।
सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ
तरंस्तरङ्गेष्विव राजहंसः।

नन्द को उधर बुद्ध-भक्ति खींच रही थी और इधर प्रिया-प्रेम ज़ोर मार रहा था। जैसे तरंगों के बीच में पड़कर तैरता हुआ राजहंस वहीं का वहीं हिलोरें लेता रहता है, नन्द की भी वही गति हुई। वह न आगे उधर बढ़ पाता था और न इधर ही लौट सकता था।

फिर अन्त में जैसे-तैसे बुद्ध भगवान् के पास पहुँचा। हाथ जोड़कर प्रणाम किया और भिक्षा के लिए निवेदन किया। बुद्ध भगवान् ने भिक्षा के लिए तो मना कर दिया और उसे अपने आश्रम (विहार) में ले गये। वहाँ उसे निवृत्तिमार्ग का उपदेश दिया, घर छोड़कर भिक्षु बन जाने के लिए शिक्षा दी; पर उसने एक न सुनी। बुद्ध भगवान् भी पीछे ही पड़ गये। उसे ठोक-पीटकर वैद्यराज आप बनाना चाहते थे। कभी-कभी बड़ों के सामने पड़कर शीलवान् बड़े चक्कर में पड़ जाता है। वह अपने उपदेष्टा की बात हृदय से स्वीकार नहीं करता; पर 'न' भी मुँह से नहीं निकलता।

अन्त में किसी तरह नन्द से बुद्ध ने कहलवा ही लिया—

'कर्त्तास्मि सर्वं भगवन् वचस्ते'

महाराज, आपकी बात मानकर वैसा ही सब करूँगा, जैसी आज्ञा होगी। नन्द ने यह कह तो दिया, पर मन से नहीं। तुरन्त उसे ले जाकर मुण्डन कर दिया गया और इस समय भी—मुण्डन करते समय भी—वह 'अश्रुपरिप्लुताच' हो रहा था! बीकानेर में एक जैन-बालक को साधु बनाते मैंने देखा था, जो मुण्डन के समय इसी प्रकार रो रहा था, अपनी मा की ओर देखकर! मा ने साधु बनाने के लिए पुत्र जैन-साधुओं को सौंप दिया था! परन्तु उस समय मा की दशा भी विचित्र थी। ऐसे बहुत-से गोसाईं—बैरागी, आजकल भी हैं, जो इसी तरह चेला बनाते हैं।



नन्द भिक्षु बन गया। भिक्षु क्या बन गया, भिक्षु-वेष धारण कर लिया; परन्तु मन बिलकुल नहीं बदला। इधर 'सुन्दरी' की दशा का क्या पूछना! इस प्रकार व्याकुल हुई कि देखते नहीं बनता था। तड़फड़ा रही थी। क्या करती?

और नन्द? कवि कहता है—

लिङ्गं ततः शास्तृविधिप्रदिष्टं
गात्रेण बिभ्रन्न तु चेतसा तत्।
भार्यागतैरेव मनोवितर्कै-
र्जेह्रीयमाणो न ननन्द नन्दः।

धर्मानुशासन करनेवालों की विधि से दिये हुए भिक्षु-चिह्नों को नन्द ने शरीर से धारण किया, मन से नहीं। उसका मन तो सुन्दरी में लगा था। मनोभाव उसे उसी ओर खींच रहे थे, बहुत ज़ोर से खींचते ही रहते थे। तब वह उस भिक्षु-वेश से वहाँ ख़ुश कैसे रहता? बहुत दुखी रहता। तन क्षीण और मन मलीन देखकर एक भिक्षु ने इसका कारण पूछा, तो नन्द ने सब बतला दिया। उसने कहा कि भिक्षु तो वह हो सकता है, जिसे तत्वज्ञान हो और जो स्नेह-शून्य हो, रूखा हो। परन्तु मेरी क्या दशा है—

ज्ञानं न मे तच्च शमाय यत्स्या-
न्न चास्ति रौक्ष्यं करुणात्मकोऽस्मि।
कामात्मकश्चास्मि गुरुश्च बुद्धः
स्थितोऽन्तरे चक्रगतेरिवास्मि।

न तो मैं वैसा ज्ञानी हूँ कि शम में समर्थ हो सकूँ और न मैं स्नेह-शून्य ही हूँ। मैं रूखा नहीं हूँ, करुणात्मक हूँ। और सबसे बड़ी बात यह कि मैं काम-वासना से मुक्त नहीं हूँ। इधर मेरी यह दशा है और उधर गुरु हैं भगवान् बुद्ध। क्या करूँ, चक्कर में पड़ गया हूँ।

उसने अन्त में उस भिक्षु को अपना निश्चय सुनाया कि अब मैं इस भिक्षु-वेष को छोड़कर फिर घर जाऊँगा; क्योंकि जिसका मन ही नहीं इधर, वह झूठी विडम्बना करके अपने-आपको धोखा क्यों दे? नन्द ने कहा—

पाणौ कपालमवधाय विधाय मौण्ड्यम्,
मानं निधाय विकृतं परिधाय वासः।
यस्योद्भवो न धृतिरस्ति न शान्तिरस्ति,
चित्रप्रदीप इव सोऽस्ति न चास्ति चैव।

× × ×

यो निःसृतश्च न च निःसृतकामरागः,
काषायमुद्वहति यो न च निष्कषायः।
पात्रं बिभर्ति च गुणैर्न च पात्रभूतः,
लिङ्गं वहन्नपि स नैव गृही न भिक्षुः।

अर्थात् हाथ में खप्पर लेकर, मूँड़ मुड़ाकर, व्यर्थ का अभिमान लादकर और बेढंगे रँगे कपड़े पहनकर भी यदि धृति तथा शान्ति से रहित हुआ, तो ऐसा नक़ली समझो, जैसे तस्वीर में बना हुआ दीपक। कहने को दीपक ही कहलायेगा; पर क्या प्रकाश भी उसमें है? झूठा नाम। ऊपरी [illegible] भर है।

जो घर से तो निकल पड़ा, परन्तु काम-[illegible] जिसके न निकले; रँगे कपड़े पहने, पर मन [illegible] मल दूर न हुआ; हाथ में भिक्षा-पात्र ले लि[illegible] पर वैसे दिव्य गुणों से सत्पात्र न बना, तो ऐ[illegible] आदमी साधु-वेष धारण करता हुआ भी न[illegible] साधु है, न गृहस्थ है। न इधर का, न उधर का।

सो, ज्यों ही गुरुदेव यहाँ से आज भिक्षा [illegible] लिए जायँगे, त्यों ही मैं इस भिक्षु-वेष को छोड़कर घर को चल पड़ूँगा; क्योंकि जिसका मन चला[illegible] मान है, वह चाहे जैसा पूज्य चिह्न धारण [illegible] न इधर का रहेगा, न उधर का। उसकी [illegible] मारी जायगी—

तस्माद् भिक्षार्थं मम गुरुरितो यावदेव प्रयाति,
त्यक्त्वा काषायं गृहमहमितस्तावदेव प्रयास्ये।
पूज्यं लिङ्गं हि स्खलितमनसो बिभ्रतः क्लिष्टबुद्धेः
नामुत्रार्थः स्यादुपहतमतेर्नाप्ययं जीवलोकः।

नन्द का यह निश्चय सुनकर उस भिक्षु ने [illegible] निवृत्ति-मार्ग का बहुत ज़्यादा उपदेश किया। [illegible] सर्गों में इसी उपदेश का वर्णन है। संसार दु[illegible]



रूप है, कोई किसी का नहीं है, इन सब बातों का विस्तार से वर्णन है। फिर इस भिक्षु ने स्त्री-निन्दा भी ख़ूब की है। जो लोग तुलसी पर स्त्री-निन्दा के कारण बिगड़ा करते हैं, उनके पढ़ने लायक़ यह प्रकरण है। नमूना लीजिए। भिक्षुजी कहते हैं—

> स्वजनः स्वजनेन भिद्यते
> सुहृदश्चाऽपि सुहृज्जनेन यत्।
> परदोष - विचक्षणाः शठा-
> स्तदनार्य्याः प्रचरन्ति योषितः।

ये दुष्ट स्त्रियाँ दूसरों के ऐब देखने में ख़ूब चतुर होती हैं और ऐसा कुछ करती हैं कि स्वजनों से लोग दूर हो जाते हैं और मित्रों में भेद पड़ जाता है।

और—

> वचनेन हरन्ति वल्गुना
> निशितेन प्रहरन्ति चेतसा।
> मधु तिष्ठति वाचि योषितां
> हृदि हालाहलं महद्विषम्।

औरतें मीठी बोली बोलकर तो चित्त वश में करती हैं; परन्तु अपने तीक्ष्ण चित्त से घातक प्रहार करती हैं। इनकी वाणी में मधु है और हृदय में हलाहल विष।

यही नहीं, किन्तु—

> न वपुर्विमृशन्ति न श्रियं
> न मतिं नाऽपि कुलं न विक्रमम्।
> प्रहरन्त्यविशेषतः स्त्रियः
> सरितो ग्राहकुलाकुला इव।

स्त्रियाँ न तो शरीर देखती हैं, न शोभा। न बुद्धि की ओर ध्यान देती हैं और न कुल या बहादुरी ही इनकी निगाह में कुछ है। अविशेष रूप से सब पर ये वार करती हैं, जैसे मगरमच्छों से भरी हुई नदियाँ हों।

> प्रविशन्त्यपि हि स्त्रियश्चिता-
> मनुबध्नन्त्यपि मुक्तजीविताः।
> अपि बिभ्रति नैव यन्त्रणा
> न तु भावेन वहन्ति सौहृदम्!

कोई-कोई स्त्रियाँ पति-वियोग में चितारूढ़ होकर जल मरती हैं, और यों प्राण छोड़कर अनुगमन करती हैं। सो यह भी प्रेम-भाव से मत समझो। असली बात यह है कि वे सांसारिक यंत्रणा नहीं सह सकतीं, इसलिए मर जाती हैं। बस, इसी प्रकार स्त्री-निन्दा है। सो, इससे हमारी बहनों को बुरा न मानना चाहिए। निवृत्ति-मार्ग की स्त्री पुरुष-जाति को भी इसी प्रकार दोष-दृष्टि से देखेगी, तभी बचेगी। हाँ, आजकल स्त्री-पुरुष आपस में नर्म परिहास करते हुए भी संयमी बने रहते हैं, यह भी सुना है!

अस्तु, इस प्रकार उस भिक्षु के उपदेश से भी जब नन्द के मन पर कुछ असर न हुआ, तब उसने जाकर बुद्ध भगवान् से सब कह दिया। बुद्ध ने यह सुनकर नन्द को बुलाया और पूछा। उसने सब साफ़ कह दिया कि मैं घर जाऊँगा। तब वे उसे लेकर आकाश में उड़ गये और हिमालय पर्वत पर पहुँचे। कवि ने यहाँ पर्वतच्छवि का थोड़ा-सा वर्णन किया है। वहाँ बन्दरों का एक समूह देखा, जिसने एक कानी बँदरिया को बाहर खदेड़ दिया। उस बँदरिया की ओर देखकर भगवान् बुद्ध ने नन्द से पूछा कि—तुम्हें यह बँदरिया ज़्यादा अच्छी मालूम होती है कि वह व्यक्ति, जिसमें तुम्हारा चित्त फँसा है—

> का नन्दरूपेण च चेष्टया च
> सम्पश्यतश्चारुतरा मता ते?
> एषा मृगीवैकविपन्नदृष्टिः
> स वा जनो यत्र गता तवेष्टिः?

इस पर नन्द ने मुस्कराकर कहा कि महाराज, आप कह क्या रहे हैं? कहाँ वह आपकी वधू सुन्दरी और कहाँ यह कानी बँदरिया!

बुद्ध भगवान् तब नन्द को लेकर स्वर्ग पहुँचे। वहाँ दिव्य अप्सराओं का नन्दनवन में देवताओं



के साथ विहार देखकर नन्द भौचक्का-सा हो गया। उसके मन की दशा देखकर भगवान् बुद्ध ने पूछा—नन्द, तुमको ये अप्सराएँ ज़्यादा अच्छी लगती हैं कि वधू सुन्दरी? नन्द ने कहा कि महाराज, सुन्दरी इनके सामने क्या है? सुन्दरी में और उस कानी बँदरिया में जो अन्तर था, वही इन देवाङ्गनाओं में और सुन्दरी में है। क्या कहना है इनके सौन्दर्य-विलास का।

भगवान् बुद्ध ने तब कहा कि देखो, तपस्या करने से स्वर्ग का यह सुख मिलता है। तुम यहाँ का आनन्द लेना चाहते हो, तो तपस्या करो। नन्द ने कहा, अच्छी बात है, मैं तप करूँगा।

तब बुद्ध भगवान् उसे वापस ले आये। उसने ऐसा घोर तप किया कि बड़े-बड़े तपस्वी भी दंग रह गये। सुन्दरी की ओर से तो उसका मन हट ही गया, सारे भूमंडल से हट गया। केवल उसी स्वर्ग-सुख की कामना रही। बुद्ध भगवान् ने जब इसे तपःशुद्ध समझा, तब एक दिन पास गये और समझाने लगे। स्वर्ग की अनित्यता विस्तार से समझाई और कहा कि इस तप से तो शाश्वत सुख मोक्ष लो। स्वर्ग तो बाद में फिर दुःखप्रद होगा, जब लौटकर यहीं मृत्युलोक में आओगे। यह उपदेश ख़ूब विस्तार से है। नन्द का चित्त शुद्ध हो गया था। उपदेश कारगर हुआ। उसे निवृत्तिमुख देखकर बुद्ध भगवान् ने फिर विस्तार से धर्मोपदेश किया है। अन्त के कई सर्गों में इसी धर्मोपदेश का विभागशः वर्णन है। जब सब उपदेश कर चुके, तब अन्त में नन्द से कहा कि अब तुम भिक्षु के रूप में संसार को मोक्ष-मार्ग का उपदेश करो—

अवाप्तकार्योऽसि परां गतिं गतः,
न तेऽस्ति किञ्चित्करणीयमण्वपि।
अतः पदं सौम्य चरानुकम्पया,
विमोक्षयन् कृच्छ्रगतान् परानपि।

सौम्य, अब तुम्हें कुछ अपने लिए करना शेष नहीं है, सब कुछ कर चुके और सर्वोत्कृष्ट दशा को प्राप्त हो चुके। इसके आगे अब तुम दूसरे सांसारि[क] लोगों का उद्धार करते हुए विचरो और दुःख में पड़े हुए जनों का उद्धार करो। देखो—

इहार्थमेवारभते नरोऽधमः,
विमध्यमस्तूभयलौकिकीं क्रियाम्।
क्रियाममुत्रैव फलाय मध्यमः,
विशिष्टधर्मा पुनरप्रवृत्तये।

× × ×

इहोत्तमेभ्योऽपि मतः सतूत्तमः,
य उत्तमं धर्ममवाप्य नैष्ठिकम्।
अचिन्तयित्वाऽत्मगतं परिश्रमम्,
शमं परेभ्योऽप्युपदेष्टुमिच्छति।

अधम पुरुष इसी दुनिया के लिए काम करता है। इससे कुछ अच्छा वह है, जो दोनों लोकों को बनाता है—जो इस लोक में अपने कर्मों से आनन्द करके स्वर्ग जाता है। इससे भी उत्तम वह है, जो इस लोक के लिए कुछ काम न करके सब कर्म स्वर्गलोक प्राप्त करने के लिए ही करता है। परन्तु जो निर्वाण के लिए उपाय करता है, वह इन सबसे उत्तम है।

पर यहाँ सर्वोत्तम पुरुष वह है, जो नैष्ठिक धर्म की प्राप्ति करके अपने परिश्रम की कुछ परवा न करता हुआ दूसरे लोगों को भी शम का उपदेश करे।

सो हे सौम्य, तुम जाकर सबको उपदेश करो मोक्ष-धर्म का, और उन्हें आश्चर्य-चकित कर दो, जो तुम्हें कामी समझते थे—

ब्रवीतु तावत्पुरि विस्मितो जनः,
त्वयि स्थिते कुर्वति धर्मदेशनाम्।
अहो बताश्चर्यमिदं विमुक्तये,
करोति रागी यदयं कथामिति।

और, जब घर में बहू तुम्हारी बाबत सुनेगी कि वे वीतराग होकर ऐसे सत्पथ पर चल रहे हैं, तो वह भी तुम्हारा अनुकरण करती हुई स्त्रियों में वैराग्य का उपदेश करेगी।



ध्रुवं हि संश्रुत्य तव स्थिरं मनः,
निवृत्तनानाविषयैर्मनोरथैः ।
वधूर्गृहे साऽपि तवानुकुर्वती,
करिष्यते स्त्रीषु विरागिणीः कथाः ।

जब वह सुनेगी कि तुम्हारा मन सब विषयों से हट गया है, तब ज़रूर उस पर असर पड़ेगा ।

और निश्चय समझो कि—

त्वयि परमधृतौ निविष्टतत्त्वे,
भवनगता नहि रंस्यते ध्रुवं सा !
मनसि शमदमात्मके विविक्तं,
मतिरिव कामसुखैः परीक्षकस्य ।

तुम जब परम तत्त्व में लीन हो चुके और परम धृति को धारण कर चुके, तो घर में रहकर भी वह वधू राग-रंग में न पड़ेगी, यह निश्चय समझो । जब किसी साधक का मन शम-दम से पवित्र हो जाय, तो फिर उसकी मति कामसुखों में कैसे पड़ सकती है ?

इस प्रकार सम्पूर्ण उपदेश जब कर चुके, तब उन परम, कारुणिक गुरुदेव की आज्ञा और उनके चरण सिर-माथे लेकर नन्द स्वस्थ, शान्त-हृदय तथा सब कामनाओं से रहित होकर वहाँ से चल पड़े, जैसे मदमस्त हाथी शिक्षा से विनयावनत हो गया हो ।

बस, फिर नन्दजी भिक्षु-वेष में संसार को धर्मोपदेश करने लगे । यही इस काव्य की कथा है ।

सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति

हम कह चुके हैं कि कथा-भाग बिलकुल थोड़ा है और कोई प्राकृतिक वर्णन भी इस काव्य में वैसा नहीं है । केवल धर्म-तत्त्वों का उपदेश ही विस्तार से है । सो, इसमें भी अध्यात्म-विषय की प्रधानता है । इसके साथ ही बुद्ध भगवान् ने नन्द को यह सब भी बतलाया है कि भिक्षु का आहार-विहार कैसा होना चाहिए, उसे कब और कितनी देर तक रात में सोना चाहिए, इत्यादि । बौद्ध-फ़िलासफ़ी की आलोचना यहाँ न की जायगी ; केवल कुछ सामाजिक तथा धार्मिक प्रथाओं का निरीक्षण ही पर्याप्त होगा, जिन पर इस काव्य से प्रकाश पड़ता है ।

इस काव्य के नायक नन्द ही हैं और शान्तरस-प्रधान है । अनुषङ्गतः शृंगार आदि का भी वर्णन है । सम्पूर्ण काव्य पढ़ने से प्रतीत होता है कि नन्द एक अच्छा गृहस्थ था, अपनी स्त्री के साथ आनन्द से रहता था । सुन्दरी भी पतिव्रता थी । यदि तिलक महाराज से सम्मति माँगी जाती, तो वे भागवत-धर्म के अनुसार नन्द के गृहस्थ-जीवन को ही और अधिक परिष्कृत करने की सलाह देते, उसे यों हठात् भिक्षु बना देना कभी पसन्द न करते ।

मालूम होता है, बौद्धधर्म में भी चेला मूँड़ने पर काफ़ी झुकाव रहा है ।

अश्वघोष के समय में भी इस देश की स्त्रियों की दशा कुछ-कुछ ऐसी ही थी । भारतीय ललनाओं में शील-सौजन्य था, पातिव्रत्य था । उस समय सती-प्रथा भी मौजूद थी । एक पद्य से यह भी प्रतीत होता है कि विधवाओं को समाज उस समय भी दुःसह 'यन्त्रणा' देता था, जिससे तंग आकर बेचारी अबलाएँ पति के साथ ही जीती जल जाना ही उत्तम समझती थीं ।

बुद्ध के मुख से कहलाया गया है कि वही सर्व-श्रेष्ठ पुरुष है, जो इस संसार को छोड़कर मोक्ष के लिए ही सब कुछ करे । इसके विरुद्ध, भागवत-धर्म में सर्वोत्तम पुरुष वह है, जो दोनों लोक बनाता है, जो संसार में रहकर परलोक बनाता है । 'राम भजे जा, काम करे जा' का सिद्धान्त भागवत-धर्म में है । तभी तो भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—'मामनुस्मर युध्य च' । मेरा स्मरण भी कर और युद्ध भी कर ।

प्रतीत होता है कि बौद्ध-मत का ही दूसरा संस्करण शांकर-मत है, जिसमें वेद-वाद का पुट है । दोनों सिद्धान्तों में कर्म-त्याग का महत्त्व समान है । अन्यान्य बातों में भी प्रायः मेल है ।



काव्य-चमत्कार

'सौन्दरनन्द' में काव्य-चमत्कार वैसा नहीं है, परन्तु कहीं-कहीं वर्णन बहुत अच्छा बन पड़ा है। हम कह चुके हैं कि इधर कवि का रुझान भी न था। उसे तो एक धर्म-काव्य बनाना था। अश्वघोष एक प्रचारक कवि थे, जिन्हें बौद्ध-धर्म का प्रचार मात्र अभीष्ट था। यही कारण है कि इसमें श्लेष आदि का लेश भी नहीं मिलता और न कोई अन्य चमत्कार ही। फिर भी, हिमालय तथा स्वर्ग आदि का वर्णन बहुत अच्छा हुआ है और शृंगार के छींटे भी अच्छे हैं।

भाषा-सम्बन्धी कुछ बातें

भाषा के सम्बन्ध में पहले लिख चुका हूँ। यहाँ मैंने कोमल और मीठे पद्य ही उद्धृत किये हैं। प्रायः ऐसे ही पद्य अधिक हैं। कहीं ही कहीं सन्नन्त, णिजन्त आदि के लिट्-लुङ के प्रयोगों की झड़ी लगी है। हाँ, लेखन-प्रमाद से बहुत जगह अशुद्ध हो गया है। कहीं-कहीं कवि का भी व्याकरण-स्खलन मिलता है, जैसे शुरू में ही—

अथोदकलशं गृह्य तेषां वृद्धि-चिकीर्षया।

'गृह्य' पाणिनि-व्याकरण से ग़लत है। इसी प्रकार दो-चार जगह कुछ मिलता है। सम्भव है, जान-बूझकर कवि ने व्याकरण की अवहेलना की हो। परन्तु यों व्याकरण की अवहेलना 'नित्य काव्य-दोष' आचार्यों ने माना है।

इन दो-चार बातों के अलावा शेष सब सुन्दर हैं। हाँ, यहाँ 'क्रीडति' के बदले 'लडति' तथा 'निरीक्ष्य' के स्थान पर 'निशाम्य' का ही प्रायः प्रयोग है।

उपसंहार

अन्त में मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह एक बहुत बढ़िया काव्य है। जब इसकी प्राचीनता पर दृष्टि जाती है, तब तो इसका महत्त्व और बढ़ जाता है। बाद में तो विकास से मिठास का आना अवश्यम्भावी है; पर शुरू में ही जहाँ ऐसी मधुरता तथा परिपाक हो, तो अवश्य आश्चर्य का विषय है।

परन्तु दुर्भाग्य से यह काव्य अभी सबको सुलभ नहीं है। बहुत दिन हुए, एशियाटिक सोसायटी ने कलकत्ते में इसे प्रकाशित कराया था, जो बहुत शुद्ध नहीं छपा था। वह अब मिलता नहीं है। भला हो विलायत के ई० एच्० जॉन्स्टन साहब का, जिन्होंने अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त करके बड़े परिश्रम से इसका सम्पादन किया और पंजाब-यूनिवर्सिटी को प्रकाशनार्थ दिया। इस यूनिवर्सिटी ने, शायद सम्पादक की सुविधा के लिए, यह काव्य लन्दन में ही छपाया है। टाइप पुराने ढंग का है और पुराने ढंग की ही छपाई है; पर बढ़िया मोटे काग़ज़ पर। प्रारम्भ में पाँच-छः पृष्ठों की भूमिका है, सम्पादक की लिखी हुई, अँगरेज़ी में। अन्त में अँगरेज़ी में कठिन शब्दों के अर्थ भी दिये हुए हैं। सो, यह सब मेरी पहुँच से बाहर है; क्योंकि मैं संसारव्यापी भाषा में पढ़ नहीं सका। इसलिए नहीं कह सकता कि सम्पादक महोदय ने क्या लिखा है और कैसा लिखा है। परन्तु यह जाने विना भी उनका परिश्रम और महत्त्व किसी से भी छिपा नहीं है। इन साहब के परिश्रम को देखकर हमें उन ऋषियों की याद आती है, उन त्यागी ब्राह्मणों के चरणों में सिर झुक जाता है, जिन्होंने वैसे-वैसे कष्ट सहकर भी हमारे वेद-शास्त्रों की उस ज़माने में रक्षा की थी।

परन्तु एक सौ चालीस बड़े-बड़े पृष्ठों के इस काव्य को नौ रुपये से भी कुछ अधिक देकर बहुत कम लोग इस देश में ख़रीदकर पढ़ सकते हैं। लन्दन में छपने के कारण ही इतनी अधिक क़ीमत रक्खी गई होगी! क्या ही अच्छा हो कि इस देश का कोई अच्छा प्रकाशक सज-धज के साथ इसे प्रकाशित कराये, एक अच्छी सरल टीका के साथ!

कविता-प्रेयसी

श्रीसीताराम 'प्रभास'

(१)

चन्दन-वन की छाया पी
हो मदमाती दीवानी-सी;
परियों से नंदन-निकुञ्ज की
कथिता-करुण - कहानी - सी।
सौ-सौ छन्दों में गाती 'गुन-गुन'
मिलिन्द की रानी - सी;
शुभ्र-चन्द्रिका-चर्चित - चुम्बित
शीतल - रजत - हिमानी - सी।

(२)

प्रकृति-नवेली पंचवटी में
तेरी वेणी गुम्फन - मग्न;
सुषमा निज तूली से तेरा
प्रांगण अनुरञ्जन - संलग्न।
प्राची में घूँघट सरका
सहमी निहारती रह सनयन,
कण-कण में देती उँडेल
यौवन, आकर्षण, सम्मोहन!

(३)

श्याम-घनों में रख बटोर
राका-कान्ता का कुन्तल पाश;
द्रुत पतझड़ की जीर्ण-कुटी में
रचती कोकिल का मधुमास!
कीचक-झुरमुट कँपा तान
सूनेपन की उपशिरा-शिरा;
तन्द्रा के कानन में विप्लव
मचा रही क्यों व्यर्थ निरा?

(४)

गोधूली के पार प्रान्त से
आती जब रजनी चुपचाप;
उडु-गण के आँगन में
करने स्वप्न-परी से मधुरालाप।
तभी हुई तुम कुसुम कपोलों पर
चुम्बन के चिह्न अमिट!
गया तभी था लघु-बुद्बुद में
विस्तृत पारावार सिमिट!

(५)

ऊषा-सन्ध्या की मादक-
मदिरा की प्याली छलकाती;
क्षितिज-हर्म्य पर पिरो माल
ओसों की क्षण-क्षण अँगड़ाती।
नित बिखेरती मुकुलों का
सर्वस्व मधुल-मधुपों की ओर;
किरण-डोर पकड़े सिखलाती
लोरी लहरों को निशि, भोर।

(६)

जल-भौंरों के पंख चूम
उद्दाम तरंगों पर अंचल—
लहराता, इठलाती बहती
रहती इधर - उधर चंचल।
अमा - शर्वरी म्लान-मना के
आँसू चुन-चुन आत्म-विभोर;
सँजो रही विकला संसृति की
डाली में, चल मार्ग अछोर।



(७)

निर्वाणोन्मुख दीप - पुष्प
ऊषातारों का पीत - पराग;
लिये विजन में भटक रही
लेपन कर तन में सन्ध्या-राग।
निज छाया में ही प्रतिबिम्बित,
मंथर - गति में मधुर बनी!
दूर कभी, हो पास कभी,
रुनझुन पायल, अयि सुधासनी!

(८)

तुहिन - आर्द्र के तुंग - शृंग
के निर्झर की चल लहरी में;
लोने पद्म - पलाशों पर,
आलोड़ित परसी गहरी में;
करती किन पूर्णेन्दु-रश्मियों पर
मंजुल अभिसार अली!
लादे सरित-हिलोरों पर
तनिमा, यौवन का भार अली!

(९)

नयनों में नीलिमा गगन की
लेकर घन पर नील निचोल;
उड़ा रही, दिशि-दिशि में
तेरे ही अपांग पर नखत अमोल।
टूट रहे किस निर्ममता से गा
असीम के नीरव गान!
सुला रही औ' जगा रही
कितनी आशाएँ, री अम्लान!

(१०)

अपनी द्युति से ही दीपित
पथ से जा रही कहाँ अभिराम?
होगी यात्रा - अंत तुम्हारी
जाने कब, ओ पूर्ण, अकाम!
आर-पार तुम झलमल-झलमल
झलक सतत नभ से कुछ दूर,
इन्द्र - जाल में फँसी तड़पती
थक अनंत पथ में भरपूर!

(११)

छिन्न-कामना के खँड़हर में
चार अश्रु हा, टपकाकर;
जम्बु-विपिन-देहली पार कर,
तरु-'मर्मर' से सिहर-सिहर—
व्रतति - वल्लरी में कंपन भरती
उस मौलसिरी के पास;
तम में बाल दीप चपला के!
व्यथित हुई लेटी सोच्छ्वास!

(१२)

ले स्मर-शर तुम लक्ष्य कर
रही शक्र-चाप पर चढ़ी हुई;
मोहन के मुरलिका-रन्ध्र से
चुपके धीरे कढ़ी हुई।
सन-सन शिशिर-समीरण में तुम
भेज रही किसको संदेश?
क्या-क्या? भेज चुकी हो, भेजोगी
किस ओर? कहाँ? किस देश?

(१३)

कस्तूरी-सी नित्य सुवासित,
तुम वासकसज्जा उद्भ्रान्त।
सुखा रहीं नीहार-आर्द्र अलकें
निज चन्द्रातप में कान्त!
विकल-विश्व के रोम-रोम की
सिहरण, नवरस की कल-वेलि!
अभिनव भावों, इच्छाओं से
करती रहती सर में केलि!

(१४)

तेरी पद - विक्षेप - प्रगति में
भाग्य सुमन के जाग रहे;
'विरल मधुरिमा रहे'—भ्रमर
कहते 'तुझसे अनुराग रहे!'



सावन की रिमझिम बूँदों पर
सुना प्रिया से मधुर मलार;
सेज सजाती, करवाती आलिंगन
प्रिय से बाहु पसार!

(१५)

चिर तरुणी, इंगित पर
कदली-पत्रों पर जागी तितली;
अन्तरिक्ष में उड़ी बलाका,
मधुवन में मधुकरावली!
तेरी साँसों को सुरभित करता
है होम - पूत पवमान।
छुईमुई छविछुई, तुम्हीं दोनों—
उपमेय और उपमान!

(१६)

बजा-बजा वीणा तुम अलसा
रख देती किसलय की ओट;
तभी लोक-लोकान्तर विस्मित,
घुमान, मूर्छित खा चोट!
उधर कर रही नर्तन बहु-विध,
इधर शून्य व्याकुल होता;
ताल-ताल पर थिरक रही
निर्झरिणी, जगत् धैर्य खोता।

(१७)

विहग-मालिका के नीड़ों में
फूँक मदिर जादू के गीत;
जुड़ा छुड़ाती कितने प्राणों को
प्राणों से, हाय अभीत?
धूम्र-तिमिर के जलद-पंख को
तुमने ही गति दान किया।
चातक-कुल के रुँधे कंठ से
'स्वाति! स्वाति!' आह्वान किया।

(१८)

बहुधा बसुधा पर सूखे पत्ते
गिर पड़ते जो सानंद,
आशामय तेरी ही भ्रू-भंगी
पर टहनी से निस्पंद!
सफल किये तुमने तुलसी के
सज्जित मनहर वन्दनवार!
कमल-नाल से, लिख देती हो
'नलिनी-अलि' के आकुल प्यार।

(१९)

मचल रही यूथिका अलक्तारुण
चरणों पर झरने को।
व्यजन डुला अनिलान्दोलित-
वीरुध उत्सुक श्रम हरने को।
पथ की हरित्-मुक्त-दूर्वा है
सुहागिनी दब चरण-तले।
कभी न तुझसे लालित चंपा
को कोई छू दे—मसले!

(२०)

मह-मह कर दे मेरी कुटिया
तेरे अंगराग की गंध!
मुखरित कर दे सूनापन तेरी
पद-किंकिणि-ध्वनि, कटिबंध!
तेरी मुस्कानों से ही मेरे
जीवन का हो परिचय!
मैं तेरा प्यारा, तू प्यारी,—
मेरा तेरा हो परिणय!



श्रीमनहर बरवे से मेरी भेंट

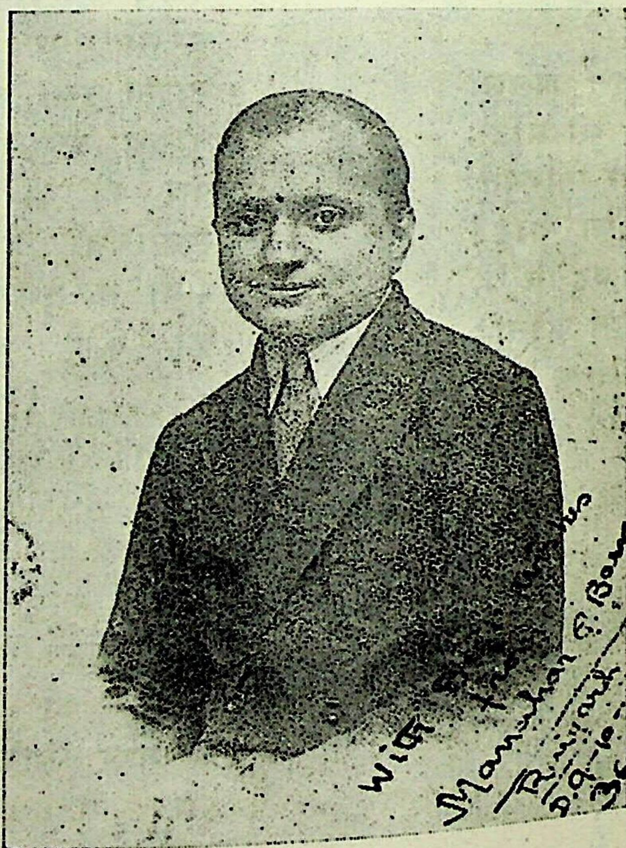
पाण्डेय मुकुटधर शर्मा

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के गत नागपुर अधिवेशन का अवसर था। सीतावल्डी में पं० प्रयागदत्तजी शुक्ल के यहाँ मैं ठहरा था। एक दिन उषःकाल में कोकिल की कुहू-ध्वनि * सुनकर तबियत न-जाने कैसी हो गई। उसी दिन अखिल-भारतवर्षीय कवि-सम्मेलन था। उसके संयोजक सहृदय-शिरोमणि कविवर पं० रामनारायणजी मिश्र का प्रेम-पूर्ण आग्रह था। उपयुक्त अवसर देखकर 'आये हैं' समस्या की पूर्ति के प्रयत्न में काग़ज़-कलम लेकर मैं कुछ गुनगुनाने लगा। प्रयाग के सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी श्रद्धेय पं० जगन्नाथ-प्रसादजी शुक्ल तथा पण्डित लक्ष्मीधरजी वाजपेयी बैठे हुए थे। मैंने जब पढ़ा—

'भारत कभी था प्रतिभा-रत परन्तु यहाँ
आज जड़ता ने पैर ज़ोर से जमाये हैं'

तब दोनों महानुभावों ने प्रशंसा की। २ और तुरन्त बन गये।

कोकिल की कुहू-ध्वनि अभी भी रह-रहकर कानों में अमृत-वर्षा कर रही थी। इस नैसर्गिक सङ्गीत के श्रवण से मेरे मन-प्राण सङ्गीत-मय हो रहे थे। ठीक इसी समय सड़क पर बैण्ड की आवाज़ सुनाई पड़ी और मुहल्ले के बच्चों ने हरे-पीले रंग के काग़ज़ लाकर दिये। देखा, आज श्रीवेङ्कटेश बाल... भवन में श्री० मनहर बरवे का संगीत-समारोह है। इस नाम में ही मेरे लिए एक आकर्षण था। एक दम २०-२२ वर्ष पहले की बात याद आ गई, कि मैंने सबसे पहले 'सरस्वती' में संगीतज्ञ बालक श्रीमनहर बरवे का सचित्र परिचय पढ़ा था। तब से समय-समय पर उनके सम्बन्ध में सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में ...



श्रीमनहर बरवे

---

* शुक्लजी के मकान से कोकिलों का कल-कूजन-श्रवण बड़ा आनन्ददायक होता है।

बराबर पढ़ता रहा हूँ। विचार हुआ कि आज यह संगीत-समारोह अवश्य देखा जाय। रात्रि के ९ बजे के लगभग जुम्मा-तालाब में श्रेणीबद्ध विद्युत्-दीप-माला के प्रतिबिम्ब का दिव्य दृश्य देखते हुए जब मैं लौट रहा था, तब मेरी हृदय-वीणा श्री० बरवे की वीणा के झङ्कार से झंकृत हो रही थी।

उसी दिन ७॥ बजे सम्मेलन की अन्तिम बैठक थी और उसके बाद ही कवि-सम्मेलन था। जब मैं सीताबर्डी के चौराहे से उत्तर की ओर मुड़ा तो वाई० एम्० सी० ए० के कम्पौंड से लाउड-स्पीकर किसी के कविता-पाठ की आवाज़ सड़क तक पहुँचा रहा था। मैंने समझा 'कवि-सम्मेलन' शुरू हो गया है। इसी लिए आज ख़ासकर मैं मित्रों से रोका गया था, मुझे न पाकर वे क्या कहेंगे, मुझे यही ख़याल आने लगा। मैंने कहा—श्री० बरवे के नाम से आज यही सही। जब डेरे पर पहुँचा तो पता चला, मेरे सहवासी सब कब के रवाना हो चुके हैं। नित्य-कृत्य तथा भोजनादि से निवृत्त हो मैं सम्मेलन के स्थान पर पहुँचा। देखता हूँ तो सम्मेलन की कार्यवाही जारी है। पता चला वह कविता, जिसकी आवाज़ मैंने सड़क से सुनी थी, सेकसरिया-पुरस्कार-प्रदान के समय पुरस्कार पानेवाली महिला-कवि ने पढ़ी थी। कवि-सम्मेलन तो १ बजे रात को शुरू हुआ।

श्री० बरवे से भेंट करने की मेरी इच्छा नागपुर में ही हुई थी। पर वहाँ इतना कार्याधिक्य था कि इसके लिए अवकाश मिलना असम्भव था। ईश्वर की कृपा से मेरी यह इच्छा अब पूरी हुई। धन्यवाद है रायगढ़-नरेश श्रीमान् राजा चक्रधरसिंह साहब को, जिनका निमंत्रण पाकर अब की श्रीगणेशोत्सव के अवसर पर श्री० बरवे अपनी मण्डली-सहित रायगढ़ पधारे और उनसे मिलने का यह अवसर मुझे अनायास हाथ लगा।

आज से ८-१० वर्ष पूर्व श्रीमान् रायगढ़-नरेश की कृपा से मुझे यहीं स्वर्गीय सङ्गीताचार्य श्रीविष्णुदिगम्बर से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, और मैंने अपनी भेंट का वर्णन श्रीविष्णुदिगम्बर के चित्र-सहित इसी 'माधुरी' में प्रकाशित कराया था। आज मैं आप लोगों को श्री० बरवे से अपनी भेंट का हाल सुना रहा हूँ। साथ ही बिलकुल हाल का उनका एक चित्र भी दिया जा रहा है।

सबसे पहली बात जिससे मैं प्रभावान्वित हुआ, वह थी श्री० बरवे की सरलता और सादगी। फ़र्श पर दरी बिछी थी, उस पर ऊनी ग़लीचा पड़ा था, कुछ गद्दे और तकिये रक्खे थे, आप सादी धोती और ढीला कुरता पहने बैठे थे। अवस्था २५-२६ वर्ष, गौर-वर्ण, उन्नत ललाट, चौड़ा चेहरा, बड़ी-बड़ी सरस आँखें, जिनसे भोलापन टपक रहा था। स्वागत-सत्कार के बाद मेरा ध्यान कमरे की दीवार पर टँगे हुए एक चित्र की ओर सहसा आकृष्ट हो गया। दो प्राकृतिक दृश्यवाले रङ्गीन तैल चित्रों के बीच में यह चित्र-पट बड़ा ही सुन्दर और भव्य जान पड़ता था। कमरे की परिमित सजावट श्री० बरवे की परिमार्जित रुचि की परिचायक थी। तो मैंने विना किसी कठिनाई के जान लिया कि वह चित्र श्री० बरवे के पिताजी का है, आकृति में इतनी अधिक समानता थी। सर्वप्रथम श्री० बरवे के पिताजी की ही चर्चा चली। मुझे इस सम्बन्ध में जानने की उत्सुकता थी; क्योंकि मैं जानता था, श्री० बरवे, जो आज भारत-प्रसिद्ध ही नहीं, बल्कि जगत्प्रसिद्ध हो रहे हैं, उसका सम्पूर्ण श्रेय उनके स्वर्गीय पिता को ही है। उनका पूरा नाम था श्रीगणपतराव-गोपालराव बरवे। आप थे तो महा-राष्ट्र ब्राह्मण, पर जन्मस्थान आपका बड़ौदा था और गुजरात ही अधिक करके आपका कार्य-क्षेत्र रहा। इसी कारण आपके अधिकांश ग्रंथ गुजराती में ही लिखे गये हैं। आप राजकोट के राजकुमार-कालेज में संगीत के अध्यापक थे, जूनागढ़, भावनगर आदि के राजदरबारों में रह चुके थे। आपने सम्पूर्ण भारतवर्ष में भ्रमण कर संगीत-सम्बन्धी प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थों की खोज की थी। संगीत-शास्त्र का



आपका अध्ययन गंभीर था और आपने इस विषय के कई ग्रंथ लिखे थे। श्री० बरवे ने उनकी लिखी कई किताबें मुझे बतलाईं।

इसके बाद मैंने जानना चाहा कि किस प्रकार के वातावरण में श्री० बरवे का जन्म, लालन-पालन तथा शिक्षा हुई थी। मुझे मालूम हुआ कि जिस समय उनका जन्म हुआ, उस समय उनके पिता बम्बई में एक स्वतन्त्र संगीत-विद्यालय का संचालन करते थे। उन्होंने ऐसा प्रबन्ध कर रक्खा था कि श्री० बरवे का जन्म उसी संगीत-विद्यालय के भवन में ही हुआ। बचपन में इनका शरीर कृश था, पर सिर बड़ा था। इनके पिता जब ये बैठते तो इन्हें एक पट्टे से बांध रखते थे, नहीं तो सिर, वजन के कारण, एक ओर को झुक जाता था। इनके पिता अपने प्राथमिक छात्रों को स्वरों की पहचान कराया करते थे। आप हारमोनियम के परदों पर उँगली रखते और छात्र स्वरों के नाम बोलते जाते थे। इस प्रकार उनकी परीक्षा हुआ करती थी। श्री० बरवे की एक बड़ी बहन है। एक दिन उनके पिता बाहर से घूमकर जो घर आये तो देखते हैं, दोनों भाई-बहन क्रीड़ाक्रम से उसी क्रिया की पुनरावृत्ति कर रहे हैं। वे चुपचाप छिपकर देखने लगे—बहन परदों पर उँगली रखती है और बालक मनहर भिन्न-भिन्न स्वरों के नाम ठीक-ठीक बतला रहा है। इस समय उनकी अवस्था २½-३ साल से अधिक नहीं थी। पिता को यह समझते देर न लगी कि बालक में पूर्व-जन्म के संस्कार से संगीत का ज्ञान बीजरूप से विद्यमान है। उसे पल्लवित और पुष्पित करने के लिए उन्होंने कोई प्रयत्न उठा नहीं रक्खा। बम्बई में उनका एक सार्वजनिक प्रदर्शन हुआ। एक अल्पवयस्क बालक के असाधारण संगीत-ज्ञान का परिचय-लाभ कर वहाँ के धनी-मानी नागरिकों ने उन्हें एक हज़ार रुपयों की एक थैली भेंट की। इसके थोड़े ही दिन पीछे बम्बई में भारत-कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू की अध्यक्षता में एक विराट् सार्वजनिक सभा की गई, जिसमें इन्हें एक स्वर्ण-पदक प्रदान किया गया। श्रीमती नायडू ने इनके पिता को परामर्श दिया कि आप इस बालक को लेकर देश भर में भ्रमण कीजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण को इसके चमत्कार देखने का अवसर दीजिए। उन्होंने ऐसा ही किया। ... में इनका दूसरा सार्वजनिक प्रदर्शन हुआ। ... की म्यूनिसिपैलिटी ने इन्हें एक मान-पत्र दिया। फिर तो आप जहाँ जाते, वहीं जनता आपके संगीत-कला-कौशल से मन्त्र-मुग्ध होकर आपका सम्मान करती थी। आज तक आपको अनेक सार्वजनिक संस्थाओं तथा बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं से २०० से अधिक स्वर्ण-पदक तथा सैकड़ों प्रशंसा-पत्र और मान-पत्र प्राप्त हो चुके हैं। मैंने श्री० बरवे से कहा, 'शैशवावस्था में ही आप संगीत में इतने व्युत्पन्न हो गये, जितने कि लोग आजीवन परिश्रम करने पर भी नहीं हो पाते। पुनश्च एक ही वाद्य-यन्त्र में नैपुण्य प्राप्त करना साधारण लोगों के लिए कठिन होता है, आपको समस्त वाद्य-यन्त्रों में निपुणता प्राप्त हो गई, इन बातों से सिद्ध है कि आप एक संस्कारी जीव हैं।' इस पर आपने कहा, जो हो, पर इतना तो मैं अवश्य कहूँगा कि मेरा संगीत-प्रेम स्वाभाविक है। मैं स्वप्न में भी संगीत सुना करता हूँ और उनसे नई-नई बातें सीखा करता हूँ। इसका कारण ... जो हो, पर बात बिलकुल सत्य है। मैं आपको एक घटना सुनाता हूँ। एक बार स्वप्न में मैंने देखा, एक तेजःपुञ्ज गायक जोगिया राग ... रहा है। उसने ऐसे करुण सुर पकड़े हैं कि उसे श्रवण कर उपस्थित सम्पूर्ण समाज अश्रु-मोचन कर रहा है, मैं भी रो रहा हूँ। इसी समय ... खुल गई, देखता हूँ, तकिया आँसुओं से ... हुआ है। मैंने तुरन्त ही उस सुर को नोट-बुक में लिख लिया। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। ऐसे स्वप्न मुझे बहुधा हुआ करते हैं, ... अपने सिरहाने नोट-कापी और पेन्सिल हमेशा ...



रचना करता हूँ। दिन में भी, जाग्रत् अवस्था में भी, कभी-कभी मैं अपने मस्तिष्क में विशेष प्रकार के सुरों का कम्प अनुभव करता हूँ। रेडियो के स्टेशन से रेडियो-यन्त्र जिस प्रकार शब्दों को पकड़ता है, ठीक उसी प्रकार मेरा मस्तिष्क भी उन सुरों को ग्रहण करता है। नहीं मालूम, वे सुर कहाँ से आते हैं। मैं उन्हें तत्काल नोट कर लेता हूँ। इन बातों से मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र कभी-कभी स्वप्न में कविता करते थे और आँखें खुलने पर उसे तुरन्त लिख लेते थे। मुझे भी कभी-कभी ऐसे स्वप्न हुए हैं, जिनमें मैं कविता लिख रहा हूँ—आँखें खुलते ही मैंने उन्हें लिपि-बद्ध करना चाहा है, पर स्मरण आते-आते उनका विस्मरण हो गया है। इन स्वप्नों का कारण मनोवैज्ञानिक हो सकता है। पर यह भी सुना गया है कि कभी कोई महात्मा किसी को स्वप्न में जड़ी-बूटी या ओषधि बता जाता है। ईश्वर की लीला विचित्र है। अतएव ऐसी बातें असम्भव नहीं कही जा सकतीं।

मैंने श्री० बरवे से उनके दैनिक कार्य-क्रम के सम्बन्ध में पूछा तो मालूम हुआ कि प्रति दिन प्रातः ६ बजे से ८ बजे तक वे अपना दैनिक अभ्यास करते हैं। प्रथम २० मिनट षडज से कंठ-शोधन कर २० मिनट स्वर का अभ्यास करते हैं। पश्चात् गान-वाद्य में प्रवृत्त होते हैं। इसी प्रकार सन्ध्या को भी २ घंटे नित्य अभ्यास करते हैं। मुझे यह भी मालूम हुआ कि आप प्रति दिन नियमित रूप से ईश्वर की प्रार्थना करते हैं। उनका विश्वास है कि ईश्वर की अराधना में ही वास्तविक शान्ति और सुख है।

उन्होंने मुझसे कहा, संगीत तो 'स्वान्तः सुखाय होना चाहिए', किसी मनुष्य को रिझाने के लिए नहीं। और वह स्वान्तः सुख भगवद्भजन और लोककल्याण-साधन से आप ही आप प्राप्त होता है। कला के सम्बन्ध में एक जन्म-जात कलावन्त के ये विचार माननीय हैं। इस समय जब कि पाश्चात्य विचारों के अन्ध-अनुकरण में हमारे कुछ नवयुवक कलाकार 'कला कला के लिए' (Art for art's sake) की पुकार मचा रहे हैं, श्री० बरवे की यह धारणा देश और जाति के लिए 'वरदान'-रूप है, इसमें सन्देह नहीं।

उन्होंने यह भी कहा कि यह सत्य है कि मैं सर्वसाधारण में प्रदर्शन करता हूँ तथा राजा-महाराजाओं को प्रसन्न करने के लिए भी गाता हूँ, पर सच्चा संगीत तो तभी प्रकट होता है, जब कभी मैं इन संसारी कार्यों से अवकाश पाकर अपने वाद्ययन्त्र के साथ अकेले बैठता हूँ और तभी मुझे हार्दिक प्रसन्नता प्राप्त होती है।

इसके बाद मैंने कुछ प्रश्न पूछे जो उनके उत्तर के साथ प्रश्नोत्तररूप में संक्षेप में दिये जाते हैं—

प्रश्न (१) संगीत किसे कहते हैं ?

उत्तर—गान, वाद्य और नृत्य के समुच्चय को संगीत कहते हैं।

प्रश्न (२) संगीत का मुख्य उद्देश्य क्या है ?

उत्तर—भगवद्भजन द्वारा भगवद्भक्ति की प्राप्ति।

प्रश्न (३) आध्यात्मिक दृष्टि से संगीत का क्या महत्त्व है ?

उत्तर—शुद्ध संगीत से आत्मविकास होता है। इस प्रकार वह आत्मोन्नति में सहायक है, पर इसके दुरुपयोग से अवनति भी होती है।

प्रश्न (४) क्या इहलौकिक और पारलौकिक दृष्टि से संगीत के उद्देश्यों में सामञ्जस्य है ?

उत्तर—संगीत द्वारा मनुष्य यश और अर्थ अर्जन कर सकता है, लोक-कल्याण-साधन कर सकता है, और भजन द्वारा भगवद्भक्ति भी प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार इहलौकिक और पारलौकिक दृष्टि से संगीत के उद्देश्यों में बराबर सामञ्जस्य है।

प्रश्न (५) हमारे भारतीय संगीत में जो सप्त स्वर पाये जाते हैं, उनकी वैज्ञानिकता क्या है ? क्या पाश्चात्य संगीत में भी ये सातों स्वर पाये जाते हैं ?

उत्तर—हमारे सप्त-स्वरों की वैज्ञानिकता स्वयं सिद्ध है। इन सप्त-स्वरों में संसार के सब स्वर



आ जाते हैं । ये सर्वत्र ही पाये जाते हैं, इनका वैज्ञानिक ज्ञान किसी को न हो, यह बात दूसरी है।

प्रश्न (६) भारतीय वाद्य-यन्त्रों में सबसे प्राचीन यन्त्र कौन है ? अन्यान्य वाद्य-यन्त्रों के आविष्कार के सम्बन्ध में क्या आप हमें कुछ बतला सकते हैं ? सम्पूर्ण वाद्य-यन्त्रों को कितने विभागों में बाँटा जा सकता है ?

उत्तर--सबसे प्राचीन वाद्य-यन्त्र वीणा है, पर इससे भी प्राचीन मैं तुम्बरु को समझता हूँ । इसी में परदे लगाने से वीणा बनी, ऐसा मेरा अनुमान है। सितार प्राचीन वाद्य नहीं है। कहते हैं, अमीर ख़ुसरो ने इसे बनाया । मृदङ्ग प्राचीन वाद्य है । उसके अनुकरण में पीछे पखावज बना और इसके भी पीछे मृदङ्ग या पखावज के दोनों हिस्सों को तबला जोड़ी के रूप में अलग-अलग कर दिया गया। मुरली या वंशी भी प्राचीन है। इसके आचार्य भगवान् श्रीकृष्ण हैं । हारमोनियम का आविष्कार योरपवालों ने किया है। सम्पूर्ण वाद्य-यन्त्रों को ४ भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) ततः या तन्तु-वाद्य
(२) अवनद्ध जिन पर चर्म मढ़ा हो
(३) घन जो ठोस हों और
(४) शुषिर जो सछिद्र हों

प्रश्न (७) क्या आप भरत-मुनि के 'नाट्य-शास्त्र' और नन्दिकेश्वर के 'अभिनय-दर्पण' पर तुलनात्मक दृष्टि से कुछ थोड़ा प्रकाश डाल सकते हैं ?

उत्तर—इस विषय पर मुझे विचार करना पड़ेगा । पर भरत-मुनि का 'नाट्य-शास्त्र' बहुत प्राचीन है । नन्दिकेश्वर इनके बहुत पीछे हुए हैं।

प्रश्न (८) क्या आप संगीत के उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों को छोड़कर कुछ अन्य प्राचीन ग्रन्थों के नाम बता सकते हैं ?

उत्तर—भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' तथा नन्दिकेश्वर के 'अभिनय-दर्पण' को छोड़कर संगीत-सम्बन्धी कुछ अन्य प्राचीन ग्रन्थों के नाम ये हैं—शार्ङ्गदेव का 'संगीत-रत्नाकर', सोमदेव का 'राग-विबोध', अहोबल पंडित का 'संगीत पारिजात'। इनके सिवा 'संगीत-दर्पण', 'चतुर्दण्डि-प्रकाशिका' आदि कुछ अन्य ग्रन्थ भी प्राचीन हैं । दामोदर, वेङ्कटमखी, पुण्डरीक, बिट्ठल आदि संगीत के कुछ अन्य ग्रन्थकार भी हो चुके हैं ।

प्रश्न (९) गान, वाद्य और नृत्य इन तीनों में आत्म-प्रकाशन की दृष्टि से कौन अधिक महत्त्व रखता है ? नृत्य में पद-संचालन और अन्यान्य अङ्ग-संचालन का महत्त्व की दृष्टि से कोई तारतम्य है या ये समान महत्त्व के हैं ? हस्तक, भ्रू-भङ्गिमा, स्मित और कटाक्ष का इनमें क्या स्थान है ?

उत्तर—गान, वाद्य और नृत्य ये तीनों ही आत्म-प्रकाशन (Self-expression) में परस्पर सहायक हैं । इसी लिए आत्म-प्रकाशन के लिए इन तीनों का समुच्चय आवश्यक है । नन्दिकेश्वर के 'अभिनय-दर्पण' में नृत्य के भेदों पर प्रकाश डाला गया है। उसके अनुसार नृत्य के ३ भेद हैं—

(१) नाट्य—जिसको नाटक कहते हैं।
(२) नृत्य—अभिनय-पूर्वक पद-संचालन।
(३) नृत्त—अभिनय-पूर्वक स्वर-ताल-बद्ध विभिन्न अंगों का संचालन ।

हस्तक इत्यादि का नृत्य में प्रमुख स्थान है; क्योंकि ये भाव-प्रकाशन के साधन हैं। पर इनका सौन्दर्य इनके उचित उपयोग पर ही अधिक अवलम्बित रहता है ।

प्रश्न (१०) भारतवर्ष में सङ्गीत-प्रधान देश तैलंग कहा जाता है, क्या यह ठीक है ?

उत्तर—हाँ, मैं भी यही कहता हूँ ।

प्रश्न (११) स्वर्गीय संगीताचार्य श्रीविष्णु-दिगम्बर और स्व० श्रीभातखण्डे तथा स्व० नर्त्तकाचार्य श्रीगिरिधारीलाल के सम्बन्ध में आपकी क्या धारणा है ?

उत्तर—स्व० संगीताचार्य श्रीविष्णु दिगम्बर और स्व० श्रीभातखण्डे के विषय में मेरी उच्च धारणा है । ये दोनों संगीत में पारंगत थे। श्री० विष्णुदिगम्बर को ही विशुद्ध भारतीय संगीत की

...नृति तथा प्रचार का श्रेय है। स्व० नर्त्तकाचार्य ...बिहारीलाल का शरीर-लाघव प्रशंसनीय था, ...मैंने सुना है।

प्रश्न (१२) आजकल के श्रीउदयशंकर तथा ...लीपकुमारराय इन दोनों अन्तर्जातीय ख्याति ...के व्यक्तियों के सम्बन्ध में क्या हम आपका कुछ ...वक्तव्य सुन सकते हैं ?

उत्तर—मैंने इन दोनों महाशयों के सम्बन्ध में ...समाचार-पत्रों में पढ़ा है। मुझे खेद है कि इन्हें ...देखने-सुनने का सौभाग्य मुझे अभी तक प्राप्त नहीं ...हुआ है। अतएव इनके सम्बन्ध में कुछ विचार ...प्रकट करने में मैं असमर्थ हूँ।

प्रश्न (१३) भारतीय रागों में सर्वश्रेष्ठ राग ...कौन है, जो मधुरता में सबसे बढ़कर हो ?

उत्तर—इस प्रश्न के उत्तर में मत-भेद हो सकता है। यह बात अपनी-अपनी रुचि पर निर्भर है। मैं ...भैरवी, काफ़ी, बागेसरी, पूरिया, बसन्त, ...मालकोस आदि को श्रेष्ठ और मधुर ...समझता हूँ।

प्रश्न (१४) भिन्न-भिन्न रागों के लिए हमारे ...में जो भिन्न-भिन्न समय रक्खे गये हैं, इसका ...तत्त्व क्या है ?

उत्तर—रागों का समय-विभाग बड़ा महत्त्व-...पूर्ण है। वह हमारे प्राचीन आचार्यों के विज्ञान-...ज्ञान का परिचायक है। समय-विरुद्ध राग जमता ...नहीं, न उससे आनन्द ही आता है।

प्रश्न (१५) 'संगीत-दर्पण' आदि प्राचीन ...ग्रन्थों में राग और रागिनियों के भिन्न-भिन्न रूपों ...का जो वर्णन मिलता है, उसके सम्बन्ध में आपका ...मत क्या है ?

उत्तर—इतना तो आधुनिक वैज्ञानिक स्वीकार ...करते हैं कि सुरों के भी वर्ण और आकार होते हैं। ...स्वर-विज्ञान का सम्पूर्ण विकास होने पर इन बातों ...की सत्यता सिद्ध होगी।

प्रश्न (१६) राग-रागिनियों के सम्बन्ध में ...जो विलक्षण बातें प्रवादरूप से प्रचलित हैं—जैसे दीपक राग से दीपक का जल जाना, मलार से मेघों का छा जाना आदि, इनके सम्बन्ध में आपका क्या वक्तव्य है ?

उत्तर—यद्यपि आजकल ये बातें देखने में नहीं आती हैं, तथापि इन्हें एकदम निर्मूल नहीं कहा जा सकता। सुरों में गति और शक्ति होती है, आकर्षण होता है, सुरों के संघर्ष से विद्युत् उत्पन्न हो सकती है। आजकल संगीत के ऐसे साधक ही कहाँ रहे ? जो दो-चार हैं भी, उन्हें राजाश्रय के अभाव से संगीत को जीविका का साधन बनाये फिरना पड़ता है। इसके सिवा संगीत की साधना के लिए ब्रह्मचर्य भी अत्यन्त आवश्यक है। संगीत से रोगों के दूर करने में भी सहायता मिल सकती है। मैं शीघ्र ही Sonopathy का आविष्कार करने-वाला हूँ। मलेरिया का एक कीटाणु लिया जाय और Vibrometer (स्वर-मापक-यन्त्र) अथवा Tuning Pipe (स्वर-चुम्बक-नलिका) की सहा-यता से देखा जाय कि किस स्वर से उस कीटाणु का नाश होता है। मलेरिया की चिकित्सा में उस स्वर की सहायता ली जाय तो उसका उपशम शीघ्र हो सकता है। सुयोग्य वैद्य और चिकित्सक अपनी चिकित्सा को किसी तरह हानि पहुँचाये विना, रोग के निराकरण में, इस विधि से सहा-यता ले सकेंगे।

प्रश्न (१७) क्या आप रागों के क्रम-विकास (Evolution) के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाल सकते हैं ?

उत्तर—सामवेद ही आदि-ग्रन्थ है, जो गाया जाता था। साम-गायन प्रसिद्ध है। दक्षिण में अभी भी वीणा आदि यन्त्रों के साथ वेद-मन्त्रों का गान होता है। ६ राग और ३६ रागिनियों का वर्णन प्राचीन संगीत-ग्रन्थों में पाया जाता है। ठुमरी, टप्पा आदि पीछे के हैं।

प्रश्न (१८) राग और रागिनी में क्या अंतर है ?

उत्तर—रागिनी में कोमलता अधिक होती है। यह बात प्रत्यक्ष सुनने से मालूम होगी। यदि आप



कल ६ बजे सबेरे आ सकें तो मैं आपको यह प्रत्यक्ष बतलाने की चेष्टा करूँगा।

इस प्रश्नोत्तर के बाद आज की भेंट समाप्त हुई। श्री० बरवे जहाँ ठहराये गये थे, मेरा मकान वहाँ से दूर नहीं है। मैं दूसरे दिन सबेरे ठीक ६ बजे पहुँचा। देखता हूँ तो श्री० बरवे तानपूरा लिये सङ्गीत के समाराधन में संलग्न हैं। सामने घड़ी रक्खी है। दैनिक अभ्यास षडज से कण्ठ-शोधन तथा स्वर के आलाप का हो जाने पर, सङ्केत पाकर, श्री० विनायकरावजी तबला-जोड़ी के साथ पहुँचे। 'जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा' से श्रीगणेश हुआ। इसके बाद भैरवी गाई गई—'कर ले रे मन हरि के भजन' अमृत की वर्षा हो गई। मैं तो तल्लीन हो गया। गायक और वादक का भी यही हाल था। बिलकुल स्वाभाविक सङ्गीत था। बनावट की बू तक नहीं थी।

इसी समय कमरे में एक हृष्ट-पुष्ट गौर-काय कांतिवान् सज्जन पधारे। श्री० बरवे ने बतलाया, ये मेरे बहनोई हैं—श्रीमहादेव-काशीनाथ काले। आप एक उच्च कोटि के गायक हैं। पूना के सुप्रसिद्ध स्व० श्रीभास्कर राव बखले के शिष्य हैं। श्री० बखले के तीन प्रसिद्ध शिष्यों में एक आप भी हैं। अन्य दो सज्जन हैं महाराष्ट्र के अभिनय-सम्राट् श्रीनारायणराव 'राजहंस', जिन्हें लोकमान्य तिलक ने 'बाल-गन्धर्व' की उपाधि प्रदान की थी और मास्टर कृष्णराव फुलम्ब्रिकर। तो अब 'आसावरी' शुरू हुई—'हरि बिछुरन दुख पायो'। अब की श्री० बरवे और श्री० काले दोनों मिलकर बारी-बारी से गाते थे। बीच-बीच में गाने की विशेषताएँ भी बताते जाते थे। श्री० काले का आलाप बड़ा सुन्दर और स्वाभाविक था। उन्होंने बतलाया, किस प्रकार बहुत-से गवैये अस्वाभाविक स्वर के संयोग से सङ्गीत का सौंदर्य बिगाड़ देते हैं। बड़ा ही आनन्द आया। उन्मुक्त वातायन-मार्ग से बाल-रवि की अरुण किरणें कमरे में प्रवेश कर श्री० बरवे के ओजस्वी आनन को और भी आभा प्रदान कर रही थीं। उनके प्रकाश में उनका चमकदार तानपूरा और उसके तार और भी चमक रहे थे। इधर श्री० बरवे की उँगलियों में रत्न-जटित अँगूठियाँ अपनी रङ्गीन मुसकुराहट से अलग ही जगमगा रही थीं। यथार्थ में वह इस पृथ्वी-तल पर गन्धर्व-लोक का एक दृश्य था।

'आसावरी' पूरी हुई। श्री० काले कहने लगे, यह है 'आसावरी' का शुद्ध रूप, जो अब बहुत कम सुनने में आता है। यह मेरे स्वर्गीय गुरु श्री० बखले की ख़ास चीज़ है। मुझे स्मरण है, वे इसे तन्मय होकर गाते थे। आँखों से अजस्र अश्रु की धारा निकलकर उनके केवड़े से रङ्गवाले शरीर को सिक्त कर देती थी। उनकी वह दिव्य मूर्ति अभी भी मेरी आँखों में झूल जाया करती है।

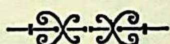
फिर श्री० बरवे ने अपना सितार लिया और एक-दो गत सुनाईं। इस सितार की बनावट कुछ दूसरे प्रकार की थी। तुम्बे का पिछला भाग चौरस था, उस पर चौरस लकड़ी लगी थी। श्री० बरवे ने बताया कि यात्रा की सुविधा के लिए यह ख़ास तौर से बनवाया गया है। इस नमूने के सितार के एक ओर 'इसराज' और बाज़ू में सरोद बनाया जा सकता है। इस प्रकार एक ही यन्त्र में कई बाजे [illegible] सकते हैं। इसके बाद श्री० बरवे ने दो-एक ऐसी चीज़ें सुनाईं, जिनके शब्दकार और स्वरकार दोनों आप ही थे। मैंने उनसे कहा, आप पिङ्गल का कुछ थोड़ा अभ्यास कर लीजिए तो अच्छा। मैंने माना कि गाते समय स्वर के ह्रस्व-दीर्घ उच्चारण तथा उतार-चढ़ाव और लोच के कारण गायक के गीतों में मात्राओं की कमी-बेशी, जो छन्दोभङ्ग दोष कहा जाता है, खटकने नहीं पाती, फिर भी यदि वे निर्दोष हों तो सोने में सुगन्ध आ जावे। श्री० बरवे ने कहा, मैं शीघ्र ही ऐसा करूँगा। मुझे बिलासपुर में श्री० भानुकवि के चिरञ्जीव ने उनके 'छन्दःप्रभाकर' की एक प्रति दी है, मैं उससे सहायता लूँगा।

इसके सिवा मैंने उनसे एक-दो बातें और कहीं।

…ने कहा, मैंने आपको सार्वजनिक प्रदर्शनों में …नपूर्वी ग़ज़लें गाते सुना है। निश्चय ही आपने जन-साधारण की रुचि को ध्यान में रखकर ऐसा किया होगा। पर मेरी समझ में आप एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें जन-साधारण की बिगड़ी हुई रुचि को देखकर नहीं चलना चाहिए। आपको 'लोक-रुचि' का इस दिशा में सुधार करना चाहिए, उसे सुरुचि-पूर्ण, परिमार्जित और पवित्र बनाना चाहिए। मेरी अभिलाषा है कि आप अपने सार्वजनिक प्रदर्शनों में 'तुलसी', 'सूर' आदि भक्त कवियों के ही पद गाया करें। इससे जनता का कल्याण होगा। 'विनय-पत्रिका' और 'सूरसागर' में आपको ऐसे पद मिलेंगे। यों तो 'तुलसी' और 'सूर' के बहुत-से पद उन्हें मालूम थे, फिर भी आपने अपनी नोट-बुक में 'विनय-पत्रिका' और 'सूरसागर' के मिलने का पता लिख लिया और वचन दिया कि मैं भविष्य में इस परामर्श का बराबर ध्यान रक्खूँगा। मेरे यह कहने पर कि सार्वजनिक प्रदर्शनों में पाश्चात्य वस्त्र-परिच्छद में आपका निकलना मुझे पसन्द नहीं है। आपको उस समय भारतीय परिधान धारण करना चाहिए। उन्होंने कहा, आप ठीक कह रहे हैं, मैं अब ऐसा ही करूँगा। यह बात मुझे भी खटक रही थी।

श्री० बरवे ने मेरे परामर्शों को उसी दृष्टिकोण से देखा, जिस दृष्टिकोण से कि मैंने उन्हें उनके सामने रक्खा था। यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने उनकी सज्जनता और विचारशीलता की मन ही मन प्रशंसा की।

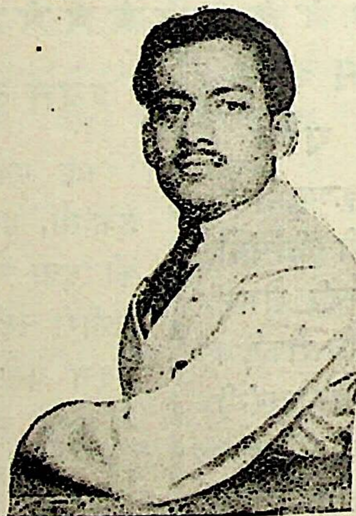
अब ९ बज रहे थे। मैंने श्री० बरवे को उनके कष्ट-स्वीकार के लिए धन्यवाद दिया और इसके बाद उनसे बिदा ली। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह श्री० बरवे को चिरजीवी रक्खे और उनके द्वारा भारतीय सङ्गीत की उत्तरोत्तर उन्नति हो।



रूस की ऐतिहासिक क्रांति

श्रीयुगलकिशोर मस्करा 'पुष्प'

सन् १९१७ की फ़रवरी के प्रारम्भ में किसी भी भविष्य-वक्ता को यह मालूम नहीं था कि रूस की ख़ूनी क्रांति का वह भयंकर काल इतना समीप है। सच बात तो यह है कि उस क्रांति का आरम्भ सन् १९१४ की जुलाई में ही हो गया था, लेकिन अन्तरराष्ट्रीय उलझनों और योरपीय महासमर के कारण ज़ार का पतन और तीन साल के लिए रुक गया। ज्यों-ज्यों महासमर में रूसी सैनिकों का असंतोष बढ़ता गया, बोलशेविकों का आन्दोलन अधिकाधिक मज़बूत होता गया और किसानों-मजूरों का सहयोग भी उसी प्रकार अपेक्षाकृत अधिक मिलने लगा।



इस लेख के लेखक

ज़ार के न्यायालय का अत्याचार, सरकार की अयोग्यता, युद्ध के समय में पूँजीपतियों की लाभ उठाने की भावना, अमीर-उमरावों का आमोद-प्रमोद, किसानों-मजूरों की दयनीय दशा, युद्ध-क्षेत्र में हज़ारों की संख्या में भूखे, निःशस्त्र और नंगे-पाँव सैनिकों का भेड़-बकरियों की तरह मारा जाना—यही सन् १९१७ की फ़रवरी की स्थिति को तैयार करने में सहायक हुआ। लेकिन फ़रवरी या आगे चलकर फिर अक्टूबर की क्रांति तब तक समझ में नहीं आ सकती, जब तक किसान-आन्दोलन पर कुछ प्रकाश न डाल दिया जाय। किसानों ने निम्नलिखित तीन चीज़ों का अन्त कर देने की माँग पेश की थी—जागीरदारी, गाँवों पर धनी किसानों (कुलक) का प्रभुत्व और साम्राज्यवादी युद्ध।

सन् १९१६ के अन्त से हड़ताल-आन्दोलन क्रमशः उग्र रूप धारण करने लगा और समस्त देश में खुल्लमखुल्ला क्रांति की आवाज़ बुलन्द की जाने लगी। सी० आई० डी० पुलिस द्वारा सतर्क किये जाने पर सरकार क्रांतिकारियों से लड़ने और उन्हें उखाड़ फेंकने के लिए ज़ोरों से तैयारियाँ करने लगी। फ़ौज की मशीनगनें लेकर पेट्रोग्राड की पुलिस को दे दी गईं।

सन् १९१७ के मार्च के आरम्भ में रोटी के लिए किसानों-मजूरों के दंगे शुरू हुए। ९ मार्च को पेट्रोग्राड की सड़कों पर गोलियाँ दगने लगीं। ड्यूमा (रूसी पार्लामेण्ट) के अध्यक्ष रोज़ियांको ने ११ मार्च को ज़ार के पास, जो उस समय फ़ौजों के हेडक्वार्टर में था, निम्न तार भेजा—

"Anarchy in the capital. Government



impotent. Supply of food and light entirely disorganised. Firing in the streets. Different groups of soldiers shooting at one another. Some one in whom the people have confidence must be given power to form a new Government. Delay greatest days."

"राजधानी में अराजकता फैल गई है। सरकार कमज़ोर पड़ गई है। खाद्य पदार्थ और रोशनी पहुँचाने का प्रबंध बिलकुल ही अव्यवस्थित हो गया है। सड़कों पर गोलियाँ छूट रही हैं। सैनिकों के विभिन्न दल एक दूसरे को मार रहे हैं। जिस व्यक्ति में जनता का विश्वास हो, उसे एक नई सरकार स्थापित करने का अधिकार देना चाहिए। देर करना बड़ा ख़तरनाक होगा।"

दूसरे दिन एक और तार—

"Situation worse. Measures must be adopted at once. Last moment arrived to decide for country and dynesty."

"परिस्थिति और ख़राब हो चली। आवश्यक कार्रवाई शीघ्र करनी चाहिए। देश और राजवंश के लिए आख़िरी निर्णय करने का समय पहुँच गया।"

लेकिन इन तारों को पढ़कर अभिमानी ज़ार को तनिक भी चिन्ता न हुई। उसे क्या मालूम था कि विनाश की घड़ी इतनी नज़दीक है। वह तो अपनी ऐंठ में फूला था। उसे अपने पाशविक बल में पूरा विश्वास था। उसने तार को पढ़कर उपेक्षा दिखाते हुए अपने एक अफ़सर से कहा—

"This silly fellow Rodzienko sends me some more nonsense, which I shall not ever bother to answer."

"इस मूर्ख रोज़ियांको ने फिर बेवकूफ़ी की ऐसी बातें लिख भेजी हैं। मैं इनका कुछ भी उत्तर नहीं दूँगा।"

अभागे ज़ार को क्या पता था कि अब हमारे वंश की इति होनेवाली है। पेट्रोग्राड की सरकारी सेना प्रजा के पक्ष में चली गई थी। सन् १९०५ में मास्को के उभड़ते हुए विद्रोह को जिस सेना ने दबाकर अपनी राजभक्ति का परिचय दिया था, आज उसने भी ज़ार का साथ छोड़ दिया। पुलिस ने कुछ दिनों तक खिड़कियों और छतों से गोलियाँ चला-चलाकर उस मृतप्राय बादशाहत की रक्षा के लिए प्रयत्न कर अपनी राजभक्ति दिखाई, पर अंत में उसे देशभक्त क्रांतिकारियों के सामने झुकना पड़ा। ज़ार के सभी मंत्री गिरफ़्तार कर लिये गये। १५ मार्च को ज़ार ने राजसिंहासन छोड़ दिया और बंदी बनाकर सैनिकों के पहरे में 'जारस्को-सेलो' में रख दिया गया।

ड्यूमा (रूसी पार्लामेन्ट) के सदस्यों की एक कमेटी ने एक अस्थायी सरकार की स्थापना की और निश्चय हुआ कि जब तक देश भर के प्रतिनिधियों की एक निर्वाचित असेम्बली न बन जाय, तब तक यही सरकार देश का शासन करे। 'सोवियट आफ़ वर्क्स ऐण्ड सोल्ज़र्स डिपुटीज़' ने, जिसमें बोलशेविक (सोशलिस्ट) नेता थे, सरकार को अपना सहयोग प्रदान किया और इस प्रकार अस्थायी सरकार का शासन आरम्भ हुआ।

लेकिन इस नई सरकार के सम्बन्ध में बोलशेविकों का क्या रुख़ था। महात्मा लेनिन ने इस सम्बन्ध में निम्न विचार प्रकट किये—

"इस नई सरकार में भी ज़मींदारों और पूँजीपतियों का ही हाथ है, इसलिए यह शांति, रोटी, और स्वतन्त्रता प्रदान नहीं कर सकती। शांति इसलिए नहीं कि वह एक युद्ध-कालीन सरकार है—एक ऐसी सरकार है, जो सिर से पैर तक अँगरेज़ और फ्रेंच साम्राज्यवादियों से बँधी हुई है। रोटी इसलिए नहीं कि यह एक पूँजीवादी सरकार है। यह सरकार तो दुर्भिक्ष ला देगी, जैसा कि जर्मनी में हुआ है। स्वतन्त्रता इसलिए नहीं कि इसमें ज़मींदारों और अमीरों का ही हाथ है।

इसलिए इस वक़्त हमारा राष्ट्रीय नारा यह होना चाहिए—"मजूरो ! ज़ार की मता के विरुद्ध गृह-युद्ध के लड़ने में तुम लोगों ने अपने अपूर्व साहस



का परिचय दिया है। अब एक और क्रांति करने के लिए तैयार हो जाओ। इस बार वह क्रांति करो, जिसमें कि शासन-सूत्र ग़रीब किसानों और मजूरों के हाथों में आ जाय।"

देश ने लेनिन के आदेशों का पालन किया। बोलशेविकों का आन्दोलन विद्युत्-वेग से आगे की ओर बढ़ा। उधर लेनिन की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। नई सरकार किसानों-मजूरों की माँगों को पूरा करने और शांति, रोटी तथा स्वतन्त्रता देने में सर्वथा असफल सिद्ध हुई। फलतः जुलाई मास में पेट्रोग्राड की जनता सशस्त्र विद्रोह करने लगी और चारों ओर यही नारा सुनाई पड़ने लगा कि "सरकार पर किसानों-मज़ूरों का पूर्ण अधिकार हो।" लेकिन अधिकारियों ने बड़ी कड़ाई से काम लिया—बोलशेविकों का घोर दमन कर आन्दोलन कुचल दिया गया। कई बोलशेविक नेता गिरफ़्तार कर लिये गये। लेनिन अपने साथियों के सहित छिप गये। अधिकारियों ने थोड़े दिनों तक विजय का आनन्द मनाया।

अखिल रूसी सोवियट कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन सितम्बर में होनेवाला था, लेकिन वर्त्तमान परिस्थिति को देखकर सोवियट सेन्ट्रल एक्ज़ीक्यूटिव कमेटी ने अधिवेशन नहीं बुलाया। बाद में पेट्रोग्राड और मास्को की संस्थाओं ने अपने बोलशेविक बहुमत से २ नवम्बर, सन् १९१७ को कांग्रेस बुलाई।

इधर २४ अक्टूबर से ही पेट्रोग्राड में लड़ाई शुरू हो गई थी। किसान और मजूर सड़कों पर बोलशेविक नारे लगा रहे थे, सैनिक, पेट्रोग्राड सोवियट द्वारा संस्थापित 'सैनिक क्रांतिकारी कमेटी' से आज्ञा लेकर गोलियाँ चला रहे थे। चारों ओर एक भयंकर दृश्य उपस्थित था। अधिकारियों की स्थिति अत्यन्त डाँवाँडोल हो गई थी। कुछ 'कज्जाकों' और स्त्रियों की सेनाएँ सरकारी महल की रक्षा कर रही थीं।

६ नवम्बर की रात में 'सैनिक क्रांतिकारी कमेटी', की आज्ञा पाकर क्रांतिकारियों ने एक-एक करके सभी रेलवे स्टेशनों, बैंकों, टेलीफ़ोन, एक्सचेंज, तार-घरों एवं अन्य प्रमुख सरकारी स्थानों पर क़ब्ज़ा कर लिया और इस प्रकार अस्थायी सरकार की जड़ उखड़ गई।

सन् १९१७ के ७ नवम्बर को दिन में १० बजे सैनिक क्रांतिकारी कमेटी ने निम्न घोषणा की—

"रूस के नागरिको! अस्थायी सरकार हटा दी गई। शासन-सूत्र पेट्रोग्राड-सोवियट द्वारा संस्थापित 'सैनिक क्रांतिकारी कमेटी' के हाथों में आ गया।

"प्रजा जिस लिए लड़ रही थी, वह प्राप्त हो गया। अब देश में तात्कालिक शान्ति की आवश्यकता है। ज़मीन पर ज़मींदारों का अधिकार नहीं रहेगा। सोवियट-सरकार किसानों और मजूरों द्वारा पैदा की हुई चीज़ों की रक्षा करेगी।"

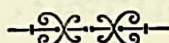
"किसानों, मजूरों और सैनिकों की क्रांति चिरंजीवी हो।"

क्रांतिकारी सैनिकों ने 'विण्टर-पैलेस' (सरकारी महल) को घेर लिया। अस्थायी सरकार के अधिकारियों ने आत्मसमर्पण करने का अल्टीमेटम देने में कुछ उपेक्षा दिखाई। फिर क्या था। महल पर बम-वर्षा होने लगी और गोलियों की गड़गड़ाहट और तोपों की गर्जना से आकाश-मण्डल गूँज उठा। महिलाओं की सेना ने फ़ौरन् सिर झुका लिया और 'कज्जाक' सैनिक भाग गये। इस प्रकार आधी रात के कुछ ही बाद क्रांतिकारियों ने महल पर क़ब्ज़ा कर सरकार के सभी सदस्यों को गिरफ़्तार कर लिया।

आक्रमण आरम्भ होने के कुछ घंटे पूर्व एक मोटर, जिस पर अमेरिकन झण्डा फहरा रहा था, महल से निकली और तेज़ी से पेट्रोग्राड से ३० मील की दूरी पर 'गेचिना' की ओर चली गई। उस मोटर में अस्थायी सरकार का प्रधान करेन्सकी था। इस प्रकार करेन्सकी ने अपनी जान बचाई और बाद में कुछ राजभक्त सेनाओं की मदद से फिर राजधानी पर क़ब्ज़ा करने की चेष्टा की, पर सफलता नहीं मिली।



...सी दिन संध्या के समय पेट्रोग्राड के एक मजूर ...र से एक हट्टा-कट्टा व्यक्ति निकला और गंभीरता- ... क्रांति की लपट को प्रज्वलित करने के लिए ... बढ़ा। यह वही महात्मा लेनिन थे, जो उस ... के घर में छिपकर क्रांति की बागडोर अपने हाथों में लिये हुए थे और सावधानीपूर्वक आन्दोलन का संचालन कर रहे थे। क्या कोई कह सकता है कि उस समय महात्मा लेनिन को अपनी सफलता पर कितनी प्रसन्नता हुई होगी!



एक क्रांतिकारी गीत

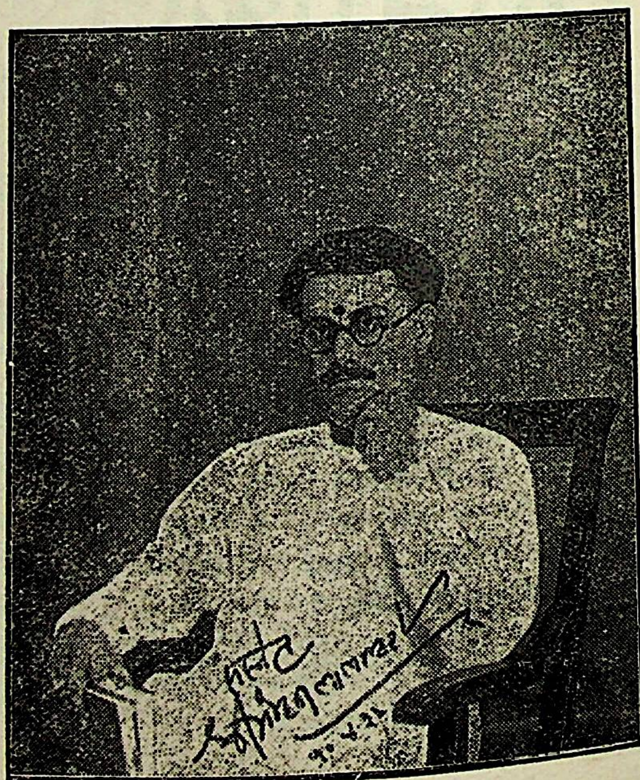
श्रीमोहनलाल महतो

जब किसी देश या समाज की आपदा का रूप अत्यन्त संक्रामक हो जाता है तो उस आपदा से उत्पन्न होनेवाली पीड़ा उस देश या समाज के भौतिक अंगों को विकल करती हुई परा सीमा पर पहुँचकर टकराती है, जहाँ से प्रतिक्रिया का आरम्भ हो जाना आवश्यक है।

अपनी इस बात को ज़रा अधिक स्पष्टतापूर्वक कहने की इच्छा का दमन करना मेरे लिए असंभव-सा हो गया है। पाठक क्षमा करें।

मैं कहना चाहता हूँ कि जब हमारी आपदा का प्रभाव हमारे जीवन की गहराई तक पहुँच जाता है तो हमारी भावना का रूप भी घोर असंतोषमय और दुर्दमनीय हो उठता है। बस, यहीं से प्रतिक्रिया का श्रीगणेश हो जाता है। सनातन से यही बात एक ही रूप में जारी है। संसार का इतिहास इसका मूक साक्षी है। आघात के परिणामस्वरूप होनेवाले प्रतिघात का रूप कभी-कभी तो आघात से भी भयानक और विनाशक सिद्ध होता है। यह कोई नियम नहीं है कि प्रतिक्रिया का रूप क्रिया से हलका, कोमल या सहज हो।

आगे मैं कह चुका हूँ कि किसी आपदा के प्रभाव की गहराई का परिणाम कभी-कभी देश या समाज की भावनाधारा में प्रतिक्रिया का हाहाकार कर उठने के रूप में होता है, अर्थात् जब हमारे क्षोभ में प्रतिक्रिया की आग भड़क उठती है तो फिर संसार का नक़शा ही बदल जाता है और वह आग 'नीरो' के लगाये हुए उस दावानल से कहीं अधिक व्यापक होती है, जिसमें मकड़ी के जाले की तरह सारा रोम स्वाहा हो गया था। हम देखते हैं कि क्रांतिकारी साहित्य का सृजन भी इसी दिमाग़ी इनक़लाब से शुरू होता है। मैं यहाँ हमारे प्रान्त में गाये जानेवाला एक क्रांतिकारी



इस लेख के लेखक

... आपके सामने उपस्थित करना चाहता हूँ। ... गीत तब से (दो-तीन सौ साल से) लगा- ... हमारे यहाँ गाया जा रहा है, जब सारा भारत ... शाही की तलवार के नीचे पड़ा अपनी मौत ... मनहूस घड़ियाँ गिन रहा था। यह गीत देहाती ... का आज भी एक सकरुण अंश बना हुआ ... भादों के सजल दिनों में गँवई की स्त्रियाँ इसे ... ही सकरुण स्वर में गाती हैं। गीत की भाषा ... 'मागधी' है और है बड़ी ही ज़ोरदार। इस- ... नाम है 'झूमर', जो भादों में ही गाया जाता ... गीत का कथानक इस प्रकार है—

... किसी शान्त गाँव में गंगासिंह नाम के एक ... ज़मींदार निवास करते थे। गंगासिंह एक ज़मींदार ... और राजा कहे जाते थे। गंगासिंह की एक ... थी चम्पा। दुर्भाग्य के मारे अभागी चम्पा ... नवयुवती और कुमारी थी। उन दिनों ... सात साल की कन्या का विवाह करना मना ... यदि यह बात न होती तो ज़मींदार गंगासिंह ... बहन को बड़ी उम्र तक कभी भी बेब्याही ... रहने देते; क्योंकि वे एक सम्पन्न और संभ्रान्त ... थे। एक दिन चम्पा अपनी सखियों के साथ ... में स्नानार्थ गई; क्योंकि परदाप्रथा की भी ... नहीं थी। स्नान के बाद चम्पा ने अपने ... और लम्बे बालों को बाँधना आरम्भ किया। ... में उस प्रान्त के नवाब, जिसे गीत में ... कहा गया है, चम्पा को हसरतभरी नज़रों ... लेता है और मुग्ध हो जाता है। वह अपने ... आकर यह पता लगाता है कि यह सुस्त्री ... घर की रौनक़ है। पता चलते देर नहीं ... वह एक दुसाध को, जो उस गाँव का ... है, गंगासिंह के यहाँ भेजता है। आज ... बिहारप्रान्त में गोड़इत-प्रथा जारी है। यह ... दुसाध जाति का हरिजन होता है। यह ... प्रकार से देहातों का कान्स्टेबल होता है, जिसका ... रहता है रात को गाँवों में पहरा देना और ... की सभी छोटी-बड़ी बातों की रिपोर्ट थाने पर नित्य पहुँचाना। मिर्ज़ा ने गोड़इत को भेजवाकर बुलवाया गंगासिंह को। दुसाध की सूरत देखते ही बेचारे गंगासिंह के देवता कूच कर जाते हैं और वे सोच-विचार में पड़ जाते हैं, इससे यह पता चलता है कि उस समय नवाबी कितना तपती थी। गंगासिंह दुसाध के आश्वासन देने पर मिर्ज़ा के दरबार में जाने को प्रस्तुत होते हैं।

दरबार में पहुँचते ही मिर्ज़ा चम्पा की चर्चा चलाता है और गंगासिंह को नाना प्रकार के प्रलोभन देता है, पर गंगासिंह नवाब को मीठी फटकार बतलाते हैं। मिर्ज़ा कुपित होकर गंगासिंह की मुश्कें बँधवा देता है और यह समाचार बात की बात में गंगासिंह के घर तक फैल जाती है; क्योंकि गंगासिंह की बुलाहट से सभी सशंक-से थे। गंगासिंह की पत्नी ने चम्पा को फटकारना आरम्भ किया और कहा कि तेरे ही चलते मेरे पति की जान ख़तरे में पड़ गई है। राजपूत-कन्या चम्पा स्वयम् पालकी पर सवार होकर मिर्ज़ा के यहाँ जाती है। मनचाही वस्तु को बिना किसी विशेष उपद्रव के अपने पास पाकर मिर्ज़ा की बाँछें खिल उठती हैं। चम्पा कहती है कि—'मैं तो तुम्हारी हूँ। तुम मेरे लिए सेंदुर, गहने वग़ैरह मँगवा दो'। मिर्ज़ा इस प्रस्ताव को राज़ी होकर स्वीकार करता है। फिर चम्पा कहती है कि मेरे भाई की मुक्ति दो। यह बात भी मान ली जाती है। फिर चम्पा पालकी मँगवाती है और मिर्ज़ा के साथ शायद उसके महल को रवाना होती है। यह बहुत ही संभव है कि मिर्ज़ा गंगासिंह के गाँव के आसपास में टहलता-घूमता आ गया होगा। चम्पा मिर्ज़ा के कैम्प में आई होगी। जो हो, रास्ते में एक स्थान पर चम्पा प्यास की शिकायत करती है और वहाँ अपनी पालकी रुकवाती है, जहाँ चम्पा के पिता का तालाब था। नवाब कहता है कि तुम मेरे 'बधने' का पानी पी लो, पर चम्पा कहती है कि—'मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध तो सदा के लिए हो गया, अब अन्तिम बार अपने पिता के तालाब का ही पानी पीना

मैं चाहती हूँ'। नवाब उसकी बातों से सहमत होता है और चम्पा अकेली तालाब में जल पीने जाती है। निश्चय ही तालाब चाहारदीवारों से घिरा होगा। चम्पा कुल की मर्यादा की रक्षा करती हुई उस गहरे तालाब में कूदकर अपनी नन्हीं-सी जान को होम देती है। बस, सारा मामला साफ़ हो जाता है। यही है इस गीत का कथानक। अब गीत पढ़िए—

गीत

(कवि—बाबू नारायणसिंह)

मिलहु न सखिया-सलेहर गे चम्पिया !
मिलि-जुली सयरो नेहयबई हे ना।
सबेरे सखिया घरे चलि अयलिन
असगरे चम्पिया झारइ लम्बी केसिया हे ना।
झर रे झरोखे चढ़ी मिरजा निरेखई
केकरि तिरिया झारइ केसिया हे ना।

कवि कहता है—

तोहे नहिं जानह "बबुआ नरायनसिंह"
गंगासिंह बहिनिया केसिया झारइ हे ना।

मिर्ज़ा

कनेगेल किया मेल गाँव चौकीदरवा
गंगासिंह के पकरि मँगावह हे ना।

घटना

बाँधी लेले दुसधा लटपट पगिया
हाथे लेले रेंड के छेकुनिया हे ना।
एक कोस गेले दुसधा दुई कोस गेले
तिसरे में गंगासिंह नगरिया हे ना।

दुसाध

पनिया भरइते तू ही कुइयाँ पनिहारिन !
गंगासिंह के घरवा बतलावह हे ना।

पनिहारिन

पूरबे जे मुँहवाँ हेकऊ दुसधा, दुअरिया
अँगना में चन्दना के गछिया हे ना।

(दुसाध गंगासिंह के यहाँ, बतलाये हुए पते पर, पहुँच जाता है और गंगासिंह से कहता है।)

कने गेल किया मेल बबुआ जे गंगासिंह
राजा घरवा परलौ हँकरवा हे ना।

गंगासिंह

बारह बरसवाँ दुसधा नगर बेसाहलू
कबहूँन परलई हँकरिया हे ना।
किया राजा मारत किया राजो बाँधत
किया राजा नगरी छोड़ावत हे ना।

दुसाध

नहिं राजा मारत नहिं राजा बाँधत
नहिं राजा नगरी छोड़ावत हे ना।

घटना

पेन्हि लेने गंगासिंह पाँचो टुक जोड़वा
चढ़ि लेले राजहंसा घोड़वा हे ना।
एक कोस गेले गंगासिंह दुई कोस गेले
तीसरे में मिरजा दरबरवा हे ना।
एक डेवढ़ी लाँघले गंगासिंह दूई डेवढ़ी लाँघले
तीसरे में झुकि कइले सलमियाँ हे ना।

मिर्ज़ा

किया देखि गंगासिंह कइले सलमियाँ
किया देखि संसरि उठी ठढ़ा हे ना।

गंगासिंह

छोटा जानि मिरजा कहलिओ सलमिया
बड़ा जानि संसरि भेलिअओ ठाढ़ हे ना।

मिर्ज़ा

बइठह गंगासिंह सोने सतरंजिया
चम्पिया बहिनिया हमरो के देहक हे ना।

गंगासिंह

सोने सतरंजिया मिरजा रउरे घरवा बाढ़ई
मोरे बंसे चम्पिया न भेलई हे ना।

मिर्ज़ा

लहक गंगासिंह गाँव से मुलुकवा
चम्पिया बहिनिया हमरा के देहक हे ना।



गुरुकुल के छोटे स्नातकों का जमनास्टिक-व्यायाम

वार्पिकोत्सव पर छोटे बालक स्नातकों द्वारा जमनास्टिक का प्रदर्शन





गंगासिंह

गउँआँ मुलुकवा मिरजा रउर घरवा बाढ़ई
मोरे बंसे चम्पिया न भेलई हे ना।

मिर्ज़ा

चले गेल किया भेल गाँव चौकीदरवा
गंगासिंह के मुसुक चढ़ाव हे ना।

घटना

झर रे झरोखे चढ़ी भउजी निरेखई
चम्पिया करनवे मोर सामी बाँधल हे ना।

भाभी

आगि लागउ चम्पिया गे तोर लंबी केसिया
बजरा परऊ तोरि सुरतिया हे ना।

चम्पा

तहक भउजी तोहे अपन बलकवा
हमे जइबई भइया के छोड़ावन हे ना।

घटना

करि लेले चम्पिया सोलहो सिंगरवा
पेन्हि लेले बतिसो गहनवा हे ना।
एक डेउढ़ी लाँघले चम्पिया दुई डेउढी लाँघले
तिसरे में मिरजा नजरिया हे ना।
मुँहवाँ पटुकवा धरि मिरजा निरेखई
गंगासिंह बहिनिया अपने से अइलई हे ना।

चम्पा

जब तोहें मिरिजा हमरे लोभायेल
मोर जोगे पुरबी सेन्दुरवा हे ना।

घटना

हँसि-हँसि मिरजा सेन्दुरा बेसाहई
रोई-रोई चम्पिया सेन्दुरा पहिनई हे ना।

घटना

जब तोहे मिरिजा हमरा लोभायेल
मोरा जोगे बतिस गहनवा हे ना।

घटना

हँसि-हँसि मिरजा गहना बेसाहई
रोई-रोई चम्पिया गहना पहिनई हे ना।

चम्पिया

जो तोहे मिरजा हमरा लोभायेल
मोरा जोगे डोलिया फँदावह हे ना।

घटना

हँसि-हँसि मिरजा डोलिया फँदावई
रोई-रोई चम्पिया डोलिया बइठइ हे ना।

चम्पा

जब तोहे मिरजा हमरा लोभायेल
भइयाजी के मुसुका खोलावह हे ना।

घटना

हँसि-हँसि मिरजा मुसका खोलावई
रोई-रोई चम्पिया गोड़वा लागई हे ना।
एक कोस गेलइ चम्पिया दुइ कोस गेलई
तिसर कोसिया मधुरी पियसिया हे ना।

मिर्ज़ा

जब तोहे चम्पिया गे लगलउ पियसिया
हमरे गँडुअवे पनिया पीअह हे ना।

चंपा

तोहरे गँडुअवे मिरजा जनम सिनेहिया
बाबा के पोखरिया दंनडि बिलमावह हे ना।

घटना

एक चिल्लू पीले चम्पिया दूई चिल्लू पीले
तिसरे में खिललई पतलिया हे ना।

घटना

झर रे झरोखे चढ़ी भउजी निरेखई
चम्पिया बहिनिया कुल राखई हे ना।

मिर्ज़ा

हम जों जानइतउ चम्पिया एतीं बुधी करम
पनिया पिआय जतिया लेतिअउ हे ना।

इति

बस, यही वह गीत है, जिसे आज भी हज़ार-हज़ार बिहारी ललनाएँ प्रत्येक वर्ष गाती हैं। हम

देखते हैं कि इस गीत के ग्रामीण कवि नारायणसिंह ने अपनी देहाती भाषा में हिन्दू-ललना के ज्वालामय कुल-धर्म-प्रेम को चिर-सत्य कर दिया है। यह एक क्रांतिकारी गीत है, जिसका प्रत्येक अक्षर अपने हृदय की घोर व्याकुलता को स्वर के साथ न-जाने कब से व्यक्त कर रहा है। आज न तो चम्पा है और न पापी मिर्ज़ा। कवि नारायण भी इतिहास के पृष्ठ पर अपना कोई स्मृति-चिह्न विना छोड़े अनन्त विस्मृति के उस पार चले गये, पर भादों की सजल रात को जब चाँद घटाओं से आँख-मिचौनी खेलता रहता है, आठ-दस ललनाएँ, जो चम्पा की बहन हैं, सकरुण स्वर में इस गीत को गाती हैं। आधी रात की निर्जनता में इस गीत का सुर एक अपूर्व सकरुण वातावरण की सृष्टि करता हुआ महाशून्य में विलीन हो जाता है। मैं अपनी बात कहता हूँ। आधी रात को, अपने कमरे की खुली हुई खिड़कियों के सामने दिन भर के काम से थककर जब भादों की गम्भीर रात को लेटता हूँ तो दूर बहुत दूर से दो-चार सुकोमल कंठ से निकला हुआ, इस झूमर का सुर सुनता हूँ। आँखें खुली रहती हैं, पर मन अतीत का एक अत्यन्त उदास और धुँधला-सा सपना देखने लगता है। देखता हूँ, चम्पा को अपने पिता के तालाब में धर्म और कुल-मर्यादा की रक्षा के लिए अपने समस्त सौन्दर्य, अपनी निखरी हुई जवानी, अपनी सरस लालसाओं के तूफ़ान के साथ चुपचाप डूबते हुए और घुटघुट कर दम तोड़ते हुए।

यह है हमारे सात लाख गाँवों का क्रांतिकारी साहित्य, जिसकी तुलना में आज हमारा छाया-माया-हालावाद तुच्छ-सा है, व्यर्थ-सा है। क्या इस गीत को हम क्रांतिकारी गीत कहकर नहीं पुकार सकते ?

कालिदास की जन्मभूमि

स्व० लाला सीताराम अवधवासी

कई वर्ष हुए हमने माधुरी में ऋतुसंहार भाषा और कालिदास की जन्मभूमि-शीर्षक लेख में महाकवि कालिदास की जन्मभूमि के विषय में अपने विचार प्रकट किये थे। आज हम महाकवि के विषय में मिथिला-प्रांत में जो बातें प्रसिद्ध हैं, उन्हें माधुरी के पाठकों को बताने का उद्योग करते हैं। भाषा के सुप्रसिद्ध प्रेमी सर जार्ज ग्रियर्सन बहुत दिनों तक तिरहुत में थे। उसी समय उन्होंने जो कुछ सुना, उसे बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के जरनल नंबर १८ में छपा दिया था। यह लेख उसी के आधार पर है।

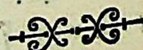
तिरहुत में यह प्रसिद्ध है कि कालिदास का जन्म दामोदरपुर में हुआ। यह गाँव दरभंगा जिले के मधुवनी सबडिविज़न में उचैत नगर के पास है। कालिदास के माता-पिता उनके बचपन ही में मर गये थे। इससे ब्राह्मण होने पर भी अनाथ होने के कारण नीचों में पले और ऐसे मूर्ख निकले कि बलदियों में भी गधे समझे जाते थे। उन्हीं दिनों एक पण्डितजी के एक बड़ी विदुषी कन्या थी। उसने यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं उसी के साथ अपना ब्याह करूँगी, जो पांडित्य में मुझसे बढ़ा-चढ़ा हो। जो उससे ब्याह करने आता, वह परास्त होकर अपना-सा मुँह लिये लौट जाता। बेचारे पण्डितजी कितने योग्य विद्वान् वर लाये, परन्तु उनकी कन्या ने सबको फटकार दिया। अन्त में कन्या की उद्दण्डता देखकर उसके पिता भी घबरा गये और उन्होंने यह ठान लिया कि इसका विवाह एक महामूर्ख के साथ कर देना चाहिए, जिसमें यह भी अपने हठ का मज़ा चक्खे। उन दिनों मिथिला में पढ़ने-लिखने की चर्चा बहुत थी। ऐसे समय में अनपढ़ ब्राह्मण कहाँ मिलते। एक दिन पण्डितजी दामोदरपुर के पास निकले तो क्या देखते हैं कि एक ब्राह्मण ग्वाले के रूप में एक पेड़ पर चढ़ा हुआ जिस डाली पर बैठा है, उसी को काट रहा है और जब डाली कट गई तो धड़ाम से डाली समेत नीचे गिर पड़ा। काटनेवाले को चोट तो बड़ी लगी, परन्तु अपने कर्त्तव्य पर बहुत प्रसन्न हुआ। पण्डितजी ने सोचा कि ऐसा गधा ढूँढ़े से भी न मिलेगा और कन्या के लिए ऐसा ही वर होना भी चाहिए। लड़के से पूछा तो उसने बताया कि मेरा नाम कालिदास है; मैं भी कुलीन ब्राह्मण हूँ; अनाथ हो जाने से मुझे दामोदरपुर के ग्वालों ने पाला है। पण्डितजी ने कालिदास को अपने साथ लिया और घर ले जाकर अपनी बेटी से कहा कि लो, तुम्हारे योग्य वर मिल गया। लड़की ने उससे पूछा कि आप कुछ संस्कृत पढ़े हैं? इस पर उस मूर्ख ने उत्तर दिया "ज्ञानो नास्ति मेव।" इस पर लड़की ने अपने पिता को फटकारा कि तुम मेरे लिए ऐसा मूर्ख वर लाये हो। पण्डितजी कब हार माननेवाले

थे; बोले कि कालिदास मूर्ख नहीं है, तुम्हीं मूर्ख हो, जो उसकी बात नहीं समझतीं। वह कहता है "ज्ञा नो नास्ति मा इव।" "लक्ष्मी के बराबर हमारे ज्ञान नहीं है।" लड़की हार मान गई और कालिदास के साथ उसका ब्याह हो गया। परन्तु ब्याह के पीछे जब सुहागरात आई तो स्त्री ने फिर शास्त्र-ज्ञान में कालिदास की परीक्षा ली और जब वह निपट निरक्षर भट्टाचार्य निकले तो झाड़ू से उनकी आरती उतारकर उनको घर के बाहर निकाल दिया। कालिदास बेचारे मार खाकर घर से निकले और रात भर एक वन में पड़े रहे। सबेरे उनको बड़ी ग्लानि हुई और उन्होंने यह ठान लिया कि अब विद्या पढ़कर स्त्री का मान मन्द करना चाहिए। उचैत में एक पाठ-शाला में पहुँचे। यहाँ महीनों तक कठिन परिश्रम करने पर भी कुछ न आया; सच है—

मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलै विरंचि सम।

उचैत से थोड़ी दूर वन में दुर्गा का मन्दिर था। एक दिन जब बहुत पानी बरस रहा था और आँधी चल रही थी, कालिदास के साथियों ने उससे आधी रात को दुर्गा के मन्दिर में जाने को कहा। अत्यन्त मूर्ख होने के कारण भूत-प्रेत को कुछ समझता न था। उसने तत्काल उनका कहना मान लिया। अपने साथियों को यह दिखाने के लिए कि उसने दुर्गा के दर्शन किये हैं, उसने अपने हाथों में राख लगा ली और यह विचार किया कि चिह्नस्वरूप उसे ही अपने आने का प्रमाण दिखाने के लिए उसे मूर्ति के मुख में लगा देगा।

मिथिला में यह चाल है कि जब कोई मनुष्य कोई कुकृत्य करता है तो उसका मुँह काला करके उसे शहर भर में घुमाया जाता है। जब कालिदास आधी रात को दुर्गा के मन्दिर में पहुँचा तो उसने मूर्ति के मुख पर राख लगानी चाही। यह काम कोई महामूर्ख ही कर सकता था, और कालिदास बड़ा मूर्ख था। ही जैसे ही कालिदास ने अपना हाथ उठाया, दुर्गा ने उसके कार्य का भयंकर फल मान जान लिया कि सबेरा होते ही नगर भर के लोग मूर्ति को देखकर हँसेंगे। तत्काल वह अपने यथार्थ स्वरूप में प्रकट हुईं। कालिदास फिर भी अपने कार्य से न रुका। तब दुर्गा ने बड़ी मिन्नतें कीं और उसके रुक जाने पर वर देने को कहा। कालिदास ने देवी की बात मान ली, और संसार में सबसे अधिक बुद्धिमान् हो जाने का वर माँगा। दुर्गा ने कहा कि उस रात्रि को जितने पन्ने उलट लोगे, उन सबका ज्ञान तुम्हें हो जावेगा और वाद-विवाद में सदैव यशस्वी रहोगे। कालिदास जल्दी-जल्दी घर गया और रात भर अपने गुरु के पुस्तकालय की समस्त पुस्तकों के पन्ने उलटता रहा। सबेरा होने पर वह विश्राम करने चला गया। वह सो ही रहा था कि उसके साथी गुरु के पास शिक्षा के लिए बैठ गये। पढ़ाते-पढ़ाते गुरु ने संस्कृत में कुछ अशुद्धि की। सोते ही सोते कालिदास ने उसे तुरन्त ही शुद्ध कर दिया। अब तक कालिदास की किसी ने परवा भी न की थी। अब उसके सब साथी अपने मूर्ख साथी की बुद्धि पर आश्चर्य करने लगे और उसे जगाकर उससे पूछने लगे। इस पर कालिदास ने पाणिनि का सूत्र उद्धृत कर दिया। जब उन्होंने दुर्गा के वरदान की कथा सुनी तो उनका आश्चर्य और भी बढ़ा। इस रीति से अनपढ़ मूर्ख कालिदास महापण्डित हो गया।



घाघ तथा उनकी पुत्रवधू

श्रीसीताराम पांडेय एम्० ए०, साहित्यरत्न

घाघ की कविता अवध में बहुत प्रचलित है। यहाँ के किसान बातचीत करते समय घाघ की एकाध कविता अवश्य कहते हैं। कविता-कौमुदी प्रथम भाग में पंडित रामनरेशजी त्रिपाठी ने कुछ घाघ की कविताएँ प्रकाशित की हैं। यहाँ मैं कुछ अन्य कविताएँ दे रहा हूँ, जो घाघ के नाम से सर्वसाधारण में प्रचलित हैं—

(१)

तितिर बदरिया रात जौ बसइ,
विधवा होइ हाथ धइ हँसइ;
घाघ कहइ सुनियो हे भाय!
वे बरसँइ वे उढ़रि जायँ।

[रात को यदि तीतर के पंख के समान बादल दिखें, यदि कोई विधवा किसी पुरुष का हाथ पकड़कर हँसे, तो घाघ कवि कहते हैं कि हे भाई, उस बादल से वर्षा अवश्य होगी तथा वह विधवा किसी पुरुष के साथ अवश्य निकल जायगी।]

(२)

दिन की बदरी रात टकटका
घाघ कहइ मोहिं दइअइ ठगा।

[यदि दिन को बादल हों तथा रात्रि को आकाश निर्मल हो तो समझना चाहिए, जल की वृष्टि न होगी।]

(३)

दिन की बदरी रात अँजोर
अब जाना बरखा का ओर।

[यदि दिन को बादल दिखें और रात्रि को बादल न होने के कारण प्रकाश मालूम हो तो समझना चाहिए कि अब वर्षा ऋतु का अंत हो गया।]

रात बदर दिन घामाछाहीं
घाघ कहइ अब दैअइ नाहीं।

[यदि रात्रि को बादल हों तथा दिन को कहीं धूप कहीं छाया दिखे, तो समझना चाहिए कि अब पानी न बरसेगा।]

बरसइ मूर खोरि न बहइ
तब ले घाघ काल न कहइ।

[यदि मूलनक्षत्र बरसे और पानी रास्ते से न बहे तो समझना चाहिए कि दुर्भिक्ष न ोगा (मूल=आषाढ़ के प्रथम दिन का नक्षत्र)।

का करिहैं दस तारक
का करिहैं इक मूर;
उत्तराषाढ़ बरसिहैं
लगिहैं तीनिउ तूर।

[दस तारक और मूल क्या करेंगे। यदि उत्तराषाढ़ बरसेगा तो तीनो फ़सलें होंगी।]



ढिलढिल बेंट कुदारी लावैं
हँसि के माँगैं दम्मा;
हे हो कहिके नारि बुलावैं
घाघ ये तीन निकम्मा।

[जो कुदारी में ढीला बेंट लगाते हैं, जो हँस-कर रुपया माँगते हैं, तथा जो बड़े आदर के साथ (अपनी) स्त्री से बातचीत करते हैं, वे तीन आदमी निष्फल प्रयत्न करते हैं।]

छेड़िक धन अउ संतति बेटी,
बिना बरद के जोतै खेती;
बिन भाई के ठानइ मार
घाघ कहइ ते अइहँइ हार।

[बकरी पालकर कोई धनवान् नहीं हो सकता, लड़कियों से कोई संततिवान् नहीं कहला सकता, विना बैल के खेती करनेवाला खेती नहीं कर सकता। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति विना भाई को साथ लिये युद्ध करेगा तो वह शत्रु से अवश्य पराजित होगा।]

मुचमुच ठाकुर, बाभन गोग,
अहिर सभइता, जड़हा धोब;
बनिया क सखरच, कुरमी क छैल,
कहइ घाघ ई छः घर गैल।

[घाघ की राय में निम्नांकित छः पुरुषों के घर नष्ट हो जाते हैं—

१ कंजूस ठाकुर, २ मूर्ख ब्राह्मण, ३ सभाप्रेमी अहीर, ४ ठंड से डरनेवाला धोबी, ५ ख़ूब ख़रच करनेवाला वैश्य, ६ शौक़ीन कुरमी]

बाँभन क जौ होइ लजाधुर,
कैथे क सहलोल;
कहइ घाघ ई तीनिउ भकुवा,
बनिया क फुरिबोल।

[घाघ के कथनानुसार निम्नांकित तीन व्यक्ति मूर्ख होते हैं—

१ लज्जाशील ब्राह्मण, २ संकोची कायस्थ, ३ सत्यवक्ता वैश्य।]

असाढ़ मास जे गँवहीं खायँ,
कातिक माँ जे जाइँ कोहायँ;
चैत मास जे घर माँ सोवैं;
तेकर लड़िका सब दिन रोवैं।

[असाढ़ में जो मेहमान बनकर दूसरों के यहाँ जाकर आराम करते हैं, कार्त्तिक में जो घर से नाराज़ होकर चले जाते हैं, चैत के महीने में जो खलियान छोड़कर घर में सोते हैं, उनके लड़के सब दिन रोते रहते हैं।]

दस हर राव आठ हर राना
चारि हरे कर भला किसाना;
दुइ हर खेती एक हर बारी
एक बरद ले भली कुदारी।

[दस हर रखनेवाले को राव कहना चाहिए। आठ हर रखनेवाले को राना कहना चाहिए। अच्छे किसान के पास चार हर रहना उचित है। साधारण खेती के लिए दो हर और 'बारी' (फल की खेती) के लिए एक हल की ज़रूरत होती है। एक बैल रखने से तो कुदाल का ही प्रयोग करना अच्छा है।]

कहा जाता है कि घाघ की पुत्रवधू को भी कविता करने का शौक़ था। वह अक्सर घाघ की उक्तियों के जबाव में कविताएँ बनाया करती थी। उसकी कुछ कविताएँ नीचे दी जाती हैं।

एक बार घाघजी अपनी बहू को लेने के लिए उसके मायके गये। एक आदमी ने सोचा कि घाघ-जी बड़े अनुभवी किसान हैं। इनसे कुछ कृषि-संबंधी शिक्षा लेनी चाहिए। यह सोचकर वह घाघ के पास गया और उसने अपनी इच्छा प्रकट की।

घाघ ने सफल कृषक होने का नुस्ख़ा इस प्रकार बतलाया—

सौ कइ जोत पचासै जोतै
ऊँच कइ बाँधइ आरी;
एतने प जउ दैव न देइ
त देइ घाघ का गारी।



[सौ बीघे की जगह पचास बीघे की ही खेती करे और खेतों में ऊँची मेड़ बाँधे। यदि इस पर भी खेत में फ़सल न हो तो घाघ को गाली दे]

घाघ की पुत्रवधू ने यह सुनकर उस आदमी से कहा—

सौ कइ जोत सवा सौ जोतै
औ जिनि बाँधै आरी;
जवन दइउ देइ तवन होवइ
करै घाघ के पुरखा कइ दाढ़ी।

घाघ पुत्रवधू के साथ चले। रास्ते में एक अहीर पौला पहिर करके हल जोत रहा था। एक मुसलमान स्त्री 'सुथना' पहनकर खेत निरा रही थी। एक आदमी सिर पर घास का गट्ठा रखे हुए चला जा रहा था और गाना गा रहा था। घाघ को ये तीनों बातें उचित नहीं मालूम पड़ीं। उन्होंने कहा—

पउला पहिरे हर जोतै अउ सुथना पहिरि निरावै;
कहइ घाघ ई तीनिउ भकुवा सिर बोझा अउ गावै।

[ये तीन आदमी बेवकफ हैं—
१ जो पौला पहिरकर हल जोतते हैं,
२ जो पायजामा पहनकर धान निराते हैं,
३ जो सिर पर बोझा रखकर गाते हैं।]

यह सुन घाघ की पुत्रवधू ने कहा—

अहिर होइ तउ कस ना जोतै
तुरकिन होइ निरावै;
रसिया होइ त कस न गावै
हलुक बोझ जौ पावै।

पौला पहनकर हल चलाना ठीक नहीं है; क्योंकि पौला पहनकर बैलों के साथ जल्दी-जल्दी चलने में कठिनाई होती है; किंतु जिस खेत में अरहर की खूँटियाँ रहती हैं, उसमें पौला पहनकर ही हरवाह चल सकता है। पौला पहनकर चलने में अहीर अधिक अभ्यस्त होते हैं, इसलिए विशेष स्थिति में पौला पहनकर हल चलाना हानिकारक नहीं होता।

धान के खेत में पानी भरा रहता है, इसलिए पायजामा पहनकर धान निराना ठीक नहीं होता। किन्तु मुसलमान स्त्रियों की तो पोशाक ही यही है, इसलिए उनके लिए पायजामा पहनकर धान निराना क्षम्य है।

बोझा लेकर गाना उचित नहीं; क्योंकि इससे भारवाहक का ध्यान बोझे से अलग हो जाता है और बोझा गिरने का भय रहता है; किन्तु यदि बोझा हलका हो तो गिरने का भय नहीं रहता। इसलिए हलका बोझा ले जानेवाला आनन्द से गाते हुए जा सकता है।

आगे चलकर कुछ दृश्य देखकर घाघ ने कहा—

मुये चाम से चाम कटावैं
भुइँ सकरे है सोवैं;
कहइ घाघ ये तीनिउ भकुवा
उढ़रि जायँ औ रोवैं।

यह सुनकर उनकी पुत्रवधू ने कहा—

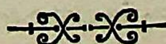
सुख की खातिर चाम कटावैं
संगति सकरे सोवैं;
मद का मारा उढ़रि जायँ
फिर मोह का मारा रोवैं।

घाघ के कथनानुसार ये तीनों मूर्ख हैं—

(१) जो ऐसा जूता पहनते हैं, जो कष्ट देता है,
(२) जो भूमि पर भी संकुचित स्थान में सोते हैं,
(३) जो स्त्रियाँ घर से निकल जाती हैं और फिर रोती हैं।

घाघ की पुत्रवधू की समझ में ये तीनों मूर्ख नहीं हैं—

(१) जूता पहनने से यद्यपि पहले कष्ट होता है, किन्तु पीछे सुख प्राप्त होता है।
(२) मनुष्य अपने साथियों के पास ही रात्रि व्यतीत करना चाहता है, इसलिए स्थान के संकोच का कष्ट सहता है।
(३) स्त्रियाँ कामांधता के कारण घर से निकल जाती हैं, किन्तु जब उन्हें अपने सम्बन्धियों का स्मरण होता है, तब वे रोती हैं, यह स्वाभाविक है।



देखा

श्रीजगदीश झा 'विमल'

चार दिन की चाँदनी पर भूलता संसार देखा ?

(१)

बोल बाला नर निराला केसरी अवतार देखा;
दीन दुखियों को दबाता देव-सा सरकार देखा।
स्वार्थ माया में मिला जननी जनक अवतार देखा;
निबल निर्धन स्वजन तजकर और का सत्कार देखा।
प्यार देखा मार देखी जीव जग में भार देखा;
चार दिन की चाँदनी पर भूलता संसार देखा।

(२)

स्वर्ग-सी दुनिया बसाई आज उसका द्वार देखा;
गगनचुम्बी महल उजड़े दीपरहित मज़ार देखा।
था जहाँ वैभव बरसता वहीं उड़ता छार देखा;
लूटवालों की क़बर पर वह कटीला झाड़ देखा।
आँखवालों को भटककर व्यर्थ करते मार देखा;
चार दिन की चाँदनी पर भूलता संसार देखा।

(३)

था जहाँ पतझड़ वहाँ ऋतुराज आज बहार देखा;
कीचड़ों में मधुर मधुमय कमल-दल-भरमार देखा।
वनविहूनी भूमि पर अनुपम नगर दरबार देखा;
स्वर्ग-सी सुन्दर धरा पर भग्न भवन-कतार देखा।
सार देखा, चार देखा, बिलखता बेकार देखा;
चार दिन की चाँदनी पर भूलता संसार देखा।

(४)

प्रभा-पूरित सूर-शशि को राहु का आहार देखा;
नील निर्मल गगन में घनघोर पारावार देखा।
दर्प दलते सिन्धु का जलयान को मँझधार देखा;
अस्त्रधारी को निहत्थों पर चलाते वार देखा।
हार देखी, रार देखी, पुनः हाहाकार देखा;
चार दिन की चाँदनी पर भूलता संसार देखा।



"कुन्दमाला"

आचाय पं० जानकीवल्लभ शास्त्री

महाकवि कालिदास के गंगा-गोदावरी और कालिन्दी-नर्मदा के पावन पुलिनों पर प्रकृति-पर्यवेक्षण के प्रथम प्रणयोदयावसर समान रूप से पाये जानेवाले असमान रूप 'मेघदूत' में परम प्रतिभोद्भूत कोमल-कल्पनाओं और मन्दाक्रान्ता की अमन्दाक्रान्त भौगोलिक जल्पनाओं के साथ ही साथ स्थान-स्थान पर अनेक तात्कालिक ऐतिहासिक इङ्गित भी देख पड़ते हैं। उनकी पौराणिक सत्यता का दीपक नवीनता के राजपथ पर जगमगाती बिजलियों के मुक़ाबले मन्द पड़ता जा रहा है, यह और बात है। पर ज्योत्स्नास्नात राका की तरह शीतल, टिमटिमाते दीपक की ज्योति आज भी कुछ लोगों को लैंटर्न से अधिक प्यारी मालूम होती है। प्रकृति-निरीक्षण के समय हमें इस प्रकृति की भी याद होनी चाहिए।

विरह-विधुर यक्ष के मुख से कालिदास ने 'उदयनकथाकोविद ग्रामवृद्धों के' साथ ही रास्ते में पड़नेवाले आचार्य दिङ्नाग के आवास की बाबत भी एक पंक्ति कहलाई है, कम से कम मल्लिनाथजी ने तो सञ्जीवनी व्याख्या में इतनी ही स्पष्टता कर दी है, जिससे कालनिर्णयावसर पर आधुनिक ऐतिहासिकों के सामने एक स्पष्ट आधार खड़ा हो जाता है। कुछ भी हो, आचार्य दिङ्नाग निस्सन्देह अनैतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं, और अप्पय दीक्षित के साथ पण्डितराज जगन्नाथ की तरह इन्हीं आचार्य दिङ्नाग के साथ कालिदास की प्रतिस्पर्द्धा रही होगी, इस किंवदन्ती में अस्वाभाविकता के अत्यन्ताभाव के कारण सन्देह करने की गुंजाइश नहीं है। हाँ, यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि—

'मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्,
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः'।

तथा—'आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्'

जैसी पंक्तियाँ लिखकर नम्रता के लिए अतिशय प्रसिद्ध कालिदास के मुँह से जिसके प्रति वैसी हास्यगर्वमयी उक्ति निकल आई है, वह प्रतिस्पर्द्धी पुरुष कैसा रहा होगा ?

यों प्रोफ़ेसर उई (Prof. Ui) ने दिङ्नाग का समय पाँचवीं शताब्दी माना है, पर 'दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूल हस्तावलेपान्' की की हुई मल्लिनाथी व्याख्या का भी बहुतों ने अनुमोदन किया है, और दिङ्नाग को कालिदास का समकालीन माना है। यदि भाषाशास्त्र के सूक्ष्म विवेचक गौर कर देखेंगे, तो दिङ्नाग की भाषा से भी उनका कालिदाससमकालीनत्व उन्हें सुस्पष्ट प्रतीत होगा। मेरा निजी विश्वास तो यही है।



आचार्य दिङ्नाग की नाट्यरचना अप्रसिद्ध 'कुन्दमाला' को देखकर मुझे उनके कालिदास के प्रतिस्पर्द्धी अथवा समालोचक होने में कुछ भी संशय न रहा। कुन्दमाला यदि शकुन्तला की तरह विश्वविश्रुत नहीं है, तो कला की दृष्टि से कम उपादेय भी नहीं। कीर्ति का होना और न होना तो ईश्वरीय इच्छा पर निर्भर करता है—'यश अपयश विधि हाथ'। पर इसका अर्थ यह नहीं कि प्रसिद्धों में दोषाभाव की, और अप्रसिद्धों में गुणन्यूनता की कारणता ही ठीक है।

मैं एक बार फिर कह देना चाहता हूँ कि अगर कुन्दमाला का लेखक कालिदास का समालोचक रहा होगा तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। कालिदास महाकवि थे, और सौ बार थे, पर यह बात भी विद्वानों से छिपी नहीं है कि वह बड़े विद्वान् न थे। यह आवश्यक नहीं कि कवि विद्वान् भी ज़रूर हो, या विद्वान् को कवि होना आवश्यक हो। कवित्व तो ईश्वरीय देन है। अधिकांश विद्वानों की रचना कलामयी, पाण्डित्यमयी भले ही हो जाय, पर कवित्वमयी प्रायः नहीं होती।

आचार्य मम्मट भट्ट ने कवित्व का कारण, 'प्रतिभा' (शक्ति) अनेक काव्यशास्त्रादिकों के देखने-सुनने से उत्पन्न होनेवाली 'निपुणता' और काव्यज्ञों की शिक्षा के अनुसार 'अभ्यास' इन तीनों को माना है।

"शक्तिर्निपुणता लोक-काव्यशास्त्राद्यवेक्षणात्,
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।"

इसमें ध्यान देने लायक़ बात यह है कि इन तीनों की कारणता 'तृणारणिमणि' न्याय से नहीं है; क्योंकि तृण में अरणि में और मणि (सूर्यकांत) में अग्नि उत्पन्न करने की शक्ति अलग-अलग है, पर यहाँ काव्योत्पत्ति तो इन तीनों के मिल जाने पर ही हो सकती है, इसलिए इन तीनों की कारणता 'दण्डचक्रचीवर' न्याय के मुताबिक़ है। अर्थात् डण्डे, चक्के और धागे की वजह से जैसे घटोत्पत्ति होती है, उसी प्रकार शक्ति-निपुणता और अभ्यास, इन तीनों से काव्योत्पत्ति होती है। अतएव उक्त पद्य में 'हेतुः' में एकवचन कहा गया है, अलग-अलग कारणता होने पर 'हेतवः' कहना उचित होता। पर पण्डितराज जगन्नाथ ने (तस्य च कारणं केवला कविगता प्रतिभा') कविता की वजह केवल प्रतिभा मानी है; क्योंकि वे लड़के, जिन्होंने लोक और शास्त्र में दक्षता प्राप्त क़तई नहीं की, या जिन्हें गुरुजनों के समीप अभ्यास करने का भी मौक़ा नहीं मिला है, सुन्दर से सुन्दरतर कविता कैसे बना लेते हैं? केवल प्रतिभा की बदौलत ही न! कविवर 'निराला'जी तो कहते थे कि कविता का निर्माण २० या २५ साल की उम्र तक किया जा सकता है, फिर तो कला या विद्वत्ता ही अवशिष्ट रह जाती है। सचमुच बात कुछ ऐसी ही मालूम पड़ती है, इसी लिए पल्लव से सुन्दर पंतजी की रचना शायद फिर न हो सकी! यह बात अप्रासङ्गिक नहीं, किंतु कविता के प्रसंग में ही स्पष्टीकृत हुई है।

हाँ, तो आचार्य दिङ्नाग अपनी दार्शनिक विद्वत्ता के लिए चिरप्रसिद्ध हैं, फिर भी इनकी रचना 'सुधा' से अधिक मधुर और नव-नवनीत से भी अधिक कोमल, अधिक मसृण है। आश्चर्य नहीं कि यह कालिदास के समय के थे; क्योंकि इतनी सरस और सरल रचना उसी समय हुई है। बाद के कवियों ने अलङ्कारों के बोझ से कविता-कामिनी को बहुत दबा दिया है, देहाती बना दिया है। स्वाभाविकता (अलौकिक बातों के वर्णनों को छोड़कर) कवितागत, कालिदास में जिस तरह की है, मुझे दिङ्नाग में भी वैसी ही मिली। कैसे कहूँ, यह मेरा दृष्टिदोष है।

कुन्दमाला

यह ६ अंकों का रूपक है। सीतावनवास की कथा इसमें बड़े ही द्रावक शब्दों में अंकित की गई है। दिङ्नाग की कवित्व-प्रतिभा ऊँचे दर्जे की थी। चरित्र-चित्रण में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है, सीता की उक्तियों में काफ़ी मनोवैज्ञानिकता की झलक देख पड़ती है। यों तो सभी नाटकों में कुछ



अलौकिक (अमानुषिक) घटनाएँ हुआ करती हैं, और कुन्दमाला में भी उसका अभाव नहीं। फिर भी स्वाभाविकता नष्ट नहीं हो पाई है; कारण, राम स्वयं अलौकिक थे, इसलिए उनके चरित्र अलौकिकता से शून्य नहीं हो सकते। संस्कृत के नाटक अपनी मुटाई के कारण एक रात के संकुचित वातायन से अपना पूर्ण रूप प्रायः नहीं दिखा पाते, पर तन्वंगी 'कुन्दमाला' में यह दोष बिलकुल ही नहीं है। जैसे यह स्टेज को ध्यान में रखकर लिखी गई हो। इसमें शकुन्तला इत्यादि की तरह अश्लीलता का कहीं नामोनिशान नहीं है; साथ ही उत्तर-रामचरित की तरह कृत्रिम भाषा भी नहीं। इस दृष्टि से भी इसका महत्त्व बहुत होना चाहिए। इतनी मनोरम रचना उत्तर-रामचरित की नहीं हुई है। क्या मालूम, भवभूति ने इससे भी मदद ली थी या नहीं? यदि हाँ, तब तो उत्तर-रामचरित से कहीं अधिक महत्त्व कुन्दमाला का होना चाहिए।

वर्णनाविच्छित्ति

कठोरगर्भा जानकी को महाराज राम की आज्ञा के अनुसार लक्ष्मण रथ पर बिठाये लिये जा रहे हैं जंगल में छोड़ आने के लिए। वह बेचारी जंगल देखने की इच्छा से हँसती-किलकती जा रही है। उसे नहीं मालूम, क्षण भर बाद लक्ष्मण का रुख़ बदल जायगा या वह अपनी आँखों में आँसू भर लेंगे और उसकी करुण अवस्था न देखेंगे! सूत्रधार अभी अपनी प्रिया को बुला ही पाया था कि यह दुःसम्वाद उसके कानों में पहुँच गया, वह अतिशय दुःखी होकर कहने लगा—

लंकेश्वरस्य भवने सुचिरं स्थितेति
रामेण लोकपरिवादभयाकुलेन ;
निर्वासितां जनपदादपि गर्भगुर्वीं
सीतां वनाय परिकर्षति लक्ष्मणोऽयम्।'

अर्थात्—'यह बहुत दिनों तक रावण के घर में रह चुकी हैं', इसी लोकनिन्दा से डरकर राज्य भर से निकाली हुई गर्भवती सीता को लक्ष्मण जंगल लिये जा रहा है। इसके व्यंग्यार्थ मेरी समझ के मुताबिक शब्दतः यह होंगे—'रावण' के यहाँ रहने से सीता का रोते रहना ही समझा जा सकता था, कलंक का अवसर क्यों आता? पर वह तो 'लंकेश्वर' के यहाँ रह चुकी हैं! कैसे कहा जाय, उसके अखण्ड वैभव पर दृष्टिक्षेप करते ही उनका मन न डिग गया होगा! 'लंकेश्वर' की वाटिका (अशोक) में पड़ी होतीं, तो भी 'परिवाद' का मौक़ा न आता, पर वह तो 'भवन' में—हाँ, राजमहल में रहती थीं। वह भी क्षण भर नहीं, 'सुचिर' काल तक। अगर "लंकेश्वर के महल में बहुत दिन 'बिताये' " इतनी ही बात होती, तो भी ग़नीमत थी। पर वह तो हा! 'स्थित' रही हैं! इसी निन्दा से डरकर, डरकर ही क्यों घबराकर (यद्यपि वह अपनी गम्भीरता के लिए लोक-विख्यात हैं) राम ने सीता को निकाल दिया। कितनी बड़ी अक़्लमन्दी है यह! लोक के कहने भर से निकाल देना ही उचित समझा, पर सीता का अपराध कुछ न था, इसकी ओर ज़रा ग़ौर न किया! अथवा इन्हीं ने अग्नि-परीक्षा ली थी, वह मज़ाक की बात थी! हाँ, तो 'सीता' को निकाल दिया। यह सुलभ भी था। पर 'जानकी' होतीं, तब? ज़रा महाराज जनक की इकलौती लाड़ली लड़की को निकाल देना टेढ़ी खीर था। सीता तो 'जनपद' मात्र से निकाल दी गई हैं, फिर दूसरे भवन में उनके निवास इत्यादि का तर्क ही निर्मूल है। इस बेचारी 'गर्भगुर्वी' (कितनी निर्दयता है यह) को लक्ष्मण जंगल की ओर ले जाने के लिए 'परिकर्षति' जल्दी-बाज़ी कर रहा है, विचार को तिलाञ्जलि दे चुका है!

इसी सुन्दर कविता से नाटक की स्थापना की गई है। दिङ्नाग का कवित्व इसी से अनुमित हो सकता है। इसका पहला अंक तो इतना द्रावक है कि मैं रोते-रोते किसी प्रकार पढ़ पाया था। दो-एक उसके स्थानों का और भी निरीक्षण करें—जब लक्ष्मण ने, जंगल में पहुँचने पर, यह कह दिया कि—



"त्यक्ता किल त्वमार्य्येण चारित्रगुणशालिना;
मयाऽपि किल गन्तव्यं त्यक्त्वा त्वामिह कानने।"

तब सीता यह कहते-कहते बेहोश हो गईं कि 'हा नाथ, आर्य कोसलाधिप, अद्योपरतोऽसि।' अर्थात् हे पिताजी, पूज्य कोसल के महाराज! तुम्हारी मृत्यु आज हुई है। उनके कहने का आशय स्पष्ट प्रतीत होता है कि अगर महाराज दशरथ आज जीवित होते, तो राम की क्या हिम्मत थी कि उस निरपराधा को यों ही जंगल में छोड़ आने के लिए लक्ष्मण को कह सकते!

लक्ष्मण ने लौटते समय पूछा, कुछ आप भी कहें, जो मैं लौटकर महाराज राम को कहूँगा, तो सीता ने कहा, 'उफ़ इस हालत में पहुँचकर मैं क्या कह सकती हूँ? हाँ, मेरी सासों को मेरा साष्टांग प्रणाम कहकर कहना कि निस्सहाय, भयानक जन्तुओंवाले जंगल में रहनेवाली मुझ अभागिनी पर वह दया रक्खेंगी।'

दिङ्नाग ने यहाँ पर अपने स्त्रीस्वभाव-निरीक्षण की हद कर दी है। लक्ष्मण ने फिर कहा "तो आप राम के लिए कुछ नहीं कहतीं?" सीता ने कहा, "अच्छा, लक्ष्मण, अब मैं उस निठुर को भी कुछ कहे देती हूँ, पर यह सिर्फ़ तुम्हारी बात मानने के लिए, अपनी ममता से नहीं। हाँ, तो उनसे यह कहना कि मुझ अभागिनी की कभी-कभी याद करते हुए आप 'वर्णाश्रमधर्म' के पालन में ख़ूब सावधान रहेंगे। साथ ही अपनी देह (मेरी तो जो हालत हुई, वह हुई ही, यह व्यंग्य है) पर भी ध्यान रक्खेंगे। अच्छा, अब जाने दो, मैं क्या 'महाराज' (प्रिय को नहीं) को उपालम्भ दूँ?" इतना ही कहकर वह चुप हो गईं। यह दुःखोद्रेक का लक्षणमात्र है, विशेष कर स्त्रीजाति के। पर ज्यों ही फिर लक्ष्मण ने कुछ कहा, त्यों ही वह बोलने लगीं—"हाँ, मेरी तरफ़ से उन्हें यह भी कह देना कि वह मुझे मूर्ख, चिरपरिचित अनाथा या 'सीता' समझकर भी कभी-कभी याद करने की कृपा करेंगे। बेटा लक्ष्मण, अयोध्या को मेरा प्रणाम कह देना, महाराज राम की सेवा करना, माताओं का कहा करना, मेरी सखियों को आश्वासन देना, और मुझ अभागिनी की भी याद किया करना।" यह कहकर रोने लगीं। सचमुच यह स्थल इतना करुणापूर्ण है कि कोई भी सहृदय बिना रोये रह नहीं सकता।

लक्ष्मण भी घबरा गये, वह कहने लगे—

"आर्य्यां स्वहस्तेन वने विमोक्तुं
श्रोतुञ्च तस्याः परिदेवितानि;
सुखेन लंकासमरे हतं मा—
मजीवयन्मारुतिरात्तवैरः।"

अर्थात्—दुष्ट हनूमान ने लंका की लड़ाई में सुख से मरे हुए मुझको इसी लिए जिला लिया था कि मैं अपने हाथ से आर्या सीता को जंगल में छोड़ जाऊँ, और उनका करुण क्रन्दन सुनूँ!

यह भाव इतना सुन्दर हुआ है कि ऐसी कविता मुश्किल से बन पड़ती है। इन्हीं कविताओं की बदौलत दिङ्नाग में कालिदास के समालोचक होने की हैसियत पाई जाती है।

"एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य
हंसाश्च शोकविधुराः करुणं रुदन्ति;
नृत्तं त्यजन्ति शिखिनोऽपि विलोक्य देवीं
तिर्य्यग्गता वरममी न परं मनुष्याः।"

अर्थात्—'देवी सीता की इस करुणावस्था को देखते ही हिरनों ने घास खाना छोड़ दिया, और वह रो रहे हैं। अतिशय खिन्नचित्त होकर हंस करुण रुदन कर रहे हैं, ये मयूर भी अपना नाचना छोड़ रहे हैं। उफ़! ये तिर्यग् योनिवाले अधिक अच्छे हैं बनिस्बत मनुष्य के; क्योंकि मनुष्य की कृपा से ही तो एक देवी को ऐसी अवस्था का आश्रयण करना पड़ा है। नहीं तो, कहाँ प्रातःस्मरणीया देवी, और उसका निर्वासन, अमानुषिक अत्याचार।

सीता ने कहा, "जाओ लक्ष्मण! सूरज डूब गया, इधर आदमियों का आना-जाना भी नहीं होता, पक्षी



...कर घोंसलों चले गये, जंगली जानवर घूमने-फिरने लगे, जाओ अब और ठहरना ठीक नहीं ।”

पाठक देखें, जिन-जिन बातों की वजह से लक्ष्मण के लिए एकाकिनी सीता को छोड़कर जाना उचित नहीं, उन्हीं-उन्हीं बातों को ढाढस से बतलाकर सीता उन्हें जाने के लिए ज़ोर दे रही हैं ! जब सचमुच लक्ष्मण चले गये, तो सीता रोने, और कहने लगीं—“क्या लक्ष्मण मुझे अकेली छोड़कर चला गया ? हाय ! सूरज डूब गया, लक्ष्मण की तो कहीं से अब आवाज़ भी नहीं सुनाई पड़ती, जंगली जानवर घूमने लगे, अब मैं मन्द-भागिनी अकेली यहाँ क्या करूँ ? हे ईश्वर, अब मैं कहाँ जाऊँ ?”

कवि ने इस स्वभाव-चित्रण तथा करुण क्रन्दन में क्या कमाल नहीं कर दिखाया है ? कोई भी भावुक-हृदय इस दृश्य को देखकर बिना अश्रु-वर्षा किये रह सकता है ?

कई अंकों में राम की उक्ति भी अत्यद्भुत हुई है। कवित्व-प्रवाह देखते बनता है !

“...तावत् मकरवसतौ बन्ध्यतां शैलसेतुः
...वह्निश्च विगणितः शुद्धिसाक्ष्ये नियुक्तः ।
...कूणां भुवनमहिता सन्ततिर्नेक्षिता मे
...किं मोहादहमकरवं मैथिलीं तां निरस्य ।

× × ×

...वनप्रवासः पश्चाल्लंका ततः प्रवासोऽयम् ।
...मामधन्यं दुःखाद्दुःखं गता सीता ।”

अर्थात्—समुद्र में बाँधा हुआ पुल व्यर्थ हो गया, ...के साक्ष्य में नियुक्त अग्निदेव का भी मैंने ...दर किया, (किसी को साक्षी बनाकर फिर ...का कहा न करना परले सिरे का अनादर है) ...कुल की संसारविख्यात सन्तति की (सीता ...उत्पन्न होनेवाली) तरफ़ मैंने ज़रा ध्यान नहीं ..., उफ़ ! मूर्खतावश मैथिली को निर्वासित ...मैंने कितने अनर्थ न किये ? पहले-पहल वन-..., फिर लंका में राक्षसों के बीच रहना, फिर यह चिरप्रवास, आह ! मुझ नीच के पास आकर सीता ने नित नये दुःख भोगे ।

करुणरस-निर्माण तथा निर्वाह में तो दिङ्नाग अतीव सिद्धहस्त हैं। तमाम कुन्दमाला में करुण-रस की धारा बहा दी है। सीधे-सादे शब्दों में भावों का गम्भीर गुम्फन सोने में सुहागे का काम कर रहा है। कविताएँ इतनी सरल हैं, जैसे आप बन गई हों। ऊपर के उदाहरण परीक्षा के लिए पर्याप्त होंगे। पीछे की सारी कविताएँ व्यंग्यपर-म्पराओं से अंचित हैं, पर स्थान-संकोच के कारण उन्हें विशकलित करने से मैं ही वंचित हो रहा हूँ।

सचमुच एक नन्हीं-सी ‘कुन्दमाला’ पहनकर ही आचार्य दिङ्नाग महाकवियों की सभा के प्रधान सभापति हो सकते हैं। कुन्दमाला की सुगन्धि शीघ्र ही पाठ्य पुस्तकों के सम्पादकों की ऊँची नाक में पड़े, निबन्ध का उद्देश्य यह भी है।

तुलनात्मक आलोचना

‘कुन्दमाला’ की कमनीय कविताओं को देखते ही मुझे जिन-जिन कविताओं की याद आई है, तथा इसकी अनेक घटनाओं के सदृश अन्य नाटकों की घटनाओं का मैं संक्षेपतः निर्देश करने की कोशिश यहाँ करूँगा। स्वाध्याय के अवसर पर इन भाव-विनिमयों से सहृदय पाठकों को परम प्रसन्नता प्राप्त होती है।

“मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकायाः,
स्वेषामपि प्रसरतां रजसामलंघ्याः ।
निष्कम्पचामरशिखाश्च्युतकर्णभङ्गा,
धावन्ति वर्त्मनि तरन्ति नु वाजिनस्ते ।”
—शकुन्तला प्र० अङ्क

“अमी पतद्भिः श्रवणे स्वमन्द्रं,
विकृष्यमाणाः कलहंसनादैः ।
अनाश्रवाः प्रग्रहसंयमस्य,
तुरङ्गमास्तूर्णतरं प्रयान्ति ।”
—कुन्दमाला प्र० अङ्क



"विलासवापीतटवीचिवादनात्,
पिकालिगीतैः शिखिलास्यलाघवात्।
वनेऽपि तौर्य्यत्रिकमारराध,
तं भोगमाप्नोति न भाग्यभाग् जनः।"
—नैषध प्र० सर्ग

"तरङ्गा वीजन्ते सजलकणिकान् शीतमरुतम्
तथैते सङ्गीतं दधति कलहंसाः कलगिरः।
सखीवच्छायेयं रमयति परिष्वज्य हृदयं
वने शून्येऽप्यस्मिन् परिजनवतीवात्र भवती।"
—कुन्दमाला प्र० अङ्क

"सर्वथा व्यवहर्त्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।
देव्यामपि हि वैदेह्यां सापराधो यतो जनः।
रक्षो गृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः।"
—उत्तर० प्र० अङ्क

"ऋषीणां लोकपालानामार्य्यस्य मम चाग्रतः।
अग्नौ शुद्धिं गता देवी किन्तु लोको निरंकुशः।"
—कुन्दमाला प्र० अङ्क

"त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमंगे।"
—उत्तर० तृ० अङ्क

"त्वं देवि! चित्तनिहिता गृहदेवता मे
स्वप्नागता शयनमध्यगता सखीव।"
—कुन्दमाला प्र० अङ्क

"उद्भिन्नदर्भकवला मृगी, परित्यक्तनर्त्तना मयूरी।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चत्यश्रूणीव लता।"
— शकुन्तला च० अङ्क

"एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य
हंसाश्च शोकविधुराः करुणं रुदन्ति।
नृत्तं त्यजन्ति शिखिनोऽपि विलोक्य देवीं।"
—कुन्दमाला प्र० अङ्क। इत्यादि।

कुछ घटनाओं के साम्य भी परीक्षणीय हैं। उत्तर-रामचरित में कन्चुकी ने आकर कहा 'रामभद्र' (बचपन में राम को लोग रामभद्र ही कहकर पुकारते थे), पर वह इतना कहते सहम गया, और फिर सम्हलकर कहा—'महाराज'। यह देख-सुनकर राम मुस्कराकर कहने लगे—"आर्य! मेरे पिताजी के परिजनों को मुझे रामभद्र कहकर पुकारना ही अधिक प्यारभरा जँचता है, सो आप अपनी आदत के मुताबिक़ रामभद्र ही कहिए।"

कुन्दमाला में भी राम को कण्व आकर 'राजन्' कहता है, तो वह कहते हैं "मित्र! यह तपस्वियों के विरुद्ध आमन्त्रण है। अथवा तुम्हारी उम्र ने ही ऐसा करने के लिए तुम्हें बाध्य किया है, तो कहो; क्योंकि बचपन में हम दोनों राम और कण्व मात्र थे, पर उम्र ने अब पहले को 'राजा' और दूसरे को आर्य बना दिया।"

मानव-स्वभाव के सूक्ष्म पारखियों को दोनों राम की उक्ति में कुछ भेद जँचेगा, पर वह तो होना ही उचित है। उत्तर-रामचरित की सीता और कुन्दमाला की सीता में भी बहुत भेद है। दोनों कवियों ने चरित्र-चित्रण में कमाल किया है, रुचि-वैचित्र्य से दोनों ही अच्छे हैं।

"शशाम वृष्ट्याऽपि विना दवाग्नि-
रासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः।
ऊनं न सत्त्वेष्वधिको बबाधे
तस्मिन् वनं गोप्तरि गाहमाने।"

रघुवंश में कालिदास ने कहा है कि राजा दिलीप के जंगल में प्रवेश करते ही दवाग्नि आप ही आप बुझ गई, फल-फूलों की ख़ूब वृद्धि होने लगी, साथ ही बड़े-बड़े ख़ूनी जानवरों ने भी छोटों पर हमला करना छोड़ दिया।

कुन्दमाला में भी—

"मन्दं वाति समीरणो न परुषा
भासो निदाघार्चिषो
न त्रस्यन्ति चरन्त्यशङ्कमधुना
मृग्याऽपि सिंहैस्सह।



मध्याह्नेऽपि न याति गुल्मनिकटं
छाया तदध्यासिता,
व्यक्तं, सोऽयमुपागतो वनमिदं
रामाभिधानो हरिः ।"

रामचन्द्रजी के वन में आने पर उन्हीं बातों का वर्णन किया गया है। उत्तर-रामचरित में भी ठीक इसी प्रकार से कहा है—

"फलन्तु तरवः पुष्पैरर्घ्यं फलैश्च मधुश्च्युतः,
स्फुटितकमलामोदप्रायाः प्रवान्तु वनानिलाः ।
...अविरलं रत्युत्कण्ठाः क्वणन्तु शकुन्तयः,
पुनरिदमयं देवो रामस्स्वयं वनमागतः ।"

भवभूति ने द्वितीय अङ्क में मध्याह्न का जैसा वर्णन किया है, तृतीय अङ्क में कुन्दमाला में वैसा ही किया गया है। शब्द-गुम्फन में भी काफ़ी साम्य है—

"कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणाकम्पेन सम्पातिभि-
र्घर्मस्रंसितवन्धनैश्च कुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम् ।
छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः
कूजत्क्लान्तकपोलकुक्कुटकुलाः कूले कुलाय द्रुमाः ।"

उत्तर-रामचरित

"मध्याह्नार्कमयूखतापमधिकं तोयावगाहादयं
शीत्वा वारिकणार्द्रकर्णपवनैराह्लाद्यमानाननः ।
स्वैरं मन्दमुपैति कूलमधुना वत्तः प्रणुन्नैर्जलै-
राक्रान्तं करघातझाङ्कृतिसरित्कल्लोलचक्रः करी ।"

—कुन्दमाला

दुष्यन्त ने शकुन्तला को स्वर्गलोक में धूमिलमुख देखकर कहा था—

"वसने परिधूसरे वसाना
नियमक्षाममुखी धृतैकवेणा ।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला
मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्त्ति ।"

—सप्तम अङ्क

राम ने भी 'कुन्दमाला' में कहा है—

"आपाण्डुरेण मयि दीर्घवियोगखेदं
लम्बालकेन वदनेन निवेदयन्ती ।
एषा मनोरथशतैः सुचिरेण दृष्टा
क्वापि प्रयाति पुनरेव विहाय सीता ।"

—चतुर्थ अङ्क

और उत्तर-रामचरित में भी यह भाव आया है—

"परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं
दधती विलोलकबरीकमाननम् ।
करुणस्य मूर्त्तिरथवा शरीरिणी
विरहव्यथेव वनमेति जानकी ।"

—तृतीय अङ्क

उत्तर-रामचरित के पहले अङ्क में लक्ष्मण जब चित्र दिखला रहे थे तो 'मन्थरा' का प्रसङ्ग आते ही रामचन्द्र ने आगे के पेज उलट दिये, और शृङ्गवेरपुर की तसवीर दिखाने लगे। लक्ष्मण ने मन ही मन हँसकर कहा था—"मा कैकेयी का वृत्तान्त आर्य ने छिपा लिया। ठीक उसी प्रकार कुन्दमाला के षष्ठ अङ्क में जब लवकुश रामचरित का बखान कर रहे थे; अभिषेक-वृत्तान्त आते ही राम ने (कैकेयी की निन्दा का प्रसङ्ग छोड़कर) सीता-हरण के बाद की कथा कहने के लिए उनसे कहा है।

षष्ठ अङ्क शकुन्तला के दुष्यन्त की तरह चतुर्थ अङ्क कुन्दमाला के राम प्रायशः चित्रित हुए हैं।

शकुन्तला के सप्तम अङ्क में स्वर्गलोक में सर्वदमन (भावी भरत) को देखकर दुष्यन्त की जो हालत हुई थी, कुन्दमाला के पञ्चम अङ्क में लवकुश को देखकर राम की भी वही हुई है। वहाँ पर जिस प्रकार 'रक्षाबन्धन' उठा लेने पर, और साँप बनकर उसे दुष्यन्त को न काट खाने पर आश्चर्य हुआ था, राम के सिंहासन पर लवकुश के बैठने और उनके मस्तक को शतशः खण्डित न होनेवाली यहाँ की घटना भी उससे अतिशय साम्य रखती है।

जैसे "पश्य शकुन्त-लावण्यम्' कहने पर बालक सर्वदमन ने शकुन्तला को आगत समझकर कहा



था—'कुत्र-कुत्र मे अम्बा शकुन्तला !' अर्थात् मेरी मा शकुन्तला किधर है ? और यह सुनकर दुष्यन्त को जितना आह्लाद तथा जितना आश्चर्य हुआ था, उसी प्रकार नेपथ्य से 'इक्ष्वाकुकुल-कुमार लव और कुश में से यहाँ है कोई' ? यह आवाज़ आने पर बहुत देर से इसी उधेड़बुन में पड़े राम को भी यहाँ उतना ही आह्लाद और उससे बढ़कर आश्चर्य हुआ है।

पाठकों को इन घटनाओं में साम्य-प्रतीति के साथ-साथ इस नाटक की सुन्दरता का भी काफ़ी पता लग गया होगा। आचार्य दिङ्नाग ने इसे सर्वतः सुन्दर बनाने की चेष्टा की है और इसमें उन्हें काफ़ी सफलता भी मिली है। जिस प्रकार गायत्रीमन्त्र के अक्षरों के अर्थवाले किसी दूसरे वाक्य में गायत्रीत्व नहीं रहता ; और जिस प्रकार शारद ज्योत्स्ना की परम रमणीयता किसी भी अन्य धवलता में नहीं रह सकती, उसी प्रकार कवि के भाव उसके निजी शब्दों में ही सुन्दर प्रतीत होते हैं। अधिक स्पष्टता करने पर भी उन शब्दों की शक्ति अन्य वाक्यों में नहीं आती, इसी लिए इच्छा का संवरण कर मैं उनकी ख़ूबसूरती का बयान अब यहाँ नहीं कर रहा हूँ।

सरस सूक्तियाँ

इस नन्हीं-सी रचना के अन्दर कालिदास की तरह अनेक सुन्दर उक्तियाँ आई हैं, जैसे दुष्यन्त ने कहा है—

"साक्षात् प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं
चित्रार्पितामहमिमां बहुमन्यमानः।
स्रोतोवहां पथि निकामजलामतीत्य
जातः सखे ! प्रणयवान् मृगतृष्णिकायाम्।

राम ने भी कहा है—

"तृषितेन मया मोहात् प्रसन्नसलिलाशयाः।
अञ्जलिर्विहितः पातुं कान्तारमृगतृष्णिकाम्।

जिस प्रकार शकुन्तला में—

"यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतारुणपुरस्सर एकतोऽर्कः
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु।"

कुन्दमाला में भी—

"सन्ताप्य लोकमखिलं निरवग्रहेण
तीव्रो नरेश्वर इव प्रथमं स्वधाम्ना।
सोऽयं वयःपरिणतेरिव शान्ततेजाः
सायं मृदुर्भवति तिग्मरुचिः क्रमेण।"

और जिस प्रकार शकुन्तला में—

"स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तया
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव।
मा गा इत्युपरुद्धया यदपि तत् सासूयमुक्ता सखी
सर्वं तत्किल मत्परायणमहो ! कामः स्वतां पश्यति"

उसी प्रकार कुन्दमाला में भी है

"यां यामवस्थामवगाहमान-
मुत्प्रेक्षते स्वं तनयं प्रवासी।
विलोक्य तां तां च गतं कुमारं
जातानुकम्पो द्रवतामुपैति।"

काव्य में प्रसाद-गुण

महाकवि भारवि ने लिखा है—

"विविक्तवर्णाभरणा सरस्वती
प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्।
प्रवर्त्तते नाकृतपुण्यकर्मणां
प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती।"

अर्थात्—स्पष्ट वर्णों से अलंकृत, शत्रुओं के हृदय को भी ख़ुश कर देनेवाली स्वच्छ किन्तु गम्भीर पदोंवाली वाणी बड़े ही पुण्यात्मा की हो सकती है। बात यह है कि कविताओं में जब तक दार्शनिक भावों का समावेश नहीं हो पाता अथवा अद्भुत-अद्भुत कल्पनाएँ नहीं आतीं, तब तक वह छिछली मालूम पड़ती हैं, और 'रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।' साथ ही सब तरह के भावों और कल्पनाओं का सन्निवेश होते

... सीधे-सादे शब्दों का आना मुश्किल हो जाता है। आजकल की कविताओं में यही दोष लगाया जाता है, जो सरासर अन्याय है। अन्याय इसलिए कि उन-उन भावों का 'चौपदे' की भाषा में सुन्दर ... छन्दों में निर्वाह होना कठिन हो जाता है। ... 'चौपदे' के निर्माता हिन्दी-कवियों के सम्राट् ... कहलाते हैं, तो वह 'प्रिय-प्रवास' की बदौलत। और उसकी भाषा कितनी सरल है, यह 'भारत-भारती' पढ़नेवाले को अच्छी तरह ज्ञात होगा। ... ऐसी भाषा का होना दोष है, ऐसा कहनेवाला व्यक्ति साहित्य के देश से निकाल देने लायक़ होता है।

"मूक-आह्वान-भरे लालसी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के।"

—परिमल (तृतीय खण्ड)

इस सुन्दर भाव का इतना ही मधुर-निर्वाह ठेठ हिन्दी में कदापि सम्भवनीय नहीं।

यह बात और है कि अगर सुन्दर सुबोध भाषा में इसकी निर्मिति हो सके तो ज़्यादा अच्छा हो। संस्कृत के कवियों में कालिदास में इस गुण ने चरम विकास को प्राप्त किया है, फिर भी मुझे यह कहने में तनिक संकोच नहीं कि उनकी कविताओं में बहुत ऊँची कल्पनाएँ अधिक नहीं हैं।

यह प्रश्न बहुत जटिल नहीं कि अधिक कल्पनावाली कविता कविता कहला सकती है, या सीधी बातों का एकदम सीधा वर्णन करनेवाली? क्योंकि मेरे विचार से वे दोनों ही कविता नहीं है। जिन लोगों का मत है कि कविता केवल हृदय की चीज़ है, मस्तिष्क की नहीं, उन्हें उग्र मस्तिष्क का समझना प्रायः भूल है; क्योंकि इस प्रकार के गीतिकाव्यों (Lyrics) का निर्माण जितना सुलभ है, महाकाव्यों का उतना ही दुर्लभ नहीं, किन्तु दुर्लभतर, तम। 'मेघनाद-वध' में हृदय से अधिक कल्पनाएँ हैं, और उसकी महाकाव्यता महाकवियों ने भी एक स्वर से स्वीकृत की है। मैं इसका सूक्ष्म-विवेचन किसी स्वतन्त्र निबन्ध में करूँगा।

हाँ, तो कुन्दमाला के रचयिता में भी सरल से सरलतर पदों में कविता करने की अनुपम ... है। इस प्रकार की कविता को प्रसाद-गुण की कविता कहते हैं। प्रसाद-गुण का लक्षण काव्य-प्रकाशकार ने यों किया है—

"शुष्केन्धनादिवत्, स्वच्छजलवत्सहसैव यः।
व्याप्नोत्यन्यत् 'प्रसादो'ऽसौ सर्वत्रविहितस्थितिः।"

इसी की और स्पष्टता कविराज विश्वनाथ ने की है—

"चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च।
शब्दास्तद्व्यञ्जका अर्थबोधकाः श्रुतिमात्रतः।"

अर्थात्—सूखी लकड़ी में आग की तरह जो झटपट चित्त में व्याप्त हो जाय, उसे प्रसाद-गुण कहते हैं, और वह सभी रसों में, सभी रचनाओं में रह सकता है। उसके शब्द कान में पड़ते ही अर्थ के बोधक हो जाते हैं, जैसे—

"दोनों ओर प्रेम पलता है
सखि! पतङ्ग भी जलता है, औ' दीपक भी जलता है।"

—साकेत नवम सर्ग

पर इन दोनों लक्षणों में जिस प्रकार 'प्रसाद'-गुण बतलाया गया है, उसका आना 'कविताओं' में बड़ी मुश्किल से हो सकता है, इसलिए मुझे तो * 'रसगङ्गाधर' का लक्षण ही सुपयुक्त मालूम पड़ता है—वह लक्षण है—

"गाढत्वशैथिल्याभ्यां व्युत्क्रमेण
मिश्रणं बन्धस्य प्रसादः।"

अर्थात्—कविता में समस्त और व्यस्त दोनों प्रकार के पदों का किसी नियम से संकलन न करना ही प्रसाद है। यह प्रसाद-गुण 'प्रसाद'जी, पन्तजी, और निरालाजी सबों में मिलेगा। प्रसाद-गुण का निर्दोष लक्षण यही हो सकता है।

* प्राचीनमतानुसार शब्दगत प्रसाद-गुण—ले०



कुन्दमाला के पिछले उदाहरणों में प्रसाद-गुण-वाली कविताएँ लिखी जा चुकी हैं, मैं एक उदाहरण और लिखता हूँ—

"वामेन नीवारलतां करेण
जानुं समालम्ब्य च दक्षिणेन ।
पदे पदे मे पदमादधाना
शनैश्शनैरेतु मुहूर्त्तमार्या ।"

लक्ष्मण सीता को रथ से उतरने और क्षण भर पैदल चलने के लिए कह रहे हैं कि बाएँ हाथ से नीवार की लता और दाहने से घुटना पकड़कर, मेरे एक-एक क़दम पर पैर रखतीं आप क्षणभर धीरे-धीरे मेरे पीछे चली आवें। सभी शब्द अलग-अलग साफ़-साफ़ हैं। सच तो यह है कि कुन्दमाला की सारी कविताएँ प्रसाद-गुण की हैं, इसलिए भारवि के कथनानुसार निस्सन्देह आचार्य दिङ्नाग 'कृतपुण्यकर्मा' महाकवि हैं।

ऐतिहासिक ज्ञान

कहते हैं—

"न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला,
जायते यन्न काव्याङ्गमहो! भारो महान् कवेः।"

अर्थात्—संसार में वह न शब्द है और न अर्थ, न कोई वह न्याय है और न कला, जो कविता के अन्दर न आ जाय, आह! कवि के सर पर कितना बड़ा भार है! सचमुच कवियों के लिए सभी विद्याओं और कलाओं का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। संस्कृत के कालिदासादि कवियों ने अपनी कविताओं में 'बहुज्ञता' व्यक्त की है, और सुन्दर निर्वाह-पूर्वक। कालिदास का ऐतिहासिक भौगोलिक ज्ञान इतना प्रबल है कि देखते बनता है! पर श्रीहर्ष ने सुप्रसिद्ध 'नैषध' में भयंकर ऐतिहासिक भूल की है। दमयन्ती से चन्द्रोपालम्भ में कहलाया है—

"सखि! जरां परिपृच्छ तमश्शिर-
स्सममसौ दधतापि कबन्धताम्।
मगधराजवपुर्दलयुग्मवत्
किमिति न व्यतिसीव्यति केतुना ?"

कवि कल्पना में इतना तन्मय हो गया है कि उसे इसकी सुध ही नहीं रही "दमयन्ती के समय में 'जरासन्ध' हुआ था या नहीं?" इन रचनाओं से कवित्व को धक्का नहीं पहुँचता, पर ज़रा वह निर्दोष की अपेक्षा अवश्य हीन मालूम पड़ती है। कुन्दमाला के रचयिता भी इस दोष से मुक्त न हो सके। कुन्दमाला के तृतीय अङ्क में, जब कि नैमिषारण्य में होनेवाले यज्ञ को लक्ष्य कर सीता वाल्मीकि के साथ 'गोमती' के किनारे रहती थीं, कवि ने उनसे 'गङ्गा' का अवगाहन करवाया है और कुन्दमाला विसर्जित करवाई है। ऐसी प्रतिज्ञा तट पर सीता ने की थी। यद्यपि यह एक भूल—"एको हि दोषो गुण सन्निपाते, निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः" क्षम्य है, फिर भी यह भयंकर भूल है, इसमें सन्देह नहीं।

उपसंहार

कुन्दमाला में भास और कालिदास की झलक होने से कवि की तत्कालीनता प्रतीत होती है। साथ ही घटनाओं के साम्य से तत्समकक्षता भी। यद्यपि उत्तररामचरितम् और कुन्दमाला की कथा एक ही है, पर दोनों रचनाओं में सौन्दर्य दो प्रकार की घटनाओं से हुआ है। अगर उत्तर-रामचरित का पहला अङ्क राम की उक्ति से करुणापूर्ण तथा मार्मिक हुआ है, तो कुन्दमाला का सीता की चुभती उक्तियों से। उत्तर-रामचरित और कुन्दमाला दो होकर भी एक हैं, और एक होते पर भी अलग-अलग एक+एक=दो। कारण भवभूति की कवित्व-प्रतिभा और नाट्य-प्रतिभा किसी से कम ऊँची नहीं है; और कालिदास? वह तो वहाँ पहुँच चुके हैं, जहाँ एक 'कालिदास' ही पहुँच सकता है, 'भवभूति' अथवा 'दिङ्नाग' नहीं। भवभूति की भाषा नाटकोपयुक्त नहीं, और कुन्दमाला में भवभूति की बारीकी नहीं है। 'कुन्दमाला' का



...नाटक 'कुन्द-माला' से अधिक सम्बन्ध रखता है, ...र वहीं पर कवि ने भूल की है, इसी लिए ...ह 'शकुन्तला'वाले कालिदास नहीं हो सकते। इसे मैं यों भी कह सकता हूँ कि दिङ्नाग निस्सन्देह दिङ्नाग (दिग्गज) हैं, यौद्ध नैयायिक ही नहीं, उद्बुद्ध महाकवि और नाटककार भी; उनकी रचना में दिङ्नागता (दिग्गजता) चारो ओर है, पर खेद की बात है कि कालिदासता कहीं भी नहीं।



विज्ञानाचार्य प्रोफ़ेसर आयन्सटीन

श्रीश्यामनारायण कपूर और श्रीरामनारायण कपूर बी० एस्-सी० (मेट्०)

सापेक्षवाद (Relativity) के सिद्धान्त ने वैज्ञानिक संसार में जो भीषण बवण्डर पैदा किया था, उसी के साथ प्रोफ़ेसर आयन्सटीन (Einstein) को संसार ने एक विज्ञान पारंगत के रूप में ग्रहण किया। वर्तमान समय में समाचार-पत्रों के प्रत्येक पाठक से प्रो० आयन्सटीन का नाम अपरिचित नहीं है। लगभग सभी विद्यार्थियों ने प्रो० आयन्सटीन और उनके सापेक्षवाद के सिद्धांत का नाम अवश्य सुना होगा, चाहे वे विज्ञान या गणित के विद्यार्थी हों या न हों। प्रो० अल्बर्ट आयन्सटीन उन महापुरुषों में हैं, जिन्होंने अपने अध्यवसाय, उत्कट अध्ययनशीलता, मौलिकता, परिश्रम और अचूक अन्तर्दृष्टि आदि गुणों के समष्टीकरण से इस संसार के गूढ़तम रहस्यों के प्रमाण खोज निकाले हैं।

प्रो० आयन्सटीन के घरेलू जीवन से बहुत कम लोग परिचित हैं। साधारण मनुष्य उनको एक रहस्यमय जीव समझते हैं, जो सदैव गणित के प्रश्नों में डूबा हुआ संसार के रहस्यों को सुलझाने में लगा रहता है। सचमुच प्रो० आयन्सटीन सदैव ही किसी दूसरे लोक में विचरण किया करते हैं। उनसे बातचीत करना भी बड़ा कठिन समस्या है। बातें करते-करते वह भूल जाते हैं कि कहाँ हैं और गम्भीर होकर विचार-सागर में ग़ोते लगाते हैं। बातचीत करनेवाले को उनको अपनी ओर आकर्षित करने में काफ़ी प्रयत्न करना पड़ता है। देखने में प्रो० आयन्सटीन एक सीधे-सादे मनुष्य देख पड़ते हैं। उनको अपने ढीले-ढाले पतलून और खाकी स्वेटर पहनकर मुख में धूम्रपान की नलिका दबाये बिखरे रूखे सूखे बाल किये घूमने में बड़ा आनन्द आता है। घूमने के लिए वे दिनरात तैयार रहते हैं; क्योंकि उनको सोचने का समय ख़ूब मिलता है। वे दिन-रात सोचा ही करते हैं। यही उनका व्यसन है। पाठकों ने यह तो सुना ही होगा कि आजकल प्रो० आयन्सटीन यहूदी होने के नाते अपने देश से निर्वासित कर दिये गये हैं। प्रो० आयन्सटीन जर्मनी की राजधानी बर्लिन में रहते थे। यहीं रह कर इन्होंने शांतिपूर्वक विज्ञान का अध्ययन किया और बड़ी-बड़ी गवेषणाएँ करने में सफल हुए। यहीं रहकर इन्होंने पिछले महायुद्ध के समय ही बड़े-बड़े सिद्धान्त वैज्ञानिक संसार के सम्मुख रक्खे। वैज्ञानिक संसार का ध्यान प्रो० आयन्सटीन की महत्ता की ओर सन् १६१६ ई० में आकर्षित हुआ। इस साल उन्होंने एक ऐसा सिद्धांत निकाला, जिसके कारण वे संसार के सर्व-



श्रेष्ठ वैज्ञानिकों में गिने जाने लगे। अभी तक वैज्ञानिकों का यह विश्वास था कि तारों से आनेवाला प्रकाश सीधी रेखाओं द्वारा पृथ्वी तक पहुँचता है। परन्तु इस विद्वान् का यह मत था कि प्रकाश का मार्ग सीधी रेखा में न होकर झुका हुआ है। साधारण मनुष्य के लिए तो इस सिद्धांत का महत्त्व बहुत कम था, परन्तु वैज्ञानिकों के लिए यह एक चुनौती थी। ब्रिटिश गणितज्ञों और ज्योतिषियों के एक दल ने, जो उन दिनों ब्रेज़िल में था, इस सिद्धान्त की जाँच की और प्रो० के कथनानुसार उसको सत्य प्रमाणित किया। इसके बाद प्रो० आयन्सटीन ने अपने सर्वविख्यात सापेक्षवाद के सिद्धान्त को संसार के सम्मुख रक्खा। इस सिद्धान्त को समझनेवाले बहुत कम लोग हैं। पूरी तरह से समझनेवाले तो सम्भवतः एक दर्जन से अधिक विद्वान् नहीं हैं।

आश्चर्य तो यह है कि जिस सिद्धान्त को प्रमाणित करने के लिए प्रोफ़ेसर आयन्सटीन ने केवल १२ पृष्ठ लिखे थे, उसी को समझाने के लिए ३७७५ से अधिक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं।

आयन्सटीन का सिद्धांत हमारे पुराने सिद्धांतों के लिए सचमुच विप्लवकारी है। अभी तक हम लोग लम्बाई-चौड़ाई और मोटाई द्वारा ही किसी चीज़ की सीमा निर्धारित करते थे, परन्तु इस सिद्धान्त के अनुसार हमको लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई के साथ-साथ उस समय की भी माप करनी पड़ेगी, जो उस वस्तु को दूसरी वस्तुओं के पास टिकने में लगता है।

लेखक आयन्सटीन के सिद्धान्त को समझने या समझाने का दावा नहीं कर सकता। प्रोफ़ेसर साहब ने स्वयं ही अपने सिद्धान्त को अपनी पत्नी को किस प्रकार समझाया था उसका वर्णन बहुत ही मनोरंजक है। प्रोफ़ेसर बहुधा रात-रात भर जागकर अपने कार्य में व्यस्त रहते थे। बहुत खटखटाने और तंग करने पर वह अपने कमरे का द्वार खोलते थे। एक दिन उनकी पत्नी बहुत देर तक परेशान हुई। जब आयन्सटीन जलपान करने बैठे तो दूध का गिलास हाथ में लिये अपनी पत्नी को रात भर का परिश्रम दिखलाने लगे। वे ऐसी बातें करते थे, जो उनकी पत्नी के लिए एक अज्ञात रहस्य-सी थीं। जब वे कुछ भी समझने में असमर्थ रहीं तो उन्होंने अपने पति से पूछा, "यदि मुझसे कोई पूछे कि तुम्हारे अल्बर्ट द्वारा आविष्कृत सापेक्षवाद (Relativity) का क्या अर्थ है तो मैं उसको क्या उत्तर दूँ?" आयन्सटीन ने अपनी साधारण मुस्कान के साथ उत्तर दिया—"यह तो बहुत साधारण-सी बात है। जब कोई मनुष्य एक सुन्दरी बाला से एक घंटे तक प्रेमालाप करता है तो उसे ऐसा भासित होता है, मानो उसने केवल १ मिनट ही बातचीत की है। परन्तु उसी व्यक्ति को केवल १ मिनट के लिए ही किसी गरम चूल्हे पर बैठा दिया जाय तो वह मिनट उसके लिए एक घंटे से भी अधिक प्रतीत होता है। यही तो मेरा सापेक्षवाद है।"

इतना बड़ा सिद्धान्त केवल एक सूत्र में ही सुलझा दिया गया है। सापेक्षवाद की व्याख्या करना विद्युत् और आकर्षण-शक्ति को एक दूसरे से सम्बद्ध करना है। आयन्सटीन ने इसकी व्याख्या में अद्वितीय नवीन चिह्नों का प्रयोग किया है। ये चिह्न संसार के सर्वश्रेष्ठ विज्ञान-विशारदों को ज्ञात न थे। परन्तु अब आयन्सटीन की कृपा से संसार के कुछ विज्ञान-विशारद इनसे परिचित हो गये हैं।

आयन्सटीन हमारे विचारों में एक महान् परिवर्तन लाना चाहते हैं। अभी तक हम सभी यह सीखते चले आये हैं कि 'दो बिन्दुओं के मध्य का सबसे कम अंतर एक सीधी रेखा है।' परन्तु प्रो० आयन्सटीन के कथनानुसार अब यह अंतर

सीधी रेखा ही नहीं, वरन् घुमावदार रेखा है। यदि कोई वस्तु गिरती है तो यह आकर्षण-शक्ति का प्रभाव नहीं है जैसा कि हम अभी तक समझते हैं, परन्तु आयन्सटीन के कथनानुसार पृथ्वी जाकर उस वस्तु से टकरा जाती है।

दूरबीन के आविष्कारक गेलिलियो (Galileo) के युग में यदि ये सिद्धान्त कहे जाते तो शायद आयन्सटीन जीवित न बच पाता। परन्तु आज वह निर्भीक है और उसे अपने ऊपर विश्वास है।

आरम्भ में जर्मनी में उसका बड़ा मान किया गया। भेंटों से उसका घर भर गया। किसी मित्र ने आयन्सटीन को एक नाव भेंट की। प्रोफ़ेसर साहब को नाव पर बैठने का बड़ा शौक़ है। उन्होंने यह भेंट बड़ी उदारतापूर्वक स्वीकार की। उनको एक बड़ा भारी मकान और बग़ीचा भेंट किया गया, परन्तु उन्होंने दोनों चीज़ें वापस कर दीं; क्योंकि उनके अपना मकान था। उनके लिए धन और मान का कुछ भी मूल्य नहीं है।

धार्मिक मामलों में प्रोफ़ेसर आयन्सटीन बड़े कट्टर हैं। इसी कारण उनको अपनी जन्मभूमि छोड़नी पड़ी। वे यहूदी-मत के माननेवाले हैं। जब से जर्मनी में नाज़ी-सरकार का बोलबाला हुआ, यहूदियों को शांतिपूर्वक जीवन बिताना कठिन हो गया। हिटलर की बढ़ती के साथ ही साथ यहूदियों पर अत्याचार भी बढ़े और धीरे-धीरे उन्हें अनार्य कहकर आर्य जर्मनी से बाहर निकाला जाने लगा। प्रोफ़ेसर आयन्सटीन को अपनी जन्मभूमि की अपेक्षा अपने धार्मिक विचार अधिक प्रिय थे। फलस्वरूप अत्याचारों से ऊबकर उन्हें जर्मनी से भागना पड़ा। भागकर उन्होंने इँगलैंड में शरण ली। आजकल प्रोफ़ेसर साहब भागकर अमेरिका विश्वविद्यालय में कार्य कर रहे हैं। इतने बड़े विद्वान् का ऐसा निरादर! परन्तु 'प्रभुता पाय काहि मद नाहीं'।

इतने दिग्गज विद्वान् होते हुए भी प्रोफ़ेसर आयन्सटीन बड़े भुलक्कड़ हैं। प्रायः वे स्नान करते समय अपने स्नानागार के किवाड़ बन्द करना भूल जाते हैं। स्नानागार में ही वे दाढ़ी बनाते हैं। परंतु कभी भी दाढ़ी बनाने का साबुन (Shaving Soap) नहीं लगाते। उनके मित्र जब कभी ऐसे साबुन का उपहार देते हैं तो वे उसे सधन्यवाद ग्रहण कर लेते हैं, परन्तु यह कह देते हैं कि वह उसे काम में न लावेंगे। उनका कथन है कि दो प्रकार का साबुन लगाने से जीवन उलझन में पड़ जाता है।

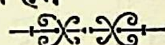
आयन्सटीन का रहन-सहन बहुत ही साधारण गृहस्थ-जैसा है। आडम्बर और तड़क-भड़क से रहित। इसी में रहकर वे दिन-रात संसार-रहस्य को सुलझाने में लगे रहते हैं। काम के आगे वे दिन-रात कुछ भी नहीं समझते। उनमें ग़ज़ब की क्षमता और ऊँचे दरजे की एकाग्रता है। उनका विशाल ललाट, चमकीली आँखें, तेजस्वी और गम्भीर चेहरा उनकी महत्ता का परिचय देते हैं। सिर में तौलिया लपेटकर जब वे काम में जुट जाते हैं तो रात भर जागने पर भी थकान के चिह्न पास नहीं फटकते। डेस्क पर बैठे-बैठे अक्सर रात बीत जाती है। प्रातःकाल हो जाने पर भी उनकी तन्द्रा भंग नहीं होती। बहुत खटखटाने से वे बहुत बेमन से अपना कमरा खोलते हैं। कभी तो सैकड़ों पृष्ठ भर डालते हैं और कभी घंटों यों ही बैठे सोचा करते हैं।

पैदल चलना और टहलना प्रोफ़ेसर आयन्सटीन को बहुत प्रिय है। अक्सर वे घंटों बाहर घूमा करते हैं। पानी बरसते समय वे काम छोड़कर टहलने निकल जाते हैं। टहलते समय वे ध्यानमग्न रहते हैं। अधिकतर बातें वे इसी समय सोचते हैं। चित्र खिंचाने से उनको बड़ी चिढ़ है और वे कभी भी तैयार नहीं होते।



अपनी जन्मभूमि में अनादर पाने पर भी प्रोफ़ेसर साहब प्रसन्न-चित्त रहते हैं और अपने कार्य में व्यस्त रहते हैं। आयन्सटीन ने सापेक्ष-वाद के सिद्धान्त को सुलझाने में ही अपने जीवन का बहुमूल्य समय लगा दिया है। उनका मत है कि संसार की प्रत्येक वस्तु सापेक्षवाद है, और प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न मनुष्यों के विभिन्न दृष्टि-कोणों पर ही अवलम्बित है।

प्रोफ़ेसर आयन्सटीन के सापेक्षवाद को संसार के सभी लोगों ने ग्रहण नहीं कर लिया है। हमें यह लिखते गर्व होता है कि हमारे ही देश के प्रसिद्ध गणितज्ञ सर जस्टिस सुलेमान ने अभी थोड़े ही दिन पहले एक गवेषणापूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किया है, जिसके अनुसार प्रोफ़ेसर आयन्सटीन का सिद्धान्त निरर्थक प्रतीत होता है। इस नये विज्ञान की मीमांसा अभी वैज्ञानिक संसार कर रहा है। इसके प्रमाणित हो जाने से प्रोफ़ेसर आयन्सटीन के सापेक्षवाद का कुछ भी मूल्य न रहेगा।



सुमन-विलाप

श्रीशिवदुलारे अध्यापक

(१)

बैठकर झूले में लता के करता था मौज, झूम-झूम झोंके प्रात-वायु के झुलाते थे,
गाते गुण चंचरीक चारण-से चारों ओर, विविध विहंग गीत सुन्दर सुनाते थे।
मधुर पियूष के पियाले था पिलाता चन्द्र, पाकर अपार सुख फूले ना समाते थे;
लाते नहीं शक थे हृदै में हरषाते अति, देख-देख मलिन प्रसून जले जाते थे।

(२)

ऐसी थी प्रदानित की विधि ने अनोखी छवि, सकल प्रसून देख फीके पड़ जाते थे;
छूकर पराग को समीर बहती थी मंजु, पाके गंध अंध के भी नैन खुल जाते थे।
चाव से रसिक-जन देखते मुझे थे जब, करते प्रिया की मुख-समता लजाते थे;
बैठे इठलाते खूब चैन की बजाते वंशी, बार-बार भाग्य पर बलि-बलि जाते थे।

(३)

हाय जुदा होके अब लाड़िली लतानन से, भूमि में पड़े हैं दुःख दारुण उठाते हैं;
देखते नहीं हैं कोई चाहक हमारी ओर, फेर मुँह जाते चले पास में न आते हैं।
रस-रस चूसतीं मरीचैं रवि शेष रस, चंचरीक करते चबाव ना अघाते हैं;
हृदय जलाते हैं रुलाते दया लाते नहीं, मेरी दशा देख नव पुष्प मुसकाते हैं।

(४)

लगती अनल-सी प्रभात की समीरण है, सारे अंग-अंग हाय मेरे जले जाते हैं;
कठिन पिपासा से प्रकम्पित है होता हृदै, पाते नहीं जल हा विकल बिलखाते हैं।
गाते नहीं गीत उड़ जाते हैं विहंग देख, शत्रु सम सबकी निगाहों में दिखाते हैं;
दोष नहीं इसमें किसी का लेश मात्र अहो, जैसे किये कर्म हैं उसी के फल पाते हैं।



सिनेमा-संसार में स्काउटिंग-संबंधी फ़िल्मों का अभाव

श्रीबालगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव

सर्व-साधारण पर स्काउटिंग की उपयोगिता स्पष्ट है। बाढ़ में, भूकम्प में, सभी जगहों पर जहाँ पर सेवा-कार्य की आवश्यकता होती है, स्काउटों को लोग याद करते हैं। भारतवर्ष में इस प्रकार के उपयोगी फ़िल्मों का सर्वथा अभाव रहा है और है। मुझे मूक-युग में केवल 'टाइपिस्ट गर्ल'-नामक एक ऐसा चित्र देखने का अवसर मिला था, जिसका सम्बन्ध थोड़ा-बहुत स्काउटों से था। सवाक्-युग में तो वह भी नहीं देखने को मिला और न इस विषय पर अभी तक कोई चर्चा ही सुन पड़ी। इससे यही प्रतीत होता है कि हमारे फ़िल्म-निर्माताओं का ध्यान इस ओर बिल्कुल नहीं है। सम्भव है कि यदि कुछ विचार भी किया हो, किन्तु समुचित सहारा न मिलने के कारण उन्होंने स्काउटिंग-सम्बन्धी सवाक् फ़िल्मों के निर्माण का विचार त्याग दिया हो।

यह तो सब पर विदित है कि इस विश्वव्यापी विश्वबन्धुत्व का पाठ पढ़ानेवाली, बालकों को सच्चे नागरिक एवं सच्चरित्र बनानेवाली स्काउट-संस्था को कितनी शीघ्रता से सभी राष्ट्रों ने अपनाया और अपना रहे हैं। इतनी शीघ्रता से इसका प्रचार होना ही उसकी उपयोगिता का प्रमाण है।

पश्चिमी राष्ट्रों ने इस सम्बन्ध में भारी प्रयत्न किया है और इससे सम्बन्धित फ़िल्मों का भी वहाँ पर अभाव नहीं है। बालकों का भाव इसके सहारे आदर्श की ओर आकर्षित किया जा रहा है।

यदि फ़िल्म-निर्माता इस ओर ध्यान दें तो इस प्रकार के फ़िल्मों की माँग बहुत बढ़ जायगी। साथ ही साथ धनोपार्जन के अतिरिक्त वे देश-सेवा का कार्य कर देश की भावी आशाओं को उन्नति के मार्ग की ओर ले जाने में सहायक होंगे।

अब प्रश्न रहा कि फ़िल्म किस प्रकार की हो? हमें स्काउटिंग-संबंधी किसी बात की जानकारी नहीं है? इसका भी एक सरल उपाय है। अभी थोड़े दिन हुए, मुझसे श्री० जे० एस्० वर्मा से, जो हेड-क्वार्टर्स कमिश्नर हैं, बातचीत हुई थी। उन्होंने कहा कि हम लोगों का तो कार्य ही सेवा—सहायता करना है। फिर इस प्रकार अगर वे चाहें तो उन्हें प्रयाग-सेवा-समिति-संघ से पूर्ण सहायता मिल सकती है।

इससे सम्बन्ध रखनेवाली फ़िल्मों के तैयार होने से जनता उनका समुचित आदर करेगी, और फ़िल्मों की लोकप्रियता का होना स्वाभाविक ही हो जायगा। कम से कम बालक-समाज का इससे बड़ा हित होगा।

आशा है कि यदि इन लाइनों की पहुँच किसी निर्माता पर होगी तो विषय पर विचार होगा।

संगीत-सुधा

शब्दकार—
श्रीभारतेन्दु हरिश्चन्द्र

रागमाला

एकताल (विलम्बित)

स्वरकार—
विकृत

गोरी गोरी (गौरी) गुजरिया भोरी (गूजरी) कान्हर (कान्हरा) नट के संग (नट)
ललित जमुन तट (ललित) नव बसंत करि होरी (बसंत) ।
सोभासिन्धु (सिंध) बहार अंग प्रति (बहार) दिपति देह दीपक-सी (पटमंजरी)
छबि अति मुख सुदेस ससि सों री (देश) ॥
आसा करि लागी पिय सों (आसावरी) रट पंचम सुर गावत (पंचम) ईमन हट (ईमन)
मेघ बरन 'हरिचंद' बदन अभिराम करी बरजोरी (मेघ) ।
सारंगनैनी (सारंग) पहिरि सुहा सारी (सूहा) भयो कल्यान (कल्याण)
मिले श्रीगिरिधारी (श्री) छबि पर जन तृन तोरी (टोड़ी) ॥

×		०		२		०		३		४	
प	ग	रे	ग	रे	सा	रे	नी	ध	ध	ग	ग
गो	ऽ	री	गो	ऽ	री	गु	ज	रि	या	भो	री
म	प	सां	ध	नी	प	रे	ग	म	प	म	ग
का	ऽ	ऽ	न्ह	ऽ	र	न	ट	के	ऽ	सं	ग
प	ग	म	ध	सां	सां	सां	सांनी	रें	सां	—	सां
ल	लि	ऽ	त	ऽ	ज	मु	नऽ	ऽ	त	ऽ	ट



नी	नीरें	नी	नी	मं	ध	नी	मंग	मं	ग	रें	सा
न	वऽ	ब	सं	ऽ	त	क	रिऽ	हो	ऽ	री	ऽ

×		०		२		०		३		४	
ध	प	ग	रें	म	प	ध	नी	सां	रें	नी	सां
सो	ऽ	भा	सिं	ऽ	धु	ब	हा	ऽ	ऽ	ऽ	र
नी	प	म	प	ग	म	ग	म	प	प	ध	नी
धं	ऽ	ग	म	ऽ	ति	दि	प	ति	दे	ऽ	ह
रें	सां	नी	प	म	प	रे	रे	म	प	सां	सां
दी	ऽ	प	क	सी	ऽ	छ	बि	अ	ति	मु	ख
रें	नी	ध	प	ध	म	ग	रे	—	ग	सा	—
सु	दे	ऽ	स	स	लि	सों	ऽ	ऽ	ऽ	री	ऽ

पध	म	प	सां	ध	प	ध	म	प	नीध	मंग	रे
आऽ	सा	क	रि	ला	गी	पि	य	सां	रऽ	टऽ	ऽ
म	धनी	म	ग	मं	ग	रे	प	मं	ध	प	रे
पं	चम	सु	र	गा	व	त	ई	म	न	ह	ट
मरे	म	प	धम	प	प	मप	धसां	ध	प	ध	प
मेऽ	घ	ब	रन	ह	रि	चंऽ	ऽऽ	द	ब	द	त
म	रे	सा	सा	रे	रे	रें	सां	नी	प	म	प
अ	भि	रा	म	क	री	ब	र	जो	ऽ	री	ऽ

म	प	नी	सां	रें	मं	रें	सां	सां	रें	नी	सां
सा	ऽ	ऽ	रं	ऽ	ग	नै	ऽ	नी	प	हि	रि
प	नी	प	नी	ग	म	प	ग	ध	प	ग	रे
सु	हा	ऽ	सा	ऽ	री	भ	यो	क	छया	ऽ	त
म	म	प	—	—	नी	सां	सां	रें	रें	सां	सां
मि	ले	ऽ	ऽ	ऽ	श्री	गि	रि	धा	ऽ	री	ऽ
रें	गं	रें	सां	नी	ध	मं	ग	रे	ग	रे	सा
छ	बि	प	र	ज	न	तृ	न	तो	ऽ	री	ऽ

नोट—लिपि व नियम श्री० भातखंडे की पद्धति के अनुसार हैं।



१—निकटवर्ती महासमर के कारण

यूरोप की दशा दिन-दिन बिगड़ती ही जा रही है। यह बात अनेक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ कह रहे हैं कि महासमर का होना अनिवार्य है और यह भी कि महासमर शीघ्र ही होनेवाला है। मि० एमिल लाडविग एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें पूर्व और पश्चिम की राष्ट्रनीति का विशेषज्ञ माना जाता है। हाल में उन्होंने एक अमेरिकन पत्र में इस बारे में लिखा है कि युद्ध का होना अनिवार्य है। युद्ध का प्रधान कारण दार्शनिक मनोवृत्ति के ऊपर प्रतिष्ठित है। उन्होंने लिखा है कि कई शक्तियाँ इस समय युद्ध के लिए उद्यत होकर कह रही हैं कि हमें कच्चा माल अधिक परिमाण में चाहिए, विस्तृत भूखण्ड की हमें ज़रूरत है; अथवा उनके देश के लोग और राष्ट्रों में कम तादाद में रहते हैं, इसलिए उनकी रक्षा का प्रबंध करने की वहाँ ज़रूरत है; अतएव युद्ध करना होगा। किन्तु इन सब युक्तियों का कुछ मूल्य नहीं है। वह दिखाते हैं कि युद्ध के द्वारा अन्य किसी राष्ट्र की स्वाभाविक सम्पत्ति या कच्चे माल का उपयोग कोई हमेशा नहीं कर सकता। इसके सिवा कच्चा माल कोई भी शक्ति किसी स्थान से प्रयोजन के माफ़िक, बिना युद्ध के भी, प्राप्त कर सकती है और इसी तरह अपना माल भी चाहे जहाँ बेंच सकती है। इसमें बाधा की कोई संभावना नहीं है। जो थोड़ी क़ीमत में माल और देशों को दे सकेगा, उसी का व्यापार अच्छा चलेगा। युद्ध के कारणों में व्यापार नहीं हो सकता। उपनिवेशों के बारे में भी उन्होंने कहा है कि अधिकांश उपनिवेशों की रक्षा करने में जो धन ख़र्च करना पड़ता है, उतनी आमदनी उस उपनिवेश के कच्चे माल से नहीं होती। दस साल पहले संपूर्ण जर्मन-साम्राज्य में एक घोषणा का प्रचार किया गया था कि प्रजा जर्मनी के लिए कोई उपनिवेश चाहती है कि नहीं? इसके उत्तर में अधिकांश जर्मन लोगों ने कहा था कि वे उपनिवेश नहीं चाहते। मि० लाडविग से किसी अँगरेज़ राष्ट्रनीतिज्ञ ने कहा था कि जर्मनी अगर हम लोगों से एक उपनिवेश ले ले तो उससे हम ख़ुश ही होंगे। एक पुर्त्तगाल के उच्चपदस्थ कर्मचारी ने उनसे कहा था कि उनके उपनिवेश अगर कोई ख़रीद ले तो उसे वह भगवान् का आशीर्वाद समझेंगे। किन्तु वास्तव में कोई भी शक्ति अपने उपनिवेश बेचने की हिम्मत नहीं करती। यह इसलिए कि उससे उस शक्ति के सम्मान या प्रतिष्ठा की हानि होगी। अपने सम्मान को बनाये रखने का आग्रह सभी शक्तियों को है। इसी सम्मान

या प्रतिपत्ति के लिए ही जर्मनी अपने उपनिवेशों का दावा पेश कर रहा है। इथिओपिया जीतकर इस समय इटली गर्व का अनुभव अवश्य कर रहा है; किन्तु उसकी रक्षा के लिए जब ढेर के ढेर धन की ज़रूरत पड़ेगी, तब उसके होश ठिकाने हो जायँगे। जो लोग यह कारण दिखाकर युद्ध के लिए उद्यत हैं कि जनसंख्या बढ़ रही है और उनके लिए रहने का स्थान चाहिए, उनके इस कथन में भी सत्य का अंश बहुत कम है। जर्मनी और इटली की तुलना में इँगलैंड और बेलजियम में बहुत घनी बस्ती है; किन्तु उपनिवेशों के द्वारा दोनों में से किसी की भी इस समस्या का समाधान नहीं हुआ। अगर बहस के लिए यह मान लिया जाय कि कई साल बाद ५ लाख इटालियन इथिओपिया में जाकर बस जायँगे तो बाक़ी ४ करोड़ २० लाख इटालियनों को क्या सुविधा होगी? जिन देशों के अधिनायकों ने "अधिक भूमि चाहिए" का शोर मचा रक्खा है, उन्होंने ही अपने यहाँ ऐसी घोषणा क्यों कर रक्खी है कि जो स्त्री ४ बच्चे पैदा करेगी, उसे पुरस्कार या वृत्ति राज्य की ओर से दी जायगी। अधिक सन्तान पैदा करने के लिए उन्हें तो दण्ड देने की ही व्यवस्था करनी चाहिए थी। इसके बदले जनसंख्या बढ़ाने के लिए अधिक सन्तान उत्पन्न कराने की कोशिश ही यह बतला रही है कि युद्ध का यह कारण भी ठीक नहीं है। अधिक सन्तान उत्पन्न कराने का कारण अपने यहाँ अधिक योद्धा बढ़ाना ही हो सकता है। विभिन्न देशों में कम संख्या में रहनेवाले स्वदेशवासियों की रक्षा का बहाना भी व्यर्थ ही है। जो जर्मन लोग नील नदी के किनारे रहते हैं, उनकी दशा अब पहले से गई-बीती हो गई है, यह कहकर युद्ध का समर्थन भी नहीं किया जा सकता। हाल में प्रवासी जर्मन लोग बाध्य होकर दो भाषाएँ सीखते हैं। इसमें दोष ही क्या है? अगर उनके वंशधर विदेश में रहने के कारण कुछ दिनों में मातृभाषा को भूल ही जायँ तो उसमें जर्मनी की वैसी कोई हानि न होगी, जिसके लिए महासमर वह ठान दे। वे जिस भाषा को बाध्य होकर काम चलाने के लिए सीखते हैं, उसमें क्या साहित्य नहीं है? इसलिए लाडविग साहब युद्ध के इस कारण को भी विश्वास के योग्य नहीं समझते। उनकी राय में युद्ध का यथार्थ कारण भावमूलक है। इस समय वास्तविक परिस्थिति यह है कि सब अपनी शक्ति बढ़ाने और शान क़ायम रखने के लिए ईर्ष्यावश युद्ध का उद्योग कर रहे हैं। पर हमारी राय में परस्पर का अविश्वास और उसके कारण शक्ति बढ़ाने की चढ़ा-ऊपरी ही युद्ध की आग भड़काने का कारण बनेगी। विगत महायुद्ध में जर्मनी का पहले का गौरव अवश्य ही खंडित हो गया है। सन् १९१९ से १९३० तक जर्मनी की प्रतिभा ने अनेक श्रमशिल्पों का आविष्कार और प्रचार किया है, उसने अनेक खोज और आविष्कार किये हैं। इससे अवश्य ही सभ्य जगत् में जर्मनी की प्रतिष्ठा और प्रशंसा हुई है। किन्तु इस सम्मान से जर्मन लोग सन्तुष्ट नहीं हैं। वे शस्त्र के बल से जगत् में प्रधानता प्राप्त करना चाहते हैं। पहली हार का कलंक धोने के लिए वे नया युद्ध ठानकर उसमें विजय प्राप्त करना चाहते हैं। भावी महासमर का यही मूलकारण है। दस साल से जर्मनों ने अनेक बातों में प्रतिभा का विकास यद्यपि दिखलाया है, तथापि फ्रांस के निकट हारने की ग्लानि उनके मन से दूर नहीं हुई। जर्मनी ने जाति-संघ की परवा न करके शस्त्रबल बढ़ाया है और जर्मनी के स्कूलों में बालकों को युद्ध की ओर आकृष्ट किया जा रहा है। इन दस वर्षों से जर्मन लोग बहुत ही मानसिक कष्ट भोग रहे थे। वे केवल यह साधना कर रहे थे कि किस तरह वे बदला चुकावेंगे। जर्मन जाति जितने सहज में नियमश्रृंखला के वशवर्ती होती है, इटालियन लोग उतने सहज में नहीं होते। वे बहस करके हर एक बात समझना चाहते हैं। इसलिए मुसोलिनी प्रायः अफ़सोस ज़ाहिर करके



करा करते हैं कि उनका जन्म प्रशिया में क्यों नहीं हुआ। जर्मन जन-साधारण ने क़ैसर के शासन की अधीनता छोड़कर साधारण तंत्र की अधीनता स्वीकार करने में पहले बड़ी आपत्ति की थी। वे पहले गणतंत्र के नेताओं पर विश्वास करने को राज़ी नहीं थे। इसका प्रधान कारण यही था कि फ्रांस ने जर्मनी के गणतंत्र का अनुमोदन किया था। योरप के महायुद्ध के समय इँगलैंड के ऊपर जर्मन जनसाधारण के मन में जो घृणा और विद्वेष का भाव जमा हुआ था, वह बाद को फ्रांस के ऊपर जा गिरा।

जर्मन लोग पूर्व के सम्बन्ध में प्रायः एक प्रकार से अनभिज्ञ ही हैं। पूर्व के सम्बन्ध में आलोचना करने पर भी उस सम्बन्ध में उनके ज्ञान का प्रकृष्ट परिचय नहीं पाया जाता। अनेक जर्मन रूस या पोलैंड की अनेक नदियों या नगरों के नाम भी नहीं जानते। रूस के साथ एक सदी की मित्रता रहने पर भी प्रशिया के लोगों के निकट का रूस एक अज्ञात देश बना हुआ है। निकटवर्ती महासमर का और एक कारण है फ्रांस की शान्तिप्रियता। यह बात अब छिपी नहीं है कि फ़्रांस बिलकुल ही झगड़ा नहीं करना चाहता। जर्मन लोग बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि शान्ति का प्रयासी फ़्रांस कभी आक्रमण करने के लिए अग्रसर न होगा। जर्मन लोग जानते हैं कि फ़्रांस ने आत्मरक्षा के लिए जो प्रबन्ध कर रक्खा है, वह यथेष्ट नहीं है। वे प्रायः कहा करते हैं कि फ़्रांस के लोग डर गये हैं। इसलिए उन्होंने फ़्रांस की पर्वा न करना शुरू कर दिया है। फ़्रांस जितना ही नरम स्वर में बोलता है, जर्मनी की युद्ध में जय की आशा उतनी ही बढ़ रही है।

अँगरेज़ लोग युद्ध का तीसरा कारण हैं। किन्तु इसके लिए अँगरेज़ों का गौरव कम नहीं होने का। जातिसंघ के द्वारा पृथ्वी पर शान्ति की स्थापना होगी, यह विश्वास अँगरेज़ जाति के मन में जितना जड़ जमाये था, उतना और किसी जाति के मन में नहीं। वास्तव में ब्रिटेन और फ़्रांस ही उसके जन्मदाता थे। जातिसंघ की चेष्टा यही थी कि जर्मनी को शान्तिप्रिय बनाया जाय। किन्तु सामरिक शक्ति में प्रबल होने के लिए जर्मनी के मन में दृढ़ अभिलाषा रहने के कारण जातिसंघ की वह चेष्टा सफल नहीं हुई। अँगरेज़ जाति का विश्वास है कि वे एक टापू में रहते हैं, इसलिए कोई सहसा उन पर आक्रमण करने का साहस नहीं करेगा। मगर हवाई जहाज़ होकर हंबर्ग से लंदन सिर्फ़ एक घंटे का रास्ता है। यह बात साधारण अँगरेज़ों के दिमाग़ में नहीं आई। अँगरेज़ों ने शस्त्र घटाने के मामले की ओर ध्यान दिया; किन्तु शान्ति के बाद से ही फ़्रांस अपना शस्त्रबल बढ़ाने लगा। उस समय अँगरेज़ों के पास युद्ध की सामग्री ख़रीदने का सुबीता नहीं था। अतएव इँगलैंड ने उधर ध्यान नहीं दिया। बहुत देर में अँगरेज़ों की आँख खुली। अँगरेज़ों की समझ में आ गया कि जर्मनी का इरादा अच्छा नहीं है। सन् १९२४ में हिटलर का चुनाव होने से ही जर्मनी का इरादा साफ़ हो गया। अपने भ्रम को समझ पाकर अँगरेज़ चौंक पड़े। और एक पृथ्वीव्यापी महासमर अवश्य होनेवाला है, यह समझ पाकर इँगलैंड यह चेष्टा करने लगा कि सन् १९३८ से पहले युद्ध न छिड़े। इस समय के बीच वे साधारणतः युद्ध के लिए तैयार हो सकेंगे। जर्मनी की तरफ़ इँगलैंड के झुकाव का तात्पर्य यही है। अब तक प्रत्येक जर्मन की धारणा यही है कि अगर युद्ध अवश्य छिड़ा तो इँगलैंड जर्मनी के पक्ष में ही रहेगा। अँगरेज़ों की शस्त्रबल की कमी समझकर ही जर्मनी युद्ध छेड़ देना चाहता है। जगत् में युद्ध छेड़ने के लिए इस समय तीन शक्तियाँ आगे बढ़ रही हैं। जर्मनी, इटली और जापान। लेकिन जर्मनी योरप में ही युद्ध जीतने के लिए उत्सुक है। जापान के साथ जर्मनी की नई संधि के फलस्वरूप योरप और एशिया, दोनों में एक साथ युद्ध छिड़ सकता है। इसी सूत्र से जापान अगर पूर्व में एशियाई रूस

की हज़ार वर्गमील ज़मीन हड़प ले तो जर्मनी को कुछ भी बुरा नहीं लगेगा। जर्मनी इसी सूत्र से रूस की एक सौ वर्गमील ज़मीन अगर हथिया सके तो इसी से वह संतुष्ट हो जायगा। जर्मनी और जापान की मनोवृत्ति और स्वार्थ एक ही तरह के हैं। दोनों की संगठनशक्ति और सेना जमा करने की क्षमता पड़ोसी राज्यों की अपेक्षा बहुत अधिक है। इटली यद्यपि आक्रमण के लिए उद्यत मनोवृत्ति के द्वारा परिचालित है, किन्तु जर्मनी और जापान की तरह इतना अधिक लोभ नहीं प्रकट कर रहा है। इथिओपिया जीतकर ही वह सन्तुष्ट हो गया है। अब उसके मन में बदला लेने की चाह नहीं है। जर्मनी जिस कारण से अन्य देश पर आक्रमण करने की वासना मन में पोषण कर रहा है, वह कारण इटली के लिए लागू नहीं है। बाहर से देखने से जान पड़ेगा, इटली में आक्रमण की चाह विशेष है, किन्तु वास्तविक बात उलटी ही है। मुसोलिनी अपने देशवासियों के चरित्र से ख़ूब परिचित हैं। अगर युद्ध ठन जाय तो इटली आफ़्रिका-विजय के गौरव के साथ शायद निरपेक्ष रहने की ही चेष्टा करेगा। पर जर्मनी का मनोभाव युद्ध के अनुकूल है। जगत् में जर्मनी के समान युद्ध-प्रिय जाति और कोई नहीं है। सारी जाति नियम-शृंखला मानकर चलना जानती है और अधिनायक के कहने पर चलती है। बदला लेने के लिए जर्मनी पागल-सा हो उठा है। ऐसी बदला लेने-वाली जाति जगत् में दूसरी नहीं है। सन् १९१४ में जर्मन जाति केवल युद्धप्रियता की उत्तेजना से उद्दण्ड हो उठी थी। आजकल उस समरप्रियता के साथ बदला लेने की आकांक्षा प्रबलतर हो उठी है। जर्मनी बिलकुल तैयार है। केवल एक चिनगारी की देर है। जर्मन जाति को युद्ध के लिए उद्यत करने का एक और बहाना दिखाई पड़ा है। बोल्शेविक मत को मिटा देना होगा, यही बात नेता लोग सर्वसाधारण को समझा रहे हैं। मि० लाडविग ने लिखा है कि "लेकिन सन् १९३३ ई० में भी जर्मनी में कम्यूनिस्ट-भीति का कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़ता था।" इधर स्कूल में विद्या-र्थियों को शिक्षा देने के समय "मास्को के विरुद्ध युद्ध अवश्य करना होगा"—यही शिक्षा दी जा रही है। हिटलर समग्र जर्मन जाति को संगठित कर एक बनाने के लिए यहूदी लोगों को जर्मनी से निकाल रहे हैं। जर्मन जनसाधारण की यही धारणा है कि पृथ्वी में जर्मन जाति ही सब जातियों की अपेक्षा बड़ी और विशुद्ध है। सरकारी नृतत्त्व-विभाग इस समय यही प्रचार कर रहा है कि हालैंड, डेन्मार्क, जेकोस्लोवाकिया और स्वीज़रलैंड के जर्मन भी जर्मनी के अन्तर्गत हैं।

जर्मनी का प्रधान लक्ष्य योरप नहीं, फ़्रांस है। इस चरम लक्ष्य में पहुँचने के लिए अगर बार-बार युद्ध करना हो तो जर्मनी उसके लिए भी प्रस्तुत है। तीन बार व्यर्थ होने पर भी चौथी बार वे फ़्रांस को परास्त करेंगे। अतएव पश्चिम योरप में समर की आग किसी भी समय जल उठ सकती है, यह निश्चित है। जर्मनी में कुछ लोग ऐसे भी हैं, जिनकी धारणा है कि जर्मनी भय दिखाकर अपना अभीष्ट सिद्ध कर लेगा। इतने दिन धमकी-घुड़की दिखाकर सचमुच ही जर्मनी ने अनेक बातों में सफलता प्राप्त कर ली है। किन्तु अब आगे इससे काम नहीं चल सकता। उन लोगों की धारणा भ्रान्त है। कारण, जर्मनी अब तक अन्य किसी शक्ति की राज्यसीमा को अपने अधिकार में नहीं कर सका। हिटलर को आशा है कि केवल भय दिखाकर, युद्ध न करके भी, वह अपने अभीष्ट को सिद्ध कर लेंगे। वह विरोध खड़ा करना नहीं चाहते। कारण, वह जानते हैं कि इसके फलस्वरूप उनका ध्वंस अनिवार्य है। किन्तु राष्ट्र का नायकत्व करने का एक बँधा हुआ नियम है। उस नियम या विधान को ख़ुद नेपोलियन भी अन्यथा नहीं कर सके। द्वितीय विलियम ने भी युद्ध को टाल देना चाहा था। और भी २५ वर्ष बाद युद्ध छेड़ने की उनकी इच्छा थी। जो लोग बलप्रयोग के



द्वारा, हिंसा के द्वारा राष्ट्र का संचालन करना चाहते हैं, उनका वह आधिपत्य उसी हिंसा के द्वारा नष्ट हो जाता है। जर्मनी के अधिनायक हिटलर भी इसी नियम का शिकार होंगे, इसमें सन्देह नहीं।

सारांश यह कि मि० लाडविग की राय में युद्ध निश्चय ही होगा। कारण, जगत् के निकट जर्मनी के समर-कौशल की श्रेष्ठता का परिचय देने का सुयोग अभी जर्मनों को प्राप्त नहीं हुआ। एथेंस के विरुद्ध स्पार्टा का संग्राम जैसे अनिवार्य हो गया था, जर्मनी का युद्ध वैसा ही अनिवार्य है। इस युद्ध को रोकने की क्षमता अगर किसी में है तो अमेरिकन युक्त राष्ट्र के प्रेसीडेंट फ़्रैंकलिन रूज़वेल्ट में ही है। इस बात को रूज़वेल्ट जानते हैं और इस सम्बन्ध में उन्हें अपने ऊपर विश्वास भी है। किन्तु इच्छा करने पर भी वह इस मामले में दस्तन्दाज़ी नहीं कर सकते। अमेरिकन लोगों की धारणा है कि योरप अपनी समस्या का समाधान आप कर सकता है। वे यह समझना नहीं चाहते कि जर्मनी और जापान युद्ध में अगर विजयी हुए तो अमेरिका को वाध्य होकर इस बीच में पड़ना ही होगा, इस युद्ध में शरीक होना ही होगा। यह भी संभव है कि जगत् में शान्ति की रक्षा के लिए प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट को प्रतिकार का उपाय करना होगा। उस समय अवश्य ही संपूर्ण अमेरिका उनका समर्थन करेगा। मतलब यह कि अमेरिका अगर बीच में नहीं पड़ा तो युद्ध अवश्य ही होगा, और उसका फल केवल योरप के लिए ही नहीं, एशिया के लिए भी अच्छा न होगा।

× × ×

२—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से निवेदन

मदरास में, श्रीयुत जमनालालजी बजाज के सभापतित्व में, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन सानन्द संपन्न हो गया। कुछ लोग इसे सफल मानते हैं और कुछ लोग असफल। हमें इसमें कुछ सार नहीं देख पड़ता। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन सफल रहा या असफल, इस विषय में हमें कुछ नहीं कहना है। हम जिस बारे में कुछ कहना चाहते हैं, वह और ही विषय है। सम्मेलन का झुकाव शुरू से ही प्रचार की ओर देख पड़ता है। इस बार बजाजजी के भाषण से और भी स्पष्ट हो गया कि सम्मेलन के कर्णधार हिन्दी-प्रचार को ही अपना मुख्य कार्य समझते हैं। हमारी समझ में केवल प्रचार के लिए ही सम्मेलन की स्थापना नहीं की गई थी। अगर केवल प्रचार ही करना था तो इस काम को काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा बड़ी सफलता के साथ कर सकती थी। हमारी धारणा तो यह है कि सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य सत्साहित्य का निर्माण है और यही होना चाहिए। साथ ही अगर वह हिन्दी-प्रचार, लिपिसुधार, परीक्षा आदि अन्य कार्य भी करता रहे तो बड़ी अच्छी बात होगी। सम्मेलन के साहित्य शब्द का जोड़ा जाना इसी बात का द्योतक है कि साहित्य से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। अगर वह साहित्य से दूर रहना चाहता है तो उसका नाम बदलकर हिन्दी-प्रचार-संघ रख दिया जाना चाहिए। हमारे ख़याल में सम्मेलन की कार्यावली से अधिकांश साहित्यिक सन्तुष्ट नहीं हैं और उससे दूर ही दूर रहते हैं। साहित्यिकों के संगठन के लिए और साहित्य के निर्माण के लिए, हमने सुना है, और एक संस्था को जन्म दिया गया है। हमारी राय में सम्मेलन को अब भी सजग हो जाना चाहिए, अन्यथा वह एक प्रचार-संस्थामात्र रह जायगा और उसका वह महत्त्व भी बहुत कुछ घट जायगा। अब केवल प्रचारमात्र से काम नहीं चलेगा, साहित्य-निर्माण और निर्मित साहित्य के परिष्कार का काम भी होना चाहिए। तभी हिन्दी और सम्मेलन, दोनों का गौरव बढ़ेगा। आशा है, हमारे इस संक्षिप्त निवेदन पर सम्मेलन के संचालक अवश्य ध्यान देने की कृपा करेंगे।

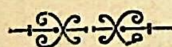
× × ×





३—श्रीयुत व्रजनाथ श्रीवास्तव

आप अवध-चीफ़कोर्ट के चीफ़ जज माननीय जस्टिस विश्वेश्वरनाथ श्रीवास्तव, ओ० बी० ई० के सुपुत्र हैं। आप इस वर्ष लखनऊ विश्व-विद्यालय की पार्लियामेन्ट की नेशनलिस्ट गर्वनमेन्ट के प्राइम मिनिस्टर निर्वाचित किये गये हैं। आप एक सुयोग्य लेखक तथा वक्ता हैं।



लेख-सूची

चित्र-सूची

(रंगीन)



प्रतीक्षा

[[illegible] श्याम भटनागर]



सम्पादक
रूपनारायण पांडेय
प्रतिनिधि-सम्पादक (सी० पी०)—मातादीन शुक्ल

वर्ष १५, खंड २, संख्या ५, पूर्ण संख्या १७६	ज्येष्ठ	३१३ तुलसी संवत्, १९९४ वि०

गीत

श्रीकुँअर चन्द्रप्रकाशसिंह

आकर्षणमय विश्व तुम्हारा।
मज्जित इस छवि के समुद्र में मिलता नहीं किनारा।

जलद-वेश्म सुरधनु-आरंजित,
ऊपर नील व्योम, शशि शोभित,
क्रीड़ित सतत अनन्त अङ्क में,
किरण-कान्त कल तारा।

ऊर्मिल जलधि केश उर्वी, उर
लहराता ज्योत्स्ना-पट सुन्दर,
स्वप्न-विभोर निशीथ-शयन पर
वह सरि-धारा—हारा।

मद-मरन्द-मूर्च्छित कलि के दृग,
बहता मलय मन्द गन्ध-स्रग,
ए अरूप, तेरी चिर अभिनव
रूपमयी यह कारा।

साम्राज्य से भी अधिक प्रिय वेलिस वारफ़ील्ड श्रीमती अर्नेस्ट सिम्पसन

श्रीलक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज

अभी कल-परसों की-सी बात है—कोई चार महीने से कुछ ज़्यादा दिन हुए, संसार के एक महान् शक्तिशाली साम्राज्य के स्वामी के सामने एक बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हो गई थी। उससे एक गम्भीरतम प्रश्न का उत्तर माँगा गया था। एक तो यह प्रश्न यों ही जटिल था, फिर उत्तरदाता के जीवन से सीधा सम्बन्ध होने के कारण उसकी जटिलता में और भी वृद्धि हो गई थी। वैसे इस प्रश्न में किसी प्रकार की मौलिकता अथवा नूतनता न थी। जब से इस सृष्टि की रचना हुई, तभी से किसी न किसी रूप में यह प्रश्न बराबर कभी न कभी सभी मनुष्य-मात्र—स्त्री और पुरुष—के सामने आता रहा है। सबने अपनी-अपनी बुद्धि और सामर्थ्य के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर देने की चेष्टा की है। सबने—जैसा जिससे बन पड़ा—इस विषम गुत्थी को अपने-अपने ढंग से सुलझाने का प्रयत्न किया है।

× × ×

हाँ, तो प्रश्न था—प्रेम का मूल्य क्या है? यहाँ प्रेम से तात्पर्य था, सीधा-सादा स्त्री-पुरुष का सांसारिक प्रेम। साधु-सन्तों, योगियों, वैरागियों तथा तपस्वियों का आध्यात्मिक भक्ति-भावना से परिपूर्ण प्रेम नहीं। यह वह प्रेम था, जो स्त्री-पुरुष को परस्पर एक दूसरे के प्रति आकर्षित होने को बाध्य करता है; आकर्षित ही नहीं, जो आगे चलकर इस आकर्षण को वैवाहिक बन्धन में परिवर्तित करने के भावों को जन्म देता है तथा जिसके कारण एक का सुख दूसरे का सुख और एक का दुःख दूसरे का दुःख हो जाता है। यही इस प्रेम की परिभाषा थी—यही इसका सीधा-सादा स्वाभाविक रूप था।



ओल्डफ़ील्ड्स स्कूल में १३ वर्ष की आयु में वेलिस वारफ़ील्ड की एक सहेली द्वारा लिया गया चित्र

यदि किसी 'कबीर' से यही प्रश्न किया जाता कि—'बाबा प्रेम का मूल्य क्या है ?' तो उसका उत्तर बिलकुल ही भिन्न होता । वह फक्कड़ कह उठता—"बेटा, इन बातों में कुछ नहीं धरा है । यह माया-मोह और छल-छिद्र से भरा संसार है । यहाँ कोई किसी का नहीं । भगवद्भक्ति में चित्त लगाओ । कामिनी-कांचन के मोह में न पड़ो । ये ही दो दुर्गम पर्वत हैं, जो हरि के भक्तों को उस पार जाने से रोकते हैं—

चलौ-चलौ सब कोइ कहै, पहुँचै बिरला कोय ;
एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय ।

लीजिए, बाबाजी महाराज ने सारा क़िस्सा ही समाप्त कर दिया । उधर महात्मा सूरदास भी कबीर के स्वर में स्वर मिलाकर गा रहे हैं—

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो ।
प्रीति पतंग करी दीपक सों आपै प्रान दह्यो ।
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सों सम्पति हाथ गह्यो ;
सारँग प्रीति करी जो नाद सों सम्मुख बान सह्यो ।
हम जो प्रीति करी माधव सों चलत न कछू कह्यो ;
सूरदास प्रभु बिन दुख दूनो नैनन नीर बह्यो ।

अब बताइए, जब प्रेम करनेवालों की ऐसी दुर्दशा होती है—उन्हें ऐसी यातनाएँ सहनी पड़ती हैं, तो कौन प्रीति करके अपने सिर यह आफ़त मोल लेगा ? पर ये सब योगी-महात्माओं की बातें हैं, जिन्होंने संसार और उसके आकर्षणों का परित्याग कर दिया है । वास्तव में स्त्री-पुरुष का पारस्परिक प्रेम उतना ही स्वाभाविक है, जितना भोजन के उपरान्त जल का पीना ।

इसी स्वाभाविक प्रेम के वशीभूत होकर ब्रिटिश-साम्राज्य के भूतपूर्व सम्राट् एडवर्ड अष्टम को वह निश्चय करना पड़ा, जिसको सुनकर समस्त संसार चकित रह गया । ब्रिटिश-साम्राज्य की ही नहीं, सारे संसार की आँखें उनकी ओर लग गई थीं, जब कि उनसे यह प्रश्न पूछा गया था कि प्रेम का मूल्य क्या है ? लोग विविध प्रकार के अनुमान करते थे, भविष्यवाणियाँ होती थीं । निदान विगत १० दिसम्बर के दिन उन्होंने इस सम्बन्ध में अपना अंतिम फ़ैसला दे दिया । सिंहासन-त्याग-पत्र पर हस्ताक्षर करके उन्होंने संसार को बतला दिया कि प्रेम का मूल्य एक विशाल साम्राज्य से—



अपनी माता के साथ

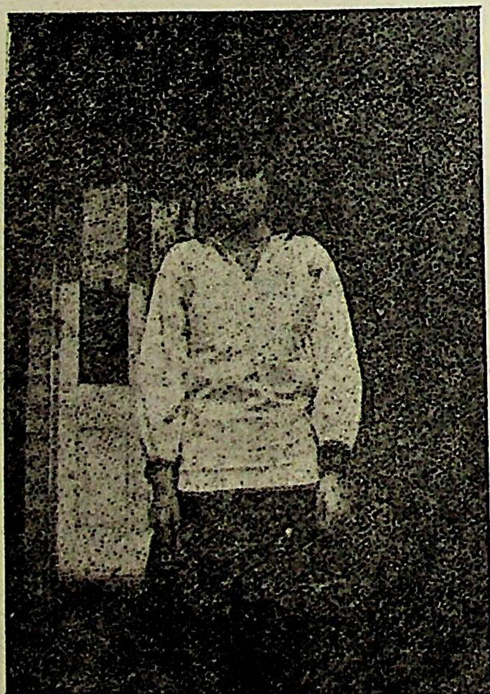
ऐसे साम्राज्य से, जिसके अंतर्गत भगवान् भास्कर कभी अस्त नहीं होते—बढ़कर है । तराज़ू के पलड़ों में तोलने पर साम्राज्य से स्त्री का प्रेम अधिक भारी निकला । सच है, प्रेम की शक्ति—चाहे वह किसी प्रकार का क्यों न हो—अपरम्पार है । प्रेम क्या नहीं करा सकता ? मनुष्य तो मनुष्य, यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी इस प्रेम के माहात्म्य को समझते हैं । वह चातक का प्रेम ही तो है, जो उसे चारु चन्द्र के दर्शनों को विवश किये रहता है । बेचारा एक-टक रजनीश को निहारा करता है । कमल के पुष्प में भँवर रात भर बन्द रहकर गुज़ार देता है—गुलाब की कटीली झाड़ियों में जाकर अपने शरीर का विच्छेदन कर लेता है—क्यों ? प्रेमी पपीहे को



कौन नहीं जानता ? प्यासा मर जायगा, पर स्वाति-जल के अतिरिक्त और किसी प्रकार के जल में अपनी चोंच डुबाकर अपने प्रेम-प्रण को भंग न करेगा। हुआ करें यदि अनेकों नदी-नद, सरिता तथा सरोवर, कूप तथा सागर जल से भरे हुए हैं। उसे क्या ? उसकी चाह तो स्वाति-जल की है। माना करें यदि लोगों ने गंगा को वैतरणी माना है ; पर वह अपने-आपको उनके बनाये हुए नियमों में क्यों बाँधे ? गंगा में गिरकर भी यह बाँका प्रेमी अपनी चोंच को बन्द रखता है—

व्याधा बध्यो पपीहरा पर्यो गंग-जल जाय ;
चोंचि मूँदि पीवे नहीं पिऊँ तो यों प्रन जाय।

बलिहारी पपीहे के इस आदर्श प्रेम पर। जल से अलग होने पर मछली तड़प-तड़पकर अपने प्राण दे देती है। और पतंगे ? उर्दू के कवियों ने न-मालूम कितना काग़ज़ 'शमा-परवाने' की प्रीति की उपमा दे-देकर काला किया है ? लौ के प्रेम में लवलीन होकर संसार भी सबसे अलभ्य वस्तु—प्राण—का मोह त्यागकर, उससे लिपटकर प्राण



छात्रावस्था में बास्केट बॉल के खिलाड़ी की पोशाक में

दे देना पतंगा ही जानता है। प्रेम की ज़बानी डींग हाँकनेवाले बड़े-बड़े बनावटी प्रेमी इस तुच्छ कीट के उच्च कोटि के प्रेम की समता क्या कर सकेंगे ! उन्होंने प्रीति करना सीखा ही कब है ? यदि सीखना है, तो बस काफ़ी है मछली का वियोग और पतंगे का मिलन—

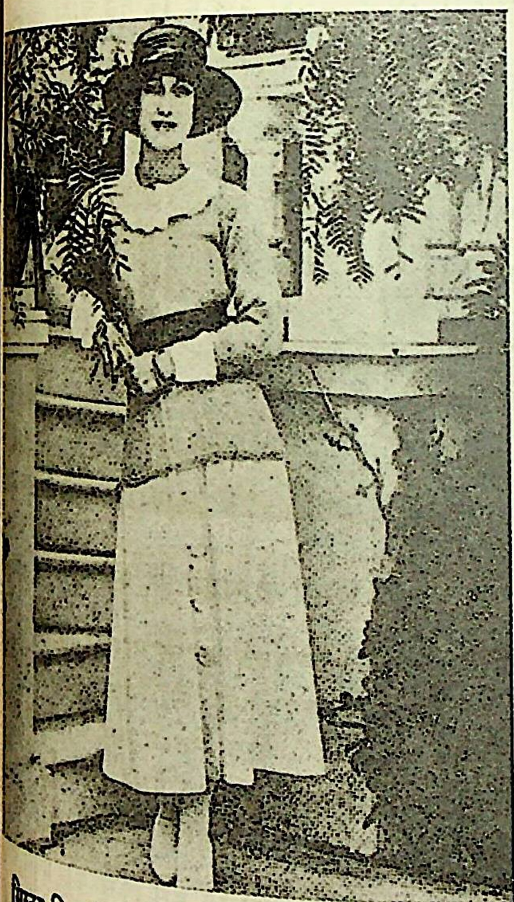
जब कहूँ प्रीति कीजै, पहिले तें सीख लीजै,
बिछुरन मीन की औ मिलन पतंग की।

× × ×

जब प्रेम में इतनी शक्ति है—इस क़दर ज़बरदस्त जब उसका आकर्षण है, तो प्रिय पाठक आप ही बताइए कि भूतपूर्व सम्राट् ने यदि मिसेज़ सिम्पसन के प्रेम के लिए राज-सिंहासन छोड़ दिया, तो कौन-सा अपूर्व असाधारण और अमानुषिक कार्य किया ? रही अब यह बात कि वे इतने बड़े साम्राज्य के सम्राट् थे, सो बुद्धजी भी तो राजा के लड़के ही थे, जिन्होंने राजसी ऐश्वर्य को ठुकराकर आजीवन घोर वनों में तपस्या की थी। किस लिए—प्रेम के कारण। हाँ, इतना अंतर अवश्य था कि बुद्धजी के हृदय में प्रेम था मानव-जाति की भलाई के प्रति, और भूतपूर्व सम्राट् का प्रेम केवल उनके निजी जीवन से सम्बन्ध रखता है। भावना एक ही थी, अभीष्ट भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। मर्यादा-पुरुषोत्तम राम ने भी मानव-जाति के कल्याण के प्रेम ही के वशीभूत होकर १४ वर्ष का वनवास भुगता था। वे भी अवध के यशस्वी सम्राट् के ही पुत्र थे। अतः यह समझ लेना चाहिए कि सांसारिक समाज की दृष्टि में 'साम्राज्य' और 'सम्राट्' आदि शब्दों का बड़ा भारी मूल्य हो सकता है, पर एक प्रेमी—सच्चे प्रेमी—के मार्ग में यदि उसी के कारण रुकावट पड़ती है, तो वह उसे एक ओर को हटाकर अपने मार्ग का अनुसरण किये बिना न रहेगा। यही अपने पिछले सम्राट् के राज्यपरित्याग की पहेली की मनोवैज्ञानिक कुंजी है।

अब तक अपने इस लेख में मैंने जो कुछ लिखा है, वह मुझे इसके शीर्षक से बहुत दूर ले गया है।

वास्तव में यहाँ मेरा अभिप्राय तो सम्राट् के प्रेम के कारण प्रख्यात हो जानेवाली इस रमणी—मिसेज़ सिम्पसन—के जीवन की उन बातों से पाठकों को परिचित करा देना है, जो अभी हिंदी के पत्रों द्वारा प्रकाश में नहीं लाई गईं। एडवर्ड-सिम्पसन की यह प्रेमकहानी घरेलू मामला होने के अतिरिक्त सार्वजनिक और कुछ हद तक राष्ट्रीय समस्या का रूप भी धारण कर गई थी। अतः वर्षों से संसार भर के छापेख़ानों से श्रीमती



मिस्टर विनफ़ील्ड के साथ विवाह होने पर

सिम्पसन के विषय में कितना 'मेटर' (Matter) छपकर बाहर निकला, इसका अनुमान लगाना कठिन है। श्रीमती सिम्पसन के अमेरिकन महिला होने के कारण अमेरिका में कहीं पहले से इस विषय की चर्चा होने लगी थी। लोग उनके विषय में अधिक से अधिक जानने के लिए लालायित हो उठे। प्रकाशकों को पाठकों की रुचि से फ़ायदा उठाना आता ही है। धड़ाधड़ श्रीमती सिम्पसन के जीवन-चरित की पुस्तकें प्रकाशित होने लगीं। इन पुस्तकों की खपत का यह हाल रहा कि पुस्तक प्रेस से बाहर होते ही हाथोहाथ बिककर समाप्त हो जाती थीं। मेरे पास जो जीवनी है, वह न्यूयार्क की ई० पी० डटन कम्पनी (E. P. Dutton & Co.) का प्रकाशन है। यह इसका १७वाँ संस्करण है। यह पुस्तक कितनी जल्दी-जल्दी बिकती गई, यह जानने के लिए इतना ही लिख देना काफ़ी है कि इस पुस्तक का प्रथम संस्करण दिसम्बर सन् १९३६ ई० में प्रकाशित हुआ और उसी महीने में उसके १७ संस्करण और निकल गये।

× × ×

वेलिस वारफ़ील्ड का जन्म १९ जून, सन् १८९६ ई० को हुआ था। उसके पिता का देहान्त पुत्री के जन्म से कुछ ही सप्ताह पूर्व हो चुका था। उसकी माता ने अपने पति की स्मृति बनाये रखने के हेतु



मिस्टर अर्नेस्ट सिम्पसन, जिनकी शादी १९२८ ई० में श्रीमती सिम्पसन के साथ हुई

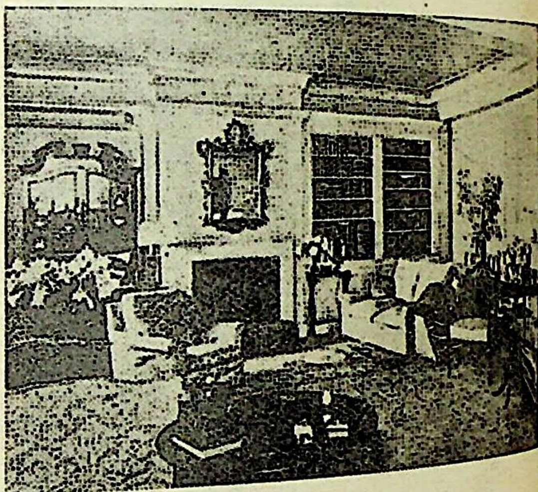


अपनी लड़की के नाम के साथ "वेलिस" शब्द लगा दिया। वेलिस के पूर्वज—विशेषकर उसके पितामह को अमेरिका के गृह-युद्ध के अवसर पर कुछ दिनों के लिए कारावास भी भुगतना पड़ा था। वह अपनी बात का पक्का था और बड़ा ही अध्ययन-प्रेमी और विद्वान् व्यक्ति था। वह वकील का पेशा करता था और अनेक ग्रन्थों का रचयिता भी था। स्पेन देश के साहित्य तथा वहाँ के निवासियों की भाषा का 'वेलिस' के पितामह ने काफ़ी अध्ययन किया था, और इस विषय पर उसने कई पुस्तकें भी लिखी थीं। अपनी बाल्यावस्था में वेलिस अपनी दादी से प्रायः अपने पितामह के जीवन की कहानियाँ बड़े ध्यानपूर्वक सुना करती थी। इन सब लोगों का निवासस्थान था अमेरिका का मेरीलैंड (Maryland) नामक स्थान।

वेलिस वारफ़ील्ड का बचपन साधारणतया अमेरिका के अन्य बच्चों की तरह ही बीता। उस समय की कोई उल्लेखनीय बात का वर्णन हमें कहीं नहीं मिलता। अवस्था होने पर उसे 'ओल्ड-फ़ील्ड्स' (Oldfields) के लड़कियों के स्कूल में विद्या प्राप्त करने के लिए भेज दिया गया। यह स्कूल कन्याओं की शिक्षा के लिए बहुत प्रसिद्ध है। स्कूल के नियम आदि बड़े कठोर थे और छात्राओं को दूषित वातावरण से बचाये रखने के लिए काफ़ी नियंत्रण रक्खा जाता था। वर्ष भर में कन्याओं को दो सप्ताह ही बाहर रहने की आज्ञा दी जाती थी; सो भी तब, जब कि उनकी पढ़ाई का सारा कोर्स ही समाप्त हो जाय। छात्राओं से स्कूल में कोई अजनवी तो क्या, ख़ास उनके भाई भी बड़ी कठिनाई से मिल पाते थे। यदि किसी छात्रा के पास किसी पुरुष का पत्र आता था, तो उसे वह पत्र अपनी गुरुआनी मिस नेन के पास ले जाना पड़ता था। स्कूल में धार्मिक शिक्षा भी दी जाती थी, और एक विशेष बात, जो हमारी चरित-नायिका को बहुत अप्रिय मालूम होती थी, वह इस स्कूल का वह नियम था, जिसके अनुसार उन सबको अपना विस्तर भी स्वयं ही विछाना पड़ता था।

वेलिस की छात्रावस्था की दो घटनाएँ पाठकों को मनोरंजक प्रतीत होंगी। सन् १९१२ की बात थी। एक दिन सहसा स्कूल की मुख्याध्यापिका—मिस नेन—ने सब छात्राओं को स्कूल-हाल में एकत्रित किया और उन्हें इन शब्दों में उस दिन के एकत्रित होने का कारण बताया—

"लड़कियो! मुझे तुमसे एक बड़ी ही गम्भीर बात कहनी है। मुझे तुम लोगों को इस बात की सूचना देते हुए बड़ा दुख है कि तुम लोगों ने स्कूल



उस समय के भवन का एक कमरा

के नियमों का उल्लंघन करना प्रारम्भ कर दिया है। जो मैं तुमसे कहती हूँ, मेरे पास उसका काफ़ी प्रमाण मौजूद है। ऐसा मैंने अपनी आँखों से होते हुए देखा है। तुममें से कुछ ऐसी हैं, लड़कियो, जो कि लड़कों को पत्र लिखती रही हैं।"

वेलिस भी उस समय इस स्कूल की प्रथम वर्ष (First year) की छात्रा थी। उसकी ही अवस्था की ५५ कन्याएँ स्कूल में और थीं। मुख्याध्यापिका के शब्दों को सुनकर सहम गईं। लड़कों को पत्र लिखना स्कूल में पूर्णतया वर्जित था। छात्राओं को मालूम था कि मिस नेन का स्वभाव कैसा है। डर के मारे काँपने लगीं। मिस नेन ने आगे चलते हुए

कहा—"कल सब छात्राएँ मेरे दफ़्तर में आकर अपना-अपना अपराध स्वीकार करें।"

अपराध-स्वीकृति का दिन आया। ५६ छात्राओं में से ५४ ने मिस नेन के सामने अपना अपराध खुले दिल से स्वीकार कर लिया और अपने इस कार्य पर खेद प्रकट करते हुए भविष्य में ऐसा न करने की शपथ ली। वेलिस वारफ़ील्ड ने भी अपना अपराध अन्य छात्राओं की भाँति ही स्वीकार किया। यही नहीं, उसे तो अपनी और भी ऐसी दो वस्तुओं के रखने के लिए 'हाँ' कहनी पड़ी, जिनका अपने पास रखना पाठशाला के नियमों के अनुकूल न था।

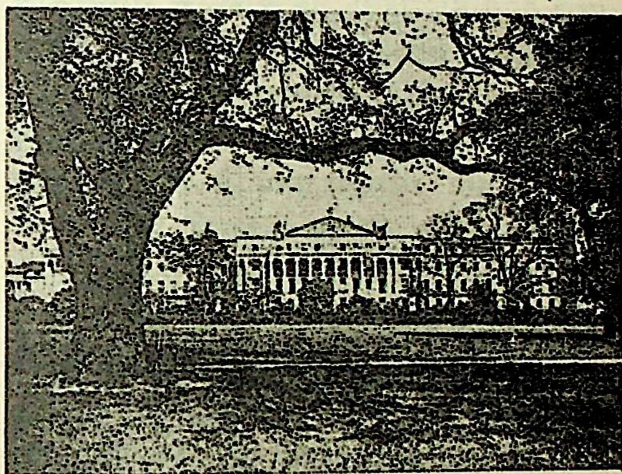
वह दिन चला गया। किसी भी छात्रा का स्कूल से बहिष्कार नहीं किया गया।

एक दिन फिर ऐसा ही अवसर आया। इस बार उनकी अध्यापिका ने उनका यह दोष पकड़ा था कि उनमें पतला बनने की भावना ज़ोर पकड़ रही थी और उनका वज़न दिन-दिन कम होता चला जा रहा था। अनेकों 'काड-लिवर-आयल (Cod liver oil) का प्रयोग करने लगी थीं।

× × ×

उस दिन १९ सितम्बर का दिन था। वेलिस की माता ने अपनी पुत्री की शादी लेफ़्टिनेंट ई० विनफ़ील्ड स्पेन्सर के साथ निश्चय करने का सम्वाद समाचार-पत्रों में प्रकाशित कराया। लेफ़्टिनेंट शिकागो के 'हाईलैंडपार्क' (Highland Park) का रहनेवाला था। 'वेलिस' की भेंट उक्त लेफ़्टिनेंट से पेनसकोला (Pensacola) के नाचगृहों में कई बार हो चुकी थी और वह लेफ़्टिनेंट की ओर आकर्षित भी हो गई थी। कई बार दोनों परस्पर नाचे थे और वेलिस लेफ़्टिनेंट को 'विन' (Win) नाम से पुकारा करती थी। होते-होते दोनों परस्पर एक-दूसरे के अधिक संसर्ग में आते गये। बाद में जब कुछ दिनों बाद वेलिस अपने गृह—बाल्टीमोर—को लौट गई, तब भी दोनों में पत्र-व्यवहार होता रहा। 'वेलिस' 'विन' के पत्रों के लिए अधीर रहती थी और डाकिये के आने के समय घर से बाहर न जाती थी। यदि कभी संयोगवश घर पर न भी होती थी, तो टेलीफ़ोन के द्वारा पूछ लेती थी कि उसके नाम का कोई पत्र तो डाक से नहीं आया है।

वेलिस १९ वर्ष की युवती हो चुकी थी। लेफ़्टिनेंट स्पेन्सर जहाज़ उड़ाने की विद्या का शिक्षक था। उसी वर्ष—लगभग दो महीने बाद—दोनों का विवाह हो गया। विवाहित जीवन के कुछ वर्ष अमेरिका में व्यतीत करने पर वेलिस के पति को चीन देश चला जाना पड़ा। इसी बीच में पति-पत्नी के जीवन में कुछ विषमता उत्पन्न हो चली थी। वियोग की इस दशा में तो उसमें और भी वृद्धि हो गई। ऐसा प्रतीत होता है कि लेफ़्टिनेंट ने उसकी उपेक्षा करना प्रारम्भ कर दिया हो। अतः वेलिस ने एक बार स्वयं चीन जाकर मामलों का निबटारा करना और पति-पत्नी के उस पुराने प्रेमसूत्र को जोड़ना चाहा। पर वह अपने प्रयत्न में सफल न हो सकी। निदान दोनों ने यही निश्चय किया कि सम्बन्ध-विच्छेद ही दोनों के लिए हितकर होगा। वेलिस वारफ़ील्ड अमेरिका लौट आई।



मिस्टर सिम्पसन को तलाक़ देने के बाद श्रीमती सिम्पसन इस मकान में रहती थीं



६, दिसम्बर सन् १९२७ को वेलिस के तलाक़-वाले मुक़दमे की सुनवाई प्रारम्भ हुई। दस दिसम्बर को अदालत द्वारा उसे ऐसा करने—लेफ़्टिनेंट स्पेन्सर से अपना पति-पत्नी का नाता तोड़ने—की आज्ञा मिल गई। अब की उसके जीवन का एक नया रूप प्रारम्भ हुआ।

× × ×

कुछ दिनों बाद वेलिस स्पेन्सर ने अपनी चाची के साथ योरप की यात्रा करने का विचार किया। पहले तो वे कुछ दिनों तक योरप में आकर फ़्रांस की राजधानी—ऐश्वर्य, वैभव और फ़ैशन के केन्द्र—पेरिस नगर में रहीं। तत्पश्चात् लन्दन चली आईं। यहाँ उनकी मुलाक़ात—मिसेज़ सिम्पसन के पुराने पति—अर्नेस्ट सिम्पसन नाम के एक नये सज्जन से हुई। अर्नेस्ट सिम्पसन अपनी पुरानी पत्नी को तलाक़ देकर लन्दन के कारख़ाने में रहते थे और इसमें वे साझीदार भी थे। अर्नेस्ट सिम्पसन की वेलिस और उसकी चाची से घनिष्ठता बढ़ती गई। नित्य प्रति बाज़ार, थियेटर तथा पार्टियों में आना-जाना रहता था। परिणाम यह हुआ कि दोनों की २१ जुलाई, सन् १९२८ को शादी हो गई। नया जोड़ा बड़े आमोद-प्रमोद के साथ जीवन व्यतीत करने लगा। अब वेलिस मिसेज़ सिम्पसन हो गई, जो वह आज तक प्रसिद्ध चली आती है।

एक वर्ष बाद उसे अपनी माता की बीमारी के कारण फिर वाशिंगटन आना पड़ा। उसके आने के एक सप्ताह बाद उसकी माता की मृत्यु हो गई। मिसेज़ सिम्पसन को अपनी माता की मृत्यु से अपार दुःख हुआ। दोनों में परस्पर सच्चा प्रेम था। जब मिसेज़ सिम्पसन लन्दन लौटकर गई, तब भी उसका शोक उसके साथ-साथ गया। उसका जी उदास रहने लगा, मिलना-जुलना तक बन्द हो गया। पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, शोक और वेदना के घाव पुरते आये। जीवन की नीरसता सरसता में परिणत होने लगी। फिर वही पुरानी चहल-पहल, आमोद-प्रमोद तथा रंगरेलियाँ।

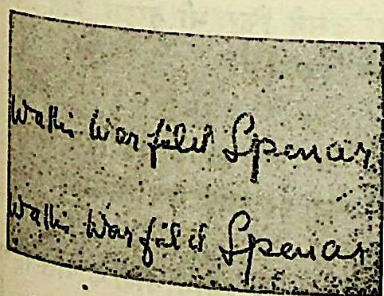


श्रीमती सिम्पसन का एक हाल का चित्र, जो वियना में लिया गया

× × ×

लन्दन की जनता ने देखा—एक बार नहीं, अनेकों बार। जो देखते थे, उन्हें आश्चर्य होता था। उनकी उत्सुकता बढ़ती थी। वे जो दो व्यक्ति—एक स्त्री और दूसरा पुरुष—प्रायः 'प्रिंस आफ़ वेल्स' के साथ थिएटरों को जाते हैं, कौन हैं? क्लबों और सभा-सोसाइटियों में भी बहुधा वे लोग युवराज के साथ दिखाई पड़ते हैं। वे दोनों कौन हैं? धीरे-धीरे सबको मालूम होने लगा कि वे दोनों हैं श्रीअर्नेस्ट सिम्पसन और श्रीमती सिम्पसन। फिर तो कभी-कभी युवराज उन दोनों के यहाँ चाय-पानी के लिए आया करते थे और प्रायः श्रीअर्नेस्ट और श्रीमती सिम्पसन भी युवराज का आतिथ्य ग्रहण करने के लिए 'सेंट जेम्स पैलेस' आया करते थे।

युवराज एडवर्ड और श्रीमती सिम्पसन दोनों का पारस्परिक प्रेम द्वितीया के चन्द्र के समान बढ़ता ही चला गया। ऐसी अनेक बातें थीं, जिनमें दोनों के स्वभाव में समानता पाई जाती थी। दोनों ही को देहाती जीवन, दौड़ और नृत्यकला से प्रेम है। दोनों ही का स्वभाव झूठी दिखावट के विरुद्ध है। श्रीमती सिम्पसन को फूलों से बड़ा प्रेम है और एडवर्ड को बाग़बानी में बड़ा आनन्द आता है। अतः दोनों के स्वभाव और रुचि की अनुकूलता ने प्रेम के पौदे को पल्लवित होने में बड़ी सहायता पहुँचाई। दोनों की घनिष्ठता गहरी होती चली गई। सन् १९३४ के ग्रीष्मकाल में जब युवराज सैर-सपाटे के लिए निकले, तो वेलिस सिम्पसन भी अपनी चाची के साथ उनके साथ थी। समाचारपत्रों के संवाददाता आये दिन सम्राट् के आमोद-प्रमोद के समाचार अपने-अपने पत्रों में प्रकाशित होने के लिए भेजते थे। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पत्रों में ऐसे चित्र धड़ाधड़ प्रकाशित होते थे, जिनमें वेलिस सिम्पसन युवराज के समीप होती थी। युवराज एडवर्ड की ओर से इन चित्रों का प्रकाशन रोकने का नाममात्र को भी उद्योग



श्रीमती सिम्पसन के हस्ताक्षर

न होता था। इसके विपरीत अगर दो-एक स्थानों की पुलिस ने युवराज के विषय में ऐसे चित्र छापने के अपराध में कुछ प्रेस-कैमरे पकड़े, तो युवराज ने स्वयं अपने हाथ से उन कैमरों को उनके मालिकों के हवाले कर दिया।

× × ×

सन् १९३६ की २१ जनवरी को लन्दन नगर में चारों ओर आवाज़ गूँज उठी—"सम्राट् स्वर्गवासी हुए, सम्राट् चिरंजीवी हों"—"The King is dead; long live the King."

एक दिन बाद तोपों की तुमुल ध्वनि और भेरियों के गगनभेदी निनाद के अन्दर 'एडवर्ड अष्टम' ब्रिटिश-साम्राज्य के अधीश्वर घोषित हो गये। पिछले वर्ष के मार्च में आपने रेडियो पर अपने स्वर्गीय पिता के सम्बन्ध में अपना पहला भाषण देते हुए अपनी प्रजा को बतलाया था—

"अपने स्वर्गीय पिता का उत्तराधिकारी बनकर शासन-यंत्र के संचालन का कार्यभार मुझे सौंपा गया है।"

"आपमें से बहुत लोग मुझको 'प्रिंस आफ़ वेल्स' के नाम से जानते हैं। युद्ध और शांति के साधारण दिनों में मैंने संसार के प्रायः सभी देशों के निवासियों के जीवन का भिन्न-भिन्न दशाओं में अध्ययन किया है। उन सारी बातों के अनुभव मेरे हृदय-पटल पर अंकित हैं। अपनी प्रजा के हित की उन्नति करना मेरा प्रधान कर्त्तव्य रहेगा।"

उपर्युक्त पंक्तियाँ नये सम्राट् के स्वभाव और चरित्र की पूर्ण रूप से द्योतक थीं। एक दिन और सम्राट् ने अपनी प्रजा को अपने स्वभाव की कोमलता और दीनों के प्रति दयालुता का परिचय कराया। वह दिन ९ अप्रैल का दिन था। वेस्टमिन्स्टर-अबे के निकट सम्राट् ने ७१ अपाहिज पुरुषों और ७१ दीन स्त्रियों को भोजन-वस्त्र भिक्षास्वरूप वितरण किये थे।

× × ×

राजप्रासाद से प्रतिदिन प्रकाशित होनेवाले 'कोर्ट-सर्कूलर' की २८ मई, सन् १९३६ की प्रति ने लोगों में सनसनी उत्पन्न कर दी। उसमें उन लोगों की नामावली थी, जिनको सम्राट् ने अपने महल में प्रीतिभोज दिया था। गण्यमान्य सज्जनों—लार्ड और पीयरों—के सिवा सर्कूलर में नीचे



की ओर श्रीसिम्पसन और श्रीमती सिम्पसन का नाम भी लिखा हुआ था। इस समाचार से टीका-टिप्पणी और आलोचना-प्रत्यालोचना की बाढ़ आ गई। जितने मुँह उतनी ही बातें सुनने को आती थीं—कोई कुछ कहता था और कोई कुछ। श्रीमती सिम्पसन का नाम सर्कूलर में प्रकाशित होते ही यह नाम सार्वजनिक चर्चा का विषय बन गया। मुँह-मुँह पर सम्राट् और सिम्पसन के प्रेम की चर्चा थी।

× × ×

अक्टूबर १४ को समाचारपत्रों में दो इंच के मोटे टाइप में प्रकाशित हुआ—"वेलिस सिम्पसन ने तलाक़ का दावा दायर कर दिया।" २७ अक्टूबर को पेशी हुई। अदालत में दर्शकों की अपार भीड़ थी। संवाददाताओं, फ़ोटोग्राफ़रों तथा प्रेस-प्रतिनिधियों का हजूम एकत्रित हो गया था। उधर से थोड़ी ही देर में मिस्टर नोर्मन ब्रिकेट श्रीमती सिम्पसन के साथ अदालत के भवन में दाख़िल हुए। ये ही इस मुक़दमे में वेलिस सिम्पसन के वकील थे। दर्शकों की उत्सुकता बाँध तोड़कर बाहर निकली आती थी। नाटक प्रारम्भ हुआ—

"मेरे स्वामी! मैं अपने मित्र मिस्टर फ़्रेम्पटन के साथ इस मुक़दमे की पैरवी करने को उपस्थित हुआ हूँ। मैं वादी को बुलाये लेता हूँ"—मिस्टर ब्रिकेट ने न्यायाधीश मि० हौक को सम्बोधित करते हुए कहा।

श्रीमती सिम्पसन उठकर आईं और उचित स्थान पर खड़ी हो गईं।

न्यायालय के एक मुंशी ने पुलिस के एक कान्सटेबुल को इशारा किया कि वह वादी से धार्मिक शपथ ले ले। यह हो चुकने पर मिस्टर ब्रिकेट ने पुनः कहना प्रारम्भ किया—

"तुम्हारा नाम वेलिस सिम्पसन है? तुम आजकल 'फ़ैलिव सटोव' में 'बीच हाउस' में रहती हो?"

"हाँ"

"तुम्हारा विवाह २१ जुलाई, १९२८ को अर्नेस्ट सिम्पसन के साथ हुआ था?"

"हाँ"

"और फिर तुम इसके उपरान्त अपने पति के साथ लन्दन में रहीं?"

"हाँ"

"क्या उस शादी से किसी सन्तान का जन्म हुआ?"

"नहीं"

"क्या तुम अपने पति के साथ १९३४ तक आनन्दपूर्वक रहीं?"

"हाँ"

"तब से तुम्हारे प्रति तुम्हारे पति के व्यवहार में परिवर्तन होने लगा?"

"हाँ"

"वह क्या परिवर्तन था?"

"वह मेरी ओर से उदासीन रहने लगा और अपने-आप अकेला ही प्रायः मनोविनोद आदि के लिए जाने लगा।"

"क्या तुमने इस बात की उससे शिकायत की?"

"हाँ, मैंने की थी।"

"क्या उसने फिर भी तुम्हारे प्रति अपना वही क्रम जारी रक्खा?"

"हाँ"

"क्या सन् १९३४ के बड़े दिन को तुम्हें अपने कमरे की मेज़ पर कोई पत्र मिला?"

"हाँ"

पत्र निकालकर न्यायाधीश के पास पहुँचा दिया गया। फिर श्रीमती सिम्पसन ने बतलाया कि इस वर्ष के ईस्टर के बाद ही मेरे हाथ ऐसा पत्र लगा, जो वास्तव में मेरे पति को लिखा गया था, पर लिफ़ाफ़े पर पता तो मेरा लिखा था।

"क्या इस पत्र को पाकर तुमने अपने 'सालिसिटर' से परामर्श लिया?"

"हाँ"

"तुम्हारी इच्छानुसार क्या उन लोगों ने लि



तुम्हारे पति पर नज़र रखना प्रारम्भ कर दिया ?"

"हाँ"

"क्या उन लोगों ने तुम्हें इस सम्बन्ध में अपने विचारों से सूचित किया ?"

"हाँ"

"क्या तुम्हें वह ख़बर भी उन्हीं लोगों से मिली, जिसके आधार पर तुमने यह दावा दायर किया है ?'

"हाँ"

"क्या इस वर्ष २३ जुलाई के दिन तुमने अपने पति को यह पत्र लिखा था ?" मिस्टर ब्रिकेट ने तब मिसेज़ सिम्पसन के हाथ में देकर कहा—"इसे पढ़ो।"

मिसेज़ सिम्पसन ने धीरे-धीरे पढ़ना शुरू किया—

'प्रिय अर्नेस्ट,

मुझे समाचार मिला है कि तुम आजकल किसी कार्यवश बाहर नहीं ठहरे हुए हो, बरन् तुम एक स्त्री के साथ 'ब्रे' होटल में रह रहे हो। मुझे विश्वास है कि तुम इस बात को अवश्य समझते होगे कि तुम्हारा यह व्यवहार मुझे कभी पसंद नहीं आ सकता। अब मैं तुमसे आग्रह करती हूँ कि तुम मेरे साथ रहने के लिए न आओ। मैंने अपने सालिसिटरों को तलाक़ का दावा दायर करने की आज्ञा दे दी है। तुम्हारे विषय में मेरे जो बहुत दिनों से संदेह थे, वे सब सत्य सिद्ध हो रहे हैं।"

तब मि० ब्रिकेट ने मिसेज़ सिम्पसन के हाथ में एक फ़ार्म देकर कहा—"इस फ़ार्म पर किसके हस्ताक्षर हैं ?"

"मिस्टर सिम्पसन के।"

"तुम्हारे पति के ?"

"हाँ"

मिस्टर ब्रिकेट ने पीठ फेरते हुए कहा 'धन्यवाद' और मिसेज़ सिम्पसन अपने स्थान पर जा बैठी। ब्रैकनेल होटल के कुछ नौकरों की गवाही और हुई। न्यायाधीश ने अपने फ़ैसले में वेलिस सिम्पसन के पक्ष में अपना फ़ैसला सुना दिया।

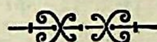
× × ×

अब एडवर्ड अष्टम की परीक्षा का समय आया। उनसे वही प्रश्न पूछा गया—प्रेम का मूल्य क्या है ? संसार ने एकस्वर से उनसे पूछा कि प्रेम का मूल्य क्या है ? देश-विदेश के कोने-कोने से उनसे यही पूछा गया कि प्रेम का मूल्य क्या है ? विगत १० दिसम्बर को विश्व को सम्राट् की ओर से उस प्रश्न का उत्तर मिला। संसार चकित हो गया।

× × ×

उस दिन भोर होने से पूर्व ही इस अनन्य प्रेमी सम्राट् का जहाज़ इँगलैंड के समुद्रतट से किसी अज्ञात दिशा को बिदा हो रहा था, जो अपनी मूक वाणी में कहता जा रहा था—

खुश रहो अहलेवतन हम तो सफ़र करते हैं।



डाक्टर नेहरू और उनका चमत्कारिक इलेक्ट्रोकल्चर

श्रीहरिहरप्रसाद मिश्र

डाक्टर श्रीश्रीधर नेहरू एम्० ए०, केम्ब्रिज, पी० एच्० डी० हेडिलबर्ग, एल्-एल्० डी० ब्रूसेल्स, एल्० ई० डी० पेरिस, आई० सी० एस्० भारत के उन गण्य-मान्य विज्ञान-वेत्ताओं में से हैं, जिन्होंने 'कुदरती बिजली' का वनस्पति, पशुओं और मनुष्यों पर प्रयोग करके आज सारे संसार को दिखला दिया है कि प्रकृति जिस डाल में चार फल लगाती थी, उसमें आप आज सोलह फल पैदा कर सकते हैं, और वह भी अपनी इच्छानुसार जल्दी या देर में; जिस पशु की मूक वेदना को आप अपने को असहाय समझकर विधाता की इच्छा पर छोड़ देते थे, उसे थोड़े ही प्रयत्न से भला-चंगा कर सकते हैं। यही नहीं, बरन् दूध देनेवाले जानवरों का दूध भी बढ़ा सकते हैं, मनुष्यों की जीवन-परिधि भी बढ़ सकती है। उनकी तरह-तरह की बीमारियों को जैसे नींद न आना, पाचनशक्ति का कमज़ोर होना, लक़वा, दर्द व पागलपन आदि को आप थोड़े ही समय में, बिना ज़्यादा पैसा ख़र्च किये हुए, एक सीधे-सादे इलाज से आराम कर सकते हैं। संसार के सभी उन्नत देशों में आज लगभग २०० केन्द्र डाक्टर नेहरू के बताये हुए तरीक़ों पर काम कर रहे हैं, पर अभाग्यवश हमारे ही देशवासी और विशेषकर हिन्दी-भाषा-भाषी उनसे अपरिचित ही हैं।

इसके दो मुख्य कारण हैं—एक तो डाक्टर नेहरू अपनी विज्ञप्ति नहीं चाहते, दूसरे उनके पास अमेरिका, इँगलैंड, जर्मनी, इटली आदि देशों से लेखों की इतनी माँग रहती है और हर एक विलायती डाक से उनके पास इतने ज़्यादा पत्र सलाह लेने के लिए आते हैं कि उन्हें समय बिल्कुल नहीं मिलता। डाक्टर नेहरू स्वयं मातृभाषा के बड़े पक्षपाती हैं। उनके सभी वक्तव्य हिन्दी में ही होते हैं और वे केवल ग्रामसुधार-नामक पत्र में ही प्रकाशित होते हैं। पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि अमेरिका और योरप में 'ग्रामसुधार' की सैकड़ों कापियाँ जाती हैं, जिन्हें विदेशी या तो भारतीय विद्यार्थियों से पढ़वाते हैं या ब्रिटिश इम्बैसी में जाकर किसी हिन्दी जाननेवाले कर्मचारी से अनुवाद कराते हैं। एक बार मैंने डाक्टर नेहरू से पूछा कि अगर किसी देश में, जहाँ 'ग्राम-सुधार' जाता है, हिंदी जाननेवाले भारतीय विद्यार्थी न हों और इम्बैसी के कर्मचारी भी हिन्दी से अनभिज्ञ हों, तो वे लोग क्या करेंगे। डाक्टर नेहरू ने फ़ौरन् उत्तर दिया कि अगर विदेशी लोग हमारे तजुर्बों से फ़ायदा उठाना चाहते हैं, तो उन्हें लाज़िमी है कि हमारी भाषा सीखें। हमीं उनके फ़ायदे की बात बतलायें और वह भी उनकी ही ज़बान में, यह कहाँ का न्याय है! हिन्दी के लिए यह बड़ा



गौरव की बात नहीं। अगर हमारे विज्ञान के सभी महारथी डाक्टर नेहरू का अनुकरण करने लगें, तो हिन्दी का माथा भी रशियन, फ्रेंच व जर्मन की भाँति ऊँचा हो सकता है।

डाक्टर नेहरू ने भारत की ग़रीबी का नग्न चित्र देखा है। वह पूरे ६ महीने ज़िले के गाँव-गाँव में दौरा करते हैं। वह जानते हैं कि हमारे किसानों के पास इतना पैसा नहीं है कि वे क़ीमती फ़रटिलाइज़र या बड़ी-बड़ी मशीनें और क़ीमती खाद इस्तेमाल कर सकें। उन्हें तो कम ख़र्च और बालानशीन चीज़ चाहिए। तभी उनकी उदरपूर्ति हो सकती है, तभी ग्रामसुधार हो सकता है। डाक्टर नेहरू लेक्चरबाज़ी और काग़ज़ी घोड़ों को अच्छा नहीं समझते। वे कहते हैं कि लेक्चरबाज़ी नई सभ्यता का एक रोग है। वह प्रत्यक्ष में विश्वास रखते हैं और सब कुछ प्रत्यक्ष में ही कर दिखाते हैं।

उनका विश्वास है कि हमारी ग्रामीण जनता की दशा तब तक नहीं सुधर सकती, जब तक हमारे किसान कोई सहकारी उद्योग-धन्धा करके अपनी आमदनी को न बढ़ावें। सभी विदेशों में खेती करनेवाले लोग फल-फूल की खेती, तरकारियाँ पैदा करना, मुर्ग़ी के अंडों की तिजारत या गाय-बकरी पालना या ऐसा ही कोई और काम ज़रूर करते हैं, जिसकी वजह से अगर खेती में किसी साल नुक़सान भी हो जाय, तो वे भूखों नहीं मरते। बाग़बानी और तरकारियों की खेती हमारे किसानों के लिए बड़ी उपयुक्त है। ५०-६० वर्ष पहले तक हर एक खाता-पीता किसान अपनी ज़िंदगी में दो-चार फलदार दरख़्त लगाना अपना फ़र्ज़ समझता था। जानवरों की अच्छी नस्ल पैदा करने के लिए लोग अपने पुरखों के नाम पर साँड़ छोड़ा करते थे। पर अब आजकल ये बातें बन्द-सी हो गई हैं, जिस पर ज़मीन की पैदावार कम हो चली है, और बीमारों के ऊसर नज़र आने लगे हैं। फलों में बाज़-बाज़ जगह का नाम बिकता है—जैसे नागपुर का संतरा, बम्बई का केला, सहारनपुर का लुकाट।

हमारे किसान इस प्रतियोगिता में कैसे सफल हों, इसी उद्देश्य को सामने रखते हुए डाक्टर नेहरू ने बड़ी खोज-बीन के बाद 'क़ुदरती बिजली' का प्रयोग निकाला है, जिसे अँगरेज़ी में 'इलेक्ट्रोकल्चर' कहते हैं। इसका सिद्धान्त वृक्ष, पशु और मनुष्यों पर एक-सा ही लागू होता है। यह तो सभी जानते हैं कि जिस तरह हमारे शरीर में करोड़ों छोटे-छोटे छिद्र हैं, इसी तरह वृक्ष में भी होते हैं और जिस तरह हमारे शरीर का ख़ून रगों द्वारा हर एक हिस्से के छिद्रों तक पहुँचकर उनमें हरकत करने की शक्ति पैदा करता है, इसी तरह पेड़ों में भी होता है। पेड़ में जो पानी व गैस पहुँचती है, वह उसके प्रत्येक भाग में ऐसे छोटे-छोटे छिद्रों तक ले जाई जाती है, जिससे उनमें हरकत पैदा होती है। उनकी हरकत से वृक्ष के शरीर में बिजली का संचार होता है। अगर हम हरकत करते हुए इन छिद्रों पर बाहरी बिजली का असर भी डालें, तो नतीजा यह होगा कि शरीर के अन्दर की बिजली की ताक़त और बढ़ेगी और शरीर ज़्यादा बलिष्ठ हो जायगा।

[Wherever there is cellular activity, there is electrical energy developed, and conversely wherever electrical energy is applied cellular activity is increased and better growth obtained.]

वनस्पति

वनस्पति की उन्नति के लिए डाक्टर नेहरू तीन तरीक़े इस्तेमाल करने के लिए बतलाते हैं—१ बीज में बिजली लगाना, २ पौदे या क्यारी में जाली लगाना, ३ बिजली का पानी देना, जिसे अगस्कर साहब के नाम से अगस्कराइज़ेशन भी कहते हैं। मान लीजिए, आपको एक पपीते का बीज बोना है, तो पहले बीज को धातु की तश्तरी पर रखकर अगर आपके पास मोटर है, तो डाइनमो से उसे संबन्धित करके २००० वोल्ट से एक मिनट तक 'स्पार्क' कीजिए और फिर बिना हाथ से छुए हुए हाथ में रबड़ का दस्ताना पहनकर उसे बो



दीजिए। गाँववालों के लिए जहाँ न मोटर है और न बिजली, सबसे सहल तरीक़ा यह है कि सब लोग मिलकर किसी कबाड़ी के यहाँ से किसी पुरानी मोटर का मेगनेट ख़रीद लें। यह अक्सर ॥) से लेकर १०) तक अच्छा मिल जाता है। एक मेगनेट एक छोटे-से गाँव के लिए काफ़ी है। उसमें बढ़ई से चलाने के लिए एक हेन्डिल लगवाना चाहिए। मेगनेट का एक तार धातु की तश्तरी, जिसमें बीज रक्खा हो, उससे संबन्धित करके मेगनेट को तीन-चार मिनट चलाने से बीज में बिजली आ जायगी। एक दूसरा तरीक़ा यह भी है कि एक मिट्टी के घड़े में पानी भरके बीज उसमें डाल दीजिए और मेगनेट का एक तार घड़े के अन्दर पानी में डालकर मेगनेट को तीन-चार मिनट चलाइए और फिर बीज को उसी में घंटे-दो घंटे पड़े रहने के बाद निकालकर बिना हाथ से छुए बो दीजिए।

पौदों के लिए जाली का प्रयोग बहुत लाभदायक साबित हुआ है। यह जाली पीतल की नहीं, बल्कि लोहे की मामूली ५ या ६ आने गज़-वाली इस्तेमाल की जाती है, जिसका जाल क़रीब १ इंच चौड़ा होता है। पौदे की जड़ व तने की मोटाई के हिसाब से १० इंच लम्बे और ६ इंच चौड़े टुकड़े कर लीजिए और सिर्फ़ एक टुकड़ा पौदे की जड़ पर चारों तरफ़ से चिपटाकर इस तरह से लगाइए कि क़रीब २ इंच जाली मिट्टी से ऊपर रहे और बाक़ी हिस्सा जड़ के साथ नीचे रहे। अगर किसी शाख़ पर आपको ज़्यादा फल या फूल लगाना है, तो उस पर जाली की एक जैकेट-सी पहना दीजिए। बस, उस पर बहुत-से किल्ले निकल आवेंगे। अगर बीज क्यारी में बोना है, तो पहले ६ इंच गहरी मिट्टी खोदकर बारीक कर लीजिए। फिर जाली इस तरह से बिछाइए कि उसके चारों तरफ़ किनारे का हिस्सा मिट्टी से ऊपर रहे और फिर उस पर २-३ इंच गहरी मिट्टी फैला दीजिए। बिजली का पानी डाक्टर नेहरू का रामबाण है। जैसे ऊपर बताया जा चुका है, थोड़ी ही देर में आप मेगनेट से बहुतेरा पानी बना सकते हैं। यही पानी पौदे में देना चाहिए और यही उस पर छिड़कना चाहिए। देखा गया है कि बिजली का पानी साधारण पानी से ५० गुना ज़्यादा फ़ायदे-मंद होता है। एक लोटा बिजली का पानी मामूली पानी से ५० गुना असर रखता है। जिन जगहों में पानी की कमी है, वहाँ बिजली का थोड़ा पानी भी उस अभाव की पूर्ति कर सकता है। आंधी आने पर तजुर्बा करके देखा गया है कि जिन पेड़ों में बिजली का पानी दिया गया था, उनके फल बहुत कम तादाद में गिरे और जिनमें साधारण पानी दिया गया था, उनके ज़्यादा तादाद में गिरे। कारण यह था कि बिजली के पानी से सिंचे हुए पेड़ों के फल हवा के झोंके बरदाश्त करने का ज़्यादा माद्दा रखते थे। बिजली का पानी देने से पत्तों का रंग गहरा हो जाता है, पत्ते ज़्यादा बड़े होते हैं और आम तौर पर पेड़ जल्दी बढ़ता है और ज़्यादा मज़बूत हो जाता है।

पशु

पशुओं को ज़्यादा बलिष्ठ बनाने के लिए डाक्टर नेहरू की तीन तरकीबें मुख्य हैं। पहली यह कि उनका चारा सुबह की निकलती हुई सूर्यरश्मियों के सामने रक्खा जाय, जिससे हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जायँ और उनमें किरणों का समावेश होवे से बलकारक गुण पैदा हो जायँ। दूसरे उनको बिजली का पानी पिलाया जाय और तीसरे उनके गले में बिजली के तार से कभी-कभी स्पार्किंग किया जाय। बिजली का पानी सानी में मिलने से उसको पाचक बना देता है। उससे ही नहलाने से जानवर स्वस्थ रहते हैं—गले पर मेगनेट का तार लगाकर हैन्डिल चलाने से बिजली की जो चिनगारियाँ पशु के शरीर में प्रवेश करती हैं, उनसे उसके सारे शरीर में स्फूर्ति-सी आ जाती है। जानवरों के घावों पर बिजली का पानी डालने से घाव जल्दी भर जाता है। लेकिन गले पर Thyroid स्पार्किंग ज़रूर करना चाहिए।



Glands होती हैं, जिनका बाक़ी अवयवों से सीधा सम्बन्ध होता है। इसी लिए गले पर स्पार्किंग किया जाता है—इसका पाचन-शक्ति पर बड़ा असर पड़ता है।

मानुषों पर

भोजन-सामग्री को प्रातःसूर्य की रश्मियों के सामने रखने, बिजली का पानी पीने तथा गले पर स्पार्किंग करने के अलावा सबसे ज़्यादा फ़ायदा रोगी व आनेवालों को डाक्टर नेहरू की एक साधारण-सी तरकीब से हुआ है। वह है चारपाई के पायों के नीचे मोटर के टायर के टुकड़े रखना। किसी पुराने टायर में से चारपाई के पाये की चौड़ाई के अनुसार ४ टुकड़े काट लीजिए और एक-एक टुकड़ा चारपाई के हर एक पाये के नीचे रख दीजिए। इससे रात में नींद बहुत गहरी आती है और तन्दुरुस्ती पर इसका बड़ा अच्छा असर पड़ता है। जिन लोगों को नींद की पुरानी शिकायत है, उन्हें डाक्टर नेहरू एक माला पहनने को देते हैं जिससे नींद ख़ूब आती है। लेकिन हर एक केस में पहले उनकी राय ले लेना ज़रूरी है। उनके पास दुनिया के कोने-कोने से चिट्ठियाँ आती हैं। जिनका उत्तर जल्द से जल्द दिया जाता है। डाक्टर नेहरू की अध्यक्षता में मैनपुरी में इलेक्ट्रोकलचर व इलेक्ट्रोथेरापी असोसिएशन क़ायम है, जिसके द्वारा यह सब काम सम्पादित होता है। इसके मेम्बर सभी देशों में फैले हुए हैं और वे अपने-अपने तजुर्बे लिखकर भेजते हैं, जो किताबों की शक्ल में छापे जाते हैं। अभी तक क़रीब २०० ऐसी किताबें छप चुकी हैं। मेम्बरों को ये सब किताबें मुफ़्त मिलती हैं और अपने बाग़ के बारे में और बिजली के इलाज के बारे में सलाह मुफ़्त मिलती है। ज़िले के बाहरवालों से सिर्फ़ ५०) लाइफ़-मेम्बर यानी आजीवन सदस्य बनने के लिए जाते हैं। इलेक्ट्रोकलचर के तजुर्बे बड़े मनोरंजक हैं—सबसे ज़्यादा आश्चर्य की बात यह है कि ऊसर में भी ऊपर लिखे हुए तरीक़ों से बाग़ लगाया जा सकता है। मैनपुरी के ज़िले में नगलाहार में चौधरी सियाराम ने उनका इस्तेमाल किया और आज क़रीब-क़रीब सभी तरह के फलदार दरख़्त वहाँ हरे-भरे नज़र आते हैं, जो ऊसर में ख़्वाब में भी नहीं दिखलाई पड़ते—पपीता, शहतूत, आम, चन्दन, माल्टा, सन्तरा, लुकाट, फ़ालसा, रबर, कहवा आदि तरह-तरह के दरख़्तों पर तजुर्बे, कामयाबी के साथ, बहुत-से मुल्कों में, किये जा चुके हैं। अभी हाल में मि० जोज़ अन्तोनियो सालवेरिया ने सेन्ट्रल अमेरिका से लिखा है कि डाक्टर नेहरू के तरीक़ों को कुछ ही दिन इस्तेमाल करने के बाद कहवा के वे पौदे, जो बहुत कमज़ोर नज़र आते थे, एकदम बदल-से गये। उनमें नये-नये कल्ले फूटने लगे और वे इतनी जल्दी बढ़ने लगे कि आप यक़ीन नहीं करेंगे। फिर उन्होंने नारंगियों पर तजुर्बा किया। उनमें बहुत ज़्यादा फल आ गये, हालाँकि वे पौदे अपनी पूरी ऊँचाई को नहीं पहुँच पाये थे और कुल १॥ गज़ ऊँचे थे। मिस्टर जोज़ अब अपने बड़े कहवा के खेतों पर इनका तजुर्बा करना चाहते हैं; क्योंकि उनका विचार है कि ये तरीक़े मुश्किल नहीं हैं और इनके इस्तेमाल से बहुत-सा रुपया बचता है, जो वे अभी तक तरह-तरह की खाद पर ख़र्च किया करते थे।

मुर्ग़ियों की बीमारी पर बिजली के पानी का कैसा अच्छा असर होता है, यह अमेरिका के Reedley Exponent-नामक अख़बार की एक रिपोर्ट से अच्छी तरह ज़ाहिर होता है। वह यह है—"जान पर्ल के यहाँ डाक्टर नेहरू ने एक मुर्ग़ी का इलाज किया, जो कि बहुत दिनों से बीमार थी। उन्होंने एक प्याला बिजली का पानी लेकर उसके गले में डाल दिया। वह बग़ैर किसी तकलीफ़ के उस पानी को पी गई; क्योंकि मालूम होता था कि वह उसे अच्छा लगा। थोड़ी देर बाद मिसेज़ पर्ल ने देखा कि मुर्ग़ी की चोटी का गोश्त पीले से एकदम लाल रंग का हो गया और वह और मुर्ग़ियों की तरह फिर से चुगने लगी। उसको पहचानना भी मुश्किल हो गया।

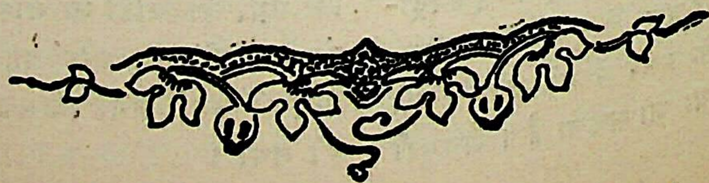


हाथी-जैसे डील-डौल के जानवर पर भी तजुर्बे किये गये हैं। एक राजा के हाथी की आँख बिलकुल बेकार हो गई थी। उस पर बड़े-बड़े प्लास्टर लगाये जा चुके थे और बहुतेरी दवाइयाँ हो चुकी थीं; लेकिन किसी से कोई फ़ायदा नहीं हुआ। हाथी की वह आँख बन्द ही रहती थी। डाक्टर नेहरू ने पहले कपड़े को बिजली के पानी में भिगोकर उसकी आँख धुलवाई, फिर धार बाँधकर उस पर वही पानी डाला गया। इससे हाथी को बहुत आराम मिला और थोड़ी देर में उसने आँख खोल दी। लेकिन आँख का धोना इसी तरह से जारी रक्खा गया। उसकी आँख में जाला-सा पड़ गया था, जो बिजली के पानी से कट गया और वह भला-चंगा हो गया। एक दूसरे हाथी के सिर पर एक बहुत बड़ा आवला पड़ गया था, जिसका कारण महावत दिमाग़ की ख़ुश्की बतलाता था। उस पर भी बहुत-सी दवाइयाँ लगाई जा चुकी थीं। आख़िरकार उस आवले पर बिजली के तार से स्पार्किंग किया गया और वह फूटकर बहुत जल्दी अच्छा हो गया। घोड़ा, बकरी, गाय, बैल, ऊँट आदि जानवरों पर उनकी तरह-तरह की बीमारियों में बिजली के तरीक़े इस्तैमाल किये गये और उनसे बहुत जल्द फ़ायदा हुआ। एक ख़ास बात और है। दूध देनेवाले जानवरों को बिजली का पानी पिलाने से देखा गया है कि उनका दूध सवाया हो जाता है। कलकत्ते में उस दूध का बना हुआ घी, 'बिजली-मार्का घी' के नाम से बिकता है और उसके दाम भी अच्छे मिलते हैं।

क़रीब १२,००० आदमियों पर तरह-तरह की बीमारियों में ये तरकीबें आज़माई जा चुकी हैं। रेडियम के मुक़ाबले में भी क़ुदरती बिजली ज़्यादा फ़ायदेमन्द साबित हुई है। अभी हाल की बात है कि ज़िला फ़र्रुख़ाबाद की एक ठकुरानी, जिसकी उम्र २९ बरस की थी, अपने एक बच्चे की मौत के बाद से पागल हो गई थी। वह न खाती थी और न पीती थी। सिवा चीख़ने-चिल्लाने के उसे दूसरा काम न था। वह डाक्टर नेहरू के पास लाई गई और उसका इलाज शुरू किया गया। उसकी चारपाई के पावों के नीचे रबर के टुकड़े रक्खे गये—सूर्य की किरणों के सामने रक्खी हुई भोजन-सामग्री में बना हुआ भोजन उसे खिलाया गया, बिजली का ही पानी उसे पीने व नहाने को दिया गया और उसकी थाइराइड ग्लैन्ड्स पर स्पार्किंग किया गया। २४ घंटे के अन्दर उसका चिल्लाना बन्द हो गया, उसे नींद आ गई और वह तबियत से खाने-पीने लगी—कुछ दिन बाद वह बिलकुल भली-चंगी हो गई।

एक दूसरा केस लीजिए—एक महाजन मंदी की वजह से कुछ विभूति खो बैठा और वह पागल हो गया। वह बहुत चिल्लाता था। जब वह पकड़कर डाक्टर नेहरू के सामने लाया गया, तो उन्होंने उसकी गरदन पर पीछे की तरफ़ स्पार्किंग किया—फ़ौरन् ही उसका चिल्लाना बन्द हो गया और कुछ दिन बाद वह बिलकुल अच्छा हो गया।

लखनऊ के शीशमहल के नवाब सादिक़अलीख़ां को नींद न आने की शिकायत थी। बिजली के पानी, रबड़ के टुकड़े चारपाई के पावों के नीचे रखने व एक ख़ास तरह की माला पहनने से उनकी यह शिकायत दूर हो गई—हर एक मर्ज़ के लिए इतना सस्ता नुस्ख़ा मिलना मुश्किल है। आशा है, पाठक लाभ उठावेंगे।



आधुनिक ग्राम्य जीवन

श्री० बी० एस्० ठाकुर

(१)

ग्रामीणों का रहन-सहन

भारतवर्ष में ग्रामों की संख्या पाँच लाख है और उन पाँचों लाख ग्रामों में बसनेवाले लोग प्रायः सभी कृषक हैं। भारतीय नगरों में रहनेवाले लोग ग्रामीणों की अवस्था से भली प्रकार परिचित नहीं हैं। यद्यपि अब तक ग्राम्य जीवन विषय पर बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा अनेक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं, जिनके द्वारा नगर-निवासियों को ग्रामीणों की अवस्था से अवश्य परिचित हो जाना चाहिए था, परन्तु वे अभी तक ग्रामीणों की अवस्था से सर्वथा अपरिचित हैं। इसका मुख्य कारण है उक्त पुस्तकों के लेखकों का स्वयं ग्रामीण न होना। विद्वान् लेखकों ने अपनी पुस्तकों में ग्राम्य जीवन को स्वर्ग का जीवन सिद्ध करने का प्रयत्न किया है और आधुनिक ग्राम्य जीवन के सम्बन्ध में तो वे कुछ प्रकाश ही नहीं डाल सके हैं। यदि उन पुस्तकों के लेखकगण ग्रामीण होते, तो वे निस्सन्देह ग्राम्य जीवन का वास्तविक चित्र खींचते। मैंने अब से दो वर्ष पूर्व आधुनिक 'ग्राम्य जीवन'-विषय पर लगभग दो दर्जन लेख लिखे थे, जो दिल्ली के दैनिक नवयुग समाचारपत्र में प्रकाशित हुए थे। हिन्दी-समाचार-पत्रों के पाठकों ने मेरे उन लेखों को ख़ूब पसन्द किया था। उक्त पत्र के प्रधान सम्पादक पं० सत्यकाम विद्यालंकार उन लेखों का संग्रह करके उन्हें एक पुस्तक के रूप में लाना चाहते थे, परन्तु उनके उक्त पत्र से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने के कारण वह कार्य न हो सका। अब मैं अपनी लम्बी भूमिका को समाप्त कर अपने मुख्य विषय पर आता हूँ।

आधुनिक ग्राम्य जीवन क्या है, इसका नगर-निवासियों को तनिक भी पता नहीं है। नगरों की जनता समझती है कि ग्रामों का जीवन बड़ा अच्छा है; क्योंकि ग्रामीण लोग सब प्रकार की भोजन की वस्तुएँ, जिन्हें नगर-निवासी बड़े प्रेम से खाते हैं, तैयार करते हैं। इसलिए उन्हें उन पदार्थों को उपयोग में लाना अत्यावश्यक है। जब शहरी लोग उन अनेक प्रकार के पदार्थों को, जिन्हें ग्रामीण कृषक उत्पन्न करते हैं, खाकर प्रसन्न होते हैं, तो भला उनके पैदा करनेवाले क्यों ख़ुश न होते होंगे? इसके अतिरिक्त वे नगरों की अशुद्ध वायु से दूर ग्रामों की शुद्ध वायु से टकराने-वाली झोंपड़ियों में रहते हैं। इस प्रकार की बातों का अनुमान लगाकर ही नगर-निवासी ग्राम्य जीवन को स्वर्ग-जीवन समझ बैठे हैं। किन्तु जिन नगर-निवासियों को ग्रामों में किसी प्रकार का सम्बन्ध होने के कारण निरन्तर जाने का अवसर



प्राप्त हुआ है, वे भली प्रकार ग्राम्य जीवन का अनुभव कर सके होंगे। वास्तविक ग्राम्य जीवन का वर्णन वही कर सकता है, जो निरन्तर कई वर्षों तक ग्रामीणों के सम्पर्क में रहा हो अथवा स्वयं ग्रामीण हो। मैं एक शिक्षित ग्रामीण के नाते से आज माधुरी के प्रेमी पाठकों को यह बताने के लिए उद्यत हुआ हूँ कि वास्तविक आधुनिक ग्राम्य जीवन क्या है? शहरी लोग देहातियों को कुछ से कुछ समझे हुए हैं। मैं उस अशुद्ध तथा निराधार कल्पना का भंडाफोड़ करके पाठकों के समक्ष रखता हूँ।

मैं पहले लिख चुका हूँ कि ग्रामों में बसनेवाले लोग प्रायः सभी अर्थात् शत-प्रतिशत कृषक हैं। उनका रहन-सहन और वेशभूषा नगर-निवासियों से भिन्न है। वे निर्धनता के कारण अपने शरीरों को पूर्णतया नहीं ढक पाते। उनके शरीरों पर फटे हुए मैले कुर्ते अथवा जाकेटें दिखाई पड़ती हैं। फटी हुई मैली धोतियाँ बाँधे हुए नग्नपग वे कार्य करते हैं। उन्हें हजामत अथवा बाल बनवाने को महीनों अवकाश नहीं मिलता। उनकी स्त्रियाँ भी इसी प्रकार बुरी अवस्था में दृष्टिगोचर होती हैं। उनके शरीरों पर मैले-कुचैले और फटे ओढ़ने और इसी प्रकार के लहँगे दिखाई पड़ते हैं। वे नंगे पैरों दौड़-दौड़कर कार्य करती हैं। उन्हें आभूषण धारण करने का बड़ा चाव है। इसलिए भारत के किसी भी प्रांत के किसी ग्राम की स्त्री हो, जिसके सुन्दर शरीर पर फटे और मैले वस्त्र हों, वह आभूषण अवश्य पहने हुए दिखाई देगी। ग्रामीण नारियाँ आभूषणों को अपने बालकों से भी अधिक मूल्यवान् समझती हैं। उन्हें खाने-पहनने का तनिक भी शौक़ नहीं है। उन्हें केवल आभूषणों का शौक़ है। ग्रामीणों में जो लोग धनी हैं, उनकी स्त्रियाँ भी उसी रोग से पीड़ित हैं। चाहे खाने को समय पर न मिले, रहने को स्थान न हो और पहनने को वस्त्र न हों, पर आभूषण अवश्य हों। घर में खाने-पहनने की कमी न हो और पति भी अच्छा हट्टा-कट्टा हो; परन्तु आभूषण न हों, तो ग्रामीण स्त्री इस प्रकार के घर में रहकर सन्तुष्ट नहीं होती। ग्रामीण स्त्रियों का रहन-सहन नगरों के शिक्षित नारी-समाज से सर्वथा उलटा है। भारतीय ग्रामों में सभी प्रकार के लोग रहते हैं। उनमें विभिन्न जातियाँ हैं, जिनके रहन-सहन में परस्पर कुछ थोड़ा अन्तर है। ब्राह्मण और वैश्य, इन दोनों जातियों का पहनावा सभ्यतापूर्ण है; परन्तु क्षत्रिय और शूद्र लोगों का पहनावा बेढंगा है। क्षत्रियों में मुख्यतः जाटों का पहनावा बड़ा गँवारू है। यद्यपि वे अन्य जातियों में सबसे शारीरिक बलवान् और परिश्रमी हैं, परन्तु हैं कोरे मट्टी के माधो। वहाँ का ब्राह्मण अथवा वैश्य बेपढ़ा और जाट पढ़ा समान हैं। ब्राह्मण और वैश्य-जाति की स्त्रियाँ नगरों की स्त्रियों की भाँति सभ्यतापूर्ण वस्त्र और आभूषण धारण करती हैं, परन्तु जाट जाति की नारियों का पहनावा प्रदर्शनियों में प्रदर्शन कराने योग्य है। सिर पर एक बालिश्त ऊँचा उठा हुआ चुट्टा, नाक में नथ, गले में पक्के सेर भर की हँसली, कानों में कर्णफूल और झुमका, पगों में मोटे-मोटे कड़े, कड़ियाँ दृष्टिगोचर होते हैं। आँगी पहनकर और उस पर ओढ़ना न डालकर चलना बुरा, भद्दा प्रतीत होता है। जाट-जाति की एक सुन्दर से सुन्दर स्त्री उस भद्दे और बेढंगे पहनावे में कुरूपा जँचती है। किन्तु वे उनके पतिदेवों को उसी अवस्था में अच्छी लगती हैं। जाट-जाति में जो लोग ज़मींदार हैं, उनकी स्त्रियों की वेशभूषा ब्राह्मण और वैश्यों की स्त्रियों-जैसी है। ग्रामीणों का रहन-सहन (Standard of living) नागरिकों-जैसा क्यों नहीं है? इसका मुख्य कारण उनकी निर्धनता ही है। किसान लोग करोड़ों बीघे भूमि के स्वामी होते हुए भी निर्धन हैं। शरीर को क़ायम रखनेवाले सब प्रकार के पदार्थों को वे उत्पन्न करते हैं, परन्तु वे स्वयं उनका पर्ण रूप से भोग नहीं कर पाते। नगर-निवासियों को देखिए, उनका रहन-सहन (Standard



(Living) कितना ऊँचा है, जब कि उनके पास एक ... भूमि भी कृषि की नहीं है। शहरियों का ... रहन-सहन ग्रामीणों से बहुत ऊँचा है। उनकी ... से कुरूपा स्त्री भी अपनी सभ्यतापूर्ण वेश-... में एक ग्रामीण सुन्दरी से सुन्दर प्रतीत ... है।

... के किसी प्रान्त के किसी एक ग्राम में ... जाइए। वहाँ एक विचित्र नज़ारा दिखाई ... दिन-रात कृषि में परिश्रम करनेवाले कृषकों ... छप्परदार झोंपड़ियाँ एक ओर से दृष्टिगोचर ... हैं। हाँ, उन झोंपड़ियों के मध्य में कोई ... छतदार मकान भी दिखाई देगा। उनमें ... एकाध पक्का भी होता है, जो ग्राम के साहूकार ... ज़मींदार का होता है। बेचारे किसानों के ... केवल फूस की झोंपड़ियों के अतिरिक्त जंगल ... हैं। वे प्रायः जंगल के किसी खेत में मड़ैया ... लेते हैं, जिनमें उनके ढोर बँधते हैं। उनके ... घर पर इतना स्थान नहीं होता, जहाँ पर वे ... किसी अतिथि का सत्कार भी कर सकें। प्रत्येक ... में एकाध पंचायती चौपाल बनी होती है, ... निर्धन कृषकों के अतिथि ठहरते हैं। ग्रामीणों ... जो लोग धनी हैं, उनके पास जगह की बहुतायत ... स्मरण रहे कि वे लोग हैं साहूकार अथवा ... ज़मींदार। उन लोगों के पास धन है, परन्तु वे ... प्रतीत नहीं होते। ग्राम के एक लखपती की ... नगर के एक साधारण व्यक्ति के समान ... होती। वे लोग बड़े कंजूस हैं। यदि उन्हें ... भी कह दिया जाय, तो अत्युक्ति न होगी। ... एक-एक पैसे पर जान देते हैं। जब कभी उनकी ... अथवा बालक रोगी हो जाते हैं, तो वे उनकी ... चिकित्सा में धन व्यय नहीं करते। निर्धन कृषकों के ... तो धन नहीं है, इस कारण से वे बेचारे असमर्थ ... परन्तु वे धनी होते हुए भी अपने कर्तव्य का ... नहीं करते। उनके परिवार के लोग बेमौत मर ... हैं, परन्तु वे टस से मस नहीं होते। मैं स्वयं ... में पैदा हुआ हूँ और अब तक ग्राम में ही रहता रहा हूँ। देखते-देखते अनेक धनियों के परिवार के सदस्य (स्त्री-बच्चे) मृत्यु के शिकार हो गये। यदि उनकी चिकित्सा कराई जाती, तो वे कदापि न मरते। मैं सैकड़ों उदाहरण इस प्रकार के पेश कर सकता हूँ, जो ग्रामीण धनियों की कंजूसी को धिक्कारनेवाले हैं। किसी ग्रामीण की स्त्री जब बीमार पड़ जाती है, तो एकाध मास तक तो उसकी कोई चिन्ता ही नहीं करता। मक्कड़ बनाये पड़ी है, बीमार-फीमार कहूँ नाहें, हरम्मा है, उसके प्रति इस प्रकार की बातें करते हैं। जब अधिक रोग बढ़ जाता है, तो दस-पाँच रोज़ सोच-विचार में कि किसको दिखाया जाय, लगा देते हैं। तत्पश्चात् किसी बेपैसेवाले (मुफ़्ती) वैद्य अथवा हकीम अपितु नीम-हकीम (अर्द्धवैद्य) को दिखाते हैं, जो पूर्ण रूप से रोग की परीक्षा का ज्ञान भी नहीं रखता। बस फिर क्या है, दो-एक दिन में रोगी मृत्यु का शिकार बन जाता है। यद्यपि पुनः विवाह करने में उन्हें काफ़ी धन ख़र्च करना पड़ता है, परन्तु चिकित्सा में वे उसका शतांश भी व्यय करना नहीं चाहते। इसके अतिरिक्त ग्रामीणों का अपनी स्त्रियों के प्रति व्यवहार भी बड़ा बुरा है। वे स्त्री को पैर की जूती और हुक्के की चिलम के समान मानते हैं। जिस प्रकार पैर की जूती और हुक्के की चिलम स्वेच्छापूर्वक जब चाहे तब बदली जा सकती है, ठीक उसी प्रकार स्त्रियाँ भी। उन मूर्खों का ऐसा सिद्धान्त है। ग्राम के एक लखपती के घर में स्त्री का इतना आदर-सत्कार नहीं है, जितना नगर के एक मज़दूर के घर में है। शहर का मज़दूर बीमारी की अवस्था में क़र्ज़ लेकर अपनी स्त्री की चिकित्सा करा सकता है, परन्तु ग्राम का धनी व्यक्ति पैसा पास होते हुए भी उस अवस्था में मौन रहता है।

नगरों के आलीशान महलों में रहनेवाले लोग समझते हैं कि ग्राम्य जीवन स्वर्ग है, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। परन्तु उन लोगों का ग्राम्य जीवन को स्वर्ग समझना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ह



आज से २५ वर्ष पूर्व ग्राम्य जीवन स्वर्ग का जीवन था, परन्तु इस समय ग्राम्य जीवन एक नारकीय जीवन है। विगत २०-२५ वर्षों के भीतर-भीतर ग्रामों का वातावरण बहुत बिगड़ गया है। जिन लोगों को ग्रामों और नगरों दोनों में रहने का अवसर प्राप्त हुआ हो, वे ग्राम्य जीवन और नगर-जीवन की तुलना भली प्रकार कर सकते हैं।

ग्रामीणों का रहन-सहन और उनकी वेश-भूषा नगर-निवासियों से भिन्न है, यह मैं पूर्व में बता चुका हूँ। अब मैं उनके परस्पर व्यवहार के संबंध में कुछ थोड़ा और पाठकों को बताना चाहता हूँ। ग्रामीण अपनी स्त्रियों को अपने से बहुत नीचा मानते हैं। स्त्री ग्राम की चौपाल पर नहीं चढ़ सकती, पति की उपस्थिति में अर्थात् पति के सामने भोजन नहीं कर सकती। ससुर और जेठ के सामने घूँघट नहीं खोल सकती और न बोल सकती है।

ग्राम की कोई स्त्री शिक्षा नहीं प्राप्त कर सकती। मार्ग में मुख खोलकर नहीं चल सकती। ससुर तथा जेठ के सामने घूँघट खोलकर भोजन नहीं बना सकती। इसके अतिरिक्त और अनेक बातें हैं, जो नारियों पर प्रतिबन्ध लगाये हुए हैं। ग्रामीणों में शिक्षा का अभाव है। इस कारण से वे अपनी स्त्रियों के साथ बुरा व्यवहार करते हैं। यदि यह कह दिया जाय कि वे स्त्रियों को नौकर और शूद्र की भाँति समझते हैं, तो अत्युक्ति न होगी। ग्रामीण पुरुषों का स्त्रियों के प्रति संकुचित विचार रखने का परिणाम यह है कि वहाँ पति-पत्नियों में परस्पर प्रेम नहीं है। पुरुष स्त्री को अर्थात् पत्नी को दासी समझता है और पत्नी पति को सराय का मुसाफ़िर समझती है। मैं निस्संकोच यहाँ तक कहने का साहस रखता हूँ कि ग्रामीण अपनी पत्नियों का चुम्बन करना महापाप मानते हैं। भला कोई ठिकाना है उनकी मूर्खता का। अब मैं ग्रामीणों के रहन-सहन के सम्बन्ध में कुछ और अधिक न लिखता हुआ इसे समाप्त करता हूँ। मैं अपने आगामी लेख में ग्रामीणों की आपसी लड़ाई-झगड़ों का वर्णन करूँगा।



कला का भविष्य

पं० शिवशेखर द्विवेदी

कला की आमदनी अतीत युग में कब और कहाँ से हुई, इसका कोई प्रमाण पुरातत्त्व-विभाग के निष्णात पंडितों ने संग्रह किया है, उसे पता नहीं। अवश्य 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' में कला का अस्तित्व माना गया है, और चिर-काल से हमारे यहाँ इसी की आवृत्ति हो रही है।

किन्तु परिवर्तनशीला प्रकृति के अनुशासन में इसी की जड़ उखाड़ फेंकने के बहाने पाश्चात्य सभ्यता से अनेक उपादान संग्रह किये गये हैं। अलग-अलग उनके मंत्र, ऋषि, छंद और देवता कल्पित हुए हैं। साहित्य में कला की नई प्रेरणा इसी का नतीजा है और अब वह "एकोऽहं ...रूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे" होकर निर्मित हुई है।

प्राण-प्रतिष्ठा के जिन मंत्रों को लेकर आजकल साहित्य उठ खड़ा हुआ है, उनका ब्योरेवार विवरण देना, फिर विचार करना यहाँ संभव नहीं। आज भी कला की जड़ में दो अंकुर हमें मिलते हैं। उन्हीं को लेकर हम यहाँ विचार करेंगे।

कला के दो दल हैं। अलग-अलग उनके मत हैं। एक दल का कहना है, रसपरिपाक ही कला और उसकी अभिव्यंजना काव्य। पाप-पुण्य-अर्थ का विवेचन काव्य का विषय नहीं। यह धर्माचार्य पंडित-पुरोहितों की चीज है। मंदिर का पुरोहित मूर्ति का शृंगार करेगा, धूप-दीप और अर्घ्य देगा और शंख फूँककर जनता को आमंत्रित करेगा। इस तरह प्रसाद के लोभ से समवेत जन-समूह को धर्म का उपदेश देगा। यही उसका काम है। शास्त्र-विहित आदेश को लेकर साहित्य की सृष्टि नहीं हो सकती। यदि हो सकती है, तो समय नहीं। समाज के हिता-हित का विवेचन भी कवि-कर्म नहीं। इसकी विवेचना राजनीतिक—समाजवादी अथवा साम्य-वादी नेता करेंगे। सच्चा कलाकार समाजवादी नहीं, साम्यवादी भी नहीं। वह युग-युगान्तरों से अलग रहता आया है। वह केवल कलाकार है। रूसी साहित्य इसी लिए कलात्मक नहीं। इस तरह कला में सत्य भी नहीं है, मंगल भी नहीं। है केवल सौन्दर्य। यह सौन्दर्य ही कला का साधा-रण व्यापार है। सौन्दर्य की अभिव्यंजना में यदि रस है, तो कवि का श्रम सफल है—उसकी रचना सार्थक है। इसी दल का सिद्धान्त है—"कला कला के लिए है।"

किन्तु उनके (उक्त कलाकारों के) जीवन के प्रतिस्तर में कितनी चारुता है? त्याग का कितना अंश है? प्रेम और सत्य का क्या सामं-



जस्य है ?—आदि अनेक प्रश्न भाषा में ही ढके रह जाते हैं। दुर्गेय कल्पना-दुर्ग के बाहर वे कोई कैफ़ियत नहीं दे सकते। इसी लिए वे मानव-जीवन को तुच्छ क़रार देकर सभ्यता को पुष्ट करते हैं। लेकिन क्या यह सच है ? किसी कला-कार को अत्यन्त निकट से देखिए, समझेंगे, वह सभ्यता को मनुष्य के लिए नहीं मानता। ऐसी दशा में दूसरों का बलिदान सहज, किन्तु ख़ुद का अत्यन्त भयावह प्रतीत होता है।

यह एक दल की बात हुई।

दूसरा दल कहता है—"यदि समाज-मंगल के साथ कला की अन्तर्नाड़ियों का कोई योग नहीं, तो वह वास्तविक कला नहीं। जिनका उद्देश्य अभिजात युवक-युवतियों के प्रेम-सुषमा के चित्र आँकना है, अथवा उनके उत्तेजित मन की निरलस प्रवृत्ति-जन्य माँग को उद्दीप्त करना है, वे सच्चे कलाकार नहीं। सच्चे कलाकार की हैसियत से इज़्ज़त पाने के लिए उसे लोक-जीवन की अंतर्व्यथा का अनुभव करना होगा। फिर अपनी कृति में चिर-जीवन की आयोजना करनी होगी। तभी वे मृत्तिका-पिंड से अमृत दे सकेंगे। तभी उनके प्राणों का स्पर्श संसार को स्वर्ण बना सकेगा। तभी उनके पौरुष की दीप्ति अमर होगी और तभी दल के दल उनका अनुसरण करते हुए मंगल-गीत गावेंगे। जीवन सुखी होगा।"

यह मत सार्वजनिक असल जीवन के गूढ़-तत्त्वों से गढ़ा गया है। ज़माने के साथ मेल है। इसी लिए इसके प्रचारक भी हैं। किन्तु, ज़माने का रुख़ असल-जीवन के परिचय के साथ ही, उसकी बढ़ी हुई क्षुद्र ज़रूरतों के चित्र भी दिखाता है। जिनमें भोग का मोह ही बद्धमूल है। इन चित्रों से भोग का पर्यवसान नहीं होता; उल्टे पूर्ण भोग की लालसा प्रबल हो उठती है। क्षोभ, संताप, ईर्ष्या और प्रतिहिंसा के कुसंस्कार दृढ़ से दृढ़तर होकर जीवन को और भी जर्जर करने लगते हैं। एक और भूल इस दल के कलाकार करते हैं, जो उनकी उपज नहीं, अनुवाद है। वास्तविक चित्रण की महत्ता जब उन्हें पीड़ित करती है, तो वे तर्क उपस्थित करते हैं, हरएक का सच्चा चित्र आँकना ही कला है। बात ठीक है। लेकिन अत्यंत ऐंद्रिक मानव-जाति को यदि हृदय को मथनेवाले चित्र ही दिये गये, तो, वह उन्हीं में अटककर अपने सर्वनाश की राह तैयार करने लगती है। इसी लिए, ऐसे कलाकार अश्लील चित्र देकर भी ईमानदारी का ढोंग रचते हैं। इस ईमानदारी से उन्हें लाभ होता है। स्पष्ट शब्दों में लाभ का लोभ ही उन्हें कलाकार बनाता है और इससे स्वार्थ-वृत्ति को ढकने के लिए उनके पास ईमानदारी शब्द है।

यदि इस शाखा का वर्गीकरण करें, तो एक तीसरा दल भी मिलेगा, जिसका उद्देश्य केवल निर्धनों को धनिकों के प्रति बहकाकर युद्ध की घोषणा करना है। वे किसी भी धनी की हत्या अपने स्वत्व-रक्षा के निमित्त पाप नहीं मानते। कहते हैं, गीता में है—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्।"

अर्थात् अधर्मियों का नाश शास्त्र-सम्मत है। निस्संदेह धनिक-वर्ग अत्यंत अनुदार और रक्त-शोषक वर्ग है। परन्तु ग़रीब यदि धनी होगा, तो वह अपनी पहली हालत पर दृढ़ रहेगा, इसका कोई सुबूत वे नहीं देते। अकारण रक्तपात की सृष्टि कल्याणकारी नहीं। ज़रूरी यह है कि धनिकों को चरित-सुधार का उपदेश दिया जाय। साहित्य में मंगल का अनुष्ठान हो, सत्य का विश्लेषण हो। तभी जीवन प्रफुल्ल होगा। सौंदर्य के की कोई अलग सत्ता नहीं। केवल सौन्दर्य के उपभोग में न तो सत्य है, न मंगल। सिनेमा-



...इसका अच्छा उदाहरण है। रूप का जादू ...कर वहाँ अनिष्ट-साधन ही हो रहा है। एक ...वी के द्वारा सती का नाट्य कोई प्रभाव नहीं ...ता। उल्टे जीवन को उत्फुल्ल बनाने के लिए, ...प्रपंच और कदाचार की सत्ता ही गंभीर ...डाल जाती है; क्योंकि जीवन-भर सत्य-...न करके भी जब सांसारिक सुख की पूर्ति ...हीं होती, तब स्वर्ग की सुख-समृद्धि-प्राप्ति का ...छूट जाता है। छायाचित्रों से ऐसे ही भावों ...पुष्टि हो रही है और बड़ी द्रुत-गति से मानव-...ऐहिक सुख-शांति को काम्य एवं प्राप्य ...ने लगा है। यह सब उत्पात करके भी वहाँ ...है। तब कला की लीला का अंतिम परिणाम ...होगा ?

...तिशील साहित्य की माँग भी अब पेश ...है और कला का जो चित्र वहाँ देखा जा रहा ...वह रूसी साहित्य की प्रतिक्रिया है। किन्तु ...तक जैसे धनी ग़रीबों का अनेक सभ्य तरीक़ों ...रक्त चूसते जा रहे हैं, ग़रीब बदला लें, यही ...उस साहित्य की चीज़ है। धनी पतन के ...में हैं। धर्म की ओट घी में चर्बी, आटा में ...तेल में अन्य दूषित तरल पदार्थ मिलाकर ...जीवन नष्ट करने में भी उन्हें किसी तरह ...संकोच नहीं होता। स्वार्थ का विज्ञापन गांधी-...के प्रभाव में और भी बढ़ गया है। जो व्यक्ति ...को महात्माजी का भक्त घोषित करते हैं, वे ...के सच्चे उपासक हैं। मीठी-मीठी बातें कह-...मतलब गाँठना, दूसरों का सर्वनाश करना ...स्वभाव बन गया है। काम की जगह नाम ...मोह बढ़ गया है। कबीर ने लिखा है—"जहाँ ...वहँ काम नहिं"—यश और मान, धन कैसे ...हो, यही इस युग का मूल-मंत्र है। दीन-...की बात केवल मौखिक उल्लेख है; क्योंकि ...ख्याति-प्राप्ति का इसके सिवा कोई साधन नहीं। "दरिद्रान् भर कौंतेय" आदि धर्मवाक्यों का आयोजित उद्धरण उनके प्रति संदेह नहीं होने देता। यह वर्तमान सत्य है और यही कला की रूप-रेखा भी। जनता को पुनः बोध मिला। वह सुख की साधना में तत्पर हुई। अर्थात् वह दुःखों से छुटकारा नहीं चाहती, सुख चाहती है। कैसा आश्चर्य है। ग़रीब किसान रात-दिन मर-पचकर भी यह नहीं जानता कि उस पर क्या आफ़त है। वह अपनी भूख की कहानी कलाकारों से, सुन्दर काव्य में सुनना चाहती है! और वह चाहती है, या नहीं; किन्तु कलाकार जबरन् उसे सुनाना चाहता है। इस कहा-सुनी में कला है और यह कला स्वार्थ की शुद्ध प्रतीक है। जहाँ न सत्य है, न शिव है, न सौन्दर्य! असल साहित्य, जो किसानों को बल दे सकता है, तुलसी और कबीर का है। उनकी उपादेयता कुछ तो महारथियों के सहसा उदय से घट गई है और कुछ प्रकृतिवश भाषापरिवर्तन से। कबीर को उल्टबाँसी लेखक कहकर जनता से बिलकुल ही अलग कर दिया गया है। इस तरह निरीह जनता को जो कुछ भी कलात्मक दान दिया जा रहा है, उसमें चिरजीवन की कल्लोल-ध्वनि नहीं है।

तुलसी और कबीर, यदि सच कहें तो, इस युग के किसी महान् नेता से अधिक लोक-हित कर गये हैं। त्याग और धर्म का अर्थ अब क़ब्र में दाख़िल हो चुका है। जो कुछ है, मिथ्या ढोंग—स्वार्थ-सिद्धिमात्र। इसी लिए धर्म के बहाने दूसरों को आसानी से ठगा जाता है। धर्म के प्रति अविश्वास का यही कारण है। परन्तु धर्म अथवा त्याग क्या सचमुच ऐसे ही हैं? नहीं, यह वातावरण आजकल के मनीषियों का है। तुलसी और कबीर ने सूखी रोटियाँ खाई हैं, लँगोटी लगाई है और जगह-जगह घूमकर सुख-शांति का उपदेश दिया है। उनका प्रचार-स्थल असल भारत



देहात था और इनका केवल नगर। बड़े-बड़े शहरों में स-समारोह स्वागत, गान-वाद्य, उत्सव आदि। देश के इस स्वाधीन संग्राम की कोई असलियत उन देहातियों को मालूम नहीं। वे अपढ़ हैं, इसलिए पत्र-पत्रिकाएँ नहीं पढ़ सकते। ग़रीब हैं, इसलिए ख़रीद नहीं सकते। कार्य-कर्त्ताओं को उनके लिए चिन्ता है और यह चिन्ता शहरी जनता में सीमित है। तमाम उछल-कूद, चिल्ल-पों शहर में है और उसी घेरे में हिसाब भी लग गया, अभी स्वाधीन होने में कितनी देर है? सच्चा कलाकार भी इस मौक़े पर तब कैसे मौन रहे?

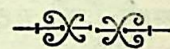
कवीन्द्र रवीन्द्र को स्पेनवालों की बड़ी चिन्ता है। नेताओं को बड़ी बेचैनी है। महात्माजी को राष्ट्र-भाषा-प्रचार से फ़ुर्सत नहीं! यू० पी० के किसान उपल-वृष्टि से मर गये। किन्तु देश के किसी भी कोने में प्राण-रक्षा की बात छोड़िए, सहानुभूति का प्रस्ताव भी पास न हुआ! हिन्दी के कुछ पत्र 'बापूजी की वाणी' के रेकार्ड हैं। और कुछ लीडर हैं। अब तक उन्हें वोट किसे देना चाहिए, यही समझाने से फ़ुसत न थी। अब हुई है। परन्तु पद-ग्रहण का विवाद है। किसानों की प्राण-रक्षा क़े पहले उन्हें इसी का निर्णय करना है। आख़िर यह सब किसानों के लिए ही तो हो रहा है? फिर यदि कुछ किसान मर जायँ तो बुरा क्या? जो बच रहेंगे, वे स्वाधीनता का उपयोग करेंगे। हिस्सा भी अधिक मिलेगा। यह देश-हितैषियों की कला है। वृत्त-विवेचन (अख़बारों) में कला का यही रूप है। बाहर पढ़े-लिखे ग़रीब जगह-जगह अपमानित होते हैं। उनके हृदय में जो आग धधक रही है, उसी की प्रेरणा साम्यवाद है। यही युग-धर्म है। इसी लिए उसका स्वागत भी हो रहा है और उत्तरोत्तर दावाग्नि की तरह वह बढ़ता जा रहा है। साहित्य में अब कला का यही रूप अंकित होगा। परन्तु यहाँ भी ख़तरा है। उपभोग की बाढ़ किसी स्थायी कल्याण का टीला न छोड़ेगी—सब जल-मग्न होगा। अत-एव कल्याण और शान्ति के लिए जिस कला की ज़रूरत है, उसे ही अपनाना अधिक श्रेयस्कर है। यदि कबीर, तुलसी का प्रचार हो, तो समाज की यथार्थ रक्षा और सुख-शान्ति की प्राप्ति हो सकती है। देश-हितैषियों को इस ओर ध्यान देना चाहिए। कारण, वर्ग-युद्ध अब न हो सकेगा। स्वाधीनता के संग्राम की समाप्ति के पहले ही वर्ग-युद्ध का भीषण रूप स्पष्ट हो रहा है। साहित्य और अपर विधि-विधानों में कला का यही रूप आदृत होने लगा है। इस तरह तमाम समाज ख़तरे में है। बचाव के लिए हमें अपने पुराने साहित्य को ही अपनाना पड़ेगा। त्याग और मनुष्यत्व का बंधुत्व आचरण में लाना होगा। जब तक हम ऐसा अनुष्ठान न करेंगे, कल्याण न होगा।

ईश्वर और धर्म के प्रति अविश्वास की बात हम ऊपर लिख चुके हैं। यह अविश्वास धर्म-ढोंगी ख्यातीच्छुओं एवं रक्त-शोषक धनी-वर्गों के कारण ही उत्पन्न हुआ है। इसके सिवा धनी वर्ग अति स्वार्थी होने के कारण देश के स्वाधीनता-संग्राम में किसी तरह का सहयोग नहीं देना चाहता। यदि कुछ सम्पर्क है, तो स्वार्थ ही के कारण। देशी मिलों के मालिक प्रायः कांग्रेसी हैं। पर देश के लिए घातक ही हैं; क्योंकि वहाँ स्वार्थ ही प्रधान है। कच्चे माल से पक्के माल का विनिमय करके वे देशी कपड़ा तैयार करेंगे। फिर ग़रीबों के हाथ बेचकर मालामाल होंगे और मौज उड़ावेंगे।

इस तरह की छोटी-मोटी अनेक दैनिक घटनाएँ हैं, जो कला की नई सृष्टि कर रही हैं और वह नवीनता कला मान ली गई है। परन्तु मुक्त



...का यह उद्योग यथार्थ दुःख-नाश का कारण ...ऐसी बात नहीं है। इसी लिए ईश्वर और ...की शरण निरापद है। आत्ममुक्ति का प्रयास ...मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है। वही सच्ची ...है; क्योंकि वह सत्य है, शिव है, सुन्दर है। ...तत्त्वदर्शी की समस्त विषयतृष्णा जब ज्ञान-...के बाद नाश हो जाती है, तब वही मरण-...व्यक्ति जन्म-मृत्यु से परे मोक्षलाभ करता है। अथवा जब हृदय-ग्रंथि खुल जाती है, अविद्या ...का नाश हो जाता है अर्थात् मैं-मेरा, धन-...शरीर-सुख-दुःखादि की अविद्याजन्य प्रीति ...हो जाती है, तब कामनावर्जित मरणशील ...अमरत्व लाभ करता है। वेद-शास्त्रों का ...उपदेश है। अर्थात् इससे बढ़कर तत्त्वोपदेश और नहीं। संयम—इन्द्रियनिग्रह और आत्म-चिन्तन के द्वारा जन्म-मृत्यु के दुःख से छुटकारा पाना ही मानव-धर्म है। इसी के विधान को वास्तिक कला कहते हैं। परन्तु ज़माना कुछ और चाहता है और उसके अनुकूल ही कला का रूप होगा। इसलिए, यह बहुत जरूरी है कि कला के द्वारा समाज मंगल का विधान हो। ध्वंसात्मक पद्धति का अनुसरण दुःख से छुटकारा न देगा। कलाकार को रचना के साथ-साथ आचरण की पवित्रता का चारित्रिक जीवन भी जनता के सामने रखना होगा। युग की यह माँग भोग-शक्ति के द्वारा ही पूर्ण होगी। अन्यथा एक दूसरी ग़लत राह दिखाकर कलाकार अपनी जिम्मेदारी न अदा कर सकेंगे।



पाटलीपुत्र और प्राचीन इमारतें

श्रीवागीश्वर झा

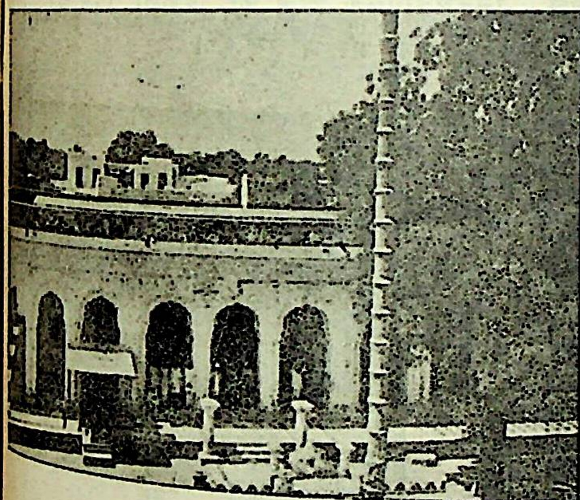
पाटलीपुत्र का अतीत बड़ा ही उज्ज्वल और गौरवप्रद था। यदि भारतवर्ष के इतिहास से पाटलीपुत्र की गौरव-गाथा निकाल दी जाय तो वह अधूरा रह जायगा। यह जिस समय मगध की राजधानी था, उस समय की इसकी गौरव-गरिमा को स्मरण कर आज भी बिहारियों का सिर गर्व से ऊँचा उठ जाता है। जिस समय यह भारत का गौरव-किरीट पहनकर संसार में प्रसिद्धि प्राप्त कर रहा था, उस समय सुदूर सागर-पार के यात्री इसके दर्शन करने आते थे। इसी पाटलीपुत्र ने अपनी गौरवपूर्ण गोद में सम्राट् चन्द्रगुप्त को बिठाकर संसार में अभिनन्दनीय कीर्ति अर्जन की थी। समय के प्रवाह में यद्यपि उसका पूर्व वैभव प्रवाहित हो गया, फिर भी अपने अनुपम अतीत के कारण वह दर्शनीय है। प्रति वर्ष कितने ही विदेशी यात्री इसका दर्शन करने आया ही करते हैं। पूततोया जाह्नवी के दाहने किनारे दस-बारह मील की लम्बाई में यह सुन्दर नगर बसा हुआ है। बिहार की राजधानी होने के कारण इसका वर्त्तमान भी भव्य और उत्तरोत्तर उन्नत होता हुआ दिखाई पड़ रहा है। इसकी उजड़ी हुई काया पुनः पलटती हुई दिखाई पड़ रही है। अनेकों सुन्दर और दर्शनीय भव्य भवनों के निर्माण हो जाने से इसमें पुनः नवीन जीवन-सा आ गया है।

जिस पाटलीपुत्र के आश्रय में अनेक राष्ट्रों का निर्माण हुआ, जिसने कितने ही नर-पुङ्गव नरेशों को अपनी गोद में हँसा-खेलाकर उन्नत किया, जिसके रज-रेणु में कितने ही पावनकर्मी महात्माओं की पद-विभूति बिखरी हुई है, उसके दिव्य-दर्शन की लालसा लेकर मैं उस ओर चलने का विचार निश्चय कर आगे बढ़ा। मेरे नगर से न्यूनाधिक १९० मील की दूरी पर यह नगर बसा हुआ है। ई० आई० रेलवे की लूप-लाइन से कार-लाइन होती रेलगाड़ी से भागलपुर से पटना जाना पड़ता है। मैंने भागलपुर से साढ़े तीन बजेवाली संध्या की गाड़ी से पटने के लिए प्रस्थान किया। बीच मार्ग से जहाँ लूप-लाइन ख़तम होती है, मेल के द्वारा यात्रा की। यथासमय पटना पहुँचकर मैं अपने निकट के सम्बन्धी एक प्रोफ़ेसर के यहाँ कदमकुआँ मुहल्ले में जाकर ठहरा। यह मुहल्ला मुझे कुछ विशेष अच्छा नहीं मालूम हुआ।

ऐतिहासिक पाटलीपुत्र

पटने का पुराना नाम पाटलीपुत्र या कुसुमपुर था। यह भारत के समृद्धिशाली नगरों में एक था। दिल्ली की भाँति यह भी कई बार बसा-उजड़ा और फिर समुन्नत हुआ। इसमें भी कई बार कई राजवंशों के साम्राज्य की स्थापना हुई। अब भी इसकी जीर्ण-शीर्ण काया में प्राचीन युग की वैभव-स्मृति दिखाई पड़ती है। पुरातत्ववेत्ताओं ने पटने

की भूमि खोदकर उसके प्राचीन वैभव का पता लगाया है। यहाँ कितनी ही पुरानी इमारतों के खँडहर अब भी देख पड़ते हैं। ईसवी सन् से लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व मगध के सम्राट् अजातशत्रु ने मिथिला के राजा पर विजय प्राप्त कर गंगा के किनारे पाटली-नामक गाँव में एक छोटा परन्तु सुन्दर दुर्ग बनवाकर वहाँ अपनी सेना रक्खी थी। अजातशत्रु के पौत्र उदयन ने पीछे इसी दुर्ग के पास एक सुन्दर नगर बसाया, जो पहले कुसुमपुर या पुष्पपुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ और पीछे उसी का नाम पाटलीपुत्र पड़ा। यही पाटलीपुत्र मगध की राजधानी होकर विशेष प्रसिद्धि प्राप्त कर सका।



हर-मंदिर के आगे ध्वजा का आधा भाग

सम्राट् चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य की राजधानी बनाकर इसको विशेष सम्पन्न और गौरवशाली बनाया। उसी युग में यूनानी दूत मेगस्थनीज़ दरबार में आया था। वह कई वर्ष तक यहाँ रहा। उसने इसके विषय में जो कुछ लिखा है, उससे विदित होता है कि पाटलीपुत्र उस समय गंगा और सोन के संगमस्थान पर बसा था। उसकी लम्बाई ९ मील और चौड़ाई डेढ़ मील थी। नगर की चहारदीवारी मज़बूत लकड़ी की बनी थी, जिसमें ५७० बुर्ज और ६४ फाटक थे। चहारदीवारी के चारों ओर गहरी खाई थी। वह अगाध जल से भरी रहती थी। राजप्रासाद दामी और मज़बूत लकड़ी का बना था, जो दूसरे देश के राजाओं के राजमहल से दामी और सुन्दर था। उसके स्तम्भों पर जो सुनहली चित्रकारी बनी हुई थी, उससे चित्रकार की अलौकिक चित्रकला का परिचय मिलता था। राजभवन के चारों ओर मनोहर उद्यान लगा हुआ था। उद्यान के बीच निर्मल जलपूर्ण ताल में रंग-बिरंगी मछलियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। विविध प्रकार के पुष्पों से युक्त हरी-भरी झाड़ियाँ और लताएँ, उद्यान की शोभा को सजीव कर रही थीं। चुने हुए सदस्यों की समिति पर नगर-रक्षा का भार था।

उस समिति के सदस्यों की नियुक्ति स्वयं सम्राट् करते थे। इस राजसभा में ३० सदस्य रहते थे। उसी के पाँच-पाँच सदस्यों की अलग-अलग उपसमितियाँ थीं। यही उपसमितियाँ नगर के भिन्न-भिन्न भागों का निरीक्षण करती थीं।

पहली उपसमिति नगर की शिल्पकला की उन्नति के लिए प्रयत्न करती थी। दूसरी उपसमिति के हाथ नगर में आये हुए विदेशी यात्रियों के स्वागत-सत्कार्य का भार था। तीसरी उपसमिति नगर में जन्मे और मरे हुए लोगों का हिसाब रखती थी, जिससे कर वसूल करने में किसी तरह की बाधा नहीं होने पावे। चौथी उपसमिति के हाथ में नगर के व्यापारियों से कर वसूल करने का भार था। पाँचवीं और छठी उपसमिति के हाथ में नगर का वाणिज्य-व्यवसाय का भार था। वह नगर के मन्दिरों तथा अन्यान्य संस्थाओं की भी देख-रेख करती थी। उस समय भारत में कितनी ही अच्छी सड़कें बनी हुई थीं। पाटलीपुत्र से हज़ार मील लम्बी एक सड़क बनी हुई थी, जो भारत की पश्चिमोत्तर सीमा तक पहुँची हुई थी।

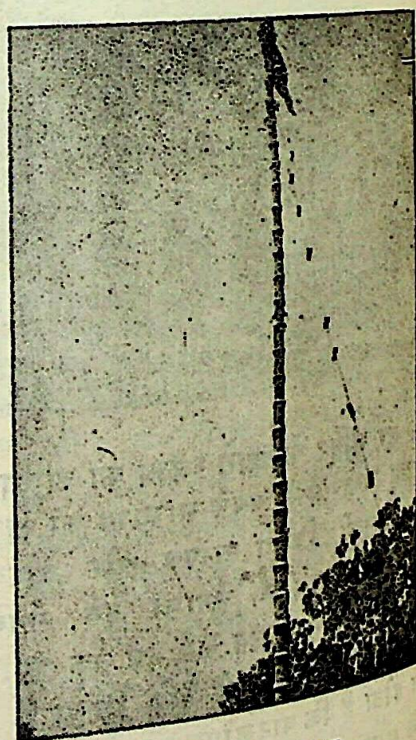
चन्द्रगुप्त के पौत्र सम्राट् अशोक के समय पाटलीपुत्र की विशेष उन्नति हुई। मौर्यवंश का अन्तिम



राजा बृहद्रथ था। उसके सेनापति पुष्यमित्र ने छल से उसकी हत्या कर राज अपने अधिकार में कर लिया। उसकी दस पीढ़ियों तक के राजाओं की राजधानी पाटलीपुत्र ही रही। इस वंश का उत्तराधिकारी कण्ववंश का राजा हुआ। उसकी भी राजधानी पाटलीपुत्र ही रही। ईसवी सन् के पहले ही कण्ववंश का अन्त हो गया। उसके साथ ही पाटलीपुत्र के वैभव का अन्त हो गया। कण्ववंश के बाद आन्ध्रवंश का राज्य कुछ समय तक रहा। उसके बाद चौथी शताब्दी तक देश में एक तरह से अराजकता फैली रही। कितने ही छोटे-छोटे राज्यों की स्थापना हुई और उसकी जड़ उखड़ गई। चौथी शताब्दी के आरम्भ में गुप्तवंश का राज्य हुआ। सन् ३२६ ईसवी में समुद्रगुप्त का राज्य हुआ। उस वीर-केसरी ने अपने बाहुबल से पुनः भारतीय राज्य की स्थापना की। भारत के सोये हुए भाग्य को जगाया। उसका राज्य हुगली से चम्बल तक और हिमालय से नर्मदा तक फैला हुआ था। आसाम और हिमालय की तराई के राजाओं ने भी उसकी अधीनता स्वीकार की थी। उस वीर-केसरी ने पाटलीपुत्र के खोये हुए वैभव को पुनः लौटाकर उसको भारत की राजधानी बनाया। छठी शताब्दी के अन्त में गुप्तवंश का अन्त हो गया। उसके बाद फिर पाटलीपुत्र का पतन होना आरम्भ हुआ।

सातवीं शताब्दी के मध्य में दूसरा चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत आया। उसने पाटलीपुत्र को बड़ी बिगड़ी अवस्था में देखा। नगर में सिर्फ़ टूटी-फूटी चहारदीवारी रह गई थी। उत्तरोत्तर नगर की दशा बिगड़ती ही गई। पुराने पाटलीपुत्र का नाश हूणों ने कर दिया। उसी समय की भयानक बाढ़ और आग के उपद्रव से नगर उजाड़ हो गया। तब से कई शताब्दियों तक यह गिरी हुई अवस्था में ही रहा। सोलहवीं शताब्दी में जब शेरशाह ने हुमायूँ को परास्त कर सूरवंश की स्थापना की तो एक बार फिर इसका बिगड़ा हुआ भाग्य सँभल गया। शेरशाह ने पटने में सुन्दर दुर्ग बनवाया। धीरे-धीरे इसने अपने खोये हुए ऐश्वर्य को पुनः प्राप्त किया। मुसलमानी युग में पाटलीपुत्र का नया नाम अज़ीमाबाद हुआ। आजकल उसी को पटना कहते हैं। अधिक समय तक फिर इस रूप में यह नहीं रहने पाया।

इस तरह उत्थान और पतन के चक्र में पड़कर पाटलीपुत्र उगता और डूबता रहा। विकास और ह्रास की गोल आँधी में पड़कर यह ऊपर उठता और नीचे लुढ़कता रहा। मीर क़ासिम और ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के कर्मचारियों की घोर लड़ाई के समय पटने में घोर संघर्ष हुआ। कोई ६० अँगरेज़ बड़ी निर्दयतापूर्वक क़त्ल कर दफ़ना दिये गये। उनकी क़ब्रें अब भी मौजूद हैं।



ध्वजा का अग्रभाग

बहुत दिनों के बाद पाटलीपुत्र के सोये हुए भाग्य ने पुनः करवटें बदलीं। सन् १९११ ई० में वह पुनः बिहार की राजधानी हुआ। इसकी जीर्ण-शीर्ण काया में नवीन स्फूर्ति जाग्रत हुई। उसकी

हुआ खँडहर पुनः जगमगा उठा। हज़ारों सुन्दर भवनों का निर्माण हुआ। हाईकोर्ट, गवर्नर की कोठी, सेक्रेटेरियट, कौंसिल-भवन इत्यादि भवनों का निर्माण हुआ। सड़कों को सुन्दर रूप दिया गया। वर्तमान पटना का निरीक्षण करने मैं वहाँ पहुँचा ही था।

गोलघर

सबसे पहले मैंने वहाँ की ऐतिहासिक इमारतों को देखने का निश्चय किया। स्टेशन से थोड़ी ही दूर पर सेक्रेटेरियट के पास गोलघर है। मैं गाड़ी से उतरकर स्टेशन के समीप ही अपने एक सहपाठी के यहाँ ठहरा, दूसरे दिन गोलघर देखने के विचार से बाहर निकला। गोलघर की पर्वताकार विशाल काया दूर से मालूम होती है। मसजिदनुमा उसकी गुम्बजदार चोटी सिर उठाये खड़ी है। उस गोलघर को दूर से देखने पर उसका अनुमान नहीं होता। छोटी पहाड़ी-सी दिखाई पड़ती है। श्याम शैल के समान उसका श्याम शरीर है। कभी उस पर सफ़ेदी नहीं पोती जाती। यह गोलघर ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के समय



घोड़े पर गुरु गोविंदसिंह

सन् १७८३ ई० में बनवाया गया था। इसकी उँचाई ९६ फ़ीट है। इसकी चोटी पर चढ़ने के लिए दोनों ओर से तिरछी सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। गोलघर के सिरे पर दो फ़ीट व्यास का गोलाकार छेद बना हुआ है। कहते हैं, इसी के द्वारा गोलघर के भीतर अन्न रक्खा जाता था। ३८ लाख मन अन्न गोलघर के भीतर अँटता था। इस तरह का विशाल गुदाम मेरे देखने में नहीं आया। उसके भीतर बिलकुल पोला है। भीतर घुसकर उस विशाल भवन में एक बार शब्द करने से कई बार वह शब्द आप ही आप गूँजने लगता है। मैंने एक बार 'राम' कहा—कई बार 'राम' 'राम' की ध्वनि कमरे के बन्द वायुमण्डल में गूँजने लगी। उस भवन में इतनी काफ़ी जगह है कि कई हज़ार मनुष्यों की बड़ी सभा बैठ सकती है। उसमें प्रवेश करने के दरवाज़े छोटे हैं। उसकी मज़बूती का इसी से पता लग सकता है कि बिहार को विनष्ट करनेवाले भूकम्प के धक्के से उस पुरानी इमारत की कुछ हानि नहीं हो सकी है। सिर्फ़ सिहर-सा गया है। मैं उसके शिखर पर उन सीढ़ियों के सहारे गया। चोटी तक पहुँचते-पहुँचते पाँव में शिथिलता आ गई, शरीर थक-सा गया। उसकी चोटी पर चढ़कर इधर-इधर दृष्टि डालने से सम्पूर्ण पटना अपने नये-पुराने रूप की झाँकी देता हुआ दर्शकों की आँखों के सामने झूलने लगता है। हाईकोर्ट की विशाल इमारत, गवर्नर के अनुपम भवन, सेक्रेटेरियट का विस्तृत विस्तार एक ओर दिखाई पड़ता है और दूसरी ओर पटना नगर, कालेज और चर्च की चमकीली काया नज़र आती है। पार्श्व का वह गोलाकार लॉन हरी-हरी घासों से लहराता दिखाई पड़ता है। इमाम-मंज़िल और सर सुलतान अहमद के भव्य भवन तथा और भी कितने ही पैलिशियल बिल्डिंग अपनी अनोखी छटा से आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर देती हैं। उत्तर की ओर पतितपाविनी पुण्यसलिला भागीरथी की दिव्य धारा, उस लम्बी नगरी के अंचल



में प्रवाहित होती देख पड़ती है। बस, गोलघर के मुँडेरे से पटना नगर की रूप-रेखा आँखों के सामने खड़ी हो जाती है। बड़ा ही सुन्दर दृश्य दिखाई पड़ता है। इस विशाल घर की ईंट बहुत छोटी पर पत्थर-सी मज़बूत मालूम होती थी।

हर-मन्दिर

गोलघर देख लेने के बाद मैंने गुरु गोविन्द-सिंह का जन्मस्थान देख आने का निश्चय किया। यह स्थान वहाँ से दूर है—फिर भी पहले वहीं चलने का विचार किया। मोटरबस के द्वारा जाने का प्रबन्ध रहने पर भी मैंने वहाँ ताँगे से जाने में ही लाभ समझा। एक साथी और मिल गये। शहर से दूर होने पर भी वहाँ पहुँचते देर नहीं मालूम हुई। हम लोग शहर के बीचवाली प्रधान सड़क से जा रहे थे। दोनों ओर के दर्शनीय दृश्यों को देखते जाने से मालूम भी नहीं हुआ कि कितना समय लगा। सदर रोड के एक पार्श्व में बी॰ एन॰ कालेज, मेडिकल कालेज, पटना कालेज, साइंस कालेज, ट्रेनिंग कालेज इत्यादि अनेक कालेजों के विशाल भव्य भवन कोसों की लम्बाई तक फैले हैं। इनके छात्रों के गगनस्पर्शी छात्रालय दूर तक फैले हुए हैं। सर-सरी निगाह इन पर दौड़ाते हुए हम लोग आगे बढ़ते गये।

सहसा हम लोगों का ताँगा सिखों के तीर्थस्थान हर-मन्दिर के सामने खड़ा हुआ। वहाँ पहुँचते ही अपार आनन्द उपलब्ध होने लगता है। उस पवित्र भूमि पर पाँव रखते ही उस महापुरुष की विशेषता सामने खड़ी हो जाती है। वहाँ अनेक सिक्ख साधुओं के दर्शन हुए। मन्दिर में गुरु गोविन्दसिंहजी की तलवार, ढाल और तीर कमठे रक्खे हुए हैं। सामने संगमरमर के चबूतरे के निकट ही गगनस्पर्शी धर्मकेतु-स्तंभ दिखाई पड़ा। वहाँ का दृश्य बड़ा ही मनोरम था। सिक्ख सन्तों ने बड़े सम्मान से हम लोगों का स्वागत किया और प्रातःस्मरणीय उस महापुरुष का मन्दिर दिखाया। उनकी जयन्ती के अवसर पर वहाँ ख़ूब उत्सव होता है। काफ़ी संख्या में सिक्ख जनता वहाँ इकट्ठी होकर आनन्दोत्सव मनाती है। मिठाइयाँ और हलवे बँटते हैं और उनका यशोगान होता है। वहाँ सुन्दर घोड़े पर वीर-केसरी गुरु गोविन्द-सिंह की प्रस्तर-मूर्ति देखने ही योग्य है।

पट्टन देवी

हर-मन्दिर के दर्शन कर लेने के बाद हम लोग पटना सिटी की प्रसिद्ध पट्टन देवी का दर्शन करके वहाँ से वापस लौटे। यह मन्दिर भी बहुत ही पुराना है। उसके देखते ही उसकी प्राचीनता का ज्ञान हो जाता है। आसपास के दृश्य में नगर के प्राचीन भाव का आभास मिलने लगता है। कितने ही पुराने खँडहर दिखाई पड़ते हैं। पटने में हिन्दू-युग के अनेक चिह्न दिखाई पड़ते हैं—पंच पहाड़ी, छोटी पहाड़ी (उपगुप्त का स्थान), भिखना पहाड़ी (कुँअर महेन्द्र का स्थान), अगंमकुआँ इत्यादि उसके अतीत का इतिहास सुनाने लगते हैं। अगमकुआँ का ठीक-ठीक इतिहास नहीं मिलता। किसी-किसी का कहना है कि—"अशोक की वध्य भूमि का यह स्मारक है।" किसी का कहना है—"मुसलमानी युग का है।" किसी के यह बहुत बड़ा और गहरा कुआँ है। किसी ने अभी तक इसकी थाह नहीं पाई है। सम्भवतः इसी लिए इसे अगमकुआँ कहते हैं।

मुसलमानी युग की इमारतों में—नगर के निकट ही शेरशाह के बनवाये हुए दुर्ग का भग्नाव-शेष, दौलतपुर में शेरशाह की मसजिद, शायस्ता ख़ाँ का मदरसा, पत्थर की मसजिद और महाराज-घाट वग़ैरह प्रसिद्ध हैं। उसी युग की कम्पनी की इमारतों में—पादरी की हवेली, बल्देज का पुस्त, क्रिस्तानी क़ब्रगाह, पटना कालेज की पुरानी इमारत और गोलघर प्रसिद्ध हैं।

कई वर्ष पहले की बात है कि कर्नल वाडेल ने यहाँ की पुरानी इमारतों और खँडहरों की खोज में पुरातत्वज्ञों की सहायता से टीले की खुदाई का कार्य



किया था। टीले के नीचे पुरानी खँडहरी और बहुत-से बौद्ध युग के शिलाखंड इत्यादि । पत्थर-स्तम्भों के कँगूरे निकले, पर कोई शिला-लेखादि नहीं मिले और ऐसी कोई नहीं मिली, जिससे उनकी उत्सुकता उत्तरो- जाती। फिर उन्होंने खुदाई का कार्य दिया। बहुत दिन के बाद धनकुबेर ने डा० स्पूनर की देख-रेख में दूसरी बार खुदाई आरंभ की। इस बार कुछ सिक्के, तरह के पुराने मिट्टी के बर्तन, मूर्तियाँ बहुत-सी चीज़ें मिलीं, लेकिन इस बार भी और कोई प्रामाणिक वस्तु नहीं मिली। तीन-चार वर्षों तक खुदाई करके पुनः बन्द कर दिया गया।

सन्देह नहीं कि यदि उसकी खुदाई होती प्राचीन पाटलीपुत्र की बहुत-सी प्रामाणिक मिलतीं।

इस तरह कई दिनों तक घूम-घूमकर मैंने पटने पुरानी इमारतों का निरीक्षण किया।

वर्त्तमान पटना

वर्त्तमान पटना भी गंगा के किनारे १०-१२ लम्बे और एक मील चौड़े भूखंड पर हुआ है। बिहार की राजधानी होने के इसका पुनः जीर्णोद्धार हुआ है। नई-नई और सुन्दर सड़कें बनी हैं, जिनकी सफ़ाई है। किन्तु पटने की गलियाँ और मुहल्लों की गन्दगी अभी दूर नहीं हो है। वे अभी उसी रूप में हैं। सम्भवतः कुछ वर्षों में इसका भी नया रूप होगा।

म्यूज़ियम

यहाँ का म्यूज़ियम कलकत्ते के म्यूज़ियम की विशाल नहीं है, फिर भी छोटे रूप में भी संग्रह प्रशंसनीय है। बौद्ध-युग की मूर्तियाँ, स्तम्भखंड, पुरानी तोपें और विविध तरह पुरानी वस्तुओं का ख़ासा संग्रह है। नालन्दा पटना की खुदाई से प्राप्त अनेक चीज़ें वहाँ देखने को मिलीं। एक बहुत बड़े भव्य भवन में भिन्न-भिन्न स्थान में सब चीज़ें अलग-अलग सजाकर रक्खी गई हैं। पटने की नई इमारतों में—पटना-हाई कोर्ट, पटना-म्यूज़ियम, सेक्रेटरियट, गवर्नर की कोठी, जेनरल पोस्ट-आफ़िस और कालेजों की इमारतें हैं। जेनरल पोस्ट-ऑफ़िस के पास ही हार्डिञ्ज-पार्क भी दर्शनीय है। इन नई इमारतों से पटने में पुनः नया जीवन-सा आ गया है। पटने के कालेजों में पटना-कालेज, साइन्स-कालेज, ट्रेनिंग कालेज, मेडिकल कालेज, इंजिनियरिंग कालेज और बी० एन्० कालेज की इमारतें बड़ी ही भव्य और गगनस्पर्शी हैं और यही नगर की विभूति हैं। ख़ुदाबख़्श ख़ाँ का पुस्तकालय भी विशेष प्रशंसनीय है।



रात की ग़ल्तियाँ

[सुप्रसिद्ध लेखक आलिवर गोल्डस्मिथ के विख्यात नाटक "शी स्टूप्स टु कांकर" का छायानुवाद]

अनुवादक—कुँअर राजेन्द्रसिंह

नाटक के पात्र

(पुरुष)

सर चार्ल्स मार्लो
युवक मार्लो (उनका लड़का)
हार्ड कैसिल
हेस्टिंग्ज़
टोनी लम्पकिन (मिसेज़ हार्ड कैसिल का पहले पति से लड़का)
डिगोरी (हार्ड कैसिल का नौकर)

(स्त्रियाँ)

मिसेज़ डरोथी हार्ड कैसिल
मिस हार्ड कैसिल
मिस कांस्टेन्स नेविल (मिसेज़ हार्ड कैसिल की भतीजी)
दासी

(अन्य पात्र)

शराबख़ाने का मालिक, नौकर इत्यादि-इत्यादि

प्रथम अङ्क

दृश्य—एक पुराने फ़ैशन के मकान का एक कमरा

[मिसेज़ और मिस्टर हार्ड कैसिल का प्रवेश]

मिसेज़ हार्ड कैसिल—मैं तुम्हारे अनोखेपन की क़सम खा सकती हूँ, मिस्टर हार्ड कैसिल ! सिवा हम लोगों के क्या कोई और भी इस मुल्क में है, जो कभी न कभी शहर को जाकर अपना थोड़ा "मोर्चा न छुड़ा आता हो।" दोनों मिस हाग्ज़ और हम लोगों के पड़ोसी ग्रिस्वी हर साल जाड़ों में एक महीने के लिए बाहर जाकर "अपने को चमका आते हैं।"

मिस्टर हार्ड कैसिल—हाँ, और उसी के साथ अभिमान और दिखावा भी इतना साथ ले आते हैं कि साल भर के लिए काफ़ी हो। यह मुझे ताज्जुब है कि लंदन अपने मूर्खों को अपने ही पास क्यों नहीं रखता। मेरे ज़माने में वहाँ की बेवक़ूफ़ियां धीरे-धीरे खिसकती हम लोगों तक पहुँचती थीं। लेकिन अब वे बहुत तेज़ चलनेवाली हो गई हैं।

मिसेज़ हार्ड—आपका ज़माना बहुत अच्छा था, बेशक, जिसकी तारीफ़ें आपसे बहुत दिनों से सुन रही हूँ। यहाँ हम एक पुराने मकान में रहते हैं, जो एक सराय की तरह दिखलाई देता है, और न कोई मित्र-मण्डली ही है। आने-जानेवालों में सिर्फ़ पादरी की बीबी और ढबकते हुए नाच सिखलानेवाले उस्ताद हैं, और हम सबका दिल बहलाने के लिए आपके वही पुराने क़िस्से हैं। मैं ऐसी पुरानी बातों से चिढ़ती हूँ।

हार्ड—और मैं उन्हें पसन्द करता हूँ। पुरानी हर एक चीज़ मुझे पसन्द है—पुराने दोस्त, पुराना ज़माना, पुराने तरीक़े, पुरानी किताबें, पुरानी



बात, और मेरा ख़याल है कि डरोथी (अपनी हाथ अपने हाथ में लेकर) यह तुम मानोगी कि मैं अपनी पुरानी बीबी को भी पसन्द करता हूँ।

मिसेज़ हार्ड—या ईश्वर ! फिर वही तुम्हारी पुरानी और वही पुरानी बीबियाँ। मैं इतनी बूढ़ी नहीं हूँ, जितना आप समझ रहे हैं। बीस में बीस जोड़िए और देखिए कि कितना आपको सन्तोष होता है।

हार्ड—ज़रा ठहरिए। बीस में बीस जोड़ने से ठीक सत्तावन होते हैं।

मिसेज़ हार्ड—ग़लत। मैं बीस साल की थी, जब टोनी, जो मेरे पहले पति लम्पकिन से है, पैदा हुआ था, और अभी तक उसे अक़्ल नहीं आई है !

हार्ड—और न कभी आवेगी, यह मैं कहता हूँ। आपने उसे ख़ूब शिक्षा दी है।

मिसेज़ हार्ड—कोई बात नहीं। टोनी लम्पकिन के पास जायदाद है। मेरे लड़के को अपनी शिक्षा से रोटी नहीं कमाना है। मैं यह नहीं ख़याल करती कि पन्द्रह सौ रुपये हर साल ख़र्च करने के लिए कुछ बड़ी शिक्षा की ज़रूरत है।

हार्ड—शिक्षा ! हँसी-मज़ाक़ की केवल रचना।

मिसेज़ हार्ड—लड़के को थोड़ी हँसी और मज़ाक़ करने की इजाज़त आपको देनी ही चाहिए।

हार्ड—अगर नौकरों के जूते जला देना और नौकरानियों को डराना मज़ाक़ है, तो उसका आनन्द वह उठाता है। कल उसने मेरी नक़ली बालों की टोपी कुरसी से बाँध दी थी और जब मैं सलाम करने के लिए उठा, तब मेरा गंजा सिर मिसेज़ फ़्रीज़ल के सामने खुल गया।

मिसेज़ हार्ड—तो क्या मेरी ख़ता है ? बेचारा लड़का इतना दुबला-पतला है कि उसे स्कूल भेजना उसकी जान लेना है। जब ज़रा मज़बूत हो जाय, तब एक-दो साल लैटिन पढ़ने से उसे फ़ायदा होगा।

हार्ड—लैटिन ! नहीं, नहीं, शराब की दूकान और अस्तबल उसके लिए स्कूल हैं।

मिसेज़ हार्ड—हमें उसे इस तरह डाँटना फटकारना नहीं चाहिए। जो कोई उसे देखेगा, वह यही कहेगा कि उसे पुराना बुख़ार है।

हार्ड—हाँ, अगर मोटा होना पुराने बुख़ार की पहचान है।

मिसेज़ हार्ड—वह कभी-कभी खाँसता भी है।

हार्ड—जब शराब ग़लत रास्ते से गले के नीचे उतर जाती होगी।

मिसेज़ हार्ड—मुझे उसके फेफड़ों के लिए डर है।

हार्ड—और मुझे भी डर है (व्यंग्य के स्वर में) कभी-कभी वह तुरही की तरह चिल्लाता है।

(पर्दे के पीछे टोनी चिल्लाता हुआ सुनाई देता है)

[टोनी का प्रवेश—वाक़ई पुराने बुख़ारवाले बीमार की तरह है]

मिसेज़ हार्ड—टोनी, कहाँ जा रहे हो, मेरे प्यारे बच्चे ? क्या अपने पिता को और मुझे थोड़ी देर भी साथ रहने का आनन्द न दोगे ?

टोनी—मैं जल्दी में हूँ, माता, नहीं ठहर सकता।

मिसेज़ हार्ड—ऐसी ठंडक में बाहर नहीं जाना चाहिए। तुम बहुत बीमार देख पड़ते हो।

टोनी—मैं कहता हूँ कि मैं ठहर नहीं सकता। एक जगह खेल-तमाशा हो रहा है, और वहाँ मेरा लोग रास्ता देख रहे होंगे।

हार्ड—अच्छा, वही शराब की दूकान।

मिसेज़ हार्ड—और वही छोटे दर्जे के आदमी।

टोनी—ऐसे छोटे आदमी नहीं। (दो-चार मामूली आदमियों के नाम गिना देता है)

मिसेज़ हार्ड—कम से कम एक ही रात उन्हें निराश होने दो।

टोनी—उनके निराश होने की परवा नहीं है, लेकिन बात यह है कि मैं अपने को निराश नहीं कर सकता।

(मिसेज़ हार्ड रोकती है और कहती है कि जाने नहीं दूँगी)

टोनी—मैं कहता हूँ कि मैं जाऊँगा।

मिसेज़ हार्ड—मैं कहती हूँ, नहीं।



टोनी—अच्छा देखता हूँ कि किसमें ज़्यादा ताक़त है। (वह अपनी मा को बाहर ढकेलकर चल देता है)

(दोनों का प्रस्थान)

हार्ड—(अकेले) यह जोड़ी एक दूसरे को ख़राब कर रही है। मेरी लड़की (केट) को भी दो साल शहर में रहने से वही फ़ैशन की बीमारी हो गई है। अब सिर्फ़ भड़कीली ही पोशाक पसन्द आती है।

[मिस हार्ड कैसिल का प्रवेश]

हार्ड—मेरी केट! रोज़ ही की तरह कपड़े पहने हो। कितने बेकार रेशमी कपड़े हैं। मैं इस ज़माने के बेवक़ूफ़ों को न सिखला पाया कि ऐसे कपड़ों के कतरन से ग़रीब दुनिया का काम चल सकता है।

मिस हार्ड—आप हम लोगों का समझौता जानते हैं। आपने हुक्म दिया है कि सुबह जब कोई मुझसे मिलने आवे या जब मैं किसी से मिलने जाऊँ, तब जैसी मेरी तबियत चाहे, वैसे कपड़े पहनूँ, और शाम को आपको ख़ुश करने के लिए घर का काम करनेवाली एक मामूली औरत के कपड़े पहनूँ।

हार्ड—हाँ-हाँ, याद है। समझौते की शर्तों पर ही मैं ज़ोर डालता हूँ। मेरा ख़याल है कि आज ही शाम को इस बात की जाँच करने का मौक़ा आवेगा कि तुम मेरा हुक्म कितना मानती हो।

मिस हार्ड—मैं बिल्कुल नहीं समझी।

हार्ड—साफ़ बात यह है कि आज मैं शहर के एक जवान आदमी का रास्ता देख रहा हूँ, जिसे मैंने तुम्हारी शादी के लिए पसन्द किया है। उसके बाप का ख़त आया है कि वह रवाना हो चुका है। बाप भी बहुत जल्दी ही चलेगा।

मिस हार्ड—मेरी इच्छा तो यह थी कि मैं पहले से उसे जानती होती। अब कैसा बर्ताव मुझे करना चाहिए? अब तो यही मालूम होता है कि वह मुझे पसन्द कभी नहीं आवेगा। ऐसी भेंटें केवल प्रथानुसार होती हैं; न उनमें मित्रता होती है और न आदर। यह तो कारोबारी भेंट होगी।

हार्ड—विश्वास करो। मैं कभी तुम्हारी पसन्द में दख़ल नहीं दूँगा। मिस्टर मार्लो मेरे मित्र सर चार्ल्स का लड़का है। यह जवान आदमी विद्वान् है और इस ढंग पर इसकी शिक्षा हुई है कि अपने देश की सेवा करने के योग्य हो। बहुत बड़ा समझदार है।

मिस हार्ड—क्या ऐसा है?

हार्ड—बहुत उदार है।

मिस हार्ड—मेरा ख़याल है कि मैं उसे पसन्द करूँगी।

हार्ड—जवान और बहादुर है।

मिस हार्ड—तो फिर तै है कि मैं उसे पसन्द करूँगी।

हार्ड—बहुत ख़ूबसूरत है।

मिस हार्ड—(अपने बाप का हाथ चूमती है) बस और कुछ न कहिए। मैं उससे शादी करूँगी।

हार्ड—और सबसे बड़ी बात यह है कि वह अत्यन्त लज्जाशील है।

मिस हार्ड—आपने तो मेरा ख़ून ख़ुश्क कर दिया। कहा जाता है कि कम बोलनेवाला प्रेमी संदेही पति होता है।

हार्ड—शर्म की जगह उस दिल में नहीं है, जिसमें और भी गुण न हों। यही बात उनमें मुझे बहुत पसंद आई।

मिस हार्ड—तो उनकी सूरत-शकल बहुत अच्छी होगी कि मेरे पसन्द आ जाय।

हार्ड—सिर्फ़ एक अड़चन दिखलाई देती है कि कहीं वही तुम्हें नापसन्द न कर दे।

मिस हार्ड—आप मुझे क्यों छिपा रहे हैं। अगर वह बग़ैर मेरा दिल तोड़े इनकार कर दे, तो मुझे ज़रा भी परवा नहीं होगी और मैं किसी दूसरे प्रेमी को ढूँढूँगी।

हार्ड—साहसी निर्णय। अब जाता हूँ। और नौकरों को सिखला दूँ कि मार्लो के सामने कैसा



...कार करें। अपने यहाँ लोग कम आते-जाते हैं, इस वजह से नौकरों को सिखलाने की ज़रूरत है।

(प्रस्थान)

मिस हार्ड—(अकेले) पिता के इस कहने से ...पड़ा गई कि वह सुन्दर हैं, जवान हैं, और ... बातें मुझे पसन्द हैं; परन्तु लज्जाशील होना ...र कम बोलना मुझे पसन्द नहीं। वाह! क्या ... रही हूँ। इसके पहले कि प्रेमी प्राप्त करूँ, पति ... निपटारा करने लगी।

[मिस नेविल का प्रवेश]

मिस हार्ड—मुझे ख़ुशी हुई कि तुम आ गईं। ...आज मैं कैसी दिखलाई देती हूँ।

मिस नेविल—क्या कहना है! तब भी ज़रा ...देख लूँ। चेहरे पर कुछ उदासी है। क्या ...त है?

मिस हार्ड—कोई बात नहीं है। क्या कहूँ, ...ज मेरे एक चाहनेवाले को मेरे सिर पर लादने ... धमकी दी गई है।

मिस नेविल—उसका नाम?

मिस हार्ड—मार्लो है।

मिस नेविल—सचमुच?

मिस हार्ड—सर चार्ल्स मार्लो के लड़के हैं।

मिस नेविल—यह मेरे चाहनेवाले मिस्टर ...टिंग्ज़ के बड़े दोस्त हैं। एक दूसरे से कभी ...अलग नहीं होते। मेरा ख़याल है कि तुमने उन्हें ...देखा होगा, जब हम सब शहर में थे।

मिस हार्ड—मैंने उन्हें कभी नहीं देखा।

मिस नेविल—उनका चरित्र विचित्र है। चरित्र-...वान स्त्रियों के सामने वह लज्जाशील हैं, परन्तु ...दूसरे ढंग की स्त्रियों में उनका दूसरा नाम है।

मिस हार्ड—वास्तव में चरित्र विचित्र है। कैसे ...उन्हें सँभाल पाऊँगी। क्या करूँ। ख़ैर देखा जायगा। ...इन बातों छोड़िए और यह बतलाइए कि तुम्हारे ...मामले में क्या हो रहा है। क्या मेरी मा, मेरे भाई (टोनी) की तुम्हारे साथ शादी की कोशिश कर ...रही हैं।

मिस नेविल—अभी-अभी वही बातें करके आ रही हूँ। वह सैकड़ों अच्छी-अच्छी बातें अपने पुत्र के सम्बन्ध में कह रही थीं। वह उसे पूर्ण योग्यता का नमूना समझती हैं।

मिस हार्ड—वह इतनी उसके पक्ष में हैं कि उसमें संसार भर के सब गुण देखती हैं। और भी एक बात यह है कि तुम्हारी जायदाद का कुछ कम लालच उन्हें नहीं है। इसे ख़ानदान के बाहर जाने देना उन्हें पसन्द नहीं होगा।

मिस नेविल—मेरी जायदाद का क्या बड़ा लालच हो सकता है। जो कुछ है, वह जवाहिरात हैं। अगर हेस्टिंग्ज़ प्रेम करता रहा, तो अन्त में उनसे रुखाई करना पड़ेगी। अभी तो मैं उन्हें यही ख़याल करने देती हूँ कि उन्हीं के लड़के को मैं चाहती हूँ। और उन्हें यह स्वप्न में भी नहीं मालूम कि मेरा दूसरे से प्रेम है।

मिस हार्ड—भाई साहब अभी तक दृढ़ता से इनकार कर रहे हैं और तुमसे इस तरह नफ़रत करने की वजह से मैं उनसे प्रेम कर सकती हूँ।

मिस नेविल—बेचारे अच्छी प्रकृति के जीव हैं। यह तय है कि उनकी इच्छा है कि उनको छोड़कर और किसी के साथ मेरी शादी हो जाय। चलो चलें। चर्च की घंटी बज रही है। हम दोनों को हिम्मत से काम लेना चाहिए। तुम्हारे हमारे दोनों के मामले टेढ़े हैं।

(दोनों का प्रस्थान)

[दृश्य—शराब पीने का कमरा—कई आदमी मैले-कुचैले कपड़े पहने एक मेज़ के पास बैठे हैं और शराब पी रहे हैं। टोनी मेज़ के एक सिरे के पास बैठा है]

(शराबियों की-सी बातें हो रही हैं। कोई कुछ बक रहा है, कोई कुछ बक रहा है)

एक ने कहा—सब चुप रहो, एक गाना हो जाय।

दूसरा—हाँ-हाँ, एक गाना हो जाय।



टोनी—तो फिर मैं गाऊँगा। मैंने इस शराबख़ाने पर एक गीत बनाया है। (गाता है) "स्कूल-मास्टरों को व्याकरण और शिक्षा-सम्बन्धी वाहियात बातों से दिमाग़ परेशान करने दो; परन्तु मैं यह मानता हूँ कि अच्छी शराब एक वर्ग के लोगों को अच्छी सूझ-बूझ देती है।" (वाह-वाह होती है)

[शराबख़ाने के मालिक का प्रवेश]

मालिक—दरवाज़े पर एक गाड़ी में दो आदमी आये हैं, और वे मिस्टर हार्ड कैसिल के सम्बन्ध में कुछ बातें कर रहे हैं। वे रास्ता भूल गये हैं।

टोनी—यह तै है कि उनमें से एक वह होगा, जो मेरी बहन से शादी किया चाहता है। क्या वे लोग लंदन के रहनेवाले मालूम होते हैं?

मालिक—शायद वहीं के रहनेवाले हों। देखने से तो फ़्रांस के मालूम होते हैं।

टोनी—उन्हें यहाँ भेज दीजिए। मैं ठीक रास्ता बतला दूँगा। (शराबख़ाने के मालिक का प्रस्थान) (साथियों से) जो लोग आये हैं, शायद आप लोगों के साथ के लिए ठीक न हों। आप लोग एक तरफ़ चले जायँ। मैं आप लोगों के पास जल्दी ही आ जाऊँगा। (सब लोगों का प्रस्थान) (टोनी अकेले) (हार्ड कैसिल की तरफ़ संकेत करके) अब रिश्ते में जो मेरे बाप होते हैं, वह छः महीने से मेरी नाक में दम कर रहे हैं। अब अगर चाहूँ तो उस बुड्ढे से बदला ले लूँ; लेकिन कुछ डर लगता है—डर किस बात का? बहुत जल्दी ही पन्द्रह सौ सालाना की जायदाद मेरे हाथ लगनेवाली है। देखें, यह बुड्ढा कैसे मुझे उसके पाने से रोक सकता है।

[मार्लो और हेस्टिंग्ज़ के साथ शराबख़ाने के मालिक का प्रवेश]

मार्लो—कितनी तकलीफ़ देनेवाला आज का दिन था। हम लोगों से कहा गया था कि सिर्फ़ चालीस मील है और अब तक साठ मील से ज़्यादा चल चुके हैं।

हेस्टिंग्ज़—तुम्हारी चुप की वजह से ठीक तौर से रास्ता पूछ भी नहीं सका।

मार्लो—यह मानता हूँ, हेस्टिंग्ज़, मुझे यह नहीं पसन्द है कि रास्ते में जो सामने आ जाय, उसका कृतज्ञ बनूँ, और कभी-कभी असभ्य उत्तर भी सुनूँ।

टोनी—महाशयो! क्षमा कीजिए, मैंने सुना है कि आप लोग मिस्टर हार्ड कैसिल को पूछ रहे हैं। क्या आप लोगों को मालूम है कि आप किस स्थान में हैं?

हेस्टिंग्ज़—हम लोगों को कुछ भी नहीं मालूम कि हम कहाँ हैं। अगर आप पता बतला देंगे, तो हम लोग कृतज्ञ होंगे।

टोनी—क्या आप लोगों को यह भी नहीं मालूम कि किस रास्ते से आये हैं?

हेस्टिंग्ज़—महाशय, नहीं, यह भी नहीं मालूम, लेकिन क्या आप पता बतला सकते हैं?

टोनी—अगर यह आपको नहीं मालूम कि किस रास्ते से आये हैं, किस रास्ते पर जा रहे हैं और कहाँ हैं, तो पहली ख़बर यह मैं आपको दे सकता हूँ कि आप रास्ता भूल गये हैं।

मार्लो—यह बतलाने के लिए आकाशवाणी की आवश्यकता नहीं थी।

टोनी—क्या मैं यह पूछने का साहस कर सकता हूँ कि आप कहाँ से आ रहे हैं?

मार्लो—जहाँ हम लोग जाया चाहते हैं, उसके बतलाने में इस प्रश्न की क्या आवश्यकता है?

टोनी—सवाल के बदले सवाल करने में कोई अपराध भी तो नहीं है। जिसमें आप मिलने जा रहे हैं, क्या यह वही पुराने फ़ैशन का बदसूरत हार्ड कैसिल है, जिसके एक लड़की और एक ख़ूबसूरत लड़का है?

हेस्टिंग्ज़—हम लोगों ने उन महाशय को देखा नहीं, लेकिन जो आप बतला रहे हैं, यह उन्हीं का परिवार है।

टोनी—लड़की लाँबी, चुलबुली और बातूनी है,



और लड़का ख़ूबसूरत और भलामानस, जिसे सब लोग पसन्द करते हैं।

मार्लो—यहाँ मतभेद है। हम लोगों को तो ख़बर यह है कि लड़की ख़ूबसूरत और सुशील है, और लड़का भद्दा और मूर्ख है, जिसे उसकी मा ने बिगाड़ डाला है।

टोनी—अच्छा, तो मुझे यह कहना है कि आज रात को आप मिस्टर हार्डकैसिल के मकान पर नहीं पहुँच पाइएगा।

हेस्टिंग्ज़—अभाग्य।

टोनी—रास्ता बहुत लम्बा, अँधियाला, मैला और खटके का है। (शराबख़ाने के मालिक की तरफ़ इशारा करके) स्टिंगो, मिस्टर हार्डकैसिल के मकान का रास्ता बतला दीजिए। आप समझ गये न?

मालिक शराबख़ाना—आप बहुत ग़लत रास्ते पर आये। जब आप पहाड़ी के नीचे उतरे थे, तब आपको अमुक रास्ते पर जाना चाहिए था।

मार्लो—उस पर चलने के बाद?

मालिक—फिर सीधे जाना चाहिए था, जब तक चौराहा न मिलता।

मार्लो—वहाँ पहुँचने पर जहाँ चौराहा मिलता?

टोनी—वहाँ पहुँचने पर चार में से एक ही रास्ता आपको लेना चाहिए था।

मार्लो—आप मज़ाक़ कर रहे हैं?

टोनी—फिर सीधे रास्ते पर जाना था, फिर चौराहे पर, फिर उस रास्ते पर, जिस पर पहियों के निशान थे, फिर आगे बढ़ते और अमुक स्थान पर पहुँचकर दाहने मुड़ते और फिर बायें, और फिर बायें तब एक पुरानी चक्की मिलती।

मार्लो—ऊँह, इतना खोजने से तो ज़मीन का छोर मिल जाता।

हेस्टिंग्ज़—अब क्या करना है, मार्लो?

मार्लो—यहाँ स्वागत तो बहुत मामूली हुआ। फिर भी, शायद जगह मिल जाय।

मालिक—खेद है, स्वामिन्! मकान भर में केवल एक पलँग ख़ाली है।

टोनी—मेरी तो यह ख़बर है कि उस पलँग को तीन आदमियों ने मिलकर ले लिया है। स्टिंगो, क्या आपकी पत्नी आप लोगों को अँगीठी के पास जगह दे सकती हैं?

हेस्टिंग्ज़—आग के नज़दीक सोना मुझे पसन्द नहीं।

मार्लो—और मैं तो नफ़रत करता हूँ।

टोनी—क्या वाक़ई आप नफ़रत करते हैं? अच्छा, अगर एक मील और आगे आप जायँ, तो आपको एक सराय मिलेगी, जो यहाँ सबसे अच्छी है।

हेस्टिंग्ज़—अच्छा, आज रात को तो खटके से बच गये।

मालिक शराबख़ाना—(टोनी से अलग बातें करता है) यह भी कुछ सोचा है कि आप इन लोगों को अपने बाप के मकान पर उसे सराय बतलाकर भेज रहे हैं।

टोनी—चुप भी रहो। इसका पता ख़ुद उन्हें लगाने दो। (आनेवालों से) आप लोग सीधे आगे बढ़ते चले जायँ, जब तक सड़क के पास एक बड़ा और पुराना मकान न मिले। दरवाज़े पर दो बड़े सींग टँगे हुए हैं। यही पहचान है! हाते में चले जाइएगा।

हेस्टिंग्ज़—महाशय, हम लोग आपके कृतज्ञ हैं।

टोनी—नहीं-नहीं, मैं आपसे कहूँ, उस सराय का मालिक अमीर आदमी है, और यह कारोबार अब छोड़ना चाहता है। इस वजह से अपने को एक बड़ा आदमी दिखलाना चाहता है। वह आपके साथ उठे-बैठेगा और अगर उसने यह देखा कि आप उसकी बातों पर ध्यान दे रहे हैं, तो ज़रूर यह आपको सुनावेगा कि उसकी मा और फूफी ने कैसी-कैसी बड़ी जगहों पर काम किया है।

मालिक शराबख़ाना—बुड्ढे का स्वभाव तो

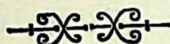


अच्छा नहीं है; परन्तु ठहरने का प्रबंध उसके यहाँ से अच्छा और कहीं भी नहीं है।

मार्लो—अगर यह प्रबंध ठीक है, तो हमको और किसी बात से मतलब नहीं। यही आपने कहा न कि हमें दाहनी तरफ़ मुड़ना चाहिए ?

टोनी—नहीं-नहीं, सीधे। मैं थोड़ी दूर आपके साथ चलूँ और रास्ता दिखला दूँ (मालिक शराबख़ाना से) चुप रहिए।

(क्रमशः)



स्वर्गीय अब्र लखनवी

श्री इक़बाल वर्मा 'सेहर'

राजनीति में प्रायः उतना टिकाऊपन नहीं होता, जितना साहित्य में। वह जल्द-जल्द बदलनेवाली चीज़ है और उसकी पहली बातें कुछ वर्षों के बीत जाने पर पुरानी और फीकी-सी मालूम होने लगती हैं। पर साहित्य की बात दूसरी है। इसमें तो वह जल्द बदलता नहीं; और यदि उसमें युग-धर्म के अनुसार कुछ परिवर्तन होता है, तो भी उसकी निजी सरसता नवीनता के रूप में बराबर बनी रहकर दिलों को अपने रंग में रँगती ही रहती है। पं० विष्णुनारायण दर 'अब्र' लखनवी राजनीति एवं साहित्य दोनों की दृष्टि से अपना विशेष गौरव एवं स्थान रखते थे। वह पहलेपहल सन् १८८७ ई० वाली कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन में गये थे, जो मदरास में हुआ था। वहाँ उनका भाषण भी बड़े मार्के का था, जिससे कांग्रेस के संस्थापक ह्यूम महोदय विशेषतः प्रभावित हुए थे। अन्ततः अपनी राजनीतिक सेवाओं के उपलक्ष में वह कलकत्ता-कांग्रेस के २६वें अधिवेशन के सभापति भी चुने गये थे, जो १९११ ई० में हुई थी और वहाँ उन्होंने अपने लम्बे भाषण में मार्ले-मिंटो-रिफ़ार्म के पृथक् निर्वाचनवाले निश्चय का बड़ा तर्कपूर्ण रीति पर विशेषतः विरोध भी किया था। बहरहाल राजनीति में उनका पद बहुत ऊँचा था, जितना ऊँचा वह हो सकता था। दूसरी ओर साहित्य में उन्हें कोई वैसा स्थान न मिला था सही, पर उन्होंने एक उर्दू कवि के नाते जो भी स्थान प्राप्त कर लिया था, उसमें स्थिरता अवश्य है। हमें आपके ऐसे कई राजनीतिक लेखों के देखने का मौक़ा मिला है, जो अँगरेज़ी में लिखे गये हैं। उनमें विद्वत्ता और तार्किकता के साथ सरलता और स्पष्टता भी है, पर उनकी रोचकता का संबंध तो प्रायः तत्कालीन परिस्थितियों से ही है। इसके विपरीत आपकी साहित्यिक रचनाओं का लगाव समयविशेष के साथ नहीं। उनकी रोचकता तो न-जाने कब तक बनी रहनेवाली चीज़ है। राजनीति ने अस्थायी जीवन भले ही दे दिया हो, पर साहित्य ने तो आपको अमर बनाकर ही छोड़ा है।

आप आदि से अन्त तक थे भी साहित्यिक मनुष्य। परन्तु क्योंकि आपके सीने में कवि का दर्दभरा दिल था, अतः आप भारत की पराधीनता-जनित दशा से भी प्रभावित हुए बिना न रह सके थे। फलतः आपके साहित्यिक विचारों में राजनीति का भी समावेश हो गया था। आपकी पहली उर्दू-ग़ज़ल में एक पद यह भी मिलता है—

हबीबे-मुल्क[1] हैं अपने वतन से हमको उल्फ़त है;
तमन्नाए-विलायत[2] क्या करें हिन्दोस्ताँ होकर।

---

१. वतन के दोस्त; २. विलायत की कामना।



जो आपके स्वदेश-प्रेम का द्योतक है। राजनीति के नाते आपके दिल में स्वदेश-सेवा का ख़याल उस समय पैदा हुआ, जब आप इँगलैंड में बैरिस्टरी पढ़ रहे थे। वहाँ सन् १८८४ ई० के अन्त में तत्कालीन प्रधान सचिव ग्लैडस्टोन महोदय ने अपना 'आइरिश होम-रूल-बिल' पेश किया था, जिससे अँगरेज़ों में बड़ी खलबली पड़ गई थी। उसी समय श्रीलालमोहन घोष और श्रीचन्दावरकर भी अपने भाषणों द्वारा भारत की दशा पर आँसू बहाने के लिए वहाँ गये थे। इन बातों से 'अब्र' को पर्याप्त स्फूर्ति मिली और उन्होंने भारत लौटकर उसके हक़ों के लिए लड़ने का पक्का इरादा कर लिया। पर उनकी लड़ाई एक नर्मदलवाले नौजवान सिपाही की लड़ाई थी। कहते खरी थे, पर ज़रा ठंडे दिल के साथ। संक्षेप में उनकी 'नरमी' भी ऐसी थी कि जहाँ वह नर्मदलवालों की कार्यवाहियों को देश के लिए हानिकर समझते थे और अराजकतावादियों से पूरी घृणा रखते थे, वहाँ 'नर्मों' के बारे में भी कहा करते थे कि 'यद्यपि नर्मदल के सिद्धान्त बहुत अच्छे हैं, पर मुझे यह भय सदा ही लगा रहता है कि कहीं वह ज़रूरत से ज़्यादा नर्म (Too moderate) न हो जायँ।' इन सामयिक विचारों को देखते हुए हमारे दिल में क्षण भर के लिए यह ख़याल आये बिना भी नहीं रहता कि बाद को बहनेवाली हवा का तेज़ झोंका उन्हें न-जाने किधर ले जाता।

जब वह बैरिस्टर होकर विलायत से लौटे, तो यहाँ आकर उन्होंने अपना वही साहित्यिक और राजनीतिक कारोबार जारी किया। कविताओं की रचना भी होती थी, और लेख भी लिखे जाते थे। उनके अँगरेज़ी लेख तो विलायती पत्र-पत्रिकाओं तक में स्थान पाते थे। उन्हें अँगरेज़ी लिखने में किस ग़ज़ब की महारत थी, इसका अनुमान तो दीनबन्धु ऐन्ड्रयूज़ के उन शब्दों से हो सकता है, जो उन्होंने सर तेजबहादुर सप्रू से उस समय कहे थे, जब सप्रू साहब आगरा-कालेज में पढ़ते थे। उन्होंने कहा था कि "यदि इस प्रांत में कोई ऐसी अँगरेज़ी लिख सकता है, जिस पर किसी अँगरेज़ लेखक की कृति का धोका हो सके, तो वह पं० विष्णुनारायण दर हैं"। सच है, अभ्यास और अध्ययन से क्या कुछ नहीं हो सकता। उन्हें साहित्यिक कार्यों से इतना अवकाश न था कि वह अपने पेशे को काफ़ी वक़्त दे सकें, उसकी तो उन्हें वैसी परवा भी न थी। पेशे का काम वह करते भी थे तो उतना ही कि गुज़र-बसर हो जाय और ठीक काम के ही अन्दाज़े से क़ानूनी पुस्तकें भी देख लेते थे। स्वभाव में सन्तोष था। अपना असली काम उन्होंने खोज ही लिया था, फिर वह अपने को नक़ली जीवन के ही अर्पित क्यों करते? बहुधा ऐसा भी होता था कि जब वह कुछ लिखने बैठते, तो नौकर से कह देते थे कि कोई मुवक्किल आवे, तो कह देना कि 'बैरिस्टर साहब घर पर नहीं हैं'। पर इससे यह मतलब नहीं कि वह मुक़दमा लेने से हिचकते थे या मुक़दमा लेकर बेपरवाई करते थे। सन् १८९३ ई० की बात है, आज़मगढ़ में गोहत्या के मामले पर हिन्दू-मुसलिम दंगा हो गया था। हाकिमों की कड़ी निगाह हिन्दुओं पर पड़ी, और बड़े-बड़े रईस-ज़मींदार मुलज़िम गरदाने गये। किसी वकील-बैरिस्टर को यह हिम्मत न थी कि वह हिन्दुओं का पक्ष ले। आख़िर पंडितजी वहाँ गये और एक पैंफ़लेट द्वारा हाकिमों की ज़्यादतियाँ भी दिखलाईं। इस पर बाज़ बंगाली अख़बारों ने यहाँ तक लिखा था कि यदि पंडितजी की सुवर्ण-मूर्ति स्थापित की जाय, तो ठीक ही होगा।

साहस के साथ सहनशीलता भी थी। आप इस प्रान्त के विलायत जानेवाले पहले हिन्दू थे। रूढ़िपूजा का युग था। वहाँ से लौटने पर बिरादरी ने जातिच्युत होने की व्यवस्था दी, पर आपने तनिक भी बुरा न मानते हुए उस बात को हँसी-हँसी में ही टाल दिया था। यही क्या, आप शारीरिक कष्टों को भी ध्यान में न लाते थे।



सन् १९०५ ई० से राजयक्ष्मा-जैसे भयंकर रोग में ग्रस्त थे। तब से अधिकतर पहाड़ पर रहते हुए रोगजनित पीड़ाओं को धैर्यपूर्वक सहते रहते थे। मृत्यु का भय न था। वेदान्त के माननेवाले थे। आपने एक ग़ज़ल में कहा था—

है मर्गो-ज़ीस्त परदे शोब्दागर के तमाशे के,
नज़रबंदी का आलम है कोई जाता न आता है।

मृत्यु और जीवन क्या हैं? बाज़ीगर के तमाशे के परदे हैं। उनमें असलियत तनिक भी नहीं। हम नज़रबन्दीरूपी मायाजाल में पड़कर नक़ल को असल, झूठ को सच समझ रहे हैं। अन्यथा वही एक चैतन्य सत्ता तो सब कुछ और सब जगह है, फिर मरना-जीना, जाना-आना कैसा? आख़िर लगभग १०-११ वर्ष बीमार रहकर १९ नवम्बर, सन् १९१६ ई० को लखनऊ में स्वर्गवासी हुए। लिखने-पढ़ने का सिलसिला लगभग अन्त तक जारी रहा, जिसमें काव्य और राजनीति दोनों का समावेश था। आपकी मृत्यु पर जो शोक-सभा हुई थी, उसमें उर्दू के सुकवि जनाब शफ़ी लखनवी ने एक कविता पढ़ी थी, जिसके कुछ पद ये हैं—

अवध के सूबे का पहला मुसाफ़िरे-लंदन,
वतनपरस्त वो बिहीख़्वाहे-जुमला अहले-वतन[1];
अदीबे वो शायरे नामी ज़बाने-उर्दू का,
ज़बान वो किल्क[3] से हामी ज़बाने-उर्दू का;
मिज़ाज में न तअस्सुब न तमकनत न ग़ुरूर,
जो कोई मिलिए तो होता था मिलके दिल मसरूर[4];
वह उसको सद्रनशीनी[5] प कांग्रेस के नाज़,
वह होके मेम्बरे-कौंसिल[6] नज़र फ़लकपरवाज़[7];
ख़मोशतबअ[8] मगर ख़ुशमिज़ाज और हँसमुख,
लेकिन ज़बाँ[9] प न आई हज़ार उठाये दुख;
वह अपने जाननेवालों का चाहनेवाला,
हमेशा वज़्अ-वफ़ा[1] का निबाहनेवाला;
सिपाहियाना मिज़ाज आन-बान से रहना,
बला से कुछ हो वह करना ज़बाँ से जो कहना।

इनसे स्वर्गीय की राष्ट्रीयता, साहित्यप्रियता, नम्रता, आत्मीयता, उच्चता, सहनशीलता, प्रेमपूर्णता, सज्जनता, वीरता और दृढ़ता का छोटा, किन्तु सुन्दर चित्र आँखों के सामने आ जाता है।

आपका जन्मसंवत् सन् १८६४ ई० और जन्म-स्थान ज़िला बाराबंकी था। शुरू में सामयिक प्रथा के अनुसार फ़ारसी-उर्दू पढ़ते रहे। फिर अँगरेज़ी पढ़ना शुरू किया और मिडिल तक पहुँचते-पहुँचते इतनी लियाक़त पैदा कर ली कि इस्माइल्स की नीतिसम्बन्धी प्रसिद्ध अँगरेज़ी पुस्तकों को पढ़ने और समझने लगे। शौक़ बढ़ता गया और इन्ट्रेन्स में कार्लाइल की 'वीर और वीरपूजा' नामी कठिन पुस्तक तक नौबत पहुँची। आख़िर जब आपने कैनिंग-कालेज लखनऊ में एफ़० ए० की पढ़ाई शुरू की, तो वहाँ की बहुत बड़ी लाइब्रेरी से आपका साहित्यिक व्यसन पूरा होने लगा। यहाँ स्पेन्सर और मिल की कई प्रसिद्ध पुस्तकें पढ़ीं। दर्शन, धर्म, नीति, इतिहास और काव्यवाली पुस्तकों से विशेष रुचि थी। क़िस्से-कहानियाँ पसन्द न करते थे, गम्भीर एवं गूढ़ प्रकृति के मनुष्य थे और उसी प्रकार का साहित्य भी रुचिकर था। रुचि की पूर्ति के लिए आपको अधिकाधिक अवकाश भी मिला। गणित में फ़ेल होने से एफ़० ए० पास न हो सके और पढ़ना छोड़ दिया। उसी समय कैनिंग-कालेज के प्रो० गाल विलायत जा रहे थे। आप भी उन्हीं के साथ रवाना हो गये। वहाँ बैरिस्टरी तो पढ़ते ही थे, साथ ही साहित्यिक अध्ययन भी जारी था। दर्शन, राजनीति और समाजशास्त्र को ख़ास तौर पर पढ़ा। स्पेन्सर, डार्विन, टिंडल, मेकाले, कार्लाइल, मिल, फ्रूड, आर्नल्ड, हक्सले, बर्क-जैसे प्रकाण्ड पंडितों की

१. देशपूजक और देशवासियों का हितेच्छु; २. [illegible]; ३. क़लम; ४. ख़ुश; ५. सभापतित्व; ६. वाइसराय की कौंसिल के मेम्बर थे; ७. आसमान पर उड़नेवाली (गर्वपूर्ण); ८. मौन प्रकृति के; ९. भाषा।

१. सौजन्य रीति।



पुस्तकें पढ़ीं, जिनमें से अन्त के छः लेखकों की कृतियाँ तो आपको बहुत ही जँचीं। बड़े-बड़े अँगरेज़-कवियों का कलाम भी देखा। शेक्सपियर, बाइरन, शेली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ, टेनीसन पर तो आप मुग्ध ही थे। इसका यह मतलब नहीं कि आपको अँगरेज़ी के अलावा और किसी भाषा से लगाव न था। विलायत जाने के पहले और पीछे अँगरेज़ी के साथ फ़ारसी-उर्दू पुस्तकें भी ख़ूब देखते थे और कवि एवं कविता से तो घनिष्ठता थी ही। उर्दू कवियों में आतिश, ग़ालिब और अनीस को पसंद करते थे और अनीस[1] को तो सभी उर्दू कवियों से बढ़कर मानते थे। उर्दू के साथ हिन्दी के भी हामी थे और राष्ट्र की उन्नति के लिए दोनों का होना आवश्यक समझते थे। विस्तृत अध्ययन ने जहाँ आत्मा को उन्नत और हृदय को विशाल बना दिया था, वहाँ मस्तिष्क में भी वह शक्ति भर दी थी, जो निष्पक्ष होकर बहुत दूर तक सोच सके।

स्वर्गीय अब्र का सम्बन्ध मरते दम तक लखनऊ से रहा। उनके जीवन का अधिकांश भी वहीं बीता। वहीं उन्होंने समष्टिरूपेण अपनी शिक्षा भी समाप्त की। वहीं उनकी कविता का प्रारम्भ हुआ और वहीं विकास भी। वहीं के मुशायरों में समस्यापूर्तियाँ द्वारा उन्हें अभ्यास का काफ़ी मौक़ा मिला। वहीं वह शायरी में जनाब हकीम लखनवी[2] के शागिर्द हुए। उन्होंने लखनवी शायरी का पिछला ज़माना भी देखा और अगला भी। सारांश यह कि उन पर लखनऊ के ही वातावरण का प्रभाव बराबर पड़ता रहा। पर ऐसा जान पड़ता है कि वह प्रभाव केवल भाषा और भाव की सुन्दरता तक सीमित था। उनके कलाम में उस श्रृंगारी अतिवर्णन का लेश भी नहीं, जिसके लिए लखनवी शायरी प्रायः बदनाम है। यदि श्रृंगार है भी, तो बहुत कम और बहुधा ऐसी सूक्ष्म रीति पर कि वह भौतिकता के साथ आध्यात्मिकता की ओर भी संकेत करता हुआ प्रतीत होता है। उनकी ग़ज़लों में अधिकतर कहीं खुली आध्यात्मिकता है, कहीं नीति, कहीं शिक्षा और कहीं कोरी काव्य-कल्पना। कथन में कुछ ऐसी गम्भीरता है कि कल्पना पर भी वास्तविकता का भ्रम हो सकता है, परन्तु जैसे आपकी ग़ज़लों में नाममात्र के लिए राजनीति की झलक है, उसी प्रकार आपकी गम्भीरता कभी भूलकर अपने में हास्य को स्थान दे देती है। देहली के एक निजी मुशायरे में आपने एक ग़ज़ल पढ़ी थी, जिसके कुछ पद ये हैं—

विसाते-दह्र[1] में हैं नक़्श क्या-क्या ज़ोह्दोरिन्दी[2] के,
कहीं तस्वीरे-मसजिद है कहीं तस्वीरे-मैख़ानाँ[3]।
बिठाया नक़्शे-चश्मे-मस्त दिल में यादे-अब्रू[4] ने—
नज़र में काबा था और खिंच गई तस्वीरे-मैख़ाना।
क़यामत तक रहे जारी यह सीग़ा[5] आबकारी का,
इसी के दम से है चमकी हुई तक़दीरे-मैख़ाना।
मुज़ैयन[6] मुहरे-सुलतानी[7] से होकर बोतलें आईं,
यह फ़ैज़े-हाकिमे-दौराँ[8] से है तक़दीरे-मैख़ाना।

जहाँ ऊपर के दो पदों में गम्भीरता है, वहाँ नीचे के दोनों पद गम्भीरता के साथ हास्य का

---

१. मीर अनीस लखनवी के मर्सिये अपने रंग में लाजवाब हैं; २. हकीम साहब जनाब असीर लखनवी के सुपुत्र थे, जिन्हें अपने फ़न में उस्तादी का दर्जा हासिल था।

१. दुनिया का फ़र्श (दुनिया); २. ज़ोह्द=पाकीज़गी + रिन्दी=मस्ती; ३. शराबख़ाने का चित्र। ४. माशूक़ की मस्त आँखों को शराबख़ाना और अब्र (भ्रू) को मेहराबदार होने के कारण 'काबा' कहा। शेर का मतलब यह है कि दिल को 'अब्रू' की याद आई, पर वह तो याद ही के रूप में रह गई, हाँ यह ज़रूर हुआ कि उस याद के साथ ही दिल में आँखों का नक़्शा जम गया। मानो अपनी नज़र में तो था 'काबा' पर तसवीर खिंच गई शराबख़ाने की! (यह अन्धेर ही तो है!); ५. विधान; ६. सजी हुई; ७. शाही मुहर; ८. शासकों की उदारता।

...ङ्ग भी लिये हुए हैं। पर सच पूछिए तो ...ल या व्यंग उनकी प्रकृति के प्रतिकूल ही था। ...उनकी ग़ज़लों की शब्दावली प्राय: कठिन होती ...पर वह प्रयत्न अवश्य करते हैं कि उनकी बात ...समझने में कठिनाई न हो और अपने प्रयत्न में ...सफल भी होते हैं। हाँ, वह कभी-कभी ...के अनुसार भाषा की ओर भी विशेष ध्यान ...हैं और तब किसी समय ऐसा जान पड़ता है ...वह ख़ालिस हिन्दुस्तानी ज़बान बोल रहे हैं। ...की 'फ़िराक़'[1] शीर्षक कविता के कुछ पद ये हैं—

...डिज़ा ! तुझसे तबीअत जो बहल जाती है,
...जो आई तो मेरे दिल में यह लहर आती है;
...दुख तुझको सुनाऊँ मैं बहन ! तू जो सुने,
...से आज तबीअत मेरी घबराती है;
...परदेस गये जब से कुछ ऐसे चुप हैं,
...तो ख़त आता है कोई न ख़बर आती है;
...मालूम कि क्या उन प गुज़रती होगी,
...ध्यान आता है तब जान प बन जाती है;
...तो रो-रो के किसी तरह से कट जाता है,
...फटती है मेरी रात जहाँ आती है;
...जाती हूँ घबराके मैं चौंक उठती हूँ,
...से चादर भी जो सोते में सरक जाती है;
...परदेस में भी मुझको वह करते होंगे,
...सबब है जो तबीअत मेरी घबराती है।

...तो हमें उनकी नज़्में कुछ अधिक अच्छी न ...। वह ग़ज़ल के शायर थे और बहुत अच्छे ...थे। पर ऊपर के पद दर्शनीय हैं, जो किसी ...के मुँह से कहलाये गये हैं। औरत की ...है, कैसी प्यारी और दर्दभरी ! कल्पना कम ...पर यदि हृदय के भावों का हृदय की ...में प्रकट करना ही काव्य है तो वह काव्य ...है। अन्तिम पद में घबराने का सबब भी ...से खोजा गया है। 'परदेसी पिया' का ...करना ही वियोगिनी के दिल में घबराहट ...करता है और वह कोकिल की वेदनामयी ध्वनि में सहानुभूति की झलक देख उसके आगे अपना दुखड़ा रोती है।

अब हम अब्र साहब की ग़ज़लों के कुछ चुने हुए पद नीचे देते हैं, जिससे हमारी उस राय की पुष्टि होगी, जो हमने ऊपर ज़ाहिर की है। वस्तुत: उनकी कोई ग़ज़ल ऐसी नहीं है, जो सुन्दर पदों से शून्य हो और जिससे उनका उस्तादाना कमाल न प्रकट होता हो। देखिए—

उलटे देती है मुझे गर्दिशे-पैमाना जुदा,
होश उड़ाती है मेरे नरगिसे-मस्ताना[1] जुदा।
जलना आप और है औरों का जलाना कुछ और,
गर्मिए-शमा[2] जुदा सोज़िशे-परवाना[3] जुदा।
आप भर जाता है वह कोई भरे या न भरे,
सारे पैमानों से है उम्र का पैमाना जुदा।

पहला पद—एक तो शराब के प्याले का दौर मुझे बेहोश कर रहा है, दूसरे (साक़ी की) मद-भरी आँखें मेरे होशोहवास को और भी गुम किये देती हैं। ग़रज़े कि प्रेमिका की महफ़िल में मेरे लिए विना पिये भी बेहोशी ही बेहोशी है ! [कवि ने प्याले का सिर्फ़ घुमाया जाना लिखा है]। 'गर्दिश'-शब्द काव्य की दृष्टि से 'पैमाना' और 'आँख' दोनों पर लागू हो सकता है। दूसरी ओर 'गर्दिश' के ख़याल से 'उलटने' का ज़िक्र हुआ, जो बहुत मौज़ूँ है।

दूसरा पद—'शमा' और 'परवाने' की जलन में अन्तर है। पहली दशा में आप जलना है और दूसरी में और का जलाना। आप जलना अपनी इच्छा से है, अत: पीड़ारहित, पर दूसरे का जलाना उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं, अत: पीड़ाजनक है। प्रमाणित हुआ कि परवाने के दिल में जो अप्रकट जलन है, वह शमा की प्रकट जलन से कहीं अधिक महत्त्व रखती है। तीसरे पद में कवि ने काव्य-कौशल

[1] वियोग।

१. नरगिस=आँख की शक्ल का एक फूल; आँख; २. मोमी चिराग़; ३. शलभ (पाँखी), जो शमा का आशिक़ कहा जाता है।



के साथ एक तथ्य की बात कही है और बड़ी सफ़ाई से।

> शजर हजर में जो पिनहाँ जमाले-यार हुआ,
> हिना में रंग हुआ संग में शरार हुआ।
> नतीजा ऐशे-जवानी का है ग़मे-पीरी,
> सुरूरे-शाम हमें सुबह को ख़ुमार हुआ।
> अजीब सोज़े-मुहब्बत ने सूरतें बदलीं,
> जिगर में दाग़ हुआ नब्ज़ में बुख़ार हुआ।

पहला पद—पेड़ और पत्थर में यार का हुस्न इस तरह छिपा कि मेंहदी में रंग बना और पत्थर में चिनगारी। शाब्दिक योजना, सुन्दरता और सूक्ष्मता दर्शनीय है। पद में ईश्वरीय सौन्दर्य की ओर संकेत है।

दूसरा पद—जवानी के ऐश का नतीजा बुढ़ापे के ग़म के रूप में उसी तरह ज़ाहिर होता है, जैसे शाम की पी हुई शराब का ख़ुश करनेवाला नशा सबेरे बेचैनी भरा ख़ुमार बन जाता है। कवि ने 'शाम' को स्याही के कारण 'जवानी' और 'सुबह' को सफ़ेदी के कारण 'बुढ़ापा' कहा है, जो ठीक ही है। प्रथम दल की बात को प्रमाणित करने के लिए द्वितीय दल की युक्ति भी काव्योपम है।

तीसरा पद—प्रेम की जलन ने भी (यथास्थान) विचित्र रूप धारण किये, यानी कलेजे में तो जलता हुआ दाग़ बनी और नब्ज़ में सिर्फ़ बुख़ार बनकर रह गई!

पदों का सुन्दर काव्यप्रवाह दर्शनीय है।

> रोने में शामिल हँसी हँसने में रोना है शरीक,
> बज़्मे-हस्ती की हमें तस्वीर दिखलाती है शमअ।
> है ज़बाँ लेकिन ज़बाँ में ताबे-गोयाई नहीं,
> दिलही दिल में और इस ग़म से घुली जाती है शमअ।
> देखती है रात भर ऐशो-तरब[1] का रंग-ढंग,
> सुबह को रोती हुई महफ़िल से उठ जाती है शमअ।

पहला पद—'शमअ' का जलना हँसना है और साथ ही उसका पिघलते जाना रोना, मानो शमअ क्या है दुनिया की महफ़िल का हूबहू नक़्शा है, जिसमें हँसना-रोना, हर्ष-शोक, दोनों मिली-जुली रीति पर मौजूद हैं।

दूसरा पद—शमअ का घुलना शोक से है, जिसका कारण यह है कि वह लौरूपी जिह्वा तो रखती है, पर जिह्वा में कथनशक्ति नहीं। शमअ को ज़बान का दुःख है, इसलिए घुलती है, फिर उस दुःख के प्रकट करने का साधन न पाकर अधिक दुःख से और भी घुलती जा रही है।

तीसरा पद—शमअ रात भर महफ़िल में रंग-रलियों की बहार तो ज़रूर देखती रहती है, पर नतीजा क्या होता है? यही कि सबेरे उसे वहाँ से रोते हुए बिदा होना पड़ता है। [यों तो शमअ के लिए रोना हर हालत में है, पर महफ़िल के रहते उस रोने का अनुभव कम हो सकता है।] या यों कहो कि शमअ रात की रंगरलियाँ देख-देखकर उनकी अनित्यता पर रोती भी रहती है और सबेरे उसी तरह बिदा हो जाती है।

> ख़त्म इस बात प हम करते हैं अफ़सानए-इश्क़,
> सबसे हुशियार वही है जो है दीवानए-इश्क़।
> हुई आरास्ता जब बज़्मे-जहाँ रोज़े अज़ल,
> शमए-हुस्न आप हुए मैं हुआ परवानए-इश्क़।
> ज़ुल्फ़ बिखराये हुए बैठा है वह रश्के-परी,
> पा-ब-ज़ंजीर चले आते हैं दीवानए-इश्क़।

पहला पद—प्रेमकथा को सिर्फ़ इसी एक बात पर ख़त्म किया जाता है कि यदि कोई सबसे होशियार है तो प्रेम का दीवाना ही। कथा के अन्त में उसी से सम्बन्ध रखनेवाली कोई ख़ास बात कही जाती है, सो ऊपर की बात से बढ़कर और हो ही कौन सकती है? कैसी मौज़ूँ और सच बात है, जो लोक और परलोक दोनों की दृष्टि से एक-सी ज़ोरदार और वज़नदार है।

दूसरा पद—जब आदि दिवस पर जहान की महफ़िल सजाई गई, तभी से आप हुस्न की शमअ बने और मैं इश्क़ का परवाना। तात्पर्य यह कि सृष्टि-रचना के प्रारम्भ से ही आपके सौन्दर्य और मेरे प्रेम की रचना हुई और दोनों एक दूसरे से

---

१. ग़ुस्स ; २. ऐश और ख़ुशी।

...बद्ध हुए। अतः प्रेम का स्थायी होना या कम ...कम 'रोज़े-अबद' (रचनान्तदिवस) तक बना ...रहना नितान्त स्वाभाविक है। पद का सम्बन्ध ...ईश-प्रेम से तो है ही, पर रचना-कौशल ने उसमें ...एक टपकती हुई शृंगारी शान भी पैदा कर दी है।

तीसरा पद—वह परी-जैसा माशूक़ अलकें ...फैलाये हुए बैठा है। जिससे प्रेम के दीवाने उसकी ...ओर पैरों में ज़ंजीर डाले बँधे हुए चले आ रहे हैं। ...'ज़ुल्फ़' की रियायत से 'पा-ब-ज़ंजीर' और 'परी' ...के ख़याल से 'दीवानए-इश्क़'[1] का प्रयोग हुआ है। ...बहरहाल दूसरा कारण पहले के अनुरूप ही कहा ...जा सकता है और अत्यन्त काव्योचित है। अब पूरे पद ...को आप चाहे ईश-प्रेम पर लागू कर लीजिए, चाहे ...लौकिक सम्बन्धी प्रेम पर। और लुत्फ़ उठाना हो ...तो राजनीतिक आशय भी निकल सकता है। इस ...पद से मौलाना मुहम्मदअली 'जौहर' का यह ...पद बहुत कुछ लगा खाता है—

...क़ैदे-गेसू[2] से भला कौन रहेगा आज़ाद,
...तेरी ज़ुल्फ़ों का जो शानों[3] प बिखरना है यही।

...बहार आई उठा फिर सहाबे-ख़न्दए-गुल[4],
...बरस रही है चमन में शराबे-ख़न्दए-गुल।
...ग़ज़ब का होगा अरूसे-बहार का जोबन,
...कि जिसके रुख़ के लिए है निक़ाबे-ख़न्दए-गुल।
...तबस्सुमे-लबे-शीरीं की क्या करूँ तारीफ़,
...न होता यह तो न होता जवाबे-ख़न्दए-गुल।
...जो शै थी मिला वैसा ही ज़र्फ़[5] भी उसको,
...सुबूए-ग़ुंचा[6] में भर दी शराबे-ख़न्दए-गुल।
...हैं हुस्नो-इश्क़ की नाज़ो-नयाज़[8] की बातें,
...सवाले-गिर्यए-बुलबुल जवाबे-ख़न्दए-गुल।

पहला पद—बसन्तऋतु के आते ही पुष्प-हास्य-रूपी बादल उठा, जिससे पुष्पोद्यान में पुष्प-हास्य-रूपी ही शराब बरस रही है। बहार में फूल खिल-खिलकर हँसते ही हैं, जिसे देखकर सुरूर की मस्ती पैदा होती है। उर्दू काव्य में 'बहार', 'सहाब' और 'शराब' तीनों का ऐसा पारस्परिक सम्बन्ध है, जो अनिवार्य है।

दूसरा पद—कवि ने बहाररूपी दुलहिन के मुख के लिए पुष्पहास्यरूपी आवरण की कल्पना की है और कहता है कि जिस मुख का आवरण इतना सुन्दर है, उस मुख की सुन्दरता तो वर्णनातीत ही होगी।

तीसरा पद—मीठे लबों पर के हास्य की क्या प्रशंसा की जाय? यही कहना काफ़ी है कि उसके न होने पर पुष्पहास्य की बराबरी करनेवाला कोई न होता।

चौथा पद—जैसी वस्तु थी वैसा ही पात्र भी मिला, अर्थात् पुष्प-हास्यरूपी मदिरा भरी गई तो कलिकारूपी घट में। यह प्रत्यक्ष ही है कि फूल की हँसी कली में छिपी रहती है।

पाँचवाँ पद—बुलबुल गुल का आशिक़ माना गया है। आशिक़ का काम है रोना और माशूक़ का हँसना, मानो रोना सवाल है और हँसना जवाब। इन्हीं को कवि पद के प्रथम चरण में प्रेम एवं सौन्दर्य, नाज़ और नयाज़ की साधारण बातें बताता है, जो उपर्युक्त प्रश्नोत्तर के रूप में प्रकट हुआ करती हैं।

सभी पद ख़ूब सजे हुए और काव्यकल्पना की सुन्दरता, कोमलता तथा उच्चता के परिचायक हैं। बड़ी बढ़िया ग़ज़ल है। कवि ने 'ख़न्दए-गुल' के प्रास को अनेक रीतियों पर निभाकर वाक़ई कमाल कर दिखाया है।

यह क्या इसरार[1] है बेहोश होकर होश आता है,
ख़ुदी जब भूल जाते हैं ख़ुदा को याद करते हैं।
यह ज़ौरे-गुल का बुलबुल रात-दिन क्या राग गाती है,
जो आशिक़ हैं कहीं माशूक़ की फ़रियाद करते हैं।

---

1. दीवाना और 'परी' में पारस्परिक सम्बन्ध भी है। ...परी स्त्रीलिंग है 'जिन' का, जो बहुत ही ख़ूबसूरत भी ...मानी गई है। 'परी का साया होना' मशहूर ही है, ...जिसका नतीजा 'दीवानगी' है; २. केशपाश में क़ैद ...होना; ३. कंधों; ४. गुल=गुलाब का फूल; ५. बर्तन; ६. सुराही; ७. कली; ८. नाज़=बेपरवाई (माशूक़ का ...गुण)+ नयाज़=परवा होना (आशिक़ का गुण)।

1. भेद।



जो जन्नत की हवस में कारे-दुनिया छोड़ बैठे हैं,
तमा में सूद की वह अस्ल को बरबाद करते हैं।
ग़ज़ब है जाल दुनिया का क़यामत इसके फन्दे हैं,
हवस तौके-असीरी[1] की यहाँ आज़ाद करते हैं।
नहीं जन्नत प कुछ मौक़ूफ़ दोज़ख़ पर भी क़ब्ज़ा है,
फ़रिश्तों को भी मातए 'अब्र' आदमज़ाद करते हैं।

पहला पद—'ख़ुदी' यानी 'अहंभाव' के न रहने पर ही ख़ुदा की पूरी याद हो सकती है, मानो बेहोश होकर ही होश आता है। कवि कहता है कि यह एक ऐसा भेद है, जो समझ में नहीं आता।

दूसरा पद—आशिक़ तो अपने माशूक़ की शिकायत कभी न कर, उसकी रज़ा पर राज़ी रहते हैं, बल्कि उसके ज़ुल्म का भी शुक्रिया अदा करते हैं, फिर बुलबुल क्यों गुल के ज़ुल्म का रात-दिन शिकवा किया करती है, जो प्रेमविधान के सर्वथा विरुद्ध है। पद को ईशप्रेम पर भी लागू किया जा सकता है। [बुलबुल का बोलना ही 'शिकवा' है]

तीसरा पद—स्वर्ग की हवस में दुनिया का काम छोड़ बैठना वैसा ही है, जैसा सूद के लालच में मूलधन को नष्ट करना। आख़िर सूद भी तो मूलधन पर ही मिलता है—स्वर्गप्राप्ति के लिए निष्काम कर्मों का सहारा लेना ही पड़ता है। 'सूद' और 'अस्ल' की बात में जितना ही काव्य है, उतना ही सत्य भी।

चौथा पद—दुनिया का जाल भी कितना ज़बरदस्त है और इसके फन्दे भी किस बला के हैं कि आज़ाद लोग भी उसमें फँस जाने की हवस रखते हैं। ठीक ही है।

पाँचवाँ पद—कवि ने बड़ी युक्ति के साथ इन्सानों से फ़रिश्तों को मात दिलाई है। कहता है कि फ़रिश्तों का क़ब्ज़ा तो स्वर्ग ही भर पर है, मगर इन्सानों का दख़ल स्वर्ग और नरक दोनों पर है। तो अब सोचिए, अधिकार की दृष्टि से इन्सान फ़रिश्ते से बढ़कर हुआ न? वाह री कवि की सूझ! काव्य है, व्यंग है और उपदेश भी।

१. क़ैद का तौक (वह तौक जो क़ैदी गले में पहनते हैं)।

नज़र आते नहीं जो चश्मे-बुलबुल[1] को भी गुलशन[2] में,
निगाहे-शौक़ चुन लेती है उन फूलों को दामन में।
किसी दम गर्दिशे-ऐय्याम[3] से ग़ाफ़िल नहीं रहते,
नज़र रखते हैं हम साये प अपने रोज़े-रौशन में।
ख़ुदा जाने हँसी किसकी है किसकी मुसकराहट है,
न ग़ुंचे मुसकराते हैं न गुल हँसते हैं गुलशन में।
बहुत रोते हैं अब हम याद करके अह्दे-तिफ़ली[4] को,
जवाँ होने की क्या-क्या आरज़ूएँ[5] थीं लड़कपन में।
यह अब नामे-जहाँ की हमने आली हिम्मती देखी,
कहा जब दस्तगीरी को दिया है हाथ गरदन में।
इधर संगे-हरम[6] है और उधर है संगे-बुतख़ाना[7],
मज़ा जब है कि अब पत्थर चलें शेख़ो-बरहमन में।

पहला पद—बुलबुल की निगाह भी गुल के शौक़ से भरी—ख़ूब भरी—हुई है, पर बाहरी गुल तक ही सीमित है। उसे वे सौन्दर्यरूपी पुष्प कहाँ दिख सकते हैं, जो वाटिका क्या, स्थान-स्थान पर बिखरे पड़े हैं! उन्हें तो मनुष्यों की ही निगाह देख सकती है, बशर्ते कि उसमें वाक़ई शौक़ हो।

दूसरा पद—कवि धूपदार दिन में अपनी परछाईं को देखते रहने की बात से यह बतलाता है कि वह अच्छे दिनों में भी बुरे दिनों की ओर से असावधान नहीं रहता, फिर यह ठीक ही है कि 'साया' धूप के साथ-साथ रहा ही करता है। मनुष्य पर कभी अच्छा वक़्त पड़ता है, कभी बुरा।

तीसरा पद—बड़ा सुन्दर और आध्यात्मिकता के रंग में रँगा हुआ है। कवि ने 'ख़ुदा जाने' कहकर मानो यह संकेत किया है कि ईश्वर की लीला है, जिसे वही जान सकता है।

१. बुलबुल की आँख; २. पुष्पवाटिका; ३. दिनों का फेर; ४. बचपन का ज़माना; ५. कामनाएँ; ६. 'काबा' का पत्थर, जिसे हजरुलअसवद (स्याह पत्थर) कहते हैं और जिसके छूने से पापों का दूर होना माना जाता है। उसी का पूजनेवाला 'शेख़' है; ७. मंदिरवाली पत्थर की मूर्तियाँ जिन्हें 'बरहमन' पूजता है।



पाँचवाँ पद—जहान के लोगों की यह बलन्द-हिम्मती तो देखिए कि जब उससे हाथ पकड़ने (सहायता) का सवाल किया जाता है तो वे उससे और ऊपर होकर गरदन में हाथ लगाते हैं—अपनी नीचता और असभ्यता के साथ गरदनी देकर निकाल बाहर करते हैं।

छठा पद—अब वही हो भी रहा है! जब तक मन का झुकाव बाहरी तरफ़ रहेगा, तब तक वही सब होता भी रहेगा। ज्यों-ज्यों वह भीतरी होता जायगा, आपस का फ़र्क़ और फ़साद भी मिटता जायगा। तब वह 'अफ़ीम' न होकर ऐसा अमृत होगा, जिसे पीकर मनुष्य में एकता और मुहब्बत पैदा होगी।

हुजूमे ग़म से चाकदामाँ शबनमे[1] अलमे[2] से गिरियाँ,
कली गुंचए-गुलिस्ताँ लिपटा है याँ कफ़न में।
या रब! बहार आये रंगीं शराब बन के,
तौबा[3] का ख़ून टपके अंगूर से चमन में।

पहला पद—दुनिया में रंजोग़म की इतनी कसरत है कि गुलिस्ताँ (पुष्पवाटिका) जैसी ख़ुश रहनेवाली जगह भी अछूती न बची। वहाँ भी फूल का दामन फटा है, ओस रो रही है और कली है मानो अपने आप कफ़न ही में लिपटकर रह गई है!

दूसरा पद—काव्य की दृष्टि से बड़े मार्के का है। बहार में शराब का शौक़ तेज़ होता है—यहाँ तक कि शराब से की हुई 'तौबा' भी टूट सकती है। कवि कहता है कि या ख़ुदा! बहार आये, जिससे इतना तो हो कि चमन में अंगूरों से 'तौबा' का ख़ून लाल शराब बनकर टपके! मतलब यह कि लाल शराब उसी 'तौबा' का ख़ून है, जिसे लोग बहार की मस्ती में ज़बह कर देते हैं—करते हैं। [ख़ून का अंगूर से टपकना अंगूरी शराब के ख़याल से कहा गया है।]

जो चाहे जौरे-ख़िज़ाँ हो यक़ीन रख बुलबुल,
बहार आये फिर आये हज़ार बार आये।

१. ओस; २. ग़म; ३. बुरे काम से बचने की प्रतिज्ञा।

करीमे[1] देता है घर बैठे यों फ़क़ीरों को,
चमन में जिस तरह दरिया से जूमवार[2] आये।
गदाय-हुस्न के हक़ में यह हुक्म सादिर है,
घर और देखे मेरे घर न बार-बार आये।
असीरे-कुंजे-क़फ़स[3] को चमन से क्या मतलब,
मेरी बला से ख़िज़ाँ आये या बहार आये।
हैं जितने लोग जहाँ में ज़बानें उतनी हैं—
किसी की बात का क्या हमको एतबार आये।

पहला पद—चाहे पतझड़वाले मौसम का जितना ज़ुल्म हो, मगर ऐ बुलबुल! निश्चय ही 'बहार' तो बहकर आयेगी (और तुझे गुलाब के फूलों का मुँह देखना फिर नसीब होगा)। मतलब यह कि रंज के बाद ख़ुशी का होना यक़ीनी है।

तीसरा पद—सौन्दर्य के भिक्षुक के लिए सौन्दर्य (प्रेमिका) के दरबार से यह हुक्म है कि 'घर और देखे मेरे घर न बार-बार आये।' कवि ने यही बात सरलता से पद्य-बद्ध कर दी है, जो जवाब पाये हुए फ़क़ीरों से प्रायः कही जाती है।

पाँचवाँ पद—प्रथम दल की पूरी बात एक लोकोक्ति है, जिससे कवि ने द्वितीय दल में एक बिलकुल स्वाभाविक परिणाम निकाला है।

सभी पदों में काव्यसौन्दर्य एवं प्रवाह है। सरलता के साथ स्वाभाविकता भी है।

ख़याल इसका भी कुछ है क्या दिले-आशिक़ प गुज़रेगी,
हँसी समझे हुए हो वादा करना और मुकर जाना।
अदमे[4] की राह में इक गोरे[5] की मंज़िले[6] भी पड़ती है,
सफ़र है दूर का थकना तो दम लेने ठहर जाना।
अदम से तो यहाँ तक खींच लाई है क़ज़ा[7] हमको,
यहाँ से देखिए होता है अब अपना किधर जाना।
गुज़रगाहे-जहाँ[8] में 'अब्र' जो है वह मुसाफ़िर है,
यही आलमे[9] हर इक का है इधर आना उधर जाना।

दूसरा पद—कोरी काव्य-कल्पना है, कदाचित्

१. दाता; २. नहर; ३. पिंजड़े के गोशे का क़ैदी; ४. न होना (परलोक); ५. क़ब्र; ६. पड़ाव; ७. ईश्वरीय आज्ञा; ८. संसाररूपी यात्रा-स्थान; ९. हाल।



इसलिए कि कवि जानेवाले को कुछ दिलासा दे सके। कथनशैली भी बहुत आश्वासनपूर्ण है।

तीसरे पद—में भी वही कल्पना है, अन्यथा कवि के सिद्धान्तानुसार तो न कहीं आना है, न जाना। यहाँ इसी के जोड़ का एक स्वरचित पद भी दे देना उचित समझता हूँ—

अदम से लाई तो हस्ती में तेरी बेताबी।
अब इज़्तराब है जाने-हज़ीं! कहाँ के लिए?

[ऐ दुःखी आत्मा! तेरी बेचैनी का यह नतीजा तो हुआ कि परलोक से इहलोक में आना पड़ा। पर तेरी यह बेचैनी अब भी बनी हुई है। पता नहीं, अब तू कहाँ जाने के लिए तड़प रही है।]

चारों पद बड़े सरल तथा सुस्पष्ट हैं और उनमें एक ऐसी अप्रकट वेदना है, जो हृदय में स्थान किये बिना नहीं रहती।

हमने उपर्युक्त चयन द्वारा यह दिखा दिया कि 'अब्र' साहब किस पाये के कवि थे। उनकी राजनीतिक ख्याति भी कुछ कम न थी। लेखक की हैसियत से भी वह बहुत मशहूर हो चुके थे। ख़ुलासा यह कि वह एक बहुत बड़े इन्सान थे। फिर भी अपने बड़प्पन का दिखावा उन्हें मंज़ूर न था। इँगलैंड के प्रसिद्ध कहानी-लेखक स्टील महोदय ने पुस्तकरूप में छापने के लिए लेखों का संग्रह तलब किया था। उत्तर में आपने भेजने का वादा भी कर लिया। पर संग्रह था कहाँ कि भेजा जाय। हाँ, आपके मित्रों के पास कुछ लेख सुरक्षित थे। वही जमा करके आपको दिये गये। स्टील साहब ने भी तक़ाज़े किये। फिर भी आपने मसविदा न भेजा और उसे खो भी डाला! इसी तरह किसी जर्मन वैज्ञानिक ने भी एक लेख माँगा था, जिस पर आपको पी-एच्० डी० (दर्शनाचार्य) की उपाधि मिलती। पर लेख लिखना और भेजना तो दूर रहा, आपने प्रार्थना-पत्र को भी रद्दी की टोकरी में डालकर ही दम लिया।

सड़क पर

"शेखर"

मेरा मकान अथवा यों कहिए कि अपने मकान के जिस कमरे में मैं प्रायः बैठता हूँ, उसमें पश्चिम की ओर एक खिड़की है। काफ़ी बड़ी-सी खिड़की है।

जो सड़क कि स्टेशन से सीधी कचहरी को गई है, ठीक उसके ऊपर ही यह खिड़की खुलती है। सर्दियों में सवेरे ही यहाँ धूप आ जाती है और गर्मियों में सूर्य मकान के पीछे की ओर होने से उसकी किरणें यहाँ प्रवेश नहीं कर पाती हैं।

मैं प्रायः इसी खिड़की में बैठकर नीचे, दिन-रात बहती हुई सड़क की ओर देखा करता हूँ।

यह कोलटार की पक्की सड़क असंख्य पदाघातों द्वारा ताड़ित होकर भी, अपने उर पर कालिख पुतवाकर भी किस असीम धैर्य से सबकी प्रतारणा सहती है।

इसके गर्भ में न जाने कितने भेद छिपे पड़े हैं। कितने ही काण्डों की प्रत्यक्ष साक्षी होकर भी अपने ऊपर किये गये अत्याचारों को भुलाकर यह उन्हें अनन्त काल तक आच्छादित रखती है।

मैं वहीं बैठता हूँ, निरन्तर बहती हुई सड़क की ओर देखता हूँ। सभी तरह के लोग इस पर से होकर निकलते हैं। बड़े आदमी शानदार कारों में, मध्यम श्रेणी के सेकन्ड हैन्ड कम ख़र्चवाली सस्ती मोटरों में और निम्न श्रेणीवाले किराये के ताँगों पर, साइकिलों पर या पैदल ही।

हाँ, सेकन्ड हैन्ड बेबी फ़ोर्ड के सिलसिले में मुझे एक बात याद आ गई।

मिस्टर भाटिया मेरे एक मित्र हैं। इसका प्रमाण यह है कि मैं कई बार उनके यहाँ ब्रिज खेलने और चाय पीने गया हूँ। वे भी कई बार मेरे यहाँ ऐसे ही कार्यों के लिए तशरीफ़ ला चुके हैं। इसका दूसरा प्रमाण यह है कि टेनिस के टूर्नामेंट में हम दोनों ही एक दूसरे के पार्टनर्स (साथी) होते हैं। एक और प्रमाण भी देता हूँ। उनकी बीबी जो कपड़ा ख़रीदती हैं, जो गहना बनवाती हैं, जो क्रीम या पाउडर लगाती हैं, प्रायः उन सभी की फ़रमाइश मेरे घर से भी हो जाती है। इस बीसवीं सदी में डिनर और चाय का दान प्रतिदान ही, टेनिस की पार्टनरशिप ही, क्रीम और पाउडर की एकता ही तो मित्रता के चिह्न हैं।

मिस्टर भाटिया बड़े साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी हैं। पहले वे सिर्फ़ रामदास थे। उनकी शिक्षा केवल मैट्रिक तक ही हुई थी। उसके बाद उन्होंने टाइप और शार्टहैन्ड सीखकर साहब के दफ़्तर में नौकरी कर ली। उस समय लोग उन्हें रामदास कहते थे। न मालूम कैसे, वे साहब के ख़ास मर्ज़ीदान हो गये। लोग उन्हें बाबू रामदास कहने लगे और जब कि वे साहब बड़े साहब हो गये, तो बाबू रामदास भी अपने नाम को तिलांजलि देकर मिस्टर भाटिया कहलाने लगे।



पहले वे पैदल थे। मैंने उन्हें सड़क पर जूते फटकारते जाते देखा है। फिर उन्होंने साइकिल ली, और अब मोटर अलाउन्स मिलने पर उन्होंने एक सेकन्ड हैन्ड बेबी फ़ोर्ड ले ली है और भला हो इस बीसवीं शताब्दी के फ़ैशनों का, इसी की आड़ में वे ख़ुद मोटर चलाकर ही उस पचास रुपये के अलाउन्स में भी कुछ न कुछ बचत कर ही लेते हैं।

मैं सोचता था, मैंने एम्० ए० पास किया, वकालत भी पास की है, लेकिन फिर भी कहीं से भी कुछ भी न पाकर इसी खिड़की में यहीं कुर्सी डालकर बैठा सड़क की ओर देखता रहता हूँ। सभी महकमों में मैंने दरख़्वास्तें दीं, सभी अफ़सरों की मैंने ख़ुशामदें कीं, लेकिन सभी ने एक ही उत्तर दिया। ऊपर से अत्यन्त गौरवप्रद होने पर भी उसमें प्रत्यक्ष इन्कारी थी।

प्रायः सभी ने यही कहा, मिस्टर माथुर, मुझे बहुत शोक है कि आपके लायक़ मेरे पास कोई जगह नहीं है।

वैसे संसार में गुज़र तो सभी करते हैं; मैं भी करता हूँ। पिताजी की कृपा से सड़क के ऊपर यह मकान खड़ा है, जिसकी यह खिड़की मेरे निरर्थक जीवन को सार्थक अथवा रोचक बनाने का भरसक प्रयत्न करती है। जो कुछ बैंक में रुपया जमा है, उसके ब्याज से और शहर के एक मकान के किराये से सूटबूट पहनकर टेनिस खेलकर अपनी उच्चता के गौरव की रक्षा करता हुआ दूसरों की दृष्टि में अपने आपको यथासंभव गिरने नहीं देता हूँ। लेकिन यही रामदास, जिसने कि मेरे साथ मैट्रिक पास किया था, केवल टाइप और शार्ट हैंड के प्रभाव से मिस्टर भाटिया बन गया है।

मुझे ऐसा सुन पड़ा शायद चौके में लल्ली से कुछ क़सूर हो गया है। मेरी बीबी की ज़ोर-ज़ोर से बोलने की आवाज़ आ रही थी—कैसी है यह छोकरी—मेरी जान खा लेती है। और फिर एकदम मेरी पुकार हुई "इधर तो आना जी ज़रा। अपनी लाड़ली रानी की करतूत तो देखो।"

लेकिन मैं हिला नहीं। लल्ली सचमुच शैतान है, पर यह शैतानी ही तो उसका भूषण है। स्त्रियों का भूषण लज्जा है, युवकों का विनय और बच्चों का भूषण तो यह शैतानी ही है। लेकिन मैं देखता हूँ, इसी बात पर उस बेचारी को बहुत मार पड़ती है। मेरी और मेरी बीबी की प्रायः इसी बात पर लड़ाई हो जाती है।

फिर आवाज़ आई, क्या कहते हो जी?

मैंने कहा, लल्ली को यहीं भेज दो। तुम तो उसे दिन-रात मारती ही रहती हो।

नाहक कह बैठा मैं यह, वे एकदम बरस पड़ीं। मैं इसकी दुश्मन हूँ, तभी तो तुमने इसे सिर चढ़ा रक्खा है। पुचकार-पुचकारकर इसे ढीठ कर दिया है। फिर लल्ली से बोलीं—जा, दौड़ जा उनके पास। इसका रोना तो देखो, इतना चिंघाड़ती है मानों बिच्छू ने डंक मारा हो, लेकिन आँसू एक भी नहीं आता—जा।

वह बेचारी डरी हुई—सहमी हुई—मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

मैं उसके बालों में धीरे-धीरे हाथ फेरने लगा। सोचता था, यही तो संसार में एक चीज़ है, जिससे मैं दिल बहला लेता हूँ, इसकी भोली सूरत देखकर ही मैं अपने जीवन के विकट नैराश्य को कुछ-कुछ भुला सकता हूँ।

मैंने सड़क की ओर इशारा करके कहा—वह देखो, लल्ली ताँगा आया।

वह बेचारी बड़े ध्यान से उस क्षण-प्रतिक्षण समीप आते हुए ताँगे की ओर देखने लगी। और फिर एक बड़ी-सी मोटर आती देखकर बोली, वह मोटर आ रही है।

"हाँ, बेटी।"

"इसका रंग लाल है न?"

"हाँ"

"देखो, इसमें कितने बड़े-बड़े काँच हैं।" फिर एकदम ज़ोर से बोली—"बाबूजी, मेम बैठी है।"

दूर से एक छावड़ीवाला गुलाबदार रेवड़ी की



...लगाये आ रहा था। लल्ली मचल पड़ी। उसे ...पैसा चाहिए। लेकिन मेरी जेब तो तीन-चार ...से बिलकुल ख़ाली थी। उसकी बढ़ती हुई ...को अन्त में घुड़की से दबाना पड़ा। वह ...वाला आवाज़ देता हुआ चला गया। मेरे ...में कई बच्चों ने लीं। लेकिन लल्ली बेचारी ...चाई हुई आँखों से देखकर ही तरसती रह गई।

मैं इसी खिड़की में बैठकर इसी सड़क की ओर ...करता हूँ। गर्मियों में जब कि सूर्य के प्रचंड ...से इसके वक्षःस्थल पर काले-काले छाले पड़कर ...से कोलटाररूपी काले रंग का ख़ून बहने ...ता है—बरसात में जब कि संताप से उठे हुए ...लों पर रिमझिम करके शीतल नीर गिर-...इसकी इतने दिनों की संचित व्यथा को ...आँसुओं की बाढ़ में बहाकर फिर इसे हर्षित ...देता है—जाड़ों में जब कि सूर्य की किरणों ...वृक्षों की आड़ से चुम्बित हो जाने पर ...धुँधले पट में उसका वक्षःस्थल छिपाकर ...झोर कर देता है, इसे—मैं सदा इसी सड़क ...ओर देखा करता हूँ।

मैं इन अनुभवों को, इस बेचारी निरंतर पदा-...से ताड़ित सड़क के मेरे इन अनुभवों को, ...लोग कल्पनामात्र ही समझेंगे। लेकिन इसके ...किसी को भी दोष नहीं दिया जा सकता। ...में हम सभी जगह यही देखते हैं। दूसरों ...दुःखों का—उनकी आवश्यकताओं का—उनके ...उठते हुए विचारों का—उनकी परिस्थि-...का अनुभव करके भी, हम उन्हें कल्पना ही ...हैं। दूसरों के हृदय की धारणाओं को ...मानकर हम अपने सुख का बलिदान ...कर सकते। उन्हें अनुभव करते हुए भी हम ...किसी तरह दबाने की—कुचलने की—पदा-...द्वारा उन्हें ठुकराने की चेष्टा करते हैं। यही तो ...मनुष्यत्व। मनुष्यत्व में सहानुभूति का—समवेदना ...स्थान कहाँ। अपने ऐश्वर्य के लिए दूसरों ...कष्ट देना ही तो सच्चे सुख की प्राप्ति है। एक सुन्दर-सा आवरण खींचकर हम उसके पीछे अनेक अनाचार, अत्याचार करते हैं।

मुझे याद है, जिस दिन लाट साहब की सवारी इधर से निकलनी थी—मैंने भी एक सच्चे राज-भक्त की तरह अपनी खिड़की को उनके स्वागतार्थ ख़ूब सजाया था। अपने मकान के मस्तक पर अनेकों यूनियन जैक उड़ाये थे।

उन दिनों गर्मियों की झुलसाती हुई लू में भी—मैं देखता था वे बेचारे आठ आने, छः आने रोज़वाले मजूर, एक बीड़ी पीकर, बाजरे की मोटी-सी रूखी रोटी खाकर, अपने शरीर से पसीने की धाराएँ बहाते हुए इसी सड़क की मरम्मत कर रहे थे।

जिस दिन सवारी निकलनी थी—सारी सड़क पर रेत बिछा दी गई थी, उस पर मशकों से पानी डलवाकर उसे तर कर दिया गया था और शाम को कोई साढ़े छः बजे चार घोड़ों की एक चाँदी की बग्घी में बैठे हुए—वे हमारे गौरवर्ण प्रभु दो मिनट में निकल गये थे।

इन दो मिनटों के लिए इतना कष्ट, इतना अपव्यय!

मनुष्य ने जो वस्तु बनाई है—मेरा तात्पर्य इस सड़क से है—उस पर चलने का, उस पर स्वच्छन्द विचरने का अधिकार सभी को है। लेकिन यह जो इतना महान् विश्वमण्डल है, जिसका नियन्ता, जैसा कि हम सुनते आये हैं, और परम्परागत संस्कारों के प्रभाव से मानते आये हैं—वह सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है। क्या उसकी सृष्टि में सबको रहने का, पेट भरकर भोजन करने का, जीवन के दो-चार क्षण हँसकर बिता देने का, अपनी तुच्छाति-तुच्छ इच्छाओं को थोड़ी बहुत पूरी करने का अधिकार, क्या हम सबको नहीं है?

जीवन की विषमता को यह प्रतिक्षण बहती हुई सड़क किस तरह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करती है। हम बहुत कुछ चेतन से सीखते हैं, क्योंकि उसे हम वाणी द्वारा प्रकट सुनते हैं।



लेकिन यह जड़ वस्तु जिसके कण-कण पर अतीत इतिहास की छाप लगी हुई है, जो मोहेन्जोदारो या पोम्पेआई की तरह प्राचीन इतिहास का केवल साक्षी न होकर ही नवीन इतिहास को भी निर्माण करती है, हमारी प्रत्येक क्रिया को जो किसी न किसी रूप में व्यक्त करती है—मानवता के विभागों का जो हमें नग्न रूप में दर्शन कराती है, समाजों के, समुदायों के संघर्ष का जिससे हमें समीचीन रूप से—क्रियात्मक रूप से ज्ञान होता है, उससे भी क्या कभी कुछ सीखने का यत्न किया है किसी ने ? मैं यहीं से बैठा हुआ देखता हूँ, कभी खिलाड़ियों के दल—कभी बरातियों के जलूस—कभी असहयोगियों के समूह—कभी रामनाम सत्य और क़लमा शहादत की धीमी आवाज़ें सुनता हूँ—कभी किसी नेता के दर्शनों के लिए उमड़ता हुआ जनसमूह देखता हूँ।

लेकिन ये तो सभी देखते हैं—नहीं, ये दृश्य तो देखने पड़ते ही हैं। ये तो कभी-कभी के पट-परिवर्त्तन हैं, लेकिन यह बात तो मैं प्रायः प्रतिदिन देखता हूँ।

दस बजनेवाले थे। लोगों के दफ़्तर जाने का समय हो गया था। मैं यहीं खिड़की में बैठा-बैठा देख रहा था। साढ़े नौ बजे के पहले से ही दफ़्तर के बाबू, जिनके कि माथे पर चिन्ता की रेखाएँ और मुँह पर कठोर विषाद की झाँइयाँ पड़ी हुई थीं—निरन्तर लेखनी के परिश्रम से ही जिनके गालों में गड्ढे पड़ गये थे, वे किराये के ताँगे के घोड़े की तरह मंज़िल पर पहुँचने के लिए धीरे-धीरे जा रहे थे। दस बजते-बजते बड़े बाबू कोई साइकिल पर—कोई ताँगे पर अपने मातहतों का सलाम लेते हुए आने लगे और साढ़े दस-ग्यारह बजे छोटे साहब, बड़े साहब अपनी-अपनी मोटरों में निकल गये।

छोटे-बड़े सभी किसी न किसी काम पर चले गये। महीने की पहली तारीख़ को कोई हज़ार-दो हज़ार, कोई पाँच सौ-सात सौ, कोई सौ-दो सौ, तो कोई बीस-पचीस-पचास तनख़्वाह के रुपये अपने घर लाते हैं। कोई सब उड़ा देते हैं। कोई बज़ाज़—पंसारी—मोदी किसी न किसी का ऊपर भी चढ़ा लेते हैं। कोई घर के ख़र्च से बचाकर कुछ न कुछ हर महीने पोस्टआफ़िस में—बैंक में जमा करा देते हैं।

लेकिन मैं, अँगरेज़ी पढ़कर, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० पासकर, यहाँ इसी खिड़की में बैठा हुआ अपनी सारी शिक्षा की बलि देकर, इसी सड़क की ओर देखता हूँ। मैं ही क्या—मेरे-जैसे और भी तो, मुझसे छोटी-बड़ी डिगरियोंवाले, शिक्षारूपी काल से कवलित होकर सैकड़ों-हज़ारों लाखों युवक, केवल आशा के भरोसे ही हाथ पर हाथ धरे बैठे हुए हैं। अख़बार में एक इश्तिहार निकलते ही—कहीं छोटी-सी भी जगह का ज़रा-सा भी आभास पाते ही अथवा बिना किसी जगह के अपने आपको दफ़्तर के साहब की कृपा-दृष्टि के अवलम्बन पर छोड़कर ही, हाथों में दरख़्वास्तें लिये-लिये फिरते हैं, और इनकारी का जवाब पाकर सूखा मुँह लिये घर आ बैठते हैं।

मैं अपनी बात कहता हूँ—शायद सभी की कहता हूँ, जब कि किसी उम्मीदवारी के चुनाव के लिए मैं सूट-बूट पहनकर साहब से मुलाक़ात के लिए जाता था तो मेरी मा और मेरी बीबी कितनी मनौतिएँ करके, सुबह से न जाने कितनी बार राम-नाम की माला फेरकर—थोड़ा-सा दही खिला-कर मुझे भेजती थीं। मेरे विचार में सुभद्रा और उत्तरा ने भी शायद इस तरह अभिमन्यु को लड़ने के लिए तैयार न किया था। मुझमें और अभिमन्यु में अन्तर भी तो है। उसे जाना था रण-क्षेत्र में शत्रु पर विजय प्राप्त करने और मुझे अपने इस जीवन से ही युद्ध करना है। उसके लिए युद्ध कुरुक्षेत्र तक ही—चक्रव्यूह तक ही सीमित था, लेकिन मेरे लिए यह संसार ही युद्ध-क्षेत्र है। यद्यपि वह अधर्म-युद्ध में मारा गया था, लेकिन उन दिनों धर्म-युद्ध ही होता था। एक आदमी के लिए एक ही प्रतिद्वन्द्वी होता था, लेकिन मेरे तो सभी प्रतिद्वन्द्वी

...रण-क्षेत्र के बाहर तब शत्रु भी मित्र होते थे, ...किन आज मेरे मित्र भी मेरे शत्रु हैं।

—हाँ, तो मैं कह रहा था—मुझे दही खिला-...भेजतीं और वहाँ से वापस आने पर—मैं दूर ...देखता—उसी खिड़की में कितनी संचित ...आशाएँ दिल में लेकर वे मेरी प्रतीक्षा करती होतीं। ...का निर्णय सुनने के लिए वे किस उत्सुकता ...मेरे मुँह की ओर देखतीं और वह उत्तर सुनकर—...संतोष तो सभी को करना पड़ता है।

सड़क बह रही है—दोनों पैरों को खिड़की की ...पर रखकर और कुर्सी को पिछली दो ...टाँगों पर झुलाकर मैं देखता हूँ सड़क बह रही है।

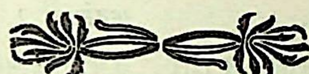
मेरे जीवन की असीम निस्सारता—निरर्थकता—

मेरी बीबी ने कहा—बारह बज गये हैं, अब उठकर खाना भी खाओगे?

क्या बनाया है आज?

बनाना क्या था। रात की दाल पड़ी थी। पैसे तो सब ख़तम हो चुके हैं। इसी से साग मँगवा नहीं सकी। तुम नहाओ, तब तक मैं फुलके उतार लेती हूँ।

एक अँगड़ाई लेकर—मैं धीरे-धीरे कुर्सी से उठकर खड़ा हो गया। फिर एक और अँगड़ाई ली और जल्दी से नहा-धोकर थाली के सामने बैठ गया।



भारतीय युवक और सरकारी नौकरियाँ

श्रीप्रेमनारायण अग्रवाल एम्० ए०

(१)

थोड़े ही दिन की बात है, जब समाचारपत्रों में बड़े-बड़े अक्षरों में और आकर्षक हेड-लाइनों में यह छपा था कि भारतीय व्यवस्थापिका सभा (Indian Legislative Assembly) के Watch and Ward विभाग में एक रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए क़रीब ५ हज़ार अर्ज़ियाँ पहुँची थीं। असेम्बली के कार्य-कर्ता परेशान थे कि किस प्रकार एक व्यक्ति को छाँटें। उस स्थान की पूर्ति हो गई और कैसे उस युवक को छाँटा जा सका, जिसकी नियुक्ति वहाँ पर हुई है, यह एक मनोरंजक घटना है। पर इससे हमारा कोई मतलब न होने से हम इसे यहीं छोड़ते हैं। इस स्थान की पूर्ति के लिए एक ग्रेजुएट की आवश्यकता थी ८०) रु० महीने पर।

उन्हीं दिनों लखनऊ से एक इसी प्रकार का और समाचार हमारे दृष्टिगोचर हुआ। युंक्तप्रान्तीय सरकार को अपने Secretariat विभाग में क़रीब एक दर्जन क्लर्कों की आवश्यकता थी, जो बाद में बढ़ाकर डेढ़ दर्जन कर दी गई थी। इस नौकरी में भरती होने के लिए कम्पिटीशन में कितने ही हज़ार विद्यार्थी बैठे थे।

ये दो उदाहरण हम पाठकों की भेंट इसलिए कर रहे हैं, ताकि उनको मालूम हो जाय कि हमारे नवयुवक सरकारी नौकरियों को कितना पसन्द करते हैं। ये दो उदाहरण एक भारत-सरकार तथा दूसरा प्रान्तीय सरकार की नौकरियों से सम्बन्ध रखते हैं। समाचारपत्रों ने इन उदाहरणों के सम्बन्ध में अधिक कुछ नहीं छापा। इसलिए हम नहीं कह सकते कि उन हज़ारों प्रार्थी युवकों में किस-किस स्थिति के युवक थे। इस बात को स्पष्ट रूप से जानने के लिए हम हाल ही में युक्त-प्रान्तीय सरकार द्वारा प्रकाशित प्रसिद्ध 'बेकारी कमेटी की रिपोर्ट', जिसके सभापति महामान्य सर तेजबहादुर सप्रू थे, की ओर पाठकों का ध्यान ले चलेंगे। यहाँ यह बताना आवश्यक न होगा कि यह रिपोर्ट बड़ी महत्त्वपूर्ण समझी गई है। भारत-सरकार ने भी इसके आधार पर बहुत कुछ जाँच-पड़ताल शुरू की है। यही नहीं, विदेशों में भी इसका बड़ा आदर हुआ है। सर सप्रू ने इसको लिखने में भारी परिश्रम किया है और इसके लिए सामग्री प्राप्त करने के लिए उन्होंने योरप के प्रमुख-प्रमुख स्थानों का दौरा किया था। इस कमेटी के सामने कुछ विद्वानों तथा सरकारी कर्मचारियों ने महत्त्वपूर्ण बयान दिये हैं, जिसमें उन्होंने इस समस्या का भली भाँति विवेचन किया है।

युक्तप्रान्त के पुलिस-विभाग के इन्सपेक्टर जन-रल मि० एस्० टी० होलिंन्स (S. T. Hollins) ने अपने विभाग के सम्बन्ध में बयान देते हुए कहा



...की बातें बताई हैं। आपने बताया है कि ...वर्ष सैकड़ों युवकों की अर्ज़ियाँ उनके पास ...दारी के दर्जे में भरती करने के लिए आती ... उनमें से एक छोटी संख्या को ही लिया जाता ... उनके पास ३४० अर्ज़ियाँ आई थीं, जब ... उनको केवल १० युवकों को नामज़द करने का ...कार था। निम्नलिखित संख्या से मालूम हो ...ता कि प्रत्येक डिवीज़न से कितने में से ...ने लिये गये। मेरठ-कमेटी के सामने पाँच के ...न पर ६१, रुहेलखण्ड में ३ के लिए ६०, ...हाबाद में २ के लिए ५४, आगरा में ४ के ...लिए २१, फ़ैज़ाबाद में २ के लिए ४१, कमाऊँ ... के लिए १६ प्रार्थी आये थे। इसके अतिरिक्त ...क ज़िले के कलेक्टर और पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ...पास सैकड़ों अर्ज़ियाँ आई थीं, जब कि उनको ...से प्रार्थियों को डिवीज़नल कमेटियों के सामने ...ने का अधिकार था।

आगे चलकर जो बात आपने बताई है, वह ...भी अधिक मज़ेदार है। थानेदारी में भरती ...ने के लिए दसवें दर्जे पास का सारटीफ़िकट काफ़ी ...। लेकिन आप बताते हैं कि—

"Out of 42 outsiders accepted for admis-...sion as Sub-Inspectors cadets for the 1935 ...sions at the Police Training School, 11 were ...graduates, 2 were B.A.,LL.B's and 6 passed ...the Intermediate Examination. Thus 19 out ...of 42 accepted candidates possessed quali-...fications superior to the minimum neces-...sary."

आपने यह नहीं बताया कि जो सैकड़ों युवक ...में नहीं लिये गये, उनमें कितने उच्च शिक्षा प्राप्त ...थे। जहाँ तक हमारा अनुमान है, उनमें भी ...से थे।

"Again, quite a large number of young ...men who have passed the School Leaving Cer-...tificates and Intermediate examination, and ...a few who have passed the B.A. exami-nation enlist themselves as police constables every year though no educational qualification is necessary. At the same time, it is recognised that educated young men have the best chances of promotion in the force. In the police Ministerial staff there are at present 2 B. A's and 8 clerks who have passed the Intermediate Examination. These were appointed on Rs. 40/- per mensem. Four graduates and 6 who have passed the Intermediate Examination are approved for appointment as clerks in the police offices and they will be appointed on salaries of Rs. 30/- per mensem as soon as vacancies occur."

श्री एन्० सी० मेहता I. C. S. मुज़फ़्फ़रनगर के कलक्टर तो और भी आगे बढ़कर कहते हैं—

"I believe, it was in 1931 or 1932 that 5 or 6 vacancies of Sub-Registrars had to be filled up and not less than 700 applications were received by me as Inspector-General of Registration without the posts having been advertised at all. The applications included a London Ph. D., scores of M.A.,LL. B's and first and second class graduates with excellent university and athletic qualifications. There were some candidates who had secured greatly high places even in the I.C.S. Examination but failed to get in."

युक्तप्रान्त के Excise Commissionor और Inspector-General of Registration मि० ए० एन्० सप्रू ने अपने बयान में एक तालिका दी है, जिसे हम नीचे उद्धृत करते हैं। इससे यह बात बहुत स्पष्ट हो जाती है कि सरकारी नौकरियों में वे लोग भी जाना पसन्द करते हैं, जिन्होंने दूसरे-दूसरे कामों की शिक्षा प्राप्त की है, और जिस शिक्षा का उस विभाग में कोई उपयोग नहीं होता।



सन्	ख़ाली स्थान	एल्-एल्० बी०	एम्० ए० और एम्० एस्-सी०	बी० ए० और बी० एस्-सी०	कृषि में बी० ए०	कामर्स में बी० ए०	इंटरमीजिएट पास	तादाद	प्रति नौकरी के लिए
१९२८–२९	१०	×	४	६६	×	११	८५	१९९	१९.९
१९२९–३०	७	१	२	३०	×	१	२०	५४	७.७
१९३०–३१	१०	३	९	२०	×	×	२३	५५	५.५
१९३४–३५	८	१३	६८	२३६	४	१७	१२५	४६३	५८.०
मीज़ानं	३५	१७	८३	३८५	४	२९	२५३	७७१	२२.०

इस प्रकार की बातें अधिक लिखकर पाठकों को परेशान करने का हमारा मतलब नहीं है। हम तो इससे केवल यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि हमारे युवकों में सरकारी नौकरियों के लिए कितना प्रेम है।

इन आँकड़ों आदि के आधार पर सप्रू-कमेटी-रिपोर्ट ने यह धारणा बना ली है कि हमारे शिक्षित युवकों में ज़बरदस्त बेकारी है। इस कमेटी के सदस्यों का ही नहीं, वरन् आम जनता का भी यही ख़याल है कि हमारे युवकों में भारी बेकारी है। यह बड़ी-बड़ी संख्याएँ, जिनमें वह सरकारी नौकरियों के लिए अपने को अर्पण करते हैं, हमें मामूली तौर पर यही सुझाते हैं कि वास्तव में बात ऐसी ही है।

ऊपर दिये हुए बयानों से सप्रू-कमेटी-रिपोर्ट की धारणा से तथा जनता के इस ख़याल से हम बिलकुल सहमत नहीं हैं और न हम यह मानने के लिए तैयार हैं कि जिन नवयुवकों की अर्ज़ियाँ इन आँकड़ों में सम्मिलित हैं, वे सब बेकार हैं। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि ऊपर दिये हुए आँकड़े ग़लत हैं। हमारा तात्पर्य उस धारणा से है, जो इनके निष्कर्षस्वरूप उनके दिमाग़ों में बैठ गई है।

सरकारी पदों के लिए इतनी अधिक संख्या में अर्ज़ियों के पहुँचने का कारण यह है कि हमारे युवकों को इनसे बहुत प्रेम है, वे इन्हें अधिक पसन्द करते हैं। इसके कारणों पर आगे चलकर हम विचार करेंगे। और, इस प्रेम का परिणाम यह है कि वे अपने उन कार्यों को सरकारी नौकरियों के बदले में छोड़ने को सदा तैयार रहते हैं, जिनमें वे अर्ज़ियाँ भेजते समय लगे होते हैं। वास्तव में इन अर्ज़ियों के देनेवाले युवकों में बहुत थोड़े बेकार होते हैं; अधिकतर किसी न किसी कार्य में लगे होते हैं। यह बात ज़रूर है कि ये सरकारी नौकरियों की उम्मेद में बराबर लगे रहते हैं और कोशिशें जारी रखते हैं। जो बेकार होते हैं, उनमें से बहुत-से इसीलिए कि वे अपने को दूसरे किसी काम के योग्य नहीं समझते। बहुत-से दूसरे कार्यों को इसलिए नहीं पसन्द करते कि उनमें लग जाने से वे शायद सरकारी नौकरियों के लिए काफ़ी कोशिश और दौड़ धूप न कर सकें। सरकारी नौकरियों की आशा में एक काफ़ी तादाद बेकार बनी रहती है। यदि पाठक इन बातों को ध्यान में रखते हुए ऊपर की विशाल संख्याओं पर ग़ौर करें तो उन्हें हमारे दृष्टिकोण को समझने में देर नहीं लगेगी। अपने इस कथन की पुष्टि में हम युक्तप्रान्त के शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर मि० एच० आर० हेरप का वह बयान पेश करेंगे, जो उन्होंने इसी कमेटी के सामने दिया है। आप कहते हैं—

"I know that there are plenty of applicants for every Government post and I know that it is commonly reported that young men cannot find occupation. I know of a number of young men who would prefer occupations other than those in which they are engaged; but I have not met with many



young men who have been educated and who have found no occupation at all."

(२)

हमारे युवकों की यह सरकारी नौकरियों को पसन्द करने की मनोवृत्ति अच्छी नहीं है। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से यह भारत के लिए बहुत हानिकारक है। भारत की इससे भारी हानि हुई है और आगे होती रहेगी, जब तक हम इस प्रवृत्ति को अपने युवकों के दिमाग़ से निकालकर फेंक नहीं देंगे। अब समय आ गया है, जब हम अपनी इस राष्ट्रीय कमज़ोरी पर ग़ौर करें और अपनी इस नीति में परिवर्तन करें।

अंगरेज़ी-शिक्षाप्राप्त ही नहीं, मामूली हिन्दी-उर्दू जाननेवालों से लगाकर कुपढ़ लोग तक सरकारी नौकरी पसन्द करते हैं। हमारे समाज में पहले यह धारणा थी कि नौकरी करना बुरा है और नौकरी वे ही करते हैं, जो अपने को अन्य कार्यों के योग्य नहीं समझते। नौकर-पेशा जातियों को समाज कुछ अच्छी दृष्टि से नहीं देखता था और न नौकरी-प्राप्त युवकों के लिए उसमें किसी प्रकार के सम्मान की भावना थी। समय के साथ धीरे-धीरे हमारे समाज की यह भावना लुप्त होती जा रही है। अब उसकी निगाह में नौकरपेशा लोग और नौकरी पेशा जातियाँ, विशेषकर सरकारी नौकरी-प्राप्त युवकों के लिए आदर है, वे उनको अच्छी निगाह से देखते हैं, तारीफ़ करते हैं। इसका प्रभाव यहाँ तक पड़ा है कि छोटी से छोटी सरकारी नौकरी उन्हें पसन्द है। ऐसा करने में चाहे ही उनकी कुल-मर्यादा आदि पर धब्बा लगे, उनकी आमदनी नौकरी द्वारा कितनी ही कम हो। कितने लोग तो अपने परम्परागत व्यापारिक कार्यों को छोड़कर कम आय और कम से कम उसके स्थान की सरकारी नौकरी अधिक पसन्द करते हैं।

सरकारी नौकरियाँ प्राप्त करना अब दिन पर दिन कठिन होता जा रहा है। इनको प्राप्त करने के लिए competitions होने लगे हैं। इनमें वही उत्तीर्ण हो सकते हैं, जो प्रखर बुद्धि के होनहार युवक हैं, जिनसे भारत को बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।

इस महान् परिवर्तन के अनेक कारण हैं। प्रत्येक श्रेणी के मनुष्यों के लिए विभिन्न बातें हैं। प्रत्येक का दृष्टिकोण उनकी ओर से भिन्न है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी अवस्था के अनुसार सरकारी नौकरी अपने-अपने मतलब के लिए करना चाहता है। गाँवों में अशिक्षित समाज पर एक चौकीदार का भी भारी रुआब रहता है और वह इसका समय-समय पर अपने लाभ के लिए दुरुपयोग करता है। सत्याग्रह-संग्राम और कांग्रेस के कार्यों से अब वहाँ काफ़ी जागृति हो गई है, फिर भी सरकारी अफ़सरों का दबाव-प्रभाव वहाँ बहुत है। उनके सबसे बड़े हाकिम हैं पुलिस-विभाग के दारोग़ा लोग। ये लोग गाँवों में मनमाना काम करते हैं। कोई देखने-सुननेवाला नहीं होता। इन्हीं लोगों को शहरों में कोई नहीं पूछता। जब ये लोग गाँवों में तबादिले के फलस्वरूप पहुँच जाते हैं, तो अपने भाग्य का सितारा चमका समझते हैं। यही उनके ठाट-बाट शान-शौकत की असली जगह है। अतएव गाँव के निवासी अधिकतर पुलीस-विभाग को पसन्द करते हैं। वे चाहते हैं कि उनके अपढ़ बच्चे कान्सटेबिल आदि हो जाते और यदि कुछ पढ़ जाते, तो पुलीस के दारोग़ा। अपने बच्चों को वे इसी लिए आगे पढ़ाते-लिखाते हैं।

अधिक जानकार तथा पढ़े-लिखे लोग अपने बच्चों के लिए इसी प्रकार अन्य-अन्य नौकरियाँ सोच रखते हैं। जब उन बच्चों को ये नौकरियाँ नहीं मिलतीं, तब उनके लिए एक बेढब समस्या उत्पन्न हो जाती है। सभी उनका तिरस्कार करते हैं। उनको भला-बुरा कहते हैं।

स्कूल-कालिजों में पढ़नेवाले सभी विद्यार्थी यही चाहते हैं कि उनको सरकारी नौकरियाँ प्राप्त हों। अपने उद्देश की प्राप्ति के लिए वे बराबर प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसे विद्यार्थी बहुत थोड़े मिलेंगे, जो जीवन



में और कुछ कार्य करने की सोचते हों। इसका फल यह होता है कि वे अपने व्यक्तित्व की बहुतेरी बातें वहीं खो बैठते हैं। उनको वहीं से चापलूसी, जी-हुज़ूरी का सबक़ सीखना पड़ता है। उनके जीवन में आगे चलकर ये बातें अत्यन्त हानिकर सिद्ध होती हैं। यदि वे कहीं सरकारी कर्मचारी हो गये, तो फिर अपने शासितों पर उसी प्रकार की बातों की उम्मीद करते हैं, जिनको स्वयं इन्होंने अपने विद्यार्थी-जीवन में किया तथा सीखा है। उनमें हुकूमत और अहंभाव आ जाता है। हम प्रायः यह शिकायत सुनते हैं कि भारतीय सरकारी नौकर अधिक कड़े—हुकूमत-पसंद, अहंकारी तथा ऐंठू होते हैं। इनके विपरीत अँगरेज़-कर्मचारी प्रायः बड़े ही भले-मानस और सभ्य पुरुष होते हैं। जिनको अँगरेज़ी में Gentlemen कहते हैं। भारतीय युवक ज़रा-सी सरकारी नौकरी पाकर अपने को पता नहीं क्या समझने लगते हैं और उनमें से सभ्यता के चिह्न धीरे-धीरे लुप्त हो जाते हैं। ऐसे भारतीय सरकारी नौकर बहुत थोड़े होते हैं, जो इन बुराइयों के शिकार न बनकर अपने ही ग़रीब देशवासियों पर नाना प्रकार के अत्याचार और ज़ुल्म न करें। इन लोगों का अहंकार यहाँ तक बढ़ जाता है कि वे अपने सामने किसी भी व्यक्ति को कुछ नहीं समझते। इसका ख़याल वे करना भूल जाते हैं कि जिससे वह व्यवहार कर रहे हैं, उसका समाज में क्या स्थान है, वह किस श्रेणी का व्यक्ति है। ऐसी अनेक घटनाएँ आये दिन हमें सुनने को मिलती हैं, जिनमें भारतीय सरकारी नौकरों ने हमारे बड़े-बड़े विद्वानों, नागरिकों और नेताओं का अपमान किया है। वे यह बिलकुल भूल जाते हैं कि वे जनता के नौकर हैं और उसी के लाभ के लिए—अपनी शान और हुकूमत करने के लिए नहीं। संसार के किसी भी देश में ऐसा नहीं होता। नौकरशाही प्रत्येक देश में होती है, उसका प्रधान कार्य जनता की सेवा करना होता है। इस कार्य को वे बड़ी तत्परता, प्रेम और विनीत भाव से पूरा करते हैं। पर भारत के समान किसी भी देश के सरकारी नौकर ऐंठू और लाट साहब कहीं नहीं होते, जो जनता पर बजाय उसकी सेवा करने के शासन करने का दम भरते हैं।*

समाज में इस उच्च स्थान की प्राप्ति के अतिरिक्त सरकारी नौकरियों में उनका आर्थिक लाभ भी है। एक अच्छी ख़ासी रक़म तनख़्वाह के रूप में प्रति मास बँधी हुई मिलती है, जिसके भरोसे वे मज़े में गुलछर्रे उड़ाते हुए रह सकते हैं। इस आय में किसी प्रकार का डर बहुत कम है। ऐसे मौक़े बहुत कम आते हैं, जब कि सरकारी नौकरों को अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़े। जो कभी-कभी आते हैं, वे उनकी अपेक्षा बहुत कम हैं, जो अन्य प्रकार की नौकरियों में सदा ही आते रहते हैं। उनकी नौकरी बहुत कुछ अंशों में स्थायी होती है और इसके बाद बुढ़ापे में पेंशन मिलती है। अन्य नौकरियों का सरकारी नौकरियों के मुक़ाबिले में बुरा हाल है। सार्वजनिक संस्थाओं की नौकरी करना तो ख़तरे से ख़ाली नहीं है। वहाँ तो नित्य प्रति क़ानून-क़ायदे ही नहीं, सारे का सारा प्रबन्ध बदलता रहता है। ज़रा-सी बात पर वर्षों की नौकरी हाथ से जाने का डर हमेशा ही तकलीफ़ देता है। यदि किसी प्रकार आराम से कट गई, तो बुढ़ापे में नौकरी छोड़ते वक़्त बुरा हाल हो जाता है। कोई पेंशन नहीं मिलती। अपनी ज़िन्दगी के जवानी के दिनों में परिश्रम करके मुश्किल से अपना पेट पाल सके, अब बुढ़ापे में क्या करें, जब कि शरीर के कल-पुर्ज़े साथ छोड़ देते हैं। और और प्रकार की नौकरियों में वेतन भी कम मिलता है। सभी जगह त्याग से कार्य करने के लिए कहा जाता है। इस त्याग का फल यह होता है कि

---

* लाहौर के प्रसिद्ध साहित्य-सेवी श्री० सन्तराम बी० ए० ने हाल ही में 'सरस्वती' के किसी अंक में एक लेख लिखकर इस प्रकार के कुछ मनोरंजक उदाहरण दिये हैं।—लेखक



ज़माने में अपने को ज़िन्दा रखना महान् कठिन समस्या हो जाती है। सप्रू-कमेटी-रिपोर्ट ने भी इस बात को यों लिखा है—

"Government Service has got a great attraction partly because of the social value attached to social positions and mainly because of the security of tenure and the certainty of pension."

भारत में ग़रीबी दिन पर दिन बढ़ रही है। करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष खिंचकर विदेशों को चला जाता है। जो ख़ानदान चन्द वर्ष पहले लखपती और हज़ारपती थे, वे अब तबाही की ओर शीघ्रतापूर्वक बढ़ रहे हैं। इसका ध्यान रखते हुए ऐसे लोग कम हैं, जो ग़रीबों के बाने को छोड़कर अमीर बन रहे हैं। इस युग की यह tendency है कि अमीर और भी अधिक अमीर बनते हैं और ग़रीब और भी अधिक ग़रीब। इसका परिणाम यह हो रहा है कि बीच का दर्जा, जिसे मिडिल क्लास कहते हैं, ग़ायब होता जाता है। इस संघर्ष में वे ही मालामाल बन रहे हैं, जो सरकारी नौकरियों में लगे हुए एक निश्चित रक़म तनख़्वाहस्वरूप प्राप्त करते हैं। व्यापार की स्थिति बिगड़ जाने से अब ऐसे काम साधारण स्थिति के मनुष्यों की पहुँच के बाहर हैं, जिनमें उनको किसी प्रकार की छोटी-बड़ी नियमित आय की आशा रही हो। अब हमारे देश में एक नया क्लास पैदा हो रहा है इस Middle class के बदले में, जिसके सदस्य यही सरकारी नौकर हैं। जहाँ इनकी अधिकता है, वहीं स्थान अधिक सुखी और सम्पन्न हैं। बाज़ार की दुकानें, उनका ठाट-बाट सब इन्हीं के ऊपर निर्भर हैं; क्योंकि उनके पास पैसा है, जिसे वे ख़र्च कर सकते हैं। जब से प्रयाग के स्थान पर लखनऊ युक्तप्रान्त की सरकार का प्रधान केन्द्र हो गया, यह बराबर उजड़ता जा रहा है और लखनऊ की छटा बढ़ती जा रही है। प्रयाग से यदि विश्वविद्यालय और हाईकोर्ट हटा दिया जाय, तो इसका सारा रहा-सहा गौरव भी नष्ट हो जाय।

हमारी इस ग़रीबी का प्रभाव सरकारी नौकरों पर भी पड़ा है और बराबर पड़ेगा। यदि इस बात की छानबीन की जाय, तो हमारे कथन की सत्यता पाठकों को मालूम हो जायगी। ऐसे थोड़े ही ख़ानदान हैं, जिनके सब युवक सरकारी नौकरियों में लग गये हों और इस वजह से आर्थिक दृष्टि से मज़े में हों। जिनको यह सौभाग्य प्राप्त है, वे वास्तव में सुखी हैं। पर ऐसों की संख्या उँगलियों पर गिनने योग्य है। अधिकतर सरकारी नौकर ऐसे हैं, जो अपने ख़ानदान के अकेले प्रतिनिधि हैं। इनकी संख्या भी अपेक्षाकृत कम है। ज़्यादा संख्या उनकी है, जो कई-कई ख़ानदानों में अकेले हैं और जिनके अनेक रिश्तेदार, भाई-बन्धु दो-दो दानों को तरसते हैं। यदि ये स्वार्थी न होकर सबका ख़याल करें, तो उनकी सारी आय कुछ नहीं के बराबर हो। हम ऐसे कितने ही सरकारी अफ़सरों को जानते हैं, जिनकी आय एक हज़ार के क़रीब है, पर सब यों ही ख़र्च हो जाती है; उनके पास कुछ न ीं बचता। यदि वे बचाते हैं, तो तभी, जब वे अपने अन्य निकट सम्बन्धियों को भूखों मरते देखते रहते हैं।

इन बातों को देखते-जानते हुए न तो कोई युवक ही और न उनके अभिभावक ही अन्य किसी नौकरी या व्यापारिक धन्धे आदि को पसन्द कर सकते हैं। वे सभी युवक—जो अपने जीवन को आराम से काटना चाहते हैं, जिन्हें ख़तरा पसन्द नहीं है—इसी रास्ते को अख़्तियार करते हैं, और वे अभिभावक भी—जो स्वयं आराम से रहना चाहते हैं और अपने बच्चों को सुखी देखने के इच्छुक हैं—इसी ओर झुकते हैं। इन लोगों का पहला काम होता है सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए जी-जान से कोशिश करना और जब पद न मिले, तो और कोई नौकरी ढूँढना। जब कहीं कोई नौकरी न मिले, तब फिर इधर-उधर भटकना। काफ़ी भटकने के बाद किसी काम को वे करने की सोचते हैं और वह भी गिरे मन से।



सप्रू-कमेटी ने इस सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

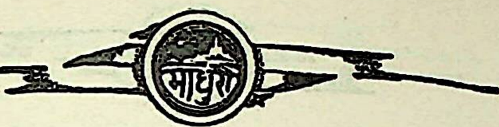
"Upon the evidence before us, we can entertain no doubt that the vast majority of the products of our Universities—and their parents share the feeling—aim at securing some appointment or other in Government service. It is only when they fail to secure Government appointments that they think either of private services or some other profession."

इसका एक कारण यह भी है कि शिक्षा प्राप्त करने के समय में प्राय: अपने घर से बाहर उनको बड़े-बड़े शहरों में रहना पड़ता है और वे वहाँ के जीवन के आदी हो जाते हैं। उनके लिए यह संभव नहीं होता कि वे फिर गाँव या छोटे-मोटे शहर में रहने के लिए अपने को तैयार कर सकें। युक्तप्रान्त के कृषि-विभाग के डाइरेक्टर मि० एलन ने अपने बयान में कहा था—

"That once a boy has gone up to the degree standard and has lived in Lucknow, Allahabad or Agra for five or six years, the tendency to go back to the village and away from the cinemas and other amenities is very much reduced. He does not go back very whole-heartedly into the country life on a very large scale."

भारत की सरकारी नौकरियों को हम तीन भागों में आसानी से बाँट सकते हैं—(१) अखिल भारतीय नौकरियाँ, (२) प्रान्तीय और (३) इससे नीचे की। एक ज़माना था, जब इनको प्राप्त करना कोई कठिन कार्य न था। उस समय अँगरेज़ी पढ़े-लिखे लोग बहुत कम थे और सरकार कम क़ीमत के दुभाषिये का काम करने के लिए भारतीय नौकर चाहती थी। जनता भी नौकरी कम पसन्द करती थी। इसका फल यह होता था कि जैसे ही किसी युवक ने अँगरेज़ी-शिक्षा को समाप्त किया कि उसके लिए सरकारी नौकरी के लिए offers अपने-आप आने लगते। प्राय: सरकार को उनकी ख़ुशामद करनी पड़ती कि वे नौकरी स्वीकार कर लें। अब हज़ारों-लाखों अँगरेज़ी पढ़े-लिखे एक से एक योग्य उच्च से उच्च अँगरेज़ी-शिक्षा-प्राप्त युवक मिल सकते हैं। अत: सरकारी नौकरियों का मिलना कठिन हो गया। चन्द नौकरियों में चन्द स्थानों को छोड़कर, जिन्हें सरकार ने अपने ख़ास-ख़ास ख़ुशामदियों के लिए रख छोड़ा है, प्राय: सभी में अब open competition होने लगा है। इसमें वही बाज़ी मार सकता है, जो प्रखर बुद्धि का तेज़ युवक हो। सबकी दाल नहीं गल सकती। इसका नतीजा यह हुआ है कि सब अच्छे-अच्छे मस्तिष्क के योग्य युवक सरकारी नौकरियों में चले जाते हैं। ये लोग अखिल भारतीय नौकरियों से प्रारम्भ करते हैं; क्योंकि सबसे अधिक उत्तम वही होती है—तनख़्वाह—आगे तरक़्क़ी करने आदि के विचार से। सबसे अच्छी बुद्धि वाले उनमें आ जाते हैं। उनसे कमवाले प्रान्तीय नौकरियों में और उनसे कमवाले मामूली नीचे दरजे की नौकरियों में। कहने का तात्पर्य यह कि इन तीनों दरजे की नौकरियों में भारत के सभी अच्छे-अच्छे होनहार तीव्र बुद्धि के युवक खप जाते हैं। अब जो रद्दी-सद्दी बच रहे, वे दूसरी दूसरी नौकरियों में चले जाते हैं। सबसे ख़राबवाले देश के अन्य विभागों में कार्य करने को पहुँचते हैं। इसका फल यह है कि वह कार्य, जिसमें कभी देश के बढ़िया-बढ़िया दिमाग़ लगते थे, अब रद्दी दिमाग़वालों के हाथ में आ गया। सप्रू-कमेटी-रिपोर्ट में भी लिखा है—

"It is perhaps true that the brainiest and the best of our students are absorbed in or, at any rate, try to secure Government appointments with the result that certain professions such as Law which at one time used to attract some of our best men, are starved for first class talents."



वे अच्छे-अच्छे दिमाग़ सरकारी नौकरियों में बहुत अंशों में बरबाद हो जाते हैं। जिन विशेष-विशेष कार्यों को करने के वे योग्य होते हैं, वहाँ न करके सब दफ़्तरों के routine work में लगकर ठिकाने लग जाते हैं। भारतीयों को ऐसे कार्य करने के मौक़े कम मिलते हैं या बिलकुल नहीं मिलते, जिनमें वे अपनी दिमाग़ी ताक़त का इस्तेमाल कर सकें। न तो उन पर इतना विश्वास किया जाता है और न वे इस योग्य समझे जाते हैं। इनके लिए तो सारा कार्य-क्रम दूसरे लोग तय करते हैं। जो कार्य ऐसे होते भी हैं, वे अधिक योग्य और विश्वासपात्र समझे जाने-वाले अँगरेज़ नौकरों से करवाये जाते हैं। शायद ही ऐसे कुछ उदाहरण हमें ढूँढने को मिलें, जिनमें भारतीयों की दिमाग़ी ताक़त का इस्तेमाल करने की ज़रूरत पड़ी हो। यदि पड़ती भी है, तो वह विदेशी सरकार का पंजा भारत में अधिक मज़बूती से जमाने में तथा भारत के हितों पर कुठाराघात करने के कार्य में। बहुतेरे भारतीय युवकों ने अपनी शक्तियों के इस अपव्यय को महसूस किया है और ऐसे बहुतेरे उदाहरण हमें मिलते हैं, जिनमें उन्होंने सरकारी नौकरियों से इस्तीफ़ा देकर अन्य-अन्य कार्यों में उनका उपयोग करके अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। भारत के ही नहीं, संसार के प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर सी० वी० रमन और युवक भारत के नेता श्रीसुभाषचन्द्र बोस इन्हीं अनगिनत उदाहरणों के कुछ नमूने हैं।

ऐसे अनेक व्यक्ति हैं, जो अपने अथवा देश के सौभाग्य से इस प्रकार की सरकारी नौकरियों में जाते-आते रह गये और अब वे अन्य-अन्य कार्यों में अपनी प्रतिभा दिखा रहे हैं। हमारे लीडरों में ऐसे अनेक नेता हैं, जो आई० सी० एस० के उम्मेदवार किसी न किसी रूप में थे। यदि वे इसमें आ गये होते, तो हमारी सरकार की विशाल मशीनरी के कल-पुर्ज़े बनकर आज हम से दूर हुए दिखलाई पड़ते। पढ़े-लिखे अच्छे दिमाग़ के युवकों के बाद बिना पढ़े-लिखे हृष्ट-पुष्ट गाँव के युवक शेष बचते हैं। उन्हें भी सरकार पुलीस और फ़ौज में भरती कर लेती है। उपर्युक्त कारणों से सरकारी नौकरियाँ इन्हें पसन्द भी हैं। उनमें वे सहर्ष भर्ती होना पसन्द करते हैं।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भारत के लिए यह प्रवृत्ति महान् अहितकर साबित हुई है। सरकारी नौकरियों में अच्छे-अच्छे होनहार युवकों के चले जाने से हमारे अन्य-अन्य विभागों की हालत दिन पर दिन बिगड़ती गई। जब किसी कार्य में बराबर मामूली योग्यता और बुद्धि के आदमी कार्य करेंगे, तब उसकी हालत बिगड़ेगी ही। प्रत्येक कार्य में दो-चार असाधारण प्रतिभा के मनुष्यों की आवश्यकता होती है, जो उस कार्य की रीति-नीति को ठीक-ठीक रूप से संचालित करें। बाक़ी सब लोग तो उनके पीछे-पीछे चलते हैं। इन मार्ग-प्रदर्शकों की अयोग्यता के कारण हमारा राष्ट्रीय जीवन चौपट हो गया। राष्ट्र के प्रत्येक विभाग की हालत नाज़ुक होती गई, जिससे सब ओर से inefficiency की आवाज़ आ रही है। बेकारी, ग़रीबी, डरपोक-पन, नासमझी आदि अनेक बातें घुनरूप से भारत के राष्ट्रीय जीवन को खाये जा रही हैं। समाज में भीषण हलचल और गड़बड़ी फैली हुई है। वे नवयुवक और उनके वे अभिभावक, जो सरकारी नौकरियों की उम्मीद में अपना सब कुछ खो बैठे, अब कैसे सब्र करें। लाखों घर तो इसी में भस्म हो गये। प्रत्येक competition में बैठने में काफ़ी ख़र्च पड़ता है। पहले इस क़ीमती पढ़ाई का ख़र्च और बाद में इन परीक्षाओं में बैठने का व्यय उनको ख़तम कर डालता है, जिससे वे कहीं के नहीं रहते। उन युवकों का तो सारा जीवन—यदि वे इतने दिमाग़ी और दृढ़ न हुए, जो अपने को सँभालकर दूसरे कार्यों में जुत जायँ—नष्ट हो जाता है। उनकी सारी महत्त्वाकांक्षाएँ सदा के लिए विलीन हो जाती हैं और संसार उनके लिए भयावह रूप धारण कर लेता है। किसी



राष्ट्र के प्राण युवकों की इस हालत से उसका भला क्या कल्याण हो सकता है। यदि इसी प्रकार की स्थिति कुछ दिनों तक और जारी रही, तो भारत को और भी अधिक हानि उठानी पड़ेगी; क्योंकि अब यह समस्या भीषण रूप धारण कर रही है। जिस देश के अन्दर इतनी विशाल संख्या में युवक लोग सरकारी नौकरियों को पसन्द करते हों और जिसमें कुछ को ही वे नौकरियाँ मिलें, उसकी आगे चलकर क्या हालत होगी, इसकी कल्पना-मात्र से हमारा शरीर काँप उठता है। समाज, देश और अपने से असन्तुष्ट यह युवक-समाज क्या नहीं कर सकता।

ऊपर लिखे हुए कुछ कारणों से यह स्पष्ट है कि इस प्रवृत्ति के ज़िम्मेदार केवल हमारे युवक नहीं हैं। उनका दोष तो बहुत थोड़ा है। वास्तविक दोषी हैं उनके अभिभावक, जो अँगरेज़ी शिक्षा को सरकारी नौकरियों के लिए 'पासपोर्ट' समझते हैं और इसी उद्देश्य से उनको शिक्षा देते हैं। उनसे भी अधिक दोषी है हमारा समाज और उसके नेता। हमारे समाज का गठन ही इस प्रकार का है कि उसके कारण उनको सरकारी नौकरियों की ओर देखने की आवश्यकता पड़ती है। यदि इसमें ही कोई कार्य करने से पर्याप्त, बँधी हुई, विना किसी प्रकार की दग़ा-फ़रेब बेईमानी से उचित आमदनी हो सके, तो वे इधर-उधर क्यों भटकें। हमारे यहाँ ऐसा कोई प्रबन्ध न होने से उनको नौकरियों की ओर और उससे भी विशेषकर सरकारी नौकरियों की ओर बढ़ना पड़ता है। हमारे युवकों का दोष है कि वे शुरू से ही सरकारी नौकरियों की तो सोचते हैं, मगर और-और कार्यों की नहीं। यदि शुरू से ही जिस प्रकार वे इनकी बातें सोचते हैं, और-और कार्यों की बात सोचें और उसके लिए अपने को ठीक प्रकार से तैयार करें, तो कोई वजह नहीं कि वे अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त न कर सकें। उनकी सफलता में देर हो सकती है; पर इसमें उनके स्वार्थ की परिधि के बाहर उनके समाज और देश का हित है।

हमारे लिए भी ज़रूरी है कि हम अपने जीवन को इस प्रकार संगठित और दृढ़ बनावें, जिससे हमारे युवक सरकारी नौकरियों की बात छोड़कर हमारी ओर आकर्षित हों और अन्य-अन्य कार्य करें, जिसमें उनका तथा भारत-राष्ट्र का कल्याण हो।

(३)

किसी देश का भविष्य और ख़ासकर भारत के समान पिछड़े हुए देश का, उस देश के शिक्षा-प्राप्त युवकों पर निर्भर करता है। यदि देश को कुछ आशा होती है, तो इन्हीं युवकों से, जो भले-बुरे का ज्ञान रखते हैं, जो शिक्षित होने के कारण किसी बात को समझने योग्य होते हैं। बहुतेरे देशों ने अपने को उन्नतिशील बनाने के लिए सैकड़ों-हज़ारों युवकों को विदेशों में शिक्षा-प्राप्त करने को भेजा है। अशिक्षित युवक और जनता से किसी देश का कभी कोई लाभ नहीं हुआ है। भारत के अन्दर केवल ७ फ़ीसदी व्यक्ति शिक्षित हैं, जिससे हमारे राष्ट्रीय जीवन के उत्थान में भारी रुकावट होती है। यदि भारत की समस्त जनता आज शिक्षित होती, तो भारत उन्नतिशील देशों के मुक़ाबले में पिछड़ा हुआ न होता, और न होता ग़ुलामी की ज़ंजीरों से इस प्रकार जकड़ा। इस ७ फ़ीसदी शिक्षा-प्राप्त जनता में ऐसे युवक—जो उच्च-शिक्षा-प्राप्त हैं—शायद एक फ़ीसदी से भी कम होंगे; क्योंकि इस ७ फ़ीसदी में वे भी सम्मिलित हैं, जो अपना नाम लिखना भर जानते हैं। युक्तप्रान्त के सम्बन्ध में सप्रू-कमेटी-रिपोर्ट ने एक स्थान पर लिखा है कि युक्तप्रान्त की कुल आबादी ४,८४,०८,७६३ है और कुल तादाद ऐसे विद्यार्थियों की, जो यूनिवर्सिटियों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, सन् ३२ में १०,६८७ थी। उन विद्यार्थियों की संख्या सन् १९३२-३३ में, जो बी० ए० और बी० एस्-सी० के ग्रेजुएट्स हैं, कुल १३६७ है। इस संख्या में वकालत और डाक्टरी आदि विषयों के ग्रेजुएटों की संख्या शामिल नहीं है। इस हिसाब



ऐसा मालूम पड़ता है कि यूनिवर्सिटी में पढ़ने-वाला एक युवक ४५३५ आदमियों में है। उन युवकों की संख्या, जो ग्रेजुएट हो चुके हैं, और भी कम है। ३४,८०९ आदमियों में वह एक है। इन संख्याओं पर ध्यान देने से हमारी तो यही धारणा है कि आबादी के हिसाब से यह संख्या कुछ नहीं के बराबर है। इन्हीं के हाथों में देश का नेतृत्व है। हमको आज लीडरों की आवश्यकता है, जो देश के कोने-कोने में फैलकर राष्ट्रीयता का शंख-नाद करें।

जब शिक्षितों की संख्या इतनी कम है, तब भी उनमें बेकारी है और सरकारी नौकरियों की है कमी। इतने क्या, इससे कई गुने अधिक शिक्षित युवक अभी हमारे देश को चाहिए। उन सबके लिए देश में स्थान है, पर हमारा संगठन इस प्रकार बिगड़ा हुआ है कि हम इतनी छोटी संख्या में शिक्षित युवकों को भी अपने समाज में जज़्ब नहीं कर सकते; उनको उचित काम नहीं दे सकते।

हमारे शिक्षित युवकों की संख्या इतनी थोड़ी है कि हमें तो उन्हें ज़बरदस्ती सरकारी नौकरियों में जाने से रोकना चाहिए और ऐसे कामों में लगाना चाहिए, जिससे देश का हित हो। जब आवश्यकता से अधिक शिक्षित युवक हमें मिलें, तब हमें उनको सरकारी नौकरियों की ओर जाने देना चाहिए।

यह बात सभी जानते हैं कि शिक्षितों से अधिक बेकारी अशिक्षितों में है और उनमें ग़रीबी भी है, परले सिरे की। यदि हमारे ये शिक्षित युवक कोई व्यापारिक कार्य करें, तो स्वयं अपना काम करने के अतिरिक्त कुछ अशिक्षित और ग़रीब युवकों को भी रोटी दे सकते हैं। भारत में अभी बहुतेरे कार्यों के लिए जगह है; उसके National Resources अभी समाप्त क्या, काम में भी नहीं लाये गये हैं। भारत में Industrial Development के लिए भारी मौक़ा है।

हमारे अनेक युवक सरकारी नौकरियों के ख़िलाफ़ होते हुए अन्य कार्यों में लगना चाहते हैं। पर कितने ही कारणों से ऐसा करने में असमर्थ होते हैं। इसका एक कारण है धन का अभाव। व्यापारिक तरीक़ों में भी अब बड़े-बड़े परिवर्तन हो गये हैं। उनमें तभी लाभ हो सकता है, जब वे बड़े पैमाने पर काफ़ी पूँजी से किये जायँ। उतना रुपया हमारे युवकों के पास नहीं होगा कि वे इस प्रकार के कार्य कर सकें। इसका उपाय एक ही है कि उनको आपस में मिलकर कार्य करना चाहिए। दस-पाँच एक-सी लगन के युवक मिल गये और किसी कार्य को कर डाला।

इतना आगे बढ़ना हमारे शिक्षित युवकों को पसन्द नहीं है। यह वास्तव में उनका क़ुसूर है। उनको आगे बढ़कर थोड़ी जोखिम उठानी चाहिए। अनेक युवक लोग शिक्षा आरम्भ करते ही किसी सरकारी नौकरी को अपना लक्ष्य बना लेते हैं। बराबर उसी की तैयारी में लगे रहते हैं। इसके ठीक ख़िलाफ़ यदि वे शुरू से ही किसी व्यापारिक कार्य को लक्ष्य बनाकर उसके लिए साथ-साथ तैयारी करते जायँ तो कितना अच्छा रहे। उनके लिए फिर यह संभव नहीं कि कालेजों और यूनि-वर्सिटियों में उनको ऐसे कुछ युवक न मिल जायँ, जो उनके कार्य को पसन्द करके उनके हिस्सेदार बनना स्वीकार न करें। यह बात असम्भव नहीं कि वे दोनों कार्य साथ-साथ न कर सकें। सभी विद्यार्थी, जिन्हें जीवन में कुछ करना है, शिक्षा-प्राप्ति के साथ-साथ अपने उच्च उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी तैयारी करते जाते हैं। विद्यार्थी-जीवन आख़िर को संसार में प्रवेश करने की तैयारी का समय ही तो है।

असल में सबसे बड़ा दोष हमारे विद्यार्थियों का तथा उनके अभिभावकों का यह है कि उनके पास कोई निश्चित कार्य नहीं होता। वे पढ़ते चले जाते हैं बिना इसका विचार किये कि आगे चलकर उनको क्या बनना है। उसी Lack of purpose



के फलस्वरूप जीवन में उनको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बेकारी की समस्या भी उन्हीं के लिए होती है। ऐसे थोड़े-से ही विद्यार्थी मिलेंगे, जिनका कोई लक्ष्य हो और जिसकी तैयारी में वे जुटे हों। जो इस प्रकार से सुसज्जित होते हैं, दुनिया में उनका बोलबाला रहता है। उनकी चलती है, वे संसार में आनन्द से रहते हैं। इस समय संसार में भारी संघर्ष चल रहा है। उसमें प्रत्येक आदमी नहीं ठहर सकता। उसमें वही ठहरकर अपने लिए कुछ कर सकता है, जो ठोस ज़मीन पर मुस्तैदी से खड़ा है। जीवन में सफलता प्राप्त करने की यही कुंजी है।

इसी मनोवृत्ति को प्रोत्साहन देने में भारत की भावी सन्तान का हित है। इनके अभिभावकों का लाभ है, और हमारे पददलित देश का कल्याण है। यही वह उपाय है, जिसके द्वारा हम भारत के युवकों के हृदयों से सरकारी नौकरियों का लोभ-मोह निकालकर फेंक सकते हैं और उनकी शक्तियों को राष्ट्रोपयोगी कार्यों में लगा सकते हैं।



अश्रु-हार

[छोटी बहन की मृत्यु पर]

श्रीकलाकिशोर

(१)
मानस-प्रदेश में मेरे
कैसा झंझा का नर्त्तन ?
सहसा विचार-धारा का
कैसा प्रवाह परिवर्त्तन ?

(२)
इस हृदय-राज्य में मेरे
शासन अशान्ति-मय कैसा ?
सब ओर अराजकता के
चिह्नों का सञ्चय कैसा ?

(३)
मन-गगन-मध्य मेरे ये
छिटके स्मृति-उडुगन कैसे ?
काया के बन्दीगृह में
बन्दी सब बन्धन कैसे ?

(४)
अन्तरतम-निःसृत, निर्मल
अनुभूति-धार यह कैसी ?
मम निर्जन उर-उपवन से
पावन पुकार यह कैसी ?

(५)
नभ में उड़ती इच्छाओं
का यह फिर सोना कैसा ?
मन की अभिलाषाओं का
मन ही में खोना कैसा ?

(६)
उच्चाशाओं का मेरी
नभ में उड़ जाना कैसा ?
स्वर्गीय कल्पनाओं का
जग से जुड़ जाना कैसा ?

(७)
किस दिव्य ज्योति का सुखकर
यह शुभागमन है कैसा ?
यह किस प्रकाश की रेखा—
का आवाहन है कैसा ?

(८)
किस शोक-निशा-तम का यह
कैसा दुःखद आवर्त्तन ?
किन अश्रु-बिन्दुओं से है
सिञ्चित यह मेरा जीवन ?

(९)
नयनों के सम्मुख स्वप्निल
यह चित्र चित्रपट कैसा ?
इठलाती, कल-कल करती
सुर-सरिता का तट कैसा ?

(१०)
इन चपल, चारु लहरों की
मञ्जुल क्रीड़ाएँ कैसी ?
तट के तरु, तृणादिकों की
वर-वपु व्रीड़ाएँ कैसी ?



(११)
सौरभ-मय, सुमन-समन्वित
कैसा यह मन-मोहन वन ?
कैसा अपार सुषमा-मय
यह अनुपम नन्दन-कानन ?

(१२)
निर्मल-जल जलाशयों में
कैसे ये कलित कमल हैं ?
—अनुराग-भरे, शोभामय,
शुभ, सुन्दर, अरुण, अमल हैं !

(१३)
उन सघन आम्र-वृक्षों से
यह कोकिल-स्वर-सा कैसा ?
यह सौम्य सुधा का वर्षण
राका निशिकर-सा कैसा ?

(१४)
हरिणी के से किसके ये
अभिराम नेत्र हैं निश्छल ?
भोले-भोले, आभा-मय,
सुखकर, निरीह, नव प्रतिपल !

(१५)
पर आह ! अचानक इनका
पल में मुँद जाना कैसा ?
हा ! किस अनन्त रजनी में
यह मोती पाना कैसा ?

(१६)
यह किस विचित्र मञ्जूषा
का कैसा कोष-निवर्त्तन ?
किस रम्य रज्जु का सहसा
यह आह ! बीच में कर्त्तन ?

(१७)
किस गृह के शून्याङ्गण में
ये झिलमिल दीपावलियाँ ?
हा ! स्नेह-शून्य हो बुझतीं ?
—जगती हैं रोमावलियाँ !

(१८)
शुचि श्याम सघन घन करते
यह कैसा जीवन-वर्षण ?
जीवन विहंग बन उड़ता,
अद्भुत घटना सम्मिश्रण !

(१९)
नव रजत-सूत्र में कैसे
गुँथते जाते सब तारे ?
आकृति-परिवर्तन करते
कैसे अनुपम छवि धारे ?

(२०)
बच्ची, हा ! तू ही तो थी
'मानस की विस्मृत-रेखा' !
इन भिन्न-भिन्न रूपों में
मैंने था तुझको देखा।

(२१)
झलकीं नाना वेशों में
तेरी ही कल क्रीड़ाएँ !
वे प्रकृति-दृश्य बन आईं
अनुराग-भरी व्रीड़ाएँ।

(२२)
वे बुझती दीपावलियाँ,
वे नीरद जीवन-दानी—
कहते थे तेरे ही तो
जीवन की करुण-कहानी !

(२३)
सुख से सुषुप्त थीं तुझमें
भव की विभूतियाँ कितनीं !
कैसे दीं तुझे नियति ने,
बच्ची प्रतिभाएँ इतनीं !



(२४)
तू जीवन-मरण-पहेली
सुलझाया करती कैसे ?
जग की सब चिन्ताओं को
झुलसाया करती कैसे ?

(२५)
किन कलित कल्पनाओं के
नभ में तू विचरा करती ?
मन-रञ्जन कर कैसे तू
मानस का तामस हरती ?

(२६)
रवि-शशि में भवन बनाना,
भरना मेघों में पानी—
आता था तुझसे कैसा,
अज्ञात देश की रानी !

(२७)
उस दूर क्षितिज को छूती
थीं तेरी अभिलाषाएँ;
जड़ जातीं तारावलि-सी
भोली-भोली आशाएँ !

(२८)
वर्षा की रिमझिम बूँदें
जब झर-झर कर झरती थीं,
जब वाद्य-यन्त्रजा ध्वनियाँ
मन में प्रमोद भरती थीं,

(२९)
स्वविवाह लक्ष्यकर तब ही
तू कहती थी मुसकाकर,
"वर्षा रत्नों की करने
ये जलद बनें रत्नाकर।"

(३०)
क्या गई पवन बनकर है
तू मृदुल पवन-झोकों में ?
—वर, विस्तृत नीले नभ के
उन रत्न-खचित लोकों में ?

(३१)
—किंवा चुनने को, बच्ची,
नीलम की मञ्जुल थाली—
के ज्योतिर्मय हीरक-चय
बनकर ऊषा की लाली ?

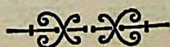
(३२)
जब सदन तात को आने
में देर कभी हो जाती,
थी सुखद गोद में निशि की
स्वर्णिम सन्ध्या सो जाती,

(३३)
विस्मित, चिन्तित, हर्षित हो
तू अहो ! तभी कहती थी,—
(शुचि, सौम्य त्रिवेणी ही क्या
आकर तुझमें बहती थी !)

(३४)
"भैया, क्यों आज पिताजी
हैं नहीं अभी तक आये ?
क्या नेकलेस बनवाने
वे हैं इतना विरमाये ?

(३५)
ये रसमय, भोली बातें
अब किसे सुनाती है तू ?
किस स्वर्गिक सुर-उपवन में,
कोकिल, अब गाती है तू ?

(३६)
बीती मधु-ऋतु, बीती तू,
बीते अब वे दिन, रानी !
युग-युग तक मेरे आँसू
बस कहते रहें कहानी !



पद्माकर की भाषा

श्रीगोपेशकुमार ओझा एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

पद्माकर की भाषा सुमधुर व्रजभाषा है, जो इन महाकवि के काल में अत्यन्त उन्नत और प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हो चुकी थी। परन्तु इनकी भाषा में बहुत-से राजस्थान की भाषा आदि के भी शब्द आ गये हैं, जिनको एक प्रकार से व्रजभाषा के अन्तर्गत ही मान सकते हैं और एक प्रकार से नहीं। परन्तु यहाँ पर भाषा की शुष्क विवेचना करना कि इनकी किस काल की व्रजभाषा है, किस प्रान्त की भाषा का इनकी भाषा पर प्रभाव पड़ा है, और कहाँ-कहाँ की बोलियों के शब्दों का इन्होंने प्रयोग किया है—यह हमारा उद्देश्य नहीं। यहाँ पर हमारा दृष्टिकोण दूसरा है। विना भाषा के केवल ध्वनि से यद्यपि राग निकाला जा सकता है और संगीत भी नियमबद्ध किया जा सकता है, जिससे हृदय के एकान्ततम गम्भीर प्रदेश में सुप्त ललित भावनाएँ जीवित और जाग्रत् हो सकती हैं; परन्तु भाषा के विना काव्य का निर्माण नहीं हो सकता। जब बसन्त के समय कोयल के पञ्चम स्वर से प्रिय जनों की स्मृति हो आती है, तब कोकिला के मधुर स्वर में काव्य-सहोदर ध्वनि की अनुभूति हो सकती है; परन्तु वह काव्य नहीं है। कविता के लिए भाषा की सर्वप्रथम आवश्यकता है। उसकी समीचीनता से उत्तम काव्य में सहायता मिलती है और भाषा के दोष से काव्य की उद्देश्यप्राप्ति में विघ्न उपस्थित होते हैं। अतः यद्यपि काव्य में रस आत्मा है, और शब्द और अर्थ में अर्थ प्रधान है, तथापि भाषा का महत्त्व भी कुछ कम नहीं, इसकी विशेष विस्तार से विवेचना करने की आवश्यकता नहीं।

हमें पद्माकर की कविता में यह देखना है कि प्रसादगुण है या नहीं; पदलालित्य कहाँ तक पाया जाता है। प्राञ्जलता और मधुरता लाने में ये महाकवि कहाँ तक समर्थ हुए हैं और इनकी भाषा साधारण विशिष्ट कोटि की है, किंवां अनन्य साधारण गुणगणगुम्फिता है।

खेल को बहानो कै सहेलिन के संग चलि,
आई केलिमन्दिर लौं सुन्दर मजेज पर।
कहै पदमाकर तहाँ न पिय पायो तिय,
त्यौं ही तन तै रही तमीपति के तेज पर।
बाढ़त बिथाकी कथा काहू सों कछू ना कही
लचकि लता लौं गई लाज ही की लेज पर।
बीरी परी बिथरि कपोल पर पीरी परी,
धीरी परी धाय गिरी सीरी परी सेज पर।

इसमें तुषारमृदित कमलिनी मृणालकोमला बाला की बदनवल्लरी प्रिय को नहीं पाने के कारण जो उदास और दुःखितावस्था में पड़ी है, उसका कैसी सुन्दर भाषा में चित्र खींचा है। अर्थ स्पष्ट



और यद्यपि उसमें चमत्कारप्राचुर्य है, पर इस स्थल में केवल भाषा की सरलता और मनोमोहकता दिखाना अभिप्रेत है, अतः अर्थ की गवेषणा नहीं करेंगे।

सरलतम भाषा में कैसी मनोहर कविता हो सकती है, इसके उदाहरणस्वरूप और भी छन्द उपस्थित किये जाते हैं—

हौं अलि आज बड़े तरकै,
भरिकै घट गोरस कौ पग धारौ।
त्यों कब को धौं खर्‌यो री हुतौ,
पदमाकर मो हित मोहिनीवारौ।
साँकरी खोरि में काँकरी की,
करि चोट चलौ फिर लौट निहारौ।
ता छिन तें इन आँखिन तें,
न कढ्यो वह माखन-चाखनहारौ।

कितनी सरल भाषा में यह आभीर बाला अपनी सुहृद् सखी से माखन-चाखनहार के प्रेम का वर्णन कर रही है। जिस प्रकार की मनोरम भाषा का प्रयोग आभीरी के मधु मधुर मुख से होना चाहिए था, उसका पूर्ण निर्वाह किया है। यहाँ पाण्डित्य दिखाना अभिप्रेत नहीं है, न वर्णन की चकाचौंध से चित्त आकर्षित करने की योजना। एकान्त में रहस संलाप करते हुए जैसी स्वाभाविक भाषा का प्रयोग प्रायः ललनाजन करती हैं, उसी का प्रयोग किया है। कितना सुन्दर पदविन्यास है, कैसा स्वाभाविक लालित्य है, कितनी मृदुता और मनोरमता है, सहृदय पाठक इस पर विचार करें। इस प्रेमगर्विता की भाषा से पद्माकर को अपनी भाषा पर गर्व हो सकता है। ऐसे छन्द ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते, जिनमें हम केवल 'भाषा का चमत्कार' दिखा सकें। भाषा के साथ भाव इतना सम्बद्ध है कि भाषाप्रधान छन्दों का प्रायः अभाव-सा है, तथापि पद्माकर की भाषा के सौंदर्य-प्रदर्शन के लिए हम कुछ और छन्द रखते हैं—

अब ह्वैहै कहा अरबिन्द सो आनन,
इन्दु के हाथ हवाले पर्‌यो।
पदमाकर भाषै न भाषै बनै,
जिय ऐसे कछूक कसाले पर्‌यो।
इक मीन बिचारो बिंध्यो बनसी,
पुनि जाल के जाइ दुमाले पर्‌यो।
मन तो मनमोहन के सँग गो,
तन लाज मनोज के पाले पर्‌यो।

इस छन्द में भाव इतना सुन्दर है और इतनी मनोमोहकता से रक्खा गया है कि एक प्रकार से इसे भाषा के उदाहरण में रखना भी अन्याय है, परन्तु भाव पर यदि दृष्टि न भी दें, जो कि एक प्रकार से असम्भव है, तो केवल भाषा पर ही चित्त मुग्ध हो सर्वस्व निछावर करने को उद्यत हो जाता है। 'अरबिन्द-सा आनन' इन्दु के हाथ पड़ गया है। मन मनमोहन के संग गया। उचित ही है वह मनमोहन हैं। मध्या नायिका है, अतः लाज मनोज के द्वैत शासन में तन का पड़ना भी स्वाभाविक है। बेचारी मीन की सी दशा है। बंसी में बिंधी और फिर जाल में जा पड़ी। कैसी सुन्दर उपमा है? कितनी हृदयहारिणी! अस्तु, यदि अर्थ के चमत्कार पर दृष्टिपात करना प्रारम्भ किया जायगा तो वापस लौटने की चित्तवृत्ति ही न होगी। ज़रा पदावली पर दृष्टिक्षेप उचित है। 'अरबिन्द-सो आनन', 'हाथ हवाले पर्‌यो', 'कछूक कसाले पर्‌यो', 'मीन बिचारो बिंध्यो बंसी', 'जाल के जाइ दुमाले पर्‌यो', 'मन तो मनमोहन', 'लाज मनोज के पाले पर्‌यो' प्रायः आदि से लेकर अन्त तक कैसे हृदयग्राही मार्मिक और मधुर पदों की योजना है, जो बरबस मन को हर लेते हैं। कितनी प्राञ्जलता है, कितनी कोमल कान्तपदावली है, इसके विषय में सहृदय ही प्रमाण हैं। परन्तु पद्माकर की भाषा के जहाँ अनेक भक्त हैं, वहाँ अनेक उसमें दोषराशि देखनेवाले भी हैं। प्रायः आक्षेप किया जाता है कि पद्माकर ने भाषा को भाव से अधिक प्रधानता दे दी है। परन्तु वास्तव में



ऐसा है नहीं। अर्थ का चमत्कार प्रत्येक स्थान में भाषा की मनोरमता से कहीं अधिक है, अतः एकाध छन्द के अर्थ की विशिष्टता पर पुनः प्रकाश डालना पड़ेगा। यहाँ पर हम ऐसे एकाध छन्द उदाहरण-स्वरूप रक्खेंगे, जहाँ भाषा की मधुरता, मधुरतमा कोटि की है और विचार करेंगे कि क्या अनुप्रास प्रसादगुण आदि के पीछे भाव को भुला दिया गया है।

सतरैबो करो बतरैबो करो,
इतरैबो करो करो जोइ चहो।
पदमाकर आनँद दीबो करो,
रस लीबो करो सुख सो उमहो।
कछु अंतर राखो न राखो चहो,
पर या विनती इक मेरी गहो।
अब ज्यों हिय में नित बैठी रहो,
त्यों दया करिके ढिग बैठी रहो।

प्रथम पंक्ति में एक ही प्रकार की क्रिया का तीन बार प्रयोग होता है, 'करो' शब्द की चार बार आवृत्ति। द्वितीय पंक्ति में फिर दो बार 'करो' शब्द का प्रयोग हुआ है और जिस प्रकार की क्रिया प्रथम पंक्ति में प्रयुक्त हुई थी, वैसी ही दो बार इसमें हुई है। तृतीय पंक्ति में 'राखो न राखो' इन पदों में एक ही अर्थ में 'राखो' शब्द का प्रयोग हुआ है; और जो 'चहो' शब्द प्रथम पंक्ति में आ गया है, वह यहाँ पर फिर आता है। चतुर्थ पंक्ति में 'बैठी रहो' दो बार आया है। यह देखने से स्पष्ट है कि एक प्रकार क्रिया का प्रयोग एक-सी ध्वनि में पर्यवसित होता है, जिससे न केवल माधुर्य की वृद्धि होती है, प्रत्युत विना आयास के सुन्दर Rhythm भी मनोहरता में सहायक होता है। इतने पर भी प्रथम दो पंक्तियों में 'करो' जगह-जगह जोड़कर नादसाम्य करके उद्देश्य सिद्धि की गई है—ऐसा प्रतीत होता है। क्या यह एक महाकवि की भाषा में शिथिलता का परिचायक नहीं है? क्या हम इस पद्य को पुनरावृत्तिदोष से दूषित न समझेंगे? क्या भाषा-प्रधान ही यह सवैया है, यह कहना अनुचित न होगा? इस प्रकार के आक्षेप प्रायः भाषा और काव्य के अतलस्पर्शी मुग्धजनों के मुख से तो निकलते ही हैं; परन्तु आश्चर्य होता है तब जब कि जिनसे आशा की जाती है कि वे अन्तस्तल तक पहुँचकर मर्म को पहुँचेंगे, वे भी काव्यक्षेत्र में शब्दविन्यास की मरीचिका में पड़कर सरस रस का पान करने में अक्षम हो जाते हैं। व्रजभाषा की स्वाभाविक मधुरता के कारण और उसकी क्रिया के रूप में मृदुता के कारण इन पदों में जो मनोरमता आ गई है, वह अन्यथा सम्भव नहीं थी। आधुनिक खड़ी-बोली में यद्यपि 'सतराने' का प्रयोग नहीं होता है, तथापि यहाँ केवल नादसाम्य को प्रयोजन रखते हुए यदि इस पंक्ति का रूपान्तर कर दें तो इसका पाठ इस प्रकार होगा—"सतराया करो बतलाया करो इतराया करो करो चाहो वही"। पाठकों ने देखा होगा कि सतरैबो करो आदि में जो मधुरता है, वह इसमें नहीं आती है। अतः बहुत-सी मधुरता का श्रेय भाषा को है और बहुत-सा कवि के भाषा पर आधिपत्य को। इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि एक प्रकार की क्रिया के प्रयोग से और 'करो' की पुनः-पुनः आवृत्ति से मनोहरता और रमणीयता की वृद्धि होती है, जिसके सहृदयों के श्रवण प्रमाण हैं। विचार करना यहाँ पर यह है कि क्या केवल इसे श्रवणमधुर बनाने के लिए ही पुनरावृत्ति की गई है।

यहाँ पर शब्दों की पुनरावृत्ति की गई है शब्दों के लिए नहीं, अर्थ के लिए। उसी शब्द को दुहराया गया है, जिसके भाव को खचित करने की आवश्यकता है। जब हम अपने किसी सुहृद को देख उसके समागम से हृष्ट हो उसका स्वागत करते हुए आइए! आइए!! आइए!!! की आवाज़ लगाते हैं, तब क्या हमारा आशय होता है शब्द की पुनरावृत्ति से श्रवणमधुरता उत्पन्न करना? कथमपि नहीं। हमारा अभिप्राय रहता है उसके आगमन-सम्बन्धी औत्सुक्य, हर्ष और



स्वागत के भावों को प्रकट करना; और जब यह भाव विशेष रूप से हृदय-उदधि में उमड़ते हैं तो बलात् मुख से भी ऐसे शब्दों को निकालते हैं, जो हृदय के घनीभूत भावों का परिचय दे सकें। प्रस्तुत छन्द में इसी सिद्धान्त पर जो बारम्बार करैबो करो आदि की पुनरावृत्ति की गई है, वह इस भाव को विशेष रूप से प्रकट करने के लिए कि तुम चाहे जो किया करो उसमें हमें कुछ नहीं कहना, यदि केवल एक विषय में हमारा आग्रह मान लो। अन्य कार्यों में जो प्रत्येक विषय में पूर्ण स्वच्छन्दता दी गई है, उसी पर विशेष ज़ोर देने के लिए बारम्बार स्वतंत्रता देने के शब्दों का प्रयोग किया है; और थोड़े से काल के लिए नहीं, प्रत्युत सर्वदा के लिए यह स्वाच्छन्द्य दिया जा रहा है। एक प्रकार से यह परतंत्रता के रज्जु जाल को जो बारम्बार काटकर पूर्ण स्वाधीनता दान दिया जा रहा है, वही इस कवित्त की जान है; क्योंकि स्वाधीनता का पूर्ण भाव ही दिखाना इसका अभिप्राय है। नायिका को स्वामी की ओर से स्वेच्छाचारिता का यह जो Concession दिया जा रहा है, इसी को खचित करने के लिए पुनः-पुनः यह भी स्वातंत्र्य तुमको है वह भी है, और वह भी और वह भी और वह भी। इसी प्रकार जो असीम स्वातंत्र्य नायिका को है, उसी को चित्त में वज्रलीकायित करना उद्देश्य है, जिसकी पूर्ण रूप से सिद्धि होती है। यह मुग्धा स्वाधीनपतिका का उदाहरण है, जिसके लक्षण में कहा गया है—

'जा तिय के आधीन ह्वै प्रियतम रहै हमेस'

अर्थात् स्वाधीनपतिका तब होती है, जब नायिका के अधीन प्रियतम की सब वृत्तियाँ हों। इस अधीनता के विचार को पति की ओर से पूर्ण स्वच्छन्दता देकर, उसका पद-पद पर उल्लेख कर सहृदय-हृदयों में दृढ़ बद्ध किया गया है। प्रियतम अपना सब अधिकार छोड़ रहा है, केवल एक अधिकार के बदले में और वह यह कि ज्यों हिय में नित बैठी रहो; त्यों दया करिकै ढिग बैठी रहो। इस अधिकार को माँगने में भी, प्रथम भाग में नायिका के सतत नायक के हृदय में वर्तमान रहने से वह उसके मनमन्दिर की अधिष्ठात्री देवी है, यह स्पष्ट कर दिया है; और द्वितीय भाग में जो अनुनय-पूर्वक अधिकार माँगा गया है—'दया करिकै ढिग बैठी रहो' उससे भी नायिका का नायक की मनोवृत्ति पर पूर्ण अधिकार है—यह ध्वनित होता है। अतः अनेक अधिकार-दान के प्रतिदान में यद्यपि नायक एक अधिकार माँग रहा है, तथापि जो अधिकार वह माँग रहा है, वह भी वास्तव में नायिका के ही अधिकार की वृद्धि है—यह विदग्ध-समुदाय समझेगा ही। इस प्रकार पूर्ण रूप से सब अधिकारों का नायिका में सन्निवेश किया है, जिससे यह छन्द स्वाधीनपतिका का प्रकृष्ट उदाहरण हुआ है। जब मनुष्य कोई एक वस्तु माँगता है और उसके बदले में बहुत वस्तुएँ देने की घोषणा करता है तब जो वस्तुएँ वह देना चाहता है, उनके महत्त्व का विस्तार करने के लिए प्रत्येक का परिचय पृथक्-पृथक् विशेष रूप से कराता है—ऐसी ही व्यापार की नीति है। अपने पलड़े को अधिक वज़नदार बनाने के लिए जो स्थल-स्थल में ज़ोर दिया जा रहा है वह प्रेमव्यापार की चरम कला का परिचायक है। यहाँ आवृत्ति होती है, शब्दों के लालच से नहीं, भाव की महत्ता खचित करने के लिए। उत्तररामचरित में वनदेवता वासन्ती के मुख से भगवान् रामचन्द्र के प्रति जो उपालंभ के वचन हैं—

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।

(अर्थात् तुम मेरे जीवनस्वरूप हो, तुम मेरे द्वितीय हृदय हो, तुम मेरी नयन की कौमुदी हो। तुम मेरे अङ्ग में अमृत के समान हो)

इन वचनों में 'त्वं' शब्द का जो बारम्बार प्रयोग किया गया है, वह भावविशेष पर ज़ोर देने के लिए, शब्द के लालच से नहीं। इसी प्रकार पद्माकर की कविता में सहृदय प्रत्येक पद को भाव-

पुष्टि का पोषक और रसोद्रेक में सहायक मानते हैं। यहाँ अनुचित शब्दों की भरमार नहीं है, न पुनरुक्ति-दोष है; प्रत्युत भावव्यञ्जना की उच्चतम कला का विलास है। भाषा की प्राञ्जलता में जितना उच्च स्थान पद्माकर का है, उतना अन्य कवियों में बहुत कम का है, यद्यपि भाषा के चमत्कार के साथ-साथ प्रत्येक छन्द में अर्थ का चमत्कार भी उच्चतम कोटि का है—जैसे सत्कवियों की कृति में होना स्वाभाविक है। अतः हम ऐसे छन्द देने में अक्षम हैं, जिनकी केवल भाषा में ही चमत्कार हो। तथापि कुछ छन्द ऐसे उपस्थित करते हैं, जिनमें पदों की 'मधुरता हठात् मन को आकृष्ट कर लेती है।' अविदितगुणापि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्। अनधिगत परिमलापि हरति दृगं मालतीमाला।

यथा—

सजि ब्रजलाल नन्दलाल सों मिलै के लिए
लगन लगालगी मैं लमकि-लमकि उठै।
कहै पदमाकर चिराग-ऐसी चाँदनी-सी
चारयो ओर चौकनि में चमकि-चमकि उठै।
झुकि-झुकि झूमि-झूमि झिल-झिल झेल-झेल
झरहरी झापन में झमकि-झमकि उठै।
दर-दर देखो दरीखानन में दौरि-दौरि
दुरि-दुरि दामिनी-सी दमकि-दमकि उठै।

अथवा दूसरा छन्द देखिए—

चहचही चहल चहूँघा चारु चन्दन की
चन्द्रक चुनीन चौक चौकन चढ़ी है आब।
कहै पदमाकर फराकत फरसबन्द
फहरि फुहारनि की फरस फबी है फाब।
मोदमदमाती मनमोहन मिलै के काज
साजि मनमन्दिर मनोज कैसी माहताब।
गोल गुल गादी गुल गिलमैं गुलाब गुल
गजक गुलाबी गुलगिन्दुक गुले गुलाब।

इन दोनों छन्दों में जो अनुप्रास की इयत्ता दृष्टिगोचर होती है, वह पद्माकर की विशेष सम्पत्ति है। 'लगन लगालगी मैं लमकि-लमकि उठै' में लकार का लावण्य सुमधुर 'ग' और 'म' से मिलकर किसी ललना की गौर मधुरता की मूर्ति-सी उपस्थित कर देता है। 'चिराग-ऐसी चाँदनी-सी चारयो ओर चौकनि में चमकि-चमकि उठै' इसमें पदों के प्रारंभ में चकार केवल अनुप्रास ही उत्पन्न नहीं करता है, प्रत्युत चन्द्रिका से चकासित चौक के चित्र को चित्रित-सा कर देता है। तृतीय पंक्ति में झकार और चतुर्थ पंक्ति में 'द' का शब्दों के आदि में पुनः-पुनः प्रयोग अभीष्ट अर्थ के प्रतिफलन में साधक होते हुए छन्द को ज़ेवर में जड़े हुए जवाहिरात से जगमग कर देता है।

चहचही चहल चहूँघा चारु चन्दन की
चन्द्रक चुनीन चौक चौकन चढ़ी है आब।

इस कवित्त में जो एक-सी सुमधुर ध्वनि करनेवाले शब्दों की मधुर योजना की गई है, वह श्रवण द्वारा आनन्द उठाने का विषय है—वर्णन का नहीं। एक ऐसा रुचिर चित्र मानसिक नेत्रों के सामने ये शब्द अंकित करते हैं, जिसका कोई भाग अत्यन्त प्रकाशमय है और कोई स्थलपद्म की कान्ति से मनोहर। ये जो एक प्रकार के शब्द एकत्रित किये गये हैं, इनका आशय यदि अनुप्रास के उत्पादन पर ही समाप्त हो जाय तो कवि की कृति शब्दालंकार तक ही सीमित मानी जायगी। परन्तु नीचे की विवेचना से स्पष्ट होगा कि अन्य गुण भी इनमें विद्यमान हैं, जिनके कारण इन कवित्तों का आदर अत्यधिक हो जाता है। जिस प्रकार के भाव को प्रकट करना हो, उसी प्रकार की भाषा को प्रयुक्त करने के सिद्धान्त से सब अवगत हैं। यदि वीररसवर्णन में क्षण-क्षण पर विराम लेती हुई लड़खड़ाती-सी दीन वाणी का प्रयोग किया जाय तो क्या वह उचित होगा? इस प्रकार की भाषा तो करुणरस की कविता में ही प्रयुक्त होनी चाहिए, जिससे हृदय की धैर्यहीनता, करुणा और दैन्य का परिचय मिल सके। भाषा की शब्द-



ध्वनि से ही भाव के परिचय मिलने को अँगरेज़ी में onomatopoeia अलंकार कहते हैं। जैसे—

With beaded bubbles winking at the brim.
—Keats

× × ×

The ploughman homeward plods his weary way

× × ×

And cast one longing lingering look behind.
—Gray

× × ×

I heard the ripple washing the reeds
And the wild water lapping on the crag.
—Tennyson

× × ×

I bubble into edding bays
I babble on the pebbles.
—Tennyson

And ten low words oft creep in one dull line.
—Pope

× × ×

Her bright breast shortening into sighs

× × ×

The wild Vine slips with the weight of its leaves.

× × ×

The wolf that follows the fawn that flies.
Swinburne

ऐसी अलंकार पद्माकर की इन कविताओं में उपस्थित होता है। कविता को शब्दालंकारों से सुसज्जित किया है, इसलिए यह किसी ऐसी नायिका का वर्णन होना चाहिए जो अलंकृत हो। विरहिणी नायिका के वर्णन में यदि इस प्रकार की पदावली का प्रयोग किया जाय तो वह अज्ञता की अवसान-सूचक होगी। विरहिणी नायिका तो भूषणादि से अनलंकृत रहेगी। खंडिता नायिका की भी अपने शरीर को अलंकृत करने में अरुचि रहेगी। परन्तु कवित्त को पढ़ने से तो कोई जगमग करती हुई क्षण-क्षण विलक्षण लावण्य से नेत्रों में चकाचौंध उत्पन्न करनेवाली नायिका का अनुमान होता है। पाठकगण विचार करें कि ऐसा उज्ज्वल शृंगार करनेवाली कौन-सी नायिका है? क्या यह अभिसारिका तो नहीं है? असित पक्ष में प्रत्येक ही उपकरण नवनील नीरदच्छवि का इसलिए संग्रह किया जाता है कि निशा के श्यामपट में श्यामा विलीन हो जावे। तब फिर ऐसी दशा में ऐसी चकाचौंध से चारों ओर कान्तिविस्तार करने की कल्पना कृष्णाभिसारिका में कैसे की जा सकती है! शुक्लाभिसारिका यद्यपि उज्ज्वल परिधान धारण कर गृह से प्रस्थित होती है, परन्तु इन कवित्तों से तो जो झन-झन करनेवाली नूपुरों की ध्वनि और मेखला का रणितनिस्वन-सा सुनाई देता है, क्या वैसे वेष में जाने का स्वप्न में भी शुक्लाभिसारिका साहस करेगी? अतः निर्विवाद सिद्ध है कि इस कवित्त को जिस प्रकार जगमगाते हुए शब्दों की ज्योति से उज्ज्वल किया गया है कि मधुर ध्वनि करते हुए अति रमणीय शब्दों का नाद होता है, उससे ऐसी नायिका की व्यंजना होती है, जो उज्ज्वल शृंगार किये हुए आभूषणों से सुसज्जित जैसे अपने मुखरित नूपुर-स्वर से वैसे ही मंजु मेखला-मणि के मनोहर झंकार से प्रियतम की प्रतीक्षा करती हुई कोई नायिका हो। यह है वासकसज्जा।

प्रथम छन्द में उतनी शब्दालंकारयोजना नहीं की गई है, जितनी द्वितीय छन्द में। पहले छन्द में नायिका "दुरि-दुरि दामिनी-सी दमकि-दमकि उठै" रह-रहकर चमक जाती है। पदावली की भी चकाचौंध होती, घटती और बढ़ती है। कारण स्पष्ट है। वासकसज्जा है, परन्तु मध्या। दूसरे छन्द में 'मनोज की माहताब-सी' कन्दर्प की जीती-जागती ज्योति-सी जैसी नायिका का वर्णन है, वैसी ही परा कोटि की शृंगार सामग्री का समवाय है। यहाँ पर जो



इतनी प्रकर्षता है, उसका कारण ढूँढने की आवश्यकता नहीं। यह प्रगल्भा वासकसज्जा है। यह नायिका का वह वेष नहीं है, जिसके विषय में महाकवि कालिदास ने कहा है—

किमिवहि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।

यह तो रति की प्रतिस्पर्धिनी-सी अपनी रत्न-प्रभा से शची के भी चित्त में ईर्ष्या उत्पन्न करनेवाली हीरकादि से अलंकृत अलकावली से अलका का भी मानमर्दन करनेवाली प्रगल्भा वासकसज्जा है, अतः भाव के अनुरूप यदि चमकते हुए पदरत्नों की चकाचौंध ही यहाँ उत्पन्न न की जाती तो दोष होता। पाठकगण ध्यान दें कि पद्माकर की पदयोजना किसी ध्येय को लेकर की गई है, अथवा नहीं। क्या इस चमत्कार के आगे पद्माकर पर किये गये आक्षेपों में सत्य का आभास भी मिलता है। वस्तु-वर्णन प्रायः कवित्तों में किया गया है, इसी लिए उनकी भाषा भी विशेष अलंकृत हुई है और भाव-वर्णन में सवैये छन्द को अपनाया है, जिसकी पदावली में रत्नों की प्रभा के स्थान में मख़मल की सुकोमलता की अनुभूति होती है। महाकवि भवभूति ने भी वस्तुवर्णनात्मक स्थलों में बड़े छन्द और भाषा की क्लिष्टता को अवकाश दिया है और हृदय के ललित भावों के विकास के समय अपेक्षाकृत छोटे छन्द और सरल भाषा का उपयोग किया है। उसमें जो सिद्धान्त है, वही पद्माकर की कृति में। अतः विज्ञों के सम्मुख इस पर विशेष प्रकाश न डालकर हम एक सवैया उपस्थित करते हैं—

गो गृहकाज गुवालन के,
कहे देखिबे को कहूँ दूरि के खेरो।
माँगि बिदा लई मोहनी सों,
पदमाकर मोहन होत सवेरो।
फेंट गही न गही बहियाँ,
न गरो गहि गोबिंदै गौन तैं फेरो।
गोरी गुलाब के फूलन को,
गजरा लै गुपाल की गैल में गेरो।

अपने समस्त कार्य-भार की उपेक्षा कर गोप-गणों के कहने से बाहर विनोद के लिए जाने को गोविन्द उद्यत हो गये हैं। प्रातःकाल होते ही मोहन ने मोहिनी से जाने के लिए विदा ले ली है। मोहिनी ने आलिंगनपूर्वक उनके मार्ग को अवरुद्ध नहीं किया। न उनके मृणाल कमनीय बाहु युगल को अपने करसरोरुह-सम्पुट में आबद्ध कर जाने से फेरने का यत्न किया, प्रत्युत गोविन्द के मार्ग में गुलाब का गजरा लेकर डाल दिया। साधारणतया देखने से गोविन्द के बाहर जाने में कोई महत्त्व दिखाई नहीं देता। मोहिनी ने बिदा माँगने पर बिदा दे भी दी है। न मान किया, न रोकने का यत्न किया। गुलाब के फूलों का गजरा मार्ग में डाल दिया है। यहाँ इसके तीसरी पंक्ति के अन्त में 'फेंट गही न गही बहियाँ न गरो गहि गोबिंदै गौन तैं फेरो' में जिस प्रकार "ग" का ललित अनुप्रास आया है, इसी प्रकार "गोरी गुलाब के फूलन को गजरा लै गुपाल की गैल में गेरो" इस पंक्ति में तो मानो जितनी बार "ग" आ सके, उतनी बार इसका प्रयोग करने के लिए पद्माकर बद्धपरिकर हो गये हैं। शब्दानुप्रास की जो मनोहरता है, उसके विषय तो हमें कुछ कहना ही नहीं है। इसके लिए तो कोई भी पाठक पद्माकर के किसी भी छन्द को उठाकर देख सकते हैं। सभी जगह अनुप्रास अबाधित रूप से प्राप्त होगा। सम्भव है, इसी कारण काव्य के मर्मों को न पहचाननेवाले भाषा के साधारण ज्ञान से भूषित भारती के उपासकों में भी पद्माकर के प्रशंसक मिलेंगे। वे केवल पद्माकर की भाषा पर ही मुग्ध होकर अनुप्रासजनित माधुर्य से सुननेवालों के कर्ण-कुहरों में पीयूष-वर्षा कर प्रशंसा के पात्र होते हैं, यह बहुत अंशों तक पद्माकर की लोकप्रियता का कारण है। और कुछ ऐसे छन्द, जिनमें अनुप्रास की सरिता-सी उमड़ती है, प्रायः प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी के जिह्वाग्र-भाग पर रहते हैं। परन्तु शब्दों के मृदु आवरण के भीतर सुरसरिल्लोलकल्लोल

...ता में विलीन सरस्वती-सी जो अर्थ की सुधा-रिता बहती है, उसका रसास्वादन न कर सकने-वाले यह आक्षेप कर बैठते हैं कि पद्माकर में शब्दों का माधुर्य है, अर्थगांभीर्य नहीं; पदप्राञ्जलता है, सौष्ठव नहीं। इसी सवैये की अंतिम पंक्तियों में "गरो" का प्रयोग अर्थ की दृष्टि से अनर्गल-सा प्रतीत होता, परन्तु ऐसा नहीं है। जब मोहन ने बिदा माँगी, तब मोहिनी ने बिदा क्यों दे दी? यदि उस समय बिदा देने में इन्कार किया जाता तो काव्य की दृष्टि से कोई चमत्कार नहीं रहता। इस बिदा में व्यवधान करने के घरेलू चित्र के चित्रण का उद्देश्य कवि का नहीं है। यदि ऐसा करता तो विदग्धता ही क्या रह जाती। यदि गोविन्द की ...बहरी को बाहुपाशबद्ध करके गमन का प्रतिषेध किया जाता तो भी कोई विशेष चमत्कार नहीं था। ऐसा भी प्रतिदिन नायक के गमन के समय प्रगल्भाकुलकारी में भी जन द्वारा आचरण होता ही रहता है। परन्तु मोहिनी में अभी इतनी प्रगल्भता नहीं है कि बहियाँ या गरो गहि गोविन्द को गमन से फेरे। गले के पर्यायवाची यदि कंठ आदि का प्रयोग यहाँ पर किया जाता तो क्या उतनी मधुरता आना संभव था, उसी प्रकार "गहि" शब्द में जो मृदुता के साथ दृढ़ ग्रहण करने का अर्थ व्यंजित होता है, वह दूसरे शब्द से नहीं। साधारणतया बाहु ग्रहण करके प्रतिबन्ध किया जाता है। नायक-नायिका में विशेष प्रेम के कारण कंठ-ग्रहणपूर्वक भी अनुनय हो सकता है। अतः इस पंक्ति में जो 'गहि' और 'गरो' शब्द का प्रयोग किया है, उनके पर्याय से अर्थसिद्धि नहीं होती।

इससे स्पष्ट है कि अनुप्रास के लोभ से शब्दों की भरमार नहीं की गई है, प्रत्युत प्रत्येक शब्द अपना महत्त्व रखता है। संस्कृत के 'कमल का ...' और 'गमन' का 'गौन' जो मधुरता उत्पन्न कर देता है, उसके ये पद ही स्वयं प्रमाण हैं। ... गौन को हटाकर इसी भाव के द्योतक दूसरे शब्द की ऐसी ललित योजना की जा सकती है? इस विवेचना से 'गौन' शब्द की सार्थकता के संबंध में तो विश्वास हुआ, परन्तु 'गोरी गुलाब के फूलन को गजरा लै गुपाल की गैल में गेरो' इस पंक्ति में 'ग' की अनुचित भरमार के सम्बन्ध में संभव है, शंका बनी ही हो। इस विचार से पहले इसी पर ध्यान देंगे कि मोहिनी ने ऊपर की पंक्ति में जो प्रक्रम वर्णित है, उनमें से किसी का आश्रय ले प्रतिषेध न कर गजरा गोपाल की गैल में क्यों डाल दिया। प्रथम तो नायिका इतनी प्रगल्भ नहीं हुई है कि उस प्रकार से गमन-निवारण करती, दूसरे उस प्रकार के वर्णन में अभिप्राय की सिद्धि अभिधावृत्ति द्वारा ही होती; व्यञ्जना द्वारा नहीं। व्यञ्जना और अभिधा के आकाश-पाताल के भेद को दिखाने का यह अवसर है, न काव्यपरीक्षकों के आगे उस श्रम की आवश्यकता ही है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि व्यञ्जना द्वारा अर्थ व्यक्त करने के अभिप्राय से मोहिनी ने उस प्रकार गति का प्रतिरोध नहीं किया। गुलाब के गजरे को मार्ग में डालकर वसन्त समय का निदर्शन करती हुई उस भावना से उपस्थित नायक-नायिका के एक ही स्थान में रहने की ललित आवश्यकता पर प्रकाश डालती हुई विरह की इस ऋतुविशेष में प्रचण्ड ऊष्मा का स्मरण-सा दिलाती हुई जो एक नायिका गुलाब का गजरा डालती है, उसकी विस्तार-भय से हम यहाँ आलोचना नहीं करेंगे। इस कार्य में विदग्धता है, प्रगल्भता नहीं, अतः मध्याप्रवत्स्यत्प्रेयसी का सुन्दर उदाहरण है।

'गोरी' शब्द से आलंबनस्वरूप नायिका के सौन्दर्यातिशय को द्योतित करते हुए रति-उत्पत्ति की विशेष योग्यता दिखलाई। अन्य पुष्पों की माला मार्ग में न डालकर गुलाब का गजरा ही क्यों डाला? वसन्त में जो अनेक पुष्पविशेष विकसित हो अपनी रूपराशि और सुरभि-सम्पत्ति से युवक-युवतीजन के चित्त को मदिरापान की भाँति उन्मत्त-सा कर देते हैं, उनमें गुलाब का



उच्चतम स्थान है। इस विषय में दो सम्मतियाँ नहीं हो सकती हैं। फूलों की माला न डालकर गजरा क्यों डाला है? माला में उतनी सुमनसमूह की सम्पत्ति नहीं होती है, जितनी गजरे में। गजरे में वे कुसुमदल घनीभूत हो विशेष परिमाण में वर्तमान रहते हैं। इस कारण गजरे को डालने से घनीभूत प्रेम एवं वसन्त का पूर्ण रूप से आगमन और तज्जन्य परम कोटि की विरहाग्नि होगी—यह ध्वनित किया है। एक गुलाब के पुष्प को डाल देने से यह ध्वनि निकल सकती थी, परन्तु उतनी मात्रा में नहीं, जितनी में कवि को अभिप्रेत है। एक-आध गुलाब का फूल संभवतः दृष्टि से बच जाता; परन्तु गजरा तो 'न' केवल दृष्टि को ही अपनी ओर आकर्षित करेगा, प्रत्युत गैल को घेर भी लेगा। बाट, मार्ग आदि चौड़े रास्ते के द्योतक हैं, परन्तु 'गैल' से मार्ग की सङ्कीर्णता ध्वनित होती है, जिसमें पड़ा हुआ गजरा गोपाल के मार्ग में अर्गला का कार्य करेगा। अतः गोरी, गुलाब, गजरा, गैल आदि सार्थक हैं, और अर्थविशेष संपादित करते हैं, जो इनके पर्याय नहीं कर सकते थे। इससे स्पष्ट है कि अनुप्रास लाने के लिए ही ये शब्द नहीं रक्खे गये हैं, प्रत्युत उत्तम काव्य की दृष्टि से इनका प्रयोग परमावश्यक था। संभवतः यह कवि पर किये गये अनुप्रास के लोभ से शब्दों की भरमार का निवारण करें।

कूलन में केलि में कछारन में कुञ्जन में
क्यारिन में कलित कलीन किलकंत है।
कहै पदमाकर परागन में पान हू में
पानन में पीक में पलासन पगंत है।
द्वार में दिसान में दुनी में देसदेसन में
देखो दीप दीपन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में
बनन में बागन में बगरयो बसन्त है।

यथा—

मल्लिकान मंजुल मलिन्द मतवारे मिले
मन्द-मन्द मारुत मुहीम मनसा की है।
कहै पदमाकर त्यों नदन नदीन नित
नागर नवेलिन की नजर नसा की है।
दौरत दरेरो देत दादुर सु दूँदै दीह
दामिनी दमंकत दिसान में दसा की है।
बद्दलनि बुन्दनि बिलोक बगुलान बाग
बंगलन बेलिन बहार बरसा की है।

पद्माकर की भाषा पर आक्षेप करनेवाले प्रायः इन दो छन्दों के उदाहरण उपस्थित कर अनर्गल शब्द-जाल में ही पद्माकर की काव्यकला सीमित है—यह प्रकट करने का यत्न करते हैं। अनुप्रास के लिए या यमक के लिए (यथा नवेलिन में बेलिन में) ही शब्दों को केवल नादसाम्य के विचार से एक स्थान पर भर दिया गया है—प्रायः यह आक्षेप हुआ करता। किसी सुन्दर उद्यान में रंग-रंग के सुगन्धित पुष्प विकसित रहते हैं। परन्तु उन पुष्पों का वर्ण किसी एक विचार से क्रमबद्ध नहीं रहता। वहाँ पर सभी पुष्पों से भीनी-भीनी सुगन्ध उठती है, जो अपनी मनोमोहकता से दशों दिशाओं को व्याप्त कर देती है। परन्तु वह पुष्पराशि वर्ण के विचार से सजाई हुई नहीं रहती। इसके विपरीत कुछ उद्यान ऐसे भी हैं, जहाँ एक आलबाल में अथवा एक क्यारी में एक ही वर्ण के लगाये हुए पुष्प मिलेंगे। यदि एक ही स्थान पर भिन्न-भिन्न रुचिर रंगों के पुष्प लगाये भी जाते हैं तो इस विचार से कि एक रंग के पुष्प एक भाग पर रहें या बाहरी घेरा बना लें, जिससे नेत्रों पर विशेष प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ हों। अतः यदि उन सुमन-समूहों में सौरभ भी हो तो क्या केवल इस बात से कि उनको वैश-विशेष के विचार से लगाया गया है—हम भर्त्सना करेंगे। यही हाल पद्माकर की कविता का है। कोई छन्द ऐसा है कि जिसमें गुलाब और गुलशब्बो, मल्ली और मोगरा केवल सौरभ के विचार से सजाकर रख दिये गये हैं और अपने नैसर्गिक लावण्य



वह सामूहिक रूप से सौन्दर्य-सारसमुदाय प्रतीत होते हैं। परन्तु इसके साथ ही पद्माकर कुछ छन्द ऐसे हैं, जिनमें यदि एक ओर केवल जावी गुलाब हैं तो दूसरी ओर मांझल्लिली का लावण्य है।

कुमुदकुवलय और कह्लार की कमनीय कुसुम- सजाई गई है। परन्तु एक कुसुमदल एक ओर है। क्या वर्णविभाग सौरभ का शत्रु है? भ्रांति से भ्रमित पद्माकर के कुछ परीक्षक से इन छन्दों की निन्दा करने में बद्ध- होते हैं। प्रथम कवित्त में वसन्त-वर्णन है द्वितीय में वर्षा का। दोनों ही छन्दों में विषय ऋतु के प्रभात और विस्तार का। धनिकों के क्रीड़ा-स्थान उद्यानों में जैसे वसन्त ने प्रभाव दिखाया, वैसे ही किसी निर्धन के में स्थित एकाकी पादप भी उसकी श्री से उल्लासित हो उठा है। राजमहल के उच्च शिखर प्रकार वर्षाजल से आप्लावित हुए, वैसे ही शालाओं के तृणवितान भी। यह दोनों के रूप से प्रभावित होने के भाव को कवि ने ही अक्षर से प्रारंभ के दो शब्दों को एक साथ दिखाया है। जिस प्रकार प्रकृति के निर्जन भाग में वासंती अपने सुकुमार करसरो- से तरु-खण्ड को सज्जित करने लगी, वैसे प्रासादों के पार्श्व में पुष्पराशि की अबाधित कर किसी नवीन ऋतु के आगमन को किया। जिस प्रकार नवीन मेघमाला के को प्रगल्भ किया, वैसे ही कुलकामिनी के मान का अपनयन कर उनमें प्रगल्भता भर। इसी भाव को व्यक्त करने के लिए प्रकृति प्रासाद दोनों में समान रूप से बसन्तश्री है, यह भली प्रकार हृदयंगम करने के लिए में बागन में' आदि शब्दों की योजना और इस प्रकार जैसे वनस्पति-जगत् में वैसे ही में समान रूप से विकास और विकार है, यह बताने के लिए 'नवेलिन में बेलिन में' आदि शब्दों का उपयोग किया। एक वर्ण से प्रारंभ होनेवाले पदों को रखकर कवि ने मानो यह दिखलाया है कि उस पद से प्रारंभ होनेवाले सभी स्थानों में ऋतु का साम्राज्य है।

लगातार एक से शब्द आने से यह मालूम होता है कि उस वर्ण से प्रारंभ होनेवाला कोई भी शब्द नहीं छोड़ा, जिसमें पूर्णतया चित्त पर यह प्रभाव पड़ता है कि वसन्तश्री अथवा वर्षा की बहार से भी कोई-सा स्थान नहीं छूटा। ये शब्द क्रमबद्ध भी रक्खे गये हैं—पहले द्वार में कहा, फिर दिग्विभागों में कहा। पहले देश में कहा है, फिर द्वीपों में, क्रमशः पास के स्थानों से आरम्भ कर दूर तक का विस्तार दिखलाया है। द्वीप से भी संतोष नहीं हुआ, तब समस्त खमण्डल को ही मंडलित कर लिया है। यह बताने के लिए दिगन्त कहा। अतः एक प्रकार के शब्द विचार से क्रमबद्ध करने से कैसे महत्त्व के हो जाते हैं, इस पर विशेष प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं। परिगणना ऐसे पदार्थों की गई है, जो आलम्बनस्वरूप किंवा उद्दीपनस्वरूप हैं। पाठकगण देखें यह शब्द भर- मार नहीं, शब्दों का चुनाव है। पदों का ढेर नहीं लगाया गया है। उनको क्रमबद्ध कर अपूर्व चमत्कारोत्पादन किया गया है।

'मल्लिकान मंजुल मलिन्द मतवारे' से भ्रमरगण का गुंजन 'दौरत दरेरो देत दादुर' से दादुर का शब्द नादसाम्य से कितनी अच्छी तरह प्रकटित होता है। इन छन्दों की लोकप्रियता ही इनकी विशिष्टता का प्रमाण है। और इस रीति से इनका अध्ययन करने से पद्माकर की कविताकामिनी पर अर्पित हुई यह लांछनश्रृंखला भी विगलित हो जावेगी—ऐसी आशा है। पद्माकर की भाषा पर बहुत लिखा जा सकता है। परन्तु यहाँ पर उसी भाषा पर प्रकाश डाला गया है, जो अर्थ से संबद्ध है। उपर्युक्त छन्दों से इनकी भाषा पर पूर्ण अधि- कार प्रकट होता है, जो इनके संस्कृत प्राकृत, उर्दू आदि के पूर्ण अध्ययन का परिचायक है।

रोमांस की खोज में

आचार्य श्रीराधारमण शर्मा शास्त्री, साहित्यभूषण, काव्यतीर्थ

चैत्र की पूर्णिमा, निशीथ का समय ! मैं न्यू थियेटर्स का 'चण्डीदास' देखकर आया था, और भोजन कर चारपाई पर पड़ा भावधारा में बह रहा था। चण्डीदास का एक-एक दृश्य आँखों में घूम रहा था। उसके एक-एक शब्द कानों में गूँज रहे थे। मालूम होता था—जैसे मैं अभी तक सिनेमा-हाल में बैठा फ़िल्म ही देख रहा होऊँ ! रामीरूपिणी उमाशशि के गान कितने भावपूर्ण थे, और कितने सरस मधुर ! गान कब का समाप्त हो चुका था, पर उसकी झंकृति अभी तक हृत्तन्त्री के तारों को छेड़-छेड़ उनमें पुलक भर रही थी। सचमुच—

"प्रेम सखा हो प्रेम पड़ोसी, प्रेम ही सुख का सार।
प्रेम धर्म है प्रेम कर्म है, प्रेम ही सत्य विचार॥"

प्रेम ? हाँ प्रेम, मनुष्य के जीवन में यदि प्रेम न हो तो वह जीवन भी क्या जीवन है ? प्रेम का ही दूसरा नाम तो जीवन है ! और प्रेम का अभाव ही तो मृत्यु है। यह संसार तभी तक तो संसार है, जब तक उसमें प्रेम की मधुरिमा है। स्वर्ग—स्वर्ग क्यों है ? इसी लिए तो कि वहाँ विशुद्ध प्रेम की अगाध मन्दाकिनी प्रवाहित होती रहती है। सचमुच प्रेम संसार की सर्वोत्कृष्ट वस्तु है—सबसे मंजुल, सबसे मनोज्ञ ! गगनाङ्गण में यामिनीरमण प्रेम की क्रीड़ा में मस्त विहँस रहे थे।

किन्तु, किन्तु प्रेम की मंजुलता, उसकी सरसता में भी आकर्षण तभी होता है, तभी उसमें कुछ विशेष रस मिलता है, जब उसमें कुछ त्याग हो, कुछ विघ्न-बाधाएँ हों, कुछ कशिश, कुछ जलन और तड़प हो, और आशा-निराशा का कुछ घात-प्रतिघात भी हो। नहीं तो प्रेम में उतनी मादकता नहीं रहती। वह उतना आनन्दमय नहीं होता !

चण्डीदास ने रामी को मन्दिर के प्राङ्गण में खड़ी देखा। आँखें चार हुईं। हृदय-क्षेत्र में प्रेम का बीज वपन हो गया। उसके बाद अगर समाज और सामाजिक विकारों के मूर्तिमान् प्रतिनिधि गोपीनाथ के द्वारा उस प्रेम-वृक्ष के फलने-फूलने में बाधाएं न डाली जातीं, अत्याचार पर अत्याचार न होते, रामी और चण्डीदास देखने के साथ ही एक दूसरे के हो प्रेमी प्रेमिका की तरह रहना आरम्भ कर देते, तो रामी और चण्डीदास की प्रणय-कहानी न तो सहृदयों का मनोरंजन कर उन्हें भावुकता और आनन्द की धारा में यों डुबोया करती, और न चण्डीदास और रामी को ही वह अनिर्वचनीय आनन्द मिला होता, जो उन्हें इन अत्याचारों और बाधाओं को पार करने के बाद एक दूसरे से मिलने पर मिला होगा।

किन्तु, कितने ऐसे हैं, जिन्हें इस रोमांसपूर्ण प्रेम का आनन्द मिला होगा ?



बाल्यकाल में हमारा विवाह होता है—दूसरों की पसन्द की हुई बधू से ! अब उससे प्रेम या प्रेम का नाट्य करना आपका आवश्यक कर्तव्य है। आपके सौभाग्य से यदि वह सुन्दरी और आपके मनोनुकूल मिलीं तब तो ख़ैर कोई कठिनाई नहीं, आपका जीवन सुखी और प्रेममय हो सकता है। पर यदि आपका सौभाग्य ऐसा नहीं हुआ तो फिर आप या तो त्यागी बनिये या पथ-भ्रष्ट ! आपके लिए तीसरा रास्ता नहीं ! आपको........

आपको........

आँखों में आलस्य भर रहा था। देवी निद्रा बाहुपाश फैलाये मुझे अपने आलिंगन में भर लेने को तैयार खड़ी थीं। भाव-धारा का प्रवाह शिथिल—शिथिलतर—हो चला था।

........हाँ, अभी पिछले रविवार की सन्ध्या में कोई ख़ास काम न था। बैठा पं॰ ईश्वरीप्रसाद शर्मा का 'प्रेम-गंगा' पढ़ रहा था, और रोमांसपूर्ण प्रेम-कहानियों का आनन्द ले रहा था। जी॰ पी॰ श्रीवास्तव का 'दिलजले की आह' सामने मेज़ पर पड़ा था। उसी दिन एक मित्र बड़ी प्रशंसा कर पढ़ने को दे गये थे। इसी बीच मिस्टर उपाध्याय आ धमके। स्थानीय 'भारत टाकी' में सुलोचना का 'पिया प्यारे' चल रहा था। अपने मित्र और पुलिस इन्सपेक्टर मि॰ उपाध्याय का अनुरोध मैं टाल न सका। देखने चला गया........

...हाँ, क्या सोच रहा था ? फ़िल्म. देखने चला गया। फ़िल्म सुन्दर था। सचमुच जीवन में रोमांसपूर्ण प्रेम का कुछ भी सन्निवेश हो जाने से जीवन कितना सरस बन जाता है ! और सुलोचना ? उसके 'अमिय हलाहल मदभरे' लोचन न जाने कितनों के हृदय में नित्य उथल-पुथल मचाकर प्रेम का त्योहार मनाने की वासना भरते होंगे। सचमुच, सिनेमा-संसार के इन प्रेम के अभिनेता और अभिनेत्रियों का जीवन कितना उल्लासपूर्ण होगा ! माना, उन्हें अत्यन्त उत्कृष्ट प्रेम प्राप्त न होता हो, फिर भी उनकी प्रेमपिपासा तो शान्त होती ही रहती होगी। पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विताओं के बीच रोमैन्टिक प्रेम का आनन्द तो उन्हें मिलता ही रहता होगा। वे हमारी तरह तड़पते तो न होंगे। रूपसी रमणियों के झुरमुट में संगीत की मोहक स्वरलहरी के बीच वे कितने और कैसे सुख उठाते न होंगे ! जिन ज़ुबेदा, सविता, सुलोचना आदि की एक-एक अदा पर हम अपने सौ-सौ प्राण न्योछावर करने को तैयार रहते हैं, उन्हें वे...........

क्यों न एक बार उस दुनिया का आनन्द लिया जाय ?

एक बात और ! यहाँ बी॰ ए॰ और एम्॰ ए॰ १५-२० की नौकरियों के लिए मारे-मारे फिरते हैं, वहाँ अपढ़ और साधारण पढ़े-लिखे लोगों के लिए सैकड़ों की माहवार कोई चीज़ नहीं........

(ख)

बम्बई आये मुझे दो मास बीत चुके थे, तीसरे का आरम्भ था। कृष्णा-होटल का बिल चुकाते-चुकाते मेरे नाक में दम था। बम्बई की फ़ाइन फ़िल्म-कम्पनी के पार्टनर सेठ प्रेमचन्द करनानी की एक सिफ़ारिशी चिट्ठी किसी तरह कलकत्ते से लेकर मैं यहाँ आया था, पर तो भी फ़ाइन फ़िल्म-कम्पनीवालों ने मुझे टरका ही दिया। उस कम्पनी के अतिरिक्त रणजीत, इम्पीरियल, प्रभात, भारत-लक्ष्मी, महालक्ष्मी, सागर और सरोज से लेकर मैंने छोटी-छोटी फ़िल्म-कम्पनियों तक की ख़ाक छानी; डाइरेक्टर और मैनेजर से लेकर केमरा-मैन, आप्रेटर, म्यूज़िक मास्टर, डांसटीचर तक के सम्मुख 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' का पाठ किया, फिर भी मैं किसी भी फ़िल्म-कम्पनी में स्थान पा न सका। कुछ मुझे अन्य प्रान्त का निवासी होने के कारण रखने को तैयार न थे। कुछ को मेरे गले में दर्द न होने या मेरे चेहरे के नमकीन न होने की शिकायत थी। कुछ मेरा गाना सुनकर ही चुप हो गये। कुछ को मेरा अभिनय ही नहीं जँचा। कुछ इस कारण से ही मुझे रखने से डरते



थे कि मैं वहाँ रहकर कहीं उनके दोषों को जान न जाऊँ, और फिर उनका भण्डाफोड़ कर दूँ; या उनकी सफलताओं का रहस्य अथवा उनके भावी 'प्रोडक्शनों' की सूचना दूसरी कम्पनीवालों को दे दूँ। यद्यपि मैंने विश्वास दिलाया कि ऐसी आशङ्काओं का कोई कारण न था, मैं तो अपनी ग़रज़ से गया था। मैं यह सब क्यों करने लगा! पर वहाँ कौन सुनता है।

दो-चार कम्पनीवाले मुझे इस शर्त पर रखने को तैयार हुए कि मैं अपने ख़र्च से उनके यहाँ रह कुछ महीने 'ट्रेनिंग' पाऊँ, उसके बाद वे दो-चार फ़िल्मों में मुफ़्त काम करा और यों मेरी परीक्षा ले मुझे स्थान देंगे। मैं इस पर भी सहर्ष तैयार हो गया, पर मुझे पता लगा—यह इन लोगों का एक हथकण्डामात्र है, जिससे वे उन युवकों को बेवक़ूफ़ बना अपना काम निकालते हैं, जो बिलिमोरिया, जाल और सैगल बनकर सुलोचना, गौहर, उमाशशि आदि को गले लगाने का सुनहला स्वप्न देखा करते हैं। लाचार मुझे स्वीकार करके भी अस्वीकारकर देना पड़ा। मैं अपने भग्न मनोरथों के साथ बम्बई से लौटने की तैयारी करने लगा। दुर्भाग्य मुझ पर मुग्ध था; मेरी आशालतिका में क्योंकर फूल उगते!

(ग)

बम्बई-मेल दानव की तरह तीव्र गति से दौड़ी चली जा रही थी। मैंने आँखें खोलकर देखा—भारतीयों की भाग्यलक्ष्मी की तरह विभावरीश की भाग्यलक्ष्मी भी अस्तङ्गत हो चली थी। पक्षियों का कलरव सुन समीर अँगड़ाई ले रहा था। कभी क्षितिज के प्राङ्गण में चमकनेवाले नक्षत्र क्षिति के दूर्वादलों पर पड़े सो रहे थे, और सुन्दरी ऊषा हृदय में अनुरागभरे नववधू की तरह सकुचाती—लजाती चली आ रही थी। इसी समय गाड़ी रुकी, भुसावल-स्टेशन आ गया था। मैं उठ बैठा; देखा—एक युवती जल्दी-जल्दी मेरे कम्पार्टमेन्ट की ओर बढ़ी चली आ रही थी। वह मेरे 'बर्थ' के पास आकर खड़ी हो गई। अपने 'बर्थ' पर मैं अकेला ही था, दूसरे 'बर्थों' पर कई मारवाड़ी सोये थे, अतः मैंने शिष्टता के लिहाज़ से बर्थ पर बिछे हुए बिछावन को समेट उसके लिए स्थान बना दिया। वह बैठ गई। उसका नौकर दो सूटकेस रख नौकरों के कम्पार्टमेंट में चला गया।

गाड़ी चल पड़ी।

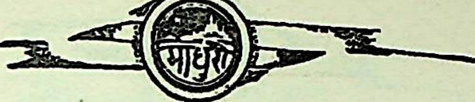
हम दोनों मौन चले जा रहे थे। हाँ, कभी-कभी एक दूसरे को एक नज़र देख ज़रूर लेते थे। आगन्तुक युवती असाधारण सुन्दरी थी, और वेशभूषा से अपटूडेट मालूम होती थी। नीले रंग की बनारसी साड़ी के ऊपर नीले रंग का ही जम्पर पहने वह देखने में बड़ी मोहक लगती थी। आँखें उसे वारम्वार देखना चाहती थीं, पर सभ्यता का लिहाज़ रोक रहा था। फिर भी मैं उसका परिचय पाने को नितान्त उत्सुक हो रहा था। मैंने सोचा—पूछूँ, आप कहाँ जायेंगी? पर यह प्रश्न एक पूर्णतया अपरिचित युवती से पूछना असंगत-सा प्रतीत हुआ; अतः सोचा—पूछूँ, आप कहाँ से आ रही हैं। पर यह भी ज़रा अनुचित-सा ही प्रतीत हुआ। अब क्या पूछूँ? युवती का आधुनिक वातावरण में पली होना तो उसका केवल एक नौकर के साथ सफ़र करना ही बतला रहा था, अतः उसके किसी सामान्य प्रश्न से रुष्ट हो जाने की तो कोई आशङ्का न थी; फिर भी वह युवती ही तो थी। अकस्मात् मेरी नज़र उसकी कलाई पर बँधी घड़ी पर पड़ी। मैं झट पूछ बैठा—"क्या बजा?" "सवा छः"—उसने कहा, स्वर काफ़ी मधुर था, "आप कहाँ जायेंगे"—उसने पूछा। मुझे माँगी मुराद मिली।

"इलाहाबाद"—मैंने कहा।

"ओ हो, आप इलाहाबाद जा रहे हैं! मैं भी तो वहीं जा रही हूँ"—उसने कहा। मैं फड़क उठा। पूछा—"आप इलाहाबाद में........."

"जी हाँ, मैं इलाहाबाद में पढ़ती हूँ। थर्ड इयर में। और आप?" उसने मेरा वाक्य पूरा करते हुए प्रश्न किया।

"मैं इस वर्ष 'फ़िफ़्थ इयर' में आया हूँ।



रही हूँ। इलाहाबाद में ही मेरी थोड़ी-सी रिश्तेदारी भी है।"

"अच्छा, आपसे मिलकर मैं बड़ी प्रसन्न हुई। रास्ता आराम से कट जायगा।"

"यह तो मैं कहना चाहता था।"

"तो समझ लीजिए मैं आपकी ओर से ही कह रही हूँ।" वह मुसकिराई।

"किन्तु एक बात दुःख की है"—उसने कहा।

"वह क्या?" मैं चौंक उठा।

"मुझे एक दिन के लिए सतना में उतर जाना होगा। वहाँ मेरे चाचा डिपुटी मैजिस्ट्रेट हैं, उनसे मिलकर मैं परसों प्रयाग आऊँगी। मिलना ज़रूरी है, नहीं तो मैं साथ ही प्रयाग चलती।"

"यह तो सचमुच खेद की बात आपने सुनाई। अच्छा, प्रयाग में आप रहती कहाँ हैं? होस्टल में?"—मैंने पूछा।

"नहीं, बैंक रोड में। वहीं मेरे परिवार के अन्य लोग हैं। और आप?"

"कीटगंज में।"

इसके बाद पुनः चुप रहने की बारी आई। हम दोनों मौन हो गये, पर यह मौनावलम्बन क्षणिक था। एक स्टेशन आ गया था। गाड़ी रुक गई थी। उसने चायवाले को बुलाया, और एक कप चाय अपने सामने रख दूसरा मेरे सामने रखते हुए कहा—'पीजिए'।

"धन्यवाद", मैं कहना चाहता था "मैं नहीं पीता", पर कह बैठा—"कोई ज़रूरत नहीं है।"

"बिना ज़रूरत ही सही"—वह हँसती हुई बोली।

चाय पीने के लिए मैंने एक बार तौबा कर ली थी, फिर भी उस युवती का दिल तोड़ने की अपेक्षा तौबा तोड़ना ही मैंने अच्छा समझा। मैं पीने लगा। कुछ क्षण बाद चायवाला ख़ाली कप लेने आया। वह दाम देने लगी; पर उसके पास नोट ही थे, उधर चायवाले के पास भी रेज़गारी न थी, अतः उसने पूछा—"आपके पास एक रुपये की रेज़गारी होगी?" मैंने कहा—'हाँ' और मनीबेग से एक रुपये की रेज़गारी उसे देते हुए चाय की क़ीमत में एक चवन्नी अपनी ओर से चाय-वाले की हथेली पर रख दी। चायवाला चला गया।

"यह बात!" उसने एक चवन्नी मेरे पाकेट में ज़बर्दस्ती डालते हुए कहा। मैं कुछ सोच चुप रह गया।

थोड़ी देर फिर वही चुप्पी! युवती कुछ अल-सित-सी हो रही थी। उसने बर्थ की ओर उस दृष्टि से देखा, जैसे वह लेटना चाहती हो, पर सङ्कोच कर रही हो। अतः मैंने पूछा—"लेटेंगी?"

"चाहती तो थी" एक लज्जामिश्रित मुसकिराहट उसके होंठों पर दौड़ गई—"पर आपको कष्ट होगा।"

"बिलकुल नहीं"—मैंने बर्थ के कोने में सटते हुए कहा।

उसने लेटकर आँखें मूँद लीं। सौन्दर्य और यौवन की मदिरा का छलकता हुआ प्याला मेरे सामने पड़ा था। मैं सिहर उठा। मैं मुग्ध नेत्रों से उसकी ओर अपलक देख रहा था। उसके गुलाब से कोमल, ख़ूबसूरत और गुलाबी होंठों को स्पर्श करने के लिए मेरे होंठ बेचैन हो रहे थे। मैं उन्हें ज़बर्दस्ती रोके था।

अन्य बर्थों पर लेटे-बैठे मारवाड़ी मारवाड़ से नये 'एक्सपोर्ट' हुए मालूम होते थे, अतः कदा-चित् वे हमारी बातों को समझ न पाते थे, फिर भी उनकी आँखों में भरा हुआ घनघोर आश्चर्य तो स्पष्टतया पढ़ा जा सकता था।

(घ)

कुछ ही देर बाद युवती उठ बैठी, और मुस-किराती हुई बोली—"रात भर की जगी हूँ, फिर भी जाने नींद कहाँ सो गई है कि आती ही नहीं।"

"थोड़ी और ख़ुशामद कीजिए, आ जायगी"—मैंने कहा।

"वह तो मैं जानती ही नहीं। अच्छा, आप प्रयाग में आकर मुझसे मिलेंगे न?"



"ज़रूर"

लम्बा सफ़र गपशप में जल्दी-जल्दी ख़तम होने लगा। मैं उसकी मीठी बातों, मोहक मुसकिराहट और मादक रूप-मदिरा से क्षण-क्षण बेसुध होता जा रहा था। प्रत्येक स्टेशन पर मैं कुछ फल या मिठाई ख़रीदता, और हम दोनों पुराने मित्र की तरह हँस-हँसकर खाते। किन्तु सतना-स्टेशन अब समीप था, अतः मेरी चिन्ता बढ़ती जा रही थी।

अचानक उसने म्लान होकर कहा—"कितना अच्छा होता, मैं आपके साथ ही चली चलती, पर लाचारी है।"

"ख़ैर, दो-तीन दिन बाद तो भेंट होगी ही"—मैंने उसे और उससे अधिक अपने हृदय को सन्तोष देते हुए कहा।

"अवश्य, मैं वहाँ पहुँच उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करूँगी, और अगर आप शीघ्र ही आकर मुझसे नहीं मिले तो मुझे बड़ी व्यथा होगी"—उसने कहा, पर अपनी बातों पर वह स्वयं कुछ लज्जित हो गई। लज्जा की लालिमा में उसका अनूप रूप और भी चमक उठा।

"आपका नाम ?"—मैंने पूछा।

उसने कमर से एक सुन्दर रेशमी रूमाल निकाल मेरे हाथों पर रख दिया। रूमाल के एक कोने में रेशमी डोरे से लिखा था—"शशिप्रभा"

मैंने पढ़कर रूमाल वापस करना चाहा, पर उसने कहा—"नहीं, आप इसे अभी अपने पास ही रखें, मैं कभी ले लूँगी।"

मैंने रूमाल रख लिया, किन्तु उसके बदले में मैं भी कुछ देना चाह रहा था। क्या दूँ, यही सोच रहा था। अचानक याद आई—मैंने बम्बई में एक सुन्दर साड़ी-पिन ख़रीदा था। सोचा था—जिस फ़िल्मस्टार के साथ पहलेपहल अभिनय करूँगा—उसे एक चिह्न दूँगा, पर मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ था। मैंने सूटकेस से वही पिन निकाला, और उसे अपने नाम और पते के कार्ड के साथ उस युवती को दे दिया। पहले तो उसने बार-बार अस्वीकार किया, पर अन्त में वह मेरी प्रेमपूर्ण भेंट अस्वीकार न कर सकी।

सतना-स्टेशन आ गया। गाड़ी खड़ी हो गई। वह मुझसे करुण मधुर स्वर में बोली—"भूल न जाइएगा।"

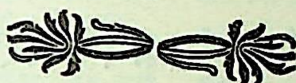
मैंने आर्द्र कण्ठ से कहा—'यह डर तो मुझे है।"

नौकर को दोनों सूटकेस हवाले कर वह उतर पड़ी। गाड़ी खुल गई। मैं उदास कटे वृक्ष की तरह अपने बर्थ पर जा गिरा। क्यों न मैं भी उसके साथ यहीं उतर गया! दो दिन देर ही होती तो क्या होता! प्रयाग में ऐसा कौन-सा काम नष्ट हुआ जा रहा था! सचमुच मैंने मूर्खता की।

बड़ी देर तक मैं उदास उसकी बातों को ही सोचता रहा। कितनी सुन्दर थी वह और कितनी चंचल! उसकी मुसकान तो ग़ज़ब की चीज़ थी। उससे मिल मेरा बम्बई जाना सफल हो गया, और उसे पा लेने पर तो मेरा जीवन सफल हो जायगा। मैं उसके विरह में विह्वल हो रहा था, अतः मन बहलाने के लिए मैंने सूटकेस से एक उपन्यास निकाल पढ़ना स्थिर किया। पर यह क्या! मेरा सूटकेस कहाँ था! मेरा सूटकेस वह लेती चली गई थी, और अपना छोड़ती। मैं भावावेश में था, फिर मेरे उसके दोनों के सूटकेसों पर ख़ाकी का 'कवर' चढ़ा था, अतः उसके जाने के समय मैं यह लक्ष्य न कर सका। अब तो मेरे काटो तो ख़ून नहीं! सूटकेस में मेरी अन्य ज़रूरी चीज़ों के अतिरिक्त ११० के क़रीब रुपये भी थे, पता नहीं, वह जानबूझ कर मेरा सूटकेस चुरा ले गई, या भूल से ऐसा हुआ। मैंने किसी तरह उसका सूटकेस खोलकर देखा—उसमें एक-दो पुरानी साड़ियाँ और सिनेमा-संसार की एक प्रति थी। मैंने उसका ज़िक्र किसी से करना अनुचित समझा। चुप रह गया।

× × × ×

प्रयाग आने के बाद मैंने महीनों बैंक-रोड, कालेज और प्रयाग के अन्य मुहल्लों में खोज की, पर शशिप्रभा का कहीं पता नहीं लगा। एक आदमी को सतना भी भेजा। उसने आकर बतलाया, सतना में विजयप्रसाद नाम के न तो कोई डिपुटी मैजिस्ट्रेट हैं, जैसा कि शशिप्रभा ने बतलाया था, और न किसी डिपुटी मैजिस्ट्रेट की भतीजी का नाम ही शशिप्रभा है।



हमारी नपुंसक विचारधारा

श्रीमोहनलाल महतो साहित्यालंकार

भूमिका

बहुत दिन पहले दलित रूस में, आग की एक चिनगारी के रूप में, एक हुतात्मा लेखक पैदा हुआ था। क्रोपाटकिन उसका नाम था और उसने कला को जब सच्चे रूप में देखा तो उसका दिमाग़ ऐसा ख़राब हुआ कि तत्कालीन रूसी सरकार ने प्रजा की शान्तिरक्षा (?) के निमित्त उसे पकड़कर जेल की चहारदीवारी के भीतर बन्द कर दिया। वह एक प्रिंस था। अतुल सम्पत्ति और मान का लाड़ला था, पर कला की सच्ची और ओजमयी झलक मिलते ही जिस प्रकार टाल्स्टाय आत्मविस्मृत हो उठा था, उसी तरह वह भी कल्याणपथ की ओर निकल पड़ा। उसी क्रोपाटकिन ने एक स्थान पर लिखा है—

"यदि तुम मनुष्य जाति के प्रति सहानुभूति के भाव रखते हो, तुम्हारी हृदयतन्त्री उनके सुख-दुःख के साथ बजती है, अगर एक सच्चे कवि की भाँति तुम जीवन-संगीत को सुनते हो, तो इस शोक-सागर का अवलोकन करते हुए, जिसकी ऊँची लहरें तुम्हारे चारों ओर उठ रही हैं, इन असंख्य लोगों को भूख की ज्वाला से अपने सामने मरते देखकर, इन खानों में मरे हुए लोगों के शवों को देखकर, इन मोर्चों पर पड़ी हुई छिन्न-भिन्न मनुष्य-देहों के ढेरों को देखकर, इन निर्वासितों को देखकर, जिनकी लम्बी क़तारें कालेपानी में अपने को गला देने के लिए जा रही हैं, इस निराशाजनक युद्ध को देखते हुए, जिसमें हारे हुओं का कष्टजनित चीत्कार और जीतनेवालों की धूमधाम स्पष्ट सुनाई दे रही है, बहादुरी के मुक़ाबले में, घृणित कायरता की ओर आदरणीय दृढ़ निश्चय के मुक़ाबले में, तुच्छ चालबाज़ी के तुम इन दृश्यों को देखते हुए हरगिज़ उदासीन बने नहीं रह सकते। तुम अवश्य आगे आओगे और पीड़ितों का ही पक्ष ग्रहण करोगे। तुम जानते हो कि सत्यं शिवं और सुन्दरं उन्हीं लोगों के पक्ष में है, जो प्रकाश, मनुष्यता और न्याय के लिए मिट रहे हैं।"

प्रिंस क्रोपाटकिन—नहीं, हुतात्मा क्रोपाटकिन की इन अमर पंक्तियों को, जो एक सच्चे कलाकार के लिए लोहे की क़लम से लिखी गई हैं, अपने इस लेख की भूमिका के रूप में हम उद्धृत करते हैं। अधिक कुछ कहना तड़पती हुई बिजली को दीपक लेकर देखने जाने से भी बढ़कर मूर्खता होगी। क्रोपाटकिन ने जो कुछ कहा है, वह बिजली की तड़प है।

युगपरिवर्तन

युगपरिवर्तन की बात नाना ग्रन्थों में दुहराई जा चुकी है। अनेक विचारकों ने भी युगों की परिवर्तनशीलता पर बहुत कुछ कहा-सुना है और



यह तै कर लिया गया है कि युगपरिवर्तन होना एक निश्चित बात है। हमारे हिंदू-ग्रन्थों में भी बहुत ही लम्बी-चौड़ी कथाएँ लिखी हैं। इतना ही नहीं, चार युग के चार नाम और उनके जीवन के वर्ष आदि भी बाक़ायदा दर्ज आप देख सकते हैं। खंड प्रलय, महाप्रलय आदि अनेक बातों की चर्चा भी इन युगपरिवर्तन के सिलसिले में सुनते आये हैं। यह तो हुई युगपरिवर्तन की धार्मिक गाथा, पर जब हम सोचते हैं कि उस पौराणिक युगपरिवर्तन के पहले भी संसार पर अनेक बार क्या, असंख्य बार युगपरिवर्तन की धमाचौकड़ी हो चुकी है और यह सिलसिला न जाने कब तक जारी रहेगा तो मन सहसा गम्भीर हो जाता है।

यह बात कैसे हो सकती है कि युगपरिवर्तन के साथ ही इस भौतिक जगत् की रूप-रेखा में, अकस्मात् किसी दैवी चमत्कार से आमूल परिवर्तन हो जायगा। अर्थात् एक दिन सहसा युगपरिवर्तन का समय उपस्थित हो जायगा और हिमालय को हम कलकत्ते की "चौरंगी" के निकट देखने लगेंगे, जिस पर कुछ मनचले बैठे "मेगनोलिया" चूसते नज़र आवेंगे या अरबसागर पंजाब और बिहार में फैल जायगा तथा हम सब पल भर में २२-२२ हाथ लम्बे होकर अपने पुराने घरों में घुसने के लिए लालायित हो जायँगे। यह सब तो नानी की कहानी-जैसी बात है, पर यह तो सभी कोई मानने को प्रस्तुत हैं कि युगपरिवर्तन होता है और प्रत्येक क्षण हो रहा है और होता रहेगा।

जो इस विश्व की विशालता को जानते हैं, उन्हें यह बतलाना नहीं होगा कि प्रत्येक पल प्रकृति की रंगशाला में पटपरिवर्तन होता ही रहता है। यह घोर परिवर्तन न केवल बाह्य संसार में ही होता है, बल्कि अन्तर्जगत् का भी यही हाल है। यह बात हम साइन्स या आयुर्वेद की गवाही के आधार पर नहीं कह रहे हैं, बल्कि हम देखते हैं कि संसार में जो आन्तरिक प्रलय हो रहा है, उसका रूप बहिर्जगत् में भी प्रकट होकर ही रहता है।

इसी परिवर्तन का नाम है, विचारधारा का परिवर्तन। बहिर्जगत् के परिवर्तनों का आधार हमारा अन्तर्जगत् का ही परिवर्तन है, यह बात सभी अंशों में सही नहीं है। पर दोनों के नाते को कार्य-कारण के रूप में स्वीकार करना उचित है। किसी विवेचक ने चित्त को ही संसार माना है और यह बात सही भी है। हम तो संसार के भौगोलिक रूप को उसका एक स्थूल रूपमात्र मानते हैं। नदी, पहाड़ या टापू को ही संसार मानना सरासर भूल नहीं तो मानसिक आलस्य अवश्य है। इस संसार के भीतर जो संसार है, वही है सच्चा संसार, जिसे हम अपने विचारों का संसार कह सकते हैं। इस विचारों के संसार में जब युगपरिवर्तन होता है तो वह बहिर्जगत् की भौतिक अवस्थाओं की उतनी परवा नहीं करता और न किसी ग्रन्थकार ने इस युगपरिवर्तन का समय ही बतलाया है। संसार की संस्कृति और उन्नति-अवनति इसी युगपरिवर्तन के आधार पर जीवित है, यह तो एक स्थूल सत्य है। इतिहास को बाद देकर जब हम संसार के मानसिक परिवर्तनों की धारा की ओर देखने का प्रयत्न करते हैं तो हमें आश्चर्य होता है।

मानव जाति ने न जाने कब से अपने मन का संसार बसाया है और फिर उसके दृढ़-संगठन को तहस-नहस भी कर दिया है। कितने मानसिक परिवर्तनों के बाद हम संसार का जो रूप देख रहे हैं, जिस संस्कृति को देख रहे हैं, उसकी स्थिति के भीतर ही फिर भी परिवर्तन का चक्र चल रहा है। लगातार परिवर्तन और लगातार परिवर्तन। यह सिलसिला न जाने कब से जारी है। जब से मानव जाति के मस्तक पर दिमाग़-नामक बला लाद दी गई है, तब से लेकर आज तक यह मानसिक परिवर्तन समान रूप से चालू है। ये तो हुईं मोटी बातें, पर जब हम गहराई के साथ इस परिवर्तन के प्रकार और झुकाव की ओर ध्यान देते हैं, तो हमारे मुँह से सहसा 'आह' निकल पड़ती है और वह इसलिए कि हम कभी-कभी विचारों के एक सार्व-



भौमिक प्रवाह के कारण, जो हमें ग़लत दिशा की ओर ले जा रहा है, गुमराह हो जाते हैं और वह भी अत्यन्त लाचारी के साथ। इसे लोग हवा भी कहते हैं। मुहावरेदार भाषा में यदि इसी बात को कहना चाहें तो हम इस प्रकार कह सकते हैं कि "क्या कहें भाई, हम हैट लगाना पसन्द तो नहीं करते, पर हवा ही ऐसी बह गई है।" हम देखते हैं कि संसार के शोषकों ने शोषितों की विचारधारा पर भी अपना प्रभाव स्थापित कर दिया है। जो हो, पर यह हवा एक बुरी बला है। इसी को हम विचारों का परिवर्तन कहते हैं। और, हम कभी-कभी इच्छा न रहते हुए भी इस हवा में लाचार होकर उड़ जाते हैं। अब इस बात को हम यहीं छोड़कर इस विषय पर विचार करना चाहते हैं कि क्या हम अपने विचारों के परिवर्तन पर अपना अधिकार स्थापित करके उसे अपनी अनुकूल दिशा की ओर मोड़कर अपनी जाति या संस्कृति को समुन्नत कर सकते हैं? और क्या हम यह काम संसार के विचार-प्रवाह के साथ रहते हुए इस साधन को पूरा कर सकते हैं? या हमें अपने लिए एक अलग वर्ग बनाना पड़ेगा? इसके साथ ही हमें यह भी सोचना पड़ेगा कि यदि हम अलग अपनी विचारधारा की रूप-रेखा स्थापित करें, तो फिर हम अपने को निखिल-विश्व के साथ मिला सकते हैं या अपनी निराली विचारधारा के कारण हमारा संसार के प्रति सदा असहयोग ही बना रहेगा और ऐसी अवस्था में हम अपने को क़ायम रख सकते हैं या नहीं। इन अनेक विचारपूर्ण प्रश्नों का समाधान हमसे हो सकेगा या नहीं, पर हम प्रयत्न करना चाहते हैं कि संक्षेप में अपनी बात लिख सकें जो स्पष्ट भी हो।

अकेले या एक साथ

जिन विचारों और भावनाओं के आधार पर आज संसार की सत्ता स्थित है, उन विचारों की जाँच करना हम नहीं चाहते और न यही चाहते हैं कि उनके साथ हमारा सहयोग संभव है या नहीं। यह तो हमारे अनजानते ही हो जाता है कि हम किसी देश के विचारों के रूप में उस देश की संस्कृति को धीरे-धीरे ग्रहण करने लगते हैं। हमारे भीतर से हमारे पुराने विचारों का अन्त किस तरह हो जाता है और उनके स्थान पर कहीं बाहर से आये हुए विचारों का किस प्रकार प्राबल्य होता जाता है अर्थात् किस प्रकार हम दूसरे के विचारों को संस्काररूप में ग्रहण करते जाते हैं, यह सहज में पता ही नहीं चलता। हम कारण का पता नहीं लगा पाते और परिणाम को देखकर वावेला मचाने लगते हैं। हम अपने विचारों के परिवर्तन पर एक दृढ़ अधिकार क़ायम रख सकते हैं, पर यह बात तो मानी हुई है कि आज हम पराधीन हैं और पराधीन जाति की दृढ़ इच्छा-शक्ति मारी जाती है। यदि ऐसी बात न होती तो हम ग़ुलामी का ज़लील तौक पहनते ही क्यों! ऐसी अवस्था में हम बाहर के विचारों के प्रभाव से अपने आपको किस तरह बचा सकते हैं, यह सोचना कठिन काम है और ख़ास तरह से जब बाहर के विचार हमारे हृदय पर छाप छोड़ जाने के लिए ही हमारे आगे नाना कौशल से रक्खे जा रहे हों। सांस्कृतिक उन्नति के मार्ग में हमारा इस तरह प्रभावित होना उतनी बुरी बात भी नहीं है, जब कि हमारे भीतर समझदारी का कुछ अंश अब तक जीवित हो और जिसकी सहायता से हम संसार के साथ सांस्कृतिक ऐक्य, अपनेपन को मद्देनज़र रखते हुए, स्थापित करें, न कि इसके विपरीत समुद्र में गिरनेवाली नदी की तरह हम सदा के लिए समाप्त हो जायँ।

आज आवश्यकता है इस बात की कि हमारा एकाकीपन मिटे। हम अपना नाता समस्त संसार की मानव जाति से जोड़ना चाहते हैं और हमारे आगे आनेवाली पुश्त के कल्याण को ध्यान में रखते हुए हमारे लिए यह उचित है कि हम अपने को एकदम संकीर्ण रूप में संसार के सामने आने से रोकें। सम्भवतः इस बात को अधिक स्पष्ट करना उचित होगा। हम तो यह सोचते हैं कि हम अपने विचारों को बाह्य प्रभावों से अपनी पराधीन स्थिति

कारण शुद्ध नहीं रख सकते। पर इतना तो करें कि हम अपने उस आमूलपरिवर्तन को रोक दें, जो परिवर्तन हमारी इच्छा के विरुद्ध संभव हो रहा है। यदि ऐसा संभव हो तो हम अपने ही घेरे के भीतर अपने ही तरीक़े से अपनेपन को परिवर्तित रूप में रखने का प्रयत्न करें। अपनी सत्ता को मिटने की स्थिति से बचा लेना किसी भी पराधीन जाति के लिए एक महान् कार्य कहा जा सकता है; क्योंकि विजयी जाति पराजित जाति की संस्कृति पर अपने विचारों का भारात्मक प्रहार करती हुई उस जाति को सदा के लिए आत्माभिमानहीन बनाकर उस पर शासन करने की चालबाज़ी करती है। इस समय हमारे सामने संकट की जो वेला उपस्थित है वह तो स्पष्ट ही है, पर सम्भवतः आगे चलकर एक महाभयानक युगपरिवर्तन होने को है। यह परिवर्तन संसार की छाती पर पुण्य और पाप के भीषण संग्राम के रूप में होगा।

इतिहास इस महाअनर्थ का साक्षी है। गुलाम बनाकर आज तक इस आकाश के नीचे से अनेकानेक जातियाँ, उनकी संस्कृति का अन्त करके, नष्ट कर दी गई हैं। यह कार्य बड़ी ही कुशलतापूर्वक सम्पादन किया जाता है तथा निरंतर लूटते रहने की घृणित कामना से ही एक वर्ग दूसरे वर्ग को संज्ञाशून्य बनाकर रखना चाहता है। ख़ास तौर पर यह देखा जाता है कि विजित जाति पराजित जाति में गुलामी की हवा के साथ अपनी संस्कृति का विष भी फैला देती है और वह भी केवल विजित जाति की विचारधारा पर अपना प्रभाव जमाकर। जब-जब संसार में परिवर्तन हुआ है, तब-तब हम देखते हैं कि पहले विचारों से ही परिवर्तन आरम्भ होता है और वह भी अपने विचारों पर आक्रमण करनेवाले उन स्वार्थियों के विचारों के प्रतिकूल, जो अपने ध्यान को किसी जातिविशेष को लगातार लूटने के लिए केवल उस जाति को बनाये रखने की अवस्था और उपायों पर केन्द्रित करते। हम तो पहले दो परस्पर विरोधी विचारों को आपस में घोर टक्कर लेने की स्थिति में देखते हैं और फिर देखते हैं कि इसके परिणामस्वरूप तलवारें खिंच जाती हैं, तोपें गड़गड़ाने लगती हैं। आज स्पेन में क्या हो रहा है? एक वर्ग अपने को साम्यवादी के रूप में रखना चाहता है, और दूसरा वर्ग ठीक इसके प्रतिकूल अवस्था को पसन्द करता है। केवल विचारों के संघर्ष से आरम्भ होकर आज वहाँ लोथ पर लोथ गिर रही हैं और जल, स्थल, आकाश में हाहाकार भर गया है। साम्यवाद हो या साम्राज्यवाद, हमें इन वाद-विवादों से कोई मतलब नहीं, पर रोटीवाद की उपेक्षा कोई नहीं कर सकता।

ख़ैर, अब यदि हम यह मान लें कि हम अपने विचारों की असलियत को क़ायम रखते हुए आगे बढ़ने की स्थिति को विकसित रूप देना चाहते हैं, तो हमें यह मान लेना होगा कि हम बाहर के प्रभावों को आंशिक रूप में—जितने से हम अपनेपन को अधिक स्पष्ट कर सकते हैं और अपनी हस्ती में विकार उत्पन्न नहीं होने दे सकते—उतना ही ग्रहण करेंगे, पर यह भी सोचना चाहिए कि आख़िर बाहर का जो प्रभाव हमारे विचारों की असलियत पर धूल उड़ा रहा है, उसका आगमन-पथ कौन-सा है।

यहाँ पर हम ज़रा-सा ठहरकर यह सोचना चाहते हैं कि आज हमारी संस्कृति पर जो आक्रमण किया जा रहा है, वह क्या विकासात्मक है या भारात्मक। यदि हम यह मान लेते हैं कि हमारे कल्याण को मद्देनज़र रखकर ही हमारे मानसिक शरीर में हमारे कल्याणार्थी अपने प्राण फूँक रहे हैं तो यह प्रश्न ही नहीं उठता कि हम अपनी विचारधारा की शुद्धता और सबलता पर बहस करें या उसके लिए चिंतित हों, पर यहाँ तो मामला ही उल्टा नज़र आता है। सबसे पहले तो हमें अपने आपसे घृणा करने की मानसिक अवस्था में नाना प्रयत्नों से पहुँचा दिया गया है। और यह प्रयोग किया गया, साहित्य के अस्त्र से। हमारे इतिहासों का जो रूप



हमारे सामने रक्खा गया, वह था तो बर्बरतापूर्ण कृत्यों से भरा हुआ है, जिस कर्म के दोषी हमारे वे पुरखे बतलाये गये जो संसार के हुतात्माओं में अन्यतम थे या हमारे पूर्वज वीरों के कृत्यों का चित्रण कायरता से भरा हुआ किया गया। कहीं तो सत्य पर पर्दा डाल दिया गया और कहीं उसे तोड़-मरोड़-कर हमारे सामने रक्खा गया। इस तरह नाना कौशल से हमारे आत्मगौरव की भावना को कदर्य-रूप देकर हमारी मानसिक हत्या करने का प्रयत्न किया गया है। जो आक्रमण हम पर साहित्य के अस्त्र से किया गया, उसका प्रतीकार हमने आज तक क्या किया! हमारी विचारधारा में जो नपुंसकता पैदा की गई, उसका इलाज हमने तो कुछ किया नहीं, उलटे इस प्रहार को गले का हार बना लिया। यही कारण है कि आज तक हमने जिस साहित्य को जन्म दिया है, वह अधिक अंशों में पूरा नपुंसक साहित्य ही बना रहा। आज भी हम अपने को सँभालने के स्थान पर लगातार बिगाड़ते जा रहे हैं। हमारी संस्कृति में अनेकरूपता स्थापित कर दी गई है, और वह भी हमारे कल्याण के ही शुभ संकल्प के नाम पर—शोक!

आप रूस का एक उदाहरण लीजिए। रूस में जनता का आन्दोलन शुरू हुआ था, १८७० या ८० के समय। यह विख्यात मजूर आन्दोलन था। गोर्की तो उस समय साहित्य के मैदान में नहीं आया था; पर उस समय जो साहित्य वहाँ प्रस्तुत था, वह कुछ उसी तरह का था, जैसा आज हमारे यहाँ मिलता है और जिसका विरोध हम इस लेख में करने पर उतारू हुए हैं। डोस्टोयूव्हस्की की कातर-वाणी में "गुनाह और दंड की दुहाई" समस्त देश भय-कंपित हृदय से सुन रहा था। महात्मा टाल्स्टाय के धार्मिक उपदेशों को भी तत्कालीन रूसी जनता सिर झुकाकर सुन रही थी। इन कलाकारों ने अपनी क़लम को मधु में डुबोकर जिस मीठे साहित्य को जन्म दिया था, वह किसी भी अवस्था में जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करता था। पीछे तो टाल्स्टाय की आत्मा में असंख्य भूखों का चीत्कार गूँज उठा; पर पहले वे भी एक पूँजीवादी कलाकार के रूप में ही अपने को जिला रहे थे। चेख़व के विषय में एक मराठा कलाकार का मत है कि "सत्ता के सामने कोई दलील नहीं, यही चेख़व का दर्शन था। उसके पात्र जीवन-कलह की स्पर्द्धा में नष्टप्राय और विगत धैर्य थे।"

एक दलित राष्ट्र का साहित्य जैसा होना चाहिए, वैसा ही उस समय रूस का साहित्य भी था। वहाँ भी विचारधारा की नपुंसकता ने देश को थका हुआ और हताश बना दिया था, जैसा कि आज हम हो रहे हैं। पर गोर्की ने आते ही नक़्शा बदल दिया। वह आग की लकीरें खींचता हुआ अपनी वाणी में समस्त पीड़ितों की आत्मा का चीत्कार भरकर समाज के रंगमंच पर आया।

कोरोलोंको और उपेन्स्की की हताश कला का अन्त होते विलम्ब नहीं लगा और प्रगतिशील साहित्य ने रूसी विचारधारा में नई तेज़ी पैदा कर दी। लेनिन ने गोर्की के लिए लिखा था कि—"हमारा यह साहित्यिक मज़दूरों की कला का महान् प्रतिनिधि है।" जिनका यह मत है कि राजनीति से साहित्य को अलग रखना चाहिए, वे वस्तुतः हमारी ग़ुलामी के सम[र्थ]क ही हैं। राजनीति एक ऐसी चीज़ है कि कोई भी हृदयवान् कलाकार अपने को उससे अलग रखकर कुछ सोच ही नहीं सकता।

एक नज़र अपनी ओर भी

अब हम अपनी ओर एक दृष्टि डालना चाहते हैं। हम भी एक मुद्दत से बड़े ही नाज़ के साथ ग़ुलामी की गंदी हवा में साँस ले रहे हैं। हमारी ग़ुलामी में एक विशेषता यह है कि हम अपनी इस ज़लील अवस्था के अभ्यासी हो गये हैं और इस ओर कभी भी असन्तुष्ट भाव से देखना पसन्द नहीं करते। हमारी इस मानसिक जड़ता का कारण है, हमारे दिल और दिमाग़ का आमूल परिवर्तन

शरत्साहित्य के छः भाग

प्रकाशित हो गये

डा० शरच्चन्द्र चटर्जी भारत के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-कहानी लेखक हैं। इसमें किसी का मतभेद नहीं। सुलभ साहित्य-माला में हमने सबसे पहले उन्हीं की रचनाएँ सस्ते से सस्ते मूल्य में प्रकाशित करना शुरू की हैं। अन्यत्र प्रकाशित पुस्तकों से इनका मूल्य लगभग एक तिहाई है। छोटे टाइप की १६० पृष्ठ के एक भाग का मूल्य सिर्फ़ आठ आने। एक वर्ष के छः भागों का पेशगी ग्राहक बनने से सिर्फ़ ढाई रुपया। डाक खर्च अलग। बढ़िया संस्करण का मूल्य दस आने। सालभर का तीन रुपया। छः भागों में नीचे लिखे सात उपन्यास और ६ कहानियाँ निकली हैं—

(१)
सुमति, पथनिर्देश, काशीनाथ-
अनुपमा का प्रेम

(२)
स्वामी, वैकुण्ठ का दानपत्र,
अन्धकार में आलोक

(३)
चन्द्रनाथ, तसवीर, दर्पचूर्ण

(४)
श्रीकान्त (प्रथम पर्व)

(५)
बाँभन की बेटी, प्रकाश और छाया, विलासी,
एकादशी वैरागी, बाल्य स्मृति

(६)
श्रीकान्त (द्वितीय पर्व)

सातवें भाग में तीसरा पर्व छप रहा है

उर्दू-हिन्दी कोश

हिन्दी में बिलकुल नई और उपयोगी चीज़

उर्दू और उसमें प्रचलित अरबी, फ़ारसी, तुर्की, पुर्तगीज आदि भाषाओं के ११११६० शब्दों का हिन्दी में अर्थ। बहुत ही प्रामाणिक। देवनागरी लिपि में क़ानून कचहरी के शब्दों का भी संग्रह है। प्रत्येक लायब्रेरी में यह रहना चाहिए। मूल्य ढाई रुपया।

स्व० प्रेमचन्दजी की नई रचनाएँ

गोदान (उपन्यास) ४), मानसरोवर (कहानियाँ) दो भाग ४),
एक रात (जैनेन्द्रकुमार) काला फूल (ज्यूमा) १।।)

व्यवस्थापक—

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय, हीराबाग़, गिरगाँव, बम्बई

त्याग और तपस्या से बनाया हुआ

सैनिक

आज हिन्दी का सबसे अच्छा राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र हो गया है। उसमें सच्ची कहानियाँ, जोशीली टिप्पणियाँ और देश-विदेश के ताज़े समाचार हैं। वह राष्ट्रीय जीवन भरने के लिए निकला है और कांग्रेस का संदेश घर-घर सुनाता है।

बच्चों और स्त्रियों के लिए विशेष लेख और आकर्षण की चीज़ें होती हैं। जो नये ग्राहक बनेंगे, उन्हें 'नवीन शासन-विधान' हिन्दी में, भूमिका लेखक पं० जवाहरलाल नेहरू की एक प्रति मुफ़्त में दी जावेगी। आज ही ३) तीन रुपया भेजकर उसके ग्राहक बनिए। नमूना मुफ़्त।

मैनेजर—सैनिक,
आगरा

...न दिया जाना। हम इस विषय की अधिक आलोचना न करके संक्षेप में अपनी बात कह देना चाहते हैं। हम अपनी वर्तमान अवस्था को साहित्य का चश्मा लगाकर देखना चाहते हैं। जब हम अपनी गुलामी-अवस्था पर विचार करने लगते हैं तो हमारे सामने कई कठिनाइयाँ हिमालय की तरह अपनी असंख्य दुर्लंघ्य चोटियाँ उठाकर खड़ी हो जाती हैं, पर जन्म भर साहित्य के मैदान में चौकड़ी करते रहने के कारण हमारी विचार-धारा किसी नई भूमि की ओर मुड़ने के लिए प्रस्तुत नहीं होती।

मुसलमानी शासन-काल में चाहे हमारी अवस्था कैसी भी क्यों न रही हो, पर हमारी विचारधारा में उसी समय से पुंसकता का ह्रास आरम्भ हो गया था। हमारे साहित्य पर कोई भी समझदार आलोचक स्पष्टतः मुसलमानी प्रभाव को देख सकता है, जिस साहित्य का जन्म उस समय हुआ था। हमारा कविता-साहित्य एक प्रकार से रूपहीन और नपुंसक बन चुका है; एक प्रकार से वह कोरा दरबारी या पूँजीवादी साहित्य बन चुका है। एक छोटे-से उदाहरण से काम चल जायगा, ऐसा हम समझते हैं। आप पुराने कविता-साहित्य को उठाइएगा, तो आपको ऐसी नायिकाओं का वर्णन मिलेगा, जो पन्ना-नामक रत्न की पाटी डालकर रेशम की डोर के सहारे झूला झूल रही है या अपने यार के साथ केसर की कीचड़ में लोट-पोट होकर होली खेल रही है। 'पद्माकर' या 'देव' के युग में भी यहाँ ग़रीबी थी और भुखमरे उस समय भी थे, पर इन कविवरों ने अव्वल दर्जे की विलासिता का वर्णन किया है और वह भी अमीरी के आख़िरी तरीक़े से। पद्माकर ने जब जाड़े का वर्णन किया तो उन्हें कस्तूरी, दुशाला, शराब, चित्रशाला और एक हसीन नाज़नी की कल्पना करनी पड़ी। गर्मी के वर्णन में—

अंगूर के अँगूर ही सों ऊँचे कुच
आसव अँगूर की अँगूर ही की टाटी है

का स्वप्न उस कविवर को देखना पड़े तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। जब हमारी विचारधारा में ही कोढ़ पैदा हो गया था तो फिर माक़ूल बात कहाँ से सूझे। कहने का तात्पर्य यह कि उसी समय से हमारे साहित्य में नपुंसकता की सर्दी भर गई है, जो कुछ अदल-बदलकर आज तक वर्तमान है। हम साहित्य और समाज के कार्य-कारण पर बहस करना फ़िज़ूल समझते हैं, पर तो भी यह कहना सम्भवतः अपराध नहीं होगा कि हमारे साहित्य का जो रूप आज दिखलाई पड़ रहा है, वह हमारी नपुंसक-विचारधारा का ही परिणाम है। आज भी हम कविताओं के रूप में, कथा-कहानियों के रूप में जो साहित्य जनता को दे रहे हैं, वह वस्तुतः जनता की चीज़ न होकर किसी ख़ास वर्ग की है। कहने का तात्पर्य यह कि हमारा साहित्य हमारे किसी भी वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करता। हमारी विचारधारा का ही यह दोष है, जो हमें सत्य से दूर रखती है। हम किसी भी जाति की विचारधारा में नपुंसकता उत्पन्न हो जाने का कारण प्रकट कर चुके हैं, जो सम्भवतः सही भी है। महात्मा गोखले ने भी एक व्याख्यान में इसी तरह का मत व्यक्त किया था; पर उनका विचार एक-देशीय था। वह भारत की वर्तमान दुरवस्था पर विचार कर रहे थे और उन्हें अँगरेज़ी-शासन के प्रतिकूल कुछ कहने को बाध्य होना पड़ा था। हमारे सामने न केवल अँगरेज़ी-शासन की ही ख़राबियाँ उपस्थित हैं, बल्कि जहाँ भी शोषक और शोषित की नीति बरती जाती है, वहाँ की दिमाग़ी हालत एक-सी ही रहती है। हमारी इस बात का समर्थन इतिहास करता है और इस तत्त्व की सत्यता में संदेह भी नहीं है।

किसी भी राष्ट्र के लिए, यदि वह स्वाधीन हो तो भी और ग़ुलाम हो तो भी, उसके लिए यह आवश्यक है कि वह अपने विचारों को इस स्थिति में रक्खे कि उसके स्वाभिमान के साथ ही साथ उसकी संस्कृति के प्रत्येक पहलू में विकास की एक



दुर्दमनीय आकांक्षा बनी रहे। हम देखते हैं कि हम क्रमशः "स्व" को भूल रहे हैं और हमारे विचारों में दृढ़ता के स्थान पर थकावट ने अपना रंग बुरी तरह जमा लिया है। एक मनहूस की तरह जँभाइयाँ ले-लेकर जीने की जो आदत हमारे जीवन के साथ एकाकार कर दी गई; वह हमारे विचारों में मिलकर स्थायी-सी हो गई है और यही कारण है कि अप्रगतिशील साहित्य का सृजन हमारे हाथों से लगातार होता जा रहा है। अपने विचारों की नपुंसकता के कारण हम एक प्रकार से सदा पीछे की ओर ही हट रहे हैं और चाहते यह हैं कि हमारा उद्धार हो जाय। माल्थर के कथनानुसार "जब किसी देश में मनुष्यों को भरपेट खाने को अन्न नहीं मिलता, तो उस देश में एकमात्र दुर्भिक्ष पड़कर ही नहीं रह जाता, बल्कि ऐसे देश में तो तरह-तरह की तकलीफ़ें पैदा होती ही हैं और बुरे रस्मोरिवाज के फैलने के साथ ही साथ व्यभिचार और अनाचार की वृद्धि भी होती है।"

तो क्या यह बात सही है कि इस सूत्र के अनुसार ही हमारे साहित्य की जननी हमारी विचारधारा में भी नपुंसकता पैदा हो गई है। जो हो, पर अब हमें सावधान होकर अपने आप को मिटने से बचा लेना होगा।

काव्य-देवी

श्री० "प्रभात"

रूप-मधु पी, रूप का पागल बना हूँ,
चिर-उमंगों का विमल-बादल बना हूँ।
रूपरानी ! मुस्कुरा दे तू ज़रा तो—
विश्व-सुरभित कर कनक-शतदल बना हूँ।
क्षितिज में जो दीप तारों का जलाता—
अग्नि-कण वह दीप्तिमय उज्ज्वल बना हूँ।
फूँककर जो सिंधु को पल में जगाता—
सजनि ! झंझावात वह मदकल बना हूँ।

प्राण ! तेरा पा इशारा एक पल में,
स्वर्ग में तेरा सजाता कुसुम-दल में।
राग-रंजित इन्द्रधनुषों की तरंगें—
मैं उठा देता विपुल आकाश-जल में।
आँकता सौन्दर्य का मैं चित्र अनुपम,
प्रात के नीहार में सन्ध्या-अनल में,
गूँथता हूँ जुगनुओं की मृदुल-माला,
बैठकर सुनसान रजनी के महल में।

विश्व-वैभव की चिता पर सो रहा हूँ,
अचिर से पल-पल चिरन्तन हो रहा हूँ।
वेदना के आँसुओं से रात-दिन मैं—
कालिमा जग के हृदय की धो रहा हूँ।
अनिल-सा उल्लासमय सन्देश तेरा—
मैं युगों से मुक्त-उर में ढो रहा हूँ।
विजनवासिनि ! विजन-वन की क्यारियों में—
प्यार के कण मैं निरंतर बो रहा हूँ।

रश्मियों से रँग सुनहले प्रात को मैं,
झूमता हूँ चूम तृण-तरु-पात को मैं।
क्षितिज-पलकों में अकम्पित बाँधता हूँ—
प्रिय-मिलन की उस अनोखी रात को मैं।
सोचता हूँ प्रतिनिमिष विक्षिप्त-मन में—
विरह की निर्मम नशीली बात को मैं।
प्राण ! मेरा अखिल जीवन साधनामय—
पूजता हूँ हृदय में अज्ञात को मैं।

सुप्त कण-कण को पुकार जगा रहा हूँ,
आग युग-युग की अमर सुलगा रहा हूँ।
पथ अपरिचित, मैं बटोही गीत गाता--
बन वसन्त-समीर पागल जा रहा हूँ।
मृत्तिका-मग से उठाकर कुसुम-काँटे—
हृदय से सादर सहर्ष लगा रहा हूँ।
देवि ! लाखों आ रहे उन्मत्त पीछे,
सजग मैं दीपक उन्हें दिखला रहा हूँ।

मैं तुझे ऋतुराज की रानी बनाता,
मेघ-पथ की दिव्य दीवानी बनाता।
रूप-ज्वाला, रूप-ज्वाला की पिपासा—
कल्पना के फूल की वाणी बनाता।
विजनवन्ती लाजवन्ती-सी लजीली,
मैं तुझे वनवेलि लासानी बनाता।
उपलवर्षा, प्रलय, झंझावात निर्मम,
कालिका करुणार्द्र कल्याणी बनाता।



साथ मेरे लहर-सी तुम डोलती हो,
लेखनी से निकल मृदु-मृदु बोलती हो।
चाँदनी में चन्द्रकिरणों की सुरा पी,—
वेदना की करुण-पुस्तक खोलती हो।
विश्व के अभिशाप से दारुण भयंकर
देवि! तुम वरदान अपना तोलती हो।
मरण भी उन्मत्त हो जावे जिसे पी—
देव-दुर्लभ सोमरस वह घोलती हो।

कौन तेरा भार धारण कर सकेगा?
कौन तेरे प्यार कारण मर सकेगा?
कौन चुन चिनगारियाँ तेरी रँगीली—
मुस्कुराकर हृदय अपना भर सकेगा?

कौन तेरे रूप का विक्षिप्त-सागर—
चीरकर निस्सीम लहरें तर सकेगा?
कौन मुझको छोड़ तेरी वेदिका पर—
हार जीवन का मधुरतम धर सकेगा?

तड़प लोटेगा गगन में गान तेरा,
लौट आवेगा करुण-आह्वान तेरा!
बीनवाली! दीन-सी तू हीन होगी,
घुल-मिटेगा हृदय में अरमान तेरा!
जगत् के रक्ताक्त-अधरों पर भयंकर,
नित्य नाचेगा निठुर अवसान तेरा!
काँप जायेगी धरा, नभ, अनिल, सागर,
साथ जिस दिन छोड़ दूँगा प्राण! तेरा!

आनरेबुल रायबहादुर राजा महेश्वरदयाल सेठ

ताल्लुक़ेदार कोटरा-इस्टेट

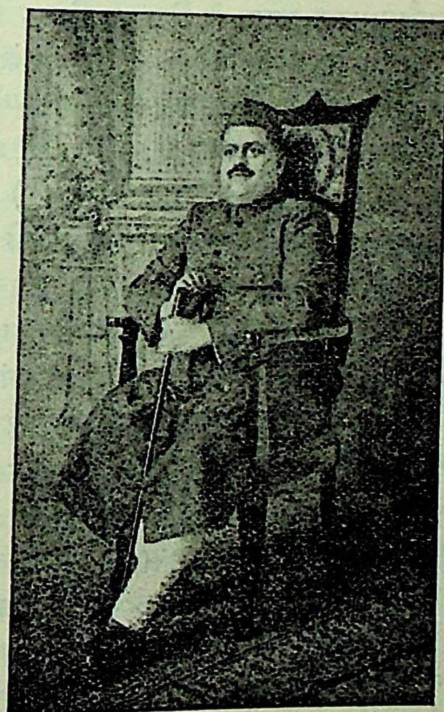
ठा० त्रिभुवननाथसिंह "सरोज"

रायबहादुर राजा महेश्वरदयाल सेठ साहब कोटरा-इस्टेट, ज़िला सीतापुर, अवध-प्रान्त के सुप्रसिद्ध ताल्लुक़ेदार और खत्री-वंश के आभूषण हैं। आपके वंश का शुभ परिचय देते हुए सन् १९१७ ई० के दिसम्बर मास में लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर सर मेस्टन ने निम्नांकित शब्द लिखे थे—



ठा० त्रिभुवननाथसिंह "सरोज"

"यह इतिहास-प्रसिद्ध खत्री-वंश मुग़ल-सम्राटों के समय में सेना का नेतृत्व करता था। लगभग दो सौ वर्ष बीते होंगे, ये लोग इस प्रान्त में आ बसे और अपनी राज-भक्ति के कारण इन्होंने जो जागीरें



आनरेबुल रायबहादुर राजा महेश्वरदयाल सेठ
ताल्लुक़ेदार कोटरा-इस्टेट

उस समय पाई थीं, क़रीब दो शताब्दियों तक उनमें भी अवनति और उन्नति होती रही। इसके बाद



१८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह में इस परिवार ने गवर्नमेण्ट की रक्षा के लिए शक्ति भर उद्योग किया, अतः सरकार की ओर से भी इनको महान् सम्मान प्राप्त हुआ। अभी तक यह वंश गवर्नमेण्ट के साथ सुन्दर सद्व्यवहार बनाये हुए है। मैं आशा करता हूँ, भविष्य में भी इनका ऐसा ही व्यवहार रहेगा। इस इस्टेट ने दयालुता आदि के अच्छे-अच्छे कार्य किये हैं।"

श्रीमान् राजा महेश्वरदयाल सेठ साहब के परदादा श्रीयुक्त राजा रघुबरदयाल सेठ रायबहादुर साहब का सन् १९१० ई० में देहान्त हो गया था। लार्ड मेस्टन साहब ने उनके बारे में एक बार इन शब्दों में कहा था—"मैं स्वर्गीय राजा साहब को ख़ूब अच्छी तरह जानता था। वे समाज-सुधार की बातों में सोत्साह भाग लिया करते थे, और सर्वसाधारण जनता के हित के लिए उन्होंने अनेक संस्थाएँ स्थापित की थीं।" इन्हीं के कर-कमलों द्वारा सर्वप्रथम कृषि-बैंक (Agricultural Bank) की स्थापना हुई थी। इस बैंक के बारे में सर हरकोर्ट बटलर (Sir Harcourt Butler) साहब ने कहा था—"मुझे बैंक की इस संस्था को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता होती है। यह जनता की भलाई के लिए एक सुन्दर विचारपूर्ण आविष्कार है।"

राजा रघुबरदयाल सेठ साहब के निधनानन्तर उनके एक-मात्र पुत्र राजा स्वामीदयाल सेठ साहब उत्तराधिकारी हुए। राजा स्वामीदयाल सेठ साहब की उज्ज्वल कीर्ति के स्मारक विशेषकर ये बातें हैं कि वे राजपुत्र होते हुए भी दया-दान-धर्म के विषय में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य कर गये हैं, जिनका उदाहरण लेकर आज भी मनुष्य परोपकार-रत हो सकते हैं। वे शान्त और सज्जन स्वभाव के वीर पुरुष थे। उन्होंने "पर्वतदान" जैसा महान् पुण्य कार्य किया, जिसका मूल्य एक लक्ष मुद्रा से भी अधिक होता है। सन् १९२२ ई० में ऐसे दानी राजा स्वामीदयाल सेठ साहब की मृत्यु हो गई। इनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीयुक्त कुँअर रामेश्वरदयाल सेठ साहब अपने पूज्य पिता के जीवन-काल ही में असमय में असार संसार को छोड़कर परलोक सिधार चुके थे, अतः पितामह की मृत्यु के बाद उनके पौत्र श्रीयुक्त रायबहादुर राजा महेश्वरदयाल सेठ साहब उत्तराधिकारी नियत हुए। आपने राज्य-शासन को अपने हाथों में लेकर उसकी भरपूर उन्नति की है। अल्प समय में ही चालीस नये ग्रामों को ख़रीद कर राज्य-विस्तार को बढ़ाया। आप कुशाग्रबुद्धि, धीर-वीर-निर्भीकमना, दया-धर्म की साक्षात् मूर्ति हैं। इन्हीं सब गुणों के कारण केवल २२ वर्ष की ही अवस्था में सन् १९२८ ई० में आप ज़िला-बोर्ड सीतापुर के चेयरमैन चुने गये। आपकी कार्य-निपुणता और सुप्रबन्ध के कारण अधिकारीवर्ग, राजा-प्रजा सभी प्रसन्न हुए। अतः इन्हीं कार्य-निपुणताओं और सद्व्यवहारों के कारण सन् १९३६ ई० में तीसरी बार आप सर्वसम्मति से ज़िला-बोर्ड के चेयरमैन चुने गये। आपको अपनी अखण्ड जन-सेवा के कारण गवर्नमेण्ट ने सन् १९३४ ई० में "रायबहादुर" की पदवी से विभूषित किया। इसके बाद शीघ्र ही आपकी महान् सेवाओं से प्रेरित होकर गवर्नमेण्ट ने सन् १९३६ ई० में आपको "राजा" की पदवी से अलंकृत किया। जब आपको "रायबहादुर" की पदवी मिली, तब लार्ड माल्कम हेली साहब ने आपको बधाई देते हुए आपके सम्मान में निम्नांकित शब्द कहे थे—

"सीतापुर-ज़िले के सुप्रसिद्ध ताल्लुक़ेदार-वंश के आभूषण राजा महेश्वरदयाल सेठ साहब ने निज पिता-पितामह के अनुकरण पर अनेकों कार्य जनता की भलाई के लिए किये हैं। पाँच वर्ष तक ज़िला-बोर्ड के चेयरमैनी के पद पर रहकर अपनी शासन-निपुणता का भी सर्व-साधारण को पूर्ण परिचय दिया है। आपकी दयालुता के ही कारण अनेक शिक्षालय व दानगृह स्थापित हुए हैं। ताल्लुक़ेदार होने के कारण आपने ईख और फलों की खेती में नवीन-नवीन परिवर्तन कर अभूतपूर्व सफलता दिखलाई है, जिनसे सर्वसाधारण कृषक उन्नति के



भावों को समझ सकते हैं। मैं आपको रायबहादुर की पदवीप्राप्ति-निमित्त बधाई देता हूँ।"

आपके ही कर-कमलों द्वारा दो हाई स्कूल, एक संस्कृत-कालिज, एक ज़नाना-अस्पताल तथा एक "सदाव्रत"-गृह की स्थापना हुई है। आपके सदाव्रत-गृह में प्रत्येक दीन मनुष्य सेर भर खाद्य प्राप्त कर सकता है। आपकी इस दयालुता से अकाल के समय सहस्रों परिवारों की रक्षा हुई है। आप निम्नांकित स्कूल और कालिजों के छात्रों को छात्रवृत्तियाँ भी देते हैं—

(१) केनिंग कालिज, लखनऊ
(२) गवर्नमेंट हाईस्कूल, सीतापुर
(३) किंग जार्ज मेडिकल कालिज, लखनऊ
(४) म्योर सेण्ट्रल कालिज, इलाहाबाद
(५) क्वीन्स कालिज, बनारस

आपके परिवार द्वारा दिये गये दस हज़ार रुपये के दान से स्थापित हाई स्कूल के आप आजन्म सभापति हैं। अतः वह आपकी अध्यक्षता तथा देख-रेख में नित्यप्रति उन्नति करता जा रहा है। आपने औद्योगिक कृषि (Agricultural and Industrial) प्रदर्शिनी का भी अपने यहाँ प्रारम्भ किया है। एक फल-बाग़ भी आपने बनवाया है, जिसमें फलों की खेती को देखकर दूसरे लोग अनुकरण करें। आपने ही एक विशाल कृषि-फ़ार्म भी आपने निर्माण कराया है, जिसमें नूतन शैली से खेती होती है, और सर्व-साधारण कृषकों को उसके तरीक़े दिखलाये जाते हैं। आपके इन कृषि-समुन्नतिकारक कार्यों को देखकर एक बार संयुक्त प्रान्त के वर्तमान गवर्नर साहब ने कहा था—

"राजा महेश्वरदयाल सेठ साहब ने १२ मार्च, १९३१ ई० को अपने ग्राम कोटरा में मुझे ग्राम-सुधार-सम्बन्धी जो कार्य दिखलाये, उनको देखकर मुझे आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। राजा साहब के प्रयत्न के कारण कोटरा ग्राम पूर्णतया नवीनता से सुसज्जित हो गया है। मनुष्यों के दिल-बहलाव के लिए आपने ग्राम में वाचनालय व क्लब नियत किये हैं, जिनमें सायंकाल को लोग पढ़ते और बातचीत करते हैं।"

कई स्थानों पर आपने स्वच्छता, सफ़ाई, ओषधि-वितरण तथा कृषि में विशेष उन्नति की है। संयुक्त प्रान्त के गवर्नर साहब ने अपने कोटरा के भाषण में कहा—

"राजा महेश्वरदयाल सेठ साहब ने अपने अभिनन्दन-पत्र में मेरे सम्मान के लिए जो शब्द कहे हैं, उनका मैं कृतज्ञ हूँ। मुझे और मेरी श्रीमती को आपके यहाँ आने पर बड़ी प्रसन्नता हुई है। इस प्रान्त में इस समय ग्राम-सुधार की परम आवश्यकता है। प्रान्त का भविष्य भी ग्रामों की सन्तुष्टि पर ही निर्भर है। मुझे इस बात की पूर्ण आशा है कि कृषि-आन्दोलन में सभी ताल्लुक़ेदार और ज़मींदार सोत्साह भाग लेंगे। मैं यह भी जानता हूँ कि आपके अतिरिक्त और दूसरे ताल्लुक़ेदार इस कार्य में इतना उत्साह प्रदर्शित नहीं कर रहे हैं। मुझे विशेष प्रसन्नता यह है कि आपने जो यहाँ कृषि-प्रदर्शिनी का प्रारम्भ किया है और जिससे कृषि करनेवाले प्रभावित हो रहे हैं, वह बहुत उपादेय है। इस बात के लिए आप विशेष धन्यवाद के पात्र हैं कि जो हमारे यहाँ आने पर आपने कृषकों को दस हज़ार की छूट दी है। राजा साहब ने अपना मस्तिष्क व समय नेशनल एग्रीकलचरिस्ट पार्टी (National Agriculturist Party) के संगठन तथा स्थापन में विशेष लगाया है। आप पार्टी के अवैतनिक मंत्री व कोषाध्यक्ष ही नहीं हैं, आप पार्टी के संस्थापक भी हैं। आपकी बुद्धि की यही प्रशंसा है कि राष्ट्रीय कृषि-संघ ने दो ही साल में अवध-प्रान्त में भरपूर उन्नति कर ली है, और वह शत्रुओं के लिए विजयी सेना की भाँति अपने उन्नति-पथ पर अटल है। आशा है, आगामी चुनाव में पार्टी काँग्रेस दल को परास्त कर देगी।"

गवर्नर साहब की उपर्युक्त बातें कितनी सत्य प्रमाणित हुईं, इसका उदाहरण पार्टी के कर्णधार राजा साहब का प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के



लिए निर्विरोध चुना जाना है। पार्टी के नियमों की उपयोगिता लोगों को इस ओर आकर्षित करती जा रही है और उसके सभी प्रतिनिधियों का भारी बहुमत से चुना जाना निश्चित है। कांग्रेस के लाख विरोध करने तथा पार्टी के विषय में अनेक भ्रमात्मक बातें कहने पर भी राजा साहब ने पार्टी की पताका को उच्च रक्खा है, और अब तो पार्टी ने जड़ जमा ली है। समय आ गया है कि वह पल्लवित तथा फलित होकर देश को नवीन और शान्तिपूर्ण मार्ग का निर्देश करेगी।

हिन्दी के प्रति भी राजा साहब का प्रेम अटूट है। आपके पूर्वज हिन्दी के कवियों के आश्रयदाता रह चुके हैं। प्रसिद्ध कवि गुमान मिश्र आपके ही पूर्वज सेठ गुलालचन्द्र के आश्रय में अधिक रहे हैं। उन्हीं के आश्रय में एक ग्रंथ नायिका-भेद रचकर 'गुलालचन्द्रोदय' नाम से विभूषित किया। इस गुलालचन्द्रोदय का वर्णन 'मिश्रबन्धु-विनोद' में भी आया है। इसकी हस्तलिखित प्रति 'आनन्द-भवन-पुस्तकालय' बिसवाँ में थी। पता नहीं अब प्रति वर्तमान है या नहीं। खेद है, संचालक महोदय इस पुस्तकालय के प्रति अब प्रायः उदासीन हैं। यह सार्वजनिक पुस्तकालय अब केवल नाम-मात्र को ही नाम-लेवा के स्वरूप में है। न उसकी कोई बिल्डिंग है, न पुस्तकें देखने को मिलती हैं।

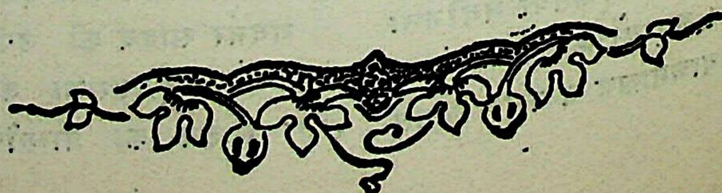
सन्तोष का विषय है कि हमारे परम मित्र पं० कृष्णविहारी मिश्र के पास उसी पुस्तक की एक प्रतिलिपि है। राजा साहब का हिन्दी-प्रेम इससे और भी अधिक प्रकट है कि आप मेरी एक हिन्दी दैनिक पत्र निकालने की योजना को पूर्ण सहयोग देकर उसको आद्योपान्त तक पहुँचाने में संलग्न हैं। कविता-प्रेमी तो आप विशेष हैं। आपके सहयोग और वार्तालाप में कहीं भी अभिमान की गंध नहीं आती है। हिन्दी को मातृभाषा के सिंहासन पर आरूढ़ कराने में आपका भी विशेष हाथ है।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'

वाली कहावत आप पर पूर्णतया लागू होती है। राजा साहब ने अपना अधिकांश समय अनेक परोपकारी संस्थाओं के संरक्षण में लगाया है। आपको कृषकों से विशेष सहानुभूति है। उनके दुःख में दुखी और सुख में सुखी होने का आपका स्वभाव है। इसी लिए आप अपना अधिकांश समय ग्रामीण कृषकों के सम्पर्क में बिताते हैं।

गत चुनाव में आप सीतापुर (बिसवाँ) के देहाती निर्वाचन-क्षेत्र से निर्विरोध चुने गये थे। यद्यपि नवीन शासन-विधान से आप विशेष संतुष्ट नहीं थे, पर आप उसको कार्यान्वित कर अधिक उपादेय बनाने के पूर्ण पक्षपाती हैं। आप चाहते हैं कि नवीन शासन-विधान से कृषकवर्ग का हित हो और उसको इस प्रकार सुचारु रूप से चलाया जाय कि हज़ारों कृषकों की आशाएँ हरी हो जायँ।

हम प्रथम कह चुके हैं कि राजा साहब को और बातों की अपेक्षा कृषि, कृषक तथा तत्सम्बन्धी समस्त बातों से अत्यन्त प्रेम है और घण्टों आप उन्हीं के हित-चिन्तन में बिताते हैं। अतः नये मन्त्रि-मण्डल में आप रेवेन्यू तथा कृषि मिनिस्टर बनाये गये हैं। यह प्रान्त का सौभाग्य है कि कृषि-आन्दोलनों में विशेष रुचि रखनेवाले व्यक्ति को ही कृषि-मंत्री बनाया गया। जहाँ राजा साहब कृषि के विशेषज्ञ और कृषकों के अणु-अणु से परिचित हैं, वहाँ वह नये मंत्रि-मण्डल में उत्साही, सबसे कम उम्र के परोपकार-निरत नवयुवक हैं। हमें आशा है कि विरोधी दल दुर्भावनाओं को छोड़कर नवयुवक कृषि-मंत्री राजा साहब के कृषि-उन्नति-सम्बन्धी बातों में पूर्ण सहयोग देंगे।



कर्त्तव्य

पं० गंगाप्रसाद मिश्र

(१)

यह घटना आज से लगभग १५०० वर्ष पूर्व की है। एक दिन संध्या के समय, जब कि आकाश में मेघ छाये हुए थे, मन्दसौर-नामक ग्राम में नदी के निकटवर्ती मार्ग से एक बालिका एक सुन्दर घोड़े पर बैठी चली जा रही थी। घोड़ा सुन्दर व सुसज्जित था, तथा बड़ी सुन्दर चाल से चला जा रहा था। इसी समय निकट की झाड़ी से बड़े ज़ोर से ग़ुर्राहट सुनाई दी। घोड़ा आवाज़ सुनकर ठिठका, बालिका भी भयभीत होकर कांपने लगी। उसने लगभग ५० गज़ की दूरी पर से एक सिंह को अपने पंजे समेटते हुए देखा। वह आक्रमण की तैयारी कर रहा था। बालिका चिल्ला पड़ी—'हे भगवान्! सिंह', 'कोई रक्षा करो'। उसके ये शब्द शिवालय के निकट बैठे एक युवक ने सुने। वह धनुष-बाण लिये हुए शब्द के ओर दौड़ा। स्थान पर आकर उसने देखा—एक बालिका पृथ्वी पर मूर्च्छित पड़ी है, उसके निकट एक सुन्दर घोड़ा सहमा हुआ है और एक सिंह उन पर घात लगाये है। उसने धनुष पर बाण चढ़ाया और निशाना बाँधकर खड़ा हुआ, सिंह उछला, बाण छूटा, तथा सिंह उलटकर पृथ्वी पर जा गिरा। सिंह के कराहने की आवाज़ ने बालिका की मूर्च्छा तोड़ दी। उसने देखा कि एक प्रतिभाशाली व बलिष्ठ युवक उसके फँसे हुए पैरों को ज़मीन पर पड़ी हुई रकाब से निकाल रहा है और निकट ही सिंह मरा पड़ा है। वह विह्वल होकर युवक से लिपट गई, तथा गद्-गद कंठ से बोली, 'भैया, तुमने मेरी रक्षा की है।'



पं० गंगाप्रसाद मिश्र

युवक हृदय में विचार रहा था—अहा! मैंने कैसी सुन्दर व सुशील बहन पाई है। उसने पूछा—बहन, तुम कहाँ रहती हो? चलो, तुम्हें घर पहुँचा दूँ।' बालिका ने कहा, मैं महाराज यशोवर्मन् के अमात्य भूरिवसु की कन्या सारन्धा हूँ। भाई, तुमने अपना परिचय नहीं दिया।

युवक बोला—"मैं क्षत्रिय हूँ, तथा सैनिक वृत्ति की तलाश में घूमता हूँ। मेरा नाम अमरसिंह है, इससे अधिक मेरा परिचय कुछ नहीं है।"

बालिका प्रसन्न होकर बोली—'चलो हमारे पिता तुम्हें सेना में स्थान देंगे।'

बालिका अपने घोड़े पर सवार हुई। युवक ने अपना धनुष-बाण लिया, और वे दोनों चल पड़े। वे एक सुन्दर भवन के सामने पहुँचे। बालिका ने कहा—'मैं यहीं रहती हूँ।' अमात्य भवन के सम्मुख-वर्ती सरोवर के निकट शिला पर बैठे कुछ वार्तालाप कर रहे थे। सारन्धा घोड़े से उतरकर अमात्य से लिपट गई और बोली—'आज तो सिंह ने खा लिया होता पिताजी !'

अमात्य चौंक पड़े, 'अकेली गई थी क्या ? बची कैसे ?'

सारन्धा गई और दूर पर संकुचित खड़े हुए अमर को पकड़ लाई। सब लोगों की दृष्टि अमर पर थी।

'इन्हीं ने बचाया पिताजी।'

अमात्य ने दौड़कर युवक को हृदय से लगा लिया। उन्होंने पूछा—'सिंह से कैसे बचाया बेटा ?'

युवक ने संक्षेप में उत्तर दिया। उसके नेत्रों से अत्यधिक सम्मान के कारण आँसू निकल रहे थे।

सबने पूछा—'एक ही बाण में मर गया ?'

उत्तर मिला—'हाँ।'

सबकी प्रशंसापूर्ण आँखें अमर की ओर उठीं। अमात्य ने पूछा—'तुम्हारा परिचय क्या है ?'

अमर ने बताया—'मैं सैनिक वृत्ति की तलाश में हूँ। मेरा नाम अमरसिंह है।'

अमात्य प्रसन्न होकर बोले—'अच्छा तुम आज से हमारे यहाँ के बलाधिकृत्य हुए।'

(२)

सात वर्ष व्यतीत हो गये। अमात्य भूरिवसु वृद्ध हो गये हैं। अब सारा प्रबन्ध कुँअर अमरसिंह ही करते हैं। वास्तव में वे ही अमात्य हैं। लोगों की अमर में भक्ति व श्रद्धा देखकर अमात्य बहुत प्रसन्न होते हैं। जब सम्राट् यशोवर्मन् अमात्य के रुग्ण होने पर उन्हें देखने आये, तो उन्होंने सम्राट् से कहा था—'महाराज, मैं अमर को पाकर यह भूल गया हूँ कि मैं पुत्रहीन हूँ।' महाराज भी अमर से मिलकर और उसके गुण व योग्यता देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे।

गत समय में सारन्धा का विवाह अनंग देश के राजकुमार अनिरुद्धसिंह से हो चुका है। अनिरुद्ध-सिंह को महाराज यशोवर्मन् के यहाँ से विषय-पति का पद भी प्राप्त है। वे अमरसिंह का बड़ा आदर करते हैं। जब तक सारन्धा अनंग में रहती है, वहाँ से हरकारे अमरसिंह को बुलाने आया करते हैं। अमात्य इन सबका वास्तविक प्रेम देख-कर बड़े प्रसन्न होते हैं। सिर्फ़ एक बात ही ऐसी है, जिसके कारण कभी-कभी अमात्य अमर से बहुत रुष्ट हो जाया करते हैं। वह है, अमर का विवाह के लिए सदा 'नहीं' करना और विवाह-बन्धन के दोष दिखाकर उसे स्वतंत्रता नष्ट करने का एक साधन बताना। वे समझ ही नहीं पाते हैं कि अमर के लिए क्या करें।

एक दिन प्रातःकाल रुग्ण अमात्य भूरिवसु के निकट अमरसिंह तथा सारन्धा बैठे कुछ वार्तालाप कर रहे थे। दासी ने आकर ख़बर दी—'महाराज, राजधानी से दूत पत्र लेकर आया है।' कुँअर अमरसिंह उठकर बाहर आये। दूत से पत्र लेकर पढ़ा। उनके मुख पर प्रसन्नता के कुछ चिह्न आये और चले गये। उन्होंने दूत के ठहरने का प्रबन्ध कराया और पत्र लेकर अन्दर आये, जहाँ अमात्य तथा सारन्धा उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अमरसिंह ने पत्र पढ़कर सुनाया। पत्र यह था—

जिसका यश भुजा पर खड्गरूपी लेखनी से लिखा है, जिसने हूणों को बार-बार परास्त किया, जिसने हिमालय पर्वत से लेकर समुद्र-तट तक के राजाओं को अपने वश में किया व जिसके प्रचण्ड प्रताप ने वन की शान्त ध्वनि के सदृश पृथ्वी को कभी न छोड़ा, उसी चक्रवर्ती सम्राट् यशोवर्मन् की आज्ञानुसार अमात्य भूरिवसु को यह लिखा जाता है कि वे अनंग, सौन्दर्या इत्यादि निकटवर्ती देशों की सेना सहित हूण-सरदार मिहिरकुल से युद्ध



…के निमित्त द्वितीया शुक्लपक्ष, मास आश्विन, … १९४ तक राजधानी पहुँचकर युद्ध में … जावा दें।

…अमात्य ने कहा—'अमर' इसी दूत के द्वारा सम्राट् … लिखवा दो कि अमात्य भूरिवसु रुग्ण होने के … युद्ध में स्वयं सम्मिलित न हो सकेंगे। कुँअर …सिंह नियत तिथि तक सारी सेना सहित … प्रस्तुत होंगे।'

…अमर ने कहा—'पिताजी, अनंग भी समाचार … दें। अब समय ही कहाँ है।'

…अमात्य ने खाँसते हुए उत्तर दिया, 'हाँ, जामाता …सिंह को लिख दो कि सेना सहित जल्दी … आवें, दर्शन देकर युद्ध में जायँ तो अच्छा है। … मालूम मैं लौटने तक जीवित रहूँ या नहीं।'

…अमर ने लेखक को बुलाकर पत्र लिखवाये। … पत्र लिखवाते समय उसके नेत्रों से आँसू … रहे थे। सारन्धा बैठी सोच रही थी—अपना …दिश।

(३)

…समय व्यतीत होते देर नहीं लगती। तिथि … पहुँची, चारों ओर युद्ध की तैयारियाँ हो रही …। रात-दिन राजधानी की ओर जाती हुई …ओं के बाजे सुनाई पड़ते थे। अमात्य के स्थान …पुर में बड़ी चहल-पहल थी। बाहर से आई … सेनाओं के डेरे नगर के चतुर्दिक् पड़े हुए थे। … घोड़ों को साज़ पहनाये जा रहे थे, कहीं तेग़ … साफ़ किये जा रहे थे, कहीं साफ़ों में …ियाँ लगाई जा रही थीं व कहीं रण-वाद्य … किये जा रहे थे। कुँअर अमरसिंह सबकी आव…श्यकताओं को पूछते व उन्हें रण के विषय में आवश्यक … बताते फिरते थे।

…सन्ध्या के समय अमरसिंह वाटिका में बैठे …धा के पति अनिरुद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे …उन्होंने सारन्धा को अपनी ओर आते हुए …। सारन्धा आई और अमर की गोद में मुँह … रोने लगी। अमर के नेत्र भी अश्रुपूर्ण हो गये। वह सारन्धा के सिर पर हाथ फेरता हुआ बोला—क्या है सारन?

सारन्धा ने सिसकते हुए कहा—'भैया अमर, मैं तुमसे अपना सुहाग माँगती हूँ,' यह कहते-कहते उसने अपना अंचल फैलाया—'भैया जैसी तुमने मेरी रक्षा की थी, वैसी मेरे सिन्दूर की भी करना।'

अमर ने कहा—'सारन, जब तक तुम्हारे पति के साथ अमर है, उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।'

सारन्धा को विश्वास हो गया। उसने अमर की ओर कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से देखा तथा आँसू पोंछती हुई चली गई। अमर पूर्ववत् बैठा रहा।

प्रातःकाल हुआ, युद्ध के बाजे बज रहे थे, सारे सैनिक अमात्य के भवन के सम्मुख एकत्रित थे। प्रस्थान में थोड़ी ही देर थी। अमात्य भूरिवसु शय्या पर पड़े-पड़े ही अमरसिंह तथा अनिरुद्ध को युद्ध के विषय में अन्तिम तथा अनिवार्य चितावनियाँ दे रहे थे। अमात्य ने कहा—पुत्र अमर, तुम बुद्धिमान् हो, अनिरुद्धसिंह का ध्यान रखना।'

अमर ने उत्तर दिया—'पिताजी, आप निःशंक रहें।'

इतने में सारन्धा हाथ में थाल लिये तिलक करने आई। उसने अनिरुद्ध के तिलक किया; उसके हाथ काँप रहे थे, मुख लाल हो रहा था तथा नेत्र भरे हुए थे। वह अमर के तिलक करने आई, उसने रोली लेकर अमर के मस्तक की ओर हाथ बढ़ाया। एक बूँद आँसू का अमर के चरण पर आ गिरा। वह तिलक कर चुकी थी। अमर ने कहा—'बहन सारन, विश्वास नहीं होता क्या? मैं कह चुका, अनिरुद्ध का बाल भी बाँका न हो पावेगा।'

अमर ने सारन्धा का मस्तक सूँघा और अनिरुद्ध ने बिदा माँगी। इसके पश्चात् दोनों ने अमात्य को प्रणाम किया तथा वे भवन से निकलकर सैनिकों के सम्मुख आ गये। बिगुल बजा व सेना ने प्रस्थान कर दिया।



(४)

युद्ध-भूमि में सिन्धु नदी के दक्षिण-तट पर महाराज यशोवर्मन् की सेना का पड़ाव पड़ा। हूण लोग नदी के दूसरी ओर पड़ाव डाले हुए थे। महाराज रात्रि में बैठे अपने तम्बू में सरदारों से सलाह ले रहे थे कि बाहर से मारकाट की आवाज़ सुनाई दी। सब लोग बाहर निकल आये। हूणों ने रात्रि में छापा मारा था तथा वे चारों ओर फैल रहे थे। बिगुल बजा, अमर ने अपने सवार एकत्रित कर लिये तथा बड़ी वीरतापूर्वक वे शत्रुओं को खदेड़ने लगे। इसी समय उन्होंने देखा कि अनिरुद्ध वीरतापूर्वक हूणों में घुसे बड़ी निर्भीकता से युद्ध कर रहे थे। अमर चौंक पड़ा। उसने कहा—'अनिरुद्ध, सब फ़ौज सामने ही फैली है। अगर कहीं हूण-सवारों ने चक्कर काटकर पीछे से तम्बुओं पर आक्रमण कर दिया तो महाराज के प्राण संकट में पड़ जायँगे। जाओ, तुम पीछे से तम्बुओं की रक्षा करो।' अनिरुद्ध ने बड़ी मुश्किल से माना और वे कुछ सवारों सहित तम्बुओं के पिछले भाग की ओर चले गये। वे समझ रहे थे कि अमर ने मुझे युद्ध से बचाने के लिए यह सब किया है। उन्हें वहाँ खड़े हुए लगभग दो घड़ी बीती होंगी कि 'हर-हर महादेव', 'जय माता काली' का शोर हुआ तथा पाँच हज़ार हूण या तो पड़े तड़प रहे थे या नदी की ओर भागते हुए दिखाई दे रहे थे। महाराज शोर सुनकर तम्बू के बाहर आये। देखा, पीछे अनिरुद्ध खड़ा था। महाराज ने प्रश्न किया—'युवक, वहाँ खड़े क्या कर रहे हो? युद्ध करने नहीं गये?' इतने में अमरसिंह ने आकर प्रणाम किया। वह बोला—'महाराज, हूणों को तट तक खदेड़ आया हूँ।'

महाराज ने अमर को हृदय से लगा लिया। वे बोले—'अमर, हमें तुम-से ही युवकों की आवश्यकता है।' यह कहते-कहते उन्होंने अनिरुद्ध की ओर घृणा-मिश्रित दृष्टि से देखा। अमर ने कहा—'महाराज, मैंने ही इन्हें तम्बुओं की रक्षा के लिए इधर भेज दिया था, नहीं तो ये तो बहुत आगे बढ़ गये थे। अमरसिंह के शब्दों ने महाराज की घृणा को सामान्य रूप में परिवर्तित कर दिया।

इसके पश्चात् सब सरदार महाराज के डेरे में सलाह करने के लिए फिर बुलाये गये कि प्रातःकाल होते ही हूणों पर किस प्रकार आक्रमण किया जाय।

महाराज ने कहा—'प्रातःकाल होते ही अनिरुद्ध-सिंह और सरदारों सहित सामने से नदी पारकर आक्रमण करें तथा यहाँ से तीन मील की दूरी पर जो पुल है, उसे पारकर कुँअर अमरसिंह सहित पीछे से चक्कर काटकर आक्रमण करें; क्योंकि अमरसिंहजी के सवार सामने न रुक सकेंगे, वे बहुत थक गये हैं तथा अनिरुद्धसिंहजी के सैनिक अभी ताज़े हैं। वे यह कार्य सरलतापूर्वक कर लेंगे।'

अनिरुद्ध ने उठकर महाराज के प्रस्ताव का समर्थन किया। परन्तु अमर ने कहा—'महाराज, अगर पीछे का आक्रमण ठीक न हुआ तो किया-कराया सब मिट्टी हो जायगा। आगे नदी है, हूण लोग आगे बढ़ ही कहाँ सकते हैं। और अगर आपके सवार पीछे से भरपूर आक्रमण कर देंगे तो हमारी जीत में कोई सन्देह नहीं।'

अनिरुद्ध अमर का मतलब समझ गया। वह झुँझलाकर बोला—'महाराज, मुझे पीछे से ही आक्रमण करने दीजिए।'

महाराज को अमरसिंह की बात जँच गई। उन्होंने अमर से कहा—'अच्छा तुम सामने से ही आक्रमण करना। अनिरुद्धसिंहजी पीछे से आवेंगे।'

युद्ध-समिति का अधिवेशन समाप्त हुआ तथा सब अपनी-अपनी तैयारियाँ करने लगे।

(५)

सूर्य की प्रथम किरण ने पृथ्वी पर पैर रक्खा ही था कि अमर के सवारों ने सिन्धु के ... जल में घोड़े डाल दिये। अनिरुद्ध की सेना ... समय पुल पार कर चुकी थी। हूणों ने नदी का किनारा घेर लिया तथा अमरसिंह के सैकड़ों जवानों



लाशें नदी में तैरने लगीं। अमरसिंह की आज्ञा से सवार बढ़े चले जा रहे थे। हूण निशाना लगा-लगाकर पानी में डगमगाते अमरसिंह के सवारों पर बाण छोड़ रहे थे, परन्तु अमरसिंह की दृढ़ता देखकर सवारों का साहस बढ़ा हुआ था और थोड़ी देर में वे किनारे पर थे। इसी समय हूण-सरदार मिहिरकुल ने बाण मारा और वीर अमरसिंह घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। हूण सैनिक अमरसिंह को बन्दी करने को बढ़े ही थे कि पीछे से अनिरुद्ध के सवारों का ज़ोरदार आक्रमण हुआ। इस आक्रमण पर आश्चर्यान्वित हूण-सरदार मिहिरकुल को अनिरुद्ध ने बढ़कर बन्दी कर लिया। हूण भाग निकले।

अनिरुद्ध विजयोल्लास में था कि उसने सामने अमर को नदी की रेती पर पड़े हुए दम तोड़ते पाया। वह दौड़कर अमर के निकट पहुँचा। उसने रोते हुए आवाज़ दी—'भैया अमर।' अमर ने नेत्र खोले। उसने पूछा—'युद्ध का क्या हाल है ?'

अनिरुद्ध ने उत्तर दिया—'हूण-सरदार गिरफ़्तार हो गया। सारे हूण या तो भाग निकले या क़त्ल हो गये।'

अमर ने कहा—'मैं अब शान्ति से मर सकूँगा। सारन्धा से कहना—मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया।'

यह कहते-कहते अमर के प्राणपक्षी अनन्त में उड़ गये।



एशिया का अदृष्टवाद्

अथवा

प्राच्य देशों का अदृष्ट-विश्वास

भट्ट श्रीमथुरानाथ शास्त्री

भारत की नौका को उन्नति के तीर पर किस प्रकार पहुँचाया जाय, इसका प्रसंग चल ही रहा था कि प्रोफ़ेसर गोविंदगणेश गोखले गरमाकर बोल उठे—"भाई साहब ! इस देश की उन्नति वुन्नति कुछ नहीं होनी । घोर अदृष्टवाद के अजगर ने ही इस जाति को ग्रस लिया है ।"

मिस्टर के० एन्० दत्ता ने अपनी सम्मति दी कि—'जो जाति वेदान्त-दर्शन, गीता-सदृश पुस्तकों को बना सकती है, उसकी आध्यात्मिक उन्नति चाहे हो जाय, परन्तु इस ज़माने के अनुसार भौतिक उन्नति तो किसी हालत में नहीं हो सकती । इस जाति के जातीय जीवन में उन्नति की आशा दुराशा-मात्र है ।'

गीतासभा में गीता की व्याख्या बड़े ठाट से चल रही थी । पण्डित महाशय सुललित भाषा में श्रोताओं को समझाने लगे—"यह संसार असार है । जीवन भी सपने के समान है । केवल भगवान् का चरण-पंकज ही यहाँ एकमात्र सार है । उन्हीं के नाम का कीर्तन करिए । उन्हीं की आराधना करिए । उन्हीं के प्रेम में अपने आपको लीन कर देना चाहिए । जो अनित्य है, उसे छोड़कर नित्य, सत्य और सारभूत के अन्वेषण में प्राणपण से लग जाना ही बुद्धिमान् का काम है ।

भक्तिमधुर कंठ से निकली हुई कीर्तन-समाज की संगीत-ध्वनि समीप से ही सुनाई दे रही थी—"मूरख ! अलख लख्यो नहिं हाय । करत कोऊ अरु, भरत कोऊ अरु, मूरख वृथा गरुआय ।"

सत्य-सत्य ही इस जाति को चारों तरफ़ से अदृष्टवाद की लहरों ने घेर रक्खा है । "इस संसार में हमें कोई क्षमता नहीं । अलक्षित कोई एक शक्ति हमें जिस प्रकार से प्रेरित करती है, हम कठपुतली की तरह उसी प्रकार नाचा करते हैं । अपनी इच्छा से एक पैंड भर चलने की हमें स्वतन्त्रता नहीं ।" यह भाव इस जाति के मर्म-मर्म में व्याप्त है । अदृष्ट पर घोर विश्वास रखनेवाली इस जाति की क्या इस ज़माने में उन्नति हो सकती है ? यदि हो तो भी उसके उपाय बतलानेवाला कोई आप को दिखलाई देता है ?

एक रोज़ आशा की झलक अचानक दिखलाई पड़ी । किसी कारण से गाँव के ज़मींदार पद्मसिंह



...ने नाराज़ होकर गुमानीलाल गुप्त का लातघूँ-...षोडशोपचार पूजन कर डाला ! बेचारा बुड्ढा—...! बुढ़ापे में यह अपमान भी विधाता ने भाग्य ...लिख दिया था'—कहकर कपाल में दुहत्थड़ ...रोने लगा। अपमान की यह बात फैलते-...ते गुमानीलाल के बेटे तक पहुँची। मानीलाल ...समय खेती का काम कर रहा था। जैसे ही ...बात उसके कान में पहुँची, वह गुस्से के मारे ...उठा। हाथ में हल लिये साक्षात् बलराम बना ...वह बोला—"कपाल में जो कुछ लिखा होगा, ...जायगा। किन्तु बच्चे को ज़मींदारी का मज़ा ...बताये देता हूँ। चाहे मुझे फाँसी हो जाय; ...उसे तो जीता नहीं छोड़ूँगा।" लोगों ने बहुत ...रोका, पर वह सबको हटाकर बदला लेने के ...बड़ी तेज़ी से दौड़ गया।

गुमानीलाल अदृष्ट के भरोसे आँसूमात्र बहाकर ...गया, किन्तु उसका पुत्र उसी अदृष्ट को सम्मुख ...कर तुमुल युद्ध के लिए अग्रसर हो पड़ा।

मुझे मालूम हो गया—एक ही भाव पात्रभेद ...नाना तरह के काम कर दिखाता है। पुराने इति-...और वर्तमान परिस्थिति दोनों ही आपके ...इस बात के साक्षी होंगे। चीन और जापान ...ही ले लीजिए। शांति-प्रधान भारत का बौद्ध-...प्राचीन काल से लेकर आज तक इन दोनों ...का मार्ग-प्रदर्शक बना रहा है। किन्तु उसी ...धर्म का उपासक जापान तो आज बड़ी-बड़ी ...शों में से एक गिना जाता है, और सब प्रकार ...उन्नतियाँ वहाँ सुलभ हो रही हैं; पर चीन ...तक अवनति के गर्त में पड़ा हुआ है। उसकी ...की चाल इस उन्नति की दौड़ को कहाँ ...सकती है। बौद्ध-धर्म वही है; परन्तु एक तो ...माननेवाला उन्नति के शिखर तक जा पहुँ-...है, दूसरा अभी तक वहाँ का वहाँ है।

...पात्रभेद के उदाहरण खोजने के लिए आप दूर ...क्यों जाते हैं। यहीं देख लीजिए न। परम-...भगवान् श्रीकृष्ण ने कंसादि दुष्टों का दमन किया है, गीता-सदृश अलौकिक ज्ञानगुम्फ का इस भूमण्डल में प्रचार किया है। इन असाधारण बातों को देखकर कितने ही आदमी उनके प्रति अलौकिक श्रद्धा और भक्ति धारण करते हैं, परन्तु कितने ही इस कृष्ण-चरित्र में उनके कृष्ण चरित्र (निन्दनीय आचरण) हेरना चाहते हैं। रास-लीला, गोपिकागण, माखन-चोरी इत्यादि पर ही उनकी सतृष्ण दृष्टि पड़ती है। इसी तरह महाराणा प्रतापसिंह आदि के चरित्रों को सुनकर कितने ही तो उनके त्याग, वीरता, लोकसेवा आदि का अनुकरण करना चाहते हैं और कितने ही—'जब ऐसे ऐसे महानुभाव और वीरपुरुष ही अपने उद्योग से वैरियों पर सफल न हो सके तो हम-सरीखे तुच्छों की क्या गिनती है—' कहकर कार्यसिद्धि में ज़रा-सा विलम्ब होने पर अपने उद्योग को ठंडा करके हाथ पर हाथ दे बैठते हैं।

भिन्न-भिन्न प्रकार के पात्रों में पहुँचकर इस अदृष्ट-वाद की भी यही दशा हुई है। आलसियों का अदृष्टवाद संतोष करता है कि—"अदृष्ट में यदि होगा तो विना हाथ हिलाये भी धन अपने आप हमारे पास आ पहुँचेगा और यदि भाग्य ही प्रतिकूल है तो हम चाहे जितना मरें, पचें, फूटी कौड़ी से भेंट नहीं हो सकती। दैव के अनुकूल होने पर, चाहे आप घर में बैठे रहें, आपको कोई कमी न रहेगी। बड़े आनन्द से समय बीतेगा। इस भोंदूलाल बनिये ही को देखो न! कैसी तक़दीर जगी है। ईख का खेत खोद रहा था, खोदते-खोदते कुदाल की किनार से अचानक ठनाका उठा। मिट्टी हटाकर देखता है तो बड़ा भारी पीतल का एक 'चरबा' है, जिसमें चमचमाती सोने की मुहरें लबालब भरी हैं! भैया, मुक़द्दर इसी को कहते हैं। इधर इन फटिकचन्द्र को देखो! पढ़ने-लिखने में कितना माथा मारा। तेली के बैल की तरह देश-विदेशों में कितना घूमा, पर क्या हुआ, तक़दीर में नहीं है सुख। क्या चकरी की तरह घूमने से ही कुछ हो जाता है?"

कर्मयोगियों का अदृष्टवाद हमें जगाता है कि—



"भाई ! किसको मालूम है कि यह अदृष्ट किस समय किस भाव से प्रसन्न होता है ? सभी तरह के उद्योग करते रहना ठीक है। यदि इस उपाय से फल न हुआ तो संभव है, दूसरे उपाय से कार्य-सिद्धि हो जाय। इस काम में घोर आपत्तियाँ दिखाकर आप मुझे जाने से रोकते हैं; किन्तु मेरे अदृष्ट में यदि कुछ अनिष्ट ही होना लिखा होगा तो क्या वह घर बैठे रहने से रुक जायगा ? और यदि मेरा अदृष्ट अच्छा है तो चारों तरफ़ संकट के बादल उमड़ आने पर भी मेरा बालबाँका नहीं हो सकता। फिर ऐसी हालत में कापुरुष की तरह घर में बैठे रहना ठीक है या बहादुरी के मैदान में उतर आना।"

मैं अच्छी तरह सोच-विचार कर चुकने पर भी इस निश्चय पर नहीं आ सका हूँ कि अदृष्ट-विश्वासी लोग कर्मशूर और साहसी न होकर आलसी और कापुरुष कैसे बन जा सकते हैं ? अदृष्टवाद का यदि यह अर्थ है कि 'हमारे जीवन की प्रत्येक घटना किसी अदृष्ट-शक्ति के द्वारा पहले से ही नियत कर दी गई है—किस दिन मैं सुखी होऊँगा, किस समय मुझे कष्ट मिलेगा इत्यादि सभी घटनाएँ यदि पहले से ही वज्र के कील-काँटों से दुरुस्त की हुई हैं और मेरे द्वारा उनमें रंचकभर भी परिवर्तन नहीं हो सकता तो फिर मुझे डरने की क्या ज़रूरत है ? जो अवश्य, अवश्य होनेवाला है फिर उसके लिए कुंठित होने से फ़ायदा ? जो होनहार है, वह तो होगा ही, फिर जो धर्म के अनुकूल है, जिसका न्याय अनुमोदन करता है, समाज के लिए जो हितकारक है, फिर उस बात के लिए जीवन तक दे देने में मुझे संकोच क्यों होना चाहिए ? अदृष्ट-विश्वास के अनुसार मेरी आयु के दिन यदि समाप्त हो चुके हैं तो फिर मुझे इस संसार में स्थिर रखनेवाला है ही कौन ? और यदि मेरा भाग्य मुझ पर प्रसन्न है तो फिर सम्पूर्ण पृथ्वी का राजाधिराज भी मेरे विपक्ष में रहकर क्या कर सकता है ? यदि यह अदृष्ट की बात निश्चित कर ली गई तो फिर विजयी वीर के पद पर अभिषिक्त होकर शौर्यलक्ष्मी की दी हुई विजय-माला से अपने कण्ठ को क्यों न भूषित करूँ ? संसार में उन्नति का मार्ग दिखानेवाला आदर्शवीर क्यों न बनूँ ?

पहले कह आया हूँ कि यह अदृष्टवाद भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोगों में पहुँचकर भिन्न-भिन्न भावों का जन्मदाता बन गया है। दैव के आश्रय पर एक वीर जिस समय पूर्वोक्त वीरोचित वचन कहता है, उस समय इसी अदृष्ट को बीच में डालकर एक आलसी पुरुष कह सकता है कि—'जो होनहार है, वह तो होगा ही फिर वृथा अपनी आत्मा को क्यों होमूँ ? क्यों मैं उसके लिए रात-दिन पिलूँ ? नहीं, नहीं, मैं एक पैंड भर आगे नहीं सरकूँगा। मैं यहाँ का यहाँ खड़ा रहूँगा।'

कार्यशूर और वीरों के अदृष्टवाद की व्याख्या जो मैं पहले दिखा चुका हूँ, वह केवल मेरे ही मुख से नहीं निकली। पृथ्वी भर के साहसी और वीरों की यही ओजस्विनी भाषा चिरकाल से रही है। नवशिक्षित महोदय महावीर नेपोलियन का जीवन-चरित तो बड़ी लगन से अध्ययन कर चुके हैं। उसी से जाँच लीजिए कि नेपोलियन किस उदार-श्रेणी का अदृष्ट-विश्वासी था। वह अपने को प्रकृति द्वारा परिचालित एक साधारण मनुष्य मानता था। उसका अदृष्टवाद—आलसियों का अदृष्टवाद नहीं। फ़तह पाने के लिए जो-जो चेष्टा करनी चाहिए, उसमें वह कभी कुछ कमी नहीं रखता था। उसके असाधारण परिश्रम का हाल सुनकर आश्चर्यचकित होना पड़ता है। दिन-रात में वह केवल पाँच घण्टे विश्राम करता था, बाक़ी समय में कार्य करने के लिए सर्वदा उसकी कमर कसी रहती थी। ऐसा महान् कर्मपरायण विश्व-विदित वीर भी घोर अदृष्ट-विश्वासी था। छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रतापसिंह इत्यादि भी पूर्ण अदृष्टवादी थे, परन्तु इनके और नेपोलियन के अदृष्ट-विश्वास में अन्तर है। ये लोग अपने को



...र की प्रेरणा पर चलनेवाला दूत या भृत्यमात्र
...ते थे। उनका विश्वास था कि भगवान् ने
...विशेष की सिद्धि के लिए हम लोगों को
...या है। काम उन्हीं का है, हम तो एक निमित्त-
...त्र हैं।

मुसलमान-जाति का अभ्युदय भी बहुत कुछ
...अदृष्ट-विश्वास से ही हुआ है। 'यदि तक़दीर
...लिखा है तो सल्तनत मिलती ही है, वर्ना जो सिर्फ़
...र खाना ही मुक़द्दर में लिखा है तो क्या हुआ।
...न की बाज़ी लगाकर ही तो छोड़ेंगे।' यह
...पूर्व उत्साह ही उन्हें बड़े-बड़े साहस के मैदानों
...में लाकर खड़ा कर देता था। मुसलमानों के अदृष्ट-
...वाद पर अँगरेज़ों ने लिखा है कि—"पुरानी
मुसलमान-जाति भविष्यत् का मधुमय चित्र अपने
...सामने रखकर कार्यक्षेत्र में उतरती थी। उनके
...धर्मग्रन्थ उन्हें समरक्षेत्र में बढ़ावा देते थे। वे
...कहते थे—'अगर इसी बहाने मौत लिखी है,
...तो वो बात ही दूसरी है, वर्ना जो आराम उम्मीद
...से भी बाहर है, वह सामने है ही।'

यदि हम थोड़ी-सी भी बारीकी से विचार
...करें तो हमें मालूम हो सकता है कि हमारे चारों
...ओर फैले हुए अदृष्टवाद ने अलग-अलग लोगों पर
अलग-अलग प्रभाव डाला है। एक श्रेणी के वे
...लोग हैं, जो अदृष्टवादी होकर आलसी हैं। दूसरी
...श्रेणी में वे आते हैं, जिनका अदृष्ट पर विश्वास
...नहीं। तीसरी श्रेणी में उनकी गणना है, जो
...साहसी और अदृष्टवादी हैं। इनमें पहली श्रेणी के
...लोगों का अदृष्टवाद इसलिए है कि अदृष्ट नाम
...की किसी अदृश्य शक्ति के सिर अपनी अकर्मण्यता
...का तमाम दोष डालकर वे निश्चिन्त हो जायँ।
...अदृष्ट पर विश्वास नहीं रखनेवाले द्वितीय श्रेणी
...के पुरुषों में साहसी और वीर कभी देखे ही नहीं
...गए। वे साधारण श्रेणी के मनुष्य होते हैं। प्रायः
...आजकल के शिक्षित महोदय इसी श्रेणी के
...अन्दर आ जाते हैं। नाक की सीध पर चलने-
...वाले बने हुए रास्ते को छोड़कर ये लोग एक पैंड
भर आगे नहीं बढ़ सकते। "व्यापार के काम में
स्वतंत्रता ज़रूर है और देश का लाभ भी है, तो भी
आगे चलकर इसमें लाभ ठहरेगा या टाट उलटना
पड़ेगा, यह निश्चित नहीं। इसलिए भाई साहब!
सबसे अच्छा रास्ता तो हम नौकरी का समझते
हैं, जिसमें हर महीने बँधी आमदनी तो मिल
जाती है।" बस, इस श्रेणी के पुरुषों की वीरता-
सूचक यही साधुवाणी है।

तृतीय श्रेणी के पुरुषों में दोष और गुण दोनों
ही ठहराये जा सकते हैं। इनका साहस अनेक
समयों पर दुःसाहस हो जाता है। इस श्रेणी के
सभी आदमी नवीन-नवीन कार्यों में बड़े उत्साह
के साथ सम्मिलित हुआ करते हैं; किन्तु उनमें
सफलता या असफलता अधिकतर अनिश्चित रहती
है। ये लोग परोपकार के लिए अथवा अपने
लाभ के लिए जीवन तक देने में भी कभी पीछे
पैर नहीं रखते।

ऊपर जो श्रेणी-विभाग किया गया है, वह बहुत
स्थूल रूप से है। सूक्ष्म विचार करने पर अदृष्ट-
वाद की अनेक शाखाएँ हो सकती हैं। एक आदमी
का भाग्य-विश्वास दूसरे से नहीं मिलता। अदृष्ट पर
सोलह आना विश्वास रखनेवाले और अदृष्ट का
एकदम बायकाट करनेवाले आदमी आपको
भूमण्डल भर में एक-दो मिलेंगे। ऐसे आदमी आपको
बहुत मिलेंगे, जो अपने को पूर्ण अदृष्ट-विश्वासी
बतलाते हैं तथा ऐसे वीरों की भी कमी नहीं है,
जो भाग्य के नाम पर फटकार भेज़ा करते हैं।
परन्तु यह सब उनकी गर्जना मौखिक है। कठिन
संकट की परीक्षाओं में जिस समय आप उनके
भावसमूह का विश्लेषण करेंगे, उस समय आपको
स्पष्ट मालूम हो जायगा कि विश्वास के साथ
अविश्वास और अविश्वास की ओट में विश्वास
चुपचाप छिपा हुआ है।

बहुत-से शिक्षित समझते हैं कि यह अदृष्टवाद
केवल एशिया ही की सम्पत्ति है। नहीं-नहीं,
योरप में भी Free will (स्वाधीनेच्छा) और Pre-



destination (नियति) को लेकर बहुत काल से तर्क-वितर्क चल रहे हैं। Free will-वादी कहते हैं कि 'जो कुछ होता है, हमारे अधीन की इच्छा-शक्ति से ही होता है, यह बात दूसरी है कि वह काम आज हो या कुछ काल के बाद।' Predestination के पक्षपाती सिद्ध करते हैं कि 'अपनी इच्छा से ही कार्य कर लेने की क्षमता मनुष्य को कुछ नहीं। मनुष्य तो नियति के इशारे पर घूमनेवाला एक यंत्र-मात्र है। निर्जीव एञ्जिन (Engine) को यह मालूम नहीं कि कहाँ जल्दी-जल्दी चलने की ज़रूरत है, किस समय धीमी गति आवश्यक है और कहाँ एकदम रुकना ही उचित है। उसे तो जैसे उसका चलानेवाला घुमाता है, घूमता है। इसी तरह मनुष्य भी किसी अदृष्ट शक्ति के द्वारा परिचालित एक यन्त्र है। मनुष्य में जो इच्छा-शक्ति मौजूद है, वह भी उसी शक्ति की करामात है।'

योरपवालों का यह 'नियतिवाद' (Predestination theory) हमारे यहाँ हज़ारों वर्ष पहले से ही चला आता है। इस मनुष्य को कोई क्षमता नहीं, वह तो परमेश्वर के द्वारा परिचालित एक पुत्तलिकामात्र है, यह भाव हमारे प्राचीन शास्त्रों में आप स्थान-स्थान पर पावेंगे। गीता कहती है—

'त्वया हृषीकेश हृदि स्थितेन,
यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि।
'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

कुछ काल से यहाँ के वैष्णव-समाज की जो हालत शुरू हुई है और ब्राह्मण पंडितगण गीता की जो व्याख्या करते चले आ रहे हैं, या यों समझिए कि पंडितों का वर्तमान जीवन जिस प्रकार सुस्थिर, धीर, एकदम निष्क्रिय अथवा अत्यन्त स्वल्प-क्रिय बीत रहा है, इन्हें देखकर नवशिक्षित महाशय गीता और वेदान्त-दर्शन को ही यदि हिन्दू-जाति के आलस्य और निश्चेष्टता का कारण समझ बैठें, तो उन्हें क्या कहा जाय? उन्हें दोष ही क्या दिया जाय? गीता के विज्ञान का पड़ताल हम किससे करें? वर्तमान काल के ब्राह्मणों के आचरण से या विरक्त साधुओं की जीवन-चर्या से? अथवा जिसके मुख से गीता निकली थी, उसके वैज्ञानिक चरित्र से? या जिसे गीता सुनाई गई थी, उसकी वीरोचित घटनाओं से? किंवा जिसने गीता की रचना की है, या जिसने गीता पर व्याख्या और भाष्य बनाया है, उसके जीवन-चरित्र से?

जो महाभारत के नायक थे, जिन्होंने गीता-धर्म का उपदेश दिया था, जिन्हें राजनीतिक दृष्टि से आलोचना करनेवाले भी असाधारण ज्ञानी और परम राजनीतिज्ञ मान चुके हैं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण का धर्म क्या आलसी का धर्म है? अथवा जो गीता का प्रधान श्रोता था, कुरुक्षेत्र के मैदान में जो अद्वितीय योद्धा गिना गया था, जिसका जीवन समर-कार्यों में ही बीता था, जिसने युद्धविद्या-शिक्षा के लिए कठोर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विश्वपति भगवान् शङ्कर, देवराज इन्द्र तक को खुश कर दिया था, उस महारथी अर्जुन का धर्म क्या आलसी और कापुरुष का धर्म कहा जा सकता है? अथवा जिनके बनाये हुए अकेले महाभारत के ही विपुल कलेवर, और अतुलनीय कविता को देखकर विरोधी भी प्रशंसा करने के लिए बाध्य हो जाते हैं, उन्हीं गीता के लेखक महर्षि वेदव्यास का धर्म अलसों का धर्म कहला सकता है?

अथवा जिस महापुरुष के द्वारा वेदान्तदर्शन (फ़िलासफ़ी) का पुनरुज्जीवन हुआ, षोडशवर्ष की अवस्था में ही सब शास्त्रों का अध्ययन समाप्त कर संन्यास लेने के अनन्तर लुप्तप्राय हिन्दू-धर्म के पुनरुद्धार के लिए जिसने कमर कसी थी, मध्याह्न-सूर्य की भाँति चमचमाते हुए बौद्ध-धर्म का जिसने मुक़ाबिला किया और सफलता प्राप्त की, थोड़े-से अपने जीवन-काल में जिसने अनेक ग्रन्थ और भाष्य बनाये, समग्र भारतवर्ष में पैदल घूम-घूमकर अनेक राजसभाओं में शास्त्रार्थ की



...ओं से हिन्दू-फ़िलासफ़ी की जिसने प्रधानता स्थापन की, जिसके स्थापित किये हुए अनेक मठ आज भी जिसकी व्यवस्था-शक्ति और रचनाशक्ति (Power of Organisation) का प्रकट परिचय दे रहे हैं, उसी महायोगी शंकराचार्य का धर्म क्या अवश और कापुरुष का धर्म कहा जा सकता है? जो महाशय इस बात पर विश्वास कर रहे हों, करते रहें। हम लोगों को कभी इस पर विश्वास नहीं होगा।

विवेचनापूर्वक आलोचना के चक्र पर ज़रा ही घुमा देने से स्पष्ट मालूम हो सकता है कि स्वाधीनेच्छा (Free will) और अदृष्टवाद इन दोनों में अदृष्टवाद ही अधिकतर युक्तिसंगत है। मनुष्य स्वाधीनेच्छा से ही सब कार्य नहीं कर सकता। मैं अपनी इच्छामात्र से ही समुद्र नहीं उलाँघ सकता। पलभर में ही हिमालय की चोटी पर नहीं पहुँच सकता। बस, स्वाधीन चेष्टावादी का मत तर्क की टक्करों में बहुत कुछ संकुचित हो जाता। किन्तु अदृष्टवादी का युक्तिसंगत मत तर्क के बंधन से नहीं जकड़ा जा सकता। जीव भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। वे भिन्न-भिन्न प्रकृतियों को लेकर संसार में आते हैं। अथवा यों मान लीजिए कि भिन्न-भिन्न हालतों में पड़कर ही उनकी प्रकृतियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की हो गई हैं। जब यह बात है तो प्रत्येक कार्य में उनकी स्वाधीनेच्छा का ही केवल प्रभाव नहीं ठहर सकता। प्रकृति ही उनकी चलानेवाली है। ये जीव तो उसी के द्वारा प्रेरित हैं। यह मनुष्य देह, मस्तिष्क और नाना प्रकार की मनोवृत्तियाँ ये सब चीज़ें माता-पिता से पाता है। माता-पिता जिस प्रकृति के होंगे, यह भी उसी प्रकृति का हो जायगा। जैसे साधारण कबूतर से लक्का कबूतर पैदा नहीं हो सकता, इसी तरह एकजातीय मनुष्य से विभिन्न प्रकार के मनुष्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। मनुष्य का मस्तिष्क बहुत से भागों में विभक्त है। भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न वृत्तियों का निवास है। दया, माया, राग, हिंसा. चेष्टा इत्यादिक अनेक प्रकार की वृत्तियाँ मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न अंशों में रहती हैं। किसी के मस्तिष्क में दयावृत्ति का आधिक्य है, वह स्वभाव से ही दयालु है। किसी के हिंसावृत्ति प्रबल है, वह हिंसाशील निबटता है। यों प्रकृति का ही प्रभुत्व पाया जाता है।

यहाँ एक दलील की जा सकती है कि फिर एकजातीय मनुष्य में हम भिन्न प्रकृति के मनुष्यों को कैसे देखते हैं? सुनिए, इसका कारण है—मनुष्य की वृत्तियाँ अभ्यास की अधिकता से विकाश को पहुँचती हैं। मनुष्य-समाज जैसे-जैसे सभ्य होता जाता है, वैसे-वैसे अगण्य स्तर और जातियों में विभक्त होता जाता है। जैसे-जैसे वह विभक्त होता है, वैसे-वैसे उसकी शिक्षा-प्रणाली भी भिन्न-भिन्न होती जाती है। असभ्यावस्था में समाज की शिक्षा-संबंधी बहुत कुछ एकता देखी जाती है। इसी लिए उस समाज के लोगों में अनैक्य बहुत कम होता है। आज भी जो आदिम जातियाँ हैं, उनके लोगों में आमोद-प्रमोद, साहस-मनोवृत्तियाँ प्रायः एक तरह की ही देखी जाती हैं। इसका कारण यही है कि वे सबके-सब एक प्रकार से ही शिक्षित होते हैं। किन्तु इस शिक्षा में भी मनुष्य को कितनी स्वतन्त्रता है? एक मनुष्य की शिक्षा उसके जीवन की अनन्त घटनाओं पर निर्भर है। उसके माता-पिता, शिक्षा देनेवाले, पास रहनेवाले, वह जिस देश में रहता है वहाँ की जल-वायु, उसके शरीर को पुष्ट करनेवाले भक्ष्य-भोज्य आदि सभी शिक्षा में सहायक होते हैं, उसके चरित्र-गठन में उपादान बनते हैं।

किसी मनुष्य को हिंसाशील कहकर हम उसके प्रति घृणा प्रकट करते हैं। उसके कुचरित्र के लिए हम उसे ही ज़िम्मेदार समझते हैं; पर वह हमको कह सकता है कि—'आप सब दोष का भार मेरे पर ही डालें, उसके पहले कुछ मेरा भी जवाब सुन लें। बाल्यकाल में मैं कुरूप था। यह दोष मेरा नहीं, विधाता का हो, चाहे माता-पिता का। किन्तु



मुझे कोई स्नेह की दृष्टि से नहीं देखता था। सबकी तरफ़ से घृणा मेरे पल्ले पड़ती थी। ज़रा से कारण पर प्रहार की पूर्ण मात्रा मेरे हिस्से में आती थी। सज़ा तो मेरे बाँटे पूरी से भी ज़्यादा आती थी; किन्तु अच्छी चीज़ कभी मुझे नहीं मिलती। दूसरे के पास अच्छी चीज़ देखकर मुझे भी इच्छा होती कि मैं भी ऐसी चीज़ पाऊँ, पर नहीं मिलती। मुझे जलन होती। इसी तरह दिल में कुढ़ते-कुढ़ते मुझे हिंसा का अभ्यास हो गया। मैं चलाकर किसी के प्रति हिंसा-भाव नहीं लाता, स्वयं हिंसा उपस्थित हो जाती है। अब मेरे इस सफ़ाई के बयान पर अच्छी तरह विचार कर लीजिए—यह हिंसा-दोष क्या सबका-सब मेरा ही है?

बहुत जगह देखा गया है कि उन्नति की शक्ति जन्मसिद्ध तो नहीं होती, किन्तु अपनी चेष्टा से मनोवृत्तियों का बहुत कुछ उत्कर्ष कर लिया जाता है। ऐसी हालत में तो यही कहना पड़ेगा कि उनकी स्वाधीनेच्छा ही ने कार्य किया है। अदृष्टवाद को यहाँ दबना पड़ेगा। नहीं-नहीं, इसका समाधान कठिन नहीं। चेष्टा, उद्यम, अध्यवसाय, उच्च अभिलाष इत्यादि भाव भी तो मनोवृत्तियों से अलग नहीं हैं। तब जो मनुष्य इन पूर्वोक्त मनोवृत्तियों के बीजों को माता-पिता से लेकर जनमते हैं, उनके जीवन में उन्नति और और उच्च भावनाएँ हों, तो क्या आश्चर्य है? मान लीजिए कि एक मनुष्य जन्मसिद्ध स्मृति-शक्ति में दूसरे मनुष्य की अपेक्षा तेज़ है; किन्तु उस दूसरे आदमी में विद्वत्ता-संपादन का उच्च अभिलाष और अध्यवसाय प्रथम मनुष्य की अपेक्षा बढ़ा हुआ है। इसका फल यह होगा कि प्रथम के पास स्मृति-शक्ति अधिक है, तो दूसरा विद्वत्ता के लिए अध्यवसाय अधिक रखता है, अतएव दोनों ही अपनी-अपनी मनोवृत्तियों का उत्कर्ष करते हुए विद्वत्ता की सीमा के पास पहुँच जायँगे। अब कहिए, यहाँ भी जन्मसिद्ध अदृष्टवाद ने विजय पाया या नहीं?

व्यक्तियों के सम्बंध में जो नियम सत्य सिद्ध होंगे, वही जाति-समूह के पक्ष में भी लागू होंगे। हमारे हिन्दू-शास्त्र तो आज तक इस तथ्य का अनुगम दिखलाते आये ही हैं, किंतु जो अँगरेज़ी के विद्वान् हैं, वे इस तथ्य को वहाँ भी अविकल पावेंगे। महामति बकले (Buckle) के सभ्यता के इतिहास (History of Civilisation) का कुछ अंश नीचे उद्धृत करता हूँ—

"इस दुनिया में जड़-विज्ञान की घटनाओं की तरह 'इतिवृत्त-विज्ञान' (Science of History) की घटनाओं में भी परस्पर कार्य-कारण-भाव अनन्त काल से चला आता है। आज जो ऐतिहासिक घटना हुई है, समझ लीजिए कि उसका कारण बहुत समय पहले से ही संघटित हो चुका होगा। हिन्दू-जाति बहुत काल पहले उन्नति की परा काष्ठा पर पहुँच चुकी थी। अब उसकी अवनति है। अँगरेज़-जाति पहले असभ्य थी, इस समय उन्नत है। इस विषय में हिन्दू-जाति या अँगरेज़-जाति का कोई गुण व दोष नहीं। प्रकृति ने दोनों को जिस हालत में रक्खा था, उसका यह परिणाम होना स्वाभाविक ही था। किसी जाति की उन्नति में व्यक्ति का प्रभाव अकिंचित्कर है। कोई एक ही व्यक्तिविशेष किसी जाति को उन्नत वा अवनत करता नहीं देखा जाता। समय ही अपने कार्य के उपयोगी व्यक्ति-विशेष को उत्पन्न करता है। समय के विपरीत कार्य करता हुआ कोई सफल नहीं हो सकता। लोग समझते हैं कि नेपोलियन क्रामवेल आदि समय के बनानेवाले हैं। नहीं-नहीं, समय ने ही इनको बनाया था।"

वैज्ञानिक इतिहास की ऊपर की बातें पढ़कर यह नहीं समझ लेना चाहिए कि यह हिन्दू-जाति की अवनति प्रकृति के अनुसार ही हुई थी, अतएव प्रकृति के नियम अपरिवर्तनीय होने के कारण यह अवनति भी चिरस्थायिनी होगी। नहीं-नहीं, अतीतकाल में जो हिन्दू-जाति की उन्नति हुई और इस पिछले युग में जो अवनति हुई, अवश्य ही वह प्रकृति के अनुसार ही हुई है, और भविष्यत्काल में

...जाति के जीवन में जो-जो घटनावलि उपस्थित ...गी, वह भी प्रकृति के नियमानुसार ही होगी। ...इससे यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि ...जाति चिरकाल तक अवनत ही रहेगी। मैं ...समझता हूँ, इसके विरुद्ध पक्ष में ही बहुत-से ...मिलेंगे। जिन लोगों ने ऐतिहासिक विज्ञान ...दृष्टि से भारतवर्ष के गये सौ वर्ष की घटनाओं ...अच्छी तरह पर्यालोचन किया है, वे भारत के ...भविष्यत् के सम्बन्ध में कभी निराश नहीं हो सकते। ...ने उन्नति का जो स्रोत प्रवाहित किया है, उसे ...रोकने के लिए पृथ्वी की प्रबल से प्रबल शक्ति भी ...समर्थ नहीं हो सकेगी।

मैं प्रसंगवश बहुत कुछ आगे बढ़ गया हूँ, किन्तु ...कहना यही है कि बहुत-से नवशिक्षित विद्वान् ...सोचा और कहा करते हैं कि 'यह अदृष्ट-विश्वास ही इस देश के अधःपतन में कारण हुआ ...जब तक यह अदृष्ट-विश्वास यहाँ से नहीं हटाया ...जाता, तब तक कोई अच्छी आशा इस देश के ...में नहीं की जा सकती।'

...इन विद्वानों की यह सम्मति मेरी समझ में ठीक ...जँची। इन देशों से अदृष्टवाद को हटा देना ...है, जिस तरह किसी महानदी के प्रवाह ...रोक देना। अनन्त काल से जो भाव जाति की ...में पैठ चुका है, उसे हटा देना सहज नहीं। ...नदी के प्रवाह को हम रोक नहीं सकते; किन्तु ...गति दूसरी तरफ़ करके अपना कार्य निकाल ...हैं। बस, इस अदृष्टवाद को भी हम हटा नहीं ...किन्तु इसी को अपने कार्यों के उपयोगी बना ...हैं। इस अदृष्टवाद से घबराकर दौड़ने की ...नहीं। यह अदृष्ट-विश्वास संकटों में हमारा ...ही होगा, घातक नहीं। भारत की इति...हास में अमूल्य रत्न की तरह अब तक भी ...हुए हमारे यहाँ के पुराने वीर पुरुषों को ...अदृष्ट-विश्वास ही लड़ाई के मैदानों में युद्ध-...दिला देता था। कौन-सा ऐसा शिक्षित भारत-...वासी होगा, जिसने महाराणा प्रताप का नाम न सुना हो। ध्यान रहे, यह भी अदृष्टवादी ही थे। इनके अदृष्ट-विश्वास की कुछ बानगी नीचे देता हूँ—

"हिन्दूसूर्य महाराणा प्रताप इस समय कुटीर-वासी हो रहे हैं। उनका प्राणप्रिय चित्तौर दुर्ग इस समय शत्रु के हाथ में है। प्राणों की बाज़ी लगाकर इस दुर्ग के उद्धार का उन्होंने पूर्ण प्रयत्न किया था; किन्तु उद्धार न कर सके। परन्तु इस विषय की आशा उनके हृदय में कम नहीं हुई थी। झाला-कुल के सरदार आदि कई एक सहायक वीर आज भी उनके साथ ऐसे-ऐसे थे, जो उनके हित में हित और संकट में संकट मानते थे। इन्हीं वीरशिरोमणियों से घिरे हुए महाराणा प्रताप एक छोटी-सी पहाड़ी पर डेरा डाले हुए हैं।

महाराणा अपने सहायक वीरों को साथ लिये हुए एक आवश्यक विषय पर विचार कर रहे हैं। जिन महाराणा को जन्मभूमि के उद्धार के सिवा रात-दिन दूसरी चिन्ता नहीं, उनके लिए इस युद्ध के सिवा दूसरा विषय हो ही क्या सकता है। दिल्लीश्वर के पास से महाराणा के पास सन्देश आया है कि—'मैं आपका राज्य नहीं चाहता। आपका राज्य आपके पास रहे। मैं तो केवल एक बार आपको दिल्ली में देखना चाहता हूँ।' बस, इसी विषय पर विचार चल रहा है।

झालासरदार—दिल्लीश्वर यदि मानमर्यादा के साथ श्रीमान् के स्वागत को तैयार हैं, तो मैं समझता हूँ, इस झगड़े का अन्त यहीं कर देना उचित होगा।

प्रताप०—किन्तु दिल्ली की तरफ़ जाना ही तो मेरी मानमर्यादा के विरुद्ध है........

अभी यह बात पूरी भी नहीं होने पाई थी कि इसी समय तेज़ी से दौड़ने के कारण हाँफते हुए एक भील सेनापति ने ख़बर पहुँचाई कि दिल्ली की फ़ौज पहाड़ी के नीचे तक आ पहुँची है।

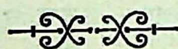
यह सुनते ही सब वीरों की भवें तन गईं। बाहुदण्ड फड़क उठे। इस विचार से चित्त एकदम विरक्त हो उठा। कमर से लटकती हुई तलवारों की मूठ पर सबके हाथ जा पड़े। सभा भंग करते



हुए महाराणा ने मेघ-गम्भीरवाणी से वीरों को सम्बोधन करते हुए कहा—

"मेरे प्रिय क्षत्रिय वीरो! अभी-अभी प्रस्तुत किये हुए विचार को आप चाहे पूरा न कर सके हों, परन्तु मैं समझता हूँ, कठिन संग्रामों में आपकी सदा सहायता करनेवाली आपकी तलवार उसे ज़रूर पूरा कर देगी। सामने देखिए, वह चित्तौरदुर्ग का गगन-चुम्बी शिखर है! यही हमारा ध्रुवतारा है। अदृष्ट हमारे साथ है। यदि दैव अनुकूल है, तो आज ही चित्तौर का उद्धार कोई मुश्किल नहीं।"

इसके अनन्तर ही किस तरह का भयंकर युद्ध-कांड आरम्भ हुआ और उसमें दिल्लीश्वर की सेना की क्या हालत हुई, यह इतिहास जाननेवाले सभी पाठक अच्छी तरह जानते हैं। अब कहिए, क्या हमीं को यह अदृष्टवाद रसातल पहुँचा देगा? एक दिन वह भी था, जिसमें अदृष्टवादी मुसलमानों की तलवार ने समग्र योरप को कँपा दिया था और यह भी इतिहास के पृष्ठों पर सर्वदा सुरक्षित रहेगा कि अदृष्टवादी हिन्दुओं के बाहुबल से ग्रीक-वीरों का (सिकन्दर आदि का) दिग्विजय-स्रोत जगह की जगह रुक गया था। आज भी अदृष्टवादी जापान के साहस और कार्यकुशलता को देखकर समग्र पृथ्वी चकित हो रही है। कौन कह सकता है कि आगे चलकर इस अदृष्टवादी भारतवर्ष का मस्तक विजय-मुकुट से मण्डित नहीं हो जायगा? मेरी समझ में वह दिन दूर नहीं हो सकता, जिस दिन हर्ष-दुन्दुभियों के नाद से भारत की दसों दिशाएँ गूँज उठेंगी।



गीत

श्रीहीरालाल दीक्षित 'दिनेश' विशारद

स्वर्ण-लिपि में शून्य पट पर यह लिखा इतिहास किसका?
शान्त सूने नभ-निलय से,
उड़ चले सब स्वप्न भय से,
क्षितिज का उर चीर देता यह शिशिर-उच्छ्वास किसका?
रागिनी मेरी सजीली,
नवल नभ में आज कीली,
अश्रु-पतझड़ में विहँसता यह निठुर मधुमास किसका?
स्निग्ध-किरणें छू हृदयतल,
लौटतीं मदहोश विह्वल,
ओस-कन बन बिखर जाता नित सबेरे लास किसका?
कल्पना के रजत-रथ पर,
नवल नीले अमर-पथ पर,
युग युगों से लुट रहा यह उर-उमंगाकाश किसका?

सम्मेलन में दो धाराओं की आवश्यकता

पं० भागीरथप्रसाद दीक्षित

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में भिन्न-भिन्न प्रणाली का अनुगमन होने से साहित्यिक निधि रुक-सी रही है, कभी राजनीतिक राष्ट्रभाषा-प्रचार का आयोजन करता है, साहित्यिक भावनाओं का समावेश नहीं और कभी साहित्यिक महारथी शुद्ध साहित्यिक रूप में ही उसे चलाना चाहते हैं। वे राष्ट्र- की ओर विशेष आकर्षित नहीं होते। अब सम्मेलन साहित्यिक रूप में केवल परीक्षाओं ही संचालन करता रहा है। साहित्यिक की ओर उसका ध्यान गया ही नहीं। प्रसाद आदि पुरस्कारों के रूप में कुछ जाग्रत् करने का उद्योग किया भी जाता उसमें धड़ेबन्दी, स्वार्थपरता आदि के परिष्कृत न्याय न होने से साहित्य को लाभ नहीं पहुँचता।

उपर्युक्त वर्णित इन विभिन्न धाराओं के कारण कभी तो पारस्परिक कटुता भी बढ़ जाती है। राष्ट्रीय भावना को धक्का तो लगता ही है, साहित्य का निर्माण और राष्ट्रभाषा का भी रुक जाता है। अतः सम्मेलन में एक अत्यन्त आवश्यकता है कि साहित्यिक तथा राष्ट्रीय नेताओं का समानाधि- दिया जाय। राष्ट्रीय नेतागण प्रचार द्वारा राष्ट्रभाषा के उत्थान में दत्तचित्त से लग जावें। साथ ही इस संबंध में साहित्यिकों के सहयोग द्वारा लिपि-सुधार, भाषा-संशोधन अथवा साहित्य-अनुशीलन के लिए संगठित रूप से कार्य करने का उद्योग किया जाय। इसके अतिरिक्त सत्साहित्य की योजना भी उनके सामने उपस्थित करते रहें। साहित्यिकों का केवल यह लक्ष्य होना चाहिए कि उनकी किसी कृति से राष्ट्र का अहित तो नहीं होता और उनकी रचनाएँ राष्ट्रोत्कर्ष के साथ समाज के लिए पथ-प्रदर्शक का कार्य करती रहें। इन बातों पर भली प्रकार विचार करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सम्मेलन के अंतर्गत प्रधान दो विभाग रक्खे जावें—

(१) साहित्य-विभाग, (२) प्रचार-विभाग।

साहित्य-विभाग के अन्तर्गत हिन्दी-विश्व-विद्यालय, परीक्षा-विभाग, साहित्य-समिति आदि-आदि और प्रचार-विभाग के अन्तर्गत विभिन्न प्रान्तों में हिन्दी की स्थिति की देखभाल, राष्ट्रभाषा का प्रचार, अदालतों आदि में हिन्दी को स्थान दिलाना और सुचारु रूप से उसका संचालन करना आदि कार्य रहने चाहिए।

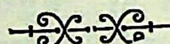
सम्मेलन की स्थायी समिति दोनों विभागों की संयुक्तसमिति रहे, जिसमें दोनों विभागों के चुने हुए सदस्य रहें और वही दशा कार्यकारिणी की



हो—इसमें भी दोनों विभागों के सदस्य रहें। इनका अनुपात और पृथक्करण एक उपसमिति द्वारा निर्धारित किया जाय।

इस प्रकार का कार्य-विभाग रहने से सब अपने कर्तव्यपालन में उचित रूप से अग्रसर रहेंगे और विरोध की भावना कम हो जायगी। साथ ही अनधिकारी व्यक्तियों को दूसरे विभागों में व्यर्थ हस्तक्षेप करने का अवसर भी न रहेगा। दोनों विभागों के सभापति स्थायी समिति द्वारा चुने जाने चाहिए। सम्मेलन का सभापति साहित्य-विभाग का सभापति माना जाय और राष्ट्रभाषा-सम्मेलन का सभापति सीनियर उपसभापति रहे। शेष सभाओं के सभापति अन्य उपसभापतियों के रूप में रक्खे जावें।

साहित्य-सम्मेलन का सभापति सदैव साहित्यिकों में से ही चुना जाय और राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलन का सभापति कोई राजनीतिक नेता, राजा-महाराजा अथवा रईसों में से कोई भी व्यक्ति उपयोगिता के विचार से चुना जा सकता है। ये सभापतिगण अपने-अपने विभाग का वर्षभर तक संचालन करते रहें और वर्ष के अन्त में अपने-अपने विभाग की रिपोर्टें प्रस्तुत करके वार्षिक अधिवेशन में उपस्थित किया करें। इतिहास, दर्शन, विज्ञान आदि विषयों की उपसमितियाँ भी उसी प्रकार रहनी चाहिए, जैसी साहित्य-समिति आदि कार्य करती हैं। इसी शैली से सम्मेलन का संचालन होने पर ही हिन्दी का उत्कर्ष हो सकता है और राष्ट्रीयता की जागृति बढ़ सकती है। आशा है, विद्वत्समाज एवं राष्ट्रीय नेतागण इस पर भली प्रकार विचार कर उचित पथ के अनुगामी होंगे, जिससे समाज के लिए श्रेयस्कर भावना विस्तृत हो सके।



पतित प्रसून

कविवर पं० रामाधार त्रिपाठी 'जीवन' गजपुरी

(१)

अनुकूलता जाती रही अपनी, दुखी दीन दशा प्रतिकूल में हूँ।
विधना ने विधान ये ऐसा रचा न बचा किसी बाक़ी उसूल में हूँ।
अब भी कोई आये उठाये मुझे, यही आशा लिये भ्रम भूल में हूँ।
कल का वही फूल हूँ फूला हुआ, अब देख लो लोटता धूल में हूँ॥

(२)

मधु-पान के लोभ से लालसा से अलि-मंडली का वो तराना कहाँ ?
लिये मंजु सुहाग की लाली अरे वह प्यारे प्रभात का आना कहाँ ?
मलयानिल की पुचकार से पावन प्रेमभरा मुसकाना कहाँ ?
अफ़साना कहाँ वह जीवन का, कल का वह बीता ज़माना कहाँ ?

(३)

गति जीवन की फिरती जहाँ से उसी लोक की ओर बहा करता हूँ।
पथ में पड़ा ठोकरें ठोकरों पै चुपचाप सदैव सहा करता हूँ।
उर की गहरी बढ़ी वेदना की लहरी में विलीन रहा करता हूँ।
मन ही मन बीती हुई अपनी करुणा की कहानी कहा करता हूँ॥

(४)

कह के कथा व्योम के तारकों से उर की व्यथा को खो लिया करता हूँ।
अपना यह सूखा हुआ मुँह ओस के आँसुओं से धो लिया करता हूँ।
मरु-भूमि में भाग्य की भावना के कुछ बीज कभी बो लिया करता हूँ।
बच के दुनिया की निगाह से आह मैं रात ही में रो लिया करता हूँ॥



(५)

जिसमें भरी नीरवता गहरी वह टूटी विपंची की तान हूँ मैं।
निकला नहीं जो कभी किंचित भी वह खोया हुआ अरमान हूँ मैं।
दुखिया जग के इस जीवन से अब जान के भी अनजान हूँ मैं।
अपने पर भूली हुई कली के कल के पथ की पहचान हूँ मैं॥

(६)

यदि आँसू बहाना नहीं जँचता तो विलोक मुझे मुसकाते न जाओ।
समझाओ न धीर धराओ भले पर व्यंग्य की बातें बनाते न जाओ।
मुँह मोड़ के छोड़ के यों ही यहीं सभी तोड़ अतीत के नाते न जाओ।
मरते हुए जान पै जीवन पै अरे ठोकरें कोई लगाते न जाओ॥

(७)

मेरी मरन्दमयी मधु-राशि से कोई कभी उपकार न हो सका।
हार न हो सका हौसले से भरे प्रेमियों का उपहार न हो सका।
जीवन-दान दिया जिसने उस माली की आँख का प्यार न हो सका।
व्यर्थ ही विश्व में आया अरे जब मैं किसी काम का यार न हो सका॥

(८)

पल के लतावल्लरियों के सनेह में केलि की कोमल काया मिली।
सनी सौरभ और पराग में मंजु मरन्दमयी छवि-छाया मिली।
जग होता निछावर था जिस पै जिसे मोहने की कला-माया मिली।
उस फूल से जीवन को यह वज्र-सी ऐसी दशा असहाया मिली॥

(९)

उठते जो जहान में ऊपर वे यों अचानक नीचे गिरा करते।
दुख के सुख के महासागर में सभी डूबते और तिरा करते।
दिन चार की चंचल चाँदनी पै तम के घन काले घिरा करते।
सभी ओर सदा इस जीवन के दिन फेर अभागे फिरा करते॥

(१०)

अपनी अब अंतिम साँसें सभी गिन के दुख शोक में खो रहा हूँ।
भ्रम-भूल की भावना से भरी-सी कल की कृतियों पर रो रहा हूँ।
मिटते जहाँ रंक वो राव सभी उस मौत के अंक में सो रहा हूँ।
किससे कहूँ कौन कथा कितनी मन मार के मौन मैं हो रहा हूँ॥

अछूत कन्या

'वही'

(एक)

ऐसा मनोहारी दृश्य मैंने कहीं नहीं देखा था। प्रकृति ने अपने नवयौवन के आगमन की प्रगाढ़ प्रसन्नता में अपना सर्वस्व दान कर दिया था। चारों ओर सौन्दर्य का अनुपम नृत्य देखकर भी यदि किसी के हृदय में अगाध प्रसन्नता का उदय न हो तो मैं यही कहूँगा कि वह हृदय नीरस है और है संसार के सर्वथा अयोग्य। उस सौन्दर्यपूर्ण घने वन की आशा बरबस हृदय को आकर्षित किये लेती थी। झरनों के कल-कल का मधुर संगीत दर्शकों के हृदय में आनन्द की मधुर झंकार उत्पन्न कर देता था।

ऐसे मनोमोहक दृश्यों से घिरा हुआ उत्तुंग शैलमाला के शिखर पर महादेवजी का मन्दिर देखने योग्य है। इतना सौन्दर्य मन्दिर के चरणों पर बिखरा हुआ देखकर दर्शनार्थ आनेवाले यात्री अपना हृदय खो बैठते हैं। मन्दिर पर प्रकृति की यह अगाध श्रद्धा देखने के लिए वहाँ पर अपार जन-समूह का एकत्रित हो जाना साधारण-सी बात थी।

मैं मन्दिर से दर्शन करके लौट रहा था। सन्ध्या अपना सुनहरी अंचल फैलाये खड़ी थी। मैंने बाहर देखा। अपरिमित कोलाहल! मानो सारा नगर फटा पड़ता हो। सागर को क्रीड़ास्थल बनाकर लहरें अपना आपा भूल रही थीं।

सहसा, एकदम, अनजान अवस्था में मैं भीड़ की ओर देखकर चिल्ला उठा—'नरेन!'

एक ही क्षण में हम दोनों एक दूसरे के गले में बाँहें डाले खड़े थे। पाँच वर्ष पश्चात् का हमारा वह सुखद मिलन कितना कमनीय था और था कितना चित्ताकर्षक! एक लम्बी अवधि के पश्चात् इस प्रकार अचानक मिल जाना कितना सुखद होगा, इसकी तो हमने कल्पना ही न की थी।

नरेन ने कहा—'हमें अपनी अगाध श्रद्धा और भक्ति से इसी प्रकार के सुखद मिलन की आशा थी।'

मैंने कहा—'नरेन! यह आनन्द हमारे भाग्य में लिखा था।'

नरेन कुछ रुष्ट-सा प्रतीत हुआ। उसने झुँझलाकर कहा—'फिर वही बात! जहाँ देखो भाग्य का रोना सबसे पहले सम्मुख आ खड़ा होता है। भाग्य में क्या लिखा था? न कुछ भाग्य के अधीन होता है और न उसमें कुछ लिखा रहता है। हम अपने कर्मों से ही अनुकूल और प्रतिकूल भाग्य का निर्माण करते हैं। किन्तु इस निर्माण पर एक और शक्ति का शासन रहता है। यह शक्ति है देवताओं का सफल आशीर्वाद! अतः इस प्रकार देवताओं की प्रेरणा से ही मनुष्य को अनुकूल घटनाओं का सामना अचानक करना पड़ता है। किन्तु फिर भी प्रसन्न होकर, निराशा के तम



में आशा का आलोक पाकर भी मनुष्य उन देवताओं को तनिक-सा धन्यवाद देना अपनी शान के विरुद्ध समझता है।

'लोग कहने लगते हैं—भाग्य में लिखा था। क्या ख़ाक भाग्य में लिखा था? मनुष्य कितना एहसान-फ़रामोश है? आप स्वयं सोच लीजिए। और जब अपने ही बुरे कर्मों से कहीं दुर्भाग्य आ घेरता है, तब लोग भाग्य पर भरोसा करके नहीं बैठ रहते। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए चेष्टाएँ करते हैं। तनिक-सा भोग लगाने के लिए कई रुपये लुटा देते हैं, बाज़ार की मिठाइयों में। उस समय ये लोग नहीं जानते कि देवताओं की वह प्रबल शक्ति अप्रसन्न होना तो जानती ही नहीं है। देवता मनुष्य को दुख देते हैं, वह भी हँसते-हँसते। इसका कारण यह है कि वह दुःख मनुष्यों पर दंडस्वरूप नहीं होता, अपितु इस दुःख के देने में उनकी यह हार्दिक इच्छा रहती है कि मनुष्य अपने आगामी जीवन तथा भविष्य के लिए और भी साहस के साथ तत्पर रहे। फिर इसमें उनके अप्रसन्न होने की क्या बात? वे तो प्रसन्न होकर शिक्षा देते हैं।

'संसार कितना स्वार्थी है? देवताओं को प्रसन्न करना चाहते हैं, तब, जब कि उनके अप्रसन्न होने का हाल उनको ज्ञात होता है। जब उनको देवताओं द्वारा कुछ अहित होने की आशंका जान पड़ती है। सुख और ऐश्वर्य के समय बेचारे उन देवताओं को लोग पूछते तक नहीं। सचमुच समस्त संसार क्रोध से डरता है और तनिक भी दया के प्रकाश को पाकर और सिर पर चढ़ने की चेष्टा करता है।'

मैंने कहा—'बस, बस, नरेन। बस करो। मैं तो थक गया। लेकिन तुम यह सब तर्क कहाँ से सीख गये? पहले तो तुम देवताओं पर तनिक भी विश्वास नहीं करते थे।'

'क्या करूँ भाई! सिर पर विपत्ति आने पर सब कुछ करना पड़ता है। अब मैं यह पूर्ण रूप से समझ गया हूँ कि भक्त के लिए इष्टदेव सब कुछ सुलभ कर देते हैं।'

'लेकिन तुम्हारी क्या आवश्यकता है, जिसे सुलभ करने के लिए तुम यह सब कर रहे हो?'

'भाई! अपने चरणों पर समस्त सौन्दर्य—प्रेम से मिश्रित सौन्दर्य लोटते देखकर किसे आनन्द न होगा?'

'अच्छा! ये बातें हैं। तब तो मुझे बड़ी अच्छी भाभी मिलेंगी।'

हम दोनों हँस पड़े।

(दो)

दो वर्ष बाद—

संसार का एक कोना
मंगलवार, २८

परम प्रिय जगत्,

दो वर्ष पहले की बात है। महादेव के मन्दिरवाले मिलन को तो न भूले होगे। आज उसी के विषय में अपनी वह दुःखान्त घटना सुनाता हूँ, जिसका कुछ अंश तुम उस समय सुन चुके हो। किन्तु फिर से एक बार सुनाने को जी चाहता है। अच्छा है अब आरम्भ से ही सुन लो।

हाँ, तो समस्त चौक मेरी मोटर-साइकिल से गूँज रहा था, फिर भी संसार का ध्यान इस ओर नहीं था। मैं भी मस्त था। सहसा मोड़ पर घूमते ही एक ध्यान आया—'संसार में कितनी कहानियाँ हैं—अमुक साइकिल से मोटर लड़ गई। बाबू साहब मोटरवाली युवती द्वारा चिकित्सालय पहुँचाये गये। दवा के साथ-साथ प्रेम का घूँट पिया जाने लगा। क्या ही अच्छा होता यदि मेरी भी यही दशा होती। प्रेम से मिश्रित सौन्दर्य मुझे इस प्रकार—अनायास ही—मिल जाता। यद्यपि मुझे चोट लगती, किन्तु मेरा संसार, संसार की आँखों में खटकनेवाला संसार होता। मैं कितना सुखी....'

हाय! हाय! मैं मोटर-साइकिल के नीचे पड़ा था। सामने मोटर खड़ी थी। सरला का सुन्दर मुख आँखों में नाच गया। मैं बेहोश हो गया।



अनेक कहानियों के कथानक की भाँति जब मैंने आँखें खोलीं तो अपने को अस्पताल के एक कमरे में पाया। सिरहाने बैठी हुई सरला मेरी ओर बड़ी उत्सुकता से देख रही थी।

सरला को तो तुम जानते ही हो। उसको पाने के लिए मैंने कितनी चेष्टाएँ कीं; यह तुम नहीं समझ सकोगे। मैंने उसकी सुन्दरता पर ध्यान दिया था। सोचा था, इसी सौन्दर्य में अवगुंठित प्यार पा जाऊँगा; किन्तु कभी संतोषजनक उत्तर नहीं मिला। ऐसी दशा में उसी निष्ठुर सरला को अपने सिरहाने देखकर मैं कितना सुखी हुआ—यह मैं ही जानता हूँ।

सिर में पीड़ा हो रही थी। सरला को धन्यवाद देना उस समय मेरा सर्वप्रथम कर्तव्य था। किन्तु मैं सिर उठाते ही रक्त बहने लगा। टाँके टूट गये। मैं फिर मूर्च्छित हो गया।

दूसरे दिन रात्रि के समय आँखें खोलीं। देखा, चारों ओर सन्नाटा छा रहा था। अस्पताल के उस छोटे-से कमरे में धीमी रोशनी फैली हुई थी। मैंने सिर उठाकर देखा, सिरहाने बैठी हुई सरला की करुण मूर्ति को। मैं सिहर उठा। अनजान अवस्था में मैंने पूछा—'कितना बजा है?'

'दो'

मैं चुप हो रहा। मन में विचार करने लगा। उस समय मैं कितना सुखी था? समस्त संसार मेरे आगे तुच्छ था। मेरे उस समय के सुख का क्या आभास भी क्या संसार कभी पा सकेगा? इसमें मुझे संदेह है।

धीरे-धीरे मेरा स्वास्थ्य सुधरने लगा। सरला जिस तत्परता से मेरी सेवा कर रही थी, वह देखकर मुझे आश्चर्य होता था। रात-रात भर जागने के कारण उसका मुख मलिन पड़ गया था। चेहरे पर गम्भीरता खेला करती थी। मैंने कई बार उससे बातें करने की चेष्टा की, किन्तु वह सदैव यही कहती रही—'अभी आपकी तबियत ठीक नहीं है। बातें तो फिर भी हो सकती हैं।'

मैं चुप हो रहता था।

इधर धीरे-धीरे मैं अच्छा होने लगा और उधर उसी हिसाब से सरला का आना भी कम होता गया। अन्त में जिस दिन मैं अस्पताल से अपने घर लौटा, उसके एक सप्ताह पहले से मैंने उसका मुँह नहीं देखा था।

चंगा हो जाने के दो-तीन दिन बाद मैं सरला से मिलने गया। ज्ञात हुआ कि वह घर पर नहीं है। दूसरे दिन गया तो उत्तर में यह चिट मिली—

'एक आवश्यक कार्य से न मिल सकूँगी। क्षमा कीजिएगा।

सरला'

आश्चर्य से चकित होकर और प्रेम की दो बूँदें द्वार पर गिराकर घर लौट आया। कितनी निराशापूर्ण वेदना थी! समस्त संसार मेरी ओर देखकर हँस रहा था। उसकी वह हँसी कितनी विडम्बनामयी थी।

मेरा जी उचाट-सा रहने लगा। सेवा-सुश्रूषा के लिए मैंने एक नौकर और रख लिया। एक दिन कुछ मास पश्चात् मैंने परभू से पूछा—'क्यों परभू, तुम यहाँ से पहले कहाँ नौकर थे?'

'प्रोफ़ेसर हृदयनरायन के यहाँ।'

'अच्छा'—मैंने धीरे से कहा।

'लेकिन, बाबू साहब मुझे कुछ-कुछ याद आता है। ५-६ मास पहले हमारी सरला बाई की मोटर से आप ही दब गये थे। उस समय मैंने ही सरला बाई की आज्ञा से आपको उठाकर मोटर पर रक्खा था और फिर बाईजी आपको अस्पताल ले गई थीं।'

मैंने आश्चर्य से मुँह बनाते हुए कहा—'अच्छा।'

'बाबू साहब! बाईजी ने आपकी ख़ूब सेवा की। सारे अस्पतालवाले चकित थे।'

मुझे आश्चर्य हो रहा था। क्या यह नौकर सब मामला राई-रत्ती जानता है? मैं घबरा उठा। मैं अपने आपे में न रह सका। मेरे मुँह से निकल गया—'क्यों?'

'आपको नहीं मालूम बाबू साहब। इसमें बड़ा भारी रहस्य है।'

'क्या?' मैं घबरा रहा था।

'बाबू साहब, जिस समय आपकी साइकिल बाई-जी की मोटर से लड़ी, उस समय मोड़ पर का पुलिस का सिपाही सब देख रहा था। क़ानून ने कहा—'मोटर-ड्राइवर की ग़लती।' जनता ने कहा—'मोटर हाँकनेवाली सरला बाई की ग़लती।' बेचारा पुलिसवाला क्या करता, उसने मोटर का नम्बर नोट कर लिया। गवाहों के हस्ताक्षर हुए। पुलिसवाले के सामने दस-दस रुपये के दो नोट पेश किये गये, किन्तु या तो वह ईमानदार था अथवा बेईमान कि उसने रुपये नहीं लिये। आप-जैसे नेता पर जनता की कृपा भी तो थी।'

मुझे यह सब एक नाटक के समान प्रतीत हो रहा था। परभू कहता गया—

'दूसरे दिन आप तो अस्पताल में पड़े थे, पर उधर प्रोफ़ेसर साहब के मकान पर पुलिस पहुँच गई। सब घबरा गये। सरला बाई पर पूरी आफ़त थी। धन का आश्रय लिया गया और अंत में इसी धन की विजय हुई। जनता का मत कुचला गया। फिर भी पुलिस ने कहा कि यदि अस्पताल में नरेन्द्र बाबू का देहान्त हो गया तो बाईजी की तनिक भी ख़ैर नहीं। बाईजी के तथा उनके घरवालों के लिए इतना ही बहुत था। अब आप स्वयं सोच लीजिए। यदि पुलिस का भय न होता तो आपकी इतनी सेवा क्यों होती?'

मैं आह करके चिल्ला उठा। संसार कितना स्वार्थी है और मैं अभी उसकी दया तथा त्याग के भ्रम में पड़ा हुआ था। आशा है, तुम मुझसे अवश्य सहानुभूति रक्खोगे।

तुम्हारा ही—नरेन

(तीन)

दो वर्ष बाद—

नरेन ने कहा—'मेरी कहानी याद है? कभी ऐसा अनुभव प्राप्त किया है?'

मैंने कहा—'ना भाई! ईश्वर बचाये ऐसे अनुभवों से।'

'एक अनुभव और हुआ है। वह भी सुन लो।'

'हाँ-हाँ, अवश्य कहो। तुम-जैसे देशप्रेमियों को भला अनुभवों की कहीं कमी हो सकती है।'

'अच्छा सुनो। कुछ ही दिनों की बात है, मैं कृषकों की दशा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भ्रमण कर रहा था। एक गाँव से मैं श्यामपुर जा रहा था। गाँववाले मेरा साथ नहीं छोड़ना चाहते थे। मेरे बहुत कुछ कहने-सुनने पर भी दो लठैत मेरी रक्षा के लिए मेरे साथ हो लिये; क्योंकि रात का समय था और राह में चोर-डाकुओं से भरा हुआ एक वन मिलता था। मुझे अकेले यात्रा करना पसन्द है; क्योंकि मैं शान्तिप्रिय आदमी हूँ, अतः मैंने कुछ दूर चलकर उन दोनों को किसी प्रकार समझा-बुझा-कर वापस कर दिया।

'मैं अकेले ही धीरे-धीरे गुनगुनाता हुआ मन्द-गति से अपने पथ को पार करता गया। घने वन के मध्य में पहुँचते ही एक तड़ाक-सी आवाज़ आई। मेरा सिर भन्ना गया। मैं पृथ्वी पर जा गिरा!

'सवेरे जागा। देखा एक टूटी-फूटी झोंपड़ी में लेटा हुआ हूँ। छोटी-सी खाट एक ओर को झुकी जा रही थी। बाद में ज्ञात हुआ कि उसका एक पाया टूटा हुआ था। सिर में पट्टी बँधी हुई थी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि मैं मूर्च्छितावस्था में घने जंगल के बीच से लाया गया हूँ। सिरहाने देखा! आज सरला के स्थान पर दूसरा था। बाद में उसका नाम मालूम हुआ—'सोना'। मैं उसको किसी भाँति भी सुन्दर नहीं कह सकता। यद्यपि उसके मुख पर युवावस्था की एक स्वाभाविक झलक पूर्ण रूप से विद्यमान थी। वही सरला के समान रात भर जगना, मेरी सेवा करना और मेरी सब आवश्यकताओं का ध्यान रखना—यही उसके सारे कार्य।

'मैं इस प्रकार की सेवा-सुश्रूषा के लिए नया न था। अपनी पहली घटना का ध्यान कर मैं

सोना की सेवा में भी एक गुप्त स्वार्थ देख रहा था। अंत! मैं धीरे-धीरे अच्छा हो गया और रवाना होने की बात सोचने लगा। यद्यपि सोना के प्रति मुझमें अधिक भी प्रेम के भावों का संचार न हुआ था; किन्तु उसके आग्रह से मैं कई रोज़ तक उससे विदा ही न ले पाया।

एक दिन मैं चल ही पड़ा। क्या करता, मुझे कर्तव्य प्यारा था। सोना ने रोकर सारी झोंपड़ी गुँजा दी, किन्तु मेरा हृदय इस बार मुझको धोखा न दे सका। फिर भी मुझे एक मास के अन्दर ही पुनः दर्शन देने की प्रतिज्ञा करनी पड़ी। सोना अंत में किसी प्रकार मान गई।

"मैं भूल गया कौन सोना थी। अपने कार्य में व्यस्त रहने के कारण मुझे उसका ध्यान ही न आया। अभी कल-परसों उक्त घटना के लगभग २॥-३ मास पश्चात् मैं यों ही अनजाने में उस गाँव में होकर निकला। एकाएक सोना की स्मृति ताज़ा हो जाने से सोचा, उसके यहाँ भी हो लूँ। मैंने देखा—सारा वातावरण रो रहा था। झोंपड़ी का कण-कण सिसकियाँ भर रहा था। टूटी खाट पर सोना का अत्यन्त क्षीण और दुर्बल शरीर पड़ा हुआ दरिद्रता का नंगा नाच दिखा रहा था।

"सारा ग्राम खाट के चारों ओर जुट आया था। मैंने भीड़ में से सिर निकालकर देखा—सोना की आँखें कुछ खोज रही थीं। उसने एक क्षण मेरी ओर देखा और ज़ोर से चिल्ला उठी—'अरे निर्मोही! अब आये।'

"उसका उसी समय अन्त हो गया। मैं रो पड़ा। क्या वह सचमुच मुझको इतना अधिक चाहती थी। गाँववालों ने मुझे बताया कि अपनी बीमारी की अवस्था में वह क्षण-क्षण पर मेरा नाम ले-लेकर चिल्लाया करती थी। हाय—मेरे सिर पर कितने भीषण पाप का भारी बोझ लद गया है?'

मोहन की हिचकियाँ बँध गई थीं। उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी।

मैंने उसको दिलासा देते हुए साधारणतया पूछा—'सोना कौन थी?'

'एक अछूत कन्या।'

किसी से

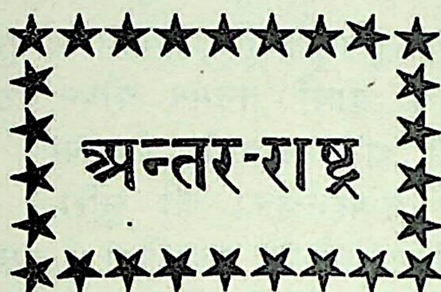
श्री० "हंस"

ओ मादक अंगूरी मदिरा की मतवाली प्याली !
प्राच्यारुण की स्निग्ध किरण के प्रथम प्रणय की लाली !
नियति नटी के नव यौवन की मदमाती हरियाली !
नंदनवन के नव निकुंज की कलितकुसुम की डाली !
सुरसरि के पावन विलास की नव विलसित उजियाली !
मुक्ता-मय मंजुल मानस की ओ मृदु मुग्ध मराली !
अलस तारिकाओं के उर की ओ नीरव मनुहार !
ओ शशि-किरणों की उलझन में फँसी प्रेम-पतवार !
ओ रजनी के अभिसारों की छिपी मधुर मुसकान !
ओ कलिका के मृदु कम्पन पर बहनेवाली तान !
मानस-नभ के रुचिर प्रात की मनोहारिणी ऊषे !
अरुण-करुण सुरभित चुम्बन की कम्पनमय प्रत्यूषे !
कवि की कलित कल्पना की कलिकाओं की कल डोरी !
काव्य-गगन के निष्कलंक शशि की चल चपल चकोरी !
तुम कौन चित्रपट में अंकित, अवदात कुमुद-बाला-सी;
लतिका-सी कमनीय कुसुम-सी, मृदुल जलद-माला-सी ?
तुहिनबिंदु के तरल गात-सी, मदिर प्रथम चुम्बन-सी;
मुक्त गगन की धवल चाँदनी के प्रिय आलिंगन-सी ?
रेवा की मादक लहरों पर मलय-मरुत थिरकन-सी;
निर्झर की अनुरागमयी स्वर-लहरी की बिछलन-सी ?
स्वप्नमयी रजनी की मधुमय वीणा की झंकार !
भुवन-मोहिनी कलित रागिनी का मादक श्रृंगार !
री वसंत की चतुर कोकिला की कल पंचम तान !
मनसिज की त्रैलोक्यविजयिनी विपुल शक्ति की आन !
निर्निमेष दृग से किस निधि को ढूँढ रही नादान !
किसकी जीवन की वीणा में भरती अपने गान ?
किस अज्ञात निठुर छलिया का करती हो आह्वान ?



किस अतीत की मधु स्मृतियों का करती हो तुम ध्यान ?
किस भावुक के हाथों तनमन यौवन बैठीं हार ?
कौन लक्ष्य की ओर ताकतीं व्रीड़ा-वसन सम्हार ?
अरी कौन तू मृग-मरीचिका की सुस्मित माया-सी;
विरह-वह्नि-ज्वाला-संतापित यक्ष-प्रिया छाया-सी ?
मरु-प्रदेश की विहग-बालिका के सकरुण सिहरन-सी;
उच्छ्वासों की मधुर जलन-सी, नीरव आराधन-सी !
ओ मेरी कल्पना-गगन की मनोहारिणी भाषा !
भाव-मानसर के मंजुल मुक्ताओं की अभिलाषा !
ओ स्रष्टा की कुशल तूलिका की गरिमा साकार !
ओ मेरी संचित अभिलाषा की गर्वित मनुहार !
मदिरा-सी उन्माद जगाती हृदय-कुंज में आ जा;
मुरली-सी संगीत जगाती मन-कुरंग हरषा जा !
चित्रकार की सुघर तूलिका-सी उर चित्रित कर जा;
हृदय-गगन के इन्द्रधनुष को नव रँग-रंजित कर जा।
तुम हो विभावरी मेरी, तुम हो मेरी अभिलाषा;
विरह-विताड़ित उर के नीरव रोदन की तुम भाषा।
तुम मलयज की मंद साँस में छिपी हृदय की आह;
पारिजात की मुकुलित कलिका की पलकों की चाह।
आ जा मेरे स्वप्न-लोक में लेकर यौवन के अरमान;
बेसुध कर दे अपनी थिरकन से तू मेरे प्यासे प्राण।
इस जीवन की सूखी सरिता लोल लहर से भर जा;
यौवन की उन्मादमयी लहरों से चुम्बन कर जा।
रवि-किरणों के स्वर्णहास-सी, प्रात-समीर जगा जा;
कुंदकली के मृदुल हार-सी ग्रीवा सजनि ! सजा जा।
मेरे उर के वंशीवट में हो वसन्त का आविर्भाव;
पतझड़ की दुनिया को देखें जलन-निराशा के दुर्भाव।
मेरी कविता-कोकिल बनकर कूक उठे पंचम स्वर में;
गूँज उठे नव जीवन की ध्वनि, जल-थल-वसुधा-अंबर में।





स्पेन का लोमहर्षण गृह-युद्ध

पं० लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी "चन्द्र"

स्पेन के प्रलयंकर गृह-युद्ध से अन्तरराष्ट्रीय जगत् में हलचल-सी मची हुई है। यद्यपि युद्ध लगभग आठ मास से हो रहा है, तथापि उसकी जीवन-घड़ियों का कब अन्त होगा, इसका ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता। हम लोगों का विचार था कि कथित युद्ध शीघ्र ही—और अल्प समय में ही सर्वथा नष्टप्राय और निर्मूल हो जायगा; पर दिन-प्रति-दिन वह उग्र एवं भयावह रूप धारण करता जाता है। साथ ही लोगों का यह कहना है कि स्पेन के गृह-युद्ध-सम्बन्धी जो भी समाचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं, वे भ्रमात्मक और कपोल-कल्पित हैं। उनमें सचाई की बू तक नहीं आती। कैथोलिक सम्प्रदाय के 'यूनीवर्स'-नामक पत्र ने तो यहाँ तक लिखा है कि स्पेन के गृह-युद्ध-सम्बन्धी जो चित्र बराबर प्रकाशित हो रहे हैं, वे सच्चे नहीं हैं, किन्तु महायुद्ध के समय सन् १९१८ में जर्मनी की एक अस्पताल पर की गई गोलाबारी के दृश्यों के चित्र हैं। किन्तु बात कुछ भी हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि वहाँ पर आज लहू की अथाह नदियाँ प्रवाहित हो रही हैं। विद्रोहियों का भीषण तांडवनृत्य हो रहा है। लाखों अबोध नर-नारियों; बाल-बच्चों के प्राण अपहरण किये जा रहे हैं। भीमकाय विशाल भवन ध्वस्त-विध्वस्त हो रहे हैं। अग्नि की लाल-लाल लपटें प्रज्वलित होकर सैकड़ों के रक्त का शोषण कर रही हैं। विद्रोहियों की लोभ-लिप्सा रणचण्डी का रूप धारण करती जा रही है। सम्भव है, निकट-भविष्य में स्पेन का जर्जरित-अस्थि-पिंजर ही अवशेष रह जाय! तथा सभ्यता सिखाने के व्याज से वहाँ अपनी प्रयोजन-पूर्ति की जाय!

यदि युद्ध की प्रगति को सत्यता की कसौटी पर कसा जाय, तो सुस्पष्ट हो जायगा कि इसके मुख्य संचालक हैं, सिन्योर मुसोलिनी और जर्मनी के प्राण हर हिटलर महोदय। विद्रोही नेता जनरल फ्रेन्को में इतनी क्षमता नहीं है कि वे स्पेन की शक्तिशाली सरकार से रणप्रांगण में लोहा लें। सच तो यह है कि मुसोलिनी और हर हिटलर योरप के अन्दर फ़ैसिस्टवाद की रणभेरी प्रतिध्वनित करना चाहते हैं। इन दोनों राहु-निशाचरों की उत्कट अभिलाषा है कि वे केवल इटली और जर्मनी में ही नहीं, अपितु आस्ट्रिया तथा स्पेन में भी फ़ैसिस्टवाद की गूँज हो। भूमध्यसागर के ऊपर भी अधिकार प्राप्त कर वहाँ भी फ़ैसिस्टवाद की दुन्दुभी बजे। इसी कारण विद्रोहियों को गुप्त रूप से आर्थिक तथा रण-सम्बन्धी सभी बातों की सहायता की जाती है। खाद्य-सामग्री का भी प्रबन्ध यही राष्ट्र करते हैं।

हाल में एक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई है—"बास्क की साम्यवादी सरकारी सेना ने मई के प्रथम दिन के उपलक्ष में विद्रोहियों को भीषण क्षति पहुँचाई है।



इस प्रकार शत्रु को हराकर अपना वार्षिकोत्सव मनाया है। इस युद्ध में २५०० विद्रोही सिपाही मारे गये हैं। बहुत सिपाही क़ैद भी किये गये हैं, जिनमें से कुछ इटैलियन हैं और बाक़ी स्पेनिश।"

दूसरी विज्ञप्ति द्वारा साबित होता है कि जर्मन-सैनिकों ने विद्रोही सेनापति की अवज्ञा की है। ऐसा कहा जाता है कि विद्रोहियों की सेना में जर्मन-सिपाहियों ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया है; क्योंकि उनका कथन है कि वे दूसरे राष्ट्र अथवा सेनापति (जनरल फ़्रेन्को) के लिए हथियार नहीं उठावेंगे। वे केवल अपने देश के लिए ही प्राण उत्सर्ग कर सकते हैं। इतना ही नहीं, मुसोलिनी की चाल ने विद्रोही-नेता जनरल फ़्रेन्को को भी तंग कर दिया है। उसने (मुसोलिनी) हाल ही में जनरल फ़्रेन्को से कहा है, विशेष श्रेयस्कर हो यदि जनरल फ़्रेन्को अपने हाथ में शासन की बागडोर रक्खें तथा सेना का समस्त अधिकार उसको सौंप दें। इसमें भी चालाकी भरी है। यदि जनरल फ़्रेन्को महोदय सेना-सम्बन्धी कार्य सिन्योर मुसोलिनी को सौंप देंगे तो उन्हें कठपुतली बनकर उसके अधीन रहना पड़ेगा, जो सर्वथा निंद्य और अनुचित है। समय आने पर वह चालबाज़ मुसोलिनी फ़्रेन्को को धोखा दे सकता है तथा सम्पूर्ण स्पेन अपने संचालन-सूत्र में ले सकता है।

आये दिन स्पेन में जैसा भीषण रक्तपात हो रहा है, उसे देखकर मनुष्य का हृदय थर्रा जायगा। सैकड़ों और हज़ारों बाल-बच्चे विकराल काल के गाल में ठूँसे जा रहे हैं। बमों की वर्षा से समस्त नगर क्षत-विक्षत हो गया है। अस्पताल और शाही महल गरम-गरम लहू के आँसू बहा रहे हैं। दृश्य बड़ा ही हृदयस्पर्शी और करुणापूर्ण है। बात यहीं पर समाप्त होती है। हाल ही के समाचार से ज्ञात होता है—स्पेन के युद्ध में जो लोग गृहहीन हो गये हैं, उनमें से पाँच सौ आदमियों को फ़्रांस का "मार्गो"-नामक जहाज़ सुरक्षित स्थान पर ले जा रहा है; अन्य दो फ़्रांसीसी-जहाज़ १॥ हज़ार आश्रयहीन व्यक्तियों को सुरक्षित स्थान की ओर मंगलवार को प्रातःकाल ले गये हैं। जो लड़के अपने मा-बाप से अलग हो गये हैं, उनकी रक्षा का भार स्कूल की अध्यापिकाओं तथा अन्य महिलाओं ने ले लिया है।

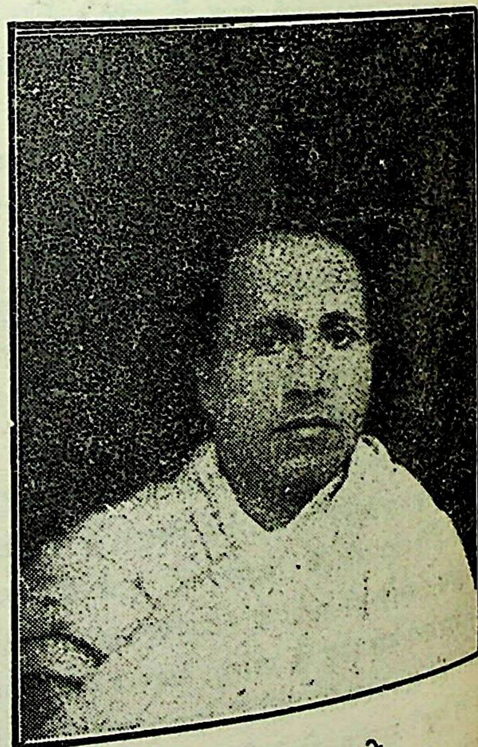
इतना होने पर भी स्पेन-निवासी विद्रोहियों से भीषण युद्ध कर रहे हैं। अपनी मातृभूमि की रक्षा के निमित्त सब कुछ उत्सर्ग करने को उद्यत हैं। स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर प्राण न्योछावर करना वे गौरव समझते हैं। उन्होंने अपूर्व त्याग किया है। वे अपने देश की रक्षा मन-प्राण से कर रहे हैं। विद्रोही स्पेन की वर्तमान साम्यवादी सरकार को कुचलकर स्पेन में फ़ैसिस्ट-राज्य की स्थापना करना चाहते हैं, पर स्पेनवालों के अदम्य साहस ने उनकी इस अभिलाषा को चूर्ण-विचूर्ण कर दिया है। यह भी सुनने में आता है कि स्पेनिश सरकार की फ़ौजें टेरुल के उत्तर और उत्तर-पश्चिम की ओर सफलतापूर्वक बढ़ रही हैं। एलबारसिन-टेरुल सड़क की ओर कई नगरों पर सरकारी फ़ौजों का अधिकार हो गया है। सेलाउस पर अधिकार होने के कारण सरकारी फ़ौजों के हाथ कई बड़े-बड़े तोपख़ाने, पाँच खाइयों की तोपें, १४ मशीनगनें, बहुत-से गोले-गोली लगी हैं। विद्रोही सेना के बहुत-से सैनिक सरकारी सेना में आकर मिल गये हैं। सैलेमैंका से रेडियो द्वारा एक समाचार आया है, जिसमें इस बात का दावा किया गया है कि बहुत-से विदेशी वालंटियर सरकार के पक्ष में लड़ रहे हैं। विलवाऊ से ब्रिटेन तथा फ्रांस के हज़ारों की सहायता से स्त्रियों तथा बच्चों को सुरक्षित स्थानों में पहुँचाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है और कई हज़ार व्यक्ति विलवाऊ के द्वारा वास्क के संकटपूर्ण क्षेम के बाहर पहुँचाये भी जा चुके हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि स्पेन-निवासी अलौकिक वीरता और शौर्य का प्रदर्शन कर रहे हैं। यह अपनी माँग और रक्षा के निमित्त ठीक ही आवाज़ बुलन्द कर रहे हैं। ईश्वर उन्हें बलप्रदान करे।



१—बाबू जयशंकरप्रसादजी

हिन्दी-माता के भव्य रूप को नव-नव रचना-रत्नों से अलंकृत करनेवाले, साहित्य-संसार की अमूल्य निधि, सरलता की सौम्य मूर्ति, सुरुचि और सौजन्य के अवतार काशी-निवासी बाबू जयशंकरप्रसादजी आजकल रोगग्रस्त हो शय्या-शायी हो रहे हैं, यह समाचार सुनकर ऐसा कौन सहृदय पुरुष होगा, जो चिन्तित और व्यग्र न हो उठेगा? प्रसादजी के साथ पाँच वर्ष तक आठ पहर रहने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को प्राप्त हो चुका है—उनको बहुत समय तक, बहुत निकट से देखने-सुनने और परखने का अवसर उसे प्राप्त हो चुका है। प्रसादजी में विलक्षण प्रतिभा है। वह साहित्य की महा-विभूति हैं। उनका स्वभाव निर्मल है। वह किसी से ईर्ष्या-द्वेष नहीं रखते। उनमें स्वाभिमान अवश्य है, पर अभि-मान का लेश नहीं है। अभी लखनऊ की प्रदर्शिनी के अवसर पर वह जब लखनऊ आये थे, तो उन्होंने भाई मैथिलीशरणजी गुप्त के साथ एक बार हमारे घर पर आने का कष्ट उठाया था। दुर्भाग्यवश घर पर मुलाक़ात न होने पर आप पुनः माधुरी-कार्यालय में स्वयं पधारे थे। आपके निरभिमान होने का, मित्रवत्सल होने का परिचय देने के लिए ही केवल इस घटना का उल्लेख किया गया है। आपको प्रसिद्धि की तनिक भी आकांक्षा नहीं है। आपने अब तक जो कुछ लिखा है, सो स्वान्तःसुखाय। यदि राय कृष्णदासजी आपकी



कविवर प्रसादजी

रचनाओं को आग्रहपूर्वक लेकर स्वयं न प्रकाशित करते तो शायद वे अप्रकाशित ही पड़ी रहतीं—केवल उनकी मित्रमण्डली ही की वस्तु वे बनी



रहतीं। प्रसादजी की अनुपम विशेषताओं पर जितना लिखा जाय, थोड़ा है। इस समय आपकी बीमारी की ख़बर से हम क्षुब्ध हो उठे हैं। ईश्वर आपको शीघ्र आरोग्य करें, यही हमारी हार्दिक प्रार्थना है।

× × ×

२—हमारे सम्राट् का राज्याभिषेक

गत १२ मई को लंदन में हमारे सम्राट् का राज्याभिषेक बड़े उत्साह और धूमधाम के साथ हो गया। उस दिन भारत के अनेक राजा-महाराजा भी वहाँ उपस्थित थे और उन्होंने भारत की राज्य-भक्ति का अच्छा प्रदर्शन किया। भारत में भी सर्वत्र यह उत्सव मनाया गया। हमारे सम्राट् छठ जार्ज भी अपने बड़े भाई ड्यूक आफ़् विंडसर



सम्राट् जार्ज

के समान ही लोकप्रिय सिद्ध होंगे, इसकी पूर्ण आशा है। राज्याभिषेक के सम्बन्ध में पूर्ण विवरण के साथ एक लेख आगामी संख्या में हम प्रकाशित करेंगे। देर से आने के कारण इस अंक में वह नहीं छप सका। ईश्वर से हमारी यही प्रार्थना है कि हमारे सम्राट् और सम्राज्ञी अपनी प्रिय प्रजा सहित चिरजीवी हों। आपका शासन-काल लोकप्रिय हो और आपकी प्रजा सुखी रहे। आप अपने पितामह सम्राट् एडवर्ड के समान ही संसार में शान्ति और सद्भावना का प्रचार करने में समर्थ हों।

यू० पी० के गवर्नर हिज़ एक्सेलेन्सी सर हैरी हेग ने हिज़ मैजेस्टी भारत-सम्राट् को बकिंघम-पैलेस लन्दन में निम्नलिखित संदेश भेजा है—

"संयुक्त-प्रान्त की सरकार और जनता की ओर से मैं सम्राट् और सम्राज्ञी को उनके राज्याभिषेक के सुखद अवसर पर अपने विनीत कर्त्तव्य के साथ ही साथ राजभक्ति से परिपूर्ण और हार्दिक बधाई भेजता हूँ। हम प्रार्थना करते हैं कि आपका राज्यकाल चिर-स्थायी हो तथा इससे आपकी प्रजा को सुख और शान्ति मिले।"—गवर्नर, यू० पी०

गवर्नर साहब के संदेश के उत्तर में निम्नलिखित पंक्तियाँ प्राप्त हुई हैं—



सम्राज्ञी एलिज़ाबेथ

"सम्राज्ञी के साथ-साथ मैं संयुक्त प्रान्त की सरकार और जनता का उनके उस राजभक्तिपूर्ण संदेश के लिए कृतज्ञ हूँ, जिसे हम हृदय से पसन्द करते हैं।"—जार्ज आर० आई०

× × ×

३—मुसलमानों की साम्प्रदायिकता

इसमें संदेह नहीं कि मुसलमान भाइयों में साम्प्रदायिक कट्टरपन का भाव बहुत बढ़ा-चढ़ा



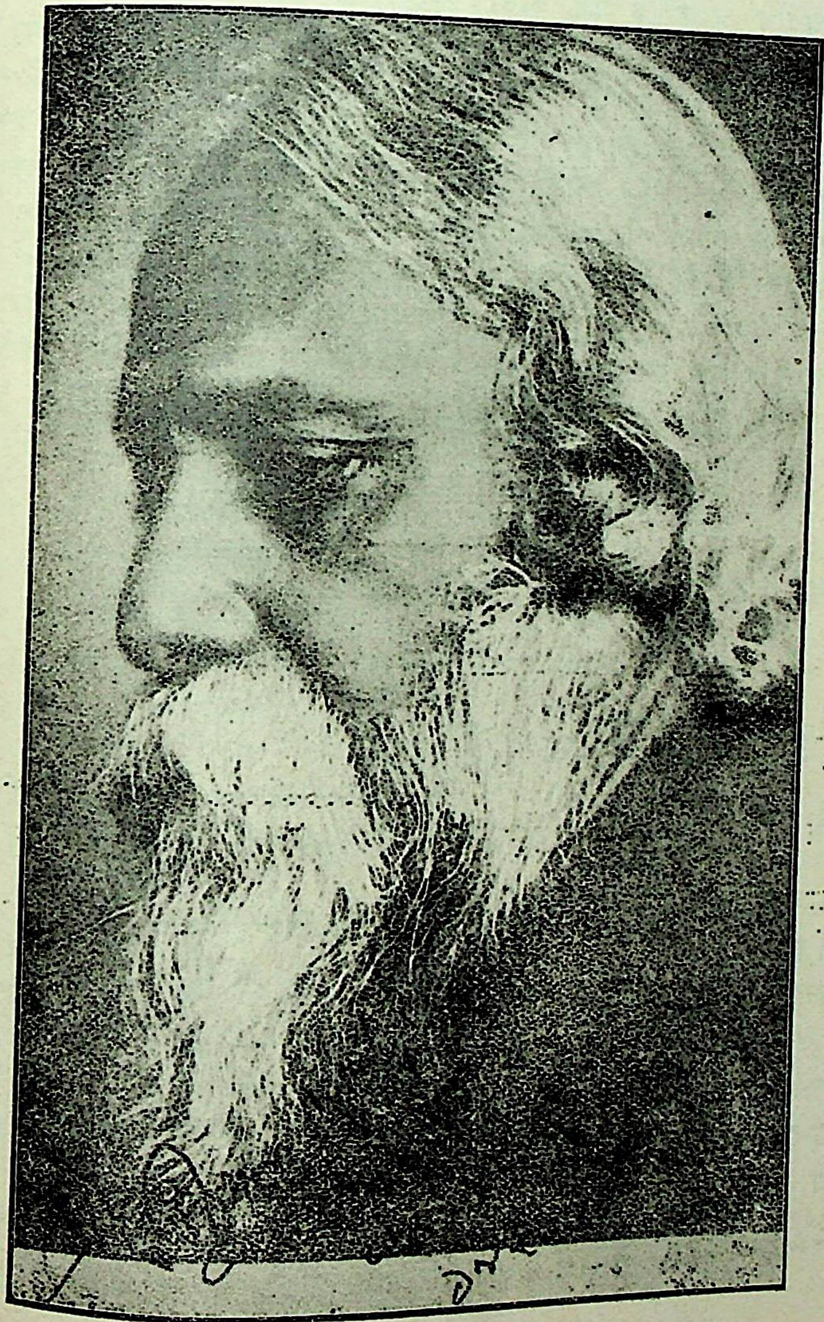
हुआ है। हिन्दुओं में भी उसकी प्रतिक्रिया से साम्प्रदायिक कट्टरपन अगर बढ़ जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। पूना का सोनामारुति-मंदिर-सत्याग्रह, जिसका पूरा हाल हमारे पाठक समाचार-पत्रों में पढ़ चुके होंगे, इसी साम्प्रदायिक कट्टरपन का परिणाम है। शासकों ने घंटा बजाने की मनाही मुसलमानों का रुख़ देखकर ही की होगी। नमाज़ के समय केवल घंटा बजा देने से या भजन-कीर्तन करने से नमाज़ में विघ्न पड़ता है, यह कथन कभी संगत नहीं माना जा सकता। मोटर के भोंपू या ट्रामगाड़ी की घरघराहट से मुसलमानों की नमाज़ में विघ्न नहीं पड़ता, केवल हिन्दुओं के घंटा-शंख बजाने से ही नमाज़ में ख़लल पड़ता है! भारत में कई धर्म माननेवाले लोग बसते हैं। अपने-अपने धर्म का अनुष्ठान करने की स्वतंत्रता सबको समान रूप से होनी चाहिए। सुनने में आया है कि वहाँ की पुलीस ने पूजा करने के लिए जमा हुए सत्याग्रहियों पर लाठीचार्ज भी किया, जिससे बहुत लोगों को चोटें आईं। इस कार्य के लिए हम पुलीस की भी प्रशंसा नहीं कर सकते। आज्ञाभंग करनेवालों को वह गिरफ़्तार कर सकती थी। अब यह सत्याग्रह स्थगित हो गया है। हमें आशा है, वहाँ के शासक और मुसलमान भाई समझ से काम लेंगे और यह मामला अब निबट जायगा। दूसरी ख़बर यह है कि भोपाल-राज्य में हिन्दू-प्रजा एक हिन्दू-सम्मेलन करनेवाली थी। राज्य की ओर से उसमें रुकावट डाली गई। हिन्दुओं ने आज्ञा नहीं मानी। फलस्वरूप अनेक प्रतिष्ठित हिन्दू गिरफ़्तार कर लिये गये हैं। भोपाल के नवाब साहब एक सुशिक्षित और सज्जन हैं। उन्हें अपनी प्रजा की पुकार सुननी चाहिए। हिन्दू लोग सम्मेलन करके कुछ राज्य को उलट नहीं देते। अगर काश्मीर राज्य में अनेक सुविधाओं के रहने पर भी राज्य के विरुद्ध सभाएँ आदि कर सकते हैं तो भोपाल में क्यों नहीं हिन्दू उस अधिकार का उपयोग करके अपनी शिकायतें नहीं ज़ाहिर कर सकते? भोपाल के नवाब साहब का इसमें अधिक दोष नहीं हो सकता। उनके कर्मचारियों की ही अदूरदर्शिता का यह परिणाम है। मुसलमान भाई हिन्दुओं के ही प्रति इतने कट्टर हों, सो बात नहीं है। मुसलमानों में अपने अवान्तर भेदों के प्रति भी उतना ही कट्टरपन और असहिष्णुता है। मुसलमानों के दो विभाग हैं—शिया और सुन्नी। सुन्नी लोग चारों ख़लीफ़ाओं को भी मानते हैं और शिया लोग केवल हज़रत मुहम्मद साहब और उनके दामाद हज़रत अली को। आपस में इन दोनों दलों में भी भयानक वैमनस्य देख पड़ता है। इसी के परिणामस्वरूप इधर ३-४ दिनों से लखनऊ में भयानक दंगा हो रहा है। पचासों शिया और सुन्नी घायल हो गये हैं और कई मौतें भी हो चुकी हैं। २ या ३ दिन चौक बाज़ार बंद रहा—सब व्यापार बन्द रहा। अब दफ़ा १४४ और कर्फ़्यू आर्डर जारी होने से अशान्ति कुछ कम हुई है। कहने का तात्पर्य यह कि यह असहिष्णुता और कट्टरपन देश को बड़ी हानि पहुँचा रहा है। चाहे हिन्दू-मुसलमान लड़ें, और चाहे मुसलमान मुसलमान, देश की हानि समान रूप से होती है। हम आपस में लड़कर अपनी धन-जन की हानि तो करते ही हैं, विदेशियों की दृष्टि में उपहासास्पद और बर्बर भी सिद्ध होते हैं। ये लड़ाई-दंगे अनेक बार देश में हो चुके हैं और उनसे होनेवाली हानि को भी हम अच्छी तरह अनुभव कर चुके हैं, फिर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं। इससे बढ़कर दुर्भाग्य की बात और क्या होगी।

× × ×

४—शान्तिनिकेतन में चीन-सम्बन्धी भवन की स्थापना

कई शताब्दी पहले भारत के बौद्ध-भिक्षु लोग बौद्ध-धर्म का प्रचार करने के लिए चीन गये थे। वह किसी राजा या सम्राट् की ओर से उसका

...भाव अन्य देश पर फैलाने नहीं गये थे। उस ...समय पैदल चीन तक जाने का साहस वास्तव में ...बड़े आश्चर्य की बात है। भारतवासियों ने केवल ...धर्म ही नहीं, साहित्य, चित्रकला, खुदाई और ...भवन-निर्माण आदि के सम्बन्ध में भी चीन पर अपना प्रभाव डाला था। साथ ही अनेक बातों में चीन का प्रभाव भारत पर भी पड़ा था। पर यह भारत और चीन का पुराना आदान-प्रदान का सम्बन्ध बीच में टूट गया। अभी हाल में श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपने कई साथियों को लेकर



महाकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर



कई साल पहले चीन को गये थे। इस समय विश्वकवि ने विश्वभारती में चीन की भाषा और साहित्य के पढ़ाने की व्यवस्था करके एक बहुत ज़रूरी कमी दूर कर दी है। प्रोफ़ेसर तान-यून-शान के अध्यवसाय और चीन के सेनापति चांकाई-शेक आदि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर के कई चीनी बंधुओं की सहायता से शान्ति-निकेतन में एक चीन-भवन की स्थापना हुई है। इसका गृह-प्रवेश-उत्सव अभी हाल में ही हुआ है। इस उपलक्ष में वैदिक मंत्र पढ़े गये और संगीत हुआ। उसके बाद रवि बाबू ने अपना अभिभाषण पढ़ा। महात्मा-जी, पं० जवाहरलाल नेहरू आदि सुप्रसिद्ध नेताओं के सन्देश पढ़े गये। चीन के वाणिज्यदूत और अध्यापक तान-यून-शान ने एक व्याख्यान दिया। श्रीनेहरूजी इस उत्सव के सभापति होनेवाले थे, पर तबियत ठीक न रहने के कारण आप नहीं आ सके। कुमारी इंदिरादेवी आपका सन्देश लेकर गई थीं। सुना है, इस भवन के बनने में ३३,००० रुपये ख़र्च हुए हैं। इस भवन का नक़शा श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ कर ने बनाया है और निर्माण किया है श्रीवीरेन्द्रमोहन सेन ने। इस भवन में चीनी अध्यापक और छात्रगण के रहने का स्थान भी है। इसमें कई हज़ार चीनी ग्रन्थ रहेंगे। अभी बहुत-सी चीनी पुस्तकें आ गई हैं। इसमें चीन की ललित कला की अनेक प्रतिलिपियाँ भी रहेंगी। ईश्वर इन दोनों प्राचीन महादेशों के सम्मिलन की प्रचेष्टा को सर्वथा सफल करें, हमारी यही प्रार्थना है। इस प्रशंसनीय प्रचेष्टा के लिए हम विश्वकवि का हृदय से अभिनन्दन करते हैं।

लेख-सूची

سمن بغرض قرارداد أمور تنقيح طلب

بعدالت بابو مہیش چندر صاحب منصف صاحب بہادر ضلع لکھنؤ

مقدمہ نمبر $\frac{93}{100}$ سنہ ۱۹۳۷ع] [تاریخ پیشی ۱۲ جولائی سنہ ۱۹۳۷ع

جواھر ولد پورن قوم لوہار ساکن موضع رودھی پرگنہ مہونہ تحصیل ملیح آباد ضلع لکھنؤ

بنام

شیورتن سنگھ وغیرہ

بنام مسماۃ مہراجہ عمر ۴۰ سال زوجہ شیورتن سنگھ قوم ٹھاکر ساکن موضع رودھي پرگنہ مہونہ تحصیل ملیح آباد ضلع لکھنؤ

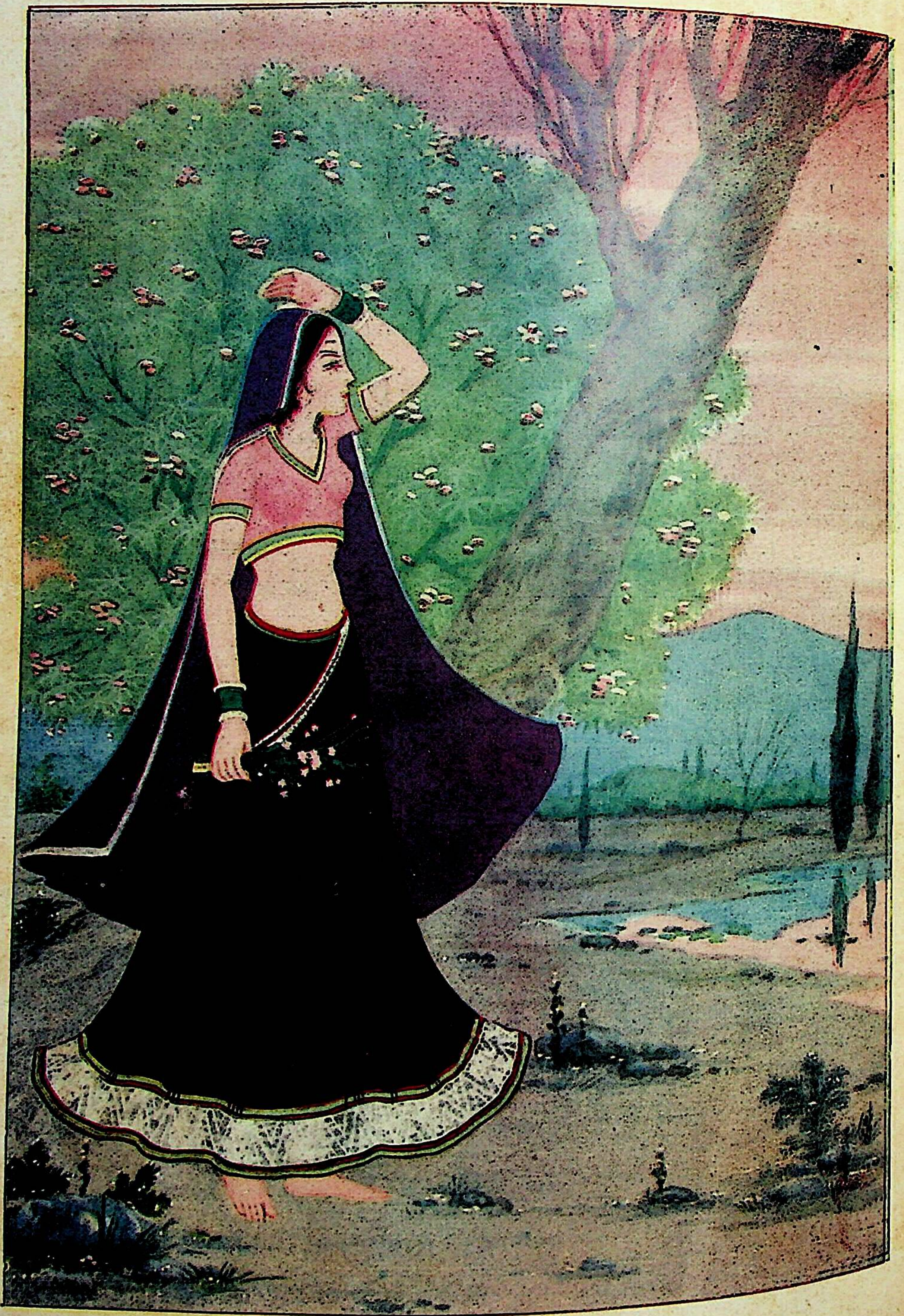
واضع ھو کہ مدعي نے تمھارے نام ایک نالش بابت دخلیابي کے دائر کي ھے لہذا تم کو حکم ہوتا ہے تم بتاریخ ۱۲ ماہ جولائی سنہ ۱۹۳۷ع بوقت ۱۰ بجے دن پر اصالتاً یا معرفت. کیل کے جو حال سے قرا واقعي واقف کیا گیا ھو اور جو کل أمورات اھم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھہ کوئي اور شخص ھو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ھو اور جوابدھی دعوی مدعی کی کرو اور تم کو ھدایت کي جاتی ھے کہ جملہ دستاویزات کو جن پر تم بتائید اپني جوابدھي کے استدلال کرنا چاھتے ھو پیش کرو—

مطلع رھو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ھوگے تو مقدمہ تمھاري غیرحاضري میں مسموع اور فیصل ہوگا آج بتاریخ ۲ ماہ جون سنہ ۱۹۳۷ع میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاری کیا گیا—

पृष्ठ

चित्र-सूची

(रंगीन)



उत्कंठा

[चित्रकार—श्री० राधेश्याम भटनागर]



सम्पादक
रूपनारायण पांडेय
प्रतिनिधि-सम्पादक (सी० पी०)—मातादीन शुक्ल

वर्ष १५, खंड २, संख्या ६, पूर्ण संख्या १८०	आषाढ़	३१३ तुलसी संवत्, १९९४ वि०

वन्दना

जहाँ अम्बुजासन, वृषासन, खगासन,
गनेस, सेस-आसन सिंहासन तरे रहैं;
तापर सरूप है अनन्तब्रह्मरूपिनी को,
चन्द है वितान छाँह सीस पै करे रहैं।
"श्रीपति-सुजान" ताके चरन-सरन, जाके,
चाकर से बारहू दिवाकर खरे रहैं;
धनाधीस मंदिर के द्वार पै कलंदर से,
बंदर से बाहर पुरन्दर परे रहैं।

आर्य-जाति के चिरन्तन अनुभव

पं० रामनिवास शर्मा

One peculiarity of the Hindu mind is that it always inquires for the last possible generalisation, leaving the details to be worked out afterwards.

Behind all particular ideas stands a generalised, an abstract principle ; grasp it, and you have grasped everything.

कहते हैं, मनुष्य अनुकरणशील प्राणी है, अनुकरण के द्वारा ही इसने अब तक असंख्य सचाइयों और भलाइयों को प्राप्त किया है। यदि इसमें अनुकरणप्रियता न होती तो यह अनन्त विद्यालयों और विश्वविद्यालय के कोलाहल से भी कुछ न ग्रहण कर सकता। परन्तु इस अनुकरण-प्रियता से बढ़कर इसमें एक गुण और भी है और वह है दूसरों के अनुभव से लाभ उठाना। असल में इस गुण के द्वारा ही मनुष्य विविध समयों और स्थानों में होनेवाले मनुष्यों का समकक्ष या सतीर्थ्य बन जाता है। म० एस्० वी० के शब्दों में तो दूसरों के अनुभव के लाभ से ही मनुष्य विद्वान् है। इसी के आदान-प्रदान से आज वह उन्नति के शिखर पर पहुँचा समझा जाता है। इस लेख में हम आर्य-जाति के ऐसे ही कुछ चिरन्तन अनुभवों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

चिरन्तन अनुभव और सत्य-तत्त्व

आर्य-जाति का सबसे पहला चिरन्तन अनुभव सत्य-तत्त्व है। इसी को इसके पूर्वजों ने सर्वश्रेष्ठ तत्त्व स्वीकार किया था। उन्होंने अपने अनुभव के सहारे ही यह भी समझा था कि ब्रह्म सत्य-स्वरूप है। इस सत्य को उन्होंने समाधि-भाषा द्वारा प्राप्त किया था। यह असल में उनका त्रिकालाबाधित तत्त्व था। उनके वेद, उपनिषद्, दर्शन आदि ग्रन्थ इसी सत्य के विभिन्न रूप हैं। पुराण और महाभारत भी इसी की व्यावहारिक व्याख्या है। आर्य-जाति के इस सत्य-तत्त्व के कुछ तत्त्वात्मक विविध स्वरूप इस प्रकार हैं—

क. १. ऋत-स्वरूप
   २. सत्य-स्वरूप
   ३. तथ्य-स्वरूप

ख. १. शिव-स्वरूप
   २. सौन्दर्य-स्वरूप
   ३. सत्स्वरूप

ग. १. परमार्थ-स्वरूप
   २. तर्कात्मक स्वरूप
   ३. परीक्षणात्मक स्वरूप

हम यहाँ ठीक तरह यह नहीं कह सकते कि संसार की आधुनिक उन्नत कहलानेवाली जातियाँ

...जाति के चिरन्तन अनुभव की धारा के उक्त ...तत्त्वों और उनकी एकार्थकता तक कभी ...हीं; क्योंकि उनके वर्तमान-कालीन रंग-ढंग ..."अब जात धरे पद पच्छिम" की ही कहावत ...र्थ होती है। उनकी अब तक की सम्पर्क ...प्रायः बाह्य, स्थूल और प्रारम्भिक ही मालूम ...है और फिर वह भी सदुद्देश्य और सत्साधना-...ही है। सच तो यह है कि अभी तो उसमें ...लिखित पौर्वात्य शास्त्रीय साधारण तत्त्वों का ...क-सा समावेश नहीं हुआ है—

1. ऐक्य (Harmony)
2. निरपेक्ष भाव
3. सर्वाङ्गीणता
4. विकासोन्मुखता
5. परंपरानुशासन

...र उनके अन्वेषण, निरीक्षण और परीक्षण ...क्रियाओं में नित्यत्व, क्षणिकत्व और विभिन्नत्व ...मौलिक तत्त्वों के समन्वय की मात्रा का तो ...तक कहीं पता भी नहीं है। साथ ही उनकी ...पद्धति में दर्शन, कला और विज्ञान-सम्बन्धी ...त्मक और व्यावहारिक सामंजस्य का आभास ...हीं नहीं दिखाई देता। उनके निरपेक्ष सत्य-...के विरोधी विभिन्न विषयात्मक निम्नलिखित ...भी इसके प्रमाण हैं—

...दैहिक सत्य—क्षणिकवाद न कि अमरत्व-वाद
...सामाजिक सत्य—व्यक्तिवाद न कि सार्वभौमवाद
...मानसिक सत्य—विचार-प्रवाह न कि आध्या-त्मिक अनुभूति
...त्मक सत्य—सापेक्षवाद न कि निरपेक्षवाद
...हासिक सत्य—वस्तु-स्थिति न कि वस्तु-तत्त्व
...त्मक सत्य—प्रत्यक्षवाद न कि हेतु-वाद

...इन बातों के सिवा इनके "फ़ैक्ट" और ...आदि शब्द भी अशास्त्रीय ही हैं; क्योंकि ये भी वस्तु-स्थिति के ही व्यंजक हैं, न कि पौर्वात्य ऋत, सत्य और तथ्य की तरह पूर्णतः वस्तु-तत्त्व, वस्तु-स्थिति और वस्तु-भेद के परिचायक। फिर हमारे सत्य-तत्त्व, अनन्त तत्त्व और ब्रह्मतत्त्व, जो कि निरपेक्ष भाव और वस्तु-सत्ता के प्रदर्शक हैं—ये भी उनके यहाँ अभी सत्याभास, सान्त और मन-स्तत्त्व की सीमा से ही आवृत्त हैं। म० सत्यव्रत के शब्दों में अभी उनके यहाँ सत्य-तत्त्व की साधना का द्वार भी ठीक तरह नहीं खुला है। अभी तो पर्यवेक्षण और परीक्षण के सोपानों से ही काम लिया जा रहा है, जिनमें शास्त्रीय वास्तविक हेतु-वाद का तो कहीं ठीक-सा स्वप्न भी नहीं है। फिर ब्राह्मण, जैन और बौद्धों के सत्य-प्रतिपादक तर्क-वाद और सत्साधना के सम्मुख तो इनकी साधना, तर्क, परिणाम और क्रिया-प्रक्रिया बच्चों का खेल ही मालूम होती हैं।

चिरन्तन अनुभव और हृदय

आर्य-जाति का साहित्य हृदय-प्रधान है, और आजकल का विचार-प्रधान। यहाँ तक कि आजकल का ललित साहित्य भी मनस्तत्त्व-प्रधान ही है। क्या शेक्सपियर मनोवैज्ञानिक रहस्यों का उद्घाटन नहीं करता? क्या उसकी कृतियाँ आर्य-साहित्य की तरह मुख्यतः हृदय का विषय हैं? वैसी हृदया-त्मक साहित्यिक सदनुभूति से परिपूर्ण हैं? फिर क्या वहाँ हृदयानुभूति पर विज्ञानानुभूति को विशेषता नहीं दी जा रही है? वैसे ही हृद्य भावों पर हृद्य विचारों को? और क्या महात्मा गांधी के निम्न-लिखित शब्दों को आधुनिक संसार पूर्णतः समझ सका है—

"सत्य मस्तिष्क का विषय नहीं, अपितु हृदय का है।"

इसी तरह क्या आधुनिक संसार आर्य-जाति के नीचे लिखे भक्ति-विज्ञान-सम्मत सत्य को समझने की थोड़ी-सी भी जुर्रत कर सका है—

"मानवीयता मुख्यतः ज्ञान-प्रधान नहीं, अपितु भाव-प्रधान है। संसार बुद्धि-जीवी नहीं, अपितु

...रोप के अनेक साहित्य-शास्त्रियों की सम्मति में Immediate pleasure ही है।



भाव-जीवी है। ईश्वर की सच्ची साधना ज्ञान और कर्म-प्रधान नहीं, प्रत्युत भाव-प्रधान ही है। ईश्वर की कल्पना भी भावमय है, न कि ज्ञानमय। वैसे ही जगत् और समाज की प्रत्येक बात में उलटा-सीधा मुख्यतः भाव-तत्त्व ही ओत-प्रोत है, न कि बुद्धि-तत्त्व। ज्ञान स्वर्ग नहीं है, परन्तु रस और भाव स्वर्ग है। दार्शनिक परिभाषा में भी बुद्धि-वाद, भाव-वाद की विकृति है, विकास है, न कि पूर्व-रूप।

इन सब बातों के सिवा किसी बात की चोट वस्तुतः हृदय को लगती है, उसे दिल महसूस करता है, न कि मस्तिष्क। मस्तिष्क के विषय तो असल में हमें तभी ठीक तरह स्वीकृत होते हैं, जब उन्हें पहले हमारा हृदय अनुभव के द्वारा स्वीकार कर लेता है।

हमारे दृष्टि-कोण और अनुभव से सत्य का निर्णायक और अनुभव-कर्ता हृदय ही है, और इस हृदयात्मक सत्य का सबसे पहले आर्य महर्षियों ने ही पर्णतः अनुभव किया था। उन्होंने हमें बतलाया था कि हम हृदय हैं, न कि मस्तिष्क। इसी लिए आर्य मनोविज्ञान और साहित्य अनुभूति-प्रधान है, न कि चिन्ता और कर्म-प्रधान। फिर चिन्ता और कर्म का मुख्यतः हमारी बाह्य बातों से सम्बन्ध है, न कि आन्तरिक बातों से। आंतरिक बातों से तो एक मात्र भाव-तत्त्व का ही संबंध है। भाव की ही पहुँच भक्ति तक है और भक्ति की भावमय भव तक। भाव से ही यह भव (संसार) भी बना है और आत्मा भी भाव-रूप है, न कि चिन्ता और कर्म-रूप।

चिरन्तन अनुभव और योग

एक पाश्चात्य दार्शनिक का कथन है कि "ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि तो जीवन की साधारण बातों के निर्वाह के लिए दी है। असल में नमक, तेल और ईंधन तक ही इसकी पहुँच है।" आर्य-शास्त्रों ने भी बुद्धि को कुछ ऐसी ही वस्तु बताया है। वे भी यही कहते हैं कि सब विषय बुद्धि-ग्राह्य नहीं हैं। अनेक विषय तो वस्तुतः ज्ञानातीत ही हैं। आत्म-तत्त्व और परमात्म-तत्त्व आदि विषयों को तो उन्होंने इन्द्रियातीत और ज्ञानातीत ही माना है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि फिर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसकी पहुँच ज्ञानातीत पदार्थों तक है। इसका उत्तर है—"आत्मा"। आत्मा ही आत्मा का विषय है। वहाँ दूसरे की गुज़र नहीं। मैं ही मुझे देख सकता हूँ और इसकी साधना है योग-प्रक्रिया; क्योंकि योगावस्था में ही मुक्तात्माओं को अपने स्वस्वरूप का पूर्णतः सदनुभव होता है। साथ ही योग की साधना के द्वारा आत्मा को जान लेने के बाद फिर वस्तुतः कुछ भी जानने और प्राप्त करने योग्य नहीं रह जाता। इसी लिए हमारे शास्त्रकारों ने योगदर्शन को क्रियात्मक दर्शन की संज्ञा दी है।

इस उक्त अनुभव के सामने संसार का कौन-सा अनुभव और लाभ ठहर सकता है? इस विषय पर एक योगानुभवी महापुरुष के वचन सुनिए। वे कहते हैं—

संसार के सब धर्म, ज्ञान, तर्क और अनुमान विद्वानों के प्रवचन हैं। परन्तु वे हिन्दुओं के योगानुभव की तरह स्वानुभव के विषय नहीं, कम से कम उनके अनुयायियों के लिए तो वे ऐसे ही हैं; क्योंकि उनके यहाँ योग-विज्ञानात्मक दर्शन और दर्शनात्मक योग-विज्ञान की साधारण रूप-रेखा का इस समय तक अभाव है, इसी लिए वे विश्वास (Faith) पर ही ज़ोर देते हैं, परन्तु हिन्दू-धर्म डंके की चोट कहता है, आओ और अनुभव करो।

इस युग के महान् आत्मदर्शी स्वामी विवेकानन्द का कहना है—

The teachers of the science of *yoga*, therefore, declare that religion is not only based upon the experience of ancient times, but that no man can be religious until he has the same perceptions himself, *yoga*



the science which teaches us how to get ...se perceptions.

अर्थात् योग-विज्ञान के शिक्षक दृढ़ता-पूर्वक इस ...त की घोषणा करते हैं कि धर्म न केवल परंपरा-...न चिरन्तन अनुभूति-मूलक ही है, बल्कि वह ...त्यक्षिक भी है और कोई भी मनुष्य तब तक ...त्मा नहीं हो सकता, जब तक कि वह स्वयं ...स धर्म-तत्त्व का अनुभव न कर ले। वे यह भी ...ते हैं कि इसका सच्चा अनुभव योग-विद्या के ...रा ही प्राप्त होता है।

चिरन्तन अनुभव और वैयक्तिक सफलता

संसार की अब तक की आर्येतर विचार-धारा ...े निरीक्षण-परीक्षण में वैयक्तिक क्रियाशीलता ...र क्रमोन्नति अनन्त-कालीन स्वीकार नहीं की ...ई है। परन्तु हिन्दू-विचार-धारा ही एक ऐसी है ...जिसमें इन दोनों का स्रोत अनन्त काल तक ...वाहित रहना माना गया है *। यही कारण है ...हिन्दू-धर्म के दृष्टिकोण से किसी प्राणी को भी ...पनी साधना में असफल होने का अवसर कदापि ...हीं आ सकता; क्योंकि पुनर्जन्म की अनन्त दौड़ ...भी तो सफलता का अवसर आ ही सकता है।

चिरन्तन अनुभव और क्रम-विकास

...क्ति ईश्वर या ईश्वर का रूप है, और इसी-...ए उसमें विभिन्न अनन्त शक्तियाँ विकासोन्मुख ...ती हैं। ऐसी दशा में भला वह एक जन्म के ...ड़े-से समय में पूर्णता को कैसे प्राप्त हो सकता ...! मानवीय शक्तियों की यह अनन्तता और ...पता ही पूर्व-जन्म और अपर-जन्म की धोतक ...साथ ही क्रम-विकास (Serial evolution) ...सूचक भी। परन्तु जगत् में इस रहस्य को ...त्मक सिद्धान्त का रूप देने का श्रेय केवल आर्य-जाति को ही मिला है। उसी ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त का संसार में प्रचार किया है और इस प्रचार के द्वारा उसी ने वैयक्तिक (Individual) क्रमोन्नति की अनन्त-कालीनता और पूर्णता की उद्घोषणा की है। ईसाई-धर्म इन बातों को स्वीकार नहीं करता। यही दशा मुसलमानों के धर्म की भी है। उसमें भी पुनर्जन्म का विरोध किया गया है। यही कारण है कि मानवीय वैयक्तिक अनन्त-कालीन क्रमोन्नति का वास्तविक रहस्य इन धर्मों के अनुयायियों की समझ में नहीं आया।

चिरन्तन अनुभव और वैयक्तिक पूर्णकामता

आजकल संसार दुःख और क्लेशों से अत्यधिक पीड़ित हो रहा है। परन्तु इसके पास इन दुःखों से मुक्ति और सुख-शान्ति प्राप्त करने का कोई नुस्खा नहीं और न कोई दवा ही है। इस समय तक संसार का कोई भी आर्येतर धर्म और विज्ञान इस कठिनाई को हल नहीं कर सका है, परन्तु इस समस्या का हल हिन्दू-आचार्यों ने बहुत पहले ही ढूँढ निकाला था। उन्होंने आज से लाखों वर्ष पहले ही ठीक तरह समझ लिया था कि आत्मा स्वयं पूर्णकाम है अर्थात् आत्मा दिव्य, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। कैसी खोज है, कैसी अनुभूति है, कैसी सचाई है, कैसी घोषणा है, कैसी सफलता है, कैसी आशा है, कैसा मार्ग है और कैसी साधना है ? यही कारण है कि हिन्दू-परंपरा में आत्म-ज्ञान पर ज़ोर दिया गया है। आर्य-शास्त्र हमें बतलाते हैं कि ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान, प्राप्ता, प्राप्य, प्राप्ति और कर्ता, कार्य कृति आदि जब तक पृथक्-पृथक् हैं, एक वस्तु नहीं हैं, तब तक ज्ञेय, प्राप्य और कार्य की सिद्धि का अर्थ अपूर्ण ही है; क्योंकि सत्तामात्र के आत्ममय और आत्म-तत्त्व के सत्तामय होने से साधक, साध्य और साधना की त्रिपुटी ही पूर्णता की द्योतक है। इसके अभाव में सम्पूर्ण सफलता क़ठिन, दुरूह

* स्वामी दयानन्द सरस्वती के मत से तो मुक्ति ...समें अन्तराय नहीं है; क्योंकि वे मुक्ति से पुनरा-...मानते हैं।



और असंभव है। दूसरे शब्दों में जिस साधना का साध्य पूर्णतः आत्म-तत्त्व नहीं—वह साधना पूर्ण साधना नहीं कही जा सकती। साथ ही जब तक आत्मा पूर्णातिपूर्ण न माना जाय, तब तक आत्मा से पूर्ण काम-मात्र का निरपेक्ष और पूर्णातिपूर्ण उपादानात्मक सम्बन्ध हो भी नहीं सकता। ईश्वर की कृपा से इन सब बातों की कृतकार्यता हिन्दू-धर्म के अद्वैतवाद पर निर्भर है और वह भी वेदांत-शास्त्रियों के शब्दों में आत्मा को पूर्ण-काम मानने और साधना द्वारा उसे प्राप्त करने में।

यहाँ यह कह देना भी अनुचित न होगा कि अद्वैत-शास्त्र की दृष्टि में आजकल के मनोविज्ञान का Self तत्त्व तो असल में कुछ है ही नहीं और यदि कुछ है तो वह हमारे दृष्टिकोण से अन्तः-करण, उपकरण या साधन-मात्र है, अथवा साधनों में आत्मा का आरोप है। ऐसी दशा में उससे वैदिक पूर्ण-कामता के विचार का तो अवसर ही नहीं आ सकता।

६ — चिरन्तन अनुभव और एक अद्भुत बात

आर्य-जाति के प्रातःस्मरणीय विद्वानों ने अपने योग-बल से मानव-जाति के लिए एक ऐसी साधना भी निकाली थी, जिसके द्वारा मानव-प्राणी स्वयं धीरे-धीरे पूर्णता को प्राप्त हो सकता है। इसका कारण यह है कि पूर्वकथनानुसार उनकी दृष्टि में आत्म-तत्त्व ज्ञान-विज्ञान-पूर्ण है। यही कारण है कि ज्यों-ज्यों साधक साधना के द्वारा आत्म-तत्त्व की ओर अग्रसर होता है, त्यों-त्यों उसे अपनी अनन्तता और पर्णज्ञता का आभास होने लगता है। परन्तु इसके विरुद्ध संसार की अन्य साधनाओं से मनुष्य ज्यों-ज्यों साधना या अध्ययन-अध्यापन के अनन्त पथ से गुजरता है, त्यों-त्यों उसे ज्ञेय संसार अनन्त और दुरूह मालूम होता है और स्वयं अल्पज्ञ और अल्प-शक्ति। अनेक आधुनिक विद्वान् इस विषय पर इस तरह विचार करते हैं—

जब हम कुछ नहीं जानते थे, तब समझते थे, हम बहुत कुछ जानते हैं, परन्तु ज्यों ही हम कुछ जानने लगे, तब हमें यह भान होने लगा कि हम वस्तुतः कुछ नहीं जानते और न सब कुछ जान ही सकते हैं; क्योंकि हमारे सम्मुख अज्ञेय प्रकृति का अनन्त साम्राज्य मौजूद है। परन्तु इसके विरुद्ध एक सच्चा आर्य साधना की समाप्ति पर यह अनुभव करता है कि वह कहाँ से कहाँ आ गया, अब उसे अनन्त और अज्ञेय प्रकृति सान्त और सुज्ञेय मालूम होने लगी और वह स्वयं अनन्त और पूर्ण। इस विषय को स्वामी रामतीर्थजी योग-दर्शन के सहारे इस तरह स्पष्ट करते हैं—

This whole universe, with all its knowledge, becomes as nothing before the *Purush*. The ordinary man thinks himself very small, because to him the knowable seems to be so infinite.

क्या कोई कह सकता है कि संसार में इस समय इस टक्कर का कोई मत, वाद और सिद्धान्त है, जो अल्पज्ञ साधक को सर्वज्ञ और पूर्णज्ञ बना सकता है और उसके लिए अज्ञेय और अनन्त प्रकृति को सान्त और ज्ञेय।

चिरन्तन अनुभव और आध्यात्मिक कलाएँ

आर्य-जाति के आध्यात्मिक विज्ञान में आध्यात्मिक कलाओं का भी दिग्दर्शन मिलता है। इन आत्मा-सम्बन्धी कलाओं से भी इन्होंने व्यष्टि-समष्टि की उन्नति में बहुत सहायता ली थी। इनके द्वारा उन्होंने यह भी मालूम किया था कि स्त्री-प्रकृति में स्वभावतः तन्मयता और मोह की मात्रा का आधिक्य है और स्वभाव में मातृत्व के कारण प्रेम, सेवा और भक्ति के तत्त्वों का प्राचुर्य। साथ ही स्त्री प्रकृति-रूप है, परावलम्बिनी है, और पुरुष का प्रश्रय चाहनेवाली। इन्हीं तात्त्विक विचारों की मूलभित्ति पर उन्होंने एकान्त पातिव्रत-धर्म की कल्पना की थी और शनैः-शनैः इस धर्म को आदर्श का रूप देकर इसके निरपेक्ष सिद्धान्त की स्थापना भी की थी। प्राचीन काल में इस धर्म ने पातिव्रत-तत्त्व का रूप धारण कर लिया था और इसने



...र में पवित्रता और सेवा के एक अद्भुत आदर्श ...स्थापना हो सकी थी। इसी से गार्हस्थ्य में ...त्व पर मातृ-भाव को विशेषता मिली थी ...दाम्पत्य-स्नेह में सेवा को आदर्श आत्म-त्याग ...रूप भी। और इसी ने रमणीत्व और पत्नीत्व में ...को आविष्कृत किया था और इसी ने उसे ...त्व में प्रभुत्व और ब्रह्मत्व का दिग्दर्शन कराया था। ...वही दशा इनकी प्रतीकोपासना की भी है। ...में भी इन्होंने अन्तःप्रेरणा, मानसिक योग-...और आध्यात्मिक विज्ञान के सहारे आत्म-...और आत्मोन्नति और ईश्वरीय व्यापकता के ...कारों का पता लगाया था और प्रतीक के आत्म-...पृक्त और पर-सम्पृक्त दोनों प्रकार की साधनाओं ...द्वारा साधारण से साधारण स्थिति के व्यक्ति को ...उच्च बनाने की चेष्टा की थी। प्रतीक की इसी ...र्श-पूजा से वे ईश्वरत्व, गुरुत्व और अन्यान्य ...तत्त्वों की साधना के लाभ प्राप्त कर सके थे। ...तार-वाद से तो उन्होंने सृष्टि के वैज्ञानिक ...काम-वाद के आध्यात्मिक तत्त्वों को समझा ...और उनसे व्यष्टि और समष्टि को पूर्णातिपूर्ण ...ने की कोशिश की थी। भक्ति और वेदान्त ...सम्मत अवतार-वाद—असल में इनका एक ...त्मिक और बड़े से बड़ा सामाजिक आविष्कार ...इनके श्राद्ध का सिद्धान्त तो विद्वत्पूजा, समाज-...और प्राणिपोषण का एक अनोखा मार्ग था। ...ही आत्म-तत्त्व की तृप्ति का अद्भुत मन्त्र भी। ...इससे इन्होंने आत्म-सम्पृक्त अदृष्ट की भी ...ना की थी, जिसके द्वारा अज्ञात देश, काल ...योनियों में गये हुए आदर्श पुरुषों की सेवा ...बीड़ा उठाया था। इनका यह श्राद्ध महात्म-...और पितृ-पूजा आदि की वैज्ञानिक और ...क विधि का आविष्कार था।

...सामाजिक भावना और चिरन्तन अनुभव

...हिन्दुओं की सामाजिक भावना में स्वतन्त्रता ...भिन्नता का सम्मेलन है। इसमें समाज के ...द सामाजिक मुख्य तत्त्व ज्ञान, शक्ति, धन और श्रम में आपस की घातकता को दूर कर पोषक समन्वय उत्पन्न किया गया था। इनकी घातकता के कारणों के निरसन और समन्वय के उत्पादक कारणों के तत्त्व निम्नलिखित थे—

क. निरसन के तत्त्व	ख. उत्पादन के तत्त्व
१. निवृत्ति	१. विद्या
२. निष्काम कर्म	२. यज्ञ
३. पुनर्जन्म	३. दान
४. आस्तिकता	४. तप
५. मुक्ति	५. सेवा

इनके सिवा सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा भी इसमें एक कारण थी। बस, इन्हीं के द्वारा आर्य-जाति के महापुरुषों ने समाज के एक सुसंगठित, किन्तु अकुतोभय और शान्ति-पूर्ण दृढ़ दुर्ग का निर्माण किया था। यदि किसी देश या जाति का सामाजिक संगठन कदाचित् आज भी ऐसा हो तो निःसन्देह उसमें हमको सुख-शान्ति का राज्य मिलेगा।

आज विश्व-शान्ति विघ्नोपहत है, मानव-समाज आपस के कलह से पीड़ित है। इसके कारण हैं— हिंसा-प्रवृत्ति, अविद्या, अर्थ, स्वार्थ, भोगेप्सा, अनुदारता, अपवित्रता, साम्प्रदायिकता, असामाजिकता और अशास्त्रीयता आदि। साथ ही दैशिकता और जातीयता के दुरुपयोग भी। परन्तु उस समय इन दुर्गुणों के उपर्युक्त उपाय थे। इसी लिए उस समय भारत में इन पापों का पाँव तक न जम पाया था।

हमारे सामाजिक वर्ण-व्यवस्था के महत्त्व को इस समय भी अनेक आधुनिक प्रकाण्ड विद्वान् मानने लगे हैं। साथ ही वे इसे ही सामाजिक कलह की सदौषधि भी समझते हैं। देखिए हर्बर्ट स्पेन्सर प्रकारान्तर से हमारी वर्ण-व्यवस्था के सामाजिक सहयोग-मूलक और वैयक्तिक प्रवृत्ति-परक सिद्धान्त को इस तरह स्वीकार करता है—

To achieve the greatest sum of happiness, there must, on the one hand exist an



amount of population maintainable by the extremist mutual dependence, while on the other hand, each individual must have the opportunity to do whatever his desires prompt.

एक दूसरा विद्वान् इसी विषय पर इस तरह अपने विचार प्रकट करता है—

अहा, कैसा वह समय था, जब कि आर्यावर्त में द्वितीय आश्रम के लोग पूर्णतः गार्हस्थ्य-धर्म का पालन करते थे और प्रथम आश्रमवासी उसके मूल को दृढ़ करने में तत्पर रहते थे। साथ ही तीसरे और चौथे आश्रम भी स्वयं क्रियाशील होने के साथ-साथ गृहस्थाश्रम के बौद्धिक और आचार सम्बन्धी बातों के पृष्ठ-पोषक भी होते थे।

सारांश यह कि उस समय प्रत्येक आश्रम अपने आपमें पूर्ण था और एक दूसरे से अकुतोभय और परिपुष्ट भी। इस विषय में किसी विद्वान् का निम्नलिखित कथन भी विचारणीय है—

सौरमंडल को देखिए, उसमें प्रत्येक नक्षत्र स्वतन्त्र है, न कि परतन्त्र और उच्छृंखल। साथ ही प्रत्येक नक्षत्र अपनी सीमा में घूमता है। दूसरा उसमें दख़ल नहीं देता, और न वही दूसरों के लिए विघ्नकर हो सकता है। ठीक यही दशा कभी हिन्दू-समाज की थी। इस दशा का ही यह फल था कि उस समय व्यक्ति-वाद था, किन्तु समष्टिवाद से आवृत्त, परन्तु समष्टिवाद भी व्यक्ति-वाद का घातक नहीं था, अर्थात् ये दोनों वाद पुष्प के मूल और पंखड़ियों की तरह थे। समष्टि-वाद मूल था, और व्यक्तिवाद पंखड़ी। किन्तु था दोनों में अन्योन्याश्रय-भाव। ऐसे ही आर्थिक उत्पादन और विभाजन के तत्वों में भी नैतिक न्याय था, और था सबसे बड़ा संतोष और उपकार का भाव। यही कारण है कि उस समय का गार्हस्थ्य ज्येष्ठ आश्रम कहला सका था।

चिरन्तन अनुभव और अतिमानवता

मानवता चाहे अनन्त कोटि वर्ष-पर्यन्त विकासोन्मुख रहे और चाहे वह कभी सीमान्त परिष्कृत भी हो जावे, परन्तु तो भी वह दोषातीत, संग्राम-वर्जित और प्रतियोगिता-हीन नहीं हो सकती। परन्तु कहा जाता है कि इसका एक आर्थिक और उपयोगात्मक पहलू भी है और वह यह है कि मनुष्य आर्थिक जन्तु है और उपयोगिता का भूखा भी। वह भी मुख्यतः आर्थिक उपयोगिता का भूखा। उसकी यह आर्थिकता भी उपयोगिता-मय है और उपयोगिता आर्थिकतामय। किन्तु इस दशा में भी उसका प्रत्येक कार्य उपयोगितामय और अर्थ-साध्य ही होगा, परन्तु होगा जीवन-संग्रामात्मक। यही कारण है कि हिंदू-धर्म ने मानवता में अतिमानवता को उत्पन्न करने की कोशिश की थी और इस अतिमानवता का अर्थ ऐसे निरपेक्ष भाव-पूर्ण जीवन का निर्माण करना था, जिससे मानव-समाज अकुतोभय, शान्त, निर्विकार और पूर्ण बन सके। इसकी साधना की प्रक्रिया के साधारण तत्व निम्नलिखित थे—

१. निवृत्ति-प्रधान धर्म
२. सामंजस्य
३. कर्म-योग
४. कर्म-संन्यास
५. प्रपत्तिमूलक शरणागति

स्वामी एन्० एस्० के शब्दों में सबसे पहले इन्होंने तमोगुण के नाश, रजोगुण के नियन्त्रण और सतोगुण की वृद्धि के द्वारा मानव-समाज को पाशविकता से ऊँचा उठाया था, फिर उसमें निवृत्ति-तत्व की पुट देकर उसमें सामंजस्य उत्पन्न किया था। साथ ही उससे कर्म-योग का सम्बन्ध जोड़कर उसमें प्रगति फूँकी थी, और कर्म-संन्यास से प्रगति को समधिक विकासोन्मुख बनाने की कोशिश की थी। फिर शरणागति के द्वारा इन सब तत्वों को समधिक क्रियाशील और साश्रय बनाने का भी प्रयत्न किया था। इस तरह मानव-जीवन को सर्वथा अतिमानव बना दिया था। इस विषय पर प्रकारान्तर से एक विद्वान् ने इस तरह कहा है—

निवृत्ति-परक प्रवृत्ति के बिना कभी संसार में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती, परन्तु शान्ति के बिना कर्म योग के मृत्यु हो सकती है और कर्म-योग भी कर्म-संन्यास के बिना लूला-लँगड़ा है और शरणागति के बिना तो वह आश्रय-हीन और पंगु ही है।

इस तरह हम देखते हैं कि प्राचीन काल में हमारे यहाँ वास्तविक मानवता और अतिमानवता दोनों को उत्पन्न करने के उपाय बतलाये गये थे।

चिरन्तन अनुभव और ऋपिकल्प-प्रत्यक्ष

हम पहले कह आये हैं कि मानव-प्राणी तर्क, विचार, अनुमान, निरीक्षण, परीक्षण और अनुकरण-शीलता का पुतला है। परन्तु इन तत्त्वों के द्वारा यह परम-सत्य तत्त्वों को नहीं प्राप्त कर सकता। उसे इन तत्त्वों में अनन्त हेत्वाभासों और निरीक्षण-परीक्षण की त्रुटियों का शिकार होना पड़ता है। फिर इन तत्त्वों के द्वारा प्राप्त सत्य के पड़ताल की कसौटी भी उसके पास केवल लौकिक व्यवहार और इन्द्रिय-जन्य प्रत्यक्ष ही है। साथ ही इनके द्वारा भी वह आधिभौतिक, आधिदैविक संसार के उपादान तत्त्व-समूह और उनके मौलिक कारणों को तो समझ ही नहीं सकता। फिर आध्यात्मिक वातावरण और उसके उपादान अद्वैत सत्ता को समझने-समझाने का प्रयत्न तो उसके लिए असंभव-सा ही रह जाता है। ऐसी दशा में इन सब क्लेशों का एक मात्र उपाय ऋपिकल्प-प्रत्यक्ष ही है; क्योंकि इसमें साधक को प्रत्येक बात का हस्तामलकवत् ज्ञान हो जाता है। इसी प्रत्यक्ष की अलौकिक साधना को योगी योगज-प्रत्यक्ष कहते हैं। इस साधना में साधक नाम-रूपात्मक संसार से निकलकर उस संसार में प्रविष्ट होता है, जिसमें शास्त्रों के कथनानुसार प्रकाश ही प्रकाश है, जिसमें साधक समस्त विश्व के कारण आत्म-तत्त्व को प्रत्यक्ष करता है, जिसके जानने से और पाने से जानने और पाने योग्य वस्तु फिर कुछ रहती ही नहीं।

इसी विषय में एक स्थान पर सर आलीवर लॉज इस आशय की बात कहते हैं—

हम जिस तत्त्व को हस्तगत करना चाहते हैं, यदि उसके कारण पर हमारा अधिकार हो जाय तो फिर उस तत्त्व के समस्त कार्यों पर अपने-आप हमारा आधिपत्य स्थापित हो जाता है, जैसे भौतिक तत्त्वों का कारण विद्युत् और विद्युत् का प्रोटाइल है। ऐसी दशा में प्रोटाइल (Protyle) को समझ लेने या वशंवद कर लेने पर उसके कार्य-समूह पर अपने-आप हमारा प्रभुत्व स्थापित हो जाता है। यही दशा आत्म-तत्त्व की भी है। उसके भी प्राप्त कर लेने पर फिर सब कुछ प्राप्त हो जाता है; क्योंकि जगत् की प्रत्येक वस्तु उसी का कार्य या परिणाम है।

चिरन्तन अनुभव और अधिकार

आर्य-जाति की चिरन्तन अनुभव-धारा में अधिकार भी एक समधिक उपयोगी तत्त्व है। इसका अभिप्राय यह है कि जो जीव जिस मार्ग का अधिकारी है, उसे उसी मार्ग से उद्देश्य की ओर जाना चाहिए; क्योंकि सभी लोग सब मार्गों के अधिकारी नहीं हो सकते। इसी लिए शास्त्र हमें बतलाते हैं कि ज्ञान-मार्ग के अधिकारी के लिए कर्म-मार्ग पत्थर की नौका है। वैसे ही कर्म-मार्गवाले के लिए ज्ञान-मार्ग और उपासना-मार्ग है, और उपासना-मार्ग-वाले के लिए कर्म और ज्ञान के मार्ग दुःखदायी हैं। परन्तु इसके विरुद्ध असाधारण मानव और अति-मानव कोटि के लिए तो सभी मार्ग श्रेयस्कर हैं; क्योंकि इन मार्गों के साधक बुराई से भी भलाई उत्पन्न करने की शक्ति रखते हैं। परन्तु ऐसे सर्वाङ्गीण सर्वतोभद्र ऋषि या ऋषिकल्प बालक और साधक बहुत कम होते हैं। किंतु यह भी कहा जाता है कि इनसे भी बढ़कर कुछ स्वतःसिद्ध और स्वयंभू व्यक्ति भी होते हैं, जिनके लिए प्रत्येक साधना केवल निमित्तमात्र ही होती है। कौन विज्ञ इस बात को नहीं जानता कि भगवान् श्रीकृष्ण परंपरा के निर्वाह के लिए ही साठ दिन



तक गुरुवर सांदीपनि के यहाँ रहे थे। ऐसे ही भगवान् राम भी प्रत्येक कार्य को मर्यादा के निर्वाह के लिए ही किया करते थे। मेरे लिए कुछ भी कर्तव्य-अकर्तव्य नहीं, ये शब्द ऐसी ही दिव्य विभूतियों के लिए कहे जाते हैं। इसके विरुद्ध साधारण लोगों के लिए तो अधिकार-तत्व के विचार की अत्यधिक आवश्यकता है; क्योंकि एक की ख़ूराक़ दूसरे के लिए विष का काम देती है। अधिकार अमृत है और अनधिकारिता विष। म० वी० डी० के शब्दों में जो लाभ बड़ी से बड़ी साधना-आराधना और गुरुकुल आदि से नहीं हो सकता, वही लाभ अधिकारियों को भगवन्नाम-स्मरण, कीर्तन आदि से हो जाता है। इसी से वे योगियों के समकक्ष तक बन जाते हैं। छोटी-छोटी चरित्रात्मक कहानियों से लोगों को बड़े से बड़े लाभ लेते देखे गये हैं। लंबे-लंबे व्याख्यानों के स्थान में अनेक बार मौन-भाषा कारगर सिद्ध होती है। सत्संग की महिमा के तो सब क़ायल हैं। वातावरण के प्रभाव से भी किसी को इनकार नहीं हो सकता। प्रतिभाशाली, अनुभवी और पर्यवेक्षण के अभ्यासियों के लिए साधारण-सी घटना अनन्त आविष्कारों का कारण हो जाती है। वैसे ही अधिकारियों को साधारण-सी बात से भी असाधारण लाभ होते देखे जाते हैं। यह सब अधिकार तत्व की ही महिमा है।

चिरन्तन अनुभव और रहस्योद्घाटन

हिन्दुओं के उपर्युक्त समस्त चमत्कारों के रहस्य का क्या कारण है? इसका सीधा उत्तर यही है कि वे प्राचीन काल में भाव, प्रेम, विज्ञान, कल्पना, आध्यात्मिकता और साधना-शक्ति के द्वारा प्रत्येक बात में आत्मत्व और ब्रह्मत्व के विनियोग की पूर्णतः स्थापना कर सके थे। उन्होंने प्रत्येक सामाजिक अणु-परमाणु में आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक समन्वय और सामंजस्य उत्पन्न कर दिया था। मन, वचन और क्रिया को एक रूप कर दिखाया था, वस्तु-तत्व, वस्तु-व्यवहार और वस्तु-स्थिति में एक-रसता उत्पन्न कर दी थी। व्यष्टि और समष्टि के वास्तविक ऐक्य को स्पष्ट कर दिया था। सूक्ष्म और स्थूल में ऐक्य की सद्भावना उत्पन्न कर दी थी। साथ ही उन्होंने परमाणु और प्रकृति की वास्तविकता को परखा था। प्रकृति और ब्रह्म का तादात्म्य-भाव ढूँढ़ निकाला था। बस, यही विशेषता उनके जीवन की विशेषता थी *। इसी से उनके ज्ञान और विज्ञान, क्रिया और प्रक्रिया, व्यावहारिकता और शास्त्रीयता, अद्वितीयता और पूर्णता का मर्म समझ में आ सकता है। इसी परंपरा का यह परिणाम था कि उनकी साधारण-सी साधना ईश्वरोपासना का काम देती थी, धूल रोग हरती थी, आशीर्वाद फलते थे। हूँ-हाँ से ब्रह्माण्डों का निर्माण-संहार होता था। फलित ज्योतिष से संसार के रहस्य बताये जाते थे। ऐसे अनन्त चमत्कारों से हिन्दू-साहित्य भरा पड़ा है। अब भी कहीं-कहीं ऐसे चमत्कार देखने को मिलते हैं। असल में यह सब ब्रह्मात्मक आध्यात्मिक बातों की साधना के ही फल थे।

चिरन्तन अनुभव और साधना-तत्त्व

चिरन्तन अनुभव की आध्यात्मिक साधना के दो पक्ष हैं। एक चरित्र-साधना और दूसरी आत्म-साधना। आत्म-साधना के भी दो उद्देश्य हैं—एक आत्म-दर्शन और दूसरा चमत्कार-प्रदर्शन। इनमें आत्म-दर्शन मुख्य है और चमत्कार गौण। यही नहीं, अनेकों के मत में तो चमत्कार हेय है। वे कहते हैं कि इससे साधना में विघ्न उत्पन्न हो जाते हैं और साधक लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाता है। स्वयं भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों को इस विषय में यह आज्ञा दे रक्खी थी कि कोई भी भिक्षुक जनता के सम्मुख सिद्धियों के चमत्कारों का प्रदर्शन न करे।

* यह भी कहा जाता है कि सम्पूर्ण विभिन्न और अनन्त अस्तित्व में उन्होंने आत्म-तत्त्व की साधना के द्वारा समीकरण उत्पन्न कर दिया था।



इस ऐतिहासिक घटना से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि योग के चमत्कार वस्तुतः कोई वस्तु हैं और वे आत्म-तत्त्व की साधना में विघ्न-स्वरूप भी हैं। साधना के अनेक प्रकार-भेद हैं। उनमें दर्शन-शास्त्र-सम्मत साधना सर्वोत्कृष्ट साधना मानी गई है, क्योंकि दर्शन-शास्त्र का वास्तविक अर्थ ही ईश्वर-दर्शन है। ईश्वर-दर्शन की इस शास्त्रोक्त साधना की प्रक्रिया के विवेचन के भी दो पक्ष हैं—एक शास्त्रोक्त और दूसरा परंपरागत। शास्त्रोक्त साधना का वर्णन मुख्यतः पातंजल दर्शन में हुआ है। उसमें आत्म-तत्त्व की साधना की प्रक्रिया और उसका फल इस प्रकार बतलाया गया है—

आत्म-तत्त्व की प्राप्ति में आत्मा परमात्म-भाव को प्राप्त हो जाता है—उसमें परमात्मा के समस्त गुण, कर्म, स्वभाव का प्रादुर्भाव हो जाता है। साधक सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता और दिव्य-भाव का अनुभव करने लगता है। परन्तु साधना की अपूर्णता में भी उसे अनन्त प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

चिरन्तन अनुभव और सिद्धि-रहस्य

साधनात्मक सिद्धियों की प्रक्रिया के रहस्य का विश्लेषण इस प्रकार है—

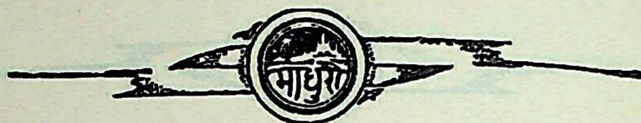
समस्त संसार विश्वप्राण-तत्त्व से भरा हुआ है। उसी का एक अंश प्राण-वायु-रूप में प्राणिमात्र में व्याप्त है। प्राणायाम * की साधना से इस प्राण-तत्त्व के सहारे साधक विश्व-ब्रह्माण्ड-स्थित प्राण-शक्ति को अपनी वशवर्तिनी बना सकता है। फिर विश्व-ब्रह्माण्ड-स्थित प्राण-शक्ति के द्वारा सम्पूर्ण विश्व की शक्तियों और वस्तुओं पर साधक का आधिपत्य हो जाता है। इस रहस्य का तात्त्विक विश्लेषण यह है कि जिस तरह आकाश से विकृत या विकसित वायु आदि भौतिक तत्त्वों और पदार्थों का तत्त्व-परिज्ञान आकाश-तत्त्व के परिज्ञान से हो जाता है, साथ ही आकाश-तत्त्व के वश कर लेने से अन्यान्य तज्ञव तत्त्वों पर भी साधक का आधिपत्य हो जाता है, इसी तरह प्राण से विकसित या प्राण-शक्ति से रूपान्तरित विश्व की समस्त शक्तियाँ मूल-प्राण-शक्ति के वशंवद होने से अपने-आप वश-वर्तिनी हो जाती हैं। सारांश यह कि साधक का आत्म-संपृक्त प्राण-शक्ति पर आधिपत्य हो जाने से समस्त विश्व और उसकी वस्तुओं के नियमन-संचालन आदि में वह सिद्ध-हस्त हो जाता है।

स्वामी विवेकानन्द प्राण-शक्ति के माहात्म्य पर अपने विचार इस तरह प्रकट करते हैं—

Suppose, for instance, one understood the *Prana* perfectly, and could control it, what power on earth could there be that would not be his? He would be able to move the sun and stars out of their places, to control everything in the universe, from the atoms to the biggest Suns because he could control the *Prana*.

अर्थात् यदि कोई व्यक्ति प्राण-शक्ति को पूर्णतः समझता है और साथ ही उस पर अधिकार भी कर लेता है तो ऐसी दशा में पृथ्वी की समस्त शक्ति पर उसका अधिकार हो जाता है। सारांश यह कि प्राण-शक्ति पर जिसका अधिकार हो जाता है, उसका परमाणु से लेकर ब्रह्माण्ड की बड़ी से बड़ी वस्तु पर अधिकार हो जाता है। वह सूर्य और नक्षत्र आदि को तितर-बितर कर सकता है। वे यह भी कहते हैं कि मनुष्य पृथक्-पृथक् पूर्णतः सब वस्तुओं को नहीं जान सकता। परन्तु हाँ, वह समस्त पदार्थों की मूल-भूत वस्तु को यदि जान ले तो फिर वह सम्पूर्ण को जान सकता है और वह मूल-भूत वस्तु है—"आत्म-तत्त्व"। ऐसे ही वह संसार की समस्त शक्तियों को वश में नहीं कर सकता, परन्तु यदि वह उनकी मूल-भूत प्राण-शक्ति को वश में कर लेता है तो सब शक्तियाँ अपने-आप

* यहाँ प्राणायाम का अभिप्राय प्राणों का संयम है।



उसकी वशवर्तिनी हो जाती हैं। उनके शब्द ये हैं—

He who has controlled the *Prana* has controlled his own mind, and all the minds that exist. He who has controlled the *Prana* has controlled his body, and all the bodies that exist, because the *Prana* is the generalised manifestation of force.

अर्थात् जिसका प्राणों पर प्रभुत्व हो जाता है, उसके मस्तिष्क पर भी उसका आधिपत्य हो जाता है। यही नहीं, प्रत्युत संसार के समस्त मस्तिष्क-समूह पर उसका आधिपत्य हो जाता है। ऐसे ही जो अपने प्राणों पर अधिकार कर लेता है, उसके शरीर पर भी उसका अधिकार हो जाता है। साथ ही संसार के समस्त अन्यान्य शरीरों पर भी। ऐसा क्यों होता है, इसका कारण यह है कि प्राण-शक्ति विविध सम्पूर्ण शक्तियों की व्यापक अभि-व्यंजना है।

एक विद्वान् ने प्राण-शक्ति की साधना पर अपने विचार इस तरह प्रकट किये हैं—

प्राण-शक्ति की महत्त्व-पूर्ण और पवित्र प्रक्रिया का केन्द्रस्थान चित्त है और इस चित्त की गति समाधि तक है और समाधि आध्यात्मिक सफलताओं का केन्द्र है। इस विषय पर स्वामी विवेकानन्दजी की भी सम्मति सुनिए। वे कहते हैं—

All these manifestations of the subtle forces of the body, the different manifestations of *Prana*, if trained give a push to the mind and the mind goes up higher and becomes supercouscious and from that plan its act.

अर्थात् शरीर की समस्त स्थूल शक्तियों का समस्त कला-पूर्ण प्रबन्ध प्राणशक्ति की ही विभिन्न व्यंजनाएँ हैं। ऐसी हालत में नियमित और वशवर्ती प्राण मस्तिष्क को संचालित करता है और इस तरह प्राण-शक्ति द्वारा संचालित हुआ मस्तिष्क उच्चता को प्राप्त हो जाता है, यहाँ तक कि अतिमानवता को पहुँच जाता है।

इस समस्त साधना का सारांश यह है कि हमारा मस्तिष्क प्राणायाम के द्वारा अपने अस्तित्व की एक ऐसी दशा को पहुँच जाता है, जिसे Super-Consciousness कहा जाता है। इसमें हमें आत्म-तत्त्व के सब आनन्द और शक्तियाँ पूर्णतः प्राप्त हो जाती हैं। इस प्राणायाम की साधना का थोड़ा-बहुत समर्थन आधुनिक विज्ञानों से भी किया जा सकता है। साथ ही योग की ध्यान, धारणा आदि आन्तरिक प्रक्रियाओं का भी आधुनिक उच्च वैज्ञानिक विचार-धारा द्वारा समर्थन हो सकता है। जिस व्यक्ति ने कभी पातंजल योग का वैज्ञानिक अनुशीलन किया है, वह तो अच्छी तरह समझ सकता है कि योग का क्रियात्मक ज्ञान ही वैज्ञानिक Internal Vibration है, जिसकी साधना से मनुष्य साधारण पशु से मानव और अतिमानव कोटि को पहुँच जाता है। इसी को हम योगियों के शब्दों में इस तरह कह सकते हैं कि पशु की आत्मावस्था इन्द्रियाँ हैं, मनुष्य की बुद्धि और ईश्वर की Spiritual Contemplation (आत्मिक अनुध्यान)। बस, योग के द्वारा मनुष्य धीरे-धीरे इसी अन्तिम अवस्था को पहुँच सकता है अर्थात् अपनी वास्तविक और शुद्ध अवस्था को प्राप्त कर सकता है। परमहंस स्वामी विशुद्धानंदजी महाराज की योग-साधना की बातें इस विषय पर और भी अधिक प्रकाश डालती हैं। सुनते हैं, इस समय भी भारत में कुछ आदमी उनके योग-महत्त्व के जानकार मौजूद हैं और उनका कहना है कि उन्हें आत्म-तत्त्व प्राप्त हो गया था। इसी लिए सर्वात्मा और पूर्णार्हता-जैसी महा सिद्धियाँ भी उन्हें प्राप्त थीं। इन्हीं के प्रताप से उनमें प्रत्येक वस्तु के व्यक्त और अव्यक्त भाव को क्रमशः अव्यक्त और व्यक्त करने की सामर्थ्य थी। ऐसी दशा में हमारे ख़याल से अधिकारियों का कर्तव्य है कि वे इस ओर ध्यान दें और इस दुर्लभ या



…श्राय विज्ञान को योगी अरविंद के मार्ग पर …हा ही सर्वतन्त्र स्वतन्त्र और क्रियात्मक सिद्ध …की चेष्टा करें।

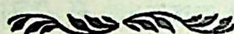
चिरन्तन अनुभव और तर्कवाद

…हा जाता है कि आधुनिक तर्कवाद के सामने …की चिरन्तन आध्यात्मिक अनुभवों की प्रामा…ता सिद्ध नहीं हो सकती। इसके विषय में …ना ही कथन पर्याप्त होगा कि जिन प्राचीन …यों ने तर्क को 'ऋषि' माना है और प्रत्यक्ष…पर हेतु-वाद को विशेषता दी है, उनको …णिकता पर आधुनिक प्रत्यक्ष-वादियों का …ह करना एक हास्यास्पद बात है। फिर पूर्व…नुसार जिन्होंने अतीन्द्रिय पदार्थों के विवेचन …न्द्रिय प्रत्यक्षवाद पर हेतु-वाद को तर्जीह दी …र गुणातीत निरपेक्ष निरिन्द्रिय योगज-प्रत्यक्ष…को प्रत्येक प्रकार के अन्वेषण का अंतिम …न माना है, उनके विषय में शंका कैसी? इसके …ना उनके आध्यात्मिक ज्ञान के क्रियात्मक तत्त्व …, प्रमाता, प्रमिति और प्रमेय भी आध्यात्मिक …थे। उनका प्रमाण योगज प्रत्यक्ष था, प्रमाता …ध्यात्मिक साधक था। प्रमिति अन्तरंग साधना …और प्रमेय आत्म-तत्त्व था। इस तत्त्व-चतुष्टय …समझना-समझाना भौतिक विश्व की सीमा से …की बात है। परन्तु फिर भी अनेकों के मत …आजकल के विश्व की सर्वोच्च विचार-धारा …विरुद्ध नहीं, अपितु थोड़ी-बहुत अनुकूल ही …। फिर वह धीरे-धीरे अतीन्द्रिय तत्त्वों की …ही आ रही है। ईथर और प्रोटाइल-जैसे …का अन्वेषण इसका प्रमाण है। हर्बर्ट स्पेन्सर …ज्ञेयवाद की ध्वनि भी इसके अनुकूल ही है। …मनोवैज्ञानिक विचार-पद्धति तो इसके विरुद्ध …ही नहीं सकती। आजकल का भौतिक-वाद भी …-पथ का पथिक बनता जा रहा है। सृष्टि…की मौलिक एकता को तो प्रायः बड़े-बड़े …तर्क मानने लगे हैं। विकास में विभिन्नता …में एकता के माननेवाले विद्वान् भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। भौतिक विज्ञान पर अब लोग भाव-विज्ञान को भी विशेषता देने लगे हैं। भाव-विश्व को समझने की भी कोशिश हो रही है, जो कि अद्वैत आत्म-तत्त्व की बात है। इस तरह हम देखते हैं कि वर्तमान संसार इस लेख में प्रमाणित सिद्धान्तों की ओर मुँह कर चुका है, परन्तु इन उच्चतम बातों के योग्य अब तक वह अपने निज का वातावरण नहीं बना सका है, न इस विषय में उसका कुछ क्रियात्मक विशेष उद्योग ही है। यही कारण है कि अभी वह इन बातों को समझने का प्रयत्न करता हुआ भी इनके समझने में असफल हो रहा है। फिर भी हमारा विश्वास है कि वह एक दिन परिवर्तन-चक्र से ही इस सत्य के मार्ग पर आवेगा। इस विषय पर एक योरपियन विद्वान् का सबल, सत्य और स्पष्ट कथन है—

भारत के पास इस समय भी संसार को स्वर्ग में परिणत करनेवाला एक दिव्य मंत्र है, सुधासार है। वह है हिन्दू-जाति का आध्यात्मिक वाद। इससे संसार साधक को सत्य, शिव और सुन्दर प्रतीत होने लगता है। मानव-स्वभाव में जो एक प्रकार की कमी और अतृप्ति प्रतीत होती है, उसकी पूर्ति भी इससे पूर्णतः हो जाती है। परन्तु फिर भी लोग इससे न-जाने क्यों कतराते हैं, और ग़लत भी समझते हैं? संभवतः इसका तात्पर्य यही है कि यह तपः-साध्य है, दुर्लभ है और क्रियात्मक है। परन्तु इतना होते हुए भी अर्थात् इसके कठिन और दुर्लभ होने पर भी भारत में ईश्वर-कृपा से इसको समझनेवाले कुछ व्यक्ति अब भी मौजूद हैं। इसके साधक भी जहाँ-तहाँ पाये जाते हैं; किंतु भौतिकवादी संसार उनके ढूँढने का परिश्रम नहीं करता और ज्ञान-लव-दुर्विदग्ध संसार उससे घबराता है। किन्तु हम तो इस आध्यात्मिक वाद को, भारत की इस अपूर्व सम्पत्ति को, मानव-समाज के उद्धार का मन्त्र समझते हैं और यह मानते हैं कि यह वस्तु दो और दो चार के बराबर सत्य है। आप इस विषय को



इसके अनुभवियों से पूछिए, मर्मज्ञों से इसकी बात करिए, और अन्वेषकों की इस पर गवाही लीजिए कि वे इस विषय में क्या कहते हैं ? रत्नों की परीक्षा जौहरियों से कराइए, न कि शाक-वणिकों से। तब आपको मालूम हो जायगा कि यह वस्तुतः सत्य है। बस, इस विषय को अब हम यहीं समाप्त करते हैं। यदि फिर कभी अवसर मिला तो इन चिरन्तन अनुभवों की साधना पर विशेष रूप से प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।



किताबों की दुनिया

बा० श्यामनारायण कपूर बी० एस्-सी०

हिंदी-पुस्तकों की बिक्री के संबंध में कलकत्ते के एक मासिक पत्र ने जिस आंदोलन का सूत्र-[पात] किया था, उसमें यथेष्ट सफलता तो नहीं मिली, [तो] भी अनेक पत्र-पत्रिकाओं का ध्यान इस ओर [आकर्षि]त अवश्य हुआ है। हिन्दी की विभिन्न पत्र-[पत्रिका]ओं में इस विषय पर नोट अथवा लेख [निकले] हैं। कई प्रकाशकों ने भी इस सम्बन्ध में [अपने] विचार प्रकट किये हैं। ऐसा प्रतीत होता है [कि] वे लोग परिस्थिति की गम्भीरता को समझने [लगे] हैं और यदि अभी नहीं, तो थोड़े दिनों बाद [संग]ठित होकर कुछ न कुछ प्रयत्न अवश्य करेंगे। [हिन्दी]-पुस्तक-प्रकाशन-व्यवसाय की इतनी शोचनीय [दश]ा हम हिन्दी-भाषा-भाषी लोगों के लिए बड़ी [लज्जा औ]र दुःख की बात है। सत्साहित्य के प्रचार, [पुस्तक]ों की माँग और जनता में पुस्तकें पढ़ने का [शौक पै]दा करने के लिए शीघ्र से शीघ्र संगठित रूप [से प्रय]त्न किये जाने चाहिए। इन प्रयत्नों में हमें [दूसरे दे]शों में पुस्तक-प्रकाशन-व्यवसाय की प्रगति से [बड़ी] सहायता मिल सकती है। हिन्दी को ३५ [करोड़] भारतीयों के निवास-स्थान भारत की राष्ट्रभाषा [हो]ने का गौरव प्राप्त है। लगभग बीस करोड़ [लोग] हिन्दी-भाषा समझ सकते और व्यवहार में लाते [हैं। इन]में से यदि क़रीब-क़रीब दस प्रतिशत लोगों [को पढ़]ा-लिखा माना जाय तो पढ़े-लिखों की [संख्या क़]रीब डेढ़-दो करोड़ होती है। यदि इन पढ़े-लिखे व्यक्तियों में से दस प्रतिशत व्यक्ति पुस्तकें ख़रीदें तो हिन्दी-पुस्तकों के दो लाख ग्राहक आसानी से मिल सकते हैं। परन्तु लाख-दो लाख तो बहुत दूर, हिन्दी की बिरली ही कोई पुस्तक ऐसी होती है, जिसकी हज़ार-दो हज़ार प्रतियाँ भी सहूलियत से बिक जाती हों। इसके विपरीत विदेशों में किसी भी पुस्तक की लाख-दो लाख प्रतियाँ बिक जाना साधारण-सी बात है। बाज़-बाज़ पुस्तकों की बिक्री ५० लाख तक पहुँचती है।

इँगलैण्ड

अभी हाल में इँगलैण्ड में गत वर्ष—१९३६ में—प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों के आँकड़े प्रकाशित हुए हैं। इनके अनुसार १९३६ में इँगलैण्ड में कुल १६,५७२ पुस्तकें प्रकाशित हुईं। कहा जाता है कि इँगलैंड में इतनी पुस्तकें पहले कभी प्रकाशित नहीं हुईं। १९३५ में यही संख्या ४६२ कम थी। १९३४ में प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें १५००० से भी कम थीं। इँगलैंड के पुस्तक-प्रकाशकों और पुस्तक-बिक्रेताओं के प्रमुख पत्रों से मालूम होता है कि गत वर्ष जितनी अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं, वे सर्वथा नवीन थीं। उनका प्रकाशन प्रथम बार हुआ था। नये संस्करणों और पुनः मुद्रित होनेवाली पुस्तकों की संख्या में गत वर्ष की अपेक्षा कोई विशेष अन्तर नहीं था।



	१९३५	१९३६
नवीन पुस्तकें	९,६८७	१०,०२९
अनुवाद	४४२	३८१
पैम्फलेट	१,११०	१,२७९
नवीन संस्करण	४,८७१	४,८८६
योग	१६,११०	१६,१७२

विविधता

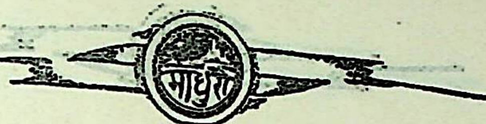
इन आँकड़ों के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए वहाँ के 'पब्लिशर्स सरकुलर' (Publishers' circular) ने लिखा है—"एक समय था, जब पाठकों के लिए प्रत्येक प्रकाशित पुस्तक से अपना सम्पर्क और घनिष्ठता बनाये रखना सम्भव था। उस समय को देखते हुए अब ज़बरदस्त परिवर्त्तन हो गया है, और अभी बराबर जारी है। अब प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों की संख्या ही में वृद्धि नहीं हुई है। पुस्तकों की संख्या से भी कहीं अधिक जो वृद्धि हुई है, वह है पुस्तकों की 'विविधता।' पुस्तक-प्रकाशन-व्यवसाय के परिवर्त्तन का रहस्य भी बहुत कुछ यही विविधता (Variety) है। अब विविध विषयों की पहले से कहीं अधिक पुस्तकें प्रकाशित होती हैं और तत्सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान से परिपूर्ण होती हैं।"

पाठक-संख्या

इन पुस्तकों के पाठकों के बारे में वही पत्र आगे चलकर लिखता है—"१९०६ में म्युनिसिपल पुस्तकालयों से पढ़ने के लिए उधार ले जानेवाले पाठकों (Home Readers) की संख्या केवल ३० लाख थी। अब यह संख्या बढ़कर सत्तर लाख से भी अधिक हो गई है। इसके साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि यह संख्या इँगलैंड के समस्त पाठक-समुदाय का एक अंश भर है। समस्त पाठकों की संख्या इससे कहीं अधिक है।" इससे यह बात भली भाँति स्पष्ट हो जाती है कि इँगलैंड में प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों की संख्या और उनकी विविधता के साथ ही पुस्तकों के पाठकों की संख्या में भी बराबर वृद्धि होती जा रही है। पुस्तकें बराबर अधिकाधिक लोकप्रिय होती जा रही हैं और उनका व्यवहार भी बराबर बढ़ रहा है।

इँगलैण्ड में भी और देशों ही के समान साधारण पाठक उपन्यास अधिक पढ़ते हैं। उपन्यासों की माँग भी ज़्यादा रहती है। फलस्वरूप प्रतिवर्ष प्रकाशित होनेवाली नवीन पुस्तकों में उपन्यासों की एक अच्छी संख्या होती है। उपन्यासों की माँग अधिक होने पर भी साधारण पाठकों की रुचि काफ़ी उत्कृष्ट है। उपन्यास भी उच्च कोटि के पसन्द किये जाते हैं। सर्वसाधारण की अभिरुचि का पता वहाँ की बेस्ट सेलर्स (Best sellers—सबसे अधिक बिकनेवाली पुस्तकों) से लगता है। अब केवल उच्च कोटि की पुस्तकें ही बेस्ट सेलर प्रमाणित होती हैं। इँगलैण्ड के प्रमुख आलोचकों का कहना है कि आज उपन्यास भी जितने अच्छे लिखे और प्रकाशित किये जा रहे हैं, कुछ वर्ष पहले ऐसा सम्भव न था। परन्तु १९३६ के आँकड़ों से पता चलता है कि साधारण पुस्तकें (General books) उपन्यासों की लोकप्रियता को चुनौती-सी देने लगी हैं। १९३६ में प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों की संख्या में जो वृद्धि हुई है, उसमें अधिकांश साधारण पुस्तकें ही हैं।

भारत ही के समान इँगलैण्ड में भी जितनी पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, उन सभी की अच्छी बिक्री नहीं होती। कभी-कभी तो ख़राब बतलाई जानेवाली पुस्तकों की बिक्री १०,००० प्रतियों से भी अधिक पहुँच जाती है और कभी-कभी अच्छी पुस्तकें भी बिक्री के ख़याल से असफल सिद्ध होती हैं। फिर भी अच्छी पुस्तकें अच्छी हैं और बुरी पुस्तकें अच्छी की अच्छाई का अपहरण नहीं कर सकतीं। देर भले ही लगे; पर उनके गुण छिपे नहीं रहते और वे शीघ्र ही अपना उचित स्थान प्राप्त कर लेती हैं। अस्तु, यह भी एक निश्चित बात है कि पुस्तकों की संख्या के साथ ही उनकी खपत भी बराबर बढ़ती जा रही है।



पुस्तकों की लोकप्रियता

इँगलैंड में पुस्तकों की इस लोकप्रियता के कई कारण बतलाये जा सकते हैं। अधिकांश जनता का शिक्षित होना और शिक्षित जनता की अभिरुचि का बराबर उत्कृष्ट होते रहना तथा जनसाधारण के रहन-सहन का ढंग उन्नत होना, इस लोकप्रियता के प्रमुख कारण बतलाये जा सकते हैं। इँगलैंड की जनता की आर्थिक स्थिति का अच्छा होना और उनमें पुस्तकें पढ़ने का शौक़ होना भी इसके प्रमुख कारण हैं। परन्तु इन सामान्य कारणों के अतिरिक्त और भी कई एक महत्वपूर्ण बातें ऐसी हैं, जिनसे पुस्तकों की माँग और लोकप्रियता बढ़ने में समुचित सहायता मिली है।

सस्ते पुस्तकालय

इन सब बातों से अधिक महत्त्वपूर्ण समस्त इँगलैंड में दो पेन्स (Two Penny Libraries) पुस्तकालयों का विस्तृत, व्यापक एवं सुव्यवस्थित चलन है। पिछले वर्षों में इन पुस्तकालयों की संख्या में समुचित वृद्धि हुई है। पुस्तकालयों की संख्या बढ़ने के साथ ही पुस्तकालयों के सदस्यों और पाठकों की संख्या में भी ज़बरदस्त वृद्धि हुई है। इँगलैंड की पुस्तकालय-पद्धति अब बहुत ही सुदृढ़ रूप धारण कर चुकी है। वहाँ पुस्तकालयों से पुस्तकें लेकर पढ़ना जनसाधारण की आदत में शामिल हो गया है। पुस्तकालयों से उधार लेकर पढ़ी जानेवाली पुस्तकों की तादाद ख़रीदी हुई पुस्तकों से लाखों ज़्यादा होती हैं। कहा तो यहाँ तक जाता है कि और किसी भी देश में पुस्तकालयों से इतनी अधिक पुस्तकें पढ़ने के लिए उधार नहीं ली जातीं।

पुस्तकों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि होने के कारण साधारण पाठकों का प्रत्येक पुस्तक ख़रीद लेना अथवा कुछ चुनी हुई पुस्तकें ही ख़रीद लेना असम्भव-जैसा हो गया है। परन्तु पुस्तकें ख़रीदने में असमर्थ होने पर भी उन्हें पढ़ने को पुस्तकें तो मिलनी ही चाहिए। पुस्तकें पढ़ना उनकी दिनचर्या का एक आवश्यक अंग बन गया है। अस्तु, वे लोग अपनी ज्ञान-पिपासा और पुस्तकें पढ़ने की क्षुधा को पुस्तकालय की सहायता से शान्त करते हैं। दो पेंसवाले पुस्तकालयों की बदौलत सर्वसाधारण बहुत थोड़े ख़र्चे में अपने धन से कई गुने मूल्य की पुस्तकें पढ़ने में समर्थ हो जाते हैं। योरप और अमेरिका में इतने सस्ते पुस्तकालयों का चलन नहीं है।

पुस्तक-गोष्ठियाँ

फ़्रांस में इँगलैंड के मुक़ाबिले पुस्तकें बहुत सस्ती हैं। सस्ती होने के कारण लोग आम तौर पर अपनी ज़रूरत की किताबें अपने-आप ख़रीद लेते हैं। इसलिए वहाँ सस्ते में पुस्तकें उधार देनेवाले पुस्तकालयों का चलन नहीं के बराबर है। जर्मनी में भी इस तरह के सस्ते पुस्तकालयों का चलन कम है। परन्तु वहाँ इँगलैंड से कम पुस्तकें नहीं बिकतीं। वहाँ भी लोग अधिक से अधिक पुस्तकें पढ़ने के शौक़ीन हैं। उनके इस शौक़ को पूरा करने में आर्थिक कठिनाइयाँ बाधक भी होती हैं, परन्तु उन्होंने इन कठिनाइयों को हल कर लिया है। जर्मनी में पुस्तक-गोष्ठियों (Book clubs) का बहुत चलन है। इन क्लबों के सदस्य क्लब की मारफ़त साल भर में अपनी रुचि की एक निश्चित रक़म की पुस्तकें अनिवार्य रूप से ख़रीदते हैं। क्लब उन्हें इन पुस्तकों के ख़रीदने में यथोचित परामर्श देता है और प्रकाशकों एवं पुस्तक-विक्रेताओं से उन्हें सस्ते मूल्य में पुस्तकें ख़रीदवाने तथा और दूसरी सुविधाओं के दिलाने का प्रबन्ध करता है। एक निश्चित रक़म की पुस्तकें ख़रीदने पर कुछ पुस्तकें उपहार में देने का प्रबन्ध करता है। बहुत से क्लबों के सदस्यों में व्यक्तिगत रूप से ख़रीदी गई पुस्तकों का आदान-प्रदान भी होता रहता है। इस तरह से प्रत्येक सदस्य के पास पुस्तकों की एक अच्छी संख्या जमा हो जाती है और उन्हें थोड़े ख़र्चे में बहुत-सी पुस्तकें पढ़ने का मौक़ा मिल जाता है। ये पुस्तक-गोष्ठियाँ सत्साहित्य के प्रचार में भी



ख़ूब सहायक होती हैं। ये गोष्ठियाँ (क्लब) जर्मनी में ख़ूब लोकप्रिय हैं।

इँगलैंड में जितनी भी नवीन पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, उनका अधिकांश भाग पुस्तकालयों ही में बिकता है। जन-साधारण में केवल उच्च कोटि की, और वह भी बेस्ट सेलर्स श्रेणी की पुस्तकें ही बिकती हैं। इँगलैंड के इन दो पेंसवाले पुस्तकालयों का संगठन बहुत ही व्यापक है। पाठक को नाममात्र का चन्दा देने पर समस्त पुस्तकों के व्यवहार का अधिकार प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति कुछ अधिक चन्दा देने में समर्थ हैं, उन्हें निश्चित मूल्य तक की नवीन पुस्तकें माँगने और पाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। आरम्भ में इस तरह के पुस्तकालयों के नियम कुछ कड़े बनाये गये थे और उनसे पुस्तकें उधार लेने के लिए चन्दा भी ज़्यादा रक्खा गया था। परन्तु इन पुस्तकालयों की लोकप्रियता देखकर उनमें बराबर सुधार किये जाते रहे और बाद में उनको और अधिक उपयोगी बनाने के लिए आपस में एक दूसरे से संबद्ध कर देने का निश्चय किया गया। आज समस्त इँगलैंड के पुस्तकें उधार देनेवाले पुस्तकालय एक सूत्र में आबद्ध कर दिये गये हैं। इस नवीन आयोजन के फलस्वरूप छोटे-छोटे गाँवों तक में पुस्तकें पहुँचाना सुलभ हो गया है। उधार लेकर पुस्तकें पढ़नेवाले पाठकों को नाममात्र का दो पेंस चन्दा देने पर पुस्तकें उधार लेने की सुविधाएँ दे दी जाती हैं।

पुस्तकालयों का संगठन

इस संगठन का परिणाम बहुत ही आश्चर्यजनक हुआ है। बड़े-बड़े शहरों के प्रत्येक ख़ास-ख़ास मोहल्ले में पुस्तकालय अथवा उनकी शाखाएँ स्थापित हो गई हैं। दूर-दूर आबाद ज़िलों में और ऐसी बस्तियों में, जो न तो ख़ुद स्वतंत्र पुस्तकालय का ख़र्चा बरदाश्त कर सकती थीं और न जहाँ पुस्तकों की दूकानें ही थीं, इन पुस्तकालयों का अच्छा प्रचार हुआ है और इनकी शाखाएँ ख़ूब फल-फूल रही हैं। इन पुस्तकालयों द्वारा वितरित होनेवाली समस्त पुस्तकें नवीन नहीं होतीं। परन्तु इनमें नवीन पुस्तकें बराबर आती रहती हैं और अच्छी संख्या में ख़रीदी जाती हैं। इन पुस्तकालयों की बदौलत इँगलैंड के पुस्तक-व्यवसाय में बहुत उन्नति हुई है।

परामर्श देनेवाले क्लब

इन सस्ते पुस्तकालयों के अतिरिक्त इँगलैंड में पुस्तक-पाठकों एवं पढ़ने के शौक़ीनों की संख्या बढ़ाने का श्रेय वहाँ के पुस्तक-क्लब (Book clubs), पुस्तक-समाज (Book societies) और पुस्तक-गोष्ठी प्रभृति संस्थाओं को भी प्राप्त है। पिछले पृष्ठों में इस बात का ज़िक्र किया जा चुका है कि जर्मनी में पुस्तक-क्लबों और समाजों का बड़ा प्रचार है। इन क्लबों और समाजों से पुस्तकों के प्रचार और जनसाधारण में पुस्तकें पढ़ने का शौक़ और आदत डालने में बड़ी मदद मिली। जर्मनी से इन संस्थाओं का प्रचार अमेरिका में हुआ। अमेरिका में भी ये शीघ्र ही बहुत लोकप्रिय हो गईं। इन संस्थाओं और इनके सदस्यों की संख्या बहुत बढ़ गई। अमेरिका में इनकी उपयोगिता से प्रभावित होकर इँगलैंड के विद्वत्-समाज ने इँगलैंड में इन संस्थाओं का सूत्रपात किया। इन क्लबों, गोष्ठियों और पुस्तकालयों की बदौलत इँगलैंड में प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों की पहुँच ९६ प्रतिशत पढ़ी-लिखी जनता तक हो जाती है। इन क्लबों और समाजों ने अच्छी पुस्तकों के प्रचार में भी बहुत सहायता पहुँचाई। इन क्लबों की स्थापना के बाद शीघ्र ही यह मालूम हुआ कि बहुत-से व्यक्ति अपने लिए अच्छी पुस्तकें चुनने का काम विशेषज्ञों पर छोड़ने के लिए तैयार ही नहीं, उत्सुक भी थे। अस्तु, इन क्लबों ने पुस्तकें चुनने में परामर्श देने का काम भी शुरू कर दिया। परामर्श लेनेवाले व्यक्तियों ने क्लबों को इस बात का विश्वास दिलाया कि वे लोग प्रतिमास एक दो या कुछ पुस्तकें अथवा साल भर में एक निश्चित रक़म की पुस्तकें क्लब अथवा समाज के मारफ़त ख़रीद



...किया करेंगे। इस व्यवस्था से अच्छी पुस्तकों के ...चार में बड़ी सहायता मिली। पुस्तक-प्रकाशकों ...और पाठकों, दोनों ही को लाभ हुआ। जन साधा... भी अपने लिए अपने-आप पुस्तकें चुनने के ...झंझट से बच गये।

पुस्तक-निर्वाचन

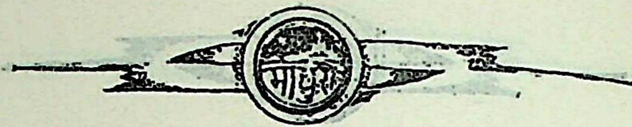
वास्तव में जहाँ प्रतिमास हज़ार से अधिक ...पुस्तकें प्रकाशित हों, वहाँ उनमें से अपनी रुचि ...और आवश्यकता के अनुसार दो-चार पुस्तकें चुन... ...ना प्रगतिशील पाठकों के लिए भी कठिन कार्य ...। हर एक आदमी में इस काम को करने की ...योग्यता होती है और न समय। क्लबों और ...समाजों में इस काम के लिए विभिन्न विषयों के ...सम्पर्क में रहनेवाले व्यक्तियों और विद्वज्जनों की ...अलग-अलग उपसमितियाँ बना दी जाती हैं और ...यथासाध्य अपने विषय की समस्त नवप्रकाशित ...पुस्तकों के सम्पर्क में रहने के प्रयत्न करते हैं और ...वे विभिन्न सदस्यों और पाठकों की आवश्यकताएँ ...देखकर उन्हें पुस्तकें ख़रीदने में उचित परामर्श ...देते रहते हैं। ये क्लब और समाज अक्सर प्रकाशकों ...और पाठकों में एक प्रकार के माध्यम-सा काम ...करते हैं। इन क्लबों के सदस्यों के लिए साल में ...निश्चित रक़म की पुस्तकें ख़रीदना अनिवार्य ...है। बहुत-से क्लब अपने सदस्यों द्वारा पढ़ी ...पुस्तकों को ग़रीब पाठकों में मुफ़्त वितरित ...करने का भी प्रबन्ध करते हैं। इन क्लबों के सदस्यों ...की संख्या हज़ारों-लाखों तक पहुँचती है। एक-एक ...के ज़रिये साल में लाखों रुपये की पुस्तकें बिक ...जाती हैं।

...इँगलैंड में इन पुस्तक-गोष्ठियों का सूत्रपात सब... ...पहले इँगलैंड के सुप्रसिद्ध विद्वान् नेता श्रीह्यू... ...वालपोल (Hugh Walpole) के नेतृत्व में हुआ। ...पुस्तक-समाज के प्रथम सभापति भी वाल... ...पोल ही बनाये गये। मि० वालपोल का विश्वास ...था कि इन समाजों के द्वारा जनसाधारण में और ...अच्छी पुस्तकें वितरित की जा सकती हैं। जो पुस्तकें वास्तव में अच्छी हैं, उनकी खपत बढ़ाई जा सकती है। लोगों को पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। जो व्यक्ति पढ़ने के शौक़ीन हैं, परन्तु समयाभाव से अपने लिए पुस्तकें चुनने-जैसा गम्भीर कार्य करने में असमर्थ हैं, उनके लिए उपयोगी पुस्तकें चुनकर एक उपयोगी सेवा का आयोजन किया जा सकता है। शुरू-शुरू में श्रीवालपोल को अपने इन विचारों के लिए बहुत कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। स्वयं पुस्तक-प्रकाशकों ने, जिनके व्यवसाय को इन गोष्ठियों से बहुत सहायता मिली है, श्रीवालपोल का तीव्र विरोध किया। परन्तु वालपोल ने इस विरोध की तनिक भी परवा न की। अपनी योजना को कार्यरूप में परिणत करने में बराबर लगे रहे। अब इस योजना के विरोधी लोग ही इसके प्रबल समर्थक एवं पृष्ठपोषक बन गये हैं।

इस मास की पुस्तक

पुस्तक-समाजों ने एक और काम शुरू किया। उन्होंने प्रतिमास प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों में से सर्वश्रेष्ठ पुस्तक का चुनाव करके 'इस मास की पुस्तक' के शीर्षक से उसकी आलोचनाएँ और विवरण प्रकाशित करना आरम्भ किया। इस पुस्तक का चुनाव करनेवाली समिति में यथासम्भव प्रतिष्ठित विद्वज्जनों एवं आलोचकों ही को सम्मिलित किया जाता था। परन्तु बहुत-से आलोचकों ने इस पद्धति का भी विरोध किया। कभी-कभी तो सम्मति देनेवाली कमेटी में सम्मिलित आलोचक व्यक्तिगत रूप से कमेटी की सम्मति के विरुद्ध आवाज़ उठाते थे और पुस्तक-आलोचना की इस नवीन पद्धति का तीव्र विरोध करते थे। कुछ लोग पुस्तकों की आलोचना करना केवल विद्वानों का व्यक्तिगत अधिकार मानते थे और कमेटियों के द्वारा, वे चाहे जितनी भी प्रतिष्ठित एवं निष्पक्ष क्यों न हों, आलोचना करने का तीव्र विरोध करते थे।

इन समस्त कठिनाइयों और बाधाओं का



सामना करते हुए पुस्तकसमाज और इस प्रकार की दूसरी संस्थाएँ बराबर धैर्यपूर्वक और दृढ़ता के साथ अपना काम करती रहीं, और आज इँगलैण्ड के पढ़े-लिखे लोगों में इन संस्थाओं ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। ये क्लब और पुस्तक-समाज जनता में ख़ूब लोकप्रिय हैं। आजकल इँगलैंड में बिकनेवाली पुस्तकों का अधिकांश भाग इन्हीं क्लबों और गोष्ठियों के द्वारा बिकता है।

समाचार-पत्रों का सहयोग

इन क्लबों और गोष्ठियों की बदौलत जनता भी पुस्तकों और उनकी आलोचनाओं में अभिरुचि प्रकट करने लगी। जनता की इस अभिरुचि को देखते हुए इँगलैंड के बड़े-बड़े नामी-गरामी अख़बारों ने भी, जो अब तक इस संबंध में काफ़ी उदासीन थे, दिलचस्पी लेना शुरू किया। इससे पहले पुस्तक-सम्बन्धी समाचारों आदि को समाचार-पत्रों में स्थान नहीं दिया जाता था। सुप्रसिद्ध पत्रकार स्वर्गीय लार्ड नार्थक्लिफ़ अपने किसी भी अख़बार में—'टाइम्स' के अतिरिक्त—किसी भी पुस्तक के समाचार अथवा आलोचना आदि न छपने देते थे। हाँ, जिस पुस्तक में समाचारों से सम्बन्ध रखनेवाली किसी घटना अथवा कहानी का वर्णन होता था; उसकी आलोचना प्रकाशित करने में उन्हें विशेष आपत्ति न होती थी। परन्तु इस तरह की पुस्तकें बहुत ही कम प्रकाशित होती थीं।

उन दिनों अख़बारवाले अपने अख़बारों की ग्राहक-संख्या बढ़ाने की भी ज़बरदस्त कोशिशें कर रहे थे। जन-साधारण में पुस्तकों की अच्छी माँग देखकर उन्होंने इस अवसर का अच्छा लाभ उठाया और अपने पत्रों की ग्राहक-संख्या बढ़ाने के लिए और उन्हें अधिक आकर्षक बनाने के ख़याल से न केवल पुस्तकों की आलोचनायें और पुस्तक-सम्बन्धी समाचार ही प्रकाशित करना आरम्भ किया, बरन् अपने ग्राहकों को नाना प्रकार के पुस्तक-सेट भेंट करना और कम मूल्य में देना भी शुरू किया। इस तरह से बहुत थोड़ी क़ीमत में लाखों पुस्तकें जनता के हाथों में पहुँच गईं। कुछ समाचार-पत्रों ने इस योजना से बहुत लाभ उठाया और उन्होंने स्थायी रूप से लागत भर पर पुस्तकें प्रकाशित करना और बेचना आरम्भ कर दिया।

ये सब बातें महायुद्ध से पहले की हैं। महायुद्ध के बाद भी यही क्रम जारी रहा और अब भी जारी है। इँगलैण्ड के अख़बारों में पुस्तकों की आलोचना और सामयिक साहित्य-सम्बन्धी विवरण प्रकाशित करने के लिए एक स्थायी स्तंभ बना दिया गया है। आलोचनाओं के साथ ही वे पुस्तकों से सम्बन्ध रखनेवाले समाचार, जैसे—कौन लेखक कौन-सी पुस्तक लिख रहा है, निकट भविष्य में कौन-सी पुस्तकें प्रकाशित होनेवाली हैं, किस लेखक अथवा किस प्रकाशक की कौन-सी पुस्तक सबसे ज़्यादा बिक रही है, भी बराबर प्रकाशित किये जाते हैं। ख़ास-ख़ास पुस्तकों के बारे में उसके पाठकों और विद्वज्जनों की क्या सम्मतियाँ हैं, जनता में कैसी पुस्तकों की माँग है अथवा जनसाधारण को किन पुस्तकों की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए आदि विषयों पर भी समुचित प्रकाश डाला जाता है।

पुस्तक-सम्बन्धी समाचार और आलोचनाएँ प्रकाशित करने के साथ ही बहुत-से लोकप्रिय अख़बारों ने 'इस मास की पुस्तक' (Book of the month) शीर्षक स्तम्भ का स्थायी रूप से प्रकाशन आरम्भ कर दिया है। इस स्तम्भ में महीने में प्रकाशित होनेवाली जिस पुस्तक को सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है, उसकी विस्तृत आलोचना प्रकाशित की जाती है। बराबर एक मास तक उस पत्र में उस पुस्तक और उसके लेखक के बारे में कुछ न कुछ बातें प्रकाशित करके जन-साधारण का ध्यान विशेष रूप से उस पुस्तक की ओर आकृष्ट किया जाता है।

साहित्यिक दृष्टि से किसी पुस्तक-विशेष को इस प्रकार अत्यधिक महत्व देना उचित है या नहीं, यह एक विवादग्रस्त विषय है। बहुत-से व्यक्ति-



...ते हैं इस तरीक़े से सहमत न हों, परन्तु इतना ...इस्र है कि इससे पुस्तकों की बिक्री में काफ़ी ...यता मिलती है। जन-साधारण को पुस्तकों ...दिलचस्पी लेने के ज़्यादा मौक़े मिलते हैं। इस ...से उच्च कोटि की पुस्तकों के बेस्ट-सेलर्स की ...णी में आने में भी सहायता मिलती है। आम- ...र पर विभिन्न समाचार-पत्र अपनी-अपनी रुचि ...विषय के अनुकूल विभिन्न पुस्तकों को सर्व- ...घोषित करते हैं। समाचारपत्रों की इन ...नतियों से प्रकाशक लोग समुचित लाभ उठाते ...पुस्तक-विक्रेताओं की दूकानों पर इन 'सर्व- ...घोषित की जानेवाली पुस्तकों का ख़ूब प्रदर्शन ...या जाता है। इस तरीक़े से 'इस मास की पुस्तक' ...श्रेणी में न आनेवाली पुस्तकों की बिक्री में ...का पहुँचता है और कभी-कभी पक्षपातपूर्ण ...लोचनाएँ प्रकाशित हो जाने की आशंका रहती ...परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी यह ...है कि जब से इँगलैंड में पुस्तकों के बारे में ...आन्दोलन का सूत्रपात हुआ है, जनसाधारण ...पुस्तकों की खपत बहुत बढ़ गई है और पहले ...कहीं ज़्यादा पुस्तकें बिकने और प्रकाशित होने ...गी हैं।

सस्ती पुस्तकें

...पुस्तकालयों, पुस्तक-गोष्ठियों, क्लबों और समा- ...पत्रों के सहयोग के अतिरिक्त इँगलैंड में पुस्तकों ...लोकप्रियता को बढ़ानेवाली एक और महत्त्वपूर्ण ...है उनका सस्ता होना। इधर कुछ वर्षों से ...कोटि की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें बहुत ही सस्ती ...में बेची जा रही हैं।

...सस्ते पुस्तकालयों ही के समान सस्ती पुस्तकों ...भी चलन बराबर बढ़ रहा है। कुछ वर्ष पूर्व ...में अधिकांश लोकप्रिय पुस्तकों के अच्छे ...रणों ही के साथ सस्ते और सुलभ संस्करण ...प्रकाशित किये जाते थे। राजसंस्करणों का भी ...चलन था। राजसंस्करण (De Luxe Edi- ...) तो क़रीब-क़रीब बन्द हो गये हैं। अब

आम तौर पर सस्ते संस्करण ही प्रकाशित किये जाते हैं, जिन्हें जनसाधारण अधिक से अधिक संख्या में ख़रीद सकें। लोकप्रिय ग्रन्थकारों और लेखकों की रचनाओं के तो ख़ास तौर पर सस्ते संस्करण निकाले जाते हैं।

६ पेंस पुस्तकमाला

लगभग दो वर्ष हुए, एलनलेन-नामक एक पुस्तक-प्रकाशक ने अपनी ६ पेंसवाली पुस्तकमाला के द्वारा पुस्तक-व्यवसाय में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। कहा जाता है कि एलनलेन ने केवल १०० पौंड की पूँजी से अपनी पेनगुइन (Penguin) कम्पनी का सूत्रपात किया था। कम्पनी का काम शुरू करते समय उन्होंने समकालीन कापीराइट पुस्तकों के सस्ते संस्करण प्रकाशित करने का विचार किया था। क़ीमत सस्ती रखने के साथ ही उन्होंने इस बात की भी पूरी कोशिश की थी कि उनकी छपाई, आकार-प्रकार बहुत ही सुन्दर और आकर्षक हो और उनका मूल्य केवल ६ पेंस होने पर भी कोई उन्हें अपने पुस्तकालय में स्थान देने में संकोच न करे। अस्तु, उन्होंने पुस्तकों के बहुत सुलभ और सुन्दर संस्करण प्रकाशित किये। सुलभ, उपयोगी और आकर्षक होने के साथ ही मूल्य लागतभर केवल ६ पेंस रक्खा गया। फलस्वरूप १८ महीने के अन्दर इन पुस्तकों की ·४७ लाख ५० हज़ार प्रतियाँ बिक गईं। इँगलैंड के कोने-कोने में इन पुस्तकों की माँग है। सस्ती होने पर भी बड़े-बड़े पुस्तक-विक्रेताओं तथा ऊँची दूकानों में इनकी बिक्री हो रही है।

इन पुस्तकों की सफलता ने भी एलन को बहुत प्रोत्साहित किया। उन्होंने शीघ्र ही एक दूसरी पुस्तकमाला के प्रकाशन का आयोजन किया। इस पुस्तकमाला का मूल्य, आकार-प्रकार और छपाई-सफ़ाई और गेटअप (Get up) सब पहले-जैसा ही रक्खा, परन्तु इस माला में प्रकाशित होनेवाला साहित्य प्रथम माला से सर्वथा भिन्न रक्खा गया। इस माला के द्वारा श्रीएलन ने ऐसे



पाठकों के लिए पाठ्य सामग्री प्रस्तुत करने का आयोजन किया है, जो अपने अवकाश के समय पुस्तकों के द्वारा अपने ज्ञान-क्षेत्र को विस्तृत करना चाहते हैं और पुस्तकों को स्वशिक्षा का प्रमुख साधन बनाते हैं। अस्तु, उन्होंने इस पुस्तकमाला में 'बरनार्ड शा', जैम्सजीन और जूलियन हक्सले प्रभृति विश्वविख्यात विद्वानों और विशेषज्ञों की पूर्व प्रकाशित उत्कृष्ट रचनाओं को, जो अब तक अपने महँगे मूल्य के कारण सर्वसाधारण के लिए अलभ्य थीं, प्रकाशित करने का प्रबन्ध किया है। यह नवीन ग्रन्थमाला केवल पूर्व प्रकाशित पुस्तकों का पुनः मुद्रण नहीं करेगी, बरन् इन्हीं विशेषज्ञों की लिखी हुई सर्वथा नवीन पुस्तकें भी प्रकाशित करेगी। इस ग्रन्थमाला के अलावा श्रीएलन शेक्सपियर के नाटकों के सुसम्पादित और प्रामाणिक संस्करण बहुत सस्ते मूल्य में प्रकाशित करने का प्रबन्ध कर रहे हैं। इन सस्ती पुस्तकों से पाठकों की वाचनाभिरुचि को काफ़ी प्रोत्साहन मिलता है और उन्हें थोड़े-से पैसे ख़र्च करके बहुत उपयोगी और प्रामाणिक साहित्य पढ़ने को मिल जाता है। क्या कोई हिन्दी का प्रकाशक भी ऐसे सुलभ साहित्य के प्रकाशन का आयोजन करेगा।

जर्मनी

इँगलैंड ही के समान जर्मनी में भी लोगों को पढ़ने का ख़ूब शौक़ है। अपने-आप पुस्तकें ख़रीद-कर पढ़ने में जर्मन लोग अँगरेज़ों से भी आगे बढ़े हुए हैं। १९३६ में जर्मनी में ३२ करोड़ ७० लाख रीशमार्क की पुस्तकें बिकी थीं। हिन्दी-पाठकों और प्रकाशकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि यह रक़म पिछले सालों की अपेक्षा कम थी। वहाँ आम तौर पर इससे ज़्यादा मूल्य की किताबें बिक जाती हैं। १९३७ में पुस्तकों की बिक्री का रुख़ देखकर इससे अधिक मूल्य की पुस्तकें बिकने की आशा की जा रही है। जर्मनी में पुस्तकों का ख़ूब प्रचार है। एक-एक पुस्तक की लाख-दो लाख प्रतियाँ बिक जाना साधारण-सी बात है। बेस्ट-सेलर सबसे अधिक बिकनेवाली पुस्तकों की प्रतियों की संख्या २५ लाख तक पहुँचती है। जर्मनी के तानाशाह हर हिटलर की Mein Kampf-नामक पुस्तक की २५ लाख प्रतियाँ बिकी थीं। अलफ़्रेड राजन बर्ग की Myths of the twentieth century की ५ लाख प्रतियाँ बिकीं। दो-दो लाख प्रतियाँ तो बहुत-सी पुस्तकों की बिक जाती हैं। लाख-दो लाख से कम बिकनेवाली पुस्तकें बहुत साधारण श्रेणी की समझी जाती हैं।

नाज़ी दल की ओर से पुस्तकों की बिक्री को भी प्रोत्साहन मिलता है। हाँ, नाज़ी-सिद्धान्तों के विरुद्ध कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं की जा सकती। जर्मन लोग पारस्परिक प्रेमभाव प्रकट करने के लिए अपने इष्ट-मित्रों को पुस्तकें उपहार में भी ख़ूब देते हैं। सबसे अधिक बिकनेवाली पुस्तकों की खपत इसी वजह से और भी अधिक हो जाती है।

वहाँ जनता आम तौर पर किस तरह की किताबें ज़्यादा पढ़ती है, इसका पता वहाँ के पुस्तकालयों से लगता है। इसके लिए जर्मन पुस्तकालयों ने विशेष प्रबन्ध भी कर रक्खा है। वहाँ पुस्तकालयों से जो लोग घर पर पुस्तकें पढ़ने के लिए पुस्तकें ले जाते हैं, उनसे उन पुस्तकों के बारे में उनकी सम्मति लिखा ली जाती है। प्रत्येक पुस्तकालय में पुस्तकों के बारे में पाठकों की सम्मतियों और विचारों का अच्छा संग्रह रहता है। पुस्तकों के प्रकाशक इन विचारों से समुचित लाभ उठाते हैं। पुस्तकालयों के आँकड़ों से प्रकाशकों और लेखकों को जनता की वाचनाभिरुचि का पता लगता रहता है। जर्मनी में नाज़ीदल के प्रभुत्व के पहले राजनीतिक पुस्तकें अधिक पढ़ी जाती थीं। इधर हाल में इन पुस्तकों की माँग बहुत कम हो गई है। जर्मनी में भी और देशों ही की भाँति उपन्यास ही अधिक प्रकाशित होते हैं। जर्मनी में प्रकाशित होनेवाली समस्त पुस्तकों का एक बड़ा भाग—लगभग ३० प्रतिशत उपन्यास और जीवन-



...न होते हैं। इतिहास और तरुण साहित्य की अच्छी संख्या होती है। रसायन-विज्ञान में जर्मनी बहुत ही आगे बढ़ा हुआ है। रसायन-शास्त्र की सबसे अधिक मौलिक एवं महत्त्व-पूर्ण पुस्तकें जर्मनी ही में प्रकाशित होती हैं। ...लिस्ट लेखकों की पुस्तकों की बिक्री भी कभी ...र लाख प्रतियों तक पहुँच जाती है। जर्मनी ...प्रसिद्ध सोशलिस्ट लेखक हरमानलिग्रान की पुस्तक (Weber Wolf) की ४ लाख प्रतियाँ ...बिकी थीं।

रूस

आधुनिक रूस के निवासी संसार में सबसे अधिक पुस्तकें पढ़ते हैं। बोलशेविक क्रांति से पहले ...के अधिकांश निवासी भारत ही के समान अपढ़ ...निरक्षर थे और अब तो पिछड़े हुए भागों के ...वासी, शीतकटिबन्ध में और ध्रुव प्रदेश में रहने-वाले व्यक्ति भी साक्षर बना दिये गये हैं। आज सोवियट रूस का नागरिक संसार में सबसे अधिक पुस्तकें पढ़ता है। रूस में जर्मनी ही की ...खास तौर पर सोवियट सिद्धान्तों ही की ...कें अधिक पढ़ी जाती हैं। इनके साथ ही दूसरे ...यों की पुस्तकों का भी अच्छा प्रचार है। ...में रूस में प्रायः सभी विषयों के पाठक पाये जाते हैं। इंजीनियरिंग-जैसे नीरस और गम्भीर ...यों से लेकर कविता-जैसे सरस एवं रोचक विषयों ...सभी श्रेणियों की पुस्तकें पाठकों के पास देखने में आती हैं। मार्क्स, एंजिल (Engel), लेनिन और ...न की किताबें ख़ूब शौक़ के साथ पढ़ी जाती ...कुछ वर्ष पूर्व एक वर्ष में मार्क्स के ग्रन्थों की ...लाख ८८ हज़ार प्रतियाँ, एंजिल की पुस्तकों ...लाख ३२ हज़ार प्रतियाँ, लेनिन की रच-नाओं की ८० लाख ४३ हज़ार प्रतियाँ और स्टैलिन ...कों की ४५ करोड़ ७० लाख प्रतियाँ बिकी ...सब प्रतियाँ क़रीब-क़रीब ४१५०० विभिन्न ...की थीं।

...न लेखकों की नवीन रचनाओं और अधि-कारी विद्वानों के ग्रन्थों के प्रकाशन के साथ ही पुराने लब्धप्रतिष्ठ लेखकों की रचनाओं के नवीन संस्करण बराबर प्रकाशित होते रहते हैं। रस्किन, तुर्गनेव और टालस्टाय प्रभृति प्रतिष्ठित लेखकों के ग्रन्थों के नाना प्रकार के सस्ते और महँगे संस्करण बहुत बड़ी संख्या में प्रकाशित किये जा रहे हैं। शेक्सपियर, एरिस्टोफ़ेनीज़ (Aristophanes) और प्लेटो के ग्रन्थों के अनुवादित संस्करण 'बेस्ट सेलर्स' में शुमार किये जाते हैं। अमेरिका के आधुनिक लेखकों की पुस्तकें ख़ूब चाव से पढ़ी जाती हैं। उपन्यासों की भी कुछ कम खपत नहीं है। टाम काका की कुटिया से लेकर आधुनिक नवीनतम उपन्यास हज़ारों लाखों की तादाद में पढ़े जाते हैं।

रूस में पुस्तकें पढ़ने का शौक़ केवल नगर-निवा-सियों ही तक सीमित नहीं है। प्रत्येक रूस-निवासी तक पुस्तकों की पहुँच है, वह चाहे गाँव में रहता हो या शहर में। गाँव-गाँव में पुस्तकालयों का प्रबन्ध है। जहाँ स्थायी पुस्तकालयों का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ गश्ती पुस्तकालयों के द्वारा नित नवीन पुस्तकें पहुँचाने का प्रबन्ध है। ऐसे पुस्तकालयों की संख्या ४०,००० से भी अधिक है। इन पुस्तकालयों की बदौलत रूस के गाँव-गाँव और गाँव के प्रत्येक झोंपड़े तक पुस्तकों और सामयिक साहित्य की पहुँच हो जाती है। पुस्तकों और सामयिक साहित्य के इस ज़बरदस्त प्रचार से लोगों की ज्ञान-पिपासा बहुत जाग्रत् हो गई है। इसका पुस्तक-व्यवसाय पर भी बहुत अच्छा असर पड़ा है। एक-एक पुस्तक की लाखों प्रतियाँ खप जाती हैं। प्रति वर्ष हज़ारों की तादाद में नई पुस्तकें प्रकाशित होती हैं और फिर भी नित नवीन पुस्तकों की माँग बराबर बनी रहती है। इस ज़बरदस्त माँग की बदौलत रूसी लेखकों के भाग्य जाग उठे हैं और उनमें से बहुतों की आय का प्रमुख साधन पुस्तक-लेखन हो गया है। बाज़-बाज़ तो पुस्तकों की रायल्टी भर से अच्छी ख़ासी सम्पत्ति पैदा कर लेते हैं। इस वर्ष अर्थात् १९३७ में रूस की सरकारी साहित्यिक संस्था ने



विभिन्न विषयों की, नवीन और प्राचीन कवियों और ग्रन्थकारों की पुस्तकों की क़रीब-क़रीब ३ करोड़ प्रतियाँ प्रकाशित करने की घोषणा की है। रूस के राष्ट्रीय कवि रस्किन की रचनाओं के संग्रह के कई सुलभ संस्करण प्रकाशित किये जा रहे हैं। एक ग्रन्थ की २ लाख प्रतियाँ तो मामूली-सी बात है।

हिन्दीवाले क्या करें ?

रूस, जर्मनी, इँगलैंड और अमेरिका प्रभृति देशों के पुस्तक-व्यवसाय की स्थिति को हिन्दी-पुस्तक-व्यवसाय की स्थिति से तुलना करने पर ज़मीन-आसमान का अन्तर देख पड़ता है। यहाँ पुस्तकें लिखना आसान है, उन्हें प्रकाशित करना कठिन। प्रकाशित कर लेना भी आसान है, परन्तु उन्हें बेच लेना बहुत ही कठिन। हिन्दी-पुस्तकों की माँग, हिन्दी-भाषा-भाषी ज़बरदस्त जन-समुदाय को देखते हुए नहीं के बराबर है। ऐसा मालूम होता है कि हिन्दी पढ़े-लिखे लोगों में हिन्दी-पुस्तकें पढ़ने का शौक़ है ही नहीं। वाचन-अभिरुचि का ज़बरदस्त अभाव है। इस अभाव की ज़िम्मेदारी अधिकतर हमारी तोतापंथी शिक्षा-पद्धति पर है। परन्तु हमारे पुस्तक-प्रकाशक भी इसके लिए कुछ कम ज़िम्मेदार नहीं हैं। यह ठीक है कि हिन्दी-भाषा-भाषी जनता रूस, जर्मनी, इँगलैंड और अमेरिका-निवासियों की तुलना में बहुत ग़रीब और कम पढ़ी-लिखी है। पढ़े-लिखे लोगों में पुस्तकों का यथोचित प्रचार न होने का एक कारण जनता की ग़रीबी भी है। परन्तु जो सम्पन्न भी हैं, वे भी तो ख़रीदकर पुस्तकें नहीं पढ़ना चाहते और न प्रकाशकों की ओर से उन्हें पुस्तकें ख़रीदने के लिए प्रोत्साहित ही किया जाता है। पुस्तकों के प्रचार के लिए जैसी कोशिश होनी चाहिए, नहीं होती। यह जानते हुए भी कि पुस्तकों की माँग नहीं है, माँग पैदा करने की कोशिश नहीं की जाती।

माँग पैदा करें

पुस्तक-प्रकाशन भी एक व्यवसाय है। एक समय था, जब व्यवसायी माँग के अनुकूल वस्तुओं का उत्पादन किया करते थे और अब भी बहुत-से व्यवसायी ऐसा करते हैं। परन्तु अब व्यावसायिक जगत् में एक ज़बरदस्त परिवर्त्तन हो चुका है। अब व्यवसायी अपना माल तैयार करके उसे बाज़ार में रखकर उसकी माँग पैदा करते हैं। अब केवल माल पैदा करने या ज़रूरत के माफ़िक माल तैयार करने से काम नहीं चलता। अब तो अधिक से अधिक माल तैयार करके—जिसमें उसे सस्ते से सस्ता बेचा जा सके—उसके लिए बाज़ार में माँग पैदा करना बहुत ज़रूरी हो गया है। हिन्दी-पुस्तक-प्रकाशकों ने अभी तक इस माँग को पैदा करने और मौजूदा माँग को बढ़ाने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

वाचन-अभिरुचि

पुस्तकों की माँग बढ़ाने के लिए सबसे ज़रूरी बात है सर्वसाधारण में वाचन-अभिरुचि, पढ़ने का शौक़ पैदा करना। वाचन-अभिरुचि उत्पन्न करने में पुस्तकालयों से अच्छी सहायता मिल सकती है। यथासम्भव प्रत्येक गाँव और क़स्बे में पुस्तकालय स्थापित होने चाहिए। बड़े शहरों के तो मोहल्ले-मोहल्ले पुस्तकालय होना ज़रूरी है। ग्रामीण और क़सबाती स्कूल में पुस्तकालय का प्रबन्ध किया जाय। ग्रामीणों के अक्षर-ज्ञान को स्थायी बनाने के लिए इन स्कूलों में पुस्तकालय होना अनिवार्य-जैसा है। इन पुस्तकालयों से केवल पुस्तकों की खपत ही नहीं बढ़ेगी, वरन् इनके द्वारा घर-घर ज्ञान-दीप का प्रकाश पहुँचना सुगम हो जायगा। सर्वसाधारण में ज्ञान-प्रसार का अच्छा साधन प्रस्तुत हो जायगा। लोगों में पुस्तकें पढ़ने की अभिरुचि भी पैदा होगी। इस तरह से जिन लोगों में पुस्तकें पढ़ने का शौक़ पैदा होगा, वे ही आगे चलकर पुस्तकों के पाठक और ख़रीदार भी बन जायँगे। इँगलैंड में इन पुस्तकालयों ने पुस्तक-व्यवसाय में जो सहायता पहुँचाई है, भारत में उससे



अधिक अच्छा परिणाम होने की आशा की जा सकती है।

साहित्य का प्रचार

पुस्तकालयों की स्थापना के साथ ही, पुस्तकों तक और पुस्तकालयों के द्वारा जनसाधारण तक सत्साहित्य पहुँचाने के भी प्रयत्न किये जायँ। इस कार्य के लिए जर्मनी के सदृश पुस्तक-गोष्ठियाँ, समाज और पुस्तक-क्लब-जैसी संस्थाएँ स्थापित की जावें। ये संस्थाएँ विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों को पुस्तकों का आलोचक नियुक्त करें और उनकी सहायता से पुस्तकालयों, जनसाधारण, महिलाओं, बालकों, किसानों, मज़ूरों तथा अन्य पाठक-श्रेणियों की उपयुक्त पुस्तक-सूचियाँ प्रकाशित करें। इन पुस्तकों की बिक्री के प्रयत्न करें। इस बात की कोशिश करें कि इन संस्थाओं के सदस्य साल में एक निश्चित रक़म की पुस्तकें अनिवार्य रूप से ख़रीदें। सामयिक साहित्य की आलोचना और उसके प्रकाशित होने की सूचना को जनसाधारण तक पहुँचाना भी इन संस्थाओं का उद्देश्य रक्खा जाय। नवप्रकाशित साहित्य की सूचना का पाठकों तक पहुँचना अत्यावश्यक है। जब तक ख़रीदारों को माल की तैयारी की ख़बर न मिलेगी, वे उसे कैसे ख़रीद सकेंगे। आम तौर पर साधारण स्थिति के शहरों तक में हिन्दी-पुस्तकों की बिक्री का कोई प्रबंध नहीं है। पुस्तकों की अच्छी दूकानों के अभाव में जो थोड़े-बहुत लोग पुस्तकें ख़रीदना चाहते हैं, उन्हें अपनी रुचि की पुस्तकें ख़रीदने में दिक़्क़त होती है। पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने के लिए शहरों में अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं का होना बहुत ज़रूरी है। डाकख़र्च के बढ़ जाने के कारण स्थान-स्थान पर इस तरह की दूकानों का होना बहुत ज़रूरी है। डाकमहसूल इतना बढ़ गया है कि आम तौर पर लोगों की डाक-द्वारा से पुस्तकें मँगाने की हिम्मत तक नहीं होती। ऐसी स्थिति का निम्न कोटि के साहित्य को बेचनेवाले पुस्तक-प्रकाशक और उनके एजेन्ट ख़ूब लाभ उठाते हैं। ये लोग पुस्तकों की क़ीमतें बहुत बढ़ाकर रखते हैं और उन्हें ख़रीदनेवालों को ३०-४० और कभी-कभी तो ६० फ़ी सदी तक कमीशन देने को तैयार रहते हैं। इसमें एजेन्टों को ख़ूब फ़ायदा हो जाता है और वे घूम-घूमकर इन पुस्तकों को बेचते फिरते हैं। पुस्तकों के ख़रीदार पुस्तकें ख़रीदने के दूसरे साधनों के अभाव में, तथा नवप्रकाशित साहित्य से ठीक-ठीक परिचित न होने के कारण उनके सामने जो कुछ आ जाता है, उसे ख़रीद लेते हैं। इससे केवल निम्न कोटि की पुस्तकों का प्रचार बढ़ जाता है और सत्साहित्य ऐसे ही रह जाता है। सत्साहित्य और उच्च कोटि के प्रकाशकों को भी या तो अपने गश्ती एजेन्ट नियुक्त करना चाहिए या ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए, जिसमें उनकी पुस्तकें लोग अपने ही नगर में आसानी से ख़रीद सकें। हिन्दी-प्रकाशकों की नीति लेखकों और पाठकों के शोषण की रही है। इस नीति में आमूल परिवर्त्तन होने की आवश्यकता है।

सस्ती पुस्तकें

पुस्तकों के प्रचार और वाचन-अभिरुचि उत्पन्न कराने के लिए सस्ती पुस्तकें प्रकाशित होना भी ज़रूरी है। उच्च कोटि के लेखकों की रचनाओं के सस्ते, परन्तु प्रामाणिक और सुसम्पादित संस्करण प्रकाशित किये जायँ। बम्बई के हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर के अध्यक्ष श्रीयुत नाथूराम प्रेमी ने सुलभ साहित्य-माला के प्रकाशन द्वारा ऐसा ही आयोजन किया है, परन्तु हिन्दी-भाषा-भाषी विशाल जनसमुदाय के लिए इस प्रकार की बीसियों सुलभ साहित्य-मालाओं की आवश्यकता है। इसके साथ ही पुस्तकों की महत्ता और उनकी उपयोगिता में विश्वास रखनेवाले हम पढ़े-लिखे व्यक्तियों को अपने इष्टमित्रों और सम्बन्धियों को पुस्तकें उपहार में देने का भी चलन चलाना चाहिए।

सती-प्रथा

मास्टर पारसचंद

भूमिका

संत और सती, पापियों के उपद्रव से खिन्न रसा को, रसातल जाने से रोके हुए हैं। इसका अर्थ यह कि नररूप के जीवन में संत सत्ता दिये हुए हैं और नारीरूप के जीवन में सती सत्ता दिये हुए हैं। जिस प्रकार नर की सफलता संत (सत्गुरु) पर निर्भर है, उसी प्रकार नारी की सफलता पतिव्रत (पति) पर निर्भर है। मनुष्य, गुरु के C/o होकर परमात्मा के दरबार में प्रवेश करता है और स्त्री पति के C/o होकर परमात्मा के महल में प्रवेश करती है। विना सतगुरु के कोई भी आदमी कल्याण नहीं पा सकता, और, विना पतिव्रत के कोई भी स्त्री त्राण नहीं पा सकती। यही प्राकृतिक नियम है। संत उस मनुष्य को कहते हैं, जिसने त्याग और ब्रह्मचर्य की सहायता से योग की कमाई कर सिद्धि प्राप्त की हो। सती उस स्त्री को कहते हैं, जिसने त्याग और पतिव्रत की सहायता से भोग की कमाई कर सिद्धि प्राप्त की हो। शास्त्रों ने कहा है कि परमात्मा के महल के लिए योग और भोग दोनों सड़कें गई हैं, परन्तु शर्त यह है कि चाहे योग हो या भोग हो—व्यभिचार-बुद्धि किसी में नहीं रहनी चाहिए। योगशास्त्र योग द्वारा समाधि दिखलाता है और कोकशास्त्र भोग द्वारा समाधि दिखलाता है। योग के विना भोग नहीं हो सकता और भोग के विना योग नहीं हो सकता। दोनों में दोनों अन्तर्भूत हैं। फलतः चाहे जिस सड़क से चला जाय, नियम-बद्धता का विचार रखना आवश्यक है।

सती होने के कारण

१—पति के साथ हार्दिक, निःस्वार्थ और अटल प्रेम। अपने पति का संग कभी न छोड़ने की उत्कट अभिलाषा।

२—वेद, पुराण, स्मृति और शास्त्र द्वारा गाई गई सती की महिमा।

३—संसार में सती-प्रथा का अति प्राचीन काल से जारी रहना।

४—थोड़ी देर चिता का कष्ट भोगकर अक्षय सुख के प्राप्ति की लालसा।

५—विधवा होकर ब्रह्मचर्य के कठिन व्रत के पालन का भय।

६—संतान द्वारा यथेष्ट आदर न पाने की आशंका।

७—विधवा-जीवन के प्रति हिन्दू-समाज की निष्ठुरता का सोच।

८—जगन्मान्य सतियों में अपनी गणना कराने की स्पृहा।

९—जीवन को क्षणभंगुर सुनकर जीवनममता की हीनता।



सती-परीक्षा

मोह के कारण असती भी सती होने की हठ करने लगी थी। इस कारण सती की परीक्षा लेना प्रचलित किया गया। जो स्त्री सती होने की बात कहती है, उसका हाथ दीपक की ज्योति से लगा दिया जाता है। अथवा हथेली पर आग रख दी जाती है। यदि जलन की भीति से स्त्री को भय मालूम दिया तो उसे सती होने की आज्ञा नहीं दी जाती।

सती होने का स्थान

नदी या तालाब के किनारे सती होने का स्थान चुना जाता है। बाग़ीचा और पहाड़ी को भी सती होने का उपयुक्त स्थल माना जाता है। कहीं-कहीं घर के आँगन को सती होने का उचित स्थान माना जाता है।

सती शोकातुर नहीं होती

जब पति मर जाता है, तब सती शोक नहीं मनाती। न तो वह रोती है और न छाती पीटती है। सती समझती है कि वह पृथ्वी की ससुराल त्यागकर, पति के साथ, स्वर्ग की ससुराल में जा रही है। ससुराल जाते समय स्त्री जैसा शृंगार करती है, सती भी पति के मरने पर वैसा ही शृंगार करती है। स्नान, नवीन सारी, समस्त आभूषण, महावर, बेंदी, सिन्दूर, बिछिया और चूड़ी द्वारा सती शृंगार करती है। पति के मरने पर भी सती अपने को विधवा नहीं समझती। वह अपने को चिरसधवा मानती है। गीता के अनुसार जो जैसा समझता है, उसके लिए वैसा है भी। सती को शोक न करने की आज्ञा शास्त्रों में भी है।

आनन्दोत्सव के साथ सती

सती केवल शोक ही नहीं मनाती, बरन् उत्सव मनाती है। मृदंग, शंख, घंटा, तुरही, झाँझ और बाँसुरी आदि बाजों की व्यवस्था की जाती है। अन्यान्य स्त्रियाँ मंगलाचार गाती हुई सती के पीछे-पीछे चलती हैं। सती के हाथ में थाली होती है। उस थाली में मेवा, फूल, पैसे, बताशे और जलता हुआ दीपक रक्खा होता है। कभी-कभी सती चुपचाप चलती है और कभी-कभी गाने लगती है। पूर्वीय द्वीपसमूह की सती नाचती हुई चलती है। पबलिक भी उस उत्सव में योग देती है। फूल, बताशे और पैसे फेंके जाते हैं। 'सती माता की जय' के नारे लगाये जाते हैं। यह सब शास्त्रानुसार किया जाता है।

शास्त्राज्ञा

ऋग्वेद के दशम मण्डल के अष्टादश सूक्त का सप्तम सूत्र कहता है—

> "इमा नारीरविधवाः सुपत्नीं
> रञ्जनेन सर्पिषा सस्पृशन्ताम्।
> अनश्रयो अनमीवाः सुशेवा
> आरोहन्तु जनयो योनिमग्ने॥"

अर्थात्—जो स्त्रियाँ वैधव्य दुख को भोगें, इसकी अपेक्षा, घृत और अंजन से अनुलिप्त पति को प्राप्त होकर, उत्तम रत्न धारण करके, अग्नि में आश्रय ग्रहण करें।

तैत्तिरीय आरण्यक के षष्ठ प्रपाठक के प्रथम अनुवाद में लिखा है—

> "इयं नारी पतिलोकं वृणाना
> निपद्यते उपत्वा मर्त्य प्रेतम्।
> विश्वं पुराणमनुपालयन्ती
> तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि॥"

अर्थात्—हे मरणशील मानव, जो नारी तुम्हारी भार्या है, वह स्त्री, तुम मरकर जिस लोक को गये हो, उसी पतिलोक को, तुझ प्रेत पति को पाने की अभिलाषिणी होकर, अनुगामिनी हुई है। वह भार्या अनादि अनन्त विश्व में समस्त स्त्री-धर्म का सम्यक् रीति से पालन करनेवाली है। पतिव्रत, स्त्री का पति-सहवास परमधर्म है, अतएव उस धर्मपत्नी को तुम अपने



प्राप्त लोक में वास करने की अनुमति दो और पूर्वकालीन पुत्रों को धन प्रदान करो।

ब्रह्मपुराण की आज्ञा है—

"देशान्तरमृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम्।
निधायोरसि संशुद्धा प्रविशेज्जातवेदसम्॥"

अर्थात्—यदि पति की मृत्यु विदेश में हो जावे, तो साध्वी स्त्री को उचित है कि पति की दोनों खड़ाऊँ के साथ सती हो जावे।

सती-भेद

मृतक पति के साथ चिता में जलने को सहमरण कहते हैं। यदि पति की मृत्यु विदेश में हुई हो, तो उसके सिर, खड़ाऊँ, वस्त्र या अँगूठी आदि किसी भी पति-वस्तु के साथ सती हो जाना—अनुमरण कहलाता है। पति की निश्चित मृत्यु से अवगत होकर यदि कोई स्त्री, पति के मरने के पूर्व अपने प्राण त्याग देती है, तो उसको सुहागिनी कहते हैं। जो स्त्री पति के मरने के बाद प्राण त्यागती है, उसको दोहागनी कहते हैं। जो स्त्री पति के साथ-साथ मर जाती है, उसको 'सती-शिरोमणि' कहा जाता है। यही सतियों के भेद हैं।

चिताभ्रष्टा

जो स्त्री मोह या यश के कारण, पूर्ण पतिव्रत न होने पर भी, सहमरण के लिए तैयारी करती है, वह चिता की ज्वाला से भयभीत होकर, चिता पर से उठकर भाग जाती है। उसको 'चिताभ्रष्टा' कहा जाता है। चिताभ्रष्टा एक प्राजापत्य व्रत करके शुद्ध होती थी।

'शुद्धितत्त्वम्' में चिताभ्रष्टा का प्रायश्चित्त लिखा है—

"चितिभ्रष्टा तु या नारी मोहाद्विचलिता भवेत्।
प्राजापत्येन शुद्ध्येत्तु तस्माद्वैपापकर्मणः॥
इत्यनेन चिताभ्रष्टायाः प्राजापत्यव्रतं करणीयम्।
तदशक्तौ धेनुरेका देया तत्राप्यशक्तौ त्रिकार्षापणी देया। दक्षिणा च यथाशक्ति इति।"

तीन दिन दिन में, तीन दिन रात में, तीन दिन बिना माँगे, और तीन दिन कुछ भी न खावे। इस प्रकार बारह दिन के व्रत को प्राजापत्य व्रत कहते हैं। यदि कोई चिताभ्रष्टा उक्त कठिन व्रत के पालन करने में असमर्थ हो तो उसको एक गाय दान देना चाहिए।

सती होने की विधि

सती होनेवाली स्त्री स्नान कर नवीन सारी या रेशमी सारी पहनती है। मस्तक में चंदन का लेप करती है और फूलों की माला पहनती है। कुछ दान भी करती है। पुत्र या पुरोहित द्वारा चिता में आग लगाई जाती है। सती स्त्री उत्तर की ओर मुख करके और हाथ में कुश लेकर खड़ी होती है। पुरोहित, सती के हाथ में तिल और जौ देकर 'हरिः ओ३म् तत्सत्' का मंत्र उच्चारण कराता है। इसके बाद भगवान् विष्णु और महासती लक्ष्मी-जी को साक्षी देकर 'नमोऽद्य अमुक मासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक गोत्रस्य अमुक देवी' इत्यादि श्लोक द्वारा सहमरण का संकल्प कराया जाता है। तदन्तर पुरोहित के द्वारा सती इस प्रकार से प्रार्थना करती है—

"मैं सती होना चाहती हूँ। हे सूर्यनारायण, हे आठो दिक्पाल, हे चंद्रदेव, हे पवनदेव! आप साक्षी हैं कि मैं सदा पतिव्रत रही हूँ। हे पृथ्वी माता! तुम व्यापक हो—अपनी इस पुत्री को सती होने की आज्ञा सहर्ष प्रदान करो। हे आकाश देव! तुम सद्गुरुरूप से मुझे सती होने का आदेश दो! हे अग्निदेव! यदि मैं काय-वचन-मन से पति की सेविका रही होऊँ, तो मेरे लिए शूल की जगह फूल बन जाओ!"

इसके बाद सती तीन बार चिता की परिक्रमा करती है। सूर्यनारायण को जल चढ़ाकर वह बजरंगबली का नाम लेती हुई चिता पर चढ़ जाती है। पति के सिर को गोद में रखकर, पूर्व की ओर मुख करके, सती बैठती है। पुरोहित लोग गायत्री का जप करने लगते हैं। प्रार्थना करने के पूर्व ही पुत्र या पुरोहित द्वारा चिता में आग



...दी जाती है। जिस समय सती चिता पर ...ती है, उस समय अग्नि प्रचण्ड रूप धारण कर ...ती है। चिता पर बैठने के बाद सती अपने ... उतारकर फेंक देती है। वे गहने सती की ...नुसार पुरोहित या पुत्र या आधे-आधे दोनों ...प्त होते हैं। इसके बाद सती किसी को ... और किसी को वरदान देती है। उस ...का वर अथवा शाप आज तक अन्यथा होता ... देखा गया। सती होने का यही विधान है।

सती होने की सामग्री

(१) घी, (२) कफ़न, (३) फूल, (४) ...ती, (५) लकड़ी, (६) चंदन, (७) नई ...ी, (८) कपूर, (९) भंग, (१०) हल्दी, (११) तिल, (१२) चावल, (१३) नारियल, (१४) पुरोहित की दक्षिणा, (१५) नाई की ...णा और (१६) धोबी की दक्षिणा। सामग्री ...परिमाण अपनी-अपनी हैसियत पर रक्खा ...ता है।

सती और सरकार

सन् १७६० ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के ...र जनरल सर मार्कुइस कार्नवालिस ने अपने ...रों के नाम यह फ़रमान जारी किया था—

नक़ल फ़रमान

"आप साहबान के अधीन जिस सूबे में सती-... की कोशिश की जाय तो आप उससे खिंचे ... क्योंकि सती-दाह ने सती-प्रथा का जामा ... लिया है। लोग नामवरी के लिए असती को ...ज़बर्दस्ती सती कराने की कोशिश किया करते हैं। ... मतलब यह है कि जो सच्ची सती हो, उसके ...क होकर रुकावट न पहुँचाई जाय।"

...के लिए, सरकारी, प्रथम और अमिट हुक्म ...है।

सन् १८१७ ई० में सर मार्कुइस विलज़िली ...र जनरल होकर भारत में आये। उन्होंने सती-...को आत्महत्या समझा। आपने एक ऐसा क़ानून बनाना चाहा, जिससे सतीप्रथा का नाम-निशान मिट जावे। वाइसराय ने भारतवर्ष के समस्त जजों से अपने मस्विदे पर राय माँगी। परन्तु न्याय-प्रिय जजों ने वाइसराय के मत का खंडन करते हुए लिखा—

जजों की राय

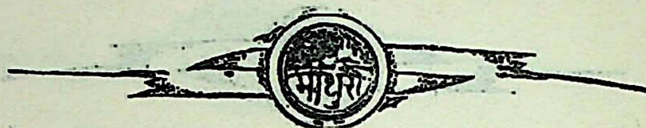
"अगर गवर्नमेन्ट की ओर से संत और सती पर कड़ी निगाह रक्खी जावेगी, तो सरकार की जड़ हिल जावेगी। सतीप्रथा को एकदम बन्द कर देने से, नव स्थापित अंगरेज़ी राज्य को, अनेकानेक राजनीतिक असुविधाएँ भोगनी पड़ेंगी। सती होनेवाली स्त्री के प्रति यह नज़र रखना ज़रूरी है कि वह अपनी इच्छा से सती हो रही है या दबाव से। यह भी ख़बर रखना चाहिए कि सती को कोई ऐसी मादक वस्तु तो नहीं खिला दी गई, जिससे उसकी विचारशक्ति लुप्त हो गई हो। चूँकि सती होना आत्महत्या कभी नहीं है, इसलिए आप ऐसा क़ानून न बनावें।"

सन् १८१३ ई० में वाइसराय मिन्टो ने एक फ़रमान जारी किया। आपने समस्त हाकिमों को यह सूचना दी—

"सरकारी आला अफ़सर की बिना मंज़ूरी कोई सती-दाह न होने पावे। परन्तु, सती होने का निवेदन-पत्र पाकर सती होने की मंज़ूरी दी जावे। पुलिस और कलेक्टर पर इस काम की जवाबदेही रहेगी। सती होने के स्थान पर पुलिस और कलेक्टर को जाकर यह जाँच करनी चाहिए कि वह स्त्री अपनी इच्छा से सती होना चाहती है या दबाव से। किसी मादक पदार्थ के द्वारा उसको बहकाया तो नहीं गया। दबाव और मादक पदार्थ देनेवालों का चालान होना चाहिए। सच्ची सती को कोई बाधा न पहुँचाई जावे।"

विलायत में सती-प्रथा

यह समझना कि केवल भारतवर्ष में सती-प्रथा है, भूल है। यहाँ पर अन्य देशों की सतियों की कुछ चर्चा की जावेगी। सन् १८५७ ई० में ग़दर



हुआ था। दिल्ली के कमिश्नर मि० फ्रेज़र मारे गये। उनकी स्त्री श्रीमती फ्रेज़र सती हो गई थीं, जो ख़ास लन्दन शहर की लड़की थी। सन् १९२० ई० में जापान के सम्राट् मत्सूहितो का प्राणान्त हो गया था। सेनापति नोगी ने, अपने प्रभु से शीघ्र साक्षात्कार करने की अभिलाषा से, अपने हाथ से अपना सिर काट डाला था। यह वही सेनापति था, जिसने पोर्ट आर्थर जीता था। नोगी के मरण का समाचार सुनकर उसकी सती स्त्री ने सहगमन किया था। पूर्वीय द्वीपसमूह में बाली और लाम्बक-नामक दो टापू भी हैं। अन्योयन-नामक एक नगर में आस्ति-नामक एक व्यक्ति रहता था। उसके मरने पर उसकी रूपवती स्त्री ने सहमरण किया था। सन् १६३२ ई० में चीन-सम्राट् 'छू न त छू' की मृत्यु हुई थी। सम्राट् की आयु उस समय केवल २४ साल की थी। सौ अनुचरों के साथ सम्राज्ञी ने सहमरण किया था। सन् १७५५ ई० में 'फू फू फू'-नामक एक चीनी व्यापारी मर गया। उसकी परम रूपवती स्त्री पालकी में बैठकर चिता के पास गई। उस दिन जनवरी की १६वीं तारीख़ थी। मसान में दो मंच बनाये गये थे। एक मंच कुछ नीचा था और उस पर एक मेज़ रक्खी गई थी। दूसरा मंच ऊँचा था, जिसमें दो खूँटियाँ बँधी थीं और उन पर एक बाँस रक्खा हुआ था। दोनों मंचों पर काले रंग का चन्दोवा बँधा था। चीनी मजिस्ट्रेट भी उपस्थित था। सती ने ऐसा शृंगार किया था, मानो उसका विवाह होने जा रहा है। छोटे मंच को घेरकर सती के आत्मीय बैठे थे। सती ने वहाँ पर प्रसन्नता के साथ भोजन किया। तदन्तर सबसे बिदा माँगी और बड़े मंच पर चढ़ गई। बाँस में एक रेशमी रस्सी बाँधी गई और सती ने फाँसी लगाकर प्राण त्याग किये। विदेशों में सती होने के भेद चाहे जुदा हों, पर उसे भी सहमरण कहा जायगा। फलतः सहमरण या अनुगमन देश, काल, पात्र का विचार नहीं रखता। वह पृथ्वी के सब देशों में और सब जातियों में, किसी न किसी रूप से, विद्यमान है और विद्यमान रहेगा। सिथियन्स जाति में और आर्वीपेलागो जाति में प्रतिवर्ष सहमरण हुआ करता है। फलतः सती-प्रथा व्यापक है और सृष्टि के प्रथम प्रभाव से जारी है।

सतियों का इतिहास

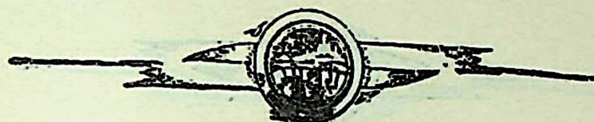
यदि सतियों का विस्तृत इतिहास लिखा जाय तो एक बड़ी भारी पुस्तक बन जावे। संतों के इतिहास की अनेकों पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। परन्तु सतियों के इतिहास की कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। अति संक्षेप में, कुछ सतियों का इतिहास, यहाँ पर दिया जाता है।

सतियों के इतिहास में सबसे पहले महारानी जानकीजी का नाम याद आता है। भगवान् रामचन्द्र का समय पूरा होते देख, जानकीजी ने 'सोहागिनी सती' का कार्य किया। पति के पूर्व ही अन्तर्द्धान हो गईं। यों तो सब स्त्रियाँ पृथ्वी माता की पुत्रियाँ हैं, परन्तु जानकीजी को पृथ्वी माता ने साक्षात् प्रकट होकर हृदय से लगाया था। जानकीजी के पद के लिए रामायण गाती है—

"जासु अंश ते सुनो भवानी;
उपजें उमा रमा ब्रह्मानी।"

महा धर्मवती दक्ष-सुता को प्रातःस्मरणीय माना जाता है। आपका नाम 'सती' था। आप पति के अपमान पर 'सोहागिनी सती' हो गई थीं। आपने पुनः पार्वती का अवतार धारण किया और आपने पुनः शंकरजी के साथ विवाह किया। आपकी प्रतिष्ठा में रामायण गाती है—

'सुन्दर सहज सुशील सयानी;
नाम उमा अम्बिका भवानी।
सदा अचल इनकर अहिवाता;
इनते यश पावैं पितु माता।
हैं ये पूज्य सकल जग माहीं;
पद सेवत कछु दुर्लभ नाहीं।



इनकर नाम सुमिरि संसारा ;
तिया चढ़ें पतिव्रत असि धारा।'

महासती श्रीराधारानीजी सर्वथा वन्दनीय हैं। आपने जीवन भर ब्रह्मचर्य रखकर अपने पति कृष्णजी की मानसी पूजा की और उनके गोलोक-गमन के साथ ही अनुगमन किया।

महारूपवती श्रीलक्ष्मीजी की गणना सतियों में की जाती है। आपने अपने पति विष्णुजी की सेवा करते, उनके चौबीसों अवतार में, गुप्त रहकर की है। सृष्टि के परिवर्त्तन में आपका गहरा हाथ रहा है। आपने 'अखण्ड सोहागिनी' का पद प्राप्त किया है। आप हर समय पति के साथ रहती हैं।

श्रीअनसूयाजी का नाम सतियों के इतिहास में है। आपने अपने सतीत्व के बल से, अपने स्वामी को आराम पहुँचाने के लिए, मन्दाकिनी गंगा प्रकट की थी, जो आज तक चित्रकूट के सौन्दर्य में चार चाँद डाले हुए है। आपने ही अपने पतिव्रत के बल से ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को शिशु बनाकर अपना स्तनपान कराया था। तपस्वी अनुसूयाजी ने स्त्री-जाति को शिक्षा दी थी कि पतिव्रत के सामने विधि-विधाता भी नतमस्तक हैं। आपने श्रीजानकीजी से कहा था—

अमित दान भर्ता बैदेही ;
अधम सो नारि सेव ना तेही।
वृद्ध रोगवश जड़ धनहीना ;
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किय अपमाना ;
नारि पाय यमघर दुख नाना।

महारानी कौशल्या देवी की गणना सतियों में की जाती है। वाल्मीकीय रामायण ६६ सर्ग में ९-१२ श्लोक का मनन कीजिए। रामायण में लिखा है—"प्रभाहीन सूर्य के समान राजा दशरथ का सिर अपनी गोद में रखकर, शोकमग्ना कौशल्या ने नेत्रों से आँसुओं की वर्षा करती हुई कहने लगी—अरी दुःशीला कैकेयी! तेरा मनोरथ पूरा हो गया। अब तू निष्कंटक राज्य कर। राम तो मुझे पहले ही त्याग गये, अब स्वामी ने भी त्याग दिया। सार्थहीन पथिक की तरह मैं अपना जीवन धारण नहीं करना चाहती। मैं पतिव्रत-धर्म के अनुसार सती होऊँगी।" परन्तु गुरु वशिष्ठजी की आज्ञानुसार आपने सहमरण नहीं किया था।

तपस्विनी वेदवती का नाम अत्यन्त पवित्र है। आपने विष्णु भगवान् को पति बनाने के लिए घोर तप किया था। राक्षसराज रावण ने एक दिन वहाँ आकर वेदवती से अपने साथ विवाह करने को कहा। वेदवती ने जलती हुई अग्नि में प्रवेश किया और विष्णु के नाम पर सती हो गईं।

विष्णुपुराण में लिखा है कि राजा हरिश्चन्द्र के वंश में बाहु-नामक एक राजा हुए थे। उनके मरने पर उनकी रानी सती हुई थी।

स्वायम्भुव मनु के वंशज महाराज पृथु के नामानुसार पृथ्वी के नाम की उत्पत्ति हुई। महा पराक्रमी पृथु के मरने पर उनकी रानी अर्चिदेवी सती हुई थीं।

पाण्डु राजा के मरने पर उनकी एक रानी माद्री सती हुई थी।

जब वसुदेवजी ने शरीर त्याग किया और अर्जुन ने उनकी चिता बनाई थी, तब वसुदेवजी की चारों स्त्रियाँ देवकी, भद्रा, रोहिणी और मदीरा सती हो गई थीं।

सेनापति और युवराज मेघनाद के मरने पर उसकी स्त्री सुलोचना सती हो गई थी। उसने पति के सिर को हँसाया था।

दधिबल द्वारा राजा नरान्तक के मारे जाने पर उसकी बिन्दुमती-नामक रानी सती हुई थी। इस प्रकार पुराणों में हज़ारों सतियों का नाम लिखा है। ईसा से ३१४ वर्ष पूर्व महावीर अलेकज़ेंडर ने रावी के किनारे अनेक स्त्रियों को सती होते देखा था। तत्कालीन भारतीय नायक सिधियास को अलेकज़ेंडर ने युद्ध में मार डाला था। उसकी रानी सती हुई थी। यूनान के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक

प्रेम के दीवाने

श्रीचन्द्रप्रकाश वर्म्मा 'चन्द्र'

(१)

अरे प्रेम के दीवानों की है इतनी पहचान,
आँखों में मस्ती, मस्ती में मिटने का अरमान;
प्राणों में पागलपन, स्वर में है पंचम की तान,
एक साध जीवन की, वह—नव शाश्वत मधु का पान;
कभी ये झंझा के उत्पात,
कभी ये सजल बने ज्यों प्रात;
कभी ये अभिशापित—कृश गात।

(२)

अरे प्रेम के दीवानों का छोटा-सा संसार,
जिसमें दो क्षण हास और फिर है चिर हाहाकार;
भोले शिशु से मचल-मचल पड़ते हैं ये प्रति बार,
रो पड़ते हैं फूट-फूटकर कठिन प्यार की मार;
बावलों का जीवन अभिशाप,
और साँसें ही हैं सन्ताप;
बोलना इनका, बने प्रलाप।

(३)

अरे प्रेम के दीवानों का है विचित्र इतिहास,
सातों सागर सूख चले पर बुझी न इनकी प्यास;
निशि के अंचल में जागा करते इनके उच्छ्वास,
सदा तड़पते देखा इनको पीड़ाओं के पास;
न इनकी आशाओं का अन्त,
क्षणिक, छलना का सुखद वसंत;
और पतझड़ जीवन पर्यन्त।

(४)

अरे प्रेम के दीवानों की शय्या पर हैं शूल,
इनके कंकालों पर उड़ती असफलता की धूल;
एक खेल था—मिले धूल में, ये अपनापन भूल,
पर इनकी क़ब्रें न पा सकीं आँसू-भीगे फूल;
यही है कसक—यही है आह,
निकलती जो क़ब्रों की राह;
विश्व झूठा, झूठी है चाह।

मंगला अहीर

श्रीसद्गुरुशरण अवस्थी एम्० ए०

मङ्गला अहीर मौरायें में अपरिचित न था। उसकी अहीरिन को इस बात की बड़ी चिन्ता थी कि उसके कोई संतान न थी। ग्राहकों का जमघट, बीस गइयों की सानी-पानी का प्रबन्ध, गृहस्थी की माँगों को पूरा करने की व्यवस्था, मालिकों के रुपये चुकाने का प्रयत्न इत्यादि-इत्यादि कामों में मंगला इतना फँसा रहता था कि उसे अपनी घरवाली के अभाव की कहानी सुनने का अवकाश न था। और फिर उसका विश्वास था कि पुरुष काम करने के लिए बनाये गये हैं और स्त्रियां रोने के लिए। उसने एक बार अपने कार्य-क्षेत्र की सीमा निश्चित कर ली थी। अपनी चतुष्पद और द्विपद गृहस्थी के कामों से फेनिल-मुख दौड़ना उसे तनिक भी न अखरता था। परन्तु भगवान् के कार्यक्षेत्र में टाँग भिड़ाना वह मूर्खता समझता था। अहीरिन जब बहुत घिघियाकर कहती कि हमारे हमारे बाद इन गइयों का क्या होगा, तो मंगला का केवल एक उत्तर था, "भगवान् जो करेगा सो होगा।"

मंगला के व्यस्ततम जीवन में ऐसे बहुत कम अवसर आये थे, जब कि इतनी भी बात हुई हो। अहीरिन अपना बोझा अकेले वहन करने के लिए बाध्य थी।

अहीरिन आयु का तीसवाँ वर्ष पार कर चुकी थी। संतान के लिए वह इसलिए अधिक चिंतित थी कि उसकी बिरादरी की महिलाएँ उस पर व्यंग्य करती थीं। दूध के कुछ गाहक कभी मुँह मोड़कर कह लिया करते थे—"सबेरे-सबेरे निपक्षी का मुँह देखना पड़ा।" अहीरिन के कान इस उक्ति को अधिक सुनते थे, मंगला के बहुत कम। बच्चे का खिला हुआ मुखड़ा, उसके घुँघराले केश, उसकी उभड़ती हुई दन्तावली, उसके बैठने, घिसलने और चलने का सफल और विफल प्रयास, उसके वाणी-स्फुरण की कसमसाहट—वात्सल्य के इन सौन्दर्य-चित्रों के लिए अहीरिन अहीरिन ही थी। काले-काले मोटे पेटवाले बच्चों के मोटे ओठों पर झागती, भागती और गिरती हुई बाफ तथा लीवड़ से आक्रान्त पीले-पीले नेत्र अहीरिन के बहुत देखे थे, और अपनी संतान को इससे अधिक कल्पना करना असम्भव था।

अहीरिन के लिए सन्तान-प्राप्ति के लिए उतावलेपन का कारण सन्तान-सुख की उत्कट इच्छा न थी, वरन् सन्तानवालों के समक्ष अपनी हेयता थी। दूसरों का कोंचना उसके लिए असह्य था।

एक दिन बैजू महाराज के यहाँ अहीरिन दूध के रुपये लेने गई। बैजू के टेंट से पैसे उसी कठिनता से निकलते थे, जैसे कड़ाही से जले दूध की खुरचन। अहीरिन के पायलागन तक का तो उन्होंने



अच्छा उत्तर दिया। परन्तु जब उसने पैसों के लिए कहा—"मालिक, अब ख़र्चा मिलना चाहिए", तो बैजू महाराज कड़क पड़े।

"सबेरे-सबेरे निपत्ती आ गई। अभागिन का मुँह देख लिया, देखें आज क्या होता है। भगवान्, भगवान्!" अहीरिन चुप हो गई। वचनों ने उसे आहत तो बहुत किया, परन्तु ज्योतिषी ब्राह्मण के मुँह भी वह कैसे लगती? एक जन्म तो बिगड़ा ही, दूसरा जन्म बिगाड़ने का उसमें साहस न था। थोड़ा सँभलकर वह बैजू पण्डित से कहने लगी—"महाराज, अद्-बद् बकना ठीक नहीं। पैसा देना अखरता है न?"

बैजू महाराज ताव खा गये। टेंट से रुपया फेंकते हुए बोले, "कुतिया, आज से यहाँ दिखाई मत पड़ना।"

अहीरिन सहमी हुई अपनी लाली गाय की भाँति घर चली गई। मंगला ने सब कहानी सुनकर अहीरिन पर ही लाठी तानी।

"तू चुड़ैल बैजुआ के यहाँ गई काहे बरे।" मंगला ने चिल्लाकर कहा।

गायों ने नाँद से मुँह निकाल लिया। बछड़े एक क्षण के लिए रँभाने लगे।

अहीरिन सिटपिटा गई। हाथ की चोट से ऊपर गया हुआ गेंद पृथ्वी को अपनी समझकर शान्ति के लिए टिकना चाहता था, परन्तु गिरते ही उस पर फिर ठोकर लगी। गेंद जाता कहाँ? उसे तो पृथ्वी पर ही रहना है।

दिन-रात की पान-तम्बाकूवाली बातों की भाँति यह बात भी साधारण रूप में उभरकर रह गई। मंगला के लिए अहीरिन तम्बाकू भरने लगी। घर की गड़ी हुई उखली ख़ूब समझती है कि मूसर चलने के लिए ही वह बनाई गई है।

घँघरिया पंडित मंगला के पुरोहित थे। सभी अहीर उनके यजमान थे। निश्चित समय पर वे एक-एक करके सबके यहाँ फेरी डाल आते थे। सर्दी-गर्मी के दिन घट-बढ़ जाते हैं, परन्तु इनके आने की तिथि में बहुत कम अन्तर पड़ता था। कहीं सीधा, कहीं पैसा, कहीं नाज, जो कुछ जहाँ मिलता, उसकी पोटली बनाकर पंडितजी आगे बढ़ते जाते थे। जितना ही सामान अधिक मिलता था, उतना ही पंडितजी का मन ख़ुश होता था; परन्तु उतने ही कन्धे अधिक दुखते थे।

पंडितजी का उपदेश-केन्द्र स्त्रियाँ थीं। वे एक बड़ा-लाँबा, ढीला-ढाला कुरता पहनते थे। उनके अभिधान की प्रेरणा इसी संकेत से हुई थी। घँघरिया पंडित को स्वयं अपना नाम नापसन्द न था। वे यजमानों के लिए रुई से भी अधिक अनुकूल थे। कोई कुछ भी कहे, पैसा दे दिया करे, यही उनके व्यवहार का 'ककहरा' था। उनके कुछ यजमान उन्हें कुकरिया पंडित भी कहते थे। बहुत समय तक उन्होंने एक छोटी कुतिया पाल रक्खी थी। यजमानों के यहाँ वह उनके पीछे-पीछे घूमा करती थी। यही नहीं, उनके स्वर में भी कुत्ते के पिल्ले का पतला स्वर था, जो जितना ही कर्कश था, उतना ही तीव्र। कभी बोलते समय ऐसा प्रतीत होता था, मानो छोटा पिल्ला मनुष्य की भाषा में बोल रहा है। घँघरिया पंडित की आयु ७० वर्ष की आँकी जाती थी, यद्यपि वे अपने मुँह से दो वर्ष कम १०० बताया करते थे।

लम्बाई और चौड़ाई में घँघरिया पंडित बराबर थे। केवल तीन हाथ ऊँचा उनका शरीर था। मोटे सिर पर एक मोटी पगड़ी, आधी खुली और आधी बँधी लटका करती थी। हाथ में एक मोटा सोंटा अधिक लटके हुए पेट को टिकने में कभी-कभी सहारा देता था। थोड़ा ही चलने में हफनी छूटती थी और चलते-फिरते जागते हुए उनका गला बजता था। ग्रीवा क़रीब-क़रीब थी ही नहीं। मोटे गुम्बद के ठीक ऊपर कलश रक्खा था। भस्म से बेतहाशा पुता हुआ भाल सिर को मानो जकड़े हुए था और ग्रीवा मुड़ न पाती थी। पगड़ी के बाहर लटकती हुई लम्बी चोटी पर लोगों का ध्यान बाद में जाता था, परन्तु पाँच सेर के वज़नवाले चरमराते हुए जूते



...ही देख लेते । पंडितजी को पुराण के चुटकुले ...त याद थे । अहीरिनियों पर उनका बड़ा प्रभाव ...। पंडितजी के शरीर पर वे चाहे जितना हँसें, ...उनके वचनों को वे भगवद्वाक्य समझती थीं । यजमानों के घर पहुँचते ही घेंघरिया पंडित आशीर्वाद पहले फेंक देते थे । पायलागन यदि कोई ...आ, तो बाद में कर लिया करता था । देवी वर ...वे दे देती थी । मनौती बाद में चढ़ा करती थी । ...हीरों के यहाँ काम-काज करने पर पंडितजी ...ाई में भी भेजे जाते थे । परन्तु चौके का उनका ...ने ही काल तक का सम्बन्ध था, जब तक उनके ...ा उनके घरवालों के भोजन भर को पूड़ियाँ नहीं ...कल आती थीं । साग वे सबका बनाया पा सकते ...। हाँ, उसमें नमक केवल अपने ही हाथ से ...ाते थे । आटा माड़ने और पूड़ी बिलाने के ...ए अहीरिनियाँ काफ़ी पवित्र थीं । अधिक आव-...कता पड़ने पर उन्हें चौके के बाहर से कड़ाही में ...डितजी के भोजनों के लिए पूड़ी छोड़ देने का भी ...धिकार था । पकी हुई पूड़ियाँ शूद्रों के बर्तनों ...न रखकर शूद्रों के घर की पृथ्वी पर रख दी ...ती थीं । जूते पहनकर पूड़ियाँ घर ले जाने में ...न्हें संकोच न था, परन्तु भोजन चौका लगाकर ...र कपड़े उतारकर ही करते थे । घेंघरिया पंडित ...वित्रता के आदर्श में अपने पिता की डींग मारा ...ते थे । उनका कहना था कि वे पानी से धोकर ...न चौके में ले जाते थे, और बाहरी संसर्ग ...ाने के लिए दोनों पैर उठाकर चौके में कूदते ...। किसी घरवाले का भी बनाया न खाते थे ।

ठीक शुक्ल तृतीया के दिन घेंघरिया पण्डित ...ा के यहाँ आ गये । यही उनका निश्चित ...न था । पण्डितजी कर्म-काण्डी भी थे और ...तिषी भी । भ्रमणशील पुरोहितों के लिए इस ...श्चित गुण की बड़ी आवश्यकता पड़ती है । ...हीरिन ने एक सीधा लाकर सामने रख दिया । ...ली बाँधने में उँगलियाँ व्यस्त थीं और बात ...ने में जीभ । अहीरिन बोल उठी—"महाराज, जनका कहती थीं कि आप हाथ भी देख लेते हैं ।"

पण्डितजी मुसकराये और गुरुत्व के लहजे में भारीपने के ऊपरी मञ्च से कहने लगे—"हाँ, तो हमें आता क्या नहीं है ? हाथ दिखाओगी चौधरानी ? ला देखूँ, तेरे बच्चा कब होगा ।"

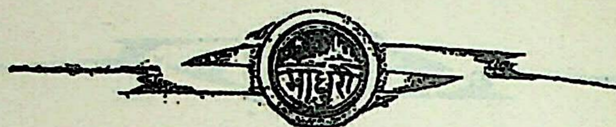
अहीरिन ने हाथ फैला दिया । मंगला उठकर बाहर चला गया । चौड़े शरीर को और विस्तृत करते हुए घेंघरिया पण्डित चारपाई पर बैठ गये । बाँस की छोटी अकेली चारपाई चीख़कर पृथ्वी से चिपट गई । पाटियाँ त्राहि-त्राहि कर रही थीं । मंगला का सारा निवास-स्थान आठ हाथ लम्बा और इतना ही चौड़ा था । घरेलू वस्तुओं और खाने-पीने की सामग्री के अतिरिक्त इसी में २० गायों की चूनी भी रहती थी । घर की टूटी-फूटी वस्तुओं का ढेर कोने में लगा था ।

ऊपर का छप्पर झर-झरकर चीण हो गया था । एक कोने में एक छोटा-सा लोहे का सन्दूक़ था । सबका यह ध्यान था कि मंगला की सारी सम्पत्ति इसी में बंद है । कोई कहता था कि इसमें हज़ारों रुपयों के आभूषण हैं, कोई कहता कि इसमें गिन्नियाँ ही गिन्नियाँ हैं । समृद्धि आँकनेवालों के इतने विचार इस सन्दूक़ में ठसाठस भर गये थे कि समृद्धि को निवास करने का उसमें स्थान ही न था !

हाथ को ध्यान से देखते हुए घेंघरिया पण्डित ने अपनी पिल्लीवाली स्वर-लहरी में कहा—"एक लड़की तो लिखी है और वह इसी वर्ष होनी चाहिए । परन्तु—" पण्डितजी रुक गये । बीच ही में दुबकी बैठी हुई बिल्ली ने चूहे पर आक्रमण कर दिया और वह चीं-चीं करता हुआ चूहा उसके मुँह में आ गया । पण्डितजी के स्वर की गूँज में यह शब्द मिल गया ।

"हाँ, तो क्या महाराज ?" चौधरानी ने बिल्ली को भगाते हुए कहा ।

"यही कि माता-पिता को जोग अच्छा नहीं है ।" घेंघरिया पण्डित ने कह डाला ।



भीतर सहारे के नये उपादान की सम्भावना थी ; ऊपर यजमान की हित-चिन्तना का विषाद। ऐनक खिसककर नाक की फुनगी के सहारे झूल रही थी।

चौधरानी के उत्तेजन से पण्डितजी ने ५०) के ख़र्चे की एक पूजा बतलाई और स्वयं उसके करने की इच्छा प्रकट की।

"अच्छा तो जल्दी ही किसी दिन आइएगा।" कहती हुई चौधरानी खड़ी हो गई। घेंघरिया पण्डित अभी निश्चय कर लेना चाहते थे, परन्तु उतावलेपन में कहीं काम न बिगड़ जाय—यह समझकर पण्डितजी भी उठ खड़े हुए। चारपाई ने चीख़कर साँस भरी!

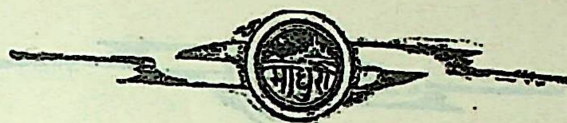
मंगला वैसे तो अपनी स्त्री पर बहुत हावी था, परन्तु संतान के प्रसंग में दब जाता था। वह मनुष्य था और पुरुष था, इसी लिए संतान आवश्यक थी! महाजन के यहाँ से ऋण आ गया, और पूजा होने लगी। घेंघरिया महाराज की पोटली अब प्रतिदिन बँधने लगी।

मंगला की श्यामा गाय सबसे अधिक दूध देती थी। वह उसे चाहता भी ख़ूब था। उसी की सेवा में वह चौबीसों घंटे लगा रहता था। श्यामा अपने पास किसी को न फटकने देती थी। न-जाने कितने लोगों को वह आहत कर चुकी थी। ढोलक पर हाथ पटकनेवाली होली पिये हुए एक टोली को इसने एक बार बुरी प्रकार घायल किया था। उसका अपराध केवल इतना था कि मंगला के घर के सामने बाजा न बन्द किया था। श्यामा को कभी काँजी-हाउस ले जाने का किसी को साहस न था। मंगला के अतिरिक्त किसी को साहस न था कि वह उसकी पीठ पर हाथ भी रख दे। जिस समय उसके बच्चा होता था, उस समय तो मानों काल का सामना ही करना पड़ता था। मनुष्य की परछाहीं पर वह झपटती थी। दुहने के समय चार आदमी लट्ठ लेकर खड़े होते थे। दुहाते समय वह अच्छी तरह बाँध दी जाती थी। इस प्रयोग के समय वह कभी-कभी लेट भी जाती थी, परन्तु चतुर मंगला किसी न किसी प्रकार दूध निकाल ही लेता था। पूरी बारह सेर की बाल्टी एक बार में भर जाती थी। मंगला का हृदय ठंडा हो जाता था। अच्छे अंक देखकर नट-खट से नटखट छात्र को भी अध्यापक पुचकारता है।

श्यामा फिर व्यानेवाली थी। उसके लिए व्यवस्था की जा रही थी। पूजा के प्रबंध और श्यामा के प्रबंध में चढ़ा-ऊपरी होने लगी। इधर पूजा पूर्ण हुई, उधर श्यामा के बछिया हुई। इस बार प्रसव-वेदना को श्यामा न झेल सकी और व्याने के तीसरे दिन उसकी मृत्यु हो गई। इसकी बछिया दूसरी गाय के नीचे लगा दी गई। मंगला इसे भूरी कहकर बड़े प्यार से बुलाता था। इस भूरी ने अहीर और अहीरिन के श्यामा के दुःख को भुला दिया।

दोपहर के दो बजे अहीरिन भोजन लेकर पशुसंघात गई थी। मंगला अहीरों के बीच में बैठा बिरहा गा रहा था। गायें इधर-उधर चर रही थीं। भूरी पास खड़ी थी और मंगला का घुटना चाट रही थी। मंगला की दस गज़ी धोती भी घुटनों के नीचे कभी नहीं जाती थी। मंगला सरल भाव से बैठकर भोजन करने लगा। उसमें मद न था। वही सर्प अंधा होता है, जिस पर केंचुल होती है। अहीरिन भूरी पर हाथ फेरती थी और सोचती थी कि उसके संतान कब होगी। मंगला की दृष्टि भूरी के सड़े खुर पर जा पड़ी। वह भोजन छोड़कर उसे देखने लगा।

"देख, सिडली की जड़ तो ले आ, खुर की दवा करनी है," मंगला ने कहा। अहीरिन चुपके चल दी। थोड़ी देर में अहीरिन के चिल्लाने का शब्द सुनाई दिया। मंगला भागा हुआ उसके पास गया। क्या देखता है कि एक हाथ में सिडली की जड़ लिये अहीरिन बेहोश पड़ी है, पास ही एक काला सर्प आधा बिल में और आधा बाहर स्थित था। मंगला ने पहले तो चपला-वेग से साँप की पूँछ पकड़कर घसीट लिया, फिर वेग से कई बार घुमाकर



[डं]डा पटका कि वह मरा तो नहीं, परन्तु बिलकुल शिथिल हो गया। दूसरे अहीरों की लाठियों ने साँप का काम समाप्त कर दिया।

अहीरिन पर विष का पूरा वेग था। मारे जाने के पूर्व ही साँप अपनी मृत्यु का पूरा बदला ले चुका था। बड़ी झाड़-फूक के बाद भी अहीरिन जी न सकी। मंगला बहुत दिनों तक रोया और फिर शांत हो गया। विस्मरण के आवरण ने स्मरण को छिपा दिया। भूरी के कारण अहीरिन मरी है। बहुत काल तक मंगला भूरी से खिंचा रहा, परन्तु फिर उसी प्रकार की देख-भाल होने लगी। अहीरिन का भाई जोखू मंगला के साथ रहने लगा और गायों की सानी-पानी में सहायता देने लगा।

अपने मौक़े से घुँघरिया पंडित मंगला के यहाँ आये। समझा-बुझाकर कहने लगे—"महतो! मैंने कहा था न कि माता-पिता का योग अच्छा नहीं।" मंगला कुछ समझ न सका। नासमझी को लक्षित कर देना पंडितजी के लिए उतना ही सरल था, जितना संध्या करना। पिल्ले की आवाज़ से फिर बोले—"महतो, क्या तुम्हें याद नहीं कि भूरी पूजा-समाप्ति के दिन जन्मी थी। तुम दोनों कन्या की भाँति उसको चाहते भी थे। पूजा व्यर्थ थोड़े ही जाती है। अहीरिन बाँझ थी बाँझ। भगवान् ने तुम्हारी पूजा की लाज रख ली।"

अहीर न-जाने चकित था अथवा चिन्तित। बछिया गाय के हो और मरे अहीरिन। भोजन [illegible] करें और धोये बेचारे पैर जायँ। इस असंगति ने अहीर की छोटी बुद्धि को मट्ठे की भाँति मथ दिया। कुछ थोड़ा-बहुत विश्वास का नवनीत बड़े परिश्रम से ऊपर दिखलाई पड़ा; और मंगला घुँघरिया पण्डित से कहने लगा—"मुलौ पूजा तो [हो] गई, फिर चौधरानी मरी काहे?" व्युत्पन्नमति पण्डितजी बोल उठे—"वह तो तेरे लिए हुई थी। चौधरानी ने कब अपने लिए पूजा कराई थी। [illegible] कहाँ था।"

मंगला यह भी नकारात्मक स्वीकार से सुनता रहा। पण्डित कुछ चिन्तित थे कि कोई और प्रश्न न निकल पड़े। अतएव झट कह पड़े, "भगवान् सब भला करेगा।" और जोखू के हाथ से सीधा लेकर पोटली को बाँधते हुए चुपके से चल दिये।

महतो का प्रेम पत्नी के लिए बरसाती नाले की भाँति उमड़ा, बढ़ा और बहकर निकल गया। वह अब दूसरी स्त्री को बैठा लेने की बात सोच रहा था, परन्तु दो वर्ष हो गये, मंगला को कोई ठीक घरवाली न मिली। भूरी अब पूरी गाय हो गई थी। उसके दो छोटे-छोटे नोकीले सींग भी निकल आये थे। मंगला को वह बहुत चाहती थी। यदि कोई विनोद में भी मंगला के शरीर से लिपटने लगे, तो वह काल होकर उसे मारने दौड़ती थी।

एक दिन जोखू मंगला से हँसी कर रहा था। वह बार-बार मंगला की ओर दौड़ता और जब भूरी उसकी ओर मारने लपकती, तो वह मंगला की आड़ में हो जाता। मंगला इस खिलवाड़ में बहुत प्रसन्न था। प्रेम का केन्द्र बनने की मानव-प्राणी की पुरानी दुर्बलता है। मंगला जोखू और भूरी के फुरतीपन की समता की समीक्षा में मग्न था। एक बार मंगला भूरी से दस पैग की दूरी पर खड़ा था। जोखू ज्यों ही मंगला से भिड़ा और मंगला ने भूरी को ललकारा, वह कालरूप होकर झपटी। नेत्र बन्द और थूथुन फूले हुए थे। मंगला ने जोखू को पीछे कर लिया। भूरी अपने वेग को न सँभाल सकी और मंगला को ही बुरी प्रकार आहत कर दिया। पशु से खेलवाड़ करने का उदाहरण भीषण हो गया। जोखू भागकर एक पेड़ पर चढ़ गया। मंगला की पसलियाँ चरचरा कर पिस गई थीं। मुँह से दो लोटे रक्त गिरा और वह वहीं ठंडा हो गया। मरते समय भी मंगला को यह विश्वास न था कि मरेगा। कोई बड़े धीमे स्वर में कहता था "तुम्हारे लिए तो पूजा हो चुकी है, तुम्हें कोई डर नहीं।"

भूरी की विचित्र दशा थी। वह बार-बार मंगला को सूँघती थी। अपना थूथुन शव के मुँह और

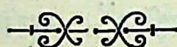


कान के पास ले जाकर वेग के साथ साँस लेती थी और मूक भाषा में कुछ कहना चाहती थी। कभी पूँछ उठाकर मंगला के चारों ओर घूमने लगती थी। स्वामी के लिए गहरा विषाद, अथवा किये पर गहरा पश्चात्ताप अथवा जोखू पर भीषण क्रोध अथवा मंगला के प्रति इसलिए रोष कि वह आगे क्यों आ गया, अथवा घटना के एक आकस्मिक स्वरूप में उपस्थित हो जाने से किंकर्त्तव्यविमूढ़ता का पशु-उन्माद—इन भावनाओं में भूरी किससे व्यग्र थी, यह पता लगाना कठिन था।

गाँव के लोग बात की बात में एकत्रित हो गये। भूरी लकड़ियों से मार भगा दी गई। जोखू से लोग बहुत रुष्ट थे। अहीरों ने एक बड़े टीले के नीचे जलाशय के निकट मंगला के शव का दाह किया। टीले के ऊपर पूँछ उठाकर छलाँग मारती हुई एक गाय दिखाई पड़ी।

लोगों का कहना है कि उन्होंने दाह के कई दिन बाद तक एक गाय को ठीक उसी स्थान पर, जहाँ मंगला की चिता जलाई गई थी, सींग से पृथ्वी खोदते और पूँछ उठाकर रँभाती हुई चक्कर काटते देखा है। परन्तु मंगला के मरने के बाद फिर भूरी का पता नहीं लगा।

वैंधरिया पंडित अहीरों में अवश्य कहा करते थे—"भूरी बदला लेने के लिए जन्मी थी। मैंने तो कह ही दिया था कि माता-पिता का योग ठीक नहीं है। और फिर मंगला बड़ा कंजूस था। उसने भली प्रकार पूजा भी तो नहीं कराई।"



भारतवर्ष और जापान में व्यापारिक समझौता

प्रो० प्रेमनारायण माथुर, एम्० ए०, बी० काम०

संसार का प्रत्येक देश आज इस बात को भला प्रकार समझ गया है कि वर्तमान परिस्थितियों में, जब कि आर्थिक राष्ट्रीयवाद (Economic Nationalism) ही हर एक राष्ट्र को आर्थिक कल्याण का एकमात्र उपाय दृष्टिगोचर हो रहा है, देश के अन्तरराष्ट्रीय व्यापार को सुरक्षित रखने के लिए केवल एक साधन है। वह है 'व्यापारिक समझौते' के मार्ग का अनुसरण करना। यही कारण है कि आज प्रत्येक देश अपने व्यापार की रक्षा के लिए अन्य देशों के साथ 'व्यापारिक समझौते' करने के लिए आतुर दिखाई पड़ता है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय, तो यह स्पष्ट हो जायगा कि हमारे वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय व्यापार ने आज बहुत हद तक एक सामुदायिक व्यापार (Group Trade) का रूप धारण कर लिया है। १९२९ में आरम्भ होनेवाली व्यापारिक मन्दी के उपरान्त अँगरेज़ी साम्राज्यान्तर्गत देशों के हित की दृष्टि से १९३२ में किया गया "ओटावा का व्यापारिक समझौता" (Ottawa Trade Agreement) अन्तरराष्ट्रीय-व्यापारिक-क्षेत्र में सामुदायिक-व्यापार-सम्बन्धी आर्थिक प्रवृत्ति (Economic tendency towards Group-Trade) का एक मात्र उदाहरण था। पिछले ६-७ वर्षों में इस प्रवृत्ति को कितना प्रोत्साहन मिला है, इसे प्रत्येक अर्थ-शास्त्र का विद्यार्थी भली प्रकार परिचित है।

१९३४ में, जब कि जापानी माल पर, जो कि जापान के स्वर्णमान त्यागने के पश्चात् भारतीय बाज़ार में बहुत सस्ते दामों पर बेचा जा रहा था, आय-कर में वृद्धि करने के उपरान्त जापान ने भारतवर्ष से कच्चा कपास ख़रीदना बन्द करने का निश्चय कर लिया था। तब भारतवर्ष की सरकार ने जापान से व्यापारिक समझौता करना आवश्यक समझा और ७ जनवरी, १९३४ को भारतवर्ष और जापान में पहला व्यापारिक समझौता हुआ। गत ३१ मार्च, १९३७ को यह समझौता समाप्त हुआ और इसके स्थान में हाल ही में दूसरा व्यापारिक समझौता जापान से हुआ है, जो कि ३१ मार्च, १९४० तक लागू होगा। नये व्यापारिक समझौते के करने में हमारी सरकार ने पिछले अनुभव से कहाँ तक लाभ उठाया तथा देश के हितों का कहाँ तक विचार रक्खा, कुछ ऐसी ही बातों पर हमें इन पंक्तियों में स्वतन्त्र रूप से विचार करना होगा।

वर्तमान व्यापारिक समझौता केवल कुछ आवश्यक संशोधनों के अतिरिक्त मूल-अंशों में पहले समझौते के अनुसार ही है। अतः हमारे देश को आगामी तीन वर्षों तक फिर जापान से होनेवाले व्यापार के सम्बन्ध में उन्हीं आर्थिक हानियों का सामना करना पड़ेगा, जो कि प्रथम समझौते के कारण देश को उठानी पड़ीं। ये हानियाँ क्या-क्या हैं तथा किन-किन विषयों में सरकार ने देश के



आर्थिक हितों की रक्षा नहीं की, यह जान लेने के पहले यह स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि किन अंशों में वर्तमान व्यापारिक समझौता पिछले समझौते से भिन्न है।

(१) नवीन समझौते के अनुसार जापान बजाय ३२,५०,००,००० (३२ करोड़ ५० लाख) गज़ कपड़े के २८,३०,००,००० (२८ करोड़ ३० लाख) गज़ कपड़ा भारतवर्ष में प्रतिवर्ष भेज सकेगा और इसके बदले में १०,००,००० (दस लाख) बेल कच्चा कपास भारतवर्ष से उसे ख़रीदना होगा। यदि किसी साल में जापान भारतवर्ष से १०,००,००० (दस लाख) बेल कच्चे कपास से अधिक आयात करेगा, तो उसे अधिकार होगा कि प्रत्येक १०,००० बेल कपास के बदले वह हिन्दुस्तान में १५,००,००० (१५ लाख) गज़ कपड़ा भेज सके। किन्तु किसी एक साल में ३५,८०,००,००० (३५ करोड़ ८० लाख) गज़ से अधिक कपड़ा जापान हिन्दुस्तान में नहीं बेच सकेगा। इसका तात्पर्य यह है कि एक वर्ष में अधिक से अधिक १५,००,००० (पंद्रह लाख) बेल कपास हिन्दुस्तान जापान को भेज सकेगा। गत समझौते के अनुसार जापान भारतवर्ष में अधिक से अधिक ४०,००,००,००० गज़ कपड़ा भेज सकता था और भारतवर्ष से इसके बदले १५ लाख बेल कच्चा कपास ख़रीदना पड़ता। नवीन समझौते के अनुसार भारतवर्ष को १५ लाख बेल कच्चे कपास के बदले केवल ३५ करोड़ ८० लाख गज़ कपड़ा ही जापान से ख़रीदना होगा। अतः इस अंश में नवीन समझौता देश के लिए अधिक हितकर है।

(२) यदि किसी वर्ष १५ लाख बेल से अधिक कच्चा कपास जापान भारतवर्ष से ख़रीदे, तो जितने बेल ज़्यादा ख़रीदेगा वे दूसरे साल में शामिल कर लिये जायँगे। इसके अतिरिक्त, जहाँ पिछले समझौते के अनुसार एक साल से दूसरे साल को अधिक से अधिक २ करोड़ गज़ कपड़ा हस्तान्तर (Transfer) किया जा सकता था, वहाँ अब नये समझौते के अनुसार इस अंक को बढ़ाकर २ करोड़ ५० लाख कर दिया गया है। इसका फल यह होगा कि विशेष परिस्थितियों में किसी एक साल में यदि आवश्यकता हो, तो जापान भारतवर्ष में पहले से अब ५० लाख गज़ कपड़ा अधिक भेज सकेगा। इससे जापान को किसी हद तक पहले की अपेक्षा अधिक सुविधा मिलेगी। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि किसी एक साल में जापान आवश्यकता पड़ जाने पर भारतवर्ष में ३८ करोड़ ३० लाख (३५ करोड़ ८० लाख + २ करोड़ ५० लाख) गज़ कपड़ा बेच सकता है। इससे अधिक नहीं। पर इसमें से २ करोड़ ५० लाख गज़ उसको दूसरे साल में से कम कर देना होगा।

(३) तीसरा संशोधन, जो नये समझौते में हुआ है, वह यह है—पुराने समझौते में जो रंगीन कपड़ों (Coloured goods) का हिस्सा था, उसके दो भाग कर दिये गये हैं (१) रंगीन छपे हुए (Coloured printed goods) और (२) रंगीन दूसरे (Dyed and woven) । नये समझौते के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के कपड़े इस अनुपात में आयात किये जा सकेंगे।

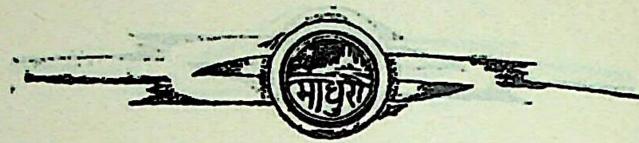
(१) प्लेन ग्रेज़ ४०% (२) बोर्डर्ड ग्रेज़ १३% (३) ब्लीच्ड (व्हाइट) १०% (४) छपवाँ रंगीन २०% और (५) दूसरे रंगीन १७%

यहाँ यह संकेत कर देना आवश्यक है कि गत दो वर्षों के अनुभव से यह सिद्ध हो गया है कि ३-४ व ५ केटेगरी के कपड़ों की ही आयात भारतवर्ष में अधिक हुई है, और ये ही भारतीय व्यवसाय के लिए अधिक हानिकर सिद्ध हुए हैं। यद्यपि पिछले वर्षों में हिन्दुस्तान की मिलों ने रंगीन कपड़ों की उत्पत्ति में वृद्धि की है, फिर भी जापानी माल की प्रतिस्पर्द्धा विदेशी बाज़ारों और उत्पत्ति दोनों ही की दृष्टि से हानिकर सिद्ध हुई है।

नवीन समझौते के अनुसार पहला कच्चे कपास



...वर्ष १ जनवरी, १९३७ से और पहला कपड़े ...वर्ष १ अप्रैल, १९३७ से आरम्भ हुआ समझा ...जायगा, तथा पहले समझौते के अनुसार ही अब ...एक वर्ष दो भागों में बाँटा जायगा। पहले ...मास का कपड़े का अंश (Quota) ...,९०,००,००० (१७ करोड़ ९० लाख) गज़ ...निश्चित हुआ है। पुराने समझौते में यह अंश ...,००,००,००० (२० करोड़) गज़ था। इसके ...अतिरिक्त प्रथम छः मास से दूसरे छः मास को ...लगभग २,००,००,००० (२ करोड़) गज़ कपड़े ...अब २,५०,००,००० (२ करोड़ ५० लाख) ...कपड़ा हस्तान्तर किया जा सकेगा। भारतवर्ष ...और जापान के बीच में किये गये व्यापारिक सम...झौते की मुख्य शर्तें क्या-क्या हैं, यह तो ऊपर के ...विवरण से स्पष्ट हो गया। अब हमें इस विषय ...की थोड़ी-सी जानकारी कर लेना आवश्यक है ...देश की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते ...हुए यह समझौता देश के लिए कहाँ तक लाभदायक ...सिद्ध होगा तथा किन अंशों में यह दोषपूर्ण है। ...इसमें कोई भी संदेह नहीं कि हमारे देश में ...जितना कपास उत्पन्न होता है, वह भारतीय मिलों ...की माँग की दृष्टि से कहीं अधिक है। पिछले ५-...वर्षों के अंकों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारी ...देश की मिलों में कुल उत्पत्ति का केवल ४५% ...खर्च होता है। फिर भारतीय मिलों की भावी ...उन्नति को ध्यान में रखते हुए भी अंत में हमें इसी ...परिणाम पर पहुँचना पड़ता है कि हमारे देश के ...कपास के वास्ते विदेशी बाज़ार की पूर्ण आव...श्यकता है, और यह आवश्यकता और भी अधिक ...हो जायगी, जब कि सक्कर-बाँध के फलस्वरूप सिंध ...में कपास की पैदावार बढ़ जायगी। अतः यह तो ...निर्विवाद है कि भारतवर्ष को कच्चे कपास को ...विदेशी बाज़ारों में बेचने की पूर्ण आवश्यकता है। ...चूँकि जापान से समझौता करके हमें अपने ...कपास के लिए किसी हद तक एक स्थायी बाज़ार ...मिल गया है, यही इस समझौते का हमारे देश को सबसे अधिक लाभ है। फिर भी यह लाभ इतना अधिक नहीं है, जितना कि प्रथम दृष्टि पर प्रकट होता है। कारण यह है। हमारे भारतवर्ष को अपने कच्चे कपास को बेचने के लिए विदेशी बाज़ार की आवश्यकता है, साथ ही जापान के लिए भी यह अनिवार्य हो जाता है कि वह हिन्दुस्तान से कच्चा कपास अपनी मिलों को चालू रखने के लिए ख़रीदे; क्योंकि वर्तमान समय में जापान के कच्चे कपास की माँग का लगभग ९०% अंश भारतवर्ष और अमेरिका के संयुक्त प्रदेशों द्वारा पूरा होता है। १९३० के उपरान्त संयुक्त-प्रदेश ने भारतवर्ष के मुक़ाबले में अपनी स्थिति में उन्नति कर ली है और भारतवर्ष के मार्ग में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि यहाँ का कपास छोटे रेशे का होता है। लेकिन इसके साथ ही अमेरिका के मुक़ाबले में हमारे कपास के दाम भी कम होते हैं और इस वास्ते जापान के लिए भारतवर्ष से कपास ख़रीदना अनिवार्य हो जाता है, विशेषकर वर्तमान परिस्थितियों में, जब कि जापान को विदेशी बाज़ारों में सफलतापूर्वक प्रतिस्पर्द्धा के लिए सस्ते से सस्ते दामों पर माल बेचने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त एक बात और है, जिसके कारण भी जापान को हमारे देश से कच्चा कपास आयात करना आवश्यक हो जाता है। जापानी माल के लिए भारतवर्ष में यथेष्ट मात्रा में माँग है और इस माँग को क़ायम रखना जापान के लिए अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु यह तभी सम्भव है, जब कि जापान हिन्दुस्तान से कपास बराबर ख़रीदता रहे। अतः हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि यद्यपि भारतवर्ष की दृष्टि से जापान में एक स्थायी बाज़ार कपास के लिए प्राप्त कर लेना लाभदायक अवश्य है, फिर भी जापान के लिए भी यह ज़रूरी है कि वह भारतवर्ष से कच्चा कपास ख़रीदे और इस वजह से इस समझौते में हमारे देश की स्थिति जापान के सामने कमज़ोर नहीं है। खेद है कि हमारी सरकार ने इसका पूरा-पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न नहीं किया।



अब हमको इस समझौते के दोषों की ओर अपना ध्यान आकर्षित करना होगा। सिद्धान्त की दृष्टि से इस समझौते का सबसे महत्त्वपूर्ण दोष तो यह है कि इसका आधार जापान और भारतवर्ष में होनेवाला पूर्ण व्यापार नहीं है, बल्कि केवल कच्चे कपास और सूती कपड़ों के सम्बन्ध में यह समझौता लागू है। यह स्थिति भारतवर्ष के लिए उसके आयात और निर्यात दोनों ही तरह के व्यापार की दृष्टि से हानिकर है। पहले आयात के प्रश्न को ही लीजिए। हमारे देश में जापान से केवल सूती कपड़ा (Cotton piece-goods) ही नहीं आता, बरन् अन्य बहुत-सी वस्तुएँ हैं, जैसे खिलौने, साबुन, छाते, काँच और चीने के बरतन आदि भी, जो यथेष्ट मात्रा में बहुत सस्ती क़ीमत पर हमारे बाज़ारों में बिकती हैं। यह सब वस्तुएँ हमारे देश के इन चीज़ों को उत्पन्न करनेवाले घरेलू उद्योग-धंधों से प्रतिद्वन्द्विता में आती हैं और उनको यथेष्ट हानि पहुँचाती हैं। देश के आर्थिक हित की दृष्टि से यह आवश्यक है कि इन छोटे-छोटे उद्योग-धंधों को आवश्यक प्रोत्साहन मिले और जब तक कि इनकी स्थिति ठीक न हो जाय, इनको विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से रक्षित किया जाय। इस वास्ते यह अत्यन्त आवश्यक था कि जापान के साथ किये गये व्यापारिक समझौते के अन्तर्गत इन तमाम वस्तुओं के विषय में भी आवश्यक समझौता और नियंत्रण किया जाता। जापान से जितना माल हिन्दुस्तान में आयात होता है, सूती कपड़ा (Cotton piece-goods) तो उसका केवल २१% है और इस वास्ते केवल इसके विषय में नियन्त्रण स्थापित करके देश के हितों की पूर्ण रूप से रक्षा नहीं की जा सकती। देश के व्यवसायियों और व्यापारियों ने इस सम्बन्ध में सरकार को बहुत पहले से चेतावनी दी थी, किन्तु वह सब निष्फल हुई। इसी प्रकार निर्यात की दृष्टि से भारतवर्ष के लिए यह आवश्यक है कि भारतवर्ष जापान को न केवल कच्चा कपास भेजकर ही संतुष्ट हो जाय, बरन् बराबर इस बात की भी चेष्टा करे कि अन्य वस्तुओं के लिए भी जापानी बाज़ारों में आवश्यक माँग उत्पन्न की जाय। हिन्दुस्तान से जापान को जितना माल निर्यात होता है, उसका ८७% केवल कच्चा कपास है। इस प्रकार केवल एक वस्तु पर व्यापारिक सम्बन्ध बनाये रखना किसी प्रकार भी संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। आवश्यकता तो इस बात की थी कि जापान से व्यापारिक समझौता करने का यह मुख्य उद्देश्य होता कि जापान के बाज़ारों में भारतवर्ष की अन्य वस्तुओं की माँग भी उत्पन्न की जाती। जूट, लोहा, चमड़ा, अलसी (Linseed) इत्यादि ऐसी वस्तुएँ हैं, जिनके लिए प्रयत्न करने से जापान में यथेष्ट माँग उत्पन्न की जा सकती है। अतः इस व्यापारिक समझौते का सबसे बड़ा दोष तो यही है कि केवल यह एक वस्तु को लेकर ही किया गया है, यद्यपि देश के हित की बात तो यह थी कि इसका आधार जापान और भारतवर्ष में होनेवाला समस्त व्यापार ही होता।

इसके अतिरिक्त इस परिमित सीमा के अन्दर भी इस समझौते में कई ऐसे दोष हैं, जो सरकार की तनिक सावधानी से हटाये जा सकते थे और जिनके विषय में देश के व्यापारियों ने सरकार का ध्यान बहुत पहले से आकर्षित कर लिया था—

(१) जापान से जो कपड़ा भारतवर्ष में आता है, वह केवल लम्बाई में नापा जाता है। कपड़े के अर्ज़ (Breadth) के विषय में किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं है। इस स्थिति में समझौते की शर्तों की अवहेलना करने का जापान को पूरा अवसर है। यदि वे चाहें तो कपड़े का अर्ज़ दुगना कर सकते हैं और इस प्रकार वास्तव में हमारे देश में निश्चित परिमाण से दुगना कपड़ा आ सकता है। इस वास्ते यह आवश्यक था कि कपड़े की नाप केवल लम्बाई ही में निश्चित न किया जाकर एक गज़ के बजाय एक वर्ग गज़ रक्खी जाती।



(२) गत दो वर्षों के अनुभव से यह सिद्ध हो गया है कि जापान से 'फ़ेन्ट' (वह कपड़ा, जिसमें कि तैयार करते वक़्त कोई ख़राबी आ जाय और जिसकी लम्बाई ४ गज़ से ज़्यादा न हो) के आयात में बहुत वृद्धि हो गई है। और यह वास्तव में 'फ़ेन्ट' नहीं हैं, लेकिन अच्छे कपड़ों के छोटे-छोटे टुकड़े हैं, जो कि केवल समझौते की शर्त से बचने के लिए इस रूप में भेजे जाते हैं। निम्न-लिखित अंक इस स्थिति को साफ़ कर देते हैं। यह आँकड़े काठियावाड़ के बन्दरगाहों के सम्बन्ध में हैं—

वर्ष	'फ़ेन्ट' गज़ों में
१९३१–३२	लगभग नहीं के बराबर
१९३२–३३	४३,०००
१९३३–३४	६०,०००
१९३४–३५	१८,००,०००

सारे देश में १९३४–३५ में 'फ़ेन्ट' का आयात ३,६०,००,००० गज़ और १९३५–३६ में ६,२०,००,००० गज़ था। ऊपर के आँकड़ों से यह पूर्णतया प्रकट हो जाता है कि जापान से व्यापारिक समझौता करते समय 'फ़ेन्ट' के विषय में आवश्यक नियन्त्रण होना चाहिए था। नवीन समझौते के अनुसार जो कपड़े की सीमा निश्चित की गई हैं, उसमें 'फ़ेन्ट' शामिल नहीं है। परन्तु यह शर्त रख ली गई है कि किसी एक साल में जापान भारतवर्ष को ८९,५०,००० गज़ से अधिक 'फ़ेन्ट' न भेज सकेगा। और यदि इससे अधिक भेजेगा, तो दूसरे वर्ष से उतना कम कर दिया जायगा। साथ ही यदि किसी वर्ष इससे कम 'फ़ेन्ट' जापान भेजे, तो दूसरे वर्ष वह उस कमी को पूरी कर सकेगा। भारत-सरकार ने इस बात का भी आश्वासन दिला दिया है कि 'फ़ेन्ट' पर आय-कर ३५% से अधिक न लगाया जायगा। इस प्रकार की शर्त से देश का कहाँ तक भला हो सकता है, इस विषय में अहमदाबाद-मिल-मालिकों की संस्था के सभापति श्री० सेठ शंकरलाल बाला भाई की राय उल्लेखनीय है। वह कहते हैं—

"I am afraid the terms of the agreement are disappointing. A slight decrease in the imports of the piece-goods from 325 million to 283 million yards has little value. It is more disappointing to find that in spite of repeated representations to Government they have not endeavoured to include fents in the quota. The latitude allowed to Japan to export cotton fents up to 8·95 million yards is a very exorbitant figure in itself, and the agreement by the Government of India not to exceed the customs duties on cotton fents of over 35 percent. *ad valorem* is an arrangement which is distinctly unfavourable and unfair to India and which, I am afraid, will hit the indigenous industry very hard."

"मुझे भय है कि समझौते की शर्तें निराशाजनक हैं। कपड़े के आयात में ३२ करोड़ ५० लाख गज़ से २८ करोड़ ३० लाख गज़ की थोड़ी-सी कमी विशेष रूप से लाभदायक नहीं है। यह बात अधिक निराशाजनक है कि सरकार से बार-बार अनुरोध करने पर भी उसने कपड़ों के निश्चित अंश में 'फ़ेन्ट' को शामिल करने का प्रयत्न नहीं किया। जापान को ८९,५०,००० गज़ 'फ़ेन्ट' निर्यात करने की जो सुविधा दे दी गई है, वह अत्यधिक है और सरकार का यह आश्वासन कि 'फ़ेन्ट' पर आय-कर ३५% से अधिक नहीं लगाया जायगा, देश के लिए निश्चित रूप से हानिकर है, जो कि, मुझे भय है, देश के उद्योग-धंधों को बहुत हानिकर सिद्ध होगा।"

(३) तीसरे, नक़ली रेशम और रेशमी कपड़े भी, जो कि सस्ते और सुन्दर होने की वजह से सूती कपड़ों से प्रतिस्पर्द्धा में आते हैं, इस समझौते में



शामिल होने चाहिए थे। इन कपड़ों का असीमित आयात देश के लिए हानिकर है।

(४) देशी रियासतों, अफ़ग़ानिस्तान और नेपाल में से होकर बहुत-सा कपड़ा जापान से आ सकता है और इस प्रकार समझौते में जो परिमाण निश्चित कर दिया गया है; उसकी अवहेलना की जा सकती है। इस वास्ते यह आवश्यक था कि जो अंश जापानी कपड़े का निश्चित किया गया है, उसमें उस कपड़े का भी समावेश होता, जो रियासतों तथा अन्य सरहदों (Land Frontiers) द्वारा देश में आता है। किन्तु वर्तमान समझौते में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गई है। इस दोष को हटाने का अब एक उपाय और हो सकता है। वह यह कि आयात-निर्यात-कर-विभाग (Customs Department) इस विषय में काफ़ी नियंत्रण रक्खे।

(५) एक और महत्वपूर्ण दोष इस समझौते में ध्यान देने योग्य है, वह है हमारे देश के समुद्रतटीय व्यापार में जापानी जहाज़ों का प्रभुत्व स्थापित न होने पावे, इस विषय की किसी भी व्यवस्था का पूर्ण अभाव। हमारे देश में यह एक विचित्र स्थिति है कि जहाँ अन्य देश अपने समुद्रतटीय व्यापार को अपने ही देश के जहाज़ों के लिए सुरक्षित रखते हैं, वहाँ हमारे समुद्रतटीय व्यापार में विदेशी जहाज़ी कम्पनियों का ही बोलबाला है। अँगरेज़ी कम्पनियों का तो आधिपत्य पहले से ही स्थापित है, यदि जो कुछ रहा-सहा क्षेत्र है, उस पर भी जापानी जहाज़ों का प्रभुत्व हो गया, तो देश के आर्थिक हित को बहुत बड़ा धक्का पहुँचेगा। इस वास्ते यह नितान्त आवश्यक था कि जापान से व्यापारिक समझौता करते समय हमारी सरकार इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखती।

ऊपर जिन-जिन कमियों का वर्णन किया गया है, उन सभी के विषय में सरकार का ध्यान आकर्षित किया जा चुका था। किन्तु वास्तव में बात तो यह है कि हमारी विदेशी सरकार का प्रत्येक कार्य इस दृष्टि से नहीं होता कि उससे भारत के स्वत्वों की रक्षा की जाय। उसका उद्देश्य तो इँगलैंड की गिरती हुई स्थिति को किसी न किसी प्रकार सँभालना होता है। जापान के साथ इस प्रकार का समझौता करके जहाँ भारत के हितों पर घोर आघात पहुँचाया गया है, वहाँ जापान और इँगलैंड के परस्पर सम्बन्धों में अधिक घनिष्ठता भी स्थापित हो सकी है। और यही वास्तव में इस व्यापारिक समझौते का वास्तविक मूल है, जिसको भारत-सरकार ने सदा अपने सामने रक्खा। अन्यथा कोई कारण नहीं था कि सरकार जापान से समझौता करके देश के हितों की ज़्यादा अच्छे ढंग से रक्षा नहीं कर सकती।



उद्गार*

मास्टर शिशुपालसिंह 'शिशु'

अजब गणित है प्रेम का, अजब नियम की टेक;
एक-एक मिलकर जहाँ, होते केवल एक।
याद एक मृदु मिलन है, हो यदि शुचि उपयोग;
चिर-वियोग में फिर यही, करता है संयोग।
हाव-भाव फिर क्यों न हों, रूपवान् के हाथ;
सेवन-विधि भी चाहिए, किसी दवा के साथ।
अरे, भागता है किधर, क्या भगना है खेल;
सब जेलों से है विकट, इन नयनों की जेल।
तेरा सुन्दर चंद्र-मुख, देख एक ही बार;
मेरे हृदय-समुद्र में, उठ आता है ज्वार।
अधिक खिंचो, ऐंठो न यों, करो मिलन-अनुराग;
होता है पतला बहुत, विमल प्रेम का ताग।
'शिशु' का बड़ा विचित्र है, जन्म-मृत्यु का लेख;
वे जिस पर मरते रहे, जिये उसी को देख।
राहु-दृष्टि डालो न तुम, किसी चन्द्र की ओर;
'शिशु' बन जाओ चाव से, उसके चारु चकोर।
ऐसा क्या है चित्र में, जादू परम विचित्र?
होते हैं सब चित्रवत्, देख तुम्हारा चित्र।
प्रियतम का आना सुना, मिटा विरह का शूल;
चन्द्र-मुखी का मुख हुआ, सूर्य-मुखी का फूल।
दिल तो दे दूँ और को, सहकर कुछ सन्ताप;
किन्तु सोचता हूँ यही, कहाँ रहेंगे आप।
तुम मेरी उस बात को, सोच रहे दिन-रात;
ऐसी मेरी बात में, कौन बड़ी थी बात?
तूने मुझको जीतकर, क्या पाया उपहार;
तेरे दिल पर हार है, मेरे दिल पर हार।

* अप्रकाशित "किलकावली" से।

महाकवि कालिदास और दिङ्नाग

श्रीकन्हैयालाल पोद्दार

गत मई सन् १९३७ की माधुरी में 'कुन्दमाला'-शीर्षक लेख में आचार्य पं० जानकीवल्लभ शास्त्रीजी ने दिङ्नागाचार्य-कृत कुन्दमाला-नामक नाटक पर अपने विचार प्रकट किये हैं। लेखक महाशय ने एक अप्रसिद्ध, किन्तु चित्ताकर्षक नाटक पर प्रकाश डालकर बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है, एतदर्थ आप निस्संदेह धन्यवादार्ह हैं। कुन्दमाला की काव्य-रचना, जैसा कि उक्त लेख के उदाहृत पद्यों द्वारा स्पष्ट है, निस्संदेह प्रसादगुणसम्पन्न एवं चित्ताकर्षक है। कुन्दमाला का लेखक करुणारस की व्यंजना में बहुत कुछ सफलीभूत हो सका है।

शास्त्रीजी ने अपने लेख के प्रारम्भ में ही मेघदूत के सुप्रसिद्ध व्याख्याकार मल्लिनाथ ने—

'अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-
र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः।
स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं,
दिङ्नागानां पथि परिहरन्स्थूलहस्तावलेपान्।

—मेघदूत १४

इस पद्य की व्याख्या में 'निचुल' और 'दिङ्नाग' पदों को श्रेष्ठ समझकर निचुल-नामक कवि को कालिदास का मित्र और दिङ्नागाचार्य को कालिदास का प्रतिस्पर्द्धी मानकर यह कल्पना की है कि महाकवि कालिदास ने अपने प्रतिस्पर्द्धी दिङ्नागाचार्य पर व्यंग्योक्ति द्वारा आक्षेप किया है। मल्लिनाथ की भ्रमात्मक इस कल्पना को शास्त्रीजी ने विश्वसनीय मानकर—

'यदि भाषा-शास्त्र के सूक्ष्म विवेचक ग़ौर करके देखेंगे, तो दिङ्नाग की भाषा से भी उनका कालिदाससमकालीनत्व उन्हें प्रतीत होगा। मेरा निजी विश्वास तो यही है।'

'आचार्य दिङ्नाग की नाट्य-रचना अप्रसिद्ध कुन्दमाला को देखकर मुझे उनके कालिदास के प्रतिस्पर्द्धी अथवा समालोचक होने में कुछ भी संशय न रहा।'

इत्यादि वाक्यों द्वारा इस कल्पना को पुष्ट करने की चेष्टा की है। इसके अतिरिक्त आपने यह भी लिखा है कि—'कालिदास महाकवि थे और सौ बार थे, पर यह बात भी विद्वानों से छिपी नहीं है कि वह बड़े विद्वान् न थे।' अस्तु कालिदास बड़े विद्वान् थे या नहीं, इस विषय पर तो शास्त्रीजी-जैसे आचार्य ही व्यवस्था दे सकते हैं। इन पंक्तियों के लेखक में न तो ऐसी व्यवस्था देने की विद्वत्ता ही है और न यह अधिकारी ही है। अतएव कालिदास और दिङ्नाग समकालीन थे, इस विषय पर ही मैं अपने विचार यहाँ कुछ प्रकट करना आवश्यक समझता हूँ। इसके प्रथम कि मल्लिनाथ की व्याख्या, जिसको शास्त्रीजी ने मूलाधार मानकर अपनी कल्पना का भवन-निर्माण किया है, के विरुद्ध ऐतिहासिक



...का उल्लेख किया जाय, यह विवेचनीय है ... विद्वान् लेखक महाशय ने कुन्दमाला की जिस ... के आधार पर इस धारणा की पुष्टि की है, ... द्वारा क्या निष्कर्ष निकल सकता है।

...शास्त्रीजी ने 'कुन्दमाला' के चित्ताकर्षक कुछ ...ों के साथ कालिदास के काव्यों के पद्यों की ...त्मक आलोचना में भावसाम्य दिखलाकर ...ने मत की पुष्टि की है। किन्तु इसके द्वारा न तो ...नाग कालिदास का प्रतिस्पर्द्धी ही सिद्ध हो ...ता है और न समकालीन; क्योंकि यह बात तो ...न दिङ्नाग और कालिदास के सम्बन्ध में ही ..., अन्य भी सुप्रसिद्ध महाकवियों के काव्यों के ...त्मक अध्ययन द्वारा स्पष्ट विदित हो सकती ... अपने पूर्ववर्ती कवि के मनोहारी वर्णनों के ...ों को ग्रहण करने का लोभ अनेक परवर्ती ... संवरण नहीं कर सके हैं। स्वयं महाकवि ...दास ने अपने काव्यों में वाल्मीकीय रामायण ...वों का यथेष्ट उपयोग किया है। यही नहीं, ...ने पूर्ववर्ती भास के नाटकों के वर्णनात्मक भाव ... बहुत-से ग्रहण किये हैं। देखिए—

'...स्वं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्ययाः।'

—भास का वासवदत्ता

'...वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगाः।'

—कालिदास का शाकुन्तल

...दूषकः—

'...स्यापि नाख्यास्यामि यथा संदष्टा मे जिह्वा।'

—स्वप्नवासवदत्ता

...दूषकः—

'...ने मया नियन्त्रिता जिह्वा यद्भवतोऽपि सहसा ...वचनं न ददामि।'

—कालिदास का विक्रमोर्वशीय

...—

'...वती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः, ...वदृत्ताबद्धं ननु तावन्मे मनो हरति।'

—स्वप्नवासवदत्ता

राजा—

'उर्वशीगतमनसोऽपि मे सएव देव्यां बहुमानः।'

—विक्रमोर्वशी

'कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना,
चक्रारपंक्तिमिव गच्छति भाग्यपंक्तिः।'

—स्वप्नवासवदत्ता १-४

'कस्यात्यन्तं सुखमुपगतं दुःखमेकान्ततो वा,
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।'

—मेघदूत

इसी प्रकार कालिदास के काव्यों के भावसाम्य उसके परवर्ती अनेक कवियों के काव्यों में दृष्टिगत होते हैं।

रघुवंश के दूसरे सर्ग में कालिदास ने लिखा है—

'ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी,
वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गा-
दुद्धर्तुमैच्छत्प्रसभोद्धृतारिः।'

—रघुवंश २-३०

इस पद्य की रमणीया सरणि का अनुसरण अश्वघोष ने इस प्रकार किया है—

'ततो विविक्तश्च विविक्तचेताः,
सन्मार्गविन्मार्गमभिप्रतस्थे।
गत्वाग्रतश्चाग्र्यतमाय तस्मै,
नन्दीविमुक्ताय ननाम नन्दः।'

—सौन्दरनन्द ५-६

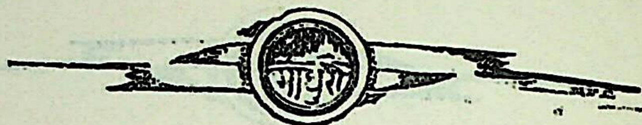
कालिदास ने श्रीशंकर के समीप पार्वतीजी की एक चेष्टा का वर्णन किया है—

'मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।'

—कुमारसम्भव

नन्द के विषय में अश्वघोष ने भी ठीक इसी प्रकार का वर्णन किया है—

'न गौरवं बुद्धगतं चकर्ष,
भार्यानुरागः पुनराचकर्ष।



सोऽनिश्चयान्नाभियौ न तस्थौ,
तरंस्तरंगेष्विव राजहंसः।'

कालिदास ने मेघदूत में कहा है—

'आशाबंधः कुसुमसदृशं प्रायशोह्यङ्गनानां,
सद्यःपाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि।'
—मेघदूत १०

इसी भाव को मालतीमाधव में भवभूति ने इस प्रकार कहा है—

'आशातन्तुर्नच कथयतात्यन्तमुच्छेदनीयः,
प्राणत्राणं कथमपि करोत्यायताक्ष्याः स एकः।'
—मालतीमाधव ६-२६

कालिदास ने मेघदूत में इन्द्रधनुषयुक्त श्याम-मेघ को मयूरपिच्छ के मुकुट धारे हुए श्रीश्यामसुन्दर कृष्ण की उपमा दी है—

'येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते,
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः।'

गीतगोविन्द में भक्त-प्रवर श्रीजयदेवजी ने इसी भाव को लेकर भगवान् श्रीकृष्ण को मेघ के इसी दृश्य की उपमा दी है।

'चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डकमण्डलवलयितवेशम्,
प्रचुरपुरन्दरधनुरनुरंजितमेदुरमुदितसुवेषम्।'

महाकवि माघ ने भी इसी वर्णन का भाव इस प्रकार वर्णन किया है—

अनुययौ विविधोपलकुण्डल-
द्युतिवितानकसंवलितांशुकम्।
धृतधनुर्वलयस्य पयोमुचः
शबलिमावलिमानमुषो वपुः।
सर्ग ६-२७

भावसाम्य का यह दिग्दर्शन मात्र है। क्या इन सभी कवियों को समकालीन या एक दूसरे का प्रतिस्पर्द्धी माना जा सकता है? वस्तुतः यह व्यापार भावापहरण है, जिसके बहुत-से भेद हैं। इस विषय का विवेचन ध्वन्यालोक की वृत्ति में श्रीआनन्दवर्द्धनाचार्य ने एवं काव्य-मीमांसा में कवि-राज राजशेखर ने बहुत-से कवियों के भाव-साम्य के उदाहरणों द्वारा किया है। ऐसी परिस्थिति में भाव-साम्य के आधार पर एक कवि को दूसरे का समकालीन या प्रतिस्पर्द्धी किसी प्रकार भी नहीं माना जा सकता। फिर एक बात और भी है—वर्तमान काल में तो मुद्रणालयों द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों की प्रसिद्धि एवं रेलवे मार्ग द्वारा उनका प्रचार अल्प समय में ही हो जाने से एक विद्वान् ग्रन्थकर्ता के भावों का दूसरे द्वारा ग्रहण या अप-हरण किया जाना एक सरल एवं सुसाध्य व्यापार हो रहा है। परन्तु प्राचीन काल में ऐसे सुलभ साधनों का अभाव होने के कारण एक ग्रन्थ की प्रसिद्धि और प्रचार के लिए एवं उसके भावों को अपनाने के लिए बहुत दीर्घ समय की अपेक्षा थी। अतएव भाव-साम्य के आधार पर कालिदास और आचार्य दिङ्नाग का समकालीन होना किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता। और, न यही सिद्ध हो सकता है कि दिङ्नाग की उत्कृष्ट रचना के विषय में कालिदास प्रतिस्पर्द्धी थे। अतएव यह कल्पना भी सर्वथा निर्मूल है कि मेघदूत के उपर्युक्त 'अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः' इस पद्य में कालिदास ने दिङ्नाग पर व्यंग्योक्ति की है।

अच्छा अब हम उस रहस्य का उद्घाटन करते हैं, जिसके कारण मल्लिनाथ को मेघदूत के इस पद्य की व्याख्या में दिङ्नाग और कालिदास का प्रतिस्पर्द्धी रूप में सम्बन्ध-स्थापन करने का भ्रम उत्पन्न हुआ है। वह यह है कि कालिदास नाम के एक अन्य कवि ने 'नानार्थशब्दरत्न' नाम का एक ग्रन्थ लिखा है और उस ग्रन्थ पर उसी (अन्य) कालिदास के मित्र निचुल-नामक एक विद्वान् ने 'तरला' नाम की टीका लिखी है। सम्भवतः उसी ग्रन्थ की किसी प्रति को देखकर या उसके आधार पर प्रचलित किंवदन्ती को सुनकर मल्लिनाथ ने अपनी व्याख्या में यह कल्पना की है। देखिए मद्रास-गवर्नमेंट द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तकों के



...ग्रंथ में पूर्वोक्त 'नानार्थ शब्दरत्न' के प्रारम्भ और अंत में इस प्रकार उल्लेख है—

प्रारम्भ—

'...मित्रकालिदासोक्तशब्दरत्नार्थगर्भितम्।'
...तरलाख्या लसद् व्याख्यामाख्याते तन्मतानुगम्।

और अंतिम लेख यह है—

'इति श्रीमन्महाराजशिरोमणिश्रीभोजराज-...श्रितनिचुलकवियोगिचन्द्रनिर्मितायां महा-...कालिदासकृतनानार्थशब्दरत्नकोषरत्नदीपिकायां ...ख्यायां सर्वं तृतीयनिबन्धनम्।'

(मद्रास-गवर्नमेंट ह० लि० पुस्त० सूची० सन् ...६ पृ० ११७६)

इसके द्वारा निर्विवाद सिद्ध होता है कि जिस ...के आधार पर मल्लिनाथ ने 'निचुल' शब्द में ...र्थ कल्पना करके दिङ्नाग के साथ कालिदास ...सम्बन्ध की कल्पना की है, वह निचुल महा-...राज भोज के समकालीन है; न कि रघुवंशादि ...काव्य-प्रणेता सुप्रसिद्ध महाकवि कालिदास के। ..., इस भ्रम को व्यापक करने का श्रेय भी मल्लि-...नाथ को ही है; क्योंकि मेघदूत की उपलब्ध टीकाओं ...में सबसे प्राचीनतम टीका श्रीवल्लभदेव की है। उस ...टीका में वल्लभदेव ने इस पद्य का एक ही प्रासङ्गिक ...अर्थ किया है। मल्लिनाथ की अपेक्षा वल्लभदेव ...प्राचीन है। वल्लभदेव के समय में कालिदास ...और दिङ्नाग के सम्बन्ध में यदि किसी प्रकार की ...किंवदन्ती प्रचलित होती, तो उसका उल्लेख ...वल्लभदेव द्वारा भी अवश्य होना अनिवार्य था। ...अतः महाकवि कालिदास को आचार्य दिङ्नाग ...का समकालीन कल्पना किया जाना एकदम ही ...निराधार है।

रूप और यौवन-विलास के कवि 'प्रसाद'

श्रीरामनाथ 'सुमन'

जैसा कि मैं पहले भी कहीं लिख चुका हूँ, कवि 'प्रसाद' सम्पूर्ण अ ॅ में एक मानवीय कवि हैं। उन्होंने जीवन को सम्पूर्ण आग्रह के साथ ग्रहण किया है। उनके निकट जीवन के अतिरिक्त और कुछ सत्य नहीं है। इसी लिए, अपने दुःख में, विषाद में, हर्ष में, विलास में सर्वत्र कवि अत्यन्त आसक्त है। सिवा 'प्रेम-पथिक' और 'झरना' की कुछ पंक्तियों के कहीं भी कवि को हम अनासक्त, आग्रह से शून्य और पूर्णतः समर्पित नहीं पाते हैं। उसका जीवन-चक्र अट्टालिकाओं और विलास-कुंजों में पनपा है; इसी लिए जब प्रखर दोपहरी आई है और यात्रा में चटियल मैदान पड़ा है, तो कवि अपने को विरस पाता है। आरम्भ से उसके चारों ओर एक ऐसे लोक का विस्तार रहा है, जिसमें वैभव है, सुख है, विलास है; जो यौवन की मदिरा से प्रमत्त, यौवन के ज्वार में चिंताहीन और यौवन के स्पर्श एवं बोझ से मृदुल एवं शिथिल है। आगे जब जीवन रास्ते पर आया है और वह यौवन की निशा स्वप्न की नाईं टूट और गलकर प्रकाश एवं कर्कश कर्म-कोलाहल से भरे हुए प्रभात में विलीन हो गई है, तब भी कुछ समय तक कवि जैसे उसी स्वप्निल संसार में पड़ा रहा है। यह यौवन की ख़ुमारी कवि के जीवन में बड़ी देर तक रही है। जो 'प्रसाद'जी को व्यक्तिगत रूप से जानते हैं, वे इस आश्चर्यजनक-सी बात की गवाही देंगे कि उनको अपने पिछले जीवन में जो प्रबल संघर्ष करना पड़ा है, उससे कवि 'प्रसाद' (अपने काव्य में) बिल्कुल अछूते हैं। उनका वर्तमान जीवन जब नग्न कठोरताओं से पूर्ण है, तब भी बहुत करके काव्य में पुरातन विलास एवं वैभव की छाया है। उनकी काव्य-सम्पत्ति का अधिकांश भाग जीवन के कोला-हल एवं कर्म के आह्वान से सर्वथा अछूता है। यह भी एक आश्चर्यजनक-सी बात लगती है कि व्यक्ति-गत जीवन के संघर्ष ने भी कवि को जगत् की जीवन-धारा से अलग ही छोड़ दिया है। संघर्ष को लेकर भी प्रसादजी कर्ममय जीवन के चैलेंज को स्वीकार नहीं कर पाये। इसी लिए साहित्य प्रसादजी का क्रियात्मक नेतृत्व प्राप्त न कर सका।

पर कवि 'प्रसाद' के जीवन की उठान ही ऐसी है कि प्यास के साथ भी उसमें संतोष है और संघ[र्ष] के साथ भी एक निष्क्रियता है। यह कवि की [...] बहुत बड़ी सिद्धि है कि वह अपने कवि को जीव[न] की होड़ एवं प्रवंचना के निम्न स्तर से अलग र[ख] सका है। इस तटस्थ वृत्ति से हानि भी हुई है; क्योंकि कवि प्रबल आत्मानुभव में अपने को लय नहीं क[र] पाता है। उसके जीवन में प्रति पग पर वह साम[...] जस्य नहीं है, जो कवि को द्रष्टा एवं मंत्रदाता ब[ना] देता है। पर इस तटस्थ वृत्ति के कारण ही कवि 'प्रसाद' एक श्रेष्ठ मानव बन सके हैं और यह भ[ी] अतीत का वैभव अथवा कल्पना-प्रधान काव्य क[ा]



विलास उनके व्यक्तिगत जीवन को बहुत कुछ अछूता ही छोड़ गया है।

एक पैनी दार्शनिक दृष्टि पाकर भी प्रसादजी के काव्य में मानवीय सुषमा, प्रधानतः, जो परिष्कृत एवं शुद्ध सौन्दर्य नहीं बन सकी है, उसका कारण यही है कि उस सुषमा में उनका 'स्व' अलग ही अलग रह जाता है। जब रमणीयता में मनुष्य अपने आग्रह एवं अस्तित्व को भूल जाता है और पूर्णतः अर्पित एवं निःस्व हो उठता है, तो वासनाएँ प्रेम हो जाती हैं और रमणीयता चिर सौन्दर्य बन जाती है। कवि 'प्रसाद' निसर्ग-रहस्य से पूर्ण इस गूढ़ सौन्दर्य से अलग हैं। उनका प्रकृति-दर्शन मानव-सापेक्ष होने से उनका काव्य मानव के रूप-वर्णन से भरा हुआ है। इस रूप-वर्णन में भी रमणीयता को ही लेते और व्यक्त करते वह चलते हैं। हाँ, यह श्रेय की बात है कि जहाँ उनका रूप-वर्णन अत्यन्त वैभव एवं विलास के वातावरण से घिरा हुआ और मांसल है, वहाँ भी उसमें कहीं अश्लीलता नहीं आने पाई है।

कवि 'प्रसाद' का काव्य रूप के श्रेष्ठतम चित्रों से पूर्ण है। मेरा ख़याल तो यह है कि इस विषय में, आधुनिक हिन्दी-कवियों में, कोई उन तक नहीं पहुँचता। सब मिलाकर हिन्दी के 'रूप' के वह अत्यन्त श्रेष्ठ चित्रकार हैं। रूप की भिन्न-भिन्न दशाओं, अवस्थाओं के ऐसे मार्मिक एवं सजीव चित्र उनके काव्य में मिलते हैं कि पाठक का हृदय आनन्द से भर जाता है। यह उनकी ख़ास क़लम का—ख़ास विषय है। रूप की कुछ कविताएँ तो ऐसी हैं कि अत्यन्त श्रेष्ठ सौन्दर्य-दर्शन से पूर्ण होने के कारण वे किसी भी साहित्य को गौरव प्रदान कर सकती हैं। उनका ऐसा एक गान, जिसे मैं उनकी सर्वोत्तम रचनाओं में स्थान देता हूँ, यह है—

गान

तुम कनक-किरन के अंतराल से,
लुक-छिपकर चलते हो क्यों ?
नत मस्तक गर्व वहन करते,
यौवन के घन-रस-कन ढरते,
हे लाजभरे सौन्दर्य ! बता दो,
मौन बने रहते हो क्यों ?
तुम कनक-किरन के अंतराल से,
लुक-छिपकर चलते हो क्यों ?
अधरों के मधुर कगारों में
कलकल-ध्वनि के गुंजारों में
मधु-सरिता-सी यह हँसी तरल,
अपनी पीते रहते हो क्यों ?
तुम कनक-किरन के अंतराल से,
लुक-छिपकर चलते हो क्यों ?

[चन्द्रगुप्त नाटक, पृष्ठ ११-१२

लज्जा से भरे हुए मौन यौवन का यह चित्र कितना बोलता-सा, कितना सजीव है। ओठों पर तरल मुस्कराहट है, आँखों में यौवन का हलका नशा और लुका-छिपी है। यौवन के घन से रस-कन बरस रहे हैं और लाज से भरा सौन्दर्य मौन है। इस मौन में वह कितना व्यक्त कितना अभिनव हो उठा है।

कवि का एक छोटा चित्र बहुत प्रसिद्ध है—

शशिमुख पर घूँघट डाले,
अंचल में दीप छिपाये ;
जीवन की गोधूली में,
कौतूहल से तुम आये ।

['आँसू', प्रथम संस्करण, छन्द ४०

शब्द अपनी पूर्ण व्यंजना को लेकर इसमें एकत्र हुए हैं। शब्दों के सुन्दर निर्वाचन एवं सामञ्जस्य से एक श्रेष्ठ चित्र बन गया है। शशि, घूँघट, अंचल, दीप, गोधूली शब्दों में कैसी सगोत्रता (Affinity) है। जीवन के एक क्षण का चित्र होकर भी यह चिरन्तन हो उठा है। इसको लेकर कोई श्रेष्ठ चित्र-शिल्पी भारतीय नारी का श्रेष्ठ तात्त्विक चित्र बना सकता है। इसमें रूप पर आवरण अतः नियंत्रण



है; अन्तर में प्रकाश है। प्रणय के जीवन में प्रवेश करते समय अंचल में छिपा दीप उसकी अर्चना, उपासना पूर्ण जीवन-भूमिका का द्योतक है।

कहीं-कहीं अलंकृत पद-योजना के द्वारा मानव-सापेक्ष प्रकृति-चित्र भी सुन्दर बन गये हैं। फिर भी मानव-सापेक्ष होने से उनमें मानव-रूप की ही प्रधानता है—

बीती विभावरी जागरी !

(मानव सापेक्ष प्रकृति-चित्र)

अम्बर-पनघट में डुबो रही,—
तारा-घट ऊषा नागरी। बीती० ॥
खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई—
मधुमुकुल नवल रस गागरी। बीती० ॥

(रूप-चित्र)

अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये—
तू अब तक सोई है आली !
आँखों में भरे विहाग री। बीती० ॥

['लहर', पृष्ठ १६

कहीं-कहीं इनकी कविता में उद्वेलित यौवन के अत्यन्त आग्रहपूर्ण चित्र हैं। जैसे—

आह रे, वह अधीर यौवन।
मत्त-मारुत पर चढ़ उद्भ्रान्त,
बरसने ज्यों मदिरा अश्रान्त—
सिन्धु बेला सी घनमंडली,
अखिल किरनों को ढँककर चली,
भावना के निस्सीम गगन,
बुद्धि-चपला का क्षण नर्तन—
चूमने को अपना जीवन,
चला था वह अधीर यौवन !
आह रे! वह अधीर यौवन !
अधर में वह अधरों की प्यास,
नयन में दर्शन का विश्वास
धमनियों में आलिंगनमयी,
वेदना लिये व्यथाएँ नई,
टूटते जिससे सब बन्धन,
सरस-सीकर से जीवन-कन,
बिखर भर देते अखिल भुवन,
वही पागल अधीर यौवन !
आह रे! वह अधीर यौवन !
मधुर जीवन के पूर्ण विकास,
विश्व-मधुऋतु के कुसुम-विलास,
ठहर, भर आँखें देख नई—
भूमिका अपनी रंगमयी,
अखिल की लघुता आई बन—
समय का सुन्दर वातायन,
देखने को अदृष्ट नर्तन
अरे अभिलाषा के यौवन !
आह रे ! वह अधीर यौवन !

[लहर, पृष्ठ १८-१६

इसमें कोई श्रेष्ठ चित्र नहीं है, पर यौवन-विलास का आग्रहमय वर्णन है। काव्य की दृष्टि से इसे बहुत महत्व नहीं दिया जा सकता। विषय के प्रतिपादन की दृष्टि से मैंने इसे यहाँ दिया है।

'स्कंदगुप्त' (नाटक) में विजया स्कंदगुप्त को उसके तत्त्व-चिंतन पर फटकारती है। विजया उमड़ती नदी से भरा हृदय और यौवन लेकर अर्पण के लिए स्कंदगुप्त के चरणों में उपस्थित नारी है। उसके मुख से लेखक ने कहलाया है—"रहने दो यह थोथा ज्ञान। प्रियतम! यह भरा हुआ यौवन और प्रेमी हृदय, विलास के उपकरणों के साथ प्रस्तुत है; उन्मुक्त आकाश के नील-नीरद मंडल में, दो बिजलियों के समान क्रीड़ा करते-करते हम लोग तिरोहित हो जायँ! और उस क्रीड़ा में तीव्र आलोक हो, जो हम लोगों के विलीन हो जाने पर भी, जगत् की आँखों को थोड़े काल तक बंद रक्खे! वर्षा की बहिया-सी हमारे विलास का स्रोत चेतन के अस्तित्व को डुबो दे और हम लोगों



की जीवन-तरी थिरकती हुई मनमानी चाल से वह निकले ! स्वर्ग-कल्पित अप्सरा और इस लोक के अनंत पुण्य के भागी जीव भी जिस सुख को देख-कर आश्चर्यचकित हों, वही मादक सुख... ....हम लोगों को आलिंगन करके धन्य हो जाय !"

इसी उद्दाम यौवन-विलास और उसके खोने पर उसकी लालसा-भरी स्मृतियों से कवि का काव्य पूर्ण है। यह अंश जो यहाँ उद्धृत किया गया है, एक प्रतिनिधि चित्र-सा है और विजया यौवन-विह्वल रूप का एक चित्र हमें आगे देती है—

अगरु-धूम की श्याम-लहरियाँ
उलझी हों इन अलकों से ;
मादकता-लाली के डोरे
इधर फँसे हों पलकों से।
व्याकुल बिजली-सी तुम मचलो
आर्द्र हृदय - घनमाला से ;
आँसू बरुनी से उलझे हों,
अधर प्रेम के प्याला से।
इस उदास मन की अभिलाषा
अटकी रहे प्रलोभन से ;
व्याकुलता सौ-सौ बल खाकर
उलझ रही हो जीवन से।
छवि-प्रकाश-किरनें उलझी हों
जीवन के भविष्य तम से ;
ये लायेंगी रंग सुलालित
होने दो कंपन सम से।
इस आकुल जीवन की घड़ियाँ
इन निष्ठुर आघातों से ;
बजा करें अगणित यंत्रों से
सुख-दुख के अनुपातों से।
उखड़ी साँसें उलझ रही हों
धड़कन से कुछ परिमित हो ;
अनुनय उलझ रहा हो तीखे
तिरस्कार से लांछित हो।

यह दुर्बल दीनता रहे उलझी
फिर चाहे ठुकराओ ;
निर्दयता के इन चरणों से,
जिसमें तुम भी सुख पाओ।

[स्कन्दगुप्त, पृ० १५७

कवि बीते हुए यौवन-विलास के क्षणों को अत्यंत दुःख और आग्रह के साथ याद करता है—

अभिलाषाओं की करवट
फिर सुप्त व्यथा का जगना ;
सुख का सपना हो जाना
भीगी पलकों का लगना।
इस हृदय-कमल का घिरना
अलि अलकों की उलझन में ;
आँसू-मरन्द का गिरना
मिलना निश्वास-पवन में।
मादक थी, मोहमयी थी
मन बहलाने की क्रीड़ा ;
अब हृदय हिला देती है
वह मधुर प्रेम की पीड़ा।

[आँसू, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ७-८

नखशिख तो नहीं, पर नखशिख-जैसा ही एक अलंकृत रूप-वर्णन 'आँसू' में देखिए—

बाँधा था विधु को किसने
इन काली जंजीरों से
मणिवाले फणियों का मुख
क्यों भरा हुआ हीरों से ?
❀ ❀ ❀
काली आँखों में कितनी
यौवन के मद की लाली ;
मानिक-मदिरा से भर दी
किसने नीलम की प्याली।
❀ ❀ ❀
तिर रही अतृप्ति-जलधि में
नीलम की नाव निराली ;



काला-पानी बेला-सी
है अंजन-रेखा काली ।

❀ ❀ ❀

अंकित कर क्षितिज-परी को
तूलिका बरौनी तेरी ;
कितने घायल हृदयों की
बन जाती चतुर चितेरी ।

❀ ❀ ❀

कोमल कपोल पाली में
सीधी सादी स्मित रेखा ;
जानेगा वही कुटिलता
जिसने भौं में बल देखा ।

❀ ❀ ❀

विद्रुम सीपी सम्पुट में
मोती के दाने कैसे ?
है हंस न, शुक यह, फिर क्यों
चुगने को मुक्ता ऐसे ?

❀ ❀ ❀

विकसित सरसिज-वन वैभव
मधु ऊषा के अंचल में ;
उपहास करावे अपना
जो हँसी देख ले पल में ।

❀ ❀ ❀

मुख-कमल समीप सजे थे
दो किसलय से पुरइन के ;
जलबिंदु-सदृश ठहरे कब
उन कानों में दुख किनके ?

❀ ❀ ❀

थी किस अनंग के धनु की
वह शिथिल शिंजिनी दुहरी ;
अलबेली बाहु-लता या
तनु छवि-सर की नवलहरी ?
[आँसू, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ १७-२०

ऐसी 'अनंग के धनु की शिथिल शिंजिनी' जहाँ हो और जहाँ कल्पना के वे सब उपकरण हों, जिनको पाकर उमर ख़ैयाम की ईरानी मदिरा योरप के रसिकों तक पहुँच सकी, तो यौवन का विलास क्यों न वाणी में बोले। कवि 'प्रसाद' का यौवन-विलास भी वैभव की स्मृतियों के चित्र-विचित्र 'बैक ग्राउण्ड' पर यों व्यक्त हुआ है—

हिलते द्रुम-दल कल किसलय
देती गलबाँहीं डाली ।
फूलों का चुम्बन, छिड़ती—
मधुपों की तान निराली ।
मुरली मुखरित होती थी
मुकुलों के अधर विहँसते ;
मकरन्द-भार से दबकर
श्रवणों में स्वर जा बसते ।
परिरंभ कुम्भ की मदिरा
निश्वास मलय के झोंके ;
मुख-चन्द्र चाँदनी जल से
मैं उठता था मुँह धोके ।
थक जाती थी सुख रजनी
मुख चन्द्र हृदय में सोता ;
श्रम-सीकर सदृश नखत से
अम्बर-पट भीगा होता ।
सोयेगी कभी न वैसी
फिर मिलन-कुंज में मेरे
चाँदनी शिथिल अलसाई
सुख के सपनों से मेरे ।
[आँसू, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ २२-२३

'लहर' की अनेक रचनाओं में रूप और यौवन-विलास के अत्यन्त अलंकृत चित्र मिलते हैं, परन्तु उसकी अंतिम कविता—'प्रलय की छाया'—रूप-वर्णन में बहुत ऊँची उठी है। 'प्रसाद' की कविताओं में इस जोड़ की, इस तरह की, चीज़ें बहुत कम होंगी। इस कविता के लिए कवि ने



[illegible] वृत्त चुना है, वह भी विषय के अत्यन्त [illegible] हुआ है। ओज एवं प्रवाह ऐसे वृत्त [illegible] है। उद्दाम वर्णन के लिए यह सर्वथा [illegible] है। 'प्रलय की छाया' में अपनी रमणीयता [illegible] रूपगर्विता नारी का सुन्दर रूप-वर्णन है। [illegible]रमणी महत्त्वाकांक्षा एवं रूप-गर्व की [illegible] से डसी जाकर उन नशीले यौवन-क्षणों [illegible] करती है, जब—

निर्जन जलधि-वेला रागमयी संध्या से—
सीखती थीं सौरभ से भरी रंगरलियाँ।
दूरागत वंशी रव—
गूँजता था धीवरों की छोटी-छोटी नावों से।
मेरे उस यौवन के मालती-मुकुल में
रंध्र खोजती थीं, रजनी की नीली किरणें
उसे उकसाने को—हँसाने को।
पागल हुई मैं अपनी ही मृदु गंध से—
कस्तूरी मृग-जैसी।
पश्चिम जलधि में
मेरी लहरीली नीली अलकावली समान
लहरें उठती थीं मानो चूमने को मुझको
और साँस लेता था समीर मुझे छूकर।
नृत्यशीला शैशव की स्फूर्तियाँ
दौड़कर दूर जा खड़ी हो हँसने लगीं।
मेरे तो,
चरण हुए थे विजड़ित मधु-भार से।
हँसती अनंग-बालिकाएँ अन्तरिक्ष में
मेरी उस क्रीड़ा के मधु अभिषेक में
नतशिर देख मुझे।
कमनीयता थी जो समस्त गुजरात की
हुई एकत्र इस मेरी अंगलतिका में
पलकें मदिर भार से थीं झुकी पड़तीं।
नन्दन की शत-शत दिव्य कुसुम-कुंतला
अप्सराएँ मानो वे सुगंध की पुतलियाँ
आ-आकर चूम रहीं अरुण अधर मेरा
जिसमें स्वयं ही मुसकान खिल पड़ती।
नूपुरों की झनकार घुली-मिली जाती थी
चरण अलक्तक की लाली से।
जैसे अन्तरिक्ष की अरुणिमा
पी रही दिगन्तव्यापी संध्या-संगीत को।
कितनी मादकता थी?
लेने लगी झपकी मैं
सुख-रजनी की विश्रम्भ-कथा सुनती;
जिसमें थी आशा
अभिलाषा से भरी थी जो
कामना के कमनीय मृदुल प्रमोद में
जीवन-सुरा की वह पहली ही प्याली थी।
आँखें खुलीं;
देखा मैंने चरणों में लोटती थी
विश्व की विभव-राशि,
और थे प्रणत वहीं गुर्जर-महीप भी।
वह एक संध्या थी।
श्यामा-सृष्टि युवती थी
तारक खचित नीलपट परिधान था
अखिल अनन्त में
चमक रही थीं लालसा की दीप्त मणियाँ—
ज्योतिर्मयी, हासमयी, विकल विलासमयी,
बहती थी धीरे-धीरे सरिता
उस मधु यामिनी में
मदकल मलय पवन ले-ले फूलों से
मधुर मरन्द बिंदु उसमें मिलाता था।
चाँदनी के अंचल में
हरा-भरा पुलिन अलस नींद ले रहा
सृष्टि के रहस्य-सी परखने को मुझको
तारकायें झाँकती थीं।
शत शतदलों की
मुद्रित मधुर गन्ध भीनी-भीनी रोम में
बहाती लावण्य-धारा।
स्मर-शशि किरणें,



स्पर्श करती थीं इस चन्द्रकांत मणि को
स्निग्धता बिछलती थी जिस मेरे अंग पर।
अनुरागपूर्ण था हृदय उपहार में
गुर्जरेश पाँवड़े बिछाते रहे पलकों के
तिरते थे—
मेरी अँगड़ाइयों की लहरों में।
पीते मकरन्द थे,
मेरे इस अधखिले आनन-सरोज का।
कितना सोहाग था, कैसा अनुराग था?
खिली स्वर्ण-मल्लिका की सुरभित वल्लरी-सी,
गुर्जर के थाले में मरंद वर्षा करती मैं।"

[लहर, पृष्ठ ६५-६६

उद्दाम यौवन का चित्र 'प्रसाद'जी के हाथों प्रायः अच्छा उतरता है। जान पड़ता है, कवि ने जीवन को प्यार किया है और इस जीवन में यौवन का स्वप्न मृग-नाभि में अन्तर्हित कस्तूरी की भाँति भर गया है। इस यौवन के स्वप्नमंदिर में नव-यौवना नारी की कमनीय मूर्त्ति की प्रतिष्ठा है। इसी लिए हम देखते हैं कि जहाँ प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में कवि ने अलंकारों का उपयोग किया है, वहाँ भी अधिकतर उपमा, रूपक इत्यादि की ही अधिकता है और रूपकों में भी नारी-सापेक्ष प्रकृति की सांग-रूपता का प्राधान्य है। जैसे सूर्योदय के पूर्व का एक चित्र देखिए—

अन्तरिक्ष में अभी सो रही है ऊषा मधुबाला;
अरे खुली भी नहीं अभी तो प्राची की मधुशाला।
सोता तारक किरन पुलक रोमावलि मलयजवात;
लेते अँगड़ाई नीड़ों में अलस विहग मृदुगात।
रजनी रानी की बिखरी है म्लान कुसुम की माला;
अरे भिखारी! तू चल पड़ता लेकर टूटा प्याला।

[लहर, पृष्ठ ५१

क़रीब-क़रीब यही बात संध्या के चित्र में भी है—

अस्ताचल पर युवती संध्या की
खुली अलक घुँघराली है।
लो मानिक मदिरा की धारा
अब बहने लगी निराली है।
भर ली पहाड़ियों ने अपनी
झीलों की रत्नमयी प्याली।
झुक चली चूमने वल्लरियों
से लिपटी तरु की डाली है।
यह लगा पिघलने मानिनियों का
हृदय मृदु प्रणय रोष-भरा,
वे हँसती हुई दुलार-भरी
मधु लहर उठानेवाली है।
... ...
भर उठीं प्यालियाँ, सुमनों ने
सौरभ मकरन्द मिलाया है।
कामिनियों ने अनुराग-भरे
अधरों से उन्हें लगा ली है।
वसुधा मदमाती हुई उधर
आकाश लगा देखो झुकने,
सब झूम रहे अपने सुख में
तूने क्यों बाधा डाली है?

[ध्रुव स्वामिनी, पृष्ठ ४५-४६

यौवन के प्रति कवि का आग्रह तो जगह-जगह है—

१. यौवन! तेरी चंचल छाया।
इसमें बैठ घूँट भर पी लूँ जो रस तू है लाया

[ध्रुव स्वामिनी, पृष्ठ ४०

२. मेरे जीवन के सुख-निशीथ!
जाते-जाते रुक जाना

[लहर, पृष्ठ ४२

३. पी लो छवि-रस-माधुरी सींचो जीवन-बेल
जी लो सुख से आयु भर यह माया का खेल
मिलो स्नेह से गले;
घने प्रेम-तरु तले।

[स्कन्दगुप्त, पृष्ठ ५४



काव्य अथवा नाटक में जहाँ भी नारी के रूप प्रवृत्तियों का वर्णन आता है, 'प्रसाद'जी प्रायः हुए हैं। उनके महाकाव्य—'कामायनी'— नारी और लज्जा की बातचीत बड़ी सुन्दर छन्द बिल्कुल विषय के अनुकूल हैं। उनमें और मृदुलता है। नारी लज्जा से मृदुल है। उसकी बाँध है और इसे पाकर वह फल से डाली की भाँति आत्मार्पण करती है।

(नारी कहती है)

नन्हें किसलय के अंचल में
नन्हीं कलिका ज्यों छिपती-सी,
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती-सी।
मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद निखरता ज्यों,
सुरभित लहरों की छाया में
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों।
वैसी ही, माया में लिपटी
अधरों पर उँगली धरे हुए,
माधव के सरस कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए।
नीरव निशीथ में लतिका सी
तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?
कोमल बाँहें फैलाये-सी
आलिंगन का जादू पढ़ती।
किन इन्द्रजाल के फूलों से
लेकर सुहाग-कण राग-भरे।
सिर नीचा करके गूँथ रही
माला जिससे मधु धार ढरे।
पुलकित कदम्ब की माला-सी
पहना देती हो अन्तर में।
झुक जाती है मन की डाली
अपनी फल-भरता के डर में।
वरदान-सदृश हो डाल रही
नीली किरनों से बुना हुआ,
यह अंचल कितना हलका-सा
कितने सौरभ से सना हुआ।
स्मित बन जाती है तरल हँसी
नयनों में भरकर बाँकपना !
प्रत्यक्ष देखती हूँ सब जो
वह बनता जाता है सपना।
... ...
तुम कौन ? हृदय की परवशता,
सारी स्वतन्त्रता छीन रही ?
स्वच्छन्द सुमन जो खिले रहे
जीवन-वन से हो बीन रही।

(लज्जा कहती है)

इतना न चमत्कृत हो बाले !
अपने मन का उपचार करो।
मैं एक पकड़ हूँ जो कहती
'ठहरो, कुछ सोच-विचार करो।'
अम्बरचुम्बी हिमशृंगों से
कलरव के बादल साथ लिये,
विद्युत् की प्राणमयी धारा
बहती जिसमें उन्माद लिये।
मंगल-कुंकुम की श्री जिसमें
निखरी हो ऊषा-सी लाली।
भोला सुहाग इठलाता हो
ऐसी हो जिसमें हरियाली।
हो नयनों का कल्याण बना
आनन्द-सुमन-सा विकसा हो।
वासंती के वन-वैभव में
जिसका पंचम स्वर पिक-सा हो।
जो गूँज उठे फिर नस-नस में
मूर्च्छना-समान मचलता-सा।
आँखों के साँचे में आकर
रमणीय रूप बन ढलता-सा।



नयनों की नीलम की घाटी
जिस रस-घन से छा जाती हो।
वह कौंध कि जिससे अंतर की
शीतलता ठंडक पाती हो।
हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का
गोधूली की-सी ममता हो।
जागरण प्रात-सा हँसता हो
जिसमें मध्याह्न निखरता हो।
हो चकित निकल आई सहसा
जो अपने प्राची के घर से।
बावली चन्द्रिका-सा बिछले
जो मानस की लहरों पर से।
फूलों की कोमल पंखुरियाँ
बिखरें जिसके अभिनंदन में।
मकरंद मिलाती हो अपना
स्वागत के कुंकुम-चन्दन में।
कोमल किसलय मर्मर स्वर से
जिसका जयघोष सुनाते हैं।
जिसमें अनंत अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं।
मैं उसी चपल की धात्री हूँ
गौरव-महिमा हूँ सिखलाता।
ठोकर जो लगनेवाली है
उसको धीरे से समझाती।
... ...
चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली।
मैं वह हलकी-सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।

इस प्रकार हम देखते हैं कि क्या स्फुट काव्य, क्या नाटक, क्या महाकाव्य सर्वत्र कवि प्रसाद के पीछे यौवन का चिरममत्व, जीवन-रथ में बैठा हुआ चल रहा है। यह कवि अति-मानवीय कवि है। इसके प्रेम में त्याग की अपेक्षा आग्रह, आत्म-विसर्जन की अपेक्षा अधिकार और विसर्जन की अपेक्षा मोह अधिक है। उसके जीवन-मन्दिर का निर्माण वैभव की नींव पर हुआ है और आज जब वह वैभव स्वप्न हो गया है, तब भी कवि उस विध्वंस पर बैठकर अतीत की ख़ुमारी में उल्लसित है। अपने प्रबल आग्रह से अतीत उसके निकट सदा वर्तमान ही बना हुआ है। वह शुद्ध वर्तमान में, इच्छा करके भी, रह सकने में असमर्थ है। इसी लिए करुणा और विषाद से भरी रचनाओं में भी अलंकृत वैभव की पार्श्वभूमि है। 'आँसू' इसका एक स्पष्ट उदाहरण है। वहाँ भी कवि उजड़े प्रासादों में बैठकर रोता है और मल्लिका-कुंज में सिर धुनता है। यह कवि की शक्ति का ही द्योतक है कि प्रबल जीवन-संघर्ष में पड़कर भी वह अतीत को भूलता नहीं, बरन् अधिकाधिक याद करता है और वर्तमान से, एक सीमा तक ही, समझौता करता है। वस्तुतः यह अतीत की स्मृति, यह ख़ुमारी ही उसकी वर्तमान यात्रा की शक्ति है। और उसमें अतीत में जो देखा और अनुभव किया है, वह आँखों के आगे चिर स्वप्न की नाईं झूलता है। इसी लिए रूप और यौवन-विलास के चित्रों से उसका काव्य भरा पड़ा है। यह उन्नीसवीं शताब्दी की विरासत है, जो बीसवीं शताब्दी के कर्म-कोलाहल में लालसा और हसरत से अपनी चढ़ती जंवानी के दिनों को याद करती है और उसी में अवतरित एवं अभिव्यक्त है।



भक्ति तथा भक्त-महाकवि—सूर

श्रीशिखरचंद जैन

ज्ञान का संबंध मस्तिष्क से है एवं भक्ति का हृदय से। मस्तिष्क विचार, विवेक, ज्ञान एवं तर्क का निवास-स्थान है तथा हृदय सहृदयता, भावुकता, पर-दुःख-कातरता आदि कोमल भावनाओं का। ज्ञान इहलौकिक है, प्राप्य पदार्थ है। भक्ति पारलौकिक है, भगवत्-कृपा से ही प्राप्य है। ज्ञान में ओज और तेज है। कदाचित् इसी लिए ज्ञान पुल्लिंग है। भक्ति में शांति है, तन्मयता है, परमात्मा में एकीकरण की भावना एवं अनन्यता है। इसी लिए कदाचित् भक्ति-शब्द स्त्रीलिंग है। ज्ञान में पुरुषत्व का विकास है तो इसमें स्त्रीत्व की कोमलता। ज्ञान विजय चाहता है, भक्ति पराजय। ज्ञान समस्त ब्रह्मांड को वश में करना चाहता है, भक्ति अपने अणु-अणु को उसमें व्याप्त देखना चाहती है। ज्ञान परिश्रम-साध्य है, किंतु भक्ति के लिए हृदय चाहिए, भगवत्-कृपा चाहिए।

ज्ञान से आप मस्तिष्क पर प्रभाव डाल सकते हैं, भक्ति से हृदय पर। ज्ञान का प्रभाव कठिनता से स्थायित्व प्राप्त कर सकता है, किंतु भक्ति का सरलता से। ज्ञान में अभिमान के लिए पर्याप्त स्थान है, किंतु भक्ति अभिमान को—अहंकार को दूर से ही प्रणाम करती है। ज्ञान भक्ति के विना निरर्थक है, किंतु भक्ति के लिए ज्ञान का होना अनिवार्य नहीं। ज्ञान एक प्रबल नद है, जो अपने पूर में तटस्थ ग्राम, वृक्षादि को बहा लेता है, किंतु भक्ति एक निर्मल निर्झरिणी है, जो लोकापवाद की विकट चट्टानों को पार कर भी अपने प्रियतम से मिलने के लिए एकरस बहती चली जाती है और यदि नहीं मिल पाई तो शुष्क होकर—अपनापन ही, अहंकार ही—खोकर दूसरे रूप से अपने प्रियतम से मिल ही जाती है।

भक्ति ही ईश्वर-प्राप्ति, जो मानव-जीवन का अंतिम लक्ष्य है, का सुलभ साधन है। विना भक्ति के भगवान् का दर्शन होना दुर्लभ है। भक्ति ही से हृदय में भगवान् के दर्शन होते और एक अलौकिक अनिर्वचनीय आनंद की प्राप्ति होती है। भक्ति में आत्मा अपने 'अहं' को भुला देती है और तभी परमात्मा का प्रकाश उसमें स्थान कर लेता है, जैसे कि रिक्त स्थान में वायु स्वयं ही प्रवेश कर जाती है। भगवान् कृष्ण गीता में एक स्थान पर इसी लिए कहते हैं, जो मुझ पर आसक्त हैं और प्रेम-सहित मेरी उपासना करते हैं, उनकी बुद्धि को मैं इस प्रकार चलाता हूँ कि वे मुझे पा सकें। भक्ति में आत्मानुभव की आवश्यकता है। मनुष्य के लिए नवधा भक्ति—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरण-सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन—का कथन किया गया है। इनमें यद्यपि पाखंड को प्रश्रय बहुधा मिल जाया करता है, किंतु



ध्यान-पूर्वक विचारने पर ये भक्ति की चरमावस्था पर पहुँचाने के लिए नौ सोपान प्रतीत होते हैं, जिन पर चढ़कर ही भक्त सच्ची भक्ति, पराभक्ति तक पहुँच सकता है। विना भगवान् के गुणों को सुने मस्तिष्क में भाव उठ ही नहीं सकते, हृदय मथा ही नहीं जा सकता। विना उसका गायन किये हम उसकी ओर झुक ही नहीं सकते, हममें तन्मयता आ ही नहीं सकती। भगवान् का जब तक हम हृदय से बार-बार मनन न करें, उसका स्मरण न करें, तब तक हममें उस निष्कलंक के प्रति स्थायी अनुराग होना कठिन है। अनुराग प्रकट होने पर जिस प्रकार हो सके, उस प्रकार उसकी सेवा, अर्चना, वंदना चाहे दास्य-भाव से हो, चाहे सख्य भाव से अथवा आत्म-निवेदन के रूप में, किंतु कपट त्यागकर, निरीह और संसार से अनासक्त हो उस परम आत्मा की खोज में लगना ही सच्ची भक्ति है।

यह तो स्वाभाविक ही है कि जब हम किसी से प्रेम करने लगते हैं; उसे अपने हृदयासन पर अधिष्ठित कर देते हैं, तब उसकी सब वस्तुएँ हमें प्यारी लगने लगती हैं। उसका छोटे से छोटा स्मरण-चिह्न भी हमें आह्लाद-कारक प्रतीत होता है। इसी प्रकार परमात्मा से भी प्रेम होने पर उसकी समस्त रचना से हमारा प्रेम हो जाता है। हमारा हृदय घृणा से रहित हो सम-भावी बन जाता है। भक्ति विना विषय-वासनाओं को छोड़े प्राप्त नहीं हो सकती; अपने भुलाये विना उसमें तन्मयता नहीं आ सकती। इसी लिए भक्ति-पथ त्यागमय है। त्याग ही भक्ति एवं धर्म का मूल है और इसी में प्राणियों का, मानव का हित, सुख सन्निहित है। इस भक्ति को प्राप्त करने के साधन भी रामानुजाचार्य-जी ने विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद तथा अनुद्धर्ष बताये हैं। सदसद् के विचार को विवेक कहते हैं। रामानुजाचार्यजी तो खाद्याखाद्य के विचार को ही विवेक मानते हैं। विमोक का अर्थ है इन्द्रियजन्य क्षणिक आनंद को तिलांजलि दे संयम एवं सरलतापूर्वक जीवन व्यतीत करना। विमोक की प्राप्ति शनैः-शनैः सत्य, दया, दान आदि के नियम लेने एवं अभ्यास द्वारा ही हो सकती है। लगातार परिश्रम करते जाने को अभ्यास कहते हैं। क्रिया से उनका तात्पर्य कदाचित् कर्त्तव्य से है या मनुष्य की दैनिक धार्मिक क्रियाओं से। कल्याण का अर्थ भलाई या परोपकार एवं पवित्रता से भी है। अतएव भक्ति भी परोपकार वृत्ति को लिये हुए है। अनवसाद का अर्थ शक्ति-बल से है। विना शक्ति या बल के कोई कार्य नहीं चल सकता। किंतु शक्ति शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की होनी चाहिए। बलहीन मनुष्य का जीवन व्यर्थ है (Weekness is sin, disease is death)। वास्तव में निर्बलता एक पाप ही नहीं, महाभिशाप है। निर्बल हाथों से भक्ति कर सकना संभव नहीं। जैसा कहा भी है: "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"। इस प्रकार नवधा भक्ति के उक्त भेदों का जब हम विश्लेषण करते हैं, तब हमें उनमें क्रमिक विकास ही नहीं मिलता, वरन् उनमें उच्च कोटि की वैज्ञानिकता एवं आध्यात्मिकता दिखाई देती है। शास्त्रों में भक्ति-प्राप्ति के अन्य अनेक साधन एवं मार्ग बताये गये हैं, किंतु इन साधनों एवं मार्गों की अपेक्षा उपयुक्त हृदय की, सहृदयता की अधिक आवश्यकता है। भक्ति के लिए लगन की, एकाग्र चित्त की तथा एकरस अनन्य प्रेम की अधिक आवश्यकता है। ऐसी ही निर्मल भक्ति से प्रवाहित होनेवाला स्रोत ही विश्व-कल्याणकारी होता है। नानक, कबीर, सूर, तुलसी आदि ऐसे ही भक्त थे, अभ्यासी थे, और इसी लिए वे संसार का उपकार कर सके हैं।

भक्ति-भाव अनेक प्रकार से प्रकट किया जा सकता है। कभी तो भक्त परब्रह्म को अपना गुरु समझ अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है, कभी स्वामी मानकर। कभी वह उसे सखा समझता है, कभी अपना मित्र। वास्तव में परब्रह्म है भी आत्मा का गुरु, स्वामी, माता, पिता, मित्र और



कुछ। वह क्या नहीं है ? जिस भक्त के हृदय जिस प्रकार से हिलोर उठे और जैसा उसका दृष्टिकोण हो, उसी प्रकार वह परमात्मा को मानता है। भक्ति किसी भी प्रकार से की जाय, परमात्मा से कोई भी एक संबंध स्थापित किया जाता, किन्तु सब प्रकारों के संबंधों के लिए अनन्यता ही अत्यंत आवश्यक है। जब भक्त परमात्मा को अपना पति समझता है और स्वयं को स्त्री, तो उसके हृदय से ऐसे ही प्रेम के भाव उद्भूत होते हैं, जिससे इस संबंध की ही पुष्टि हो। इस संबंध में वह परमात्मा का आंतरिक संयोग सुखी होता, उससे मान-मनौअल करता और रूठता है। उसके न मिलने पर दुःखी होता है और विरहिणी नायिका के समान उसके वियोग में उसे यह संसार भारी हो जाता है। आत्मा में उसके दर्शन से पति-दर्शन के समान सुख होता है। जब वह स्वामी-सेवक के भाव से अपने उद्गार प्रकट करता है, तब वह अपने स्वामी को सर्वोच्च और स्वयं को अति तुच्छ समझता है। इस संबंध में वह परमात्मा की जितनी सेवा कर सके, उतनी सेवा करने की आकांक्षा रखता है। परमात्मा में उसे गुण ही गुण और स्वयं में दोष ही दोष दिखाई देते हैं। उसकी आज्ञा-पालन करना ही उसका एकमात्र कर्त्तव्य होता है। उस समय वह स्वयं को 'गुड़ी' और परमात्मा को 'गुड़ायक' समझ अपने को उसी के हाथों में समर्पण कर देता है। गुरु-शिष्य के संबंध के द्वारा वह गुरु ही में परमात्मा का आरोप कर उसकी पूजा-अर्चना करता है।

वात्सल्य-भाव-भक्ति में हम प्रेम का पूर्ण विकसित रूप देखते हैं एवं सख्य-भावों में हृदयोद्गारों की निर्मलता तथा निष्कपटता। गुरु-शिष्य-संबंध भंग हो सकता है। गुरु शिष्य को अवज्ञाकारी देख उससे घृणा करता है, उसे पृथक् कर सकता है। उसमें बुद्धि का अभाव देख उसे ज्ञान-दान देने में संकोच कर सकता है। शिष्य भी गुरु को त्याग अन्य को अपना सकता है। यही बात स्वामी-सेवक में भी हो सकती है। स्वामी सेवक को तिलाञ्जलि दे सकता है और सेवक स्वामी को।

पति-पत्नी-भाव में शृंगार-भाव परा काष्ठा पर पहुँच जाता है और यह सम्बन्ध भी जीवन-पर्यंत निबाहा जा सकता है। इसमें निर्मलता एवं कोमलता भी प्रचुर मात्रा में व्याप्त है, किंतु यह भी वात्सल्य-भाव की समता करने में असमर्थ है। सब कोई अन्य हो सकते हैं, किन्तु माता कुमाता नहीं हो सकती। इसी प्रकार यह सम्बन्ध भी अटूट रहता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि अन्य-अन्य अनेक प्रकार के सम्बन्धों में यह सम्बन्ध सर्वश्रेष्ठ ही नहीं, चिरकालीन भी है। पवित्र भावनाओं को समुचित रूप से व्यक्त करने की निर्मल धारा भी यही है। शिशु ही में हम परम-हंसत्व के समस्त गुणों का प्रादुर्भाव पाते हैं। उसमें ही परमात्मा के समस्त गुणों का आरोपण एवं निरूपण किया जा सकता है। शिशु, वत्स आदि मृदु शब्दों में कितना सौकर्य, कितनी अनुभूति, कितनी भाव-व्यञ्जना भरी हुई है! बालक ही सृष्टिकर्ता की सर्वोत्तम अतुलनीय कृति है। अतएव सर्वोत्कृष्ट भाव-व्यञ्जना इसी वात्सल्य-भाव की भक्ति द्वारा संभव है।

अब यदि हम सख्य-भाव पर विचार करें, तो यह भी वात्सल्य-भाव का ही द्वितीय रूप है। एक मित्र अपने मित्र से अपने गूढ़ से गूढ़ हृदयोद्गारों को निश्शंकित हो प्रकट कर सकता है। जिन भावों को वह माता, पिता, गुरु, स्वामी से छिपाता है या उसे छिपाना आवश्यक होता है, उन भावों को, उन उद्गारों को वह अपने मित्र के समक्ष मुक्त हृदय से रख देता है। मित्र-भाव की मंजुल व्यञ्जना भी बाल्यकाल में ही देखी जाती है और इस अल्हड़, निष्कपट काल के अतिरिक्त इस भाव का केवल नाम-शेष व रूढ़ि ही रह जाती है। अतएव सख्य-भाव ही वात्सल्य-भाव का सच्चा सखा है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं हो सकता।



एक मित्र अपने मित्र के साथ खेलता, कूदता, लड़ता, झगड़ता, मिट्टी उछालता, मारता, पीटता मिलता, जुलता और परस्पर में सहायता करता है। इसी प्रकार अन्य समासम भाव मित्र में, सखा में, पाये जाते हैं। फिर भी इसकी निर्मलता में, पवित्रता में कोई बाधा नहीं आती। यही इसकी विशेषता एवं विचित्रता है। इसी सख्य-भाव का भक्त अपने इष्ट-देव के साथ भाव और भावनाओं में खेलता-कूदता, लड़ता-झगड़ता, डाँटता-डपटता तथा प्रेम और सहायता करता है। कहने का आशय यह है कि भावों की मंजुल व्यञ्जना केवल वात्सल्य एवं सख्य-भावों के द्वारा ही हो सकती है। इसी प्रकार की भक्ति के भावों के उद्रेक द्वारा ही सूर की रचनाओं में अन्य भक्त महाकवियों से उत्कृष्टता आ सकी है और जो भावों का स्फुरण सूर द्वारा हो सका है, वह किसी से नहीं हो सका। इसी व्यञ्जना ने किसी भावुक को अंततः यह कहने के लिए बाध्य कर ही दिया कि "सूर सूर तुलसी शशी।"

इसमें संदेह नहीं कि भक्ति महारानी श्रद्धासन पर विराजमान रहती हैं, किन्तु उनके दो प्रमुख सहचर और भी हैं, जिनसे ही वे 'वे' हैं, जिनसे ही उनकी शोभा और गौरव है। वे सहचर विनय और दैन्य-प्रदर्शन हैं, जिनकी शक्ति पर उन्हें पूर्ण विश्वास है, जिनके कारण ही वे सिंहासनासीन हैं और रह सकती हैं निर्भय होकर।

विनय ही वास्तव में एक भक्त के लिए आदर्श भक्ति है। दीनता-प्रकाशन ही उसकी पूजा-अर्चना की सामग्री का थाल है। उस दीन के पास मान-अपमान के अतिरिक्त त्याग करने को और वस्तु ही क्या है? अपने इष्टदेव के समक्ष अपने सम्बन्ध की तुच्छ भावना ही उस दीन का, निर्धन का धन है। विनय ही मन के मैल के निष्कासन के लिए सनलाइट-सोप है। विनय से ही, विनीत भाव से ही, नम्रीभूत होकर ही भक्त भगवान् पर विजय प्राप्त कर सकता है। उस परब्रह्म पर भी विजय प्राप्त करने का यही एकमात्र शस्त्र है, जिससे वह आदि-शक्ति, संसार-चक्र-चालक सर्वशक्तिमान् भी क्षण भर में वशीभूत हो जाता है।

विनय ही पापों के प्रक्षालन के लिए अलौकिक दिव्य पदार्थ है। विनय ही पश्चात्ताप की पंचाग्नि को प्रज्वलित करने के लिए पावन पंखा है, जिसके पवन से बड़े-बड़े पाप-पुंजों के पर्दे भी छिन्न-विछिन्न हो जाते हैं। इसी विनय में निमग्न हो अनाक्षी सूर दिव्य चक्षु प्राप्त कर उस रसधारा को प्रवाहित करता है, जिसके मधुर सुस्वादु अमृत-जल का पान कर हृदय कभी तृप्त ही नहीं होता। इसी के वश हो कहीं वह 'पंगु' से गिरियों का उल्लंघन करवाता है। कहीं वह 'अँधरे' से सब कुछ दिखवा लेता है। कहीं वह रंक के सिर पर छत्र तनवाता है। कहीं भगवान् से अपनी ढिठाई क्षमा करवा लेता है। कभी वह 'माया-नटनी' के प्रपंच से अपने को निकलवाने की चेष्टा करता है। कभी वह अपने 'काम-क्रोध' के 'चोलना' को नष्ट करने की प्रार्थना करता है। वास्तव में विनय ही भक्ति का सच्चा सहचर है। विनय विना भक्ति कैसी और भक्ति विना विनय की सुन्दरता कैसी? दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है।

विनय के सम्बन्ध में विरोधाभास एवं विभावना का यह उत्कृष्ट तथा बहुविश्रुत उदाहरण द्रष्टव्य है। इसमें भगवान् की महिमा की परा काष्ठा कर दी है। यदि भगवान् में इन गुणों का आरोप नहीं किया जाय, तो इस संसार-सागर से, जिसे मानव अल्प शक्ति से ही तैरना चाहता है, कैसे तैर कर पार पहुँच सकता है? विराट् विश्व में वह एक तृण के समान ही तो है। उसी सदृश वह इधर-उधर उतराता तो है ही। शक्तिहीन मानव पंगु, अंध, वधिर, रंक तो है ही। वह सोचता कुछ है, पर नियति कुछ और ही कर देती है। बड़े-बड़े धर्मशास्त्र और महात्मा भी उसकी अंध आत्मा ो दिव्य चक्षु—ऐसे दिव्य चक्षु, जो आत्मा-सदृश हों, अनाशवान् हों, अमर हों—चिरकाल तक न दे सके। बीसवीं



एकान्त

[चित्रकार—श्रीभगवतीशरण सक्सेना]

N. K. Press, Lucknow



...ी के विज्ञानों से युक्त मानव भी तो आज ...ा है। उसकी आत्मा व्याकुल है, अवहेलित ...सी अहंकारी युग में तो मानव-'शव' का ...और मानव-आत्मा का 'कुत्सित चित्रांकण' ...जा रहा है। ऐसी भीषण परिस्थिति में उसका ...करुणामय न हो, 'पंगु' से गिरि न लँघवा ...'अँधरे' से सब दिखवा न सके, 'मूक' से बुलवा ...और 'रंक' के सिर छत्र न तनवा सके, तो ...असहाय मानव किसकी शरण में जाय? ...लिए तो सूर ऐसे स्वामी के चरणों की वंदना ...है—

...कृपा पंगु गिरिलंघै, अंधे को सब कछु दरसाई।
...सुनै मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।"

...धर्म-प्राण भारत भी तो आज ऐसे ही ...मा की सेवा में लग्न होने की चेष्टा करना ...है। उसके रोम-रोम में, नस-नस में यही ...तो काम कर रही है। (मानस में तुलसी ...इसी भारत का प्रतिनिधित्व करते नज़र ...है—"मूक होइ वाचालु, पंगु चढ़इ गिरिवर ...।")

...बड़ा है सूर का वह जगन्नियंता। वह स्वामी। ...बताइए जिसका साहूकार ही राम-सा धनी हो, ...स बात की कमी होगी? ऐसे धनी 'साहूकार' ...किसे आनंद न होगा। इन्द्र-कुबेर जिसके ...हों, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सदृश चारों पदार्थों ...ना जिसके बायें हाथ का खेल हो, वह भला ...नहीं दे सकता? उसके लिए सब सुलभ है। ...अपने भक्त की सुध क्यों नहीं लेगा?

...के थोड़ी-सी माया, सो भी उसी की कृपा ...मिल गई है, उसी पर इतराता फिरता हूँ। उस ...माया का न मैं कोई सदुपयोग करता हूँ ...न छोड़ ही सकता हूँ, जैसे भुजंग के सिर की ...मणि, जिसका वह कृपण न तो स्वयं ...कोई उपयोग करता है और न किसी को देता ...। ऐसा ही तो अपने 'राम-धनी' के समक्ष ...—

"कहा कमी जाके राम धनी।
मनसानाथ मनोरथ पूरण,
सुख-निधान जाको मौज घनी॥
अर्थ, धर्म अरु काम मोक्ष
फल चार पदारथ देत छनी।
इन्द्र समान जाके सेवक हैं
मो बपुरे की कहा गनी॥
कहा कृपण की माया कितनी
करत फिरत अपनी-अपनी।
खाइ न सकै ख़रच नहिं जानै
ज्यों भुजंग सिर रहत मनी॥"

संसार में यह मायारूपी नटनी ही तो इस जीवात्मा को बन्दर की नाईं नाच नचाया करती है। नटनी जब बन्दर से कहती है, 'बेटा सलाम करो', तब बन्दर मियाँ भी हाथ उठाकर सलाम करते हैं। जब वह पेट दिखाने को कहती है, तो तुच्छ से तुच्छ के सामने भी वही पेट दिखाने का स्वाँग करना ही पड़ता है। इच्छा से हो अथवा अनिच्छा से। माया नटनी भी तो यही स्वाँग जीवात्मा से भरवाया करती है। नटनी बेचारी तो कुछ निर्दिष्ट स्वाँग ही भरवा पेट पाल लेती है, किन्तु उस माया नटनी का पेट बड़ा लंबा-चौड़ा है। उसको नचवाने के लिए तो एक नहीं, दो नहीं, चौरासी लक्ष योनियों का द्वार खुला हुआ है। इन योनियों में ही भ्रमण करवा लेने से उसे संतोष हो जाता हो, सो बात नहीं। प्रत्येक चक्कर के साथ उसने काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि के आवर्त्त भी रख दिये हैं, जिनके अधीन हो वह न्यायान्याय का ध्यान छोड़ मनमानी करने लगता है। काम उसे सद्वृत्तियों पर विजय प्राप्त नहीं करने देता। क्रोध उससे ऐसा विष-वमन करवाता रहता है, जिसके कारण वह स्वयं गलता रहता है। लोभ का चश्मा चढ़ाकर वह तुच्छ से तुच्छ को 'महा दानी' समझने लगता है। माया अनेक मनोरथों पर उसे चढ़ा सदा असंतुष्ट और बेचैन रखती



है। इस जादूगरनी से बचने का केवल एक उपाय है और वह है भगवत्कृपा। सूर उसी की तो याचना करते हैं—

"..

माया नटनी लकुट कर लीन्हें कोटिक नाच नचावै।

....

तुम सो कपट करावत प्रभु जू मेरी बुद्धि भ्रमावै॥
मन अभिलाष तरंगनि कर-कर मिथ्या निशा जगावै।
सोवत सपने में जो सम्पति त्यों दिखाय बौरावै॥

....

ज्यों दूती पर बधू मोहिकै लै पर-पुरुष दिखावै॥

....

सूरदास प्रभु तुमरी कृपा बिनु को मो दुख बिसरावै।"

बड़ा विकट है इस माया का फंदा। सूर बार-बार उससे छूटना चाहते हैं और वह फिर-फिर उन्हें फँसा लेती है। सूर कहते हैं, "हे प्रभो, साधु-संगति की ओर मेरी रुचि कभी जाती नहीं। दैववशात् या आपके अनुग्रह से यदि गई भी, तो माया जल्द ही अपना फंदा समेटना आरंभ कर देती है और मैं उलटा खिंचा चला आता हूँ। अपने मन को मैंने बहुत समझाया, बहुत यत्न किया, किन्तु यह आपसे मुझे विलग ही रखती है। आपके दयारूपी जल से मैं कई बार स्नान कर चुका, किंतु अंत में गज-समान सिर पर धूल ही उड़ाई।"

पर इस माया का सबसे बड़ा प्रभाव पड़ता है मन पर। वह ही अपने साम्राज्य में यत्र-तत्र भागा करता है। शरीरांगों से जैसा चाहता है, काम लेता है। मन की गति ठीक श्वान-जैसी ही ठहरी न। सूर इस श्वान-मन से बड़े परेशान रहते हैं। उसे बहुत समझाते हैं, किन्तु वह अपना जातीय स्वभाव नहीं छोड़ता। 'मति हीन' ही जो ठहरा—

"मेरो मन मतिहीन गुसाईं।
सुखनिधि ये पदकमल छाँड़ि, श्रम करत श्वान की नाईं॥"

मन के ऐसे झकोरों के मध्य केवल एक भगवान् ही अवलंब हैं, सत्य हैं। किन्तु सूर कहते हैं, उससे परिचय कैसे हो? उसकी 'अविगत गति' मेरी बुद्धि से परे है। उसके अनुग्रह का सागर बड़ा गहन है। उसके दया के किनारों का पार ही नहीं मिलता, उसके कार्य दृष्टिगम्य नहीं। मैंने सुना है, वह अद्भुत अलौकिक कार्य किया करता है। उसकी लीला की तो यह बात है कि, "बिन आशा बिन उद्यम कीने अजगर उदर भरै।" और दूसरी ओर, "अति प्रचंड पौरुष बल पाये केहरि भूख मरै।" ऐसे अनोखे के निकट मैं तुच्छ कैसे पहुँच सकता हूँ। फिर यही बात हो सो नहीं। वह तो, "रीतै भरै भरै पुनि ढौरै, चाहे फेरि भरै।" उसकी महिमा तो यह है कि, "गागर तै सागर करि राखै चहुँ दिशि नीर भरै।" और उसी के प्रभाव से, "पाहन बीच कमल बिकसाहीं, जल में अगिनि जरै।" ऐसा अद्भुत और अलौकिक है सूर का वह 'प्रभु'। इसी लिए सूर कभी-कभी दुबिधा में पड़ जाते हैं, किन्तु उनको उस 'प्रभु' की इस 'बानि' का पूरा भरोसा है कि, "पतित तरि जाइ तनक में जो प्रभु नेकु ढरै।" इसी बल-विश्वास पर तो सूर उस अगम्य और अलौकिक के पास तक पहुँचने का साहस करते हैं।

किन्तु सूर, वह नेत्रहीन सूर जब उसके निकट पहुँच गया, उसने उसके दर्शन अंतश्चक्षुओं से एक बार कर लिये, फिर क्या वह वहाँ से हटनेवाला है? अब चाहे मारो, चाहे तारो, वह तो उनके द्वार पर आ ही पड़ा है और याचना करता है—

"अपनी भक्ति देहु भगवान।
कोटि लालच जो दिखावहु नाहिंनै रुचि आन॥"

सूर जैसे बालक हों और कोई उन्हें भुलावा दे रहा हो। सूर कहते हैं, अब मैं बालक नहीं रहा कि अन्य देवी-देवताओं के भुलावे में आ जाऊँ। आपका स्मरण करते-करते अब मुझमें भी कुछ समझ आ गई है। मैं कुछ बड़ा हो गया हूँ। इसलिए

"नाहिंनै काचौ कृपानिधि कहौं कहा रिसाइ।
सूर तबहु न द्वार छाँड़ै डारिहौ कढ़राइ॥"

फिर एक बात का जो विश्वास मुझ बालक में



और जो प्रत्येक में अपने माता-पिता के प्रति ता है कि आप बाह्य रूप से कितने ही कठोर ों न प्रतीत होते होओ, पर आपका अंतर तो मुलायम है (प्रत्येक बालक चाहे कहे नहीं, परोक्ष रूप से उसके हृदय में इसका श्वास तो रहता ही है)। तभी तो तुम्हारा शीघ्र ही पसीज जाता है और तुम 'साँकरे साथी' बन जाते हो। तुमने ही तो

"त पुकार परम आतुर ह्वै दौरि छुड़ायो हाथी।"

इस 'दृढ़ प्रतीति' के पहले सूर को कई साधु-ओं ने समझाया था कि निर्गुण परमात्मा की कर। वे उसके पीछे कुछ सीमा तक गये भी। ना हो सका, उन्होंने उसे प्राप्त करने के लिए ा, किन्तु दर्शन नहीं मिले। वह उनकी आत्मा ला-मिला ही नहीं। इसी लिए सूर सगुण सना की ओर अग्रसर हुए, जैसा वे कहते हैं—

"अपुने जान मैं बहुत करी।
भाँति हरि कृपा तुम्हारी सो स्वामी समुझी न परी॥
गयो दर्शन के ताईं व्यापक प्रभुता सब बिसरी।
वाचा कर्म अगोचर सो मूरत नहिं नैन धरी॥"

किन्तु प्रश्न यह है कि सगुण परमात्मा से मिलने सूर को इतनी उत्कट अभिलाषा, इतनी व्याकु- क्यों हुई? इसका कारण है। मानव कितना आत्मिक रूप से निखरे, कितना ही निष्कलंक चाहे, किन्तु इस संसार की काजल-वलित में से, "कैसे हू सयानो जाय काजर की लागि है पै लागि है" (सेनापति)। यही 'एक ब आत्मा निखरने लगती है, निष्पाप होने ी है, तब उस व्यक्ति को महान् दोष-सी दिखाई गती है। उस समय संसार की दृष्टि में जो एक ण बात रहती है, वही उसे बड़ी और बड़ी प्रतीत होती है, जैसे डाक्टर को रोगों के ु, जिन पर साधारण जन कुछ ध्यान ही नहीं और उसके शिकार होते रहते हैं। इसी लिए निष्कलुष-पथगामी आत्मा कहती है—

"कौन गति करि हौ मेरी नाथ।
हौं तौ कुटिल कुचील कुदरसन रहत विषय के साथ।"

यही नहीं, अन्य अनेक अपराध भी मैंने किये हैं। इस जन्म के कम ही सही, किन्तु मैं तो अनंत जन्म धारण कर चुका हूँ। इसी लिए तो सूर की या मानव की उस आत्मा में इस जीवन के पश्चात् की गति के लिए छटपटाहट है। छटपटाहट है अवश्य, किन्तु सूर को अपने 'प्रभु' की 'दृढ़ प्रतीति' भी तो है, "सूर पतित जब सुन्यो बिरद तब धीरज मन आयो।"

इसी 'विरद' का आश्रय पा सूर उस 'अगम्य' तक पहुँचने की चेष्टा करते हैं। सूर अपने को एक साधारण पतित समझते हों, यह बात नहीं है।

"पतितन में विख्यात पतित हौं, पावन नाम तिहारौ!"

ऐसे पतित अपने को समझते थे सूर। किन्तु भगवान् के 'विरद' ने ही उन्हें इतना उत्साहित कर दिया कि वे उनके मुँहलगे मित्र हो गये हों जैसे। सूर-सा अक्खड़ कवि जब भगवान् के मित्रासन पर बैठ जाता है, तब तो उसके विशाल अत्युच्च हृदय-गिरि से जो भाव-स्रोत प्रवाहित होता है, वह अप्रतिम है, अनिर्वचनीय है। सखा बनकर ही तो वे भगवान् के निर्मल हृदय का अपने हृदय से सामञ्जस्य कर सके हैं। वह निर्झरिणी बहा सके हैं, जो भाव-विभोर किये बिना नहीं रहती।

सूर कहते हैं, अनेक पतितों को तारकर यदि आपको गर्व हो गया हो, तो आप उस अभिमान को त्याग दीजिए। यदि आपमें सद्गुणों की कमी नहीं है, तो मुझमें भी दुर्गुणों का पार नहीं है। मैं आपको सीधे नहीं छोड़नेवाला हूँ। आज तो फिर मैं प्रतिज्ञा करके आपके द्वार पर आ डटा हूँ महाराज, अभी तक तो मैं अपनी बात पर— अपनी तुच्छता पर नहीं आया था। इसलिए अनुनय विनय से अपनी कार्यसिद्धि करना चाहता था। मैं महापतित ही नहीं हूँ, खानदानी पापी हूँ। मुझ-सदृश पापी का यदि आपने उद्धार नहीं



किया, तो अनेक पतितों के तारने के 'यश' पर मैं पानी फेर दूँगा। मैं नीच जगह-जगह डौंडी पीटता फिरूँगा कि इन्होंने 'पतित-पावन', 'दीनानाथ', 'अशरण-शरण', 'जगदाधार' के बाने तो धारण कर लिये हैं, किन्तु मुझे ये भी नहीं तार सके। इसलिए सीधे-सीधे आपसे कहता हूँ कि एक बार कह दो, "सूर मेरा है"। और यह मैं कहलवाकर ही रहूँगा; क्योंकि आज तो, "हौं पायो हरि-हीरा।" मेरी प्रतिज्ञा है—

"बाँह छुड़ाये जात हौ निबल जानि कै मोंहि;
हिरदै से जब जाइयो, मरद बदूँगो तोहि।"

मित्र ही तो ठहरा। प्रतिज्ञा ही नहीं की है, मरने-मारने को, लड़ने-झगड़ने को तैयार बैठा है। स्नेहातिरेक के अतिरिक्त इसे और क्या कहें? कितना ओज और दृढ़ प्रतिज्ञा है। सूर झुँझला उठते हैं—

"आज हौं एक-एक-करि टरि हौं।
कै हमहीं कै तुमहीं माधव, अपुन भरोसे लरिहौं।
....
अब हौं उघरि नचन चाहत हौं तुम्हैं बिरद बिनु करिहौं॥"

यह नंगापन नहीं, हृदय का मधुर भार है, हृदय की तिलमिलाहट है, हलकापन है। ऐसे उद्‌गार तो उस 'प्रभु' का अनन्य, एकरस भक्त ही प्रकट कर सकता है। दूसरे का इतना साहस नहीं हो सकता। तुलसी ने भी तो यही प्रतिज्ञा की थी—"प्रन करिहौं हठि आजु मैं राम द्वार पर्‌यौ हौं। तू मेरो यह बिन कहे उठिहौं न जनम भरि, प्रभु की सौं करि निबर्‌यौ हौं।"

भक्त हृदय से और चाहता ही क्या है सिवा इसके कि उसका इष्टदेव उस पर कृपा करता रहे। यह अवश्य है कि वह अपने स्वामी पर कभी खीझता है तो कभी रीझता भी है। पर अपना सर्वस्व तो वह 'कृष्णार्पणमस्तु' ही कर देता है। 'त्वदीयं वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पये।' इसी लिए सूर भी रीझ-खीझकर अंत में कह ही उठते हैं—

"जैसे राखहु तैसेहि रहौं।
जानत दुख-सुख सब जन के तुम मुख करि कहा कहौं।"

और भी—

"तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान।
छूटि गये कैसे जन जीवत ज्यों पानी बिन प्रान।"
"मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिर जहाज पर आवै।"

यहाँ एक बात विचारणीय है। यदि भक्त ही भक्त विनय करता जाय और सर्वेश्वर यदि उसकी विनय पर ध्यान न देवें, तो इस विराट् विश्व में मानव की संसारी आत्मा की क्या गति हो? वह शीघ्र ही थककर निश्चेष्ट हो जाय। एक शायर ने कहा है—"अगर हम ही हम तड़पे तो क्या तड़पे। तुम भी तड़पो तो मज़ा उट्ठे मुहब्बत का।" इसलिए भक्त कवि भगवान् के उस रूप का भी कथन करते आये हैं, जहाँ वह 'अपने जन' को—मानव को—प्रोत्साहित करते हैं, भक्त-वत्सलता प्रकट करते हैं। गीता की रचना ही इसी महोद्देश्य को लेकर हुई है। वह किसी न किसी रूप से मानवात्मा को निश्चेष्ट, निष्क्रिय होने से बचाते हैं। सूर भक्ति के इस अंग को भी अछूता नहीं छोड़ते। उनसे वह छूट ही नहीं सकता था; क्योंकि वे तो भक्ति की परा काष्ठा पर पहुँचे हुए पुरुष थे। सूर के इन पदों से कौन भक्त रसिक एवं प्राचीन काव्य-प्रेमी अपरिचित है?

"हम भक्तन के भक्त हमारे।
सुन अर्जुन परतिग्या मेरी यह व्रत टरत न टारे।"

यही नहीं—

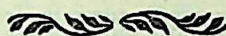
"मेरी परतिग्या रहै कि जाइ।"

अंत में अपनी भक्ति का सारा रस वे निम्न-लिखित पद में बड़ी ख़ूबी के साथ पाश्चात्य साहित्य के सामने कंगाल कही जानेवाली हिन्दी को दे गये हैं, जिससे जब भी वह विश्व के कानों तक पहुँचेगी, अपना मस्तक ऊँचा उठा सकेगी। केवल अँगरेज़ी भाषा के प्रवाह के कारण उसके साधा-



से भी साधारण भावों को ऊँचा समझनेवाले ...क देखें कि कितना ज्ञेय, सारगर्भित, कितना ...पूर्ण एवं मर्मस्पर्शी यह पद है। चित-चकई संबोधित कर वे कहते हैं, हे चकई, उस देश ...न चल, जहाँ कभी अपने प्रिय का वियोग ही ...ं होता, जहाँ कभी रात्रि ही नहीं होती। ... रात्रि ही नहीं, तो चक्रवाक पतिपत्नी की ...क्ता कैसी? और पृथक्ता के अभाव में वियोग ...ा? सूर का वह पद है—

"चकई री, चल चरन-सरोवर, जहाँ न प्रेम-वियोग।
जहँ भ्रम-निशा होत नहिं कबहूँ, वह सायर सुख जोग।
जहाँ सनक से मीन-हंस शिव मुनि जन नख रवि प्रभा प्रकास।
प्रफुल्लित कमल निमिष नहिं शशि उर गूँजत निगम सुबास।
जिहिं सर सुभग मुक्ति-मुक्ताफल सुकृत अमृत पीजै।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहंगम यहाँ कहा रहि कीजै।
लछमी-सहित होत नित क्रीड़ा सोभित सूरजदास।
अब न सुहात विषय रस छीलर वा समुद्र की आस।"



प्रसाद

श्रीयुत रामजीलाल श्रीवास्तव

चिरसंचित चाह मिलन की
उलझी तेरी अलकों में;
सहसा बन कसक नशीली,
आई बसने पलकों में।

बिलखी-सी इन आँखों ने
देखा उसमें हिय-धन को,
पीड़ा की मधुमय क्रीड़ा
जब कँपा रही थी मन को।

तुम पर थी पड़ती जाती
उद्विग्न हृदय की छाया,
तुम फूले नहीं समाते
छक-छक पी मदिरा माया।

उच्छ्वास- मेघ माला में
अपना विधु-बदन छिपाये,
चुपके से सकुच-सकुचकर
सूने आँगन में आये।

मैंने था कभी न सोचा
तुम इतने निठुर निराले;
इन तुच्छ अश्रु-बूँदों में
बह गये तुम्हारे भाले।

नीरव निशीथ-निर्जन में
बज गई बाँसुरी कैसी,
सकुचाते इतराते थे
तुम देख साधना ऐसी।

अंतस्तल की जो पीड़ा
थी सतत खेलती मन में;
वह तुम्हें आज यों पाकर
जाती गाती मधुवन में।

रजनी के नीलाम्बर पर
गूँथे हैं मोती कितने?
ढलकाये इन आँखों ने
हैं आँसू अब तक इतने।

अपने कोमल हाथों में
कर युगल हमारे लेकर,
गाते कुछ अस्फुट गायन
मुसकान-माधुरी देकर।

निद्रा की मादकता में
जब शान्त विश्व हो जाता,
चुपके से चाँद उतरकर
मेरे आँगन में आता।

हम बड़ी देर तक दोनों
हिलमिल हैं रास रचाते;
फिर मन्त्रमुग्ध हो-होकर
हम दोनों छिप-छिप जाते।

घिर आई घटा घनेरी,
मैं भटक रहा हूँ मग में
वह देख रहा है नभ से
जो कुछ होता है जग में।

उद्भ्रान्त नयन ये मेरे
जब उसको देख न पाते;
नूपुर के मीठे-रव को
सुन-सुनकर कान लुभाते।

भादों की अमा अँधेरी
राका निस्तब्ध खड़ी थी;
हम दोनों का आलिंगन
लख यमुना मचल पड़ी थी।

कह पाऊँगा मैं कैसे
जीवन की व्यथा घनेरी;
तेरी मुसकान मनोहर
बन गई चाहना मेरी।

मेरे उस स्वप्न जगत् में
था हुआ मिलन जो प्यारा;
मेरी उमड़ी पीड़ा को
सन्देश सुनाता न्यारा।

तेरी वीणा की लय में
मैं अपनी तान मिलाता;
नादानी पर अल्हड़ की
तू स्वयं मुग्ध हो जाता।

क्यों, कौन, कहाँ से, आया?
रिम-झिम क्यों बरस रहा है?
पीड़ा का प्यारा झरना
प्रियतम-पद परस रहा है।

बच्चों के बाप

श्रीबलभद्र दीक्षित

बच्चों की उपमा कविगण सुकोमल फूल, नवांकुर और सुखद संसार की आशालता दिया करते हैं। ये वस्तुएँ अपने जीवनारम्भ सुन्दरतम बनने के निमित्त सहृदय मन, मधुर न, दक्ष और कोमल करस्पर्श चाहती हैं। इन मसलकर, इनकी दुर्गति करके, अपमानित के मनुष्य इन्हें नष्ट कर स्वयं नष्ट हो जायगा।

अगर यह सच है, जो आज बच्चे हैं, वे ही दिन बाप होंगे, तो यह भी सच है कि जितने बच्चे वर्तमान बना सकेगा, भविष्य में उतने अच्छे बाप भी बन सकेंगे। और साथ ही, अगर बच्चे आज सँभाले न जा सकें, तो आने- पीढ़ियाँ विनाशकारी बापों से भर जायँगी; विश्व की अशान्ति और विनाश का कारण । कुछ दरिद्र देश के बच्चों का इस समय चित भरण-पोषण ही नहीं हो पाता, फलतः विकसित बिना खाद-पानी पाये पौदों की सूख जाते हैं। विश्व-शान्ति और अशान्ति मसले में उनका नम्बर सिर्फ़ जानवरों से पहले है। हाँ, इतर देशों में जहाँ का मनुष्य भावी सन्तान ही के लिए मरना-जीना है, उसके समक्ष इस समय बच्चों के सुधार सर्वप्रथम हो रहा है। बड़े-बड़े मनो- और आचार्य बच्चों के सुधार का प्रयत्न और प्रबन्ध कर रहे हैं। अनेक नये-नये आश्रम और संस्थाएँ खुल रही हैं, जिनमें बच्चों के माता-पिता अपना तन, मन और धन अर्पण कर रहे हैं; बच्चे, मन-वच-कर्म से गुरु और गुरुजन की पूर्ण सहानुभूति पाकर अधिकाधिक विकास को प्राप्त हो रहे हैं। जनमत है कि संसार तरक़्क़ी कर रहा है। फिर भी कुछ माता-पिता और गुरुओं का समुदाय ऐसा है, जो इस विधान और विकास पर खिन्न हो रहा है। कहता है कि ऐसे बच्चे बड़ी से बड़ी शक्ति प्रकृति से प्राप्त कर रहे हैं, परन्तु वे उसका दुष्प्रयोग भी अवश्य कर रहे हैं। मनुष्य ऐसे बच्चे पैदा कर रहा है, जो मनुष्य होकर बड़े-बड़े घातक अस्त्र-शस्त्र ईजाद करने में लग जाते हैं। बच्चों की—उन्हीं से बापों की आसुरी प्रकृति बहुत बढ़ रही है। जब ऐसे-ऐसे गैस बनाये जा रहे हैं, जिनका एक बूँद अगर हवा में चढ़कर टपका दिया जाय, तो कई वर्गमील पृथ्वी पर कोई जीवित प्राणी नहीं रह सकता, तब ऐसे गैसों का बनना कब असम्भव है, जिनका एक बूँद समस्त संसार को विनष्ट कर देने को काफ़ी हो। केवल इन्हीं लक्षणों को देखकर लोग विश्वशान्ति स्थापित करने को उत्सुक हैं।

यहाँ क्या, विलायतों में सम्पन्न घरों के बच्चे इतना बड़ा जीव लेकर पैदा होते हैं और रहन-सहन,



खान-पान और विचार के पग-पग पर इतनी अधिक प्राण की मात्रा पाते हैं कि वे अपनी अवस्था से कहीं अधिक विकसित हो जाया करते हैं। छः महीने का बच्चा, हर तरह, एक साल का जान पड़ता है। उसको सँभालना, उस पर क़ाबू पाना बड़ा मुश्किल हो रहा है। इँगलैंड के मिस्टर ए० एस्० नील ने अपनी प्रॉब्लेम-चाइल्ड (Problem Child) पुस्तक हाल ही में लिखी है; अपने सिद्धान्त पर एक बच्चों का स्कूल भी चला रहे हैं। उनका कहना है कि उन्हें एक भी ऐसा बच्चा न मिला, जिसके स्वस्थ शरीर में स्वस्थ दिमाग़ होता।

इसमें सन्देह नहीं, निर्माण और विनाश की क्रियाएँ प्रकृति के आदि में आरम्भ हुई थीं, तब से पुनर्निर्माण और पुनर्विनाश का चक्र बराबर चल रहा है। परन्तु मनुष्य को निर्माणप्रिय होना चाहिए। इससे उसका और विश्व का जीवन बढ़ता है। विध्वंसप्रियता बहुत हेय है। इससे मनुष्य और संसार की आयु क्षीण होती है। बच्चों में अधिक से अधिक निर्माण की रुचि जाग्रत् करके उन्हें आदमीयत की ओर ले जाया जा सकता है। विध्वंसकारी प्रवृत्ति के जाग्रत् हो जाने से वे बहुत बड़े दैत्य हो सकते हैं, मनुष्य नहीं।

कुछ माता-पिता और गुरुओं का अब भी मत है कि शिक्षा में बग़ैर किसी क़िस्म की सज़ा का सहारा लिये हुए बच्चे को सफल मनुष्य नहीं बनाया जा सकता; परन्तु मेरा अनुभव है कि बच्चे को किसी प्रकार का भी दंड देना अपनी और उसकी दोनों की बरबादी करना है। बच्चे की सज़ा करते वक़्त आदमी आदमी नहीं रह जाता, इसलिए बच्चे का बचपन उसके हृदय में गुदगुदी नहीं पैदा कर सकता। किताब फाड़ डालना, खेल में पड़कर किसी काम को भूल जाना या सबक़ न याद करना ये सब बातें बचपन की हैं। दूसरे बच्चे से लड़ जाना, ख़ूब कूद-फाँदकर अपने चोट लगा लेना, क्लासरूम के दरवाज़े के शीशे तोड़ देना, उलटी तिपाई को मेज़ पर रखना—ऐसी बातें जानदार बच्चे ही कर सकते हैं। सच्चा अभिभावक यह देखकर मन ही मन प्रसन्न होता है। दुनिया भर की मुसीबत वह अपने सिर ले लेगा, परन्तु बच्चों को अपमानित करना न पसन्द करेगा।

बेत या किताब फेंककर मारने से कहीं अधिक भयानक बच्चे को बात से मारना अथवा भविष्य में मारने के लिए धमकाना है। बेत चल गया। चोट जितनी लगनी थी लग गई। क़िस्सा ख़त्म हुआ। परन्तु, 'मोहन, याद रहे, तुम नालायक़ होकर मुझे बिरादरी में मुँह दिखाने के क़ाबिल नहीं रख रहे हो,' अथवा, 'अगर परसों तक गिनती पहाड़े न याद हुए तो सु... ....तुझे बकरे-सा चढ़ा दूँगा', कोमल हृदय पर कहीं अधिक चोट पहुँचानेवाले हैं। मेरी शिक्षा और देख-रेख में इस समय अपने-पराये मिलाकर चौदह बच्चे हैं। मुझमें और उनमें मनसा वाचा कर्मणा मैत्री स्थापित हो चुकी है। न कोई बड़ा है, न कोई छोटा। क़ायदे की हर बात हर शख़्स कर सकता है। बे-क़ायदा कुछ भी नहीं।

प्रारम्भिक अभ्यास में कभी-कभी मैं क़ाबू खो देता था। मारता न था, परन्तु शरारत करनेवाले बच्चे को डाँटे अथवा घुड़के बग़ैर जी न मानता। कभी-कभी कुछ देर को मन ही मन अप्रसन्न भी रहता। पहले न समझ पाता था, लेकिन अब देखता हूँ, मेरी इस हरकत से मेरा और बच्चे का दोनों का नुक़सान होता था।

मेरा भतीजा सुद्धू, जिसकी उम्र तीन साल की थी, मेरे लिखते वक़्त साथ बैठा खेला करता। एक दिन मैंने अपनी 'पाँखी' कहानी माधुरी में भेजने के लिए साफ़ करके रक्खी। छत पर बैठे थे। मैं भैंस को चारा देने नीचे उतरा। फिर ऊपर जाता हूँ तो देखता हूँ, सुद्धू साहब ने पूरी कहानी उलटी क़लम से रँग डाली है। मुझे देखते ही सगर्व अपनी करतूत दिखाने लगे। चार दिन की मिहनत साफ़ हो गई। मेरा ज़ब्त जाता रहा। मैंने बच्चे को मुँह से कुछ न कहा, परन्तु अपने पूरे



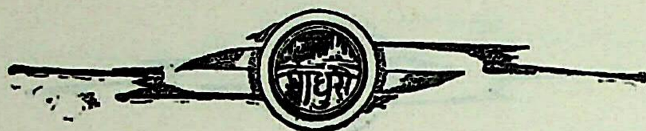
...को न सँभाल सका। उसके हाथ से सब ...घसीटकर चौकी पर रख दीं और नीचे चला ...। वह ताड़ गया और अपनी मा के पास ...ग गया। आठ-नौ दिन तक हम दोनों में ...-बन्दी रही। न मैं प्यार से बुलाता, न वह ...क़रीब रुकना पसन्द करता। हाँ, इतना ज़रूर ... कि दिन में मेरी क़लम-दावात एक बार ...-पलटी दिखती और कुछ न कुछ काग़ज़ ...नाई से ख़राब किये मिलते। छठे दिन मैं ... की ताक में रहा। उस दिन न मिला, ... दूसरे दिन मुझे बाहर गया हुआ जानकर ...जी चुपके से छत पर चढ़ गये, लिखने-पढ़ने ...मुक़ाम पर पहुँचे और एक मोटे सेंठे से ख़ूब जी ...कर, एक तख़्ता काग़ज़, जिसे मैंने पहले से जान-...कर रख दिया था, अपनी बच्चों की भाषा में ... अंत में दावात में थूककर खिसकने को ... इस वक़्त मैं उनका पूर्ण स्वागत करके मिला। ...मैं समझ चुका था कि मामला बहुत बढ़ चुका ... श्रीसुद्धू महाशय अब काग़ज़, रोशनाई ...का नुक़सान नहीं कर रहे थे। इसी के साथ ...का भी अभ्यास चल रहा था।

...हाँ पर यह प्रश्न उठा कि सुद्धू ने चोरी क्यों ... बात बिलकुल मामूली है। जानदार बच्चे में ...की मात्रा अधिकाधिक होती है। पूरे संसार ...वह अपनी ही बपौती समझता है। कुछ भी ... असम्भव है, वह कभी सोचता ही नहीं। ...तीन साल का था, तब एक दिन दिन-भर, ...सौदागरों का ५००) का घोड़ा ख़रीदने के ... रोया था। यह तो कई साल पीछे समझ ...गया कि पिताजी बहुत ग़रीब किसान हैं। ...द्धू को मेरी क़लम कुर्र-कुर्र चलते देख ...चराया कि वह भी कक्कू की तरह किताब ...ना शुरू कर दें। फलस्वरूप बड़ी संजीदगी ...उन्होंने अपना काम शुरू कर दिया था। अगर उन्हीं की ज़िम्मेदारी पर छोड़ दिया जाता, कहा-सुना न जाता, तो दस-पन्द्रह मिनट में जितने काग़ज़-पत्तुर मिलते, उन्हें बिगाड़-बुगाड़कर उनकी वह आकांक्षा पूरी हो जाती; क्योंकि इतना छोटा बच्चा ऐसी बात पर (अगर रोका न जावे) अटक नहीं सकता। मेरे अख़्तिलाफ़ ने उस वक़्त सुद्धू के लकीरें बनाने के शौक़ को पूरा नहीं हो लेने दिया था, साथ ही साथ एक और काम भी किया। मेरे रोकने ने सुद्धू में उसी काम को बार-बार करने की इच्छा जाग्रत् कर दी। पहले बात मामूली थी, लेकिन मेरे विपरीत होने से वह ख़ास हो गई। चार बरस के मुन्नू की इच्छा बार-बार कुएँ में झाँकने को इसलिए होती है कि माताजी ने उसे वहाँ जाने को रोका है। वहाँ ख़तरा बतलाया गया है; उसी ख़तरे को जानने की बार-बार इच्छा होती है।

उन्हीं दिनों हमारा एक और प्रयोग चल रहा था। बचन, मेरे तीन साल के बच्चे में, जब से वह चलने-फिरने लगा, चोरी करने की आदत पाई गई। एक दिन कसमंडा-हाउस, लखनऊ में था। मेरी स्त्री ने मुझे दिखाया। एक कमरे में, आलमारी की आड़ में, बैठे आप शीशी से शहद उँडेलकर चाट रहे हैं। घबराहट में शीशी भी टूट गई है। छः महीने से इसी क़िस्म के क़सूर श्रीबचनजी क़रीब रोज़ ही किया करते थे।

मेरी स्त्री ने चिन्तित होकर कहा, तुमसे चोरी-चोरी मैं इसे ऐसी हरक़तों पर पीटती भी हूँ, (बचन तिरछी निगाहों से हमें देखते थे और शहद चाटते थे) कलह कोने में खड़ा किया था, फिर भी बाज़ नहीं आता।

मैं कई दिन सोच-साचकर इस नतीजे तक पहुँच चुका था कि अव्वल, थोड़े दिन तक, बचन के चोरी करने में बाधा न डाली जाय, बल्कि इस काम में सहायता पहुँचाई जाय, जिसमें उसकी इस वासना को तृप्त होने का ख़ूब मौक़ा लग जाय। फिर इतने पर भी अगर वह आदत न छोड़े, तो जब कभी चोरी करते देख मिले तो उस चोरी को साहूकारी, जान-बूझकर काम करना, क़रार दिया जाय।



ख़ैर, मैंने बचन के क़रीब आकर बड़े प्यार से कहा, "आज हम एक बोतल शहद बहुत बढ़िया लावेंगे। तुम उसमें से भी इसी तरह निकाल-निकालकर खाया करना।" और बच्चे, जो चोरी करने के पहले से बचन की ताड़ में थे, चोर-चोर चिल्लाकर उन्हें चिढ़ाने लगे। लेकिन मैं तो इस चोरी को साहूकारी बनाने पर तुला हुआ था। मैंने सबको रोककर कहा, सुनो, शहद बचन का, अम्मा बचन की, मैं बचन का, सबके सामने बैठे बचन उँगलियाँ चाटने का मज़ा ले रहे हैं, फिर इसमें चोरी किस बात की? बचन ने ज़रा दबकर अपनी नाक फुला-कर कहा, "मगर शीशी टूट गई और शहद ढलक गया?" मैंने कहा, "यह बहुत मामूली बात है। तुम्हारी अम्मा के हाथ से गिरकर एक दिन तीन सेर घी की हण्डी टूट गई थी।" शंकरी (उनकी बहन) ने मेरी घड़ी खो दी थी। ख़ूब चोरी से छक लेने के लिए बचन को कितनी बार ढील दी गई और क्या-क्या चारा (Bait) रक्खा गया, बड़ी-बड़ी बातें हैं—हाँ, क़िस्सा-कोताह यों हुआ कि थोड़े दिनों बाद हमें आशातीत सफलता होने लगी। बचन की चोरी बहुत कम हो गई।

मैंने सुद्धू को गोद में उठाकर अपने को ख़ूब दबाकर कहा, सुधुआ, तुम तो इतना अच्छा लिखने लगे कि बहुत बढ़िया किताब लिख लेते हो। मुझ पर अविश्वास प्रकट करते, ज़रा हैरान होकर उसने कहा, लेकिन तुम तो मेरे ऐसा करने से ख़फ़ा होते हो? मैंने ख़ूब अभिनय से कहा, "नहीं-नहीं, अपने राजपूत से कहीं कोई ख़फ़ा होता है। उस दिन मैं समझा मुनान (और भतीजा) था।" सुद्धू ने खिलकर कहा, "मुनान किताब नहीं लिख सकते।" हम दोनों अपने-अपने काम से चले गये।

दूसरे दिन सुद्धू के लिए मैंने अलहदा से काग़ज़, क़लम और दावात चटाई पर सजा रक्खी। वह आये। शौक़ भी कई दिन का हो चुका था। अब तक सिर्फ़ मेरे विरोध ने उसमें कशिश क़ायम रक्खी थी। मैं बहुत प्रोत्साहन दे रहा था, फिर भी विरोध न रहने से चीज़ नीरस हो गई थी। इस लिखने से कहीं अधिक दिलचस्प बातें बाहर हो रही थीं। सुद्धू ने, ज़रा इधर-उधर करके मुस्कराकर बाहर जाते हुए कहा—"बस। अब न लिखेंगे। जब कक्कू के बराबर हो जायँगे, तब लिखा करेंगे।"

मेरे घर में चूना-तम्बाकू खाने का चलन कई पीढ़ियों से चला आ रहा है। पिताजी खाते थे। हम भाई भर उनसे भी ज़्यादा खाते हैं। घर के बालिग़ लड़कों में कुछ तो खुलकर खाने लगे हैं; दो-एक चोरी-चोरी सीख रहे हैं। मैंने भी तम्बाकू खाना चोरी से सीखा था। चूँकि बड़े भाई साहब तम्बाकू के नक़ायस जानते थे, इसलिए मुझे खाने देना नहीं चाहते थे, परन्तु मेरे संस्कार कुछ ऐसे थे कि मुझे दस बरस तम्बाकू खानी पड़ी। तम्बाकू-नोशी में मेरे ऊपर जितने शासन हुए थे, मैंने उनका बदला अपने बड़े भतीजे शिवबिहारी से लिया। शिवबिहारी मुझसे तेरह साल छोटा है। लत में फँस गया, तब मैंने देखा तम्बाकू बड़ी हानिकर है। शिवबिहारी को क़तई खाने देना नहीं चाहता था। उसे बचाने के लिए मैं तम्बाकू उसके सामने नहीं खाता। तम्बाकू खाने और पीने के विरोध में घंटों लेक्चर झाड़ा करता। गुञ्जायश मिलने से, तम्बाकू खाना-पीना मानवधर्म-विरुद्ध है, की धार्मिक पुट भी दे देता। बीस वर्ष की अवस्था तक शिवबिहारी ने तम्बाकू छुआ तक नहीं। वह उससे भयमिश्रित घृणा करता। इसके उपरान्त उसने अपने समालोचना के युग में तम्बाकू खाना शुरू कर दिया। अब पचीस साल का है; बहुत बुरी तरह तम्बाकू खाता है।

इसका कारण; गाँव, घर, टोला-पड़ोस, सब कहीं इस समय तम्बाकू का इस्तेमाल बढ़ रहा है। हमारे बरोठे में एक गड्डा बौनाभारी का तम्बाकू और बड़ी हाँडी-भर चूना सरे आम रक्खा रहता है। बस! खानेवालों का दृश्य देखते ही बनता है। जो भाई साहब मुझसे बड़े हैं, वे तम्बाकू नहीं



...। हाँ, गाँव के सुँघनी घसीटनेवालों में बाँके ...से भी ज़्यादा मशहूर हैं। शिवबिहारी की ...में निकैटीन जर्म्स ख़ान्दानी थे। गाँव-घर और ...ज से भी उसे खाने को प्रोत्साहन मिल रहा ...। उसकी ख़ूब इच्छा होती। परन्तु मेरी बुद्धि-...ी, मेरी वसीयत, मेरी बड़प्पन की मार, उसे ... वर्ष तक, जब तक वह ख़ुदमुख़्तार न हुआ, ... करने को रोकती रही। अंत में जिस दिन ...ने मुझे बराबरी के दर्जे से देखा, उस दिन मैं ... मेरी बात, दोनों उसे कमज़ोर जँचे। मैं ख़ुद ...कू खाता और उसे वैसा करने को रोकता था। ...ुतन्ना, मेरे छः साल के लड़के ने पाँच-छः ...ने हुए एक दिन चूना-तम्बाकू खाने का ...रीमेण्ट किया (तेरह बच्चों में सबसे अधिक ...की जानदारी इसी में है)। मैं बच्चों में से ...ी को किसी क़ुसूर के लिए किसी क़िस्म की ... नहीं करता। मुझे ऐसा करने की ज़रूरत भी ... होती। जो बोर्ड वे ख़ुद चुनते हैं, वही अपने ...े दिन भर दिया करता है। ऐसा भी होता है, ...आपस में लड़ जाते हैं। बोर्ड टूट जाता है। ...एक होते हैं; नये पंचों का चुनाव होता है। ... हालत में अपने को तटस्थ रखने का प्रयत्न ...ा हूँ। हर बच्चा मुझे अपना सबसे बड़ा सहन-...मित्र समझता है। मेरे बच्चे औरों से झूठ ...े हैं; मैं कभी झूठ बोलने को मना नहीं ..., फिर भी मुझसे सच ही बोलते हैं। एक ...मेरा एक बच्चा औरों से अनुरोध कर रहा था ...े को (मुझे) सब सच ही सच बताया ... दूसरे ने समर्थन करके कहा, उनसे झूठ ...की ज़रूरत ही क्या है।

...बाहर से आया। रिपोर्टर ने फ़ौरन् इत्तिला ... श्रीपुतन्ना चूना-तम्बाकू का शौक़ करने जा ... इस घटना में जिन बच्चों को ज़्यादा दिल-...थी, मैंने उनसे ख़ास तरीक़े से, मामूली ...में कहा, 'तो इसमें हर्ज ही क्या है? पुतन्ना ...ा भी (बड़े भाई साहब) ख़ूब तम्बाकू खाता है। तम्बाकू जिसे अच्छी लगे वह ख़ूब खाय।' बात की ख़ुसूसियत जाती रही। थोड़ी देर में ख़बर आई, पुतन्ना कोदो के पयाल पर बैठे हैं। अपने दादा की तरह दो बड़े डोज़ तम्बाकू के खा चुके हैं, जिनसे उन्हें ज़रा भी नशा नहीं हुआ। थोड़ी देर में मालूम हुआ, उनका जी मतलाने लगा; फिर सुन पड़ा, उन्हें के हो रही है।

अब मेरे मौक़े पर पहुँचने की ज़रूरत हुई। गया। इस वक़्त यद्यपि पुतन्ना की आँखें नहीं खुल रही थीं, फिर भी देखते ही, एक चीण मुस्कराहट में उन्होंने मेरा स्वागत किया। मैंने अनजान बन-कर इस हुलिया का कारण पूछा। कहा, तम्बाकू खाई है। मैंने कहा, "तो? बहुत-से आदमी तम्बाकू खाते हैं। कहो तो तुम्हारी भौजी से कहें, एक सुन्दर बटुआ तुम्हें भी सी दे।"

पुतन्ना ने एक के और हमारे ऊपर की। तम्बाकू बहुत नशीली थी। मैंने उन्हें गोद उठा लिया; कपड़े बदलवाकर सुला दिया। क़रीब चौदह घंटे आप तन्द्रामग्न रहे। दूसरे दिन मौक़ा पाकर मैंने तम्बाकू का ज़िक्र किया। पुतन्ना ने आज़ादी से कहा, बड़ी वाहियात चीज़ होती है। अब पुतन्ना अगर तम्बाकू न खायँ, तो उनकी हमारे साथ और अपने साथ मेहरबानी है।

इस वक़्त बच्चों से कहीं अधिक माता-पिता और गुरु में सुधार की आवश्यकता है। आदमी का ग़ुस्से में भर जाना अथवा गाली बकना यद्यपि स्वाभाविक है, फिर भी थोड़ी-सी बात पर बच्चों से बहुत ग़ुस्सा हो जाने का माता-पिता और गुरु में आजकल फ़ैशन-सा हो गया है। मौजूदा गुरु-जन, बच्चे को सज़ा देने अथवा गाली बकने के पहले, अगर अपने दिमाग़ को ज़रा भी बुरा-भला सोचने का मौक़ा दें, तो मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि अपने बच्चे पर बिगड़ने के स्थान में वे अपने ऊपर लज्जित हों। दिन भर, हर जगह और हर सम्प्रदाय के लोगों में, देखा जा सकता है, बच्चे अपने ही मा-बाप गुरु तथा बड़े भाई-बहनों से अपमानित किये



जाते हैं। इस पर भी तुर्रा यह कि इसी जूते, डंडे, थप्पड़ और वाग्बाणों की मार से वे श्रीकृष्ण, शिवाजी और नेपोलियन-से प्रतापी बनेंगे।

मेरा यह कटु अनुभव है कि हमें स्त्री को भी किसी क़िस्म की सज़ा नहीं देनी चाहिए। सभ्य-समाज में इसे शारीरिक दण्ड देने से अब लोग डरते हैं। इस कारण मानसिक दण्ड देने और भोगने का अभ्यास बहुत बढ़ गया है। इसका प्रभाव बच्चों के लिए बहुत घातक है। दस वर्ष पहले जब कभी मैं अपनी स्त्री को डाँटता, तो बदले में मेरी ग़ैर मौजूदगी में वह अपना ग़ुस्सा बच्चों पर उतारा करती। बाबूजी और देवीजी (मा-बाप) में डंडे और लोढ़े चल रहे हैं; कमबख़्ती आ रही है बेचारे मुन्ना-मुन्नी (बच्चों) की। झूठे, व्यभिचारी, शराबी, रातोदिन हें-हें करनेवाले मा-बाप, जिनमें दाम्पत्य-प्रेम का लेश मात्र तक नहीं, जिनका मानव-जीवन एक फ़ेलियर है, कामना करते हैं कि उनके बच्चे सदाचारी, महान् और प्रतापी बनें, इससे बड़ा अन्धेर और क्या हो सकता है।

आज के मास्टर को अगर मास्टर न कहकर कोई बहुत बड़ी भयानक वस्तु कहा जाय, तो अत्युक्ति न हो। कालेज, स्कूल, देहाती मदरसा और पाठशाला, सब कहीं बस, इनकी गवर्नमेंट एक ख़ास क़िस्म की है। गाँवों के वर्नाक्यूलर स्कूलों में, जहाँ मास्टर साहब श्रीबृहस्पति का अवतार गिने जाते हैं, बेत और इमली की छड़ी से शासन क़ायम रक्खा जाता है। पाठशाला और मक़तबों में धर्म की दुहाई अँगरेज़ी स्कूल और कॉलिजों में सभ्यता (Moral training) के सहारे बच्चे मंज़िले मक़सूद को पहुँचाये जाते हैं। मेरा मतलब है, गुरु अगर चाहे तो बहुत कम अपना ग़ार (बोझा) बच्चे को दे। हलका रहने से बच्चे को स्वयं विकसित होने का मौक़ा मिलता है। हर विषय में गुरु आगे चलकर बच्चों की इच्छा और अनिच्छा की ओर बग़ैर ध्यान दिये हुए उन्हें अपने पीछे घसीटने का प्रयत्न करता है, ऐसा नहीं होना चाहिए। गुरु मित्र बनकर बच्चे का सच्चा साथी और सलाहकार बनकर उसके विषय में उसकी सहायता कर सकता है। मेरे एक शिष्य ने, जो कि चौथे दर्जे की तैयारी कर रहा है, सिर्फ़ दो-दो घंटों की मेहनत से चार दिनों में संसार के सब देशों के मानचित्र और स्थिति समझ ली। साथ ही साथ जियॉग्रैफ़ी की और न-जाने कितनी बातें समझ लीं, जो छः महीने में भी सामान्य शिक्षा द्वारा नहीं बतलाई जा सकतीं। कारण क्या है। एबीसीनिया और इटली की लड़ाई में उसे दिलचस्पी हुई। इसी सिलसिले में अन्य राष्ट्रों की भी अनेक बातें उसे जानने की ज़रूरत जान पड़ी। 'कौन लड़ता है? कहाँ लड़ता है? कैसे लड़ता है? क्यों लड़ता है? वहाँ के लोगों का रहन-सहन कैसा है?' ऐसे कितने ही प्रश्न बच्चा स्वयं उठाता गया; मैं सब बातों का अपनी योग्यतानुसार उत्तर देता गया। जिस बात को मैं नहीं जानता था, साफ़-साफ़ कह दिया, मैं नहीं जानता।

कितनी ख़राब बात है कि मास्टरों द्वारा अपने ऊपर किये गये अन्याय का बदला मौजूदा मास्टर अपने शिष्य से लेता है। और माता-पिता इस घृणित कार्य के करने में उसे सहायता (सभ्यता, शिक्षा और अपना भला चाहने के नाम पर) दिया करते हैं। बहुतों का ख़याल है, बच्चा जितना ही शिक्षक और मा-बाप को डरेगा, उतना ही अच्छा होगा। मगर यह भी तो समझ में आनेवाली बात है कि वह जितना ही मा-बाप और गुरु के सामने दब्बू न होगा, उतनी ही निर्भीकता से संसार में काम कर सकेगा।

मेरा बड़ा बच्चा श्री चि॰ बुद्धिभद्र, जिसकी उम्र इस समय क़रीब चौदह साल की है, बचपन से ही संगीत की शिक्षा पा रहा है। परसाल, मैरिस म्यूज़िक कॉलिज, लखनऊ के प्रिन्सिपल, जो कि उसके गुरु हैं, ने उसे "अमुक" नाम की एक बड़ी फ़िल्म-कम्पनी में सरोद (वाद्ययन्त्र) बजाने का काम करने के लिए भेजा। बहुत रुपयों की नौकरी थी। मैं भी साथ था; कम्पनी की म्यूज़िक डाइरेक्टर



ने विषय की प्रमाण-पत्र-प्राप्त बहुत बड़ी पंडिता । फिर भी उनका दिमाग़, इस, शिष्यों पर आतंक नेवाली, बीमारी से बरी नहीं। एक दिन मेरे ने मुझसे कहा, "श्री....वैसे तो बड़ी सुल- ा हैं, लेकिन म्यूज़िकरूम में पहुँचने के साथ ही ने बाजा बजानेवाले हैं, उन पर उनकी थ्योरी ल जाती है। बेचारे सबके सब बड़ी मेहनत से ा अच्छा काम करते हैं, फिर भी सबक़ सुनते र देखते वक़्त किसी के काम को भी अच्छा नहीं तीं। ग़लत नहीं कह पातीं, मगर उससे और च्छा तैयार करने के लिए हमेशा दाँत पीसा करती । सब लोग उन्हें बहुत डरते हैं, यद्यपि मैं मन ही न उनकी क्रोधसुलभ मुद्राएँ देखकर हँसा करता हूँ।' ने यह भी कहा कि उसे अपने लिए कुछ तकलीफ़ ीं है; लेकिन बुड्ढे पंडित "........जी", रेडियो- ार और बम्बई के एक बहुत बड़े सितारिये सितार बजानेवाले) के ख़्वाहमख़्वाह हैरान े जाने पर मुझे बहुत दुःख होता है। बात म हुई।

मैं दो महीने तक जांच करता रहा। आख़िर ी....' की हुकूमत उनके असिस्टैण्टों पर इतनी ी कि लोग बड़ी सुन्दर गतें तैयार करते। े ख़ुद सुनें। लेकिन "श्री....जी" की डपट में े उलटी-सीधी हो जातीं। मैं सब बातें अध्ययन ता रहा। आख़िर एक दिन मुझे मालूम हो गया, ह सब क्यों हो रहा है। बच्चे ने मुझसे कहा— आज श्री....बड़े ताव में कह रही थीं कि तुम ों की हम काफ़ी सज़ा नहीं करती हैं, इसलिए म हमारी बात की परवा नहीं करते। मेरे गुरु- , वैसे तो हिन्दुस्तान भर जानता है, बड़े देवता , लेकिन मुझे पढ़ाते समय वे बड़े कठोर हृदय बन या करते थे।" यहाँ पर श्रीचिरञ्जीवी ने "श्री....:" बताई कई घटनाएँ बतलाईं, जिनमें उनके गुरु अनुदारतम बन गये थे।

एक घटना यह थी कि एक बार वह आलाप और ों की कापी क्लास ले जाना भूल गईं। गुरुजी ने इनके कमरे के दरवाज़े पर क़दम रखते ही कापी के बारे में पूछा। इन्होंने कहा, लाना भूल गई। इस पर वे बड़े क्रोधित हुए, और कमरे के अन्दर उस वक़्त तक प्रवेश करने का निषेध किया, जब तक कि हाथ में कापी न हो और सबक़ उत्तमोत्तम याद न हो। शिद्दत की गरमी थी; उन दिनों उधर बिजली की रेल भी नहीं बन पाई थी; मोटरबस बड़े कष्टदायक थे। चौदह मील का आना-जाना था। इत्यादि-इत्यादि। उन्हें उसी वक़्त घर जाना पड़ा, कापी लानी पड़ी, सबक़ याद ही करते बना।

इस वक़्त इन्हीं सब सख़्तियों का बदला वह अपने इन म्यूज़िकरूम असिस्टेण्टों से लिया करती हैं। उन्होंने नियमित रूप से एक संगीत का स्कूल खोलकर यह हविस निकालनी चाही थी, लेकिन उसके फ़ेल हो जाने से इन लोगों की कमबख़्ती और बढ़ गई। एक बात बहुत पुरदर्द है। जिस तरह भग्गे बटेर की बावली जितंगर बटेर को शौक़ीन लोग दिया करते हैं, उसी तरह ये गुरु-नामधारी मास्टर लोग एक तेज़ बच्चे से सुस्त बच्चे को हराया करते हैं। यह हद से ज़्यादा घातक है। आश्चर्य है, समझदार मा-बाप ऐसी नीचता पर कोई एतराज़ नहीं करते। बच्चों में निन्नानवे फ़ीसदी न कोई तेज़ होता है, न कोई सुस्त, केवल मा-बाप, और गुरु अपने अन्याय से कुछ को तेज़ कुछ को सुस्त बना देते हैं। "चुन्नू बड़ा तेज़ है। इसे मैं बैरिस्टर बनाऊँगा। मुनुवा! नालायक़, तुझे सात जन्म तक कुछ नहीं आ सकता! भीख माँगना।" क्या ये बातें बच्चों के कोमल हृदय में अपना घर नहीं करतीं? जिस दिन इस पहेली को मैं अपने बच्चों में सुलझा पाया, उसी समय उनके और मेरे उत्साह का ठिकाना न रहा। टोला-पड़ोस और स्वजनों की दिमाग़ी और जिस्मानी मार से बच्चे क़रीब-क़रीब अधमरे रहा करते हैं। जो बच्चा सबसे अधिक नालायक़ और सुस्त अपने को समझ रहा था, उसने मेरे मुँह में चिपटकर पूछा "कक्कू, क्या सच कहते हो, कोई लड़का तेज़ और सुस्त नहीं होता? सिर्फ़ जो मेहनत



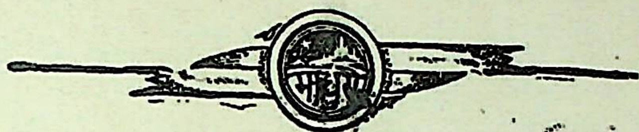
नहीं करते, वे सुस्त होते हैं और जो जी लगाकर काम करते हैं, वे चटक पड़ जाते हैं !" उसकी बातों का मैंने हृदय से समर्थन किया । प्रभाव जादू का हुआ । मुनान का (उसी लड़के का) यद्यपि इस समय पढ़ना बन्द है, फिर भी उसका शुमार समझदार लड़कों में है । यहाँ पर यह बात देखने की है कि जो लड़के उस समय अपने को तेज़ समझ रहे थे, मेरी बात से उन्हें कोई चोट न पहुँची, बल्कि अपनी तेज़ी का मिथ्या-अभिमान, जो उनमें पनप रहा था, वह दूर हो गया । एक ने (बारह साल का) हँसकर मुझसे कहा भी—"आप बिलकुल सच कहते हैं । दिल, दिमाग़ और परिश्रम का प्रयोग हर कोई कर सकता है ।"

दस-पन्द्रह बरस पहले जर्मनी के एक डाक्टर के मतब में नाड़ीयन्त्र और मस्तिष्क-सम्बन्धी रोगियों में लड़कों की संख्या असामान्य हो गई । उसने परेशान होकर बीमारी का कारण खोजा, तो पता चला, उस मुहल्ले के स्कूल का हेडमास्टर बड़ा क़साई था; उसकी भयानक सज़ाओं को सह-कर और उनसे भयभीत होकर बच्चे बीमार हो जाया करते थे ।

विषय बहुत बड़ा है । इतना बड़ा, जिसकी परिणति अच्छे ढंग से एक पुस्तक ही में की जा सकती है । फिर भी क़लम ख़ामोश करने के पहले एक बड़ी सुन्दर बात कहे बग़ैर जी नहीं मानता । बहुत दिन तक मा-बाप बच्चों को अपने कामों का ज़िम्मेदार नहीं बनने देते, यह बड़ी ख़राबी है । दस बरस के श्यामू को हर काम उसकी ज़िम्मेदारी पर करने देना चाहिए । हँसते, खेलते, ख़ूब तन्दु-रुस्त शरारत से भरे श्यामू अगर पढ़ने में जी नहीं लगाते या अपनी छोटी बहन को पीटने और घंटों हैरान करने में अपना वक़्त बरबाद करते हैं, तो हमें उन्हें गाली बककर अथवा मारपीट कर अपमानित नहीं करना चाहिए । इसका साफ़ मतलब यही है कि वह अपनी ज़िम्मेदारी नहीं महसूस करते और यह भी कि जब से वह समझेंगे कि उन्हें ऐसा नादान नहीं होना चाहिए, सब हरक़तें जाती रहेंगी । हम दिल से ऐसा करना तो चाहें ।

मैं श्रीचिरञ्जीवी के साथ तीन महीने बम्बई रहकर उन्हें एक मित्र के साथ छोड़कर घर चला आया । ग्यारह बजे रात को विक्टोरिया-टर्मिनस पर वह मुझे विदा करने आये थे ।

रेल में मेरा सामान कुली से उन्होंने अपनी ज़िम्मेदारी पर रखवाया । बिस्तर ख़ुद एक सीट पर बिछाकर मुझसे मेरी तक़लीफ़ व आराम के बारे में पूछा । कई एक बैसवाड़े के धोबी उसी ट्रेन से इधर अपने घर आ रहे थे । उनके कुछ साथी वहीं रह रहे थे; सिर्फ़ इन्हें भेजने स्टेशन तक आये थे । गाड़ी छूटते समय सभी एक दूसरे से गले मिल-मिलकर रोने लगे । श्रीचिरञ्जीवी ने अपना माथा घुमाते हुए हँसकर मुझसे कहा—"ये लोग कितना ग़लत रोते हैं । अगर रुकना और जाना नहीं चाहते, तो फिर ऐसा करते ही क्यों हैं ।" मैं हँसने के लिए तैयार था, फ़ौरन् हँस दिया । मालाड इस स्टेशन से बीस मील है । श्रीचि० (अपनी समझ से) मुझे अकेले ही 'सेएड आफ़' देने आये थे, यह बात दूसरी थी कि मेरे मित्र श्रीत्रिपाठीजी, जिन्हें मैं इन्हें सौंप चुका था, पहले से स्टेशन पर डटे हुए थे । चलते वक़्त मैं श्रीचिरञ्जीवी की सम्मति से उनके लिए एक रुटीन बना आया था, कम्पनी जाना, गाना, बजाना सब उसी के हिसाब से होता था । गाँव को हर चौथे दिन मुझे चिट्ठी लिखने की बात थी । एक दिन उन्होंने मुझे लिखा—"बम्बई के संगीतज्ञों से मिलने में मुझे बड़ा लाभ होता है; नई-नई बातें सीखने का मौक़ा मिलता है । कल्ह रात श्रीबाबूरावजी पलुस्क, प्रिन्सिपल महाराष्ट्र-संगीत-विद्यालय से मिलने गया था । उन्होंने मुझसे अपनी कुछ छात्राओं को सरोद सिखाने के लिए कहा है । मुझे पखावज की गतें सिखाने को वे स्वयं कहते हैं । मैं हर हफ़्ते उनके यहाँ जाऊँगा ।"



...में मैंने लिखा—"तुम ख़ूब सोच-समझकर ...करोगे, यह मुझे पहले से विश्वास था। हाँ, ...और बात। इन दिनों तुम्हें इलेक्ट्रिक ट्रेन्स ...बहुत चलना पड़ता होगा। छोटे बच्चों की तरह तुम्हें यह पट्टी बार-बार नहीं पढ़ाना चाहता कि ...ी बिलकुल खड़ी हो जाय, तब चढ़ना-उतरना ...हिए; खिड़की के क़रीब अगर बैठने का मौक़ा ... या जी हो, तो जितनी देर वहाँ रहा जाय, ...सजग होकर रहा जाय। किसी के पैर या ...ग लग जाय, तो बम्बई के एटीकेट के हिसाब ...उसे प्रणाम कर लिया जाय। एक समझदार ...तरह इन नियमों का पालन तुम ख़ुद ही कर ...होगे।"

...इण्डियन इस्टेट्स ब्रॉड कास्टिङ्ग सर्विस में श्री-...० रेडियोस्टार भी हैं। मुझे एक ख़त में लिखा। ...वार १९ जनवरी को मेरी सरोद की बुकिङ्ग ...-१९ से ७—३९ तक शाम को हुई है। गाँव ...लखनऊ आकर श्रीमिश्र-बन्धुओं के यहाँ से ...जाना। यह बात २९ दिसम्बर की है। ६ ...नवरी को इनकी चिट्ठी मुझे फिर मिली, लिखा ..."रेडियो के क्लर्कों की मूर्खता का फल मुझे भी ...तना पड़ा। 'फ़र्स्ट' जनवरी को उन्होंने 'फ़र्स्ट' ...खा, जो बिलकुल 'फ़िफ़्टीन्थ'-सा हो गया है—...सलिए मेरा प्रोग्राम पहली जनवरी को हो गया। ...पन्द्रह जनवरी की तैयारी में था। आज समन ...या तो मालूम हुआ; बड़ा एतराज़ हुआ है।"

...चिट्ठी पढ़ते ही पहले मैं अपनी बड़प्पन की ...लता को न दबा सका; भिन्ना गया। ख़याल ...था २९) रुपये मिलते, नाम होता, जगह-जगह ...त्रों को इनका सरोद सुनने को लिख चुका हूँ, ...बनूँगा। दिन भर मैं अपने को दबा न सका। ...अक़्ल दुरुस्त हुई, तो इनको बड़े फेर से चिट्ठी ...खी। मैंने लिखा, इस बार तुम्हारे रेडियो-...ग्राम गड़बड़ाने का हाल मालूम हुआ। जैसा ...मने लिखा है, ऐसी हालत में हर समझदार ...दमी पहली को पन्द्रह पढ़ सकता है। ख़ैर, मिस्टर के० बी० सेठना (स्टेशन-इन्चार्ज) से मिल-कर अपना पोज़ीशन साफ़ कर लेना। इसके उप-रान्त मैंने सफ़ाई से विषय बदल दिया। इनके स्टूडियो की बात छेड़ दी। यह सब कुछ कहने का मतलब यह है कि मैंने इनकी ग़लती पर एक सामान्य बाप की तरह इन्हें कोसना नहीं शुरू कर दिया। अव्वल तो ग़लती हुई नहीं थी और अगर हुई थी, तो वह हो चुकी थी। इसका नतीजा यह हुआ कि मेरी चिट्ठी पाकर, पिता की क्षमाशीलता पर, इन्हें बड़ा संतोष हुआ। और उत्साह तो इतना बढ़ा कि मिस्टर सेठना से लिखा-पढ़ी करके, और उनके पास ख़ुद जाकर अपनी दूसरी बुकिंग २ फ़रवरी को करा ली। उस दिन इतवार था, पहले के दूने दाम मिले।

मेरे घर सात-सात आठ-आठ बरस के बच्चे पढ़ने के बाद खुरपी लेकर घास छीलने जाते हैं, और बछिया-पँड़िया भर को लाते भी हैं। गाँव-जवार के रईसों के लड़के, जिनके मा-बाप उन्हें गँड़ासा और खुरपा इस भय से छूने नहीं देते कि कहीं उनकी उँगली न कट जाय, बैठे मक्खी मारा करते हैं, और दुनिया भर की शरारत से घर और गाँव को परेशान करते हैं। मेरे बच्चे ज़िम्मेदार बनकर औज़ार चलाते हैं; अव्वल तो बहुत कम ख़तरा होता है और अगर हुआ भी, तो घर-बाहर, खेत-खलियान जहाँ कहीं किसी के ोट लगी कि उन्हीं लोगों की फ़र्स्ट-एड (First Aid) वहाँ पहुँची। ज़ख़्म का धोना और पट्टी बाँधना उनके बाँयें हाथ का खेल है। टिञ्चर आयोडीन, स्पिरिट, भँगरा की पत्ती और पीपल का दूध, हर समय निगाह के नीचे ही रहा करते हैं।

अंत में, यद्यपि बच्चों के मनोभावों को समझना बड़ा मुश्किल है, फिर भी अगर ईमानदार माता-पिता उनके कल्याण के मार्ग सोचें, तो सोच सकते हैं। विषय तो इतना बड़ा है, जिसको व्यक्त करने को "गिरा अनयन नयन बिनु बानी" का स्वरूप सामने आता है।



खँडहर की आत्मकथा

श्री 'अशोक' बी० ए०

करते हैं बिहार उलूक यहाँ पर, कोकिल का कुछ काम नहीं ;
उजड़े हुओं की है यहाँ बसती, यह वैभववालों का धाम नहीं।
उडु व्याज अमावस रोती सदा, हँसती हुई पूनो का नाम नहीं ;
अधरात अकेली यहाँ रहती, अब आती है सोने की शाम नहीं।१।

बात न ये सुख देखें न हों, अपनी-अपनी पै वे राह हुए;
लालीभरे कितने मुखमंडल देखते-देखते स्याह हुए।
शाह हुए दिन एक, वही दिन दूसरे खाक-ए-पाह हुए ;
हैं सुख के मोहताज हुए, दिन-फेर से आज तबाह हुए।२।

कभी इस आँगन के भी प्रसून बने मृगनैनियों के गलहार ;
पिये प्रणयासव थी करती रसिकों की जमात प्रमोद-विहार।
समीर था डोलता शीतल मंद, सुगन्ध का देता हुआ उपहार ;
पै आज अतीत का नाटक याद की रंगथली में रहा मैं निहार।३।

चन्द्र था चूमता रम्य निकेतन, ऊषा यहाँ मुसकाती रही ;
देख कली मकरन्दभरी अलि-पाँति सदा ललचाती रही।
सान्ध्य अकाश की शोभा विलोक विहंगावली नित गाती रही ;
सारी निशा सुरबाला यहाँ पर ओस के मोती लुटाती रही।४।

पर आज नहीं वहता मलयानिल, भौंर भी पास में आते नहीं ;
बस एक पपीहा पुकारता है, खग दूसरे गान सुनाते नहीं।
हत सन्ध्या बेचारी है रोती निशा भर, चन्द्र भी कान्ति दिखाते नहीं ;
अब श्यामा की गोद में तारक-बाल भी बैठे हुए मुसकाते नहीं।५।

क्या बुझा दीप कहानी कहे ? कुछ फूल नहीं, बस खार यहाँ हैं ;
हर्म्य का उन्नत भाल है चूमता धूलि, तो जीवन भार यहाँ है।
है न कहीं जग में सुख की सरि, केवल आँसू की धार यहाँ हैं ;
लालसा में जयमाल के व्याकुल हैं, पर हार का हार यहाँ है।६।



असफल गल्प

श्रीइन्द्र एस्० मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०

प्रयाग विश्व-विद्यालय में गल्प-सम्मेलन होनेवाला था। विजय ने भी एक गल्प लिखने की सोची। जब वह गल्प लिखने बैठा, तो उसे कुछ समझ ही में न आया कि क्या लिखे? क्या लिखे? बेचारा विजय इसी उधेड़बुन में पड़ा था। यकायक उसने होस्टल के कमरे में से बैठे-बैठे देखा कि लड़कियाँ रंग-बिरंगी सारी पहने हुए, ताँगे पर बैठी हुईं, विद्यालय पढ़ने जा रही हैं और एक सज्जन साइकिल पर ताँगे का पीछा कर रहे हैं। विजय ने सोचा, क्यों नहीं वह विद्यालय के लड़के-लड़कियों के 'लव-रोमांस' पर एक कहानी लिखे। वह अपनी मित्र-मंडली में अक्सर कहा करता कि विद्यालय की लड़कियाँ अधिकतर चालाक हुआ करती हैं। कथानक तो बेजा न होगा। विजय सोचने लगा कि कहानी की नायिका कैसी होगी? सुन्दर तो अवश्य होगी। परन्तु सुन्दर तो बहुत होती हैं। उसमें कुछ विशेष आकर्षण हो, जिससे छात्रगण उसकी तरफ़ अनायास ही आकर्षित हो जायँ। काली-काली बड़ी-बड़ी अंगूर सी आँखें हों—मस्त-मादक। 'देवदास' की 'जमुना' की तरह उसकी कोमल आकृति हो। वयस हो केवल सत्रह साल। बी० ए० में पढ़ती हो। ज़रा दुबली हो। क़द बहुत लम्बा न हो—यही पाँच फ़ीट साढ़े तीन पौने चार इंच तक। बस। अल्हड़पन ग़ज़ब का हो। सबसे बढ़के उसकी मुस्कराहट हो। देखने में एक 'चीज़' हो। ऐसी हो कि अजायबघर में रखने लायक़।

अब विजय नायिका का नाम सोचने लगा। चम्पा, चमेली, जूही, अनारकली, कुमारी शर्बती, मिस मुन्नी, कल्लो की मा आदि उसने कितने नाम सोचे। कोई जँचे नहीं। नायिका का कोई फ़ैशनेबल नाम होना आवश्यक है। इतने में किसी ने दरवाज़ा खटखटाया, विजय ने देखा—सामने अचारवाला खड़ा है। 'बाबूजी अचार चाहिए?' कहाँ तो बाबूजी नायिका का नाम सोच रहे हैं—कहाँ अचार। सारा 'मूड' बिगड़ गया, उस दिन वह कुछ न लिख सका। दिन भर नायिका का नाम सोचता रहा।

दूसरे दिन फिर बड़ी तत्परता के साथ विजय अपनी गल्प लिखने बैठा। उसने नायिका का नाम रक्खा मिस बरूचा। नायिका तो मिल गई, अब ठहरा सवाल नायक का। मिस बरूचा-जैसी नायिका के लिए नायक भी तगड़ा होना चाहिए। ऐसा नायक हो, जिसमें शत-प्रतिशत सेक्स अपील (Cent per cent sex appeal) हो कि देखते ही लड़कियाँ मुग्ध हो जायँ। आजकल के फ़ैशन के अनुसार मूँछें नदारद हों। कुछ-कुछ भूरापन लिये हुए आक्सफ़ोर्ड फ़ैशन के बाल हों। ज़रा-सी



लटकी हुई कलम हो। काश्मीरी चेहरा हो। लाँग क्लाथ का चौड़ी मोहरी का गरारीदार पायजामा, महीन जालीदार बनियाइन, इसके ऊपर तंज़ेब का सफ़ेद चुन्नटदार कुरता, पैरों में मख़मली नागरा, सर पर लखनउवा दुपल्लिया टोपी इस तरह पहनी हो कि मालूम पड़े कि गिर रही है, परन्तु वास्तव में न गिरे। नायक का यही पहनावा हो। एम्० ए० में अँगरेज़ी पढ़ता हो। बोलने-चालने में, खेलने-कूदने में अव्वल हो। टेनिस खेलने में तो ऐसा हो कि लड़कों को क्या, लड़कियों तक को 'लवसेट' दे दे। इनडोर गेम्स (Indoor Games) खेलने में भी ख़ूब चलता-पुरज़ा हो। अपने ऐसे नायक का नाम विजय ने रक्खा प्रेमकुमार।

इसके आगे विजय ने सोचा कि प्रेमकुमार और मिस बरूचा में प्रेम कैसे कराया जाय। पहले ही बार एक दूसरे को देखने से प्रेम की उत्पत्ति हो। अँगरेज़ी में जिसको कहते हैं 'लव ऐट फ़र्स्ट साइट'। विजय सोचने लगा कि विद्यालय में अखिल भारतवर्षीय वाद-विवाद हो। लड़कियाँ भी वाद-विवाद सुनने आती हैं। मिस बरूचा भी आवें। वाद-विवाद में प्रेमकुमार का भाषण सबसे अच्छा हो। मिस बरूचा की आँखें प्रेमकुमार से लड़ जायँ। दिल ही तो है। प्रेम के ऊपर आ जाय। लेकिन लुत्फ़ तो तब आवे, जब कि प्रेमकुमार का झुकाव उसकी तरफ़ न हो। मिस बरूचा कभी निर्निमेष, कभी कनखियों से बार-बार प्रेम की तरफ़ देखें। वह यह जानता हुआ भी कि मिस बरूचा मेरी तरफ़ देख रही हैं, उनकी तरफ़ न देखे। मिस बरूचा के भावों से ऐसा प्रतीत हो कि वह चाह रही है कि प्रेमकुमार किसी न किसी बहाने आकर उसकी बग़ल में बैठ जाय, उससे बातें करे। पर प्रेमकुमार जहाँ बैठा है, वहीं अकड़के बैठा ही रहे। टस से मस न हो। दिखला दे कि मनुष्य भी इस संसार में अपना कुछ अस्तित्व रखते हैं। अगर लड़कियों को अपने ऊपर नाज़ रहता है, तो प्रेमकुमार को भी अपने ऊपर नाज़ है। वाद-विवाद ख़तम हो। बरूचा प्रेमकुमार के पास पहुँचकर अपनी 'आटोग्राफ़' की किताब और पार्कर फ़ाउन्टेन-पेन थमाते हुए कहें "भीड़ बहुत ज़्यादा है। आप कृपा करके सभापति महोदय सर राधाकृष्णन का आटोग्राफ़ ले लीजिए। मैं बाहर आपका इन्तज़ार करूँगी। थैंक्स।" मिस बरूचा का यह कहना और उनकी सारी का उनके सिर पर से अपने आप ही धीरे-धीरे खिसकना। कोमल जाति (Fair sex) की जीत हो। प्रेम चुपचाप उससे आटोग्राफ़-बुक ले ले।

× × ×

बरूचा और पी० के० में प्रेम का बीज तो विजय ने बो दिया; इसके उगने और फल निकलने की देर थी। विजय सोचने लगा कि इसके पश्चात् प्रेमकुमार और मिस बरूचा विद्यालय में अक्सर मिलेंगे और कभी यूनियन-आफ़िस में, कभी इँगलिश-डिपार्टमेण्ट में, कभी पुस्तकालय में बैठे घंटों आपस में न-मालूम क्या-क्या बातें करेंगे। मिस बरूचा का प्रेम की तरफ़ झुकाव बढ़ता जायगा। प्रेमकुमार बरूचा के यहाँ बहुधा शाम को बैडमिन्टन खेलने जाया करेगा।

संसार में किसी से प्रेम किया जाना कितना सुखद है—कितना मधुर। प्रत्येक युवती की आंतरिक अभिलाषा यही होती है कि कोई उससे प्रेम करे—कोई उसका सच्चा प्रेमी हो, जो उसके लिए अपने हृदय में अनुभव करता हो। मिस बरूचा भी यही चाहती थी। स्वाभाविक ही है। युवावस्था थी। पहला झोंका—पहला प्रेम। आज मिस बरूचा प्रेमकुमार के ऊपर बुरी तरह आकर्षित थी। वही मिस बरूचा, जिसने विद्यालय के कितने छात्रों को अपने सौन्दर्य के घमंड में ठुकराया था। वही मिस बरूचा आज प्रेम के प्रेम की भिक्षुक थी। ईश्वर की लीला अपरम्पार है। अपना 'सब कुछ' भी अर्पण करके अगर वह प्रेम को पा सकती! विजय अपनी नायिका के हृदय की अवस्था सोचने लगा।



मिस बरूचा अकेली बैठी-बैठी घंटों सोचती और नाना प्रकार की कल्पनाएँ करती। कल्पनाएँ उसको पागल बना देतीं और उस पागलपन में उसे बड़ा सुख मिलता। वह सोचती—ईश्वर ने प्रेमकुमार को इतना आकर्षक क्यों बनाया। वह मुझे इतने अच्छे क्यों लगते हैं। क्या प्रेम सचमुच मेरे हो सकते हैं? क्या मैं उनके लायक़ हूँ? उनकी आँखें कितनी भावुक हैं, कितनी निराली। भला वह भी कभी मेरे विषय में सोचते होंगे। जब मिलने को आते हैं, तो रह-रहकर हृदय में गुदगुदी क्यों होती है? क्यों उनसे बातचीत करने की, उनसे मिलने की, उनके साथ सिनेमा देखने की इच्छा होती है? किसी बात में तबियत ही नहीं लगती।

विजय ने सोचा, प्रेमकुमार और बरूचा के प्रेम की बात विद्यालय में फैल जायगी। छिपी तो रह नहीं सकती। लड़के आपस में तरह-तरह की बातें करेंगे।

'आजकल तो प्रेमकुमार की मत पूछो—पाँचों उँगली घी में हैं। सुना है, मिस बरूचा एक हज़ार रुपये मासिक वेतन पर फ़िल्म-कम्पनी में अभिनय करने बम्बई जानेवाली हैं और उनके साथ प्रेमकुमार भी जावेंगे।'

'अच्छा है, इनकी-जैसी सामाजिक लड़कियों (Society Girls) की फ़िल्म-कम्पनी में आजकल आवश्यकता भी है।' 'मैंने तो सुना था कि वह कलकत्ता जा रही हैं—शान्तिनिकेतन में नृत्य सीखने और प्रेमकुमार भी वहीं पर चित्रकला सीखेंगे।' 'यार अगर मिस बरूचा चली गई, तो विद्यालय तो सूना हो जायगा।' 'यह तो संसार है। आना-जाना तो लगा ही रहता है। मिस बरूचा अगर चली गई, तो इनकी-जैसी पचासों आवेंगी। घबराते क्यों हो। सब्र तो करो।'

'तुम लोगों को सच्ची ख़बर तो मालूम नहीं। चले हवा में उड़ने। अरे आजकल बरूचा का पुराना प्रेमी 'डबी' आई० सी० एस्० आया हुआ है। उसी से मिस बरूचा की शादी होनेवाली है। वह इनको लेकर हवाई जहाज़ पर कान्टिनेन्ट जानेवाला है।'

'फिर प्रेमकुमार का क्या होगा?'

'होगा क्या? बैठे-बैठे टापा करें।'

× × ×

प्रेमकुमार का विद्यालय में चलना-फिरना दूभर हो गया। जो कोई मिलता, वही प्रेम को दस बातें सुनाता, आवाज़ें कसता, बनाता। प्रेम बेचारा चुपचाप सहता। लड़के इधर प्रेम को बनाते, लड़कियाँ उधर बरूचा को बनातीं। अन्त में यहाँ तक हो गया कि दोनों का मिलना-बोलना बन्द करना पड़ा।

कुछ दिनों पश्चात्।

लोगों ने सुना कि बरूचा को टी० बी० का संदेह है, इसी कारण उनका विद्यालय आना बन्द हो गया है।

× × ×

अनन्त जीवन का क्रम तो चलता ही रहेगा। दूसरे वर्ष जब गरमियों की छुट्टी के बाद विद्यालय खुला, तो फिर वही वातावरण—वही पहले-जैसी चहलपहल। लड़के लड़कियों के झुण्ड की तरफ़ उत्सुकता से देखते। उनमें कितनी नई सूरतें दृष्टिगोचर होतीं। एक से एक बढ़कर—एक से एक अच्छी। परन्तु उनमें मिस बरूचा न थी। × × × × विजय की कहानी समाप्त हुई। अब ठहरा सवाल पढ़ने का। गल्प-सम्मेलन में बड़ी भीड़ होती। प्रोफ़ेसर, लड़के, लड़कियाँ, सभी आते। लेक्चर-थियेटर खचाखच भरा रहता। विजय सोचने लगा कि अगर कहीं वह पढ़ी-लिखी लड़कियों के सामने गल्प पढ़ते समय उद्विग्न (Nervous) हो गया, तो बड़ी भद होगी। इतने बड़े जन-समूह में विजय के लिए गल्प पढ़ना एक समस्या थी।

ब्रिटिश व्यापार का पतन

बा० शीतलासहाय बी० ए०

हिन्दुस्तान पर व्यापारिक प्रभुत्व पाने के लिए एक महान् संघर्ष चल रहा है। ब्रिटेन के इस प्राचीन इजारे को छीनने के लिए दुनिया की अनेक शक्तियाँ यत्नशील हैं और भारतीय बाज़ार पर क़ब्ज़ा पाने के लिए अनेक क़ौमें कोशिश कर रही हैं। ब्रिटेन, जिसका इस देश पर केवल राजनीतिक ही नहीं, बल्कि व्यापारिक साम्राज्य भी अकंटक था, इस मुल्क की अपनी तिजारत धीरे-धीरे खोता जाता है। पिछले २० वर्ष से उसका पतन आरम्भ हुआ और आज तक जारी है। यह बहुत कुछ खो बैठा है और हर साल कुछ न कुछ खोता ही जाता है। भारतीय बाज़ार में, ख़ासकर कपड़े के मामले में जापान ने इसकी कमर तोड़ दी है। कुछ लोगों की राय है (जो बहुत हद तक सही मालूम होती है) कि इस प्रभुत्व के नष्ट करने में जापान का उतना हाथ नहीं, जितना भारत के अन्दर उत्तरोत्तर बढ़नेवाली राष्ट्रीय और स्वदेशी भावना का है। ब्रिटेन भी अपने पुराने प्रभुत्व को क़ायम रखने के लिए जी तोड़कर कोशिश कर रहा है। हिन्दुस्तानी व्यवसाय अपने देश में अपना वाजिब हक़ हासिल करने की कोशिश में है ही और जापान तो ज़ोरदार प्रयत्न कर ही रहा है। सवाल यह होता है कि इस संग्राम में आख़िर में जीत किसकी होगी? मौजूदा स्थिति तो यह है कि ब्रिटिश व्यापार नीचे जा रहा है, और हिन्दुस्तानी व्यवसाय तरक़्क़ी करता जाता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि कुछ दिन पहले अँगरेज़ लोग तिजारत के मामले में दुनिया भर में सबसे बड़ी क़ौम थे। १८६०-७० के ज़माने में इस पृथ्वी पर एक भी क़ौम ऐसी नहीं थी, जो व्यापार में इनका मुक़ाबला कर पाती। इसके मुख्य उद्योगों में से कपड़े का उद्योग इसका विशालतम उद्योग था, लोहे और फ़ौलाद के उद्योग का नम्बर दूसरा था और फिर कोयले का उद्योग था। १८८० के आँकड़े के अनुसार ब्रिटेन का ४३·२ प्रतिशत निर्यात व्यापार ऊनी और सूती कपड़े का हुआ करता था, १२·७ प्रतिशत लोहे और फ़ौलाद का था, और ४·२ मशीनों का। आज यह हालत नहीं रही।

ब्रिटिश व्यवसाय का इतिहास

पिछले ५० वर्षों से औद्योगिक इतिहास का निरीक्षण करके हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि ब्रिटिश व्यवसाय हर देश में शनैः-शनैः नीचे जा रहा है। लोहे का व्यवसाय, जहाज़ बनाने का व्यवसाय और जहाज़-सम्बन्धी इंजीनियरी का कारोबार घटकर आधा हो गया है। इन व्यवसायों से १९२३ में जितने अँगरेज़ कार्यकर्ताओं का पालन-पोषण होता था, उसके आधे भी आज इनसे रोज़ी



नहीं कमाते। इन व्यवसायों में ब्रिटेन कम से कम १० प्रतिशत नीचे गिरा है। युद्ध के पूर्व इँगलैंड का जितना माल विदेशों में बिकता था, उसका आधा भी आज नहीं बिकता। इँगलैंड के स्तम्भ व्यवसायों पर—जैसे कोयलों के, कपड़े के, ऊन के, लोहे और फ़ौलाद के जहाज़ आदि बनाने के व्यवसायों पर सबसे गहरा आघात पहुँचा है। पहले ब्रिटिश औद्योगिक समुदाय का तृतीयांश विदेश के लिए माल बनाने में लगा रहता था, अब केवल २० प्रतिशत आदमी इस काम में लगे हैं। युद्ध के पहले इँगलैंड की सम्पूर्ण व्यावसायिक उपज का तृतीयांश विदेशों में बिकता था, अब केवल २० प्रतिशत बिकता है। जितने आदमी सन् १३ में खानों में काम करते थे, उसके आधे आदमी भी आज खानों में काम नहीं करते। इँगलैंड के मुख्य-मुख्य २२ व्यवसायों पर यदि हम दृष्टि डालें, तो उनमें से ६ व्यवसायों में उन्नति हुई है, ६ व्यवसाय अपनी जगह पर स्थिर हैं और बाक़ी १० व्यवसायों का ह्रास हुआ है। पिछले १२ वर्षों में इँगलैंड ने साइकिल के व्यवसाय में, बिजली के सरंजाम के काम में, काग़ज़ तथा स्टेशनरी के धंधे में और दवा बनाने के उद्योग में उन्नति की है। लेकिन इमारत, सफ़ाई, मोज़े आदि के व्यवसाय अपनी-अपनी जगह पर स्थिर रहे हैं। कपड़ा बनाने, कपड़ा सिलने, लकड़ी और फ़रनीचर बनाने, जूता बनाने, ऊन, ईंटें, गिलास और चीनी के सामान में, चमड़े, रेशम, गाड़ी आदि के धंधे में बहुत कमी आ गई है। पहले इँगलैंड अन्तरराष्ट्रीय व्यापार करता था। इसकी जनता विदेशों को माल भेजकर वहाँ से धन लाती थी। अब ग्रेट-ब्रिटेन ज़्यादातर स्वदेशी व्यापार करता है। अब अधिकांश अँगरेज़ देश के अन्दर ही एक दूसरे की सेवा करके और एक दूसरे की ज़रूरत की चीज़ें बनाकर धनोपार्जन करते हैं।

इँगलैंड के औद्योगिक पतन के अनेक कारण हैं। पहला तो यह कि इस समय संसार के सभी सभ्य और व्यावसायिक राष्ट्र इस प्रयत्न में हैं कि अपनी ज़रूरियात की सबकी सब चीज़ें स्वयं पैदा कर लें। उन्नत राष्ट्र इसलिए हर प्रकार के व्यवसाय अपने यहाँ खोलते जा रहे हैं। अतः वे राष्ट्र जिनका धन्धा अन्य देशों में केवल बना हुआ माल बेचना था, आज व्यवसायहीन हो रहे हैं। वे पराधीन जातियाँ भी, जो अभी तक पश्चिमीय राष्ट्रों से अपनी आवश्यकता की समस्त चीज़ें ख़रीदती थीं, देशभक्ति के आन्दोलन के प्रभाव से स्वयं अपने यहाँ ज़रूरियात की चीज़ों के बनाने का प्रबन्ध करती जा रही हैं। २५ बरस पहले इस देश की मिल द्वारा बने हुए कपड़ों की आवश्यकता का ७० प्रतिशत इँगलैंड पूरा करता था और स्वदेशी मिलें केवल २५ प्रतिशत। आज स्वदेशी मिलें इस आवश्यकता का ८० प्रतिशत पूरा करती हैं, और विलायती देश केवल २० प्रतिशत। दूसरा कारण यह है कि अन्तरराष्ट्रीय जगत् में इँगलैंड के अनेक भयंकर प्रतिद्वन्द्वी पैदा हो गये हैं, जो इसे कल नहीं लेने देते, जैसे जापान, अमेरिका, जर्मनी और इटली। इँगलैंड इसलिए प्रथम श्रेणी का औद्योगिक राष्ट्र न रहकर अगर एक ज़ीना नीचे आ जाय, तो आश्चर्य न होना चाहिए। अब अँगरेज़ों में दूकान रखने की प्रथा लोकप्रिय हो रही है। आज ३ लाख अँगरेज़ दूकानदारी करते हैं, जैसे हिंदुस्तान का हाल है। व्यवसाय में पूर्ववत् विशेष लाभ न देखकर अँगरेज़ लोग नौकरी की तरफ़ बढ़ रहे हैं, अनेक व्यक्तिगत सेवा में लग रहे हैं। कोई धोबी का काम करता है, कोई होटल खोलता है, कोई ख़ोंचा रखता है और कोई खेल-तमाशे के काम में लग रहा है। कुछ रेलवे में, या इक्के-गाड़ी के काम में लगे हुए हैं। कुछ गवर्नमेन्ट की नौकरियाँ करते हैं। १ करोड़ डेढ़ लाख औद्योगिक काम करनेवाले अँगरेज़ों में से ६० लाख व्यावसायिक हैं, १० लाख किसानी करते हैं। १० लाख इमारत का काम और ठेकेदारी करते हैं और १० लाख खनिज व्यवसाय में लगे हैं। ६० लाख आदमी कारख़ानों में काम करते हैं।



इतनी कमज़ोरी की दशा में भी इँगलैंड का प्रत्येक औद्योगिक मनुष्य २११ पौंड प्रति वर्ष पैदा करता है और वहाँ मज़दूरों की मज़दूरी ३३ शिलिंग प्रति सप्ताह से ६४ शिलिंग तक प्रति सप्ताह है।

कपड़े का धन्धा ब्रिटेन का सबसे बड़ा धन्धा था और हिन्दुस्तान उसका सबसे बड़ा ग्राहक था। नीचे के आँकड़ों से आप जान सकते हैं कि १९१३ से आज तक हिन्दुस्तान से बड़ा कपड़े का कोई दूसरा ग्राहक इँगलैंड का नहीं रहा। इन आँकड़ों से आपको यह भी साफ़ दिख जायगा कि दक्षिण अमेरिका को छोड़कर इँगलैंड का कोई पुराना ग्राहक अब उतना कपड़ा उससे नहीं ख़रीदता, जितना पहले ख़रीदा करता था।

इँगलैंड से सूती कपड़े का निर्यात

लाख गज़ों में

	१९१३	१९२७	१९२८	१९२९	१९३०	१९३१	१९३२	१९३३
कुल जोड़	७०७५३	४१८९१	३९६८२	३७४६८	२४९०८	१७१९२	२३०२७	२१।६७
ब्रिटिश भारत को	३०५७३	१५५०७	१४५२६	१२६८३	७२८४	३५५६	५५५४	४४०४
चीन हांगकांग को	७१६५	११६९	२०५१	२०९९	६९९	९५४	१४३५	६०९
जावा को	२५३३	१३०६	१३३९	१०६९	६८०	३७६	३९५	१६
ब्रिटिश मलाया को	१३१३	८०१	६४३	८७५	२९४	१९७	३८४	२५२
मिसर को	२६६६	१७८९	१४३१	१६९६	१३०४	७८२	९०२	७००
दक्षिण अफ़्रीका को	७२२	७०२	६६६	७०४	५४८	५४५	५०८	१२९७

हिन्दुस्तान की यह हालत थी कि वह चाहे कुछ और चीज़ ख़रीदे या न ख़रीदे, ब्रिटिश कपड़ा बहुत काफ़ी मात्रा में ख़रीदता था। १९१४-१५ में हमारे आयात का ३५% कपड़े का था और इसमें से ९७·१ हमने इँगलैंड से ख़रीदा था। कपड़े के लिए हम १८८१ से औसतन ६० करोड़ की रकम इँगलैंड को देते रहे हैं।

किन्तु आजकल मामला बदल गया है। इस दुनिया में इँगलैंड के अनेक प्रतिद्वन्द्वी पैदा हो गये, बहुत-सी शक्तियाँ उभर उठी हैं, जिन्होंने ब्रिटिश व्यापार की जड़ कमज़ोर कर दी, योरप के दूसरे मुल्क जग गये। लोहे और फ़ौलाद के धन्धे में जर्मनी और अमेरिका ने इँगलैंड को नीचा दिखा दिया है। उन्होंने संसार के बाज़ारों में इँगलैंड का कामयाबी के साथ मुक़ाबला किया है। कपड़े के मामले में ख़ास तौर से जापान इँगलैंड का बड़ा भारी प्रतिद्वन्द्वी पैदा हो गया है और हिन्दुस्तान की स्वदेशी मिलों ने भी आश्चर्यजनक तरक़्क़ी करके ब्रिटिश के कपड़े के व्यापार को बहुत नुक़सान पहुँचा दिया है। १९२० में इँगलैंड की २५० कपड़ों की मिलों ने अपने हिस्सेदारों को १९·७ प्रतिशत मुनाफ़ा बाँटा था। १९२१ में मुनाफ़े की मात्रा घटकर ४·३ प्रतिशत रह गई थी और १९३३ में ·७ प्रतिशत थी।

कपड़े की ब्रिटिश मिलों की संख्या व मुनाफ़ा

सन्	मिलों की संख्या	औसत मुनाफ़ा प्रतिशत
१९२०	२५०	१९·७
१९२१	२९३	४·३
१९२४	३१५	१·७
१९३२	२०७	·३४
१९३३	१९४	·७

हाल ही में भारतीय व्यापार * पर हाई कमिश्नर

* Report on Economic and Commercial conditions in India by Sir Thomas. Mr. Ainscough C. B. E. H. M. Senior Trade Commissioner in India & Cylon.



१९३५-३६ साल की एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई। उसमें लिखा है—

"यह जानकर कुछ चिन्ता होती है कि यूनाइटेड किंगडम अर्थात् ब्रिटेन की आयात की मात्रा करोड़ ७३ लाख से घटकर ४२ करोड़ १७ ज और मुक़ाबिले में ४०.३ प्रतिशत से ३८.८ प्रतिशत रह गई है। इसका एकमात्र कारण यह है सूती कपड़े के आयात में २ करोड़ १५ लाख की कमी आ गई है। हिन्दुस्तान की सूत की मिलों की दिन-प्रतिदिन बढ़नेवाली प्रतिद्वन्द्विता, जनता में ख़रीदने की शक्ति का अभाव, आयात गहरा टैक्स और ट्रेफ़िक बोर्ड की सिफ़ारिशों बारे में अनिश्चय—सब कारण ऐसे हैं, जिन्होंने मिलकर ब्रिटेन के कपड़े के आयात को घटाकर ४४ करोड़ गज़ कर दिया, जिससे नीचे ब्रिटिश आयात तक कभी नहीं गया।" (रिपोर्ट का ५ पृष्ठ)

ब्रिटिश व्यापार के पतन की तीन वजहें बताई गई हैं। पहली वजह जापान की लागडाँट, दूसरी हिन्दुस्तान की स्वदेशी मिलें, और तीसरी हिन्दुस्तान जनता की ग़रीबी। यह बात सही है। किन्तु मेरा ख़याल है कि ब्रिटिश व्यापार के पतन का मुख्य कारण पूर्वीय राष्ट्रों की जाग्रति है। पश्चिमीय देशों औद्योगिक प्रभुत्व उसी वक़्त तक क़ायम रह सकता, जब तक पूर्वीय देश स्वयं औद्योगिक नहीं होते। अगर चीन और हिन्दुस्तान जापान की तरह व्यावसायिक देश बन गये, तो पश्चिमी देशों के आर्थिक संगठन में बहुत गड़बड़ी आ सकती है। पश्चिमीय देशों में बहुत-से ऐसे हैं, जिनमें अपनी ज़रूरियात की सारी चीज़ें नहीं पाई जातीं। वहाँ के रहनेवाले पूर्व के देशों में अपने यहाँ बने हुए माल को बेचकर अपनी मानुषी आवश्यकता की चीज़ें, कच्चे माल की चीज़ें ख़रीदते हैं, चूँकि औद्योगिक माल की क़ीमत कच्चे माल के बदले में ज़्यादा मिलती है, ये लोग मालामाल हो गये हैं। जब पूर्व के देश स्वयं औद्योगिक बन गये, उस समय पश्चिमीय यूरपीय देशों का आर्थिक संगठन निस्सन्देह डावाँडोल हो जायगा।

बहरहाल, हिन्दुस्तान में जापानी माल का ज़ोर बहुत ज़्यादा है और यह ज़ोर हर एक क़िस्म की कोशिश करने पर भी नहीं घटा है। आज से २५ वर्ष पहले इस मुल्क में कोई जानता ही नहीं था कि जापानी माल होता कैसा है। हिन्दुस्तान में उस वक़्त अगर विलायती कपड़े की बिक्री ३०००. रुपये की होती थी, तो उसमें जापानी माल केवल एक रुपये का हुआ करता था। आज विलायती कपड़े का ५२.४ प्रतिशत जापानी होता है*।

स्वदेशी मिलों की आशातीत तरक़्क़ी

एक बात हमें भूलना न चाहिए। आँकड़ों के देखने से मालूम होता है कि हम विदेशी कपड़े की ख़रीद शनैः-शनैः कम करते जा रहे हैं। इसका मुख्य कारण जापान नहीं, किन्तु हिन्दुस्तान की स्वदेशी मिलों की आशातीत तरक़्क़ी रही है।

हिन्दुस्तान की मिलें आजकल युद्ध के पहले से दुगने से ज़्यादा माल बना रही हैं। अगर हम जापान के सारे भारतीय व्यापार को जोड़कर एक तरफ़ रक्खें तो उनकी मात्रा उतनी नहीं, जितनी मात्रा उस व्यापार की है, जो हिन्दुस्तानी मिलों ने लंकाशायर से छीन लिया है। इसी बात को हम दूसरी तरह भी कह सकते हैं। युद्ध के पूर्व की मात्रा के हिसाब से ब्रिटेन के व्यापार में जो कुछ कमी आई है, उसके ७६ प्रतिशत की ज़िम्मेदारी हिन्दुस्तान पर है और २० प्रतिशत जापान पर।

कपड़े की स्वदेशी मिलों का इतिहास अगर लिखा जाय, तो बहुत दिलचस्प हो सकता है। किंतु इस जगह पर हम उसका संक्षेप में भी बयान नहीं

जापानी कपड़े की बिक्री

* १९१३-१४	.३	प्रतिशत	भारतीय आयात का
१९२९-३०	२९.६	"	"
१९३३-३४	४४.८	"	"
१९३५-३६	५२.४	"	"



कर सकते। किन्तु इतना बता सकते हैं कि १६००-१ में इस देश में १६१ मिलें थीं और उनमें १५ करोड़ ८० लाख की पूँजी लगी थी। १६१३-१४ में २६४ मिलें थीं, पूँजी १८ करोड़ ६० लाख; १६२५-२६ में ३०३ मिलें, पूँजी ४७ करोड़ ५० लाख; १६३०-३१ में ३१० मिलें, पूँजी ४० करोड़ ६ लाख। १६१३-१४ में १०८ करोड़ गज़ कपड़ा हिन्दुस्तानी मिलों ने बनाया था। १६३३-३४ में २८६ करोड़ गज़, १६३३-३४ में ३३६ करोड़ और १६३५-३६ में ३५७ करोड़ गज़। ऊपर बताई हुई रिपोर्ट में हिन्दुस्तानी मिलों के बारे में यह लिखा है।

हम देखते हैं कि पिछले साल जब ब्रिटेन अमेरिका और योरप की कपड़े की मिलों ने अपनी शक्ति से बहुत ही कम काम किया और इनमें से अधिकांश विना मुनाफ़े के और मामूली ख़र्च निकाल सकने की आमदनी पर चलती रहीं। हिन्दुस्तान की मिलों ने कपड़े की अपनी उपज बढ़ाकर ३ अरब ५७ करोड़ १० लाख गज़ कर दी। इससे ज़्यादा कपड़ा आज तक हिन्दुस्तान में कभी नहीं बना। इसका तात्कालिक परिणाम यह है कि विलायती कपड़े का आयात ६ करोड़ ४६ लाख गज़ हो गया, जिसमें ब्रिटेन का ४ करोड़ ४० लाख ही हिस्सा है। १६१३ में ३ अरब गज़ कपड़ा इँगलैंड से हिन्दुस्तान में आया था और १६२८-२६ में १ अरब ५ करोड़ और ६० लाख गज़। (रिपोर्ट का सफ़ा १५)

अंकों का एक और नक़्शा इसी सम्बन्ध में पेश करता हूँ। पाठक इसे ज़रा ग़ौर से देखें।

हिन्दुस्तान में कपड़े की खपत

सन्	विलायती क० गज़	प्र० मनु० गज़	हाथ का बुना क० गज़	प्र० मनु० गज़	मिलों का क० गज़	प्र० मनु० गज़	कुल करोड़ गज़	प्रति मनुष्य गज़
१६१३-१४	३१३	७.७८	१०७	३.३४	१०८	३.३८	५२८	१६.५०
१६३३-३४	७७	२.१४	१४४	४.००	२८६	८.०३	५१०	१४.१७
१६३४-३५	६७	२.६२	१४६	३.६५	३३४	६.०३	५७७	१५.६०
१६३५-३६	६७	२.६२	१६६	४.४६	३५०	६.४६	६१३	१८.५७

ये अंक बहुत दिलचस्प हैं और इनसे आप बहुत-सी बातें निकाल सकते हैं। १६१३-१४ में प्रति हिन्दुस्तानी साढ़े १६ गज़ कपड़ा इस्तेमाल करता था। १६३३-३४ में सिर्फ़ १४.१७ गज़ इस्तेमाल कर सकता था। १६३५-३६ में आज २४ बरस बाद भी उसकी हालत यही है कि वह वही १६.२७ गज़ कपड़ा इस्तेमाल कर पाता है। माली हालत में कोई फ़र्क़ नहीं आया। १६३३-३४ में उसकी दशा इससे भी ज़्यादा ख़राब थी। केवल १४.१७ गज़ का इस्तेमाल था।

इन आँकड़ों से हम यह भी देख सकते हैं कि जनता की अभिरुचि में ज़रूर फ़र्क़ आया है। विलायती माल लोग नापसंद करते हैं। १६१३-१४ में ३१३ करोड़ गज़ विलायता कपड़ा हिन्दुस्तान में बिकता था। अब ६७ करोड़ गज़ बिकता है। उस वर्ष फ़ी हिन्दुस्तानी ७.७८ गज़ विलायती कपड़ा ख़रीदता था, अब २.६२ गज़ ख़रीदता है। हाथ के बुने कपड़े की खपत बढ़ी है, लेकिन उतनी नहीं, जितनी हिन्दुस्तानी मिलों की। १०८ करोड़ गज़ से बढ़कर स्वदेशी मिल के कपड़ों की बिक्री ३५० करोड़ गज़ हो गई है और पहले अगर एक हिन्दुस्तानी ३.३८ गज़ देशी मिल का कपड़ा इस्तेमाल करता था, तो आज ६.४६ गज़ कर रहा है। स्थानीय उद्योग-धंधों के तेज़ी

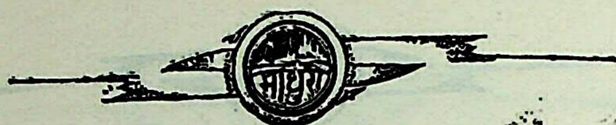
…बढ़ने की वजह से हिंदुस्तान का बाज़ार ब्रिटिश …ात व्यापारी के लिए, जो अपना माल समुद्र- …बेचते हैं, ख़ास तौर से महदूद हो गया है …भविष्य में यह ब्रिटिश व्यापारी के सामने …बड़ी समस्या हो जायगा।

ब्रिटिश व्यापार के भविष्य के बारे में इस …र्ट की राय ब्रिटिश व्यापार के हित में आशा- …क नहीं है। २५ जून, १९३६ को भारत-गवर्न- …ने ब्रिटिश कपड़े की चुंगी घटा दी अर्थात् २५ …शत से २० प्रतिशत कर दी। इसकी वजह से …श माल को और विलायती माल के मुक़ाबले …आसानी और उत्तेजना मिल गई, और ब्रिटिश …की खपत ८०० लाख गज़ के क़रीब बढ़ गई, …न इसके बावजूद रिपोर्ट की राय में इस …ात की उत्तेजना के बाद यह सन्देहजनक …म होता है कि जब तक कि हिन्दुस्तानी ग्राहक …आमदनी में अच्छी ख़ासी ज़्यादती नहीं होती …उसकी वजह से उसकी ख़रीदने की ताक़त …बढ़ती, हम ब्रिटिश कपड़े की खपत ४५०० से …०० लाख गज़ से ज़्यादा क़ायम रख सकें। …दुस्तान की मिलों ने अपनी उपज की मात्रा में, …िटी में और अक़साम में इतनी तेज़ी के साथ …की की है कि कुशल आलोचकों का विचार है …चुंगी को घटाकर केवल २० प्रतिशत कर …से लंकाशायर के माल की खपत हिन्दुस्तान में …बढ़ेगी। लोगों का आम ख़याल है कि चुंगी …केवल १५ प्रतिशत कर दी जाय, तो धुले …माल की छपे और रँगे कपड़ों की, जो काफ़ी …ाद में हिन्दुस्तान में नहीं बनते, तो काफ़ी …ना ब्रिटिश कपड़े को मिल जायगी।

…लंकाशायर के आयात को हिन्दुस्तानी बाज़ार …हिन्दुस्तानी और जापानी माल निर्वासित करता …है, जिसकी वजह यह है कि इसकी क़ीमत …दुस्तान में आने पर हिन्दुस्तानी ग्राहक की ख़री- …की ताक़त से ज़्यादा हो जाती है। अगर ब्रिटिश …की खपत बढ़ सकती है, तो क़ीमत के घटने से या तो चुंगी घटाकर १५ प्रतिशत कर दी जाय या लंकाशायर की मिलों की बनाने के साधनों में कोई ऐसी ज़ोरदार तब्दीली हो कि वे सस्ता माल पैदा करने लगें। या किसानों में धन बढ़े और जनता की आमदनी अच्छी ख़ासी ज़्यादा हो।

ब्रिटिश अर्थशास्त्रज्ञ अब एक बात का बड़े ज़ोरों से अनुभव कर रहे हैं। वह यह कि हिंदुस्तानी जनता अब बहुत ग़रीब हो गई है। उसके पास इतना पैसा ही नहीं कि वह लंकाशायर का कपड़ा ख़रीद सके। हाई कमिश्नर ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है—"पिछले सात वर्ष के ज़माने में किसान ग्राहकों का क़र्ज़, जो उन्होंने बनियों से ले रक्खा था, बहुत हद तक बढ़ गया है। इस क़र्ज़ के काफ़ी हिस्से को अदा किये बिना वह विलायती माल की ख़रीद की मात्रा या उस माल के बढ़िया क़िस्मों की माँग नहीं बढ़ा सकता। विलायती माल को किसान लोग व्यसन की चीज़ समझने लगे हैं। विलायती माल के इस्तेमाल में किफ़ायत करने की आदत इन लोगों में जगह कर चुकी है और स्वदेशी सस्ती चीज़ों का ख़रीदना, और अगर यह न मिलें, तो सस्ते से सस्ता विदेशी माल ले लेना, जिससे सिर्फ़ काम निकल सके, यह आदत अभी कई वर्षों तक जारी रहनेवाली है। इस्तेमाली माल जैसे कपड़ा और धातु की ख़रीद की, जैसी मन्दी के पहले हुआ करती है, सम्भावना कोई नहीं दिखाई देती—उस समय तक, जब तक कि कई वर्षों तक किसान ख़ुशहाल न रहें, और प्रजा की ज़िन्दगी की आवश्यकताओं का पैमाना न बढ़ जाय। जब यह समय आयगा, उस वक़्त शायद मालूम पड़ेगा कि हिन्दुस्तान बाहर से आनेवाली बहुत-सी चीज़ों में स्वावलम्बी हो गया।" (रिपोर्ट का सफ़ा १४)

आख़िरी जुमला ग़ौर करने के क़ाबिल है। हिन्दुस्तान स्वावलम्बी हो जाय, अपनी सारी ज़रूरतें ख़ुद अपने परिश्रम से पैदा कर ले, यह विदेशी व्यापारियों को अच्छा नहीं लगता। किन्तु जैसा हर्बर्ट ने अपनी पुस्तक में लिखा है, "हिन्दुस्तान में याता-



यात और आमदरफ़्त के ज़रिये आर्थिक Unity काफ़ी मात्रा में पाई जाती है। प्राकृतिक सम्पत्ति के मामले में भी इस देश की हालत बहुत अच्छी है। अपने मुख्य व्यवसायों के लिए, जैसे कपड़ा, जूट, लोहा इत्यादि के कच्चे माल के लिए प्रचुर संग्रह मौजूद हैं और बहुत काफ़ी Motive power भी।" हिन्दुस्तान का विस्तृत क्षेत्र और उसकी क़िस्म-क़िस्म की सम्पत्तियाँ उसको इस क़ाबिल बनाती हैं कि वह अपने यहाँ "संतुलित आर्थिक संगठन" (Balanced Economy) कर सके, जैसा अमेरिका ने किया है यानी अपनी आवश्यकता के लिए खाने-पीने की चीज़ों में, खनिज पदार्थों में, और औद्योगिक उपज में स्वावलम्बी हो जाय। इसके पास अपने बने माल की बिक्री के लिए बहुत विशाल बाज़ार भी मौजूद है, लेकिन शर्त यह है कि यहाँ के लोगों की आवश्यकताओं का पैमाना ऊँचा हो।

"व्यापार के आँकड़ों को देखने से मालूम होता है कि बहुत-से ऐसे माल के बारे में, जिसे हिन्दुस्तान पहले विलायत से मँगाता था, वह स्वावलम्बी होता जा रहा है। सबसे ज़ाहिर मिसाल सूती कपड़े की है। लोहे और फ़ौलाद का काम इंजीनियरिंग, सीमेंट, दियासलाई और शक्कर के व्यवसाय भी इसी नतीजे की तरफ़ इशारा करते हैं।

"जापान में सूती कपड़े की उपज ३४ प्रतिशत बढ़ी है, लेकिन हिन्दुस्तान की उपज ४१ प्रतिशत बढ़ी है, जबकि और प्रतिद्वन्द्वी देशों में कमी आई है। हिन्दुस्तान में फ़ौलाद की उपज ७५ प्रतिशत बढ़ी है। इसके मुक़ाबले में जापान में केवल ५५ प्रतिशत इज़ाफ़ा हुआ है। अमेरिका में ५४ प्रतिशत कमी आई है, फ़्रांस में ३० प्रतिशत और ब्रिटेन में २० प्रतिशत। सन् १९३४ में ३,८७,९३२ टन की पूरी खपत में से २,६३,७४६ टन हिन्दुस्तान ने ख़ुद पैदा किया था। १९३३ में हिन्दुस्तान ने इससे अधिक अंश बनाया। यानी ६,८९,५१५ टन में से उसकी अपनी उपज ६,२५,८६० टन की थी। हिन्दुस्तान बहुत जल्द काग़ज़, शीशा, साबुन और लोहे के सरंजाम की अपनी सारी ज़रूरत ख़ुद पूरी कर लेगा। कई नये छोटे-छोटे उद्योग और धन्धे, जो बिलकुल अर्वाचीन क़िस्म के हैं, हाल में पैदा हो गये हैं, जैसे बिजली के लैम्प और बिजली के औज़ारों का बनाना। रबर-टायर, स्टोव, ऐसबैस्ट्स, सीमेंट, बारनिश और इनामल।"

हिन्दुस्तान की नीति इस बारे में स्पष्ट है। हम स्वावलम्बी होना चाहते हैं। आज हिन्दुस्तान में जब इतनी ग़रीबी और बेकारी है, कोई वजह नहीं कि हिन्दुस्तान के आदमी बेकार रक्खे जायँ और अन्य देशों के लोगों को हम, उनका माल ख़रीदकर, रोज़गार दें। भारत-सरकार का फ़र्ज़ है कि वह पहले भारतीय जनता को रोज़गार दे। हम सूत का कपड़ा १६ प्रतिशत विलायत से क्यों ख़रीदें। जब हमारे देश में लोहे और फ़ौलाद की चीज़ें बनाई जा सकती हैं, तो करोड़ों रुपये का फ़ौलाद हिन्दुस्तान में क्यों आवे। शक्कर क्यों आवे? रेशम क्यों आवे? क्या यह बिलकुल उचित नहीं कि हमारे कारख़ानों को उत्तेजना दी जाय।

हिन्दुस्तान की नीति इस बारे में स्पष्ट है। पहले जो राष्ट्र के आर्थिक संगठन में ज़बरदस्त कमी है, उसे रोका जाय। "उद्योग-धंधे क़ायम हों" इसकी ज़ोरदार पुकार होनी चाहिए और जनता के प्रतिनिधियों को, जो चुनकर असेम्बली और कौंसिलों में जाते हैं, मजबूर किया जाय कि वह राज्य की पूरी सहायता भारत को स्वावलम्बी और व्यावसायिक करने में लगा दें। इसके बाद हम Balanced Economy की नीति चलें।

भारत अगर औद्योगिक (Industrialise) हो जाय, तो एक बार फिर यह कुबेर का निवासस्थान बन सकता है। एक अँगरेज़ लेखक के शब्दों में लंकाशायर के कपड़ेवालों की समझ में यह बात ज़रा भी नहीं आती कि सूती माल के बनाने का अब उनका इज़ारा जाता रहा और फिर यह इज़ारा उन्हें कभी नहीं मिलने का। उनको इस बात का यक़ीन ही नहीं आता कि जापानी, हिन्दुस्तानी और चीन की

मिलें उतना ही अच्छा मामूली कपड़ा बना सकती हैं, जितना लंकाशायर की मिलें। और ये लोग यह समझे बैठे हैं कि लंकाशायर में कुछ पुनःसंगठन कर दिया जाय और कुछ फ़िज़ूल ख़र्चें कम कर दिये जायँ, तो इनका पुराना खोया हुआ व्यापार इनके हाथ में फिर आ जायगा। ये लोग अपने दिल में कभी यह सोचने की कोशिश नहीं करते कि हिंदुस्तान और चीन ऐसे मुल्क हैं, जहाँ रुई पैदा होती है, सूती कपड़े पहने जाते हैं और सूती कपड़े उस समय बनकर तैयार होते थे, जब हमारे पूर्वज जंगली जानवरों की खालें पहनकर इधर-उधर डोलते रहते थे। चीन और हिन्दुस्तान-जैसे मुल्क क्यों अपने यहाँ की रुई कपड़ा बुनने के लिए समुद्रों के पार भेजें और अमेरिकन रुई का बना हुआ कपड़ा योरप से क्यों ख़रीदें ?



बहन का प्यार ❀

श्रीभगवन्तशरण जौहरी

(१)

"आत्मत्याग का दूसरा नाम ही तो स्नेह है" वह बोली। सुरेश कुछ आगे बढ़कर कहने लगे—"यह संसार प्रेम-जैसी सात्विक और शुद्धतम वस्तु के लिए उपयुक्त स्थल ही नहीं है।"

"दद्दा! कभी-कभी तो तुम जाने क्या ऊटपटाँग कह जाते हो। अपने सौरभ से जगत् को मस्त कर देनेवाले पुष्प क्या कण्टकाकीर्ण झाड़ी में जन्म धारण नहीं करते?"

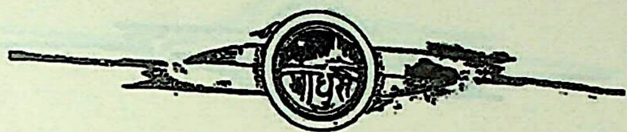
"यहाँ तो तुम्हारी ही हार हुई" अब शरद से भी न रहा गया। "मेरी सम्मति में तो वासना एवं आसक्ति ही अब स्नेह का चोला पहन उस धर्मध्वजी को बदनाम कर रहे हैं। वासना के वशीकरण से पराभूत प्राणी वास्तविकता को समझने में सर्वथा असमर्थ हैं।"

शरद कहने लगा—"यह बहुत अंशों में ठीक भी है, परन्तु स्नेह अन्तःसलिला गङ्गा की भाँति संसार में स्थित है। उसका एकदम लोप ही नहीं हो गया, परन्तु हाँ, उसके देखने के लिए आँखें चाहिए।"

"भैया! इस नीरस जगतीतल पर स्नेह के अतिरिक्त रह ही क्या जाता है, जिससे प्राणी यत्किञ्चित् सुख की भी आशा कर सके। मेरा हृदय तो बार-बार डपटकर कह उठता है कि प्रेम ही विश्व में ईश्वर का प्रत्यक्ष रूप है, वही ममता की पराकाष्ठा है, त्याग का सर्वोच्च शिखर है, कर्त्तव्य का ज्वलन्त उदाहरण है। दाम्पत्य-प्रणय तो कई पशुओं तक में मनुष्यों की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। फिर प्रेमरहित जीवन भी कोई जीवन है। वास्तव में प्रेम और जीवन ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं" उसका मुख तमतमा उठा था। "कम अवस्थावाली अल्हड़ उमा की गम्भीर विवेचना विचारणीय तो अवश्य है"। सुरेश सकुचाते हुए बोले—"हमारी उमा दीदी क्या कुछ कम हैं, हम-तुम-जैसे किताबी ज्ञान पर इनके तर्क का अवलम्ब नहीं रहता। इनका मस्तिष्क सदैव हृदय से निसर्गतः प्रस्फुटित होने-वाली भावनाओं से परिपूर्ण रहता है। जाने क्यों मुझे तो इनके विचारों में वास्तविकता एवं स्वाभा-विकता का गहरा पुट दृष्टिगोचर होता है" शरद ने सदैव की भाँति उमा का पक्ष ग्रहण करते हुए कहा।

"तुम भी लगे फाँकने, अभी इसके दूध के दाँत गिरे चार दिन तो हुए नहीं और आज यह बड़ी विदुषी एवं विचारवान् बन बैठी। हमारे साथ बैठने-उठने से चार हरफ़ बोल लेती है, अन्यथा गम्भीर तत्त्वों के विवेचन पर भला हम ग्रेजुएटों के समक्ष इसकी सम्मति का मूल्य ही क्या?" सुरेश

❀ श्रीमध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौर की कहानी-प्रतियोगिता में पुरस्कृत।



कहा—"दद्दा ! प्रतिभा अवस्था से बँधी नहीं न वह कालेज की पक्की दीवारों ही में जकड़ी है। दूसरे स्नेह-जैसे सरस विषय पर कोमल के भोले अनुभव अधिक मूल्यवान् हो सकते । हम अभागों ने उच्च शिक्षालयों की छात्राओं वासनाप्रधान पाखण्ड के सिवा देखा ही क्या । यद्यपि आज प्रेम की शुभ्र छटा के दर्शन में किसी एक को हो पाते हैं, किन्तु उसकी न्यूनता, असामर्थ्य एवं गुणविहीनता का प्रमाण पि नहीं। इससे तो उसका मूल्य और अधिक बढ़ जाता है। कहते हैं, रेडियम संसार-भर में ही कम है। क्या उसका मूल्य अपेक्षाकृत से अधिक नहीं है ?" शरद का मुखचन्द्र दीप्यमान हो उठा। "जैसा तुम जानो" कहकर उठ खड़े हुए।

"थोड़ा जल दो उमा !" कहते हुए शरद ने भी का अनुकरण किया।

"तुम लोगों ने बातों ही बातों में आधी रात दी। अस्तु, लो इन पकौड़ियों को ज़रा चखो" कहती हुई उसने एक तश्तरी आगे रख दी एक गिलास में ठण्डा जल भी दूसरी ओर दिया।

"अब चलें" कहते हुए शरद चल दिये।

(२)

सुरेश तेईस वर्ष के स्वस्थ एवं प्रतिभाशाली थे। उन्होंने मैट्रिक तक अध्ययन कर पाया सत्रहवें वर्ष को जब वे पार कर ही रहे थे, उनके पूज्य पिताजी उनके साथ ही एक पञ्चम-वर्षीय बालिका को अनाथ बनाकर चल बसे थे। तभी से उन्होंने चुंगी के दफ़्तर में नौकरी कर ली थी। वे साहित्य और कला के उत्कट प्रेमी थे। प्रायः पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेख निकलते रहते थे।

उमा के सौन्दर्य में ग्यारहवाँ वसन्त अपना प्रभाव दिखला रहा था। रूप, गुण, शील, मृदुता आदि में तो वह बेजोड़ थी ही, किन्तु उसकी बुद्धि की विचक्षणता दर्शकों के हृदय में बड़ा कौतूहल उत्पन्न करती थी। प्रफुल्लप्राय कलिका की भाँति उसका अंग-अंग सुन्दर, सुकुमार, सुगठित एवं लावण्य की साकार मूर्ति था। बोलती तो मुँह से फूल झड़ते थे। मुख पर सदा मुस्कराहट खेला करती थी। कभी उदासी की क्षणिक रेखा भी किसी ने उसके चेहरे पर नहीं देखी थी।

शरद एक उच्च कुल का होनहार युवक था। वह बाल्यावस्था से ही माता-पिता के पुनीत वात्सल्य का अनुभव नहीं कर पाया था। उसे स्मृति तक नहीं थी कि वे किन शब्दों में उसकी मनुहारें करते होंगे। वह अपने जीजा के यहाँ रहकर जैसे-तैसे अपने जीवन की घड़ियों को गिना करता था। उसकी बहन, उसको बिना दर्शन दिये ही सिधार चुकी थी। वह भटके हुए श्वास की भाँति अशान्ति एवं उद्भ्रान्ति से पराभूत था। उसने विद्या का क्रम जारी रक्खा था। ज्यों-त्यों कर अठारहवें वर्ष में वह मैट्रिक पास कर पाया था। वह प्रारम्भ से ही अँगरेज़ी में बहुत ही कच्चा था। सुरेश इँगलिश में सदैव सर्वप्रथम रहते आये थे। जब शरद मिडिल की परीक्षा देने चला, उसके पूर्व ही अपनी अयोग्यता और निर्धनता से उदासीन हो समय पाकर उसने सुरेश के पाँव पकड़ लिये। उसकी दीनता से उनका हृदय तत्काल ही पिघल उठा। वे बिलबिला उठे। अश्रुसिक्त नयनों से उसे देखते हुए आश्वासन देकर कहने लगे—"भाई ! मैं तुम्हारा सेवक हूँ। मनुष्य का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वह अपने भाइयों की सेवा के लिए सदैव प्रस्तुत रहे। मुझे बहुत प्रसन्नता होगी, यदि मैं तुम्हारी कुछ भी सहायता कर सकूँ।" इस प्रकार वह सुरेश के घर पर, इनके पिता की मृत्यु के बहुत पूर्व से, आने-जाने लगा था। उसने आजीवन पीड़ा और असन्तोष की अग्नि में अपना अंग-प्रत्यंग झुलसा लिया था। सोलहवें वर्ष तक अध्ययन आदि के उत्साह में वह अपनी पीड़ा को कभी विचार-



चेत्र में नहीं लाया, परन्तु बढ़ती हुई अवस्था ने उसके उत्तरदायित्व की ओर संकेत किया।

(३)

पवन से उद्भ्रांत तरंगों के विलास के समान यह जीवन दो दिन का है। मनुष्य भावी सुख की कल्पना से विजित होकर एक-एक पग बड़े उल्लास से आगे रखता है। आगामी क्षण कौन-सा नवीन अभिनय हमारे समक्ष उपस्थित करेगा, इसका हमें तनिक भी ज्ञान नहीं। भावी की इस अनभिज्ञता को ईश्वर का परम अनुग्रह ही समझना चाहिए, अन्यथा हम कभी के कर्त्तव्यच्युत होकर अकर्मण्य बन बैठते। सुरेश भी संसार की क्रीड़ास्थली में बालक की भाँति खेल रहे थे। उन्हें क्या ज्ञात था कि उनका सुख-स्वप्न इतनी जल्दी समाप्त हो जायगा। वे अस्पताल के पलँग पर पड़े थे। उमा पंखा झल रही थी। कल जब वे आफ़िस से लौट रहे थे, एक मोड़ पर उनकी साइकिल अचानक मोटर से भिड़ गई और उन्हें बहुत अधिक चोट आई थी। साइकिल चकनाचूर हो गई थी। दो-तीन पत्थर उनकी जाँघ में भर गये थे। वे घटनास्थल पर मूर्च्छित हो गये थे।

उमा भोजन बनाकर दद्दा की प्रतीक्षा करती हुई बार-बार खिड़की में से उझक-उझककर देख रही थी। परन्तु सूर्यास्त हो जाने पर भी उन्हें न लौटते देख उसके मन में अनेक आशंकाएँ होने लगीं।

यह स्वाभाविक रूप से देखा जाता है कि जिस पर हमारी जितनी अधिक ममता होती है, उसके विषय में हम विपत्ति और दुर्घटना की आशंका उतनी ही जल्दी कर लेते हैं। मनुष्य के कोमल हृदय में एक अज्ञात और अननुभूत भय उत्पन्न हो उठता है कि दैव उसकी इष्ट वस्तु को उससे दूर करने में सदैव प्रयत्नशील रहता है। जाने किस समय कौन-सी विपत्ति का पहाड़ टूट पड़े? ममत्व में अपनी वस्तु की रक्षा की भावना, चाहे वह किसी भी रूप किंवा अवस्था में क्यों न रहे, सबसे प्रबल रहती है। जैसे बालक अपने सस्ते और भोंड़े खिलौने से ही प्रसन्न रहता है। उसे हमेशा यह भय बना रहता है कि उसे कोई छीन न ले अथवा फोड़ न डाले। उसी प्रकार मनुष्य का हृदय अपनी प्रिय वस्तु की रक्षा में सदैव भयभीत रहता है।

आठ बजते-बजते शरद ने घर में प्रवेश किया। उसके मुख पर व्याकुलता, भय और दुःख के चिन्ह स्पष्ट लक्षित हो रहे थे। "भय्या! दद्दा का आज अभी तक पता नहीं। तुम इतने घबराये हुए क्यों हो?" वह एक ही साँस में कह गई।

"दी.......दी.......द.......द्दा......." कहते न कहते उसकी जिह्वा लड़खड़ाई और वह दूसरे ही क्षण मूर्च्छित हो गया। उमा इससे तो अपने रहे-सहे होश-हवास भी खो बैठी। उसके नन्हें-से हृदय पर मानो सैकड़ों पर्वत टूट पड़े हों। शरद की डबडबाई आँखें उसे किसी भावी विपत्ति की सूचना दे चुकी थीं। इस घटना ने उस आशंका को और भी सुदृढ़ कर दिया। कुछ क्षणों तक तो वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ बनी बैठी रही, परन्तु शीघ्र ही पानी के छींटे देकर पंखा झलने लगी। कुछ समय बीतने के पश्चात् शरद ने आँखें खोल दीं और तत्काल बोल उठे—"साइकिल के भिड़ जाने से दद्दा को अधिक चोट लगी है। उन्हें अस्पताल में छोड़ आया हूँ।"

दूसरे ही क्षण वे पागलों की-सी हालत में अस्पताल के अँधेरे बीहड़ मार्ग में थे।

(४)

"शरद बाबू! ज़रा इधर आइए" डाक्टर ने चलते हुए कहा। "आज्ञा" कहते हुए वे पीछे मुड़े।

"मेरे प्राणों के मूल्य पर भी इन्हें बचाइए। डाक्टर साहब, मैं जन्म भर आपका उपकार न भूलूँगा।" उसकी गिड़गिड़ाहटभरी आँखों में दो मोती झलक आये थे। "तुम आदमी है। घबराने से कुछ नहीं होता। करेज (साहस) लाओ। देखो केस सीरियस (मामला सख़्त) है। बहुत गहरा घाव है। मैं पूरी ट्राई (कोशिश) करता हूँ।



तु होप (आशा) बहुत कम है। मेरी ड्यूटी र्तव्य) कहने का था। आगे तुम जानो" फटा- करते हुए दूसरे ही क्षण डाक्टर साहब अन्धकार विलीन हो गये। इधर शरद किंकर्तव्यविमूढ़ अति में कुछ देर तक सिसकता रहा, परन्तु शीघ्र उमा ने उसे आवाज़ दी। वह आँसू पोंछते कमरे में प्रविष्ट हुआ।

अन्धकारमयी अर्द्धरात्रि की सुनसान घड़ियों प्रकृति की भयानकता का संदेश साँय-साँय द्वारा रहा था। कभी-कभी किसी रोगी की कराह शब्द मौन भंग कर देता था। "ज़रा....इधर...." ते हुए सुरेश ने उठने का निष्फल प्रयत्न था। शरद शीघ्र ही आने को कहकर कलकत्ता प्रख्यात डाक्टर बोस को तार देने चल दिये। ड़े समय पश्चात् लौटकर "बोलो दद्दा" कहकर सुक नेत्रों से सुरेश की ओर देखने लगे। सुरेश हाथ के इशारे से दोनों को आसपास बैठने को ा और फिर लड़खड़ाती ज़बान से बोले— "या श र द मैं जा र हा हूँ, मु झे प्र स न्नता कि मैं उ मा को दृ ढ़ त र सं र क्ष ण में सौं पे र हा हूँ। पा नी।" उमा पानी लाने को गई। वे कहते गये—"दे खो श र द, उ मा ता जी को मा र्ग में भ ट क ती हु ई मि ली । व ह मे री स हो द रा न हीं, प रन्तु मैं ने का पा ल न ब ड़ी हा र्दि क ता और सं ल हो क र कि या है। इ स गु प्त बा त को को ई हीं जा न ता। उ स ने भी मु झे क म सु ख हीं दि या। मैं तु म दो नों के शु द्ध स्ने ह से अ प रि चि त न हीं। तु म इ स का उ प अ व र से वि वा ह क र दे ना और जी व न ऐ से ही नि भा ना। मैं च ला श्री ह रि न्ति।" दूसरे ही क्षण उमा ने जल लेकर त किया। उसके मुख पर भय-मिश्रित वेदना भाव स्पष्ट झलक रहे थे। वह जल आगे बढ़ावे, के पूर्व ही सुरेश को एक हिचकी आई और कुछ शान्त था। उमा और शरद की मूर्च्छा तब टूटी, जब पड़ोसी इकट्ठे होकर श्मशान-यात्रा की तैयारी कर रहे थे।

(५)

मनुष्य किसी दुःख की कल्पना से बहुत अधिक भयभीत होता है, परन्तु उसके आ पड़ने पर ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं, त्यों-त्यों पीड़ा कुछ धुँधली होती जाती है। संसार का क्रम ही यही है। प्राणी किसी संघातक वेदना से मृत्यु के आभास का शीघ्र ही अनुमान कर लेता है, परन्तु सब कुछ घटित हो जाना सरलता से सम्भव नहीं।

उमा और शरद भी सुरेश की मृत्यु पर यही समझते थे कि वे कदापि न जी सकेंगे, परन्तु दो-तीन दिन की रुक-रुककर आनेवाली मूर्छा और निरन्तर रुदन के पश्चात् आज वे चाँदनी पर बैठे बातें कर रहे थे—"ईश्वर की यही इच्छा थी बहन!" वह बोला।

"भय्या! जैसे वह रक्खे, उसी में सुख की कल्पना करनी चाहिए, परन्तु ईश्वर सर्वथा अन्यायी नहीं है। चाहे वह बिजली ही क्यों न गिरावे, परन्तु उस विपत्ति के सह सकने के हेतु कुछ न कुछ साधन अवश्य जुटा ही देता है। आज तुम्हीं न होते तो मैं दर-दर की भिखारिणी हो जाती" उसके नेत्र भर आये थे।

"मैं किस योग्य हूँ, परन्तु फिर भी तुम्हें दुखी कदापि न देख सकूँगा। मैंने घर आदि छोड़कर तुम्हारे साथ रहने का निश्चय कर लिया है।"

उमा का कण्ठ रुँध गया था।

किसी ने उमा को सम्बोधन करते हुए आवाज़ दी। दूसरे ही क्षण उसके मामा दीवानचन्द सपरिवार सामने खड़े थे।

"अरे बेटी! तुझ पर दुख का पहाड़ टूट पड़ा" वे बोल उठे।

बालक भी बड़े बूढ़ों को रोते देखकर रो पड़े।

तेरहवीं आदि से निवृत्त होकर दीवानचन्दजी ने उमा से बिस्तर और सामान आदि बाँधने के लिए कहा। पहले तो वह कुछ झिझकी, परन्तु शीघ्र



ही अपने को सँभालते हुए बोली—"मैं इस स्थान को छोड़ कहीं न जाऊँगी"। बहुत समझाने-बुझाने के बाद भी कोई परिणाम न निकलने पर उनकी आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ निकल रही थीं। "तेरी इच्छा हो सो कर, कौन हमारे वंश की जाई है" उन्होंने एक क़दम आगे बढ़कर कहा। उसके चित्त में खलबली हो उठी, किन्तु बहुत विचार करने पर भी वह कुछ न समझ सकी।

कुछ समय पश्चात् वे इक्का ठहरा रहे थे।

रात्रि होते न होते शरद ने घर में प्रवेश किया और सिर नीचा करके कहने लगा—

"बहन! संसार बड़ा जटिल है। हम भोले बालक इसे समझ नहीं पाये"। "हो, मुझे इससे क्या" उसकी आँखों में आत्मविश्वास चमक उठा। कुछ देर तक इधर-उधर देखने के पश्चात् वह फूट-फूटकर रोने लगा। उमा ने सहानुभूति और सान्त्वना से उसके आँसू पोंछे और बोली—"आख़िर बात क्या है?"

"इसी मास तुम्हारा विवाह करना ही होगा" वह रुँधे कंठ से बोला। "तुम्हारा चित्त तो ठिकाने है, अभी सुरेश दद्दा को मरे एक मास भी नहीं हुआ। यह हो ही कैसे सकता है। दूसरे मैं निश्चित रूप से कहे देती हूँ, मुझे पहले विवाह करना ही नहीं है। कुछ भी कारण हो। तुम इतने घबराये क्यों हो?" वह संशयभरे नेत्रों से देखती हुई बोली—"मुझसे नहीं कहा जाता।"

"मैं प्रार्थना करती हूँ, तुम्हें कहना ही होगा।" उसकी उत्सुकता और बढ़ गई—"लोगों के मुँह पर हज़ार बातें हैं। ओह संसार!"

"बस इसी से तुम्हारी यह दशा? मुझे संसार से कोई प्रयोजन नहीं। सब सत्यपथगामी मनुष्यों को भक्षण कर जाने के लिए ही हिन्दू-समाज पैदा हुआ है। मुझे ऐसे पतित समाज से कोई भय नहीं है, परन्तु तुम्हारी लोकलज्जा का प्रश्न अवश्य है। मुझे विश्वास है, तुम कायरता से काम न लोगे।" उसकी मुखमुद्रा गम्भीर हो उठी। "अगले साल सही, तुम्हारा विवाह तो करना ही है" वह हँसता हुआ बोला।

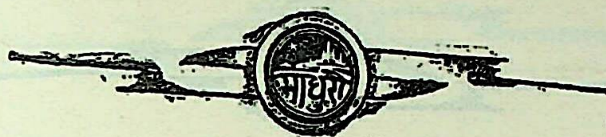
"नहीं, यह कदापि न होगा। मेरी अभिलाषाओं पर तुषार न फेंको भय्या! पहले मैं अपनी भाभी को आँगन में छम-छम करते हुए देख लूँ, मेरे दद्दा उनसे कैसे घुलघुलकर फुस-फुस बातें करते हैं, यह सुन लूँ, एक अभूतपूर्व आनन्द का अनुभव कर लूँ। पहले मैं तुम्हारा विवाह करूँगी।" उसके मुख पर सरस मुस्कराहट खेल उठी।

"मैं बड़ा हूँ, दूसरे मनुष्य हूँ, तीसरे प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि आजन्म स्वयं को विवाह के बन्धन से दूर ही रक्खूँगा। क्या यह मैंने तुमसे नहीं कहा था।" वह बोला।

"भय्या की बातें! मन भावे मूड़ हिलावे। सभी पहले ऐसा कहते हैं, परन्तु आजन्म कौन क्वाँरा रहा? आख़िर इसका कारण?"

"मेरी भोली जिजिया की समझ में इतना भी नहीं आता। क्या दुनिया में आज सब तुझ-जैसी हैं? अप-टू-डेट लड़की हमारी इस दुनिया को चौपट कर देगी। वह द्वेष और ईर्षा की साक्षात् प्रतिमूर्ति होगी। मेरे हृदय में तुम्हारे लिए जो कुछ स्थान है, उसे वह कैसे देख सकेगी? प्रतिदिन द्वन्द्व का साम्राज्य होगा। मुझे थोड़ा भी कर्तव्यपरायण देखकर वह उबल उठेगी, सारे संसार में कोलाहल मचा, नित्य नया अभिनय उपस्थित करेगी। वह शुद्ध भावों का मूल्य न आँक सकेगी। मेरा जीवन भयानक हो जावेगा। मुझे ऐसी सम्पदा न चाहिए।" वह उत्तेजित हो उठा था।

"इन उपन्यासी बातों को समाप्त करो। संसार में एक से एक बढ़कर देवियाँ पड़ी हैं। अभी तुमने देखा ही क्या है? कदाचित् तुम्हारे कथन में कुछ सत्य भी हो। मेरी बात न मानो, परन्तु मुझ पर भी दबाव मत डालो। मैं तुम्हारे पाँवों पड़ती हूँ। हा-हा खाती हूँ। मेरे इस दिव्य जीवन की दुर्दशा न करो। मैं तुम्हारे विना कैसे रह सकूँगी? दूसरे तुम्हारी ख़बर भी कौन लेगा? हे ईश्वर! मेरी



…आ करो। संसार की कोई शक्ति मुझे तुमसे अलग नहीं कर सकती।" उसका सारा अंचल आँसुओं से भीग गया था। शरद हतबुद्धि होकर खड़ा था।

"बहन! ममत्व और स्नेह के लिए इतने ऊँचे उठकर सांसारिक उपेक्षा का पात्र कदापि न बनना चाहिए। तुम अभी से इतनी क्यों घबराती हो। मैं सदैव तुमसे मिलता-जुलता रहूँगा। अगले वर्ष जीजा-जीजी के गले में एक साथ हार पहनाऊँगा।" यह कहता हुआ वह बाहर चल दिया।

(६)

कर्त्तव्य और स्नेह दोनों का जीवन-मंच पर अपना-अपना महत्त्व है। क्या स्नेह के मार्ग में कर्त्तव्य को सम्पूर्णतः धोकर बहा देना पड़ता है? अथवा कर्त्तव्य के मार्ग में क्या स्नेह सदैव बाधक सिद्ध होता है? क्या कर्त्तव्य का प्रेम से भी अधिक महत्त्वपूर्ण होना सम्भव है? कुछ भी हो, ये दोनों पदार्थ आपस में उतने विरोधी नहीं, जितना कि हमने समझ रक्खा है, वरन् एक दूसरे का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध दिखता है। हम लोगों ने मोह को प्रेम के नाम से बदनाम कर रक्खा है। इसी की सब अड़चनें हैं। स्नेह के "तलवार की धार" वाले पथ पर क्या पग-पग पर ज्वलन्त कर्तव्य की वेदी नहीं? उस मार्ग के राही को क्या क्षण-क्षण का लोहा नहीं मानना पड़ता? ज़रा डिगा कि गिरा और गिरने पर चकनाचूर तो है ही। गम्भीर विचार करने पर समझ में आता है कि कर्त्तव्य में भी किञ्चित् स्नेह की मात्रा का आभास रहता ही है। यह दूसरी बात है कि वह अत्यन्त ही न्यून क्यों न हो। जिसके लिए हमारे हृदय में तनिक भी स्थान न हो अथवा जिसकी दशा से हमारा मर्मस्थल तनिक भी न सिहर उठे, हम उसके लिए ऐसा कर्त्तव्य की दुहाई देते हुए नहीं दौड़ पड़ते। कर्त्तव्य-क्षेत्र में, लौकिक दिखलावे के लिए, स्नेह को धुँधला कर देने से वह नष्ट नहीं हो जाता, प्रत्युत आग में पड़े कुन्दन की भाँति वह सौगुना चमक उठता है। स्नेह किस उच्चता और पवित्रता के शिखर पर पहुँच चुका है, इसके निर्णय के हेतु भी कर्त्तव्य का ही आश्रय लेना पड़ता है, यद्यपि उसकी आवश्यकता कदापि नहीं पड़ती। अगर वियोग में स्नेह मंद होते-होते बुझने लगे, तो वह प्रलयंकर मोह है, जगमगाता प्रेम नहीं। सच्चे प्रेम का रूप तो विरह ही में निखरता है। वस्तु के अभाव ही में उसके मूल्य का अन्दाज़ होता है। नित्य संसर्ग में आनेवाली वस्तुएँ अमूल्य भी हों, तो मनुष्य उनकी क़द्र नहीं कर पाता।

आज उमा की बारात लौट रही थी। प्रातःकाल ही से शरद ने सब प्रबन्ध अन्य परिचित सज्जनों को सौंप दिया था। रात से उसके आँसू नहीं रुके थे। जितना चुप होना चाहता, उतना अधिक रोना आता था। हृदय में सैकड़ों सर्पों के दंशन की-सी पीड़ा हो रही थी। देखनेवाले शुभ अवसर पर क्या कहेंगे, इससे बिलकुल एकान्त में वह कुण्डी चढ़ाकर असहाय पशु की भाँति बिलख रहा था। अन्त में बिदा का समय भी आ ही गया। उसे बुलवाया गया। उसने बहुत चाहा कि वह नहीं मिले। उमा को उसकी इस दशा से कितना दुःख होगा, जब कि उसकी निजी पीड़ा ही उसे महीनों से घुला रही थी। परन्तु वह आगे आया। यद्यपि उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि उमा के सामने कदापि आँसू न बहावेगा, परन्तु दोनों के चिरपरिचित, भोले और विकार-शून्य हृदय उमड़ पड़े। वे गुँथ गये। उमा का आर्तनाद दर्शकों एवं बारातियों के कलेजों को चीरता हुआ धँसा जा रहा था। उसे जैसे उन्माद हो गया हो। शरीर, मन, आत्मा किसी की कोई सुध नहीं रही थी।

शरद का हृदय फटा चाहता था। वह बड़ी कठिनता से अपने को सँभाले हुए था। कर्त्तव्य और स्नेह का द्वन्द्व उसके सिर में चक्कर काट रहा था। उसके मुख पर सैकड़ों भाव आते और मिट जाते। उसे ऐसा अनुभव होने लगा कि जैसे कोई उसके प्राण, शरीर को निर्दयतापूर्वक चीरकर लिये



जा रहा हो, परन्तु कर्त्तव्य करना ही होगा। उसकी आत्मा दृढ़ सन्देश लिये आ पहुँची। समय आ गया है, चलो। मोटर के पहिये उसके मस्तिष्क की भाँति घूम रहे थे। अन्त में वह ज़नाने डब्बे में मिलने गया। देखा, उमा मृतप्राय की भाँति फ़र्श पर पड़ी बिलख रही थी। बड़ी कठिनाई से सँभालकर ऊपर बिठलाया, चरण छूकर बड़े धीमे स्वर में बोले—"बहन! मुझे क्षमा करना।"

"भय्या! तुमने मेरे साथ अन्याय किया। मैंने तुम्हारी आज्ञा के बन्धन में अपने-आपको दग्ध कर दिया। तुम मुझे पहचान न सके। कदाचित् यह मेरा तुम्हारा अन्तिम मिलन है। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकूँगी। तुम बड़े कच्चे हृदय के हो, तुम्हारे दुःख का अनुमान करके मेरा कलेजा मुँह को आता है। तुम बड़े लापरवाह हो। तुम्हारी ख़बर कौन लेगा?" वह आँसू पोंछती हुई कहती गई—"मैं तुम्हें जानती हूँ, परन्तु देखो, तुम्हें अपनी बहन की जान की क़सम है, अच्छे रहना। देखो, कहीं मैं यह न सुनूँ कि मेरा भय्या ऐसा-वैसा है। मेरी यह अन्तिम बात अवश्य मानना।"

गाड़ी चल दी थी, वह कूद पड़ा। दौड़ता हुआ, खिड़की में से झाँकते हुए जीजाजी से कहता गया—"मैंने बड़े दुःख उठाकर अपनी बहन को पाला है। उसे दुखी मत होने देना, वह बड़े सरल स्वभाव और उच्च हृदय की है। यदि आप उसे पहचान सको, तो अपने-आपको कृतार्थ कर लोगे। मैं भीख माँगता हूँ, उससे कुछ मत कहना।" वह सिसक रहा था। गाड़ी प्लेटफ़ार्म छोड़ चुकी थी। जीजाजी ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया।

एंजिन का धुआँ उमा की हृदयाग्नि की स्मृति दिला रहा था।

(७)

मनुष्य बड़ा स्वार्थपरायण है। वह सदैव सुख की ओर ही मुड़ता है। आनन्द का अनुभव करते-करते उसे प्रमाद हो उठता है। बिलकुल दुःखदग्ध होने पर यत्किञ्चित् सुख की, तत्पश्चात् उससे कुछ अधिक और फिर कुछ और, इस प्रकार उसकी पिपासा कभी शान्त नहीं होती। यह क्रम दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ता ही जाता है। यह ठीक ऐसा ही है, जैसे किसी विरह-विधुरा रमणी को सर्व-प्रथम क्षणिक दर्शनमात्र की अभिलाषा हो। प्रेमी जितना दूर हो, मिलन में जितनी बाधाएँ हों, उतनी ही लालसा बढ़ती जा रही हो। दर्शन के पश्चात् वार्तालाप की, उसके बाद स्पर्श की, आलिंगन की और फिर धीरे-धीरे उसकी सब वृत्तियों को अपने में केन्द्रीभूत कर लेने की इच्छा प्रबल हो उठती है। विवाह आदि बन्धनों द्वारा वह अपनी इसी वृत्ति की सम्पूर्णतः रक्षा का प्रयत्न करती है। वह अपने सर्वस्व को किसी से बात करते तक नहीं देख सकती, उसका किसी ओर दृष्टिपात तक नहीं सह सकती। उसे किसी के प्रति साधारण कर्त्तव्यपरायण भी देखकर वह झुलस जाती है और सर्पिणी के सदृश फुफकारने लगती है। वह सब क्या इसलिए कि वह उसे इतना प्रेम करती है, जो संसार की सीमा से बहुत परे है अथवा इसलिए कि वही उसके वास्ते सर्वस्व न्योछावर करने को प्रस्तुत है, उसकी वृत्तियाँ तनिक भी इधर-उधर नहीं हैं और वह केवल अपने त्याग और कर्त्तव्यपरायणता के पुरस्कारस्वरूप ही वह यह सब चाहती है? प्रत्युत वह सब अकाण्ड ताण्डव इसलिए करती है कि उसे जैसे-तैसे अपने स्नेही का सर्वाधिकार प्राप्त हो गया है। उस अभि-मान में मत्त होकर वह उसी पर शासन करना चाहती है। वह चाहती है कि उसकी सब वृत्तियाँ उसकी ओर ही हों, चाहे वह उस योग्य हो या नहीं, उसकी सब दृष्टियाँ उसके लिए ही हों, उसकी सम्पूर्ण कृतियों का एकमात्र लक्ष्य वही हो। उसका यह-वह सब कुछ वही हो। उसके इन नादिरशाही नियमों में उसका प्रिय यदि तनिक भी विचलित हो जाय, तो वह आँखें निकालने लगती है, घायल बाघिनी की भाँति उबल पड़ती है। वह इस बात को सर्वथा भूल ही जाती है कि एक दिन वह उसे देखने भर के लिए



वर्षों निष्फल तड़पती थी। ऐसी भयावह परिस्थिति में उसकी उद्दाम प्रवृत्ति से विवश होकर संयोगवश यदि वह निर्वासित कर दी जावे, तो उसके ऊपर जो दुःख का पहाड़ टूट पड़ता है, उसकी कल्पना भुक्तभोगी ही कर सकते हैं। इस अवस्था में कोमल-हृदय प्रायः उन्माद अथवा मृत्यु द्वारा ही शान्ति-लाभ करते हैं। ठीक इसी प्रकार अहर्निश अखण्ड सुख के भोक्ता को यदि तनिक भी पीड़ा के दर्शन हों, तो वह आठ-आठ आँसू रोने लगता है। फिर यदि उसका सब कुछ ही छिन जाय, तब तो पूछिए ही मत। जिसने आजन्म वेदना की भभकती शिखाओं से क्रीड़ा की हो, उसे मधुपान कराते-कराते, थोड़ा-थोड़ा कम ज़्यादा देते-देते, तमाचा रसीद कर प्याला ही छीन लिया जाय, तब तो उसका दुःख भयानकता की परा काष्ठा को लाँघ जाता है। साक्षात् ईश्वर भी उसकी कितनी रक्षा करने में समर्थ हो सकता है, यह नहीं कहा जा सकता।

शरद आजन्म गृहदाह में धधकता रहा था। उसे साधारण सहानुभूति और दो मीठे शब्दों में स्वर्ग दीखता था। संसार-सुलभ मधुर वार्तालाप को वह हसरत की निगाह से देखा करता था। सुरेश की मैत्री ने उसके जीवन को यथार्थता प्रदान की थी। उसके कोई भाई न था, इससे वह इस व्यक्ति से बहुत ही घुल-मिल गया था। इसे तो मानो कोई साकार देवता मिला। जैसे कोई सेवक, स्वामी के विदेश से लौटने पर धन-दौलत, काग़ज़-पत्र, छोटी-मोटी सभी चीज़ें उसे सँभला देता है, उसी प्रकार उसने अपना सर्वस्व शरद को निस्संकोच सौंप दिया। उन दोनों पर संसार को ईर्षा होने लगी थी। ऐसे हो गये थे, जैसे एक मा के दो जुड़वाँ पुत्र हों। सदैव एक दूसरे के सुख के लिए वे अपना सब कुछ बलिदान करते आये। विशेषकर सुरेश ने अनुज की भाँति शरद की तन, मन, धन से रक्षा की। दुर्दैव से भी इन दोनों का सुख नहीं देखा गया। सुरेश कालकवलित हो गये। शरद के छिन्न-भिन्न हृदय पर गहरा धक्का लगा। वह महीनों बिस्तर न छोड़ सका। वह ज्यों-त्यों कर इसलिए ही धैर्य धारण कर उठा कि उस पर उमा की रक्षा व भविष्य का पूरा भार था।

उमा के हृदय में पहले ही दिन से, शरद के प्रति, भावनाओं का अन्धड़ बह रहा था। उसके नन्हे-से हृदय में यह भाव सहसा जाग्रत् हो जाया करता था कि वह गोद की बच्ची की भाँति शरद के गले से झूम जावे और खिन्न से मचलते स्वर में साफ़ कह दे कि "भय्या! तुम न हमें पैसे देते हो, न किताबें ला देते हो। उस दिन कहा था कि रजनी के लाला कितनी अच्छी धोती १।=)॥ ही में लाये हैं, ऐसी हमें ला दो, वह भी नहीं लाये, हम तुम्हारी बहन नहीं बनतीं ऊं....ऊं....ऊं" परन्तु उसके मुखमण्डल पर संकोच की रेखा खिंच जाती थी। सोचती, सुरेश दद्दा क्या कहेंगे। ये लोग कहेंगे कि बड़ी छः महीने की बनती है। शरद भी चाहता था कि अपनी लजीली बहन के लिए ज़मीन-आसमान एक कर दे, परन्तु कुछ न कर पाता था। वह मन में कितने आकाश-पाताल एक नहीं करता रहता था, परन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी वह उसके योग्य कुछ नहीं जुटा पाता था। मन ही मन वह अपनी असमर्थता पर बहुत दुखी था, परन्तु क्या करे? एक बार वह सचमुच ही बहुत मचल गई, बोली, मिठाई के लिए पैसे लूँगी। जो कुछ चार-छः पैसे निकले, शरद ने सकुचाते हुए आगे रख दिये। उसका हृदय प्रसन्नता से नाच उठा, मानो वह आकाश में उड़ी जा रही हो। उसे ऐसा भान हुआ, जैसे उसके भय्या ने कुबेर के कोष पर आक्रमण करके उसकी सब संपत्ति उसके चरणों पर लाकर डाल दी हो और आँखें नीची करके दूसरी आज्ञा के लिए खड़ा हो। उसका अंग-अंग पुलक रहा था।

शरद भी फूला न समाता था। उसका कलेजा ख़ुशी से बल्लियों उछल रहा था। उसे पृथ्वी और



आकाश के बीच कुछ अन्तर ही न दिखता था। इसके पूर्व अधिकार की इतनी गहरी छाप कदाचित् उसके जीवन में किसी ही ने लगाई हो। उस रात वह बिस्तरे पर उछलता रहा। उसे सदैव यह अनुभव होता, जैसे उसकी नसों में उमा की मा द्वारा पिलाया हुआ दूध हिलोरें लेता हो। सहोदरता का स्वाभाविक आकर्षण उसे बारम्बार खींचा करता था। इन दोनों की सरल भावनाएँ सदैव मूक रहीं। उनके मुँह था, पर वाणी नहीं।

सुरेश के पास मृत्यु के समय कोई विशेष संपत्ति तो थी नहीं, फिर भी उन्हें शरद पर पूरा विश्वास था। उसे भी अपने कर्तव्य का पूरा ध्यान था। जीजा को छोड़, पढ़ने को धता बता, वह उद्योग की खोज में तल्लीन हो गया। कुछ मास सर्वत्र जूतियाँ चटकाने पर भी उसे कोई न पछता था। वह रात को घंटों आँसुओं का अर्घ्य उपस्थित कर परमेश्वर से प्रार्थना किया करता कि उसे कम से कम उमा के निर्वाहमात्र के लिए चार पैसे दे। उसने मैट्रिक के पश्चात् कुछ ही दिन और पढ़कर कालेज को तिलांजलि दे दी थी। अन्त में उसे १५) मासिक की मास्टरी मिली। अब तक भी उसने उधार-पैंचा कर बहन ो तनिक भी कष्ट न होने दिया था। एक दिन तो, ऋण की खोज में वह रात्रि के ग्यारह बजे तक निष्फल कई बाज़ारों में चक्कर काटता रहा। अन्त में एक दयार्द्र दूकानदार ने गिड़गिड़ाहट से पसीज उसे कुछ पैसे दिये। उसने मानसिक यातनाएँ बहुत सही थीं, परन्तु इतना शारीरिक दुःख कभी नहीं उठाया था। किन्तु उमा के आगे उसे अपना दुःख कुछ न जँचता था। वह अपने कर्तव्य पर दृढ़ था, विपत्तियाँ दृढ़तर बनाती जा रही थीं। वह अपने कपड़े तक इसी लिए नहीं धुलवाता था कि इन पैसों से उमा के लिए कुछ कर सकूँगा। उसे पग-पग पर कर्तव्य का ध्यान था। असीम स्नेह, ममत्व और आशीर्वाद से भरे उमा बहन द्वारा बाँधी हुई राखियों के धागे उसे किसी विशेष कर्तव्य की स्मृति दिलाते हुए एक महत्त्वपूर्ण प्रेरणा करते रहते। कुछ समय बीतने पर उसे २-१ ट्यूशनें भी मिल गईं। दो-दो, तीन-तीन घण्टे पढ़ाने पर बड़ी कठिनता से चार-चार रुपये ला पाता था। उमा भी बड़े चाव से उसके लिए भोजनादि बनाती। दोनों बड़े सुख से रहते थे, परन्तु विधि से यह भी न देखा गया। शरद के जीजा और उमा के मामा दोनों ने एक आग-सी फैला दी थी कि इन दोनों के मन में न-जाने क्या है। सारा समाज, बड़े-छोटे, बालिकाओं से लेकर वयस्क स्त्रियों तक के मुँह पर यही बात थी। वह जिधर निकल जाता, उस पर उँगलियाँ उठती थीं। जहाँ देखो, वहाँ उसके उदाहरण दिये जाते थे। उसे सदैव यही भय रहता था कि इन बातों से उमा कुछ न सोचे और वह सकुचाकर विचार करती कि भय्या के सिर पर क्या बीत रही है। उन दोनों के मन में एक ही बात चलती रही। वे दोनों जन्म भर साथ-साथ रहना चाहते थे, विना एक दूसरे को देखे एक क्षण उन्हें भारी ज्ञात होता था; परन्तु समाज का धधकता अग्निकुण्ड इतना उदार नहीं। एक बार तो उसके एक मित्र ने यहाँ तक कह डाला कि "भाई शरद! ऐसा ही है, तो उससे विवाह ही क्यों नहीं कर लेते।" उसने सहमकर कहा कि "क्या भाई-बहन साथ-साथ नहीं रह सकते?" "परन्तु वह तुम्हारी बहन हो तब न" उसने उत्तर दिया। उसने सबसे मिलना-बैठना भी बन्द कर दिया। इस बात से वह महीनों रोता रहा कि पापी संसार के भ्रमपूर्ण प्रस्ताव को सुनने तक का कुछ बड़ा प्रायश्चित्त उसे करना ही पड़ेगा। वहाँ का कोई व्यक्ति उमा से इसी कारण विवाह करने को राज़ी न था। कहीं आसपास की बात आती, तो वे भड़का देते। न शरद के पास कुछ धन ही था। वह बड़ी दुविधा में पड़ा। अन्त में उसे बहुत दूर के क़स्बे के एक सज्जन से, जिनकी एक-दो वर्ष की कन्या थी, दूसरा विवाह करने को विवश होना पड़ा। कौन अनुमान कर सकेगा कि दो सौ रुपये के ऋण



लिए उसे कितने दयानिधि होने का दावा रखने-
े सज्जनों के चरणों पर टोपी रखनी पड़ी थी।
यही था कि जीजा सरल, स्वस्थ और साधारण
ित थे। धार्मिक श्रद्धा उनकी विशेषता थी
साधारण खेती-बाड़ी उनकी पैतृक आय का
न। साथ ही वर्षों भटकने पर बड़ी सिफ़ारशों
ाद वे २०) मासिक पर एक दफ़्तर में मुंशी
गये थे।

(८)

उमा को विदा कर शरद सिसकता हुआ इक्के तक
कठिनता से आकर उसमें धम्म से गिर पड़ा।
का सिर चक्कर खा रहा था। आँखें भारी हो
थीं। आज जैसा दुखद दिन उसके जीवन
हीं देखा था। भाग्य ने उसे अपरिमित सुख
ते उससे एक साथ ही सब कुछ छीन लिया
अब उसकी आँखों में अश्रु-बिन्दु नहीं थे।
चाहता था कि रोकर जी की कसक कुछ कम
ले, परन्तु जैसे उसकी अन्तर्ज्वाला आँसुओं को
ा गई हो। उसे चारों तरफ़ घोर अन्धकार
ाई पड़ रहा था। सिनेमा के फ़िल्म की भाँति
ों स्मृतियाँ उसके सिर में चक्कर काटने लगीं।
पागल हो रहा था। इक्केवाला तो उसकी इस
त पर मुस्करा उठा। जैसे-तैसे कुछ चित्त
करने का प्रयत्न कर उसने घर में पैर रक्खा।
े मन में विचारों का ताँता लगा हुआ था।
मैंने उमा के साथ अन्याय किया? क्या मेरा
कर्त्तव्य था? मैं समाज से डर ही गया न?
मैं स्वयं भी शान्तिलाभ कर सकूँगा? आदि-
ि बातों से वह बहुत ही आहत था। आख़िरी
ी तक पहुँचा भी न था कि चक्कर आ गया,
पत्थर पर जा गिरा। उसका सिर फट गया
बहुत गहरी चोट थी। दूसरे क्षण वह
ेत पड़ा था। बहुत देर तक इसी अवस्था में पड़ा
सिर से ख़ून की धाराएँ बहती जाती थीं।
में आने पर फिर स्मृतियों का चक्र चला।

वह गई। मैं चरण छूने को आगे बढ़ा। उसने कुछ
कहा था। कहती थी, यह अन्तिम मिलन है, क्यों?
मैंने तो उससे प्रति मास मिलने को कहा था, फिर
यह क्यों कहा? वह अधिक न सोच सका। सभी
लड़कियाँ ऐसी बातें करती हैं, पुनः पतिदेव के प्रेम
की भिखारिणी हो बेचारे भाइयों का नाम तक
नहीं लेतीं, परन्तु मेरी दीदी उमा उन बालिकाओं
में से नहीं। तब क्या वह यह दुःख न सह सकेगी?
ससुराल में भी न-जाने क्या-क्या दुःख उठाने पड़ेंगे?
उसे फिर मूर्च्छा आ गई। स्वप्न में उसे उमा का
चेहरा दिखलाई दिया। उस मुख पर वेदना, करुणा,
प्रेम, विवशता, व्याकुलता, उदासीनता, नैराश्य
आदि के कई गहरे भाव अंकित थे। कुछ कहना
चाहती थी, परन्तु मुँह से बोल न निकलता था।
वह बड़े ज़ोर से चौंका, मूर्च्छा टूटी। वे ही दीवारें
थीं और वही घर, अत्यन्त कठिनता से दोनों
दीवारों का सहारा लेकर ऊपर गया और ज़मीन
पर ही पड़ रहा। आठ दिन तक वहाँ से हिल भी
न सका। अन्न का एक दाना तक मुँह में नहीं
गया। सारा शरीर ख़ून में लथपथ था। मक्खियाँ
भिनभिना रही थीं। हज़ारों विचार आते और
एक दूसरे से टकराकर विलीन हो जाते।
अन्त में रविवार को एक मित्र मिलने आये। वे
यह दशा देखकर रोने लगे और डाक्टर आदि
लाकर सब प्रबन्ध किया। इसी प्रकार चार मास
बीत गये, परन्तु सर्वथा खाट न छूटी। बड़ी कठिनता
से चार क़दम चल लेता था। वह उमा के पास
कोई २०-२५ पत्र भेज चुका था, पर उत्तर नहीं
आया। हाथ काँपते थे, सिर चकराता था, परन्तु
दो हरफ़ लिख ही देता था। जीजाजी का एक पत्र
अवश्य आया था; लिखा था, वह साधारण अस्वस्थ
थी। इन चार महीनों में वह बहुत घुल गया। सारी
हड्डियाँ निकल आई थीं। मुँह सूख गया था।
प्रत्येक क्षण उसे उमा की याद व्याकुल बना देती।
घर खाने को दौड़ता था। इधर एक दिन वह पूरी
शक्ति लगाकर दरवाज़े तक आया था कि चपरासी



ने आवाज़ दी—"शरद बाबू ! तार ले जाइए" । वह सिहर उठा । काँपती हुई उँगलियों से उसे खोला । लिखा था, "उमा बीमार है, जल्दी आओ" । घर को उसी अवस्था में छोड़, इक्का कर वह स्टेशन पहुँचा । एक-एक क्षण उसे भारी हो रहा था । आख़िर गाड़ी आई । "वह घण्टों खड़ी क्यों है, जल्दी क्यों नहीं छूटती ?" उसे झुँझलाहट आ रही थी । अन्त में गाड़ी चली । स्टेशनों पर गाड़ी रुकते देख वह क्रोध से दाँत पीसने लगता । चिन्ता, दुःख, व्याकुलता और अपनी कर्तव्यहीनता पर वह रह-रहकर तड़पता था । दूसरे दिन सुबह वह उस स्टेशन पर पहुँचा, जहाँ से उस स्थान को बैलगाड़ी जाती थी । जल्दी से एक गाड़ी किराये पर कर वह उसमें बैठ गया । वह प्रत्येक क्षण उतावला हो रहा था । उसमें इतनी शक्ति न-जाने किसने फूँक दी थी । "भय्या ! मेरी बहन बीमार है, जल्दी बढ़ा लो" वह धीमे स्वर में बोला । गाड़ीवान की गुनगुनाहट से उसकी पीड़ा और बढ़ गई । २-३ घण्टे में गाड़ी पहुँची । वह भागता हुआ घर में पहुँचा । छोटे देवर को देख बोला—"भाभी कहाँ है" । "ऊपल" उसने तोतली भाषा में कहा । दूसरे क्षण तो वह उमा की खाट के पास खड़ा था । देखा, उसका शरीर चारपाई से बिलकुल चिपक गया था । आँखें धँस गई थीं । वह निर्मल चन्द्र की भाँति झकझकाता हुआ लावण्य जाने कहाँ विलीन हो गया था । मूर्च्छितावस्था में भी उसके मुख पर एक अपूर्व तेज झलक रहा था ! "शरद ! भय्या ! तुम कैसे होओगे" वह बड़बड़ाती जा रही थी । सास ने औषध दी कि "इसे पिला दो । कुलच्छिनी ने आज तक दवा भी नहीं खाई, जैसे यहाँ हत्या देने ही आई हो, जब से आई है, रोती ही रहती है । मैं तो इस मुँहजली से तंग आ गई । कौन जानता था कि इस सुनहले वदन में यह विष छिपा होगा" वह कहती गई । वह हतबुद्धि-सा दवा लेकर आगे बढ़ा । उसे चेतना आई । उसकी आँखें बुझते दीपक की अन्तिम शिखा की भाँति चमक उठीं "भ य्या, तु म आ ग ये" टूटी वाणी में वह बोली । "यह दवा खा लो" वह काँपता हुआ बोला । "अ ब इ स की ज़ रू र त न हीं । श्री ह रि ने मे री सु न ली, भ य्या तु म ने मु झे दू र क र दि या, प र अ न्त में तु म से मि ल तो ली हे भ ग व न्" करवट लेने के निष्फल प्रयत्न में उसके कन्धे पर का जम्पर ज़रा हट गया । उसने देखा कि वहाँ एक चक्र बना है । वह चीख उठा—"ओह मेरी सहोदरे ! मेरा सदा का अनुभव झूठा सिद्ध नहीं हुआ । यही चक्र मेरे कन्धे पर भी है । मा कहती थीं कि तुम प्रयाग के कुम्भ में ३½ वर्ष की आयु में खो गई थीं । अन्त तक कुछ पता न लगा था । सुरेश ने भी मरते समय ऐसा ही कुछ कहा था । मैंने तुम्हारे साथ सचमुच अन्याय किया, हा पापी शरद" उसका शरीर लड़खड़ाने लगा । वह चार मास में ज़रा भी न चल पाया था । आज भागा आया था, पसीने-पसीने हो रहा था । इधर सिर का घाव भी पुनः बह निकला था । उमा की इस दशा का स्वयं को कारण मान वह अपने आपको कोसता जाता था । उसे पहचान भी पाया तो अन्त समय पर । इतना आनन्द, दुःख, आत्मग्लानि और गहरा आघात वह एक साथ नहीं सह सका ।

जीजा ने सजल नेत्रों से देखा कि दूसरे ही क्षण वह कटे वृक्ष की भाँति प्राणविहीन हो उमा के शव पर पड़ा था ।

कुसुम की कामना

श्री० श्रीकान्त द्विवेदी "मधुप" साहित्याचार्य

(१)

कर रही थीं चन्द्रकिरणें
दूध से अभिषेक मेरा ;
गा रही थीं मधुप-बालाएँ
खड़ी यशगान मेरा ।

(२)

मलय का प्यारा समीरण
हाथ में निज चँवर लेकर ;
था डुलाता रात-दिन हिय में
नया उल्लास लेकर ।

(३)

स्वर्ग की सुषमा निरन्तर
घूमती थी पलक भीतर ;
प्रेमगंगा की लहरियाँ
नाचती थीं हृदय भीतर ।

(४)

झूमता था, नाचता था,
खिलखिलाता था सदा मैं ;
दुःख की काली लकीरों को
नहीं था देखता मैं ।

(५)

हा अचानक तोड़ तू
घर-बार मेरा सब छुड़ाया ;
जो विहँसता था सदा
आकर उसे तूने रुलाया ।

(६)

हर्ष के संसार में दुखस्रोत
को तूने बहाया ;
आज तो बाज़ार में आ
पाप का सौदा कमाया ।

(७)

स्वर्ण की दुनिया हमारी
खूब लूटी, लूट फिर तू ;
धमनियों में दौड़ता जो
खून उसका घूँट पी तू ।

(८)

है यही अन्तिम विनय मेरी
ज़रा सुन कान देकर ;
नोच पंखड़ियाँ हमारी
देह की बोटी बनाकर ।

(९)

वीर मतवाले गये जिस राह
कर में प्राण लेकर ;
डाल देना राह में मुझको
उन्हीं का नाम लेकर ।

कुछ सम्राटों के राज्याभिषेक

पं० लक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज

सम्राटों के राज्याभिषेक की प्रणाली भी उतनी ही प्राचीन है, जितना कि साम्राज्यों की स्थापना और उनके विकास का इतिहास। प्रायः समस्त देशों और समस्त कालों में सम्राट् के राज्याभिषेक के अवसर को एक असाधारण घटना समझा गया है। इस अवसर पर विविध प्रकार की ऐसी क्रियाएँ भी की जाती हैं, जिनका महत्त्व राजनीतिक होने की अपेक्षा धार्मिक अधिक होता है। भारतवर्ष के सम्राटों के राज्याभिषेक के विषय में तो यह बात प्रसिद्ध ही है, पाश्चात्य देशों में भी इस प्रथा को पर्याप्त धार्मिक महत्त्व दिया जाता है। पाठकों ने अभी कुछ दिन पूर्व सम्राट् जार्ज (छठे) और सम्राज्ञी एलिज़बेथ के राज्याभिषेक के समाचार पढ़े होंगे, जिनसे यह बात भली भाँति विदित होती है। पूर्वीय तथा पाश्चात्य देशों की इस प्रथा में शारीरिक अन्तर हो सकता है, पर इसमें आत्मिक भेद नहीं—प्रथा की भिन्न-भिन्न क्रियाओं के रूप में अन्तर पाया जाता है, पर दोनों के मन्तव्यों में एकता अवश्य पाई जाती है। विगत १२ मई के राज्याभिषेक ने अनेकों की स्मृति के आगे भूतकाल का दृश्य अंकित कर दिया होगा—इस अवसर पर होनेवाले प्राचीन-कालीन उत्सवों का स्मरण हो आना स्वाभाविक है ही। हम भी अपने इस लेख में कुछ प्रसिद्ध पूर्वीय और पाश्चात्य—भारतीय तथा आंग्ल—सम्राटों के राज्याभिषेकों का वर्णन करेंगे।

आइए पाठक, लीजिए, यह अयोध्या नगरी है—मर्य्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र के पिता महाराजाधिराज दशरथजी की राजधानी। नगर की शोभा अद्वितीय तथा अकथनीय है। इसे निहारकर सचमुच स्वर्गाधिपति देवेन्द्र इन्द्र की अलकापुरी भी लजाती है। नगर में गली-गली और हाट-हाट में चँदोवे बने हुए हैं, पताका लहरा रही हैं और चारों ओर कटहर, आम, सुपारी और रम्भा के खंभे लगे हुए हैं। द्वार-द्वार पर बन्दनवार टँगे हुए नगर की शोभा बढ़ा रहे हैं। आबाल-वृद्ध-वनिता सबके हृदय में अपार हर्ष समाया हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी कार्य में संलग्न दीखता है। नगर में राजमन्दिरों में गहगहे बाजे बज रहे हैं—चन्द्रवदनी नारियाँ मंगलाचार और बधाइयाँ गा रही हैं। जगह-जगह मणियों के चौक पूरे गये हैं। यह सब किस कारण हो रहा है? यह सब भगवान् रामचन्द्र के राजतिलक की तैयारी है।

उन दिनों के राज्याभिषेक की प्रथा के अवसर पर लोग युवराज के कल्याण के लिए बलि-प्रदान करते थे। उन दिनों—



"बलिभिः साध्यते मुक्तिर्बलिभिः साध्यते सुखम् ।
बलिदानेन सततं जयेच्छत्रून्नृपान्नृपः"

वाले सिद्धान्त में लोगों का विश्वास अधिक था। सबसे पूर्व युवराज रामचन्द्रजी को उनके गुरु वशिष्ठजी अवसरोचित शिक्षा देने के लिए उनके पास गये। रघुनाथजी ने जब गुरु का आगमन सुना, तो द्वारे आकर उनके चरणों में मत्था नवाया और आदरपूर्वक अर्घ्य देकर उनको महल में लिवा लाये। फिर सोलह प्रकार से गुरु का पूजन किया। यह सोलह प्रकार का पूजन भी आदर्श होता था—

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।
मधुपर्कस्तथाम्लानि वसनाभरणानि च ।
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं वंदनं तथा ॥

× × ×

आज जिस नगर में ऐसी तैयारियाँ हो रही थीं, किसे ज्ञात था कि कल ही वहाँ शोक का अपार पहाड़ टूट पड़ेगा—नगरवासियों का सारा हर्ष, उनका सारा उल्लास—विषाद, वेदना तथा भीषण चीत्कार के रूप में परिणत हो जायगा। राजतिलक की सारी सामग्री रक्खी ही रह जायगी। कैकेयी की कुटिल करतूत के कारण और ही घटना घटित हो जायगी। दशरथजी का मरण होगा और राम-वन-गमन। दूर क्यों जाइए। भूतपूर्व सम्राट् एडवर्ड अष्टम (वर्तमान 'ड्यूक आफ़ विन्डसर' और सम्राट् जार्ज के ज्येष्ठ भ्राता) का राज्याभिषेक भी तो इसी वर्ष मई को इसी स्थान और इसी समय पर होना निश्चित हुआ था। कौन कह सकता था कि एक वर्ष से कम समय के ही अन्दर कुछ से कुछ हो जायगा—सम्राट् को ड्यूक और ड्यूक को सम्राट् की पदवी धारण करनी पड़ेगी। अतः जहाँ तक राज्याभिषेक के इस पहलू का सम्बन्ध है, वहाँ तक सम्राट् एडवर्ड और भगवान् रामचन्द्र दोनों समान ही ठहरते हैं। आगे भी जैसे श्रीरामचन्द्रजी को अपनी विमाता के कारण अनेक यातनाएँ भुगतनी पड़ीं, उसी प्रकार सम्राट् एडवर्ड अष्टम को भी जो कुछ करना पड़ा है, वह अपनी प्रेयसी के कारण। अस्तु।

भक्तवत्सल भगवान् रामचन्द्र के राज्याभिषेक के लिए जिस उत्सव की तैयारी चौदह वर्ष पहले की गई थी, वह सफल हो सका चौदह वर्ष के पश्चात्—इतने लम्बे काल की यातनाओं के उपरांत। यह पहला राज्याभिषेक था, जो एक से अधिक बातों के लिए भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है। जब चौदह वर्ष बाद यह अवसर आया था, उस समय का वर्णन गोसाईं तुलसीदासजी ने कितने सुन्दर ढंग से इन चार पंक्तियों में किया है—

नभ दुंदुभी बाजहिं विपुल गन्धर्व किन्नर गावहीं ;
नाचहिं अपसरावृन्द परमानंद सुर मुनि पावहीं।
भरतादि अनुज विभीषणांगद हनुमदादि समेत जे ;
गहे चामर व्यजन धनु असि चर्म शक्ति विराजते।

माघ का महीना था। इन्द्रप्रस्थ की शोभामयी नगरी घोड़ों की टाप और रथों की झनझनाहट से प्रतिध्वनित हो उठी। भारतवर्ष के समस्त नरेश महाराज युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए पांडवों की राजधानी में एकत्रत हो रहे थे। सबसे प्रथम कौरवों के पिता नेत्रहीन महाराज धृतराष्ट्र अपने सौ पुत्रों समेत पधारे। उनके बाद अनेकानेक राजेमहाराजे निकट तथा दूर के देश-प्रदेशों से आये—पांचाल-नरेश द्रुपद, चेदि के भूपाल शिशुपाल, मत्स्याधिपति विराट् ये सब लोग इन्द्रप्रस्थ में आकर इकट्ठे हो गये। कुछ समय बाद पांडवों के सहायक भगवान् श्रीकृष्णजी भी द्वारका नगरी से पधारे और उनके पश्चात् सिन्धुराज जयद्रथ भी आया और गांधार से सुबाल।

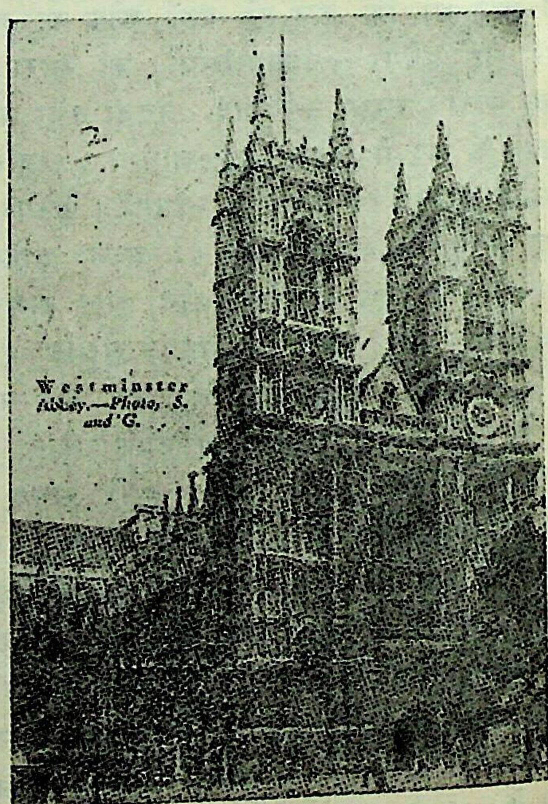
राजसूय-यज्ञ की तैयारी प्रारम्भ हुई। दुर्योधन का हृदय ईर्ष्या की अग्नि से दग्ध हो रहा था। वह अपने पिता की इस बात से सहमत न होता था कि पांडवों को राज्य का कोई भी अंश दिया जाय। उसे पांडवों की ओर से बड़ा भय था और पिछले कुछ दिनों की पांडवों की सफलता और उनके शौर्य को देखकर उसके भय में और वृद्धि हो चली थी। वह एक विषैले भुजंग के

समान था, पर अपने वैर को शान्त करने के लिए उसे कोई मार्ग दिखाई न देता था। इस अवसर से उसने लाभ उठाना चाहा। इसके लिए उसने चेदिराज शिशुपाल को अपने हाथों की कठपुतली बनाया। शिशुपाल का कृष्ण से पुराना वैमनस्य चला आता था—पहली कसक थी। विदर्भकुमारी रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से होनेवाला था, पर रुक्मिणी कृष्ण की ओर अधिक आकर्षित हो चुकी थी। शिशुपाल के उद्योग करने पर भी वह रुक्मिणी को अपने अधिकार में न कर सका।

निदान यज्ञ का दिन आया। नेत्रों को चकाचौंध करनेवाले वस्त्राभूषणों से सुसज्जित सब आमंत्रित राजवर्ग राजभवन की ओर चले। जो भवन यज्ञ के लिए तैयार कराया गया था, उसकी शोभा अपूर्व थी। एक ओर को राजसिंहासन तैयार किया गया था। ऊपर स्वर्णरंजित छत्र शोभायमान था और पीछे दासियाँ चँवर हाथ में लिये खड़ी थीं। राजसिंहासन से नीचे की ओर यज्ञ की वेदी की रचना की गई थी, जिसके चारों ओर श्वेतवस्त्रधारी पुरोहित बैठे हुए थे—भीष्म, कृप, द्रोण और नारद। वेदी से आगे की ओर एक अर्द्धवृत्ताकर में सब राजा विराजमान थे। ऊपर रानियाँ बैठी हुई थीं। उनके वस्त्रों और आभूषणों की चमक से सारा स्थान प्रकाशमय हो रहा था।

हिन्दू-शास्त्रों के नियमानुसार इस प्रकार की सभा में यजमान की ओर से सर्वमान्य अतिथि का अर्घ्य द्वारा सम्मान किया जाता था। सिंहासन पर अपना स्थान ले चुकने पर महाराज युधिष्ठिर भीष्म पितामह की ओर चले और उनके कान में पूछा कि अर्घ्य किसको प्रदान किया जाय। भीष्म ने कृष्ण का नाम बता दिया। आज्ञा पाते ही सहदेव उठा और भगवान् कृष्ण के गले में माला डाल दी। तत्काल ही शिशुपाल की क्रोधाग्नि भड़क उठी। आवेश में आकर जो उसके जी में आता गया, वह कहता गया। जब कृष्ण की सहनशीलता जवाब दे चुकी और शिशुपाल की ढिठाई औचित्य की सीमा का पूर्णतया उल्लंघन कर चुकी, तब भगवान् कृष्ण ने अपना सुदर्शन उठाया। देखते-देखते शिशुपाल का सिर भूमि पर आ गिरा। इस घटना के बाद राजसूय की सारी क्रिया निर्विघ्न समाप्त हुई। आये हुए राजा लोग एक-एक करके अपनी-अपनी राजधानियों को वापस चले गये।

भारतीय सम्राटों के राज्याभिषेकोत्सवों का दिग्दर्शन करा चुकने पर अब हम कुछ ब्रिटिश सम्राटों के राज्याभिषेक के उत्सवों का वर्णन करेंगे। चार्ल्स प्रथम इँगलैंड का एक ऐसा राजा हो गया है, जो अपने व्यक्तिगत आकर्षण के लिए प्रसिद्ध है। किंतु यह सब होने पर भी बेचारे को पार्लियामेंट के हाथों प्राणदंड भुगतना पड़ा था। उसका राज्याभिषेक भी वेस्टमिन्स्टर-अबे में हुआ था और



वेस्टमिन्स्टर-अबे का गिरजाघर

(यहाँ बहुत प्राचीन काल से इँगलैंड के सम्राटों का राज्याभिषेक होता आया है)



...त वर्ष बाद पुनः होलीरुड (Holyrood) में ...सका राजतिलक किया गया था। कहते हैं कि ...सके राज्याभिषेक के अवसर पर अनेक ऐसे बुरे ...कुन हुए थे, जिनसे उसके भविष्य की कल्पना की ...जा सकती थी। एक पहली अड़चन तो यही उप-...स्थित हो गई थी कि लंदन में भारी प्लेग की ...हामारी चल रही थी, अतः इस अवसर पर ...निकाले जानेवाला जलूस बन्द करना पड़ा। उसकी ...रानी कैथोलिक सम्प्रदाय की अनुयायिनी थी, अतः ...उसने चार्ल्स के साथ राज्याभिषेक के उत्सव में भाग ...लेने से साफ़ इनकार कर दिया था। राजा को राज्या-...भिषेक के अवसर पर पहनने के लिए पोशाक पसंद ...करने में बड़ा समय व्यतीत करना पड़ा था। अब ...क यह नियम था कि राजा इस अवसर पर गहरे ...लाल रंग के सुनहरे वस्त्र धारण किया करता था, ...न्तु पादरी लाड के कहने से चार्ल्स ने श्वेत रंग ...के वस्त्रों को धारण करना स्वीकार कर लिया। ...जब यह बात और लोगों को ज्ञात हुई, तो उन्होंने ...उससे प्रार्थना की कि श्वेत रंग के कपड़े न पहने ...जायँ; क्योंकि यह रंग शोक तथा क्लेश का प्रदर्शक ...है। चार्ल्स मान गया, पर गहरे लाल रंग के वस्त्र ...लन्दन भर में तलाश करने पर भी न मिले। ...व्यापारियों के यहाँ दूकानों में सब कपड़ा बिक ...गया था। निराश होकर बेचारे को सफ़ेद पोशाक ...ही पहननी पड़ी। एक बात और भी हुई। राज-...दंड के ऊपर जो कपोत बना हुआ था, उसका बायाँ ...पंख ही अकारण टूट कर गिर पड़ा। कहते हैं कि यह ...गृहयुद्ध का अपशकुन था। राजा ने दरबार के सुनार ...को बुलाकर उसे टूटे हुए पंख को जोड़ने की आज्ञा ...दी। समय अत्यन्त थोड़ा था। सुनार ने इतने ...थोड़े समय में उस कार्य के करने में अपनी अस-...मर्थता प्रकट की, तो चार्ल्स ने कहा—"या तो तुम ...इसे तुरन्त कर दो अन्यथा किसी दूसरे को तुम्हारा ...काम तमाम करना पड़ेगा।" आगे चलकर जब ...राज्याभिषेक हो रहा था, उस समय एक हलका-सा ...भूचाल आया, जिसके कारण कुछ स्त्रियाँ बेहोश हो गईं और कुछ काल तक बड़ी सनसनी फैली रही।

सन् १६६१ में चार्ल्स का पुनः राज्याभिषेक हुआ था। समस्त स्काटलैंड में इस अवसर पर अपार हर्ष मनाया गया था। जब चार्ल्स पर्थ-नामक स्थान से लौटकर एडिनबरा को आ रहा था, तो उसे एक बड़ी ही हृदयद्रावक घटना देखनी पड़ी। फ़ोर्थ नदी में एक नौका उसके ३५ राजभक्त साथियों को लिये हुए जा रही थी। नौका डूब गई और उनमें से ३३ व्यक्तियों ने डूबकर अपने जीवन की लीला समाप्त की। इसका चार्ल्स को बड़ा दुःख हुआ और वह बोला—"आह! मेरे राज्याभिषेक का कैसा दुःखदायी अन्त हुआ।"

सन् १६०२ के जून मास में लन्दन में हर्ष तथा आनन्द का अपार सागर उमड़ रहा था। जगह जगह चौराहों पर, गलियों में और यहाँ तक कि निजू घरों में भी पताकाएँ लगी हुई थीं। सब होटल उन लोगों से खचाखच भरे हुए थे, जो कि सम्राट् एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के उत्सव में सम्मिलित होने को दूर-दूर से आये थे। ६४ वर्ष की लम्बी प्रतीक्षा के बाद फिर वेस्टमिन्स्टर-अबे में एक सम्राट् का राज्याभिषेक होने की तैयारी की जा रही थी। राज्याभिषेक के समय से ठीक दो दिन पहले लोगों ने सम्राट् की बीमारी का समाचार सुना, जिसके कारण उत्सव को हटाया जाना पड़ा। एक तो वैसे ही इतनी लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ी थी, फिर इस आकस्मिक बीमारी के कारण जब उत्सव के हटाये जाने की सूचना लोगों को हुई, तो उन्हें बड़ा खेद हुआ। स्वयं सम्राट् को भी इसका बड़ा दुःख रहा। इँगलैंड के १०० वर्ष के इतिहास में यही पहला सम्राट् था, जो इस अवसर पर बीमार हो गया था।

महारानी विक्टोरिया का राजतिलक सन् १८३८ ई० के जून के महीने में प्रातःकाल ६ बजे हुआ था। उस समय एक बड़ा-सा काले रंग का पक्षी ऊपर मँडराने लगा था, जिसके कारण कुछ

लोगों ने अनुमान लगाया था कि यह सम्राज्ञी के राज्यकाल की अल्पता का सूचक है। इतिहास-प्रेमियों को यह बात भली भाँति विदित ही है कि यह भविष्यवाणी कितनी मिथ्या सिद्ध हुई। जब विक्टोरिया का राज्याभिषेक हुआ था, तो उनकी आयु केवल १९ वर्ष की थी और उनके मुख तथा उनकी आकृति में अभी बचपन झलकता था—गंभीरता नाममात्र को भी न थी। विक्टोरिया अपने राज्याभिषेक के उत्सव को एक निराली शान के साथ देखना चाहती थीं। इस अवसर के लिए उन्होंने अपने वास्ते एक बिलकुल नया राजमुकुट भी बनवाया था, जिसमें ६० सहस्र पौंड की लागत लगी थी। विक्टोरिया ने एक और भी नई प्रथा चलाकर पुरानी रीति को बदला था। अब तक सम्राट् के सिर पर पहले 'सेन्ट एडवर्ड का मुकुट' रक्खा जाया करता था और 'इम्पीरियल मुकुट' उसके बाद। सम्राज्ञी ने पहले अपने सिर पर इम्पीरियल मुकुट को रक्खा और तत्पश्चात् दूसरा मुकुट उनके सिर पर रक्खा गया। सम्राट् एडवर्ड सप्तम ने भी अपनी माता द्वारा प्रचलित प्रथा को जारी रक्खा था, पर सन् १९११ में सम्राट् जार्ज पंचम ने फिर पुरानी पद्धति का अनुसरण किया।

जिस दिन सम्राज्ञी विक्टोरिया का राज्याभिषेक हुआ था, उस दिन सूर्य आकाश में नहीं चमक रहा था—मौसम सुहावना न था। रानी को रात में नींद भी ठीक तरह से न आ सकी थी। बड़ी कठिनाई के साथ उन्हें प्रातःकाल ७ बजे जगाया गया था। उनके राज्याभिषेक के मौक़े पर इँगलैंड के दो भावी प्रसिद्ध प्रधान मंत्री—ग्लैडस्टन और डिसरैली—उपस्थित थे। इस अवसर पर और भी दो-एक बड़ी मनोरंजक घटनाएँ हुईं। जो अँगूठी सम्राज्ञी को पहनाई गई थी, वह आकार में कुछ तंग बन गई थी। उसे रानी की उँगली पर चढ़ाने में बड़ी दिक़्क़त पेश आई। जैसे-तैसे करके जब अँगूठी चढ़ गई, तो मालूम पड़ा कि चौथी उँगली पर चढ़ाये जाने के बजाय वह तीसरी उँगली पर चढ़ गई है। अन्त में यह निश्चय किया गया कि उसे वहीं रहने दिया जाय। लोगों का विश्वास था कि अगर अँगूठी उँगली में ख़ूब कसकर आये, तो समझना चाहिए कि वह शासक ख़ूब दीर्घजीवी होगा। बात भी ऐसी ही हुई। जब सोने की गेंद विक्टोरिया के हाथ पर रक्खी गई थी, तो उन्होंने कहा था कि यह तो बड़ी भारी है। उनका यह कथन भी उनके शासनकाल की दीर्घता का सूचक था।

अभी उस दिन सम्राट् छठे जार्ज का राज्याभिषेक हुआ था। सबसे ताज़ी घटना होने के कारण इससे सम्बन्ध रखनेवाली विस्तृत बातों का भी पता है। हम यहाँ विस्तारपूर्वक इस उत्सव का वर्णन करेंगे, जिससे कि पाठकों को विदित हो जाय कि पाश्चात्य देशों में—विशेषकर इँगलैंड में—राज्याभिषेक का उत्सव किस प्रकार मनाया जाता है। पाठकों को याद होगा कि इस उत्सव की इधर कई महीनों से बड़े ज़ोर-शोर की तैयारी हो रही थी, जिसमें पर्याप्त धन भी व्यय किया गया था। देश-विदेशों के प्रतिनिधि इस उत्सव में सम्मिलित होने को पहले से ही लंदन पहुँच गये थे। भारत से भी अनेक देशी राजे-महाराजे तथा धनीमानी व्यक्ति



बकिंघम पैलेस



इंगलैंड गये हुए थे। भारत के प्रतिनिधि बनकर जो सात सज्जन उत्सव में सम्मिलित होने पहुँचे थे, उनके नाम ये हैं—(१) हिज़ हाईनेस आग़ाख़ाँ, (२) सर मानिकजी दादा भाई, (३) सर लैसली हडसन, (४) रायबहादुर लाला रामेसरदास, (५) सर अब्दुर्रहीम, (६) सर कावसजी जहाँगीर, (७) मियाँ मोहम्मद रफ़ी। इनके अतिरिक्त भारतीय जलसेना, थलसेना तथा पुलिस आदि की ओर से ६०० व्यक्ति भारतीय सरकार की ओर से भेजे गये थे। इनमें से ३०० व्यक्तियों को शाही जलूस में स्थान मिला।

शाही परिवार का जलूस सुबह ६ बजकर १० मिनट पर बकिंघम-राजभवन से वेस्टमिन्स्टर-गिरजाघर के लिए रवाना हुआ। प्रिंसेस रायल सबसे आगे थीं। शीशे की दो गाड़ियों में सम्राट् की दोनों पुत्रियाँ राजकुमारी एलिज़बेथ और मारग्रेट रोज़ थीं। दोनों राजकुमारियाँ भीड़-भाड़ देखकर अत्यन्त उत्सुक और हर्षित मालूम देती थीं। राजकुमारियों से पीछे राजपरिवार की और कई गाड़ियाँ थीं। डचेज़ आफ़ ग्लोसेस्टर, डचेज़ आफ़ केन्ट आदि। ये सब श्वेत वस्त्र धारण किये हुए थीं और सिर पर ताज पहने हुए थीं। राजमाता



दि आनरेबुल सर मानिकजी दादाभाई



सर लैसली हडसन

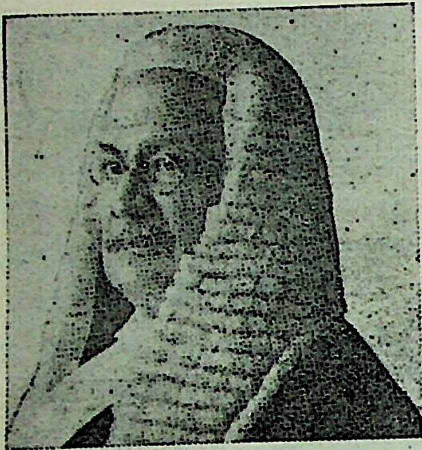


एच्० एच्० दि आग़ाख़ान
के० सी० आई० ई०



रायबहादुर लाला रामेसरदास





दि आनरेबुल सर अब्दुर्रहीम

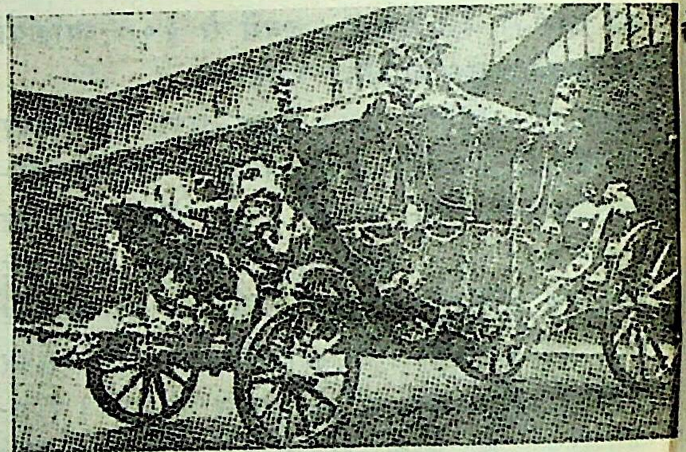


सर कावसजी जहाँगीर बार-अट-ला



मियाँ मोहम्मद रफ़ी

महारानी मेरी भी महारानी मोड के साथ जलूस के साथ थीं। वे चमकते हुए हीरों का ताज पहने हुए थीं और चार परिचारक सुन्दर वर्दियाँ पहने हुए उनके साथ थे। १० बजकर ३३ मिनट पर शाही गाड़ी बकिंघम-राजमन्दिर में पहुँची और सम्राट् तथा सम्राज्ञी दोनों उस पर सवार होकर गिरजाघर की ओर चले। जब वे राजभवन से रवाना हुए तो बिजली के घंटे बजाये गये। लाइफ़



राज्याभिषेक की सवारी

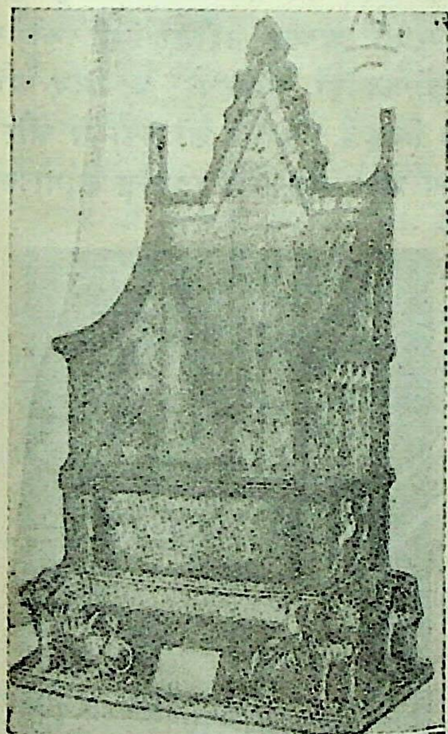
(यह गाड़ी सन् १७६१ में बनी थी और तभी से राज्याभिषेक के अवसर पर सम्राट् इसमें बैठकर आते-जाते हैं। इसे आठ घोड़े खींचते हैं। यह २४ फ़ीट लम्बी, ८ फ़ीट चौड़ी तथा १२ फ़ीट ऊँची है।)

गार्ड्स के अफ़सर ने अपना बेटन सिर पर उठाया और सम्राट् के घरेलू रिसाले सुनहरी और काली वर्दियाँ पहने सम्राट् की गाड़ी के आगे और पीछे चलने लगे। चार हिन्दुस्तानी अर्दलियों को यह सम्मान मिला कि उन्होंने सम्राट् को गिरजाघर तक पहुँचाया। वे चारों नीली सुनहली वर्दी के साथ रंग-बिरंगे साफ़े पहने हुए थे। सम्राट् जार्ज लाल-सुनहले शानदार वस्त्र पहने थे और शान्त और प्रसन्न दिखाई देते थे। सम्राज्ञी नंगे सिर थीं। वह अपने भड़कीले वस्त्रों में बड़ी सुन्दर मालूम



थीं और यदा-कदा मुस्कराकर झुक जाती थीं।

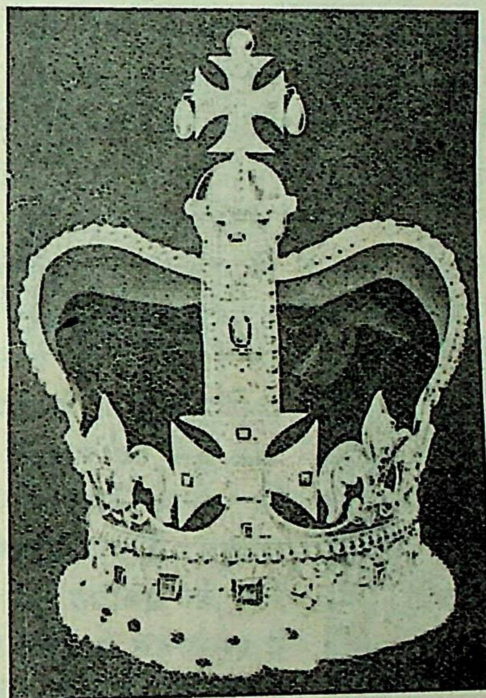
सम्राट् और सम्राज्ञी जब गिरजाघर पहुँचे, तो उस समय घंटे ज़ोरों से बजने लगे। ठीक ११ बजे सम्राट् ने गिरजाघर में प्रवेश किया। इसके बाद बिगुल बजने लगे। सम्राट् और सम्राज्ञी का जलूस जब शुरू हुआ, तो गिरजाघर सुनहली रोशनी से भर दिया गया। मेहमान लोग अपनी-अपनी गर्दनें उचकाकर उस जलूस को देखने का यत्न कर रहे थे। भड़कीली वर्दियाँ पहने अफ़सर लोग गिरजाघर के बग़ल तक गये। साम्राज्य के



(इस कुर्सी पर सम्राट् राज्याभिषेक के समय बैठा करते हैं।)

विभिन्न विभागों के अफ़सर मौजूद थे। इसके बाद गार्टर के चार नाइट आये। फिर प्रधान मंत्री मिस्टानली बाल्डविन के नेतृत्व में अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों के प्रधान मंत्री थे। पहले सम्राज्ञी आईं और उनके बाद सम्राट् आये। जब सम्राज्ञी आगे आ रही थीं, तो उनके चेहरे पर गम्भीरता छाई हुई थी। सम्राट् राज्य की टोपी पहने जब धीरे-धीरे कारोनेशन थिएटर की ओर बढ़े, तो दोनों ओर से दर्शक लोग उन्हें सलाम कर रहे थे। सम्राट् राज्याभिषेक के समय ख़ामोश खड़े थे और घोषणाओं के प्रति उन्होंने धीरे से सिर झुकाया। शपथ लेते समय उनकी आवाज़ धीमी, पर स्पष्ट थी।

राज्याभिषेक के कुछ घंटे पहले सम्राट् ने ब्रिटिश साम्राज्य के वीर मृतकों के प्रति सम्मान प्रकट



सेंट एडवर्ड का ताज

(यह ताज इँगलैंड का शाही ताज है और वज़न में बड़ा भारी है। अतः यह सम्राट् के सिर पर थोड़ी देर रखकर ही उतार लिया जाता है।)

किया था। सम्राट् शाम को बकिंघम-राजमन्दिर से वेस्टमिन्स्टर - गिरजाघर गये और उन्होंने "एक अज्ञात योद्धा" की क़ब्र पर फूल चढ़ाये। उनके साथ एक कार्ड बँधा था, जिस पर लिखा था—"साम्राज्य के मृतकों को—ह० जार्ज आर० और एलिज़बेथ आर०"



राज्याभिषेक की क्रिया समाप्त होने पर उसी दिन रात को सम्राट् ने बकिंघम-पैलेस के एक छोटे-से कमरे में बैठकर साम्राज्य भर में रेडियो द्वारा एक संदेश भेजा। सम्राज्ञी तथा राजवंश के अन्य सदस्य उसी महल के एक दूसरे कमरे में बैठे हुए ब्राडकास्ट किये जानेवाले संदेश को सुन रहे थे। सम्राट् ने अपने संदेश में कहा—

"आज रात को मैं स्पष्ट हृदय से आप लोगों के सामने बोल रहा हूँ। आज के पहले किसी नये राजा के लिए यह सम्भव नहीं था कि वह अपने राज्याभिषेक के दिन अपनी सभी प्रजाओं को घर बैठे यह सन्देश सुना सके। राज्याभिषेक का उत्सव भी कभी इतना व्यापक अथवा महत्त्वपूर्ण नहीं था। इसका कारण यह है कि स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश अब बिलकुल स्वतन्त्र हैं और इस प्राचीन राज्य के समान हिस्सेदार हैं। आज प्रातः-काल मुझे यह अनुभव हुआ कि सम्पूर्ण साम्राज्य प्रायः सचमुच ही वेस्टमिन्स्टर-अबे में एकत्रित हो गया है। मुझे इस बात की ख़ुशी है कि मैं आप सब लोगों से बोल सकता हूँ। उन सुदूरस्थ देशों में, जहाँ मैं भ्रमण कर चुका हूँ, पुराने मित्रों का, तथा उन-उन देशों के, जहाँ जाने का मुझे अभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है, नये मित्रों का मैं स्वागत करता हूँ। इस व्यक्तिगत रूप में रानी तथा मैं—दोनों आप सबके सुख तथा स्वास्थ्य के लिए शुभ कामना करते हैं। इस अवसर पर हम उन लोगों को, जो दुखित या पीड़ित हैं, भूल नहीं सकते। उनको मैं सहानुभूति तथा प्रसन्नता का विशेष सन्देश भेजता हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि रानी तथा मेरे प्रति आप लोगों ने जो प्रेम या राजभक्ति प्रकट की है, उसके लिए किन शब्दों में मैं आपको धन्यवाद दूँ। आज सड़कों पर आप लोगों ने जिस सत्कामना को प्रकट किया है और ग्रेट ब्रिटेन के कोने-कोने और उसके बाहर से जो असंख्य सन्देश प्राप्त हुए हैं, उनसे हमारा हृदय कृतज्ञता के भावों से भर गया है। मैं भविष्य में आप लोगों की सेवा करके ही इस कृतज्ञता को प्रकट कर सकता हूँ। मैं कृतज्ञता प्रकट करने का सबसे अच्छा तरीक़ा इसी को समझता हूँ। लाखों-करोड़ों व्यक्तियों के लिए यह मुकुट एकता का चिह्न है। ईश्वर की कृपा से और ब्रिटिश कामनवेल्थ आफ़ नेशन्स के स्वतन्त्र लोगों की इच्छा



सम्राट् का राजदंड

(राज्याभिषेक के समय सम्राट् इसे अपने हाथ में लेते हैं)

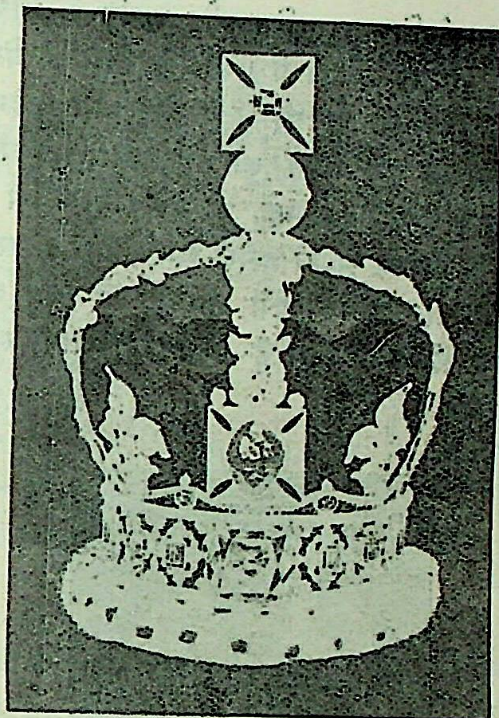


सम्राट् की गेंद

(यह गेंद सोने की बनी हुई है और राज्याभिषेक के अवसर पर सम्राट् के हाथ पर रक्खी जाती है।)



मैंने उस मुकुट को ग्रहण किया है। आप लोगों राजा होने की हैसियत से मेरा यह कर्त्तव्य है कि सकी तथा स्वतन्त्रता की रक्षा करूँ। यह वास्तव एक गम्भीर उत्तरदायित्व है, जो सदा बना रहता । किन्तु अबे में अपने चारों ओर आप लोगों प्रतिनिधियों को देखकर मुझे बड़ा भरोसा हो गा है। उसका बाहरी रूप तो बहुत पुराने ज़माने चला आ रहा है, किन्तु उसका आन्तरिक अर्थ और सन्देश सदा नये हैं। दूसरों की सेवा करना ऊँच गौरव की बात है और बहुत ही गम्भीर ब्दों में मैंने अपने को तथा रानी को, जो मेरे बग़ल स्थित है, राजत्व की सेवा में समर्पित कर दिया है। अगर ईश्वर की कृपा बनी रहे, तो हम बड़ी ... के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे.... आप लोगों में से कुछ लोग कामनवेल्थ में एक ... के दायरे में भ्रमण करेंगे और ऐसे दूसरे ... से मिलेंगे, जिनके विचारों में वे ही स्मृतियाँ ... हैं और जिनके हृदय सम्मिलित थाती को रक्षित रखने में एक हैं। मुझे आशा है कि आप लोगों को मालूम हो जायगा कि हमारे स्वतन्त्र सम्पर्क-विपर्क से कितना अधिक लाभ होता है और एक दूसरे के साथ तथा संसार के सभी देशों के



शाही राजमुकुट

(राज्याभिषेक हो जाने के उपरान्त सम्राट् इसी ताज को पहना करते हैं। पार्लियामेंट आदि का उद्घाटन करने के लिए वह प्रायः इसी को पहनते हैं। इस मुकुट में अनेक बहुमूल्य रत्न जड़े हुए हैं।)

साथ हमारी मित्रता शान्ति और उन्नति के कार्य में कितनी सहायक होती है। आज के दिन की प्रेरणा मेरे और रानी के हृदयों में सदैव बनी रहेगी। ईश्वर करे कि हम अपने को सदा उस सत्कामना के उपयुक्त सिद्ध कर सकें, जो मेरे ख़याल से मेरे शासन के प्रारम्भ में ही हमारे चारों ओर दिखलाई पड़ती है और जिसका हमें गर्व है। मैं आप लोगों को हृदय से बधाई देता हूँ। ईश्वर आप सबको प्रसन्न रक्खे।"



एम्पूला

(यह सोने का बना है और उकाब पक्षी की शक्ल का है। इसी पक्षी की चोंच में से पवित्र तेल (Holy oil) उँडेला जाता है, जो सम्राट् के सिर और छाती पर टपकाया जाता है)

उसी दिन हिज़ ऐक्सीलेन्सी वाइसराय लार्ड लिनलिथगो द्वारा निम्न-सन्देश ब्राडकास्ट किया गया—

"भारतवर्ष सम्राट् और सम्राज्ञी के राज्याभिषेक को जयजयकारपूर्वक स्वीकार करता है और राजसिंहासन तथा सम्राट् के प्रति अपनी श्रद्धा और अविच्छिन्न राजभक्ति की गौरवपूर्वक प्रतिज्ञा करता है। इस महादेश के प्रत्येक भाग में ईश्वर से यही प्रार्थना की जा रही है कि जिनका जीवन अब से अपनी प्रजा की सेवा में अर्पित किया जा चुका है, उन्हें वह अनुग्रहपूर्वक शक्ति और नेतृत्व प्रदान करे। संसार के किसी भाग में राजत्व को इतने अधिक आध्यात्मिक गुरुत्व और मानव-हृदय के प्रति हार्दिक और मर्मस्पर्शी आकर्षण के साथ इतना अधिक अथवा इतना हार्दिक महत्त्व प्राप्त नहीं है, जितना भारतवर्ष के इस प्राचीन देश में। इस मंगलमय अवसर पर, जिसका पोषण समान रूप से, कठिन परीक्षाओं और विजय-लाभ की गौरवमय स्मृतियों द्वारा हुआ है, भविष्य के वर्षों में पूर्ण विश्वास रखते हुए, भारतीय नरेश और प्रजा ब्रिटिश साम्राज्य के प्रत्येक भाग के साथ संयुक्त रूप से सम्राट् के प्रति एक बार फिर अपनी राजभक्ति की प्रतिज्ञा करती है।"





१—ख़ाँबहादुर की नई माँग

कांग्रेस के कर्णधार मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करने की इच्छा से बराबर दबते जा रहे हैं, और मुसलमान भाई दिन-दिन नई-नई माँगें पेश करके अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहते हैं—चाहे उनकी वे माँगें न्यायसंगत हों या असंगत। मदरास-सरकार के मंत्रिमंडल में एक महाशय ख़ाँ-बहादुर ख़लीफ़ुल्ला साहब हैं। आपने अभी एक अपने भाषण में कहा है कि कांग्रेस अगर मुसलमानों का सहयोग चाहती है तो उसे मि० जिन्ना की १४ शर्तों के साथ मेरी यह शर्त भी माननी पड़ेगी कि उर्दू देश की राष्ट्रभाषा हो। हिन्दुस्तानी के नाम से हिंदी में अस्सी प्रतिशत अर्बी-फ़ार्सी के शब्द ठूँसने की चेष्टा चल रही है। उर्दू अक्षरों में लिखी हुई हिन्दी-उर्दू मिश्रित खिचड़ी भाषा को हिन्दी या हिन्दुस्तानी मान लेने का प्रस्ताव भी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में पास हो चुका है। फिर भी हमारे मुसलमान भाइयों को संतोष नहीं हुआ। उन्हें हिन्दी नाम से ही चिढ़ है और वे मुस्लिम प्रधानता के साथ ही उर्दू का ही साम्राज्य देश में देखना चाहते हैं। हिन्दी-प्रेमी जनता क्या इसके लिए तैयार है?

× × ×

२—डाकख़ाने के नये टिकट

एक सरकारी सूचना से प्रकट हुआ है कि भारत में प्रचलित होने के लिए सम्राट् जार्ज षष्ठ के नाम के पोस्टल टिकट तैयार हो गये हैं। इसी अगस्त के महीने से ये भारत के डाकख़ानों में बिकने लगेंगे। इन टिकटों का डिज़ाइन पिछले टिकटों से बिलकुल जुदा है। इन टिकटों का डिज़ाइन नासिक के सेक्यूरिटी-प्रेस ने बनाया है और उसमें भारतीय विशेषता देख पड़ती है। अभी एक पैसे, दो पैसे, तीन पैसे और एक आना क़ीमत के टिकट ही तैयार किये गये हैं। सम्राट् जार्ज पंचम के टिकटों का डिज़ाइन यह था—एक अंडाकार वृत्त के बीच में सम्राट् का सिर और कंधे अंकित थे और टिकट का मूल्य एवं "इंडिया पोस्टेज" लिखा हुआ था। नये टिकटों के डिज़ाइन में भी टिकट के बीच में नये सम्राट् का सिर और कंधे अंकित हैं, मगर कंधों को कुछ अधिक अंश में दिखाया गया है, जिसमें सम्राट् की राजसी पोशाक अच्छी तरह प्रकट रहे। यह सम्राट् का चित्र अंडाकार वृत्त में न होकर भारतीय गृहशिल्प के अनुसार एक नुकीले मेहराब में है। मेहराब के दोनों ओर इंडिया पोस्टेज शब्द लिखा है। मेहराब के बाईं ओर ऊपर फूल-पत्तों सहित एक सुन्दर कमल अंकित है



नीचे की तरफ़ टिकट का मूल्य लिखा है। रुपये-वाले टिकटों का डिज़ाइन बादशाह सलामत की मंज़ूरी के लिए लन्दन गया हुआ है। इसका डिज़ाइन भी साधारणतः पूर्वोक्त डिज़ाइन से मिलता-जुलता है; लेकिन रंग कुछ अधिक अच्छा रहेगा। पुराने टिकटों की अपेक्षा इसका रंग अधिक गहरा और सुन्दर होगा। डेढ़ आने से लेकर बारह आने तक के टिकटों का डिज़ाइन अभी कुछ निश्चित नहीं हुआ—विचाराधीन है।

× × ×

३—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अगला अधिवेशन शिमला में होनेवाला है। सुनते हैं, तैयारियाँ अभी से हो रही हैं। इधर कुछ लोगों में यह भ्रम फैल गया था या फैलाया गया था कि यह सम्मेलन एक राजनीतिक संस्था है। इस भ्रम का आधार शायद यही था कि इधर कई साल से कुछ राजनीतिक नेता सम्मेलन पर अपना अधिक प्रभाव डाल रहे हैं और इस बार स्थान भी शिमला (राजनीतिक अड्डा) चुना गया है। इसी भ्रम के कारण शायद कुछ लोग सम्मेलन के काम में सम्मिलित नहीं हो रहे हैं। महात्माजी से इस भ्रम को दूर करने के लिए कुछ सज्जनों ने प्रार्थना की। महात्माजी को "हरिजन" में एक लेख लिखकर यह स्पष्ट करना पड़ा कि सम्मेलन कोई राजनीतिक संस्था नहीं है। आपको यह भी लिखना पड़ा कि सम्मेलन मुसलमानों का विरोध करनेवाली संस्था भी नहीं है। अनेक राजा-महाराजा और सरकारी अफ़सर सम्मेलन से सम्बन्ध रख चुके हैं। दो-एक राजा तो सम्मेलन के सभापति भी बन चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं कि सम्मेलन एक विशुद्ध साहित्यिक संस्था है। इसका राजनीति से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, यद्यपि साहित्यिक दृष्टिकोण से राजनीतिक लोग भी इसमें सम्मिलित हो सकते हैं। आशा है, शिमले में सम्मेलन का अधिवेशन सफलता-पूर्वक सम्पन्न होगा और उसमें सभी विचारों और वर्गों के लोग निःसंकोच सम्मिलित होंगे।

× × ×

४—केरलप्रान्त में हिन्दी का प्रचार

केरलप्रान्तीय हिन्दी-प्रचार-सभा का एक डेपुटेशन हाल में ट्रावनकोर राज्य के दीवान साहब से मिला था। ट्रावनकोर के दीवान सर सी० पी० राम स्वामी ऐयर महाशय बड़े विद्वान् और उदार व्यक्ति हैं। इस डेपुटेशन में ये लोग शामिल थे—सरकार के रिटायर्ड चीफ़ सेक्रेटरी राव बहादुर के० नारायण पंडालाइ, केरल-हरिजन-सेवकसंघ के अध्यक्ष श्री सी० के० परमेश्वरन पिलाई तथा दो और सज्जन। डेपुटेशन ने बतलाया कि इस प्रान्त में १४ वर्षों से यह सभा हिन्दी-प्रचार का काम कर रही है। इस बीच में ५० हज़ार मनुष्यों ने हिन्दी का अध्ययन किया है। मार्च, १९३७ तक इस प्रान्त में ४६०००) ख़र्च किये गये। इसमें २४०००) चन्दे से मिला। डेपुटेशन ने दीवान साहब से यह प्रार्थना की कि ट्रावनकोर के सभी रियासती हाई स्कूलों में हिन्दी की पढ़ाई जारी कर दी जाय; ट्रावनकोर-युनिवर्सिटी की योजना में हिन्दी को भी उचित स्थान मिले; आइन्दा स्कूलों में हिन्दी की शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय और राज्य की ओर से हिन्दी-प्रचार-सभा को सहायता दी जाय। स्थानीय बोर्डों को हिन्दी-पुस्तकालयों की सहायता करने की भी अनुमति दी जाय। डेपुटेशन ने यह भी बतलाया कि कुछ स्कूलों में हिन्दी ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है और कुछ स्कूलों में इसे जारी करने की तैयारी हो रही है। कुछ साल पहले राज्य की व्यवस्थापिका सभा ने प्रस्ताव पास करके सरकार से सिफ़ारिश की थी कि सभी सरकारी स्कूलों में हिन्दी पढ़ना अनिवार्य कर दिया जाय। दीवान साहब ने डेपुटेशन की प्रार्थनाओं पर विचार करने का वचन दिया। इसमें संदेह नहीं कि दक्षिण के



उत्साही कार्यकर्त्ता और हिन्दी सीखने के लिए उत्सुक जनता दोनों ही प्रशंसा के पात्र हैं। आशा है, ट्रावनकोर राज्य की ओर से इस संस्था को समुचित सहयोग, सहायता और सद्भावना प्राप्त होगी।

× × ×

४—धार्मिक असहिष्णुता दूर होनी चाहिए

अभी लखनऊ में शिया और सुन्नी मुसलमानों में भारी दंगा हो गया, जिसकी सूचना हम गत संख्या में दे चुके हैं। इस दंगे में सैकड़ों निरपराध धर्मान्धता के शिकार हुए, ज़ख़्मी हुए, कुछ के प्राण भी गये और अनेक गिरफ़्तार होकर कष्ट पा रहे होंगे। मुसलमान भाइयों के इन दोनों दलों में प्राचीन काल में साम्प्रदायिक कारणों से लड़ाई-झगड़े अवश्य हो चुके हैं, पर इधर सदियों से दोनों सम्प्रदाय हिलमिलकर भारत में निवास कर रहे थे। हिन्दू और मुसलमानों में जैसे ज़रा-ज़रा-सी बात पर या यों कहिए कि अकारण ही दंगा-फ़साद हो जाया करता है, वैसी बात या ईर्षा-द्वेष इन दोनों दलों में नहीं है। फिर भी यह जो लखनऊ में भयानक दंगा हो गया, वह अत्यन्त शोचनीय है। शिया और सुन्नी दोनों ही मुसलमान हैं, मनुष्य हैं, इस बात को भूलकर दोनों दलों ने भयानक ख़ूनी जानवरों की तरह एक दूसरे पर आक्रमण किया। अगर सरकार इसे रोकने का कठिन प्रयत्न न करती तो हज़ारों की जान पर बन आती। वास्तव में धार्मिक उन्माद बड़ी बुरी चीज़ है, सहनशीलता तो ऐसी दशा में रह ही नहीं जाती। इस धार्मिक उन्माद के कारण ही मुसलमान भाई हिंदुओं पर प्रायः हमला कर बैठते हैं। पहले के उपद्रवों की बात जाने दीजिए, अभी बम्बई में ही दो बार हिंदू-मुसलिम-संघर्ष हो चुका है। इस धार्मिक उन्माद को दूर करने का प्रधान उपाय यही है कि शिक्षा का प्रचार और ज्ञान का प्रसार हो। मध्ययुग में सुसभ्य पाश्चात्य देशों में भी रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टेंट धर्मावलम्बी ईसाई इसी धर्मोन्माद के कारण आपस में लड़ते और कटते-मरते थे। इँगलैंड के इतिहास में इसका ख़ूनी चित्र अंकित है। स्काट, डिकेंस आदि श्रेष्ठ लेखकों ने अपने उपन्यासों में भी इसका वर्णन किया है, जिसे पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस मध्ययुग के इस धार्मिक संघर्ष का विवरण पढ़ने से यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि धर्म के नाम पर मनुष्य कैसा भयानक हिंस्र पशु बन जाता है, उसकी दानवी शक्ति कैसी भयानक बन जाती है। भारत में भी कानपुर, फ़ीरोज़ाबाद आदि स्थानों के उपद्रव इसके साक्षी हैं। परन्तु बीसवीं शताब्दी में शिक्षा और ज्ञान की वृद्धि के साथ ही साथ योरप में रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टेंट ईसाइयों का वह झगड़ा समाप्त हो गया है। भारत में इस समय भी सौ में पाँच से अधिक मनुष्य लिखना-पढ़ना नहीं जानते। यहाँ शिक्षा का प्रचार इतनी धीमी गति से हो रहा है और वह ज्ञानवृद्धिरूप उद्देश्य से इतना दूर है कि धर्मान्धता पर उसका कुछ भी प्रभाव पड़ता नहीं दिखाई देता। आध्यात्मिकता अगर साधारण मनुष्य के मन के अन्धविश्वास का अन्धकार दूर न कर सके, वह धर्म के यथार्थ लक्ष्य और स्वरूप को न जान सके तो शिक्षा का कुछ भी फल नहीं होता, वह पराये धर्म-मत के सम्बन्ध में असहनशील ही बना रहता है। यही कारण है कि भारत में पढ़े-लिखे कहलानेवाले हिन्दू-मुसलमान भी पराये धर्म के सम्बन्ध में असहिष्णु ही देखे जाते हैं और वे ही लीडर-नामधारी जीव अज्ञ भाइयों को धर्म के नाम पर उत्तेजित कर लड़ा देते हैं। यही कारण है कि मुसलमान भाई हिन्दुओं के धार्मिक और सामाजिक कृत्यों में मसजिद के पास बाजा बजाने से उत्तेजित हो उठते हैं और शिया-सुन्नी आपस में लड़ मरते हैं। जब तक टर्की, ईरान आदि देशों के मुसलमानों की तरह भारत के मुसलमान भी धार्मिक असहिष्णुता के शिकार



बने रहेंगे, तब तक वे अपने परोसियों से लड़ना-झगड़ना नहीं छोड़ सकते। इस रोग की दवा यही है कि नेता और प्रचारक लोग उनके ज्ञान-चक्षु खोलने का प्रयत्न करें, इसी में उनकी, समाज की और देश की भलाई है।

× × ×

६—अलवर-नरेश का स्वर्गवास

हमारे पाठकों ने समाचार-पत्रों में पढ़ा होगा, पेरिस में अलवर-नरेश का स्वर्गवास हो गया। महाराज इधर राज्य से निर्वासित कर दिये गये थे। आप एक सुयोग्य शासक और उदारहृदय विद्वान् थे। यों तो गुण-दोष प्रत्येक मनुष्य में होते हैं। महाराज में भी होना संभव है; परन्तु सब मिलाकर महाराज प्रशंसनीय ही थे। आपकी प्रजा आप को बहुत चाहती थी और आप भी प्रजा का ख़याल रखते थे। इसका प्रमाण यही है कि अन्तिम इच्छा आपने यही प्रकट की कि उनकी प्रजा को कष्ट न हो। प्रजा ने भी आपके शव के प्रति जैसी भक्ति दिखाई, उससे उसकी राजभक्ति का प्रकृष्ट परिचय मिलता है। आप अपना कोई उत्तराधिकारी नहीं छोड़ गये हैं। सरकार ही उत्तराधिकारी नियुक्त करेगी। हम ईश्वर से महाराज की आत्मा के लिए शान्ति और सद्गति की प्रार्थना करते हैं।

× × ×



७—संसार के सबसे बड़े धनी

भारत की अधिकांश जनता ग़रीब है और यहाँ के ज़मींदार और अनेक राजा-महाराजा भी व्यर्थ की शान दिखाने में अपव्यय करने के कारण ऋण के बोझ से दबे हुए हैं। फिर भी भारत के कुछ नरेश ऐसे हैं, जो अतुल सम्पत्ति के स्वामी हैं, संसार के सबसे बड़े धनी हैं। हैदराबाद के निज़ाम, काश्मीर के महाराज, बरोदा-नरेश, मैसूर-नरेश आदि इनमें मुख्य हैं। इन सब नरेशों के पास अंदाज़न २२ करोड़ पौंड क़ीमत का सोना ही होगा। हीरा-जवाहरात तो इससे भी अधिक क़ीमत के होंगे। सन् १८७७ के दिल्ली-दरबार में सबसे पहले इनके क़ीमती रत्नों और आभूषणों को देखकर लोग दंग रह गये थे। हैदराबाद के निज़ाम सबसे बड़े धनी नरेश हैं। इनके पास सोने-जवाहरात के रूप में ५ करोड़ पौंड से अधिक मूल्य की सम्पत्ति है। इनके पास संसार के दो प्रसिद्ध हीरे हैं। एक २७७ रत्ती वज़न का निज़ाम-हीरा और दूसरा १७७ रत्ती वज़न का विक्टोरिया-हीरा। विक्टोरिया हीरे को निज़ाम ने ४ लाख पौंड में ख़रीदा था। निज़ाम के राज्य की जन-संख्या १ करोड़ ४५ लाख है। निज़ाम की सालाना आमदनी १० लाख पौंड है। उन्होंने महायुद्ध के समय ब्रिटेन के युद्धफंड में २ करोड़ पौंड दिये थे। निज़ाम का ख़ज़ाना ज़मीन के भीतर ६ मील लंबी खान के रूप में है। निज़ाम साल में एक बार इसका मोआइना करते हैं। एक पहाड़ी पर निज़ाम के पुरखों का ख़ज़ाना एक कंदरा में है। यह एक रहस्यपूर्ण स्थान है। राजपूताने में जयपुर के महाराज के पास भी क़ीमती रत्न हैं। इनके एक जड़ाऊ कोट का मूल्य दो लाख पौंड है। यह उत्सवों के अवसर पर इन रत्नों को धारण करते हैं। स्वर्गीय अलवर-नरेश गुलाबी-सुनहरी पोशाक पहनते थे, उसमें अनमोल मोती टँके हुए थे। ओरछा-नरेश की सुनहरी पगड़ी में बड़े क़ीमती हीरे जड़े हैं। पटियाला-नरेश के पास मोतियों का एक हार है। उसका मूल्य १६ लाख पौंड है। काश्मीर-नरेश के पास भी लाखों पौंड के आभूषण हैं। रतलाम-नरेश की पगड़ी में भी बड़े क़ीमती जवाहरात जड़े हैं। कपूरथला के महाराज के पास २ लाख पौंड के रत्न हैं। महाराज गायकवाड़ "अकबर शाही" नाम की पगड़ी बाँधते हैं। इस पगड़ी को कभी अकबर बादशाह पहनते थे। इसमें एक हीरा है, जिसका वज़न ७७ रत्ती है। मैसूर-नरेश को कोलार की सोने की खानों से ३२ लाख पौंड की सालाना आमदनी होती है। इनके पास भी अनेक रत्न हैं। नेपाल के महाराज ५० लाख प्रजा पर शासन करते हैं। इनकी सालाना आमदनी १२ से १८ लाख पौंड तक है। इनके पास भी बहुमूल्य रत्नराशि है।

× × ×

८—ब्रिटेन में मन्त्रि-परिवर्तन

मि० बाल्डविन ब्रिटेन के प्रधान मंत्री थे। उन्होंने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया। उन्हें अर्ल बना दिया गया है। मि० नेविल चेंबरलैन अब प्रधान मंत्री बनाये गये हैं। इस परिवर्तन से भारत के भाग्य पर कोई विशेष प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है। मि० मेकडानल्ड हों, मि० बाल्डविन हों, या मि० चेंबरलैन हों, भारत के बारे में ब्रिटेन की नीति एक ही रहेगी। मि० बाल्डविन के समय में भारत को जो शासन-संस्कार प्राप्त हुआ है, उससे देश का कल्याण कितना होगा, यह भविष्य ही बतलावेगा।

× × ×

९—तमाखू से हानियाँ

तमाखू का सेवन भारत में बहुत अधिक हो गया है। कुछ लोग तमाखू पीते हैं, कुछ सूँघते हैं और कुछ खाते हैं। ग़रीब से लेकर अमीर तक



तमाखू के भक्त हो रहे हैं। इसकी हानियों पर वे ध्यान ही नहीं देते। तमाखू सेवन करने से पहले ही खाँसी का आक्रमण होता है। अन्त में दिल की धड़कन, नज़र की कमज़ोरी, हृदय में दर्द पैदा होना आदि व्याधियाँ आकर घेर लेती हैं। हृदय की धड़कन बंद होने से अब लोग अधिक मरने लगे हैं। अगर पता लगाया जाय तो मालूम होगा, अधिकांश ऐसी मौतों का कारण तमाखू का सेवन ही है। हर एक विष में यह गुण होता है कि अगर वह शरीर की सहनशक्ति के योग्य होता है तो उसको खाने से शरीर में एक तरह की फुर्ती आ जाती है। पर विष का प्रभाव कम होते ही वह फुर्ती आलस्य या सुस्ती का रूप धारण कर लेती है। यही बात तमाखू में भी पाई जाती है। एक तरह की स्फूर्ति या ताज़गी लाने के लिए ही लोग तमाखू का सेवन करते हैं। पर फल उलटा होता है। नशा उतरते ही सुस्ती सताती है और फिर तमाखू के सेवन की इच्छा उत्पन्न होती है। वे थोड़ी थोड़ी देर बाद तमाखू का सेवन करके शरीर को अधिकाधिक विष से जर्जर बनाते हैं। जब से सिगरेट और बीड़ी का चलन बढ़ा है, तब से तो इस विष के सेवन में अधिक आसानी हो गई है। बड़ी-बड़ी कंपनियाँ तमाखू, सिगरेट, बीड़ी बेचकर दिन-दिन मालामाल होती जा रही हैं और हमारे नादान भाई धन के साथ ही स्वास्थ्य को भी नष्ट करने में लगे हुए हैं। तमाखू के पक्ष में जो लोग हैं, उनका कहना है कि तमाखू में विष (Nicotine) की मात्रा इतनी कम होती है कि उससे अधिक हानि होने की संभावना नहीं है। पर यह कहना सरासर ग़लत है। वैज्ञानिक अनुसंधान से पता लगा है कि तमाखू में निकोटीन अर्थात् विष ९० फ़ीसदी रहता है। इस विष का बुरा असर फेफड़ों की कोमल झिल्ली पर बहुत अधिक होता है। इस सम्बन्ध में एक बात और विचारणीय है। हम अपने स्वास्थ्य को चाहे बनावें चाहे बरबाद करें, इसका हमें अधिकार है, लेकिन अपनी सन्तान के स्वास्थ्य को नष्ट करने का हमें कोई अधिकार नहीं। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि तमाखू का असर केवल पीनेवाले के शरीर पर ही नहीं होता, बल्कि उसकी सन्तान पर भी पड़ता है। इसलिए हर एक समझदार आदमी को तमाखू से बचना चाहिए। अगर किसी को तमाखू पीने या खाने की आदत पड़ गई है तो वह भी दो-चार दिन मन मारकर इस आदत को छोड़ सकता है।

× × ×

१०—हिन्दीमाता ने दो सुपुत्र और खो दिये

अभी लाला सीतारामजी और मुन्शी प्रेमचन्दजी के वियोग की वेदना कम नहीं हो पाई थी कि अचानक मु० अजमेरीजी और श्रीचमूपतिजी एम्० ए० के स्वर्गवास का समाचार सुन पड़ा। अजमेरीजी बड़े गुणी और सज्जन थे। वह केवल विद्वान् ही नहीं, विनोदी भी थे। आप बढ़िया लेखक, कवि और वक्ता थे। संगीत में भी आपकी अच्छी गति थी। आपकी प्रतिभा और धारणाशक्ति विचित्र थी। आप मुसलमान होने पर भी सर्वथा हिन्दू-संस्कृति के समर्थक और भक्त थे। कविवर मैथिलीशरणजी गुप्त के आप बाल्यसहचर और अन्तरंग मित्र थे और गुप्त-परिवार आपका बड़ा सम्मान करता था। अजमेरीजी की अवस्था अभी ५५ वर्ष की ही थी। आपके एक फोड़ा निकल आया था। उसी के ज़हर ने फैलकर आपके प्राण ले लिये। आपकी मृत्यु से हिन्दी की विशेष क्षति हुई है, इसमें सन्देह नहीं। ईश्वर आपकी आत्मा को शान्ति दें। आपके परिवार के प्रति हमारी हार्दिक समवेदना है। पं० चमूपतिजी पंजाब के रहनेवाले थे। आप दर्शन, साहित्य, इतिहास आदि विषयों पर गम्भीर गवेषणापूर्ण लेख लिखकर देश और समाज की सेवा करते रहते थे। विषम ज्वर से अचानक आप भी स्वर्गवासी हो गये। इसे

हम देश, जाति और हिन्दी का दुर्भाग्य ही समझते हैं। पंडितजी की आत्मा के लिए हम शान्ति की कामना करते हैं और आपके परिवार के प्रति सम्पूर्ण सहानुभूति।

× × ×

११—डा० काशीप्रसादजी जायसवाल

इधर हिन्दीमाता के दो लाल रोगग्रस्त हो पड़े हैं। मित्रवर बाबू जयशंकरप्रसादजी के लिए हम चिन्तित ही थे कि इधर डा० काशीप्रसादजी जायसवाल की बीमारी का हाल पढ़ने को मिला। आपकी गर्दन के पीछे कारबंकल का आपरेशन हुआ है। आप बहुत कमज़ोर हो गये हैं। घाव अभी भरा नहीं। ज्वर भी रहता है। हमारी ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना है कि इन दोनों विभूतियों को शीघ्र नीरोग करें। जायसवालजी और प्रसादजी हमारे लिए, देश के लिए और हिन्दी के लिए गर्व और गौरव की वस्तु हैं। हिन्दी-साहित्य में इनकी सेवाएँ बहुमूल्य हैं।

× × ×

१२—माधुरी का नववर्षांक

इस संख्या से माधुरी का यह वर्ष समाप्त होता है। अगली संख्या से नया वर्ष शुरू होगा। दो-तीन वर्ष से नववर्षांक विशेषांक के रूप में (प्रायः दुगने आकार में) निकला करता था।



इस बार हम उसे साधारण अंक के रूप में ही प्रकाशित करेंगे। विशेषांक के रूप में हम कोई और संख्या निकालेंगे, जिसकी सूचना दो महीने पहले दे दी जायगी। ऐसा करने का एक कारण है। वह यह कि केवल बड़ा आकार कर देने से ही कोई अंक विशेषांक नहीं हो सकता। उसमें कोई विशेषता होनी चाहिए। समय इतना कम है कि कहानी-अंक के बाद ही दूसरा सफल विशेषांक निकालना संभव नहीं। आशा है, हमारे पाठक भी हमसे सहमत होंगे। फिर भी नववर्षांक साधारण अंक से कुछ बड़ा होगा और आकर्षक भी। हम माधुरी को और भी उन्नत बनाना चाहते हैं। पर इसमें सफलता मिलना पाठकों की सहायता पर ही निर्भर है। अगर हमारे पाठकों में से प्रत्येक सज्जन एक-एक नया ग्राहक बना देने की कृपा करें (जो कुछ बहुत कठिन नहीं है) तो सहज में ही माधुरी की ग्राहक-संख्या बढ़ सकती है। उस दशा में हम अच्छे-अच्छे लेखकों को यथेष्ट पुरस्कार देकर और भी ज्ञानवर्द्धक एवं उच्च कोटि की सामग्री माधुरी के लिए प्रस्तुत करा सकते हैं। आशा है, माधुरी के प्रेमी और सहायक अवश्य ही माधुरी की ग्राहक-संख्या बढ़ाकर साहित्य-सेवा के पुनीत कार्य में हमारी सहायता करेंगे।

अभिनय

गोस्वामी मदनगोपालजी 'अरबिन्द' बी० ए०

(१)

शून्य की नीरवता में एक
गगन की नील-यवनिका तान;
सूर्य-शशि, अगणित-तारक दीप
विश्व का व्यापक-मंच महान्!

सृष्टि के अमित रूप में मौन
खेलता है अभिनय यह कौन!

(२)

व्यक्त करते हैं सुमन-विकास
किसी का कल-कल नीरव हास!
अनिल-कम्पित-पल्लव, तरु लास
किसी के क्रीड़न का आभास!

प्रकृति के कण-कण में यह रास
प्राण, जीवन, सुषमा उल्लास!

(३)

शून्य-संध्या का गहन विराग
मधुर ज्योत्स्ना का मानस-राग;
प्रकृति के उर का पुलक-प्रभात
दिवस-निशि-तिमिर-ज्योति-अवदात।

शिशिर-सावन-मधु-सरस-वसन्त
खेलते प्रतिपल खेल अनन्त!

(४)

एक सौन्दर्य अकूल-अछोर
विश्व के सब क्रम में, सब ओर!
प्राण रहते हैं मुग्ध, विभोर
चकित रहते नित नयन-चकोर!

देख रे जग अन्तर-दृग खोल
चिरन्तन सुख, सौन्दर्य अमोल!

